

श्रीहरिः

श्रीमदानन्दरामायणस्थविषयानुक्रमणिका

विषय

पृष्ठ

विषय

पृष्ठ

सारकाण्ड

प्रथम सर्ग

भङ्गलापरण

रघुवंशकी संक्षिप्त वंशावली

रावणका ब्रह्मासे अपने मरणका हेतु पूछना, ब्रह्माका रामके हाथों रावणके मरणका भविष्य बतलाना और रावणका कौसल्याको सन्दूकमें बंद करके समुद्रनिवासी तिमिरालकी सौपना

महाराज दशरथके साथ कौसल्याका शाधर्व-विवाह

दशरथजीका सुमित्रा-कैकेयीके साथ विवाह, महाराज दशरथका वैश-दानवद्वयमें जाना

उस युद्धमें कैकेयीका रथकी दूटी घुरीमें अपना हाथ लगाकर राजा दशरथके प्राण बचाना, जिससे दशरथजीका कैकेयीको से वरदान देना तथा अयोध्याको सकुशल लौटना

राजा दशरथ द्वारा भवणका वष और भवणके अर्धे माता-पिताका ध्याय देना

ऋष्यभृङ्ग द्वारा पुनर्दृष्टि वज्र सम्पन्न होना और अग्निको प्रकट होकर हवि देना

द्वितीय सर्ग

पृथ्वीका दुःखित होकर देवताओंके पास जाना और सब देवताओंका क्षीरसागर जाकर विष्णुमहेश्वरकी स्तुति करना और समक्षाकी आकाशवाणी सुनना, राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नका जन्म और उन पुत्रोंकी बाल-कीर्ण

बुध ऋषिद्वारा रामादि चारों भाइयोंको धार्मिक शिक्षा देना

तृतीय सर्ग

महामुनि विश्वामित्रका राजा दशरथकी समामें जाकर यज्ञरथार्थ राम-लक्ष्मणको मांगना, मार्गमें विश्वामित्रका दोनों बालकोंको वस्त्रास्त्रकी शिक्षा देना और श्रीरामके हाथों शत्रुकावध

१

२

३

४

५

६

७

८

९

१०

राम-लक्ष्मणको लेकर विश्वामित्रका जन्म-पुरको प्रस्थान और बहुत्वोद्वार

रामके आश्रमसे जनकपुरनिवासिनी लल-नाओंका हर्षोल्लास

राजा जनक द्वारा अपनी प्रतिभाकी घोषणा

रावण द्वारा शत्रुघ्न उठानेका प्रयास और उसमें विफलता, समामें रामका आगमन

सीताका रामको देखना और मुग्ध होकर मन ही मन देवताओंसे प्रार्थना करना

रामके हाथों शिवशत्रुघ्न दूटना

राजा जनकके आज्ञानुसार सीताका राजसमामें जाना और रामके गलेमें नरमाला डालना

राजा जनकका महाराज दशरथके पास निमंत्रण भेजना, रामादि चारों भ्राताओंके विवाहका निश्चय और सीताके जन्मका वृत्तान्त

राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नका क्रमशः सीता-जन्मका-वाङ्मय और श्रुतकीर्तिके साथ विवाह और एक साथ सब महाराज दशरथका अयोध्याको प्रस्थान

मार्गमें राम-शत्रुघ्नरामका साक्षात्कार

राम द्वारा परशुरामका गर्वभञ्जन और परशुरामका रामको आत्मकथा सुनाना

महाराज दशरथका अयोध्यामें पहुँचना और उत्सव मनाना

चतुर्थ सर्ग

दीपावलीके अवसरपर पुनः राजा जनकका महाराज दशरथको बुलाना और तदनुसार जनका प्रस्थान

जनकपुरमें राजा दशरथका सत्कार और जनक-पुरसे लौटते समय रास्तेमें जनको बहुतेरे बँदी राजाओंका पेरना

रामका उन राजाओंके साथ और मुद्र और भरतका मूर्च्छित होना

रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणका मुद्राल मुनिके आश्रममें सज्जीवनो बूढ़े लेने जाना और आश्रमवासियों द्वारा उपरिक्त की सबी

११

१२

१४

१५

१७

१८

१९

२०

२१

२२

२३

२४

२५

२६

२७

२८

२९

३०

३१

३२

३३

३४

३५

३६

३७

३८

३९

४०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
आषाढोंको दूर करके हठात् संजीवनी लाकर भरतको जीवित करना	३७	सप्तम सर्ग	
महाराज दशरथका मुनि मुद्रालसे रामके भविष्यक प्रश्न और उसका संतोषजनक उत्तर पाना	३८	रामके द्वारा विराधका वध	६२
वृंदाका वृत्तांत और उसके द्वारा बिष्णु मगवान्-के शपथ होनेका इतिहास	३९	सुतीक्ष्णके आश्रमपर रामका जाना और वहाँसे मणस्वके आश्रमपर होते हुए पञ्चवटी पहुँचना, वहाँ जटायुसे मिलना और लक्ष्मणके हाथों सूर्यशलाके पुत्र साम्बका मरण	६३
सीतापुत्रके एक मित्र काट्याण तथा उसकी स्त्री कलहाका उपास्थान	४०	लक्ष्मणका सूर्यशलाके नाक-कान काटना	६४
पञ्चम सर्ग		रामके हाथों शरद्वध-निशिरा और उनकी चौदह हजार राक्षसों सेनाका निधन तथा सूर्यशलाका लंकामें रावणके पास जाना	६५
धर्मदत्त विप्र द्वारा कलहाका उद्धार	४५	सीताके अनुरोधसे रामका भृगु मारीचके वधको जाना और रावण द्वारा सीताका हरण	६७
रामका सीताके साथ अयोध्यामें सानन्द निवास	४८	जटायु-रावणयुद्ध, पञ्चवटीकी कुछ विशेष कथाएँ	६८
रामकी संज्ञित दिनचर्या	४९	राम-लक्ष्मणका लौटकर आश्रम पहुँचना, वहाँ मरणोन्मुख जटायुसे रावण द्वारा सीताहरणका वृत्तांत सुनना और रामका मृत जटायुको अपने हाथों दारुक्रिया करना	६९
महाराज दशरथका रामसे ज्ञानोपदेश सुनाने की प्रार्थना करना और रामका ज्ञानोपदेश देना	५१	सीताको स्वप्नभावसे खोजते हुए रामको देखकर पार्यताका वहाँ पहुँचना और उनके ईश्वरत्वकी परीक्षा करना, कबन्धक और कवन्धकी आरम्भकथा	
षष्ठ सर्ग		रामका खनरोके आश्रमपर पहुँचना और खनरोको मुक्ति प्राप्त होना, वहाँसे रामका पम्पासरोवर जाना	७१
भारवका रामको वेमतामोका संदेश सुनाना	५१	अष्टम सर्ग	
राम-सीताका परस्पर वनगमनसम्बन्धी परामर्श	५४	राम-सुग्रीवकी मित्रता और सुग्रीवका रामको अपना दुःख सुनाना	७२
रामके राज्याभिषेककी तैयारी, बुरा वसिष्ठ-का रामके महलोंमें जाना और उपदेश देना, अभिषेककी तैयारी देखकर भन्वराका दुःखित होना	५५	बालि-सुग्रीवयुद्ध और रामके हाथों बालिका मरण तथा रामका बालिको वरदान	७५
भन्वराका कैकेयीके पास जाकर उसे उत्तेजित करना और परोहुरस्वरूप रमसे बोलो वरदान माँगनेको प्रेरित करना, तदनुसार कैकेयीका कोपवचनप्रवेश, राजा दशरथका उसके पास पहुँचना और वरदानकी बात सुनकर विकल होना, प्रातःकाल रामका पिताके पास जाकर वीर्य देना	५६	रामका प्रवर्द्धन पर्वतपर निवास, कालोत्तरमें सुग्रीवको सीताकी खोजके विषयमें निश्चित देखकर रामका लक्ष्मणको भेजना	७६
कैकेयीके रामवचनगमनसम्बन्धी वरदान माँगने-के उपाचारसे पुरवाचियोंकी व्याकुलता दूर करनेके लिए धामदेवको रामकी प्रतिज्ञा तथा नारदके वागमनकी बात बताना	५७	सुग्रीवका बहुतेरे नानरोंको सीताकी खोजके लिये भेजना और हनुमान्-जङ्गल आदिका एक तपस्विनीसे मिलना	७७
राम-लक्ष्मण-सीताका वनगमन	५७	जङ्गल आदिका सम्पातीसे मिलना और सम्पातीका अपना पूर्ववृत्तांत बताते हुए सीताके मिलनेका उपाय बताना	७९
प्रयाग होते हुए रामका चित्रकूट पहुँचना, अनंतकी कथा तथा दशरथमरण	५८	नवम सर्ग	
भरतका गतिहाससे आकर पिताकी क्रिया करनेके बाद चित्रकूट जाना और रामके अनुरोधसे उनकी करणपादुका लेकर अयोध्या लौटना	६०	हनुमान् द्वारा तपुत्रलङ्घन और मार्गमें नागमाता सुरसासे साक्षात्कार	७९
रामका अत्रिके आश्रमपर जाना	६०		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
हनुमान्जीके द्वारा सिंहकावध, समुद्रपार पहुँचकर रात्रिके समय हनुमान्जीका लङ्कामें प्रवेश और लङ्कानीसे साक्षात्कार		आदिसे मिलना और वहाँसे चलकर मनुचन होते हुए रामके पास पहुँचकर उन्हें सीताका हाल सुनाना	९८
हनुमान्का रावणके भवनमें जाकर उसकी दाढ़ी-मूँछ जलाना, मन्दोदरीको सीताके सङ्ग सुन्दरी देखकर हनुमान्का चकराना, सीता और मन्दोदरीके सादृश्यका कारण		दशम सर्ग	
हनुमान्जीका सीताके समक्ष पहुँचना		हनुमान्का रामको लङ्काका स्वरूप बतलाना	९९
उसी समय रावणका सीताके पास जाकर विविध प्रलोभन देना और सीताका रावणको फटकारना		रामका लङ्काको प्रस्थान	१००
बातोंसे हारकर रावणका सीताको मारनेके लिए उद्यत होना और मन्दोदरीका रोचना		उधर लङ्कामें हनुमान्का पराक्रम देखकर रावणका चढ़ाईना और राजसभामें जाकर परामर्श करना, विभीषणका समझाना और रावणसे तिरस्कृत होकर रामकी धरणमें जाना	१०१
बहुतेरी राजसियोंको सीताको डराने-भयमानेके लिए नियुक्त करके रावणका अपने घर जाना		राम-विभीषणमें मैत्री, रामका क्रुपित होकर समुद्रपर आग्नेय बाण चलानेको उद्यत होना और समुद्रका सेतुबन्धके लिए उपाय बताना, रामका समुद्रतटपर शिर्वालङ्घ स्थापित करनेका निश्चय करके हनुमान्को शिर्वालङ्घ लानेके लिए काशी भेजना	१०२
त्रिजटाका सीताको आश्वासन, हनुमान् द्वारा रामयज्ञ वर्णन और प्रकट होकर राममुद्रिका-प्रदान		शिवजीका हनुमान्को एक प्राचीन इतिहास बताना	१०४
हनुमान्का मशोकवाटिका उजाड़ना		विष्णुपर्वतकी वृद्धिसे देवताओं तथा मनुष्योंकी घबड़ाहट और अगस्त्य मुनिका विष्णुके कोपको शांत करनेके लिए काशीका त्याग	१०६
हनुमान्का रावणके भेजे हुए बहुतेरे सैनिकोंको मारना		राम द्वारा हनुमान्का गर्वहरण	१०७
मेघनादके बहुष्पाशमें बँधकर हनुमान्का रावणके समक्ष जाना		हनुमान्का अपनी लायी मूर्तिको अलग स्थापित करना और रामका वरदान देना	१०८
हनुमान्का रावणको सदुपदेश और रावणका दैत्योंको हनुमान्की पूँछ जलानेका आदेश देना		शिवजीका रामको एक प्राचीन इतिहास बताना और रामके आज्ञानुसार नलका सेतुरचना करना	१११
हनुमान् द्वारा लङ्कादहन		रावणको शुकका सदुपदेश और उसके द्वारा शुकका तिरस्कृत होना, शुकके पूर्वजन्मकी कथा	११२
लङ्का प्रसन्न कर देनेपर सीताके भी अल मरनेकी बात सोचकर हनुमान्का दुःखी होना और आकाशवाणी सुनकर धीरज धरना		रामके आदेशसे अङ्गदका लङ्का जाना और लौटते समय रावणका एक महल उठावे लाना	११३
लङ्काका प्राचीन इतिहास, गज-ग्राहकपाके प्रसंगमें ग्राहके पूर्वजन्मकी कथा, गज-ग्राहका सहस्रवर्षव्यापी युद्ध और मगवान् द्वारा गजका उद्धार		अङ्गदके सुसन्ने रावणको वर्णोक्ति सुनकर सुग्रीवका रावणके पास जाना और उसके साथ मल्लयुद्ध करना	११४
गरुडका एक गजको लेकर प्रसन्न करनेके लिए त्रिकूट पर्वतपर पहुँचना और हनुमान्का मशोक-वाटिकामें सीतासे फिर मिलना		मात्स्यवाल्मीकीका रावणको उपदेश	११५
लङ्कासे लौटते समय एक मुनिके द्वारा हनुमान्का गर्वमहार		एकादश सर्ग	
समुद्रके इस पार जाकर हनुमान्का अङ्गद		राम-रावणका युद्धारम्भ	११६
		बानरी सेनापर मेघनादका क्षत्तिप्रयोग और रामकी आज्ञासे हनुमान् द्वारा आगो तृई श्रोणगिरि-की औषधिते सबकी भूर्ज दूर होना	११७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
रावणका लक्ष्मणपर चक्तिप्रयोग और हनु- मान्का द्रोणगिरि लाठे समय कालनेमिसे भेंट	११८	रामका राज्याभिषेक	११९
सहागपर जल पीनेके लिए गये हुए हनु- मान्को मगरीका पकड़ना, हनुमान्के हाथों काल- नेमिका वध और वहाँसे चलकर हनुमान्का भरत- के बाणप्रहारसे भूछिन्न होकर गिरना	१२०	श्रीशिवजीके द्वारा रामकी स्तुति	१४०
ऐरावण-भैरावण द्वारा राम-लक्ष्मणका हरण	१२०	राज्याभिषेकौत्सवपर स्वर्गसे महाराज वरध- का जाना, रामका बाह्यणों-मित्रों तथा परिवारके लोगोंको उपहार देना	१४१
हनुमान्का राम-लक्ष्मणको खोजने पाताल जाना, वहाँ मकरध्वजसे भेंट, मकरध्वजका अपनी जन्मकथा सुनाना और हनुमान्का कामारुपादेवोके मंदिरमें प्रवेश	१२१	हनुमान्को रामके विविध वरदान और सोजनके समय हनुमान्का कौतुक	१४२
हनुमान्का भैरावणकी पत्नीसे ऐरावण-भैरावण- के मरणका उपाय पूछना और उस नागकन्याका उन दोनोंकी मृत्युका उपाय बताना	१२२	पुष्पक विमान, मुषीव तथा विभीषणकी विचारें	१४३
रामके द्वारा ऐरावण-भैरावणका वध	१२४	रामके रणयज्ञकी समाप्तिका वर्णन	१४४
उस नागकन्याको रामका वरदान, रावणका कुम्भकर्णको जगाना, रावणकी प्रेरणासे उसका समरभूमिमें जाना और रामके हाथों कुम्भकर्णका निधन	१२५	त्रयोदश सर्ग	
मेघनादका निकुञ्जिला देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमान् तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	रामके यहाँ जगत्स्थ आदि ऋषियोंका आग- मन, रामका जगत्स्थसे मेघनादका वृत्तांत पूछना और उनका बताना	१४५
लक्ष्मण द्वारा मेघनादका वध	१२७	रावण-कुम्भकर्ण आदिकी जन्मकथा	१४७
सुलोचनाका सती होना	१२८	भाताकी आज्ञासे रावणका शिर्वाला लेने कैलाश जाना और अपने मस्तक काटकर शिवजीको प्रसन्न करना तथा वरदान पाना	१४८
रावणका सीताको रामका कटा हुआ नकली तिर दिखाना	१२९	रावण कुम्भकर्ण-विभीषणका तप करके ब्रह्मा- की प्रसन्न करना और उनसे वरदान पाना	१४९
मन्दोदरीका रावणको समझाना और रावणका रामके समझ नकली सीताको काटना	१३०	रावणकी कुबेरपुत्र नलकूबरका शाप, मेघनाद- का इन्द्रको पराजित करना और उसका इन्द्रजित् नाम पड़ना	१५०
राम-रावणका भीषण युद्ध	१३१	रावणका बालिसे लड़ने जाना और बालिका उसे अपनी काँसमें रक्त लेना	१५१
रामके हाथों रावणका वध	१३२	रावणका बानरराज बालिसे मुड़ करने जाना और परास्त होना	१५२
द्वादश सर्ग		रावणका राजा जनरण्यसे मुड़ और उनका रावणको शाप	१५३
राम-सीताका मिलन	१३३	रावण-सनत्कुमारका शर्तशाप, रावणकी श्वेत- द्रोण्याका और वहाँकी स्त्रियोंके हाथों पिटना	१५४
रामकी अयोध्या लौटनेकी तैयारी और विभीषणके प्रसन्न	१३४	बालि-मुषीवकी जन्मकथा	१५५
रामका विजयटाकी वरदान	१३५	ब्रह्माका बालिको किष्किणका राज्य देना और हनुमान्की जन्मकथा	१५६
रामका अवध-प्रस्थान, मार्गमें सम्पातीसे भेंट और रामका सीताको विविध दृश्य दिखाना	१३६	हनुमान्का सूर्यको निगलना, हनुमान्पर इन्द्रका वरदान, पवनका कोप और हनुमान्को ब्रह्माका वरदान	१५७
उधर जबधि बीतते देखकर भरतका चितामें कूदनेकी तैयार होना और उसी समय हनुमान्जी- का पहुँचना	१३७	इन्द्रका राहुको सूर्य देना और हनुमान्को भुनियोंका शाप मिलना	१५८
राम-भरतका मिलन	१३८	रामराज्यके मुखका वर्णन	१५९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
यात्राकाण्ड		बाह्यणोंके साथ सीताका ससमारोह गंगापूजन करना	१८१
प्रथम सर्ग		रामके दर्शनार्थ ध्यवन मुनिका आना और माणवोंसे प्राप्त होनेवाले कष्टोंका वर्णन करना, उनका दुःख दूर करनेके लिए रामका अपने वापसे अलंघ्य खाई खोदना	१८२
सीताजीसे पार्वतीके प्रश्न और शंकरजीका उत्तर	१९१	कुम्भोदर मुनिका राघवदूतोंसे घातालाप, दूतोंके आग्रह करनेपर भी उसका बिना भोजन किये लोटना और पूछनेपर कारण बताना	१८३
सहस्र मात्मनिकके मुखसे कविताका प्रादुर्भाव	१९२	कुम्भोदर मुनिके आशेष मुत्तकर रामका तीर्थयात्राकी तैयारी करना, पुष्पक विमानका रामके आदेशसे इस योजना विस्तृत और सो संवका जैना होना	१८४
गङ्गाका वाल्मीकिके आश्रमपर जाकर राम-चरित्र लिखनेका आग्रह करना	१९३	रामका तीर्थयात्राके लिए प्रस्थान	१८५
द्वितीय सर्ग		रामकी चार ब्यज्याओंका वर्णन	१८६
वाल्मीकिका रामायणनिर्माण, उसे मुनिके लिए देवता-यक्ष-नागादिकोंका आगमन	१९४	षष्ठ सर्ग	
रामायण प्राप्त करनेके लिए उनमें परस्पर कलह और विष्णुमहामान् द्वारा रामायणका विमाज्जन	१९५	रामका सदैव-बल प्रयाग पहुँचना, वहाँसे चलकर काशी पहुँचना और विविध लोकोपकारी कार्य तथा दान करते हुए एक साल वहाँ रहना	१८७
नारदजीके द्वारा व्यासजीको चार लोक प्राप्त होना	१९७	काशीमें रामका अनेक तीर्थोंकी स्थापना करना	१८८
तृतीय सर्ग		रामकी गयायात्रा, वहाँ फल्गुनवीमें सीताके बालूकाकी दुर्गा बनाते समय राजा दशरथका अपने हाथों बालूकापिण्ड खेना	१८९
पार्वतीका शंकरजीसे रामदास विष्णुदासके परिचयविययक प्रश्न और शिवजीका उत्तर	१९९	पिताको पिण्डदान देते समय राजा दशरथका हाथ न दोखनेपर रामका विस्मृत होना, लक्ष्मण और सीतासे पूछनेपर सीताका कारण बतलाना	१९२
सीताका रामसे गङ्गातटपर चलनेकी प्रार्थना	१७१	सीताका आश्रमजल, फल्गुनदी, गवावाल बाह्यणों, विल्ली तथा अश्वको हाथी देनेके लिए कहना और उनके इनकार करनेपर शपथ देना, अन्तमें मृगकी साक्षीसे प्रसन्न रामके पिता दशरथका प्रत्यक्ष प्रकट होना	१९३
रामका लक्ष्मणको यात्राकी तैयारी करनेका आदेश देना	१७२	सप्तम सर्ग	
गङ्गायात्रासम्बन्धी समवायसे प्रबाजयमें उस्लासकी लहर	१७३	रामकी रज्जिण भारतकी तीर्थयात्राका विवरण	१९५
चतुर्थ सर्ग		सीताजिमें कन्याकुमारीका रामसे भेंट और रामका उसे बरदान देना	१९८
रामचन्द्रका उषोतिषी बुलाकर उत्तम मुहूर्त पूछना	१७४	अष्टम सर्ग	
रामचन्द्रका गंगातटको प्रस्थान	१७५	भारतके पश्चिमी प्रदेशके तीर्थोंकी यात्राका विवरण, तवारीपर बैठकर यात्रा करनी चाहिए या	
यात्राकालीन जलासका वर्णन	१७६		
रामका महर्षि मुद्गलके आश्रमपर पहुँचना	१७८		
महर्षि मुद्गलका अपने तबोन आश्रमसे रामके दर्शनार्थ प्राचीन आश्रमपर जाना और पूछनेपर आश्रमत्यागका कारण बतलाना, रामका मुनि भृक्षलसे सरभूकी श्रेष्ठताके विषयमें प्रश्न और मुनिका उत्तर	१७९		
रामके आदेशसे लक्ष्मणका बाण चलाकर सरभूके दो भाग करके एक भागकी मुद्गलके पूर्व आश्रमपर लाना	१८०		
पञ्चम सर्ग			
सीताका गंगापूजनकी तैयारी करना, कोसल्या बादि साक्षुओं, श्रोतागिन स्त्रियों तथा बहुतेरे			

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
नहीं, इस विषयमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर पुष्पक विमानपर नित्य करोड़ों काह्मणोंकी भोजनका प्रबन्ध	२०० २०१	सभी देशोंमें अकाम गतिसे घूमकर घोड़ेका अयोध्या लौटना	२२०
रामके पुष्पक विमानको देखकर अन्यान्य सीधबासियोंकी विविध कल्पनावे	२०३	चतुर्थ सर्ग	
नवम सर्ग		यज्ञके अवशेष यज्ञमें सब देवताओं तथा शिवजीका आगमन, राम द्वारा सबका स्वागत- सत्कार होना और राम तथा शिवजीमें कुछ मनो- रञ्जक वार्तालाप	२२१
उत्तर दिशाकी सीधयात्राका विवरण, राम- को बदरीनारायण तथा मानसरोवरकी यात्रा, पहुँचि कैलास आना और यहाँपर सीताका कामधेनु गो पाला	२०४	अश्वमेध यज्ञमें कुम्भोदर मुनिका आग- मन, रामके साथ वासकोस और कुम्भोदर मुनिका अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रके रामकी स्तुति करना	२२३
सब सीधोंकी यात्रा करके रामका अयोध्या लौटना	२०५	पञ्चम सर्ग	
अयोध्यामें रामका स्वयं स्वागत यात्राकाण्डकी फलश्रुति	२०६ २०७	विष्णुदासका भुक्त रामदाससे अष्टोत्तरशतनाम- विषयक प्रश्न और उनका उत्तर	२२४
यागकाण्ड		रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र	२२५
प्रथम सर्ग		रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रका माहात्म्य	२२७
अश्वमेध यज्ञके लिए रामका गुरु वसिष्ठसे परामर्श	२०८	षष्ठ सर्ग	
वसिष्ठका लक्ष्मणको यज्ञकी तैयारीके लिये निदेश देना	२१०	यज्ञके समय रामकी विलम्बता	२२८
यज्ञकी सामग्रियोंका विवरण	२११	सप्तम सर्ग	
द्वितीय सर्ग		ध्वजारोपणव्रतके विषयमें प्रश्नोत्तर	२३१
राम-सीताका यज्ञकी सेवा लेना	२१३	ध्वजारोपणविधि, माहात्म्य एवं फलश्रुति	२३२
क्षामकर्ण घोड़ेकी पूजा करके मृगयणके लिये छोड़ना और शत्रुघ्न-सुमन्त आदिका उसको रक्षाके लिये जाना	२१४ २१५	अष्टम सर्ग	
यज्ञसमारोहमें अनुत्तरे ऋषियोंका आगमन	२१५	अश्वमेध यज्ञकी समाप्तिपर रामकी अवशेष- स्नानके लिए यात्रा	२३६
वहाँ आए हुये ऋषियोंका रामके द्वारा स्वागत- सत्कार और कामधेनुकी पूजा करके वाक्यशालामें बाँधना तथा उससे मनचाही वस्तुयें प्राप्त करके सब अभ्यासोंकी इच्छा पूर्ण करना	२१६	यात्राकालमें रामके दर्शनार्थ जनताकी व्यवस्था और रामका लक्ष्मणको सुप्रबन्धके लिए निदेश	२३७
तृतीय सर्ग		रामका सरयूमें सपरिवार अवशेषस्नान	२३८
क्षामकर्ण घोड़ेके साथ शत्रुघ्नका महाव्रत पहुँचना, वहाँ नौकाकी स्कावटसे दुसी होकर मङ्गलाकी प्रार्थना करना और मङ्गलाका प्रसन्न होकर उन्हें मार्ग देना	२१७	कामधेनु गौ देनेकी उद्यत रामसे वसिष्ठका सीताको दानमें माँगना	२३९
क्षामकर्ण घोड़ेका अगवमें पहुँचना और वहाँकी राजासे उपहार पाला	२१८	तदनुसार रामका सीताको दान देना और पुनः वसिष्ठकी बतायी योजनाके अनुसार सुवर्णराशि देकर सीताको वापस लेना	२४०
		नवम सर्ग	
		अश्वमेध यज्ञकी समाप्तिपर शिवजीका रामसे चरणार्जना और उनका देना	२४१
		पार्वतीका सीताजीसे दूर माँगना और उनका देना	२४३

विषय	पृष्ठ
यज्ञके श्रुतिजोंको रामका दान और अति- थियोंको उपहार नोट	२४४
सिंहासनासीन रामकी नदी-समुद्र तथा अन्यान्य देवताओंसे विविध प्रकारके उपहार मिलना	२४५
अयोध्यामें रामका दरबार	२४६
यज्ञमें आये हुए अतिथियोंका प्रस्थान	२४७

—:०:—

विलासकाण्ड

प्रथम सर्ग

शिवदुल रामस्तवराज	२४९
-------------------	-----

द्वितीय सर्ग

रामके द्वारा सीताके सौन्दर्यका वर्णन और पत्नियों द्वारा रामकी स्तुति	२५७
---	-----

तृतीय सर्ग

सीतासे प्रश्न करनेपर रामका बेहरामागण- वर्णन	२६१
अपने दिये हुए ज्ञानके विषयमें रामका प्रश्न और सीताका उत्तर	२६३

चतुर्थ सर्ग

रामकी दिनचर्या और बन्दीजनोंकी स्तुति सीताके अगणित अलंकारोंका वर्णन	२६६ २६८
---	------------

पञ्चम सर्ग

राम-सीताका अलविहार	२७२
--------------------	-----

षष्ठ सर्ग

राम-सीताके शयनका वर्णन, राम-सीताका विहार	२७६
---	-----

राम और सीताका एक छतपरसे बाजारके कौतुक देखना, सीताका एक दीन-हीन ब्राह्मणीको अपना वस्त्रा लिये भील माँगनेपर उद्यत देखना, सीताका उससे उसकी दरिद्रताका कारण पूछना और उसका बताना, सीताका उस ब्राह्मणीको एक लाल स्वर्णमुद्रा दिलवाना	२७७
---	-----

सीताका लक्ष्मणके द्वारा सारे देशमें यह घोषणा करवाना कि कोई भी स्त्री बिना बस्त्राभूषणके दिल्- लायो न दे। यदि वह घनामावके कारण बस्त्राभूषण न धारण कर पायी हो उसे राज्यसे दिया आग मगवान् रामकी तत्कालीन दिनचर्या	२७८ २७९
--	------------

विषय	पृष्ठ
सप्तम सर्ग	
रामके यहाँ व्यासजीका आगमन	२७९
व्यासजी रामके एक पत्नीव्रतकी प्रशंसा करना रामका व्यासजीसे अगले जन्ममें बहुत-सी स्त्रियोंको प्राप्त करनेका उपाय पूछना	२८०
व्यासजीके आज्ञानुसार रामका सोलह सीताको सुवर्णमूर्तियों दान देना, रामके सम्मुख कितनी ही देवताओंका आकर रामपर मुरब्ब होना	२८१
उन स्त्रियोंको रामका वरदान	२८२

अष्टम सर्ग

गुणवतीका वृत्तान्त, अरण्यमें गुणवतीके पतिका मरण	२८३
गुणवतीका अयोध्यामें रामके सम्मुख पहुँचना, रामकी तत्कालीन सोमाका वर्णन	२८४
गुणवतीको रामका वरदान मिलना	२८५
पिंगला नामकी वैद्याका रामके समक्ष पहुँचना, राम द्वारा पिंगलाका वृत्तान्त सुनकर सीताका कुपित होना	२८६

क्रोधवश सीताका मरनेके लिए उद्यत होना, रामकी विकलता, आधी रातके समय रामका गुरु वसिष्ठको बुलानेके लिए लक्ष्मणको भेजना, गुरुके चरण छूकर रामका क्षय जाना	२८८
सबेरे सीताका पिंगला वैद्याको बुलाकर डाँटना और भारता, पिंगलाको सीताका क्षाप और उससे उद्धारका समय निर्धारित करना	२८९

नवम सर्ग

रामकी कुरुक्षेत्रयात्रा, लोपामुद्रा और ज्ञानको- जीकी बातचीत	२८९
लोपामुद्रासे शास्त्रार्थमें सीताकी विजय	२९०
विलासकाण्डका आहात्म्य एवं विलासकाण्डके पाठकी विधि	२९२

—:०:—

जन्मकाण्ड

प्रथम सर्ग

मात्रीके मुखसे रामका सीताके गर्भिणी होनेका समाचार सुनना	२९३
सीताका जंगलोंमें संन्यास करनेकी इच्छा प्रकट करना और इसकी संयारोंके लिए रामका लक्ष्मणको आदेश देना	२९४

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पालकीपर चढ़कर रामका सोता तथा सब परिवारको साथ लेकर वनको यात्रा करना	२९५	पुष्पक विमान द्वारा उस समय रामका भी वहाँ पहुँचना और बादमें रामका तो अवदमेष यज्ञ करनेका निश्चय करना	३०९
इन लोगोंका वनमें पहुँचना और वनकी शोभाका वर्णन	२९६	स्वर्णमयी सीता बनाकर रामका यज्ञारम्भ, रामके नन्वे यज्ञ पूर्ण होना और कुशकी उत्पत्तिका वृत्तान्त	३१०
द्वितीय सर्ग		वाल्मीकिका कुश-लवको रामायणकी शिक्षा देना और अल्प समयमें उनका सोखना	३११
राम-सीताका वनविहार	२९८	पञ्चम सर्ग	
छठे मासमें सीमन्तोन्नयनसंस्कार और जनकजीसे रामका सीतात्यागसम्बन्धी वार्तालाप	२९९	विष्णुदासका रामदाससे रामरक्षास्तोत्रके विषयमें प्रश्न और रामरक्षास्तोत्रका पार	३१२
वनमें, जहाँ कि सीता जाकर रहनेवाली थी, वहाँपर जनकजीका प्रबन्ध	३००	रामरक्षास्तोत्रका माहात्म्य	३१३
तृतीय सर्ग		रामनामके स्मरणका फल	३१५
रामका सीताको त्यागनेका कारण बतलाना	३०१	षष्ठ सर्ग	
रामका विषय नामक गुठ-चरसे जनताके गुप्त विचार पूछना	३०२	सीताका वाल्मीकसे पतिवियोग दूर करनेके लिए कोई कृत पूछना और उनका बतलाना	३१६
उसके मुखसे प्रजाके हृदयकी यह बात भालूम करना कि सीता कितने ही वर्ष रावणके यहाँ रह चुकी थी, फिर भी उसे रामसे अपना लिया। यह अच्छा नहीं किया। विजयका रामको एक धोबीकी बात सुनाना। कँकेयोका सीतासे रावणकी आकृति पूछना और सीताका दीवारमें केवल रावणके एक अंगूठेका आकार बतलाना	३०३	सीताका प्रतारम्भ और लवका रामके बमोचे-से कमल लाने जाना	३१७
सीताके चली जानेपर कँकेयोका उस अंगूठेके अनुरूप रावणके सारे शरीरकी तसवीर बना देना और इसी समय रामका पहुँचना, तसवीरके विषयमें रामके पूछनेपर कँकेयोका सीताकी बनायी बतलाना	३०४	लवका बगीचेके रसकोंसे मुठभेड़ और विजयी होकर लौटना	३१८
प्रातःकालके समय सीताको वनमें त्यागनेके लिए लक्ष्मणका प्रस्थान	३०५	दूसरे दिन फिर लवका उन लोगोंसे युद्ध और लवकी विजय	३१९
वाल्मीकिके आश्रमपर पहुँचकर गद्गद वाणीमें लक्ष्मणका सीताको सब वृत्तान्त बतलाना	३०६	रामका लवको पकड़नेके लिये वाल्मीकिके आश्रमपर दूत भेजना, इसपर वाल्मीकिका यह उत्तर देना कि चलो, मैं रामके अपराधीको लेकर स्वयं वहाँ जाता हूँ	३२०
चतुर्थ सर्ग		सप्तम सर्ग	
रामकी उस आज्ञा पालन करनेके लिए लक्ष्मणका विचार करना—जिसमें उन्होंने कहा था कि लौटते समय सीताके दोनों हाथ काट ले जाना। उस निर्मम कार्यको करनेमें अतमर्ष लक्ष्मणका प्राण त्यागनेपर उद्यत होना और बड़ईके रूपमें विश्वकर्मसि भेंट	३०७	रामका अन्तिम यज्ञके लिये श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ने और गुस्सरोतिसे वाल्मीकिका सीताके साथ रामके यज्ञमें जाना	३२१
विश्वकर्मका सीताकी मुजा बनाकर देना और उसे लेकर लक्ष्मणका अयोध्या लौटना	३०८	कुश-लवका रामायणगात सुनकर सबका मुग्ध होना और बादमें रामकी सभामें लव-कुशका रामायणगात	३२२
अर्धरात्रिके समय सीताके गर्भसे पुत्ररत्न उत्पन्न होना	३०८	रामका उन दोनों बालकोंको पुस्कार दिलवाना और उनका लेनेसे इत्कार करना	३२३
		लवका रामके श्यामकर्ण घोड़ेकी पकड़ना और लव तथा शत्रुघ्नका संग्राम, लवका हनुमान्, सुमन्त्र और मरुतकी काँक्षमें दबाकर माता सीताके पास ले जाना	३२४
		रामके आज्ञानुसार लवको पकड़नेके लिये	

विषय	पृष्ठ
लक्ष्मणका जाया, लव और लक्ष्मणमें युद्ध	३२५
लक्ष्मणका लवकी सहायधमें बांधकर राम- के समक्ष ले जाना, रामके आज्ञानुसार लोगों- का लवपर जलके घड़े उड़ेलना और लवका लड़ना	३२६
लवकी छुड़ानेके लिए कुशका जाना	३२७
राम-लक्ष्मण और कुशका युद्ध	३२८

अष्टम सर्ग

रामका एक मन्त्रीकी वाल्मीकिके पास भेजना	३२९
रामकी समामें वाल्मीकिका सीताको साथ लिये हुए जाना	३३०
रामके प्रति वाल्मीकिकी उक्ति और सीताको हाथों सहित देखकर रामका सन्देश	३३१
सीताकी शपथ, सीताका पृथ्वीमें प्रवेश करना और पृथ्वीसे रामकी प्रार्थना	३३२
पृथ्वीपर रामका क्रोध और रामका पृथ्वीसे सीताको वापस पाना	३३३
यज्ञमें आये हुए राजाओं और ऋषियोंकी विदाई	३३४

नवम सर्ग

जमिन्ना, माण्डवी तथा भुतकीर्ति आदिका गमिणी होना और यथासमय पुत्र उत्पन्न करना, पुत्रोंकी उत्पत्तिके अवसरपर रामका उत्साह	३३५
रामका कुलगुरु बशिष्ठसे सब बच्चोंके शुभाशुभ लक्षण पूछना और बशिष्ठका सब बालकोंके लक्षण बतलाना	३३६
पुत्रवती बहिनोके साथ सीताका आनन्दमय जीवन बिताना	३३८
गुरु बशिष्ठसे रामका लव-कुशके उपनयनका परामर्श और व्रतबन्धकी तैयारियोंके लिये रामका लक्ष्मणको आदेश	३३९
व्रतबन्ध (उपनयन) संस्कार समारोह	३४०
व्रतबन्धसंस्कार	३४१
लव-कुश आदि बालकोंका वैशाख्ययन, बालकोंका गुरुगृहसे वापस आनेपर अयोध्या नगरीके उत्साहका वर्णन	३४२
जन्मकांडके सुननेका फल और उसकी सहिष्णुताका वर्णन	३४३

विषय	पृष्ठ
------	-------

विवाहकाण्ड

प्रथम सर्ग

रामकी समामें महाराज भूरिकीर्तिका स्वयंवर पत्र आना	३४५
पत्र पढ़नेके अनन्तर रामका स्वयंवरमें जानेकी तैयारी करना, रामकी स्वयंवरप्राप्ति	३४६
रामका अपने पुत्रोंके साथ स्वयंवरमें पहुँचना	३४७
रामका आगमन सुनकर राजा भूरिकीर्तिकी नगरनिवासिनी महिलाओंकी प्रसन्नताका वर्णन	३४८

द्वितीय सर्ग

दूसरे रोज रामका स्वयंवर-समामें जाना और रामके दूतोंका वहाँ आये हुए राजाओंका परिचय देना	३४९
समामें चम्पिका नामकी राजकन्याका प्रवेश	३५०
चम्पिकाकी साथ लिये मुनन्दाका सब राजाओंके समक्ष जाना और चम्पिकाकी सब राजाओंकी स्थिति समझाना	३५१
चम्पिकाका सब राजाओंके सामनेसे होकर रामके सम्मुख पहुँचना	३५२
अन्तमें चम्पिकाका कुशके सामने पहुँचना और कुशके गलेमें वरमाला डालना	३५४

तृतीय सर्ग

मुनन्दाका सुमति नामकी दूसरी राजकन्याकी साथ लेकर पहलेकी तरह सब राजाओंका यज्ञ सुनाना	३५५
सुमतिका सब राजाओंके सामनेसे होकर लवके समक्ष पहुँचना और उनके गलेमें वर- माला डालना, दूसरे दिन भूरिकीर्तिका रामके पास आकर विदाईके लिए मुहूर्त निश्चित करना	३५७
विवाहकार्यका प्रारम्भ	३५८
लव-कुशका विवाहसम्बन्धमें पहुँचना और विवाह सम्पन्न होना	३५९

चतुर्थ सर्ग

विवाहके अनन्तर होनेवाले लोकाचार	३६०
भूरिकीर्तिकी नगरीसे राम आदिकी विदाई, रामका अयोध्या पहुँचना और अयोध्यावासियों द्वारा उनका स्वागत	३६१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
विवाहोत्सवमें आये हुए अभ्यागतोंकी विचार, रामदासका विष्णुदासको कुशके विषयमें कुछ भविष्यकी बातें बतलाना	३६२	का विह्वल होना और नारदका सब हाल बतलाना, यूपकेतुका अपने मोहनास्नसे सब राजाओंको मोहित करके मदनसुन्दरीको खरना	३७५
पञ्चम सर्ग		यूपकेतुका सब राजाओंके साथ युद्ध	३७६
सीता तथा सतीताओंके साथ रामका वनमें अगस्त्यके आश्रमपर जाना	३६३	यूपकेतुका जड़ग उठाकर अपने ससुर कम्बु-कम्बको मारनेके लिए उद्यत होना और मदन-सुन्दरीकी प्रार्थनासे छोड़ देना, मार्गमें शत्रुघ्नसे यूपकेतुका साक्षात्कार और वहाँसे लोटकर फिर कान्तिपुरीको जाना	३७७
अगस्त्य ऋषि द्वारा रामका उत्कार और वनमें रामकी गाँव अन्तरादोंका मिलना	३६४	नवम सर्ग	
अगस्त्यसे उन अप्सराओंके विषयमें रामका प्रश्न और उनका उत्तर, रामके बाप मारनेके लिए उद्यत होनेपर बलदेवियोंका प्रकट होना और वरद कन्यामें रामको धर्मित करना	३६५	दूतके मुसरो यूपकेतुका सब समाचार ज्ञात होनेपर रामका कान्तिपुरीके लिए प्रस्थान, कान्तिपुरीमें अगस्त्यपूर्वक रामका पहुँचना	३७८
षष्ठ सर्ग		वहाँ यूपकेतुका विवाह होना, भगवान्की स्तुति करके नारदका प्रस्थान, विवाहकाण्डका श्रवणफल	३७९
मृत्युसे गंधर्वों और पक्षियोंका जाना और रामकी स्तुति करना, अपने तथा लक्ष्मण आदिके पुत्रोंको कुछ भविष्यकी बातें अगस्त्य ऋषिसे रामकी माहूम होना	३६६	विवाहकाण्डके अनुष्ठानकी विधि	३८०
गंधर्वोंको अयोध्या आनेका आज्ञा देकर रामका अपनी पुरीकी वापस लौटना	३६७	राज्यकाण्ड (पूर्वार्द्ध)	
अयोध्यामें पहुँचकर उन कन्याओंकी बलिष्ठके वहाँ रहना, गंधर्वों और नागोंका अयोध्यापुरीमें पहुँचना तथा विवाहके झूठेका निश्चित होना	३६८	प्रथम सर्ग	
सप्तम सर्ग		रामसहस्रनामके विषयमें विष्णुदासका प्रश्न और रामदासका उत्तर	३८१
उन कन्याओंके साथ राम आदिके पुत्रोंके विवाहकी तैयारी	३६९	सनत्कुमार और यमका बदलाप	३८२
कञ्जयन्ती नामकी कन्याके सम लवला विवाह, अन्य कन्याओंके सङ्ग अन्य पुत्रोंका विवाह, राम आदिके आनन्दका वर्णन	३७१	राम सहस्रनाम	३८३
अष्टम सर्ग		रामसहस्रनामका माहात्म्य	३९१
रामके पास कम्बुकण्ठ नामक राजाका पत्र आना, कम्बुकण्ठकी कन्या मदनसुन्दरीके पास नारदजीका पहुँचना	३७३	द्वितीय सर्ग	
मदनसुन्दरीका नारदजीसे रामचन्द्रजीकी पहोँहु बननेका उपाय पूछना और नारदका उसे उपाय बतलाना	३७३	कल्याणके विषयमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर	३९२
नारदका अयोध्या पहुँचना और उनके मुखसे सब हाल सुनकर यूपकेतुका कान्तिपुरीकी चल देना	३७४	रामके पास साठ हजार शिष्योंके साथ दुर्वासा-का आगमन और सबके लिए भोजन तथा पूजनके लिए ऐसे कुल भोजना, जिन्हें संसारमें किसीने न देखा हो	३९३
यूपकेतुको न देखकर परिवार समेत राम-		रामका पत्रके साथ एक भाव इन्द्रके पास भेजना और इन्द्रका कल्पवृक्ष तथा पारिजात स्वर्ग लाकर अयोध्यामें रामका देना	३९४
		सीताका कल्याणकी स्तुति करके उसके द्वारा प्राप्त लाभकीसे शिष्यों समेत दुर्वासाको भोजन कराना	३९५
		भोजनके बाद प्रसन्न दुर्वासाका रामकी स्तुति करके प्रस्थान	३९६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
तृतीय सर्ग		सीताके हाथों मूलकासुरका वध	४२१
रामोपासक तथा कृष्णोपासक को विशेषे		ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा सीताकी स्तुति	४२२
परस्पर मधुर विवाद	४१७	रामके हाथों विभीषणका राज्याभिषेक	४२३
दोनों ब्राह्मणोंका विवाद निपटानेके लिए		विभीषणके द्वारा मलीमांति सम्मानित होकर	
आकाशवाणीका होना	४०६	रामका विजटाका सत्कार करना	४२४
चतुर्थ सर्ग		रामका अयोध्या लौटना	४२५
एक कोएकी रामका वरदान	४१७	लवणामुरसे अस्त्र मुनियोंका रामके पास जाना	
रामपर आसक्त श्री नागरिक स्त्रियोंका		और श्वेतेन मुनिका लवणामुरके पूर्वजन्मका वृत्तान्त	
आगमन	४०८	बताना	४२५
उन स्त्रियोंकी अनुचित प्रार्थनापर रामका		रामकी मातासे शत्रुघ्नका लवणामुरको मारने-	
उत्तर और वरदान	४०९	के लिये मधुवन जाना	४२६
रामका दास-दासियोंको बुलाना, किन्तु वहाँ		सप्तम सर्ग	
किसीका उपस्थित न रहना, लक्ष्मणका अपने दूत		शत्रुघ्न द्वारा लवणामुरका वध	४२८
भेजकर उन्हें बुलवाना और दास-दासियोंका		अपनी सेनाके साथ रामका दिग्विजयके लिए	
हरिकीर्तन छान्दकर आनेसे इन्कार करना	४१०	प्रस्थान	४२९
मध्य रात्रिमें एक स्त्री (मित्रा) का रुदन		पुष्करवा आदि तीन राजाओंके साथ रामका	
सुनकर पुष्पक द्वारा रामका उसके पास जाना और	४११	सुमुख मृद	४३०
उसे वरदान देना		उन्हें जोतकर रामका मयुरा जाना और	
कुम्भकर्णके दोष पोण्ड्रकी लंकापर चढ़ाई		वहाँसे यवनादि विविध देशोंकी राजा	४३१
करके विभीषणको परास्त करना और विभीषणका		अष्टम सर्ग	
रामके पास आकर अपना वृक्ष सुनाना	४१२	रामकी किम्पुल्य आदि देशोंकी विजययात्रा,	
रामका लंका जाकर पीडकको परास्त करके		मारुतार्थके विविध द्वीपों, द्वीपस्थ नदियों और	
विभीषणको राजगद्दीपर बिठाना, कुछ काल बाद		पर्वतोंका वर्णन	४३१
मूलकासुरसे परास्त होकर विभीषणका रामकी		नवम सर्ग	
शरणमें जाना	४१३	रामकी प्लक्ष्यादि द्वीपोंकी विजययात्रा	४३५
सामन्त राजाओंके साथ रामकी मूलकामु-		विविध द्वीपोंपर विजय प्राप्त करते हुए रामका	
पर चढ़ाई और मोषण पुद्ग होना	४१४	धृतीदत्तामर पहुँचना	४३७
ब्रह्माजीके द्वारा मूलकासुरके मरणकी मृत		रामकी शाकद्वीप यात्रा	४३८
मुक्तिका प्राप्त होना और रामका सीताको लानेके		रामका पुष्करद्वीप पहुँचना	४३९
लिए गरुडको भेजना	४१५	लोकालोक पर्वत तक जाकर रामका अयोध्या	
पञ्चम सर्ग		लौटना	४४०
रामके विरहसे सीताकी व्याधिका वर्णन	४१६	जोते हुए द्वीपोंपर राम द्वारा अपने भाइयों	
रामसे मिलनेके लिए सीताका विविध		और पुत्रोंकी नियुक्ति	४४१
मनोस्तिर्य भावना	४१७	दशम सर्ग	
सीताका गरुडपर आकड़ होकर प्रस्थान, राम-		रामका लक्ष्मणसे एक कुत्तेके रोदनका कारण	
सीताका मिलाप और मूलकासुरका वध		पूछना	४४१
करनेके लिए रथपर सवार होकर सीताका रज-		पूछनेपर कुत्तेका व्यर्थ मारनेवाले एक संन्यासी-	
सूत्रिकी प्रयाण	४२०	को अपराधी बताना	४४२
षष्ठ सर्ग		रामका संन्यासीको बुलवाना और दोष	
सीता-मूलकासुरका सामना और भार्तालय	४२०	प्रमाणित हो जानेपर कुत्तेसे ही अपराधीको	

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
षष्ठ देनेके लिए कहना और बुत्तेका संन्यासको कही-का मठाघोष बननेका एवम देना	४४३	उनका काव्यगिक सारीगीत सुनकर रामका प्रकट होना और बरदान देना	४६०
इस दण्डपर अकित लोगोंका कुत्तेसे कारण पूछना और उनका बतलाना, एक दिन एक विप्रका अपने भरे हुए बक्केको लेकर रामके समक्ष आना और रोना	४४४	उन सबको साथ लेकर रामका लक्ष्मण बाहिके पास जाना और वहाँसे एक सरोवरपर पहुँचना	४६१
रामका उने आश्वासन देना और अपने-के सबको लेखकी नावमें रमकाना	४४५	रात्रिके समय रामका बाराहभुगया करना वहाँसे रामका मधुरा जाना, वहाँ एकान्तमें रामके पास रात्रिमें नारीकण भरण करके यमुनाका आगमन	४६२
उसी समय भृङ्गवेत्तुरसे एक और सबका आना	४४६	कालिन्दी (यमुना) की रात्रि बरदान	४६४
उसकी विषयको आश्वासन देकर रामका दुष्पक भिसानपर चढ़कर बाहर निकलना, उनके चले जानेपर और पाँच ध्वजोंका आरोपण करना	४४७	राज्यकाण्ड (उत्तरार्द्ध) त्रयोदश सर्ग	
रामका दण्डकवनमें एक शूद्रको वस तप करते देखना, उससे बात करना और बरदान देना	४४८	समामें बैठे हुए रामका एक मनुष्यकी हँसी सुनकर चबराचना	४६५
रामके समक्ष एक दूध और अलूका भूमि-योग तथा रामका त्याग	४४९	रामका अपने राज्यमें हँसनेकी मनाही करना	४६६
रामका पूर्वोक्त साक्षी मृतकोंकी अर्पित करना	४५०	रामके इस आदेशसे मनुष्यों तथा देवताओंमें आतंक का जाना और विरोध-प्रदर्शनायें ब्रह्माका अयोध्याके एक शीपल वृक्षमें द्रष्टव्य होकर ओरोठे हँसना	४६७
एकादश सर्ग		एक दिन समामें किसी दूतको हँसते देखकर रामका हँसना और बाह्यमें पकड़ाते हुए मचनो हँसीपर विचार करना	४६८
मृगशर्को लिए रामकी भाषा और समदर्शन	४५०	कारण ज्ञात होनेपर अनुचरोंको हँसनाका शीपल काट डालनेकी आज्ञा देना, उसे काटनेको गये हुए सेवकोंका ब्रह्माकी उपलक्ष्यसे बाह्य होकर भीत्कार करना	४६८
रामका एक विहङ्ग पीछा करते हुए अपने आधिपत्ये अहिङ्गकर वनमें दूर निकल जाना, वहाँ सिंहकी मारना और मृत सिंहकी अपनी आत्मिकता मृत्ताना	४५२	बादमें रामकी आज्ञासे सुमंत्रका जाना, वहाँ पत्थरोंकी मारसे उनका जी मूर्च्छित होना और रामका दक्षिणकी मुलाकर कारण पूछना	४६९
रामका एक कन्दरायें कुत्ता, वहाँ चार स्त्रियोंकी मृत्प्राय दशामें देखना और उन्हें अर्पित करना	४५३	दक्षिणका कारण बतलाना, ब्रह्माकी धृष्टता सुनकर रामका कुलिक होना और कुछ राधकी कहति वाल्मीकिका समझाना	४७०
रामका उन स्त्रियोंसे वाचालाप, उनका रामपर मोहित होना और उनको रामका घर देना	४५४	आनन्दरामायणकी महिमा	४७१
द्वादश सर्ग		आत्मशक्तिका ब्रह्माकी मुलवना	४७२
उन चारोंके साथ आगे चलकर एक स्थानपर रामका सोलह हजार स्त्रियोंको देखना	४५५	ब्रह्माका रामकी स्तुति करना और दक्षिणका दो विष्णुगणोंके विषयमें प्रश्न	४७३
उन सब स्त्रियोंका रामपर मोहित होना	४५६	चतुर्दश सर्ग	
उन सबका धरण करनेके लिए रामको विषय करना और रामका अन्तर्धान होना		दक्षिणके प्रश्नका ब्रह्मा द्वारा उत्तर, अश्विनी-कुमारोंका विष्णुके मण अय-विषयकी धाप देना और	
रामके विषयमें उन स्त्रियोंकी करुण-वशाच्छ दर्शन	४५८		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
उद्धारके समयका निर्देश	४७४	कंकण देना, उस कंकणकी प्राप्तिके विषयमें अगस्त्यसे लवका प्रश्न और उन मुनिका उत्तर	५००
जय-विजयके अगले जन्मकी कथा, यन्त्रा-की स्तुतिसे रामका प्रसन्न होना, महर्षि वाल्मीकिसे रामके कुछ प्रश्न	४७५	एक स्वर्गीय प्राणीको मड़े हुए भुदका मांस खाने देखकर अगस्त्यका विस्मित होना, उससे कारण पूछना और उसका बतलाना	५००
वाल्मीकिका अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना, तत्कारणपरायण वाल्मीकिका एक विप्रका दण्ड-कमण्डल तथा जुते आदर छानना बादमें उसी रीतपर चलते हुए ब्राह्मणकी दुखी देखकर दयावश जुते लौटा देना	४७६	दण्डकारण्यके विषयमें महर्षि अगस्त्यसे लवका प्रश्न और ऋषिका उत्तर	५०१
वाल्मीकिका शस्त्र विप्रसे अपने पूर्वजन्मका हाल पूछना	४७७	दण्डकारण्यकी कथा, राजा दण्डकका भृगुकी कथाके साथ बलात्कार और राजाको भृगुका शाप	५०२
शस्त्रका वाल्मीकिके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना, वैश्यासक्त वाल्मीकिकी स्त्रीकी सेवा और आश्वासन	४७८	अष्टादश सर्ग	
वाल्मीकिका देहान्त और उसकी स्त्रीका सती होना	४७९	राममुद्राकी रचनाविधि	५०३
उनके अगले जन्ममें कृष्ण नामके ऋषि-का साथ एक सर्पिका खाना और उसमें वाल्मीकिका जन्म, किरातों द्वारा पारित होनेके कारण वाल्मीकिका व्याधवृत्ति स्वीकार करना	४८०	विष्णुदानका रामनाथपुरके ब्राह्मणोंको राममुद्रा हुआ शिला मिलनेका कारण पूछना और रामदासका उत्तर	५०४
वाल्मीकिकी सहस्रियोंका उपदेश	४८१	बहुत समय बाद एक दुष्ट राजा द्वारा सताये जानेपर उन ब्राह्मणों द्वारा वह शिला एक सरोवरमें फेंकना	५०७
उनके उपदेशसं वाल्मीकिका 'मरा-मरा' यह मन जपते हुए कठार तप करना और बहुत वर्षों बाद सहस्रियोंका फिर बढ़ा माना और उन्हें शोधसे बाहर निकालना, वाल्मीकिके मुखमें श्लोकका जन्म	४८२	उस सरोवरकी बाड़से हनुमान्जीका उन ब्राह्मणोंकी रक्षा करना और राममुद्राकित शिलाको सरोवरमें निकालना	५०८
अकारादि क्रमसे रामनामकी महिमा	४८३	वह शिला दिखाकर हनुमान्जीका उस दुष्ट राजाको शूलोपर धड़ाना और ब्राह्मणोंको आश्वासन देना	५०९
चतुर्दश सर्ग		एकोनविंश सर्ग	
रामराज्यकी विधेयनायें	४८५	रामकी दिनचर्या	५१०
षोडश सर्ग		बंश और ज्यांतिपौसे रामका वार्त्तालाप	५११
रामका लव-कुश आदि पुत्रों तथा भरत-लक्ष्मण आदि भ्राताओंको राजनीतिक उपदेश	४९०	रामकी समा और उसकी शोभा	५१२
सप्तदश सर्ग		कुशकी उत्पत्तिके बाद सीताके गर्भ में रहनेका कारण	५१५
कुशकी पुत्री हेमाका स्वयंवर	४९६	वीसवाँ सर्ग	
विज्जांगद द्वारा हेमाका अपहरण और उसके साथ लव कुश आदिका भीषण युद्ध	४९७	लवका वसिष्ठसे रात्रिमें सोते समय कानमें धौकनीके समान होनेवाले शब्दका कारण पूछना और वसिष्ठका उत्तर देना	५१८
उस युद्धमें कुशका विजयी होता और प्रसन्न होकर रामका उन्हें एक कंकण देना उस कंकण-की प्राप्तिके विषयमें कुशका महर्षि अगस्त्यसे प्रश्न और उसका उत्तर	४९८	रामका रामावतारकी श्रेष्ठ बतलाना	५१९
हनुमान्जीका मुदगल ऋषिके आग्रहसे संजीवनी बूटी लाकर लवकी मूर्छा दूर करना	४९९	मत्स्य, कूर्म, वाराह नृसिंह, वामन, परशुराम, कृष्ण, बैतु तथा कलिक अवतारके दोषोंका वर्णन	५२०
लवको भी रामका एक अगस्त्यप्रवचन		राम द. रामवतारके सुखोंका वर्णन	५२२
		इक्कीसवाँ सर्ग	
		चैत्रदानके समय सीताका दर्शन करनेके लिए बहुतेरी स्त्रियोंका आना	५२५
		रामका पूर्वकालके कार्योंका सिंहावलोकन	५२६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
लवका गुरु अस्त्रिष्ठसे पोषियोंके प्रत्यक्ष यममें एक ओर आ गया दूसरी ओर राम किलनेका कारण पूछना और उनका बताना	५२७	सूर्यका समको छे जाकर रामसे लम्बा मोंगलाना	५४६
रामका एक दासको बरदाव देना, रामका एक ही समय दो रूप प्रारम्भ करके विद्याभिर और भास्तीकिन्हे यही जाना	५२८	रामका अपने राज्यभरमें धार्मिक आदेश राज्यका एक पारमण्यका माहात्म्य	५४७ ५५१
चौईसवाँ सर्ग		मनोहरकाण्ड	
राजा मुरिकीठिके यहाँसे बहुतैरा खोगल जाना और बिना रामको अर्पण किये सीताका उसमेंसे एक फूल छुँव लेना	५३१	प्रथम सर्ग	
एकादशीके रोज सीताको साड़ीसे कँसकर एक सुत्तीका मन डूटना और उसी समय नारदका आ पहुँचना	५३२	रामदाससे विष्णुदासका आरक्षकपित रामायण (लघुरामायण) का सार पूछना	५५३
भोजन परासनेपर नारदका सीतासे संस्पृष्ट भोजन करनेसे झुंकार करना और रामको पूछने पर कारण बताना	५३३	द्वितीय सर्ग	
सीताका टूटा सुकसीपत्र दहनीमें ओढ़नेके प्रयासमें विफल होना	५३४	अपाध्यायसिंघोंका रामसे कुछ उपदेश देनेके लिए प्रार्थना करना	५६०
नारदकी बतानी सुनिके फिर सीताका प्रयास करना और सुकसीपत्रका जुड़ जाना	५३५	रामके समय दूतोंका प्रजाजनोंकी उपदेश प्राप्तकाल पुनः पुरवासिंघोंका रामसे आर्क्षिक एक दिन कँकेयाका रामसे उपदेश देनेकी प्रार्थना करना और रामका कँकेयीको अर्पण उपदेश दिलवाना	५६१ ५६२ ५६४
नारदहस्त रामस्तुति	५३६	भेड़ोंसे प्राप्त ज्ञानके विषयमें रामका कँकेयीसे प्रश्न	५६५
तेईसवाँ सर्ग		सुनिताको रामका शानोपदेश	५६६
आनन्दरामायणका पाठ करनेसे एक साधारण सिपाहीका राजमन्त्री हो जाना	५३८	पाता कोमल्याको रामका गीते बखडोसे आत्मज्ञानका उपदेश दिलाना	५६८
उसका अभ्युदय देखकर सब सिपाहियोंका आनन्दरामायणके आराधनमें लग जाना, सिपाहियोंके लम्बासे बबडकर सब राजाओंका रामसे पास जाना	५३९	कालान्तरमें कौसल्या सुनिता आदिका बेहत्या	५६९
आनन्दरामायणके भवणसे यमपुरका सूता होना और यमराजका अज्ञातधिव आदि देवताओंके साथ भयोल्ला जाना	५४०	तृतीय सर्ग	
उनकी दुःखमाया दृष्टकर रामका आनन्द-रामायणपर प्रतिबन्ध लगाना	५४१	विष्णुदासका रामदाससे रामकी भानसी पूजा-विधि पूछना	५७०
चौबीसवाँ सर्ग		रामदासका उत्तर और शुष्के लक्षण बताना	५७१
रामका मृत सुमन्वकी यमकुंठसे छीनकर बापस लाना	५४२	विभिन्नसंस्थक अक्षरोंवाले राममन्त्र	५७२
सुमन्वकी अन्धकालीन शाका	५४३	भानसी पूजाका विधि-विधान	५७३
कुपित यमराजकी अयोध्यापर आड़ाई	५४४	रामका राहकमन्त्र	५७५
सब और यमराजमें अयासक गुब्ब, सबके बहासकी सारसे यमराजकी बबपहट और धुंध मगवानुका अफर लवको समझाना	५४५	बहि-पूजाविधान	५७७
		नवपुष्पाजलिके विषयमें विष्णुदास-रामदासका प्रस्नोत्तर और चन्द्र-अतिचन्द्र आदि नौ भक्तोंकी कथा	५८२
		उन सबों भक्तोंका कठोर उप करना और उन्हें रामका अस्थल दर्शन मिलना	५८३
		उन सबों भक्तोंको रामका बरदाव	५८४
		चतुर्थ सर्ग	
		अष्टोत्तरशत नामलिंगतोत्र आदिके विषयमें विष्णुदासका रामदाससे प्रश्न और उनका उत्तर	५८५
		रामदासका विष्णुदासको आध्यात्मिक उपदेश	५८९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
राममुद्राको पूर्ण करनेकी विधियाँ	५९१	किस कामनाकी पूर्तिके लिए किस देवताकी	
अक्षोत्तरशत रामलिंगतोमरके भेद	६०२	आराधना करनी चाहिए	६७०
पञ्चम सर्ग		रामके रक्षारादि नामोंका महत्त्व	६७१
रामलिंगतोमर आदि विविध मन्त्रोंकी		रामतारक मन्त्रका माहात्म्य	६७२
रचनाविधि	६०४	दशम सर्ग	
षष्ठ सर्ग		चैत्रमासकी महिमा	६७३
रामतोमरमें तत्तद्देवताओंकी स्थापनविधि	६३७	चैत्रस्नान करनेवालोंके लिए कुछ विशेष नियम	६७४
श्रीरामकी प्रिय वस्तुओंका विवरण	६३७	स्त्रियोंके लिए शीतला गोरीस्नान तथा पूजन-	
प्रतिदिन रामकी पूजाविधि	६३२		६७९
रामनवमीका व्रत करनेवाले एक विप्रकी कथा	६३७	रामनवमीको रामचन्द्रके पूजनका विधान, चैत्र-	
एक राजाके राजसेवकोंका आकर उस		में आनन्दरामायणके पारायणका विधान	६८०
विप्रको मताना	६४०	अन्य विधि-विधान	६८१
हनुमान्जीके गर्जनसे राज्यके सब पुरुषोंका		एकादश सर्ग	
मरण, तभीसे उस राज्यमें स्त्रीराज्य होता	६४१	चैत्रमासके महत्त्वका कारण	६८३
उस राज्यमें पुरुष उत्पन्न न होनेका कारण	६४२	रामका देवताओंको वरदान	६८४
रामनवमी व्रतकी फलश्रुति	६४३	चैत्रस्नान करनेवाले नृसिंह ब्राह्मणकी कथा	६८५
सप्तम सर्ग		शम्भु ब्राह्मणकी कथा	६८६
रामशतनाम आदि लिखनेकी रीति और		शम्भु विप्रका एक बहेलियेकी उपदेश	६८९
उपायनविधि	६४४	शम्भु द्वारा वही आये हुए एक राक्षसका उद्धार	६९१
रामनामकी महिमा	६४५	शम्भु विप्र तथा व्यासकी अयोध्यायात्रा	६९२
राजा युधिष्ठिरका श्रीकृष्णसे रामनामजप तथा		शम्भुके मार्गमें एक सिंह तथा हाथीका सामने	
पुरस्कारविधि पूछना और श्रीकृष्णका बताना	६४७	जाना, उस सिंह तथा हाथीके पूर्वजन्मकी कथा	६९३
आनन्दरामायणके पाठ और दानका माहात्म्य	६४९	शम्भुका उन दोनोंके उद्धारका आश्वासन	६९४
रामनामजपकी महिमा	६५०	आगे बढ़नेपर शम्भुकी एक कार्पेटिक	
कविताओंका स्वरूप और कवियोंकी श्रेणी	६५२	(कार्पेटिक) से भेंट और घातलाप	६९५
अष्टम सर्ग		शम्भु द्वारा अयोध्याकी शोभाका वर्णन	६९७
वेदादिकोंके पाठका माहात्म्य	६५३	कार्पेटिकके साथ शम्भु विप्रका अयोध्यासे छीटकर	
दानपात्रके विषयमें रामदास-विष्णुदासका		उस पूर्व आश्रायित राक्षसका उद्धार करना	७०१
प्रश्नोत्तर	६५४	द्वादश सर्ग	
शास्त्रोंके अध्ययनकी महिमा	६५५	मृगयाके प्रसंगमें रामकी एक खबरीसे भेंट	७०२
विविध रामायणोंकी चर्चा	६५६	रामका दुर्गामन्दिरमें जाकर बहुतेरी स्त्रियोंकी	
रामायणके पाठ और रामसम्बन्धी कविता		पूजा स्वीकार करना और वरदान देना	७०५
करनेका फल	६५८	रामनामकी महिमा	७०६
आयुर्वेदादिकोंके अध्ययनका फल	६५९	रामका मुनियोंकी उपदेश	७०७
वार्तियोंकी दानपात्रका विचार करना ही		त्रयोदश सर्ग	
चाहिए और ब्राह्मणका धन हड़पनेका कुफल	६६०	हनुमत्कवच और उसका माहात्म्य	७०८
विष्णुदास-रामदासमें रामकी विशेष पूजाके		रामकवच	७१४
विषयमें प्रश्नोत्तर, रामकी पूजाके आस तथा तिथि-		चतुर्दश सर्ग	
योंका निर्देश	६६१	सीताकवचके विषयमें विष्णुदासका प्रश्न और	
दोहापूजनकी विधि	६६२	सीताकवच	७१७
बसन्त पञ्चमीको आमका और पीनेका माहात्म्य	६६७	सीताहोत्तरशतनामस्तोत्र	७२०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
स्त्रियोंके लिए कुछ उपायोंकी वक्तव्य	७२२	ब्रह्माका सामन्तों राजाओंको साथ लेकर	
रामनामलोमड़ीकी रचनाविधि	७२३	रामके नाम जाना और अथा भोगवाना	७७१
पंचदश सर्ग		रामका ब्रह्माको बाल्योक्तिके पास भेजना और	
लक्ष्मणकवच	७२५	बाल्योक्तिके परामर्शसे सोमवंशी राजाओंको स्त्रियोंका	
भरतकवच	७२७	सीताके पास जाना	७७२
शत्रुघ्नकवच	७२९	सीताके अनुरोधपर भूद्विराम, ब्रह्माका रामसे	
भजन एवं कीर्तन करने योग्य राममन्त्र	७३१	बंकुण्डलधाम पधारनेको प्रार्थना करना और रामकी	
षोडश सर्ग		स्वीकृति	७७३
रामायणश्रवणके बादके कर्तव्य	७३८	पञ्चम सर्ग	
गण्डकी शंका और रामके द्वारा समाधान	७३९	रामको परने धाव जानेके लिये उद्यत देखकर	
वानरोंकी उत्पत्तिका इतिहास और वानरोंको		सूयण, सुषीव, विगोपण आदिका अपने साथ ले	
ब्रह्माका वरदान	७४०	बालनेके लिये आवक करना	७७४
हनुमन्तका आरोपविधान	७४१	सदम और दूर राजाओं, मित्रों तथा पुत्रोंकी	
सप्तम सर्ग		विदाई और उनकी ध्यान स्थानपर निवृत्ति	७७५
श्रीरामचन्द्रोपदिष्ट साररामायण	७४३	रामके आशानुसार कुराका अयोध्या जाना	७७६
अष्टादश सर्ग		रामका लक्ष्मणको वरदान	७७७
धनुर्जतके रुपिचक्र भाग पहननेका कारण	७४४	षष्ठ सर्ग	
पूर्णकाण्ड		दूधरे दिन सुबेरे रामके अजमेरुको मुलाकर	
प्रथम सर्ग		अपने परम धाम जानेकी बात बतलाना	७७८
रामकी समाधि हस्तिनापुरसे दूतका जाना	७५७	रामके आगमनकी बात जानकर स्वर्गके देव-	
बाल्योक्तिका रामकी चंद्रवंशी राजाओंका		ताओंमें उत्साहका सञ्चार	७७९
इतिहास सुनाना	७६०	श्रीदिवजीका रामके समक्ष स्तुति करना	७८०
द्वितीय सर्ग		गण्डपर बैठकर रामका बंकुण्डलधाममें जाना	
रामका सामन्त राजाओंको बुलवाना	७६१	और रामके साथ गये सभी अयोध्यावासियोंको	
रामका भरतको सलहोपपदिके पदपर अनिगित्त		साम्प्रतिक संक प्राप्ति होना	७८१
करनेका सङ्कल्प करना, किन्तु बरगका यह पद		सप्तम सर्ग	
स्वीकार न करना, अन्तमें उस पदपर कुछका समीपक	७६२	कुण्डके बादबाल मुर्यवंशी राजाओंकी वंशावली	७८२
हस्तिनापुरीपर ब्रह्मके लिये परामर्श रामका		अन्य रामायणों तथा आनन्दरामायणमें भेदका	
सरयू और अयोध्याको वरदान	७६४	कारण	७८३
रामका हस्तिनापुरको प्रस्थान	७६५	अष्टम सर्ग	
तृतीय सर्ग		विष्णुदासका रामरामसे आनन्दरामायणकी	
रामका हस्तिनापुर पहुँचना	७६६	अनुक्रमणिका पूछना और रामदासका अनुक्रमणिका-	
राम और सोमवंशी राजाओंका युद्ध	७६७	सर्ग कहना	७८४
उस मोक्ष युद्धको देखकर देवताओंमें सब-		नवम सर्ग	
शङ्क और शान्तिका आशय सोचना	७६८	आनन्दरामायण स्तुतिका फल	७८८
चतुर्थ सर्ग		अनुष्ठानविधि	७८९
कुण्डका ब्रह्मस्थ स्थान करना और ब्रह्माका		पारायणविधि	७९०
प्रकार रोकना	७७०	आनन्दरामायणका संक्षिप्त माहात्म्य	७९२
		पार्वतीजी और शिवजीका रामदास-विष्णुदास-	
		के विषयमें प्रश्नोत्तर	७९३

श्रीसीतापतये नमः
श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’द्वया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

सारकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(दशरथ-कौसल्याविवाह तथा ऋष्यशृङ्ग द्वारा पुत्रोष्टि यज्ञ)

श्रीवाल्मीकिरुवाच

वामे भूमिमुत्ता पुरस्तु हनुमान् पृष्ठे सुमित्रामुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वद्वयोर्वाय्वादिकोणेषु च ।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥ १ ॥

आदौ रावणमर्दनं द्विजगिरा तीर्थट्टनं सीतया साकेते दशकाजिमेधकरणं पत्न्या विलासाटनम् ।
स्त्रीपुत्रग्रहणं स्नुषार्थमटनं पृच्छयाश्च संक्षुण्णं रामार्चादिनिरूपणं दयितया स्वीय स्थलारोहणम् ॥ २ ॥
एकदा पार्वती देवी शंकरं प्राह इषिता । कैलासवासिन नत्वा राममक्षयैकवत्परा ॥ ३ ॥

पार्वत्युवाच

शंभो त्वया पुराणानि कथितानि ममांतिके । रघुनाथस्य चरितं जन्मकर्मसमन्वितम् ॥ ४ ॥
कथयस्वाधुना देव मम प्रीतिविवर्द्धनम् । आनन्ददायकं कर्म रघुवीरेण यत्कृतम् ॥ ५ ॥

श्रीवाल्मीकि मुनि कहते हैं कि जिनके बायें भागमें सीताजी, सामने हनुमान, पीछे लक्ष्मण, दोनों दायें शत्रुघ्न और भरत, बायव्य ईशान अग्नि तथा नैऋत्यकोणमें क्रमशः सुग्रीव, विभीषण, तारापुत्र युवराज अङ्गद और जाम्बवान् हैं, उनके बीच विराजमान श्याम कमलसदृश मनोहर कान्तिवासे परमपुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ १ ॥ इस ग्रन्थके सारकाण्डमें ऋषिवाक्यसे दुष्ट रावणका हनन, दूसरे यागकाण्डमें सीताके साथ रामकी तीर्थयात्रा, तीसरे यागकाण्डमें अयोध्यामें दस अश्वमेध यज्ञ, चौथे विलासकाण्डमें पत्नीके साथ विलास, पाँचवें जन्मकाण्डमें लव-कुशकी उत्पत्ति तथा सीताकी पुनः स्वीकृति, छठे विवाहकाण्डमें लवकुशके विवाहके लिए प्रस्थान, सातवें राज्यकाण्डमें धर्मपूर्वक पृथ्वीका रक्षण, आठवें मनोहरकाण्डमें रामकी पूजा आदिका वर्णन और नवें पूर्णकाण्डमें सीतासहित भगवान् रामचन्द्रके स्वयम् वधारने आदिका सुन्दर चरित्र वर्णित है ॥ २ ॥ एक समय रामचन्द्रजीकी भक्तिमें तत्पर देवी पार्वतीने कहा—हे शम्भो ! आपने बहुतसे पुराणोंकी सुन्दर कथा मुझे सुनायी । हे देव ! अब आप कृपा करके मेरी प्रीति बढ़ानेवाले रघुवीर रामचन्द्रके आनन्ददायक कर्म और उनके जन्म आदिकी मनोहर

सम्यक् पृष्टं त्वया कान्ते रामचन्द्रकथानकम् । कथयामि सविस्तारं महामंगलकारकम् ॥ ६ ॥
 आदिनारायणाद्ब्रह्माऽभून्मरीचिर्विधेः सुतः । मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तन्मुनः सूर्य उच्यते ॥ ७ ॥
 सूर्यपुत्रः श्राद्धदेवो मनुर्वेवस्वतस्त्रिविधः । स एव प्रोच्यते तस्येक्ष्वाकुः पुत्रः प्रतापवान् ॥ ८ ॥
 इक्ष्वाकोस्तु विकुक्षिर्हि शशादथ स एव हि । विकुक्षेस्तु ककुत्स्थश्च स एवात्र पुरञ्जयः ॥ ९ ॥
 स एवोक्तश्चन्द्रबाहः ककुत्स्थनृपतेः सुतः । अनेनास्तस्य पुत्रोऽभूद्विश्वरन्ध्रश्च तन्मुनः ॥ १० ॥
 चन्द्रश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्युवनाश्वः प्रतापवान् । श्रावस्तो युवनाश्वस्य शावस्तस्य सुतो महान् ॥ ११ ॥
 बृहदश्व इति ख्यातस्तस्माज्जज्ञे नृपोत्तमः । कुवल्याश्वो नृपतिर्दृढाश्वस्तन्मुनः स्मृतः ॥ १२ ॥
 हर्षश्च इति तन्पुत्रो निकुम्भस्तन्मुनः स्मृतः । बर्हणाश्वो निकुम्भस्य बर्हणाश्वनृपोत्तमात् ॥ १३ ॥
 कृताश्वो नृपतिः प्रोक्तः श्येनजित्तन्मुनः स्मृतः । युवनाश्वः श्येनजितो युवनाश्वनृपोत्तमात् ॥ १४ ॥
 मान्धाना त्रसदस्युर्हि स एव कथितो भुवि । पुरुकुत्सश्च मान्धातुः पुरुकुत्सस्य वै पुनः ॥ १५ ॥
 त्रसदस्युरिति ख्यातोऽनरण्यश्चापि तन्मुनः । अनरण्यस्य हर्षश्चो हर्षश्चस्यारुणः सुतः ॥ १६ ॥
 त्रिवन्धनोऽरुणाज्जातस्त्रिवन्धनसुतो महान् । सत्यव्रतः स एवात्र त्रिशकु रिति वै स्मृतः ॥ १७ ॥
 सत्यव्रतस्य पुत्रोऽभूद्विश्वरन्ध्रः प्रतापवान् । रोहितस्तन्मुनः प्रोक्तस्तन्माच्च हर्षिणः स्मृतः ॥ १८ ॥
 हरितस्य सुतश्चम्पः सुदेवश्चम्पदेहजः । सुदेवाद्रिजयः प्रोक्तस्तन्पुत्रो भरुकः स्मृतः ॥ १९ ॥
 भरुकस्य वृकः पुत्रो वृकपुत्रस्तु बाहुकः । बाहुकात्मगरो जज्ञेऽसमञ्जः सगरात्मजः ॥ २० ॥
 असमञ्जसश्च पुत्रोऽभूदंशुमानिति नामतः । तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपाच्च भगीरथः ॥ २१ ॥
 भगीरथाच्छ्रुतो जातः श्रुताश्रमः प्रकीर्त्यते । नामस्य सिन्धुद्वीपश्च अयुतायुश्च तन्मुनः ॥ २२ ॥
 ऋतुपर्णस्त्वयुतापोः सुदामस्तस्य कीर्त्यते । मित्रसहः स एवात्र कल्माषांघ्रिः स एव हि ॥ २३ ॥
 सुदामस्याश्वकः पुत्रो मूलकोऽश्वकदेहजः । स एव नारीकवचो मूलकस्य सुतो महान् ॥ २४ ॥
 नाम्ना दशरथः प्रोक्तस्तस्य पुत्रः प्रतापवान् । नाम्ना त्वेदविदः प्रोक्तस्तस्य विश्वसहः स्मृतः ॥ २५ ॥
 तस्य पुत्रस्य खट्वाङ्गः खट्वाङ्गादीर्यवाहुकः । दिलीपश्च स एवात्र तस्य पुत्रो रघुः स्मृतः ॥ २६ ॥

कथा मुनाइये ॥ ३-५ ॥ शिवजी बोले-हे कान्ते । तुमने श्रीरामचन्द्रका कथाविषयक बड़ा अच्छा प्रश्न किया है । मैं उस भङ्गलकारिणी कथाको विस्तारपूर्वक कहता हूँ ॥ ६ ॥ आदि नारायण विष्णुसे प्रतापी जायमान हुए । ब्रह्मासे मरीचि, मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य और सूर्यसे श्राद्धदेव हुए ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन्हींको वेवस्वत मनु भी कहते हैं । उनके बड़े प्रतापी इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकुसे विकुक्षि अथवा शशाद और विकुक्षिके ककुत्स्थ अर्थात् पुरञ्जय हुए । ककुत्स्थसे इन्द्रबाह, इन्द्रबाहसे अनेना, अनेनासे विश्वरन्ध्र, विश्वरन्ध्रसे चन्द्र और चन्द्रका युवनाश्व नामक प्रतापी पुत्र हुआ । युवनाश्वसे शावस्त, शावस्तसे बृहदश्व तथा बृहदश्वसे कुवल्याश्व सर्वश्रेष्ठ राजा हुए । कुवल्याश्वसे दृढाश्व, दृढाश्वसे हर्षश्व, हर्षश्वसे निकुम्भ, निकुम्भसे बर्हणाश्व, बर्हणाश्वसे कृताश्व, कृताश्वसे श्येनजित्, श्येनजित्से युवनाश्व, युवनाश्वसे माघाता हुए । जो संसारमें त्रसदस्यु नामसे प्रसिद्ध थे । माघातासे पुरुकुत्स, पुरुकुत्ससे फिर दूसरे त्रसदस्यु हुए । त्रसदस्युसे अनरण्य, अनरण्यसे हर्षश्व, हर्षश्वसे अरुण, अरुणसे त्रिवन्धन, त्रिवन्धनसे सत्यव्रत हुए । उनका नाम त्रिशकु भी था ॥ १६-१७ ॥ सत्यव्रतसे हरिश्चन्द्र नामके बड़े सत्यवादी और प्रतापी राजा हुए । हरिश्चन्द्रसे रोहित, रोहितसे हरित, हरितसे चम्प, चम्पसे सुदेव, सुदेवसे विजय, विजयसे भरुक, भरुकसे वृक, वृकसे बाहुक, बाहुकसे सगर, सगरसे असमञ्जस, असमञ्जससे अंशुमान्, अंशुमान्से दिलीप, दिलीपसे भगीरथ, भगीरथसे श्रुत, श्रुतसे नाम, नामसे सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीपसे अयुतायु, अयुतायुसे ऋतुपर्ण और ऋतुपर्णसे सुदाम हुए । वे मित्रसह और कल्माषांघ्रि नामसे भी प्रसिद्ध थे ॥ १८-२३ ॥ सुदामसे अश्वक, अश्वकसे मूलक, मूलकसे नारीकवच, नारीकवचसे दशरथ,

रथाः पुत्रो ब्रजः प्रोक्तस्तस्मादश्वयः स्मृतः । राक्षो दशरथाज्जातः श्रीगमः परमेश्वरः ॥२७॥
 यस्य नामान्यनन्तानि गृणन्ति मुनयः सदा । विष्णोराश्व्य कथिता एकषष्टिर्नृपा मया ॥२८॥
 एकषष्टिर्नृपाश्चाग्रे मध्ये रामो विराजते । तस्य ते चरितं कुन्तनं सक्षेपाच्च ब्रवीम्यहम् ॥२९॥
 इक्ष्वाकुवशप्रवरः क्षत्रियो लोकविश्रुतः । बलवान् सरयुतारोऽप्योष्यया पार्थिवोत्तमः ॥३०॥
 नाम्ना दशरथः श्रीमान् जम्बूद्वीपपतिर्महान् । शशाम राज्य धर्मेण मन्वेन महताऽऽवृतः ॥३१॥
 अयोध्यायास्तु माक्षिष्ये देशे श्रीकोमलाह्वये । कोमलाया महापुण्यः कोसलाख्यो नृपो महान् ॥३२॥
 तस्यामीशूदुहिता रम्पा कोमल्या पत्निकामुका । तस्या दशरथेनैव विवाहो निश्चितो मुदा ॥३३॥
 लग्नार्थं तं ममानेतुं दत्ता दशरथं नृपम् । ययुश्चिनिश्चयं कृत्वा विवाहदिवसस्य च ॥३४॥
 तदा दशरथश्चापि साकेने सरयुजले । नौकास्थो जलजां क्रीडां चक्रे वे मत्रिबन्धुभिः ॥३५॥
 निशायां सेनया युक्तः स्तुतो पागध्वजदिभिः । रत्नदीनप्रकाशैश्च नन्दतुर्वाग्योपितः ॥३६॥
 तस्मिन्काले तु लंकायां विधिं पप्रच्छ रावणः । कस्मान्मे मरणं ब्रह्मन् तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि ॥३७॥
 तद्वाचणवच्च श्रुत्वा कथयामास तं विधिः । कोमल्यायां दशरथाद्रामः साक्षाज्जनार्दनः ॥३८॥
 चतुर्धा पुत्ररूपेण भूत्वा म निहनिष्यति । पञ्चमेऽहनि लग्नस्य राक्षो दशरथस्य हि ॥३९॥
 दिवसो निश्चितो विप्रेः कोसल्याख्येन रावण । तद्विधेर्वचनं श्रुत्वा पुण्यकस्थो दक्षाननः ॥४०॥
 अयोध्यां सन्वरं गत्वा गक्षमैः परिदेष्टितः । नौकास्थं तं दशरथं त्रिन्या युद्धः सुदारुणः ॥४१॥
 बभज निजपादेन तां नौकां सरयुजले । तदा सर्वे मृतास्तत्र सरयु निमले जले ॥४२॥
 दशरथसुमत्री द्वी नौकासण्डोपरि स्थिता । शनैः शनैः प्रवाहेण गत्वा अर्गारथीं नदीम् ॥४३॥

दशरथस्य ऐडविड, ऐडविडम विश्वमह, विश्वमहसे खट्वाङ्ग, खट्वाङ्गसे दीर्घबाहु हुए । उन्होका नाम दिक्षीप भी था । दिक्षीपस रघु रघुसे अज और अजसे बड़े प्रतापो महाराज दशरथ हुए । दशरथसे साक्षान् परमेश्वर मर्यादापुयोत्तम रामचन्द्रजा जायमान हुए ॥ २४-२७ ॥ उनके अनन्त नाम है । जिनको मुनिलाग सदा गाया करते हैं । विष्णुसे लेकर ६१ (इकसठ) राजे मेन गिनाये । उन राजाओंके बाद रामचन्द्रकी प्रकट हुए । उनका चारित्र्य मैं तुमको सक्षेपमें बताता हूँ ॥ २८ ॥ २९ ॥ इक्ष्वाकुकुलमें श्रेष्ठ, लागाम प्रसिद्ध बलवान् क्षत्रिय, सरयु नदीके किनारे बसो हुई अयोध्या नगरीके राजा, जम्बूद्वीपके स्वामी, बड़ भारी श्रीमान् राजा दशरथ विशाल सेना रखकर धर्म तथा न्यायपूर्वक राज्यका शासन करते थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अयोध्याके पास ही कोसलदेशकी कोसलपुरीमें कोसल नामका एक बड़ा पुष्यारमा राजा राज्य करता था ॥ ३२ ॥ उसकी विवाहके योग्य एक सुन्दरी कोसल्या नामकी पुत्री थी । उसका उसके पिता कोसलने दशरथके साथ विवाह निश्चित किया । बादमें आनन्दक साथ विवाहके दिनका निश्चय करके उन्होने लग्नके निमित्त राजा दशरथको बुलानेके लिए दूताओं भेजा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उस समय राजा दशरथ सरयुनदीके बीच नौकापर बैठकर इष्टमित्रों तथा मान्दवोंके साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे । रात्रिका समय था, चारों ओर सैनिक खड़े थे, चारणगण स्तुति कर रहे थे और रत्नाके दीपके प्रकाशसे समस्त नाव जगमगा रही थी । बाराङ्गनायें नानाप्रकारके नृत्य-गान कर रही थीं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसी समय लङ्काके राजा रावणने बह्मसे पूछा — हे ब्रह्मन् ! मेरी किसके हाथों मरण होगा ? यह आप स्पष्ट कहिये ॥ ३७ ॥ रावणका वचन सुनकर ब्रह्मने कहा कि दशरथकी स्त्री कोमल्यासे साक्षात् जनार्दन भगवान् राम आदि चार पुत्रोंके रूपमें उत्पन्न होंगे । उनमेंसे राम तुमको मारेंगे । कोमलराजने ब्राह्मणोंसे पूछकर राजा दशरथके लग्नका आजसे पाँचवाँ दिन निश्चित किया है । ब्रह्मका यह वचन सुना तो रावण बहुतसे राक्षसोंको साथ लेकर शास्त्र अयोध्यानगरीको चला पड़ा । वहाँ जा और धीरे-धीरे करके उसने नौकापर बैठे राजा दशरथको पराजित किया और पादप्रहारसे नावको तोड़कर सरयुके जलमें डुबो दिया । उस समय और सब तो जलमें डूबकर मर गये । परन्तु राजा दशरथ तथा सुमन्त्र नामका मन्त्री दैवेच्छासे नावके टुकड़ोंपर बैठकर धीरे-धीरे

नतः समुद्रमध्ये हि जीविनार्वाश्वरेच्छया । रावणः कोमलं गन्वा कृत्वा परमसगरम् ॥४४॥
 कोमलाग्न्य नृपं जित्वा कोमल्यां तां जहार मः । नतः प्रमुदिनो लकां यथावाकाशवर्त्मना ॥४५॥
 दृष्ट्वा निर्मिगिलं मनस्यं वसन् लक्षणार्णवे चित्ते विचारयामास देवास्ते मम शत्रवः ॥४६॥
 लकायाश्च हृष्यन्ति कोमल्यां गुमचिग्रहाः । अनस्तिमिङ्गिलापेमां न्यामभूतां करोम्यहम् ॥४७॥
 इति निश्चिन्य मनसि पेटिकायां निधाय ताम् । मनस्यं ममर्ष्य हृष्टात्मा ययौ लकां दशाननः ॥४८॥
 निमिङ्गिलोऽपि तामास्ये घृत्वाऽर्धा व्यचरन्मुग्धम् । अग्रे दृष्ट्वा रिपुं स्वीयं तेन युद्धार्थमुद्यतः ॥४९॥
 द्वीपे तां पेटिकां स्थाप्य मग्रामं रिपुणाऽहगेन एतस्मिन्नन्तरं नौकाखडं तं द्वीपमागतम् ॥५०॥
 तदा तौ मन्विनृपतां द्वापं तमारुरुहतुः । तत्र तां पेटिकां दृष्ट्वा समुद्राख्यातिविस्मिता ॥५१॥
 तस्यां दृष्ट्वाऽथ कोमल्यां कृत्वा घृतं परस्परम् । तथा मुहूर्तममये द्वीपे दशरथो नृपः ॥५२॥
 गान्धर्वाग्न्यं विवाहं च चकार मृदिताननः । ततो राजाऽथ कोमल्यां सुमन्त्रो वत्रिसत्तमः ॥५३॥
 श्रप.स्थित्वा पेटिकायां तद्द्वारं पिदुः पुनः । निर्मिगिलो रिपुं जित्वा चकारास्ये तु पेटिकाम् ॥५४॥
 लकायां रावणश्चापि समाहूय विधिं पुनः । उवाच प्रहसन्वाक्यं सभायां संस्थितः सुखम् ॥५५॥
 विधे तत्र मृषा वक्तव्यं रावणेन मया कृतम् । हतो दशरथस्तोये कोसल्या गोपिता मया ॥५६॥
 तद्वाचणवचः श्रुत्वा सभायां पद्मसम्भवः । दीधस्वरेण प्रोवाच ॐ पुण्याहमिति स्फुटम् ॥५७॥
 रावणः सभ्रमात्प्राह किमिदं व्याहृतं त्वया । विधिः प्रोवाच लभं तु जातं दशरथस्य हि ॥५८॥
 तदा विधिं मृषा कर्तुं दूतान्मंग्रंष्य मादगम् । निर्मिङ्गिला-समार्जाय पेटिकां मङ्गणोऽन्तिके ॥५९॥
 समुद्रादथ ददर्शाभी तत्र तस्यां दशाननः । तदाऽन्तिचकितः क्रुद्धस्तान् हतुं खड्गमाददे ॥६०॥

जयप्रवाहक सह र गगनदोम जा पट्टव । ४४-४६ ॥ वहाँम बहुत हुए वे दोनों समुद्रम जा मिले । उधर रावण आ ४७ म चल्कर कोमल्यागाम जा पहुँचा और अग्रामक युद्ध करके राजा कोसलको जीत लिया । तदनन्तर कोमल्याका हरण करके वह आनन्दक साथ आकाशमार्गसे लड्डाको चला ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ गगनम सार समुद्रम रहतकारी निर्मिङ्गिल मछलीको देखकर उसने मोचा कि सब देवता मेरे शत्रु हैं । कौरी मय बदरकर वे लड्डास कोमल्याका चुरा न ले जायें । इसीलिये इसको यहीं इस निर्मिङ्गिलको घरायशम सो दू ना ठाक हा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ऐसा सोचकर उसने कोसल्याको पिटारीमें बन्द करके निर्मिङ्गिल मछलीको सोव दिया और स्वयं आनन्दक साथ लड्डा चला गया ॥ ४८ ॥ वह मछली उस पिटारका मुखमें लेकर मुखपूर्वक समुद्रम घूमने लगी । सहसा अपने शत्रुको सामने देखकर उसने शत्रुके साथ युद्ध करतवा निश्चय किया ॥ ४९ ॥ तदनुसार पिटारीको एक टापूपर रखकर वह शत्रुसे युद्ध करने लगी । उमा समय वह नावका टुकड़ा भी उसी टापूके किनारे आ लगा ॥ ५० ॥ तब रजा दशरथ तथा सुमन्त्र उमा द्वीपम उत्तर पड । वहाँ उनकी दृष्टि उस पिटारीपर पड़ी । खोलकर देखनपर उसमें कोमल्याको देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ५१ ॥ बादमें एक दूसरेसे सब बातोंको जान करके प्रसन्न हुए और अच्छे मुहूर्तम वहाँपर राजा दशरथने प्रसन्नतापूर्वक कोसल्याके साथ गान्धर्व विवाह कर लिया । पश्चात् राजा, कोसल्या तथा मन्विपोर्म श्रेष्ठ मन्त्री सुमन्त्र ये तीनों पुन पिटारीम घुस गये और दफना बन्द कर लिया । मछलीने भी शत्रुको जीतकर उस सन्तुकको फिर अपने मुखमें रख लिया ॥ ५२-५४ ॥ उधर लड्डाम रावण मुखपूर्वक सभाके बीचमें बैठा और ब्रह्माजीको बुलाकर हँसते हुए बोला— ॥ ५५ ॥ हे ब्रह्मा ! मैंने आपक वचनको भी मूठा कर डाला । दशरथको जलमें डुबोकर कोसल्याको छुपा दिया ॥ ५६ ॥ भरी सभामे रावणक इस वचनको सुनकर ब्रह्माने जोरसे स्पष्ट शब्दोंमे “ॐ पुण्याहम्” ऐसा कहा ॥ ५७ ॥ यह सुनकर रावणने पूछा कि यह आपने क्या कहा ? ब्रह्माजी बोले—अरे ! राजा दशरथका विवाह हो गया ॥ ५८ ॥ रावण ब्रह्माक वचनको असत्य प्रमाणित करनेके लिये दूतों द्वारा मछलीसे पेटो मंगवायी और जो ही खानकर ब्रह्माजीका दिखलाना चाहा, त्यों ही उसमें सुमन्त्रके साथ दशरथ कोसल्याको देखकर

तदाऽतिथंभ्रमाद्रेधा रावणं वाक्यमब्रवीत् । किं करोषि दशस्य त्वं माऽभूना साहसं कुरु ॥६१॥
 कौमल्यंकास्थापिताऽस्यां पेटिकायां त्वया पुग । त्रयस्तत्र तु मंजाना भविष्यन्त्यत्र कोटिशः ॥६२॥
 भविष्यति वधस्तेऽद्य तमोऽर्धं न जनिष्यति । साहसं कुरु माऽर्धं न मन्यावृषि दशानन ॥६३॥
 यद्भविष्यं तद्भवतु तदग्रे माऽस्तु माप्रतम् । एतान्दूतः प्रेषयाद्य साकेतं त्वं सुवी भव ॥६४॥
 न भविष्यति मद्राणीं मृषा जार्नाहि निश्चयम् । यद्भाष्यं तद्भवत्येव महता कर्मणो गतिः ॥६५॥
 तद्विधेर्वचनं मन्यं मन्वा भीतो दशाननः । पेटिकां प्रेषयामास साकेतं स्वभटैर्जेश्वर ॥६६॥
 साकेते पेटिकां त्यक्त्वा भट्टास्ते रावण गताः । अयोध्याया महानामाश्रमं श्रमो नृपदशनाम् ॥६७॥
 अयोध्यायामिनां नृणां कौमलाधिपनेर्गतिः । ततः पुनर्विवाहस्य मन्त्रम कौमलाधिपः ॥६८॥
 कृत्वा स्वराज्यं तामात्रे दत्तं प्राप्या हि पुत्रिकाम् । तदारभ्य कौमलेन्द्रा प्रोत्तरन्ते रत्नवशाजः ॥६९॥
 ततो राजा दशरथः सुमित्रां मगधेशजाम् । विवाहनापरां यन्तां चक्र दशिनां प्रियाम् ॥७०॥
 कैकेयनृपतेः कन्यां कैकेयीं पद्मलाचनाम् । विवाहेनाकरोद्भार्यां नृन्या परमादगन् ॥७१॥
 तथाऽन्यानि सप्तशतकलत्राण्यकरोन्त्यः । एवं राजा दशरथः क्षत्र्याम् जगतां वलम् ॥७२॥
 दानैर्भोगैर्दशरथो बभूव जरठो महान् । नाभवत्समन्ततस्तस्य धर्मिकस्यावर्णापतेः ॥७३॥
 कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च गिराद्रजे । एताः कुलीनाः सुभगा रूपयौवनमयूताः ॥७४॥
 तस्मिन् क्षासति राज्यं तु स्थितेऽयोध्यापुरि प्रिये । देवानां दानवानां च राज्यार्थं विग्रहो महान् ॥७५॥
 तत्र रागभवच्छ्रेष्ठा यत्रायोष्यातिमहान् । जयस्तत्र न मन्देदृप्तां भ्रूया परनो जवान् ॥७६॥
 प्रार्थयामास नृपतिं गत्वा पुत्राय सादरम् । ततो गत्वा दशरथश्चकार कदनं महत् ॥७७॥
 पहले तो बहुत चक्किन हुआ । फिर कुछ हाकर उन्त मरनक त्वि उमने लगवार निकाल ली ॥ ६९ ॥ ६० ॥
 तब महान रावणको राककर कहा । अर दशवदन , यह क्या करना है ? इस समय तमा साहस मन कर
 ॥ ६१ ॥ देख, तूने केवल कौसल्याका ही इसम रखवाया । किन्तु ये एकस एक तान हा गये । वैसे हा इन
 मानोसे कर डो हा जायेग । ६२ ॥ राम भा आज ही जन्म ले लग और तू मारा जायगा । आयु ज्य रहन
 क्या धर्म भगता चाहता है ? इसलिये तू ऐसा सहस त्याग दे ॥ ६३ ॥ जो हुना होगा सो आगे हागी ;
 अभी तू कुछ मत कर और इन तानोंका दूत द्वारा इनक स्थानका भजवाकर सुत्रा हो ॥ ६४ ॥ मरा बात
 कभी झूठ न होगी । इस बातकी निश्चय रख । कर्मका फल बड़ी गहन हाती है । कर्मक अमुमार जो होनेवाला
 होता है, सो होकर ही रहता है ॥ ६५ ॥ इस घटनाका घटित हात दस्तकर रावण कुछ डर गला और
 ब्रह्मजोका बातको सच्ची मानकर वह पिटारी भगन दूता द्वारा शीघ्र अयोध्या भेज ली ॥ ६६ ॥ राजा दशरथ
 आदिको सकुशल प्राया देखकर अयोध्यावासियों तथा कासलदशक राजा आदिका बडा प्रसन्नता हुई और
 आभय भी हुआ । बादम कासलाधिपतिने बड समारोहक साथ फिरम विवाह करके अपनी कमनीय कन्या
 कौसल्या तथा अपना संपूर्ण राज्य अपन दामाद राजा दशरथको दहजरूपम दे दिया । तबसे कौसलदशके
 राज भी सूरवंशी कहलान लग ॥ ६७-६९ ॥ तदनन्तर राजा दशरथ मगधदशक राजाको कन्या सुमित्राको
 स्नाहकर अपनी दूसरा प्रार्णाप्रिया स्त्री बनाया ॥ ७० ॥ ककय दशक राजाका कमलनयनी कन्या ककयीको
 स्नाहकर उन्होने बड आदरपूर्वक सासरा पत्नी बनायी ॥ ७१ ॥ इन जानोंक अतिरिक्त अन्य भी उनकी सात
 सौ स्त्रिये थीं : इस प्रकार आनन्दपूर्वक राजा दशरथ दान मान-भाग-ऐश्वर्य आदिके द्वारा पूष्याका शासन
 करत हुए बूढ हो गये । परन्तु उन परम धार्मिक राजा दशरथक कोई सुतान नहीं हुई ॥ ७२ ॥ ७३ ॥
 हे प्रिये पावंता , पुत्रके बिना राजाका रूपयोदन मुक्त मनाश कौसल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा आदि स्त्रिये,
 राज्य और विगल अयोध्यापुरी मूना तथा धर्म वासन मगा । उसी समय देवताओं और दानवोंम राज्य-
 के लिए बडा घारी मुठ आरम्भ हा गया ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उस युद्धमे यह आकाशवाणी हुई कि 'जिसके पक्षम
 अयोध्यापति राजा दशरथ हागे, उमा पक्षको विजय होगी' । उस वाणीको सुनकर पवनदेवने शीघ्र जाकर

एतस्मिन्नन्तरे तत्र संग्रामेऽतिभयावहे । भिक्षां स्वस्थं गजः नाविदद्विष्टसंभ्रमात् ॥७८॥
 गङ्गाऽन्निके सिधता मुभूः कँकेयी रणकीतुकम् । पश्यन्ती स्वस्थं भिक्षं ददर्श समरांगणे ॥७९॥
 अभवन्मा निज हस्तं चकार जयहेतवे । तथा तु पूर्वं बाल्यन्वान्मभ्यास्य कस्यचिन्मुनेः ॥८०॥
 कृष्णवर्णं कृतं तेन शम्भो नेऽप्यपवादतः । मुख्यमग्रे निर्गच्छन्ति नैव लोकाः कदाचन ॥८१॥
 ततस्त्वं गन्तुमुद्युक्तं कँकेयी वामहस्ततः । दंडादिकं ददौ तस्य मुनेर्हस्तेऽतिभक्तितः ॥८२॥
 तस्यै ददौ वरं विप्रस्तव वामकरो वगन् । भविता वत्तकटिनः कदापि नाश न चेष्यति ॥८३॥
 कँकेयी तं वरं स्मृत्वा स्व चकाराक्षयकरम् । अथ जिन्वा रणे दैत्यान् दृष्ट्वा तत्कर्म णर्थिवः ॥८४॥
 ददौ वरं द्वौ तस्यै म न्यायधूर्ता कर्ता तथा । यदाऽहं याचयिष्यामि तदा त्वं देहि ती मम ॥८५॥
 तथेन्युक्त्वा नृपः पत्नीं यया स्वनगरीं प्रति । एकदा म निशायां तु मृगयायां महावने ॥८६॥
 चकार वाग्बिधं चावधीद्वनचगन् बहुन् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वने वाराणसीपथा ॥८७॥
 करंडक्या स्वपितरी स्वस्कंधे श्रवणो वदन । काशीं नेतुं यया वैश्यो धर्मबाधामपान्निशि ॥८८॥
 नीर पातु शिशो देहि चावयोश्चेति प्रार्थितः । तस्यां करंडके न्यस्य तटाके जलसंनिधौ ॥८९॥
 गत्वा जले स्वयं कुम्भं न्युञ्जं तस्थौ जले क्षणम् । कुम्भस्य न्युञ्जतः शुद्धो बभूव करिणो यथा ॥९०॥
 वनद्विषो न हंतव्यश्चेति जानन्नपि नृपः । वैश्यं राजा द्विषं मत्वा विव्याध स पतन्त्रिणा ॥९१॥
 पपात श्रवणस्तोयं हा केन हं प्रताडितः । मृतश्चेति तद्वाक्यं श्रुत्वाऽभूद्विह्वलो नृपः ॥९२॥
 गत्वा जलाद्देवगाधं कुत्वाऽऽकर्ण्य तद्विस । सर्वं वृत्तं विप्रन्यं तं चकार भयविह्वलः ॥९३॥

राजा दशरथस युद्धम सम्मिलित हानका सादर प्रार्थना का । तदनुसार राजा दशरथ वहाँ आकर दानधोसे धर युद्ध करमे लग ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ उस भयानक संग्रामके समय राजाके रथका धुरा टूट गया, किन्तु देववक्ता राजाका पता नहीं लगा । ७८ ॥ राजाके पास वंश मुन्दर ओहावाला रानी कँकेयी संग्रामका कौतुक देख रही थी । उसने सहसा रणम अपन रथका धुरा टूटत देख लिया ॥ ७९ ॥ तत्काल उसने विजयलामके लिए अपने बायें हाथका धुरका जगड़ लगा दिया । बचपनमें कँकेयीने किसी सोने हुए मुनिका मुँह स्याहीसे काला कर दिया था । तब मुनिने उसे शाप द दिया कि जा, तेरा मुँह भी अपयशके कारण ऐसा काला होगा कि कोई देखना नहीं चाहेगा । ८० ॥ ८१ ॥ जब मुनि वहाँम चलन लगे, तब कँकेयन भक्तिपूर्वक बाय हाथसे उनका दण्ड-कमण्डल उन्ह दे दिया । ८२ ॥ इस हेतुसे प्रसन्न हाकर मुनिने उसे वरदान दिया कि जा, तेरा बायाँ हाथ समय पहनपर वस्त्र जैसा कठोर हो जायगा और किसी तरह घायल न होगा । ८३ ॥ कँकेयीने उस वरका स्मरण करके ही अपने हाथको धुरेके सदृश बनाकर रथमे लगा दिया था । रणम देखोको जाँतनेके बाद राजा दशरथने कँकेयीके इस साहस अरे कार्यका देखकर प्रसन्नतापूर्वक उससे दो वर माँगनेके लिए कहा । उसने भी उन दोनो वरको राजाके पास ही घराँहरूपमे रख दिया और कहा कि जब मैं माँगूँ, तब आप ये दो वर मुझे दे दीजियेगा ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ 'वृत्त अन्ता' कहकर राजा अपनी रथाक साथ अयोध्या लौट आये । एक दिन रात्रिक समय राजा दशरथ शिकार करनेके लिये सरयूके किनारे गहन वनमें जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने बाणोकी बर्षा करके नदीका जलप्रवाह रोक दिया और बहुतसे वनपशुओको मारा । उसी समय श्रवण अपने बृह तथा अंगे माता-पिताका कविरभ बिठाकर कांधपर उठाये हुए उस वन्य मार्गसे काशी ले जा रहा था । तभी गर्भसे पीडित होकर बृह माता-पिताने अपने पुत्रसे जल पिलानेको कहा । उनकी आज्ञा पाते ही श्रवण कविरको जलके किनार रख तथा घडेको टेढ़ा करके जल भरने लगा तो उस घड़ेसे हाथीके शब्द जैसा शब्द निकला ॥ ८६—९० ॥ 'बनेले हाथीको नहीं मारना चाहिये' इस बातको जानते हुए भी राजा दशरथने उस वैश्य श्रवणको हाथीके भ्रमसे शब्दवेधी बाण मारकर बीध दिया ॥ ९१ ॥ 'हाथ' मुझ निरपराधको किसने मारा' ऐसा चिल्लाकर श्रवण घड़ामसे जलमें गिर पड़ा । मनुष्यकी बोली सुनकर राजा दशरथ घबड़ा उठे और दौड़कर वहाँ गये । उसको जल-

तावंधापि तरपुत्रवधं भुत्वा रुोदतुः । कारयित्वा नृपतिना चिति पुत्रसमन्वितौ ॥९४॥
 दशरथाय तौ शपं ददतुः पुत्रदुःखिनौ । पुत्रशोकादावयोर्हि यथा मृत्युस्तवास्त्विति ॥९५॥
 ययौ नृपोऽपि नगरीं गुरुं कृतं न्यवेदयन् । बसिष्ठो नृपतेर्दोषशान्त्यर्थं तृगाध्वरम् ॥९६॥
 नृपेण कारयामास माकेते मरुतटे । रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥९७॥
 शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छत्तटाष्टेऽभृदवर्षणम् । विभांडकाश्रमं वारुनारीः संप्रेष्य तन्मुतम् ॥९८॥
 रोमपादो मोहयित्वा आध्यमृगं ममानयन् । वासिष्ठ्यो वने गत्वा ममानिन्पूरुषैः सुतम् ॥९९॥
 नाट्यमगीतवादिर्ब्रविभ्रमालिङ्गनार्हणः । तन्प्रतापादभृदृष्टिः पुत्रोऽपि नृपतेर्भून् ॥१००॥
 ततस्तुष्टो रोमपादस्तस्मै शान्तां ददौ सुताम् । दशरथोऽपि स्वपुर्गमानयामास तं मुनिम् ॥१०१॥
 स तु गङ्गोऽनपत्यस्य निरूप्येष्ट मरुन्वनः । प्रत्यक्षं हि चकाराग्नि यज्ञकुण्डान्मपायमम् ॥१०२॥
 आविर्भूत्वा स्वयं बह्विर्ददौ राज्ञे सुपायमम् । राज्ञा विभक्तं स्त्रीभ्यस्तर्ककेर्या दृष्टभावनः ॥१०३॥
 अहरन्पापम् हन्ताद्गृध्रो शापविमोचकम् । सुवर्चलाऽप्यगोमुख्या नृत्यभंगान्प्रयभुवा ॥१०४॥
 शप्ता जाता तु सा गृध्री तथा वेधाः मुनोपितः । तस्यै तुष्टो विधिः प्राह कंकरीपायमं यदा ॥१०५॥
 प्रक्षिपस्यजनगिरिं तदा ते भविता भतिः । अप्सरा त्वं पूर्ववच्च भविष्यसि न मशयः ॥१०६॥
 तस्मान्मा पायसं नीत्वाऽक्षिपदंजनिपर्वने । निज स्वरूपं सा लब्ध्वा जगाम सुरमदिशम् ॥१०७॥
 ततस्ताभ्यां तु कंकर्यं दत्तं किञ्चित् पायसम् । अथ ता भक्षयामामुरतर्मर्मास्तदाऽभवन् ॥१०८॥

से बाहर निकालकर उसके मुँहसे सब वृत्तान्त मना तो भयसे कांपत हुए राजान उस वेश्याबालकके
 शरीरमें बाण निकाल ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ राजाके भुग्नस पुत्रभरणकी बात सुनकर वे दोनों अश्रु अतिशय
 विलाप करने लगे और राजासे तिला वनवाकर पुत्रके साथ जलकर गरलक सिद्धार गये । मरने समय
 पुत्रविलापसे दुःखित वे दोनों अन्धीअन्धे राजा दशरथको यह शाप देने पर कि जैसे हम दोनों पुत्रशाकमें
 मर रहे हैं, वैसे ही तुम भी पुत्रशाकसे ही मरोगे ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ राजाने नगरमें आकर यह सब हाल गुरु-
 बसिष्ठजाको सुनाया । कुछ दिनों बाद बसिष्ठजाने राजाको दोषनिवृत्ति तथा पुत्रप्राप्तिक रित्त उनगे
 सरशुक किनारे ऋष्यशृङ्गको बुलवाकर अवमंथ यज्ञ करवाया । राजा दशरथके मित्र अगदशक
 राजा रोमपादने अपनी शान्ता नामकी कन्या ऋष्यशृङ्गको दे दी थी । क्योंकि एक बार राजा
 रोमपादने देशम बर्षा न होन तथा उन्हे कोई पुत्र न होनक कारण भन्त्रियोंक कथनानुसार ऋष्यशृङ्गक
 पिला विभांडकके आश्रमसे वेश्याओके द्वारा मोहित करवाकर उन्हे अपन देशमें बुलवाया । वेश्याये वनम
 गयीं और नाचकर, गाना गाकर, बाजे बजाकर, हावभाव, आदिङ्गन तथा पूजा आदिके द्वारा मोहित करके
 ऋष्यशृङ्गको ले आयीं । उनके यज्ञ करानेसे राज्यमें वृष्टि हुई और राजाको पुत्र भी प्राप्त हुआ
 ॥ ९६-१०० ॥ तब प्रसन्न हुकर राजा रोमपादन ऋष्यशृङ्गको अपनी शान्ता नामकी कन्या
 दान करके दे दी । अतएव दशरथ भी उन ऋष्यशृङ्गको अपन नगरमें ले आये ॥ १०१ ॥ उन मुनिने
 संतानरहित राजा दशरथसे इष्टि (यज्ञ) करवाकर खार लिये हुए अग्निदेवको यज्ञकुण्डसे प्रत्यक्ष प्रकट
 किया ॥ १०२ ॥ इस प्रकार अग्निने स्वयं प्रकट होकर राजाको सुन्दर पुत्र देनेवाला पायस (खार) दिया । राजाने
 यह खीर लेकर तीनों स्त्रियोंमें बाँट दी । तभी कंकरीके भागको एक गृध्री यह सोचकर कि यदि इसको मे ले
 जाऊँगी तो मेरा शाप छूट जायगा । इस स्वायंसे खार छीन ले गयी । क्यान्तर । एक समय सुवर्चा नामकी
 अप्सराओमें उत्तम अप्सराको नृग्यशृङ्गके अपराधसे बहाने गृध्री होनेका शाप दे दिया । जब फिर उसने
 स्तुतिके द्वारा ब्रह्माको प्रसन्न किया । तब ब्रह्माजाने कहा कि जब तुम कंकरीके पायसको छीनकर
 अजनिपर्वतपर फकोगी । तब तुम्हारी पुनः भुगति हो जायगी और पूर्ववत् तुम अप्सरा हो जाओगी
 ॥ १०३-१०६ ॥ इसी कारण उस गृध्राने खीर लेकर अजनिगिरिपर डाल दी । जिससे वह अपने अप्सरा-
 रूपको प्राप्त होकर पुनः स्वर्ग चली गयी ॥ १०७ ॥ बादमें कौसल्या तथा सुमित्राने अपने-अपने भागमेंसे

आमंस्तामां दोहदास्ते पुत्राणां भाविकर्मभिः । पुत्राणां भाविकर्माणि विदुस्ते दोहदैर्जनाः ॥१०९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे प्रथमः सर्गः । १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(राम लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्नका जन्म)

श्रीशिव उवाच

एतस्मिन्मते भूमिर्दशास्यादिप्रपीडिता । ब्रह्मणा प्रार्थयामास विष्णुं सोऽपि तदाऽब्रवीत् ॥ १ ॥

भूम्यामवतरिष्यामि भवंतु कपयः सुगः । गंधर्वी द्रुमुनाम्नी भूम्याः कार्यार्थसिद्धये ॥ २ ॥

मंयराऽग्रे भवत्वद्वा राज्यविघ्नार्थमिद्वये । पश्चान्पुनर्द्वापराते कुञ्जात्वं कंसमदिरे ॥ ३ ॥

अथ विष्णुश्चैत्रमासि नवम्यां मध्यगे स्वौ । सुनिकागृहमध्येऽथ कौमल्यायाः पुरोऽभवत् ॥

चतुर्भुजः पीतवामा मेघश्यामो महाद्युतिः ॥ ४ ॥

माऽपि दृष्ट्वा बालभाव प्रार्थयामास तं हरिम् । ततो जातस्तदा बालः क्षणाद्रुक्मविभूषितः ॥ ५ ॥

हेमवर्णः कंजनेत्रश्चन्द्राभ्यम्नपनप्रभः । ततः सुमित्रापुरतः शेषोऽभूद्बालरूपशृक् ॥ ६ ॥

आविर्मतां द्वौ यमलां कैकेय्याः शंखचक्रके । एवं ते जनिता बालाश्चत्वारः समये शुभे ॥ ७ ॥

देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः शुभाऽपनत् । जानक्यादियंस्कागन् गुरुणा नृपतिस्तदा ॥ ८ ॥

कारयामास विधिवन्नृतुर्वारिषोपिनः । ज्येष्ठं राम तु कौमल्यातनयं प्राह वै गुरुः ॥ ९ ॥

सुमित्रातनयं नाम्ना लक्ष्मणं गुरुब्रवीत् । ततो भरतशत्रुघ्ननामनी प्राह वै गुरुः ॥१०॥

थोडा थोडा पायस कैकेयीको दे दिया । इस प्रकार सवने पायस खाया और सवने गर्भ धारण किया ॥ १०८ ॥
भाद्री पुत्रोत्पत्तिके गर्भचिह्नको देख तथा मुनकर होनहार पुत्रोंके द्वारा किये जानवाले अद्भुत कार्योंको लोग पहले ही समझ गये ॥ १०९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! इसी बीच रावण आदि दृष्ट राक्षसोंसे पीडित होकर पृथ्वी माता ब्रह्माके साथ विष्णुभगवान्के पास गयी और उनसे अपनी तथा धर्मकी रक्षाके लिये प्रार्थना की । तब विष्णुभगवानने कहा कि 'मैं तुम्हारे लिये भूमिपर अवतार लूंगा' । ऐसा कहकर उन्होंने देवताओंसे कहा—हे देवताओं ! तुम लग भरो सहायताके लिये खानरूपसे पृथ्वीपर जन्म लो । दुन्दुभी गंधर्वी पृथ्वीकी रक्षाके लिये पहिलेसे जाकर मन्थरारूपसे जन्म ले और रामके राज्याभिषेकमें विघ्न डाले । दूसरके अन्तमें बहो जाकर कंसके यहाँ कुञ्जा बनेगी ॥ १-३ ॥ कुछ काल बाद साक्षान् विष्णुभगवान् चैत्र महीनेके कृष्णपक्षकी नवमी तिथिको मध्य सूयंके समय प्रसूतिगृहमें कौसल्याके समने चार भुजाधारी पीताम्बर पहिने हुए वर्षाकृतुकालीन मेघके समान श्यामशरीर तथा तेजस्वी रूपमें प्रवृत्ते ॥ ४ ॥ कौसल्याने वह रूप देखकर भगवान्से बाल्यभाव स्वीकार करनेकी प्रार्थना की । तब भगवान् अण भरमें स्वर्णभरणोंसे भूषित, सुवर्णके सदृश कान्तिसम्पन्न, कमलके समान नेत्र तथा चन्द्रतुल्य मुख एवं सूर्यके समान तेजस्वी बालक बन गये । बादमें सुमित्राके गर्भसे शेषावतार लक्ष्मणजी बालभावसे प्रकट हुए । फिर कैकेयीके गर्भसे विष्णुके शल-चक्र अवतार लेकर एक साथ भरत-शत्रुघ्न पैदा हुए । इस प्रकार वे चारों बालक शुभ समय, अच्छे लग्न और शुभ नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ॥ ५-७ ॥ देवताओंने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये और पुष्पवृष्टि की । राजाने गुरु ब्रह्मसे बालकोंका जातकर्म (संतानके उत्पन्न होनेपर किया जानेवाला कर्म) आदि संस्कार विधिपूर्वक करवाया । उस उत्सवपर वेष्याओं द्वारा अनेक प्रकारका नृत्य भी करवाया गया । ब्रह्मजीने कौसल्याके सबड़े बड़े पुत्रका नाम राम रखा । सुमित्राके पुत्रका नाम लक्ष्मण और कैकेयीके दोनों पुत्रोंके नाम भरत तथा शत्रुघ्न

रमणाद्राम एवामौ लक्ष्मणैर्लक्ष्मणस्त्विति । भरणाद्भरतश्चेति शत्रुघ्नः शत्रुतर्जनात् ॥११॥
 अथ षड्विधे सर्वे लक्ष्मणो गणवेशे हि । शत्रुघ्नो भरतेनापि चकार कौडिनादिकम् ॥१२॥
 रुक्मकंकर्णनजीरन् पुरस्ते विभूषिताः । केश्युग्मशनाहारकुण्डलैर्गतिशोभिनाः ॥१३॥
 मृगलावद्धरुक्मादिनिमिनेषु वरेषु च । दोलकेषु च ते सर्वे दोलिता रेजिरे सुखम् ॥१४॥
 भाले स्वर्णमयाश्चत्थपर्णान्यतिमद्गानि च । मुक्ताकण्डप्रलवीनि शोभयन्ति स्म बालकान् ॥१५॥
 कटे रत्नमणित्राणमध्यद्वीपिनम्राचिताः । कर्णयोः स्वर्णमयश्चरन्तार्जुनमुतालकाः ॥१६॥
 मित्राणामणिमंजारकटिपुत्रांगदेयुताः । स्मितचक्रालपदशुभा इन्द्रनीलमणिप्रभाः ॥१७॥
 अगणे रिङ्गमाणाश्च सस्कारः सस्कृताः शुभाः । ने नान रञ्जयामासुर्मान्धापि विशेषतः ॥१८॥
 कौमल्या नृपतिश्चापि नानावस्त्रैः सुभूषणैः । शोभय मामनुर्वाला नानाव्याघ्रनग्नादिभिः ॥१९॥
 रामः स्वपितरं दृष्ट्वा भोजनस्य स्वगन्धिनः । दुद्राव कवलं पात्राद्गृहीत्वा स पुनर्वहिः ॥२०॥
 कौमल्या बालक धर्तुं दुद्राव नृपनोदिता । न तस्याः कस्यश्चाभ्यायोगिनामप्यगोचरः ॥२१॥
 पवित्रस्य स्वयं रामः करेण भृदुत्तेन च । कौमल्यास्ये नृपास्त्रेऽपि कवलत्रकरोन्मुदा ॥२२॥
 एव नानाकौतुकैश्च रञ्जयामास गणवः । नानाशिशुकीडनकैश्चैष्टिर्नृपस्यभाषितैः ॥२३॥
 बालकृत्रिमपुद्गैश्च गमर्तमुग्मचूर्णैः । पितरौ निजचारिर्नृपादनागेहणादिभिः ॥२४॥
 ततस्ते बालकाः सर्वे वस्त्रालंकारभूषिताः । सभायां पितरं नन्वा तस्युः सिद्धामनोपरि ॥२५॥
 अथ पित्रोपनीताम्ने गुरुणा मुनिभिर्मृदा । गर्भान्गन्धमरे पष्टे जन्मतः पंचमे समे ॥२६॥
 ब्रह्मवर्चमकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । राक्षो बालार्थिनः पष्टे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे ॥२७॥

नन्वा ॥ २५ ॥ मनोहर तथा आनन्ददायक हानस राम, शुभ लक्षणोंसे युक्त होनेसे लक्ष्मण, प्रजाका भरण-
 पावण करनपर निर्माण होनेसे भरत और शत्रुनाशक होनेसे वसिष्ठ उनको शत्रुघ्न नाम रक्खा ॥ ११ ॥ लक्ष्मण
 रामक साथ और शत्रुघ्न भरतके साथ सान्त्न हुए बचने लगे । १२ ॥ सुवर्णक कटे तथा नगुरोसे भूषित
 रुक्मकन्द हार, केश्यनी तथा कुण्डलैस मुणभिन सागेकां सिकलियाका गजम पहन हुए व बालक मुग्म-
 चरित, रत्नजटित तथा नचनर साकलीस व ॥ हुए हीरोजापर उत्तर हुए बहुर ही मुत्तर लगत थे ॥ १३ ॥ १४
 न्याट्ययत्नमे वरे हुए, मुग्मनिर्मित पीपयक पतक आकारकाल एर जितके अग्रभागमे बड़े-बड़े मोती लटक
 रह थे, ऐसे स इर आभूषणोंसे उन बालकोंको जामा और भी बड़ा चड़ी दीवर्ता थी । उनके कण्ठमे विविध
 मणि तथा वचनस्य मुणभिन हा रहे थे । कानोंमे कनकके बने हुए रत्नजन्ति कुण्डल पहना रहे थे । सिरपर
 पुष्पमाले वाल पहना रह थे । पाँवोंमें मणिमणित जोजर इनजना रह । हाथोंमे बाजुबन्द और कमरमे
 कश्यनी खनखना रहो थी । चन्द्रमाक महज शुभ हास्य भरे मुग्ममे किरणोंके समान छोटे छोटे दांत चमकमा
 रहे थे । इन्द्रन लमणिके समान श्याम कान्तिवाल, अगनार्थम प्रमोदक बल रंगते हुए, सस्कारोंसे
 मन्त्रित और देवतमन्त्रमे मन माह लेनेवाल वे कुमार अपने माता-पिताके मनको सुग्ध करने लगे ॥ १५-१६ ॥
 जोम-रा और राजा दशग्य भी अनेक प्रकारके वस्त्र तथा वचनखा आदि अलङ्कारोंसे अपने बालकोंको
 भूषित करने लगे ॥ १७ ॥ राम अपने पिताका बालम भोजन करन देखने तो आकर उसमसे एक
 ग्राम हाथमे लेकर बहुर भाग जाने । राजाके बहनपर कौम-रा रामको पकड़नके लिए जब दौडती तो
 दोनयोको भी असम्य राम उनके हाथ नहीं आने थे । बादमे व स्वयं वीरमे आकर पीछेसे आनन्दपूर्वक
 अने कौमल हाथोंसे माता पिताके नुद्धम बह कौर रख इन थे । २०-२२ ॥ ऐसी अनेक कौतुकयुक्त बालक्रीडा,
 वस्त्रवेष्टा, मधुर मनोहर भाषण, बालकोंके कृत्रिम पुद्ग, नाना प्रकारको चालें, मुखचुम्बन और तरह-तरहकी
 इनाबटो सवारियापर सवार होकर राम आदि चागे बालक माता पिताके मनका लुभान तथा आनन्दित
 करन लगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ कायान्तरमे सब बालक कस्त्र-आभूषण आदिसे भूषित हो पिताको प्रणाम करके
 पञ्चमे सिद्धामनपर बैठन लगे । तब राजाने ऋषियों द्वारा सादर उनका यज्ञोपवीत संस्कार करवाया ।

त्रिद्विधोपनयनमेवं शास्त्रेषु निर्णयः । गुणेरास्यात्सुगृहर्ते वेदान् सांभाषतुर्विधान् ॥२८॥
 चक्रुर्मन्त्रोद्गतानेव बालाः शास्त्रादिकान्यपि । ब्रह्मचर्यसमाप्तौ ते तीर्थानि जग्मुरादरात् ॥२९॥
 सेनया मन्त्रिमहिता वसिष्ठेन समन्विताः । कृष्णार्मः पुनरागत्य साकेतं विविशुर्मुदा ॥३०॥
 एव ते मतिमन्तश्च प्रिया गङ्गो वशे स्थिताः । पितरं रंजयामासुः पौरान् जानपदानपि ॥३१॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे रामजन्मनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(ताडुकावध-अहन्योद्धार तथा सीतास्वयंवर)

श्रीशिव उवाच

एतिस्मन्नन्तरेऽवोष्णां विश्वामित्रो ययौ मुनिः । यज्ञसरत्तणार्घ्यं राजानं मुनिरब्रवीत् ॥ १ ॥
 गर्भं च लक्ष्मणं चापि मम देहि क्षिपदिनम् । गुरुनामंभ्य राजाऽपि प्रेषयामास तौ तदा ॥ २ ॥
 जग्मतुर्यज्ञरक्षार्थं गाधिजेन स्थस्थितौ । ततः प्रहृष्टो गाधेयः स्थित्वा कामाश्रमे पथि ॥ ३ ॥
 प्रभाते स्नानयोः स्नातः प्रादाद्विद्यास्तयोर्मुदा । माहेश्वरी च मद्विद्यां घनुर्विद्यापरमराम् ॥ ४ ॥
 शास्त्रीमार्त्ती लौकिकी च रथविद्या गजोद्भवाम् । अश्वविद्यां गदाविद्यां भञ्जह्वानविसर्जने ॥ ५ ॥
 क्षुत्तृश्चमविलोपिन्यौ बलामनिबलामपि । सर्वविद्यास्त्ववाग्याथ ह्युमा तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ६ ॥
 वनौकमां दिनार्थाय जन्तुभ्यत्र राक्षसान् । पथि पाथजनध्वंसकारिणीं नाम ताटिकाम् ॥ ७ ॥
 राक्षसीमेकवाणेन जघान रघुनन्दनः । अश्रुमा मा मुनिं पूर्वं शोभयामास कानने ॥ ८ ॥

शाम्भोका श्री यही सिद्धान्त है कि ब्रह्मचर्य (ब्रह्मज) की इच्छावाले ब्राह्मणकुमारका यज्ञोपवीत गमने छठे वर्षका जन्मसे पाँचवें वर्ष होना चाहिये । वह ब्राह्मणवाले क्षत्रियका छठे और धन ब्राह्मणवाले वैश्य-कुमारका यज्ञोपवीत आठवें वर्ष अवश्य हो जाना चाहिये ॥ २४ २७ ॥ तदनन्तर अच्छे गृहमें गुरुके मुखसे राम-लक्ष्मणने सग (शिक्षा कल्प, व्याकरण, निघन्त छन्द और ज्योतिष सहित) चारों वेद, छः शास्त्र (न्याय-वैदान्य आदि) और चौगुठ कला (गाना-वज्राना आदि) सीख-सहकर हृदयंगम कर लिया । ब्रह्मचर्यकी समाप्तिसे बाद राम आदि चारों भ्राता भेलाको, मन्त्रियोंको तथा गुरु वसिष्ठको साथ लेकर सर्व तीर्थयात्रा करने गये । छः महीनेमें वहाँसे लौट आये और आनन्दपूर्वक व्योम्नामें रहने लगे ॥ २८-३० ॥ इस प्रकार बुद्धिमान्, भला-गुलाक परम भक्त, परम प्रिय तथा उनकी आज्ञापर चलनेवाले वे चारों बालक पिताको, नगरके लोगोंको तथा उस देशको प्रजाको अपने सङ्घबद्धारके द्वारा मोहित करने लगे ॥ ३१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे पं० रामतेजपाण्डेयकृतमाषा-टोकायां रामजन्मनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे पार्वती ! तदनन्तर मुनि विश्वामित्र अयोध्या आये और राजा दशरथसे कहा कि यज्ञकी रक्षा करनेके लिए राम तथा लक्ष्मणका आय मुझे दे दीजिये । गुरु वसिष्ठके सम्झानेपर राजाने न चाहते हुए भी दोनों बालकोंको उनके साथ कर दिया ॥ १ ॥ २ ॥ तदनन्तर गाधिपुत्र विश्वामित्रके स रथपर बैठकर उनके यज्ञकी रक्षा करनेके लिए राम-लक्ष्मण चल दिये । रास्तेमें कामाश्रममें सबेरे स्नान करके प्रसन्न विश्वामित्रजीने स्नान किये हुए राम-लक्ष्मणको विविध विद्यायें सिखायीं । महेश्वर (महाजीसे प्राप्त माहेश्वरी घनुर्विद्या, मास्त्रविद्या, अश्वविद्या, लौकिकी विद्या, रथविद्या, गजविद्या, अश्वविद्या, तदा बलानेकी विद्या, मन्त्रके द्वारा अम्बादिका आवाहन और विसर्जन करनेकी विद्या, भूख-व्यासको मिटानेवाली बला और अतिबला नामकी दो विद्याएँ तथा अन्यन्व सब विद्याओंको प्राप्त करके राम-लक्ष्मण बनवासी ऋषि-मुनियोंके मुखके लिये राजसोंको मारने लगे । रास्तेमें पथिकोंको मारकर खा जानेवाली ताटिका नामकी राक्षसीको रघुनन्दन रामचन्द्रने एक ही कणसे मार डाला । सुन्दकी स्त्री और सुकेतु यज्ञकी

राक्षसी तस्य शापेन बभूव मुंदकामिनी । मार्गचक्षुः सुबाहुश्च मुंदाक्षस्याः सुतायुधौ ॥ ९ ॥
 रामबाणोद्गतिस्त्वस्याः कीर्तिता मुनिना पुनः । मां प्राप्य दिव्यदेहन्वं नन्वा गमं दिवं गता ॥ १० ॥
 विश्वामित्राश्रमं रामो गन्वा तद्यज्ञघातकान् । राक्षसान्निशिर्नैर्वाणैर्जवान् रघुनन्दनः ॥ ११ ॥
 प्रारम्भं रणयज्ञस्य चकार रघुनन्दनः । हन्वा महश्चक्षुः श्रीमान् राक्षमान् निशितः शरैः ॥ १२ ॥
 क्षिप्त्वा बाणेन मार्गचं शतयोजनमागरे । हन्वा सुबाहुं चैकेन बाणेन रघुमन्त्रमः ॥ १३ ॥
 स कृत्वा गाधियज्ञस्य ममामिं रघुनन्दनः । नाकगेटणयज्ञस्य ममामिं स्वकुतस्य च ॥ १४ ॥
 कालानलमर्तुं तं दृष्ट्वा तत्तृप्तिहेतवे । श्रुत्वा जनकगेहे च तत्कन्यायाः स्वयंवरम् ॥ १५ ॥
 रामलक्ष्मणमयुक्तो मुनिस्ते नगरं ययौ । गमनावसरे मार्गे भर्तृशर्मा शिलां मुनिः ॥ १६ ॥
 मुनिरूपिमहेन्द्रेण भुक्तां रहसि शोभनाम् । गौतमस्यांगनां नाम सहस्रयां चावदत्तयोः ॥ १७ ॥
 तद्गणा निर्मिताऽहल्या दिमुखो गोःपरिक्रमान् । दत्ता पुनः गौतमाय विमृज्यद्रादिकान्पुरान् ॥ १८ ॥
 तन्ममरन् मधवा वैरं तां भुक्त्वा मुनिशापनः । महिमा भगवान् जातः सहस्रलोचनस्ततः ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्रो निजपादपद्मस्पर्शेन तां गौतमधर्मपत्नीम् ।

निष्कल्मषामद्भुतरूपधुक्तां चकार देवः करुणाममुद्रः । २० ॥

नदारूपा जनस्थानेऽहल्या गौतमशापतः । रामेण भ्रमताऽरण्ये स्वाग्निस्पर्शान्ममुद्धृता ॥ २१ ॥
 कल्पभेदाद्दन्तीन्धं मुनयश्चापि केचन । नैव शापोऽस्मि मर्त्येषु कल्पेषु सन्कथा तथा । २२ ॥
 ततस्ती सुरगन्धर्ववर्षिणौ पुष्पवृष्टिभिः । दत्त्वाऽहल्यां गौतमाय जग्मतुर्जाह्नवीं प्रति ॥ २३ ॥

पुत्री ताटका पहिले बड़ी सुन्दर अप्सरा थी । परन्तु बादमें जब उसने अगस्त्य ऋषिवा वनमें मत्ताया, तब उनके शापसे वह कुरु राक्षसी बन गया । उससे मार्गच ओर मुवाहु ये दो राक्षस पुत्र उत्पन्न हुए । ३-९ ॥ 'रामके बाणसे नदी गति होमा' ऐसा भगवत् मुनिने उससे कहा था । इसीसे रामबाणसे इस समय अमर तथा दिव्य शरीर धारण करके वह स्वयंका चला गयी ॥ १० ॥ वनमें चला तथा विश्वामित्रके आश्रममें जाकर रघुनन्दनने यज्ञमें विघ्न डालनेवाले समस्त राक्षसोंको अपने ताल बाणसे मार डाला ॥ ११ ॥ रघुरति रामचन्द्रने वहाँ रणयज्ञ (युद्धरूपा यज्ञ) प्रारम्भ कर दिया । ध्यामान् रामने हजारों राक्षसोंका तांश स णोंसे मारकर मार्गचका एक बाणकी मारसे सौ याजन (चार सौ कोस) दूर पर समुद्रमें फक दिया । इन्होंने हमारे बाणसे मार्गचके भाई सुबाहुका मार डाला ॥ १२ ॥ १३ ॥ विश्वामित्रके यज्ञका तो उन्होंने राक्षसोंको मारकर निविघ्न समाप्ति कर दी । परन्तु अपने द्वारा प्रारम्भ युद्धयज्ञकी समाप्ति नहीं की अर्थात् उनका क्रोध शांत नहीं हुआ ॥ १४ ॥ श्रीरामको प्रत्यकार्थान् अग्निके सदृश उग्र तथा युद्धसे अनृप्त देखकर मुनि विश्वामित्रने उनकी कृत्तिके लिए राजा जनकके यहाँ उनकी कन्याका स्वयंवर सुनकर राम लक्ष्मणको लेकर जनकपुरको प्रयाण किया । चलने-चलने रास्तेमें मुनिने अहल्याको देखकर कहा कि यह मुनिवधवारी इन्द्रके द्वारा भागी गयी परमसुन्दरी गौतमकी स्त्री है । यह नंद विश्वामित्रने राम लक्ष्मणका बताया ॥ १५-१७ ॥ इस मनाहुर मुखवाली अहल्याको बनाकर ब्रह्माने पृथ्वीका परिक्रमा करनेवाले गौतम ऋषिको दे दिया किसी इन्द्रादि देवताको नहीं दी ॥ १८ ॥ इन्द्रने उस वरका स्मरण करके कपटसे एकान्तमें उसके साथ भोग किया । तदनन्तर गौतम मुनिके शापसे इन्द्र हजार भग (योनि) बाने हो गये । फिर प्रार्थना करनेपर गौतमकी कृपासे वे हजार नेत्रवाले बन गये । अब विश्वामित्रके अनुरोधसे करुणानिधि एवं साक्षात् देवतास्वरूप रामचन्द्रने दया करके अपने चरणकमलके स्पर्शसे उस शिलास्वरूपिणी गौतमकी धर्म-पत्नी अहल्याको शोषसे मुक्त करके अति अद्भुत स्वरूपवाली सुन्दरी स्त्री बना दिया ॥ १९ ॥ २० ॥ इन्द्रके बनेके पास एक स्थानमें मुनिके शापसे शापित नदारूपा अहल्याका अरण्यमें भ्रमण करते हुए रामचन्द्रने अपने परम पवित्र चरणस्पर्शसे उद्धार कर दिया । २१ ॥ कुछ लोग इस कथ को कल्पभेदसे मानते और कहते हैं कि सब कल्पोंमें यह शापकी बात एक जैसी नहीं मिलती ॥ २२ ॥ इसके बाद

रामं नौकां कांक्षमाणं नौकापो वाक्यमब्रवीत्

नौविक उवाच

आदावहं क्षालयिन्वा पादरेणुं स्तब्धं प्रभो ॥ २४ ॥

पथान्नौकां स्पर्शयामि तत्र पादां स्पृष्ट्वह । नोचेन्नपादभ्रजमा स्पृष्टा नारी मन्त्रिष्यति ॥ २५ ॥

क्षालयामि तत्र पादपङ्कजं नाथ दारुटपदोः किमन्तरम् ।

मानुषीकरणवर्णमस्ति ते इति लोके हि कथा प्रश्रीयसी ॥ २६ ॥

अस्ति मे गृहिणी गेहे किं कंगम्परणं स्त्रियम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य विहस्य रघुनन्दनः ॥ २७ ॥

तेन संक्षालितपदो नौकां तामारुहो ह मः । तनस्तान्नां जाह्नवीं ने मिथिलां मुनिभिर्ययुः ॥ २८ ॥

मिथिलायां समाहूताः कोटिष्ठः पाथिवा ययुः । चारणास्याद्दशस्थोऽपि श्रुत्वाऽगच्छन्स्वमन्त्रिभिः ॥ २९ ॥

अनाहूतः पम्पकेण संनया परिवारितः । न यया पुत्रविहाद्राजा दशरथस्तदा ॥ ३० ॥

जन्पादरेर्विदेहं समाहूतोऽपि भक्तिनः । श्रीगमलक्ष्मणाभ्यां च विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥ ३१ ॥

शर्ममुदा स मिथिलां बहिःश्रोपवनं यया । विश्वामित्रं समानेतुं जनको मन्त्रिभिः सह ॥ ३२ ॥

शब्दद्रन्तुं मनश्चक्रे तावच्छिष्यः समाययौ । विश्वामित्रस्य तं दृष्ट्वा ननाम जनकस्तदा ॥ ३३ ॥

उतः शिष्यः करं धृत्वा जनकस्य करेण हि । नान्वा रहसि प्रोवाच वचनं शशुगोः स्फुटम् ॥ ३४ ॥

त्वामाह गाविजो राजन् राज्ञो दशरथस्य हि । मया पुत्री समानीता वीर्यं श्रीगमलक्ष्मणौ ॥ ३५ ॥

सौ मीतोर्मिलयोः पाणिग्रहणं हि करिष्यतः । पर्णीकृतं त्वया चापं रामोऽयं खण्डयिष्यति ॥ ३६ ॥

अतो वरविधानेन तां पुरीं नेतुमर्हामि । एतद्भूतं चापमंगपर्यन्तं मा स्फुटं कुरु ॥ ३७ ॥

देवताओं और मन्त्रियों ने जिनके ऊपर दिव्य पुष्पावा वृष्टि की थी, ऐसे राम तथा लक्ष्मण गीतमन्त्री अहल्या सोपकर जाह्नवी (गङ्गा) की ओर चल पड़े ॥ २४ ॥ गङ्गा तटपर पहुँचकर रामचन्द्र पार उतरने के लिये नाव खोज ही रहे थे कि इतनमें एक नाववाला बोला - हे प्रभो ! हे रघुदेव रामचन्द्रज ! यदि आप कहें तो मैं यहाँ से आपका चरणको धुल्लि धो लूँ, बादमें आपकी नावपर बैठाकर पार उत्तार दूँ । क्योंकि ऐसा न करनेपर कहीं आपकी पदरज छूनेमें मरे नाह भी श्रां न बन जाय । क्योंकि पत्थर और लकड़ोंमें कोई बहुत अन्तर नहीं होता । यह बात जयन्तमें प्रसिद्ध है कि आपके चरणकी रजम जड़की भी मनुष्य बनानेकी सामर्थ्य है । इसीलिये आपका चरण धोना आवश्यक है ॥ २४-२६ ॥ क्योंकि मेरे घरमें एक स्त्री है । अतएव मैं दूसरीको लेकर क्या कहूँगा । हम अटपटे वाक्यको सुनकर आनन्दकन्द रामचन्द्र हँस पड़े ॥ २७ ॥ बादमें जब उस घावरने पाँव धो लिया, तब रामचन्द्रजी मुनियोंके साथ नावपर सवार होकर गङ्गा पार हुए और वहाँसे मिथिलापुरीका ओर चले ॥ २८ ॥ मिथिलामें निर्मान्यत राजाओंका एक प्रकारका छोटा सा समुद्र एकत्र हो गया था । रावण भी बिना बुलाये चारणांक मुग़दले सुनकर ही सेना तथा मन्त्रियोंसे घिरा हुआ पुष्पक विमानपर चढ़कर वहाँ जा पहुँचा । उस समय राजा दशरथ आदर तथा भक्तिपूर्वक जनकके द्वारा बुलाये जानेपर भी पुत्रविहासे दुःखा होनेके कारण नहीं आये थे, उसी समय मुनियोंके ईश्वर विश्वामित्र भी राम और लक्ष्मणके साथ धार धारे आनन्दपूर्वक मिथिलाके दाहर एक उपवनमें जा पहुँचे । राजा जनक विश्वामित्रको दिवा लानेके लिए जाना हुआ चाहते थे कि विश्वामित्रका एक शिष्य वहाँ आ पहुँचा । उसको विश्वामित्रका शिष्य जानकर राजाने नमस्कार किया ॥ २९-३१ ॥ शिष्यने राजाका हाथ पकड़ तथा एकान्तमें ले जाकर अपने मुक्ता भेंजा हुआ सन्देश धर्माभाति कह सुनाया ॥ ३४ ॥ उसने कहा - गाविपुत्र विश्वामित्रने कहा है कि मैं अपने साथ राजा दशरथके दो शूरवीर पुत्रों राम-लक्ष्मणको यहाँ ले आया हूँ ॥ ३५ ॥ ये दोनों संता तथा उमिलाका पाणिग्रहण करने और आपका पणोदित धनुष रामचन्द्रजी ताड़ना ॥ ३६ ॥ इसलिये वरको ले आनेके विधानसे इन दोनोंको नगरमें लाना चाहिये । जबतक धनुष मज्ज न हो, तबतक यह वृत्तान्त किसीको न बताइएगा ॥ ३७ ॥ राजा

इत्युक्त्वा जनकं शिष्यः स्वगुरुं शीघ्रमाययौ । जनकोऽपि मुदा युक्तस्त्वर्णामेव पुगे निजाम् ॥३८॥
 तोरणार्थः शोभयित्वा सन्त्येन पवित्रेष्टिनः । वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य सभायैर्नृपैः सह ॥३९॥
 सुमेधादिप्रमदाभिर्नानाचार्यमनोहरैः । विश्वामित्रानिकं गन्वा नन्वा संपूज्य तं मुनिम् ॥४०॥
 अज्ञात इव तौ पृष्ट्वा श्रुत्वा तद्वृत्तमादरात् । वस्त्रालङ्कारभूषार्थः सन्कृत्य विधिवन्नुपः ॥४१॥
 गजयोस्त्रीं समारोप्य चामराद्यैः सुवीजितौ । विश्वामित्रेण मुनिना निनाय मिथिलां पुरीम् ॥४२॥
 ननृतुर्वार्त्तायश्च तृष्ट्वृन्दिमागधाः । नेदुर्नानामुवाद्यानि जगुस्ते तु नटादयः ॥४३॥
 तदा तौ हट्टमार्गेण जग्मतुश्चानिशोभितौ । श्रुत्वा च पुनर्यश्च वीर्यं श्रीरामलक्ष्मणौ ॥४४॥
 समारोपयितुं मुदा जग्मतुश्चानिशोभितौ । कञ्जनेत्रदंशुस्त्रीं ववर्षुः पुष्पशृङ्गिभिः ॥४५॥
 तदा परस्परं प्रोचुः सीतायोग्यां वरस्त्वयम् । रामोऽस्माकं रोचते हि कर्मन्वेवं विधिस्तु मः ॥४६॥
 उमिलायास्तु योग्योऽयं लक्ष्मणोऽस्मिन् गुलक्षणः । अस्माकं मुकुनग्न्य तयोरेतां पतां शुभा ॥४७॥
 श्रीरामलक्ष्मणां मर्या भवतश्चोत्तमोत्तमा । एव तामां कामिनीनां वचनानि नृपान्मजौ ॥४८॥
 शुश्रूवतुः शुभान्येव सध्वाम्यौ तौ ददर्शतुः । ततस्ते मिलिताः सर्वे नृपाः प्रोचुः परस्परम् ॥४९॥
 एतादृशो विदेहेन यदाऽस्माभिः समागतम् । तदोन्मथः कृतो नैव ह्यनयोः क्रियते कथम् ॥५०॥
 किमतः स्येन राज्ञाऽद्य सीता रामाय माऽपिता । किमस्माकं समाहूय मानसंगोऽद्य नः कृतः ॥५१॥
 एवं तेषां नृपाणां च वचनानि नृपान्मजौ । जनको माध्विजश्चापि शुश्रूवुस्ते समन्ततः ॥५२॥
 ततः शनैः शनैर्वीरौ गवार्थैः स्त्रीभिरीक्षितौ । जग्मतुर्वार्त्तायोपाद्यैर्जनकस्य सभां प्रति ॥५३॥
 ततोऽवतरतुर्वीरौ गजाभ्यां मुनिना सह । तन्मन्त्रयश्चशालायामुपविष्टपु राजसु ॥५४॥

जनकजीसे यह कहकर शिष्य शास्त्र अपने गुरुजीक पास लौट गया । राजा भी इस बातको मनमें रखकर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपनी मिथिला नगरको तारण तथा रणविजयो पताकाओं आदिसे सजवाकर गहन, जरीकी झूल तथा सानक होदसे सुशोभित उत्तम एवं शशनीय हाथीको आगे करके सेना, सभा राजाओं, सुमेधा आदि स्त्रियों और जनक प्रकारक मनाहर मार्गलिक बाज लेकर अपनी भार्याके साथ विश्वामित्र मुनिके पास गए और उनका नमस्कार करके पूजा की ॥३८-४०॥ मुनिसे अंतजानकी तरह उन दोनों बालकोंका परिचय पूछकर विधिवत् वस्त्र-आभूषणमें उनका सत्कार करके हाथियोंपर बसाकर चमर हुज्जान हुए जनकजी विश्वामित्रके साथ दोनों आशुयाका मिथिलापुरीमें ल चले ॥४१॥ ४२॥ उस समय बहुतग वाराणसीमें सुन्दर नृत्य करने लगे । वारण तथा भाट लोग स्तुतिपाठ एवं जयजयकार करने लगे । नाना प्रकारके बाजाक मधुर स्वरसे दसों दिशाये गुंज उठी । गायकजन मनाहर गायन गाने लगे ॥४३॥ इस प्रकार शूरावर तथा भीत सुन्दर राम-लक्ष्मण बाजारकी सड़कापर भी पहुँच । उन्हें आने देख तथा औरोंसे सुनकर आनन्दक मारे पहिलेसे ही नगरक सब स्त्रिये नगरके प्रधान दरवाजपर, अपन-अपन घरकी छतोंपर, झगलों और अटारियोंपर जा बैठी और अपने कमलसदृश नेत्रोंसे उन्हें बड़ चावमें देखती हुई उनपर फूलोंका वर्षा करने लगी ॥४४॥ ४५॥ फिर वे आपसमें कहने लगी कि ये राम सीताक यात्र कर है । हमको तो राम बहुत प्रिय लगत है । इस लिए ईश्वर भी वैसा ही करे ता अच्छा हो । ये शुभ लक्षणोंमें युक्त लक्ष्मण उमिलाके योग्य वर है । हमारे भाग्यसे ये दोनों उत्तम, रमणीय तथा सुन्दर गजवाले राम और लक्ष्मण साता तथा उमिलाके पति हैं तो बहुत अच्छा हो । इस प्रकार उनके मनोहर वचनोंको सुनकर राम-लक्ष्मण दोनों भाई ऊपर मुक्त उठाकर उन्हें देखने लगे । बादमें वे सब रात्रि परस्पर कहने लगे—॥४६-४९॥ जब हम सब यहाँ आये, तब तो राजा जनकने ऐसा उत्सव नहीं किया । जब इन बालकोंके लिये ऐसा क्यों किया । ५०॥ राजाने कही चुपकेसे सीता रामको तो नहीं दे दी है ? ऐसा ही या तो हम लोगोंको बुलाकर अपमानित क्यों किया गया ॥५१॥ उनकी बातें रामलक्ष्मण, राजा जनक तथा विश्वामित्रजीने भी सुनी ॥५२॥ इधर झरोखोंमें बैठी हुई स्त्रियोंके हाथ अलंकोकित वे दोनों वीर गाने एवं बाजेकी ध्वनि

विश्वामित्रानुमौ तौ हि मुनिशालां प्रजामनुः । कदापि मुनिशालायां मुनेरग्रे निषीदतुः ॥५५॥
 एवं समायामृदायां राज्ञा कन्याप्रतिग्रहे । प्रतिज्ञातं मम धनुस्तन्सज्जं त्वमुपस्थितम् ॥५६॥
 यदाऽधीना धनुर्विद्या मत्तः परशुधारिणा । तथा दत्तं मया तस्मै धनुस्त्रिपुरदाहकम् ॥५७॥
 तेनैकविंशद्वारं हि निःश्वसा पृथिवीं कृता । सहस्रबाहुनिहतः स्तपितुर्धातकारणान् ॥५८॥
 तन्मथिलांगणे स्थाप्य जामदग्न्यो नृपं धर्षा । अश्वत्थद्वयः कृत्वा जानकीं क्रोदनं व्यधात् ॥५९॥
 जामदग्न्यन्तेन मीनां ज्ञात्वा लक्ष्मीं तादृच्छया । दत्तौ नृपं पणार्थं तदनुत्तर्यदुर्गसदम् ॥६०॥
 पर्णाकृतं धनुस्तच्च विदेहेन म्वयम्बरं । नतः समायामृदायां जनकः प्राह शक्तिः ॥६१॥
 तस्याप्य राज्ञां पुत्रस्तन्ये च/पमनुसमम् । शृङ्गागारममानीतं ध्रुवः पञ्चशतंस्तु यत् ॥६२॥
 मीतास्त्रयवर्ग्यं यन्त्यस्तं परशुधारिणा । नृपः प्राह समावष्ट्ये यो वीरस्त्वद्य सदसि ॥६३॥
 कश्चिदपि धनुः सज्जं त वै मीना वरिष्यति । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा धनुर्दृष्ट्वाऽचलोपमम् ॥६४॥
 बधोमुखास्तदा सर्वे धनुः पार्थिवोत्तमाः । केचिद्भूमेः समुद्रोर्ध्वं धनुः शक्ता न बाधवन् ॥६५॥
 भूमेरुच्चाहिते केचिदूर्ध्वं नेतुं न चाशकन् । सर्वेऽप्युच्चाहिते तस्य नृपाः शक्ता न बाधवन् ॥६६॥
 सज्जीकारः कुनस्तस्य मनसाऽप्यविचिंचितः । धनुः सज्जीकृतो सर्वाभूषणान् तावदा पराङ्मुखान् ॥६७॥
 हृदातिगर्वमरुटः समायां रावणोऽब्रवात् । धनुषः सम्भिधिं गन्वा विहसन् जनकं प्रति ॥६८॥
 येन वै निर्जिता देवास्तलोक्यं स्ववशे कृतम् । आन्दोलितो हजामिहि कैलामो येन वै मया ॥६९॥

आदि के साथ आने-जाने राजा जनक के समामण्डप में आ पहुँचे ॥ ५३ ॥ वहाँ वीर राम-लक्ष्मण तथा मुनिगण हार्थियोसे नीचे उतरे । पश्चात् समामण्डप में राजाओं के दयास्थान बैठ जानेपर विश्वामित्रजीके साथ जाकर वे व्याप्त भी मुनिमण्डप में मुनिके आगे बैठ गये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इस प्रकार सभाके भर जानपर कथादातके लिये नियत किये हुए धनुकार उभा (तल या हारी) चक्रानके लिये राजाआसे राजा जनकने कहा ॥ ५६ ॥ श्रीशिवजी कहते हैं—हे पार्वती ! जब परशुरामजीने मुझसे धनुर्विद्या प्राप्त की, उस समय मैं उनको वह त्रिपुरको जगानवाल्स धनुष दिया था ॥ ५७ ॥ उसके द्वारा उन्होंने इन्कास बार पृथ्वीको त्रिजियोसे सृज्य कर डाला और अपने पिताके ज्ञातक सङ्गवशाद्दुःखा भी उससे मारा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर परशुरामजी उस धनुषको राजा जनकके आंगनमें रख आये । अचपतमें जानकीजी उस धनुषको लकड़ीका गोहा बनाकर लेना करती थीं ॥ ५९ ॥ इस व्यवहारसे परशुराम सीताको लक्ष्मी समझने लगे और इतने अभिप्रायसे हर एकके लिये दुर्लभ यह धनुष राजा जनकको प्रतिज्ञापावनार्थ दे दिया ॥ ६० ॥ तदनुसार विदेहने उस धनुषको सीतास्वयम्बरमें प्रगकी जयहृत्पर निरस्त किया । पश्चात् भरी सभाके सभाके भावसे जनकजीने उस भरे सर्वोत्तम धनुषको सबके सामने रखकर राजाओंको अपनी प्रतिज्ञा कह सुनायी । यह धनुष शम्भुगारसे पाँच सौ बौले द्वारा विचकाकर राजा जनकने सीता-स्वयम्बरके लिये वहाँ स्थापित किया था । भरी सभाके मध्यमें राजा जनकने राजाओंसे कहा—'जो राजा इन सभासदोंके सामने इस धनुषको सविजय करेगा, उसीको सीता दोगी । राजाके बचनको सुन तथा गर्वके समाप्त जचल उस धनुषको देखकर सबके सब राजाओं तथा महाराजोंने मुझ पीछे, कर लिया । उनमेंसे कुछ तो उस धनुषको जमीनसे तनिक भी नहीं उठा सके ॥ ६१-६२ ॥ कुछ लोगोंने कुछ ऊँचा भी किया जो जमीनसे बिच्छर नहीं उठा सके । बादमें सबके सब मिलकर उठाने लगे तो भी वह जमीनसे पूरा नहीं उठा । तब फिर उसपर दोरी चढ़ाया तो और भी कठिन काम था । सभामें धनुष चढ़ानेमें सब राजाओंको पराङ्मुख देखकर रावण गर्वके साथ धनुषके पास गया और हैमकर राजा जनकसे कहने लगा—' ६६-६८ ॥ हे राजन् ! जिस रावणने समस्त देवताओंको जीत लिया है, जिसने सान्ते लोकोंको अपने वशमें कर लिया है तथा अपनी दो ही मुखाओंसे जिसने शिवजीके निवासस्थान कैलास पर्वतको हिला दिया है, उस रावणका यदि तुम राजाओंसे मने सभामें बल देखना चाहते

तस्य मे जनकाय त्वं वलं पार्थिवममदि । द्रष्टुमिच्छामि किञ्चस्मिन् लघुचापे तृणोपमे ॥७०॥
 एवं वदन् दशरथः स नम्रो भूत्वा महद्भुजः । गृहीतुं वामहस्तेन चालयामास वै तदा ॥७१॥
 न तच्चाल किञ्चिच्च तदा दक्षिणमन्तरम् । पुनः कृत्वा गृहीतुं तच्चालयामास वै पुनः ॥७२॥
 न तच्चचाल तदपि तदाश्चर्येण गवणः । भुजाभ्यां चालयामास तदा चापं चचाल न ॥७३॥
 एवं क्रमेण सर्वाभिर्भुजाभिश्चालयन् धनुः । विंशदोर्मिरेकदेशं चापस्योर्ध्वं चकार सः ॥७४॥
 एकोनविंशदोर्मिश्च धृत्वा चैव महद्भुजः । गुणं भूम्यां निपतितं गृहीतुं हि दशाननः ॥७५॥
 किञ्चिद्रुत्वा विनम्रः स दोष्णा जग्राह तं गुणम् । एतस्मिन्नंतरे तच्च पपात तद्भृदये धनुः ॥७६॥
 न तद्विशतिभुजामिश्च चचाल हृदयाद्भुजः । तदा सभायामूर्ध्वाम्पः पपात स दशाननः ॥७७॥
 मुकुटः पतितो भूमौ मुक्तकच्छोऽप्यभूत्तदा । तदा विजहमुः सर्वे सभायां पार्थिवोत्तमाः ॥७८॥
 तदा प्राणांतिकं चामीद्रावणस्य मर्मांगणे । अर्धाणि भ्रामयामास लालाम्येभ्यो विनिर्ययी ॥७९॥
 तदा तं वेष्टयामासुर्मन्त्रिणो राक्षसास्तदा । धनुरुच्चालने शक्तास्तेऽभवन्नेव ममदि ॥८०॥
 मद्रस्त्रेषु दशस्थः स विष्टामुत्रं तदाऽकरोत् । ततः सभायां जनकः पुनः प्राहानिशक्तिः ॥८१॥
 कोऽपि बीगेऽस्ति भूमौ न किं निर्वीरं हि भूतलम् । चेदस्ति कश्चिन्मदमि तर्हि मोऽद्य मर्मांगणे ॥८२॥
 जावदानं करोत्वस्मै दशस्याय नृपाग्रतः । इति वाक्यशगघातभिन्नौ तौ रामस्पर्णा ॥८३॥
 ददर्शतुर्गाधिजस्य मुखं तौ स्फुग्निभ्रुवौ । विश्वामित्रस्तदा प्राह राम चोनिष्ठ राघव ॥८४॥
 किमतं गवणस्याद्य त्वं पश्यामि मर्मांगणे । जीवयन्तं राक्षसेन्द्रं सज्जं कुरु धनुस्त्रिदम् ॥८५॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा तथैव्युक्त्वा स राघवः । तदोत्थायामनाद्वेगान्प्रणनाम मुनीश्वरम् ॥८६॥
 निष्कास्य कठाद्वागदीन् कटिं चदध्वा तदा प्रभुः । मुकुटादि दृढं कृत्वा शनैः प्राप मर्मांगणम् ॥८७॥

हो तो भले ही देख लो, किन्तु इस तिनक ममान हन्के धनुषमे क्या वीरता देखावे ॥ ६६ ॥ ७० ॥ ऐसा कह-
 कर दशमुख रावणने उस बड़े भारी धनुषको पहिले अपने बायें हाथसे ही हिलाना चाहा ॥ ७१ ॥
 लेकिन वह तनिक भी नहीं हिला । तब उसने दाहिने हाथसे पकड़कर हिलाना चाहा, तिसपर भी जब वह
 नहीं हिला, तब रावणको बड़ा आश्चर्य हुआ और एक माथ दोनों हाथोंसे उठाना चाहा । फिर तानसे फिर
 चारसे इस प्रकार करते-करते जब व मो भुजाये ऐक साथ लगा दी, तब कहीं वह एक ओरसे
 कुछ ऊंचा हुआ ॥ ७२-७४ ॥ तब उसने उग्रोस भुजाओसे उस महान् धनुषको सम्हाला तथा बीसवी
 भुजासे जमीनपर पटकती हुई तानको पकड़कर ज्यों ही उपरकी उठाना चाहा, त्यों ही वह धनुष उलटकर
 उसकी छातोंपर गिर पड़ा ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तब बीसों हाथोंसे भी रावण उस धनुषको अपनी
 छातापरसे नहीं हटा सका और उपर मुख किये पृथ्वीपर घड़ामसे गिर पड़ा ॥ ७७ ॥ उसके सिरका
 मुकुट दूर जा गिरा और घाँतीको लंग खुल गयी । यह देख सबके सब राजे खिलखिलाकर हँस पड़े ॥ ७८ ॥
 रावण बेचारके पसाना निकलने लगा, धाँस घुमने लगी और मुखसे लार गिरने लगी ॥ ७९ ॥ उसके सब
 मन्त्रियो तथा सैनिकोंने आकर घेर लिया, परन्तु उन सबमें भी धनुष नहीं उठा ॥ ८० ॥ पहिले हुए सुन्दर
 वम्बोमे रावणका मल-मूत्र निकल पड़ा । रावण जैसे वीरकी यह दशा देख राजा जनकको और भी शंका हुई
 और वे घबड़ाकर कहने लगे— ॥ ८१ ॥ क्या कोई भी बाँर पृथ्व इस भूतलपर नहीं रहा ? क्या पृथ्वी बीसोस
 शून्य हो गयी ? यदि कोई हो तो इस सभामे राजाओंके सामने रावणको जीवनदान देकर बचाये ।
 उनके इस वाक्यरूपी बाणमे पीड़ित होकर राम तथा लक्ष्मण जिनकी भीहों क्रोधके भारे पकड़ रही थीं,
 विश्वामित्रके मुखकी ओर देखने लगे । तब विश्वामित्र बोले—हे राघव । लड़े हो जाओ और इस रावणके प्राण
 बचाओ । तुम्हारे दस्तते रावण मर रहा है । सो ठीक नहीं है । इसे बचाकर धनुषको भी सज्जित
 करो ॥ ८२-८५ ॥ मुनिके वाक्य सुन तथा बहुत अच्छा कहकर राम तुरन्त आसनसे उठ लड़े दूर और मुनिको
 प्रणाम किया ॥ ८६ ॥ उन्होंने गलेमेसे हार बाँधि आभूषण उतारकर रख दिये, कमरको कस लिया,

तं शममागतं दृष्ट्वा जनाः सर्वेऽतिविस्मिताः । चकिताः पार्थिवाः सर्वे ददृशुर्नैवपंकजैः ॥८८॥
 परम्परं तदा प्रोचुः किमन्योऽस्मि शिशुस्त्वयम् । यत्रास्माभिः स्थितं तूष्णीं तत्रायं किं करिष्यति ॥८९॥
 केचिदाद्भुतशाय्यं हि द्रष्टुं बालः समगतः । केचिद्वृक्षालयेषां क्रियते शिशुनाञ्च हि ॥९०॥
 केचिद्वृक्षैः किमर्थं हि हारा मृत्काम्बुजनेन हि । केचिद्वृक्षाभिन्नेन चापं प्रति सुयोजितः ॥९१॥
 केचिद्वृक्षैर्वृक्षेणा चोदितः किं शिशुस्त्वयम् । वृक्षार्थं चापधातेन विश्वामित्रेण राक्षसः ॥९२॥
 केचिद्वृक्षैर्लं त्वस्य मुनिनाञ्च निरीक्षितम् । चोदिनोऽस्त्वयं श्रीरामश्चापेऽयं किं करिष्यति ॥९३॥
 एवं नानाविधास्तर्कान्यावत्कुर्वन्ति पार्थिवाः । नावद्दृष्ट्वाञ्चतो गमं जनकः प्राह माधिरम् ॥९४॥
 किमर्थं भेषितस्त्वयं मुने बालः सभागणे । लवने गवणाद्याश्च नृपाः सर्वेऽपि कुण्डिताः ॥९५॥
 तस्मिन्नापे स्वयं बालः किमागत्य करिष्यति । यस्याः शिष्यवाक्येन पूर्वं चाहं प्रबोधितः ॥९६॥
 तन्मत्तं तु मृपैवाय चापार्थे मुनिमजस्रम् । कार्यं बालः कोमलांगः क्वेदं चापं सुदर्धरम् ॥९७॥
 किं चातकम्पृष्ठाक्रांतः मागरं शोषयिष्यति । एतस्मिन्तन्त्रे सर्वाः मृषेधाद्याः स्त्रियश्च ताः ॥९८॥
 द्वित्रगजाननं चारुदोर्दण्डद्वयशोभितम् । हेमवर्णोपमर्त्तचिं मृगलानुषुगं प्रियम् ॥९९॥
 मृगलालांककम्बरद्वयशोभितमन्तरम् । दिव्यकुण्डलमुकुटवर्णालकाशोभितम् ॥१००॥
 सुजंघं सुपदं शूरं मुजानुं सुन्दरोदरम् । सुक्लंघं सुहनुं कंबुकंठं त्रिशूलशोभितम् ॥१०१॥
 म्मितास्थं कोमलोष्ठं च सुदंतावलिराजितम् । सुनासं सुकपोलं च कञ्जपवायितेक्षणम् ॥१०२॥
 सुभ्रुवाश्च सुस्निग्धं कुंचितालकशोभितम् । मुक्तामणिक्कण्ठनादिनानाऽलकाशोभितम् ॥१०३॥

सुकुटको अच्छी प्रकार बांध लिया और घोरसे मन्त्रोंके बीचसे आ खड़ा हुआ । ९३ ॥ रामको वहाँ खड़े देख सब
 लोग बड़े विस्मयमें पड़ गये और चकित होकर सबके सब राज उठ कर अपने कमरबद्ध मन्त्रोंसे देखने लगे
 परस्पर बहुत लगे कि यह बालक कैसे मृत्यु है । अरे, जहाँ हम लोगोंको चप होना पड़ा, वहाँ यह क्या
 करेगा ? ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ कोई कहत रहा कि यह बालक केवल राक्षसक, दुर्धर्मके लिए आया है । किसेने
 कहा कि यह बालक तो मानो स्वर्गमें गया हो, ऐसा लगता है ॥ ९६ ॥ कोई बाला-सब हमसे बलसे हार तथा
 माला क्यों उतार दी है ? किसीने उत्तर दिया कि इसको विश्वामित्रने धनुष उतारनेका लिए भेजा है ॥ ९७ ॥
 कोई बाला कि इस बालकको विश्वामित्रने पशुतपण भेजा है, जिससे यह धनुषमें डबकर मर जाय
 ॥ ९८ ॥ दूसरोंने कहा कि नहीं, पुनिने इसका दल देखनेके लिए भेजा है । परन्तु राम इस धनुषके
 विषयमें क्या कर सकता है ? ॥ ९९ ॥ इस प्रकार राजा लोग अनेक तरहसे सकलवितर्क कर ही रहे थे कि
 रामको देखकर जनकने विश्वामित्रसे कहा—हे मुनिराज ! आपने इस बालकको क्यों भेजा है ? जिस
 धनुषके विषयमें बड़े बड़े राज-महाराज तथा राजपुत्रों भी शक्ति कुण्डित हो गयी, वहाँ यह बालक जाकर
 क्या करेगा ? या आपने बहुत अपने जिनके द्वारा कहका भेजा था, सब आज इस धनुषके सामने
 झुका हुआ । क्योंकि कहाँ यह कामल आका बालक और कहाँ यह अति दुर्धर्म तथा महान् धनुष । चातक
 चाहे कितना ही प्यासा क्यों न हो, तो भी क्या वह समुद्रको सोख सकता है ? इसी समय सुमथा आदि
 मित्रों शरोखोंसे, जालियासे, चाँको और छतेश्वरसे सुन्दर तथा कोमल अङ्गवाले, कमलके सदृश नेत्रवाले,
 चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाले, बड़ा बड़ा भूषाओंसे शोभित, सुवर्णसदृश कान्तिसम्पन्न, तुरुर और सिक-
 जिशाकी दाँवोंमें पहिने । १०४-१०५ ॥ जिसके हाथोंमें सिकड़ी और कड़े शोभित हो रहे थे । जिसके सिर-
 पर दिव्य मुकुट, कानोंमें दिव्य कुण्डल हृदयपर रत्न तथा मणिजोके किशोर हार झलक रहे थे, घेठ तथा
 मल्लाटमें धिक्का पड़ी हुई थी, शंखके समान कंठ देखनेमें बड़ा ही अच्छा लगता था । जिसकी चिकनी
 ठोड़ी, कोमल कपोल, हलता हुआ मुखचंद्र, अनारकी पत्तिके समान दाँत, सुन्दर लम्बी और पतली नाक
 तथा लाललाल होठ थे । शशिस्थ, माती, रत्न तथा हीरो आदिसँ जड़े हुए अनेक छलंकारोंसे अलंकृत,

मुक्तात्नपुष्पमालान्यस्तमप्यतिशोभितम् । न्यस्तहारं न्यस्तवस्त्रं बद्धपीताम्बरान्वितम् ॥१०४॥
 दिव्यमुद्रागुलिलमर्त्पकजद्वयसन्करम् । एवं दृष्ट्वा स्त्रियो रामं सभाङ्गणविराजितम् ॥१०५॥
 न्यस्तकोदण्डतूणारं शिवचापाभिसंमुखम् । प्रार्थयामासुप्ताः सर्वा ऊर्ध्वास्या ऊर्ध्वमत्कराः ॥१०६॥
 पश्यन्त्यो गगने शंभुं मोहान्नारायणं विधिम् । साक्षान्नारायणं रामं न ज्ञात्वा ताश्च वै स्त्रियः ॥१०७॥
 हे शंभो हे रमाकान्त हे विधेऽस्मत्पुराकृतः । व्रतदानादिपुण्यं च चापं सज्जीकरोत्वयम् ॥१०८॥
 युष्माभिर्नः सुकृतं च कर्तव्यं पुष्पवद्धनुः । अद्यास्य कण्ठदेशेऽत्र मालां सीता दधात्वियम् ॥१०९॥
 नो भवत्वद्य नेत्राणां साफल्यं दर्शनादिह । सीतया रामचन्द्रस्य वेदिकायां स्थितस्य हि ॥११०॥
 एतस्मिन्नंतरे सीता रामं दृष्ट्वा सभांगणे । दिव्यप्रामादसंरूढा सखीभिः परिवेष्टिता ॥१११॥

प्रोच्चचालासनाद्वेगादानंदस्वेदमप्लुता ।

सख्यास्तुलस्याः कंठे स्वां दोलतां क्षिप्य सादरम् ॥११२॥

अजशीन्मधुरं वाक्यं रत्नालंकारमंडिता । किंपणोऽत्र कृतः पित्रा मम शत्रुस्वरूपिणा ॥११३॥
 स्रजं रामः सुकुमारगः कवेदं चापं नगोपमम् । हा विधे किं करोष्यद्य किमस्त्यंतर्गतं तव ॥११४॥
 गमाद्विनाऽन्यं पुरुषं मनसाऽहं न रोचये । यदि तातो बलादन्यं मां दास्यति तदा ह्यहम् ॥११५॥
 न्यजामि जीवितं त्वद्य प्रासादपतनादिना । हे शंभो हे विधे दुर्गे हे सावित्रि सरस्वति ॥११६॥
 हे गायत्रि स्वरे भानो मधवन्धम तोयप । हे कुबेरगणल रमे हे विष्णो खगनायक ॥११७॥
 हे फणीन्द्र निशानाथ हे सर्वे निर्जरादयः । युष्माकं प्रार्थयाम्यद्य प्रणम्य करपल्लवम् ॥११८॥
 सर्वैरेतन्महच्छापं करणीयं तु पुष्पवत् । प्रवेशनीयं युष्माभिः श्रीरामभुजदंडयोः ॥११९॥
 चतुर्दश वत्सगणि मुनिवृत्त्याऽनुवर्तिनी । विचगमि वने चाहं धनुः सज्जं करोत्वयम् ॥१२०॥

पद्मा, लाल, पुष्कराज, मुक्ता तथा हरे-पौले अनेक रङ्गकी पुष्पमालाओंसे मनोहर, पीताम्बर आदि सुन्दर वस्त्रोंको पहिन हुए, शङ्ख चक्र गदा पद्म आदि शुभ चिह्नोंमें चिह्नित करकमलवाले, सभामण्डपके बीच खड़े, दोनों कन्धोपर धनुष और तूणीरको धरिने तथा शिवधनुषके सामने मुख किये हुए रामको देखकर उन्हें साक्षात् नारायण न समझती हुई वे महिलायें आकाशमें स्थित शिव, विष्णु और ब्रह्माको देख उनमें हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगीं—॥ १००-१०७ ॥ हे शंभो ! हे रमाकान्त ! हे बहान् ! हमारे पूर्वोपाजित व्रत-दानजन्य पुण्योसे यह बालक धनुष चढ़ानेमें समर्थ हो ॥१०८॥ आप लोग हमारे पुष्पप्रतापसे इस धनुषको पुष्पके समान हल्का बना दें । जिससे हमारी सीता आज इनके गलेमें वरमाला डाले ॥ १०९ ॥ हमलोग सीतासहित रामचन्द्रको विवाहकी वेदीपर बैठे देखकर अपने नेत्रोंको सफल करें ॥ ११० ॥ उसी समय वस्त्री तथा अलङ्कारोंसे सुशोभित सखियोंके साथ दिव्य भवनको छतपर बैठी हुई सीता रामको सभाके बीच खड़े देख आनन्दके स्वेदसे परिप्लुत होकर शीघ्र आसनसे उठ खड़ी हुई । अपनी प्रिय सखी तुलसीके गलेमें हाथ डाल तथा तनिक अगाडी बढ़कर आदरपूर्वक यह मधुर वाक्य बोलीं—शत्रुस्वरूप मेरे पिताने यह कैसी प्रतिज्ञा की है ? कहीं ये कामल अङ्गवाले बालक राम और कहीं यह पर्वतके समान भारी तथा कठिन धनुष । यह इनमें कौसे चढ़ सकेगा ? हा ईश्वर ! तुमने यह क्या किया और क्या करनेका विचार है ? चाहे जो हो, मैं रामको छोड़कर दूसरे किसीको नहीं चढ़ेगी । यदि मेरे पिता मुझे दूसरे किसीको दोगे तो मैं महाम्बरसे गिरकर अथवा विष आदिके द्वारा शीघ्र प्राण त्याग दूँगी । हे शंभो ! हे विधे ! हे दुर्गे ! हे सरस्वती ! हे गायत्री ! हे स्वरे ! हे सूर्य ! हे इन्द्र ! हे जलपति वरुण ! हे कुबेर ! हे अश्वे ! हे रमे ! हे विष्णो ! हे गण्ड ! हे फणीन्द्र ! हे चन्द्र ! हे समस्त देवताओ ! मैं आँचल फँलाकर प्रार्थना करती हूँ कि आप सब इस धनुषको फूलके समान हल्का बना दें और रामचन्द्रको भुजदण्डमें प्रवेश करके उन्हें बल प्रदान करें । जिससे राम धनुष चढ़ानेमें समर्थ हो और मुनिवृत्ति धारण करके रामकी

एवं ज्ञानाविधैर्वाक्यैः सीतां देवानतोपयत् ।

एवं प्रामादसंस्थायाः सीताया विविधानि च ॥१२१॥

तथा तामां हि भरीणां नृपाणां जनकस्य च ।

वाक्यानि गृणन् श्रीरामः किञ्चिन्कृत्वा स्मिताननम् ॥१२२॥

पर्यो चापं नमस्कृत्य कृत्वा तं च प्रदर्शयाम् । पुनर्नन्वा शित्रं ध्यात्वा गुरुं दशमं नृपम् ॥१२३॥

कीमल्यां च गुरुं ध्यात्वा वामहस्तेन तद्दर्शो । मध्यहस्तेन चापस्य गुणं धृत्वा भूतमः ॥१२४॥

वामहस्तेन तत्र तच्चकार मदसि क्षणम् । तदा निनेदूर्वाधानि तुष्टयुर्वन्दिमागधा ॥१२५॥

एतस्मिन्नन्तरे रामो वामहस्तवलाद्दधुः । मध्येऽभयन्त्रिस्वर्द्धं तच्छब्दं प्रार्चयन्मुचयम् ॥१२६॥

चापमङ्गलान्महानादस्तदाभ्युद्गतागणं । चक्रपे धरणी त्वं चालिङ्गयन्मा भयाद्दृष्टम् ॥१२७॥

चुक्षुःश्रुः नागराः सर्वे निनेदुस्ता दिशो दृष्ट । तदा निपेतुर्धर्णी शिरः शेषोऽप्यचालयत् ॥१२८॥

चतुर्वाताः सुगन्धाश्च देवास्ते गगने स्थिताः । शदयामासुवाद्यानि वर्षार्घ्यः समवाकिन् ॥१२९॥

स्वर्चक्ष्वा ननृतुः स्वे हि देवास्तोषं प्रपेरिरे । तदा निनेदुः मदसि मेयो ददुमयो वराः ॥१३०॥

नवचात्रस्वनाः सर्वे बभूवुर्वयनिःस्वनाः । ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टयुर्मागधादयः ॥१३१॥

श्रियो गवाक्षरंश्च गमं पृष्यन्वाकिन् । तदा म गवणस्त्र्यणो लज्जयाऽऽनतमस्तकः ॥१३२॥

मुकुटगणि हीनश्च मुक्तकच्छाऽतिविह्वलः । समायां न क्षण तस्थी नृणं लकापूर्गं पर्यो ॥१३३॥

रामेण मयं तन्वापं दृष्ट्वा नायो मुदान्विताः । चक्रुर्जयस्वनैर्धर्षणान्कर्ष्य कर्तालिकाः ॥१३४॥

सीताऽपि मुदिता जाता हर्षगेमाचनिर्मला । अनिमेषा कंजनेत्रा गममुत्कठिता ह्यभूत् ॥१३५॥

एतस्मिन्नन्तरे राजा जनकः प्राह मन्त्रिणः । करिणीस्थामय सीतामानयध्वं समुन्सर्वैः ॥१३६॥

अनुगमिनी बनकर उनके साथ चौदह वर्ष तक वनम भ्रमण कर ॥ १११-१२० ॥ इस प्रकार विविध वाक्योंसे सीता देवताओंको मनाने लगी । प्रामादप, स्थित सीताके, उन मित्रोंके, राजा जनकके तथा अन्य राजाओंके ऐसे-ऐसे वाक्योंको सुनकर मुनिकार हुए श्रीराम धनुषके पास गये । वही जाकर उन्होंने धनुषको नमस्कार किया, प्रदर्शना की और शिक्कीका मन ही मन म्यान घरके प्रणाम किया । बादमें राजाआम और राजा दमरप, माना कीमल्या तथा गुरु कसिप्रका मन ही मन ध्यान धरकर प्रणाम किया । फिर वाय हाथसे धनुष और दाहिने हाथसे उसकी तौल पकड़कर क्षणभरम सभाके सामने बावें हाथसे धनुषको मुकाकर तौल चढ़ा दी । उस समय बाजे बजने लगे, गुणधृष्ट होने लगी और चारणगण रामका यश मान लगे । इतनेमें रामको बावें बाहुयामसे उस चतुर्मा तथा पुरातन शिवधनुषके बीचसे तीन टुकड़े हो गये ॥ १२१-१२६ ॥ धनुषको टूटनेसे बड़ा घनघोर शब्द हुआ । जिसमें समस्त गगनमण्डल गूँज उठा । धरती कांप उठी । हे पार्वती ! तुम भी उस समय मर डरके हमसे चिपट गयी थीं । सब समुद्र धलावमान हो गये । दिशाये धुमिल हो गयीं । तारे टूट-टूटकर पृथ्वीपर बिगने लगे । गेयनागका सिर घूमने लगा । सुगन्धधुक्त वायु बहने लगे । देवता आकाशसे फूल बरसाने और बाजे बजाने लगे । स्वर्गकी देवियाँ आकाशमें नृत्य करने लगीं और देवता आनन्द मनाने लगे । उस समय सभामण्डपमें भी उत्तम ढोल तथा नगाडे बजने लगे ॥ १२७-१३० ॥ नये-नये बाजे तथा जयजयकारणा शोष होने लगा । वाराङ्गनाएँ नाचने लगीं । घोंट आदि स्तुति करने लगे । अरोल्लोसे मित्रयें रामपर फूल बरसाने लगीं । तब रावण कुञ्चाप लज्जासे सिर नीचा किया हुआ बिना लगी लगाये मुकुटरहित हो घबराहटके साथ शीघ्र मिथिलापुरीसे निकलकर लङ्काको भाग गया । वहाँ वह क्षणभर भी नहीं ठहरा ॥ १३१-१३३ ॥ रामने धनुषको तोड़ जाता, यह देखकर स्त्रिय हर्षाद्विरेकसे जयजयकार करने और तालियाँ बजाने लगीं ॥ १३४ ॥ सीताके तो शरीरमें मारे आनन्दके रोमाञ्च हो आया । उत्कण्ठापूर्वक निमेषरहित होकर कमलसदृश नयनोंसे वे रामको निहारने लगीं ॥ १३५ ॥ सभी राजा जनकने

रक्षणाया निजैः सैन्यैर्वेष्टयित्वा समन्ततः । तथेति ते मन्त्रिणश्च ययुर्वगेन जानकीम् ॥१३७॥
 प्रोचुस्ते मधुरं वाक्यं प्रयद्वक्त्रमपुटाः । हे माते कजनयने धन्याऽमि गजगामिनि ॥१३८॥
 रविचक्षोर्भूवेनाद्यं दशरथमुनेन च । गमेण भग्नं मदसि चापमुत्तिष्ठ वेगतः ॥१३९॥
 कर्णिगोपुष्टमारुह्य गमन् न्व गंतुमर्हसि । गमकंटेऽर्पयस्वाद्य रत्नमालां मुदान्विता ॥१४०॥
 तन्मन्त्रिणां वचः श्रुत्वा माता नन्वा स्वमानम् । मर्खाभिः कर्णिगोपुष्टं मस्थितामाम्मुदान्विता ॥१४१॥
 तदग्रे नववाद्यानि निनेदुर्मञ्जुलानि वै । निनेदुः गृष्टभागेऽपि नानावाद्यानि वै मुहुः ॥१४२॥
 चित्राणीष्टाः कन्तुकिनः शतशो वज्रपाणयः । माताकर्णिग्याश्चाग्रे ते द्रुद्रुदोर्धनेःस्वनाः ॥१४३॥
 राग्यन् जनसमर्दं मातां द्रष्टुं जनैः कृतम् । ननृतुर्वाग्नायश्च बभूवुर्यन्त्रनिःस्वनाः ॥१४४॥
 तुष्टुर्मुर्गाधाराश्च नटा गानं प्रचक्रिरे । कर्णिगां वेष्टयामासुः सीतादाम्यः सहस्रशः ॥१४५॥
 अश्वाकृडाश्चामरादि विभ्रन्नयो रुक्मशोभिनाः । ततोऽश्वमस्थाः शतशस्तां ययुश्चोपमातरः ॥१४६॥
 जम्ठाः शम्भुधार्मिण्यः स्वर्णदंडलमन्त्रगाः । ततः पुरुषवद्वेपान्निभ्रन्नयः प्रमदोत्तमाः ॥१४७॥
 ययुस्तरुण्यः शतशः शम्भुहस्ताः सुभूषिताः । गोपिताम्याः कन्तुकिन्पस्तुर्गादिषु मस्थिताः ॥१४८॥
 ततस्ते मन्त्रिणः सर्वे नानावाहनमस्थिताः । स्वसैन्यैर्वेष्टयामासुः सीतायाः कर्णिगां मुदा ॥१४९॥
 चामरैर्व्यजनैः सख्यो मुहुः सीतामर्वाजयन् । म्रियो गवाक्षरश्चैव मातां पुष्पैर्गवाक्षिन् ॥१५०॥
 एव नानाममुन्मार्हैः शनैः सीतां तडित्प्रभा । नवरत्नमयीं मालां विभ्रतीं दक्षिणे करे ॥१५१॥
 रामं नेत्रकटाक्षश्च पश्यन्ती मुदितानना । मभायां राघवं गन्वा कर्णिग्याश्चवरुह्य च ॥१५२॥
 शनैः पद्भ्यां ययौ रामं तद्ग्रीवायां सुलज्जया । शुभां च निजबाहुभ्यां रत्नमाला मुदान्विता ॥१५३॥
 चकार नमनं राम पादयोः स्थाप्य वै शिरः । तस्थारवाङ्मुखी सीता सभायामनिलज्जिता ॥१५४॥

अपने मान्त्रियोंका आजा दी कि मुन्दर हथिनापर बैठ कर सेनका दण्ड-रखम समाराहक साथ सीताको घटा न आओ ॥ १३६ ॥ 'वदुत अच्छा' कहकर मन्त्रिगण नुरन्त जानन 'जोक पास गव ॥ १३७ ॥ व हाथ जानन इस प्रकार मधुर वाणीसे कहन लग-ह गजगामिनी और कमन्तयनी सीता । तुम अन्य हा ॥ १३८ ॥ सूत्राणा दशरथपुत्र रामने सभामें धनुष ताड़ डाला । ज दी उठकर सटा हो जाओ ॥ १३९ ॥ हथिनापर बैठकर अर्वा रामके पास चलता है । वहाँ चलकर आनन्दपूर्वक अर्वा उनक भलेमें यह रत्नोंकी माला (वरमाला) डाल दा ॥ १४० ॥ सीताने मन्त्रिगण इस वाक्यका सुनकर माताके चरणामें नमस्कार किया और सह्य सखियोंक साथ हथिनाका पीठपर सवार हो गयी ॥ १४१ ॥ उनक आग तथा पीछे नाना प्रकारक मनोहर वाज बजने लगे ॥ १४२ ॥ रङ्ग-विरङ्गी पगाटवे वाद्य और हाथमें वेत लिये अन्त पुरके संकटा दरवान हथिनाक आग आग जारम चिल्लान हुए चलने लगे ॥ १४३ ॥ व रत्नमें सीताका दखनक लिय खड़ा भीडका हटा रहे थे । बेश्वायें नाचने लगी । विद्वज्ज बाद्याके निनाद हान लगे । घांट स्तुति करन और नट गान लगे । सीताकी हजारों दासियान उन्हे घर लिया ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ उनक पीछे अश्वपर सवार तथा सुवर्णभूषित चमर आदि लिये हुए बहुतसी स्त्रिय तथा उनके पीछे घाटापर सवार संकड़ों उपमाताय (दाइयाँ) चली ॥ १४६ ॥ उनक पीछे शस्त्रधारिणी तथा सोनेका छडिय लिये हुए संकड़ो वूडो स्त्रिय चली ॥ उनक बाद जवान स्त्रियें पुरुषका बेप वनाये और हाथमें शस्त्र लिये हुए चली । उनके बाद उसा वपमें मुख दाँके और कुरता पहिन घाँडोपर सवार हाकर अस्त्र लिये हुए कुछ सुन्दरी स्त्रियें चली ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ सखके पीछे विविध बाहुनोंपर सवार मन्त्रिगण अपनी-अपनी सेनाके द्वारा सीताकी हथिनीको घेरे हुए चले ॥ १४९ ॥ सखागण चंवर तथा पंख सीताजीपर डुलाने लगीं । मगरको स्त्रियें गवाक्षमार्गसे उनपर फूल बरसाने लगी ॥ १५० ॥ इस तरह अनेक प्रकारसे सज-धजकर धीरे-धीरे बिजलीके सदृश दीप्तिवाली तथा दाहिने हाथमें नववस्त्रोंका हार लिये हुए अपने नेत्रकटाक्षोंसे रामको देखती हुई सीता सभामण्डपके पास जा तथा हथिनासे उतरकर धीरे-धीरे रामके पास गयीं और लज्जापूर्वक अपने हाथोंसे उनके गलेमें यह रत्नोंकी माला डाल दी ॥ १५१-१५३ ॥

ददर्श सीता रामोऽपि हारशोभितहृत्स्थलाम् । अवाप तोष निगरा जनान् गाधिज प्रभुः ॥१५५॥
 तदा रामं समालिङ्ग्य विश्वामित्रो मुनीश्वरः । निवेशयन्निजांकेतं स प्रेम्णाऽऽघ्राय मस्तके ॥१५६॥
 तदा स जनकः सीतां गाधिजाकेन्यवेशयन् । सीतया गृध्नाथेन शुश्रुमे स मुनिस्तदा ॥१५७॥
 मानयामास स मुनिर्जन्मसाफल्यतां हृदि । ततः समायां जनको विश्वामित्रं वचोऽब्रवीत् ॥१५८॥
 प्रमादात्तव रामस्य त्रयो जातोऽद्य मे मुने । धन्योऽस्म्यहं कुल धन्यं धन्यौ तौ पितरौ मम ॥१५९॥
 योऽहं श्रीरामश्चतुर्थेति लोके प्रथो गतः । इन्दुकन्वा गाधिजं नत्वा प्रणनाम रघूत्तमम् ॥१६०॥
 तदा ते पार्थिवाः सीतां दृष्ट्वा त्रस्तदित्प्रभाम् । विबोर्षां चन्द्रवदना तन्नेत्रशरत्ताडिताः ॥१६१॥
 बभूवुर्विकलास्तत्र दुर्दैव मेनिरे तिजम् । केचिन्मूर्छां ययुस्तत्र तान्समागत्य मैथिलः ॥१६२॥
 प्रार्थयामास नृपतीन्विपण्णान् सदसि स्थितान् । नष्टश्रमस्तानवदनान् लज्जया नतकंधरान् ॥१६३॥
 मुष्माभिर्मेऽत्र कन्याया विवाहं विनिवर्त्य च । गंतव्यं स्वपुराण्येव कर्णीया कृपा मयि ॥१६४॥
 तदा ते पार्थिवाः सर्वे मन्त्राश्चक्रुः परस्परम् । यदि युद्धे विजेन्यः श्रीरामोऽद्य रणांगणे ॥१६५॥
 तद्यस्मिन् समये दुष्टे जयो नो न भविष्यति । हमुहूर्तं वयं यातामनूपीं गत्वा पुराणि हि ॥१६६॥
 मुमुहूर्तं पुनर्पेद्मि पास्यामः सकला बलेः । भविष्यति तदाऽस्माकं जयो युद्धे विनिश्चयात् ॥१६७॥
 यदा रामं चाणभिन्नं पश्यामः पतितं रणे । भविष्यामः कुतकन्यास्तदा सर्वे वयं नृपाः ॥१६८॥
 तद्वास्यापमानस्य दुःस्वर्ममथलं गतम् । त्यजामः पार्थिवाः सर्वे जेष्यामो सद्यं यदा ॥१६९॥
 किमर्थमधुना वैरं दर्शनीयं नृपाय वै । इति संमन्य ते सर्वे तथेन्दुकन्वा नृपोत्तमम् ॥१७०॥
 कुन्वा सीताविवाहं च गच्छामः स्वस्थलानि हि । तदा तान् सकलं वस्तु गृहाणि जनको मुदा ॥१७१॥

तत्पश्चात् रामके चरणोपर अपना सिर रख तथा नमस्कार करके सभासे लज्जित कुछ नीचा मुखा किये हुए
 मंडा हा गयी ॥ १५४ ॥ उस हारमें मुद्राभितहृदय रामने भी सीताको और देखा और अन्यन्त सन्तुष्ट
 होकर उन्होंने विश्वामित्रजीका प्रणाम किया ॥ १५५ ॥ मुनिकोके ईश्वर विश्वामित्रने रामको आदिजन
 करके प्रेमसे मादसे बिछाया और इनका सिर मुखा ॥ १५६ ॥ तब राजा जनकने सीताको भी ले आकर
 विश्वामित्रजीके गोदमें बंटा दिया । उस समय सीता तथा रामके सहित विश्वामित्रजी बड़ी ही शोभाको
 प्राप्त हुए ॥ १५७ ॥ वे मन ही मन अपने जन्मको सफल समझने लगे । तदनन्तर राजा जनकने सभामें
 विश्वामित्रसे कहा— ॥ १५८ ॥ हे मुनिराज ' आपकी कृपासे आज मुझे रामचन्द्र जैसा रामाद प्राप्त हुआ
 है । मैं अपनेका, अपने माता पिताको तथा अपने कुलको धन्य समझता हूँ ॥ १५९ ॥ क्योंकि मैं रामचन्द्रके
 शत्रुनामसे सक्षरमें विख्यात हुआ । ऐसा कहकर उन्होंने विश्वामित्रको तथा रघुनन्दनारामाणि
 रामचन्द्रको प्रणाम किया ॥ १६० ॥ उस समय वही एवमित्त अन्यन्त राज बचलके समान चमकनवाले शिखर
 अर्थात् पक हुए कुंदरुफलके सदृश आठ और चन्द्रमाके सदृश मुखवाली सीताका देखते ही उसके
 नेत्रकपी आंखोंसे धावल होकर आकुल हो गये और अपना दुर्भाग्य समझने लगे । कुछ वही मूर्छित
 हो गये । तब मिथिलाके अधिपति राजा जनकने वहाँ जाकर उन कान्ति नष्ट हो जानसे मलीशमुख,
 दुःखी, लज्जासे नीची गरदन करके सभामें बैठे हुए राजाओंसे प्रार्थना की— ॥ १६१—१६३ ॥ कृपा करके
 मेरी कन्याके विवाहका उत्सव समाप्त करके ही आपलोग अपने-अपने नगरीको जाइयेगा ॥ १६४ ॥ तब वे
 राजे विचार करने लगे कि यदि रामको युद्धमें जीतना ही हो तो भी इस कुसमयमें हमलोगोंकी विजय
 लाभ नहीं होगा । क्योंकि हमलोग कुमुद्वतम जाये हैं । अतएव अभी यहाँसे चुपचाप अपने-अपने स्थानोंको
 जान्तर फिर किसी अच्छे मुहूर्तमें दलबलके सहित जायेंगे । उस समय रामको रणभूमिमें धावलकर और
 विजय प्राप्त करके हम सब कृतकृत्य होंगे तथा अपमानजनित हृदयगत दुःखको शान्त करेंगे । इसलिए इस
 समय राजा जनकसे वैर करना अच्छा नहीं है । सीताके विवाहको करवाकर ही चलेगे । ऐसा विचार करके
 सब राजाओंने राजा जनकसे 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा ॥ १६५—१७० ॥ इसर राजा जनकने सर्व रघूत्तम

कल्पयामास विधिवन्मुनिश्चापि रघुनमम् । ततो गाधिजयाकषेन दिदेहः प्रेक्ष्य मन्त्रिणः ॥१७२॥
 समानेतु दशरथं तत्प्रतीक्षां चकार मः । नेऽपि यथा मन्त्रिजश्च दृष्ट्वा दशरथं नृपम् ॥१७३॥
 वृत्तं निवेद्य सकलं तं नत्वा तन्पुरःस्थिताः । वृत्तं दशरथः श्रुत्वा तुतोष नितरा नदा ॥१७४॥
 मन्त्र्येन नागरैः सर्वैः स्वाभिर्जनपदैः सह । मिथिलामगमच्छीघ्रं नदा दशरथो नृपः ॥१७५॥
 तदा महोन्मथेनैव नृपं दशरथं पुरीम् । नेतुं गच्छेत् पुष्कलं जनकः पार्थिवैर्ययौ ॥१७६॥
 नदा दशरथाय तौ दृष्ट्वा कंकेयजामुनी । श्रीगमलरुमणावप्य कुतः प्रामी व्यचिन्तयन् ॥१७७॥
 नावद्रामलक्ष्मणाभ्यां युक्तं तं गाधिजं मुनिम् । स्वसेनायां नृतो दृष्ट्वा विस्मयं प्रार मन्त्रिणः ॥१७८॥
 ततो दशरथं नत्वा वामिष्ठं त्रिणय्य च । गाधिजं जनकः प्राह कावेरी रामरूपिणो ॥१७९॥
 ततस्य गाधिजः प्राह रामांशज्जनस्तपम् । लक्ष्मणांश्चाच्च शत्रुघ्नः कंकेय्या नन्दनारिणो ॥१८०॥
 तच्छ्रुत्वा जनकः प्राह राजानं गाधिजं गुरुम् । सीतां रामाय दास्यामि तर्था भूमावशोनिजम् ॥१८१॥
 देहजापुर्मिलानाम्नौ लक्ष्मणायार्षण्यदम् । कुशध्वज्य मे बन्धोः श्रुतकीर्तिश्च माण्डवी ॥१८२॥
 वर्तते बालिके रम्ये रूपयावनमण्डिते । सीतोर्मिलाभ्यामपि ये मया निन्य प्रलालिते ॥१८३॥
 दास्याम्यहं परताय माण्डवीं मंडनान्विताम् । शत्रुघ्नाय श्रुतकीर्तिमर्षमाप्यहमादगात् ॥१८४॥
 एवं स्तुपाश्रयश्च स्वमंगीकुरु पार्थिव । तथैति जनकं प्राह राजा दशरथो मुदा ॥१८५॥
 ततो दशरथः प्राह शतानन्दं पुरोहितम् । अहस्याजस्रोद्भूतं मन्त्रिलेखं स्थितं मुनिम् ॥१८६॥
 कथं लब्धा भूवः सीता तन्मयं वक्षुमर्हसि । शतानन्दस्तथैत्युक्त्वाऽब्रवीदशरथं नृपम् ॥१८७॥

शतानन्द उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया राजन् मृणुर्वकाग्रमानसः । आर्मेज्जुग नृपः कश्चिन्वचाशु इति विश्रुतः ॥१८८॥

रामके लिये, मुनियोंके लिये तथा राजाओंके लिये सब प्रकारकी वस्तुओंका यथावत प्रवचन कर दिया । १७१ ॥ तदनन्तर विश्वामित्रके बहिनवर राजा जनकने अवधनाश महाराज दशरथका कृष्णकेका निश्रय करके मन्त्रियोंको ज्योष्या भजा । तदुसार वे राजा दशरथके पास गये और सब वृत्तान्त निवेदन करके बाद नमस्कार करके सामने खड़े हो गये । इस वृत्तान्तको सुनकर राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए । १७२-१७४ ॥ फिर राजा दशरथ लिखीकी, सेनाकी, नाग तथा देशके सब लोगोंको साथ लेकर अजन्त-पूर्वक बाहर मिथिलापुरीको चले पड़े । १७५ ॥ उधर राजा जनक बड़े समारोहपूर्वक दावे-गात्रेके साथ एक हथीकी सजाकर सब राजाओंके संग उनका अंगरानीके लिए सामने जाये । १७६ ॥ महाराज दशरथके जाग कैकेयोंके पुत्र भरत तथा शत्रुघ्नको देखकर राजा जनक बिचारने लगे कि ये राम-लक्ष्मण यहाँ कहाँसे जा गये । बादमें जब विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मणको अङ्गी सेनामें देखा तो आश्चर्यचकित होकर राजा जनकने महाराज दशरथ और मुनि वामिष्ठको प्रणाम करके विश्वामित्रसे पूछा कि ये दोनों राम-लक्ष्मण-के समान रूपवाले दूसरे बालक कौन हैं ? १७७-१७९ ॥ विश्वामित्रजीने उत्तर दिया कि रामके अंगवस्त्र भरत तथा लक्ष्मणके अंग वस्त्र ये दोनों कैकेयोंके पुत्र हैं । १८० ॥ यह सुनकर राजा जनक पुरु विश्वामित्र तथा राजा वज्ररथसे कहने लगे कि अगोत्रिजा (मोतिसे नहीं उत्पन्न) तथा पृथ्वीसे प्राप्त मीताको मैं रामके लिए देता हूँ तथा बारीरसे उत्पन्न उर्मिकाकी लक्ष्मणके लिए दे रहा हूँ । उन्हें आप पहन कर । मेरे भाई कुशध्वजकी अतकीर्ति तथा माण्डवी नामकी सुन्दर तथा रूपवीचनसे सम्पन्न दो कन्याएँ हैं । जिनको मैं सीता तथा उर्मिलाके साथ-साथ पालकर पौत्र धरी की है । १८१-१८३ ॥ उनमें भूषणोंके पूषित माण्डवीको भरतके लिए तथा श्रुतकीर्तिकी शत्रुघ्नके लिए देता हूँ । हे पार्थिव ! आप इन चारों पुत्र-वधुओंको स्वीकार करें । तब राजा दशरथने सहर्ष 'तथास्तु' कहा । १८४ ॥ १८५ ॥ तदनन्तर राजा दशरथने राजा जनकके सामने खड़े अहल्याकी कोखसे उत्पन्न पुरोहित मुनि शतानन्दसे पूछा कि सीता भरतीयेसे कैसे कापट हुई । तो सब वृत्तान्त आप कहें । शतानन्दने 'बहुत अच्छा' कहकर बताना आरम्भ किया । १८६ ॥ १८७ ॥

स दृष्ट्वा मकल्लोद्भोकात् लक्ष्मीकामैकतन्परात् चित्तयामास मनसि लक्ष्मीं कन्यां कोम्यहम् ॥१८९॥
 नृपयव निजाके नां मंजयामि निगनम् । हात निश्चिन्य स नृपस्तप्त्वा तार्त्रं महत्तरः ॥१९०॥
 दृष्ट्वा प्रसन्नामग्रे नु लक्ष्मीं वचनमब्रवीत् । दृष्टिता मे भव न्यं हि मा प्राह नृपतिं प्रति ॥१९१॥
 परतन्त्राऽस्यह गजन् विष्णुं न्वप्रार्थयाधुना । स चेदास्यति मां ते हि तद्यहं दृष्टिता तव ॥१९२॥
 भविष्यामि न मंदेहस्तथैवृक्त्वा नृपः पुनः । तप्त्वा तीव्र तपो विष्णुं चकार वरदोन्मुखम् ॥१९३॥
 नन्या त नृपतिः प्राह देहि कन्यां गमां मम तद्राजवचनं भुन्वा मानुलुङ्गफलं हरिः ॥१९४॥
 पद्माक्षाय ददां श्रेष्ठ स्वयमनर्द्धे विभुः । तद्विन्वा नृपतिः कन्यां ददश कनकप्रभाम् ॥१९५॥
 नां दृष्ट्वा माभिलाषः स कन्यां मेने निजां शुभाम् । पद्माक्षनृपतेः कन्यां पद्मां लोका वदन्ति च ॥१९६॥
 आह्वयामासुष्मां रम्यां मन्वन्ति कुरुजनाम् । शकले मातुलुङ्गस्य भूर्वक्त्र फलं पुनः ॥१९७॥
 जातं दृष्ट्वा दधागथ स्वहस्ते नृपतेः मुता । मा त्ववर्धत नृपतेरंके चद्रकला यथा ॥१९८॥
 शुक्रपक्षे च नां दृष्ट्वा पद्माक्षोऽर्चितयदुदि । कर्म देया मया कन्या ह्यस्य योग्यो वरोऽत्र कः १९९॥
 ततः समं नृपतिः स्वयंवरमधारभत् । स्वयंवरं य पद्माया यज्ञारम्भं चकार सः ॥२००॥
 स्वयंवराय यज्ञाय परराकारयन्नृपान् । तेऽपि शृङ्गारयुक्ताश्च ययुः पद्मास्वयंवरम् ॥२०१॥
 पद्मास्वयंवरं भुन्वा ययुस्तत्र मुनीश्वराः । ययुर्देवाः सगंधर्वा दानवा मानवाः खगाः ॥२०२॥
 नगा नयः समुद्राश्च भूरुहाः कामरूपिणः । ययुर्यक्षाः किन्नराश्च राक्षसा रावणादयः ॥२०३॥
 सर्वान्समागतान् दृष्ट्वा पद्माक्षः प्राह तान् प्रति । आकाशनीलवर्णेन यः स्वर्गं परिलेपयेत् ॥२०४॥
 ददामि तर्म्म पश्यं मयं श्रयं वचो मम । तद्राजवचनं भुन्वा दुर्घटं नृपमत्तमाः ॥२०५॥

शतानन्द बाले - हे राजन् ! आपने जो वृत्तान्त पूछा सो बहुत अच्छा किया । मैं कहता हूँ, आप ध्यानसे सुन । पूर्वकालमें पद्माक्ष नामका एक प्रसिद्ध राजा था ॥ १८८ ॥ उसने सब लोगोंका लक्ष्मीकी कामनामें तत्पर देखकर मनमें सोचा कि मैं तपके द्वारा लक्ष्मीका पुत्रा बनाऊँ और अपना गोदमें लाहूँ-प्यार करके बड़ा करूँ । ऐसा निश्चय करके उसने लक्ष्मीको प्राप्त करनेके लिए बड़ा कठोर तप किया ॥ १८९ ॥ १९० ॥ जब प्रसन्न होकर लक्ष्मी सामने आ खड़ी हुई तो उसने कहा कि तुम मरी पुत्री बनो । यह सुनकर लक्ष्मीने राजासे कहा- ॥ १९१ ॥ हे राजन् ! मैं तो विष्णुभगवान्की अधीन हूँ—स्वतन्त्र नहीं हूँ । इसलिए तुम विष्णुकी प्रार्थना करो । वे यदि मुझे तुम्हारे लिये दे दगें तो मैं तुम्हारा पुत्रा हाऊँगी । इसमें सन्देह नहीं है । 'अच्छी बात है' कहकर राजा पद्माक्षने तप करके विष्णुभगवान्की प्रसन्न किया ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ विष्णुने उसे एक श्रेष्ठ मातुलुङ्गफल (विजौरा नोखू अथवा नारंगका फल) दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये । राजा पद्माक्षने उस फलको फाँटा तो उसमें सुवर्णक समान जगमगाती कन्याको विद्यमान देखा ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ कन्याभिलाषी राजाने बालिकाको देखकर उसे अपनी कन्या ही माना । सबके चित्तको आनन्द देनेवाली उस रमणीय कन्याको देखकर वहाँके सब लोग भी सहर्ष 'यह राजा पद्माक्षकी कन्या लक्ष्मी है' ऐसा कहने लगे । सभी उस विजौराके टुकड़ोका मिलाकर फिर समूचा फल बन गया । यह देखकर राजाकी पत्नीने उसे अपने हाथोंमें ले लिया । वह बालिका राजाके अंक (गद्द) में शुक्लपक्षकी चन्द्रकलाकी भाँति बढ़ने लगी । उसे देखकर राजाके मनमें चिन्ता हुई कि 'यह कन्या मैं किसको दूँ, इसके योग्य वर कौन है' ॥ १९६-१९८ ॥ तदनन्तर राजाने विचार करके उसका स्वयंवर रचाया । उसी राश्यम्बरमें उन्होंने यश भी आरम्भ कर दिया ॥ २०० ॥ स्वयंवर तथा यज्ञके लिए निमन्त्रणपत्र भेजकर पद्माक्षने राजाओको बुलाया । वे लोग शृङ्गार करके बड़े ठाट-बाटसे पद्माके स्वयंवरमें आकर सम्मिलित हुए । स्वयंवरका समाचार सुनकर बड़े-बड़े मुनीश्वर, देवता, गन्धर्व, दानव, मानव, जैसा चाहें वैसा रूप धारण करनेवाले खग, पर्वत, मदी, समुद्र, यज्ञ, किन्नर और राक्षसादि राक्षस भी वहाँ आ पहुँचे ॥ २०१-२०३ ॥ उन सबको जाया हुआ देखकर राजाने उनसे कहा कि जो

पद्माक्षीन्दर्यसंभ्रांतास्तां हर्तुं ते समुद्यताः । तान् कन्याहरणोद्युक्तान् नृपान् दृष्ट्वा मयिर्जगत् ॥२०६॥
 चकार संगतं तैः स पद्माक्षो लोमहर्षणम् । तच्छाण्पीडिता देवा मानवा विष्मत्वा ग्णे ॥२०७॥
 बभूवुस्तत्र दैत्यैश्च पद्माक्षो निहतो ग्णे । ततस्ते मिलिताः सर्वे तां धर्तुं ददृवुर्जवात् ॥२०८॥
 सा दृष्ट्वा धर्तुमद्युक्तान् जुहावाग्नौ फलेवरम् । तामदृष्ट्वा नृपाद्याम्ने विचित्रन्नगरे तदा ॥२०९॥
 वसन्तुर्नृपगेहानि भूमिं चक्रुरितम्भतः । श्मशानतुल्यं नगरं जातं वै क्षणमात्रतः ॥२१०॥
 पद्माक्षनृपतेर्लक्ष्मीसंगाज्जातेदृशी दश तस्मान्न मुनयो लक्ष्मीं कामयन्ति कदाचन ॥२११॥
 लक्ष्म्याश्चित्तस्य चांचल्यं भयं शोको बधोऽपि च । भवन्त्येव महदः स्रं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥२१२॥
 पद्माक्षे निहते युद्धे नृपपत्न्यः सहस्रशः । भर्त्रा मर्द्वैव गमनं चक्रुस्ता मयनिर्भगः ॥२१३॥
 ततस्ते दैन्यवर्षाद्याः पयुः स्वस्वं स्थलं प्रति । एकदा वह्निर्कुण्डात्मा पद्मा शक्तिः स्थिरा हरेः ॥२१४॥
 बर्हिर्निर्गतस्य कुण्डस्य समीपे समुपाविशत् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पुष्पकस्थो दशाननः ॥२१५॥
 विचरन् जगतीं जेतुमाकाशवर्मना धर्या । सागण्मना ददर्शार्थं बर्हिकुण्डे शक्तिः स्थिताम् ॥२१६॥
 सागणो दर्शयामास गवणाय वसोऽब्रवीत् । पुनः पुनः पुनः पुनः सा धर्तुं समुपस्थिताः ॥२१७॥
 मेव पद्माक्षनृपतेः कन्या पद्माऽग्रिमन्निर्ध्या । तन्मार्गवचः श्रुत्वा तां दृष्ट्वा काममोहितः ॥२१८॥
 यानाञ्जवादुन्पगतानां धर्तुं साऽनलेऽविशत् । तामरनौ यप्रविष्टां स दृष्ट्वा शान्त्वाऽथ तन्स्थलम् ॥२१९॥
 ननः प्राह दशास्यः स न्वया देवा नृपादयः । कृत्वाऽग्नौ वसतिं पद्मे श्रमग्रस्ताः कुताः पुनः ॥२२०॥
 तदस्य वामस्थाने ते मया ज्ञातं मनोरमे । पद्मेऽधुनाऽहं न्यां धर्तुं शोधयाम्यनलस्थलम् ॥२२१॥

काई अपने शरीरको आकाशके नीले रंगसे रंग लेगा (अर्थात् जो गंगा कर सकेगा) उसे ही मैं यह अपनी पद्मा नाम्की कन्या दूँगा । यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है । राजाके इस दुष्ट वचनको सुनकर वे नृपक्षे पद्माके भोद्वरपर मोहित होने हुए उसका व्यवह हरण करनेके लिए उद्यत हो गये । देवताओं सहित उन राजाओंको कन्याहरणके लिए उद्यत देखकर राजा पद्माक्षने उनके साथ लोमहर्षण अर्थात् रामावकारे युद्ध किया । उनकी माणसे पीडित हुक्कर मनुष्य तथा देवता गणसे भागने लगे । परन्तु अन्तमें देवोंके द्वारा राजा पद्माक्ष रणमें मारा गया । तदनन्तर वे सब मिलकर पद्माको पकड़नेके लिए बड़े वेगसे दौड़े । इनको पकड़नेके स्थिति आत देखकर पद्मा अग्निमें कूद पड़ी । उसको न देखकर राजाओंने उस सारे नगरमें दहना आरम्भ किया । राजमहल छोड़कर गिरा दिया और बहुत-सा इषर-उचरकी जमीन खाद डाली । अथर्वमें सारा नगर श्मशान बन गया ॥ २०६-२१० ॥ लक्ष्मीके संगतसे राजा पद्माक्षको ऐसी दशा हुई । इसीलिये मुनि लोग लक्ष्मीको कभी नहीं चाहते ॥ २११ ॥ लक्ष्मासे चितका चंचलता बढ़ती है, भय बढ़ता है, शोक बढ़ता है, मनुष्य मारा जाता है और बड़ा भारी दुःख पाता है । इस वास्ते लक्ष्मासे दूर रहना चाहिए ॥ २१२ ॥ युद्धमें राजा पद्माक्षके मारे जानेपर राजाका हजारों दिवसे भयभीत हुक्कर राजाके साथ ही सती हो गयी ॥ २१३ ॥ बादमें वे सब दैत्य भी अपने अपने स्थानको चले गये । एक समय श्राहृरिकी स्थिररत्निरूपा लक्ष्मी अग्निकुण्डसे बाहर निकलकर कुण्डके समीप बैठो थी । इननें रावण पुष्पक विमानपर बैठकर विचरता हुआ जगत्को जेतनेके लिए आकाशमार्गसे उचर हो निकला । तब रावणका भ्राता सारण ग्णाको अग्निकुण्डके बाहर बैठो देख रावणको दिक्कतकर कहने लगा कि पूर्वकालमें जिस राजा पद्माक्षको कन्याके लिए देवताओं और असुरोंको राजाके साथ युद्ध करना पड़ा था, वही कन्या अग्निकुण्डके पास बैठी है । सारणके इस वचनको सुन तथा पद्माको देख कामसे मोहित हुक्कर रावण उठा ही वेगसे उसको पकड़नेके लिए नीचे कूदा, यो ही वह फिर अग्निमें प्रवेश कर गयी । उसको अग्निमें प्रवेश करती तथा उस स्थानको देखकर रावण कहने लगा-॥ २१४-२१५ ॥ हे पद्रे ! तुमने रहिते भी अग्निमें प्रवेश करके राजाओं तथा देवताओंको बड़ा भारी दुःख दिया है । हे मनोरमे ! तुम्हारा निवास-स्थान आज मैंने देख लिया है । अब मैं तुमको खोजनेके लिये सारा अग्निकुण्ड छान बाजूंरा

इन्धुक्त्वा जलकुम्भश्च विप्रेचारिण दशाननः । यावत्प्रस्थति कक्षायां तावच्च ददर्श ॥२२२॥
 पञ्च गन्तानि दिव्यानि गृह्णन्वा तानि रावणः । करंडिकायां संस्थाप्य विमानेन ययौ पुरीम् ॥२२३॥
 करंडिकां देवगेहे संस्थाप्य रावणस्तदा । रात्रौ मंदोदरीं प्राह मंचकम्था रहःस्थितः ॥२२४॥
 हे मंदोदरि गन्तानि मया न्यलोपदानि हि । ममार्जानानि यत्नेन न्वदर्थं सुखसप्तनि ॥२२५॥
 करंडिकायां वर्तन्ते गच्छ गृह्णाप्य तानि हि । तद्दशाम्यवचः श्रुत्वा सा ययौ देवमन्दिरम् ॥२२६॥
 करंडिकां तत्र दृष्ट्वा तां नेतुं पतिमन्निर्धौ । यावदुच्चालयामास न चचाल तदा भुवः ॥२२७॥
 तदा सा लज्जिता गत्वा रावणाय न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा स प्रहम्याथ स्वयं नेतुं ययौ तदा ॥२२८॥
 तां मोऽप्युच्चालयामास न चचाल करंडिका । यदा विशद्भुजर्धूम्या न चचाल करंडिका ॥२२९॥
 तदा स विस्मयाग्निर्भयं मेने दशाननः । तत्रयोद्घाटयामास रावणस्तां करंडिकाम् ॥२३०॥
 तावददर्श तस्यां स कन्या मुखप्रभोपमाम् । तत्ततोद्गतेनैककान्यामश्चक्षुषि रक्षयाम् ॥२३१॥
 तां द्राक्षु बालिकां स्मयां ययुः सुहृन्मुनादयः । तदा मंदोदरीं प्राह तस्या वृत्त रणोद्धवम् ॥२३२॥
 पद्माक्षकुलजान्यादि सर्वं वृत्तं दशाननः । क्रोधान्मंदोदरीं प्राह भयमोता दशाननम् ॥२३३॥
 इय कन्या प्रचंडा च कुलविध्वंसकारिणी । लंकां हिमर्धमानता क्षम्या शान्त्वाऽपि चेष्टितम् ॥२३४॥
 दृष्ट्वा स्ववशघाताय न्यर्जनां सन्तरं ने । बालन्वेर्षादृष्ट्वा शुर्वी तारुण्ये किं करिष्यति । २३५॥
 वधोऽस्यास्तव जानेऽह मृत्युमेव भविष्यति । स्थापनीया न लंकायामियमर्धव रावण ॥२३६॥
 इति तस्या वचः श्रुत्वा सत्यं मेने दशाननः । मन्त्रिभिश्चाथ ममन्त्य दूतानां तापयत्तदा ॥२३७॥
 करंडिकेयं तान्वाऽय विमाने स्थाप्य यन्नतः । न्यक्तव्या मम वाक्पानु वने गच्छत वेगतः ॥२३८॥
 ततस्ते गक्षमाः सव सभान्य पुष्पकेऽय ताम् । करंडिकां तु संस्थाप्य निन्युश्चाकाशवर्त्मना ॥२३९॥

॥ २२० ॥ २२१ ॥ गया बह्वर दशाननन पानाक पदोम अग्निका बुला दिया और ज्यो ही राखम
 दखन लगा, ला हा उमम उसे दिव्य पांच रत्न दिवाया दिय । २२२ ॥ रावणन उन पाँको रत्नोको उठा
 लिया और गवा सन्तुषम रख तथा विमानपर चढ़कर अपना नगराको चला गया ॥ २२३ ॥ वहाँ जाकर
 रावणन उस सन्तुषका देवगृहम रखकर रात्रिक समय एकान्तम पलंगपर बैठी हुई मन्दोदरीसे बहा -
 ॥ २२४ ॥ हे मन्दोदरी ! जिन्ह दखकर तुम सन्तुष्ट हो जाओगी, ऐसे कुछ रत्न मे बड़ परिश्रममे तुम्हारे लिए
 न आया है । वे दवालयम सन्तुषक भीतर रक्ते हैं । जाकर ले आओ । रावणको वचन सुनकर वह दवालयमे
 गया ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ सन्तुषका देव उसे पतिक पास ले आनेके लिये उठाया तो वह जमीनसे तनिक भी
 नहीं उठी ॥ २२७ ॥ तब उसने लज्जित होकर रावणसे सब हाल कह्य । यह सुना तो हँसकर रावण स्वयं उसे लानेके
 लिये गया और उस उठ गया, विन्तु पटा नमानसे नहीं हुआ ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ इससे रावण बड़ा विस्मित हुआ
 और डर गया । फिर उसने वही उसकी मोत्या ॥ २३० ॥ तब उसम सूर्यक समान कान्तिवाली एक कन्या
 दिवायी दी । उसके तजमे हनप्रभ हाकर गक्षमोकी आँखे चकगकाने लगी । २३१ ॥ उस मनोहर बालिकाको
 देखनके लिये उसके मित्र तथा पुत्र आदि आने लगे । उस समय रावणने मन्दोदरीको पुढका तथा जैसे वह
 राजा पद्माक्षके कुल्मे उप्पन्न हुई थी, वह सब वृत्तान्त कह सुनाया । मन्दोदरी भयभीत होकर क्रोधपूर्वक
 दशाननसे कहने लगी— ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ इस कुलघ्ना, कुलविध्वंसकारिणी तथा प्रचण्डाके कर्मोको जानते हुए
 भी तुम इसको लंकाम क्यों ले आय ? ॥ २३४ ॥ यह दृष्ट्वा हमार कुल्का नाश करनेवाली है । इसको सीध
 वनमें छोड़वा दो । वचनमे ही यह इतनी भारी है तो जवानांमे न जाने क्या करेगा ॥ २३५ ॥ इससे
 तुम्हारी मृत्यु होगी । ऐसा मुझे जान पड़ता है । इसको लंकाम छोड़ो भर भी नहीं रखना चाहिये । २३६ ॥
 रावणने मन्दोदरीको बात सत्य समझ तथा मन्त्रियोंसे मन्त्रणा करके दूतोंकी आज्ञा दी— ॥ २३७ ॥ इस
 सन्तुषको यत्नपूर्वक शीघ्र विमानमें रखकर आज ही मेरे कथनानुसार वनमें छोड़ आओ ॥ २३८ ॥ पद्माक्ष से
 सब राक्षस इकट्ठे हो तथा उस सन्तुषको विमानमें रखकर आकाशमार्गसे बले ॥ २३९ ॥ उस समय

दशास्यपत्नीतानाह कार्या भूमिगता त्वियम् । स्थापनीया बहिर्नेय दर्शनाद्वधकारिणी ॥२४०॥
 गृहस्थाश्रमयुक्तो यस्यथा च विजितेन्द्रियः । वृद्धिमेप्स्यति तद्गोहे कुमारीयं शुभानना ॥२४१॥
 भगवत्पुत्रेषु सर्वत्र आन्मरूपेण यः स्थितः । तस्य मेहे चिरं कालं स्थास्यतीत्यं न संशयः ॥२४२॥
 इति मन्दोदरीवाक्यं श्रुत्वा दूताः मयिस्तरम् । यावत्ते गंतुमुद्युक्तास्तावन्कन्या वचोऽब्रवीत् ॥२४३॥
 पश्याम्यहं पुनर्लंकां राक्षसानां वधाय च । निधनाय दशास्यस्य मपुत्रस्य ममत्रिणः ॥२४४॥
 अथ तृतीयवेलायामागम्याहं पुनस्त्रिवह । निकुम्भजं पौंड्रकं तं शतशीर्षं च रावणम् ॥२४५॥
 हनिष्यामि पुनर्गन्वा पुनर्यास्यामि त्वन्पुरीम् । अहं चतुर्थवेलायामहूत मूलकासुरम् ॥२४६॥
 कुम्भकर्णमुतं शूरं मर्दयिष्याम्यहं पुनः । तनस्या वचनं श्रुत्वा हृदि विद्धो दशाननः ॥२४७॥
 ज्ञातास्ते राक्षसाः सर्वे भयभीताः शवोपमाः । रावणश्रितयामाम हतव्याऽर्धव वालिका ॥२४८॥
 नीक्ष्यं त्वङ्ग करे घृत्वा पद्मां दुद्राव रावणः । हतुकामं पतिं दृष्ट्वा मयकन्यां न्यवारयन् ॥२४९॥
 माहसं कुरु माऽर्धव मन्यायुषि दशानन । भविष्यति वधस्त्वद्य तव नास्या वचो मृषा ॥२५०॥
 यद्भविष्यति भवतु तदग्रे न्यज कानने । कालान्तरेण यो मृत्युस्तमद्य त्व किमिच्छामि ॥२५१॥
 इति भार्यावचः श्रुत्वा तूष्णीमाम दशाननः । तनः मा पेदिकां दर्तनीता यानेन वै जवात् ॥२५२॥
 पश्यन् वनानि सर्वाणि मीतायै मथिलस्य च । कृता भूमिगता दूर्तस्नदा सर्वः करडिका ॥२५३॥
 ततो ययुः पुनर्लंकां दूताग्ने रावणस्य च । न्यवेदयन् रावणाय सर्वं वृत्तं यथाकृतम् ॥२५४॥
 मा भूमिः सूर्यग्रहणे विदेहेन ममपिता । ब्राह्मणाय द्विजश्चापि तां कर्षयितुमुद्यतः ॥२५५॥
 पश्यन् मुहूर्तं प्रियः स प्रत्यब्दं वै पुनः पुनः । चिरकालेन दृष्ट्वाऽथ मुहूर्तं परमोदयम् ॥२५६॥

रावणकी स्त्रीत उनसे कहा कि दर्शनमात्रसे वध करनेवाली इस घातिनीको बाहर खुली न रखना, बल्कि जमीनमें गाड़ आना ॥ २४० ॥ गृहस्थाश्रमी होने हुए भी जो जितेन्द्रिय होगा, उसीके घरमें यह शुभानना कुमारी वृद्धि को प्राप्त होगी ॥ २४१ ॥ सब बराचरक साथ अपनी आत्माके समान बर्ताव करनेवाला जो होगा, उसके घरमें यह चिरकाल स्थित रहेगी । इसमें संदेह नहीं है (अर्थात् समदर्शी तथा जितेन्द्रियके घरमें ही लक्ष्मी चिरकाल तक रहती है—इसके यहाँ नहीं) ॥ २४२ ॥ इस प्रकार मन्दोदरीकी बात सुनकर ज्यो ही दूत लोग वचनेका उद्यत हुए, त्यो ही कन्या कहने लगी—॥ २४३ ॥ मैं फिर राक्षसों तथा मन्त्री और पुत्रसहित रावणका वध करनेके लिए लंकामें आऊंगी ॥ २४४ ॥ पुनः तीसरी बार यहाँ आकर निकुम्भपुत्र पौंड्रकको तथा सौ सिरवाले रावणको माहूंगी ; फिर बादमें पुनः चौथी बार आकर शूरवीर कुम्भकर्ण तथा मूलकासुरको माहूंगी । उसके वचनको सुनकर दशाननका हृदय विद्ध हो गया ॥ २४५-२४७ ॥ अब सब राक्षस भी भयभीत होकर मृतक मर्गमें हो गये । रावणने सोचा कि इस बालिकाको अभी मार डालना चाहिये । यह विचार तथा तीक्ष्ण तलवार हाथमें लेकर वह पक्षीकी तरफ दौड़ा । पक्षीको इस प्रकार कन्याका मार्गके लिए ठगते देखकर मयदानवकी कन्या मन्दोदरीने कहा—॥ २४८ ॥ २४९ ॥ मैं दशानन ! आयु जैसा रहनपर भी आज ही तूमें यह माहूम मत करो । इसमें तुम्हारी मृत्यु हो आयगी । इसका वचन झूठा न होगा ॥ २५० ॥ आगे जो होनेवाला होगा सो होगा । अभी तो तुम इसे वनमें छुड़वा दो । कालान्तरेम हातवाली मृत्युका आग्र ही क्या वृत्ताने हो ? ॥ २५१ ॥ भार्याके इस वचनको सुनकर दशानन चुप हो गया । पश्चात् दूत उस सन्दूकवाको पीछे विमानमें रखकर से गये ॥ २५२ ॥ सीताके साथ मिथिला नरेशके बनोंको देखते हुए बहीपर सब दूतोंने उस करण्डिकाको भूमिमें गाड़ दिया ॥ २५३ ॥ तदनन्तर दूत मन्दोदरी लौट गये और जो किशोरी या, सो सब वृत्तान्त रावणसे निवेदन कर दिया । ॥ २५४ ॥ राजा विदेहने वह जर्मन सूर्यग्रहणके अवसरपर एक ब्राह्मणको दान दे दी थी । ब्राह्मणने उस जर्मनका जुनवानेका विचार किया ॥ २५५ ॥ प्रतिवर्ष शुभ मुहूर्त देखते-देखते बहुत वर्षों बाद

शटेण कर्षयामास भूमिं कृष्यर्थमादगन् । तदा हलमिताश्रेण निर्गता सा करंडिका ॥२५७॥
 तां गृहीत्वा स शूद्रोऽपि ययौ भूमिपतिं द्विजम् । स मत्वा तन्निधानं तु हर्षान्प्राह द्विजोद्यमम् ॥२५८॥
 श्रेष्ठस्तव मुहूर्तोऽयं महामार्ग्यं तव द्विज । ह्मां इत्यग्रमंभृतां गृहाण त्वं करंडिकाम् ॥२५९॥
 निधानपूर्तितां गुर्वी मया यन्नेन बाहिनाम् । तनः स द्विजवर्षस्तु तां जग्राह करंडिकाम् ॥२६०॥
 तामानीय विदेहाय नमामध्ये दत्ता मुदा नृपति प्राह वृत्तं तद्विप्रः श्रुत्वा नृपोऽपि सः ॥२६१॥
 उवाच ब्राह्मण मकन्या मया भूमिः समर्पिता । तस्यां लब्धा त्वया चेत् तवैवास्तु करंडिका ॥२६२॥
 विदेहनृपतेर्चाक्य श्रुत्वोवाच द्विजः पुनः । मद्यं समर्पिता पूर्व भूमिरेव न्वया नृप ॥२६३॥
 नेय करंडिका तस्या वनपूर्णा समर्पिता । यद्भूमौ वर्तते चितं नन्नृपस्य न संशयः ॥२६४॥
 मा मामधर्मः शृणु गृहाणेमां करंडिकाम् । एव नृपस्य विप्रेण कलहोऽभून्मुदाकणः ॥२६५॥
 तदा यमामदा सर्वं नृपति वाक्यमब्रुवन् । मा कायः कलहो राजनृपस्यस्थः किं नु वर्तते ॥२६६॥
 ता तदोद्गाटयामास हर्तुर्नृपतिचक्षुषः । तस्या दृष्ट्वा बालिकां तु विस्मयं प्राप पार्थिवः ॥२६७॥
 द्विजस्य कन्या ययौ मेहं पालयामास तां नृपः । तदा स्वयं च आशानं नेदुः कमुभट्टदिभिः ॥२६८॥
 ववपुः सुरमयाश्च तां कन्यां जनकं नृपम् । गधर्ता गायनं चक्रे नृपतुभ्याम्भोगणाः ॥२६९॥
 तदा मेने तिजां कन्यां जनकस्तोषणाय सः । जनकं कारयामास विप्रस्तस्थः मयिस्मरम् ॥२७०॥
 दत्ता दानानि विप्रेभ्यो ननृतुर्गण्योपितः । मातुलुङ्गान्निर्गता या मातुलुङ्गी ते सा स्मृता ॥२७१॥
 अग्निवासः अग्निगर्भा तथा रत्नावलीति च । रत्नावलीति वासोच्च प्रीज्यते जगतीमले ॥२७२॥
 धरण्या निर्गता यस्मान्ममाद्वरणिजेति च । जनकेनापि यस्माज्जानवर्गति प्रकीर्त्यते ॥२७३॥

अच्छत मया गरम उदका करनदाया भूतन देवकर ॥ २५६ ॥ उस ब्राह्मण आदम्बुलक शूद्रसे उस जमानम वक्तो लिये एक कन्याया । उसी समय इतने कानमे य सन्तु निबल आयी । २५७ ॥ हमको नेकर वह शूद्र जमीनवे मानिकके पास गया और उसको वह खरानद समझकर सहर्ष ब्राह्मण कहने लगा है द्विज । आप बड़े भाग्यजाली हैं आपन अच्छे मुहूर्तम यत आरम्भ करवायी । यह है के अग्रभागमे (अर्थात् फानस जिसकर सम्बुतम मीना कहने है) मंभूत (प्राप्त) सन्तुको मीजिदे । मैं स्वयंमे मने हुई बड़ा भाग इस पिटारीको बड़े कष्टिने मे यही न आया है । उस द्विजत उसको ले लिया । २५८-२६० । उसको ले जाकर ब्राह्मणने मभाके साथमे राजा विदेहने दिया और सब समाचार कर सुनया । राजा था यह मुनकर ब्राह्मणने कहने लगे कि मेने तो यन्तिसे भूमि आपकी समर्पण कर दा है । तब उसमेमे मिला हुई यह पिटारी भी आप ही की है ॥ २६१ ॥ २६२ ॥ राजा विदेहने वचनको सुनकर ब्राह्मण उसमे कहने लगा—हे नृप ! आपने पुत्री भूमि ही दी है ॥ २६३ ॥ यह धनपूर्ण सुन्दर सन्तु नहीं ही थी । हमलिये जो भूमिम वन है, वह निर्विवाद राजाका ही होता है । २६४ । मुद अवसम न जान और इस पिटारीका अर्थ न बतार दरे । इस प्रकार राजा तथा ब्राह्मणमे बड़ा झगडा होने लगा । तब सब मभासरोन राजासे वन—हे राजन ! कलहको छोड़े और देख कि इसमे क्या है ? ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ तब नृपतिगमे श्रेष्ठ नृपति निवहने दूतने सन्तु बुलवायी । उसमे बालिकाका वस्त्र राजा बड़े विस्मित हुए । ब्राह्मण उसे वही हाड़कर घर चला गया । तब राजाने ही उस कन्याको पाल लिया । अब देवताभाके बाजे बजे और उन्होंने उस कन्या तथा राजाके ऊपर पुण्यवृष्टि की । गन्धर्व गाने लगे । अप्सरायें नृत्य करने लगीं ॥ २६७-२६९ ॥ तब राजा जनकने प्रसन्न होकर उसको अपनी पुत्री माना । ब्राह्मणोंके द्वारा विस्तारपूर्वक उसका जातकर्मसंस्कार (संतानके उत्पन्न होनेपर करनेका संस्कार) करवाया ॥ २७० ॥ विप्रोंको बहुतसे दान दिये और वेण्याओंका गायन करवाया गया । जगन्मे वह कन्या मातुलुङ्गफलसे निकलनेके कारण मातुलुङ्गी, अग्निमे वास करनेसे अग्नि-गर्भा तथा रत्नमे निवास करनेसे रत्नावली कही जाने लगी ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ वाणीसे निकलने-

मंगलाश्लेषेतेषां यस्मिन्मीनेत्यथ प्रतीयते । पद्माक्षनृपतेः कन्या तस्मान्पद्मेति सा स्मृता ॥२७४॥

एवं नामान्यनन्ताभिर्मतायाः सन्ति भो नृप । आकाशनीलवर्णामवपुषाऽनेन जानकी ॥२७५॥

लब्धा रामेण पद्माक्षप्रविता मफलाकृता । एवं स्वया यथा पृष्टं तथा स्त्रीं त्रिनिवेदिताम् ॥२७६॥

चतस्रस्त्वं स्तुषास्त्वत्र कर्तुमर्हामि भो नृप ।

श्रीशिव उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र पूर्वं दशरथेन च ॥ २७७ ॥

ममाहृता ययुः मेर्यः स्त्रीपुत्रैः यशुगश्च ते । कोमलो मगधेशश्च कैकेयश्च युवाजितः ॥२७८॥

मानशमाम तान् राजा जनकोपि मुदन्वितः । ततो दशरथं पूज्य श्रीरामं लक्ष्मणं तथा ॥२७९॥

मगत चापि शत्रुघ्नं नृपूज्याभरणादिभिः । निनाय जनकस्तुष्टः स्वपुत्रीं परमोत्सवं ॥२८०॥

तदा रामो नृपं नन्वा राज्ञा चर्लिपितो मृदुः । यमिष्टं माधियं नन्वा कौसल्यादिं प्रणम्य च ॥२८१॥

राज्ञो दशरथस्याग्रं तैः स्त्रीभिर्वन्धुभिः सह । गजारूढो ययावप्रे तेऽप्यभूवन् गजस्थिताः ॥२८२॥

नन्दयु वायसिषेण स्तुवन्तु मागधादिषु । नर्तन्तु वाग्नासीषु त्रिवेश नगरीं प्रभुः ॥२८३॥

तदाऽऽर्मात्मभ्रमः परस्त्राणां श्रान्तमदशने । विमृज्य स्वायकृत्यानि ददुवुर्गोपुरादिषु ॥२८४॥

कथ्या निधाय बालाश्च ददुशु स्तुनन्दनम् । राजमार्गगतं राम ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२८५॥

एवं महोत्सवंचामस्थलं दशरथः सुतैः । यया वच्चान्नतोयार्थः परिपूर्णं मनोरमम् ॥२८६॥

कुन्वा जपातिविंदा लग्नदिवसस्य विनिश्चयम् । मण्डपांश्च तोरणानि पताकाश्च ध्वजास्तथा ॥२८७॥

रोपयामासु सवत्र मन्त्रिणो मिथिलां पुराम् । मागाधं दनलिप्ताश्च पुष्पराच्छादिता अपि ॥२८८॥

मालाभिस्तोषणैः पुष्पयोषाद्यस्तं चकाराशरे । ततो मृदुर्लसमये वधूच्छिष्टा निशा शुभाम् ॥२८९॥

क कारण घराजजा, जनक द्वारा पालित हानस जानकी, साता (कान) क अग्रभागसे प्रकट हानक कारण साता और राजा व्यासकी कन्या हानसे बहु पद्या कहलायी ॥ २७३ ॥ २७४ ॥ हे महाराज दशरथ । इस प्रकार साताक अनेक नाम हैं । आकाशक समान नालवणक रङ्गवाले रामन साताका प्राप्त करके राजा पद्मश्रीकी प्रतिज्ञा पूर्ण कर दी । इस प्रकार जो आपने पूछा सो मैंने निवेदन कर दिया । अब आपका ये चारा पुत्रवधुएं स्वाकार करना चाहिये । शिवजी बात—इतनेमें पहिलेस राजा दशरथक द्वारा बुन्वाय गय जनक नगुर क समराज तथा मगधराज युवाजित् नामक कैकेयराज अपना स्त्रा और रनाका साथ लेकर वहाँ आ पहुच । राजा जनकने भी उनका प्रेमपूर्वक स्वागत किया । पश्चात् राजा दशरथका वरद-अ भूषण आदिने और राम लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्नकी पूजा करके राजा जनक महान् उत्सवक साथ अपने नगरमें ले गये ॥ २७५-२८० ॥ तदनन्तर रामन राजा दशरथकी प्रणाम किया । राजाने उन्हें हृदयसे लगाया । फिर रामने गुरु बाजन्का तथा कामत्या आदि माताओंको प्रणाम करके राजा दशरथके अंग उन रिक्का तथा वस्तुओंक सहित हाथियोंपर चकर जागे-आगे चले । उनक पंथे और सब गग गज, हत्त हाँकर चले पडे । इस प्रकार वाद्यसमूहक शब्दोंको सुनते, चरणोंकी स्तुतिशेको श्रवण करते तथा येज्याओंक नाचका दखते हुए प्रभु रामन नगरमें प्रवस किया । उस समय रामके दर्शनक लिये नगरकी स्त्रिये व्याकुल हो उठी । अपने-अपने गृहकार्योंकी छोड़ सबकी सब बाटकोको गोरमें लिये नगरके दरवाज आदिपर जाकर स्तुनन्दन रामका दर्शन करने लगी । राम जब सड़कपर आ गये, तब उन्होंने उनपर पुष्पवृष्टि की ॥ २८१-२८५ ॥ इस तरह महोत्सवके साथ राजा दशरथ राम आदिको लेकर अन्न (भोजनका सामान), वस्त्र (आड़ने-बिछानेका सामान) तथा जल (नहाने-धोने तथा पीने का पानी) आदिसे परिपूर्ण मनोहर वासस्यानपर (वरके ठहरनेके स्थानपर) गये ॥ २८६ ॥ मन्त्रियोंने ज्योतिर्वीने द्वारा लग्नका दिन निश्चय कराकर समस्त मिथिलापुरीको मण्डपोसे, तोरणोंसे, पताकाओंसे तथा रङ्ग-चिरङ्गी ध्वजाओंसे सजवा दिया । बडे-बडे रास्तोंको चन्दनसे लिपकाया गया । उनपर मण्डि-

मुनलाक्षां स्त्रियः सर्वाः क्रीमल्याद्यास्तु मानसः । रामादान् पंगलप्यादी नाराजनपुरःसरम् ॥२९०॥
 करकुंभांस्तौयपूर्णान्वनुदिक्षु मदीपकान् । संस्थाप्य स्नापयामासुर्महाबाधपुरःसरम् ॥२९१॥
 तदाभ्यंगं स्वयं चापि कृत्वा मस्तुश्च मातरः । रामादीन् पुनः कृत्वा वस्त्रालंकारभूषिताः ॥२९२॥
 अभ्यङ्गपूर्वकं सस्नो राजा दशरथोऽपि मः । समाहूय नृपस्यैव सभायां स्वस्तिके गुरुः ॥२९३॥
 मुक्ताविनिर्मिते राज्ञः शश्वे पापे न्यवेशयत् । अग्रे रामादिकान्कृत्वा नृपः स्त्रियोऽवनताननाः ॥२९४॥
 हरिद्राकुकुमालिप्तचरणा रजिरेऽङ्गणे । वसिष्ठो ब्रह्मर्षिर्गुह्यो राजा रामादिभिर्मुदा ॥२९५॥
 कृत्वा गणपतेः पूजां पुण्याङ्गादित्रयं क्रमात् । कारयामास विधिवत्प्रतिष्ठा देवकस्य च ॥२९६॥
 ग्रामाचारं कुलाचारं वृद्धाचारं तथा पुनः । देशाचारं च प्रमदाचारादीनकरोन्मृगः ॥२९७॥
 नोयकुम्भं मण्डपादिकानां पूजनमाचरत् । क्रीमल्याद्याः स्त्रियः सर्वा हरिणीतरुणवर्गः ॥२९८॥
 हेमन्तन्वकिर्तव्यस्त्रिरेनुर्मण्डपांगण । जनकश्च नृपैर्गुह्यो महाबाधपुरःसरम् ॥२९९॥
 रामादीन्स निजं गेहं नेतुकामः समावधौ । महये पूजयामास रामादान् जनकस्नदा ॥३००॥
 हेमन्तन्वद्विर्दिव्यैर्वस्त्ररामणादिभिः । तदा विरेजुस्ते बालाः सर्वे प्रमुदिताननाः ॥३०१॥
 ततस्ते वाग्नेद्रस्या दिव्यचामर्योजिताः शृण्वतो ब्रह्मघोषाश्च चापला पुष्पवृष्टिभिः ॥३०२॥
 हरिद्राकितधान्यैश्च मागल्यैर्मौक्तिकादिभिः । मातृभिर्वाग्निस्त्राणु संस्थिताभिर्मुहुर्मुहुः ॥३०३॥
 एवं ते गघवाद्याश्च पुष्पाभिर्निरीक्षिताः । प्रासादोपरि संस्थाप्यमर्लाजामिर्घोषिता मुहुः ॥३०४॥
 ददशुर्नर्तनान्यग्रे वारस्त्रीणां स्मिन्नाननाः । वारिकाः पुष्पवृक्षाणां वरमृत्पात्रनिर्विताः ॥३०५॥

भौतिक पुष्प विखेर दिये और खास-खास स्थानोंमें मालाएँ तथा तारण बचवा दिये, पुष्पलताओं और
 मालालिका शब्दों द्वारा उस समय वह नगरी और भी दिव्य भावूम गढ़ने लगी । तदनन्तर शुभ मुख्यतः
 जिस रातका मालाके शरीरमें स्त्रियोंके द्वारा तेल-तुलसी आदि मन्त्र, गया । उसा रातमें कौसल्या
 आदि माताओंने अंगन लंप तथा रातका पानी छिड़ककर जलमय दीपक सहित चार सुन्दर घड़ोंको
 चारों दिशाओंमें स्थापित करके राम लक्ष्मण भरत और बालमन्त्रों वाद्यध्वनिके साथ मातृभक्तिक स्नान कराया
 ॥ २९७-२९९ ॥ फिर तेल आदि मलकर अंगन आप भा सब प्रान्तांगन स्नान किया । पहिले राम
 आदिकों वस्त्र तथा अलङ्कारोंसे भूषित करके तन्त्र-हस्ता आदिका शरीरमें अंगदू करके (मन्त्रकर) राजा
 दशरथने भी स्नान किया । पश्चात् गुरु वशिष्ठ राजाकी सब मित्रोंकी सभामें उपम बलाकर राजाक
 वामभागमें मुक्तानिर्मित स्वस्तिक अंकित । वरी था आसन, पर बैठा । उस समय सभाके अंगनमें स्त्रिय राम
 आदि वाक्काकी सामने बटाकर निम्न मुख किया तथा हस्तों और तेल चरणोंपर लगाये अत्यन्त मुशो-
 भित होने लगी । बाह्यणाक सहित वानिज्जीने राजा दशरथ तथा रामादिके द्वारा गणपतिपूजन तथा
 पुष्पाहुवाचन ये दोनों कर्म क्रमसे करवाये और सीमरा कर्म विधिवत् देवताकी प्रतिष्ठा करवायी ।
 राजा दशरथने भी बादमें प्रसन्नतापूर्व ग्रामाचार, कुलाचार, वृद्धाचार, वंशाचार तथा प्रमदाचार
 आदि किया ॥ २९२-२९६ ॥ तदनन्तर जलपूर्ण कुम्भ तथा मण्डप आदिकी पूजा की । मण्डपके अंगनमें
 हरी, लाल पौली तथा जरीदार साड़ियोंको पहिनकर कौसल्या आदि स्त्रिय बड़ी सुन्दर दीखन लगी ।
 बड़े बड़े बाजोंको बजवाते हुए अन्य राजाओंके सहित राजा जनक भी राम आदिकों अपने मदनमें
 लिखा ले जानके लिये वहाँ आये । मण्डपमें जाकर राजा जनकने राम आदिका पूजन किया ॥ ३०० ॥
 उस समय प्रसन्न मुखवाले वे सब बालक जरीदार दिव्य वस्त्रों तथा आभरणोंको पहने हुए बड़े सुन्दर
 जाने लगे ॥ ३०१ ॥ दास्य वे सब जो कि उत्तम हाथियोंपर बैठे हुए थे, जिनपर सुन्दर चैवर डुल
 रहे थे । हाथियोंपर बैठे हुई माताएँ चारों तरफसे बगम्वार जिनपर मोतियों, मातृभक्तिक हृदयभिषित
 चाकलें तथा पुष्पाकी धोखार कर रही थीं । जिनकी ओर नगरकी स्त्रिये बड़े चावसे देख रही थी तथा
 सबनोंपरसे बालका लावा बरता रहते थीं । अनन्तर गुरुओंसे बहाने रातमें वैश्याओंके नृत्य

तथा कृत्रिमवृक्षाश्च पताकाश्च ध्वजास्तथा । वह्निमंगादीपधीनां पुष्पवृक्षविनिर्मितान् ॥३०६॥
 तडित्प्रभोपमाश्चापि गगनान्तविगजितान् । वह्निमङ्गादीपधाम्यः प्राकाशन् विविधान् वरान् ॥३०७॥
 चन्द्रज्योत्स्नाकृत्रिमाश्च दीपवृक्ष न महमशः । दीपमालाश्च व्याघ्रादीन्कृत्रिमान् रथमंस्थितान् ॥३०८॥
 ओषधीभिः पूग्निताश्च केकीचक्रोपमादिकान् । ददशुवाङ्गणद्रव्या एवं ते राधवादयः ॥३०९॥
 तदा देवा विमानस्था ददशुः कौतुकं मृदा । एव नानोन्मयैर्वाला ययुर्जनकमंदिरम् ॥३१०॥
 अवलम्ब्य गजेन्द्रेभ्यस्तस्थुस्ते मडपांगणे । मधुपर्कविधानानि विष्टरादीनि च क्रमात् ॥३११॥
 तयोर्गुरु चक्रतुर्गुर्विष्मिष्टगौतमात्मजा । वान्माक्यादिमुनिगणैर्वेष्टिता तुष्टमानसी ॥३१२॥
 ततः पूजा वधूनां च मुदा दशग्यो नृपः । चकार गुरुणा युक्तस्तदा स मडपाङ्गणे ॥३१३॥
 ततो लग्नमुहूर्ते तान् वधूभिश्च पृथग्वगन् । वेदिकासु स्थितान् कृत्वा दम्पत्योरंतरे पटान् ॥३१४॥
 कृत्वा मंगलयोषाश्च मुनिभिश्चक्रतुर्गुरु । तदा तूर्णी सभायां ते शुभ्रवुः सकला जनाः ॥

पुष्पाधिः धीतधान्यश्च वधुर्दम्पतीन् श्रियः ॥ ३१५ ॥

श्रीदेवीतनयी शिवः सुखकरो मित्रः शशा कपनः सर्वे ते मुनयश्चला दश दिशः सर्पा मृगेंद्राः स्वगाः ।
 नद्यः पुष्पमगोवर्गाणि दिनिजास्तीर्थानि कंजामनश्चेद्रो बहुयमग नदी जलधयः कुर्वतु वो मंगलम् ३१६॥
 तदेव लग्ने सुदिन तदेव ताराबलं चद्रबलं तदेव । विद्याबलं देवबलं तदेव कार्त्तवीर्यत्त्वरण विधेयम् ३१७॥
 एवं मंगलशब्दश्च महावाद्यपुरःसरम् । तेषामंतःपटान्मुक्त्वा ॐपुण्योऽस्तु चतुर्गुरु ॥३१८॥
 तामां ते पाणिग्रहणविधानं विधिपूर्वकम् । लाजाहोमादिकं सर्वं चक्रमंगलपूर्वकम् ॥३१९॥
 तदा महावाद्यघोषा निनेदुर्मडपांगणे । ननृतुर्वारिनायश्च जगुर्मागधवदिनः ॥३२०॥

मनोहर मूर्त्ति आदिके बन हुए गमलो, वृक्षों तथा फूल-पत्तियोस बनी हुई वाटिकाओंको, कृत्रिम वृक्षोंको, पताकाओंको, ध्वजाओंको, अग्निक सजावट जलनवाल, तडितके समान राशनोवाले और आकाशम भ्रमवनेवाले नाना प्रकारको आतशबाजोंस सब पुष्पवृक्षलता आदिको, हजारो चन्द्रमाओंकी चाँदनीक कृत्रिम दीपवृक्षोंको, दीपमालाओंको, रथाम रथ हुए बनाकटा व्याघ्र-गज आदिका, ओषधिस भरें हुए मोर तथा चर्खों आदिको देखन लगे ॥३०२-३०६॥ सब देवता भी आनन्दस उस कौतुकका देख रह थे । इस प्रकार विविध उत्सवो सहित वे राम आदि बालक राजा जनकक भवनका गये ॥ ३१० ॥ वहाँ भी तथा हाथियोसे उतरकर वे मण्डपके अग्निसम सड़ हा गये । बाल्माकि आदि मुल्लास धर हुए दानो पक्षकं गुरु बर्षास तथा गौतमपुत्र शतानन्दन प्रमत्ततास मधुपर्क (मधुनिश्चित दहा) का विधान और आसन आदिका विधान बमल करवाया ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥ पश्चात् राजा दशरथन गुरु बागठका साथ लेकर सहर्ष भावी पुत्रवधुओंकी पूजा की । फिर शुभ मुहूर्त तथा मुल्लनम मुनियो तथा गुरुतनान उन-उन वधुओं और उन उन धार बालकोंका पृथक् पृथक् वेदियापर बैठकर उन दम्पतियाक बीचम बन्दका बाह करक मंगल-मय मन्त्रोंका उच्चारण किया । समाके सभी मनुष्य धुप हुंकर उसे सुनन लगे । श्रिय कसरसे रगे पाले पावल तथा फूल बरवाधूके ऊपर बरमाने लगी ॥ ३१३-३१५ ॥ सरस्वती देवीतनय गणपति, सुखकारक शिव, सूर्य, चंद्र, वायु, सब मुनि, बल-अबल जीव, वसों दिश में, सप, मृगेंद्र, स्वग, नदी, पवित्र सरावर, देव्य, ताप, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्निदेवता तथा नदी-समुद्र आदि तुम लोगोंका कल्याण करे ॥ ३१६ ॥ कार्त्तवीर्य आविश्वनाथ भगवानका स्मरण हो तुम्हारे लिए सुन्दर लग्न, शुभ दिन, ग्रहबल, विद्याबल तथा देवबल बन जाय ॥ ३१७ ॥ ऐसे भागालक शब्दों और मांगलिक बाजोंकी ध्वनि होन लगा । उसके बाद जोधमें पड़े हुए वस्त्रोंको हटा दिया गया और दोनों धारके गुरुआने "ॐपुण्योऽस्तु" ऐसा कहा ॥ ३१८ ॥ इस प्रकार उन लोगोंने मिलकर विधिपूर्वक उनका विवाहकार्य तथा लावाका हवन आदि सभी कुर्य मङ्गलपूर्वक संपादित कर दिया ॥ ३१९ ॥ तब मण्डपकी बागनाईमें बड़े-बड़े बाजोंका निगाव होने लगा, देखाये नाचने लगी, गीत बोई बन्दाजव यथागाव करने लगे ॥ ३२० ॥

नटा मंगलगातव हृद्युस्ते महास्वर्नः तदा दानान्यनकानि चक्रतुस्ती नृपोत्तमौ ॥३२१॥
 अथ ते बालकाः भवे वयः स्वाप्य कर्तुं पुत्रं । दानलब्ध दिवनिताभिर्जग्मुस्ते भोजनगृहान् ॥३२२॥
 तत्राग्निसिचनं चतुः संपूज्य तथा च सामांष । ततो रामादिकाः सर्वे स्वस्वपत्न्या पृथङ्मुखाः ॥३२३॥
 चक्रुस्ते भोजनं दृष्टाः स्त्राभिः सर्वत्र वाष्टनाः । राजा दशरथश्चापि सुहृद्भिश्च नृपोत्तमैः ॥३२४॥
 पौरजानपदगिष्टमृनिभिः परिवारिणः । जनकस्य गृहं गत्वा चकार भोजनं मृदा ॥३२५॥
 कौसल्यायाः स्त्रियः स्त्रीभिश्चकुर्भोजनमुत्तमम् । सुमेधया प्रार्थितास्ता वदिताश्च मुहुमुहुः ॥३२६॥
 त्वं नानाममुन्माहोश्चकार जनको मृदा । अथ ते बालकाः सर्वे स्त्र्याकथान्मानुमन्विधौ ॥३२७॥
 स्वस्वपत्न्याः पादयोः स्पर्शगोभिर्ननमुहुः । चक्रुस्तृष्टचेतमस्ते तास्ता नेमूः पृथक् पृथक् ॥

कुरुनां कुरुपादाश्च तेषामकेन वा ददुः ॥३२८॥

श्रीगणः समस्तस्य भूमितनूनामायां जगत्सन्निविर्ता मर्त्यान्मा । ब्रहेतुमुन्दरानुः कारुण्यपूर्णक्षणः ॥
 त्रिभुवर्णः । राजमानवननन्त्रलोकवन्द्यदाम्निः शोभामय जगत्त्रयेऽयनुपमां मुक्तागिजद्वलः ॥३२९॥
 चतुर्थे दिवसे रात्रौ वंशपात्रविगाजितैः । दीपैर्नीगजिताः सर्वे विरेजु रसपवादयः ॥३३०॥
 रामादीनां पारिवर्तान् ददौ म जनकस्तदा । निगूतान् वारणेशांश्च शिविकाश्चापि तन्मिताः ॥३३१॥
 तुग्गान् दशरथांश्च निगूतान् स्वदनान् ददौ । नानालङ्कारवासामि गोदार्यानिवृद्धादिकान् ॥३३२॥
 ददौ म राघवादिभ्यो येषां मुखान् विद्यते । एव सम्मानितास्तेन ते बाला जनकेन हि ॥३३३॥
 पूर्ववदुन्मवर्धश्च स्वस्वपत्न्या समन्विताः । मञ्जारुहा नृम्यगीर्तस्ताभिः स्वमहप ययुः ॥३३४॥
 ततो राजा माममेकं निनाय नृपत्राकपतः । ततः सैन्येन स्वपुर्गं गन्तुं पुर्णं बहिर्ययौ ॥३३५॥
 सोताद्या निर्ययुर्मुग्धाः माश्रुनेयाः सुविह्वलाः । सुमेधास्ताः समालिख्य सन्विपित्वा व्यसजयत् ॥३३६॥

नट लोग त्रासमें मङ्गलगीतोंका गवर् गतुनि वरन लग और दानों काश्चें ते अन्तः दान दिव ॥ ३२१ ॥
 तदनन्तर वे सब बालक अपनी-अपनी दहको कमरपर चढ़ाकर बीसस्य आदि मानायाक साथ भाजनालयमें
 गये ॥ ३२२ ॥ हे पार्वति ! वही आभ्रमेचन करके नुस्तरा मरा हमारा (शिव-पावताकी) पूजा करनेके
 बाद राम आदिन अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ आनन्दपूरक भाजन किया और सब स्त्रियाँ उन्हें
 घेरकर खड़े हो गयीं । राजा दशरथन भी अपने राजाओंका, मन्त्राको, नगर तथा देशके लयाका
 और मुनियोंको साथ ले तथा जनकके घरपर जाकर महप भजन किया ॥ ३२३-३२४ ॥ सुमेधसे वार-
 वार प्रार्थित तथा आनन्दित बीसस्य आदि स्त्रियोंन भी अन्तर दिव-क मान ज कर भाजन किया । ३२५॥
 राजा जनकके वही अन्तः मगाने हुए । फिर उन बालकों प्रसन्न होकर स्त्रियोंके कहनसे माताओंके
 सम्मुख अपनी-अपनी पत्नियोंके पैरोंपर आता-आता मिर रखकर नमस्कार किया । पश्चात् उन स्त्रियोंने
 भी उनका अलग-अलग सम्स्कार करके उनका गरीम कुकुमसे राजत पावे रखे ॥ ३२६ ॥ ३२७ ॥
 समस्त समारक अन्तः स्वस्व पत्न्य गरीरक, धारण किया हुए करुणापूर्ण नेत्रोंका, स्त्रियोंके समान
 वर्णवाले, गले घम्पोंका धारण किये हुए, त्रिलोकार्क बूडार्णस्वरूप गलेमें मालतीकी माला पहन हुए और राम
 जगत्की आदि-वामिन, और भूमितनया माताको प्राप्त करके नीला लंकान अनुपमेव जाभाकी प्राप्त हुए
 ॥ ३२९ ॥ तीथे दिन बीनके घायन अन्त्ये हुए दोषकोम नाराजित तथा पूजित राम आदि चारों
 भाई बड़े ही शोभायमान हुन लगे ॥ ३३० ॥ राजा जनकन राम आदिका ये दहेज दिय दस लख हाथी, दस
 लाख बालकियाँ, दस लाख घोड़े तथा दस लाख ग्य अमर अलंकार, पोशाक, गीएँ तथा दास-दासिएँ
 थीं । इस प्रकार राजा जनकके द्वारा सम्मानित वे बालक ॥ ३३१-३३३ ॥ अपनी-अपनी स्त्रियोंको साथ
 ले तथा हाथीपर सवार होकर नृत्य गान तथा वातक साथ अपने मण्डपको लौट आये ॥ ३३४ ॥ पश्चात्
 राजा दशरथ राजा जनकके साथ-संसे एक महोत्सव वही व्यतीत करके अपने पुत्रको जानेके लिये सेनाके साथ
 उस पुरीसे बाहर आये ॥ ३३५ ॥ सोता आदि अनुपूरण नेत्रोंसे बहुत विह्वल होकर बली । सुमेधाने उनको

अथ राजा दशरथो जनकं विन्यवर्तयत् । तदा दशरथं प्राह जनकः माश्रुलोचनः ॥३३७॥
 क्षमन् कवोष्णम्लानास्यो विग्रहाद्दशरथः । एतावन्मालवर्चनं मीनादा लालितो मया ॥३३८॥
 अभुना न्वमिमाम्बुध्रे लालयाम्य कृतेष्टनैः । इन्द्रकन्धामपति नन्वा मिथिलां जनको ययी ॥३३९॥
 ततो दशरथश्चापि स्नुषास्त्रीननयादिभिः । सूर्यः सन्त्येत स्नपुर्वा ययौ मार्गे शनैः शनैः ॥३४०॥
 अथ गच्छति श्रीरामे मैथिलयोजननयम् । निमित्तान्यनिधोरणि ददश नृपमत्तमः ॥३४१॥
 नन्वा क्षमिष्टु प्रपच्छ किमिदं मुनिपुङ्गव । निमित्तार्नाह दृश्यते विपमणि ममनतः ॥३४२॥
 वमिष्टुस्तमथो प्राह भयमगाति सच्यते । पुनरप्यभ्रं तेऽथ शीघ्रमेव मक्षिष्यति ॥३४३॥
 मृगाः प्रदक्षिणयांत त्वां पश्य शुभसूचकाः । एव वै वदतस्तस्य वयौ घोरतरोऽनिलः ॥३४४॥
 मुष्णश्चतूषि सर्वेषां पामुर्वाष्टभिर्दयत् । ततो ददर्श परम जामदग्न्यं महाप्रभम् ॥३४५॥
 नीलमेघातिभं प्राशुं जयामण्डलमंडितम् । धनुः शशुहम्नं च माक्षान्कालमिव स्थितम् ॥३४६॥
 कर्तव्योऽयं नृपः राम दमश्चरियमर्हन्म् । प्राप्त दशरथस्याग्रे रक्ताभ्यं रत्नलोचनम् ॥३४७॥
 तं दृष्ट्वा भयमव्रम्यतो राजा दशरथस्तदा । शर्यादिपूजां विस्मृत्य शशिवाहीति चाब्रवीत् ॥३४८॥
 दंडप्रवणिवन्याह पुत्रप्रणान्प्रयच्छ मे । ह्येव ब्रुवन् राजानमनारुह्य रघुनयम् ॥ ४९॥
 उवाच निष्ठुर वाक्यं क्रोधान्प्रचलितेन्द्रियः । न्व राम इति मत्ताम्ना क्षमि शत्रियाधम ॥३५०॥
 इदमृद्ध प्रयच्छाशु यदि न्व क्षुण्णोऽमि मे । पुण्यं जर्जर चाप भङ्गस्तत् न्व दत्तव्यं मुधा ॥३५१॥
 इदं तु वंष्णव चापमारोहयति चेद्गुणम् । तर्हि युद्धं न्यया माद्वं न करोमि नृगन्मज ॥३५२॥
 नो चेत्सर्वान्हनिष्यामि क्षत्रियानरुग्मत्त्वहम् । इति तदुच्यन् श्रुत्वा राक्षसो वाक्यमब्रवीत् ॥३५३॥

छात्रीसे लगाया तथा आश्वासन देकर विदा किया ॥ ३४६ ॥ तब राजा दशरथने राजा जनकवा लोटनेक लिये कहा । राजा जनक आखीम आगू भावर पुत्र मया मया लेत हुं । तब दशरथ विये गुत्रिरोके वियोगसे गद्गादस्वर होकर राजा दशरथमे कहने लग कि आज नक दिन सीता आया । तब न पश्यत किया और सब आजसे आप श्रयती कृपादिसे इनका पालन-पोषण कर । मेरा कह और राजाको नमस्कार करके राजा जनक मिथिलाको लौट गये ॥ ३४७-३४९ ॥ राजा दशरथ भी गुयो, पुत्रदुष्टो, मिथी, राजाओ तथा सेनाको साथ लेकर घेरे-घेरे अपनी नगर को चले ॥ ३४८ ॥ तब श्री राम मैथिल देशमें मिलल । बाहर कोस आगे बढ़े । तब राजा दशरथकी प्रतिपत्ति अपमान दिख्याई लिये ॥ ३४९ ॥ तब वे नमस्कार करके वसिष्ठजीसे कहने लगे—हे मुनिपुंगव ! यह बात कारण है कि जागे लख ये अपमान दिख्याई दे रहे हैं ? ॥ ३४९ ॥ वसिष्ठजीने कहा कि ये भावी भवके सूचक है । परन्तु जीय ही आपका भय निवृत्त हो जायगा ॥ ३४९ ॥ देखिए, शुभसूचक दक्षिण दिशि जाय जा रहे हैं । इतना कहना ही था कि घोरतर वामु बहने लगी ॥ ३४९ ॥ तबन धूम तबकी आने भर थी । बाध बढ़े तेजस्वी, नीले मेघके समान रंगवर्ण लंबी उटारोके मारने, हाथमें धनुष तथा परमा निचे, साक्षात् कालके समान लाल नुह किय हुए, कातकार्य, महत्त्वह ॥ ३५० ॥ राजा जनक, उद्विग्न तथा घमण्डी क्षत्रियोंका नाश करनेवाले परशुरामजी दशरथके आगे लगे हो ॥ ३५०-३५१ ॥ राजा जनक दशरथ भयसे विह्वल हो सत्कार पूजा भुज्जकर शशिवाहि कहन लगे ॥ ३५० ॥ इतिने दशरथ पणाम करके कहा कि आप मेरे पुत्र रामके प्राण बचाये । परन्तु परशुरामने ओघानुर होकर राजाका आदेश तबके रघुनय रामसे इस प्रकार निष्ठुर वचन कहा—अरे क्षत्रियाधम राम ! तू मेरे नामने समारम लड-मूड क्यों प्रसिद्ध हुआ फिरता है ? ॥ ३५१ ॥ ३५० ॥ यदि तू सच्चा क्षत्रिय हो तो मेरे साथ युद्ध कर । पुराना सडा हुआ धनुष तोड़कर क्यों अपनी बढाईकी सूझी रोग दीक रहा है ? ॥ ३५१ ॥ ओ रघुनयज । यदि तू इस विष्णुके धनुषपर हारी चढ़ा दे तो मैं तेरे साथ युद्ध न कहंगा ॥ ३५२ ॥ नहीं तो मैं तुम सबको मार डालूंगा । क्योंकि क्षत्रियोंका नाश करना ही मेरा काम है । परशुरामका यह वचन सुनकर रामने कहा— ॥ ३५३ ॥

वयमेकगुणाः स्वामिन् गृयं चैव गृणाधिकाः । गोविप्रदेवनसीषु रायत्रा नास्यचारिणः ॥३५४॥
 मयैतैश्च जीवितानि तव पादार्पितानि हि । यथेच्छ घातयास्माक विप्रैर्पुण्ड्रं करोमि न ॥३५५॥
 हृदि भुवमि रामं वै चचाल वगुधा भृशम् । क्रुद्धं दृष्ट्वा जामदग्न्यं क्षत्रियांतमुपस्थितम् ॥३५६॥
 अंधकारो बभूवाथ चुक्षुषुः सप्त मागतः । गमो दाशगच्छित्रीरो वीक्ष्य तं मार्गव कथं ॥३५७॥
 धनुगच्छिष्य तद्वस्तादारोप्य गुणमंजमः । तुणीगङ्गाणमादाय संधायकृष्य वीर्यवान् ॥३५८॥
 उवाच मार्गवं रामः शृणु ब्रह्मन् वचो मम । लक्ष्य दर्शय चाणस्य ह्यमोघो राममायकः ॥३५९॥
 लोकान् पादयुगं वापि वद क्षीघ्र ममाश्रया । एवं वदति श्रीरामे मार्गरो विकृताननः ॥३६०॥
 संस्मरन् पूर्ववृत्तान्तिमिदं वचनमब्रवीत् । राम गम महाबाहो कथने त्वां परमेश्वरम् ॥३६१॥
 पुराणपुरुषं विष्णुं जगन्तर्गतयोद्धवम् । शान्तेऽहं तपसा विष्णुमाराधयितुमंजसा ॥३६२॥
 गत्वा हि तीर्थे गोमन्यास्तपसा तोम्य शक्तिंशम् । अङ्गिनिश महान्मानं नारायणभनम्यभीः ॥३६३॥
 यस्यराजेन मया भूम्याभवतारो धृतोऽस्ति हि । भूभागहृणाधाय कार्तवीर्यवधेष्यया ॥३६४॥
 ततः प्रसन्नो देवेशः शंसुचक्रमदाधरः । उवाच मां त्र्युश्रेष्ठ प्रयन्नमुखपंकजः ॥३६५॥

श्रीभागवानुवाच

उत्तिष्ठ तपसो ब्रह्मन् विहितं ते तपो महत् । मच्चिदक्षेण युक्तस्त्व जहि हृदयपुंगवम् ॥३६६॥
 कार्तवीर्यं पितृहणं यदर्थं तपसा श्रमः । तनस्त्रिःसप्तकृत्वस्त्वं हत्वा क्षत्रियमडलम् ॥३६७॥
 कृत्स्नां भूमिं कश्यपाय दत्त्वा शान्तिमृषावद । त्रेतायुगे दाशरथिर्भत्वा रामोऽहमव्ययः ॥३६८॥
 उत्पत्स्ये पररा भक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मां पुनः । मनेजः पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया कृतम् ॥३६९॥
 तदा तपश्चरैष्टोके लिष्ट त्वं ब्रह्मणो दिनम् । हन्पुङ्गवाऽन्तर्द्वे देवस्तथा सर्वं मया कृतम् ॥३७०॥
 स एव विष्णुस्त्वं राम जालोऽमि ब्रह्मणाऽर्पितः । मयि स्थितं तु त्वत्तेजस्त्वयैव पुनराहृतम् ॥३७१॥

हे स्वामिन् ! हम एक गुणवाने तथा आप अनेक गुणवान हैं । रघुवंशी लोग गौ, काह्मण, देवता तथा स्त्रीभार
 वाह्य नहीं उठाते ॥ ३५४ ॥ मैंने और इन सबने आपके चरणोंमें जावन अर्पण कर दिया है । आप जैसा चाहें
 वैसा करें । यदि चाहें तो भार डालें, परन्तु मैं काह्मणके साथ युद्ध करारि नहीं करूँगा ॥ ३५५ ॥ रामके
 ऐसा कहतेपर क्षत्रियोंके नाशकस्वरूप जामदग्न्य (परशुराम) को युद्ध देखकर वगुधा भांपने लगी ।
 चारों ओर अंधकार आ गया तथा सप्तों समुद्र भुषित हो उठे । तब दाशरथि वर रामन श्री परशुरामको
 मोक्षसे देखकर उनके हाथसे बाण छान लिया और तैरती चट्टा तथा मोटेमसे बाण दिक्काल और उसपर चढ़ा
 तथा वज्रपूर्वक संचकर मार्गव परशुरामसे कथने लगे हे ब्रह्मन् ! मेरी बात सुनिए और मुझे लक्ष्य
 बताइए । मेरी बाण जाली नहीं जा सकता ॥ ३५६-३५७ ॥ क्षीघ्र ही मुझे या तो लोकेको विद्ध करनेकी
 आज्ञा दीजिए अथवा अपने दो चरणोंको । रामके इस वचनको सुनकर विकृतमुख होते हुए परशुरामने
 पूर्व धृत्वांतकी स्मरण करते हुए कहा-हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! मैं आपको जानकी उत्पत्ति,
 स्थिति तथा प्रलयके कारणस्वरूप पुराणपुरुष साक्षात् परमेश्वर विष्णु समझता हूँ । वक्ष्यनमे मैंने गोमहा-
 तीर्थमें जाकर श्राद्धंवनुपकारी विष्णुभगवानुको, जिसके एक अंशसे मैंने संसारमें भूभार हर्ण करने तथा
 कार्तवीर्यको भारनके लिए अक्षतार लिया है, उन्हें अपने तपसे प्रसन्न किया । तब प्रसन्नमुख होकर शक-
 चक्रमदापघधरो उन देखतान मुझमें कहा ॥ ३६०-३६१ ॥ श्रीभागवान् बोले - हे ब्रह्मन् ! तप करना छोड़कर तू
 उठ खड़ा हो । मैंने तेरे तपोवज्रको जान लिया है । मेरे चिदंशसे युक्त होकर तू हृदयश्रेष्ठ तथा अपने पिताको
 मारनेवाले कार्तवीर्यको मार । जिसके लिए तूने तपका परिश्रम किया है । बादमें इसकीस कर क्षत्रिय-
 समुदायका नाश करके समस्त पृथिवी कश्यपको दान देकर शान्त हो । पश्चात् त्रेतायुगमें मैं अविनाशी
 दाशरथी राम होकर उत्पन्न होऊँगा । तब तू परम भक्तिसे मुझे देखेगा । उस समय मैं तुझे दिया हुआ
 अपना तेज लौटा लूँगा ॥ ३६६-३६८ ॥ तदनन्तर ब्रह्मके एक दिन तक तू तप करता हुआ संसारमें

अथ मे सकल जन्म प्रतीतोऽसि मम प्रभो । नमोऽस्तु जगतां नाथ नमस्ते भक्तिभावन ॥३७२॥
 नमः कारुणिकानत रामचन्द्र नमोऽस्तु ते । देव घघन्कृतं पुण्य मया लोकजिगीषया ॥३७३॥
 तन्मत्वं नव बाणाय भूयाद्राम नमोऽस्तु ते । ततो मुक्त्वा शरं रामस्तन्कर्म भस्ममान्करोत् ॥३७४॥
 ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः करुणामयः । जामदग्न्यं तदा प्राह वरं वरय चेति मः ॥३७५॥
 ततः प्रीतेन मनसा भार्गवो राममब्रवीत् । यदि मेनुग्रहो राम तत्रास्ति मधुसूदन ॥३७६॥
 त्वद्भक्तमगम्बन्त्पादे मम भक्तिः सदाऽस्तु वै । तथेति राघवेणोक्तः परिक्रम्य प्रणम्य तम् ॥३७७॥
 पूजितस्तदनुज्ञातो महेंद्राचलमन्त्रगात् । राघवेण जिता देवाः सगर्वो राघवो महान् ॥३७८॥
 महस्त्रबाहुना बद्धः सोऽर्जुनो भार्गवेण हि । इतः क्षणेन समरे सोऽद्य श्रीभार्गवोऽपि च ॥३७९॥
 जितस्त्वदनुपा बाणमोचनाद्राघवेण हि । एवं श्रीरामचन्द्रस्य पौरुष किं वदाम्यहम् ॥३८०॥
 अथ राजा दशरथो राम मृतमिवागतम् । दृढमालिङ्ग्य हर्षेण नेत्राभ्यां जलमुत्सृजन् ॥३८१॥
 ततः प्रीतेन मनसा स्वस्थचित्तः पुनर्न ययौ । अयोध्यायां मुमन्त्रोऽपि नृप श्रुत्वा समागतम् ॥३८२॥
 नगरीं शोभयामास पताकाञ्चजतोरणैः । वारणेन्द्र पुरस्कृत्य रामं प्रत्युद्ययौ त्रयात् ॥३८३॥
 अथो नदन्मुखाद्येषु राजा पुत्रैः सुहृज्जनैः । विवेश नगरं पौरैः वन्द्यन्मृत्यादिक पथि ॥३८४॥
 रामादयः स्वपत्न्या ते गजमस्था ययुः पुरीम् । नन्दतुर्वागनायथ तृष्टुर्मागधादयः ॥३८५॥
 एवं राजा गृहं गत्वा बालकैः स्वीयमद्यनि । रमापूजाः कारयित्वा ददौ दामान्पनेकशः ॥३८६॥
 तदाऽलङ्कारवस्त्रार्थैः सुहृदः पार्थिवादयः । रामादीन्पूजयामागुस्तथा दशरथ नृपम् ॥३८७॥

रह । ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये । मैं भी सब वस्त्र हाँ किया ॥ ३७० ॥ हे राम ! वहाँ आप ब्रह्मसे प्रीति होकर पृथिवीपर अवतीर्ण हुए हैं । मैं तनम रियत अपना राज आपन ही फिर आज बाहरण कर लिया है ॥ ३७१ ॥ आपके दर्शनमें मेरा जन्म सफल हो गया । हे भक्तिभावन ! हे जगन्नाथ ! हे करुणाशाल ! हे रामचन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे देव ! लोकोको जीतनेकी इच्छासे मैंने जो जो कर्म किए हैं, वे सब आपके बाणको समर्पित हैं (अर्थात् उन्हें आप अपने बाणका लक्ष्य बनाकर नष्ट कर दें) । तब रामने बाण छोड़कर उनके कर्मोंका भग्म कर दिया ॥ ३७२-३७४ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होकर करुणामय भगवान् श्रीरामने परशुरामसे कहा कि तुम वर मागो, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ ॥ ३७५ ॥ यह सुनकर प्रसन्न मनस भार्गवने रामसे कहा—हे मधुसूदन राम ! यदि आप मेरपर अनुग्रह रमते हों तो मुझे सदा आप अपने भक्तोंका संग तथा अपने विषयमें निर्मल भक्ति प्रदान कर । तब रामचन्द्रजीने 'सवागु' कहा । तदनन्तर परशुराम उन्हें नमस्कर तथा परिक्रमा करके और आज्ञा लेकर महेंद्राचलकी ओर चल दिये । जिस राघवने देवताओंको जीता था, उस भगवं महान् राघवका सहस्रबाहु अर्जुनने बाँध लिया था । उसी अर्जुनको परशुरामने युद्ध करके क्षणभरम मार डाला था । उन परशुरामको भी रामने उन्हींके दिये हुए घनुषपर बाण चढ़ाकर जीत लिया । हे पार्वती ! इस प्रकार रामके पुरुषार्थका वर्णन मैं कहता हूँ । उनके वल-वार्थका अन्त नहीं है ॥ ३७६-३७७ ॥ पश्चात् राजा दशरथ रामको मरकर लोट हुए भी तरह आर्दिगन करके हर्षके आँसू बहाने लगे ॥ ३७८ ॥ बादमें प्रसन्न मन होकर वे स्वस्थ चित्तमें अयोध्यापुर की चल पड़े । उधर अयोध्याम मुमन्त्रने जब राजा दशरथके आगमनकी बात सुनी तो उन्होंने नगरका पताका, ध्वजा तथा तोरणसे खूब सजाया और हाथी लेकर रामको लेनेके लिए आगे आये ॥ ३८२, ३८३ ॥ राजा दशरथने पुत्र-मित्र तथा नगरनिवासियोंके साथ रामसे नृत्य आदि देखन हुए बाजेगायके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥ ३८४ ॥ राम आदिने भी अपनी स्त्रियोंके साथ हर्षियोंशर बँडकर पुरीमें प्रवेश किया । वेधवार्यें नृत्य करने लगीं तथा भाट आदि स्तुति करने लगे ॥ ३८५ ॥ राजाने घर जाकर बालकोंमें लक्ष्मीका पूजन करवाया और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ३८६ ॥ पश्चात् सुहृदों तथा राजाओंने वस्त्र-अलङ्कारसे राम आदिकी और राजा दशरथकी पूजा की ॥ ३८७ ॥

दशरथोऽपि तान्सर्वान् पूजयामास वैभवं । ततस्ते सुहृदः सर्वे नृपाश्च स्वस्थलं ययुः ॥३८८॥
प्रीत्या युष्माजितं राजा स्थापयामास स्वांगिकम् । रामाद्या रमयामासुः स्वस्वदारैः स्वसशसु ॥३८९॥

पार्वत्युवाच

श्रीविष्णोस्तु चिदंशेन जामदग्न्यस्त्वया स्मृतः ॥३९०॥

तद्वच्यं राधवः किं नुद मे संशयं प्रभो ।

श्रीशिव उवाच

अष्टावंशेन विधृता अवताराश्च विष्णुना ॥३९१॥

रामकृष्णावतारौ च पूर्णरूपेण तौ धृतौ । वरिष्ठौ सकलेश्वेवावतारेषु हि तावुमौ ॥३९२॥

तयोरेपि वरः पूर्वः सत्यसधो जितेन्द्रियः । ज्ञेयो रामावतारो हि नानेन सदृशः परः ॥३९३॥

कृष्णः कृष्णरुचिर्ज्ञेयः श्रीरामो रुक्मसंरुचिः । एवं गिरीन्द्रजे प्रोक्तं सीतायाश्च स्वयंवरम् ॥

अभ्य सर्गस्य श्रवणान्मंगलं लभ्यते नरैः ॥३९४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितातमंते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे सीतास्वयंवरो नाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

चतुर्थः सर्गः

(रामका शत्रु राजाओंके साथ युद्ध तथा विष्णुको बुन्दाका शाप)

श्रीशिव उवाच

अथ सीतायुतः श्रीमान् रामः साकेतसंस्थितः । बुभुजे विविधान् भोगान् राजसेवापरोऽभवत् ॥ १ ॥

शरत्कालाश्विने मासि जनकेन स्वमन्त्रिणः । आह्वानाय च राजानं प्रेषितास्त्वरितं ययुः ॥ २ ॥

तानागतान्दशरथः शीघ्रं सत्कृत्य सादरम् । पप्रच्छागमने हेतुं तेऽपि नत्वा तभूचिरे ॥ ३ ॥

दीपावल्पुत्सवार्थं त्वां स कुटुम्बं समन्त्रिणम् । पौरजानपदैः साकमाह्वयामास ते सुहृत् ॥ ४ ॥

तत्तेषां वचनं श्रुत्वा दूतानाह्वयन्नुपः । कथ्यतां नगरे राष्ट्रे गमनं मिथिलां प्रति ॥ ५ ॥

राजा दशरथने भी उन सबका अनेक विभवोंसे सत्कार किया । बादमें वे सब सुहृद् तथा राजा लोग अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ३८८ ॥ किन्तु राजाने प्रीतिपूर्वक युष्माजित्को रोक लिया । राम-लक्ष्मण तथा भरत आदि भी अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ जाकर अपने-अपने महलोंमें रमण करने लगे ॥ ३८९ ॥ पार्वतीजी कहने लगीं—हे शिवजी ! श्रीविष्णुके चिदंशसे परशुरामजीका अवतार आपने बताया और उसीसे आपने रघुपति रामचन्द्रजीका भी अवतार बताया है । फिर इन दोनोंमें क्या अन्तर है ? सो कहकर मेरी शङ्का दूर कीजिये । श्रीशिवजीने उत्तर दिया कि विष्णुभगवानने अपने अंशसे कुल आठ अवतार धारण किये थे । उनमेंसे राम तथा कृष्णका पूर्ण अवतार था । सब अवतारोंमें ये दो अवतार श्रेष्ठ थे ॥ ३९०-३९२ ॥ उन दोनोंमें भी सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय रामावतार उत्तम था । रामके समान और कोई नहीं था ॥ ३९३ ॥ कृष्णको कृष्णरुचिवाले तथा रामको रुक्मरुचिवाले जानो । इस प्रकार शिवजीने गिरीन्द्रतनया (पार्वती) को सीताका स्वयंवर कह सुनाया । इस सर्गको सुननेवाले मनुष्योंको मङ्गल लाभ होता है ॥ ३९४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितातमंते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये 'ज्योत्स्ना'-भाषाटीकायां सारकाण्डे सीतास्वयंवरः नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे देवि ! श्रीमान् राम सीताके साथ अयोध्यामें विविध राजभोगोंका सुख भोगने लगे ॥ १ ॥ शरत्कालके आश्विन महीनेमें राजा जनकने अपने मन्त्रियोंको महाराज दशरथको बुलानेके लिये भेजा । वे शीघ्र अयोध्या जा पहुँचे ॥ २ ॥ राजा दशरथने उनका आदर-सत्कार करके आनेका कारण पूछा । मन्त्रियोंने नमस्कार करके कहा—॥३॥ आपके मित्र राजा जनकने सकुटुम्ब आपको मन्त्रियों, पुत्रवासियों तथा

मुमुहूर्ते ततो राजा हस्त्यश्चरथपत्तिभिः । पौरजनपदैः शक ययौ कगित्रिसजितः । ६ ॥
 गतः पृष्ठे समाजग्मुर्गजोपरि विराजिताः । रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नास्ते स्वलंकृताः । ७ ॥
 कीमत्याद्या राजदाराः स्नुषाभिस्ताः पृथक् पृथक् ग्नमाणिक्यमुक्तादिशोभितासु वरामु च । ८ ॥
 कर्णेषु समार्माना वेष्टिता वेत्रपाणिभिः । धातुकाभिः स्वदार्माभिर्यपुर्वस्त्रादिभूषिताः । ९ ॥
 आगतं नृपतिं श्रुत्वा जनकः पौरवासिभिः । प्रन्युज्जगाम हर्षेण निनाय नगरीं प्रति । १० ॥
 शयधोपनिनादश्च दुन्दुभानां महास्वनैः । वारांगनानां नृत्याद्यैर्गायकानां च गायनैः । ११ ॥
 मार्गे मार्गे महासौधारूढस्त्राणां कदम्बकैः । पुष्पवृष्टिविवर्षाभिर्ययौ नृपगृहं नृपः । १२ ॥
 नतो गृहाणि रम्याणि पुरितान्यभवाग्निभिः । प्रविवेश नृपश्रेष्ठो जनकेनातिमानितः । १३ ॥
 नतो नानासमुत्साहमिष्टार्कनृत्यगायनैः । वस्त्रभरणैः सर्वान् जामातश्च विशेषतः । १४ ॥
 मणिरत्नादिदीपश्च मुहुर्नीलगजनैरपि । जनकः पूजयामास दीपावलीं महादिने । १५ ॥
 दीपोत्सवमहापुण्यवर्लिगज्य प्रवर्तते । आनन्दः सर्वलोकानां मंगलानि गृहे गृहे । १६ ॥
 अभ्यगोद्वर्तनाद्यश्च वरपक्षाभमोजनैः । गोदामदासीदानैश्च हस्त्यश्चरथपत्तिभिः । १७ ॥
 चकार तुष्टान् जामातान् जनको नृपतिं तथा । नृपपत्नी स्वदुहितृगोप्यास्थादिकान् क्रमात् । १८ ॥
 ततः प्रस्थानमकरोत्पुंगुं दशरथो नृपः । ततो राजा दशरथः सैन्येन परिवेष्टितः । १९ ॥
 ययौ शनैः शनैर्मार्गं सुहृन्मन्त्रिपुरःसरः । एतस्मिन्नतरे मार्गे सीतार्थं धनुषा पुरा । २० ॥
 मग्नमाना नृपतयः पूर्वैरमनुस्मरन् । अमरुपाताः ससैन्यास्ते रुढधुर्नृपतिं पथि । २१ ॥

दशवासियोंके सहित दीवालीके उत्सवपर बुलाया है । ४ ॥ उनका यह वचन सुनकर राजान् दूतों द्वारा मिथिला चलनेका समाचार सारे गाँवों तथा नगरोंमें कहला दिया । ५ ॥ फिर शुभ मुहूर्त देखकर राजा ब्रह्मारुह, गजारुह तथा पैदल सैनिकाको साथ लेकर नगर तथा राष्ट्रके लोगोंके साथ हाथीपर सवार होकर चले । ६ ॥ राजाके पीछे सुन्दर झलकार धारण करके हाथीपर सवार होकर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चले । ७ ॥ उनके पीछे कौसल्या आदि राजाकी स्त्रियाँ भी अपनी-अपनी पुत्रवधुओंके साथ रत्न मणिभूषण-आदी से सुशोभित उत्तम हथिनियोंपर अलग-अलग सवार हो बैतधारी सिपाहियों, बाइयों तथा दासियोंसे घिरी हुई वस्त्र आदिसे भूषित होकर चल पड़ीं । ८ ॥ ९ ॥ राजा दशरथका आगमन सुनकर राजा जनक पुरवासियोंको साथ लेकर स्वागत करनेके लिए गया और राजा दशरथको नगरमें ले आया । १० ॥ रास्तेमें जगह-जगह बाँटोंका घोषनाद और नगाहोंका नुमूल निनाद होने लगा, वारांगनाएँ नाचने लगीं, गायकोंके गाने हान लगे तथा बड़े-बड़े महलकी बटारियोंपर स्थित स्त्रियोंके झुण्ड फूलोंको बौछार करने लगे । इस प्रकार राजा दशरथ राजभवनमें पहुँचे । ११ ॥ १२ ॥ पश्चात् जनकसे सम्मानित होकर अन्न-जल आदिसे परिपूर्ण भवनोंमें पधारे । १३ ॥ बादमें विशेषरूपसे राजा जनकने सब जामाताओंकी विविध उत्सवोंसे, मिष्टान्नसे, नृत्यसे, गीतसे, वस्त्रसे, झलकारसे तथा मणिरत्नमय दीपकोंका आरतीसे दीपावलीके शुभ दिन बारम्बार पूजन तथा सत्कार किया । १४ ॥ १५ ॥ दीपोत्सवके महापुण्यसे राजा बलिका राज्य आरम्भ हुआ था । इससे सब लोगोंको आनन्द हुआ तथा घर-घर मंगल होने लगा । १६ ॥ राजा जनकने उन जामाताओंके शरीरमें तेल और चन्दन आदि लगा तथा गुलाबजल छिड़ककर इत्र आदि लगाया और उन्हें सुन्दर पकवान जिमा तथा हथी, घोड़े, रथ, गाएँ, प्यादे, दास तथा दासियाँ देकर जमाइयों और राजा दशरथको सन्तुष्ट किया । तदनन्तर क्रमशः राजाको, स्त्रियोंको, अयोध्यानिवासियोंको और अपनी स्त्रियोंको भी राजा जनकने यथञ्च वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट किया । १७ ॥ १८ ॥ तदनन्तर जब कि राजा दशरथ राजाओं, मन्त्रियों, सेना तथा मित्रोंके साथ धीरे-धीरे अयोध्याको जा रहे थे । उसी समय उन राजाओंने जिनका कि सीतास्वयम्बरमें मानभंग हुआ था, उस बिरका स्मरण करके असह्य सेनाओंके साथ आकर राजा दशरथको घेर लिया । उनको देख

तान्दृष्ट्वा नृपतीश्वरि किमेतदिति विह्वलः । मन्त्रिभिर्मन्त्रयामास जनकः स्वजनरपि ॥२२॥
 एताम्मन्त्रनर रामः श्रुत्वा चिन्ताणवे निजम् । निमग्नं पितरं शीघ्रं यया लक्ष्मणसंयुतः ॥२३॥
 नन्वा दशरथ रामः किञ्चिन्नम्र इदं जगौ । तान राजन् कर्तव्या चिन्ता मति मयि त्वया ॥२४॥
 क्षणादत्र बधिष्यामि पश्य न्व कौतुकं मम , ततो रामवचः श्रुत्वा राजाऽऽलिख्य रघूत्तमम् ॥२५॥
 प्राह पद्मनाभो बालस्त्व कथं योद्धामच्छसि । अरण्ये सकुटुम्बोऽहं वेष्टितोऽस्मि नृपाधर्मः ॥२६॥
 अहमत्र गर्मिष्यामि योद्धुं रक्षन् बहिर्निमम् । तत्तानवचनं श्रुत्वा रामस्तं पुनरब्रवीत् ॥२७॥
 यदा मे कुठितां शक्तिं पश्यामि न्व रणांगणे । तदा मे कुरु साहय्यं तावदत्र स्थिरो भव ॥२८॥
 म्यां बहिर्नीं सकुटुम्बां तात न्व रक्ष मद्दिगम् । इत्युक्त्वा पितरं नन्वा मज्जीकृत्य शरासनम् ॥२९॥
 जगाम रथमारूढो लक्ष्मणोऽपि तमन्वगात् । तां दृष्ट्वा भरतश्चाथ शत्रुघ्नोऽपि जगाम सः ॥३०॥
 तान्दृष्ट्वा दशसाहस्रीं राजसेनामचोदयत् । ततस्ते पार्थिवाः सर्वे रथस्थं तं रघूत्तमम् ॥३१॥
 निरीक्ष्य दशयामासुः स्वसेनायां परस्परम् । समागतोऽयं श्रीरामः स्वपितृस्यन्दनस्थितः ॥३२॥
 एष वै सुमहच्छ्रीमान् विदर्यः मम्यकाशते । विराजन्त्युज्ज्वलस्कन्धः कोविदारथ्वजो रथे ॥३३॥
 दशरथाज्ञया तस्य रथे शस्त्राधपूरिते ध्वजवद्वपताकोच्चकोविदारे स्थितस्त्वयम् ॥३४॥
 एव वदन्तस्ते सर्वे रथेयोद्धुः समाययुः । ततोऽभवन्महद्युद्धं धीर नृच च परस्परम् ॥३५॥
 अस्त्रः शस्त्रमिन्दिपालः शतध्माभिः परस्परं । रामस्य सैनिकान् हुक्त्वा राजानो गममन्वयुः ॥३६॥
 ते वर्षपुर्महाशस्त्रबाणव्याप्य दिगम्बरम् । तान्दृष्ट्वा नृपतीन् मवान् राममेवाभिसम्मुखान् ॥३७॥
 लक्ष्मणः प्राद्वच्छाद्य भरतोऽपि च शत्रुदा । स्वामितारकवद्भोरमार्सीद्युद्धं सुदारुणम् ॥३८॥
 ततो नृपतयः सर्वे शस्त्रार्धैर्मरत तदा । ते विध्वा भूच्छितं चक्रुः स्यंदनात्पतितो ध्रुवि ॥३९॥

ता घबराकर राजा दशरथ मन्त्रियो तथा स्वजनाको पास बुलाकर विचार करने लगे कि यह क्या बात है ? ॥ १९-२२ ॥ अपने पिताको चिन्तासमुद्रम डूबा मृनकर राम लक्ष्मणके साथ उनके पास गया ॥ २३ ॥ पिता दशरथको नमस्कार करके राम नम्रतापूर्वक कहने लगे—हे तात ! हे राजन् ! मेरे रहते हुए आपका चिन्ता नहीं करना चाहिए ॥ २४ ॥ मे क्षणभरम इन सबको मार डालूंगा । आप मेरा कौशल देखिये । रामके वचनको मृनकर राजाने उनको आलिंगन करके कहा हे राम . छ वर्षका बालक तू क्या युद्ध करेगा ? इस अरण्यम सकुटुम्ब मुझको इन नीच राजाओंत आ घरा है । इसलिए मैं ही इनको मारूंगा और तू सेनाका रक्षा कर । पिताके इस वचनको मृनकर राम उनमें फिर कहने लग—॥ २५-२७ ॥ जब आप मेरा शक्ति को रणाङ्गणमे कुष्ठित हात देख, सब मेरी सहायता करिएगा । तबतक आप मेरे कहनेसे यहीं रहकर सकुटुम्ब अपना सनाकी रक्षा करें । ऐसा कहकर रामने पिताको नमस्कार किया और धनुषको ठीक करके रथपर चढ़कर चल दिया । उनके पीछे लक्ष्मण भी गये । उन दोनोंको जाते देख भरत और शत्रुघ्न भी उनके साथ चल दिया ॥ २८-३० ॥ उन सबको जाते देखकर राजा दशरथने दस हजार सैनिकोंकी सेना उनके साथ भेजी । उधर सब राज रथस्थित रामको जाते देख अपनी सेनाम एक दूसरेका दिखाने लगे कि यह राम अपने पिताके रथपर चढ़कर आ रहा है । यह बड़ा तजस्वी है । विशाल शास्त्रावान्ने पेडके समान ऊँच तथा शोभित कन्धेवाला राम रथम कोविदार (कम्बुमार या रत्नकाञ्चन) की ध्वजा लगाये हुए अपने पिताका आशास उनके ही रथपर सवार होकर आ रहा है । ऐसा कहकर वे सब राजे युद्ध करनेके लिए रथ लेकर चले । पश्चाद् परस्पर बड़ा भारी युद्ध होने लगा ॥ ३१-३५ ॥ वे सब एक दूसरेपर अस्त्र, शस्त्र, तीर, तीप तथा फरसे धलाने लगे । वे राजे रामके सैनिकोंको छोड़कर रामपर शपटे ॥ ३६ ॥ वे लोग आकाशको व्याप्त करके बड़े-बड़े शस्त्रों तथा बाणोंकी वर्षा करने लगे । उन सब राजाओंको अकंले रामके साथ युद्ध करते देख लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न भी दौड़ पड़े और उनमें तारकासुर तथा कालिकेयकी तरह भयानक युद्ध होने लगा । तब सब

भरतं पतितं दृष्ट्वा शत्रुघ्नं विन्यधुः शरः । तं चापि विगृह्य कृत्वा द्रुतुर्लक्ष्मणं नृपाः ॥४०॥
 बवर्षुनिशितैर्वाणश्चक्रुस्तं व्याकुलं रणे । तथैव राघवं चापि शरैराच्छादयन्नुपाः ॥४१॥
 ततः भीरामचन्द्रोऽपि लीलया समरागणे । पश्यन्मु जालरथश्च कौमल्याद्यासु मातृषु ॥४२॥
 सीतया भ्रातृपत्न्याषु पित्रा मन्त्रिकुलेष्वपि । टणन्कृन्व महत्चापं धायव्यामण नान्नुपान् ॥४३॥
 शुष्कपर्णवद्दुग्धं प्राक्षिपदान्धरोधमि । मोहनास्त्रेण कृपान् हि मोहयामास राघवः ॥४४॥
 लुलुंठ सकलं मैन्यं हस्त्यश्चरथमंकुलम् । ततो मूर्छितमालोक्य मग्नं कंकयी रणे ॥४५॥
 करिण्याः शीघ्रमुत्प्लुत्य शुशोचाकं निधाय तम् । ततो दशरथश्चापि कौमल्याद्या नृपस्त्रियः ॥४६॥
 सात्वयिन्वाऽथ तान् रामः सौमित्रि प्राह वेगतः । इनां विदूरे सौमित्रे मुद्रलस्य तपोनिधेः ॥४७॥
 आश्रमोऽस्ति हि तत्र त्वं गन्वा बह्लीः शुभावहाः । सर्जविन्यादिकाः सर्वाः शीघ्रमानय लक्ष्मण ॥४८॥
 मुनेस्तपःप्रभावेण बहवः सति तत्र वै । तथेति लक्ष्मणो गत्वा स्पदनस्थस्त्वरान्वितः ॥४९॥
 अवलम्ब्य रथादीरः सविवेशाश्रमं मुनेः । निवारितः स बहुर्कैः समाधिविग्ने मुनेः ॥५०॥

यात्रां कृत्वा शुभा बह्लीः प्राप्त्यसे त्वं न चान्यथा ।

कालातिक्रमशीत्या स लक्ष्मणोऽपि रघूत्तमम् ॥५१॥

वृत्तं निवेदयामास पुनस्तं राघवोऽनर्वात् । निवारयित्वा बहुकान् विना शस्त्रैस्त्वरान्वितः ॥५२॥
 आनय त्वं शुभा बह्लीर्मांशकां च मुनेः कुह । सोऽपि राम तया गत्वा निवार्य बहुकान् क्षणात् ॥५३॥
 बलात्कारेण वा बह्लीर्गृहीत्वा राममागतः । भरतं जीवयामास विशल्यं कृत्य सानुजम् ॥५४॥
 ततः समुत्थितं दृष्ट्वा कंकयी भरतं मुदा । संतोषं परमं चक्रे कंकयी पितरं तदा ॥५५॥
 राघवं सा समालिख्य भरतं परिपस्वजे । ततो राजाऽतिसतुष्टः समालिख्य रघूत्तमम् ॥५६॥

राजाओंने शत्रुघ्नसे भरतको जीवकर मूर्छित कर दिया और वे रथसे गिर पड़े ॥ ३७-३९ ॥ भरत-
 को पृथ्वीपर गिरा देखकर राजाओंने शत्रुघ्नको भी विद्व किया । उनको भी गिराकर वे राज
 लक्ष्मणको और दौड़े ॥ ४० ॥ उनपर भी बाणोंको वर्षा करके व्याकुल कर दिया । इसा प्रकार राघव
 रामको भी राजाओंन बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ ४१ ॥ बादमें भारामचन्द्रने समरके मैदानमें
 पाल्कियोकी सिडकियोमें लगी हुई चिकामसे देखतो हुई कौसल्या आदि माताओंके, सीताके तथा
 अपने भाइयोकी स्त्रियोके समक्ष राजाओं और मन्त्रियोंके सामने अपने बड़े भारी धनुषका टकोर करके उस-
 पर धायव्यास्त्र बढ़ाकर उससे उन राजाओंको सूखे पत्तोंकी तरह उड़ाकर समुद्रके किनारे फेंक दिया । बाको
 लोगोंको रामने माहुरारथसे मूर्छित कर दिया ॥ ४२-४४ ॥ हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदलोंकी समस्त सेना-
 को जमीनमें लिटा दिया । रणमें भरतको मूर्छित देख केकयी हृषिनीसे उसरी और उनको राघवमें
 लकर विलाप करने लगी । तदनन्तर राजा दशरथ तथा उनकी स्त्रिये कौमल्या आदि भी विलाप करने
 लगी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ तब रामने सबको आश्वासन दकर कहा—लक्ष्मण ! यहाँसे कुछ दूरपर एक उपनिधि
 मुद्रलमुनिका आश्रम है । वहाँ जाकर तुम कल्याणकारिणी सर्जबनी आदि मूर्तियोंको ले आओ
 ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ मुनिक तपके प्रभावसे वहाँ अनेक प्रकारका अद्विष उगी हुई है । 'बहुत अच्छा' कहकर और
 लक्ष्मण रथपर चढ़कर शीघ्र मुनिके आश्रममें गये । वहाँके बहुचारियोंने उनको बूटिये लेनेसे
 रोका और कहा कि तुम मुनिके समाधिसे उठनेपर उनसे पूछकर ही बूटियें ले जा सकते हो—अन्यथा
 नहीं । समय बीत जानेके डरसे लक्ष्मणन आकर रामसे सब हाल कहा । रामने फिर कहा कि उन
 बहुकोको अस्त्रके बिना हाथसे हटाकर शीघ्र ही उन शुभ अद्वियोंको ले आओ । मुनिसे मत डरो । रामकी
 आज्ञा पाकर वे वहाँ गये तथा बलप्रयोगके बिना ही बहुकोको हटाकर उन अद्वियोंको लेकर रामके पास
 लौट आये । तब रामने भरतके शरीरसे बाण निकालकर उन्हें जड़ोंसे आबित किया । भरतको स्वस्थ देखकर
 कंकयी बहुत प्रसन्न हुई । उसने रामका आलिङ्गन करके भरतको छातीसे लगा लिया । राजाने भी प्रसन्न

हर्षान्नानोन्मत्तस्तत्र चकार गुरुणा द्विजैः । तनस्ते वदवः सर्वे हाहाकृत्य मुनीश्वरम् ॥५७॥
 वृष निवेदयामासुः ममाधिविगमे मुनेः । स मुद्रलोऽपि तच्छ्रुत्वा विस्मयेनाब्रवीद्वदून् ॥५८॥
 को लक्ष्मणः किमर्थं कस्याज्ञया सोऽहरद् द्रुमम् । विदित्वा मकल वृक्षमागच्छध्वं त्वरान्विताः ॥५९॥
 तथेति ते दशरथं शब्दा प्रोचुस्त्वगान्विताः । कस्त्वं किमर्थमानीता बल्ल्यो लक्ष्मणहस्ततः ॥६०॥
 तान्दृष्ट्वा क्रोधमयुक्ताद् राजा चिन्तातुरोऽब्रवीत् । अहं दशरथो बल्ल्यो भरतार्थं ममाज्ञया ॥६१॥
 आनीता मुनये सर्वे ब्रुध्व नतिपूर्वकाः । अहमप्यागमिष्यामि मुनिं सांत्वयितुं जवात् ॥६२॥
 ततस्ते मुनये सर्वे नृनामाद्यवर्णयन् । श्रुत्वा रामस्य पितर क्रोधं सहस्य वेगतः ॥६३॥
 दर्शनार्थं मतिं चक्रं तावद्दृष्टो नृपः पुरः । वदध्वा करसपुटं तं प्रणमतं नृपोत्तमम् ॥६४॥
 प्रार्थयन्तं समुन्थाप्य पूजयामास सादरम् । रामाद्या नृपपुत्राश्च कौसल्याद्या नृपस्त्रियः ॥६५॥
 प्रणम्याथ मुनिं स्तुत्वा तस्थुर्मुद्रलभार्यया । सुमत्या पूजिताः सर्वा राजदारा विशेषतः ॥६६॥
 ततो दशरथः प्राह मुनिं स्तुत्वा पुनः पुनः । मयाऽपराधितं राजा क्षम्यतां तत्त्वया मुने ॥६७॥
 मुनिर्दशरथं प्राह क्षुपकारो महान् कृतः । नोचेत्कथं दर्शनं मे ध्यानस्थस्य सुतस्य ते ॥६८॥
 श्रीरामस्य समीपस्य नृपेयस्य हि मायया । इति तस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तुष्टं मुनीश्वरम् ॥६९॥
 उवाच नृपतिर्नित्वा किञ्चिन्प्रष्टुमना मुनिम् । श्रुत्वा नृपस्य स मुनिर्हृदयं प्रष्टुकामुकम् ॥७०॥
 एकांते तुलसीखण्डं नीत्वा तं नृपमेव सः । अप्रच्छ किं ते वांछाऽस्ति वदस्व कथ्यते मया ॥७१॥
 विसृज्य दशरथः श्रीरामस्य हि भावि यत् । दिनाहितं सविस्तारं ज्ञातुमिच्छे मुनीश्वर ॥७२॥
 नृपस्य वचनं श्रुत्वा राजान मुनिरब्रवीत् ।

मुद्रल उवाच

साभान्नारायणो विष्णुः सर्वव्यापी जनार्दनः ॥ ७३ ॥

हाकर रामका हृदयसे लगाया । उस समय उन्होंने आनन्दस गुप्त तथा ब्राह्मणों द्वारा अनेक उत्सव कराये ।
 उच्चर समाधिसे निवृत्त होनेपर सब बटुकोने हाहाकार करके मुनिको सब हाल सुनाया । सब मुद्रल मुनि
 विस्मित होकर बटुकोसे कहने लगे—॥ ४९-५८ ॥ जाओ, यह लक्ष्मण योन है, किस लिये और किसके
 कहनसे बूटियाँ ले गया है । शीघ्र इस बातका पता लगाकर आओ ॥ ५९ ॥ 'अच्छा, कहकर उन्होंने
 दशरथके पास जाकर पूछा कि तुम कोन हो और तुमने लक्ष्मणके द्वारा जड़िये क्यों मँगवायी हैं ? ॥ ६० ॥
 उन्हें क्रुद्ध देखकर राजा चिन्तापूर्वक कहने लगे कि मैं राजा दशरथ हूँ । लक्ष्मण मेरे कहनसे भरतके लिये
 जड़िये ले आया है । मेरा नमस्कार कहकर मुनिसे यह सब वृत्तान्त कह दें । मैं भी मुनिको समझानेके
 लिये शीघ्र ही आ रहा हूँ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ लोटकर बटुकोने मुनिका राजाका नाम आदि कह सुनाया । रामके
 पिताका नाम सुनाता मुनिने क्रोधको रोक तथा शीघ्र जाकर राजासे मिलनेका विचार किया ही था कि
 इतनेमें राजा दशरथ स्वयं आकर सामने खड़े हो गये और हाथ जोड़ प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे ।
 सब खड़े होकर मुनिने उनकी सादर पूजा की । राम आदि राजाके पुत्र तथा कौमल्या आदि राजाकी
 स्त्रिये भी मुनिका प्रणाम करके उनका स्तुति करना हुई खड़ी हो गयी । मुद्रल मुनिका भार्या सुमतिने
 विष्णवरूपसे राजाकी स्त्रियाँका सत्कार किया ॥ ६३-६६ ॥ राजाने बारम्बार स्तुति करके मुनिसे कहा—हे मुनि !
 मुझसे जो अपराध हुआ है । उसको क्षमा करें ॥ ६७ ॥ मुनिने महाराज दशरथसे कहा कि नहीं, तुमने
 मेरा बड़ा भारी उपकार किया है । नहीं तो ध्यानयोग्य और मायासे अनुध्यका रूप धारण किये हुए सीताके
 सहित आपके पुत्र रामका दशन मुझे कैसे मिलता ? मुनिके वचन सुन तथा उन्हें प्रसन्न देखकर राजाने
 नमस्कार करके उनसे कुछ पूछना चाहा । इतनेमें मुनि राजाके हृदयकी बात जान गये और एक ओर
 तुलसीकी झाड़ीमें ले जाकर वे स्वयं राजासे कहने लगे—हे राजन् ! कहो, तुम्हारी क्या पूछनेकी इच्छा
 है ? उसका उत्तर दूंगा ॥ ६८-७१ ॥ राजाने कहा—हे मुनीश्वर ! रामका अभिषेक कैसा है ? मैं उसका

भूमारहरणार्थाय तवापि वरदानतः । अवतीर्णोऽस्ति न्वत्तो हि तव पुण्यमहोदयान् ॥७४॥
 अधर्मस्य विनाशं च वृद्धिं धर्मस्य सादरम् । निर्दलनं हि दुष्टानां सज्जनानां च पालनम् ॥७५॥
 करिष्यति महानेप तव पुत्रो रघूरमः । दशवर्षमहम्नाणि दशवर्षशतानि च ॥७६॥
 करिष्यति महद्राज्यं गते त्वयि दिवं नृप । समद्वीपपनिश्चयं भविष्यति नृपो महान् ॥७७॥
 तौ तौ भविष्यतः पुत्रौ चतस्रश्च स्नुषास्तथा । चतुर्विंशतिपौत्राश्च पौत्र्यस्तु द्वादशैव हि ॥७८॥
 अमंख्याताः प्रपौत्राश्च भविष्यन्ति सुतस्य ते । कियद्दिनस्य वृंदाशायं भोक्तुं हि दंडके ॥७९॥
 गमिष्यति ततः पश्चान्महद्राज्यं करिष्यति । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा नृपः प्राह मुनिं पुनः ॥८०॥

दशरथ उवाच

का वृंदा कस्य मार्या सा कथं शप्नो हरिस्तया । तन्मत्रं विस्तरेणैव कथयस्व मुनीश्वर ॥८१॥

मुद्गल उवाच

पुग जलधरेणामाद्यद्वं श्रीशंकरस्य च । वृंदापानिग्रतबलाद्रक्षितं विष्णुना तदा ॥८२॥
 शान्त्वा तद्दृशितपथा पार्वत्या धर्षणादिना । जालधरपुरं गत्वा तदन्यपुटमेदनम् ॥८३॥
 पातिग्रन्थस्य संगाय वृंदायाश्चाकरोन्मनिम् । अथ वृंदाका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह ॥८४॥
 मर्तारं महिषारूढं तैलम्यक्त दिगंबरम् । दक्षिणाशागतं मुण्डं तममाऽप्यावृतं तदा ॥८५॥
 ततः प्रवृद्धासा शाला तं स्वप्न स्वं रिचिन्तती । कुवापि नालभच्छर्म गोपुगाटालभूमिषु ॥८६॥
 वनः सखीद्वययुक्ता नगरोद्यानमागता । वनाद्वनान्तरं यान्ता ददर्शानां च मीषणां ॥८७॥
 गश्मौ मिहवजादी दंष्ट्रानयनभीषणां । तौ दृष्ट्वा विह्वलाऽनीव पलायनपरा तदा ॥८८॥
 ददर्श तापमं शान्तं मश्चिष्यं मौनमास्थितम् । ततस्तन्कठमासज्य निजयाहुलतां मयात् ॥८९॥
 मुने मां रक्ष शरणमामनामिन्यभाषत । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा ध्यानं मुक्त्वा स वै मुनिः ॥९०॥

हित-अहित जानना चाहता है ॥ ७२ ॥ राजाका वात सुनकर मुनि मुद्गल कहते लगे—साक्षान् नारायण
 तथा सर्वव्यापी जनार्दन विष्णुभगवान् पृथ्वीका भार उतारने तथा पूर्वजन्ममें आपको वरदान देनेके कारण
 आपके पुण्य-प्रतापसे स्वयं अन्तरे है । ये अधर्मका नाश करके धर्मकी वृद्धि करेंगे । रामचन्द्रजी
 दुष्टका दण्डन करके सज्जनोवा । परम वरगो है नृप । आपके देशलोक चले जानपर ये दस हजार दस
 सौ वर्ष तक राज्य करेंगे । ये समष्टि पके अविगति और महान् राजा होंगे ॥ ७३-७७ ॥ इनके दो पुत्र
 और चार पुत्रवधुएँ होंगी । चौदहम पान और बारह पौत्रिय होंगी । आपके पुत्र रामके पत्नीते असंख्य
 होंगे । कुछ दिनोंक लिए ये दण्डकारण्यमें वन्द म प्राप्त शापका पुंडान जायेंगे । उसके बाद विशाल राज्य
 करेंगे यह सुनकर राजाने फिर मुनिसे कहा ॥ ७८-८० ॥ राजा दशरथ बोले वृंदा कौन थी तथा किसको
 स्वाया ? उसने भगवान्को क्यों शाप दिया ? हे मुनेश्वर ! यह सब विस्तारपूर्वक कहें ॥ ८१ ॥ मुद्गल बोले—
 दूर्वाकालमें जलधर नामका एक देव था । वृंदा उसका बड़ी पतिव्रता स्त्री थी । उसका पातिव्रतक वरसे वह
 जिन देवोंके साथ युद्ध करके भी नहीं हारा । तब भगवान् विष्णु पार्वतीसे उसका कारण जानकर उनके कथनानुसार
 जलधरपुर गये । वहाँ पर धर्मयनका भदन करके वृंदाका पातिव्रत भङ्ग करनेके लिए उन्होंने उसका साथ
 भंग करनेका विचार किया । तभी वृंदादेवीने स्वप्नमें अपने पति को तलमें नहाये, नंगे शरीर, भैसेपर
 चढ़कर दक्षिण दिशाको जाने, सिर मुड़ाये तथा तममें आच्छादित देखा । जब वह बाला जागी तो स्वप्नपर
 विचार करने लगी । गोपुर, छत तथा अँटारा आदिपर उस कहीं चैन नहीं मिली ॥ ८२-८६ ॥ तब वह अपनी
 दो मल्लियोंको साथ लेकर नगरके बाहर बागम मन बहलाने लगी । वहाँ एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे
 कमरेमें वह जब फिरते लगी, तब उसको भयानक सिंहके समान गर्जन करनेवाले और भयंकर दाँत तथा
 लम्बे दो राक्षस दिखाई दिये । उनको देख तथा विह्वल होकर वह हृष्ट-उष्टर भागने लगी । उसे
 वहाँ सहसा शिष्योंसे युक्त एक मौनव्रतधारी शांत तपस्वी दिखायी दिये । तब वह अपनी दोनों भुजारूपिणी

उन्मील्य नयने वृंदां हृदि दृष्ट्वाऽप्रकाश्रुचः । तिष्ठ त्वं वालिके ह्यत्र मा भव्यं कुरु सर्वथा ॥९१॥
 इत्युक्त्वा पुरतो दृष्ट्वा राक्षसौ मुनिसत्तमः । निर्भेर्भयंतीं हुंकारैः क्रोधेन महता वृतः ॥९२॥
 तौ तदुंकारतश्चस्तौ पलायनपरौ तदा । तस्माभ्यां मुनेर्दृष्ट्वा वृंदा सा विस्मयाघृता ॥९३॥
 प्रणम्य दंडवद्भूमौ क्षुनिं वचनमब्रवीत् ।

वृन्दोवाच

रक्षितराघ त्वया योग्यद्रयादस्मान्कृपानिधे ॥९४॥

किंचिद्विज्ञप्तमिच्छामि कृपया तद्वदस्व माम् । जलंयरो हि मे मर्ता रुद्रं योदधुं गतः प्रभो ॥९५॥
 म तत्रास्ते कथं युद्धे तन्मे कथय सुप्रभ । मुनिस्तद्वचनमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैषत ॥९६॥
 तावत्कर्षा समायातौ तं प्रणम्याग्रतः स्थितौ । ततस्तद्भूलतामहाप्रयुक्तौ गगनांतराद् ॥९७॥
 गत्वा क्षुण्णार्धादागत्य वानरावग्रतः स्थितौ । शिरःकर्चवहस्तौ च दृष्ट्वाऽब्धितनयस्य सा ॥९८॥
 पपाव मूर्च्छिता भूमौ भर्तृव्यमनदुःखिता । कर्मदलुं जलैः मिक्ता क्षुनिनाऽऽश्वासिता तदा ॥९९॥
 रुदित्वा सुचिरं वृंदा न मुनिं वाक्यमब्रवीत् ।

वृन्दोवाच

कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीववेनं मुने प्रियम् ॥१००॥

त्वमेवास्य पुनः शक्नो जीवनाय मत्तो मम ।

मुनिश्वाच

नाथ जीवयितुं शक्यो रुद्रेण निहतो युधि ॥१०१॥

तथापि त्वत्कृपाविष्टः पुनः मजीवयाम्यहम् । इत्युक्त्वा तर्दधे यावत्तावत्सागरनंदनः ॥१०२॥
 वृन्दमालिंघ्य तद्वक्त्रं चुचुर्न प्रीतमानसः । अथ वृंदाऽपि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा ॥१०३॥
 रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवामरम् । कदाचिन्मुग्तस्याग्ने दृष्ट्वा विष्णुं तमेव हि ॥१०४॥

एताएँ उनके गलम डालकर भयभातभावसे कहने लगे। हे मुने ! आपकी करणमं आपने हुई मुझे अवग्राही रक्षा करिए ! उनके इस बात वचनको सुना तो ध्यान छोड़कर मुनिने उसे अपने हृदयसे छिपटी हुई पाया । तब वे उससे कहने लगे—वालिके ! तू यहाँ निर्भय होकर रहो । ९५-९९ ॥ उसे इस प्रकार सम्झाकर मुनिश्रेष्ठने डराते तथा हुंकार करते हुए उन दोनों राक्षसोंको अपने सामन देखा । तब क्रुद्ध होकर वे भी हुंकार करने लगे । उनके हुंकारसे गन्त हाकर वे दोनों राक्षस भाग गये । मुनिके इस अद्भुत सामर्थ्यको देखी तो वृन्दा आश्चर्यचकित होकर भूमिपर दण्डवत् प्रणाम करके कहने लगी : वृन्दा बोली हे कृपानिधे ! मुझे आपसे इतने घोर संकटसे बचा लिया । अब ये आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ । सो कृपा करके कहिये । हे प्रभो ! मेरा पति जलन्धर शिवजीसे युद्ध करने गया है । हे सुप्रभ ! कह वहाँ किस दशा में है, यह मुझे बताइए । मुनिने उसको वान सुन्दर कृपापूर्वक ऊपरकी ओर देखा तो उपासे दो बन्दर आये और मुनिको प्रणाम करके सामने खड़े हो गये । उनके हाथोंमें वृन्दाने अश्विननय जलन्धरका कटा शिर, हाथ तथा घड़ देखा । यह देखनेके साथ ही वह पतिवियोगके दुःखसे दुःखित तथा मूर्छित होकर धरतापर गिर पड़ी । तब मुनिने उसके मुँहपर कण्ठहनुका जल छिड़का और सचेत करके शांत किया । १०२-१०४ ॥ बहुत समय तक रोनेके बाद वृन्दा कहने लगे—हे कृपानिधे ! हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मेरे प्रिय पतिको जीवित कर दें ॥ १०० ॥ मेरी समझमें आप ही इसको जिलानेमें समर्थ हैं । मुनि बोले—युद्धमें शिवजीके द्वारा निहत जलन्धरको जीवित करना असम्भव है । फिर भी तूमण्ट दया करके मैं इसे जीवित करता हूँ । ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये । इतनेमें सागरनन्दन जलन्धर प्रकट हो गया और आनन्दसे वृन्दाका आलिङ्गन करके मुख चूमन करने लगा । वृन्दाने भी अपने पतिको देखा ही प्रसन्न होकर उस वनमें बहुत विलम्ब उसको साथ रमण करती रही । एक दिन सभोगके अनन्तर उसी जलन्धरको विष्णु के रूप में

निर्भर्त्य क्रोधमपुक्ता वृंदा वचनमब्रवीत् ।

वृन्दावाच

तव ज्ञानं हरे शीलं परदागमिनामिनः ॥१०५॥

अब ज्ञानोऽमि मया सम्यङ्मायी प्रत्यक्षतापमः । यो न्वयः मायया दौ तो स्वकीयो दक्षिती मम ॥१०६॥
 नात्रैव राक्षसी भून्वा तव भार्या विनेष्यतः । जयविजयनामानां शाती कृत्रिमरूपिणी ॥१०७॥
 अत्र चापि भार्यादुःखार्तो वने कपिमहायवान् । भव सर्वेश्वरोऽपि त्वं यत्ते शिष्यो समागतौ ॥१०८॥
 पुण्यशीलसुशीलो तौ कपिरूपधरावुभौ । अतस्ते वानरैर्युक्तु संगतिर्दंडके वने ॥१०९॥
 वदुरूपधरः शिष्यो यस्मात्स्येति वेषयहम् । इत्युक्त्वा मा तदा वृंदा प्रविवेश हुताशनम् ॥११०॥
 ततो जालधरो दैन्यो निहतो युधि शम्भुना । तस्माद्राजन्निदानीं तौ कुम्भकर्णदशाननौ ॥१११॥
 तानां मायामध्ये तौ लंकायामधुना स्थितौ । नीत्वा जनकजां बलां पंचवत्यास्तु मातृवत् ॥११२॥
 शालयित्वाऽथ वनमामान् गमयान्त्वान्मरिष्यति । रामोऽपि बालिनं हत्वा सुर्यावेण समन्वितः ॥११३॥
 शिलाभिः सागरं च दध्वा सीतामादाय यास्यति । यात्रायश्च विलासांश्च समद्वीपप्रव्रक्षणम् ॥११४॥
 कर्मिष्यति दयितया बंधुभिश्च यथामुत्तमम् । इदं गोप्यं त्वया राजन् कथनीयं न कुत्रचन ॥११५॥

श्रीशिव उवाच

इत्युक्त्वा मुद्गलः सर्वं भावि रामस्य कौतुकात् । चरित्रं वर्णयामास यदा यद्यत्कर्मिष्यति ॥११६॥
 नन्मर्वं नृपतिः श्रुत्वा तुष्टः पप्रच्छ तं पुनः । पूर्वजन्मनि कथाह किं मया सुकृतं कृतम् ॥११७॥
 नन्मर्वं वद मां ब्रह्मन् यस्मात्तातो हरिः सुतः । मम माक्षाद्रामचंद्रो लक्ष्मीःसीता त्वभूत्स्तुषा ॥११८॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा नृपमाह पुनर्मुनिः ।

मुद्गल उवाच

आमीन्सक्षाद्विपये करवीरपुरे पुरा ॥११९॥

ब्राह्मणो धर्मविन्दश्चिद्धर्मदत्त इति श्रुतः । विष्णुव्रतकरः सम्यग्विष्णुपूजारतः सदा ॥१२०॥

इस्का तो क्रुद्ध होकर धिक्कारतो हुई वृन्दा बोली—हे हरे ! तुम्हारे इस परस्त्रीगमनरूपी व्यवहारको धिक्कार है ॥१०१॥ मैंने अब जाना कि तुम मायावी सभा बनावटी तपस्वी हो । तुमने अपने निजी दो दूतोंको वानर-रूपमें मुझे दिखलाया था, वे ही दोनों राक्षस होकर तुम्हारी स्त्रीका हरण करेंगे । वे दोनों कृत्रिमरूपधारी जयविजय तुम्हारे पार्षद थे ॥१०२-१०७॥ सर्वेश्वर हानपर भी तुम स्त्रीके वियोगसे दुःखी होकर वानरोंके साथ वनमें चक्कर लगाओगे । तुम्हारे वे दोनों पुण्यशील-सुशील शिष्य भी वानर बनेंगे । उनमेंसे तादस्य नामका शिष्य वदुरूप धारण करेगा । और भी बहुतसे वानर दंडकवनमें तुमको मिलेंगे । इतना कहकर वृन्दा अग्निमें प्रविष्ट हो गयी ॥१०८-११०॥ इस प्रकार वृन्दाका पातितव्रत खंडित होनेके बाद जलन्धर वास्तविकरूपमें जनक द्वारा मारा गया । हे महाराज दशरथ ! इस शापके कारण इस समय रावण-कुम्भकर्ण जन्म लेकर समुद्र-के बीच लंकामें निवास करने हैं । वे पंचवटीसे जनकको पुत्री सीताको ले आकर छ मास तक माताकी तरह जन्म करनेके पश्चात् रामके वाणोंसे मारे जायेंगे । राम भी बालीको मारकर सुग्रीवके साथ पत्थरोसे समुद्रको बंध तथा उस पार जाकर सीताको ले आयेंगे । पश्चात् प्राणप्रिया सीता तथा बन्धुओंके साथ राम तीर्थयात्रा, दण्ड तथा विलास करते हुए सप्तद्वीपोंको रक्षा करेंगे । हे राजन् ! यह गोप्य बात किसीको न बतलाइएगा ॥१११-११५॥ श्रीशिवजी बोले—हे पार्वती ! इस प्रकार मुद्गलने रामका समस्त भावी चरित्र बता दिया ॥११६॥

इस सब बातोंको सुन तथा प्रसन्न होकर राजा दशरथने फिर पूछा कि मैं कौन था और मैंने कौनसे व्रत किए थे कि जिससे साक्षान् भगवान् रामरूपमें मेरे पुत्र बने तथा साक्षान् लक्ष्मी सीता होकर मेरी पुत्रवधू बने । हे ब्रह्मन् ! यह सब हाल मुझे कह सुनाइये ॥११७॥ ॥११८॥ यह सुनकर मुद्गल मुनि राजासे फिर बहने लगे । मुनि बोले—हे राजन् ! सह्याद्रिपर करवीरपुरमें परम धर्मज्ञ धर्मदत्त नामसे विख्यात एक ब्राह्मण

द्वादशाक्षरविद्यायां जपनिष्ठोऽतिथिप्रियः । कदाचिन्कार्तिके मासि हरिजामरुणाय सः ॥१२१॥
 गङ्गायां तुर्यावशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् । हरिपूजोपकरणान् प्रगृह्य व्रजता तदा ॥१२२॥
 नेन दृष्टा समायाता गङ्गभी भीमनि-स्वना । वक्रदंष्ट्रा ललज्जिह्वा निनग्ना रक्तलोचना ॥१२३॥
 दिग्भरा शुक्लभासा लघोद्वी घर्घग्म्वना । तां दृष्ट्वा भयमंत्रस्तः कंषितावयवस्तदा ॥१२४॥
 पूजोपकरणैः सर्वैः पयोमिश्राहनदलात् । संस्मृत्य यद्वरेर्नाम तुलसीयुक्तवारिणा ॥१२५॥
 मोऽहनद्वारिणा तस्मात्तत्पार्प लयमागनम् । अथ संस्मृत्य मा पूर्वजन्मकर्मविपाकजम् ॥१२६॥

प्यां दशामवरीत्तीव्रं दंडवच्च प्रणम्य सा ।

कल्होवाच

पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गताऽस्म्यहम् ॥१२७॥

तत्कथं तु पुनर्विप्र याग्यहं गतिमुत्तमाम् ।

मृदुगल उवाच

तां दृष्ट्वा प्रणतामर्ता वदमाना स्वकर्म च ॥१२८॥

अतीव विम्बितो विप्रस्तदा वचनमब्रवीत् ।

धर्मदत्त उवाच

केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशीं गता ॥१२९॥

कुलः प्राप्ता च किंश्रीला तत्सर्वं विस्मराद्वद ।

कल्होवाच

सौराष्ट्रनगरे जग्नन मिथुनामाऽभवद्विजः ॥१३०॥

तस्याहं गृहिणी ब्रह्मचर कलहाख्याऽतिनिष्ठुग । न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसाऽपि शुभं कृतम् ॥१३१॥
 नार्थिनं तस्य मिथुन्न भर्तुर्वचनभगव्या । पाककाले मया नित्यं यद्यच्चान्नं मनोरमम् ॥१३२॥
 तत्तत्पूर्वं स्वयं भुक्त्वा पश्चाद्भर्त्रे निवेदितम् । एकदा स पतिर्मित्रं मम वृत्तं न्यवेदयत् ॥१३३॥
 नैव शृणोति मे पत्नी यद्वाक्यं किं करोम्यहम् । तेन श्रुत्वा तु सकलं क्षणं संचिन्त्य वै हृदि ॥१३४॥
 उवाच मन्यनि किंनिशुक्तिं तां ते वदाम्यहम् । निषेधोक्त्या वदस्व त्वं गृहिणी सा कनिष्यति ॥१३५॥

रहती था । वह विष्णुके ब्रह्मचर को करनेवाला, भली प्रीति विष्णुपूजामें रत, सदा वारह अक्षरके मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) के जपमें निष्ठा रखनेवाला तथा ब्रह्मचरियोंका प्रेमी था । एक बार वह कार्तिक में रात्रिजागरण करके चौधे पहुँच पूजाकी सामग्री लेकर हरिमन्दिरमें जा रहा था कि रास्तेमें सहसा उसने एक मयानक घरघर शब्द करती हुई, देहे दाँतोंवाली, जीभको हिलानी, नितान्त नग्न, लाल नेत्रोंवाली, जिसके शरीरका सब भाग भूख गया था—ऐसी लम्बे होठों और नग्न शरीरवाली एक राक्षसोंको आते देखा । उसको देखकर काहूँण भयसे काँप उठा । तब वह समस्त पूजाकी सामग्री तथा जल आदि फेंक-फेंककर उसको मारने लगा । वह नागायणका नाम लेता हुआ उसके ऊपर तुलसीपत्र तथा जल फेंकता जाता था । वस, इसीसे जनावास उस राक्षसोंके सब पाप धुल गये और उसको पूर्वजन्मके कर्मोंका भरण हो आया ॥ १२६-१२८ ॥ तब वह काहूँणको दंडवत् प्रणाम करके कहने लगी । कल्हा बोली—हे विप्र ! मैं पूर्वजन्मके कर्मोंके फलस्वरूप इस दशामे प्राप्त हुई हूँ । हे ब्रह्मचर ! सौराष्ट्रनगरमें मिथुनामका एक काहूँण रहता था । मैं उसकी कल्हा नामकी बहो निष्ठुर स्त्री थी । मैंने कभी वचनसे भी पतिकी भलाई नहीं की ॥ १२७-१३० ॥ रसोईमें कभी मैं मिष्ठान बनाती तो पतिसे झूठ बहाना करके तथा उसकी बात टालकर मिठाई नहीं देती थी । भोजनके समय प्रतिदिन जो जो अच्छी चीज बनाती, पहिले उसको मैं खा लेती थी तब पतिको देती थी । एक दिन मेरे पतिने आकर अपने एक मित्रसे कहा कि मेरी स्त्री मेरी भक्त नहीं मानती । मैं क्या कहूँ ? उसके

न राक्षसेन कार्यादि पक्किचिन्नं शङ्कितम् । तथेति मित्रवाक्येन गृहमेत्य पतिर्मम ॥१३६॥
 मामाह दायिते मा त्वं भोजनार्थं समाह्वय । मम मित्रं महद् दुष्टं तच्छ्रुत्वा स्वपतेर्वचः ॥१३७॥
 तदा मर्ता मयोक्तः स मित्रं ते माधुमम्मत्तम् । समाह्वयाम्यशुनार्थमद्यं ब्राह्मणोत्तमम् ॥१३८॥
 ततो मया समाहृतः स्वयं गत्वा पतेः सखा । तदारभ्य निषेधोक्त्या कार्यमाप्तापयन्पतिः ॥१३९॥
 "कदा म पितुरेष्टा ध्याहः स्वपतिर्मम । मामाह दायिते आहं न करिष्याम्यह पितुः ॥१४०॥
 तदाक्यं स्वपतेः श्रुत्वा मया विप्रा निर्मत्रिताः । मया धिक् धिक् कृतो मर्ता कथं आहं करोषि न १४१॥
 पुत्रधर्मं न जानामि का गतिस्ते भविष्यति । ततः पुनः म मामाह पक्काजमद्य मा कुरु ॥१४२॥
 "इज निर्मत्रयस्वकं मा विस्तारं कुरु प्रिये । ततस्य वचनं श्रुत्वा मयाऽष्टादश भूमुराः ॥१४३॥
 "नमत्रितास्तु आह्वयं पक्काजानि कृतानि हि । ततः पुनः स मामाह प्रिये शृणु वचो मम ॥१४४॥
 मया महादा त्वं मिष्ट पाकं भुक्त्वा ततः परम् । स्वीयाच्छष्ट त्वद्य विप्रान् पान्द्रेषणमाचर ॥१४५॥
 त-मया कथितं श्रुत्वा स पतिर्धिरुतः पुनः । कथमादा स्वयं भुक्त्वा पश्चाद्विशान्ममर्पयेत् ॥१४६॥
 "य मवं निषेधोक्त्या आह चांगं खकार सः । पिण्डदानादिकं कृत्वा मामाह स पतिः पुनः ॥१४७॥
 "महश्चोषोपणं त्वद्य करिष्यामि न संशयः । ततस्य वचनं श्रुत्वा मिष्टान्नेन स मोहितः ॥१४८॥
 ततो देववशाद्भर्ता विस्मृत्य प्राह मां पुनः । नान्वा पिंडान् क्षिपस्वाद्य सर्तार्थे परमादरात् ॥१४९॥
 ततो मया शौचरूपे नान्वा पिंडा विमर्जिताः । ततः खिन्नमना विप्रो हाहेत्युक्त्वा स्थिरोऽभवत् १५०॥
 अण विचिन्त्य मामाह पिंडान्मा त्वं बहिः कुरु । तदोत्तीर्य शौचरूपे मया पिंडा बहिः कृताः ॥१५१॥
 ततः पुनः स मामाह पिंडान् तार्थे क्षिपस्व मा । तदा तार्थे मया धिमास्ते पिंडाः परमादरात् ॥१५२॥

अथन यह सुनकर मनम विचार किया ॥ १३२-१३४ ॥ तदनन्तर उसने मेरे पतिस आ कुछ कहा था, मैं मे कहता हूँ । उसने कहा—हे मित्र । तुम अपना स्वास उलटा बात कहा करो, तब वह तुम्हारा मना विश्रुत कामका अर्थ करण और तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा । मित्रकी बात सुन तथा 'बहुत अच्छा' कहकर मेरा पति परपर आया ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ वह मुझसे कहने लगा—हे प्रिय । मेरे मित्रको तुम कभी भोजनके लिये न बुलाया करो । वह बड़ा दुष्ट है । पतिके इस वचनको सुनकर मैंने कहा कि तुम्हारा मित्र ब्राह्मणोप अष्ट मया बड़ा संजान है । उसका मैं आज ही भोजनके लिय बुलाता हूँ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ तब मैं स्वयं जाकर पतिके 'ममका बुला लयी । तबसे मेरा पति विपरंत कथनमें हा काम लने लगा ॥ १३९ ॥ एक दिन मेरा पति अपने 'मनाकी भरणतिथि जानपर कहने लगा—हे दायित । मैं आज अपने पिताका आह नही करूँगा ॥ १४० ॥ यह सुनकर मैंने उसके कहनके प्रतिबुद्ध सदपट ब्राह्मणोका निमंत्रण दे दिया और पतिसे कहा कि तुमका धिस्कार है जो अपने पिताका आह भी नही करने ॥ १४१ ॥ तुम पुत्रक घमका नही जानते । इसलिये न जान तुम्हारी क्या गति होगी । तब उसने कहा कि यदि करना हा है तो केवल एक ब्राह्मणको निमंत्रण दे दना, अधिक बनदा नही बढना । पक्वान्-मिठाई आदमे ध्ययं खचं नही करना । यह सुनकर मैंने एक साथ अठारह ब्राह्मणोंका निमंत्रण दे दिया । आहके लिए अनेक प्रकारके पक्वान् बनाय । फिर पतिने मुझसे कहा कि आज तुम अपने मेरे साथ मिष्टान्न भोजन करके बादमें अपना जूठा भोजन ब्राह्मणोको परोसना ॥ १४२-१४५ ॥ यह सुनकर मैंने पतिका धिस्कार और कहा कि तुमको धिस्कार है । पहले स्वयं खाकर पश्चात् ब्राह्मणोको भोजन करानके लिय कहने हा ? ॥ १४६ ॥ इस प्रकार विपरीत कथनसे पतिने मेरे द्वारा विचित्र आह करवाया । पिण्डदान आदि करके फिर उन्होने मुझसे कहा—॥ १४७ ॥ मैं आज कुछ भी न खाकर उपवास करूँगा । यह सुनकर मैंने उन्हें श्रुत मिष्टान्न खिलाया ॥ १४८ ॥ बादमें देववशान् भूलकर पतिने मुझसे कहा कि इन पिंडोको जाकर प्रेमसे किसी पवित्र तीर्थके जलमें फेंक आओ ॥ १४९ ॥ यह सुनकर मैंने उन पिंडोको ले जाकर पालाने-न दाल दिया । यह देखा तो वह विश्रुत हाय-हाय करने लगा ॥ १५० ॥ अणभर सोचकर मुझसे कहा कि दाल, पालानेसे पिंडाको बहुर न निकालना । तब शौचरूपमें उतरकर मैंने उन पिंडोका निकाल लिया

एवं मया कदा भर्तुर्वचनं न कृतं तदा । कलहप्रियया नित्यं मय्युद्विग्नमता वदा ॥१५३॥
परिणेतु ततोऽन्यां वै मनश्चक्रे पतिर्नमः । ततो गरं समादाय प्राणस्त्यक्तो मया द्विजः ॥१५४॥
अथ बद्ध्वा बध्यमानां मां नित्युर्यमकिंकराः । यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रशुभमपृच्छत ॥१५५॥

यम उवाच

अनया किं कृतं कर्म फलं शुभमथाशुभम् । प्राप्नोत्येषा च तत्कर्म चित्रगुणवलोकय ॥१५६॥

कलहावाच

चित्रगुणस्तदा वाक्यं मनस्येन्यामुवाच ह ।

चित्रगुण उवाच

अनया तु शुभं कर्म कृतं किञ्चिन्न विद्यते ॥१५७॥

मिथुनार्त्तं भुज्यमानेव न भर्तारि तदर्पितम् । अतश्च वगुलीयोऽन्यां स्वविष्टादाऽयं तिष्ठतु ॥१५८॥
पतिं दृष्टिं सदा त्वेषा नित्यं कलहकारिणी । विष्टादा शूरीयोऽन्यां तस्मात्तिष्ठत्वियं यमः ॥१५९॥
पञ्चमोऽहो तदा भुङ्क्ते सुती चैका यदस्मिन् । तस्माद्दोषाद्विडालाऽस्तु स्वजातास्त्यमधिणी ॥१६०॥
भर्तारमपि चोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतोऽनया । तस्मान्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठन्वेकाऽतिनिदिता ॥१६१॥
अतश्चैषा मरुदेशे प्रापितव्या हरेर्भटैः । तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठन्वियं ततः ॥१६२॥

उष्यं योनित्रयं चैषा भुनक्तु शुभकारिणी ।

कलहोवाच

ततो दूतः प्रापिताऽहं मरुदेशं शृणामुद्विजः ॥१६३॥

दत्त्वा प्रेतशरीरं मां गतास्ते स्वस्थलं प्रति । साऽहं यच्चदस्मान्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल ॥१६४॥
भुक्तदुःख्यापीडिताऽत्यर्थदुःखिणा स्वेन कर्मणा । ततः भुक्त्याडिता नित्यं शरीरं वणिजस्त्वहम् ॥१६५॥
प्रविश्य दक्षिणे प्राप्ता कृष्णावेण्यास्तु संगमे । सर्तीरं सन्निधा यानसावरास्य शरीरतः ॥१६६॥
विष्णुगुणोद्गमपाकुटा बलादहम् । ततः क्षुब्धामया दृष्टो ममत्या त्वं मया द्विजः ॥१६७॥

॥ १५१ ॥ फिर पतिने कहा—दत्ता, कहीं इनको किसी साथमें न डालना । तब केन ल जाकर उन पिंडिका बड़े आदरपूर्वक साथजन्म डाल दिया ॥ १५२ ॥ इस तरह मुझ बलहप्रियाने जब कभी मां पतिका सीखा सीखपर कहा हुआ काम नहीं किया, तब दुःखित हाकर उसने अपना दूसरा दगाह करना निश्चित किया । हे द्विज ! अब मेने ऊपर लाकर अपने दाण त्याग दिया ॥ १५३ ॥ ॥ १५४ ॥ तब बमदूत मुझे आश्रयकर वमराजक पास ले गये । वमराज मुझे दत्तकर चित्रगुणसे कहने लगे ॥ १५५ ॥ वमराजने कहा—‘चित्रगुण’ देखो, इसने अच्छा काम किया है या दुरा, जिससे इसको वैसा हः फल दिया जाय ॥ १५६ ॥ कलहा कहने लगा—यह सुनकर चित्रगुण मुझे समझात हुए कहने लगे कि इसने ठा कोई अच्छा कर्म कभी किया नहीं । यह मिथ्या प्रनाकर साती थी परन्तु अपने पतिको नहीं दती थी । इसलिये यह वगुलीकी योनिमें जाकर अपना ही विठा खानवाली पक्षिणी बने प्रतिदिन सगढ़ा तथा पोस्त द्रव्य करनेके कारण यह विष्ट मक्षण करनेवाली सूकर्यानिम पदा हो । हे वम इह उधर छिपकर आजन बनानके पासमें अकलां हो सादेवाली यह बिल्ली बने ॥ १५७-१६० ॥ पतिके उद्देश्यमें इसने आत्मघात किया है । इस कारण यह अतिनिन्दित प्रेतयोनिमें अकली रहे ॥ १६१ ॥ हे वम, इसने दूतोंके द्वारा मरुप्रदेशमें भेज देना चाहिये । वहाँ जा तथा भत बनकर यह बहुत काल पर्यन्त निवास कर ॥ १६२ ॥ यह पापिनी उपयुक्त सभी मानियोंको भागे । कलहा बोली—हे द्विज ! तब बमदूतने क्षण ही मरुमें मुझे मरुदेश पहुँचा दिया ॥ १६३ ॥ वहाँ प्रेतयोनिमें डालकर वे अपने स्थानको चले गये । मैं पन्द्रह वर्ष तक प्रेतशरीर रही ॥ १६४ ॥ अपने किए हुये कर्माके अनुसार मैं सदा भूख प्याससे अन्यन्त दुःखिनी रहने लगी । इस प्रका नित्य भूखसे पीडित हो एक अनियेकी देहमें पैठकर मैं दासणम कृष्णा-वेणाक मंगमपर आयी । वहाँ आता तब तथा विष्णुके यणोने मुझे बरबस उस वणिक्के शरीरसे अलग करके दूर भगा दिया । तदनन्तर हे द्विज

त्वद्वस्तुलसीवारिमस्पर्शाद्गतपातका तत्कृपां कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्ता भवाम्यहम् ॥१६८॥

योनित्रयादग्रभावाद्दस्माच्च प्रेतभावतः । मामुद्गर मुनिश्चेष्ट न्वामहं शरणं गता ॥१६९॥

इत्थं निश्म्य कलहावचनं द्विजश्च तत्पापकमभयविस्मयदुःखयुक्तः ।

तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्तिव्यान्वा चिरं सुवचनं निजगाद दुःखात् ॥१७०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

वृन्दाशापकलहाख्यानं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(धर्मदत्त द्वारा कलहाका उद्धार)

धर्मदत्त उवाच

विलयं यांति पापानि तीर्थदानव्रतादिभिः । प्रेतदेहे स्थितायाम्ने तेषु नैवाधिकारिता ॥१॥

त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात् खिन्नं च मम मानसम् । नैव निर्वृतिमायाति त्वामनुद्ध्युष्य दुःखिताम् ॥२॥

पातकं च तवात्पुत्र योनित्रयाविपाकजम् । नैवान्पैः क्षायते पुण्यैः प्रेतन्व चातिगर्हितम् ॥३॥

तस्मादाजन्मजनितं यन्मया कार्तिकव्रतम् । तत्पुण्यम्यार्धभागेन सद्गतिन्वमयाप्नुहि ॥४॥

कार्तिकव्रतपुण्येन न साम्यं याति सर्वथा । यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतान्यपि ततो ध्रुवम् ॥५॥

मुद्गल उवाच

इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावन्तामम्यषेचयत् । तुलसीमिश्रतोयेन श्रावयन् द्वादशाक्षरम् । ६ ।

तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखीपमा । दिव्यरूपधरा जाता लावण्येन यथोर्वशी ॥७॥

ततः सा दंडवद्भूमौ प्रणनाम यदा द्विजम् । उवाच सा तदा वाक्यं हृद्यगद्गदमापिणी ॥८॥

कलहावाच

त्वत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ विमुक्ता निरयादहम् । पापान्धौ भञ्जमानायास्त्वं नौभूताऽसि मे ध्रुवम् ॥९॥

भूखो भरती एवं भ्रमण करतो हुई मैंने यहाँ तुमका देखा । १६५-१६७ ॥ यहाँ तुम्हारा हाथक जल तथा तुलसीसे मेरे सब पाप दूर हो गये हैं । इस कारण हे विप्रेन्द्र ! अब ऐसी कृपा करो कि जिससे भावो नान योनियोंसे मेरी मुक्ति हो जाय । हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ । तुम मेरा इस प्रेतयोनिसे भी उद्धार करो । ब्राह्मणने इच्छाके वृत्तान्तको सुना तो उसके पापकर्मसे भय विस्मय तथा दुःखसे इस और उसकी इस ग्लानिपूर्ण दशाको देखकर कृपासे चञ्चलचित्त हो और बहुत दारुण सोचकर दुःखसे इस प्रकार सुन्दर वचन कहना आरम्भ किया ॥ १६८-१७० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये 'उपोत्सवा' भाषाटीकायां सारकाण्डे वृन्दाशापकलहाख्यानं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

(१) धर्मदत्त बोले—तीर्थ, दान तथा व्रतके द्वारा पाप क्षीण होत है, परन्तु प्रेतधारारम्भ रहनसे तुम्हारा उनपर अधिकार नहीं है ॥ १ ॥ तुम्हारी इस दुर्दशाका देखकर मेरा मन बहुत दुखी हो रहा है । अबतक तुम्हारा इस दुःखसे उद्धार न होगा, तबतक मुझको शान्ति नहीं मिलेगी । २ ॥ यह नीच प्रेतत्व और तीन योनियोंको भोगनेवाला तुम्हारा महाम् पाप साधारण पुण्योंसे क्षण न होगा ॥ ३ ॥ इस कारण जन्मसे लेकर अबतक किये हुए अपने कार्तिकव्रतके पुण्यका आधा भाग मैं तुमको देता हूँ । उससे तुम सद्गतिको प्राप्त होओगी । ४ ॥ कार्तिकव्रतके पुण्यके समान यज्ञ-दान-तीर्थ आदि कोई भी नहीं हो सकता । यह बात निश्चित है ॥ ५ ॥ मुनि मुद्गल कहने लगे—हे राजन् ! इतना कहकर धर्मदत्तने उयीं ही उसके ऊपर तुलसीदल तथा जल छिड़ककर द्वादश अक्षरोंका मंत्र सुनाया । त्यों ही प्रेतयोनिसे मुक्त होकर वह जलती हुई अग्निकी लपटके समान दिव्य रूप धारण करके उर्वशीके सहज सुन्दर स्त्री बन गयी ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब वह ब्राह्मणके धरनोंकी दण्डवत् प्रणाम करके सहर्ष गद्गद वाणीसे कहने लगी ॥ ८ ॥ कलहा बोली—हे द्विजोमें श्रेष्ठ हूँ । आपको कृपासे मैं नरकमें जानेसे बच गयी । पापसमुद्रमें डुबती हुई मुझ पापिनीको बचाकर आपने

तत पुण्ये क्षयं प्राप्ते यदा यास्यसि भूतलम् । धूर्यवशोऽङ्गुली राज्ञा विख्यातस्त्वं भविष्यसि ॥२६॥
 नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वयपुनः पुमान् । तृतीयैवं तदा भार्या पुण्यस्यैवार्धभागिनी ॥२७॥
 कलहा कँकेरी नाम्नी भविष्यति न संशयः । तत्रापि तव मासिष्यं विष्णुर्दास्यति भूतले ॥२८॥
 आन्मान तव पुत्रत्वं प्रकल्प्यामरकार्यकृत् । रामनाम्ना रावणादीन् हन्वः राज्यं वरिष्यति ॥२९॥
 तवाजन्मव्रतादस्माद्विष्णुसंतुष्टिकारणान् । न यथा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥३०॥
 जनस्त्वग्रेऽपि धर्मज्ञं नित्यं विष्णुव्रते स्थितः । त्यक्तमात्मयेदंमोऽपि भवत्वं समदर्शनः ॥३१॥
 कार्तिके माघवे माघे चैत्रे मामचतुष्टये । प्रत्यब्दं त्वं धर्मदत्तं प्रातःस्नायी सदा भव ॥३२॥
 एकादशीव्रते तिष्ठ तुलसीवनपालकः । ब्राह्मणानपि शास्त्राणि वैष्णवाश्च सदा भज ॥३३॥
 ममूरिकाक्षरनालं वृन्ताकादीनि स्वादमा । एवं स्वमपि देहाते तद्विष्णोः परमं पदम् ॥३४॥
 प्राप्नोषि धर्मदत्तत्वं तद्भक्त्यैव यथा वयम् । पुण्यशीलमुशीलारूपौ जयश्च विजयस्तथा ॥३५॥

धन्योऽमि विप्राश्च यतस्त्वर्यतद्व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः ।

यदर्धभागान्मफलान्मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिर्यं सलोकताम् ॥३६॥

मुद्गल उवाच

इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुपदिश्य विमानगौ । तथा कलहया साङ्गैर्बैकुण्ठभुवनं गतौ ॥३७॥
 धर्मदत्तोऽप्यमी राजन् प्रत्यब्दं तद्व्रते स्थितः । देहाते परमं स्थानं भार्याभ्यामन्यतोऽभ्यगात् ॥३८॥
 बहून्यब्दमहस्तापि स्थित्वा वैकुण्ठमगच्छनि । ततः पुण्यक्षये जाते जातोऽमि त्वं नृपो महान् ॥३९॥
 त्रिभिः स्त्रीभिर्दशरथ ते विष्णुः पुत्रर्ता गतः । रामोऽयं लक्ष्मणः श्रेष्ठो भरतोऽञ्जोऽरिश्चन्द्रहा ॥४०॥
 एवं सर्वं मयाऽऽख्यातं यथा पृष्टं त्वया मम । धन्यस्त्वं यस्य तजयः साक्षान्नारायणोऽभवत् ॥४१॥
 इसलिए, तुम भी दोनों स्त्रियोंके साथ कई हजार वर्ष पर्यन्त उनका सानिध्यको प्राप्त होओगे ॥ २५ ॥ तत्पश्चात् पुण्य क्षाण होनेपर जब तुम पुनः पृथ्वीपर आओगे, तब सूर्यवशमे बड़े प्रकाशत राजा बनोगे ॥ २६ ॥ दोनों स्त्रियों तुम्हारे साथ रहना और तुम श्रीमान् दशरथ नामके राजा बनोगे । उस समय यह आधे पुण्यकी भागिनी कलहा नि स दह कंकरी नामकी तुम्हारी तीसरी स्त्री होगी । वहाँ पृथ्वीपर भी भगवान् सदा तुम्हारे सन्निकट रहेंगे ॥ २७ ॥ २८ ॥ वे प्रभु दशताओकर कार्य साधन करनेके लिए अपने आपको तुम्हारा पुत्र बनाएंगे तथा रामनाम धारण करके रावण आदिको मारकर राज्य करेंगे ॥ २९ ॥ विष्णुको प्रसन्न करनेवाले तुम्हारे जन्मसे लेकर किये हुए इस व्रतसे बढ़कर कोई व्रत, दान तथा तीर्थ आदि नहीं है ॥ ३० ॥ इस कारण आगे भी तुम धर्मज्ञ, नित्य विष्णुक व्रतमें स्थित और मात्मरं रम्भ आदिसे रहित होकर समदर्शी बनो ॥ ३१ ॥ हे धर्मदत्त ! प्रतिवर्ष कार्तिक, वैशाख, चैत्र तथा माघ इन चारों महीनोंमें प्रातःकाल स्नान करके तुम एकादशीका व्रत और तुलसीका पूजन करो । ब्राह्मण, गौ तथा विष्णुभक्तोंकी सेवामें तत्पर रहो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ममूर, सीवीर तथा बंगन आदिका स्नाना छोड़ दो । हे धर्मदत्त ! ऐसा करनेसे तुम भी जय-विजय तथा पुण्यशाल-सुशाल आदि हम लोगोंकी तरह विष्णुके उस परम पदको उनकी भक्ति भावसे ही प्राप्त होओगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे ब्राह्मणधष्ठ ! तुम धन्य हो, क्योंकि तुमने जगद्गुरु विष्णुको संतुष्ट करनेवाला यह व्रत किया है, जिसके अमोघ पुण्यभागक प्रभावसे हमन्नाम भी मुरारि भगवान्की सत्यव्रताको (समानलोकको) प्राप्त हुए हैं ॥ ३६ ॥ मुद्गल बोले—इस प्रकार वे दोनों धर्मदत्तकी उपदेश दे तथा विमानमें बैठकर कहलाके साथ वैकुण्ठधामको चले गये ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! वह धर्मदत्त भी प्रतिवर्ष उस व्रतको करके देहान्त होनेके बाद दोनों स्त्रियोंके साथ परमपदको प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ बहुत वर्षों पर्यन्त वैकुण्ठ-धाममें रहकर पुण्यक्षय होनेके बाद यहाँ आकर वही तुम इतने बड़े राजा बने हो ॥ ३९ ॥ तुम अपनी हीनों स्त्रियोंके साथ यहाँ आये । विष्णुभगवान् तुम्हारे पुत्र राम बने, श्रेष्ठ लक्ष्मण बने, ब्रह्मा भरत बने तथा ब्रह्म कञ्चन बना ॥ ४० ॥ जो तुमने पूछा था, वह सब मैंने तुमको कह सुनाया । तुम धन्य हो । क्योंकि साक्षात् नारायण तुम्हारे पुत्र हुए हैं ॥ ४१ ॥ श्रीशिवजी

इत्थं कृत्वा नृपतिं पूज्य विममर्जं मुनिम्वदा । अलङ्घ्य गमं सौमित्रिं मेने च कृतकृत्यताम् ॥४२॥
 तदा राजा स्वमैन्त्रेण महद्वर्षममन्वितः । अयोध्यामगमत्प्रथां शोषगङ्गालमंडिमाम् ॥४३॥
 नृपमागतमाशाय रत्निषः परवापिनः । वताक्रान्तेरणयेश्च दिव्यचंदनसेचनैः ॥४४॥
 नगरीं भवयित्वा ते नृत्यवाद्यादिमंगलैः । निन्यः कटुस्वमहिनं राजानं नगरीं प्रमि ॥४५॥
 राममागतमाशाय शोषगङ्गालपन्निषु । कटुथां निधाय शालांश्च स्त्रियः स्थित्वा निजैः कर्तुः ॥४६॥
 मयर्षकुसमायैश्च स्वर्षैः पुष्पवृष्टिभिः । काञ्चिन्मार्गोपरि स्थित्वा वंभदीपादिमंगलैः ॥४७॥
 अतिरुग्णैश्च राजानं मगमं आनिकमर्कैः । पूजयन्ति स्म ताः सर्वा राजमार्गे पृथक् पृथक् ॥४८॥
 एवं मानाममुन्माहैर्नर्तनैर्वीर्यशोपिताम् । इंदुधीर्ना निनार्दश्च मायकानां च मावनैः ॥४९॥
 मीथोऽद्भुतवागैश्च क्षीमकपुष्पवृष्टिभिः । ययौ स्वशिविरं राजा वीज्यमानः सुचामरैः ॥५०॥
 तमप्यतः जनकामत्यानं वस्त्रालंकारवाहनैः । सत्कृत्य भोजनायैश्च प्रेषयामास मैथिलम् ॥५१॥
 एवं मर्त्येभ्यस्तेषु जनको वार्षिकेष्ट मः । निनय मिथिलां राममाश्रयिः पार्थिवेन च ॥५२॥
 उपरोक्षतः पूज्य लोपयामास राघवम् । रामोऽपि रमयामास लीलाभिर्नृपतिं तदा ॥५३॥
 मार्सं षडभिर्जनकजा लक्ष्मी श्रीगणवात्सल्युता । लग्नात्चेकादशे वर्षे रजोयुक्ता बभूव ह ॥५४॥
 तद्वातां जनकः भुत्वा पत्नीभिर्मन्त्रिभिः सह । अयोध्यामगमच्छीघ्रं राजा प्रस्पृज्यगाम तम् ॥५५॥
 परस्परं समालिख्य माकेतमिथिलाधिपौ । नृत्यवाद्यनमुन्माहैरयोध्यां विमिश्रः सुखम् ॥५६॥
 ततो महाममुन्माहैर्नानामंडपनोरगैः । कदलीम्वंभमानामिरिचुदंडैः सुचामरैः ॥५७॥
 घत्तूर्ध्वारिर्मण्डपैश्च धंटाघोषैः सदर्पणैः । किंकिणीजालघोषैश्च विनानैर्दीपराजिभिः ॥५८॥

बोले कि ऐसा कहकर धुनिने राजाकी पूजा की और उन्हें विना किया । राम-लक्ष्मणका आतिथ्य करने के उन्होंने अपनेको सतकृत्य सम्पन्न ॥ ४२ ॥ तब राजा दशरथ अत्यन्त हर्षित अपनी सैनिकों साथ पुरंदार तथा अटारिगोंसे लगे धन रमणीक अयोध्यापुरीको गये ॥ ४३ ॥ राजाका आगमन सुनकर मन्त्रियों तथा पुरवासियोंने पत्थराओं तथा तोरणोंसे नगरीको सजा तथा महकोपर चन्दन छिड़कवाकर नृत्य और मार्गलिक वाज-राजके साथ स्वदुग्ध राजाको नगरमें लं आये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ रामकी आया जासकर स्त्रियें अपने बाखोंका कमरघर उठाकर पुरंदार तथा अटारिगोंकी मन्त्रियोंपर जाकर लड़ी हो गयीं और अपने हाथसे उत्तर सुवर्ण-कुसमोंकी वृष्टि करने लगी । कुछ विष्णु पार्थ से भरा धार्मिक कलश और कुछ मार्गलिक दीप लेकर रास्तेमें सामने लड़ी हो गयीं और कुछ राजमार्गमें जगह-जगह शान्तिदाने आरती आदिसे रामके सहित राजाकी पूजा करने लगी ॥ ४६ ४७ ॥ इस प्रकार अनेक उत्सवोंमें पुष्प वेद्याओंके नृत्य तथा नगाहोंके गानों एवं वाद्यकोंके गानोंके साथ महलमें अनेकों मन्त्रियों द्वारा की गयीं पुष्पवृष्टिसे आच्छादित तथा सुन्दर धमरोंसे खोजमान होत हुए राजा दशरथ अपने शिविरमें गये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तदनन्तर वस्त्र, अलङ्कार, अन्न-राजादि वाहन तथा भोजन आदिसे राजा जनकके मन्त्रियोंको सम्कार करके उन्हें मिथिला भेज दिया ॥ ५० ॥ इस प्रकार राजा जनक इत्येक वार्षिक उत्सवमें रामका उनकी माताओं तथा राजा दशरथको मिथिलापुरीमें बुलाते थे ॥ ५१ ॥ राजा जनक रामको सदा संतुष्ट रखनेकी चेष्टा करते थे । राम भी अनेक लीलाओं द्वारा राजाको आनन्दित करते थे । सुन्दरी तथा शुभी जानकी रामसे छः महीना छोटी थी । विवाहके प्यारद्वयें वर्षने के राजस्वन्ता हुई ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ यह समाचार सुनकर राजा जनक अपनी स्त्रियों तथा मन्त्रियोंके साथ अयोध्या गये । राजा दशरथने भी उनकी अगवासी की ॥ ५४ ॥ अयोध्यापति तथा मिथिलाधिपति दोनों परस्पर जी धरकर गले मिले । तदनन्तर नृत्य वाद्य आदि उत्सवपूर्वक सुखसे अयोध्यामें प्रविष्ट हुए ॥ ५५ ॥ पश्चात् विविध मण्डपों, तोंरणों, केलेके स्तम्भों, पुष्पोंकी मालाओं, ईत्थक दण्डों, धामरों, चार दरवाजेवाले मण्डपों, घण्टा-घड़ियालके शब्दों, छाँटी छाँटी घण्टियोंके समुदायके शब्दों, शीशों, चंदोवों तथा दीपपत्तियों द्वारा

वमिष्टो मुनिभिः सार्द्धं गर्भाधानविधिं शुभम् कारयामास रामेण सीतायाश्चानिद्विपितः ॥५९॥
 तदा वस्त्रं लङ्कारं जनको नृपतिं मुदा । पूजयामास मस्त्रीकं स्नुषापुत्रममन्वितम् ॥६०॥
 माममेकमतिकस्य यथा स्वनगरी मुग्धम् । गमाऽपि सीतया सार्द्धं नानाभोगान्मुपुष्कलान् ॥६१॥
 पुभुजे हेमरत्नारिन्निमित्तेषु गृहेषु सः । रुक्ममण्डनयुक्ताभिर्दासीभर्योजितः सुखम् ॥६२॥
 एव तासां नृपनुतपत्नीनां च पृथक् पृथक् । यथाकालं निधानेषु गर्भाधानादिकेषु च ॥६३॥
 आगत्य जनकश्चक्रे नानान्मादान्मुदान्वितः । अयाध्यानगरीमन्धे वाद्यघोषो गृहे गृहे ॥६४॥
 मंगलानि च सर्वत्र न कुशाप्यस्यममलम् । न दारिद्र्यं शृणा नार्थान्नाभिव्याधिप्रपीडितः ॥६५॥
 गमादिभिश्चतुर्भिर्नैवैर्गुभिस्तदन्तरम् । पृथग्गृहेषु भार्याभिर्गार्हस्थ्यमध्यनुष्ठितम् ॥६६॥
 रामः प्रातः समुन्वाप कृतशीचादिमन्त्रिकयः । आरुह्य शिविकां दिव्यां स्नानार्थं सरयूं नदीम् ॥६७॥
 गन्वा कले वाहनादि विमुञ्च्य रघुनन्दनः । गच्छन्त्यस्याः पावनार्थं सरयवाः पुलिने मुदा ॥६८॥
 मन्त्रिभिर्यष्टितो गन्वा नन्वा तां सरयूनदाम् । स्नान्वा निन्यविधिं कृत्वा ब्राह्मणः परिवारितः ॥६९॥
 दत्त्वा दानान्यनेकानि गोभूधान्यग्मादिभिः । संपूज्य सरयूं पुण्यां ब्राह्मणान् पूज्य सादरम् ॥७०॥
 यया रथं समारुह्य रुक्मवन्धनवधिनम् । रुक्मनतुरङ्गुलिभश्च सर्वतः परिवर्ष्टितम् ॥७१॥
 पद्मकृत्वादिबभूवैर्गच्छादितं शुभम् । वाजिवाहं मार्गविना मुम्नानेन प्रचोदितम् ॥७२॥
 किंकिणीवरमालाभिर्घण्टाभिर्गतिर्गात्रेणम् । रुक्ममण्डनैर्दूतैश्च दर्शितसन्पथम् ॥७३॥
 पथि नौगात्रितः स्त्रीभिर्यर्पितः पुष्पघ्राटभिः । प्राप स्नाय गृहं रामः सूर्यकोटिममप्रभम् ॥७४॥
 अवरुह्य रथाद्रामः पादयोरुन्य पादुके । दिवश सीतामन्दतपादाद्याचमनो गृहम् ॥७५॥
 गत्वाऽग्निहोत्रशालायां सीतयाऽऽमनमास्थितः । आग्रहोत्रादिविधनां बह्विं कृत्या ततः परम् ॥७६॥

महान् उत्सवक साथ गुरु वर्मिभूत मुनिथोका साथ लेकर रामचा सीताक साथ आनन्दपूजक शुभ गर्भाधान-
 सम्कार किया ॥ ५९-६६ ॥ तदनन्तर राजा जनकन मित्रयो, पुत्रा तथा पुत्रवतुओ सहित राजा दशरथको वरत्र-
 थर द्वार अ दिस घनन्तारूजक पूजा का ॥ ६० ॥ इस प्रकार एक माम अयाध्याम रहकर आनन्दसे वे अपने
 नगरका लौट गये । राम भी सीताक साथ गुवर्ण-रत्ना आदिम निमित्त भवनोमे अनक प्रकारके भोगोको
 भागत लग । उस समय सानक महनास मुशाभन दामिर् पया जन्म थी ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसी प्रकार प्रत्येक
 राजपुत्रका स्थाक गर्भाधानसम्कारम आकर राजा जनकन वाक्य उत्सव किये और अयाध्या नगरमे
 घर घर जात्रे बज ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ सारी अयाध्या मङ्गलमवा हो गया । वही भी अमङ्गलका नाम न था । उस
 नगरमे कोई दरिद्र, कृषी, मानसिक तथा शारीरिक दुखस पाँडिन नही था ॥ ६५ ॥ पश्चात् राम आदि
 च.रो सार्द्ध अपना-अपना मित्रयोक साथ अलग-अलग मूलीमे गुन्मधमका पालन करने लग्य ॥ ६६ ॥ राम
 प्रतर्हित प्रात उठन तथा णोचादि कृष्यसे निवृत्त हो दिव्य पात्रकापर सवार हुकर स्नान करनेके लिए
 सरयू नदापर जात थे । सवारो आदिको किनारे छंड आनन्दसे सरयूको पवित्र करनेके लिये बालुकापर
 होत हुए वहाँ जाने थे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ मन्त्रि योके मन्त्रित जाकर वे सरयू नदीको नमस्कार करके स्नान तथा
 निन्यकर्म करने और वाहणोको गो भूमि, धान्य तथा मदन आदिका दान देकर पवित्र सरयू और ब्राह्मणोकी
 सादर पूजा करने थे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ तदनन्तर मोनेके वषनोमे रथे हुए मणिके मार्गको रमिषोमे गुल्म रेणम
 तथा मल्लमलके उत्तम वस्त्र द्वारा चारों ओरसे आच्छादित गव मुन्दर स रथमे प्रेरित अयाध्यामे रथपर सवार
 होकर लौटते थे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ पुष्पककी मालाओ तथा घण्टीयोके शब्दसे गजित उस रथके अगे मोनेकी
 छदियोंवाले छड़ीदार चौहवार मार्ग दिखलाने चल्य थे ॥ ७३ ॥ रामने मित्रों द्वारा पूजित तथा पुष्पकमे
 आच्छादित गम करके मुनेके समान प्रसामस्वप्न अपन रहस्यमे पधारने ॥ ७४ ॥ वहाँ रथमे उतरकर रामचन्द्र-
 को सह उ पठिनकर घरम जाने । वहाँ सीताजी स्वयं उन्हें पाँच तथा हाथ-पैर चोलेका अल देती थी ॥ ७५ ॥
 पश्चात् सीता समेत राम अग्निहोत्रशालामे जा तथा आसनपर बैठकर अग्निहोत्रकी विधिसे अग्निमे हुवन

स्फटिकस्य च लिङ्गस्य कर्ममार्गं यथाविधि । लोकानां शिक्षणार्थाय कृत्वा पूजनमृत्तमम् ॥७७॥
 जानकया दत्तपद्मान्नर्तनवेद्यादि समर्प्य च । ब्राह्मणान्पूज्य दानार्घ्यस्तोत्रं लब्ध्वा तदाशिरः ॥७८॥
 तुलसी च गुरुं धेनुमश्वत्थं मुनिपत्न्यम् । पूजयित्वा रविं देव ब्रह्मयज्ञं विधाय च ॥७९॥
 गुग्गुलुमस्तान्च पीताम्बी कथां श्रुत्वा तु मीनया । गुरुं पुनः प्रपूज्यथ बन्धुभिः परिवेष्टितः ॥८०॥
 प्रार्थयत्तु मुहुः पत्न्या ब्राह्मणैः परिवारितः । नागिकैलकपिन्ध्याम्रमुलभाजम्बुर्दाडिमैः ॥८१॥
 स्वर्जम्बिकापत्रमाद्यैः पद्मान्नैर्धृतपाचितैः । उपाहारं मुखं कृत्वा तावत् पत्निगृह्य च ॥८२॥
 दिव्यवस्त्राणि मंगुल दण्डऽऽदर्शं निजं मुखम् । निर्गञ्जितश्च वैदेह्याऽऽकृष्य स्वदनमृत्तमम् ॥८३॥
 वेष्टितो मन्त्रिद्वयार्घ्यैर्धृतनिष्ठुरमरम् । मातृगेहं ततो गन्वा नाः प्रणम्यार्चनं भक्तः ॥८४॥
 सत्त्वा प्रदक्षिणां कृत्वा गन्वा राजगृहं प्रति । मिहामनस्यं राजानं नत्वा स्थित्वा तदाजरा ॥८५॥
 पीरकायार्पण्यनेकानि कृत्वा राज्ञा विमज्जितः । ययौ स्वदनमाध्याय नृपं नत्वा पुनः पुनः ॥८६॥
 तूर्यगीतनिनादं च नर्तनैर्वारयोषिताम् । ययौ स्वीयं गृहं गम्य स्वदनाद्वरुणं च ॥८७॥
 भूमिजादत्तपादाध्यायचमनाधायनादिकम् । गृहीत्वा तद्गङ्गां गत्वा कृतं तनां न्यवेदयन् ॥८८॥
 सर्वं वृत्तं कीर्तुकेन हास्यगीतादिमगलैः । रमयित्वा भूमिकन्यां दिव्यवस्त्रादिभूषिताम् ॥८९॥
 ततो मध्याह्नमभये सगर्यां वाऽथ मथानि । स्नान्वा माध्याह्निकं कर्म चकार स्पृन्दनः ॥९०॥
 निर्व्यं यन्नाकरोन्स्नानं मरुत्निर्मले जले । तदाख्यपाऽभवतीर्थं गमतीर्थमिति स्फुटम् ॥९१॥
 तद्विरूपाक्षं त्रिभुवने चैवमामि विशेषतः । माध्याह्निकं च सपाद्य ब्राह्मणमन्त्रिभित्तनः ॥९२॥
 ईष्टः सुवर्णपात्रेषु विषदागु घृतेषु च । परिष्कृतेषु जानक्या मोदया गतिन्नाधयान् ॥९३॥
 कणकं कणमजीरकिकिर्णान् पुमादिषु । नदन्तु मोजनं चक्रं गायत्रीं दर्पयित्तनः ॥९४॥
 काशुर्द्वि विधायथ भुक्त्वा ताम्बूलपुत्तमम् । ततः शतपदं गन्वा त्रिद्रां कृत्वा तु मीनया ॥९५॥

करन ये ॥७८॥ लोकानां कर्म करनका यथायं उपदेश दत्तक निव । स्वस्थिके शिक्षणार्थाय पूजन करन और सीतारके दिये हुए पत्तनान्नका नैज प्रयोग समर्पण ये । तदनन्तर ब्राह्मणोंकी पूजाकर च ॥७८॥ उहे राज आनि दान संपुष्ट करके उत्तम अन्नक बाज और तन ये ॥७९॥ तदनन्तर तुलसी, गुग्गु, गी, दण्ड, अम्बी तथा सूर्यदेवकी पूजा और ब्रह्मपञ्चका दिघात करके गतके साथ गङ्गाके पूजाणको तथा मृत्तम ये फिर गुरुकी पूजा करके पत्नीके प्रार्थना करकर ब्राह्मण तथा धन्यजात सब कारिगार केला, अम्बी, मरुत्ता (मरुत्तापणी), जामुन, अनार, खजूर तथा बरहर आदि और घनच पत्तन आनन्दमें खाकर रात्रि ॥८०॥ तत्पश्चात् दिव्य वस्त्र धारण करके जोरुम मुख हेतु वैदेह के मातृगृह उत्तम रथपर चढ़ तथा पुनो और गतिनयोको साथ ले तहसी आदि राजके साथ प्रान्तके मन्त्रिम जाने और भूमिपर लादकर उत्त प्रणाम करन ये ॥८१॥ फिर दक्षिण ओरस प्रदक्षिणा करके राजा दण्डयक पद में जान और बहुत मिहामनपर बैस हुए राजाका प्रणाम करके उनकी आज्ञाके वीउ जाने ये ॥८२॥ तदनन्तर नगरमन्दन्वी अनेक कारिगार परामण करके राजा तनकी लौट लव ये । तब राम राजाकी प्रणाम करने और रथपर सवार हो जाने वज्र ने तथा नाचनके जड़ोंको सुनने हुए महल जाने । वहाँ रथम उत्तरकर घरम जान और सीतारके हारी प्रणत जरस पाद-हाथ-मुँह आदि धाकर जो कुछ कार्य कर आत ये, वह सब सीतारों वह सुनाते ॥८३॥ पश्चात् फिर दक्षिण भूमिसे सीतारको सुन्दर हाथ-नाच आदिके द्वारा प्रसन्न करन ये ॥८४॥ उनके बाद राम गोपहन्को लखू वा धर हो मे स्नान करके मध्याह्निक पूज्य करन ये ॥८५॥ जिस जगह वे निवसति स्नान करन ये, उस स्थानका नाम रामतार्य यह गया ॥८६॥ नीनो लोकोंये वह स्थान प्रसिद्ध हो गया । विशेष करके चैवमामय उसका बड़ा माहात्म्य है । मध्याह्निक करनके बाद ब्राह्मणों, मन्त्रियों तथा भिक्वजनोंके साथ तिषट् और रक्ते हुए सुन्दर परिष्कृत सुवर्णपात्रोंम मरुत्तादिवाली तथा जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें कंकण, सांझर, नूपुर और करकनी आदि गहने बज रहे थे, ऐसी सीतारके साथ रथवति राम हृत्पूर्वक भोजन करते थे ॥८७-८८॥ पश्चात् हाथ धो

पुनर्दस्त्राणि मग्नं लब्ध्वा शस्त्राण यद्विष्णुम्, धनुर्धरो करे धृत्वा रथे स्थित्वाऽथ बभूविः ॥९६॥
 पुष्पागमोद्यानकादान् दृष्ट्वा तु कान्तकेन च । बाधय पतननाद्यगत्वा स्वार्थं गृहं पुनः ॥९७॥
 मायमंघ्यादि मणय प्रनहन्वा मांश्चमन् ॥ शंभुं भक्त्या पुनः पूज्य कृत्वा चैवापहारकम् ॥९८॥
 रत्नकांचनमाणिक्यनिर्मितं मंचकं परे । दिव्यश्रमादनन्धं म मानया रघुनायकः ॥९९॥
 हास्यमानविनोदार्थे निद्रा चक्रे ततः परम् । एव नानाभसुम्भार्हर्तिनायाकममाः मुनेम् ॥१००॥
 एकदा राघव राजा ज्ञात्वा मुद्गलवाक्यतः । चापशुभकरतश्चाप चारत्रश्चाप्यमानुषः ॥१०१॥
 माक्षान्नारायणं विष्णु मन्वाहुष रहुः स्थित । पद्मञ्जु धनयेनैव हृदि भावं विधाय च ॥१०२॥
 राम नागपणस्थं हि भूमाग्हरणाय च । मत्ता जाताऽमृतं लाक्षा वदन्त्यज्ञानबुद्धयः ॥१०३॥
 अतः पृच्छामि ते गम मायया माहितस्तव । किञ्चिज्ज्ञानापदशन नाशयाज्ञानजा मतिम् ॥१०४॥
 दागण्यादिमेहेषु स्थिता नैवोपशाम्यति । तन्पितुश्चनं श्रुत्वा गजानं राघवोऽब्रवीत् ॥१०५॥

श्रीराम उवाच

शृणु गजन प्रवक्ष्यामि तव ज्ञानार्थमुत्तमम् । शृणोतु मम मानेयं कौमल्याऽपि तव प्रिया ॥१०६॥
 नश्यत् भामने चैनदविद्य मायोद्भवं नृप । यथा शुर्का रौप्यभामः काचभूम्यां जलस्य च ॥१०७॥
 यथा रज्जो सर्पभायो मृगनाये जलमृदा । तद्वदान्मनि भामोऽय कल्प्यते नश्यरोऽबुधैः ॥१०८॥
 अज्ञानदृष्टिभिर्नित्य मन्यते न तु पादितः । आत्मा शुद्धो निर्व्यर्त्तकः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥१०९॥
 यस्यांशांशेन विश्वेशा वज्राद्याः सकला वयम् । स्थित्युत्पत्तिविनाशार्थं नानारूपाणि मायया ॥११०॥
 धार्यते नदवद्राजन्न नेष्वामक्त एव सः । यथा पद्म न स्पृशति जलं मायां तथा मलः ॥१११॥
 आत्मा नित्यो न स्पृशति परमानन्दविग्रहः । देहागारमुत्सृज्य मामकंति च या मतिः ॥११२॥

यथा तन्मुद्गलवाकर सौ पद्म दृष्ट्वा नर बन्ध साताक साय अराम करत थे ॥ ९५ ॥ फिर वस्त्र पहिन तथा
 'नो हाथमें धनुष-बाण लेकर बभूव के साथ रथपर सवार होकर पुष्पित बाग वगाचाका देखते, आनन्द
 पूरक गायन सुनते तथा साच देखते हुए पुन अपने घर आ सायसव्यादि नित्य कर्म करत और
 विना हाथ करक भलिसे शिवजाकी पूजा करत थे । सायकालका भाजन करक रत्नकाचन तथा माणन
 नुसार पलंगपर दिव्य महलमें सीताके साथ हास्य गीत तथा विनादपूर्वक शयन करत थे । इस प्रकार
 अनन्तमे सुखपूर्वक बारह वर्ष बीत गये ॥ ९६-१०० ॥ एक समय मुनि मुल तथा गुरु वासिष्ठक वाचन
 और रामक द्रव चरित्रका देख राजा दशरथने रामका साक्षात् नारायण समझकर एकान्तमें बुझाया और
 भक्तभाव तथा वित्तपूर्वक कहन लगे-॥ १०१ ॥ १०२ ॥ इ राम ! तूम साक्षात् नारायण हो, तूमने भूमिक
 भार दृष्ट करके जग मेरे घर अवतार लिया है । ऐसा अज्ञानमुक्त बुद्धिवाले लोग कहते है । इस कारण
 हे राम ! तुम्हारे भावासे मोहित मैं प्रार्थना करता है कि तूम जानका उपदेश देकर मेरा अज्ञान दूर कर दो
 ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ सर्व, पृथ तः गृह आदिम अनुरक्त मेरा बुद्धि कथा शक्ति तथा सुखका अनुभव नहीं करता ।
 पिताके इस वचनको सुनकर राम राजा दशरथसे बोले/ ॥ १०५ ॥ श्रीरामने कहा- हे राजन् ! मैं आपको
 ज्ञानलक्षणके लिए उत्तम उपदेश देता हूं । उसे आप तथा आपको प्राणप्रिया और मेरी माता कौसल्या भी ध्य नसे
 मन ॥ १०६ ॥ हे नृप ! मायासे उत्पन्न यह समस्त समग्र आत्मासे उसी प्रकार झूठा भासित होता है जैसे
 कि लीपोंमें चाँदा, रेतामें जल, रस्सीमें साँप तथा भूमागचिकामें सलिल भासित होता है । अज्ञानी लोग
 इस आभासको भी नित्य तथा अनश्वर समझते हैं । परन्तु पण्डित लोग तो इससे विधरोत ही मानते हैं । उनके
 मनमें आत्मा शुद्ध नित्य तथा सच्चिदानन्दस्वरूप है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ उसका अज्ञमात्रसे समस्त विश्वके
 स्वामी ब्रह्मादि तथा हम सब प्राणा माताक अधान हाकर जगत्को स्थिति उत्पत्ति तथा विनाशके लिये नटकी
 तरह विविध रूपोंको धारण करते हैं । किन्तु आत्मा स्वयं किसी में आसक्त नहीं होता । जिस प्रकार कमल
 पत्र जलका स्पर्श नहीं करता, उसी प्रकार अमल, नित्य और परम आनन्दस्वरूप आत्मा भी मायासे निर्लिप्त

उपसंहृत्य बुद्ध्या मन्यम्य ब्रह्मणि चिद्धते । यद्यन्किञ्चिद्भ्रामतेऽथ तत्सन्नायायान्तरम् ॥११३॥
 पश्य त्वं सर्वभावेन मृच्यसे भरतकण्ठम् । मन्य शौचं दया शान्तिः समा चेष्टियतिप्रदः ॥११४॥
 अहिमा भवाद्भक्तित्वेदमागानुवर्तनम् । इत्याद्या ये गुणा राजन् तान् भजस्व तिरस्तरम् ॥११५॥
 चीर्य धूतं विशाद च मान्मरं दन्तमेव च । कीर्य लेभं भय क्रोध शोक निघ्नपरवर्तनम् ॥११६॥
 वेदविप्रवतीनां च मातृनां मानभञ्जनम् । निदां पशुन्यमानसं न्यजत दूर ध्वनौ नृप ॥११७॥
 पूरं त्वया तेषामसं पुत्रश्च यथाचितं मम । तन्माज्जातोऽस्मि न्यलोऽहं कीर्णव्यायानृपोत्तम ११८॥
 यन्मया काथनं चैकदशानमन्तनञ्जनम् । सोपलाघ प्रयत्नेन कथनीयं न कृतचित् ॥११९॥
 तद्रामयचनं श्रुत्वा सा तया मन्त्रा नृपः । महावधिरूपंस्तु गोमाचित्रवपुर्धरः ॥१२०॥
 प्रणनाम राघवस्य स्वर्गा दृढभावनः । नतो रामः पुनः प्राह पितर निर्मलाश्रयम् ॥१२१॥
 नेदं योग्यं न्वया रजन् वदनादि शिषु प्रति । माथया न्यवेपस्य मम उपहामकारणात् ॥१२२॥
 मनमय च मां निन्य मय भावन मादयम् । मन्त्रिस्तो मद्रतवाणो मयि भक्तिं दृष्ट्वा कुरु ॥१२३॥
 शृणु कथा पितरौ मत्स्या गृहात्वाज्ञां तयोः प्रभुः । यया रथममाकटुः श्रुतामः स्थनिकेतनम् ॥१२४॥
 कदा मातुर्गृहं गत्वा मीनया भोजनं व्यवधान् । कदा भ्र दृष्टेऽप्येव कदा पत्नी पितुः स्वयम् ॥१२५॥
 कदा दशरथं तातं भोजनार्थं निजे गृहे । मायापुत्रादिभिर्मृक्तं पारिविप्रैः यमन्वितम् ॥१२६॥
 कदा रामः समाहूय भोजयामास मादयम् । श्रुतामदर्शनार्थं ते तपोवननिवासिनः ॥१२७॥
 अयोध्यानगरीमेत्य दार्षर्णिनिषेधिताः । शतशः प्रत्यहं रामं दृष्ट्वा मृन्त्वा पुनः पुनः ॥१२८॥
 अतिथ्य राघुनाथस्य गृहान्वा तुष्टमानसाः । समर्पचादिनान्येव स्थिन्या पुण्यकथादिभिः ॥१२९॥
 रमयित्वा रमानार्थं जग्मुः स्वं स्वं वसाश्रमम् । यत्र यत्र हि रामस्य प्रति कान्या विद्वदजा ॥१३०॥

रहती है । वह गृह पुनः नया आश्रय से भरता है और उसमें से नया नया जीवन उत्पन्न होता है । इसी प्रकार आप इस भवसागर में मुक्त हो जाएंगे । हे राजन् ! पश्यत आन मन्यसाधन, पवित्रता, दया, शान्ति, क्षमा, इन्द्रवीर्यप्रद, आह्लास, भक्त दूति तथा नान्य मानव अनुबन्धन आदि गुणों के निरन्तर शरण कर ॥ १०६-११६ ॥ हे नृप ! चारी, जुआ, दण्ड, पातक, गुना, लोभ, मज, आघ, शक्ति, निन्दमाद्य काममे प्रवृत्त, वदन्वप्रसङ्गु सन्यसा आदिका मातृभूत निन्दा और वृण्यधरो आदिना अपन शिष्टता दूर कर ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ हे नृप ! आपन पूर्वकाल में तप करके मुझको गुणकृष्ण मोहा था । इसी कारण से आपको कौसल्याक गमसे पुत्ररूपम आश्रयान हुआ है ॥ ११८ ॥ वह जो मेरे आपको अज्ञानरूपी मन्त्र नष्ट करने वाला उपदेश दिया है, उसे आप अपने मनमें ही रक्षितेगा किमासे बर्हिगा नहीं ॥ ११९ ॥ राजके इस उपदेशका मूलतः ही राजाके मनसे मायावृत्त माइ दूर हो गया और स दूतसे परिपूर्ण तथा रोमाञ्चित मरीर हु कर दृढ भक्तिभावसे राजा दशरथसे राघव चरणको चरना को । इस प्रकार निर्मल हृदयवाले पितासे राम फिर कहने लग - ॥ १२० ॥ १२१ ॥ हे राजन् ! पुरको प्रणाम करना आपका अचित नहीं है । मायासे मनुष्यदेहधारी मेरा इससे उग्रहास होगा । इस कारण आप सदा आदरभावसे यत्नम हा मेरा भजन किया कर । मन तथा प्राणको पुजे अर्पण करके मेरी दृढ भक्ति कर ॥ १२२ ॥ ऐसा कह तथा आना पित्तको आह्ला लेकर श्रीरामने उनकी वमस्कार किया और रघुवर सवार हाकर अपने भवनको चल गये ॥ १२४ ॥ वे सीताके साथ कभी माताके महलमें जाकर भोजन करते, कभी गण्ड्योके भवनमें और कभी पिताके साथ पत्तिम बैठकर भोजन करते थे । कभी शिष्यो पुत्रो ब्राह्मणो तथा नागरिकोंके साथ पिता दशरथको अपने भवगम बुलाकर सादर हर्षपूर्वक भोजन कराते थे । प्रतिदिन सेकड़ोंकी सख्यामें भक्तवासी पुनिजन भी श्रीरामचन्द्रका रक्षण करनेके लिये अयोध्या आते रहते थे । वे बिना रोकटोक भस्तर जाकर रामकी दर्शन तथा स्तुति करते और रामके द्वारा किये हुए सत्कारको ग्रहण करके प्रसन्नतापूर्वक वापिसात दिन वही रहकर अपने-अपने

तस्य चकार मा साध्वी हास्यक्रीडामनादिकम् । विवाहानन्तरं रामः समा द्वादश मातया ॥१३१॥
 रमयामास साकेते महाक्रीडावृत्तमरम् । महन्नवर्षविज्ञेयं श्रेष्ठं वर्षं कृते युगे ॥१३२॥
 शतवर्षं च त्रेतायां द्वापरे दशवर्षजम् । कलेर्मानेन वोढव्यं शून्यहमान्त्रिक्रमान् ॥१३३॥
 एवं श्रीरामचन्द्रेण भोगा श्रुताः सुगेषमाः । यस्मिन् ऋतौ च यद्वद्रव्यं फलपुष्पादिकं शुभम् ॥१३४॥
 नत्सर्वं सर्वदेशमाद्रामे साकेतमस्थितं । अनावृष्टिर्न वै कुत्र नस्कृताणां भयं न हि ॥१३५॥
 हिमार्दानां भय नार्मादयोध्याविषये प्रिये । युधाजिह्वाय कैंकेयीभ्राता भग्नमातुलः ॥१३६॥
 निनाय भरतं स्वर्ग्यराज्ये शत्रुघ्नमधुनम् । कौतुकेन नृपं पृष्ट्वा कैंकेयीं प्रणिपत्य च ॥१३७॥
 एवं रामस्य मांगल्यं बालन्वेऽपि सुखावहम् । ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या न तेषामन्यमंगलम् ॥१३८॥
 एवं यथा त्वया पृष्टं तथा सर्वं भयोदिनम् । गमेणाचरितं यच्च नृणां मांगल्यदायकम् ॥ ३९॥
 एवं गिरौद्रजे प्रोक्त बाललीलादिकौतुकम् । रामचन्द्रस्य संक्षेपात्तत्र प्रीत्यै सुखावहम् ॥१४०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्तने श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

रामदिनचर्याविर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

पष्ठः सर्गः

(रामका दण्डकवनमें प्रवेश)

श्रीशिव उवाच

एवं त्रेतायुगे रामं नगर्षा सीतया सुखम् । क्रीडत नारदोऽर्केन्द्रे यथावाकाशवर्त्मना ॥१॥
 अथ रामो मुनिं पूज्य मातया लक्ष्मणेन च । शुश्राव वचनं तस्य सुरैर्विज्ञापितं च यत् ॥२॥
 निहत्य रावणं युद्धे ततो राज्यं कुरुष्व हि । अंगीकृत्य रघुश्रेष्ठस्तं मुनिं च व्यसर्जयन् ॥३॥
 अथ रामोऽब्रवीत्सीता मम राज्यमभिषेचनम् । कर्तुकामोऽस्ति तत्राहं विघ्नमुत्पाद्य दण्डकम् ॥४॥

अश्रमको चले जाते थे । जो काम करनेसे राम प्रसन्न होते थे, पतिव्रता सीता उन-उन हस्य-क्रीडा तथा भासनादिका विधान करती थी । विवाहक बाद रामने बारह वर्ष तक सीताके साथ अयोध्यामें आनन्द पूर्वक विलास किया । कलियुगके हजार वर्षोंके बराबर सत्ययुगका एक वर्ष जानना चाहिये । कलियुगके सो वर्षोंके बराबर त्रेतायुगका एक वर्ष और कलियुगके बारह वर्षोंके बराबर द्वापरका एक वर्ष होता है ॥१२५-१२३॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रेने बारह वर्ष तक देवताओंके योग्य भोगोंका भोग । रामचन्द्रजीके अयोध्यामें रहते समय जिस ऋतुमें जो पुष्प-फल आदि होना चाहिए, वह सब नियमसे उत्पन्न हुआ करता था । कभी अनावृष्टि नहीं हुई और चोरोका भय नहीं रहा । हे प्रिये पार्वती ! उस राज्यमें कभी किसीका हिंसक पशुओका भय नहीं हुआ । एक दिन युधाजित् नामक कैंकेयीका भाई तथा भरतका मामा वहां आया और राजासे पूछ तथा कैंकेयीको मनाकर शत्रुघ्नसहित भरतका अपने राज्यमें ले गया । ॥१३४-१३७॥ बाल्यावस्थामें ही मङ्गलस्वरूप तथा सुखदायक रामके धर्मिको जो मनुष्य भक्तिभावसे सुनता है उसका कभी अमङ्गल नहीं होता । ॥१३८॥ १३९॥ इस प्रकार मनुष्यमात्रके लिए कल्याणकारी श्रीरामचन्द्रका चरित्र मैंने तुमको कह सुनाया ॥ १३६॥ १४०॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्तने श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये बालचरित्रे भाषाटीकाया सारकाण्डे रामदिनचर्याविर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीशिवजी बोले—इस तरह अयोध्यानगरीमें सुखपूर्वक सीताके साथ क्रीडा करते हुए रामके पास बारहवें वर्षमें एक दिन आकाशमार्गसे नारद मुनि पधारे । १ ॥ सीता तथा लक्ष्मणके साथ रामने मुनिकी पूजा की और उनके मुखसे देवताओंका यह संदेश सुना कि आप पहले रावणको मारकर पञ्चात् राज्य करें । रघुश्रेष्ठ रामने भी 'बहुत अच्छा' कहकर उन्हें विदा किया ॥ २ ॥ ३ ॥ तदनन्तर राम सीतासे कहने लगे—हे सीते !

गच्छामि गवणादीनां वधार्थं लक्ष्मणन च । अयाध्यायां वसुत्र त्वं कौमल्या पार्थिव भज ॥५॥
 नद्रामवचनं श्रुत्वा प्रणिपत्य गृध्रचमम् उवाच मधुरं वाक्यं वनं मां त्वं नव प्रभो ॥६॥
 कागलान्यत्र वै त्राणि भूति तानि विलम्बहम् । मन्त्रव्यय प्रयाणं मे दंडक हि न्वया सह ॥७॥
 वनप्रयाणं मामाह भर्ता म मन्त्रशार्दिजः । बालन्वे कर्मणा मे दण्डा कश्चिद्द्विजप्रणीः ॥८॥
 अन्यन्त्रयत्रे पूर्व सुरागपि मयोदितम् । यदा चापांतिके प्रायः सज्जितुं त्वं सभां गण ॥९॥
 चतुर्दश वस्त्राणि मुनिवृत्त्यनुगमिना । विवर्णित्याम्यमयेऽहं धनुः सज्ज कर्मेश्वरम् ॥१०॥
 तस्मै न्य कुरु मद्रावय प्रयाणादंडक न्वया । अन्यच्छृणु मया पूर्व रामायणमनुत्तमम् ॥११॥
 तत्र मतां विना रामो न गतोऽस्मि हि दंडकम् तस्मात्त्वं मां गृध्रेऽहं दंडकं नेतुमर्हसि ॥१२॥
 तन्मतावचनं श्रुत्वा तदापि न्विति वचोऽब्रवीत् । विहस्य राक्षसः श्रमात् समाहित्य विदेहजम् ॥१३॥
 अथ राजा दशरथः श्रममस्यामिपेक्षनम् । पौत्रराज्यपदे कर्तुमुद्युक्तः प्राह वै शुम्भम् ॥१४॥
 पौत्रराज्यपदे रामममिपेक्षं त्वमहमि । तद्राजवचनं श्रुत्वा गुरुर्दशरथं नृपम् ॥१५॥
 कौमल्यागृहमागत्य बोधयामास वै तदाः । राजन शृणु त्वं कौमल्यामुचित्रं शृणुत त्विमे ॥१६॥
 गवणस्य वधार्थं हि रामः श्वो दंडकं वनम् । समिप्यति लक्ष्मणेन मीनया कंकणीवरत् ॥१७॥
 तस्मात्त्वमज्ञवत्सुषीं सभागनमिपेक्षितुम् । काव्यस्य मुसंगेण सपाहूय नृपादिकान् ॥१८॥
 आशमयिष्याद्विद्राजन् ब्राह्मणस्यापि आपनः । अचिरदेव स्वर्लोकं त्वं समिप्यसि पार्थिव ॥१९॥
 कौमन्धेय रामराज्योन्मत्तं पश्यतु वै पुनः । अतर्हिश्वादिमानस्यस्त्वं पश्यसि महोन्मत्तम् ॥२०॥
 दुर्न्या भाविनी रथा बद्धादीनां नृपोत्तम । इति श्रुत्वा गुणैर्वाक्यं तेन राजा सभां यया ॥२१॥
 रामराज्याभिषेकाय सभागनकरोन्मुदा । दुर्न्याकाश्यामाम नृपान् दक्षस्थस्त्वदा ॥२२॥

पिताजी राम ने जहाँभीकि वचना चाहते हैं, परन्तु मैं उनसे विद्वत् शब्दों के साथ रावण अदिका मारनेके लिए लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्य जानेवाले तैयारी की है । तुम महा दण्डकर माता कौमल्याकी और महाराजकी सेवा करना ॥ ४ ॥ ५ ॥ रामका यह वचन सुनकर मैं तो बहुतस राक्षस वरणापर और पत्नी और यह मधुर वचन वाली—इ प्रभा ' मुझ भा बाल साय वनका ये चला ॥ ६ ॥ इससे तब कारण है । उन्हे मैं बताती हूँ । एक तो यह कि बाल्यावस्थामें मेरे हाथकी रत्न वचकर एक बाल्यावस्था में कहा था कि तुम अपने पतिके साथ बसवास करोगी । सो आपकी साथ वनमें जानसे इस बाल्यावस्था वीत सदा ही जायगी ॥ ७ ॥ ८ ॥ दूसरा कारण यह है कि जब आप सभाके वंश स्वधन्यत्व मद्रा वन्द्य वृत्ति चल पड़े । तब मैं देवताओंसे प्रार्थना की थी—हे देवताओं ! यदि राम बहुत बड़ा लड़का है तो मैं सोचूँ कि वह तक मुनिवृत्ति प्राप्त करके वनमें विचरण करेगा ॥ ९ ॥ १० ॥ अतएव आप मुझे वनमें लक्ष्मण परी प्रतिज्ञाकी भी सदा बनाए । तासका कारण यह है कि मैंने सर्वोत्तम रामायण-महाकाव्यमें यह सुना है कि माता के बिना राम अवन कभी वनमें नहीं गये । सो आपको मुझे दण्डकारण्यमें साथ ले चलना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ सभाके वचन सुनकर रामने उत्तरा आलिङ्गन करके "नयाम्तु" कहा ॥ १३ ॥ इष्ट राजा दशरथ ने रामकी युवराजदण्ड पर अभिषेक करनेका निश्चय करके गुरु वसिष्ठस्य कहा कि आप श्रीरामका युव राजपद पर अभिषेक कर । इस बातको सुनकर वे राजा दशरथका कौमल्याके भवनमें ले जाये और एकान्तमें कहने लगे— ॥ १४-१५ ॥ हे राजन् ! आप तथा वे कौमल्या और मुमित्रा मेरे कन्यकों पुत्र । राम कैथीके वरस सीता तथा लक्ष्मणकी साथ लेकर रावणको मारनेके लिए बल हा दण्डकवन चले जायेंगे ॥ १६ ॥ इसलिये अन्तमानकी तरह आप चुपचाप रामका अभिषेक करनेके लिए भूमध्यवा कहकर सब साथी मंगलवाङ्गी और समस्त राजाओंकी निभान्वित करिए ॥ १७ ॥ हे पार्थिव ! श्रीरामके विरुद्ध तथा ब्राह्मणके आपसे आप कीष्ट स्वर्ग सिंघासेने ॥ १८ ॥ बादमें कौमल्या रामके राज्योत्सवकी देखेगी और स्वर्गीय विमानमें बैठकर आप अन्तरिक्षसे वह वस्तु देखेंगे ॥ २० ॥ हे नृपोत्तम ! अविष्यकी रक्षा ब्रह्मादिकाके लिए भी दुर्लभनीय होती है । गुरु वसिष्ठका यह वचन

ऋषीश्वराः समाजस्मृर्नानाश्रमनिवासिनः । नगरी शोभायामासुर्दृताश्चित्रध्वजोत्तमैः ॥२३॥
 पताकाभिस्तोर्णैश्च हेमकुर्ममैर्नोरमैः । गुरुगङ्गापयामास मुमत्र नृपमश्रिणम् ॥२४॥
 शः प्रभाते मध्यकक्षे कन्यकाः स्वर्णभूषिताः । निष्टन्तु पौडश गजाः स्वर्णगन्नादिभूषिताः ॥२५॥
 चतुर्दन्तः समायातु ऐरणतकुलोद्भवः । नानार्ताधोदिकः पूर्णाः स्वर्णभूषाः महस्वराः ॥२६॥
 स्थाप्यतां तत्र वैद्याग्रचर्माणि क्रांति वा नत्र । श्वेतच्छत्र रत्नदंडं मुक्तामणिप्रिगाजितम् ॥२७॥
 दिव्यमाल्यानि वस्त्राणिदिव्यान्याभरणानि च । मूनयः मस्कृतास्तत्र निष्टन्तु कुशपाणयः ॥२८॥
 नर्तक्यो वातमृक्याश्च गायका वैदिकाम्बधा । नानावादित्रकुशला वाद्ययंतु नृपांगणे ॥२९॥
 हस्तपद्मस्थपादाता सहस्रिष्टतु मायुधाः । नगरे यानि निष्टन्ति देवतायतनानि च ॥३०॥
 तेषु प्रवर्ततां पूजा नानाचलिभिर्गदताः । राजानः शीघ्रमायान्तु नानोपायनपाणयः ॥३१॥
 इत्यादिश्य वसिष्ठस्तु रथेन रघुनन्दनम् । गन्वा सम्मानितस्तेन सर्वं वृत्तं न्यवेदयन् ॥३२॥
 निमित्तमात्रस्व राम शो ममिष्यमि दंडकान् । चतुर्दश ममास्तत्र स्थित्वा महन्त्य रावणम् ॥३३॥
 वंधुना मीतया सार्धं ततो राज्ञं कम्पिष्यमि । लौकिकीं वृत्तिमालम्ब्य स्वाकुरुष्व पितुर्वचः ॥३४॥
 अथ त्वं सीतया मार्घमुपवामं यथाविधि । कृत्वा शुचिर्भूषितशायी भव राम जितेन्द्रियः ॥३५॥
 इत्युक्त्वा रथमारुह्य दृष्ट्वा राम मलक्ष्मणम् । जानकीं चापि स गुरुर्ययी राजगृहं पुनः ॥३६॥
 कीमल्या च सुमित्रा च रामराज्याभिषेचनम् । मृषार्घ्यं श्रुत्वा श्रांगुगोरास्यान्स्नेहममन्विते ॥३७॥
 चक्रतुः पूजनं देव्यास्तद्विध्नोपशममृष्टे । बलिदानैः शान्तिपाठमुनिबुद्धममन्विते ॥३८॥
 अधापराद्धे सौधस्था दास्याः पुत्री तु मधरा । शोभितां नगरीं दृष्ट्वा पृष्ट्वा वृष्ट्वा पथि स्थिताम् ॥३९॥

मुनिकर राजा दशरथ मन्नाम गय ॥ २१ ॥ वहा मन्नाम रामक राजराधिकके बाम्न सब सामग्री जुटवाया
 और प्रमदतापूर्वक दूतोंको भेजकर राजाओंकी बुन्वाया ॥ २२ ॥ उस समय आश्रमोंमें रहनेवाले अनेक
 ऋषीश्वर भी वहाँ आ पहुँच । दूतोंने चित्र किंचित् ध्वजा, पताका और तारणोंसे नगरीकी सजाव ॥ इत्यान-
 नानपर उत्तम तथा मनोहर मुक्तोंके कल्पस्थ स्थापित किये गये । गुरु वसिष्ठने मन्त्रों सम्मन्त्रको आज्ञा दी कि
 राजा सबर ही सुवर्णक अलङ्कारोंसे अलंकृत कन्याएँ और चार चार दंतोंवाले ऐरावत कुंजमें उत्पन्न मुक्ता तथा
 रत्नों आदिस अलंकृत सोलह हाथों मध्यबलम उपस्थित रहन बाहिये वहाँ अनेक तीर्थोंके जलसे परिपूर्ण
 मूर्तिकां ॥ २३-२६ ॥ तीन या नौ बाघम्बर, मोती और मणिगोमे सुशोभित रत्नजडित दण्डवाले श्वेत छत्र,
 चमर, सुन्दर घालाई, सुन्दर वस्त्र तथा दिव्य आभूषण भी तैयार रह । स्नान आदि सम्स्कारोंसे सम्स्कृत
 मूनजन हाथमें कुश लिये हुए तैयार रह ॥ २७ ॥ २८ ॥ नर्तकिय, बेज्याँ, गायक, वेदघोष करतवाने विप्र तथा
 नन्दा प्रकार राजा बजानेमें कुशल जिला मिलकर राजमहलके सामने नाना-बजाना प्रारम्भ कर दें ॥ २९ ॥
 हाँ, घोड़े, रथ और पैदल सना शस्त्र धारण करके बाहर खड़ी रहे । नगरमें जहाँ-जहाँ देवाल्लय हैं, वहाँ बड़ी
 बल्लक सामग्रियोंसे प्रेमपूर्वक पूजा की जाय और सब राज घट लेनेकर उपस्थित हो ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इतना
 बरबर वसिष्ठ रथपर सवार हुए और रघुनन्दन रामके पास गये । रामने उनका आदरपूर्वक आसन दिया ॥
 तब मुनि ने उन्हें सब वृत्तान्त सुन ले हुए कहा— ॥ ३२ ॥ हे राम । तुम निमित्तमात्र हो । बल तुम दण्डकवनके
 चले आओगे । वहाँ चौदह वर्ष रहकर रावणको मारोगे । उसके पञ्च भाई लक्ष्मण तथा सीताके साथ
 प्रमदतापूर्वक राज्य करोगे । अतएव लाकव्यवहार निभानक लिए पिताके वचनको मान लो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥
 राजा तुम सीताके साथ पवित्रतापूर्वक विधिवत् ब्रह्मचर्यसे रहो और पृथ्वीपर शयन करो ॥ ३५ ॥ ऐसा कह
 और राम-लक्ष्मण तथा सीतासे मिलकर गुरुदेव रथपर सवार हुए और वहाँसे राजमहलकी बल दिसे ॥ ३६ ॥
 रत्ननगर कीसन्या और सुमित्रा गुरुदेवके मुखसे रामके राज्याभिषेकको मृदा सुनकर भी स्नेहवश विध्नोको
 शान्तिकी इच्छासे मुनियोंकी साथ लेकर पूजाद्रव्यों तथा शान्तिपाठोंसे देवीका पूजन करने लगीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥
 रत्नहृदके समय छतपर खड़ी वासोपुत्री मधराने नगरकी सुशोभित देखकर रास्तेकी एक बुढ़ियासे इसका

श्रुत्वा श्रीरामराज्यार्थं ययौ वैगेन कैकेयीम् । सर्वं कृतं निवेद्याथ तूर्णमाम्नीत्तदा क्षणम् ॥४०॥
 तन्नुन्वा कैकेयी चापि तस्यै भूषणमर्पयन् । एतस्मिन्मनरे वाण्या देववाक्यान्मुमोदिता ॥४१॥
 नृपा दृष्ट्वा तु कैकेयी भर्म्मयन्त्याह तां पुनः । मूढे कथं न्वं नृपाऽमि हतभाग्याऽमि वेद्यहम् ॥४२॥
 गमे राज्यपदं ग्रामे कौमल्यायाश्च कैकेयि । दासी भविष्यसि न्वं हि अनौ मद्वचनं कुरु ॥४३॥
 वरेण न्यामभूतेन राज्ये श्रीभगवाय हि । नृपं प्रार्थय रामस्य द्वितीयेन वरेण च ॥४४॥
 दंडकारण्यगमनं चतुर्दश समाः पदा । क्रोधागारं प्रविश्याथ कुरुष्व यन्मयेस्तिम् ॥४५॥
 तन्मथोक्तं श्रुत्वा मत्वा सापि तथाऽक्रोन् । मोदिता साऽविवेकेन श्रीराघवमुरेच्छता ॥४६॥
 ननो निशायी राशे सा ज्ञाना क्रोधशून्मथिता । गन्वा तत्र नृपः शीघ्रं दर्शे कैकेयीं तदा ॥४७॥
 विरूपायमाणकैज्ञां तां न्यक्त्वाऽलंकारमडनाम् । भूमौ शयनां तां दृष्ट्वा ज्ञान्वा तस्या मनोगतम् ॥४८॥
 गमाय दंडकाण्यं शीघ्रमज्य मुक्ताय च । वराभ्यां याचितं ज्ञान्वा हेतुक्त्वा भूच्छिनोऽभवत् ॥४९॥
 प्रभाने तन्मुमंत्रेण वृत्तं श्रुत्वा नृप ययौ । कैकेयीं मन्त्रिणा पृष्ट्वा मुमंत्रं प्राह सा तदा ॥५०॥
 श्रीराज्यस्य श्रीरामं द्रष्टुं न वाञ्छते नृपः । सोऽप्याह गमे नृपतिमपृष्ट्वा नानयाव्यहम् ॥५१॥
 तदा शनैर्नृपः प्राह शीघ्रमानय गघवम् । मुमंत्रोऽप्यनयामाम्य गघवं पाथिवाक्या ॥५२॥
 गता रामो नृप गन्वा श्रुत्वा कैकेयजागिरा । आत्मानं दंडके वामं वदन्तं पितुः पुरा ॥५३॥
 तथेव्यर्गाचकाराथ नृपं वचनमब्रवीत् । मा ते शोकोऽस्तु हे तात बह गन्तव्यमि दंडकान् ॥५४॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा मान्वयामास गघवः । अहं प्रतिज्ञा निस्तीर्य शीघ्रं वास्यामि ते पुराम् ॥५५॥
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मान्वयामास गघवः । अहं प्रतिज्ञा निस्तीर्य शीघ्रं वास्यामि ते पुराम् ॥५६॥

४० ग्ग पूछा । ३९ ॥ उसके मुखमें रामकी राज्याभिषेककी बात सुनकर वह बाध में बंधक पास गये और सब वृत्तान्त सुनकर क्षण भर चुन्चली खड़ा रहा ॥ ४० ॥ उसकी बात सुनकर कैकेयिन उसका अपना एक आभूषण दे दिया । इननन दत्तात्रेयका प्रणय तथा मन्त्रकेस माहित मंधरा कैकेयिकी प्रसन्न श्रवण उस डगती हुई कहने लगी—अब मूढ़ रामकी राज्यभियेकका समाचार सुनकर तू प्रसन्न क्यों हुई ? ऐसा जात होता है कि तूरा भाव तुझसे रुठ गया है । यदि रामकी राज्य मिल गया तो आ कैकेयी ! तूने कौमल्याका दासी बनना पड़ा । इस कारण जा मैं कहूँ, वंसा कर । ४१ ॥ ४२ ॥ अपन पति राजा दशरथक नाम घरावर रखस दो वराममें एकका द्वारा तू भग्नक स्थि राज्य सीत और दूसरे वरका द्वारा चौदह वर्षक लिए रामका पंदल दण्डका रणगमन भोगि तू अभी कणभवनमें चली जा ॥ ४३-४४ ॥ उसने भी श्रीरामचन्द्र तथा दत्तात्रेयका इच्छास और अविवेकक कारण माहित मन्यराक उस कथनको अपना हितकारक समझकर वंसा हो लिया ॥ ४५ ॥ मायवानक समय जब राजाका ज्ञान हुआ कि कैकेयी कणभवनमें है, तब वह उसके पास गये और दत्तात्रेय कि कैकेयी मिरके जाल खाले, भूषण तथा वस्त्रोंका पैकेकर धरतीपर गड़ी हुई है । पश्चात् जब राजा दशरथन उसके अभिप्रायका ज्ञान तो उसके कथनानुसार दो वरोंमें एकका द्वारा रामका दण्डकारण्यवास और दूसरेका द्वारा भरतकी यौवराज्य वनका जल स्वाकार करक मूर्च्छित हो गये । ४७-४९ ॥ प्रातः काल मंत्री सुमन्त्र इस वृत्तान्तका सुनकर राजाके पास गए । सुमन्त्रके पक्षमेंपर कैकेयिन कहा-- ॥ ५० ॥ राजा रामकी इच्छना कहने है । जाओ, उन्हें वहाँ बुला लाओ । सुमन्त्रने कहा कि राजासे बिना दूतों में रामका यहाँ नहीं ले आ सकता ॥ ५१ ॥ तब राजान वरामें कहा कि 'रामको शीघ्र ले आओ ।' सुमन्त्र भी महाराजकी आज्ञासे शीघ्र रामकी ले आये ॥ ५२ ॥ रामने राजाके पास आकर कैकेयीकी वाणीमें अपने दण्डकारण्यवास तथा पिताभ पूर्वकालमें बरदान देनेका हाल सुना तो 'तथास्तु' कहकर स्वाकार किया । उन्होंने राजासे कहा--हे तात ! आप शोक न करें, मैं अभी दण्डकारण्य जाता हूँ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ रामकी वचन सुनकर राजा दशरथ कहने लगे-- हे राम ! तुझको छोड़कर तुम वनमें कैसे जाओगे ? ॥ ५५ ॥ पिताके इस कला वचनको सुनकर राम उन्हें

इदानीं गंतुमिच्छामि ज्येष्ठे मातुश्च हृच्छयः । मानरं च समाधाय ह्यनुनीय च जानकीम् ॥५७॥
 अगत्य पादौ बद्ध्वा नव यास्ये मुखां वनम् । हन्युक्त्वा हौ परिक्रम्य मानरं द्रष्टुमाययौ ॥५८॥
 नत्वा स्वमानरं रामः समाधाय पुनः पुनः । नत्वा प्रदक्षिणाः कृत्वा तामामंत्र्य ययौ गृहम् ॥५९॥
 सर्वं वृत्तं तु सीतां च कथयामास राघवः । सीतया लक्ष्मणेनापि वनं गंतुं पुनः पुनः ॥६०॥
 प्रार्थितश्च तथेन्युक्त्वा स्वयामास राघवः । सर्वस्वं ब्रह्मणान्द्रा सीतयाऽग्निममन्वितः ॥६१॥
 पद्भ्यामेव शनैश्चाग्रा ययौ रामो नृपान्निकम् । गच्छतं पथि श्रागमं पद्भ्यां दृष्ट्वा पुर्गकमः । ६२॥
 परम्परेण ते वृत्तं श्रुत्वा व्याकुलमानसाः । बभूवुस्तान्त्वामदेवः कथयामास सादरात् । ६३॥
 नागदागमनं रामप्रतिज्ञां राघवस्य च । वधादिकं सविस्मरं विष्णु मनुजरूपिणम् । ६४॥
 पीडाः श्रुत्वा मनकलेशा बभूवन्पथि सन्धिनाः । नतो नत्वा नृपं रामः कंकेरीं वाक्यमब्रवीत् । ६५॥
 अग्न्यागतीऽहं विपिनं गनुमाज्ञां ददस्व माम् । ततः मा बल्कलादीनि दर्शय रामादिकांश्चरा । ६६॥
 रामभ्यान् परिधायाथ स्वयं मानामशिक्षयन् । तद्दृष्ट्वा कंकेरीं प्राह गुरुः क्रोधेन भर्म्मयन् । ६७॥
 जडे पापिनि दुर्वृत्ते राम एव त्वया वृतः । वनवामास दृष्टे त्वं सीतार्थं किं प्रदाम्यमि ॥६८॥
 हन्युक्त्वा दिव्ययस्त्राणि सीतार्थं च गुरुर्ददौ । राज्ञा दशरथोऽप्याह सुमित्रं रथमानय ॥६९॥
 रथमारुह्य गच्छन्तु वनं वनचरप्रियाः । रामः प्रदक्षिणं कृत्वा पितरौ रथमारुहन् । ७०॥
 सीतया लक्ष्मणेनाथ चोदयामास मागथिम् । कौमन्यां च मुमित्रां च तातमाश्रयस्व वै पुनः ॥७१॥
 ममाश्रय्य जनान् रामस्तममानीरमाययौ । माघमामे मिते पक्षे पंचम्यां परमेऽहनि ॥७२॥
 प्राप्ते ह्यष्टादशे वर्षे राघवाय महात्मने । आमानद्वनप्रयाणं हि स्वपुत्र्यास्तममावृतम् ॥७३॥

सात्वता देते हुए वने किं मैं आपका प्रतिज्ञा पूरा करके शीघ्र पुरंगे लौट जाऊंगा ॥ ५६ ॥ परन्तु इस समय ना मैं जाना ही चाहता हूँ । जिसमें कि माना कंकेरीक हृदयका शाक दूर हो सके । भाताको आश्रय दे तथा साताका समझावर मैं आ रहा हूँ । तब आपके चरणोंका प्रणाम करके भस्मसे वनको प्रस्थान करूँगा । यह कहकर राम उन दोनोंकी परिक्रमा करके दर्शन करनेके लिये माना वीरगन्याके पास गये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ भाताको नमस्कार करनेके बाद बाल्मिकीर समझा तथा प्रदक्षिणा करके उनकी आज्ञामें अपने महत्त्वमें गये ॥ ५९ ॥ वहाँ जेकर श्रागमने सीताको समस्त वृत्तान्त कह सुनाया । जब सीता और लक्ष्मण बारम्बार अपने साथ वनमें न चलेकी प्रार्थना की, तब 'अच्छा' कह तथा शीघ्र बाल्मिकीको सर्वस्व दान देकर सीता तथा अग्निको साथ लेकर भाई लक्ष्मणके साथ पैदल ही राजाके पास आये । रामने पुरवासीजन रामको पैदल आते देख तथा एक दुसरेमें सब वृत्तान्त जानकर नई चिन्तातूर हुए । तब बाल्मिक मुनिने प्रेमसे उन लोगोंको नागदका आगमन, रामका प्रतिज्ञा, राघवका वध तथा विष्णुका मनुष्यरूप धारण करना आदि वृत्तान्त विस्मरणसे कह सुनाया ॥ ६०-६४ ॥ रामने स्वदे पुरवासीजन उनका यह बात सुनकर शान्त हो गये । रामने राजाके पास जा तथा उन्हें नमस्कार करके कंकेरीसे कहा ॥ ६५ ॥ हे अम्ह ! मैं वन जानेके लिए तैयार हो गया हूँ । आप मुझे आज्ञा दें । तब उसने राम, सीता तथा लक्ष्मणको पहिनेके लिये बल्कल वसन दिये ॥ ६६ ॥ राम स्वयं उन्हें पहिनेकर सीताका बल्कल पहिना मिश्रलाने लगे । यह देखकर मुनि बसिष्ठ कृद्व हाकर कंकेरीको घमकाते हुए कहने लगे—॥ ६७ ॥ ओ जडे ! अरी पापिनि ! अयि दुर्वृत्ते ! तूने केवल रामके वनवासका वर माँगा है । तब सीताको पहिनेके लिये बल्कल क्यों देता है ? ॥ ६८ ॥ यह कहकर सीताके पास गुरुने दिव्य वस्त्र दिये । राजा दशरथ बने—हे भस्मन्त्र ! रथ से आओ । उस रथपर सवार होकर वनचरोके लिये मैं सीता वनका जायेंगे । बादमें रामने माना पिताको प्रदक्षिणा की और सीता तथा लक्ष्मणको साथ कर रथपर सवार हुए । तब सारथीको रथ चालनेकी आज्ञा दी । कौमन्या, मुमित्रा, पिता तथा अन्य जनोकी भस्मसे देकर राम चल पड़े और शीघ्र ही तमसा नदीके तीरपर जा पहुँचे । अठारहवें वर्षके माघ शुक्ल चतुष्टयमीकी शुभ तिथिकी महात्मा रामने अपने नगरसे चलकर तमसाके किनारेकी ओर प्रयाण किया था

सुमित्रोऽपि पुरीं गत्वा नृपं वृत्तं न्यवेदयत् । मोक्षेति राजा राघवेति जपन्स्त्वं जीवितं जहा ॥९१॥
 नृपं मृतं गुरुज्ञान्वा तलद्रोण्यां निधाय नमः । युधाजिष्मगगद्भुतः कंकेर्यास्तनयाबुधौ ॥९२॥
 आनयामास भरतश्चक्रुः श्वेगमस्तदा । मातुर्भावापि वेगेन स्वां पुरीं संविवेशतुः ॥९३॥
 मात्रा मयादितं कृत्यं शान्वा विवृणुत्य मातरम् । भग्नः पितरं वह्निं ददां सरयुर्मकते ॥९४॥
 योगिणां मातरस्ताश्च जग्मुर्न स्वामिना दिवम् । पितुरुत्तरकार्यादि कर्म कृत्वा सविस्तरम् ॥९५॥
 मथगं ताडयामास मातुरग्रं पुनः पुनः । प्राधितोऽप्यभिपेक्षार्थं राज्यमर्गाचकार न ॥९६॥
 ततो मंत्रिजनैः साकं मातृभिः पुर्यामिभिः । परावर्तयितुं रामं ययौ स भरतस्तदा ॥९७॥
 गुह्यं मानितश्चापि भारद्वाजश्रमं ययौ । तपोबलेन भूस्वर्गं निर्माय भग्नं मुनिः ॥९८॥
 मर्मन्य पूजयामास तं नन्वा भरतोऽपि सः । मुनिमदक्षितपथा चित्रकूटेऽग्रजं ययौ ॥९९॥
 दृष्ट्वा रामं तु शालायां सीतया च पुनः स्थितम् । नन्वा तेनालिङ्गितश्च सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥१००॥
 रामः श्रुत्वा मृतं तदं गत्वा मदाकिर्ना नदीम् । स्नान्वा तिलाञ्जलिं दत्त्वा यया शालां निजागिरौ १०१॥
 ततस्तं प्रार्थयामास भग्नो गुरुणा सह । राज्यार्थं राघवश्चापि नेत्युवाच पुनः पुनः ॥१०२॥
 प्रायोपवेशनं तत्र दग्धेषु भरतस्तदा । चकार निग्रहं तस्य शान्वा गुरुमचोदयत् ॥१०३॥
 रामाक्षया गुरुश्चाह 'मग्नं रक्षयस्त्वदा । भूभारहरणार्थाय विष्णुः साक्षाद्रघूत्तमः ॥१०४॥
 अत्र जानोऽस्मि देवानां वचनाद्वाचनादिकान् । इतुं गच्छति रामोऽद्य मा त्वं निग्रहमाचर ॥१०५॥
 ततो ज्ञात्वा हरिं रामं भग्नो राममब्रवान् । राज्यार्थं पादुके देहि तयोः सेवां करोम्यहम् ॥१०६॥
 जटाशृङ्गलधारी च वमामि भगगद्बहिः । प्रतीक्षां तव राजेन्द्र वर्षाणि च चतुर्दश ॥१०७॥

शालाय करन लग । - १०१ ॥ उधर मुमन्त्रन अवघातुंगम जाकर राजा दशरथका सब वृत्तान्त सुनाया । राजान
 भो 'हो राघव ! हो राघव !' करन-करने प्राण छोड़ दिये ॥ ११ ॥ तब गुरु वसिष्ठन मृत राजाके शरीरका तलक
 टाकमें रखवा दिया और युधाजित्क नगरमें टिक दानो पुत्रो भरत जगन्मनका द्वाक द्वारा तुरन्त बुख्याया । वे
 दानो भाव्य अरन नगरमें आये तथा माताक कुटुम्बका मुनकर उसे विस्वाग्मन लग । भरतन पिताक शरीरका
 मग्न नदीकी बाणुकाम अग्निमंस्कार किया ॥ ९२-९४ ॥ और गुरुका माता । स्वामाक साथ स्वगलोक-
 का नही गयो । भरतने पिताकी उत्तरक्रिया विस्तार सहित की ॥ ९५ ॥ तदनन्तर भरत जगन्मन माताके
 मामन मयराको बारम्बार पडा और माताके बहुत कहेपर भी भरतने राज्य नही स्वीकार किया ॥ ९६ ॥
 पछ न वे मन्त्रिवा, माताओ तथा पुर्यामिगक साथ रामका लौटा लानेके हेतु बनकी गये ॥ ९७ ॥ रास्तेमें भरत
 निय दराज द्वारा सम्मानित होकर भारद्वाजके आश्रममें पधार । मुनिन अपन तपोबलेन पृथ्वीपर स्वर्गकी रचना
 करके सेना सहित भरतका स्वागत किया । तदनन्तर भरत उनकी प्रणाम करके उनके वनलाय हुए रास्तेसे
 चित्रकूटमें अपने बड़े भाई रामके पास गये ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ पणशालामे सीता तथा लक्ष्मण सहित रामका देखकर
 भरतने उन्हें प्रणाम किया । तदनन्तर राममें आर्त्तित होकर उन्होंने सब वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया ॥ १०० ॥
 पिताकी मृत्यु सुनकर राम भन्दाकिना नदीपर गये । वही स्नान करके तिलाञ्जलि दी और पर्वतपर
 स्थित अपनी पणशालामे लौट आये १०१ ॥ गुरु वसिष्ठका साथ लेकर भरतने रामसे राज्य स्वीकार करन-
 के लिये बारम्बार प्रार्थना की । तिसपर भी राम उसको बार-बार अस्वीकार ही करत गये ॥ १०२ ॥ तब भरत
 कुजाके आसनपर बैठकर अलमल (उपवास) करने लग । उनकी हृत्ता तथा असन्तोष देखकर रामने गुरु
 ब्रह्मिष्ठसे भरतको समझानेके लिये कहा ॥ १०३ ॥ रामकी आज्ञासे गुरुने भरतका समझाने हुए कहा कि ये
 विष्णुस्वरूप रघूत्तम राम भूभार हरण करनेके लिये इस पृथ्वीपर अवतरे हैं । ये पर्वताशोक अनुगोपसे
 गवण आदिकी मारने जा रहे हैं । इस कारण तुम हठ मत करो ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ तब भरत रामको साक्षात्
 ईश्वर जानकर उनसे बोले-हे राम ! राजकार्य करनेके लिए आप अपनी सहाय दे दें । जटा-शृङ्गलधारी
 मे उनकी निख सेवा पूजा करता हुआ नगरके बाहर रहूंगा । परन्तु हे राजेन्द्र ! यदि आप

कृत्वा चतुर्दशे वर्षे पूर्णे गुप्ते रवौ त्वहम् । प्रवेश्याम्यनलं राम सत्यमेतद्वचो मम ॥१०८॥
 तत्तस्य वचने श्रुत्वा तथेन्पुङ्गवा रघूत्तमः । राज्यार्थं स्वीयपदयोः पादुके रत्नभूषिते ॥१०९॥
 ददौ रामस्तदा तस्मै ततस्तं स व्यमर्जयत् । गृहीत्वा पादुके दिव्ये भरतो रत्नभूषिते ॥११०॥
 मस्तकोपरि ते बद्ध्वा कृतकृत्यममन्यत । ततो नत्वा रघुश्रेष्ठं परिक्रम्य पुनः पुनः ॥१११॥
 सैन्येन मातृभिः शीघ्रं राममामन्त्र्य सो ययौ । संप्रार्थयन्कैकेयीं सा रामचन्द्रं पुनः पुनः ॥११२॥
 मयाऽपराधितं राम तत्संतव्यं रघूत्तम । तामाह रामचन्द्रोऽपि न त्वया मेऽपराधितम् ॥११३॥
 मच्छदान्मथरावाक्यान् च वाण्या मोहितातदा । सुप्तं गच्छां च स्वपुत्रीं न क्रोधोऽस्ति मम त्वयि ॥११४॥
 हन्पुक्ता रामचन्द्रेण भरतेन न्यवर्तत । भरतः पूर्वमार्गेण ययौ स्वतगरीं मुदा ॥११५॥
 सर्वान् स्थाप्य नगर्यां तु नदिग्राममकल्पयत् । तस्यौ स भरतस्तत्र स्थाप्य सिंहासनोपरि ॥११६॥
 रामस्य पादुके दिव्ये फलमूलाशनः स्वयम् । राजकार्याणि सर्वाणि यावन्ति पृथिवीपतेः ॥११७॥
 तानि पादुकयोः सम्यङ्निवेदयति राघवः । गणपन्दित्रमान्येव रामागमनकांक्षया ॥११८॥
 स्थितो रामार्पितमनाः साक्षाद्ब्रह्मनिर्व्या । रामोऽपि चित्रकूटादौ वमन्मुनिभिर्गदुतः ॥११९॥
 चकार सीतया क्रीडां विपिने रम्यपर्वते । मनःशिलामुत्तिलकं सीताया भालकंजकोत् ॥१२०॥
 गडयोश्चित्रवल्लीः स चकार निजहस्ततः । वृक्षारुणदर्लश्चित्रः कोमलः कुमुमदिभिः ॥१२१॥
 एवं क्रीडन्सुखं रामस्तस्यां पत्न्याऽनुजेन च । नागरास्तं सदा जग्मू रामदर्शनलालसाः ॥१२२॥
 दृष्ट्वा सज्जनमवार्धं रामस्तस्याज तं गिरिम् । अन्वगान्मीत्रया स्नात्वा अत्रैराश्रममुत्तमम् ॥१२३॥
 नत्वाऽत्रिं नानितस्तेन तस्यौ तत्र दिनत्रयम् । गृहस्थामनुसूया तां सीताऽत्रैर्वचनाच्चदा ॥१२४॥

निश्चित समयपर नहीं लोटगं तां मै चौदह वष समाप्तिक दिन सूर्यास्तिक समय अग्निम प्रवेश कर जाऊंगा । हे राम ! मेरी इस प्रतिज्ञा का आप सत्य समझे ॥ १०६-१०८ ॥ उनके इस वचनको सुनकर रघूत्तम रामने 'तथाश्रुत्वा' कहा और राज्यके लिए अपने पादुके रत्नभूषित पादुकाएँ दकर उन्हें विदा किया । भरतने उन रत्नभूषित पादुकाओंका लेकर भाँधे चढ़ाया और अपने आगरा कृतकृत्य समझा । पञ्चान् रघुश्रेष्ठ रामको धारम्बार प्रणाम करके परिक्रमा की और उनको आज्ञा लेकर भरत माला और सेनाके साथ तुरन्त अयोध्याकी ओर चल दिये । उस समय कैकेयी पुनः पुनः रामसे प्रार्थना करने लगी—॥ १०९-११२ ॥ हे राम ! हे पुण्योत्तम ! मेने जा अपराध किया है, उसे क्षमा कर दो । रामने कहा—माताजी ! तुम्हारा कोई अपराध नहीं है ॥ ११३ ॥ मेरी इच्छासे ही सरस्वतीन मथराके वाक्यसे तुमको मोहित कर दिया था । हे अम्ब ! अब तुम सुखपूर्वक अयोध्या जाओ । मुझ तुमपर कुछ भी क्रोध नहीं है ॥ ११४ ॥ ऐसा कहनेके बाद कैकेयी रामके कथनानुसार भरतके साथ नगरका लौटी । भरत भी सहर्ष जिस मार्गसे आये थे, उसी मार्गसे अपनी नगरीको लौट गये ॥ ११५ ॥ वहाँ जा तया सबको नगरमें पहुँचाकर उन्होंने नन्दीग्राम बसाया । वही भरत सिंहासनपर रामकी दिव्य खड़ाऊँ रख तथा फल-मूल खाकर रहने लगे । राज्यक जो-जो काम आते थे, उन सबको भरत-जो खड़ाऊँके सामने लाकर प्रतिदिन निवेदन कर दिया करते थे । इस प्रकार राममें मन लगाकर रात्रि-दिवसोको गिनते हुए भरत साक्षान् ब्रह्ममुनिकी भाँति समय व्यतीत करने लगे । उधर राम भी मुनियोंसे सत्कार प्राप्त करके सानन्द चित्रकूट पर्वतपर रहने लगे ॥ ११६-११९ ॥ उस पवित्र तथा मनोहर वनमें राम सीताके साथ क्रीड़ा करते थे । मैनासिलकी सुन्दर शिलापर अन्दनादि घिसकर राम सीताके मस्तकपर तिलककी रचना करते थे ॥ १२० ॥ अपने कोमल हाथोंसे सीताके कोमल गालोंपर चित्रावलीका निर्माण करते थे । वृक्षोंके कोमल-कोमल लाल पत्तों और अनेक प्रकारके फूलोंसे सीताको सजाते थे ॥ १२१ ॥ इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए राम अपनी प्राणप्यारी पत्नी तथा अनुज लक्ष्मणके साथ सुखपूर्वक रहते थे । वहाँ अनेक नागरिक रामके दर्शनकी अभिलाषासे सदा उनके पास आते रहते थे ॥ १२२ ॥ इस प्रकार लोगोंका आवागमन देखकर रामने उस पर्वतको छोड़ दिया और माई लक्ष्मण तथा सीताको लेकर अत्रिऋषिके उत्तम आश्रमकी ओर चल

नन्वा तथाऽऽलिङ्गिता सा तदंके समुपाविशत् । अनुश्रुया तदा सीता पूजयामास सादरम् ॥१२५॥
 दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा । दुहले द्वे ददौ तस्यै निर्मले भक्तिमयुक्ता ॥१२६॥
 अंगरागं च सीतार्यं ददावन्नेन्तु सा प्रिया । न न्यस्यतेऽङ्गशोभा त्वं कदापि जनकात्मजे ॥१२७॥
 पातिव्रत्यं पुनस्कृत्य राममन्वेहि जानकि । कुशली सद्यो यातु त्वया भ्रात्रा पुनर्गृहम् ॥१२८॥
 भोजयित्वा यथान्यायं रामं सीताममन्वितम् । अभिर्विमर्जयामास रामो नत्वा ययौ वनम् ॥१२९॥
 एवं वर्षमतिक्रान्तं । रामस्य गिरिकामिनः । यथासुखं लक्ष्मणेन जानक्या सहितस्य च ॥१३०॥
 एवं गिराद्रजेऽयोध्यापुर्यां रामेण यत्कृतम् । चरित्रं तन्मया किञ्चिद्वदग्रे विनिवेदितम् ॥१३१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

अयोध्याचरित्रे दंडकवनप्रवेशो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(रामके द्वारा विराध और खर-दूषणका वध)

आशिव उवाच

अथ रामः सीतया तु लक्ष्मणेन समन्वितः । ययौ स दंडकारण्य मज्जं कृत्वा मनोज्ञः ॥ १ ॥
 अग्रे ययौ स्वयं रामस्तनुष्टुं जानका ययौ । तस्याः पृष्ठं स सीमित्रिर्ययौ धृतशरासनः ॥ २ ॥
 वने दृष्ट्वाऽथ कासारं स्नात्वा पीत्वा जलं सुखम् । भुक्त्वा फलानि पकानि तस्थुस्तत्र क्षणं त्रयः ॥ ३ ॥
 एतस्मिन्नतरे तत्र विराध नाम राक्षसम् । ते तं ददृशुरायांतं महासत्त्वं भयानकम् ॥ ४ ॥
 करालदंष्ट्रावदनं भाषयत स्वर्गाजितः । वामामन्यस्तशूलाग्रग्रथितानेकमानुषम् ॥ ५ ॥
 मभयंत गज व्याघ्र महिष वनगोचरम् । उपारोपित धनुश्चत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ६ ॥

दिय ॥ १२३ ॥ अत्रि कृपिका नमस्कार करनक बाद उनस सम्मानित हाकर बे वही तीन दिन ठहरे । अत्रिके कहनेस सीता कुट म स्थित अनसूयाक पास गयी ॥ १२४ ॥ नमस्कार करनेपर उन्होंने सीताका आलिङ्गन किया और सीता उनकी वादम बैठ गयी । पश्चात् अनसूयाने उनका आदर-सत्कार करके पूजन किया ॥ १२५ ॥ तदनन्तर विश्वकर्माके बनाय दो दिव्य कुण्डल और दो त्वच्छू सूत्रम वस्त्र प्रेम तथा भक्तिपूर्वक सीताको दिये ॥ १२६ ॥ अत्रिका प्रिया अनसूयाने सीताका महाशर आदि रङ्ग भी अङ्गोभ लगातेके लिए दिये और कहा— हे जनकात्मजे । यह रङ्ग तुम्हारे अङ्गोपरस कभी नहीं उतरेगा ॥ १२७ ॥ हे जानकी ! पातिव्रत धर्मको निभाते हुई तुम रामको अनुगामिना बनी । यथासमय राम तुम्हारे तथा भाई लक्ष्मणके साथ सकुशल घर लौट जायेंगे ॥ १२८ ॥ तब अत्रिन सीता सहित रामको यथोचित भोजन कराकर विदा किया । राम भी नमस्कार करके चल दिये ॥ १२९ ॥ इस तरह रामको सीता तथा भाईक सहित सुखपूर्वक पर्वतोंपर निवास करते हुए एक वर्ष बीत गया ॥ १३० ॥ हे गिरिन्द्रज ! अयोध्यापुरीमें रामने जो काम किया था, वह सब मैंने तुम्हारे सामने कह नूनाया ॥ १३१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे अयोध्याचरित्रे २० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां दण्डकवनप्रवेशो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

शिवजी बोले—हे गिरज ! इसक बाद राम बड़े भारी सज्जीकृत धनुषको हाथमें लेकर सीता तथा लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें गये ॥ १ ॥ आगे आगे स्वयं राम, पीछे सीता और उनके पीछे हाथमें धनुष धारण करके लक्ष्मण चले ॥ २ ॥ वनमें एक सरोवर देखा तो सुखपूर्वक स्नान करके जल पिया और पके फलोंको खाकर अगभर तीनोंने वहाँ विश्राम किया ॥ ३ ॥ इतनेहीमें उन्होंने अपनी ओर आते हुए बड़े भयानक विराध नामके राक्षसको देखा ॥ ४ ॥ वह अपने विकराल दाँतवाले मुखको फँला तथा भयानक गर्जना करता हुआ उन लोगोंको डराने लगा । उसने अपने भालेकी नोकमें दीपकर बहुतसे मनुष्योंको धारण कर रक्खा था । वह वनघर व्याघ्र, हाथी और महिष आदिको भी मार-मारकर ला रहा था । यह देख राम

रक्ष त्वं जानकीमत्र मंहविष्यामि राक्षसम् । मत्तु दृष्ट्वा रमानाथ लक्ष्मण जानकीं तदा ॥७॥
 कौं युगमिति नो प्राह नवीरामस्त्वमवरोत् । नामकर्म निज सर्वं कंकण्यादपि च यन्कृतम् ॥८॥
 तद्रामवचन श्रुत्वा विहस्य राक्षसोऽब्रवीद् । मां जानामि च राम विराधं लोकोविश्रुतम् ॥९॥
 मङ्गलान्मुनयः सर्वे त्यक्त्वा वनमितो गताः । यदि जीवितुमिच्छास्ति त्यक्त्वा सीतां निरायुधौ ॥१०॥
 पलायेतां न चेच्छीघ्रं भक्षयामि गृध्रमहम् । इत्युक्त्वा राक्षसः सीताभादानुमभिदृष्टुवे ॥११॥
 रामश्चिच्छेद तद्वाहू शरेण ग्रहयन्निज । ततः कौधपरादान्मा व्यादाय विकटं मुखम् ॥१२॥
 राममभ्यद्रवद्रामश्चिच्छेद पन्थिघातः । पदद्वयं तदा मये इवास्थेन ययो पुनः ॥१३॥
 ततोऽर्धचंद्राकारेण निहनौ राधवेण मः । नतः सीता ममालिङ्ग्य प्रशम्य रघूत्तमम् ॥१४॥
 देवदुन्दुभयो नेदुर्दिशि देवगणैर्गिताः । ननौ विगधकायान् पुरुषश्च विनिर्गतः ॥१५॥
 नन्या रामं निज वृत्तं कथयामास सादरम् । दुरायणाऽहं शमन्तु पुरा विद्याधरः शुभः ॥१६॥
 इदानीं मोचितः श्लाघान्वया कालानुगादने । इत्युक्त्वा रामव स्तुत्वा विमानेन ययौ दिशम् ॥१७॥
 विगधं स्वर्गते गमौ लक्ष्मणेन च भीतया । जगाम शरभगस्य वनं सर्वमुखदायकम् ॥१८॥
 शरभग ततो नन्या तेन सम्मानितो बहु । तस्थौ तत्र निशामेकां शरभयो मुनीश्वरः ॥१९॥
 तस्मै शरभ्यै स्वं पुण्यमारुगेह चितिं तदा । स्तुत्वा तं स विमानेन वैकुण्ठं परमं ययौ ॥२०॥
 ततः शनैः सुतीक्ष्णस्य ययात्राश्रममुत्तमम् । नत्वा तं पूजितस्तेन मुखं तस्थौ गृध्रदहः ॥२१॥
 एतस्मिन्नतरे तत्र जानाश्रमनिशामितः । मुनयो राधवं द्रष्टुं समाजग्मुः महत्प्रभः ॥२२॥
 सर्वे ते राधवं नत्वा स्तुत्वा निन्युनिज निजम् । आश्रमं सीतया भ्रात्रा चतुः पूजां सादस्तगम् ॥२३॥

चतुष्पदर दारो चहाकर लक्ष्मणसे वा १-॥ ४ ॥ ६ । हे लक्ष्मण 'तुम' यहाँ जानकी का रक्षा करो । मैं इस दुष्ट
 राक्षसको सम्भोग । वह राक्षस रमापति राम, लक्ष्मण तथा जानकीका दानकर वाला तुम कौन हो ? तब
 रामने अपना नाम, नाम तथा कंकणीका कृत्य सब कुछ कह सुनाया ॥ ७ ॥ ८ ॥ रामका वचनका सुनकर राक्षस
 हँसा और कहन लगा—हे राम ! क्या तू लाकविष्यात विगधको नहीं जानता ? ॥ ९ ॥ पर हाँ उससे रावें मुनि
 इस वनको छोड़कर भाग गये हैं । यदि तुम दोनों जाना चाहते हो तो सीता तथा लक्ष्मणको छोड़कर भाग जाओ ।
 वही तो तुम दोनोंको मैं अभी खा जाऊँगा । इतना कहकर वह राक्षस सीताका एकदम दोहा ॥ १० ॥ ११ ॥
 तब हंसते हुए रामने उनके दोनों हाथोंको अपने बाणसे काट दिया । तब विराध खुद हाँ तथा विकट मुख
 फैलाकर रामकी ओर दौड़ा । तब राक्षस आत काँसे दौड़कर उसका दोनों पाँवोंका भाँ काट डाला । फिर वह
 सर्पकी तरह मुसल खानेक लिये प्रपटा ॥ १२ ॥ १३ ॥ तब रामने अपने अर्धचन्द्राकार बाणसे उनका सिरका
 भी काट डाला और वह मर गया । यह देख सीता रामका आलिंगन करके उनकी प्रशंसा करने लगी ॥ १४ ॥
 सभी आकाशमें देवताओंके नगाड़ बजने लगे । पद्मान् विराधके शरीरसे एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ ॥ १५ ॥ वह
 रामको प्रणाम करके बड़े आदरसे अपनी रहानी भूनाते हुए कहने लगा—पूर्व समयमें मैं एक मुन्दर विद्याधर
 था, परन्तु दुर्वासा ऋषिने मुझको शपथ देकर इस दशाका प्राप्त करा दिया ॥ १६ ॥ आज बहुत कालक बाद
 आपने मुझका उस शपथसे मुक्त किया है । यह कह और रामका स्तुति करके वह विमानमें बैठकर स्वर्ग चला
 गया ॥ १७ ॥ विराधके चले जानेपर राम लक्ष्मण तथा सीताके साथ सर्वमुखदायक शरभग मुनिक वनमें
 पधारे ॥ १८ ॥ उनको नमस्कार करके तथा उनसे सम्मानित हाकर वे एक रात्रि वहाँ ठहरे । मुनिश्रेष्ठ शरभगने
 अपना सब पुण्य उनके चरणोंमें समर्पण करके रामके सम्भोग ही विज्ञाप प्रणय किया और उनकी स्तुति करके
 विमानपर बैठकर दिव्य रूपसे वैकुण्ठ धामको चले गये ॥ १९ ॥ २० ॥ वहाँसे रामने सुतीक्ष्ण मुनिके मुन्दर
 आश्रमकी ओर प्रयाण किया । वहाँ पहुँचनेपर रामने मुनिकों नमस्कार किया मुनिने उनका बहुत सत्कार
 करके अपने वहाँ ठहराया ॥ २१ ॥ वहाँ श्रीरामके दलनार्य विविध आश्रमोंसे हजारों मुनि आते थे ॥ २२ ॥
 वे सब सीता तथा लक्ष्मणके सहित रामको नमस्कारकर और उनकी स्तुति करके उन्हें अपने-अपने आश्रममें ले

एकरात्रं त्रिरात्रं वा पंच सप्त दिनानि वा । पक्षनात्रं तु मासं वा मार्गमाममथापि वा ॥२४॥
 त्रिमासान्पचमामं वा षष्ठाष्टकादथाथवा । सायं संवन्मर वापि स्वाश्रमेषु रघुनमम् ॥२५॥
 सम्याप्य चक्रुर्गतिर्धर्ममधिकं चोत्तरोत्तमम् । पन्थ्याऽनुजेन श्रीराममेव पूज्य भिमर्जयन् ॥२६॥
 भ्रमर्तव्यं हि रामेण नर वर्षाणि दंडके । आश्रमेषु मुनीनां च ह्यतिक्रान्तानि वै मुखम् ॥२७॥
 बहवो निहतास्तत्र राक्षसा भ्रमता नदा , गयवेण मह आत्रा क्रीडताऽवनिर्जन्यया ॥२८॥
 नानाश्रमारामपुष्पवनोपवनभूमिषु । नदीजलनटाकादिशिखरादिस्थलेष्वपि ॥२९॥
 जन्वाग्रं भाद्राक्षादिनानावृक्षलतेषु हि । चकार मीतया क्रीडां रामो देव्या यथा शिवः ॥३०॥
 अथ रामो यया कुम्भमंभवम्यानुजाश्रमम् । मुमतिः पूजयामास राघवं मीतयान्विनम् ॥३१॥
 ततः सीतायुतो रामः शनैश्चात्रा मुदान्वितः । अगस्तेगश्रमं प्राप नानावृक्षविराजितम् ॥३२॥
 प्रपृष्टुद्रम्य मुनिश्चापि मुनिभिर्वहुभिर्वृतः । राघवं त समालिङ्ग्य स्वाश्रमं तेन मो यया । ॥३३॥
 अथ तं पूजयामास राघवं कुम्भमंभवः । रामोऽपि मानितस्तेन तस्यो नत्र कियद्दिनम् ॥३४॥
 ततः स्तुत्वा रमानाधमगस्त्यो मुनिसन्तमः । ददौ चार्घ्यं महेन्द्रेण रामार्घ्यं स्थापितं पुरा ॥३५॥
 अक्षय्यां चाणतूर्णारां खड्गं रत्नविभूषितम् । ततो रामो मुनेर्वाक्शार्दूलम्या उत्तरे तटे ॥३६॥
 यया पंचवटीं गम्यां मार्गे दृष्ट्वाऽव पक्षिणम् । जटायुषं नगकारमरुणान्मज्जमुत्तमम् ॥३७॥
 सखायं स्वपितुश्चापि सभाष्याथ विवेक्ष्य तम् । तत्र कृत्वा मशालां यथा पूर्वं कृता गिरां ॥३८॥
 मृगमार्मर्शलं दत्त्वा तस्यो रामो यथामुखम् । मीनां संरक्षयामास जटायुः पक्षिगट् स्वयम् ॥३९॥
 राघवस्य पंचवटीयां मीतया क्रीडनः सुखम् । मार्घ्यत्राणि चर्मराणि ह्यतिक्रान्तानि पार्वति ॥४०॥
 वने शूर्पणखापुत्रं तपेत् मां वनामकम् । अस्मा ददौ दिव्यखड्गं तं मांघो न ददर्श मः ॥४१॥
 तद् दृष्ट्वा लक्ष्मणः खड्गं वृक्षान्दृष्ट्वाभज सः । वृक्षगुल्मे हतः मांघस्ततो राघवमब्रवीत् ॥४२॥

जाते और विधिवत् पूजा करने थे ॥ २३ ॥ व एक दो दिन, पाच-नाल मास अथवा पूरे वर्ष भर अपन आश्रममें रखकर रघुनम रामका प्रतिदिन अधिकाधिक प्रेमसे आतिथ्य करते और अन्तमें पत्नी तथा भार्यक सहित रामका पूजन करके विश्रा करने थे ॥ २४-२६ ॥ इस तरह मुनियोंके आश्रमोंमें घूम-फिरकर रामने सुगमे ली वर्ष बिता दिये ॥ २७ ॥ वहाँ भाई लक्ष्मणक साथ रामण करते हुए रामने बहुतसे राक्षसों-का मार डाला ॥ २८ ॥ रामने अनेक आश्रमोंमें, वनोंमें पुष्प वने वनोंमें नदीके जलमें, तालाबोंमें, पर्वतके शिखर आदि स्थानोंमें, जामुन, आम, केला, दात आदि अनेक वृक्षों तथा स्नाकुञ्जोंमें सीताके साथ शिव-पार्वतीकी तरह क्रीडा की ॥ २९ ॥ ३० ॥ तत्पश्चात् राम कुम्भज ऋषिक छाट भाई मार्कण्डे मुनिके आश्रमपर गये । उन बुद्धिमान् मुनिके भी मानासहित रामकी पूजा की ॥ ३१ ॥ वहाँमें चलकर सीता तथा भाईके साथ राम विविध वृक्षास मंडित अगस्त्य मुनिके आश्रमपर गये ॥ ३२ ॥ वहाँ मुनि अगस्त्य अन्य मुनियों और ब्रह्मचारियोंसे साथ आगे जावे और रामका आलिङ्गन करके आश्रममें ले गये ॥ ३३ ॥ उन्होंने रामकी विधिवत् पूजा की । उनसे पूजित होकर रामने वहाँ कुछ दिन निवास किया ॥ ३४ ॥ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने रामकी प्रशंसा की और इन्द्रके द्वारा प्रदत्त तथा उनके लिये पहिलेसे ही रखवा हुआ घनपुष्य रामको दिया ॥ ३५ ॥ अक्षय चाणवासे दो तूणोर (तरकस) तथा रत्नजटित तन्वदार दी । पश्चात् रामने मुनिके कथनानुसार गीतमी नदीके उत्तरी किनारेपर स्थित रमणाक पञ्चवटीकी ओर प्रस्थान किया । रास्तेमें उनको पर्वताकार अरुणपुत्र एवं उनके पिताका श्रेष्ठ मित्र जटायु नामका पक्षी मिला । उसमें सम्भाषण करके वनमें आगे बढ़े । चित्रकूटको नज़र वहाँपर भी उन्होंने पणकूटी वनवासी ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ मृगोंके सामकी बलि देकर राम आनन्दसे रहने लगे । पक्षिराज जटायु स्वयं सीताकी रक्षा करने लगा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे पार्वती ! पंचवटीमें रामको सीताके साथ क्रीडा करते हुए साढ़े तीन वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ४० ॥ उस वनमें शूर्पणखाका पुत्र साम्ब तप करता था । वह देखकर ब्रह्माने एक दिव्य खड्ग उसे दिया, पर इस बातका साम्बको पता नहीं लगा ॥ ४१ ॥ जब लक्ष्मणने

प्रायश्चित्तं ब्रह्महर्षं मां वद त्वं रघूत्तम । रामोऽप्याह हतः मां चो राक्षसो न मुनिर्हतः ॥४३॥
 तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणस्तुष्टः सांवमाश्रयितुं तच्छ्रुतम् । तन्स्मरन्ती पुत्रदुःखं राक्षसी कामरूपिणी ॥४४॥
 विचचार सूर्पणखा नाम्नी च मर्वधातिनी । एकदा पंचवट्यां सा रामं दृष्ट्वाऽथ राक्षसी ॥४५॥
 पुत्रदुःखममाकांता धृत्वा रूपं मनोहरम् । कापल्यवृद्धया श्रीरामं सानुजं हंतुमुद्यता ॥४६॥
 उवाच मधुरं वाक्यं वस्त्रालंकारमंडिता । कौ युवां का त्वयं रम्या किमर्थमागता वनम् ॥४७॥
 कुतः समागतावत्र क्वाधुना गच्छतः पुनः । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा रामः सर्वं न्यवेदयन् ॥४८॥
 ततः सा राघवं प्राह भव भर्ता मम प्रभो । सोऽप्याह दयिता मेऽस्ति बहिस्तिष्ठति लक्ष्मणः ॥४९॥
 प्रार्थयामास सीमित्रिं मा तं सोऽप्युत्तर ददौ । अहं दामोऽस्मि रामस्य त्वं तु दासी भविष्यसि ॥५०॥
 ततः क्रोधेन सा सीतां धर्तुं वेगेन दृढुवे । तदा तां राघवः प्राह ममाय शर उत्तमः ॥५१॥
 चिह्नार्थं लक्ष्मणाय त्वं नीत्वा दर्शय वेगतः । मद्राणदर्शनात्कार्यं मिद्धि नेष्यति लक्ष्मणः ॥५२॥
 इत्युक्त्वा राघवो बाणं ददौ तस्यै लुगेपमम् । मन्यं मन्वा रामवाक्यं सा ययौ लक्ष्मणं पुनः ॥५३॥
 लक्ष्मणाय रामबाणं दर्शयामास राक्षसी । स वृद्ध्वा हृद्गतं बधोस्तं सघाय शरगमने ॥५४॥
 सुमोक्ष बाणं वेगेन रामनाम्नाकितं शुभम् । स शरो राक्षसीं मन्वा घ्राणकर्णौऽहृद्भवान् ॥५५॥
 संछित्वा रामतूणीरं विवेश क्षणमाव्रतः । घ्राणकर्णौऽहृद्भ्रान्तरहिता माऽपि राक्षसी ॥५६॥
 हाहतास्मीति जल्पन्ती ययौ बभूवुरादिकान् । दृष्ट्वा स्वमां नादृशी ते त्रिशिरःखरदूषणाः ॥५७॥
 तन्मुखान्सकलं वृत्तं श्रुत्वा ते क्रोधसंयुताः । चतुर्दश महाघोरान् राक्षसान्प्रेषयन्तदा ॥५८॥

उस खड्गको लेकर उस घने वनके सब वृक्षों और स्तम्भोंको काट डाला । उस वृक्षगुंजके साथ साम्ब भी मारा गया । यह देखकर लक्ष्मण रामसे कहने लगे—॥ ४२ ॥ हे रघुराज । आप मुझ ब्रह्महत्यानिवारक कोई प्रायश्चित्त बतायें । तब रामने कहा - तुमने तो साम्ब नामके राक्षसको मारा है, न कि मुनिको ॥ ४३ ॥ ४४ । यह मूनकर लक्ष्मण प्रमथ हुए । उधर पंचवट रूप घाटण करनेवाला साम्बकी माता सूर्पणखा राक्षसीने जब यह सुना तो पुत्रमरणके दुःखम दुःखित होकर बारम्बार पुत्रका स्मरण करती हुई क्रोधसे सबको मार डालनेकी इच्छासे इधर-उधर विचरने लगी । एक दिन पंचवटीमें रामकी देखकर वह राक्षसी पुत्रदुःखसे व्याकुल हो उठी और मनोहर रूप धारण करने सीता-लक्ष्मण सहित रामकी मारनेके लिए उद्यत हो गया ॥ ४५ ॥ ४६ । वह वस्त्र तथा अलंकारसे सजकर उनके पास जा पहुंचा और इस प्रकार मधुर वचन बहने लगी तुम दोनों तथा यह सुन्दरी स्त्री कौन है और यहाँ वनमें तुम सब किस लिए आये हो ? ॥ ४७ ॥ कहाँसे आ रहे हो और अब आगे कहाँ जानेका विचार है ? उसके प्रश्न सुनकर रामने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ४८ ॥ तब वह बोली—हे प्रभो । कृपा करके आप मेरे पति वन । उत्तरमें रामने कहा कि मेरे पास तो यह मेरी प्रिय पत्नी विद्यमान है । इसलिए तुम बाहर खड़े मेरे छोटे भाई लक्ष्मणके पास जाओ ॥ ४९ ॥ रामके कथनानुसार सूर्पणखाने बाहर जाकर लक्ष्मणसे अपनी इच्छा प्रकट की । लक्ष्मणने कहा कि मैं तो रामका दास हूँ तुम मेरी स्त्री बनकर क्या करोगी । मेरे साथ तुम्हें भी दासी बनना पड़ेगा ॥ ५० ॥ यह मूनकर सूर्पणखा क्रोधसे लाल हो गयी और सीताको पकड़नेके लिए बड़ वेगसे झपटी । रामने उसे रोककर कहा कि यह मेरा सुन्दर बाण पहचानके लिए ले जाकर लक्ष्मणको दिखाओ । मेरे बाणको देखते ही लक्ष्मण तुम्हारे इच्छा पूरा कर दगा ॥ ५१ ॥ ५२ । यह कहकर रामने छुरक सम्मान तोड़ण एक बाण उसको दिया । रामकी दातकी मत्प समझ वह राक्षसी बाण लेकर फिर लक्ष्मणके पास गयी । ५३ ॥ वहाँ जाकर उगने लक्ष्मणको रामका बाण दे दिया । लक्ष्मण बड़े भाईका अभिप्राय समझ गये और धनुषपर चढ़ाकर रामनामसे अंकित उस शुभ बाणको छोड़ दिया । वह बाण राक्षस के पास गया और उसके नाक, कान, आँठ तथा स्तनोंको काटकर पुनः क्षण भरमें रामकी तरकममें लौट गया । कान, नाक, आँठ तथा स्तनोंसे रहित वह राक्षसी ॥ ५४-५६ ॥ 'हाय मैं मारी गया' इस प्रकार चिल्लाती हुई खर-दूषण आदि अपने भाइयोंके पास जा पहुंची । बहिनकी यह

तान् रामः क्षणमात्रेण चतुर्दशशरैर्ममम् । संप्रदश्य निजं लोकं प्रेषयामास लीलया ॥६९॥
 तान् राक्षसान् मृतान् श्रुत्वा स्वगथास्ते त्रयः क्रुधा । पुद्गाय निर्ययुः सैन्यैः सहस्रैश्च चतुर्दश ॥६०॥
 रामोऽपि बभूव सीतां च गुहायां स्थाप्य वेगनः । चकार राक्षसैर्युद्धं शस्त्रैस्त्रैर्मथावहम् ॥६१॥
 चतुर्दशमहस्त्राणि स्वीयरूपाणि गवयः । कृत्वा तेषां च पुरतः शरैस्तान्मर्दयन्क्षणात् ॥६२॥
 हन्वा स्वरं दूषणं च तथा त्रिशिरसं शरैः । चतुर्दशमहस्त्रास्तान्प्रेषयामास स्व पदम् ॥६३॥
 मुहुर्नेन तु रामेण महस्त्राणि चतुर्दश । मिता सेना स्वराष्ट्रे निहता गौतमीकटे ॥६४॥
 स्वगथाः कटका यत्र स्थितास्तत्र त्रिकंटकम् । क्षेत्रं सयानं त्र्यम्बकाख्यं तदेव प्राप्स्यते भुवि ॥६५॥
 जनस्थानं भूमिगणां ददौ वस्तुं रघुदहः । अथ सीतां समालिङ्ग्य राघवं प्रशशंस सा ॥६६॥
 अथ तां जानकीं प्राह रामो गृहमि मादरम् । सीते त्वं त्रिविधा भूत्वा रजोरूपा वमानले ॥६७॥
 वाक्वागे मे मन्त्ररूपा वस छाया तमोमयी । पञ्चवट्या दश्राष्ट्यस्य मोहनायै वमात्र वै ॥६८॥
 तक्षामवचनं श्रुत्वा तथा सीता चकार मा । ततः सूर्यणस्वा लंकां गत्वा रावणमब्रवीत् ॥६९॥
 धिकं त्वां राक्षमराजान वृत्तं चारुनं वेन्मि यः । चतुर्दशमहस्त्रा मा सेना त्वद्वन्धुभिः सह ॥७०॥
 मानुषेणैव गमेण जनस्थाने निपानिता । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा तां नृष्टा तादृशीं तदा ॥७१॥
 मिहामनाञ्च बालाथ पुनः पप्रच्छ तां स्वमाम् । वद किं कारणं युद्धे प्राह सा राक्षसेश्वरम् ॥७२॥
 स्त्राग्न्ना जानकीं दृष्ट्वा मया चित्तं त्रिविधितम् । रावणायै विनेष्यामि धनुं तां तन्पुगेयता ॥७३॥
 तायद्वाणेन नीताऽहं दशमेतां तु रावण । मीमित्रिणा पञ्चवट्यामाज्ञया राघवस्य च ॥७४॥
 मांशोऽपि मे हतः पुत्रस्त्वप्यमानो निर्घकम् । मत्तोषार्थं कृतं युद्धं बभूभिस्ते निपानिताः ॥७५॥

दश देखकर त्रिशिरा, स्वर और दूषण उसका मुखमें सब समाचार सुनकर क्रोधयुक्त हो चौदह मयानक
 राक्षसोंको उसी समय रामसे लड़नेके लिये भेजा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तब रामने चौदह बाणोंसे क्षणमात्रमें सीता-
 पूर्वक उनको मारकर अपने लोक भेज दिया ॥ ५९ ॥ उनके मारे जानका समाचार सुनकर स्वर आदि
 चीन्ही राक्षस क्रुद्ध होकर चौदह हजार सैनिकों साथ युद्धक निम्न निकल पड़े ॥ ६० ॥ राम भा सीता तथा
 लक्ष्मणको एक गुफामें रखकर जीघ्र अस्त्र-गस्त्रोंसे प्रहार करते हुए राक्षसोंक साथ भयानक युद्ध करने लगे
 ॥ ६१ ॥ उस समय राम अपने चौदह हजार रूप बनाकर उनके सामने गव और समग्रभूमिमें उन सबका
 मद मर्दन कर डाला ॥ ६२ ॥ उन्हीमें स्वर, दूषण, त्रिशिरा तथा चौदह हजार राक्षसोंका बाणोंसे मारकर
 अपने धाम भेज दिया ॥ ६३ ॥ इस प्रकार मूर्तमात्रमें रामने चौदह हजार सैनिकों तथा स्वर आदिकों गौतमी
 नदीके किनारे मार डाला ॥ ६४ ॥ जहाँ ये स्वर दूषण त्रिशिरा सीतों भाई कंटकरूपसे रहने थे । वह स्थान त्रिकंटक
 नामसे प्रसिद्ध था और उसीको लोग त्र्यम्बक भी कहते थे ॥ ६५ ॥ तदनन्तर रघुनन्दन रामने वह स्थान
 त्रिकंटक (त्र्यम्बक) बाह्यणोंको निवाम करनेके लिए दान दे दिया । यह सब देखकर सीता रामका आलिंगन
 करके उनकी प्रशंसा करने लगी ॥ ६६ ॥ एक दिन राम एकान्तमें सीतासे मादर कहने लगे—हे
 मने ! तूमे सीता रूपोंको वारण करके रजोरूपसे अग्निमें, सत्वरूपसे छायाकी तरह मेरे बायें
 अग्रमें और तमोमयी बनकर रावणको मोहित करनेके लिये यही पञ्चवटामें निवास करो ॥ ६७ ॥ ६८ ॥
 रामने उस वचनकी सुनकर सीताने वंसा ही किया । तभी सूर्यणस्वा लंकामें जाकर रावणसे
 बात - ॥ ६९ ॥ हे राक्षसराज ! तुम्हारे जैसे राजाको धिक्कार है, जो दूनोंके द्वारा तुम्हें रावणकी वशाका पता
 मद्ने लगता । चौदह हजार सेना सहित तुम्हारे भाइयोंको मनुष्यरूपवागे रामने दण्डकारण्यमें मारकर गिरा
 दिया । वसक इस वचनको सुन तथा उसकी बहु दशा देख मिहामनासे कुछ ऊँचे होकर वह अपनी बहिनसे
 युद्धने लगा कि युद्ध होनेका क्या कारण है, सो बतलाओ । तब वह राक्षसेश्वर रावणसे बोली— ॥ ७०-७२ ॥
 त्रिविधमें रक्ष जानकाको देखकर मेने त्रिभय किया था कि इसको रावणके लिये ले जाऊँगी । यह विचारकर मैं
 इसको पञ्चवटोंके लिये आम्ने बची ॥ ७३ ॥ हे रावण ! इतनेहीमें एक बाणने मेरी यह दशा कर दी । रामके

यथास्ति पौरुषं किंचित्सहिं सीता समानय । नोचेदधोमृत्तुमिष्टु यथा स्त्री मत्तमर्जुका ॥७६॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा मांत्वयामास तां स्वसाम् । तौ रामलक्ष्मणी हन्वा तव शोकाश्रुमार्जनम् ॥७७॥
 करोम्यहं लोहितैव तयोः खेटं भञ्जम् वा । एव नानाविधैर्वाक्यैः मांत्वयित्वा स्वमां हृद्दुः ॥७८॥
 स्वहितस्योपदेष्टारं मातुलं तपसि स्थितम् । ययौ रथेन मार्गिच तस्मै वृत्तं न्यवेदयत् ॥७९॥
 सोऽथ तं भीषयामास भागिनेपं मृदुमृदुः । विधर्माभिन्नाध्वरे त्यक्तमान्मानं तं न्यवेदयत् ॥८०॥
 रामारुण्यया रथं रत्नं रजतं रुक्मभूषितम् । श्रुत्वाऽत्र रादि यत्किञ्चिद्रामं मन्वा विभेम्यहम् ॥८१॥
 केन तै शिथिला बुद्धितिर्यं लंकाविधातिनी । आप्तरूपोऽस्ति कः शत्रुर्यनेयं शिक्षिता मतिः ॥८२॥
 कथां न कुरु रामस्य त दृष्ट्वा त्वं मरिष्यसि । ततः क्रोधेन तं प्राह यदि नायामि मघवम् ॥८३॥
 मया सहिं वधिष्यामि त्वामतः कुरु मद्भचः । भूत्वा त्वं मृगरूपश्च गमस्त्वामनुयाय्यति ॥८४॥
 त्वं शब्दं कुरु रामस्य लक्ष्मणस्तेन यास्यति । ततस्त्वां जानकीं वेगान् लङ्का स्वामानयाम्यहम् ॥८५॥
 लंकाप्राप्तव दास्यामि त्वीयगज्याजुमादरात् । इति तस्याश्वं दृष्ट्वा भारीवीं हृद्यन्वितयत् ॥८६॥
 रामहस्तान्मृतिः श्रेष्ठा माऽस्तु रावणहस्ततः । इति निश्चिन्य मारीचस्तथैत्युक्त्वा ययौ तदा ॥८७॥
 रावणेन रथे स्थित्वा गन्वा पञ्चवटीं प्रति । भूत्वा हेममयश्चित्रो मोहयामास जानकीम् ॥८८॥
 सा छाया तामसी दृष्ट्वा मृग राघवममवीत् । कीडार्थं मां मृगं वेम धृत्वा देहि स्पृत्तम् ॥८९॥
 मृगश्चेद्वाणमिच्छांगः करोमि कनुकीं स्वचः । तत्तम्यः वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा मयं रघुनमः ॥९०॥

कहनेसे लक्ष्मणने पञ्चवटीमें मारी गइ दण्ड ली है ॥ ७४ ॥ उन्होने बिना किसी कारण तपस्या करने हुए भेर प्राण-
 श्रिय पुत्र साम्बको भी मार डाला । तब मुझ संतुष्ट करनेके लिए सर-दूतणादि भाइयोंने रामके साथ गुठ किया ।
 किन्तु उसने उन्हें भी मार डाला ॥ ७५ ॥ यदि तममें कुछ भी बल हो तो भीताका हरण कर, नहीं तो पतिक मर
 जानकर विधवा स्त्रीकी तरह नीचा मुँह करके बैठ रह ॥ ७६ ॥ उसने वचन सुनकर रावण अपनी बहिनको
 समक्षान्त लगा और बोला कि मैं राघ-लक्ष्मणका मारीचर उनसे सुनने तुम्हारे जाकाश्रुका मार्जन करेगा—तुम
 दुर्लभ न होओ । इस प्रकार अनेक वाक्योंसे उसने भागिनीको बार-बार समझाया ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ पञ्चाक्षर रावण
 देखकर बहु हितका उपदेश करनेवाले तथा तपस स्थित अपने मामा मारीचक पर, गया और उसे सब हाल कह
 सुनाया ॥ ७९ ॥ तब मारीच अपने भाव रावणका बार-बार डराता हुआ बोला कि रामने मुझे विश्वासिपत्रक
 धजके समय बाणसे उड़कर समुद्रके किनारे फेंक दिया था ॥ ८० ॥ तभीमे मैं रथ, रत्न, रजत (चादी),
 रुक्म (सोना) तथा रमणी आदि नानाके प्रकार अक्षर सुनने शत्रुसे ही डर जाता हूँ (अर्थात् रामके
 भयसे मेने इन सब चीजोंसे प्रेम करना भी छाड़ दिया है) ॥ ८१ ॥ लंकाका नाश करनेवाली यह मन्त्रणा तुमको
 किसने दी है ? वह मित्ररूपमें छिपा हुआ तुम्हारा शत्रु ही है, जिसने तुमको यह मति दी है ॥ ८२ ॥ उसको
 बात मन मनो नहीं तो मार जाओगे । यह सुना तो क्रुद्ध होकर रावण मारीचसे बोला—यदि तुम रामके
 पास नहीं जाओगे तो मैं तुम्हें मार डालूंगा । इसलिये मरा कहा भान ली । तुम मृग बनकर जब रामके
 पास आओगे तो राम तुम्हारे पीछे चल दगे । वनमें दूर से जाकर तुम रामके जंसा हड्ढर बनाकर ' हा लक्ष्मण'
 ऐसा चिल्लाओ । तब लक्ष्मण भा आश्रम छोड़कर तुम्हारी ओर चल दगे । उस समय मैं शत्रु से ताको अपनी
 लंकामें उठा लाऊँगा ॥ ८३-८५ ॥ तब मरा कथं सिद्ध हो जायगा तो मैं तुमको लंकाका बाधा राज्य दे
 दूँगा । उसके आग्रहको सुनकर मारीचने मगमें विचार किया कि रावणके हाथसे मरनेकी अपेक्षा रामके हाथसे
 मरना बल्ला है । यह निश्चय करके मारीच ' बहुत अच्छा' कह तथा रथपर सवार होकर रावणके साथ पंच-
 वटीको उसी समय चल पठा । वहाँ जाकर उसने सुबाणका मृग बनकर सोलको मोहित कर लिया ॥ ८६-८८ ॥
 तब तमोगुणमयी आचारुणिनी सीता मृगको देखकर रामसे बोली—हे रघूनाथ राम ! इस मृगको गकड़कर मुझे
 दे दो । मैं उसके साथ क्रीडा करूँगी ॥ ८९ ॥ और यदि बाणसे मारकर ला दो तो मैं उसके चमड़ेकी चोली
 बनाऊँगी । सीताके रथमें सुन तथा कुछ सोच-समझकर रघूनाथ राम सीताकी रक्षाके लिये भाई लक्ष्मणको

सीताया रक्षणे बंधु मस्थप्यायु मृगं यया । ततः पलायन चक्रे मृगो राम विक्रमेव ॥९१॥
 रामबाणेन भिक्षांगः शब्दं दीर्घं शकार म. । हा सीमित्रं ममागच्छ हा हनोऽस्म्यद्य कानने ॥९२॥
 इत्युक्त्वा रामवदाचा मनार रुधिरं वमन् । त शब्दं जानकी श्रुत्वा चोदयामास लक्ष्मणम् ॥९३॥
 मोऽप्याह रामवचनं नेदं सीते भयं न्यज । ततः सा तं पुनः प्राह जानामि तव चेष्टितम् ॥९४॥
 भग्नस्योपदेशेन मृतिं रामस्य वाञ्छामि । अथवा मेऽभिलाषोऽस्मि तर्हि प्राणास्त्यजाम्यहम् ॥९५॥
 तन्मन्त्रवचनं तस्याः श्रुत्वा हान्वा महद्वयम् । जानकीं प्रह मीमिक्षिर्मातः शृणु वचो मम ॥९६॥
 राघवाक्षो पुण्ड्रकन्य रत्नमन्त्रां मम न्वया । ताडितं वाक्परेणाद्य भोक्ष्यस्यस्याचिरान्कलम् ॥९७॥
 तथापि मृणु मडाकय गन्धराऽद्रोक्ष्यते हितम् । मर्यता धनुषो रेखां कृतां न्वन्परिनोऽधुना ॥९८॥
 न्वद्रशणार्थं दुष्टनां दुर्धिलानां महत्तमाम् । मा स्वमुल्लंघयस्वैमां प्राणः कंठगतंरपि ॥९९॥
 इत्युक्त्वा धनुषः कौट्या कृत्वा रेखां नमनत । बाह्वदेशे पंचवत्याः सीमित्रिः परिघोषमाम् ॥१००॥
 नन्वा सीतां तनस्नूया यया राम न्वगन्धितः । एतस्मिन्नतरे तत्र भवणो भिक्षुरुक्थुक् ॥१०१॥
 गन्वा पंचवर्षाद्वार रेखायाश्च दहिः स्थितः । नागयणंति ये चोक्त्वा तूष्णीं न स्थीम रावण ॥१०२॥
 नावच्छायामयी माता मिथ्या तस्मै ममापितुम् । ययं दार दीर्घदस्ता गृह्णाप्तेन्यत्रवीच तम् ॥१०३॥
 तदा भिक्षुः पुनः प्राह सीतां पकजलोचनाम् । नागीकरोम्यनरेण भिक्षमेतां न्याऽपिताम् ॥१०४॥
 गार्हस्थ्य चेद्राघवस्य रक्षितु न्व ममिच्छामि । तर्हि रेखां ममुल्लंघ्य मां भिक्षां दातुमर्हसि ॥१०५॥
 तर्हिभुवचन श्रुत्वाऽधर्मोऽधुनमेति शक्तिता । रेखावहिः सन्वपादं दत्त्वा दीर्घेलमन्करा ॥१०६॥
 गृह्णाप्तेमां वरां भिक्षामिति त प्राह जानकी । तनां दयास्यस्तां धृत्वा भिक्षुरुक्थुं विसृज्य च ॥१०७॥
 स्वग्राहे रथे सीतां मस्थप्याथ न्वचनत । यावद्वच्छति वेगेन तावदूट्यो जटायुषा ॥१०८॥

‘मृणु’ करके का मृगक पक्ष चरति । दृष्टिमा रामक आगे दीड़ता हुआ उन्हें बहुत दूर जंगलमें दीड़ा गया ॥ ९० ॥ ९१ ॥ वहाँ बाणसे घायल होकर वह ओरसे रामके स्वरमें विल्लाते लगा—‘हा लक्ष्मण! मैं वनमें मारा गया, शास्त्र आओ’ ॥ ९२ ॥ इतना कहकर मार, च रक्त वमन करता हुआ मर गया । उस शब्दको सुनकर जानकी ने लक्ष्मणका ज तक लिये कहा ॥ ९३ ॥ लक्ष्मण बाले—‘हे सीते! यह रामका वाक्य नहीं है, मत दरो । मरता फिर कहने लगे कि मैं अब तुम्हारे अभिप्रायको जान गया ॥ ९४ ॥ तुम प्रत्येक कहनेका आशय रामका मरण अथवा रामक मर जानेपर मुझ प्रीणना चाहत हो । परन्तु बाद रेखा, मैं तुम्हारा अभिलाषा पूरी नहीं होने दूँगी और अभी मर जाऊँगी ॥ ९५ ॥ सीताके इस वचनको सुनकर सुमित्रागुप्त लक्ष्मण जानकास बचने हे माना । मरी जान मरी ॥ ९६ ॥ रामकी आज्ञासे तुम्हारी रक्षामें तत्पर पुलका तुमने जा बागारणी वस्त्रोंमें ताँत किआ है उसका फल तुम शीघ्र पाओगे ॥ ९७ ॥ तो श्री मरे कहे हुए इस हितकारि वचनको न लो । मैं धनुषमें तुम्हारे बाने और यह रेखा खींच देना दूँ ॥ ९८ ॥ यह तुम्हारी रक्षाके लिए और दुष्टोंके लिये दुर्लभनीय धन्य महान् मर उत्पन्न करनेवाला होगी । प्राणोंके कण्ठमें आ जानेपर भी तुम इस रेखाका उल्लंघन नहीं करना ॥ ९९ ॥ ऐसा कहकर धनुषकी कारणसे लक्ष्मणने पंचवटीके बाहर खड़ेकी भाँति सीताकी छाया ओर रखा खींच दी ॥ १०० ॥ तदनन्तर सीताको प्रणाम करके वृषनाप शीघ्र रामकी ओर चल दिय । इन्हीं समय रावण भिक्षुवका रूप धारण करके पंचवटीके द्वारपर आकर रेलक बाहर जड़ा हो गया और ‘नगयणहृत्ति’ कहकर वृष हा रहा ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ तब छायामयी सीता उसको भिक्षा देनेके लिये बाहर पायी और हाथ बढ़ाकर भिक्षुय ‘भिक्षा लो’ ऐसा कहा ॥ १०३ ॥ तब कमलके समान नेत्रोवाली सीतासे भिक्षुने कहा कि मैं रेखाक भीतरमें वही हूँ भाख नहीं लेता ॥ १०४ ॥ यदि तुम रामक गृहस्थाश्रमकी रक्षा करना चाहता होओ तो रेखाके बाहर आकर भिक्षा दो ॥ १०५ ॥ भिक्षुके इस वचनको सुनकर ‘कहीं दाव न लगे’ इन शब्दोंमें बायें पारोंको रेखासे बाँध रख और लम्बा हाथ करके ॥ १०६ ॥ जानकी ‘यह भिक्षा लो’ ऐसा कह ली । तभी रावणने उनको पकड़ लिया और भिक्षुका रूप त्याग तभी सीताको गर्भोसे रखपर बिठाकर पीछे

चकार तुमुल युद्धं रावणेन स पक्षिराट् । निजपद्भ्यां मत्सेनाथ चूर्णीकृत्य स्थीतमम् ॥१०९॥
 समानर्था विनिष्पिश्य रभज नद्धनुर्महत् । मुकुटान् दश चण्डिय कृत्वा देहं तु जर्जरम् ॥११०॥
 मूर्छितं रावण कृत्वा तां सीतां संन्यवर्णयत् । स्वस्थाभूतो दशस्योऽपि तादृशमास तं पदा ॥१११॥
 क्रोधेन महनाविष्टः पक्षिणा जर्जरीकृतः । ततो जटापुः पतितो वमन् रक्तं मत्सेन सः ॥११२॥
 ततो विहाय सा सीतां निनाय रावणः पुनः । रामरामेति जल्पन्ती सीताऽभून्व्यस्तलोचना ॥११३॥
 उत्तरीये बन्धाय पथि स्वाभरणानि सा । दृष्ट्वाऽधः पर्वते प्रोर्ध्वः सस्थितान् पञ्च वानरान् ॥११४॥
 प्राक्षिपत्कपिमध्येऽथ सूचनार्थं रघूत्तमम् । ततो दशाम्यस्तां नीत्वा सशोके संन्यवेशयत् ॥११५॥
 प्रार्थयामास तां सीतां नोत्तरं मा दर्शय तदा । तस्याः संरक्षणार्थाय गक्षमांश्च सहस्रशः ॥११६॥
 आश्रययद्दशाम्यः स स्वयं गेहं विवेश ह । तदेन्द्रो ब्रह्मवाक्येन पायसं वर्षेतुष्टिदम् ॥११७॥
 दर्शय गृहमि सीतार्यं तेन तुष्टा बभूव सा । ममर्ष्य पायसं किञ्चिद्रामाय लक्ष्मणाय च ॥११८॥
 सुगन्धविधये दत्त्वा दत्त्वा धेनु च खेचरान् । दत्त्वाऽथ त्रिजटां किञ्चिद्भयामाम जानकी ॥११९॥
 ममज्य गवणेनापि राक्षसांश्चैव षोडश । प्रोषतां रामघानार्थं ते कवधेन भक्षिताः ॥१२०॥
 यत्र यत्र पञ्चवट्यां रामबाणभयान्मृतः । चचार गीतमीतीरे सन्धानं तत्र सत्र हि ॥१२१॥
 स्थानसङ्गान्यनेकानि आवाति च पुगणि हि । मृगस्य पतित पत्र नूपुर परिधावता ॥१२२॥
 नूपुराख्यो महाग्रामः प्रोक्ष्यते गीतमीतटे । रामबाणप्रहारेण चपलाधोऽपतद्भुवि ॥१२३॥
 मृगो यत्र महोन्नत चापल्यग्राम इयते । गोदानटे प्राक्भूम्यां रामबाणहतो मृगः ॥१२४॥
 पतितो यत्र तच्चिह्नं दृश्यतेऽद्यापि मानवैः । मौमित्रचापजा रेखा पञ्चवट्याः समन्ततः ॥१२५॥

नोट । वह बाण जा रहा था, तभी जटायुने उसे देख लिया ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ तब पक्षिराज जटायुने रावणके साथ नुपुन युद्ध किया । अपने पाँवों और चोंचसे मार-मारकर उसके रथका चुर-चुर कर दिया ॥ १०९ ॥ बाणों गदगद कर पीस डाला । उसका बड़ा भारी घबुन तोड़ दिया । पृथुलोका काट डाला और उसके शरीरको जर्जरित कर दिया ॥ ११० ॥ इसका ही नहीं, रावणको मूर्छित करके वह सीताको लौटा लाने लगा । तभी रावण भी इससे होकर उसका पाँवसे मारने लगा ॥ १११ ॥ बड़ा क्रोध कर-कर रावणने पक्षीको और पक्षीने रावणको जर्जर कर दिया । अन्तमें जटायु घायल होकर घर्तोंपर गिर पड़ा ॥ ११२ ॥ तब रावण सीताको लेकर आकाशमार्गसे लङ्काकी ओर चल पड़ा । चचारों सीता नीची आँखोंसे 'हा राम-हा राम' चिल्लाने लगी ॥ ११३ ॥ उसी समय उन्होंने नीचे एक उन्नत पर्वतके शिखरपर बैठे हुए पाँच वानर सुरीय-हनुमान् आदिको देखा और अपनी साड़ीको फाड़ तथा उसके टुकड़े अपने गहने बाँधकर वही गिरा दिए । उधर दक्ष-मुख रावणने सीताको ले जाकर लंकाकी अशोकवाटिकाम रखा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ प्रेम करनेके लिये उसने साता-से बड़ी प्रार्थना की, परन्तु सीता किसी प्रकार सहमत नहीं हुई और न उसकी बातोंका कुछ उत्तर ही दिया । उनको रक्षा के लिये रावणने वहाँ हजारों राक्षसों मिथुन कर दीं ॥ ११६ ॥ उनको रक्षा करनेकी आज्ञा देकर रावण अपने महलमें चला गया । इसी अवसरपर ब्रह्माके कहनेसे इन्द्रने वहाँ जाकर वयं भर तक भूखको मिटा-कर सन्तुष्ट रखनेवाला पायस (खीर) एकान्तमें सीताको दिया । इससे सीता बड़ी प्रसन्न हुई । उन्होंने राम तथा लक्ष्मणके नाम उससे कुछ पायस निकाला ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ कुछ देवताओंको दिया । कुछ गौमाँ तथा पक्षियोंको खिलाया और बोंहसा निजटाको देकर बादमें बची हुई थोड़ीसी खीर जानकीने स्वयं खाया ॥ ११९ ॥ तदनन्तर रावणने सलाह करके सोलह राजसोंको रामको मारनेके लिये भेजा, परन्तु वे सब रातमें ही कबन्ध-के द्वार ला डाले गये ॥ १२० ॥ उस समय पञ्चवटीमें रामके बाणके भयसे जहाँ-जहाँ मृगरूपी मारीच गया था, गीतमीके किनारे वहाँ सर्वत्र अनेक नामवाले स्थान स्थापित हुए । जिस जगह दोहते हुए मृगका नूपुर गिर रहा था, वहाँ नूपुरपुर नामका बड़ा भारी गाँव बस गया । रामके बाणके छारित होकर चपल नेत्रोंवाला मृग जहाँ पृथ्वीपर गिर गया था, वहाँ बड़ा भारी चामस्य नामका गाँव अब भी बसा हुआ दोस्तता है । गोदावरीके किनारे

अद्यापि दृश्यते स्पष्टा नदीरूपा भयानका । पाषाणभूम्पां तत्रैव रावणस्य पदं महत् ॥१२६॥
 अद्यापि दृश्यते भीमं गर्तरूपं नरोत्तमैः । स्वराक्षैर्पुद्गलसमये पञ्चवट्यां विदेहजा ॥१२७॥
 गुहायां गोपिता मर्त्रा साऽद्यापि तत्र दृश्यते । तथा रामो लक्ष्मणोऽपि पञ्चवट्यां सदैव हि ॥१२८॥
 दृश्यतेऽद्यापि भो देवि नञ्जनं नानिदृष्टिभिः । अज्ञानदृष्टिमिस्ते तु दृश्यते प्रावरूपिणः ॥१२९॥
 रामतीर्थं रामकृतं सीतालक्ष्मणमंस्कृते । तार्थं तत्र तु गौतम्यां दृश्यतेऽद्यापि मानवैः ॥१३०॥
 रामेण सीतया यत्र शय्यायां पर्वतोपरि । कृतं पूर्वं तु शयनं रामशय्यागिरिः स्मृतः ॥१३१॥
 शय्यारूपाणि दृश्यन्तेऽद्यापि तत्र तृणानि हि । रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा श्रुत्वा सीतावचोऽश्रुमयम् ॥१३२॥
 निवेदित लक्ष्मणेन क्रोधाश्रुमययेनमा । निमित्तान्यनिधोरापि दृष्ट्वा चैव समततः ॥१३३॥
 ययौ पञ्चवटीं व्यग्रस्तत्र मोता ददर्श न । ततो मानुषभावं तु दर्शयन् सकलाञ्जनान् ॥१३४॥
 विचिन्वन्सर्वतः सीतां गृध्रराजं ददर्श मः । ततः स पश्चिन्नवसा रावणन हुता प्रियाम् ॥१३५॥
 ज्ञात्वा तं योजयामास बहिना जीवितक्षये । तनुद्वयार्थं वन्यमांसं क्षिप्त्वा स्नान्त्वा रघूत्तमः ॥१३६॥
 ययौ दक्षिणमार्गेण विचिन्वन्मूढवत्प्रभुः । पूर्ववदग्निहोत्रं स चकार कुशभार्यया ॥१३७॥
 एतस्मिन्नन्तरे देवि त्वया प्रोक्तम्वहं पुनः । न्वया यस्य जपो नित्यं क्रियते राघवरूप हि ॥१३८॥
 मोऽयं स्त्रीविरहात्पश्य मूढान्दुःखमते बने । तवेति वचनं श्रुत्वा तदा त्वामनुव त्वहम् ॥१३९॥
 देवि साक्षान्महाविष्णुम्वयं रामो महाबले । शिष्यार्थं सकलांल्लोकान् मूढवदुःखमते बने ॥१४०॥
 नारीमग्नौ नरैस्त्याज्यः सर्वदाऽत्रेति शिक्षयन् । नारीविषयत्र दुःखमीदृशं भ्रमकारकम् ॥१४१॥
 दर्शयन् सकलांल्लोकानिति मांऽत्राटते बने । इति मद्रचनं श्रुत्वा तन्परीक्षार्थमुद्यता ॥१४२॥

जहाँ पाषाणभूमि । पथराओं घाटी , पर रामबाणस निहत हुकर मृग गिरा था ॥ १२६-१२७ ॥ उसका चिह्न वहाँ आज भी मनुष्योंका दिखाई देता है । सुमित्रागुप्त लक्ष्मणक अनुप द्वारा सीता हुई रेखा पञ्चवटीके चारो ओर आज भी भयानक नदीक रूपको धारण हुए स्पष्ट दिखाई देती है । उस पाषाणमयी भूमिमें रावणका बड़ा भारी पदचिह्न एक बड़ चारो गढ़के रूपमें अब भी दिखाई दे रहा है । पहले सरकें साथ मुड़ करके समय पञ्चवटीमें विदेहजा सीताको जिस गुफामें उनके पति रामने छिपाया था, वहाँ भी विद्यमान है । ८ दवि । सञ्जन तथा ज्ञाना महारामाओं से सदैव राम लक्ष्मणका वहाँ दर्शन होता है और सीताके स्थापित तीर्थ इस समय भी दिखाई देते हैं ॥ १२६-१३० ॥ जिस पर्वतपर रामने शय्या निर्माण करके सीताके साथ शयन किया था, वह रामशय्यागिरिक नामसे प्रसिद्ध है ॥ १३१ ॥ वहाँक तृण आज भी शय्याकार दिखाई देते हैं । इसपर रामने लक्ष्मणको जाया देखा तथा उनको मुखसे सीताके कह दुर्वचनको सुना ॥ १३२ ॥ यह सब हाल लक्ष्मणने ज्ञातपूर्वक अभी बहात हुए तथा विस्मयके साथ कहा था । राम चारो ओर व्यग्रन्त भयानक जानुनोंको देख तथा खबरकर सीधे हा पञ्चवटी में गया तो वहाँ सीता नहीं दिखाई दी । पश्चात् मनुष्यभावसे वे समस्त वनके पशु-पक्षा तथा जड़ वृक्षों आदिसे सीताका पता पूछन और सीताको सर्वत्र ढूँँउन लगे । इतनेमें गृध्रराज बड़ापु दिखायी दिया । उस पक्षीके मुँहसे सुना कि रावण प्रिया सीताका हरण कर ले गया है ॥ १३३-१३४ ॥ मरणोपरान्त जनायुक्त कथनानुसार रामने उसका अग्निसंस्कार किया । उसको शान्ति तथा तुष्टिके लिए रामने वन्य मृग आदिक मांससे पिण्डदान किया और स्नान आदि किया की ॥ १३६ ॥ पश्चात् सर्वेभर राम मूढ़ पुरुषको उन्हीं सीताको ढूँँजते हुए दक्षिणका ओर चले । रास्तेमें सीताक अभावमें कुशाका साता बनाकर उसाके साथ रामने अग्निहोत्र किया ॥ १३७ ॥ इसी बीच हे दवि पार्वती ! तुमने मुझसे प्रश्न किया था--हे प्रभो ! आप नित्यप्रति जिन रामका नाम जपा करते हैं ॥ १३८ ॥ वहाँ राम स्नाक विरहसे मूढ़की तरह बने-भारे फिर रहे हैं । तुम्हारा यह बचन सुनकर मैंने तुमसे कहा-- ॥ १३९ ॥ हे देवि ! यह साक्षात् विष्णु भगवान् राम बनकर पृथ्वीमण्डलके लोगोंकी मित्रता देनेके लिए वनमें मूढ़का तरह भ्रमण कर रहे हैं ॥ १४० ॥ वे सबको यह उपदेश देते हैं कि मनुष्यको स्त्रामे आसक्त नहीं होना चाहिए । स्त्रीविषयक आसक्ति ऐसे ही दुःख

त्वं गताऽसि समीपं श्रीराघवस्य तदा वने । सीतारूपेण तं रामं स्वया भोक्तुं शुभं वचः ॥ १४३ ॥
 राम राजीवपद्माक्ष मामग्रे पश्य जानकीम् । कीदृस्वाग्र मया मर्धमेहि शीघ्रं मुनी भव ॥ १४४ ॥
 त्वदुक्तं राघवः श्रुत्वा विहस्य त्वां वचोऽब्रवीत् । जानाम्यहं त्वं कार्याति मतिरन्व नाभि वेद्यहम् ॥ १४५ ॥
 त्वं किं सीतारूपेण मोहयस्यत्र मां वने । एवं पुनः पुनः प्रोक्ता यदा त्व राघवेण हि ॥ १४६ ॥
 तदा स्वया तत्स्वरूप ज्ञातं सत्यं मयेरितम् । ततो नन्वा रामचन्द्रं प्रार्थयित्वा पुनः पुनः ॥ १४७ ॥
 आगताऽसि पुनर्मां त्वं कैलासगिरिरेऽमले । त्वं का त्व किमिति प्रोक्ता राघवेण पुनः पुनः ॥ १४८ ॥
 या त्वं सा दंडके जाना त्व का नाम्नां चिका वने । त्व लज्जिताऽमि रामेण यत्र तत्र तव स्थले ॥ १४९ ॥
 तल्लज्जापुनरात्मनाऽऽसीन्नगरं दंडके वने । ततस्मां राममौमित्रां जन्मनुर्दक्षिणां दिशम् ॥ १५० ॥
 बहवो निहता मामं राक्षसा घागरूपिणः । एतस्मिन्ननरेऽग्रे कबंधेन धृतौ तदा ॥ १५१ ॥
 श्रीरामलक्ष्मणौ भार्या योजनायतवाहुना । दृष्ट्वा तं शिरसा हान वाहू चिच्छेदतुम्भवा ॥ १५२ ॥
 ततः स दिव्यरूपोऽभून्मत्ता राघं वचोऽब्रवीत् । पुन राघर्वगजोऽहं ब्रह्मणो वरदानतः ॥ १५३ ॥
 केनाप्यवध्यस्त्वहममष्टावक्रं मुनीश्वरम् । रक्षो मर्जान शमोऽहं मुनिना ग्राह मां पुनः ॥ १५४ ॥
 त्रंतायुगे यदा रामलक्ष्मणौ योजनायतौ । हेन्त्यनस्ते महाबाहू तदा द्वापात्रमोक्षयसे ॥ १५५ ॥
 ततो राक्षसदेहोऽहमिन्द्रमभ्यद्रवं रुपा । सोऽपि वज्रेण मां राम शिरादेशे हतः हयत् ॥ १५६ ॥
 तदा कुक्षौ शिरःपादघुगलं च गत क्षणात् । ब्रह्मदत्तगन्धमृदुर्नाभून्मे वचनगडनात् ॥ १५७ ॥
 दुस्त्राभावं कथं जीवेदयमित्यमराधिपः । तदा मा ग्राह कृपया जठरं मे मुख भवेत् ॥ १५८ ॥
 बाहू ते योजनायामावध शीघ्रं मविष्यतः । तदारभ्यात्र बाहुभ्या लब्ध तद्भक्षयाम्यहम् ॥ १५९ ॥

तथा भ्रमका कारण बनता है ॥ १४१ ॥ इन बातोंका बतलाने तथा लागूकी सिद्धा दत्तक लिए राम वनमें
 दधर-दधर भ्रमण कर रहे हैं । मेरे इस उत्तरको सुनकर तुम उनकी पराजय लेनका उद्यत हुई ॥ १४२ ॥ उस
 समय तुम संताका रूप बनाकर श्रीरामके पास गया और उनसे कहा—॥ १४३ ॥ हे कमलसदृश
 नेत्रोवाले राम ! अपने सामने खड़ी मुख जानकीकी देता । जाओ, मेरे साथ इस वनमें कीड़ा करके
 सुख प्राप्त करो ॥ १४४ ॥ तुम्हारे कथनको सुनकर राम हेम और कहा मैं जानता हूँ कि तुम कीन हो
 ॥ १४५ ॥ अर्थ सीताका रूप धारण करके मुख कयो मोहित करती हो ? इस प्रकार जब रामन बारम्बार
 कहा ॥ १४६ ॥ तब तुमने मेरे कहनेके अनुसार रामका वास्तविक स्वरूप पहिचान और उनका पुनः पुनः
 प्रार्थना करके क्षमा माँगी ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ तदनन्तर तुम रजनाक केल्यास पर्वतक शिखरपर मेरे पास लौट
 आयी । जहाँपर रामत तुमसे पूछा था कि तुम कीन हो ? यहाँ कयो आयी हो और तुम्हारे नामका अस्मिकता तो
 दण्डकारण्यमें रहती है । यह सुनकर तुम लज्जित हुई । जिससे वहाँपर लक्ष्मण नामका एक नगर बस गया ।
 तदनन्तर वे राम-लक्ष्मण दोहणकी ओर चला दिये ॥ १४९ ॥ १५० ॥ उन्होंने मागने बहुतसे धोर
 राक्षसोंको मारा । इसी जङ्गलमें कबंधने उन दोनोंको पकड़ लिया ॥ १५१ ॥ उसके चार-चार कोसके
 लम्बे हाथ थे । उसे सिरसे रहित देखकर उसके दाना हाथ राम लक्ष्मणने काट डाले ॥ १५२ ॥ तब वह दिव्य
 रूप धारण करके नमस्कारपूरक रामसे कहने लग—महान मैं गन्धर्वोंका राजा था । बह्मने मुझे वर दिया था
 कि तुमको कोई नहीं मार सकेगा । इस गर्वसे मैं एक दिन मुनीश्वर अष्टाशुकी कुक्ष दखकर हैस पड़ा ।
 उसपर उन्होंने कुछ होकर मुझको बाध दिया कि तू राक्षस हो जायगा । मेरे प्रार्थना करनेपर फिर व वाले—
 ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ प्रेता युगमें जब राम-लक्ष्मण तेरो इन योजन भर विस्तारवाली भुजाओंको काटने, तब तू
 क्षापसे मुक्त हो जायगा ॥ १५५ ॥ राक्षस होकर एक दिन मैं इन्द्रक ऊपर धावा किया । उन्होंने कुपित
 होकर मेरे मस्तकपर वज्र मारा ॥ १५६ ॥ जिससे मेरा सिर और दानो पाँच पेटमें धुस गये । परन्तु कहाका
 वरदान प्राप्त रहनेसे मेरी मृत्यु नहीं हुई ॥ १५७ ॥ तब मैंने दक्षजोके अधिपति इन्द्रसे प्रार्थना की कि मैं बिना
 मुखके किस प्रकार जी सकूँगा । तब उन्होंने कृपा करके कहा कि जा, तेरे पेटमें मुख हो जायगा ॥ १५८ ॥

तिष्ठन्त्यग्रे मतंगादिमुनीनां परिचारिकाः । श्वरीदर्शनार्थं त्वं तत्र याहि रघूत्तम ॥१६०॥
 कथयिष्यति सा सीताशुद्धिं ते रघुनन्दन इन्दुकत्वा राघवं नत्वा स्तुत्वा स्वर्गं ययौ मुदा ॥१६१॥
 ततो रामो लक्ष्मणेन श्वरीमनिधिं ययौ । साऽपि संपूज्य श्रीरामं विशेषैर्वनसम्भवैः ॥१६२॥
 चितामारोढुमुद्युक्ता राघव प्राह हर्षिता । ऋष्यमूकगिरावग्रे सुग्रीवो मन्त्रिभिः सह ॥१६३॥
 वर्तते तस्य सख्येन सीताशुद्धिं लभिष्यति । गच्छ राम इतस्त्वग्रे पंपानाम सरोवरम् ॥१६४॥
 तच्छटके तु वृक्षाणां फलानि विविधानि च । भक्षस्व त्वं जलपीत्वा याहि सुग्रीवमनिधिम् ॥१६५॥
 इन्दुकत्वा श्वरी रामं नत्वा बद्धिं विवेश सा । रामसदर्शनान्सुक्तिं प्राप्ता वैकुण्ठमाययौ ॥१६६॥
 ततो रामः शूनैर्भ्रात्रा ययौ पंपासरोवरम् । फलानि भक्षयामास पीत्वा तजलमुत्तमम् ॥१६७॥
 ततः शूनैर्ययौ मार्गे ऋष्यमूकाचलं प्रति । पश्यन्वनानि सर्वत्र चिंतयामास जानकीम् ॥१६८॥
 एवं गिरीन्द्रजे प्रोक्तमारण्यं चरितं तत्र । श्रीरामस्य ससीतस्य लक्ष्मणेन युतस्य च ॥१६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितातमते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

खरादिवधो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(राम-सुग्रीवमैत्री और बालिवध)

श्रीशिव उवाच

अथ रामो लक्ष्मणेन ऋष्यमूकाचलं प्रति । ययौ घृतधनुर्वानो नेत्रे सर्वत्र चालयन् ॥ १ ॥
 ऋष्यमूकगिरेः पार्श्वे गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवेणाथ तौ दृष्टौ ऋष्यमूकस्थितेन हि ॥ २ ॥
 सुग्रीवस्ती तदा दृष्ट्वा चतुर्भिर्मन्त्रिभिर्गुणैः । समन्वय मारुतिं प्राह बालिना प्रेषितानुभौ ॥ ३ ॥

श्रीशिव ही तूरे हाथ भी योजन-योजन भर लम्ब हो जायेंगे । तबसे मैं जो कुछ इन हाथोंके बीच आ जाता है, खा लेता हूँ ॥ १५९ ॥ यहाँसे आगे मतङ्ग आदि मुनियोंकी परिचारिकायें रहती हैं । हे रघूत्तम ! आप वहाँ जाकर श्वरीसे मिलें ॥ १६० ॥ हे रघुनन्दन ! वह आपको सीताका पता बतायेगी । इतना कहकर उसने रामकी स्तुति की और नमस्कार करके वह सानन्द स्वर्गको चला गया ॥ १६१ ॥ तदनन्तर राम लक्ष्मणको लेकर श्वरीके पास गये । श्वराने वनके अच्छे-अच्छे पुष्पो तथा फलोंसे उनका पूजन-सत्कार किया ॥ १६२ ॥ बादमें चितारोहण करते समय हृष्यपूर्वक वह रामसे बोली कि आगे ऋष्यमूक पर्वतके शिखरपर मन्त्रियोंके साथ सुग्रीव रहता है ॥ १६३ ॥ उसकी मित्रता प्राप्त करनेसे आपको सीताका पता मिल जायगा । हे राम ! आप यहाँसे चलकर पंपासरोवर जायें ॥ १६४ ॥ उसके किनारेपर लगे हुए वृक्षोंके विविध फल खा तथा जलपान करके आप सुग्रीवके पास जाइएगा ॥ १६५ ॥ इतना कहकर श्वरीने रामको प्रणाम किया और अग्निमें प्रवेश कर गयी । इस प्रकार रामके दर्शनमात्रसे मुक्त होकर वह वैकुण्ठवाम सिधारी ॥ १६६ ॥ तदनन्तर राम भाई लक्ष्मणके साथ पम्पासरोवर गये । वहाँके मुन्दर फल खाकर सरोवरका निर्मल जल पिया ॥ १६७ ॥ पश्चात् धीरे-धीरे ऋष्यमूक पर्वतको ओर चले । रास्तेमें चारों ओर हरे-भरे वनोंको शोभा देखकर राम बारम्बार जानकीका स्मरण करने लगे ॥ १६८ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! यह मैंने तुमको सीता, लक्ष्मण तथा श्रीरामका किया हुआ चरित्र कह सुनाया ॥ १६९ ॥ इति शतकोटिरामचरितातमते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे पं० रामकृष्णजयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! इस तरह राम हाथमें घनुष-बाण लिये और नेत्रोंसे चारों ओर देखते हुए लक्ष्मणके साथ ऋष्यमूक पर्वतके पास पहुँचे ॥ १ ॥ वहाँ शिखरपर बैठे सुग्रीवने पर्वतके पास आते हुए राम-लक्ष्मणको देख लिया । २ ॥ उन्हें देखकर सुग्रीवने अपने चारों मन्त्रियोंकी बुलवाया और उनसे मन्त्रणा

मां हन्तुं घृनकोदंडौ सन्तूणीरौ जगज्जनी । हतोऽस्माभिः प्रगंतव्यं मंत्रं शृणु मयोच्यते ॥४॥
 मन्त्रं जानीहि मद्रं ते बहुर्भुत्वा द्विजाकृतिः । ताभ्यां संभाषणं कृत्वा जानीहि हृदयं तयोः ॥५॥
 यदि नो दृष्टहृदयो संज्ञां कुरु कगाग्रतः । माभुत्वे स्मितवक्त्रोऽभूरेवं जानीहि निश्चयम् ॥६॥
 तथेति वदुरूपेण गत्वा नत्वा रघुनमम् । कौ युवां पुरुषन्याघाविति पप्रच्छ मारुतिः ॥७॥
 नमस्त्वं लक्ष्मणः प्राह पूर्ववृत्तं सचिन्तरम् । शवरीवचनाद्रामः मत्स्यं कर्तुं समागतः ॥८॥
 मुग्धावेणाथ तच्छ्रुत्वा स्वरूपं मारुतिर्मदा । चकार नञं प्रकटं स्वीयं वृत्तं न्यवेदयत् ॥९॥
 पत्स्कंधमधिरुक्षाद्य पर्वतं गंतुमर्हयः । तथेति मारुतेः स्कंधे संस्थितौ तौ नभूवतुः ॥१०॥
 उपशान्तिं गिरेर्मूर्ध्नि सणादेव महाकपिः । वृक्षच्छायां समाश्रित्य तौ स्थितौ रामलक्ष्मणौ ॥११॥
 मुग्धां मारुतिर्गत्वा रामवृत्तं न्यवेदयत् । ततः प्रज्वाल्य वह्निं स मुग्धो राक्षसेण हि ॥१२॥
 चकार मत्स्यं वगेन समालिख्य परस्परम् । वृक्षशाखां स्वयं छित्त्वा विष्टगार्थं ददौ कपिः ॥१३॥
 दर्शय मदनविष्टाः सर्वे एवावतस्वियरे । लक्ष्मणस्तत्रैवैवम् सर्वे सुग्रीवं वृत्तमन्मनः ॥१४॥
 तच्छ्रुत्वा सकलवृत्तं सुग्रीवः स्वं न्यवेदयत् । सर्वे गणुष्व मे वृत्तं वालिना यत्कृतं पुरा ॥१५॥
 भयपुत्रो दुर्मदश्च किष्किंधामेकदा गतः । कृत्वा स दीर्घशब्दं तु वालिनं समुपाह्वयत् ॥१६॥
 तं श्रुत्वा निर्ययौ वाली जघान ददमुष्टिना । दुद्राव तेन संविष्टो जगाम स्वगुहां प्रति ॥१७॥
 अनुदद्राव तं वाली बलिपृष्ठे त्वहं गतः । वाली ममाह निष्ट त्व बहिर्गच्छाम्यहं गुहाम् ॥१८॥
 श्रुत्वाऽऽविश्य स गुहां माममेकेन निययौ । गुहाद्वारान्मया रक्तं निर्गतं मज्जिरीक्ष्य च ॥१९॥

परक हस्मान्मे कहा कि इन दोनोंको वालिने भेजा है, ऐसा ज्ञात हुआ है ॥ ३ ॥ ये दोनों नररूप धारण कर आया बाँध तथा घाय लेकर मुझे मारने आ रहे हैं । इस कारण हम लोगोंको यहाँसे कहीं अन्यत्र भाग जाना चाहिये । अबका तुम मेरा बात मानो और ब्राह्मणका रूप धारण करके ब्रह्मचारी बनकर उनके पास आओ तो उनका साथ बातचीत करके उनके हृदयका अभिप्राय जान लो ॥ ४ ॥ यदि उनके हृदयका विचार इष्टित हो तो पहली आड़में जाकर हाथकी अंगुलीमें सख्त करना और यदि अच्छा विचार रखते हों तो हँसकर मजे आर निहारना । अब यही संकेत निश्चित है, याद रखना ॥ ५ ॥ ६ ॥ तदनुसार हनुमान् 'बहुत अच्छा' कह और ब्रह्मचारीका रूप धारण करके रामके पास गये और नमस्कार करके कहा — 'पुरुषोंमें सिद्धके समान धार आर दोनों कौन हैं ?' ॥ ७ ॥ तब लक्ष्मणने उनको अपना संपूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि शवरीके कहनेसे मैं राम सुग्रीवके साथ मित्रता करनेके लिये यहाँ आये है ॥ ८ ॥ यह सुनकर हनुमान्ने अपना असली स्वरूप प्रकट किया और अपना भी सब हाल कह सुनाया ॥ ९ ॥ साथ ही यह भी कहा कि आप दोनों मेरे कन्धेपर बैठकर पर्वतपर चल । 'तथास्तु' कहकर वे दोनों मारुतिके कन्धेपर चढ़ गये ॥ १० ॥ महाकपि हनुमान्जी वृत्तकर क्षणभरमें पर्वतके निम्नपर आ गये वहाँ राम-लक्ष्मण एक वृक्षकी छायामें बैठे ॥ ११ ॥ हनुमान्ने बाँधर रामका सब समाचार सुग्रीवको कह सुनाया । पश्चात् सुग्रीवने अग्नि जलायी और उसे साक्षी बनाकर रामके साथ शोध मित्रता कर ली और परस्पर वे दोनों गले मिले । सब स्वयं सुग्रीवने अपने हाथोंसे वृक्षकी शाखा तोड़कर रामको बिछानेके लिए दे दी । तब सब लोग प्रसन्न हुए और बैठ गये । लक्ष्मणने अपना सब वृत्तान्त सुग्रीवको सुनाया ॥ १२-१४ ॥ यह सुनकर सुग्रीवने भी अपना सब हाल बताने हुए कहा — हे सखे ! परब वालिने मेरे साथ जो कुछ किया है, वह सब आप सुन ले ॥ १५ ॥ एक समय मय दानवका पुत्र दुर्मद किष्किन्धा नगरीमें गया । वहाँ जाकर वह जोरसे चिल्लाया और वालिको युद्धके लिये ललकारा ॥ १६ ॥ सो मनकर वालि बाहर आया और दुर्मदको बहुत जोरसे एक मुक्का मारा । इससे धक्काकर वह अपनी गुफाकी ओर भागा ॥ १७ ॥ उसके पाँछे वालि और वालिके पाँछे में भी भागा । वहाँ जाकर वालिने मुझसे कहा कि तुम बाहर सहे रहो, मैं गुफाके भात आता हूँ ॥ १८ ॥ यदि एक महीनेमें मैं बाहर न आऊँ तो मुझे मरा समझ लेना । ऐसा कहकर वह गुफामें चला गया । उसके कथनानुसार एक महीना बीत गया,

निश्चित मनमा वाली दुर्मदेन हतस्त्विनि । एतस्मिन्नन्तरे श्रुत्या किष्किधां रिपुवेष्टिताम् ॥२०॥
 गुहाद्वारि शिलाभेका निधाय दुर्मदस्य च । यन्नतो मार्गगेधार्थं किष्किधामागतः स्वयम् ॥२१॥
 मां दृष्ट्वा रिपवः सर्वे वेगाच्चक्रुः पलायनम् । अनिच्छन् मन्त्रिणो मां तन्पदे मन्यवेशयन् ॥२२॥
 ततो हन्वा रिपु वाली दृष्ट्वा मां स्वपदस्थितम् । संताप्य नगरान्मां स बहिन्यपकायत्तदा ॥२३॥
 ततः स सचवेशेषु वादयामास दुन्दुभिम् । भूम्यां सुग्रीवपाता यः स वक्ष्यो भवेदिति ॥२४॥
 ततो लोकान्परिक्रम्य श्रृण्वन्मूको मयाऽऽश्रितः । एकदा दुन्दुभिर्नाम दैव्यो महिषरूपशुक ॥२५॥
 युदाय वालिनं राक्षो ममाङ्गपत भोषणः । ततो वाली समागत्य धूम्रा भृग करेण च ॥२६॥
 इस्ताभ्यां तच्छिरसिच्छिन्वा तोलयित्वाऽक्षिपद्भुवि । पपात तच्छिरो रात्रि मन्त्रगात्रममात्र च ॥२७॥
 रक्तवृष्टिः पपातोर्चमनहोऽप्यशपन्कुप्रा । यथागतोऽसि मे वालिन् गिरिं शांत्र ममापये ॥२८॥
 एव शमस्तदाभ्य ऋष्यमूकं न यान्यमी । प्रतिज्ञां ते करोम्यद्य मीनां शांत्र ममान् ॥२९॥
 यदा नीता रावणेन तदा दृष्ट्वा मयाऽत्र खे । बद्ध्वोत्तरीये क्षिपानि पश्य त्व भूषणानि हि ॥३०॥
 ह्युक्त्या दर्शयामास सुग्रीवो भूषणानि हि । तानि दृष्ट्वाऽजरोऽबन्धु गमस्त्वं निधाय ॥३१॥
 न्वयादृष्टानि मीनायामनच्छ्रत्वा लक्ष्मणोऽब्रवीत् । न वेद्यहं ममस्तानि वेषथ मुलिमयानि हि ॥३२॥
 वन्दने यानि दृष्टानि मया निन्य त्धूदह । ततो रामोऽतिमनुषो लब्ध्वा मीनाममन्यत ॥३३॥
 सुग्रीववचनाद्रामः प्रत्ययार्थं तदा क्षणान् । पादांगुष्ठेनाक्षिपत्तद्दुर्दुमेः शिर उत्तमम् ॥३४॥

किन्तु वह बाहर नहीं आया । मैं जब गुहामें निकलता हुआ दृष्टि दत्ता तो मनमें विभ्रम करने लगा कि दुर्मद दानवन वालीको मार डाला । उसी समय यह सुनकर कि शत्रुओं ने किष्किन्ध्याका घरा निगा है तो गुहाके द्वारकी एक बड़ी भारी शिलासे ठीक दिया और निधाय कर लिया कि अब दुर्मदका मार्ग रुक गया है । वह चल करके भी बाहर नहीं निकल सकता । तब मैं अपनी किष्किन्ध्या नगरीका चला आया ॥ १६-२१ ॥ मुझे देखनेके साथ ही सब शत्रु भाग गये और मेरा इच्छा न रहनवर भी मन्त्रियोंने मुझे भारी वस्त्र पहनाकर देना दिया ॥ २२ ॥ पश्चात् वालि भी शत्रुको मारकर घर आया और मुझे अपने पदपर बैठा दस्त्रा तो मुझे भोजन कर उसी समय नगरमें बाहर निकाल दिया । २३ ॥ साथ ही सब दशाप उसने टिंगरा गिटकाकर कहला दिया कि "जो कोई सुग्रीवका कारण देकर क्षमा करेगा, वह मेरा अग्रगण्य हाथी और मार डाला जायगा" ॥ २४ ॥ तदनन्तर सब दशाप धूमकर मैंने इस ऋष्यमूक गिरिका आश्रय लिया । यहाँकी क्या यह है कि एक दिन दुर्धमा नामक दैव्य भेमेका रूप धरकर रात्रिक समय बात के यहाँ गया और उसका युद्धक लिये लक्ष्यकारा । करत आकर अपने हाथसे उसको सींग पकड़ ला और खींचकर उसका मिर घडम उलकाड तथा घुमाकर दूर फेंक दिया । हे राम ! उसका वह मिर मत हूँ ऋषिके आश्रममें जा गिरा । २५-२७ ॥ इससे मत हूँ ऋषिके अग्र भी जाकर गिरा । तब उन्होंने तर्क करके उसे शाप दिया कि 'अरे वालि ! यदि मैंने पर्वत तथा आश्रमके पान तू आयेगा तो तुरन्त मर जायगा' ॥ २८ ॥ इस शापसे डरकर वालि यहाँ कभी नहीं आया । हे राम ! मैं प्रतिज्ञा करना हूँ कि मैं ताको शांघ ही ले आऊँगा ॥ २९ ॥ जब रावण उनको ले आ रहा था, तब यही वंटे हुए मैंने आकाशमें देखे था । उस समय मैंने अपने साडीय बाँधकर कुछ आभूषण लाने कहे थे । वे यही हैं, आप उन्हें देखें ॥ ३० ॥ इनका कहकर सुग्रीवन ने आभूषण दिखलाय । उन्हें देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा—हे भाई ! मैं उन्हें देखकर ठीक ठीक बनलाओं कि ये सीताके हैं या नहीं । बशोक तुमने तो सीताके आभूषण ऐसे ही दिये । यह सुनकर लक्ष्मणने कहा कि मैं सबको तो नहीं पहचानता, परन्तु पाँचवी अंगुलीके तुरंगके बारम्बार कह सकता हूँ कि ये सीताके ही हैं । कारण कि मैंने प्रणाम करत समय कबल उनके पाँव देखे हैं —अन्य कह नहीं देखे । यह सुनकर राम प्रसन्न हुए और 'अब सीता मिल गया' ऐसा समझा ॥ ३१-३३ ॥ तदनन्तर दुर्धमा विश्वास दिलानेके लिए उसी समय रामने अपने पाँवके अंगुलीसे मारकर दुन्दुभिंके बड़े विशाल सिरको

दशयोजनपर्यन्तं तथा बाणेन वै पुनः । चक्राकाशान् मम तालान् दृष्ट्वा देहे क्वदेः प्रभुः ॥३५॥
 मृग्यांशुष्टेन सौमित्रेः पदं किञ्चिद्विमर्शं च । अत्रुं कृत्वा पन्नगं तं शेषांशेन स्थितं भुवि ॥३६॥
 मृगैव प्रत्ययार्थं हि मम तालान् विभेद मः । मुह्ययामेकदा तालफलानि स्थापितानि हि ॥३७॥
 वालिना मम नीतानि नेन मयै ददर्श मः । तमग्रपन्नगि शुभाश्च भविष्यतीति वानरः ॥३८॥
 रणोऽप्याहूय तान् छेत्ता यस्मै हन्ता न संशयः । तद् दृष्ट्वा गमसामर्थ्यं तस्मिन्प्रत्ययमाप मः ॥३९॥
 मृगैव स्त पुनः प्राह गधवं तुष्टमानसः वालिन सुगन्धेन पुन दत्ताऽग्नौ मालिका ॥४०॥
 यां दृष्ट्वा विषयो मुदं गवर्श्या भवन्ति हि । या पूरा कथयन्तेव तपसा दुःकरेण च ॥४१॥
 शिवाह्वया पिता पुत्रमिन्द्र तेनापि वालिने । प्रीत्यापिता मालिका सा बाला कटे दधान्यसौ ॥४२॥
 तस्यास्त्वं दर्शनाद्राम गनमन्वो भविष्यसि तत्रोपायं चिन्तयस्व येन तेऽयं जयं भवेत् ॥४३॥
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा गमः सर्वं तमब्रवीत् । यः आगन्मोचिनः पूर्वं मम तालान्विमिश्र च ॥४४॥
 गच्छ न्वमम वाक्स्वेन किञ्चिदध्यायां च वालिनम् । निशीथे निद्रित दृष्ट्वा हर तन्मालिका शुभाम् ॥४५॥
 नथेति गमवाक्येन किञ्चिदध्यामेत्य पन्नगः । मचक्रव्यां जहामथ ता माला वामवं दर्श ॥४६॥
 ततो गमाज्ञया गन्वा समाहूयाथ वालिनम् । मुदं चकार मृगैवः श्रगर्मोऽपि ददर्श तम् ॥४७॥
 समानमर्षा तौ दृष्ट्वा मिथयानविज्ञकया । न मृगैव तदा बाण गमः सोऽपि न्यवर्तत ॥४८॥
 मृगैवो राघवं प्राह सा घानयसि वालिना । यदि मद्भुजने बाह्या न्वमेव जहि मां विभो ॥४९॥
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा मृगैवस्य गधूतमः । बन्धयामास मृगैवकटे मालां तु बन्धुना ॥५०॥

दूर फक दिया ॥ ३४ ॥ वह दम योजन्को दूरीपर जा गिरा । गोल आकारमें साते शरीरपर जमे हुए सात तालवृक्षोंको देखा तो रामने पृथ्वीपर शेषक अंशमें स्थित पन्नगने पालित अपने पालन आदृष्ट देवाकर उस शेषको सीधा किण्व और बाणसे उस सागे वृक्षोंका एक ही बाणसे बाट छाड़ा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ऐसा करके उन्होंने मृगीवको विश्वास दिलाया कि राम मी महाशक्त बलन और बाणोंको मारनमें मग्न हैं । एक समयकी बात है एक बाणसे अपनी गुणों तालक वृक्ष फल लक्ष्मणे । उनमेंसे सात फल कोई उठा ले गया । वालिने देखा तो उसे वही फलकी जगह मय स्थिति दी । तब रामने मर्षको शाप द दिया कि जा, तेरे ऊपर सात तालवृक्ष उगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तब मर्षने भी कहा कि जा पुन्य वृक्षोंका काटगा, वहा मुख मारेगा—इसमें मन्दह रही है । इसी सामर्थ्यसे आज रामने देवाकर मुन्यकी विश्वास हो गया ॥ ३९ ॥ तब प्रसन्न होकर मृगीवने कहा— तुमकायमें इतने शक्तिशाली एक माता हो जी । ४० ॥ तब देवाकर उसने शत्रु युद्ध वाटाने हो जाने है । तबिने बाण तप कालपर वह माता कथयका जिवज में मिले । वलपने उसे अन्न पुत्र इन्द्रक दी और इन्द्रक बाणोंको अपने को । प्रीतिपूर्वक अवित की दृष्टि—म माताकी वाली सदा मुखमें पहिने रहता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे राम—रमको देखकर साध हो अप भी काटने हो जायेंगे । कलपव इस जिवजमें कोई उपाय सोनिया । जिसमें आपकी विजय हो ॥ ४३ ॥ मृगीवके इन वचनका सुनकर रामने, जिसका वलके द्वारा सात तालवृक्षोंको काटकर आपसे मुक्त किया था उस रात्रिमें कहा कि तुम मेरे कथनानुसार किष्किन्वा-प जाकर रात्रिके समय जब कि वालि सोता रहे, तब उसके गलेमेंसे उस सुन्दर माताको चुन लाओ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ तबानुस मरकर वह माँव रामका अज्ञाने अनुसार किष्किन्वा तारीम गया और गच्छप से उस माताको चुनकर इन्द्रको दे आया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर रामका अज्ञाने मुन्यवने वालीक पास जाकर उसको मुद के लिये लाकारा और मुद किया । उस मुदकी राम देख रहे थे, किन्तु उन दोनों भाइयोंको समान रूपवान् देख धोमेन कहीं मित्र मुपव हो न मागा जाय, इस आशंकाके कारण रामने बाणोंपर बाण नहीं छोड़ा । तब सुग्रीव रामके पास लोट आया और रामसे बोला कि मुझ आप वालोंके हाथों क्यों मरवाना चाहते हैं ? यदि मुझे मारनेकी ही इच्छा हो तो हे विभो । आप ही मार डाले ॥ ४७-४८ ॥ सुग्रीवके इस वचनको सुनकर

पुनश्च प्रेषयामास सोऽपि वालिनमाह्वयन् । ततः श्रुत्वा ययौ वाला त ताराऽप्राथेयत्तदा ॥५१॥
 ध्रुमरादवाक्येन मया रामः समागतः । चकार मंत्री किं तेन मा कुरुष्वान्न संगरम् ॥५२॥
 गच्छ नन्वा रमानाथं वन्दु मानय सादरम् । योगराज्यपदं देहि तस्मै मे वचनं शृणु ॥५३॥
 तत्तारावचनं श्रुत्वा वाला तां वचनमनर्थकम् । जानाम्यहं राक्षसं तं सरूपधरं हरिम् ॥५४॥
 तस्य हस्मान्मृत्निर्मितं गच्छामि परम पदम् । सुखं त्वं तिष्ठ तारेऽत्र सुग्रीव भव सदा ॥५५॥
 यदा त्वया मा सुग्रीवः करिष्यति रतिं प्रिये । तदा तत्पत्निभागस्यानुषंगं गच्छामि मामिति ॥५६॥
 अत एव मालिका मे गुप्ताऽभूत्पदय मन्त्रिये । अद्याहं रामबाणेन पतिष्यामि रणांगणे ॥५७॥
 अद्य धन्याऽस्म्यहं तारे धन्यो तौ पितरौ मम । योग्यं श्रीरामहस्तेन मरिष्यामि रणांगणे ॥५८॥
 एवमाश्वास्य तां तारां ययौ वाला न्यगन्वितः । दृष्ट्वा वाला महोत्पानान् सन्तोषं परमं ययौ ॥५९॥
 चकार वन्दुना युद्धं तदा बाणेन राक्षसः । वृक्षपण्डे निरोध्नुवा पतयामास तं भुवि ॥६०॥
 ततस्तारा समागत्य शुशोच वालिनं प्रति । राक्षो दृष्ट्वा रमानाथं तदा ग्राह स गद्गदः ॥६१॥
 वृक्षपण्डे निरोध्नुवा न्ययाऽहं तगडिनो हृदि । त्वया दूयतां जलं मम जानी महोदयः ॥६२॥
 किं मयाऽवकृतं ते हि त्वया यस्मान्निपातितः । रामः ग्राह वालिनं त्वं रुमाया लम्पटः सदा ॥६३॥
 वन्दुमार्यां गृहे स्थित्य वन्दुं दन्दुं त्वामिच्छामि । दुर्वृत्तं त्वां समालोक्य मया तस्मान्निपातितः ॥६४॥
 यथा त्वया रुमा मुक्ता तथा तारां तव प्रियाम् । मोक्षयस्व हि सुग्रीवा वचनान्म कर्पाक्षर ॥६५॥
 यथापि न दूगचारा निहतोऽमि रणे मया । तथापि भल्लरूपेण द्वापरान्तऽधिप मम ॥६६॥
 भिन्ना प्रभासे बाणेन पूर्ववरेण वातर । ततो मद्भक्तमरणस्यास्य कारणगौरवात् ॥६७॥
 मुक्तिं गच्छामि त्वं वालिन शुभां जन्मान्तरेण हि । ततः ग्राह पुनर्वाला मऽभवत्पदद्वन्द्वितम् ॥६८॥

राम ने राम को छोड़ कर लक्ष्मण के द्वार पर गये और वृक्षपण्डित के पास गये । तदनन्तर पुनः
 राम को पुनः करतक स्थिते मेला । इसने आकर फिर वहाँ की ओर चला । मां मु... राम ने राम को ले जाने का
 राम तारा को प्रार्थनापूर्वक कहा । ५१ । तारा ने मेला । अतः दूरे मुग्रीव सेना है कि जो नरक राम इस वन में आय
 गया है । हमलिये आप मयावक साथ मिथना कर ल और इसे का निवारण करे । ५२ । आप आकर राम के
 कण्ठ की वन्दना कर और मेला कहना मानक मेला मयावका सादर वन्दना कर प्रार्थना करे । ५३ । तारा की
 वचन सुनकर वाला ने कहा कि मैं नरकपरायण नरक तारा को जानता हूँ । उनके हाथों यदि
 मेला मुन्नु हाथी तो परमपद प्राप्त करेगा । तारा ने मेला हाथी मुन्नुवक रहकर मुन्नुवक नया करना । हे प्रिये ।
 मेलाव जय मुन्नुहार साथ रति करेगा, तथा मेला उमका पत्नी के धर्म प्रकाश करेगा । ५४ । ५५ । और
 मेला मिनि । हाथी, आज गरी माला मेला लपना हा गरी । ततएव मेला मुनि राम के वचन अवश्य
 मेला आकाश ॥ ५७ ॥ हे तारे ! मैं तारा मेला मान मेला वन्दु । कि ज, आज श्रीराम के हाथों मेला मृन्नु
 वना ॥ ५८ ॥ इस प्रकार तारा ने मेलावक वाला मुन्नुवक पद और मेलावक तारा का दूयकर भी
 नन्द्य हुआ ॥ ५९ ॥ वह अपने हाथ मयावक साथ लपना गया । ततः समर राम एक वृन्का आरंभ खड़े हो गये
 और व, की बाणसे मारकर मुन्नु पर गिरा दिया । ६० । तब तारा अकर बाण की य अत्यन्त दिलाप
 जान गया । वाला अपने नामन राक्षक देखकर गद्गद स्वर से बोले । ६१ । तारा ने आपने जो आज
 मेला आरंभ कर मेला दृश्य मेला मारा है, इसमे मेला लिये तो वह मेलावक मुन्नुवक जान है परन्तु इसमे
 मेला वडा भारी अपमान होगा । ६२ ॥ दूसरी बात है कि मैंने आपका कोन का अपमान किया था,
 जो आपने मुझे मारा ? राम ने कहा—तु सदा मेलावक मया रमाना लिये रहता था ॥ ६३ ॥ तु छेद मेलावक
 मेला अपने घर में रखकर मेला को मार डालना चाहता था । यह दुराचार देखकर मैंने तुझे मारा है तो भा
 द मेला अन्त में भील होकर तु पूर्ववक कारण करके प्रभामक्षेत्र में अपने वचन मेलावक देगा । तद गने

सीतायुक्तं न्यया पूर्वं क्षणेन गत्रणेन हि । इत्थंऽभगिष्यदानीय सीता तत्र मया तदा ॥६९॥
 अधुना प्रार्थयामि त्वामंगदं पश्चिपत्य । इत्युक्त्वा स तदा बालः जग्दी प्राणान् रणांगणे ॥७०॥
 अद्भुतेन तदा रामः कारयामास हस्तिक्याम् । अथ रामं स सुग्रीवो गन्धार्थं प्रार्थयत्तदा ॥७१॥
 रामस्तमेव राजानं चकार लक्ष्मणेन सः । अथ वार्षिकप्रामाण्यं दत्तुं रामोऽविचारयत् ॥७२॥
 प्रवर्षणगिरेः प्रोत्तमशिवरे स्फटिकोद्भवाम् । रम्भां दृष्ट्वा गुहां गमः पद्मपुष्पमन्विताम् ॥७३॥
 निनाय वापिकान् मामान् चतुरः श्रृंगघृद्धः । एकदा लक्ष्मणः स्नान्त्वा पावद्रासं समागतः ॥७४॥
 साध्विक्या सीतया युक्तस्नातद्रामो निरीक्षितः । सीमेविषा कन्दिता सा पद्मूर्जामे लय ययौ ॥७५॥
 एवं तामीनदा सीतावियोगो राक्षसस्य हि । सुग्रीवोऽथ पुरीषस्ये चकार गज्यमुत्तमम् ॥७६॥
 एकदा हनुमद्राज्याह्वानगन्धं ममाह्वयत् । प्रवर्षणगिरवाप्तां तीर्थं द्वे रामलक्ष्मणे ॥७७॥
 गन्धस्मिन्नन्तरे रामो दृष्ट्वा प्राप्तं शरदृतुम् । क्रोधेन प्रेषयामास सुग्रीवाय लक्ष्मण च सः ॥७८॥
 सोऽपि गत्वाऽथ किष्किं चां भीषयामास वानरान् । आगतं लक्ष्मणं श्रुत्वा सुग्रीवो भयविह्वलः ॥७९॥
 वाक्यं प्रेषयामास सात्वन्तार्थं हि लक्ष्मणम् । स गत्वा तं सात्वन्तिस्थां किष्किं धामानपत्तशः ॥८०॥
 एतस्मिन्नन्तरे तानां प्रेषयामास वानरः । सोऽपि गत्वा मध्यकक्षां यस्थितं तं ददर्श ह ॥८१॥
 लक्ष्मणं शान्तयामास वनोभिमैधूर्तिर्निजः । ममाह्वयानि सन्त्यानि रामार्थं प्लवगेन हि ॥८२॥
 सुग्रीवे च न्यया कोपो मां कार्योऽथ हि देव । ततो लक्ष्मणहस्ते सा शृंगः राजगृहं ययौ ॥८३॥
 दृष्ट्वा सुग्रीवराजस्तमामतात्मं चञ्चल सः । सुग्रीवं लक्ष्मणः प्राह विस्मृतोऽपि रघूत्तमम् ॥८४॥
 वाली येन हतो वीरः स बाणस्त्वां प्रतीक्षते । न्यमद्य वालिनो मार्गं गमिष्यमि मया हतः ॥८५॥

हयो मरुतके शेरबसे लम्बान्तरहितं शुभं मलिको प्रपत ह मा । वालीने फिर कहा—यदि आप मेरे पास आते तो मैं मुरात आपको सीताका पता बताता तथा रावणसे सीताको लाकर छोन क्षणभरमे आपको दे देता ॥ ६४-६९ ॥ अतः, अब मैं प्रार्थना करना हूँ कि आप अद्भुतको दसा करिएगा । इतना कहकर वालीने उसी समय रणाङ्गण पर प्राण छोड़ दिया ॥ ७० ॥ तदनन्तर रामने अरुणसे उसका क्रियाकर्म कराया । बादमें सुग्रीवने रामसे वह राज्य प्रश्न करनेके लिये प्रार्थना की ॥ ७१ ॥ तब रामने लक्ष्मणको भेजकर सुग्रीवको वहाँ-का राजा बना दिया । अब राम वरसात्तम कही चानूमास निवास करनेका विचार करने लगे ॥ ७२॥ तदुसार उन्होंने वही प्रवर्षणगिरिके उच्च शिखरपर युन्दर पत्तो-गुफोकी लताओंसे वेष्टित एक रमणीय गुफा देखी ॥ ७३ ॥ वस, राम वही गृहकर सीतासेक चार गृहोने विज्ञाने लगे । एक दिन लक्ष्मण स्नान करके जब आये तो रामको सत्वगुणमयी सीतासे युक्त देखा । लक्ष्मणने उन्हें प्रणाम किया तब ही सीता अपने पति रामके वाप्याह्वय विवर्ण हो गयी ॥ ७४ ॥ इस तरह उस समय भी रामने सीताका वियोग नहीं हुआ था । उधर सुग्रीव अपना पुरीष उत्तम रत्तिम राज्य कर रहे लगे ॥ ७५॥ एक बार हनुमान्क कहनेपर सुग्रीवने वानरोको बुलवाया । उस समय राम-लक्ष्मण प्रवर्षणगिरिपर रहने दे ॥ ७६॥ तब रामने शरद्वर्षणको प्राप्त देखा तो क्रोधसे लक्ष्मणको सुग्रीवके पास सहायताका स्मरण दिलाने लिये भेजा । उन्होंने वहाँ जाकर किष्किन्ध्याके वानरोको डराना आरम्भ किया । लक्ष्मणको आज्ञा सुनकर सुग्रीव भी भयसे विह्वल हो उठा ॥ ७७ ॥ ७९ ॥ उसने लक्ष्मणको शान्त करनेके लिये हनुमान्को भेजा । उन्होंने जाकर लक्ष्मणको समझाया और अपने साथ किष्किन्ध्यामें ले आये ॥ ८० ॥ उसी समय वानर सुग्रीवने तारापी भेजा वह जाकर मङ्गलके बीचवाली बालानमें बैठ गयी । इतनेमें उसने लक्ष्मणका आह देका ॥ ८१ ॥ ताराने अपने मधुर वचनोंसे लक्ष्मणको समझाकर शान्त करने हुए कहा—हे देवरजी 'वानरोके राजा सुग्रीवने रामके कामके लिये वानरोको बुलवा भेजा है । आप को न करें । इतना कह तथा लक्ष्मणका हाथ पकड़कर घण्टे राजा सुग्रीवके पास ले गयी ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ उन्हें देख राजा सुग्रीव तिहासतसे उठकर खड़े हो गये । तब लक्ष्मणने सुग्रीवसे कहा कि तुम रघुकुलमें उत्तम

॥३॥ मन्थन्तः परहं चदन्तं लक्ष्मणं तदा उवाच हनुमान् वीरः कथमेवं प्रभाषसे ॥८६॥
 रामकार्यार्थमनिशं जागर्ति न तु विस्मृतः । इन्दुवन्त्रात् पूजयित्वा सुग्रीवेण न मारुतिः ॥८७॥
 नकार लक्ष्मणं शान्तं सुग्रीवोऽप्यथ वानरैः । गन्वा न राघवं नन्वा दृशेयामास वानरान् ॥८८॥
 राघवं न तदा प्राह सुग्रीवः प्लवगाधिपः । देव पश्य समायांती वानराणां महाबभूवुः ॥८९॥
 अथ गृधाधिपतयः पञ्चान्यष्टादश स्मृताः । ततो रामाजया सीताशुद्रयर्थं तान् दिदेश सः ॥९०॥
 दिक्षु सर्वासु विविधान् वानरान् प्रेष्य मन्वगम् । धाम्यां दिशं जाम्बवन्तमङ्गदं वायुनन्दनम् ॥९१॥
 मल सुपेण शरभ मेदं मम्प्रेषयत्तदा । मामादर्ताङ्गनिवर्तन्वा नाचेदृष्या भविष्यथ ॥९२॥
 ततो रामो मुद्रिकां स्वां ददां मारुतिमन्करेः । मन्त्राभाक्षयुक्तेयं सीतार्थं दीयतां रहः ॥९३॥
 ततो रामो निर्जं मन्त्रं ददां तस्मै हनुमते । तन्मन्त्रस्य लक्ष्मिमिते कृत्वा तु जपलेखने ॥९४॥
 लब्ध्वा सामर्थ्यमतुलं लकां गन्तुं न मारुतिः । नन्वा रामं परिक्रम्य जगाम कपिभिः सह ॥९५॥
 गदन्त राघवः प्राहः चित्रकूटे पुरा कृतम् । मनःशिलायास्तिलकं सीताभाले विनिर्मितम् ॥९६॥
 ण्डयोः पत्रवल्क्यादि सीतार्थं कथ्यतां रहः । तन्मन्त्रे प्रविशताः सर्वे पश्चिमादिषु दिक्षु च ॥९७॥
 निपितास्ते समायाता न दृष्टा मेति न व्रजन् । तदागदाद्याः प्लवगाः सीतार्थं बभ्रमुवने ॥९८॥
 मन्वाऽप्य रावणश्चेति राक्षसाञ्छाशोऽर्दयन् । सार्द्रास्यान्तरे वरान्द्रष्टुः गुहाद्वागद्विनिर्गतान् ॥९९॥
 तत्कार्यं मप्रविष्टस्ते गुहाया वानगोत्तमाः । तस्या तान् दृष्टुमन्मृणीं दिनान्यष्टादशं हि ॥१००॥
 अजिक्वात्तानि निमिरे बभ्रमस्तु इतस्ततः । तत्र स्नमये दिव्ये गेहे दृष्ट्वा त्रयं शुभाम् ॥१०१॥

मारा। मृत गये हो ॥ ४४ ॥ जिस वनमें वार वाला मारा गया था, वही वान सुम्हारा भी प्रतिज्ञा कर रहा था। आज मैं तुम्हें मारकर जिस रागमें वाला गया हूँ, उसी भाग्य पर भोज दूँगा ॥ ४५ ॥ लक्ष्मण जब इस प्रकार अपना कठोर वचन कहकर चला, तब हनुमान् कक्षा कि आप ऐसा कठोर वचन क्यों बोल निकाल रहे हैं ? ॥ ४६ ॥ रामके कायके लिए सुधीन रात-दिन सचेष्ट रहता है। इतना कहकर हनुमान् रामवचन लक्ष्मणको पूजा करवाया और उनका शांति करवाया। अन्त में वानरों को लेकर रामसे मिल गया। वहाँ जा तथा वानरोंको दिखलाकर प्लवगाविष भुजोवन कहा—॥ ४७ ॥ दक्षिण, दानगेर, वर भारी सेना आ रही है, ॥ ४८ ॥ इसमें अठारह पक्ष सेनापति हैं। नानातर रामका अजाम — व गति का खोज करतक ॥ ४९ ॥ सब दिशाओंमें बहुतसे वानरोंका उमा समग्र भेज दिया। उनमेंसे जन्मना अगद, हनुमान्, नल, ॥ ५० ॥ गुण तदा मैदका दक्षिण दिशामें भेजा और वह दिशा में एक मात्र ॥ ५१ ॥ पक्ष सुवि संकर लोट आया, सही तो तुम सबका मार दिया जायगा ॥ ५२ ॥ तब राम अ ॥ ५३ ॥ हनुमान् के हाथोंमें ॥ ५४ ॥ और कहा कि यह भय नागम अचिंत अंगी ॥ ५५ ॥ मालाका दमा ॥ ५६ ॥ वारों अपना मत्र ॥ ५७ ॥ मानका दिया। जिसका कि एक मान ॥ ५८ ॥ गया स्थित ॥ ५९ ॥ अनुल सामर्थ्य प्राप्त ॥ ६० ॥ वनर पश्चात् हनुमान्ने रामका प्रणाम किया और राम-मा करके वानरोंके साथ चल दिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ कुछ बालके बाद ब्रह्मर वानगेर आ आकर सुग्रीवसे कहा कि नको सोता ॥ ६३ ॥ नवी दिखाई दी, उपर अङ्गनादि वानर भी सीताको खोजत हुए वनर डवर-उवर भ्रमण कर रहे थे। वहाँ ॥ ६४ ॥ होन गोपी ओजवाले बहुतसे पक्षी देखे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ यह देखकर पासमें पीडित वानरोंमें उत्तम वे वानर ॥ ६७ ॥ उनकी अभिलाषासे उस गुफामें घुसे, उसमें जान जाते उन्हें अठारह दिन बाँध गये ॥ ६८ ॥ वे उस ॥ ६९ ॥ भयकारमें डवर-उवर भटकने लगे अचानक वहाँ उन्हें रत्नमय दिव्य दो भवन तथा उनमें एक सुन्दरी स्त्री दिखायी

संश्रावयतां निजं वृत्तं त्वद्वृत्तं श्रोतुमुद्यताः । तान्पूज्य कथयामास चैनं वृत्तं तु योगिनी ॥१०२॥
 हेमानाम्ना सुता विश्वकर्माणः सा महेश्वरम् । नृपेन तोषयामास ददौ तस्यै पुनं महत् ॥१०३॥
 अत्र स्थित्वा चिरं कालं यदा गतुः समुद्यता । सा मां प्राहाञ्च रामस्य प्रतीक्षां कुरु मत्तनि ॥१०४॥
 मयागच्छस्व रामस्य कृत्वा पूजनमुत्तमम् । इत्युक्त्वा सा दिव्यं यानां राघवं गम्यते मया ॥१०५॥
 स्वयंप्रभेति नाम्नाऽहं हेमायाः परिचारिका । अधुना त्वेन पुष्पाकं माहात्म्यं किं करोम्यहम् ॥१०६॥
 तत्तस्यां वचनं श्रुत्वा मन्त्रा स्वीयदिनव्ययम् । तामृत्तुगोचरां सर्वे नस्त्वं कुरु गुहादहिः ॥१०७॥
 इत्युक्त्वा सा क्षणेनैव तैः सहैव ययौ बहिः । तद्विराज्जितसौम्यनयनैर्वातैस्सदा ॥१०८॥
 न ज्ञातं च तथा केन मार्गेण च बहिः कृतम् । साऽपि गन्वा पूज्य रामं देहं त्यक्त्वा दिवं ययौ ॥१०९॥
 ततस्ते वानरा ज्ञात्वा गुहायां स्वदिनव्ययम् । विपण्णाः मागर दृष्ट्वा तस्थुः प्राप्योन्मेषणे ॥११०॥
 जटायोः कीर्तनं चक्रुः रामकार्यं श्रुतं पुनः । तच्छ्रुत्वाऽथ स मवालिः तान्हेतु यः समुद्यतः ॥१११॥
 तेष्वः श्रुत्वा भूतिं वंशोर्दत्त्वा तस्मै जलांजलिम् । तेषां भुज्या पृथग्वृत्तं मीनापुत्रं न्यवेद्यत् ॥११२॥
 जटायोजनमध्येऽधोलंकायां वर्ततेऽधुना । अशोकवर्तिकाया तु तीर्त्वाऽब्जिनीं प्रपश्यथ ॥११३॥
 अहं पक्षविहारीऽस्मि मया गन्तुं न शक्यते । शृण्वन्नादुर्दृष्ट्वाऽहं सीतां मादृश्यते गिरौ ॥११४॥
 भ्रात्रा जटायुषा पूर्वमुद्दीयाहं बलद्रविम् । स्पष्टुकामस्तदा तस्मात्ततो बंधुमया मत्वे ॥११५॥
 पश्चाम्यौ भस्मसाज्जार्ता मे पशौ धनितान्मुषौ । जटायुः स मयश्च गतो देशावरं पुनः ॥११६॥
 अहं तदा पक्षहानश्चन्द्रशर्माश्मुत्तमम् । मुनिं नन्वा तदा तस्मै निजवृत्तं विवेदिनम् ॥११७॥

दी ॥ १०१ ॥ उसका वृत्तान्तका मुनिकों की प्रशंसा में वानरों ने कहा—अपना वृत्तान्त सुनाओ, तुम कीन ही
 और तुम्हारा क्या नाम है । वह योगिनी अब सबका सम्मान करके बहुत लगी—॥ १०२ ॥ विश्वकर्माका हेमा-
 नामसे प्रसिद्ध एक कन्या थी । उसने जब महादेवजीका नृत्य गान करके प्रमत्त किया । तब उन्होंने उसको
 यह बड़ा भारी तमर दिया । ॥ १०३ ॥ यही कहते कान्तक निवास करके जब वह जान लगी । तब उसने मुसका
 कहा कि यही बहुत काल तक निवास करता हुई तुम रामके अगमनका प्रतीक्षा करो ॥ १०४ ॥ अब
 रामका उत्तम प्रकारसे पूजन करनेके बाद तुम भा चला आना । इतना कहकर वह चली गयी । इस कारण
 अब मैं भी रामके पास जाना चाहता हूँ ॥ १०५ ॥ उसी हमका मैं स्वयंभी नामकी दया हूँ । अब आप
 लोग यह कह कि मैं आप लोगोंकी कीन से सहयता करूँ ॥ १०६ ॥ उसको हम बातकी सुन तथा बहुत
 दिन ध्यान व्यतात हुआ देखकर वे सब उत्तम कीन कि हमका हम प्रकानसे बाहर कर दो ॥ १०७ ॥ यह
 सुनकर उसने उन सबका अपन अपने आपसे मुद्राएँ दिए कहा ऐसी बातपर वानरोंका यह नहीं मानूँ
 ही पता कि उन्हें जिसने ओर किस मांस बाहर कर दिया । वह भा रामके पास चला गया तथा उनकी
 पूजा करके स्वयं सिंघास ॥ १०८ ॥ १०९ पक्षी, वे सब वानर अपना अवधिक दिनोंका वन देख उदास हो
 समुद्रके किनारे गए और उषस करके लगे ॥ ११० ॥ वातालापके असंगत रामके लिए प्राप्तक दे दंतवाल
 जटायुकी चला चल पड़ी । वही रहनकाया सराया जा उनका न्या जानके लिए उद्यत था । वह उनके मुखसे
 रामके कार्यके लिए जटायुका मन्त्र तथा प्रशंस, मुनिकर भई जटायुक, त्रिराज्जित देनके लिए समुद्रतटपर गया ।
 पक्षी उन वानरोंका वृत्तान्त सुनकर उनका नेताका समचार बड़े मुगझा और कहा—॥ १११ ॥ ११२ ॥
 यहाँसे समुद्रका पार करके सी वोजनका दूरापर तुम जह दख सज्जन ही ॥ ११३ ॥ मैं पावस रहित हूँ ।
 इस कारण यहाँतक नहीं जा सकता । गृध्रकी दृष्टि तब होती है । अतएव मैं सततकी पर्वतपर बैठा हुई
 लक्ष्मिमें यहाँसे देख रहा हूँ ॥ ११४ ॥ मैं पछ न होनेका कारण यह है कि मैं एक बार अपने बालके दर्पसे आई
 जटायुके साथ उड़कर मूयका स्वयं करनके लिए आकाशमें उड़ा । राहुय मूयका गभीर जटायु जलने लगा ।
 तब मैंने अपनी पाँखसे दबकर उसका रक्षा की । जिससे कि मेरी दायाँ पाँख भस्म हो गयी और मैं
 तथा भटायु दोनों ऊपरसे गिर पड़े । जटायु तब भा सयस था । तुम्हारे तुम्हारे मैंने चन्द्रशर्मा नामक मुनिके

तदा सां स मुनिः प्राह यदा त्वं वानरोत्तमान् । सीताशुद्धिं कथयामि तदा पक्षौ भविष्यतः ॥११८॥
 पश्यतां निर्गतौ पक्षी कोमलौ सां क्षणादिह । यदा नीता रावणेन पुनः सीता विहायसा ॥११९॥
 मन्पुत्रेण सदा दृष्टा कथितं चापि सां तदा शिवकृतः समयाक्रोधात्मा त्वया न विमोचिता १२०॥
 नदागम्य गतः क्रोधादद्यापि न समागतः । इत्युक्त्वा तान् कर्षन् पृष्ट्वा स मयातिगन्तस्तदा १२१॥
 अथ ते भानराः सर्वे प्रोचुः स्वं स्वं बलं तदा । न कोऽपि गमने शक्तः शनयोजनमागरे ॥१२२॥
 तदा स जम्बवान् वृद्धः स्तुत्वा तं मारुतिं ब्रुवः । जन्मकर्मादि संश्रव्य लकां गन्तुं दिदेश तम् ॥१२३॥
 सोऽपि श्रुत्वा समुद्योगं चकारास्तदा पर्वतम् । निजमाराधुभिर्गन्तुं कुन्वा मन्मार राघवम् ॥१२४॥
 एव गिरिन्द्रजे प्रोक्त किष्किन्वाधिपये कृतम् । चरितं राघवेणेहं पुनः पापप्रणाशनम् ॥१२५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे सारकाण्डे किष्किन्वाचरित्रेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(हनुमान्का लंकामें जाकर सीताका पता लगाना और लका जलाना)

श्रीशिव उवाच

अथ उड्डीय हनुमान् ययायाकाशश्चर्मना तद्दृष्ट्वा तद्बलं ज्ञातुं मुग्धां नागमातम् ॥ १ ॥
 प्रेषयामासुरभगः सा शीघ्रं तन्पुगे यया । तदा सा मारुतिं प्राह विश्वं न्यवदन्तं मम ॥ २ ॥
 न प्राह सधुयीरस्य कार्यं कृत्वा विशाखदम् । दृष्ट्वा तस्यास्तु निर्वन्धं व्यर्थं तदा कपिः ॥ ३ ॥
 विवर्धितं तयाऽप्यास्यं तदा सूक्ष्मो बभूव ह । अगुष्टमानस्तस्याः न वक्त्रे मत्वा विनिर्गतः ॥ ४ ॥

पास जाकर प्रणाम किया और अपना वृत्तांत उह मनग्य ॥ ११५-११६ ॥ तब मुनिने कहा कि जब तुम वानरोकी सीताकी खबर सुनाओगे । तब समस्त तुम्हारा पांव पुनः अमलायेंगे ॥ ११७ ॥ देखा, मेरे पारीर- मे ये कोमल पांव क्षणभरमें निकल आयी । उस समय जब रावण सीताका आकाशमार्गमें ले जा रहा था ॥ ११८ ॥ उसी समय मेरे पुत्रन उनका दर्शाता आकाश मुझमें कहा । तब मेरे उनका बहुत शिवकारा और कहा—अरे दृष्ट ! तूने सीताका छड़ाया क्यों नहीं ? ॥ ११९ ॥ तब वह कुतूहलित होकर मेरे पाससे चला गया और आज तक वहीं रोता । इतना कह तया वानरोत्तमान् पूछकर संपातो भी वहाँमें चला गया ॥ १२० ॥ तब वानरोत्तमान् परस्पर एक दूसरेमें अपना-अपना बल पूछा तो पता लगा कि सो ६ जन विस्तारवाले समुद्रको लाँघनेके लिये कोई समर्थ नहीं है ॥ १२१ ॥ तब वृद्ध जाम्बवान् हनुमान्को बारंबार प्रशंसा की । उनका जन्म तथा कस कह सुनाया और उन्हें लङ्का जानेका आदेश दिया ॥ १२२ ॥ हनुमान्जा भी जाम्बवान्के बहुत मुत तथा अपना मुखपाय स्मरण करके पर्वतपर बहुत बृहत्की उद्यत हुए । अपने घरसे उन्होंने पर्वतको जमीनमें घसा दिया और रामका स्मरण करने लगे ॥ १२३ ॥ हे गिरिन्द्रज ! इस प्रकार पहिले किया हुआ रामका किष्किन्वाचरित्र मैंने तुमको सुना दिया । जो कि श्रवणमात्रसे पापोंका नाश कर देता है ॥ १२४ ॥ इति आशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे सारकाण्डे किष्किन्वाचरित्रे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

शिवजी बाल—तदनन्तर हनुमान् उड़कर आकर जाम्बवत लंकाका चले यह देखकर उनके बलकी परीक्षा लेनेके लिये देवताओंने मायोकी माता मुन्माका भजा । वह शीघ्र मर्मद हनुमान् जीके समने जाकर खड़ी हो गयी और मुख फाड़कर हनुमान्स कहन लगी कि तू आकर मेरे मुखमें प्रवेश कर । मैं तुझे जाऊँगी ॥ १ ॥ २ ॥ हनुमान्ने उत्तर दिया कि मैं श्रीरामका कार्य संपादन करनेके बाद आकर तुम्हारे मुखमें प्रवेश करूँगा । परन्तु उसका अधिक आग्रह देखकर कपिने अपना शरीर बढ़ाया ॥ ३ ॥ यह देखकर सुरस ने जो दपती काया और शक्ति बढ़ायी । तब हनुमान् अगुष्टमानका सूक्ष्म रूप धरके उसके मुखमें प्रविष्ट होकर

ज्ञान्वा साऽपि बलं तस्य स्तुत्वा त प्रययौ दिवम् । अथाधिवचनान्मार्गे मैनाकः पर्वतो महान् ॥ ५ ॥
 जलमध्यान्प्रादुरभूद्विश्रान्त्यर्थं हनुमतः । नानामणिमयैः सृङ्गैस्तस्योपरि नगकृतिः ॥ ६ ॥
 भूत्वा यान्त हनुमन्तं प्राह मैनाकपर्वतः । आगच्छामृतकल्पानि जग्ध्वा पक्ककलानि च ॥ ७ ॥
 विश्रम्यात्र क्षणं पश्चादभिष्यसि यथासुखम् पुनः गिरिणामिद्रेण युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥ ८ ॥
 तदा दशभयेनाह मोचिनोऽस्म्यत्र मस्थिनः । अतम्यदुपकारं हि निस्तर्तुं निर्गतोऽस्म्यहम् ॥ ९ ॥
 गच्छतो रामकार्यार्थं तत्र विश्रान्तिहेतवे । तदा तं हनुमानाह रामकार्ये न मे श्रमः ॥ १० ॥
 विश्रामः स्वामिकार्येऽत्र न करोम्यद्य श्रमणम् । मैनाकस्तं पुनः प्राह स्वस्पर्शान्पावयस्व माम् ॥ ११ ॥
 तथेति स्पृष्टश्चिवरः कगाग्रेण ययौ कपिः । किञ्चिद्दूरं गतस्यास्य छाया छायाग्रहोऽग्रहीत् ॥ १२ ॥
 सिंहिका नाम सा वीरा जलमध्ये स्थिता मदा । आकाशगामिना छायामाक्रम्य कृष्य भक्षती ॥ १३ ॥
 तया गृहीतो हनुमांश्चितयामास वायेशान् । केनैदं मे कुत वेगरोधनं विघ्नकारिणा ॥ १४ ॥
 एवं विचिंत्य हनुमानधो दृष्टिं प्रसारयन् । तत्र दृष्ट्वा सिंहिकां तां तदास्ते न्यपतत्कपिः ॥ १५ ॥
 तस्यात्रजाल निष्कास्य तां हत्वाऽग्रे ययौ पुनः । ततोऽन्वेदीक्षिणे कूले लंकां कृत्वा तु पार्श्वतः ॥ १६ ॥
 पशान् परलंकार्या तत्र तां गवणम्वमाम् । क्रौंचा इत्यादि सिंहिकावल्लकां गच्छी विवेश भः ॥ १७ ॥
 तदा लङ्कापुरी नाम्नी राक्षसी तं व्यतर्जयत् । हनुमानपि तां वामघृष्टिनाऽवरोधयाऽद्भनत् ॥ १८ ॥
 तदा स्मृत्वा ब्रह्मवाक्यं सा प्राहाश्रुमुखी पुनः । ब्रह्मणोक्ता पुनः चाह यदा त्वां धर्षयेत्कपिः ॥ १९ ॥
 तदा रामो रावणस्य वधार्थमत्र यास्यति । ज्ञातं मया गवणस्य वधं रामः करिष्यति ॥ २० ॥
 जितं त्वया गच्छ लंकां शोके परय जानकीम् । ततो विवेश हनुमाल्लकां पर्यन्ययौ तदा ॥ २१ ॥

शास्त्र बाहर निकल आया ॥ ४ ॥ तब सुरसा उनकी बल जान और स्तुति करके स्वर्गको चली गयी ।
 पश्चात् समुद्रके कहनेसे महान् मैनाक पर्वत जलके बीचमें हनुमान्के विश्रामके लिये आश्रय देनेका उठ
 खड़ा हुआ । नाना मणिमय शिखरोंके ऊपर मनुष्यकी रथ चारण धरके मैनाक पर्वत आने हुए हनुमन्से
 बोला कि आइए और मेरे अमृतकुल्य फलोंका स्वाद ॥ ५-७ ॥ तब हनुमन्ने क्षणभर विश्राम करके सुखपूर्वक
 आगे आइया । पूर्वसमय पर्वतोंका इन्द्रव साध दाहण युद्ध हुआ था ॥ ८ ॥ उस समय राजा दशरथने मुझे
 बताया था । तबसे मैं यहाँ आकर रहता हूँ । मैं उनका उपकारने उद्योग होनेके लिये ही आपका सामने
 उपस्थित हुआ हूँ ॥ ९ ॥ मैं इमलिये कि रामकार्यके लिये आने हुए आप मेरे ऊपर विश्राम करके जायें । तब
 मैंसे हनुमान्ने कहा कि क्या रामके कारण मुझे श्रम होगा ? अरे, स्वर्गके कार्यमें तो सदा विश्राम ही
 रहता है । इमलिये मैं यहाँ दशरथ धाजन आदि नहीं कर सकता । तब फिर मैनाकने कहा—अच्छा, कृपसे बग
 आने हाथमें स्पर्श करके या मुझे पवित्र कर दो ॥ १० ॥ ११ ॥ स्थानान्तु वह हनुमान्ने हाथसे उसके शिखरका छूकर
 चढ़ पड़ा । जब कुछ दूर आगे बढ़ ता उनकी छायाका किसी छायाग्रहने पकड़ लिया ॥ १२ ॥ वह सिंहिका
 नामकी धार राक्षसा थी । जो सदा जलमें रह करती थी और आकाशमागम उड़ने हुए परियोंको छाया
 पकड़कर खींच लेती और खा जाता थी ॥ १३ ॥ उसके पकड़नेपर बलवान् हनुमान्ने सोचने लग कि किनसे रामक
 काममें विघ्न डालनेके लिए मेरा देग राख दिया ॥ १४ ॥ वह विचारकर हनुमान्ने नोवे देखा ता सिंहिका
 राक्षसाको दबकर उसके मलम ही बूढ़ पड़ा ॥ १५ ॥ उन्होंने उसका आँख निकाल ली और उस मार डाला ।
 वहसे आगे बढ़ तो समुद्रके दक्षिण किनारे स्थित लङ्काका वगलमें स्थित परलङ्कामें जा पहुँच । वहाँ
 रावणकी लड़की कोचाना सिंहिकाके ही समान मारकर रात्रिके समय लङ्कामें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ १७ ॥
 तब उन्हें लङ्का नामका राक्षसी डराने लगा । हनुमान्ने उसकी भी अवज्ञास बाएँ हाथका एक मुक्का मारा
 ॥ १८ ॥ उस समय ब्रह्माके वाक्यका स्मरण करके लंका आँखोंमें आँसू भरकर बोली कि पूर्वकालमें ब्रह्माने
 मुझसे कहा था कि जब कोई वानर तेरा अपमान करेगा ॥ १९ ॥ तब राम रावणका वध करनेके लिए यहाँ

ददर्श लङ्कां तां रम्यां गोपुराद्वालमोदिताम् । हृदयोत्थीचतुष्काढ्यां त्रिकूटशिखरस्थिताम् ॥२२॥
 पश्यन्समन्ततः सीतां प्रतिगैर्ह स मारुतिः । गुहायां निद्रितं कुम्भकर्णं दृष्ट्वा भयानकम् ॥२३॥
 दृष्ट्वा विभीषणं रामकीर्तने हृष्टमानसम् । दृष्ट्वा सुलोचनायुक्तं निद्रितं मेघनिःस्वनम् ॥२४॥
 ययौ राजगृहं रात्रौ रात्रणं मदमि स्थितम् । दृष्ट्वा शयं वायुरूपो दीपराजीर्व्यलोकयत् ॥२५॥
 भक्रोदस्त्रहीनास्तान् रावणदोन्म मारुतिः । उत्सुकैनाक्रोदोन्म कूर्चं च रात्रणस्य च ॥२६॥
 राक्षसीः क्रोदिषो नमः कृत्वा नीयधटान्कपिः । चर्मत्र लीलया नृणां दृत्वापुच्छेन नर्जयन् ॥२७॥
 तदाऽनिविह्वलाः सर्वे प्रोचुस्तेऽथ परस्परम् । क्रुद्धाऽथ जानकी मन्यं नः प्राणांनमुपागतम् ॥२८॥
 गच्छन्त्या तुष्टचित्तः स ययौ रावणमङ्गुहम् । अदृष्ट्वा जानकीं तत्र ययौ पुष्पकमुत्तमम् ॥२९॥
 रात्रण निद्रितं दृष्ट्वा वेष्टितं स्त्रीकदम्बकैः । दृष्ट्वा मन्दोदरीं तत्र मीनेयमिति संकितः ॥३०॥
 लक्ष्मणोक्तानि चिह्नानि पश्यन्स्वस्थां ददर्श न तथापि मोतामदृशीं दृष्ट्वा व्यग्रमनास्त्वभूत् ॥३१॥

पारंगुवाच

कथं मन्दोदरी सीतामदृशी राक्षसीरिता । मोतांशांशांशजाः सर्वाः स्त्रियश्चेति श्रुतं मया ॥३२॥

शशिपु उवाच

शृणुन् कारणं देहि सीतेयं विष्णुना चित्ता । तेनैव विष्णुना पूर्वमियं मन्दोदरी चिता ॥३३॥
 एकदा कैकसी माता रात्रणं ग्राह दुःखिना । शेषोन्मुखासेन तल्लिङ्गं गतं चाद्य रमावलम् ॥३४॥
 शिवादानोय मां देहि आत्मलिंगमनुत्तमम् । तन्मातृवचनं श्रुत्या गायनाद्वदोन्मथम् ॥३५॥
 मामाह रात्रणोऽत्राय द्वौ वरौ देहि मा प्रभो । आत्मलिंगं च मन्मात्रे पत्न्यर्थं पार्श्वतो मम ॥३६॥

आगे । सो अब मैंने जान लिया कि राम रात्रणका माग ॥ ३० ॥ तुमने लङ्काका जौन दिया । जाओ, लङ्काके घुमकर अणाक्याटिकाके जानकीका देखा । तब हनुमान सीताका खोजते हुए लङ्काके घुमे ॥ २१ ॥ उन्होंने पुष्पद्वार तथा अटारियोसे मणिक ७७७ लङ्कापुरीको देखा । वहाँ त्रिकूट पर्वतके शिखरपर स्थित बाजारों, मंडकों तथा घोगाहोसे रमणीक लग रही थी ॥ २२ ॥ हनुमानस सन और प्रत्येक घरमे सीताको ढूँढकर पुष्पमं मंडा हुए कुम्भकर्णको देखा ॥ २३ ॥ उन्होंने रात्रणमक कीर्तनसे प्रसन्नमन विभीषणको और सुलोचनाके माय मोह हुए मेघनाथका देखा ॥ २४ ॥ तदनन्तर राजभवनमे जाकर रात्रिके समय सभाके स्थित रात्रणकी देखा । यह देखकर वायुपुत्र हनुमान्ने दीपकोको बुला दिया ॥ २५ ॥ हनुमान्जोने उन रात्रणात्रिको नान करके रात्रणको बाह्योमुख आदिका लुआहोसे जलाकर भस्म कर दिया ॥ २६ ॥ करोड़ों राक्षसियोंको नान कर दिया । वेरुखेलमे अलके घडोको फाड़ डाला और चूरकेमे बहुतरे सिपाहियोंको धूलमे खूब पीटा ॥ २७ ॥ अतिशय विह्वल होकर वे सब परस्पर कहने लगे कि सबमुच सीताजा हम लोगोंपर जूट हुई हैं । अब हम लोगोंका प्राणान्तकाल निकट आ गया है ॥ २८ ॥ यह सुना तो मनुष्यचित होकर हनुमान् रात्रणके महलमे गये । वहाँ भी जानकीको न देखकर पुष्पविमानमे गये ॥ २९ ॥ वहाँ रात्रणको स्त्रियोंके लाहसे वेष्टित होकर सोता हुआ देखा । माय ही मन्दोदरीको देखकर 'यही सीता है क्या ?' ऐसी आशका जाने लगे ॥ ३० ॥ परन्तु जब लक्ष्मणके कथनानुसार सीताकी भुवाकृति मिथाने लगे तो नहीं मिली । फिर भी उसको सीताके समान देखकर आश्चर्यचकित हुए ॥ ३१ ॥ पारंगुजीने पूछा—हे रुदाशिव ! राक्षसी मन्दोदरी सीताके सदृश कैसे थी ? मैंने तो सुना है कि संसारकी सब स्त्रियें सीताके अक्षांशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ३२ ॥ शशिपुजी कहने लगे—एक बार रात्रणकी माता कैकसीने दुःखित होकर रात्रणमे कहा कि गोपतायके चच्छाससे मेरा लिय पूजा करनेका शिवलिंग पतालमे चला गया है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सो तब एक उत्तम विष्णु शिवजीसे माँगकर भुगे ला दो । माताके वचनको सुना तो अपने मायनसे वरदान देनेके लिए राजी करके भुगसे रात्रणमे कहा—हे प्रभो ! भुगका दो वर दीजिए । एकसे भरी माताके लिए आत्मलिंग और दूसरेसे

तत्तस्य वचनं श्रुत्वा त्वं दत्ताऽसि गिरीन्द्रजे । दत्त्वाऽऽत्मलिङ्गं मंग्रीक्तो मया त्वं यदि रावण ॥३७॥
 मार्गे लिङ्गं भूमिमस्थं करोषि तर्ह्यहं पुनः । नाग्रे गच्छामि तन्स्थानात्तत्रैव च वसाम्यहम् ॥३८॥
 तथेति रावणश्चोक्त्वा देव्या लिङ्गेन सो ययौ । तदा त्वया स्मृतो विष्णुस्तेनाङ्गचन्दनादिना ॥३९॥
 कृत्वा मन्दोदरी नारी मयदहस्तेऽर्पिता शुभा । तां निनाय मयः शीघ्रं पाताले स्वीयसदृगृहम् ॥४०॥
 ततो द्विजस्वरूपेण विष्णुः प्राह दशाननम् । प्रनाम्निः शिवेन त्वं दत्त्वा दुर्गां तु कृत्रिमास् ॥४१॥
 पाताले मयगेहे सा गोपिताऽस्ति शिवेन हि । विविच्यमि त्वं स्वर्लोकं भूलोकं चेति शङ्कया ॥४२॥
 स्वीयं मत्त्वा तु पातालं तत्र त्वं न गन्वेप्यसि । त्वजेमां कृत्रिमां दुर्गां पश्य तां मयमयनि ॥४३॥
 गिरीन्द्रजां महारम्यां पत्नीं कृत्वा सुखं भज । तद्विप्रवचनं मन्यं मत्वा मामेत्य वं पुनः ॥४४॥
 विहस्य रावणः प्राह ज्ञातुं तेऽन्तर्गतं मया । अर्पिता कृत्रिमा देवी मां तां गोप्य रसातले ॥४५॥
 तवैवास्त्वधुना चेयं त्वहं नेष्यामि गोपिताम् । इत्युक्त्वा त्वां विमुञ्च्यथ पातालं गन्तुमुद्यतः ॥४६॥
 तावन्मार्गे ह्यल्पशकाग्रस्तः प्राह द्विजं तदा । आत्मलिङ्गं क्षणं हस्ते शुद्धीष्य वचनान्मम ॥४७॥
 यावन्निवर्त्य शंकां स्वामहमेष्यामि वेगतः । द्विजवेषधरो विष्णुस्तदा प्राह दशाननम् ॥४८॥
 अतिक्रान्ते मुहूर्तेऽथ लिङ्गं स्थाप्य व्रजाम्यहम् । तथेति रावणश्चोक्त्वा तत्करे लिङ्गमर्पयत् ॥४९॥
 ततो मूत्रस्य सा धाराऽप्रवृदिताऽभूच्चिरं प्रिये । अतिक्रान्ते मुहूर्तेऽथ लिङ्गं मागग्नेधमि ॥५०॥
 पश्चिमे स्थाप्य भूम्यां स ययौ स्वीयमथलहरिः । ततः स रावणश्चापि मूत्रं कृत्वा यथाविधि ॥५१॥
 लिङ्गं दृष्ट्वा भूमिमस्थं तच्छिरश्चालयत्तदा । तदा भूम्यां गतं लिङ्गं शिरः किञ्चिच्चालय ॥५२॥
 अभूदूर्ता कर्णरंध्रसदृशी तच्छिरःस्थले । गर्तायां तच्छिरश्चापि कर्णशंरूपं कृतम् ॥५३॥

पत्नीं कस्तनेकं लिङ्गं मुनें पार्वतीको दे रीजग ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे गिरान्द्रज ! उसकी वरयाचना सुनकर मैंने तुमको उसे दे दिया और आत्मलिङ्ग भी देकर उससे कहा—हैं रावण ! देव, यदि तूने इस लिङ्गको माग्य वही भी रख दिया तो मैं आगे न जाकर वही रह जाऊँगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ 'वहत अञ्ज' कहकर रावण देवी पार्वती तथा लिङ्गको लेकर चला गया । उस समय तुमने विष्णुभगवान्का स्मरण किया तब उन्होंने अपने अङ्गक चन्दन आदिनी मन्दादरीका सुन्दरी स्त्री बनाकर मय दानवक दिया । उस लेकर मयदानव 'पाताल' अपने मतोहर भवनको सजा गया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तब विष्णुभगवान्ने साहाय्यका रूप धारण करने रात्मन् रावणसे कहा—हैं दशानन ! शिवज ने तुमको उग्र लिया । उन्होंने यह नकली पार्वती तूमका दी है । ४१ ॥ अस राको तो शिवजीने पाताल्म मयदानवके घरमें छिपा रखा है । उन्होंने यह सोचा कि तूम स्वर्ग तथा भूयाकमें ही स्त्रीजीने ॥ ४२ ॥ अपना समझकर पातालमें न खोजागे । इस कारण तूम इस कृत्रिम दुर्गाको तो छोड़ दी और मय-दानवक घर जाकर यथायं पार्वतीको ढूँढ़ निकालो ॥ ४३ ॥ उस अत्यन्त सुन्दरी पार्वतीका पत्नी बनाकर रख भागो । विप्रके उस वचनका सूच मानकर पुनः रावण मेर पास आया ॥ ४४ ॥ वह हैयकर बोला कि मेने आपके हृदयगत अभिप्रायको जान लिया है । आपने अमली पार्वतीको रसातल्म छिपाकर मूत्र नकली पार्वती दे दी है ॥ ४५ ॥ इसको अब अपने पास ही रक्खिए । मैं तो उस छिपी हुई पार्वतीको ही ले जाऊँगा । इतना कह तथा तुमको बोले छोड़कर वह पाताल्म जानेके लिए उद्यत हुआ ॥ ४६ ॥ रास्तेमें लघुशङ्का करनेकी इच्छावश उसने साहाय्यक कहा—हैं द्विज ! मेरी प्रार्थना स्वीकार करके लगभगके लिए इस शिवलिङ्गको अपने हाथमें लिये रहो ॥ ४७ ॥ मैं अभी लघुशङ्का करके तुम्हारे पास आ रहा हूँ । द्विजवेष धारण करतवाले विष्णुने कहा—हैं दशानन ! यदि अधिक देर लगेगी तो मैं लिङ्गको यहीतर रखकर चला जाऊँगा । अच्छी बात है, कहकर रावणने शिवलिङ्ग उनके हाथमें दे दिया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ रावण जब लघुशङ्का करने लगा तो बहुत दूर तक मूत्रकी अखण्ड धारा चलनी रही । अधिक समय बीत जानेपर सागरके पश्चिम किनारे लिङ्गको रखकर विष्णुभगवान् अपने स्थानको चले गये । उसके पश्चात् रावण भी विचित्र मूत्रयाग करके वहाँ आया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ लिङ्गको जमीनपर रखवा देखकर उसके सिरको हिलाया, परन्तु भूमिगत लिङ्गका सिर नहीं हिला

भुवः कर्णोपमं लिंगं गोकर्णं तद्वदति हि । ततः शिघ्रमनामृत्योः पातालं रावणो ययौ ॥५४॥
 मयमेवे निरीक्ष्याय देवीं मन्दोदरीं वराम् । मयं संप्रार्थयामास ददौ तां रावणाय सः ॥५५॥
 ततो विवाहं निर्वर्त्य पाण्डुरहं ददौ मयः । रावणाय ददौ शक्तिममोघां शत्रुघ्नानिनीम् ॥५६॥
 दृष्ट्वा मन्दोदरा तस्याः प्राह मन्दोदरीमिति । तां नाम्ना रावणस्तुष्टयया स्वीयस्थलं ययौ ॥५७॥
 ततो मात्राधिकृतः स पुनस्त्वयं स्वराब्धितः । गोकर्णं रावणो गन्वा तप्त्वा लब्ध्वा विधेर्वरान् ॥५८॥
 त्रैलोक्यं स्वयं कृत्वा लंकायां राज्यमाप सः । तस्मान्मर्त्यानामप्रानेयं दृष्ट्वा मन्दोदरा प्रिये ॥५९॥
 लंकायां वायुपुत्रेण रावणाग्रं विनिद्रिता । मयोऽप्यामोन्मलकायां गृहं कृत्वा यथासुप्तम् ॥६०॥
 मयचंद्रमयी नाम महान् वीरः प्रतापवान् । रात्रौ विनिद्रितो गेहे ब्रह्मदत्तवरान्मुधाः ॥६१॥
 दशस्यहस्तात्तन्मृत्युविधिर्नोक्तं विचिंत्य च । तस्य वल्लं मारुतिना हृतं सदसि वै पुरा ॥६२॥
 तन्निष्पदं पर्वतं रावणस्य कपिस्तदा । विभीषणस्य पर्यंके वसनं रावणस्य च ॥६३॥
 शिष्वाण्डयज्ञानकीं स लंकायां च मुहुः कपिः । यथावशोकवर्जिकां शुश्रूषामादमाडिताम् ॥६४॥
 ददर्श तत्र प्रांशुं च शिशुपानाम पादपम् । तन्मूले राक्षसीमध्ये ददर्श विनिकल्पकाम् ॥६५॥
 एकवेणीं कृशां दीनां मलिनावरधारिणीम् । भूर्मा शपानां शीचर्तां रामरामेति भाषिणीम् ॥६६॥
 कृतार्थोऽहमिति प्राह दृष्ट्वा सीतां स मारुतिः । शिशुपानगशास्त्राग्रपल्लवाम्पतरे स्थितः ॥६७॥
 पुरा दृष्टानलंकारान् तस्य देहे ददर्श न । ततः किलकिलाशब्दं पर्यं तत्र दशाननः ॥६८॥
 ददश रावणः स्वप्ने कपिः कश्चित्समागतः । अशोकवर्जिकायां सा दृष्टा तेन विदेहजा ॥६९॥

॥५२॥ उसका जिह्वाभागका जगह कानक देवकी तरह गड्ढा हो गया । गर्हमें सिर भा कर्णशंकुको तरह कृज हो गया ॥ ५३ ॥ अतएव पृच्छाके कर्णव सहण वह लिङ्ग गोकर्ण नामस विख्यात हुआ । तब लिङ्गमन हवर रावण चुपचाप पाताल चला गया ॥ ५४ ॥ मयक घरमें सुन्दरा मन्दोदरीको देखकर मयसे रावणने प्रार्थना की । तब मयने रावणक वह कन्या द दी ॥ ५५ ॥ उस प्रकार मयन कन्याका विवाह करके रावणका महजम बहुत सा चरित्र-आभूषण आदि दिया और शत्रुघ्नानिनी, अमाघ दृष्ट्वा शक्ति आ दी ॥ ५६ ॥ उस देवीका उग्र मन्द अर्थात् सुधम दसकर रावणन उसका नाम मन्दोदरी रखा और उसके लाभस सन्तुष्ट होकर रावण अपने स्थानको चला गया ॥ ५७ ॥ वही माताक धिक्कारनेपर रावण फिर गोकर्णके पास जाकर नम्र करन लगा । अन्तमें अपनी तपस्याके बलसे रावणन ब्रह्मसे वर प्राप्त करके ताना लोक वशम कर लिया और लङ्कामें राज्य करने लगा । हे प्रिय रावणा इसी कारण हनुमान् सीताक समान मन्दोदरीको रावणके नाम लङ्कामें मात हुए दखा था । बादमें सा मय दानव भी लङ्कामें घर बनाकर मुखभूषक रहने लगा ॥ ५८-६० ॥ प्रतापी मयका भाई मय राविके समय अपन भवनमें सा रहा था । विचारशील हनुमान् कर्णके वरमें मयका रावणक हाथी मृत्यु करतक विचारसे उसके वस्त्रोका ले जाकर सभागृहमें रावणके नगपर और बादमें रावणके वस्त्र न जाकर विभीषणके पलंगपर रख दिया ॥ ६१-६३ ॥ पुनः हनुमान् लङ्कामें जानकीको खोजने लगे । खोजने-खोजते वृक्षों तथा प्रासादोंसे मृगों भित अशोकवर्तिकामें गये ॥ ६४ ॥ वहाँ वह एक अच्छा शिशुपा (शशम) का वृक्ष दिखयी दिया । उसके नीचे राक्षसियोंके बीचमें अवनि-कन्या जानकी जीकी विराजमान प्रतीता ॥ ६५ ॥ उस समय शुष्क तथा दीन मुख होकर मर्लान वस्त्र धारण करने हुए भूमिपर साजी हुई सीता दुखित मनन रामकी नाम उच रही थी । उनके सिरके बालोंमें मृग आदि भर जानसे सेडुग बंध गयी थी ॥ ६६ ॥ सीताके दर्शनसे अपनेको कृतार्थ समझते हुए हनुमान् जो इस शिशुपावृक्षकी एक शाखाक अग्रभागके पत्तोंमें छिपकर बैठ गये ॥ ६७ ॥ उस समय सीताके गरीरपर क अलङ्कार नहीं दिखायी दिये, जिनका कि हनुमान् पहिले सुग्रावक पास देखा था । इतनमें कुछ कोलाहलके साथ रावण धुई आ पहुंचा ॥ ६८ ॥ क्योंकि रावणको स्वप्नमें दिखायी दिया कि कोई वानर आया है और उसने

रासहस्ताभ्यामिः शीघ्रं लब्धुं तां धर्मवाक्यदम् । कपिदंष्ट्रा राघवाय निवेदयन् मुकुतम् ॥७०॥
 आसमिष्यति तच्छ्रुत्वा रामो मां निहनिष्यति । इति निश्चित्य स ययौ स्रग्भिः मवेष्टितो मुदा ॥७१॥
 नृपुत्राणां ध्यानं श्रुत्वा विह्वलाऽऽसीददेहजा । राक्षसो जानकीमाह मां दृष्ट्वा किं विलज्जसे ॥७२॥
 राम बन्धुर राजपुत्रं न्यक्तमुहज्जनम् । विश्वा हीन योगहीन मुदा न्ययति निद्रुम् ॥७३॥
 एकांतवासिनं विराजद्वाक्कलधरिणम् । तं न्यक्त्वा मां सज्ज्वाद्य त्रैलोक्येशं महाबलम् ॥७४॥
 अप्सरोधिः सेवितं मां भाग्ययुक्तं पदम्बितम् । स्त्रियो मन्दोदरापुङ्गवाभ्यां भक्तिर्यस्य हर्षितम् ॥७५॥
 मया राज्यं न्यदर्शनं कृतमस्मि भजस्व मातुः । मया स्पर्जाकृतं च पि त्वदर्शनं कृतं सहस्र ॥७६॥
 इति नानाविधैर्वाक्यैः प्रार्थयामास रावणः । उवाचाभ्युक्षी सीता निधाय हृणमन्तरे ॥७७॥
 राघवादिभ्यस्ता नूनं विभुर्गुणं धृतं त्वया । रहिते राघवाभ्यां त्वं शुकीव हसिष्वरे ॥७८॥
 हतशान्तिमि मां नीचतन्फलं प्राप्स्यसेऽविशान् । यदा रामशरणानविदन्ति कपुर्भवान् ॥

भविष्यमि त्पे रामं जानापे मानुषं तदा ॥ ७९ ॥

श्रुत्वा राक्षोऽधिपः क्रुद्धो जानक्याः पठवाक्षरम् । वाक्यं क्रोधमभाविष्टः पुनर्वचनमत्रकीदृ ॥८०॥
 भवित्री लंकारा विदशवदनग्लानिर्गिरिगन्तः रामोऽपि स्थाना न पुंषि पूजो लक्ष्मणवत्सः ।

तथा याम्यन्युर्ध्वं विदमनुजेनाच जटिलो जयः श्रीरामे स्यात्त मम बहुतो गोऽत्र तु भवेत् ॥८१॥
 तद्रावणवचः श्रुत्वा जानकी प्राह न पुनः । पृष्ठाधरपराणवेव चतुर्षु चरणेष्वपि ॥८२॥
 स्वमक्षगणि चन्वारि लोचः श्लोकमर्षु पठ । एवं तदा जितो वाक्यमागर्जः स दशाननः ॥८३॥

अणकवनम जाकर राजा विदहः पुत्री सतीका देवी ॥ ८१ ॥ "गमक ह यास शीघ्र सरनके लिए मैं
 चम्बर सीताका निम्बकार कसोता ता मेरी चम्बर दायकर वह वानर रामसे कहा ॥ ८० ॥ सा मुनकर राम
 यही आयेत और मुझे मानेगे । ऐसा निम्बर करके गवण निरावो साथ लेकर सीताके उधर चले पडा ॥ ८१ ॥
 नृपुत्रोको स्वनि पुनः ही सीताको धवडा गये और से-ह न मुझ न च कर लिया । तब रावणने सीतासे कहा-
 तु मुझसे लज्जाली क्यों है ? ॥ ८२ ॥ वनम अमल कान्त, ज, र जयस अष्ट मुकुजलासे रहित, मिहृहेन, भाग-
 हान, सदा नर लिए निर्दय, ॥ ८३ ॥ तवान्तकी, पाली अष्ट और दन्कल भाजपन खादि वृक्षस शिखकोको)
 कारण करनवाने रामको छत्रकर तु विर गपति और महाबलवान् मुझ रावणका आश्रय ल और मेरी सेवा
 कर ॥ ८४ ॥ मैं अक्षराकोस तेवित और भाग्यवत् हुकर महुन् परपर स्थित है । मेरी सेवा करनस मेरी
 मन्दोदरी आदि रिखे की रात-दिन मेरी कसियां बनकर रहेंगी ॥ ८५ ॥ मैं अपना राज तया अरदा जीवन
 तुझका दे विरा है । तु मेरी वनकर रह ॥ ८६ ॥ इस तरह अनेक प्रकार के वाक्यास रावण प्रार्थना करने लगा ।
 तब बीचम निवेदा आह करके तथा ताच मुख निद हुग सागत कहा- ॥ ८७ ॥ अर याथा । क्यों शीघ्र
 हांकला है । रामके डरसे तु भि-मुक्त होद रागण करके और राम-लक्ष्मणका अनुगतिरतिथ पक्षसे जैस हुआ हाँव
 अर्थान् हवतकी मामरा वन और आदि लेकर भागे, जग प्रकार तू मुख लेकर भाग आया है । अर तीव्र ।
 उसका फल तुझको शीघ्र मिल जायगा । जब रामके वाणस निराशितकारी होकर तू गिरया, तब तुझे
 यह पता कम जायेगा कि राम मनुष्य है या और कोई । यह मुना ता राक्षसाधिप रावण दुष्टि हाकर जानकीको
 कठोर वचन कहता हुआ बोला- ॥ ८८-८९ ॥ "इस लक्ष्मण जाकर देवताओंसे भी मुख मल्लित हो जायेंगे ।
 लक्ष्मणमहित वह राम भी मेरे समस्त मुद्धम नहीं खड़े रह सकगा । यही आता तो अनुजके सहित वह बड़ी भारी विपत्तिसे
 यह गगा । यही उस जटायुसे रामको जाते मही होगी और मुझे भी आनन्द न प्राप्त होगा" ॥ ८९ ॥ रावण-
 की इस बातको सुनकर जानकीने कहा-यादा चरणोंसे छुटे अक्षर तथा आगेवाले चारों सप्तम पदोंके लप
 करके तुम इसी श्लोकको फिरसे पढ़ो । नही हाल तुम जीतोंका होगा । कहनेका बावय यह है कि ८२वें
 श्लोकसे चारों तरफोंके श्री न वि और न ये चार अक्षर निकल जातेसे यह अर्थ होगा कि लक्ष्मणे दशवदन
 रावणके लार शीघ्र ही विपत्ति जायेगी अर्थान् वह द्वार जायगा । लक्ष्मणके साथ राम मुद्धमे भी डरेंगे ।

इदं च भीषयन्मीनां खड्गमुद्यम्य सन्वरः । धृत्वा करेण तत्पाणिं मन्दोदर्या निषेधितः ॥८४॥
 मातृशयः सन्निबहन् न्यर्जनां कृपणां कृशाम् । ततोऽत्र रोदशग्रोवो राक्षसाविंकृताननाः ॥८५॥
 यथा मे वक्षसा सीता भविष्यति सकामना । तथा यतश्च त्वरितं तर्जनादरणादभिः ॥८६॥
 यदि मातृदयादूर्ध्वं मच्छ्रव्यां नाभिनन्दति । तदा मे प्राणगशाय हत्वा कुक्कुटं मानुषाम् ॥८७॥
 तदा सीता पुनः प्राह वचनं तं दशाननम् । बाल्यन्वेऽहं समानीता पेटिकास्था त्वया पुरा ॥८८॥
 तदा मया वचः प्रोक्तं न च किं विस्मृतोऽसि हि । अधुनाऽहं गमिष्यामि यास्यामि त्वरितं पुनः ॥८९॥
 तथा चतुष्टयमेवाद्यनिर्द्वन्द्वं च मयेतिम् । तत्स्त्राय वचनं सत्यं कर्तुमत्रागताऽस्म्यहम् ॥९०॥
 तथा चतुष्टयमन्यार्योनिहृत्य रामहस्मनः । ततोऽयाभ्यापुरीं गत्वा पुनर्यास्यामि त्वत्पुराम् ॥९१॥
 निकुम्भजं पौंड्रकं न मातामहगृहे स्थितम् । शनशीर्षं रावणं च द्वापांतरनिवासिनम् ॥९२॥
 माहात्म्याहार्यं पौंड्रकेन लंकायामागतं पुनः । अहं तृतीयवेलायां सर्वाध्यामि तानुभा ॥९३॥
 हनः शीघ्रस्थलं गत्वा पुनयास्याम्यहं जवान् । कुम्भकर्णोद्भवं वीरं मूलकासुरनामकम् ॥९४॥
 अत्रैव तुर्यवेलायामागत्य पृथ्वकेना हि । अहमत्र हनिष्यामि शितवाणं रणागण ॥९५॥
 अयं यक्षः स्मराद्यं त्वं पुनः पौंड्राधनादितम् । यद्वाक्रियाच्च त्वया गत्वा कौसल्यानृपदा हर्ता ॥९६॥
 पेटिकास्थी पुनश्च्यक्ता भ्रातृते देवयागतः । अतस्त्व मर्तुकामोऽसि यतोऽहमाहता त्वया ॥९७॥
 गच्छ गृहे सुखं भुञ्ज्य रागः शीघ्रं हनिष्यति । इति सीतावाक्यवाणाभन्नममस्थलोऽपि सः ॥९८॥
 रथो तूर्णो निजं गेहं लाञ्छनश्च दशाननः । एवं दशानने याते राक्षस्यो रावणाक्षया ॥९९॥
 जानकी तां स्वशब्दश्च तथा क्रूरीक्तिभिर्बुद्धः । आस्यावर्द्धणसङ्गार्धभीषयन्त्यः करादभिः ॥१००॥

जुन मातुन राम से पदवा प्राप्त करग । उठधरो रामका विजय होगी, तब मुज बड़ा हृष हुआ । इस
 कर वक्तव्य संशयन करक सीतल दशाननकी जात लिखा । ८४ ॥ ८५ ॥ तब रावण तलवार उठाकर
 सीता इगत हुए तपस्व क्षण ।। उस समय मन्दादर ने उसका हाथ पकड़कर रोका और कहा कि तुम्हारे
 से ऐसा बहुत सी निष्ठा है । तुम इस वक्तव्य कमजोर तथा गरव मानुषी नाराका छाड़ दो । तब रावणने
 तब मुम्बाली सीतलसे भी कहा कि सीतल जिस तरह कामभक्त मर वशम हो, वैसे तुमलाग
 कर अवका समताकर बाल्य करने करो ॥ ८६ ॥ यदि दो महतक भातर वह मर, शय्यापर न आये
 तो इसे मातुलीका भातरकर मर जलपानक लिए तैयार करना, तब मैं इस खा जाऊँगा ॥ ८७ ॥ सीता
 फिर दशमुख रावणसे कहने लगा - जब तू बाल्यावस्थाम मुज पेट से साहूत यहाँ ले आया था ॥ ८८ ॥
 तब समय जा बात मैंने कहा था, क्या उस भूल गया ? मैंने कहा था कि अभी मैं जाती हूँ, परंतु फिर यहाँ
 पान ही आऊँगी ॥ ८९ ॥ और वह इसलिये कि मैं भाई, पुत्र तथा सना सहित तुज मार डालूँगी । अब
 मैं अपने वचन सत्य करने आया हूँ ॥ ९० ॥ रामक हाथो तुझका औरतर बन्धुआ तथा सनाका मरवा-
 कर अयोध्या पुन जाऊँगी । पुन मैं तसरी बार भी तरो नगराम आऊँगी ॥ ९१ ॥ उस समय मातामह
 जवान् सीतल क धन्य स्थित निकुम्भक पुत्र पौंड्रककी तथा द्वापातरमे रहनेवाले सी सिरवाल रावणकी जो कि
 ने हककी सहायताये लङ्कासे आया, तसरी बार आकर उन दाताका मारुंगी ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ पञ्च तु अपने
 न्यायको आकर फिर चौथा बार मैं शीघ्र आऊँगी और कुम्भकर्णके पुत्र वीर मूलकासुरका वध करूँगी ॥ ९४ ॥
 तब विमानसे यहाँ आकर मैं उसे रक्षागणन मारुंगी ॥ ९५ ॥ पूर्वकालमे जा कह्योजात कहा था, वह भी
 न्याय कर न । जिसके कहनेसे तूने कीमत्या और राजा दशरथका हरण किया था ॥ ९६ ॥ देवयोगसे
 फिर तूने उन्हे अयोध्यामे छुड़ा दिया था । इससे पता लगता है कि तू मरना चाहता है । इसीलिए तूने
 मुझसे प्रेम करना कहा है ॥ ९७ ॥ अब धर जा और सुखसे भोजन कर । राम तुझे शीघ्र मारगे । इस प्रकार
 सीताके वाक्यरूपी वाणोसे विद्वान्महदय हाकर दशानन लङ्कासे चुपचाप अपने घर चला गया । दशाननके
 जानेपर उसकी आज्ञासे राक्षसिये अपने भयानक शब्दोसे, क्रूर वाक्योसे, मुँह फाड़कर, तलवार तथा

निवार्य त्रिजटानाम्नी विमोषणप्रियाऽनुगाः । ताः सर्वा राक्षसार्थेणाद्राक्षयमाहाय सादरम् ॥१०१॥
 न भीषयश्च रुदती नमस्कृत जानकीम् । मुचिर्ह रावणः स्वप्ने मया दृष्टोऽद्य जानकीम् ॥१०२॥
 मोचयामास दग्धेमां लकां हन्वा तु रावणम् । राणो गोमयहृदे नैलाभ्यक्तो दिगंबरः ॥१०३॥
 मयाऽद्य दृष्टः स्वप्ने हि तस्माद्ना न साहयम् । कार्यं सेव्या मदा चेयं रामादमवदायिनी ॥१०४॥
 पुनर्ममदुःखिना चेष्टा भयं यं घृताविष्यति । इति तत्त्रिजटावाक्यं श्रुत्वा तस्सुर्मयाकुलाः ॥१०५॥
 तृणामेव तदा मोता दुःस्वप्नं हि चिदुवाच सा । इदानीमेव मरणं केनागयेन मे भवेत् ॥१०६॥
 दीर्घा वैणी ममन्वयमृगन्धाय भविष्यति । यन्मया स्वीययाभ्यार्णलेक्षणास्ताडितः पुनः । १०७॥
 तस्मादिमाः पीडयात भोक्ष्यते स्वकृतं मया । मया विगतः सौमित्रिस्त्रामितो सीतमां तटे ॥१०८॥
 प्रायश्चित्तं करोम्यद्य तस्य न्यक्त्वा स्वर्जितम् । एवं निर्विनाशुद्दि तां मरणायाव जानकीम् ॥१०९॥
 दृष्ट्वा शनैर्वायुपुत्रो रामवृत्तं न्यवेदयत् । आमाकृतनिगमाच्च स्वर्मातादर्शनावधि ॥११०॥
 मविस्तारं क्रमेण सीतातोषाधमादरात् । सीता क्रमेण तन्मये श्रुत्वा साश्चर्यमानया । १११॥
 किं मयेदं श्रुतं व्योम्नि स्वप्नो दृष्टोऽधवा निशि । येन मे कर्णधीगूढरचनं समुदीरितम् ॥११२॥
 त दृश्यतां महाभागः प्रियदीर्घ ममग्रतः । तच्छ्रुत्वा तन्पुगे गत्वा नन्वा रामव्रवीत्पुनः ॥११३॥
 रामदूतो ददी तस्यै रावणस्यागुचीयकम् । तां राममुद्रिकां दृष्ट्वा नन्वा तामब्रवीत्कविम् ॥११४॥
 सर्वं कथय तद्भूतं यथा दृष्टं त्वयाऽत्र हि । तदा तां सात्त्वयामास रामा मन्मथमसिधुः ॥११५॥
 जानरेद्रेः समागत्य हन्वा रावणमाहवे । त्वां नेष्यति मयं सोनेत्यजन्वं मम वाकरतः ॥११६॥

अंगुलिप्राक सकेतास साताकी दयान लगी । १०१-१०० । उस समय विमोषणका प्रिया अनुगामिनी त्रिजटा राक्षस, उन सबकी ऐसा करनेसे राका और उन सबका समस्त कर कहा कि इस राती हुई जानकीजाको तुम लोग दगाओ नहीं प्रभु नमस्कार करो । मैं आज स्वप्नम रामका गुन्दर चिह्नोत मुक्त दगा है और यह भी देखा है कि उन्होंने जानकीको छुड़ाकर लङ्काको अलगा तथा रावणको मार डाला है । तब लगाये हुए रावण गावर्क गहम गिर गया है ॥ १०१-१०३ ॥ मैं आज यह स्वप्न देखा है । इस कारण इन्द्रसतनका साहस नहीं करना चाहिए । रासत अमय दियान्वाया इस जानकीको मुझे मवा बतना चाहिए । १०४ ॥ यदि तुम लोग इसे दूख दागी सा यह अन्त पात रामके द्वारा मुझे मवा डविगा । त्रिजटाक इस वाक्यकी सुनकर सब राक्षसिय व्याकुल होकर लुप हो गयी ॥ १०५ ॥ उन सबकी गा जानिपर दुःखित हाकर सीता धारे-धारे कहने लगी कि इसी समय मरा मरण किस उपायसे हो सगता है ॥ १०६ ॥ हा, यह मेरे सिरके वालकी अम्को लट कासा लगानके लिए बहुत अच्छा तरह काम आयगा । उस समय जो मैं वचनरुवा बाणी से लक्ष्मणको दीया था ॥ १०७ ॥ उसका फलान्वह द राक्षसय मुक्त सता रहा है । यह मे अन्त किये हुए कर्मोका फल मम रहा है । मैं गामता नदीक किनारे सुमित्राव निर्दोष पुत्र लक्ष्मणको जा घमकाया था ॥ १०८ ॥ उसका मैं आज प्राण दकर प्रायश्चित्त करेगी । इस प्रकार मरनका निश्चय किये हुए जानकीको देखकर वायुपुत्र हनुमान्ने धारे धारे रामका वृत्तान्त सुनाता प्रारम्भ किया । उन्होंने रामके अवाधरासे नलनक सगयरे लेकर साताका दग्धन लक्ष्मा सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक क्रमसे र्म ताकि सवापके लिए सुना दिया । वह सब वृत्तान्त सुनकर सीता आश्चर्यविक्रित हुकर सावन लगी कि क्या यह मे कोई आक, सवाणा मुन रहा है अथवा रात्रिके समयका स्वप्न देखा रहा है । जिसने मेरे जानकीके लिए अमृतक समान यह वचन सुनाया है ॥ १०९-११० ॥ वह प्रियवादा मेरे ममन आकर दर्शत दे । यह सुना ली हनुमान् उनके सम्मने प्रकट हो गये और नमस्कार करके उन्हे रामका वृत्तान्त पुन सुनाया ॥ १११ ॥ फिर विश्व स दिलानक लिए रामकी अगूठी निकाल कर सीताको दी । रामकी मुद्रिकाको देख तथा नमस्कार करके साता वाली- ॥ ११४ ॥ हे कवि । जैसा कि तुमने देखा है, मेरा सब हाक जाकर रामसे कह देना । तब हनुमान् सावाको आभासत देखर कहने लगे कि राम मेरे कन्धपर सवार हो जानरसनापतिदोके साथ यहाँ आकर मुझमें रावणको मारने और बापको

ततः सीताप्रत्ययार्थं रूपं स्वं दर्शयन् कपिः । ततः पुनः प्रत्ययार्थं सीतार्थं सघयोदितम् ॥११७॥
 मनःशिलायास्मिलकं चित्रकूटगिरौ कृतम् । कपिस्त्वत्कथयामास पूर्ववृत्तं सविस्तरम् ॥११८॥
 तदस्तुष्टां जानकीं तां माहतिर्वाक्यमब्रवीत् । अनुता देहि मे मानस्त्वभिज्ञानं ददस्व माम् ॥११९॥
 सा तं चूडामणिं पित्रा दत्तं केशावगन्धिनम् । निष्काम्य तत्करे दत्त्वा पूर्वं काकेन यत्कृतम् ॥१२०॥
 चित्रकूटगिरौ धृतं कथयामास तत्कपिम् । ततो नन्वा रामवर्त्नीं चिन्तयामास चेतसि ॥१२१॥
 स्वामिकार्यं कृतं चैतदन्यत्किञ्चिन्वरोम्यहम् । इति निश्चिन्य मनसा जानकीं पुनरब्रवीत् ॥१२२॥
 सा त्वमेव सीता वृद्धोऽथस्त्वद्य विकलवदो महान् । अस्मिन्वनेऽतिमधुरः फलमघोऽतिदुर्लभः ॥१२३॥
 तत्राश्याऽद्य सीतेऽहं कपिष्ये भक्षणं ध्रुवम् । इति नद्वचनं श्रुत्वा जानकी र्वीयकं कणम् ॥१२४॥
 निष्काम्य हस्तात्तं प्राह गृहीत्वेदं प्लवगम् । अनेन फलमभारान् लकाह्वान्प्रगृह्य च ॥१२५॥
 शुकन्वापीन्वामुदङ्गच्छवनेऽस्मिन्त्रोटस्य मा । तदा कपिः पुनः प्राह पण्डितफलानि हि ॥१२६॥
 नाहं भुञ्जामि सीते मे व्रतमग्निं व्रताम्यहम् । व्रजनं मारुतिं दृष्ट्वा सीता वचनमब्रवीत् ॥१२७॥
 भो बालक कपिश्रेष्ठ रवणोऽस्ति वनाधिपः । न शक्तिर्न च शक्यं ते कथं त्वं भक्षयिष्यसि ॥१२८॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा मारुतिः प्राह जानकीम् । श्रृंगमेति परं मयश्च मे हृत्पान्तरे ॥१२९॥
 मेन सर्वाणि रक्षामि तृणरूपाणि मां प्रतम् । तदा तं जानकी प्राह पतितान्यत्र वै भुवि ॥१३०॥
 मूर्धन्यानि फलानि च तूष्णीं वा चोदयात्र वै तथैव मारुतिश्चोक्त्या वृक्षान्पृच्छेन्न चालयन् ॥१३१॥
 वृक्षांदोलनमात्रेण निपेत्य फलानि हि भक्षयामास तान्येव मृगफलानि क्षणेन सः ॥१३२॥
 ततो वृक्षान्समन्तात्पृथ्वा लागृहेन स मारुतिः । क्षिप्त्वा तानन्यवृक्षेषु समन्तानि फलानि वै ॥१३३॥
 पानयामास भूम्यां तु भक्षयामास तानि सः । भक्षितानि समन्तानि फलानि वनजानि हि ॥१३४॥

नन्वा न जानकी । हे सीता ! मैं कहूँ तो अग्न निमग्न रहूँ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ तब हनुमान् ने सीताका विश्वास
 प्रकट करने के लिये अपना असली स्वरूप दिखाया । तदनन्तर और भी विश्वासके लिये सीताको रामका कला
 और चित्रकूटपर किया मैंनामिन्ने लिख आदिका विष्णु भा मना दिना । साथ ही और भी पहलेकी वृत्तान्त
 सीताको सुनाया । ११७ ॥ ११८ ॥ तब सीता जान मानुष जानने में हनुमान्ने कहा—हे सीता ! अब आप मुझे
 जानकी आजाइ तथा अपना कोई चिह्न भा द द । ११९ ॥ तब सीता ने पिताकी हाँ हुई चूडामणि सिरके बालास-
 म चवाल्कर उनके हाथमें दी और पूरा चित्रकूटगिरिपर काँक (जवत) का दिया हुआ वृत्तात्त हनुमान्को
 बताया । तदनन्तर रामकी सीताका नमस्कार करके हनुमान् मुहम मोचने लग्ये ॥ १२० ॥ १२१ ॥
 मैं स्वामीका कहा हुआ काम तो कर दिया, पर और आच्छ करने चयना चाहिए । ऐसा निश्चय करके वे
 रामके लीने — ॥ १२२ ॥ हे सीता ! आज यजकूटक साथ चने मूल लगी हुई है । इस वनमें अतिशय
 दाम तद अति मधुर फलका समूह लगा हुआ है । १२३ ॥ मैं आपका आज्ञास में इनको अवश्य खाऊँगा ।
 तब सीता जानकीने हाथसे उतारकर अपना कंकण उनको दिया और कहा—हे प्लवङ्गम ! यह जो और
 लका इकानोपरसे फलके डेर खराद या और इन्ह खाकर जाओ । परन्तु इस वनके रस न तोड़ना ।
 अब मैं मानने कहा कि हमारेक हयसे तोड़े फल में नहीं गलता । हे सीता ! ऐसा मेरा व्रत है । अच्छी बात
 है मन्ना दा । मैं ऐसे हो जाता हूँ । जान हूँ मारुतिको देवराज सीतान कहा— ॥ १२४-१२५ ॥ हे बालक ! हे
 कपि ! म धेय कपि ! इस उपवनका अधिपति रवण है । तुम्हान्में इतनी शक्ति नहीं है कि तुम उनको जीत
 सके जो फल कैसे खाओगे ? ॥ १२६ ॥ यह सुनकर मारुतिन जानने कहा कि मेरे हृदयमें 'श्रीराम'
 परमेश्वरकी अमोघ शक्ति विद्यमान है ॥ १२७ ॥ उसका कारण मैं इन सब राक्षसोंको वृणवन् समझता हूँ । तब
 राम ने कहा कि जो फल पूर्वपर गिर पड़े हो । १३० ॥ उनको तुम चुपचाप खा लो, फेरपरसे न तोड़ना ।
 हनुमान् अच्छा कहकर हनुमान्ने अपनी पूँछमें बाँधकर वृक्षोंको हिलाया ॥ १३१ ॥ वृक्षोंको हिलानेसे सब
 फल गिर पड़े । उन्होंने उन सब सुन्दर फलोंको क्षणभरम खा लिया ॥ १३२ ॥ फिर हनुमान्ने उन वृक्षोंको

दृष्ट्वा त ददुर्ध्वतुं माहति वनश्रुताः । राक्षसानामानु दृष्ट्वा हृयन्तोऽन्नाद्यपत्कनिः ॥१३५॥
 उत्थात्वाशोकवर्निका निर्धृक्शायकजोक्षणान् । स्तीताश्रयनगन्धकम्बुवनमृन्मं चकार सः ॥१३६॥
 वमज चैन्यप्रासादं इत्वा तद्वशकान् क्षणान् । ततस्ता गन्धर्माः सवा वनमगं निराह्वय च ॥१३७॥
 पञ्चद्वुर्जनकी मयाः कोऽय कस्य वृत्तमित्थिह । ताः सर्वा ज्ञातकांश्चाद गक्षमाः कायकृषिणः ॥१३८॥
 विचरन्ति मुदा मूर्म्यां वेद्यवह भिक्षुमपिणः । तदा हुता पचेनजां गनजेन हि तद्वनान् ॥१३९॥
 तस्माज्ज्ञेयान् युष्माभिः कोयं वा वृक्षदेवकिमुद्वेति दम्प्यः वनः भुत्वा गक्ष्म रो मरविह्वलाः ॥१४०॥
 दक्षाननं हि तद्वृक्षं ययुः शीघ्रं निवेदिनुम् । एतन्मिद्वतरे प्रान्तगैवके कष्टिपथनम् ॥१४१॥
 निरीक्ष्य राक्षसाश्च गयस्य चक्रितस्तदा । भुक्ता मदोदगी ज्ञान्ता तां हतुं सज्जमाददे ॥१४२॥
 तदा निवारितः स्त्रीभिः स्त्रीहत्यां माकरोत्थिति । तदा क्रद्धो दक्षप्रान्तवृणां गन्दा गयवृहम् ॥१४३॥
 अदधीमिद्रिभं वीर सज्जेन स्वयं ययौ । तदा विर्गाषणः प्रातर्न्योर्दक्षं स्वमंचके ॥१४४॥
 दृष्ट्वा तां स रमां हतुं दृष्ट्वा वज्रितस्तदा । स्त्रीमिष्ट्वा तस्य हृदय्या महिता जिति ॥१४५॥
 विभीषणस्तदास्य चधोस्त्रायममन्यत । एवमांजलं नकायां वीनुकं कणिना कृतम् ॥१४६॥
 अयं वैगेन गक्षस्यः समामस्य दक्षाननम् । वृत्तं निवेदयामासुः मयलहाण्या जनाङ्गम् ॥१४७॥
 तच्छ्रुत्वा गवणः क्रोधान्कपिनोत्पादित वनम् । वनपालं समाह्वय जम्बुमालिनमवधीह ॥१४८॥
 राक्षसेर्निपुर्नगच्छ कीर्शं घृत्वा समानय । तथेति य ययौ वेणवजोकरनिका प्रति ॥१४९॥
 दृष्ट्वा सैन्यं दीर्घनादं चकार कपिकुजरः । वनज्ज्ञे गक्षमाः शर्वनिज्जुयान्गोत्तमा ॥१५०॥

पूछेन दीर्घनादकर गय शिया । उनही जनाकर गय वृक्ष के कन आय । ॥१३५॥ उन्हें भी विभीषण
 तामर वृक्ष समस्त फल खा लिया । ऐण कान्के उन्होंने उस उपवनके सब फलोंको खा डाल्य । ॥१३६॥ यह
 देखकर वनके रक्षकण उन्हें पकड़ने लगे । इनमारण राक्षस को मारे दम्प्य उन वृक्षों में ही पीड़ता
 लाग्य कर दिया । ॥१३७॥ इस प्रकार क्षणभरमें उन्होंने सबे अण्डववन । गय में चक्रित कर दिया । केवल
 सीताके आश्रयभूत एक वृक्षको छेद और सब उपवनको उजाड़ डाला । ॥१३८॥ वनमें उन्होंने वृक्षों
 बड़े बड़े मृदाको गिरा दिया और उनके रक्षकोंका मार भणाय । अथ ३ गवणपिद वनमृदा दक्षकर
 जानासे पुनः लगी कि यह कौन है, किमकर वृत्त है और वृक्षों आया है । समस्त उपवनमें कहा कि
 वृक्षसे यद्यच्छ हय धारण करनेवाले राक्षस पूर्वपर आनन्दसे युक्त, काज है । उन्हें मले जायें जायें । हम
 कोतका पता मुझे सबसे लगा है, अब मित्रकला अब मारण करके राक्षस पक्ष पकड़कर स नन्में हरे लग्य
 ॥१३९॥ सो तुम्हीं जाग रहना पत, जमाओ कि यह कौन है । मुझसे बात पूछना, हा । जगै इस वन
 का मुन्कर राक्षसिण जसे विद्वत् हो गया । ॥१४०॥ वह जग पकड़के गिरा वन में दक्षानन एव । ॥१४१॥
 इधर आसकालके समस्त राक्षस अपनी गणाय गयका कमानन्द केवल कर जा त ॥१४२॥ राक्षस सानो
 कि गयत यहाँ जाकर मन्नादरेका भोग है । यह शका करके उभय मन्नादरेका गायत कि न मन्नाद
 उदायी । ॥१४३॥ ॥१४४॥ तब हुता विरतेन म्वाको हुता लो करनी कर्षा, यह कहकर उन म्वा । तब क
 कक्षणमें वृक्षों स गयके घर जाकर सोय हुए ही वीर गयरा तलवारमें काद डाला और आगे पर लोय
 उधर विभीषणन आत, जाल अपने अपने भाई राक्षसका तल्व आन पल हू पर देखा । ॥१४५॥ ॥१४६॥ वह देखकर
 वह अपना स्त्री रमाका मारदे दीडा । तब आग विरतेन उभयका हुता पकड़कर गय दिया और कान कि सर्व
 हृष्य करके वडा भारी निर्दिष्ट कर्म है ॥१४७॥ तवापि विं दण उच रितमें अपने भाइय ग न ल्या । हम
 प्रकार लड्डामें हुतामृते बड़े बड़े कोक किय । ॥१४८॥ उन गय मया, जो दीडा लोड आकर म्वाय कि
 रावणका धवराहके कारण हूटे हूट सबसेम अजयवनक विनायका मद्र हुतान्त मुतापर । ॥१४९॥ कर्षके हुता
 वनमृदाका समाचार सुनकर वृद्ध रावणने उस वनके रक्षक जम्बुमालीका बुलकर कहा— । ॥१५०॥ तूम वान
 ह्यार राक्षसको लेकर जाओ और उस वानको दण्ड लाओ । तवास्तु कच्छर यह शीघ्र आगेकदम

तत उत्प्लुन्य हनुमान् तोरणेन समन्ततः । निष्पिपेष क्षणादेव मशकानिव युथपः ॥१५१॥
 इत्था तान् राक्षसान् सर्वास्ततो वेगेन मारुतिः । तालवृक्षं समुत्पाद्य जघान जम्बुमालिनम् ॥१५२॥
 तान् सर्वान्निहताञ्छुन्वा पञ्चसेनापतीन्पुनः । रावणः प्रेषयामास हतास्ते तोरणेन च ॥१५३॥
 वायुपुत्रेण वेगेन लक्षराक्षससयुताः । स तानपि मृताञ्छुन्वाऽभं पुत्रं प्रेषयत्तदा ॥१५४॥
 कपिना मारितः सोऽपि मर्मन्यो मुदरेण च । ततः स प्रेषयामास पुत्रमिन्द्रजितं पुनः ॥१५५॥
 ततः स मर्मसाहः कोटिगणमवेष्टितः । घृद्ध चकार कपिना शत्रैरघैः सुदुर्घरैः ॥१५६॥
 तदा पुच्छेन संन्याय कृत्वा प्राकारमुत्तमम् । निष्पिपेष तोरणेन राक्षसान्मारुतिः क्षणात् ॥१५७॥
 ततो वृक्षं समुत्पाद्य मेघनादमनाडयत् । वृक्षेण भिन्नमर्वागो मेघनादोऽविशद्गुहाम् ॥१५८॥
 एतन्मिन्नन्तरे ब्रह्मा प्रार्थयामास मारुतिम् । ब्रह्म स मानयन्मेऽथ त्वं लङ्कां याहि रावणम् ॥१५९॥
 तथेभ्यमीचक्र रम्यो मेघनाद ययौ विधिः । विधिः प्राह मेघनादं क्व गतोऽय पराक्रमः ॥१६०॥
 गच्छ मेऽस्त्रेण न वद्ध्वा पितुर्ग्रे समानय । स ब्रह्मवचनं श्रुत्वा मेघनादः पुनर्ययौ ॥१६१॥
 ब्रह्मास्त्रेणाथ वद्ध्वा नमानयामास रावणम् । ततो रावणवाक्येन प्रहस्तः प्राह मारुतिम् ॥१६२॥
 कम्बु कुनः समायातः प्रेषितः केन वा वद । ततः स राघवपुत्रं हि कथयामास विस्तरात् ॥

ततस्तं वदयामास रावणं वायुनन्दनः ॥१६३॥

विमुच्य मीर्यादृषदि शत्रुभावनां भजन्व राम शरणागतप्रियम् ।

मीतां पुरस्कृत्य मपुत्रवान्धवो राम नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात् ॥१६४॥

यावन्नगाभाः कपयो महाबला इमेऽस्तुत्या नखदंष्ट्रयोधिना ।

पया ॥ १४९ ॥ उसकी सेनाको दखकर कपियोस कुञ्जर (हाथी) के समान वीर हनुमान् बहुत जोरसे गर्जन किया । तब राक्षसाने जानरातम हनुमान्को जम्बोमे मारना आरम्भ कर दिया ॥ १५० ॥ हनुमान् भी रणमें दूर पड़े और अच्छेको तरह उन सैन्यापतियों तथा राक्षसोंको चारों ओरसे तोरणके द्वारा क्षणभरमें पीस डाला ॥ १५१ ॥ उन सबको मारनेके बाद मारुतिन वेगसे एक नाडका वृक्ष उख डकर उससे जम्बुमालीको समाप्त कर दिया ॥ १५२ ॥ उन सबको मार गये मुनकर रावणने पाँच और सेनापतियोंको भेजा । हनुमान्ने तोरण मुदर ॥ से उन्हें भी मार डाला ॥ १५३ ॥ वायुपुत्र हनुमान्ने लाखा राक्षसोंके साथ उन पाँच सेनापतियोंको भी मार डाला, यह मुनकर रावणने आने अक्षयनामक पुत्रको भेजा ॥ १५४ ॥ तब हनुमान्ने उसको भी मुदरसे मार डाला । अब रावणने आने इन्द्रजित् सुत मेघनादको भेजा ॥ १५५ ॥ वह एक करोड़ राक्षसोंसे वेष्टित था तथा रथपर सवार होकर दहाँ आया । वह अपने दुर्य्य अस्त्रास्त्रास हनुमान्के साथ युद्ध करने लगा ॥ १५६ ॥ हनुमान्ने सेनाको राक्षसके रथ अर्थात् पूँछका ही गड बनाया और तोरणसे उन सबको क्षणभरमें मार डाला ॥ १५७ ॥ बादमें एक वृक्ष उखाड़कर उससे मेघनादको मारा । जिससे घायल होकर वह एक मुदरमें जा घुसा ॥ १५८ ॥ उस समय ब्रह्माने हनुमान्को प्रार्थना की कि तू मेरे ब्रह्मास्त्र ब्रह्माक्ष, का माल रखे और उसमें डेवकर त्वाय रावणके पास जाओ ॥ १५९ ॥ उन्होंने तथास्तु कहकर अङ्गीकार कर लिया । अब ब्रह्मा मेघनादके पास गये और कहा—हे मेघनाद ! तुम्हारा पराक्रम आज कहाँ चला गया ? ॥ १६० ॥ अब मेरे पाशसे उन वानरोंको बाँधकर अपने पिताके पास ले जाओ ब्रह्माके वचनको सुनकर मेघनाद दहाँ चला गया और हनुमान्को ब्रह्मापाशसे बाँधकर रावणके पास ले आया तब रावणके कथनानुसार प्रहस्त ने पूछने लगा—॥ १६१ ॥ १६२ ॥ वतला तू कीन है, कहाँसे आया है और तूने किसने भेजा है ? तब विन्वानस रामका वृत्तान्त सुनाकर हनुमान् रावणको समझाने लगे—॥ १६३ ॥ ओ रावण ! भूर्जनसे प्राप्त हनुमावको तू हृदयसे निकाल दे और शरणागतोंके प्रिय रामका भजन कर । यदि सत्ताको आने करके पुत्र तथा बन्धुओंके साथ जाकर रामको नमस्कार करेगा तो तू निर्भय हो जायगा ॥ १६४ ॥ सिंहके समान महाबलवान्

तस्मां ममाक्रम्य विनाशयेति ते तावद्वृत्तं देहि रघुनमाय ताम् ॥१६६॥

जीवन्म गमेण विमोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सुन्दरैरपि शङ्करेण ।

न देवगजाङ्गनाः न मृत्योः पाताललोकानपि संप्रविष्टः ॥१६६॥

शुभं हितं पवित्रं च वायुपुत्रवचः सुखः । प्रतिव्याह नैवामी प्रियमाण इवोपधिम् ॥१६७॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा मारुतिः प्राह रावणः । विनिजिना येन देवान्तर्य मे पौरुषं त्वया ॥१६८॥

न द्रष्टुं बलमस्ते व्यर्थं शृणु किञ्चिद्वदामि ते । पञ्चाङ्गपाठकथायं पश्य ब्रह्मा कुतो मया ॥१६९॥

श्रीहाराभ्ययं सूर्यः अग्नी चन्द्रधराः कुतः । वरुणोऽयं जलग्रही मार्जकः पवनस्त्रिवह ॥१७०॥

अग्निः कुतोऽयं रजको मालाकारः शर्वापनिः । दण्डपाणिर्महात्र नाप्यश्वात्र सुमित्रयः ॥१७१॥

मार्तण्डो नापितथाय गणपः स्वर्गशुकः । मंगलाद्या ग्रहाः सप्त मे गोपानादिनामने ॥१७२॥

शिशुसेवानन्परेण कृष्टी देवी मया कृता । आंशोलिख्य कैलासः कुवरोऽपि विनिजिनः ॥१७३॥

कथं ममाग्रे विलक्ष्यमीनवत्प्लवगनातामवभंषि दूष्टयोः ।

क एष रायः कतमो वनेचरो निरन्त्रिमुग्रावधुतं नग्धरम् ॥१७४॥

इत्युक्त्वा हनुमद्युक्तस्तं दशस्यः ममाश्रितः । तदा निवाग्यामाम रावणं स विर्भाषणः ॥१७५॥

परदूतो न हन्तव्य इत्यादिवचनस्तदा । ननः क्राधममाविष्टो रावणो लोकगवणः ॥१७६॥

दूतानाज्ञापयामास छेदनीयं तु लांगुलम् । तद्व्यवधानः भूत्वा गङ्गतामने मत्स्यशः ॥१७७॥

स्वायुर्ध्वच्छेदयामासुः कुशरककचार्दिनः । आयुधान्येव शतशस्त्युच्छाधानमावृतः ॥१७८॥

बभूवुः श्वतचूर्णानि तस्य रोम्णोऽपि न व्यथा । तन्निश्य दशरथः स मारुति वाक्पवनवर्धन ॥१७९॥

न कास गोपयन्पत्रं स्वीयं मृत्युमपि कर्तुम् । अनन्वयं वद पुरुषस्य येन घातोऽयं ते भवेत् ॥१८०॥

और तबों सघा दलितोमे लखनवाले कानर आकर कलाम प्रवेश नही करे, मर पड़े हों न सताका ल नाकर रामको दे ॥ १६५ ॥ अब नुब राम जाचित नहीं छुड़ेगे : कहना राय मुद्र कर, चले आकर करें, चाहे तू अपना प्राण बचानेके लिए देवराजको शरणम जा । चाहे यमलोक या पाताललोकमें जाकर छिप, चाहे कुछ कर ले ॥ १६६ ॥ किन्तु उस दुष्ट रावणने हनुमान्की गुप्त, हितकर तथा गर्विय बातको नष्ट माना । जैसे गुम्फु पुरव औपवि नहीं सैता ॥ १६७ ॥ रावणन हनुमान्को वात नुनकर कहा कि मेन सब दनताओवा जीत लिया है । मेरे गुरुपार्थको तू नहीं जानता । इसीलिये जय बक्वम कर रहा है । मुन मैं मृत कुछ मुगता हूं । देख, ब्रह्माको मेने पञ्चाङ्गपाठक बना दिया है ॥ १६८ ॥ १६९ । मार्क का प्रहृष्ट, चन्द्रमहा छायारां, वरुण को जल भरनेवाला, पवनको प्राह लगानेवाला, अग्निही घोड़ी, शर्वापनि इहको भारी, दण्डपाणि सगराजको द्वारपाल, देवताओंकी स्त्रियोंकी दसिय, मर्षणको नाहे गणपतिमे भयका शुक सईम और मंगल-शुच आदि सार्तां ग्रहेको मेने अपने आसनकी संहिय बना लिया है । पत्नी देवा मन्त्र, गताको मेने सच्योंको बलानेवाली धाई बनाया है । कैलासको मेने हूँ हिलाया था । कुवरोको भी मेने जीत लिया है ॥ १७० ॥ १७१ ॥ मे पश्य हूमोमे अधम वानर ! तू मेरे आगे क्यों कृया प्रलाप करता है ? तू दवा तू सूर्य शाखता है । अरे ! वनवासी राम मेरे सामने क्या चीज है । मनुष्योमे नाच रामको ता नृपति संहित मे मानता जावेगा ॥ १७२ ॥ इतना कहकर दशानन रावण वाच समामे उनको मारने दीडा । तब दिसोपाने रसका गोकुल कहा कि हूमोमे दूतको मारना अव्याय है । पश्चात् लोगोको बलानेवाले रावणने कोच चक्र निपाहिजेको आज्ञा दी कि इस वानरकी पूछ काट डाल । रावणकी आज्ञा पकर हुवाग राक्षस अपन-अपन हुक्मों और शकच (बाण) आदि हाथपारीसे उनका पूछ काटने लगे । इस समय हनुमान्जीन तन्त्रि अपनी पूछ हिला दी । उनके हिलतेमात्रसे उन हथियारोंके सँकड़ो टुकड़ शरकर फिर पड़ ॥ १७५-१७६ ॥ ये दूर दूर हो गये, परन्तु हनुमान्जीका बाल भी बाँका नहीं हुआ । यह देखकर दशानन मारुतिन कहूँ यगा - ॥ १७६ ॥ और पुरुष अपना मृत्युके उपायको भी छिपाकर नहीं रखत । इसलिए साफ-साफ बता दे कि तरो पूछ किस उपायसे नष्ट होगी ॥ १७७ ॥

तदाऽमरत्वं स्वं प्राह कपिस्तच्च मृपांति नः । मन्वा दशस्यस्त्वं प्राह पुनः सत्यं वदेति च ॥१८१॥
 तदा स मारुतिस्तूष्णीं क्षणं चित्ते व्यचिन्तयन् । मत्पितुश्च सखा बहिस्तस्मान्नास्ति भयं मम ॥१८२॥
 तस्मान्पुच्छं दीपयित्वा लंकां दग्धा दग्धोऽयम् । ततस्तं रावणं प्राह मारुतिः सदमि स्थितः ॥१८३॥
 पुच्छं मे बहिना दग्धं भविष्यति न चशयः । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा रावणो निजकिंकरान् ॥१८४॥
 आज्ञापयामास पुच्छं दीपयित्वा प्रयत्नतः । लङ्कायां दर्शनीयोऽयं दृष्ट्वेनं मद्भयं भवेत् ॥१८५॥
 सर्वेषां मद्रिपूणा च तथा चक्रन्वगन्विताः । तैलार्कैः क्षणपट्टैश्च राक्षसा वमनैरपि ॥१८६॥
 पुच्छं सवेष्टयामासुस्तदा पुच्छं व्यवर्द्धत । ततो वमनदृष्टास्तु वम्बकोशान्विलुण्ठ्य च ॥१८७॥
 तन्पुच्छं वेष्टयामासुर्गृह्यन्निर्गन्तव्यः । ततः पुरुषनारीणां लंकास्थानां नृपाञ्जया ॥१८८॥
 बलादाच्छिद्य वस्त्राणि चक्रुः सर्वान्दिग्गन्धरान् । ततः शय्यामडपांश्च कंचुकीः कंचुकानपि ॥१८९॥
 पौराणां राजगोष्ठाच्च ते वस्त्राणि ममानयन् । दृष्ट्वाऽपूतितु पुच्छस्य ममास्थानां नृपस्य च ॥१९०॥
 वस्त्रमात्रैः समस्तैश्च लांगूलं वेष्टयन्तदा । ध्वजोष्णीषपताकामिविंश्रिणां वमनैरपि ॥१९१॥
 मदोदर्यादिवस्त्रैश्च भिक्षणां वमनादिभिः । पेष्टयन्कपिलांगूलं ततः सीतां ययुश्चराः ॥१९२॥
 नज्जान्वा मारुतिश्चापि पुच्छं प्रति प्रदर्शयन् । तदा कोलहलश्चाभीदृष्ट्वाथ प्रविमद्यनि ॥१९३॥
 तैलार्कं च घृतार्कं च स्नेहपाशं ममानयन् । नार्गान्निशायां दीपार्थं शिशूनामपि नो घृतम् ॥१९४॥
 आयन्न्त्रीपुरुषा नग्रा लज्जा नार्मान्परम्परम् । ततस्तद्दीपयामासुर्बहिना भस्त्रकपर्जैः ॥१९५॥
 प्रदीप्तं नाभान्पुच्छं स्तो मारुतिरब्रवीन् यदा स्याद्यमुखेनायं लज्जमानोऽद्य रावणः ॥१९६॥
 बहिं प्रज्वालयेद्य तदा ज्वाला भविष्यति । तन्मारुतिवचः श्रुत्वा ययान्ग्रे दशाननः ॥१९७॥
 यावन्मूककारयामास तन्पुच्छानलप्रानर्तनैः । तावत्तच्छिद्यजाः श्वश्रुकूर्वा दग्धा तद्ऽभवन् ॥१९८॥

अन्तर जब हनुमान्ने अपनेका असर बातअया तो भा बातका मच न माकर रावणने फिरस
 कहा कि सब-सब बतला ॥ १८१ ॥ तब मारुति मनम विचारन लग कि अग्नि मेर पिताके मित्र है । इसलिये
 मुझे डरनेकी कोई बात नहीं है ॥ १८२ ॥ इसीलए अपनी पूँछ जलवाकर मैं लङ्कावा ही जला डालूँगा । यह
 बतारकर सभामें स्थित रावणमे हनुमान्ने कहा—॥ १८३ ॥ मरी पूँछ अग्निसे जल सकती है, यह पक्की बात
 है । यह सुनकर रावणने अपने नौकरोंका बुलाकर आज्ञा दी कि प्रयत्नपूर्वक इसकी पूँछ जलाकर इसे
 नगरभरमें घुमाकर दिखला दो । जिससे कि समस्त शत्रुओंका मेरा डर लगने लगे । नौकरोंने भी वंसा ही
 किया और शाघ्र ही राक्षसोंन सन तथा वस्त्रोंको तेजमे भिगोकर पूँछपर लपट दिया । वरन अब कुछ कम
 नष्ट नष्ट, तब बाजारके गोदामोंसे बपड़े चुराकर घरक वस्त्र लाकर और रावणका आज्ञासे उन्होंने लंका-
 क नर नरियोंके वस्त्र छीनकर हनुमान्की पूँछमें लपटा । ऐसा करके उन्होंने सारे नगरके लोगोंका नंगा कर
 दिया । तथापि जब पूँछ नहीं टंकी तो शय्याके मण्डप (मगदरी), कंचुकियोंके बागे, पुरवासियों तथा राजाके
 मन्दिरके वस्त्र लाकर लपट दिये । तिसवर भी जब पूरा नहीं पड़ा तो सभासदों तथा राजाके वस्त्र लाकर
 लपट दिये गये । ध्वजाएँ तथा पताकाएँ ला-लाकर लपटा गयी । गनो मन्दादरी, साधु-महारत्नाओ तथा भिक्षुकोंके
 वस्त्र उतार-उतारकर लपट दिये और सीताकी भा साड़ी उतारनेके लिए कुछ दूत दौड़े ॥ १८४-१८५ ॥
 यह देखकर हनुमान्ने पूँछ बखाना बन्द कर दिया । तब प्रत्येक घरमें तेल आदिके लिए कोलाहल होने
 लगा । वे देख सबके यहाँका घा तथा तेल उठा लाये । यहाँ तक कि किसी घरमें दीपकके लिए तेल और
 बत्तीके लिए भी घी नहीं बच पाया । १८६ ॥ १८७ ॥ समस्त स्त्री-पुरुषोंको लज्जा छोड़कर नङ्गा होना पड़ा ।
 तब व हनुमान्की पूँछ घोंनोसे घोंककर अग्निके द्वारा जलाने लगे ॥ १८८ ॥ परन्तु अग्नि प्रदीप्त नहीं
 हुई । उस समय हनुमान्ने कहा कि यदि लज्जित रावण स्वयं अपने मुखसे फूँककर जलाये तो अग्नि
 बज सकती है । हनुमान्की बात सुनकर रावण तुरन्त आगे बढ़ा ॥ १८९ ॥ १९० ॥ ज्यों ही उसने अपने मुखसे
 अग्निका फूँकना प्रारम्भ किया, ज्यों ही उसके सिरोंके बाल तथा दाढ़ी भूँछ जल गयी ॥ १९० ॥ रावण जब अपने

तदा विशङ्कुजैः स्वीयमुखोपरि दक्षाननः । ताडयद्वह्निर्गोमर्थं जहस राक्षसास्तदा ॥१९९॥
 हास्य चकार हनुमान्तदा क्रुद्धः स रावणः । नीयतां मर्त्यश्चावमिति दूतान्वचोऽवधीत् ॥२००॥
 ततो दूताः कपिं निन्युर्लङ्कायां ते समन्ततः । शृङ्खलाभिर्दृढं बद्ध्वा भ्रामयामासुग्दरात् ॥२०१॥
 बाधघोषदीर्घशब्दैर्वैष्टिनं दम्बधारिभिः । एवं दिवा सर्वैरुद्धां दृष्टोद्गीय स मारुतिः ॥२०२॥
 घृन्वाऽतिस्वस्वरूपं तु दृढवन्धनिनिर्गतः । यथाभ्यान् ब्रह्मणाऽन्व तद्ययौ पूर्वमेव हि ॥२०३॥
 ततः पश्चिमदिक्मन्स्थं लंकाद्वारं समानयत् । दिष्काम्य तोमणं द्वागजधानं द्वारसकान् ॥२०४॥
 हत्वा स्वरक्षकांश्चापि प्रासादेषु समन्ततः । ददावर्णिं स्पृणुच्छेन लङ्कां दग्धां चकार सः ॥२०५॥

तदा कोलाहलश्चापीन्लकायाः प्रविशन्ने ।

निद्रितानपि बालांश्च त्यक्त्वा नार्यो गृहाद्वहिः ॥२०६॥

दुद्रुवुः प्राणरक्षार्थं दग्धनस्त्रलकान्तदा । क्रमेण रावणादीनां प्राभादान् ज्वालयन् कपिः ॥२०७॥
 तां रावणममां दग्ध्वा जगान पुच्छेन ताडयन् । अभवन् राक्षसा दग्धा मुग्धवायानि चक्रिरे ॥२०८॥
 तदा स रावणः क्रुद्धो राक्षर्मर्दशकोटिभिः । ययौ योद्धुं मारुतिना तान् मयान् तोरणेन सः ॥२०९॥
 घातयामास पुच्छेन बद्ध्वा चैकत्र कोटिभ्यः । तथैव लीलया पुच्छं रावणस्य च ममके ॥२१०॥
 मन्ताह्य तत्त्वचं दग्धामकरोन्मारुतिः क्षणान् । तन्पुच्छं बहिना दग्धो मूर्च्छितोऽभूदक्षाननः ॥२११॥
 कपिः श्रीरामकीर्त्यर्थं रावणं न जघान सः । पतिर्न पितरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा दग्धान्स्वराक्षयान् ॥२१२॥
 आत्मनः प्राणरक्षार्थमिन्द्रजिद्विवरं ययौ । कपिलक्ष्मणप्रीत्यर्थं मेघनादं जघान न ॥२१३॥
 एव सर्वान्निनिजिज्य गोपुरादालमंडिताम् । दग्ध्वा लङ्कां सविष्णवं ययौ भागश्मुत्तमम् ॥२१४॥

बाँसा हाथोंसे आग चुझानेके लिए अपने मुखोंपर पटापट धपड़ मारने लगा । तब राक्षसों गोरोंसे खिलखिलाकर हँस पड़े ॥ १९९ ॥ हनुमान् भी हँसन म्भो । यह देखकर रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ और आज्ञा दी कि इस दुष्ट वानरको पकड़ ले आओ ॥ २०० ॥ तब दूत लोग हनुमान्का बड़ी मजबूत साँकलोसे बाँधकर ले गये और नगरमें चारों ओर घुमाया ॥ २०१ ॥ घुमाने समय उनके साथ बड़े बड़े बाजे बज रहे थे । बहुतसे बालक तथा शस्त्रधारी लोग उनको घेरे हुए थे । इस प्रकार दिनमें सारी लंका देखकर सयंकालके समय हनुमान् सूक्ष्म रूप धारण करके झटपट बन्धनमसे निकल गये और कूदकर दरवाजेपर जा खड़े । उनके पूर्व ही ब्रह्मपाश भी अपने स्थानपर छोट गया ॥ २०२ ॥ २०३ । वहाँसे चल्कर वे पश्चिमी द्वारपर जाये । वहाँ फाटकर लम्बा उसाड़कर उससे समस्त द्वारपालोंको मार डाला ॥ २०४ ॥ अनेक रक्षक राक्षसोंको भी मार गिराया और अपना पूँछकी अग्निसे सब महलोंमें आग लगाकर सारी लंकाको जला दिया ॥ २०५ ॥ उस समय लंकाके प्रत्येक घरमें बड़ा भारी कोलाहल होने लगा । स्त्रिय अपने बालकोंको सोते हुए छोड़कर हो घरोंसे बाहर निकल पड़ीं ॥ २०६ ॥ उनके वस्त्रों तथा बालोंमें आग लगी हुई थी और वे अपने प्राण बचानेके लिए इधर-उधर भागने लगीं । हनुमान्ने क्रमशः आगे जाकर रावणके महलोंमें भी आग लगा दी ॥ २०७ ॥ रावणकी सभाको जलाकर वहाँके राक्षसोंको अपना पूँछसे खून पीटा और सब राक्षस जलने तथा अनेक प्रकारके शब्द करके चिल्लाने लगे ॥ २०८ ॥ तब रावण क्रुद्ध हो दस करोड़ राक्षसोंको साथ लेकर हनुमान्से लड़नेके लिए गया । हनुमान्ने उन सबको उसी लोहेके बड़ेसे मास डाला और करोड़ोंको एक साथ पूँछमें बाँधकर लीलापूर्वक रावणके सिरपर दे मारा ॥ २०९ ॥ २१० ॥ इस प्रकार मारनेसे उसकी चमड़ी क्षणभरमें जल उठी । उनकी पूँछको अग्निसे जलकर दक्षानन मूर्च्छित हो गया ॥ २११ ॥ परन्तु हनुमान्ने यह सोचकर उसको जानसे नहीं मारा कि यदि रामके हाथसे मारा जायगा तो उनका यश बढ़ेगा । पिताको गिरा हुआ तथा अपने राक्षसोंको जलते देख इन्द्रजीत मेघनाद अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए एक गुफामें घुस गया । हनुमान्ने लक्ष्मणकी प्रसन्नताके लिए उसको भी जौकित छड़ दिया—मार्य नहीं ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ इस तरह सबको पीत तथा पुरद्वार और अंटारियोंसे मंडित विशाल लंकाको जलाकर हनुमान् उत्तम

तटे पुच्छं स्थापयित्वा जलजान् रक्षयन् कपिः । तत्तरयैः शीतलं स्व कृत्वा लांगूलमुत्तमम् ॥२१५॥
 निजकण्ठाच्च धृष्टेण श्लेष्माणं सागरेऽक्षिपत् । ततः कपिः क्षणतूष्णीं स्थित्वा साक्षां विचिन्त्य च ॥२१६॥
 दण्डयामास हृदये मत्वा दग्धां विदेहजाम् । आन्मानं गर्हयामास स्थित्वा सागररोधसि ॥२१७॥
 धिग्निधुमां वानरं मृदुं स्वामिपन्नपाशं दाहकम् । निश्चयनं मया दग्धा जानकी रामदोषदा ॥२१८॥
 न विचारः कृतः पूर्वं लज्जादाहेऽवधेकिना । आन्मवानं करोम्यद्य पुच्छवधेन चात्र वै ॥२१९॥
 किं रामोदृशं स्वाभ्यं दशयेऽद्य विगर्हितम् । रामस्तु भ्रन्वा भीनाया वृत्तं शीघ्रं मरिष्यति ॥२२०॥
 वधुदुःखेन स मौमित्रिर्मरिष्यति न मशयः । तयोदुःखेन सुग्रीवस्तदर्थं सा च वै रुमा ॥२२१॥
 तं भ्रन्वा सोऽङ्गदक्षापि मरिष्यन्त्यतिलात्तिनः । नागऽपि पुत्रशोकेन नृपे नष्टेऽव वानरगः ॥२२२॥
 प्राप्ते पंचदशे वर्षे भग्नोऽपि मरिष्यति । गमदुःखेन कामन्या मुमित्रा पुत्रदुःखतः ॥२२३॥
 तथा मा कंकेयी दुष्टा सर्वानर्थकरी तु या । शत्रुघ्नो वधुदुःखेन रामार्थं मुनयश्च ते ॥२२४॥
 राघवा रामवक्त्राश्च भंविणः सहृदयस्तथा । मातापितुः कुल मयै कामन्याः पितुः कुलम् ॥२२५॥
 मुमित्रायाश्च कंकेटपास्तेषां सवधिनस्तथा । नष्टे राजकुले जाते प्रजा स्वेच्छानुयतिनी ॥२२६॥
 मरिष्यति न मदेहस्ततः स्थावराजगमम् । भूमिस्थाः प्राणिनः सर्वे पदा नष्टास्तदा दिवि ॥२२७॥
 हव्यकव्यविहीनास्ते देवा नाशं गता इव । ब्रह्माले प्रलयं दृष्ट्वा नष्टां सृष्टिं स्वनिर्मिताम् ॥२२८॥
 पथात्तापेन धाताऽपि मरिष्यति न मशयः । एव क्रमेण ब्रह्मांडं ब्रह्मण्येव न संशयः ॥२२९॥
 एतद्भाननिमित्तोऽहं विधिना निमित्तः पूगः । इत्युक्तवान् खेदेन देहत्यागार्थमुद्यतम् ॥२३०॥
 दृष्ट्वा माण्डकाशजा वाणी वधून् बहुदुःखदा । मा कुरुष्व कपे खेदं न दग्धा जानकी शुभा ॥२३१॥

सागरक किनारे गया ॥ २१४ ॥ वही लम्बी पुच्छ बड़े भागको किनारेपर रखकर जलजन्तुओंको बचाते हुए
 हनुमान्नुन समुद्रकी तरङ्गोंसे अपनी बाँध तया उनमें पुच्छको गँतल किया ॥ २१५ ॥ वही उन्होंने धृष्टसे गलम
 जम बँफला भी त्याग किया । तदनन्तर वे क्षणभर भाँस्त रहे । बादमें वे सीताका सोच तथा उनका जल गयी
 ममझकर जोर-जोरसे छाला पीटने लगे । समुद्रतटपर खड़े होकर उन्होंने अपनी निन्दा की ॥ २१६ ॥ २१७ ॥
 न्याम की स्त्री साताको जलानवाले मुझ सरोखे मयै जानरको बारम्बार बिकार है । रामको संतोष देनेवाली
 जानकीको मैंने धोखेमें जला दिया ॥ २१८ ॥ अद्वैतकी मैंने लज्जा जलानेसे पहिले यह विचार नहीं किया ।
 अब मैं गलम पूछ बाँधकर आत्मघात करूँगा ॥ २१९ ॥ मैं अब अपने इस निन्दित मुखको कैसे दिखाऊँगा ।
 मैं माताका यह हाल सुनत ही प्राण त्याग दूँगे ॥ २२० ॥ उनके दुःखसे दुःखित मुमित्रापुत्र ब्रह्मण भी अवश्य
 मर जायेंगे । उन दानाक दुःखमें सुग्रीव और सुग्रीवके दुःखसे उनका स्त्री रुमा भी प्राण त्याग देगी ॥ २२१ ॥
 यह ममचार मुननके साथ ही अत्यन्त प्यारमें पल्ल हुआ अगर भी प्राण छाड़ देगा । एवं पुत्रशोकसे
 भय और राजाक विद्यासे सब वानर भी प्राण दे देंगे ॥ २२२ ॥ पन्द्रह वर्ष बीत जानेपर भरत भी मर
 जायेंगे । रामके वियोगसे कीसल्या, पुत्रवियोगसे मुमित्रा तथा भरतके वियोगसे वह अनर्थकारिणी तथा दुष्टा
 कंकेयी भी मर जायगी । भाईके दुःखसे शत्रुघ्न, रामके दुःखसे मुनिलोग एवं रघुवंशी रामके भक्त भन्निजन
 तथा मित्रवर्ग भी प्राण दे देंगे । सीताके पिता जनकका कुल, कीसल्याके पिताका कुल, मुमित्राके पिताका
 कुल कंकेयीके पिताका कुल तथा उनके भी सगे सम्बन्धी लोग प्राण त्याग देंगे । राजकुल नष्ट हो जानेपर प्रजा
 मरिष्य चारिषी हो जायगा ॥ २२३-२२६ ॥ तब वह निःसन्देह स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंका नाश करने
 लगेगा । जब पृथ्वीपर सब प्राणी मार डाले जायेंगे । तब स्वर्गलोकवासी देवता और पितर भी हव्यकव्यस
 र होकर मृतक सरोखे हो जायेंगे । असमयका प्रलय तथा अपनी रची मृष्टिका विनाश देखकर पञ्चास्तापसे
 निन्दित विधाता भी मर जायगा । इस प्रकार क्रमशः समस्त ब्रह्माण्ड ही नष्ट हो जायगा । इसमें सन्देह
 नहीं है ॥ २२७-२२९ ॥ ब्रह्माजीने इनके विनाशका कारण मुझे ही बताया । हनुमान्नु देना खेदपूर्वक कहने
 लगे और मरनेके लिए उद्यत हो गये ॥ २३० ॥ उसी समय यह अनन्ददायिनी जाकाबजाणी हुई कि है

आन्मानं दर्शयित्वा तां शीघ्रं गच्छ रघूदहम् । तां वाणीं हनुमच्छ्रुत्वा बभूव हर्षपूर्वितः ॥२३२॥
 द्रुतं तां जानकीं द्रष्टुमशोकवतिकीं ययौ । तावद्दर्शं संकायां सुवर्णवेष्टितां भुजम् ॥२३३॥
 तत्कारणं वदाम्यस्य तच्छृणुष्व गिरीन्द्रजे । आसीद्विरिवरो देवि त्रिकूट इति विश्रुतः ॥२३४॥
 क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्पञ्चनद्याभ्युत्पन्नः । तावता विस्मृतः पयस्कृत्रिभिः सृगैः पयोनिधिम् २३५
 दिशः खं रोषयन्नास्ते रीष्यामसहिष्णुमयैः । तस्य द्वाण्यां भगवतो बलस्य महान्मनः ॥२३६॥
 उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोपिताम् । तस्मिन्मरः सुविपुलं लम्बत्कांचनपकजम् ॥२३७॥
 कुमुदोत्पलकङ्कहारशतपत्रश्रियोर्जितम् । नैतन्कुलनाः पश्यन्ति न वृजं न नास्तिकाः ॥२३८॥
 तस्मिन्मरसि दृष्टान्मा विरूपोऽन्तर्जलाश्रयः । आसीद्ग्राहो गजेत्राणां दुराधरो महाबलः ॥२३९॥
 अथ एतोऽज्जलमुत्तः कदाचिद्गजपुष्पः । आजगाम तृपाक्रान्तः करेणुपरिवारितः ॥२४०॥
 दृष्टितः पानकामोऽयमवर्तार्णश्च तद् सगः । पिबन्तस्तस्य ततोयं ग्राहस्तमुपययत् ॥२४१॥
 सुतीनां पंकजवृते यूयमध्यगताः करो । गृहीतस्तेन गंद्रेण ग्राहणार्तिवर्तीयसा ॥

गजो क्षाकर्षते तीरं ग्राह आकर्षते जलम् ॥२४२॥

दृश्यतीनां करेणुनां कोशनीनां सुदारुणम् । नीयते पंकजवने ग्राहेणाच्यक्तमूर्तिना ॥२४३॥

तथाऽऽतुरं युयपतिं करेणुनां विकृष्यमाणं तस्मा बलीयसा ।

विचुकुशुदीनाधरोऽपरं गजाः पार्णिप्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥२४४॥

तथोर्पुडमधूदोरं दिव्यवर्षमहम्बकम् । वारुणैः सयतः पार्थैर्निष्प्रयत्नगतिः कृतः ॥२४५॥

वेष्टयमानः सुधीरस्तु पार्थनांगिरस्त्वया । विस्फूर्जितमहाशक्तिर्पेकश्च महारवान् ॥२४६॥

कपियेष्ठ ! जेद न करो । बल्यापकारिणी जानकाजी नहीं जली है ॥ २३१ ॥ उससे भिन्नकर तुम शीघ्र रघूदह
 शमक पास जाओ । उस गहनवाणीको सुनकर हनुमान् बहुत प्रसन्न हुए ॥ २३२ ॥ वे जानकीको देखनके
 लिए ज्ञाघ वनगन्धर्वमय गय । वहाँ जाकर हनुमान्ने कुछ सुवर्णवेष्टित घर्तनी देखी ॥ २३३ ॥ हे गिरीन्द्रजे !
 उसका कारण मैं बताता हूँ, मुने-हे देवि । त्रिकूट नामके पास एक श्रृणु पर्वत था ॥ २३४ ॥ वहाँ चारों
 ओर क्षीरसागरसे घिरा हुआ सुन्दर शामायुक्त तथा दस हजार धौजन ऊँचा था । वह उतना ही गालाईमि
 मी था । वह चाँदा, लोह और सानके लाल आसरोसे रसा दिजाओं तथा आकाशकः व्याप्त न्ये हुए था ।
 उसके एक भागमें महारमा भगवान् बरुणका कनूमाद् नामक देवस्थितोका जीहास्थान एवं उद्यान था ।
 इसमें विशाल सुवर्णकमलासे मुमामित एक तालव था ॥ २३५-२३७ ॥ जो कि बुँझा, लाल कमल, श्वेत
 कमल तथा अतिपत्र जैसे कमलास अताव सुन्दर प्रतीत होता था । उनको कनूप्न, कर और नाम्मिक भाग
 नहीं बेक सकते थे ॥ २३८ ॥ उसी अलासमें छिपा हुआ महादलवान्, बड़ी बहिर्नाईमें पकड़ा जनेवाला
 तथा गजेन्द्रोका भी इस सेनवाला एक दुष्ट भगरमच्छ रहता था ॥ २३९ ॥ किसी समय श्वेत दाँत तथा
 श्वेत मुखवाला गजोमें मुख्य एक गजराज प्रथमसे व्याकुल होकर हर्जिनियोम घरा हुआ वहाँ जाया ॥ २४० ॥
 वह पानी पीनेका इच्छासे ज्यों ही पानाम उतरा और पानी पीने लगा, त्यों ही ग्राह उसके पास आ पहुँचा
 ॥ २४१ ॥ कमलजनने डंके तथा हार्दियोंके मुँडके बं चम स्थित उस हार्थको उस भयानक तथा अति बलवान्
 पाहने पकड़ लिया ॥ २४२ ॥ अब वह हाथी ग्राहकी तीरका आर खाने लगा । उसके सायको हर्जिनियो
 बेसती और दुःखसे चिल्लाता ही रह गई और जलम छिया हुआ ग्राह हाथीका कमलके वनम दूर खीच ले गया
 ॥ २४३ ॥ अब पहराये हुए उस युयपति गजका ग्राह बलपूर्वक वेगसे जलम खीच रहा था, तब हर्जिनियो
 मकीन मुखसे क्रन्दन करने लगी और हमरे तथा पाछे रहनेवाले हाथी दीन होकर चिल्लाने लगे, पर कोई उसे
 बचा नहीं सका ॥ २४४ ॥ उस गज तथा ग्राह दानोमें देवताओंके हजार वय तक घोर युद्ध होता रहा ।
 अन्तमें गजराज नेसे वरुणपान तथा अति भयानक एक ध्व नागनागमें बँधकर सर्वथा असमर्थ हो
 गया । उधे उन्मत्त वर्ण तथा महाशक्तिसम्पन्न होता हुआ भी वह गजराज चिल्लाने तथा महान् चीलकार

व्यधितः स निरुत्साहो गृहीतो धोरुर्मणा । परमापदमारुन्तो मनपाञ्चितयद्गरिम् ॥२४७॥
 एकाग्रो निगृहीतात्मा विशुद्धेर्नातरान्मना । प्रगृह्य पुष्कराग्रेण काचनं कमलोत्तमम् ॥२४८॥
 नैवेद्यं मनसा ध्यान्वा पूजयित्वा जनार्दनम् । आपद्विमोक्षमन्त्रिच्छन्नाजः स्तोत्रमुदीरयत् ॥२४९॥
 तत्कृतेन स्तवेनैव सुप्रीतः परमेश्वरः । आरुह्य गरुडं विष्णुगजगान सुरोत्तमः ॥२५०॥
 ग्राह्यस्तं गजेन्द्रं च तं ग्राहं च जलाशयात् । उज्ज्वलाप्रमेयात्मा तरसा मधुसूदनः ॥२५१॥
 जलस्थं दारयामास नर्कं चक्रेण भाध्वः । मोचयामास नागं च पाशंभ्यः शरणागतम् ॥२५२॥
 आसीद्भजः पुग पांड्य इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः । एकदा स तपोनिष्ठो बभूव ध्यानतत्परः ॥२५३॥
 यदुच्छ्रया ययौ तत्र कुम्भजन्मा नृपाधिकम् । ध्यानस्थः स नृपो नैव मुनिं वेद समागतम् ॥२५४॥
 ददौ शापं मुनिर्भूष दृष्ट्वा स्मरन् तु नोन्वितम् । तपोनदेन स भ्रान्त्ययस्मान्नोत्थितोऽपि माम् ॥२५५॥
 अतो भव गजो भ्रांतो मदेन विविनेऽचिरम् । तं श्रुत्वा नृपतिं शापं तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥२५६॥
 विशापं प्रार्थयामास मुनिः प्राह हरेः करान् । भविष्यति विमुक्तिं ते यदा ग्राहो धरिष्यति ॥२५७॥
 पुरा तदैव गधर्वस्त्वप्मरोगणमेयिनः । मरुत्यग्निज्जलक्रीडां कर्तुं हृहः समागतः ॥२५८॥
 सरस्यधमर्पणार्थं तं दृष्ट्वा स देवलं चिरम् । मन्थिनं च बाहोः कर्तुं गन्धर्वः स व्यचिन्तयत् ॥२५९॥
 स्वयं भूत्वा जले लीनस्तन्पादौ स्वकरेण हि दृढं धृत्वा रूपयन् सान्वा तमगपन्मुनिः ॥२६०॥
 ग्राहवन्मे घृतां पादौ तस्माद्ग्राहो भवान्न वै । तेन स प्रार्थितः प्राह हगिस्त्वामुद्धारिष्यति ॥२६१॥
 एवं तौ पूर्वशापेन पतितावतिसंकटे । हगिरुद्धृत्य तौ ताम्बां ययौ स्वीयस्थलं पुनः ॥२६२॥

करन लगा ॥ २४५ ॥ २४६ ॥ उस घाट पराजमी चाहते ग्रन्थ होकर गजगज दुखी और निरुत्साह हो गया । उस समय इस प्रकारकी परम विपत्तिको प्राप्त होकर वह भ्रंष्ट्रिका चिन्तन करने लगा ॥ २४७ ॥ तदनन्तर इन्द्रियोका नियंत्रण करके उसने एकाग्र मन तथा शुद्ध अन्तःकरणसे मृगणके समान उत्तम एक कमलपुष्प मूँडके अग्रभागसे पकड़कर शान्त भावसे मन ही मन जनार्दन भगवान्का आवाहन, पूजन, ध्यान तथा नैवेद्य अर्पण करके विपत्तिसे छुटकारा पानेके हेतु स्तवपाठ किया ॥ २४८ ॥ २४९ ॥ उसकी स्तुतिसे प्रसन्न परमेश्वर सुरोत्तम भगवान् विष्णु स्वयं गरुडपर सवार होकर वहाँ आये ॥ २५० ॥ उन अप्रमेय आत्मा मधुसूदन भगवान्ने उस ग्राह तथा गजेन्द्रका जलसे शीघ्र ही बाहर निकाला ॥ २५१ ॥ उन्होंने जलमें रहनेवाले ग्राहको अपने चक्रसे मार डाला और शरणागत गजगजको पाशसे छुड़ा दिया ॥ २५२ ॥ वह हाथी पूर्व जन्ममें पांड्यवंशी इन्द्रद्युम्न नामका राजा था । एक बार उसने ध्यान धरके तप करना आरम्भ किया ॥ २५३ ॥ जब वह तप कर रहा था, तभी उसके पास अगस्त्य मुनि एकाएक जा पहुँचे । ध्यानमें स्थित राजाको मुनिके आनेका कुछ पता न था ॥ २५४ ॥ मुनिने अपने आनेपर राजाको सड़े होते में देखकर शाप दे दिया कि तपक घमण्डसे मेरे आनेपर भी तुम सड़े नहीं हुए ॥ २५५ ॥ इसलिए शीघ्र ही तुम बनमें नदान्त हाथी हो जाओ । यह सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न बारम्बार मुनिको प्रणाम करके शापसे मुक्त करनेकी प्रार्थना करने लगा । तब मुनिने कहा कि तुमको ग्राह (मगरमच्छ) पकड़ेगा, तब प्रभुके हाथसे मुन्दारी मुक्ति होगी ॥ २५६ ॥ २५७ ॥ उन्ही दिनों हह नामक गन्धर्व विशिष्ट अप्सराओंको साथ लेकर उस तालाबमें अलक्रीडा करनेके लिए आया ॥ २५८ ॥ उसने देखा कि उस सरोवरके जलमें सड़े होकर देवल मुनि बहुत देरसे अधमर्पण अर्पण सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाले मन्त्रका जप कर रहे हैं और अभी बाहर निकलना नहीं चाहते । तब वह उनको बाहर निकालनेका उपाय सोचने लगा ॥ २५९ ॥ तदनन्तर स्वयं जन्मे दुबकी मारकर वह अपने हाथसे उनके पाँवोंको पकड़कर खींचने लगा । यह देखकर मुनि उसको पट्टिचान गये और शाप दिया-॥ २६० ॥ तूने ग्राहकी तरह मेरे पाँव पकड़े हैं, इसलिए तू यहाँपर मगरमच्छ बनेगा । पुनः गन्धर्वके प्रार्थना करनेपर मुनिने कहा कि श्रीहरि तेरा इस शापसे उद्धार करेंगे ॥ २६१ ॥ इस प्रकार पूर्व जन्ममें प्राप्त शापके कारण असिधाय भोषण संकटमें पड़े हुए उन गज ग्राहका भगवान्ने उद्धार

क्षुधितेनाथ ताक्ष्येण प्राथितः प्राह तं हरिः । गच्छ ममस्व पतिने गजपादकलेवरे ॥२६३॥
 ययौ ताक्ष्यः सरः पुण्यं तावद्भ्रमंगुधरात् । कलेवरांतिकं प्रामस्त निहत्य खगेश्वरः ॥२६४॥
 पदेनैकेन भ्रमंगमपणेन कलेवरे । धृत्वा ताक्ष्यः शुद्धदेशं मक्षणार्थमवश्यत् ॥२६५॥
 तावन्धीरार्णवे जांचूनदवृक्षं समीक्ष्य सः । आयामविस्तरौच्यैस्तु सदस्ययोजनं शुभम् ॥२६६॥
 तच्छाखायां विशालायां यावत्तस्यौ स पक्षिराट् । तावद्भ्रमंज तच्छाखां बालखिल्यैरधोमुखैः ॥२६७॥
 तपद्भिः षष्टिसाहस्रैश्चिकालं समाश्रिताः । तांस्नाहृशान्विलोकयथ तच्छापमयशंकितः ॥२६८॥
 धृत्वा स्वचक्षुना शाखां बभ्राम गगने पुनः । ततो दृष्ट्वा कश्यपं स्वतानं नत्वा व्यजिह्वत् ॥२६९॥
 वद शुद्धं भुवं मेऽद्य कुर्वेऽहं यत्र भोजनम् । तदा तं कश्यपः प्राह जनयोजनमागरे ॥२७०॥
 लंकानाम्नी शुद्धभूमिस्तत्र त्वं कुरु भोजनम् । सन्पितुर्वचनादृद्ध्वा ययौ ताक्ष्यः क्षणेन सः ॥२७१॥
 प्रोक्षयोः पक्षयोः शाखां स्थाप्य तान्मक्षपन्मुदा । तत्त्यक्तैर्मयिभिस्तत्र शृंगाणि त्रीणि चाभवन् ॥२७२॥
 त्रिकूट इति नाम्ना स लङ्कायां गिरिराडभूत् । तेषु शृंगेषु तां शाखां ताक्ष्यः संस्थाप्य संपयौ ॥२७३॥
 बालखिल्यास्तपोऽन्ते ते ययुर्विष्णोः परं पदम् । आमांश्छाखाऽन्तराले भा लङ्कायां शृंगमूत्रं मु ॥२७४॥
 श्रावभूर्ता शैवलेन न विदुस्तां तु राक्षसाः । लङ्काऽग्निना द्रवीभूता मर्दयन्ती क्षपाचगन् ॥ ७५॥
 पपात तदसेनापीहृद्ध्वा भूमिर्हिंममयी । तां दृष्ट्वा चक्रिनो वेगादने र्मतां ययौ कपिः ॥२७६॥
 दृष्ट्वाऽशोकं पुनः सीतां तामाह कपिकुञ्जरः । मन्मकन्धमंस्थिता राममद्य पश्यमि जानकि ॥२७७॥
 सा प्राह मोचितामन्यैर्मां रामो न सहिष्यति । नीत्वा पुनर्मूर्ध्निकां त्वं राघवाय समर्पय ॥२७८॥

किया और दोनोंको साथ लेकर अपने घाम पचारे ॥२६३॥ तदनन्तर भूमि गरुड़ने श्रीहरिसे आहारकी प्रार्थना की । श्रीहरिने कहा कि जाओ, सरोवरक तटपर पड़े हुए गज-ग्राहके शरीरका स्वाद लो ॥ २६३ ॥ गरुड़ वहाँ गये तो उन कलेवरीके पास भ्रमङ्ग नामक एक गुध्रगजको देखा । देखते ही पक्षियोंके द्वारा गरुड़ने उसे मार डाला ॥ २६४ ॥ तत्पश्चात् एक टाँगसे भ्रमङ्गकी तथा दूसरी टाँगसे गज प्राङ्गक शरीरको पकड़कर उन्हें खानेके लिए कोई शुद्ध स्थान खोजने लगे ॥ २६५ ॥ इतनमें गरुड़को क्षीरसागरमें एक जाम्बूनद (सुवर्ण) का वृक्ष दिखायी दिया । वह लम्बाई चौड़ाई तथा ऊँचाईमें हजार योजन परिमाणवाला था और दखनमें बड़ा ही सुन्दर लगता था ॥२६६॥ पक्षिराज गरुड़ जाकर उषी ही उसको एक शाखापर बँधे, तब ही उसकी वह शाखा टूट पड़ी । उसके टूटनेसे उसपर बहुत कानस रहनेवाले साठ हजार बालखिल्य ऋषि अधोमुख होकर गिरने लगे । उनकी यह दशा देखकर पक्षिराज गरुड़के मनमें ऋषिशाक शापकी शंका समा गया ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ अतएव उस शाखाको चोचमें पकड़कर वे आकाशमें फिर भ्रमण करने लगे । तभी उन्हें अपने पिता कश्यप दिखायी पड़ा । तब नमस्कार करके उनसे निवेदन किया-॥ २६९ ॥ आप कोई ऐसा पवित्र जगह बतलाएँ, जहाँ मैं भोजन कर सकूँ । तब कश्यपने कहा कि सौ योजन विस्तृत लंका नामकी विशुद्ध भूमि है, वहाँ जाकर तुम भोजन कर सकते हो । अपन पित का बात भङ्गाकार करके गरुड़ क्षणभरमें लङ्का जा पहुँच ॥ २७० ॥ ॥ २७१ ॥ बालखिल्य ऋषियों सहित शाखाको अपनी ऊँची पाँखोंपर धरे हुए वे आनन्दसे उन भूत खरीरोंको खाने लगे, जिन्हें पाँचों पकड़ लाये थे । उन गज-ग्राह तथा गीधके शरीरसे निकली हुई हड्डियोंसे वहाँ तीन बड़े भारी शिखर खड़े हो गये ॥ २७२ ॥ उन तीनोंका लङ्काम पर्वतराज त्रिकूट नाम पड़ गया । गरुड़ने उन्हीं शिखरोंपर उस शाखाको रख दिया और चले गये ॥ २७३ ॥ वहींपर तपस्या पूरी करके वे बालखिल्य ऋषि विष्णुके परम पदकी प्राप्ति हो गये । लंकामें उन शिखरोंके मध्यमें स्थित शाखा पाषाणके समान हो गया था । इसी कारण रक्षस लोग उसे नहीं पहचान पाये थे । जब हनुमान्ने लङ्काको अग्निसे जलाया, तब वह इवित होकर राक्षसोंका मर्दन करती हुई गिर पड़ी । उसके रससे लंकाका भूमि सुवर्णमयी हो गयी । यह लीला देखकर हनुमान् चकित हो गये और गर्म ही सीताके संयोग आये ॥ २७४-२७६ ॥ लङ्कावनमें सीताको पूर्ववत् स्थित देखकर कपिकुञ्जर हनुमान् सीतासे बोले हे जानकी ! आप मेरे कन्धे-

इत्युक्त्वा तत्करे सीता ददौ श्रीराममुद्रिकाम् । ततस्तां मारुतिः पृष्ट्वा नत्वा शीघ्रं ययौ पुनः ॥२७९॥
 आरुह्य सुवेलाद्रिं चूर्णं तमकरोद्विरिम् । एतस्मिन्नतरे ब्रह्मा ददौ पत्रं सविस्तरम् ॥२८०॥
 यद्यत्कृतं मारुतिना लक्षायां तस्य सूचकम् । तद्गृह्य मारुतिर्वैमान् नत्वा पृष्ट्वा विधिं पुनः ॥२८१॥
 तत्र उद्गीय वेगेन यथावाकाञ्चकर्मणा । कुर्वन् शब्दं महाघोरं कर्षीनामूर्ध्वतस्तदा ॥२८२॥
 उद्विश्यतरा किञ्चित्पपात भुवि मारुतिः । ततो दृष्ट्वा कर्षास्तत्र दृष्ट्वैकं मुनिमत्तमम् ॥२८३॥
 किञ्चिद्भ्रममाविष्टस्तं मुनिं प्राह मारुतिः । मया श्रीरामकार्यं तु कृतमस्ति मुनीश्वर ॥२८४॥
 पानीयं पातुमिच्छामि दर्शयस्व जलाशयम् । तर्जन्या दर्शयामास मुनिस्तस्मै जलाशयम् ॥२८५॥
 ततः स मारुतिर्मुद्रां मणिं पत्रं मुनेः पुरः । सस्थाप्य नीरं पातुं वै ययौ कासारमुत्तमम् ॥२८६॥
 ततस्तत्र कपिः कश्चिन्मुद्रिकां मुनिमनिधौ । कमण्डलीं प्राक्षिपन्म ययौ तावच्च मारुतिः ॥२८७॥
 गृहीत्वा त मणि पत्रं मुनिं पप्रच्छ मुद्रिकाम् । मुनिभ्रमं ज्ञया तस्मै कमण्डलुमदर्शयत् ॥२८८॥
 ततः कमण्डलीं तूर्ण्यै मुद्रिकामवलोकयन् । तावद्दर्शाञ्जनेयस्तस्मिन् श्रीराममुद्रिकाः ॥२८९॥
 दृष्ट्वा सहस्रशस्तत्र चक्रितः प्राह त मुनिम् । कुतस्त्विमा मुद्रिकाश्च वद का मम मुद्रिका ॥२९०॥
 एतासु त्वं मुनिश्रेष्ठ तदा तं मुनिरब्रवीन् । यदा यदा वायुपुत्रः सीतां तां राघवाक्षया ॥२९१॥
 लक्षां गन्वा समानीता स्याद्विमुद्रास्तदा तदा । मदग्रे स्थापितास्ताश्च कपिभिश्च कमण्डली ॥२९२॥
 निक्षिप्तास्तास्त्विमाः सर्वा पश्यतासु स्वमुद्रिकाम् । तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा गतगर्वस्तमब्रवीन् ॥२९३॥
 कियंतो राघवाश्चात्र समायाता मुनीश्वर । मुनिस्तं प्राह निष्कास्य गणयस्वाद्य मुद्रिकाम् ॥२९४॥

पर सवार हो आये, तो मैं आपकी ले चलकर आज ही रामका दर्शन करा दूँ ॥ २७७ ॥ जानकीने कहा—मुख दूसरा कोई छुड़ाकर ले जाय, इस बातको भगवान राम सहन नहीं कर सकेगे। इसलिये तुम इस अंगूठीको ले जाकर रामको दे दो ॥ २७८ ॥ इतना कहकर सीताजान हनुमानके हाथमें वह मुद्रिका दे दी। तब हनुमानजी सीताकी आज्ञा ले तथा नमस्कार करके शीघ्र ही लौट पड़े ॥ २७९ ॥ उन्होंने समुद्रके किनारे-वाले पर्वतपर चढ़कर उसे चूर्ण कर डाला। उस समय ब्रह्माजाने विस्तारपूर्वक एक पत्र लिखकर उन्हें दिया ॥ २८० ॥ जिसमें यह लिखा था कि लक्ष्मण जाकर मारुतिने क्या-क्या काम किया है। उसको लेकर ब्रह्माकी आज्ञा ले तथा उ-ह नमस्कार करके हनुमान् पुन वहाँमें उड़कर आकाशमार्गसे घार तथा महान् वानरोकी तरह शब्द करते हुए जोगसे चल पड़े ॥ २८१ ॥ २८२ ॥ उत्तर दिशाकी ओर कुछ दूर आगे जाकर नीचे उतरे तो वहाँ उन्होंने एक मुनिको विराजमान देखा ॥ २८३ ॥ तब कुछ गर्वसे मारुतिने कहा हे मुनीश्वर! मैं श्रीरामका काम करके आ रहा हूँ ॥ २८४ ॥ यहाँ मैं पानी पानकी इच्छासे आया हूँ। मुझे कोई जलाशय बतलाइये। तब मुनिने उन्हें तर्जनी अंगुलीसे जलाशय बतला दिया ॥ २८५ ॥ तदनन्तर हनुमान् अंगूठी, चूड़ामणि तथा पत्र मुनिके पास रखकर उस उत्तम तालाबकी ओर जल पाने गये ॥ २८६ ॥ इतनेमें किसी बन्दरने आकर रामकी मुद्रिकाको मुनिके पास रखके कमण्डलुमें डाल दिया। उधरसे हनुमान्जी भा आ पहुँचे ॥ २८७ ॥ चूड़ामणि तथा पत्रके विषयमें उन्होंने मुनिसे पूछा कि मुद्रिका कहाँ गयी? मुनिने धौंहेके संकेतसे कमण्डलु दिखाया ॥ २८८ ॥ जब हनुमान्ने कमण्डलुमें देखा तो उसमें श्रीरामकी हजारों मुद्रिकाएँ दिखायी दीं। तब हनुमान्ने आश्चर्यचकित होकर मुनिसे पूछा कि इतनी अंगूठिये कहाँसे आयीं, सी बताइए ॥ २८९ ॥ २९० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! आप यह भी जानिये कि इनमेंसे मेरी मुद्रिका कौन सी है? मुनिने उत्तर दिया कि जब-जब श्रीरामकी आज्ञासे हनुमान् नन्कामे जाकर सीताका पता लगाया है और अंगूठियें मेरे नामने रखी हैं, तब-तब बन्दरोंने उन्हें इस कमण्डलुमें डाल दी हैं। वे ही ये सब हैं। इनमेंसे तुम अपनी अंगूठी खोज लो। मुनिके इस वाक्यको सुनकर हनुमान्का गर्व खर्ब हो गया। तब उन्होंने मुनिसे कहा— ॥ २९१ ॥ २९२ ॥ हे मुनीश्वर! यहाँ निजने राम आये हैं? मुनिने कहा—कमण्डलुमेंसे अंगूठियें निकालकर

कमंडलोरंजलिभिस्तदाऽथ मुद्रिका मुहुः । बहिः क्षिपन्मारुतिः स नांतं तामा ददृशे सः ॥२९६॥
 पुनः कमंडलौ कृत्वा मुनिं नत्वा कपिः क्षणम् । चिंतयामास मनसि मादृगैः शनञ्च पुनः ॥२९७॥
 समानीतास्ति सीतायाः शुद्धिः का गणनाऽद्यमे । इति निश्चित्य मनसि गतगर्वस्तदा कपिः ॥२९८॥
 पुनर्दक्षिणमार्गेण ययौ यत्रांगदादयः । प्रायोपवेशनम्यास्ते त दृष्ट्वा तुष्टमानसाः ॥२९९॥
 बभूवुर्दानवाः सर्वे समालिङ्ग्याथ तं मुहुः । ज्ञात्वा तन्मुखतः सीता दृष्ट्वाऽशोकवने त्विति ॥३००॥
 ययुस्ते राघवं भीष्मं मार्गे सुग्रीवपालितम् । दृष्ट्वा मधुवनं सर्वे दृष्ट्वा त वालिनंदनम् ॥३०१॥
 फलानि भक्षयामासुर्दधिवक्त्रो न्यपेधयत् । ततस्ते ताडयामासुर्दधिवक्त्रं कपीश्वरम् ॥३०२॥
 ज्ञात्वा तं मातुलमपि सुग्रीवस्यांगदादयः । स गत्वा सकलं वृत्तं सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥३०३॥
 सोऽपि श्रुत्वा जनकजा दृष्ट्वा तैरित्यमन्यत । नोचेन्मधुवनं रम्यं कथमग्नन्ति वानराः ॥३०४॥
 ततो विमर्जयामास दधिवक्त्रं कपीश्वरः । मा निपेधस्त्वया कार्यस्त्वं ग्रीव प्रपयस्व तान् ॥३०५॥
 मर्मांतिकं ततो गत्वा दधिवक्त्रस्तथाऽक्रोन् । ततः सुग्रीववचनं श्रुत्वा तेन समीक्षितम् ॥३०६॥
 ययुस्ते वानराः सर्वे रामं नत्वा पुरःस्थिताः । ततो हर्षान्मारुतिः स ब्रह्मपत्रं न्यवेदयत् ॥३०७॥
 दत्त्वा चूडामणिं रामं काकवृत्तं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा सकलं वृत्तं ज्ञात्वा मारुतिना कृतम् ॥३०८॥
 लकायां वायुपुत्रेण रामस्तुष्टो बभूव सः । समालिङ्ग्य हनुमतं राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥३०९॥
 तत्रोपकारिणश्चाहं न पश्याम्यद्य मारुते । कर्तुं प्रत्युपकारं ते धन्योऽसि जगतीतले ॥३१०॥
 परिरंभो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः । अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽमिहरिपुङ्गव ॥३१०॥

यत्पादपद्मयुगलं तुलसीदलाग्रैः संपूज्य विष्णु पदधीमतुल्यं प्रयानि ।

गिन लो ॥ २९३ ॥ २९४ ॥ अब हनुमान् कमण्डलुसे अंजली भर-भरकर बरम्बार अंगूठिये बाहर निकालने लगे । पर कहीं उनकी अन्त नहीं हुआ ॥ २९५ ॥ तब फिरसे उन्हें कमण्डलुसे भर दिया और मुनिका नमस्कार करके क्षणभरके लिए वे मनम विचार करने लगे कि ओह ! पहिले मेरे जैसे सैकड़ो हनुमान् जाकर सीताकी खबर ले आये हैं तो मेरी कीन-सी गिनती है । यह निश्चय करके वीर मारुति कमण्डलुकी त्याग-कर दक्षिणमार्गमें जहाँ अङ्गदादि वानर बंटे थे, वहाँ गये । उपवामो दशार्धमें बँटे हुए वे सब वानर हनुमानकी देखकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २९६-२९८ ॥ वे सब उनकी बार-बार हृदयमें लगाने लगे और उनके मुखसे यह मुनकर कि मैं सीताको अशोकवाटिकामें देख आया हूँ ॥ २९९ ॥ तब सबके सब तुरन्त रामका आर चले पडे । रास्तेमें उन्हें सुग्रीवका सुरक्षित मधुवन दिखाई दिया । तब सब वानर वालिक पुत्र अङ्गदसे पूछकर ॥ ३०१ ॥ उस वनके फल खाने लगे । जब उसका रक्षक दधिमुखने रोका तो वे उसको मारने लगे ॥ ३०२ ॥ यह जाननपर भी कि यह सुग्रीवका मामा है, तथापि उसे पाटकर ही छोडा । तदनन्तर दधिमुखने जाकर सब हाल सुग्रीवको कह सुनाया । यह मुनकर सुग्रीवने समझ लिया कि उन्होंने जनकतनयाका पता पा लिया है नहीं तो वे लोग मधुवनके फल बरकर लाते ॥ ३०३ ॥ ३०४ ॥ पश्चात् कपीश्वर सुग्रीवने दधिमुखको भक्षण बुझाकर लीलाया और कहा कि उन्हें राकी मत, यहाँ भेज दो ॥ ३०५ ॥ सुग्रीवकी बात मानकर उसने वहाँ ही किया । पश्चात् वे सब वानर दधिमुखसे सुग्रीवका आदेश सुनकर ॥ ३०६ ॥ रामके पास गये तथा रामके चरणोंके उत्तर से भले खडे हो गये । तब हनुमान्ने सहर्ष ब्रह्माका दिया हुआ पत्र रामको अर्पण किया । तब ब्रह्माका दक्ष जदन्त कीवका वृत्तान्त कह सुनाया । सो सुनकर राम अङ्गाम हनुमान्का किया हुआ कार्य जानकर ॥ ३०६ ॥ ३०७ ॥ ब्रह्माके पत्रसे राम अतिशय सन्तुष्ट हुए । तदनन्तर राम हनुमान् के पास राम करके चले— ॥ ३०८ ॥ हे मास्त ! तुमने मेरा बडा उपकार किया है । इस उपकारका प्रत्युपकार करनेके लिये मुझ कुछ नहीं सूझता । सबमुच तुम संसारमें बन्ध हो ॥ ३०९ ॥ इस संसारमें साक्षात् परमात्मिका (मर्या) परिरम्भ (आलिङ्गन) दुर्लभ है, वह तुमको प्राप्त हो गया । इस कारण है हरि-पुङ्गव 'तुम प्रिय भक्त हो ॥ ३१० ॥ जिन विष्णुके दोनों चरणकमलोका तुलसीपत्र तथा जल आदिसे पूजन

तेनैव किं पुनरमौ परिबध्मूर्त्तिं रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुंजः ॥३११॥

रामं स मारुतिः प्रहृ भानभीतोऽतिक्रिपितः । मयाऽपराधितमिति सुद्रावृत्त पुनेर्वचः ॥३१२॥

तच्छ्रुत्वा रामचन्द्रोऽपि विहस्योवाच मारुतिम् । मयैव दर्शितं मार्गं कौतुकं मुनिरूपिणा ॥३१३॥

त्वद्दर्शपरिहारार्थं मुद्रिकां मन्करे त्विमाम् । कनिष्ठिकायां त्वं पश्य समानीता त्वयाद्य वै ॥३१४॥

ता राममुद्रिकां दृष्ट्वा श्रीरामस्य करागुलौ । ननाम गतवर्गः स रामं विष्णुममन्यत ॥३१५॥

मदप्यस्यैव कृपया पौरुषं चेत्यमन्यत । एवं गिरिद्वजे प्रोक्तं चरित्रं सुंदराभिधम् ॥३१६॥

रामार्थं वायुपुत्रेण कृतं सर्वार्थदायकम् ॥३१७॥

इति श्रोतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
सुन्दरचरित्रे सीताशुद्धिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

दशमः सर्गः

(राम-रावणसेनाका संघर्ष)

श्रीशिव उवाच

अग्रह मारुति रामो मां वदस्व सविस्तरम् । लंकास्वरूपं ज्ञात्वा च प्रतीकारं करोम्यहम् ॥ १ ॥

तद्रामरचनं श्रुत्वा कथयामास मारुतिः । लंका दिव्यपुरी देव त्रिकूटशिखरे स्थिता ॥ २ ॥

स्वर्णप्राकारसहिता स्वर्णाड्डालकमंथुता । पस्त्रिभिः परिवृता पूर्णाभिर्निर्मलोदकैः ॥ ३ ॥

नानोपवनशोभाढ्या दिव्यवापीभिरावृता । गृहैर्विविचित्रशोभाढ्यैर्मणिरत्नभयैः शुभैः ॥ ४ ॥

पश्चिमद्वारमापाद्य गजवाहाः सहस्रशः । उत्तरद्वारि तिष्ठन्ति वाजिवाहाः सपत्नयः ॥ ५ ॥

दशकोटिमिता सेना विविधाधुधमण्डिता । लंकायाः परिता व्याप्ता सतर्का रक्षते पुरीम् ॥ ६ ॥

करक मनुष्यमात्र विष्णुक अनुपम पदको प्राप्त करता है । उन्हीं साक्षात् रामके द्वारा आलङ्कित होकर वायुपुत्र हनुमान् यदि कहान् पुष्पशाली वन जायें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ३११ ॥ तदनन्तर उसके भारे कापते हुए मारुतिने रामसे अपना गर्वरूपी अपराध, मुद्रिकाका वृत्तान्त तथा मुनिका वचन कह सुनाया । ३१२ ॥ यह सुना ता रामचन्द्रने हँसकर कहा कि यह कौतुक मेने ही मार्गमें मुनिरूप धारण करके दिखलाया था ॥ ३१३ ॥ यह काम मैंने तुम्हारे गर्वको छुड़ानेके लिये ही किया था । यह देखो, जिस मुद्रिकाको तुम ले आये थे, वह तो मेरे हाथका कनिष्ठिका अंगुलीमें विद्यमान है ॥ ३१४ ॥ रामके हाथमें रामकी अंगुली देखो ता गर्व छोड़कर हनुमान्ने धमस्कार किया और उन्हे साक्षात् विष्णु माना ॥ ३१५ ॥ और यह भा माना कि इन्हींकी कृपासे मुझमें भी पौरुष आ गया है । हे गिरिद्वजे । रामके लिये वायुपुत्रके द्वारा किया हुआ सर्वार्थसाधक सुन्दर चरित्र मैंने तुमको इस प्रकार कह सुनाया । ३१६ ॥ ३१७ ॥ इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे भाषाटोकायां सुन्दरचरित्रं सीताशुद्धिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

शिवजी बोले—हे पार्वती ! रामने मारुतिसे कहा—तुम हमको विस्तारसे लंकाका स्वरूप बताओ । चन्द्राका स्वरूप जानकर मैं प्रतीकारका उपाय सोचूँगा ॥ १ ॥ रामकी बात सुनकर मारुतिने कहा—हे देव ! त्रिकूट पर्वतके शिखरपर वह लङ्का नामकी दिव्य पुरी बसी हुई है ॥ २ ॥ उसके चारों ओर सोनेका गढ़ है तथा वह सोनेकी अटारियोंवाले भवनोसे सुशोभित है । निर्मल जलसे परिपूर्ण खाईसे वह नगरी घिरी हुई है ॥ ३ ॥ अनेकानेक उपवनोसे सुन्दर, दिव्य बावलिओंसे आवृत तथा विचित्र विचित्र शोभावाले मणियोंके लम्बोवाले सुन्दर महलोंसे सजी हुई है ॥ ४ ॥ उसके पश्चिमी द्वारपर हजारों गजारूढ़ तथा अश्वारूढ़ सिपाहो लड़े रहते हैं ॥ ५ ॥ दस कराड़ पैदल तथा सवार सैनिक विविध शस्त्रस्त्रोसे सुसज्जित होकर लङ्काका

निष्ठम्यर्चुदमंल्याना भजाश्चश्चतयः । रक्षयति मदा लकां नानाश्रुकुशलाः प्रभा ॥ ७ ॥
 सक्रमंविधिवैलका क्षतघ्नाभिश्च संयुता । एवं स्थितायां देवेश मृगु त्वहामचेष्टितम् ॥ ८ ॥
 दशाननवर्लाघम्य चतुर्धाशो मया हतः । दाया लंकापुरी स्वर्णप्राकारा धर्षिता मया ॥ ९ ॥
 क्षतघ्न्यः संक्रमाश्चैव नाशिता मे रघुदह ! देव त्वदर्शनदेव लका मस्मीमकेत्पुनः ॥ १० ॥
 मुवेलाद्रिशोचरेऽस्ति परलंकाऽस्ति पश्चिमे । निकुम्भिला दक्षिणेऽस्ति तत्रास्ते योगिनीवटः ॥ ११ ॥
 पूर्वे च लघुलंकाऽस्ति सा मध्ये कातिमहिता । विक्रान्तशिवरे रम्ये मन्पूच्छानलधर्षिता ॥ १२ ॥
 प्रस्थानं कुरु देवेश गच्छामो लवणार्णवम् । तन्मारुतेर्वच श्रन्वा सुग्रीवं प्राह राघवः ॥ १३ ॥
 मृग्यायमनिकान् सर्वान्प्रस्थानायाभिनोदय । इदानीमेव विजयो मृहुर्नन्वद्य वर्तते ॥ १४ ॥
 आश्विनी शुक्लदशमी श्रवणर्क्षममन्विता । शुभाष्ट्य वानरश्रेष्ठ गच्छामो लवणार्णवम् ॥ १५ ॥
 रथन्तु यूयथाः सेनामग्रे पृष्ठे च पार्श्वयोः । नलो भवन्वग्रमरः पृष्ठे नीलोऽथ रथतु ॥ १६ ॥
 मुपेणः सव्यपार्श्व मे जायवानितरे मम । गजो गवाक्षो गवयो मैदश्चनेऽथ वानराः ॥ १७ ॥
 रक्षिनेग्निवाय्वीश चतुर्दिक्षु ममन्तवः । रथन्तु वानरीं सेनां द्विविदाद्यास्तथाऽग्रे ॥ १८ ॥
 सर्वे गच्छन्तु सर्वत्र सेनायाः सस्रधातिनः । आरुह्य मारुतिं चाह गच्छाम्यग्रेऽङ्गदं ततः ॥ १९ ॥
 आरुह्य लक्ष्मणो यातु सुग्रीवं त्व मया मह । आगच्छस्वेति चाह्वाप्य हारीन्द्ररामः मलक्ष्मणः ॥ २० ॥
 प्रतस्थे दक्षिणाश्रयां सेनामध्यगतो विश्वः । तदा ते कपयश्चक्रुर्धुःकारान् भयानकान् ॥ २१ ॥
 शदयामासुवाद्यानि पणवानकगोमुखैः । वारणेद्रनिनाः सर्वे वानराः कामरूपिणः ॥ २२ ॥
 गतास्तदा दिवागत्रं कचित्तस्थुर्न ते क्षणम् । अमवच्छल्लङ्घना लकां गच्छो राघवस्य हि ॥ २३ ॥
 ते सर्वे समनिक्रम्य मलयं च नद्या गिरिम् । आयुश्चानुपूर्व्येण ते सर्वे दक्षिणार्णवम् ॥ २४ ॥
 घाते आरसे रक्षा कर रहं है ॥ ६ ॥ उनमें विषय गुग्गु लया है और उसके गढ़पर अनेक तोप भी रखी हुई हैं । हे देव ! इस दशम में भी आपके इस दासने वहाँ जाकर जो कुछ किया, सो मुनिधे ॥ ७ ॥ ८ ॥
 मैंने वहाँ जाकर रावणकी चौथाई सेना भार डाली है । लङ्कापुरीको जलाकर स्वर्णप्राकार गिरा दिया है ॥ ९ ॥ हे रघुदह ! मैंने तोप तथा मुरगें तोड़ डाली हैं । हे देव अब आपके जानेमात्रसे ही लका पुनः भग्म हो जायगी ॥ १० ॥ उस लकाके उत्तर मुवेलाद्रि है । पश्चिम परलंका है । दक्षिण निकुम्भिला है । जहाँपर योगिनीवट विद्यमान है ॥ ११ ॥ पूर्वकी ओर लघु लंका है, जिसका मध्यभाग बड़ा ही रमणीक है । उस विक्रान्त शिखरपर बसी हुई लंकाको मैंने अपनी पूँछकी आगसे जला दिया है ॥ १२ ॥ हे देव ! अब आप प्रस्थान करें । हम लोग क्षार समुद्रकी ओर चले । मादृत्तिका वास मूनकर रामने सुग्रीवसे कहा-॥ १३ ॥
 हे सुग्रीव ! समस्त तनिकोंको प्रस्थान करनेके लिए आज्ञा दे दो । आज इसी समय विजयप्राप्तिका शुभ मुहूर्त है ॥ १४ ॥ आज श्रवणक्षयसे युक्त आश्विन शुक्ल दशमीकी शुभ तिथि है । हे वानरश्रेष्ठ ! हम लोग आज श्रवणसागरकी ओर अवध प्रस्थान करें ॥ १५ ॥ बड़े बड़े यूययनि वानर सेनाकी आगे लँछे और बगलमें रक्षा कर । आगे मल तथा पीछे नल रक्षा करें ॥ १६ ॥ मुपेण मैंने बाई ओर तथा जायवान् मरी द हिनी बगलमें रहें । गज, गवाक्ष, गवय और मैद ये सब वानर अग्निकोण, नैऋत्यकोण, वायव्यकोण तथा ईशानकोणमें रहकर वानरी सेनाकी चोतरफा रक्षा कर । शत्रुओंका मारनेमें निपुण द्विविद आदि वानर भी सेनाको सब ओरसे घेरकर चले । मादृत्तिक कन्धोंपर सवार हाकर मैं आगे चलता हूँ और मेरे पीछे अंगदके कन्धोंपर सवार होकर लक्ष्मण चले । हे सुग्रीव ! तुम भी मेरे साथ चलो । इसी प्रकार अन्य सब वानरोंकी 'चलो' ऐसा आज्ञा देकर लक्ष्मण सहित राम सेनाके बीच होकर दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये । उस समय वे वानर भयानक धूमकार करने लगे ॥ १७-२१ ॥ वे लोल, मृदंग तथा गीतों मुख सहज बाजे बजाने लगे । शृङ्गरूप धारण करनेवाले तथा श्रेष्ठ हाथियोंके समान वीर सब वानर क्षणभर भी विश्राम न करके चलने लगे । लंकाके लिए प्रस्थित रामको अन्ध-अन्ध शत्रुन दीख पड़े ॥ २२ ॥ २३ ॥ वे सह्यपर्वत तथा

कृतः सेनानिवामश्च राघवणाधिर्मरुते । चकुर्मन्त्र सागरस्य तरणार्थं प्लवंगमाः ॥२५॥
 लंकायां वायुपुत्रेण कृतं दृष्ट्वा म रावणः । प्रहस्तादींस्तदा प्राह कथमग्रे भविष्यति ॥२६॥
 एकेन कपिनाऽस्माकं पुरतो ज्वालितो पुरी । दृष्ट्वा सीता वनं भयं राक्षसा निहता रणे ॥२७॥
 ममानिलालिनः पुत्रः कनोयाबिहतो रणे । तदा ते मन्त्रिणः सर्वे ददुर्घयं दशाननम् ॥२८॥
 गजन्तुपेक्षितोऽस्माभिर्मरुतोऽयमिति स्फुटम् । वयं तवात्तया कुर्मो जगत् कृत्स्नमवानरम् ॥२९॥
 कुम्भकर्णस्तदा प्राह रावणं राक्षसंश्वसम् । त्वया योरस्य कृतं नैनघट्टत्वा जानको हुता ॥३०॥
 यद्यप्यनुचितं कर्म न्वया कृतमजानता । सर्वं समं करिष्यामि स्वस्थचित्तो भव प्रभो ॥३१॥
 देहि देव ममानुतां हत्वा राम सलक्ष्मणम् । सुग्रीवं वानरांश्चैवागमिष्यामि पुनः क्षणात् ॥३२॥
 कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा तदा प्राह विभीषणः । महाभागवतः श्रीमान् रामभक्त्यैकतन्परः ॥३३॥

विलोक्य कुम्भश्रवणादिर्दैन्यान्मत्तप्रमत्तानतिविस्मयेन ।

विलोक्य कामातुरमप्रमत्तो दशाननं प्राह विशुद्धबुद्धिः ॥३४॥

न कुम्भकर्णेन्द्रांजनी च राजस्तथा महापार्श्वमहोदरा ती ।

निकुम्भकुम्भी च तथाऽतिक्रायः स्थातुं न शक्ता युधि राघवाग्रे ॥३५॥

सीतां च मत्कृत्य महाधनेन दत्त्वाऽभिरामाय सुखा भव त्वम् ।

नोचेन्न रामेण विमोक्षसे त्व गुप्तः सुरेन्द्रैरपि शकरेण ॥३६॥

एव शुभं रावणः म विभीषणवचो हिनम् । आत्मनः प्रतिजग्राह नैवार्मा सौख्यकागणम् ॥३७॥
 कालेन नोदितो दैन्यो विभीषणमवाव्रवीत् । बंधुरूपेण शत्रुस्त्वं जातो नास्त्यत्र सशयः ॥३८॥
 योऽन्यस्त्वेवविधव्यादाकथं हन्मि तदेव तम् । उत्तिष्ठ गच्छ दुर्बुद्धे धिक् त्वां रक्षःकुलाधम ॥३९॥
 रावणेनैवमुक्तः स परुषेण विभीषणः । चतुर्भिर्मन्त्रिभिर्मुक्तो ययौ श्रीराघवातिकम् ॥४०॥

मन्याचन होने हुए क्रमशः दक्षिण ममुद्रपर जा पहुँच ॥ २४ ॥ रामन उस वानरी सेनाको समुद्रके किनारे
 वायुम ठहरा दिया और सब वानर मित्रकर समुद्रका पार करनेकी समस्यापर विचार करने लगे ॥ २५ ॥ उधर
 वायुपुत्र हनुमान्क कृन्धको देखकर रावणने प्रहस्तादि मन्त्रियोंका बुलाकर पूछा कि अब आगे क्या
 होगा ॥ २६ ॥ एक ही वानरने हमारी सम्पूर्ण लंका नगरा जला दी । उसने साताको देख लिया, वनको उजाड़ा
 और राक्षसोंको मार डाला ॥ २७ ॥ मेरा अतिशय प्रिय छोट पुत्रको भी रणम उसने समाप्त कर दिया ।
 अब मैं मन्त्रों दशाननको घेव रिलान हुए कहन लगे ॥ २८ ॥ हे राजन् । यह तो हम लोगोंने वानर समझ-
 मन्त उन्की उपस्था कर दी थी । अब यदि आप आज्ञा दें तो हम समस्त ससारको वानररूप्य कर दें ॥ २९ ॥
 कुम्भकर्णन राक्षसेश्वर रावणसे कहा—आपने यह उचित नहीं किया, जो जाकर जानकीको उठा लाये ॥ ३० ॥
 उचित आपने अनजानमें यह अनुचित काम किया है । तथार्थ मैं सब कुछ ठीक कर दूँगा । हे प्रभो !
 मैं निश्चिन्त रहे ॥ ३१ ॥ आप मुझको आज्ञा दें तो लक्ष्मणसहित राम, सुग्रीव और सब वानरोंको मारकर
 हम सब लौट आऊँ ॥ ३२ ॥ कुम्भकर्णका बात सुनकर भगवद्भूतोमें श्रेष्ठ तथा धर्मान् रामकी भक्तिमें लौलान
 उक्त प्रमत्त प्रमत्त कुम्भकर्ण आदि दैत्योंकी ओर दृष्टि डालते हुए कामातुर दशाननसे विचारपूर्वक कहा—
 ३३ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! कुम्भकर्ण, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ और अतिक्राय भी युद्धमें
 मन्त्रक सामने नहीं ठहर सकते ॥ ३५ ॥ इसलिए आप रामका प्रचुर धनसे सत्कार कर और उन्हें साता
 सम्मान करके सुखसे रहे । नहीं तो सुरेन्द्र तथा शंकरका शरणमें जानेपर भी आपको वे आविष्ट नहीं छाड़ने
 ॥ ३६ ॥ इस प्रकार शुभ तथा हितभर विभीषणक वाक्यको भी रावणने अपने प्रतिकूल ही समझा ॥ ३७ ॥
 कुम्भसे प्रेरित दैत्य रावणने विभीषणसे कहा—नि सन्देह तू बंधुरूपमें मेरा शत्रु है ॥ ३८ ॥ यदि और कोई
 कुम्भसे ऐसा कहता तो मैं उसका उसी समय मार डालता । ओ दुर्बुद्धे ! मेरे राक्षसाधम ! तुझे चिन्तार

गन्धश्चापि त्वं ज्ञात्वा तेन सख्यं चकार सः । हनुमतोदधेस्तीरे लंकां च सिकतोद्भवाम् ॥४१॥
 कारयित्वा रघुश्रेष्ठस्तत्र मित्रं विभीषणम् । लंकायार्थं च राज्यायै वानरैरभ्यवेचयत् ॥४२॥
 तदा विभीषणः प्राह रामचन्द्रो विद्वस्य च । न्यासभूता त्वयि लंका तावत्कालं तवास्ति मे ॥४३॥
 यावता रावणं हन्वा तव दास्याम्यहं शुभात् । हनुमतास्त्वय नाम्ना लङ्का ख्याता गमिष्यति ॥४४॥
 हनुमल्लङ्काश्लेषेस्तारे वक्त्रेऽध्याप पावति । विभीषणाद्रावणान्ते रामस्तां मोचयिष्यति ॥४५॥
 एतस्मिन्क्षेत्रे तत्र गगनस्थः शुकोऽब्रवीत् । प्रेषिता रावणं नैव सुग्राहः प्राह वेगतः ॥४६॥
 त्वमाह रावणो राजा तव नास्त्यर्थविप्लवः । अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य किं तव ॥४७॥
 किष्किन्धां याहि हरिभिस्त्वं वैरं कुरु मामया । तं धृत्वा वानराः शीघ्रं बन्धुर्लब्धवधनैः ॥४८॥
 शार्दूलश्चापि सेनां तां दृष्ट्वाऽधपमसायत । तच्छ्रुत्वा रावणश्चापि दीधाचितापरोऽभवत् ॥४९॥
 रामं संमंत्रयामास तर्दकान्ते स्थितः क्षणम् । विभीषणेन सुर्यावमारातभ्यां समन्वितः ॥५०॥
 तीर्थाय जलधेर्मुलम् सस्थितो बन्धुना युतः । सर्वपां चचनं भ्रोतुं राघवेणाय सागरः ॥५१॥
 मेषवद्भ्रजनां कुर्वन् कामहस्तेन धिक्कृतः । अद्यापि सागरस्तत्र तूर्णमेव स विद्यते ॥५२॥
 ततः संमन्य रामस्तु तदा सागरोधसि । प्राचोपवेशनं चक्रं दभोनास्त्यार्यं वेगतः ॥५३॥
 दिनद्वयमतिक्रम्य तृतीयदिवसे तदा । उत्थाय दभश्चयनात्पुनर्लक्ष्मणव्रवीत् ॥५४॥
 पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिवर्मापुपागतम् । नाभिनन्दति दुष्टात्मा दशेनार्यं ममानध ॥५५॥
 जानाति मानुषोऽयं वा किं करिष्यात् वानरैः । अथ पश्य महाबाहा शपां यध्यामि वारिधिम् ॥५६॥
 पञ्चथामेवायं गच्छंतु वानरा विगतज्जवाः । इत्युक्त्वा चापमाकुप्य सदधे वाणहृत्तमम् ॥५७॥

है । उठ, यहाँसे निकल जा ॥ ३६ ॥ रावणक इस प्रकार धिक्कारनेपर विभीषण अपने चार मन्त्रियोंको साथ लेकर श्रीरामक समाप चला गया ॥ ४० ॥ रामने परिचय पूछकर उसके साथ मित्रता कर ली । तदनन्तर रामने हनुमान् स समुद्रक किनारे रतकी लंका बनवाकर उसमें अपने मित्र विभीषणका लंका राज्यके राजाके पदपर वानरी द्वारा अभिषेक करवा दिया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तब रामने हनुमकर विभीषणसे कहा—मित्र ! यह लंका तुम्हारे पास अबतक पराहररूपसे रहेगी । ४३ ॥ अबतक मैं रावणको मारकर तुम्हें लंका न दे दूँ, यह लंका हनुमान्क नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ४४ ॥ हे रावण ! बड़े हनुमान्को लंका अभी भी समुद्रक किनारे विद्यमान है । रावणका अन्त हो जानपर रम उसे विभीषणसे छुड़ा लेंगे ॥ ४५ ॥ तदनन्तर आकाशमें स्थित शुक्र बोला—ह सुग्राह ! मुझ बड़ा शीघ्रतान रावणने तुम्हारे रास भंजा है ॥ ४६ ॥ राजा रावणने कहा है कि हमने तुम्हारा काँद होता नहीं का है । यदि मैं राजपुत्र रामको रक्षा हरण कर ल्या तो इससे तुम्हारी क्या हानि हुई ॥ ४७ ॥ उन्होंने कहा है कि तुम हमारे साथ शयुता न करके वंदरीकी लेकर किष्किन्धा लौट जाओ । इसका कहना था कि वानरीने उस राक्षसका पकड़कर लाहूँका जंज रोमे जकड़ दिया ॥ ४८ ॥ उसके साथ गुप्तरूपसे आया हुआ दूसरा कर्दूल नामका राक्षस उस विशाल सेनाको देखकर रावणक पास गया और वानरी सेनाका पराक्रम कह सुनाया । सो सुनकर रावण बड़ी भारी चिन्ता में पड़ गया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

तदा चत्वाल बहुधा दिशश्च सममावृताः । चुञ्चुभे सागरो वेलां भयाद्योजनबन्धमात् ॥५८॥
 तिमिमकङ्कषा भीमाः प्रनम्राः वसिष्ठमुः । एतस्मिन्नन्तरे माक्षान्सागरो दिव्यरूपघृक् ॥५९॥
 शनैरुपायनं रामं समर्प्य प्रणनाम सः । अथ तुष्टाव दीनान्मा प्रार्थयामास राघवम् ॥६०॥
 अमयं देहि मे राम लंकापार्गं ददामि ते । इति तद्वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह सागरम् ॥६१॥
 अमोघोऽय महाबाणः कस्मिन्देहे निपात्यनाम् लक्ष्यं दर्शय मे शीघ्रं बाणस्यास्य पयोनिबे ॥६२॥

सागर उवाच

गमोनरप्रदेशोऽस्ति द्रुमकल्प इति श्रुतः । अदेरुस्तत्र बहवः पापज्जमानो दिवानिशम् ॥६३॥
 बाधन्ते मां रघुश्रेष्ठ तत्र ते पान्यतां शरः । रामेण वृत्तो बाणोऽमौ क्षणादार्थमंडलम् ॥६४॥
 दृष्ट्वा पुनः समागन्व तूर्णरे पूर्ववन्स्थितः । ततोऽवर्षाद्रघुश्रेष्ठ सागरो चितयान्वितः ॥६५॥
 मयि सेतुं कार्यस्व नलेनोपलनिर्मितम् । विध्वकर्मसुतश्चायं वगे लब्धोऽस्त्वनेन हि ॥६६॥
 द्विजस्य जाह्नवीतोये शालिग्रामस्त्वनेन हि । त्यक्तस्तदा तेन शमः पापाणां दि तरिष्यति ॥६७॥
 न्वदस्तादिति शापोऽयं वर एवाय स स्मृतः । इत्थुक्त्वा राघव नन्वा ययौ मिधुरदृश्यताम् ॥६८॥
 नलमाज्ञापयामास सेतुर्थं रघुनन्दनः । सेतुमागममाणस्तु विघ्नेना रथाप्य राघवः ॥६९॥
 नवग्रहाणां पूजार्थं पापाणां च सादरम् । नलहस्तेन मस्थाप्य पूर्वं तत्र महोदधी ॥७०॥
 ततः सागरसंयोगे स्वनाम्ना लिङ्गमुत्तमम् । स्थापयार्थाति निश्चिन्त्य मारुतिं वाक्यमब्रवीत् ॥७१॥
 काशीं गन्वा शिवाल्लिङ्गमाननीयमनुत्तमम् । मुहूर्तमध्ये नोच्यमे मुहूर्तातिक्रमो भवेत् ॥७२॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेयुक्त्वा स मारुतिः । यथावाक्यमार्गेण क्षणाद्वाराणभी मम ॥७३॥

जा सकेगे । इतना कहकर रामने वसुधपर बाण चढ़ाकर डोरी लीची । ५७ ॥ उस समय पृथ्वी भी उठी, सब दिशाओंमें अँधेरा छा गया, समुद्र भयसे डुबूब हाकर अपने किनारों पर चार कोस आगे बढ़ गया । ५८ ॥ मान, तिमि तथा क्षय नामकी मछलियाँ और मगरमच्छ आदि जलजन्तु संतप्त तथा व्याकुल हो गये । सब समुद्र दिव्य रूप धारण करके प्रकटा और रामकी रत्नोंकी भट्ट द तवा नमस्कार करके दीनभावसे प्रार्थना करने कहने लगा— ५९ । ६० ॥ हे राम ! कृपा करके आप मुझे अभयदान दें । मैं आपको लड़का जन्मका श्रुता अभी देता हूँ । उसके बचनको सुनकर रामने कहा— ६१ ॥ हे पयोनिबे ! वह मेरा महाबाण अमोघ है, यद्ये नहीं जा सकता । बतलाओ, इसे कहाँपर गिराऊँ । इस बाणका कोई लक्ष्य बताओ ॥ ६२ ॥ सागरन कथा— हे राम ! उसर दिशामें द्रुमकल्प नामका देश है । वहाँ बहुतरे पाप आधारे रहते हैं । वे पृथ्वी रात-दिन सताते हैं । हे रघुश्रेष्ठ ! आप इस बाणको वहाँ ही गिराइए । तदनुसार रामने बाण उँहा ली उसने जाकर क्षणभरमें समस्त आभीरमण्डलको मार डाला और पुनः वापस लौटकर रामके तरबसमें पूर्ववत् स्थित हो गया । बादमें सागरने दिनपूर्वक रघुश्रेष्ठ रामजीसे कहा— ६३ - ६५ ॥ हे राघव ! आप मेरे ऊपर नलके द्वारा पत्थरोंका पुल बँधवाएँ । नल विध्वकर्मकी पुत्र है । उसने जलपर पत्थर तैरानेका वर प्राप्त किया है ॥ ६६ ॥ एक बार हमने एक बाह्यणका पूज्य शालिग्राम उठाकर गङ्गाजीके जलमें फेंक दिया था । तब उसने आप दिया कि जा, तेरा फका पत्थर मी पानीमें तैरेगा ॥ ६७ ॥ वह शप भी वर मानी जायगा । रामने कह तथा रामकी नमस्कार करके समुद्र अदृश्य हो गया । ६८ ॥ तदनन्तर रघुनन्दन रामने नलको सेतु बाँधनेकी आज्ञा दी । सेतु बाँधने समय पहिले गणेशजीकी स्थापना की गयी ॥ ६९ ॥ पश्चात् नवग्रहोंकी पूजाके लिए नलके हाथसे सादर नौ पाषाणोंकी समुद्रमें स्थापना करवाई गयी ॥ ७० ॥ इसके बाद 'अपने नाम- ७१ में सागरके सङ्गमपर उत्तम शिवलिंग स्थापित करूँगा' ऐसा निश्चय करके रामने मारुतिसे कहा— ७२ ॥ हे मारुत ! तुम काशी जाकर शिवजीसे एक उत्तम लिंग मुहूर्तमात्रमें माँग ले जाओ । नहीं तो मेरा यह कुप हुआ जायगा ॥ ७३ ॥ रामकी आज्ञा सुनकर हनुमान्ने 'तथास्तु' कहा और क्षणभरमें उसकर

तत्रागत्याय मां नत्वा रामकार्यं न्यवेदयन् । तच्छ्रुत्वाऽथ मया देवि राघवाय हनूमते ॥७४॥
 द्वे लिङ्गे द्यपिते श्रेष्ठे तनोऽहं कपिमब्रुवम् । मयाऽपि दक्षिणे गतुं पूर्वमेव विनिश्चितम् ॥७५॥
 अगस्तिना विशेषेण यास्यामि राघवाञ्जया । एवं तद्वचनं श्रुत्वा मारुतिः प्राह मां पुनः ॥७६॥
 कदा विनिश्चितं पूर्वं त्वयाऽत्र कुम्भजन्मना । तत्पूर्वं मां वदस्वाद्य कृपां कृत्वा ममोपरि ॥७७॥
 तन्मारुतिवचः श्रुत्वा तनोऽहमब्रुवं कपिम् । मारुते त्वं मृणुष्याद्य पूर्ववृत्तं वदामि ते ॥७८॥
 कदाचिन्नान्दः श्रामान्स्नान्वा श्रानर्मदांभमि । श्रामदोकागमम्यर्घ्यं सर्वदं सर्वदेहिनाम् ॥७९॥
 ब्रजन्विलोकयाचक्रे पुरो विष्यं धराधरम्, संमास्तापमहारि रेवावारिपरिष्कृतम् ॥८०॥
 रूपद्वयेन कुर्वतं स्याद्वरेण घरेण च । साभिख्येन यथार्थाख्यामुन्नेर्वसुमतीमिमाम् ॥८१॥
 अथ त नारदं दृष्ट्वा विन्ध्यः प्रत्युज्जगाम मः । गृहमार्गाय विधिवत्पूजयामास सादरम् ॥८२॥
 गतश्रममथालोक्य वभापेज्जनतो गिरिः । अधमघः परिहृतस्त्वदंधिरजमा मम ॥८३॥
 त्वदगसंगिमहसा सहमाप्यांतरं नमः । मङ्गलधिकरं चाद्य सुदिनं चाद्य मे मुने ॥८४॥
 प्राकृतैः सुकृतेरद्य फलितं मे विगर्चितैः । धराधरस्त्वं कुलितु मान्यं मेऽद्य भविष्यति ॥८५॥
 इति श्रुत्वा तदा किञ्चिदुच्छ्रम्य स्थितवान्मुनिः । पुनरुच्ये कुलिवरः सभ्रमापन्नमानसः ॥८६॥
 उच्छ्रामकारणं ब्रह्मन् ब्रूहि मर्वार्थकाविद । तवाहं मार्जयाम्यद्य हृन्वेदं क्षणमाप्रतः ॥८७॥
 धराधर्यामामध्यं मेवादी पूर्वपुरुषः । वर्ण्यते समुदायात्तदहमेको दधे घराम् ॥८८॥
 गौरीगुरुवाद्धिमवानाधिपन्यास भूभृताम् । सम्बन्धित्वात्पशुपतेः स एको मानभृन्सताम् ॥८९॥
 न मेरुः स्वर्णपूर्णत्वाद्गन्तमानुतयाऽथवा । सुगन्धतया वाऽपि क्वापि मान्यो मतो मम ॥९०॥

आकाशमार्गसे (शिवकी) वाराणसी (काशी) नगरीमें आगय ॥ ७३ ॥ वहाँ आकर उन्होंने मुझको नमस्कार करके रामके कार्यके लिये निवेदन किया । हे देवि ! उस निवेदनको सुनकर मैंने रामके लिए हनुमान्को दो उत्तम लिङ्ग दिये और कहा कि हे कपि ! मैं भी दक्षिण दिशामें जानेका बहुत दिनोंसे निश्चय कर रक्खा है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ यह निश्चय अगस्त्य मुनिके साथ हुआ था । पर बादमें सोचा कि जब विशेष-रूपसे रामका आज्ञा हागी, तभी जाऊँगा । मेरे मुखसे यह सुनकर मारुतिने मुझसे फिर प्रश्न किया—॥ ७६ ॥ आपने पहिले कब और कहाँपर कुम्भजन्म (अगस्त्य) के साथ यह निश्चय किया था । यह सब हाल कृपा करके कह ॥ ७७ ॥ मारुतिकी बात सुनकर मैंने कहा—हे मान्ने ! मैं तुमको पूर्ववृत्तान्त बताता हूँ, सुनो ॥ ७८ ॥ एक समय श्रीमान् नारदमुनि नर्मदा नदीके पवित्र जलमें स्नान करके समस्त देहधारी प्राणियोंको सब कुछ देनेवाले ओंकारेश्वर शिवकी पूजा करके जा रहे थे । रास्तेमें संसार भरके तापको दूर करने-वाला तथा रेवाके जलसे परिष्कृत विष्णुपर्वत सामने दिखाई दिया ॥ ७९ ॥ ८० ॥ वह स्यावर तथा जंगम इन दो रूपोंसे इस वसुमती पृथ्वीको व्याप्य नाम प्रदान कर रहा था ॥ ८१ ॥ नारदको देखकर वह पर्वत सामने आया तथा उन्हें अपने घरपर ले जाकर सादर विधिवत् पूजन किया ॥ ८२ ॥ नारदजीका श्रम दूर हो जानेपर विन्ध्याचल विनम्र होकर कहने लगा कि आपके चरणरजसे मेरा पापपुञ्ज नष्ट हो गया ॥ ८३ ॥ हे महामुने ! आपके देहिक तेजके संसर्गसे अनेक मनोव्यथा पैदा करनेवाला मेरे हृदयका अन्धकार दूर हो गया । आज मेरे लिए बड़ा शुभ दिन है ॥ ८४ ॥ विरकालसे उपाजित मेरे प्राकृत पुण्य आज सफल हो गये । आजसे मैं पर्वतोंमें भानतीय पर्वत माना जाऊँगा ॥ ८५ ॥ यह सुनकर मुनिने कुछ लम्बी साँस ली । यह देखा तो घबराकर पर्वतने कहा हे सब अर्थोंको जाननेवाले ब्रह्मन् ! इस - आशका क्या कारण है ? आपके हृदयका संद मे अणभरमें मार्जित कर दूँगा ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ पूर्व पृथ्वीने मह आदि सब पर्वतोंको मिलाकर पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ बतलाया है, पर मैं अकेला ही उसको धारण कर सकता हूँ ॥ ८८ ॥ अभी गौरीका पिता होनेसे, पर्वतोंका अधिपति होनेसे तथा पशुपति शिवका सम्बन्धी होनेके कारण केवल हिमालय ही सज्जनोंके मानका पात्र है ॥ ८९ ॥ मेरी समझमें तो सोनेसे बरा हुआ तथा रत्नमय शिखरोंवाला

परं शतं न किं शैला इलाकलनकेलयः । इह मंति सर्वा मान्या मान्वास्ते तु स्वभूमिषु ॥९१॥
 मदेहदेहमंदोहा उदयैकयाश्रिताः । निषधश्रीषधिधरोऽप्यस्तोऽप्यस्मिन्निवसतः ॥९२॥
 नीलश्च नीलनिलपो पदरो मदलोचनः । सर्वालसः स मलयो गगं नावाप रैवतः ॥९३॥
 हेमकूटप्रिकूटायाः कूटोत्तरपदास्तु ते । किष्किधर्काचमत्ताद्या भारमग्रा न ते भुवः ॥९४॥
 इति विष्णवचः श्रुत्वा नागदो हृद्यचित्तयत् । अश्वत्थगर्वममर्गो न महत्प्राप कन्वते ॥९५॥
 श्रीशैलमुखाः किं शैला नेह सत्यमलश्रियः । देवां शिखरमात्रादिदर्शनं युक्तये मनाम् ॥९६॥
 अद्यावत्तलमालोच्यमिति ध्यान्वाऽब्रवीन्मुनिः । सत्ययुक्तं हि भवता गिरिगर्भं विवृण्वता ॥९७॥
 परः शैलेषु शैलेन्द्रो मेरुस्त्वामवसन्यते । मया निःश्वसितं चैतन्नयि चापि निवर्तितम् ॥९८॥
 अथवा मद्विधानां हि कैवलिना महान्मनाम् । स्वस्त्यस्तु तुभ्यमित्युक्त्वा पर्या म व्योमचर्मना ॥९९॥
 गते सुनो निनिद्र स्वमनाशोद्विप्रमानसः । चित्ते विचारयामास मंगः श्रेष्ठ्य कथं निवृत्ति ॥१००॥
 मेरुं प्रदक्षिणं कुर्यान्नित्यमेष दिवाकरः । सप्रदक्षिणो नूनं मन्यमानो बलाधिकम् ॥१०१॥
 इति निश्चिन्य विष्णाद्विर्वृद्धे स मृधेक्षणः । निरुध्य ब्राध्नमध्वान स्वस्थोऽभूद्भगनागणे ॥१०२॥
 ततः प्रभाते सूर्योऽमौ दिशि याम्या समुद्यतः । गतुं रुद्धं स्वपंधानं दृष्ट्वाऽस्वस्थोऽभगच्चिरम् ॥१०३॥
 योजनानां महसं द्वे द्वे शते द्वे च योजने । यः स्वस्थश्च निमेषादुर्ध्यानि नापि विरं स्थितः ॥१०४॥
 गते बहुतिथे काले प्राण्योर्दाह्या भृशादिताः । चण्डगडमेः करत्रातपानमतापनापिताः ॥१०५॥
 पाश्चात्या दाक्षिणान्याश्च निद्राभुद्रिडलोचनाः । श्रमिता एव दुश्यते सतारग्रहमवशम् ॥१०६॥
 स्वाहास्वधावष्टकारवर्जिते जगर्नातने । पंचयज्ञक्रियालोपाच्यकम्पे भुवनत्रयम् ॥१०७॥

नया दयताओंका निवासस्थान हसनपर भी मरु विशेष माननीय नहीं है ॥ ९० ॥ क्या पृथ्वीका घारण करने-
 का अन्य मकड़ों एवं इस मसारमें नहीं है ? क्या वे सभी पर्वत सभ्यजनोंके मान्य हैं ? नहीं, यदि है भी तो
 स्वयं अपने-अपने स्थानोंपर ॥ ९१ ॥ उदयोचन मन्द है । वह राहस्यको आधर देनेकी वृत्ता करनेमें ही समर्थ
 है । निषधगिरि औषधिमात्र घारण करता है । अम्नाचल नित्यज हो गया है ॥ ९२ ॥ नीलगिरि नाले
 नन्दगङ्गा समूहमात्र है । मन्दराचल मन्दहृष्टि है । मलय पर्वत सर्पोंका घर है । रैवत निधन है ॥ ९३ ॥ हेमकूट
 मरु प्रिकूट आदि केवल कूट उत्तरपदवाले ही हैं । किष्किया, श्रीख और सत्य पर्वत भी पृथ्वीके बोझका
 घारण करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ९४ ॥ विन्ध्याचलकी इस बातको सुनकर नारदन मनमें विचार किया कि
 क्या प्राणो महत्त्वके योग्य नहीं होता ॥ ९५ ॥ क्या इस समय में श्रीशैल आदि पर्वत विमल, कान्ति-
 मयन्त तथा यशस्वी नहीं हैं ? जिन्हें शिखरका देखनमात्रसे शुभ अन्त करणवाले महान् पुरुषोंको मुक्ति मिल
 जाना है ॥ ९६ ॥ अतएव आज इसके चलकी परीक्षा करनी चाहिए । ऐसा विचार करके नारद मुनिने कहा —
 मन्द पर्वतोंका बल ठाक बलन किया है ॥ ९७ ॥ पर पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरुपर्वत तुम्हारा अपमान करता है । वह
 तुम्हें या अपनेको बड़का मानता है । वस्तु, यही कारण है कि मैंने लम्बा श्वास लिखा था और यह बात
 लम्बे में कह दी ॥ ९८ ॥ अथवा हम जैसे महान्माओंको इस बातकी क्या चिन्ता है । तुम्हारा कल्याण
 ही इतना बड़कर मे व्योममार्गसे चले गये ॥ ९९ ॥ नारद मुनिके चल जानेपर अतिशय चिन्ताकुल होकर
 विन्ध्याचलने अपने आपका बड़ा निन्दा की और साचने लगा कि मेरी इतनी बड़ा महिमा क्यों है ? ॥ १०० ॥
 जो नया मलकों सहित सूर्यनारायण प्रतिदिन उसकी परिक्रमा करते हैं । सम्भवतः इससे उसको अपने
 सम्पत्ति तथा महत्त्वका अभिमान है ॥ १०१ ॥ ऐसा निश्चय करके विन्ध्याचलने उसकी समृद्धि देखने-
 के लिये अपने शरीर बहुत ऊपरकी खड़ाया और सूर्यके रास्तेको रोककर आकाशवासी आगनमें खड़ा हो गया
 ॥ १०२ ॥ प्रातःकाल सूर्यने दक्षिण दिशाकी ओर आनेका प्रस्थान किया । सब रास्ता रुका देखकर वे वहीं
 रुक गये । जब बहुत दिन बीत गये, तब सूर्यके प्रचण्ड क्षिरणमयूहके तापसे पूर्व तथा उत्तर दिशाके लोच
 रुक गये ॥ १०३-१०५ ॥ पश्चिम तथा दक्षिण दिशाके लोचोंकी आँखें निद्रासे मुंदी रहीं । वे जब

ततः सुग विधेर्वारुपादिगस्ति तद्विरेर्गुहम् । शर्ययाममुश्रान्न्य स मुनिर्विह्वलोऽभवत् ॥१०८॥
 तदाऽगस्तिर्मयोक्तः स गच्छ स्वं दक्षिणादिशम् । धाकपातेन गिरिं बद्ध्वा मा त्रिद स्वं भजस्व माय ॥१०९॥
 अहमप्यचिरेणैव तव सेदापनुत्तये । सेनां श्रामपूजार्थं यास्यामि दक्षिणां दिशम् ॥११०॥
 इति मद्रचनं श्रुत्वाऽगस्तिस्मुष्टमनास्तदा । मुक्त्वा काशीं ययौ विष्णं लोपामुद्रायमन्वितः ॥१११॥
 तमगस्त्यं सपत्नीकं दृष्ट्वा विष्णोऽतिकंपितः । अतिस्वर्वतरो भूत्वा त्रिविसुगवनीमिव ॥११२॥
 आह्लाप्रमादः क्रियतां किं करोमीति चाभवीत् । तद्विन्ध्यवचनं श्रुत्वाऽगस्तिः प्राह च सादरम् ॥११३॥
 विन्ध्य साधुरमि प्राज्ञो मां च जानासि तत्रतः । पुनरगमनं चेन्मे तावत्स्वर्वतरो भव ॥११४॥
 इत्युक्त्वा दक्षिणामाशामगस्तिः स ययौ तदा । वेपमानो गिरिः प्राह पुनर्जन्माह मेऽभवत् ॥११५॥
 उन्निष्ठो द्वादशार्धैः स मुनिं पश्यति दक्षिणे । नागतं तं मुनिं दृष्ट्वा पुनः स्वर्गोऽवनिष्ठते ॥११६॥
 अथ सो वा परमो वा द्वागमिष्यति वै मुनिः । इति चिन्तामहाभागैर्गिरिगक्रानवन्स्थितः ॥११७॥
 नाद्यापि मुनिगयाति नाद्यापि गिरिरेधने । अरुणोऽपि च तन्काले कालताऽश्चानकालयत् ॥११८॥
 जगन्स्याप्यमयापोर्च्यैः पूर्ववद्भानुमंचरैः । स मुनिर्दण्डकं गत्वा मद्राज्यं मंस्मान्ददि ॥११९॥
 करोति मन्त्रतीक्षां च तस्माद्यास्याम्यहं कपे । इत्युक्तो माहतिः काट्या मया देवि विमर्जितः ॥१२०॥
 जगामाकाशमार्गेण क्षीप्रं रात्रं स भारुतिः । किञ्चिद्वर्त्ममाविष्टो लिङ्गद्वयममन्वितः ॥१२१॥
 तद्वर्तं राघवो ज्ञान्वा सुग्रीवादीन् वचोऽब्रवीत् । मुहुर्तातिक्रमो मेऽद्य मयिष्यति ततस्त्वं हम् ॥१२२॥
 कृत्वा लिङ्गं सैवत च सौम्यादीं स्थापयामि वै । इत्युक्त्वा वानरान् सर्वान्मुनिभिः पतिवेष्टितः ॥१२३॥

श्री देवत हा आकाशमे पहु और मज्जा ही विद्यमान लिखायो दंत ये ॥ १०६ ॥ तत्संरम स्वाहा स्वयंकार
 वरुणार, अग्निहोत्र तथा पंचपक्षी क्रियाओंके छोड़ हो जानसे तौनो लोक बच उडे ॥ १०७ ॥ पश्चात्
 ब्रह्माजीके बहूनसे देवताओंने जाकर विन्ध्य पर्वतके गुरु आगस्त्य मुनिसे प्रार्थना की । तब मुनि धबराकर यहां
 काशीमें आये ॥ १०८ ॥ रौने (गिरिजाने) आगत्य मुनिमें कहा कि तुम दक्षिण दिशाकी ओर जाओ । वहाँ जाकर
 विष्णुआवरणको अपने बाग्यालयमें बाँधकर निश्चित भावसे मेरा भजन करना ॥ १०९ ॥ काशान्तरमें मैं भी
 तुम्हारा सेह दूर करनेके लिए सेनुवनपर रामकी पूजा प्राप्त करनेके लिए गाँव ही दक्षिण प्रदेशमें जाऊँगा
 ॥ ११० ॥ मेरे इस कथनका सुनकर आगस्त्यमुनि प्रसन्नपूर्वक उमरी समय काशी छोड़कर अपना रत्नी
 लोपामुद्राके साथ विन्ध्यपर्वतकी ओर चल पड़े ॥ १११ ॥ सपत्नीक मुनिको देखकर विष्णुआवरण को अपने
 लगा और मात्मी पृथ्वीम मुम जाना चाहता हो, इस प्रकार आनन्दय छटा रूप धारण करके बोला कि
 मैं आपका दास हूँ । मुझे कुछ आज्ञा देनेकी इया करें । विन्ध्यकी बात सुनकर आगस्त्य मुनि बोले— ॥ ११२ ॥
 ॥ ११३ ॥ हे विन्ध्य ! तुम गांधु पुरुष तथा दुर्द्धिमान हो और मुझे मली धाँत जानते हो । अतः जवनक मैं
 उषासे लौटकर पुनः यहाँ न आऊँ, तब तक तुम इस प्रकार वामनरूप में नीचा सिर बिछल रहो ॥ ११४ ॥ इतना
 कहकर आगस्त्य दक्षिणकी ओर चल गये । तब कम्पित होकर विन्ध्यने कहा कि आजकल दिन मेरा पुनर्जन्म
 हुआ है ॥ ११५ ॥ बागूहू वयं बाँध जब उसने सिर उठाकर दक्षिणकी ओर देखा तो मुनि नहीं दिखायी दिये ।
 तब फिर उसने वैसे ही नीचा सिर कर दिया ॥ ११६ ॥ काज, कल या परसतक मुनिको यहाँ अवश्य
 भा जाना चाहिये । इस प्रकार सचमा हुआ विन्ध्य बड़ी चिन्ता करने लगा ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ तब मुनि आत्र
 तक आये और न पशत सड़ा हुआ । कालकी गलिका जाननेवान् मूँके सारथी अरण्य में उसी
 समय अपने बोकोंको हक दिया ॥ ११९ ॥ तब मुनिके सचान्स जगत् पूर्ववत् पुन स्वस्थ हुआ । वे आगस्त्य
 मुनि दण्डकवनमें जाकर मेरे वन्दनका स्मरण करते हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं । इस कारण मैं कपि हनुमान् ।
 मैं वहाँ अवश्य जाऊँगा । हे देवि । इतना कहकर मैं आपत्तिको काशीसे विदा किया ॥ १२० ॥ १२० ॥ तब
 भारुति गाँव आकाशमार्गमें रामके पास बसे । उस समय मेरे दो लिङ्ग प्राप्त कहे उनके अन्तमें कुछ अग्निमान
 हुआ ॥ १२१ ॥ रामने इस गवँकी जान लिया और सुग्रीव आदिने कहा कि प्रतिष्ठाका मुहूर्त काता जा रहा
 है । इसलिए मैं आमुका लिङ्ग बनाकर सेनुके इस छोरपर स्थापित किये देता हूँ । तदनुसार सब मुनियों और

सैकतस्थापयामास लिङ्गं रामो विधानतः । तदा सस्मार पनसि कौस्तुभं रघुनन्दन ॥१२४॥
 तावद्ययी मणिः क्षीयं स्वात्कोटितपनोपमः । तं धरं ध मणिं कण्ठे कौस्तुभं रघुनन्दनः ॥१२५॥
 मण्डुर्ध्ववर्धनैर्वस्त्रैरक्षामरणधेनुभिः । दिग्पादोः पायसाद्यं पूजयामास तान् मुनीन् ॥१२६॥
 ततस्ते ह्यनयस्तुष्टा राघवेणातिपूजिताः । ययुः स्वीयाश्रयान् मार्गं तान्ददर्श स मारुतिः ॥१२७॥
 पप्रच्छ मारुतिर्विप्रान् ध्रुव केन प्रपूजिताः । तेऽप्युत्तुलिङ्गमाराध्य राघवेर्नव पूजिताः ॥१२८॥
 तत्संज्ञं वचनं श्रुत्वा क्रोधाविष्टोऽभ्यर्चितयत् । कृथाऽहं भमितस्तेन रामेणाद्य प्रहारितः ॥१२९॥
 इत्थं वदन्ययौ राम क्रोधात्स्वीयं पदद्वयम् । भुवि सताड्य पतितस्तदा भूम्यां पदद्वयम् ॥१३०॥
 गतं कपिस्तदा राममब्रवीन्किं न मे स्मृतः । सीताशुद्धिर्मया लकां गत्वानीतेति साऽद्य हि ॥१३१॥
 तस्य मेऽघोषवामोऽत्र काशीं प्रेष्य त्वया कृतः । किमर्थं भमितश्चाहं यदीत्थं ते हृदि स्थितम् ॥१३२॥
 जमविष्यन्मया ज्ञात चेत्पूर्वं हृदयं तव । काशीमहं तर्हि गत्वा किमर्थं लिङ्गमानये ॥१३३॥
 एकं स्वदर्शयामास तमपरं लिङ्गमुत्तमम् । मयाऽऽत्मार्यं समानीतं तवाग्रे किं करोम्यहम् ॥१३४॥
 एवं क्रोधयुतं वाक्यं किञ्चिद्दर्वममन्वितम् । रामः श्रुत्वा कपिं प्राह कपे त्वं सत्यवागसि ॥१३५॥
 यथैतत्स्थापितं लिङ्गं समुत्पाटय त्वं बलात् । स्थापयामि त्वयानीतं काश्या विश्वेश्वराभिधम् ॥१३६॥
 तद्येन्युक्त्वा मारुतिः स संकतस्येश्वरस्य च । सवेष्ट्य मस्तके पुनर्दं बलेनान्दोलयन्मुहुः ॥१३७॥
 मृष्टितं तत्कपेः पुनश्च पपात भुवि भूछितः । जहमुर्वानराः सर्वे न चत्तलेश्वरस्तदा ॥१३८॥
 प्वस्थो भूत्वा मारुतिः स गतगर्वस्तदाऽभवत् । ननाम पाश्या भक्त्या प्रार्थयामासु तं मुहुः ॥१३९॥
 मायाऽपराधितं राम तत्त्वमस्व कृपानिधे । तदाह मारुतिं रामस्त्वं मल्लिगोचरे त्विदम् ॥१४०॥

वनरोको बुलाकर रामन विधिवत् बालुक लिङ्गको स्थापित कर दिया । पश्चात् भगवान् रामने कौरुप्रभ मणिको स्मरण किया ॥ १२२-१२४ ॥ स्मरण करते ही करोड़ों सूर्यके समान प्रभाशाली बहु मणि आकाशमागमे आ गये । तब रघुनन्दन रामने उस मणिको कठमें बाँध लिया ॥ १२५ ॥ उस मणिसे प्राप्त धन, वस्त्र, आभरण, अन्न, धनु, दिव्य पशुवन तथा पायस आदिसे रामने पुनिमोका पूजन भक्तिकार किया ॥ १२६ ॥ श्रीरामस पूजा प्राप्त करके प्रसन्न वे मुनि अपने-अपने आश्रमोंको जा रहे थे, तभी रामतम उन्हें मारुतिने देख लिया ॥ १२७ ॥ तब हनुमान् उनसे पूछा कि आपकी पूजा किसन को है ? उन्होंने उत्तर दिया कि रामने शिवलिङ्गको आराधना तथा स्थापना करके हम लोगोंकी पूजा की है ॥ १२८ ॥ हनुमान् उनकी बात सुनी तो गुड़ हँकर विचारने लगे कि रामन आज मुझसे अत्यन्त परीक्षित कराके ठगा है ॥ १२९ ॥ यह विचारन हुए वे काबस रामके पास गये और जोरसे उन्होंने अपने दोनों पोंकोंको जमीनपर पटक दिया । इससे उनके दोनों पोंके पृथ्वीमें धँस गये । बादमें हनुमान् रामसे कहा कि क्या आपको मेरा स्मरण नहीं था ? जिस हनुमान्ने नरक सीताको लाज की धी और लौटकर आपको उनकी खबर दी थी ॥ १३० ॥ १३१ ॥ उसी हनुमान्को आज अपने काशी भेजकर ऐसा उपहास किया ? यदि आपके मनमें यही था तो फिर मुझे इस तरह क्यों बोली सताया ? ॥ १३२ ॥ यदि मुझे आपका अभिप्राय ज्ञात हो जाता तो मैं कभी काशी जाकर = दो शिवलिङ्ग न लाता ॥ १३३ ॥ इनमेंसे एक आपके लिए और दूसरा उत्तम शिवलिङ्ग अपने लिये ले गया हूँ । अब मैं इस आपवास शिवलिङ्गको क्या करूँ ? ॥ १३४ ॥ इस प्रकार कुछ क्रोध तथा गर्वयुक्त हनुमान्का वाक्य सुनकर रामने कहा कि हे कप ! तुम्हारा कहना सत्य है ॥ १३५ ॥ अब तुम यदि इन मर स्थापित लिङ्गको पूँछकर लपटकर उलाह लो तो मैं तुम्हारे काशीस लाय हुए विश्वेश्वरलिङ्गको यहाँ पुनः स्थापित कर दूँ ॥ १३६ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर हनुमान्ने उस बालुक लिङ्गक ऊपरी भागमें पूँछ मारकर बारम्बार धुब जोरसे हिलाया ॥ १३७ ॥ जिससे सहसा उनकी पूँछ टूट गयी । वे जमीनपर गिर पड़े और मूँछित हो गये । परन्तु बालुका लिङ्ग ठनिक भी नहीं हिला । यह देखकर सब वानर हँसने लगे ॥ १३८ ॥ तब मारुति स्वस्य ही तथा सर्व छोड़कर अतिसे रामको नमस्कार करके प्रार्थना करने लगे — ॥ १३९ ॥

विश्वनाथं भिष लिङ्गं स्वीयं मस्थापयाधुना । तथेति मारुतिलिङ्गं स्थापयामास सादरम् ॥ १४१ ॥
 मारुतेश्वरं लिङ्गाय ददौ रामो वरं तदा । अमपूज्यं विश्वनाथं मारुते न्वन्प्रतिष्ठितम् ॥ १४२ ॥
 ममादौ पूजयन्त्यत्र ये नरा लिङ्गमुत्तमम् । रामेश्वराभिधं सेतौ तेषां पूजा वृथा भवेत् ॥ १४३ ॥
 ह्यपुक्त्वा तं पुनः प्राह रामो राजीवलोचनः । मदर्थं यन्ममानीत त्वया लिङ्गं महत्तमम् ॥ १४४ ॥
 विश्वनाथस्य तत्तूष्णामस्तु देवालये चिरम् । अनन्तिमवन्त्यां तदप्रतिष्ठितमसमम् ॥ १४५ ॥
 अग्न कालान्तरेणाह तच्चापि स्थापयामि वै । तत्रैव वर्तनेऽद्यापि लिङ्गं विश्वेश्वरान्तिके ॥ १४६ ॥
 अग्रनिष्ठापितं भूम्यां न केनापि प्रपूजितम् । पुनः प्राह कपिं रामस्त्वमत्र छिन्नलांगुलः ॥ १४७ ॥
 यम भूम्यां गुमपादः स्मरन्स्वर्गवितं त्विदम् । ततः कपिः स्वीयमूर्तिं स्थापयामास स्वाश्रितः ॥ १४८ ॥
 छिन्नपुच्छा गुमपादा सा तत्राद्यापि वर्तते । पतितो मूर्च्छिता यत्र मारुतिस्तत्र तद्वत् ॥ १४९ ॥
 बभूव मारुतेर्नाम्ना तीर्थं पापप्रणाशनम् । रामस्तत्राकरोऽपुण्यं स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥ १५० ॥
 स्वांशेन स्थापयामास मूर्तिं तत्र रघुद्वहः । सेतुमाधवनाम्ना सा वर्तनेऽद्यापि पार्वति ॥ १५१ ॥
 स्वनाम्ना लक्ष्मणश्चापि चकार तीर्थमुत्तमम् । ततो रामः स्वहस्तेन स्पृष्ट्वा मारुतिलांगुलम् ॥ १५२ ॥
 चकार पूर्ववद्रम्यं दृढमन्धिप्रसादितः । तत्पुच्छवेष्टनाज्जातः कुशो रामेशमस्तकः ॥ १५३ ॥
 स तथैव कुशोऽद्यापि तत्रास्ति शिवमस्तकः । तदारम्य त्यक्तगर्वश्चाभूद्रामे स मारुतिः ॥ १५४ ॥
 ततोऽहं सकलालिङ्गादाविर्भूय रघुद्वहम् । अत्रुव देवि तत्सर्वं शृणुष्व ते वदाम्यम् ॥ १५५ ॥
 राघवेन्द्र रघुश्रेष्ठ शृणु वृत्तं पुरातनम् । एकदाऽहं पुरा भूम्यां मलिनाम्यरमंयुतः ॥ १५६ ॥
 भिक्षार्थं कीतुकाद्विप्ररूपेणाविचरं सुखम् । श्रृङ्गणामाश्रमाद्येषु ह्यतटनं मां विलोक्य च ॥ १५७ ॥

हे राम ! मेरा जो अपराध हुआ हो, उसे क्षमा कर । क्योंकि आप भृगुनिधि हैं । तदनन्तर रामने कहा—
 हे मारुति ! तुम मेरे स्थापित लिङ्गसे उत्तरकी ओर इस विश्वनाथ नामक अपने लिङ्गको स्थापित करो ।
 'तथास्तु' कहकर मारुतिने सादर शिवलिङ्गकी स्थापना कर दी । १४०॥१४१॥ तब रामने उस मारुतिलिङ्गको
 वरदान दत्त हुए कहा हे माम ! तुम्हारे द्वारा स्थापित विश्वनाथलिङ्गकी पूजा किये बिना जो सेतुबधरामे-
 श्वरकी पूजा करेगा, उसकी पूजा व्यर्थ हो जायगी ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ इतना कहकर रामने फिर हनुमान्से कहा
 कि जो तुम मेरे लिए उत्तम लिङ्ग लाय हो ॥ १४४ ॥ वह विश्वनाथलिङ्ग यो ही इस देवालयमें पड़ा
 रहे । बहुत कालतक यह उत्तम लिङ्ग धरतीपर अपूजित ही पड़ा रहेगा । १४५ ॥ आगे चलकर बहुत दिनों बाद
 उसकी भी मैं अवश्य स्थापना करूँगा । वह लिङ्ग अभी भी वहाँ विश्वेश्वरलिङ्गके पास पड़ा हुआ है ॥ १४६ ॥ न
 अभी उसका प्रतिष्ठा हुई है और न कोई उसका पूजा हो करता है । रामने फिर हनुमान्से कहा कि तुम्हारी पूछ
 यहीपर छिन्न हुई है । अतः तुम यहीपर भूमिमें छिन्नपुच्छ तथा गुमपाद होकर अपने गर्वका स्मरण करते हुए
 पड़े रहो । तब हनुमान्ने अपने अंगसे वही अपनी मूर्ति स्थापित कर दी । १४७ ॥ १४८ ॥ ऊँचा भी वहाँ
 हनुमान्की छिन्नपुच्छ और गुम पादका मूर्ति विद्यमान है । जहाँपर मारुति मूर्छित हाकर गिरे थे, वह उत्तम
 स्थान मारुतिके नामसे पवित्र तथा पापोंका नाश करनेवाला तीर्थ प्रसिद्ध हुआ । वहाँ ही रामने भी अपने नामसे
 एक उत्तम तीर्थ बनाया ॥ १४९ ॥ १५० ॥ रामने वहाँ अपने अंगकी एक मूर्ति भी स्थापित कर दी । सेतु
 माधव नामकी वह मूर्ति अभी भी वहाँ प्रस्तुत है ॥ १५१ ॥ हे पार्वति ! लक्ष्मणन भी वहाँ अपने नामका उत्तम
 तीर्थ स्थापित किया । पश्चात् रामने अपने हाथसे छूकर हनुमान्की पूँछको पूर्ववत् सुन्दर तथा हृदयसन्धिपुक्त
 बनाकर हनुमान्को प्रसन्न कर लिया । पूँछमें लपेटे जानेके कारण रामेश्वरका भस्तक कुछ दब गया
 था ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ वह शिवमस्तक अभी भी वैसा ही चिपटा है । तबसे हनुमान् रामके समक्ष सर्वथा
 गर्वरहित हो गये ॥ १५४ ॥ हे देवि ! उस समय बानुके लिङ्गमेंसे प्रकट होकर मेने रघुद्वह रामसे जो कुछ
 कहा था, वह सब तुमको सुनाता हूँ । ध्यान देकर सुनो ॥ १५५ ॥ मैंने कहा—हे राघवेन्द्र ! हे रघुश्रेष्ठ !
 तुम्हें मैं एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ । एक समय कीतुकका मैं पुराने कपड़े पहिन तथा ब्राह्मणका

मद्रूपमोहिताः सर्वा ऋषिपत्न्यः सहस्रशः । मनुष्ये ताः समाजगुमंतुभिर्वाणिता अपि ॥१५८॥
 तदा ते चुचुषुः सर्वे मामसात्वा मुनीश्वराः । ददुः शार्पं महाघोरं क्रोधमविश्रमानसाः ॥१५९॥
 तत्पथं मोहिता नार्पस्त्वया समाद्भिर्नाथम । पतन्वद्य गेरंगं लिङ्गं भुवि च नो गिरा ॥१६०॥
 एवं द्वित्रयेदा शोभ्यतल्लिङ्गं तदा भुवि । द्वित्रिजगत्स्य मे राम गनोऽहं गुप्तता तदा ॥१६१॥
 द्विजनावोऽप्यदृष्ट्वा मां जग्मुः स्व स्व गृहं प्रति । तल्लिङ्गं बहुधे भूम्पां गगनं व्याप्य सस्थितम् ॥१६२॥
 तद्दृष्ट्वा चकिरो वैशास्तस्यांन द्रष्टुमद्यतः । पश्यतस्तस्य कोऽयम्येनान्तमर्मान् च वेधमः ॥१६३॥
 तदा मामंत्य स विधिभेदाद्भूतं न्यवेदयत् । अकाले प्रलयस्त्वद्य शम्भोऽनेन मयिष्यति ॥१६४॥
 तदा मया पूर्वकृतं विधिं सभ्राज्य मादरम् । त्रिशूलो वेधस दत्तस्तं छेत्तुं सोऽज्ज्वाञ्च ममम् ॥१६५॥
 कथं तेऽहं दारयेऽहं त्वमेव छेत्तमर्हसि । ततो मयाकेश्डानि कृतानि तस्य राघव ॥१६६॥
 त्रिशूलेनापि क्षिप्तानि भूम्पां निषतितानि हि । न ज्ञातान्यत्र लिङ्गानि ज्योतिःमंशानि द्वादश ॥१६७॥
 ऐंकारः सोमनाथश्च त्र्यम्बको महिष्कार्त्तनः । नागेशो वैद्यनाथश्च काशीविश्वेश्वरस्त्वहम् ॥१६८॥
 केदारेशो महाकालो जीवेशो घृमणेश्वरः । एरमंकटश्च शृषा ज्योतिलिङ्गमयाः शुभाः ॥१६९॥
 गन्धमादननाम्नेशो मेरोगीशानादिकस्थितः । आसीच्चिरं न कस्यापि मानसस्याक्षिणोचरः ॥१७०॥
 तदा ते मुनयः सर्वे शिर्वं बुद्ध्या तु लिङ्गतः । ददुर्वैरं पुनर्लिङ्गं तस्मान्नु गिरिजाप्रिय ॥१७१॥
 ततः प्रलयवर्तनेन गन्धमादननामकम् । तन्ममेकतरे भूङ्क्षमंकटाव्रापतं भुवि ॥१७२॥
 नादिदं ह्यन्यमयेगे दक्षिणे मातङ्गक्षाम । गन्धमादननाम्नेदं भ्रमं पश्यन्न राघव ॥१७३॥
 गन्धमादननाम्नेशं लिङ्गं द्वादशमं विदम् । न्यत्रनिष्ठितलिङ्गस्य हीनान्यामन्तिके स्थितम् ॥१७४॥

रूप धारकर आनन्दसे भिक्षाके लिए पृथिवीपर विचर रहा था । इस प्रकार ऋषिपत्न्य आश्रममें प्रसूता हुआ
 मुझे देखकर सैकड़ों ऋषिपत्नियों में अत्यन्त मादुर्य हो गया । पतिप्राप्ति के रास्तेपर भी वे नहीं रुकी और मेरे
 पक्षे पक्षे घूमने लगी ॥ १५८-१५९ ॥ तब वे सब मुझ पर मुझ से पहिचानकर बहुत शंकराय और कुछ हाकर
 उन्होंने मुझ वद्दा भयानक क्षाप दिलाया : १५८ । उन्होंने कहा—अब अथम काले तू न रात के अन्तक लिए
 हमारा स्थितिको माहित कर लिया है, इससे तब तक तो मावन अन्त अथवा लिङ्ग हमारे कहनेसे कटकर जमान-
 १५९ गिर पड़े ॥ १६० ॥ हे राम ! उनके क्षापसे द्वित्रिवेधारी भरा लिङ्ग कटकर तुरन्त जमानपर गिर पड़ा ।
 बारमे मैं कन्धर्वात्त हो गया ॥ १६१ ॥ मुझ से देखकर पट्टिजाका स्थित भा अपना अन्त घर चला गया ।
 अन्तस्तरे वह लिङ्ग इस प्रकार वद्दा कि आकाश तक व्याप्त हो गया । १६२ । यह देखकर बहो बहुत चकित हुए
 और उसका अन्त देखने लगे उद्यत हो गए । कर शब्द तक पना लगानपर भी बहोका जब मेरे लिङ्गका
 अन्त नहीं मिला ॥ १६३ ॥ तब मेरे मातु आकाश इतर हुए उन्होंने कहा—हे शम्भु ! इसमें तो अकालम हो
 गया हैना कहता है । १६४ । मेने बहोका पूर्ववृत्ति पुनः कर सादर उनका हायम उस लिङ्गका कटनक
 अपना प्रियुक्त द दिया । तब द्रष्टु न कहा— ॥ १६५ ॥ मे भया आपक अगक कले कीट सेकता है । आप
 उन कीट । हे राघव ! तब मेने उन लिङ्गक वरह दृष्ट कर डाला ॥ १६६ ॥ फिर त्रिशूलस्य हा उठाकर उनका
 तुरपर श्वर उवर फट दिया । वह हा वरहा दृष्ट कर वरह उमात्तिदिङ्ग नानका वरहाव दृष्ट ॥ १६७ ॥
 नागनाथ, सामनाथ, गम्भकेश्वर, मातङ्गनाथ, नागेश, वैद्यनाथ, काशीविश्वनाथ, केदारनाथ, केदारेश्वर, महाकाल,
 और घृमणेश्वर य एकारह शुभ ज्योतिर्लिङ्ग है ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ वरहवा लिङ्ग गन्धमादन पवनक प्रसाद काणवाले
 अन्तपर बहुत काल तक स्थित रहकर भा किता मनुष्यता हादिन नहीं गया ॥ १७० ॥ तब मुनपाते लिङ्गक
 अन्त शिवका पहिचानकर पुनः कर दिया—हे गिरिजाप्रिय ! तुम्हारे फिर लिङ्ग हा थाव ॥ १७१ ॥ अन्तस्तरे
 तब समय वह मेरुका गन्धमादन नामक उत्तरा शिखर प्रलयवायुसे उडकर यहाँ आ गया ॥ १७२ ॥ हे राघव !
 वह गन्धमादन शिखरको तुम यहाँ दक्षिणी समुद्रक संगमपर अन्तरे देख सकते हो ॥ १७३ ॥ बाह्यरी गन्धमादन

एतावत्कालपर्यन्तं मेदं कैश्चिद्विलोकितम् । अथ त्वया वानगर्घ्येण स्पृष्टं विमोक्षदम् ॥१७५॥
 त्वत्प्रतिष्ठितलिङ्गस्य प्रसादादवनीतले । स्याद्विगतं त्विदं लिङ्गं यस्माच्चस्माच्छ्रुतम् ॥१७६॥
 अस्य लिङ्गस्य यज्ज्योतिर्मदीयं त्वत्प्रतिष्ठिते । यास्यस्यैव संकल्पेन लिङ्गे सेतौ गिरा यम ॥१७७॥
 ज्योतिर्लिङ्गं दादन्नमं तव रामेश्वराभिधम् । वदत्यत्र जनाः सर्वे श्रवणं रघूत्तम ॥१७८॥
 एजोन्मवादिह कर्म यद्यद्विकचिद्विरा मम । सर्वत्र लिङ्गे तत्सर्वमस्तु रामेश्वरे सदा ॥१७९॥
 अहं चापि मुनेर्वाक्यादगस्तैस्त्वद्विरापि च । त्यक्त्वा काशीपागत्रोऽस्मि त्वद्विष्णोस्मिन्वसाम्यहम् ॥
 प्रणमस्तेतुवधे यः पुमान् रामेश्वरं शिवम् । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते तदनुग्रहात् ॥१८१॥
 त्वं वदाथ रघुश्रेष्ठ वरं देन जनाः सदा । स्नानार्थं मानयिष्यन्ति मणिकर्णिकजलं यम ॥१८२॥
 यमैतद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो तृणायकः । जगाद स्नात्वा सेतुवधे रामेशं परिपश्यति ॥१८३॥
 संकल्प्य नियतो भूत्वा गृहीत्वा सेतुवासुकाम् । करंदिकाभिर्भस्त्रेण गत्वा वाराणसीं शुभाह् ॥१८४॥

धिप्त्वा तां बालुकां त्यक्त्वा देण्यां बानुकरंदिकाम् ।

आनीय गंगासलिलं रामेश्वरमभिषिञ्च्य च ॥१८५॥

समुद्रे त्यक्तवद्धारो ब्रह्म प्राप्नोन्मसंशयम् । संकल्पेन विना गंगा रामेश नागमिष्यति ॥१८६॥
 आगता चेत्तदा ज्ञेयः संकल्पः पूर्वजन्मनि । कुतोऽस्तीत्यत्र मद्वाक्याभावात् कार्या विचारणा ॥१८७॥
 एवं नानावरान्तापो यावद्विगाय सोऽब्रवीत् । तावच्च न समायातः कुम्भजन्मा मुनीश्वरः ॥१८८॥
 ननाम शक्यो रामं रामोऽपि प्रपन्नाम तम् । तदा मुनिः प्राह रामं प्रयादास्तत्र राघव ॥१८९॥
 दर्शनं विश्वनाथस्य जातं मेऽद्यात्र वै विगन् । अद्यात्र तुष्टिर्ज्ञाता ये लिङ्गमत्र करोम्यहम् ॥१९०॥
 इत्युक्त्वा स्थापयामास स्वनाम्ना लिङ्गमुत्तमम् । रामेश्वराग्नि दिग्भागे कुम्भजन्मा बुदन्वितः ॥१९१॥

लिङ्गं तुम्हारे प्रतिष्ठितं लिङ्गकी ईशानदिगामे पास हो विद्यमान है ॥ १७४ ॥ इतने समय तक इतको किसाने नहीं देखा था । पर आज वानरसहित तुमने इस मोक्षप्रद लिङ्गको स्पष्ट देख लिया है ॥ १७५ ॥ तुम्हारे द्वारा स्थापित लिङ्गकी महिमासे ही पृथ्वीपर इसकी प्रसिद्धि हुई है । इस कारण हे रघूत्तम ! इस लिङ्गका जो ज्योति है, वह ज्योति तुम्हारे द्वारा स्थापित बालुकाभ्य लिङ्गमे मेरे कहनेसे आज हो चला आयगी ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ हे रघूत्तम ! आजसे ब्राह्मण ज्योतिर्लिङ्ग तुम्हारा स्थापित रामेश्वर ही दुनियाके सब मनुष्योंमें प्रसिद्ध होगा ॥ १७८ ॥ मेरे वचनसे पूजा आदि सब उपचार सदा तुम्हारे रामेश्वर लिङ्गमा ही होगा ॥ १७९ ॥ मैं भी अगस्त्य मुनिके तथा तुम्हारे कहनेसे काशी छोड़कर यहाँ आ गया हूँ और अब तुम्हारे इस लिङ्गमे ही निवास करूँगा ॥ १८० ॥ जो मनुष्य सेतुवधे रामेश्वरको प्रणाम करेगा, वह मेरी कृपासे ब्रह्महत्या आदि अमानक पापोंसे भी मुक्त हो जाएगा ॥ १८१ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आप मुझे यह वर दें कि सब लोग मुझे स्नान करानके लिए सदा काशीको मणिकर्णिकाका जल लाकर चढ़ाना करें ॥ १८२ ॥ हे पार्वती ! मेरे इस वचनको सुनकर भीराम हर्षित होकर बोले कि जो मनुष्य सेतुवधे स्नान करके रामेश्वर शिवका दर्शन करेगा ॥ १८३ ॥ फिर वह संकल्पसे सेतुकी बानुकाको काँवरधे रखकर प्रेम तथा भक्तसे काशीमें ले जाकर गंगाके प्रवाहमें डालेगा और उस काँवरकी वही छोड़कर दूसरी काँवरके द्वारा गंगाजल लाकर उससे रामेश्वरका आभयंक करेगा ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ वही उस काँवरकी भी प्रपन्नमे पैंसकर निःसंदेह ब्रह्मपदको प्राप्त होगा । जबतक इस संकल्प न होगा, सब तक रामेश्वर जाना न होगा ॥ १८६ ॥ कदाचित् कोई आगत्य तो वही जानना चाहिए कि उसके पूर्वजन्मका संकल्प था । मेरे कहनेसे आप इस बातमें लौकिक भी सहित न करें ॥ १८७ ॥ इस प्रकार राम जब अनेक वर दे रहे थे, तभी वही कुम्भजन्म (अगस्त्य) मुनि आ पहुँचे ॥ १८८ ॥ उन्होंने वहाँ आकर शिव तथा रामको प्रणाम किया । सब रामने भी मुनियो प्रणाम किया । अगस्त्य मुनिने रामसे कहा— हे रघुवध ! आपके अनुग्रहसे मुझे आज बहुत धनके बाद निस्वनाथका दर्शन प्राप्त हुआ है । इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है । इसलिये मैं भी वहाँ एक लिङ्ग स्थापित करता हूँ ॥ १८९ ॥ १९० ॥ इसका कष्टकर अगस्त्य मुनिने भी अपने नामसे एक उपास

पूजयामास तल्लिङ्गमगस्तीश्वरनामकम् । नत्वा स्तुत्वा विश्वनाथं रामं रामेश्वरं तथा ॥१९२॥
 दृष्ट्वा पुरातनं लिङ्गं गन्धमादननामकम् । ययौ स्त्रीयाश्रमं तुष्टः कुम्भजन्मा मुनीश्वरः ॥१९३॥
 सेतौ रामेश्वरस्यैव देवि देवालये शुभे । दिश्याग्नेय्यामगस्तीशमीशान्यां गन्धमादनम् ॥१९४॥
 वर्तेतेऽद्यापि द्वे लिङ्गे कश्चिज्जानाति वा न वा । प्रमिदोऽभूच्च रामेशः स्वर्गमृत्युरसातले ॥१९५॥
 ततो रामाक्षया सेतुं नलः कर्तुं मनो दधे । किञ्चिद्भ्रवसमाविष्टस्तज्ज्ञातं राघवेण हि ॥१९६॥
 यावदेकां शिलां त्यक्त्वा नलोऽन्यां प्राक्षिपच्छिलाम् ।

तावत्तरंगकल्लोलः सागरस्य इतस्ततः ॥१९७॥

गच्छन्तिस्म शिलाः सर्वास्ता दृष्ट्वा त्विन्नमानमः । गतगर्वस्तदा रामं नलो वृत्तं न्यवेदयत् ॥१९८॥
 रामः श्रुत्वा नलं प्राह रामेति द्वेऽक्षरे भव । दृष्टदोः संधिसिद्धयर्थं पृथग्विलिखतां द्वयोः ॥१९९॥
 सर्वत्रैवं लिखित्वा हि दृढः संधिर्भविष्यति । तथेति रामवचनात्तथा चक्रे नलस्तदा ॥२००॥
 कृतः पंचदिनैः सेतुः स्रुतयोजनमुत्तमः । कृतानि प्रथमेनाह्वा योजनानि चतुर्दश ॥२०१॥
 द्वितीयेन तथा चाह्वा योजनानां च विंशतिः । तृतीयेन तथा चाह्वा योजनान्येकविंशतिः ॥२०२॥
 चतुर्थेन तथा चाह्वा द्वाविंशतिरिति श्रुतम् । पंचमेन त्रयोविंशद्योजनानां शतं न्विति ॥२०३॥
 विस्तृतो द्वादश प्रोक्तो योजनानि दण्डमयः । एवं बंधं सेतुं स नलो वानरसत्तमः ॥२०४॥
 ये मज्जन्ति निमज्जयति च परान् ते प्रस्तरा दुस्तरे वार्थी येन तरति वानरभटान् संतारयतेऽपि च ।
 नैते प्रावगुणा न वारिधिगुणा नो वानराणां गुणाः श्रीमहाशरधेः प्रतापमहिमा नोऽयं समुज्जृम्भते ॥२०५॥
 तेनैव जग्मुः कपयो योजनानां शतं द्रुतम् । आरुह्य भारुतिं रामो लक्ष्मणोऽप्यंगदं तथा ॥२०६॥
 जगाम बाधुवल्लकासनिधिं सेनया वृतः । अमंगुयाताः सुवेलाद्रिं कुरुदुः प्लवगोत्तमाः ॥२०७॥

लिङ्ग स्थापित किया । मुनिने आनन्दके साथ रामेश्वरक अग्निकोणमें उसकी स्थापना की ॥ १९१ ॥ इस प्रकार मुनिने अग्रतःश्वर नामक लिङ्गकी पूजा करके विश्वनाथ, रामेश्वर एवं श्रीरामकी स्तुति तथा प्रणाम करनेके अनन्तर पुरातन गन्धमादन लिङ्गका दर्शन किया और प्रमत्त होकर अपने आश्रमको चले गये ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ हे देवि ! सेतुबंध रामेश्वरके देवालयमें ही आग्नेयकोणमें अगस्तीश्वर तथा ईशानकोणमें गन्धमादनेश्वरका लिङ्ग अभी भी विद्यमान है । उन्हें कोई इन नामोंसे जानता है और कोई नहीं भी जानता । रामेश्वरका लिङ्ग स्वर्ग, पाताल तथा मृत्यु इन तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो गया ॥ १९४ ॥ तदनन्तर रामकी आज्ञासे नलने कुछ गर्वयुक्त होकर पुल बांधना आरम्भ कर दिया । रामको इस गर्वका पता लग गया ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ इसके बाद नलने जलमें एक पत्थर डालकर दूसरा ज्यों ही डाला, त्यों ही समुद्रकी तरफ़ित लहरियोंसे सब शिलाएँ डबड़-उधड़ छितराये लगीं । यह देखा तो लिङ्गभ्रम हो गया गर्व त्यागकर नल रामके पास गये और सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ यह सुनकर रामने नलसे कहा कि मेरे नामके 'रा म' ये दो अक्षर पत्थरोंको एक साथ मिलानेके लिये दोनों शिलाओंकी बगलमें लिख दो ॥ १९९ ॥ ऐसा लिख देनेसे सब एक दूसरेके साथ दृढ़तासे जुड़ जायेंगे और संधि (सौमि) न रहेगी । नलने भी 'तथास्तु' कहकर रामके कथनानुसार ही किया ॥ २०० ॥ ऐसा करनेपर पाँच दिनमें सौ योजन सम्बा, सुन्दर और दृढ़ सेतु बन गया । पहिले दिन चौदह योजन, दूसरे दिन बीस, तीसरे दिन इक्कीस, चौथे दिन बाईस और पाँचवें दिन तेईस योजन पुल बँधा । इस प्रकार सौ योजन पूरे हो गये ॥ २०१-२०३ ॥ उसमें भी बाग्रह योजन एकमात्र पत्थरका ही धक्का पुल बनाया गया । इस तरह वानरोत्तम नलने सेतु बाँधकर तैयार किया ॥ २०४ ॥ जो पत्थर स्वयं डूबते और दूसरोंको बुकाते हैं, वे ही दुस्तर समुद्रमें स्वयं तैरने तथा दूसरोंको तारने लग गये । यह गुण न पत्थरका है, न समुद्रका और न वानरोंका । परन्तु यह गुण तो केवल दत्तारयतनय रामका ही है । जिनकी महिमा सर्वत्र व्याप्त हो रही है ॥ २०५ ॥ उस पुत्रके द्वारा वानरगण सौ योजन सागर तीर्थ ही पार कर गये । राम हनुमान्‌के कंधे तथा लक्ष्मण अङ्गदके कंधेपर चढ़कर बाधुवेगसे सेनाके साथ लंकाके पास

ततः सैन्ययुतो रामः सुवेलार्द्रि ययौ मुदा । दिदृक्षु राघवो लंकामारोहाचलं शुभम् ॥२०८॥
 सुवेलार्द्रि महारम्यं तरुवह्निराजितम् । ददर्श लंकां विस्तीर्णां रामश्चित्रञ्चजाकुलाम् ॥२०९॥
 चित्रप्रामादमंवाधो स्वर्णप्राकान्तोरणाम् । परिखाभिः शसधनीभिः सकर्मैश्च विराजिताम् ॥२१०॥
 प्रामादोपरि विस्तीर्णप्रदेशे दशकन्धरम् । पश्यन्तं कपिर्मेन्यं तं सन्ददर्श रघूद्वहः ॥२११॥
 ततो रामेण मुक्तः स शुको गत्वा दशाननम् । कपिर्मेन्यं दर्शयन्तं बोधयामास रावणम् ॥२१२॥
 सीतां प्रयच्छ रामाय लंकाराज्ये विभीषणम् । कृत्वा तं शरणं याहि नो चेदामास मोक्षसे ॥२१३॥
 तच्छ्रुत्वा रावणः क्रोधाच्छुक्रं धिक्कृत्य वै मुहुः । दूर्तगंहाद्वहिः कृत्वा रामसेनां व्यलोकयन् ॥२१४॥
 शुकोऽपि ब्राह्मणः पूर्वं वरिष्ठो ब्रह्मवित्तमः । अयजत् क्रतुभिर्देवान् विरोधो राक्षसैरभूत् ॥२१५॥
 बज्रदंष्ट्र इति कथातस्तर्देको राक्षसो महान् । मांसाश्च याचितं दृष्ट्वा मुनिना कुमजन्मना ॥२१६॥
 शुकभार्यावपुर्धृत्वा नरमांसं समर्पयत् । तदा शप्तः शुकस्तेन त्वं रक्षो भव मा चिन्म ॥२१७॥
 गन्धः कृतं पुनर्घ्यानाज्जान्वा तन्प्राथितोऽब्रवीत् । रामस्य दर्शनं कृत्वा बोधयित्वा दशाननम् ॥२१८॥
 त्वं प्राप्स्यसि निजं रूपं तस्माज्जानः शुको द्विजः । सुवेलशिखरे संस्थः समंश्य कपिभिस्तनः ॥२१९॥
 सूचनार्थं ग्निं रामोऽङ्गदं लंकामबोधयत् । सोऽपि रामाज्ञया गत्वा नानानीन्युत्तरस्तदा ॥२२०॥
 रावणं बोधयामास सभायां लांगुलामने । संस्थितोऽभीतवद्बालिननयः स्वस्थमानसः ॥२२१॥
 शृणु रावण मद्वाक्यं हितं ते प्रवदाम्यहम् । सीतां सन्कृत्य सधनां प्रयच्छ राघवं जवात् ॥२२२॥
 रामं नारायणं विद्धि विद्वेषं त्यज राघवे । यत्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो भवमागरम् ॥२२३॥
 तरन्ति भक्तिपूनास्ते ह्यतो रामो न मानुषः । मद्वाक्यं कुरु राजेन्द्र कुलकौशलहेतवे ॥२२४॥

आ पढ़ें। वानरीम उत्तम असुर्य वानर सुवेल पर्वतपर जा चढ़े ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ उनके पाँखे राम की छापीली सेनाके साथ सहर्ष सुवेलगिरिपर गये। वहाँ जाकर राम लंकाको देखनेके लिए उसके एक सुन्दर शिखरपर चढ़े ॥ २०८ ॥ वह पर्वत बड़े मनोहर वृक्षों तथा लताओंसे मण्डित था। वहाँ रामने बड़ी विस्तृत, रंग-विन्गी छत्राओंसे आवृत, अनेक प्रकारके भवनोंसे सधन, स्वर्णक गड तथा तोरण युक्त साईं, नुरंगों तथा तोपोंसे विराजित लंकाको देखा ॥ २०९ ॥ २१० ॥ वहाँसे रामने एक प्रासाद (महल) के ऊपर विस्तीर्ण प्रदशम बैठकर कपिसेनाका देखते हुए दशकन्धर रावणका देखा ॥ २११ ॥ तदनन्तर रामने कैद किये हुए शुकको छुड़वा दिया। उसने जाकर रावणको वानरी सेना दिखायी और समझाया— ॥ २१२ ॥ तुम सीता रामकी दे दो, लङ्काका राज्य विभीषणको दे दो और रामकी शरणमें चले जाओ। नहीं तो राम तुम्हको जीवित नहीं छोड़ेगा ॥ २१३ ॥ यह सुनकर क्रोधसे पागल रावणने शुकको बार-बार धिक्कारा और दूतोंसे बाहर निकलवाकर रामकी सेना देखने लगा ॥ २१४ ॥ शुक पहिले एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उसने यज्ञ द्वारा देवताओंको प्रसन्न किया था। इस कारण राक्षसोंसे उसका विरोध हो गया ॥ २१५ ॥ तदनन्तर एक दिन बज्रदंष्ट्र नामक राक्षसने अगस्त्य मुनिको शुकसे मांसाश्च मांगते देखकर शुकका स्त्रीका रूप धारण करके मनुष्यका मांस पकाकर मुनिको परास दिया। तब मुनिने क्रुद्ध होकर शुकको शाप दे दिया कि जा, तू सीधे राक्षस हो जा ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ पुनः शुकके प्रार्थना करनेपर मुनिने ध्यान धरके देखा तो भालूम हुआ कि यह तो एक राक्षसका कृत्य है। तब मुनिने कहा—हे शुक! तू रामका दर्शन करके और रावणको समझाकर फिरसे अपने स्वरूपका प्राप्त हो जायगा। इसी कारण अब वह शुक पुनः ब्राह्मण हो गया। इसपर रामने सुवेल पर्वतके शिखरपर बैठकर वानरोंको आमन्त्रित किया और शुकको सूचना देनेके लिए अगस्त्यको लंका भेजा। उसने जाकर रामकी आज्ञासे अनेक नीतिवाक्यों द्वारा रावणको समझाया ॥ २१८-२२० ॥ सभामें अपनी पूँछका मोड़ा बनाकर उसपर बैठे हुए अंगवने निर्भय होकर स्वस्थ मनसे रावणको समझाते हुए कहा— ॥ २२१ ॥ हे रावण! मैं तुमको हितका उपदेश देता हूँ, सुनो। जैसी वलाह मानो और घनसे सीताका सत्कार करके अटपट रामको दे आओ ॥ २२२ ॥ रामकी आज्ञात् नारायण समझो

एवं नानाविधैर्वाक्यैरंगदेनातिबोधितः । मोक्षं नीत्युत्तराण्यस्य नाभृणोद्धानरस्य च ॥२२५॥
 उवाच क्रोधमपृक्तो वानरं म दशाननः । भीष्यसेऽद्य किं मां त्वं रावणं लोकरावणम् ॥२२६॥
 येन सर्वं जिता देवाः कैलासः कपित्थो मया । तस्य मेऽग्रं मर्कटं त्वं कथ्यसे किं मुधाऽद्य हि ॥२२७॥
 क्षणेन राघवौ हन्वा हन्वा सुग्रीवमारुर्ता । हन्वा विभीषण त्वां च वानरान् भक्षयाम्यहम् ॥२२८॥
 रावणस्य वचश्चेन्म्यं श्रुत्वा प्राहांगदश्च तम् । जानाम्यहं पौरुषं ते बलिपाशविचूर्णित ॥२२९॥
 शिवपादांगुष्ठं मारनम्रकैलासपीडितं । सहस्रार्जुनवीरगन्धममवक्रोडनमृग ॥२३०॥
 श्वेतद्वीपस्थप्रमदाक्षरताडितमन्मथम् । विष्णुपुत्रोऽद्य त्रै ब्रह्मा मरीचिस्तन्मुतः स्मृतः ॥२३१॥
 तन्मुतः कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभूदिन्द्रनामकः । तेनैव यूदकाले तु बद्ध्वा कागर्गहस्थित ॥२३२॥
 पर्यकोपरि संबद्धमन्मूत्रशालितानन । इति तद्वाक्यश्रवणानतर्जितः म दशाननः ॥२३३॥
 दूतानातापयामास ताडनीयो मुखे त्वयम् । तथेन्युक्त्वा राक्षसास्ते शस्त्रहस्ताः सहस्रशः ॥२३४॥
 अगदं दृष्टुः शीघ्रं तान् दृष्ट्वा वानरोत्तमः । मर्दयामास पुच्छेन तान्मर्वान् क्षणमाव्रतः ॥२३५॥
 रावणाख्येषु मनाड्य स्वकराभ्यां मुहुर्महः । तद्वस्तपादौ पुच्छेन पूर्वं बद्ध्वा सविस्तरम् ॥२३६॥
 तनश्चोद्धीय वेगेन ययौ प्रामादमस्तकः । मुखेलाद्रौ राघवेन्द्रं तारेयः स विहायमा ॥२३७॥
 अगदं राघवो दृष्ट्वा प्रामादान्वितमस्तकम् । उवाच किं कुत बाल प्रामादोऽयं न्वया कथम् ॥२३८॥
 ममानीनोऽत्र लंकाया मित्रायेय पुगी मया । प्रपिताऽस्मि तनो मित्रवस्त्वियद न स्पृशाम्यहम् ॥२३९॥
 मद्राघववचः श्रुत्वा चकितः स तदांगदः । प्रामादमस्तके दृष्ट्वोर्ध्वाक्षिभ्यामाह राघवम् ॥२४०॥

उत्तराण्यस्य नाभृणोद्धानरस्य च ॥ २२५ ॥
 उनसे द्वेष्ट वरना छाड़ दी । जिनके चरणबन्धनरूपी जहाजका आश्रय लेकर जानी लोग भक्तिसे पवित्र
 मन होकर इस संसाररूपी समुद्रको अनायास पार कर जाने हैं, वे राम अनुपम मात्र नहीं है । हे राजेन्द्र !
 अपने कुलकी कुशलता चाहत होओ तो मर्ग कहा करो ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ इस प्रकार विविध वाक्योंसे
 अङ्गदने उसे बहुत समझाया, परन्तु उसने अङ्गदका एक भी नीतिपूर्ण वाक्य नहीं मना ॥ २२५ ॥ प्रत्युत
 क्रुद्ध होकर रावणन अङ्गदसे कहा—अरे नीच ! तू आज सब लोकोंको दहानेवाले मुख रावणको डराने आया
 है ? ॥ २२६ ॥ अरे ! मैं सपूर्ण देवताओंको जीतकर कैलास तकको कँपा दिया है । ऐसे मुख कीरके सामने
 अं मर्कट । तू क्यों व्यर्थका बकवास कर रहा है ॥ २२७ ॥ मैं क्षणभरमे राम, लक्ष्मण, सुग्रीव,
 हनुमान्, विभीषण, तुझे और सब वानरोंको मारकर खा सकता हूँ ॥ २२८ ॥ इस प्रकार रावणका गर्वभरा
 अङ्गद मुनकर अङ्गदने कहा—हे बलिपाशसे विचूर्णित ! हे शिवपादांगुष्ठसे मानस्र कैलाससे पीडित ! हे
 राजमा बालवीरक प्रोडाभृग ! हे श्वेतद्वीपकी मित्रोंके हाथसे ताडित मुखवाले रावण ! मैं तेरे बलको जानता
 हूँ । यह भी मुझे मालूम है कि विष्णुके पुत्र ब्रह्मा, ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिके पुत्र कश्यप, कश्यपके पुत्र इन्द्र
 और इन्द्रके पुत्र बालिने तुमको युद्धके समय बांधकर कारागारमें डाल रक्खा था । वहाँ तुम्हारा मुख चारपाईमें
 बंध रहनेके कारण मरे मन्मथसे भर जाता था । अङ्गदके इन वाक्यरूपी वाणोंसे विद्ध होकर रावण
 चकित हो उठा ॥ २२९ ॥ २३० ॥ उसने दूतोंको आज्ञा दी कि मार-मारकर इसका मुँह लाल कर दो । सब
 दूतगण कहकर हजारों राक्षस हाथमें शस्त्र लेकर अङ्गदकी ओर अग्रटे । उन्हें देखकर वानरोत्तम अङ्गदने अपनी
 दूतोंकी मारसे उन सबको क्षणभरमे घराशायी कर दिया ॥ २३४ ॥ २३५ ॥ तदनन्तर पूँछसे रावणके हाथ पकड़
 कर भाँति बाँधकर अंगदने उसके मुखोपर खूब तमाच लगाये ॥ २३६ ॥ सत्पञ्चात् वहाँसे उड़कर
 अङ्गद आकाशमार्गसे मुखेल पर्वतपर रामके पास लौट गये । उड़ते समय रावणका
 मुख भी उनके सिरपर बैठकर चला आया ॥ २३७ ॥ रामने अंगदकी मस्तकपर महल लिये आते देखकर
 कहा—हे बालिपुत्र ! तुम इस महलको क्यों उठा लाये ? ॥ २३८ ॥ मैंने लंकापुरी मित्र विभीषणको अप्रण
 का दी है । इसलिए मैं तो मित्रकी इस वस्तुको छू ही नहीं सकता ॥ २३९ ॥ रामकी यह बात सुनकर
 अङ्गद चकित हो गये । अब अङ्गदने ऊपरकी ओर भाँते कीं तो अपने सिरपर बसकर देखकर रामसे

न ज्ञातोऽयं मया राम प्रासादो ममकेन मे । उत्पाटितश्च लंकायाः समानीतस्तत्रांतिकम् ॥२४१॥
 पुनर्नीत्वाऽयं लंकायामेवं संस्थापयाम्यहम् । हत्युक्त्वा परिवृत्वाथ राघवस्याज्ञयागदः ॥२४२॥
 प्रासादं पूर्ववत्स्थाप्य लंकायां स ययौ पुनः । सुवेलादौ राघवेन्द्रं नत्वा हृत् न्यवेदयत् ॥२४३॥
 यद्यन्कृतं तु लक्ष्म्यां संवादं रावणस्य च । रामोऽपि श्रुत्वा तत्तत्तं स्मित्वा तं परिष्वजे ॥२४४॥
 अथ श्रीरामचन्द्रोऽपि सुवेलादौ स्थितस्तदा । लीलया चापमादाय सुमोच शृग्युत्तमम् ॥२४५॥
 तेन छत्रतहस्राणि किरीटदशकं तथा । लंकायां राक्षसेन्द्रस्य प्रासादे सस्थितस्य च ॥२४६॥
 चिच्छेद निमिषार्धेन कर्पाणां पश्यतां प्रभुः । एतन्मिमंस्तरे तत्र रामाग्रे संस्थितो महान् ॥२४७॥
 न दत्तां जानकीं श्रुत्वा रावणेनांगदास्यतः । क्रोधेन महताविष्टः सुग्रीवः प्लवगाग्रणीः ॥२४८॥
 यथावृहीय लङ्कायां दशास्यं राक्षसैर्युतम् । प्रासादमस्थितं छत्रहीनं प्रत्यग्रमानमम् ॥२४९॥
 सुग्रीवो रावणं गत्वा अधान दृढमुष्टिना । पातयामास भूम्यां तं वरमिहामनातदा ॥२५०॥
 चक्रतुम्भी बाहुपुटं तुमुल रोमहर्षणम् । उर्ध्वार्धिकगद्गदस्तैः कर्पाक्षराक्षसेश्वरैः ॥२५१॥
 तदामीज्जर्जांगः स रावणः कपिधाततः । दृढुक् बाहुपुटं सत्यक्त्वा मेहं त्रिलज्जितः ॥२५२॥
 तदाऽऽच्छिद्य तन्मुकुटं ययौ रामं कर्पाक्षरः । ननाम राघवं भक्त्या हृत् सर्वं न्यवेदयत् ॥२५३॥
 तं समालिख्य रामोऽपि सुमीवं प्राह सादरम् । मामपृष्ट्वा कथं बन्धो गतस्तूष्णीं दशाननम् ॥२५४॥
 त्वज्जीवितं निषण्णं चेत्तर्हि किं सीतया मम । भविष्यति न सीख्यं हि मेदंशं साहसं कुत ॥२५५॥
 ततो मेरीमृदंगाद्यैर्वाद्यैस्ते वानरोत्तमाः । लङ्कां संवेष्टयामाश्रुतुद्गरेषु संस्थिताः ॥२५६॥
 तदा तं मुकुटं रामोऽङ्गदाय रावणस्य च । ददौ तुष्टो दशेक्षाय लङ्कां रोढुं प्रचोदयत् ॥२५७॥

बोल - ॥ २४० ॥ हे राम ! मुझे तो इस बातका पता भी नहीं था कि मेरे सनमपर मकान है और लंकासे लखड़कर यहाँ आपके पास तक चला आया है ॥ २४१ ॥ मैं इसको फिरसे जाकर लङ्कामे रख आता हूँ । इतना कह और रामको आज्ञा पाकर बगद तुरन्त लौटे ॥ २४२ ॥ वे उस प्रासादको पूर्ववत् लङ्कामे रखकर पुनः रामके पास आ गये और नमस्कार करके सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २४३ ॥ लङ्कामे जाकर उन्होंने ओ कुछ किया था और रावणके साथ जो संवाद हुआ था, वह सब रामसे कहा । सो सुनकर रामने उनको हृदयसे लगा लिया ॥ २४४ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने सुवेलादिपर लड़े होकर लंकापूर्वक एक उत्तम वाण धनुषपर चढ़ाकर छाड़ा ॥ २४५ ॥ उससे लंकाके महान्तर स्थित राक्षसेश्वर रावणके दसों मुकुट तथा हजारों छत्र कटकर क्षणभरमें वानरोंके समझ आ गिरे । इतनेमें रामके आने कडे सुग्रीवने जब अंगरके मुखसे यह सुना कि रावण सीताको देनेके लिये वैचार नहीं है । तब अतिशय क्रुपित होकर वानरोंमें अग्रणी सुग्रीव उड़कर लंकामे वहाँ जा पहुँचे, जहाँ कि महान्तर छत्र तथा किरीटरहित अत्यन्त व्यग्र मनसे रावण बैठा था ॥ २४६-२४६ ॥ वहाँ जाकर सुग्रीवने रावणको जोरसे एक मुक्का मारा । जिससे इमानन सिंहासनसे जमीनपर गिर पड़ा ॥ २४७ ॥ तदनन्तर कर्पाक्ष सुग्रीव तथा राक्षसेश्वर रावणका आपसमें घोर मल्लयुद्ध होन लगा । वे एक दूसरेको उठा-वठाकर चित्त-पट करने लगे । जिससे कि उनके हाथ-पाँव तथा छाता छाग निमंम प्रहारके कारण बड़ी चोट लगती थी ॥ २४८ ॥ अन्तमें सुग्रीवकी मारसे रावणके सब अंग जर्जरित हो गये । तब रावण बाहुपुट करके लज्जाके मारे घरमें भाग गया ॥ २४९ ॥ उसी समय उसका मुकुट छीनकर कर्पाक्षवर सुग्रीव रामके पास आ गये और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके सब समाचार कहा ॥ २५० ॥ रामने क्षादरके साथ सुग्रीवका आलिंगन किया और कहा—हे बन्धो ! तुम हमसे बिना कहे मुझसे रावणके साथ युद्ध करने क्या चल गये ? ॥ २५१ ॥ कहीं तुम्हारे प्राण संकटमें पड़ जाते तो हम सीताको वा करके भी कौनसा दुःख भोगते । अबसे कर्मा ऐसा साहस नहीं करना ॥ २५२ ॥ बान्से नगाड़ा मृदंग तथा तुम्हरी आदि बाजे बजाते हुए सब वानरयोद्धाओंने लंकाको घेर लिया और चारों दरवाजोंको रोककर बड़े हो गये ॥ २५३ ॥ तत्पश्चात् रामने वह रावणका मुकुट प्रसन्न होकर सेनापति सगदको दे दिया और लंकाको घेरनेके सिद्ध

अङ्गद दक्षिणद्वारं वायुपुत्रं तु पश्चिमम् । नलं सैन्येन प्राग्द्वारं सुषेणं द्वारमौत्तरम् ॥२५८॥
 ययुस्ते राघवं नत्वा लंकां स्वस्ववर्तयुताः । तां लंकां कुरुधुः सर्वे चतुर्दारेषु वानराः ॥२५९॥
 दशास्योऽपि गृहं गत्वा सुग्रावज्जर्जरकृतः । तस्थी तूर्ण्यां स रहसि स्मरन्सुग्रावपीरुषम् ॥२६०॥
 माली सुमाली च तथा मान्यवान्मान्यवास्त्रयः । मातामहा रावणस्य ते समन्त्य परस्परम् ॥२६१॥
 दशाननं बोधयितुं तेभ्यस्त्वेको ययौ जवान् । मान्यवानिति नाम्ना यो बुद्धिमान्स्नेहसंयुतः ॥२६२॥
 प्राह तं राक्षसं वीरं प्रशान्तेनांतरात्मना । शृणु राजन् वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम् ॥२६३॥
 यदा प्रविष्टा नगरीं जानकी रामवल्लभा । तदादि पुर्यां दृश्यते निमित्तानि दशानन ॥२६४॥
 घोराणि नाशहेतूनि तानि मे वदतः शृणु । स्वराः स्तनितनिर्धोषा मेघाः प्रतिभयंकराः ॥२६५॥
 शोणितान्यभिर्वर्षन्ति लंकामुष्णेन सर्वदा । मीदन्ति देवलिङ्गानि स्थिद्यन्ति प्रचलन्ति च ॥२६६॥
 कालिका पांडुरेदंतः प्रहमतेऽग्रतः स्थिताः । स्वरा गोषु प्रजायते मृषका नकुलः सह ॥२६७॥
 माजारेण तु पुष्पते पद्मगा गरुडेन च । कगलो विकटो मृगः पुरुषः कुष्णपिंमलः ॥२६८॥
 कालो गृहाणि सर्वेषां काले काले त्ववेक्षते । एतान्यन्यानि दृष्टानि निमित्तान्युद्भवति च ॥२६९॥
 अतः कुलस्य रक्षार्थं शान्तिं कुरु दशानन । सीतां सन्कृत्य सधनां रामायाश्च प्रयच्छ भोः ॥२७०॥
 मातामहवचश्चैवं श्रुत्वा तं रावणोऽज्रवीन् । रामेण प्रेषितो नूनं प्रापमे त्वमनर्गलम् ॥२७१॥
 गच्छ वृद्धोऽसि बहुस्त्व सोढुं सर्वं त्वयोदितम् । इतो वा कर्णपदवीं दहन्येतद्वचस्तव ॥२७२॥
 हन्युकः स रावणेन मान्यवान्स गृहं ययौ । रावणोऽपि ममं गन्वा चोदयामास राक्षमान् ॥२७३॥
 पूर्वद्वारं तु धूम्राक्षं वज्रदण्डं तु पश्चिमम् । नरांतकं दक्षिणं तमुत्तरं च महोदरम् ॥२७४॥

नना ॥ २५७ ॥ अङ्गदको दक्षिणी दरवाजपर, वायुपुत्र हनुमानको पश्चिम द्वारपर, नलको सेनाके साथ पूर्वद्वारपर और सुषेणको उत्तरी दरवाजेपर जानेको कहा ॥ २५८ ॥ वे सब रामको नमस्कार करके अपनी-अपनी सेना लेकर गये और लंकाके चारों दरवाजाका राककर खड़े हो गये ॥ २५९ ॥ ऊपर रावण भी सुग्रीवके हाथसे मार खाकर पायल हो घर जाकर एकान्तमें मन मारके बैठ गया और सुग्रीवके पुरुषार्थका स्मरण करने लगा ॥ २६० ॥ तब रावणके नाना माली, सुमाली तथा मान्यवान् इन तीनों माइयोंने आपसमें राघ की और रावणका समझाने के लिए इन तानोंमेंसे बुद्धिमन् तथा स्नेही मान्यवान् उसके पास गया ॥ २६१ ॥ ॥ २६२ ॥ यह शान्तिपूर्वक वार राक्षसेश्वर रावणका समझाते हुए कहने लगा—हे राजन् ! मेरी बात सुन ल, फिर जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करिएगा ॥ २६३ ॥ हे दशानन ! जबसे रामकी प्यारी सीता लंकाम आयी है, तबसे यहाँ बराबर अपनावुन हा देखनेमें आते है ॥ २६४ ॥ वे सब भयानक और नाशके निमित्त है । उनका मैं कहना हूँ, आप सुने । मेघ तीव्र गर्जनके शब्द करते हुए लंकामें गरम खूनको सतस बर्षा करते है । शिवालिंग लिप्टे देखनेमें आते है । वे कभी पसीजते हैं और कभी काँपने लगते हैं ॥ २६५ ॥ ॥ २६६ ॥ आगे खड़ी कालीकी मूर्तिएँ पीने-पाने दीति निकालकर हैंसती है । गायोंके पेटसे गधे पंदा हात हैं । बूहे न्याली तथा बिल्लियोंसे लड़ते है । साँप गरुड़के साथ युद्ध करते है । कभी-कभी कराल काल मिर मुड़ाए काल-पीले पुरुषका रूप धारण करके लोगोंको पकड़ता हुआ दीखता है । इनके अतिरिक्त और भी अनेक अशकुन प्रकट होत दाखल हैं ॥ २६७-२६९ ॥ इसलिए हे दशानन ! कुलकी रक्षाके लिये शान्ति धारण करो और सीताका आदर-सत्कार करके प्रचुर धनके सहित शीघ्र रामको सोप आओ ॥ २७० ॥ यह सुनकर रावणने अपने नानासे कहा कि अवश्य तुम रामके द्वारा यहाँ इस प्रकार अनर्गल (उत्पटान) बाँते करनेके लिये भेज दिये हो । अस्तु, जो हुआ सा हुआ । अब तुम यहाँसे निकल जाओ । वृद्ध तथा सगे नाना होनेके नाते इन्ती बातें मैंन सहू ला । तुम्हारा बातें हमारे कानोंको जलाये दे रही है ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ रावणके एसा कहनेपर मान्यवान् अपने घर बला गया । रावणने भी सम्मानं जाकर राक्षसोंको आज्ञा दी ॥ २७३ ॥ बदन्तर लंकाके पूर्वद्वारपर धूम्राक्षको, पश्चिमी द्वारपर वज्रदण्डको, दक्षिणी द्वारपर नरांतकको और उत्तरी

प्रेषयामास सैन्येन वज्राघस्तोपितान् जवान् चन्वारस्तेष्वपि नन्वा तं रावणं मंगरं ययुः ॥२७५॥
एवं रामरावणयोः सैन्यानि च परस्परम् । युद्धस्तानि सम्मुखानि मंगराघं महास्वनैः ॥२७६॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दराभायणे वाल्मीकीयं सारकाण्डे
युद्धचरिते रामरावणसेनासंयोगो नाम दशमः सर्गः । १० ॥

एकादशः सर्गः

(श्रीरामके द्वारा रावणका वध)

श्रीशिव उवाच

अथ ते राक्षसाः सर्वे द्वारेभ्यः क्रोधमूर्च्छिताः । निगत्य मिदिपालैश्च स्वर्णैः शूलैः परवर्धः ॥ १ ॥
कुन्तैः शरैः शतघ्नीभिः संक्रमैः क्षत्तिभिर्ददम् । निजघ्नुर्वानरानीकं महाकाया महाबलाः ॥ २ ॥
गक्षसांश्च तदा जघ्नुर्वानरा जितकायिनः । धूर्तग्राहिः पर्वतैश्च शृष्टिमिः करताडनैः ॥ ३ ॥
ते हयैश्च गजैश्चैव रथैः काचनसभिः । रक्षाव्याघ्रा युयुधिरे नादयन्तो दिशो दश ॥ ४ ॥
एवं परस्परं चक्रुर्गुहं वानरराक्षसाः । नलो जघान धूम्राश्च वज्रदष्टं स मारुतिः ॥ ५ ॥
नरांतकं स तारेयः सुषेणस्तं महोदरम् । चतुर्थांशवशेषेण निहतं राक्षसं बलम् ॥ ६ ॥
तदांगदाद्याश्चत्वारो महाबाहोमहोत्सवैः । प्रणेमु राममागत्य जयघोषप्रपूरिताः ॥ ७ ॥
स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा मेघनादो घर्षो तदा । सर्पास्त्राद्व्याकुलं रामं चकार बंधुवानरैः ॥ ८ ॥
रामः सुस्मार ताक्ष्यं स ताक्ष्यः सार्पेन्यवारयत् । ततः स्वस्थो ब्रह्मवादनार्थानं गतोऽसुरः ॥ ९ ॥
सर्वास्त्रकुशलो व्योम्नि ब्रह्मास्त्रेण समन्ततः । वर्षं शस्त्रालानि जप्तासं मानयंस्तदा ॥ १० ॥
क्षणं तूष्णीमुवासाथ रामः स बंधुवानरैः । ततः स्वस्थो रघुश्रेष्ठो ददश पतितं बलम् ॥ ११ ॥
मूर्धागतं ब्रह्मपार्श्वस्तदा लक्ष्मणभर्तृवत् । चापमानय सैमित्रे ब्रह्मास्त्रेणासुरान् क्षणात् ॥ १२ ॥

द्वारपर महोदरको वज्रादिके दानसे क्षण्टुष्ट करके शीघ्र सेनाके साथ भेज दिया वे लोग भी रावणको नमस्कार करके युद्धभूमिपर गये ॥ २७४ ॥ २७५ ॥ इस प्रकार राम-रावणकी सेनाएँ परस्पर युद्ध करनेके लिए भीषण भजन करती हुई एक दूसरेके सामने जा खड़ी ॥ २७६ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दराभायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायारामरावणसेनासंयोगो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

शिवजी बोले—बादमे वे सब महाकाय तथा महाबली राक्षस दई शीघ्रके साथ दरवाजोसे निकल-निकल कर बछी, तलवार, त्रिशूल, भाला, बाण, तोप तथा भक्तिये लेकर वानरो सेनाको दृढ़ताक साथ मारने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ विजयी वानर भी वृक्ष, पत्थर, पर्वत, मुक्तके तथा चप्पडोसे राक्षसोको पीटने लगे ॥ ३ ॥ उधर राक्षस भी दशों दिशाओको गुञ्जाते हुए घोड़े, हाथी तथा सुवर्णसदृश रथापर आढढ़ होकर युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ इस प्रकार वानर और राक्षस आपसमे झड़न लगे । नलन धूम्रासको और मारुतने वज्रदंष्ट्रको मारा ॥ ५ ॥ तारासुत अङ्गदने नरान्तकको मारा और सुषेणने महोदरकी मार डाला । इस प्रकार राक्षसोकी सेना चार भागोसे केवल एक भाग बाकी रही और सब मार दी गयी ॥ ६ ॥ तब अगदादि चारों बीरोने जयध्वनि करते हुए सोत्साह वाजे-गाजेके साथ रामके पास आकर प्रणाम किया । ७ ॥ अपने सैन्यको निहत देखकर मेघनादने सर्पास्त्रसे बाँधकर भाई लक्ष्मण तथा वानरो सहित रामको व्याकुल कर दिया ॥ ८ ॥ तब रामने गारुडास्त्रका स्मरण किया । उसने आकर उस सर्पास्त्रका निवारण किया । तब वह अनुर मेघनाद ब्रह्माके वरके प्रतापसे अन्तर्धान हो गया और सभी शस्त्रास्त्रोको चलानेमे कुशल इन्द्रजित् अलक्षित होकर ब्रह्मासे चारों तरफ ब्रह्मास्त्र द्वारा बाणोकी वर्षा करने लगा । उस समय ब्रह्मास्त्रकी सर्पादा दसनेके स्थिये बन्धु तथा वानरो सहित राम क्षणभरके लिए क्षुण्ण हो गये । तदनन्तर जब स्वस्थ होकर रामने निहारा तो अपनी सेनाकी

भस्मीकरोमि तच्छ्रुत्वा लङ्काभिद्रजयो ययौ । श्लेषतो स्वमान्निधेयं यव वायुजगधमौ ॥१३॥
 वरदानाद्ब्रह्मणस्तौ दृष्ट्वा रामः स जीविनी । तावुवाच गृध्रश्रेष्ठ युवाभ्यां बांधवान् रणे ॥१४॥
 गत्वाऽस्ति जीवितश्चेद्दि वाच्यस्तर्हि गिरा ममा उपायं चितयन्मया चानगणां सुजीवने ॥१५॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तौ विभीषणमारुही । निशान्धे तौ विचिन्वन्तौ जावयंतं प्रजग्मतुः ॥१६॥
 उन्मूकहस्तौ तं दृष्ट्वा प्रोचन् राघवेयितम् । जाववानपि तां रामगिरं श्रुत्वाऽतिद्विषितः ॥१७॥
 निमीलिताक्षः प्रोवाच कौ युवां वायुजो रणे । चेदस्ति जीवितस्तर्हि जीवयिष्यति चानगान् ॥१८॥
 तदा विभीषणः प्राह त्वया न्यक्त्वांगदादिकान् । पृच्छयन्तेऽद्य कथं वायुपुत्रस्य परमादगन् ॥१९॥
 तदा विभीषणं प्राह जाववानृक्षमत्तमः । रुद्रावतारः सज्जं वायुपुत्रः प्रतापवान् ॥२०॥
 न ज्ञेयः कपिरेवात्र तस्मान्न त्वं विलोकय । नदाऽब्रवीज्जावयनं नन्वा स वायुनन्दनः ॥२१॥
 यं त्वं पृच्छसि सोऽद्याह जीविनाऽस्म्यद्य मारुतिः । विभीषणां । द्वितीयाऽयं यन्त्रया परिभाषते ॥२२॥
 तदा स जाववांस्तुष्टौ मारुतिं वाक्यमब्रवीत् । गन्वा क्षीरनिधिं वेगाद्द्रोणाद्रिं त्वं समानय ॥२३॥
 तथेन्युक्त्वा त्वरन् गन्वा गधवर्गोऽपि न गम । कामधेन्या स्त्रोयधर्मनेत्रलेपान्प्रदर्शितम् ॥२४॥
 उत्पाद्य पुण्यवद्भूत्वाऽऽनयामास कपिजवान् । पर्वतोद्भववल्लीनामवघ्रायामृतापमम् ॥२५॥
 मुग्धं जीवयिष्यति राक्षसाश्चेति शक्या । निहतान् राक्षसान्मर्वास्तदा ताक्ष्यविभीषणां ॥२६॥
 चिक्षिपतुः सागरे तान् गधवस्याहया क्षणान् । तदानीं तं गिरिं दृष्ट्वा सुपेणः स भिषग्वरः ॥२७॥
 पर्वतोद्भववल्लीभिर्जीवयामास तान् कर्षान् । ततः शालामृगाः सर्वे समुत्तस्थुर्विजृम्भिताः ॥२८॥
 द्रोणाचलं यथास्थाने स्थापयामास मारुतिः । कुवेर्गार्गितदिव्यांभः प्रमृज्य नयनयु च ॥२९॥

ब्रह्माणशसे मूर्छित होकर जमीनपर पड़ा देखा । सो दम्बकर उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—ह सोमित्रे ! वायु
 लीला, मैं इन सब अगुरोंका भयम कर दूंगा । यह मुनकर मेघनाद लङ्काका भाग गया । उस समय रामन
 अपन पास हो विलाप करते हुए तथा ब्रह्माक वरदानसे जीवित वायुपुत्र और विभीषणको दत्तकर उन दोनोंसे
 कहा—तुम लोग रणायणमें जाओ, वहाँ पर स जाओ और यदि वे जीवित हो तो उन्हें मेरा सन्देश मुनात हुए कहो
 कि वानरोके जीवित होनेका कोई उपाय हो सक तो स.च. १. १४. ॥ रामको आज्ञा मुनकर मारुति तथा
 विभीषण अर्धरात्रिक समय जाववान्को स्वाजन निकले ॥ १५ ॥ दानान हाथीम मशाल ले ली । स्वाजत-स्वाजते
 जब जम्बवान् भिने तो उन्हें रामका सदेश मुना दिया । जाववान् यह मुनकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥
 आज्ञाको निमालित निय हुए हा व व न कि नुन दाना कीन हो ? यदि वायुपुत्र हनुमान् इस रणक्षेत्रमें जीवित
 हो तो वे सब वानरोको जिला लेग ॥ १७ ॥ तब विभीषणन कहा—ह जाववान् ! तुमन अनद आदि वीरोंको
 डाँटकर बड़े आदरक साथ व पुत्रका ही क्यों पूजा ? ॥ १८ ॥ ऋषाम श्रेष्ठ जाववान् विभीषणको
 उत्तर दिया कि प्रताप वायुपुत्र हनुमान् साक्षान् रुद्रक अशसे उत्पन्न हुए ह ॥ १९ ॥ उनका केवल कपि ही
 न समझो । अब तुम उनका पत. लगाओ । तब हनुमान् नमस्कार करके जाववान्से कहा—॥ २० ॥
 जिसका आप पूछ रहे है, वह मर्ति जीवित खड़ा है । हमरा जा आपसे दात कर रहा है, वह विभीषण
 है ॥ २१ ॥ तदनन्तर प्रसन्न हुकर जाववान् न मारुति कहा—तुम क्षारसागर जाकर गंध द्रोणाचलको ले
 आओ ॥ २२ ॥ 'तथाम्नु' कहकर हनुमान् गन्ध द्रिय और गन्धर्वों द्वारा सुरक्षित तथा कामधेनुका
 च ना लगे नेत्रोंसे दिखाई दन हुए उस पर्वतका उखाड़कर फूँकी तरह शाश्व उठा ले आय । इधर
 इस गङ्गासे कि पर्वतोत्पन्न वनिल्योंका अमृत पत्र मुग्धपन राक्षस भी जा जायगे, गरुड तथा विभीषणन
 उन्हें रामकी आज्ञासे उठा उठाकर समुद्रमें फक दिया अब बंदर सुपेणने द्रोणागिरिको देखकर पर्वतोत्पन्न
 दृष्टियोंसे उन मरे हुए वानरोको जिलाना आरम्भ किया । सद्गता वे सब वानर जभाई न लेकर खड़े क्षान
 न ॥ २४-२५ ॥ तदनन्तर मारुति पुन. द्रोणाचलको ययस्थान रख आये और कुवेरके दिये हुए दिव्य जलको
 बर्षाकेम लगाकर वे रणमें राम आदि अन्तर्हितोंको देखने लगे । उसी समय रावणने भी अतिनाद, प्रहस्त,

अन्तर्हितानां रामाद्या दशैव प्राप्नुमहे । ततः सशेषयाशाम रावणः स्वीयमन्त्रिणः ॥३०॥
 अतिनादः दहस्तश्च महानाददरीमुखाः । देवशत्रुर्निकुम्भश्च देवांतकनरान्तकौ ॥३१॥
 सारणाद्या बलैरन्ध्रे युगुर्निर्गः सट । तान्मर्धानगदाघास्ने हत्वा तस्युर्ध्विर्जिताः ॥३२॥
 तदा कुम्भनिकुम्भं दौ कुम्भकर्णमुतोत्तमौ । रावणः प्रेषयामास युद्धार्थं नौ प्रजग्मतुः ॥३३॥
 तदा कुम्भो जम्बवना निहतश्च रणाजिरे । अंगदेन निकुम्भश्च हतः श्रुत्वा दशाननः ॥३४॥
 अतिकायं स्वीयपुत्रं प्रेषयामास मगरम् । अतिकायेन सौमित्रिः कृत्वा मंगरमुन्वयणम् ॥३५॥
 शरेण पानयामास लङ्कायां तच्छिरो महन् । तदा यथा रावणः स स्वयं युद्धाय वेगतः ॥३६॥
 मुहन्मित्रजनैर्युक्तो वेष्टितः पुरगार्मभिः । रणे विभाषण दृष्ट्वा कोपाच्छक्तिं मुमोच सः ॥३७॥
 पृष्ठं विभाषण कृत्वा यथावप्रे स लक्ष्मणः । इदि मनाडितः शक्त्या पपान भुवि लक्ष्मण ॥३८॥
 लक्ष्मण नगरी नेतुं न यथा स दशाननः । न चचाल भुजस्तस्य सौमित्रेः शेषरूपिणः ॥३९॥
 तं नेतुकामं हनुमान् इदि मुष्ट्या व्यताडयन् । तेन मुष्टिप्रहारेण पपान रुधिरं वमन् ॥४०॥
 आनयामास सौमित्रि मारुतिः कर्पिणादिनाम् । रथारूढो रावणाऽपि चिन्त्याश्च मारुते शरैः ॥४१॥
 ततः कुट्टन रामेण वाणेन इदि ताडितः । माश्वरजं रथं मूतं राघवो घनुरोजमा ॥४२॥
 छत्र पताकां तस्मा चिच्छेद शिवमयकैः । अर्धचन्द्रेण चिच्छेद तत्किराटं रश्मिममम् ॥४३॥
 तनस्तं व्याकुलं दृष्ट्वा रामो रावणमन्वरीन् । गच्छाद्य लङ्काभाष्यन्ः क्षम्य पश्य बलं मम ॥४४॥
 ततो लज्जानतशिरा यथा लङ्कां दशाननः । रामोऽपिलक्ष्मण दृष्ट्वा मूर्च्छितः प्राह मारुतिम् ॥४५॥
 द्रोणाचल ममार्नाय जीवयेन तथा कर्मान् । तथेति स यथा व्रगात्तज्जान्वा स दशाननः ॥४६॥
 प्रार्थयिन्वा कालनेमि तद्विघ्नार्थमचोदयन् । स गत्वा हिमवन्पार्श्वं तपोवनमकल्पयन् ॥४७॥
 तत्र शिष्यैः परिहृता मुनिवपधरः स्थितः । मारुतिश्चाश्रय दृष्ट्वा जलं पातु चिवेश तम् ॥४८॥

महानाद, दशगुण देवशत्रु निकुम्भ, देवान्तक तथा नरान्तक आदि मन्त्रिणां भ्राता ॥ २९-३१ ॥ सारणादि
 दैत्योन्ने भा यदुत्तमं, मना लहर वानरोके साथ युद्ध किया । अङ्गद आदि वानर उन सबको साथकर गर्जन करने
 लगे ॥ ३२ ॥ तब कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भ तथा निकुम्भको रावणन युद्ध के लिए भेजा ॥ ३३ ॥ निकुम्भपुत्र लक्ष्मणने
 उनके साथ यार युद्ध करके उनके मित्रोका वाणसे काटकर लङ्का में फेंक दिया । तब रावण स्वयं लड़नेके लिए
 निकल पड़ा ॥ ३४-३६ ॥ उसके साथ मित्र मुहद् तथा पुर्यमी लाग भा गया । रावणने रणमें विभीषणको
 देखकर उभर शक्तिवा प्रहार किया ॥ ३७ ॥ यह देखकर लक्ष्मणने विभाषणको पीछे कर लिया और स्वयं
 आगे खड़े हो गया । जिससे वह शक्ति लक्ष्मणके हृदय में लगी और वे धड़ मसे पृथ्वापर गिर पड़े ॥ ३८ ॥ उन्हें
 नगरमें उठा ल ज तेक लिय दशानन आगे बढ़ा और उनका उठाना चाहता, पर प्रभावतारस्वरूप लक्ष्मणका एक
 हाथ भी रावणसे नहीं लिया ॥ ३९ ॥ उस समय अचर देवका हनुमान् रावणकी छात में एक मुक्का
 मारा । उस मुष्टिप्रहारसे रावणके मुखसे रुधिर निकलन लगा और वह भरतापर गिर पड़ा ॥ ४० ॥ तदनन्तर
 मारुति लक्ष्मणका कर्पिणनाम उठा ल आये । तभी रावण रथपर सवार होकर महतिका वाणसे वीधन लगा
 ॥ ४१ ॥ यह देखकर क्रुद्ध रामने रावणके हृदयमें वाण मारा और अश्व तथा ध्वजा सहित रथका, सारथाको,
 घनुषका, छत्रका तथा पताकाको अपन तीक्ष्ण वाणोंसे काट निराया । अर्धचन्द्राकर वाणसे उन्होंने उसका सूर्यके
 समान तजम्बी किराट भी काट डाला ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ पश्चात् रावणको व्याकुल देखकर रामने कहा—जा,
 लङ्का में जान जा और आश्वस्त होकर कल फिर भरा बल देखना ॥ ४४ ॥ तब रावण नीचा मुख किये लङ्का में
 चला गया । रामने लक्ष्मणको मूर्च्छित देखकर मारुतिसे कहा—॥ ४५ ॥ पूर्ववत् द्रोणाचल लाकर लक्ष्मणको
 जिलाओ । 'तथाम्बु' कहकर हनुमान् चले पड़े । इस बातका पता लगनपर दशाननने कालनेमिसे प्रार्थना
 करके उसका हनुमान्के रागमें विघ्न डालनेके लिए भेजा । उसने जाकर हिमवान् पर्वतके पास एक तपो-
 वनकी रचना की ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ वहाँ बहुतसे शिष्योंको साथ लेकर वह स्वयं मुनिवेष धारण करके बैठ गया ।

मुनिना मानितश्चापि जलकुम्भः प्रदर्शितः । मारुतिः प्राह तस्मिन् वै तेन भविष्यति ॥४९॥
 तं पुनः प्राह स मुनिस्तटाकं निकटस्थितम् । गच्छाक्षिणी पिधाय न्व जलं पिब यथासुखम् ॥५०॥
 आगच्छाशु पुनश्चात्र सुखं तिष्ठ ममान्दकम् । जानामि ज्ञानदृष्ट्याऽहं लक्ष्मणश्चेन्निधनस्मिन्नि ॥५१॥
 गृहाण मन्त्रान् मत्तस्त्वं यैश्च पश्यमि तं गिरिम् । गोपितं त्वद्य गधर्वैर्यं न त्वं नेतुमिच्छामि ॥५२॥
 प्लवगानां जीवनार्थं लङ्कायां वेगतः कपे । मत्तस्त्र लब्धविद्यं मन् ददस्व मुन्दक्षिणाम् ॥५३॥
 तथेति मारुतिर्गत्वा कासारमपि चञ्जलम् । पिधाय त्रेत्रं तावत्कमग्रमन्मकरी तदा ॥५४॥
 सोऽपि तां दारयामास धृत्वाहये मा मम ॥ ह । ततोऽन्नरिक्षे मा प्राह दिव्यरूपा तु मारुतिम् ॥५५॥
 पुराऽहं मुनिना स्पृश्या प्रार्थिता न रतिर्मया । दत्ता श्रमाऽस्मि त्वत्तो मे निष्कृतिस्तेन कीर्तिता ॥५६॥
 धान्यमालीति त्रिलयान्ताऽप्सराः पूर्वं भवांतरे । आश्रमे यस्त्वया दृष्टः कालने मर्महासुरः ॥५७॥
 रावणप्रेषितो मार्ये स्थितस्तं जहि वेगतः । तथेति मारुतिर्गत्वा मुनिं प्राह न्यराश्रितः ॥५८॥
 मुष्टिं बद्ध्वा दृढो घोरां गृहाण गुरुदक्षिणाम् । हन्युक्त्वा ताडयामास हृदि तं मुष्टिना तदा ॥५९॥
 पपात भुवि रक्तं स वमन् प्राणान् जहौ क्षणान् । ततः शीरां नधि गच्छा जिह्वा गवर्धमन्मान् ॥६०॥
 द्रोणाचलं गृहीत्वा स यावद्गच्छति मारुतिः । विहायमाशतवेगेन लङ्कां तावच्च वं पथि ॥६१॥
 भरतेन शरं भुक्त्वा पर्वतो भुवि पालितः । भरतं मारुतिर्दृष्ट्वा गमोऽयमिति विह्वलः ॥६२॥
 उवाच मधुरं वाक्यं कथमत्र समागतः । जितं किं रावणेन त्वं रणं त्यक्त्वा पलापितः ॥६३॥
 एवमुक्तोऽपि भरतः पुनस्तं मारुतिं वरम् । मन्वाऽयं राक्षसश्चेति सदधे निशित शरम् ॥६४॥

मारुति रावणसे मुनिका आश्रम देखकर उसमें जल पीनेके लिए गये ॥ ४९ ॥ मुनिने मारुतिका सम्मान किया और जल पीनेके लिये उनको एक भरा घड़ा दिखाया, तब हनुमान्ने कहा कि इतनसे मेरी तृप्ति नहीं हुआ ॥ ४९ ॥ तब मुनिने उन्हें एक तालाब दिखाया और कहा कि वहाँ जाकर तुम अश्विंको बन्द करके आनन्दपूर्वक जल पी लो ॥ ५० ॥ बादमें जाकर वहाँ मरे पास शान्तिन बंठा, मुझे ज्ञानदृष्टिसे पता लग गया है कि लक्ष्मण उठ खड़ा हुआ है । इसलिए अब चित्तको कोई बाध नहीं है ॥ ५१ ॥ दूसरी बात यह है कि मैं तुम्हें कुछ ऐसे मन्त्र बताऊँगा कि जिनसे तुम्हें गन्धर्वों द्वारा रक्षित वह पर्वत दिसलाई दे जायगा, जिसका कि तुम से जाना चाहते हैं ॥ ५२ ॥ उसको लङ्का से जाकर तुम वानरोंको शीघ्र जिला स्वन हो । इस प्रकारकी विद्या मुझसे ग्रहण करनेक बाद तुम्हें मुझ गुरुदक्षिणा भी देनी होगी ॥ ५३ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर मारुतिने तालाबपर जाकर जल पिया, परन्तु तब बन्द होनेके कारण उस समय एक मकरीने जाकर उन्हें पकड़ लिया ॥ ५४ ॥ तब मारुतिने उसका मुँह पकड़कर चीर डाला । जिससे वह मकरी मर गयी । पश्चात् वह दिव्य रूप धारण करके आकाशमें जाकर दक्षिणमें चली—॥ ५५ ॥ पूर्वकालमें एक मुनिने मुझको दुराचार करनेके लिए कहा, परन्तु अब मैंने उन्हें रक्षित नहीं की । तब उन्होंने मुझे मकरी होनेका शपथ देकर कहा कि तेरा निस्तार मारुतिसे होगा ॥ ५६ ॥ पूर्वजन्ममें मैं धान्यमाली नामको विख्यात अप्सरा थी । वही आश्रममें जो एक मुनि बंठा हुआ आपसे देखा है, वह कालनेमि नामका महान् राक्षस है ॥ ५७ ॥ रावणने उसको आपके मार्गमें बिघ्न डालनेके लिए भेजा है । आप शीघ्र जाकर उसको मार डालें । 'बच्छो बात है' कहकर मारुति तुरन्त वहाँ पहुँचे ॥ ५८ ॥ उन्होंने वह मुक्का बांधकर 'यह लो अपनी गुरुदक्षिणा' ऐसा कहने हुए उसको छातामें जोरसे मुक्का मारा ॥ ५९ ॥ उस प्रहारेमें वह जर्मनगर लुटक पड़ा । उसके मुँहमें रक्त बहने लगा और क्षणभरमें वह मर गया । तदनन्तर क्षात्रसागर जा तथा गन्धर्वोंको जैतकर द्रोणाचलको लिये हनुमान् आकाशमार्गसे जा रहे थे कि राक्षसेम भरतने बाण मारकर उनके हाथमें वह पर्वत गिरा दिया । हनुमान् भरतको देख उन्हें धूमवज्र राम समझकर घबरा गये ॥ ६०-६२ ॥ उन्होंने मधुर वाणीमें कहा—हे राम ! आप यहाँ कहानि और क्यों आ गये ? क्या आपको रावणने जेल लिया ? अथवा रण छोड़कर आप यहाँ भाग बाये हैं ॥ ६३ ॥ मारुतिके इतना कहनेपर भी भरतने उन्हें राक्षस समझकर मारनेके लिए एक

बाणहस्तं तमालोक्य भुभुक्षारं विधाय सः । नैनायं राघवश्चेति मन्त्रा ध्यान्वा क्षणं हृदि ॥६५॥
 भग्न मारुतिः प्राह रामदूतोऽद्य मे बलम् । पश्यमि न्य तद्गिरि तां श्रुत्वा तं भरतोऽब्रवीत् ॥६६॥
 बंधुना मम रामेण कुतो वद ममागमः । तत्र जातं मभिस्तार दंडकारण्यवामिना ॥६७॥
 ततस्तं मारुतिर्वृत्ते मश्राव्य राघवस्य तु । भरतेनेष्टुणा दत्त गिरि धृत्वा ययौ पुनः ॥६८॥
 लङ्कां गन्वा स बह्मभिर्जीत्यामम लक्ष्मणम् । वानरांश्च भरतस्य रामं द्यूतं न्यवेदत् ॥६९॥
 पुनर्नीत्वा यथास्वानं तं गृस्थाप्य महाचलम् । लक्ष्मणो जीविनश्चेति संश्राव्य भरतं पुनः ॥७०॥
 ययावाकाशमार्गेण लङ्कां गन्तु मनो दधे । नृपानाकलयामास माकेव भरतोऽपि सः ॥७१॥
 महाध्यायार्थं राघवस्य लङ्कां गन्तुं सती दधे । ततः सहायामसीनो राघवः प्राह राक्षमान् ॥७२॥
 गच्छध्वं त्वरितं दूताः पानात्ते तौ महाबलौ । ऐरावणो महानुग्रस्त्वथा मैगवणो महान् ॥७३॥
 तयोर्मे कथनीयं हि युद्धवृत्तं वयस्पयोः । तथेति ते मता दूतास्तौ तद्वत् न्यवेदयन् ॥७४॥
 तौ श्रुत्वा विह्वलन्मानी लङ्कायां समरस्थितौ । राम च लक्ष्मण इतु निशयां तौ समागतौ ॥७५॥
 ददशतुस्तौ पुच्छस्य परिधे हि हनुमवः । कपीनां तत्र सेनायास्तदाकाशान्महाबलौ ॥७६॥
 निपेततुः कपान्तौ तु सेनायां रामलक्ष्मणौ । किञ्चिद्विनिद्रितौ दृष्ट्वा शिलायां सगरश्चमात् ॥७७॥
 निन्यतुस्तौ शिलां शीघ्रं पानाल निजमन्दिगम् । एतस्मिन्नन्तरेऽद्भुतः सेनायां रामलक्ष्मणौ ॥७८॥
 मारुतिः पादमार्गेण तयोः पानालमापयौ । एतस्मिन्नन्तरे मर्गे लङ्कादधिपदिक्कटे ॥७९॥
 निकुम्भिलायां स्वपतिं कपोती प्राह पुदिर्णी । नाथाय नमामं मे भोक्तुं स्पृहयते मनः ॥८०॥
 य प्राह्य समानीतौ वर्तेते रामलक्ष्मणौ । रमानलं हि दैत्याभ्यां देव्यग्रंतौ वधिष्पतः ॥८१॥
 अथ श्वस्तद्वये जाते मांसमानीय तेऽप्ये । तद्वाक्यं मारुतिः श्रुत्वा किञ्चित्तोषयुतो ययौ ॥८२॥

और तेज बाण घुपपर चढ़ाया ॥ ६४ ॥ उनको हृदयमें बाण लिये दख मारुति भू भू करके मनमें यह सोचकर कि ये राम नहीं है ॥ ६५ ॥ भरतसे बोले कि 'मैं रामका दूत हूँ । आज तुम देख लो ।' उनका यह वाक्य मनकर भरतने कहा ॥ ६६ ॥ दण्डकारण्यवामो मेरे भाई रामके साथ नुम्हाग समानम कहाँ हुआ ? सौ विस्तारपूर्वक बोहो । तब मारुति भरतका सब हाल गुनकर भरत द्वारा दिये हुए उम पर्वतको पुनः उठाकर चल पडे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ लङ्काम आ तथा लङ्कीमें लक्ष्मण तथा वानरोंको जीविन करके उन्होंने रामको भरतका समाचार कह मनाया ॥ ६९ ॥ फिर वानरों ने तबकर दृष्टाचलको उसके भवानपर रख आये और भरतको लक्ष्मणके जीविन हो उठनका शुभ समाचार भी सुना दिया ॥ ७० ॥ इतना काम करके हनुमान पुनः बड़ी तेजीके साथ लङ्कामें लौट आये । उधर भरतने अपना काम सब राजाओंको तकत्र करके स दुर्गमें जलर रामको सहायता देनेका विचार किया । तभी महाप्र लेख रावणने भा राक्षसोंको बोलाकर कहा- ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ हे दूतो । तुम लाभ शीघ्र पानालमें जाकर वहाँ रहनेवाले महान् उग्र ऐरावण तथा महान् मैगवण इन दोनों मेरे मित्रोंका यहाँके युद्धका समाचार नवना । 'तथागत' कहकर बहुत वदत वहाँ गये और उन दोनोंको सब वृत्तान्त निवेदन कर दिया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ यह गुनकर व दोनो बड़ा अनुरतके साथ लङ्कामें आ पहुँच और रात्रिके समय राम-लक्ष्मणका हूण करनेके लिये रामके जिविरमें गये ॥ ७५ ॥ वहाँ उन दोनोने वानरोंकी सेनाके चारो ओर हनुमान्का पूछका बना हुआ दुर्गमें परिध देखी । तब महाबलान् उग्र दैत्याने आकाश-मार्गसे कूदकर कपियोंका सेनामें प्रवण किया । वहाँ राम-लक्ष्मणको एक शिलापर युद्धभूमि तककर सीते हुए दख उन दोनोने उस शिला समत राम लक्ष्मणको उठा लिया और पानालमें ले गए । रास्तेमें लङ्काके दक्षिण किनारे निकुम्भिला गुफामें स्थित एक गंधर्वती कपोतिका अपने दक्षिणे कह रही थी कि हे नाथ ! आज मुझे नरभक्ष खानेकी इच्छा हो रही है ॥ ७६-८० ॥ पतिने कहा-आज दो दैत्य राम-लक्ष्मणको रसातलमें ले जाये हैं । वे दोनों देवीके सम्मुख मारे जायेंगे ॥ ८१ ॥ कल उनका वक्त हो जानेपर मैं

नावददर्श तद्द्वारि संस्थितं मकरध्वजम् । स धृत्वा तं हनुमन्तं पप्रच्छ मकरध्वजः ॥८३॥
 कस्त्वं कुतः ममायातः स्ववृत्तं प्राह मारुतिः । गमदूतस्तु लङ्कायाश्चार्ताती रामलक्ष्मणौ ॥८४॥
 निद्रितौ निशि दैत्याभ्यामत्र पालालमद्य हि । तयोः शोधार्थमायातश्चेत्तं वेन्मि वदस्व तौ ॥८५॥
 तन्मारुतिवचः श्रुत्वा तं प्राह मकरध्वजः । पिता मे वर्तते तत्र क्षेमेर्णाजनिःसंभवः ॥८६॥
 गच्छन्वा चकितः प्राह हनुमान् मकरध्वजम् । हनुमतः कुतः पत्नी नोऽब्रवीन्मारुतिं पुनः ॥८७॥
 लङ्कादाहं पुरा कृत्वा सागरे शीतलं कृतम् । यदा पुच्छं मारुतिना तदा तद्रूपमिवात् ॥८८॥
 कठाच्छ्लेष्मा बहिस्त्वक्कः सागरे सोऽपननदा ।

मकर्या भक्तिः सोऽपि तस्यां जातः मुनोऽस्म्यहम् ॥८९॥

गच्छन्वा मारुतिः प्राह सोऽयमेव न मंशयः । तदा ननाम पितरं तथा वृत्तं न्यवेदयत् ॥९०॥
 कामाक्ष्याश्च बलिं कर्तुं निश्चितौ पूर्वमेव हि । तत्रानेतु यदोद्युक्ता लङ्कां गन्वा सुरोत्तमा ॥९१॥
 भः कामाक्ष्याः पुरः कर्तुं नयोर्दानं विनिश्चितम् । गच्छ देवालये गन्वा तत्र स्थित्वा ह्रस्व तौ ॥९२॥
 ततः स मारुतिर्गत्वा वसरेणुस्वरूपघृक् । देवालये प्रविश्याथ कपाटानि ववध मः ॥९३॥
 नावर्हन्ती मयायानां पूजार्थं द्वारि संस्थिता । शनैर्देव्याः स्वरेणैव मारुतिर्नो वचोऽब्रवीत् ॥९४॥
 पूजा कार्या गणक्षेप मर्जीयौ रामलक्ष्मणौ । वनोद्भवैः फलैः पुष्पादिभिः सम्बद्धं प्रपूजितौ ॥९५॥
 घृतकोदण्डतूर्णीरौ वन्यपुष्पैश्च शोभिनी देवालयस्य किञ्चिद्दि द्वाग्मुद्रायै वै शनैः ॥९६॥
 मनुष्यार्थं प्रेषणीयावत्र मामद्य मानयौ येन केन प्रकारेण यो मामद्य प्रपश्यति ॥९७॥
 भविष्यति निश्चयेन मेऽन्धो नास्त्येव मंशयः । तदेवैव च वनं श्रुत्वा तेषां ज्ञान्वाऽम्बिकां मुदा ॥९८॥

नर लिए नरमाम ला हुंगा । इस बातको सुनकर मारुति कुछ संतुष्ट होकर आगे बढ़े ॥ ८२ ॥ आगे जाकर
 इन्दान उसको द्वारपर मकरध्वजको बंदे देता । उस मकरध्वजन मारुतिको पकड़ लिया और पूछा—॥ ८३ ॥
 तुम कौन हो और कहाँसे आये हो ? मारुतिने अपना परिचय दिया कि मैं रामका दूत हूँ । सोते हुए राम-
 लक्ष्मणको लङ्कासे वा राक्षस उठाकर यहाँ पातालमें आज ही ले आये हैं । मैं उन दोनोंकी खोज करने यहाँ
 आया हूँ । यदि तुमको उनका कुछ पता हो तो बताओ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ मारुतिके इस वचनको सुनकर मकरध्वजने
 पूछा कि मेरे पिता अञ्जनीकुमार हनुमान् वहाँ कुशलक्षेममें हैं ? ॥ ८६ ॥ यह सुना तो हनुमान्ने चकित
 होकर पूछा—अरे हनुमान्की स्त्री ही बीन सी थी कि जिससे तू पैदा हुआ ? उसने मारुतिको उत्तर
 दिया—॥ ८७ ॥ (जब हनुमान् लङ्कासे जाकर अपनी पुछ संतुष्ट ठण्डी की थी । उस समय उन्होंने
 तुम जमा हुआ बंका कंक जलम पक दिया था । उसे एक मछलीने खा लिया । वस, उसीसे
 तब मैं उनका पुत्र हूँ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ यह सुनकर मारुतिने कहा कि यदि ऐसा है, तब तो मैं ही
 अञ्जनीपुत्र हूँ । यह बात सचैया सत्य है तब मकरध्वजने अपने पिता हनुमान्को प्रणाम किया
 और सब समाचार भी कह नवाया ॥ ९० ॥ उसने कहा कि अब वे दोनों असुर यहाँसे रामलक्ष्मणको
 निकाल लिए लका गये थे, उससे पूर्व ही उन दोनोंन रामलक्ष्मणको कामाक्षी देवीके सामने बलिदान देनेका
 निश्चय कर लिया था । तदनुसार बल उन दोनोंका देवीके समुद्ध बलिदान देना निश्चित हो चुका है ।
 चलो, देवालयमें जाकर खड़े हो जाओ और वहाँसे उन दोनोंको उठा ले जाना ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ सत्यभ्यान्
 हनुमान् वसरेणुके समान छाटा रूप धारण करके देवालयमें धुस गये तथा अन्दर जाकर कुपचाप खड़े
 रह गये । उसी समय मारुतिने भीतरसे देवीके जैसा स्वर बनाकर कहा—॥ ९३ ॥ ९४ ॥ आज तुम लोग
 रामसे ही मेरी पूजा कर लो और बादमें घनुष तथा तूर्णीरको धारण करनेवाले रामलक्ष्मण नामके
 राजा मनुष्योंको वनकूल तथा फलों और पुष्पमालाओंसे सुशोभित करके जीवित ही मेरी
 सम्प्रदायके लिए तनिकसी निवाइ खोलकर धीरेसे भीतर कर दो । कोई मनुष्य यदि आज
 किसी प्रकार तनिक भी मुझको देखेगा तो वह अवश्य अन्धा हो जायगा । देवीके इस आदेशको

ततस्तौ पूजनं दैत्यौ गवाक्षेणैव चक्रतुः । पक्वान्नायसादीनां राक्षीस्तौ प्रमुमोचतुः ॥१९॥
 प्रचामृतघटांश्चापि कोटिशस्तौ मुमोचतुः । कोटिशः फलमारैश्च गवाक्षेण मुमोचतुः ॥१००॥
 तत्सर्वं भक्षयित्वा स मारुतिः प्राह तौ पुनः । किं दत्तं प्राप्तमात्रं मे भोजनं क्षुधिताऽस्म्यहम् ॥१०१॥
 तद्व्यावृत्तं वृत्तं भुत्वा तौ दैत्यावनिस्मिनौ । दूतैर्विलुब्धं हृद्वाश्च तथा स्वीयपुरोकमाम् ॥१०२॥
 भक्षणीयपदार्थास्तौ गिरानिव मुमोचतुः । राजगृहादिषु स्वेषु यद्यदस्त्वस्ति संचितम् ॥१०३॥
 तच्चापि दूतैरानीय देव्यं शीघ्रं मुमोचतुः । तदा कोलाहलश्चासीन्प्रतिगेहे पुरोकमाम् ॥१०४॥
 नार्मीच्छेष्ट बालकानां भक्षयवस्त्यण्वपि कश्चिन् । ततस्तौ वन्यपुष्पाग्रैर्मपिनौ रामलक्ष्मणौ ॥१०५॥
 धूतकोदण्डनीरौ द्वारेणैवपिनौ श्रिये । तौ दृष्ट्वा मारुतिर्नत्वाऽऽलिङ्ग्य श्रीगमलक्ष्मणी ॥१०६॥
 कपाटानि तदोद्घात्य दैत्ययोः स व्यतर्जयत् । तनो रामो लक्ष्मणेन बहिर्द्वालयात्तदा ॥१०७॥
 निर्गत्य शरज्जालेस्तौ जघान क्षणमात्रतः । सेवकान् सुहृदादींश्च तयोर्बाणैर्जघान सः ॥१०८॥
 पुनस्तौ जीवितौ दैत्यौ पुनस्तेन निपातिनौ । शतवारं हतावेवं नामीन्मृन्मृन्मयोस्तदा ॥१०९॥
 ततोऽतिविस्मितो भूत्वा त्वरन्गत्वा स मारुतिः । इनस्तनो भ्रमन्पुर्वां नार्गी रहमि सस्थिताम् ॥११०॥
 ऐरावणभोगपत्नीं पप्रच्छ मरणं तयोः । सा प्राह नागकन्याऽहं बलेनानेन धर्षिता ॥१११॥
 मैरावणोऽपि मां नित्यं दुष्टबुद्ध्याऽत्र पश्यति । उभाभ्यामपि च क्रोडां दातुं नास्ति बलं मयि ॥११२॥
 मित्रं त्वेको विपुस्त्वेकस्त्विति दुःखं तयोर्मम । अतस्तयोर्वधे तुष्टिर्मम चापि भविष्यति ॥११३॥
 मारुते यदि रामो मां स्वस्त्रियं हि करिष्यति । तर्ह्यहं कथयाम्यद्य तयोर्मृन्मृन्मयो भवेत् ॥११४॥
 तच्छ्रुत्वा मारुतिः प्राह यदि श्रीगममारतः । न भविष्यति ममस्ते मंचकस्तर्हि ते पतिः ॥११५॥

मुनकर दोनों दैत्योंने समझ लिया कि आज देवी भली भाँति हमपर प्रसन्न हुई हैं ॥ ६४-६५ ॥ बादम दोनोंने गवाक्षभागसे ही देवाका पूजन किया । बताओ, मिठाई, मालपूए तथा खार आदि भी सराखेसे भीतर डाल दिया ॥ ६६ ॥ करोड़ों पञ्चामृतके घड़े अन्दर उँडने और करोड़ों फलोंके ढेर वहीसे भीतर डाल दिये ॥ १०० ॥ वह सब खाकर मारुति पुनः उनसे कहने लगे—क्या तुमने कबलमात्र भोजन दिया है । मैं तो अभी बहुत भूखी हूँ ॥ १०१ ॥ देवीके इस वचनकी मुनकर ने दोनों दैत्य वड़े विरमयमें पड़ गये और अपने दूतों द्वारा दूकानोंका माल तथा नगरवासियोंके सब खाद्य पदार्थ लुटवाकर उसके पर्वतसदृश ढेरको भीतर डाल दिया । अपने राजगृहमें भी जो कुछ खाने-पीनेको चीजें संचित कर रखी थीं, वे भी नौकरोसे मैगवाकर देवीको समर्पण कर दीं । इससे पुरवासियोंके प्रत्येक घरमें बड़ा चारी कोलाहल मच गया । बच्चोंको खानेके लिए भी कहीं कुछ नहीं बचा । तदनन्तर कोदण्ड (घनुष) तथा तूणोर (तरकस) धारण किये हुए राम-लक्ष्मणकी वन्य पुष्पांसे पूजा करके द्वारके रामने धीरेसे देवीको अर्पण कर दिया । उन्हें देखकर मारुतिने नमस्कार किया और उन दोनोंने हनुमान्की हृदयसे लगाया । तब हनुमान् किवाड़ खोलकर बाहर आये और उन दोनों दैत्योंको ललकारा । बादमें राम-लक्ष्मण भी देवालयसे बाहर निकल आये और उन्होंने शरसमुदायकी यर्था करके उन दोनों राक्षसोंको क्षणभरमे मार डाला । ॥ १०२-१०८ ॥ पर वे दोनों राक्षस फिर जी गये । रामने फिर उन्हें मारा तो फिर जी गये और फिर मारा । इस प्रकार उन दोनोंको उन्होंने सौ बार मारे । परन्तु उनकी मृत्यु नहीं हुई ॥ १०९ ॥ तब चकित होकर मारुति उनको मृत्युके उपायकी खोजमें इधर-उधर भ्रमण करने लगे तो नगरीके एक एकान्त स्थानमें स्थित ऐरावणकी भोगपत्नी (गवेल) को देखा और उससे उन दोनोंके मरणका उपाय पूछा । उसने कहा कि मैं एक नागकन्या हूँ । मेरे साथ ऐरावणने बलात्कार किया है ॥ ११० ॥ १११ ॥ मैरावण भी मुझे कुदृष्टिसे देखता है । इन दोनोंको रतिदान देनेकी सामर्थ्य मेरेमें नहीं है ॥ ११२ ॥ एक मेरा मित्र है और एक शत्रु है । पर उन दोनोंमें मुझे दुःख ही मिलता है । अतः इन दोनोंके मारे जानेपर मुझको तो आनन्द ही होगा ॥ ११३ ॥ किन्तु हे मारुते ! यदि राम मुझे अपनी स्त्री बनायें तो मैं वह उपाय बतला सकती हूँ, जिससे कि वे दोनों मारे जा सकें ॥ ११४ ॥ यही

भविष्यति रामचन्द्रस्त्वधेन्युक्त्या नमाह मा । भ्रमगनेकदा पूर्वं बालः कटकगेपितान् ॥११६॥
 मोचयामास तुम्हो हि तेन तुष्टाश्च पट्टपदाः । तावच्चुस्ते युवाभ्यां हि मग्णादक्षिता वयम् ॥११७॥
 यथा तथा युवांश्चापि रक्षाधो मग्णाद्वयम् इत्युक्त्या ते स्थिताश्चात्र ते नीत्वाऽमृतमृतमम् ॥११८॥
 तद्रक्तविदून् स्पृष्ट्वा ते प्रकृष्यति मर्जायितौ । भ्रमगस्ते तयोर्निद्रास्थाने मन्यधुना कपे ॥११९॥
 कोटिशस्तान्मर्दयस्व सोऽपि तान्मर्दयन्क्षणान् । तत्रैकं शरणं प्राप्तं भ्रमरं प्राह मारुतिः । १२०॥
 कुरु मन्त्रकर्म त्वं यत्तु भुक्तकषिन्धवान् । ऐरावणभोगपरन्याः पट्टपदोऽपि तथाऽकरोत् ॥१२१॥
 ततो निहन्त्य तौ दंष्ट्रां पुनर्वाणं गृह्णहः । अभिषिञ्च्य तयोः स्थाने राज्ये न मकरध्वजम् ॥१२२॥
 यावद्गतुं मनश्चक्रे तावन्मारुतिनाऽर्धितः । तागकन्यागृहं गन्वा नानाचित्रविचित्रितम् ॥१२३॥
 दृष्ट्वा तां चारुवदनां वस्त्रालङ्कारमण्डिताम् । धृन्वा करेण तद्रस्ते किञ्चिन्कन्या स्मिताननम् । १२४॥
 चकार मन्त्रकर्म भग्नं स्वभावेण गृह्णतः । ततस्तथा प्रार्थितः स रामस्तां पुनर्गन्त्रीन् ॥१२५॥
 त्यक्त्वा देहं भुव गन्वा भूया ब्राह्मणकन्यका । तदस्मिन्वा चिरं कालं तृतीये स्व तु जन्मनि । १२६॥
 द्वापरे द्वारकायां हि यमं पन्नां भविष्यमि । नद्रामवचनं श्रुत्वा रामाग्रेऽग्निं प्रविश्य सा ॥१२७॥
 कन्याकुमारी नान्नामांद्द्विजकन्याऽन्ध्रिगेधमि । मारुतेः स्कंधमस्थोऽभूत्तदा रामो मुशन्वितः ॥१२८॥
 गच्छे कृत्वा मन्त्रिणश्च लक्ष्मण मकरध्वजः । प्रकरोत्तं स्कंधमस्थं शेषं ब्रह्माण्डधातुकम् ॥१२९॥
 ततः क्षणाज्जगमतुस्तौ लंकां श्रीरामलक्ष्मणौ । श्रीरामलक्ष्मणौ दृष्ट्वा गुर्यावाद्याश्च वानराः ॥१३०॥
 तावान्निवय मुहुर्नन्या बभूवुस्तेऽपपूर्णिताः । रामोऽपि सकलं वृत्तं सुग्रासादीन्ववेदयन् ॥१३१॥

मनकर मारुतिने कहा कि यदि श्रीरामके सारस तुम्हारा पल्लव नहै तब तो राम तुम्हारे पति बनने ॥११५॥
 तब 'तयाम्बु' कहकर उसने कहा कि पूर्व समयमें एक बार आर्याक द्वारा काटकर आर्यापति भ्रमरोको
 उन ऐरावण-भोगवर्णन सुना दिया था । इसमें मन्त्रकर्म होकर उन भ्रमरोने उन दोनोंसे कहा कि तुम दोनों
 ने हम स्त्रीयांको मरनेसे बचाया है । ११६ ॥ ११७ ॥ इसलिए जंत भी होगा, हम तुम दोनोंको मृत्युसे रक्षा
 करेंगे । इतना कहकर वे मख भेंवर नही रहने लगे । वस, ये भेंवरे ही इस समय उत्तम अमृत लाकर
 उनकी विन्दुओंसे इन दोनोंके रक्तको स्पृश करके धारम्भार सजीव कर दिया करता है । हे वय 'व भेंवर अभी
 भी उन दोनोंके शयनगृहमें बिलसित है । ११८ ॥ ११९ ॥ वे कगड़ोका मर्याम है । तुम उन्हें मार डालो ।
 उनके कथनानुसार इन दोनोंने जाकर क्षणभरमें उन मख भेंवरोंको मार डाला । उनसे शरणमें आय हुए एक
 भेंवरसे मारुतिने कहा- १२० ॥ तुम जाकर ऐरावणका भोगपत्नीके पल्लवों में भोगमें लाकर हाथोंके द्वारा
 चाब हुए कंधेको तरहू अन्दर ही अन्दरने ख खला कर दो । भेंवरेने वंसा ही दिया । १२१ ॥ बादमें राम-
 चन्द्रन वाणसे उन दोनों राजसों को मार डाला और उनके स्थानमें राजासुतपर मकरध्वजका अभिषिक्त कर
 दिया ॥ १२२ ॥ इतना करके उन्होंने श्यो ही वहाँमें चढ़नेकी तैयारी की, त्यो ही मारुतिने रामसे प्रार्थना की कि
 जय नागकन्याके घर चलकर अतक चित्र-विचित्र शासा देखें ॥ १२३ ॥ वस्त्रों तथा अलङ्कारोंमें मण्डित सुन्दर
 सुववाली उस कन्याका हाथ पकड़े तथा कुछ हेमकर उसके पलङ्गकर बैठकर अपने भारसे उसक पलङ्गको तोड़
 जायें । यह सब कर लेनेके बाद उस कन्यासे प्रार्थित रामने उनसे कहा- १२४ ॥ १२५ ॥ तब इस देहको छोड़-
 कर पृथ्वीपर जा । वहाँ ब्राह्मणकन्याका शरीर धारण करके बहुत कालतक तप करनेके बाद तीसरे जन्म तथा
 द्वारके युगमें लू मेरी पत्नी बनेगी ॥ रामके सुन्दर लदा भयुर वाक्यों मनकर वह रामके सामने ही अग्निमें
 जल कर गयी । १२६ ॥ १२७ ॥ जन्मान्तरमें वह कन्याकुमारी नामकी द्विजकन्या हाकर पृथ्वीपर उत्पन्न हुई ।
 तब राम मारुतिके कंधेपर प्रसन्नतापूर्वक आरुढ़ हुए ॥ १२८ ॥ मारुतिनय मकरध्वज भी अपने राजका
 पर मन्त्रीको सौंप दिया और ब्रह्माण्डको धारण करनेवाले शेषके अवतारस्वरूप लक्ष्मणको अपने कंधेपर
 चढ़ा लिया ॥ १२९ ॥ इस प्रकार दोनों भाई राम-लक्ष्मण क्षणभरमें लड्का जा पहुँचे । श्रीराम तथा लक्ष्मणकी
 रक्तकर मुग्धाव आदि सब वानर वड़े प्रसन्न हुए और बारम्बार आलिङ्गन तथा प्रणाम करने लगे । रामने भी

दैन्यौ रामेण निहर्तो भ्रुन्वा मदमि रावणः । राक्षसाश्रितः प्राह पूर्ववृत्त मयान्वितः ॥१३२॥
 मानुषेणैव मृत्युर्मे ह्यहं पूर्वं पिनामहः । अतो नामयणः साक्षान्मानुषोऽभून्न संशयः ॥१३३॥
 रामो दाशरथिर्भूत्वा मां हतुं समुपस्थितः । यदाऽन्तरण्यः पूर्वं हि मं हतो दीक्षितो मया ॥१३४॥
 शप्तश्चाह तदा तेन ह्ययवशोऽहमेव हि । उत्पन्नयने च मम शो परमात्मा सनातनः ॥१३५॥
 म गच्छ त्वां पुत्रपौत्रैर्वर्धनैर्निहनिष्यति । इत्युक्त्वा मं ययौ नाक मोऽभुना समयो मम ॥१३६॥
 भमागतो गधवो मां समरे मं हनिष्यति । विवोध्य कुम्भकर्णं तमानयध्व त्वरान्विताः ॥१३७॥
 ततस्ते तां गुहां गत्वा कच्छासेन विकर्षिताः । घातायाने प्रचक्रुस्ते कुम्भकर्णेदरे मृदुः ॥१३८॥
 तदैकत्र बाहुपार्श्वल कृत्वाऽथ राक्षसाः । गत्वा तदतिर्गर्भाभ्या निजधनुस्तं द्रुमैः पदैः ॥१३९॥
 शिलाभिस्ताडयामासुश्चाश्वैरुर्ध्वचूर्णयन् । काष्ठभारमहादाहं देहे चक्रुर्नृपाङ्गया ॥१४०॥
 तदा प्रबुद्धोत्थाय सूक्तान् महियान् वगन् । कोऽशः स्वमुखे भिप्त्वा जलवापीर्विशोष्य सः ॥१४१॥
 गत्वा नन्वा राक्षसेन्द्रं बोधयामास रावणम् । एकदाऽहं वनं गत्वा दृष्ट्वा तं नारदं मुनिम् ॥१४२॥
 पृष्ट्वास्त्व कुत्र यामि कुतश्चागमनं कृतम् । म मां प्राह देवलोकदयोध्यां प्रति गम्यते ॥१४३॥
 रावणादीन् रणे हतुं विष्णुर्जानोऽत्र मानुषः । देवताकयान्वरयितुं रामं गच्छाम्यहं जवात् ॥१४४॥
 इत्युक्त्वा मां गतः सोऽथ प्रेषयामास गधवम् । इति श्रुत्वा मया पूर्वं त्वयाग्रे तन्निवेदिनम् ॥१४५॥
 अतोऽर्पयाद्य रामाय सीतां सख्यं कुरु प्रभो । इति तद्वचनं श्रुत्वा रावणस्तं दधौऽब्रवीन् ॥१४६॥
 निद्राव्याप्तेऽक्षिणी तेऽथ गच्छ निद्रां मुखं कुरु । तद्वंधाः क्रूरवचनं श्रुत्वा नन्वाऽथ रावणम् ॥१४७॥

वहाँका सब समाचार सुनोकर आदिको कह सुनाया ॥ १३० ॥ १३१ ॥ उधर मरा सभाम रावणने जब ऐरावण
 तथा मँरावणकी भृत्युवा समाचार सुना तो घबराकर भयभीत भावसे अपना पूर्ववृत्तान्त राक्षसीस कहने
 लगा ॥ १३२ ॥ उसने कहा कि पिनामह ग्रह्याने मुझ पहले ही यह नमस्वा है कि तारा मरण अनुप्यके द्वारा
 होगा । इससे ज्ञात होता है कि ये राम साक्षान् नारायण ही मनुष्यरूप धारण करके आये हैं । इसमें संदेह
 नहीं है ॥ १३३ ॥ इन रामने मुने मारनेके लिए हा दशरथपुत्र वनना स्वीकार विधा है और यहाँ आकर
 उपस्थित हुए हैं । जब मैंने पूर्वकालमें (दीक्षाको प्राप्त या सासङ्गलानिरत) अन्तरण्य नामके सूर्यवन्शी
 राजाका मार डाला था ॥ १३४ ॥ उस समय राजाने मुझ शाप दिया था कि मेरे वंशमें सनातन पुरुष
 परमात्मा उत्पन्न होग ॥ १३५ ॥ वे तुम्हे पुत्र-पौत्र तथा बान्धवो सहित मारेंगे । इतना कहकर राजा
 स्वर्ग चले गये । वस, अब वहाँ समय आ गया है । १३६ ॥ राम मुने समरप अवश्य मारेंगे । तुमलोग
 जाकर शीघ्र कुम्भकर्णको जमाकर यहाँ ले आओ ॥ १३७ ॥ वाइम वे भव जब उस गुफामे गये, जहाँपर
 कुम्भकर्णका साया था । तब तो उसके लम्बे तथा बलवान् स्वामसे आकर्षित होकर वे सब बाग-द्वार उसके
 पेटमें आने-जाने लगे ॥ १३८ ॥ यह देखकर वे बड़े चकराये और एक साथ मिल तथा बाहुबलका आश्रय
 लेकर किसी प्रकार उसके शरीरके पास पहुँचे । वहाँ जावर डरने हुए वे लातों तथा पेड़ोंसे पीटकर उसे
 जगाने लगे ॥ १३९ ॥ उसपर बहूनेरे पत्थर फक, घोड़ों तथा ऊँटोंसे कुचलवाया, पर उसकी नोद नहीं दूटी ।
 तब राजाका आज्ञा म उसपर बहुतेरे लकड़ीके छर डालकर जलाये गये ॥ १४० ॥ तब वह किसी प्रकार उठा
 और करोड़ों सूअर तथा मोट-मोट भैंसोंको छा तथा जलपान करके उसने एक बावलीको नुखा दिया ॥ १४१ ॥
 तत्पश्चात् वह राक्षसेन्द्र रावणके पास गया और समझाकर कहने लगा कि एक बार मैं वनमें गया था । मैंने
 वहाँ नारद मुनिको देखकर पूछा- ॥ १४२ ॥ हे महामुने ! आप कहाँसे आये और कहाँ जा रहे हैं ? उन्होंने कहा
 कि मैं देवलोकसे आया हूँ ॥ १४३ ॥ वहाँ रावणादिको मारनेके लिए साक्षान् नारायण अवतरे
 हैं । उन भगवान् रामको देवताओंके कथनानुसार जन्मी करनेका स्मरण करानेके लिए मैं वेगसे आ रहा
 हूँ ॥ १४४ ॥ इतना कहकर वे चले गये । उन्होंने ही रामको भेजा है । इस प्रकार जो मैंने सुना था, सो कह
 सुनाया ॥ १४५ ॥ इसलिए तुम सीता रामको समर्पण करके उनसे मित्रता कर लो । यह सुनकर

जवाद्यर्षो म युद्धायोल्लघ्य प्रासादमुन्नतम् । कुम्भकर्णं ततो दृष्ट्वा कृपणा भयत्रिहलाः ॥१४८॥
 चक्रुः पलायनं सर्वे रामपार्श्वमुपगताः । कुम्भकर्णं तत्र दृष्ट्वा प्रणताम विभाषणः ॥१४९॥
 उवाच प्रणतो भूत्वा मया राजाऽतिबोधितः । मांता रामाय देहीति तेन धिग्निधकृतम्वहम् ॥१५०॥
 तच्छ्रुत्वाऽहं राघवस्य सेवां कर्तुमुपागतः । तच्छ्रुत्वा बहुवचनं कुम्भकर्णमनमत्रवात् ॥१५१॥
 सम्यक्कृतं न्वया वन्म मध्ये म, स्थिरं भव युद्धस्थायः परो वाऽत्र ज्ञायते न मयाऽद्यहि ॥१५२॥
 ततो बभू नमस्कृत्य रामपार्श्वमुपावयो । कुम्भकर्णाऽपि हस्ताभ्यां पादाभ्यां पेशयन्हरान् ॥१५३॥
 चचार वानरी सेनां तत्र दृष्ट्वा कर्षाध्वम् । विशूरेन श्वेन भित्त्वाऽऽनयामास पुर्णं तुल्यः ॥१५४॥
 मार्गे स्वस्थः स सुग्रीवः कर्णो घ्राण गिरोनस्यः । छिन्वा ययौ राघवेन्द्रं सोऽपि परीरुज्जितः ॥१५५॥
 पुनर्ययौ रणभुव तं दृष्ट्वा श्वनन्दनः । विव्याध निशितैर्बाणैः सोऽपि राम द्रुमैर्नर्गः ॥१५६॥
 ताडयामास तान् बाणनिव यं श्वनन्दनः । वायव्याभ्येण चच्छेद नद्वस्तं मायुधा क्षणत् ॥१५७॥
 छिन्नबाहुमयायातं नदत्तं ब्राह्म्य राघवः । हावदन्तं निशितावादायाम्भ्य पददपम् ॥१५८॥
 चिच्छेद् पतिनीं पादौ लङ्काद्वारि मदास्वर्गा । निकृन्तस्वरादाऽपि कुम्भकर्णोऽतिभाषणः ॥१५९॥
 गडगामुखद्वक्त्रं व्यादाय श्वनन्दनम् । अभिदुष्टाय पितदन् राहुध्वन्त्रमस यथा ॥१६०॥
 श्रपूयच्छिराग्रं माय लेनद्रघुनरः । सम्पूरितरक्तोऽयं चुक्राशानिभयकरः ॥१६१॥
 अथ सूर्यप्रतीकशर्मैर्द्रुममनुत्तमम् । मुमाच तेन चिच्छेद् कुम्भकर्णशिरः महत् ॥१६२॥
 तथा खे देववाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः । वरपुष्पस्य राम तुष्टुवृष्टिर्बन्धैः सर्वैः ॥१६३॥
 पितृव्य निहतं श्रुत्वा पितर चापारुहलम् । राशेण मान्ययामास त्वं स पश्यार्थं व बलम् ॥१६४॥

• वणित कहाँ—१४६ ॥ अर्थात् तुम को अत्यन्त निद्रा भरा हुआ कर सा जाओ । मैं तुमका उपदेश देनाक
 • ये नहीं सुनाना है । चन्द्रा ॥ १४७ ॥ तदनन्तर वह
 • उस भयानक कुम्भकर्णका दत्तन ही सब वानर
 • १४८ ॥ १४९ ॥ फिर
 • कि मैं राजा राघवका बहुत निश्चयपूर्वक समझता हूँ तुम माता रामका दो दो इसपर उसने मुझे
 • १५० ॥ १५१ ॥ किता, पर इस समय तुम मेरा सामन्त हट जाओ ।
 • १५२ ॥ तब विभाषण भाईका नमस्कार करके रामके पास

• १५३ ॥ १५४ ॥ अन्तम
 • १५५ ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ १६० ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ १६४ ॥
 • १६५ ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ १८० ॥
 • १८१ ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ १९० ॥ १९१ ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ २०० ॥
 • २०१ ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ २०४ ॥ २०५ ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ २०८ ॥ २०९ ॥ २१० ॥ २११ ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ २१४ ॥ २१५ ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ २१८ ॥ २१९ ॥ २२० ॥
 • २२१ ॥ २२२ ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ २२७ ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ २३० ॥ २३१ ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ २३४ ॥ २३५ ॥ २३६ ॥ २३७ ॥ २३८ ॥ २३९ ॥ २४० ॥
 • २४१ ॥ २४२ ॥ २४३ ॥ २४४ ॥ २४५ ॥ २४६ ॥ २४७ ॥ २४८ ॥ २४९ ॥ २५० ॥ २५१ ॥ २५२ ॥ २५३ ॥ २५४ ॥ २५५ ॥ २५६ ॥ २५७ ॥ २५८ ॥ २५९ ॥ २६० ॥
 • २६१ ॥ २६२ ॥ २६३ ॥ २६४ ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ २६९ ॥ २७० ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ २७३ ॥ २७४ ॥ २७५ ॥ २७६ ॥ २७७ ॥ २७८ ॥ २७९ ॥ २८० ॥
 • २८१ ॥ २८२ ॥ २८३ ॥ २८४ ॥ २८५ ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ २८८ ॥ २८९ ॥ २९० ॥ २९१ ॥ २९२ ॥ २९३ ॥ २९४ ॥ २९५ ॥ २९६ ॥ २९७ ॥ २९८ ॥ २९९ ॥ ३०० ॥
 • ३०१ ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥ ३०४ ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥ ३०७ ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥ ३१५ ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥ ३१८ ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥
 • ३२१ ॥ ३२२ ॥ ३२३ ॥ ३२४ ॥ ३२५ ॥ ३२६ ॥ ३२७ ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥ ३३० ॥ ३३१ ॥ ३३२ ॥ ३३३ ॥ ३३४ ॥ ३३५ ॥ ३३६ ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥ ३४० ॥
 • ३४१ ॥ ३४२ ॥ ३४३ ॥ ३४४ ॥ ३४५ ॥ ३४६ ॥ ३४७ ॥ ३४८ ॥ ३४९ ॥ ३५० ॥ ३५१ ॥ ३५२ ॥ ३५३ ॥ ३५४ ॥ ३५५ ॥ ३५६ ॥ ३५७ ॥ ३५८ ॥ ३५९ ॥ ३६० ॥
 • ३६१ ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥ ३६४ ॥ ३६५ ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥ ३६८ ॥ ३६९ ॥ ३७० ॥ ३७१ ॥ ३७२ ॥ ३७३ ॥ ३७४ ॥ ३७५ ॥ ३७६ ॥ ३७७ ॥ ३७८ ॥ ३७९ ॥ ३८० ॥
 • ३८१ ॥ ३८२ ॥ ३८३ ॥ ३८४ ॥ ३८५ ॥ ३८६ ॥ ३८७ ॥ ३८८ ॥ ३८९ ॥ ३९० ॥ ३९१ ॥ ३९२ ॥ ३९३ ॥ ३९४ ॥ ३९५ ॥ ३९६ ॥ ३९७ ॥ ३९८ ॥ ३९९ ॥ ४०० ॥
 • ४०१ ॥ ४०२ ॥ ४०३ ॥ ४०४ ॥ ४०५ ॥ ४०६ ॥ ४०७ ॥ ४०८ ॥ ४०९ ॥ ४१० ॥ ४११ ॥ ४१२ ॥ ४१३ ॥ ४१४ ॥ ४१५ ॥ ४१६ ॥ ४१७ ॥ ४१८ ॥ ४१९ ॥ ४२० ॥
 • ४२१ ॥ ४२२ ॥ ४२३ ॥ ४२४ ॥ ४२५ ॥ ४२६ ॥ ४२७ ॥ ४२८ ॥ ४२९ ॥ ४३० ॥ ४३१ ॥ ४३२ ॥ ४३३ ॥ ४३४ ॥ ४३५ ॥ ४३६ ॥ ४३७ ॥ ४३८ ॥ ४३९ ॥ ४४० ॥
 • ४४१ ॥ ४४२ ॥ ४४३ ॥ ४४४ ॥ ४४५ ॥ ४४६ ॥ ४४७ ॥ ४४८ ॥ ४४९ ॥ ४५० ॥ ४५१ ॥ ४५२ ॥ ४५३ ॥ ४५४ ॥ ४५५ ॥ ४५६ ॥ ४५७ ॥ ४५८ ॥ ४५९ ॥ ४६० ॥
 • ४६१ ॥ ४६२ ॥ ४६३ ॥ ४६४ ॥ ४६५ ॥ ४६६ ॥ ४६७ ॥ ४६८ ॥ ४६९ ॥ ४७० ॥ ४७१ ॥ ४७२ ॥ ४७३ ॥ ४७४ ॥ ४७५ ॥ ४७६ ॥ ४७७ ॥ ४७८ ॥ ४७९ ॥ ४८० ॥
 • ४८१ ॥ ४८२ ॥ ४८३ ॥ ४८४ ॥ ४८५ ॥ ४८६ ॥ ४८७ ॥ ४८८ ॥ ४८९ ॥ ४९० ॥ ४९१ ॥ ४९२ ॥ ४९३ ॥ ४९४ ॥ ४९५ ॥ ४९६ ॥ ४९७ ॥ ४९८ ॥ ४९९ ॥ ५०० ॥
 • ५०१ ॥ ५०२ ॥ ५०३ ॥ ५०४ ॥ ५०५ ॥ ५०६ ॥ ५०७ ॥ ५०८ ॥ ५०९ ॥ ५१० ॥ ५११ ॥ ५१२ ॥ ५१३ ॥ ५१४ ॥ ५१५ ॥ ५१६ ॥ ५१७ ॥ ५१८ ॥ ५१९ ॥ ५२० ॥
 • ५२१ ॥ ५२२ ॥ ५२३ ॥ ५२४ ॥ ५२५ ॥ ५२६ ॥ ५२७ ॥ ५२८ ॥ ५२९ ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥ ५३२ ॥ ५३३ ॥ ५३४ ॥ ५३५ ॥ ५३६ ॥ ५३७ ॥ ५३८ ॥ ५३९ ॥ ५४० ॥
 • ५४१ ॥ ५४२ ॥ ५४३ ॥ ५४४ ॥ ५४५ ॥ ५४६ ॥ ५४७ ॥ ५४८ ॥ ५४९ ॥ ५५० ॥ ५५१ ॥ ५५२ ॥ ५५३ ॥ ५५४ ॥ ५५५ ॥ ५५६ ॥ ५५७ ॥ ५५८ ॥ ५५९ ॥ ५६० ॥
 • ५६१ ॥ ५६२ ॥ ५६३ ॥ ५६४ ॥ ५६५ ॥ ५६६ ॥ ५६७ ॥ ५६८ ॥ ५६९ ॥ ५७० ॥ ५७१ ॥ ५७२ ॥ ५७३ ॥ ५७४ ॥ ५७५ ॥ ५७६ ॥ ५७७ ॥ ५७८ ॥ ५७९ ॥ ५८० ॥
 • ५८१ ॥ ५८२ ॥ ५८३ ॥ ५८४ ॥ ५८५ ॥ ५८६ ॥ ५८७ ॥ ५८८ ॥ ५८९ ॥ ५९० ॥ ५९१ ॥ ५९२ ॥ ५९३ ॥ ५९४ ॥ ५९५ ॥ ५९६ ॥ ५९७ ॥ ५९८ ॥ ५९९ ॥ ६०० ॥
 • ६०१ ॥ ६०२ ॥ ६०३ ॥ ६०४ ॥ ६०५ ॥ ६०६ ॥ ६०७ ॥ ६०८ ॥ ६०९ ॥ ६१० ॥ ६११ ॥ ६१२ ॥ ६१३ ॥ ६१४ ॥ ६१५ ॥ ६१६ ॥ ६१७ ॥ ६१८ ॥ ६१९ ॥ ६२० ॥
 • ६२१ ॥ ६२२ ॥ ६२३ ॥ ६२४ ॥ ६२५ ॥ ६२६ ॥ ६२७ ॥ ६२८ ॥ ६२९ ॥ ६३० ॥ ६३१ ॥ ६३२ ॥ ६३३ ॥ ६३४ ॥ ६३५ ॥ ६३६ ॥ ६३७ ॥ ६३८ ॥ ६३९ ॥ ६४० ॥
 • ६४१ ॥ ६४२ ॥ ६४३ ॥ ६४४ ॥ ६४५ ॥ ६४६ ॥ ६४७ ॥ ६४८ ॥ ६४९ ॥ ६५० ॥ ६५१ ॥ ६५२ ॥ ६५३ ॥ ६५४ ॥ ६५५ ॥ ६५६ ॥ ६५७ ॥ ६५८ ॥ ६५९ ॥ ६६० ॥
 • ६६१ ॥ ६६२ ॥ ६६३ ॥ ६६४ ॥ ६६५ ॥ ६६६ ॥ ६६७ ॥ ६६८ ॥ ६६९ ॥ ६७० ॥ ६७१ ॥ ६७२ ॥ ६७३ ॥ ६७४ ॥ ६७५ ॥ ६७६ ॥ ६७७ ॥ ६७८ ॥ ६७९ ॥ ६८० ॥
 • ६८१ ॥ ६८२ ॥ ६८३ ॥ ६८४ ॥ ६८५ ॥ ६८६ ॥ ६८७ ॥ ६८८ ॥ ६८९ ॥ ६९० ॥ ६९१ ॥ ६९२ ॥ ६९३ ॥ ६९४ ॥ ६९५ ॥ ६९६ ॥ ६९७ ॥ ६९८ ॥ ६९९ ॥ ७०० ॥
 • ७०१ ॥ ७०२ ॥ ७०३ ॥ ७०४ ॥ ७०५ ॥ ७०६ ॥ ७०७ ॥ ७०८ ॥ ७०९ ॥ ७१० ॥ ७११ ॥ ७१२ ॥ ७१३ ॥ ७१४ ॥ ७१५ ॥ ७१६ ॥ ७१७ ॥ ७१८ ॥ ७१९ ॥ ७२० ॥
 • ७२१ ॥ ७२२ ॥ ७२३ ॥ ७२४ ॥ ७२५ ॥ ७२६ ॥ ७२७ ॥ ७२८ ॥ ७२९ ॥ ७३० ॥ ७३१ ॥ ७३२ ॥ ७३३ ॥ ७३४ ॥ ७३५ ॥ ७३६ ॥ ७३७ ॥ ७३८ ॥ ७३९ ॥ ७४० ॥
 • ७४१ ॥ ७४२ ॥ ७४३ ॥ ७४४ ॥ ७४५ ॥ ७४६ ॥ ७४७ ॥ ७४८ ॥ ७४९ ॥ ७५० ॥ ७५१ ॥ ७५२ ॥ ७५३ ॥ ७५४ ॥ ७५५ ॥ ७५६ ॥ ७५७ ॥ ७५८ ॥ ७५९ ॥ ७६० ॥
 • ७६१ ॥ ७६२ ॥ ७६३ ॥ ७६४ ॥ ७६५ ॥ ७६६ ॥ ७६७ ॥ ७६८ ॥ ७६९ ॥ ७७० ॥ ७७१ ॥ ७७२ ॥ ७७३ ॥ ७७४ ॥ ७७५ ॥ ७७६ ॥ ७७७ ॥ ७७८ ॥ ७७९ ॥ ७८० ॥
 • ७८१ ॥ ७८२ ॥ ७८३ ॥ ७८४ ॥ ७८५ ॥ ७८६ ॥ ७८७ ॥ ७८८ ॥ ७८९ ॥ ७९० ॥ ७९१ ॥ ७९२ ॥ ७९३ ॥ ७९४ ॥ ७९५ ॥ ७९६ ॥ ७९७ ॥ ७९८ ॥ ७९९ ॥ ८०० ॥
 • ८०१ ॥ ८०२ ॥ ८०३ ॥ ८०४ ॥ ८०५ ॥ ८०६ ॥ ८०७ ॥ ८०८ ॥ ८०९ ॥ ८१० ॥ ८११ ॥ ८१२ ॥ ८१३ ॥ ८१४ ॥ ८१५ ॥ ८१६ ॥ ८१७ ॥ ८१८ ॥ ८१९ ॥ ८२० ॥
 • ८२१ ॥ ८२२ ॥ ८२३ ॥ ८२४ ॥ ८२५ ॥ ८२६ ॥ ८२७ ॥ ८२८ ॥ ८२९ ॥ ८३० ॥ ८३१ ॥ ८३२ ॥ ८३३ ॥ ८३४ ॥ ८३५ ॥ ८३६ ॥ ८३७ ॥ ८३८ ॥ ८३९ ॥ ८४० ॥
 • ८४१ ॥ ८४२ ॥ ८४३ ॥ ८४४ ॥ ८४५ ॥ ८४६ ॥ ८४७ ॥ ८४८ ॥ ८४९ ॥ ८५० ॥ ८५१ ॥ ८५२ ॥ ८५३ ॥ ८५४ ॥ ८५५ ॥ ८५६ ॥ ८५७ ॥ ८५८ ॥ ८५९ ॥ ८६० ॥
 • ८६१ ॥ ८६२ ॥ ८६३ ॥ ८६४ ॥ ८६५ ॥ ८६६ ॥ ८६७ ॥ ८६८ ॥ ८६९ ॥ ८७० ॥ ८७१ ॥ ८७२ ॥ ८७३ ॥ ८७४ ॥ ८७५ ॥ ८७६ ॥ ८७७ ॥ ८७८ ॥ ८७९ ॥ ८८० ॥
 • ८८१ ॥ ८८२ ॥ ८८३ ॥ ८८४ ॥ ८८५ ॥ ८८६ ॥ ८८७ ॥ ८८८ ॥ ८८९ ॥ ८९० ॥ ८९१ ॥ ८९२ ॥ ८९३ ॥ ८९४ ॥ ८९५ ॥ ८९६ ॥ ८९७ ॥ ८९८ ॥ ८९९ ॥ ९०० ॥
 • ९०१ ॥ ९०२ ॥ ९०३ ॥ ९०४ ॥ ९०५ ॥ ९०६ ॥ ९०७ ॥ ९०८ ॥ ९०९ ॥ ९१० ॥ ९११ ॥ ९१२ ॥ ९१३ ॥ ९१४ ॥ ९१५ ॥ ९१६ ॥ ९१७ ॥ ९१८ ॥ ९१९ ॥ ९२० ॥
 • ९२१ ॥ ९२२ ॥ ९२३ ॥ ९२४ ॥ ९२५ ॥ ९२६ ॥ ९२७ ॥ ९२८ ॥ ९२९ ॥ ९३० ॥ ९३१ ॥ ९३२ ॥ ९३३ ॥ ९३४ ॥ ९३५ ॥ ९३६ ॥ ९३७ ॥ ९३८ ॥ ९३९ ॥ ९४० ॥
 • ९४१ ॥ ९४२ ॥ ९४३ ॥ ९४४ ॥ ९४५ ॥ ९४६ ॥ ९४७ ॥ ९४८ ॥ ९४९ ॥ ९५० ॥ ९५१ ॥ ९५२ ॥ ९५३ ॥ ९५४ ॥ ९५५ ॥ ९५६ ॥ ९५७ ॥ ९५८ ॥ ९५९ ॥ ९६० ॥
 • ९६१ ॥ ९६२ ॥ ९६३ ॥ ९६४ ॥ ९६५ ॥ ९६६ ॥ ९६७ ॥ ९६८ ॥ ९६९ ॥ ९७० ॥ ९७१ ॥ ९७२ ॥ ९७३ ॥ ९७४ ॥ ९७५ ॥ ९७६ ॥ ९७७ ॥ ९७८ ॥ ९७९ ॥ ९८० ॥
 • ९८१ ॥ ९८२ ॥ ९८३ ॥ ९८४ ॥ ९८५ ॥ ९८६ ॥ ९८७ ॥ ९८८ ॥ ९८९ ॥ ९९० ॥ ९९१ ॥ ९९२ ॥ ९९३ ॥ ९९४ ॥ ९९५ ॥ ९९६ ॥ ९९७ ॥ ९९८ ॥ ९९९ ॥ १००० ॥

हनुमन्वा त्वरितं गन्वा मेघनादो निकुम्भिलाम् । रक्तमाल्यावरधरो हननायोधचक्रमे ॥१६५॥
 रथार्थं दिव्यशस्त्रार्थं जयार्थमभिचारकैः । योगिनां वटाधोभूम्यां गुहायां संस्थितो रहः ॥१६६॥
 तोयानिलानलव्याघ्रमर्षराक्षसकंटकैः । आत्मनः शक्तिः कृत्वा परिधानं सप्त दुर्गमान् ॥१६७॥
 हामकुण्डाध्वतः सर्पं वदन्वा कृष्णमधोमुखम् । रक्तपुष्पावरधरो रक्तचन्दनलेपितः ॥१६८॥
 रक्तपुष्पाक्षता गुञ्जा मर्षपश्वदनेच्छाभिः । खदिराश्रपलाशोदुम्बरमल्लतकास्थिभिः ॥१६९॥
 समिद्धमार्गमांसादिभन्नातकफलैरपि । अकनिञ्चजाजपूरकृष्णधत्तरोचनैः ॥१७०॥
 अपामार्गवदरिकानलदालकबन्धुकैः । नरमुण्डः समामैश्च विभीतकफलादिभिः ॥१७१॥
 सर्पखण्डश्च मण्डूकस्त्रन्दतस्नायुलोमभिः । नानावनचराणां च मामैरपि समन्त्रकम् ॥१७२॥
 इत्थं चकार होमं स निर्मारुप नयने रहः । विभाषणाऽपि तं दृष्ट्वा होमधृत्रं मयावहम् ॥१७३॥
 प्राह रामाय सकलं होमारम्भं दुरात्मनः । समाप्यते चेद्दोषोऽयं मेघनादस्य दुर्मतेः ॥१७४॥
 स चाज्ययो भवेद्राम मेघनादः सुरामुग्धः । अतः श्लाघ लक्ष्मणेन घातयिष्यामि सखणिम् ॥१७५॥
 यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविचर्जितः । तेनैव सृष्टुर्निर्दिष्टा ब्रह्मणाऽस्य दुरात्मनः ॥१७६॥
 लक्ष्मणोऽयं यदाऽयोध्यापुर्यास्त्वामनुनिर्गतः । तदादि निद्राहारादांश्च प्राप्तः स रघूत्तम ॥१७७॥
 सैवार्थं तव राजेन्द्र ज्ञातं सर्वामदं मया । ततो रामाज्ञया गत्वा लक्ष्मणेन विभाषणः ॥१७८॥
 हनुमत्प्रमुखैर्वीरैर्युधैः सर्वतो वृतः । लक्ष्मणं दर्शयामास होमस्थानं निकुम्भिलाम् ॥१७९॥
 अङ्गदस्कंधमारुह्य बह्वयस्त्रेणाथ कंटकान् । उवालयामास सौमित्रजंघान् राक्षसाञ्छरैः ॥१८०॥
 गारुडास्त्रेण सर्पांश्च पर्वतास्त्रेण दंष्ट्रिणः । अनलं शान्तमकरोत्पजन्यास्त्रेण लक्ष्मणः ॥१८१॥
 प्राशयामास हनुमानं निलं क्षणमावृतः । जलं सशोषयामास वायव्यास्त्रेण लक्ष्मणः ॥१८२॥

मेरा बल देख ॥ १६४ ॥ इतना बहकर मेघनाद तुरन्त निकुम्भिला नामकी पश्चिमी गुफामें गया । वहाँ लाल फूलोंकी माला तथा लाल यस्त्र धरन करके वह हवनकी तयारी करने लगा ॥ १६५ ॥ दिव्य रथ, दिव्य अस्त्र तथा जयलाभके लिए अभिचाराक्रिया करनेका निश्चय करके वह गुफाके भीतर योगिनीवटके पास एकान्तमें जा बैठा ॥ १६६ ॥ उसने वहाँ अपना सुरक्षाके लिये अग्नि जल वायु सह सप्त राक्षस तथा कांटोंसे अपने चारों ओर सात दुर्ग बना लिये ॥ १६७ ॥ हामकुण्डक ऊपरी भागमें अधोमुख करके एक काला सर्प बांध दिया । तदनन्तर रक्त पुष्प तथा रक्तावर धारण करके शगराम रक्त चन्दन लगाया ॥ १६८ ॥ लाल फूल, अक्षत, गुजा, सरसो, चन्दन, ईख, बेर, आम पलाश तथा भलावका लकड़ियं, समिधा, उदं, मांस, भल्लातककी गुठली, आक, नोम, बीजपूर, कृष्ण धनूरा, नोबू, चोचड़ा, वर, चित्रक, दालक, बंधूक, नरमुण्ड, चरवा, विभीतकफल, सपखण्ड, मण्डूक, चमं, दांत, स्नायु, आत, माम तथा नाना वनचरीक भांस आदिस उसने मन्त्राच्चारपूर्वक एकान्तमें हवन प्रारम्भ कर दिया । सहसा विभाषणने हामके भयानक घुरंको उठते देखा ॥ १६६-१७३ ॥ तब उन्होंने रामसे कहा-देखिये, उस दुरात्मान हाम आरम्भ कर दिया है । यदि उस दृष्टुद्धि मेघनादका होम निर्विघ्न समाप्त हो गया तो फिर है राम ! वह दैत्यो तथा दवताआस भी अजेय हो जायगा । इसलिए शीघ्र लक्ष्मणके द्वारा मैं उसका मरवा दूंगा ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ जो मनुष्य बारह वर्षतक निद्रा तथा आहारसे रहित रहा हो, उसीसे ब्रह्माने मेघनादका भूयु कहा है ॥ १७६ ॥ लक्ष्मण जब अयोध्यासे निकले है, तबसे निद्रा तथा आहार त्यागकर इन्होंने आपका सेवा का है । यह मैं भर्त्ता भाँति जानता हूँ । पश्चान् रामकी आज्ञासे लक्ष्मण तथा हनुमान आदि वीर सनातनियोंका सब लेकर विभाषण वहाँ गये और लक्ष्मणको निकुम्भिला-का होमस्थान बताया ॥ १७७-१७९ ॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने अङ्गदके कन्धपर सवार होकर अग्निघाणसे कांटोंको जलाकर राक्षसोंको मार डाला ॥ १८० ॥ उन्होंने गारुडास्त्रसे सर्पों तथा पर्वतास्त्रसे दाँतवाले सिंह आदि जन्तुओंको समाप्त कर दिया । उन्होंने मघास्त्रसे अग्निका शान्त किया । हनुमान्ने क्षणभरमें

परिवेष्यपि नष्टेषु तत्राट्ट्या रिपोः स्थलम् । यथावुन्पाटितुं क्रोधाद्नुमान्योगिनीवटम् ॥१८३॥
 तदा सां दर्शयामास वटस्थां योगिनीगुहाम् । गुहाविधानवाषाणं हनुमान्पादघट्टनैः ॥१८४॥
 चूर्णीकृत्वा गुहामंस्थं मेघनादं व्यनर्जयन् । तदा स मेघनादोऽपि न्यक्त्वा होमं त्वरान्वितः ॥१८५॥
 क्रोधाविष्टो रथे स्थित्वा ययौ लक्ष्मणममुखम् । शस्त्रैः पर्वतार्धमर्मभिर्द्रिनिर्जोक्तिभिः ॥१८६॥
 चकार लक्ष्मणेनैव युद्धं तत्तारकामयम् । मौमित्रिरपि चाणौघं रथमभ्रान्धनुर्ध्वजम् ॥१८७॥
 तद्बृद्धं कवचं मृतं विभेदं क्षणमाश्रितः । ततः मौऽन्येन धनुषा मृक्त्वा बाणान्सहस्रशः ॥१८८॥
 पद्भ्यामेवास्थितो भूम्यां चिच्छेद कवचं रिपोः । तदा क्रुद्धः स मौमित्रिर्बाणेनैद्रजितश्च हि ॥१८९॥
 सशरं दक्षिणभुजं धातयामास तद्गृहे । तदा स वामहस्तेन मेघनादोऽतिविह्वलः ॥१९०॥
 हुद्राव लक्ष्मणं हंतुं धृत्वा शूलमनुत्तमम् । तं चापि मार्गणेनैव मशूलं वाममन्करम् ॥१९१॥
 मेघनादस्य मौमित्रिश्छित्वा गवणमग्निधौ । धातयामास लकायां तदद्भुतमिवाभवत् ॥१९२॥
 तदा व्यादाय स्वमुखं रावणिलक्ष्मण ययौ । लक्ष्मणोऽपि शरं दिव्यं गमनामर्कत शुभम् ॥१९३॥
 सुमोच रघुवीरस्य कृत्वा चिंतनमादरात् । स शरः मक्षिरम्बाणं श्रीमज्ज्वलिनकुण्डलम् ॥१९४॥
 प्रमथ्येद्रजितः कायान्पातयामास तच्छिरः । ततः प्रमुदिता देवाः मौमित्रिं पतितुष्टुः ॥१९५॥
 पुष्पाणि विकिरंतो वै चकुर्नीगजनं मुहुः । गतश्रमः स मौमित्रिः शम्भुपूरुषद्वये ॥१९६॥
 श्रुत्वा मीना शम्भुनादं त्रिजटां प्रेप्य सादरम् । शुश्राव सकलं वृत्तं तद्वाक्यान्प्रनुतोष सा ॥१९७॥
 ततस्तन्मेघनादस्य शिरः संगृह्य मारुतिः । गधराय दर्शयितुं त्वरयामास लक्ष्मणम् ॥१९८॥
 तदा स वानरैर्युक्तोऽङ्गदस्थः सविभीषणः । नानावाद्यनिनादं च मौमित्री गधवं ययौ ॥१९९॥
 नत्वा तं दर्शयामास मेघनादस्य तच्छिरः । तद्दृष्ट्वाऽऽनिरय मौमित्रिं रामस्तुष्टोऽभवत्तदा ॥२००॥

वामु पी लिया और लक्ष्मणने वायव्यास्त्रसे जलको मुखा दिया ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ उन सब घेरोके नष्ट हो जानेपर भी जब शत्रुका स्थान नहीं दिखायी दिया तो हनुमान् क्रुद्ध होकर योगिनीवटकी ओर गये । वहाँ उन्हे योगिनीवटवाली गुफा देख पड़ी, तुरन्त गुफाके द्वारपर लगे हुए पत्थरको हनुमान्ने लात मारकर चूर्ण कर डाला और भीतर जाकर मेघनादको ललकारा । तब मेघनादने भी तुरन्त होम छोड़ दिया । १८३-१८५ ॥ तदनन्तर क्रोचके साथ रथपर सवार होकर वह लक्ष्मणके समक्ष गया और अस्त्र शस्त्र, पर्वत तथा मर्मभेदी वाद्ययोरे उनको जीतनका इच्छासे भयानक युद्ध करने लगा । लक्ष्मणने भी अनवरत बाण फाटकर उसके अश्व, रथ, धनुष, ध्वजा, दृढ़ कवच तथा सारथीको क्षणभरमे छिन्न-भिन्न कर दिया । तब मेघनाद भा दूसरा घनुष ले तथा नीच ही खड़े हो हजारों बाण छोड़कर शत्रुके कवचकी काटने लगा । उस समय लक्ष्मणने क्रुद्ध होकर अपने बाणसे इन्द्रजितका बाणके सहित दाहिना हाथ काटकर उसीके घस्मे गिराया । तब विह्वल होकर मेघनादने बायें हाथमे त्रिजटा लम्हाया ॥ १८६-१८७ ॥ वह उत्तम त्रिजटा लेकर लक्ष्मणको मारनके लिए दौड़ा । तब मेघनादके पिशुन सहित बायें हाथकी भी मौमित्र पुत्र लक्ष्मणने बाणसे ही काटकर गवणके पास गिराया । यह देखकर लंकासे सबकी बड़ी आश्चर्य हुआ । १८९ ॥ १९० ॥ तब मेघनाद मुँह फाड़कर लक्ष्मणकी ओर अपट्टा । तब लक्ष्मणने भी रामका ध्यान करके गमनाममे अकिन् दिव्य बाण छोड़ा । उस वृणन जाकर पगड़ी सहित, शोभायुक्त तथा प्रदीप्त कुण्डलवाले मेघनादके शिरको घडसे अलग करके धरतीपर गिरा दिया । यह देखकर देवनागण अतीव प्रसन्न हुए और लक्ष्मणकी स्तुति करने लगे ॥ १९३-१९५ ॥ वे अनवरत धूमकी वृष्टि करके आरती डवान्ने लगे । तब लक्ष्मणने शान्त होकर विजयजल बजाया ॥ १९६ ॥ वह शम्भुनाद सुनकर सीताने त्रिजटाकी भेजा और उसके मुहसे युद्धका सम्पूर्ण समाचार सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न हुई ॥ १९७ ॥ इधर हनुमान्जीने मेघनादका शिर लेकर रामको दिखलानके लिये लक्ष्मणसे शोध करनेको कहा ॥ १९८ ॥ तब लक्ष्मण विभीषण और वानरोको साथ ले तथा अङ्गदके कंधेपर सवार होकर जनक बाजे-गाजेके साथ रामके पास गये ॥ १९९ ॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामकी प्रणाम किया और

रावणोऽपि भुजं दृष्ट्वा श्रुत्वा पुत्रवधं तथा पपान पुत्रदुःखेन सभार्या मूर्छितो भुवि ॥२०१॥
 क्रोधान्स सङ्गमुद्यम्य ययौ हन्तुं विदेहजाम् । सुषार्श्वो नाम मेधावी मर्त्री तं मन्यवारयत् ॥२०२॥
 मस्यङ्गं तत्करं धृत्वा मरुहम्ने स त्पराश्विनः । उवाच नीतिमयुक्तं वचनं रावणं तदा ॥२०३॥
 कथं नाम दशग्रीव कोपास्त्रोवधमिच्छामि अस्माभिः सहितो युद्धे दृष्ट्वा रामं मलम्पणम् ॥२०४॥
 प्राप्स्यसे जानकीं शीघ्रमिन्पुनः स न्यवर्तत । सुलोचनाऽपि कांतस्य भुजं केदूरभूषितम् ॥२०५॥
 दृष्ट्वा समार्गेण स्त्रीयपुनः पतिनं भुवि तदा विलापमकरोत्सृज्या तन्प्राकृत्याणि सा ॥२०६॥
 भुजोऽपि मांस्त्वयन्तां स लेख्य भूम्यां शरेण हि । स्वलोहिताश्वः प्राह मां खेद भज भामिनि ॥२०७॥
 साक्षाच्छेषशराघातैर्हतोऽहं मुक्तिमागतः । न्व चापि गत्वा श्रीरामं नन्वा याचस्व सन्निहः ॥२०८॥
 तत्त्वां दास्यति रामोऽपि तेनाग्निं विध्य याहि माम् । सुलोचना पटित्वा मां लिखितान्पशुगाणि हि ॥२०९॥
 तुष्टा पृष्टा रावणाय मदादर्यं विभूषिता । ययो रामं शिविकया ना दृष्ट्वा वानराक्षसाः ॥२१०॥
 सीतेयं रावणेनाद्य भयाद्रमं विमर्जिता । इति सन्वातुष्टुष्टो मीनाया दर्शनच्छया ॥२११॥
 शिविकां वेष्टयामासुर्ज्ञान्वा ता नु सुलोचनाम् । शिविकावाहकाम्प्रेनाययुः श्रीराघवं पुनः ॥२१२॥
 सुलोचनाऽपि श्रीरामं तनाम शिरसा मुहुः भर्तुः शिरः कांसपाणां तां रामो वाक्यमब्रवीत् ॥२१३॥
 कथया तव भर्तां करोम्यद्य सत्रांघ्रितम् । मां विशस्याद्यवहन्त्वं रोचने चेददस्य माम् ॥२१४॥
 तदा सा प्राह श्रीरामं पुनः सीमित्रिहस्तनः । कुतो भवेनन्मरणं मोक्षद जीवयस्व मां ॥२१५॥
 इत्युक्त्वा राघवं दन्वा सन्मिन कपिवाक्यतः । कृत्वा शिरः पनेस्तत्र लब्ध्वा मां भर्तुमन्निहः ॥२१६॥
 लङ्कायास्तौ समानीय भुजौ गत्वा निकुम्भिलाम् । भर्तुर्देहेन सयोज्य विवेशाग्निं यथाविधि ॥२१७॥

मेघनादका कटा सिर दिखाया । इन देखकर रामने लक्ष्मणको आज्ञा दी कि तुम लोग बहुत आनन्दित
 हुए ॥ २०० ॥ रावणने पहले पुत्रका कटा हुआ हाथ देखा । उसका मृत्यु सुनी तो मूर्छित होकर समाम
 ही जमीनपर गिर पड़ा । २०१ ॥ बादमें वह शीघ्रपुनः खड़ा होकर सीते वः मांस्त्वयं गि चला । उस
 समय सुषार्श्व नामके युद्धज्ञान भगने उसको रोका और उसको तन्प्राकृत्याणि हाथ अपने हाथसे पकड़कर
 नीतिमुक्त उपदेश दत्त हुए कहा ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ उवाच वः श्रीराघवम् आम् न्व दृष्ट्वा करता पाय
 है । हमारे साथ चलकर युद्ध करो । राघवः राम लक्ष्मणका भगवः जानक को अपना स्त्री बनाओ । इस तरह
 समझानेपर रावण जानत हुआ गया । उपर सुलोचना अपने पाँव मधन देवा कपूरविभूषित तथा वाणमुक्त
 हाथ अपने स मन पृथ्वीपर पड़ा दत्तकर उसने पृथ्वीका स्मरण कर दिया करता रही । २०४ ॥ २०५ ॥
 तब उस बड़ी भुजात काण द्वारा अपने खूनस जमीनपर , धर्मिता नम द्वात्तरी गत हुआ ऐसा लिखकर
 सुलोचनाको आश्वामन दिया । २०६ ॥ २०७ ॥ उसने यह भी लिखा कि मैं साराज शयावता लक्ष्मणके
 वाणस मरकर मुक्तिवा प्राप्त हुआ हूँ । अब तुम रामके पास जाकर मेरा सिर मांगो । वे तुमको अवश्य
 मेरा सिर दे देंगे । उस सिरका ले तथा अग्निमें प्रवेश करके मर, अनुगामिता वनो । मलावता उन रक्तलिखित
 अक्षरोंको पढ़कर प्रसन्न हुई । तदनन्तर रावण और मरुहदंशम् आज्ञा ले नञ्ज अस्मृण धारण करके वह
 पत्नीसं बैठकर आरामस पास चली । वानरगणने उसको देखकर वह समझा कि रावणने डरकर जाना रामके
 पास भोज ही है । ऐसा समझकर वे उनके दर्शनकी इच्छासे रोड पड़े ॥ २०८-२११ ॥ पास जाकर पालकाको
 घर लिया, पर जब पायकी होनेवालीसे पता लगा कि यह सुलोचना है तो वे सब घातुर रामके पास दौड़ गये
 । २१२ ॥ सुलोचना श्रीरामके पास पहुँची तो सिर तवाकर प्रणाम किया और पतिके सिरकी प्राप्तिके लिये
 प्रार्थना की । तब रामने कहा— ॥ २१३ ॥ मैं तुमपर कृपा करके तुम्हारे पतिको आवृत्त कर देता हूँ । तुम अग्निमें
 प्रवेश करनेका विचार छोड़ दो , बाली, यह पसन्द है ? ॥ २१४ ॥ उसने कहा हे महाशय ! फिर ऐसे मोक्षप्रद
 लक्ष्मणके हाथसे मृत्यु इन्हे कहीं प्राप्त होगी ? इसलिये अब आप इन्हें न जिलाए ॥ २१५ ॥ इतना कहकर उसने
 फिर रामको प्रणाम किया और कपिराज सुग्रीवके आज्ञानुसार पतिके सिरको पाकर हेमती हुई वह भर्तकि

सुलोचना दिव्यदेहा वैकुण्ठ पतिना ययौ । रावणोऽपि मुहन्मित्रैः पुनर्योद्धुं ययौ रणम् ॥२१८॥
 ततो रामेण निहताः सर्वे ते राक्षसा युधि । लङ्कायां रावणः क्षिप्तः शरेण राघवेण सः ॥२१९॥
 ततः कृत्वा रामशिखः कृत्रिम मयहस्ततः । ययौ मीनां दर्शयितुं रावणोऽशोककाननम् ॥२२०॥
 एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा बोधयामास जानकीम् । कृतमस्मिन् रावणेन कृत्रिमं गमयच्छिरः ॥२२१॥
 तद्दृष्ट्वा मा भजन्नाद्य स्वेदं त्वमधुनाऽवले । इति मवाधय तां मीनां ब्रह्माऽन्तर्धानमाययौ ॥२२२॥
 रावणोऽपि समागत्य दर्शयामास तच्छिरः । मीनां प्राह हतो रामस्त्वधुना त्वं भजस्व माम् ॥२२३॥
 तदा साऽधोमुखी प्राह तत्रैवाहं शिखीमि हि । गमयार्णश्च पश्यामि पतितानि रणांगणे ॥२२४॥
 इति तद्वाक्शराघातताडितः स दशाननः । ययौ नूर्णीं स्वयं गेहं लङ्कायाऽवनतस्तदा ॥२२५॥
 अथ रामाहया सर्वे लङ्कां प्रामादमडिताम् । ईपिकाचुडहस्तास्ते वानराः कोटिशः क्षणात् ॥२२६॥
 ज्वालयाभासुः सर्वत्र दत्त्वा वह्निं मुहुर्मुहुः । तदा कोलाहलधामोल्लङ्कादाहे पुनः यथा ॥२२७॥
 दग्धां स्वनगरीं दृष्ट्वा स्वगृहाण्यपि रावणः । दृष्ट्वा दग्धानि कपिभिर्मघास्त्रं समुजे जवान् ॥२२८॥
 तेनार्मादनलः शान्तस्तद्दृष्ट्वा कपयो ययुः । ततः स रावणः शुक्रवचनाद्रहमि स्थिताम् ॥२२९॥
 गुहं प्रविश्य चैकांते मीना होमं प्रचक्रमे । लङ्काद्वारकपाटादि बद्ध्वा सर्वत्र यत्नतः ॥२३०॥
 होमद्रव्याणि संगृह्य यान्पुक्तानि मया पुनः । रक्तावगाहितो मुण्डमाली प्रेतासनस्थितः ॥२३१॥
 परिस्तीर्याथ शस्त्राणि होमकुण्डममततः । आदशाद्वालकानां शिरोभिर्मांसलोहितैः ॥२३२॥
 एवं स विपुषातार्थं चकार हवनं रहः । उत्थित धूम्रमालोक्य रामं प्राह विभीषणः ॥२३३॥
 यदि होमममाप्तिः स्यात्तदाऽजेयो भवेदयम् । ततो रामो हरीन्मर्वन्प्रपयामास सादरम् ॥२३४॥

गलेपर रखकर बाँड दिया ॥ २१६ ॥ पञ्चानु लकाम पतिको देहमें उसे मिलाकर यथाविधि पतिके शरीरके साथ अग्निमें जलकर सती हो गयी ॥ २१७ ॥ तदनन्तर सुलोचना दिव्य देह धारण करके पतिक साथ वैकुण्ठ चली गयी । उधर रावण पुनः बन्धुओं तथा मित्रोंको साथ लेकर रणभूमिमें युद्ध करने गया ॥ २१८ ॥ वहाँ रामने सब राजसौको भारकर रावणका बाणमें उठाकर लकाम फेंक दिया ॥ २१९ ॥ तदनन्तर रावण मयदानकके हाथमें रामका नकली भस्त्रक बनवाकर सीताको दिखलानेके लिये अशोकवनमें गया ॥ २२० ॥ वहाँ इसी बीच ब्रह्माने सीताको पहले ही बता दिया था कि रावण रामका नकली सिर तुम्हें दिखायेगा । यह कहकर वे अन्तर्धान हो गये । इसके बाद रावण उनके पास पहुँचा और रामका भस्त्रक दिखलाते हुए कहा—हे सीते ! देखा, मैंने रामका पार डाला है । अब तुम मेरी सेवा करनेके लिये तैयार हो जाओ ॥ २२१-२२३ ॥ यह सुनकर सीताने नीचे मुँह करके कहा—मैं तो रामके बाणसे कटकर रणम्यलीमें गिरे हुए तेरा ही सिरोंकी देखना चाहता हूँ ॥ २२४ ॥ सीताके इस वाक्यम्पी बाणसे ताड़ित होकर दशानन लज्जित हो झों मुँह नीचा करके चुपचाप अपने महलमें चला गया ॥ २२५ ॥ तभी रामकी आज्ञासे करोड़ों वानर राघव घासके पूले ले-लेकर प्रामादो (हवेलियों) से भूषित लंका नगरीमें घुस पड़े ॥ २२६ ॥ उन्होंने क्षणभरमें बागों औरसे आग लगा दी । उस समय लकामे प्रथम लंकादहनकी ही तरह महान् कोलाहल तथा हाहाकार मचन लगा ॥ २२७ ॥ रावणने नगर तथा अपने मकानोंको जलते देखकर भेषास्त्र छोड़ा ॥ २२८ ॥ उससे बगको शान्त देखकर कपिसमूह भाग गया । पञ्चानु रावण दैत्यगुरु शुक्राचार्यके कथनानुसार एकान्तकी एक गुफामें गया और मौन धारण करके होम करने लगा । उसने चोतरफासे लंकाके दरवाज बन्द कर लिये ॥ २२९ ॥ २३० ॥ पहले मैंने जो-जो हवनके द्रव्य कहे हैं, वे सब इकट्ठे कर लिये । उसने अपने मूँह शरीरमें लोह छपट लिया । गलेमें मुण्डोकी माला पहिन ला । मृत पुरुषके शरीरको आसन बनाया ॥ २३१ ॥ होमकुण्डके चारों ओर गन्ध रख लिये और इस दिनसे प्रथम उत्पन्न बालकोके सिर तथा मांस और खजिर स एकान्तमें शत्रुओंके नाशके लिये हवन आरम्भ कर दिया । ऊपर उठ होमके धुँएँको देखकर विभीषणने गधसे कहा—॥ २३२ ॥ २३३ ॥ हे राम ! यदि होम निर्विघ्न समाप्त हो गया तो रावण सर्वथा नष्ट हो

प्राकारं लङ्घयित्वा ते गन्वा रावणमन्दिरम् । इत्वा राक्षसमुन्दं तद्गुहादक्षयतन्परम् ॥२३६॥
 न ददृशुर्गुहाद्वारं यत्र होमं चकार सः । ततश्च सरमानाम प्रमाने कर्मसंज्ञया ॥२३६॥
 विभीषणस्य भार्या तान् होमस्थानममुच्यत । गुहापिधानपाषाणानगदः पदघट्टनैः ॥२३७॥
 चूर्णयित्वा रावणश्च ताडयामास मुष्टिना । वानरास्तेऽपि तं धृशैरनाडयन्मासुरादरात् ॥२३८॥
 तद्वत्ते वानरा दृष्ट्वा तूष्णीमेव स्थितं रिपुम् । ममानयन्केशपाशे धृत्वा मदोदरीं शुभाम् ॥२३९॥
 विलपन्ती मुक्तनीवीं विह्वलां हनकचुर्काम् । दृष्ट्वा न्यक्त्वा तदा होममुदतिष्ठन्वगन्वितः ॥२४०॥
 ततस्ते वानराः सर्वे ययुः श्रीगणवानिकम् । ततो मदोदरीं प्राह कुरु त्वं वचनं मम ॥२४१॥
 दन्वा सीतां राघवाय राज्ये कृत्वा विभीषणम् । तपश्चर्या मयाऽप्ये कर्तुमर्हमि वै सुखम् ॥२४२॥
 ततस्या वचनं श्रुत्वा तां न प्राह दशाननः । रामो विष्णुश्च मा सीता जानामि प्राणवल्लभे ॥२४३॥
 रामहस्ताद्वयं लब्धुं हता सीता पुरा मया । रामहस्ताभ्यक्तदेहो गच्छामि परमं पदम् ॥२४४॥
 त्वया कार्या क्रिया मे हि प्रविशन्वानलं ततः । ततः सुखं मया भुक्त्वा शमिष्यमि परं पदम् ॥२४५॥
 इत्युक्त्वा प्रययौ योद्धुं रथे स्थित्वा न्वगन्वितः । राजद्वाराद्विनिर्गच्छन्ग्रे मुण्डी विलोकिनः ॥२४६॥
 मुकुटः पतितश्चित्रः संचित्रो रावणो हृदि । ततो ययौ रथभुवं यत्रप निशितः शरैः ॥२४७॥
 विधाय कृत्रिमां सीतां मयेन न दशाननः । पश्यतां वानराणां च स्वर्ग्ये तां प्रधानं वै ॥२४८॥
 दिव्येन शितस्त्रेण दृष्ट्वा ते तु प्लवगमाः । हाहंत्युक्त्वा दुःखितास्ते ययुः रामं निवेदितुम् ॥२४९॥
 तावद्वेधाः समागत्य रामादीन् प्राह सादरम् । कृत्रिमेयं हता सीता मा स्वेदं भजनाय हि ॥२५०॥
 ततोऽन्तर्धानमगमद्विधिस्तेऽपि प्लवगमाः । रामाद्या ब्रह्मवाक्येन तुष्टा यूढाय निर्ययुः ॥२५१॥

आयगा । तब रामने सब वानरोको सादर बुलाकर मुढके लिय भेजा ॥ २३४ ॥ वे सब परकोटको लोचकर रावणके मन्दिरम पुस गये । उन्होंने कहाँ उस गुफाकी रक्षा करनेवाले राक्षसको मार डाला ॥ २३५ ॥ परन्तु जहाँ रावण हवन करता था, उस गुफाका दरवाजा किसीको नहीं मानूँ मया । तब प्रातः कालके समय विभीषणको स्त्री सरमाने हाथसे भक्तसे उन सबको होमस्थानका दरवाजा बना दिया । द्वारपर लग हुए पाषाणको लाने मारकर अगदने लोड दिया और भीतर जाकर रावणको मुक्कोसे मारने लग । अन्यान्य वानर भी उसे वृक्षोसे पीटने लग ॥ २३६-२३८ ॥ फिर भी रावणको नृपचाप बँठा दबकर वानर उसकी स्त्री मन्दोदरीको केश पकड़कर वहाँ खींच लाये ॥ २३९ ॥ अपना मुन्दरी स्त्रीका नीता दुई, मुक्तकल्ल, चोलीरहित तथा विह्वल देखकर रावण होनका अचूरा छ डकर उडखडा हुआ ॥ २४० ॥ इस प्रकार रगके होमका भङ्ग करके सब वानर रामके पास भाग गये । तब मन्दोदरीने कहा—ह नाय ! तूम अब भी मेरी बात मान लो ॥ २४१ ॥ सीता रामका देकर विभीषणको लब्धका राज्य दे दो और मर साथ चलकर वनम तप करो । तुमको इमोम मुख प्राप्त होगी । स्त्रीकी बात सुनकर दशाननने कहा—हे प्राणवल्लभे ! मैं जानता हूँ कि राम साक्षात् विष्णु तथा सीता साक्षात् लक्ष्मी है ॥ २४२ ॥ २४३ ॥ यह जानकर ही मैं रामके हाथसे मरनक लिए सीताका यहाँ ले आया हूँ । रामके हाथसे मरकर मैं परम पद प्राप्त करूँगा ॥ २४४ ॥ वादम तूम भी मेरी क्रिया करके तथा अग्निभं सता होकर मुखपूर्वक मरे साथ परम धाम प्राप्त करोगी ॥ २४५ ॥ इतना कह तथा रथपर सवार होकर वह लडाईके लिए चल पडा । राजमहलसे निकलत ही उसका सिर मुढाये हुए एक मुण्डी दिखायी दिया ॥ २४६ ॥ उसका चित्र-विचित्र मुकुट भी गिर पडा । यह देखकर रावण मनच घबराया । फिर भी उसने समरभूमिमे आकर बहुत तजासे आणाकी वर्षा का ॥ २४७ ॥ तदनन्तर मयदानवसे एक नकलो सोना बनवाकर उसने वही वानराक सामने अपने रथपर रखकर काट डाला ॥ २४८ ॥ तज धारवाला तन्दवाग्से सीताको कटती दस हाहाकार करते हुए सब वानर यह समाचार रामके पास निवेदन करने गये ॥ २४९ ॥ इतनेमे ब्रह्माने आकर राम आदिको बडे आदरसे समझाकर कहा कि यह कृत्रिम सीता मारी गयी है । तूम लोग दुखी मत होओ ॥ २५० ॥ इतना कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और वे सब वानर और राम आदि वीर ब्रह्मवाक्य-

तदा स मातलिः शीघ्रं देवेन्द्रवचनाद्रथम् । शस्त्रास्त्रवाजिमहिनमशनिध्वजशोभितम् ॥२५२॥
 धरच्छत्रममायुक्तं रावणाग्रं न्यवदयन् । तमारुह्य तदा रामश्चकार कदनं महत् ॥२५३॥
 आग्नेयेन तदाग्नेयं देवं देवेन राघवः । अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रविन् ॥२५४॥
 ततस्तु समुज्जे घोरे राक्षसः सार्पमस्रविन् । रामः सर्पास्तनो दृष्ट्वा सीषणास्त्रं मुमोच सः ॥२५५॥
 अस्त्रैः प्रतिहते युद्धे रामेण दशकधरः । पार्जन्यं समुज्जे घोरे वायव्यास्त्रेण राघवः ॥२५६॥
 तदस्त्रं विनिवार्यामो बह्वयस्त्रं समुज्जे पुनः । पर्जन्यास्त्रेण पालस्त्यश्चकार विफलं तदा ॥२५७॥

नागानामयुतं तुरगनियतु माद्वैरथानां शतं पत्नानां शतकोटिनाशसमये त्वेका क्वथा नृतिः ।

एवं कोटिक्रवधनर्तनविधावका ध्वनिः क्रिक्रिणेर्विशृत्ताः प्रहरार्धता रघुरतेः क्रोददृष्टाग्ने ॥२५८॥
 तदा सैर्कांतुकं द्रष्टुं समाजग्मुः सुरा मुदा । गधवाः किन्नरा यक्षा विमानजनमस्थिताः ॥२५९॥
 तदाऽशनिध्वजं रम्यं चार्णाश्चिच्छेद रावणः । तं दृष्ट्वा रामचद्रोऽपि ध्वजहानं रथं निजम् ॥२६०॥
 मारुतिं प्राह वेगेन क्षणं तिष्ठ ध्वजोपरि । तथेन्युक्त्वा मारुतिः स तालमुत्पाद्य व्रमतः ॥२६१॥
 गत्वा रामरथे दिव्ये तस्मिन्स्थित्यो स्वयं मुदा । तं मारुतिध्वजं दृष्ट्वा रावणः ममरागणे ॥२६२॥
 तलं छत्रं मातलिनं तुरगान्वायुनदनम् । ऐन्द्रं धनुस्तच्चिच्छेद नवचार्णस्वरान्वितः ॥२६३॥
 वातात्मजमातलिर्नो मृच्छितो पतिर्नो भुवि । क्षणमात्रेण स्वस्थोऽभून्मदा म वायुनन्दनः ॥२६४॥
 तदा रामो वायुपुत्रस्कन्धे स्थित्वा गणाजरे । चकार तुमुलं युद्धं रावणेन मयावहम् ॥२६५॥
 रावणः परिधेयव संताड्य मारुतिं हृदि । चकार मृच्छितं वगान्पपात स पुनश्चाव ॥२६६॥
 तदा सस्मार रामोऽपि स्वरथं ममरागणे । तावद्रथः क्षणादेवायया स्वादयतः स्थितः ॥२६७॥

सं सगुह्य हावर युद्ध करनका निकर पड ॥ २५१ ॥ इसी समय इन्द्रक आजानुसार उनका सारथी मात
 अस्त्र शास्त्रीम भर तथा घाडीम तुन हृत् रथका लकर रथक पास आया और उनसे रथपर सवार हावर
 करनक लिए कहा । तब रामने उस रथपर सवार हावर महान् युद्ध किया ॥ २५२ ॥ २५३ ॥ अस्याका जा-
 वालोम परमश्रेष्ठ रामने राक्षसाक राजा रावणका आनय अस्त्र अपन आनय अस्त्रस तथा देवाराज दशर
 शान्त किया ॥ २५४ ॥ तब अस्त्रविन् रावणने धार सभाम्ब छाड़ा । रामने सर्पाका दखकर गारुडास्त्र छ
 ॥ २५५ ॥ इस प्रकार जब रामने युद्धका अपन अस्त्राम प्रनिहत कर दिया, तब रावणने एक दूसरा भया
 मघास्त्र फका । रामने उनका उत्तर वायुअस्त्रसे कर दिया ॥ २५६ ॥ उस अस्त्रका निवारण करके रामने उस
 आनयस्त्र धराया । तब रावणने उस वया अस्त्रस विफल कर दिया ॥ २५७ ॥ दस हजार हाथी, दस लाख घोड़े,
 इतने सौ रथ तथा एक कराड पाल संतकाक नष्ट होनपर एक कथन्वका नृत्य होता है । इस प्रकारक कराड
 कथन्वका होनपर एक क्रिक्रिणीया (घ टवी) का ध्वनि होता है, परन्तु रघुपति रामक केवल आधे प्रहरतक
 धनुषका घटारव करनम हा व सा क्रिक्रिणीयाका ध्वनि हुई ॥ २५८ ॥ उस समय इस कौतुकका दखनेक लिए
 आक राम सरङ्गा विमानापर आरुढ़ दवना, गन्धर्व, किन्नर तथा यक्षलाग इकट्ठे हो गये ॥ २५९ ॥ तथा
 रावणने अपन बाणास रामक वज्र तथा ध्वजाका काट दिया । रामचन्द्र अपने रथका ध्वजासे हीन दखकर
 मातलिसे बोल कि तूम क्षणभरक लिए ज-शसे मर रथका ध्वजाक पास बैठ जाओ । 'तदास्तु' कहकर मारुति
 शत एक ताटका वृक्ष उखाडकर रामक दिव्य रथपर रख दिया और आनन्दसे उसीपर जा बैस । मारुतिकी
 ध्वजाको दबकर रावणने रणागणम बड़ा क्रूरताके साथ तालमूलका, छत्रको, मातलि सारथीको, अश्वको,
 वायुनन्दन हनुमान्का तथा ऐन्द्र धनुषका नो बाणसे काट डाला ॥ २६०-२६३ ॥ तब वातात्मज हनुमान्
 तथा माताल मृच्छित हाकर जमिनपर गिर पड़े । परन्तु क्षण ही भग्ने वायुनन्दन संचल हो गये ॥ २६४ ॥
 तब राम हनुमान्क कन्धपर सवार हाकर रावणक साथ रणागणमे मयानक युद्ध करने लगे ॥ २६५ ॥ एकाएक
 रावणने मारुतिकी छत्रापरगदा मारकर मृच्छित कर दिया और हनुमान् उसी समय फिर पृच्छापर गिरपड़े ॥ २६६ ॥
 तब औररामने अपन रथका स्मरण किया । क्षणभरमे आकाशसे आकर वह रथ युद्धभूमिमें उनके सामने

दारुकः सारथिरथ यत्र शस्त्राण्यनेकशः । गदा पद्मं तु यन्नास्ति सर्वदा गरुडो ध्वजे ॥२६८॥
 पस्मिन्लब्धव्यश्च सुग्रीवस्तथा चैव बलाहकः । मेघपुष्पश्च चन्वागे वायुवेगा ह्योत्तमाः ॥२६९॥
 यत्र छत्रं वरं दिव्यं हेमदण्ड विराजते । आसरे द्वे शुभे यत्र शार्ङ्गं स्वं धनुर्गददे ॥२७०॥
 ततो गमः शरैस्तीक्ष्णैर्दशस्यस्य रथं क्षणात् । चकार चूर्णं साध्वं तं रावण चाप्यतर्जयत् ॥२७१॥
 तदाऽन्यरथमारूढो रावणो राघवं ययौ । ततो रामः शरैस्तीक्ष्णैर्दशाननशिरांसि सः ॥२७२॥
 चिच्छेद तानि गगने गत्वा तोषयुतानि हि । रामहस्तान्मृतिर्जाताऽस्माक चेति विचिन्त्य च ॥२७३॥
 वन्दनं कर्तुकामानि गगनाश्च रणाजिरे । सस्मितानि पतन्ति स्म राघवस्य पदोपरि ॥२७४॥
 रामःशिरांसि दृष्ट्वाश्च विदीर्णास्यानि स्वान्पुनः । मां हन्तुं प्रदवंतीति मन्वा भीत्या व्यताडयत् ॥२७५॥
 शरौघैः शतशः शीघ्रं तदद्भुतमिवामयत् । शतमेकोत्तरं छिन्न शिरसां चैकवर्चसाम् ॥२७६॥
 शतमूर्ध्नो रावणस्य चैकोत्तरमहस्रकम् । छिन्नं तत्कल्पभेदेन वदतीत्यपि केचन ॥२७७॥
 दृष्ट्वा तु रावणस्पान्तं विभीषणमतेन सः । नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारमस्थितम् ॥२७८॥
 पावकास्त्रेण तच्छीघ्रं शोषयामास राघवः । ततः शिरांश्च बाहूश्चिच्छेद रावणस्य सः ॥२७९॥
 एकेन मुख्यशिरसा बाहुभ्यां रावणो बभौ । तयोर्बुद्धमभूद्वोरं तुमुल रोमहर्षणम् ॥२८०॥
 ततो दारुकवाक्येन मर्मदेशे व्यताडयत् । ब्रह्मास्त्रेण रघुश्रेष्ठः समरे दशकन्धरम् ॥२८१॥
 स शरो हृदयं भिक्षा इत्वा तं तु दशाननम् । रामतूर्णात्माविश्य मेने स कृतकृत्यताम् ॥२८२॥
 रावणस्य च देहोत्थं ज्यातिरादित्यवन्स्फुरत् । प्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम् ॥२८३॥
 तदा देवास्तुष्टुस्तं ववर्षुः पुष्पदृष्टिभिः । नेदुः खे देववाधानि ननृतुश्चाभ्यरोगणाः ॥२८४॥
 तदा मंदोदरी भर्त्रा सह देहं विसृज्य सा । यया चैकृण्ठमयनं रावणेन मुदान्विता ॥२८५॥

खड़ा हुआ गया ॥२६७॥ जिस रथका दारुक सारथी था, जिसपर अनेक शस्त्र थे, जिसपर गदा-यत्र तथा ध्वजापर गरुड विराजमान थे । ॥२६८॥ जिस रथमें उत्तम वायुवेगवाले शीघ्र, सुघ व, बलाहक तथा मेघपुष्प थे चार घोड़े जुते थे ॥२६९॥ जिसमें दिव्य तथा सुन्दर सुवर्णदण्डवाला छत्र विराजमान था । जिसमें दो मनोहर चमर तथा रमणीय शार्ङ्ग नामका धनुष रक्ता हुआ था । तब रघुनन्दन राम उस रथको देख तथा परि-
 क्रमा करके सानन्द उसपर सवार हो गया और अपने शार्ङ्ग धनुषका हाथमें ले लिया । अब राम अपने तीक्ष्ण बाणोंसे क्षणभरमें शत्रुके अश्व सहित रथको चूर्ण करके रावणका ललकारने लगे । तब रावण दूसरे रथपर सवार होकर रामके सामने गया । रामने पुनः तीक्ष्ण बाणोंसे रावणके दसो सिरोंको काट दिया । वे सिर गगनमंडलमें जाकर 'हमारी मृत्यु रामके हाथोंमें हुई है' यह सोचकर हैसने हुए आकाशसे रणक्षेत्रमें रामके पाँवोंपर आ गिरे ॥ २७०-२७४ ॥ रामने आकाशसे मुख फाड़ हुए उन सिरोंका अपनी ओर आते देखकर यह समझा कि ये मुझे खा जानेको आ रहे हैं । इस प्रकार २ मन डरकर झट सैकड़ों बाण उनपर चला दिये । यह दृश्य बड़ा ही अद्भुत था । इस प्रकार एक सौ एक बार उसके सिरको रामने काटा ॥ २७५ ॥ २७६ ॥ कोई-कोई विद्वान् कल्पभेदसे यह भी कहते हैं कि सौ सिरवाले रावणके सिर रामने एक हजार एक बार काटे थे ॥ २७७ ॥ परन्तु जिसपर भी जब रावणकी मृत्यु नहीं हुई, तब विष्णोषणके कहनेके अनुसार रामने उसके नाभिदेशमें स्थित अमृतकुण्डको अपने अग्निवस्त्रसे सुखा डाला और बादमें उन्होंने रावणके सिरों तथा बाहुओंको काटा ॥ २७८ ॥ २७९ ॥ इस प्रकार जब रावणके एक सिर तथा दो हाथ बाकी रह गये, तब पुनः राम-रावणका रोमांचकारी तुमुल युद्ध हुआ ॥ २८० ॥ तदनन्तर रामने दारुक सारथीके कहनेपर ब्रह्मास्त्रसे समरमें दशकन्धरकी नाभिमें मारा । २८१ ॥ उस बाणने उसके हृदयको छेद तथा रामके तरकसमें जाकर अपने आपको कृतकृत्य समझा ॥ २८२ ॥ उस समय रावणके मृत शरीरसे सूर्यके समान प्रदीप्ता तेज निकल-
 कर देवताओंके सामने हो रघुनन्दन रामके देहमें प्रवेश कर गया ॥ २८३ ॥ तब देवताओंने स्तुति करके

ततो विभीषणेनैव रामो रावणमन्त्रिक्याम् । कारयित्वा लक्ष्मणेन लङ्कायां न विभाषणम् ॥२८६॥
नीत्वाऽभिषेचयित्वाऽथ स्वामभूतां तदनिके । वायुपुत्रकृतां लङ्कां पोचयामास राक्षसान् ॥२८७॥
विभीषणादिभिः शीघ्रमशोकं प्रेष्य मारुतिम् । सीतार्यं सकलं वृत्तं श्रावयामास राघवः ॥२८८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितावतारं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
युद्धचरित्रे रावणवधो नामकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

(रामका रक्ष्याभिषेक)

श्रीशिव उवाच

अथ तां दिव्यवस्त्रैश्च भूषयित्वा विदेहजाम् । मुक्ताता शिविकामस्थ्यां वेष्टितां चित्रपाणिभिः ॥ १ ॥
निन्युः श्रीरामसन्निष्य युग्रीवाद्यास्त्वतन्विताः । नानावाद्यसमुत्साहेनेतर्नवारयापिताम् ॥ २ ॥
ततोऽवरुह्य यानात्मा पद्मं गत्वा शर्नः पतिम् । ननाप साता श्रीराम लज्जिताऽऽमात्पतेः पुरः ॥ ३ ॥
रामोऽपि दृष्ट्वा तां सीतां शुद्धां ज्ञान्वापि तां पुनः । सर्वथा प्रत्ययार्थं हि तदा वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥
यथेच्छं गच्छ भैरहि गिणोहनिवासिना । न स्वामगाकरोम्यद्य ब्रह्मणा प्रार्थिताऽप्यहम् ॥ ५ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा कारयित्वा चितां शुभाम् । लक्ष्मणनाथ सुस्नाता साता वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
रामादन्यं चेतसाऽपि नाह जानार्हम पावक । यद्ददम वचः सत्यं ताहं त्वं शातला भव ॥ ७ ॥
इति सा शुपथं कृत्वा शिवशानलमुत्तमम् । ततः स द्वावाक्यं च तथा दशरथस्य च ॥ ८ ॥
वचनाब्जानकीं शुद्धां ज्ञात्वा तामग्रहन्प्रभुः । सुभूषितां पावकं स्नाक संस्थापता शुभाम् ॥ ९ ॥
पञ्चवट्यां स्वयं तत्र पुरा स्पर्शां च पावक । आलिंग्य जानकां रामां राजा क सन्यवशयत् ॥ १० ॥

पुनः बरखाये, गगनमण्डलम दिव्य वाय वजने लग तथा अप्सराए नृत्य करने लगा ॥ २८४ ॥ ऊपर मन्दादरा
आनन्दसे पातके साथ अपना पाञ्चभौतव देह छोड़कर वैकुण्ठरामका प्रस्थान कर गया ॥ २८५ ॥
रामने लक्ष्मणका भजा और विभीषणम रावणका क्रिया करवाया और लङ्काम विभाषणका अभिषेक
करवाकर उसका पास वायुपुत्रका न्यास (बराहर) रखवा हुई लङ्काका राक्षसोंसे छुड़वा दिया ॥ २८६ ॥ २८७ ॥
तदनन्तर रामने विभीषणादिक साथ हनुमान्का साताक पास भजकर सब समाचार कहलाया ॥ २८८ ॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितावतारं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे युद्धचरित्रे ज्वाल्ना भाषाटकायां
रावणवधो नामकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! तदनन्तर नुगोव आदि वानर मुमनाहुर कह्यो तथा भूषणोंसे भूषित, स्नान कर-
के पालकीपर सवार, बैस हाथम लिय हुए सपाहियोंस घिरा हुई वैदेहीका अनेक वाजाक सुन्दर शब्दोंके
बहत तथा वेश्याओंके नृत्यके साथ शीघ्र रामके पास ल आय ॥ १ ॥ २ ॥ साता कुछ दूर है। सवारोंपरसे
उतरकर धीरे-धीरे अपने पति रामके पास गयी तथा उन्हे प्रणाम करके कुछ लज्जित हाता हुई उनका सामने
कहा ही गयी ॥ ३ ॥ राम सीताको शुद्ध चरित्रवाला समझकर भा संवसाधारणका विश्वास दिलानेके लिए
कहने लगे—॥ ४ ॥ हे शत्रुक घरेमें निवास करनेवाला वैदेही ! तुम जहाँ चाहो, वहाँ चला जाओ । साक्षात् ब्रह्मा
कह ता भी मैं तुम्हे अपने पास नहीं रख सकता ॥ ५ ॥ रामका ऐसा वाक्य सुनकर साताने स्नान किया और
अन्य सुन्दर चिता रखवाकर अग्निदेवकी प्रार्थना करता हुई वाली—॥ ६ ॥ हे पावक ! यदि मैंने रामके
केवल अन्य पुरुषका चित्तसे भी चिन्तन न किया हो तो तू शांत हो जा ॥ ७ ॥ साता ऐसा कहकर अग्निमें
जल कर गयी । तब प्रभु रामने अग्निदेव तथा राजा दशरथके कहनेसे जानकीको पवित्र तथा पतितता
कर स्वीकार कर लिया । यह बात सीता जानती थी, जिनको कि रामने पञ्चवटामें स्वयं अग्निको सीव

तामसी राजसी चैव सात्त्विकी या त्रिधा पुरा । जाता रावणघातार्थं सा जातैकत्र वै तदा ॥११॥
 ततो देवैः स्तुतो रामश्चेन्द्रेण समरे मृतान् । वानरादीन् सुधावृष्ट्या जीवयामास सादरम् ॥१२॥
 तत्रैकं वानरं रामोऽदृष्ट्वा पप्रच्छ मारुतिम् । राघवं मारुतिः प्राह कुम्भकर्णेन भक्षितः ॥१३॥
 यदि किञ्चित्तस्य कपेर्नखकेशस्थिलोहितम् । रणेऽभविष्यत्पतितं तर्ह्येद्यामृतवृष्टितः ॥१४॥
 अभविष्यज्जीविनः स सन्त्यं विद्धि रघूत्तम । सुधावृष्ट्या राक्षसास्ते जीवयिष्यति वै पुनः ॥१५॥
 इति भीत्या पुराऽस्माभिः सर्वं त्यक्त्वा महादर्या । तन्मारुतेर्वचः श्रुत्वा यमराजं वपलोकयत् ॥१६॥
 यमोऽपि भोत्या रामाग्रंऽर्पयत्त प्लवगात्तमम् । त दृष्ट्वा राघवस्तुष्टस्तदाऽऽज्ञां नाकमुत्तमम् ॥१७॥
 गतुं ददौ मातलिने सोऽपि नत्वा रघूत्तमम् । रथेन वाजियुक्तेन ययौ मध्वतः पुरीम् ॥१८॥
 रामस्तु मंगलस्नानं कर्तुं संप्रार्थितोऽपि हि । विभीषणेन भरतं स्मृत्वा नांगीचकार सः ॥१९॥
 ततः सर्वैर्वानरैश्च पुष्पकं चारुरोह सः । रथेन दारुकश्चापि गरुडो मकरध्वजः ॥२०॥
 विभीषणश्चारुरोह पुष्पकं राघवाञ्जया । ततस्ते निर्जराः सर्वे राममामृत्युं ख ययुः ॥२१॥
 दृष्ट्वा रामं दशरथो विमानेन ययौ दिवम् । अथ तं राघवं प्राह पुष्पकस्य विभीषणः ॥२२॥
 राम ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि । ऐरावणगृहे राम यदा पातालमुत्तमम् ॥२३॥
 पुन गतस्तदा तूष्णीं किमर्थं त्वं स्थितः प्रभो । कथं तौ न हर्ता दृष्टौ तदेव क्षणमात्रतः ॥२४॥
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा विहस्य राघवाऽब्रवात् । भ्रमराणां वधः पूर्वं विधिना मारुतेः कृतात् ॥२५॥
 प्रोक्तस्तस्मान्मया तूष्णीं प्रताक्षा मारुतः कृता । अन्यच्चापि जगत्या हि मारुतेः पौरुषं जनाः ॥२६॥

दिया था । इस समय भगवान् रामचन्द्रन उन्हो जानकाका आश्रित करके अपनी गोदमें बैठा लिखा
 .। ८-१० ॥ जिस साताने पूर्वकालमें रावणवधक लिए तामसा, राजसी तथा सात्त्विकी ये तीन भूतियाँ
 धारण की थी, वह उस समय पुनः एक हो गयी । ११ ॥ पश्चात् सब देवताओंने मिलकर रामकी
 स्तुति की । रामने इन्द्रसे कहकर समरमें मर हुए वानरोंका सुधावृष्टिमें जावित करवाया । १२ ॥
 उनमें एक वानरका न देखकर रामने मारुतिसे पूछा । मारुतिने उत्तर दिया कि मालूम होता है, उसे
 कुम्भकर्ण खा गया । १३ ॥ हे रघूत्तम ! यदि उस वानरका नाख, केश अथवा लोहित आदि कुछ भी
 रणभूमिमें शेष होता तो वह अवश्य इस अमृतवर्षासे जावित हो जाता । यदि कह कि अमृतवर्षामें राक्षस क्यों
 नहीं जा गये तो इसका उत्तर यह है कि उनका तो जावित हो जानक डरसे हम त्यागोंने पहले ही समुद्रमें फेंक
 दिया था । मारुतिक इस वचनका सुनकर रामने यमराजका आर दखा । उनके देखनेसे ही यमराज डर
 गये और उस बन्दरका रामके आग लाकर खड़ा कर दिया । वह देखकर राम प्रसन्न हो गये । बादमें रामने
 मातालका स्वर्ग जानेका आज्ञा दे दी । वह भी रामका प्रणामकर तथा अश्वयुक्त रथ लेकर इन्द्रपुरीको चला
 गया । १४-१८ ॥ तदनन्तर विभीषणने रामका विघ्नशान्तिकारक मङ्गलस्नान करनेके लिये कहा । जो किसी
 विघ्न, आपात तथा राग आदिक बाद किया जाता है, पर रामने भगतका स्मरण करके उस अंगीकार नहीं
 किया । १९ ॥ बादमें समस्त बन्दरोंके साथ रामका पुष्पक विमानपर सवार हो गये । रथसहित दारुक, गरुड
 और मकरध्वज भी उसपर चढ़ गये । २० ॥ रामका आज्ञा पाकर विभीषण भी विमानारुढ़ हो गये । तभी
 सब देवता रामका आदेश पाकर स्वर्गका चले गये । २१ ॥ राजा दशरथ, जो कि जनकनन्दिनांक अभिप्रवेशके
 समय विमानपर बैठकर आप थे] भी रामसे पूछकर स्वर्गका चले गये । इसके उपरान्त पुष्पक विमानपर
 स्थित विभीषणने रामसे कहा— ॥ २२ ॥ हे राम ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ । कृपा करके आप उसका
 उत्तर दें । हे राम ! जब आप पातालमें ऐरावणके पहुँच गये थे ॥ २३ ॥ उस समय हे प्रभो, आप चुप क्यों
 हो गये थे । उस क्षण आपने उन दृष्टीको मार क्यों नहीं डाला ? ॥ २४ ॥ यह प्रश्न सुना तो राम कुछ मुस्करा-
 कर बाले कि पूर्वकालमें किसी समय जहान्ने 'उन भँवरोंका वध हुआमान्के हाथसे होगा' ऐसा कह दिया
 था ॥ २५ ॥ इसी कारण मैंने चुप होकर वह काम मारुतिपर ही छोड़ दिया था और इसीलिये मैंने मारुतिकसे

वदन्तु येन श्रीरामलक्ष्मणौ मोचितौ पुग । असुरगम्यां हि पाताले सोऽयं श्रीरामसेवकः ॥२७॥
 इति पौरुषश्रुत्यर्थं मारुतेर्जगतीतले । मम दासस्य बलिनस्तथा नृणीं स्थितं मया ॥२८॥
 मोचेर्धुंकारमात्रेण पथि हंतुं न किं क्षमः । ईषिकाश्रेण काकस्य येन नेत्रं विदारितम् ॥२९॥
 क्षतयोजनपर्यन्तं मार्गचोऽर्धा पतत्रिणा । पुग येन मया मयक्तः मोऽहं किं कुण्ठितमनदा ॥३०॥
 तयोर्वधे तु पाताले न शम्भार्यं प्रतीक्षितम् । मारुतेः पौरुषार्थं हि सन्यं वेद विभीषण ॥३१॥
 इति रामवचः श्रुत्वा मारुतिः स विभीषणम् । तदा प्राह विद्वद्भ्याथ किं न्वं नद्विष्मृनोऽमि हि ॥३२॥
 सेतुकाले राघवेण गवे दृष्ट्वा मयि स्थितम् । लांगूलं खड्गितं पूर्वं लिङ्गोन्पाटनहेतुना ॥३३॥
 तस्य मे राघवाग्रे हि किं बल मन्यसेऽत्र हि । किं विलम्बो राघवाय तयोर्गुणयोर्वधे ॥३४॥
 पथिमा निजदासस्य कीर्तिम् विभीषण । इति तन्मारुतेर्वाक्यं श्रुत्वा रामं विभीषणः ॥३५॥
 ननाम परया भक्त्या ततः सम्यगपूजयन् । अथ रामः पुष्पकस्थः मीनया प्रार्थितो मुहुः ॥३६॥
 तद्वाक्यगौरवासुष्टस्त्रिजटायै वरान्ददी । चम्बालङ्कारभूपाभिः पूर्वं तुष्टां विधाय च ॥३७॥
 त्रिजटे वचनं मेऽद्य शृणु मंगलदायकम् । कार्तिके माधवे माघे चैत्रे मामचनुष्टये ॥३८॥
 स्नात्वाऽग्रे त्रिदिनं स्नानं न्वर्प्यन्यथं नरोत्तमाः । करिष्यन्ति हि तेनैव कृतकृत्या भविष्यमि ॥३९॥
 यैर्नस्त्रिदिनं स्नानं न कृतं पूर्णिमोर्ध्वतः । तेषां मामकृतं पुण्यं हर त्वं वचनान्मम ॥४०॥
 अन्यच्चापि शृणुष्व त्वं दीयते यो वरो मया । अशुचीनि गृहाण्येव तथा श्राद्धहवींषि च ॥४१॥
 क्रोधाविष्टं दक्षानि विधिवत्तत्कृतान्यपि । त्रिजटे तानि तुभ्यं हि शृण्वन्त्यत्वं भयोच्यते ॥४२॥
 पादशोचमनस्थगं तिलहीनं च तर्पणम् । सर्वं तन्त्रिजटे तुभ्यं तथा श्राद्धमदक्षिणम् ॥४३॥
 यहाँ प्रतीक्षा की। दूसरी इच्छा यह थी कि संसारमें लोग मारुतिके बलकी भी जान जायें कि मारुतिने पातालमें राक्षसोंके हाथसे राम-लक्ष्मणको छुड़ाया था, वही यह रामका सेवक हनुमान् है ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस प्रकार जगत्में अपने बलवान् सेवक हनुमान्के पुरुषार्थकी प्रसिद्धि करनेके लिए ही मैं बहूँ चुप हो गया था ॥ २८ ॥ नहीं तो क्या मैं उनको रामनम ही दुःस्वप्नमात्रसे नष्ट नहीं कर सकता था ? जिसने सीकके अश्वसे ही काक जयन्तका नेत्र फोड़ डाला ॥ २९ ॥ जिसने बाणसे मार्गेचकी मौ योजनकी दूरीपर समुद्रमें फक दिया । वह मैं तब क्या कुण्ठितशक्ति हो गया था, कभी नहीं । मैंने पातालमें उनको मारुतिके लिये किसी शस्त्रकी राह नहीं देखी थी । हे विभीषण ! तुम सब मानो कि मैं उस समय केवल हनुमान्के बलकी सहायि करनेके लिए ही चुप हो गया था ॥ ३० ॥ ३१ ॥ रामका यह वचन सुनकर हमने हुए मारुतिने विभीषणसे कहा-क्या तुम उस बातको भूल गये, जब सेतु बाँधनेके समय रामन मुझको कुछ गवयुक्त देखकर स्थापित शिवस्त्रि उखाड़नेके वहाने मेरी पूँछ तोड़वा डाली थी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐसे मुझ निर्वलका बल रामचन्द्रके सम्मुख किसी गिनतीमें नहीं है । रामचन्द्रको उन दोनों असुरोंको मारनेमें क्या देर लगती ? कदापि नहीं । हे विभीषण ! रामने केवल अपने दासकी (मेरी) कीर्ति बढ़ानेके लिए ही वैष्ण किया था । मारुतिकी बात सुनकर विभीषणने रामकी परम भक्तिसे प्रणाम करके प्रेमसे अच्छी तरह पूजन किया । पश्चात् रामने विमान-पर बंटी हुई सीताके कहनेसे उनके वाक्यका आदर करने हुए प्रसन्न होकर त्रिजटाको वरदान दिया । पहले उसको वस्त्र-अलंकार आदिसे संतुष्ट करके कहा-हे त्रिजटे ! तुम मेरी मङ्गलमयी वाणी सुनो । कार्तिक, वैशाख, माघ और चैत्र इन चार महानोम पहलेक तीन दिन सभी नगश्रेष्ठ तुमको प्रसन्न करनेके लिए हो स्नान करेंगे । इससे तुम कृतकृत्य हो जाओगी ॥ ३४-३९ ॥ जो मनुष्य इन चार महानोमोंमें पूर्णिमासे लेकर तीन दिन स्नान न करे, उसका सारे महानोमोंका किया हुआ पुण्य मेरे कहनेसे तुम दहन कर लेना ॥ ४० ॥ और यह भी बर देता हूँ कि अपवित्र स्थानमें विविधपूर्वक किये हुए श्राद्ध तथा इतने आदि भी यदि क्रोधसे किये गये हों तो वे भी तुम्हारे ही होंगे । और भी सुनो, बिना तेल के पक्षि घोंटे तथा बिना तिलके तर्पण करनेके पुण्य भी तुम्हारे होंगे । हे त्रिजटे ! वक्षिणासे

इति दत्त्वा वरान् रामस्त्रिजटामरमान्वितः । म विभीषणसुग्रीवमकरध्वजवानरैः ॥४४॥
 ययौ विहाय सा सीता दशयन् कौतुकानि सः । पश्य सीते पुरीं लङ्कां तथा रणभुवं शुभाम् ॥४५॥
 पश्य मेतुं मया बद्धं शिलाभिर्लवणार्णवे । एतच्च दृश्यते तीर्थं सेतुबंधमिति स्मृतम् ॥४६॥
 हन्युक्त्वा रघुवीरस्तु राक्षसेन्द्रस्य वाक्यतः । पुष्पकाट्टवि चोत्तीर्य धृत्वा कोदंडमुत्तमम् ॥४७॥
 बभञ्ज सेतुं तन्कोट्या धनुःकोटिर्निरीर्यते । अतएव हि तत्तीर्थं स्नानान्कैवल्यदायकम् ॥४८॥
 कोदंडपाणिर्नाम्नाऽऽसीद्राममूर्तिश्च तत्र हि । एतस्मिन्नतरे तत्र सपातिः स ययौ तदा ॥४९॥
 तमालिङ्ग्य रामचन्द्रस्त प्राह स्मिन्पूर्वकम् । वधोर्नाम्नाऽत्र तीर्थं त्वं कुरु सेतौ महत्तमम् ॥५०॥
 तथेति रामवचनाद्भानुः संनैषकाम्यया । तीर्थं चकार सम्पानिर्जटायुमिति विश्रुतम् ॥५१॥
 ततो रामाक्षया यानं संपातिश्चारुगेह सः । ततो यानेन तां सीतां दर्शयन् कौतुकानि हि ॥५२॥
 ययौ रामेश्वरं पश्य तथा श्रीरघुनन्दनः । सीतेऽत्र पश्य मंत्रार्थमेकांते मस्थितं पुनः ॥५३॥
 अत्र दक्षेणु शयनं कृतं पश्य विदेहजे । नवग्रहार्थं प्रक्षिप्तान्पाषाणान्पश्य सागरे ॥५४॥
 तूष्णीमेव स्थित पश्य सागरं मम वाक्यतः । एव तां दर्शयन् रामः किष्किधां प्रययौ क्षणात् ॥५५॥
 वानराणां स्त्रियः सर्वा विमाने स्थाप्य राघवः । ययौ तां दर्शयन् सीतां कौतुकानि समततः ॥५६॥
 प्रवर्षणगिरिं पश्य अम्यमूकाचलं तथा । पंपासरोवरं पश्य कृष्णां भीमरथीं शुभाम् ॥५७॥
 पश्य पंचवटीं रम्यां गोदातीरविगजिनाम् । अगस्त्येराश्रमं पश्य सुतीक्ष्णस्याश्रमं तथा ॥५८॥
 पश्यात्रेराश्रमं सीते चित्रकूटं समीक्ष्य । कालिदां जाह्नवीं पश्य भारद्वाजाश्रमं तथा ॥५९॥
 इत्युक्त्वा जानकीं रामो भारद्वाजार्थितस्तदा । तस्थौ तस्याश्रमे यानादवरुह्य यथासुखम् ॥६०॥

शून्य सब आदृ भी तुम्हीको प्राप्त हावे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इस तरह बहुतरे दर दकर राम त्रिजटा, सरमा, विभीषण सुग्रीव, मकरध्वज तथा वानरों के साथ आकाशमार्गसे सीताजीके सामने कौतुक दिखाते हुए चल दिये । राहुमें राम बोले हे सीते ! इस लंका नगरीका तथा इस मन्दिर रणभूमिकी देखो ॥ ४३-४५ ॥ यह क्षारसमुद्रमें मेरा बाँधा हुआ शिलाओका विशाल सेतु है । यह सामन सेतुबन्ध नामका प्रतिद्ध तीर्थ दिखाई दे रहा है ॥ ४६ ॥ इतना कहते बाद रामचन्द्रजी राक्षसेन्द्र विभाषणके वचनानुसार विमानसे नीचे उतरे और अपना उत्तम धनुष लेकर उसकी लोकसे सेतुको ताड दिया । वहाँपर स्नान करनेसे मोक्षपद देनेवाला धनुषकोटि नामका तीर्थ बन गया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ दण्डपाणि नामका रामको मूर्ति भी वहाँ स्थापित हो गयी । इतनेमें वहाँ सपाती आ पहुँचा । ४९ रामने उसका आश्रयन करके प्रसन्न मनसे कहा कि तुम यहाँ सेतुपर अपने भईके नामका एक महान् तीर्थ स्थापित करो ॥ ५० ॥ 'तयाम्नु' कहकर रामकी आज्ञाके अनुसार सपातीने अपने भाईको आश्रमकी मनुष्ट करनेका इच्छासे वहाँ 'जटायु' नामका प्रसिद्ध तीर्थ बनाया ॥ ५१ ॥ बादमें रामका आज्ञासे सपात को भी पुष्पक विमानपर चढ़ा लिया गया । श्रीरघुनन्दन राम सीताके साथ रामेश्वरकी पूजा करनेके विमानपर नवार होकर सीताका सब दृश्य दिखाने हुए बोले—देखो सीते इस एकांत जगहपर मैं मन्त्रणा करनेके लिए बैठता था । ५२ ॥ ५३ ॥ हे विदेहजे ! इन कुशाओपर मैं सोता था । देखो, ये नी पाषाण सेने समुद्रमें नवग्रहोंका पूजाके लिए खले थे । ५४ ॥ देखो, मेरे कहनेसे यह समुद्र अब भी चुप है । इस प्रकार वर्णन करते हुए रघुनन्दन राम क्षणभरमें किष्किधा आ पहुँचे । ५५ ॥ वहाँसे सुग्रीव आदि वानरोंकी स्त्रियोंको विमानपर बैठाकर पुन सब स्थल स ताकी दिखाने हुए वे आगे बढ़े ॥ ५६ ॥ रामने सीतासे कहा श्वर यह प्रवर्षण गिरि है, यह ऋध्यामूक पर्वत है, यह पंपासरोवर है, यह पवित्र कृष्णा तथा भीमरथी नदी है । ५७ ॥ गोदावरके तटपर विराजमान यह रमणीक पंचवटी है । ऊपर अगस्त्य तथा सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमका देखो । ५८ ॥ हे सीते ! अत्रि मुनिके इस आश्रमको तथा चित्रकूट पर्वतकी शोभाको देखो । यमुना, गंगा तथा भारद्वाज ऋषिके आश्रमको देखो ॥ ५९ ॥ जानकीसे यह कहकर राम विमानसे नीचे उतरे और भारद्वाज ऋषिके प्रायना करनेपर उनके आश्रममें सुखसे

माघशुक्लचतुर्थ्यां हि पूर्णे वर्षे चतुर्दशे भारद्वाजोऽपि तपसा स्वर्गं निर्माय भूतले ॥६१॥
 पूजयामास श्रीरामं सीताञ्चानगमयुतम् । रामोऽपि हृदि संमन्य मारुतिं वाक्यमब्रवीत् ॥६२॥
 अयोध्यां गच्छ भरतं मद्धृतं कथयस्व तम् । मत्पात्रं मृद्ववेरे मे धृतं कथय केवलम् ॥६३॥
 तथेति गृहकं गन्वा कपिशूनं न्यवेदयत् । गृहकोऽपि मुदा युक्तस्तदा रामान्तिकं ययौ ॥६४॥
 ततोऽयोध्यां ययौ वेगान्मारुतिः स विहाय सा नदिग्रामेऽपि भरतः पूर्णं वर्षं चतुर्दशे ॥६५॥
 नागते राघवे बहिं मन्मदोऽभूत्प्रवेशितुम् । शत्रुघ्नं भरतः प्राह रात्रौ गणांगणे ॥६६॥
 श्रीरामलक्ष्मणौ वीरौ हतौ मन्त्रेऽथ नागनौ । आकाशिता मया सर्वे नृपा एते वर्ल्लर्धुनाः ॥६७॥
 लकां गन्वा राघवस्य साहाय्यं कर्तुमिच्छता । सोऽहमग्निं विशास्यथ श्वावस्त्वाचलं गते ॥६८॥
 त्वं गच्छ पार्थिवलोकं हन्वा युद्धे दशाननम् । सोऽचयिन्वा जनकजां ततो नः पारलीकिकम् ॥६९॥
 रामादीनां त्रिविधनां कर्तुमहमि सादरम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य पांग जानपदा नृपाः ॥७०॥
 शत्रुघ्नो मातरः सर्वा उर्मिलायाः स्त्रियश्च ताः । मर्मत्राया मन्त्रिणश्च पौगन्धार्यश्च सेवकाः ॥७१॥
 भरतं वेष्टयामासुः श्वेदाद्विह्वलमानसाः । भरतः सान्त्वयन् सर्वान्ययौ तां सरयुं नदीम् ॥७२॥
 किनां कृत्वा ततः स्नान्वा ददौ दानान्यनेकशः । सम प्रदक्षिणाः कृत्वा बहिं ध्यान्वा गच्छतमम् ॥७३॥
 गीतां तां लक्ष्मणं वीरं नत्वा मानुर्गुरु मुनीन् । आराध्यदेवतां ध्यान्वा ह्यत्तगभिमुखः स्थितः ॥७४॥
 गयो न्यस्तेक्ष्णः मायं प्रतीक्षन् संस्थितः क्षणम् । महान्कालाहलश्राणीनदा स्त्रीपुरुषैः कृतः ॥७५॥
 एतस्मिन्नंतरे स्वस्थमनं दृष्ट्वा वायुनन्दनः । प्रवेष्टुमद्यत वेगाद्धृतं गद्गदस्वनः ॥७६॥
 अत्र रोन्मधुर शक्यं मुधया मेचयन्निव । सा विशास्यानल वीर राघवोऽथ ममागतः ॥७७॥

६१-६२ ॥ उस गौज चौदह वषका माघ शुक्ल चतुर्दशा यी । भारद्वाजन अग्न तपोवन्से पृथ्वापर
 र स्वर्गका रचना कर दी ॥ ६१ ॥ समस्त स्वर्गो पदार्थोम उन्होंने संता तथा जानगे समस्त श्रीरामका
 मया भीति पूजन तथा सत्कार किया । तदनन्तर रामन विचार करके मारुतिसे कहा — ॥ ६२ ॥ अयोध्या
 ६३-६४ ॥ भरतको तथा भृगवर्षपुर जाकर मेरे प्रिय मित्र निषादराजका मेरा सब समाचार सुना दो ॥ ६३ ॥
 दृष्ट्वा अच्छा कहकर हनुमान् निषादराजके पास जाकर सब वृत्तान्त निवेदन कर दिया । वह प्रसन्न होकर
 ६५-६६ ॥ वहाँम मारुति आकाशमागसे साध्व अयोध्या गये । वहाँ जाकर देखा कि नदीगाँव-
 ६७-६८ ॥ भरत चौदह वर्ष वन जानपद भा रामक न लौटनेके कारण अग्न जन्माकर उसमें प्रवेश करनेका तैयारी
 ६९-७० ॥ शत्रुघ्नसे वह गये थे — मेरा समझम ता ऐसा आ रहा है कि रावणने युद्धम राम-लक्ष्मणको मार डाला है ।
 ७१-७२ ॥ कारण वे अटक नहा लौट । इनालिए मैंने सब राजाओंका अपनी-अपनी सेनाके सहित बुलवा भजा
 है कि वे सब लका जाकर रामका सहायता कर । मैं तो आज सूर्यास्तके समय अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा
 ७३-७४ ॥ परन्तु तुम राजाओं माघ लका जा तथा युद्धम रावणका मारकर जनकानन्दिनीको लुहा
 ७५-७६ ॥ पश्चात् राम आदि हम तीनों भाइयोंका तुम आदरपूर्वक पारलीकिकी क्रिया करना । भरतको
 वह बात सुनकर देशके और नगरके लोग राजालाग, शत्रुघ्न, सब मानाँ उर्मिला आदि समस्त स्त्रियाँ,
 मन्त्र आदि मन्त्रिण, पुत्रकी स्त्रिय तथा सेवकवर्गन आकर चारों आरस भरतको घेर लिया और दुःखी होकर
 ७७-७८ ॥ रत्न करने लगे । तब भरत सबको समझा-बुझाकर सरयु नदीके किनारे गये ॥ ६६-७२ ॥ वहाँ जा तथा
 ७९-८० ॥ स्नान करके चिन्ता रचवाया और अनेक दान दिये । पश्चात् अग्निका सात प्रदक्षिणा करके उन्होंने गच्छतम
 ८१-८२ ॥ लका ध्यान किया ॥ ७३ ॥ तदनन्तर सीता तथा वीर लक्ष्मणको नमस्कार करके माताओं, गुरुजनों तथा
 ८३-८४ ॥ गुरुजनों प्रणाम किया और आराध्य देवताका स्मरण करके उत्तराभिमुख होकर खड़े हो गये ॥ ७४ ॥ भरत
 ८५-८६ ॥ नृत्त दृष्टि गढाये हुए सूर्यास्तकी प्रतीक्षा करने लगे । उस समय सभी स्त्री-पुरुषोंम महान् हाहाकार मच
 ८७-८८ ॥ ७५ ॥ सभी वायुनन्दन हनुमान्ने अकर अग्निप्रवेश करनेको उद्युक्त भरतसे शांतिपूर्ण गद्गदस्वर होकर
 ८९-९० ॥ बहने लगे । यह मधुर वचन कहा — हे वीर ! अग्निमें प्रवेश मत करिए । श्रीराम सीता तथा लक्ष्मणके साथ

सीतया लक्ष्मणेनापि भाग्द्विजाश्रमं प्रति । वानरैः सहितं रामं श्रम्य पश्यसि निश्चयात् ॥ ७८ ॥
 रामोऽन्युत्कथितस्त्वां हि द्रष्टुमस्ति जटाधर । इति तद्वाक्सुभाषितसेचितो भरतो मुदा ॥ ७९ ॥
 बद्धिं नत्वा परावृण्य ननाम चायुनन्दनम् । मग्नं मारुतिश्चापि नत्वाऽऽलिख्य मविस्तरम् ॥ ८० ॥
 श्रावयामास श्रीरामवृत्तं मनोषकारकम् । तच्छ्रुत्वा भरतस्तुष्टः शोभयामास तं पुनीम् ॥ ८१ ॥
 अयोध्यां तीरणाद्यैश्च पौरैः प्रन्युज्जगाम तम् । मस्तके पादुके वदध्वा पूरकृन्त्याश्च वाग्णम् ॥ ८२ ॥
 माघस्य मितपंचम्यां प्राप्ते पंचदशेऽब्दके । प्रभाते भरतो याम्ये ददर्श पुष्पकं खगम् ॥ ८३ ॥
 ननाम राश्व दृष्ट्वा माष्टांगं भरतस्तदा । रामोऽप्यालिख्य भरतं कृत्वा रूपाप्यनंकशः ॥ ८४ ॥
 एककाले जनान् सर्वान्पृथक् च परिपन्वजे । आर्द्रा पश्चान्न रामेण कृतमालिङ्गनं तदा ॥ ८५ ॥
 रामान् दृष्ट्वा ह्यमरुयानान् जनाश्चासन्मुविस्मिताः । समाश्वासयाश्च भग्न राश्वः सन्त्रलोचनः ॥ ८६ ॥
 ननाम शिरसा मातृशिरः चाप्यरुन्धर्नाम् । ततो वाद्यनर्तनाद्यर्नन्दिग्रामं यया शनः ॥ ८७ ॥
 श्मश्रुकर्मोद्धर्तनं च तैलभ्यं तु वधुभिः । नदिग्रामेऽकरोद्रामो नानापागन्धवस्तुभिः ॥ ८८ ॥
 नववाद्यमुद्योराश्च नेदुः सर्वत्र मुखराः नायो नीराजयामासू स्तनीर्षं रघूत्तमम् ॥ ८९ ॥
 ततः सीता नमस्कृत्य कौमल्याद्याश्च मातरः । वसिष्ठं ब्राह्मणान्पुद्गान्दर्शयान्यथाक्रमम् ॥ ९० ॥
 ततः सीतां समालिख्य कौसल्याद्याश्च मातरः । स्नापयामासुर्मार्गल्यद्रव्यैश्चिपुरःसरम् ॥ ९१ ॥
 वस्त्रालंकारभूषाभिः शुशुभे जानकी तदा । भरतः पादुके ते तु राश्वस्य सुपूजिते ॥ ९२ ॥
 योजयामास रामस्य पादयोर्भक्तिमयुतः । ततोऽतिविनयान्प्राह भरतो रघुनन्दनम् ॥ ९३ ॥
 राज्यमनन्यामभूतं मया निर्यापितं तव । कोष्ठागारं च लं कोशं कृतं दशगुणं मया ॥ ९४ ॥

आज आ गये हैं । आप वानरो समेत उन्हें कल अवश्य देखोगे ॥ ७८ ॥ हे जटाधर ! राम भी आपको देखनेके लिए बड़े ही उत्कथित हो रहे हैं । इस प्रकार हनुमानको वाक्यरूपिणीं मुखावृष्टिसे मिचित होकर भरत सहस्रं अन्तिके पाससे लौट आये और वायुनन्दनको प्रणाम किया । मारुतिने भी भरतको नमस्कार तथा आलिङ्गन करके श्रीरामका मनोषकारक तथा सविस्तर सब समाचार सुना दिया । यह सुना तो भरतने प्रसन्न होकर अयोध्या नगरीको तीरण पत्ताका आदिसे मुमन्त्रितकर तथा परवामिनीका साथ ले और हाथीको आगे करके रामकी लड़ाऊँको मस्तकपर वधुकर रामकी अगवानो करने लगे । ॥ ७९ ॥ पन्द्रहवें वर्षका माघ शुक्ल पञ्चमीको प्रातःकाल याह्य मुहूर्तमें भरतने पुष्पकसिमातको आकाशमें देखा । ॥ ८० ॥ भरतने रामके दर्शन करनेके साथ ही उनको साष्टांग प्रणाम किया । रामने भरतको आश्रित करनेका बात एक साथ अनेक रूप धारण करके एक ही समय सब लोगोंके साथ अलग अलग मिले । किसीके साथ आश्रित आगे या पीछे नहीं होने पाया ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ बहुतसे रामोको देखकर लोगोंको बड़ा भारी विस्मय हुआ । रामने भरतको बहुत बड़ावा और उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ८३ ॥ पश्चान् उन्होंने माताओंको मस्तक स्पर्शकर प्रणाम करके गुरुपत्नी अरुण्वतीको प्रणाम किया । बादमें नाच-गाना तथा बाजोंके साथ घीरे-घीरे राम नन्दीयाममें पधारे ॥ ८४ ॥ वहाँ जाकर रामने क्षीर कण्ठा और शरीरमें चन्दनदि मुगन्धित द्रव्य मल तथा तेल लगाकर अनेक मंगलकारी वस्तुओंमें सब वस्तुओंके साथ मंगलस्नान किया । ८५ ॥ चारों तरफ नये-नये बाजोंके सुन्दर घोष होने लगे । शिवयै रत्नमय दीपकोंसे कौमल्यानन्दन रामको आगती उतारने लगीं ॥ ८६ ॥ सीताने भी अपनी सासोको, अरुण्वतीको, वसिष्ठको, ब्राह्मणोंको तथा और और वन्दनीय जनोको यथाक्रम प्रणाम किया ॥ ८७ ॥ इसके अनंतर कौमल्या आदिने सीताको छातीसे लगाकर मांगलिक द्रव्योंसे स्नान कराया ॥ ८८ ॥ उस समय जनकनन्दिनी नये नये अलङ्कारोंसे सजकर बड़ी सुन्दर लगने लगीं । भरतने रामकी पादुकाका पूजन करके रामके पांवोंमें भक्तिपूर्वक पहिना दी । तदनन्तर अति विनोत भावसे भरत रघुनाथजीसे कहने लगे— ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ हे प्रभा ! आपका घरोहृत्स्वरूप राज्य मैंने आजतक खलाया । हे जनप्राय ! आपके पुण्य-प्रतापसे मैंने यहाँके कोठार, कोश तथा सेनाको बड़ाकर दसगुना कर दिया है । अब आप अपने इस नगरका, देशका तथा

त्वच्छेजमा जगन्नाथ पालयस्व पुरं स्वकम् । तथेति राघवश्चोक्त्वा भरतं सन्पवेशयत् ॥९५॥
 ततः स दिव्यवस्त्राणि परिधाय रघूत्तमः । सीतया रथमारुह्य बाद्यशोपैर्जनस्वनैः ॥९६॥
 वागांगनानृत्यगीर्तयौ निजपुरीं प्रति । पौरनार्यैश्च सौधस्था वयर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥९७॥
 चकुर्नीलगजनं भागौ नानावलिपुरःसरम् । रमो रथात्तदोत्तीर्य सीतां सप्रेष्य वै गृहम् ॥९८॥
 पुष्पकं प्राह गच्छ त्वं कुत्रेवं वह सर्वदा । तथेति रामवचनाज्जगाम पुष्पकं तु दत् ॥९९॥
 अथ रामः समामध्ये विवेश कपिभिः सह । ददौ कपिभ्यो गेहानि वस्तुं रम्पाणि सादरम् ॥१००॥
 अथ रामस्य राज्यार्थमभिषेकं गुरुस्तदा । चकार तुमुहूर्ते वै महामगलपूर्वकम् ॥१०१॥
 हनुमत्प्रमुखाद्यैश्च चतुर्भिर्धुजलं शुभम् । समानीय नृपः सर्वैर्महाबाद्यपुरःसरम् ॥१०२॥
 छत्रं च तस्य जग्राह पृष्टसदयः स लक्ष्मणः । दधार मन्दबाधर्वस्थश्चामरं भगवत्स्तदा ॥१०३॥
 शत्रुघ्नो वामपार्श्वस्थो दधार व्यजनं शुभम् । हनुमान्पादुके दिव्ये दधार पुरतः स्थितः ॥१०४॥
 बाधवादिचतुष्कोणमस्थितास्ते महौजमः । सुग्रीवाद्यास्तदा चासंश्रित्वारो राघवेक्षणाः ॥१०५॥
 सुग्रीवो जलपात्रं च वरादशं विभीषणः । दधार हस्ते तांबूलपात्रं स बालिनन्दनः ॥१०६॥
 वस्त्रकोशं जांबवाश्च दधार वेगवत्तरः । तस्थौ सिंहासने रामः सपृष्टांकापवर्हणः ॥१०७॥
 सौमित्रिवामपार्श्वेऽथ सपाणिः सस्थितोऽभवत् वामपार्श्वे भगवत्स्य शुद्धकः सस्थितोऽभवत् ॥१०८॥
 शत्रुघ्नवामपार्श्वेऽथ सस्थितो मकरध्वजः । हनुमद्दामपार्श्वे च गरुडः सस्थितोऽभवत् ॥१०९॥
 सुग्रीवादिचतुर्णां ते वामपार्श्वेषु सस्थिताः । श्रीचित्ररथविजयसुमन्त्रदारुकास्तथा ॥११०॥
 नानाराजोपकरणधृतहस्ता महौजमः । यधुर्दवासुराः सर्वे यक्षगंधर्वकिन्नराः ॥१११॥
 ओषध्यः पर्वता वृक्षाः सागराश्चाथ निम्नगाः । मालाश्च कांचनी वायुर्ददौ वामवचोदितः ॥११२॥

राज्यका पालन स्वयं करें। यह सुन और 'तथास्तु' कहकर रामने भरतको अपने पास बैठा लिया ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ तदनन्तर राम और सीता दिव्य वस्त्र धारण करके स्वयं पर सवार होकर जय-जयकार तथा बाज गानेके साथ चारांगनाओका नाच-गान देखित मुनने हुए अगती प्रिय अधाध्यापुरीको चले। नगरमें प्रवेश करनेपर नगरकी नागियोने छतो तथा बांटों पर चढ़कर अनेक प्रकारके पुष्पोंको वर्षा की ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ वे रास्तेमें विविध पूजाकी सामग्रियोंसे रामकी आरती उतारने लगी। रामने विमानसे उतरकर सीताको महलमें भेज दिया और पुष्पक विमानसे कहा कि 'तुम कुंवरके पास जाकर सदा उन्हीकी सेवा करा।' रामका आज्ञाको स्वीकार करके पुष्पक विमान कुंवरके पास चला गया ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ अब राम तब कपियोंको साथ लेकर सभाभवनमें गये। पश्चात् कपियोंको निवास करनेके लिए उत्तम उत्तम मकान दिये गये ॥ १२० ॥ तदनन्तर गुह वसिष्ठने शुभ मुहूर्तमें बड़े धूम-धामसे रामका राज्याभिषेक ठाना ॥ १२१ ॥ हनुमान् आदिको भंजकर चारों सन्तुदोका शुभ जल मंगवाया। देश-देशान्तरके राज-महाराजे बुलाये गये। नाना प्रकारके बाजे बजे। लक्ष्मणन पीछे खड़े होकर रामके ऊपर छत्र लगाया। रामकी पादुका हाथमें लेकर हनुमान् उनके सामने खड़े हो गये। बायीं ओर सुन्दर पत्ता लेकर शत्रुघ्न खड़े हुए और रामकी दाहिनी ओर चमर लेकर भरत खड़े हुए गये ॥ १२२-१२४ ॥ रामके नेत्रसदृश प्रिय तथा ओजस्वी सुग्रीव आदि मित्र वायव्य आदि चार कोनामें विराजमान हो गये ॥ १२५ ॥ सुग्रीवने जलपात्र, विभीषणन सुन्दर दर्पण, बालिनन्दन अंगदने पान्दान तथा वेगवान् जांबवान्ने अपने हाथमें श्रीरामके वस्त्रोंकी पिटारी ले ली। तब श्रीराम आकर गर्हा-सकिम्पा लगे हुए बहुमन्थ सिंहासनपर विराजमान हो गये। लक्ष्मणके वामभागमें सीता, भरतके दामभागमें निषण्णराज, शत्रुघ्नके वामभागमें मकरध्वज तथा हनुमान्के वामभागमें गरुड खड़े हुए। सुग्रीव आदि चारों मित्रोंके बायें चित्ररथ, विजय, सुमन्त्र तथा दारुक खड़े हुए ॥ १२६-१२७ ॥ बड़े-बड़े तेजस्वी राजे हाथोंमें अनेक प्रकारकी भेंटें लेकर आये। सब देवता, असुर, यक्ष गन्धर्व तथा किन्नरगण वहाँ आकर उपस्थित हो

सर्वरत्नममायुक्तं
प्रजगुर्देवगंधर्वा

मणिकांचनभूषितम् । ददौ हारं नरेन्द्राय स्वयं शक्रस्तु मक्तिनः ॥११३॥
ननृतुरारयोषितः । देवदुन्दुमयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात स्वात् ॥११४॥
ततोऽकम्बं स्तुतिमहं भरतेनाभिपूजितः ॥११५॥

श्रीशिव उवाच

सुग्रीवमित्र परमं पवित्रं सीताकलत्रं नयमेवगात्रम् ।
कारुण्यपात्रं शतपत्रनेत्र श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११६॥
ससारसागरं निगमप्रचारं धर्मावतारं हनभूमिभारम् ।
सदाऽधिकारं सुखसिंधुमारं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११७॥
लक्ष्मीविलासं जगतां निवासं लकाविनाशं भुवनप्रकाशम् ।
भूदेववासं शरदिन्दुहासं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११८॥
मंदारमालं वचने रमालं गुणविशालं हवमसतालम् ।
कव्यादकालं सुरलोकपालं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११९॥
वेदांतगानं सकलैः समानं हनारिमानं त्रिदशप्रधानम् ।
गजेन्द्रयानं विगतावमानं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२०॥
इयामाभिरामं नयनाभिरामं गुणाभिरामं वचनाभिरामम् ।
विश्वप्रणामं कृतभक्तकामं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२१॥
लीलाशरीरं रणरङ्गधारं विश्वंकमारं रघुवंशहारम् ।
गंभीरनादं जितमयवादं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२२॥
खले कुतानं स्वजने विनीतं मामोपमीतं मनसा प्रतीतम् ।

गये । औषधि, पर्वत, वृक्ष, समुद्र तथा नदियाँ भी आ पहुँचा । इन्द्रक द्वारा भत्र हुए वायुने आकर रामको एक सुन्दर कंचनकी माला पहनायी ॥ १११ ॥ ११२ ॥ पञ्चान स्वयं इन्द्रन भ आकर सब रत्नोंसे युक्त तथा सोनेसे सुशोभित हार राजा रामको समर्पण किया । ११३ ॥ देवता और गन्धर्व उनके गुण गन लगे । सब अप्सराये और कारागनाये नाचन लगे । देवताओंके नगाड़े बजने लगे और आकाशमें फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ११४ ॥ बादमें भरतके द्वारा पूजित होकर मैं (शिव) रामकी स्तुति करने लगा ॥ ११५ ॥ श्रीशिवजी बोले— सुग्रीवके मित्र, परमपावन, सीताके पति मेघके समान इयाम शरामवाले कृष्णके मिधु और कमलके सृष्टण नेत्रोंवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ । ११६ ॥ संसारसागरसे भनोंकी पार करनेवाले, वेदोंका प्रचार करनेवाले, धर्मके साक्षात् अवतार, भूभारको हटान करनेवाले, अधिकृत स्वरूपवाले और सुखके सर्वोत्तम सागर श्रीरामचन्द्रको मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥ ११७ ॥ लक्ष्मीके साथ विलास करनेवाले, जगत्के निवासस्थान, लङ्काका विनाश करनेवाले, भूदनोंको प्रकाशित करनेवाले, ब्राह्मणोंको शरण देनेवाले और शारदीय चन्द्रमाके समान शुभ हास्य करनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमस्कार करता हूँ ॥ ११८ ॥ मन्दारकी माला धारण करनेवाले, रसील वचन बोलनेवाले, गुणोंमें महान्, सात साल वृक्षोंका भेदन करनेवाले, राक्षसोंके काल तथा देवताओंके पालक रामचन्द्रको मैं सदा नमस्कार करता हूँ । वेदान्तके मेघ, सबके साथ समान बर्ताव करनेवाले, शत्रुके मानका मर्दन करनेवाले, गजेन्द्रकी सवारी करनेवाले तथा अन्तरहित श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमस्कार करता हूँ ॥ ११९ ॥ १२० ॥ इयामरूपमें मनोहर नयनोंसे मनोहर, गुणोंसे मनोहर, हृदयप्राही वचन बोलनेवाले, विश्ववन्दनीय और भक्तजनोंकी कामनाओंकी पूरी करनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ । १२१ ॥ ल लामावके लिए शरीर धारण करनेवाले, रणस्थलीमें धीर, विश्वभरके एकमात्र सारभूत, रघुवंशमें श्रेष्ठ, गंभीर वाणी बोलनेवाले और समस्त बादोंको जीतनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं प्रतिक्षण प्रणाम करता हूँ ॥ १२२ ॥ दुष्टजनोंके लिए कठोर हृदयवाले, अपने भक्तोंके प्रति

रामेय गीतं वचनादतीतं श्रीरामचन्द्रं नमनं नमामि ॥१२३॥

श्रीरामचन्द्रस्य वगाष्टकं त्वां मयेऽग्न देवि मनोहरं च ।

पठन्ति भृशवन्ति गृणन्ति भक्त्या ते स्वीयकामान्प्रलभन्ति नित्यम् ॥१२४॥

इति स्तुत्वा रामचन्द्रं गभाशं पश्चिन्स्त्वहम् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र राजा दशरथो महान् ॥१२५॥

दृष्ट्वा रामं समीपे च विमानस्थोऽर्कमग्निभः । स्तुत्वा रामं परात्मानं राज्यस्थं बंधुवेषितम् ॥१२६॥

उवाच रामं संतुष्टः सुगनीकविराजितः ।

दशरथ उवाच

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं धन्यो तौ पितरौ मम ॥१२७॥

धन्यो देशः कुलं धन्यं यस्त्वं राज्याभिषेचिनम् । पश्याम्यद्य महाबाहो धन्या मा जननी तव ॥१२८॥

या कौसल्या ममुन्माह नेत्राभ्यां तेष्य पश्यति । हृन्पुक्तवन्तं राजानं नमाम भ गधूतमः ॥१२९॥

कौसल्याया राजदाराः सर्वे ते परिवामिनः । लक्ष्मणो भरतश्चैव शत्रुघ्नस्तेऽपि मन्त्रिणः ॥१३०॥

नमस्कारान्नृपं चक्रुर्मिमानस्थ मुदान्विताः । तान् राजाऽपि पृथक् पृष्ट्वा सर्वे देवगर्णयुतः ॥१३१॥

पूजितो रामचन्द्रेण मया सह न्यधर्मन । ययुः स्व स्व पदं सर्वे मया राज्ञा सुरास्तदा ॥१३२॥

रामेऽभिषिक्ते गजेन्द्र सर्वलोकमुवाचहे । वसुधा मस्यसंपन्ना फलवन्तो महीरुहाः ॥१३३॥

गधर्हीनानि पुष्पाणि गधयन्ति चकाशिरे । महस्रं शतमश्वानां घेनूनां रघुनदनः ॥१३४॥

ददौ शतं वृषाणां च द्विजेभ्यो वसु कोटिशः । सूर्यकोटिसमप्रख्यां सर्वरत्नमयीं स्रजम् ॥१३५॥

सुग्रीवाय ददौ प्रीत्या राघवो हर्षसयुतः । अवतमं ददौ अष्ट राक्षसेन्द्राय राघवः ॥१३६॥

अंगदाय ददौ दिव्ये राघवो बाहुभूषणे । चद्रकोटिप्रतीकाशं मणिरत्नविभूषितम् ॥१३७॥

साताये प्रददौ हारं प्रीत्या रघुकुलोत्तमः । मा तं हारं ददौ वायुपुत्राय सा मनास्विनी ॥१३८॥

विनम्रभाववाले, सामवेद जिनका गुण गान करता है मनमात्रक विषय, प्रेमस गान करन योग्य तथा वचनोंसे प्रहृष्ट करन लायक श्रीरामचन्द्रकी मैं सवदा नमस्कार करना हूँ ॥ १२३ ॥ हे देवि । तुम्हारे प्रति कहें हुए श्रीरामके इस सुन्दर अष्टककी जो मनुष्य भक्तिसे पड़ेगा अथवा मुन-मुनायेगा, वह अपनी अभिरूषित कामनाओंको नित्य प्राप्त करेगा ॥ १२४ ॥ रामचन्द्रकी इतनी स्तुति करके ज्यों ही मैं उस सभामें बैठा, यों ही सूर्य समान नेत्रस्त्री राजा दशरथ विमानपर सवार होकर मुग्धमुदायके साथ वहाँ आकर सत्तक सहित बन्धुओंसे वक्षित तथा राजाहोपर स्थित पुत्रस्वरूप राम परमात्माको देखकर स्तुति करने लगे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ देवताओंके समूहसे परिवेष्टित राजा दशरथ प्रमत्त होकर बाल । उन्होंने कहा—मैं धन्य हूँ, मैं कृतकृत्य हूँ, मेरे माता-पिता धन्य हैं ॥ १२७ ॥ मेरा देश तथा कुल भी धन्य है कि जो मैं आज तुम्हें राजपदीपर अभिषिद्धित देख रहा हूँ । हे महाबाहो । तुम्हारी माता कौसल्या भी धन्य है, जो तुम्हें उत्माहपूर्वक अपने नेत्रोंसे देख रहा है । तदनन्तर रामने उन राजा दशरथको प्रणाम किया ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ तब कौमन्ग आदि राजाकी स्त्रियोंने, पुरवासियोंने, भरत शत्रुघ्नने तथा मन्त्रियोंने प्रसुद्धित होकर विमानय स्थित राजा दशरथको प्रणाम किया । राजाने भी एक-एक करके उन सबसे कुशल पूछा । फिर देवताओं तथा पुत्रों साथ से और रामचन्द्रसे पूजित होकर उन्होंने वहाँसे प्रस्थान कर दिया । भरत तथा राजाके सहित वे सब देवता अपने अपने घास सिधारे ॥ १३०-१३२ ॥ सब लागोंका मुख देनेवाले राजाओंमें श्रेष्ठ राजा रामका अभिषेक हो जानेपर पृथ्वा धन-धान्यपूर्ण हो गयी और नही फलनेवाले भी वृक्ष फलने लगे ॥ १३३ ॥ सुगन्धरहित पुष्प भी सुगन्धित होकर सुसोभित हान लगे । रघुनन्दन रामने सैकड़ों बैल, हजारों घोड़े तथा करोड़ों रत्न सज्जणोंका दान दिये । उन रामने प्रमत्त होकर सूर्यके समान चमकनेवाली तथा अनेक प्रकारके रत्नोंसे निर्मित एक माला प्रीतिपूर्वक सुग्रीवकी दी और एक सिरपेच राक्षसेन्द्र विभीषणको दिया ॥ १३४-१३६ ॥ उन्होंने अंगदको दिव्य बाहुबन्ध दिये । रघुकुलमणि रामने सीताको करोड़ों चन्द्रमाके समान चमकाले मणियों तथा

नेन हारेण शुशुभे भारुतिगौरवेण च । तदा दृष्ट्वा हनुमन्त रामो वचनमब्रवीत् ॥१३९॥
 भारुते न्यां प्रसन्नोऽस्मि वर वर्य कांश्चितम् । हनुमानपि तं प्राह नत्वा रामं प्रहृष्टधीः ॥१४०॥
 त्वन्नाम स्मरतो राम मनस्तुभ्यनि नो मम । अतस्त्वन्नाम मनन स्मरन्स्थास्यामि भूतले ॥१४१॥
 यावन्स्थास्यति ते नाम लोके तावन्कलेश्वरम् । मम तिष्ठतु राजेंद्र वरोऽयं मेऽभिकोशितः ॥१४२॥
 यत्र यत्र कथा लोके प्रचरिष्यति ते शुभा । तत्र तत्र गतिर्मेऽस्तु श्रवणाथ सदैव हि ॥१४३॥
 देवालयान्नदीतीरार्वाद्यापि जलाशयान् । विनाऽन्यत्र स्थले तेस्तु कथा पङ्घटिकोर्ध्वतः ॥१४४॥
 रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम् । कल्पांते मम सायुज्य प्राप्स्यसे नात्र संशयः ॥१४५॥
 तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि भारुते । स्थितं स्वामनुयास्यंति भोगाः सर्वे ममाज्ञया ॥१४६॥
 ग्रामाग्रामपत्तनेषु व्रजखेटकमञ्जसु । वनदुर्गपर्वतेषु सर्वदेवालयेषु च ॥१४७॥
 नदीषु क्षेत्रतीर्थेषु जलाशयपुरेषु च । वाटिकोपवनाश्वत्थवटवृन्दावनादिषु ॥१४८॥
 त्वन्मूर्तिं पूजयिष्यंति मायया विघ्नशान्तये । भूतप्रेतपिशाचाद्या नश्यति स्मरणाच्च ॥१४९॥
 ये चान्ये वानराद्याश्च ह्ययोध्यां सगुणागताः । अमूल्याभरणैस्त्रैः पूजिता राघवेण ते ॥१५०॥

सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे वानराः सविर्भाषणाः ।

मकरध्वजसंपातिगुहकाः पार्थिवादयः । यथाहं पूजितास्तेन रामेण वमनादिभिः ॥१५१॥
 ततः सर्वेभोजनार्थं राघवः सस्थितोऽभवत् । रामेण प्राणाहुतयो गृहीताश्चेति भारुतिः ॥१५२॥
 निरीक्ष्योद्गीय वेगेन रामाग्रं भोजनस्य च । त्रिपदायां स्थित पात्रं हंसं पक्वान्नपूरितम् ॥१५३॥
 निनाय वामहस्तेन धृत्या च विहसन्मुदा । स्वयं भुक्त्वा रामशेषं प्राक्षिपद्धानरान्नाथ ॥१५४॥

रत्नोत्से विभूषित हार सप्रेम समर्पण किया । मनस्विनी सीतान भी रामका दिया हुआ वह हार वायुगुप्त हनुमानको दे दिया ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ उस हारके गौरवसे हनुमान् बड़े ही मुग्धाभित हान लग । यह देखकर रामने हनुमानसे कहा - ॥ १३९ ॥ हे भारुते ! मे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ जो चाहो सो वर माँगो । तब प्रसन्न हनुमान् रामको नमस्कार करके कहा - ॥ १४० ॥ हे प्रभो ! आपका नामस्मरणसे मेरा मन अब भी तृप्त नहीं हुआ है । अतएव जबतक आपका नाम भूलतम विद्यामान रहे तबतक मैं अ. १४ नामका स्मरण करता हुआ इस लोकमें जाँचित रहूँ । हे राजेंद्र ! यहाँ मेरा अभिलषित वर आप मुझ द दें ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ लोकमें जहाँ कहीं भी आपकी पवित्र कथा होती है, वहाँ वह कथा सुनतक नित्य जनेमें मरी अप्रतिहत गति है ॥ १४३ ॥ देवालय, नदीतीर, तीर्थस्थान तथा बावली आदि जलाशयको छोड़कर अन्य स्थानोंमें छः घड़ोंके बाद नित्य आपकी कथा हुआ करे ॥ १४४ ॥ रामने कहा - अच्छा, तुम मुक्त होकर सुखसे भ्रमण्डलपर निवास करो । कल्पान्तक समय तुम मेरा सायुज्य मुक्तिकी प्राप्ति होओगे, इसमें संदह नहीं है ॥ १४५ ॥ इसके पश्चात् जानकीजी प्रसन्न होकर बाली हैं माँहत । तुम जहाँ कहो रहोगे, वहाँपर मेरे आशोर्वादिसे तुमको सब भाग्य पदार्थ प्राप्त हो जाया करेगा ॥ १४६ ॥ ग्राम, वाग, नगर, गोशाला, रास्ता, छोटा गाँव, घर, वन, जिला, पर्वत, सब देवालय, नदी, तीर्थक्षेत्र, जलाशय, पुर, वाटिका, उपवन, पीपल, वट तथा वृन्दावन आदि स्थानोंमें मनुष्य अपने विघ्नाको शान्त करानके लिये तुम्हारी मूर्तिकी पूजा करेंगे । तुम्हारा नाम स्मरण करनेसे ही भूत-प्रेत तथा पिशाच आदि दूर भाग जावेगे ॥ १४७-१४९ ॥ इसके बाद रामने अरोक्ष्याम जो अन्य वानर आये थे, उन सबका भी बहुमूल्य भूषण तथा वस्त्रोत्से सत्कार किया । १५० ॥ श्रीरामने दस्त्रादिसे सुग्रीव आदि वानरों विभीषण, मकरध्वज, संपानी तथा निषादराज आदि राजाओंका भी यथायोग्य पूजा की ॥ १५१ ॥ उसके पश्चात् सबको साथ लेकर रामचन्द्रजी भोजन करने बैठे । रामके पाँच ग्राम ग्रहण करके तृप्त हो जानेके साथ ही हनुमान् शट उठकर रामके पास आ पहुँच और उनके सामने पाँउपर खड़ा हुआ पक्वान्नोंसे परिपूर्ण सुवर्णका थाल बाएँ हाथसे उठाकर आकाशमें चले गये और रामके उस भोजनशेयका स्वयं आनन्दसे

तदा विभीषणाद्याश्च स्वीयपात्राणि वेगतः । विमृज्य मारुतिं स्तुत्या त्वया मम्यकहनं न्विति ॥१५५॥
 तन्निशं राघवोच्छिष्टं कुमुदुः सभ्रमान्विताः । महान् कोलाहलश्चामोच्छिष्टार्थमादगतः ॥१५६॥
 मीनारामौ तन्निशं मृदा जहमनुमदा । एवं नानाकानुकानि कुर्वन्तौ राघवांतिके ॥१५७॥
 सुग्रीवाद्याः सुखं तस्मिन्तोषयन्तः क्रियद्दिनम् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पुष्पकं च गमःपुनः ॥१५८॥
 प्राह देव कुबेरेण प्रेषितं न्यामह पुनः । मामाह यत्कुबेरस्तच्छृणुष्व त्वं रघुनम ॥१५९॥
 जितस्त्वं रावणेनादौ पश्चाद्रामेण निजितः । अतस्त्वं राघव नित्यं बहूपावदमेद्भुवि ॥१६०॥
 यदा गच्छेद्रघुश्रेष्ठो वैकुण्ठं याहि मां तदा । तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह सुग्रीवादीन्यथास्थले ॥१६१॥
 स्थाप्य शीघ्रमयोध्यायां राजद्वाराद्दहिर्वम । तथेति रामवचनाद्भानराद्यान्यथास्थले ॥१६२॥
 स्थाप्य शीघ्रमयोध्यायां राजद्वाराद्दहिः स्थितम् । चकार राज्यं धर्मेण लङ्कायां म विभीषणः ॥१६३॥
 शशाम राज्यं पातालं धर्मेण मकरध्वजः । चकार तार्क्ष्यः मयाति यौवराज्यपदे निजे ॥१६४॥
 शशाम राज्यं कपिभिः किष्किन्ध्यायां कपीश्वरः । मृङ्गवेरपुरे राज्यं शुङ्कश्चाकरोन्मुदा ॥१६५॥
 नन्वा रामं वायुपुत्रो ययौ तप्तुं हिमालयम् । सर्वे विभीषणाद्याश्च पंचमे मममेऽहनि ॥१६६॥
 दर्शनार्थं राघवस्य साकेतं प्रययुः सदा । पञ्च सप्त दिनान्यत्र स्थित्वा श्रीराघवांतिकम् ॥१६७॥
 यातायातं सदा चक्रुः स्वस्वराज्याद्रघुत्तमम् । रामोऽपि राज्यमखिलं शशामाखिलवन्मलः ॥१६८॥
 अनिच्छतं हि सौमित्रि यौवराज्येऽभ्यषेचयन् । लक्ष्मणः परया भक्त्या रामसेवापरोऽभवत् ॥१६९॥
 विश्वामित्राध्वरे पूर्वं रणयागस्य पूर्णता ।

न कृता या राघवेण सा कृता स्वपदे तदा । रणयागः मविस्तागद्वर्ण्यते शृणु पार्वति ॥१७०॥

स्थाने तथा नीचे वानरोके आगे फेंकने लगे ॥ १५२-१५४ ॥ यह देखकर विभीषण आदि भक्त भी शीघ्र अपने-अपने पालकों छोड़कर हनुमान्की प्रशंसा करके कहने लगे कि तुमने बहुत उत्तम काम किया ॥ १५५ ॥ यह कहकर वे स्वयं भी बड़े आदरसे मारुतिका फेंका हुआ रामका उच्छिष्ट प्रगाढ़ पाने लगे । उस समय रामकी जूतनके लिये बड़ा भारी कोलाहल मच गया ॥ १५६ ॥ राम और सीताने यह देखा तो प्रमत्त होकर हँसने लगे । इस प्रकार विविध क्रीड़ायें करके सीता और रामको प्रमत्त करने हुए सुग्रीव आदि मित्र कुछ दिन वहीं रहे । इतनेमें पुष्पक विमान पुनः वहाँ आया ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ वह रामसे कहने लगा—हे देव । कुबेरने मुझको आपके पास वापस भेंट दिया है । हे रघुनन्दन ! कुबेरने जो कुछ मुझसे कहा है, वह सुनिये ॥ १५९ ॥ उन्होंने कहा है कि पहले तो रावणने तुमको मुझसे जीता था और बादमें रामने तुमको रावणसे जीता है । इस कारण तुम आकर तबतक राम ही को सवारी देनेका काम करो, जबतक कि भूमण्डलमें रहें ॥ १६० ॥ जब रघुश्रेष्ठ राम वैकुण्ठ घाम चले जायें, तब तुम मेरे पास चले आना । यह सुनकर रामने विमानको आज्ञा दी कि सुग्रीव आदि मेरे मित्रोंको उनके स्थानपर पहुँचाकर शीघ्र ही अवाध्या लौट आओ और राजमहलके दरवाजेक बाहर खड़े रहो । तदनन्तर विभीषण जाकर लङ्कामें धर्मपूर्वक राज्य करने लगे ॥ १६१-१६३ ॥ मकरध्वज पालालमें धर्मपूर्वक राज्य-शासन करने लगे । गरुडने पुष्कराजपदपर त्रिपातीका अभिषेक किया ॥ १६४ ॥ किष्किन्ध्यामें कपीश्वर सुग्रीव राज्य करने लगे । मृङ्गवेरपुरमें निषादराज आनन्दसे राज्य करने लगा ॥ १६५ ॥ वायुपुत्र हनुमान् रामको नमस्कार करके तप करनेको हिमालय चले गये । फिर भी विभीषण-सुग्रीव आदि मित्र पंचवें अथवा सातवें दिन अयोध्यामें श्रीरामका दर्शन करनेके लिए आया करते थे और वे श्रीरामके पास पंच-सात दिन निवास करके चले जाते थे । इस प्रकार उन लोगोंका अपने-अपने राज्यसे श्रीरामके पास आना जाना लगा रहता था । सभी लोगोंके प्रिय राम भी सम्पूर्ण राज्यका पालन करने लगे ॥ १६६-१६८ ॥ न चाहतेपर भी रामने लक्ष्मणका युवराजके पदपर अभिषेक कर दिया और वे भी रामको सेवामें तत्पर हो गये ॥ १६९ ॥ रामने पूर्व समयमें विश्वामित्रके यज्ञके समय जिस युद्धरूपी यज्ञकी समाप्ति नहीं की थी, उस रणयज्ञकी इस समय अपने राज्यपदपर स्थित हो जानेपर पूर्णाहुति की । हे गर्वती !

रणांगणं यज्ञकुण्डं तत्र वै अग्न्यायनम् । तच्च वेदविधानं हि ब्रह्ममन्त्रं प्रकीर्तितम् ॥१७१॥
 कर्मणश्च घटाटोपो ज्ञेयः शस्त्राग्न्यम्बुजः । संमार्जनं स्रक्स्त्रुवयोर्ज्ञेयं पाषाणघर्षणम् ॥१७२॥
 शस्त्राणां मलशोधार्थं क्रियते यद्रणांगणे । भूमौ शरणां विस्तारः परिस्तरणमुत्तमम् ॥१७३॥
 परिममूहनं धैर्यं वह्निकालानलो महान् । सुद्वेगं बाणरूपेण मान्वाहूनिमसमर्पणम् ॥१७४॥
 रक्तधारा वसोधारा हाहाकारो भयानकः । स ॐकारवपटकारघोपो ज्ञेयो रणाध्वरे ॥१७५॥
 अग्नेज्वाला शस्त्रनेत्रोभूतः स्वेदस्त्रुवो रणे । ज्वालानिचयशान्त्यर्थं पृथराज्यस्य सेचनम् ॥१७६॥
 यत्तदत्र तु वीराणामस्त्रपोचनमुत्तमम् । ज्ञानेन सह जीवस्य बलिदीपवलिः स्मृतः ॥१७७॥
 ये देहलोभिनो जीवा बलिदीपहराः स्मृताः । रामहन्तान्मूर्तिन्यक्त्वा ये कृर्वन्ति पलायनम् ॥१७८॥
 देहबन्धाश्च मुक्तास्ते बलिभक्षणदीपनः । पूर्णाद्वृत्तिः शिरोभिर्हि ज्ञेयास्तत्र प्रदक्षिणाः ॥१७९॥
 उन्चाटनं हि सव्येन वीराणां जयहेतवे । नैत्र पदप्रदानं च ज्ञेया मा दक्षिणाध्वरे ॥१८०॥
 मूर्ध्नि पुष्पवृष्टिस्तज्ज्ञेयं विप्राभिषेचनम् । जयमम्भरादनं युद्धे श्रेयःसंपादनं हि तत् ॥१८१॥
 चराचरणामानन्दो ज्ञेयः स निजगोत्रिणाम् । भृतानां तपणं विप्रभोजनं सम्प्रकीर्तितम् ॥१८२॥
 एवं सुबाहुना युद्धे राघवस्य रणाध्वरः । तथा गाधिजयज्ञेयिर्दो तौ ज्ञेयौ सहैव हि ॥१८३॥
 कृतध्वरसमाप्तिस्तु विश्वामित्रेण वै पुरा । विमर्जितो न रामेण दृष्ट्वाऽष्टमं रणाध्वरे ॥१८४॥
 कालानलं पुनस्तस्य तृप्त्यर्थं वाऽकरोन्मतिम् । कृत्वा भूमेर्महत्पात्रं विराधरुधिरं हि ॥१८५॥
 पात्रस्य प्रोक्षणं कृत्वा विश्राहुन्यर्थमादरात् । रामः शूर्पणखायाश्च घ्राणं कर्णौ विभेदयत् ॥१८६॥
 प्राणाहूतिभ्यो रामेण त्रिशिराः खण्डयणी । मारीचश्च कवन्धश्च पंच ते निहताः क्षणात् ॥१८७॥

उस रणरूपी यज्ञका में विस्तारमें वर्णन करता है, सुनो ॥ १७० ॥ उस रणयागमें युद्ध कुण्ड था । उसमें न भागना ही वेदविहित ब्रह्ममन्त्र था ॥ १७१ ॥ शस्त्रोकी ग्न्यनवार ही वसंकी सामग्री थी । रणांगणमें शस्त्रोका में लुप्तानेके लिये उनपर जो पत्थर धिसे जान थे, वही स्त्रक् स्त्रुवका मर्जना था । भूमिमें बाणोंका फेंका-फेंकाकर रखना ही उत्तम कुम आदिका आम्बरण था । चोरना ही उनका परिममूहन (बटोरना) था । महान् कालरूपी अग्नि ही यज्ञकुण्डकी आग थी । उसमें बाणरूपा सुवासि मानकी आहुतियों समर्पण की जाती थी ॥ १७२-१७४ ॥ कर्मणकी घारा ही वसुधारा थी । भयानक हाहाकार ही ओंकार तथा वधन्कारका नाद था ॥ १७५ ॥ शस्त्रोकी चमक ही आगकी लपटें थी । पसंनका बहना ही घुमना था । वीर पुरुषोंका उत्तम अम्बमोचन ही अधिक ज्वालार्क प्रार्तिवा पृथराज्य सीचनारूपी उपाय था । ज तत्पूर्वक जीवावा शरार-व्याग ही दीपदान था ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ जो शरीरमें ममता रखनेवाले थे, वे ही पूज की सामग्री तथा दीपकी ले भागनेवाले माने जाते थे । जो रामके हाथसे न मरकर बहाने भाग जाते थे वे बलिभक्षण करनेके दावसे देहरूपी बन्धनमें ही पड़े रह जाते थे-मृत नहीं होते थे । उस युद्धरूपी यज्ञमें शिरोका बट कटकर गिरना ही नारियलके द्वारा दी जानेवाली पूर्णाद्वृत्ति थी । विजयलाभके लिये अपनी दाहिनी ओरसे वीरोंको दूर करना ही प्रदक्षिणा थी । उस यज्ञमें मृत पुरुषोंका विजयपद (ब्रह्मपदका प्राप्ति) ही दक्षिणा थी ॥ १८०-१८० ॥ देवताओंके द्वारा जो पुष्पवृष्टि की जाती थी, वह बाह्याणोंका अभिषेचन था । युद्धमें विजय प्राप्त करना ही यज्ञका फल था ॥ १८१ ॥ चर-अचरका आनन्दलाभ ही अपने गात्रवालोंका आनन्द समझा जाता था । पशु-पक्षी आदि जीवोंकी तृप्ति ही विप्रभोजन कहा जाता था ॥ १८२ ॥ इस प्रकार रामका जो सुबाहुमें युद्धरूप यज्ञ राक्षसोंके साथ आरम्भ हुआ, वह और गाधिपुत्र विश्वामित्रका यज्ञ दोनों साथ ही आरम्भ हुए ॥ १८३ ॥ उनमेंसे विश्वामित्रजीने तो अपना यज्ञ समाप्त कर दिया था परन्तु रामने अपने यज्ञमें कालानलको अतृप्त देखकर अपना युद्धयज्ञ समाप्त नहीं किया था । अतएव उसको नृत्त करनेका इच्छा करके रामने विराधके रुधिर से पृथ्वीरूपी पात्रका प्रोक्षण (शुद्धि) करके शूर्पणखाके नाक-कान काटकर प्रेममें चित्र-चित्र आहुतियों की ॥ १८४-१८६ ॥ रामने त्रिशिरा, सर, दूषण, मारीच तथा कवन्धको क्षणभरमें मारकर पंचप्राणा-

शिखाबंधविमोक्षार्थं शबरी भवबंधनात् । कृता मुक्ता तु रामेण जलस्पर्शनहेतवे ॥१८८॥
 नेत्रयोर्निहतो बाली दत्तं तदुधिरं तदा । काथिलंकापुरा दग्धा कुम्भकर्णस्तथौदनः ॥१८९॥
 पक्वान्निर्मिद्वजिभू ज्ञेयः शाकार्थं राक्षसा हताः । वरान्नं सारणो ज्ञेयः प्रहस्तो वटकः स्मृतः ॥१९०॥
 निकुम्भः पर्पटो ज्ञेयः कुम्भस्तु लवणं स्मृतः । पायसार्थं कालनेमिस्त्वतिकायः स शर्करः ॥१९१॥
 क्षीरमैरावणो ज्ञेयो घृतं मैरावणः स्मृतः । दध्यौदनः समामौ तु आहवे च स रावणः ॥१९२॥
 हत्वा निवेदितः पात्रे तस्य कालानलस्य च । उच्छिष्टवलिमंत्यागः केशवकीकसादिनाम् ॥१९३॥
 संत्यागोऽत्र रणे ज्ञेयस्तदा तृप्तो बभूव सः । ततो रणायुरस्यात्र राघवेण विसर्जनम् ॥१९४॥
 अयोध्यायां प्रवेशो हि कृतस्तत्ते वदाम्यहम् । अध्वरावभृथस्थानं ज्ञेयं राज्याभिषेचनम् ॥१९५॥
 मंगलानि समस्तानि यज्ञांगविहितानि हि । ज्ञातव्यानीति रामेण रणयागो विसर्जितः ॥१९६॥
 एवं प्रोक्तो मया देवि रणयागः सविस्तरः । रामोऽथ परमात्मापि कार्यभ्यक्षोऽतिनिर्मलः ॥१९७॥
 कर्तृत्वादिविहीनोऽपि निर्विकारोऽपि सर्वदा । स्वानन्देनापि संतुष्टो लोकानामुपदेशकृत् ॥१९८॥
 चकार विविधान् धर्मान् गार्हस्थ्यमनुलब्धं च । न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ॥१९९॥
 न व्याधिजे भयं चामीद्रामे राज्यं प्रज्ञासति । औरसानिव रामोऽपि जुगोप पितृवत् प्रजाः ॥२००॥
 सीतया बन्धुभिः सार्द्धं साकेते सुखमाप सः । इदं युद्धचरित्रं ते प्रोक्तं देवि मया तव ॥२०१॥

इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

युद्धचरिते रामराज्याभिषेकवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥



वृत्तिमें दीं ॥ १८७ ॥ शिखाकी गाँठ खोलनेकी जगह रामने शबरीको संसारबन्धनसे छुड़ाकर मुक्त कर दिया । रामने बालीको मारकर उसके रुधिररूपी जलसे नेत्रोंमें स्पर्श किया । लंकाको जलाकर कालानलके लिये ढाल तथा कढ़ी बनायी । अर्थात् लंका ढाल-कढ़ीके स्थानमें गिनी गयी । कुम्भकर्णरूपी भात, मेघनादरूपी पक्वान और सब राक्षसोंका शाक बना । अन्य उत्तम पदार्थोंके स्थानपर सारण मारा गया । प्रहस्त बड़ा, निकुम्भ पाण्ड, कुम्भ नमक, कालनेमि खीर, अतिकाय शक्कर, ऐरावणरूपी दूधमें मैरावणरूपी घी तथा दधिभक्तके स्थानपर रावणको मारकर रामने कालानलके थालमें परोस दिया । कालानलने इन सबका भोजन करके केश, चर्म तथा अस्थियोंका जूठन रणमें छोड़ दिया । तब वह तृप्त हुआ । उसके पश्चात् रामका अयोध्यामें प्रवेश करना ही रणरूपी यज्ञको समाप्ति अर्थात् रणयज्ञका विसर्जन हुआ । वहाँ रामका राज्याभिषेक ही यज्ञके अन्तका अवभृथस्थान था ॥ १८८-१९५ ॥ अन्यान्य मांगलिक कार्य उस यज्ञके अंग थे । इस प्रकार रामने सांगोपांग रणयज्ञ पूरा किया ॥ १९६ ॥ हे देवि ! मैंने तुमको उपर्युक्त प्रकारसे समस्त रणयाग कह सुनाया । तदनंतर साक्षात् परमात्मा, कार्यसमुदायके अधिष्ठाता, कर्तृत्वादि अभिमानसे रहित, सदा निर्विकार स्वरूप, निज आनन्दसे ही संतुष्ट तथा सब प्राणियोंको सदुपदेश देनेवाले गम भी गृहस्थाधर्मका पालन करते हुए अनेक धर्मोंका आचरण करने लगे । उनके राज्यकालमें कोई भी स्त्री विधवा होकर रोती नहीं थी । किसीको सौंप तथा व्याघ्र आदिका भय नहीं था और न किसीको रोगका ही भय था । रामने भी समस्त प्रजाको, पिता जिस प्रकार अपने सगे लड़कोंका पालन करता है, उसी प्रकार पालन किया । हे देवि ! यह मैंने तुमको रामका युद्धचरित्र कह सुनाया ॥ १९७-२०१ ॥ इति श्रीशत-कोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे युद्धचरिते रामराज्याभिषेकवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः

(अगस्त्य-रामसंवाद)

श्रीशिव उवाच

एकदा राघवं द्रष्टुं मुनिभिः कुम्भसंभवः । ययौ रामेण ममानमानितः स उपाविशत् ॥ १ ॥
 उपविष्टाः प्रहृष्टाश्च मुनयो रामपूजिताः । संष्टकुशलाः सर्वे रामं कुशलमब्रुवन् ॥ २ ॥
 कुशलं ते महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन । दिष्टयेदानीं प्रपश्यामो हतशत्रुपरिदम ॥ ३ ॥
 दिष्टया त्वया हताः सर्वे मेघनादादयोऽसुराः । हन्वा रक्षोगणान्सर्वान् कृतकृत्योऽद्य जीवसि । ४ ॥
 इति तेषां वचः श्रुत्वा रामस्तान्प्राह सुस्मितः । किमर्थमादौ पुष्पाभिर्मेघनादोऽद्य कीर्तितः ॥ ५ ॥
 इति रामवचः श्रुत्वाऽगस्तिस्तर्ग्वलोकितः । कुम्भयोनिस्तदा रामं प्रीत्या वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
 शृणु राम यथा वृत्तं मेघनादस्य चेष्टितम् । जन्मकर्मवरप्राप्तिं संक्षेपाद्ब्रूयतो मम ॥ ७ ॥
 पुरा कृतयुगे राम पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः । तृणविन्दुसुतायां स पुत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ८ ॥
 निर्ममे विश्रवा नामधेयं वेदनिधिं शुभम् । भरद्वाजसुतायां च विश्रवा निर्ममे सुतम् ॥ ९ ॥
 श्रेष्ठं वैश्रवणं तस्मै प्रसन्नोऽभूद्विधिश्चिरात् । विधिर्वैश्रवणायाद्य तुष्टस्तत्तपसा ददौ ॥ १० ॥
 मनोऽभिलषितं यानं धनेशत्वमखंडितम् । पुष्पक चाप्येकदाऽमौ द्रष्टुं विश्रवमं ययौ ॥ ११ ॥
 पुष्पकेण धनाध्यक्षो ब्रह्मदत्तेन भास्वता । नन्वा तातं तदा प्राह न स्थानं ब्रह्मणा मम ॥ १२ ॥
 दत्तं स्थेयं मया कुत्र तद्विचार्य वदस्व माम् । विश्रवा ह्यपि तं प्राह त्रिष्वकर्मविनिर्मिता ॥ १३ ॥
 लंकानाम्नी पुरी श्रेष्ठा सागरेऽस्ति सुमडिता । त्यक्त्वा विष्णुभर्पाईत्या विविशुम्न रसातलम् ॥ १४ ॥
 सुखं त्वं वस तस्यां हि तथेन्युक्या धनेश्वरः । गत्वा तस्यां चिरं कालमुवास पितृममतः ॥ १५ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! एकदिन बहुतसे मुनियोंके साथ अगस्त्यमुनि श्रीरामका दर्शन करने आये । रामसे सम्मानित होकर वे सब बैठे ॥ १ ॥ अन्यान्य मुनि भी रामसे पूजित होकर प्रसन्नतापूर्वक बैठ गये । रामके पूछनेपर सबने अपना कुशलक्षेम सुनाया ॥ २ ॥ और कहा—हे रघुनन्दन ! बड़े हर्षकी बात है कि शत्रुको मारकर सकुशल आपको हम लोग राज्यसिंहासनपर विराजमान देख रहे हैं । हे अरिन्दम (शत्रुओं-को नीचा दिखलानेवाले) ! आपने बड़े भाग्यसे मेघनाद आदि सब असुरोंको मार गिराया है । उन्हें मार तथा कृतकार्य होकर आप विराजमान हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनका ऐसा वचन सुनकर राम कुछ मुसकराते हुए बोले—आप लोगोंने सब राक्षसोंसे मेघनादका नाम पहले क्यों लिया ? रामका यह प्रश्न सुनकर वे सब मुनि अगस्त्य मुनिका मुख देखने लगे । यह देखकर अगस्त्य बहुत प्रेमपूर्वक रामसे बोले—॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राम ! मैं आपसे मेघनादका चरित्र, जन्म, कर्म तथा वरप्राप्तिका वृत्तान्त संक्षेपमें कहता हूँ, आप सुनें ॥ ७ ॥ हे राम ! सत्ययुगमें पुलस्त्य नामके ब्रह्मपुत्रने तृणविन्दुकी पुत्रांस तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध वेदवेत्ता विश्रवा नामका पुत्र उत्पन्न किया । विश्रवाने भारद्वाजकी पुत्रीसे वैश्रवण नामक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किया । कुछ दिनोंके बाद वैश्रवणकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माने उसको उसका मनोवांछित पुष्पक विमान, अखंड धनेशत्व तथा कुबेरकी पदवी प्रदान की । एक दिन ब्रह्माके दिये हुए उस सुन्दर पुष्पक विमानपर सवार होकर घनाधिप कुबेर अपने पिता विश्रवाका दर्शन करने गये । वहाँ जाकर कुबेरने पिताको नमस्कार करके कहा—हे पिताजी ! ब्रह्माने मुझे निवासके लिये कोई स्थान नहीं दिया है । अतः आप विचार करके कोई धेरे रहने योग्य स्थान बताइए । विश्रवाने कहा—विश्वकर्माकी बनायी हुई एक सुन्दर और श्रेष्ठ लंका नामकी नगरी समुद्रके बीचमें विद्यमान है । विष्णुके शरसे दैत्य लोग उसे छोड़कर पातालमें चले गये हैं ॥ ८-१४ ॥ तुम जाकर उसमें सुखपूर्वक निवास करो । 'तथास्तु' कहकर कुबेर पिताके कथनानुसार जाकर बहुत काल

कस्मिंश्चित्पथे काले हि सुमार्गानाम राक्षसः । दृष्ट्वा व्यवचक्ष्मन् पुष्पकेतु ददर्श सः ॥१६॥
 हिताय चिन्तयामास राक्षसानां महामनाः । कैकसीं तनयामाह गच्छ विश्रवसं मुनिम् ॥१७॥
 वरयस्व मुनेस्तेजःप्रतापात्ते मुनाः शुभाः । भविष्यन्ति घनाभ्यक्षतुल्या नो हितकारिणः ॥१८॥
 सा मञ्ज्यायां ययौ शीघ्रं मुनेरग्रे व्यवस्थिता । लिखन्ती भुवि पादाङ्गुष्ठेन चाधोमुखी स्थिता ॥१९॥
 तामपृच्छन्मुनिः का त्व साऽऽह त्वं वेत्नुमर्हमि । ततो ज्ञान्वा मुनिः सर्वं ज्ञान्वा तां प्रन्यभाषत ॥२०॥
 ज्ञातं तवामिलपितं मत्तः पुत्रानर्भाषामि । दारुणायां तु वेलायामागताऽमि सुमध्यमे ॥२१॥
 अतस्ते दारुणौ पुत्रौ राक्षसौ संभविष्यतः । साऽब्रवीन्मुनिशार्दूलं त्वत्तोऽप्येवंविधौ मुनौ ॥२२॥
 तामाहान्तिमजो यस्ने भविष्यति महामतिः । ततः सा मुपुषे पुत्रान् यथाकाले सुमध्यमे ॥२३॥
 रावणं कुम्भकर्णं च क्रौञ्चीं शूर्पणखां शुभाम् । कुम्भीनभीं कर्नायास वृतीयं तं विभीषणम् ॥२४॥
 रावणः कुम्भकर्णश्च त्रयो दहितस्त्वया । दृष्ट्वा प्राणिमक्षाश्च बभूवुर्मुनिहिंसकाः ॥२५॥
 एकदा रावणो मात्रा लिङ्गार्थं प्रेषितः शिवम् । कर्तुं प्रमत्तमरुगेत् कैलासे क्रमे दुष्करम् ॥२६॥
 किञ्चित्स्त्रीयं शिरश्छिन्वा वीणां पङ्कजस्वर्गमृदुः । कृत्वा पाठं हि देहस्य तन्मूलं शिरसस्तथा ॥२७॥
 तदग्रं पादयोः कृत्वा शङ्खनंगुलिभिस्तथा । तत्रीः कृत्वाऽन्त्रमालाभिः श्वनशोऽय सहस्रशः ॥२८॥
 एवं कृत्वा स्वदेहस्य वीणां पङ्कजस्वर्गमृदुः । चकार स्वसुखेनैव गाधर्वं गायनं शुभम् ॥२९॥
 तदा नन्दीश्वरं प्राह शक्रो लोकशकरः । शिरः संधाय हस्तेन त्वया वाच्योऽय रावणः ॥३०॥
 आत्मलिङ्गं राक्षसं त्वां शक्रो न प्रदाम्यनि । हृदयं हि मया ज्ञातं शोभोस्त्वं याहि स्वस्थलम् ॥३१॥
 हत्युक्त्वा प्रेषणीयः स रावणः स्वस्थलं त्वया । इति शोभोर्वचः श्रुत्वा ययौ नन्दी स रावणम् ॥३२॥

तक वहाँ रहे ॥ १५ ॥ पश्चात् किसी समय मुमाली राक्षसने अपनी पुत्रीको साथ लेकर पृथ्वीपर भ्रमण करते समय पुष्पकेतुको देखा ॥ १६ ॥ तब मद्राग्मा सुमार्गान राक्षसोंका हित सोचकर अपनी लड़की कैकसीसे कहा कि तुम विश्रवा मुनिके पास जाकर मुनिके तेज-प्रतापसे सुन्दर पुत्रीको प्राप्तिके लिये वर माँगो । वे पुत्र कृष्णके समान प्रतापी तथा हमलोगोंके हितकारी होंगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदनुसार सायकालके समय मुनिके पास जाकर पाँवक अङ्गुष्ठेन घर्तीकी कुरेदती हुई वह लीचा मुख करके खड़ी हो गयी ॥ १९ ॥ मुनिने उससे पूछा—तुम कौन हो ? उसने कहा कि आप स्वयं इस वाक्को समझ सकते हैं । तब मुनिने ध्यान करके सब कुछ जान लिया और उससे बोले—॥ २० ॥ मुझे मालूम हो गया कि मुझसे तू पुत्र पाना चाहती है, परन्तु है सुमध्यमे । तू इस भयानक समयमें यहाँ आयी है । इसलिये तुझसे दो भयानक राक्षस पुत्र उत्पन्न होंगे । तब वह मुनिशार्दूलसे बोली—हे महाराज ! क्या आपसे भी मुझे ऐसे ही पुत्र प्राप्त होंगे ? ॥ २१ ॥ २२ ॥ तब मुनि बोले—अच्छा जा, तेरा आसिरी पुत्र बड़ा बुद्धिमान् होगा । पश्चात् उस सुन्दर कमरवाली कैकसीने यथासमय तान पुत्र उत्पन्न किये ॥ २३ ॥ रावण, कुम्भकर्ण, क्रौञ्ची, मूषणखा, कुम्भीनसी और सबसे छोटा सीसरा पुत्र विभाषण उससे उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ उनमेंसे रावण, कुम्भकर्ण और तीन लड़कियें बड़ी दुराचारिणी, जादूभक्षिणी तथा मुनिहिंसक हुई ॥ २५ ॥ एक दिन रावणकी माता कैकसीने रावणको शिवजीके पास लिंग लेने भेजा । कैलासपर जाकर रावणने शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये बड़ा दुष्कर काम किया ॥ २६ ॥ उसने अपने सिरका कुछ भाग काटकर वीणा बनायी । सिरसे वीणाका मूलभाग बनाकर अपनी देहसे उसका पृष्ठभाग तैयार किया । पाँवसे उस वीणाका अग्रभाग बनाया और अङ्गुलियोंसे वीणाकी छूटियें तैयार कीं । अपने पेटके भीतरकी आँतोंने संकड़ो एवं हजारों तार बनाकर अपने शरीरसे ही वीणा रची । पश्चात् पङ्क आदि स्वरोंसे रावणने अपने मुखसे ही गंधर्वोंके समान सुन्दर गायन आरम्भ किया ॥ २७-२९ ॥ तब लोंगोना कल्याण करनेवाले भगवान् शंकर नन्दीश्वरसे बोले कि तुम अपने हाथसे रावणका सिर संवान करके उससे कहो कि शंकरजी तुम जैसे राक्षसको आत्मलिङ्ग क्यों न देगे । मैं शिवजीके हृदयकी बात जानता हूँ ।

शिरः सयोज्य हस्तेन शिरोक्तं न न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा रावणश्च पि सप्ततिक्रम्य तां निशाम् ॥३३॥
 चकार पूर्ववद्भानं द्वितीयदिनसे पुनः । नन्दिना शकरश्चपि पूर्ववत् न्यवेदयत् ॥३४॥
 इत्थं दश दिनान्येव गतानि रावणस्य च । अथ तत्कर्मणा तुष्टः शकरो गायनेन च ॥३५॥
 भूत्वा प्रयत्नस्तं प्राह वरं वरय चेति वै । दृष्ट्वा शंभुं रावणोऽपि शिश्ना तेन संधितः ॥३६॥
 वरयामास मन्मात्रे आत्मलिंगं तथा मम । पत्न्यर्थं पार्वतीं देहि तथेन्युक्त्वा ददौ शिवः ॥३७॥
 गृहीत्वा गंतुकामं तं पुनः प्राह हस्तदा । मत्तोषार्थं त्वया वीर दशवारं निर्जं शिरः ॥३८॥
 खड्गेन छेदितं यस्मात्तस्मात्सेऽद्य शिरांसि हि । दस विशद्रुजाश्चपि भविष्यन्ति गिरा मम ॥३९॥
 ततः स रावणस्तुष्टो गिरिजालिंगमयुतः । विशद्रुजो दशवीरः स्वस्थलं गन्तुमुद्यतः ॥४०॥
 कल्पमेदाच्छतशिराः शतवारं प्रवर्द्धितैः । स प्रोक्तः स्वशिरोभिर्हि शतद्वयभुजः क्वचित् ॥४१॥
 तस्माद्धि हनवान् विष्णुस्त्व न मार्गं प्रतार्य च । नयवाग्धेस्तटे लिंगं गोकर्णं रावणास्वया ॥४२॥
 गृहीत्वा स्थापितं पूर्वं रावणोऽपि गृहं ययौ । मदोदरीं हरेर्वाक्याल्लब्ध्वा मयसुतां शुभाम् ॥४३॥
 मातुः कार्यममपाद्य तूष्णीमेवातिलज्जितः । मन्दोदर्याऽकृगन्स्वीयं शिवाहं तोषपूर्वितः ॥४४॥
 दृष्ट्वा कदा धनाभ्यक्ष्य पुष्पकस्थं तु कैकयी । पुत्रान् धिकारयामास युयं पठा मृतोपमाः ॥४५॥
 मापन्नपचधु ये दृष्ट्वा जायते नात्र लज्जिताः । ते भानुवचनं ध्रुवः ययुर्गोष्णमृगनमम् ॥४६॥
 दशवर्षमहस्राणि कुम्भकर्णोऽकरोत्तपः । विभीषणोऽपि धर्मात्मा मन्वधमपरायणः ॥४७॥

‘मन्त्रिए तुम अपने स्थानेको वापस चले जाओ’ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ऐसा कहकर उसको उसके स्थानपर भेज
 दा । मन्दोदर शिवका यह वचन सुनकर रावणके पास गये । ३२ ॥ उन्होंने अपने हाथसे उसका सिर
 घड़से जोड़कर शिवका वचन उसको कह मुनाया । रावण यह सुनकर भी उस रानको बही रहा और दूसरे दिन
 फिर उसी विधिसे शिवजीका गुणगान करने लगा । शिवजीने उस दिन भी अपना संदेश नन्दोके द्वारा रावण
 को कहला भेजा । परन्तु रावणने फिर भी अपना गायन उसी प्रकार दस दिनतक जारी रखवा । तब शकरजी
 उससे उम भयानक कर्म तथा मनोहर गायनसे प्रसन्न हो गये और उससे कहा—वर मांगो । ऐसा कहकर
 शिवजीने उसका वह सिर भी घड़से जोड़ दिया । तब उसने शंभुसे वर मांगा कि आप मेरी माताके लिए आत्म-
 लिंग तथा पत्नी बनानेके लिए मुझे पार्वतीजीको दे दीजिये । ‘तथाऽम्नु’ कहकर शिवजीने उसको वे दोनों चीजें
 दे दीं ॥ ३३-३७ ॥ जब उनको लेकर रावण चलने लगा, उस समय शिवजी कहने लगे—हे वीर ! तुमने
 भुक्तको प्रसन्न करनेके लिये अपना सिर दस बार तलवारसे काटा है । इसलिये मेरे कथनानुसार तुम्हारे दस
 सिर तथा बीस भुजायें हो जायेंगी ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तब रावण प्रसन्नतापूर्वक दस सिर और बीस हाथवाला
 बनकर पार्वती तथा शिवलिंग लेकर अपने स्थानकी ओर चला ॥ ४० ॥ कहीं-कहीं कल्पभेदसे रावण सौ बार
 मस्तक काटनेसे सौ सिर तथा दो सौ हाथोंवाला भी कहा गया है ॥ ४१ ॥ बादमें रास्तेसे ही विष्णुभगवान्
 रावणके हाथसे तुमको (पार्वतीको) छीन ले गये । तब तुम (पार्वती) भी श्रीहरिको वास्ता देकर उनसे
 अलग हो गयीं । विष्णुकी तरह तुमने रावणके हाथसे शिवलिंग भी छीन लिया और उस लिंगको समुद्रके
 किनारेपर ही गोकर्ण नामसे स्थापित कर दिया । तब रावण खाली हाथ लौट गया और विष्णुके कथनानुसार मय
 राक्षसकी सुन्दरी पुत्री मन्दोदरी उसको प्राप्त हुई ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ माताके कार्यका सम्पादन न कर सकनेके कारण
 वह बहुत लज्जित हुआ और कुछ भी नहीं कह सका । पश्चात् मन्दोदरीके साथ विवाह करके वह मन्तुह हुआ
 ॥ ४४ ॥ एक समय उसकी माता कैकसी धनपति कुबेरको पुष्पक विमानपर बैठा देखकर अपने पुत्रोको धिक्कार-
 कर कहने लगी कि तुम लोग नपुंसक तथा मृतक सरोख हो ॥ ४५ ॥ अपने सौतेले भाईका उत्कर्ष देखकर
 तुम छोटीकी लज्जा नहीं आती ? माताके इस कटु वचनको सुनकर वे तीनों भाई दुःखीसहित गोकर्ण महादेवके पास
 गये ॥ ४६ ॥ वहाँ कुम्भकर्णने दस हजार वर्ष तपस्या की । अन्तर्हि विभीषणने भी सद्यश्चसंप्रपद्य होकर

पंचवर्षमहस्त्राणि पादांगुष्ठेन तस्थिवान् । दिव्यवर्षमहम् तु ध्रुमाहरो दशाननः ॥४८॥
 पूर्णं वर्षमहम् स्वं शीर्षमग्नौ जुहोत मः । एवं वर्षमहस्त्राणि नव तस्यानिचक्रमुः ॥४९॥
 अथ वर्षमहस्त्रे तु दशमे दशमं शिरः । छेत्तुकामस्य धर्मात्मा प्रमत्तोऽधुप्रजापतिः ॥५०॥
 उवाच वचनं ब्रह्मा वरं यस्य काञ्चित् । तदोवाच दशाम्यस्तमवध्यत्वा बृगोम्यहम् ॥५१॥
 सुपणनागयक्षेभ्यो देवेभ्यश्चामुर्गपि । त्वत्तः शोभोर्महाविष्णोर्मानुषा मे तृणोपमाः ॥५२॥
 तथेत्युक्त्वा विधिस्तस्मै दश शीर्षाणि मन्ददी । विभीषणाय मद्बुद्धिममगन्वं ददौ मुदा ॥५३॥
 विमोहितं सरस्वत्या देवेन्द्रपदकांक्षिणम् । कुम्भकर्णं विधिः ग्राह्यं वरं वरय वाञ्छितम् ॥५४॥
 सोऽपि तं वरयामास निद्रामपाणमिर्कां शुभाम् । पाणमार्माये चैकदिनेऽशनं ब्रह्माऽपि दत्तवान् ॥५५॥
 ततोऽन्तर्द्धानमगमद्विधिं तस्मैऽपि गृहं ययुः । सुमाली वरलब्धांस्तान् ज्ञात्वा दीहि व्रतमान् ॥५६॥
 पातालान्निर्भयः प्रायान्प्रहस्ताद्यैर्भुवं सुखम् । भविष्याकयाद्दशस्योऽपि निष्कास्य धनद बलात् ॥५७॥
 लकापुर्यां राक्षसस्तु लकागज्यं चकार मः । धनदः शिरः पृष्ठां त्यक्त्वा लङ्कां महाप्रशाः ॥५८॥
 गन्वा कैलासशिखरं तपसाऽप्यप्यच्छिन्नम् । तेन मरुपमनुष्यास्य तेनैव परित्तितः ॥५९॥
 अलकां नगरीं तत्र निर्ममे विश्वकर्मेणा । दिक्पालन्वमनुष्यास्य शिवस्य वरदानतः ॥६०॥
 रावणो विद्युज्जिह्वाय ददौ शूर्पणखां तदा । पारिवर्हं ददौ तस्मै दंडकारण्यमुत्तमम् ॥६१॥
 मातृत्वसुः सुतान् शंभुं त्रिशिरःखरदूषणान् । माहाय्यार्थं ददौ तस्मै तत्कांते तु मृतेऽचिरात् ॥६२॥
 कुम्भीनसीं ददौ हर्षान्मधुदैत्याय गवणः । ददौ मधुवनं तस्मै पारिवर्हमनुत्तमम् ॥६३॥
 खड्गजिह्वाय तां कौचीं ददौ प्रेम्णा दशाननः । परलङ्कां पारिवर्हं ददौ तस्यै मनोरमम् ॥६४॥

पावके अंगुष्ठपर पांच हजार वर्षतक खड़ा रहकर तप किया और दस हजार वर्षतक केवल धूम्र पकर दशाननने तपस्या का ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ हजार वर्ष पूरे हो जानेपर वह अपना एक सिर कटकर अग्निमें होम देता था, ऐसा करत-करत नौ हजार वर्ष चल गये ॥ ४९ ॥ जब दस हजार वर्ष पूरे हुए और रावण अपना दसवां सिर काटकर आगमें होम करने के लिए तैयार हुआ, तब प्रजापति ब्रह्मा उसपर प्रमत्त हुए ॥ ५० ॥ ब्रह्माने कहा—हे उत्स ! तू अपना इच्छित वर मांग । तब रावणने कहा कि मैं गण्डमे, सर्पोंमें, यक्षासे, देवताओंसे, अमुंगेसे आदि (ब्रह्मा) से, शंभुसे तथा विष्णुसे भी अथर्वत्वका वर मांगता हूँ और मनुष्य तो मेरे लिए तिनके बराबर है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ 'तवास्तु' कहकर ब्रह्माने रावणको दस सिर दिये और विभाषणको सुबुद्धि तथा अमरत्व दिया ॥ ५३ ॥ इन्द्रपदका इच्छा रखनेवाले कुम्भकर्णसे ब्रह्माने कहा कि अपना अभिलषित वर मांगो ॥ ५४ ॥ तब सरस्वतीके द्वारा माहमे पडकर कुम्भकर्णने छः महान तककी नद माँगा । तदनन्तर ब्रह्माने उसको छ महानेतक सना और फिर भोजन करना तथा छः महानेतक फिर शयन का वर दिया ॥ ५५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और वे लोग भी अपने घर चले गये । सुमाली अपने दौहित्रोंको वर प्राप्त किये हुए जानकर प्रमत्त आदिके साथ पतालमे निकलकर निर्भय भावसे पृथ्वीपर विचरने लगा । पुष्पन्त्रीके कथनानुसार रावणने लंकाने कुबेरको निकलवा दिया और वहाँ स्वयं राजसोको लेकर लंकाका राज्य करने लगा । तब महान् यशस्वी कुधरने अपने पिता से पूछकर लङ्काको छोड़ दिया और कैलासके शिखरपर जाकर तपश्चर्यासे शिवका प्रसन्न किया । उन्होंने उनसे मित्रता जोड़ी और उन्हींके कहनेसे वहाँ विश्वकर्मा द्वारा अलका पुरी बनवायी और शिवजीके वरदानसे दिक्पालकी पदवी प्राप्त की ॥ ५६-६० ॥ बादमें रावणने अपनी शूर्पणखा नामकी बहिन विद्युज्जिह्वाको द्वाह दी और उत्तम दंडकारण्य उसको दहेजमें दे दिया ॥ ६१ ॥ थोड़े ही दिनों बाद जब उसका पति मर गया । तब रावणने अपनी मौसीके लड़के त्रिशिरा-खरदूषण आदिको उसकी सहायताके लिए भेजा ॥ ६२ ॥ रावणने कुम्भीनसी नामकी बहिन मधुदैत्यको ग्याही दिया और मधुवन उसको दहेजमें दिया ॥ ६३ ॥ दशाननने अपनी कौची नामकी बहिन खड्गजिह्वा राजसोको

वैरोचनस्य दौहित्री वृत्रज्वालेति विश्रुताम् । स्वयन्दत्तां मुदोवाह कुम्भकर्णाय रावणः ॥६५॥
 गन्धर्वगजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः । विभीषणस्य भार्यायै सग्मां स मुदाऽब्रहत् ॥६६॥
 ततो मन्दीदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत् । जानमात्रस्तु यो नादं मेघवत्प्रचकार ह ॥६७॥
 ततः सर्वऽनुवन्मेघनादोऽपमिति वै जनाः । गुहायां कुम्भकर्णोऽपि निद्रान्याप्तो विनिद्रितः ॥६८॥
 ततः स रावणश्चापि देवगन्धर्वकिन्नरान् । हन्त्या ऋषीश्वरान्तागान् स्त्रियस्नेहामपाहरत् ॥६९॥
 घनदोऽपि च तच्छ्रुत्वा रावणस्याक्रम तदा । अधर्मं मा कुरुष्वेति दूतवाक्यैर्न्यवारयत् ॥७०॥
 ततः क्रुद्धो दशग्रीवो जगाम धनदालयम् । विनिजिन्य धनाच्छ्रमं जहार तस्य पुष्पकम् ॥७१॥
 अलकायां यदाऽऽसीन्म सेनया रावणस्तदा । निशायामेकदा आतुः कुबेरस्य सुतेन हि ॥७२॥
 प्रार्थिता सा पुरः रम्भा अकार नियतं दिनम् । अज्ञातवृत्ता वेगेन ययौ खान्नुपगस्वना ॥७३॥
 रावणोऽपि च तं दृष्ट्वा बलादेव प्रभुक्तवान् । चिगन्मुक्ताऽथ वृत्तं सा कौबेरं सन्यवेदयत् ॥७४॥
 क्रुद्धः सोऽपि ददौ शाप रावणाय महान्वने । अद्यारभ्य दशास्पथेद्विरक्तां स्त्रियमुत्तमाम् ॥७५॥
 हठद्वोक्ष्यति चेत्तर्हि क्षणमात्रान्मरिष्यति । इति शापं रावणोऽपि शुश्राव चरवाक्यतः ॥७६॥
 तदारभ्य स्त्रियं काममनिच्छन्तीं न धर्षयत् । ततो यमं च वरुणं निजिन्य ममरेऽसुरः ॥७७॥
 स्वर्गलोकमगात्पुनः देवराजजिघांसया । ततो रावणमभ्येत्य ब्रुवन् त्रिदशेश्वरः ॥७८॥
 तच्छ्रुत्वा सहसाऽऽगत्य मेघनादः प्रतापवान् । कृन्ता मुद्र महाशेरं जिन्वा त्रिदशपुङ्गवम् ॥७९॥
 इन्द्रं घृत्वा दृढं बद्ध्वा मेघनादो महाबलः । मोक्षयित्वा स्वपितरं गृहान्वेन्द्रं ययौ पुरीम् ॥८०॥
 ब्रह्मा तं मोक्षयामास देवेन्द्रं मेघनादतः । दत्त्वा वरात्राश्रयाय ब्रह्मा स्वभवनं ययौ ॥८१॥

दी तथा उसको दहेजमे अतिशय मनोहर परलका पुरी दे दी । ६४ ॥ वैरोचनकी दौहित्री (नतिनी) प्रसिद्ध
 वृत्रज्वालाका उसकी पितानी कुम्भकर्णकी पत्निये रावणका दी । ६५ ॥ महात्मा गन्धर्वराज शैलूषकी सुता
 सरमाको रावण विभीषणकी लिय ले आया । ६६ ॥ तदनन्तर मन्दीदरीसे मेघनाद पुत्र उत्पन्न हुआ । जो
 निपटा होनेके साथ ही मेघको तरह गर्जन करने लगा था ॥ ६७ ॥ इसीलिए सब लोग उसको मेघनाद
 कहने लगे । कुम्भकर्ण गुफाम जाकर सो गया ॥ ६८ ॥ उधर रावण देव, गन्धर्व, किन्नर, ऋषीश्वर और
 नागोंको मार मारकर उनकी स्त्रियोंका अपहरण करने लगा ॥ ६९ ॥ जब कुबेरने रावणका इस प्रकार
 दुराचार सुना, तब उन्होंने अपने दूतों द्वारा कहला भेजा कि हे रावण ! तू ऐसा अधर्म करता छ ड दे
 । ७० ॥ यह सुना तो रावण और भी क्रुद्ध होकर कुबेरके यहाँ गया तथा उनको जीतकर पुष्पक विमान
 छन लाया ॥ ७१ ॥ जब रावण अपनी सेनाके साथ अलकापुरीमें था । उसी समय रावणके भाई कुबेरके
 पुत्र नलकूबरकी प्रार्थना स्वाकार करके रम्भा अप्सरा युद्धके वातावरणको न जाननेके कारण एकाएक
 नियत दिनपर आकाशसे वहाँ आ पहुँची । उसके पंरीमे सुन्दर एवं मनोहर नूपुरकी ध्वनि हो रही था
 ॥ ७२ ॥ रावणने उसको सहसा देखकर उसके साथ हुआ भोग किया । बहुत देरके बाद उससे मुक्त हो
 रम्भाने जाकर वह सब हाल कुबेरके पुत्रको कह सुनाया ॥ ७३ ॥ तब क्रुद्ध नलकूबरने रावणको शाप देते
 हुए कहा—“हे दशास्य ! आजसे यदि तुम किसी भी तुमको न चाहनेवाली भली स्त्रीसे हुआ भोग करोगे
 तो उसी क्षण मर जाओगे ।” इस शापका दूतके मुखसे रावणने भी सुन लिया ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ तबसे
 रावणने अपनेसे विमुख स्त्रीका अपमान करना छाह दिया । तदनन्तर युद्धमे यमराज तथा वरुणको
 जीतकर वह देवराज इन्द्रको मारनेका इच्छासे शीघ्र ही स्वर्ग गया । त्रिदशेश्वर इन्द्रने रावणके सामने
 जाकर उसको कंड कर लिया ॥ ७६-७८ ॥ पितृको कंड किया हुआ सुनकर प्रतापी मेघनाद शीघ्र वहाँ
 जा पहुँचा तथा भयानक युद्ध करके इन्द्रको जीत लिया ॥ ७९ ॥ तब महाबलवान् मेघनादने अपने पिता-
 को छुड़ा लिया और इन्द्रको पकड़ तथा बाँधकर अपने नगरमें ले लाया ॥ ८० ॥ पश्चात् ब्रह्माने इन्द्रको

इन्द्रजिह्वा तस्याभूत्तदागम्य रघूत्तम । रावणादपि यश्चार्थाद्वलिष्ठः समरपियः ॥८२॥
 मेघनादादयश्चेति तस्मान्प्रोक्तं तवाग्रतः । एतैर्मूर्तीश्वरैः पूर्वं तन्निमित्तं मयेरितम् ॥८३॥
 रावणो विजयी लोकान्सर्वान् जित्वा क्रमेण तु । जित्वा बह्वि निर्भर्ति च वायुमीशं यथा मुदा ॥८४॥
 कैलासं तोलयामास बाहुभिः परिधोपमैः । तदा भीता शिवं देवी दोम्प्री सा परिष्वजे ॥८५॥
 शिवोऽपि वामपादाङ्गुष्ठेन कैलाममूर्द्धनि । भारं दत्त्वा गिरिं स्वयं चकाराथ शनैः शनैः ॥८६॥
 तदा तद्गिरिसम्भूतबह्विर्मधिषु दोर्लभाः । विंशश्चापि रावणस्य ता आपन्नर्हिता क्षणात् ॥८७॥
 स तेनाक्रन्दयामास स्वम्भमम्बद्वचोम्वन् । तदा नन्दीश्वरेणापि शमोऽयं रावणेश्वरः ॥८८॥
 चञ्चलं कर्म यस्मात्ते कपितुन्यमतोऽमुम् । वानरैर्मनुष्यैश्च नाशं गच्छामि कोपितैः ॥८९॥
 ततः कालान्तरेणायं शम्भुर्नैव विमोचितः । शमोऽप्यगगनवाक्यं ययौ हैहयपत्तनम् ॥९०॥
 बहिर्गतं नृपं श्रुत्वा सहस्राजुननामकम् । मध्याह्ने रावणध्वजे गेयार्था शिवरत्नम् ॥९१॥
 अधस्तस्मात्तर्मदाया भुजपार्श्वे सेतुवन् । स्वम्भयामास नीगंथ जलक्रीडां गतोऽर्जुनः ॥९२॥
 वेष्टितोऽयुतनारीमिस्ततोयं रावणं तदा । प्लावयामास ध्यानस्थं ज्ञानस्वन्कर्मणाऽर्जुनः ॥९३॥
 भुक्त्वा ध्यानादिकं सर्वं युद्धं चक्रेऽर्जुनेन मः । तेन बद्धो दशग्रीवः कण्ठे रन्तुं सुताय तम् ॥९४॥
 ददौ दशानन प्रीत्या काष्ठनिर्मितहस्तिवन् । क्षिपन्कालान्तरेणैव पुलस्त्येन म मोचितः ॥९५॥
 ततोऽतिबलमामाद्य त्रिंशसुहृदिपुङ्गवम् । सागरे ध्यानमासीन पश्चाद्ग गे शनैर्ययौ ॥९६॥
 धृतस्तेनैव कक्षेण बालिना दगच्छन्धरः । भ्रामयित्वा तु चतरः समुद्रान् रावणं हृदि ॥९७॥

मेघनादसे छुड़ाया और राक्षसोंको वर देकर ब्रह्मा अपने भवनको चले गये ॥ ८१ ॥ हे रघूत्तम ! तबसे मेघनाद-
 का इन्द्रजिह्वा नाम पड़ा । जो कि रावणसे भी अधिक बलवान् तथा युद्धमनुष्य था ॥ ८२ ॥ इसीलिए मेने
 आपके सामने मेघनादका पहले नाम लिया । इन ऋषियोंने इसका कारण पहले ही बता दिया था ॥ ८३ ॥
 विजयशील रावणने क्रमशः सब लोकोंका जानकर बह्वि निर्भर्ति, वायु तथा ईशानको जीत लिया और बादमे
 अपनी अंगुलीके समान भुजाओंसे कैलास पर्वतका उठाने लगा । उस समय डरकर पार्वती दवा शिवजीसे
 लिपट गयी ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ पश्चात् शिवने अपने दाहिने पाँवके अंगुलीसे उस पर्वतको दवा दिया । जिससे
 कैलास धीरे-धीरे नीचे घँसने लगा ॥ ८६ ॥ उस समय पर्वतके नीचे आ जानेसे रावणकी बीसों भुजायें
 दब गयीं और वह स्वप्नेसे बँधे हुए चौरकी तरह चिल्लाने लगा । उस समय नन्दीश्वरने भी रावणको
 शाप देते हुए कहा—॥ ८७ ॥ ८८ ॥ हे अमुर ! तुम्हारे वानरके समान चंचलता होनेके कारण द्रुतवानरों तथा
 मनुष्योंसे ही तुम्हारी मृत्यु होगी ॥ ८९ ॥ बहुत कालके बाद शिवजीने उसे छुड़ा दिया । छूटनेके साथ ही
 वह शापका भूल गया और शिवजीके वचनका तिरस्कार करके युद्ध करनेके लिए हैहयराजके नगर-
 का गया ॥ ९० ॥ वहाँ जाकर पूछा तो ज्ञात हुआ कि सहस्राजुन नामवाला वहाँका राजा वहाँ उपस्थित
 नहीं है । तब रावण नमदा नदीके किनारे जाकर उसके बीचमे एक टापूपर बैठकर मध्याह्न समयमे शिवजी-
 का पूजन करने लगा ॥ ९१ ॥ उससे बीचकी ओर राजा सहस्राजुन जलक्रीडा कर रहा था । उसने अपनी
 भुजाओंसे सेतुसे खेल-खलम उस नदीके जलग्रवाहको रोक दिया । उस समय हजारों स्त्रियें उसे घेरकर
 जलक्रीडा कर रही थीं । परन्तु उस जलग्रवाहके एक जानेसे शिवके ध्यानमे स्थित रावण जलमें वहने
 लगा । इस घटनाको देखकर उसने जान लिया कि यह काम सहस्राजुनका है । यह जानते ही वह तुरन्त
 ध्यान छोड़कर सहस्राजुनके पास गया और उसको युद्धके लिए ललकारने लगा । तब उसने रावणके गलेमे
 रस्सी डालकर बाँध लिया और अपने पुत्रको खेलनेके लिए लकड़ोंके बने हुए हाथीकी तरह दे दिया । कुछ
 दिनोंके बाद पुलस्त्य मुनिने जाकर उसको वहाँसे छुड़ाया ॥ ९२-९५ ॥ बादमे रावण बल संचय करके
 वानरश्रेष्ठ बालीको मारनेकी इच्छासे समुद्रके किनारे ध्यान धरकर बैठे हुए वानरराजके पास जाकर धीरेसे पीछे-

किष्किंशो र्वा ययौ वेगादग्रे दृष्ट्वांगदं शिशुम् । प्रीत्या तं चुम्बनं दातु दोष्पां कर्त्ता न्यवेशयन् ॥९८॥
 तदा बाहोश्चलन्वान्कक्षान् पतितो भुवि । तं दृष्ट्वा स्वजनान् स्त्रीषु दर्शयामास वै मुदा ॥९९॥
 प्रेक्षस्योपरि पुत्रस्य वदन्बाधोमुख चिरम् । आर्मान्पाञ्चदमूत्रस्य धाराधौताननोऽसुरः ॥१००॥
 स्वयमेव ततो वाला बहुकाले गते मनि । ददायाज्ञां दशम्याय तेन सकृद्यं चकार सः ॥१०१॥
 रावणः स पुनः स्थित्वा पुष्पके व्यचरन्सुखम् । पश्यन्नानाविधान्वीरान् ययौ पातालमुत्तमम् ॥१०२॥
 तत्र दृष्ट्वा पुरं रम्यं बलेः कोटिरभिप्रमम् । तत्तजोह्वनेजस्तन्पुष्पकं न चचाल वै ॥१०३॥
 ततः स्वयं ययौ तूर्णामक एव दशाननः । पुरं प्रादश्य तद्द्वारं त्वा ददर्श च वामनम् ॥१०४॥
 कोटिसूर्यप्रतीकाश पातकोशेयवामनम् । चतुर्भुज सपत्नीकं द्वाररक्षणनन्परम् ॥१०५॥
 त्वां प्राह स दशग्रीवः कोऽत्र राजाऽस्ति मां वद । तूनी स्थितो वामनस्त्वमपि नोत्तरं रिपोः ॥१०६॥
 तदा त्वां बधिर मन्वा म विवेश बलेर्गृहम् । तत्र दृष्ट्वा बलिं पत्न्या मारिकीडनकम्परम् ॥१०७॥
 तस्थौ तत्र क्षणं तूर्णी बलेर्लक्ष्मीं व्यलोकयत् । तावद्दूरे बलेर्हस्तान्क्रीडापामोऽपनद्रुवि ॥१०८॥
 तमानेतुं रावणाय बलिराज्ञापयत्तदा । रावणोऽपि तमानेतुं ययौ पामानिक जयात् ॥१०९॥
 प्रोच्चचल भुवः पासं करेण न चचाल सः । विंशदोभिः क्रमेणापी यावन्पास प्रचालयत् ॥११०॥
 तावदंगुलयः सर्वाः पामभारेण पीडिताः । न निष्क्रमुः पामनलाच्चूर्णिता रुधिगल्बुनाः ॥१११॥
 तदा चक्रोश दीर्घं स बिरजाल दशाननः । ततो विदस्य दास्या तं पाममानीय वै बलिः ॥११२॥
 धिग्बिधक् कृत्वा रावणं तं गृहान्निष्कामयद्बहिः । ततो धृतो राजदूर्तस्तदुच्छिष्टंस्तु पोषितः ॥११३॥

की ओर जा खड़ा हुआ ॥ ९८ ॥ तब वाल्मीके उसको काँधमें उठा दवाकर चारों समुद्रों के चौरफा घुमाया ॥ ९९ ॥ पश्चात् अपनी किष्किंशा पुरामे ले गया । वहाँ जाकर उसने अपने पुत्र अङ्गदको देखा । ज्यों ही वह अङ्गदको प्रेमसे चुम्बने के लिये अपनी भ्राताओंसे उसे कमरपर बँधाने लगा ॥ १०० ॥ त्यों ही हाथोंके हिस्सेसे रावण बालिसे नीचे जमीनपर गिर गया । उसको दसकर गिरये प्रसन्नतापूर्वक स्वजनोको दिखलाने लगी ॥ १०१ ॥ उसके ऊपर पुत्र अङ्गदका पालना बाँधकर नीचे रावणका मुख करके उन्होंने बहुत दिनोंतक बाँधकर रक्खा । त्रिशे रावणका मुख अङ्गदका मूत्रधारासे धुत्ता रहा ॥ १०० ॥ तदनन्तर स्वयं बलीने ही रावणका जानकी आज्ञा दे दी और उससे मित्रता कर ली ॥ १०१ ॥ रावण पुनः पुष्पक विमानपर सवार होकर आनन्दके साथ विचरने लगा । अनेक वीरोंको देखता हुआ वह पातालमें जा पहुँचा ॥ १०२ ॥ वहाँ कोटिसूर्यक सदृश प्रकाशमयी उस नगरीके तेजसे प्रतिहत होकर पुष्पक विमानकी गति रुक गयी ॥ १०३ ॥ तब उससे उतरकर दशानन चुपचाप अवैला ही पुरीकी ओर चल पड़ा । उसने पुरीमें प्रवेश करनेके बाद वामनरूपधारी आपको देखा ॥ १०४ ॥ करोड़ों सूर्योंके समान तजम्बी आपने पीताम्बर धारण कर रक्खा था । आप चतुर्भुज होकर लक्ष्मीके साथ वहाँ रहते हुए राजा बलिक द्वारकी रक्षा कर रहे थे ॥ १०५ ॥ उस दशग्रीवन आपसे पूछा कि इस नगरका राजा कौन है, बताओ । रावण कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा, पर आपने उसे अपना शत्रु समझकर कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ १०६ ॥ तब आपकी बहू समझकर वह बालिके भवनेमें घुसा । वहाँ उसने राजा बलिको अपनी स्त्रीके साथ चौसर खेलते देखा ॥ १०७ ॥ वहाँ चुपकेसे खड़ा होकर वह बलिकी राज्यलक्ष्मीको क्षणभर देखता रहा । इतनेमें राजा बलिके हाथसे छटककर पाँसा दूर जा गिरा ॥ १०८ ॥ उसी समय बलिने रावणको उस पानिको उठा लानेके लिए कहा । रावण भी उसे उठानेके लिये जीघ्र ही उसके पास जा पहुँचा ॥ १०९ ॥ वह उसे एक हाथसे उठाने लगा । पर वह पाँसा हिल्ल सक नहीं । तब रावणने दो, तीन, चार करके दानो हाथोंसे उस पाँसेको उठानेकी चेष्टा की, परन्तु तो भी वह नहीं हिला ॥ ११० ॥ प्रवृत्त उसके सब हाथोंकी अंगुलियों पाँसेके दोऊसे दब गयीं और कुचल जानेसे खून निकलने लगा, परन्तु वे निकलीं नहीं ॥ १११ ॥ अतएव दशानन बहुत जोरसे चिल्लाने लगा । सब

अश्वानां शकुतं नीत्वा प्राक्षिपत्प्रत्यहं बहिः । एकदा द्वापरे गत्वा प्रार्थयामास त्वां मुहुः ॥११४॥
 त्वया स्वपादलग्नः स्वपादांगुष्ठेन खेऽपिनः । तदाऽतिमुदितो लकां चिरकालेन रावणः ॥११५॥
 ययौ मेने निजं जन्म द्वितीयं ज्ञातमद्य वै । रावणः परमप्रीत एव लोकान्महाबलः ॥११६॥

कर्तुं तान्स्ववशाभित्यं बभ्राम पुष्पकस्थितः ।

दृष्ट्वाकदाऽत्र साकेते पूर्वजं तव दीक्षितम् ॥११७॥

अनरण्यं संगरेण चकार पतितं रणे ।

तदा शमोऽनरण्येन मद्रश्चे रघुनन्दनः ॥११८॥

भूत्वा त्वां सगरेणैव सकुटुम्बं बधिष्यति । इत्युक्त्वा स गतो नाकं रावणोऽपि पुनर्न ययौ ॥११९॥

सनत्कुमारमेकांते सन्निगच्छ्यैकदाऽधुरः । नत्वा पप्रच्छ देवेषु को वरश्चेति सादरम् ॥१२०॥

मुनिः प्राह महाविष्णुं तच्छ्रुत्वा प्राह तं पुनः ।

विष्णुना ये हता युद्धे राक्षसाद्या लभन्ति काम् ॥१२१॥

गतिं चेति मुनिः प्राह ते मुक्तिं यांति दुर्लभाम् ।

पुनः पप्रच्छ तं नत्वा केनोपायेन वै हरेः ॥१२२॥

भविष्यत्पत्र मे मृन्युस्तदा तं मुनिरब्रवीत् । त्रेतायां नररूपेण रामो विष्णुर्भविष्यति ॥१२३॥

अयोध्यायां तदा तेन कृत्वा वरं सुदारुणम् । तस्मादग्र्यं कुरुष्व त्वमात्मनः परमात्मनः ॥१२४॥

तेन गच्छामि मुक्तिं त्व तच्छ्रुत्वा स दशाननः ।

विरोधार्थं जनकजामहरद्वौतमीनटान् ॥१२५॥

अशोके रक्षिता तेन मातृवत्स्ववधेच्छया ।

राजा बलिकी एक वासीने शीघ्र पसिको उठाकर राजाको दे दिया ॥ ११२ ॥ बलिने उसी समय रावणको धिक्कार-
 कर अपने महलसे निकाल दिया । बाहर राजा बलिके दूतोंने उसको फिर पकड़ लिया और अपने जूठनसे
 उसका पोषण करने लगे ॥ ११३ ॥ रावणको घोड़ोंकी लोढ़ उठा-उठाकर बाहर फेंक आनेका काम सौंपा गया ।
 कुछ दिनों बाद एक दिन रावण द्वारपर स्थित आप विष्णुके पास आकर नगरके बाहर जाने देनेकी प्रार्थना
 करने लगा और आपके चरणोंपर गिर पड़ा । तब आपने अपने पाँवके अंगुष्ठसे उसको आकाशकी ओर
 उछाल दिया । जिससे रावण बहुत कालके बाद प्रसन्नतापूर्वक अपनी लङ्कामें जा पहुँचा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ वह
 आज मेरा दूसरा जन्म हुआ है, ऐसा मानने लगा । तब बन्दी रावण पुनः प्रसन्न होकर पूर्ववत् सब लोकोंको
 अपने वशमें करनेकी इच्छासे पुष्पकपर चढ़कर निश्चयप्रति इधर उधर भ्रमण करने लगा । उसने एक दिन
 अयोध्यामें आपके पूर्वज दीक्षित (सामयागकी दीक्षा लिये हुए) राजा अनरण्यको देखा । उनके साथ युद्ध
 करके रावणने रणमें उन्हें हरा दिया । तब अनरण्यने उसका शाप दिया कि मेरे वशमें जन्म लेकर रघुनन्दन
 नाम सकुटुम्ब तुमको मारेंगे ॥ ११६-११८ ॥ इतना कहकर वे स्वर्ग सिंघार गये तथा रावण अपने नगरको चला
 गया ॥ ११९ ॥ उस राक्षसने एक दिन सनत्कुमारको नमस्कार करके एकान्तमें पूछा—हे मुने ! कृपा करके मुझे
 यह बताइए कि देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ देवता कौन है ? ॥ १२० ॥ मुनिने विष्णुको श्रेष्ठ बताया । यह सुनकर वह
 असुर रावण फिर बोला कि विष्णुने आजतक जिन राक्षसोंको मारा है, वे किस गतिको प्राप्त हुए हैं ? ॥ १२१ ॥
 मुनिने कहा—वे सब उत्तम तथा दुर्लभ मुक्तिको प्राप्त हुए हैं । उस राक्षसने फिर प्रश्न किया कि किस उपायसे
 मेरी मृन्यु श्रीहरिके हाथों हो सकती है ? मुनिने उसका प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा कि त्रेतायुगमें विष्णु
 अयोध्यामें मनुष्यका रूप धारण करेंगे ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ उस समय उनसे घोर वर करके उन परमात्मा
 नामके हाथों तुम अपना वध करवा सना ॥ १२४ ॥ उससे तुम मुक्तिपत्रको प्राप्त हो जाओगे । यह बात
 मनमें रखकर रावणने रामके साथ विरोध करनेके लिए ही गौतमी नदीके तटसे जनकनन्दिनी सीताका

एकदा नारदं दृष्ट्वा नत्वा पप्रच्छ रावणः ॥१२६॥

भगवन् ब्रूहि मे योद्धुं कुत्र सन्ति महाबलाः ।

योद्धुमिच्छामि बलिभिस्त्वं जानामि जगत्त्रयम् ॥१२७॥

मुनिर्ष्यात्वा चिरान्ग्राह श्वेतद्वीपनिवासिनः । महाबला महाकायास्तत्र याहि महामते ॥१२८॥
विष्णुपूजार्ता ये वै विष्णुना निहताश्च ये । त एव तत्र सजाता ह्यजेयाश्च सुरासुरैः ॥१२९॥

तच्छ्रुत्वा रावणो वेगान्मंत्रिभिः पुष्पकेण तेः ।

योद्धुकामो ययौ गर्वाच्छ्वेतद्वीपांतिकं मुदा ॥१३०॥

तन्प्रभाहततेजस्कं पुष्पकं नाचलत्पुरः ।

न्यक्त्वा विमानं प्रययौ स्वयमेव दशाननः ॥१३१॥

प्रविशन्नेव तद्द्वीपं घृतो हस्तेन योषिता ।

गच्छंत्या कस्यचिद्वास्या गुप्ताण्यनयितुं वनम् ॥१३२॥

तया पृष्टः कुतः कोऽपि प्रेषितः केन वा वद । हन्युक्त्वा लीलया स्त्रीभिर्हमनीभिर्मुहुर्मुहुः ॥१३३॥

मुखेषु ताडितो हस्तैर्भ्रांभितोऽधोमुखं विरम् । शून्यैक तत्पद ताभिः क्षिप्तः कंदुकवन्मुहुः ॥१३४॥

परस्परं हि क्रोडद्भिः कया त्यक्तस्तु लीलया । पपान परलंकायां कौंचायाः शीचरूपके ॥१३५॥

कृच्छ्रादस्ताद्विनिर्मुक्तस्तामां स्त्रीणां दशाननः ।

आश्चर्यमतुलं लब्ध्वा चिन्तयामास दुर्मतिः ॥१३६॥

विष्णुना ये हता युद्धे तेषामेतादृशं बलम् । तर्ह्यत्र निहतस्तेन श्वेतद्वीपं ब्रजाम्यहम् ॥१३७॥

मयि विष्णुर्यथा कुप्येतथा कार्यं करोम्यहम् ।

इति निश्चिन्य वैदेहीं जहार रावणो वनात् ॥१३८॥

हरण कर लिया था ॥ १२८ ॥ अपने वचकी इच्छामें हो उमने सीताको अशोकवनमें रखकर माताके समान रक्षा की थी । एक बार रावणने नारद मुनिको देखकर नमस्कार किया और पूछा—॥ १२९ ॥ हे भगवन् । आप कृपा करके यह बताइये कि मुझसे लड़नेवाले बलवान् लोग कहाँ हैं ? मैं बलवानोंसे युद्ध करना चाहता हूँ । आप तीनों लोकके लोगोका ज्ञानत हैं ॥ १३० ॥ मुनिने तनिक देर ध्यान चरके कहा कि श्वेतद्वीपके लोग बड़े भारी शरीरवाले होते हैं और वे नित्य भगवान्की पूजामें लगे रहते हैं। जो लोग विष्णुके हाथों मारे जाते हैं, वे ही सुग्री तथा अमुग्रीसे अजय होकर वहाँ जन्म लेते हैं । १३१ ॥ १२६ ॥ यह सुनकर प्रसन्न रावण अपने मन्त्रियोंके साथ पुष्पक विमानपर सवार होकर गर्व तथा क्रोधके साथ उन लोगोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे श्वेतद्वीपकी ओर चल पड़ा ॥ १३० ॥ परन्तु उस द्वीपकी कान्तिसे चौंघिघाकर उसका विमान रुक गया । तब रावण विमान छोड़कर पैदल चलने लगा ॥ १३१ ॥ द्वीपमें धूमत ही एक स्त्रीने उसको एक हाथसे पकड़ लिया । वह किसीकी दासी थी और वनमें पुष्प लेने जा रही थी ॥ १३२ ॥ उस स्त्रीने रावणसे पूछा कि तू कौन है और तुझे यहाँ किसने भेजा है ? बता । इतना कहकर कुछ स्त्रियाँ बारम्बार हँसकर लीलापूर्वक उसके मुखपर तमाचे लगाने लगीं । बादमें उसका पाँव पकड़ तथा उसको बाँधे सिर धुमाकर गेंदकी भाँति दूर फेंक दिया । १३३ ॥ १३४ ॥ आपसमें एक दूसरेके साथ खेलती हुई किसी एक स्त्रीने ही यह काम किया था । इस प्रकार फेंकनेपर रावण परलंकासे श्रीवाके शीवाल्यमें जा गिरा ॥ १३५ ॥ इस प्रकार रावण उन स्त्रियोंके हाथोंसे बड़ी कठिनाईसे छूटा और आश्चर्यचकित होकर वह दुष्ट विचारने लगा—॥ १३६ ॥ ओहो ! विष्णु जिनको मारते हैं, वे लोग कितने बलवान् हो जाते हैं । इसलिए मैं भी उनसे मारा जाकर श्वेतद्वीपमें जाऊँगा ॥ १३७ ॥ अब मैं वही काम करूँगा कि जिससे विष्णु मेरे उमर कुछ हों । यही सोचकर वनमें रावणने

ज्ञानमेवं महालक्ष्मीं स जहारावनीमुताम् ।

मातृवत्पालयामास स्वतः कांक्षन्वर्थं निजम् ॥१३९॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

वालिसुग्रीवयोर्जन्म श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् । रवींद्रौ वानराकारौ जहात इति तच्छ्रुतम् ॥१४०॥

अगस्त्य उवाच

मेरी स्वर्णमये पूर्वं सभायां ब्रह्मणः कदा । नेत्राभ्यां पतितं दिव्यमानंदाश्रुजलं तदा ॥१४१॥

तद्गृहीत्वा करे बद्ध्वा श्वात्वा किञ्चित्दत्तञ्चत् ।

भूमी पतितमात्रेण तस्माज्जातो महाकपिः ॥१४२॥

तमद्गृहीणो वत्स त्वनत्र वस सर्वदा ।

एवं बहुतदे काले गतेर्ध्विरजः सुभोः ॥१४३॥

कदाचिन्पर्वटन्मेरी कलमूलार्थमुद्यतः । अपश्यदिव्यसलिलां शशीं मणिशिलाचिताम् ॥१४४॥

पानीयं पशुमगमत्तत्र छायायं कपिम् । दृष्ट्वा प्रतिकर्षिं मत्वा निष्पात जलांतरे ॥१४५॥

तत्रादृष्ट्वा हरिं शीघ्रं बाहिरुत्सृज्य संपयौ । अपश्यत्सुन्दरीं नारीमात्मानं विस्मयं यतः ॥१४६॥

ततो ददर्श मधवा सोऽन्यजर्द्वार्यमुत्तमम् । तामप्राप्यैव तद्वीर्यं बालदेशेऽपतद्गुवि ॥१४७॥

बालो सममयत्तत्र शकतुल्यपराक्रमः ।

भानुरप्यागमत्तत्र तदानोमेव भाभिनीम् ॥१४८॥

दृष्ट्वा कामवशो भूत्वा प्रीवादेशेऽमृजन्महत् । बाज तस्मास्ततः सद्यो सुग्रीवो बलवानभूत् ॥१४९॥

अदं यं समादाय गत्वा सा निद्रिता कश्चिन् । प्रभातेऽपश्यदात्मानं पूर्ववद्बानराकृतिम् ॥१५०॥

तद्गृह्यत्तं तु विधिः श्रुत्वा किञ्चिदाराज्यमुत्तमम् ।

ददौ स वानरेन्द्राय पुत्राभ्यां तत्र संस्थितः ॥१५१॥

वैदेहोका हरण कर लिया ॥ १३८ ॥ उसने यह भी जान लिया था कि ये साक्षात् अवनिमुता लक्ष्मी हैं । इसीलिए उसने अपने वषकी इच्छा करके साताको माताक समान पाला था ॥ १३९ ॥ श्रीरामचन्द्र बोले—हे मुने ! मैं आपके मुखसे वालि और सुग्रीवके जन्मकी कथा सुनना चाहता हूँ । मैंने सुना है कि स्वर्ण मूर्धनुषा इन्द्र वानराकार वालि-सुग्रीवके समय उत्पन्न हुए थे ॥ १४० ॥ अगस्त्य मुनि बोले—मेरे पर्वतके स्वर्णशिखरपर एक बार भरी संध्यामें सहसा ब्रह्माक नेत्रसे दिव्य ज्ञानन्दाश्रु निकल पड़ा ॥ १४१ ॥ ब्रह्माजीने उसको हाथमें ले तथा कुछ ध्यान धरनके पश्चात् जमीनपर डाल दिया । गिरनेके साथ ही उससे एक महान् कपि उत्पन्न हो गया ॥ १४२ ॥ तब ब्रह्मान उससे कहा—हे वत्स ! तूम सदा यहीं रहो । यही रहते हुए कुछ दिन बोटनेपर वह श्वश्रुविरजः कपि किसी समय मेरे पर्वतपर घूमता-फिरता फल-मूल आदिके लिए एक स्थाने जा पहुँचा । उसने वहाँ मणिकी शिलाभ्रम बनी दृढ़ स्वच्छ जलवाली एक भावली देखा ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ जब वह पानी पीने लगा तो उसे अपना छाया दिखाई दी । उसे अपना प्रतिपत्ता समझकर वह जलमें कूद पड़ा ॥ १४५ ॥ किन्तु उसमें जब उसको दूसरा वानर नहीं दिखाई पड़ा, तब वह उछलकर बाहर निकल आया । बाहर निकलनेके साथ ही वह एक सुन्दरी स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया । यह देखकर उसको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १४६ ॥ बादमें जब इन्द्रन उसको देखा तो कामवश उनका वीर्य निकलकर उस स्त्रीके बालो-र पर जा गिरा ॥ १४७ ॥ उससे इन्द्रतुल्य पराक्रमी वानर वालि पैदा हुआ । उसी समय सुग्रीव भी वहाँ आ पहुँचे ॥ १४८ ॥ उस सुन्दरी कामिनीको देखकर वे भी कामातुर हो उठे और उस स्त्रीकी गर्दनपर उनका महान् बोध गिर पड़ा । जिससे उसी समय बलवान् वानर सुग्रीव उत्पन्न हुआ ॥ १४९ ॥ उन दोनों पुत्रोंको कहीं से आकर वह स्त्री छो गयी । अतःकाल होनेपर उसने फिर अपने आपको वानररूपमें पाया ॥ १५० ॥

मृतेर्ध्विरजस्राभूढाली पुनर्यै कर्पाश्वरः । एवं ते कथितं राम यथा पृष्टं त्वया भव ॥१५२॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

यदाऽसौ बालिना बंधुः किष्किन्धाया बहिष्कृतः ।

तदा तस्यैव सचिवः श्रीमान्पवननन्दनः ॥१५३॥

न वेद किं बलं नैजं बालितुन्यवराक्रमः । इति रामश्चः श्रुत्वा पुनस्तं धृतिरब्रवीत् ॥१५४॥

अगस्त्यवाच

केसरीनाम विख्यातः कपिरञ्जनपर्वते ।

तस्यास्तां च शुभे पत्न्यौ वानर्यविकदा गिरौ ॥१५५॥

रुवंमस्याञ्जनीनाम्नी स्थिता तावच्च सारदा ।

पपात पायसमयः पिंडो गृध्रीमुखान्भुवि ॥१५६॥

यदा नीतस्तु कैकेय्या कराद्गृध्रया शुभः पुनः । तं पिंडं मस्यामास वानरी शम्भुतोषमम् ॥१५७॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र मार्जारास्या समागता । पतिना रहिते ते द्वे क्रीडत्यौ वसनं तयोः ॥१५८॥

अहरत्पवनो वेगावृष्ट्या वायुस्तद्वरः ।

अंजनीं प्रार्थयामास तथा भोगं चकार सः ॥१५९॥

तथैव प्रार्थयामास मार्जारास्यां च निर्व्रतिः । तयाऽकरोद्व्रतिं वञ्च सोऽपि पर्वतमूर्धनि ॥१६०॥

तयोस्ताभ्यां समुत्पन्नो वानर्यो मारुतात्मजः ।

मार्जार्याः समभूदोरः पिशाचो धर्धरस्वनः ॥१६१॥

चैत्रे माति सिते पक्षे हसिदिन्यां मघाऽभिधे । नक्षत्रे स समुत्पन्नो हनुमान् रिपुवदनः ॥१६२॥

महाचैत्रीपूर्णिमायां समुत्पन्नोऽञ्जनीसुतः । बदन्ति कल्पभेदेन बुधा इत्यादि केचन ॥१६३॥

बालमावेऽपि यः पूर्वं दृष्टोऽयं विभावसुम् ।

मत्वा पक्वफलं चेति जिघृक्षुर्लीलयोत्प्लुतः ॥१६४॥

वह मुलान्त सुनकर कहाजीने वानरेन्द्र अक्षविरजाको किष्किंधा नगरीका उत्तम गजद दे दिया । जहाँपर वह अपने दोनों पुत्रोंके साथ रहने लगा ॥ १५१ ॥ उस अक्षराजके मर जानेपर किष्किन्धापुरीका राजा कपीश्वर बाली हुआ । हे राम ! जो आपने पूछा, मैंने वह सब कह दिया ॥ १५२ ॥ श्रीरामचन्द्र बोले— अब सुशोवको बालीने किष्किन्धासे बाहर निकाल दिया था, उस समय इनके मन्त्री थे वायुनन्दन हनुमान् भी साथ थे ॥ १५३ ॥ पर इनको बालीके समान अपना बल क्यों नहीं पाद आपा ? रामके इस वचनको सुनकर मुनि अगस्त्य फिर कहने लगे— ॥ १५४ ॥ अंजन पर्वतनिवासी केसरी नामसे विख्यात कपिकी दो वानरी स्त्रियें थीं ॥ १५५ ॥ किसी समय उस कपिकी अंजनी नामकी स्त्री वहाँ बैठी थी । इतनेमें अकाशसे किसी गृध्रीके मुखसे छूटकर पायसका एक पिण्ड आ गिरा ॥ १५६ ॥ यह पिण्ड वहीं था जो कि पहले कैकेयो-के हाथसे एक गृध्री छीन ले गयी थी । उस अमृततुल्य पिण्डको वानरीने खा लिया ॥ १५७ ॥ इतनेमें वहाँ वह दूसरी मार्जारास्या वानरी भी आ पहुँची । पतिकी अनुपस्थितिमें वे दोनों क्रीड़ा कर रही थीं । तभी उन दोनोंके वस्त्रोंको पवनने उड़ाकर ऊँचे उठाया तथा उनकी जाँघोंको देख लिया । पश्चात् अंजनीसे प्रार्थना करके उसके साथ वायुने भोग किया ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ उसी प्रकार निर्व्रतने मार्जारास्यासे प्रार्थना करके पर्वतके शिखरपर उसके साथ रति की ॥ १६० ॥ उन दोनोंसे उन दोनोंमें—वानरीसे मारुतात्मज हनुमान् तथा मार्जारीसे घोर धर्धरस्वन पिशाच उत्पन्न हुआ ॥ १६१ ॥ चैत्र शुक्ल एकादशीके दिन मघानक्षत्रमें रिपुदमन हनुमान्-का जन्म हुआ था ॥ १६२ ॥ कुछ परिदित कल्पभेदसे चैत्रकी पूर्णिमाके दिन हनुमान्का शुभ जन्म हुआ, ऐसा कहते हैं ॥ १६३ ॥ वे हनुमान् बाल्यकालमें ही सूर्यको देख तथा उर्ध्व एका पक्ष मग्नकर उसको लेनेकी

योजनानां पञ्चशतं वायुवेगेन मारुतिः । राहुस्तस्मिन्दिने दर्शं ययौ सूर्यं रघूत्तम ॥१६५॥
तावद्दृष्ट्वा भर्तुकामं रवेरग्रे कपिं स्थितम् । तदा राहुर्मयादेव रविं मुक्त्वेन्द्रमाययौ ॥१६६॥

राहुः प्राह शर्चीनाथं सव पीडां करोम्यहम् ।

दत्तः पूर्वं त्वया सूर्यः पीडां कर्तुं सुरेश्वर ॥१६७॥

तत्र विघ्नं समुत्पन्नं तत्त्वं शीघ्रं निवारय । तद्राहुवचनादिद्रः समारुह्य ॥जोषति ॥१६८॥
देवेयुतो ययौ वेगाद्दर्शं प्लवगं पुरः । तदा मुमोष तं वज्रं मघवा मारुतिं प्रति ॥१६९॥

वज्रपातान्मारुतिः स्वात् पपात गिरिकन्दरे ।

तदा भग्ना हनुस्त्वस्य हनुमानिति वै पतः ॥१७०॥

ख्यातिं गतोऽयं सर्वत्र तदा वायुश्चक्रोप ह ।

सात्वयित्वा हनूमतं स्वयं स्तब्धोऽभवत्तदा ॥१७१॥

वायुस्तस्माज्जनाः सर्वे निपेतुर्धरणीतले । त्रैलोक्यं श्रवणजातं हाहाकारोऽभवदिवि ॥१७२॥
तदा धिक्कृत्य देवेन्द्रं वेधा वायुं ययौ जवात् ।

प्रार्थयामास तं नत्वा पुनर्वायु वधोऽब्रवीत् ॥१७३॥

देवेन्द्रस्यापराधं त्वं क्षन्तुमर्हसि कंपन । तव पुत्राय दास्यामि वरानघ हनूमते ॥१७४॥
तदा तुष्टोऽभवद्रायुश्चाल पूर्ववत्पुनः । अभूत्संजीवितं सर्वं त्रैलोक्यं क्षणमात्रतः ॥१७५॥

तदा ददौ वरान् ब्रह्मा मारुतिं पुरतः स्थितम् ।

भविष्यसि त्वममरो वज्रदेहो वरान्मम ॥१७६॥

ते कुंठिता गतिर्माऽस्तु कुत्राप्यंजनिसंभव । भविष्यति हरौ भक्तिस्तव नित्यमनुत्तमा ॥१७७॥
त्वं विष्णोरपि साहाय्यं करिष्यसि वरान्मम ।

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे वेधा राहुः सूर्यं ययौ पुनः ॥१७८॥

इच्छासे लीलापूर्वक ऊपरको उछले ॥ १६४ ॥ उस समय मारुति वायुवेगसे पांच सौ योजन ऊपर उठ गये थे । हे रघूत्तम ! उसी दर्श (अमावस्या) के दिन राहु भी घसनेके लिए सूर्यके पास गया, किन्तु उन्हें पकड़नेकी इच्छासे सड़े हनुमान्को देखा । तब राहु डरा और सूर्यको छोड़कर इन्द्रके पास जा पहुँचा ॥१६५॥१६६॥ शची-पति इन्द्रसे राहु बोला—अब मैं आपको ही सताऊँगा । क्योंकि पूर्वकालमें आपने मुझे सतानेके लिये सूर्यको दिया था ॥ १६७ ॥ परन्तु उसमें इस समय विघ्न उपस्थित हो गया है । अतः उसका आप निवारण करें, नहीं तो मैं आपहीको दुःख दूँगा । इस प्रकार राहुके कयनानुसार इन्द्र गजपर सवार होकर देवताओंके साथ सूर्यके पास गये तो वहाँ उनके सामने हनुमान्को सड़ा देखा । तत्काल इन्द्रने उनके ऊपर वज्रघट्टार किया ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ वज्रके आघातसे हनुमान् नीचे गिरिकन्दरामें जा गिरे और उनकी कुड्डी टेढ़ी हो गयी । जिससे कि उनके हनुमान् नाम पड़ा ॥ १७० ॥ उनका यह नाम सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया । यह देखकर उनके पिता वायुदेवने कुपित होकर अपनी गति बन्द कर दी ॥ १७१ ॥ वायुके बन्द हो जानेसे सब लोग मर-मरकर धरती-पर गिरने लगे । तीनों लोक मृतक जैसे हो गये और देवलोकमें भी हाहाकार मच गया ॥ १७२ ॥ तब ब्रह्मा इन्द्रको धिक्कारकर शीघ्र वायुके पास गये और नमस्कार करके प्रार्थनापूर्वक कहा—॥ १७३ ॥ हे कंपन ! तुम देवेन्द्रके अपराधको क्षमा कर दो । मैं तुम्हारे पुत्र हनुमान्को वर देता हूँ ॥ १७४ ॥ तब प्रसन्न होकर वायु पुनः पूर्ववत् बहने लगा । अतः क्षणमात्रमें तीनों लोक फिर जीवित हो गये ॥ १७५ ॥ पश्चात् ब्रह्माने सामने सड़े मारुतिको वर दिया कि तुम मेरे वचनसे वज्रदेह होकर अमर हो जाओगे ॥ १७६ ॥ हे अंजनीपुत्र ! तुम्हारी गति कहीं भी प्रतिहत न होगी और नित्य श्रीहरिमें तुम्हारी उत्तम भक्ति बनी रहेगी ॥१७७॥ मेरे वरदान-से तुम विष्णुकी सहायता करनेमें भी समर्थ होओगे । इतना कहकर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये और राहु पुनः

श्रीराम उवाच

देवैरेण कथं दत्तो रविस्तस्मै स राहवे । तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्व ममाग्रतः ॥१७९॥

अगस्तिरुवाच

सुधापातादयं राहुर्देवोऽभूदमरः स्वयम् । ग्रहोऽष्टमोऽभवन्सोऽपि यदाऽञ्जलिदधं भुगन् ॥१८०॥

पीडां कर्तुं तदा देवाः ह्ययं सोमं ददुस्तु वै । शात्वा धर्मैर्जनाः सर्वे निजकर्मादिहेतवे ॥१८१॥

भोचाप्यन्ति राहोश्च जनिनं भास्करं प्रति । यदा यदा भवन्त्यपरागा जगतीतले ॥१८२॥

तदा तदा जना धर्मनिजमत्यर्थमादरात् ।

बोधयित्वा सदा राहुं तौ तस्मान्मोचयति हि ॥१८३॥

एतत्सर्वं मया प्रोक्तमुपगतास्य कारणम् । जन्म कर्म वरादानं मारुतेष्वपि विस्तरात् ॥१८४॥

अतस्तद्वलमादान्मयं को वा शक्नोति वर्णितुम् । स एकदा भुनीनां हि चाश्रमेषु दुशादिकान् ॥१८५॥

चकारैतस्तदः सर्वान्धर्वयन्मुनिबालकान् । तस्य तत्कर्म मुनिमिदं दृष्ट्वा शसोऽञ्जनासुतः ॥१८६॥

अद्यत्तमय कपिश्रेष्ठ न ज्ञास्यसि स्वपीरुपम् ।

यदाऽन्यस्य मुखात्स्वीयं बलं श्रोष्यमि विस्तरात् ॥१८७॥

मविष्यति तदा पूर्वस्मृतिस्ते पीरुपं पुनः । अतः सुप्रविमर्शसिष्ये विस्मृतः स्वपराक्रमः ॥१८८॥

यदा स्तुतो जांबवता पुरा प्रायोपवेशने । तदा स्मृतिस्तस्य जाता स्वबलस्य हनुमतः ॥१८९॥

एतत्तं सर्वमाख्यातं त्वया पृष्टं मया तव । यथा तथा सविस्तारं कपिरावणचरितम् ॥१९०॥

राम त्वं परमेश्वरोऽपि सकलं जानासि विज्ञानदृक्

भूतं भव्यमिदं त्रिकालकलनामाक्षं विकल्पोज्झितः ।

भक्तानामनुवर्धनाय सकलां कुर्वन् क्रियामहतिं

चाभृण्वन् मनुजाकुतिर्मेम वचो भासीक्ष लोकचितः ॥१९१॥

सूर्यके पास गया ॥ १७९ ॥ श्रीरामजीने पूछा कि देवेंद्रने सूर्य राहुका क्यों दे दिया था ? हे भुनीन् ! यह क्या आप विस्तारसे कहें ॥ १८० ॥ अगस्त्य ऋषि बोले—हे राम देव राहु पूर्वकालमें सुधापात करके अमरत्वको प्राप्त हो गया था । बादमें जब वह अष्टम ग्रह हो गया, तब उसने देवताओंका दुख देना चाहा । यह देखकर देवताओंने सूर्य तथा चन्द्रमा राहुको दे दिया और यह सोचा कि संसारके लोभ अपने कामके लिए धर्मके द्वारा राहुसे सूर्य तथा चन्द्रमाको छुड़ा लो । उसीके अनुसार सूर्य चन्द्रको जब-जब ग्रहण लगता है, तब तब मनुष्य अपने कार्यसाधनके लिये आदरपूर्वक दान-धर्मसे राहुको संतुष्ट करके उससे सूर्य चन्द्रको छुड़ा लेते हैं ॥ १८०-१८३ ॥ इस प्रकार मैंने ग्रहणका कारण तथा मातृत्विक जन्म-कर्म आदि बृहन्न तत्विस्सार आपको कह सुनाया ॥ १८४ ॥ पूरी तरह हनुमान्के बल-प्रतापका वर्णन कौन कर सकता है । उन्होंने एक दिन मुनियोंके आश्रममें जाकर उनके आचरणको दराया भ्रमकाया और कुशा आदि सब सामग्री इधर-उधर बिखेर दी । उनके इस कामका देखकर मुनियोंने अजनीमूत हनुमान्का शाय देते हुए कहा—य ॥ १८५ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! आजसे तुम अपने पुत्र्यार्यको भूल जाओगे और जब कभी दूसरोंके मुखमें अपना बल विस्तारसे सुनाओ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ तब स्मरण हुआ । वे सुप्रोवके पास रहते समय इसी कारण अपना पुत्र्यार्य भूल गये थे । बादमें समुद्रतटपर उपवासके समय जब जांबवतोंने उनका स्तुति करके उनके बलका स्मरण दिलाया, तब हनुमान्को तुरन्त अपना बल याद आगया था । १८८ ॥ १८९ ॥ यह सब मैंने आपके पूछनेके अनुसार सविस्तार कपि हनुमान् तथा रावणका कार्यकलाप कह सुनाया ॥ १९० ॥ हे राम ! आप परमेश्वर हैं, ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ देखते हैं, विकल्परहित आप भूत भविष्य-वर्तमान तीनों कालका क्रियाके विज्ञ और सबके साक्षी हैं । भक्तोंके अनुरोधसे आप समस्त क्रियाकलाप करते हुए यनुष्य बनकर मेरे वचनको

श्रीशिव उवाच

स्तुतैव राघवं तेन पूजितः कुम्भमम्बरः । स्वाश्रमं मुनिभिः सार्धं प्रययौ शुभविग्रहः ॥१९२॥
विन्ध्याचलं निजं रूपं स मुनिर्नैव दर्शयत् । पुनरुन्यास्यति गिरिश्वेति मत्वा तु तद्गयात् ॥१९३॥

रामस्तु सीतया सार्द्धं भ्रातृभिः सह मन्त्रिभिः ।

संसारोच्चरमानाथो रममाणोऽयमद्गुह्ये ॥१९४॥

अनासक्तोऽपि विषयान् बुभुजे प्रियया सह । हनुमन्प्रभृतेः सद्भिर्वानरैः परिसेवितः ॥१९५॥
राघवे शासति भुवं लोकनाथे रमापतौ । वसुधा तस्यमंपसा कलवतश्च भूरुहाः ॥१९६॥
जनाः स्वधर्मनिरताः पतिभक्तिपराः स्त्रियः । नापश्यन्पुत्रमरणं कश्चिद्राजनि राघवे ॥१९७॥
समारुह्य विमानाग्रयं राघवः सीतया सह । वानरैर्भ्रातृभिः सार्द्धं मंचचारावर्ति प्रभुः ॥१९८॥
अमानुषाणि कर्माणि चकार बहुशो भुवि । लोकानामुपदेशार्थं परमात्मा रघूत्तमः ॥१९९॥
कोटिशः शिवलिंगानि स्थापयामास सर्वतः ।

अश्वमेधादिविविधान् यज्ञान् विपुलदक्षिणान् ॥२००॥

चकार परमानन्दो मानुषं वपुर्गस्थितः । सीतां तां रमयामास सर्वभोगैरमानुषैः ॥२०१॥
सञ्जास रामो धर्मेण राज्यं परमधर्मवित् । कथाः संस्थापयामास सर्वलोकमलापहाः ॥२०२॥
एकादशमहस्याणि सैकादशसमानि च । त्रेतायुगभवान्येव वर्षाणि रघुनन्दनः ॥२०३॥
चकार राज्यं धर्मेण लोकवन्द्यपदांबुजः । कलेभानेन ज्ञेयानि लक्षाण्येकादशैव हि ॥२०४॥
सैकादशशतान्पत्र रामो राज्यं चकार सः । एकपर्त्नीव्रतो रामो राजर्षिः सर्वदा शुचिः ॥२०५॥
यस्यैकमेव तषामीत् पत्नीवाक्यं शरस्तथा । गृहमेधीयमखिलमाचरन् शिक्षितुं नरान् ॥२०६॥
सीता प्रेम्णाऽनुवृत्त्या च प्रश्रयेण दमेन च । भर्तुर्मनोहरा सार्धं भावज्ञा सा दिवा मिया ॥२०७॥

सुनते हैं । हे ईश ! सब लोगोंसे पूजित होकर आप बड़ी ही शोभाको प्राप्त हो रहे हैं ॥ १९१ ॥ श्रीशिवजी बोले- इस प्रकार रामकी स्तुतिकर तथा उनसे पूजा-सत्कार प्राप्त करके गुप्तविग्रह अगस्त्य मुनि सब मुनियोंको साथ लेकर अपने आश्रमको चले गये ॥ १९२ ॥ आते समय मुनिने अपना रूप विन्ध्याचलको इस ढरसे नहीं दिखलाया कि वह कहीं फिर उठकर न खड़ा हो जाय ॥ १९३ ॥ उधर रामचन्द्रजी सीता, मन्त्रिगण तथा भ्राताओंके साथ संसारी जीवोंके समान कीड़ा करते हुए अपने घरमें रहने लगे ॥ १९४ ॥ आसक्त न होते हुए भी अपनी प्रिया सीताके साथ ऐहिक विषयोंका आनन्द लेते रहे । हनुमान् आदि अच्छे वानर श्रीहरि-की सेवामें लग गये ॥ १९५ ॥ रमापति तथा लोकनाथ रामके शासनकालमें घरा घन-धान्यपूर्ण हो गयी, धृष्ट द्यूत फलने लगे ॥ १९६ ॥ मानवगण अपने-अपने धर्मपथपर चलने लगे और स्त्रियें पतिभक्तिपरायणा होकर रहने लगीं । रामके राज्यमें माता-पिताके जीते जी कहींपर पुत्रमरण नहीं होता था ॥ १९७ ॥ वे प्रभु राम-सीता, लक्ष्मण आदि माइयों तथा वानरोंके साथ विमानपर सवार होकर अवनीतलपर विचरते थे ॥ १९८ ॥ पृथ्वीपर उन्होंने अनेक लोकोत्तर कार्य किये । परमात्मा रामने लोगोंको उपदेश देनेके लिए सर्वत्र करोड़ों शिव-लिंग स्थापित किये । परमानन्दस्वरूप परमेश्वर रामने मनुष्यका रूप धारण करके बहुतेरी दक्षिणावासे विविध अश्वमेध यज्ञ किये । मनुष्योंको दुर्लभ अनेक भोगसाधनोंसे रामने सीताको सन्तुष्ट किया ॥ १९९ ॥ २०० ॥ २०१ ॥ परम धर्मज्ञ रामने न्यायपूर्वक राज्यका शासन करके लोगोंके पापोंको दूर करनेवाली अनेक कथाएँ स्थापित कीं ॥ २०२ ॥ त्रेतायुगके ग्यारह हजार वर्ष पर्यन्त लोगों द्वारा बन्दनीय चरणकमलवाले रघुनन्दनने धर्मपूर्वक राज्य किया । कलियुगके हिसाबसे रामने यही ग्यारह हजार वर्षतक राज्य किया । राजर्षि राम सर्वदा पवित्र रहकर एकपत्नीव्रतमें स्थिर रहे ॥ २०३-२०५ ॥ जिनके लिए पत्नीका वाक्य और वाप एक समान था । उन्होंने समस्त गृहस्थाश्रमका कार्य एकमात्र लोगोंको शिक्षा देनेके लिए किया था

युक्ता तं रंजयामास राजानं राघवं मुदा । एवं गिरिद्वजे प्रोक्तं रामराज्योत्थरोद्धवम् ॥२०८॥
 चरितं रघुनाथस्य यथा पृष्टं त्वया भग्न । श्रवणात्मवर्षापपन्नं महामङ्गलकप्रकम् ॥२०९॥

सारकांडमिदं देवि ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ।

तेषां मनोरथाः सर्वे परिपूर्णा भवन्ति हि ॥ २१० ॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितांगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
 अर्वाक्षिरामशिवपार्वतीसंवादे त्रयोदशः सर्गः ॥ १० ॥

प्रथमसर्गे श्लोकाः ॥ १०९ ॥ द्वितीये ॥ ३१ ॥ तृतीये ॥ ३९४ ॥ चतुर्थे १७० ॥ पंचमे ॥ १४० ॥
 षष्ठे ॥ १३० ॥ सप्तमे ॥ १६६ ॥ अष्टमे ॥ १२५ ॥ नवमे ॥ ३१० ॥ दशमे ॥ २७३ ॥ एकादशे
 ॥ २८८ ॥ द्वादशे ॥ २०२ ॥ त्रयोदशे ॥ २१० ॥ एवं सारकाण्डस्य पूर्णश्लोकसंख्या ॥ २५५८ ॥

॥ २०६ ॥ सीता प्रेमके अनुकूल वर्तावसे, नञ्जतासे, लज्जासे, डरसे, पातिव्रत धर्मसे, मनोहरभावसे तथा
 पतिके मनोभावकी जानकारी उसके अनुसार व्यवहारसे राजा रामकी प्रेमपूर्वक आनन्दित करने लगीं ।
 हे गिरिद्वजे ! इस प्रकार मैंने तुमको रामके राज्यकालके बादका सब वृत्तान्त कह सुनाया, जैसा कि तुमने
 पूछा था । यह रामचरित श्रवणमानसे सब पाषोंका नाशक तथा महामङ्गलकारी है ॥ २०७-२०९ ॥ हे
 देवि ! जो लोग इस सारकांडको श्रद्धासे सुनते हैं, उन नरथेष्टोंके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं । इसमें तनिक
 भी सन्देह नहीं है ॥ २१० ॥ इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितांगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
 अर्वाक्षिरामशिवपार्वतीसंवादे पंच रामतंजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकाया त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

इस सारकाण्डके पहिले सर्गमें १०९ श्लोक, दूसरेमें ३१, तीसरेमें ३६४, चौथेमें १७०, पाँचवेंमें
 १४०, छठेमें १३०, सातवेंमें १६६, आठवेंमें १२५, नवमें ३१०, दसवेंमें २७३, ग्यारहवेंमें २८८, बारहवेंमें
 २०२ तथा तेरहवेंमें २१० श्लोक हैं । इस प्रकार इस सारकाण्डमें कुल २५५८ श्लोक हैं ।

* इति श्रीमदानन्दरामायणे सारकाण्डं समाप्तम् *

श्रीरामचन्द्रार्पणम्स्तु



श्रीरामचन्द्रो विजयतेतराम्

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽहया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

—ॐ—

यात्राकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(रामायणकी उत्पत्तिका वृत्तान्त)

श्रीपार्वत्युवाच

सारकांडं त्वया शंभो कीर्तितं बहुपुण्यदत्तम् । मया श्रुतं तु पृच्छामि यत्तद्वक्तुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥
कथं कृता वाजिमेधा राघवेण वलीयमा । रामादीनां चतुर्णां हि बन्धूनां सन्ततिं वद ॥ २ ॥
स्वपुत्रबन्धुपुत्राश्च कथं स्त्रीभिः सुयोजिताः । दशवर्षमहमाणि दशवर्षशतानि च ॥ ३ ॥
तथैकादश वर्षाणि त्रेतायुगभवानि हि । राज्यं कुत त्वया प्रोक्तं विस्ततराद्वस्व माम् ॥ ४ ॥
यानि यानि चरित्राणि राघवेण कृतानि हि । ताति तानि हि कुत्सनानि विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥
इति देविवचः श्रुत्वा शंभुस्तां पुनरब्रवीत् ।

श्रीमहादेव उवाच

मम्यक् पृष्टं त्वया देवि राघवस्य कथानकम् ॥ ६ ॥

ममापि हर्षः संजातस्तद्वदामि तवान्तिकम् । चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ७ ॥
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् । वाल्मीकिना कृतं पूर्वमेकदा तद्वदामि ते ॥ ८ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीपार्वताजी बोली—हे शंभो ! आपने अतिपुण्यदायक सारकाण्डकी जो कथा कहा, सो मैंने सुनी । परन्तु अब मैं जो आपसे पूछती हूँ, वह कृपा करके कहें ॥ १ ॥ बलवान् रामने अश्वमेधयज्ञ किस प्रकार किये ? राम आदि चारों भाइयोंकी कोन-कोन-सी सन्ततियां हुईं ॥ २ ॥ रामने अपने पुत्रों तथा भाइयोंके पुत्रोंका किस प्रकार और कौत-कोन सी स्त्रियोंके साथ विवाह किया ? आपने कहा है कि रामने त्रेतायुगमें ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । अतएव ये सब बातें विस्तारपूर्वक कहें ॥ ३ ॥ ४ ॥ रामने जो जो चरित्र किये हो, वे सब आपके द्वारा सविस्तार कहनेके योग्य हैं ॥ ५ ॥ देवीके इस वचनको सुनकर शम्भुने कहा । श्रीमहादेवजी बोले—हे देवि ! तुमने बहुत अच्छा किया कि जो रामकी कथा पृछी ॥ ६ ॥ इससे प्रसन्न होकर मैं तुमको रघुनाथजीका सौ करोड़ श्लोकोंमें कहा हुआ चरित्र सुनाता हूँ ॥ ७ ॥ जिसका कि एक-एक अक्षर पुरुषोंके महात् पापोंको नष्ट करनेवाला है । वाल्मीकिने जो कार्य

वाल्मीकिस्त्वेकदा स्नानं जगाम तमसां नदीम् । शिष्येण सहितो गन्वा भूमीं स्थाप्य कमंडलुम् ॥ ९ ॥
 आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधिं ततः । यावद्वच्छति स्नानार्थं दर्भगाणिः स वै मुनिः ॥ १० ॥
 नावददर्श तमसार्जारे कौतुकमुत्तमम् । कौचयुग्मे हतः कौचो निषादेन पतन्निना ॥ ११ ॥
 कौची शोकममाविष्टा विललापानिदुःखिता । विप्लवा पतिना तेन द्विजेन महचारिणा ॥ १२ ॥
 ताम्रशीर्षेण मनेन पन्निना सा हतेन च । तथाविधं द्विज दृष्ट्वा निषादेन निषानितम् ॥ १३ ॥
 ऋषेर्धर्मान्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत । ताः करुणयाऽऽविष्टस्त्वधर्मोऽपमिति द्विजः ॥ १४ ॥
 निशम्य रुदन् कौचीमिदं वचनमब्रवीत् । सा निषादप्रतिष्ठां न्यमगमः शाश्वतोः समाः ॥ १५ ॥
 यत्कौचमियुनादेकमवधीः काममोहितम् । तस्येत्थं ब्रूयतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः ॥ १६ ॥
 शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया । चिंतयन्म महाप्राज्ञश्चकार मनिमान् मनिम् ॥ १७ ॥
 शिष्यं चैवात्रवीढाक्यमिदं स मुनिपुंगवः । पादवह्नीऽश्रममस्तवीलयममन्त्रिनः ॥ १८ ॥
 शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा शिष्यस्तु तस्य ब्रूयतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम् ॥ १९ ॥
 प्रतिजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः सोऽपिपेक ततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन्वथाविधि ॥ २० ॥
 तमेव चिंतयन्नर्थप्राप्तयेत वै मुनिः । भारद्वाजस्ततः शिष्यो विनीतः श्रुत्वाङ्गुलिः ॥ २१ ॥
 कलशं पूर्णमादाय ग्रहृष्टश्च जगाम ह । स प्रविश्याश्रमपदं शिष्येण सह धर्मवित् ॥ २२ ॥
 उपविष्टः कथाश्चान्याश्चकार ध्यानमास्थितः । तत्राजगाम लोकानां कर्ता ब्रह्मा स्वयं प्रभुः ॥ २३ ॥

पहिले एक समयमें किया था, सो तुम्हें सुनाना है ॥ ९ ॥ एक समय वाल्मीकि मुनि अपने शिष्य भारद्वाजको साथ लेकर तमसा नदीपर स्नान करनेके लिए गये वे रास्तेमें जम-नपर कमंडलु रख तयार आवश्यक शौच आदि कर्मसे निवृत्त होकर ज्यों ही हाथमें कुशा ग्रहण करते स्नान करनेके लिए चले ॥ १० ॥ त्यों ही उन्होंने तमसा नदीके तटपर एक उत्तम कौतुक दखा । वह यह कि एक निषादेन वाणसे कौच तथा कौचोके जीड़मेंसे श्रीच (वगुने) को भार डाला ॥ ११ ॥ सब कौचा शोकानुर होकर अतिदुःखसे विलाप करने लगे । यह बेचारी अपने सहचर, तामेके समान लाल मस्तकवाले, मत्त और वाणसे मारे गये अपने पति पक्ष से विप्लुड गयी थी । निषादके द्वारा मारे गये उस पक्षीकी दशा देखकर धर्मात्मा वाल्मीकि ऋषिके मनमें बड़ी करुणा उत्पन्न हुई । पश्चात् उस श्रीचोके दयाजनक रुदनको सुननेसे करुणाकान्त हो और 'यह बड़ा अधर्म हुआ' ऐसा विचारकर मुनि वाले-॥ १२-१४ ॥ अरे निषाद ! तूने एक कामासक्त जोड़ेके कौच पक्षीको मार डाला है । इसलिए तू भी अनेक वर्षोंतक प्रतिष्ठाको नहीं प्राप्त हागा अर्थात् बहुत काल पर्यन्त ओवित नहीं रहगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार अनुष्टुप्-छन्दोबद्ध वाणी सहसा अपने मुखसे निकल पड़नेके कारण आश्चर्यचकित तथा श्रीचके शाकुसे पीड़ित उन ऋषिके मनमें 'ओह ! इस निषादको मैंने यह क्या कह दिया । इसमें तो मुझे बड़ा भारी पाप लग गया' ऐसी चिन्ता होने लगी ॥ १६ ॥ ओह ! यह तो मुझसे बड़ा भारी अपयश देनेवाला काम हो गया । ऐसी चिन्ता करते हुए मनमें कुछ निश्चय करके महामतिमान् मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिने अपने शिष्य भारद्वाजसे कहा-॥ १७ ॥ वत्स ! शोकवश हाकर मैंने निषादको शाप दे दिया । यह हुआ तो अनुचित, तथापि शोकसे दुःखित होनेके कारण मेरे मुखसे आठ बहारोंवाले चार चरणोंयुक्त समान पदोंसे विशिष्ट तथा ताल-स्वरपर गाने योग्य यह अनुष्टुप् छन्द श्लोकरूपमें (यशस्वमें) ही प्रवृत्त हो अपयशस्वरूप न हो ॥ १८ ॥ पश्चात् मुनिके इन श्रेष्ठ वाक्यों सुनकर उनके प्रसन्नवदन शिष्य भारद्वाजने 'यह श्लोक आपके इच्छानुसार यशस्व है होगा' ऐसा कहकर उनकी बातका समर्थन किया । इससे वाल्मीकि उनके ऊपर प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ तदनन्तर तमसा नदीके जलमें यथाविधि स्नान आदि कृत्य करके वे महर्षि 'मेरा अपयश कैसे यशस्वमें परिणत हो जाय' ऐसा विचार करते हुए अपने आश्रमकी ओर चल दिये ॥ २० ॥ उनके पीछे उनके विद्वान् और विनम्र शिष्य भारद्वाज भी जलका बड़ाभरकर चल पड़े ॥ २१ ॥ आश्रममें पहुँचनेपर भी वे "निषादको दिया हुआ शाप यशस्वमें कैसे परिणत हो" इसी बातका मनमें

चतुर्धृता महातेजा द्रष्टुं च मुनिपुंगवम् । बाल्मीकिरपि तं दृष्ट्वा सहस्रोत्थाय बाध्यतः ॥२४॥
 प्राञ्जलिः प्रयतो भूत्वा तस्यां पद्मविस्मितः । पूजयामास हं देवं पाद्याभ्यासनवदनैः ॥२५॥
 प्रणम्य विधिवन्वैनं दृष्ट्वा चैव निगमयम् । अथोपविश्य भगवानासने परमाचिन्ते ॥२६॥
 महर्षये बाल्मीकये सदिदेशामनं ततः । ब्रह्मणा समनुशातः सोऽप्युपाविप्रदासने ॥२७॥
 उपविष्टे तदा तस्मिन् साक्षाल्लोकपितामहे । उद्भूतेनैव मनसा बाल्मीकिर्भ्यान्मास्थितः ॥२८॥
 पापान्मना कृतं कष्टं वैरग्रहणबुद्धिना । यस्तादृशं चाकुरवं कौचं हन्यादकारणम् ॥२९॥
 शोचमेवं पुनः कौचीमुपश्लोकमिमे जगौ । पुनरतर्गतमना भूत्वा श्लोकपरायणः ॥३०॥
 तद्ब्रुवाच ततो ब्रह्मन् प्रहमन् मुनिपुंगवम् । श्लोक एव त्वया बद्धो नात्र कार्या विचरणा । ३१॥
 मन्त्रछन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तये सारस्वती । रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम ॥३२॥

धर्मान्मनो गुणरत्नो लोके रामस्य धीमतः ॥३३॥

पूतं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम् । रहस्यं च प्रकाशं च यद्ब्रुवं तस्य धीमतः ॥३४॥
 रामस्य सह सौमित्रैः कीशानां रक्षसां तथा । वेदेद्याश्चैव यद्ब्रुवं प्रकाशं यदि वा रहः ॥३५॥
 तच्चाप्यविदितं मयं विदितं ते भविष्यति । न ते बाधनृता काल्ये काचिदत्र भविष्यति ॥३६॥
 कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धा मनोरमाम् । यावन्म्यास्पति गिरय सरितश्च महोत्तले ॥३७॥
 तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति । यावद्रामायणकथा त्वन्कुला प्रचरिष्यति ॥३८॥

विचार करते हुए वे धर्मज्ञ मुनि शिपरिके साथ बैठकर अन्यान्य बातें करने लगे ॥ २२ ॥ इतनेमें वही समस्त लोकोंके कर्ता बनपुत्र प्रभु महानजम्बी ब्रह्मा उन मुनिप्रेम्णसे मिलनेके लिए आ पहुँचे ॥ २३ ॥ उनको भवानक बातें देखकर बाल्मीकि मुनि विस्मयान्वित तथा अवाक् हो गये । परन्तु वे तुरन्त हाथ आँडकर नम्रतासे उनके सामने बड़े हो गये ॥ २४ ॥ ब्रह्मान् धीरेसे मनको स्थिर करके मुनिन ब्रह्माजीसे कुशल समाचार पूछा तथा पाद्य, अर्घ्य, आसन, स्तुति, प्रणाम आदिसे उनका सत्कार किया । ब्रह्माजीने भी उनके रूप आदिका कुशल पूछा और अपने लिए बिछाये हुए आसनपर स्वयं बैठकर बाल्मीकिजीको भी आसनपर बैठनेके लिए कहा । लोकोंके साजान् पितामह ब्रह्माजीके आसनपर बैठ जानपर उनकी आज्ञासे बाल्मीकि ऋषि भी बैठ गये ॥ २४-२७ ॥ किन्तु उस समय भी उनका मन शीघ्रक्षीके विषयमें ही साँप रहा था कि पापों अन्त करण तथा निर्दोष जीवोंपर मिथ्या वैरभाव रखनेवाले उस ध्यायने यह बड़ा कष्टप्रद काम किया ॥ २८ ॥ जो कि सुन्दर बोली बोलनेवाले, निर्दोष तथा कामके वशीभूत उस पत्नीको बिना कारण ही मार डाला और मैने भी उस श्रावको शाप दे दिया, सो भी बड़ा खराब काम हुआ । ऐसे विचारमें मान और लोकमें दूब हुए बाल्मीकि ऋषिक शोक करने हुए फिर वही बात मनमें सोचने लगे । बादमें उन्होंने ध्यायको शाप देते समय जो श्लोक कहा था, उसीको उन्होंने ब्रह्माजीके सम्मुख कहा । उसको सुनकर ब्रह्माजी हैसकर मुनिसे कहने लगे ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारा एकाएक कहा हुआ यह श्लोक बगके करने परिणत हो जायगा । इसमें तुम तनिक भी संशय न करना । वह तो मेरी इच्छा तथा प्रेरणासे ही तुम्हारे मुखसे यह सारस्वती प्रवृत्त हुई है ॥ ३१ ॥ हे मुनीश्वर ! तुम मेरी आज्ञासे धर्मान्मा भगवान् असिललोकके स्वामी परम बुद्धिमान् राजा रामका संपूर्ण चरित्र रचो ॥ ३२ ॥ धर्मवाली तथा बुद्धिमान् रामका जो चरित्र तुमने नारदसे सुना है, वह तथा और जो गुप्त या प्रकट चरित्र हो, उसको तुम रखकर प्रकाशित करो ॥ ३३ ॥ सुमित्रामृत लक्ष्मण सहित रामचन्द्रक, बाजरोका, सब राजसोक तथा शीताका गुप्त अथवा प्रकट जो जो गुणान्त तुम न जानते होये, वह सब भी मेरी कृपासे जान जाओगे और रामके चरित्रसे घरे हुए उस काव्यमें निहित तुम्हारी बायी असंख्य नहीं होगी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तुम ऐसे श्लोकोंमें ही मनको आनन्द देनेवाली पवित्र रामकथा लिखो । जबतक संसारमें नहीं-संबंध रहेगी, जबतक तुम्हारी रची हुई रामकथा भी लोगोंमें प्रचारित होती रहेगी । जबतक तुम्हारी रची हुई रामकथा पृथ्वीमण्डलपर स्थित रहेगी, जबतक तुम मेरे ऊपरके तथा नीचेके सब लोकोंमें

तावदूर्ध्वमधश्च स्वं मल्लोकेषु निवन्स्यमि । इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा स्वयं रामस्य धीमतः ॥३९॥
 चरित्रं श्रावयामास वेदवाङ्मयैः सुपुण्यदैः । ततस्तेनादितो ब्रह्मा तत्रैवांतरधीयत ॥४०॥
 ततः सशिष्यो भगवान् मुनिर्विस्मयमाययौ । तस्य शिष्यास्ततः सर्वे जगुः श्लोकमिमं पुनः ॥४१॥
 मुहुमुहुः श्रापमाणाः प्राहुश्च भृशविस्मिताः । समाक्षरंश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा ॥

सोऽनुचयाहरणाद्भूयः शोकः श्लोकचमारावः । ४२॥

तस्य बुद्धिरियं जाता महर्षेर्भाषितात्मनः । कुन्स्नं रामायणं काम्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥४३॥
 उदारवृत्तार्थपदमनोर्मैस्तदाऽस्य रामस्य चकार कीर्तिमान् ।
 समाक्षरैः श्लोकवैर्यैश्चास्वनो मुनिः स काव्यं शतकोटिममितम् ४४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे

श्लोकात्पत्तिरामायणकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

श्रीशिव उवाच

वाल्मीकिना कृतं देवि शतकोटिप्रविस्तरम् । रामायणं महाकाव्यं जगद्गुर्मुनयश्च ते ॥ १ ॥
 आश्रमे सत्पठति स्म कथयन्ति स्म ते मुदा । तच्छ्रोतुममराः सर्वे विमानैश्च दिवि स्थिताः । २ ॥
 श्रुत्वा सर्वं सविस्तारं वाल्मीकिं पुण्यवृष्टिभिः । वयमुर्जयशब्दस्ते प्रशशसुर्मुनीश्वरम् ॥ ३ ॥
 ततो देवाः संगंधर्वा यक्षा नागाः सकिन्नराः । मुनीश्वरा गुह्यकाश्च पार्थिवाः पद्मभस्त्वहम् ॥ ४ ॥
 परस्परं ते कलहं चक्रुः कार्थ्यार्थमादरात् । ब्रह्माद्या निर्जराः सर्वे पन्नगान्दित्तिजान्नसान् ॥ ५ ॥
 वयं काव्यं विनेष्यामो दिवं वाल्मीकिना कृतम् । दित्तिजाः पन्नगाः प्रोक्षुर्विनेष्यामो रसातलम् ॥ ६ ॥

सुखसे रहोगे । इतना कहकर स्वयं भगवान् ब्रह्माने पुण्यप्रद वेदवाक्यों द्वारा बुद्धिमान् रामका चरित्र उन्हें कह सुनाया । पश्चात् मुनिसे पूजित होकर ब्रह्मा वहीपर अन्तर्धान हो गये ॥३६-४०॥ तब शिष्यों सहित भगवान् वाल्मीकि मुनिकी बड़ा भारी विस्मय हुआ और उनके शिष्य उस श्लोकको बारम्बार आनन्दसे गाने लगे ॥ ४१ ॥ महर्षिने समान अक्षरोवाला तथा चार चरणों युक्त जिस श्लोकको गाया था, उसको ये शिष्य भी प्रसन्न होकर आश्रयसे परस्पर कहने-सुनने लगे ॥ ४२ ॥ उस श्लोकका मुनि शोकवश बार-बार कहते थे । अन्तमें वही शोक श्लोक (यक्ष) रूपमें परिणत हो गया । पश्चात् उन शृद्धात्मा महर्षिकी यह इच्छा हुई कि मैं इसी प्रकारके श्लोकोंमें समस्त रामायणका निर्माण करूँ । ४३ ॥ अन्तमें उन कीर्तिमान् मुनिने मनको आनन्द देनेवाला तथा जिससे उदार चरित्र भरे अयोका ज्ञान प्राप्त हो, ऐसे पद और समान अक्षरोंवाले सौ करोड़ श्लोकोंवाला यशस्वी रामका काव्य (रामायण) रचा ॥ ४४ ॥ इति श्रीशतकोटि-रामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे भाषाटीकायां श्लोकोत्पत्तिरामायणकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीशिवजी बोले-हे देवि ! वाल्मीकि मुनिका बनाया हुआ सौ करोड़ श्लोकात्मक उस महाकाव्य रामायणको सब मुनियोंने अपनाया और वे हृष्यपूर्वक उसे अपने आश्रमोंमें पढ़ने तथा सुनने लगे । उसको सुननेके लिए सब देवता विमानोंमें बैठकर आकाशमें छा गये ॥ १ ॥ २ ॥ उन लोगोंने विस्तारपूर्वक सम्पूर्ण रामायण सुना और मुनीश्वर वाल्मीकिकी स्तुति करके अयजघकार करते हुए उनपर पुण्यवृष्टि की ॥ ३ ॥ बादमें देवता, गंधर्व, यक्ष, नाग, किन्नर, मुनिमण, गुह्यक, राजे-महाराजे, ब्रह्मा तथा मैं सब एक साथ उस रामायण महाकाव्यकी प्राप्तिके लिए परस्पर आदरपूर्वक झगड़ने लगे । ब्रह्मादि देवता पन्नगों, दैत्यों तथा मनुष्योंसे कहने लगे कि इस वाल्मीकीय काव्यको हमलोग स्वर्गमें ले जावेंगे । दैत्य तथा पन्नग कहने लगे कि हम

वयं काव्यं शश्वन्म्य चार्तिं पावन शुभम् । श्रुयोश्चराः सभूशलाः प्रोचुः काव्य हि भूतलान् ॥७॥
 नेतुं रसातल स्वर्गं न दास्यामा वय न्विदम् । काव्यार्थमिति ते चक्रुः कलहं रोमहृषणम् ॥८॥
 ततो देवि जनान् मर्शान्निशयं वचनैर्निर्जितः । गन्वाऽहं तस्तु क्षीराब्धौ शेषयङ्कशापिनम् ॥९॥
 विष्णुं स्तुत्वा तु वदोक्तैर्मन्त्रैर्नानाविधैरपि । नानापूजोपहारैश्च पूजयित्वा सविस्तरम् ॥१०॥
 कृतवान् गातवाद्यादि तेन विष्णुर्वबुध्यत । पप्रच्छ मां तदा विष्णुः किमर्थं बोधिनोऽस्म्यहम् ॥११॥
 पूनं सर्वं मया देवि कथितं तन्मविस्तरम् । काव्यार्थं कलहं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः ॥१२॥
 त्रिधा विभज्य काव्यं तन् स्रग्वन भक्तवन्मलः । त्रयस्त्रिंशच्छ्लोकैलक्षमहस्त्राणि पृथक् पृथक् ॥१३॥
 श्रुतानि स्त्रीणि श्लोकांश्च त्रयस्त्रिंशच्छ्लोकावदान् । दशाक्षरमिनान्मन्त्रान्यमजयत रमापतिः ॥१४॥
 द्वेऽक्षरे याचमानाय मयं शेषे ददौ हरिः । उपादिशाम्यहं काव्यां तेऽन्नकालं नृणां भूमी ॥१५॥
 रामेति तारक मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति । लक्ष्मीगरुडशेषेभ्यो याचमानेभ्य आदरान् ॥१६॥
 मन्त्रप्रयं पृथक् विष्णुर्ददौ तेभ्योऽनिहपितः । शेषान् निनाय पातालं लक्ष्मीर्वैकुण्ठमदरान् ॥१७॥
 पृथिव्यामेव गरुडस्तं दधार महामनुम् । प्रापुः शेषान्पन्नगाद्याः सर्वे पानालशामिनः ॥१८॥
 स्वर्गं प्रापुर्महलक्ष्म्यास्त मनुं निजरादयः । तार्क्ष्यान्प्रापुर्महामन्त्रं सर्वे भूतलशामिनः ॥१९॥
 मन्त्रशालात्तन्मन्त्ररूपं शेषं गुह्यं गिरान्द्रजे । ततः पूर्वविभागान्म ददौ विष्णुः पृथक् पृथक् ॥२०॥
 एवं विभागं देवेभ्यो द्वितीयं पारमश्वरः । सुनीश्वरेभ्यो नागेभ्यश्चराय भगमुनमम् ॥२१॥
 ततो देवा निज भागं स्वर्गं निन्दुर्मृदा न्यताः । पाताले पन्नगाद्याश्च निन्दुर्भागां सुत निजम् ॥२२॥

लोग इस रसातलम से जायग ॥ ४-६ ॥ क्योंकि इस यात्राम पवित्र तथा सुन्दर रामचरित्र वर्णित है । तब राजा-प्रजा और ऋषि लोगोंने कहा कि हम इस काव्यका भूतलपरमे न त स्वर्गमें ले जाने देंगे और नहीं पातालमें । इस प्रकार वे सब रागावणक लिए परस्पर रामहृषण वागुद्ध करने लगे ॥ ७ ॥ ८ ॥
 हे देवि ! पञ्चान् मैने उन सबको लगला बुझाकर बलहू करनेसे रोका और उन सबका माय सेकर मैं क्षार-समुद्रमें शेषरुध्यापर जायन करनेवाले विष्णुभगवान्क पास गया और नाना प्रकारका पूजा की वन्दुत्रेम विस्तारपूर्वक पूजा करके अनेक वेदमन्त्रासे उनका स्तुति की ॥ ९ ॥ १० ॥ तदनन्तर उनका सामने बाजे राजावर गाना प्रारंभ किया । उससे विष्णु भगवान् जागे और कहने लगे कि मुझसे मुसका। बगे जगया ? ॥ ११ ॥ १२ ॥
 देवि ! तब मैने सब हाल साफ साफ कह सुनाया । जगन्निता विष्णुभगवान् रामायण महाकाव्यक लिए होन-वाले बलहूका मुनकर हंस पड़े ॥ १२ ॥ उन भक्तवन्सल भगवान्ने क्षणधरमे उस काव्यके तीन भाग कर दिये । उनमसे प्रत्येक भाग तैंतीस कराड़ तैंतीस लाख, तैंतीस हजार तान सौ तैंतीस बलाकोका बना । उन रमावलिने दस दस अक्षरोवाले मंत्रोका सो विभाजन किया ॥ १३ ॥ १४ ॥ बाकी दो अक्षर श्रीहृत्वि दा हा बलगेको याचना करनेवाले मुस (शिव) का द दिया । मैं काशोमें रहता हुआ अंगकालमे उन्हीं दो अक्षरोका मनुष्योके कानमे उपदेश करता हूँ ॥ १५ ॥ हे पावता ! उन दो अक्षरोको ही तुम 'राम' नामका तारक-मन्त्र समझो । अर्थात् वही दा अक्षरका 'राम' यह तारक मन्त्र है । पञ्चान् बड़े आदरमे मागने-पर विष्णु भगवान् अनिशय प्रसन्न होकर लक्ष्मी गरुड और शेषन गका भी अलग-अलग तीन मन्त्र प्रदान किये । शेष भगवान् अपन मन्त्रका पातालम लक्ष्मी वैकुण्ठमे और गरुड उस महामन्त्रको बही बावसे पृथ्वीपव से गये ॥ १६ ॥ १७ ॥ शेषक द्वारा पातालम गया हुआ मन्त्र पातालवासी नागोका प्राप्त हो गया ॥ १८ ॥ स्वर्गमे लक्ष्मीक द्वारा वह मन्त्र सब देवताओका मिल्य और भूतलवासी लोगोको वह मन्त्र गरुडसे प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ हे गिरान्द्रजे ! उन मंत्रोका गुणम्यकर मन्त्रशास्त्रोसे जाना जा सकता है । तदनन्तर रामायणके किये हुए तानो भागोको विष्णुने अलग-अलग बाँट दिया ॥ २० ॥ उनमसे तैंतीस करोड़ तैंतीस लाख तैंतीस हजार तान सौ तैंतीस ३३३३३३३३३३ मन्त्रोका एक भाग उन्हीं देवताओको दिया । ३३३ ३३३३३ का दूसरा भाग मुनीश्वरोका पृथ्वीतलके लिए दिया और ३३३३३३३३३ का तीसरा भाग नागोको दिया ॥ २१ ॥

आर्षाद्भगो मुनीनां हि पृथक्वां गिरिवरात्मजे । तस्यापि विस्तर वक्ष्ये विभक्तो विष्णुना यथा ॥२३॥
 समद्रापेषु सर्वेषु विभक्तः समधा पुनः । तद्यथावारं लक्षणं पट्टमस्तुतिमितानि हि ॥२४॥
 महत्त्वाणि तथैवानिश्चिन्तयेत् तथा पुनः । महत्त्वानिश्चिन्तिताः श्लाकाश्चेत पृथक् पृथक् ॥२५॥
 विभक्तं समधा देवि मतर्हं पेषु विष्णुना । अतुःश्लोकाः शेषभूता याचमानाय वेधसे ॥२६॥
 इहा विष्णुस्तुष्टमना निजभक्त्यै भक्तितः । पुष्करद्रापभागश्च वर्षयोर्द्विविधः कृतः ॥२७॥
 कोट्या द्वां क्षष्ट्रिचत्तल्लक्षणं हि तथा पुनः । महत्त्वाणि नयैवाथ तथा पचशतानि हि ॥२८॥

त्रयाविंशत्य नै श्लाकाः षोडशाक्षरज्ञो मनुः ।

एव द्विधा कृतो भागो विष्णुना वर्षयोस्त्वह ॥ २९॥

शाकद्रापार्द्रापाना पचानां च पृथक् पृथक् ।

सममपि च येषु समं हरिणा यथा । तत्तद्भागा विभक्ताश्च ताञ्छृणुष्व ब्रवीम्यहम् ॥३०॥
 भष्टपष्टि हि लक्षानि महत्त्वं द्वे शतानि हि । समं च तथा श्लोका एकविंशच्छुभप्रदाः ॥३१॥
 विभक्त्य पट्टसु द्वापेषु हरिर्णमः चत्वारिंशत् । त्र्यम्बुद्रापगतो भागो नववर्षेषु सादरम् ॥३२॥
 विभक्तो विष्णुना देवि यथा श्वं च ब्रवीम्यहम् । द्विपचशात् लक्षानि तथा गिरिवरात्मजे ॥३३॥
 महत्त्वाण्येकवर्तिश्लोकाः पञ्च तथा पुनः । सप्ताक्षरमत्रा सत्रास्त्वव हि नवधा कृताः ॥३४॥
 शेषमेकमक्षर श्रीरिति सर्वत्र विष्णुना । नववर्षेषु तत्पत्तं तत्सर्वत्र न्योजयत् ॥३५॥
 नानानामसु मन्त्रेषु न तस्य नियमः कृतः । विभज्येति महाविष्णुरदृश्यमगमत्तदा ॥३६॥
 अग्रे कालान्तरे देवि दशास्यो बुद्धिमनसः । निजबुद्धिवल्लभे वेदानां च पृथक् पृथक् ॥३७॥
 शतश्रेष्ठं खण्डानि कल्पिष्यति ऋद्धिमे च । तान्वा मदधिया विप्रा भरिष्यन्तीति वै कली ॥३८॥

देवता अपने भागको बड़ी प्रमत्ततासे देवताओं के ले गये । पत्रगण अपने भागको सहर्ष पातालमें ले गये । हे गिरिवर ! उसका तीसरा हिस्सा पृथ्वावर रह गया । उस पृथ्वीतलक भागका भा जिस प्रकार विष्णु-भगवान् बाँटा था हम तुमसे विस्तारसे कहूँगा । ॥ २२ ॥ २३ ॥ उस पृथ्वीतलक भागका विष्णुने पृथ्वी के सात द्वीपों में बाँटा । उनमें से हर एक द्वीपका चार करोड़ छहत्तर लाख उर्मीस हजार सेंताछ स । (४७६१६०४०) श्लोक दिये । उन भागोंमें से चार द्वीप चार श्लोक विष्णु प्रसन्न होकर अपने भक्त ब्रह्माको भक्तिपूर्वक माँगपर दे दिये । उन भागोंमें से भा पुष्करद्रापवाल भागक दो भाग किये ॥ २४-२७ ॥ पुष्कर-द्रापक अगले दो वर्षों खड़ा, का दो करोड़ अठ्ठास लाख नौ हजार पाँच सौ तईस (२३८९५२३) षोडशाक्षर मन्त्रों के अन्व-अला करके दे दिये । २८, २९ ॥ पश्चात् विष्णुभगवान् शाकद्राप, कौचद्राप, शाकद्राप, पञ्चद्राप और कुण्डार इन पाँच द्वीपों के हिस्साका भी उससे से हर एकक अन्तर्गत नौ-नौ दश में बाँट दिया । उनका कि गनानेकतना मिला था कहूँगा मैं ॥ ३० ॥ उनमें से हर एक वर्षको अठ्ठास लाख दो हजार सात सौ एककास (६८०२७२१) सुन्दर श्लोक प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ इस प्रकार श्रीहरिने छः द्वीपों के भागोंको विभक्त करनेके अनन्तर सातवें जम्बूद्वीपक भागका भा उसके अन्तर्गत भारत आदि नौ वर्षोंको बड़े प्रेमसे बाँट दिया ॥ ३२ ॥ हे देवि, जैसा विष्णु उसका विभाजन किया, वह तुमसे कहता हूँ । हे गिरिवरात्मजे ! आवन लात्त एवमन्वय द्वार पाँच (५१६१००५) सप्ताक्षरमन्त्रक मन्त्ररूप श्लोक उन्होंने बराबर-बराबर नौ भागोंमें बाँटकर नवां खण्डोंका दे दिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ शेष वच "श्री" इस एक अक्षरको विष्णुने नवों खण्डोंके लिए छाड़ दिया । यह सब प्रकारके मन्त्रोंमें लगाया जा सकता है । इसका कोई नियम नहीं है । इस प्रकार विभजन करनेके बाद विष्णुभगवान् अदृश्य हो गये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे देवि ! आगे चलकर कलियुगमें बुद्धिमानोंमें अष्ट दशवदन राजग कर्म बुद्धिमान, व्याकुलचित्त तथा अल्पायु शास्त्रियोंको देखकर अपनी बुद्धिके प्रभावसे वेदोंके सैकड़ों भाग अलग-अलग करके उन शास्त्रियोंके

क्षीणायुषो व्यग्रचित्तास्तेषां योग्यानि गन्तव्यं श्रीकृष्णेऽपि पुनर्देहि व्यामदपश्यो भुवि । ३९ ।
 मानवानो हि न रथाय काव्याद्रामायणान्पुनः । भगवद्भारतवर्षान्तरैस्तच्च विविधानि हि ४० ।
 पृथक् पृथक् समदश पुगणानि कल्पयन्ति । भगवन् विनिर्द्दामं च सहस्रेषु कल्पयन्ति । ४१ ।
 भागाद्भारतवर्षान्तर्गतान्मारं विगृह्य च । स व्यासो भगवन्तैश्च यदा शान्तं न गच्छति । ४२ ।
 सरस्वत्यामन्ते व्यासो बभूवितो भविष्यति एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा नामदाय महान्तरे । ४३ ।
 चतुःश्लोकाविष्णुर्लक्षणपदेन कल्पयति । लब्ध्वा तान् नामदधारि मूर्तिषां गणयन्मुहुः । ४४ ।
 कीर्तयन् मुच्यते गत्वा मूर्तिं सः कवीयुतम् । ताञ्ज्श्लोकान् व्याममुनये स तदा युपदेशयति । ४५ ।
 लब्ध्वा व्याममुनिः श्लोकास्तान् स यणयस्मिन्नान् । शान्तिं लब्ध्वा तन्त्रतेषां विस्तारं च कल्पयति ।
 तेषामेवार्थमादाय पुगणं परमेदयम् । अष्टादशमहस्यं हि श्रीमद्भगवत्ताम्रिधम् ४७ ।
 कल्पयन्त्यष्टादशमं गम्यं उनमनोहरम् । भागवतस्यान एव बाणी भिन्ना भविष्यति । ४८ ।
 पुगणानां च सर्वेषां बाल्मीकीयैव गाः प्रिये । पृथक्तां स्मृतो व्यसः श्रीमद्भगवत्पुणं शतम् । ४९ ।
 कल्पयति तथान्दानि स व्यासो विविधानि च । रक्षाण्युपपुराणानि मारं मारं विगृह्य च । ५० ।
 भागाद्भारतखण्डान्तर्गताद्रामायणादुचि । कल्पयन्ति तथान्येऽपि पद्मसूत्राणि मुनीश्वराः । ५१ ॥
 तस्माद्रामायणादेव मारमुद्भूत्य मादगन् । पन्क्तिर्विद्विजिभूष्यां कीर्यते वै कथानकम् । ५२ ॥

रामायणांशजं विद्धि श्लोकमात्रमपीह यत् ।

सर्गः ३ ॥

शभो ते प्रष्टुमिच्छामि व्यासाय नारदो मुनिः । ५३ ।

स्वयं ज्ञात्वा विधिमुखाद्रम्यान्पातकनाशकान् । तान् रामचरितश्लोकांश्चतुश्चोपदेशयति । ५४ ॥
 यैः कल्पयति स व्यासो मुनिर्भागवतं वरम् । ताञ्ज्श्लोकाश्चतुश्च मी कृपया वक्तुमर्हसि । ५५ ॥

योग्य बनायेगा । हे वेदि ! इसके अतिरिक्त स्वयं श्रीकृष्ण भी पृथक्पथ व्यासका रूप धरकर अवतार लगे और मनुष्यों के कहलाने के लिए भारतवर्ष के भागवाने रामायण कथनसे विविध प्रकारके पृथक् पृथक् सबह पुगण रचगे । वे सर्वोत्तम तथा बड़ा भारी महाभारत नामका सुन्दर इतिहास भी लिखगे ॥ ३७-४१ ॥ जो भारतवर्षीय रामायणके भागका सारांश होगा । उन भारत आदि ग्रंथोंका निर्माण करनेपर भी जब व्यासजीको सन्तोष न होगा, तब वे व्यग्र होकर सरस्वती नदी के किनारे बैठगे । उसी अवसरपर ब्रह्माजी भी विष्णुप्रदत्त चार श्लोकोंका नारदको उपदेश करगे । नारदजी उन श्लोकोंको प्राप्त करके अपनी सुन्दर बीणाको बरम्बार बजान तथा सुन्दर स्वरसे गाते हुए मन्त्रवर्ताके पुत्र राम मुनिके पास जाकर उनको उन श्लोकोंका उपदेश देंगे ॥ ४२-४५ ॥ व्यास मुनि उसी रामायणके चार श्लोकोंको प्राप्त करके बड़े शान्त चित्तसे उनका विस्तार करेंगे । उनके अर्थका आशय लेकर परम उदार अर्थवाने, अठारह हजार श्लोकान्मक, रमणीय और मनुष्योंके मनको मोह लेनेवाले अष्टादहवें 'श्रीमद्भगवत्' नामक महापुराणका निर्माण करेंगे । इसीलिए भागवतकी भाषा भी भिन्न प्रकारकी हाणी अर्थात् अन्धान्य पुराणोंमें उनका लेख विलक्षण होगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे प्रिये ! सब पुराणोंकी भाषा बाल्मीकीयके समान ही है । तथापि शतरामायणके कर्ता व्यास अलग ही गिने जायेंगे । वेदव्यास भूमिमें भारतवर्षीय रामायणके भागका सार ग्रहण करके और भी बहुतस मनोहर उपपुराण बनायेंगे । इसी प्रकार उस रामायणका सारभाग लेकर अन्धान्य मुनीश्वर छ. श्लोकोंका निर्माण करेंगे । हे विरिजे ! पृथ्वीमण्डलपर और भी जो कुछ श्लोकात्मक तथा पद्यात्मक कथा मिले तो उसे भी तुम रामायणके अंशसे ही उत्पन्न समझो । पार्वतीजी बोलीं—हे शंभो ! मैं आपके मुखार्चिन्दसे रामचरितक उन चार श्लोकोंको सुनना चाहती हूँ, जिन पापनाशक श्लोकोंको नारदने ब्रह्माके मुखसे सुनकर व्यासको सुनाया था ॥ ४८-५४ ॥ जिनके आधारपर व्यासमुनि अपूर्व भागवत ग्रंथको रचेंगे, उन चार श्लोकोंको कृपा करके

श्रीशिव उवाच

मम्यक्षं पृष्टं त्वया देवि मावधानमनाः शृणु । नारदोक्तं श्रुतुः श्रोतृकान्तवाग्ने प्रवदाम्यहम् ॥५६॥
 नारदायापि कथिता विधिना ये पुरा शुभाः । ब्रह्मणे विष्णुना पूर्वं श्रागमचरितं यदा ॥५७॥
 त्रिमक्तं हि तदा दत्ताः शेषभूताः सुपुण्यदाः । तान् शृणुस्व चतुःश्लोकान् विष्णुनोक्तान्स्वयं ध्रुवे ॥

श्रीभगवानुवाच

अहमेवाममेवाग्ने नान्यद्यन्मदमन्यरम् । पश्चादहं यदेतच्च योज्यश्लिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥५९॥
 श्रुतेऽर्थं यन्प्रतीयेत न प्रतीयेत च त्वमनि । तद्विद्यादान्मनो मायां यथाऽऽभामो यथा तपः ॥६०॥
 यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु । प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥६१॥
 एतावदेव जिज्ञास्य तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यन्म्यान्मयं सर्वदा ॥६२॥

श्रीशिव उवाच

एवं श्लोका भगवता चन्वाग्ने प्रकीर्तिताः । वेधसे ये तराग्ने ते कीर्तिता देवि वै मया ॥६३॥
 एते पवित्राः पापघ्ना मर्त्यानां ज्ञानदायकाः । अज्ञाननाशनाः मयः कीर्तनीया नरोत्तमैः ॥६४॥
 एवं देवि त्वया पृष्टं यथा तत्ते निवेदितम् । कथामागमिता पूर्वमनुता शृणु चन्म्यहम् ॥६५॥
 ततो रामायणं व्यासो विध्वम्न मुनिभिः पुनः । कूर्त्तुं कत्र शेषभूतं समस्तदमितं शुभम् ॥६६॥
 चतुर्विंशति माहसं रक्षिष्यति मुनिस्तदा । अदावन्ने तन्मनस्य श्लाकास्तत्र किपन्ति हि ॥६७॥
 चतुर्विंशतिमाहसं व्यामस्य रचिता अपि । भविष्यन्ति गिरिजेऽग्रे मंगलाचरणादिषु ॥६८॥

आप अन्वय मूलमे मते ॥ ५६ ॥ शिवजीने कहा— हे देवि ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । अब नन प्रश्न लोको मावधान होकर सुना । मैं उन मारदान चार श्लोको सुनाता हूँ ॥ ५६ ॥ इसमें श्री पवित्र नारद-क समस्त श्रीरामके चरित्रस्वरूप वे ही चार श्लोक विष्णुने ब्रह्मासे कहे थे ॥ ५७ ॥ उन्हें विष्णुने ब्रह्मासे उस समय कहा था, जब कि उन्होंने रामायणका विभाजन किया था । उन वन हुए पुण्यप्रद तथा विष्णुके द्वारा ब्रह्माको मिले हुए चार श्लोकोको मन लगाकर श्रवण करो ॥ ५८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा था इस चराचर प्रपंचामक तथा पापघ्नोदक मसारक उत्पन्न होनेके पूर्व न कोई मद्भन्तु भी और न असद्भन्तु । केवल सबका कारण तथा सृष्टिकर्ता ब्रह्मरूप मैं ही था । उसी प्रकार प्रलयक पञ्चान् भी जो कुछ कायसमूहका अधिष्ठान-स्वरूप अवशिष्ट रहता है, वह भी एकमात्र मैं ही हूँ ॥ ५९ ॥ जो वास्तविक वस्तु न हानपर भी सद्बिचारके अभाववद् वास्तविकरूपसे जान पड़ता है, परन्तु जब आत्म-अनात्मविषयक तत्त्वविचार किया जाता है, तब आत्माके अतिरिक्त जिसकी कोई सत्ता नही जान पड़ता, जड़ स्वभाववाली, भ्रान्तिवशान् आत्माको आच्छादित करनेवाली, आत्मसद्विज्ञानी मायाको मृगमर्गचिकाक आभासकी तरह तथा आकाशकी नीलमाकी तरह मिथ्या जानना चाहिये ॥ ६० ॥ जिस तरह पृथ्वा आदि पञ्चमहाभूत अन्धान्ध भौतिक वस्तुसमूहम अनुरूप हानपर भी उनसे अलग दिखाई देते हैं । उसी तरह मे पञ्चमहाभूताम व्याप्त होनेपर भी उनसे अर्थात् समस्त भौतिक मसारसे अलिप्त रहता हूँ ॥ ६१ ॥ वस, आत्मतत्त्वके विज्ञानुपेक्षो सदा और सब जगह अन्वय-व्यतिरेकसे उपर्युक्त बातोंका निश्चय करके आत्मतत्त्व तथा मायाका पृथक् पृथक् विरुद्ध-धर्मवाली जान लेना चाहिये । यही व्यापक नियम है ॥ ६२ ॥ शिवजीने बतल-हे देवि ! भगवान्ने नारायणने जो चार श्लोक ब्रह्मासे कहे थे, वे मैंने तुम्हें कह सुनाये ॥ ६३ ॥ ये श्लोक पवित्र, पापनाशक, मृत्युशोक प्राणि-योंको उत्तम ज्ञान देनेवाले तथा अज्ञानरूपा अन्धकारको दूर करनेवाले हैं । अतः समस्तदूर मनुष्योंको निरन्तर इसका श्रवण, मनन और कीर्तन करते रहना चाहिये ॥ ६४ ॥ हे देवि ! जो तुमने पूर्वम आरम्भिक कथा पृष्टी, सो मैंने तुमसे कही । आगे जो कहना है, वह भी सुना ॥ ६५ ॥ वाश्य मुनियोंके द्वारा श्वर उधर बिखरे हुए रामायणको व्यासमुनि फिरसे एकत्र करके सुन्दर सात कांडोंमें चौबीस हजार श्लोकयुक्त बनाकर उसकी रक्षा करेंगे । इसी कारण चौबीस हजार प्रयोगवाली उस रामायणके आदि तथा अन्तमें भंगलाचरण आदिके प्रकरणमें व्यासरचित और और भी कुछ श्लोक दृष्टिगोचर होंगे ॥ ६६-६८ ॥ हे देवि !

रामायणान्यनेकानि पृथगग्रे मुनीश्वराः । भागाद्भारतखण्डान्तर्गतात्कुभोद्धवादयः ॥६९॥
 करिष्यंत्यत्र शतशस्तानि सर्वाणि पार्वति । चान्मर्माकीयाद्विना देवि न ज्ञेयानि मनीषिभिः ॥७०॥
 सारकाण्डं पुन देवि यदुक्तं च मया तत्र चान्मर्माकीयाश्च तच्चापि सारमुद्धृत्य वै मया ॥७१॥
 निवेदितं च ह्यधुना पृष्टं रामकथानकम् । मविस्तारं वदाम्येति त्वया तस्मान्मयोदितम् ॥७२॥
 भानं रामचरित्रस्य शनकोटिप्रविस्तारम् । पंचाननाऽप्यहं देवि दिव्यैर्वर्षावुदैरपि ॥७३॥
 रामायणं सविस्तारं व्याख्यातुं न क्षमस्तिह । यन्निमित्तं च मुनिना स्वतपोभिरनुत्तमम् ॥७४॥
 अतः संक्षेपमात्रं हि स्मरं सारं विगृह्य च । कथयिष्यामि न्वर्न्मर्मायै यात्राकाण्डं शुभावहम् ॥७५॥
 रामदासो यथाऽग्रे हि विष्णुदाम यदिष्यति । शनकोटिमितान् ज्ञानदृष्ट्या चाहं तथा तव ॥७६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीरामदानंदरामायणे यात्राकाण्डे

रामायणविस्तारकथनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

तृतीयः सर्गः

(गंगा-समुद्रमंथनपरं जानेका तैयारीके लिए दूतोंको रामकी आज्ञा)

पादपुत्रवाच

को रामदासः कुत्रस्थो विष्णुदासश्च कः स्मृतः । कथं वर्तिष्यति गुरुमन्त्रमां कथय विस्तरात् ॥ १ ॥

श्राविच नवाच

भारते दण्डकारण्ये गोदानाभौ विगजिने । श्वेदेज्जके नृमहाग्न्यो मुनिग्रे भविष्यति ॥ २ ॥
 रामनामा तु तत्पुत्रस्तच्छिष्यो विष्णुरित्यपि । गुरुशिष्यौ राममेवामक्तौ नित्यं भविष्यतः ॥ ३ ॥
 दास्यत्वाज्ञानकीजानेस्तावुभौ भूसुरोत्तमा । रामदामाविष्णुदामाशित लोके पगं प्रथाम् ॥ ४ ॥
 समिष्यतोऽग्रे भो देवि गौतम्या दक्षिणे तटे । रामदामः पितुः श्राद्ध गयायां भविष्यति च ॥ ५ ॥
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि गत्वा यथाक्रमम् । अध्यापयिष्यति श्रावण गोदानाभौ गृहाश्रमी ६ ॥

भारतवर्षमें प्रचलित रामायणके भागक आधारपर अगस्त्य आदि भन्यान्व मुनि भी मैकड़ो रामायण लिखेंगे । पर विचारशील पुरुषोंको उन्हें वाल्मीकीय रामायणसे पृथक् न नमज्जना चाहिये । ६९ । ७० ॥ हे पार्वती ! पहले जो मैंने तुमको सारकाण्ड सुनाया वह भी चान्मर्माकाय रामायणका सार ही था ॥ ७१ ॥ उसके बाद जो तुमने रामकी सविस्तर कथा पूछी और मैंने सुनायी, उसका एक अत्र दलाकोमें विस्तार है । हे देवि ! पञ्चमुखसे मैं दिव्य अरव वर्षोंमें भी सम्पूर्ण रामायणको व्याख्या करनेमें समर्थ नहीं हूँ, तब फिर औरोंका तो कहना ही क्या है । इसका रचना वाल्मीकि ऋषिने अपने तपोश्रम का था । ७२-७४ । इसलिये सारमात्र लेकर संक्षेपमें मैं तुम्हारी प्रसन्नताके हेतु मनोहारा यात्राकाण्ड सुनाऊँगा, ७५ । जिस सी करोड़ श्लोकोंको रामायणको आगे चलकर रामदास विष्णुदासको सुनाएँगे, वही मैं ज्ञानदृष्टिसे देख कर तुमको सुनाता हूँ ॥ ७६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीरामदानंदरामायणे यात्राकाण्डे 'व्योत्स्ना' भाषाटीकायां रामायणविस्तारकथनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

पार्वतीजीने पूछा—हे महाराज । रामदास कौन और कहाँके हैं ? ये विष्णुदास कौन हैं ? रामदास विष्णुदासको क्यों विस्तारसे रामायण सुनायेंगे, यह भी कह सुनाइये ॥ १ ॥ शिवजीने उत्तर दिया कि भारतवर्षके दंडकारण्यमें गोदावरीके मध्यप्रदेशीय अन्धक क्षेत्रमें आगे चलकर नृसिंह नामके एक मुनि होंगे ॥ २ ॥ नृसिंहमुनिके पुत्र रामदास और रामदासके शिष्य विष्णुदास होंगे । ये दोनों गुरु-शिष्य निरन्तर रामकी भक्ति करनेवाले होंगे ॥ ३ ॥ सीतापति रामके अनन्य दास होनेके कारण ही ये दोनों रामदास तथा विष्णुदास नामसे संसारमें परम प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे । हे देवि । आगे चलकर वे ही रामदास गौतमी नदीके दक्षिण तटपर तथा गयामें पिताका श्राद्ध करके पृथ्वीके समस्त तीर्थोंका भ्रमण करनेके बाद गृहस्थाश्रम स्वीकार करके

एकदा विष्णुदासः स श्रुत्वा नानाविधाः कथाः । रामदाममुखात्मकाण्डं रामायणोद्भवम् ॥ ७ ॥

श्रुत्वा किञ्चित्प्रष्टुमना रामदामं वदिष्यति ।

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वक्तुमिदार्हम् ॥ ८ ॥

सायकाण्डं मया त्वत्तः श्रुतं रामायणस्थितम् । न किञ्चित्मोक्षयलेशोऽपि जानक्या गद्यस्य च ॥ ९ ॥

श्रुतोऽत्र कापि राज्यस्य विस्तारोऽपि च न श्रुतः । कथं यागाः कृतास्तेन मन्तनिम्नस्य न श्रुता ॥ १० ॥

मुतानां बहुपुत्राणां विवाहादिकमश्रुतम् । तत्सर्वं विम्नगस्वतः श्रोतुमिच्छार्हम् मे गुरो ॥ ११ ॥

तत्त्वं वद महाभाग रघुवीरस्य चेष्टितम् । रम्य एविव्रमानन्ददायक पातकापहम् ॥ १२ ॥

रामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स रामचन्द्रकथानकम् । मंगलं रघुनाथस्य प्रोच्यते यत्प्रविस्तरम् ॥ १३ ॥

मायधानमनाम्न तच्छृणु पातकनाशनम् । यथा श्रुतं मया पूर्वं तत्प्रयत्नं न वदाम्यहम् ॥ १४ ॥

इत्था दशाननं रामो राज्यं निहतकटकम् । अयोध्यायां मुक्तिपुर्यां शशाम नीनिमनमः ॥ १५ ॥

न दूषितं न चौर्यं च नापमृत्युर्न धेनयः । न दग्धिरथ भयं चिन्ता व्याधयश्च कदाचन ॥ १६ ॥

न भिक्षार्थी न दूर्ध्वो न पापात्मा न निन्द्यः । न क्रोधो न कृतघ्नोऽपि रामे राज्यं प्रशामति ॥ १७ ॥

एकदा जानकी कान्तमेकान्ते ग्राह लज्जिता । स्मितवस्त्रा चाकृतामा दिव्यालङ्कारमण्डिता ॥ १८ ॥

चामरव्यग्रहस्ता मा विनयायनतानना । राम राजोवपत्राक्ष रावणारे मम प्रभो ॥ १९ ॥

किञ्चिद्विहन्तुमिच्छामि यद्यनुज्ञां करोषि हि । विशापयामि तद्दि त्वां धर्ममूल महोदयम् ॥ २० ॥

गोदावरीके तटवर्ती गांवमें छात्रोको अनेक शास्त्रोका अध्ययन करांगे ॥ ४-६ ॥ उमी अवसरपर किसी दिन विष्णुदास रामदासगे बहनेरो कथा सुनते सुनते रामायणका सायकाण्ड सुनकर कुछ प्रश्न करनेकी इच्छासे कहते हे गुरो ' मैं आपस जो प्रश्न करनेकी इच्छा करता हूँ, उसका युक्तिमय उत्तर देनेमें आप समर्थ हैं । हे गुरो । मैं आपस रामायणका सायकाण्ड तो सुन लिया, परन्तु उसमें मैंने कहीं भी महाराजा जानकी अथवा राजा रामचन्द्रका कोई मुख्य संवाद नहीं सुना और न उनके राज्यका विवरण ही सुन पाया । उन्होने कैसे और किस प्रकार यज्ञ किये ? उनको मंत्रालोका विस्तार भी नहीं सुननेको मिला । राम तथा उनके भाइयोके पुत्रोके विवाह आदिका वर्णन भी मैं नहीं सुन सका । हे गुरो । यह सब मैं आपस श्रीमुखसे विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ । ७-११ ॥ इसलिए हे महाभाग, श्रीरामचन्द्रजीका वह मनोहर, पावन, आनन्ददायक तथा पापशुद्धिदायक चरित्र आप मुझको सुनायें । १२ ॥ रामदाम वाट ' हे वत्स ' तुमने रामचन्द्रका कथा-विषय यह वडा ही उत्तम प्रश्न किया है । रघुनाथजीके इस मायात्मक चरित्रको मैं विस्तारसे वर्णन करता हूँ ॥ १३ ॥ उनकी कथा श्रवणमात्रसे जन्म जन्मान्तक पापाको नष्ट कर देता है । उसको मैंने जैसे सुना है, वैसा ही तुम्हारी प्रसन्नताके लिए कहता हूँ, अब मायधान शरकर सुनी । १४ ॥ रामचन्द्रजी दशानन रावणको मारकर मोक्षदायिनी अयोध्यानगरीमें रहने हुए नानिपूर्वक निर्विकार राज्य करने लगे । १५ ॥ उनके राज्यमें कभी भी अकाल नहीं पड़ा और चोरा नहीं चढ़ा । किसीका अकाल या कृत्स्न मरण नहीं हुआ । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी तथा मूनीमें खताका नाश, पक्षिनाश एवं का विनाश और रात्रिविद्रोहसे जायमान ईतिये (विपत्तिये) भी उनके राज्यकालमें लागपर नहीं आया । उनके राज्यमें कोई दग्ध, मयभीत चिन्तानुर या रोगपीडित नहीं रहता था । १६ ॥ उनके राज्यकालमें कोई भिक्षारी, दुराचारी, पापी, क्रूर, क्रोधी और कृतघ्न भी नहीं होता था । १७ ॥ ऐसे सुख-शान्तिके समय एक दिन हास्ययुक्तमुख-वाली, सुन्दर नासिकायुक्त एवं देवियोंके योग्य अलंकारोंमें विभूषित जानकी कुछ लज्जापूर्वक एकान्तमें अपने प्रिय पति रामसे कहने लगी : उस समय जानकीके हाथमें मनोहर चमर था । ऐसी दशामें वे विनयसे नोचा मुख किये हुए बोली-हे कमलपत्रके समान नयनोंवाले, रावणके शत्रु तथा मेरे साथ राम । यदि

तत्सीतावचनं श्रुत्वा जानकी प्राह गंधर्वः । हे सीते कजनयने मम प्राणसुखास्पदे ॥२१॥
 शीघ्रं वदस्व यत्तेऽस्ति चित्ते तत्काग्राण्यहम् । इति गणधरममानवचनैर्जनकात्मजा ॥२२॥
 नितरां तोषपूगैषपिपूर्णाऽज्योत्पतिम् ।

श्रीसीतोवाच

यदा त्वं राघवश्रेष्ठ दण्डकं वचनान्पितुः ॥२३॥

मया सीमित्रिणा साकं पूर्वं स्यनगराद्गतः । मृगधेगुर गत्वा जाह्नव्यास्तरणे यदा ॥२४॥
 नौकायां स्थितमम्माभिर्मागारभ्यां तदा पुनः । सकल्पितं मया किञ्चित्त्वां वक्ष्याम्यहं प्रभो ॥२५॥
 देवि गणे नमस्तेऽस्तु निवृत्ता यनयामतः । रामेण सहिताऽहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये ॥२६॥
 सुराभांसोपहारं च नानाबलिभिरादृता । इत्युक्तं वचनं पूर्वं तज्ज्ञानं भवताऽपि च ॥२७॥
 ततश्चतुर्दशे वर्षे विमानेन यदाऽऽगतम् । तदा भरतश्चक्रुर्जनकाभ्यामन्याविहातुरा ॥२८॥
 अहं तद्विस्मृता रामा स्मृतिर्जाताऽद्य मे प्रभो । तन्ममसकल्पपूर्त्यर्थं गतुमर्हसि जाह्नवीम् ॥२९॥
 मया मातृचंपुभिस्त्वमिति ते प्रार्थयाम्यहम् । रोचते यदि ते चित्ते न त्वामाज्ञापयाम्यहम् ॥३०॥
 इति सीतावचः श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः । सीतामालिङ्ग्य बाहुभ्यां हर्षयन् तामुवाच सः ॥३१॥
 एतद्वचनचातुर्यं कुतो जानासि मेधिलि । न तने वचनं देवि गङ्गा प्रति ममैव तत् ॥३२॥
 वचनात्तव वदेहि श्वो गन्ता जाह्नवी प्रति । क्व ते वाञ्छाऽस्ति दयिते गङ्गां गन्तु वदस्व मे ॥३३॥
 तच्छ्रुत्वा तत्रैव स्थातुं सेनायोम्यमम मृदु । शृजुं कर्तुं हि पन्थानं दूतानाज्ञापयाम्यहम् ॥३४॥
 ततः सीताऽज्योत्पतिं पुनः श्रीगमचोदिता । यत्र गङ्गा च सरयू मगनाऽस्ति रघुदह ॥३५॥

बाप मुझे आज्ञा दें तो मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हूँ । वह मेरा निवेदन धर्मसम्मत तथा अमृत-
 दयकारी होगा । १८-२० । राम सीताका वचन सुनकर कहने लगे—हे कमलनयनी । हे मम प्राणमृगावह
 सीते । तू जो कहना चाहो, सो शीघ्र कहो । मैं उस अभिप्राय को लेवार हूँ । इस प्रकार रामक सम्मानभरे
 वचनोस जनकनन्दिनी संतोषको सहगम निरान्त लहरी उठी और पतित बदन लगी । धीसीताजा बोली—हे
 राघवश्रेष्ठ । जब आप पिताक कहनपर दंडकारण्य जानके लिए मुझे तथा सुमित्रापुत्र लक्ष्मणको साथ लेकर
 अयोध्या नगरमें चले थे और जब मृगधेगुर जाकर जाह्नवी नदीमें नावपर हमलोग सवार हुए थे । उस
 समय भगवन्ता भागारथीकी बीच धाराम में तो संकल्प किया था । हे प्रभो ! वह मैं आज आपका सुनाता
 हूँ ॥ २१-२५ ॥ मैं गंगाको नमस्कार करके कहा था—हे देवि । जब मैं राम तथा लक्ष्मणक साथ
 बनवासमें लौटूंगा, उस समय मुगस, मासस तथा जनक प्रकारको पूजासमयमें तुम्हारी पूजा करूँगा ।
 उस समय कहूँ हूँ मम इस वचनको आने भा सुना था । २६ । २७ ॥ पश्चात् चौदह वर्ष बाद जब हमलोग
 विमान द्वारा वनमें लौटे, तब भरत शत्रुघ्न और माना कीवत्पाके वियोगमें आनुर होतक कारण तो उस बातको
 भूल गयी । हे प्रभो ! आज मुझे उस बातका पुनः स्मरण आया है । अतएव मरे उस संकल्पको पूरा करनेके लिए
 माताओं, भाइयों तथा मुझे लेकर आपका गंगार्मीक तटपर चलना चाहिये । यही मेरा आपसे प्रार्थना है ।
 यदि आप उचित नमसें तो चरें । मैं आपको इस बातका आज्ञा नहीं देती । क्योंकि सीता पति को आज्ञा देना
 अघमें है पण्डित सविनय उचित परामर्श देना न्याय्य और धर्मसम्मत है । २८-३० ॥ माताक इस
 वाक्यको सुनकर राम बड़े प्रसन्न हुए और आलिंगन करके मातासे सहर्ष कहने लगे—॥ ३१ ॥ हे मेधिली !
 इस प्रकारका वचनचातुर्यं तुममें कहाँ आ गया ? तुम्हारा वह वचन गंगाके प्रति नहीं, प्रत्युत मरे ही प्रति
 था । ३२ ॥ हे वदेहि ! तुम्हारे वचनानुसार मैं बल ही गंगाको चलनेके लिए लेवार हूँ । हे प्रिये !
 तुम्हारी जिस जगह और जिस तीर्थको चलनेको इच्छा हो, वह कहो ॥ ३३ ॥ इस बातको जानकर
 मैं वही सेनाको ठहरानेके लिए स्थान और मार्ग साफ-सुथरा करनेके लिए दूतोंको आज्ञा दे दूँ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार
 रामके पूछनेपर सीताने कहा—हे रघुनन्दन ! जहाँ गंगा और सरयुजीका संगम हुआ है, वहाँपर गंगाजीके

तत्र गङ्गोत्तरे देशे गतुमिच्छति मे मनः । इति सीतावचः श्रुत्वा तथेभ्युक्त्वा गृध्रद्वयः ॥३६॥
 द्वाग्पाल समाहूय पटंगच्छाद्य जानकीम् । आशापयन् तं रामः शीघ्रं गच्छ ममाज्ञया ॥३७॥
 लक्ष्मणं वचन मे ह्य कथयस्व सविस्तरम् । ज्ञापय्यः सो ममोद्योगः सीतायाश्चैव कीतुकात् ॥३८॥
 सत्पुमङ्गमे गङ्गापूजनार्थं न्वया सह । मातृभिर्मन्त्रिभिः सैन्यः सुहृद्भिर्मतेन च ॥३९॥
 शत्रुघ्नेन पुरिस्थश्च जनेर्धिर्धर्मधारुखम् । सेनानिवेशस्थानानि योजनाद्धान्तराणि च ॥४०॥
 पूरितामभतोशयैः कल्पनीयानि वै पृथक् । इति रामवचः श्रुत्वा म मथेति त्वरान्वितः ॥४१॥
 आज्ञाप्रमाणमित्युक्त्वा नन्वा राम पुनः पुनः । कथयामास सीमित्रि रामवाक्यं सविस्तरम् ॥४२॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा यौवराज्यपदस्थितः । सभायां मन्त्रिभिर्पुङ्को लक्ष्मणो दूतमत्रवान् ॥४३॥
 अङ्गीकृत रामवाक्यमिति रामं वदन् नत् । तच्छ्रुत्वा त्वरितं दूतः कथयामास राघवम् ॥४४॥
 सभायां लक्ष्मणश्चापि दूतानाज्ञापयत्तदा । लक्ष्मणदण्डकरान् चित्रोष्णापगुक्तान् विभूषितान् ॥४५॥
 गच्छन् त्वरिता यूयं कथयस्व अनान्पुरि । अपोध्यायां राघवस्य सो यात्रार्थं समुद्यमः ॥४६॥
 तथेभ्युक्त्वा जवाद्गता राजमार्गेषु सर्वतः । दीर्घस्वरेण ते प्रोचुर्वाध्वं कृत्वाऽऽत्मसन्करान् ॥४७॥
 हे जनाः शृणुत स्वस्थाः यः सीतागमयोर्मृदा । ममृयोगोऽस्ति पूजार्थं सरय्याः सङ्गम प्रति ॥४८॥
 मागीरध्यां सुहृद्भिश्च सावरोध्वर्तः सह । इति मथ्राव्य मकन्दान् जनान् माकेतयामिनः ॥४९॥
 ते दूता राजमयने लक्ष्मणं तं पुनर्ययुः । मथ्राव्य ते जनांश्चारा रामोद्योगं न्यवेदयन् ॥५०॥
 सभायां लक्ष्मणश्चापि समहूयानुज्जवात् । तत्क्षकानिष्टिकाकागन्दृष्टकर्मणु नैष्टिकान् ॥५१॥
 लोहकाशधर्मकारान् मिथिकर्मादिनैष्टिकान् । कथयिकथयन्तुं च काष्ठनिर्जावकारिणः ॥५२॥
 वामोपृष्ठविदग्धाश्च महिर्जलवादिनः । नानाकर्मसु निष्णातः रजतकुहालधारिणः ॥५३॥

उत्तरो तटपर जानेका मेरे मनमें इच्छा है । सीताका इस इच्छाका सुनकर रामने बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ३६ ॥ ३६ । तदनंतर जन्मकोको महलके भीतर भेज तथा द्वाग्पालको बुलाकर रामने कहा—तुम मरी आज्ञाअभी लक्ष्मणके पास जाकर मेरा आदेश उनसे कह दो । उनसे कहना कि बल प्रात काल सीताकी इच्छासे तुम्हारे, माताओं, मन्त्रियों, सेनाओं, भरत-शत्रुघ्न, पुत्रवामी जनों तथा ब्राह्मणोंके साथ सरयूके संगम-पर गङ्गाजात्रा पूजन करनेके लिए धूम-धामसे मेरा जाना निश्चित हुआ है । इस लिये रास्तेमें दो-दो कांशपर अन्न-जलसे परिपूर्ण दिविर तैयार कराओ । रामके इस वचनको सुनकर वह दूत 'बहुत अच्छा, ओ आज्ञा' कह तथा रामको बारम्बार नमस्कार करके वहाँसे शीघ्र चल पड़ा । लक्ष्मणके पास जानकर उसने विस्तारसे रामकी आज्ञा सुना दी । ३७-४२ ॥ युवराजपदपर स्थित तथा मन्त्रियोंके साथ सभामें विराजमान लक्ष्मणने जब रामके आदेशको दूतके मुखसे सुना तो उससे कहा— ॥ ४३ ॥ तुम जाकर श्रीरामसे कहो कि आपने आज्ञाके अनुसार सब कार्य ठीक हो जायगा । दूतने जाकर शीघ्र ही रामको यह सम्बन्ध सुना दिया । ४४ । तब लक्ष्मणने सोनेके दण्ड धारण करनेवाले रंग-धिरंगी पगडो मिरपर बांधे तथा मुन्दर पोशाक पहिने हुए बहुतसे निपाहियोंको बुलाकर उन्हें यह आज्ञा दी— ॥ ४५ ॥ तुमलोग शीघ्र नगरभरग घूमकर सब नगरवासियोंको रामचन्द्रजीके कल गात्राके लिए प्रस्थान करनेका समाचार सुना आओ । ४६ ॥ 'तपास्तु' कहकर वे दूत नगरका सहकोपर घूम-घूम तथा हाथ उठा-उठाकर ऊँचे स्वयंसे मद जागाको सुनाने लगे— ॥ ४७ ॥ 'हे नगरवातियो ! ध्यान देकर सुनो । राम और सीता कल जन्म-पुरवामिनी क्षिया, सगे-संबन्धियों और सभाको साथ लेकर सरयुनदीके संगमपर गङ्गाका पूजन करनेके लिए जायेंगे । अपोध्यावासी लोगोंको यह समाचार सुनाकर वे पुनः लक्ष्मणजीके पास आगये और बोले कि हमलोग नगरके सब लोगोंको रामजीकी यात्राका समाचार सुना आये । ४८-५० ॥ तदनंतर लक्ष्मणने नौकराके द्वारा तत्क्षण बढ़ई, ईंटें पावनवाल कुम्हार, पत्थरके काममें कुशल मंगतरास । ५१ ॥ लोहार, चमार, भीत-मकान आदि बनानेमें चतुर राजगौर, सोडा बेचने तथा खरीदनेवाले बनिये, रुकड़हारे, रुपड़ेके डेरा-तम्बूके

एतानाहापयामास तोषणात् धमनादिभिः । समर्पितान्मर्माभिन्निः कथयामास मादरम् ॥५४॥
 समुद्योग राघवस्य सीतायाः शो धर्तः सह । ऋतुमार्गो विधानव्यः समः कर्कवजितः ॥५५॥
 निम्ना भूमिः समा कार्या उच्चा भूमिः समाऽपि च । छिद्यतां पावता वृक्षा मागस्था दुःखदायकाः ॥५६॥
 वाप्यः कृषास्तडागाश्च गोधनीयाः सहस्रशः । नर्पनाश्चापि कर्तव्याः सनीया निर्जले वने ॥५७॥
 सेनानिवेशस्थानानि याजनाये सविस्तरे । कल्पनायानि युग्माभिः पूरितान्यश्वारिभिः ॥५८॥
 चुन्त्यो रम्या विधानव्याः पाकशालाः सभित्तयः । वर्धगृहाणि कार्याणि वर्णश्चापि सहस्रशः ॥५९॥
 आरक्तस्पर्शगच्छादितानि चित्रितानि हि । नानानुहाणि कार्याणि पूरितान्यश्वारिभिः ॥६०॥
 पुष्पाणां वाटिकाः कायाः शनभोज्य सहस्रशः । मार्ग मार्गे कान्तुकार्यं भित्ति चित्राण्यनेकशः ॥६१॥
 नरस्कधगताश्चित्रवाटिकाश्च सहस्रशः । पुष्पाणां वाटिकाश्चामृन्पात्रनिर्मिताः शुभाः ॥६२॥
 मार्गे मार्गे गायकानां स्थलान्यपि सहस्रशः । सेनानिवामस्थानेषु हस्त्यश्वरथवाजिनाम् ॥६३॥
 सहस्रशो विधानव्याः शालाः पर्णामृगादिभिः । सुगन्धचन्दनमार्गाः सेचनीयाः समंततः ॥६४॥
 नेमिरेखाऽपि मा मार्गे विचित्रधमनगृहाः । पुष्पाच्छादनीयास्तं हव्याः सन्तु समंततः ॥६५॥
 मृगार्गगतचित्रश्च हस्त्युष्ट्ररथवाजिनः । वस्त्रालङ्कारघण्टाभिः शोभनीयाः सहस्रशः ॥६६॥
 शकटेषु तथोष्ट्रेषु वाग्नेषु रथादिषु । शनज्यः परिधा घाणाः शक्तयः कर्मकान्यपि ॥६७॥
 स्थापनायानि शनशा विधानव्या ध्वजा अपि । चतु र्वर्षि विधानव्या ध्वजा रामरथेषु हि ॥६८॥
 हनुमत्कोविदागण्टजेषु वाणांकिताः शुभाः । चतु र्वर्षि वधनीयाः पताकाः स्पन्दनेषु हि ॥६९॥
 हरितश्चेतर्पातर्न लवणाः पद्मशोभनाः । गजपृष्ठ राघवार्थं हरिद्वर्णाङ्कितामनम् ॥७०॥

निर्माणमे निपुण दजो, मंगल दुःख जल जलवायु भिन्न न । अन्गन्य नाना कर्मोमे कुशल, रस्ती बटने-
 वाल और कुदर चलभवायु जगह जादि मधू । सो मनाम दुलाकर बस्त्र आदिमे सत्कार करके प्रसन्न किया
 और आदःपूर्वक उनमे कहा— ५०-५६ । बल राम मना सेनाक साथ तोषणावाके लिए जानेवाले
 हैं । सो तुम लोग उनसे मधूर्ण रागनको बकट पदपर चानकार साफ-सुधरा कर दो । ५५ । रास्तेको ऊँची-
 नीची जमान बगधर कर दो । मार्ग दुःखदाया परताप वृक्षाको काट डालो । ५६ । रास्तेकी बावड़ी,
 कूएँ तथा तानावाको गाफ कर दो और निर्जल वनमे नये सैकड़ा तालाब कूएँ आदि खोद दो ॥ ५७ ॥
 आधे आधे योजनाएँ सेनाक लिए निचिदं बनाकर अन्न जलसे परिपूर्ण कर दो । ५८ ॥ सुन्दर दंडाएँ
 खड़ी करके भोदनालय और चन्द्र तलार करे । जगह-जगह वस्त्र तथा घासके अन्वार लगा दो ॥ ५९ ॥
 पके हुए लाल खण्डोस छाये हुए चित्र-विचित्र घास प्रचुरमात्राम अन्न जल संचित करके रखवा दो
 । ६० ॥ मागमे स्थान स्थानपर सरडा तथा हव्या । नस्थाम आनन्द नके लिए दीवारोपर रंग बिजो
 चित्र खोच दो तथा मनोविनादके लिए बाव घावम पुष्पवाटिकाएँ लगा दो ॥ ६१ ॥ नर पुतलियोंके
 कंधेपर रखे हुए फूलास गमल अथवा जमानदर दो फूल । गमलाहो सजाकर स्थान स्थानपर
 सैकड़ो हजारी वाटिकारो तयार कर दो । ६२ ॥ पथ-पथपर गायकायो गायनशालाये रख दो ।
 सेनाके हर एक सन्निवेशस्थानमे दान तथा धानमे पूर्ण अनेक अन्नशालाय और हस्तिशालाये तयार
 कर रखो । चन्दन तथा गुलाब आदिक पुष्पवित जल सब रास्तेमे छिड़क्वा दो तथा चित्र-
 विचित्र घासीवाले वपड़ाक तम्बू बनाकर जगह-जगह गाड़ दो आर उनपर विवेध रंगको पुष्पमालाएँ
 टांग दो । उनक चारों ओर बाजार लगा दो ॥ ६३-६५ ॥ तमाम हाथी घोड़े, ऊँट तथा रथोको वस्त्र
 अलंकारसे अलंकृत करके तथा घण्टे आदि बाधकर सुसज्जित कर दो ॥ ६६ ॥ बेलगाडियोमे, ऊँटोपर और रथ
 आदिपर धनुष-बाण, मुद्गर, राक्षिये, तीप अथवा बन्दूकें रख दो । ६७ ॥ रास्तेके चोतरफा और दरवाजे
 आदिपर ध्वजारें गाड़ तथा संधि दो । रामजके धारो रथापर भी ध्वजाएँ बांध दो । ६८ ॥ उन चारों
 स्पन्दनोपर हनुमान, कोविदार, गरुड और बाणके चिह्नोवाली पताकाएँ होनी चाहिये ॥ ६९ ॥ न ध्वजाएँ हरे,

रुक्ममाणिक्यरचितं सितच्छत्रोपशोभितम् । स्थापनीयं महादिव्यं मुक्ताहारविराजितम् ॥७१॥
 सीतार्यं कृष्णीपृष्ठे नीलवर्णं महासनम् । रुक्मनिद्रुमवैदूर्यस्तमुक्ताविराजितम् ॥७२॥
 मुक्ताफलहेमतंतुगणैराच्छादितं वरम् । सिद्धं कार्यं महादिव्यं स्वर्णकुम्भविराजितम् ॥७३॥
 पुष्पमालास्तोत्राणि वधनीयानि वै पथि । नृत्यतु वारवेण्याश्च स्तुतिं कुर्वन्तु वन्दिनः ॥७४॥
 द्रव्यैर्वस्त्रैराभरणैः पूजाद्रव्यंश्च गोरसः । पात्रैर्नानाविधैर्दिव्यैः पूरणाया रथोत्तमाः ॥७५॥
 अन्यथापि मया नोक्तं यद्यद्योग्यं हि तत्पथि । सिद्धं कार्यं हि योगेन येन तुष्यति राघवः ॥७६॥
 इति सन्दिश्य मेधावी लक्ष्मणः सह भद्रिभिः । साय मन्ध्यादिक कर्तुं जगाम निजमन्दिरम् ॥७७॥
 सौमित्रेराज्ञया तेषु तथा चकुर्यद्योदिताः । मनुष्टास्ते यथायोग्यं गममन्तोपहेतवे ॥७८॥
 रामोऽपि सीतया सार्द्धं मन्दिरे रत्ननिर्मिते । मञ्चकं पुष्पगण्यायां मातामालिङ्ग्य वै दृढम् ॥७९॥
 रुक्मनेपथ्यमुक्ताभिर्दासीभिश्च मुहुर्मुहुः । धीजिनो बालव्यजनैर्निशि सुप्तः सुखं तदा ॥८०॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे दूताज्ञाकरणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥



चतुर्थः सर्गः

(रामका सरयूके दो खण्ड करना)

रामदास उवाच

उतः प्रातः समुत्थाय श्रुत्वा वाद्यध्वनिं तथा । गायनं वंदिभिर्गातं सीतया सह राघवः ॥ १ ॥
 कृत्वा नित्यविधिं मयं दत्त्वा दानानि विम्वरात् । ज्योतिर्विन्द्रे समाश्रयं गोपालाभिधमृगमम् ॥ २ ॥
 नमस्कृत्याऽथ सपूज्य गणकं गवयोऽध्वर्याम् । भो गोपाल महाबुद्धे त्वयं पृच्छेऽहं द्विजोत्तम ॥ ३ ॥

पीले, श्वेत और नीले रंगकी सुन्दर बनी हों। रामचन्द्र लोक लिए हाथोंपर हरे रंगके मन्त्रमलकी गद्दा-नकिया लगाकर उसपर मुक्ताके हार टांग देने चाहिये और सोना तथा माणिक्यसे रचित, बहुमूल्य, दिव्य, गरम सुन्दर तथा श्वेत छत्र भी लगा देना चाहिये ॥ ७० ॥ ७१ ॥ एक दूसरी इधियाका पाठपर माताके दिव्य मृगण, विद्रुम (मृगे), वैदूर्यमणि, रत्न मोती तथा गजमुक्ता लगा हुआ हार जरीदार एवं बहुमूल्य जामन बिछाकर तैयार करो और उसके हीदेपर बहुतसे छोटे-छोटे मृगणक कलश भी लगा दो। जिसमें कि वह अधिक सुन्दर प्रनीत होत लगे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ रास्तेमें फूलोंकी मालाएं और तोरण बांध दो। ज्योतिर्नाचन तथा वंदागण स्तुतिपाठ करने लग जायें ॥ ७४ ॥ बहुतसे रथाम दल, आभूषण दुग्ध, दही, पूजाके द्रव्य तथा अच्छे-अच्छे वस्त्रन आदि भर लिये जायें ॥ ७५ ॥ जो कुछ मैंने न कहा हो, सो भी सब जरूरी सुविधाएं सुलभ रहना चाहिये। जिन्हें देखकर रामचन्द्रजी प्रसन्न हो जायें ७६ ॥ वृद्धिमान् लक्ष्मण एव। आज्ञा देकर सायंकालीन मन्ध्या-वन्दन करनेके लिए मंत्रियोंके साथ मन्त्राभ्युदयसे बाहर आकर अपने मंडलमें चले गये ॥ ७७ ॥ लक्ष्मणकी आज्ञाके अनुसार कार्यगण लोगोंने प्रसन्नतासे रामजीके गुप्तक लिये यथायोग्य सब सामान ठीक कर दिया ॥ ७८ ॥ उधर रामचन्द्रजी भी अपने रत्ननिर्मित भवनमें कुलोंकी शरणापर सीताजीको दृढ़ आलिङ्गन करके रात्रिकी सुषुप्तपूर्वक सोये। सोतकी जरीदार साड़ियोंको पहिने बासिये बार बार उनपर बालव्यजन (पंखा) डुलान लगीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे भाषाटीकायां दूताज्ञाकरणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

रामदास बोले—प्रातः कालके समय बन्दिबुद्धिके गायन और वाजोंके मधुर शब्दको सुनकर सीतामहिन राम जागे ॥ १ ॥ तब नित्यकर्मसे निवृत्त होकर उन्होंने अनेक तरहके दान दिये और गोपाल नामके ज्योति-धीकी बुलवाकर रामने नमस्कार तथा पूजा करके कहा—हे ब्राह्मणोम श्रेष्ठ और महाबुद्धिमान् गोपाल महाराज !

यात्रार्थं जाह्नवीतीरं गन्तुमिच्छामि मां प्रनमः । अतः मुहूर्तो दातव्यः सम्यग्बुद्ध्या विविच्य च ॥४॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा गोपालः प्राह गधवम् । पञ्चाङ्गपट्टं विनार्य तत्र दृष्ट्वा बलावलम् ॥५॥
गम गजार्जपत्राक्ष मुहूर्तस्त्वय वनने । पूर्वयामे महाश्लेष्टः पुष्यनक्षत्रमङ्कितः ॥६॥
तस्य दक्ष्ये फलं गजान् मायधानमनाः शृणु । शृण्वन्तु मुनयः सर्वे शृणोतु ते गुरुर्महान् ॥७॥

न योगयोगं न च लग्नलग्नं न नास्काचद्रवल गुणेन ।

योगिन्य गजने तदैव काले सर्वाणि कार्याणि करोति पुनः ॥८॥

अस्मिन्नाम मुनक्षत्रे प्रस्थानं कुरु मातया । दत्ते मया मुहूर्तोऽयं यात्रार्थं शृणुनायक ॥९॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणं गधयोऽब्रवीत् । भेरीमृदगणवकाहलाऽज्जकगोमुखैः ॥१०॥
तालधर्षद्गुभिर्भिर्ध्वनिश्च नवभिर्महान् । सेनायाः सूचनार्थं हि कर्तव्यः प्रथमो ध्वनिः ॥११॥
न धेति गमवचनाद्दूतानां प्रापयत्तदा । नववाद्यध्वनिं तेषां चक्रुर्मञ्जुलसुस्वरम् ॥१२॥
ततो रामो द्विर्ज्योत्कां वमिष्टेन पुगेधसा । धृतेन प्रचुर श्राद्धं गणेशादीन् प्रपूज्य च ॥१३॥
चक्रात् प्रोक्तविधिना वमिष्ट प्राह वै सतः । अग्निहोत्राणि मेऽग्रे त्वस्थापितानि तु पुष्पके ॥१४॥
नेतुमर्हमि मे मातृवर्धुभिः पुत्र्यामिनः । विमानं करिणां चट्वा पुष्पमालागतिशोभिता ॥१५॥
सीतारस्पर्शनां मार्गे मां स्पर्शतु गजस्थितम् । ततः पप्रच्छ वैदेहीं केन यानेन मंथिलि ॥१६॥
ममिष्यमि वद त्वं मां तद्वाशापयाम्यहम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा सीता ध्यात्वा क्षणं हृदि ॥१७॥
मा प्राह मुदिता गम कर्मिण्या गमनं मम । गेचने यदि नै चित्ते तर्हिन्तु रघुनायक ॥१८॥
न नम्या वचनं श्रुत्वा यानमात्ताप्य लक्ष्मणम् । सीतार्थं दिव्यवस्त्राणि ददा मातृस्तथैव च ॥१९॥

ये आपसे एक प्रदन पूछता है ॥२॥३॥ आर्य मैं तीर्थयात्रा करने के लिए गंगाजीके तटपर जाना चाहता हूँ । अतः-
एव सुब विचारकर कोई अच्छा मुहूर्त थलताड ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजीका प्रदन सुनकर गोपाल पण्डितने पञ्चाङ्ग
दख तत्रा ग्रहाके बलावलका विचार करके रामसे कहा— ५ ॥ हे कमलदलके समान सुन्दर नयनोवाले राम !
आज प्रथम शहरमें पुष्यनक्षत्रसे युक्त वट्टा अच्छा मुहूर्त है ॥ ६ ॥ उसका फल मैं आपसे कहता हूँ । हे
गजान् ! आर्य, सब मुनि लोग तथा आपके गुरु वसिष्ठजी भी उसको ध्यानासे सुनें ॥ ७ ॥ अच्छे योगसे युक्त
न रहनेपर भी, अच्छे लग्नमें लग्न न होनेपर भी, तारा, चन्द्रमा और गुरुके बलसे शुभ होनेपर भी, शुभ
योगिनाके अभावमें भी तथा अनिष्टकारा राहुके मशिकट रहनेपर भी जबल एक पुष्य नक्षत्रक रहनेमात्रसे ही
यात्राके सब दृष्ट कार्य सिद्ध हो जायें हैं ॥ ८ ॥ हे राम ! इस शुभ नक्षत्रमें आज सीताके साथ प्रस्थान करें ।
हे रघुनायक ! यात्राके लिए मैंने यह अच्छा मुहूर्त बतलाया है ॥ ९ ॥ उनका यह वचन सुनकर रामजीने
लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण ! नमस्त सेनाको सूचना देतक १० ॥ भेरी, मृदंग, पणव, नगाड़े, ढोल, सुडही,
प्रास पटा तथा कुन्दुभा यै ना प्रकारके बाजे जोरसे बजावे जायें ॥ १० ॥ ११ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर
रामकी आज्ञाके अनुरार लक्ष्मणने दूताको आज्ञा दे कर अपने मधुर रीतिसे नवाँ बाजे बजवाये ॥ १२ ॥
उसके बाद रामने प्रह्वया तथा अपने पुत्रोद्दिन वमिष्टजीको साथ लेकर गणपतिपूजन किया और धीसे
वसिष्ठ श्राद्ध करके वमिष्टजीसे कहा कि मेरी वसिष्ठजीसे स्थापित की हुई आगवाको, माताओंको तथा
बड़े पुत्र पुत्र्यामिवाको विमानपर चढ़ाकर भाग चले । परमलाजमें अनिष्टय सुशोभित तथा सीतासे
अङ्कित गजपर सवार हमको मार्गमें मिल । पश्चात् रामने सीतासे पूछा—हे मंथिलि ! तुम किस सवारीपर
चढ़ोगी ? जो वसन्द हो, उस सवारीके लिए मैं आज्ञा दे हूँ । रामजीके इस वाक्यको सुनकर सीताजीने
इतने मनमें विचार किया ॥ १३—१७ ॥ फिर प्रसन्न होकर रामसे कहा—हे रघुनायक ! यदि आप कहें तो
मैं अच्छा हृषीनाथर चलनेकी है ॥ १८ ॥ सीताकी इन दृष्टाको जानकर रामजीने लक्ष्मणको सीताके
साथ रहनेकी तयार करवानेकी आज्ञा दी । पश्चात् रामने सीताकी तथा अपनी माताओंको पढ़िनेके लिए

तथा दत्त्वा त्रधुपत्नीर्दत्त्वा चार्पि तुमेः त्रिषद् । तना दत्त्वा त्रिषद् च विप्रान्दत्त्वा ततः परम् ॥२०॥
 दत्त्वा वल्गाणि त्रधुष्व्यः स्वयं ग्राह गदवः । गृध्वा शस्त्राण्यनेकानि त्वरयित्वा निदेहजाम् ॥२१॥
 नत्वा मातृगुरुष्वपि सप्रिभिः परिचरितः । आरुह्य शिविका गमः मया प्रति ममाययौ ॥२२॥
 ततः सिंहासने स्थित्वा लक्ष्मण पाह गदवः । द्वितीयः सूचनायं हि नववाद्यध्वनिः पुनः ॥२३॥
 आज्ञापनायः सौमित्रे तच्छ्रुत्वा गद्यार्पितम् । आज्ञाप्रमाणमिन्द्रकन्याऽज्ञाप्यन्ध्वनिमुत्तमाम् ॥२४॥
 कर्तुं दत्तास्तेऽपि चक्रुः पान मेघाभमां ततः । पत. प्रा. स्मृ. धृष्टः पुनः सामित्रिमादगन् ॥२५॥
 सुमत्रः स्थाप्यतां पृथग्विष्णुमयं ममाक्षया । गच्छन्मये तु भगता पश्चादायातु इच्छुहा ॥२६॥
 मत्पृष्ठे त्वं समागच्छ ततः संताड्युगच्छतु । तस्याः पृष्ठे च न्यन्ध्वनं क्षुमिला मानुगच्छतु ॥२७॥
 तन्पृष्ठे माण्डवी रम्या दक्षिता भगवत्पथमा । अनुगच्छतु तन्पृष्ठे अतर्कित्यनुगच्छतु ॥२८॥
 शुश्रूष्य प्रिया भार्या विमानः पुरयार्पितः । मानुविस्ताः सभायां तु पश्यन्त्यः कर्तुं कं मुदा ॥२९॥
 सीतायाः कर्मिणां पञ्चस्थापयित्वा मगान्तिवम् । आरुह्य स्वया शाय ततोऽह गजमाश्रये ॥३०॥
 तथेति गमवचनान्ध्या ताः कर्मिणं धु मः । अर्गहायन्वा श्रीगमं समागच्छन्त्यगन्वितः ॥३१॥
 समागत लक्ष्मणं तं दृष्ट्वा रामा महामताः । सुमत्राय ददौ वस्त्रं तदर्धानां पुर्य व्यधान् ॥३२॥
 ततो मुहूर्तमभये धृत्वा लक्ष्मणमत्वरम् । मिहायनाम्भमुत्ताये महानागान्तिक ययौ ॥३३॥
 गजं प्रदक्षिण कृत्वा सोपानेन म राचयः । गजदन्ताद्भवेनाक्रोह नागं मुखं शनः ॥३४॥
 तदा दृष्टुर्भनिधोषाम् नववाद्यस्थगन् वगन् । शायामासुर्गर्भीगन् गजदताः सहस्रशः ॥३५॥
 बभूवुर्गन्त्रशब्दाश्च ननुतुर्वास्फोषितः । वादयति स्म वाद्यानि गजवाजिगथापरि ॥३६॥
 जयशब्दान् वेदधोपान् द्विजाश्चक्रुर्महाध्वनैः । केऽपि पिच्छोद्भव चित्र गन्धदण्डविराजितम् ॥३७॥

दिव्य वस्त्र दिये ॥२९॥ अपने भाइयाँ, उनकी स्त्रियाँ और मुहान्तों को सुन्दर वस्त्र दिये । उनके बाद गुरु-
 वणिष्ठों को अन्य शस्त्राणों को तथा अनेक धनुषों को नये कपड़े देकर स्वयं रामने भी नूतन वस्त्र पहना । अनेक
 प्रकारके शस्त्र भी बाँधे गये और मोताका शास्त्रवा करनेके लिए कहा । २० ॥ २१ ॥ तदनन्तर रामजी गुरु
 तथा माताओं को नमस्कारकर तथा मन्त्रियों को साथ लः पालकीपर सवार होकर सभाभवन (कचहरी)
 गये ॥ २२ ॥ वहाँ सिंहासनपर आरुह्य होकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि हमरी सूचना देनेके लिए पुनः नौ
 प्रकारके वाजे बजानेवा आज्ञा दे दो । लक्ष्मणने 'जो आज्ञा' कहकर दूतोंको उत्तम रीतिसे वाजे बजवानेकी
 आज्ञा दी, आदेश पाये हा उन दूतोंने मेघध्वनिके समान बाजाका निनाद दिया । इसके उपरान्त रामने
 पत. लक्ष्मणसे कहा - ॥ २३-२५ ॥ हे भाई 'मेरी आज्ञाके अनुसार तू यहाँ नगरकी रक्षा करनेके लिए
 सुमत्रको छोड़ दो । आगे भरत और उनके पीछे शक्रन् चलें तथा मेरे पीछे तुम चलो । तुम्हारे पीछे सीता
 और सानाके पीछे तुम्हादी श्री उमिला च ॥ २६ ॥ २७ ॥ उनके पीछे भरतों प्राणप्रिया सुन्दरी माण्डवी
 और माण्डव के पीछे शक्रुष्यक प्रिया भार्या श्रुतवीति च ॥ २८ ॥ नगरकी स्त्रियोंके साथ माताएँ विमान-
 पर सवार होकर आनन्दसे समागह दंगनी हुई आय ॥ २९ ॥ तुम जाकर सीता आदि सब स्त्रियोंको हवि-
 नियोपर बठा आओ । उसके बाद मैं गजपर सवार होऊँगा ॥३०॥ सी मुत्तकर लक्ष्मण तुरन्त चल दिये और उन
 सबको हविन्यापर सवार कराकर साथ ही रामके पास लौट आये ॥ ३१ ॥ लक्ष्मणके आ जानेपर प्रतिमान्
 रामने नन्दा समन्त्रको विह्वस्वरूप वस्त्र दिये तथा रक्षाके लिये नगर सौंप दिया ॥ ३२ ॥ उसके बाद शुभ
 मुहूर्तमें लक्ष्मणके सुन्दर हाथको पकड़कर राम सिंहासनम उठे और उत्तम हाथोंके पास गये ॥ ३३ ॥ हाथीकी
 प्रदक्षिणा करके राम गजदन्तकी धनी हुई सीढ़ीपर पाव रखकर मुखपूर्वक धीरेसे उसपर सवार हो गये
 ॥३४॥ उस समय हजारों राजसेवक सुन्दर एवं गर्भोर शब्द करनेवाले दुन्दुभि आदि नवविध वाद्योंको बजाने
 लगे ॥ ३५ ॥ वहाँपर अनेक प्रकारके शब्द होने लगे, वेद्याएँ नाचने लगा और हाथी तथा घोड़ोंपर लाना
 प्रकारके वाजे बजाये जाने लगे ॥ ३६ ॥ विप्रलोक उच्च स्वरसे जयजयकर और वेदध्वनि करने लगे । एक

चामरं बीजयामास विजयः पार्श्वमस्थितः । अन्यस्तु बालव्यजनं बीजयावाप्तं पृष्टतः ॥३८॥
 कलशैः श्रुतसाहसैर्द्वन्द्वाहारस्तु शोभितम् । रत्नदण्डं सुविस्तीर्णं छत्रमन्यो दधार तत् ॥३९॥
 उत्पृष्ठे गजमारुह्य लक्ष्मणः शीघ्रमाययौ । सीतायास्ताः समाजग्मुः सौमित्रिगजशृङ्गतः ॥४०॥
 पर्यंत्यः कौतुकान्येव जलरंघ्रैः समंततः । पुष्पकं चापि गगनमार्गेणैव शनैः शनैः ॥४१॥
 जगाम संस्थितास्तत्र पुनार्यो ग्धूलमम् । पश्यंत्योऽथ कौतुकानि ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४२॥
 ततस्ते तुरमारुढा गजारुढा रथे स्थिताः । नेमिरेखोपमाः सर्वे स्थिताम्ने रामपार्श्वयोः ॥४३॥
 चक्रः प्रणमाम् श्रीरामं सस्थिता हारबंधवत् । रामोऽपि कजहस्ताभ्यां प्रणामानभ्यनदयत् ॥४४॥
 एव गच्छति राजेन्द्रे रामचन्द्रे शनैः पथि । गजोपरि सर्वभास्ते नटा गानं प्रचकिरे ॥४५॥
 एवं गम्यन् स रामोऽपि पुष्पारामादिकौतुकम् । हृष्टान् चित्राणि वेष्यानां नृत्यानि विविधानि च ॥४६॥
 सुस्वराण्यथ वाद्यानि शृण्वन् मार्गे शनैः शनैः । वेष्टितश्चतुर्गङ्गिण्या सेनया स समंततः ॥४७॥
 प्राप सेनानिवासाय कल्पितां भुवमुत्तमाम् । अयोध्यामिव तां दृष्ट्वाऽजतरद्वाघवो गजात् ॥४८॥
 अभिनंद्य प्रणामांश्च पुनर्वीरकृतान् शुभुः । लक्ष्मणस्य करं धृत्वा स्वकरेण रमापतिः ॥४९॥
 वस्यगेहं संश्रियिष्य तस्यां सिंहामने पुनः । सीतायास्ताः स्त्रियः सर्वा विविशुर्वस्त्रसयानि ॥५०॥
 ततः श्रीरामचन्द्रेऽपि लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् । सामायाः क्रोशमात्रेऽथ श्रुतदूतान् पृथक् पृथक् ॥५१॥
 एकैकस्यां दिशि त्वं मे वचनात्स्थापयस्व भोः । योजनोपरि मौमित्रे त्वष्टदिक्षु समंततः ॥५२॥
 नियोजयस्व श्रुतशो राजिवाहान् ममाक्षया । तथेन्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि तथा सर्वं चकार ततः ॥५३॥
 ततो विप्रैः सुहृद्भिश्च विविधान्मर्मनोरमैः । धृतेन श्राद्धशेषेण मोजनं गमयौ व्यधान् ॥५४॥

और सभा होकर विजय रत्नजटित इण्डेवाला तथा मयूरपंखसे निसित चमर लेकर गमक ऊपर दुःखान
 लगा । पीछेकी ओर दूसरा जयनामक सेवक पांवा झलने लगा ॥ ३८ ॥ तीसरा सेवक मुद्रणकमण्डप
 मुणेरहित, हजारों मुक्तावालाओसे मण्डित तथा रत्नजटित इण्डेवाला मुविजाल छत्र तानकर खड़ा हो
 गया ॥ ३९ ॥ उनके पीछे हाथीपर सवार होकर लक्ष्मण शीघ्रतासे चल दिये । लक्ष्मणके हाथीके पीछे
 सीता आदि स्त्रियें जालियोसे चारों ओरके दृष्टियोंको देखती हुई चलीं । पुष्पकविमान भी धीरे-धीरे
 आकाशमार्गसे उड़ता हुआ चला ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उसपर बैठी नगरनिवासिनी स्त्रियें बोनुक देगता हुई
 रामचन्द्रजीके ऊपर आनन्दसे पुष्पवृष्टि करने लगी ॥ ४२ ॥ तदनन्तर घुड़मवार, गजमवार और रथमवार
 सैनिक रामके दोनों ओर पल्लवद्ध होकर सजे हो गये ॥ ४३ ॥ हारकी तरह कतारबद्ध सजे उन मैनिकोंने
 रामको प्रणाम किया । रामने भी अपने करकमलोसे उनके प्रणामोको स्वीकार किया ॥ ४४ ॥ जब इस प्रकार
 श्रीराम गजेन्द्रपर सवार होकर धीरे-धीरे चले, तब दूसरे गजोपर बैठे हुए गायकगण अपनी-अपनी वीणा
 लेकर मधुर गान करने लगे ॥ ४५ ॥ रामचन्द्रजी रास्तेमें फूलोंके मुड़ावने बागोंको देखने, अनेक तरहके
 वाजारोंका अवलोकन करते, वेष्याओंके विविध नृत्योंके देखने, मनको हरण करनेवाले बाजोंको सुनते,
 अन्यान्य कौतुकोंको निहारते तथा चारों ओर चतुर्गिणी सेनासे घिरे हुए घोर-घोर सेनानिवासके स्थिर
 कल्पित उत्तम शिविरमें जा पहुँचे । उस स्थानको दूसरी अयोध्याके समान सुश्रित देखकर राम हाथीसे
 उतर पड़े ॥ ४६-४८ ॥ उस समय श्रीसैनिकोंके द्वारा बारम्बार किये हुए प्रणामोंको स्वीकार करके अपने
 हाथसे लक्ष्मणका हाथ पकड़कर रमापति राम समूहमें गये और वहाँ सिंहासनपर विराजमान हो गये ।
 सीता आदि स्त्रियें भी अपनी-अपनी सवातियोंसे उतरकर समूहमें जा विराजी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ पश्चात्
 श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा कि तुम मेरे आज्ञानुसार सीमाकी सब दिशाओंमें एक-एक कोसकी दूरीपर मंकड़ों
 मियाही अलग अलग सजे कर दो और आठो दिशाओंमें एक-एक योजनकी दूरीपर सैकड़ों घुड़मवार
 नियुक्त कर दो । "जो आज्ञा" कहकर लक्ष्मणने सब वैसा ही प्रवन्ध कर दिया ॥ ५१-५३ ॥ पश्चात् ब्राह्मणों

तां पूर्य दक्षिणां दत्त्वा नानाविधं प्रम्य आदरात् । मुखशुद्धिं स्वयं कृत्वा तस्थौ पिहामने पुनः ॥५५॥
 श्रुत्वा शास्त्रपुराणानि वेदान्तांश्चापि सादरम् । सायं मध्यादिकं कृत्वा हृत्वा होमं यथाविधि ॥५६॥
 सिंहासने समासीनो वेश्यानां नृत्यश्रुतमम् । पश्यन् शृण्वन् गायनं च नीत्वा यामद्वयां निशाम् ॥५७॥
 ततः सुष्याप पर्यङ्गे सीतया सह राघवः । द्वितीये दिवसे तत्र स्थित्वा रामस्तु कौतुकैः ॥५८॥
 नीत्वा समग्रं सुदिनं तृतीये दिवसे पुनः । पूर्ववद्वाद्यघोषार्घ्यैः शनैः स्थानांतरं ययौ ॥५९॥
 कचिदिनमतिक्रम्य कचिद्दूरे प्रीणि राघवः । स्थित्वा पश्यन्कौतुकानि रञ्जयन् जनकान्मजाम् ॥६०॥
 शनैः शनैर्ययौ मार्गं मासेनैकेन राघवः । प्राप जीर्णं मुद्गलेन त्यक्तमाश्रममुत्तमम् ॥६१॥
 राममागतमाज्ञाय मुद्गलो नूतनाश्रमात् । भार्गीरथ्या दक्षिणतः प्राप रामान्तिकं तदा ॥६२॥
 तं दृष्ट्वा राघवश्चापि नत्वा सम्पूज्य सादरम् । वासोगेहे ममार्मान पप्रच्छ विनयान्मुनिम् ॥६३॥
 त्वयाऽयमाश्रमस्त्यक्तः किमर्थं मुनिमत्तम । तत्त्वं वद महाभाग यथावच्च मविस्तरम् ॥६४॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा मुद्गलो वाक्यमब्रवीत् । अद्य धन्योऽस्म्यहं राम निवृत्त वनवासिनः ॥६५॥
 यत्त्वां पश्यामि नेशाम्यां चिरकालेन राघव । भरतप्राणरक्षार्थं यदा नीता ममाश्रमात् ॥६६॥
 दिव्यौषध्यस्तदा जातं पूर्वं ते दर्शनं मम । मयाऽयमाश्रमस्त्यक्तः किमर्थं तद्वर्त्तमि ते ॥६७॥
 सन्निध्यं नात्र गङ्गायाः सरय्या अपि नात्र वै । इति मत्वा मया त्यक्तश्चाश्रमोऽय महत्तमः ॥६८॥
 अत्र सिद्धिं गताः पूर्वं शतशोऽथ सदस्रशः । मुनीश्वरा मयाप्यत्र तपन्तम कियद्दिनम् ॥६९॥
 इति राम समाख्यातमाश्रमस्य च मोचने । कारणं च त्वया पृष्टं किमग्रे श्रोतुमिच्छसि । ७०॥

तथा मित्रोंके साथ बैठकर रामने प्लुतमिश्रित नाना प्रकारके ध्राद्वशेष पकवानोका भोजन किया ॥ ५४ ॥
 आदरसे साह्यणोको साम्बूल तथा अनेक प्रकारकी दक्षिणाये देकर रामने मुखशुद्धिक लिए साबूल खाया
 और पुनः सिंहासनपर आ विराजे ॥ ५५ ॥ तदनन्तर वेदान्त आदि सत् शास्त्रों तथा पुराणोंकी कथाको
 प्रेम और श्रद्धासे शान्तिपूर्वक सुना । सायंकाल होनेपर पुन यथाविधि संध्यावन्दन तथा हवन
 आदिसं निवृत्त होकर सिंहासनपर आ सुशोभित हुए । वही रात्रिके दो पहर तक वेश्याओंका नृत्य-गान
 देखने गुनत रहे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तदनन्तर राम सीताके साथ पलंगपर शयन करनेको चले गये । दूसरा
 भी सारा दिन रामने आनन्दसे वही रहकर बिताया । तीसरे दिन आनन्द बाजे-गाजेक साथ धीरे धीरे
 दूसरे पट्टावकी ओर बढ़े ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इसी प्रकार कहीं एक दिन, कहीं दो और कहीं तीन दिन तक निवास
 करते हुए राम आनकीको प्रसन्न करते तथा विविध कौतुकोंको देखते रहे ॥ ६० ॥ इस प्रकार एक मास
 घात जानेपर वे मुद्गल ऋषिके छोड़ हुए एक पुराने तथा पवित्र आश्रममें आ पहुचे ॥ ६१ ॥ रामको अपने
 पुराने आश्रमपर आये मुनकर मुद्गलऋषि भार्गीरथीके दक्षिण तटपर स्थित अपने नवीन आश्रमसे दर्शन
 करनेके लिए उनके पास आये ॥ ६२ ॥ राघवने उन्हें देखकर नमस्कार किया और उनकी विधिवत् पूजा की ।
 पश्चान् साम्बूल देकर आदम्पूर्वक आसनपर बैठाया और उनसे मन्त्रतापूर्वक कहा— ॥ ६३ ॥ हे मुनिधेय !
 आपने इस आश्रमका क्यों छोड़ दिया ? हे महाभाग ! इसका कारण विस्तारसे आप हमें कह सुनाइये
 ॥ ६४ ॥ यह मुनकर मुद्गलमुनि कहने लगे—हे राम ! मेरा धन्य भाग्य है कि जो मैं आज बहुत दिना बाद
 वनवाससे लौट हुए आपको अपनी आँखों देख रहा हूँ । पूर्वकालमें भरतके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिए जब
 आप मेरे आश्रममें दिव्य औषधि ले गये थे, तब मुझे आपका दर्शन भिन्ना था । अब मैंने इस आश्रमको
 क्यों छोड़ दिया, इसका कारण आपसे कहता हूँ । ६५-६७ ॥ हे प्रभो ! मैंने इस विशाल आश्रमको केवल
 इसलिए छोड़ दिया है कि यहाँपर गंगा अथवा सरयू इन दोनों पवित्र नदियोंमेंसे कोई भी नदी नहीं
 है ॥ ६८ ॥ इस आश्रममें निवास करके हजारों मुनीश्वरोंने सिद्धि प्राप्त की है और मैंने भी कुछ दिनों
 तक यहाँ रहकर तपस्या की है । परन्तु क्या करें, किसी तीर्थके न होनेसे इस स्थानपर बड़ा
 कष्ट है ॥ ६९ ॥ हे राम ! यह तो मैंने आपके पूछनेके अनुसार इस आश्रमको छोड़नेका कारण कह

तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा पुनस्तं प्राह राघवः । किं कृत्वा नेऽत्र वमनिर्भविष्यति मुने वद ॥७१॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवं प्राह मुद्गलः । यद्यत्र मग्न्यनघाः संगमो हि भविष्यति ॥७२॥
 जाह्नव्या तर्ह्यहं चात्रं धन्ये गमयधामुखम् । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तं पुनः ॥७३॥
 किमर्थं सरयुः श्रेष्ठा कुतः प्राप्ता धरानलम् तत्त्वं वद महाभाग भविस्तारं मयाग्रतः ॥७४॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा मुद्गलो वाक्यमब्रवीत् । तत्त्वं चरितं गमयन्मुखान्छोनुमिच्छामि ॥७५॥
 तर्हि ते सप्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व रघूनमः । शंखासुरो महान्दंन्यो वेदान् पूर्वं जहार हि ॥७६॥
 क्षिप्त्वा तांश्च समुद्रे हि स्वयमार्मान्महोदधौ । तदर्थं च त्वया मानस्यं वपुर्धृत्वा महत्तरम् ॥७७॥
 हतः शंखासुरो वेदास्त्वया दत्तास्तु वेधसे । ततो हर्षेण महता पूर्वरूपं त्वया धृतम् ॥७८॥
 तदा हर्षेण नेत्रात्ते पतिताश्चाश्रुधिंदवः । हिमालये ततो जाता नदी पुण्या शुभोदका ॥७९॥
 साक्षान्नारायणस्यैव आनन्दाश्रममुद्भवा । शूर्नेर्बिन्दुमरः प्राप तस्माच्च मानसं ययौ ॥८०॥
 एतस्मिन्नन्तरे गमय पूर्वजग्ने महत्तमः । वैवस्वतो मनुर्यष्टुमुबुक्तो गुरुमब्रवीत् ॥८१॥
 अनादिमिद्वाऽयोध्येयं विशेषेणापि वै मया । रचिता निजवासाधमत्र यज्ञं करोम्यहम् ॥८२॥
 पदि ते रोचते चित्ते तच्छृन्वा गुरुरब्रवीत् । अत्र तीर्थं वर नास्ति नास्ति श्रेष्ठा महानदी ॥८३॥
 यद्यत्रवास्ति ते चित्तं यष्टुं नृपतिमत्तम । आनयस्व नदीं रम्यां मानसात्पातकापहाम् ॥८४॥
 तद्गुरोर्वचनाद्राज्ञा मनुर्वैवस्वतो महान् । टण्ठकृत्य महच्चापं सन्दधे शरमुत्तमम् ॥८५॥
 स शरी मानसं भिक्ष्वा तस्माभिष्कास्य तां नदीम् । अयोध्यामानयाभासं पथानं दर्शयन्निव ॥८६॥
 शरमार्गानुसारेणायोध्यायां प्राप वै नदी । महोदधौ पूर्वदेशे मिलिता रघुनन्दन ॥८७॥

मुनाया । आगे क्या पछना है, मों कहिये ॥ ७० ॥ मुनिके इस वाक्यको सुनकर रामने कहा—हे मुने ! आप यह बताइये कि क्या करनेसे आप फिर इस आश्रममें निवास कर सकत हैं ? ॥ ७१ ॥ रामके प्रेमपूर्ण प्रश्नको सुनकर मुद्गल ऋषिने कहा—यदि यहाँपर सरयू और गंगाका संगम हो जाय तो मैं बड़े सुखसे रह सकता हूँ । इस बातको सुनकर रामने पुनः उनमें प्रश्न किया—॥ ७२ ॥ ७३ ॥ हे महाभाग ! सरयू नदीका इतना श्रेष्ठ माहात्म्य क्यों है और यह कहाँसे चगनगिर आयी है ? इन बातोंका विस्तारसे वर्णन करिए ॥ ७४ ॥ मुद्गलन कहा—हे प्रभो ! आप अपना ही चरित्र यदि मेरे मुखसे सुनना चाहत हैं ॥ ७५ ॥ तो हे रघूनम ! मैं आपको सुनाता हूँ, नुनिग, पतिर कभी शंखासुर नामका एक बड़ा भारी राक्षस हुआ था । वह सब वेदोंको हर ले गया ॥ ७६ ॥ उसने उन्हें न जाकर समुद्रमें डुबो दिया तथा स्वयं भी उसी महासागरमें छिप गया । उसको मारनेके लिए आपने बड़े भारी मत्स्यका रूप धारण किया ॥ ७७ ॥ और उसको मारकर वेदोंकी रक्षा की । वेदोंको लेकर आपने ब्रह्माको दिया और प्रसन्नतापूर्वक पुनः अपना पूर्वरूप धारण कर लिया ॥ ७८ ॥ उस समय आपके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुकी बूँदें टपक पड़ी । हिमालयपर गिरी हुई आप नारायणके उन हर्षाश्रुको बूँदोंने एक पवित्र तथा निर्मल जलवाला नदीका रूप धारण कर लिया । आगे चलकर वे कासार और कासारसे मानसरोवरके रूपमें परिणत हो गयीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ हे राम ! उसी समय आपके पूर्वज महात्मा वैवस्वत मनुने यज्ञ करनेकी इच्छा करके अपने गुरुसे कहा—॥ ८१ ॥ इस अयोध्यापुरीके अनादिकालमें स्थित रहनेपर भी मैंने अपने निवासके लिए इसकी कुछ विधेयतापूर्वक रचना करवायी है । इस कारण यदि आप कहें तो मैं इस नगरीमें यज्ञ करूँ । तब गुरुने कहा कि देखिए, मैं तो यहाँ कोई पवित्र तीर्थ है और न कोई बड़ी नदी ही है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इसलिये यदि आपकी यही यज्ञ करनेकी इच्छा हो तो हे नृपतियोंमें श्रेष्ठ नृप ! मानसरोवरसे सुन्दर तथा पापीको नष्ट करनेवाली एक नदीको यहाँ ले आइए ॥ ८४ ॥ गुरुके इस वचनको सुनकर महान् राजा वैवस्वत मनुने अपने विशाल धनुषको चड़ा तथा टंकोर करके बाण चलाया ॥ ८५ ॥ वह बाण मानसरोवरको भेदकर उसमेंसे निकला नदीके आगे-आगे चलकर रास्ता दिखाते हुए अयोध्या ले आया । बाणके मार्गका अनुसरण करती हुई वह नदी अयोध्या आयी तथा वहसि आगे जाकर पूर्वी महा-

आर्नता सा शरेणव शरयुश्चेति कथ्यते । मरीचरत्नसमुद्भूता शरयुश्चेति केचन ॥८८॥
 ततो मरीचधेनेयं कपिलक्रोधवह्निना । विनिर्दग्धान् पूर्वजान् वै सागरान् प्रेषितुं दिवम् ॥८९॥
 भार्गवर्या समानीता त्वत्पादाब्जसमुद्भवा । तपसा शकरं तोष्य शरया मिलिताऽथ सा ॥९०॥
 वरदानाच्छली सभोगा कल्याणि गमिष्यति । अग्रे सागरपर्यन्तमेतां गङ्गां वदति हि ॥९१॥
 नव पादसमुद्भूता सा विश्वं पाति जाह्नवी । इयं तु नेत्रमभूता किमद्याग्रे वदाम्यहम् ॥९२॥
 काटिचर्पसहस्रं कोटिचर्पश्चैतरेण । महिमा शरयूनद्याः कोऽपि वक्तुं न वै शमः ॥९३॥
 इति गम समालुपान यथा पृष्टं त्वया मम । मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मण प्राह राघवः ॥९४॥
 शरयुमानयस्वात्र शरं मुक्त्वा ममाह्वया । तथेति रामवचनाद्भुत्वा चापं स लक्ष्मणः ॥९५॥
 शरं मुक्त्वा तटं भित्त्वा शरयुमानयन्धुषणात् । शरयु सा द्विधा भूत्वा मुद्रलाश्रममाययौ ॥९६॥
 जाह्नव्या मिलिता सापि तां दृष्ट्वा राघवोऽब्रवीत् । अत्र स्थित्वा लक्ष्मणेन दारितेयं महानदी ॥९७॥
 अनो दद्रीति नाम्नाऽत्र नगरी ख्यातिमेष्यति । दद्रीयं जगतीमस्ये वदर्याश्च यथाधिका ॥९८॥
 भविष्यति न संदेहस्तव वामाद्विणेषतः । ततः सीतां समाहूय राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥९९॥
 मुद्रलस्याश्रमेऽत्रैव मा नीता शरयूनदी । पश्य मौमिश्रिणा मुक्त्वा शरं मन्नामचिह्नितम् ॥१००॥
 नार्गभिर्मातृभिः सीते पुष्पकेणानिभास्वना । वृद्धा मा शरयुर्यत्र संगताऽस्ति महानदी ॥१०१॥
 जाह्नव्या भगमं त्वं हि गच्छस्व गुरुणा द्विजैः । पूजयित्वा सविस्तारं यथोक्तं वचनं पुरा ॥१०२॥
 आगच्छस्व ततः शीघ्रमत्र त्वं मम मन्निधौ । विशेषान्मुद्रलस्यापि सन्निधावय वै पुनः ॥१०३॥
 नवीनशरयूनद्या भार्गवर्यास्तु सगमे । पूजनं त्वं मया साकं कर्तुमर्हसि मैथिलि ॥१०४॥

सागरम मिल गयी ॥८६॥८७॥ शरके द्वारा आयी जानसे संग उसको 'शरयू' नदी कहने लगे । अथवा सरोवरसे निकलकर आनेके कारण उसका 'शरयू' नाम पड़ा, कुछ लोगोंका ऐसा कथन है ॥ ८८ ॥ उसके बाद राजा भार्गव कपिल मुनिका क्रोधाग्निसे जलाये गये अपन पूर्वज सागर-पुत्रोंका स्वर्ग भेजनेकी इच्छासे आपके चरणारविन्दसे प्रादुर्भूत भार्गवों गंगाको ले आये । बादमें शकरजीको तपसे प्रसन्न करके उस नदीको शरयूसे ला मिलायी ॥ ८९ ॥ ९० ॥ शकरभगवान्के वरदानसे गंगाकी बड़ी सारी प्रसिद्धि हुई तथा समुद्र तक उसको संग गंगा कहने लगे ॥ ९१ ॥ हे शम्भो ! आपके चरणकमलोंसे निकला हुई गंगा समस्त विश्वको पवित्र करने लगी । वैसे ही आपके नेत्रजलसे उत्पन्न होकर यह शरयू भी लोगोंको पावन करने लगी । हे भगवन् ! अब मैं आगे क्या कहूँ ? ॥ ९२ ॥ कराडो वर्षोंमें भी इस शरयू नदीकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर सकता ॥ ९३ ॥ हे राम ! आपन जो पूछा था, सो मैं कह सुनाया । मुनिके इस वाक्यको सुनकर रघुराज रामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा— ॥ ९४ ॥ तुम बाण छोड़ तथा शरयूके तटका भेदन करके उसे यहाँ ले आओ । लक्ष्मणने वैसे ही किया और वह शरयू दो भागोंमें विभक्त होकर सगमरमें मुद्रलक्ष्मणके प्राचीन आश्रममें आ पड़्यो ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ उसका अकेली ही नहीं, किन्तु जाह्नवीके संगम सहित आयी हुई देखकर रामने कहा कि लक्ष्मण दारण (चीर) करके इस नदीका यहाँ ले आये हैं ॥ ९७ ॥ इस लिए इस जगहपर दद्री नामकी प्रसिद्ध नगरी बसेगी । वह दद्री नगरी पृथ्वीतलमें बदरीनाथ धामसे भी अधिक बढ़कर पुनीत होगी ॥ ९८ ॥ इसमें संदेह नहीं है । विशेष करके आपके यहाँ निवास करनेसे इसको और भी अधिक ख्याति होगी । पश्चात् रामने सीताको बुलाकर कहा— ॥ ९९ ॥ सीते ! देखो, सुमित्रापुत्र लक्ष्मण मेरे नामसे चिह्नित बाण छोड़कर शरयू नदीको यहाँ मुद्रल मुनिके आश्रममें ले आये हैं ॥ १०० ॥ अब तुम हमारी माताओं, अन्य स्त्रियों, गुरुजनों तथा ब्राह्मणोंको साथ ले तथा इस पुष्पक विमानपर सवार होकर जहाँ शरयू तथा गंगाका संगम है, वहाँ जाओ और अपने प्रतिज्ञाके अनुसार विधिवत् उनकी पूजा कर आओ ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ वहाँसे लौटकर शीघ्र ही मेरे तथा इन मुद्रल मुनिके सम्मुख इस नदीत शरयू तथा सगवती भार्गवोंके संगमका

तथेति रामवचनमगीकृत्य विदेहजा । पूजामंभारमादातुं विवेक्ष्य वसनगृहम् ॥ १०५ ॥
इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे सरयूद्विषाकरणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(कुम्भोदरोपाख्यान)

श्रीरामदास उवाच

ततो गृहोत्वा सभारान् पूजार्थं जानकीं जवात् । कौतल्यादिभ्रूभिस्तु पुष्पकं चारुरोह सा ॥ १ ॥
अनेन हृदा सरयूर्यं सा गङ्गाया शुभा । सङ्गताऽस्ति महाभेष्टा सत्र प्राप विदेहजा ॥ २ ॥
पतिं विनाऽग्निना नग्री सीमामुल्लङ्घ्य न व्रजेत् । स दोषोऽत्र न विज्ञेयः सीतायात्रा विहायसा ॥ ३ ॥
उत्तीर्य सा विमानाग्रयान्नमस्कृत्वाऽप्य सङ्गमम् । पुरोधसा चोदिता सा नारिकेलं सत्रावनम् ॥ ४ ॥
भागीरथ्यै समर्प्याथ स्नात्वा चैव यथाविधि । सगमं पूजयामास चोपस्कारैर्यथाविधि ॥ ५ ॥
सुरामांसोपहारैश्च पक्वान्नैर्बलिभिस्तथा । पट्टकूलादिभिर्वस्त्रैर्मुक्ताहारैः सचदनैः ॥ ६ ॥
दिव्यैराभरणैश्चित्रैर्वीर्यनाद्यैः सविस्तरम् । ततः सुवासिनीः पूज्य पूजयित्वा त्वरुंधरीम् ॥ ७ ॥
वसिष्ठं ब्राह्मणांश्चापि भोजयामास विस्तरैः । पट्टकूलादिभिर्वस्त्रैर्दिव्यैराभरणादिभिः ॥ ८ ॥
सुवासिनीर्ब्राह्मणांश्च तोषयामास भयिली । स्वयं कुत्सोपहारं न राघवार्पणमुपोषिता ॥ ९ ॥
ययौ यानेन शीघ्रं सा राघवस्थान्तिकं मुदा । ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि सीतया गुरुणा द्विजैः ॥ १० ॥
गङ्गायोः सङ्गमे चक्रे पूजनं स यथाविधि । यथा कृतं च वंदेह्या तस्मान्चापि श्रुताधिकम् ॥ ११ ॥
ततः सहस्रशो विप्रान् भोजयामास सादरम् । दत्त्वा दानान्पनेकानि गोहस्तिरथवाजिनाम् ॥ १२ ॥
ततो ह्युक्त्वा स्वयं रामः सीतया बन्धुभिर्जनैः । सिंहासने समासीनो कौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥

मेरे साथ मिलकर पूजन करो ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ तब विदेहराजकी पुत्री सीता "ओ आज्ञा" कहकर पूजाकी सामग्रियों लेनेको तबूमे गयी ॥ १०५ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे आवाटोकाय सरयूद्विषाकरणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासजीने कहा—बादम जानकी पूजाका सब सामान लेकर कौसल्या आदि सासुओ तथा अन्य बहुओंके साथ कीधस्तासे पुष्पक विमानपर जा बंठी ॥ १ ॥ क्षण भरमें विदेहराजकी पुत्री सीता उस पुराने सङ्गमपर जा पहुँची, जहाँपर कि सरयू पवित्र गङ्गा नदीसे मिली है ॥ २ ॥ पत्नीको पतिक विना आगेकी सीमा नहीं लाँघनी चाहिये । यह दोष यहाँ सीताको नहीं लग सकता । क्योंकि सीताका यमन आकाशमार्गसे हुआ था ॥ ३ ॥ वहाँ पहुँचनेपर सीता विमानसे नीचे उतरी और सङ्गमको नमस्कार किया । पश्चात् पुरोहित-के कथनानुसार सीताने वायन (ऐवन) सहित नारियल भागीरथीको समर्पण करके उसमें विधिवत् स्नान किया । फिर सुरामांस-पक्वान आदिको बलिसे, दुपट्टा आदि सुन्दर वस्त्रोसे, दिव्य आभूषणोसे, मुक्ताके हारसे, चन्दनसे तथा वायन आदिकी पूजाके उपकरणोसे विधिवत् तथा विस्तारपूर्वक सीताने सङ्गमका पूजन किया । तदनन्तर पतिपुत्रवती सौहागिनी स्त्रियोंको पूजा करके सीताने अरुन्धतीका पूजन किया ॥ ४-७ ॥ तब उनको तथा वसिष्ठ आदि सब ब्राह्मणोंको भोजन कराके सुवासिनी स्त्रियोंको दुपट्टो, धोतियों तथा दिव्य आभूषणोसे सीताने संतुष्ट किया । स्वयं निराहार रहकर सीताने रामके कल्याणार्थ उपवास किया ॥ ८-९ ॥ तदनन्तर विमानपर सवार होकर जानन्दसे सीधतापूर्वक रघुनन्दन रामके पास आ गयी । रामने भी सीताको, गृह वसिष्ठको तथा विप्रोंको साथ लेकर सीताकी की हुई पूजासे सौगुने धूम-धाम तथा विधिसे गङ्गा-सरयूके सङ्गमकी पूजा की ॥ १० ॥ ११ ॥ वहाँ उन्होंने बड़े आचरणावसे हजारों विप्रोंको भोजन कराया । अनेक गाँवें, हाथी, घोड़े तथा

ज्ञानव्यो मम वामोऽत्र गर्शीर्नैव गृह्यतम । मीमाचागन् कुरुष्व त्वं श्रामनं यन्मयोच्यते ॥ १४ ॥
 ग्रहचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः । यः कश्चिद्वा ममायाति पथिकः स समाज्जया ॥ १५ ॥
 मया मपूजितो नैव गन्तुं देयः समन्ततः । मयाऽदृष्टो गतः कश्चिन्ना चः श्रामनं मम ॥ १६ ॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तथा चक्रे स लक्ष्मणः । च्यवनो मुनिवर्यस्तु ज्ञात्वा रामं समागतम् ॥ १७ ॥
 दर्शनार्थं ययौ शीघ्रं रामेणापि मपूजितः । स्थित्वा मने वस्त्रमेहे राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥
 गम गार्ज्जवप्राञ्च गङ्गायाः दक्षिणे तटे । आश्रमः कौकटे देशे ममास्ति परमः शुभः ॥ १९ ॥
 कंदमूलफलार्थं हि विघ्नं कुर्वन्नि मागधाः । ममाश्रमे राजद्वाम्नेभ्यो रक्षा विधीयताम् ॥ २० ॥
 च्यवनस्य वचः श्रुत्वा टण्डुकस्य महद्भुजः । बाणं मुक्त्वाऽऽश्रमात्तस्य पथितः पश्चिमोपमाम् ॥ २१ ॥
 चकार रेखां बाणेन दृष्टेर्गतुं च धक्षमाम् । रामबाणकृता रेखा यत्र तत्र पुरी शुभा ॥ २२ ॥
 रामरेखेति नाम्नाऽऽसीत्तया चैव मता नदी । च्यवनश्च ततो हृष्टो राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥
 निम्नः स कौकटो देशो वर्तते गधुनन्दन । तत्र वाक्याद्भविष्यति तत्र पुण्यस्थलानि हि ॥ २४ ॥
 तद्दि न्वयाऽथ वक्तव्यं वचनं मे सुखास्पदम् । तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वाक्यं रामस्तमब्रवीत् ॥ २५ ॥
 कौकटेषु गया पुण्या नदी पुण्या तु पुनपुना । आश्रमस्ते महापुण्यः पुण्य राजवन परम् ॥ २६ ॥
 भविष्यति न मन्देहो मम वाक्यान्मुनीश्वर । च्यवनस्तेन मनुष्टो गम दृष्ट्वाऽऽश्रमं ययौ ॥ २७ ॥
 गतस्मिन्नन्तरं तस्य मंत्रे रामेण निमित्ते । प्रत्यहं कौटिलो विप्रा भुञ्जन्ति यतिभिः सह ॥ २८ ॥
 कुसोदरो मुनिः प्रागान्मीमाचागतिक नदा । गङ्गायात्राप्रसंगेन गयां गन्तुं समुद्यतः ॥ २९ ॥
 ममागतः प्रयागान्च दूतान्दृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः । हे दूता उत्तरं देशं गृयं कस्याजया स्थिताः ॥ ३० ॥

रथ उहें दानम दिये ॥ १२ ॥ उनका भोजन कराने के बाद भाई-बन्धुओं तथा अन्यान्य लोगों के साथ सीता तथा स्वयं रामने भी भोजन किया । तत्पश्चात् मिहामनपर बैठकर उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—॥ १३ ॥ हे रघून्तम ! मैं इस जगह नौ दिन तक निवास करूँगा । इसलिये मेरे कहनेसे तू भी सीतापर खड्ग दूतोंका आज्ञा दे कि कोई भी यात्री, ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा गन्यासी बिना मेरी पूजा ग्रहण किये न जान पाये । यदि कोई चला गया और मुझे ज्ञात हुआ तो मैं दूतोंको दण्ड दूँगा ॥ १४-१६ ॥ रामके वचन मनकर लक्ष्मणने वैसी ही आज्ञा दे दी । उधर च्यवन मुनिने जब गुना कि यहाँ रामचन्द्र आये हुए हैं तो वे रामके दर्शनार्थ वहाँ आये । रामने उनकी पूजा की । पश्चात् तन्त्रमे सुन्दर आसनपर विराजमान होकर मुनिने रामसे कहा—॥ १७ ॥ १८ ॥ हे कमलपत्रके समान नेत्रोवाले राम ! मगध देशमें गङ्गाके दक्षिणी तटपर मेरा एक परम रमणीय आश्रम है ॥ १९ ॥ परन्तु मेरे उस आश्रममें मगध देशके दूत फल-मूल आदि लेनमें बड़ा विघ्न डालते हैं । इसलिए आप उन विघ्नोंसे मेरी रक्षा करें ॥ २० ॥ च्यवनकी बात सुनकर रामने धनुषका तर्कार करके एक बाण छँटा । जिससे च्यवन आश्रमके चारों ओर गार्ज्जके समान गहरा लफोर खिच गयी, जिसको लाघना उन दुष्टोंके लिए असंभव हो गया । जहाँ रामके बाणका रेखा खिची थी, वहाँपर "राम-रेखा" नामकी सुन्दर नगरी बसी और रामरेखा नामकी नदी भी प्रवर्तित हो गयी । इसके बाद च्यवनऋषि प्रसन्न होकर रामचन्द्रजीसे बोले—॥ २१-२३ ॥ हे गधुनन्दन ! अभी कौकट देश निम्न माना जाता है । आपके कहनेसे वह भी पुण्यस्थान अवश्य बन जायगा । इसलिए आप मुझे सुख देनेवाला कोई वचन आज कहें । मुनिने इस वचनको सुनकर रामजीने सहर्ष कहा—॥ २४ ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वर ! मेरे कहनेसे कौकट देशमें गया, पुनपुना नदी, आपका आश्रम तथा राजवन (राजगृह) पुण्यस्थल होंगे । इसमें आप कुछ भी सदेह न मानें । श्रीभगवान्के इस कथनसे संमूह होकर च्यवनऋषि रामजीसे आज्ञा लेकर अपने आश्रमको चले गये ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके बाद रामजीके द्वारा स्थापित अग्रक्षेत्रमें प्रतिदिन करोड़ों ब्राह्मण और धर्ति भोजन करने लगे ॥ २८ ॥ ऐसा होनेपर एक दिन गङ्गायात्राके प्रसङ्गमें कुम्भोदर नामके मुनि प्रयागसे रामजीकी भोजनशालाके लिए नियत की हुई सीमापर आये । वहाँ दूतोंको देखकर वे बोले—हे दूतो !

आकाशचुचिनिश्चित्रा इमेऽग्रे कस्य च श्वजाः । हनुमन्कोविदागङ्गेजेश्वाणाकिताः शुभाः ॥३१॥
 श्वेतनीलहरिर्पीतवर्णाः परमशोभनाः । दृश्यतेऽग्रे पताकाश्च ध्रुवते जयनिःस्वनः ॥३२॥
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा दूताः प्रोचुस्त्वगान्विताः । रामो गर्जतपत्रजोऽयोध्यायाः बालकः प्रभुः ॥३३॥
 सोऽग्रे यात्रार्थमायानो वयं तस्याहया स्थिताः । मग्नमग्नस्य रामेण निर्मितं चात्र वर्तते ॥३४॥
 शुभार्तस्त्वं सुखं गच्छ ह्यक्त्वा धाम्ना मुखां व्रज । तत्रेपां वचनं श्रुत्वा परिहृत्य मुनिः पुनः ॥३५॥
 आगतो येन मार्गेण तेन मार्गेण सययौ । गच्छन्तं न मुनिं दृष्ट्वा रामदूतास्त्वगान्विताः ॥३६॥
 रुदृष्ट्वा मार्गं मुनेस्तस्य वचनं प्रोचुर्गदगन् । किमर्थं त्वं परावृत्य मुने गच्छसि वै पुनः ॥३७॥
 आगतोऽसि पथा येन तेनैव त्वं वदस्व नः । इति तेषां वचः श्रुत्वा निबन्धान्मुनिरुत्तरमा ॥३८॥
 नृणां स्थित्वाक्षणं ध्यात्वा निश्चयं कृतवान् हृदि । इदानीं राघवोऽधोऽध्यां यात्रां कृत्वा भविष्यति ३९ ।
 नानादेशेषु सर्वत्र नृणां तद्दर्शनं कथम् । भविष्यति तथाऽन्यत्र रामतीर्थानि भूतले ॥४०॥
 भविष्यन्ति कथं नृणां महत्पापहृणाणि च । कथं रामेधरा मूर्ध्नां भविष्यन्ति गतिप्रदाः ॥४१॥
 अतः किञ्चिन्करोम्यद्य येन रामस्तु भूतले । यात्रोद्देशेन सर्वत्र सीतया सह यास्यति ॥४२॥
 अनेन लोकशिष्टाऽपि भविष्यति न सशयः । इति निश्चिन्य स मुनिः प्राह दूतान्स्मयन्निव ॥४३॥
 दूताः शृणुत मे वाक्यं हतो येन दशाननः । ब्रह्मपुत्रो बन्धुपुत्रं कुत तीर्थसेवनम् ॥४४॥
 तथा यज्ञः कुतो नैव तस्यान्तं नाहमस्मिन्पाम् । दीयतां मम मार्गा हि भवद्भिर्वचनं मम ॥४५॥
 कथनीयं राघवाय यात्रायज्ञान् कल्पिष्यति । इति तस्य वचः श्रुत्वा विमस्यादिष्टमानमाः ॥४६॥
 दत्त्वा मार्गं श्रापभीन्या दूता रामांतिकं ययुः । रामं नन्वा शनैस्तस्य कर्णे वृत्तं न्यवेदयन् ॥४७॥
 राघवोऽपि मुनेस्तस्व श्रुत्वाऽभिप्रायमुत्तमम् । सर्वं वृत्तं सभामध्ये चकार सस्मितः स्फुटम् ॥४८॥

तुम लोग किसकी आज्ञासे यहाँ रहते हो ? ये सामान गगनस्पर्शी तथा चित्र-विचित्र हनुमान्, कोविदार, गरुड और वाणम विह्वित श्वेत, नील, हरित एवं पीत रंगकी परम सुन्दर पतल्लाय किसकी पहिरा रही है ? यत् त्रयशब्द जिसकी मुन्नाई दे रहा है ? ॥ २१-३२ ॥ मुनिके वचन सुनकर दूत वाले — कमलनयन और अयोध्याके पालक प्रभु रामचन्द्रजी यात्राके लिए यहाँ आये हुए हैं उनको आज्ञासे ही हम लोग यहाँ उपस्थित हैं । उन्हीं रामजीके द्वारा स्थापित अन्नक्षेत्र यहाँ है । यदि आप भूत हो तो सुम्हसे वहाँ बलिदान और भोजनादि करके जाओगे । उनके वचन सुनकर मुनि लोट पड़ और जिस मार्गसे आये थे, उसी मार्गसे फिर आने लगे । जाते हुए मुनिको देख शीघ्र दूत लोग उनका राह रोककर मादर वाले — हे मुने ! आप जिस मार्गसे आये थे, उसी मार्गसे फिर लौटें वही जा रहे हैं ? आप जिस कार्यसे आये हैं, उसे हम लोगोंको बताइए । दूतोंके इस जाग्रह पर वचनको सुना तो चुपचाप खड़े होकर बाड़ी दर हृदयमें सोच करके मुनिने विचार किया कि यदि इस समय रामचन्द्रजी यात्रा करके अयोध्या चले जायेंगे ॥ ३३-३५ ॥ तब अन्यत्र दशोक मनुष्योंको उनका दर्शन कैसे मिलेगा और दूसरे स्थानोंपर मनुष्योंके वस्से बड़ पापोंको नष्ट करनेवाला रामतीर्थ कैसे बनेगा ? अनेक जोष-दण्डक रामेश्वर कैसे स्थापित होंगे ? इस लिए आज मैं कोई ऐसा उपाय करता हूँ कि जिससे रामचन्द्रजी संसारमें सब स्थानोंपर यात्राके उद्देश्यसे सीताजीके साथ जायें ॥ ४०-४२ ॥ इस यात्रामें लोगोंको शिक्षा भी मिलेगी । इसमें संदेह नहीं है । ऐसा विचार करके कुछ हँसते हुए मुनिने दूतोंसे कहा — ॥ ४३ ॥ हे दूतों ! मेरे वचन सुनो । जिसने बाह्यपुत्र दशानन रावणको मारा और भाई एव पुरोक सहित न तीर्थसेवन किया और न यज्ञ ही किया, उस रामके अन्नको मैं नहीं खाऊँगा । आप लोग मुझे जाने दें । मेरी बात रामसे कहियेगा । इसे सुनकर मे अवश्य तीर्थयात्रा तथा यज्ञ करेंगे । मुनिके इस वचनको सुनकर वे घबड़ाये हुए दूत शापके डरसे मुनिको मार्ग देकर रामचन्द्रजीके पास गये । वहाँ पहुँचकर रामजीका प्रणाम करके उनके कानमें उस मुनिकी बातकी सीरेसे निवेदन कर दिया ॥ ४४-४७ ॥ श्रीरामने भी मुनिके उस उत्तम अभिप्रायको जानकर सब बात

मन्त्रिभिर्विन्धुभिश्चैव वसिष्ठेन पुरोधसा । मन्त्रायेन्द्रा मुनेर्वाक्यं सत्यं मेने रमापतिः ॥४९॥
 ततो निश्चितवान् रामः समामध्ये पुरोधसा । आदौ कार्या तीर्थयात्रा यज्ञाः कार्यास्ततः परम् ॥५०॥
 ततो रामाज्ञया दत्ता गत्वाऽधोऽध्यां पुर्गे प्रति । तद्गृहं च सविस्तारं सुमंत्राय न्यवेदयत् ॥५१॥
 सुमन्त्रोऽपि च तद्गृहं श्रुत्वा वस्त्रधनानि च । उष्ट्राश्चरथनागाद्यः प्रेषयामास सादरम् ॥५२॥
 पुष्पकं च तदा प्राह रामः शक्तिस्तवाग्निं हि । यद्यप्यद्य गिरा मे त्वं शीघ्रमेव यथाबलम् ॥५३॥
 उष्ट्राश्चरथनागाद्यैर्निवासं च तदोदरे । करिष्यति सविस्तारं तथा विस्तीर्णतां मज ॥५४॥
 सर्वथा भारवाहार्थं शक्तिरन्तु यथामुत्तम् । कस्मिन्काले सूक्ष्मरूपं महद्रूपं कदापि च ॥५५॥
 यथाकापा मया शक्तिस्तव दत्ता न मंश्रयः । तच्छ्रुत्वा रामवचनं पुष्पकं दक्षयोजनम् ॥५६॥
 मम ततस्तथोच्च हि यवधेत द्वियोजनम् । शताङ्गुलैश्च सोपानैर्द्वयमरत्नोद्भवैश्चितम् ॥५७॥
 कोटिभूर्पद्मलोकाश्च नानाधातुविचित्रितम् । कलशैः शतसाहस्रैर्हैमरत्नविधद्वितैः ॥५८॥
 जालरत्नैर्गवामैश्च मुक्ताहारैर्विभूषितम् । कपाटैर्द्वयोद्भूतैर्जल्यन्त्रशतैर्वृतम् ॥५९॥
 पुष्पाणां वाटिकामिश्रं नानापद्मिनिनादिनम् । सर्पमस्तकजा यत्र शतशोऽप्य सहस्रशः ॥६०॥
 निश्वायां मणयश्चित्राः प्रभा विस्तारयन्ति हि । गोपुराणि च भासन्ते शतशोऽप्य सहस्रशः ॥६१॥
 तत्र प्राथमिकार्या तु पक्ता श्रीराघवाक्षया । उष्ट्राश्चरथनागादीन् दत्ताश्चरोदयन्तदा ॥६२॥
 द्वितीयायां काष्ठचयान् तृणोत्सवलयमूलान् । तृतीयायां चान्यराश्यान् पाकामत्राणि वै ततः ॥६३॥
 पचम्यां तु शतधनीश्च ततः शस्त्राण्यनेकशः । तत ऊर्ध्वं राजवाहानश्चोष्ट्रचकारान् ॥६४॥
 अष्टमायां राजकोशान् दक्षधान्यविनिर्मितान् । हस्तशालास्ततः श्रेष्ठा दासीदामास्ततः परम् ॥६५॥
 नटादीनां ततः शाला वारस्त्रीणां ततः परम् । ततो वीरानघिणांश्च तेभ्यः श्रेष्ठान्ततः परम् ॥६६॥
 गच्छति तुरगैरे तान् पंचदशपिना ततः । रथयोग्यान्ततोऽप्यूर्ध्वं गजान्श्चैव ततः परम् ॥६७॥

सभामें पुसकाले हुए कहो ॥ ४८ ॥ मन्त्रियों, बन्धुओं तथा पुरोहित वसिष्ठजीके साथ परामर्श करके रमान्वति
 रामने कुम्भोदर मुनिके वाक्यको सत्यसंगन माना ॥ ४९ ॥ इसके बाद सभामें पुरोहितके साथ परामर्श करके
 रामचन्द्रजीने निश्चय किया कि पहले तीर्थयात्रा और उसके बाद यज्ञ करना चाहिए ॥ ५० ॥ ऐसा निर्णय
 हो जानेके बाद रामचन्द्रजीकी आज्ञासे दूतने अयोध्या जाकर मन्त्री सुमन्त्रसे सब हाल विस्तारपूर्वक कहा ।
 सुमन्त्रने भी उस समाचारको सुनकर सादर वस्त्र-धन आदि ऊँट, घोड़ा, रथ और हाथी आदिपर सदा-
 कर रामजीके पास भेजा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तब रामने पुष्पकविमानसे कहा—तुम्हारेमें अपार शक्ति है । अतएव
 तुम अपने बलके अनुसार विस्तृत बनो । क्योंकि तीर्थयात्राके समय ऊँट, घोड़ा, रथ और हाथी आदि भी
 तुम्हारे अन्दर ही निवास करंगे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ कामके अनुरूप अर्थात् जैसा कार्य हो, वैसा तुम्हारा बल भी हो
 जाय । ऐसी शक्ति तुम्हें मैंने दी है । इसमें संशय नहीं है । रामजीके इस वचनको सुनकर सो अट्टालिकाओं
 और साने तथा रत्न आदिको सीढ़ियोंवाला, कपाटों मृगोंकी कान्तिवाला, अनेक प्रकारकी धातुओंसे
 चित्रित, सुवर्ण तथा रत्नजटित सहस्रशः कलशसे युक्त, मोतियोंके द्वारा विभूषित, विट्ठलियों तथा चिकोसे
 युक्त, काचमढ़े काटकी तथा संकड़ों फव्वारोंसे शाशित, भिन्न-भिन्न प्रकारके पक्षियों द्वारा कलरविट, पुष्पवाटि-
 काकासे मण्डित, जिनमें सैकड़ों हजारोंको संख्यामें प्रधान द्वार शाशित हो रहे थे, इस प्रकार यह पुष्पकविमान
 सर्वविध साधनोंसे सम्पन्न, इस योजन सम्बा तथा दो योजन ऊँचा हो गया ॥ ५५-६१ ॥ ऐसा हो जानेपर
 रामवान् रामचन्द्रकी आज्ञासे दूतने पहली पत्तिकी अट्टालिकामें ऊँट, घोड़े, रथ तथा हाथी आदिको बड़ा दिया ।
 दूसरी पत्तिकी अट्टालिकामें काष्ठका डेर तथा घास, आखलो-मूसल आदि, तीसरी अट्टालिकामें अन्नसमूह,
 चौथीमें अन्ननाश्रयके पात्र, पाँचवींमें शीप आदि, छठीमें अन्य विविध प्रकारके शस्त्र, सातवीं अट्टालिकामें राज-
 धरानेके बाहन, आठवींमें राजकोश, नवीं अट्टालिकामें वस्त्र-अन्न आदिसे युक्त श्रेष्ठ वाजार, दसवीं अट्टालिकामें

भारोदयस्ततो दूतान् राज्ययोग्याधिकारिणः । सुहृन्पुत्रजनस्त्रीभिर्नृपान्मांडलिकांस्ततः ॥६८॥
 ततोऽप्यूर्ध्वं राघवस्य सुहृदश्च पुण्यैकमः । ततो भोजनशालाश्च विशच्चेव मनोरमाः ॥६९॥
 पाकशालास्ततः पंच स्त्रीणां भोक्तुं ततो दश । तत उर्ध्वं हि बन्धूनां मातॄणां च गृहाणि च ॥७०॥
 तत उर्ध्वं राघवस्य ममा सिंहामनान्विता । ततोऽप्यूर्ध्वं च सीताया गेहं नानामखावृतम् ॥७१॥
 ततोऽप्यूर्ध्वं राघवस्य क्रीडास्थानं तु सीतया । ततोऽप्यूर्ध्वं षष्टितमयां राज्ञां सुहृदां स्त्रियः । ७२॥
 ततः स्त्रीणां सभापे हि सप्त शालाः शुभावहाः । चित्रशाला द्वादशाथ वयमां पंच वै ततः ॥७३॥
 पुष्पारामदीकानां हि पंच शालास्ततः शुभाः । ततोऽप्यूर्ध्वं तु शालायां घटीयत्रादिकौतुकम् ॥७४॥
 ऋषाघ्रादीनां सप्तः शाला त्वेका रम्याऽनिविमृता । ततोऽप्यूर्ध्वमग्निहोत्रशाला श्रीराघवस्य च ॥७५॥
 ततः शिवार्चनस्थैका शाला शैवा शुभावहा । विप्रार्णां च ततः शालाः शाला विद्यार्थिनां ततः ॥७६॥
 यतीनां च ततः शाला वाद्यशाला ततः परम् । जलशाला ततः श्रेष्ठा जलयन्त्रान्विता ततः ॥७७॥
 ततोऽप्यूर्ध्वमार्द्रवमृशोषणार्थमनुत्तमाः । शतशालास्त्रिंशदाः पूर्णाश्चक्रुस्ते रामसेवकाः ॥७८॥
 रामोऽपि दृष्ट्वा ताः सर्वा आहरोह स्वयं तदा । ततो नदन्सु वाद्येषु स्तुत्रन्सु मागधादिषु ॥७९॥
 नर्तन्सु वारनारीषु पताकासु चलन्सु च । प्रकाशपद् दश दिशो विमानं राघवानृया ॥८०॥
 अगमन्पूर्वदिग्भागान् प्रतीचीं तपनोपमम् । विहायमा वायुवेग किंकिणीजालमण्डितम् ॥८१॥

यया प्रयागमिमृश श्रीरामश्चक्रचिह्नितम् ।

विष्णुदास उवाच

कथं रामस्य चन्वारे ध्वजाः प्रोक्ताः पुरा त्वया ॥८२॥

तन्मत्रं विस्मरेणाद्य श्रोतुमिच्छामित्वन्मुखान् ।

श्रीरामदास उवाच

औशवे रघुनाथन्तु स्वपितृस्यंदनस्थितः ॥८३॥

राम त्वया दामियाको, भारहवीम नटादिबोको, बारहवीमे वेण्याओको, तेरहवीमे पहलवानोको, चौदहवमे वेदल चलनेवालोको, पंद्रहवोमे श्रेष्ठ घुडसवारोको, सोलहवीमे हाथिये तथा हाथीपर सवारी करनेवालोको, सत्रहवीमे बन्दूक आदि छोटहनवालोको, अठारहवीमे राज्यके अधिकारी दूतोंको और उन्नीसवीमे रामचन्द्रके मित्र राजाओने अपन पुत्रों एवं रिश्वरी आदिक साथ स्थान पाया । बंसवी कक्षाए नगरके मित्रोंको स्थान मिला । इसके बाद बीस भोजनशालाए बनी, भाजनशालाओंके ऊपर पाँच पाकगृहको स्थापन मिला और उनके ऊपर स्त्रियोंके दस भोजनगृह बने । उसके ऊपर माहरी तथा मत्ताओंके गृह, बादम सिंहासनसे अलंकृत राजसभा, रावसभाके ऊपर दहृत-सा सखियास युक्त सीताजीकी गृह बना और सीताजीके गृहके ऊपर सीता सहित रामका क्रीडा-स्थान बनाया गया । क्रीडास्थानके ऊपर मित्रोंकी स्त्रियोंको स्थान मिला । इसके बाद स्त्रियोंकी सभासे लिये लवदायक मान अट्टालिकाए निर्मित का गयीं । स्त्रीसभास्थानके बाद बारह चित्रशालाए और पाँच पक्षि-शालाए निर्मित का गयी । पक्षिशालाके बाद सुन्दर पुष्प आदिके पाँच स्थान बनाए गये । उसके ऊपर औत्तुकेमय सप्त घटीयन्त्र आदि रखे गये । बादमे अति विस्तृत एवं रम्य एक शाला ध्याघादि जन्तुओंके लिए बनाई का गयी । उसके ऊपर अग्निहोत्रगृह और अग्निहोत्रगृहके ऊपर शिवजीके पूजनका स्थान, इसके बाद पञ्च विप्रशाला, विद्यार्थीशाला, सन्यासीशाला, वाद्यशाला, जलयन्त्रादि युक्त सुन्दर खलशाला और रत्नाशालाके बाद मीले सरत्रोंको मुत्तानका उत्तम स्थान बना । इस प्रकार रामचन्द्रजीके सेवकोंने इन सौ अट्टालिकाओंको पूर्ण किया ॥ ६२-७८ ॥ इस प्रकार सर्वथा पूर्ण देखकर रामचन्द्रजी स्वयं विमानपर बैठे । रामचन्द्रजीके बैठनेके बाद बाजे बजने और छाटीके द्वारा स्तुति करने एवं वेण्याओंके गजनेपर दसो दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ सूर्यके समान तेजस्वी तथा पवनके समान वेगवाला रामचन्द्रजीको ध्वजासे चिह्नित वह विमान रामके आश्वानुसार पूर्वदिशासे पश्चिमकी ओर प्रयागके लिए चला ।

अतः सोऽप्यस्य रामस्य कोविदारध्वजः स्मृतः । बाणध्वजांकितरथमारुह्य साटिकां वने ॥८४॥
 उघानैकेन बाणेन तस्माद्बाणध्वजः स्मृतः । क्षिप्रं वज्रध्वजं दृष्ट्वा रावणेन स राघवः ॥८५॥
 ध्वजेऽकरोद्वायुपुत्रं तस्मान्प्रोक्तः कपिध्वजः । रणे विमृष्टं दृष्ट्वा रामो मातलिनं तदा ॥८६॥
 स्थितः स्वीयरथे दिव्ये तस्माच्च गरुडध्वजः शुक्लायां हि पताकायां कोविदारोऽस्ति वै शुभः ८७॥
 बाणःशुभोऽस्ति नीलायां हरितायां तु मारुतिः । पीतायां गरुडो ज्ञेयः श्रीरामस्यदनोपरि ॥८८॥
 चतुर्षु स्यदनेष्वेव चत्वारः कीर्तिता ध्वजाः । कोविदारध्वजो रामः श्रीरामो भागेणध्वजः ॥८९॥
 कपिध्वजो राघवेन्द्रो भूपेशो गरुडध्वजः । एवं नामान्धनंतानि प्रोच्यते राघवस्य हि । ९०॥
 तस्माद्रामध्वजाः प्रोक्ताश्चत्वारश्च मया तव । वज्रध्वजांकितरथे स्थित्वा रामेण संगतः ॥९१॥
 कुतस्तस्माद्वाघवेन्द्रं तं वदन्यशनिध्वजम् । अतो रामध्वजस्यैकमेव चिह्नं न विद्यते ॥९२॥
 तस्मान्छिष्य मया प्रोक्ताश्चत्वारो राघवप्रियाः । कोविदारोऽंकितरथे सुमंत्रः सारथिः स्मृतः ॥९३॥
 बाणध्वजांकितरथे मूतश्चित्ररथः स्मृतः । वायुपुत्रांकितरथे सारधिर्विजयः स्मृतः ॥९४॥
 रामस्य दारुकः सुतः स्यदने गरुडांकिते । एव शिष्य त्वया पृष्टं श्रीरामध्वजकारणम् ॥९५॥

त्वया पूर्वं मया तच्च तवाग्रंज्य निवेदितम् ॥९६॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे कुम्भोदरोपाख्यानं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(पूर्वदेशके तीर्थोंकी यात्रा)

श्रीरामदास उवाच

ततो रामो विमानेन गत्वा किञ्चित् पश्चिमाम् । दिशं ययौ प्रयागं च त्रिवेणी यत्र वर्तते ॥ १ ॥

विष्णुदासने कहा कि आप (रामदास) ने रामको चार ध्वजार्ये जो पहले कहीं थीं, उन्हें अब विस्तारसे कहें । श्रीरामदास बोले—बाल्यकालमें रघुनाथजी अपने पिताके रथपर बैठे थे , ७९-८३॥ इसलिये वह रामका रथ कोविदारध्वज कहा जाता है । बाण-ध्वजासे चिह्नित रथपर बैठकर एक हां बाणसे वनमें ताड़काको भारतके कारण वे बाणध्वज कहलाये । रावणके द्वारा वज्रध्वजा कटनेके बाद महावीर हनुमान्का ध्वजापर बैठानेसे वे कपिध्वज नामसे प्रसिद्ध हुए । रणमें मातलिको मूर्छित देखकर अपने रथपर गरुडको बैठानेसे गरुडध्वज हुए । किस ध्वजामें किसका चिह्न है, सो बताते हैं । जैसे पताकामें कोविदार, नील पताकामें बाण, हरितमें मारुति, पीत पताकामें गरुड । इस प्रकार रामजीके रथपर स्थित चिह्नोंको जानना चाहिए ॥ ८४-८८ ॥ इस तरह चारों रथोंपर चार ध्वजार्ये मैंने कहीं । कोविदार ध्वजावाले राम, बाण ध्वजावाले श्रीराम ॥ ८९ ॥ कपिसे चिह्नित ध्वजावाले राघवेन्द्र और गरुडसे चिह्नित ध्वजावाले भूपेश । इस प्रकार रामचन्द्रके अनन्त नाम हैं ॥ ९० ॥ इसलिये मैंने तुम (विष्णुदास) से रामको चार ही ध्वजार्ये कही हैं । वज्रसे अंकित ध्वजावाले रथपर बैठकर रामचन्द्रजीने युद्ध किया था । राघवेन्द्र नामवाले रामको अशनिध्वज कहते हैं । रामचन्द्रकी ध्वजाका एक ही चिह्न नहीं है ॥ ९१ । ९२ ॥ इसलिये मैंने छोटकर रामकी अति प्रिय ध्वजाओंको ही कहा है । कोविदार ध्वजासे चिह्नित रथपर सुमन्त्र, बाणध्वजसे चिह्नित रथपर चित्ररथ और कपिध्वजसे अंकित रथपर विजय नामके सारथी कहे गये हैं । रामके गरुडांकित रथपर दारुक सारथी रहता है । इस प्रकार ओ तुम (विष्णुदास) ने श्रीरामकी ध्वजाका कारण पूछा, सो मैंने आज तुमसे कहा है ॥ ९३-९६ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे भाषाटीकायां कुम्भोदरोपाख्यानं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—बादमें श्रीराम विमान द्वारा कुछ पश्चिम दिशाकी ओर जाकर प्रयाग पहुँचे ।

कोशमात्रे विमानं तन्मुक्त्वा रामः मसीनया । पङ्क्त्यां शनैः शनैरेव त्रिवेणीसंगमं पयी ॥ १ ॥
 नागिकेलं वायनेन समर्प्य रघुनन्दनः । चतुरगुलमानं हि केशवन्धं सभूषणम् ॥ २ ॥
 ददौ सल्लिख सीतायाः स्वयं सौरभधाकरोन् । लक्ष्मणार्घ्यवन्धुमिश्रं वपनं रघुनन्दनः ॥ ४ ॥
 मातृभिः कारयामास कृत्वा चैरुमुपोषणम् । द्विर्नाये दिवसे ग्रामे कृत्वा भ्रातृं सतर्पणम् ॥ ५ ॥
 माममात्रं मायमासे वामं कृत्वा मविष्मन्म् । प्रष्टृतीर्थी ततो गत्वा दत्त्वा दानान्यनेकैः ॥ ६ ॥
 दृष्ट्वाऽक्षयवटं रम्यं निद्रास्थानं निजालये । किञ्चिद्दिहस्य श्रीरामः सीताया भ्रातृभिः सह ॥ ७ ॥
 पूजां कृत्वा त्रिवेण्याश्च वस्त्रैर्दिर्घैः सुभूषणैः । गगाजलैः काचकुम्भान् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥
 पूरयित्वा विमानाग्रये स्थाप्य तीर्थं पुरोहितान् । पूजयित्वा सविस्तारं नत्वा चैव पुनः पुनः ॥ ९ ॥
 तान् पृष्ट्वा पुष्पके स्थित्वा ययात्राकाशवर्मना । विन्ध्याचलं ममाश्रित्य यत्र दुर्गा तु वर्तते ॥ १० ॥
 तत्र स्नान्वा तीर्थविधिं पूर्ववच्च विधाय सः । तां विष्णुवामिनीं पूज्य वस्त्रैराभरणादिभिः ॥ ११ ॥
 कृत्वा दानान्यनेकानि तोष्य तीर्थपुरोहितान् । ययौ कार्शो पुष्पकस्थः श्रीरामः सीताया सुखम् ॥ १२ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे काश्यां काशिम्याः पुष्पकं तु तत् । कोटिसूयप्रतीकाश्च दृष्ट्वा पश्चिमतो दिशम् ॥ १३ ॥
 यत् प्राचीं काश्याभिमुखमागच्छन्त महोज्ज्वलम् । चक्रस्लकान्वितकौश्च शतशोऽङ्गालमस्थिताः ॥ १४ ॥
 केचिदनुश्रु दावाभिस्त्वय परितमस्त्वके । सूर्येण विस्मृतः पंथा भ्रमणादुभ्रांतिमाय सः ॥ १५ ॥
 इति केचिज्जनाः प्रोचुः केचिदनुस्त्वय मुनिः । नारदस्तु समापानि केचित्तत्र वभापिरे ॥ १६ ॥
 पश्यन्मौ रविः स्वर्गान् केचिद्द्रोणा वलान्वितः । वायुपुत्रोऽयमिति ते प्रोचुः कार्शोनिवासिनः ॥ १७ ॥
 केचिद्वचुः शशी स्वर्गान्मृगेण विनिपानितः । केचिदनुश्रु विश्वेशं केचिद्वचुः सुदर्शनम् ॥ १८ ॥

जहाँपर कि पत्निप्रादना त्रिवेणा विद्यमान है ॥ १ ॥ त्रिवेणास एक कास दूर श्रीराम जानकाजीके साथ विमानसे उतर पड़े और घारे घारे चँदल ही त्रिवेणीके संगमपर गये ॥ २ ॥ वहाँ जाकर रघुनन्दनने त्रिवेणीको नारियल समर्पण करके भूषणसे गुँथा हुआ जानकाका केशवास (जुड़ा) चार अंगुल लंबा काटकर त्रिवेणीमें प्रवाहित कर दिया । पश्चात् स्वयं भी "प्रयागे मुण्डनं श्रेय" के अनुसार और करवाया । रामने उसी प्रकार माताओं, भाइयों तथा अन्यत्र सगे-सम्बन्धियोंका भी और करवाया । तदनन्तर सबन उपवास करके दूसरे दिन तपन तथा भ्रातृ किया । पश्चात् यथार्थिधि माघ महाने-भर वहाँ कल्पकास किया । उसके उपरान्त प्रयागके प्रसिद्ध त्रिवेणा, बेणीमाधव, मामनाय, भारद्वाज, नाग-वामुकी, अक्षयवट, दशाभमेघ आदि आठ तीर्थों (अष्टतीर्थों) की यात्रा की और विप्रोंका अनेक प्रकारके दान दिये ॥ १-६ ॥ अपने प्रलयकालान निद्रास्थान अक्षयवटको देखकर राम कुछ मुस्कुराये । पश्चात् सीता तथा भाइयोंके साथ मिलकर मुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणोंसे त्रिवेणी महारानीकी पूजा की । उसके बाद हजारों कौशिक गङ्गाजलसे भरवाकर अपने विमानपर धरवा लिये । तोयक पुरोहितोंका विस्तारसे पूजा तथा सत्कार किया । तदनन्तर उनको नमस्कार किया और उनका अज्ञा लेकर राम विमानपर सवार हो गये । तत्पश्चात् आकाशमार्गसे विन्ध्याचल पधारे । वहाँ किष्किवासिनी दुर्गातीका दिव्य मन्दिर है ॥ ७-१० ॥ वहाँ रामने स्नान किया और पूर्ववत् वहाँपर भी तथैविधिका पालन किया । वस्त्र तथा आभरण आदि सामग्रीसे विष्णुवासिनी देवीकी पूजा की ॥ ११ ॥ अनेक दान देकर वहाँके पुरोहितोंको प्रसन्न किया । पश्चात् श्रीराम सीताके साथ पुष्पकविमानपर सवार होकर मुखपूर्वक काश्याको चले ॥ १२ ॥ उस समय कार्शोनिवासी जन उस करोड़ों मूरके समान प्रकाशवान् तथा अनिज्ज्वल विमानको पश्चिम दिशासे काशीकी ओर आते देखकर हजारोंकी संख्यामें महलोंकी छतोंपर बैठ गये और उसके विषयमें अनेक तर्क-वितर्क करने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ कोई कहने लगा कि यह पर्वतके ऊपर देवानि जल रही है । कोई कहता कि सूर्य रास्ता धूलकर इधर-उधर घटक रहा है ॥ १५ ॥ कोई कहता कि यह तो तारद मुनि नाचको आ रहे हैं । किसीने कहा कि स्वर्गसे सूर्य नीचे गिर रहा है । कोई कहता कि यह द्रोणाचलका जिये हनुमानजी आ रहे हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ कोई कहने

केचिद्भुजः सुवर्णाद्रि केचिन्प्रोचुररुन्धताम् । केचिन्पतत्रिराजानं केचिच्च प्रलयानलम् ॥१९॥
 केचिन्प्रोचुर्महाघोरं बहुमुखं केन प्रोचितम् । केचिन्प्रोचुः सहस्राभ्यस्त्वर्यं मणिविभजितः ॥२०॥
 एवं वदंतस्ते यानं ददधुः पुष्पकं महत् । महाकीलादलं चक्रुः प्रोचुस्त्वयं समागतः ॥२१॥
 रामोऽयोध्यापतिः भीमान् मानं कर्तुं सनागरः । निश्चिनोऽपि तच्छ्रुत्वा पावत्या वृषमस्थितः ॥२२॥
 प्रयुञ्जाम श्रीरामं काशीस्थैः परिदेष्टितः । उपायनं राघवस्य गृहान्वा बहुविस्तरम् ॥२३॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामस्तं देहलिविनायकम् । पूज्य विषंधरं दृष्ट्वा ननाम शिरसा तदा ॥२४॥
 आलिंगितः शिवेनाथ गृहीत्वोपायनं शिवात् । स्वयं चर्मरामरणः पूजयामास शंकरम् ॥२५॥
 विंश काशिनोऽथ घृत्वा हस्तेन सत्करम् । तावुर्भावाहनं भुक्त्वा जग्मतुर्मणिकणिकाम् ॥२६॥
 ततः सीतायुतो रामश्चक्रपुष्पकरिणीजले । समर्प्य श्रीफलं स्नात्वा सर्वलक्ष्मीपूर्वकम् ॥२७॥
 नित्ययात्रां विधायथ कृत्वा चैकमुपोषणम् । तीर्थश्राद्धादि संपाद्य पंचतीर्थीं विधाय च ॥२८॥
 अतर्गुहीं महायात्रां मानमद्वयमेव च । द्विषन्वाग्निहोत्राणि द्वाष्टलिंगानि चैव ततः ॥२९॥
 षट्पञ्चाशच्च गणपतिस्तथाऽष्टौ भैरवान् पुनः । योगिनींश्च भवतुःपटीस्तथा दुर्गांश्च चैव नव ॥३०॥
 तथाऽष्टदिकपदींश्चापि तथा चैव नवग्रहान् । क्षेत्रप्रदक्षिणां पञ्चक्रांश्चाप्यथा स्पृशतः ॥३१॥
 चतुर्दशेऽपि यात्रास्तु कृत्वा चैव विस्तरम् । रामेश्वरं महालिंगं बहूपायास्तटे शुभे ॥३२॥
 काश्या वायव्यदिग्भागे सीमायां स्थाप्य सुसमम् । रामतीर्थे स्वीयनाम्ना भागीरथ्या चकार सः ॥३३॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र वायुपुत्रः समागतः । वृत्तं श्रुत्वा राघवस्य यात्राः कर्तुं गतस्त्विति ॥३४॥
 सीतारामौ नमस्कृत्य स्नात्वा भागीरथे जले । स्वनमना शंकरं तीर्थमकरोज्जाह्वीतटे ॥३५॥

लगा कि मृगने स्वर्गसे चन्द्रमणो नचे गिरा दिया है । कोई उसको विष्णु, कोई सुमेरु पर्वत, कोई अरुन्धती तारा, कोई मण्ड और कोई प्रलयान्ति बताते लगा ॥१९॥ कोई कहते लगा कि जिसने महाघोर आग्नेयास्त्र छोड़ा है । कोई कहते लगा कि यह सहस्रमुख शेष है ॥ २० ॥ इस प्रकार ये सब एक वितर्क कर ही रहे थे कि पुष्पकविमान उनके पास आ पहुँचा । यह देखकर सब लोग कीलादल करते हुए आश्चर्यपूर्वक एक-दूसरेसे कहने लगे कि यह तो साक्षात् ब्रह्माधिपति श्रीमन् राम नगरवासियोंके साथ यहाँ यात्राके लिये पधार है । यह सुनकर स्वयं काशीविश्वनाथजी बहुतरो भते लेकर बेलपर सवार हुए और नगरवासियोंको साथ लेकर रामके समक्ष आ उपस्थित हुए ॥ २१-२३ ॥ इस बीच रामने देहलीवनारक तथा दुष्टिराजके दर्शन कर ही लिये । जब उन्होंने शिवजीको प्रत्यक्ष देखा तो सिर नवाकर प्रणाम किया ॥ २४ ॥ शिवजीने रामका आलिंगन किया । शिवजीको दो हुई भेंट स्वीकार करके स्वयं रामने भी बहुरो तथा अलंकारसे शिवजीका पूजा की ॥ २५ ॥ तदनन्तर अपने हाथसे काशीनाथके मुखर हाथको पकड़कर रामने काश्याम प्रवेश किया । पश्चात् वे दोनों बाहुन छोड़कर मणिकणिका गये ॥ २६ ॥ वहाँ सीता सहित रामने शीर आदि कटवाकर चक्रपुष्पकरिणी कुण्डमें श्रीफल समर्पण करके सहर्ष स्नान किया ॥ २७ ॥ नित्ययात्रा करके एक दिनका उपवास किया । तदुपरान्त तीर्थश्राद्धादि कर्म करनेके बाद पञ्चतीर्थी की ॥ २८ ॥ बादमें अतर्गुही, महायात्रा, दोनों मानसोकी यात्रा तथा ब्यालीस और आठ लिङ्गोकी यात्रा की ॥ २९ ॥ छपन गणपतीकी यात्रा, आठ भैरवोकी यात्रा, चौंसठ योगिनियोंकी यात्रा, नव दुर्गाओकी यात्रा, ॥३०॥ आठ शिवालीकी यात्रा और क्षेत्रके प्रदक्षिणाहोत्रा पञ्चको-णीकी यात्रा की ॥ ३१ ॥ इस प्रकार रामने उपर्युक्त चौदहों यात्राओकी विविधत् पूर्ण किया । तदनन्तर काशीके वायव्यकोणकी सीमामें वरुणा नदीके तटपर श्रीरामने परम पवित्र तदा मनाहर रामेश्वर नामके महालिङ्ग स्थापित करके अपने नामसे भगवती भागीरथीके तटपर रामतीर्थ अर्थात् रामघाट भी स्थापित किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ राम यात्रा करने निकले है, यह समाचार सुनकर वायुपुत्र हनुमान्जी भी वहाँ आ पहुँचे ॥ ३४ ॥ वहाँ उन्होने सीता तथा रामको प्रणाम करके गंगामें स्नान किया । फिर जाह्नवीके किनारे उन्होने

घट्टं वधं गगायास्तटे रभ्यं दधन्मयम् । काश्यामघापि तन्नाम्ना घट्टोऽस्ति परमः शुभः ॥३६॥
 तथा चकार रामोऽपि घट्टवधनमृतमम् । दृश्यते प्रत्यहं यत्र काश्या रामः ससीतवा ॥३७॥
 चकार पंचमंगायां कार्तिकस्नानमुत्तमम् । काशीयामं वषमेकं चकार धर्मतत्परः ॥३८॥
 तीर्थवापार्थिनः सर्वान् सन्तर्प्य च पृथक् पृथक् । रत्नहिरण्यैर्वायोभिरश्वाभरणधेनुभिः ॥३९॥
 निवित्रैश्च दशाऽमत्रैः स्वर्णरीप्यादिनिर्मितैः । अमृतस्वादुषकान्नैः पायसैश्च सशर्करैः ॥४०॥
 सगोरमंन्नदानैर्धान्यदानैरनेकधा । गन्धचन्दनकपूरस्ताम्बूलैश्चारुधामरैः ॥४१॥
 सत्तुल्यैर्दुष्यैर्कैरीपिकादर्पणासनैः । शिविकादामदामाभिराहर्नैः पशुभिर्गृहैः ॥४२॥
 विप्रभजपनाकामिरुल्लोचैश्चन्द्रचारुभिः । नानावर्तमहाश्रष्टैः सध्वजारापणादामः ॥४३॥
 वर्षाशून्यप्रदानैश्च गृहोपस्करमयुतैः । उपानत्पादुकाभिश्च यतेश्चापि तपांस्वनः ॥४४॥
 योग्यैः पट्टदुर्लभैश्च मृदुलैश्चित्रकम्बलैः । दण्डैः कमण्डलुयुतैराजर्नमृगमम्भरैः ॥४५॥
 कोपीनैरुन्वमचैश्च परिचारककाञ्चनैः । मठविंशतिनामन्नैरात्रभ्यर्थं महाधनैः ॥४६॥
 बहुवीर्यधदानैश्च भिषजां जीवनादिभिः । महपुस्तकसभारलेखकानां च जीवनेः ॥४७॥
 रमायणमूल्यैश्च पत्रदानैरनेकशः । प्रथमं प्रपाथद्राचणहंमन्तंऽनाएकेन्धनैः ॥४८॥
 छत्राच्छादनकाञ्चनैर्वर्षाकालोचितैर्वहु । रात्रां पाठप्रदापैश्च वादाभ्यजनकादामः ॥४९॥
 पुराणपाठकांश्चापि प्रतिदेवालयं धनैः । देवालये नृत्यगातकरणाघरनकशः ॥५०॥
 देवालये सुधाकायैर्जीर्णोद्धाररनेकशः । चित्रलेखनमूर्त्यैश्च रङ्गशालादमण्डनैः ॥५१॥
 अरार्तिर्कैर्गुग्गुलैश्च दशांग्यादिमुष्णकैः । कपूरवर्तिकाद्यैश्च दवाचाघरनकशः ॥५२॥

एक कल्याणकारी तीर्थ बनाया ॥ ३५ ॥ गगाजीके तटपर उन्होंने सुन्दर परवराका एक घाट बनवाया, जो कि अभी भी काशीमें हनुमानघाटके नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ उसी प्रकार रामचन्द्रन भी उत्तम घाट बनवाया, जो कि आज दिन भी काशीमें रामघाटके नामसे वर्तमान है । पश्चात् रामन साताक साव पञ्चगङ्गाम स्नान किया । उस समय कार्तिकका उत्तम मास था । इस प्रकार रामन वषभर काशीमें धर्मतत्पर होकर निवास किया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ पश्चात् समस्त तीर्थवासियोंको पृथक् पृथक् रत्न, सुवर्ण, बस्त्र, अश्व, आभरण, पाय, सानान्नादिक विविध पात्र, अमृतनुत्प पकवान तथा शर्करामिश्रित मुरधदानसे प्रसन्न किया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ पारसपुत्र अन्नदान तथा वनदानसे भी उन्हें संतुष्ट किया । बहुतोंका मुग्धचित्त चन्दन, कपूर, ताम्बूल, मनाहर चमर, कामल क. र भरे हुए गद्दे-तकिए, दावट, दर्पण, आसन, पालका, दास दासी, बहिन, पशु तथा भवन दकर प्रसन्न किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ बहुतोंको विप्र-विविध ध्वज-पताका, चन्द्रमाका आदिका समान निमल आदिता, शक्ति-दाना, बड़-बड़े श्रद्धा सेन करके ध्वजारोपण, वर्षागनदान तथा गृहस्थाका सामग्री दकर प्रसन्न किया । विप्राको उपानह तथा सन्नामो व्रतियों और तपस्विनोका सड़ाई, उनके माग्य कमल रसमा वस्त्र, कम्बल, दण्ड-कमण्डलु, विप्र-विवाचन मृगचर्म, कोपीन, ऊँचे ऊँचे खटोल, सबक, मठ, उसको रक्षाक लिए तथा विद्यापी और अतिथि-संस्कारक लिए मुवर्ण तथा बहुत-सा धन देकर संतुष्ट किया ॥ ४३-४६ ॥ वैद्योको उनका जादिकाके साधनभूत बहुतसे औषध दान देकर, लेखकोको जादिकाके साधनभूत बहुतसे पुस्तकसमूह दकर, बहुतोंका बहुमूल्य रसायन दान देकर और बहुतोंके लिए अन्नश्रेष्ठ खीनकर सन्तुष्ट किया । बहुतोंका प्राप्तिश्रुतिसे पोतरक वास्त धन दकर तथा बहुतोंको हेमन्तके माग्य काष्ठ आदिके वारत द्रव्य दकर प्रसन्न किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ बहुतोंको वर्षाकालोचित छत्र तथा आच्छादन देकर आनन्दित किया । बहुतोंका रात्रिके समय पढ़नेके लिए वेपादिका प्रबन्ध कर दिया । बहुतोंको शरीरमें अभ्यङ्ग (मालिश) करनेके लिए तेल आदि सुगन्धित द्रव्योंका दान देकर राजी किया ॥ ४९ ॥ हर एक देवालयमें पुराणपाठ करनेवालोंको धन देकर संतुष्ट किया । देवालयोंमें अनेक नृत्य गीत करवाये । उनका जीर्णोद्धार करवाकर चूना पुनर्वा दिया । उनमें बहुतोरे चित्र बनवा दिये । उनमें केशर आदि रङ्ग तथा माला आदिका प्रबन्ध करवा दिया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ देवपूजाके

पञ्चामृतानां स्नपनैः सुगन्धस्नपनैरपि । देवार्थं मुखवासैश्च देवाद्यानैरनेकशः ॥५३॥
 महापूजार्थं मालादिगुम्फनार्थैश्चिकालनः । शम्भुमेरीमृदंगादिवाद्यनादैः शिवालये ॥५४॥
 घण्टागडुककुम्भादिस्नानोपस्करभाजनैः । श्वेतमार्जनवस्त्रैश्च सुगन्धैर्यक्षकर्दमैः ॥५५॥
 जपहोमैः स्तोत्रपाठैः शिवनामोच्चभाषणैः । रामक्रीडादिमंपुक्तैश्चलनैः सप्तदक्षिणैः ॥५६॥
 एवमादिभिरुदण्डैः क्रियाकाण्डैरनेकशः । वर्षमेकमुषित्वा तु कृत्वा तीर्थान्यनेकशः ॥५७॥
 दीनानाथांश्च सन्नर्प्य नत्वा विश्वेश्वरं त्रिभुम् । ब्रह्मचर्यादिनियमैर्भर्तुकालागमेन च ॥५८॥
 सत्यमम्भाषणेनापि तीर्थमेवं प्रसाद्य च । नत्वा पुनर्विश्वनाथं कालगर्जं गणाधिपम् ॥५९॥
 अन्नपूर्णां दण्डपाणिं दृष्ट्वा स्तुत्वा प्रणम्य च । अनुज्ञातः शिवेनाथ विमानेन रघूत्तमः ॥६०॥
 यथावाकाशमार्गेण गङ्गायां दर्शने नटे । कर्मनाशां नदीं दृष्ट्वा श्यवनस्याश्रमं ययौ ॥६१॥
 रामचन्द्रः पुष्पकस्थः स्नान्वा नत्वा मुनीश्वरम् । रामतीर्थं च रामेशं चकार तत्र राघवः ॥६२॥
 निजशणकृतां रेखां दर्शयामास तान् जनान् । काश्यपः प्रप्यधिकान्यत्र दत्त्वा दानन्यनेकशः ॥६३॥
 ययौ यानेन दिव्येन स्वर्णभद्रस्य संगमम् । यानि यानि हि तीर्थानि राघवश्च गमिष्यति ॥६४॥
 उत्तरोत्तरतस्तेषु दानाधिक्यं कर्मिष्यति । यत्र यत्र रघुश्रेष्ठो गमिष्यति मयीनया ॥६५॥
 तत्र तीर्थान्यनेकानि सन्निष्यन्ति महान्नि च श्रेष्ठोऽपि तेषां संख्यां हिवक्तुं नात्र क्षमो भवेत् ॥६६॥
 तेषु तीर्थानि श्रेष्ठानि पटुं ज्ञेयानि मर्तापिभिः । चन्द्रधनां चैव चत्वारि सीतायाः पञ्चमं स्मृतम् ॥६७॥
 पष्ठमर्जनिपुत्रस्य सर्वत्रैव विनिश्चयः । रामः स्नान्वा स्वर्णभद्रगगयोः संगमं मुदा ॥६८॥
 त्रिरात्रं समतिक्रम्य गण्डर्कसंगमं ययौ । कस्मिंस्तोर्थे त्रिरात्रं च पञ्चरात्रमथ कचित् ॥६९॥

लिए आगती, गुग्गुलु, उषांग, धूप, दीप, वापूर आदि अनेक वस्तुयें दिलवायी ॥ ५३ ॥ देवताओंके लिए पंचामृतके स्नानका प्रबन्ध, सुगन्धित गुल्मावजल अदिसे स्नानका प्रबन्ध, मुखवासार्थ पान आदिका प्रबन्ध, तथा उनके लिए उद्यान आदिका प्रबन्ध भी करवा दिया ॥ ५३ ॥ सब शिवालयोंमें त्रिकाल पूजाके लिए माला गूँथनेका प्रबन्ध, शम्भु, तमाडा मृदंग आदि वाजोंका प्रबन्ध एवं घड़ी घंटा कलश गज्जवा तथा स्नानके सामानका प्रबन्ध कर दिया । मार्जनके लिए श्वेत वस्त्र तथा सुगन्धित द्रव्य चन्दन, बेसर, अमर, लगर, बपूर आदिके स्नपनका भी स्थायी प्रबन्ध करवा दिया । उसी प्रकार देवालयोंमें जप, होम, स्तोत्रपाठ, उच्च शिवनामोच्चारण प्रदक्षिणा तथा चैवर लेकर रामक्रीडा आदि अन्यान्य विवाएँ करते हुए रामने काशीमें एक वष विनाया वहाँके अनेक तीर्थ किये । उन्होंने दीनानाथ विश्वेश्वर भगवान् शिवको संनृष्ट किया । ब्रह्मकालमें भी ब्रह्मचर्य धारणकर तथा सत्यभाषणका अनुष्ठान करके तीर्थोंके नियमोंका पालन किया । अन्नम विश्वनाथको, काश्यपदेवको, गणाधिपको, अन्नपूर्णाको तथा दण्डपाणिको बारंबार समस्कार करके तथा उनको स्तुति करके उनसे जानेकी आज्ञा माँगी । उनसे अनुज्ञात होकर रघूनम राम विमानपर सवार हुए ॥ ५४-६० ॥ और आकाशमार्गसे गङ्गानदीके दक्षिण तटकी ओर चकू दिये । रास्तेमें उनको कर्मनाशा नदी मिली । बादमें श्यवनमुनिके आश्रमपर पहुँचे ॥ ६१ ॥ पुष्पक विमानसे उतरकर रामचन्द्रजीने स्नान करके मुनिके दर्शन किये और वहाँ अपने नामसे रामेश्वर तथा रामतीर्थ स्थापित किया ॥ ६२ ॥ वहाँ अपने मायवालोंको अपना बनायी हुई शोणका रेख, दिखलायी । अन्तमें वहाँपर काशीमें भी अधिक दान पुण्य करके दिव्य विमानके द्वारा शोणभद्र तन्मा गङ्गाके संगमपर गये । उसी प्रकार आगे भी राम जिन-जिन तीर्थोंमें जायेंगे, वहाँ-वहाँ उत्तरोत्तर अधिक दान करेंगे । जहाँ-जहाँ राम सीताके साथ पधारेंगे, वहाँ-वहाँ अनेक वड़े-बड़े तीर्थ बनेंगे । जिनकी संख्याकी शेष-नाग भी नहीं बता सकते ॥ ६३-६६ ॥ परन्तु विचारशील लोगोंको उनमें भी छ-तीर्थोंको मुख्य समझना चाहिये । चार चार भाइयोंके, पाँचवाँ सीता तथा छठा हनुमान्का । इनके विषयमें कर्मों का संदेह नहीं करना चाहिये । श्रीराम शोणभद्र तथा गङ्गाके संगममें स्नान करनेके पश्चात् वहाँ तीन रात निवास करके प्रसन्न मनसे

सप्तरात्रं कश्चिच्चापि पक्षमेकमथ कचिन् । अष्टादशैकविंशद्वा त्रिमासं च कचिन्प्रभुः ॥७०॥
 चकार वासं तीर्थेषु धर्मान् कूर्त्तुं यथामश्वम् । गंडकीगमने स्नान्वा नेपाले जगदीश्वरम् ॥७१॥
 दृष्ट्वा हरिहरक्षेत्रं ययौ रघुकुलोद्भूतः । गत्र कुर्वन् स तीर्थानि सर्वाणि रघुनन्दनः ॥७२॥
 पुनः पुनः सगमं च ययौ जाह्नविदक्षिणे । वैकुण्ठनगरं गत्वा जरासघपुरं ययौ ॥७३॥
 वैकुण्ठाया जले स्नान्वा ततो रामो ययौ गयाम् । फल्गुनद्यान्तरे पूर्वं श्रुत्वा तद्यानमुत्तमम् ॥७४॥
 नत्वा विष्णुपदं दिव्यं पुनर्याजान्तिकं ययौ । तां निशां समतिक्रम्य प्रमाते रघुनन्दनः ॥७५॥
 स्नातुं फल्गुनदीतोये ययौ तीर्थं द्वित्रैः सह । एतस्मिन्नन्तरे माता मन्त्रीभिः परिवेष्टिता ॥७६॥
 ययौ स्नातुं फल्गुनद्यां स्नान्वा पूज्य मुचामिनीः । सैकते सा क्षण तस्थौ पूजनार्थं महेश्वरीम् ॥७७॥
 बालुकापंचपिण्डंश्च दुर्गां कर्तुं समुद्यता । गृह्णन्वा वामहस्तेन माद्रीं सा सिकतां तदा ॥७८॥
 सज्येन कृत्वा पिण्डं तु यावत्पा पाणिना भुवि । स्थापयामास तावत् ददर्श जगतीवलात् ॥७९॥
 विनिर्गतं दशरथशुभम् कर्त्तुं शुभम् । दक्षिणं चित्तस्नानञ्च गृह्णन्वा विष्णुपुत्रम् ॥८०॥
 गच्छन्तं भूतसं रम्यं तद्दृष्ट्वा कीर्तुकं पुनः । द्वितीयं स्थापयामास भुवि पिण्डं तु तैः कृतम् ॥८१॥
 सोऽपि नातः पूर्ववच्च ह्यवमष्टोत्तर शतम् । दत्ता पिडान् कीर्तुकेन ततः श्रान्ता विदेहजा ॥८२॥
 मनसा पूज्य दुर्गां सा ययौ पान न्वरान्विता । तद्भूतं न सखीभिस्तु ज्ञात रामेण वाऽपि न ॥८३॥
 तथाऽपि कथितं नैव किं रामो मां वदिष्यति । इति भान्या ततो गमः पचनीर्थं विगाढा च ॥८४॥
 प्रेतपर्वतमामाद्य पिण्डदानमथाकरोत् । कनिष्ठिकाया निष्कारुष निजनामांकितां शुभाम् ॥८५॥
 काचनीं मुद्रिकां रम्यां दक्षिणाभिमुखस्तदा । अपहनेति मंत्रेण चकार भुवि राघवः ॥८६॥

गंडकीके सङ्गमकी ओर सिंचारे । श्रीराम प्रभने विमा स्थानपर तीन रात, वहीं पांच रात, कहीं सात रात, कहीं एक पक्ष, कहीं अठारह दिन, कहीं इकतीस दिन और कहीं तीन मास पयस्त मन्त्रसे निवास किया । गंडकीके सङ्गममें स्नान करके श्रीहरि नेपालमें पशुपतिनाथके दर्शन में गये । ६७-७० ॥ बादमें रघुकुलभूषण राम हरिहरसेव गये । इस प्रकार रघुनन्दन राम तत्र करत समय बीच बीचमें बार-बार गङ्गाके दर्शण सङ्गमपर पधारते थे । बादमें वैकुण्ठ नगर होत हुए जरासन्धके राजगृह नगर गये ॥ ७१-७३ ॥ पश्चान् वैकुण्ठके जलमें स्नान करके गयाजी गये । फल्गु नदीके पूर्वोत्तर तटपर विमानको छोड़कर दिव्य विष्णुपदके दर्शनार्थ गये । दर्शन करनेके बाद पुनः पानके पास लोट आय और गत्रिका वत्ने ध्यतीत करके सर्वेरे ब्राह्मणोंके साथ फल्गुनदीके पवित्र तीर्थमें स्नान करने गये । इतनमें सावित्रीके धिरो हुई साताजी फल्गुनदीपर स्नानार्थ पधारों । वहीं उन्होंने स्नान करके सोहागिन स्थितीकी पूजा की । पश्चान् दक्षी महेश्वरीकी पूजा करनेके लिए सैकत-प्रदेशमें जाकर बालुके पांच पिण्डोंमें दुर्गाजीकी प्रतिमा बनानेको उद्यत हुई । वारें हाथमें नीली बालुका लेकर उन्होंने दाहिने हाथसे पिण्ड बनाकर ज्यों ही पूर्वापर रखना चाहा, क्या ही उन्हें पृथ्वीतलसे निकलता हुआ अपने समुद्र महाराज दशरथका सुन्दर हाथ दिवायी दिया । उनका दाहिना हाथ साताके हाथसे उस उत्तम पिण्डको लेकर पुनः धरतीमें प्रविष्ट हो गया । यह देखकर साताके मनमें बड़ा कोतूहल हुआ । बादमें फिर साताने पिण्ड बनाकर जमीनपर रक्खा, उसको भी पूर्वात्त वह हाथ ले गया । इस प्रकार साताने एक-एक करके एक ही बाठ पिण्ड दुर्गाकी पूजाके लिये रक्ख और उन सबको समुद्रका हाथ ले गया । यह देखकर साता हार गयीं ॥ ७४-८२ ॥ अन्तमें उन्होंने दुर्गाका मन ही मन पूजा की और विमानके पास लोट आयों । उस वृत्तान्तको न तो सक्षिये जान सकी और न राम ही जान पाये ॥ ८३ ॥ साताने भी राम हमको क्या कहेंगे, इस तरहके भारे उस वृत्तान्तको छिपा रखा । बादमें रामने जब पञ्चनीय करनेके बाद प्रेतशिलापर जाकर पिण्डदान दिया और उन्होंने अपने हाथका अनामिका अंगुलीसे रामनाम खुदा हुई सुन्दर मुद्राकी ओम्मी निकालकर दक्षिणकी ओर मुख करके 'अपहृता' इत्यादि मन्त्रसे जमीनपर तीव रेखाएँ खींची, जो कि वहीं अभी भी स्पष्ट

रेखाश्रयं नदद्यापि दृश्यते तत्र वै स्फुटम् । आस्तीर्य म कृशांस्तत्र पिण्डान् मत्कुमयाञ्छुमान् ॥८७॥
 तिलाज्यमधुमंयुक्तान् दातुं रामः ममृधतः । सव्येन पाणिना पिण्डं गृहीत्वा रघुनन्दनः ॥८८॥
 यावन्पश्यति भूम्यां तु न ददर्श पितुः करम् । तदाश्रयेण विप्रास्ते राघमूचुस्त्वरान्विताः ॥८९॥
 निष्कामस्यत्र मयेषां पितॄणां दक्षिणाः कराः । न दृश्यते तत्र पितुः कारणं नात्र विप्रहे ॥९०॥
 रामोऽपि विस्मयाविष्टश्चकितः प्राह लक्ष्मणम् । आनीये काणं किञ्चिदत्र त्वं बुद्धिमानसि ॥९१॥
 स प्राह राघवास्माभिर्यदा मोदावर्गे गतम् । इन्दुर्दफलविण्याकपिण्डदाने तदा करः ॥९२॥
 अस्माभिः स्वपितुर्दृष्टः सोऽत्र नैव प्रदृश्यते । ममापि जानमाश्रयं सीतां त्वं प्रष्टुमर्हसि ॥९३॥
 तच्छ्रुत्वा जानकी शीघ्रं प्राह किञ्चिद्भयातुरा । मयाऽपराधितं किञ्चिन्नक्षमस्व रघुनम ॥९४॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तां पुनः । वद तर्ह्य न मेतव्यं कारणं किं ममातिक्रम ॥९५॥
 यथा वृक्ष तया सर्वं राघवाय निवेदितम् । तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह कः माक्षी तत्र कर्मणि ॥९६॥
 सा प्राह चूतपुत्रोऽस्ति दृष्टः म नेन्युवाच ह । तदा शप्तः सीतया म फलहीनः स कीदृष्टः ॥९७॥
 मय मे वचनाच्चूत यतो मिथ्या त्वयेरितम् । पुनः सा राघव प्राह फल्गुः साक्ष्यं प्रदास्यति ॥९८॥
 साऽपि समेण पृष्टाऽथ नेन्युवाच भयानुरा । साऽपि शप्ता रामवत्न्याऽधोमुखी मम वाक्यतः ॥९९॥
 बह यस्मान्मृषा चोक्तं त्वया मन्येपि कर्मणि । ततः सीता पुनः प्राह साक्ष्यं मेऽत्र निवापिनः ॥१००॥
 दास्यंति मे द्विजाः सर्वे तदा मन्निकटस्थिताः । तेऽपि पृष्टा राघवेण नेन्युचुर्भयविह्वलाः ॥१०१॥
 दद्याः साक्ष्यं तर्हि रामः शापं नम्तु प्रदास्यति । निवारिता कथनेयं तदा सीतेति चिन्त्यते ॥१०२॥
 सांस्तदा जानकी शापं ददौ तीर्थनिवासिनः । युष्माकं नात्र महमिः कदा द्रव्यैर्भविष्यति ॥१०३॥

दिखायी देती हैं । पञ्चान् उन्होंने कुशा बिछाकर उसपर तिल धूस मधुआदिसे युक्त सक्तुका पिण्ड रखना प्रारम्भ किया । रामने जब दाहिने हाथसे पिण्ड लेकर अमानकी ओर देखा तो उन्हें अपने पिताका हाथ नहीं दीखा । वहकि ब्राह्मण भी आश्चर्यान्वित होकर रामसे कहने लगे—॥ ८४-८८ ॥ यहाँ सब लोगोंके पितरोंके दाहिने हाथ पिण्ड लनके लिये निकलते हैं, पर आपके पिताका हाथ क्यों नहीं निकला । इसका कारण समझमें नहीं आता ॥ ८९ ॥ तब रामने विस्मित होकर लक्ष्मणसे पूछा—हे लक्ष्मण ! तुम बुद्धिमान् हो, क्या कुछ इसका कारण जानते हो ? ॥ ९१ ॥ लक्ष्मणने कहा—हाँ भाई ! जब हम लोग गोंदावरो गये थे, तब तो इन्दुर्दफलके पिसानका पिण्डदान देते समय अपने पिताका हाथ दिखाई दिया था, वह यहाँ नहीं दिखाई देता । इस बातका हमको भी आश्चर्य है । आप इसका कारण जानकीसे तो पूछें ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ यह सुनकर जानकीभी घबड़ा उठीं और बोलीं—हे रघुनाज ! आप प्रमा कर । मुझसे कुछ अपराध हो गया है ॥ ९४ ॥ यह सुनकर रामने कहा कि घबराने तथा डरनेकी कोई बात नहीं है । जो हो, सो साफ साफ कहो ॥ ९५ ॥ तब जानकीने जो घटना घटी थी, सो स्पष्ट कह सुनायी । यह सुनकर रामने पूछा—इस बातका साक्षी कौन है कि हमारे पिताने तुम्हारे हाथसे पिण्डदान ग्रहण किया है ? ॥ ९६ ॥ सीताने अपना गवाह पासके आश्रवृक्षकी बताया, परन्तु उससे पूछनेपर वह इनकार कर गया । तब सीताने उसको शाप दिया कि अरे दुष्ट ! तू झूठ बोला है, इसलिए मगधदेशमें तू फलशून्य होकर रहेगा ॥ तब सीताने फल्गुनदीको अपना साक्षी बताया ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ परन्तु रामके पूछनेपर वह भी भयसे इनकार कर गयी । इसपर सीताने उसको भी शाप दिया कि तू सत्य बातमें भी झूठ बोली है, इसलिए तू अधामुखी (अन्तर्मुखी) होकर रहेगी । तब सीताने कहा कि मेरी साक्षी यहाँक रहनेवाले उस समय मेरे पास खड़े ब्राह्मण दैने । उन्होंने भी विह्वल होकर रामके पूछनेपर ना कर दिया ॥ ९९-१०१ ॥ वे लोग विचारने लगे कि “यदि ऐसा था तो तुम लोगोंने सीताकी उस समय पिण्ड देनेसे रोका क्यों नहीं । ऐसा कहकर कहीं सत्य कहनेपर राम हमको शाप न दे दे” सीताने उनकी भी शाप दिया कि आओ, तुमलोग इधरसे कभी तृप्त न होकर जारे-जारे फिरने । सब जानकीने

द्रव्यार्थं सकलान् देशान् प्रमत्तं दीनरूपिणः । ततः सा जानकी प्राह ओतुःसाक्ष्यं प्रदास्यति ॥१०४॥
 सोऽपि पृष्टो नेत्युवाच रामं सीता शशाप ताम् । पुच्छाग्रं स्वपुरः कृत्वा पदा मन्त्रिकटोऽपि सन् ॥१०५॥
 मृपेरितं यतस्तस्मात्पुच्छे हृत्पृश्यतां भज । ततः सा जानकी प्राह गौर्मे साक्ष्यं प्रदास्यति ॥१०६॥
 साऽपि पृष्टा नेत्युवाच राम सीता शशाप ताम् । अपवित्रा भवास्ये त्वं मम वाक्येन घेनुके ॥१०७॥
 ततः सीताश्चत्थपृथ्वं साक्ष्यार्थं प्राह राघवम् । स पृष्टो नेत्युवाचाथ तं सीताऽथाश्वपङ्कुधा ॥१०८॥
 भवाचलदलस्व हि मदिराऽश्चन्यपादप । पुनः सीता पतिं प्राह मम साक्षी प्रमाकरः ॥१०९॥
 स पृष्टः प्राह तथ्यं हि तुष्टिर्जाता पितुस्तत्र । एतस्मिन्नतरे तत्र विमानेनार्कवर्चसा ॥११०॥
 राजा दशरथो राममागत्यालिङ्ग्य वै पृष्ठम् ॥

प्राह स्वया तारितोऽहं नरकादतिदुस्तरात् । मैथिन्याः पिण्डदानेन जाता मे तृप्तिरुत्तमा ॥१११॥
 तथापि लोकशिष्यार्थं गयाश्राद्धं त्वमाचर । पितरं प्राह रामोऽपि किमर्थं हि त्वयाऽत्र वै ॥११२॥
 स्वरथा सिकतापिण्डः सगृहीतो वदस्व माम् । स प्राहात्र गपायां तु बहुविघ्नानि राघव ॥११३॥
 मरंति श्राद्धयमये कृता तस्माच्चरा मया । इति रामं समाभाष्य गृहीत्वा राघवादिभिः ॥११४॥
 किञ्चित्कन्यं विमानेन यया दशरथस्तदा । ततो गमः प्रेतगिरौ पिण्डदान विधाय च ॥११५॥
 गत्वा प्रेतशिलायां च दत्त्वा काकबलिं ततः । धर्माण्यं ततो गत्वा कुर्वन्कोनपदेषु हि ॥११६॥
 सक्तुना च तिलाज्यं च पायमं च शशकैः । पृथक् पिण्डदानानि वटश्राद्धं विधाय च ॥११७॥
 अष्टतीर्थी ततः कृत्या ततः मध्यां स्थलत्रये । कृत्या यथाविधानेन दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥११८॥
 गदाधरं ततः पूज्य महाविभवपूर्वकम् । सेचयामास तोयं च घृतघृथं सकीकटम् ॥११९॥

एको मुनिः कुमकुशाग्रहस्तधृतस्य मूले मलिनं दधार ।

आम्रश्च भिक्तः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्वयर्थकरी प्रमिदा ॥१२०॥

बिलारको साक्षी देनेके लिए कहा । उसने भी पूछनेपर ना कह दिया । सीताने उसे भी शाप देने हुए कहा कि उस समय मेरे समस्त पूछ किये खड़े रहनेपर भी जो मुन ना कर दिया है । इसलिए जा तेरी पूछ अछुत हो जायगी । तब जानकीजीने गौका साक्षी देनेके लिए कहा ॥ १०२-१०६ ॥ रामके पूछनेपर उसने भी ना कह दिया । सीताने कहा-हे धनु । मर शापसे तेरा मुख अपवित्र हो जायगा ॥ १०७ ॥ पश्चात् सीताने पीपलके वृक्षको साक्षी बनके लिए रामके सम्मुख उपस्थित किया । जिसका नाम अश्वत्थ था, परन्तु जब वह भी इन्कार कर गया तो सीताने त्रास करके शाप दिया कि तू आजसे अचलदल हो जायगा । तब अन्तमें सीताने बड़ा कि सूर्य मेरी साक्षां देगे । रामके पूछनेपर सूर्यने कहा कि यह बात सत्य है । इस कार्यसे आपके पिता अवश्य सन्तुष्ट हुए है । इतनेमें सूर्यके समान कान्तिमान् विमानपर सवार होकर स्वयं महाराज दशरथ वहाँ आ पहुँचे, रामको दृष्ट आलिङ्गन करके वे बोले-हे राम ! तूने यथार्थम हमको तार दिया है । मैथिलीके पिण्डदानसे हमें बड़ा ही नृति मिली है ॥ १०८-१११ ॥ तो भी लाक्षाग्रहाके लिए तुम गणश्रद्धा अवश्य करो । रामने पितासे पूछा कि आपने यहाँ इतनी जल्दी आनुकापिड क्यों ग्रहण किया ? इसका क्या कारण है ? दशरथने कहा-हे राम ! गणश्रद्धा पिण्डदानके समय बर बड़ विघ्न उपस्थित होते हैं । इसीलिए मैंने स्वरा की थी । इतना कहकर राजा दशरथ रामके हाथसे भी कुछ व्रत्य (गिरु-अन्न ग्रहण करके विमान द्वारा वहाँसे चले गये । पश्चात् रामने प्रेतपर्वतपर पिण्डदान दिया ॥ ११२-११५ ॥ वहाँसे वे प्रेतगिरा गये । वहाँ काकबलि देनेके बाद घर्मवन गये । वहाँ एकानपद स्थानमें तिल-पायस तथा शकरासे युक्त सक्तुके पृथक् पृथक् करके अनेक पिण्ड दिये और वटश्राद्ध भी सम्पादन किया ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ तदनन्तर अष्टतीर्थी की । तीनों नियत स्थानोंमें सन्ध्यावन्दन करनेके बाद विधिवत् बहुतसे दान दिये ॥ ११८ ॥ अनेक विप्रकोसे गदाधरकी पूजा की और मगधदेशस्थ आम्रवृक्षका जलसे सेवन किया ॥ ११९ ॥ कहा भी है-किसी

कृत्वा विष्णुपदे पूजां विमानारोपणादिभिः । मामत्रयमनिक्रम्य गयायां रघुनन्दनः ॥१२१॥
 विमानेन यया प्रार्चां दिशं संतोषयन् जनान् । कल्गुनद्याम्नटे पूर्वं विमानं यत्र मस्थितम् ॥१२२॥
 तत्र रामगयानाम्ना भूमिभिर्प्रेरुर्दार्यते । रामेश्वरो रामतीर्थं चनेने तत्र पावनम् ॥१२३॥
 रामोऽपि कल्गुनद्याश्च गङ्गायाः संगमं यया । गयावहिः कल्गुरेव ज्ञेया सा तु महानदी ॥१२४॥
 ततो यया मुद्गलस्य नूननाश्रममुत्तमम् । यस्मिन्मुद्गवहा गङ्गा जाह्नवी पापनाशिनी ॥१२५॥
 ततोऽग्रे जानकीं ज्ञान्वा भूमीं दिव्यं प्रदास्यति । तस्या दिव्यस्थले रामस्तीर्थमादी चकार सः ॥१२६॥
 षड्भूतां च पृथक् तत्र मतिं तीर्थानि सर्वतः । सीतया च कृतं तत्र स्तनाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥१२७॥
 ज्ञान्वा भविष्यन्त्यग्रे मनीषं चेति सविस्तरम् । यदा भूमीं प्रदास्यामि दिव्यं तर्थां तदाऽस्तु मे ॥१२८॥
 रामस्ततो विमानेन गतश्चोत्तरवाहिनीम् । नाम्ना पुरो तथा गङ्गां यत्रास्ति परमार्थद्रा ॥१२९॥
 पर्वतो यत्र गङ्गायामस्ति विन्वेश्वरोऽपि च । ततः शार्ङ्गजनावेशं नत्वा रावणनिर्मितम् ॥१३०॥
 ततः शूर्नर्विमानेन पश्यन्नानास्थलानि सः । यया भार्गोष्ठीमध्याद्यत्र भिन्ना मिता पुनः ॥१३१॥
 प्रयागाद्योजनशतमाने देशे रघूद्वहः । ततो गङ्गां उच्चिमयोगमदम् पुष्पकेन सः ॥१३२॥
 गन्वा स्नात्वा ततो यत्र कालिन्दीसंगताऽर्धके । तत्र गन्वा रघुश्रेष्ठस्ततः पश्यन् स्थलानि सः ॥१३३॥
 नानापुण्यानि तीर्थानि दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् । पूर्वमागतीरस्थं दृष्ट्वा दानान्पनेकशः ॥१३४॥
 ततः शूर्नैः पुष्पकेण दृष्ट्वा नानाविधान् सुगन् । दृष्ट्वा नाना नदीः सर्वा नानादेशान्विलस्य च ॥१३५॥
 गोदातीरे स्तनाम्ना तु कृत्वा गिरिमनुत्तमम् । समगोदावरीमेदमंगमेषु महोदधी ॥१३६॥

एक मुनिने कुशागुक्त हाथमें जलका पात्र लेकर आसन्नवृक्षके मूलमें जन दिया । उससे आसन्नवृक्ष सिंच गया और पितर भी जूट हो गये । इसीके आधारपर "एका क्रिया द्वयवर्करी" का कहावत प्रचलित हुई ॥ १२० ॥ इसी प्रकार प्रतिदिन विष्णुपदकी पूजा करते और विमानपर चढ़कर घूमते-फिरते हुए रामने गयामें एक वर्ष व्यतीत किया ॥ १२१ ॥ पश्चात् सब लोगोंको आश्वासन दे तथा विमानपर सवार होकर रघुनन्दन पूर्वकी ओर चल दिये । कल्गुनदीके किनारे जहाँ रामका विमान खड़ा हुआ था ॥ १२२ ॥ उस जगहको वहाँके विप्र रामगया कहने लगे । पवित्र रामेश्वर नामका रामतीर्थ अभी भी वहाँ विद्यमान है ॥ १२३ ॥ राम वहाँसे चलकर कल्गु तथा गंगाके सङ्गमपर आये । गयाके बाहरी भागमें कल्गु नदी है । उसका विस्तार बहुत बड़ा है ॥ १२४ ॥ बादमें मुद्गल ऋषिके नवीन आश्रमकी ओर गये । जहाँपर पाप हरण करनेवाला गंगा उत्तरवाहिनी होकर बहती है ॥ १२५ ॥ आगे चलकर एक जगह जहाँ कि उन्हें विश्वास था कि यहाँ जानकी भूमिमें प्रवेश करके दिव्य रूप धारण करगी, अपने नामका एक उत्तम तीर्थ स्थापित किया ॥ १२६ ॥ उसके बाद लक्ष्मण आदि आह्वयोंके नामसे भी जनक तीर्थ स्थापित किये । सीताने भी वहाँ, यह विचारकर कि भविष्यमें मेरे नामका यहाँ बड़ा भारी तीर्थ होगा, एक अपन नामका तीर्थ स्थापित किया । उन्होंने यह विचारा कि जब मैं दिव्य रूप धारण करूँगी, तब यहाँ दिव्य तीर्थ होगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ पश्चात् राम विमानमें बैठकर उस जगह गये, जहाँ कि कल्याणकारिणी उत्तरवाहिनी नामकी गंगा तथा एक नगरी विद्यमान थी ॥ १२९ ॥ और जहाँपर बीच गंगामें विन्वेश्वर नामका पर्वत खड़ा है । वहाँसे आगे चलकर श्रीरामने रावण द्वारा स्थापित वैद्यनाथजीका दर्शन किया ॥ १३० ॥ तदनन्तर विमानमें बैठकर अनेक बनोकी शोभा देखते हुए वहाँ गये, जहाँसे कि श्वेतजल युक्त गंगा बीचो-बीचसे दो भागोंमें बँट गयी है ॥ १३१ ॥ वह स्थान प्रयागसँ जो योजनकी दूरीपर था । पश्चात् राम विमानके द्वारा वहाँ जा पहुँचे, जहाँ कि गंगा सहजमुखो होकर समुद्रमें मिली है ॥ १३२ ॥ उस जगह गंगा-समुद्रसङ्गममें स्नान करनेके बाद कालिन्दी-समुद्रके सङ्गममें स्नान किया । वहाँपर रामने अनेक मंदाहर पुण्यित कनोपवन देखे, अनेक तीर्थोंके दर्शन किये और साथ ही पूर्वी सागरके तटपर स्थित भगवान् परम पुरुषोत्तमके भी दर्शन किये तथा अनेक दान दिये ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ वहाँसे चलकर अनेक देवताओंके दर्शन करते हुए अनेक नदियोंको साथकर गोदावरके

स्नान्वा दक्षिणमार्गेण ततो रामो ययौ पुनः । पूर्वदेशे नृपनिर्मिर्मानिनः पूजितोऽपि च ॥१३७॥
गृहीत्वा स्वकरं तेभ्यस्तैः सहैव शनैः शनैः । विमानेन सुखेनैव तीर्थान्यन्यानि सेवितुम् ॥१३८॥
श्रीरामो यावद्विजानि दक्षिणामिमुखो ययौ । एव प्रोक्ता पूर्वदेशयात्रा शमेण या कृता ॥१३९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे पूर्वदेशयात्रावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(श्रीरामके द्वारा दक्षिणभारतकी तीर्थयात्रा)

श्रीरामदास उवाच

ततो रामः समुल्लस्य मन्स्यतीर्थे मनोरमम् । तीर्त्वा महानदीं कृष्णां पश्यन् पुण्यस्थलानिमः ॥ १ ॥
ततो ययौ नारभिहं रामः पानकनामकम् । कृष्णाऽपि सगमे स्नान्वा दद्याद्दानं नि विमानः ॥ २ ॥
पश्यन्नातास्यलान्धेयं ययौ श्रृंगशिरः । स्नान्वा म नीलगङ्गायां दृष्ट्वा श्रीमल्लिकार्जुनम् ॥ ३ ॥
तत्रैव कृष्णा सा ज्ञेया नीलगङ्गेति नमः । श्रीशंकरेश्वरं दृष्ट्वा पुनर्जन्मनिवारकम् ॥ ४ ॥
शिखरेश्वरस्य शिखरादुन्नतकुण्डे विमलं च । भीमकुण्डं ततः स्नान्वा तथा निवृत्तिमगमे ॥ ५ ॥
तुङ्गभद्रामंगमेऽपि महानदीमगोवरे । विमलं भवनाशिण्यां ततो दृष्ट्वा हृदीयलम् ॥ ६ ॥
नारभिहं ततो नन्वा कृत्या स्तंभप्रदक्षिणाः । गन्वा पुष्पगिरीं तत्र पिनाकीमगमाद्य च ॥ ७ ॥
पश्यन् पुष्पस्थलानीशान् दृष्ट्वा पद्मसरोवरम् । किष्किंधार्यां ततो गन्वा सुग्रीवार्थः सुपूजितः ॥ ८ ॥
सुग्रीवार्थार्थानर्थं विमानेन विहायमा । प्रवर्षणगिरीं स्वीयगुहां रम्यां प्रदशयन् ॥ ९ ॥
वैदेहीं कीतुकाद्रामः किञ्चिन्कृत्वा विमानेन । द्वितीये भीमकुण्डेऽथ स्नान्वा गत्वा पडाननम् ॥ १० ॥
स्नान्वाऽगस्त्यकुण्डमध्ये पश्यन्तीर्थान्यनेकशः । कनकगिरिस्थं शशुं नन्वा संपूज्य राघवः ॥ ११ ॥

किनारे आये । वहाँ उन्होंने अपने नामवा एक उत्तम पर्वत नियत किया । बादम सागरके साथ गोदावरी-
सङ्गममें स्नान किया । पश्चात् वे दक्षिणमार्गमें पूर्वका आर आ गये । वहाँ अन्य राजाओंसे पूजित तथा
सम्मानित होकर और उनसे कर लेते हुए उनको भी साथ लेकर घांरे घांरे विमानके द्वारा अन्यान्य तीर्थोंको
देखनेकी इच्छासे दक्षिण भारतका और चले । इस प्रकार रामकी पूर्वप्रदशकी यात्रा समाप्त हुई ॥१३५-१३९॥
इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे ज्यात्स्ना भाषाटीकाया पूर्वदेशयात्रावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदासने कहा—वहाँसे राम मनोहर मन्स्यतीर्थ होते हुए महानदी तथा कृष्णाका पार करके अन्यान्य
पवित्र स्थानोंको देखते हुए पानक नामहतीर्थ गये । पश्चात् कृष्णा तथा समुद्रके सङ्गममें स्नान करके उन्होंने
अनेक दान पुण्य किये ॥ १ ॥ २ ॥ वहाँसे विविध वनोंके सौन्दर्य देखते हुए राम श्रीशंकर पर्वतपर पधारे ।
वहाँ नीलगंगामें स्नान करके श्रीमल्लिकार्जुनके दर्शन किये ॥ ३ ॥ वहाँपर कृष्णा नदीका ही नाम नीलगंगा
पड़ गया है । पुनर्जन्मके निवारक श्रीजलशिखरको देखकर शिखरेश्वरके शिखरसे निकले हुए ब्रह्मकुण्डमें
स्नान किया । इसके अतिरिक्त भीमकुण्ड, निवृत्तिसङ्गम, तुङ्गभद्राके सङ्गम, महानदीके सरोवर और
भवनाशिनीमें स्नान किया । वहाँ महाप्रताप नरसिंहजीका दर्शन किया तथा स्तंभकी प्रदक्षिणा की । वहाँसे
आगे पुष्पगिरिवर आकर पिनाकिनी नदामें स्नान किया ॥ ४-७ ॥ बादम अनेक आश्रमों तथा विविध
पुण्यवनोको देखते हुए पद्मसरोवर और वहाँसे किष्किंधा गये । वहाँ सुग्रीव आदिने रामका विविध
भक्त-सत्कार किया ॥ ८ ॥ वहाँसे सुग्रीव आदि वातरीका साथ ले तथा विमानपर आरुढ़ होकर आकाश-
मार्गसे प्रवर्षण गिरिपर पधारे । वहाँ जानकीको अपना निवासगुफा दिखलाकर श्रीराम कुछ हँसे । फिर
भीमकुण्डमें स्नान करके पडानन कात्तिकेश स्वामीका दर्शन करनेके लिए गये ॥ ९ ॥ १० ॥ अगस्त्यकुण्डमें

शीर्षं ततो दृष्ट्वा नन्वाऽद्विवेकं सुति । गीर्दिशं न नन्वा तृमिषनसमिधुम् ॥ १२ ॥
 स्नान्वा कां लभ्यागयां तीर्थयात्रां विराज च । ताः शेषाचलं गन्वा स्नान्वा पुष्करिणीजले ॥ १३ ॥
 वेङ्कटेश्वरं पूजयित्वा पञ्चनीये रिजान् म । सुवर्णमुखद्वारीनामस्थं श्रीकालहस्तिनम् ॥ १४ ॥
 पूजयित्वा ययौ कार्त्तिकागमः शिवद्वारिण्यम् । एकादशेश्वरं पूज्य सर्वार्थं विगाह्य च ॥ १५ ॥
 कामाक्षीमयिष्ठं नन्वा स्नान्वा चैव गीर्जने । नन्वा वरदराजं च पश्चिमीये ततो ययौ ॥ १६ ॥
 पश्चिमीये तु नामासी पश्चिमी पूज्य भीमया पुष्पकोणतः शीघ्रं शीघ्रनद्यो विगाह्य च ॥ १७ ॥
 नन्वा त्रिविक्रमं तत्र ततोऽप्योदयान् च लभ । पुनर्यत्नस्मरमादेव नन्वा नवरागाचलम् ॥ १८ ॥
 मणिमुक्तानदीतीरे वृद्धाचलमगातः । वृद्धाचलेषु संपूज्य वटपालं ततो ययौ ॥ १९ ॥
 वटपालेश्वरं पूज्य ततः श्रीमुष्टिमन्थगान् । तत्र यत्नपरादं च संपूज्य जगदीश्वरम् ॥ २० ॥
 चिदम्बरमथागच्छद्दर्शनमादेव मुक्तिदम् । लिखितां यत्र शेषेण शिलायां ताड्यवाक्यैः । २१ ॥
 शिवरीं च ननर्त्तान्ती मितक्षेत्रं ततो ययौ । नन्वा मल्लपुरेशं च वैद्यनाथं प्रणम्य म. ॥ २२ ॥
 श्वेताश्वरं ततो गन्वा शंखमुख्यां विगाह्य च । आयाचनं ततो दृष्ट्वा ययौ गौरीमयूरकम् ॥ २३ ॥
 वेदाश्वरं ततो गन्वा नन्वा मध्याजुनं शिवम् । स्नान्वाऽथ वृद्धकावेरीं कुम्भकोणं विलोक्य च ॥ २४ ॥
 श्रीनिवासं ततो दृष्ट्वा दृष्ट्वा वृन्दावनं शुभम् । मार्गार्थं ततो दृष्ट्वा श्रीवन्मं च दर्शय सः ॥ २५ ॥
 प्रयागमाधव नन्वा गन्वाऽऽश्विनशिरः स्थलम् । शिलावाकाशनालायं गन्वाऽथ कपलालयम् ॥ २६ ॥
 श्यामेश्वरं समम्पूर्य मयार्ताथे विगाह्य च । दक्षिणद्वारकायां च श्रीगोविन्दं प्रणम्य सः ॥ २७ ॥
 जैपालाख्यं पुनं गन्वा गन्वा चाभयेश्वरम् । विघ्नेश्वरं नमस्कृत्य पुनः सस्थापितं स्वयम् ॥ २८ ॥
 स्नान्वा वै नवपाषाणे ययौ देव्याश्च वत्तनम् । स्नान्वा देवालयीये वै तीर्थीये सागरस्य च ॥ २९ ॥

स्नान करके अन्तक मार्थ २५ । कनक निर्गपर विराजमान शम्भुका दर्शन करके उनका पूजा की ॥ ११ ॥ बादमें
 श्रीरामद्वारा दर्शन करके पृथ्वीपर प्रसिद्ध अक्षिवेङ्कटको नमस्कार किया । तदनन्तर नृत्तिपत्तन (तिरुपति नगर)
 में स्थित गोविन्दराजके दर्शन किये ॥ १२ ॥ वहाँ कपिलधाराय ग्दान करके तीर्थयात्रा किया । वहाँसे
 शेषाचलपर जाकर पुष्करिणीके जलमें स्नान किया ॥ १३ ॥ वेङ्कटेश्वर भगवान्को पूजा-अर्चा करनेके बाद
 पञ्चनीयमें स्नान किया । बादमें सुवर्णमुखद्वारीके तीरपर विराजमान श्रीकालहस्तीश्वरका पूजन करके राम शिव
 समा विष्णुको प्रिय शिवकाती और विष्णुकाचा गये । वहाँ एकादशेश्वरकी पूजा करके सभी तीर्थोंमें अवगाहन
 किया ॥ १४ ॥ तब कामाक्षी देवीको नमस्कार करके वेणवतीके पवित्र जलमें स्नान किया । वहाँसे आगे वर-
 दराजका दर्शन करके पश्चिमीये गये ॥ १५ ॥ १६ ॥ वहाँ पूजा तथा विधाना नामक दो पक्षियोंकी पूजा करके
 सीताके साथ विमानपर बैठकर शीघ्र ही शारनदीपर पधारे, वहाँ स्नान कर और त्रिविक्रमका दर्शन करके
 वरणाचल गये । स्मरणमात्रसे मुक्ति देनेवाले वरणाचलको नमस्कार करके मणिमुक्ता नदीके तटपर स्थित
 वृद्धाचलपर गये । वहाँ वृद्धाचलेश्वरका पूजा करके वटपाल गये ॥ १७-१८ ॥ वहाँ वटपालेश्वरकी पूजा करके मुक्ति-
 लार्थ गये । वहाँ मल्लवशाहकी पूजा करके दर्शनमात्रसे निर्वाण भद देनेवाले चिदम्बरेश्वरके दर्शनार्थ पधारे ।
 वहाँपर शिलामें शेषनागकी लिखी हुई ताडवचिन्नावली देखी ॥ २० ॥ २१ ॥ पश्चात् कावेरीको पार करके
 सिद्धक्षेत्र गये । बादमें महापुरेश और वैद्यनाथको प्रणाम करके भाराम स्वेतारण्य पधारे वहाँ शङ्खमुखीमें
 स्नान किया । वहाँसे आयाचन होकर गौरीमयूर गये । वहाँसे वेदाश्वर जाकर मध्याजुन शिवका दर्शन
 किया । पश्चात् वृद्धकावेरीमें स्नान करके कुम्भकोणन देखा । २२-२४ ॥ वहाँसे आगे श्रीनिवासका दर्शन करके
 चित्ताकर्यक वृन्दावनकी ओर गये । तदनन्तर सारनाथका दर्शन करके श्वेताश्वरके दर्शनार्थ आगे बढ़े ॥ २५ ॥
 वहाँ प्रयागमें वेणीमाधवका दर्शन करके आश्विनशिर नामक स्थानपर गये । वहाँकी भीतमें आकाशके
 समान लीलाकमलालय देखा ॥ २६ ॥ बादमें श्यामेश्वरकी पूजा करके मयार्ताथमें स्नान किया और
 दक्षिण द्वारका और श्रीगोविन्दको प्रणाम किया ॥ २७ ॥ वहाँसे जैपाल नामके नगरमें आकाश

स स्नात्वा भैरवे तीर्थे प्रार्थकांनस्थित निजम् । अवरुह्य विमानाग्रान्पद्भ्यां चर्वितैः सह ॥३०॥
 गत्वा लक्ष्मणकुण्डेऽथ स्वकुण्डेऽपि विमोह्य च । अग्नितोर्थे ततः स्नात्वा धनुष्कोट्यां विगच्छ च ॥३१॥
 स्नात्वा जटायुतीर्थे हि गत्वा तं गंधमादनम् । आर्द्रां नन्वा विश्वनाथं पुनः स्नात्वा तं हनुमता ॥३२॥
 रामेश्वरं ततो नन्वा कृत्वा मंगाभिषेचनम् । काचकुमादिकं न्यक्त्वा धनुष्कोट्यां रथूनमः ॥३३॥
 कोटितीर्थं धनुष्कोट्यां चकार कूपमुत्तमम् । क्षेत्रपापप्रक्षान्त्यर्थं दृष्ट्वा श्रीसेतुमाधवम् ॥३४॥
 नानादानादिकं कृत्वा सममेकं विलम्ब्य च । बाहनाकद्वेवानां महोन्माहान्विधाय च ॥३५॥
 क्षेत्रपापप्रक्षान्त्यर्थं कोटितीर्थं विगाह्य च । नन्वा द्वारगण्यगण्यं तीर्थं जलधेः पुनः ॥३६॥
 विहायसा विमानेन स दर्भशयनं ययौ । स्नात्वा निक्षेपिकानां यस्नात्वा प्रपथ्यन्धिः संगमे ॥३७॥
 गत्वा स्नात्वा रामचंद्रो ददौ दानान्पनेकशः । ततोऽन्धेभ्यस्तान्मन्थं तं स्कन्दं मप्यय राघवः ॥३८॥
 तान्नपथीतटेनैव पश्यन्पुण्यस्थलानि सः । नवैकटनार्थास्तान्वा तोताद्रिमापयौ ॥३९॥
 कन्याकुमारिकां दृष्ट्वा मिन्धुतीरनिवा मिनीम् । प्रतीक्षतीं स्यायमार्गं विभ्रतीं मालिकां करे ॥४०॥
 तामाह रघुवीरश्च वरं वरय सुव्रते । सा प्राह राघव नन्वा चिग्मस्मिन्ननस्थिता ॥४१॥
 अहं मुनिमुता पित्रा सुरेद्राय विनिश्चिता । विशदार्थं समानीतं सुरेद्रो योजने स्थितः ॥४२॥
 तव याश्रोयमं भ्रुत्वा मया वित्ते विनिश्चितम् । आगमिष्यति रामोऽत्र वरपिशाचम्यहं तदा ॥४३॥
 पित्रा मन्निश्चयं ज्ञात्वा सुरेद्रो विनिश्चितः । सोऽपि मन्सेदचित्तस्तु योजनेऽद्यापि वर्तते ॥४४॥
 विवाहोपकरणादि मन्मात्रा यत्कृतं पुरा । पित्रा तन्सागरे क्षिप्तं क्रोधाविष्टेन राघव ॥४५॥

अध्यादेश्वरका अर्चन किया । पश्चात् रामचन्द्रने पूर्वसमयमें अपने द्वारा स्थापित विष्णेश्वरका दर्शन किया ॥ २८ ॥ वहाँके नवपाषाणसमूहमें स्नान करके देवानगर गये । फिर वेनान्त्यीर्थमें स्नान करके सागरके अथाह जल-प्रवाहको पार करके ॥ २९ ॥ एकान्तमें स्थित भैरवतीर्थ गये । वहाँसे पैदल चलते हुए सबके साथ जागे बढ़े । जागे जाकर लक्ष्मणकुंड, रामकुंड, अग्नितोर्थ, धनुष्कोटितोर्थ और जटायुतीर्थमें स्नान किया । वहाँसे गंधमादन पर्वतपर गये । वहाँ पूर्वसमयमें हनुमानजीके द्वारा लाये हुए विश्वनाथका दर्शन किया ॥ ३०-३२ ॥ पश्चात् रामेश्वरको नमस्कार करके उन्हें गङ्गाजलसे स्नान कराया । बादमें रामने जाली काँचके घड़ोको धनुष्कोटि तीर्थमें फेंक दिया ॥ ३३ ॥ उस धनुष्कोटि तीर्थमें रामने काटितीर्थ नामका एक कूप खुदवाया । बादमें क्षेत्रपापकी शांतिके लिए श्रीसेतुवध माधवका दर्शन किया ॥ ३४ ॥ वहाँपर अनक दानपुण्य करते हुए रामने एक मास निवास किया । अनक बाहनाकद्वे देवताशेका महारसब भी वहाँ भोग्या ॥ ३५ ॥ पश्चात् पुनः क्षेत्रपापकी शांतिके लिए कोटितीर्थमें स्नान किया । द्वारपाल गणनाथको नमस्कार कर तथा विमानके द्वारा समुद्र पार करके दर्भशयन नामके तीर्थको गये । वहाँ निक्षेपिकाके जलमें और तान्नपथी तथा सागरके संगममें स्नान किया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ भी अनक दान दिये । पश्चात् रामने समुद्रके तटपर विराजमान कातिकेय स्वामीकी पूजा की ॥ ३८ ॥ बादमें तान्नपथीके किनारे-किनारे राम अनेक पवित्र स्थानोंका देखते तथा नवैकटेश्वरोंकी पूजा करते हुए ताताद्रि गये ॥ ३९ ॥ पश्चात् सिन्धुतीर-निवासिनी कन्याकुमारीके दर्शन किये, जो कि हाथमें माला लिये उन्हीं (राम) की राह देख रही थीं ॥ ४० ॥ रामजीने उससे कहा-हे सुव्रते ! वर माँगो । तब उसने रामको नमस्कार करके कहा-हे राघव ! मैं बहुत दिनोंसे सब कारण करके आपकी प्रतीक्षामें यहाँ खड़ी हूँ ॥ ४१ ॥ मैं एक मुनिकन्या हूँ । मेरे पिताने मुझ सुरेन्द्रको देना निश्चित किया और उनको विवाहके लिए बुलाया भी था । जो कि अब भी यहाँसे एक योजनको दूरीपर विद्यमान है ॥ ४२ ॥ परन्तु मैंने जब आपकी तीर्थयात्राका समाचार सुना तो मनमें यह निश्चय कर लिया कि राम जब यहाँ यात्राके निमित्त आयेंगे, तब मैं उन्हींसे विवाह करूँगा ॥ ४३ ॥ पिताने जब मेरा यह हृदय निश्चय देखा तो सुरेन्द्रको लोटा दिया । वह मेरे लिए दुःखित होकर एक योजनपर अब भी खड़ा है ॥ ४४ ॥ हे राघव ! मेरी माताने विवाहके लिए जो सामग्री एकत्रित की थी, वह सब मेरे

नयाप दृश्यते पश्य तस्मैतिर्गतं बहिः । अद्य त्वया तस्मिन्नाह मां दार्मी कर्तुमर्हमि ॥४६॥
 जन्वा तस्या ह्यभिप्राय तामाह रघुनन्दनः । एकपत्नीघनं मेऽस्मिन्नन्मन्यस्ति कुमारिके । ४७॥
 अद्य कृष्णावनारे त्वं भज मां नात्र मशयः । तद्रामवचनादेव यमश्च नियमैरपि ॥४८॥
 यावद्रामः स्थिता भूम्या तावद्धन्वा कलेवरम् । तपोवलेन देहाते जाववती जनिष्यति ॥४९॥
 जाववतीति नाम्ना मा कृष्णपत्नी भविष्यति । रामो ययौ सुरेंद्र च पयोर्णी सविगाह्य माः ॥५०॥
 आघननं ततो गन्वा ताम्रपर्णीतटे स्थितम् । विनिद्रितं शेषपृष्ठे लक्ष्मीगरुडसेवितम् ॥५१॥
 ज्ञानव्या ताम्रपर्णी मा त्वन्या पश्चिमवाहिनी । अनन्तशयनं गन्वा पञ्चतीर्थं विगाह्य च ॥५२॥
 शंखतीर्थे मन्मथतया विगाह्य मीतया प्रभुः । ततो गन्वा विमानेन धर्माधर्मसरोवरे ॥५३॥
 स्नान्वा जनादेन गन्वा पश्चिमे ह्यन्धरोधमि । दर्शेच्च पार्णिमायां च गंगाधाराब्धिमगम ॥५४॥
 स्नान्वा जनादेन पूज्य नारीगज्यं विलेख्य च । अग्रे श्रीगमच्छः स न ययौ लोकशिक्षया ॥५५॥
 परिश्रुत्य ततो रामो घृतमालां विगाह्य च । कृतमालां ततः स्नान्वा सिन्धुनद्या विगाह्य च ॥५६॥
 गन्वा गजेन्द्रमोक्षं च ताम्रपर्णीतटस्थितम् । ताम्रपर्ण्युद्गमे स्नान्वा गन्वा मैगलतीर्थकम् ॥५७॥
 गन्वा चन्द्रकुमाररूपं गिरिं श्रीरघुनन्दनः । ततो ययौ विमानेन दृष्ट्वा दक्षिणकाशिकाम् ॥५८॥
 गन्वा काशीविधनार्थं चंपकारण्यमाययौ । चित्रगङ्गाजले स्नान्वा गन्वा हरिहरौ शुभौ ॥५९॥
 ततो रामो विमानेन मधुपुर्यां विवेश सः । वेगवत्या जले स्नान्वा गन्वा तं मीन्दरेश्वरम् ॥६०॥
 मीनाक्षीमाविकां गन्वा वेंकट द्वाविडे गिरौ । कावेरीमध्यपतिलपं श्रीरगशयनं ययौ ॥६१॥
 मातृभूतेश्वरं गन्वा गन्वा तं जवुकेश्वरम् । रगतार्थं ममस्कृत्य हरिनारां ततो ययौ ॥६२॥

पितान प्रहृष्ट होकर समुद्रम फरवा दी । ४५ । यह मामला अज भी लगता है द्वारा गहरा गहराकर बाहर आ
 रही है । हे प्रभो ! आज यहां आकर आपन मुझसे तार दिया है । अब आप दया करके मुझे अपनी दासी
 बना लें । ४६ ॥ उसके अभिप्रायको जानकर रघुनन्दन तालत वहां-उ कुमारिक । इस जन्ममें तो मैंने अविचल
 एकपत्न्यग्रह धारण कर रखा है ॥ ४७ ॥ अग मन्दार कृष्णावनारम मे तुझे अवसर प्राप्त हुआ । इसमें
 मंदह नहीं है । रामचन्द्रक वधनानुसार जयनक राम पृथ्वीपर रहे, तबतक वह राम निवधपात्रनपूर्वक
 जोली रहा । तदनन्तर अपने तपावलेमें जरीर छूटकर जावगान्द रही । पत्र होकर जाम्बवती नामकी कृष्ण-
 पत्नी बनी । वहांसे राम सुरन्द मध्ये तथा पयोर्णीमें स्नानकर ताम्रपर्णीतटपर स्थित आद्यानन्ततार्थपर
 पधार, जहाँ भगवान् विष्णु लक्ष्मी तथा गरुडम सेवित होकर शेषनागपर शयन कर रहे थे ॥ ४८-५१ ॥
 उनके दर्शन करके पश्चिमवाहिनी ताम्रपर्णीतटपर मध्ये वही स्नान करके पञ्चतीर्थपर अनन्तशयनक दर्श-
 नार्थ गये ॥ ५२ ॥ माता सहित भगवान् जवुतीरे जाकर मन्मथनदमें स्नान किया और बादमें वहाँसे विमान-
 पर सवार होकर धर्माधर्मनामक सरोवरपर गये । वहाँ स्नान करके पश्चिम समुद्रतटपर विराजमान जनादेन-
 के दर्शन किये । अमावस्या तथा पार्णिमाका गगा तथा समुद्रके सङ्गमपर स्नान करके उन्होंने जनादेन भगवान्
 की पूजा की । उसके आगे स्वं राज्य देखकर श्रीराम त्यागाका शिक्षा देनक निर्मित आगे नहीं बढ़े । ५३-५५ ॥
 वहाँसे छोटकर रामन घृतमाला, कृतमाला तथा सिन्धुनदमें स्नान किया ॥ ५६ ॥ वहाँ ताम्रपर्णीके तटपर
 स्थित गजेन्द्रमोक्ष गये । जहाँसे ताम्रपर्णी निकली है, उस जगह स्नान किया । वहाँसे मैगल तीर्थ गये ॥ ५७ ॥
 वहाँसे चन्द्रकुमार पर्वतपर गये । पञ्चान् विमानके द्वारा दक्षिणकाशा गये ॥ ५८ ॥ वहाँ विश्वनाथका
 दर्शन करके चम्पकारण्य पधारे । वहाँ चित्रगङ्गाम स्नान करके दण्डमायसे कल्याण करनेवाले हरिहरका
 दर्शन किया ॥ ५९ ॥ बादमें रामने विमानपर बैठकर मधुपुरीमें प्रवेश किया । तदनन्तर वेगवतीके पवित्र
 जलमें अवगाहन करके जगदिध्यात सौंदर्यश्रृंगके दर्शन किये ॥ ६० ॥ तदनन्तर मीनाक्षी देवीके दर्शन किये ।
 त्रिविहगिरिपर वेंकटेश्वरके दर्शन किये और कावेरीके मध्यमें निवास करनेवाले श्रीरगशयनका दर्शन
 किया ॥ ६१ ॥ पश्चात् मातृभूतेश्वरका दर्शन करके जवुकेश्वरके दर्शनार्थ पधारे । वहाँसे रक्तनाथ जाकर

श्रीरंगपत्तनं गन्वा स्नान्वा हैमवतीजले । शालिग्रामं नमस्कृत्य रामनाथपुरं ययौ ॥ ६३ ॥
 स्नान्वा कुमारधारायां सुब्रह्मण्यं प्रपूज्य च । उद्दण्डगम्य ततः कृष्णं नन्वा भृंगोत्तमं ययौ ॥ ६४ ॥
 तुंगानदीतटे शृङ्गिगिरौ नन्वा तं शारदाम् । कृष्णकाशीं ततः गन्वा गन्वा कोटेश्वरं शिवम् ॥ ६५ ॥
 नन्वा मूकादिकां देवीं नन्वा मृण्डेश्वरं हरम् । गुणवनेश्वरं नन्वा नन्वा धारेश्वरं ततः ॥ ६६ ॥
 गौरीश्वरं नमस्कृत्य नन्वा मणेश्वरं शिवम् । गोकर्णं च ततो गन्वा तं प्रणम्य महावलम् ॥ ६७ ॥
 हरीहरेश्वरं गन्वा पश्यन्तीर्थान्पुनरेकशः । जामदग्न्यं महेंद्रं च नन्वा भीमेश्वरं ययौ ॥ ६८ ॥
 भीमं महावलं नन्वा ययौ कोलपुरं ततः । करवीरपुरं गन्वा कृष्णावेणोस्तु मगमे ॥ ६९ ॥
 स्नान्वा गमो विमानेन गदालक्ष्मीश्वरं ययौ । स्नान्वा घटप्रभायां तु पश्यन् पुण्यस्थलानि हि ॥ ७० ॥
 महादेवं नमस्कृत्य नन्वा महारिषीश्वरम् । कागनदीतटस्थं तं वक्रतुडं विलोक्य च ॥ ७१ ॥
 नागनदीजले स्नान्वा नारसिंहं प्रपूज्य च । पांडुरंगं नमस्कृत्य चन्द्रभागां विगच्छ च ॥ ७२ ॥
 ययौ भीमसंगमं तु चंदलां च ततो ययौ । ततः प्रेमपुरं गन्वा नन्वा मार्तण्डमाश्रयम् ॥ ७३ ॥
 नीलदुर्गां विलोक्यथ नाना पश्यन्स्थलानि हि । तुलजापुरमस्थां तां देवीं नन्वा ययौ ततः ॥ ७४ ॥
 माणिक्यामबिकां दृष्ट्वा पश्यन्तीर्थानि राघवः । योगीश्वरीं वगमयां दृष्ट्वा अंबापुरमस्थिताम् ॥ ७५ ॥
 वैद्यनाथं नमस्कृत्य वज्रसंगमं ययौ । नागेशं च विलोक्यथ विमानेन स राघवः ॥ ७६ ॥
 स्नान्वा पूर्णसंगमे तु गोदायां उत्तरे तटे । स्वनाम्नाऽथ पुरीं कृत्वा मुद्गलाश्रममाययौ ॥ ७७ ॥
 बाणतीर्थे ततः स्नान्वा सिन्धुफेनासुसंगमे । गोदानाभाववृत्तकेश्वरं स्नान्वा नन्वा त्रिविक्रमम् ॥ ७८ ॥
 कृत्वा परां स्वनाम्ना तु पुरीं गोदावरीतटे । अंबिकां तु नमस्कृत्य चडिकां परिपूज्य च ॥ ७९ ॥

उनकी पूजा की । बादमें अविनाशी तीर्थकी ओर गये ॥ ६२ ॥ श्रीरंगनगरकः दणनेके बाद हैमवतीके पवित्र
 जलमें जाकर स्नान किया । पश्चात् शालिग्रामकी नमस्कार करके रामनाथपुर पधारे ॥ ६३ ॥ वही कुमार-
 धाराम अवगाहन करनेके अनन्तर सुब्रह्मण्यदेवीकी प्रतिपूर्वक पूजा की । पश्चात् उन्नी नामक कृष्णकी पत्ता
 करके शृङ्गास्थ आश्रमकी ओर चले ॥ ६४ ॥ वही तुङ्गभद्रा नदीमें स्नान करके शृङ्गिगिरिपर विराजमान
 शारदादेशीके दर्शन किये । पश्चात् कृष्णकाशी होने हुए कोटेश्वर गए ॥ ६५ ॥ वहाँसे मूकादिका देवीके दर्शन
 करते हुए मृण्डेश्वर शिवके दर्शनार्थ पधारे । पश्चात् गुणवनेश्वर और तमक उपरान्त धारेश्वरके दर्शन किये
 ॥ ६६ ॥ फिर गौरेश्वर तथा मणेश्वरके दर्शन किये । फिर गोकर्णेश्वर, जामदग्न्य तथा महेंद्र पर्वतपर विराजमान
 भीमेश्वरके दर्शन किये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ तदुत्तरान्त यौम और महावलीका दर्शन करके श्रीराम कालापुर पधारे ।
 पश्चात् करवीरपुर जाकर कृष्णा और वेंण क संगममें स्नान किया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर विमानारुड होकर राम
 गदालक्ष्मीश्वरके दर्शनार्थ पधारे । वही घटप्रभाम स्नान करके वहाँके अन्यान्य पुण्यस्थल देखे ॥ ७० ॥ फिर
 महादेवकी नमस्कार करके मन्गरीश्वरके दर्शनार्थ गये । बादमें कारानदीक तटपर विद्यमान जगद्विमान वक्र-
 तुडके दर्शन किये । ७१ ॥ बादमें नीरा नदीमें स्नानकर तथा नरसिंहका पूजन करके पांडुरङ्गका पूजन और
 चन्द्रभागाम स्नान किया ॥ ७२ ॥ तदनन्तर भीमानदीके संगम तथा चन्दलामें स्नान किया । फिर प्रेमपुरमें
 जाकर उन्होंने मार्तण्ड प्रभुका दर्शन किया ॥ ७३ ॥ वही नीलदुर्गाका दर्शन करके बहुतसे स्थानोंका
 अवलोकन किया । पश्चात् तुलजापुरमें जाकर वही देवीके शुभ दर्शन किये और बादमें आगे बढ़े
 ॥ ७४ ॥ आगे जाकर माणिक्य अंब के दर्शन करके अन्यान्य पवित्र तीर्थोंमें श्रीरामने भ्रमण किया ।
 पश्चात् अंबापुरमें विराजमान योगेश्वरी अम्बाका दर्शन किया ॥ ७५ ॥ बादमें वैद्यनाथको नमस्कार करके
 वज्रसंगमपर पधारे । वहाँसे विमान द्वारा नारीश्वरके दर्शनार्थ गये ॥ ७६ ॥ पूर्णके संगममें स्नान करके
 गोदावरीके उत्तरी किनारेपर अपने नामसे रामने एक पुरी बसायी । वहाँसे मुद्गल अधिके आश्रम-
 पर होने हुए बाणतीर्थ गये । वही स्नान करके सिन्धुफेनाके मनोहर संगमपर गये । तत्पश्चात् गोदावरी
 और अन्जक नदीमें स्नान करके त्रिविक्रमके दर्शन किये ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ वहाँपर भी गोदावरीके तटपर

आन्मतीर्थे ततः स्नात्वा नत्वा विज्ञानमीश्वरम् । महालक्ष्मीं विलोकयाथ वडवासंगमं ययौ ॥८०॥
 प्रतिष्ठानं विलोकयाथ स्नात्वा वृद्धैलसंगमे । शिवनन्दासंगमेऽथ नृसिंहं परिपूज्य सः ॥८१॥
 स्त्रीयनाम्ना रूपान्तरीये प्रवरायंगमं ययौ । सिद्धेश्वरं नमस्कृत्य निवाभाख्यं पुरं ययौ ॥८२॥
 नृदरान्यं पुरं गत्वा पश्यन्नानास्थलानि सः । ययौ गोदातटेनैव पुण्यस्तंभं रघूद्वहः ॥८३॥
 गत्वा कट्यंगमे तु विनतामगमं ययौ । जन्मस्थानं ततो गत्वा ययौ अयकपीश्वरम् ॥८४॥
 दाक्षिणार्ण्यनृपतिभिर्मानितः क्षुजितोऽपि च । गृहीत्वा हरभारं स्वं तेभ्यस्तैः सहितो ययौ ॥८५॥
 एवं दाक्षिणयात्रेण यां कृता राघवेण वै । सा मया विस्तरेणैव कथिता अवकावधि ॥८६॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे आश्रकाण्डे दक्षिणतीर्थयात्रावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(राम द्वारा भारतवर्षके पश्चिमी प्रदेशकी तीर्थयात्रा)

विष्णुदास उवाच

गुरो जातोऽस्ति सदेहो मम चित्ते वदाम्यहम् । स त्वया छिद्यतां स्वामिन् साधनो हि कृपालवः ॥ १ ॥
 यानारूढः न कर्तव्या यात्रा चेति श्रुतं मया । कथं यानेन रामेण कृता यात्रा त्वयेरिता ॥ २ ॥
 इति जातोऽस्ति सदेहो मम तं त्वं निवारय । इति शिष्यवचः श्रुत्वा गुरुः प्राहाय तं पुनः ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

पदा यात्रा न कर्तव्या छत्रचामरधारिणी । गता द्वीपधिपत्येन कार्या मांडलिकेन तु ॥ ४ ॥
 पृथिवीशस्य देवस्य लग्नोद्यत्तवस्य च । तथा मठाधिपस्यापि गमनं न पदा स्मृतम् ॥ ५ ॥
 तस्मात्तात्र त्वया कार्यः सदेहो राघवं प्रति । आनुया राघवद्रस्य कृपयाऽपि च तैर्जनैः ॥ ६ ॥

अगने नामकी पुरी बसायी । फिर अश्विका तथा चंडिकाकी पूजा की ॥ ७९ ॥ मग्न्यात् आरम्पतीर्थमें जाकर स्नान किया । बादमें विज्ञानेश्वरका दर्शन करके वडवासंगमपर स्नान किया ॥ ८० ॥ फिर प्रतिष्ठानपुरकी देखकर वृद्धैलसंगममें स्नान किया । शिवनन्दादे संगममें स्नान करके उन्होंने नृसिंहकी पूजा की ॥ ८१ ॥ तदनन्तर अपने नामके गभतीर्थको देखकर प्रवराके संगमपर गये । वही सिद्धेश्वरको नमस्कार करके निवास-रूपपुर गये ॥ ८२ ॥ वहाँसे नृपुरनगर गये तथा और भी बहुतसे स्थान देखे । गोदावरीके तटपर होते हुए रघूद्वह राम पुण्यस्तंभ गये ॥ ८३ ॥ वहाँसे वडूके संगमपर गये । वहाँसे आगे विनताके संगमपर गये । वहाँसे जन्मस्थान और वहाँसे अयकेश्वर गये ॥ ८४ ॥ रास्तेमें दाक्षिणार्ण्य राजाओंके द्वारा सम्मानित और पूजित होते हुए राम उनसे अपना कर उगाहते और उनको साथ लेते हुए आगे बढ़े ॥ ८५ ॥ इस प्रकार अयकेश्वर की हुई रामकी दाक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा मैं तुमका कह सुनायी ॥ ८६ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे आश्रकाण्डे उरोनाभाषाटीकायां दक्षिणतीर्थयात्रावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मेरे हृदयमें एक संशय है । वह मैं आपके सम्मुख कहता हूँ । आप उसको दूर करें । क्योंकि साधु-महार्त्मा स्वभावसे कृपालु होते हैं ॥ १ ॥ मैंने सुना है कि सवारोपर बैठकर यात्रा नहीं करनी चाहिये । फिर आपने जो कहा कि श्रीरामन विमानपर सवार होकर यात्रा की, तो क्यों ? ॥ २ ॥ यही मुझे संदेह है, इसे आप निवृत्त करें । शिष्यके वचनको सुनकर गुरुने कहा ॥ ३ ॥ श्रीरामदास बोले—शास्त्रमें यह भी लिखा है कि ऐसे छत्रचामरधारी पुरुषका पैदल यात्रा नहीं करनी चाहिए, जो किसी द्वीपका अधिपति राजा हों । हाँ, मांडलिक अर्थात् किसी एक मंडलके राजाको तो पैदल ही यात्रा करना उचित है ॥ ४ ॥ वडे पृथ्वीपतिकी, देवताको, जिसका विवाह होता हो ऐसे वरको तथा मठाधीशको पैदल चलकर यात्रा नहीं करनी चाहिए ॥ ५ ॥ अतः तुमको श्रीरामकी विमान द्वारा यात्रामें किसी प्रकारका संदेह नहीं

अधिष्ठितं पुष्पकं तु को वेदेश्वरचेष्टितम् । इदानीं रामचन्द्रस्य शृणु तां प्राक्तनीं कथाम् ॥ ७ ॥
 श्यंबकाद्रापचंद्रस्तु पुरा यत्र तु निद्रितम् । सीतया पर्वते तत्र गन्वा स्थित्वा दिनत्रयम् ॥ ८ ॥
 ममशृंगगिरी गत्वा गन्वाऽगस्तेस्तु चाश्रमम् । सुतीक्ष्णस्याश्रमं गन्वा ययौ चैलपुरं ततः ॥ ९ ॥
 घृणेश्वर नमस्कृत्य शिवतीर्थे विगाढा च । दृष्ट्वा रम्यं देवगिरिं विरजाक्षेत्रमाययौ ॥ १० ॥
 मातापुरस्थां देवीं तां गन्वा पश्यन्स्थलानि मः । देववाटे नारायणं गन्वा गमथ सीतया ॥ ११ ॥
 यकार विधिवत्स्नानं पयोण्यां वधुभिर्जनैः । स्नान्वा ताप्युद्गमं गमः स्वनाम्ना पर्वतोत्तमम् ॥ १२ ॥
 गत्वा स्नान्वाऽयं रेवायामोकारं परिपूज्य च । पश्चिमाभिमुखः पश्यन्नानापुष्पस्थलानि हि ॥ १३ ॥
 ताप्याश्च संगमे स्नान्वा नर्मदायाश्च संगमे । महानदीजले स्नान्वा प्रभाम च ततो ययौ ॥ १४ ॥
 पञ्चसरस्वतीनां च संगमेषु विगाढा च । सीतापुंश्च सोमनाथं दृष्ट्वा म भ्रमतीं नदीम् ॥ १५ ॥
 पश्यन्नानास्थलान्येव श्रुत्वाद्वा ययौ ततः । गाम यां विधिवत्स्नान्वा द्वागान्यां विवेश मः ॥ १६ ॥
 मनादिसिद्धां सप्तसु पुरीषु प्रथितां शुभाम् । दृष्ट्वा कृत्वा तीर्थविधिं दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥ १७ ॥
 पश्यन्तीर्थानि मवापि पुण्यानि रघुनेदनः । पाश्चिमान्यनुपनिमिमनितः पूजितोऽपि च ॥ १८ ॥
 गृहीत्वा करभारं स्व तेभ्यस्तैः सहितो ययौ । सरस्वत्यास्तटेनैव पश्यन्पुष्पस्थलानि मः ॥ १९ ॥
 पुष्पकस्थः जनैः सीतां दर्शयन् कौतुकानि च । ययां पुष्करतांथं वै नृपः सर्वत्र सवृत्तः ॥ २० ॥
 विमाने प्रत्यहं गमः कोटिशो शाकणान् मदा । भोजयामास दिवसार्न्तः पायसः शर्करादिभिः ॥ २१ ॥
 विमाने ये स्थिताः पूर्वमपोष्यापुत्रावामिनः । तथा ये पूर्वदेशीया दाक्षिणान्या नृपाश्च ये ॥ २२ ॥
 पाश्चिमात्प्या नृपा एव ते कर्त्तव्यहिनैः सह । रामेणातिथिवत्सर्वं वस्त्रान्नाभरणैर्दिभिः ॥ २३ ॥

करना चाहिए । उन्हीं रामचन्द्रकी आज्ञाके अनुसार और लोग भी विमानपर सवार हुए ॥ ६ ॥ ईश्वरकी चेष्टा-
 की कौन समझ सकता है ? अब तुम श्रीरामकी आज्ञाओं की कथा सुनी ॥ ७ ॥ श्यम्बक नामसे चलकर धाराम
 उभ पर्वतपर गये, जहाँ सीताके साथ उन्होंने प्रथम निद्रा ली थी । वहाँपर उन्होंने सीता रात्रि निवास किया
 ॥ ८ ॥ अष्टमस्क पर्वतपर जाकर अनेक स्नानोद्गम आश्रम किया । वहाँसे अगस्त्य मुनिके आश्रमको गये ।
 श्यम्बक मुनीश्वर मुनिके आश्रममें बधारे । पश्चात् चैलपुर गये ॥ ९ ॥ वहाँ घृणेश्वर की नमस्कार किया, शिवतीर्थमें
 स्नान किया, रमणीक देवगिरि देवा और वहाँसे विरजाक्षेत्रमें गये ॥ १० ॥ वहाँ मातापुरनिवासिनी देवीको
 नमस्कारकर अनेक स्थानोंको देखने हुए देववाट पर जाकर नर्मदाको प्रणाम किया । सीता सहित रामने
 श्यम्बक जाकर पयोण्यां नदीमें विधिवत् स्नान करके वधुभिर्हृत तार्पिक उद्गमस्थानमें स्नान किया । पश्चात्
 रमनाश्रमे पर्वतपर जाकर रेवायामोकारं स्नान करके ओकारेश्वरकी पूजा का और पश्चिमकी ओरके अनेक स्थान देखे,
 को कि बड़े पवित्र थे ॥ ११-१३ ॥ तदनन्तर सीता तथा नर्मदाके संगममें स्नान करके महानदीके जलमें स्नान
 किया और वहाँसे प्रभासक्षेत्र गये ॥ १४ ॥ वहाँ पञ्चसरस्वतीके संगममें स्नान करके सीतापुं (गुजरात)
 क्षेत्रमें सोमनाथजीका दर्शन किया । वहाँसे भ्रमती नदी गये । रामने अनेक स्थानोंको देखते हुए श्यम्बका
 क्षेत्र गये । वहाँ गोमतीमें विधिपूर्वक स्नान करके द्वारावती (दारिका) में प्रवेश किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ जो कि
 राज्य पुरीषोंमें मनादिसिद्ध, प्रसिद्ध और बड़ी ही सुन्दर पुरी है । वहाँ तीर्थविधि सम्पन्न करके अनेक दान दिये
 ॥ १७ ॥ इस प्रकार अनेक तीर्थोंको देखते तथा पश्चिमके राजा-महाराजाओंसे सम्मानित और पूजित
 हुए तथा उनसे अग्रश कर लेते और उनके साथ पुष्प स्थानोंको देखते हुए राम सरस्वतीके किनारे-किनारे
 गम गये । पुष्पकपर स्थित राम महारानी सीताको रामने अनेक कौतुक दिखाने तथा राजाओंको साथ
 लिये हुए पुष्करराज का पहुँचे ॥ १८-२० ॥ रामचन्द्रजी विमानपर भी प्रतिदिन करोड़ों बाह्यानोंको सुन्दर
 रूप दिखाने तथा मालपूजा आदि तथा मिश्रपुष्प सीर भोजन कराने थे ॥ २१ ॥ इतना ही नहीं, बल्कि
 वे भी जो पश्चिमात्प्यासी लोग विमानपर पहलेसे ही गये हुए थे तथा अन्य भी जो दक्षिण देशके

पूजिता मानिता आसन् मादरं ते यथामुत्तमम् । न कश्चिद्विन्नराकं हि चकार पुष्पके नरः ॥२४॥
 चिन्ता काष्ठवृणादीनां जलस्यापि न कस्यचित् । एका चिता तु तत्रास्ति क्षुद्रोधो मे कथं भवेत् ॥२५॥
 ग्रांछन्ति सर्वे तत्रैकं भिषकं चूर्णं प्रदाम्यति । निद्रायाम्नत्र दान्तिद्रव्यं वाद्यघोषनिर्न्तरम् ॥२६॥
 ग्रामस्तत्र महानामोद्विमाने वाद्योपिताम् । गतिर्नेत्रकटाक्षश्च क्रीडाभिर्बचनादिभिः ॥२७॥
 मणिदीर्घदिनं रात्रिं न जानाति स्म नत्र वै गच्छद्दिने कदा यानं याति रात्रावपि कश्चित् ॥२८॥
 एतस्मिन्नन्तरे शिष्यं पुष्करस्थैर्जनेस्तदा महानादः श्रुतो रम्यो पञ्जुलः श्रुतितोषकृत् ॥२९॥
 वारङ्गान्पुनोद्भूतः कवणककणजोऽपि च । कर्ताडनगांतादिमृदंगवणबोद्धवः ॥३०॥
 नववाद्यममुद्भूतो घटायत्रममुद्भवः । यानवटाकिंकिणीनां पताकावसंभवः ॥३१॥
 वारांगनाकटितटकिंकणीमभवोऽपि च । वारणाश्वायुधोष्ठादिमधुरकपिमम्मः ॥३२॥
 रीरेभ्यो वेदघोषेभ्यः शिष्येभ्यश्च समुन्धितः । नटनाटकसंदिभ्यो मामधेभ्यः समुत्थितः ॥३३॥
 गोदाहमभवश्चापि राजाभहिपिदोहजः । दधिमधनमभूतः शिशूनां रोदनोद्भवः ॥३४॥
 त्रिशूभचक्रमवदृष्टस्त्रिलोक्यः समुन्धितः । नानान्शोद्भूतश्चापि पिष्टचक्रसमुद्भवः ॥३५॥
 शृतपातितपक्वान्नप्रकारकणोद्भवः । नारदादिमुनिश्रेष्ठधृतवीणादिमभवः ॥३६॥
 पुराणकथनोद्भूतो हरिकीर्तनमभवः । रामनाममहम्नादिस्तोत्रपाठममुद्भवः ॥३७॥
 नारीपूरणपेषणकार्यं ककणमभवः । पादप्रक्षालनाद्यादिनानाकार्यममुद्भवः ॥३८॥

राजा लोग, पूर्वदेशके राजा लोग तथा पश्चिम देशके राजागण थे । उन सबका भी सेनाओं और वाहनों सहित
 रामने विधिवन अन्न-वस्त्र-आभरण आदिसे खूब सम्कार किया । उन्हें पूर्ण आदर और मुक्त दिया । पुष्पक-
 विमानपर कोई भी मनुष्य पृथक् भोजन नहीं बनाता था । सब रामहीके भोजनालयमें भोजन करने थे ।
 इसलिए न तो किसीको काष्ठ तथा कृणको चिता थी और न जम्बका । यदि वहाँ किसीको कोई चिन्ता थी तो
 केवल यही कि अच्छी भूख कैसे लगे । जिससे कि खूब अच्छा अच्छा भोजन करें ॥ २४-२५ ॥ वहाँ सब लोग
 केशमें चूर्ण पानेकी इच्छा रखते थे । वहाँ रग्निद्रता थी ता केवल निद्राकी । क्योंकि हर समय नाना प्रकारके
 वाजोंकी ध्वनि हुआ करता थी ॥ २६ ॥ वहाँ यदि कोई भय था तो केवल वारागनाओंका । विमानस्थ लोगों
 का वारणाओंका गीत, नेत्रकटाक्ष, अनक कटाक्ष, मधुर वचनों तथा मणिमय दीपोंके कारण रात-दिन एक-
 भा प्रतीत होता था । यान कभी दिनमें यात्रा करता था और कभी रातमें ॥ २७ ॥ २८ ॥ इतनेमें हे शिष्य ।
 पुष्करतीर्थके योगेश्वरों एक बड़ा कोमल, मनहर और श्रवणमुखकारा घण मुनायी पड़ा ॥ २९ ॥ जिसमें
 वेश्याओंका नृपुत्र वजन थे कवण वजन थे, तान्त्रिक वजनों की गत हो रहा था, मृदङ्ग तथा नगादें आदि
 वाद्यसमूह बज रहे थे, घटिय बज रही थी, यानके घट बज रहे थे और झड़ फड़फड़ा रहे थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥
 वारागनाओंकी कोमल कमरमें बंधी हुई क्षुद्रघटिकाएँ बज रही थी और हाथी चिंघाड़ रहे थे । घोड़े
 हिनहिना रहे थे, आगुध खनखना रहे थे । ऊँट मलमल रहे थे । मार केका बाणी बाल रहे थे ॥ ३२ ॥
 यादों लोग हाँके लगा रहे थे । वेदघोष हो रहा था । छात्रगण अध्ययन कर रहे थे । नटोंका नाटक हो
 रहा था । वारण तथा भाट विरदावली बखान रहे थे ॥ ३३ ॥ गौओंके दोहनका घघर शब्द हो रहा था ।
 बकरियों तथा भैंसोंके दाहनका शब्द भी मुनायी दे रहा था । छाछ बिलानेका धर-धरर निनाद हो रहा था ।
 बालक रो रहे थे । बालकोंके झूलोंकी सिवडियों का शब्द हो रहा था । अनेक वाद्य बज रहे थे । आटा पीसनेकी
 चक्किपोंका घरघराहट हो रहा थी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ घाम पकाय जान तथा तले जाते पकवानोंका छूँ छूँ शब्द हो
 रहा था । नारदादि मुनियोंकी वाणादिका मधुर शब्द हो रहा था ॥ ३६ ॥ पुराण बाँच जा रहे थे ।
 हरिकीर्तनकी ध्वनि हो रहा थी । विष्णुसहस्रनाम तथा शिवमहिम्नन्तोशादिक पाठका घोष हो रहा था ।
 नारियोंके कोई वस्तु कूटने तथा मेहदी आदि पीसनेके समय ककणका शब्द हो रहा था । उनके पाद-
 प्रक्षालनक समय झाँझरका झंकार, कड़ोंकी कणकणाहट, छड़ोंका छनछनाहट, विष्णुओंकी छमछमा-

एवं नानाविधं श्रुत्वा पुष्करस्था जना ध्वनिम् । निशांते पश्चिमामाशां किमेतदिति विह्वलाः ॥३९॥
 केचिदुर्नन्दिघंटास्वरोऽयं श्रूयते महान् । केचिदुर्विमानेन गच्छतींद्रो दिवं प्रति ॥४०॥
 केचिदुचुः समायांति रंभाघप्सरसश्च स्त्रे । केचिन्मेषध्वनिं प्रोचुः केचिदैरावतं त्विति ॥४१॥
 केचित्प्रोचुः समायाति सागरः किं लयं विना । केचित्प्रोचुस्त्विदं श्रेयं वायुपुत्रस्य शब्दितम् ॥४२॥
 केचित्पतत्रिराजस्य शब्दितं प्रोचुरुत्तमम् । केचित्प्रोचुश्च गधर्वा विमानस्था अटति स्त्रे ॥४३॥
 केचित्प्रोचुर्नागकन्याः कुर्वन्तीदं सुगायनम् । कुर्वन्तश्चेति तर्काश्च ददृशुः पुष्पकं महत् ॥४४॥
 रामभागतमाश्रय तोषपूर्णं बभूविरे । उपायनानि संगृह्य प्रेमनिर्भरमानसाः ॥४५॥
 प्रत्युज्जग्मुस्तदा रामं दृष्ट्वा नत्वा रघूत्तमम् । मेनिरे जन्मसाफल्यं राघवेणातिमानिताः ॥४६॥
 राघवोऽपि विमानाग्रथादवरुह्य द्विजोत्तमान् । प्रणिपत्य समाभाष्य प्रतिपूज्य सविस्तरम् ॥४७॥
 तैस्तीर्थवासिभिर्युक्तो ययौ पुष्करमुत्तमम् । स्नात्वा सचैलं विविना तीर्थश्राद्धं विधाय च ॥४८॥
 दत्त्वा दानान्यनेकानि काश्याः कोट्यधिकानि तु । द्रव्यालंकारवस्त्रार्चैस्तोषयामास भूसुरान् ॥४९॥
 ततस्तेरभ्यनुज्ञातो विमानेन ययौ पुनः । एवं पश्चिमयात्रा ते वर्णिता राघवस्य हि ॥५०॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे पश्चिमयात्रावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८॥

नवमः सर्गः

(रामकी उत्तरभारतीय तीर्थयात्रा और वहाँसे लौटकर अयोध्या आगमन)

रामदास उवाच

उत्तराभिमुखो रामस्ततः पश्यन् स्थलानि सः । ययौ पर्वततीर्थं च ततो ज्वालामुखीं ययौ ॥ १ ॥

हट तथा पायजेबका मनोहारी निनाद हो रहा था ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके शब्दोंसे मिश्रित तथा धनीभूत ध्वनिको रात्रिके शांत समयमें पश्चिमकी ओर सुनकर पुष्करनिवासी लोग चकित हो गये ॥ ३९ ॥ कोई कहने लगा कि नन्दीश्वरके घंटेका यह शब्द सुनाई देता है । कोई कहने लगा कि इन्द्र विमानपर बैठकर स्वर्ग जा रहे हैं ॥ ४० ॥ कोई कहने लगा कि रम्मादि अप्सराएँ आकाशमें जा रही हैं । कोई मेघकी गर्जना बतलाने लगा । कोई ऐरावतकी चिघाड़ कहने लगा ॥ ४१ ॥ कोई कहने लगा कि विमान प्रलयकालके हो समुद्र उमड़ा आ रहा है । कोई कहने लगा कि वायुपुत्र हनुमान्का गर्जन हो रहा है ॥ ४२ ॥ कोई कहने लगा कि पक्षिराज गरुडका शब्द हो रहा है । कोई बोला कि ये तो गन्धर्व लोग विमानपर बैठकर आकाशमें घूम-फिर रहे हैं ॥ ४३ ॥ कोई कहने लगा कि नागकन्याएँ गान कर रही हैं । इस प्रकारके अनेक तर्क-वितर्क करते हुए वे लोग पुष्पकको देखने लगा ॥ ४४ ॥ बादमें जब रामचन्द्रजीको आते देखा तो सब लोग बड़ ही प्रसन्न हुए । रामको देखकर सब लोग हाथमें अनेक तरहकी भटे ले-सेकर प्रेमपूर्वक उनके सामने गये । श्रीरामकी प्रणाम करके उन्होंने अपना जन्म सफल माना । श्रीरामने भी उन सबका सत्कार किया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ पश्चात् श्रीरामने विमानसे नीचे उतरकर द्विज लोगोमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका नमस्कारपूर्वक पूजन किया और बादमें उन तार्थवासियोंके साथ विस्तारसे वार्तालाप करते हुए उत्तम पुष्कर नगरमें प्रवेश किया । वहाँ सबस्त्र स्नान करके विविध तार्थश्राद्ध किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वहाँपर रामने काशीसे कोटिगुणा अधिक दान-पुण्य किया । द्रव्य, अलंकार, वस्त्र तथा अन्नादिसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया । बादमें उनसे आज्ञा लेकर वे विमान द्वारा आगे बढ़े । इस प्रकार हे पार्वती ! मैंने रामकी पश्चिम भारतकी तीर्थयात्रा कह सुनायी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे 'अयो-स्ना'भाषाटोकायां पश्चिमयात्रावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—बादमें श्रीराम अनेक स्थलों एवं उत्तरके पर्वतों तथा तीर्थोंको देखते हुए वहाँसे

पश्यन् स्थलानि सप्राप तप्तं श्रीमणिकर्णिकाम् । कर्तव्यानदीतोये स्नान्वाग्रे न ययौ विभुः ॥ २ ॥
 तग्णे दीपमाकर्ण्य पथ्यवर्तन राघवः । कर्मनाशानदोस्पर्शान्कर्तव्यादिलयनात् ॥ ३ ॥
 गङ्गीवाहृतगणाद्धर्मः स्वलानि कीर्त्तनात् । गन्वा देवप्रयागं चालकनन्दानटेन वै ॥ ४ ॥
 नरनारायणो गत्वा दर्शनान्मुक्तिदौ नृणाम् । बदरिकाश्रमे रामः केदारेश लिलोक्य सः ॥ ५ ॥
 हिमाद्री देवगन्धर्वसेविते धातुमडले । महापथं ततो गन्वा ययौ तन्मानसं सरः ॥ ६ ॥
 यम्माद्विनिर्गता गंगा सरयुः पापनाशिनी । कजानि यत्र हंसानि यत्र हंसाः सहस्रशः ॥ ७ ॥
 रक्तनेत्रांघ्रिवदना मुक्ताभक्षणतत्पराः । यन्प्रदेशे चित्रभूम्यां देवगन्धर्वकिशराः ॥ ८ ॥
 अप्सरोभिन्न्वा स्त्रीभिः क्रीडां कुर्वन्त्यर्हनिशम् । तत्र स्नान्वा मानसेऽथ गन्वा विन्दुमरोवरम् ॥ ९ ॥
 स्नान्वा दानादिकं कृत्वा हिमालयगिरिस्थिताम् । दृष्ट्वा ब्रह्ममर्भां दिव्यां मेरुस्थमदृशौ पराम् ॥ १० ॥
 राघवः सीतया सर्वैरवरुक्ष स पुष्पकात् । प्रणमन् सुरैर्द्रार्धरालिभ्य चतुराननम् ॥ ११ ॥
 ब्रह्मणा सहितान्देवान्पूजयामास विस्तरः । विधिस्तं पूजयामास कामधेनुं न्यवेदयत् ॥ १२ ॥
 त्रिमानाग्रं कामधेनु सस्थाप्य रघुनन्दनः । सुर्गञ्जादिभिः साक कलासमगमत्तदा ॥ १३ ॥
 राममागतमाज्ञाय कैलासे गिरिजापतिः । प्रत्युज्जगाम पार्वत्या रामचन्द्र वृषाम्बितः ॥ १४ ॥
 शशुभागतमाज्ञाय राघवः पुष्पकाज्जवात् । अवरुक्ष नमस्कृत्य शिवेनालिगिनः स्थितः ॥ १५ ॥
 उमाऽपि सीतामालिङ्ग्य दिव्यालंकारचन्दनैः ।

पूजयामास वस्त्रार्घ्यैः सूर्यकोटिममप्रभैः । साटके नूपुरे दिव्ये केयूरे चूडकद्वयम् ॥ १६ ॥
 किकिणीयमयुक्तगुणार्त्तं चन्द्रभास्करौ । सीमतभूषणौ हारान्मणिभूक्ताविचित्रितान् ॥ १७ ॥

ज्वालामुखी गये ॥ १ ॥ वहाँस आगे बहुतरे स्थानोको देखत हुए श्रीमणिकर्णिका तीर्थवर जा पहुँचे । वहाँ करताया नदामे स्नान किया, परन्तु उसको पार करके आगे नहीं गये ॥ २ ॥ श्रीराम करतायाका पार करनेमें प्रायश्चित्त भुनकर वहाँसे लौट पड़े । क्योंकि शारदामें लिखा है—कर्मनाश नदीके स्पर्शमात्रसे, कर्तव्याके लक्षणसे, गङ्गीमें हाथोद्वारा तीरसे तथा घमका अपने मुँहमें बलान करनेसे प्राणीका किया हुआ धर्म नष्ट हो जाता है । वहाँसे वे देवप्रयाग गये । पश्चात् अलकनन्दाके किनारे किनारे चलकर मनुष्योंको दर्शनमात्रसे मुक्ति देनेवाले नरनारायणका दर्शन लिया । श्रीरामने बदरिकाश्रमके बाद केदारेश्वरका दर्शन किया ॥ ३-५ ॥ इसके अनन्तर राम अटक घातुओंसे मंडित हिमाद्रिपर गये, जहाँ कि अनेक देवता तथा गन्धर्व निवास करते हैं । बादमें महापथ गये और वहाँसे उस सर्वसिद्ध मानसरोवरपर पधारे ॥ ६ ॥ जहाँसे कि पापोंका नष्ट करनेवाला गंगा तथा सरयू निकली है । उस मानसरोवरमें अनेक सुवर्णकमल खिले हुए थे । वहाँ मोती चुगनेमें तत्पर, लाल नेत्र, लाल पंख तथा लाल मुखवाले हजारों राजहंस निवास करते थे । उस प्रदेशकी चित्र-विचित्र भूमिपर अप्सराओं तथा त्रिगोंके सहित अनेक दक्षगन्धर्व और किश्रुओंके समूह ग्रीष्म कर रहे थे । उस मानसरोवरमें स्नान करके श्रीराम विन्दुसरोवर गये ॥ ७-९ ॥ वहाँपर स्नान करके तथा अनेक दान देकर हिमालयपर गये । वहाँ मेरुपर्वतपर स्थित ब्रह्मसभाके समान एक दूसरी मनोहर ब्रह्मसभा देखी ॥ १० ॥ वहाँ राम सीता तथा अन्य सब लोगोंके साथ विमानपरसे उतर पड़े और इन्द्रादिकोंको साथ लेकर प्रणाम करते हुए चतुर्मुख ब्रह्माका आलिङ्गन किया । ब्रह्मा सहित अन्य सब देवताओंकी रामने विस्तारसे पूजा की । पश्चात् ब्रह्माने भी श्रीरामका विधिपूर्वक पूजन किया और उन्हें सादर कामधेनु समर्पित की ॥ ११ ॥ १२ ॥ बादमें रघुनन्दन सब देवताओं सहित ब्रह्माको तथा उस कामधेनुको विमानपर चढ़ाकर कैलास पर्वतपर पधारे ॥ १३ ॥ कैलासपर श्रीरामको आगे सुनकर गिरिजाके पति शिवजी पार्वतीके साथ नन्दीश्वरपर सवार होकर रामचन्द्रको लेने आये ॥ १४ ॥ राम शिवजीको आते देखकर पुष्पकपरसे नीचे उतर गये और शिवजीको प्रणाम किया । शिवजीने रामका आलिङ्गन किया । पार्वतीने भी सीताका आलिङ्गन करके दिव्य चन्दन आदिसे पूजा की । तदनन्तर प्रसन्न होकर उमादेवीने सीता महारानीको भूयंके समान दीप्तिवाले अनेक आभूषण और वस्त्र दिये ।

ददौ जनकनदिन्यै पार्वती तोषपूरिता । ततः शंभुमन्दा ग्राह राघव पूज्य वैभवं ॥१८॥
 राम त्वन्नाभिकमले ज्ञात्वाऽयं चतुराननः । ततो जातो विधेयाहं नदनाद्बुद्धमङ्गकः ॥१९॥
 पौत्रस्तव रघुर्ध्रु तवाज्ञापरिपालकः । सहायः क्रियते राम आश्रया तव मादरात् ॥२०॥
 यदा मया तु मलये तदा पापं क्व ते मतम् । यद्दशास्यवभ्राज्जीतस्तोयशशो करोपि हि ॥२१॥
 कीदृशं तव राजेन्द्र सुख कांडस्व सीतया । क्रियते लोकसिद्धार्थं जानामि तव चेष्टितम् ॥२२॥
 एवं नानाविधैस्तस्य चारिष्यरीत्य राघवम् । ददौ विदामनं छत्रं चामरे मंचकैस्तमम् ॥२३॥
 पानपात्र भोजनस्य पात्रं हंस मनोरमम् । ककणे कुण्डले बाहुभूषणे मुकुटोत्तमम् ॥२४॥
 रामं प्रस्थापयामास बुद्ध्या चिन्तामणिं हृदि । हृदि चिन्तामणिं दृष्ट्वा राघवस्य विदेहजा ॥२५॥
 ग्राह्यतिलाजिता रामं शीर्षे चिन्तामणिस्तव । तथेति राघवोऽप्युक्त्वा विमानेन जर्नः सह ॥२६॥
 ययौ नत्वा शकरं हि कृत्वा यज्ञार्थं पूचनाम् । अकारयित्वाऽथ विधिं मासिकेनाध्वराय हि ॥२७॥
 भागीरथ्यास्तटेनैव हरिद्वारं ययौ जवात् । कुरुक्षेत्रं विगाह्यथ इन्द्रप्रस्थं ततो ययौ ॥२८॥
 दृष्ट्वा मधुवनं रम्यं ययौ वृन्दावनं ततः । गाकुलं वाक्ष्य रामस्तु गोवर्धनमगाच्छनः ॥२९॥
 गत्वाऽथावतिकां पुण्यां ध्रुप्रान्तरविगाजिताम् । महाकालं पुरस्कृत्य पश्यन्तीर्धान्यनेकशः ॥३०॥
 दृष्ट्वा गङ्गाद्वयं क्षेत्रं सागरं कृष्णं च । ययौ स नैमिषारण्यं गोमत्यां स विगाह्य च ॥३१॥
 स्रुतं पौराणिकं दृष्ट्वा शूनकादीन् प्रपूज्य च । स्नात्वा सद्रक्षवैवर्तसरस्यथ रघूत्तमः ॥३२॥
 तमसां तां विगाह्यथ ददर्श नगरीं निजाम् । गममागतमाज्ञाय शुभरो वेगवत्तरः ॥३३॥

दो कर्णफूल, दो सुन्दर चुड़ियाँ, छोट छोटे घुँघुआँके शन्दसे युक्त करवनी, चन्द्रमाके समान कपोत-
 बाने दो सीमन्तभूषण और मणि तथा मोतियाँ हार धा दिया । पश्चात् शिवजीन भी अनेक विभक्तियों
 रामको पूजन करके उनसे प्रणत किया— ॥ १४-१८ ॥ हे राम ! आपके नाभिकमलसे ये चतुरानन बह्म हुए ।
 इन बह्मोंसे मैं पैदा हुआ और रोदन करनेके कारण मेरा नाम छत्र पड़ा ॥ १९ ॥ हे रघुनाथ ! इस प्रकार मैं आप
 का पौत्र हुआ । हे राम ! आपकी आज्ञाका पालन करने हुए आपको आदेशन अनुसार मैं प्रत्येककालमें सीतो
 लाकाँका सहार करता हूँ । तब क्या यह पाप आपका नहीं लगता, जो आज आप साक्षात्परायण होकर
 भी रावणवधसे बहुहत्यारूपी लोकापवादक भयसे तीर्थयात्रा करने निकल रहे ? ॥ २० ॥ २१ ॥ अथवा ठीक ही
 है, मैं समझ गया । हे प्रभो ! आप यह सब लोकशिक्षाके लिये आह्वान कर रहे हैं । यदि ऐसा है तो आप मल
 ही सीताके सहित काँडा करें । लोकमर्यादाको स्थापित करनेके अतिरिक्त और कुछ भी आपकी आज्ञाका प्रशो-
 जन नहीं है ॥ २२ ॥ इस प्रकार अनेक रामचरित्रोंसे श्रीरामकी स्तुति करनेके बाद शिवजीन उन्हें सिद्धासन,
 एक छत्र, दो चमर एक उत्तम पलंग, पानका डिब्बा, भोजन करनेके लिए सुन्दर सानका थाल, ककण, कुण्डल,
 कदं और मुकुट दिया ॥ २३ ॥ २४ ॥ तदनन्तर रामक गलम चिन्तामणि बाँधकर उन्हें विदा किया । सांतान रामक
 हृदयपर चिन्तामणि रखकर उनसे कुछ आज्ञापूर्वक कहा— अच्छा, यह चिन्तामणि वापका रही
 और यह कामधनु घेरी । श्रीराम का 'बहुन अच्छा' कहकर वहाँसे सब लागाक साथ विमानपर सवार हो शकर
 षण्वाण्को नमस्कार करके चल दिये । चलने समय वे शकर भगवान्की भावी यज्ञकी सूचना देते गये । बह्मोंको
 भी एक मासके बाद होनेवाले यज्ञमें अयोध्या आनेके लिए कहा ॥ २५-२७ ॥ वहाँमें भागीरथीके किनारे-
 किनारे हरिद्वार गये । वहाँसे शोध ही कुरुक्षेत्रमें स्नान करके इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) गये ॥ २८ ॥ वहाँसे मनोहर
 मथुरापुरी बेलकर वृन्दावन पधारे । गाकुल देखकर वे पावघन पर्वतपर गये ॥ २९ ॥ बादमें शनैः शनैः
 परम पवित्र अवन्तिका (उज्जैन) मथुरीका गये, जो कि क्षिप्र नदीके किनारेपर विद्यमान है । वहाँ महा-
 कालेश्वरका दर्शन-पूजन करके अनेक शुभ तीर्थ देखते हुए गङ्गाद्वय (हरिनाथपुर) क्षेत्र तथा सागरकूपको
 ॥ १ ॥ पश्चात् नैमिषारण्य गये । वहाँ गोमतीमें स्नान किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ फिर पौराणिक सूतका दर्शन करके

अयोध्यां भूषयामास प्रोत्खेनानाविघ्नध्वजैः । तोरणैश्च पताकाभिः पुष्पहारैर्मनोरमैः ॥ ३४ ॥
 शोधयित्वा राजामार्गान् सेचयित्वा तु चदनं । विकीर्णकुसुमैर्दिव्यैर्बलिदीपैर्विराजितान् ॥ ३५ ॥
 वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य सेनया परिवेष्टितः । प्रत्युज्जगाम राजेन्द्रं पुष्पकस्थं त्वरान्वितः ॥ ३६ ॥
 दण्डवत्प्रणिपत्यैव दत्त्वा शोषायनानि तन् । आलिङ्गिनो राघवेण मेने स कृतकृत्यताम् ॥ ३७ ॥
 ततो वायनिनादैश्च नर्तनैर्वारयोपिताम् । वेदघोषैर्द्विजानां च राभतीर्थं ययौ शनैः ॥ ३८ ॥
 स्नात्वा तत्सम्युताये यत्र नीर्थं सुपुण्यदम् । स्वयमेव कृतं पूर्वं नित्यकर्मोदमदगत् ॥ ३९ ॥
 वसिष्ठोक्तविधानेन कृत्वा धैकमुपोषणम् । दधिश्राद्धं विधायैव दत्त्वा दानान्पुनरेकशः ॥ ४० ॥
 तृतीये दिवसे रामो विमानेन विहायमा । पुर्यां विलप्य प्राकरान् हेमरत्नविनिर्मितान् ॥ ४१ ॥
 अयोध्यां शोभितां गन्वां गोपुराट्टालमण्डिताम् । वीर्याहङ्गममायुक्तां चतुष्पथविराजिताम् ॥ ४२ ॥
 पश्यन् स्वीयं राजमभाद्वारं प्राप भूतमः । पानं भूमण्डलं प्राप्य सुखमासीन्स्थिरं तदा ॥ ४३ ॥
 ततः सुमंत्रवन्नीमिर्दध्योदनविनिर्मिताः । बलयः कांस्यपाशस्था जलर्तलघटास्तथा ॥ ४४ ॥
 सीताराघवयोर्देहादुत्तार्य शतशस्तदा । नीत्वा त्यक्त्वा विदूरे तु स्नात्वा रामगृहं ययुः ॥ ४५ ॥
 ततो रामो विमानादवावरोह्य स चतुर्भिः । नागरैस्तनूतपतिभिः सभायां संविषेष्ट ह ॥ ४६ ॥
 वस्थौ सिंहासने रामश्चिन्तामणिविराजितः । तस्थुर्नृपाः सभायां श्रीराघवेणातिमानिताः ॥ ४७ ॥
 सीताऽपि निजगृहे सा विचित्रगन्तनिर्मितम् । कामधेनुं पुरस्कृत्य प्रविशेशातिद्विषिता ॥ ४८ ॥
 ततो रामः कामधेनुमभूतैर्नपावितैः । परमान्नैः पङ्क्तैश्च भोजयामास भूसुरान् ॥ ४९ ॥

शौनकादि कवियोंका पूजन और ब्रह्मर्षिवंश नामके सरोवरमें स्नान किया ॥ ३२ ॥ तमसा नदीमें खवगाहन करके राम अपनी नगरीको चले पडे । उधर था रामकी आते भूतकर सुमंत्रने सटपट अनेक प्रकारकी बड़ी बड़ी पताकाओं तथा झण्डाओंसे अयोध्या नगरीको सजका दिया । अनेक तोरण बँधवा दिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ राजमार्गोंको साफ कराकर चन्दनके जगहे छिड़काव करा दिया । उनपर लिप और नाना रंगके फूल बिछवा दिये । जगह जगह चौराहोपर दीपक तथा पूजाकी सामग्री रखवा दी ॥ ३५ ॥ पश्चात् सुमंजस वारणेन्द्र (हाथी) को आगे करके सेनासहित स्वर्णपुष्पकस्थित राजा रामकी जगवानो करने गये ॥ ३६ ॥ उन्होने उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके अनेक उपायन दिये । बादमें भगो सुमंत्र रामसे आर्जित हाकर अपने आपको कृतकृत्य समझने लगे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर बाजे गाजे, कारागनाओंके नृत्य तथा ब्राह्मणोंके वेदघोषके साथ राम धीरे-धीरे राभतीर्थवर गये ॥ ३८ ॥ वहाँ आकर उन्होने सन्तोंके जगमे स्नान किया । वह बड़ा पवित्र तथा उत्तम तीर्थ स्वयं रामके ही नित्यकर्मके लिये निर्मित हुआ था ॥ ३९ ॥ वहाँ उन्होने वसिष्ठजीके कथनानुसार विधियत् एक उपवास किया, दधिश्राद्ध किया तथा अनेक दान दिये ॥ ४० ॥ तीसरे दिन श्रीराम विमानके द्वारा आकाशमार्गसे नगरीके सुवर्णनिर्मित प्राकरोको लाँचकर पुरंदार तथा सुन्दर बटारियोसे सुशोभित मनोहारिणी अयोध्यामें पधारे । ओ गलियों, सड़कों बाजारों तथा चौराहोसे बड़ी ही शली छग रही थी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ बहुत दिनों बाद आज उन्हें अपनी राजसभाके द्वारका दर्शन प्राप्त हुआ । वहाँ आकर वे पानपरष्ठ उतर पडे । विमान भी भूतलपर उतरकर मुखपूर्वक खड़ा हो गया ॥ ४३ ॥ तब सुमंत्रकी स्त्रिये दधि-मोदन-से युक्त काँसेके पात्रमें रखी हुई बलिर् तथा जल-तेलसे पूर्ण सैकड़ों घड़ सीता तथा रामके देहपरसे उतार तथा दूर ले आकर छोड़ आयी और स्नान करके रामके भवतमें गयी ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ श्रीराम भी विमानपरसे उतरनेके बाद नागरिका तथा अन्य राजाओंके साथ सभाभवनमें पधारे ॥ ४६ ॥ चिन्तामणिसे सुशोभित हृदयवाले राम सिंहासनपर जा विराजे तथा उनसे सम्मानित होकर अन्य राजे भी यथास्थान बंठ गये ॥ ४७ ॥ महारानी सीता भी कामधेनु को लेकर प्रसन्नतापूर्वक चित्र-विचित्र रत्नोंसे निर्मित अपने महलमें गयीं ॥ ४८ ॥ पश्चात् श्रीरामने कामधेनुसे प्राप्त वृत्तसे निर्मित पङ्क्तिसमय उत्तम पकवानों द्वारा

अर्थाङ्गालांस्तर्पयित्वा स्वयं कृत्वाऽशनं तदा । निद्रार्थं नृपतीन् याने स्थलयात्रापयत्तदा ॥५०॥
 पचरात्रं नृपान् प्रीत्या स्थापयित्वा स्वमभिधौ । वस्त्रालंकारतुरगैस्तोषयित्वा भविस्तरम् ॥५१॥
 तान् प्रोवाच रमानाथः प्रचङ्करमण्डपान् । मम यज्ञागतुरगं दृष्ट्वा तन्पृष्ठगैः पुनः ॥५२॥
 आगन्तव्यं जानपदैः स्वमैन्यैर्नागरैः सह । इत्याञ्चां रघुवीरस्य हांसीकृत्य नृपोत्तमाः ॥

ययुः स्वं स्वं पुरं देशं स्वबलैः परिवेष्टिताः ॥५३॥

सुग्रीवाधान्वानरांश्च परिवारममन्वितान् । आश्लेषयित्वा सन्धानि स्थापयामास स्वानिके ॥५४॥
 वाजिमेधानन्तरं हि प्रेषयिष्याम्यहं त्विति । ततो दुद्रुभिनिर्घोषं स्वपुत्र्यौ घोषयत्तदा ॥५५॥
 अद्यावत् जनैः सर्वैरयोध्यानगरीस्थितैः । यैः कश्चिदत्र पथिकैर्मित्रपार्कैर्न भुज्यताम् ॥५६॥
 यावत्करोम्यहं भूम्यां राज्यं सीताममन्वितः । निजगार्हस्थ्यमालम्ब्य ये वर्तन्ते नरोत्तमाः ॥५७॥
 ते कुर्वन्तु सुखं पाकं स्वस्वभेदेषु भक्तितः । निर्वन्धो मम न श्रेयो वर्तितव्यं यथासुखम् ॥५८॥
 इत्याञ्चाप्य जनान् रामः सुखं तस्यौ स सीतया । अयोध्यायां तु सर्वत्र वेदघोषो गृहे गृहे ॥५९॥
 मंगलानि समुन्माहा नर्तनं वाद्योषिताम् । बभूवुश्च पुगणानि कीर्तनानि हरेः कथाः ॥६०॥
 एवमासीत्सुमंतुष्टा साकेतनगरो शुभा । एवं प्रोक्तं मया शिष्य यात्राकाण्डमनुत्तमम् ॥६१॥
 ये शृण्वन्ति नरा मरुता तेषां यात्राफलं भवेत् । यात्राधनार्जनोद्योगे यात्राकाण्डमिदं वरम् ॥६२॥
 पठित्वा ये तु गच्छन्ति सुखेनायाति ते गृहम् । ब्रह्महत्यादिपापानि कृतानि भानवैः सकृत् ॥६३॥
 यात्राकाण्डमिदं जप्त्वा शुद्धिस्तेभ्यो भविष्यति । सर्वतीर्थान्निगाहैश्च यत्फलं परिकीर्तितम् ॥६४॥
 यात्राकाण्डमिदं श्रुत्वा तत्फलं प्रतिपद्यते । धनार्थं धनमाप्नोति कार्मी कामानवाप्नुयात् ॥६५॥

बाह्याणीं लेकर बाण्डाल तककी वषोचित भोजन कराके मृत किया । बादमें राजाओंके साथ स्वयं भोजन करके राजाओंको जयनाराय विमानमें तथा अन्यान्य महलोंमें जानेकी आज्ञा दी ॥ ५९ ॥ ५० ॥ इस प्रकार पाँच दिन तक उन लोगोको बड़े ही प्रेम तथा सत्कारसे रामने अपने भवनमें रक्खा । बादमें बरत्र, अलंकार तथा मन्त्र आदि दे और उन्हें भलीभाँति प्रसन्न करके अपने-अपने स्थानको जानेका आज्ञा दी । जब वे हाथ आड़कद जानेके लिए सम्मुख खड़े हुए, तब रमानाथ रामने फिरसे उन्हें यज्ञके मुश्रवसम्पर यज्ञके अंगभूत अश्वके पीछे-पीछे चलनेके लिए समन्व्य और प्रजा सहित आनेके लिये कहा । वे राजे इस आज्ञाको स्वीकार करके अपनी-अपनी सेनाके साथ अपने-अपने देश तथा नगरकी ओर चले गये । परिवार सहित मुग्राव आदि बानरोको रहनेके वास्ते बहुतसे भवन देकर अपने यहाँ रक्खा और कहा कि अश्वमेध यज्ञके पञ्चाङ्ग तुम लोगोंको विदा करने । बादमें श्रीरामने अपने नगरमें विद्वान् पिटवाकर कहला दिया कि आजसे लेकर मेरे नगरवासियों तथा अन्य यात्री लोगोंको अन्न भोजन बनाकर नहीं खाना चाहिये । सब लोग तबतक हमारे भोजनालयमें भोजन करें, जब तक कि मैं भूमिपर राज्य करूँ । हाँ, जो गृहस्थाश्रमी हों, वे भले ही अपने-अपने घरोंमें भक्तिपूर्वक मुन्त्रसे भोजन बनाएँ । उनके लिये मेरा आग्रह नहीं है ॥ ५१-५८ ॥ यह आज्ञा देकर राम सीताके साथ सुख-पूर्वक रहने लगे । तबसे अयोध्या नगरीमें घर-घर वेदध्वनि होन लगी ॥ ५९ ॥ मंगलगान होने लगे, सोत्साह बारागजाओंका नृत्य होने लगा तथा पुराणपाठ और हरिकथाएँ होने लगी ॥ ६० ॥ इस प्रकार वह समस्त पुरी आनन्दित हो उठी । हे शिष्य ! मैंने तुमको भली भाँति उत्तम यात्राकाण्ड सुनाया ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस यात्रा-काण्डको भक्तिपूर्वक श्रवण करेगा, उसे समस्त यात्रायें करनेका फल प्राप्त होगा । यदि मनुष्य यात्रामें जानेके समय अथवा घन कमानेके लिये जाते समय इसको सुनकर जाय तो वह मुखपूर्वक और कृतार्थ होकर चलेगा । यदि मनुष्यने ब्रह्महत्यादि जैसे घोर पाप किये हों तो वे भी इसकी सुननेसे दूर हो जाते हैं और प्राणी शुद्ध हो जाता है । सब तापीकी यात्रा करनेसे जो फल होता है, वह इस यात्राकाण्डको पढ़ने तथा सुननेसे प्राप्त हो जाता है । धनकी इच्छावालेको धन और कामकी इच्छावालेको काम मिलता है ॥ ६२-६५ ॥ इस

पापी धृतो भवेत्सद्यो यत्राकाण्डश्रवादिना । यः कश्चिन्प्रातस्तथाय कृतशौचविधिर्नरः ॥६६॥
 तीर्थानां च नर काण्डमिदं पुण्यं पटिष्यति । तस्य रामश्च संतुष्टः पूरयिष्यति वाञ्छितम् ॥६७॥
 सर्वतीर्थावगाहस्य फल तस्य भवेद्भुवम् । यानि कानि च पापानि जन्मांतरकृतानि च ॥६८॥
 तानि सर्वाणि नश्यन्ति यात्राकाण्डश्रवादिना ॥६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितसंगतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे
 रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

यात्राकाण्डे च सर्गा वै नव प्रोक्ता मनोविभिः ।

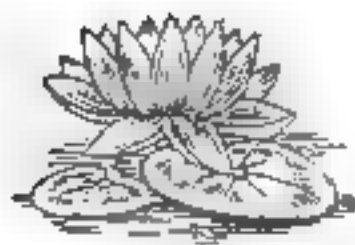
पञ्चविंशोत्तराः सप्तशतश्लोका भवापहः ॥ १ ॥

काण्डको सुननेसे पापी मुख्य भी पवित्र हो जाता है । जो प्राणी प्रातःकाल उठ तथा स्नानादि करके इस पवित्र यात्राकाण्डको पढ़ेगा तो श्रीरामकी अनुकम्पासे उसके सब मनोरथ पूरे होंगे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उसे सब तीर्थोंकी यात्राका फल मिलेगा । जन्म-जन्मान्तरके जो कुछ पाप होंगे, वे सब इस यात्राकाण्डको सुननेसे अवश्य नष्ट हो जायेंगे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितसंगतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे पञ्च राम-तेजपाद्वैयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां रामोत्तरयात्रा-नगरप्रदेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस यात्राकाण्डमें नौ सर्ग और भवभयको दूर करनेवाले ७३५ सात सौ पैंतीस श्लोक कहें गये हैं ॥ १ ॥

* इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डं समाप्तम् *

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु



श्रीरामचन्द्रो विजयतेराम्

श्रीबाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽह्वया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

यागकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(अश्वमेध यज्ञके लिए सामग्री एकत्र करनेका निर्देश)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः समामध्ये एकदा गुरुमन्त्रवीत् । कुम्भोदरमुनेर्व्याख्यात्तीर्थयात्रां मया कृता ॥ १ ॥
इदानीं तस्य वाक्येन वाजिमेषं करोम्यहम् । यज्ञोपकारणानि त्वं लक्ष्मणाय वदस्व हि ॥ २ ॥
सुमुहूर्ते शुभे लग्ने श्यामकर्णाग्निपुच्छकः । तुरङ्गो दिव्यवस्त्रार्चभूषयित्वा विमुच्यताम् ॥ ३ ॥
पृथ्वीप्रदक्षिणार्थं हि तत्पृष्ठेऽधृतसख्यया । सेनया सह शत्रुघ्नः सुमन्त्रेण महाचिरात् ॥ ४ ॥
तद्गामवचनं श्रुत्वा वसिष्ठो मुनिसत्तमः । ज्योतिर्वित्सहितो दृष्ट्वा सुमुहूर्तं शुभोदयम् ॥ ५ ॥
आज्ञापयत्स सौमित्रिं सभायां राजसन्निधौ । सौमित्रेऽद्यदिनाज्ज्ञेयो मुहूर्तः सममेऽहनि ॥ ६ ॥
दीक्षार्थं रामचन्द्रस्य वाजिमेषाख्यकर्मणि । रामदीर्घे यज्ञभूमिः शोभनीया हलादिभिः ॥ ७ ॥
सुवर्णनिर्मितैर्दिव्यैर्ब्राह्मणैः सह सत्वरम् । दशकोशमिताभ्योऽध्यावहिः सर्वत्र लक्ष्मण ॥ ८ ॥
समा कर्करहीनां तु लिप्ता चन्दनजातिभिः । मण्डपश्च विधातव्यः सर्वशालागिडनः शुभः ॥ ९ ॥

श्रीरामदासने कहा इसके अनन्तर एक दिन सभामें रामचन्द्रजी गुरु वसिष्ठसे कहने लगे—हे गुरु । कुम्भोदर ऋषिके कथनानुसार मैंने तीर्थयात्रा की । अब उन्हींकी बातसे मैं अश्वमेध यज्ञ भी करना चाहता हूँ । यज्ञकी जो-जो आवश्यक वस्तुएँ हों, कृपया आप लक्ष्मणको बतला दीजिए ॥ १ ॥ २ ॥ किसी अच्छे मुहूर्त और शुभ लग्नमें श्याम रङ्गवाले जिसके कान, पैर और पूँछ हों, ऐसे घाड़ेको सुन्दर वस्त्रों और आभूषणोंमें सुसज्जित करके पृथ्वीप्रदक्षिणाके लिए छोड़ा जाय ॥ ३ ॥ तदनन्तर उस दजीय घोड़की रक्षा करनेके लिए दस हजार सेनाके साथ सुमन्त और शत्रुघ्न प्रस्थान करें ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजी की इन बातोंको सुनकर वसिष्ठजीने ज्योतिषियोंके साथ अच्छे लग्न तथा अच्छे नक्षत्रसे संयुक्त एक बढिया मुहूर्त देखा और सभामें ह्या रामचन्द्रजीके सामने लक्ष्मणजीसे बोले—हे लक्ष्मण ! रामचन्द्रके यज्ञकी दीक्षा लेनेका शुभ मुहूर्त आजसे ठीक सातवें दिन है ॥ ५ ॥ ६ ॥ सबसे पहला काम यह है कि इस अश्वमेध यज्ञके लिए रामतीर्थक भूमि मुर्दणके बने हुए हल्लो द्वारा कट्टाणोंके साथ जोतकर शुद्ध की जाय । अयोध्याके चारों ओर दस कास तककी जमीन परतालकर बराबर कर दी जाय और ऐसी साफ की जाय कि उसमें कहीं कुछ भी कङ्कड़-पत्थर न रहने

जम्बाप्रादिनगानां च शाखाभिः कुसुमैरपि । पल्लवैश्च विचित्रैश्च कदलीस्तम्भमण्डितः ॥१०॥
 समन्ततस्तोरणानि बन्धनीयानि यत्नतः । पुष्पहाराः फलादीनां मालाश्च विविधाः शुभाः ॥११॥
 वेद्यः सहस्रशः कार्याः सुधया चैष्टकादिभिः । करणीयं महत्कुण्डं सन्साभिध्येन मृन्मयम् ॥१२॥
 कुंडोपरि महत् कार्यं गोमुखं च मनोरमम् । खदिरस्य विचित्रं हि बभौर्धोरार्थमुत्तमम् ॥१३॥
 मितरक्तामितैश्चैव नीलपीतादिभिः शुभैः । नानादण्डचूर्णैश्च पुष्पातुविनिर्मितैः ॥१४॥
 ननावर्णैर्विलेख्यानि स्वस्तिकानि समन्ततः । कमलानि विचित्राणि तथा अष्टदलानि च ॥१५॥
 शङ्खचक्रगदापद्मवल्लयश्च सहस्रशः । कुसुमानि विकीर्षाणि यज्ञभूम्यां समन्ततः ॥१६॥
 चतुर्विंशच्छुभाः कार्या यज्ञस्तम्भा महोच्छ्रिताः । विनिर्मिताः सुवर्णेन मुक्ताहारविगुंफिताः ॥१७॥
 त्रितयं सर्वतोभद्रं कुण्डमध्येऽश्वदैवतम् । लेखनीयं तथा कुंडं नानावर्णैर्विचित्रितम् ॥१८॥
 द्रुतं कार्याणि पात्राणि यज्ञार्थं मम पश्यतः । हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथाऽध्वरे ॥१९॥
 आसनानि शृष्याणां च निद्रार्थं च सहस्रशः । वासोगेहानि कार्याणि तूर्णैः पर्णैश्च स्वर्परीः ॥२०॥
 पाकशाला विधातव्या कार्या शालाऽश्ननस्य च । ऋषिशाला विधातव्याः स्त्रीशालाश्च शुभावदाः ॥२१॥
 यज्ञोपकरणानां च शाला परमसुन्दरी । सभाः कार्या नृपाणां च वरवस्त्रैर्विचित्रिताः ॥२२॥
 आमनार्थं महार्हाणि वस्त्राणि च समन्ततः । आस्तीर्षाणि तथा राजपृष्ठभागाश्रयाणि च ॥२३॥
 पक्षिपिच्छैः सुकापांसभेदैः सम्पूरितानि हि । कश्चिपूपचर्हणानि विचित्राणि महान्ति च ॥२४॥
 स्थापनीयानि सदसि महार्हाणि तु लक्ष्मण । स्थापनीयानि पानार्थं पात्राणि विविधानि च ॥२५॥
 नानारसैः पूरितानि तथा पक्वफलादिभिः । नानासुगन्धद्रव्यैश्च सार्गैर्नानाविधैरपि ॥२६॥

पायें । फिर केसर-चन्दनसे स्त्रीपकर वह भूमि पवित्र करनी होगी । उस भूमिपर ऐसे मण्डप बनाये जायें, जो सुन्दर हो और बाह्यमें कटे-फटे न हों ॥ ७-९ ॥ जामुन-आम आदि वृक्षोंकी शाखाओं तथा फूलों-पत्तोंसे खूब अच्छी तरह सजाकर केलेके खम्भोंके फाटक बनाये जायें और मण्डपके चारों ओर फूलों और फलोंकी मालाएँ लटकाई जायें ॥ १० ॥ ११ ॥ मण्डपके भीतर ईंट और बूनेकी पक्की जोड़ाई करके एक हजार वेदियाँ बनवायी जायें । वहाँ ही मिट्टीका एक बड़ा भारी कुण्ड बनाया जाय । लेकिन वह मैं अपने सामने बनवाऊँगा । कुण्डके ऊपर खैरकी लकड़ोका एक सुन्दर गोमुख बनाया जाय, जो वसोवोराके काममें आयेगा । सफेद, लाल, काले, नीले और पीले पत्थरोंका चूर्ण तथा उपघातु (गेरू-गंधक आदि) के चूर्णोंसे जगह-जगह रङ्ग बिरङ्गे स्वस्तिक लिखे जायें और अष्टदल कमल बनाये जायें ॥ १२-१५ ॥ जहाँ-तहाँ शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा फूल-पत्तियोंकी चित्रकारी की जाय ॥ १६ ॥ सोनेके चौबीस यज्ञस्तम्भ बनायें जायें, जो खूब ऊँचे हों और उनपर मोती-माणिक आदिका काम किया गया हो । कुण्डके पास अश्वदेवताके निमित्त सर्वतोभद्र बनाया जाय और वेदीके चारों ओर अच्छे-बच्छे चित्र बनाये जायें । यज्ञके लिए जितने पात्रोंकी आवश्यकता होगी, वे सब मेरे सामने बनाये जायेंगे । प्रायः वे सब पात्र सोनेके होंगे, जैसे वरुणदेवके यज्ञमें थे ॥ १७-१९ ॥ ऋषियोंको बैठने और सोनेके लिए पक्के, लपड़ोंके अथवा लुम्परोंके हजार घर तैयार करने होंगे ॥ २० ॥ मण्डपकी एक ओर पाकशाला (रसोईघर) रहेगी, दूसरी ओर अन्नशाला (भोजनभवन), तिसरी ओर ऋषि-शाला (मुनियोंके ठहरनेकी जगह) और एक ओर सुन्दर स्त्रीशाला (स्त्रियोंके रहनेकी जगह) बनेगी ॥ २१ ॥ एक बड़ा-सा और सुन्दर भकान यज्ञकी सब सामग्रियों रखनेके लिए बनेगा । अच्छे-बच्छे कपड़ोंसे सजाकर राजाओंके लिए कई महफिलें बनायी जायेंगी । बैठनेके लिए बड़ियाँ-दड़ियाँ कालीन-गलीचे आदि मंगाकर बिछाये जायेंगे । पक्षियोंके पखनों या रुईसे भरी कितनी ही सुन्दर तकियायें राजाओंको लगानेके लिए रखी जायेंगी । सबको जल पीनेके लिए विविध प्रकारके पात्र रखे जायेंगे ॥ २२-२४ ॥ सभामवनमें जल पीनेके लिए सुन्दर तथा बहुमूल्य बर्तन रखे जायेंगे । कितने ही पक्के हुए फलोंके शरबतसे भरे

मघात्रिचित्रैर्मधुरैस्तथा मादकवस्तुभिः । नानासुगंधतैश्च काचकुम्भाः सहस्रशः ॥२७॥
 स्थापनीयाश्चन्दनैश्च सुगन्धैर्गन्धादिभिः । नानोपस्कारयुक्तानां ताम्बूलानां महस्रशः ॥२८॥
 स्थापनीयानि पात्राणि आमराणि सहस्रशः । व्यञ्जनानि विचित्राणि तथादर्शा विचित्रिताः ॥२९॥
 स्थापनीयाश्च क्रीडार्थं क्रीडोपकरणानि च । स्थापनीयानि मदसि नृपाणां चित्रितानि च ॥३०॥
 मृत्पात्रसम्भवाः कार्याः शतशः पुष्पशटिकाः । जलयत्राणि कार्याणि सर्वत्र विविधानि च ॥३१॥
 नानाविचित्रवर्णानां वयसां पञ्चगाः शुभाः । हेमगन्धमौक्तिकैश्च प्रवालैर्वनैर्वरैः ॥३२॥
 कमनीयाश्च भूषामिस्तोयाभार्यैः प्ररुग्िताः । वधनीया मंडपेषु नर्तितव्योऽप्सरोगणः ॥३३॥
 धूपयतु शुभपाश्च सुगायतु हि गायकाः । वादनीयानि वाद्यानि बहूनि विविधानि च ॥३४॥
 पूजोपकरणार्थं च पात्राणि पूरितानि हि । पृथक् पृथक् मन्त्रास्वेव स्थापनीयानि लक्ष्मण ॥३५॥
 तथा अपि मन्त्राणां तु रत्नाश्च समिधश्च तथा । दण्डाः कमण्डलुयुताः स्थापनीयाः सहस्रशः ॥३६॥
 बहिर्वासांश्च क्रीपीनान् बल्कलान्गजिनानि च । पूजाद्रव्याणि हव्यानि जलकुम्भाः सहस्रशः ॥३७॥
 शौचार्थं मृत्तिकाः सुदा दंतकाष्ठानि पादुकाः । गणिका मृत्तुशुद्धयर्थं नानावस्तूनि कल्पय ॥३८॥
 तथा नारायणायां तु पूजापत्राण्यनकशः । मन्त्राग्न्यद्रव्यपूर्णानि सुगन्धैः पूरितान्यपि ॥३९॥
 वायनानि विचित्राणि स्थापनीयानि लक्ष्मण । कर्पूरः कज्जलानां च पात्राणि कुकुमानि च ॥४०॥
 करडस्थानिरभ्याणि भूषणान्पुञ्जवतानि च । हस्तिदादनि वस्तूनि कचुक्यो वसनानि च ॥४१॥
 स्थापनीयानि व्यञ्जनचामरादीनि मादरम् । सुहृदां लेखनीयानि पत्राणि च समंततः ॥४२॥

हु, वा-बड़े कड़ाह बत्ती उपस्थित रहें । अनेक प्रकारके इत्र, गुग्गुलुजल, केवडाजल, कस्तूरी और केसरका चन्दन सबका लगानेके लिए तैयार रखना चाहिए ॥ २५ ॥ २६ ॥ विचित्र प्रकारके स्वादिष्ट मद्य तथा अनेक मादक वस्तुएँ जुटाई जायें । बहुत किम्मेके सुगन्धित तल्लोंसे भरे हुए कर्चके हजारों घड़े सदा तैयार रहें । बहुतसे बत्तनोंमें सुगन्धित चन्दन और अक्षत रखे रहें । विविध सामग्रियोंके साथ हजारों तस्तरियोंमें पानके बड़े लगान्ग्राकर रखे जायें ॥ २७ ॥ २८ ॥ हजारों चमर हाँकनेके लिए मंगा केने चाहियें । सत्यके लिए तरह तरहके पकवान सर्वदा तैयार रहें । मुँह देखनेके लिए अच्छे अच्छे दर्पण भंगवा लिये जायें । भोजनके लिए जिनकी भी सामग्रियाँ हों सकें, मंगवाकर रख ली जायें । देश-विदेशके राजाओंके चित्र मंगवाकर सभाभवनमें चारों ओर टाँग दिये जायें ॥ २९ ॥ ३० ॥ बहुतसे पूजोंके लमले मंगवाकर वहाँपर रखे जायें । घोंडी-घोंडी दूधपर हजारों फोहारे बनाये जायें, जिनसे सदा जलकी धारा बहती रहे । माल, धोले, हरे तथा बैंगनी आदि रङ्गोशाले पल्लियोंके पित्रड़े लाकर भण्डपम चारों ओर लटका दिये जायें और हुँरा, मोता, पन्ना और चूना आदिके जटाऊ बस्तुों द्वारा वे सजाये जायें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ रिजडोम उन पल्लियोंके भोजन करनेकी सब सामग्री भरी रहें । वहाँपर नाचनेके लिए सुन्दर सुन्दर वेश्यावे बुलाये जायें । धूप देनेवाले लोग सुगन्धित धूप देनेके लिए नियुक्त किये जायें । गानेवाले गाना गाये और बजानेवाले विविध प्रकारके बाजे बजायें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सब राजसभाआमे अलग-अलग पूजन करनेका सामग्रियोंसे पूर्ण बर्तन रखे रहें । ऋषिसभाओंके लिए कुशा, दण्ड, कमण्डलु तथा समिधाका विशेष प्रबन्ध रहे । ऊपर रहनेके लिये बस्त्र और नीचे पहननेके लिये क्रीपीन, बल्कल वस्त्र, मृगचर्म, पूजनकी सब सामग्रियाँ, हवन करनेकी सब वस्तुएँ, जलसे भरे हुए हजारों घड़े आदि वहाँपर लम्हाकर रखे जायें । हाथ पवित्र करनेके लिए शुद्ध मृत्तिका, दातोन, खड़ाऊँ तथा मुखशुद्धिके लिये बहुतसे मजन म मि वहाँपर रखे रहें ॥ ३५-३८ ॥ इमों तरह नारीसभामें भी पूजके बहुतसे पात्र रहने चाहियें । सोहागके लिये शुभसूचक रोजी-सेदुर आदि सुगन्धित वस्तुओं भी रखी रहें । सुन्दर दर्पण लाकर रखे जायें । कागजके कुमकुमभरे बर्तन आदि भी वहाँ उपस्थित रहें ॥ ३९ ॥ ४० ॥ बहुत-सी बसिकी बनी हुई सन्दूकोंमें सुन्दर और बमचभाते हुए बाभूषण रखे रहें । हल्दी-रोली आदि पीजे और कचुकी आदि वस्त्र लाकर रखे जायें । पंखे और बमरादिक

तममुद्राङ्गिनान्यद्य तथा नृना महाजयाः । जनकाय प्रेषणीयाः कैकेयनृपमन्त्रिभौ ॥४३॥
 मन्वायाः सुमन्वागाः पितरौ प्रति लक्ष्मण । श्यामाङ्घ्रिः श्यामकर्णश्च श्यामपुच्छः मितः शुभः ॥४४॥
 महार्हाभरणैस्त्रैदिव्यशोभनेन च । शोभनीयश्चामरार्घ्यमुक्ताहारमनोरमैः ॥४५॥
 तर्माभिः शृङ्खलाभिश्च वेणीचन्द्रविभूषणैः । तस्य भले हेमपत्रे लेखनोयं स्फुटाक्षरैः ॥४६॥
 कोमलेन्द्रस्य रामस्य यज्ञांगतुर्गो ह्ययम् । ज्ञेयः सर्वैर्नृपैर्मुक्तः कर्तुं भूम्याः प्रदक्षिणाम् ॥४७॥
 वस्त्रास्ति पारं तेनाश्वो बंधनीयोऽयमुत्तमः । नोचेत् कोशश्च निजान् पुरस्कृत्य बलैः सह ॥४८॥
 स्वकुटुम्भनागरं च तथा ज्ञानपदैः सह । आगतव्यं नृपनिर्मिषज्ञां गाथां नुवर्तितंभिः ॥४९॥
 यज्ञभूमिसयोध्यायां युद्धं जित्वा महोद्धतान् । एवं पत्रं बंधयित्वा मुक्तामणिचित्रितैः ॥५०॥
 अत्र तैः शोभयित्वा मिदुः कार्यश्च मंडपे । मिदुः कार्यः स शत्रुघ्नः सैन्येन परिदेष्टितः ॥५१॥
 गथाः श्लोकश्चार्घ्यं सुमन्त्रेण समन्वितः । नानापुण्यनदीनां च जलकुंभान् महस्रशः ॥५२॥
 नानादेवान्मृदश्चापि शकुन्तेनानयस्य हि । शोभनीया पुरी रम्या पताकाध्वजतोरणैः ॥५३॥
 देवालये गुधा देया तथा प्रासादमस्तके । देवालयस्थतरेऽद्य चित्रशाला मनोरमाः ॥५४॥
 लेखनीया विभानव्या स्तनदीपाः मदैव हि । पूजोपकरणादीनि प्रतिदेवालयेष्वपि ॥५५॥
 श्यामयश्च समस्तानि वाद्यान्याज्ञापयस्य भोः । राजमार्गाः शोभनीयाः सेवनीयाश्च चदर्नः ॥५६॥
 मोधर्गाजिष्ठं सर्वत्र चित्राणि विधिधानि च । लेखनीयानि रम्याणि मुक्ताहाराः समंततः ॥५७॥
 प्रवालमणिवैद्यैर्काष्ठीरम्फटिकादिभिः । नानाविधाश्च कुसुमैर्हाराः पक्कफलादिभिः ॥५८॥
 यश्चनीयाश्च सर्वत्र जालरंजविशेषतः । एवं यद्यन्मया प्रोक्तं तत्कुर्वन्वाविचारतः ॥५९॥

नाकर रामसे जाय और अपने मित्रोंकी आगी हुई चिट्ठियों प्रमत्त बहो रक्ती रह ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ आर
 ४३ रामचन्द्रजीकर मुहुर लगा हुआ पत्र लेकर दूत मिथिलेज जनक, कामर तथा ककय आदि राजाओंके
 पास जाय । तदनन्तर श्याम पुच्छ तथा श्याम पैरवाल घोड़ेको । ४३ । ४४ ॥ बहुमुख्य वस्त्रों और आभूषणोंसे
 राजाश जाय । उस स तर्को जज्ञा और वेणावय आदि महान पन्न के जाय । एक मन्त्रणपत्रपर ये स त साफ
 अक्षरम लिखकर धाड़क भाषेपर बांध दिया जाय-॥ ४५ ॥ ४६ ॥ “कोसलन्द्र महाराज रामचन्द्रका यह
 यज्ञाय घोड़ा भूमिको प्रदक्षिणा करनेके लिए छाड़ा गया है । सब देश-दशान्तरक राजाओंको आन हो कि
 जिसम बल हा, वह इस सुन्दर घाटको बांध ल , नहीं तो अपने दशवामियों, अपनी सेना तथा कुटुम्बियोंके
 साथ इस घ डक पीछ-पीछ चलता हुआ हमारी यज्ञभूमि अर्थात् अयोध्याम आकर मुझसे मिले” ॥ ४७-४९ ॥
 इस आशयका पत्र लटकाया जाय । राग्तम जा जा उहण्ड राज मिले उनसे युद्ध कर-करके उन्हें परास्त कि
 जाय । अतक प्रकारके झाड़-फाटस आदिस सजा करके एक मिदुमंडप बनाया जाय । इसके अनन्तर
 अपना पुरी सताके साथ शकुन्तर्ज सुमन्त्रका साथ लिये हुए घोडर सवार होकर उस घनाय घाड़ेकी रक्षा
 वरन्तक किए प्रस्थान कर । उसक पश्चान् बहुत-सी पवित्र नदियोंकी मृत्तिका और हजारो घड़ोय जल
 भर भरकर शकुन्तर्जक द्वारा मंगवाया जाय ॥ ५०-५२ ॥ अयोध्यामे जितने भी देवालय हों, उन सबको
 चुनसे पुतवाया जाय । सब मकानोंकी भी सफाई की जाय । देवाल्योंके भीतर नाना प्रकारको चित्रकारियों
 की जाय । हर एक देवालयम हर रोज पूजन करनेकी सामग्रियां भेजी जाय । ५३-५५ ॥ हे लक्ष्मणजी !
 आज ही आप सब प्रकारके वाज मंगाकर रस्सियोंकी आजा दे दीजिए । अयोध्याक सब राजमार्ग खूब अच्छा
 तरह साफ किय जाय और उनपर चन्दनका छिड़काव किया जाय । राजमार्गके सब बड़े-बड़े महलोंकी
 दावारोंपर विविध प्रकारके चित्र बनानेकी आज्ञा दे दी जाय । जगह-जगहपर मोतियोंका मालायें लटकायी
 जाय ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ प्रवालमणि, वैद्युयमणि, काष्ठीर और स्फटिकादि मणियोंकी मालायें, फूलोंकी मालायें
 तथा पक्क फलोंका मालाय हर एक मकानोपर लटकाई जाय । इस प्रकार मैने जो कुछ बतलाया है, उसे कर

सद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा तथेष्टुवन्या म लक्ष्मणः । काम्य माम तन्मयं गुगेर्वाक्याच्छताधिकम् । ६० ।

इति श्रीशतकोटिरामचरणानन्दस्य श्रीमदानन्दरामायणे बालमोक्षोप यागकाण्डे

यागोपकरणनिवेदनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(यत्तमे सावधानी रखनेके लिए रामका लक्ष्मणको आदेश)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः समीतस्तु मुहुर्ने मममेवहनि । नवननोद्वर्तनार्थः स्नान्वा कृत्वाजनादिकम् ॥ १ ॥
तूर्यनादैर्द्विजानां च वेदघोषविशेषतः । पौरस्त्रीणां गायनेश्च पौराणां च जयस्वनः ॥ २ ॥
आगत्य मंडपे रम्ये तस्थौ विश्रामनोपरि । ददौ कौशेयवस्त्राणि गुरु रामस्वरुन्धरीम् ॥ ३ ॥
वीगंश्च पौरपत्नीश्च मातृश्चाथ सुवामिनीः । श्वश्रूश्चापि द्विजान् सर्वान् जनकंमुहदम्नथा ॥ ४ ॥
बंधूश्च बंधुपत्नीश्च वयस्याश्च ततः परम् । मंत्रिगश्चाथ वीगंश्च दामदामीजनस्तथा ॥ ५ ॥
नटनर्तकवृन्दादीन् वाग्वीश्च ततः परम् । आर्चाडालादिकान् दद्यात् ततः सीतां ददौ वरम् ॥ ६ ॥
हेमतन्तुममुद्भूतं मुक्तामाणिक्यगुफितम् । रत्नकाश्मरीनीलार्धमध्ये मध्ये विचित्रितम् ॥ ७ ॥
मुक्तापद्मालघोषार्धमणिभिः सर्वतो वृत्तम् । आदर्शविम्बमदृशं विद्युत्संज्ञोपमं महत् ॥ ८ ॥
ततः स्वयं रामचन्द्रः पानकौशेयमुत्तमम् । हेमतन्त्रंकितं नानावल्लीपुष्पविचित्रितम् ॥ ९ ॥
दधारान्यत्तुमरीयं वामोऽलङ्कारमण्डितः । व्यजिनाशेषमात्रश्रीर्मणिद्वयविराजितः ॥ १० ॥
केयूरकुण्डलैर्मुक्ताहारैश्च कटकैर्धृतः । ततो वसिष्ठवर्यस्तं मुक्तानां स्वस्तिकोपरि ॥ ११ ॥
निवेश्य राघवः सीतामाहूय बहुकैर्निजैः । निवेश्य रामवामांगे मुनिभिः परिवेष्टितः ॥ १२ ॥
रामेण कार्यामाय विघ्नेशादिप्रपूजनम् । पुण्याहादिव्रयं चापि ददौ दीक्षां ततस्तयोः ॥ १३ ॥

भा.प्र. । तुम उनके विषयमें कुछ मत सोचो विचरो । मैंने स्वयं सब सोच लिया है । इस प्रकार गुरुवरकी आज्ञा पाकर लक्ष्मणने सिर झुकाकर स्वीकार किया और सब काम उससे भी सौगुना बढ़-चढ़कर किया, जैसा कि गुरु वसिष्ठजीने कहा था ॥ ५८-६० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितगतगंतश्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे सायका-
टीकायां यागोपकरणनिवेदनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदासने कहा — इसके बाद सातवें दिन सीताजीके साथ-साथ रामचन्द्रने मकलन आदिका उबटन लगाकर स्नान किया, अंजन लगाया और तुड़ही आदि वाजो, वेदमंत्रों, नगरकी स्त्रियोंके गंतां और पुरवासियोंकी जयध्वनिके साथ ॥ १ । २ ॥ आकर उस सुन्दर मंडपमें एक चित्रासनपर बैठे । तब गुरु वसिष्ठ तथा अरुन्धतीको उन्होंने सुन्दर-सुन्दर रेशमी वस्त्र दिये । इसके अनन्तर पुरवासियोंको, पुरवासिनी नारियोंको, माता-सोको, बहुओंको, साधुओंका, नगरनिवासी सब विप्रोंको, मित्रोंका, बान्धवोंको, परिवारके सोगोंको, बान्धवों-का, नारियोंको, समवयस्क मित्रोंका, मंत्रियोंको, सेनापतियोंको, सैनिकोंको, दास-दासियोंको, ॥ ३-५ ॥ नटों-नर्तकोंको, बन्दीजनोंको, वेश्याओंको और चाण्डालसे लेकर ऊँच जाति तकके प्रत्येक मनुष्यको अच्छे-अच्छे कपड़े देकर जिसमें सुनहले तारका काम बना हुआ था, मोती-मणिक आदिके अलङ्कारों और लटक रहे थे, ऐसे नीलम तथा पुष्कराज आदि मणियोंसे सुमज्जित एक सुन्दर वस्त्र सीताजीको दिया ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब दपेणकी तरह चमकतो हुई एवं बिजलीकी तरह जिसमें तेज था और सुवर्णके तारका जगह-जगह बेल-बूटा बना हुआ था, ऐसे एक वस्त्रको लेकर रामचन्द्रजीने स्वयं पहना ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऊपरसे एक उपरना धारण किया । तरह-तरहके आभूषण पहने । जब रामचन्द्रजी के कानोंमें कुण्डल झूलने लगे, मोतीकी मालाएँ गलमें पड़ गयीं और हाथोंके सब गहने हाथोंमें पहन लिये गये । तब वसिष्ठजीने मोतियोंके चौकके ऊपर रामचन्द्रजी तथा

ध्वजगोपविधानेन स्थापयित्वा ध्वजानमान् । रामेण चरयामास गुरुः षोडश ऋत्विजः ॥१४॥
 यावद्वृत्तव सज्जतोऽध्वर्युः सकलकर्मायत् । प्रक्ष्माऽभूच्च स्वयं ब्रह्मा होता माधिसुतो बभूव ॥१५॥
 उद्गतेऽभूच्छान्तदो गुरुर्यो जनकस्य च । यमो बभूव शमिता कश्यपाया मुनीश्वराः ॥१६॥
 श्रुत्वा वाजिरेधे हि राघवेण महान्मना । ऋत्विजः षोडश शुभाम्भवाज्ये सवकर्मसु ॥१७॥
 पृथक् पृथक् सवृणीताः शतशस्ते मुनाश्वराः । कुण्डेऽग्निस्थापनं कृत्वा पात्राण्यामाश्च चिस्तगान् ॥१८॥
 श्यामकर्णं जयित्वा मोचयामास भूतले । मन्थं प्रदक्षिणां कर्तुं तस्य संरक्षणाय हि ॥१९॥
 स्थान्द्रं मुमंत्रेण सैन्येनापुनरुपया । शत्रुघ्नं प्रेषयित्वाऽथ नृणां तस्यो द्विजैर्गुरुः ॥२०॥
 यज्ञघाटे मुनिगणापरिते मरयून्त्रे । रामाऽपि सीताया नृणां तस्यो मृष्यन् कथाः शुभाः ।
 कृष्णं जिनयगे दान्तः कुशपाणिः कृतोन्नितः । कोटिद्वयप्रनाशाश्वत्थो म गुरुमन्त्रिधी ॥२१॥
 तदाक्षयां प्रवृत्तायां भ्रातरः पुष्करध्वजः । स्नाताः सुवासनः सर्वे रेजिरे सुष्ठुवलकृताः ॥२२॥
 तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककट्यः मुवासनः । दीक्षाशालामुपात्रमुश्वालिमा वस्तुषाणयः ॥२३॥
 तदा जितेदुवाद्यानि ननृतुर्वारयोपितः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र मध्यायाता मुनीश्वराः ॥२४॥
 दिने दिनेऽध्वमेधस्य वार्तां श्रुत्वा महम्मथः । कश्यपोऽत्रिमग्नद्वजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥२५॥
 माकण्डेयो मृकण्डश्च व्यवनो मुद्गलोऽसितः । जामदग्न्यो देवलश्च व्यासो नारायणः क्रतुः ॥२६॥
 विष्माडको नारदश्च तुम्बुरुगालवो मुनिः । शिवदासो भानुदासो हरिदासो महातपाः ॥२७॥
 शिववर्मा रुद्रवर्मा शिवशर्मा मुनाश्वरः । एकशृंगश्चतुःशृङ्गः समशृङ्गस्त्रिशृङ्गकः ॥२८॥
 तिलभांडा भृगुश्चैव भार्गवो चाक्षपतिस्तथा । धौम्यः क्षण्वर्धकपादस्त्रिपादश्चोर्ध्वबाहुकः ॥२९॥

सीताजीको ब्रिहस्पत्या और अपने शिष्यी तथा ऋषियोंक साथ-साथ मध्म पहले रामचन्द्रजीके द्वारा गणेश गौरा आदिका पूजन तथा पुण्याहुवाचन कराया और सीता तथा रामचन्द्रजीका यज्ञकी दीक्षा दी। ध्वजारोपणकी जा विधि होता है, उसके अनुसार ध्वजारोपण और रामचन्द्रजीक द्वारा सार्वत्र ऋत्विजोंका वरण कराया ॥ १०-१४ ॥ सम्पूर्ण कर्मोंक जाता वसिष्ठ स्वयं अध्वर्यु बन । स्वर्ग सह्य जा ब्रह्मा बन और होता बने विश्वामित्रजो । एतानन्द उद्गाता बने, जो जनकजीक गुरु थे। इसके अनन्तर कश्यपादि मुनियोंको रामचन्द्रजीन ऋत्विक् बनाकर वरण किया ॥ १५-१७ ॥ इनके अतिरिक्त जो सकेहों ऋषियोंका रामचन्द्रजीने मन्वान्य कायोंको करनक लिए वरण किया। उन सबने यथासमय कुण्डम अग्निस्थापन करके यज्ञके पात्रोंको अपने-अपने स्थानपर रखवा, विधिपूर्वक श्यामकर्ण धाड़का पूजन कराया और पृथक्-पृथक् रक्षणार्थतः परिक्रमा करनेके लिए उसे छात्र दिया ॥ १८ ॥ १९ ॥ उसको गक्षाके लिए मुमन्त्रके माथ शत्रुघ्नका नेत्रकर भगवान् रामचन्द्रजी अपन गुरुजनको पास चुपचाप जा बैठे। उस यज्ञभूमिमें जहाँ हजारों ऋषि आकर बैठे हुए थे, रामचन्द्रजी भी सीताजीके साथ एक किनार बैठकर शुभ कथारें सुनने लगे। उस समय रामचन्द्रजी केवल आले मृगका चर्म धारण किये और हाथस कुशा लिये हुए एक साधारण वेषम थे फिर भी इनमें करोड़ों सूर्यका तेज था और वे गुह वसिष्ठके पास बैठे थे ॥ २०-२२ ॥ यज्ञका दीक्षा हो जानेपर सब भ्राता पूलका मालाये तथा अच्छे-अच्छे कण्ड पहले बहुत ही सुन्दर दीख पड़न थे। उनकी स्त्रियाँ भी गलेमें सोनेके कण्डे और शरीरमें सुन्दर वस्त्र पहन हमेशा-सदैव। अनेक वस्तुओंका उपहार लिये हुए उसी यज्ञशालामें आ पहुँचीं ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर बाज वज्र और वैद्यनाय नाचने लगीं। उसी समय बहुतसे ऋषिगण आ पहुँचे। अश्वमेध यज्ञका खबर पाकर हजारों महर्षिगण आ-आकर एकत्रित हात जा रहे थे। जैसे कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, माकण्ड्य, मृकण्ड, व्यवन, मुद्गल, असित, जामदग्न्य, देवल, व्यास, नारायण, क्रतु, विष्माण्डक, नारद, तुम्बुरु, गालव, शिवदास, भानुदास, महातपस्वी हरिदास, शिववर्मा, रुद्रवर्मा, मुनाश्वर शिवशर्मा, एकशृंग, त्रिशृङ्ग, चतुःशृङ्ग, सप्तशृङ्ग ॥ २५-२९ ॥ तिलभांड,

ऊर्ध्वपादधोर्ध्वनेत्रश्चोर्ध्वस्यस्त्रिशिगम्यथा । वृद्धभौतमनामाऽथ । पर्णादश्चद्रमस्तकः ॥३१॥
 अथ्यभृगो मन्गोऽथ जाबालिः कुम्भसंभवः । दधीचिः शौनकः सूतः सुनीत्यो लोमशस्तथा ॥३२॥
 वाल्मीकिश्चापि दुर्वासा मुनिर्वेदनिधिर्महान् । एते चान्ये च मुनयः स्वाशिष्यवृत्तयादिभिः ॥३३॥
 केचित्पर्णाशनाः केचिद्वायुभञ्जस्तथाऽपरे । कुशाग्रजल्पानाथ केचित्पक्ताशनास्तथा ॥३४॥
 भिक्षाशनास्तथा केचिन् पद्मसाशनाः परे । अयाश्चाग्रनिनः केचित्पक्तासंभाषणाः परे ॥३५॥
 केचिद्वल्कलमयीताः केचित्काषाययस्त्रिणः । मृगचर्मधराः केचिन् केचिदाकाशवस्त्रिणः ॥३६॥
 वृक्षपल्लववस्त्राश्च केचिन्पञ्चाग्निमाधकाः । धूम्रपानवराः केचिन् केचित्पक्तापणाः परे ॥३७॥
 एवं नानावनागमगिन्द्रिगार्थमादिषु । वामिनस्ते ममायाताः सदागश्च सवालकाः ॥३८॥
 सशिष्या रामचन्द्रस्य द्रष्टुं यतोन्मव वरम् । दशदिग्भ्यो मुनिश्रेष्ठाः कोटिशश्च दिने दिने ॥३९॥
 तान्मर्यान् रामचन्द्रोपि प्रत्युन्धानामनादिभिः । मधुपर्कादिपूजाभिस्तोषयामास सादरम् ॥४०॥
 यज्ञवाटे महारम्ये कामधेनुं गृह्यतमः । पूजयामास विधिवद्वर्षाभरणैरपि ॥४१॥
 सुवर्णशृङ्गाभूषाभिः किंकिणान्पुगादिभिः । एव तां शोभयिन्वाऽथ प्रार्थयामास राघवः ॥४२॥
 धेनो सागरमभूने त्वमन्नानि द्विजादिकान् । दातुमर्हस्यच्चरे मे प्रसीद जगदधिके ॥४३॥
 एवं संप्रार्थ्य तां कामधेनुं गमः प्रणम्य च । वचन्ध पाकशालायां पट्टकूलामनोपरि ॥४४॥
 अथ मां सुरभिस्तुष्टा पट्टमात्रानि मादरान् । ददौ जनकनन्दिन्यं सा देवाध्वरकर्मणि ॥४५॥
 नाग्निकार्यं च तत्रासीत् पाकशालासु चैकदा । इच्छाशनेः सदा पुष्टा बभूवुर्मुनिसत्तमाः ॥४६॥

भृगु, मार्गव, बृहस्पति, धौम्य, कण्व एकपाद, त्रिपाद, ऊर्ध्वपाद, ऊर्ध्वनेत्र, ऊर्ध्वस्य, त्रिशिग, वृद्धभौतम, पर्णाद, चद्रमस्तक, ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कप्यभृग, मतङ्ग, जाबालि, अगस्त्य, दधीचि, शौनक, सूत, मुनीश्वर, लोमश, वाल्मीकि, दुर्वासा, ये एकसे एक विद्वान् मुनिगण तथा और भी कितने ही ऋषि अपने स्त्रो-पुत्री तथा शिष्योंके साथ आत जा रहें थे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उनमें वचनसे ऐसे थे, जो केवल पत्ते खाकर रहते थे । कोई वायु पीकर रहते थे । कोई वृक्षके अग्रभागमें जल लेकर पीत और उसीसे काल यापन कर रहे थे । कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने भोजनको त्याग ही दिया था ॥ ३४ ॥ कुछ ऋषि भिक्षाग्र स्वाते थे, कोई दूमरग वन में भोजनका करन थे (अपने हाथमें आग नहीं धूने थे) और कितने ही ऐसे थे, जो किसीसे माँगना पसन्द नहीं करते थे । कोई कोई तो किसीसे संभाषण ही नहीं करते थे ॥ ३५ ॥ कुछ मुनि बल्कल वस्त्र पहने हुए थे, कोई गेरुआ कपड़ा धारण किये थे, कोई मृगचर्म पहने थे और कोई दिगम्बर (नंगे) थे ॥ ३६ ॥ कुछ महर्षि वृक्षके पत्तोंसे शरीर ढाँके हुए थे, कोई पञ्चाग्नि तापनवाले थे, कोई धूम्रपान (गाँजे और चरस) का रस लिये थे और कोई-कोई ऐसे थे, जिनकी सब प्रकारकी इच्छाएँ ममाप्त हो गयी थीं ॥ ३७ ॥ इसी प्रकार कितने ही जङ्गलों, बगीचों, पर्वतों, किलों और आश्रमोंके निवासी ऋषि अपनी स्त्री तथा वचनोंके साथ वहाँ आ पहुँचे थे ॥ ३८ ॥ रामचन्द्रके उस अश्वमेध यज्ञको देखनेके लिए दशों दिशाओंसे करोड़ों ऋषि इसी तरह अपने शिष्यादिकोंके साथ वहाँ प्रतिदिन आ रहें थे । रामचन्द्र भी उनका प्रत्युन्धान, आसन, मधुपर्कादिसं पूजन तथा आदर करते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसी यज्ञभूमिमें रामचन्द्रजाने विविधपूर्वक अनेक वस्त्रों और आभूषणोंसे कामधेनुका पूजन किया । उसकी सीने सोनेसे मढ़ाई तथा किंकिणी और नूपुर आदि पहनाये । इसी तरह उसको अलङ्कृत करके रामचन्द्रजाने प्रार्थना की — ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे सौरसागरसे उत्पन्न होनेवाली कामधेनी । तुम हमारे अतिथिरूपमें आये हुए ब्राह्मणोंको अन्नादिके दानसे तृप्त रखना । हे जगदम्बिके ! तुम मेरेपर प्रसन्न होओ ॥ ४३ ॥ इस प्रकार बिनती करके एक गलीचा बिछाकर भोजनशाला (रसोईघर) में ले आकर कामधेनुकी दूध दिया ॥ ४४ ॥ इसके पश्चात् उस सुरभीने प्रसन्न होकर आदरपूर्वक छहों रसके अन्न सीताको दिये । सबसे पाकशालामें न तो कोई मट्टी जलती थी और न कोई पदार्थ बनाया जाता था । लेकिन

यान्यान्क्रामान् रामचन्द्रश्चिन्तयामास चेतमि । तांस्तानुभौ मणी शीघ्रं कल्पयामासतुर्द्वयम् ॥४७॥
 तथा भीताऽपि यान् कामाश्चिन्तयामास चेतमि । कामधेनुर्ददौ तांस्ताञ्छाद्यं श्रैलोक्यदुर्लभम् ॥४८॥
 सर्वत्र यज्ञवाटे हि द्विजाद्यैश्च समततः । पत्तिषु भूमिजादीनां पश्विषणकर्मणि ॥४९॥
 स्त्रीणां ककणनादश्च शुश्रुवे नृपुरुषानिः । अथ रामश्च मौमिषि समाहूयेदमब्रवीत् ॥५०॥
 सीमाचारान्ममाहूय मम वाक्याच्च मादरम् । आज्ञापयस्व शीघ्रं त्वं शासनं यन्मयोच्यते ॥५१॥
 ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः । यः कश्चिद्वा ममायानि पथिकः स ममाज्ञया ॥५२॥
 निवारणीयो युष्माभिर्न कदाप्यध्वरे मम । ममाज्ञां न प्रतीक्षध्व कोपः कार्यो न कस्यचित् ॥५३॥
 इति रामवचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । सीमाचारान् ममाहूय गणवोक्तं न्यवेदयत् ॥५४॥
 ततो रामः पुनः प्राहः समाहूयाथ लक्ष्मणम् । ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः ॥५५॥
 मूर्तीनां दयिता बालाः शिष्याः सम्यन्धिनस्तथा । पौरा जानपदस्थास्तु तेषां सवधिनः स्त्रियः ॥५६॥
 दासीदामजनाः सर्वे यद्यद्राजति लक्ष्मण । मामपृष्टा तु तनेषां दानव्यं ह्यविचारितम् ॥५७॥
 अन्यजावधि सर्वान् हि तोषयध्व निरन्तरम् । न केषामभिलाषा च विकला हि विधीयताम् ॥५८॥
 अयोध्यां कामधेनु च जानकीं कौस्तुभं मणिम् । चिन्तामणिं पुष्पकं च राज्यं कौशादिकं च मे ॥५९॥
 एतेष्वपि च यो यद् यच्चयिष्यति तत्त्वया । न दत्तं चेति वै श्रुत्वा ममानोषो भवेत्त्वयि ॥६०॥
 अतो ज्ञान्वा भयं मनो ददस्व ह्यविचारतः । याञ्चामङ्गः कुनश्चैद्दि मच्छिगेहा भविष्यमि ॥६१॥
 सदा स्मर गिरं मे त्वमिमां लक्ष्मण मादरम् । इति रामकृता शिक्षामङ्गीकृत्य स लक्ष्मणः ॥६२॥

तथा चकार तत्सर्वं यथा रामेण शिक्षितम् ॥६३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरिततर्गतश्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे

लक्ष्मणाज्ञाकरणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

वहाँपर आय हुए सब ऋषि इच्छाभोजन कर करके प्रसन्न हो रहे थे ॥ ४५ । ४६ ॥ जिन-जिन वस्तुओंका राम-चन्द्रजीन अपने मनमें चाहा, उन सबको उनके दा मणियों (कौस्तुभमणि तथा चिन्तामणि, न बातकी बातमें पूरा कर दिया ॥ ४७ ॥ इसी तरह साताजीन जो कुछ चाहा, सो कामधेनुने श्रैलोक्यकी दुर्लभ वस्तुओंको भी देकर उनको इच्छा पूरी की । यज्ञभूमिके चारों ओर जब ग्राहणकी मण्डली भोजन करनेके लिए बैठी थी और म्रियों उनको भोजन परोसनेके लिए आती थी तब उनके भूषणोंका मञ्जुल ध्वनि सुनायी देती थी । इसके तदनन्तर रामचन्द्रजीन लक्ष्मणको बुलाकर इस प्रकार समझाया— ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हमारी यज्ञभूमिके आस-पास रहनेवाले निवासियोंको सादर बुलाकर हमारी तरफसे यह समझा दो कि आजसे लेकर जो कोई ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, सन्यासी, मुनियोंकी पत्नियाँ, उनके वत्स, शिष्य, सम्बन्धी, पुरवामो, देशनिवासी और उनके सम्बन्धी, जो कोई यहाँ आ जाय, उसे कोई न राके । इसका सत्कार करनेके लिए मेरी आज्ञाका प्रत द्वा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ५१—५२ ॥ रामचन्द्रजीक आज्ञानुसार लक्ष्मणजीने सब आस-पासके निवासियोंको जाकर समझा दिया । कुछ देर बाद रामचन्द्रजीने फिर लक्ष्मणको बुलाकर कहा कि मुनियोंकी स्त्रियों तथा बच्चों आदिका अथवा दाम दत्तापणकी जिस किसी वस्तुकी आवश्यकता हो, वह बिना हमसे पूछे उनके इच्छानुसार देते जाओ ॥ ५४—५५ ॥ चाण्डालसे लेकर विप्रतक प्रत्येक प्राणिक सन्तुष्ट करो । किसी की किसी प्रकारका कष्ट न होने पाय । किसीका कोई अभिलाषा विकल न हो । अयोध्या, कामधेनु, साता, कौस्तुभमणि, पुष्पक विमान, राज्य तथा कौशादिक इन सब वस्तुओंको भी देनेसे यदि तुमने इनकार किया तो मैं तुम्हारे ऊपर बहुत नाराज होऊँगा । इसलिए मेरे क्रोधसे डरते हुए बिना किसी प्रकारका विचार किये सब अभ्यागतोंको उनकी अभिलषित वस्तु देते जाओ । तुम किसीकी माँग खाली करोगे तो तुम्हें मेरा सिर काटनेका पातक लगेगा ॥ ५८—६१ ॥ हे लक्ष्मण ! सदा मेरी इन बातोंका ख्याल

पूज्यादरात्ममैत्र्यं तं शत्रुघ्नं विमर्षनिर्जैः । समस्तं निजकोशादि समर्प्य भगधाधिपः ॥१६॥
 पौमन् जानपदान्स्वस्त्रीः सुहृत्तनयमित्रिणः । पौरपत्नीर्जात्रपदपत्नीर्विश्रान् पुगेधसम् ॥१७॥
 प्रेषयामास साकेने वाहनैरश्वरं प्रति । स्वयं सैन्येन तुरगचरणाननुलक्ष्य च ॥१८॥
 शत्रुघ्नवागनुवर्ती बद्धहस्तपुटो ययौ । एवं सर्वेऽपि राजानो ज्ञातव्याः सर्वदिविस्थिताः ॥१९॥
 न केनापि श्यामकर्णो बद्धो नृपतिना भुवि । इन्द्रार्घ्यनिर्जरैर्नापि नासुराग्रैः कदाचन ॥२०॥
 ततो बाजी पूर्वदेशानगबन्धकलिंगकान् । तथा नानाविधान्देशान् विलंघ्य जलधेस्तटम् ॥२१॥
 दृष्ट्वा नृपकुलैर्पुत्तो दक्षिणाभिमुखो ययौ । गोदावरीं नदीं तीर्त्वा देशमात्रं च द्राविडम् ॥२२॥
 अतिक्रम्यारवाराख्यं देशं समतिक्रम्य च । काश्मीरप्रदेशान्सकलान्यप्यन्नानाविधाञ्छुभान् ॥२३॥
 कावेरीं समतिक्रम्य चोलदेशं विलंघ्य च । सेतुबन्धं ततो दृष्ट्वा पश्चिमाभिमुखो ययौ ॥२४॥
 ताम्रपर्णीं विलंघ्याथ समतिक्रम्य केरलान् । द्विषट्प्रकारान् देशांश्च गोकर्णं च ततो ययौ ॥२५॥
 कृष्णातीरप्रदेशांश्च समतिक्रम्य घोटकः । कर्णाटकं महादेशं समतिक्रम्य सत्वरम् ॥२६॥
 कोंकणं समतिक्रम्य तत्तद्देशनृपैः सह । भीमान्देशान् समकलाञ्छयामकर्णः शुभावहः ॥२७॥
 पश्यन् ययौ महाराष्ट्रं गौतमीं तं विलंघ्य च । विदर्भं समतिक्रम्य ययावामीरमंडलम् ॥२८॥
 मालव समतिक्रम्य तीर्त्वा पुण्यां महानदीम् । तीर्त्वा स भ्रमरीं पुण्यां समतिक्रम्य गुर्जरम् ॥२९॥
 प्रभामं च ततो गत्वा ययावानर्नमुत्तमम् ।
 मौवीरान् समतिक्रम्य ययौ बाजी म माथुरान् । सौराष्ट्रान्ममतिक्रम्य मरुदेशं ययौ हयः ॥३०॥
 धन्वदेशमतिक्रम्य ययौ सागस्वतानथ । मत्स्यान् देशानतिक्रम्य ययौ बाजी म माठरान् ॥३१॥
 शूरसेनानतिक्रम्य पांचालान्तुगो ययौ । कुरुक्षेत्रं ततो गत्वाऽतिक्रम्य कुरुजांगलान् ॥३२॥
 देशं कंकैयमुलंघ्य ययौ काश्मीरमुत्तमम् । मिहल्लदेशं गौडदेशं शकदेशं ययौ हयः ॥३३॥
 ययनान्ताग्रदेशांश्च समतिक्रम्य वैगतः । पश्यन्नानाविधान् देशान् कर्तव्यातटेन वै ॥३४॥

और वह आदरके साथ अपना सर्पतिसे शत्रुघ्नकी पूजा की । समस्त निज कोशादि शत्रुघ्नको अर्पण करके पुरवासियोको, अपने बुट्टम्बको, जनपदवासियोंको एवं अपने मित्र-जान्धवोंको वाहनोक साथ अश्वमेध यज्ञमें अयाध्या भज दिया । किन्तु स्वयं सेनाके साथ शत्रुघ्नके वधवर्ती होकर यजीय अश्वके चरणोंको लक्ष्य करके साथ-साथ चले । इसी तरह सब देशोंके राजा लोग शत्रुघ्नके वधवर्ती होकर अश्वके पीछे-पीछे चले ॥ १४-१९ ॥ पृथ्वीपर किसी भी राजाने श्यामकर्ण घोटके नहीं बाँधा । न स्वर्गमें इन्द्रादि देवताओंने और न पाताललोकमें असुरोंने उसे बाँधा ॥ २० ॥ उसके बाद घोड़ा अङ्ग बद्ध-कलिंगादि अनेक देशोंमें होता हुआ समुद्रतटपर पहुँचा ॥ २१ ॥ वहाँसे नृपसमूहके साथ वह दक्षिण दिशामें गया । फिर गोदावरी नदीको पार करके आंध्र, द्विषट्, कारवार नामक देशोंका अतिक्रमण करके नाना प्रकारके मनोहर प्रदेशोंमें घूमता हुआ कावेरी नदीको पार करके चोलदेशमें आ पहुँचा । वहाँसे समुद्रतटपर सेतुबन्ध रामेश्वर होकर पश्चिम दिशामें गया ॥ २२-२४ ॥ वहाँसे वह घोड़ा ताम्रपर्णी नदीको लाँघ तथा केरल देशका अतिक्रमण करके गोकर्ण तीर्थमें आ पहुँचा ॥ २५ ॥ वहाँसे कृष्णा नदी उतरकर वह छोड़ा कर्णाटकमें पहुँचा ॥ २६ ॥ वहाँसे कोंकण देशको पार करके तत्तद्देशीय राजाओंके साथ भीमा नदीको लाँघता हुआ महाराष्ट्रमें आ पहुँचा ॥ २७ ॥ वहाँपर गौतमी नदीको लाँघकर विदर्भ देशमें होता हुआ आभीरमण्डलमें पहुँचा ॥ २८ ॥ वहाँसे मालवा होता हुआ महानदी पुण्याका अतिक्रमण करके गुजरातमें पहुँचर ॥ २९ ॥ वहाँसे प्रभास तीर्थमें आकर आनर्त देशको गया । फिर सोवार आदि देशोंको पार करके घांड़ा मथुरा प्रदेशमें गया । वहाँसे सौराष्ट्र देशको लाँघकर मरु-देश (मारवाड़) में पहुँचा ॥ ३० ॥ उसके बाद धन्व नामक देशका अतिक्रमण करके सरस्वतीके तीरपर गया । वहाँसे मत्स्य देशमें घूमता हुआ माठर देशमें गया ॥ ३१ ॥ उसके बाद वह श्यामकर्ण घोड़ा कुरुक्षेत्र, पञ्चाल, कुरुक्षेत्र, जांगल एवं कंकैय देशमें भ्रमण करता हुआ कश्मीर गया । वहाँसे मिहल्लदेश,

ययौ बाजी वायुगत्या शोघ ज्वालामुखीं प्रति । दोषमात्या करतोयां तीर्त्वा नैवाग्रतो गतः ॥३५॥
 कर्मनाशानदीस्पर्शान् करतोयाविलम्बनात् । गंडकीं बाहुनग्णादुर्मः स्खलति कीर्तनात् ॥३६॥
 हरिद्वारं ययौ बाजी ततो गङ्गातटेन हि । हिमाद्रेः मन्निधौ देशान् समतिक्रम्य वेगतः ॥३७॥
 बद्रिकाश्रममालोक्य कलापशामकामिभिः । संमानितस्नदा बाजी गत्वा तन्मानसं सरः ॥३८॥
 दृष्ट्वा हरिहरक्षेत्रं मिथिलां प्राप सेनया । नानादेशानतिक्रम्य ह्यार्यावर्तं ययौ ह्ययः ॥३९॥
 दृष्ट्वा कशीं त्रिवेणीं च ह्यनर्वदीं ययौ जवान् । शृङ्गवेगपुं गत्वा तमसां तां त्रिलंघ्य च ॥४०॥
 गत्वा स नैमिषारण्यं ममुन्लब्ध्याथ गोमतीम् । ब्रह्मावर्तं मगे गत्वा पश्यन् देशान् मनोरमान् ॥४१॥
 कोमलाख्यं महादेशं दृष्ट्वा बाजी मनोरमम् । ततः माकैतविषये षण्मासैः प्राप चाप्चरम् ॥४२॥
 नानादेशनृपैः सार्धं शत्रुधनेनाभिरक्षितः । आगतं श्यामकर्णं तं ज्ञान्वा सीतापतिस्तदा ॥४३॥
 आह्वापयन् च सौमित्रिं सोऽपि प्रपुञ्जगाम तम् । वारणेंद्रं पुरस्कृत्य मेरीदुदुभिनिःस्वनैः ॥४४॥
 वारस्त्रीणां नृत्यगतिर्वेदघोषाद्विजोर्गतः । सपूज्याथ श्यामकर्णं नृपतींश्च मविस्तरम् ॥४५॥
 आनयामास सौमित्रिः शनैरधरमडपम् । महान्मयो महान्मातदा तुरगदर्शने ॥४६॥
 दशयोजनपर्यंतं सर्वत्र जगदीतलम् । व्याप्तं ममं ततोऽयोध्यावर्हिर्नृपगणैस्तदा ॥४७॥
 तत्र सर्वत्र राजानः पूर्वमप्रपिताञ्जनान् । पागान् जानपदान्स्त्रीश्च पश्यन्तां भ्रमरोपमाः ॥४८॥
 सन्येन वभ्रमु सर्वे स्वीयदर्शनलालसाः । न प्रापुर्दृष्टेन तेषां जनीधेऽध्वरमडपे ॥४९॥
 केचित्ते दर्शनं स्वानां प्रपुंस्तत्र परेऽहनि । केचित् नृनीये दिवसे पंचमे मसमेऽथ वा ॥५०॥
 केचिदुदुभिघोषेण प्रागुः स्वानां प्रदर्शनम् । केचित् पश्चानन्तरं हि मासेनानन्तरं जनाः ॥५१॥
 केषां विधौग एवार्थाच्चिरकालं तदाऽध्वरे । तज्ज्ञान्वा रामचन्द्रोऽपि लक्ष्मणं ग्राह मादरम् ॥५२॥

गोहृदय, शकटय, यवनाक दण एवं तास्रदणस निकलकर करताया नदीक तटवती नानाविध मनाहर
 दृषयाका दम्बता हुआ बरं जगमे जगत्सामुदाय पावय प्रदणम गया ॥ ३५-३६ ॥ वहाँस करतोया नदीका पार
 करक अ.गंरु प्रदणाम नहा गया । वहीक कर्मनाशा नदीका स्पर्श करनसे, करतोयाका ललवन करनसे, गण्डकी
 नदीका बाहुओ द्वारा तैरन और घामिक काम करक उसका बगवान करनसे घमका क्षय होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥
 वहाँस बहु गङ्गाके तट ही तट हु कर हरिद्वार गया । वहाँसे हिमादयके प्रदणम जाकर बद्रिकाश्रम पहुचा ।
 वहाँस कलापशामनिवासियोंका अतिशयण करक बहु घाडा आर्यावर्तं देशम गया ॥ ३७-३९ ॥ वहाँसे बाजी
 और गङ्गातटपर घूमता हुआ वगुरूक अन्तवदाम गया । फिर शृङ्गवेगपुंम जाकर तमसाको पार करक
 नैमिषारण्यम गया । वहाँस ग.मनो और ब्रह्मावर्तं सरावरका जाकर मन हर दणया दम्बता हुआ कोसल
 देशम पहुचा । इस प्रकार छ नह नामे घूमता हुआ वह अन्ध फिर अयोध्याके निकटवर्ती अश्रमयके यज्ञमंठपने आ
 पहुँचा ॥ ४०-४२ ॥ अनेक देशके राजाओक साथ शत्रुधन अभिर्नक्षित यज्ञाथ छोड़े हुए श्यामकर्ण घोड़ेको आवा
 हुआ सुनकर सीतापति रामचन्द्रजोने उसको लानक लिय लक्ष्मणको आज दी । लक्ष्मणजी हाथीपर चढ़कर
 बड़े उत्साहक साथ उसकी अगवाना करनक लिए गए । व विविधपूर्वक श्यामकर्ण घाडका और राजाओंको पूजा करके
 उसे घीरे-घारे यज्ञमण्डपमे ले आये । उस समय घाडका देखनक लिए प्रजावर्गम बड़ा उत्साह था ॥ ४३-४५ ॥
 यज्ञात्सबके समय अयोध्याके बाहर इस याजनतक सम्पूर्ण पृथ्वामण्डल राजा म.राजाओ तथा अमीर-उम-
 रावसे भरा था ॥ ४७ ॥ यजन इतनी भेद था कि श्यामकर्ण अश्रमके साथ भ्रमण करके लौट हुए राजा लोग
 पहिलेसे भंज हुए अपने स्व पुत्र बान्धवोंक लाजन हुए । उनको देखनेका इच्छामे दूसर उधर घूमन रहे, पर उस
 यज्ञकालिक जनसमुदायमे उन लाजको प्राप्त नही कर सके ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ कोई लाजन-लाजन दूसरे दिन भिन्न-
 बान्धवोंसे भिन्न सका । कोई हमरे दिन, कोई पाँचव रोज और कोई सातव रोज मिला ॥ ५० ॥ किसीको
 मगाड़ेको ध्वनिमे स्वजनको पता लगा । किसीका एक पखवारके बाद और किसीको एक मासके बाद
 पता लगा ॥ ५१ ॥ किसीको चिरकाल तक पता ही नहीं लगा । यह सुनकर भगवान रामचन्द्रजोने लक्ष्मणसे

परस्परं वियोगोऽत्र ममर्हेन तु लक्ष्मणः जायने तत्र युक्तिं त्वं मत्तः श्रुत्वा कुरुष्व ताम् ॥५३॥
 तमसायास्तटे शालां कृत्वाऽद्य महतीं शुभाम् । घोषणीयश्च सर्वत्र महादं दुर्भिनःस्वनैः ॥५४॥
 येषां वियोगस्तैर्गत्वा तमसातटशोभिताम् । शालां प्रवेशयध्वं हि स्वानां योगोऽस्तु तत्र हि ॥५५॥
 चतुष्पदादिवस्तूनि ज्ञात्वा यस्य लघून्यपि । तत्रैव स्थापनीयानि स्वं स्वं गृह्णन्तु ते जनाः ॥५६॥
 इति रामवचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा चकार तन्मयं येन योगः परस्परम् ॥५७॥
 सर्वे तत्र जनाः प्रापुः स्वानां स्त्रीचालमत्रिणाम् । चतुष्पदादिवस्तूनां तत्र लाभो बभूव ह ॥५८॥
 यत्किञ्चिदस्मृतं येन तद्दृष्ट्वाऽभ्येन वै तदा । शालायां स्थापितं दृष्ट्वा त्वयं जग्राह तत्र सः ॥५९॥
 एव श्रीरामयज्ञे हि समर्द्धः संवभूव ह । न तत्र शुश्रुवे शब्दः कर्णेऽप्युक्तो जनैस्तदा ॥६०॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तस्यैव मनसि च सु ॥६१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे अष्टागमनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(रामका कुम्भोदर मुनिसे साक्षात्कार)

श्रीरामदास उवाच

अथ ते ऋत्विजः सर्वे मंगलविधिषैः शुभैः । नम्यक् प्रवर्तयामासुर्वाजिमेषं यथाविधि ॥ १ ॥
 तत्रन्विजो वाजिमेषे ग्निक्रीशेयवामसः । ममदम्या विरेजुन्ते यथा दृशहणोऽध्वरे ॥ २ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुरेशसहितैः सुरैः । स्वामिना विघ्नराजेन पार्वत्या वृषमस्थितः ॥ ३ ॥
 महेश्वरो यज्ञवाटं रामाहूतो यथा गणैः । शिवमागममाज्ञाय प्रत्युद्रम्याथ लक्ष्मणः ॥ ४ ॥
 वारणेंद्र पुरस्कृत्य पताकाध्वजतारणैः । नानाबाधमुद्योपथ वारस्त्राणां प्रनर्तनैः ॥ ५ ॥

कहा—॥ ५२ ॥ यहाँ भोटके कारण परस्पर लोकोका वियोग हो जाता है । असएव मैं एक युक्ति बतलाना हूँ । उसको करो ॥ ५३ ॥ तमसा नदीके तटपर एक बड़ी भारी शाला वनवाओ और दुगदुगी पिटवा दी कि भूले-भटकोको खोजना हो तो तमसा नदीके तटपर जहाँ नगी शाला बनी हुई है, वहाँ जाओ । वहाँपर भूले-भटकोको खोज पाओगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ लोगोंकी बडीस लेकर छोटी छोटी भा खोयी हुई वस्तुएँ खोज-खाजकर वहाँ रखी हैं । वहाँ जिस-जिसकी जो-जो वस्तु हो, वह अपनी-अपनी वस्तु ले ले । इस प्रकार रामजीके वचन सुनकर लक्ष्मणने कहा—अच्छा महाराज ! ऐसा ही करेगा । इसके बाद लक्ष्मणजीने ऐसी व्यवस्था की, जिससे सबका अपने नियुक्त वायव्योसे मिलान होने लगा ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ नियुक्त वस्तु वहाँ गये और सबको अपने अपने स्त्री पुत्र-मित्रादि और चतुष्पदादि पणु सभी छोड़ी हुई चीजें मिल गयी । जहाँ-कहींपर जिससे जो वस्तु भूलसे छूट गई, उस वस्तुको राजानुचरोंने तथा जिसने देखी एवं जिसका मिली, उसीने वहाँ शालामें रखवा दी और जिसकी वह वस्तु थी, उसने वहाँ जाकर ले ली ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार श्रीरामजीके यज्ञमें ऐसी भोट हुई कि जिसके कारण कानमें कहा हुआ भी शब्द मनुष्योंका नहीं सुनाई पड़ता था ॥ ६० ॥ यज्ञ भगवान्के दशन करके सब राजा लोग अपने-अपने स्त्री-पुत्र-मित्रादिकोको लेकर अलग अलग तन्मुखों (लेमों) में रहने लगे ॥ ६१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे अष्टागमनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे इसके अनन्तर सब ऋत्विक् मंगलमय कृत्योंके साथ-साथ शास्त्रानुसार अश्वमेध यज्ञ करवाने लगे ॥ १ ॥ उस समय यज्ञमें रत्नमय आभरणों और वस्त्राको पहिन हुए ऋत्विक् ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे इन्द्रके यज्ञमें सुशोभित हात थे ॥ २ ॥ उसी समय वहाँ रामजीके कुलावेशे बैलपर चढ़कर महादेव और पार्वतीजी आयीं । उनके संग इन्द्रादि देवता, स्वामिकातिकेय, गणेशजी एवं प्रमदादि सब गण भी आये ॥ ३ ॥ महादेवजीका आगमन सुनकर सम्पूर्ण नगर खज-पताका आदिसे सजाया गया ।

संपूज्य शंकरं भक्त्या चानयामास मदपह् । रत्न नम एतान्यग्रे शब्दा रामोऽपि शंकरम् ॥ ६ ॥
 नमस्कृत्य समालिख्य विश्वेश गिरिजावृतम् । हेमावले मण्डित्य हेमपात्रे स्वहस्ततः ॥ ७ ॥
 पादप्रक्षालनं शोभोश्चकार सीत्या प्र ॥ हेमानमि-द्वयार्थं मणि रत्नादिचित्रया ॥ ८ ॥
 जलधारां यथायोग्यां मोचयामास जानका । तस्मिन् गगन मीमां हृष्टा दधमणास्नदा ॥ ९ ॥
 अनिमेषाः कञ्जनेत्रकटाक्षाः सन्निगाक्ष्य ह । तस्माच्च नोपमः श्रमन् न विदुः के वयं त्विवा ॥ १० ॥
 तुष्टुस्तत्र केचित्ते सुराः श्रीराघवं मुदा । जलार्तां तुष्टुः केचित् प्रवद्वकरमम्बुदाः ॥ ११ ॥
 एव निर्जग्मयानां संतोषस्त्रयं वै ह्यभूत् । अनापम्य तयोर्दृष्ट्वा रूप कोटिर्गविप्रभम् ॥ १२ ॥
 अथ रामः मानसा हि शंकरं गिरिजामपि । स्वयं संपूज्य सकलान् देवान् सौमित्रिणा कर्षीन् ॥ १३ ॥
 पूजयित्वाऽत्रयाद्वाक्यं शंकरं लोकशंकरम् । अथ धन्याऽस्म्यहं देव दशनात्तत्र सीतया ॥ १४ ॥
 अद्य मे सूर्यवशोऽस्मिन् जन्म माकल्यतां गतम् । इति रामस्य वचनं श्रुत्वा स शशिभूषणः ॥ १५ ॥
 विहस्य राघवं प्राह वेदि माया हरं नर । न्वन्नाभिकमले ब्रह्मा जातस्तस्मान्मुनाश्वराः ॥ १६ ॥
 मरीच्याद्याः मन्त्रभृवुः पात्राः सप्ताहर्नाजमः । मरुतेः कश्यपः पुत्रः सृष्ट्युत्पत्तिविधायकः ॥ १७ ॥
 कश्यपात्मविना जज्ञे पौत्रपौत्रस्वर प्रभो । रवेर्जातः सूर्यश्चन्द्रश्च तव जन्म वै ॥ १८ ॥
 न्वद्वंशमभवः सूर्यः किं मां मोहयसि प्रभो । देवानां कार्यमिदृशमार्त्ताणोऽपि मायया ॥ १९ ॥
 कुरु क्रीडां यथेच्छं नवं यायायजदिकीर्तुः । शिशां करोषि लोकानां बहुष्यहं रोष्टते तव ॥ २० ॥
 इति श्रुत्वा शंभुशर्करा गीतागमो विहस्य च । ब्रह्मकुडमर्मापे तु तस्थुर्गुह्यमन्निर्धौ ॥ २१ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र महाजग्मुः महस्त्रजः । गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धास्तथा चागम्यन्तां मणाः ॥ २२ ॥
 लोकपालाश्च दिक्पाला स्मानलनिशगिनः । नवग्रहाः षट्पुत्राः पष्टिमध्वगस्तथा ॥ २३ ॥

व याओंक ताता प्रकारक नाव और अन्क तरह वे देव नर साथ हाथपर चढ़कर दधमणा उनको
 अगवानाके लिए गये । ४ ॥ ५ ॥ वे भक्तिपूर्वक शंकरभगवाद्की यज्ञमण्डपमें ल आये । रामजीन भी उनको
 आत दखा ता पांच सात पाग भाग वन्तर शंकरजीका प्रणाम किया । शिव पार्वतीका मन्तर करके सवणभय
 सिंहासनपर बैठाया । सीताक साथ गद्य राक्षसे अपने हाथ में रत्न-नवविन एक बटु में मुक्तक पाचभ दोनोका
 पादप्रक्षालन किया । जानकी ने गारभगवाके करपापर गिरवन्त जलधरा जाली । उपस्थित देवतागण
 निमित्तप नेत्रमं ५ राम १५ ॥ १० ॥ अनूपम जाना दक्षय चित्रचित्रित स हो भव उनको यहूतिक जान
 नहीं रहा कि मे कीन हूँ । ६-१० ॥ इस समय दधमण नद ह वर श्रीरामचंद्र और मारागो म ताकी स्तुति
 करने लग ॥ ११ ॥ इस प्रकार म ना और रामना काटि मूरका कार्त्तिक समान प्रभाजाना अनुपम मोऽयं
 दखकर देवताओंको अनाव प्रमत्ता हुई ॥ १२ ॥ इससे बाद म ना और दधमण मन्त्र स्वयं रामजीन शिव-
 पावनो तथा सब देवताओंका पूजा का ॥ १३ ॥ यज्ञशर्क कस्याण करनेव ले शंकरकी पूजा करके रामजी कहन
 लगे-हे भगवन् ! आज मे धन्य होनाया ॥ १४ ॥ आज आप ताकी दखके मेरा जन्म गदण करना सफल
 हुआ । इस प्रकार रामजीक वचन सुनकर शशिभूषण ५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥
 मायाका मे जानता हूँ । अपना नावमन्त्र ब्रह्म १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥
 ॥ १६ ॥ उन निष्पाप भरात प्रभुति म मुर्न करन म ना ह पुत्र कल्या हूँ । जेनो सृष्टिको विस्तृत
 किया ॥ १७ ॥ उन कश्यपक पुत्र सुर्य हूँ । हे प्रभो ! इस प्रकार आगे पोचक पाग राम सूर्यवंश चला । उस
 सूर्यवंशम आपका जन्म हुआ । यह सब आपका माया हुआ है । क्या आर मुने अपने मायाजन्म फंसाते है ?
 आप अपनी मायासे देवताओंक कर्त्तव्य करनेक लिए सूर्यपर अवतर्ण हुए है ॥ १८ ॥ १९ ॥ यात्रा-
 यज्ञादि कीनुकोल आप यथेच्छ आज्ञा करिय । मे जानका सब देवताओंका समझता हूँ आप संसारको शिक्षित
 करनेके लिए ही ऐसा करते है ॥ २० ॥ इस प्रकार शिवजीक कथनको सुनकर साता और रामजी हंस ।
 तदनन्तर वे यज्ञकुण्डक समीप स्थित गुरु वसिष्ठके पास गये ॥ २१ ॥ इसा समय हजारो यक्ष, गन्धर्व, किन्नर,

ऋक्षाणि त्रिष्यो योगाः कम्पानि च राशयः । पर्वतास्तरवः सर्वे मगराश्च नदा अपि ॥२४॥
 मरीचराणि नद्यश्च वाप्यः कूगस्नश्चाधरे । घृन्वा जंगमरूपाणि ययुस्ते यज्ञमण्डपम् ॥२५॥
 ममागलश्च संपातिर्गुहको मकरध्वजः । ममापयौ म लङ्काया राक्षसश्च विभीषणः ॥२६॥
 भगिनी राघवेणापि सर्वं तस्थुः प्ररुजिताः । स्यान्निके स्थाणिताः पूर्वं तत्रैवामन् प्लवंगमाः ॥२७॥
 एन्मिन्नन्तरे तत्र समायातो मुनीश्वरः । कुम्भोदरो महातेजाः सीमाचारैर्विलोकिताः ॥२८॥
 तं दृष्ट्वा भयभीतास्ते सर्वे प्रोचुः परस्परम् । हा कष्ट पुनर्गयातः मोक्ष कुम्भोदरो मुनिः ॥२९॥
 यात्राश्रमो राघवस्य यन्तिमित्तो बभूव ह । यद्वाक्यादश्चमेभोऽपि सर्वेषां मयभूव ह ॥३०॥
 महान् श्रमोऽश्वरुष्टं तु श्रमतां जगतीतले । अभुनाऽपि समायातः किमग्रे वै पुनस्त्वयम् ॥३१॥
 कार्प्यति न तद्दिष्टो राघवस्यापि निन्दकः । एवं नानात्रिधा वाचः सीमाचारगणैरिताः ॥३२॥
 मृण्वन् कुम्भोदरस्तुर्णी ययौ यज्ञश्रुतं प्रति । तदागमनपूर्वं स सीमाचारैर्निवेदितः ॥३३॥
 घाघद्भिर्वेपमानैश्च स्खलद्वाग्भिस्त्वरान्वितैः । राघव गम महाबाहो हे लक्ष्मण भृशु प्रभो ॥३४॥
 यात्रायज्ञश्च यद्वाक्यात् समायातः म वै पुनः । कुम्भोदरो मुनिश्रेष्ठो राम त्वय्यपि निष्ठुरः ॥३५॥
 तद्दृष्ट्वा च न श्रुत्वा सर्वे तद्दर्शनीन्सुकाः । त्यक्त्वा स्त्रीयानिकर्माणि चोत्तस्युस्तद्दिदृक्षुया ॥३६॥
 कृत्विजो राघवः सीता न भयं मेनिरे मुनेः । कुम्भोदरो यज्ञवाट ययौ स्वविलोकिताः ॥३७॥
 अतिस्वर्चः स्थलशिखाः श्यामकणाः सपादुकः । स्थूलोदरः पिंगनेत्रः सकोर्पानो जटाधरः ॥३८॥
 चीरवासाः खड्गपादः खर्वहस्तो महामुनिः । युवा किञ्चिन्ममश्रुयुक्तो धृतदण्डकमण्डलुः ॥३९॥
 तं दृष्ट्वा सकला लोका भयं प्रापुः स्वचेतसि । पूर्वकर्म च सस्मृत्य सश्रुत्य च परस्परम् ॥४०॥
 एतांमिन्नन्तरे राघवः द्वाघ्र प्रत्युज्जगाम तम् । साष्टांगं प्राणपण्याथ करं घृन्वा तु मण्डपम् ॥४१॥

सिद्ध, चारण एवं अप्सराओका गण आया ॥ २४ ॥ सम्पूर्ण लाकपाल, दिक्पाल तथा नागल, कवासो भी आये । नवों
 सह, छहों ऋतुयें, सानों सम्बन्धर एवं तिथि नक्षत्र योग करण राशि पक्षत वृक्ष समुद्र नद नदा कूप तालाव तथा
 अन्य सूक्ष्म प्राणी सभी अपने जङ्गम रूप धारण करके रामके यज्ञम आये ॥ २५-२५॥ सुधराज संपाति, निषादराज
 एवं मकरध्वज आये तदनन्तर सभी राक्षसोंके साथ लकासे विध्वंसन आ आये ॥ २६ ॥ भगवान् रामने सबको
 पूजा की और अपने समाय बैठाया । बन्दर पहनते हा वहाँ टिक थे ॥ २७ ॥ इसी समय महान्जो
 कुम्भोदर मुनि आये । यज्ञ भूमिका साम, पर निवास करनेवालीन उन्हें अत हुए देखा ॥ २८ ॥ वे देखकर बड़े
 भयभीत हुए और बोले 'आह ! बड़े कष्टका बात है । यह तो फिर व कुम्भादर मुनि आ गये ॥ २९ ॥ जिनके
 कारण भगवान् रामका यात्राका कष्ट हुआ था, जिनके कारण हम सबका अभ्यमय हुआ गया ॥ ३० ॥ घाड़के
 पाँह पाँह संसारमें धरसे उधर उधरसे इधर घूमते हुए अत्यन्त कष्ट भाग्य । अब यह फिर आये है । अब
 आगे क्या करेगा, सा हमलाग नहीं जात ॥ यह राम जाका बड़ा निन्दक है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सीमाचारी
 लोगोंको बर्णितकर सुनते हुए, कुम्भादर चुपचाप यज्ञभूमिम आये ॥ ३२ ॥ उनके आनेके पूर्व ही बड़े वेगसे
 भागते-पापते हुए दूतोंने आकर रामसे निवेदन किया- ॥ ३३ ॥ हे राम ! हे महाबाह ! लक्ष्मण ! हे प्रभा ! आप
 लाग सुने । जिसके वाक्यसे आपने माया और यज्ञाका है, वहाँ कुम्भादर मुनि फिर आये हैं । हे राम ! आपके
 ठीकर उनका बड़ा कठोर भाव है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस तरह दूतके वाक्य सुनकर सब अपने अपने कार्योंको
 छोड़कर उन्हें देखनेको उठे ॥ ३६ ॥ कृदिके लाग, सता तब रामजा मुनिस भयभीत नहीं हुए । उनके देखते-
 देखते वे कुम्भादर मुनि यज्ञभूमिम आ पहुँचे ॥ ३७ ॥ जो बड़े नाट थे । जिनका मस्तक बड़ा था । जिनको नाड़ियाँ
 उभड़ी थी । जिनके श्याम कण थे । जो खट, ऊँ पहन हुए तथा न्यूल उदरवाले थे । पाँह-पाँह जिनके नत्र थे । वे
 कीर्णन पहिन तथा जटा धारण किये थे ॥ ३८ ॥ चौर पहिन हुए वे छोट छोट हाथीवाले थे । युवा होनेसे
 जिनके मूँछे आ रही थी और जो दण्ड-कमण्डलु धारण किये हुए थे ॥ ३९ ॥ उनका देखकर सम्पूर्ण जनसमुदाय
 घबके पहिलेके कृत्योंको सुन-सुन और स्मरण कर-करके मन हा मन भयभीत हुआ ॥ ४० ॥ उसी समय राम

आनयामास श्रीरामो ददौ ह्यममन वरम् । कुम्भोदरो मुनिः शीघ्रं भूमौ दण्डकमण्डलम् ॥४२॥
 स्थापयामास श्रीराणि ननाम रघुनायकम् । रामः शीघ्रं कराम्पां तं ग्रन्थुन्धाप्य मुनीश्वरम् ॥४३॥
 गाढमालिङ्ग्य बाहुभ्यां ततो मुनिमभाषत । नाहं योग्यो वदनार्थं त्वया रावणघातकः ॥४४॥
 इति रावणचौरूपैर्वाणैः संताडितो हृदि । कुम्भोदरस्तदोवाच यत्तुशटे रघूनमम् ॥४५॥
 राम राम महाबाहो न कोपः कियतां मयि । अपराध्यस्म्यहं ते हि क्षमस्व रघुनायक ॥४६॥
 न मया स्वार्थसिद्धयर्थं दोषारोपः कृतस्त्वयि । कृतः परोपकारार्थं तथा कीर्त्यं त्वयापि च ॥४७॥
 शिक्षार्थं सकलान्लोकान् तद्व्याप्तं च त्वयापि हि । यथेते मुनयः सर्वे तव मन्त्रेऽन्ननिर्मिते ॥४८॥
 शतशो भोजनं चक्रुस्तथा भुक्त मयाऽपि च । तदा कुतो महत्कीर्तिस्तव मे रघुनन्दन ॥४९॥
 इति निश्चित्य हृदये मया पूर्वं हिताय हि । लोकानां च कुतो यन्नमन्त्वयि दोषानुकीर्तनैः ॥५०॥
 नोन्नेधाग्राममुद्योगः कथं राम भवेत्तव । यत्र यत्र च देशेषु तीर्थेषूपवनेषु च ॥५१॥
 आश्रमाराधनामेव नदीवनगिरिष्वपि । ये ये जनाश्च सर्वत्र नानाकर्मसु तत्पराः ॥५२॥
 तव दर्शनलामस्तु तेषां जातः सुखप्रदः । तत्राहं कारण मन्ये चात्मानं रघुनन्दन ॥५३॥
 भ्रमालमुपकारस्तु जनैः सर्वत्र कीर्त्यते । कुम्भोदरप्रसादेन नः सातारामदर्शनम् ॥५४॥
 जातं विषयलुब्धानामिति मे कृतकृत्यता । जानाममनतः कीर्तिं त्वयि दोषानुकीर्तनात् ॥५५॥
 तथापि कीर्तिः सर्वत्र जानाऽत्र रघुनन्दन । रामेश्वराय सर्वत्र रामतीर्थान्यनेकशः ॥५६॥
 यावद्भूम्यां प्रगीयेत तावत्कीर्तिस्तथापि च । अन्यत्र लोकशिक्षाऽपि जाना मद्राक्ष्यकारणान् ॥५७॥
 कुम्भोदरेण मुनिना रावणस्य महान्मनः । दोषारोपः कृतः पूर्वं कथं नो न भविष्यति ॥५८॥
 स्वदोषपरिहागर्थं राघवेण महान्मना । तीर्थयात्रा कृता पूर्वमस्माकं का कथा पुनः ॥५९॥
 इति स्मृत्वा भयं चित्ते सर्वत्र जगतीतले । कम्पयन्ति जना यात्रां स्वदोषक्षालनाय हि ॥६०॥

बड़ा शोधनासे आये और कुम्भोदरको साक्षात् प्रणाम करके हाथमें हाथ मिलाये हुए, यज्ञमण्डपमें ल आये
 और उन्हें सुवर्णनिर्मित आसन बैठनके लिए दिया ॥ ४१ ॥ कुम्भोदरने भी शीघ्र ही भूमिपर दण्ड-कमण्डल रख-
 कर रघुनायक रामको प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ रामने शीघ्र मुनिको हाथोंसे उठा लिया और बाहुओंसे दृढालिङ्गन
 करके बाल-हे भगवन् । रावणघातक मैं आपको वन्दना करने योग्य नहीं हूँ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इस तरह रामके
 वाक्यबाणसे हृदयमें विद्ध कुम्भोदर रामसे कहन लगे ॥ ४५ ॥ हे राम । हे महाबाहो ! आपको इस तरह
 मेरे ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिए । मैं आपका अपराधी हूँ । मुझे क्षमा करें ॥ ४६ ॥ मैंने स्वार्थसिद्धिके
 लिए आपके ऊपर दोषारोपण नहीं किया था । किन्तु ममार्कका उपकार करनेके लिये, आपकी कानिष्ठ-
 के लिए और संसारको शिक्षित करनेके लिए हां मैंने ऐसा किया था । सो आपने जान ही लिया होगा ॥ ४७ ॥
 ॥ ४८ ॥ जैसे इन मुनियोंने आपके अन्नक्षेत्रमें सैकड़ों बार भोजन बि रा है वैसे ही मैंने भी भोजन किया है ।
 आपकी और मेरी कीर्ति कैसे हो, पहलेसे ही यह निश्चय करके संसारके हितके लिए मैंने आपकी निन्दा की
 थी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अन्यथा है राम । विभिन्न तीर्थों तथा देशोंके लिए आपको यात्रा नहीं होती । विविध तीर्थ,
 नदा, वन, बगीचा तथा आश्रमोंमें जो मनुष्य नाना कर्मोंमें लिप्त हो रहे हैं, उनको जो आपका सुखप्रद दर्शन-
 लाभ हुआ । उसमें मैं अपनेको ही कारण मानता हूँ ॥ ५१-५३ ॥ सब मनुष्य सभी जगह मेरे इस उपकारका
 कात्तन करते हैं । वे कहते हैं कि कुम्भोदरको कृपासे ही हम लोगोको संसारमके दर्शन मिल गये ॥ ५४ ॥
 आपके ऊपर दोषारोपण कर देनेसे विषयी जनोंको भी आपका दर्शन प्राप्त हुआ । इसीसे मैं कृतकृत्य हो गया
 और चारों तरफ आपकी कीर्ति फैल गयी ॥ ५५ ॥ जवतक भूमण्डलपर विविध रामभक्त महादेश और रामतीर्थ
 रहेगे, तबतक आपकी कीर्ति संसारमें स्थिर रहेगी ॥ ५६ ॥ और फिर मेरे दुर्वाच्यके कारण ही यह लोकशिक्षा
 भी हो गयी कि कुम्भोदर मुनिने अब रामजीको दोष लगाया तब हमलोगोको कैसे न लगेगा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥
 प्राचीन समयमें महारामा रामचन्द्रने दोषोंको नष्ट करनेके लिए तीर्थ किया था तो फिर हमलोगोंका तो कहना

न्यपि ब्रह्मणि पूर्णे च दोषारोपः कथं भवेत् । पद्मपत्रे जलस्पर्शो न घटेत् यथा तथा ॥६१॥
 यस्य भ्रमंगमात्रेण ब्रह्माण्डप्रलयो भवेत् । ब्रह्माण्डांतगतान् जीवान् हरति त्वं यदा मुहुः ॥६२॥
 तदा दोषानुरोपस्ते किं घटेव जनार्दन सर्वेषां च क्षयं मृत्युर्विदधाति तवाश्रया ॥६३॥
 तत्र संख्यात्र का कार्या न्यया दोषः कुतश्चिन्ति यथा चित्राणि कुड्ये हि लिखितानि सहस्रशः ॥६४॥
 मंभाजितानि तेनैव तत्र दोषो भवंकथम् । तथा न्वमपि श्रीराम त्रिधा भूत्वा त्रिभिर्गुणैः ॥६५॥
 सृष्टिं करापि रजसा सत्त्वरूपेण पालनम् । तमोरूपेण सहारं विधियिष्णुशिवान्मकः ॥६६॥
 अस्माभिस्तत्र तोषार्थं तीर्थयात्रा विधीयते । तव तीर्थेस्तु किं राम तीर्थीभूतगुणस्य च ॥६७॥
 सर्वतीर्थेषु मुख्या या कीर्त्यते स्वर्धुनी भुवि । तव दक्षिणपदस्यांगुष्ठाग्राञ्जलिना तु सा ॥६८॥
 तवांगिरजसः स्पर्शान्पवित्रा कान्तिता भुवि । तव पादरजोमिश्रा दृश्यन्तेऽद्यापि सा मिता ॥६९॥
 रजांस्यद्यापि दृश्यन्ते तव भार्गवक्षोजले । इति नानाविधैर्वाक्यैस्तोषयामास राघवम् ॥७०॥
 अष्टोत्तरशतं यावत् श्रीमद्रामस्तनेन च । स्तुत्वा रामं राघवेण पूजितः स्थितवान्मुनिः ॥७१॥
 रामोऽपि गुरुसान्निध्ये तस्यैव सीतामभान्वितः । निजापनेषु सर्वत्र तस्म्युक्ते मकला जनाः ॥७२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे पादकाण्डे

कुम्भोदरदर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः । ४ ।

पञ्चमः सर्गः

(रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र)

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद सविस्तरम् । कुम्भोदरेण मुनिना यन्स्तोत्रं समुदीरितम् ॥ १ ॥
 अष्टोत्तरशतं नाम्नां राघवस्य शुभप्रदम् । श्रवणे तस्य मे प्रीतिर्जाताऽस्ति कथयस्व तत् ॥ २ ॥

हा क्या है ॥ १९ ॥ इस तरह पृथ्वीतलपर मनुष्यमात्र अपने चिन्तने भावना अनुभव करके स्वदोषपरिहाराय तार्थयात्रा करेगा । ६० ॥ जैसा कमलक पत्तेपर जलका स्पर्श नहीं हो सकता, वैसे ही आप पूर्ण ब्रह्म दोषारोप नहीं हो सकता । ६१ ॥ जिसके भ्रमङ्गमात्रसे ब्रह्माण्डम प्रलय हो जाता है वही आप ब्रह्माण्डान्तर्गत सब जीवों को आनन्द चिन्तान करत है ॥ ६२ ॥ सब है जनार्दन आपपर दोषारोप कैसे हो सकता है ? जब आप ही की आज्ञासे मृत्यु सबका सब काती है ॥ ६३ ॥ सब आपन कितने दोष किये हैं ? इसकी गणना कौन कर सकता है । ६४ ॥ जैसा किसीने भिन्नपर चित्र लिखा और फिर उम्मीन अपने हाथसे मिटा दिया । तब उसमें क्या दोष हो सकता है । उम्मी तरह आप भी तीनों गुणोंसे तीन तरहके अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूपमें परिणत होकर रजोगुणसे सृष्टि, रत्नसे पालन और तमोगुणसे सहार करत है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ हम लोग आपकी प्रसन्नताके लिए हां तालवाया करत है । स्वतः तार्थस्वरूप आपका तीर्थसे क्या प्रयोजन है ॥ ६७ ॥ जिस गङ्गाको लोग सब तार्थोंमें श्रेष्ठ मानत हैं, वह गङ्गा आपके दाहिने पैरके अंगूठसे उत्पन्न हुई है ॥ ६८ ॥ वह आपके चरणरजस्पर्शसे ही पवित्र माना गयी है । इसी वातन वह आज तक श्वेत दिखाई पड़ती है ॥ ६९ ॥ आज भी गङ्गाजोमे आपकी चरणगुदास रहती है । इस प्रकारके वाक्योंसे कुम्भोदरमुनि भगवान् रामको प्रसन्न किया ॥ ७० ॥ इसका बाद रामाष्टोत्तरशतनामसे रामकी स्तुति करके और रामके द्वारा पूजित होकर वे यथास्थान बैठ गये ॥ ७१ ॥ रामजी भी गुरुके समीप सीताके साथ जा बस । अन्यान्य लोग भी अपने-अपने आसनोपर विराजमान हो गये ॥ ७२ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे कुम्भोदरदर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः । ४ ॥

श्रीविष्णुदास बोल रहे गुरु । मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ । जो प्रश्न मैं पूछना चाहता हूँ, उसका आप विस्तृत उत्तर दीजिए ॥ १ ॥ कुम्भोदर मुनिने रामके जो अष्टोत्तरशत नामोंका शुभप्रद स्तोत्र कहा

श्रीरामदास उवाच

मृणु शिष्य महाबुद्धे सम्यक् पृष्टं त्वया मम । अष्टोत्तरशतं नाम्नां राघवस्य वदाम्यहम् ॥ ३ ॥
 सर्वेश्वरः सर्वमयः सर्वभूतोपकारकः । सर्वपापुकारार्थं यः साकारो निराकृतिः ॥ ४ ॥
 स मय्येव लोकेऽस्मिन् समारभयनाशनः । यदा यदा हि लोकानां भयमुत्पद्यते तदा ॥ ५ ॥
 अवतीर्याकरोच्छ्वासान् दुष्टदैत्यविमर्दनम् । मत्स्यरूपमवराहादिरूपेण परमार्थदृक् ॥ ६ ॥
 तत्कालेषु च सर्वेषु सर्वपापुकारकम् । साधुनां समचित्तानां भक्तानां भक्तवत्सलः ॥ ७ ॥
 उपकर्तुं निराकारः सदाकारेण जायते । अजाऽय जायतेऽनन्तो विश्वनो भूः भावनः ॥ ८ ॥
 तदा तदाऽवतरति भक्तानामनुकम्पया । क्षीराब्धौ देवदेवेशो लक्ष्मीनारायणो विभुः ॥ ९ ॥
 अशेषैः शश्वचकाभ्यां देवैर्ब्रह्मादिभिः सह । शेषोऽभूलक्ष्मणो लक्ष्मीर्जानकी शश्वचकके ॥ १० ॥
 जान्ती भरतशत्रुघ्नी देवाः सर्वेऽपि वानराः । आत्मन् पुरैव सर्वेऽपि देवानां भयशान्तये ॥ ११ ॥
 तत्र नारायणो देवः श्रीराम इति विश्रुतः । सर्वलोकोपकाराय भूमौ स्वयमवानरत् ॥ १२ ॥
 ध्यानमात्रेण देवेशो महापातकनाशकम् । कीर्तनध्वन्याभ्यां च हत्याकोटिनिवारणः ॥ १३ ॥
 कलौ स कीर्तनेनैव सर्वं पापं व्यपोहति । राम रामेति रामेति ये वदन्त्यतिपापिनः ॥ १४ ॥
 पापकोटिमहसंभ्रष्टानुद्धरति नान्यथा । अष्टोत्तरशतं नाम्नां तस्य स्तोत्रं वदाम्यहम् ॥ १५ ॥

ॐ अस्व श्रीरामचन्द्रनामाष्टोत्तरशतमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । जानकीवल्लभः श्रीरामचन्द्रो देवता । ॐ बीजम् । नमः शक्तिः । श्रीरामचन्द्रः कीलकम् । श्रीरामचन्द्रश्रीत्यर्थे जपे त्रिनियोगः । ॐ नमो भगवते राजाधिराजाय परमात्मने हृदयाय नमः । ॐ नमो भगवते विद्याधिराजाय हृदयोवाय शिरसे स्वाहा । ॐ नमो भगवते जानकीवल्लभाय नमः शिखार्यै वषट् ।

हे, उसे सुननकी मेरी प्रबल इच्छा है । यह कहिए ॥ २ ॥ श्रीरामदास बाले—हे महाबुद्धे शिष्य ! सुनो । तुमने अच्छा प्रश्न पूछा है । मैं तुम्हें रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र सुना रहा हूँ ॥ ३ ॥ राम सर्वेश्वर हैं, सर्वमय हैं और सब प्राणियोंका उपकार करनेवाले हैं । वे निराकार होते हुए भी संसारके कल्याणार्थ साकार भद्रपदेह धारण करते हैं ॥ ४ ॥ जब जब प्रजाको भय होता है, सब-सब उस भयको नष्ट करनेके लिये वे इस लोकमें अवतारण होते हैं ॥ ५ ॥ अवतीर्ण होकर वे मत्स्य-रूप-वराहादि रूपसे जनशत्रुओंका विनाश करते हैं । भगवान् जो कुछ करते हैं, वह सब परमार्थकी दृष्टिसे ही करते हैं ॥ ६ ॥ वे भक्तवत्सल प्रभु समदर्शी हैं । साधुओं और भक्तोंके उपकारार्थ निराकार होते हुए भी अल्पकालमें ही साकार हो जाते हैं । वे भूलभावन प्रभु अनन्त एवं अज हैं और इन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध हैं । वे समय समयपर भक्तोंपर अनुकम्पा करके अवतीर्ण होते हैं । वे देवदेव इन्द्रके भी शासक हैं । वे क्षीरसागरमें स्थान करते हैं और सर्वत्र व्यापक हैं ॥ ७-९ ॥ वे ही लक्ष्मीनारायण अजित देवोंके साथ त्रिलोक्यके भयशान्तयर्थ रामरूपसे संसारमें अवतीर्ण हुए । शेष लक्ष्मण बने । लक्ष्मी जानकी बनी और भगवान्के पार्षद शश्वच भरत-शत्रुघ्नके रूपसे उत्पन्न हुए और सब देवता वानर बन ॥ १० ॥ ११ ॥ जो श्रीराम इसी नामसे प्रसिद्ध हैं, वे साक्षान् नारायण हैं और लोकोपकारार्थ संसारमें स्वयं अवतारे हैं ॥ १२ ॥ उन भगवान् रामके ध्यानमात्रसे महापातक भी नष्ट हो जाते हैं । वे कीर्तन ध्वन करनसे कोटि हत्याओंके पापका भी निवारण कर देते हैं ॥ १३ ॥ वे भगवान् कलिमें नाम-कीर्तन करनेसे ही सब पापोंको नष्ट कर देने हैं । जो घोर पापी भी राम-नाम उच्चारण करते हैं तो राम उनका सहस्रकोटि पापोंसे उद्धार कर देते हैं । उन भगवान्के अष्टोत्तरशतनामस्तोत्रको कहना है ॥ १४ ॥ १५ ॥ रामचन्द्रके इस अष्टोत्तर शतनाम मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि हैं । अनुष्टुप् छन्द है । जानकीवल्लभ श्रीरामचन्द्रजो इसके देवता हैं । ॐ बीज है । नमः शक्ति है । श्रीरामचन्द्र कीलक है । श्रीरामश्रीत्यर्थ इत्यादि त्रिनियोग हुआ है । ॐ हृदयमें बैठे हुए राजाधिराज परमात्माम्बरुप भगवान्को बारम्बार नमस्कार है । मत्स्यकमे विराजमान विद्याधिराज हृदयोव भगवान्को नमस्कार है । शिखार्ये विराजमान जानकीवल्लभ भगवान्को नमस्कार और

ॐ नमो भगवते रघुनन्दनायामिततेजसे कवचाय हुम् । ॐ नमो भगवते क्षीराब्धिमध्यस्थाय
नारायणाय नेत्रत्रयाय वीषट् । ॐ नमो भगवते सत्प्रकाशाय रामाय अस्त्राय फट् । इति षडंगन्यासः ।
एवं अंगुलिन्यासः कार्यः ।

अथ ध्यानम्

मन्दारारुक्तिपुष्पधामविलसद्वस्त्रःस्थलं कोमलं शान्तं कांतमहेन्द्रनीलरुचिराभामं सहस्राननम् ।

वंदेऽहं रघुनन्दनं सुगतां कोदण्डदीप्ताशुरुं रामं सर्वजगत्सुखेयितपदं सीतामनोवल्लभम् ॥१६॥
सहस्रशीर्ष्णो वै तुभ्यं सहस्राक्षाय ते नमः । नमः सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च ॥१७॥
नमो जीमूतवर्णाय नमस्ते विश्वतोमुख । अच्युताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शेषशायिने ॥१८॥
नमो हिरण्यगर्भाय पञ्चभूतात्मने नमः । नमो मूलप्रकृतये देवानां हितकारिणे ॥१९॥
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वदुःखनिषूदन । शंसचक्रगदापद्मजटामुकुटधारिणे ॥२०॥
नमो गर्भाय तत्त्वाय ज्योतिषां ज्योतिषे नमः । ॐ नमो वासुदेवाय नमो दशरथात्मजे ॥२१॥
नमो नमस्ते राजेन्द्र सर्वमम्पन्नदाय च । नमः कारुण्यरूपाय कैकेयीप्रियकारिणे ॥२२॥
नमो दांताय शान्ताय विश्वामित्रप्रियाय ते । यज्ञेशाय नमस्तुभ्यं नमस्ते क्रतुपालके ॥२३॥
नमो नमः केशवाय नमो नाथाय शार्ङ्गिणे । नमस्ते रामचन्द्राय नमो नारायणाय च ॥२४॥
नमस्ते रामचन्द्राय माधवाय नमो नमः । गोविन्दाय नमस्तुभ्यं नमस्ते परमात्मने ॥२५॥
नमस्ते विष्णुरूपाय रघुनाथाय ते नमः । नमस्ते भ्नाधनाथाय नमस्ते मधुसूदन ॥२६॥
त्रिविक्रम नमस्तेऽस्तु सीतायाः पतये नमः । वासनाय नमस्तुभ्यं नमस्ते राघवाय च ॥२७॥
नमो नमः श्रीधराय जानकीवल्लभाय च । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश कदर्पाय नमो नमः ॥२८॥

षट्कार है । बाहुओंमें कवचरूपेण विद्यमान अमिततेजा उन रघुनन्दनको नमस्कार है, जिनके हुड्कारमात्रसे सब शत्रु नष्ट हो जाते हैं । नेत्रोंमें वीषट् अर्थात् ज्योतिरूपेण विद्यमान तथा क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान्को नमस्कार है । अस्त्रस्वरूप, फट्स्वरूप और सत्प्रकाश स्वरूप रामको नमस्कार है । इस प्रकार भगवान्को छहों ओरोंमें न्यास अर्थात् विराजमान करे । इसी तरह अंगुलियोंमें न्यास करे । अब यहाँसे एक श्लोकमें रामका ध्यान करके स्तोत्र आरम्भ होता है । जिनकी मनोहर आकृति है । जो पृथ्वीधाम है । मालाओंसे जिनका वस्त्रःस्थल सुशोभित हो रहा है । जो कोमल एवं शान्त हैं । जो सुन्दर महेन्द्रनीलमणिकी कान्तिके समान सुशोभित हैं । जो धनुर्वेदकी शिक्षामें संसारके गुरु हैं । संसार जिनके चरणोंको पूजता है, उन सुगति तथा सीताके प्राणवल्लभ रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१६॥ हे राम ! सहस्र भस्त्रकवाले आपको नमस्कार है । मेघके समान कान्तिवाले आपको नमस्कार है । हे विश्वनामुख ! आपको नमस्कार है । अच्युतका नमस्कार है । शेषशायीको प्रणाम है ॥ १७ ॥ १८ ॥ हिरण्यगर्भकी प्रणाम है । पञ्चभूतात्माको प्रणाम है । मूलप्रकृतिको नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे सर्वलोकनाथ ! सब दुःखोंको दूर करनेवाले ! आपको प्रणाम है । हे शंस चक्र गदा पद्म तथा जटा-मुकुट धारण करनेवाले राम ! आपको नमस्कार है ॥२०॥ गम्भ्वरूप आपको प्रणाम है । तत्त्वस्वरूपको प्रणाम है । ज्योतिषोंकी भी ज्योतिकी नमस्कार है । वासुदेवके पुत्रको प्रणाम है । दशरथपुत्र रामको प्रणाम है ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र ! सब संपत्ति देनेवाले आपका प्रणाम है । हे दयाके मूर्तस्वरूप तथा कैकेयीके प्रिय करनेवाले ! आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥ दात, शान्त एवं विश्वामित्रके प्रियकर्मी आपको प्रणाम है । हे यज्ञेश ! हे क्रतुपालक ! आपको प्रणाम है ॥ २३ ॥ केशवको नमस्कार है । शार्ङ्गीको नमस्कार है । रामचन्द्रके लिए नमस्कार है । नारायणके लिए नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है । हे माधव ! आपको प्रणाम है । हे गोविन्द ! हे परमात्मन् ! आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे विष्णुरूप रघुनाथ ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे दोनोंके नाथ मधुसूदन ! आपको प्रणाम है ॥ २६ ॥ हे त्रिविक्रम ! हे सीतापते ! हे वामन ! हे रामचन्द्र ! हे

नमस्ते पद्मनाभाय कर्मलशाल्यभाषिणे । नमो राजावनाय नमस्ते उदयनाय च ॥ २९ ॥
 नमो नमस्ते काकुत्स्थ नमो दामोदराय च । विष्णोपगपरिव्रजार्जुनः भक्त्याजितः च ॥ ३० ॥
 वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते शक्रप्रिय । प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः ॥ ३१ ॥
 मत्सङ्गतिरूपाय नमस्ते पुरुषोत्तम । अभाक्षत्र नमस्तेऽस्तु मदनतालहराय च ॥ ३२ ॥
 सरदूषणहन्त्रे श्रीनृसिंहाय ते नमः । अच्युताय नमस्तुभ्यं नमस्ते सेतुबन्धक ॥ ३३ ॥
 जनार्दन नमस्तेऽस्तु नमो हनुमदाश्रय । उपेन्द्रचन्द्रशंभाय मागीचमथनाय च ॥ ३४ ॥
 नमो बालिप्रहरण नमः सुग्रीवराज्यपद । जामदग्न्यमहादर्पहराय हरये नमः ॥ ३५ ॥
 नमो नमस्ते कृष्णाय नमस्ते भरताम्रज । नमस्ते पितृवक्त्राय नमः शत्रुघ्नपूर्वज ॥ ३६ ॥
 अयोध्याधिपते तुभ्यं नमः शत्रुघ्नसेवित । नमो निन्धाय मत्स्याय बुद्ध्यादिज्ञानरूपिणे ॥ ३७ ॥
 अद्वैतमन्त्ररूपाय ज्ञानगम्याय ते नमः । नमः पूर्णाय रम्याय माधवाय चिदान्मने ॥ ३८ ॥
 अपोष्येशाय श्रेष्ठाय चिन्मात्राय परात्मने । नमोऽहोपादारगाय नमस्ते चापमञ्जिने ॥ ३९ ॥
 सीतारामाय सेव्याय स्तुत्याय परमेष्ठिने । नमस्ते बाणहन्ताय नमः कोट्यडधारिण ॥ ४० ॥
 नमः कवचहन्त्रे च बालिहन्त्रे नमोऽस्तु ते । नमस्तेऽस्तु दशग्रीवप्राणसंहारकारिणे १०८ ॥ ४१ ॥
 महोत्तरशतं नाम्ना रामचन्द्रस्य पावनम् । एतत्प्रोक्तं मया श्रेष्ठ सर्वपापकनाशनम् ॥ ४२ ॥
 प्रक्षरिष्यति तल्लोके प्राण्यष्टदशाब्दिज । तस्य कीर्तनमात्रेण जना पाप्मनि सद्गतिम् ॥ ४३ ॥
 तावद्विजृम्भते पाप अमरदण्डपुरःसरम् । पावसापाष्टकशतं पुरुषो न हि कीर्तयेत् ॥ ४४ ॥
 तावत्कलेर्पहोन्माहो निःशकं मयवर्तते । पावच्छ्रावणचन्द्रस्य शतनाम्ना न कीर्तनम् ॥ ४५ ॥
 तावद्यममटाः कूराः सक्षरिष्यन्ति निर्मयाः । पावच्छ्रावणचन्द्रस्य शतनाम्ना न कीर्तनम् ॥ ४६ ॥
 तावत्स्वल्पं रामस्य दुर्बोधं प्राणिना स्फुटम् । पावनं निष्ठुण रामनाममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४७ ॥
 आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ २७ ॥ हे आपका ! हे जानकावल्लभ ! हृषीकेश ! कन्दर्प ! मैं आपको
 बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ २८ ॥ हे पद्मनाभ ! हे कौसल्याहृदयकारिन् ! कमलनयन ! लक्ष्मणनाथ ! मैं आपको
 पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ २९ ॥ हे काकुत्स्थ ! दामोदर ! सकर्षण ! विष्णोपगपरिव्रज ! आपको मैं पुनः
 पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ ३० ॥ हे वासुदेव ! शक्रप्रिय ! प्रद्युम्न ! अनिरुद्ध ! मैं आपका पुनः पुनः
 प्रणाम करता हूँ ॥ ३१ ॥ हे मत्सङ्गतिस्वरूप ! पुरुषोत्तम ! अभाक्षत्र ! सप्ततालहर ! आपको कोटिः प्रणाम
 है ॥ ३२ ॥ हे सरदूषणहन्ता ! श्रीनृसिंह ! अच्युत ! सेतुबन्धकारिन् राम ! आपको कोटिः प्रणाम है ॥ ३३ ॥
 हे जनार्दन ! हनुमदाश्रय ! उपेन्द्रचन्द्रशंभा ! मागीचमथनकारिन् ! आपको कोटिः प्रणाम है ॥ ३४ ॥ हे
 बालिप्रहरण ! सुग्रीवराज्यपद ! जामदग्न्य ! महादुःखहर हरे ! आपको कोटिः प्रणाम है ॥ ३५ ॥ हे कृष्ण !
 भरताम्रज ! शत्रुघ्न ! शत्रुघ्नपूर्वज ! मैं आपका तल्लोके बार प्रणाम करता हूँ ॥ ३६ ॥ हे अयोध्याधिपते !
 शत्रुघ्नसेवित ! नित्यमत्य ! बुद्ध्यादिज्ञानकारिन् ! आपको प्रणाम है ॥ ३७ ॥ हे मदहन्त महारूप ! ज्ञानगम्य !
 माधव ! पूर्ण ! रम्य ! चिदान्मन् ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३८ ॥ हे अयोध्याधिप ! श्रेष्ठ ! चिन्मात्र !
 परमात्मन् ! महोपादारक ! शत्रुघ्नमञ्जिन् ! आपको प्रणाम है ॥ ३९ ॥ हे सीतासेव्य ! स्तुत्य ! परमेष्ठिन् !
 बाणहरण ! शत्रुघ्न ! आपको अनेकशः प्रणाम है ॥ ४० ॥ हे कवचहन्त ! पापिहन्त ! दशग्रीवप्राणसंहार-
 कारिन् ! मैं आपका पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ ॥ ४१ ॥ सम्पूर्ण पयोक्तृ मष्ट करनवाला श्रेष्ठ एवं पावन
 रामचन्द्रका यह महोत्तरशतनामस्तोत्र मैंने तुमसे कहा ॥ ४२ ॥ हे द्विज ! जो प्राणी अपने दुर्भाग्यवश इस लोकमें
 भ्रमण करते हैं । इस स्तोत्रके पठनमात्रसे वे सद्गतिको प्राप्त करेंगे ॥ ४३ ॥ ब्रह्माहं यदि मय तभीतक उपद्रव
 करते हैं, जब तक पुरुष इस स्तोत्रका पाठ नहीं करता ॥ ४४ ॥ प्राणों तभी तक कटिका प्रवश रहता है जब
 तक वह रामचन्द्रक इस स्तोत्रका ध्यान पठन नहीं करता ॥ ४५ ॥ तब तक भयंकर वमराजके योद्धा निम्न
 विवरण करते हैं, जबतक प्राणी इस स्तोत्रका पाठ नहीं करता ॥ ४६ ॥ तब तक रामका स्वरूप प्राणिमको

कंसिनं पठितं चित्ते घृतं सस्मारितं मुदा । अन्यतः शृणुयान्मन्त्रः सोऽपि मुच्येत पातकात् ॥ ४८ ॥
 त्रप्रह्वयादिपद्यानां निष्कृतिं यदि चाच्छति । रामस्तोत्रं माममेकं पठित्वा मुच्यते नरः ॥ ४९ ॥
 दुष्प्रतिग्रहदुर्भोग्यदुर्गलापादिप्रभवम् । पापं सकृन्कीर्तनेन रामस्तोत्रे विनाशयेत् ॥ ५० ॥
 धुनिष्मृतिपुराणैर्विद्यायागमशक्तानि च । ग्रहेति तान्त्रां श्रीरामरामकीर्तिकलापि ॥ ५१ ॥
 अष्टोत्तरशतं ताम्नां सोतागमस्य धावनम् । अस्य मङ्कीर्तनादेव सर्वान् कामोल्लेखनः ॥ ५२ ॥
 पुत्रार्थं लभते पुत्रान् धनार्थं धनमाप्नुयान् । स्त्रियं प्राप्नोति पत्न्यर्थं स्तोत्रपाठश्रवादिना ॥ ५३ ॥
 कुम्भोदरेण मुनिना येन स्तोत्रेण राघवः । स्तुतः पूर्वं यत्तवाटे तदेतन्नां मयोदितम् ॥ ५४ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये याज्ञाकाण्डे

श्रीरामनामाष्टोत्तरशतस्तोत्रं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामकी दिनचर्या)

श्रीरामदास उवाच

अथ कुम्भोदरे दिव्ये आसनोपरि सस्थिते । यज्ञस्तम्भे श्यामकर्णं वचन्युक्ते हि ऋत्विजः ॥ १ ॥
 तस्याङ्गानि ममस्तानि पृथङ् पन्त्रैर्यथाविधि । सम्पन्न्यतपि शभिषा नं निदन्पूर्वजपुङ्गवाः ॥ २ ॥
 तन्मासखण्डैराज्याक्तैर्होमं चक्रुः सविस्तरम् । तथा नानाविधैर्द्रव्यैः सकृत्पायमगोघृतैः ॥ ३ ॥
 मध्वाक्ततिलदूर्वाद्यैः समिधाभिश्च सादरम् । गोघृतेन वसोधारां च ह्यौ स्थूलामखण्डिताम् ॥ ४ ॥
 गोक्षुत्तेनोर्ध्वबद्धत ददुर्मत्रैः सविस्तरम् । चिकित्वा होमकुण्डे यावद्यज्ञसमापनम् ॥ ५ ॥
 नदा धूपचर्पण्यसिपाकाश्च च समन्ततः । नाद्यापि रक्ष्यते शुभ्रं नोलक्षणं प्रदश्यते ॥ ६ ॥
 चैत्रमासे महःपुण्ये वसन्तर्तौ सुखमग्रे । एव प्रवर्तयामासुर्वाजिमेध मुनीश्वराः ॥ ७ ॥

पूर्वोक्त्य रहता है, जबतक इस उत्तम स्तोत्रमं निष्ठा नहीं होती ॥ ४७ ॥ जो इसको पढ़ता और कीर्तन करता है, जो इसे चित्तम धारण करता है, प्रेमसे स्मरण करता है और जोरसे सुनता है, वह भी पापकोसे छूट जाता है ॥ ४८ ॥ जो ब्रह्महत्यादि पापोंकी निष्कृति चाहता हो, वह पुरुष एक महीने इसका पाठ करे ॥ ४९ ॥ इसके एक घाद कीर्तन करनेसे मनुष्य दुष्प्रतिग्रह, दुर्भोग्य तथा दुर्गलापादिबन्ध पापोंसे छूट जाता है ॥ ५० ॥ धुनि-स्मृति पुराण-इतिहास-आगम (वेद) और रमृति इसकी सोलहवीं कलाको भी नहीं पहुँचते ॥ ५१ ॥ श्रीश्रीरामरामके इस पावन अष्टोत्तरशतनामका जो मनुष्य पाठ करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति कर लेता है । इसका पाठ एवं ध्यान करनेसे पुत्रार्थको पुत्र, धनार्थको धन और स्त्री चाहनेवालेको स्त्री मिलती है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ आगस्त्य मुनिने जिस स्तोत्रके द्वारा अश्वमेध यज्ञमें रामचन्द्रकी स्तुति की थी, वही स्तोत्र मैंने तुमसे कहा है ॥ ५४ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये याज्ञाकाण्डे श्रीरामनामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदास बोले—इसके अनन्तर कुम्भोदर मुनि दिव्य आसनपर बैठ गये । ऊपर ऋत्विक् लोगोंने यज्ञस्तम्भमें श्यामकर्ण आश्वको बाँध दिया ॥ १ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उसका आगको शास्त्रानुसार मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके आहुतियोंने उसका वध किया ॥ २ ॥ तब धूपमें सज हुए घोंड़के मासखण्डों एवं सकृत्पायस गोघृत आदि नाना द्रव्योंसे ऋत्विक् लोग हवन करने लगे । ३ ॥ वे ही मधुमं सज हुए तिल, दूर्वा, समिधा तथा गोघृतकी अलंङ्क एवं स्थूल वसोधाराकी अग्निर्म छोड़ते गये ॥ ४ ॥ चिकित्वा प्यन्त जब तक यज्ञ समाप्त नहीं हुआ, तबतक वे ऊपर बैठे हुए गोमुखके द्वारा होमकुण्डमें समस्त आहुति देने रहे ॥ ५ ॥ इससे सम्पूर्ण आकाश-मंडल घूमसमूहमें व्याप्त हो गया । उसीके कारण आज भी आकाश श्वेत नहीं, नीला ही दीखता है । सुखावह वसन्त ऋतु एवं पुनीत चैत्रमासमें इस तरह वे मुनीश्वर लोग वह अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे ॥ ६ ॥ ७ ॥

इत्युक्ते यज्ञविधिना अग्निहोत्रादिलक्षणः । प्राकृतैवेवैवै जैद्वयज्ञानक्रियेश्वरम् । १८ ।
 अन्यहं प्रातरुन्धाय रामचन्द्रः समानया । नन्वागधु त्रैविदेवान्मुनिविरिष्टकृष्टकृ । १९ ।
 कामन्याद्याश्च मानुष्य कामधेनु हृदि स्थितम् । चिन्तामणि कौमुभ च कटे बद्ध गण्डिमम् ॥ २० ॥
 पुष्पकं यज्ञवाटस्य देवतां यज्ञपूरुषम् । ततो गन्धारगमनार्थं स्नान्वा र मा यथाविधि । २१ ।
 कृत्वा नित्यविधि सर्वं पूजयामास शंकरम् । उपहारान् समर्प्या च कामधेनुमुद्रागर । २२ ।
 समानीतान् रत्नपात्रैः समनया स्फुटदनः । ततः संपूज्य तां धेनुं विधिं पूज्य मावधत्तम् । २३ ।
 ऋत्विज्जनं तु संपूज्य तस्थौ स गुरुमभिधी । प्रभाने ऋत्विजः सर्वं महः । मृगशिरः । २४ ।
 स्नान्वा नित्यविधि कृत्वा तस्थुयज्ञस्य महपे । गमात्तयाऽथ सोमिन्निनृषादीनां प्रपूजनम् । २५ ।
 दिव्यैर्नानोपहाराद्यैः कामधेनुमुद्रवैः । ततश्चकार सोमिन्निनृषादीनां प्रपूजनम् । २६ ॥

तथा सोनाहया स्नाणामुमिता लक्ष्मणप्रिया ॥ २७ ॥

मांडवीं भतकीर्तिञ्च मर्यादकः प्रपूजनम् । अथ ते ऋत्विजश्चक्रुः स्वाहाकार्येयाविधि ॥ २८ ॥
 होम नानाविधद्रव्यैः सुगन्धैश्चमडपे । पुण्डाशान् वरान् दिव्यान्भद्रं गमोऽपि मानया ॥ २९ ॥
 वाज्रमेधे राघवस्य मातादेवाः स्वयं मुदा । हवींषि भक्षयामासुस्त्यक्तमात्राणि पावके । ३० ।
 अस्तु श्रौषडिति प्रोचुर्वायथापः स मेधवन् । भूपते यज्ञशालामु मवर्षांस्त्रिजकीर्तितः ॥ ३१ ॥
 मध्ये कुट्ट महारम्य व्यासमृत्विज्जनैः शुभम् । ततो मुनाश्चराः सर्वं ततो देवाः समनतः ॥ ३२ ॥
 नतः सर्वाः स्त्रियः श्रेष्ठास्त्वता विद्याधराः स्थिताः । ततो यक्षाश्च गंधर्वाः किन्नराः प्लवगांसमाः ॥ ३३ ॥
 ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे ततस्तेषां तु संवकाः । ततः स्थिता वारनार्यस्तनो मागधवदिनः ॥ ३४ ॥
 ददशुः संस्थिता यज्ञमडपे यज्ञकीतुकम् । मन्वाह्वावधि हुत्वा ते ऋत्विजश्च सविस्तरम् ॥ ३५ ॥

इत्यज्ञान एव क्रियाआम निपुण वैदिक अग्निहोत्र विधिना प्राकृत एव वैदिक विधियोंम श्रम्यानुसार यज्ञ कर रहे थे ॥ १८ ॥ रामचन्द्रजी नित्य प्रातः काल उठ तथा शौचादि क्रियाओंसे निवृत्त होकर शनु, ब्रह्म एवं अन्य देवताओंका, मुनियोंका, कामधेनुका, हृदयस्थ चिन्तामणिका, कटबद्ध सूतक समान कान्तमान् कौमुभम गका, पुष्पक विमानका, यज्ञके देवता तथा यज्ञ भगवान्को प्रणाम करत थे । १९ ॥ २० ॥ उसक बाद यथाविधि गमतायम जाकर स्नान करत थे ॥ २१ ॥ इसक अनंतर सम्पूर्ण दैनिक कृत्य करते और कामधेनुसे प्राप्त उपहारोंका भेंट देत थे ॥ २२ ॥ संत के द्वारा रत्नपात्राम लाये गये सब रत्ने कामधेनुको पूजा करनेक बाद विस्तारपूर्वक ब्रह्माका पूजा करते थे ॥ २३ ॥ तदनंतर ऋत्विजोंको पूजा करके आचमन पास बैठ जात थे । ऋत्विक्, होता एवं सब मुनीश्वर भां नित्यकर्मोंको समाप्त करके यज्ञमण्डपम बैठ जात थे । रामका अ जासे ऋत्विजोंको उनको पूजा करते थे ॥ २४ ॥ २५ ॥ बादम कामधेनुसे उत्पन्न नाना प्रकारके स्वर्गीय उपहारोंसे राजाओंकी पूजा करते थे ॥ २६ ॥ दिव्य वस्त्राभरणों तथा विविध पक्वान्नोंसे लक्ष्मणप्रिया उमिता एवं माण्डवी-श्रुतकान्ति प्रभृति स्त्रियां भा सोताके आज्ञानुसार सब स्त्रियोंका पूजन करता थीं ॥ २७ ॥ इस तरह प्रत्येक अनुष्ठानको यथायोग्य पूजा हो चुकनेके बाद ऋत्विक् लोग स्वाहाकारों तथा विविध सुगन्धित द्रव्योंसे यज्ञमण्डपमें हुवन करते थे ॥ २८ ॥ सोता और राम इष्टियोंकी समाप्तिपर धेठ एवं दिव्य पुराणोंको स्तुति ॥ २९ ॥ रामचन्द्रजीके आश्रमेय यज्ञम देवता प्रत्यक्ष प्रकट हु कर बड़े आनन्दसे अग्निम प्रक्षिप्त द्रव्योंको छत्ते थे ॥ ३० ॥ ऋत्विक् लोग 'अस्तु धीयद्' इस प्रकार बोलत थे और यज्ञे बज्जाले थे । जिनका मेघध्वनिकी तरह गम्भीर घोष समस्त यज्ञशालाम सुनायी पड़ता था ॥ ३१ ॥ मध्यमे रमणाय एवं ऋत्विक्जनोंसे व्यास हुवनकुण्ड था । उसके पास मुनीश्वर बैठे थे । चारों तरफ देवता बैठे थे ॥ ३२ ॥ इसक बाद सम्पूर्ण स्त्रियां थीं । उनके बाद क्षत्रिय, उनके बाद यज्ञ, यक्षोंक बाद गन्धर्व, गन्धर्वोंक बाद किन्नर, किन्नरोंके बाद बन्दर, उनके बाद क्षत्रिय, उनके बाद संवकवर्ग, उनके बाद वेत्यायं, उनके बाद मागध और वंशजन बैठे थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस तरह अपने-अपने स्थानोंपर बैठे हुए सब लोग यज्ञका कौतुक देख रहे थे ॥ ३५ ॥

सतो माध्याह्निकं कर्तुं ययुस्तां मग्नु नदीम् । कृत्वा माध्याह्निकं कर्म गत्वा तु यज्ञमडपे ॥२६॥
 हेमामने तु सर्वत्र नेमिरेखापमं स्थितः । दद्याथावाश्रागशास्त्रं तस्म्युद्दिन्यामनोपरि ॥२७॥
 नक्षमणस्नानं प्रपूज्याथ भरतेन स शत्रुदा । मम्यप्य हेमपात्राणि सर्वेषां पुनस्तदा ॥२८॥
 जानकीं त्वरयामास पश्चिषणकमाण । अथ मातोभिर्लाभ्या तदा सा मांडवी शुभा ॥२९॥
 श्रूनकानिर्मन्त्रिषन्त्यः मुह्यन्त्यः महस्रशः । पश्चिषणकमाणं चक्रुस्ता यज्ञमडपे ॥३०॥
 नानावधवारमश्च कामधेनुमुद्धव । मुनाश्चरादकाः सर्वे तोषमापुस्तदाऽध्वरे ॥३१॥
 मातादीनां हि नारीणां तदा यज्ञस्य मडपे । नृपुत्राणां क्रिकिणीनां शुश्रुवे सवतो ध्वनिः ॥३२॥
 यथेच्छं भुजतां सर्वं याच्यतां यद्वदि स्थितम् । मां शका भोजने कार्या त्यक्तव्यं यन्न रोचते ॥३३॥
 अयाचितानि देवानि पक्वाभानि यथार्हा च । अस्मद्विनाजपधाराऽथ कार्या राघवशासनात् ॥३४॥
 भूषतां किञ्चिदुत्तुम् नेति नेति द्विजाः पुनः । इति भोजनकाले वै शुश्रुवे सर्वतो ध्वनिः ॥३५॥
 किञ्चिदपेक्षितं स्वामिन्निति रामेण प्रार्थिताः । चक्रुस्ते भोजनं सर्वं वाञ्छता व्यञ्जनादिभिः ॥३६॥
 जलरुणोदकैश्चक्रुः कश्चुर्दि मुनीश्वरा । ततो गृहीतान्बला मुनयस्ते तु निर्जराः ॥३७॥
 गृह्णन्वा हममुद्रा हि राघवेण पृथक् पृथक् । समर्पितां दाक्षिणार्थं जग्मुर्वामस्थलानि हि ॥३८॥
 ततः पूर्वोपचाराद्यैः कथितैरेव पार्थिवाः । चक्रुस्ते भोजनं सर्वं चकुर्वन्वास्तवः परम् ॥३९॥
 स्त्राणां भोजनशालासु पूर्वं भुक्त्वाऽमरस्त्रियः । साहता मुनिपत्नीभिस्तवस्ताः क्षत्रियस्त्रियः ॥४०॥
 चक्रुर्वै भोजनं सर्वाः सोतया प्रार्थिता मुदुः । ततो वैश्यास्त्रयश्चक्रुः पौरनार्यस्ततः परम् ॥४१॥
 ततः शूद्रास्त्रयश्चापि मुदा चक्रुश्च भोजनम् । शालासु पुरुषाणां च ततो वानगराक्षसाः ॥४२॥
 ऋषाः पौरा जानपदाश्चक्रुर्भञ्जिनमुत्तमम् । ततः शूद्रादयः सर्वे ततः पार्थिवसेवकाः ॥४३॥

फलावन्त्याग मकराल्लसन्तः पिस्तारपूजकं हवनं करकं सत्कारं कृत्वा करकं लिए सरयूपर जाते
 थे ॥ २६ ॥ माध्याह्निकं कर्म करकं व यज्ञमण्डपं निमरस्थायं मुनर्णानिर्मितं आसनं वडं जानं थे । इसा तरह
 अपना अपना कृत्य समाप्त करकं दत्ता भा । इत्य सनपर विरजं थे ॥ २७ ॥ बदम भरत, नक्षमण एवं शत्रुघ्न
 उनका पूजा करकं सुवर्णकं भोजनपात्र उनक सभन रत्न दत्त थे ॥ २८ ॥ तब भगवान् रामचन्द्र भोजन परासनक
 लिए सत्तका आज्ञा दत्त थे । तब साता, उमिला, मण्डवा, धृतकर्ति एवं हजारो मित्रपत्नया परासता थीं
 ॥ २९ ॥ ३० ॥ नाना प्रकारका उन उत्कृष्ट भोजनसामाग्र्यास व मुनीश्वरादिक अत्यन्त प्रसन्न होत थे ॥ ३१ ॥
 जिस समय साता प्रभूत स्त्रियाँ यज्ञमण्डपं भोजन परासता थीं, उस समय नुपूरी एवं क्रिकिणीवाला मधुर ध्वनि
 सबन सुनाई पड़ता था ॥ ३२ ॥ सब लोग यथेष्ट भोजन करें, जाएसद हो सा मांग, भोजनक विषयम बाई किसी
 तरहका शका न करें और जिसका जा पदार्थ न रुच, उस छाड़ दें । बिना मांगे ही यथेष्ट पनवान दा और उनका
 थालयोम अलण्ड पृतधारा डाली । इस प्रकार रामचन्द्र पारवयकाका आज्ञा दत्त थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ परासनवाले
 कहत थे और लाजय, ब्राह्मण कहत थे 'नही' । इस प्रकार भोजनकालम सबन यही ध्वनि सुनाई पड़ता था ॥ ३५ ॥
 भगवान् रामचन्द्रजा कहत थे-भगवन् ! क्या चाहिये ? इसक उत्तरम ब्राह्मण 'सर्व पारपूज है' ऐसा कहत
 थे । इस प्रकार आनन्दक साथ पखका हरा खात हुए विप्रगण भोजन करत थे ॥ ३६ ॥ भोजनांतर ठण्डे
 एवं उष्णादिकसहस्त-दन्त शुद्ध करकं वे ताम्बूल खात थे ॥ ३७ ॥ इसक बाद राम द्वारा दाक्षिणार्थं समर्पित
 स्वर्णमुद्राको लेकर वे मुनीश्वर एवं देवता डरपर चल जात थे ॥ ३८ ॥ इसक बाद पूर्वोक्त उपचारास राजालाग
 भोजन करत थे । तदुपरान्त वैश्य-व भोजन करता थी ॥ ३९ ॥ स्त्रियांका भोजनशालाम पहल दवाङ्गनार्थे,
 फिर मुनिपत्नया और उनक बाद क्षत्रियपत्नया भोजन करता था, तदनन्तर सभा स्त्रियाँ साताको प्रार्थना-
 पर भोजन करता थी । उसक बाद वणिक्-रत्नियाँ, तदुपरान्त पुरनारियाँ एवं शूद्रपत्नया भोजन करता थी ।
 पुरुषांका भोजनालयमे वानर, राक्षस, ऋष, पुरवासा, शूद्राद एवं राजतय- ये सब क्रमशः भोजन करत थे

न कश्चित् क्षुधितस्तत्र नासीत्कस्य निषेधनम् । ततो रामः सुहृन्मित्रैर्बन्धुभिः सचिवादिभिः ॥ ४४ ॥
 चकार भोजनं स्वस्थः सीतया प्रार्थितो मुहुः । यावन्तो भूमिकणिका यावन्तस्तौयविद्वजः ॥ ४५ ॥
 यावन्न्युहनि गगने तावन्तो राघवाश्वरे । प्रत्यहं भोजनं चक्रुर्विप्राद्यास्तस्त्रियोऽपि च ॥ ४६ ॥
 शश्वमिर्मन्त्रिपत्नीमिरतथा देवपत्निभिः । चकार भोजनं सीता दिव्यान्नैः स्वस्थमानमा ॥ ४७ ॥
 ततश्चतुर्थप्रहरे मया कृत्वा तु मंडपे । कथंभिः कीर्तनगीतैः शास्त्रवादैः सुपुण्यदैः ॥ ४८ ॥
 वारस्त्रीणां नृत्यगीतैर्निन्ये रामो दिनभयम् । ततः मध्याह्निकं कृत्वा पुनर्हुत्वा यथाविधि ॥ ४९ ॥
 पूर्वोक्तैस्तु कथाद्यैश्च निशायाः प्रहरद्वयम् । मणिकम्प्य निद्रार्थं मर्निशपश्यत्तदा ॥ ५० ॥
 गत्वा स्वस्वस्थलं सर्वे निद्रां चक्रुर्यथामृगम् । पट्टकूलाग्ने भूम्या सीतया तु जितोद्विगः ॥ ५१ ॥
 चकार निद्रां श्रीरामो हृदि चिन्त्येष्टदेवताः । आज्ञाभग्नो नरेन्द्राणां विप्राणां मानसं डनम् ॥ ५२ ॥
 पृथक् शय्या च नारीणामशस्त्रवध उच्यते । ततः स सीतया युक्तश्चकार शरणं प्रभुः ॥ ५३ ॥
 एवमासीन्प्रत्यहं वै दिनचर्याऽश्वरे प्रभोः ॥ ५४ ॥

इति श्रीषातकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे
 यज्ञ रश्मे रातदिनचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(ध्वजारोपणव्रतकी महिमा)

श्रीरामदास उवाच

सौत्येऽहन्यवनीपालो याजकान्सदमस्पतीन् । अद्वयधन्महाभागान् यथावत्सुसमाहितः ॥ १ ॥
 अथ चैत्रे सिते पक्षे राजानः प्रतिपत्तिथौ । ध्वजानारोपयामासुर्विधिनाऽश्वरमंडपे ॥ २ ॥

श्रीविष्णुदास उवाच

आरोषिता ध्वजाः प्रोक्ताः पार्थिवैर्यज्ञमंडपे । गुरो तेषां विधानं मां सम्यग्बुद्धुं त्वमर्हसि ॥ ३ ॥

॥ ४०-४३ ॥ किसीके लिए भोजनका नियेध नहीं था । वहाँपर कोई भूखा नहीं रहता था । सबके भोजन कर लेनेके बाद रामचन्द्रजी स्वयं सीताके वारम्बार प्रार्थना करनेपर अपने पुत्र, मित्र, बन्धु एवं सचिवोंके साथ भोजन करते थे ॥ ४४ ॥ पृथ्वीमें जितनी रेशुकाये हैं जितने जलविन्दु हैं तथा आकाशमें जितने नक्षत्र हैं, उतनी संख्यामें ब्राह्मण प्रभृति पुरुष एवं स्त्रीवृन्द रामचन्द्रके यज्ञमें प्रतिदिन भोजन करते थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ रामचन्द्रके भोजनोपरान्त श्रीसीताजी भी साम मन्त्रिपत्नी तथा देवपत्नियोंके साथ दिव्यान्न खाती थीं ॥ ४७ ॥ पुनः चौथे पहर यज्ञमण्डपमें सभा करके कथा, हरिकीर्तन, पुण्यप्रद शास्त्रचर्चा तथा वैष्याओंके नृत्यगान द्वारा राम अवशिष्ट समय बिताते थे ॥ ४८ ॥ पुनः सायंकाल मन्त्रणा एवं हवनकृत्य पूर्ण करके कथादिके द्वारा रात्रिके दो प्रहर बिताकर सब लोगोंको शयन करनेकी आज्ञा देते थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तब सब लोग अपने अपने स्थानोंपर सानन्द शयन करते थे । राम भी अपने इष्टदेवताका हृदयमें स्मरण करके भूमिपर पट्टकूलासन बिठा तथा जितन्द्रिय होकर सीताके साथ सोते थे ॥ ५१ ॥ राजाओंकी आज्ञा तोड़ना, ब्राह्मणोंका मानमर्दन एवं स्त्रियोंकी पृथक् शय्या करना अशस्त्रवध कहलाता है । अतः भगवान् रामचन्द्र सीताके साथ ही सोते थे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इस प्रकार यज्ञमें भगवान्का यह प्रतिदिनका काम था ॥ ५४ ॥ इति श्रीषातकोटिरामचरितास्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे यज्ञारम्भे रामचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—सौत्यपर्वके दिन राजा रामचन्द्रने सावधान होकर याजकों एवं सदस्योंकी यथावत् पूजा की ॥ १ ॥ चैत्र शुक्लपक्ष प्रतिपदाके दिन राजालोग विधिपूर्वक यज्ञमण्डपके ऊपर ध्वजाओंको फहराने लगे ॥ २ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने कहा कि राजा लोग यज्ञमण्डपके ऊपर ध्वजा

ततो गोचर्ममात्रं तु स्थण्डिलं चापलिप्य च । आधाधाग्निं स्वगृध्रोक्त्या घृतमागादिकं कथाम् ॥२३॥
 शुद्ध्यात्पायसेनैव घृतेनाष्टोत्तरं शतम् । प्रथमं पीठं सूक्तं विष्णोनुक्तेन मन्त्रः ॥२४॥
 ततश्च वैनतेयाय स्वाहेन्वष्टादूर्वाग्निदा । मारुतेरष्टादूर्वाश्च कुन्वा स्वाहेति होमयेद् ॥२५॥
 सोमो धेनुं समुवाय शुद्ध्यात्प्रयत्नतदा । मोगान् मशान् जपेन च शान्तिमूक्तानि भक्तितः ॥२६॥
 रात्रौ जागरणं कुर्यादुपकृष्ट हरेः शुचिः । एवं नवदिनं कार्यं पूजनं परमोन्मत्तैः ॥२७॥
 नवरात्रं जागरणं कुर्यान्मित्रं सुकूर्तनैः । ततो दशम्यामुपनि समुन्वाय त्रीणि शुचिः ॥२८॥
 प्रातःस्नात्वा निम्नकर्म समाप्याथ ततः परम् । गन्धपुष्पादिभिर्देवानर्चयेन्पूर्ववत्क्रमान् ॥२९॥
 ततो मंगलवाद्यैश्च शुक्लपाटैश्च शोभनैः । नृत्यैश्च स्तोत्रपठनेनैवेद्विष्णुशालयं ध्वजम् ॥३०॥
 देवस्य द्वारदेशे वा शिखरे वा सुदान्वितः सुस्थिरं स्थापयेन्निष्ठं ध्वजस्तम्भं मुशोभितम् ॥३१॥
 गन्धपुष्पाश्चर्तुर्दोषैर्दिव्यभूषणैर्नारमैः । अक्षयमोज्ज्वालितसंयुक्तैर्नैवेद्यैश्च हरिं यजेत् ॥३२॥
 आप्रतिपदमारभ्य दशम्यवधिं सप्तमि । ध्वजयोः पूजनं कुन्वेकादश्यां हरिमथानि ॥३३॥
 आरोपणीयौ शिखरे पुगतौ वा यथामुत्तमम् । अथवा रोपणीयौ द्वि दशम्यां तौ ध्वजोत्तमौ ॥३४॥
 नवम्यां वा द्वितीयायां चतुर्थ्यां पञ्चमीदिने । षष्ठ्यां वा रोपणीयौ तौ पूर्वं पूज्य यथाविधि ॥३५॥
 व्रतस्य प्रतिपद्येव प्रारम्भो नेतरे दिने । पूर्वोक्तेषु हरेः कार्या न मासेष्वितरेषु च ॥३६॥
 माघामितचतुर्दश्यामेवं शुभोर्गृहे ध्वजौ । नदीभृग्यक्रितौ कुन्वा रोपणीयौ यथाविधि ॥३७॥
 आश्विनस्य मिताष्टम्यां मधोर्वा गिरिजागृहे । नमस्यस्य चतुर्ष्यां हि प्रोक्तो गणपतश्च गृहे ॥३८॥
 मार्गशीर्षे शुक्लपष्ठ्यामेवं मार्तण्डमगृहे । एव हि सर्वदेवानामुन्माहदिवसेष्वपि ॥३९॥

हे घृता और विधानाकी पूजा करे । तत्परान् गोचर्ममात्र स्थण्डिलके ऊपर परिसमूहनादि पंचभूमस्कार करके स्वशास्त्रीय गृहोक्त विधानसे कुण्डमें अग्नि स्थापित करे ॥ २०-२३ ॥ पुनः क्रमशः पायस और घृतसे आभार-आज्यभाग नामकी अष्टोत्तरशत आहुति दे । अथवा आभाराज्यभागकी आहुति देकर पुनः क्रमशः पायस और घृतका अष्टोत्तरशत आहुति दे । प्रथम आहुतियाँ पुरुषमूत्रके मंत्रोंसे और दूसरी आहुतियाँ विष्णोनुक्त इस मन्त्रसे दे ॥ २४ ॥ फिर गरुडके निमित्त आठ आहुतियाँ और मार्तण्डके निमित्त आठ आहुतिसे हवन करे । 'गरुडाय स्वाहा' मन्त्रसे पहली आठ आहुतियाँ एवं 'मार्तण्डे स्वाहा' इस मन्त्रसे दूसरी आठ आहुतियाँ दे ॥ २५ ॥ पुनः 'सोमो धेनु' मन्त्रका उच्चारण करके संयमपूर्वक हवन करे । तदनन्तर सौर मन्त्रोंका जप और शान्तिमूत्रका पाठ करे ॥ २६ ॥ रात्रियामे श्रीहरिके समीप जागरण करे । फिर दशमी-को परमात्मब्रह्मके साथ भगवान्का पूजन करे ॥ २७ ॥ निम्न हरिकीर्तन करके नवरात्रि पर्यन्त जागरण करे । दशम दिन प्रातः स्नान संध्यादि निरवच्छेदोंमें निवृत्त होकर पूर्ववत् पूजनसम्भारसे भगवान्की पूजा करे ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसके बाद मंगलमय बाजे-गाजेके साथ स्तोत्रपाठ करते हुए ध्वजाको विष्णुमन्दिरमें ले जाय ॥ ३० ॥ मन्दिरके द्वार तथा शिखरपर पुष्पमालामे सुशोभित ध्वजाका स्थापित करे । ३१ ॥ वहाँ गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप एवं अक्षय-भोज्यादि युक्त नैवेद्यसे श्रीहरिका पूजन करे । अथवा प्रतिपदासे लेकर दशमी तक घरमें ध्वजाओंकी पूजा करके एकादशीको विष्णुमन्दिरके शिखर या द्वारपर उन ध्वजाओंका स्थापित करे । अथवा दशमाको ही स्थापित कर दे ॥ ३२-३४ ॥ अथवा द्वितीया, चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी तथा नवमीको सुविधानुसार समय देखकर उपर्युक्त विधानसे पूजा करके ध्वजा स्थापित करे ॥ ३५ ॥ किन्तु व्रतका प्रारम्भ प्रतिपदाको ही होता है । श्रीहरिके निमित्त ध्वजारोपण पूर्वोक्त मामोंमें ही करे, अन्य मामोंमें नहीं ॥ ३६ ॥ इसी प्रकार माघकृष्ण चतुर्दशीका शिवालपर ध्वजारोपण करे । उस ध्वजामें यथाविधि नन्दी और भृङ्गीको अंकित करे ॥ ३७ ॥ आश्विन शुक्ल अष्टमीको या चैत्रके नवरात्रमें मार्गशीर्षके मन्दिरपर ध्वजा फहराये । भाद्रपद चतुर्थीको गणेशके मन्दिरपर ध्वजारोपण करे ॥ ३८ ॥ मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठ्यको मूलके मन्दिरपर ध्वजास्थापन करे । इस प्रकार देवताओंके उत्सवदिवसमें ही यह कार्य सम्पन्न करे ॥ ३९ ॥

मधुर्जाश्विनमासेषु विना विष्णोर्न चेतरे । एव देवालये स्थाप्य शोभनौ तौ चजोत्तमौ ॥४०॥
 मंपूज्य विष्णुं विधिवत् वित्तश्राद्धं विना ततः । प्रदक्षिणमनुव्रज्य स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥४१॥
 नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वमावन । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥४२॥
 येनेदमखिलं ज्ञानं यस्मिन् सर्वं प्रनिष्ठितम् । लयमेष्यति यत्रैतत् प्रपन्नोऽस्मि माधवम् ॥४३॥
 न जानति चरं देव सर्वं ब्रह्मादयः सुराः । योगिनो यं प्रशंसन्ति तं वन्दे ज्ञानरूपिणम् ॥४४॥
 अंतरिक्षं तु यन्नाभिर्यामर्षा यस्य चैव हि । पादादभूच्च वै पृथ्वी तं वन्दे विश्वरूपिणम् ॥४५॥
 यस्य श्रोत्रं दिशः सर्वा यश्चक्षुर्दिनकृच्छशी । ऋक् यजुर्गो येन तं वन्दे ब्रह्मरूपिणम् ॥४६॥
 यन्मुखाद्ब्राह्मणा जना यद्बाह्वोरुभवनृपाः । वंश्या यस्पोरुडो जाताः पद्भ्यां शुद्धस्त्वजायत ॥४७॥
 मनमश्रुमा जातो दिनेशश्चक्षुषन्मया । प्राणेभ्यः पवनो जातो मूत्रादग्निरजायत ॥४८॥
 पापमदाहमात्रेण वदति पुरुषं तु यम् । स्वभावविमलं शुद्धं निर्विकारं निरञ्जनम् ॥४९॥
 र्धागन्धिशायिन देवमननमपराजितम् । सङ्कल्लक्ष्मणं विष्णुं भक्तिगम्यं नमस्कृतम् ॥५०॥
 पृथिव्यादीनि भूतानि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च । सुषुप्त्माणि च येनामस्त वन्दे सर्वतोमुखम् ॥५१॥
 यद्ब्रह्म परम धाम सर्वलोकोत्तमोत्तमम् । निर्गुणं परमं सूक्ष्मं प्रणतोऽस्मि पुनः पुनः ॥५२॥
 निर्विकारमजं शुद्धं सर्वतो वह्निमीश्वरम् । यमामनति योगीन्द्राः सर्वकारणकारणम् ॥५३॥
 एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः । श्रीष्टोक्ताश्च व्याप्य भूतान्मा भुक्तं विश्वभृगवपयः ॥५४॥
 निर्गुणः परमानन्दः स मे विष्णुः प्रसीदतु । हृदयस्थोऽपि हृत्स्थो मायया मोहिततन्मनाम् ॥५५॥
 ज्ञानिनां सर्वधर्मस्तु स मे विष्णुः प्रसीदतु । चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च ब्राह्मणं पञ्चभिरेव च ॥५६॥
 ह्यने च पुनर्ब्राह्मणं स मे विष्णुः प्रसीदतु । ज्ञानिनां कर्मणां चैव तथा भक्तिमतां नृणाम् ॥५७॥

चित्र आश्विन तथा कार्तिक इन तीन भासामें विष्णुक सिवाय अन्य देवताओं के लिए भजारापण नहीं करना चाहिये ॥ ४० ॥ इस प्रकार वित्तश्राद्ध त्यागकर देवालयपर भजारापण करके विधिवत् विष्णुको पूजा करे । तदनन्तर प्रदक्षिणा करके इस स्तोत्रका पाठ करे—॥ ४१ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! हे हृषीकेश ! हे महापुरुषपूर्वज ! आपकी जनकता, प्रणाम है ॥ ४२ ॥ जिससे यह ससार उत्पन्न हुआ है, जिसके आधारपर टिका हुआ है और जिसमें लय होगा, मैं उन माधव भगवान्को प्रणाम करता हूँ ॥ ४३ ॥ जिसको ब्रह्मादि देवता भी भली भाँति नहीं जानते और योगी जिनको प्रशंसा करते हैं, उन परब्रह्म परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४४ ॥ अंतरिक्ष जिसको नाभि है आकाश जिसका मस्तक है और जिनके चरणमें भूमि उत्पन्न हुई है, मैं उस ब्रह्मको प्रणाम करता हूँ ॥ ४५ ॥ दिशाएँ जिनके कान हैं, सूर्य एवं चन्द्र जिनके नेत्र हैं, ऋक्साम एवं यजुर्वेद जिससे जाग्रत न हुए हैं, उस ब्रह्मको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४६ ॥ जिसके मुखमें ब्राह्मण, बाहुमें सन्निव, उरुखलमें शंख और पैरोंमें भूद उत्पन्न हुए हैं, उस ईश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४७ ॥ स्वभावतः निर्मल, निरञ्जन, निर्विकार एवं शुद्ध परमात्मक नामस्मरणमात्रसे समस्त पापममूढ नष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥ जिसके मनमें चन्द्रमा, चक्षुस सूर्य, प्राणोंसे पवन एवं मुखमें अग्नि उत्पन्न हुआ है, उस परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४९ ॥ औरमागर्म शयन करनेवाले, भक्तोंके प्रेमी, भक्तिगम्य, अपराजित और अनन्त-स्वरूप विष्णुका मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५० ॥ पृथिव्यादि पञ्चभूत, तन्मात्रा, एकादश इन्द्रियाँ और सूक्ष्म प्राणिसमूह जिनमें उत्पन्न हुए हैं, उन सर्वतोमुख भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५१ ॥ जो ब्रह्म है, सर्व-लोकान्तमोत्तम है निर्गुण है एवं परम सूक्ष्म है, उस परमात्माको मैं पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥ योगीन्द्रज जिसकी निर्विकार, अज, शुद्ध, ईश्वर एवं ससारका आदि कारण कहते हैं, उस परब्रह्मको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५३ ॥ जो विश्वधाता और अव्यय है, जो एक होता हुआ भी अलग-अलग पञ्च महाभूतों एवं तोनों लोकोंमें व्याप्त है, उस भूतात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५४ ॥ जो निर्गुण है, परमानन्दस्वरूप है और हृदयमें रहते हुए भी जिस प्राणीकी आत्मा मायासे मूढ़ है, वह उससे दूर है ॥ ५५ ॥ जो ज्ञानिवीका सर्वत्व है । वह विष्णु

गतिदाना विश्वभुवः य मे विष्णुः प्रसीदतु । जगद्धितार्थं यो देवमदधाच्छालया हविः ॥५८॥
 यमर्चयति विबुधाः य मे विष्णुः प्रसीदतु । यममनेनि वै मंत्रः सर्वदाऽऽनन्दोऽग्रदम् ॥५९॥
 निर्गुणं च गुणाधारं य मे विष्णुः प्रसीदतु । परेशः परमानन्दः परमपरमः प्रभुः ॥६०॥
 चिद्रूपश्च परिज्ञेयः य मे विष्णुः प्रसीदतु । य इदं कीर्तयेन्निजं स्तोत्राणांशुनमोत्तमम् ॥६१॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते । य इदं कीर्तयेन्निजं ब्रह्मगांधं प्रपूजयेत् ॥६२॥
 आचार्यं पूजयेत्पश्चादक्षिणान्छिन्नादिभिः । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्भुक्तिनः सन्पुत्रपण ॥६३॥
 पुत्रमित्रकलयाद्यैर्वन्द्युभिः सह वाच्यतः । कुर्वीत पात्राणां शिष्यं नारायणपरायणः ॥६४॥
 यस्त्वेतन्कर्म कुर्वीत ध्वजारोपणमुत्तमम् । तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये मृगुष्व सुममाहितः ॥६५॥
 वक्ष्ये ध्वजस्य सर्वदं यावच्छालति वायुना । तावत्स्वपापजालानि नश्यन्त्यत्र न संशयः ॥६६॥
 महापातकपुक्तो वा पुण्येभ्यश्चैव पातकैः । ध्वजं विष्णुगृहे कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६७॥
 कावहिनानि वसति ध्वजो हरिगृहोपरि । तावद्युगमहस्याणि हरेः मामीत्यमाप्नुयान् ॥६८॥
 आरोपितं ध्वजं दृष्ट्वा येऽभिव्रजन्ति धार्मिकाः । तेऽपि सद्यो विमुच्यन्ते दुष्टपातककोटिभिः ॥६९॥
 आरोपितं ध्वजं विष्णुगृहे धुन्वन्म्वक पटम् । कर्तुः सर्गाणि पापानि धुनानि निमित्तार्थतः ॥७०॥
 एवं शिष्यं मया प्रोक्तं यथा पृष्टं त्वया मम । ध्वजारोपणमाह्वानम् सविधानं मनोरमम् ॥७१॥
 समागतौ प्रतिपद्यतां चैवमिदं नृपैः । आरोपिता ध्वजाः सर्वे द्वितीयायां पृथक् पृथक् ॥७२॥
 श्रान्ता राम महाविष्णुं तस्यैवाश्वरमंडपे । कृत्वा चैकदिनं स्वस्ववासरोहेषु पूजनम् ॥७३॥
 ध्वजस्य पूजनं येऽने नवरात्रं समाचरेत् । पथाशक्यनुसारं वा चैकरात्रमथापि वा ॥७४॥
 यशोऽम्भददर्शनाय कृतमेकदिनं नृपैः । चकार राघवापि पर्यमेव ध्वजोत्सवम् ॥७५॥
 माघमासे कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां शिवारात्रे । तदा ध्वजमेहोर्चयन्तैः शुशुभे गगनांगणम् ॥७६॥

पुष्कर प्रसन्न हो ॥ ५८ ॥ चार-चार कृत्तिक हवन करत है, कभी दा दा और कभी पांच पांच तथा फिर दो दो कृत्तिक हवन करते हैं, वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ५९ ॥ जो जानियो, कर्मों एवं भक्तोंकी गति है । जो विश्वभुक् है, वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हो । जो संसारक हितक लिए बारो बार धारण करत है ॥ ६० ॥ जिनको विद्वान् पूजा करत है । मन्त्र त्याग जिनको सदा आनन्दविग्रह कहते हैं, वे विष्णु पुष्कर प्रसन्न हो । जो निर्गुण हैं और मगुण भी हैं । जिनका स्वभाव, परमानन्द, परमात्मा एवं चिद्रूप इत्यादि नामोंसे पांचव मिलता है, वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ६१ ॥ ६० ॥ जो पुरुष इस उत्तम स्तावका पठ करता है, वह समस्त पापोंसे विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है । जो इसका कीर्तन करना चाहें, वह पुत्र मित्र-कलयादिके साथ सत्यपरायण होकर इस स्तावका कीर्तन करे । पश्चात् विष्णु ब्रह्मण एवं आचार्योंको पूजा करे । बादमें ब्राह्मणभाजन कराये ॥ ६२-६४ ॥ जो पुरुष ध्वजारोपण करता है उसका पुण्यफल सावधान होकर सुनो ॥ ६५ ॥ आरोपित ध्वजाका वस्त्र वायुसे जैसे जैसे हिलता है, तैसे तैसे उस पुरुषका सब पाप नष्ट होना जाता है ॥ ६६ ॥ विष्णुमन्दिरके ऊपर ध्वजारोपण करनेसे एक महापातक तथा सभी पाप नष्ट हो जात हैं । वह आरोपित ध्वजा जितने दिनों तक हरिमन्दिरपर मुर्छा भिन्न रहती है, उतने सहस्र युगपर्यन्त ध्वजारोपणकर्ता श्रीहरिके समीप रहता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ जो धर्मिक पुरुष ध्वजाकी वन्दना करते हैं, वे कौटि उपपातकोंसे छूट जाते हैं ॥ ६९ ॥ वह आरोपित ध्वजा लगने लग्न कौशली हुई निमित्तार्थम आरोपितका पापोंको नष्ट कर देता है । हे शिष्य ! तुमने जानो कि ध्वजारोपणमाह्वान पृष्टा, वह सब विविधक मैंने कहा ॥ ७० ॥ इसीलिए चैत्रशुक्ल प्रतिपदाको जया हुआ जानकर राजाओंने द्वितीयाको ध्वजाओंका आरोपण किया । यज्ञमण्डपमें स्थित रामका महाविष्णु सम्पन्नकर ही वे राजे ध्वजाका करने अपने सन्तुष्टोंने अत्यन्त-अत्यन्त पूजन करने लगे ॥ ७१-७३ ॥ पूजा नवरात्र पर्यन्त अपना अपनी शक्तिसे अनुसार करे । अथवा एक ही रात करने ॥ ७४ ॥ यशो-

इदं चरित्रं परमं मनोहरं श्रीमद्वज्रजागेपरिधानसज्जितम् ।

पटन्ति शृण्वन्ति नगाः सुपुण्यदं भवेच्च तेषां नियतं विचिन्तनम् ॥७७॥

इति श्रीशतकाटिरामचरितगतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीयं यागकाण्डे

ध्वजारोपणव्रतं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(अवभृथस्नानोत्सवका चर्चन)

श्रीरामदास उवाच

अथ चैत्रमिते पक्षे नवम्यां रामजन्मनि । तदाऽवभृथस्नानार्थं वाजिमेषकलाप्तये । १ ॥
चकार सूचनां राज्ञे राघवाय गुरुः स्वयम् । स्वरथामाम तं रामं रचितापभयान्मुनिः । २ ॥
वसिष्ठश्च त्रुत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । अद्यावभृथस्नानार्थमुन्मर्गमनं सम ॥ ३ ॥
रामतीर्थं त्वया ज्ञान्वा करणीयं मयोच्यते । आस्तापनीया राजानो निजसैन्यैर्गजादिभिः ॥ ४ ॥
सज्जीभूताः सावरोधास्तिष्ठध्वमिति महपे । मिदं कार्यं निजं सैन्यं शिबिकारथवारणम् ॥ ५ ॥
अध्वपतिसमायुक्तं तुरगोष्ट्रगर्जपुनम् । नववाद्यध्वनिः कार्या तूर्यादीनां स्वनोऽपि च ॥ ६ ॥
पताकाश्च ध्वजाश्चापि तोरणादि समततः । मुक्ताश्चालपुष्पाणि हाराश्चाध्वरमण्डपात् ॥ ७ ॥
बन्धनीया रामतीर्थपर्यंतं मैकतेऽपि च । कदलीनां महास्तम्भाश्चेक्षुर्दंष्ट्राः समंततः ॥ ८ ॥
पुष्पाणि वाटिकाश्चापि मुष्पात्रादिषु निर्मिताः । स्थापनीयाश्च सर्वत्र नृत्यंतु वारयोषिताः ॥ ९ ॥
सेचनीयो रामतीर्थभागश्चन्दनवारिभिः । पुष्पैराच्छादनीयो हि पट्टकृत्वादिभिस्तथा ॥ १० ॥
अन्यच्चापि यथायोग्यं यत्नोक्तं च मया तव । तत्कुरुष्वान्विलम्बेन मामपट्टाऽविचारितम् ॥ ११ ॥
तथैन्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि तथा मयं चकार मः । अथ तं श्राव्यजश्रुश्रुमनोऽष्ट सविस्तराम् ॥ १२ ॥

रुद्र देवतके निमित्त राजाओं तथा रामजन्म एक ही दिनमें सब कृत्य सम्पन्न कर लिखा था । ७५ ॥ इसी तरह माघकृष्ण चतुर्दशीको शिवजीके सम्मुख ध्वजारोपण किया । उस ऊँचा ध्वजासे गगनमण्डल अत्यन्त सुशोभित हुआ ॥ ७६ ॥ ध्वजारोपणविधानसज्जक इस परम मनोहर एवं पुण्यप्रद चरित्रका जो लोग पढ़ने और और मनन है, उनका चिन्तितार्थ अवश्य पूर्ण होता है ॥ ७७ ॥ इति श्रीशतकाटिरामचरितगतं श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकाया ध्वजारोपणव्रतं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—चैत्रशुक्ल रामनवमीको अश्वमेध यज्ञके कलप्राप्त्यर्थं अवभृथ-स्नानके लिये स्वयं गुरु वसिष्ठने रामको सूचना दी और सूर्यनापक भयसे जल्दी करनेके लिए कहने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ वसिष्ठके वाक्य सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा—आज अवभृथ स्नानके लिए मैं उत्सवपूर्वक रामतीर्थको जाऊँगा । अतः उस समयका जो कर्तव्य है, सो सुनो । ३ ॥ राजाओंको आज्ञा दी कि वे अपना-अपनी सेना एवं हाथी-घाड़ोंके साथ अन्तःपुरकी स्त्रियोंका लेकर यज्ञमण्डपमें आएँ ॥ ४ ॥ इसी तरह जब सब बाहरी लोग भी आ जायें, तब अपनी सेना, हाथी, घोड़े, शिविका एवं ऊँटोंको भी ले आओ । नवीन तथा प्राचीन वाद्योंकी ध्वनिके साथ सब लोग रामतीर्थ चले । ५ ॥ ६ ॥ यज्ञमण्डपके चारों ओर पताका, ध्वजा, तोरण, मुन्नामाला, प्रवाल एवं पुष्पोंके हारोंसे सजावट कर दी जाय ॥ ७ ॥ रामतीर्थ पर्यन्त रेताले प्रदेशमें भी हजारों पताकाएँ बाँध दी जायें और चारों ओर क्षुद्रदंष्ट्र एवं कदलीक महान् स्तम्भ खड़े कर दिये जायें । ८ ॥ गमनोंकी पुलवारी सजा दी जाय और सबत्र वेश्याएँ नृत्य कर ॥ ९ ॥ रामनवमीका मार्ग चन्दनके जलसे सिंचवाकर पुष्पों तथा पट्टकृत्वादिभिः आच्छादित करा दिया जाय ॥ १० ॥ और नो जा कुछ करने बाध्य है, किन्तु जिसका मैने नहीं कहा है, वह सब बिना पूछे ही विचारपूर्वक सब व्यवस्था कर दो । इस प्रकार रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने

बाजिवाहे रथे वह्निं पात्राणि स्थाप्य राघवम् । सीतां चाग्रेषु यः गुरुश्चाङ्गोदन्विजः नहः ॥११॥
 मुनयो वेदघोषांश्च सर्वे चक्रुः समन्ततः । स तत्र दृष्ट्वापाकटः सद्यः रुक्ममाग्निनम् ॥१२॥
 यमींश्चरन्तः शनैर्मार्गे मुदा वन्दिजनैः स्तुतः । अग्रे गताः पताकाभिर्जम्बुश्वस्तः पाम् ॥१३॥
 ततस्ते तूर्यघोषाणां कर्तास्मिन्नुरगम्यताः । ततस्ते राजदत्ताश्च त्रिविधोपायः सुदृढिनः ॥१४॥
 ततो हंदिनद्याश्च वाग्म्याणां ततो गणाः । ततो देवाः सगन्धर्वान्तो रामः स सीतया ॥१५॥
 ऋषिर्जनैर्ययौ वह्निमधुनः स्यन्दनस्थितः । ततो मुनिश्च स सर्वे ऋषिपत्न्यस्ततो ययुः ॥१६॥
 ततः क्षत्रियपत्न्याद्याः स्त्रियः सर्वाः शनैर्ययुः । ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे नाना हनमस्थिताः ॥१७॥
 ततस्तेषां हि सैन्यानि ततोऽस्ते राजसेवकाः । नववायुधनानां च द्वाग्णाद्यास्ततः परम् ॥१८॥
 ततश्चोष्टास्तु वाणानां शकटाः शस्त्रपूरिताः । लोहकागास्तशकाश्च चर्मकागस्ततः परम् ॥१९॥
 भूमिमानप्रकर्तारो रज्जुकुट्टलहस्तकाः । ययुर्वेद्याक्रम सर्वे तदंशं परमोत्सवः ॥२०॥
 तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुर्वाग्योपितः । मुनिपत्न्यपत्न्यस्तं प्रवर्तुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२१॥
 मार्गे वन्दिजनाद्याश्च तुष्टुर्व रघुनन्दनम् । पट्टादिस्वरान् गन्धर्वाः प्रजगुः पथि ते मुदा ॥२२॥
 चक्रुस्तो वेदघोषांश्च मुनयः स्मरपूर्वकम् । एवं रामः शनैर्मार्गे कौतुकानि समन्ततः ॥२३॥
 पश्यन् जनकनन्दिन्या ययौ चामरधीजितः । तत्र रामस्य मार्गे हि सीताया मुखपङ्कजम् ॥२४॥
 द्रष्टुं कोलाहलं चक्रुः भ्रमर्दान्मकला जनाः । ततस्तास्नाडयामासुः शतशो वेद्यपाणयः ॥२५॥
 विश्लेषेण तदासीन्म महान् कोलाहलो द्विजः । तन्मयं राघवो दृष्ट्वा श्रुत्या च प्राह लक्ष्मणम् ॥२६॥
 एते सर्वे पुष्पकस्या जनाः सीतां च सां सुखम् । पश्यन्तु कलहो माऽस्तु तथाम्ब्वति स लक्ष्मणः ॥२७॥
 सबानारोहयामास पुष्पकं तान् जनान् मुदा । ततस्ते पुष्पकाभट्टा जना राम मनोरमम् ॥२८॥

'अञ्छा महाराज' कलकर सम्पूर्ण व्यवस्था कर दी । उसके बाद ऋषिभिः गन्धर्वैः गमनेष्टि कृत्य करने लगें ॥ ११ ॥ १२ ॥ घोड़े जुने रथमें अग्नि रथ तथा पात्रा पात्रा स्थापित जमाकर माना और रामको रथारुढ़ कराके गुरु वसिष्ठ भी रथमें बैठ गये ॥ १३ ॥ जब नम्रा रामचन्द्र सुवर्णान्वित रथरर चढ़े, तब ऋषिक् लोग वेदघोष करने लगे ॥ १४ ॥ चन्द्रे जनाम रनुरम न हान हूँ राम धन्य नर रामनयका चले । आगे-मागे पताकाओंसे युक्त हाथों, उसके बाद घोड़े, उसके बाद धाड़ोर चढ़े हुए धूमका तब बाजा बजानेवाले और उनके बाद सुन्दर पगड़ी पहने हुए दण्डधारी राजान चले ॥ १५ ॥ १६ ॥ उसके बाद वन्दाजन, उसके बाद वैश्यवृन्द, उसके बाद देवता तथा गन्धर्व चले ॥ १७ ॥ तदनन्तर स्यन्दनस्थ तथा वह्निमयुक्त ऋषिक् जनास परिवेष्टित राम और सीता चली । उसके बाद ऋषि और ऋषिपत्नियां चली ॥ १८ ॥ उसके बाद राजपत्नी-प्रभृति सम्पूर्ण स्त्रियां चली । उसके अनन्तर विविध वाहनोपर चढ़े हुए रात्र चले ॥ १९ ॥ उसके बाद उनकी सेना तथा अन्य राजसेवक चले । उसके बाद बाद्यवादक चले ॥ २० ॥ उसके बाद बाणोंसे लदे ऊँट और हाथोंसे भरे शकट चले । उसके बाद लोहकर, पतः, ब्रह्म, तब चर्मका चले ॥ २१ ॥ उसके बाद भूमिकों नाप-जोख करनेवालों रम्मी एवं कुदाल हाथोंसे लिये भजद्वार चले लगे । इस तरह आनन्दमय बहु सम्पूर्ण जनसमुदाय चलने लगा ॥ २२ ॥ उसके बाद बाजा बजने लगे और वेगएँ नाचने लगीं । मुनिपत्नियाँ और राजपत्नियाँ रामपर पुष्पवृष्टि करने लगीं ॥ २३ ॥ मार्गमें वन्दाजन स्तुति करने लग, गन्धर्व गाने लगे और मुनिलोग उच्चस्वरसे वेदघोष करने लगे ॥ २४ ॥ इस प्रकार जनकनन्दिनी सीताके साथ विविध कौतुक देखते हुए राम चले ॥ २५ ॥ उस समय राम एवं सीताके दर्शनके लिए परस्पर इच्छता हुई जननम कोलाहल मच गया । उसका शान्त करनेके लिए पुलिम् इडाम जनताको नाडना देने लगा ॥ २६ ॥ २७ ॥ जब अधिक कोलाहल होने लगा, तब रामने देखा और कुछ मंचकर लक्ष्मणसे बोले - ॥ २८ ॥ तुम ऐसी व्यवस्था करो कि जिससे जनता हमारा दर्शन कर सके और कलह शान्त हो जाय । इन सबको पुष्पक विमानपर चढ़ा लो । लक्ष्मणने कहा 'बहुत अच्छा' ॥ २९ ॥ इस प्रकार रामको आज्ञासे सबको पुष्पकपर चढ़ा लिया गया । तब

जानकीमहित यान्तं ददृशुः पयि र्वं शनैः । केचिद्भुर्ये चन्वाः परिपूगमनोरधाः ॥३१॥
 अद्य राम ममीति च पश्यामोऽत्र महोत्सवः । कोचदृक्षुश्च नौ जन्पौ पितरौ न सुजन्मदौ ॥३२॥
 ययोः पुण्यचर्यस्य नः सांसारामदर्शनम् । एव सच्छात्रं श्रीनामे स्त्रियः सर्वाः परस्परम् ॥३३॥
 समन्त्रं पुष्पकं स्थातुं प्रार्थयन्ति स्म जानकीम् । तदा सा जानकी प्रहृष्टलक्ष्मण पुरतः स्थितम् ॥३४॥
 स्त्रियः सर्वास्त्रया शीघ्रं नारीशालासु पुष्पके । आगेहर्णापामे वाक्यान् प्रार्थयन्त्यत्र मां मुहुः ॥३५॥
 लक्ष्मणोऽपि तथेन्युक्त्वा ताः स्त्राः सर्वाश्च पुष्पके । स्वरयाऽऽगेहयामास स्त्रीशालासु यथामुखम् ॥३६॥
 ततस्ताः पुष्पकारुढास्त्वृगजालपटान्तरैः । ददृशुः सीतया रामं वचर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥३७॥
 मृदङ्गशङ्खपङ्क्त्यभ्युपगम्योद्यमः ॥ वादिनाणि विचित्राणि नेदुश्चावभृथोत्सवे ॥३८॥
 नर्तक्यो ननृद्दृष्टा गायका मृधशो जगुः । वीणाधेणुगलान्नादस्तेषां स दिवसस्पृशत् ॥३९॥
 चित्रवज्रजालाकारैरेभेन्द्रस्यन्दनार्थभिः । स्थलं कुर्वन्मर्दभूषा निर्ययुः रुक्ममालिनः ॥४०॥
 यदुसृजयकाभ्योऽजकुर्वन्कुर्यकोमलाः । कम्पयन्तो भुवः सैन्यैर्यजमानपुरःसराः ॥४१॥
 सदस्यैर्विचित्रश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा । देवपिण्डिगन्धर्वान्मुपुवुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४२॥
 स्थलकुता नरा नार्यो गन्धर्वभूषणास्परैः । विरिपन्त्याऽभिपिबन्त्या विजहृर्विचिर् रसैः ॥४३॥
 तैलगोरमगन्धोद्दृष्टिद्रामान्द्रकुम्भैः । पुर्भिलिताः प्रलिपन्त्यो विजहृर्वारयोषितः ॥४४॥
 एव नानाममुन्वाहैः श्रीरामश्च समानया । पश्यन्मानाकौतुकानि स्यन्दनेन शनैः शनैः ॥४५॥
 अगमन्सर्यनीरे रामतीर्थं शुभावहम् । अवरुह्य रथाद्रामः सीतया सरयुजले ॥४६॥
 स चकार जलेष्टिं तैर्जस्त्रिभिः परिवारतः । पन्नासयाजावभृथैश्चरित्वा ते समृत्विजः ॥४७॥
 सवे रामहृदे विप्रा यजमानपुरःसरा । आचान्तं स्नापयाञ्चक्रुः सरयौ सह सीतया ॥४८॥

पुष्पकस्थ जनता रास्तेमे जात हूए सोत, रामका प्रमत्ते दग्धन लगी ॥ ३० ॥ वे कहने लगे—हम धन्य हैं और परिपूर्ण मनोरथ हैं, जो अपने नेत्रों से सीताराम देख रहे हैं । कोई बान्ना कि हमारे जन्मदाता माता-पिता धन्य हैं । जिसके पुण्यसे हमका सांसारिक दर्शन हो रहा है ॥ ३१ ॥ इस तरह कौतुक देखते हुए श्रीराम चले जा रहे थे तब अन्यत्र स्त्रियाँ परस्पर चित्र वज्र के पुष्पक में बैठने के लिए जानकीसे प्रार्थना करने लगीं ॥ ३२ ॥ ३३ इनकी प्रार्थना सुनकर सीता, जोने साधन बैठे लक्ष्मणसे कहा—॥ ३४ ॥ ये स्त्रियाँ बारम्बार मुझसे प्रार्थना कर रही हैं । अब मेरी आज्ञा इनका भी पुष्पकविमानको स्त्रीशालामें बैठा दो ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणजीने उत्तरमें 'बहुत अच्छा' कहकर उन स्त्रियोंको शत्रु पण्यका नारीशालामें बैठा दिया ॥ ३६ ॥ उसपर आरुढ़ होकर वे शरासोमत्ते सीताको देखने और पुष्पाको दपों करने लगीं ॥ ३७ ॥ उस अवभृथस्नानोत्सवके उपलक्ष्यसे लोग मृदङ्ग, शंख, पणव (डोल), चुन्धुर्दानक (नगाड) एवं गोमुख (भेरी) प्रभृति विचित्र विचित्र बाद्योको बजाते लगे ॥ ३८ ॥ नर्तकियाँ प्रसन्न होकर नाचने लगीं । गायकसमूह गायन गाने लगे और वीणा वणु प्रभृति बाद्योका शब्द आकाशका गर्जित करने लगा ॥ ३९ ॥ चित्र-विचित्र व्यवसायता-काजीसे तुल्योमित हाथी घोडे तथा रथोंके द्वारा सजे हुए घोडाओके साथ सब राजे चल रहे थे ॥ ४० ॥ यदु, सृञ्जय, काम्बज, कुश केकय एवं कोसलवंशी राजाकोका वृन्द श्रीरामको आगे करके पृथ्वीमण्डलको कपाता हुआ चल रहा था ॥ ४१ ॥ सदस्य, ऋत्विक् एवं ब्राह्मणद्वन्द्व वदघोष करने लगा और देवता, ऋषि, पितृ एवं गन्धर्व पुष्पवृष्टि करने लगे ॥ ४२ ॥ गन्ध, माला, आभूषण एवं वस्त्रोंसे अलंकृत नारियाँ विविध रसोंको छिड़कती हुई पुरुषोंके साथ विहार करने लगीं ॥ ४३ ॥ वेस्त्राएँ भी तैल, गोरस, गन्धादिक, हरिद्रा तथा गोला कुमकुम पर्यावर उड़लनी हुई उनके साथ खन्ते लगीं ॥ ४४ ॥ इस तरह अनेक प्रकारके आनन्दमय कौतुक देखते हुए श्रीराम और सीता रथक द्वारा घरेघारे मन्दूरक तीरस्थ शुभावह रामतीर्थपर पहुँचे और वहाँ उतर पड़े ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ऋत्विजोंसे परिवर्द्धित श्रीराम सन्धुके जलमें जलेष्टि करने लगे । ऋत्विक् लोगोंने इनकी पत्नीके साथ सदाज एवं अवभृथ स्नान करवाया ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण लोग रामतीर्थके सरयुजलमें सीताके

शुश्रूषेन पुराऽऽनीतैर्नानार्थजलैस्तदा । रामाभिपेकं ते चक्रुर्मुदा मत्रैर्मुनीश्वराः ॥५०॥
 देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समम् । सुमुचुः पुष्पपर्णि देवपिण्डिमानवाः ॥५१॥
 सस्तुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमपूजा नगाः । मन्थपानकिनश्चाग्नितान्वा मुक्ताः स्वयानकान् ॥५२॥
 अथ रामोऽहते भीमे परिधाय स्वलङ्घनः । शुश्रूषे नितरां दिव्यकंकणाम्भ्यां मुमडितः ॥५३॥
 केयुगम्भ्यां कुण्डलाभ्यां मुकुटद्वारं वलिज्वरैः । जनापुनैर्द्वारं च रत्नानां सपुरादिभिः ॥५४॥
 इति चित्तमणियुतः कठे की तुल्यमडितः । विजयसौम्यभूषयोः प्रसया दीपितः ॥५५॥
 कोटिदूर्यप्रतीकाशः सिकताया वरमते । ततः जगत्सदृशं क्रान्तिमि पन्विषेष्टितः ॥५६॥
 अथत्विष्योऽददान्काले पथाम्नायं य दक्षिणाः । स्वयन्नुनेभ्योऽभकृत्य गोभृनुम्यारणान् ॥५७॥
 कामधेनुमलंकृत्य गुरुं दानुं समुद्यतः । तज्जगत्स चित्तगामाम वसिष्ठः य स्वचेरसि ॥५८॥
 अस्ति मां नदिनी नाम्नी कामधेनुमुत्पाद्यता । नाम्नाः प्रयोजनं मेऽद्य ह्यवार्त्तुं करोम्यहम् ॥५९॥
 अस्यैवास्तु कामधेनुस्य योग्यो गृध्रनमः । तं वर्जयिष्यामि स्वयं कान्त्यर्थं जगत्त्रितये ॥६०॥
 याचाम्यहं शुभां सीतां सालकारां सदक्षिणां । श्रीशायं गव्यस्याश्च दक्षे विषयाभ्यहं जनान् ॥६१॥
 इति निश्चित्य स गुरुस्तदा प्राह रघुनाथः । त्वमिह किं वदस्यसे नैनं त्वमिह मे भवेत् ॥६२॥
 यदि दास्यसि देया मे सीताऽलङ्कारगाढा । तया त्वमिह तन्ममैव तान्तर्यं नृसिंहरवि ॥६३॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठस्य जनाम्बुजा । तदाकारं मन्त्रचक्रविषण्णा भयविह्वलाः ॥६४॥
 केचिदनुर्वसिष्ठोऽयं किं भ्राता जटगोऽयं हि । केचिदनुर्विनोदोऽयं कुतोऽस्मि युनिनऽयं हि ॥६५॥
 केचिदनु राघवस्य धर्मं पश्यन्त्ययं मुनिः । केचिदनु राघवोऽयं किं कन्विष्यति पश्यन्नाम् ॥६६॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामः श्रुत्वा तत्त्व गुरोर्वचः । प्रत्यक्षं संजया मीनामाहृत्य गुरुपत्निभी ॥६७॥

साय श्रीरामको आचमन कराकर स्नान करवात ॥ ५० ॥ मुन श्वर आगेत पहने शशधनके लाये हुए विविध तीर्थोंके जलसे उन्हा स्नान करवाया ॥ ५१ ॥ इस समय शशधनके नगाहोके साथ साथ देवताओंके नगाड़े भी बजने लगे और देवा आदि, पितर एवं मनुष्य पुत्र वरसाने लगे ॥ ५२ ॥ सभी वर्णाश्रमी लोग रामतीर्थमें स्नान करने लगे । मन्थपानकी भी घटाए न करके अपन पातकोंसे छूट गये ॥ ५३ ॥ इसके बाद राम नवीन रेशमी वस्त्र पहिन लगे । शशधनके साथ साथ होकर सत्यन्त मणोभित होने लग ॥ ५४ ॥ राजा शशधनके केयूर, कानोम कुण्डल, गान मुकुट, लाल न । पादमाळा और पैरोम रत्न पहिन शशधनको पहिने हुए सीताजी भी अत्यन्त मणोभित हु । ५५ ॥ जगवान राम हृदयरर चित्तमणि और वषडमे कीर्तुष मणि पहिन हुए थे । राम चित्तमणि और कोट मत्र । कानिभ चम्कन हुए कोटि मूर्तकी कान्तिके समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्र कन्विष्य जगत्से पन्विषेष्टित होकर सरगुरु रेताय श्री श्रेष्ठ आसनपर सीताके साथ बैठ गये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ बादमें जगत्से जगत्से जगत्से जगत्से और भी अजगत् करके व जगत्से जगत्से गो, भूमि, घाड़े एवं हाथी दान देने लगे ॥ ५८ ॥ जब वे पादशुको भी अत्यन्त करके गुरु वसिष्ठका दनके लिए उद्यत हुए, तब वसिष्ठ विचार करने लग- ॥ ५९ ॥ मेरे पास इनकी कन्ना नदिनी है ही, तब इससे मेरा क्या अर्थ सिद्ध होगा । मुझे इसका कोई प्रयोजन न । है । यह कामधेनु म हा के पस रह तो अच्छा ही । क्योंकि इसके योग्य राम ही हैं । इसको छोड़कर मैं रामके कर्त्तव्य स्नानके लिए सालकारा एवं सदक्षिणा सीताको मांगता हूँ । ऐसा करके मैं आज रघुनाथ रामका चरित्र आशय मन्त्रों दिलाऊंगा ॥ ५९-६० ॥ ऐसा निश्चय करके वसिष्ठजी बोले -क्या आप कामधेनु दान के हेतु मन्त्र मन्त्र नहीं होगी ॥ ६१ ॥ यदि देना ही हो तो अलङ्कारोंसे सुशोभित सीताको दीजिये । इसीके दानसे मेरी तृप्ति होगी । अन्य सैकड़ों द्विपोंसे भी मेरी तृप्ति न होगी ॥ ६२ ॥ इस प्रकार ऋषि वसिष्ठके वचन सुनकर विषण्ण एवं भयविह्वल जनता महान् हाहाकार करने लगी ॥ ६३ ॥ जनता कहने लगी-"मात्रम पड़ता है कि बड़ा वसिष्ठ पागल हो गया है" "नहीं आई" किसीने कहा "ऋषिने रामसे मजाक किया है" ॥ ६४ ॥ कोई कहने लगा-"ऋषि रामजीके धर्मको अवमा रहे हैं" । कोई कहने

सीतायाः स्वकरेणैव घृत्वा वामकरं मुदा । ममायां राघवः प्राह वमिष्टं तोषयन्मुदा ॥६७॥
 स्त्रीदानमन्यो वक्तव्यः सीतादानं करोमि ते नद्येति मुनिभृन्देषु वमिष्टश्च यथाविधि ॥६८॥
 अर्हानकरं स्त्रीदानं राघवेण समर्पितम् । चयितं च तदाऽभूद्वै सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥६९॥
 देहभानं न कस्यामीतदामीदनिश्चितम् । तदा सीतां मुनिः प्राह मन्त्रेण तिष्ठ बालिके ॥७०॥
 मम पिताऽपि रामेण त्वां मन्येऽहं सुतोषमाम् । तन्मुनेवचनं श्रुत्वा सीता सा खिन्नमानसा ॥७१॥
 राजन्यवनेक्षणा माध्वी मुनेः पृष्ठे क्षुण्णविभुः । वभूशश्रूणनेत्रा सा रोमांचितविग्रहा ॥७२॥
 ततो रामः पुनः प्राह वमिष्टं विनयान्वितम् । गृहाण मुग्धं चापि सीतापि हर्षितं पुनः ॥७३॥
 मया तोषेण कैलासे मन्मथेऽतोपशयिनी । मयाऽपि दातुमानीता तच्छ्रुत्वा गुरुव्रवीत् ॥७४॥
 राम राम महाबाहो तर्वादार्यं च दक्षितम् । याचिता तव यन्तोय मया तेऽस्तु पुनः शुभा ॥७५॥
 अम्याः कुरु तुल्यमयं सुवर्णेन रघूत्तम । अष्टवारं प्रतुलितं सीतया रुक्ममुत्तमम् ॥७६॥
 मां दत्त्वेयं न्वया ग्राह्या पुनः मयदि मद्विरा । अन्यन्किञ्चिच्छृणुस्व त्वं वचनं यन्मयोच्यते ॥७७॥
 धेनुं चिन्तामणिं सीतां कौस्तुभं पुष्पकं पुगीम् । स्वयं राज्यं मयोद्य यी त्वं चेत्कस्य प्रदास्यसि ॥७८॥
 अग्रे कदा तदाऽऽप्ता मे तस्या लुप्ता भविष्यति । मम ताभङ्गदोषेण बहुक्रेणा भविष्यसि ॥७९॥
 मदुक्तः ममर्षो राजन् विना यद्यन्वमिच्छसि । तच्छृणुस्व विप्रेभ्यो त्वं सुखं ह्यविचारतः ॥८०॥
 तद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा तथैव्युक्त्वा रघूत्तमः । सीतां तुल्यधामानेष्व सुवर्णेनाष्टसम्पदा ॥८१॥
 तुलितं प्रनिजग्राह गुरोः माध्वीं स्मिताननाम् । दिव्यालङ्कारहीनां तां कंचुकीचस्त्रयगुताम् ॥८२॥
 तदा निनेर्दूर्वाद्यानि वस्त्राणि पुष्पवृष्टिभिः । मुगस्त्रियो विमानस्थाः सीतारामौ मुदान्विता ॥८३॥

लम्बा । 'अथ अत्र रामजी का करत है' ॥ ६५ ॥ 'म' तरह मुग्धा वचन सुनाता रामजीने हंसकर संकेतसे सत का ओर मुग्ध वचन वा सुनया ॥ ६६ ॥ 'त'ह मुग्धकर सभास है आनन्दपूर्वक अपन हाथसे सीताका ताप ॥ ६७ ॥ 'व'हकर वमिष्टता ही प्रसन्न करने हुए जान ॥ ६८ ॥ 'गुरुदेव! आप स्त्रीदानका मन्त्र बोलिये, मैं सीता को दान करत हूँ' वमिष्टजन भा 'तव स्तु' कहकर रामकर द्वारा दिये हुए स्त्रीदानका यथाविधि स्वीकार कर लिया । उस समय सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् आश्रमि चकित रह गया ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ उस समय सारा ममार चित्रलिखित सा हो गया । किमंकी अपनी टहकी भी मुवि नहीं रहो । तब मुनि वसिष्ठ सीताम बले—'सोने । मेरे पौछ आकर बैठो ॥ ७० ॥ रामजीने मर गिये तूह दान किया है, मैं तुमको पुत्र का तरह मानता हूँ' इस तरह मुनिके वचन मनकर दुःखिता साधु, सता मुनिके पीछे जाकर बैठ गयी । उस समय उनके पीछे खड़े हो गये और वे फूटफूटकर दाने लगी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ तदनन्तर विनयी रामजी वमिष्टतासे वता—'मैं प्रसन्न होकर कैलास पर्वतपर सीताका सुग्धी गाय दी थी । अतः इस मनस्तापदायिनी गुरुमर्षो भी आप ले ॥ क्योंकि आपकी दनक लिए हो मैं इसको संगया था । यह सुनकर गुरुवसिष्ठ धात— ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ 'हे राम ! हे महाबाहो' मैं आपकी उदारता देखनेके लिए ही सीताको मांगा था । अतएव अब मेरे द्वारा दा हुई यह साधा पुनः आपकी से जाय ॥ ७५ ॥ 'हे रघूत्तम ! सुवर्णके बराबर इसको लीजिए । आठ बार कैलासपर जितना स्वर्ण हो, उस मूल दकर मेरी आज्ञासे आप पुनः सीताकी ले लें । और भी जो मैं कहता हूँ उसे सुने ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ अविद्यम कम , चिन्तामणि, सीता, कौस्तुभ रत्न, पुष्पक विमान, अजयपुरा सब अना राज्य यदि आप किसी को दोगे तो मेरे आज्ञाभंगजन्य दोषसे अव्यक्त दुःखी होगे । क्योंकि आजन्मक आपने कभी भी मने अज्ञा भङ्ग नहीं की है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ अतः हे राजन् ! मुनिनिर्दिष्ट मान वस्तुआका ही इकर जा इच्छा है, विना विचारे आह्वानोंको देकर आप सुखी हो ॥ ८० ॥ इस तरह मुक्के वचन मनकर रघूत्तम रामने कहा— 'वदन् अन्धा गुहद्व' और सीताको आठ बार सुवर्णने लीजकर उनसे वापस ले लिया ॥ ८१ ॥ तब केवल कंचुका वस्त्र पद्म तथा रिजालकाग्रेसे रहित भी सीता प्रसन्न हो गयी । इसके अनन्तर आज वजन लगे और विमानपर बैठी हुई देवागताये प्रसन्न होकर सीतारामके ऊपर पुष्पवृष्टि करने

पूर्वाधिकानलकारान्स्वदेहे जानकीं दधौ । जनाः सर्वे सुसंतुष्टास्तदाऽऽनन्दमुदिताननाः ॥८४॥
अथ नीता पतिं नन्वा तन्पाश्वरे सस्थिताऽभवत् । स्मिताननाऽऽनन्दमग्रा लज्जिता गमलोचना ॥८५॥
ततो रामोऽप्यनेकानि कृत्वा दानानि विस्तृताम् । ऋत्विक्सदस्यमुखादीनामभिरणावरैः ॥८६॥
स्वीयज्ञानीभूपान्मित्रमुद्ददोऽन्यांश्च सर्वशः । अभीक्ष्णं पूजयामास वस्त्रालकाभूषणैः ॥८७॥

सर्वे जनाः सुललितोन्मणिकुण्डलमगुष्णीषकंचुकदुकूलमदार्यहागाः ।

नार्यश्च कुंडलयुगालकपृष्ठजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमखलया विरेजुः ॥८८॥

इति श्रीसतषाटिरामचरितातगते श्रीमदानन्दरामायणे वान्मोखाये यागकाण्डे

अवभृयोत्सववर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(अश्वमेध महायज्ञकी समाप्ति)

श्रीरामदास उवाच

श्रीरामेऽवभृथस्नाते शंभुव्रद्धादिभिः सुरैः । रामं वेदस्तवैः स्तुत्या प्रन्युवाच पुरः स्थितः ॥ १ ॥
अद्य धन्या त्रयं सर्वं यन्वां स्नानं सुमंगलम् । पश्यामो वाज्यवभृथे मातया बंधुभिः सह ॥ २ ॥
अस्माकं हर्षकालोऽयं देवदेव दयानिधे । तस्मादयं सदा पुण्यः श्रेष्ठकालो भविष्यति ॥ ३ ॥
त्वं चाप्यंगीकुरुष्वद्य देहममं सुबहून्वरान् । अन्यसञ्चात्र प्रन्यब्दयेन ते दर्शनं भवेत् ॥ ४ ॥
तथा कुरु रघुश्रेष्ठ तीर्थायास्मै वरान्वद । अन्यानि च त्वया पूर्वयानि भूम्या कृतानि हि ॥ ५ ॥

यात्राकाले सुतीर्थानि लिगान्यपि निजाम्यया ।

तेषामपि वरानद्य वद त्वं मम वाक्यतः ॥ ६ ॥

पुरीषु श्रेष्ठाऽयोध्येय त्वया वाच्याऽद्य राघव । नदीषु सरयूः श्रेष्ठा वरैः कार्याऽद्य मद्रिरा ॥ ७ ॥
तच्छुभ्रवचनं श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः । हर्षकालेऽब्रवीद्वाक्यं यत्त्रैलोक्योपकारकम् ॥ ८ ॥

लगो ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ जब जानकीजाने पहलेसे भी अधिक आभूषणोंको अपने शरीरमें पहना तो उससे जनता अत्यन्त सन्तुष्ट हुई ॥ ८४ ॥ इसके बाद पतिको प्रणाम करके हँसती हुई साताजी आनन्दमग्न होकर लज्जापूर्वक रामके पास बैठ गयीं । तदनन्तर रामजीने खूब दान दिये एवं ऋत्विक्, सदस्य, राजे, मित्र, सहृद् तथा अपने भाई-बन्धुओंका वस्त्राभूषणोंसे भली भाँति सत्कार किया ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ उस समय रामजीके यज्ञमें सब पुरुष मनोहर मणियोंसे अटित कुण्डलों एवं मालाओंको पहिने तथा बहुमूल्य वगडो, कन्की और दुबट्टोमें सुशोभित हो रहे थे । इसी तरह कुण्डल, रत्नअटित आभूषण तथा सान्को मेखला (तागड़ी) से सुशोभित मित्रयों भी विराज रही थीं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे पञ्च रामतेजपाण्डेयकृत-
'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायामवभृयोत्सववर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासजी कहने लगे—श्रीरामने जब अवभृथ स्नान कर लिया, तब ब्रह्मादि देवोंके साथ महादेव रामजीकी स्तुति करके कहने लगे—॥ १ ॥ आज हम लोग धन्य हैं, जो साता एवं बन्धुओंके सहित आपको यह अश्वमेधका अवभृथ स्नान किये हुए देख रहे हैं, जो अत्यन्त मंगलकारक है ॥ २ ॥ हे देवदेव ! हे कृपानिधे ! यह समय हम लोगोंके लिए बड़ा हर्षप्रद है । अतः यह सदा अत्यन्त श्रेष्ठ और पुण्यवर्द्धक हागा ॥ ३ ॥ अब भी इसको अङ्गीकार करें और इसके लिए अच्छे एवं बहुतसे ऐसे वर दें कि जिससे हमलोगोंका प्रतिवर्ष आपका दर्शन मिलता रहे ॥ ४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आप इस तीर्थके लिए भी बहुतसे वरोंका दें । यथा करत समय पहले भी आपने जिन तीर्थों एवं लोगोंकी स्थापित किया है, उनका भी मेरे कहनेसे आप वरदान दें ॥ ५ ॥ हे राघव ! अब मेरे कहनेसे आप ऐसा कह दीजिये कि सब नागरिकोंके लिए श्रेष्ठ यह अयोध्या नगरी है एवं

श्रीराम उवाच

यन्प्रार्थितं स्वया शम्भो तदेव हृदि मे स्थितम् । मृणुष्व वचनं मेऽद्य यदुपात्तप्रोच्यते शुभम् ॥ ९ ॥
सर्वेषामेव मासानां श्रेष्ठं वायं मधुर्भवेत् । वैशाखान् कार्तिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्मास एव च ॥ १० ॥

मघमासाद्वैशाखं चैत्रमासो भविष्यति ।

चैत्रमासेऽभवज्जन्म मम यस्मात्तथा पुनः ॥ ११ ॥

वाजिमेधावभृशेषु स्नानेनापि विशेषतः । सर्वेषामधिकतयास्तु मधुर्मे वाक्पगौर्वात् ॥ १२ ॥
चैत्रमासे कृतं दत्तं हुतं स्नानं विविधितम् । सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तमयोध्यायां विशेषतः ॥ १३ ॥
सर्वस्य प्रथमा चेयं पुरीषु नगरी मम । अयोध्या मुक्तिदात्री तु भविष्यति तिरा मम ॥ १४ ॥
अन्यत्र यत्कृतं पुण्यं यष्टिमंत्रस्पर्शः शुभम् । तदत्र दिवमकेन भविष्यति वृणां सदा ॥ १५ ॥

पुर्णार्णं मधुरा ज्ञेया राजधानी शुभप्रदा ।

त्वयाऽस्यैवाचितो यस्माद्दुर्गार्थमहमवरात् ॥ १६ ॥

तव वाक्याद्भीरवेण तव काश्याः शनराधिका । भविष्यति पुरी चेयमयोध्या मम वल्लभा ॥ १७ ॥
नदीषु मरुद्वेपं श्रेष्ठाऽस्तु वचनन्मम । मधुर्महती नान्धा नदी भूता भविष्यति ॥ १८ ॥
अस्यामपि मया चेदं रामतीर्थं विनिर्मितम् । निजनेत्रप्रतापेन तीर्थेषु सुकुटोत्थमम् ॥ १९ ॥
भविष्यति न सन्देहः सर्वपातकनाशनम् ।

तथा यानि पृथिव्यां हि मया तीर्थानि वै पुरा ॥ २० ॥

लिङ्गान्यपि स्वीयनाम्ना कृतानि तानि शंकर । स्नाने दर्शनादीर्घमुक्तिदाऽन्यत्र मन्दु वै ॥ २१ ॥
रामतीर्थे चैत्रमासे प्रत्यब्दं भुवि मानवं । स्नानं विविधितं मधुर्भूतियमर्मन वाक्यतः ॥ २२ ॥
यत्कृतं यथाश्रमेधेन यद्विमेधेन वै फलम् । यत्फलं सोमयागेन तत्त्वैश्वर्यावगाहनात् ॥ २३ ॥
सूर्यश्रेष्ठे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेष्ठः स्नानदानतः ।
तच्छ्रेष्ठः स्थानमधी स्नानादयोध्यायां शुरेश्वर ॥ २४ ॥

नदियोंमें उत्तम सरयू नदी है । शिवजीका यह कथन सुनकर हुजले हुए राम सर्व विमुक्तप्राप्तिकारिणी वाणी बोले ॥ ७ ॥ ८ ॥ श्रीरामने कहा—हे शम्भो । आप जो चाहे हैं, वही मेरे भी मनमें है । आप मेरी वात बुझिये । मैं पूर्णपूर्वक यह कल्याणमय वाक्य कह रहा हूँ ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण मासोंमें श्रेष्ठ वह चैत्र मास होगा । वैशाखमें कार्तिक, कार्तिकमें माघ एवं माघमें महानसे भी चैत्र श्रेष्ठ होगा । इसी मासमें मेरा जन्म हुआ है । इसलिए भी यह चैत्र मास श्रेष्ठ है । १० ॥ ११ ॥ अश्वमेधावभृशेष स्नान होने तथा आपके वाक्पगौरवमें भी यह महीना सर्व श्रेष्ठ होगा ॥ १२ ॥ चैत्र मासमें यहाँ स्नान-दान आदिका जो दिगुण पाए होगा । अयोध्यामें किया हुआ सुकर्म तो और भी अधिक फलप्रद होगा ॥ १३ ॥ वह मेरी पुरा मन्त्र-नगरिबोध उत्तम है तथा मेरी वाणीसे यह मुक्तिदात्री भी अवश्य होगी । १४ ॥ और जगह किया हुआ पुण्यकार्य ६० वर्षोंमें फलदायक होता है, किन्तु यहाँ किया हुआ पुण्य एक ही दिनमें फलदायक होगा ॥ १५ ॥ वैसे पुरीश्वर शुभरत्न पुरी मधुराको समझें क्योंकि आपने मुझसे वर माँगा है ॥ १६ ॥ अतएव आपने वाक्पगौरवमें यह मेरा प्रिया अयोध्यापुरी सुणोंमें आपकी काशीसे भी सौगुनी श्रेष्ठ होगा । १७ ॥ मेरा वचन सरयू सब नदियोंमें श्रेष्ठ होगी । सरयू जैसी नदी न है और मैं होगी ॥ १८ ॥ इसमें भी मेरा वरपाया हुआ यह रमण्य अपने प्रतापसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें सुकृत सदा होगी ॥ १९ ॥ हे शंकरजी । मैंने अपने नामसे भूमिपर जन्म पा लिया एवं शिवजीमें स्थापित किया है, वे सब स्नान-दान एवं पूजनसे मुक्ति दत्तकाल तथा सर्वपापनाशक होगे । इसमें कोई सन्देह नहीं है । २० ॥ २१ ॥ मनुष्योंको प्रतिवर्ष चैत्र मासमें विविधपूर्वक, यम-नियमादिके साथ रामतीर्थमें स्नान करना चाहिये ॥ २२ ॥ अश्वमेध गोमेध एवं सोमयाग करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल रामतीर्थपर स्नान करनेसे मिल जाता है ॥ २३ ॥ सूर्यपूजाके समय कुरुक्षेत्रमें स्नान-दान करनेसे जो फल होता है, वही फल चैत्रमें अयोध्यास्नान करनेसे

अयोध्यायां रामतीर्थे सरयुजलसम्पत्तिः । चैत्रमासे च तस्मै नरा मोक्षभागिनः ॥२५॥

यथा माघे प्रयागे हि स्नानार्थं सुखमिष्टम् । कार्तिके च वरदाक्ष्यां पंचमगाजले स्मृतः ॥२६॥

द्वारकायां यथा प्रोक्ता वैशाखे च यत्नी-क ।

अयोध्यायां रामतीर्थे तथा चैत्रे जगद्गहनम् ॥२७॥

करणीयं नरैर्मकृत्या वचनान्मम सर्वदा । सर्वेषां च मासेषु प्रथमः सकलैर्जनैः ॥२८॥

एतावत्कालपर्यन्तं मार्गशीर्षे प्रयागने । अत्रारभ्य मधुधाय प्रथमः रुपातिमेष्यति ॥२९॥

यथा देवेषु प्रथमस्त्वं महेशस्तथा मधुः ।

मासेषु प्रथमथास्तु तथाऽप्यस्या पुरोध्वपि ॥३०॥

चैत्रे मासे तु संप्राप्ते सर्वे देवाः सवासवाः । बहिर्जलं समाश्रित्य निष्ठुध्वं हि ममाश्रया ॥३१॥

प्रत्यन्दं चैत्रमासेऽत्र यथेदानीं समागताः । आगतव्यं तथा सर्वैर्लोकपातरवामिभिः ॥३२॥

जगदैरातुरैः स्त्रीभिर्येषां यन्मन्त्रिषी मम । रामतीर्थे प्रसूतव्यं सर्वत्र भुवि शंकर ॥३३॥

चैत्रमासेऽजगद्गद्गदं वचनान्मम सर्वदा ।

इति रामवचनः श्रुत्वा गिरिजा प्राह जानकीम् । ३४॥

सीते वरास्त्वगा देया इदानीं वचनान्मम । नरीणां च हितार्थं हि सर्वलोकोपकारकाः ॥३५॥

पार्वत्या वचनं श्रुत्वा जानकी प्राह सादरम् । पृथिव्यां मम तीर्थानि यानि सन्ति सहस्रशः ॥३६॥

अत्रापि च महच्छ्रेष्ठं यत्र स्नातं मयाऽपुना ।

तेषु चैत्रतृतीया या यावद्वैशाखसमंभवा ॥३७॥

यिता तृतीयाऽक्षय्याख्यातावन्स्त्रीभस्तु मादरम् । स्नातव्यं शीतलागौरीमङ्गलं स्थानसुतमम् ॥३८॥

सीमावद् मममेकं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् । सर्वत्र रामतीर्थस्य धामे तीर्थं ममास्ति हि ॥३९॥

इति दत्त्वा वगन्मीताऽमीक्षुर्गौ राममन्त्रिषी ।

ततो गमं गुरुः प्राह गन्तव्यं यत्तमदपम् ॥४०॥

प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ जो ओषध्याक सरयुजलसम्पत्ति र मती रम स्नान करने है, वे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ २५ ॥ जो फल माघमासमें प्रारम्भमानका है कार्तिके क जीकी पंचम गामे स्नान करनेका है और द्वारकामें चतुर्थीपर वैशाखस्नानका आ फल है, वहां फल अरोध्याके रामतीर्थपर चैत्र मासमें स्नान करनेका है ॥ २६ ॥ २७ ॥ आजसे जनता मेरे कहनेसे चारह मह नोम चैत्रको पहला महीना समझे ॥ २८ ॥ आज तक मार्गशीर्ष (जगद्गन) सबसे प्रथम मास माना जाता था, पर आजसे चैत्र प्रथम मास समझा जायगा ॥ २९ ॥ जैसे देवताओपे पहले आप (शिव) हैं, इसी तरह मासोंमें प्रथम चैत्र और पुरियोंमें प्रथम अयोध्या समझी जायगी ॥ ३० ॥ जैसे हम समय आप लोग यहीं आये हैं, उसी तरह प्रतिवर्ष चैत्र मासमें आये और मेरी आज्ञासे सरयू तटपर आश्रम बनाकर निवास करें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ बूढ़े, आतुर (रोगी) एवं स्त्रियों भी जिसके पास ओ कुछ हो, उसी वस्तुको श्रद्धा भक्तिसे भेंट देने तथा चैत्रमासमें स्नानार्थ यहाँ आया करें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार रामके वचन सुनकर पार्वतीजी सोनासे बोली—हे सीते ! आप भी इस समय मेरे कहनेसे सर्वलोकोपकारक एवं विमेष करके स्त्रियोंका हिनकर वर प्रदान करें ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पार्वतीके वचन सुनकर सीताजी बोली—पृथिवीपर जितने भी भेर तीर्थ हैं और यहाँपर जो महाश्रेष्ठ तीर्थ है, जितने मैंने स्नान किया है, उन सब तीर्थोंमें चैत्रकी पृथ्वीमासे लेकर वैशाखकी अक्षाद तृतीया पर्यन्त स्त्रियोंको स्नान करना चाहिये । यह शीतलागौरी स्नान कहलायेगा । यह स्नान एक मास होता है । यह स्नान सीमावद् देनेवाला एवं पुत्रपौत्र चतुर्नेवाला है । मम स्थानेन रामतीर्थके वामभागमें मेरा तीर्थ है ॥ ३६-३९ ॥ इस प्रकार वर देकर सीताजी चुप हो गयीं । इनके बाद गुरु बहिष्ठ रामज से बोले

तद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा ऋद्धतः आरगेह भव शीघ्रं मानयान्विजनेः सह ॥४१॥
ततो नेदुर्दुन्दुभयो मेगेणा निःस्वनस्तनः । सृग्मणवादीनां महाघोषाः समतनः ॥४२॥

वेदघोषाश्च मन्त्रं जयशब्दा द्विजेतिहाः ।

वधून्नुमेवशब्दाश्च ननुतुषामरोमणाः ॥४३॥

नानोत्सर्गः पूर्ववच्च कौतुकानि समतनः । पश्यन्धर्यो रामचन्द्रः शनैरश्वरमंडपम् ॥४४॥

अवकश रथाच्छीर्षं नीत्वाऽग्निं प्राक्षिपन्पुनः । यत्तच्छुद्धे रामचन्द्रः सीतयान्विजनेः सह ॥४५॥

पूणाद्भुति ततो दत्त्वा वस्त्रैरगभरणैः फलैः ।

कुन्वाऽग्रं पूजनं चापि यत्तथावाणि राघवः ॥४६॥

ततो विसर्जयामास यज्ञानि दक्षिणां बहु । दातुं तान्निविजः सर्वान् मौमित्रिं गघनेऽब्रवीत् ॥४७॥

कोशागारं लक्ष्मणाद्याः सर्वे मे ऋत्विजस्त्वया । नीत्वा क्ष्माञ्जिगकृन्त्य तूर्ण्यं स्थेय तदः परम् ॥४८॥

गन्धच्छयाऽग्निं येन गृहीतमुत्तमं वधु ।

तस्याश्रमे प्रारणीयं वाहनार्घ्यं तत्त्वया ॥४९॥

ततो मुनिजनान् सर्वान् देयं त्रिपुलहस्ततः । तद्रामवचनं श्रुत्वा लक्ष्मणोऽपि तथाऽकरोत् ॥५०॥

ततो विसर्जयामास भोजयित्वा रघूत्तमः । ऋत्विजनान् सवृणान् राजिमेषाख्यकर्मणि ॥५१॥

ततो रामोऽमरान्मर्वान् शिवाद्यान्विधिर्धैनिजैः । पूजयामास विधिरदस्त्रालकारवाहिनैः ॥५२॥

ददौ कोशात्मतुग्मान् केषां म शिविकीं ददौ ।

केषां रथान्गजान्केषां ददौ वस्त्राण्यपीश्वरः ॥५३॥

एवं पृथ्वीपतीश्चापि मादरोधान् ससेवकान् । वस्त्रैरगभरणैः पूजयामास भोजनैः ॥५४॥

ततो रामः स्वशरारे दिव्यवस्त्राणि सन्दर्शयित्वा । तदा तं पूजयामासुर्वलिभिर्विबुधा नृपाः ॥५५॥

किं अथ यज्ञमण्डपको ध्वजनां वाहिन्यै ॥ ४० ॥ इस तरह गुरुजीके वचन सुने तो राम 'तथास्तु' कहकर साज सीता एवं ऋत्विक् लोगोके साथ रथपर चढ़े ॥ ४१ ॥ उस समय नगाड़े बजने लग, भेरीके शब्द होने लग और सृग्मणवा प्रभृति वाद्योके ध धमे राव दिशायें दशास्त हो गयीं ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण वेदघोष तथा जयजय-कारके शब्द करन हुए वैदिक मन्त्रोका उच्चारण करने लगे और वग्मघे नाचने लगे ॥ ४३ ॥ पहनेकी तरह विविध उत्सवों एवं कौतुकोको देखत हुए राम शनैः शनैः यज्ञमण्डपमें गये ॥ ४४ ॥ वहाँ उन्होंने शीघ्र रथसे उतरकर साथकी अग्निको यज्ञकुण्डमें छोड़ दिया । सादर नमो एवं ऋत्विजोंके साथ पूर्णाहुति करने लगे । उन्होंने वस्त्र-आभूषण एवं फलोंसे अग्निको पूजन करके यज्ञपात्रोका विसर्जन कर दिया और यज्ञांतमें ऋत्विजोंको विपुल दक्षिणा देनेके आज्ञा देने हुए रामने लक्ष्मणसे कहा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण ! इन सब ऋत्विजोंको कोषागारमें ले जाकर वहाँके पहरेदारोंका हटा दो और तुम चुपचाप अलग खड़े हो जाओ ॥ ४८ ॥ जिसको जितनी इच्छा हो, उसको बिना राक टोक उतगा द्रव्य ले लेने दो । लिया हुआ द्रव्य वाहनोंके द्वारा इनके अवसमपर पहुँचवा दो ॥ ४९ ॥ फिर छुनेहाथ मुनियोंको दान दो । इस तरहका वचन सुनकर लक्ष्मणने भी रामजीके कथनानुसार ही दान दिया ॥ ५० ॥ तदनन्तर अश्वमेध यज्ञमें जितका वरण हुआ था, उन ऋत्विजोंको आज्ञा करके रामजीने विसर्जित किया ॥ ५१ ॥ इसी तरह समस्त दक्षिणोंको भी विधिवत् वस्त्र-अलंकारोंसे पूजित करके विसर्जित कर दिया ॥ ५२ ॥ उनमेंसे किसीको रामचन्द्रजीने खजानेके साथ छोड़े दिये, किसीको अच्छ-अच्छी फालकी दी, किसीको हाथी, किसीको घोड़े और अच्छे-अच्छे कपड़ों तथा गहनोंका उपहार देकर सम्मानित किया ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने स्वयं कपड़े पहने । उस समय समस्त देवताओं तथा राजाओंने याना प्रकारकी भेंट दे-देकर रामचन्द्रजीका

सरिस्समुद्रा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः ।

घाँः क्षितिः सर्वभूतानि समाजहुरुपायनम् ॥५६॥

सीतया स महाराजः सुवासाः साध्वलंकृतः । वधुभिः सेव्यमानः स विरेजेऽग्निरिवापरः ॥५७॥

तस्मै जहार घनदो हंसं वीरवामनम् । वरुणः सलिलस्त्रावि ह्यातपत्र शशिप्रभम् ॥५८॥

वायुश्च बालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्रजम् ।

इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनयमः ॥५९॥

नक्षत्रा मङ्गमयं धर्मं भारती हारमुत्तमम् । दशचन्द्रमसिं रुद्रः शतचन्द्रमयाम्बिका ॥६०॥

सोमोऽमृतमयानन्धास्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् । अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् ॥६१॥

भूः पादुके योगमयौ घाँः पुष्पावलिमन्वहम् ।

नाट्य सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च खेचराः ॥६२॥

ऋषयश्चाशिपुः सन्याः समुद्रः शंखमान्मजम् । मिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महान्मनः ॥६३॥

ततो ददुर्नृपाः सर्वे स्यन्दनाम्तुरगान् गजान् । शिविकागोशृपान् खड्गान् दामोर्दासोपूखेरान् ॥६४॥

सीतायै नृपपत्न्यश्च देवपत्न्यः सहस्रशः ।

वस्त्रलकारयानानि माङ्गल्यान्यथ कंचुकोः ॥६५॥

कीदोषकरणादीनि ददुस्ताः पक्षिपंजगन् । ततस्तैः पूजितं सर्वैः सीतया रघुनायकः ॥६६॥

आरुरोह रथं दिव्यं बद्धिना बन्दिभिः स्तुतः । स्वस्त्रीभिनृपपत्नीर्विमानेन मुनीश्वराः ॥६७॥

विहायसा ययुः सर्वेऽयोध्यायां नृपतेर्गृहम् ।

ततो रामो रथेनैव पूर्वोक्तैरुत्तमैः शनैः ॥६८॥

विवेश नगरीं रामः स्तुतः स्तुतश्च मागधीः । छत्रं दधार सौमित्रिर्मुक्ताजालविगजितम् ॥६९॥

भरतस्तालव्यजनं शत्रुघ्नधामरद्वयम् । ताम्बून्पात्रं सुग्रीवस्तोयपात्रं तु वायुजः ॥७०॥

नलः छीवनपात्रं च बालिजो मुकुरं वरम् ।

वासःकोशं गक्षमेद्रो धूपपात्रं हि जाम्बवान् ॥७१॥

पूजन किया । ससारकी नदियाँ, पर्वत, समुद्र, हाथी, घोड़े, मृग, पक्षी, आकाश और पृथ्वीपर रहनेवाले सब प्राणियोंने अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार भगवान्को भेंट दी । उस समय रामचन्द्रजी सीताजीके साथ मित्रासनपर बैठे हुए थे । चारों भाई उनका सेवामे तल्लीन थे । रामचन्द्र उस समय दूसरे अग्निके मृदुल देदीप्यमान दीख रहे थे ॥ ५५-५७ ॥ उस समय भगवान्को कुवेरने एक सोनेका सिंहासन दिया । वरुणदेवने जलकी वर्षा करनेवाले और चन्द्रमाकी नाई उज्ज्वल छत्र दिया । वायुने कमर दिया । धर्मराजने माला दी । इन्द्रने एक बहुमूल्य किरीट दी । यमराजने दण्ड दिया । ब्रह्माने कवच दिया । सरस्वतीने हार दिया । उसी तरह इन्द्रने दस बारवाली एक तलवार, पावँतोंने शतचन्द्र तलवार, चन्द्रमाने अमृतमरे घड़े, त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने एक सुन्दर रथ, अग्निले अग्निकी तरह चमकता हुआ आजगव नामक एक घनुष, सूर्यने नेत्रोमय बाण, पृथ्वीने योगमयी पादुकाएँ, आकाशने फून्को के छेर, गन्धर्वोंने नाच-गाने-बाजे आदि, ऋषियोंने मत्स्य अशोर्वाद, समुद्रने शंख, नदियों तथा बड़े-बड़े नदों और पर्वतोंने भगवान्को रथके रास्ते दिये ॥ ५८-६३ ॥ इसके अनन्तर राजाओंने रथ, हाथी, घोड़े, पालकी, गाय, बैल, खड्ग, दास और ऊँट आदिके उपहार दिये । फिर राजाओंकी रानियों और देवताओंकी देवियोंने नाना प्रकारके वस्त्र आभूषण, शलकी आदि माङ्गलिक वस्तुयें, खेलके सामान, बोलनेवाले सुन्दर पक्षियोंके पींजरे आदि सीताको दिये । इस तरह सीताके साथ रामचन्द्र सबसे पूजित होकर एक दिव्य रथपर सवार हुए और बन्दीजनोंने भगवान्की भूति आरम्भ की । बहुतेरे मुनिजन अपनी स्त्रियों और राजाओंकी स्त्रियोंके साथ विमानपर चढ़कर

नानाफलानां पात्राणि पूजापात्राण्यनेकजः सुगन्धद्रव्यपात्राणि दधुष्टे मन्त्रिमत्तमाः ॥७२॥
एवं सुगन्धवस्तूनि प्रक्षिपन् वारयोपिताम् । वृद्धेषु सीतया रामो विरेजे स्यन्दने स्थितः ॥७३॥

सुगन्धरागपूर्णैश्च जलयत्रैः करे धृतैः ।

वाराङ्गनानां वस्त्राणि नृपादीनां च राघवः ॥७४॥

चित्रितान्यकरोद्भागैः किंशुकानिव माधवे स्नेहैः सुगन्धं रागाद्यैर्द्रव्येषु राघवः ॥७५॥
क्षिप्त्वा परिमलादीनि चित्रितान्यकरोन्पुनः, नर्तत्सु वारयोपित्सु बाधेषु निनदत्सु च ॥७६॥

स्तुवत्सु वदिवृद्धेषु पुष्पवृष्टिविराजितः ।

ययौ राजगृहद्वारं रामो राजपथा शनैः ॥७७॥

मार्गे कुम्भप्रदीपैश्च दध्योदनविनिर्मितैः । बलिर्दीपैः पूर्णकुम्भैः राजमार्गे पुरस्त्रियः ॥७८॥
चक्रुर्नाराजनं रामं स्वस्त्यर्घ्यं सीतया गृतम् । अवरुह्य गथाद्रामो सीतयाऽग्निं निजे गृहे ॥७९॥

स्थाप्य स्त्रीरमभां गत्वाऽऽकरोद् स्वीयमामनम् ।

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे ग्रणेम् रघुनन्दनम् ॥८०॥

राज्ञा मुकुटरत्नौषधप्रभाभिः पदपंकजैः । विरेजत् राघवस्य तदा सिंहासनोपरि ॥८१॥

मुकुटस्थावतसानां परागैः पूजिते नृपैः । प्रपतुर्नितरां शोभा रक्तोत्पलनिभे परे ॥८२॥

सीमतस्थचन्द्रसूर्यस्तन्माणिक्यदीप्तिभिः ।

सुरपार्थिवपत्नीनां सीतायाः पादपंकजैः ॥८३॥

विरेजतुः परागैश्च केशवधप्रसूनजैः । सुरपार्थिवपत्नीभिः पूजिते कनकोज्ज्वले ॥८४॥

ततः सभायां श्रीरामं स्तुत्वा देवर्भद्रेश्वरः । श्रीरामस्तत्परराजेन श्रीरामेणापि पूजितः ॥८५॥

आकाशमार्गसे अयोध्याकी ओर चलें । इधर रामचन्द्र भी पूर्वाङ्क उत्सवोंके साथ रथपर सवार होकर राज-महलकी ओर बढ़े । जब रामचन्द्र अयोध्यानगरीमें प्रविष्ट हुए उस समय भगवान्‌की एक अनुजो शोभा थी । रामजी सीताजीके साथ रथपर बैठे थे । लक्ष्मण अपने हाथोंमें छत्र भरत पंखा, सन्तुष्ट चमर, सुगन्ध पानदान, हनुमान्‌जी जलकी क्षारो, नन्द उगलदान अद्भुत अङ्गना, विभीषण कपड़ोंकी घेटी और जाम्बवान् घूपदानी लिए दृष्टे थे । इसी प्रकार अनेक फूलोंके पत्र, पूजाकी सामग्रो और अनेक सुगन्धमय द्रव्यके पात्र वहाँके अच्छे-बुद्धे मन्त्री ले-लेकर चले । रस्तेमें वे मन्त्री वेश्याओंके ऊपर गुलाब केवड़ा आदिके इत्रोंकी वर्षा करते जा रहे थे । उस समय विविध प्रकारके सुगन्धित तथा रङ्गीन फौवारे छूट रहे थे, जिससे सबके कपड़े एक विचित्र रङ्गके दिखाई दे रहे थे । उन्हीं भीग हुए और रङ्गीन कपड़ोंपर रह-रहकर रामचन्द्रजी स्वयं गुलालकी वर्षा करके उन्हें और भी विचित्र बना देते थे । इस तरह वेश्याओंके नृत्य, बाजे-वाल्लोंके बाजों, वन्दीजनोंकी स्तुतियों और देवताओंकी पुष्पवृष्टिके साथ राजा राजमार्गसे चलते हुए रामचन्द्रजीके महलकी ओर जा रहे थे ॥ ६४-७७ ॥ रास्तेमें स्थान स्थानपर जलसे भरे कलश और दही भात आदिकी बलि दिखलायी पड़ती थी । सीतारामके कल्याणकी कामनासे अयोध्यावासिनी स्त्रियाँ भगवान्‌की आरती उतार रही थीं । महलके फाटकपर पहुँचकर रामचन्द्रजी रथसे उतर पड़े और सीताजीके साथ अपने यज्ञ-शयनमें गये । यज्ञीय अग्निकी देवगृहमें स्थापित करके वे राजसभामें जा पहुँचे । सभाके सुन्दर सिंहासन-पर भगवान्‌ आसीन हुए । तब देश-देशान्तसे आये हुए राजाजोन उन्हें प्रणाम किया । जिस समय वे राजे अपना मस्तक झुकाकर अपने मुकुटको रामचन्द्रजीके चरणोंमें स्पर्श करा रहे थे, उस समय भगवान्‌की एक विचित्र भाँकी दिखायी देती था । अब उन राजाओ, शानियों और दलियोंने सीतारामको प्रणाम तथा

प्राप्याज्ञां रामचन्द्रस्य सावरोधैः सुरादिभिः ।

प्रस्थानं स्वस्थलं गतुं चकार वृषभस्थितः ॥८६॥

नृपसैन्योऽपि सीतायाः प्राप्याज्ञां पूजितास्तथा । यानान्याहन्तुः सर्वास्त्वयोध्याया विनिर्ययुः ॥८७॥

अथ ते पार्थिवयाश्च प्राप्याज्ञां राघवस्य च । सावरोधाः ससैन्याश्च रक्षयराज्यानि वै ययुः ॥८८॥

ययौ शिवोऽपि कैलासं सन्त्यलोकं विधिर्ययौ ।

इन्द्राद्या निर्जगः सर्वे स्वर्गलोकं ययुस्तदा ॥८९॥

अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः । सर्वे मुनीन्धगद्याश्च स्वभ्रामानि ययुस्तदा ॥९०॥

ततो रामः पूर्ववच्च शशाम जगर्जानलम् । रेमे जनकनदिन्या चिरकालं यथामुखम् ॥९१॥

वर्षान्तरेण कालेन वाजिमेषाः पृथक् पृथक् ।

उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठा विशद्वर्षैः कृता दश ॥९२॥

इत्थं श्रीरामचन्द्रेण दशमे तुग्गाधारे । प्रतिपाल्य गुरोर्वाक्यं सर्वस्वमपि भूसुरान् ॥९३॥

दत्तं किल महाराज्ञा तथा च दिक्चतुष्टयम् । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणार्थं हि दत्तं चेति मया श्रुतम् ॥९४॥

ऋत्विग्भिस्तत्पुनर्दत्तं राघवायैव सादरम् ।

कृपालुभिः पालनार्थमिति शिष्यानुश्रूयते ॥९५॥

एव शिष्य त्वया पृष्टं राघवस्य भगलम् । चरितं तन्मया किञ्चित्तत्रोक्तं यत्तत्संभवम् ॥९६॥

इदं यः प्रातरुन्थाय यागकाण्डं मनोरमम् । पठिष्यति नरः पुण्यं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥९७॥

पुत्रार्थी प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ।

यागकाण्डमिदं श्रुत्वा वाजिमेषफलं लभेत् ॥९८॥

होमकाले श्राद्धकाले चातुर्मास्यादिकेष्वपि । जपध्यानाचर्चनारभे पूर्वं नित्यं पठेदिदम् ॥९९॥

पूजन कर लिया और जब दधनाओंके साथ शङ्खजने रामस्तवराजसे रामचन्द्रजी स्तुति और पूजा कर ली । तब रामचन्द्रजीसे आज्ञा ले लेकर सब लोग अपने-अपने घरोंको प्रस्थान करने लगे । ७८-८६ ॥ राजाओंकी रानियाँ भी सातार्जकी आज्ञा गाकर अपने-अपने रथोंपर सवार हुई और अयोध्यासे अपने घरोंको जाने लगीं । इसी प्रकार सब राजे रामकी आज्ञा पाकर अपनी-अपनी राजधानीको लौटे । तब शिवजी अपने कैलासको, ब्रह्मा सत्यलोकको और इन्द्रादि देवता स्वर्गलोकको चले गये ॥ ८७-८९ ॥ इसके बाद श्रीलवान् ऋत्विक् और सदस्य आदि भी अपने-अपने आश्रमोंको विदा हुए । रामचन्द्रजीने फिर पूर्वरोतिसे अपना राजकाज सँभाल लिया और चिरकाल तक सीताजीके साथ विहार करते रहे । प्रति दूसरे वर्ष इसी तरह अश्वमेध यज्ञ करते हुए रामचन्द्रजीने बेंस वषमे दत्त अश्वमेध यज्ञ किये । दसवें अश्वमेधमें गुरु वसिष्ठके आज्ञानुसार भगवान्ने अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणोंकी दान दे दी । मैंने तो यहाँतक सुना है कि रामने चारों दिशाये दक्षिणार्धमें ऋत्विजोंको द डाली थीं ॥ ९०-९४ ॥ किन्तु उन दयालु ऋत्विजोंने फिर उसे बड़े आदरके साथ भगवान्को लौटा दिया और कहा— 'हे प्रभो ! इसकी रक्षा आप ही कर सकते हैं—हम नहीं । इस कारण यह सब आप अपने ही पास रक्षिए' । इस प्रकार हे शिष्य ! जैसे तुमने रामचन्द्रजीके मङ्गल-कार्यका प्रश्न किया, वैसे ही मैंने भी तुम्हें ब्रह्मवाद्या और रामचन्द्रके यज्ञसम्बन्धी चरितोंको सुना दिया । ओ कोई ! सबसे उठकर इस सुन्दर यागकाण्डको सुनेगा, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो आयेंगी । वह यदि पुत्रार्थी होगा तो उसे पुत्र मिलेगा और धनार्थी होगा तो धन प्राप्त होगा । इस यागकाण्डको सुननेसे अश्वमेध

रम्यं पवित्रं रघुनायकस्य श्रीमच्चरित्रं तुरगाध्वरोद्भवम् ।

पठन्ति शृण्वन्ति जनाः सुपुण्यदं लभन्ति नैजं खलु वाञ्छितं हृदि ॥१००॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे

रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

यागकाण्डोद्भवाः सर्गा नवव परिकीर्तिताः । सपादवटशतश्लोका रामदासेन वर्णिताः ॥ १ ॥

यज्ञका फल प्राप्त होता है । किसी प्रकारका हुवन आदि करते समय, श्राद्धकालमें, चानुर्मासमें, व्रतमें, जप, ध्यान और पूजनके पहले सदा इस यागकाण्डका पाठ करना चाहिए । इन रम्य तथा पवित्र अश्वमेध-यज्ञसम्बन्धी रामचरित्रको जो लोग पढ़ते और सुनते हैं, वे अपनी अभिलषित कामनाओंको पूर्ण कर लेते हैं ॥ ९५-१००

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना'-

भाषाटीकासमन्विते यागकाण्डे यज्ञसमाप्तिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस यागकाण्डमें कुल नौ सर्ग और ६२५ श्लोकोंका रामदासने वर्णन किया है ॥ १ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डं समाप्तम् ।

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु



श्रीमीनापाये नमः

श्रीबाल्मीकिमहामुनिकृतशनकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽह्वया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

विलासकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(शिवकुल रामस्तवराज)

विष्णुदास उवाच

गुरो ते शृणुमिच्छामि तद्वदस्व सविस्तरम् । स्तुतो रामः शिवेनात्र येन रामस्तवेन हि ॥ १ ॥

तं रामस्तवराजं मे विस्तरेण प्रकाशय ।

श्रीशिव उवाच

इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदामोऽजवीद्वचः ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । प्रोच्यते रामचन्द्रस्य स्तवराजो मयाऽधुना ॥ ३ ॥

यत्परं यद्गुणाधारं यज्ज्योतिरमलं शिवम् । तदेव परमं तत्त्वं केवल्यपददायकम् ॥ ४ ॥

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञितम् । ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः ॥ ५ ॥

श्रीराम राम रामेति ये वदन्त्यपि सर्वदा । तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ॥ ६ ॥

स्तवराजः पुरा प्रोक्तः शिवेन परमात्मना । तमहं मयवस्थामि हरिष्यानपुरःसरम् ॥ ७ ॥

तापत्रयाग्निशमनं सर्वधौघनिकृन्तनम् । दारिद्र्यदुःखशमनं सर्वमपत्प्रदायकम् ॥ ८ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो । मैं यह जानना चाहता हूँ कि शिवजीने किस रामस्तवराजसे रामचन्द्रजीकी स्तुति की थी ॥ १ ॥ कृपा करके आप मुझे वह रामस्तवराज बतला दीजिये । इस तरह अपने शिष्यकी वत्त मुनिकर श्रीरामदासने कहा—॥ २ ॥ हे वत्स । तुमने मुझसे बहुत अच्छी बात पूछी है । मैं तुम्हें वह स्तवराज बतलाया हूँ, सावधान होकर सुनो ॥ ३ ॥ जो संसारमें सबसे श्रेष्ठ है, जो सब सद्गुणोंका आधार है, जो एक निर्मल एवं पवित्र ज्योति है, वह ही परम प्रधान तत्त्व है और मोक्षपददायक है ॥ ४ ॥ बड़े-बड़े विद्वानोंका कहना है कि ‘श्रीराम’ यह सर्वोत्तम तारक मन्त्र है और ब्रह्महत्या प्रभृति महान् पातकोंका नाशक है ॥ ५ ॥ जो सज्जन सर्वदा ‘श्रीराम’ नामका जप करते हैं, उन्हें जन्मकर्मों से निवारण मिलता है, तबतक सांसारिक भोग मिलते हैं और शरीर त्याग करनेपर मुक्ति मिल जाती है ॥ ६ ॥ जो मैं तुमसे कहनेवाला हूँ, इस स्तवराजकी शिवजीने स्वयं मुझसे कहा था । उसीको आज भगवान्कृत ध्यान करके मैं तुमसे कहूँगा ॥ ७ ॥ यह तीनों (वैदिक, दैविक और भौतिक) तापोंको नष्ट करनेवाला,

विज्ञानफलदं पुष्पं मोक्षकफलदायकम् । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि रामं कृष्णमनामयम् ॥ ९ ॥
 अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे । ध्यायेन्कल्पतरुर्मूले रत्नसिंहासने शुभे ॥ १० ॥
 तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नानारत्नोपशोभितम् । स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादिन्यतेजसम् ॥ ११ ॥
 पितृगमनमार्गानभिद्रनीलवपनभम् । कोमलाङ्गं विशालाङ्गं विद्युद्गर्जितवृतम् ॥ १२ ॥
 भानुकोटिप्रतीकाशं किरीटं विराजितम् । रत्नग्रैवेयकेयूगवत्कुडलमङ्कितम् ॥ १३ ॥
 रत्नकंकणमजीरकटिचूडैरलंकृतम् । शोचन्मकौस्तुभोरस्कं मुक्ताहारोपशोभितम् ॥ १४ ॥
 चिन्तामणिदमायुक्तं रत्नमालाविराजितम् । दिव्यरत्नसमायुक्तं मुद्रिकाभिरलंकृतम् ॥ १५ ॥
 कर्पूरामरकस्तूरीदिव्यरंधानुलेपनम् । तुलसीकुन्दमदारपुष्पमाल्यैरलंकृतम् ॥ १६ ॥
 गन्धवं द्विभुजं वीरं राममपस्मिन्नाननम् । योगशास्त्रविभूतं योगेश योगदायकम् ॥ १७ ॥
 सदा सौमित्रिभरतसन्नुयैरुपसेवितम् । विद्याधरसुराधीशमिन्द्रगन्धर्वकिन्नरैः ॥ १८ ॥
 योगीन्द्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानमहर्निशम् । विश्वामित्रवसिष्ठाद्यैर्ऋषिभिः परिसेवितम् ॥ १९ ॥
 सनकादिमुनिश्रेष्ठैर्योगिचन्द्रैः समावृतम् । रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम् ॥ २० ॥
 मंगलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम् । सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञमानन्दमतिमुन्दरम् ॥ २१ ॥
 कौसल्यातनयं रामं धनुर्वाणधरं हरिम् । एवं संवित्प्रेक्ष्य षड्ज्योतिर्ज्योतिषां परम् ॥ २२ ॥
 प्रहृष्टमानसो भूत्वा सभायां वृषभध्वजः । सर्वलोकहिनार्थाय तृष्टाव रघुनन्दनम् ॥ २३ ॥
 कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चिन्तयन्नुत्तरं हरिम् ।

धीशिव उवाच

यदेक तत्परं नित्यं यदनन्तं विदात्मकम् ॥ २४ ॥

पापसमूहका नाशक, दारिद्र्य और दुःखका दमन करनेवाला तथा समस्त सम्पदाओंका दाता है ॥ ८ ॥
 यह विज्ञान (ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान) का फल देनेवाला, पवित्र और मोक्षका साधक है । मैं श्यामस्वरूपधारी
 राम-कृष्णका ध्यान करके वह रत्नराज नमकी वस्तु रहा हूँ ॥ ९ ॥ श्रोताको चाहिये कि वह अयोध्यानगरे-
 के रत्नोंसे सुसज्जित एक सुन्दर भवनमें कल्पवृक्षके नीचे एक रत्नसिंहासन, जिसमें नाना प्रकारके मणियोंसे
 सुशोभित अष्टदल कमल है, उसपर बैठे हुए हजारों मूर्तों की भक्ति में जगन्मय रामचन्द्रजीका ध्यान करे ॥ १०-११ ॥
 रामचन्द्रजी अपने पिता (महाराज) का धर्म, व आसनपर बैठे हैं, इन्द्रकोट मणिकी भाँति जिनकी श्याम मूर्ति है,
 जिनके कोमल अङ्ग हैं, वही बड़ा और है चिन्तामणी तरह वसुधैव कुटुम्बकम् मणि है और गलेमें
 चिन्तामणि तथा कितने ही रत्नोंका माला लपका है । उनकी मणिकी बहुतसे जड़ी अंगुठियाँ पड़ी
 हैं ॥ १२-१५ ॥ कर्पूर, अमर और कस्तूरी से मिला माला चन्दन उनके सारे शरीरमें लगा हुआ है । तुलसी
 तथा कुन्द-मन्दार आदिके पुष्पांग जिनका शृङ्गार किया हुआ है जिनके केवल दो भुजाएँ हैं, होठोंपर मन्द
 मुस्कान है, जो योगशास्त्रके वानप्रस्थ मन्त्र हैं, लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न जिनकी सेवामें लगे हुए हैं, विद्याधर,
 दन्ता, मिथु, गन्धर्व और नारद आदि योगीन्द्र नाम जिन जिनकी स्तुति किया करते हैं विश्वामित्र-वसिष्ठादि
 महापुरुष जिनकी परिचर्यामें लगे हुए हैं । सनक, सनन्दन, सनत्कुमार आदि मुनि वर्जनाथ खड़े हैं । जो रघुवंश-
 में सर्वप्रधान वीर तथा वनुषदम निपुण हैं । जो मंगलभरत हैं, कमलके समान जिनके नेत्र हैं, जो सब शास्त्रोंके
 तत्त्वज्ञ, आनन्दमूर्ति, अतिशय सुन्दर कोमलकाके सुवन हैं और धनुष-बाण धारण किये हैं, ऐसे भगवान्
 रामचन्द्रका ध्यान करे । जो सब ज्योतिषोंमें श्रेष्ठ हैं । ऐसे अद्भुत स्वरूपका ध्यान करके हृषीकेश
 होकर शिवजीने संसारके कल्याणार्थ दानों हाथ जोड़कर भगवान् रामचन्द्रकी स्तुति की ॥ १६-२३ ॥

यदेकं व्यापकं लोके तद्रूपं चिन्मयम् । सर्वत्रैकान्त्यार्थं रामभक्त्यतिवृद्धये ॥२५॥
 विज्ञानहेतुं विमलायनाशं प्रज्ञानसिद्धयसुखैकरूपम् ।
 श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं विश्वेश्वरं राममहं भजानि ॥२६॥
 कविं पुण्यं पुरुषं परेशं मन्त्रज्ञं योगिनर्मसितारम् ।
 अक्षरणीयांमननर्थायै प्रणेश्वरं राममहं भजामि ॥२७॥

नारायणं जगन्नाथमभिरामं जगन्पतिम् । कविं पुण्यं वामीशं रामं दशरथान्मजम् ॥२८॥
 राजराजं रघुवरं कौसल्यानन्दवर्द्धनम् । धर्मं वरेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम् ॥२९॥
 सत्यं सत्यप्रियं श्रेष्ठं जानकीवन्दनं प्रभुम् । सीमन्निपुर्वजं शान्तं कामदं कमलेश्वरम् ॥३०॥
 आदित्यं रविमोक्षानं धृतिं सुयमनामयम् । आनन्दरूपिणं सीम्यं राघवं करुणाकरम् ॥३१॥
 जामदग्न्यं तपोमूर्तिं रामं पशुधामिणम् । वक्ष्यति वरं वार्यं आपतिं पश्चिवाहनम् ॥३२॥
 श्रीशङ्खधारिणं रामं चिन्मयानन्दविग्रहम् । हलधारिणमीशानं बलरामं कृपानिधिम् ॥३३॥
 श्रीवन्तमं कलानाथं जगन्मोहनमन्युनम् । मन्त्रकर्मवराहादिरूपधारिणमव्ययम् ॥३४॥
 वासुदेवं जगद्योनिमनादिनिधनं हरिम् । गोविन्दं गोपतिं विष्णुं गोपीजनमनोहरम् ॥३५॥
 गोपालं गोपरीवारं गोपकन्याममावृतम् । विद्युत्पुञ्जपतीकाञ्च रामं कृष्णं जगन्मयम् ॥३६॥
 गोमोपिकाममाकीर्णं वेणुवादननन्परम् । कामरूपं कलावंतं कामिनीं कामदं प्रभुम् ॥३७॥
 मन्मथं मधुराजार्थं माधवं मकरध्वजम् । श्रीधरं श्रीकरं श्रीशं श्रीनिवासं परत्परम् ॥३८॥

गिवजीने कहा-जो एक है, जिससे बढ़कर समारम और कुछ है ही नहीं । जो अनन्त, नित्य एवं अविनाशी है । जो जकेला रहता हुआ भी समस्त विश्वमें व्याप्त है, मैं भगवान् के ऐसे स्वरूपका उपास करता हूँ ॥ २४ ॥ २५ ॥ जो विज्ञानके एकमात्र हेतु है, जिनकी निर्मल और शिवालय और है, जो पूरा ज्ञानको अवस्थाम आनियोको दिव्यरूप होकर दान देता है एम श्रीहरि, आदिदेव तथा विश्वेश्वर रामचन्द्रको मैं वन्दना करता हूँ ॥ २६ ॥ जो स्वयं कवि है, सर्वमें वृद्ध है, सर्वको प्यारी है, सनातन है तथा वागिनाथ श्री स्वामी है । जो मूढमस भी मूढम है, जिनमें अनन्त परमेश्वर है, जो समस्त वरावर जावोंके प्रभु है, एम रामचन्द्रका मैं भजन करता हूँ ॥ २७ ॥ नागधनञ्जय, समस्त जगत्के स्वामी, अक्षरमन्दर, वासना तथा दशरथजीके तनय रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २८ ॥ जो राजाज है भी राज है, जो रघुवर्मामें मन्त्रेश्वर है, जो कौसल्याका आनन्द बढानवाले है, जो मेजमय है, जो समारके आकर्षक है, जो समारक गुरु है, जो गरुडरूप है, जिनको मन्द ही प्रिय है जो सीतारामके पति है, जो लक्ष्मणके बड़े भ्राता है, जिनका शान्त स्वभाव है, जो अपने भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करते है, कमल सरीव जिनके नेत्र है, जो अक्षितिके पुत्र है, जो मूर्धरूप हैं, जो दिव्यरूप और आरोग्यस्वरूप है जो आनन्दके साक्षात् मूर्ति है, जो सीम्य प्रकृतिके हैं और जो करुणाके भण्डार हैं ॥ २९-३१ ॥ जो जगद्गुरुके पुत्र (पशुधाम) हैं, जो अभिलषित कामनाओंको पूर्ण करते हैं, जो लक्ष्मीपति है, जिनका पक्षी (गरुड) वाहन है जो लक्ष्मी और शङ्खनामक धनुष धारण करते हैं, जिनका नित्य आनन्दमय शरीर है, जो हुनको दान करनेवाले बृद्धरामस्वरूप हैं, जो लक्ष्माक प्रिय हैं, जो सब कलाओंको जानते हैं, जो संसारको मुख करनेमें समर्थ हैं, जिसका कभी विनाश नहीं होता, जो मन्त्रकर्म-वराह आदि रूप धारण करते हैं और जो अविनाशी हैं ॥ ३२-३४ ॥ जो वन्देवके पुत्र, संसारके अश्व, जन्म-मरणसे रहित, इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाले, इन्द्रियोंके पति, जगन्मन्दर, गोपियोंने मनको चुरानेवाले और गौओंके रक्षक हैं, ऐसे राम-कृष्ण तथा जगन्मय भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जो गौओं और गौपियोंसे घिरे रहते हैं, श्री वंशों बजानेमें तत्पर रहने । जो जब जेसा चाहते वैसा अपना स्वरूप लता लेते हैं, जो समस्त कलाओंसे पूर्ण हैं, जो कामनावाले मधुरोंकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं और कामदेवरूपसे स्वयं

भूनेऽ भूपति भद्र भूतिदं भूरिभूषणम् । मयदुःखहरं वीरं दुष्टदानवमर्दनम् ॥३९॥
 श्रीनृसिंह महाविष्णुं महातं दीप्ततेजसम् । चिदानन्दमयं नित्यं प्रणव ज्योतिरूपकम् ॥४०॥
 आदित्यमण्डलगतं निश्चिन्तार्थस्वरूपिणम् । भक्तिप्रियं यज्ञनेत्रं भक्तानामाश्रितप्रदम् ॥४१॥
 कौमल्येयं कलामूर्तिं काकुत्स्थ कमलाप्रियम् । सिंहासने समायानं नित्यव्रतमकल्पयम् ॥४२॥
 दिव्याभिरुचिप्रियं दातुं स्वदाग्नियतव्रतम् । यज्ञेशं यज्ञपुरुषं यज्ञपालननन्पम् ॥४३॥
 सत्यसध जितक्रोधं शरणागतवन्मलम् । सर्वक्लेशापहरणं विभीषणवरप्रदम् ॥४४॥
 दशग्रीवहर रुद्रं केशव केशिमर्दनम् । बालिमशमनं वीरं सुग्रीवेप्सितराज्यदम् ॥४५॥
 नरवानरदेवैश्च सेवितं हनुमत्प्रियम् । शुद्धं सूक्ष्मं परं शांतं सारकब्रह्मरूपिणम् ॥४६॥
 सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं सनातनम् । सर्वकारणकर्तारं निदानं प्रकृतेः परम् ॥४७॥
 निरामयं निराभासं निरवयं निरञ्जनम् । नित्यानन्दं निराकारमद्वैतं तममः परम् ॥४८॥
 परात्परतरं नित्यं सत्यानन्दचिदान्मकम् । मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि स्मृतमम् ॥४९॥
 भूतोद्भवं वेदविदो ऋषिष्ठमादित्यचन्द्रानिलमुप्रभावम् ।
 सर्वात्मकं सर्वगतस्वरूपं नमामि राम तमसः परम्नात् ॥५०॥
 निरञ्जनं निष्प्रतिमं निरीहं निराश्रयं कारणमादिदेवम् ।
 नित्यं ब्रह्मं निर्विषयस्वरूपं निरतरं राममहं भजामि ॥५१॥
 भवान्धिपो न भगताग्रजं तं भक्तिप्रियं भानुकुलप्रदीपम् ।
 भूताधिनाथं भुवनाधिपत्यं भजामि रामं भद्रो गव्यधम् ॥५२॥
 सर्वाधिपत्यं स्वरं गन्धीरं सत्यं चिदानन्दसुखस्वरूपम् ।
 मन्यं शिवं सज्जनहृत्निवासं श्रेयं परमनन्दमहं भजामि ॥५३॥

मनको उद्दिष्ट किया करता है। जो भयुराज स्वामी है जो लक्ष्म के पति है जो शक्रध्वज, श्रीधर, आकर, श्रीश, आनिवास, परात्पर, भूनाथ, भूपति, भद्र (कल्याणमय), भूतिद (सयसम्पत्तिपोंके दाता), भूरिभूषण, (बहुत से भूषणोंको धारण करनेवाले) सब प्रकारके दुस्त्रियों हरनेवाले वीर और दुष्ट दानवोंका विनाश करनेवाले है, जो श्रीनृसिंह, महाविष्णु, महान् दीप्तिशाली, चिदानन्दमय, नित्य, प्रणव, ज्योतिरूप, आदित्यमण्डलमें विराजमान, निश्चिन्तार्थस्वरूप, भक्तिप्रिय, कमललोचन, भक्तोंके कामना पूर्ण करनेवाले, कौमल्यके सुवन, कलामूर्ति, काकुत्स्थ, कमलाप्रिय, सिंहासन सीन, नित्यव्रती और पापरहित है। जो विश्वामित्रके प्रिय, दान्त (जितन्द्रिय) और एकपत्नीव्रती है। जो यज्ञेश, यज्ञपुरुष, यज्ञकी रक्षाम तत्पर, सत्यसध, जितक्रोध शरणागतवत्सल, सब क्लेशोंको हरनेवाले, विभीषणका वरदान देनेवाले, रावणका विनाश करनेवाले, रुद्र, केशव, कौशाम्बी, बालिमशमनक, वीर सुग्रीवको ईप्सित राज्य देनेवाले, नर-वानर और देवताओंसे सेवित, हनुमान्से सेवित, शुद्ध, सूक्ष्म, शान्त, ब्रह्मरूप, सब प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले, सर्वाधार, सनातन, सब कुछ कर्ता धर्ता, प्रकृतिके मूल कारण, निरामय, निराभास, निरवय, निरञ्जन, नित्यानन्द, निराकार, अद्वैत, तमोगुणसे परे, सर्वश्रेष्ठ, नित्य, सत्य, आनन्द और चिन्मयस्वरूप हैं। उन श्रीरामचन्द्रजीको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ३९-४९ ॥ जो संसारक वन्मदाता है, विद्वानोमें श्रेष्ठ है, सूर्य-चन्द्रमा और अग्निमें जितका प्रकाश है, जो सर्वेश, सर्वस्वरूप और तमोगुणसे परे है। ऐसे रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५० ॥ निरञ्जन, निष्प्रतिम, निरीह, निराश्रय, सर्वगण आदिदेव, नित्य, ध्रुव, विषय और स्वरूपसे परे रामचन्द्रजीका मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५१ ॥ जो समारम्भों महासागरके लिए जहाजके सदृश है, जो भरतके बड़े भ्राता, भक्तिप्रिय, भानुकुलक प्रदीप, भूताधिनाथ, भुवनरुपी जहाजके अधिपति और भव रूप रोगके वैद्य हैं, उन रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥ जो सबके अधिपति, पुष्टविद्यामें कुशल, सत्यस्वरूप

कायक्रियाकारणमप्रमेय कविं पुराण कमलायताभम् ।
 कुमारवेष करुणामयं त कल्पद्रुमं राममहं भजामि ॥५४॥
 प्रेम्णोक्त्यनार्यं मर्मसारकृदाक्ष दयानिधिं द्वन्द्वविनाशहेतुम् ।
 महाबलं वेदनिधिं सुरेश मनाननं राममहं भजामि ॥५५॥
 वेदान्तवेद्य कविमाशिताश्मनादिमध्यान्तमचिन्त्यमाद्यम् ।
 अगोचरं निमलमेकरूप परान्तरं राममहं भजामि ॥५६॥
 अशेषशदान्मकरमादिद्वयमजं हृदि राममनन्तमूर्तिम् ।
 अपारमावन्मुखमकररूपं नमामि राम तममः परस्तान् ॥५७॥
 तत्त्वस्वरूप पुरुष पुराण स्वनेत्रमा पुरितविश्वयेकम् ।
 राजाधिगज रविमण्डलस्थ विश्वेश्वरं राममहं भजामि ॥५८॥
 योगोद्गमयर्गवि सेव्यमानं नारायणं निमलमादिदेवम् ।
 नर्तार्जस्य निन्यं जगदेकनाथं हृदि चिदानन्दमयं सुकुन्दम् ॥५९॥
 अक्षेपविद्यारिपतिं नमामि रामं पुराण तममः परस्तान् ।
 विभूतिदं विश्वगुप्तं परमं राजेन्द्रसारं रघुवत्सनाथम् ॥६०॥
 अचिन्त्यमव्यक्तमननरूपं ज्योतिर्मयं राममहं भजामि ।
 अक्षेपमगारविकारहान्तमानन्दमपूर्णसुन्दराभगमम् ॥६१॥
 नारायणं विष्णुमहं भजामि ममन्तयाक्षि तममः परस्तान् ।
 मुनीन्द्रगुह्यं पारिपूर्णमेकं कलानिधिं कल्मषनाशहेतुम् ।
 परान्तरं यन्मयं पवित्रं नमामि रामं महतीं महान्तम् ॥६२॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो दत्ततास्तथा । आदित्यादिग्रहार्थं च न्वमेव रघुनन्दन ॥६३॥
 नायमा क्रययः मित्राः साध्याश्च गुणघनतथा विप्रा ब्रह्माश्च यज्ञाश्च पुराण धर्मसहिताः ॥६४॥

मच्चिदानन्द मुलान्वर १, सन्त, निव, सज्जन २ हृदयम निवास करनवाले और परमानन्दस्वरूप रामचन्द्र-
 जाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५३ ॥ जी. कर्माक काव्य, अन्तर, कवि, चरित्राया, पुराण पुरुष, कमलसराखे
 विनाश नयनो युक्त, निन्य कुमारवेषधारा, करुणामय त ता कल्पद्रुम समान सवका अभिलाषा पूरा करनेवाले
 है, उन रामचन्द्रका मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५४ ॥ त्रिलोक नाथ, मर्मर रह (कमल, के समान नयनवाले, दयानिधि, द्वन्द्व
 विनाशक एकमात्र हनु, महाबल, वेदाक्ष निधान, मुख और सनातनस्वरूप रामचन्द्रजाको मैं प्रणाम करता
 हूँ ॥ ५५ ॥ वेदान्तवेद्य कवि इकल, आदि-मध्य और अन्त रहित, अचिन्त्य, सवक आदिम उत्पन्न
 होनेवाले, चक्षुरादि इन्द्रियोस अगाध, निमल एकरूप और तनानुपस पर रामचन्द्रजाको मैं प्रणाम करता
 हूँ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तन्वस्वरूप, पुराण पुण्य, केवल अवन प्रकाशस समस्त विश्वका प्रकाश देनेवाले, राजा-
 धिराज, रविमण्डलम निवास करनेवाले और विश्व परस्वरूप रामचन्द्रजाको मैं प्रणाम करता हूँ । योगोन्द्रोके
 समूहम सेव्यमान, नारायण, निमल, आदिदेव, निन्य, शान्त एकमात्र स्वामी, हर, चिदानन्दमय और
 सुकुन्दस्वरूप रामचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५८ ॥ ५९ सनस्त विद्याओंके भण्डार, तमसे परे, पुराणपुरुष,
 मर्मस्तिथोंको देनेवाले, ममारक विकारासे पृथक् और सवका आनन्द देनेवाले रामचन्द्रजाको मैं प्रणाम
 करता हूँ ॥ ६० ॥ ६१ नारायण विष्णु, सर्वज्ञ, तमसे पर, कृपिओंके ध्यानम भा कठिनाईसे आनेवाले,
 परिपूर्णरूप एक, कलानिधि, कल्मषक नाशक, परम पवित्र और बड़ास भी बड़े रामचन्द्रजाको मैं प्रणाम करता
 हूँ ॥ ६२ ॥ है रघुनन्दन । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवन्द्र, दत्ता तथा आदित्यादि यह सब कुछ तुम्ही हो । तपस्वी,

वर्णाश्रमास्तथा धर्मा वर्णधर्मास्तथैव च । नागा यक्षाश्च गन्धर्वा दिक्पाला दिग्गजा दिशः ॥६५॥
 वसोऽष्टौ त्रयः काला रुद्रा एकादश स्मृताः । तारका द्वादशादित्यास्त्वमेव रघुनायक ॥६६॥
 मत्त द्वीपाः समुद्राश्च नदा नद्यस्तथा द्रुमाः । स्थावरा जंगमाश्चैव त्वमेव रघुनन्दन ॥६७॥
 देवतिर्यङ्मनुष्याणां दानवानां दिर्वाकपाव । माता पिता तथा भ्राता त्वमेव रघुनन्दन ॥६८॥
 सर्वेशस्त्वं परं ब्रह्म त्वद्रूपं विश्वमेव च । त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव रघुपुंगव ॥६९॥
 शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् । राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥७०॥

ततः प्रसन्नः श्रीरामः प्रोवाच वृषभध्वजम् ।

श्रीराम उवाच

तुष्टोऽहं गिरिजाकांत वृणीष्व वरमुत्तमम् ॥७१॥

श्रीशिव उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश श्रीराम करुणानिधे । तवाद्य दर्शनेनैव कृतार्थोऽहं न संशयः ॥७२॥
 धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं पुण्योऽहं पुरुषोत्तम । अद्य मे सफलं कर्म ह्यद्य मे सफलं तपः ॥७३॥
 अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफलं श्रुतम् । अद्य मे सफलं सर्वं त्वत्पदांभोजदर्शनात् ॥७४॥
 अद्वैतं विमलं ज्ञानं त्वमनामस्मरणं तथा । त्वत्पदांभोरुहद्वन्द्वे सद्भक्तिं देहि राघव ॥७५॥
 ततः परं मुसंप्रीतो रामः प्राह सदाशिवम् । गिरिजेश महाभाग पुनरिष्टं ददाम्यहम् ॥७६॥

श्रीशिव उवाच

वरं न याचे रघुनाथ युष्मत्पदाब्जभक्तिः सततं ममास्तु ।

इदं प्रियं नाद्य वरं प्रयच्छ पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे ॥७७॥

श्रीरामदास उवाच

इत्येषमीडितो रामः प्रादात्तस्मै धरांतरम् । तेनोक्तस्तवराजाय ददौ नानाशरान् बहून् ॥७८॥

ऋषि, सिद्ध, साध्व, मुनि, विप्र, वंर, यज्ञ पुराण तथा धर्मोक्त संहिता ये सब तुम्हीं हो ॥ ६३ ॥ ६४ ॥
 हे रघुनायक । वर्ण, आश्रमधर्म, वर्णधर्म, नाग, यक्ष, गन्धर्व, दिक्पाल, दिग्गज, दिशाएँ, वसु, तीनों काल,
 एकादश रुद्र ताराएँ और द्वादश आदित्य ये सब तुम्हीं हो ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ सातों द्वीप, समुद्र, नद, नदियाँ
 तथा वृक्ष आदि स्थावर जङ्गम समस्त वस्तु तुम्हीं हो । देव, तिर्यक्, मनुष्य, दानव, दवता, माता,
 पिता, भ्राता, मैं भी सब तुम्हीं हो ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ तुम्हो सबज्ञ हो, स्वरस्वरूप ब्रह्म हो, यह संसार भी
 तुम्हारा ही रूप है, तुम अक्षर हो, परम प्रधान अनिष्ट हो । और मैं कहीं तक बतलाऊँ, हे रघुपुंगव ! मेरे सब
 कुछ एकमात्र तुम्हीं हो ॥ ६९ ॥ शान्त, सर्वगत, सूक्ष्म, परब्रह्म, सनातन, जगत्पति और राजीवलोचन
 रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ । इस प्रकारका स्तुति सुनकर रामचन्द्रजीने शिवजीसे कहा—हे गिरिजाकांत !
 मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ । जो भा चाहो, सो उत्तम वर माँग लो ॥ ७० ॥ ७१ ॥ श्रीशिवजीने कहा हे
 राम ! हे करुणानिधे ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न है तो मैं आपको इस प्रसन्न मूर्तिको ही देखकर कृतार्थ
 हो गया ॥ ७२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! मैं घबड़ा हूँ और अतिशय पवित्र हूँ । आज मेरे सब कार्य सफल हो गये ।
 मेरी तपश्शान्ति सफल हुई, मेरा ज्ञान सफल हो गया और शास्त्रोक्त श्रवण करना भी सार्थक हो गया । आप-
 के इन चरणकमलोक दर्शनसे ही मेरा सब कुछ सफल हो गया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे कृपानाथ ! यदि आपको वर ही
 देना हो तो मुझे अपना अद्वैत तथा विमल ज्ञान दंजिए । मुझे अपने नामका कीर्तन करानेकी शक्ति और अपने
 इन चरणकमलोक सद्भक्ति दंजिए ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर अतिशय प्रसन्न होकर रामचन्द्रजीने शिवजीसे
 कहा—हे गिरिजेश ! हे महाभाग ! मैं तुम्हारे अभिलषित वरोंको देनेके लिए प्रन्तुत हूँ, माँगो ॥ ७६ ॥ शिव-
 जीने कहा—हे रघुनाथ ! मैं कोई वरदान नहीं चाहता । मैं चाहता नहीं हूँ कि सदा आपके चरणोम मेरी भक्ति
 बनी रहे । हे नाम ! मुझे यही वर प्रिय है और यही देनेके लिए मैं आपसे बारम्बार अनुरोध करूँगा

एवं शिवेन यः प्रोक्तः स्तवराजः शुभावहः । स एवाद्य त्वया पृष्टस्तवाग्रे कथितो मया ॥७९॥
 अयं श्रीरघुनाथस्य स्तवराजो ह्यनुत्तमः । सर्वमौभाग्यसंपत्तिदायको मुक्तिदः स्मृतः ॥८०॥
 कथितो गिरजेशेन तेनादौ सारसंग्रहः । गुह्याद्गुह्यतरो नित्यस्तव स्नेहान्त्रकीर्तिदः ॥८१॥
 यः पठेच्छृणुयाद्वापि त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः । भक्तहत्यादिपापानि तन्ममानि बहूनि च ॥८२॥
 हेमस्तेयसुरापानशुरुत्तन्पायुतानि च । गोवधाशुषपापानि चित्तान्संभवानि च ॥८३॥
 सर्वैः प्रमुच्यते पापैः कल्पायुतशतोद्भवैः । मानसं वाचिकं पापं कृपणा समुपार्जितम् ॥८४॥
 श्रीरामस्मरणेनैव व्यपोहति न भंशयः । इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यं नैवान्यदुच्यते ॥८५॥
 रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात्मिकचिन्त विद्यते । तस्माद्रामस्वरूपं हि रामः सर्वमिदं जगत् ॥८६॥

श्रीरामचन्द्र रघुपुङ्गव राजवर्यं रजेन्द्र राम रघुनाथक राघवेश ।

राजाधिराज रघुनाथक रामचन्द्र दामोदरमय भवनः शरणागतोऽस्मि ॥८७॥

उत्फुल्लामलकोमलोत्पदलज्यामाय रामाय चक्रामाय प्रशमाय निर्मलगुणग्रामाय रामात्मजे ।
 ध्यानारूढमुनीन्द्रमानमगरोद्भाय संसारविध्वमाय स्फुरदोजसे रघुकुलोत्तमाय पुंसे नमः ॥८८॥
 एवं शिष्य मया प्रोक्तो यथा पृष्टस्त्वया मम । स्तवराजो राघवस्य श्रवणान्पापनाशनः ॥८९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितातमंत श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे वार्ष्णेकायै

शंकरकृतरामस्तवराजो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(राम द्वारा सीताके सौन्दर्यका वर्णन)

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि । अयोध्यायां राघवेण सीतयाऽतिसुरूपया ॥ १ ॥

॥ ७७ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार स्तुति करनेपर रामचन्द्रजीने शिवजीके इच्छानुसार वर दिया और
 अपने मनसे भी उनको बहुतसे ऐसे वर दिये, जिनको शिवजीने मांगा ही नहीं था ॥ ७८ ॥ इस प्रकार शङ्करजी
 का कहा हुआ शुभदायक 'रामस्तवराज' मैंने तुम्हारे पूछनेपर कह सुनाया ॥ ७९ ॥ यह रामचन्द्रजीका
 स्तवराज सब स्तोत्रोंमें श्रेष्ठ है । यह सब प्रकारके सीमाय, सम्पत्ति और मुक्तिको देनेवाला है ॥ ८० ॥
 शिवजीने वेदोंका सारअंश निकालकर इसमें रख दिया है और यह अन्यन्त अलभ्य वस्तु है । किन्तु तुम्हारे
 सच्चे प्रेमके वशीभूत होकर मैंने तुमको बतलाया है ॥ ८१ ॥ जो प्राणा मृगह शम या तीनों कालमें इसका
 पाठ करता है, उसके ब्रह्महत्या जैसे महान् पापक तथा सुवर्णका चुगना भक्षण, गुह्यके विछीनेपर लेटना,
 गोवध, किसी प्रकारके मानसिक पाप आदि जो सैकड़ों कल्पसे एकत्रित हो गये हों, वे सब श्रीरामस्तवराजके
 स्मरणमात्रसे नष्ट हो जाते हैं । यह बात विन्तुल सच है । इसमें किसी प्रकारका धात्रा न समझना चाहिए
 ॥ ८२-८५ ॥ रामचन्द्र सत्य परब्रह्म हैं । उनसे बढ़कर और कोई है ही नहीं । अतएव यह समस्त ससार
 रामका ही स्वरूप है ॥ ८६ ॥ हे रामचन्द्रजी ! हे रघुपुङ्गव ! हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! हे रघुनाथक ! हे राघवेश !
 हे राजाधिराज ! हे रामचन्द्र ! मैं एक अकिञ्चन दास आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ८७ ॥ नवविकसित निर्मल
 नील-कमल-न्दल सरीखे जिनका व्याम स्वरूप है, जिनको किसी प्रकारकी कामना नहीं है, जो पूर्ण शान्तमूर्ति
 हैं, जो निर्मल गुणोंके राशिस्वरूप हैं जो ध्यानारूढ़ मुनियोंके मनमानसके हंस हैं, जो अपने भूभङ्गमात्रसे
 संसारको विध्वंस करनेमें समर्थ हैं, ऐसे रघुवंशभूषण तथा परम पुरुष रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ
 ॥ ८८ ॥ हे शिष्य ! इस तरह मैंने तुम्हारे प्रश्नानुसार यह पापराशिनाशक स्तवराज तुम्हें सुना दिया ॥ ८९ ॥
 इति श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामनेजपांडेयकृत ज्योत्स्ना भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि अयोध्यामें परम रूपवती सीताके

कथं भुक्ता वश भोगाः किं किमाचरितं शुभम्, चरितं तस्य सकलं वद मंगलदायकम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं नृपा वन्द्य माधवानमदाः शृणु । रणदीक्षा वानिमेषदीक्षां च रघुनन्दना ॥ ३ ॥

निर्वाप्य सीतया रमेऽयोध्यायां वधुभिः सुखम् । जानकीं रजयासाय जाना नोर्मर्मनोहरं ॥ ४ ॥

नृत्तिकचिन्मृगु मांमन्यं विलासचरितं शुभम् । सीतया कीमलद्रव्य भवणान्मङ्गलप्रदम् ॥ ५ ॥

कः कुम्भं चरितं वक्तुं नयोः कीडान्वितं क्षमः । अनः सधेयतः किंचिद्विद्वदपि तत्र मन्त्रिणौ ॥ ६ ॥

अथ सीतयुतो रामः पार्वन्या शक्यो यथा । कौडं चकार केलामेऽयोध्यायां न तदाऽकरोत् ॥ ७ ॥

हेमरत्नमये दिव्यगेहं वैकुण्ठमन्त्रिभे । निद्रास्थान राधकस्य मनोज्ञं वासिष्ठमन्त्रिभम् ॥ ८ ॥

भित्तौ स्तोपला यत्र हेमनः पंकजस्ति यत्र हि । यत्र स्तम्भाः स्फाटिकाश्च यत्र मारकनोद्धवाः ॥ ९ ॥

प्रतोन्यः सतशो रम्याः शेषं नीलादिभिर्भितम् । मुकुटैकज्ज्वला यत्र भित्तयश्चित्रचित्रिताः ॥ १० ॥

यत्र हेममयी भूमिर्यत्र मुक्तामयं शुभम् । विलान् पुष्पहारैश्च मुक्तागुच्छैर्विभजितम् ॥ ११ ॥

हेमतंतुमथान्यत्र भित्तवस्त्राण्यनेकशः । यत्रागृहमनुष्यैश्च समदो नैव जायते ॥ १२ ॥

एवं तद्विस्तृतं रम्यं रत्नदीपैर्विभजितम् । हेमकुम्भा विराजन्ते प्रसादाग्रेषु चित्रिताः ॥ १३ ॥

यत्र चित्राण्यनेकानि मोहयन्ति मूर्खद्विजान् । यत्र हेममया रम्याः पर्यक्षाश्चित्रिताः ॥ १४ ॥

हेमकौशेयमभूततनुपट्टैर्विभजिताः । महार्हवसनैः पुष्पजालैर्गन्धार्जिताः शुभाः ॥ १५ ॥

चतुष्कोणे लवमानमुक्तायोर्विभजिताः । वेणु दिग्धाः कशिपवस्तथोपवहणानि च ॥ १६ ॥

कैकियश्चमयान्येषु चाभराणि सहासि च । गोपुच्छाद्यन्तर्गन्धिभरादीनि मणि हि ॥ १७ ॥

माधव रत्ने हुए रामचन्द्रजाने किन्तु प्रकारक भोगोंका भाग और कौन-कौनसे पूज कायं किये । इस प्रकार समस्त मङ्गलदायक रामचरित्र काय मुद्राको सुनाइए ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है । मङ्गलान् होकर मना । रामचन्द्रजाने जब रामदासा और ऊ उसमें राजकी दीक्षा हुन देना दोक्षाओंका काम पूरा कर दिया । सब सीता तथा जयल सब आताओंका साथ राम मुखपूर्वक रहने लगे । उतने विविध प्रकारके भोगोंसे सीताको प्रसन्न किया ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनमें विराजका कष्ट और जो पद्म सकलदायक है, ये बहुत सुताका है । सीता रामका यह चरित्र श्रवण तरासे क क्षण होता है ॥ ५ ॥ सीता तथा रामके समस्त चरित्र कहानको शक्ति नो हममें अथवा किसीमें भी नहीं है । अतएव मे उनका मुक्षित रीतिसे सुम्ह सुताऊँगे ॥ ६ ॥ अन्धविषयजक अन्तर रामचन्द्रजो सादुर-पावनक सनान से नाकत साथ कलास सहस आताय मे चकर विहार करने लगे ॥ ७ ॥ सुवश तथा अनेक प्रकारके माणयाम रचिन एवं वैकुण्ठके समान दिव्य भवनका चन्द्रमा सहज स्वच्छ तथा सुन्दर रामचन्द्रजका भवन-स्थ था , = । जिसको राक्षारोम रत्नोंके एतन् नृपणक लगेम जब गये थे । जिसमें चारों ओर स्फटिक और मरकत मालिक स्तम्भ लगे हुए थे ॥ ९ ॥ जिसमें सोनम आदि भणिकाक मज बन हुए थे । जिसमें सोन और दागोंक लगे रहस वह भवन विन्दुल भवनका रिया से देना दह । दाभाराभ किये ही चित्र लग हुए थे ॥ १० ॥ उस भवनकी भूम सोनकी था, जेममें माचिरोका साजसे टंकी हुई आदनी लगी थी ॥ ११ ॥ जिसमें सोनके तारसे बने हुए कपड़ोंका चादर लगे लगे लगी हुई थी । वह भवन उतना विभाज था कि उनमें दस हजार सूर्याका भाइ सहजमें सम आती था ॥ १२ ॥ इस प्रकार वह भवन बड़ा विस्तृत तथा भाक-मुवरा था और उसमें रत्नक दीपक अला कहे थे । प्रसादके अग्रभागमें सोनके कला चित्रित किये हुए थे ॥ १३ ॥ एक हजारो चित्र स्थितका मुख कर देते थे और उतने देहकर स्थितोंको अपन नन-वदतकी थी भुवि नहीं रह जाती थी । वही सुवर्णके पलंगोपर अनेक विन्तर विछे हुए थे ॥ १४ ॥ जिसमें सुवर्णके तार और रेशमकी बुनी हुई चादरें पडा थीं । जो भवन कीमती कपड़ा और पुनोसे सता हुआ था ॥ १५ ॥ जिसके चारों चारों कमरोंमें मोतियोंके बने बड़े सुवर्ण लटके हुए थे, जिसमें मलमलकी बहाऊ तकियामें लगी हुई थी ॥ १६ ॥ वही मरकत पत्थनोंके बड़े बड़े

षतुष्कोणेषु सर्वेषां मंचकानां महोज्ज्वलाः । रत्नदीपाः प्रकाशन्ते सदैवाग्निशिखोपमाः ॥१८॥
 उशीरव्यजनादीनि चामरादीनि सन्ति हि । यत्र ताम्बूलपात्राणि हेमग्लोद्भवानि च ॥१९॥
 तथा निष्ठिवनार्थं हि पात्राणि राजतानि च । यत्र रंभोपमा दास्यः शतशो रत्नभूषिताः ॥२०॥
 चामरैर्वीजयन्त्यश्च सीतारामावहर्निशम् । यत्र हेममयाश्चित्रा बद्धास्ते पंजराः शुभाः ॥२१॥
 ये यामे नृपपत्नीभिः श्रीमतीनां सन्निविताः । येषु वै केकिनो हंसाः सारसाः सारिकाः शुकाः ॥२२॥
 लावकाः कोकिलाद्याश्च नाना येष्य पतत्रिणः । नानाशब्दान्प्रकुर्वन्तः शतशस्तेषु सन्निविताः ॥२३॥
 तेषां शब्दस्य शिष्यत्वां किं प्राकट्यं वदाम्यहम् । ये रामस्मरणेनैव जीवन्मुक्ता न संशयः ॥२४॥

पक्षिण ऋतुः

जयतु राघवो जानकीयुतो जयन्त्वखिलराजराजकेश्वरः ।
 दशरथात्मजो लक्ष्मणाग्रजो जयतु मापतिस्तटिकांतकः ॥२५॥
 जयतु कौशिकस्याध्वरं गतो जयतु रक्षसां भारको महान् ।
 जयतु गौतमाहृत्यया स्तुतो जयतु जानकीतातमानितः ॥२६॥
 जयतु नः पतिश्चापसंहनो जनकजावरोन्मुक्तमालया ।
 नृपसभागणे कौशिकानुगः परमशोभितश्चातिदुर्हितः ॥२७॥
 जयतु भूमिजाधयोस्तदा मुदा निजकरोत्पले स्थाप्य राघवः ।
 कपलहस्तकेनाकरोमतिं स ग्धुनन्दनः पातु नः सुखम् ॥२८॥
 जयतु भूमिजालिंगितो महान् जनमनोहरश्चातिशोभनः ।
 परशुरामदं घृत्य वै धनुर्निजपितुस्तदाऽदर्शयन् बलम् ॥२९॥
 जयतु सातया भोगकृच्चिरं जयतु कैकर्याप्रेरितो वनम् ।
 जयतु पर्वते वासकृच्चिरं जयति योऽग्निना पूजितो वने ॥३०॥

चमर रक्खे हुए हैं । कहीं मुरागायका चमर रक्खा है । कहीं तालके और कहीं खजूरके बहुतसे पंखे रक्खे हुए हैं ॥ १७ ॥ पनंगक चारों ओर अच्छी रोशनी देनेवाले अग्निशिखा महेश रत्नमय दीपक रक्खे हुए हैं ॥ १८ ॥ बहुतसे खस आदिके पंखे तथा चमर रक्खे हैं । भगवान्के उस विन्यासभवनके पानदान सुवर्णके हैं । उसमें जगह-जगह हीरा-यन्त्रा आदि रत्न जड़े हुए हैं ॥ १९ ॥ जितने उगालदान हैं, सब चांदीके हैं । वहाँ बनेक प्रकारके गहने पहने रंभा जैसी सैकड़ों सुन्दरी नागियाँ राम और सीताको पंखा हाँका करती हैं । त्रिममें मोनेके कितने ही पिण्डे बँधे हुए हैं ॥ २० ॥ उनको यज्ञमें भापी हुई रानियोने सीताजीकी उपहारमें दिया था । जिनमें मयूर, हंस, सारस, मैना, बटेर, कायल आदि सैकड़ों प्रकारके पक्षी कितनी ही तरहकी बँधी बँधे थे ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे शिष्य ! वे पक्षी क्या बोलत थे, यह मैं नुम्हें स्पष्ट बर्णन करता हूँ । मैंने कई मन्देह नहीं कि वे पक्षी बारम्बार रामका नाम लेनसे जीवन्मुक्त हो गये थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ पक्षी बोलते थे—सीतापति रामचन्द्रजीकी जय हो, अखिलराजराजेश्वरकी जय हो, दशरथात्मज रामचन्द्रजीकी जय हो । लक्ष्मणाग्रज रामकी जय हो । श्रीपति और ताड़काके नायाक रामचन्द्रजीकी जय हो ॥ २५ ॥ विश्वानित्रके यज्ञमें जानेवाले, राक्षसोंके विनाशकारी, गौतम-अहृत्या तथा जनकजोंसे सम्मानित रामचन्द्रकी जय हो ॥ २६ ॥ हमारे स्वामी, शंकरके धनुषको खण्डन करने तथा साँताजोंके हाथाकी जयमाला पहिननेवाले, परशुरामके दिये हुए धनुषको चढ़ाकर पिता दशरथको अपना पराक्रम दिखानेवाले ॥ २७-२८ ॥ सीताके साथ विलास करनेवाले, कैकेयीकी प्रेरणासे वनको जानेवाले, घिरकाल तक विश्वकूटपर निवास

जयतु स विराघस्य धातुकुञ्जयतु दूषणादिप्रमर्दनः ।

जयतु यो भृगं मोक्षयद्भवाञ्जयतु यः कवचं क्षणाञ्जहौ ॥३१॥

जयतु बालिहा सेतुकारको जयतु रावणादिमर्दकः ।

जयतु स्वं पदं प्राप सीतया मंगलस्नानकृन्मुदा ॥३२॥

जयतु वाक्यतो भूमुरस्य यः मकलभूतलं पर्यटनं चिरम् ।

जयतु यागकृल्लोकशिक्षया जयतु जानकीं रंजयन् स्थितः ॥३३॥

श्रीरामदास उवाच

रघुवरस्य यन्पक्षिभिः कृतं नयकमुत्तमं यः पठिष्यति ।

तपननिर्गमे भक्तितन्परो निजमनोऽर्थितं मंगमिष्यति ॥३४॥

एतादृशे रम्यगेहे मया शिष्यं प्रवर्णिते । सीतया स सुखं रेमे चैरुपन्नीव्रतस्थितः ॥३५॥

अथ सा जानकी देवी रंजयामास राघवम् । स्थितं मंचकवर्ये तं निजकीडादिकौतुकैः ॥३६॥

मंचकस्थश्च श्रीरामस्त्वेकदा सुखनिर्भरः । सीतामौर्दर्यमालोक्य वर्णयामास तां मुदा ॥३७॥

हे सीते कंजनयने भ्रमणा त्वं कथं चिता । जानाम्यहं चित्केण तेन त्वं निमिताऽमि न ॥३८॥

त्वद्रूपसदृशीं नान्पां पश्यामि जगतीतले । प्रणिपन्वद्रकलया स्पर्शयति नखानि ते ॥३९॥

नस्तमेभ्या रक्तवर्णाः शुभा दाडिमकीजवत् । अगुणौ चतुर्लौ रम्यौ शिखंगुष्ठोपमौ तव ॥४०॥

मृदुले ते पादतले कंजपत्रांतरोपमे । समे रेखाञ्चजपुते स्वास्तिकादिसुचिह्निते ॥४१॥

सीते तेष्वधूर्ध्वभागौ तौ निलोमौ मांसलो शुभौ । अशिरौ मृदुलौ पादौ नृपस्त्रीवदनोचितौ ॥४२॥

पादभूले दधिजेन स्पर्द्धते रक्तवतुले । पादपृष्ठं समं पीने कोमले लोमवर्जिते ॥४३॥

फरनवासे, अत्रि आदि ऋषियोंसे पूजित रामचन्द्रजीको जय हो ॥ ३० ॥ जिन्होंने विराघको मारा था और दूषणादि राक्षसीका संहार किया था । जिन्होंने भृगरूपधारी मारीचको मुक्ति दी थी और क्षणमात्रमें कवचका विनाश कर दिया था, ऐसे रामचन्द्रका जय हो ॥ ३१ ॥ बालिको मारनेवाले, समुद्रमें सेतु बांधनेवाले, रावणादिके नाशक, सीताको लंकासे वापस लाकर अपने राजसिंहासनपर सुणाभित और मंगल-स्नान करके पवित्र रामचन्द्रको जय हो ॥ ३२ ॥ कुम्भोदर धातुणकी आज्ञासे चिरकाम्यतक समस्त पृथ्वीका पर्यटन करनेवाले, लोकशिक्षाके निमित्त अश्वमेध यज्ञ करनेवाले और साताजीको प्रसन्न करते हुए स्थित रामचन्द्रको जय हो ॥ ३३ ॥ धारामदासजी कहन लगे—यह पक्षियों द्वारा किये हुए नौ श्लोकोका स्तोत्र वर्धाश्रुतुमें जो कोई पाठ करेगा, उसकी मनाऽभिन्त्यित कामताएं पूर्ण होंगी । जैसा मैं ऊपर कह आया हूँ, ऐसे सुन्दर भवनमें रामचन्द्रजी सीताके साथ मुखपूर्वक एकपत्नी स्नान धारण करके विहार करते थे । उसी प्रकार सीताजी भी नाना प्रकारक कौतुक कर-करके रामचन्द्रजीको प्रसन्न करती थीं ॥ ३४-३६ ॥ एक दिन रामचन्द्रजी पलंगपर बड़े थे । सहसा वे सीताके सौन्दर्यको देखकर कहने लगे—हे कमलनयने सीते ! मैं अपने मनमें बार-बार यही सोचता रहता हूँ कि तुम्हें ब्रह्माजीने कैसे बनाया होगा । मेरा तो जहाँतक ब्याल है कि तुम्हारी रचना ब्रह्माजीने नहीं की है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वल्कि कोई दूसरा कारीगर तुम्हारी इध सीमाको बनानेके लिए नियुक्त किया गया होगा । क्योंकि तुम्हारे सहस्र रूपवती नारो मैंने संसारमें कहीं देखी हो नहीं । तुम्हारे पैरोंके नाखून अपनी अनुपम छटा द्वारा चन्द्रकलासे बाजा मारनेके लिए उतावले हो रहे हैं ॥ ३९ ॥ नाखूनोंकी लाली अनारदानेकी तरह झलक रही है । तुम्हारे वर्तुलाकार और सुन्दर अगूठे बच्चोंके अंगूठोंकी नाई कोमल दीखत हैं ॥ ४० ॥ तुम्हारे चरण कमलकी पंखुड़ियोंके सहस्र कोमल और सुन्दर हैं । उनमें ध्वजादिकी शुभ रेखाएँ खिंची हैं और मेहावर लगो हुई है । पाँवोंके ऊपरका भाग सुन्दर तथा सूक्ष्म है । उनमें नखें नहीं दिखाई देती । इसीसे तो वे चरण बड़ी-बड़ी रानियोंके पूज्य हो रहे हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तुम्हारे गैरके नीचेका हिस्सा भवस्नानकी तरह मुलायम है, दोनों गुल्फ लाल-लाल वर्तुलाकार और मोठे

तव गुणै रक्तवर्णो वर्तुलो मांमलो शुभो । जंवे गोपुच्छमदृशे वर्तुले मांमले शुभे ॥४४॥
 निलोमे मृदुले पीने सशिरे सगले वरे । वर्तुलो मे महाजान् मांमलो बीजसूत्रम् ॥४५॥
 रंभास्तंभोपमे चोरु मांमलो न्वतिकोमलो । पानो घनो वर्तुलो नो विलासो मे मुखोचिती ॥४६॥
 जघनं मांसलं रम्यं वर्तुलं गजकुंभवम् । पान विलोमं सुस्निग्धं मम चिर्षकमोहनम् ॥४७॥
 नाहं ते वर्णने शक्तो रतिस्थानस्य भामिनि । मंभीरा वर्तुला नाभिस्तव रम्या प्रदृश्यते ॥४८॥
 बलिप्रयं तु जटरे दृश्यते निमृशेणिवत् । मृगगजस्य कटिना तुल्यस्ते कटिहस्तमा ॥४९॥
 रम्यं तत्रोदरं सुक्ष्मं मृदुलं मांमलं शुभम् । विलोमं पीतवर्णं च पुत्रोत्पत्तिविमूचकम् ॥५०॥
 वक्षस्य शकलेनैव स्पन्दते तव मांसलः । पृष्ठस्त्र्यंभः कोमलश्च निम्नो लोमविवर्जितः ॥५१॥
 पार्श्वेऽतिमृदुले पीते मांमले लोमवर्जिते । कुक्षी पीने लोमहीने मांमले किंचिदुन्नते ॥५२॥
 हृदयं कोमलं रम्यं मांसलं पानमुन्नतम् । विस्तीर्णं लोमहीनं च सुस्निग्धं मौख्यदं मम ॥५३॥
 हेमकुमममानी द्रौ कुक्षौ पानो घनो शुभो । गजशुडाददतुर्न्यौ पानो मे कोमलो भुजौ ॥५४॥
 कुशा रम्याः कोमलाश्च तेऽङ्गुन्यो जनकान्मजे । रक्ते पाणिले शखञ्चजमनस्यादिचिह्निते ॥५५॥
 मांमले कोमले प्रोन्चैः सुरेखाभण्डिते वरे । कण्ठे लोमहीने मांसले कोमले शुभे ॥५६॥
 पानो स्कन्धो वर्तुलो मे जघुम्ने मांसपूरितः । कबुकुण्डोऽनिपीनश्च सवलिप्रय उत्तमः ॥५७॥
 मध्ये निम्नं सुपीनं मे चिबुकं वर्तुलं मृदु । प्रवालचित्रमदृशश्चारक्तः कोमलो, घनः ॥५८॥
 सीते तेऽभ्रोऽवरो भाति मधुरोऽमृतमग्निमः । कुन्दपुष्पकलिकया स्पर्द्धन्ते दशनास्तव ॥५९॥
 सांद्राः कुत्रिमवर्णश्च कृष्णवर्णा मनोहराः । हेमपुष्पैर्हेमनतुल्यैश्चित्रविचित्रिताः ॥६०॥

हैं । जंघाएँ गौकी पूँछके समान गावदुम एवं मोटी ताजी हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ उनमें न तो कहीं एक भी रीम दिखाई देते हैं न शरीरकी नसें ही । दोनों जघन बोजरूर (विजोरे नावू) की तरह मोटे और वर्तुलाकर हैं ॥ ४५ ॥ तुम्हारे दांतों ऊँह केनक खम्बेकी नाईं मटे और कामल हैं । उनका सुन्दर वर्ण और उनकी सुन्दर छटा मुझे बहुत अच्छी लगती है ॥ ४६ ॥ जघनभाग भी माटा, सुन्दर और हायाक मस्तककी तरह वर्तुल है । वह पीतवर्ण, लामहान, मुचिकरण तथा गनोमोहक है ॥ ४७ ॥ हे सोने ! तुम्हारे रतिस्थानका वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ । तुम्हारा नाभी भाग गहरी वर्तुलाकार और सुन्दर है ॥ ४८ ॥ तुम्हारे पेटमें तीन रेखाएँ तान वेणीके समान दिखाई पड़ती हैं । तुम्हारी कमर मृगराज (सिंह) की तरह पतली है ॥ ४९ ॥ तुम्हारा उदर सूक्ष्म, मृदुल और मांसल है । उसमें कहीं भी लाम नहीं दिखाई पड़ता । वह तीन वर्णका है और उसको देखनेसे भावी पुत्रोत्पत्तिका सूचना मिलती है ॥ ५० ॥ वक्षस्त्रण्डकी तरह मोटी ताजी तुम्हारी पीठकी रीढ़ है । दोनों पार्श्वभाग तो अतिकोमल होनेसे देखते ही बनते हैं । बाँव भी पीतवर्ण, लोमहान, कुछ ऊँची एवं मोटी त जी है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हृदय कोमल, रम्य, मांसल, पीला और ऊँचा है । वह लोमहीन है और बहुत दूर तक फैला हुआ है । वह पूँठमें चिकना मान्य होता है । इसलिए मुझे वह बहुत सुन्दर जंचता है ॥ ५३ ॥ स्वर्णकलशकी नाईं मोटे और कटोर तुम्हारे दोनों कुच हैं । तुम्हारी दोनों भुजाएँ हाथीकी सूँडकी तरह मोटी, कोमल और सुन्दर हैं ॥ ५४ ॥ पतली सुन्दर और कोमल तुम्हारे हाथोंकी उँगलियाँ हैं । शंख, घण्ट, मकर तथा मत्स्यादि चिह्नों मुझ लाल-साल तुम्हारी दोनों हथेलियाँ हैं ॥ ५५ ॥ उसी तरह उनका पृष्ठभाग भी लोमहीन, मांसल, कामल और सुन्दर है ॥ ५६ ॥ वर्तुलाकार, मोटे ताजे, मांससे अच्छी तरह धरे हुए और शङ्खकी नाईं तुम्हारे दोनों कन्धे हैं । श्रोत्रोंमें तान सुन्दर रेखाएँ हैं ॥ ५७ ॥ तुम्हारा मध्यभाग भी निम्न, पीत एवं कोमल है । प्रवाल और बिम्बफलकी तरह लाल, कोमल और रसभरा तुम्हारा चिबुक है ॥ ५८ ॥ हे सोने ! अमृतकी तरह मधुर तुम्हारा जघरोष्ठ है । कुन्दका कलियोंकी लज्जित करनेवाले तुम्हारे दाँत हैं ॥ ५९ ॥ उनमें बत्तीसी पड़ी हुई हैं । पान खाते खाते वे काले हो गये हैं । उनमें जहाँ-तहाँ सुवर्णके तारकी

ऊर्वाधरः कोमलस्ते रक्तवर्णो विभान्ययम् । ऋजु घ्राणमुन्नसं ते दिव्यं भाति मनोहरम् ॥६१॥
 तव नेत्रे कंजपत्रतुल्ये दीर्घं मनोहरे । हरिणीनेत्रमदृशे कामवाणाविव प्रिये ॥६२॥
 तव कर्णौ घनौ पीनौ बहुभारमहौ वरौ । तव सीतेऽतिमुद्दिग्धे प्रोच्ये गंडस्थले शृभे ॥६३॥
 कृशे भ्रूवौ चापतुल्ये कृष्णवर्णे सुकोमले । ललाटं तव विस्तीर्णं मांसल हि समं मृदु ॥६४॥
 गङ्गाकुलोपमः सीते सीमतस्तव सुंदरः । हेमनंतसमानास्ते केशाः स्निग्धाः सुकोमलाः ॥६५॥
 मस्तकस्तव सूक्ष्मश्च वतुलो मांसलः शुभः । वेणावन्धो वरः सीते जघने पतितस्तव ॥६६॥
 चंपुष्पापमो वर्णः सौकुमार्यमपि प्रिये । सीते तवाननस्पृष्टीं शशांकः क्षयमाप सः ॥६७॥
 त्वन्नंत्रविजिता सीते मृगी धावति कानने । सीते न्वद्भुर्कुटिस्पृष्टिं चाप भग्न मया पुरा ॥६८॥
 तव नेत्रकटाक्षेण मुनीनां मदनोद्भवः । नेत्रयोस्तव चांचन्यं मकरान् लज्जयत्यहो ॥६९॥
 तव घ्राणं शुको दृष्ट्वाऽऽत्मानं धिक्करोति हि । दृष्ट्वाप्युद्योः शोणिमां ते सौकुमार्यमपि प्रिये ॥७०॥
 सहकारतरोश्चापि रक्तः कोमलपल्लवः । लज्जया हरितो भाति त्वक्त्वा स्त्रीयां सुरक्ताम् ॥७१॥
 सौकुमार्यं तथा त्यक्त्वा लज्जया ते वनोऽपि सः । एवं किं किं मया कान्ते सौंदर्यं तव जानकि ॥७२॥
 वर्णनीयं महद्दिव्यं तत्र ब्रह्माऽपि कुण्ठितः । इत्युक्त्वा राघवः सीतां प्रीत्या तां परिपस्वजे ॥७३॥
 तल्लुत्वा वर्णेन स्वीयं लज्जयाऽधः कृतानना । किंचित्स्मितात्मनं कृत्वा तस्यावकं पतेश्च सा ॥७४॥

इति श्रीशतकाटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे वाल्मीकीये
 सीतावर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

चित्रकारी की हुई है । इससे वे और भी सुन्दर मानूम होत हैं ॥ ६० ॥ तुम्हारा ऊपरो होठ भी कोमल और रक्तवर्ण है । कोमल और ऊँचो तुम्हारी नासिका है, जो बड़ी सुन्दर दीखती है ॥ ६१ ॥ कमलकी पधुड़ियोंकी नाई सुन्दर तुम्हारा दोनों आँख हैं । उन्हें चाहे हरिणीके नयनोंकी तरह कह लो या कामवाणकी भाँति चित्ताकर्षक कहो ॥ ६२ ॥ तुम्हारे दोनों कान भी घन और पीन हैं । वे बहुतस गहनोका बोल सह सकते हैं । तुम्हारे गडस्थल अति कोमल और ऊँच है ॥ ६३ ॥ पतली-पतली और काले रंगको तुम्हारी दोनों भीहें धनुषाकार दीखती है । तुम्हारा ललाट बड़ा चौड़ा और बराबर है ॥ ६४ ॥ तुहारी माँग गंगाके तटको तरह सुन्दर दीखती है । सोनेके तारकी भाँति सुन्दर, चिकने और कोमल तुम्हारे केशोका कलाप है ॥ ६५ ॥ तुम्हारा मस्तक सूक्ष्म, वतुल, मांसल और सुन्दर है । तुम्हारे केशोका वेणीबन्ध आँधनक झूलता है ॥ ६६ ॥ चम्पाके फूलकी तरह तुम्हारा सुन्दर वर्ण है । उसी तरह उसमें कामलता भी है । हे सीते ! तुम्हारे मुँहसे होठ करनेके कारण चन्द्रमाका क्षयरोग हो गया ॥ ६७ ॥ तुम्हारी आँखोंमें हार मानकर मृगिया वनोंको भाग गयीं और इधर-उधर दौड़ती फिरती हैं । हे जनकात्मजे ! सब पूछो तो उस समय धनुषयज्ञमें तुम्हारी इन भीहोंसे स्पर्धा करनेके ही कारण मैंने धनुषको तोड़कर उसके टुकड़-टुकड़े कर दिये थे ॥ ६८ ॥ मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हारे नेत्रोंके कटाक्षसे बड़े बड़े तपस्वियोंके हृदयमें भी कामका वेग प्रादुर्भूत हो जायगा । तुम्हारे नेत्रोंकी चंचलता मछलियोंको भी भात कर रही है । तुम्हारी नाक देखकर तोते अपनीकी बार-बार धिक्कारत हैं । तुम्हारे हाठोंकी लालिमा और कोमलता देखकर आम्रवृक्षकी लाल और नया पत्ता लज्जाके मारे हरा हो गया है । तुम्हारी लालिमाके आगे उसकी लालिमा नहीं ठहर सकी । हे कान्ते ! मैं तुम्हारी सुन्दरताका कहाँ तक वर्णन करूँ ॥ ६९-७२ ॥ इसके वर्णनमें चतुर्मुख ब्रह्मा भी हार मान लेंगे । ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने सीताको अपने हृदयसे लगा लिया ॥ ७३ ॥ इस तरह अपनी बड़ाई सुनकर सीता भी लज्जासे नीचा मुँह करके बैठ गयीं । फिर थोड़ा मुसकाकर पतिद्वयकी गोदमें जा बैठीं ॥ ७४ ॥ इति श्रीशतकाटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्द-
 रामायणे पं० रामतेजपाण्ड्यविरचित ज्योत्स्नाभाषाटीकायां सीतावर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(सीताकृत आध्यात्मिक प्रदत्तके उत्तरमें रामका देहगमायण-वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

अथ सा जानकी राम विनयाह्वजिनाऽब्रवीत् । राम राजीवपत्राञ्च किञ्चिन्प्रष्टुं मम प्रभो ॥ १ ॥
 बांछाऽस्ति चेत्करोम्याज्ञां तर्हि पृच्छाम्यहं तव । तन्मीतावचनं श्रुत्वा राघवः प्राह जानकीम् ॥ २ ॥
 पृच्छस्व सीते यत्तेऽस्ति प्रष्टव्य मां मुमेन तत् । मा शका भज रम्योऽहं गुह्यं चापि वदामि ते । ३ ॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा नन्या त प्राह जानकी । राम राम महाबाहो किञ्चिदुपदिशस्व माम् ॥ ४ ॥
 येन मां तव सत्तानं भवेत्तत्र मडोऽङ्गलम् । तन्मीतावचनं श्रुत्वा रामचन्द्रोऽब्रवीद्वचः ॥ ५ ॥
 सम्यक् पृष्टं न्वया गीते शृणुर्वैकाग्रमानसा । मम ज्ञानाय ते वक्षि परं कौतूहलं शुभम् ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सच्चिदानन्दरूपाख्यमात्मस्य तदिच्छया । तत्तत्पर्यायाऽऽमांशविन्दुः शुद्धो विनिर्गतः ॥ ७ ॥
 आत्मनामा मातृभूतबुद्धेर्जगत्प्रभवः । शुद्धमन्त्रांतःकरणं पिता चात्मन ईरितः ॥ ८ ॥
 तस्यात्मनश्च चन्वानो भेदात्ने वधवः स्मृताः । तूर्यावस्थस्तत्र वरस्ततो जाग्रदवस्थकः । ९ ॥
 स्वप्नावस्थस्तुतीयश्चावः सुषुप्त्यवस्थकः । हृदयाकाशस्तत्स्थानं मनोवेगो बहिर्गमः ॥ १० ॥
 मनोदुर्बुद्धिघातश्च मनोवेगस्य खडनम् । मायायोगस्ततस्तस्य पूर्वसंस्कारनिग्रहः ॥ ११ ॥
 ततः कुबुद्धिहेतोर्हि भवावस्थेऽटनं चिरम् । दम्भस्य निग्रहस्तत्र पञ्चभूतात्मिका स्थिरा ॥ १२ ॥
 आत्मनः पर्णकुटिका विश्रान्तिस्थानमोरिता । कामक्रोधलोभजयस्तत्राशाकृन्तनं स्मृतम् ॥ १३ ॥
 मोहस्य निग्रहस्तत्र शुद्धमायाश्चयस्ततः । रजोरूपा तु या माया जठराग्नी तदा स्मृता ॥ १४ ॥

श्रीरामदास कहने लग- कुछ दर बाद राजा और विनयसे सकुचाती हुई सीताजी रामचन्द्रसे बोली-
 हे प्रभो ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ ॥ १ ॥ यदि आप आज्ञा दें तो पूछूँ । सीताका वाणी सुनकर राम-
 चन्द्रजीने कहा- ॥ २ ॥ ह प्रिय ! ज कुछ भी तुम्हारी इच्छा हो, आनन्दपूर्वक पूछो । किसी प्रकारकी शङ्का
 मत करो । यदि कोई गुप्त बात होगी, वह भी मैं तुम्हें बतलाऊंगा ॥ ३ ॥ इस तरहकी बात सुनकर
 सीताने कहा- हे महाबाहो राम ! मुझ आप कोई ऐसा उपदेश दें, जिससे मैं आपको अच्छी तरह समझ
 लूँ । इस बातकी सुनकर रामने सीतासे कहा- ॥ ४ ॥ ५ ॥ ह दवि सीते । तुमने बहुत ही अच्छी बात पूछी
 है । मैं अपना वास्तविक तत्त्वको तुम्हें अच्छा तरह समझाता हूँ मन एकाग्र करके सुनो । आत्मज्ञान प्राप्तिके
 लिए मैं तुम्हें कौतूहलजनक बात बतला रहा हूँ ॥ ६ ॥ रामचन्द्रजी कहने लगे- सत्, चित् और आनन्दरूपी एक
 महान् सागर है । उसकी इच्छारूपा तरङ्गम एक परम पवित्र आत्माशस्वरूप बिन्दु निकला । उसका नाम
 पड़ा 'आत्मा' । उसकी माना हुई बुद्धि, शुद्ध और सत्त्वमय अन्तःकरण उसका पिता हुआ ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस
 आत्माके चार भेद हुए । वे ही आत्माके चार भाई कहलाये । उनमें सबसे श्रेष्ठ हुई तुरीयावस्था, उससे कुछ
 ग्यून जाग्रदवस्था, फिर स्वप्नावस्था और सबसे निम्न श्रेणीकी सुषुप्ति अवस्था हुई । इन सबका हृदयाकाश
 स्थान है और मनोवेगस ये अवस्थाएँ कभी कभी बाहर भी हो जाती हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ मनकी दुर्बुद्धिघोका खण्डन,
 मनके आवेगपर आघात और मायाके धागसे पूर्वसंस्कारका दमन करना होता है ॥ ११ ॥ यदि बुद्धि किसी
 तरह दूषित हुई तो इस संसाररूपी घोर जङ्गलमें बहुत दिनों तक आत्माको भटकना पड़ता है । उस समय
 पञ्चभूतात्मक आत्माको स्थिर करके दम्भका निग्रह करनेकी आवश्यकता होती है ॥ १२ ॥ केवल आत्मा-
 रूपिणी ही एक ऐसी पर्णकुटी है, जहाँ कि शान्ति मिलती है । अन्यत्र सब जगह क्लेश ही है । उस
 पर्णकुटीमें काम, क्रोध, लोभ, महादि शत्रु नहीं जाने पाते । आशाकी भी वहाँ गति नहीं है । वहाँ मोहका
 भी निग्रह हो जाता है । वहाँ ही शुद्ध-सात्त्विकी मायाका आश्रय प्राप्त होता है । उस समय जब कि रवोगुणमयी

नामग्याश्चैव मायाया वियोगश्च तदा स्मृतः । सुखाज्जभो महान्कन्देशः शोकभगस्ततः परम् ॥१५॥
 विवेकस्याश्रयस्तत्र मन्त्रपुद्गलसमागमः । अश्विकवधश्चापि धुम्बादेन समागमः ॥१६॥
 अज्ञानतरणोपायस्त्रिगुणाश्रयमध्वनिः । लिङ्गाग्यनिग्रहस्तत्र मदस्य सप्रकीर्तितः ॥१७॥
 निग्रहो मन्यरस्यापि ततोऽदिकागनिग्रहः । वियोगो लिङ्गदेहस्य मायानामक्यता ततः ॥१८॥
 हृदयाकाशगमनमनिर्देकमुखं ततः । मायान्वागस्तत्रैव सात्त्विकस्य ग्रहणं स्मृतम् ॥१९॥
 सात्त्विकया मायया सार्धं हृदयाकाशमुत्तमम् । महाकाशे प्रणयनं सत्त्विकदानन्दमंजुके ॥२०॥
 प्रवेष्टनं सागरे हि मुक्तिर्ज्ञेयाऽऽत्मनः शुभा । सायुज्या सा परिहृता मुक्तिर्मुक्तिचतुष्टये ॥२१॥
 एव मयेव ते प्राप्या सीते सज्जनपेटिका । वेदपारंगूढार्थज्ञानमनिनाशकैः ॥२२॥
 मञ्जानदैः पचदशश्लोकस्त्रैः प्रपूरिता । समर्पिता गृहाण त्वमस्मां बुद्ध्याऽवलोक्य ॥२३॥
 भविष्यति भव ज्ञानमग्याः सम्यग्बिचारतः । तद्रामवचनं श्रुत्वा सीता सज्जनपेटिकाम् ॥२४॥
 निजहृन्मन्दिरे स्थाप्य बुद्धिदृष्ट्या मृदुर्मृदुः । सम्यग्बुद्धादयं तूष्णीं सा सुहृत्तमवलोकयन् ॥२५॥
 तदा ज्ञानाऽथ सकला निजक्रीडां विदंजना । विदस्य श्चुरीरस्य सा ननमांघ्रिपकजे ॥२६॥
 आनन्दनिमगा जाता मानशश्रुममन्विता । आनन्दोऽङ्गुलमेव आ तूष्णींमार्गान्मदा क्षणम् ॥२७॥
 आनन्दनिर्भरा सीता दृष्ट्वा तां राक्षसोऽवधीन् । पेटिकायां त्वया सीते हि दृष्टोऽपकारकम् ॥२८॥
 कञ्चिद्भवं तवाज्ञानं कञ्चिच्छुभ्रं मम त्वया । मञ्जानं वद मां सीते यथा दातुं त्वया हृदि ॥२९॥

माया अठराग्नियं रहती है ॥ १३ ॥ १४ ॥ तब तमोगुणयो मायाका वियोग हो जाता है । इसमें सुखका नाम नहीं रहता और चारों ओर कराल दुःखकी घटाई घिरो दिलाई देती है । उसके आगे शोकभङ्गका दर्जा आता है ॥ १५ ॥ उसी समय हृदयमें विवेक उपजता है । साथ ही भक्तिका भी सज्जेम होता है । अज्ञान मट हो चलता है । उन्माहमें स्नेह हो जाता है । तीन गुणवाले इस शरीरेका सबसे प्रधान कर्तव्य यह है कि जिस तन्त्र भी हो भके, अज्ञानसे जबका सृष्टाजका चष्टा करे । जब प्राणी मदका नियह कर लेता है, तब वह निद्रानिग्रहा कहलात लगता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ मग्या नियह करके मस्सरका और मस्सरक बाद ग्रह-
 ङ्कारका नियह करना चाहिये । जिस समय सचक निद्रानिग्रही हो जाता है अर्थात् मदको क्षणमें कर लेता है । उन्मा समय मायाके परास्त होनेका समय आता है ॥ १८ ॥ साम्प्रतमें माया और है ही क्या, इन्हीं काम-
 आदिदृष्टोके संघसे मायाका निर्माण हुआ करता है । इसके परास्त हो जानेपर प्राणीका आनन्द ही आनन्द रहता है । जब मायाका रग हो आता है, उस समय सात्त्विका मायाका प्रादुर्भाव होता है । उस सात्त्विकी मायाक साथ प्राणी उत्तम हृदयाकाशका सुख अनुभव करने लगता है । उससे भी उत्कर्ष होनेपर महाकाशका निर्माण होता है । सत्, चित् और आनन्द ये तीनों वही सदा विद्यमान रहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ इसी महान् समुद्रम रूढ़ जानेकी आत्माकी वस्त्राणदाहिनी मुक्ति कहते हैं । बार प्रकारको वही हुई मुक्तियोंमेंसे उग्यका सायुज्य मुक्ति कहत हैं । हे सीत ! तुम्हारे स्नेहवश मैंने यह ज्ञानको पिटारी खोलकर रख दी । इसमें गूढ़ अर्थवाले वेदके सारसे परिपूर्ण तथा अज्ञानवृद्धिको नष्ट करनवाले पन्द्रह श्लोकरूपी राज भरे हुए हैं । इन्हींके द्वारा मेरा मुख्य तन्त्र जाना जा सकता है । यह पिटारी मैं तुम्हें अर्पण करता हूँ । इसे सम्हालो और ज्ञानदृष्टिसे देखो । बार बार इन बातोंका मनन करो तो मुझे अच्छा तरह समझ लोगी ॥ २१-२४ ॥ इस प्रकार रामकी बातें सुनकर सीताने उस ज्ञानकी पिटारीका अपने हृदयमें रख लिया । फिर उसे खोलकर बुद्धिदृष्टिमें कुछ देर देखनी रही ॥ २५ ॥ तब सीताने अपनी सब श्रीवाओका देद जाना और हंसकर रामचन्द्रजीको प्रणाम किया ॥ २६ ॥ सीताना उस समय एक महान् आनन्दका अनुभव हुआ । उनकी आँखोंमें आँसू आ गये, सरारके रोपटे सड़े हो गये और पाछी देखके लिए सीताजी अपन आपकी आ भूलकर डुप हो गयीं ॥ २७ ॥ इस प्रकार सीताकी आनन्दित देखकर रामचन्द्रजीने पूछा—हे सीत ! तुमने उस पेटोम क्या क्या वृत्तिदायक चीजें देखी ? जिसमें तुम्हें ऐसी प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ २८ ॥ क्यों, अब तो तुम्हारा अज्ञान दूर

शार्दं त्वया वा न ज्ञानं वेषुमिच्छामि त्वन्मुखान् ।

यदि किञ्चिन्वया नाम्यां ज्ञानं तद्बोधयाम्यहम् ॥ ३० ॥

इति रामवचः श्रुत्वा निमग्नाऽऽनन्दमागरे मचक्रस्था रामचन्द्रं जानको वाक्पमत्रवोन् ॥ ३१ ॥

श्रीमन्मोक्षच

राम रावणदर्पघ्न त्वत्ता ज्ञानपेटिका । मयाऽवलोकिता बुद्ध्या लब्धं ज्ञानं तव प्रभो ॥ ३२ ॥

निर्गुणो निर्विकारस्त्वं क्रीडेयं सकला त्वया । मन्यगद्गिता भूम्यां कृत्वा लोकहिताय हि ॥ ३३ ॥

पेटिकायां यथा शार्दं मया तन्प्रशदामि ते । त्वया पञ्चदशश्लोकैर्युक्तं गुह्यमुत्तमम् ॥ ३४ ॥

प्रकटं तत्करोम्यद्य तवाग्रे रघुनन्दन । सर्वेषां मन्दबुद्धानां हिताय ज्ञानसिद्धये ॥ ३५ ॥

जनानां सम्बोधयितुं चमित्रं भवताऽत्र यत् । कृतं तस्य विचारेण ह्यात्मज्ञानं लभेश्वरः ॥ ३६ ॥

सच्चिदानन्दरूपी यो विष्णुर्ज्ञेयः स मागरः । भूभास्वरणादीन्ञ्ज विष्णोर्यां जायते शुभा ॥ ३७ ॥

स वै ज्ञेयस्तरंगोऽत्र तथान्मांशलवः शुभः । वहि कृतः सागरान्स ग्रान्मात्स्यः कथ्यते भुवि ॥ ३८ ॥

बुद्धिस्तु जननी चैव कौमन्या साऽत्र कथ्यते । शुद्धमयातःकरणं पिता तस्यात्मनः स्मृतः ॥ ३९ ॥

राजा दशरथो ज्ञेयः श्रीमान्मन्यपरक्रमः । तस्यान्मनश्च चत्वारो भेदास्ते बन्धवः स्मृताः ॥ ४० ॥

रामभीमिभिरतश्शत्रुघ्ना एव चात्र हि । तुर्यावस्थस्तेषु वरः स त्व दशरथान्मजः ॥ ४१ ॥

ततो जाग्रदवस्थश्च लक्ष्मणः सोऽत्र कथ्ययते । स्वप्नावस्थाम्बुतीयश्च भरतोऽपि निगद्यते ॥ ४२ ॥

अवरः सुषुप्त्यवस्थस्तु ज्ञेयः शत्रुघ्न एव सः । हृदयाकाशं तन्स्थानमयोध्याऽत्र स्मृता तु सा ॥ ४३ ॥

मनोवेगो बहिर्यात्रा विश्वामित्राध्वरे गमः । मनोदुर्वृत्तिघातश्च ताटिकाया बधोऽत्र सः ॥ ४४ ॥

मनोवेगस्य यो भगः स धनुर्भग उच्यते । मायायोगमनस्तस्य मन्पाणिग्रहणं स्मृतम् ॥ ४५ ॥

पूर्वसंस्कारनिग्रहो जामदग्नेर्विनिग्रहः । ततः कुयुद्धिहंनोहि कैकेय्या वरदानतः ॥ ४६ ॥

हुआ ? अच्छा, अब बताओ कि मैं कौन हूँ ? मुझ तुमने अपने मनमें क्या समझा है ? मैं तुम्हारे मुँहसे यह सुनना चाहता हूँ । तुमने मुझे जाना या नहीं ? यदि तुम्हें हमको जाननेमें अब भी कुछ कसर होगी तो मैं समझाऊँगा ॥ २६ ॥ ३० ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीकी बातें सुनकर साताजी और भी आन्दित हो गयीं और रामचन्द्रसे कहने लगीं ॥ ३१ ॥ साताजी बोली-हे रघुनन्दन ! हे रावणके गर्वकी नष्ट करनेवाले राम ! आपने मुझ जो यह ज्ञानकी पिटरी दी है, उसे मैंने अपनी ज्ञानदृष्टिमें खूब गौर करके देखा और मुझे आपका ज्ञान-प्राप्त हो गया ॥ ३२ ॥ आप निर्गुण और निराकार हैं । फिर भी मेरे साथ ससारमें आपने आ जा लीलाएँ की हैं, उनका उद्देश्य एवमात्र लोकहित है । मैंने इस पिटरीमें जो-जो देखा है, वह बतलातो हूँ । आपने पन्द्रह श्लोकोंमें मुझे जो उत्तम ज्ञान दिया है, उसे मैं आपके सम्मुख प्रकट करती हूँ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उससे ससारके समस्त अज्ञानियोंका उपकार होगा अर्थात् उन्हें भी ज्ञानकी प्राप्ति हो जायगी ॥ ३५ ॥ मनुष्योंको समझानेके लिए आपने इस जगतीमलमें आ जो चमित्र बिन्दु है उनपर अच्छी तरह विचार करनेसे नि सन्दह आत्मज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है ॥ ३६ ॥ सच्चिदानन्दस्वरूप दिगम्बर भगवान् ही सागर हैं । भगवान् जो पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छा करते हैं, वही उस सागरकी तरंग हैं । उसका ही एक बिन्दु आग्निगर्भ होकर बाहर आ जाता है । वही आत्मा कहलाता है । उसकी बुद्धिरूप जननी कौमन्या है । शुद्ध और सतोगुणमय अन्तःकरण उस आत्माका पिता होता है, सो भाक्षान् श्रीदशरथजी हैं । उस आत्माके चार भेद आपने बतलाये हैं । वे चार भाई राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नरूप हैं वर विद्यमान हैं । उनमें तुर्यावस्थाको श्रेष्ठ कहा है । सो इन चारों भाइयोंमें बड़ आप ही हैं ॥ ३७-४१ ॥ ज जाग्रदवस्थस्वरूप लक्ष्मणजी हैं, स्वप्नावस्थाम्बरूप भरतजी तथा सुषुप्ति अवस्थाम्बरूप शत्रुघ्नजी हैं । हृदयाकाश म्यान जो आपने बतलाया है, वह यही अयोध्या है ॥ ४२ ॥ मनोवेगका दूर होना भी आपने कहा, वही मनो विश्वामित्रके मन्त्रमें आपको यात्रा है । मनकी दुर्वृत्तियोंका घात ही ताटिका-वध है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ मनोवेगका भंजन ही जनकपुरमें धनुष दूटना है । वहाँ मेरा पाणिग्रहण होना ही मायाका

भवारण्येष्टनं प्रोक्तमटनं दंडकेष्व ते । द्वेषस्य निग्रहस्तत्र विराघस्यात्र निग्रहः ॥४७॥
 आत्मनः पर्णकुटिका पंचभूतात्मकश्च सः । देहोऽयं पंचवटिका विश्रान्त्यर्थे तत्रात्र मा । ४८ ।
 कामस्य निग्रहः प्रोक्तः स्वरस्यात्र विनिग्रहः । क्रोधस्य निग्रहश्चापि दूषणस्यात्र निग्रहः ॥४९॥
 लोभस्य मर्दनं तत्र त्रिशिगनिग्रहोऽत्र हि । तत्राशाकुंतन प्रोक्तं बाणेनात्र विरूपणम् । ५० ।
 तस्याः सूर्पणखापाश मोहस्य निग्रहः स्मृतः । मृगमारीचमानोऽत्र शुद्धमायाश्रयस्त्वतः ॥५१॥
 समाश्रयस्ते वामांगे सात्त्विक्या दंडके वने । रजोऽस्या नृ या माया जडगर्भो स्मृता शुभा ॥५२॥
 मम रजःस्वरूपायाः प्रवेशश्चानलेऽत्र मः । तामस्याश्च मायाया वियोगश्च तदा स्मृतः । ५३ ।
 मम तमःस्वरूपाया हरणं रावणेन हि । सुखालाभो महान्क्लेशस्त्वचो गद्विग्रहस्ततः ॥५४॥
 शोकवेगस्ततः प्रोक्तः कवचस्य वधोऽत्र मः । विवेकस्याश्रयस्तत्र मृगीवस्याश्रयोऽत्र सा । ५५ ।
 भक्त्युद्देकलामश्च तव लाभो हनुपतः । अविवेकवधः प्रोक्तश्चात्र बालिनभस्त्वया ॥५६॥
 उत्साहेन ततः संगः सा विभीषणगैत्रिकी । अज्ञानतरणोपायः सेतुबंधो महोदधौ ॥५७॥
 त्रिगुणाश्रयमेहं वै लिङ्गदेहाह्वये शमे । त्रिकूटाचलयस्थायी लंकायां राघुनन्दन ॥५८॥
 मदस्य निग्रहस्तत्र कुम्भकर्णवधस्त्वया । निग्रहो मनसस्यापि मेघनादवधोऽत्र मः । ५९ ॥
 तत्राहंकारघातश्च रावणस्य वधस्त्वया । मायानामैक्यता चापि शिर्विधा या समैक्यता । ६० ॥
 वियोगो लिङ्गदेहस्य लकान्ध्यागस्त्वयाऽत्र मः । हृदयाकाशरामगजमयोध्यागमनं पुनः ॥६१॥
 आनन्दैकसुखं तत्र राज्यभोगस्त्वया भोऽत्र हि । मायान्यागस्तनश्चैव बान्गीकंताश्रमे मम । ६२ ॥
 त्यागोऽत्र भावि श्रीराम त्वया सोऽत्र प्रकाशितः । सात्त्विक्या ग्रहणं यत्नं पुनर्मे ग्रहणं स्मृतम् । ६३ ॥
 सात्त्विक्या मायाया सादृ तवोद्योगो मया सह । तत्रश्च हृदयाकाश महाकाशे विलापयेत् । ६४ ।

योग है ॥ ४५ ॥ परशुरामका दर्पभञ्जन ही पूर्वसंस्कारका निग्रह है । इससे अनन्तर वृद्धिरूपिणा वैक्यीके
 खरदानसे आपका दण्डकारण्यमें घूमना ही भवारण्यम घटकता है । दण्डका राक लेना ही विराघवध
 है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ पंचभूतात्मक आत्मरूपिणा पर्णकुटी जो आपने बतलायी, वह यह शरीर ही है । जो आपके
 विहार करनेके लिए एक उपयुक्त स्थान है ॥ ४८ ॥ कामका निग्रह करना ही स्वर राक्षसका वध है और क्रोधका
 निग्रह दूषणका वध है ॥ ४९ ॥ लोभका निग्रह त्रिशिगका वध रहा गया है । आशाका विच्छेद जो आपने बतलाया,
 वह ही सूर्पणखाका विरूप करना है । मारीच मृगका वध करना ही माहका निग्रह है । दण्डकवनमें आपने
 जो सत्त्वगुणमयी मुझको अपने वामभागमें रखकर कहा था, वह ही शुद्ध मायाका आश्रय है । रजागुण-
 रूपसे मेरा अग्निमें प्रवेश करना ही तामसो मायाका वियोग है । तामगुणरूप मेरा नाशकके द्वारा हरण होना
 ही सुखाभाव है । तुम्हारा हमारा विशाग होना ही महाक्लेश है ॥ ५०-५१ ॥ इससे बाद कवचका वध करना
 ही शोकभङ्ग है । सुप्रबन्धी मित्रता ही आश्रय है । ५२ ॥ भालके उद्देकका लाभ आपको हृत्मानुषका मिलता
 है । बालिका वध करना ही भजानका वध करना है । ५३-५४-५५-५६-५७-५८-५९-६०-६१-६२-६३-६४-६५-६६-६७-६८-६९-७०-७१-७२-७३-७४-७५-७६-७७-७८-७९-८०-८१-८२-८३-८४-८५-८६-८७-८८-८९-९०-९१-९२-९३-९४-९५-९६-९७-९८-९९-१००-१०१-१०२-१०३-१०४-१०५-१०६-१०७-१०८-१०९-११०-१११-११२-११३-११४-११५-११६-११७-११८-११९-१२०-१२१-१२२-१२३-१२४-१२५-१२६-१२७-१२८-१२९-१३०-१३१-१३२-१३३-१३४-१३५-१३६-१३७-१३८-१३९-१४०-१४१-१४२-१४३-१४४-१४५-१४६-१४७-१४८-१४९-१५०-१५१-१५२-१५३-१५४-१५५-१५६-१५७-१५८-१५९-१६०-१६१-१६२-१६३-१६४-१६५-१६६-१६७-१६८-१६९-१७०-१७१-१७२-१७३-१७४-१७५-१७६-१७७-१७८-१७९-१८०-१८१-१८२-१८३-१८४-१८५-१८६-१८७-१८८-१८९-१९०-१९१-१९२-१९३-१९४-१९५-१९६-१९७-१९८-१९९-२००-२०१-२०२-२०३-२०४-२०५-२०६-२०७-२०८-२०९-२१०-२११-२१२-२१३-२१४-२१५-२१६-२१७-२१८-२१९-२२०-२२१-२२२-२२३-२२४-२२५-२२६-२२७-२२८-२२९-२३०-२३१-२३२-२३३-२३४-२३५-२३६-२३७-२३८-२३९-२४०-२४१-२४२-२४३-२४४-२४५-२४६-२४७-२४८-२४९-२५०-२५१-२५२-२५३-२५४-२५५-२५६-२५७-२५८-२५९-२६०-२६१-२६२-२६३-२६४-२६५-२६६-२६७-२६८-२६९-२७०-२७१-२७२-२७३-२७४-२७५-२७६-२७७-२७८-२७९-२८०-२८१-२८२-२८३-२८४-२८५-२८६-२८७-२८८-२८९-२९०-२९१-२९२-२९३-२९४-२९५-२९६-२९७-२९८-२९९-३००-३०१-३०२-३०३-३०४-३०५-३०६-३०७-३०८-३०९-३१०-३११-३१२-३१३-३१४-३१५-३१६-३१७-३१८-३१९-३२०-३२१-३२२-३२३-३२४-३२५-३२६-३२७-३२८-३२९-३३०-३३१-३३२-३३३-३३४-३३५-३३६-३३७-३३८-३३९-३४०-३४१-३४२-३४३-३४४-३४५-३४६-३४७-३४८-३४९-३५०-३५१-३५२-३५३-३५४-३५५-३५६-३५७-३५८-३५९-३६०-३६१-३६२-३६३-३६४-३६५-३६६-३६७-३६८-३६९-३७०-३७१-३७२-३७३-३७४-३७५-३७६-३७७-३७८-३७९-३८०-३८१-३८२-३८३-३८४-३८५-३८६-३८७-३८८-३८९-३९०-३९१-३९२-३९३-३९४-३९५-३९६-३९७-३९८-३९९-४००-४०१-४०२-४०३-४०४-४०५-४०६-४०७-४०८-४०९-४१०-४११-४१२-४१३-४१४-४१५-४१६-४१७-४१८-४१९-४२०-४२१-४२२-४२३-४२४-४२५-४२६-४२७-४२८-४२९-४३०-४३१-४३२-४३३-४३४-४३५-४३६-४३७-४३८-४३९-४४०-४४१-४४२-४४३-४४४-४४५-४४६-४४७-४४८-४४९-४५०-४५१-४५२-४५३-४५४-४५५-४५६-४५७-४५८-४५९-४६०-४६१-४६२-४६३-४६४-४६५-४६६-४६७-४६८-४६९-४७०-४७१-४७२-४७३-४७४-४७५-४७६-४७७-४७८-४७९-४८०-४८१-४८२-४८३-४८४-४८५-४८६-४८७-४८८-४८९-४९०-४९१-४९२-४९३-४९४-४९५-४९६-४९७-४९८-४९९-५००-५०१-५०२-५०३-५०४-५०५-५०६-५०७-५०८-५०९-५१०-५११-५१२-५१३-५१४-५१५-५१६-५१७-५१८-५१९-५२०-५२१-५२२-५२३-५२४-५२५-५२६-५२७-५२८-५२९-५३०-५३१-५३२-५३३-५३४-५३५-५३६-५३७-५३८-५३९-५४०-५४१-५४२-५४३-५४४-५४५-५४६-५४७-५४८-५४९-५५०-५५१-५५२-५५३-५५४-५५५-५५६-५५७-५५८-५५९-५६०-५६१-५६२-५६३-५६४-५६५-५६६-५६७-५६८-५६९-५७०-५७१-५७२-५७३-५७४-५७५-५७६-५७७-५७८-५७९-५८०-५८१-५८२-५८३-५८४-५८५-५८६-५८७-५८८-५८९-५९०-५९१-५९२-५९३-५९४-५९५-५९६-५९७-५९८-५९९-६००-६०१-६०२-६०३-६०४-६०५-६०६-६०७-६०८-६०९-६१०-६११-६१२-६१३-६१४-६१५-६१६-६१७-६१८-६१९-६२०-६२१-६२२-६२३-६२४-६२५-६२६-६२७-६२८-६२९-६३०-६३१-६३२-६३३-६३४-६३५-६३६-६३७-६३८-६३९-६४०-६४१-६४२-६४३-६४४-६४५-६४६-६४७-६४८-६४९-६५०-६५१-६५२-६५३-६५४-६५५-६५६-६५७-६५८-६५९-६६०-६६१-६६२-६६३-६६४-६६५-६६६-६६७-६६८-६६९-६७०-६७१-६७२-६७३-६७४-६७५-६७६-६७७-६७८-६७९-६८०-६८१-६८२-६८३-६८४-६८५-६८६-६८७-६८८-६८९-६९०-६९१-६९२-६९३-६९४-६९५-६९६-६९७-६९८-६९९-७००-७०१-७०२-७०३-७०४-७०५-७०६-७०७-७०८-७०९-७१०-७११-७१२-७१३-७१४-७१५-७१६-७१७-७१८-७१९-७२०-७२१-७२२-७२३-७२४-७२५-७२६-७२७-७२८-७२९-७३०-७३१-७३२-७३३-७३४-७३५-७३६-७३७-७३८-७३९-७४०-७४१-७४२-७४३-७४४-७४५-७४६-७४७-७४८-७४९-७५०-७५१-७५२-७५३-७५४-७५५-७५६-७५७-७५८-७५९-७६०-७६१-७६२-७६३-७६४-७६५-७६६-७६७-७६८-७६९-७७०-७७१-७७२-७७३-७७४-७७५-७७६-७७७-७७८-७७९-७८०-७८१-७८२-७८३-७८४-७८५-७८६-७८७-७८८-७८९-७९०-७९१-७९२-७९३-७९४-७९५-७९६-७९७-७९८-७९९-८००-८०१-८०२-८०३-८०४-८०५-८०६-८०७-८०८-८०९-८१०-८११-८१२-८१३-८१४-८१५-८१६-८१७-८१८-८१९-८२०-८२१-८२२-८२३-८२४-८२५-८२६-८२७-८२८-८२९-८३०-८३१-८३२-८३३-८३४-८३५-८३६-८३७-८३८-८३९-८४०-८४१-८४२-८४३-८४४-८४५-८४६-८४७-८४८-८४९-८५०-८५१-८५२-८५३-८५४-८५५-८५६-८५७-८५८-८५९-८६०-८६१-८६२-८६३-८६४-८६५-८६६-८६७-८६८-८६९-८७०-८७१-८७२-८७३-८७४-८७५-८७६-८७७-८७८-८७९-८८०-८८१-८८२-८८३-८८४-८८५-८८६-८८७-८८८-८८९-८९०-८९१-८९२-८९३-८९४-८९५-८९६-८९७-८९८-८९९-९००-९०१-९०२-९०३-९०४-९०५-९०६-९०७-९०८-९०९-९१०-९११-९१२-९१३-९१४-९१५-९१६-९१७-९१८-९१९-९२०-९२१-९२२-९२३-९२४-९२५-९२६-९२७-९२८-९२९-९३०-९३१-९३२-९३३-९३४-९३५-९३६-९३७-९३८-९३९-९४०-९४१-९४२-९४३-९४४-९४५-९४६-९४७-९४८-९४९-९५०-९५१-९५२-९५३-९५४-९५५-९५६-९५७-९५८-९५९-९६०-९६१-९६२-९६३-९६४-९६५-९६६-९६७-९६८-९६९-९७०-९७१-९७२-९७३-९७४-९७५-९७६-९७७-९७८-९७९-९८०-९८१-९८२-९८३-९८४-९८५-९८६-९८७-९८८-९८९-९९०-९९१-९९२-९९३-९९४-९९५-९९६-९९७-९९८-९९९-१०००-१००१-१००२-१००३-१००४-१००५-१००६-१००७-१००८-१००९-१०१०-१०११-१०१२-१०१३-१०१४-१०१५-१०१६-१०१७-१०१८-१०१९-१०२०-१०२१-१०२२-१०२३-१०२४-१०२५-१०२६-१०२७-१०२८-१०२९-१०३०-१०३१-१०३२-१०३३-१०३४-१०३५-१०३६-१०३७-१०३८-१०३९-१०४०-१०४१-१०४२-१०४३-१०४४-१०४५-१०४६-१०४७-१०४८-१०४९-१०५०-१०५१-१०५२-१०५३-१०५४-१०५५-१०५६-१०५७-१०५८-१०५९-१०६०-१०६१-१०६२-१०६३-१०६४-१०६५-१०६६-१०६७-१०६८-१०६९-१०७०-१०७१-१०७२-१०७३-१०७४-१०७५-१०७६-१०७७-१०७८-१०७९-१०८०-१०८१-१०८२-१०८३-१०८४-१०८५-१०८६-१०८७-१०८८-१०८९-१०९०-१०९१-१०९२-१०९३-१०९४-१०९५-१०९६-१०९७-१०९८-१०९९-११००-११०१-११०२-११०३-११०४-११०५-११०६-११०७-११०८-११०९-१११०-११११-१११२-१११३-१११४-१११५-१११६-१११७-१११८-१११९-११२०-११२१-११२२-११२३-११२४-११२५-११२६-११२७-११२८-११२९-११३०-११३१-११३२-११३३-११३४-११३५-११३६-११३७-११३८-११३९-११४०-११४१-११४२-११४३-११४४-११४५-११४६-११४७-११४८-११४९-११५०-११५१-११५२-११५३-११५४-११५५-११५६-११५७-११५८-११५९-११६०-११६१-११६२-११६३-११६४-११६५-११६६-११६७-११६८-११६९-११७०-११७१-११७२-११७३-११७४-११७५-११७६-११७७-११७८-११७९-११८०-११८१-११८२-११८३-११८४-११८५-११८६-११८७-११८८-११८९-११९०-११९१-११९२-११९३-११९४-११९५-११९६-११९७-११९८-११९९-१२००-१२०१-१२०२-१२०३-१२०४-१२०५-१२०६-१२०७-१२०८-१२०९-१२१०-१२११-१२१२-१२१३-१२१४-१२१५-१२१६-१२१७-१२१८-१२१९-१२२०-१२२१-१२२२-१२२३-१२२४-१२२५-१२२६-१२२७-१२२८-१२२९-१२३०-१२३१-१२३२-१२३३-१२३४-१२३५-१२३६-१२३७-१२३८-१२३९-१२४०-१२४१-१२४२-१२४३-१२४४-१२४५-१२४६-१२४७-१२४८-१२४९-१२५०-१२५१-१२५२-१२५३-१२५४-१२५५-१२५६-१२५७-१२५८-१२५९-१२६०-१२६१-१२६२-१२६३-१२६४-१२६५-१२६६-१२६७-१२६८-१२६९-१२७०-१२७१-१२७२-१२७३-१२७४-१२७५-१२७६-१२७७-१२७८-१२७९-१२८०-१२८१-१२८२-१२८३-१२८४-१२८५-१२८६-१२८७-१२८८-१२८९-१२९०-१२९१-१२९२-१२९३-१२९४-१२९५-१२९६-१२९७-१२९८-१२९९-१३००-१३०१-१३०२-१३०३-१३०४-१३०५-१३०६-१३०७-१३०८-१३०९-१३१०-१३११-१३१२-१३१३-१३१४-१३१५-१३१६-१३१७-१३१८-१३१९-१३२०-१३२१-१३२२-१३२३-१३२४-१३२५-१३२६-१३२७-१३२८-१३२९-१३३०-१३३१-१३३२-१३३३-१३३४-१३३५-१३३६-१३३७-१३३८-१३३९-१३४०-१३४१-१३४२-१३४३-१३४४-१३४५-१३४६-१३४७-१३४८-१३४९-१३५०-१३५१-१३५२-१३५३-१३५४-१३५५-१३५६-१३५७-१३५८-१३५९-१३६०-१३६१-१३६२-१३६३-१३६४-१३६५-१३६६-१३६७-१३६८-१३६९-१३७०-१३७१-१३७२-१३७३-१३७४-१३७५-१३७६-१३७७-१३७८-१३७९-१३८०-१३८१-१३८२-१३८३-१३८४-१३८५-१३८६-१३८७-१३८८-१३८९-१३९०-१३९१-१३९२-१३९३-१३९४-१३९५-१३९६-१३९७-१३९८-१३९९-१४००-१४०१-१४०२-१४०३-१४०४-१४०५-१४०६-१४०७-१४०८-१४०९-१४१०-१४११-१४१२-१४१३-१४१४-१४१५-१४१६-१४१७-१४१८-१४१९-१४२०-१४२१-१४२२-१४२३-१४२४-१४२५-१४२६-१४२७-१४२८-१४२९-१४३०-१४३१-१४३२-१४३३-१४३४-१४३५-१४३६-१४३७-१४३८-१४३९-१४४०-१४४१-१४४२-१४४३-१४४४-१४४५-१४४६-१४४७-१४४८-१४४९-१४५०-१४५१-१४५२-१४५३-

जयोप्यानगरीमग्रे वैकुण्ठं प्रति नेष्यमि । प्रवेशन मगरे हि सच्चिदानन्दमंजके ॥६५॥
 नरकं परित्यज्य विष्णुस्वरूपं नृणां न्यायं नैव मुक्तिं मायुज्यान्मय ईशिता ॥६६॥
 एवं यद्यन्या गम कृतं कर्म शुद्धशुद्ध नन्मयं जन्मोश्वाय सर्वेषां च दिनाय हि ॥६७॥
 कर्तव्यमप्यकृतव्यं कर्मान्तस्य हि नव निर्गुणस्य नरकस्य सच्चिदानन्दरूपेणः ॥६८॥
 इत्थं स्वयोपदिष्टा मे शुभा मज्जानपेटिका । अहं न्यायं विचरेण जन्ममुक्ता न मंजयः ॥६९॥
 देहे रामायण सर्वं यच्चया मय दर्शितम् । पञ्चदशशतकान्तं कण्ठे नदामञ्जुदम् ॥७०॥
 श्लोकरन्तमयं यो वै कण्ठे हारं विभति हि । जन्ममुक्तः क्षणदेव भविष्यति नरोत्तमः ॥७१॥
 देहगमायणं नाम राम यन्कथितं न्याय । नेदंशं कथितं केन न कोऽप्यग्रे वदिष्यति ॥७२॥
 मम प्रीन्योपदिष्ट हि न्ययैतद्रघुनन्दन । इत्थं कोऽपि न जानाति ब्रह्मदीनामगोचरम् ॥७३॥
 गुह्यं श्रम्यं सुदुर्लभं स्वल्पं ज्ञानप्रकाशितम् । देहगमायणं चैतच्छ्रृण्वन्पातकापहम् ॥७४॥
 इति भीतावचः श्रुत्वा प्रसभ्य गद्यैः प्रज्ञात् विदेहतनये माध्वि धन्याजमि मज्जगामिनि ॥७५॥
 सम्यग्विचारिणा बुद्ध्या न्याय मज्जानपेटिका । विचिन्त्यून न्यायं नैव दृश्यस्यां यथास्ति तम् ॥७६॥
 बुद्ध्या ज्ञानं मम ज्ञानं मोहजालनिपुताम् । कथं न्यायमिदं देहगमायणं न कल्पयित् ॥७७॥
 गतद्रुघुपतमं श्लोकं नव प्रीत्या विदेहने । दाभिकाय न दातव्यं नाभिकाय शठाय च ॥७८॥
 अमन्त्राय द्वित्रद्वेष्टे परदारगतय च । मन्त्रिणाथानिक्रूराय निदक्षाय जटाय च ॥७९॥
 कर्त्ता नैतत्तु वै गुह्यं भविष्यति न मशयः । महामेघं नरः कश्चिज्ज्ञास्यत्येतन्न मशयः ॥८०॥
 सर्ववेदात्मनो हि मया ते समुद्दिगिम् । देहगमायणं चैतद्रुक्तिमुक्तिप्रदं वरम् ॥८१॥

विहार करना है । उसके बाद आपने हृदयावाशको महाकाण्डम भिन्न देनको जो कहा है, वह ही आपका
 अन्तर्गतको अपन साथ वैकुण्ठ लोकमें लाना होगा । इस स्वरूपका परित्याग करके फिर अपने विष्णुस्वरूपको
 धारण करना ही सच्चिदानन्दमन्त्रमगरे जाने जाना होगा ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ नरकका छोड़कर विष्णुस्वरूप दिखाना
 ही आपका मायुज्य मुक्ति है ॥ ६६ ॥ इस प्रकार है रामकद्वयः । आपने इस संसारमें जो जो कर्म किये हैं, वे
 सब लोगोंको दान बनाने और उनका भरण करने के लिये ही हैं ॥ ६७ ॥ इसके सिवाय आप जो कुछ भी
 इस जन्म में कर रहे हैं, सब कर्म ही हैं । क्योंकि आप कर्मसे अतीत हैं, निर्गुण हैं,
 स्वयंज्ञानरूप हैं ॥ ६८ ॥ इस प्रकार आपके द्वारा उरविष यह ज्ञानकी पिटारी है । इसपर बार-बार विचार
 करनेमें मैं तो जीकन्तुन हो गयी । इसमें कोई भी सजय नहीं है ॥ ६९ ॥ इस जलीरमें आपने जो १५ श्लोकोंके
 मायणका उपदेश दिया, उसमें ही नरकी तरह अपने अपनेम हाल लिखा है । ७० ॥ इन श्लोकरूपी रत्नोंकी
 मालाका जो प्रणी अपने गलेमें डालेगा, वह पृथ्वी, क्षणमात्रम जावन्मुक्त हो जायगा ॥ ७१ ॥ हे राम !
 आपने यह जैसा देहगमायण कहा है, वैसा न अब तक किसीने कहा है और न भविष्यमें कोई कहेगा ॥ ७२ ॥
 न स्वयन्दन । हमें आपने केवल मय अनुरागम प्रकट किया है । इस देहगमायणको कोई भी नहीं जानता ।
 क्योंकि यह श्रद्धादिक देवताओंका भा अलम्ब है ॥ ७३ ॥ यह गूढ़ रम्य और दुर्लभ ज्ञान पांडम आपने
 न बतलाया है । इस देहगमायणके श्रवणमें सब पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ७४ ॥ इस तरह सोताकी अंत
 तक रसचंद्रमं होकर कहा है विदेहतनये ! तुम मादरी हो, धन्य हो । तुममें मेरी ज्ञानकी पिटारीको
 जब दया और इसका जो वास्तविक स्वरूप था, मैं भी जान लिया । बुद्धिदृष्टिमें देखनेवालोंके लिये यह
 देहगमायण मोहका नाश करनेवाला है । यह रामायण जैसे जैसे मनुष्योंमें कहनेका आवश्यकता नहीं है

७५-८३ ॥ हे प्रिये सीते ! तुम्हारे अनुरागमें ही मैंने आज इसे तुम्हें बतलाया है । इसे पाखण्डी, नास्तिक
 तथा दुष्ट पुरुषाव मन कहता ॥ ७६ ॥ उहे भगवान् बनाना, जो साक्षात्कोसे द्वेष करते हैं, दूसरेको बहु-वर्णियोंको
 इसी दृष्टिमें देखते हैं, जो मलिन प्रकृतिक क्रूर, निन्दक एवं जड़ स्वभावके हैं ॥ ७७ ॥ कलियुगमें यह गुप्त रहेगा ।
 हजारों प्राणिमोक्ष एक-आध मनुष्य ही इसे जान सकेंगे । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ८० ॥ यह समस्त

इत्युक्त्वा राघवः सीतां पर्यङ्के गन्धमण्डिते । सुष्वाप सीतया रात्रौ दामीभिर्वोजितः सुखम् ॥ ८२ ॥
 इति श्रीभक्तिकोटिरामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे
 देहरामायणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(सीताके विविध अलङ्कारोंका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

चतुर्नाड्यवशिष्टायां निशायां रघुनायकम् । उद्वेधनाय सप्राप्ता रतिशालावहिः स्थिताः ॥ १ ॥
 वन्दितो मागधाः गूता नर्तक्यश्च नटादयः । वादयामासुर्वाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ २ ॥
 जगुर्ललगीतानि स्तोत्राणि विविधानि च । प्राधानिकीं स्तुतिं श्रोतुः कलकण्ठैर्मनोरमैः ॥ ३ ॥

विष्णेश्वरः सकलविघ्नविनाशदक्षो दक्षान्मजा भगवती हि सरस्वती च ।
 दक्षाष्टैर्भवगणा नत दिव्यदुर्गा देव्यः सुगन्तु नृपते तव सुप्रभातम् ॥ ४ ॥
 भातुः शशी इतपुत्री गुरुशुकमन्दा राहुः सकेतुरदिदिन्दिरादिनेयाः ।
 शक्रादयः कमलधूः पुरुषोत्तमेन्द्रोः रुद्रः क्रमेण मनन तव सुप्रभातम् ॥ ५ ॥
 पृथ्वी जलं ज्वलन्तमारुतपुष्कगणि ममाद्रयोऽपि भुवनानि चतुर्दशैव ।
 शैला वनानि सन्निः पस्तिः पवित्रा गङ्गादयो विदधतां तव सुप्रभातम् ॥ ६ ॥
 दिक्चक्रमेतदग्निल दिग्भिर्मा दिगीशा नागाः सुपर्णभुजगा नगवीरुधश्च ।
 पुण्यानि देवयदनानि विलानि दिव्यान्वव्याहृतं विदधतां तव सुप्रभातम् ॥ ७ ॥
 वेदाः षडङ्गमहिताः स्मृतयः पुराणं काव्यं सदागमपथो मृगयोऽपि दिव्याः ।
 व्यासादयः परमकारुणिका ऋषीणां गात्राणि वै विदधतां तव सुप्रभातम् ॥ ८ ॥

येदान्तका निचोड मैं नृपत बतला दिया । यह देहरामायण भुक्ति तथा मुक्ति दोनोंका फल देनेवाला है ॥ ८१ ॥
 इत्या कहकर रागचन्द्रनी सीताके भाव रत्नजटित पलङ्कपर में गये और दामियां पंखा झलने लगी ॥ ८२ ॥
 इति श्रीभक्तिकोटिरामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये १० रामनेत्रकाण्डेपरिचित्तज्योत्स्ना-
 मापाटीकासमन्विते विलासकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदासजी कहन लगे—अब अगर चढ़ो चतुर्थ सर्गकी यह जाती थी, तभी भगवान्का जगानेके लिए बंदोबस्त, मागध, सूत, नाचनवाली देवियों, और नट आदि लोग रतिशालाके बाहर आकर बाजे बजाते थे और नर्तकियां नाचती थी ॥ १ ॥ २ ॥ अन्य लोग सोमङ्गलगायन विविध प्रकारके स्तोत्र पढ़ते थे अपने कामल कण्ठमें प्रातःकालकी स्तुतियां किया करते थे । वे कहते थे ॥ ३ ॥ हे नृपते ! समस्त विघ्नसमूहको नष्ट करनेमें तू तूण विष्णेश्वर (गणेशजी), दक्षवर्मागे भगवती पार्वती, सरस्वती, अभिमानकी मूर्ति अष्टभैरव-
 गण, ती दिव्य दुर्गाएँ तथा अगान्य देवतागण ये सब आपका प्रभान मङ्गलमय करें ॥ ४ ॥ गुरु, चंद्रमा, मङ्गल, बुध, गुरु शुक, शनि, राहु, केतु इति तथा अदितिक पुत्र इंद्रादि देवता, ग्रहा विष्णु और महेश ये सब आपका प्रभान मङ्गलमय करें ॥ ५ ॥ पृथ्वी जल अग्नि, वायु तडाम, सप्त पर्वत, चतुर्दश भुवन, शैल, वन और भुवर्गविस्तृत गङ्गा आदि नदियाँ आपका प्रभान मङ्गलमय करें ॥ ६ ॥ समस्त दिक्चक्र (दसों दिशाएँ), दिग्गज, दिग्पाल, नाग, सुपर्ण, पर्वतोंका लताएँ पवित्र दवालय और गिरिकन्दराएँ ये सब सर्वदा आपका प्रभान मङ्गलमय करें ॥ ७ ॥ षडङ्ग साहित्य चारों वेद, स्मृति, पुराण, काव्य, अज्ज्ञे-अज्ज्ञे शतपथ साह्यण आदि ग्रन्थ, व्यास आदि दिव्य मुनिगण तथा ऋषियोंक गोत्र आपका प्रभान मङ्गलमय करें ॥ ८ ॥

इति वैदिजनैः सूर्यः स्तोत्रैर्गीतादिभिः स्तुतः । नानाप्रश्नसुन्दरैश्च पूर्वोक्तेः पञ्जरस्थितैः ॥ ९ ॥
 स्तुतो धादित्रनिर्द्वर्तनवाद्यम्बुनरपि । सुप्रचुडो बभूवाथ रामचन्द्रः मर्मातया ॥ १० ॥
 आदौ प्रचुडो मा माता पश्चाच्चुडो रघूनमः । रामः गुरुपुत्रोऽप्यर्त्तमानस मरुत् गुरुम् ॥ ११ ॥
 चिन्तामणिं कामधेनुं चितयामास चेतयि । ततः माताऽपि मां दुर्गां गङ्गां च तं रघूनमम् ॥ १२ ॥
 चिन्तयामास कौसल्यां गुरुपत्नीं स्वमातरम् । ततो नन्या रामचन्द्रं चितयत्ततः स्थिता ॥ १३ ॥
 आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधिं क्रमान् । दंतशुद्धिं चकाराथ रामचन्द्रः सविस्तरम् ॥ १४ ॥
 आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधिं क्रमान् । दन्ताऽपि शौचार्थं कृत्वा देवार्चनं गृहे ॥ १५ ॥
 ददौ दानान्यनेकानि ब्राह्मणेभ्यो यथाक्रमम् । एतस्मिन्ननरे स्नान्या मौनं देवो प्रपूज्य च ॥ १६ ॥
 देवानग्नीन्दिवास्नवा श्वश्रुर्नन्या यथाक्रमम् । ततो नन्या रामचन्द्रं तत्पार्श्वे यत्नतः स्थिता ॥ १७ ॥
 अथ रामो वसिष्ठस्य मुखात्पौराणिकीं कथाम् । मातया मातृभियुक्तो बहुभिश्च सुहृज्जनैः ॥ १८ ॥
 मभ्यक् श्रुत्वा कचिन्नेन पूजयामास तं गुरुम् । ततो नन्या गुरुं रामो गुरुपत्नीं च मानरम् ॥ १९ ॥
 मवां मातश्च विप्रश्च पंडितान् वैदिकान् मुनीन् । योगनिष्ठान् तपोनिष्ठान् विप्रान् ज्योतिर्विदस्त्वथा ॥ २० ॥
 मामां रक्षांस्तार्किकांश्च मन्त्रशास्त्रविशारदान् । धर्मशास्त्रवेदार्थं च दद्यान्त्यान् वयोधिकान् ॥ २१ ॥
 पूजयामास श्रीगमः मातया प्रणमाम तान् । अथ मन्ता देवपात्रे पूजोपकरणानि मा ॥ २२ ॥
 गृहीत्वा स्वमूर्तीभिश्च नन्या सुगमिर्मरुम् । नानोपचरैः सम्पूज्य पञ्चार्चननरनिर्मितैः ॥ २३ ॥
 विचित्रैः पायमार्यैश्च मा तां धेनुमतेषपत् । ततः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रायेयान् ग जानकी ॥ २४ ॥
 कामधेनो नमस्तुभ्यं पक्वान्तादीनि वेगतः । दिव्यान्तानि भूतुरेभ्यो गन्धादिभ्यस्त्वमर्पय ॥ २५ ॥
 इति सा प्रार्थनां कृत्वा कामधेनोस्तु जानकी । तदधो रुक्मपात्राणि स्थापयामास कोटिभ्यः ॥ २६ ॥

इन प्रकार बहूतसे बन्दीजन, भागध, गृह आदि तथा पालतू पक्षियोंके घृष्ट वचनों द्वारा जगाये जानेपर सीताके साथ-साथ रामचन्द्रजी माकर उठ जाते थे ॥ ९, १० ॥ पहले सताजी उठनी, फिर रामचन्द्रजी जागते थे । माकर उठनेपर रामचन्द्रजी देवताओंका, मुनियोंका, पितृका, मानाको, सगुरु, गुरु (वसिष्ठ), चिन्तामणि और कामधेनुको मन ही मन स्मरण करने थे । मन्त्रार्त्ता सीताजी भी दुर्गा, गङ्गा, सरस्वती, रघू, राम (दशरथजी), अपनी माता, गुरुपत्नी अरुणवती और अपनी सास कौसल्या आदिका सबेरे सौ उठकर स्मरण किया करती थीं । इसके अनन्तर नमनापूर्वक रामचन्द्रजीका प्रणाम करके वे अपने नित्यकर्ममें लग जाती थीं ॥ ११-१३ ॥ उधर रामजी भी श्रीचादि कृत्वासे निवृत्त होकर अच्छा तरह दातोन करते थे ॥ १४ ॥ तदनन्तर रामतीर्थपर जाकर स्नानादि नित्यनिराम करके घग्घर लौट आते और अग्निहोत्रविधिक साथ देवताओंका पूजन करते थे ॥ १५ ॥ तब ब्राह्मणोंको दान देने थे । इसी बीच सीताजी भी स्नान करके देवपूजनसे निवृत्त होकर देवता, अग्नि, ब्राह्मणों और कौसल्या आदि सामुद्रिकोंको क्रमशः प्रणाम करके पश्चात् रामचन्द्रजीको पदवेन्दना करती और उनके पास जा बैठती थीं ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदनन्तर रामचन्द्रजी गुरु वसिष्ठके मुखसे पुराणोंकी कथाएँ सुनते थे । उस समय सब माताएँ, भाई तथा मित्रमण्डल रामचन्द्रजीके साथ ही रहते थे । १८ ॥ खूब सावधानीके साथ कथा सुनकर राम गुरुवसिष्ठकी पूजा करते थे । फिर गुरु, गुरुपत्नी तथा अपनी मानाओंका प्रणाम करके मानाओं, ब्राह्मणों, पंडितों, वैदिकों, मुनियों, योगनिष्ठ तथा तप निष्ठ ब्राह्मणों ज्योतिषियों मंत्रार्त्ताको, तार्किकों, मन्त्रशास्त्रम निपुण विद्वान् और वयोवृद्ध ब्रह्मशास्त्रियोंकी सीताके साथ साथ रामचन्द्रजी विधिवत् पूजा करते थे । इनके पश्चात् सीताजी एक मुक्कणके घग्घर पूजनकी सामग्रियाँ लेकर ॥ १९-२२ ॥ सवियोंके साथ सुरभा (कामधेनु) की पूजा करती थीं और उनके पक्वान तथा विचित्र रसिमें तैयार किये गये हविष्यार्थोंको खिलाकर उसे प्रसन्न करती थीं । फिर प्रदक्षिणा करके इस प्रकार कामधेनुकी स्तुति करती हुई कहती थीं—॥ २३ ॥ २४ ॥ हे कामधेनो ! आपको

दिव्यान्नेः परिपूजां चकार सुरभिस्त्वयि ।

ततः शीघ्रं हेमपात्रैर्गुह्यान्नि पृथग्जवान् ॥

परिवेषणार्थं सन्तुष्टा ययौ नृपुर्मज्जिता ॥२७॥

एतस्मिन्नन्तरे रामश्चोपाहारार्थमादरात् । विप्रनिशान्मन्त्रिणश्च समहुर महस्यशः ॥२८॥
उपाविशद्भोजनस्य शालायां तैः समन्वितः । रुद्रमण्डे तु मयै ने नेमिरे जेपमाः स्थिताः ॥२९॥
पीतकीशेषवस्त्राभेपिता रुक्ममण्डनैः । पूजिता राघवेणापि गन्धमालादिभिर्मुदा ॥३०॥
स्त्रीर्भा रुक्मपिपदासु रुक्मपात्राणि च पृथक् । रगावल् विचित्रायां भूमौ न्यस्तानि तत्पुरः ॥३१॥
हेमोद्भवानि पानीयपात्राण्यपि पृथक् पृथक् । सोमपात्राणि चित्राणि रत्नदीपयुतानि च ॥३२॥
स्थापयामासुः श्रीरामवन्द्युपन्यस्त्वगन्विताः । एतस्मिन्नन्तरे मयैः श्रुतो मञ्जुशनिःस्वनः ॥३३॥
नृपुगणां किंकिर्णानां ककणानां मनोरमाः । रत्नमोक्तिकमालानां धर्षणादुन्धितो महान् ॥३४॥
सं मञ्जुलस्वनं श्रुत्वा कम्पायं श्रुते स्वनः । इति सदिग्धचित्ताग्ने व्यग्रनेत्रैरितिस्ततः ॥३५॥
अपश्यन् आश्रणाद्याश्च तावन्मीनां न्यलोकयन् । तडित्पूजोपमां दिव्यां शनकोटिरविप्रभाम् ॥३६॥
यस्यांगुलिषु सर्वत्र पादयोर्विविधानि च । मन्यकच्छपनकादिचिह्नितान्युज्ज्वलानि च ॥३७॥
ददृशु रत्नचित्राणि हैमान्याभरणानि ते । तत्र ऊर्ध्वं किंकिर्णानां पादपोर्नाराणि च ॥३८॥
भृङ्गला विविधा रम्यास्तथा गुर्जरदेशजाः । नानानृपुर्भेदाश्च ककणान्युज्ज्वलानि च ॥३९॥
रत्नफंकणमर्भाणि दिव्यरुक्कोद्भवानि च । मदृशुप्ते हि मीनाया म शिक्थचित्रितानि च ॥४०॥
तस्याः कट्यां ददृशुप्ते पीतकीशेषमुज्ज्वलम् । मुक्ताजालरुक्मनतुपुष्पराजिजिराजितम् ॥४१॥
नवीनं गतिचांचल्यान्कृतमंजुलनिःस्वनम् । आदर्शविधमश्रुतं सुगन्धामोदमोदितम् ॥४२॥
बसोपरि ददृशुप्ते रशनां रुक्मनन्नुजाम् । रत्नकङ्कणमर्भाभिः किंकिरीभिर्विराजिताम् ॥४३॥

नमस्कार है । कृपा करके आप साधु-शास्त्रियोंके लिए अववात्र तथा दिव्यान्तका प्रवन्ध कर दें । जानकाजी इस प्रकार प्रायना करवा कराड़ी मुवणक पात्र कामधेनुक पास भंगवाकर रखवा देती थी और कामधेनु उन सबका विविध प्रकारके पकवानोंसे भर दिया करती थी । उन्हीं हेमपात्रोंमेंसे सब पदार्थ ले-लेकर युवतियां नृपुर्के शब्दसे उस यज्ञमण्डपको गन्दावमान करती हुई अंगमताका परासती थी ॥ २५-२७ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजी अपने साथ हुआगे शास्त्रियों तथा हित-मित्रोंकी सादर बुलाकर पाकशालामें मुवणक पौड़ापर विठ-समय पीले कीणय वस्त्र तथा मुवणसं विभूषित विप्रगण एवं मियमण्डलका रामचन्द्रजी अनेक उपचारोंसे पूजन करते थे ॥ २८-३० ॥ वही मुवणका निषाहयोपर घडामें जल भर-भरकर रखवा था । पास ही जल पीनेके लिए छ टे-छोट बहुतसे मुवणक बतन रखे हुए थे । उनकी भटपट उठा उठाकर रामचन्द्रजीकी भ्रातृवधुओंमें लाकर उनके सामने रख दिया । इतनमें सबको एक मनाहुर ध्वनि सुनाई दी । जो नृपुर्, किंकिणा और ककणके संघर्षसे निकला हुआ शब्द मानूम पड़ता था ॥ ३१-३४ ॥ उस मञ्जुल शब्दका सुनकर यह कैसा शब्द सुनाई दे रहा है, इस तरह सोचने हुए व्यग्र नेत्रोंसे लोग इधर-उधर देखने लगे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ कुछ देर बाद लागाने साताजीको आते देखा । जा अनेक विष्णुपुञ्ज एवं सैकड़ों सूर्यकी भाँति प्रकाशमयी थी । जिनके पाँवोंको अंगुलियोंमें मछली-कमण्डू आदिके आकारवाले देदीप्यमान आभूषण पड़े थे ॥ ३७ ॥ रत्नोंका चमकते चित्र विचित्र मुवणके आभूषण मुशायित हो रहे थे । किंकिणीके ऊपर दोनों पैरोंमें नृपुर् था । उसके ऊपर विविध प्रकारका सुन्दर मेखलावे पड़ा था । अनेक तरहके नृपुर् और नाना प्रकारके उज्ज्वल ककण हाथोंमें पड़े हुए थे । सीताजीकी कमरमें एक रेशमी वस्त्र था । जिसमें मातियोंकी झालर लगी हुई थी और मुवणके तारोंसे फूल-पत्तीकी चित्रकारी बनी हुई थी ॥ ३८-४१ ॥ गतिकी चंचलतावश उसमेंसे एक मधुर ध्वनि निकल रही थी । उनकी साड़ीमें जगह-जगह मयूर, सिंह, कृष्ण,

केकिमिहवृष्याग्रमृगचित्रविचित्रिनाम् । पान्थक्तहरिक्रीलकृष्णमणिप्रमण्डिताम् ॥४४॥
 तत ऊर्ध्वं ददृशुस्ते पदकान्पुञ्ज्वलानि हि । रत्नाफलपमान्येव हैनान्गमणानि च ॥४५॥
 मकराचनशृंगलानि काचद्रवयुतानि च । नानावन्नोपचित्राणि मुहुर्मण्डितान्यपि ॥४६॥
 नानामाणिक्यपुक्तानि दीप्तिमन्पुञ्ज्वलानि हि । तत ददृशुस्ते दिव्यान् रुक्महागन्विचित्रिनाम् ॥४७॥
 नवगन्तयुतान्द्वाराभुक्तहारांश्च मृगलाः । मूर्तिनाम् रुक्मजम्बूवमाला विचित्रिनाः ॥४८॥
 पुष्पमालाः कांचनजाः सारिका रत्नमण्डिता । रुक्मगुजान्विता माला हेमपात्रिकलान्विताः ॥४९॥
 प्रवालमणिमुक्तामम्बुश्रिताश्चित्रचित्रिनाः । चपमृगकलिका महाया हेममालिकाः ॥५०॥
 कण्ठे मंगलपूत्रं च पेटिका रत्नभूषिता । कांचनानां मुमुक्षुमाणां मणीनां विविधानि च ॥५१॥
 गुच्छैः कण्ठभूषणानि मुक्तागुच्छयुतान्यपि । ददृशुस्ते हि मातायाः कण्ठे हेमन्यनेकशः ॥५२॥
 रुक्तामदृशान्येव श्रियायां भूषणान्यपि । प्रवालमणिमाणिक्यपरचितान्पुञ्ज्वलानि च ॥५३॥

मुक्तागुच्छान् कांचनगुच्छान् मणिगुच्छैर्विचित्रितान् ।

प्रवालमणिगुच्छांश्च

रत्नपुष्पविगुफितान् ॥५४॥

ततो ददृशुस्ते सर्वे रत्नमालाकुचकचुसीम् । हेमन्तनुभवां चित्रां मुक्तामाणिक्यगुफिताम् ॥५५॥
 आदर्शश्चित्रसयुक्ता पुष्परत्नविराजिताम् । मयूरशुकवृक्षश्च लवणैस्तनुनिर्मितः ॥५६॥
 चित्रितां श्रमघर्मणाद्रां सलरतां ददृशुः । ततो ददृशुश्चतयोः केयूरे रत्नमण्डिते ॥५७॥
 वज्रकंकणमादृश्ये हेममाणिक्यनिर्मिते । रत्नचित्रचित्राश्च भुजयोः पेटिकाः शुभाः ॥५८॥
 हेमन्तनुभर्तृलवमानगुच्छैः मुमण्डिताः । प्रवालमणिमुक्तानां नानागुच्छैर्युता अपि ॥५९॥
 तदधः करयोः सर्वे ददृशुर्भूषणानि ते । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिश्चित्रितौ हेममम्बरा ॥६०॥
 करचूडौ दीप्तिमता हेमपुष्पादन्विता । कचकंकणधरौ चन्द्रायोर्ध्वा निषा ॥६१॥

यथाग्र और मृग आदिके चित्र बने थे । पान्थ, कृष्ण, हरे, नाले और कान्ते मणि स्थान-स्थानपर जड़े हुए थे ॥ ४२-४४ ॥ उसके ऊपर लंगोने देखा कि भौति-भातिके आभूषण पड़े हैं । कहीं सोनेकी जंजीरें हैं, कहीं कांचका काम बना है और कहीं तरह-तरहक रत्नोंको सजावट है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कोई तरहके सांणयोके आभूषण देरोप्यमान न रहे हैं । नौ रत्नोंके जड़ा हुआ हार है । मोतियोंकी माला है । सोनेकी जंजीरें हैं । मोतामाला, सुवर्ण एवं रत्नका मातृव पड़ी हुई हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ फूलोंकी माला, कच्छनकी माला, कच्छन और गुज्जाराय मिश्रित माला, मुक्तामणिमिश्रित आदिकी माला, प्रवाल तथा अन्यान्य मणियोंसे मिश्रित माला, चंपाकी कलिक ममान बन हुई सुवर्णकी माला, गलेका मंगलपूत्र, रत्न-जटित पेटो, सुवर्ण तथा सूक्ष्म मणियोंके बने हुए गुच्छे और मोतियोंके मुक्ताको लंगोने सातके गलेमें देखा ॥ ४९-५२ ॥ ठीक करधनीके समान हा स ताका आवाक आभूषण भी देख पड़ते थे । उनमें भी प्रवाल और मणि-माणिक्य आदि जड़े थे । मोतियोंके गुच्छे कांचके गुच्छे और रत्नोंके गुच्छोंसे वे रत्न-विराजे मानूम होते थे । इसके अनन्तर लंगोने साताजका चोली देखा । वह भी सुवर्णके तारोंसे बना, मुक्ता-माणिक्य-आदिके सजा और फूलोंसे गुफित था । जिसमें मयूर और तानोंके चित्र बने थे, ऐसे वृक्षोंसे चित्रित एवं चन्द्रविन्दुओंसे भोगी तथा अगम चिपटा हुई वह खोली थी । इसके बाद स ताके रत्नमण्डित व जूवन्धर लंगोनेकी दृष्टि पड़ी ॥ ५३-५७ ॥ वह भी विविध प्रकारके रत्नोंसे जटित था और उनकी आभासे चित्र-विचित्र मानूम दनी थी । फिर जिसमें जरीके काम किये हुए थे, मोतियोंके रत्न कमरपटिकापर लंगोनेकी दृष्टि पड़ी ॥ ५८ ॥ उसमें भी सुवर्णके तारोंके बड़े-बड़े गुच्छे लटक रहे थे । जगह-जगहपर प्रवाल-मणि-मुक्ता आदिकोंके गुच्छे लटक दिख रहे थे ॥ ५९ ॥ फिर सोना हाथोंमें जो और आभूषण थे, उन्हें लंगोने देखा । वे भी रत्न-माणिक्य और मोती आदिसे चित्रित सुवर्णके बने थे ॥ ६० ॥ हाथोंके दोनों कंकण सुरणोंके पुष्पसे सजे हुए

तदूर्ध्वार्धः कंकणानि हेमजानि घनानि च । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिश्चित्रितान्युज्ज्वलानि च ॥६२॥
 प्रवालमणिमुक्तानां कण्ठादिचित्रितान् । कर्णयोः सारिके दिव्ये ह्यूर्ध्वार्धो रत्नमण्डिते ॥६३॥
 तदूर्ध्वं कंकणान्येव पुष्पवल्ग्वङ्कितानि हि । दन्तराजपुष्पमार्दानि रत्नहेमोद्भवानि च ॥६४॥
 अगुलीषु ददृशुस्ते मुद्रिका रुक्मनिर्मिताः । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिर्नीलमाकरजैरपि ॥६५॥
 प्रवालचन्द्रकान्तश्च सूर्यकान्तैर्विचित्रिताः । नानापुष्पोपमा दिव्याः प्रतिपर्वममाभिताः ॥६६॥
 ततो ददृशुः सीताया रम्यं घाणेऽतिमोदज्वलम् । दिव्यं मयूरं चित्रं च धररुक्मविनिर्मितम् ॥६७॥
 मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्वररत्नैः सुमण्डितम् । लवितैर्वैकिङ्कादीनां वरगुच्छैः सुवेष्टितम् ॥६८॥
 ततो ददृशुः सीतायाः कर्णयोर्मण्डपानि ते । मकरध्वजमादृत्ये ताटके रत्नचित्रिते ॥६९॥
 मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्गुम्फिते सोज्ज्वले वरे । रत्नपुष्पादिभिश्चित्रैश्चित्रिते रविमास्वरे ॥७०॥
 ततो भ्रमरिके दिव्ये रुक्मरत्नविचित्रिते । मुक्ताभिर्गुम्फिते रम्ये हेमपुष्पाणि वै तथा ॥७१॥
 कर्णयोः मृत्खलाश्चित्रा ददृशु रुक्मनिर्मिताः । मुक्तागुच्छैर्गुम्फिताश्च रत्नमाणिक्यमण्डिताः ॥७२॥
 आकर्णाभ्यां च सीमन्तपर्यन्त मालपार्श्वयोः । हावद्रुक्मजालानि माणिक्यमण्डितानि हि ॥७३॥
 मुक्तागुच्छैर्गुम्फितानि रैर्द्वैचित्रितान्यपि । ततस्तदूर्ध्वं सीताया ददृशुः शिरसि दिजाः ॥७४॥
 सीमन्तस्त्रोणरे याम्ये केशेषु शशिमास्करौ । रुक्मजो रत्नवैद्यपणिमुक्ताविचित्रितौ ॥७५॥
 नालकाश्मीरकान्तश्च विद्रुमैरतिशोभिनी । चन्द्रसूर्यान्वि स्वोपभागा दीपयतो दिशः ॥७६॥
 निटिले तिलकं रत्नमणिमुक्ताचिराञ्जितम् । दैवं दिव्यमुज्ज्वलं च कोटिपूर्वममप्रभम् ॥७७॥
 ततो ददृशुः सीमत मुकटार्धमहोज्ज्वलम् । नानारत्नविचित्रं च सर्वोणतिलकावधि ॥७८॥
 भूडामणिं च ददृशुस्ते जनकेन समर्पितम् । नानारत्नविचित्रं च मुक्तागुच्छविराञ्जितम् ॥७९॥

ये । कौचकी बनी हुई घुड़ियोंके मध्यमें वे सूर्य और चन्द्रमाकी नाई मानूम पड़ते थे ॥ ६१ ॥ उनके ऊपर-
 नीचे सुवर्णके माटे में ट कड़ पड़े थे । वे भी नाना प्रकारके रत्नोंसे विचित्र दाप्ति धारण कर रहे थे ॥ ६२ ॥
 उन्होंने ऊपर प्रवाल मणि मुक्ता आदि रत्नोंसे एक-एक दिव्य सारिकाएँ बनी थीं ॥ ६३ ॥ उनके भी ऊपर
 रत्ननिर्मित फूलों और लताओंसे जटित कंकण पड़े थे ॥ ६४ ॥ उँलियोंमें सुवर्णकी बनी रत्न, माणिक्य,
 मालम, मरकत मणि आदिमें जटित अनेक अगुडियाँ थीं । वे भी प्रवाल, चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त आदि
 मणियोंसे विचित्र मानूम हाती थीं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर सब लोगोंने सीताकी नासाभणिको देखा,
 जिसमें एक दिव्य स्वर्णमयूर बना हुआ था । वह भी नाना प्रकारके मणियोंमें अलंकृत था ॥ ६७ ॥ उसमें भी
 मणि-माणिक्य और माणिक्योंके मुख लटक रहे थे ॥ ६८ ॥ इसके बाद लोगोंने सीताके कर्णाभूषणोंको देखा । जिनमें
 मकरध्वजके मटल विविध रत्नोंसे चित्रित हुएके थे । उनमें भी मणि-माणिक्य और मोतियोंके गुच्छे लटक
 रहे थे । रत्ननिर्मित पुष्पोंसे वे सूर्यके समान दृश्यमान हो रहे थे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ फिर लोगोंने सीताके कानोंमें
 पड़ी दो भ्रमरिकाओंको देखा । वे भी सुवर्णकी बनी तथा रत्नोंके जहाजमें विचित्र विचित्र मालूम होती थीं
 ॥ ७१ ॥ फिर सबोंने सीताकी उस मृत्खलाको देखा, जो सुवर्णकी बनी तथा रत्नजटित थी और उसमें
 भी माणिक्योंके मुख लटक रहे थे ॥ ७२ ॥ कानसे लेकर सीमन्त पर्यन्त ललाटेके अगल-बगल स्वर्ण-माणिक्यके
 आभूषण द्वारा समान मानूम पड़ते थे ॥ ७३ ॥ इसके अनन्तर सबोंने सीताके मस्तककी ओर देखा, जहाँ केशमें
 सूर्य और चन्द्रमा दिखाई पड़ते थे । वे भी सुवर्ण-रत्न-वैद्यप्य मणि-मुक्तासे विचित्र थे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ नाकमें, कर्णोंमें
 कानादिक मणियोंसे वे अतिमय गाभित हो रहे थे । वे अपनी अनुपम कान्तिसे दूसरे सूर्य-चन्द्रमाके समान दसों
 दिशाओंकी प्रकाशित कर रहे थे ॥ ७६ ॥ ललाटेमें रत्नों और मणि मुक्ताओंसे बना हुआ तिलक था । वह भी
 सुवर्णकी बनी था और कोटि सूर्यके समान उसका प्रकाश था ॥ ७७ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने सीताके सीमन्तमें
 अतिमय दीप्तिमान् एक भूडामणि देखा, जो वेणीसे लेकर तिलक पर्यन्त अपनी छटा दिखा रहा था ॥ ७८ ॥

ततो ददृशुः शिरसि मुक्ताजालानि भूसुराः । हेमन्ततन्तुगुफितानि रत्नपुष्पयुतान्यपि ॥८०॥
 मणिवैदूर्यकाश्मीरविद्रुमैश्चित्रितानि हि । तद्वच्च पृष्पजालानि सुगन्धीनि व्यलोकयन् ॥८१॥
 ततो वेण्यां भूषणानि ददृशुस्ते वराणि हि । नानापद्मपुष्पमान्येव माणिक्यचित्रितानि हि ॥८२॥
 फल्लवांतरवर्तीन्यतिदीप्त्युज्ज्वलानि च । हेमतन्तुमयान् गुच्छान् मुक्ताहारविमिश्रितान् ॥८३॥
 लम्बमानान् ददृशुस्ते मणिमाणिक्यसंयुतान् । वेण्यग्रैर्मस्थितान् रम्यान् पुष्पापाङ्गममन्वितान् ॥८४॥
 एवं सीतां ददृशुस्ते श्रमन्यस्तविभूषणाम् । सर्वालङ्काररहितां तां द्रष्टुं कोऽपि न क्षमः ॥८५॥
 दिव्यालङ्काररत्नानां प्रभया हतलोचनाः । वामहस्तेन पात्रं च दक्षिणसत्करे ॥८६॥
 दधानां पद्मचरणां रत्नोत्पलकरां वराम् । पद्मास्यां पद्मपत्राक्षीं पद्मगर्भस्वरूपिणीम् ॥८७॥
 दिव्यकर्पूरगघैश्च चन्दनैरपि चर्चिताम् । स्फुरन्मञ्जीरचरणां दिव्यकंकणमण्डिताम् ॥८८॥
 स्वपदालक्तवर्णेन गतिं दर्शयतीं निजाम् । रत्नाङ्गदधरां सीतां ददृशुस्ते द्विजादयः ॥८९॥
 गजेन्द्रगमनां रम्यां दिव्यपुष्पैः सुशोभिताम् । दिव्यमदारकुसुममालाभिश्च सुशोभिताम् ॥९०॥
 कस्तूरीकुततिलकां कुङ्कुमेन सुशोभिताम् । हरिद्रया कज्जलार्द्यमण्डितां च स्मिन्नाननाम् ॥९१॥
 इति दृष्ट्वा जानकीं तेऽभूवन् चित्रोपमास्तदा । आत्मानं न विदुः सर्वे सीतामौदर्यविस्मिताः ॥९२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितातमंते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे

सीताञ्जलकारवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥



इसके अनन्तर उन राजाओंने सिरपर सुशोभित मोतियोंको देखा, जो सुवर्णके तारमें गुंथे थे और उनके बीच-बीचमें रत्ननिर्मित पुष्प पड़े हुए थे ॥ ७९ ॥ ८० ॥ वे भी मणि वैदूर्य काश्मीर-विद्रुम आदिसे चित्रित थे । उसके बाद उनके ऊपर लगे हुए सुगन्धित फूलोंको देखा ॥ ८१ ॥ तदनन्तर वेणीमें लगे हुए सुन्दर आभूषणोंके ऊपर लोगोंकी दृष्टि पड़ी, जो विद्विध प्रकारके उन माणिक्य-चित्रित पक्षियों जैसे दीखते थे, जो पत्तोंके भीतर बँडे हुए अतिशय दीप्तिमान् हो रहे हो सुवर्णके तारोंसे बने गुच्छ मोतियोंके हारसे मिले तथा मणि-माणिक्यसंयुक्त थे । वे वेणीके अग्रभागमें लटक थे और उनमें नाना प्रकारके फूल गुंथे हुए थे ॥ ८२-८४ ॥ सांताने वीक्षके डरसे घटुतस्त आभूषणोंको निकाल दिया था । फिर भी सब प्रकारके अलङ्कारोंको धारण किये हुएके सदृश देखनेवाली सीताको लागोंने देखा सहा, किन्तु कोई भी अच्छा तरह नहीं देख सका ॥ ८५ ॥ क्योंकि उन अलङ्कारोंको प्रभाके आगे लालोंकी दृष्टि ही नहीं ठहरती थी । सीताके बाएँ हाथमें एक पात्र था और दाहिने हाथमें कज्जली थी ॥ ८६ ॥ उनके चरण कमलसराखे थे । रत्नोंसे बने हुए कमलकी नाई सीताके हाथ थे । कमलके समान मुख, पद्मपत्रके समान आँख तथा कदलीके तन्मूलेके भातरी भागके समान कोमल स्वरूप था । दिव्य कर्पूर तथा चन्दनसे उनका समस्त शरीर चर्चित था । समझम करता हुआ मञ्जीर पाँवोंमें था और दिव्य कंकण सीताके पाँवोंमें पड़े थे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ रत्नवर्णके चरणोंसे वे अपनी मन्द गति दिखा रही थी । रत्ननिर्मित द्विजायुध हाथमें पड़े थे । इस प्रकारकी सीताको लोगोंने देखा ॥ ८९ ॥ गजेन्द्रके समान उसकी मन्द गति थी । दिव्य पुष्पोंसे सुशोभित तथा दिव्य मंदार विरचित मालाओंसे अलङ्कृत होकर कस्तूरीका तिलक लगाये हुए थीं, उनकी आँखोंमें कज्जल लगा था और वे मन्द-मन्द भसका रही थीं । इस प्रकारकी सीताको देखकर देखनेवाले चित्रलिखित जैसे हो गये और उनके सौन्दर्यसे विस्मित होकर वे सब अपने आपको भूत गये ॥ ९०-९२ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितातमंते श्रीमदानन्दरामायणे 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(राममीताका जलविहार)

श्रीरामदास उवाच

अथ सीता क्षणेनैव चकार परिवेषणम् । हेमपात्रेषु सर्वेषां पक्वान्निविधैर्मुदा ॥ १ ॥
 कामधेनुर्द्वयैश्च मण्डकान् पूर्णपूरितान् । वटकान् फेनिकांश्चापि पायमान्पुञ्जलानि च ॥ २ ॥
 पर्पटकान् लङ्कुशान् कम्पांडवटकांस्तथा । सुसृष्टतंदुरुक्तान् दधिसीर धृतं मधु ॥ ३ ॥
 पृथक्काचतट्रोणेषु जानकी पर्यवेपयन् । शर्कराः श्वेतवर्णाश्च त्रयं खड्गशर्कराः ॥ ४ ॥
 मरिचाधुपचारैश्च संस्कृतं तक्रमुत्तमम् । घृतपाचितशकाश्च क्षुपक्षका रुचिप्रदाः ॥ ५ ॥
 तिलमम्भिधवटकानार्द्रकं बीजपूरकम् । आत्रादीनां रमांश्चापि रमादीनि फलान्यपि ॥ ६ ॥
 एवमादीन्यनेकानि चोष्णानि विविधानि च । तथा लेह्यानि पेयानि जननी पर्यवेपयन् ॥ ७ ॥
 ततो रामः सहन्मित्रैः कथां कुर्वन् सुखेन मः । अकरोदुपहारं च करशुद्धिं विधाय सः ॥ ८ ॥
 सर्वेषां निजहस्तेन ददौ तांबूलमुत्तमम् । स्वयं भुक्त्वाऽथ तांबूलं वापामि पश्चाद्य सः ॥ ९ ॥
 पदुष्व्वा वस्त्राणि सर्वाणि दृष्ट्वादर्शे निजं मुखम् । शरुह्य शिविकां दिव्यां मुक्तापुच्छविगजिनाम् ॥ १० ॥
 हंसो रत्नादिभिश्चित्रां यथी निजगृहाद्वहिः । घन्धुभिः मन्त्रिर्धर्मिष्ठैर्मन्तः सर्वत्र वेष्टितः ॥ ११ ॥
 स्तुतो वन्दिजनैः सर्वैर्यथी स जानकीगृहम् । तत्र नत्वाऽथ कौमल्यां तथा मानस्यथाक्रमम् ॥ १२ ॥
 आशीर्भिरीडितस्ताभिर्यथी रामः समां वराम् । तत्र सिंहासने स्थित्वा मन्त्रिभिरलक्ष्मणादिभिः ॥ १३ ॥
 राजकार्याणि सर्वाणि स्वकारं नीतिमत्तरः । शृण्वाम राज्यं धर्मेण बुद्धिमांश्चारुलोचनः ॥ १४ ॥
 चार्हन्तान्वा स्थितिं सर्वां स्वराज्यस्य च सर्वथा । शृण्वाम राज्यं धर्मेण राघवो दीर्घलोचनः ॥ १५ ॥
 अथ सीतोपहारं स्वयमभीष्टोर्मिलादिभिः । देवगणां कामिनीभिः स्वसृभिश्चाकरोन्मुखम् ॥ १६ ॥
 करशुद्धिं विधाय च भुक्त्वा तांबूलमुत्तमम् । पश्चाद्य हस्तिदम्भं तथा रक्तां तु कञ्चुकात् ॥ १७ ॥

अ. रामदासन कहा—हे शिरः ! इसके अनन्तर सातान क्षण भ्रम सबके आग रक्त्त हुए सुवर्णके पात्रोंमें दिविच प्रकारके पक्वान् परोसे । वे पक्वान् कामधेनुके द्वारा उत्पन्न किये हुए थे । उनमें मण्डक, पूरनपूरी, वटव, फेन, दूधका बनी सीर आदि, पायड, लङ्कु, कुम्हटापाग, चिउडा, दही, दूध घी, सहद अदिकोंका जानकीजीने अलग-अलग स्वर्णनिमित्त पात्रोंमें परामा ॥ १-३ ॥ मफेद शक्कर, लाल शक्कर, जीरा भिने आदि मसाला डालकर बना हुआ रायता, घामे छोड़ हुए नाना प्रकारके शाक, चटनी तिलकी बनी हुई टिकिरी, मूवा वाजपूरक, आमके रस, कल आदिक फल, इमों प्रकार चूमने लायक तरह-तरहके अन्नार, चारद लायक किनारा हो नरहकी चटनी और पानके लायक तन्मई आदि वस्तुओंको माताजीने परामा ॥ ४-७ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजीने मित्रोंके साथ बरकरते हुए भात्रन किया और हाथ धोकर सबका आगे हाथसे पान दिया । फिर स्वयं भी पान खाया और कण्ठे वदने ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसके बाद सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र बांधकर आइनेमें मुख दखा और मानियोंके मुच्छाम सजाई हुई पालकीपर सवार होकर घरसे बाहर निकले । वान्धव, मन्त्री, मित्र तथा दूत, ये सब चारों ओरसे रामचन्द्रजीको घेरे हुए थे ॥ १० ॥ ११ ॥ बरीजन रास्तेमें भगवान्की स्तुति करने चलते थे । इस तरह सबकी अपने साथ लिये हुए वे मानाके भवनमें जा पहुँचे, वहाँ माना कौमल्या तथा अन्य माताओंको प्राणम करके उनसे आशीर्वाद लिया और उन मानाओंकी भी साथ लिये हुए सभामवनमें पहुँचे । वहाँ मन्त्रियों तथा लक्ष्मणदिक आताओंके साथ सिंहासनपर बैठे ॥ १२ ॥ १३ ॥ वहाँपर राज्यमन्त्रियों समस्त कार्योंको खूब अच्छी तरह सोच-विचारकर किया । रामचन्द्रजी गुप्तचरो द्वारा आने राजाके सब समाचार मानूम करके धर्मपूर्वक शासन करते थे । १४ ॥ अबसे सीताजीने भी अपनी देवरानियों, बहिनों तथा सखियोंके साथ भोजन किया, हाथ धोया और ताम्बूलका उत्तम बीड़ा खाया । हरे रंगकी साड़ी तथा लाल रङ्गकी चोली जिसमें सुवर्णके

हेमतन्तुमुष्णशब्दां मुक्ताजालवैगुम्फिताम् । गेहान्तर्वर्त्युपवनशालायां संस्थिताऽभवत् ॥१७॥
 मल्लीभिर्वेष्टिता रम्या घृताऽधोकोपवर्हणा । ततो दिव्यानलद्वाराभिजदेहे दधार सा ॥१८॥
 ये मया कथिता नैव पूर्वैन्यस्तान् श्रमेण नान् । कस्मैषां वर्णने मक्तो भवेदत्र नरोत्तमः ॥१९॥
 चतुरास्यः कुण्ठितोऽभून्पञ्चास्यश्च पटाननः । उच्चैःश्रवाश्च ममास्यः महस्त्राभ्योऽपि वर्णने ॥२०॥
 श्रुत्वा सीतामुपवने गतां ते जलयन्त्रिणः । जलयन्त्राणि सर्वाणि चक्रुर्मुक्तानि वेगतः ॥२१॥
 रत्नमञ्चकमस्या सा मीना चामरवीजिता । जलयन्त्रकौतुकानि ददर्श नगरीरुधः ॥२२॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामो राजकार्याणि कुन्तनशः । कुत्वा ययौ मभाषाः स निजगेहं तु बन्धुभिः ॥२३॥
 तदा दुन्दुभिनिर्घोषा नववाद्यस्वना अपि । शङ्खानां गोमुखानां च मेरीणां तुमूलस्वनाः ॥२४॥
 बभूवुर्यश्च शब्दाश्च नृत्यादीनां स्वनाः शुभाः । ननृतुर्वारिनायश्च तुष्टुनुर्मागधादयः ॥२५॥
 न स्वन जानकी चापि श्रुत्वा चोपवने स्थिता । ममश्रमेण समुत्तीर्य मञ्चकाघो वरानना ॥२६॥
 वामहस्ते मङ्गलीं तां क्षुपपात्रं च दक्षिण । धृत्वा करे सा वैदेही रामं प्रत्युज्जगाम वै ॥२७॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामस्यैकन्यातां शिविकां वदिः । विमर्ज्य सकलाँल्लोकान् विवेश बन्धुभिर्गृहे ॥२८॥
 एतस्मिन्नन्तरे दाम्यः शतशो रुक्मभूषिताः । राघवाग्रे द्रुतुमुक्ता स्वस्वकर्मसु तत्पराः ॥२९॥
 काचित् व्यजनेनैव वीजयामास वगतः । दधार चामरे काचिन्काचिदामनमुनमम् ॥३०॥
 काचित्तांबूलपात्रं सा काचिन्निर्घृवनस्य च । पात्रं दधार काचित् जलकुम्भं मनोऽगमम् ॥३१॥
 काचिद्धारं वस्त्राणां कोशं काचित् कर्मरुम् । काचिद्धारं तूर्णारं काचित्स्वङ्गं दधार सा ॥३२॥
 एवमादीन्यनेकानि तदोपकरणानि ताः । जगृह गमचन्द्रं तं वेष्टयामागुगदरात् ॥३३॥
 ततो रामः शनैःपङ्कजां ययौ जनकनन्दिनीम् । स्थितां तत्र प्रतीक्षन्तीं पतिं जलरुहेक्षणम् ॥३४॥

तारोमे जगह जगह बल-बूटे वने थे, उसे पहिना और सबके साथ भवनके भीतर ही वने हुए उपवनमें जाकर बैठे ॥ १५-१७ ॥ वहीं संस्थितोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और सीताने विविध प्रकारके आभूषण पहने ॥ १८ ॥ जिन योद्धा कलकारोंका मैं बड़ा परिश्रमक साथ स्वाजकर पहने वह आया है, उन्हें यही पूर्ण-रूपसे वर्णन करनेमें कौन श्रेष्ठ पुण्य समर्थ होगा ॥ १९ ॥ सीताको उस अलौकिक शोभाका वर्णन करनेमें चतुरास न सह्या, पञ्चवक्त्र शिख, पटानन स्वामिक निक्षेप, मान मुक्त्वानि उच्चैः श्रवा और हजार मुखवाले श्रेयनामक भी बुद्धि कुण्ठित हो गया ॥ २० ॥ जलयन्त्रक अधिकारियोंने जब सुना कि सीताजी उपवनमें आ गयी हैं, तब उन्होंने सब फौजारोंको बड़े वेगके साथ छोड़ दिया ॥ २१ ॥ तदनन्तर मणिकी बनी हुई चौकीपर बैठकर सीता फौजारोंके कौतुक तथा वृक्षोंकी शोभा देखने लगीं और दामियीं साताक ऊपर चंवर डुलाने लगीं ॥ २२ ॥ इनमेंमें रमचन्द्र भी राज्यमन्त्राधी सब काम करके भाइयोंके साथ अपने भवनसे आये ॥ २३ ॥ उस समय दुन्दुभाके शब्द, नवीन वाजोंकी ध्वनि और शङ्ख, गोमुख, मंके आदिका घनघोर शब्द होने लगा ॥ २४ ॥ विविध वाद्ययन्त्रोंके शब्द और नुस्ती आदिका ध्वनि मुनाई देने लगी, वेश्यायें नाचने लगीं और बन्दाजन जावान्को स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ इन वाजोंके स्वर सुनकर सीता भी घबड़ाहटके साथ चौकीपरसे उबरकर बायें हाथमें सारी तथा एक उपपात्र लेकर रामकी ओर चलीं ॥ २६ ॥ २७ ॥ तबतक रमचन्द्रजी भी पालकीसे उतरे और सब लागोंको बिदा करके आताआक साथ घरके भीतर गये ॥ २८ ॥ इनमेंमें विविध प्रकारके अलङ्कारोंको पहने हुए सबड़ां दासियाँ अपना-अपना काम करनेके लिये दौड़ रही ॥ २९ ॥ कोई भगवान्को पंखा झल्ले लगा। किसीने चमर ले लिया। कोई आसन दिखाने लगी। जिनने पानदान, किसीने उगालदान, किसीने सुन्दर जलपात्र और किसीने कपड़े रखनेकी पेंटी सम्हाल ली। किसी दासिने रामजीका घनुष ले लिया। किसीने सरकस लिया और किसीने तलवार ले ली ॥ ३०-३२ ॥ इन तरह रामकी सब वस्तुओंकी सब दासियोंने चारों ओरसे घेरकर सम्हाल लिया ॥ ३३ ॥ इसके बाद

गृहांगणाराममध्ये संस्थितां सस्मिताननाम् । दृष्ट्वात्मानं त्रिलज्जन्तो मुनः सां चाल्लोचनाम् ॥३५॥
 कटालैश्चारु वश्यन्तीं सखीभिः परिवेष्टिताम् । तां दृष्ट्वा राघवश्चापि किञ्चित् कृत्वा स्मिताननम् ॥३६॥
 चकाराचमनं सम्यक् सीतापिनजलेन सह । ततः स्निग्धाऽऽवने पीत्वा जलपत्रे पर्यो पुनः ॥३७॥
 जलयन्त्रमपीपस्थां शालां सीताममन्वितः । तस्यां मिहामने स्थित्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः ॥३८॥
 मच्छ भोजनशालां त्वं सर्वानाहूय वेगतः । प्राक्षणादीनुर्मिलादिनारीणां त्वरयस्व हि ॥३९॥
 सर्वं कृत्वा यथायोग्यं ततो मां कुरु सूचनाम् । तथेति राघवनाह्वयेन सह शत्रुहः ॥४०॥
 लक्ष्मणस्त्वरितो गत्वा सर्वानाहूय वेगतः । वसिष्ठादिमुनीन्मित्रमन्त्रिणः सुहृदस्तथा ॥४१॥
 त्वग्यामासोर्मिलां च मांडवीं भरतप्रियाम् । श्रुतकोतिं च सोमित्रिः श्रीरामवचनात्तदा ॥४२॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामः केतरादिविनिमित्तैः । चित्ररामः पूरितानि जलयन्त्राण्यनेकशः ॥४३॥
 कारयित्वा तेषु सीतां वादपाशदेहं मुदा । धृत्वाऽक्षिपत्पृथग्दास्यादिषु पदयन्मु वं सुखम् ॥४४॥
 ततः स्वयं पपातोर्ज्वलपत्रेषु वं पृथक् । जलक्रीडां सह मेधिल्या चकार रघुनन्दनः ॥४५॥
 भुजाभ्यां सह ममालिङ्ग्य तां मुहुः प्राक्षिपन्मुदा । रञ्जयामास वेदेहीं मृगमाञ्जलिसेचनैः ॥४६॥
 ततः मृगन्धर्वलानि तथा परिमलानि हि । नानामृगन्धद्रव्याणि माङ्गल्यानि बहुनि च ॥४७॥
 दासीभिः शीघ्रमानीय तावुर्मौ हि परस्परम् । ववर्षतुः सुभायैश्च क्राडाद्रज्यैर्मनोरमैः ॥४८॥
 कृगभ्यां जलयन्त्राणि मिथस्तां ममुभोचतुः । रामाक्षिसहया दास्यः सीतासख्योऽपि सूचिताः ॥४९॥
 बह्वभिनिवहिर्दं गत्वा तस्थुर्दिलज्जिताः । काश्चिद्द्वारेषु तस्थुस्तास्तूष्णीं प्रमुदिताननाः ॥५०॥
 अदृष्ट्वाऽयं ततः सीतारामौ रहमि सादरम् । जनयन्त्रेषु तौ क्रीडां चक्रतुः सुचिरं मुदा ॥५१॥
 मुष्टिम्यां जानकीं रामं ताडयामास कोतुकात् । साऽपि तां ताडयामास मुष्ट्या पुष्पममानया ॥५२॥

रामजी धीर धर सीताजीका ओर चर, जा पडल हा से खड़ा खड़ा रामचन्द्रजीक आदकी प्रत आ कर रही थी ।
 जिनका भरतक रामका देखकर लज्जास झुका हुआ था, वे सीता गृहांगणम बने बगीचमें बैठे थी । मुसकाता
 हुआ उनका मुख था । रामचन्द्रजीने दस, कि मुन्द्र आँखों और मुट्ठील नामिकावाली माना हम देखकर लजा रही
 है, उनके चारों ओर सखियाँ घेरे खड़ा है और रह रहकर माता अपना कनिष्ठियासे हमको दसता आता
 है । इस प्रकारकी सातावा देखकर रामचन्द्रजी मुसकाने हुए उनके पास पहुँच और सीताक हापस प्राप्त जलको
 लेकर आचमन किया । फिर आसनपर बैठे, जल पीया और सत र साथ उस बंगलेकी तरफ चले, जो
 कोयारोंक बीचमें बना हुआ था । वहाँ पहुँचकर राम एक दिव्य मिहामनपर बैठे और लक्ष्मणसे कहने
 लगे— ॥३४-३७॥ हे लक्ष्मण ! हम भोजनशाला जाओ और सब ब्राह्मणों तथा उर्मिलादिक नारियोंसे कहो कि
 जल्दी भोजन तैयार करें । जैसा मैं बखशा है, वैसा करने के बाद फिर हम सूचना दो । 'बहुत अच्छा' कह-
 कर लक्ष्मण सज्जन तथा भरतजी साथ लेकर भोजनशालाम पहुँच । वहाँ वसिष्ठादि मुनियों, मन्त्रियों तथा
 मित्रोंका बुलाकर शीघ्र तैयार होवा कह ॥ ३८-४१॥ अनन्तर लक्ष्मणन माधवी, श्रुतकोति, उर्मिला
 आदिकों रामचन्द्रजीक अजातुमार सह साथ दिया कि तुम शीघ्र भोजनका तैयारी करो ॥४२॥ इसके
 अनन्तर रामचन्द्रजीन कमरादि । व र हमें कि तब चरवा एक घरम हो गये सीताजीका गोदमें लेकर फेंक
 दिया सीता । हमसे हुई देखने ॥ ४३-४४॥ इसके अनन्तर वे चरवा भा उसम दूर पड और सीताके
 साथ जलपत्रे दा करने लग ४५। वे कर बार सीताको उठा उठाकर जलम फेंकने, फिर स्वयं कूदते और सीता-
 पर जल उछालने थे । तदनन्तर दाँवा हुआ मुष्टिधत तैल तथा विविध प्रकारके परिमल भँगाकर आपसमें
 एक दूसरपर डालने लगे । वे हाथन दिक्कागों लेकर एक दूसरपर कमर आदि मिले हुए जलका वर्षा करते
 थे ॥४६-४८॥ रामचन्द्रजीके सँगे लगे सखियाँ लज्जाके मारे वहाँसे दूर गयी और दूसरी जगह जा बैठी । उनमसे
 कुछ स्त्रियाँ प्रसन्नतापूर्वक तमबुके बने हुए घरके फाटकपर जा बैठी । इस प्रकार गकान्तम साताक साथ राम-
 चन्द्रजी बहुत देरतक खड़ा करने रहे ॥ ४९ ॥ ५१ ॥ कभी खेल खेलम साताजी रामचन्द्रको मुक्ता मार बेती थी,

चुचुम्ब तस्या विगोष्ठं चूर्णयामास नन्दुर्जी । मुक्त्वा तत्कञ्चुकीबंधमालिङ्ग्य हृदयेन ताम् ॥५३॥
 मुनीच कच्छ श्रीगमः सीतायाः स्पर्शरेण सः । उड्डीव बन्ध हस्तेन तद्रश्मोः कृ ददर्श सः ॥५४॥
 ततः करेण नर्त्तापी रामश्चाकषणमुदा । सीतापदाकषेवद्वेगाद्रामनर्त्ता स्मिन्ननना ॥५५॥
 एवं परस्परं क्रीडां चक्रतुर्दम्पती मुदा । कः सवर्धनयोः क्रीडा मन्त्रिणां भिवेदितुम् ॥५६॥
 एवस्मिन्नन्तरे रास भोजनार्थं तु श्रवणात् । कर्तुं ययौ स गौनित्रिः समाहूय सुहृज्जनान् ॥५७॥
 निषेधितः स दाम्पत्यमिर्वतदागद्वहिः स्थितः । ता ऊचुः समयो नायं राम गन्तुं च न क्षणम् ॥५८॥
 स्थिरो भवन्न सीयिषे रामो गृहमि मीनया । कर्तुं न जलपत्रेषु जलक्रीडां पथासुखम् ॥५९॥
 पुनस्ताः प्राह मौमित्रिर्गुष्माभिवेचनेन मे । निन्दनीयं रामाय श्रवणार्थं हि लक्ष्मणः ॥६०॥
 समागतस्त्वामस्मात्तिततो वास्याम्यहं गृहम् । नतस्तस्मिन् तदा त्वेका दास्यो मन्वा रघूत्तमम् ॥६१॥
 वस्त्रभित्तेर्वहिः स्थित्वा मयर्भातपतिलज्जिता । दययामास मौमित्रेर्द्वारि द्वागपनं शुभैः ॥६२॥
 तदासीवचनं श्रुत्वा जलपत्रात् जानकीम् । चहिकृत्वा निगोत्रं रामस्तुष्टपताः स्वयम् ॥६३॥
 जलैर्हर्षाः प्रभुः स्नान्वा देहमुद्धर्ननादिभिः । मुगाकटुज्याभ्यादान् कृत्वा दूरं प्रियान्वितः ॥६४॥
 पीतक्रीडेश्वरामांभि परिधायाथ दम्पती । ददतुश्चर्द्रवस्त्राणि हेमतत्त्वैकितानि च ॥६५॥
 दाम्पत्यथाथ दासेभ्यो रामाद्यैश्चित्रितानि हि । ता जग्मतुः पुष्पचित्तमार्गेणाप्यशनगृहम् ॥६६॥
 तत्र पूर्णपञ्चरात्रैर्कनानोपचारकैः । ऊर्ध्वितांदाभिरञ्जं यन्त्रामधेनुममुद्रवम् ॥६७॥
 दधीभिः स्पर्णतामिश्र पत्रेषु परिवेषितम् । सुनीश्वरं च गुरुणा गृह्णन्मित्रममन्वितः ॥६८॥
 मन्त्रिर्मिर्वन्तुमिथापि रामोऽन्नस्तेष्वप्यसः । नन्वात्र योजयामास जानका चामरेण सा ॥६९॥
 सविनोर्दशदुर्लभ्यै रञ्जयामास राघवम् । एवं कृत्वा भोजनं तु कृत्वा तांभूलचरणम् ॥७०॥

तब राम भाईसते हुए कृष्णक समान कादर मुवाले संताकी भार देत थे ॥ ५३ ॥ सीताके विम्बसदृश लाल
 होठोंको रामचन्द्रजीने कई बार चूमा, उनके कृन्ताका भरेन किया और बोलीका बन्द खोलकर अपनी छातीसे
 छिपटाया ॥ ५३ ॥ रामने सीताकी क्रीडा खान्खार शरीरको हटा दिया, जिससे कदलीके खम्भेके समान उनके
 कोमल अंगार्थ दिखई पड़ने लगे ॥ ५४ ॥ तब रामने भाई मुवालेर रामकी बोली खोल डाली । इस तरह राम
 और सीतामें विनिव प्रवारका हुए ऐहती रहे । सीता और राम । सीताके मन्त्रिस्तार वर्षन करनेकी
 सामर्थ्य भला किसमें है ? हे गिरा । तुह संजावनदन केन तुम्हें बतलात है ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर
 भोजन संसार जानकी मूचन पड़वा । तब लक्ष्मणने रामचन्द्रके मित्रों आदिको भी बुलवा लिया ॥ ५७ ॥
 लक्ष्मण रामकी दृग्गन्तके लिए जोड़े प्रथम फटवर पड़न तब ही सखियोंने उन्हें राका और कहा कि अभी
 रामचन्द्रजीक पवन जानेका आजा नहीं है । क्योंकि वे इस समय शरकोडा कर रहे हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥
 उनसे लक्ष्मणने कहा—अच्छा, तुम्ही जाकर रामसे कहो कि द्वारपर लक्ष्मण भोजनको मूचन देनेके लिए खड़े
 है ॥ ६० ॥ तुम्हारे ऐसा कह देनपर मैं अनर चला जाऊंगा । लक्ष्मणके आज्ञानुसार उनसे एक दासी
 रामके समीप गयी और खजाती हुई परदेकी छाटस धीरे धीरे उनसे लक्ष्मणके जानेका खबर सुनायी
 ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसका बात सुनकर रामने प्रसन्नमनस सीताकी जलपत्रके बाहर निकाला और स्पर्श
 भी निकल जाय ॥ ६३ ॥ तब रासने उनके हांला और शरीरने गरीरमें लगे हुए तुगाच्छित उवटम आदिको
 चया ॥ ६४ ॥ उसके बाद लक्ष्मणने पत्ते कपड़े पहने । उस बहुमूल्य रत्न कपड़ाको दास-दासियोंको दे दिया ।
 फिर पुष्पोंस सुगामित मार्गसे चलकर सीता राजनशासम ज. पढ़े ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ वही पूर्वाक्त भोजन-
 सामग्रीसे भी अधिक कामधेनुमे उवट तथा उमिला आदिके द्वारा सुवर्णपाशोद मुचनके ही चमचोंसे
 परोसे हुए शरजनोंकी बनक मुनियां, मित्रा, मन्त्रियों एवं बन्धु वांछकों साथ सात हुए रामचन्द्रजी बहुत
 प्रसन्न हुए । भोजन करत समय साताजी पखा खलता हुई बीच-बीचमें चित्त प्रसन्न करनेवाली कितनी

सीतामसर्पितं रामस्तस्थौ मृण्वन् कथाः सुतम् । मन्त्रिभिर्बन्धुभिर्मित्रैर्गोहातः सदसि प्रभुः ॥७१॥
 भीताऽपि भोजनं कृत्वा दिव्यालङ्कारमण्डिता । निद्राशालां ममामीना सखीभिः परिवेष्टिता ॥७२॥
 चकार मारिभिः कीडां दामीभिर्वीजिता मुदा । कुर्वन्ती रघुनाथस्य प्रनौक्षां द्वारलोचना ॥७३॥

इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे

षष्ठोऽध्यायः नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(राम तथा सीताकी दिनचर्या)

श्रीरामदास इवाच

अथ रामो बन्धुभिश्च निद्राशालां ययौ मुदा । स्तुतो बंदिजनान्मैश्च विवेक्षैकात्मनिरम् ॥ १ ॥
 विस्मर्य लक्ष्मणादींश्च दासीभिः परिवारितः । ददर्श जानकीं निद्राशालायां रघुनन्दनः ॥ २ ॥
 साऽपि ज्ञात्वाऽऽगतं रामं सारिकीडां विहाय च । प्रपुञ्जगाम रामाय सखीभिर्नृपुस्वना ॥ ३ ॥
 नत्वा रामं करे धृत्वा मचके मन्यवेशयम् । दत्त्वा पातुं जलं तस्मै ददौ तांबूलमुत्तमम् ॥ ४ ॥
 ततश्चकार श्रीरामो निद्रां सीतारमन्त्रितः । दासीभिर्वीजितश्चापि पर्यङ्गे रत्नभूषिते ॥ ५ ॥
 मुहूर्तमात्रादुत्थाय घृताक्षौकोष्पहर्षणा । तस्यौ सीता मंचकाधस्ततो रामोऽप्यबुध्यत ॥ ६ ॥
 दृष्ट्वा समुत्थितं रामं दत्त्वा पातुं जलं पुनः । ददौ सीताऽयं तांबूलं राघवायानिहर्षिता ॥ ७ ॥
 रामदास्यस्तथा रामं बीजयामासुरादरात् । केकिपक्षममुद्गर्तश्चामरं रुक्मभूषितः ॥ ८ ॥
 सीतादास्यस्तथा सीतां बीजयामासुरादरात् । धेनुपुच्छोद्भवैर्दिव्यैश्चामरैर्ममडितैः ॥ ९ ॥
 ततः सीताकरं धृत्वा द्राक्षावल्या मुमण्डपम् । ययौ रामोऽङ्गणोद्भूतं तस्यौ तदथ आम्बे ॥ १० ॥

हा बातें भी करती जाती थीं । इस प्रकार भोजन करके रामने सीताके हाथोंका दिया हुआ पान खाया ॥ ६०-७० ॥ तदनन्तर मन्त्रियों, दन्तुओं तथा मित्रादिकोंके साथ विविध प्रकारकी बातें कहते-सुनते हुए सभाभवनमें पधारे ॥ ७१ ॥ तदनन्तर सीताने भी भोजन किया, कपड़े बदले और नाना प्रकारके अलङ्कारोंको पहनकर अपने शयनागारमें जा बठी । वहाँ सीताको मन्त्रियों और उनके चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं ॥ ७२ ॥ सीता वहाँ बठी हुई मारिका (मेना) के साथ खेलती तथा इधर-उधरकी बातें करती हुई रामचन्द्रजीके आगत्य प्रतीक्षा कर रही थीं । यह सब करते हुए भी सीताकी आँखें रामको दम्बनेके लिए द्वारपर ही लगी हुई थीं ॥ ७३ ॥ इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये 'ज्योत्स्ना'सायकीकायां विलासकांडे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—सभाभवनमें कुछ देर बैठनेके अनन्तर राम अपने बन्धुओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक शयनागारकी ओर चले । वंदोजन भगवान्की स्तुति करने लगे । निद्राशालाके पास जाकर रामने लक्ष्मण आदिकोंके विदा कर दिया । दासियोंके साथ वे भीतर गये और वहाँ बठी हुई सीताको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ सीताने भी जब देखा कि रामजी आ गये हैं तब अपना मेनाके साथका खेल बन्द करके चारों-धारे उनकी ओर बठी । उन्हें प्रणाम किया और हाथ पकड़कर पलंगपर बैठा लिया । फिर पीनेके लिए जल दिया और उत्तम तांबूल खिलाया ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजी रत्नभूषित पलंगपर सो गये और दासियाँ पंखा चलाने लगीं ॥ ५ ॥ क्षण भरके बाद सीता पलंगसे नीचे उतरी, तब रामजी भी आग गये ॥ ६ ॥ सीताने जब देखा कि वे भी उठे हैं, तब फिर पीनेके लिए जल और खानेको पान दिया ॥ ७ ॥ रामकी दासियाँ रामकी ओर सीताकी दासियाँ सीताको पंखा चल रही थीं । उन दासियोंके हाथमें ओरके पंखोंका बना हुआ पंखा था और उसमें कुवर्णको मूठ लगी हुई थी ॥ ८ ॥ कुछ देर बाद रामचन्द्रजी सीताका हाथ अपने हाथमें पकड़े हुए एक अंगूरी लताओंके बने सुन्दर मण्डपमें पहुँचे और उसके आँगनमें एक आसनपर बैठे

उपवर्द्धणसंस्पृष्टः सीताकामम्यिनो मुदा । हस्यस्योष्मप्रिगजदूतैः कृत्रिमनिर्मितैः ॥११॥
 हेमरत्नहस्तिदन्तमंभूतैरतिचित्रितैः । क्रीडां बृद्धवलेनैव चकार मीनया सुखम् ॥१२॥
 ततः पक्षिकुलैः सर्वैः पञ्जरस्थैः ममीनया । क्रीडां चकार भ्रामो दामाभिर्वीजितो मुहुः ॥१३॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीतयाऽऽकाङ्क्षिताः पुनः । ममावयुर्वारतायै ननु नृपः शतशस्तदा ॥१४॥
 चक्रुर्गीतं सस्वरं ताः षड्जस्वरममन्वितम् । ततस्ताम्यो झलझलान् दक्षा वस्यणि जनकी ॥१५॥
 निसर्जयामास ताः सर्वास्ततो राघवमब्रवीत् । स्थित्वा प्रासादवर्षेऽद्य कौतुकं दृष्टुं त्वया ॥१६॥
 द्रष्टुमिच्छाम्यहं राम शीघ्रमुत्तिष्ठ राघव । तन्मार्गावचनाद्रामः प्रासादं प्रति सीतया ॥१७॥
 गत्वा दिव्यामने स्थित्वा गवाक्षं रुक्मभूषितैः । रत्नोद्भवकपाटैश्च मुक्ताजालविराजितैः ॥१८॥
 राजवीभ्यां दृष्ट्वा तं ददर्श जनकौतुकम् । मीनार्यं दर्शयामास कौतुकानि स राघवः ॥१९॥
 स्वीयदक्षिणहस्तस्य तर्जन्या मुदिताननः । एतस्मिन्नन्तरे हृष्टे द्विजपत्नी तु मीनया ॥२०॥
 दृष्ट्वाऽलङ्कारवस्त्रार्चहीना कटिघृताऽभका । गच्छन्ती राजमार्गेण कृशा भिक्षार्थमुद्यता ॥२१॥
 तां तादृशीं निरीक्ष्याथ दास्याहव विदेहजा । पप्रच्छ भूषणाद्यैस्त्वं किमर्थं रहिता समि ॥२२॥
 सा प्राह तीर्थयात्रार्थं न्यक्त्वा मां तानलालिना । तानगेहे मनो मर्ता ततोऽपि जरठो मृतः ॥२३॥
 गुरुगेहेऽव्तिकायां वर्त्तते आतरो मम । न पोषकः कोऽपि गेहेऽधुना सीतेऽस्ति वै मम ॥२४॥
 तस्मान्न सन्त्यलङ्कारवासामि जनकान्मजे । इति तस्या वचः श्रुत्वा रामार्षं सन्निरीक्ष्य सा ॥२५॥
 निजालङ्कारवासामि ददौ तस्यं विदेहजा । ब्राह्मणी सा पुनः प्राह गच्छ त्वं लक्ष्मणं प्रति ॥२६॥
 हेममुद्रा लक्ष्मिनाम्बुं गृहाण ममात्तया । तथेति जानकी पृष्ट्वा सा ययौ लक्ष्मणं तदा ॥२७॥

१ ॥ १० ॥ रामकी पीठपर तकिया लगे थी और सीता रामके वामभागमें बंठी थीं । वहाँ तकली हाथी, घोड़े, ऊँट, मंजी और राजदूत आदिके जिनोने रखे हुए थे । उनके साथ राम तथा सीताने बड़ी देरतक खेलवाड़ किया । उनमें बहुतसे जिनोने सुवर्ण, हाथीदीन एवं रत्नाके बने हुए थे और उनपर बहिया रंग ई की हुई थी ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर पित्रुदय बंटे हुए बहुतसे पक्षियाँ साथ रामकी क्रीडा की । उस समय भी शशिर्ष वस्त्रा अल रहा थी ॥ १३ ॥ इसके बाद सीता द्वारा बुलाई हुई बहुत-सी नर्तकियाँ आकर वहाँ नाचने-गाने लगीं ॥ १४ ॥ वे वेश्यायें षड्जस्वरम मुन्दर मीन गा-गाकर बहुत दूर तक उन्हें सुनाती रहीं । इसके बाद सीताने उनको बहुतसे वस्त्र-अलङ्कार आदि देकर विदा किया ॥ १५ ॥ उनको विदा करके सीता रामसे कहने लगीं—आज हमारी यह इच्छा है कि आपके साथ छनपर बैठकर बाजारका कौतुक देखूँ ॥ १६ ॥ उन्हीं और जानकी बलिये । तदनुसार राम सीताके साथ प्रासादपर गये ॥ १७ ॥ वहाँ एक दिव्य आसनपर बैठकर सुवर्णके बने हुए झरोखोंमें जिनमें विविध प्रकारके रत्नोंके दरवाजे लगे थे और मोतियोंकी झालरें लटकी हुई थीं ॥ १८ ॥ उनमेंसे ही वे राजमार्गके जनममुद्रायका कौतुक देखने लगे और सीताको भी दाहिने हाथकी तर्जनी अंगुलीके सकेतसे दिखाने लगे ॥ १९ ॥ इसी बीच सीताने देखा कि एक ब्राह्मणकी पत्नी वस्त्र-अलङ्कारको खाने नष्टी बन्ती आ रही है । उसकी कमरपर एक बच्चा है, उसकी दुबली-पतली देह है और उसके आकारसे मालूम पड़ता है कि वह भिक्षा माँगनेके लिए बाजार आयी है ॥ २० ॥ २१ ॥ उसको यह दृष्टा देखकर सीताने दासी द्वारा उसे अपने पास बुलवाया और पूछा कि तুম इस तरह बिना वस्त्र और आभूषणके बाजारमें किसलिए घूम रही हो ? ॥ २२ ॥ उसने कहा कि मेरे पतिदेव घरमें मुझे अकेली छोड़कर तीर्थ-यात्राके लिए चले गये । मैं अपने पिताकी बड़ी दुलारी बंटी थी । इसलिए अपना घर छोड़कर पिताके पास गयी तो वहाँ पिताजी पृष्ठावस्थाके कारण परलोक चले गये थे ॥ २३ ॥ खन्तीपुरीमें मेरे पिताके कई छोटे छोटे बच्चे अर्थात् मेरे भाई हैं, किन्तु मेरा तथा बच्चोंका पालन करनेवाला इस संसारमें कोई नहीं है ॥ २४ ॥ इसी कारण है जनकान्मजे ! मेरे पास वस्त्र और आभूषण नहीं हैं, जिनमें मैं रहूँ । इस प्रकार उसकी बातें सुनकर सीताने एक बार रामकी ओर देखा और अपने सब वस्त्राभूषण उतारकर उस विधवापत्नीको

पूर्वाधिकानलकागन् स्वदेहे जानकी पुनः । दधार दिव्यवामासि हेमनूद्भवानि सा ॥२८॥
 लक्ष्मण ब्राह्मणी गत्वा सीतावाक्यं न्यवेदयन् । ददौ तस्य लक्ष्मणोऽपि हेममुद्रास्त्रयैव सः ॥२९॥
 सीतावक्त्रपाह्लभमिता मृषा मेने न तद्वचः । कः समर्थो रामराज्ये मृषां वक्तुं मयेदिति ॥३०॥
 अथ सीताऽपि सौमित्रि स्वादायी प्रेष्य वै तदा । अयोध्यायां तथा राष्ट्रं घोषयामास दुन्दुभिम् ॥३१॥
 सप्तद्वीपेषु सर्वत्र पृथग्वर्षेषु सादरम् । काचिभारो पुमान् वापि विना सदस्त्रभूषणैः ॥३२॥
 इष्टभारैर्मया हातो यदेषे यत्पुरे कदा । तद्राक्षसास्तु मे दण्डो रामस्यापि विश्लेषतः ॥३३॥
 इति मच्छिञ्चित् हात्वा स्वकोशैः स्वायराष्ट्रके । वस्त्रालङ्कारभूषाभिर्भूषणाया द्विजादयः ॥३४॥
 सप्तद्वीपनृपतयश्चेत्य सीतासुशिञ्चितम् । मज्जदुन्दुभिघोषेण भुत्वा चक्रुस्तथैव च ॥३५॥
 तदारभ्य जगन्पां न कश्चिद्विग्नभूषणः । नारी वा पुरुषो वाऽऽयात् कुत्राप्यवनिजामयात् ॥३६॥
 एवं नानाकौतुकानि भूष्या सीताऽकरोन्मुदा । अथ रामः सर्वा गत्वा पुनर्यामे चतुर्थके ॥३७॥
 घकार राजकर्माणि धर्मेणैव स्वबन्धुभिः । नटनाटकवेद्यानां कौतुकानि महाति च ॥३८॥
 ददर्श स समामध्ये स्तुतो मामध्वदिभिः । ततः सर्वान्विमृज्याथ ययौ सीतागृह प्रभुः ॥३९॥
 सायसंध्यादिकं कृत्वा हुत्वा होमं यथाविधि । ततो यथादिभि पूज्य ब्राह्मणांश्चापि राघवः ॥४०॥
 नानोपहारनैवेद्य दत्त्वा तैस्तथः स्वयं प्रभुः । कृत्रोपहारं धीरामः भूत्वा पीराणिकीं कथाम् ॥४१॥
 कार्तनैर्हरिदासानां वेष्यानां नर्तनैरपि । पीरोदिताभिर्वाक्ताभिर्गायकानां च गायनैः ॥४२॥
 सार्धयामां निश्चा नीत्वा ययौ निद्रास्थलं शनैः । ततो रत्नप्रकाशैः स जगाम जानकीं प्रति ॥४३॥

दे दिव्य और कहा कि तुम लक्ष्मणके पास चली जाओ और उनसे मेरे आज्ञानुसार एक लाख स्वर्णमुद्रा ले लो । 'बहुत अच्छा' कहकर वह ब्राह्मणी लक्ष्मणके पास गया ॥ २४-२७ ॥ इसके अनन्तर साताने फिर उससे दूत गहन पहन लिए और सुवर्णक तारोस बने हुए बहुतसे सुन्दर वस्त्रोको भी धारण किया ॥ २८ ॥ उधर ब्राह्मणी लक्ष्मणके पास गयी और सीताको आज्ञा मुनायी । लक्ष्मणने जानकीके कथनानुसार उसे एक लाख स्वर्णमुद्राएँ दे दी ॥ २९ ॥ ब्राह्मणीको बातपर लक्ष्मणका कुछ भी सह नहीं हुआ । क्योंकि रामचन्द्रजाके राज्यमें किसीका झूठ बालनका साहस ही कैसे हो सकता था ॥ ३० ॥ इसके पश्चात् साताने लक्ष्मणके पास एक दासा द्वारा यह कहला नज़ा कि मेरा आज्ञास अयाध्याके समस्त राज्यमें टिढारा पिटवा दो और सातों द्वापा तथा भिक्ष-भिक्ष दशाम भी कहला दो कि कोई स्त्रा और पुरुष ऐसा न दिवायी वे कि जिसके शरीरपर बाढ़्या वस्त्र और आभूषण न हो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ मेरे गुप्तचर इस बातको टाह लेनेको सर्वत्र घूमते रह । यदि कहा किसी दश या किसी राष्ट्रमें कोई वस्त्राभूषणविहान देखा जायगा हा उस देशके राजाको मेरा तथा रामचन्द्रजाको आज्ञाके अनुसार चार दण्ड भुगतना पड़ेगा ॥ ३३ ॥ मेरी यह आज्ञा सुनकर सब राज अपने देशका प्रजाको अपने सजानेके द्रव्यसे उत्तम वस्त्राभूषण तयार करवाकर बँटवा दे । समस्त ब्राह्मणादि द्विजातियाका अच्छे-अच्छे वस्त्र-अलङ्कारोसे अलङ्कृत कराये ॥ ३४ ॥ तदनुसार सातों द्वापोके नृपातयोने राजदुन्दुष द्वारा धापित साताजीकी उस घायणाको सुन-सुनकर विधिवत् उसका पालन किया ॥ ३५ ॥ तबसे साताके भयसे जगतीतलमें कोई ऐसा मनुष्य नहीं दिखाई देता था, जो सुन्दर वस्त्राभूषण न पहने हा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार सीताजीने पृथ्वीमण्डलमें न जाने कितने कौतुक किये । तदनन्तर चौथे प्रहर रामचन्द्र अपने भ्राताओके साथ सभाभवनमें गये ॥ ३७ ॥ वहाँ धर्मपूर्वक राज्यके आवश्यक कार्य सम्पन्न किये । फिर नटोके नाटक और वेश्याओंके विविध प्रकारके नृत्य देखे, बन्दीजनोंकी स्तुतिपाँ सुनी और सबको विदा करके फिर सीताजीके भवनको लौट गये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ शामको सप्ताहिक नित्यकृत्य करके विधिवत् हुवन किया । गन्धादिक अनेक उपचारोसे शिवजी तथा ब्राह्मणोंका पूजा की ॥ ४० ॥ उन सबकी विविध पकवानोंका नैवेद्य देकर स्वयं भोजन किया । पुराणोंकी कथाएँ सुनीं । तदनन्तर भगवद्भूकोका कीर्तन सुना और वेष्याओके नृत्य देखे । जनवदवासियोंके कुशल-प्रश्न पूछे और

साऽपि प्रत्युज्जगाथाय रत्नदीपैः सखीयुता । सतः न सोतया रामः पर्वजै रन्नचित्रिते ॥४४॥
 चकार मीढया क्रीडां रञ्जयामास जानकीम् । ततस्तौ दंपती निद्रां चक्रतुर्वीजितौ मुहुः ॥४५॥
 दासीभिर्वर्जनैश्चित्रैश्चापहर्षमभूषितैः । एवं रामेण सा सीता सुखमाप पतिव्रता ॥४६॥
 सीतया राघवापि सुखमाप विशेषतः । एवं नानाकौतुकानि प्रत्यहं रघुनन्दनः ॥४७॥
 चकार सोतया सार्द्धं परिपूर्णमनोरथः । कदा चन्द्रस्य ज्योत्स्नादाप्रगणे सद्यः प्रभुः ॥४८॥
 चकार सीतया निद्रां कदा प्रमादमस्तके । कदा प्रासादान्तरे वाऽपि गवाक्षपवनैः शुभैः ॥४९॥
 सुखमाप कदा रामः कदा रहसि मन्दिरे । कदा कनकमृङ्गलाभविस्तानसुमंचके ॥५०॥
 कदा द्वाक्षामंडराधो जलयत्रसमीपतः । काचभूम्यां रुक्मभूम्यां मणिभूम्यां कदाऽपि वा ॥५१॥
 स्फटिकादिसुभूम्यां हि कदा सुखाप राघवः । कदा स पुष्पके वाऽपि रम्यशालान्तरे कदा ॥५२॥
 कदा स चित्रशालायां कदोशीरम्ये गृहे । कदा पुष्पमये गेहे कदा रंभावने वरे ॥५३॥
 कदा पुष्पवाटिकायां कदा वृक्षोर्ध्वमग्ननि । मृङ्गलावृक्षसंबद्धदोलके रन्नचित्रिते ॥५४॥
 कदा काष्ठमये दिव्ये मंचके रन्नभूषिते । कदा चकार तुलसीवाटिकायां रघुत्तमः ॥५५॥
 निद्रां जनकनदिन्या समाधामयता कदा । कदा द्वारोर्ध्वप्रासादे कदैकस्तम्भमग्ननि ॥५६॥
 कदा स्वगृहदेहन्यां कदा वृंदावनेऽपि च । एवं न सीतया रेमेऽयोध्यायां रघुनन्दनः ॥५७॥

इति श्रीराठकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे विलासकण्ठे वात्सीकीये

सीतारामयोर्दिनचरित्रवर्णने नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(रामके द्वारा देवांगनाओंको वरदान)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवं द्रष्टुं तथा स्नातुं मधावपि । शिष्यैः समाययौ व्यासो मुनिभिः परिवेष्टितः ॥ १ ॥

गायकोके गायन सुनते-सुनते आधी रात बिताकर वे गायनागारम गायन करनेको बने । द्वार आद रत्नके द्वारा प्रकाशित मार्गते चलते हुए राम सीताके पास पहुँचे ॥ ४१-४३ ॥ सीता श्री रत्ननिमित्त दीपोंके प्रकाशमें अपनी अनेक सलियोंके साथ रामचन्द्रके पास गयीं और राम सीताके साथ एक रत्नजटित परलङ्कपर बैठ गये ॥ ४४ ॥ रामने कुछ देर तक सीताको प्रसन्न करनेके लिए कुछ खेल किया । फिर दोनों सो गये और दासियाँ पैसा चलने लगीं ॥ ४५ ॥ इस तरह रामके द्वारा सीता तथा सीताके द्वारा राम विविध प्रकारका आनन्द झूटते रहे । जिनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं, ऐसे भगवान् रामचन्द्रजीकी यह नित्यकी दिनचर्या थी । उनके यहाँ नित्य ऐसे-ऐसे कौतुक हुआ करता थे । कभी विशाल भवनके आँगनमें, कभी प्रासादपर और कभी खिड़कीदार बरिषा कमरेमें राम सोते थे ॥ ४६-४९ ॥ कभी जहाँ अनेक प्रकारके बाणियोंकी मृङ्गलायें लटकती थीं, ऐसे चाँदनीवाले किसी एकान्त कमरेके सुन्दर मंचपर, कभी बंगुरकी छाड़ीके नीचे, कभी जलयत्रके समीप, कभी काचभूमिपर और कभी स्फटिकादिसे निर्मित सुन्दर मणिभूमिपर रामचन्द्रजी शयन करते थे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ कभी पुष्पक विमानपर, कभी रङ्गशालामें, कभी चित्रशालामें, कभी लखकी टहियोंवाले घरमें, कभी फूलोंके घरमें, कभी कदलीवनमें, कभी पुष्पवाटिकामें, कभी वृक्षके ऊपर बनी हुई शोषड़ीमें, कभी वृक्षमें बँधी जंजीरोसे बने हुए झूलेपर, कभी काष्ठोंके बने हुए दिव्य मंचपर और कभी तुलसीकी बनी हुई वाटिकामें रामचन्द्रजी शयन करते थे ॥ ५२-५५ ॥ कभी रामचन्द्रजी सीताके साथ समाभवनमें, कभी द्वारके किसी एक ऊँचे प्रासादपर, कभी केवल एक स्तम्भपर बने हुए मकानमें, कभी अपने घरकी देहलीपर और कभी मुन्दाकनमें सीताके साथ शयन करते थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति श्रीराठकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे विलासकण्ठे वात्सीकीये ॥ रामतेजपाण्डेयविरचितं ज्योत्स्नाभाषाटीकासुमन्विते विलासकण्ठे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

ममामृतं मुनिं ध्रुवा तं प्रत्युद्गम्य राघवः । ननाम शिष्या भक्त्या निनाय निजमंदिरम् ॥ २ ॥
 दक्षत्रा वगमनं तस्मै द्विजेभ्यश्चापि वै पृथक् । दत्त्वाऽऽसनानि दिव्यानि चकार पूजनं पृथक् ॥ ३ ॥
 कामधेनुं द्रुवै रन्नेर्मणिभ्यां मध्वैर्गणे । व्यासं तं भोजयामास मुनिभिर्जानकीपतिः ॥ ४ ॥
 तांयुल दक्षिणां दत्त्वा प्रचक्षुःकुलसम्पुटः । पश्यन्तु कुशलं तस्मै व्यासाय रघुनन्दनः ॥ ५ ॥
 सीता तं याजयामास व्यासं मन्यवतीसुतम् । एतस्मिन्नन्तरे व्यासो रामाय कुशलं निजम् ॥ ६ ॥
 निवेद्य पृष्ट्वा तन्क्षेमं तमाह कौतुकान्पुनः । राम राम महाबाहो यथा राज्यं त्वया मुनि ॥ ७ ॥
 भुज्यते न तवाऽन्येन केनापि पृथिवीभृता । पुरा भुक्तं न कोऽप्यग्रे भोक्ष्यते पृथिवीपतिः ॥ ८ ॥
 अन्यत्तेऽत्र महद्द्वैयमेकपत्नीव्रतं प्रणि । दृष्ट्वातिविस्मयश्चित्ते जायते मे रघूत्तम ॥ ९ ॥
 कः सहेतात्र तारुण्यकामदावानलं नृपः । पदस्थे यौयने चापि त्वमेवाम्मिन्द्रने समः ॥ १० ॥
 इति व्यासवचः श्रुत्वा रामो व्यासं वचोऽब्रवीत् । मया त्रयः कृताः संति नियमा मुनिमत्तम ॥ ११ ॥
 मृत्वादिनिर्गतं वाच्यमेकमेव विनिश्चितम् । न क्रियते मृगं तन्न नोच्यते स्मरं पुनः ॥ १२ ॥
 अन्यस्मांश्चाग्निनाऽन्या स्त्री कौमन्यापदशी मम । न क्रियते परा एन्ता मनमाऽपि न चित्तये ॥ १३ ॥
 तथा यं हन्तुमिच्छामि वाणेनैकेन कोपतः । निहन्त्यते तर्दकेन नान्य वाण सुज्ञाम्यहम् ॥ १४ ॥
 इत्थं त्रयः कृताः पूर्वं नियमास्त्वत्र भो मुने । सत्या एव भवन्वग्रेऽव्यडितास्तव वाक्यतः ॥ १५ ॥
 तथैवास्मिन्निति मीऽप्याह व्यासः श्रीराघवं तदा । पुनराह मुनिः श्रीमान् व्यासः श्रीराघव प्रति ॥ १६ ॥
 एकपत्नीव्रतस्यास्य कलेनापरजन्मनि । त्वं कृष्णरूपेण बह्वीर्नारीभोक्ष्यमि राघव ॥ १७ ॥
 तन्मुनेर्वचनं ध्रुवा विद्वस्य राघवोऽब्रवीत् । बह्वींश्च काभिनीर्भोक्तुं कृष्णरूपधरोऽप्यहम् ॥ १८ ॥

श्रीरामदास काले—एक बार रामचन्द्रजीका दर्शन करने तथा चंद्र रामनवमीको स्नान करनेके लिए अपने शिष्योंके साथ व्यासजी अगोप्यामे आये। उनके साथ बहुतसे मुनि भी थे ॥ १ ॥ मुनिका आगमन सुनकर राम स्वयं अगवानी करनेके लिए गये। उनके पास पहुँचकर रामचन्द्रजीने बड़ा भक्तिके साथ प्रणाम किया और अपने भजनमें ले गये ॥ २ ॥ उन्होंने व्यासजीको एक उत्तम आसनपर बिठाया। इसके पश्चात् अन्य ऋषियों एवं शिष्योंको भी सुन्दर आसनपर बैठाकर और विधिपूर्वक कामधेनु तथा रत्नों द्वारा उत्पन्न वस्तुओंसे उन मुनियोंकी अलग अलग पूजा की और सब मुनियोंके साथ व्यासजीका रामने भोजन कराया ॥ ३ ॥ ४ ॥ बादमें तांयुल और दक्षिणा दी। तब रामने हाथ जाँठकर भगवान् व्याससे कुशल मङ्गल पूछा ॥ ५ ॥ सीताजी उस समय व्यासजीका पंथा श्रद्धा रही थी। इसके बाद व्यासजीने रामको अपना कुशल-मङ्गल सुनाया और कहने लगे—हे महाबाहो राम ! आप जैसा राज्य इस पृथ्वीपर कर रहे हैं, वैसा किसी राजाने नहीं किया और भविष्यमें भी कोई नहीं करेगा ॥ ६-८ ॥ इसमें अनिरिक्त आप जैसे महिषालका एक पत्नीव्रत पालन करना देखकर मेरे मनमें तो बड़ा आश्चर्य होता है। ९ ॥ इस जगत्में ऐसा कौन राजा है, जो तरुणाईमें कामरूपी दावानलको सहनेमें समर्थ हो। ऐसे जब पदपर रहकर जतानीक उभरूमें एकपत्नीव्रतधारी केवल आप ही हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार व्यासजीका बात सुनकर रामने कहा—हे मुनिमत्तम ! मैंने अपने लिए तीन नियम बना लिए हैं। एक यह कि—॥ ११ ॥ एक बार मेरे मुखसे जो बात निकल जाय वह ध्रुव होती है। प्राणसङ्कट आनेपर भी बात नहीं बदलूँगे। दूसरी बात यह कि—सीताकी पाँडवर संसारका समस्त स्त्रियाँ मेरे लिये कोसल्याके समान माता हैं। दूसरी स्त्रीको मैं अपने मनमें भी नहीं सोचता ॥ १२ ॥ १३ ॥ तीसरी बात यह कि—मैं जिसे शोध करके भारता आहूता हूँ, उसपर केवल एक बाण छोटता हूँ। उसीसे उसे मार डालता हूँ, दूसरा बाण नहीं उठाता ॥ १४ ॥ हे मुनिराज ! ऐसा मैंने नियम बना रक्खा है। आपके आशीर्वादसे मेरे ये नियम अव्यडित भावसे चल रहे हैं। वेदव्यासने कहा—हे राजन् ! जैनी आपकी इच्छा है, वैसा ही होगा। और सुनिधे, जो आप इन जन्ममें एकपत्नीव्रतका पालन कर रहे हैं, इसके फलसे दूसरे जन्ममें आप बहुतसी स्त्रियाँ पावेंगे ॥ १५-१७ ॥ इस कार व्यासजीकी बात सुनकर रामने कहा—हे महामुने !

द्वारिकायां यदाऽग्रे हि द्वापरे मुनिमनसः । येन वनेन दानेन नियमेनाथवा मुने ॥१९॥
बहुनारीनिश्चयेन प्राप्स्यस्यन्ति वदन्व मा । इति गमयन्तः श्रुत्वा व्यासो राघवमब्रवीत् ॥२०॥
सर्ववपुषं स्वयां राम दानं ते प्रददम्यहम् । एकपत्नीव्रतादेव यद्यनि श्वं च स्त्रीर्विह ॥२१॥
लभिष्यसि तथाप्यथ दानं मय वदाम्यहम् । मातामांस्तु वपुः सूरिमेकां रघून्मम ॥२२॥
एवं षोडशमूर्तींश्च कारय त्वं पृथक् पृथक् । देहि न्व मरयूनद्यास्तारे त्रिप्रेभ्य आदरात् ॥२३॥
वज्रालङ्कारभूषार्घ्यैर्दक्षिणाभिश्च ताः शुभाः । अनेन बहुनारीस्त्व लभिष्यस्यन्त्य जन्मनि ॥२४॥
तथेति राघवश्चापि मूर्तीः कृत्वा मनोरमाः । ददौ ताः सयूनयां ब्राह्मणेभ्यस्तु षोडश ॥२५॥
ततस्ते ब्राह्मणास्तुष्टा रामायार्घ्यैर्दुर्मदा । दत्तमेकगुणं राजन् महस्रगुणित पुत्रा ॥२६॥
अस्माकं वचनादानफलं तव भविष्यति । षोडशस्त्रोमहस्याणि न्व लभिष्यसि निश्चयान् ॥२७॥
तथास्तिवन्पाह रामोऽपि तनो विप्रान्व्यमर्जयत् । श्रणम्य पूजितं व्यास ददावाज्ञां गृह्णहः ॥२८॥
अर्थकदा रामचन्द्रः सीतया मरयूनटे । मधुमासे वस्त्रगेहे स्थितः क्रीडां चकार मः ॥२९॥
एतस्मिन्नन्तरेऽयोध्यां नानादेशनिवाaminः । रामतीर्थे मधौ स्नातुं समाजग्मुः सहस्रशः ॥३०॥
सुगं यक्षाः किन्नराश्च गन्धर्वाः पन्नगा नगाः । बल्लयश्च मरितः सर्वास्तीर्थानि स्नतया नृपाः ॥३१॥
अप्सरसः पन्नगाश्च खगाः क्षेत्राणि वानराः । अर्थका देवपत्न्यो ज्ञान्वाऽस्पृश्यां विदेहजान् ॥३२॥
पश्यन्तं ताः समग्रं निश्चाये राघवं प्रति । समाजग्मुर्दिव्यवस्त्ररन्नाभरणभूषिताः ॥३३॥
राममौदर्यसंभ्रान्ताः कामबाणप्रपीडिताः । ता दृष्ट्वा रामदूतास्ते पप्रच्छु रक्षयस्थिताः ॥३४॥
युवं किमर्थं संप्रामा निश्चायेऽत्र मयावहे । कथयस्वं हि नः सर्वं मा शङ्कां कुरुताव हि ॥३५॥
ता ऊचु राघवं द्रष्टुं समायाता वयं स्त्रियः । अधुना चेद्राघवस्य दर्शनं न भविष्यति ॥३६॥

अग द्वापरम कृष्णरूपसे मैं बहुत सी स्त्रियों को साथ भोग करूँगा सही, लेकिन वह कौन-पा ऐसा व्रत अवस्था
दान है, जिसकी करनेसे मैं आगे के जन्ममें बहुत से नारिनों को पा सकूँगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ व्यासदेवन कहा—
हे राम ! आपने बहुत ठीक प्रश्न किया है , मैं आपको वह दान बतलाता हूँ । यद्यपि एक नारायणके पुण्यसे
हैं आपको कितनी ही स्त्रियाँ मिलेंगी । तथापि वह दान बन ये देना है । मीन के समान भारत मुचर्षा की
एक मूर्ति बनव इये । फिर उसी तरह सोलह मूर्तियाँ तैयार करा लें और उन्हें विविध प्रकारके वस्त्रों-भूषणोंसे
भूषण करके समुद्र नदीके तट पर ब्राह्मणोंको दान द दीजिये । २०-२३ ॥ ऐसा करनेसे आप अगले जन्ममें
बहुत सी स्त्रियाँ पायेंगे ॥ २४ ॥ रामचन्द्रने उसे स्वीकार किया । तद्नुसार उन्होंने सोनाका सोलह मूर्तियाँ
बन गयीं और समुद्र नदीके तट पर ब्राह्मणोंको दान दिया ॥ २५ ॥ उन ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर रामको यह
आशीर्वाद किया कि आप इस समय जा कुछ हम लोगोंको दें रहें हैं तो सहस्रगुणा होकर आपको प्राप्त हो
२६ ॥ हम लोगोंके आशीर्वादसे आपका यह फल अवश्य प्राप्त होगा । इसकाई सन्देह नहीं है कि
अपनी भविष्यमें साल्ह हजार स्त्रियाँ मिलेंगी । २७ ॥ रामजाने भा कहा कि ' ठीक है, ऐसा हा हा ' और
उन विप्रोंको तथा व्यासजीकी भली-भाँति पूजा करके बिदा किया । २८ ॥ एक बार राम चंद्रमानस सरयु-
तट पर सोनाजीके साथ पटंगद्व (तम्बू) में विहार कर रहे थे । सभी चंद्र रामचंद्रमाशर मन्युमान करनेके
लिये हजारों यात्री अवोक्षा आ पहुँचे ॥ २९ ॥ ३० ॥ बहुतसे देवता, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, वज्रग, पर्वत,
नर्तिका, समस्त तोय, मुनि, राज अप्सरायें, स्वर्ग, क्षेत्र, वानर आदि वहाँ स्नान करनेके निमित्त आये ।
एक दिन देवताओंकी स्त्रियाँ, जब कि संत जो म पिक धर्मम थीं, तब आपसमें सहाह करके विविध प्रकारके
चनाभूषण पहनकर रामचन्द्रजीके पास गयीं । ३१ ॥ ३२ ॥ वे सबकी सब रामके सौन्दर्यको देखकर पगला
हो गयी थी । उन्हें देखकर रक्तकोन पूछा—। ३३ ॥ ३४ ॥ तुम लोग कौन हो ? अभी रातके समय यहाँ किस
लिये आयी हो ? साफ-साफ बतला दो, धबड़ाओ नहीं ॥ ३५ ॥ उन्होंने कहा कि हम सब स्त्रियाँ रामचन्द्रको

जातो बधस्तदाऽस्माकं जीविमिति नदीजले इति तामां वचः श्रुत्वा दूतास्ते राघवं जवात् ॥३७॥
 दास्या निवदयामासुः स्त्रीवृत्तं तन्मविस्तरम् । श्रुत्वा दामीमुख्याद्रामः सैकने मञ्चके स्थितः ॥३८॥
 समाहूय स्त्रियः सर्वा ददर्श रघुनायकः । ताश्चापि दृष्ट्वा श्रीरामं मेनिरे कृतकृत्यताम् ॥३९॥
 नतस्ता राघवं भन्वा लज्जयाऽधोमुखाः स्त्रियः । पांडिताः कामवाणैश्च तस्थुः श्रीराममन्त्रिण्यौ ॥४०॥
 ताः पप्रच्छ राघवोऽप्यागमनमथाथ कारणम् । ता राघवं तदा प्रोचुः सर्वं वेत्ति स्वमीश्वरः ॥४१॥
 श्रुत्वा तामां रामचन्द्रो हृदयं प्राह ताः पुनः । एकपत्नीव्रतं मेऽस्मि चैतज्जन्मनि मोः स्त्रियः ॥४२॥
 न शेष मे मृषा वाक्य गम्यातां स्वस्थलं जवात् । माऽभूदवसो मद्राज्ये राक्ष्सां वै निरयप्रदः ॥४३॥
 इति राघववाग्वार्णोभन्नमर्मस्थलाः स्त्रियः । ययुर्मूर्छा क्षणादेव मिकतायां सहस्रशः ॥४४॥
 ता मूर्छाविह्वला दृष्ट्वा रामो विह्वलमानसः । नारीः संतोषयन् प्रह हं नार्यः श्रपतां भम ॥४५॥
 वाक्यं खेदापहं बोधय द्वापरे कृष्णरूपधृक् । अहं व्रजे भविष्यामि नन्दमोपेशपालिते ॥४६॥
 तदा देवास्तु गोपाला भावि मद्वरदानतः । भविष्यन्ति सुरेशश्च नन्दमत्र भविष्यति ॥४७॥
 भविष्यथ तदा युय गोपिकाः सकला व्रजे । बुभुक्षुः पूरयिष्यामि यथेच्छं वाञ्छितं तदा ॥४८॥
 रासक्रीडां हि शृण्वामिः करिष्यामि न सशयः । वृन्दावने तु कालिन्दा सैकते निशि वै चिरम् ॥४९॥
 भवन्तं स्वस्थचित्ताश्च गच्छन्तं स्वस्थलं मुत । इति रामवचोरूपसुधया जीविताः स्त्रियः ॥५०॥
 किंचिन्मृदुहृदो रामं नत्वा जम्मुर्निजं स्थलम् । एतस्मिन्तरे तत्र मधुस्तानार्थमादरात् ॥५१॥

मायापुर्याः समायाता रम्या गुणवती शुभा ।

श्रीरामचन्द्रे उवाच

का सा प्रोक्ता गुणवती किंशीला कस्य कन्यका ॥५२॥

देखनके लिए आया है । यदि इसी समय हमको रामके दर्शन नहीं मिलगे तो हम सब इस सरयू नदीमें कूदकर अपने प्राण दे देंगे । ऐसी बात सुनकर दूतगण तुरन्त रामके पास दौड़ें ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने दासियों द्वारा रामचन्द्रजीके पास सब समाचार कहलाया और स्त्रियोंके उस वृत्तान्तको दासियोंने विस्तारपूर्वक रामको सुना दिया । दासियोंके मुखसे यह सुनकर रामने उन सब देवाङ्गनाओंको बुलवाया । पास पहुँचकर स्त्रियोंने भगवान्का देखा । देवाङ्गनाओंने उनकी उस सखीकी छविकी देखकर अपनेको कृत-कृत्य समझा ॥ ३६ ॥ ३६ ॥ उन्होंने अर्जुन होकर भगवान्को प्रणाम किया और कामवाणसे पीड़ित होकर बहूपर बैठ गयी ॥ ४० ॥ रामने उनके आगमनका कारण पूछा । उन्होंने कहा—आप सबके ईश्वर हैं, भला आपसे कौन बात छिपी रह सकती है । आप सब कुछ जानते हैं ॥ ४१ ॥ उनके मनकी बात जानकर रामने कहा—हे हे स्त्रियो ! इस जन्ममें तो मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ ॥ ४२ ॥ मैं जा रहा हूँ, उसे मिट्या मन समझना । अच्छा, अब तुम लोग अपने-अपने डेरेपर जाओ । ऐसा करो कि जिससे मेरे द्वारा किसी प्रकारका अधर्म न हो । क्योंकि जिस राजाके राज्यमें अधर्म होता है, उसे नरकगाम होना पड़ता है ॥ ४३ ॥ इस तरह रामकी बातें सुनकर कामवाणसे पीड़ित वे दूतगण स्त्रियों क्षणभरमें मूर्छित हो गये ॥ ४४ ॥ उनको मूर्छित देखकर विह्वलमनस्क रामचन्द्रजी उनका सन्ताप देते हुए कहन लगे—हे नारियों ! मेरी बात सुनो, इस तरह अधीर मत होओ ॥ ४५ ॥ जो मैं कहता हूँ, उसे सुनकर तुम्हारा सब खेद दूर हो जायेगा । द्वापरमें मैं कृष्णरूपसे गोपराज नन्द द्वारा पालित व्रजमें जन्म लूँगा । उस समय समस्त देवता मेरे आशीर्वादसे गोप होंगे, इंद्र नन्दरूपसे जन्म लगे और तुम सब उन गोपालोका गोपिका होओगी । उस समय मैं तुम लोगोंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करूँगा ॥ ४६-४८ ॥ वृन्दावनमें यमुनाकी रेतीमें शत्रिके समय तुम लोगोंके साथ मैं रासक्रीडा करूँगा ॥ ४९ ॥ अब तुम लोग स्वस्थ होकर अपने-अपने स्थानको जाओ । इस तरह रामके वचन-रूपी सुभासे जीवित और किंचित् सन्तुष्ट होकर वे अपने-अपने स्थानको लौट गयीं । हमके अनन्तर माया-

तद्वदस्य मविस्तार कस्यामीन्प्रमदा पुरा । इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदासोऽब्रवीत्पुनः ॥५३॥

इति श्री.शनकादिरामचरितांतर्गने श्रीमदानन्दरामायणे वान्मीकोय विलासकाण्डे
दशपत्नीवरदानं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(विंगला देव्याके काण रामपर मीनाका कोष)

श्रीरामदास उवाच

आसीत्कृतयुगस्याने मायापुर्वा द्विजोत्तमः । आत्रेयो देवशर्मणि वेदवेदांगपरगः ॥ १ ॥
अतिथेयोऽग्निशुश्रूषी मीरव्रतपरायणः । सूर्यमागधयन्निन्धं माञ्जान्मूय इवापरः ॥ २ ॥
तस्यातिवयसश्चार्पान्नाम्ना गुणवती सुता । अपुत्रः स इच्छिष्याय चन्द्रनाम्ने ददौ सुताम् ॥ ३ ॥
तमेव पुत्रवन्मेने स च तं पितृवद्वती । तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेष्महरणाय वै ॥ ४ ॥
हिमाद्रिपादे वेमेन चेरस्तुत्तागितप्तनः । तावत्तौ गन्धमं घोरमपश्येतां पुरःस्थितम् ॥ ५ ॥
मयविह्वलयर्वाह्वायममर्थी परायितुम् । निहतौ रक्षसा तेन कृतात्ममरूढिणा ॥ ६ ॥
तौ तन्क्षेत्रप्रभावेण धर्मशीलतया पुनः । वैकुण्ठभुवनं यातौ नानां विष्णुगणैस्तदा ॥ ७ ॥
यावज्जीवं तु यत्नाभ्यां सूर्यपूजादिकं कृतम् । कर्मणा तेन मन्तुष्टो विष्णुस्मात्प्रशं वभूव ह ॥ ८ ॥
सैवाः सौराश्च गणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः । तमेव प्राप्नुवन्तीह वयसः मागर यथा ॥ ९ ॥
एकः स पञ्चधा जातः क्रियया नामभिः किल । देवदत्तो यथा कश्चिन्पुत्राद्य ह्याननापभिः ॥ १० ॥

तश्च तौ तद्वचनाधिरामिनी विमानयानौ रविवचं कुरुर्भा ।

तत्तन्परुषो हरिनन्निधानर्गो दिव्यांगराचन्दनभोगभोगिनी ॥ ११ ॥

पुनः एक गुणवती नामकी सुन्दरी स्त्री बड़ी वयसवानके निर्मित आयी । विष्णुदत्त मन्त पूछा - हे गुरु ! वह गुणवती कौन थी, जिसकी पुत्रा थी और उसका शील-स्वभाव कैसा था ? वह पढ़ने किसकी स्त्रा थी ? सो कृपया विस्तारपूर्वक आप मुझे बतलाइए । इस प्रकार विष्णुगणमकी बात सुनकर श्रीरामदासने फिर कहना आरम्भ किया ॥ १०-१३ ॥ इति श्री.शनकादिरामचरितांतर्गने श्रीमदानन्दरामायणे वान्मीकोये प० रामतज-पाण्डेयविरचिन'ज्योत्स्ना'भाषागीतासमन्विते विलासकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदासने कहा बहुत दिनों से मैं यह कि जब सत्ययुगके अन्तमें मायाजी में सब वदनदांगपारङ्गन अत्रिगोत्रका दशशर्मा नामक एक ब्रह्मण रहता था ॥ १ ॥ वह अतिविपूजक, अतिमनी, सूर्यकी आराधना करनेवाला तथा दूसरे सूर्यकी नां नामकी या ॥ २ ॥ उसका वृद्धावस्थाम एकमात्र गुणवती नामकी कन्या प्राप्त हुई थी, उसका कोई पुत्र नहीं था । सो उसने गुणवतीकी विवाह चन्द्र नामके अपन एक शिष्यके साथ कर दिया ॥ ३ ॥ देवशर्मा चन्द्रका पुत्रके समान मानता था । उसी पर चन्द्र भ देवशर्माकी अर्पने पिता सदृश समझता था । एक दिन वे दोनों कुशा तथा समिध लानेके लिए जंगलमें गये ॥ ४ ॥ जात जात वे दोनों हिमवान् पर्वतके समीप पहुँच और इधर-उधर घूमने लगे । उसी समय उन्होंने अपन मामन एक बड़े भारी राजमकी देखा ॥ ५ ॥ उस दृश्यकर भयसे इनके अंग झिल्ले हो गये, जिनमें नामकी सामर्थ्य नहीं रही और यमराजके समान उस विकराल रक्षमन उनको डराने लगा ॥ ६ ॥ वे दोनों एक-दूसरे प्रभाव तथा अपनी धर्म-शीलतासे विस्तारपूर्वक बातचीत करने लगे ॥ ७ ॥ उन्होंने जन्मभर मूर्खादि देवताओंका पूजन किया था । इस कारण उनपर विष्णुभगवान् बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ इस संसारमें सौर, सौर, गणेश, वैष्णव तथा शक्तिपूजक ये सब भगवान् एक समय उसी तरह जाते हैं जैसे सर्पोंका जल समुद्रमें जाना है ॥ ९ ॥ वह अकेला ईश्वरनम और कर्मके प्रभाव से पाँच सौ सौ जन्म हुए हैं । जने अकाल दशदत्त किसके पुत्र, किसीका भाई, किसीका चचा कहलाता है । लेकिन जन्मक्रमें वह दशदत्त ही कहलाता है ॥ १० ॥ इसके अनन्तर

ततो गुणवती श्रुत्वा रश्मिमा निहतावुभौ । पितृमर्त्यजदुःखार्ता विललाप भृशतुम् ॥१२॥
 मा गृहापम्कृतान्मर्शान्विक्राय शुभकर्मकृन् । तपोश्रमे यथाशक्ति परलोकक्रियां तदा ॥१३॥
 तस्मिन्नेव पुरे वाम चक्रं प्रमुनिर्जीविनी । विष्णुभक्तिपरा शान्ता मन्यशीचा जिनेन्द्रिया ॥१४॥
 प्रताष्टक तथा सम्पशाजन्ममरणान्कृतम् । एकादशीव्रत सम्पक् सैवन कर्तिकस्य च ॥१५॥
 माघे चैत्रे माघत्रेऽपि स्नानानि प्रतिवत्सरम् । संमार्जनं विष्णुगेहे स्वस्तिकादिनिवेशनम् ॥१६॥
 निन्यं विष्णोः पूजनं च मकन्या तन्परमानमा । इत्थं ब्रताष्टक सम्पक् मा चकारातिभक्तिनः ॥१७॥
 एकदा मा गुणवती पौराणिकमुखेन हि । श्रुत्वा महत्फलं शिष्य साकेते सरयुजले ॥१८॥
 चैत्रस्नानस्य कैवल्यदायकं जनसंयुता । ययौ श्रीरामनगरीं गमतीर्थेऽवमच्छुमा ॥१९॥
 मैकदा राघवं द्रष्टुं सरयुसैकनम्रियतम् । वामोगेहे रदः पन्था ययौ चैत्रुममन्त्रितम् ॥२०॥
 पूजापात्राणि हस्ताभ्यां विभ्रती द्वारमस्थिता । प्रतीहारेण रामाय वेदिना मा विवेश ह ॥२१॥
 वामोगेहं ददर्शाय सीतया रघुतायकम् । रत्नमंचरुमलग्नं धृताधोकोपवर्धनम् ॥२२॥
 कीडन्तं सारिभिः पाशैः सीतया लक्ष्मणेन च । कैकेयीननयाभ्यां च मस्तीभिः परिवारितम् ॥२३॥
 मयूरविच्छिन्नम्भूतचामरैः परिव्राजितम् । रत्नचित्ररुक्ममये नूपरे पदयोर्वरे ॥२४॥
 विभ्रन्तं रत्ननां कन्या रत्नरुक्मविभूषिताम् । रत्नरुक्ममये दिव्यकङ्कणे करयोर्वरे ॥२५॥
 विभ्रन्तं भुजयोर्दिव्यकेयूरे रत्नमूपिने । कण्ठदेशे कीस्तुम च हृदि चिन्तामणि शुभम् ॥२६॥
 विभ्रन्तं विविधान्धारान् रत्नमाणिक्यनिर्मितान् । तथाजालरुक्मवर्जांश्च मुक्ताहारान् विचित्रितान् ॥२७॥

वेदान्तों ने बुद्धिभुवनमें रहने लगे । उन्हें विमानकी सजागी मिली थी और सूर्यके समान उनका तेज था । विष्णुके समान उनका रूप था और उनके शरीरमें दिव्य चन्दन लगा रहता था ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् जब गुणवतीने सुना कि मेरे पिता और पति दोनों किसी राक्षस द्वारा मार जाने गये हैं । तब उस अतिशय दुःख हुआ और वह विलाप करने लगी ॥ १२ ॥ फिर धरम जो कुछ माल-मालाह था, सब बच डाला और अपनी भक्तिके अनुसार उनको पारलौकिको रिश्या पूर्णको । तबसे वह मोक्ष भागिकार स्वामी हुई उसी नगरमें रहकर अपना जीवन बिताने लगी । गुणवती विष्णुका भक्ति करती हुई सत्य-शौच जिनेन्द्रियादि गुणोंसे पूर्ण हो गयी ॥ १३ ॥ १४ ॥ उसने अपन जीवन भरमें केवल अठ व्रत किये थे । वह एकादशी व्रत, कार्तिकका सैवन मार्गशीर्ष, चैत्र तथा माघमें प्रतिवर्त स्नान किया करती थी ; वह विष्णुके मन्दिरमें बुहारी देती तथा स्वस्तिकादि रचती थी ॥ १५ ॥ १६ ॥ भक्तिसे और सावधान हृदयमें वह दिव्य विष्णुका पूजन करती थी । इस तरह इन आठो व्रतोंको श्रद्धासमेन करती रही । हे गिरध ! एक दिन उसने एक पौराणिकसे सुना कि चैत्रमासमें अपोष्ठाके सरयुजलका बड़ा माहात्म्य है और चैत्रमासमें तो वहाँ स्नान करनेसे महज ही में मुक्ति मिल जाती है । यह सुनकर बहुतसे आदमियोंको साथ लेकर गुणवती चैत्रस्नानके लिए अयोध्या आयी और उसी राखन नगरमें टिक गयी ॥ १७-१८ ॥ एक दिन गुणवती जहाँ सरयुकी रेतोंमें रामचन्द्रजी डेर डाले हुए थे, वहाँ जा पहुँची । उस समय रामचन्द्रजी पटगूहके किसी एकान्त कमरेमें लक्ष्मण और सीताके साथ बैठे थे फाटकपर पहुँचकर गुणवतीने प्रतीहारी द्वारा सन्देश भेजा और स्वयं पूजापात्र हाथमें लिये बाहर ही खड़ा रहा । प्रतीहारोंके स्वीटनेपर वह अन्दर गयी ॥ २० ॥ २१ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि रामचन्द्र सीताके साथ रत्नजटित मञ्चपर बैठे थे और तर्किया लगी थी ॥ २२ ॥ भगवान् राम सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न सारिका और पक्षिके साथ खेल रहे थे । सखियाँ चारों ओरसे घेरकर खड़ी थी ॥ २३ ॥ मयूरके पक्षनाके बने हुए पक्षे चल रहे थे । उनके दोनों पाँवोंमें रत्नजटित नूपुर और कमरमें रत्नजटित मेखला पड़ी थी । दोनों हाथोंमें जडाऊ कंकण पड़े थे ॥ २४ ॥ २५ ॥ हाथोंमें सुवर्णके रत्नमूपित दिव्य केयूर थे । कंठमें कीम्नुभमणि तथा हृदयमें चिन्तामणि थी । राम विविध रत्नोंके जडाऊ हार पहने थे । सुनहले तथा चित्र विचित्र मोतियोंके हार उनके गलेमें पड़े थे ॥ २६ ॥ २७ ॥

तुलसीकाष्ठहारांश्च पु पहरानननेकशः । प्रवालमणिहारांश्च मृदुकाः काञ्चनोद्भवाः ॥२८॥
 पदकानि विचित्राणि रत्नमणिक्काञ्चन्यदि । रंभाकन्दजम्बूदानलंकर निविचित्रितान् ॥२९॥
 रत्नमणिकयसंपुक्तान्मुकुटैर्गणितमिदितान् । रत्नमणिकयविचित्रान् रत्नमणिकयानि ॥३०॥
 अगुलीष्वपि विभ्रन्त हस्तयोर्मृदिकाः शुभाः रत्नमणिकयमुक्ताभिश्चित्रा रुक्मवर्तिनर्मिताः ॥३१॥
 रामनामांकितश्चापि पवित्रा उज्ज्वला अपि । रत्नमुक्ताहेममये कण्ठगोः कुडले वरे ॥३२॥
 विभ्रन्त महिमाद्वयानलंकागतनेकशः विभ्रन्त रविमाद्वयं मुकुटं रत्नविचित्रम् ॥३३॥
 नानामणिममायुक्तं कलशैरतिशोभितम् । मुक्ताप्रवालवैद्ययुक्तं हेममयं वरम् ॥३४॥
 एव गुणवती राम कोटिसूर्यसमप्रभम् । हेमवर्णं महाम्भयं कज्जवायनेक्षणम् ॥३५॥
 सीमाननं कंजहस्तं दृष्ट्वा तं गणनमस्य सा । ममन्वापत्तदाम्भयया चम्यक प्राप्तिताः ॥३६॥
 तद्वत्तैरुपहाराद्यैः सुप्रीतस्यां तदाऽग्रवंत । वरं ददय मामद्य यत्ते मनसि वर्तते ॥३७॥
 इति रामवचः श्रुत्वा सा तुष्टा राममवर्णान् राम रजोवपत्राञ्च यथेमास्ते सहस्रजः ॥३८॥
 दास्यः संति तथा मां न्यमर्गाकतुमिहाहमि । इति तद्वचनं श्रुत्वा राधयः प्राह सांस्मनः ॥ ९ ॥
 कथं त्वं ब्राह्मणी चेत्थ वदस्यद्य शुभव्रते । मन्मेवां कतुमिच्छाऽस्मि तत्र तर्हि वदाम्यहम् ॥ ४० ॥
 शृणुष्व त्वं गुणवति कृष्णरूपधरो हृदयम् । द्वापरे द्वारकायां हि भविष्याम्यन्यजन्मनि ॥ ४१ ॥
 भविष्यमि तदा मां न्व स्त्रीरूपेण न सशयः । मयाजिह्वशर्मा ते भविष्यति पिता पुनः ॥ ४२ ॥
 यश्चन्द्रनामा मोऽक्रूरो भविष्यति सत्त्वा मम सत्यभावेति नाम्ना त्वं भविष्यामि प्रिया मम ॥ ४३ ॥
 तदा कुरुष्व दास्यं मे यत्ते मनसि वर्तते । इति रामवचः श्रुत्वा तुष्टा गुणवती मुदुः ॥ ४४ ॥
 नत्वा श्रीराधयं सीतां ययौ सा स्वस्थलं प्रति । चैत्रम्नानानन्तर सा हर्षित्वारं यथा जनेः ॥ ४५ ॥

वे तुलसीके काठकी माला, फूरीकी माला, प्रवाल और मणिकी कनी माला पहने हुए थे । रत्नम विचित्र प्रकारके पदक पहने थे, जिनने रत्न और मणिकी काम किया हुआ था । रंभाकन्द तथा कमलज, नाई उनकी आकार था । उनमें अगह जगह रत्न और मणिसे जड़ हुए छन्द टांका लगे हुए थे । न रत्नमणिकयसंयुक्त बहुत विचित्र-विचित्र मांम पहता था । उसमें जहाँ तहाँ रत्नक नाम लिखे हुए थे । २८-३० । वे जाना हायाकी उल्लिखिते मुन्दर अंगुठियां पहने थे वे भी रत्न-मुक्ता मणिक आदि न जन्त एव मानवा बना हुई थी । ३१ ॥ उनमें भी रामका नाम लिखा था और वे जगहों पर पवित्र तथा उज्ज्वल था । रत्न तथा मुक्ताम जटित कुण्डल उत्तक कानाम झूल रहे थे । वे मुक्ता-प्रवाल-वैद्य-युक्त आकार तथा मृदुका समान नेत्रभा द्वारा धारण किये थे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ मुकुटमें विचित्र प्रकारके रत्नाक वज्रश लगा रहनेसे वह और भी सुन्दर लग रहा था । उसमें भी जगह-जगह मुक्ता-प्रवाल-वैद्य आदिका सुन्दर काम बना हुआ था ॥ ३४ ॥ इस तरह कराड़ी सूर्योक्त समान तेजस्वी तथा सुवर्णकी भाँति जिनका वर्ण था, कमलपत्रक समान जिनके नेत्र थे, चन्द्रमक समान जिनका मुख था और कमलकी भाँति हाथ थे, तैसे रामका गुणगान दत्त, ओ प्रणम किये । रामचन्द्रन उस उठाया और उसने विविध प्रकारके उपचारोंसे रामकी पूजा की ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और भेंट दिये । जिससे राम अतिशय प्रसन्न होकर कहने लगे कि “तुम्हारा जो इच्छा हो सा कर माँग ला” ॥ ३७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वह बोली—हे राजावपत्राक्ष राम ! जैन आपकी ये हजारों दासियाँ हैं, वैसे ही मुझ भी अपनी एक दासी बना लाजिए । उसकी ऐसी बात सुनकर मुमक्षाने हुए राम कहने लगे— ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तुम बाह्याणी होकर ऐसी अशुभ बात क्यों कह रही हो ? यदि तुम्हें मेरी सेवा करनेकी इच्छा है, तो मैं खतलाता हूँ ॥ ४० ॥ हे गुणवती ! सुनो, द्वापरयुगमें मैं कृष्णरूप धारण करके अवतार लूँगा । तब द्वारिकामें तुम मेरी स्त्री होकर इच्छानुसार मेरी सेवा करोगी । इसमें कुछ भी संशय नहीं है । उस समय देवशर्मा यादवध्वंश सत्राजित् तुम्हारा पिता होगा, चन्द्र अकूरनामका मेरा मित्र होगा और तुम सत्यभामा नामका मेरी पटरानी होओगी

आयुःशेषं ममाप्याथ गङ्गायां कुणप निजम् । सन्त्रयं स्नानमप्येव न्यक्त्वा नाकं चिरं गता ॥४६॥
 ततः कालान्तरेणार्मान्मन्त्राजितनवा भुवि । बभूव पत्नी कृष्णस्य द्वापरे द्वाक्कापुरि ॥४७॥
 एकदा पिगलानाम्नी वेश्या रात्रौ विनिद्रितम् । सीतया दिव्यवर्णकं ययौ सा राघवं सहः ॥४८॥
 विद्याय नूपुरादीनि स्वनवति पदोः शतः । इतस्ततो निरीक्षन्ती दिव्यस्त्रीदिभूषिता ॥४९॥
 सीतामयान्वकपन्ती कामबाणप्रपीडिता । मण्डिता पुष्पमालाद्यैर्भूषणैरतिशोभिता ॥५०॥
 अज्ञाता द्वाक्पालः सा निद्रिर्नर्मश्चकं ययौ । स्वकरेण पदस्पर्शं कृत्वा रामं प्रबोधयत् ॥५१॥
 तदा प्रबुद्धः आरामस्तां ददर्श पुरःस्थिताम् । सा घृत्वा तत्पदे शङ्कं प्रार्थयामास राघवम् ॥५२॥
 राम राजावपत्राक्ष मया तेऽद्यापराधितम् । त्व क्षमस्व कृपां कृत्वा मयि चानुग्रहं कुरु ॥५३॥
 तत्तस्यावचनं श्रुत्वा ज्ञान्वा तां कामपीडिताम् । तां ममाश्रयितुं प्राह राघवः कञ्जलोचनाम् ॥५४॥
 एकपत्नीयत मेऽस्मिन्भवे त्वं वेन्मि पिगले । अतस्त्वत्कामपूर्य्येयं वदामि तच्छृणुष्व हि ॥५५॥
 यदाऽहं मथुगमये व्रजाच्छ्रीकृष्णरूपवृक् । याम्यामि मातुल कसंहत्वा म्यास्यामि तन्पुरीम् ॥५६॥
 तदा भजिष्यामि त्वं मां कुञ्जारूपेण पिगले । गच्छ दाम स्वरूपेण निष्ठु त्वं कमवेक्षमनि ॥५७॥
 आपुःश्रये त्विमं देह विमृज्य बह्वृक्तकम् । इत्थूक्या पिगलां गतो ददावातां भगान्स्त्रियाः ॥५८॥
 शिक्षयामास द्वारस्थान्दामान्दार्मीर्विनिद्रिताः । ततः सातां प्रवाच्याथ वेश्यावृत्त न्यवेदयत् ॥५९॥
 तच्छ्रुत्वा जानकी कृपा न्यक्त्वा पयस्कृतमम् । राघवं प्राह मकोवा कथं न हं प्रबोधिना ॥६०॥
 तर्दवाथ मया ज्ञातमेकपत्नीवर्तं मृषा । भुङ्गादीं पिगलां नूपुरीं त्रायाऽहं बोधिना तवः ॥६१॥

॥ ४१-४३ ॥ उस समय जंगी नुम्हारा इच्छा हागी, बेमा मरा सवा कर लना । इस प्रकार रामको बात सुनकर गुणवती बहुत प्रसन्न हुई ॥ ४४ ॥ वह रामचन्द्र तथा साताको प्रणाम करके अपने डेरपर लौट गयी । इस प्रकार वह अ. ४१. ५ चरन्नात करके अपने माथियोंके साथ द्विद्वार चली गयी । वहीरह उसकी जितनी आयु शेष थी, उसे समाप्त करके एक दिन स्नान करनेकी याज्ञा गयी और वही शरीर त्यागकर स्वर्गलोकका चली गयी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जन्मान्तरमें गुणवती सत्राजितकी पुत्री हुआर जन्मी और कृष्णकी पत्नी बनकर द्वारकामे निवास करने लगी ॥ ४७ ॥ एक दिन पिगला नामकी एक वेश्या राजिक समय रामचन्द्रके पास पहुँची । उस समय राम साताके साथ एक दिव्य पल्लपर सो रहे थे । वह वही गयी ॥ ४८ ॥ नूपुरादिक बालनेवाले आभूषणोंकी परीसे उतारकर वह सुन्दर कपड़े पहने भयवश हथर उधर देवती जा रही थी । सीताके भयसे उसके अङ्ग अङ्ग वीप रहे थे और वह कामके बाणसे पीड़ित थी । उसने सुगन्धित फूलोंकी माला तथा अनेक आभूषण पहन रखे थे । जिगसे वह बड़ा सुन्दरी मालूम पहती थी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ जिस समय द्वाक्पालगण निद्रित थे, तब चुपकम मोतर चला आयी और रामचन्द्रके मंचके पास जा पहुँची । उसने हाथसे रामके पैर छूकर उन्हें जगाया ॥ ५१ ॥ राम जाग गये और सामने उस पिगला वेश्याका देखा, तब वह जारमें रामके पैरोंको पकड़कर प्रार्थना करने और कहने लगी—हे राम ! हे राजावपत्राक्ष ! आज मैं बड़ा भारी अपराध किया है । मेरे ऊपर कृपा करके क्षमा उसे क्षमा कर दें और मरेपर दया कर ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उसकी यह बात सुनकर रामने समझ लिया कि यह कामपीडित है । तब उसे आश्वासन देनेके लिए कहने लगे— ॥ ५४ ॥ हे पिगले ! तुम जानती होगी कि इस जन्ममें मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ । अतएव तुम्हारी कामवामनाकी शान्तिका जो उपाय बनलाता है, उसे साधधान होकर सुना ॥ ५५ ॥ जिस समय कृष्णरूपवाले मैं व्रजमें मथुरा जाऊँगा और कंसका मारकर उस पुरीमें ठहरेगा । तब हे पिगले ! तुम वृद्धके रूपसे मेरी सेवा करोगी । जाओ, मेरे आशीर्वादसे तुम इस पापोंकी शेष आयु बिताकर कंसके घड़ी दासी हाओगी । संता । के भयसे रामने केवल इतना कहकर उसे विदा कर दिया ॥ ५६-५८ ॥ तब उन्होंने द्वाक्पालों तथा दाम दासों आदिकाको जगाकर डाँटा-फटकारा और सीताको जगाकर उस वेश्याका समस्त वस्त्रान्त कट सुराया ॥ ५९ ॥ सो सुना तो कोपित होकर जानकी शय्या छोड़कर उठ खड़ी हुई और रामसे कहने लगी कि वह आर्या थी तब तुमने मुझे

तां विमुञ्च्य चिरादद्य ज्ञातुं ते चरितं मया । मृषा भव्या प्रतिज्ञातं पुरा वदाममुनेः पुरः ॥६२॥
 एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति कौमल्यामदृशी मम । अन्या स्त्रानि मृषा वाक्य कन्धसे त्वं पुनः पुनः ॥६३॥
 क गतं तद्वचस्तेऽद्य क गतं तद्व्रतं तव । अद्यैव जीवित स्वीयं त्यजामि सरयुजले ॥६४॥

वेश्यायाः पृष्ठसंलग्नां शय्यां नाद्य स्पृशाम्यहम् ।

वेश्यामक्तस्थामिनं त्वां दृष्ट्वा द्वेपो भवेन्नयि ॥६५॥

मृतायां मयि स्पर्शाय वेश्यामक्तस्य ते भवेत् । वेश्यामक्तपथिवस्य चिरं राज्यं न निष्ठुनि । ६६॥
 इत्युक्त्वा राघवं नत्वा देहत्यागमुद्यता । यया वेगेन मयं वस्त्रमेहान्निदिग्धमा ॥६७॥
 गरुडतीं राघवो दृष्ट्वा मुक्तकञ्चुः प्रदुद्रुवे । मभ्रमाज्जाननीं शृन्वा भुज्जम्बां सैकतेऽमले ॥६८॥
 अमरीन्मधुरं वाक्य मा रूप त्वं विदेहजे । शृणुष्व वचनं मे त्वं दिव्यं नै प्रवशाम्यहम् ॥६९॥
 मयि ते शपथं प्रन्ययो न भविष्यति । दुष्टं यद्व्रतीषि त्वं तदेव्यं प्रवदाम्यहम् ॥७०॥
 वद शीघ्रं जनकजे मा क्रोधं भज भामिनि । इति राघवः शृन्वा जानकीं प्राङ् राघवम् ॥७१॥

जानवयुवाच

राम म्रूयामह किं ते येन दिव्यं ददामि ते । अनन्तम्वन्मुखोद्भूतो नयने शशिमाङ्करो ७२॥
 वामस्ते जलधौ राम पृथ्वीय विभृता त्वया । शेषरत्नपद्मवधाय लक्ष्मणस्तिष्ठते बहिः ॥७३॥
 शास्त्राणि त्वन्मन्त्रजानि सर्वाण्यत्र न मंशयः । दद्यन्पश्यामि तन्मयं नव रूपं न मंशयः ॥७४॥
 न दुष्टं ते दिव्यार्थं किञ्चिन्पश्यामि राघव । किं म्रूयामधुना तेऽत्र येन मे प्रन्ययो भवेत् ॥७५॥
 एकमेवास्ति जानेऽहं नन्कुरुष्व गृध्रनम । इदानीमेव स्वगुरुं ममाह्वय गृध्रदह ॥७६॥

वयो नहीं आया ? ॥ ६० ॥ आज तुम्हारा एकपत्नीव्रत मालूम हो गया । गिरला आयी, उसके साथ चुराकस भोग कर लिया और जब बह चली गयी, तब मुझे जगाया ॥ ६१ ॥ बहुत दिनों बाद आज तुम्हारी यह पोल खुली है । उस दिन राममुनिक सामन जा एकपत्नीव्रत धारण करनेकी कसम खायो थी, सो सब ढोंग था ॥ ६२ ॥ 'नहीं सोन !' रामने नञ्जनाबुक्क कहा -- "वास्तवम मे एकपत्नीव्रतधारी हूँ । तुम्हारे सिवाय मंसारकी समस्त स्त्रियाँ मेरे लिए कौमल्याके समान है । नुम अर्थात् मेरे ऊपर रह रही हो" ॥ ६३ ॥ तब सीता और भी समझकर कहने लगी कि तुम्हारी यह प्रतिज्ञावाली बात कहाँ गयी ? वह कत कहाँ गया ? अब ज ही मे सरयुके जलमें डूबकर अपना जीवन समाप्त कर दूँगी ॥ ६४ ॥ मैं ऐसी शय्यापर अब नहीं सोना चाहती, जिसपर कि एक वेश्याका पीठ लग चुकी है । तुम्हारे जैसे वेश्यामक्त राजाकी जो दशा हानी होगी, सा होगी लेकिन यह समझ रखियेगा कि वेश्यामक्त राजाका राज्य ज्यादा दिन नहीं ठहरता ॥ ६५ ॥ इतना कहकर सीताने रामका प्रणाम किया और अपना देह त्याग करनेके लिए पटगृहसे बाहर होकर सरयुके तीरकी ओर चली ॥ ६६ ॥ सीताको जाती देखकर राम भी पीछेमे दौड़ पड़े और जलके पास पहुँचनेसे पहले ही उन्हें रेतोमे पकड़ लिया ॥ ६७ ॥ तब वे मीठा-मीठा बातोमे कहने लग-हे विदेहज ! मेरे ऊपर इतना नाराज मत होओ । मेरी बात सुनो-यदि मेरी बातपर विश्वास न हो तो मैं शपथ खातकी भी तैयार हूँ ॥ ६८ ॥ ७० ॥ हे सीते ! बोला, क्या कहती हो ? हे भामिनि ! इस तरह वयो काय करती हो ? इस प्रकार रामकी बात सुनकर सीताने कहा--मैं तुम्हें कुछ कहनी तो हूँ नहीं । फिर नुम कसम किसलिए खानकी तैयार हो ? वयो दिव्य परीक्षा कराना चाहते हो ? फिर यदि मैं दिव्य परीक्षा लेना भी चाहूँ, सो बेने दूँ । अग्नि तुम्हारे मुखसे निकला है, सूर्य चन्द्रमा तुम्हारे दानो नेत्र है, समुद्र तुम्हारा निवासस्थान है, न्योकी तुमने अपने ऊपर रख छोड़ा है, शय तुम्हारी शय्या है, सो वे भी लक्ष्मणके रूपमे बाहर चले हुए हैं ॥ ७१-७३ ॥ इसमें कोई सन्देह नहीं है कि समस्त शास्त्र तुम्हारे मुखसे जायमान हुए हैं, मैं जिवर देखती हूँ, जो कुछ भी देखती हूँ, सब तुम्हारा ही रूप है ॥ ७४ ॥ मैं कोई भी दुष्ट दिव्य (कसम) नहीं देखती,

पदयोस्त्वस्य शपथं कृत्वा ते प्रत्ययो मम । भविष्यति न सदेहमृतं कुरुष्व रघूत्तम ॥७७॥
 इति सीतावचः श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः । दास्या मीमित्रिमह्य वसिष्ठं प्रपयत्तदा ॥७८॥
 लक्ष्मणः शिविकाकण्डः पुरद्वारागतिक ययौ न मया कथाद्वाप्यश्रितः द्वाग्मुद्राटवत्तदा ॥७९॥
 गत्वा पुनर्लक्ष्मणः स मुनेर्द्वारि स्थितोऽभवन् । वसिष्ठद्वारपो दास्या वसिष्ठाय न्यवेदयत् ॥८०॥
 निशीथे लक्ष्मणं द्वाग्मागतं न्विति सभ्रमान् । अरुधन्वा वसिष्ठोऽपि तच्छ्रुत्वा विह्वलोऽभवन् ॥८१॥
 निशीथे लक्ष्मणश्चात्र किमर्थं मां समागतः । इति विह्वलचित्तः स समाह्वयाथ लक्ष्मणम् ॥८२॥
 पप्रच्छ गमनस्यार्थं कारणं मुनिवत्तमः । न मया लक्ष्मण, प्राह रामेण स्मारितोऽमि हि ॥८३॥
 कारणं नात्र जानामि समुत्तिष्ठानुनैव हि । शिविकाग्रधिष्ठिता द्वाग्मुद्रादिस्ते मुनिवत्तम ॥८४॥
 इति श्रुत्वा गणवाक्यमरुधन्वाऽर्नप्रार्थितः । शिविकायामरुधन्वा स्थित्वा शीघ्रं ययौ गुरुः ॥८५॥
 तन्पृष्ठे शिविकामध्यः सीमित्रिन्वर्तिना ययौ । रत्नदोषप्रकाशश्च वेष्टितो वैश्रपाणिभिः ॥८६॥
 ममागतं गुरुं श्रुत्वा प्रत्युद्गम्य रघूत्तमः । दन्वामनं वसिष्ठाय भीतया प्रणनाम सः ॥८७॥
 कृत्वा पूजां मविस्तारं वर्त्तरामरणादिभिः । कथयामास मकलं पिंगलावृत्तमादरात् ॥८८॥
 कथयामास सीतायाः क्रोधराज्यान्पपि प्रभुः । दिव्यं दातुं न किञ्चित् दृष्ट्वाऽन्यत् सीतया मम ॥८९॥
 विनिश्चितं ते पदयोर्दिव्यं तत्त्वं पदाम्यहम् । मनसाऽपि न भुक्ता मा मया वेद्याऽथवा परा ॥९०॥
 इदं चेद्वत्तनं सत्यं स्पृशामि तर्हि स्वस्पदं । इत्युक्त्वा राघवः शीघ्रं वसिष्ठपदयोः करौ ॥९१॥
 स्वीयौ सस्थाप्य शिरसा प्रणनाम गुरुं पुनः । तद्दृष्ट्वा लज्जिता सीता श्रुत्वा शुद्धं रघूत्तमम् ॥९२॥

जिससे मेरे मनमें विश्वास हो ॥ ७५ ॥ बहुत कुछ साच विचारकर मैं तो यहो निश्चय किया है और आप भी वही करें । अभी अपने गुरु (वसिष्ठ) को बुलाकर यदि आप उनके पैरोंकी शपथ खा लें तो मुझ विश्वास हो जायगा । हे रघूत्तम । ऐसा करतम मर हरगण किसी प्रकारका साथ नहीं रह सकेंगे । अतएव आप यही करें ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ इस प्रकार सीताका वचन मनुकर रामने सुनते ही सीता द्वारा लक्ष्मणको बुलाया और वसिष्ठजीके पास गया ॥ ७८ ॥ पालकीपर चढ़कर लक्ष्मण राजद्वारपर पहुँच । वहाँ पहरेदारोंस फाटक खोलवाकर तुरन्त गुरु वसिष्ठके दन्वाऽपर जा पहुँच । द्वाग्माकलं दासा द्वारा लक्ष्मणके आनेका मन्त्रण वसिष्ठके पास भजवाया ॥ ७९ ॥ ८० ॥ आधी रातके समय लक्ष्मणको द्वारपर आना सुनकर वसिष्ठ तथा अरुन्धनी दोनों घबराहटसे विह्वल हो गये ॥ ८१ ॥ वे सोचने लगे कि आधी रातको लक्ष्मण मेरे पास क्यों आया । इस प्रकार व्याकुलताके साथ उन्होंने लक्ष्मणको अपने पास बुलाया ॥ ८२ ॥ और आनेका कारण पूछा । वसिष्ठको प्रणाम करके लक्ष्मणने कहा कि आपको रामने स्मरण किया है ॥ ८३ ॥ आपको बुलाने का कारण मैं भी नहीं जानता । हाँ, यह जानता हूँ कि आप अभी उठकर मेरे साथ चल दें । बाहर पालकी तैयार है ॥ ८४ ॥ इस तरह लक्ष्मण द्वारा रामको बात सुनकर अरुन्धतीके प्रार्थना करनेपर वसिष्ठ उन्ह भा अपने साथ लिये हुए झटपट चल दिये ॥ ८५ ॥ उनके पीछे-पीछे लक्ष्मणकी पालकी चली । जिस समय वसिष्ठ राजभवनमें पहुँच, तब चारों ओर रत्नों के दीपकोंका प्रकाश फैल रहा था । अनेक पहरेदार अपनी-अपनी नीकरीपर बैठे हुए थे और बहुतसे वसिष्ठका धरकर साथ चल रहे थे ॥ ८६ ॥ जब रामने सुना कि गुरुजी आ गये हैं तो उठ तथा थोड़ा दूर आगे जाकर मिले और संताक साथ उनको प्रणाम किया । फिर एक दिव्य आसनपर बिठाकर वस्त्रभूषणोंसे विभिवत् पूजन करनेके पश्चात् उस पिंगला वेषका वृत्तान्त कह दिया ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ फिर वह बात भी बतलायी, जो क्रोधमें सीताने रामको कही थी । फिर कहते लगे कि सीताको विश्वभरके किसी भी शपथपर विश्वास नहीं है ॥ ८९ ॥ अन्तमें आपके घरणोंकी शपथ खिलानपर राजा हुई हैं । मैं कमो मनसे भी उस वेद्या तथा अन्य किसी स्थाके साथ द्रतमङ्गल नहीं किया है ॥ ९० ॥ यदि मेरी ये बात सच है तो मैं आपके पैर छूकर शपथ खाता हूँ । ऐसा कहकर झटपट रामने वसिष्ठजीके पैर पकड़ लिये ॥ ९१ ॥ फिर अपनी मस्तक झुकाकर प्रणाम किया । यह देखकर सीता लज्जित हो

प्रणम्य मेऽपराधं तं क्षमस्वोति प्रसादयत् । ततः सीता गुरोः परित्येद्दौ चित्राणि भक्तितः ॥९३॥
 भूषणानि वराण्येव दिव्यवस्त्राणि स्मदरम् । रामेण पूजितमापि वसिष्ठः पूर्ववत्स्त्रिया ॥९४॥
 सहितः शिषिकामंस्थन्तुष्टः स्वीयगृहं गयो । ततः सीतां समालिङ्ग्य रामो निद्रां चकार सः ॥९५॥
 प्रभाते पिंगला दास्या समाहूयाथ जानकी । धिग्बिभ्रकृत्वा सखीभिस्तां ताडयामास वंशिताम् ॥९६॥
 सीतोबाब तदा वेश्यां वस्मान्मंघ्रापराधितम् । भविष्यसि त्रिवका त्वं मधुरार्या हि कृन्तितः ॥९७॥

वेश्याया प्रार्थिता प्राह कृष्णान्वामुद्धरिष्यति ॥९८॥

श्रुत्वा तां वंशितां वेश्यां मोचयामास राघवः ।

एवं नानाकौतुकानि चकार रघुनन्दनः । सीतां सख्ययाभास स्वचरित्रैर्मनोरमैः ॥९९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे सीताश्लोकचरणन नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(सूर्यग्रहणपर रामकी कुरुक्षेत्रयात्रा)

श्रीरामदास उवाच

एकदा सीतया रामः कुरुक्षेत्रं स्वबंधुभिः । ययौ सूर्यपिरामे वै स्नातुं पुष्पकसस्थितः ॥ १ ॥
 तत्र वैराः सगन्धर्वाः किन्नराः पन्नगा ययुः । नानाऽऽधमेभ्यो हूनयः पार्थिवाश्च सहस्रशः ॥ २ ॥
 तत्र स्नात्वा रवौ प्रस्ते राघवः सीतया सह । चकार नानादानानि हस्त्युष्ट्रधवाजिनाम् ॥ ३ ॥
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे नानोपायनपाणयः । ययुस्ते राघवं द्रष्टुं राजपत्न्यश्च जानकीम् ॥ ४ ॥
 अथ सीता राजपत्नीः समालिङ्ग्य वरामने । सखीभिर्मुनिदारैश्च सुखं चोपाविशच्चरा ॥ ५ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीतया पूजिता स्थिता । लोपागुद्राज्जवीढाकथं जानकीं रंजयन्मृदा । ॥ ६ ॥
 हे सीते कजनयने धन्याऽसि गजगामिनि । किञ्चिद्वर्णय रामस्य पौरुषं धृतितोपदम् ॥ ७ ॥

गयीं और ऊँहे विश्वास हो गया कि रामचन्द्रजी परम पवित्र हैं ॥ ९२ ॥ तब सीताने प्रणाम करके रामसे प्रार्थना की कि मेरी भूत थी, आप मुझे क्षमा करें । इसके अनन्तर सीताने गुरुपत्नी अरुन्धतीको विविध प्रकारके आभूषण वस्त्रादि दिये । रामचन्द्रजीने फिर वसिष्ठजीकी पूजा की । थोड़े देर बाद गुरुपत्नीके साथ-साथ पालकीपर बैठकर वसिष्ठजी अपने घरको चले गये । तदनन्तर राम भी सीताका अलिंगन करके सो रहे ॥ ९३-९५ ॥ सबेरे दासी द्वारा सीताने पिंगला वेश्याको बुलवाया । उसे बार-बार धिक्कारा और बांधकर सखियोंके हाथों पिटाया ॥ ९६ ॥ इसके पश्चात् उस वेश्यासे कहा कि तूने आज बड़ा भारी अपराध किया है । हमसे भविष्यमें जब तू जन्म लेगी, तब तेरे गारोरेमें तीन कूबड़ होंगे और तुझसे सब घृणा करेंगे ॥ ९७ ॥ तदनन्तर उस वेश्याने अनेक प्रकारसे सीताकी प्रार्थना की । तब सीताने कहा—'अच्छा, जा तेरा उद्धार कृष्णके हाथों होगा' । तब जब रामने सुना कि पिंगला बंधी पिट रही है, तब उसे छुड़वा दिया ॥ ९८ ॥ इस तरह राम विविध प्रकारके कौतुक करके अपने मनोहर चरित्रसे सीताको प्रसन्न करते रहते थे ॥ ९९ ॥ इति श्रीमदानन्द-रामायणे वाल्मीकीये १० रामतेजपाण्डेर्विरचिते ज्योत्स्ना भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक बार रामचन्द्रजी सीता तथा अपने समस्त भ्राताओंके साथ पुष्पक विमानपर सवार होकर सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्र गये ॥ १ ॥ वहाँ समस्त देवता, गन्धर्व, किन्नर, पन्नर तथा कितने ही आधर्मिकोंके मुनि और हजारों राजे जाये हुए थे ॥ २ ॥ जब सूर्यग्रहण लगा, उस समय सीताके साथ रामने स्नान किया तथा हाथी-घोड़े ऊँट और रथ आदि दान दिया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर वहाँ जाये हुए राजे अनेक प्रकारके उपहार ले लेकर रामका दर्शन करने जाये और रानियाँ भी सीताकी देखनेके लिए उनके साथ जायीं ॥ ४ ॥ जब रानियाँ सीताके पास पहुँचीं तो उन्होंने बड़े आदरके साथ उन्हें उनकी सखियों और मुनिपत्नियोंके साथ एक सुन्दर आसनपर बिठलाया ॥ ५ ॥ सीताके विधिवत् पूजन कर लेनेके बाद मुनिपत्नियोंमेंसे आर्यस्त्यपत्नी लोपागुद्रा सीताको प्रसन्न करती हुई कहने लगी—॥ ६ ॥ हे कमलनेत्रे

तस्या वचनं श्रुत्वा वर्णयामास जानकी । स्वपाणिग्रहणान्वस्युः कुरुक्षेत्रावधिं कथाम् ॥ ८ ॥
लोषामुद्राऽपि तच्छ्रुत्वा विहस्य प्राह जानकीम् । सर्वं योग्यं कृतं सीते राघवेण महात्मना ॥ ९ ॥
एक एव वृथा क्लेशः कृतस्तेनेति वेदस्यहम् । महान् श्रमः सेतुबंधे किमर्थं हि कृतः पुरा ॥ १० ॥
कथं न कथितं कुम्भजन्मने राघवेण हि । क्षणार्धं चुलुके कृत्वा पीत्वेभं लवणार्णवम् ॥ ११ ॥
शुष्कं कृत्वा कपीन्मार्गोऽभविष्यदन एव हि । वृथा ते भविताः सर्वे बानराः सेतुबंधने ॥ १२ ॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा सगर्वं जानकी तदा । लोषामुद्रां विहस्य ह लोषामुद्रे पतिव्रते ॥ १३ ॥
सम्यक्कृतं राघवेण धनसेनोपधनं वरम् । तत्कारणं वदाम्यद्य मृणु त्वं स्वस्थमानमा ॥ १४ ॥
शृण्वन्विमाः समायाता मद्राक्ष्यं पार्थिवस्त्रियः । बाणेन शोषणीयश्चेन्मामग्रे राघवेण हि ॥ १५ ॥
भविष्यति तदा हन्या ग्रहवश्चेति शक्तिम् । उन्मत्तघनीयो जलधिधेद्रामेण विहायमा ॥ १६ ॥
तदा रामं मनुष्यं च कदा ज्ञास्यति रावणः । हनुमन्पृष्ठमारुह्य गन्तव्यं चेन्परे तटे ॥ १७ ॥
सर्का प्रति तदा रामपीरुषं किं वदन्ति हि । यदि तीर्त्वा प्रगन्तव्यं बाहुभ्यां राघवेण हि ॥ १८ ॥
नोन्मत्तघनीयं विप्रस्य मूत्रं चेति विशंकितम् । चेन्मुनिः कुम्भजन्मा वै प्रार्थनीयः पतिस्तव ॥ १९ ॥
रामेण चुलुकं कर्तुं तदा तल्लवणवधुधेः । मश्रित राघवेणपि तदा हृदि भविस्तरसु ॥ २० ॥
पीतोऽयं जलधिः पूर्वं श्रुतं क्रोधादगस्तिना । मूत्रद्वाराद्विहस्यको यस्मान्क्षारत्वमागतः ॥ २१ ॥
सर्वथा मूत्रवन्धारः स कथं पातुमर्हति । स अपिर्मम वक्ष्येन चुलुकं तु करिष्यति ॥ २२ ॥
भविष्यति ममाकीर्तिः सर्वत्र जगतीतले । मूत्रपानं ब्राह्मणेन स्वकायार्थं निजोक्तिभिः ॥ २३ ॥
कारितं येन रामेण सोऽयं चेतीति शक्तिः । न मुनिं प्रार्थयामास राघवो धर्मतन्परः ॥ २४ ॥
एवं समंश्य रामेण स्वकीर्त्यं सेतुबंधनम् । कृतं केनापि न कृतं न कोऽप्यग्रे करिष्यति ॥ २५ ॥
येन रामेण जलधौ शिलाः सतारिताः पुरा । सोऽयं दाशरथी रामश्चेति ख्यातिं गतो भुवि ॥ २६ ॥

सीते ! हे गङ्गाभिनि ! तुम धन्य हो । हमारे कानोंको आनन्द देनेवाले रामजीके किसी पौरुषका तो वर्णन करो ॥ ७ ॥ लोषामुद्राक यह कहनपर सीताने अपने विवाहसे लेकर बुद्धोन्मत्तकी यात्रा पर्यन्तका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ८ ॥ लोषामुद्राने क्या सुनकर सीतासे कहा—हे सीते ! महात्मा रामचन्द्रन प्रवतक जो कुछ किया, वह बहुत ठीक किया । केवल एक वतस चुक गये और उन्होंने इतना क्लेश उठाया । मैं नहीं समझ पाता कि लङ्कापर चढ़ाई करने समय रामने समुद्रमें सेतु बनानेका कष्ट क्यों किया ॥ ९ ॥ १० ॥ उन्होंने अगस्त्यजीसे क्यों नहीं कह दिया । वे एक अजलीमें भरकर क्षणभरमें उस सारे समुद्रको पी जाते । ११ ॥ समुद्र सूख जाता और वपियोंको लङ्का जानके लिए मार्ग मिल जाता । ताहक सेतु बांधनेके लिए उन्होंने उन जानकीका कष्ट दिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार लोषामुद्राकी बात सुनकर सगर्व बाणसे सीताजी कहने लगी—हे पतिजन लोषामुद्रा । रामने जो सेतु बाँधा, वह बहुत अच्छा किया । मैं उनका कारण सोचताहूँ, अब सावधान होकर सुनें ॥ १३ ॥ १४ ॥ यहाँ आयी हुई ये राजशनिवा भी शान्तचित्तसे मेरी बात सुने । यदि राम अपने बागसे समुद्रको सुखान तो बहुतसे प्राणियोंकी हत्या होनेकी आशङ्का पड़ेगी । यदि राम आकाशमार्गसे समुद्रको लाध जाते तो रावण और बानर यह कैसे जानने कि राम मनुष्य है । यदि हनुमान् सीकी पेटपर बैठकर चले जाते ॥ १५-१७ ॥ तब रामका क्या पराक्रम देख पड़ता ? यदि हाथीसे नैरत हुए उस पार चल जाते ॥ १८ ॥ तब उन्हें यह ख्याल होता कि ब्राह्मणके मूत्रको कैसे लाधूँ । यदि आपक पति अगस्त्यसे उसे पीनेका प्रार्थना करनेकी सोचने तो यह विचार होता कि एक बार अगस्त्य इस समुद्रको पी चुक है और मूत्रमार्गसे बाहर निकाला है । इसीसे यह खारा है । १९-२१ ॥ उसी मूत्रके समान खार समुद्रको अगस्त्यजी कैसे पियेंगे । मान लिया जाय कि रामके कहनेसे अगस्त्यजी समुद्रको पी जाते तो मयारमें रामका क्या अपयश होता कि रामने अपना मतलब साधनेके लिए एक ब्राह्मणकी मूत्र पियाया । इन्हीं बातोंको सोचकर धर्मज्ञा रामने अगस्त्यसे समुद्र पीनेकी नहीं कहा ॥ २२-२४ ॥ इन बातोंको खूब अच्छा तरह सोच विचारकर ही रामचन्द्रजीने अपनी कीर्तिवृद्धिके लिए समुद्रपर सेतु

इति सीतावचोभिः सा लोपामुद्रा जिता तदा । नृपणीमाम क्षणं नारीममायां लज्जिताऽभवत् ॥२७॥
 ततां विहस्य वैदेही लोपामुद्रां प्रपूजयत् । मुनिपत्नीश्च संपूज्य प्रार्थयामास तां मुहुः ॥२८॥
 मयाऽपराधित तेऽयं तत्क्षमस्व पतिव्रते । स्नेहान्प्रसंगवशोक्तं स्वदग्रे गमपीरुपत् ॥२९॥
 स्वद्वर्तुशशिषा गमे पीरुषं चेति वेदुम्यहम् । इति संप्रार्थ्य ताः मया मुनिपत्नीर्वर्ममर्जयत् ॥३०॥
 पूजिता नृपपत्नीभिर्ययौ सीता धूतमम् । ततो गमोऽपि पृथ्वीशैः पूजितो राजवाजिभिः ॥३१॥
 ययौ स नगरीं तुष्टः सीतया गरुडे स्थितः । ये ये ममागतास्तत्र कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥३२॥
 ते सर्वे स्वस्थले जग्मु रामदर्शनहृदिताः । गमोऽपि नगरीमध्ये पुरस्त्रोभिषुहुः पथि ॥३३॥
 नाराजितः कुम्भदापैर्ययौ निजगृह मुदा । रेमे जनकनन्दिन्या चिरकाल यथामुत्सवम् ॥३४॥
 एवं रामेण माकैः नृप्यामवनिक्लम्यया । नानाक्रीडाकौतुकानि कृतान्यनिमिहान्यपि ॥३५॥
 यथा कृता राघवेण सुखं क्रीडा च सीतया । तथैवोपिलया रेमे लक्ष्मणोऽपि यथामुत्सवम् ॥३६॥
 मोडव्या मारुतश्चापि रेमे गमो यथा स्थिरा । तथैव ध्रुवकीर्त्याऽपि शशुनः क्रीडनं व्यवधात् ॥३७॥
 एवं ते स्वीयपत्नीभिः पाराः क्रीडाः प्रचक्रिरे । तथैव विविधद्वीपान्नानादेशनिवासिनः ॥३८॥
 रेमिरे तेऽपि पत्नीभिः स्वीयाभिर्मृदिताः सुखम् । सीतया राघवो रेमे यथा गीर्या म शकरः ॥३९॥
 गमे आसितराज्येऽत्र न कोऽपि जमतीतले । परदाररतो वेद्यागामो मादकवस्तुशुक् ॥४०॥
 न दरिद्री नैव रोगी चिन्ताग्रस्तो न विह्वलः । न पाषाण्मा जडो नापीत्र नीरो नापि हिमकः ॥४१॥
 एवं शिष्य मया प्रोक्त विलासचरितं वरम् । सीतया गमचदस्य माकैः सीतयर्दं नृणाम् ॥४२॥
 विलासकाण्डमेतद्वै यः पठिष्यति मानवः । प्रातः काले च मध्याह्ने निशायां गमपत्निर्भा ॥४३॥

वचवाया या । जिस कामका न तबतक किम न किया था और न आज कोई बर सज्जा, उसे उन्हीन कर दिया था ॥ २९ ॥ अब सब कोई परस्पर कहन है कि जिन रामन समुद्रम जिला तंग दिया था, वे ही य दशरथक पुत्र राम हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार माताकी बातोंसे लापामुद्रा पराभन हो गयी । बोधा उनके लिए उस न सीसभाम चुनचाव बैठा हुई व कुछ लज्जित-सा हो गयी ॥ २७ ॥ फिर हुंमकर सनात लापामुद्रा तथा अगस्त्य मुनिपत्नियोंकी पूजा का और बारम्बार प्रार्थना करके कहा— ॥ २८ ॥ मेन जो पृथ्वी का है, उसे आप समा कर । आप ही स्नेह तथा प्रेम आ जनपर मेन इस प्रकार रामक पोषका वणन किया है ॥ २९ ॥ हमार पतिदेव रामम जो कुछ पराक्रम है, वह सब आपक स्वामी अगस्त्यर्जके हा अक्षवदसे है । इस प्रकार विनती करके सीतान उन मुनिपत्नियोंको विदा किया ॥ ३० ॥ रुदन-तर राजगानियों द्वारा पूजित ह कर सीता रामक पास खली गयी । राम भी उन दश-देशान्तरसे आये हुए राजाआस कितन ही हाथा-पाटोका उपहार लेकर पूजित हुए और प्रसन्नतापूर्वक सीताके साथ गरुडपर सवार होकर अयोध्याकी चल पड़े ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रम जो लोग स्नान करन आये थे, वे रामके दर्शनसे हृषित हो-होकर अपने-अपन घरोंका वापस गये । राम भी अयोध्यामें पहुँचकर नार्मिक त्रियोंक द्वारा नाराजित हुन हुए अपने महलोम गये । इसके बाद फिर बहुत कालपर्यन्त रामचन्द्रजी सीताक साथ विहार करते रह ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस तरह रामने सीताके साथ अयोध्याम विविध प्रकारक क्रीडा-कौतुक किये ॥ ३५ ॥ जिस तरह राम सीताके साथ आनन्द करत थे, ठीक उसा तरह लक्ष्मण उमिलाके साथ सुखपूर्वक विलास करत थे ॥ ३६ ॥ उसी तरह भरत माडरीके साथ तथा शशुन ध्रुवकीर्तिके साथ क्रीडा करत थे ॥ ३७ ॥ पुरवासी-गज तथा विविध द्वीप और दशके निवासी भी अपने-अपना मित्रोंके साथ प्रसन्न पूर्वक भोग विलास करते थे । राम सीताके साथ इसी तरह आनन्द करत थे जैसे केन्दामार पार्वतीके साथ गकरजी स्वच्छन्द विहार करत हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ रामके शासनकालम कोई भी मृत्यु दूमरकी मित्रोंपर आसक्त तथा वेद्यागामो नहीं था । न कोई किसी तरहकी मादक वस्तु हो खाता-पेता था ॥ ४० ॥ रामके राज्यमें कोई दरिद्र, रोगी, चिन्तानुर, विह्वल, पापी, मर्त्य, और अथवा हिमक नहीं था ॥ ४१ ॥ हे शिष्य । मेने तुम्ह इस प्रकार रामका सुन्दर विलासकाण्ड कह सुनाया । जिसम राम और सीताका सबक लिए सुखद चरित्र भरा हुआ है ॥ ४२ ॥

स ज्ञेयो राघवः साक्षाद्भुवि मानवरूपधृक् । विलासकाण्डपठनादनार्थी घनमाप्नुयात् ॥४४॥
भोगानाप्नोति भोगार्थी पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् । विलासकाण्डमेतद्वै गमयन्त्येकमानसः ॥

यः शृणोति नरः कथितम् सुखं प्राप्नुयाद्भुवि ॥४५॥

विलासकाण्डश्रवणाक्षरः वापात्रमुच्यते । विलासकाण्ड परमं रम्यं जनमनोहरम् ॥४६॥
आनन्ददायकं चित्रं भुविमौल्यप्रदं महत् । ये पठन्त्यथ शृण्वन्ति सर्वान्कामान् लभन्ति ते ॥४७॥
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्मान्धनार्थी प्राप्नुयाच्छ्रियम् । कामानाप्नोति कामार्थी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥
निशाया मंचके स्थित्वा निजपत्न्या पठेत्तु यः । विलासकाण्डं षण्मासं तस्य पुत्रो भविष्यति ॥४९॥
अथवा मंचके ध्यायं सन्निवेदयाद्य तन्पुत्रः । द्वितीये मंचके स्थित्वा स्वयं दयितया सह ॥५०॥
यः शृणोति निशायां हि विलासकाण्डं मनोरमम् । एतत्काण्डं पवित्रं च नवमामान् पुनः पुनः ॥५१॥
तस्यापुत्रस्य पुत्रः स्यात्मात्रं कार्या विचारणा । पुत्रार्थमेव श्रोतव्यं मञ्चके शेषविष्य च ॥५२॥
श्रोतव्यं नान्यकामेषु मञ्चकस्थैर्नरैः कदा । विलासकाण्डमेतद्वै स्त्रीकामयः पठेन्नरः ॥५३॥
स भार्या प्राप्नुयाद्रम्यां नवमार्गैर्न संशयः । कुमारी शृणुयादेतन्पत्न्यर्थं काण्डाद्भुवम् ॥५४॥
पुनः पुनस्तु षण्मासं लभिष्यति वरं पतिम् । विलासकाण्डमेतद्वै याः शृण्वन्ति वराः स्त्रियः ॥५५॥
सौभाग्यलक्ष्म्या न कदा सा विहीना भवन्ति हि । भर्तृगणपुण्यवृद्धयर्थं स्त्रीभिश्च स्नानपूर्वकम् ॥

श्रवणीयं विलासकाण्डमेतत्काण्डं मनोरमम् ॥५६॥

रम्यविचित्रं मधुरं पवित्रं विलासकाण्डं हि यथेन्द्रदंडम् । पाठादिना वापचयप्रदं धर्मककुडं भवरोगदहम् ॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे कुरुक्षेत्राश्रवणं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

जो मनुष्य इस विलासकाण्डका प्रातःकाल, मध्याह्न अथवा रात्रिके समय रामचन्द्रके समीप पाठ करता है, उसे मनुष्यरूप धारण किये हुए साक्षात् राम ही समझना चाहिये । जनका इच्छा रखनेवाला मनुष्य विलासकाण्डका पाठ करनेसे जन पाता है, भोगार्थी भोग पाता है, पुत्रार्थी पुत्र पाता है और जो प्राणी इसको सुनता है, वह ममान्मे सुखी रहता है ॥ ४३-४५ ॥ विलासकाण्डका श्रवण करनेसे पापी पापसे छूट जाता है । यह विलासकाण्ड बड़ा सुन्दर और मनोके मनको चुगनेवाला काण्ड है ॥ ४६ ॥ यह आनन्ददायक एवं विचित्र कथाओंसे भरा हुआ है । इसको सुननेसे बानोको आनन्द मिलता है, जो लोग इसे सुनते अथवा पाठ करते हैं, उनकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ४७ ॥ इसमें धर्मार्थी धर्म पाता, धनार्थी धन पाता, कामार्थी काम पाता तथा मोक्षार्थी मोक्ष पाता है ॥ ४८ ॥ रात्रिके समय जो मनुष्य छ. महीनेतक अपनी स्त्रीके साथ बैठकर इस विलासकाण्डका पाठ करेगा, उसको पुत्र मिलेगा ॥ ४९ ॥ एक मञ्चपर आसको बैठाकर उसके आगे स्वयं अपनी पत्नीके साथ एक दूसरे मंचपर बैठकर रात्रिके समय जो इस मनोरम विलासकाण्डको नौ महीनेतक बार-बार सुनता है, उस अपुत्रके भी पुत्र होता है । इसमें किसी तरहका सन्देह करनेकी आवश्यकता नहीं है । पुत्रकी कामनावालेको मंचपर बैठकर इसे सुनना चाहिए ॥ ५०-५२ ॥ किसी दूसरी कामनावालेको मंचपर बैठकर यह कथा न सुननी चाहिए । जो स्त्रीकी इच्छामें इसका पाठ करता है, उसको नौ महीनेमें स्त्री अवश्य मिल जाती है । यदि कुमारी कन्या पतिकी कामनासे इस काण्डको सुने तो उसे सुन्दर पति मिलता है । जो सधवा स्त्रियाँ इसको सुनेंगी वे कभी भी अपना सौभाग्यलक्ष्मीसे विहीन न होंगी अर्थात् उनका सोहाग अटल रहेगा । समस्त नारियोंको अपने पतिकी आयुष्य बढ़ानेके लिए स्नान करके यह विलासकाण्ड सुनना चाहिये ॥ ५३-५६ ॥ क्योंकि यह विलासकाण्ड ऊँसके दण्डकी तरह मीठा, विचित्र, मधुर तथा पवित्र है । यह पाठादि करनेवालोंके पापोंको मार भगानेवाला और धर्मका एकमात्र कुण्ड तथा भवरोगके लिये दंडके समान है । इस काण्डमें ती सूर्य तथा ६७८ पलोक हैं ॥ ५७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

* इति श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डं समाप्तम् *

श्रीसीतापठये नमः

श्रीशाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽह्वया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

जन्मकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(रामका उपवनदर्शन)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः सीतया स साकेते बंधुभिश्चिरम् । क्रोडां चकार विविधां दुर्लभां त्रिदशैरपि ॥ १ ॥
एकदा रघुवीरस्तु सोऽन्तर्वर्त्तनीं विदेहजाम् । ज्ञात्वा धात्रीमुखात्तुष्टो ददौ दानान्त्यनेकशः ॥ २ ॥
ब्राह्मणान् भाजयामास कोटिशः प्रत्यहं मुदा । चकार नानालंकारान्नर्वाणान् रत्नानिर्मितान् ॥ ३ ॥
सीतायै दिव्यवासोसि हेमतन्तूद्भवानि च । हरितान्यथ पीतानि रक्तानि चित्रितान्यापि ॥ ४ ॥
कारयित्वाऽथ कुशलैर्जनैः सूक्ष्माण रघवः । विस्तृतान्यतिदीर्घाणि पुष्पवत्सुलघून्यपि ॥ ५ ॥
महर्घाण्यतिरम्याणि ददौ पत्न्यै मुदान्वितः । अथ मासे द्वितीयेऽह्नि रामो द्विजवरैः सह ॥ ६ ॥
वसिष्ठेन पुंसवनसंस्कारं विधिपूर्वकम् । स चकारोत्सवैर्दिव्यैः सीतायाः परमादरात् ॥ ७ ॥
सुमेधा जनकं चापि समाहूय सविस्तरम् । जनकः परममंतुष्टः सोऽन्तर्वर्त्तनीं निर्जा सुताम् ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा पुंसवनोत्साहे सीतारामौ प्रपूजयत् । नानालंकारवासोसि हेमतन्तूद्भवानि च ॥ ९ ॥
हरितान्यथ पीतानि सूक्ष्माण्यथ लघूनि च । विस्तीर्णान्यथ दीर्घाणि सीतायै स ददौ मुदा ॥ १० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—श्रीरामचन्द्रजी सीता भरतादिक भ्राताओंके साथ चिरकाल तक देवताओंको भी दुर्लभ श्रीड़ाएँ करते रहे ॥ १ ॥ एक दिन रामचन्द्रजीने किसी घायके मुखसे सीताके गर्भिणी होनेका समाचार सुना तो विविध प्रकारका दान दिया ॥ २ ॥ तबसे लेकर प्रतिदिन करोड़ों ब्राह्मणोंको हर्षपूर्वक रामचन्द्रजी भोजन कराते थे । अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटिल नवीन बलंकार, सुवर्णके तारोंके कामदार दिव्य वस्त्र और हरे, लाल तथा छींटके कपड़े बनाकर रामने सीताजीको दिये, जो घड़े लम्बे चौड़े और फूलसे हलके थे ॥ ३-५ ॥ वे वस्त्र बहुमूल्य और सुन्दर थे । जब एक मास अतीत हो गया और दूसरे महीनेका दूसरा दिन आया, तब रामचन्द्रजीने श्रुत वसिष्ठ तथा बहुतसे ब्राह्मणोंके साथ विधिपूर्वक और सोत्साह सीताका पुंसवनसंस्कार किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ उस पुंसवनसंस्कारके उत्सवमें रामचन्द्रजीने सीताके पिता बुद्धिमान् जनकजी तथा माता सुमेधाको भी बुलाया । यह समाचार सुनकर जनकजी बहुत प्रसन्न हुए और सीताको गर्भिणी देखकर पुंसवनसंस्कारके समय ही सीता तथा रामचन्द्रजीकी पूजा की, ताका

हस्त्यष्टस्यतुर्गन् दाम्पदात्मान्मनोरमान् । शिथिकाश्वापि वाभामि ददौ रामाय सादरम् ॥११॥
 एव सपूज्य श्रीरामं भीतां च जनकः स्थिराः । मम्मामितो राघवेण ययौ स्वां मिथिलां पुरीम् ॥१२॥
 अथ रामः सीतया स रेमे सन्तुष्टमानसः । गर्भातिभाराकांता सा सीता संन्यस्तभूषणा ॥१३॥
 पांडुपर्णानना दीना कृशाऽपि नितरां बभौ । एकदा राघवं धाव्या सूचयामास जानकी ॥१४॥
 ममन्च्छाऽऽराममध्येऽद्य रतुमस्ति त्वया सह । नयोपवनमध्येऽपि साकेतनगराद्वहिः ॥१५॥
 तद्वाच्याभ्यान्प्रियात्र क्व्यं श्रुत्वा चाह्वय लक्ष्मणम् । रामोऽप्रर्वाच्छ्रुत्वा वाचं मधुगे स्मितपूर्विकाम् ॥१६॥
 हे सीमित्रेऽद्य सीताया जालाऽऽराममृद्धास्त हि । मया रतुं तनस्त्व हि सूचिनोऽमि मयाऽधुना ॥१७॥
 मधेनि रामवाक्यं मोऽप्युग्रीकृत्य लक्ष्मणः । गन्वा सभायामाह्वय स्वरयामास सेवकान् ॥१८॥
 चित्रोष्णीषान्द्रोषणीन्प्राह वाक्यं स्मिन्नाननः । कथनीयं हृदमध्ये क्षारामं यानि जानकी ॥१९॥
 राघवेण ततो यूय वणिक्तस्वरयन्विनि । तनः सीमित्रिचरनाच्छ्रुत्वा ते वेत्रपाणयः ॥२०॥
 चित्रोष्णीषा रुक्मदण्डा राजमार्गं चतुष्पथे । हृद वीथ्यामूर्ध्वदृष्ट्वास्तदा प्रोचुर्महास्वरैः ॥२१॥
 पौराण्य वणिजः सर्वे तथाऽन्ये व्यवसायिनः । मृष्वंतु हृष्टहृदयाः सीतोद्यानं प्रगच्छति ॥२२॥
 राघवेणाभ्यनुज्ञानैर्भवद्भिर्मग्नतां पुरः । एवं सर्वाभिवेद्याथ जग्मुस्ते लक्ष्मण चराः ॥२३॥
 दूतानाञ्जापयामास पुनः सीमित्रिरादरान् । वामो गेहानि चित्राणि क्षारामेषु समंततः ॥२४॥
 कल्पनीयानि वेगेन शोधनीया भुवः शुभाः । जलयत्राणि सर्वाणि शोधनीयानि सादरम् ॥२५॥
 नानामांसस्रश्चस्तूनि सुगंधीनि महानि च । स्थापनीयानि वै तत्र वस्त्राण्यनिलघूनि च ॥२६॥
 एवमादीन्यनेकानि कल्पनीयानि सादरम् । शृंगारणीयाः ग्रामादाः सर्वे क्षारामसभवाः ॥२७॥
 दिव्यवस्त्रैस्तोरणाद्यैर्मुक्तागुच्छैर्वराजिताः । तथेति दूतान्ते सर्वे तथा चक्रुस्त्वगन्विताः ॥२८॥

प्रकारके सुनहरे गहने तथा मण्ड जाहने पीले, लाल रंगम रंग हुए तथा फूलका तरह हलक धे । उन्हें प्रसन्नतापूर्वक सोताजीको दिया । साथ ही हाथों, छोड़ रख ऊँच, सुन्दर दास-दासी तथा पालकी आदि रामचन्द्रजीको दिया ॥ ८-११ ॥ इस प्रकार राम और सोताकी पूजा करके जनकजी अपनी स्त्रीके साथ मिथिलापुरीके लौट गये ॥ १२ ॥ उधर रामचन्द्रजी प्रसन्नतापूर्वक सीताके साथ विहार करते रहे । गर्मके भाससे लदी तथा समस्त भूषणोंका स्थान पीले नूतन और दुर्लभ अङ्गोवाली भी सीताजी बहुत ही सुन्दर दीखती थी । एक दिन सीताने किसी घावके द्वारा रामचन्द्रजीके पास यह सन्देश कहला भजा कि आज आपके साथ बाहरके बगीचेमें घूमनेकी मेरी इच्छा है ॥ १३-१५ ॥ उस धावके मुखसे यह संवाद सुनकर रामचन्द्रने लक्ष्मणकी बुझाया और मुन्कराने हुए कहने लगे हे लक्ष्मण ! आज सोता मेरे साथ नगरके बाहरवाले बगीचेमें घूमने जाना चाहती है, सो उसका सब प्रबन्ध ठीक कर देना । लक्ष्मणजी 'तयारु' कहकर सभामें गये और सेवकोंको बुलाकर जन्दी तैयारी करनका आज्ञा दी, रंग-विरंगी पगड़ी पहने तथा हाथमें वेतके दण्ड लिये सिपाहियोंसे लक्ष्मणने कहा कि आज रामचन्द्रजी सोताके साथ बगीचे आयेंगे । तुमलोग आकर नगरके व्यापारियोंसे कह दो कि वे लोग जल्दसे अपनी दूकान बड़ाकर मार्ग खाली कर दें । इस प्रकार लक्ष्मणकी आज्ञाते सुनकर ॥ १६-२० ॥ रंग-विरंगी पगड़ी पहने तथा सुनहरे डंडे लिये हुए सिपाही चौरास्ते, गल्लो, बाजार और कूचोंमें हाथ उठाकर जोर जोरसे बहने लगें-हे पुरवासियों, व्यापारियों तथा व्यवसायियों ! आप लोग प्रसन्नतापूर्वक हमारी बात सुनत जायें । आज सोताजी बगीचेमें जावेंगे । इसलिए आप सब पहले ही से वहाँ चले । इस प्रकार सबको सुनाकर वे दूत लोग फिर अपना दियोदीपर धर्यान् लक्ष्मणके पास लौट आये ॥ २१-२३ ॥ लक्ष्मणजीने फिर उनकी आज्ञा दी कि बगीचेमें तुम लोग जाओ और स्थान स्थानपर नाना प्रकारकी रहनेकी जगहें बनाओ और बगीचेके घातों औरकी जमीन धूँव अच्छी तरह साफ करा दो । अलसोंकी भी परीक्षा करके उन्हें ठाक कर दो ॥ २४ । २५ ॥ विविध प्रकारकी मांगलिक वस्तुयें और महीन कपड़े आदि लाकर वहाँ रखो । जो जो चीजें आवश्यक समझो जावें, वे सब प्रस्तुत रहें । बगीचेके

लक्ष्मणो राघव गत्वा नत्वा त प्राह मादरम् । उद्योगसमयोऽयं वर्तते रघुनन्दन ॥२९॥
 कुर्यां सिद्धं हि किं यानं सीतायास्तव वा विमो । तन्ममिमित्रैश्च श्रुत्वा जानकीं गच्छतोऽब्रवीत् ॥३०॥
 सीते यानं वदाथ त्वं यत्ते मनसि रोचते । तद्रामवचनं श्रुत्वा शिविकीं प्राह जानकी ॥३१॥
 रामोऽपि रोचयामास शिविकामेव वै तदा । तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणश्चापि शिविके गन्तव्यमिते ॥३२॥
 हेमन्तज्ज्वलन्निभः सर्वत्र वेष्टिते शुभे । आनयामास हृतः मन्मुकाजलविगजिते ॥३३॥
 आरुहोहाथ श्रीगमः शिविकीं परया मुदा । ततः सीता पांडुराया परिमेषविभूषिता ॥३४॥
 कुशांगयष्टिर्दामीभिर्दत्तहस्ता यया शनैः । शिविकामारुहोहाथ पृष्ठलग्नोपवर्हणा ॥३५॥
 दामीभिर्वीजिता चापि धृतार्थोज्ज्वलवर्हणा । दधार शिविकामारुहोहाथ पृष्ठलग्नोपवर्हणा ॥३६॥
 त्रिगुफितं च मुक्ताभिः सीता स्वीयकरेण तम् । मुक्ताजलगदाक्षं पश्यन्ता मा मुदुर्मुहः ॥३७॥
 राजमारुगताम्येव कालुकानि समन्ततः । ददर्श नृप्य वेश्यानां सुखाभिः परिता वृता ॥३८॥
 ततस्ते बान्धवाः सर्वे बन्धुरन्त्यश्च मातरः । शिविकामूलसंविष्टा दिव्यास्तु च पृथक् पृथक् ॥३९॥
 अथ ते भ्रातरः सर्वे ततः सर्वाश्च पारः । सीतायाः बन्धुपत्न्यश्च सर्वेषां पुरतो गुरुः ॥४०॥
 एवं ते प्रययुः सर्वे पश्यन्तो गघर्षं मुहु । ननृतुर्वागनार्यश्च नेदुर्वश्च न्यदेकशः ॥४१॥
 तुष्टुवर्चदिनः सर्वे सीतां च गणुनायकम् । एव नानामधुन्मार्हैरागम म पयो मुदा ॥४२॥
 राघवः सीतया युक्तः सैन्यैः सर्वत्र वेष्टितः शिवेश्च वासोगेहे म मर्मानो रघुनन्दनः ॥४३॥
 वासोगेहेषु सर्वे ते तस्थुः पौराः समन्ततः । दृष्ट्वा ममन्ततश्चामन्ननृतुर्वागनार्यपितः ॥४४॥
 वासोगेहस्य सीताया भित्तयो वस्त्रनिर्मिताः । पञ्चकोशमितायामश्रामनु हि स्तानोऽपि च ॥४५॥
 पञ्चकोशमितारामे यत्र रेमे विरेहता । ददर्श जानकीं मम्यगागम नृपसौकुम्यदम् ॥४६॥

सब भवन अच्छी तरह सजाये जायें । इनमें कपड़ेकी झालरें, तीरण और मातियोंकी गुच्छ लटकाये जायें । बहुत पहुँचकर दूतोंने लक्ष्मणजीके आज्ञानुसार सब कुछ नुस्त टोक कर दिया । २६-२८ ॥ तब लक्ष्मण रामचन्द्रजीके पास गये और प्रणाम करके सादर कहने लगे—हे रघुनन्दन ! मेने आपकी आज्ञासे पूरी सैयारी कर दी है । अब क्या आप और सीताजीके लिए सवारी लानेकी भी आज्ञा दें ? इस प्रकार लक्ष्मणकी वाणी सुनकर रामचन्द्रजीने सीतासे कहा—सीते ! बतलाना, आज तुम्हें कौनसी सवारी चाहिए ? सीताजीने रामजीकी बात सुनकर पालकी पसन्द की और रामजीने अपने लिए भी पालकी ही माँगी । रामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मणने रत्नोंसे विभूषित दो पालकियाँ भेगवायी, जिनपर सुनहरे कामक ओहार पड थे और चारों ओर मोतियोंके झुब्ब लटक रहे थे ॥ २९-३३ ॥ तब प्रसन्नपूर्वक रामचन्द्रजी पालकीपर सवार हुए और थोडा भूषणका पहन हुए सता भी दासियोंके हाथक सहारे शनैः शनैः जाकर पालकापर बैठे । उसमें चारों ओर तकियाये लगाई थी । दासियाँ पल्ले चलने लगीं । ओहार डाल दिया गया और पालकी चल पड़ी । राक्षस सीताजी पालकीके अराँजेसे उन दृश्योंको देखती जाती थीं, जो वहाँपर थे । उनके अनन्तर रामचन्द्रजीके और भाई भी तथा उनके मित्रों और मातायें अलग-अलग दिव्य पालकियोंपर बैठ-बैठकर चली । आगे आगे भाद्योंकी, फिर मानाओंकी फिर सीतादिक पत्नियोंकी और सबसे आगे गुरु वनिज्जाकी पालकी चली ॥ ३४-४० ॥ इस प्रकार सब लागे रामचन्द्रजीका शान्त करते हुए चले जा रहे थे । वेश्यायें नाच रही थीं और नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे । बन्दीगण सीता और रामजीकी बन्दना कर रहे थे । इस प्रकार चलते ही तम्हके उत्साहके साथ वे सब बनीचे पहुँचे । रामचन्द्रजी सीताके साथ साथ सेनाभाँसे घिरे हुए एक तम्बूमें उतरे ॥ ४१-४३ ॥ इसके बाद और लोग भी तम्बूओमें टिके । साथ ही समस्त नगरवासी लोग भी चारों ओर तम्बूओमें अहर गये । चारों ओर हाट लग पयो और वेश्यायें नाचने लगीं । ४४ ॥ जिस स्थानपर रामचन्द्रजी अपने पुरवाही नागरिकोंके साथ ठहरे थे,

रसालयं रमालैस्त्रैलोक्यैः शोकवारणम् । तालैस्तमालैर्हिमालैः शालैः सर्वत्र शालितम् ॥४७॥
 खपुगैः स्रपुगकारै धोफलैः श्रीफलं किल । दुरुश्रियं स्वगुरुभिः कपिर्षिम् कपित्थकैः ॥४८॥
 वनश्रयः कृष्णकारैर्लङ्कुर्वथ मनोरमम् । मुखाफलममारमिरभाभिः परिभाषितम् ॥४९॥
 सुरगंधापि नारङ्गै रङ्गमण्डपवच्चिद्रुयः । वानारैश्चापि जम्बारैर्वीजपूरैः प्रपूरितम् ॥५०॥
 मन्दान्दोलितकर्पूरकदलीदलमशया । विश्रामाय श्रमापन्नानाह्वयन्तमिवाध्वगान् ॥५१॥
 पुष्पाग इव पुष्पागपल्लवैः करपल्लवैः । कलशन्तमिवालोलेर्मल्लिकास्तवकस्तनम् ॥५२॥
 त्रिदोर्णशडिभैः स्वातं दर्शयन्नुरागवत् । माधवीधवरूपेण श्लिष्यतमिव कानने ॥५३॥
 उदयरैस्वरत्नैरनंतफलशालिभिः । ब्रह्मांडकांठिविभ्रन्तमनतमिव सर्वतः ॥५४॥
 पनमैर्वननासाभैः शुकनामैः पलाशकैः । फलाशनादिरहिणा पत्रन्यक्तैरिवावृतम् ॥५५॥
 कदंबवादिनो नीषान्दद्या कंटकिर्नरिव । समंततो भ्राजमानं कदम्बककदम्बकैः ॥५६॥
 नमेरुमिथ मेरोश्च शिखरैरिव राजितम् । राजादनैश्च मदनैः सदनैरिव कामिनाम् ॥५७॥
 समंततः पटुवटैरुच्चैः पटकुटीकृतम् । कुटजस्तवकैर्भानमधिष्ठितवकैरिव ॥५८॥
 कर्मदोः करारैश्च करजैश्च कदम्बकैः । महत्कर्मवद्भानमधिप्रन्युद्गतैः करैः ॥५९॥
 नीराजिनमिषोद्दीपै रजचंपककोरकैः । सपुष्पशान्मलीमिथ जिनपद्माकरश्रियम् ॥६०॥
 कश्चिन्नलदलैरुच्चैः कचिन्काश्चनकैर्नकैः । कृतमालैर्नक्तमालैः शोभमानं कचिद् कचित् ॥६१॥
 कर्कन्धुवन्पुर्जापैश्च पुत्रजीर्वाविराजितम् । मर्दिदूकेऽङ्गदीमिथ करुणैः करुणालयम् ॥६२॥

उमका विस्तार पाँच कामका था । पाँच कोनके लम्बे छोटे वनोरेमें जहाँ रामचन्द्रजी ठहरे थे, सोनाजी प्रमथनापूर्वक विहार करने और उस सुन्दर बगीचेको खूब अच्छी तरह देखने लगी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उसमें रसालक वृक्ष वास्तवमें रमके आनन्द और अशोकके वृक्ष जोकको दूर करनेवाले थे । ताल, तमाल, हिमाल और शालक वृक्ष चारों ओर मृणोभित हो रहे थे ॥ ४७ ॥ खपूरके वृक्षोंसे वह बगीचा खपूर (स्वर्ग) महल लग रहा था और धोफलसे श्रीफलके सदृश था । दुरुश्रुते वृक्षोंसे गम्भार शोभावाला तथा कपिसे कपित्थवर्णका हो रहा था ॥ ४८ ॥ वनलक्ष्मीके वृक्षोंके समान लङ्कुव (बहुर) के वृक्ष लगे हुए थे । अमृतफलकी नाई केलेके वृक्ष लगे हुए थे ॥ ४९ ॥ सुन्दर रङ्गवाले नारङ्गीके वृक्षोंमें रङ्गमण्डपकी शोभा हो रही थी । वानौर, जम्बीर, वीजपूर आदिके वृक्ष भी उस बगीचेमें कुछ कम नहीं थे ॥ ५० ॥ घेरे-घेरे बापुक शोकमें झूमता हुआ केवका पत्ता माना पके हुए बगहिनाको हाथके मन्तसे विश्राम करनेके लिए बुला रहा था ॥ ५१ ॥ पुष्पागकी तरह पुष्पागक पल्लव करपल्लवके समान थे और मल्लिकाके गुच्छे स्तनके समान दीखते थे ॥ ५२ ॥ अनारके फटे हुए फल मानो अपना हृदय फाड़कर हार्दिक प्रेम प्रदर्शित कर रहे थे । मूलरका खूब लम्बा-चौड़ा वृक्ष था, जिसमें असंख्य फल लगे हुए थे । वह करोड़ों ब्रह्मण्डोकी धारण किये हुए साक्षान् अनन्त मगवान्के सदृश मालूम पड़ता था । उपवनकी नाकके समान कटहलके वृक्ष तथा तोतेकी नाकके समान पलाशके वृक्ष लगे हुए थे । कण्टकित पुष्पवाले कदम्बके वृक्षोंको देखकर रोमांच हो जाता था ॥ ५३-५६ ॥ नमेरुके वृक्षोंको देखकर मुमेशशृङ्गकी याद आ जाती थी । राजाइनके वृक्ष कामियोंको भजनमें मग्न देखने थे ॥ ५७ ॥ चारों ओर लगे हुए पटुवटके वृक्ष पटकुटीके सदृश दीखते थे । कुटजके गुच्छे वंगे हुए खगुलेके सदृश मालूम पड़ते थे ॥ ५८ ॥ जहाँ-तहाँ करींद, करीर, कंठ, कदम्ब आदिके बड़ी-बड़ी शाखाओंवाले वृक्ष हजारों हाथ उठाये याचकोंके समान मालूम पड़ते थे ॥ ५९ ॥ राजचम्पक तथा कोरंकाके वृक्ष मानो आरती बनकर उस बगीचेकी आरती उतार रहे थे । फूलोंसे लदे हुए मेघरके वृक्ष कमलवनकी शोभाका भी पराजित कर रहे थे ॥ ६० ॥ कहीं फरफराने हुए पत्तोंवाले कलेके बड़े-बड़े वृक्षोंसे, कहीं सुनहली कनकीके छोटे छोटे पीपोंसे, कहीं कृतमाल और नक्तमालके वृक्षोंसे वह बगीचा मृणोभित हो रहा था ॥ ६१ ॥ बेर, बभुजीव तथा पुत्रजीवके वृक्ष लगे थे । तेंदु, इक्षुदी, कण आदि वृक्षोंसे वह बगीचा करुणालय हो रहा था । टपकते हुए मट्टणके फूलोंको देखकर मालूम होता

गलन्मधुककुसुमैर्धराख्यधरं हरम् । स्वहस्तमुक्तमुक्ताभिरर्पयन्मिवानिशम् ॥६३॥
 मर्जारुनाञ्जनैर्वाजैर्व्यजनैर्वीज्यमानवत् । नारिकेलैः सखर्जैर्धृतच्छत्रमिवांबरैः ॥६४॥
 जमदैः पिचुमन्दैश्च मंदारैः कोविदारकैः । पाटलातितिणीधौटाशाखोटैः करहाटकैः ॥६५॥
 उद्वैथापि शेदुर्देगुडपुष्पैर्विराजितम् । वकुलैस्तिलकैश्चैव तिलकांकितमस्तकम् ॥६६॥
 अक्षैः प्लक्षैः सल्लकीभिर्देवदारुहरिद्रुमैः । सदाफलसदापुष्पवृक्षवल्लिविराजितम् ॥६७॥
 एलालवंगमरिचकुलंजनवनावृतम् । जम्बवाम्रातकमल्लतशेलुश्रीपणिर्वर्णितम् ॥६८॥
 शाकशंखवनं रम्यं चन्दनै रक्तचन्दनैः । हरीतकीकर्णिकारधात्रीवनविभूषितम् ॥६९॥
 द्राक्षावल्लीनागवल्लीकर्णवल्लीशतावृतम् । मल्लिकायूयिकाकुन्दमदयन्तीसुगन्धितम् ॥७०॥
 तुलसीवृक्षपङ्क्तैश्च शिक्त्वगास्तिद्रुमैर्धृतम् । भ्रमरभ्रमरमालाभिर्मालतीभिरलंकृतम् ॥७१॥
 अलिच्छलागतं कृष्ण गोपी रतुमनेकशः । सुगंधवातं सुस्रवं कामसञ्जनकं परम् ॥७२॥
 नानामृगमणाकीर्णं नानापक्षिनिनादितम् । नानासरित्सरःस्रोतैः पल्वलैः परितो वृतम् ॥७३॥
 उत्सृजतमिवार्धं वै पतन्पुष्पैरितस्ततः । केकिकेकारवैर्दूरात्कुर्वन्त स्वागतं किल ॥७४॥
 एतादृशं सुपवनं जानकी तद्दर्श सा । तुष्टाऽभूदर्शनेनैव विचचार त्वितस्ततः ॥७५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये

अन्मकाण्डे नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥



था कि मानो शिवजी घरणीका रूप धारण किये हुए हैं और अपने ही हाथसे अपनेपर मोतियोंकी वर्षा कर रहे हैं । ६२ ॥ ६३ ॥ सर्ज, अर्जुन, बीजपूर आदिके वृक्षोंसे ऐसा मालूम होता था कि वे सब बगीचोंको पंखा झल रहे हैं । नारियल तथा खजूरके वृक्ष छत्र धारण करनेवाले सेवक जैसे थे । अमर, पिचुमन्द, मन्दार, कोविदार, पाटल, तितिणी, धौटा, शाखोट, करहाटक, अँवे इण्डेवाले सेहूँड और गुडहलके वृक्ष भी उस बगीचोंमें यत्र-तत्र लगे हुए थे । वकुल और तिलकके वृक्ष उस बगीचोंके मस्तकपर तिलकके समान मालूम पड़ते थे ॥ ६४-६६ ॥ अक्ष, प्लक्ष, सल्लकी, देवदारु, हरिद्रुम, सदाफल, सदापुष्प और वृक्षवल्ली आदिके वृक्ष भी उस बगीचोंमें लगे हुए थे ॥ ६७ ॥ इलायची, लौंग, मरिच तथा कुलंजनके वृक्षोंसे वह समस्त बगीचा भरा हुआ था । जामुन, आम, भल्लातक, श्रीपणी आदि वृक्षोंसे उस बगीचोंकी रंगीली मोक्षा देखते ही बनती थी ॥ ६८ ॥ शाक तथा शखवनके वृक्षोंसे रमणोक एवं चन्दन, हरीतकी, कर्णिकार, आंवला आदिके वृक्षोंसे वह विभूषित था ॥ ६९ ॥ जिनमें सैकड़ों अंगूरकी लताएँ तथा पानकी बेलें लगी हुई थी । मल्लिका, जूही, कुन्द और मदयन्तीके वृक्षोंसे वह बगीचा सुगन्धित हो रहा था ॥ ७० ॥ उसमें कितने ही तुलसी, सहिजन तथा अगस्त्यके वृक्ष लगे हुए थे । जिनपर मौरोकी श्रेणी बनकर काट रही थी, ऐसी मालतीके वृक्षोंसे वह अलंकृत था ॥ ७१ ॥ जिस समय मालतीके समीप भौरा आता था, तब देखनेवानेके हृदयमें यह उत्प्रेक्षा होती थी कि मानों श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ विहाद करनेके लिए आये हैं ॥ ७२ ॥ उस बगीचोंमें बहुतसे मृग धौकड़ियाँ भरा करते थे, विविध प्रकारके पक्षी बोलते रहते थे, कितनी ही नदियों, झालावों, स्रोतों तथा गडहोंसे वह बगीचा घिरा हुआ था ॥ ७३ ॥ बगीचोंके वृक्षोंसे गिरे हुए फूल किसी दानीकी धनराशिके समान लगते थे । मयूरोंकी आवाज़से ऐसा मालूम पड़ता था कि मानों वह बगीचा अपने यहाँ आनेवालोंका स्वागत कर रहा है ॥ ७४ ॥ इस प्रकारके उस सुन्दर उपवनको सीताने देखा । देखते ही उनका चित्त प्रसन्न हो गया और वे इधर-उधर घूमने लगीं ॥ ७५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये अन्मकाण्डे ७० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(रामसीताका उपवनविहार)

श्रीरामदास उवाच

अथ सीता राघवेण रम्योपवनभूमिषु । क्रीडाभक्तार विशिषास्त्रिदशैरपि सस्तुताः ॥ १ ॥
 कदा वनान्ध्रामारे कदा वस्त्रगृहेष्वपि । कदाऽऽम्रवृक्षच्छायाया कदा पुष्पवनेषु सा ॥ २ ॥
 कदा या जलयत्राणां समीपस्थव्रगासने । कदा सरोवरस्तटे कदा नद्यास्तटेऽपि च ॥ ३ ॥
 नौकास्था मायूनाये मा रामेणाकरोत्कदा । कदा रात्री जलक्रीडां या दिनाऽपि कदा मुदा ॥ ४ ॥
 कदा तटाके नौकास्था कदा रंभावनेषु सा । कदा वृक्षोर्ध्वगोदेषु कदोक्षीगृहेष्वपि ॥ ५ ॥
 कदा या सख्यूनद्यां निर्मितेषु गृहेषु वा । कदा कृत्रिमगंहेषु पुष्पगोदेषु सा कदा ॥ ६ ॥
 कदा सा चित्रशालायां पुष्पकं वा कदा मुदा । कदा मा केतकीपण्डे दन्दकस्तम्भमञ्चनि ॥ ७ ॥
 कदा नौकोर्ध्वगोदस्था गमय्याः मैकते कदा । एकस्तमोर्ध्वगोदेषु सखीभिः परिवेष्टिता ॥ ८ ॥
 कदा रामेण गृह्यि कदा दोलकसंस्थिता । पर्यङ्कचक्रमध्यस्था कदा सा दाडिमीवने ॥ ९ ॥
 वृक्षमण्डपार्थद्वयस्थिता राघवेण हि । चकार मा कदा क्रीडां पांडुरंगो वृष्टदरी ॥ १० ॥
 हरिद्वस्त्रयुतभक्तकचक्रया जालकी वर्षा । गोपयित्वा निज देहं सीता वृक्षदलैर्धनैः ॥ ११ ॥
 सकार न्याकुलं रामं विनोदेन स्मितानना । ज्ञात्वात्मानं राघवेण मुष्टां सम्यग्विविच्य च ॥ १२ ॥
 दूदाव मंभ्रमाद्रामं तत्कटे दोलतेऽकरोत् । एवं सीताराघवयोः क्रीडनं परमाद्भुतम् ॥ १३ ॥
 चित्तारेणैव को दक्तु समर्हः पृथिवीवले । एक एव समर्थोऽभूदान्मोहिर्मुनिमत्तमः ॥ १४ ॥
 शतकोटिमितं येन चरितं वर्णितं तयोः । मार मारं मया यस्माद्विविच्य त्वां प्रवर्ष्यते ॥ १५ ॥
 बाग्मीणां कदा नृत्यं सीताऽऽरामे ददर्श सा । कदा शुश्राव वाद्यानि मधुलानि महाति च ॥ १६ ॥

श्रीरामदासजी कहते लख उनके बात सीता रामचन्द्रजाके साथ उस रमणीक उपवनय देवताओं द्वारा प्रणमित विविध प्रकारकी क्रीडाएँ करने लगी ॥ १ ॥ कभी उस बगीचेके बेंगलेमें, कभी तम्बूके भीतर, कभी आस्रवृक्षकी छायामें, कभी फूलोंकी झरमुटमें कभी पौवागोंके समीप बने हुए किसी एक सुन्दर आसनपर, कभी सरोवरके तटपर और कभी नदीके समीप जाकर विहार करती थी ॥ २ ॥ ३ ॥ कभी वे नौकापर सवार होकर सरयूकी छायामें रामके साथ विहार करती थी । कभी रात्रिके समय और कभी दिनमें ही खलकी करत लख जाती थी ॥ ४ ॥ कभी सरोवरमें नौकापर, कभी बेंगलेके वनमें कभी वृक्षके ऊपर बने हुए भवनमें, कभी पण्डेके दन्दकस्तम्भ कभी पर्यङ्कके अथवा चक्रमध्यस्थ, कभी बनावटा मकानोंमें, कभी फूलघरमें कभी विविध अन्य कभी एक विमानपर कभी ऐसकीक मण्डप और कभी एक खम्बेके ऊपर बने प्रयत्नम रामके साथ विहार करती थी ॥ १-९ ॥ कभी सीताके उपर बने बेंगलेमें, कभी सरयूकी रेतोंमें कभी अपनी सब मन्त्रिणोंके साथ एक स्तम्भके ऊपर बनी हुई ऊना अंजलीपर कभी रामके साथ एकान्तमें कभी झूलेपर बैठकर, कभी चक्कन्दार पलङ्गपर, कभी अवनके बगीचेमें और कभी किसी वृक्षके समान पड़े हुए पलङ्गपर गोरे-गोरे लहवला संन्या रामके साथ-साथ क्रीडा करती थी ॥ १०-१७ ॥ वे कभी दूरे रहकर करद तथा लाल कंचली पट्टमकर रामके साथ क्रीडा करती हुई वृक्षोंके पत्तोंमें छिपकर रामको आकुल कर देती और लय टिपी टिपी मुखकता रहती थी । जब वे माझ में कि रामने सब विद्या दे हो दौड़ती हुई आतीं और रामके गलेमें गणबेहियां शनकर उनक हारमें लियट बांधा करतीं । इस प्रकार सीता तथा रामका अद्भुत कोनक हुआ करता था ॥ ११-१३ ॥ उस विस्तारपूर्वक कहनेकी भावार्थ क्या किसीमें है ? हाँ, एकमात्र महर्षि वाल्मीकिजी भवर्षे हुए थे, जिन्होंने श्री कसेह गलोकान उनके चरित्रोंका वर्णन किया है । उनमेंसे सारा भाग लेकर मैं तुमसे कह रहा हूँ ॥ १४ ॥ १५ ॥ कभी सीताजी उस बगीचेमें बेकामोंके नृत्य देखती थी

कदा विप्रकथा रम्याश्चैन्द्रजालानि वा कदा । कदा वंशरोहणादिकीपुकानि ददर्श मा ॥१७॥
 कदा स्तम्भोद्भवं दिव्यं ददर्श कीतुकं महन् । कदा रुन्तानां कौशल्यं सुप्रबन्धैर्विनिर्मितम् ॥१८॥
 कदा कृत्रिमहर्म्यादिनानारूपाणि वै पतेः । माता ददर्श कुशलैर्धृताभ्यान्मयूतान्यपि ॥१९॥
 एव सीताऽश्रममन्त्रे माममेक निनाय सा । ययौ रामेन नगरीं नृपयगीतादिभिः श्रुतैः ॥२०॥
 सीधस्थाभिः पुरस्त्रीभिर्वर्षिता कुमुदादिभिः । नीगजिना कुम्भदीपैर्दीपैर्दृष्टोदनोद्भवैः ॥२१॥
 मायतेलमर्षपाद्यैर्नानाबलिभिरादरात् । ययौ निजगृहं सीता राघवेण ममन्विता ॥२२॥
 एवं नानाकीतुकैश्च नानादोहदूर्णैः । रामम्नो रञ्जयामास माऽपि रामं स्वलीलया ॥२३॥
 षष्ठे मासे त्वय मासे सोतया राघवे मुदा । सीमन्तोन्नयनं चैव वमिष्ठेन चकार सा ॥२४॥
 सुमेधा जनक चापि समाह्वयदरेण हि । ददौ दानान्यनेकानि ब्राह्मणेभ्यो रघूत्तमः ॥२५॥
 जनकः पूजयामास रामं स्वाचन्द्रमुत्तमम् । कीमत्पादाश्च साकेलवामिनो वमनादिभिः ॥२६॥
 पीराश्च मुहदः सर्वे भोजनार्थं विदेहजाम् । स्वस्वगृहे पृथङ्निन्युः श्रीरामादिभिर्हस्तवैः ॥२७॥
 नानावाद्यनिनादश्च वारस्त्रोत्पन्नगायनैः । स्त्रीमुक्तपुष्पवर्षाभिर्नानाकीतुकदर्शनैः ॥२८॥
 नानादेशनिवासिन्यः कौटिलिस्तथा नृपस्त्रियः । ममाजगमुरयाभ्यायां माता द्रष्टुं मुदान्विताः ॥२९॥
 तामा सैन्यश्च सर्वत्र वैष्टिता नगरं ययौ । ताः सर्वा नृपपत्न्यश्च सीतायाः परमान् वरान् ॥३०॥
 दोहदान् पूजयामासुर्दिव्याभ्यादिरादरात् । ददुर्वस्त्राण्यलङ्कारान् दिव्यांश्चित्रविचित्रितान् ॥३१॥
 स्वस्वदेशोद्भवाऽद्वयैर्नानावस्तुभिरादरात् । जानकीं पूजयामासुस्ताः सर्वाः पार्थिवस्त्रियः ॥३२॥
 स्थित्वा ता माममेक तु जगमुर्दश निज निजम् । अर्धकदा तु श्रीरामः सुमेधां जनक तथा ॥३३॥
 सीतायाः पुरतः प्राह गुह्य रहसि हन्स्थितम् । सीतामदृष्ट्वा साक्षिभ्ये क्षणाच्च विरहेण ताम् ॥३४॥

कभी मञ्जुन तथा घनघोर इन्द्रजाल बाजाका धुन सुनती थी । कभी विविध प्रकारके चित्र देखती थी, कभी बाजांगरी और बांसपर चढ़कर नाननयागोंके अद्भुत खेल देखा करती थी ॥ १६ ॥ १७ ॥ कभी स्तम्भके सुन्दर कोणुकी तथा मृगबन्धमे बंधा कश्यातलक लाव एवं कभी बनावटा हाथ आदिके विविध रूपाको देखा करती थी ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस तरह सीता ने उस वर्गोचम एक महाना बिताया । फिर नृत्य गीतादिक देखती-सुनती हुई रामचन्द्रके साथ अरुन्धती नगरी अयोध्याको लौट आयी ॥ २० ॥ जब सीता और रामने नगरमें प्रवेश किया, उस समय नगरकी स्त्रियोंने अंतरापर चढ़कर उन दोनोपर फूलोंकी वर्षा की, आरती उतारी और दही, भात, उदं, तेल तथा अन्नमें आदिके वस्त्र दिये । तब राम सीताके साथ अपने महलको गये ॥ २१ ॥ २२ ॥ इस तरह विविध प्रकारकी षं दाओंसे रामने मं ताको तथा माता न रामको आनन्दित किया ॥ २३ ॥ जब गर्भका छुट्टी महीना आया, तब रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठके द्वारा माताका सीमन्तोन्नयन-संस्कार कराया ॥ २४ ॥ सुमेधा और जनकके पास निमंत्रण भेजकर उन्हें अपने वहाँ बुलाया और ब्राह्मणोंको रामने विविध प्रकारके दान दिये । २५ ॥ जनकने आकर सीता तथा अपने सब भाइयोंके साथ बैठे हुए राम और कीमत्तार्दि माताओंका नाना प्रकारके वस्त्राभूषणों द्वारा सन्कार किया ॥ २६ ॥ अयोध्यावासी नागरिकों तथा मित्रोंने रामचन्द्र और सीताको अपने वहाँ भोजन करनेके लिए बुलाया ॥ २७ ॥ अनेक बाद्योके साथ-साथ वर्गाओंके नृत्य-गान हुए, स्त्रियोंके हाथसे फूलोंकी वर्षा हुई और कितने ही तरहके खान-पानसे हुए ॥ २८ ॥ उस समय सीताको दन्तनके लिए अनेक देशोंकी राजदरनिर्वा अयोध्या आयी ॥ २९ ॥ उनके साथ आयी हुई सेनासे घिरकर वह अयोध्या नगरी और भी सुन्दर लगने लगी । उन रानियोंने अम्लादि देदेकर सीताको इच्छा पूर्ण की और आनन्दपूर्वक बहुतसे वस्त्र-अभूषण तथा अपने देशोंका विशिष्ट वस्तुएँ देकर सीताकी पूजा की ॥ ३०-३२ ॥ वे रानियाँ एक महीना अयोध्यामें रहकर अपने-अपने देशोंको लौट गयीं । एक दिन जब कि सुमेधा, जनक, सीता तथा रामचन्द्र एकान्तमें बैठे थे । तब रामने कहा—हे महाराज ! सीताको अपने पास न देखा तथा कणघर भी उनसे बिभुक्त होकर मैं नहीं रह पाता । जब सीताके पास पहुँच

मयाऽऽगत्य तन्मुखेन्दुमुधया स्वास्थ्यमाप्नोते । आत्मानं विह्वलं दृष्ट्वा सीतामान्निष्यमाश्रये ॥३५॥
 अभुना जानकीं दृष्ट्वा कामो मेऽतीव बाधते । पञ्चमामोर्ध्वतः मग गर्हयन्ति मुनीश्वरा ॥३६॥
 प्रसृत्यत्रै पञ्चमामैः स्त्री स्वास्थ्यं प्राप्यते पुनः । पञ्चमामर्षिनः सङ्गाद्वयन्योः क्षीणतेरिता ॥३७॥
 अत्र किं कर्णीयं हि वद त्वं श्वशुराद्य माम् । चेन्म्रेषणीया सीनेयं मिथिलां प्रति वै मया ॥३८॥
 तर्हि तत्रापि मे गन्तुं भविष्यति समुद्यमः । किञ्चित्कालं तु सीताया वियोगो येन मे भवेत् ॥३९॥
 उषायः स विघातव्यश्चिन्तितोऽस्ति मयाऽपि च । लोकापवादभान्याऽह रजकोक्तच्छलादपि ॥४०॥
 गङ्गाया दक्षिणे तीरे वाल्मीकेगश्रमे शुभे । न्यजामि जानकीं शुद्धां किञ्चित्कालांतरात्पुनः ॥४१॥
 एतां समानयिष्यामि प्रत्ययं मां प्रदास्यति । ततोऽनया चिर काल नानामोगान् भजाम्यहम् ॥४२॥
 जनकाद्य त्वया तत्र निजपत्न्या सुमेधया । वाल्मीकेगश्रमे गन्वा स्थेयं वर्षाणि पञ्च वै ॥४३॥
 तथेत्यगाचकाराथ जनकोऽपि सुमेधया । सीताऽप्यगाचकाराथ विहस्य तद्वचः पतेः ॥४४॥
 अथ रामो ददावाज्ञां मस्त्रिय जनकं मुदा । स गन्वा मिथिलाराज्ये स्त्रीय सस्थाप्य मंत्रिणम् ॥४५॥
 ययौ सुमेधया शीघ्रं वाल्मीकेगश्रमं मुदा । किञ्चिदामीदाममैन्यवाजिचारणवेष्टितः ॥४६॥
 नानोपचारान्मीतार्थं मगृह्य शकटादिभिः । चकार गेहं विपुलं वाल्मीकेश्च सुम्बावहम् ॥४७॥
 सर्वमपनिर्मयुक्तं बहुगोमहिर्षायुतम् । पूरितं धान्यमघैश्च वर्ष्मराभरणादिभिः ॥४८॥
 कामारोपवतारामपुष्पवाटिशतावृतम् । गवाक्षैश्चन्द्रकान्तानां कषाटैश्च समन्वितम् ॥४९॥
 कृष्णामुरुमकपूरैर्गोक्षीरमाल्यादिमोदितम् । काचनीशृङ्खलावद्वरत्नपर्यङ्कमण्डितम् ॥५०॥
 ह्रस्वपादावनपिक्रकेकाशुकनिनादितम् । मुक्तागुच्छवितानार्थैः शोभितं चित्राचित्रितम् ॥५१॥

जाता हैं तो इनके मुखचन्द्रकी सुघासे स्वम्य हो जाता है, जिस समय मुझमें कुछ भी धक्काहट होता है, उस समय मैं सीताके ही समीप रहता हूँ ॥ ३३-३५ ॥ इस समय सीताका देखकर मुझमें कामपाड़ा हो रही है और मुनियोकी सलाह यह है कि गर्भावान हा जानपर पाँच महीन बाद स्थाप्रसङ्ग करना निन्दित है ॥ ३६ ॥ प्रसव हो जानेपर पाँच महीने बाद ही स्त्री स्वस्थ होती है। बिना पाँच महीने बात प्रसङ्ग धरनसे दानोका हानि ही हानि है। ऐस अममञ्जलके समय मुझ वया करना चाहिये, सो आप बताइये। यदि मैं सीताका मिथिला भज दता हूँ तो मुझे भी वहाँ जाना पड़ेगा। किन्तु मैं कुछ दिन तक सीतासे अलग रहना चाहता हूँ। जिस तरह मेरा इच्छा पूर्ण हो, वही इस समय करना चाहिए। मैं तो यह साच रखता हूँ कि लोकापवादके डरसे अथवा उस घावके ध्याजसे गङ्गाके दक्षिण तटपर वाल्मीकिके पवित्र आश्रममें कुछ समयके लिए परम शुद्ध जानकीको छोड़ दूँ। थोड़े दिन बाद वापस ले आऊँगा फिर मैं इनके साथ चिरकालतक नाना प्रकारके भागोंका भागूँगा ॥ ३७-४२ ॥ उस समय आपका अपना सुमेधाके साथ वाल्मीकिके आश्रमपर जाकर पाँच वर्ष पञ्च निवास करना होगा ॥ ४३ ॥ सुमेधा और जनकने रामको सलाह स्वाकार की और सीताने भी हँसकर पत्तिका कहता मान लिया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामने जनकको अपने दश जानेकी आज्ञा दी। वे अपने दश गधे और राजका सब भार मंत्रीपर छोड़कर अपनी स्त्री सुमेधाके साथ वाल्मीकिके आश्रमके आश्रमको चल दिए। चलेत समय अपने साथ कुछ दास, दासी, सैनिक तथा हाथी-घोड़े भी ले लिए ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ सीताके लिए बहुत सी सामग्रियाँ गाँठियोपर लदवाकर साथ ले गये। महर्षि वाल्मीकिके आश्रमको जनकने सब सुखाका भण्डार बना दिया ॥ ४७ ॥ जनकजीके वहाँ पहुँचनेपर वह आश्रम सब सम्पत्तियों एवं बहुत सी भोज्य और भोग्य भरे गये। विविध प्रकारके अन्ना और भाति-भातके वस्त्राभूषणसे वह पूरा हो गया ॥ ४८ ॥ आश्रमके पास सँकड़ो पोखर, उपवन, बगीचें बावला तथा कुएँ तैयार हो गये। चन्द्रकान्त मणिकं झराली तथा फट्कोवाल भव्य भवन बने ॥ ४९ ॥ कृष्णामुरु, कपूर, लस तथा विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्पास वह आश्रम सुगन्धमय हो गया। जगह-जगह पर सनेकी जजारास सज रत्नोक पलङ्ग पड़े हुए थे ॥ ५० ॥ इस, कनूतर, कायल, मयूर तथा तोतके शब्दोंसे

एवं मनोहरं गेहं सीतार्थं जनकोऽकरोत् । श्रीः साक्षाद्-तुमुद्युक्ता यस्मिन्निवसितुश्चिरम् ॥५२॥
किं दुर्लभं हि तत्रास्ति वर्णनीयं मयाऽद्य किम् । यस्या नेत्रकटाक्षेण शक्रादीनां विभूतयः ॥५३॥
वाल्मीकीये सर्वदत्तं जनकोऽपि न्यवेदयन् । मुनिश्चाप्यनिसंतुष्टो मेने स्वतपसः फलम् ॥५४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणं वाल्मीकीये जन्मकाण्डं द्वितीयः सर्गः । २ ॥

तृतीयः सर्गः

(राम द्वारा सीताका त्याग)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामं तु कौसल्याऽजनीद्वहसि संस्थिता । सीतां सीमोल्लंघनार्थं शीघ्रं प्रेषय राघव ॥१॥
तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा तथेत्पुक्त्वा सविस्तरान् । सलक्ष्मणो निजामवा प्राह यन्मन्त्रिनं पुरा ॥२॥
वाल्मीकेराश्रमं सीतान्यागादि च सकारणम् । अथ मासेऽष्टमे ग्रामे गयो राजीवलोचनः ॥३॥
एकस्मिन् जनको प्राह बीजता लक्ष्मणेन हि । कन्पयित्वा मयि देवि रजकोक्तं त्वदश्रयम् ॥४॥
त्यजामि त्वां वने लोकवादाद्भात इवापरः । त्रिमामान्पंचमासाद्वा सप्त मामात्सुबुद्धिमिः ॥५॥
अन्तर्वत्नी न गम्येति शास्त्राज्ञां रजकच्छलात् । त्वां त्यक्त्वा पालयिष्यामि निकटे वस्तुमधुमः ॥६॥
त्वां दृष्ट्वा चंदवदनां कामो मेऽनान वाधते । त्वद्विषागस्तु निर्वन्धादिना मेऽत्र कथं भवेत् ॥७॥
तस्मात्कृताऽयं निर्वन्धः सत्यं विद्धि मनोरमे । पचवपानतरण पुनरगन्य मेऽन्तिकम् ॥८॥
लोकानां प्रत्ययार्थं त्वं शपथं हि करिष्यसि । भूमेर्विवरमार्गेण स्थित्वा मिहासनोपरि ॥९॥

यह आश्रम शब्दायमान हो रहा था । यत्र तत्र मातियोंका सालरवाली चौदनियां टेंग हुई थी और बहुत-सी लसवीरे भी जहाँ-तहाँ टेंगी थी ॥ ५१ ॥ जनकजी ने सतक लिए इस प्रकारका सुन्दर भवन बनाकर तैयार कर-
वाया । यदि ऐसा दिव्य भवन साक्षात्कृत वास्तु बन गया तो इसमें आश्रय हो गया है । जहाँ निवास करनेके
निमित्त साक्षात् लक्ष्मणजी जानवाला है, वहाँ कौन बन्दु दुर्लभ हो सकती है । जिसके कट क्षमात्रसे इन्द्रादि
देवताओंकी भी सम्पत्तियां वनतानवगडता है, उसका विषयम मैं कहीं तक वर्णन करूँगा । जनकजीने
महर्षि वाल्मीकिका भी वह सब बात बतला दी, जिन्हें सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और साताक उस जावी
भागमनको उन्होंने अपनी तपस्याका फल समझा ॥ ५२-५४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदान-
न्दरामायणे ५० रामतजपाण्ड्यावरचितं जगन्नाथभाष्येण कासमन्वितं जन्मकाण्डं द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक दिन एकान्तमें कौसल्याने रामसे कहा कि अब समय हो गया है । शीघ्र
सीताको अपनी सामासे कहीं अलग भेज दो । माताकी बातका रामने स्वाकार किया और वह भी बतलाया,
जिसका निर्णय बहुत दिनों पहल कर चुक थे ॥ १ ॥ २ ॥ फिर यह भी कहा कि मेरा इस समय सीताका
त्याग करना उचित है । कुछ दिन बाद आठवां महाना लगनपर रामने सीताका एकान्तमें बुलाकर समझाते
हुए कहा—देवि ! उस दिन एक धोवन तुम्हारे विषयमें बड़ा कुतूहल आलाचना की थी । उसीके बहाने मैं तुम्हें
कुछ दिनोंके लिए वनमें छोड़ दूँगा । इससे दुनिया समझेगी कि मैं लाकापवादसे बहुत डरता हूँ । दूसरी
एक बात यह है कि गमसे सासरे, पौत्रव अथवा सातव महानेमें स्त्रिका सलग नहीं करना चाहिए ।
यह शास्त्रोंकी आज्ञा है । इसलिए उस जावाकी बातोंक ध्यात्रसे तुम्हें दूर रखकर मैं शास्त्रीय आज्ञाका
पालन करूँगा और पास रहनेमें यह न हो सकेगा कि मैं तुमसे न बानूँ ॥ ३-६ ॥ क्योंकि तुमका देखनेसे
मुझे काम सताने लगता है । तुम्हारा वियोग भी बिना किम्बो बहानेक नहीं हो सकता था । इसलिए मैंने
ऐसा प्रबन्ध किया है और इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे अक्षरशः सत्य समझो । पाँच वर्षके
सातव ही तुम फिर यहाँ आजागी और संसारको दिखानेके लिए तुम्हें शपथ लेनी होगी ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस

यदा गच्छामि पातालं जगत्या पूजिता तदा । भुवं स्तुत्वा भीषयिन्वा न्वामकं स्थापयाम्यहम् ॥ १० ॥
 पुत्राभ्यां च मया सीते ततो भोगानवाप्स्यमि । मनस्वेकः कुक्षो ज्येष्ठस्तत्र पुत्रो भविष्यति ॥ ११ ॥
 सुतस्तपःप्रभावेण भविष्यन्त्यपरो लवः । वाल्मीकेराश्रमे चैवं कुमारी द्वौ भविष्यतः ॥ १२ ॥
 अग्रे मन्वा च त्वत्पित्रा त्वद्योग्यं च गृहादिकम् । ससुमेधेन सकलं कृतमस्ति ममाश्रया ॥ १३ ॥
 कुरुष्याद्य मया यत्नमुच्यते जनकात्मजे । सात्त्विकी त्वं यथापूर्वं दंडके भीतर्मातटे ॥ १४ ॥
 मद्रामांगे स्थिता यद्वन्मे वामांगे वमाधुना । वाल्मीकेराश्रमे गन्तुं गुणद्वयविमिश्रिता ॥ १५ ॥
 भूत्वा त्वमाश्रमे स्थित्वा मद्रियार्गं प्रदर्शय । तत्रापि त्वां कुक्षोन्पत्तां दास्यामि दर्शनं गृहः ॥ १६ ॥
 तथेति रामवचनाज्ञानकी सा मितानना । रजस्तमोमयीं स्वीयां छायां निर्माय सादरम् ॥ १७ ॥
 श्रृंगरायस्य वामांगे सत्त्वरूपा लयं ययौ । ततो रामः मभां गन्वा रात्रौ हार्नकविग्रहः ॥ १८ ॥
 मंत्रिभिर्मंत्रतश्चर्द्धदलमुख्यैर्वयोविकैः । समततो वेष्टितः संस्तस्थौ सिंहासनोपरि ॥ १९ ॥
 तत्रोपविष्ट राजानं सुहृदं पयुषामिरे । हास्यप्रायकथाभिश्च हासयन्तः स्थिताः प्रभुम् ॥ २० ॥
 कथाप्रसंगान्प्रच्छ रामो विजयनामकम् । धीरा जानपदा वा म किं वदन्ति शुभाशुभम् ॥ २१ ॥
 सीतां तां मातरं वा मे भ्रातृन्वा कंकर्यामथ । न मेतदप्यन्यथा ब्रूहि क्षापितोऽनि ममापरि ॥ २२ ॥
 इत्युक्तः प्राह विजयो देव सर्वे वदन्ति ते । कृतं सुदुष्करं कर्म रामेणाविदितात्मना ॥ २३ ॥
 तथाप्येवं वदन्ति त्वां जनास्तत्रे वदाम्यहम् । किंतु हन्वा दशग्रीव मीवामाश्रुन्य राधवः ॥ २४ ॥
 अमयं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म प्रत्यपादयत् । कांदृश हृदयं तस्य सीतासभागजं सुखम् ॥ २५ ॥

समय तुम जब एक दिशा सिंहासनपर बैठकर भूमिके वितरमार्गमें पातालको जाने लगाओ । तब मैं भूमिकी प्रार्थना करके या धमकाके तुम्हें बापत ले लूंगा और अपनी गोदमें बिठाऊंगा ॥ १॥ १० ॥ उस समय तुम अपने दो बेटोंको लिये हुए मेरे साथ रहकर विविध प्रकारके नृत्य भागागा । मेरे द्वारा मुझसे एक पुत्र होगा, जिसका नाम पलेगा कुक्ष और दूसरा बेटा ज्येष्ठ । वाल्मीकिके प्रभावसे उत्पन्न होगा, जिसका नाम होगा लव । इस प्रकार वाल्मीकिके आश्रमपर तुम्हारे दो पुत्र होंगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ तुम्हारी माताके साथ जनकजी पहले ही उस आश्रमपर आ चुके हैं और उन्होंने तुम्हारे आश्रमकी सब सामग्रियां प्रस्तुत कर दी है ॥ १३ ॥ आज मैं तुमको जैसा कह रहा हूँ हे जनकात्मजे । तुम्हें वही करना पड़ेगा । जैसा उस समय गीतमीके तट-पर तुमने अपनी दो भृतियां बनायी थी । उसी प्रकार इस समय भी अपना दो स्वयंसेवनाओ और पहलकी माई इस समय भी तुम सात्त्विक रूपसे मेरे वाम अंगमें निवास करो ॥ १४ ॥ १५ ॥ और दूसरे स्वरूपसे वाल्मीकिके आश्रमपर रहकर ससारको मेरे वियोगका दुःख दिखानाओ । आश्रमपर भी जब कुशकी जन्म होगा, उस समय आकर मैं तुम्हें एकान्तमें दर्शन दूंगा ॥ १६ ॥ रामकी बात सुनकर सातान मन्द मुस्कराहटके साथ 'सचास्तु' कहा और रजोगुणमयी तथा तमोगुणमयी सत्ता अपना छाया रामके दक्षिण भागमें बैठ गयीं और सत्त्वरूपसे रामके वाम भागमें बिलान हा गयीं ॥ १७ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजी समाश्रयमें गये । वहाँ मन्त्रणानुशल मन्त्रियों तथा कितने ही दरबारियोंसे वेष्टित होकर बंटे । मित्रोंन उस समय भगवान्को विविध प्रकारसे पूजा की । तत्पश्चात् तद्गृह-तद्गृहकी हंसी-दिल्लगाकी बात कर-करके वे परस्पर मनोवितोद करने लगे ॥ १८-२० ॥ प्रसंगवश रामने विजय नामक एक गुप्तचरसे पूछा कि इस समय अयोध्यावासा लोग मुझे किस दृष्टिसे देखते हैं ? उनका दृष्टम मेरा शासन अच्छा है या खराब ? इसके अतिरिक्त साता, मेरा माता, आ, भाइयां अथवा कंकवक प्रांत लोगक हृदयमें कसा भाव है ? किसा प्रकार करो मत, जो कुछ माशूम हो साफ साफ बतला दो । तुम्हें मेरा शपथ है । इस प्रकार रामके पूछनपर विजयने कहा—हे देव ! आपक किये महान् कार्योंकी सराहना करते हुए लोग प्रशंसा हा करते हैं । २१-२३ ॥ फिर भी आपक विययमें कुछ लोगोंका जो दूसरा राय है । उसे भी बतलाता हूँ । वे कहते हैं कि रामने रावणका मारकर माताको उससे छुड़ाया और बिना कुछ साधन-वचार अपने घरमें बिठाल लिया । हम नहीं समझते कि रामका

था हता विजने पूर्वं रावणेन बने तदा । अकस्मादपि दुष्कर्म योपिन्स्वमर्षदं भवेत् ॥२६॥
 यादृग्भवति वै राजा तादृश्यो नियताः प्रजाः । इति नानाविधा वाचः प्रवदन्ति पुनैकमः ॥२७॥
 अन्पत्किञ्चिन्प्रवक्ष्यामि संप्रतं रजकोदिनम् । दुर्मार्गाणां स्वर्गज्जीं भार्यां क्रोधवशेन मः ॥२८॥
 रजकः प्राह भो रडे सोऽहं गमो न मैथिलीम् । रावणस्य गृहे स्पष्टं स्थितामंगीचकार यः ॥२९॥
 यथेच्छं गच्छ रडे त्वं नाहं रामयदाचरे । गच्छता च मया मामे रजकेन ममीरितम् ॥३०॥
 इति राम भ्रुत पूर्वं त्वया पृष्टं निवेदितम् । वन्पश्यमि हितं चात्र तत्कुरुष्व रघूत्तम ॥३१॥
 भ्रुत्वा तद्वचनं रामः स्वजनान्पश्यच्छत । नेऽपि नन्नाऽत्रुवन् गममेवमेतश्च संशयः ॥३२॥
 ततो विसृज्य सचिदान्विजयं सुहृदस्मथा । आहूय लक्ष्मणं रामो वचनं चेदमब्रवीत् ॥३३॥
 लोकापवादस्तु महान्सीतामाश्रित्य मेऽभवत् । सीतां प्रातः समानीय वाल्मीकेगधमांतिके ॥३४॥
 त्यक्त्वा क्षीप्रं रथेन त्वं पुनरायाहि लक्ष्मण । वक्ष्यसे यदि वा किञ्चिदत्र मां हतवानमि ॥३५॥
 छिन्वा सीताभुजं लोकप्रत्ययार्थं समानय । हन्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः कैकेयीं द्रष्टुमाधयौ ॥३६॥
 एतास्मिन्नन्तरे सीतां कैकेयीं गृहमि स्थिता । पप्रच्छ कीतुकान्माने भिन्नौ लेख्य दशाननम् ॥३७॥
 मामत्र दर्शयस्वाद्य तं प्राह जानकी तदा । मयाऽवलोकितो नैव कदाऽपि स दशाननः ॥३८॥
 यदा हर्तुं पंचवट्यां मां प्राप्तो गौतमीतटे । तदा दृष्टस्नदगुण्डो मया दक्षिणपादजः ॥३९॥
 तन्मीतावचनं भ्रुत्वा कैकेयी प्राह तं पुनः । यथा दृष्टस्त्वया गुण्डस्तथा भिन्नौ लिखस्व हि ॥४०॥
 तथेति जानकी लेख्य तदंगुष्ठं भयानकम् । कैकेर्यं दर्शयामास तामामरुप गृहं ययौ ॥४१॥

हृदय कैसा है, जो इतना अनर्थ होनेपर भी लौटा हुई माताके साथ चिहार करते हुए सुखी हो रहे है ॥२४॥२५॥ जो सीता उस दुष्टके द्वारा हरी गयी और कई वर्ष तक उसके घरमें रहे, उसके लिए रामको कुछ सोचने विचारनेकी आवश्यकता क्योंकर नहीं मान्ताम हुई । उनका बरा विपदा, वे चाहे एक बार कोई दुष्कर्म भी कर लें तो कोई इष्टि नहीं उठा सकता, लेकिन इसका दुःप्रभाव तो प्रजाके ऊपर पड़ेगा । यह साधारण नियम है कि जिस देशका जैसा राजा होता है, प्रजा भी वैसी ही हुआ करती है । इस प्रकारकी बातें बहुतोंके मुँहसे सुनी गयी हैं । एक घोड़ीने भी एक बात आपके बारेमें कही थी, सो भी कहता है । उसने कांचवज्र अपनी अधिचारिणीका सवोचित करके कहा—अरी ओ रण्डे ! मैं यह राम नहीं हूँ, जिन्होंने क्यों रावणके घरमें रही हुई सीताको अङ्गीकार कर लिया है । नरी जहाँ इच्छा हो जा, मैं रामको तरह कभी नहीं करूँगा और तुम नहीं रखूँगा ॥२६-३०॥ मैं शत्रुमें चला जा रहा था, सब घोड़ीकी बात सुनी थी । सो पूछनेपर आपको बतला दी । अब आप जो अच्छा समझें, वह करें । विजयकी बातें सुनकर रामचन्द्रजीने अपने मित्रोंसे भी इस विषयमें पछ-ताछ की । उन लोगोंने भी तही कहा, जो विजयने बतलाया था । इसके बाद रामचन्द्रजीने मन्त्रियों तथा विजयको विदा कर दिया और लक्ष्मणको बुलाया । लक्ष्मणसे रामने कहा—हे लक्ष्मण ! सीताके कारण ससारमें लोग हमारी बड़ा निन्दा कर रहे हैं । इससे भी बढ़कर अपवाद होनेकी आशंका है । इसलिए कल सवेरे तुम सीताकी रथमें बिठाकर मुनि वाल्मीकिके आश्रमपर छोड़ आओ । इस बातके विपरीत यदि तुम कुछ कहोगे तो मुझे हमारी हत्या करनेका पाप लगेगा । हाँ, इतना और करना । वनसे लौटने समय सीताकी एक भुजा भी काटकर सेन आना, जिसे दिखाकर मैं अयोध्यावालोंको विश्वास दिला सकूँगा । इतना कहकर राम कैकेयीके पास चला दिये । इसी बीच कैकेयीने अँगनमें बँठी बातें करते-करते सीतासे कहा—सौने ! इस दीवारपर रावणका चित्र लिखकर हमें दिखाओ कि वह कितना बड़ा था । इसके उत्तरमें सीताने कहा—मैंने रावणको कभी देखा ही नहीं ॥ ३१-३६ ॥ हाँ, जब वह पंचवटीमें मुझे हारनेके लिए गया था, तब मैंने उसके दाहिने पैरका अंगूठा देखा था । सीताका उत्तर सुनकर कैकेयीने कहा—अच्छा, उसका अंगूठा जैसा रहा हो, वही इस दीवारपर लिख दो । जानकीने कैकेयीके कथनानुसार दीवारपर उसके भयानक अंगूठेका चित्र लिखकर दिखा दिया और बोली बेर बाद अपने

अगुणोपरि कैकेय्या यथायोग्यो दशाननः । लिखितः स्वेन हस्तेन रामं द्रष्टुं कुपुद्रितः ॥४२॥
 तावद्रामं समायातं दृष्ट्वा मा सभ्रमान्विता । भिर्यंतिके राघवाय ददाशमनमुत्तमम् ॥४३॥
 रामोऽपि नन्वा कैकेयीमामने सस्थितोऽभवत् । ददर्श भित्तौ लिखितं विचित्रं तं दशाननम् ॥४४॥
 रामः पश्यन् केनात्र लिखितोऽयं दशाननः । कैकेयी कथयामास सीतया लिखितस्त्विति ॥४५॥
 यत्र यत्र मनो लघ्न स्मर्यते हृदि तन्मदा । स्त्रियाश्चरित्रको वेत्ति शिवाद्या मोहिताः स्त्रिया ॥४६॥
 कैकेयीवचन चेत्थ श्रुत्वा रामो महामनाः । मीताश्रयं समावृत्तं कैकेयीमाह विस्तरान् ॥४७॥
 लक्ष्मणेन त्यक्ताभ्यम्ब शः सीतां जाह्नवीतटे । सीताश्रुज धने लिप्त्वा समानयतु मद्विरा ॥४८॥

सौमित्रिस्त्वां तथा पौरान्दर्शयिष्यति निश्चयात् ।

सीतया लिखितो यस्मान्स्वश्रुजेन दशाननः ॥४९॥

स्त्रीहत्यामयमालक्ष्य तद्रूपे लक्ष्मणो मया । न चोदितश्च तां हिंसा भक्षयिष्यति वै क्षणात् । ५०॥
 इति रामवचः श्रुत्वा कैकेयी मुदिताऽभवत् । सीताया विगृहाद्रामो नेदं राज्यं प्रशास्यति ॥५१॥
 सेवार्थं रामचन्द्रस्य लक्ष्मणोऽपि न शास्यति । तदा श्रीरामवाक्येन मगतो मे प्रशास्यति ॥५२॥
 इति सचिन्त्य हृदये कैकेयी मुदिताऽभवत् । रामोऽपि नन्वा कैकेयी सुमित्रां स्वां च मातरम् ॥५३॥
 सभावृत्तं च कैकेयीगेहे यज्जानमादरात् । श्रावयामास सकलं वृत्तं सीताश्रयं प्रभुः ॥५४॥
 नत्वा सुमित्रां कौसल्यां रामः सीतागृहं ययौ । सीतया दत्तपाशार्थासनमंगीचकार सः । ५५॥
 सभावृत्तं च कैकेयीगेहे यददृष्टमादरात् । श्रावयामास तत्कृन्न् वृत्तं तं जानकी मुदा ॥५६॥
 तन्नुन्वा जनकी प्राह कैकेय्या वचनान्मया । अगुष्ट एव लिखितस्तयोर्ध्वं लिखितो विषा ॥५७॥
 अगुष्टस्यानुरूपेण दशस्यो दुष्टबुद्धितः । सन्मीतावचन श्रुत्वा जानकीमाह राघवः ॥५८॥

महलोको चली गयी । सीताके चली जानेपर द्वेषवश कैकेयीने रामका दिखानेके लिए उस अगुष्टके अनुसार रावणके पूरे शरीरका चित्र अपने हाथसे बना दिया ॥ ३९-४२ ॥ इतनमें कैकेयीने देखा कि राम इसी ओर आ रहे हैं । सब सटपट उमने उस दोबारके पाम ही रामजीको बैठनेके लिए आसन डाल दिया । रामने वहाँ पहुँचकर कैकेयीको प्रणाम किया । फिर आसनपर बैठ गये । थोड़ा देर बाद रामकी दृष्टि उस घने हुए रावणक चित्रपर पड़ी ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ रामने पूछा—यहाँपर रावणका चित्र किसने बनाया है ? उत्तरमें कैकेयीने कहा कि आपकी बहू सीताने यह चित्र लिखा है । जहाँ जिसका मन लगा रहता है, बार-बार उसीकी याद आती रहती है । यह एक साधारण नियम है । और फिर स्त्रियोंके चरित्रको कौन जान सकता है । शिवादिक देवता भी तो स्त्रीचरित्रका पार नहीं पा सके और वे भी मोहित हो गये ॥४५॥४६॥ कैकेयीकी बातें सुनकर मनस्वी रामचन्द्रजाने कैकेयीकी बहू बातें भी बतलाये, जो सभामें विजयके मुँहसे सुनी थीं । इसी सिलासलमें उन्होंने यह भी कहा—माता ! कल सवेरे लक्ष्मणके साथ मैं सीताको गंगाजाके तटपर भेज रहा हूँ । वह उसे वहाँ छोड़ देगा और आप तथा पुरवासियोंको दिखानेके लिए मर कहनसे सीताका एक हाथ भी काट लायेगा । क्योंकि सीताने उसी हाथसे तो रावणका यह चित्र बनाया होगा । स्त्रीहत्याक भयसे मैं उसे मारनेकी आज्ञा नहीं दूँगा । लेकिन जब उनके हाथ नहीं रहेंगे तो वह जियेगी कैसे ? वनके हिसक जीव ही उसको खा जायेंगे ॥४७ ५०॥ इस प्रकार रामके वचन सुनकर कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई और मनही मन सोचने लगी कि सीताक विरहसे दुखी हाकर राम राज्यका काम नहीं कर सकेंगे । लक्ष्मण भी रामकी सेवामें लगे रहनेके कारण राज्यका भार अपने ऊपर नहीं लगे । उस दशामें विवश होकर राम मरे बैठे भरतसे राज्यका काम करनेके लिए आग्रह करेंगे । यह सोचकर कैकेयी प्रसन्न हुई । रामजा भी कैकेयीको प्रणाम करके अपने महलोंको चले गये । वहाँ अपनी माता कौसल्या तथा सुमित्राको आदिसे अनन्तक सीतासन्ध्या सभ धृतान्त कह सुनाया । फिर कौसल्या और सुमित्राको प्रणाम करके वे सीताके भवनमें जा पहुँचे । सीताने पाद-अर्घ्य-आचमनीयादिसे उनकी पूजा की और रामजी एक आसनपर बैठ गये । इसके

कौटिल्यबुद्धिं कैकेय्याः समग्रां वदन्तः प्रिये । इत्युक्त्वा राघवः सीतामालिरयाम्यं चुचुर्व मः ॥५९॥
सीतया हेमपर्यङ्के भुक्त्वा भोगान्मुपुष्कलान् । विनोदार्थं गृध्रपतिः प्राह गर्त्रो विदेहजाम् ॥६०॥
स्त्रीणां मीने मगर्माणां बाहिनं बाहने मनः । काते बांछावदम्ब न्यंतसे दास्यामि निश्चिनम् ॥६१॥
इति राघवचः श्रुत्वा भाविकार्येण यत्रिना । मा प्राह राघवं गम नर्मास्तीरस्थितां स्तरुत ॥६२॥
मूर्तीनामाश्रमांश्चापि ऋषिपत्नींश्च तद्वनम् । बांछने मे मनो द्रष्टुं शीघ्रं प्रेषय तत्र माम् ॥६३॥
इति सीतावचः श्रुत्वा तथाऽस्थितिं गृध्रमः । प्राह मीने लक्ष्मणः श्वा नेष्यति त्वां ममज्ञया ॥६४॥
पुनः प्राह गृध्रेष्टः मीने ने कंडिनादिभिः । जपस्यानादिकं सर्वं विस्मृतं तन्मया पुरा ॥६५॥
तत्करोम्यधुना मीने गतायां त्वयि काननम् । इत्युक्त्वा जानकीं रामः मुखं मुष्वाप मंचके ॥६६॥
मीनाऽपि चितयापाम यत्र माता पिता मम । किं मां न्यूनं हि तत्रास्ति किंचिदस्त्वादिकं सह ॥६७॥
नाहनेष्या मेष्वस्तृष्णीं सरुया दास्या ममन्विता । लक्ष्मणेन रथे स्थित्वा गच्छामि मुदिता मुखम् ॥६८॥
इति निश्चिन्य सा गर्त्रो मुखं मुष्वाप मंचके । अथ प्रभाते मीन्याय स्नाना स्नानं गृध्रमम् ॥६९॥
पक्वान्नादानि सन्पात्रे पयवेपथुत्तमम् । उपहारे कृते भर्त्रा स्वयं कृत्वोपहारकम् ॥७०॥
पृष्टोर्मिलादिकाः स्त्रीश्च ततः श्वश्रूः प्रणम्य च । गङ्गातीरस्थितान् पृश्नान्मूर्तीन्द्रष्टुं समुद्यता ॥७१॥
ताः पश्यन्त्युपगता पुनः दास्या मस्मार लक्ष्मणम् । ततोऽसौ लक्ष्मणो भ्रात्रा चोदितस्त्वां ययी जवान् ७२॥
दास्या मन्व्या तुलस्याश्च मीनां कृत्वा रथस्थिताम् । ययी दक्षिणमार्गेण आयुर्वेगान्म जाह्नवीम् ॥७३॥
इन्द्राद्या निर्जगश्चक्रः मीतायन्मार्गपन्क्रियाम् । उल्लस्य तमसां पुण्यां गोमतीं जाह्नवीमपि ॥७४॥
यमुनां तां महापुण्यां तथा मंदाकिनीं नदीम् । द्वितीयां तमसां पुण्यां समुल्लंघ्य म लक्ष्मणः ॥७५॥

बाद उन्होंने वह वृत्तान्त बतलाया, जो ममाम तथा कैकेयोंके भवनमें हुआ था। सीताने कहा कि माता कैकेयोंके कहनेमें मैंने केवल रावणसे पैरका अंगुठा बचाया था। बाकी उन्होंने अपनी कल्पनासे रावणका सारा शरीर बनाया होगा। इस तरह मैंने अपने बचने काकर रामसे कहा प्रिये। मैं कैकेयोंकी कुटिलताकी मर्मांशुति जानती हूँ। इतना कहकर रामने सीताको अपनी छुतीमें लया लिया और वहां दण्डक उनका मुँह चूमने लगे। फिर विनोद करने लगे वही चले गये। थोड़ी देर बाद रामने सीतासे कहा—प्रिये। मैं जहाँतक जानता हूँ, गभिणी गिर्य वितना ही चने घाटा करती है। तुम्हारी भी किसी वस्तुकी इच्छा है? यदि हा तो बनलाओ, मैं अवश्य दूंगा ॥ ५९-६० ॥ इस प्रकार रामकी बात मन्कर भवावज सीताने गङ्गातटनिवासी ऋषियोक आश्रमों और वनोंका इत्यन्तकी इच्छा प्रकट की और कहा कि मुझे शीघ्र वही भज दी जाये। राम सीताकी माँग स्वीकार करके कहने लगे—मान कहां लक्ष्मण तुम्हें गङ्गातटपर ले जाँगे। थोड़ा देर बाद फिर बोले—मीने। बहुत दिनोंसे तुम्हारे साथ भोग-विन्यासमें मैं इतना स्थित हो गया कि चप, लप, ध्यान, धारणा आदि सब कुछ भूल गया था। यदि तुम कुछ दिनोंके लिए बड़ा चन्द्र जाओगी तो मैं कुछ भजन-ध्यान कर दूँगा। इस प्रकार बात करके राम सो गया। सीता भी अपने मनमें सोचने लगी कि जहाँपर मेरे पिता माता आदि परिवारके सब लोग विराम न है वही किसी वस्तुकी इच्छा तो हो नहीं सकती। अतः मैं साथ कुछ न ले जाऊँगी ॥ ६२-६३ ॥ अब कल्पका दिन मैं बैस नहीं बने दूँगी, बरि अपनी सखियों इमियों और लक्ष्मणके साथ ईसा वृक्षा वनकी अवश्य जाऊँगी। यह निश्चय करके सीता भी जानकरतृप्त हो गयी ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ मकर सीताने उठकर स्नान किया और भोजन बनाया। उषर रामने भी स्नान कर लिया और भोजन करने बैठे। सीताने बड़े प्रेमसे परमकर उठे भोजन कराया। तदनन्तर साथ भोजन किया ॥ ७० ॥ फिर उमिला आदि बहनामें पूछकर माताओंकी प्रणाम किया और गङ्गातट बनाने रहनेवाले मुनियोंकी देखनेके लिए जानकी सैराज हो गयी ॥ ७१ ॥ उन्होंने रथ स्थानके लिए लक्ष्मणजीका बुलाया। रामचन्द्रके आज्ञानुसार लक्ष्मण शीघ्र रथ लेकर आ पहुँचे ॥ ७२ ॥ सीता अपनी सखियों, दासियों तथा तुलसीवृक्षके साथ रथमें बैठी और लक्ष्मणने दक्षिण मार्गमें गङ्गातटकी ओर पवनवेगके समान रथको भगवाया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

चित्रकूटोपत्यकार्या वाल्मीकेराश्रमातिके । पिप्पलाधो मैथिलीं तां सख्या दास्या वरासने ॥७६॥
निवेद्य नत्वा स प्राह साश्रुनेत्रः सगद्गदः । लोकापवादमीत्या त्वां त्यक्तवान् राघवो वने ॥७७॥
दोषो न कश्चिन्मे मातर्मञ्छाश्रमपदं मुनेः ।

इत्युक्त्वा तां परिक्रम्य सख्या दास्याऽपि वीजिताम् ॥७८॥

ययौ रथेन सौमित्रिः पूर्वभागैर्ण जाह्नवीम् । शिष्यैः श्रुत्वाऽथ वाल्मीकिर्जनकेन सुमेधता ॥७९॥
ययौ स्त्रीभिर्द्विजैर्मुक्तः पूजयामास जानकीम् । शिविकार्या सन्निवेश्य वीजितां चामरादिभिः ॥८०॥
मानावाद्यनिनादैश्च वेश्यानां नर्तनैर्वरैः । स्तवनेर्भागवादीनां नटादीनां सुगायनैः ॥८१॥
निनाय जनकः सीतां वाल्मीकेराश्रमे मुदा । मुनिपत्न्यो वन्यपुरुषैर्वर्षुर्जानकीं मुदा ॥८२॥
जानकीशिविकाग्रे ते दुद्रुवुर्वैत्रपाणयः । एव विवेश स सीता वाल्मीकेराश्रमं शनैः ॥८३॥
चक्रुर्नाराजनं दीपैर्मुनिपत्न्यश्च जानकीम् । जानकी हेमपर्यंके घृताधोकोपचर्हणा ॥८४॥
सुखमापाश्रमे तस्य वाल्मीकेश्च तपस्विनः । जानकीं पूजयामासुर्मुनिपत्न्यः पृथक् पृथक् ॥८५॥
दिव्यान्वैर्वनसंभूतैर्वन्यपुरुषैर्निरन्तरम् । श्रुत्वा परान्मनो लक्ष्मो मुनिवाक्येन भक्तितः ॥८६॥
दोहदान् पूरयामासुः सीतयास्तः मुनिस्त्रियः । शिविकासंस्थिता सीता ददर्श वनकौतुकम् ॥८७॥

यथापूर्वं तु साकेते सुखमाप विदेहजा ।

तथा मुनेराश्रमेऽपि सुखमाप पतिव्रता ॥८८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
जन्मकाण्डे सीताया वाल्मीकेराश्रमगमनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

जब वे परम पवित्र यमुना, मंदाकिनी तथा तमसा नदीको पार करके चित्रकूटकी तलहटीमें वाल्मीकिराश्रमके समीप पहुँचे, तब लक्ष्मणने रथको रोका और एक पीपल वृक्षकी छायामें आसन बिछा दिया । सब स्त्रियोंके साथ सीताजी उसपर जा बैठी ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तब आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद कण्ठसे लक्ष्मणजी कहने लगे—माता ! लोकापवादके भयसे रामचन्द्रजीने आपको इस वनमें छोड़नेके लिए मुझे आज्ञा दी है । इसमें मेरा कोई दोष नहीं है । अब आप यहाँसे ऋषि वाल्मीकिके आश्रमपर चली जायें । इतना कहकर लक्ष्मणने सीताको परिक्रमा की ओर प्रणाम किया । उस समय दासी और सखियाँ सीतापर पला झल रही थी ॥७७॥७८॥ फिर वे अपने रथपर बैठकर उसी मार्गसे अयोध्याके लिए लौट पड़े, जिधरसे गये थे । उधर वाल्मीकिने कुछ शिष्योंसे यह वृत्तांत सुना तो जनकजी, सुमेधा तथा कितनी ही स्त्रियों और ब्राह्मणोंके साथ वहाँ पहुँचे, जहाँ सीता बैठी थी । वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताकी पूजा की । फिर उन्हें सुन्दर पालकोंमें बिठाया और अपने आश्रमकी ओर चले । रास्तेमें अनेक प्रकारके बाजे बज रहे थे । वेश्यायें नाच रही थीं और भाट विरुदावली बखान रहे थे । नट-गायक आदि सुन्दर गायन गा रहे थे ॥ ७९-८१ ॥ जब सीताजी आश्रमपर पहुँच गयीं, उस समय मुनिपत्नियोंने सहर्ष उनपर विविध प्रकारके वनफूल बरसाये ॥ ८२ ॥ उन्होंने आरती उतारी और एक सुवर्णनिर्मित पलंगपर बिठाया ॥ ८३ ॥ वहाँ पहुँचनेपर सीताको बड़ा आनन्द मिला । आश्रमकी ऋषिपत्नियोंने अलग-अलग सीताकी पूजा की ॥ ८४ ॥ उस दिनसे कितने ही तरहके दिव्य अन्न, वनके सुस्वादु फल तथा फूल आदि दे-दकर सीताको सब स्त्रियों प्रसन्न किये रहती थी । क्योंकि उन लोगोंने वाल्मीकिसे सुन रक्खा था कि सीता कोई साधारण स्त्री नहीं, साक्षात् विष्णुभगवानकी भार्या लक्ष्मी हैं । जब इच्छा होती, तब सीता पालकीपर सवार होकर वनको देखनेके लिये जाया करती थी । सीताको जो सुख अयोध्यामें मिलता था, वही वहाँपर भी सुलभ था ॥ ८५-८८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे ४० रामनेत्रपाण्डेवविरचितभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(बाल्मीकिके आश्रममें लव-कुशका जन्म)

श्रीरामदास उवाच

अथ गङ्गातटं गन्वा लक्ष्मणोऽचिन्तयद्घृदि । स्वेच्छया कौतुकास्मीतां मया शुद्धां स त्यक्तवान् ॥ १ ॥
 स्वीयकामप्रशान्त्यर्थं आश्रमात् प्रतिपालयन् । एवं सति पुनस्तेन किं ममाज्ञापितं रहः ॥ २ ॥
 वनात्सीताभुजं छिन्ना नयस्वेत्यतिदुर्घटम् । मयापि क्षपथ भुन्वा न पृष्टः स विचिन्त्य च ॥ ३ ॥
 अधुना किं करोम्यत्र कथं राघवं प्रगम्यते । सीताभुजं विना दृष्ट्वा रामो मां किं वदिष्यति ॥ ४ ॥
 छेतुं सीताभुजं शक्तो भविष्यामि कथं स्वहम् । यथाऽहं पुत्रवन्धितं पालिनो लालितस्त्वयि ॥ ५ ॥
 अधुनाऽग्निं विश्राम्यत्र रामायास्थं न दर्शये । एवं निश्चित्य सौमित्रिश्रितां कर्तुं मनो दधे ॥ ६ ॥
 एतस्मिन्मन्तरे तत्र विश्वकर्मा विधेमिग । कुठारहस्तो विपिने बभ्राव तत्परूपधृक् ॥ ७ ॥
 तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः प्राह त्वं मे साहाय्यमाचर । कुठारेण तस्मिन्निष्ठा चितार्थं वेदि मां जवात् ॥ ८ ॥
 यथेच्छं वसु दास्यामि त्वामहं निश्चयेन हि । सोऽप्याह लक्ष्मण वीर चिताहेतुं वदस्व माम् ॥ ९ ॥
 सौमित्रिः कथयामास पूर्ववृत्तं सविस्तरम् । तच्छ्रुत्वा सकल तपः सौमित्रि प्राह सस्मितः ॥ १० ॥
 अन्वार्थे स्वीयकुशं मां जुहाव स्ववद्भुज । अहं सीताभुजं कृत्वाऽधुना दास्यामि ते क्षणात् ॥ ११ ॥
 इत्युक्त्वा लक्ष्मणं कृत्वा आनकीभुजमुत्तमम् । स्वर्गमासास्थिरनायुरक्तपूरितं कंचुकोयुतम् ॥ १२ ॥
 सीतालङ्कारसहितं तस्याभिह्वविचिह्नितम् । ददौ लक्ष्मणहस्ते तं स्वयमतर्दधे क्षणात् ॥ १३ ॥
 सीताभुजं समादाय लक्ष्मणोऽपि पुरीं ययौ । गतश्रियं निरुत्साहां वात्पातिधूलिभूसराम् ॥ १४ ॥
 ददर्श नगरीं स्वोयां मारीहोनगृहोपमाम् । विवेशाधोमुखः पुन्यं नत्वा सदसि राघवम् ॥ १५ ॥

श्रीरामदास बोले—उपर गङ्गातटके समाप्त पट्टाकर लक्ष्मणने अपने मनमें सोचा कि यद्यपि मनुसे लौटनेपर मेने ही अग्निमें डालकर सीताको पवित्र किया था । फिर भी रामचन्द्रजीने सीता माताका परिहराव कर दिया है ॥ १ ॥ इसमें दो कारण हैं । एक तो रामचन्द्रजीका अपनी कामवासना कम करनी है, दूसरे शास्त्रको आज्ञाका पालन करना है । अतः, रामके आदेशानुसार मेने सीताका परिहराव तो कर दिया, किन्तु एक ओर आज्ञा थी कि “लौटने समय सीताको एक भुजा भी काटकर लेते आना” । यह बहुत ही कठिन काम है । उस समय रामजीने कसम खा दीया था, इसलिए विशेष बातचीत भी नहीं कर सका ॥ २ ॥ ३ ॥ अब मैं क्या कहूँ ? कैसे प्रभुके पास लौटकर जाऊँ ? यदि वे बिना हाथ लिये मुझे लौटे दस्वने तो क्या कहूँगे और फिर यदि हाथ काटना चाहूँ तो कैसे काटूँ ? जिन्होंने अपने बन्धक समान मेरा हुलार किया, उन सीताके साथ यह कमाईका काम करनेके लिये मैं क्योंकर आगे बढ़ सकूँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसलिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि यही आगमें जरकर मर जाऊँ । रामको मुहं ही न दिखाऊँ तो अच्छा हो । इस प्रकार विचार करके लक्ष्मणने चिता बनानेका निश्चय किया ॥ ६ ॥ इसी बीचमें कृष्णके आज्ञानुसार विश्वकर्मा एक बड़ईका रूप धारण करके हाथमें कुन्हु ही लिये वनमें घूमते फिरते वहाँ आ पहुँच ॥ ७ ॥ लक्ष्मणने विश्वकर्मासे कहा—कृपया आप जरनी कुन्हाड़ासे थोड़ीसी लकड़ी काटकर मुझे चिता बनानेको दे दें, जिये ॥ ८ ॥ आप जितना घन भौंगो, दूँगा । बड़ईने कहा—हे वीर ! आप अपने लिये चिता बनानेका कारण ही हमें बताइये ॥ ९ ॥ लक्ष्मणने आदिसे अन्ततक सारा वृत्तान्त बता दिया । उसे सुनकर मुस्कराते हुए विश्वकर्माने कहा—॥ १० ॥ इतनी सी बातके लिये आप अपने इस बहुमूल्य शरीरको आगमें मत्त जलाइये । मैं अभी क्षणभरमें सीताका हाथ बनाकर आपको देता हूँ ॥ ११ ॥ तदनुसार तनिक ही देरमें विश्वकर्माने सीताका ऐसा हाथ बना दिया, जिसमेंसे रुधिर बह रहा था, मांसके लोचड़े झूल रहे थे और कन्धुकी षड़ी हुई थी ॥ १२ ॥ सीताके उस हाथमें सब चिह्न विद्यमान थे और अलङ्कार पड़े थे । उस हाथका लक्ष्मणके हाथमें लेकर विश्वकर्मा अन्तर्धान हो गये ॥ १३ ॥ तब लक्ष्मण बहु मुजा लेकर अयोध्यापुरीको

दशयामाम नीताया भुज कङ्कणमण्डितम् । तं निरीक्ष्य भुजं रामोऽधोमुखः प्राह लक्ष्मणम् ॥१६॥
कैकेयीं सुहृदः पीगन् सर्वान् जानपदानुपान् । सीताभुजो दर्शनीयस्त्वयाऽद्य मम शमनात् ॥१७॥
तथेन्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि स चकार यथोदितः । भुजं सम्प्रयामास पेटिकायां निधाय सः ॥

कैकेयी तं भुजं दृष्ट्वा तुतोष नितरां हृदि । १८॥

रामोऽपि सीतारहितः परात्मा विज्ञानद्वकेशल आदिदेवः ।

मन्यज्य भोगानखिलान्निरक्तो मुनिव्रतोऽभून्मुनिसेविनाग्निः । १९॥

अथ सीताऽपि वाल्मीकेर्मुनिपत्नीमिराश्रमे । प्रत्यहं पूजिता धन्यैः सुखं तस्यै मुदान्विता । २० ॥
एवं मामद्वयं तत्र नीन्दा साताऽऽश्रमे मुनेः । सुदिने सुपुत्रे रात्रौ पुत्रस्तनं रविप्रभम् । २१॥
एतस्मिन्ननरे रात्रौ तांश्च तं ममयं प्रभुः । राघवः किंकिणीमात्रघटां मुक्त्वाऽथ वधुना । २२॥
पुष्पकस्थं ततस्तस्मिन् स्थित्वाकाशयथा ययौ । वाल्मीकेराश्रमे वेगात्सर्वन्धुम्नं ननाम सः । २३॥
ततो वाल्मीकिना विप्रामर्तरेव स्थूलमः । जातकमादिसंस्काराश्चकार विधिपूर्वकम् । २४॥
सीतायाः पुरतः पुत्राननमालोकयन्मुदा । ददौ दानान्यनेकानि मन्त्राभरणान्यपि । २५॥
चकार विधिवन्त्वाहं पुत्रजन्ममहोत्सवे । देवदुन्दुमयो नेदुर्ववधुः पुष्पवृष्टिभिः । २६॥
भूराः सीतां शिशुं रामं ननृतुः स्त्रे मुरस्त्रियः नेदुर्जनकवाद्यानि ननृतुर्वारक्षोपितः । २७॥
तुष्टुर्मागधाद्याश्च सीतां रामं शिशुं सुहृदः । ऋषिपत्नयः शिशुं सीतां रामं दीपैः मभूषिताः । २८॥
पृथङ्नीराजनं कृत्वा जगुर्गीतं हि सुस्वरम् । वन्द्यैः पूजयामास ताः मर्वा रघुनन्दनः । २९॥
सीतागर्भा विदेहोऽपि पूजयाशस विस्तरात् । वाल्मीकिस्तु कुर्वैः शान्तिं चकार विधिना शिशोः । ३०॥

और चल पड़े । अयोध्यामें धुमने ही लक्ष्मणन देखा कि एक ही दिनमें अयोध्यापुरी सर्वथा श्रीहान हो गयी है । जिनसेही अबतक उठ रह है और बागे मूल उठती दीखती है । यह सब मिलकर उस दिन अयोध्यापुरी ऐसी लग रही थी, जैसे बिना स्त्रीका बिना घर । लक्ष्मण आत आते महलोंमें पहुँचे और र मन्मन्त्रज को साक्षात् हाथ दिखलाया । उस कङ्कण-विमण्डित सीताको भुजाको देखकर रामन अपना मननका अका मिया और- १४-१६॥ इस ने जाकर माता कैकेयी, मेरे मित्रो, राजाओ एवं पुरवासियों-का दिखलाया, यह मेरी आज्ञा है ॥ १७॥ 'तथागन्तु' कहकर लक्ष्मणने भी आज्ञाका पालन किया और एक घंटामें सम्हालकर सीताकी भुजा रख ली ॥ १८॥ कैकेयन माताकी भुजा देखा तो बहुत प्रसन्न हुई । इस र मन्मन्त्रजने सीतामें दिव्यता हाकर सब सामारिक भोगोंका त्याग दिया और तपस्वियोंके समान अपना जीवन चित्त लगे ॥ १९॥ उपर माताजी भी वात्सल्यिक आश्रमपर वहाँकी मुनिपत्नियोंसे पूजित हुनी हुई आनन्द जीवन वितान लगी ॥ २०॥ इस तरह ही महाना वात्सनपर साताने शुभ दिन और शुभ घड़ोंमें एक पुत्ररत्नका जन्म दिया ॥ २१॥ उसी समय रामचन्द्रका भी यह समाचार मिल गया और रात्रिको अपने पुष्पक विमानपर चढ़कर लक्ष्मणजीके साथ आकाशमार्गसे श्रीवल्मीकिजीके आश्रमपर जा पहुँचे और लक्ष्मण तथा रामन मुनिका प्रणाम किया । २२॥ २३॥ इसके अनन्तर वाल्मीकिने आश्रममें उपस्थित घाड़ोंमें बाह्यणोंक साथ बन्वका विधिवत् जातकमोद संस्कार किया ॥ २४॥ सीताके समक्ष राम-चन्द्रन हर्षपूर्वक बैठका मुख देखा और अनेक प्रकारक वस्त्र-आभरण आदि दान करके बाह्यणोंको दिये ॥ २५॥ उस पुत्र-जन्मका प्रसन्नतामें रामन नान्दामुख-प्रादु दि किया । दत्ताभान प्रसन्न होकर दुन्दुभो वजायो और उनपर फूल बरसाये ॥ २६॥ सीता और सीताके पुत्रका मुख देखकर दवाहूनाय नाचन लगी । उपर जनकजीक द्वारा नियुक्त बजवाले बाजा बजाने लग और दरवाय नाचन लगी ॥ २७॥ वन्दीजन सीता और रामको स्तुति करने लगे । ऋषिपत्निकाने सुन्दर घालन घनका दापक जलाकर राम, सीता तथा नवजात शिशुका आरती उतारि और विविध प्रकारक मङ्गलमान गाये । रामन अनेक तरहक वस्त्र, भूषणोंमें उनका संस्कार किया ॥ २८॥ २९॥ महाराज जनकन भी राम और सीताका विविध पूजन किया और वाल्मीकिने

शांत्यर्थं प्रोक्षितो यस्मान्कुशैश्चस्मान्कुशः । वञ्चनीकिना राघवाग्रं निश्चितो बालकस्य हि ॥३१॥
 एवं नानाममृन्माहृतीन्वा सत्र निशां सुप्तम् । तत्रस्थान् मकलानाह समन्त्रागमनस्य हि ॥३२॥
 यस्माद्दार्ता बहिर्गच्छेदाश्रमादस्य वै धुनेः । स मे दण्ड्यो महेद्व शत्रुरपि न क्षयः ॥३३॥
 इत्युक्त्वा सकलान्दृष्ट्वा मुनीन्पुनः पुनः । यानामामंश्च श्रोतमो यान भ्रात्राऽऽरुह मः ॥३४॥
 विहायसा धुनाम्प्राप साकेतं गृध्रनन्दनः । अवरुह्य विमानात्पुनः पदवन्निद्रिनी गृहे ॥३५॥
 अथ रामो वाजिमेघशतं कर्तुं मनो दधे । कृत्वा स्वर्णमयीं सीतां चकालकाभूपिताम् ॥३६॥
 पापिनीं मलिनीं दुष्टां भर्तुर्निशपरायणाम् । भर्तुर्विद्वेषिणीं क्रूरां चारिकर्मणि तन्परां ॥३७॥
 भर्तारं घातुमिच्छन्तीं मदा कलहकाशिनीम् । परभुकां पावरां भर्तुर्विषयविलोपिनीम् ॥३८॥
 स्वीयेच्छयतिनीं नष्टां मुनीं नीतां गतां स्त्रियम् । त्यक्त्वा कुशमयीं विप्रैः काथा पत्न्या स्वकमसु ॥३९॥
 हंभी कार्या बाहुरेश्वर्यैः कार्या तु राजनः । शूद्रैः कार्या ताम्रमयी स्वयम्कर्मप्रसिद्धये ॥४०॥
 अथवा सर्ववर्णैश्च कार्या पत्नी तु कञ्चनी । रामोऽपि कृत्वा सीवर्णिमग्निदोत्रं चकार मः ॥४१॥
 रावणेन यदा नीता सीता सा दृढके तदा । हेम्नोऽप्यवात्कुशमयी कृत्वा रामेण जानकी ॥४२॥
 अन्ये कुशमयीं पत्नीं विधाय गृहमेधिनः । अग्निदोत्रमुपामन्ते नित्यस्वागोऽतिगर्हितः ॥४३॥
 न्यभिचारवतीं पाषा भर्तुर्विद्वेषिणीं तथा । आधाने सा परित्याज्या न वा तस्याज्या मनीतरात् ॥४४॥
 पक्षे पक्षे नवम्बा हि स्नानं स्रवभूषामिवम् । कर्तुं निश्चितवान् रामस्तदा विप्रैः पुरोधसा ॥४५॥
 भागीरथ्युत्तरे तीरे यत्तभूमिं चकार मः । आप्रयागान्मुद्गलस्याश्रमो यावच्च दक्षिणे ॥४६॥

विधिपूर्वक कुशासे अभिषेक करते हुए शांति-यात्र किया ॥ ३० ॥ शांति-के निमित्त वास्तविकसे कुशासे शांति की थी । इसीलिए उन्होंने रागके सामने हाँ उस बच्चका नाम कुश रखवा ॥ ३१ ॥ इस तरह नाना प्रकारके उरसबोमें वह रात बतीं बितायी और पिछली रातका रामने आश्रमके लोगोंसे कहा कि जो कोई भुक्त्य भरे यहाँ आनेका सनाचार किसीका कइगा, वह मेरा भाग्य हाश और मैं उसको दंड दिये बिना न रहूँगा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर रामने अथाधरा बापस आनेके लिए लोगोंसे आवा माँगा और मुनिश्रीका प्रणाम किया । फिर सीतास पूजकर रामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ विमानपर अलङ्कृत हुए और बाढ़ी दरम अयोध्या आकर निम्नकी तरह अपना मन्त्रापर सो गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ कुछ दिन शांतिके बाद रामने ही आश्रममें यज्ञ करनेका विचार किया । उस समय सीता ना थी नही । इसलिए रामने सुवर्णकी सीता बनाकर यज्ञ करना निश्चित किया । क्योंकि शास्त्रमें लिखा है कि पापिन, मेली कुचेली, दुष्ट स्वभावकी, निन्दा करनेवाली, पतिसे छटाई करनेवाली, पूर प्रवृत्तिकी, मोट्टिन, स्वामीकी मारनकी इच्छा रखनेवाली, सदा लड़ाई करनेवाली, बूझटा, स्वामीकी आज्ञाके प्रतिकूल चलनवाली और स्वेच्छाचारिणी स्त्री यदि सी जाय, मरे जाय या किसीके हाथ भगा सी जाय अथवा स्वयं भग जाय तो उसको त्यागकर ब्राह्मण कुशकी, क्षत्रिय सुवर्णकी, वैश्य चाँदीकी और शूद्र ताम्रकी स्त्री बनाकर यज्ञ दि कर्म करे ॥ ३६-४० ॥ अथवा सामर्थ्य होतपर सब जातिके लोग सुवर्णकी नारी बनाकर अपना काम चलायें । इन्हीं शास्त्रीय आज्ञाओंसे रामने सुवर्णकी सीता बनाकर अपना यज्ञ प्रारम्भ किया ॥ ४१ ॥ पहले जब दण्डक बनमें सीता हार सी गयी थी और रामको रामेश्वर स्थापनाके समय सीताकी आवश्यकता पड़ी थी, तब उन्होंने सुवर्णके अभावमें कुशकी ही सीता बनाकर रामेश्वरको स्थापना की थी ॥ ४२ ॥ कुछ मुद्गल नारीके अभावमें कुशकी स्त्री बनाकर अभिषेक करने हैं, यह भी ठीक है । कहनेका मतलब यह कि स्त्रीके अभावमें किसी प्रकारकी स्त्री अवश्य बना लेनी चाहिए । क्योंकि स्त्रीके बिना कोई भी याज्ञिक कार्य सम्पन्न नहीं होता । कुछ आचार्योंका मत है कि—“न्यभिचारिणी, पापिनी तथा स्वामीसे शत्रु करनेवाली स्त्रीका सदाके लिए परित्याग कर देना चाहिए” बूझका यह मत है कि “परित्याग न भेँ करे तो कोई हानि नहीं ।” ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ रामने शूद्रके नवमीकी एक अभिषेक यज्ञ पूर्ण करनेका निश्चय किया और भागीरथीके उत्तरी तटपर यज्ञशाला बनानेकी बात

अह्वयुनस्तस्तावचकार स्वर्णलंगलैः । यस्याश्रमस्य सान्निध्ये भागीरथ्यस्युदग्वा ॥४७॥
 रुचममयाऽथ जानक्या यज्ञारंभ चकार सः । अज्ञानदग्भ्यो द्रष्टुं वै चकार स्वर्णनिर्मिताम् ॥४८॥
 वामांगस्थां गुप्तरूपां जानदगम्यथ सान्निधीम् । विभ्रन्मदैव श्रीगमो जानकीं लोकमातरम् ॥४९॥
 यज्ञान्ते स्वर्णजां सीतां ददौ स्वगुणैः प्रभुः । एवं यज्ञान्तेश्च गुरवे शतमूर्तयः ॥५०॥
 याः समर्पिता रामेण तासां दानकलेन हि षोडशस्त्रीमहस्रंभ्यश्चोर्ध्वं स्त्रीणां शत्रु पुनः ॥५१॥
 द्वारकायां कृष्णरूपो विवादेनोद्ग्रहियति । प्रतियत्ते स्वामकर्णमश्वं रामो मुपोच ह ॥५२॥
 चतुर्दिनञ्चतुर्दिनु परिक्रम्य ययौ हयः । एवं सर्वेषु यामेषु ययौ बाजो पृथग्जवात् ॥५३॥
 पुष्पकस्थः स शत्रुघ्नो हयगर्भां चकार वै । एवं मदा यज्ञवाटे विरेजे दीक्षया विभुः ॥५४॥
 एवं च नवतिसंख्या रामेण नव वै कृताः । चरमस्यापि प्राग्भ्यं रामो यज्ञस्य सोऽङ्गोत् ॥५५॥
 गंगाया दक्षिणे तीरे मुद्गलस्याश्रमोऽस्ति हि । तत्र तस्यान्तिके गंगोदन्तारे च उदग्वाहे ॥५६॥
 दिनानि दश बाल्मोकिनिशायां सध्ययोरपि । श्रीगमरक्षया चक्रे बालकस्याभिमंत्रणम् ॥५७॥
 कुशं नाम तदा चक्रे मुनिरेकादशे दिने । चकार सर्वसंस्कारान् मुनिः श्रीराघवाज्ञया ॥५८॥
 एवं स बालकस्तत्र ववृधे मातृलालितः । जनकश्च सुमेधा च नानावस्त्रैः सुशोभनैः ॥५९॥
 शोभयामास दौहित्रं नानाव्याघ्रनखादिभिः । बालोऽपि रजयामास स्वकोडाभिर्विदेहजाम् ॥६०॥
 एकदा निद्रित प्रेम्णे दृष्ट्वा बालं मुनेः पुरः । अन्यकर्मणि व्यग्रा च मखीं स्वीयां स्मरमातराम् ॥६१॥
 जनकं चापि सा सीता दृष्ट्वा सर्वा-वह्निर्गतान् । आश्विने रविवारे च नद्यां स्नातुं समुद्यता ॥६२॥
 मुनिं तं बालश्चायां कृत्वाऽथ तमसां ययौ । दास्या मागेण गच्छती ददर्श पथि वानरीम् ॥६३॥
 फटिस्फंधमस्तकेषु विभ्रतीं पञ्च शतकान् । तां दृष्ट्वा सशस्त्रिणं स्मृत्वाऽचिनयजानकीं हृदि ॥६४॥

टहरायां गयी । प्रसंगसंसार मुद्गल मुनिके आश्रमपर्यन्त जितना स्थान था, वह सुवर्णक हल्से जाता गया । रामकी उस यज्ञशालाके पास गंगा जी ठीक उत्तरकी ओर बह रही थी । ४५-४७ ॥ इसके अनन्तर रामने मुद्गलमयी सीताके साथ यज्ञकार्य प्रारम्भ किया । वह सुवर्णकी सीता अज्ञानी लोगोंको देखनेके लिए रखी गयी थी, किन्तु अज्ञानियोंको दृष्टिमें तो सत्त्विकी जानकी तब रामके वामभागमें निवास करती थी ॥४८॥४९॥ प्रत्येक यज्ञके समाप्त हो जानेपर राम वह स्वर्णमयी सीता अपने गुरु वसिष्ठको दान दे दिया करते थे । इस प्रकार प्रत्येक यज्ञकी पूर्णापर स्वर्णमयी सीता दन दन रामने सो सताओका दान किया । उस दानके फल-स्वरूप आगे वृष्णावतारमें उनको सोलह हजार एक सौ विजयी मिली । प्रत्येक यज्ञमें राम अपना ध्यामकर्ण थोड़ा दिग्विजयके लिए छोटन थे । वह चार दिनमें चारों ओर घूमकर लोट आया करता था । साथमें शत्रुघ्न पुष्पक विमानपर बैठकर घाड़की रक्षाके लिए जाया करते थे और रामचन्द्रजी दाक्षा लेकर यज्ञशालामें बैठे रहते थे ॥ ५०-५४ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीने निजानवें यज्ञ पूरा किया और अन्तिम सोई यज्ञ भी प्रारम्भ कर दिया ॥ ५५ ॥ गंगाके दक्षिण तटपर मुद्गल नामके एक ऋषिका आश्रम था और उत्तरवाहिनी गंगाके तटपर ही बाल्मोकि सन्ध्याके समय रामके पुत्र कुशका रामरक्षा मन्त्रसे अभिषेक कर रहे थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ग्यारहवें दिन बाल्मोकिने वच्चका नामकगण करके रामके आज्ञानुसार सब संस्कार किया ॥ ५८ ॥ बच्चा भी बड़ लाहूँदारके साथ समय बिताता हुआ बढ़ने लगा । जनक और सुमेधा अनेक प्रकारके सुन्दर वस्त्रों और व्याघ्रनखा आदि तरह-तरहके अलंकारोंसे अलंकृत करके रखते थे । बच्चा अपने कौनकोसे जानकीजीको प्रसन्न किया करता था । एक दिन कुश बाल्मोकिके पास पालनेपर सो गया । सखियाँ अन्य कामोंमें व्यस्त थीं । सीताके माता-पिता कहीं घूमने चल गये थे । उस रोज आश्विन मासके रविवारका दिन था । इसलिए सीताने नदामें स्नान करनेकी इच्छा की । सीताने बाल्मोकिजीसे वच्चको देखने रहनेके लिए कह दिया और स्वयं एक दासीको साथ लेकर तमसाकी ओर चल पड़ीं । रास्तेमें सीताने देखा कि एक वानरी अपने पाँच बच्चोंको कमर-बन्धे और मस्तकपर बैठाये चली जा रही है । उसे

तिर्यग्योनी जन्मवन्वा बानर्या बालकानहो । स्नेहान्महैव नीयन्ते धिङ्मा मानवदेहजाम् ॥६५॥
 एकं चापि निजं बालस्यकदा गेहेऽथ गम्यते । मया विमृष्टया स्नानं भुज्यत्र क्षणिकं सुखम् ॥६६॥
 इति धिक्कृत्य चान्मानं परिवृत्त्याश्रमं ययौ । एतस्मिन्नन्तरे गेहे बाल्मीकिर्मुनिपुंगवः ॥६७॥
 गडः स लघुशकार्यं कार्यार्थं बटवो गताः । गृहीत्वा सा कुशं प्रेताद्ययी मीना इतिः पुनः ॥६८॥
 दास्या सह नदीं गन्वोपसि स्नानं चकार वै । अदृष्ट्वाऽथ भुनिशालं दार्यं निःश्वस्य वै मुहुः ॥६९॥
 मीनाशापशपाचकं लव्वं चालं स पूर्ववत् । तपोवनेन तं प्रोक्ष्य जीवयामास वेगनः ॥७०॥
 ज्ञानदृष्ट्या तीव्रतया भुनिना नावलोकितम् । ततः मीनाऽपि मुस्नाता दास्या गेहं जनैर्ययी ॥७१॥
 कटौ गृहीत्वा तं बालं रुक्मरत्नपुगलैःस्वता । प्रेक्षेऽन्यं बालकं दृष्ट्वा मुनिं पप्रच्छ जानकी ॥७२॥
 प्रेक्षे कस्याः शिशुभायं मोऽपि दृष्ट्वा तदा कुशम् । कटिप्रदेशे जानक्या विस्मयं परमं गतः ॥७३॥
 नमस्कृत्य ततः मीनां सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् । अके निधाय तं बालं मीनाया दाम्बरीन्मुनिः ॥७४॥
 प्रसादान्मम वेदेहि द्वितीयोऽयं युतस्तव । भवन्वद्य लवो नाम्ना लवैर्यस्माद्विनिर्मितः ॥७५॥
 बाल्मीकिर्वचनान्साऽपि शिशुं जग्राह जानकी । मुनिस्तयोनां चक्रे कुशो ज्येष्ठोऽनुजो लवः ॥७६॥
 जलकर्मदिमस्कागान् लवस्यापि चकार मः । तदा निनेदुर्वाद्यानि भूम्यां स्त्रेऽपि दिवीकृत्याम् ॥७७॥
 वर्षर्षुजानकीं बालीं बाल्मीकिं कुमुमैः मुराः । चकार जनकश्चापि मुषेधा परमोन्मवान् ॥७८॥
 क्रमेण विद्यामपन्नो मीनापुत्री विरेजतुः । धनुर्विद्यामस्त्रविद्यां शिक्षयामास तौ मुनिः ॥७९॥
 कुन्तनं रामायणं स्वीयं कृतं तौ शिष्यन्मुदा । यस्मिन्नानन्दरम्यं च चरित्रं राघवस्य हि ॥८०॥
 कुमारौ स्वरमपन्नौ सुन्दरावधिनाविव । तन्त्रीलयममायुक्तौ गायतौ चैरतुर्वने ॥८१॥
 तत्र तत्र मुनीनां तु समाजेषु मरुषिणौ । गायन्तावपि नौ दृष्ट्वा विस्मिता मुनयोऽब्रुवन् ॥८२॥

देवकर उन्होंने अपने मनमें सोचा कि तिर्यग्योनिका स्त्री होकर भी यह बानरी कितन प्रेमसे बच्चोंको अपने साथ रखती है । मुझ मानवजानकी मामिनीको धिक्कार है, जो अपने एक लड़केको आश्रमपर छोड़कर तमसा स्नान करने जा रहा है ॥ ६५-६६ ॥ इस तरह अपनका धिक्कारकर सीता वहाँसे फिर आश्रमको लौट पड़ी । इसी बीच बाल्मीकिजा स्वयंभू नरनेके लिये बाहर चले गये थे । विद्यार्थी भी अपने अपने कामसे पहले ही चले जा चुके थे । इतनेमें सीता पहुँची । उन्होंने कुशको उठा लिया और दासीके साथ तमसाकी ओर चली गयी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उधर बाल्मीकि लौटकर आये तो उनकी निगाह पालनेपर पड़ी । उसपर बच्चेको नहीं देखा । ऐसी अवस्थामें मुनिराजने एक लम्बी साँस ली और सीताके हाथके मध्यमें अपने तपोबल द्वारा लवसे कुशके समान ही एक बालक और बना दिया ॥ ६८-७० ॥ घबराहटके कारण उन्होंने अपनी ज्ञानदृष्टिसे यह नहीं देखा कि सीता कुशको अपने साथ ले गयी है । कुछ देर बाद स्नान करके सीता भी दासीके साथ घाँरे-घाँरेसे कुटियाम आयी ॥ ७१ ॥ वहाँ उन्होंने देखा कि कुशके समान ही अलंकारदिसे विभूषित एक बालक पालनेपर पड़ा सो रहा है । यह देखकर सीताने क्रुपिसे पूछा कि यह किसका बच्चा है ? उधर क्रुपिने देखा कि कुश तो सीताकी कमरपर है, तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ फिर उन्हें नमस्कार करके बाल्मीकिने वह वृत्त बतलाया, जिसके कारण उन्हें दूसरा बच्चा बनाना पड़ा था । उसके पश्चात् मुनिनैमिकारकर लवको सीताकी गोदमें दे दिया और कहा— ॥ ७४ ॥ बंवि ! इसे भी सम्हालो । तब सीताने उस बच्चेको भी अंगीकार किया । मुनिन कहा—इन दोनोंमें उज्ज्वल कुश होगा और कनिष्ठ (छोटा) लव ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने लवका भी जातकर्म आदि संस्कार किया । उस समय विविध प्रकारके बाज बजे । स्वर्गमें देवताओंने भी मंगलवाद्य बजाकर जानकी, शिशु तथा बाल्मीकिके ऊपर फूलोंकी वर्षा की । सुमेधा तथा जनकन विविध उरसव किये । जमरा दोनो पुत्र बढ़े हुए । उन्होंने अनेक निद्याओंका अध्ययन किया और महर्षि बाल्मीकिने उनको धनुर्विद्या तथा अस्त्रविद्या भी सिखायी ॥ ७६-७८ ॥ फिर अपनी बनायी सम्पूर्ण रामायणकी भी उन्हें शिक्षा दी । जिसमें रामचन्द्रजीका आनन्ददायक चरित्र वर्णित था ॥ ८० ॥ अश्विनीकुमारकी भाँति सुन्दर वे दोनो बालक मधुर स्वरसे

गन्धर्वेष्विह किमरेषु भुवि वा देवेषु देवालये
पातालैष्वथ वा चतुर्मुखगृहे लोकेषु सवषु च ।
अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरं द्रष्टुं दिशः सर्वतो
नाज्ञायीदृशमीतवाद्यगरिमा नादांश्च नाश्रावि च ॥८३॥

एवं स्तुवद्भिरमूर्तिर्मुनिभिः प्रतिवासम् । आसदे सुखमेकांते वाल्मीकेराश्रमे चिरम् ॥८४॥
रुक्मकंठगमज्जगरन् पुरंरुचौ विभूषितौ । केयूरशतहाकुण्डलैरतिशोभितौ ॥८५॥
निजक्रीडाकौतुकैश्च वाल्वाक्यैर्मनोहरैः । सीतां सुमेधां जनक रञ्जयामासतुर्मुनिम् ॥८६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे
कृष्णलवजन्मकथनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामाज्ञा-महामन्त्र)

विष्णुदास उवाच

श्रीरामरक्षया प्रोक्तं कुशस्य अभिमन्त्रणम् । कृतं तेनैव मुनिना गुरो तां मे प्रकाशय ॥ १ ॥
रामरक्षां वरां पुण्यां बालानां शान्तिकारिणीम् ।

श्रीशिव उवाच

इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदामोऽज्वरीद्वचः ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्पक् पृष्ट त्वया शिष्य रामरक्षाऽधुनोच्यते । या प्रोक्ता शंभुना पूर्वं स्कन्दार्थे गिरिजां प्रति ॥ ३ ॥
श्रीशिव उवाच

देव्यद्य स्कन्दपुत्राय रामरक्षाभिमन्त्रणम् । कुरु तारकघाताय समर्थोऽयं भविष्यति । ४ ॥
इत्युक्त्वा कथयामास रामरक्षां शिवः स्त्रियै । नमस्कृत्य रामचन्द्रं शुचिर्भूत्वा जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥

बीणाकी क्षनकारके साथ वनमें रामचरित्र गाया करते थे ॥ ८१ ॥, जहाँ-तहाँ मुनियोंकी मण्डलीमें जब वे दोनों सुकुमार बालक रामचरित्रका गायन करते थे तो सबके मुँहसे सहसा यह वाक्य निकल पड़ता था कि हम लोगोंने अपनी लम्ब आगुमें गंधर्वों, किन्नरों, मनुष्यों, दवताओं, पाताललोकवासियों, ब्रह्मलोकवासियों एवं सारे ब्रह्माण्डवासियोंका अनक गायकीके गायन सुने हैं, लेकिन उनमें कहीं न ही मैंने इस प्रकार वाद्यकाकी निपुणता देखा और न गायनमें ऐसी मिठास हों पायी ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इस तरह सब ऋषियोंसे प्रशंसित होकर वे दोनों एकान्तमें वाल्मीकीक आश्रमपर रहा करते थे । मुवर्णक कङ्कण, तूपूर, केयूर, करमनो, हार तथा कुण्डल पहननेसे वे और भी सुन्दर दाखते थे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ प्रतिदिन उनकी मनोहर बाललीला देख देखकर सुनि, सीता, सुमेधा और जनकजी मारे खुशीक फूले नहीं समाते थे ॥ ८६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये प० रामतज्जपाण्डवकृतमायाटोकासमन्विते जन्मकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरुदेव ! जिस रामरक्षा-मंत्रसे वाल्मीकिने कुशका अभिमन्त्रण किया था, उसे हमको बताइए ॥ १ ॥ क्योंकि मैंने सुना है कि वह रामरक्षामन्त्र बड़ा पवित्र सुन्दर और बालकोको शान्ति प्रदान करनेवाला है । शिवजीने कहा—इस प्रकार शिष्यकी प्रार्थना सुनकर श्रीरामदास कहने लगे—हे प्रिय शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं तुम्हें वह रामरक्षामन्त्र बतलाता हूँ, जिसे एक बार शिवजीने पार्वतीको स्वामिकावतिकाकी रक्षाके लिए बतलाया था ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीशिवजी बोले—हे देवि ! आज बडाननके

अथ ध्यानम्

रामे कोदंडदंडं निजकरकमले दक्षिणे बाणमेकं

पद्माङ्गागे च निर्वृणं दधत्तमभिमतं सासितूणीरभागम् ।

रामेऽवामेव सङ्ख्यां सह मिलिततनुं जानकीलक्ष्मणाभ्यां

इयामं रामं भजेऽहं प्रणतजनमनःखेदविच्छेददक्षम् ॥ ६ ॥

अस्य श्रीरामरक्षास्तोत्रमंत्रस्य बुधकौशिकऋषिः श्रीरामचंद्रो देवता राम इति बीजम्

अनुष्टुप् छंदः श्रीरामप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

चरितं रघुनाथस्य श्वनकोटिप्रविस्तरम् । एकैकमक्षरं पुमां महापातकनाशनम् । ७ ॥

ध्यान्वा नीलोत्पलश्याम रामं राजीवलोचनम् । जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमंडितम् ॥ ८ ॥

सामितूणधनुर्बाणशणिं नक्तचरन्तकम् । स्वलीलया जगन्नातुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥ ९ ॥

रामरक्षां पठेन्प्रातः पापघ्नो मरकानदाम् । क्षिरो मे राघवः पातु भार्ता दशरथात्मजः ॥ १० ॥

कीमन्धेयो दृशी पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुता । घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सीमित्रिवन्मलः ॥ ११ ॥

जिह्वां विद्यानिधिः पातु कंठ भरतवदितः । स्कंधौ दिव्यायुधः पातु भ्रुजौ भग्नेशकामुकः ॥ १२ ॥

करी सीतापतिः पातु हृदय जामदग्न्यजित् । पार्श्वे रघुवरः पातु कुक्षौ हस्वाकुनन्दनः ॥ १३ ॥

मध्यं पातु खण्डवमी नाभिं जाववदाश्रयः । सुग्रीवेशः कटिं पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ॥ १४ ॥

ऊरू रघूत्तमः पातु गुदां रक्षःकुलांतकृत् । जानुनी सेतुकृन्पातु जघे दशमुखान्तकः ॥ १५ ॥

पार्श्वौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिल वपुः ।

एतां रामवलापेता रक्षां यः मुकुती पठेत् । स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ॥ १६ ॥

पातालभूतलव्योमच गिण्डलत्रचाग्निः । न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥ १७ ॥

रामेति राममद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् । नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ॥ १८ ॥

रक्षाय तुम्हें रामरक्षामन्त्र बतला रहा है । अथ ध्यानम् । जिन रामचन्द्रजीके बायें हाथमें धनुष, दाहिने हाथमें एक बाण और पाँचपर बाणोंमें भरा हुआ तरकस है । जिनकी बायी तथा दाहिनी ओर लक्ष्मण और सीता हैं । भक्तोंके मनका पंखा नष्ट करनेमें निगूण श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ ४-६ ॥

विनियोगके अन्तर—सी करोड़ श्लोकोंमें विस्तारसे वर्णित भगवान् रामके चरित्रका एक एक अक्षर महान् परोका भी नाश करता है । नीलकमलकी नाई श्याम तथा राजीवलोचन, जिनके आस पास लक्ष्मण तथा जानकाजी विराज रही हैं । जिनका मन्तक जटामुकुटसे अलकृत है । तलवार, तरकस, धनुष और बाणका लिये जा राक्षसोंका यमराज सहस्र भीषण दीनता है । जो जगत्की रक्षाके निमित्त अपने इच्छानुसार जगतीतलपर क्षवर्तर्ण हुए हैं, ऐसे रामका ध्यान करके सब कामनाओंको पूर्ण करते तथा पारोका नाश करनेवाले रामरक्षामन्त्रका पाठ करें । राघव यह रामचन्द्रजीका नाम मेरे सिरकी रक्षा करे ॥ ७-१० ॥

दशरथात्मज लक्ष्मणकी रक्षा करे । कीमन्धेय नेत्राकी, विश्वामित्रप्रिय कानोकी, मखत्राता नाककी और सीमित्रवत्सल मुखकी रक्षा करे ॥ ११ ॥ विद्यानिधि जिह्वाकी, भरतवदित कंठकी, दिव्यायुध दोनों बाणोंकी, भग्नशकामुक भुजाआका, सीतापति हाथोकी, जामदग्न्यजित् हृदयकी, रघुवर पार्श्वभागकी, हस्वाकुनन्दन पैरकी, खण्डवमी शरीरके मध्यभागकी, जाववदाश्रय नाभिकी, सुग्रीवेश कमरकी, हनुमत्प्रभु हड्डियोंकी, रघूत्तम दोनों गुदनोकी, रक्ष कुलांतकृत् गुदाकी और दशमुखान्तक मेरी जाँधोंकी रक्षा करे ॥ १२-१५ ॥

विभीषणकी राक्षसदत्ताले परोका और राम सारे शरीरकी रक्षा करे । जो मनुष्य रामके बलसे परिपूर्ण इस रामरक्षामन्त्रका पाठ करता है वह चिरायु, सुखी, पुत्रवान्, विजयी और विनयी होता है ॥ १६ ॥ पाताल-चारी, भूमिचारी, व्योमचारी और छधचारी कोई भी भूत प्रेतादि बाधा रामरक्षामन्त्रसे अभिमंत्रित जनपर दृष्टिपात नहीं कर सकते । जो मनुष्य राम, रामभद्र अथवा रामचन्द्र इस नामका स्मरण करता है, वह पापसे

जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाऽभिरक्षितम् । यः कंठे धारयेत्तस्य करम्याः सर्वसिद्धयः ॥१९॥
 वज्रपंजरनामेदं यो रामकवचं पठेत् । अघ्याहतातः सर्वत्र लभते जयमंगलम् ॥२०॥
 आदिष्टवान् यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः । तथा लिखितवान् प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः ॥२१॥
 रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली । काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौसल्यानन्दवर्धनः ॥२२॥
 वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुण्यपुरुषोत्तमः । जानकीवल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥२३॥
 इत्येतानि जपेन्नित्यं मद्भक्तः श्रद्धयाऽन्वितः । अश्वमेधायुतं पुण्यं संप्राप्नोति न संशयः ॥२४॥
 सन्नदः कवची खड्गो चापबाणधरो युवा । गच्छन् मनोरथोऽस्माकं रामः पातु सलक्ष्मणः ॥२५॥
 तरुणो रूपमपन्नो मुकुमारो महाबली । पुण्डरीकविशालाक्षी चरकृष्णाजिनांबरी ॥२६॥
 फलमूलाशनो दातो तापसा ब्रह्मचाणिगौ । पुत्रो दशरथस्येतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥२७॥
 धन्विनौ वदनिस्त्रिंशौ काकपक्षधरी श्रुतौ । वीरौ मां पथि रक्षेतां तावुमौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥
 सग्न्यौ सर्वमच्चानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् । रक्षःकुलनिहतारी श्रायेतां नो रघूत्तमौ ॥२९॥

आत्तसज्जधनुषाविपुस्पृशावक्ष्याशुगनिपगमगिर्ना ।

रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम् ॥३०॥

आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः मकलापदाम् । अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान् स नः प्रभुः ॥३१॥

रामाय रामभद्राय रामचद्राय वेधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥३२॥

श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम श्रीराम राम राम भरताग्रज राम राम ।

श्रीराम राम रणकर्कश राम राम श्रीराम राम शरणं भव राम राम ॥३३॥

लोकाभिरामं रणरंगधीरं राजीवनेत्रं रघुरञ्जनायम् । कारुण्यरूपं करुणाकरं तं श्रीरामचंद्रं शरणं प्रपद्ये ॥

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा । पुरतो मारुतिर्यस्य तं वंदे रघुनन्दनम् ॥३५॥

विपुल होकर मुक्ति और भुक्ति का भागी हाता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ समस्त जगत्को जीतनेवाले इस रामरक्षा-
 मन्त्रको जो मनुष्य कण्ठस्थ कर लेता है तो संसारकी सारी सिद्धियाँ उसके हाथमें आ जाती हैं ॥ १९ ॥
 जो प्राणी इस वज्रपंजर रामकवचका पाठ करता है, उसको आज्ञा कहीं भी नहीं टलती और सर्वत्र उसकी
 विजय होती है ॥ २० ॥ स्वप्नमें यह रामरक्षामन्त्र शिवजीने जंसा बतलाया था, सपने सोकर उठते ही विष्णु-
 मित्रने उसी तरह लिख लिया ॥ २१ ॥ राम, दाशरथि, शूर, लक्ष्मणानुचर, बली, काकुत्स्थ, पुरुष, कौसल्या-
 नन्दवर्धन, वेदान्तवेद्य, यज्ञेश, पुण्यपुरुषोत्तम, जानकीवल्लभ, श्रीमान् तथा अप्रमेय पराक्रम इन नामोंका श्रद्धा-
 पूर्वक जप करनेवाला भक्त दस हजार अश्वमेध यज्ञ करनेका फल पाता है । इसमें कोई संशय नहीं है
 ॥ २२-२४ ॥ मद्भक्तकवची, खड्गो, चापबाणधर, युवा और लक्ष्मणके साथ जाते हुए श्रीरामचंद्र हमारे मनो-
 रथोंकी रक्षा करें ॥ २५ ॥ तरुण, रूपमपन्न, मुकुमार, महाबली, कमलकी नाई बड़ी-बड़ी आँखोंवाले, पीतांबरधारी,
 फल-मूल खानेवाले, उदारप्रवृत्ति सपत्नी, ब्रह्मचारी, वन्वी, निर्ग्रन्थधारी तथा काकपक्षको धारण किये दशरथके
 दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण रास्तमें आते समय हमारी रक्षा करें । संसारी जीवोंके आधार, धनुर्धारियों-
 में श्रेष्ठ, राक्षसकुलके विनाशक राम और लक्ष्मण मेरा रक्षा करें ॥ २६-२८ ॥ विष्णुकुल तैवार घनुष जिसपर
 बाण बड़ा है, उसे लिये और अक्षय बाणवाने नृजीरको कसे रामलक्ष्मण सदा रास्तमें हमारे आगे-आगे चले
 ॥ ३० ॥ जो कल्पवृक्षके आराम (वगोचा), समस्त विपत्तियोंके विराम (समाप्ति) और तीनों लोकोंमें
 अभिराम (सुन्दर) हैं, वे श्रीमान् रामचन्द्रजी हमारे प्रभु हैं ॥ ३१ ॥ राम, रामभद्र, सर्वमहा, रामचंद्र, रघुनाथ,
 तथा सीताके पति रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ हे श्रीराम, हे रघुनन्दन राम, हे भरताग्रज
 राम, हे रणकर्कश श्रीराम, हे राम, हमको शरण दीजिए ॥ ३३ ॥ संसार भरमे अतिशय सुंदर, संग्राममें निपुण,
 कमल सरीसे नेत्रोंवाले, रघुवशक स्वामी करुणाकी मूर्ति और दयाके स्रष्टार श्रीरामचन्द्रकी मैं शरणमें हूँ ॥ ३४ ॥
 जिनकी दाहिनी ओर लक्ष्मण, बाईं ओर सीता और सामने हनुमानजी उपस्थित हैं, ऐसे रघुनन्दन रामको मैं

गोष्पदीकृतवारीशं मशर्काकृतराजमम् । रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥३६॥
 अधौघं विष्टं दूरे त्वं रोगास्तिष्ठन्तु दूरतः । धरीवर्ति मदाऽस्माकं हृदि रामो धनुर्धरः ॥३७॥
 मनोजवं मारुततुल्यवेगं जिनेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
 चातात्मजं बानरयुधमुखं श्रीगमदूतं शरणं प्रपद्ये ॥३८॥
 राम राम तव पादपङ्कजं चिन्तयामि भवबन्धमुक्तये ।
 धंदितं सुरनरेन्द्रमालिभिर्ध्यायितं मनमि योगिभिः मदा ॥३९॥

रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् ।
 राजेंद्रं सत्त्वसन्धं दशरथनयं इशामलं शान्तिमूर्तिं वन्दे लोकाभिरामं रघुकुलनिनिकं गणध्वं राज्ञारिम् ।
 एतानि रामनामानि श्रावयन्त्या यः पठेत् । अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ॥४१॥
 माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः ।
 सर्वस्व मे रामचन्द्रो दयालुर्नान्यं जानं नैव जानं न जाने ॥४२॥
 श्रीरामनामामृतमन्त्रं योजयन्ती चेन्मनसि प्रविष्टा ।
 हालाहलं वा प्रलपानलं वा मृत्योर्मुखं वा विश्वतां प्रविष्टा ॥४३॥
 श्रीशब्दपूर्वं जयशब्दमध्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।

त्रिःशतकृत्यो रघुनाथनाम जयशब्दद्वयाद्द्वित्रिंशोऽष्टिहन्त्याः ॥४४॥

एव गिरीन्द्रजे प्रोक्ता रामरक्षा मया तव । मयोऽदिष्टा या स्वास्त्यावेच्छामिनाय वै पुरा ॥४५॥

श्रीरामराज उवाच

इति शिवेनोपदिष्टा भुक्त्वा देवी गिरीन्द्रजा । रामरक्षां पठित्वा सा स्कन्दं समभिमन्त्रयत् ॥४६॥

बन्धना करता है ॥ ३५ ॥ जिन्होंने सगुद्रका गीके छुरभर जलवाला बनाया, राक्षसोंको मच्छड़ोंके समान नष्ट किया और जो रामायण ॥ महामालाक मुख्य रत्न है, ऐसे पवनकुमार हनुमान्जीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३६ ॥ हे पागोंके समूह ! तुम हमसे दूर रहो और हे योगगण ! तुम हमारे पाससे भाग जाओ । क्योंकि हमारे हृदयमें धनुर्धरो रामचन्द्रजी बँडे हुए हैं ॥ ३७ ॥ मनके सहज जिनकी गति है, वायुके सरस जिनका वेग है, जिन्होंने इन्द्रियोंको बंधने कर लिया है जा बुद्धिमानीमें श्रेष्ठ है । ऐसे वायुके पुत्र, बानरी सेनाके सेनापति और श्रीरामचन्द्रजीके दूत हनुमान्की मैं शरणमें हूँ ॥ ३८ ॥ हे राम ! हे राम ! सासारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिए सुरनर इन्द्रादि तकके मस्तकोंमें पूजित आदिकें चरणोंका मैं मदा ध्यान करता हूँ । क्योंकि योगी लोग भी सदा-सर्वदा उन चरणोंके चिन्तनमें लगे रहते हैं ॥ ३९ ॥ लक्ष्मणके ज्येष्ठ भ्राता, रघुवर्षामे श्रेष्ठ, सीताके पति, परमस्ववानु, कबुस्थके वंशज, कदगाके वारिधि, गुणाक निधि, ब्राह्मणोंके प्रिय, धर्मके सत्त्वज, राजाओंके राजा, सत्त्वप्रतिज दशरथके पुत्र इयामरूप, शान्तिक मूर्तिस्वरूप, संसारके आनन्ददाता, रघुवंशके तिलक-स्वरूप, रघुवंशज एवं रावणके शत्रु रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४० ॥ जो प्राणी सबेरे उठकर इन नामोंका पाठ करता है, वह यदि अपुत्र हो तो उसे पुत्र मिलता है और धनकी इच्छा रखनेवाला हो तो धन मिलता है ॥ ४१ ॥ राम ही मेरे पिता है, राम ही माता है, वे ही मेरे स्वामी और सखा हैं । दयालु श्रीराम-चन्द्रजी ही मेरे सर्वस्व हैं । उन्हें छोड़कर मैं और किसीको नहीं जानता—किसीका नहीं जानता ॥ ४२ ॥ जिसके हृदयमें रामनामामृतमन्त्ररविणीं संजीवनो विद्यमान रहता है, वह हालाहल, प्रलपानल अथवा मृत्युके मुखमें भी क्यों न कूद जाय, उसको कहीं भी भय नहीं है ॥ ४३ ॥ पहले श्रीशब्द, बादमें रामनाम, फिर जय शब्द, फिर रामनाम, फिर दो बार जयशब्द जोड़कर (जयन् श्रीराम जय राम जय जय राम) इसकीस बार जप करनेवाला प्राणी करोड़ों ब्रह्महत्याओं जैसे महान् पातकोंको भी नष्ट कर देता है ॥ ४४ ॥ हे पार्वती ! मैंने तुम्हें वह रामरक्षामन्त्र बतलाया है, जिसे एक बार स्वप्नमें मैंने महर्षि विश्वामित्रको बतलाया था । श्रीराम-दासने कहा—इस प्रकार शिवजीके बतलाये हुए रामरक्षामन्त्रको सुनकर पार्वतीजीने स्वार्थिकास्तिकेयका उन्हीं

सम्यास्तेजोवलेनैव जघान तारकासुग्म् । धडाननः क्षणादेव कृतकृत्योऽभवन्पुरा ॥४७॥
 सैवैयं रामरक्षा ते मयाऽऽख्याताऽतिपुण्यदा । यस्याः श्रवणमात्रेण कस्यापि न भयं भवेत् ॥४८॥
 वाल्मीकिनाऽनया पूर्वं कुशाय ह्यभिषेचनम् । कृतं बालग्रहाणां च शान्त्यर्थं सा मयोदिता ॥४९॥
 बालानां ग्रहशान्त्यर्थं जपनीया निरन्तरम् । रामरक्षा महाश्रेष्ठा महार्थोद्यनिवारिणी । ५०॥
 नास्याः परतरं स्तोत्र नास्याः परतरो जपः । नास्याः परतरं किञ्चिन्मन्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥५१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितगतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे

रामरक्षाकथनं नाम पंचमः सर्गः ॥५॥

षष्ठः सर्गः

(लवका अयोध्यासे कमलपुष्प लेकर माता सीताको देना)

श्रीरामदास उवाच

एकदा जानकी प्राह वाल्मीकिं मुनिपुंगवम् । कथयस्व व्रतं येन रामयोगो भवेन्मम ॥ १ ॥
 तत्सीतावचनं श्रुत्वा वाल्मीकिस्तां वचोऽब्रवीत् । प्रतिपदिनमारभ्य यावन्मा नवमी मिता ॥ २ ॥
 तावन्नवदिनं सीते व्रतं कुरु मयोच्यते । प्रतिपदि रामचन्द्रपादुके धातुनिमित्ते ॥ ३ ॥
 कृत्वाऽर्च्यं नवकमलैर्द्वि मंत्राञ्जलिं शुभाम् । ततः पुत्राननाभ्यां त्वं जन्मकाण्डं शुभं शृणु ॥ ४ ॥
 अष्टादशकमलैश्च द्वितीयायां शुभाञ्जलिम् । मंत्रैर्द्वि पूजनान्ते पतिपादुकयोर्मुदा ॥ ५ ॥
 पतिं विना स्त्रिया नान्यत्पूजनीयं हि देवतम् । जन्मकाण्डं द्विवारं तु शृणु भक्त्या शुचिब्रते ॥ ६ ॥
 एवं धृद्धिर्नवाब्जैश्च कार्या सांते दिने दिने । नवम्यामेकाशीत्यब्जैः पूज्यस्व भर्तृपादुके ॥ ७ ॥
 नववारं जन्मकाण्डं पुत्राश्वाभ्यां सुखं शृणु । ततो दशम्यां सुस्नानैकाशीतिं द्विजदंष्टरीन् ॥ ८ ॥
 संपूज्य वस्त्राभरणैर्भोजयस्वाश्रमं मथिलि । दत्त्वा तेभ्यो दक्षिणास्त्वं विसर्जय प्रणम्य तान् ॥ ९ ॥

मंत्रोंसे अभिमन्त्रण किया ॥ ४५-४६ ॥ उसी मन्त्रके तज और बलसे धडाननने तारकासुर जैसे महान् बाघको मारकर अपना काम पूरा कर लिया था ॥ ४७ ॥ वही रामरक्षामंत्र मैने तुम्हे बतलाया है । जिसके एक बार श्रवण कर लेनेसे संसारमें किसीका भय नहीं रह जाता ॥ ४८ ॥ इसी रामरक्षा मंत्रसे वाल्मीकिने कुशका अभिषेक किया था । वाल्मीकीका दुःख दूर करनेके लिए इसे मैने तुम्हें बतलाया है ॥ ४९ ॥ वाल्मीकीका यह शाप करनेके लिए सदा इसका जप करना चाहिये । यह महान् मंत्र है । यह बड़े बड़े पापोंके समूहको नष्ट कर देता है । इससे बढ़कर कोई स्तोत्र है ही नहीं । मैं तुमसे सच सच कहता हूँ कि इससे श्रेष्ठ और कोई मंत्र नहीं है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितगतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा - एक दिन सीताजी मुनियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकिसे कहने लगीं कि हमें कोई ऐसा व्रत बतलाइए, जिससे मैं फिर अपने पतिदेव (राम) को प्राप्त कर लूँ । १ ॥ सीताजी उस प्रार्थनाको सुनकर वाल्मीकिने कहा कि प्रतिपदा तिथिसे लेकर नवमी पर्यन्त अर्थात् नौ दिनका मैं जो व्रत बतला रहा हूँ, उसे करो । प्रतिपदाकी धातुसे बनी रामकी चरणपादुकाका पूजन करके नौ कमलके फूलोंसे मंत्राञ्जलि दो । इसके अनन्तर अपने पुत्रोंके मुखसे आनन्दरामायणके जन्मकाण्डकी कथा सुनो ॥ २-४ ॥ फिर द्वितीयाको पादुकाकी पूजा करके अठारह कमलोंकी पुष्पाञ्जलि दो । स्त्रीके लिए पतिके अतिरिक्त दूसरा कोई पूज्य देवता नहीं है । बादमें द्वितीयाको दो बार जन्मकाण्डकी कथा सुनो ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस तरह प्रतिदिन कमलके फूलोंकी संख्या बढ़ाती हुई नवमीको ८१ फूलोंसे पतिकी चरणपादुकाको मंत्राञ्जलि दो और कथाकी भी संख्या बढ़ाती हुई नवमीको अपने पुत्रोंके मुखसे नौ बार जन्मकाण्डकी कथा सुनो । दशमीको स्नानादि नित्यकर्म करनेके

अनेन व्रतराजेन जन्मकाण्डश्रवादपि । अचिरान्पनिना योगं प्राप्स्यमि स्वं विदेहजे ॥१०॥
 संयोगीकरणं नाम व्रतं चेदं सुपुण्यदम् । ये कुर्वन्त्यत्र मनुजाः स्वीयेथोमं लभन्ति ते ॥११॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा जानकी प्राह तं पुनः । वहन्यञ्जानि साकेते पुष्पारामजलाशये ॥१२॥
 सन्ति कस्मिन् वं भक्तुं समर्थस्मिन्निह वनेते । रामाहया रामदूर्तः क्रियते रक्षणं सदा ॥१३॥
 तस्मीतायश्चनं श्रुत्वा तत्पुनः संस्थितो लवः । अत्रवीन्मातरं वाक्यं पञ्चवर्षवयःस्थितः ॥१४॥
 अम्भारम्भं व्रतस्याद्य त्वं कुरुष्वचिरादिह । अञ्जान्यहं प्रदास्यामि समानीय निरन्तरम् ॥१५॥
 तल्लवस्य वचः श्रुत्वा विहस्याल्लिख्य शालकम् । चतुर्भ्यः तन्मुखं सीता लवं वचनमब्रवीत् ॥१६॥
 पङ्कजानि कथं वन्त त्वं समानीय दास्यमि । अमरुयानं रामदूर्तः क्रियते रक्षणं सदा ॥१७॥
 तन्मातृवचनं श्रुत्वा लवः प्राहाथ मातरम् । अम्ब त्वन्स्तन्यपानेन बाल्मीकेः शम्भविद्यया ॥१८॥
 तथाशीभिर्मुनेश्चापि रामस्यापि भयं न मे । पश्याम्ब पारुषं मेऽद्य मामनुज्ञानुमर्हमि ॥१९॥
 इत्युक्त्वा मातरं तन्वा बाल्मीकिं प्रणिपत्य च । आशीभिर्गीडितस्ताभ्यां घृततृणीरकामुक्कः ॥२०॥
 ब्रह्मालङ्कारसयुक्तस्त्वेकाकी रथमास्थितः । ययौ लवस्त्वयोऽप्याया श्रीविहीना जवेन सः ॥२१॥
 क्रोशोपरि रथं स्थाप्य पङ्कजामारामभाययौ । तावन्मध्याह्नममये गता आरामरक्षकाः ॥२२॥
 भोजनार्थं स्वगेहानि लयोऽञ्जानि तदाऽहरम् । पुनः स्वस्यदने स्थित्वा गन्वाऽऽश्रमपदं मुनेः ॥२३॥
 नत्वा मुनिं मातरं स्वीं पङ्कजान्यर्पयन्मुदा । मुदिता जानकी चापि व्रतारम्भमथाकरोत् ॥२४॥
 एवं सप्तदिनान्यञ्जान्यानयामास बालकः । न विदुः रामदूताभ्यं नीयतेऽञ्जानि चेति हि ॥२५॥
 अथाष्टमीदिनेऽपोध्यां पृथक् लवो ययौ । आगमस्य बहिः स्थाप्य रथं पङ्कजां ययौ लवः ॥२६॥

पञ्चान् ॥१॥ द्विजदम्पतीकी वस्त्राभूषण आदिसे पूजा करके उन्हे भोजन कराओ और दक्षिणा देकर विदा करा । इस व्रतराजक करने तथा जन्मकाण्डका क्या गुण-से आज्ञा हो तुम्हारे प्रति तुम्हें मिल जायेंगे ॥७-१०॥
 इस व्रतका नाम ही संयोगीकरण व्रत है । जो राजा यह पृथीन बन करता है, उसे अपने प्रियजनकी प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥ बाल्मीकि मुनिका बात सुनकर मातान कथा कि अयोध्याके बगीचेवाले सरोवरमें बहुत कमल होता है, वही ही इतना फूल मिल सका कि जिनसे मैं अपना वन पूर्ण कर सकूँ । लेकिन वहाँसे उन्हें लायेगा कौन ? रामचन्द्रजाकी आज्ञासे वहाँ बहुतसे रक्षक उन फूलका रखवाली करने हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ साताकी बात सुनकर पास छड़ लवने, जिसकी अवस्था पाँच वर्षकी हो चुका थी, मातासे कहा-॥ १४ ॥ माँ ! तुम आजसे अपना वन प्रारम्भ कर दो, मैं नित्य कमलक फूल लाकर तुम्हें दूँगा । १५ ॥ लवकी योग्यतापूर्ण बाणी सुनकर माता हँसी और छातीसे लगाकर उसका मुख चुम्बती हुई कहन लगी—॥ १६ ॥ बेटे ! तुम फूल कैसे लाओगे ? वही रामके असह्य सिपाही उनको रक्षा करने हैं ॥ १७ ॥ सीताकी बात सुनकर लवने कहा—माता ! तुम्हारे पंचव स्तनोके दुग्ध, महर्षि बाल्मीकिकी मिलायी हुई शम्भविद्या और उनके आशीर्वादके प्रभावसे मैं रामसे भी नहीं डरता । आप मुझे आज्ञा दो और मेरा पुरुषार्थ देखें ॥ १८ ॥ १९ ॥ इतना कहकर लवने माता तथा बाल्मीकिको प्रणाम किया । फिर उनका आज्ञावाद लेकर घटुप-बाण सहित एक रथपर जा बैठे और उस अयोध्याकी ओर बढ़े, जो बहुत दिनोंसे नास्तित्वा हो चुकी थी ॥ २० ॥ २१ ॥ बगीचेके एक कोस जागे ही लवने अपना रथ राक दिया और पैदल हो बगीचमें जा पहुँच । दोपहरका समय था । बगीचेके रक्षक भोजन करनेके लिए अपने-अपने घर जा चुके थे । इसलए लवका फूल लेनेमें कोई बाधा नहीं हुई, फूल लेकर लवने अपने रथपर रखा और आश्रमकी ओर चल दिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ वहाँ पहुँचकर लवने माता और बाल्मीकिको प्रणाम करके फूलको सामने रखा । जानकीने भी प्रसन्नताके साथ व्रत प्रारम्भ किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार सात दिन तक लव बराबर फूल ले गये, लेकिन रामके दूतोंको कुछ भी पता नहीं लगा । आठवें दिन अष्टमी तिथिकी रोजकी तरह लव फिर वहाँ गये । रथको बाहर राका और सरोवरमें पहुँचकर निर्भीक भावसे फूल तोड़कर लाने लगे । सयोगवश उस दिन सिपाही भी भोजन करके बगीचेमें पहुँच

गन्वाऽऽरामस्य कामार गृहीत्वाऽञ्जानि निर्मयः। अर्नयावद्रथं प्राप तावदारामपाऽऽययुः ॥२७॥
 ते त दृष्ट्वा लव माञ्जं पप्रच्छुर्विस्मयान्विताः। न त्व दृष्टः कदाऽस्माभिः श्रीरामानुचरेषु हि ॥२८॥
 कदारम्प रामसेवा त्वया चार्त्ताकृता वद। यतस्त्वं निर्मयोऽञ्जानि गृहीत्वा गच्छसि प्रभुम् ॥२९॥
 रामदूतवचः श्रुत्वा विहस्याह लवोऽपि सः। वाल्मीकिपनुचग्वाहं न रामदर्शनं मम ॥३०॥
 दासोऽहं मुनिराजस्य वाल्मीकेः शुद्धचेतसः। तदाज्ञया वै नीयन्ते कमलानि मया मुदा ॥३१॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकीय लवं तदा। ज्ञात्वा दूताः पागकीय क्रोधाद्वचनमब्रुवन् ॥३२॥
 रामस्त्वया न दृष्टोऽत्र न नः पृष्टस्त्वया पुनः। नाज्ञापितोऽमि रामेण नीयतेऽञ्जानि प्रत्यहम् ॥३३॥
 न हातमेतदस्माभिस्त्विदानीं तिष्ठ मा व्रज। अपराध्यसि रामस्य त्वां नेष्यामो वयं प्रभुम् ॥३४॥
 इत्युक्त्वा तस्य पन्थानं कुरु रामसेवकाः। चतुर्दश शस्त्रहस्ता सञ्जना रामनो यदा ॥३५॥
 तान्दृष्ट्वा स्पन्दनस्थः स लवोऽप्याह विहस्य च। पुयं गच्छत श्रीरामं मद्भुक्तं मृतमादरात् ॥३६॥
 यद्यस्ति पौत्रं रामे तर्हि यास्यति मां प्रति। तत्तस्य वचनं श्रुत्वा क्रोधाद्दूता वचोऽब्रुवन् ॥३७॥
 कथं वत्स मर्त्यकामस्त्वमिदं वचनं मुधा। नृद्धा त्वां वयमेवाद्य विनेष्यामो रघूत्तमम् ॥३८॥
 इत्युक्त्वा ते लव धतुं ययुस्तस्य रथातिकम्। तान्दृष्ट्वा निकटं प्राप्तान् रामदूतान्सर्वोऽपि सः ॥३९॥
 दण्डकृत्य महत्कार्यं श्रगन्सधाय वेगतः। अब्रवात्तान्पुनर्वाक्यं माऽऽगन्तव्यं ममान्तिकम् ॥४०॥
 मार्मणैर्युना पुष्पान् रयजामि राघवान्तिके। इत्युक्त्वा तान्पुनर्दृष्ट्वाऽऽन्मामं धतुं समुद्यनान् ॥४१॥
 रामाग्रं प्राक्षिपद्गार्णलीलयाऽध्वरमण्डपे। चतुर्दश रामदूता लवमार्गगतार्चिताः ॥४२॥
 निषेत्तुमर्च्छिताः सर्वे रामाग्रे जाह्नवीतटे। शतशो रामदूतास्ते दृष्ट्वा चक्रुः पलायनम् ॥४३॥
 लवोऽपि विजयी शीघ्रं पूर्ववन्स्वाश्रमं ययौ। समर्पाञ्जानि सीतायै सर्वं भुक्तं न्यवेदयत् ॥४४॥

मये ये ॥ २५-२७ ॥ लवको फूल लिए देखकर विन्मयपूर्वक वे बोले—हमने तुम्हें कमल रामचन्द्रजीके सेवकोंमें नहीं देखा है ॥ २८ ॥ तुमने कब नौकरी की है ? जो इस तरह निर्मय होकर कमलके फूल ले जा रहे हो ॥ २९ ॥ उन दूतोंकी बात सुनकर हँसते हुए लवने कहा—मेने तो अभी तक रामको देखा भी नहीं है ॥ ३० ॥ रामका नहीं, मैं महर्षि वाल्मीकिका सेवक हूँ। उन्हींके आज्ञानुसार मैं यहाँसे फूल ले आता हूँ। किन्तु तुमने आज ही हमको देखा है। इसके पहले कभी नहीं देख पाया ॥ ३१ ॥ इस तरह अपनेको वाल्मीकिका सेवक बतलानेपर दूतोंकी समझम आया कि यह कोई अजनबी मनुष्य है। यह आनते हो वे मारे क्रोधके तमतमा उठे। उन्होंने कहा—॥ ३२ ॥ तुमने न रामकी आज्ञा ली, न हम लोगोहीसे पूजा और रोज फूल ले जाते हो ॥ ३३ ॥ यह बात हमको मान्य नहीं थी। अन्तु, अब ठहरो। तुम रामचन्द्रजाके अपराधी हो। अतएव हम तुम्हें उनके पास ले चलेंगे ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर उन लोगने लवका कस्ता रोक लिया। अब एक सौ चौदह सशस्त्र सैनिकोंने लवको घेर लिया। अब लवने रथपर बैठे हो बैठे उनकी ओर देख तथा हँसकर कहा—तुम लोग रामके पास जाकर हमारा वृत्तान्त कहो ॥ ३५ ॥ यदि राममे कुछ सामर्थ्य होगी तो वे स्वयं मेरे सामने आयेगे। एक पाँच वर्षके बच्चेकी ऐसी बातें सुनकर दूतोंने क्रोधपूर्वक कहा—॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे बच्चे ! तुम क्यों मरना चाहते हो, जो ऐसी बड़बड़कर बातें करते हो ? तुमको बांधकर हमी लोग उनके पास अभी लिये चलते हैं ॥ ३८ ॥ ऐसा कहकर लवको पकड़नेके लिए कई दून आगे बढ़े। उनकी निकट देखकर लवने नुरन्त अपने धनुषका टंकीर करके उसपर एक बाण चढ़ाया और उनसे कहा—सावधान ! मेरे पास न आना ॥ ३९ ॥ ४० ॥ नहीं मानोगे तो मैं इसी धनुष और बाणसे तुम लोगोंको उठाकर रामके पास फेंक दूँगा। ऐसा कहकर लवने देखा कि वे लोग फिर भी उन्हें पकड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ ऐसी यत्नामें लवने बाणोंसे दूतोंको छठकर फेंका और वे गङ्गाके समीप रामकी यज्ञशालामें मूर्छित होकर का गिरे। इस प्रकार लवका पराक्रम देखकर रामके जो सैकड़ों सैनिक वहाँ बचे थे, वे सब हृष्ट-उपहृष्ट भाग गये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अब विजयी होकर वे अपने आश्रमकी ओर बढ़े। वहाँ पहुँचकर लवने कमल

चतुर्दश रामदूताः स्वस्थचित्ताश्रयेण ते । सर्वं वृत्तं राघवाय कथयामासुगदरान् ॥४५॥
 तच्छ्रुत्वा रामचन्द्रोऽपि विस्मयाविष्टमानसः । सहस्रदूतानागमरणशुणार्थं प्रबोदयत् ॥४६॥
 लवोऽप्यथ नवम्यां स साकेतं पूर्ववप्यौ । सहस्रं रामदूतास्ते लवं योद्धुं समुद्यताः ॥४७॥
 लवस्तानाह युष्माकं स्वामिना राघवेण हि । यदा सीता वने त्यक्ता जयश्रीम् गता तदा ॥४८॥
 युष्माकं राघवस्यापि गच्छस्व राघवं पुनः । युष्माभिर्मा मया युद्धं कर्तव्यं मरणोन्मुखैः ॥४९॥
 सीतारयागे तु युष्माकं स्वामिनः पौरुषं न माम् । इति ते लवदाम्बाणौर्मिन्नमर्मस्थलाभ्युदा ॥५०॥
 दूताः शस्त्राणि सुमुचुर्लवोपरि महास्वनैः । लवोऽपि चापमाकुरुष्व रामदूतान्स्वमार्गणैः ॥५१॥
 प्राक्षिपन्पूर्ववद्रामं तच्छस्त्रौघं निवार्य च । आरामतो यदा दूताश्चकुः सर्वे पलायनम् ॥५२॥
 ययौ लवः स विजयी पूर्ववन्कमलान्वितः । आश्रमं मातरं नन्वा भवं वृत्तं न्यवेदयत् ॥५३॥
 पुत्रस्य पौरुषं श्रुत्वा तुनोष जानकी तदा । वृत्तं निवेदयामासु रामदूता भूतसमम् ॥५४॥
 मूर्च्छां लवशरैः प्राप्ता मिन्नदेहा मग्नान्गणे । राम राम महाबाहो मृणुष्वार्जुमादरात् ॥५५॥
 पञ्चवर्षीपचालेन वयमथ पराजिताः । राक्षसीकेलौन्धविद्यः स न जेयो लक्ष्मणादिभिः ॥५६॥
 तद्वधे मंत्रयस्वाद्य त्वमुपायं रघूत्तम । सीतान्यागादिवचनैर्नस्त्ववापि च बालकः ॥५७॥
 चकार निंदा श्रीराम गतभीस्त्वेक एव यः । तत्तेषां वचनैर्दत्तं कृन्तनमालक्ष्य राघवः ॥५८॥
 सद्यश्च सचिर्वदतुं बाल्मीकिं प्रेषयज्वान् । नन्वा मुनिं रामदूतो रामत्रयं न्यवेदयत् ॥५९॥
 यस्ते शिष्यो महावीरः सोऽपराध्यस्ति वै मम । तं प्रेषयाद्यवा तेन त्वमामञ्जस्व मन्मथम् ॥६०॥

सीताको दिया और उस दिनका सारा हाल कह सुनाया ॥४५॥ जो दूत रामकी यज्ञशालामें गिरे थे, वे बहुत देर तक मूर्छित पड़ रहे । जब जेना आयी, तब सादर उन्होंने रामको लवका सब समाचार सुनाया ॥४५॥ सो सुनकर रामचन्द्रजीको भी बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने फिरसे एक हजार दूतोंको बगीचेकी रखवालीके लिए नियुक्त कर दिया ॥४६॥ दूसरे दिन अर्थात् नवमीको लव फिर पून सेनेके लिए बगीचेमें जा पहुँचे । लवने दूतोंको देखकर कहा कि जिस दिन तुम्हारे प्रभु रामने संताका वनमें भेज दिया, उसी दिन उनको जयश्री भी विदा हो गयी ॥४७॥ ४८॥ तुम्हें चाहिए कि तुम रामके पास जाकर लवई कथनेसे इन्कार कर दो । तुम मरणोन्मुख हो । अतएव मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे साथ युद्ध करूँ ॥४९॥ सीताको रामनेवाले तुम्हारे प्रभु रामके साथ सपाम करना मुझे उचित नहीं जँवता । इस प्रकार लवके बचनरूपी बाणोंसे सैनिकोंके हृदय विदीर्ण हो गये ॥५०॥ तब उन्होंने लवपर बाणवर्षा आरम्भ कर दी । उधर लवने भी अपने बाणोंसे सैनिकोंके प्रहार बचाते हुए अपने बाणोंसे उनको उठा-उठाकर रामके पास फेंकना आरम्भ किया । योर्ही देरमें ही जब दूत बगाम्बा छोड़ छ डकर भाग निकले । तब लव अपनेको विजयी मानते हुए रोजकी तरह फूल लेकर आश्रमको लौट गये । वहाँ पहुँचकर लवने सीता माताको प्रणाम किया और उस दिनका भी सारा हाल सुनाया ॥५१-५३॥ बैठेका पुष्पार्ज सुनकर सीता परम प्रसन्न हुई । इधर रामचन्द्रके दूतोंने रामके पास जाकर सब अपनी आपसोती कह सुनायी ॥५४॥ जिनको लवने अपने बाणसे उठाकर रामके पास फेंका था, वे लोग घायल होकर बहुत देर तक मूर्छित अवस्थामें ही पड़े रहे । जब होशमें आये तो कहने लगे हे राम ! हे महाबाहो ! मैं जो कह रहा हूँ, उसे तनिक ध्यान देकर सुनिए । आज हम सब बाल्मीकिके एक शिष्यसे, जिनको अवस्था अभी पाँच वर्षकी है, परास्त हो गये । मेरा तो यहाँतक विश्वास है कि आपके भ्राता लक्ष्मण आदि भी उसे नहीं हरा सकते ॥५५॥ ५६॥ हे रघूत्तम ! उसे मारनेके लिए आप कोई उपाय सोचिए । सीतारयाग आदिकी बातें दुहराकर उस एकाकी बालकने हमारी ओर आपकी भी भरपूर निन्दा की है । उनको बातें सुनी तो मंत्रियोंसे परामर्श करके रामने तुरंत कई दूतोंको बाल्मीकिके आश्रमपर भेजा । वे दूत बाल्मीकिके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके रामका सन्देश इस तरह सुनाने लगे- ॥५७-५९॥ रामचन्द्रने कहा है कि आपका महावीर शिष्य लव हमारा अपराधी है । उसे या तो हमारे

विस्मृत्या पूर्वमेव त्वं नाहूतोऽसि क्षमस्व तत् । तद्दूतवचनं श्रुत्वा राभीयं मुनिरब्रवीत् ॥६१॥
 शिष्याभ्याम्-॥६२॥ चहमेव यास्यामि त्वं ब्रज । तथेति शमदूतोऽपि मुनिं नन्वा ययौ मसम् ॥६२॥
 ज नन्नेव भावि दूतमादौ रामो मुनिं मसम् । नाहूयामास शिष्याभ्यां लौकिकीं रीतिमाश्रितः ॥६३॥
 स्वीयव्रतसमाप्तिं साऽकरोत्सीताऽपि सादरम् ।

विष्णुदास उवाच

अशक्तश्च कथं कार्यं व्रतमेतद्वदस्व माम् ॥६४॥

श्रीरामदास उवाच

काचनस्याथवा रौप्यस्याथवा ताम्रनिमित्ते । कार्ये द्वे पादुके रम्ये राघवस्य यथासुखम् ॥६५॥
 जभावे कमलानां च पुष्पैर्गजलिरीरिता । एकाशीतिदंतीनां न शक्तिः पूजने तदा ॥६६॥
 पूजनीयानि युग्मानि नव शक्त्याऽथवा सुखम् । स्वशक्त्या पूजनं कार्यं वित्तशाल्यं परित्यजेत् ॥६७॥
 अनेकदूरगस्यापि संयोगश्च भवेज्जरात् । भाविकार्याणि वेगेन भविष्यन्ति न संशयः ॥६८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये

जन्मकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(राम लक्ष्मण आदिका लव-कुशके साथ युद्ध)

श्रीरामचन्द्र उवाच

अथ रामोऽपि धर्मान्मा चरमे तुग्गाध्वरे । हयं मुमोच शत्रुघ्नस्तस्य पृष्ठे ययौ जवात् ॥१॥
 दक्षिणां पश्चिमामाशामुत्तरां तुग्गोत्तमः । अतिक्रम्य तथा प्रार्ची यज्ञस्थानं न्यवर्तत ॥२॥
 नृपतिभ्यः समस्तेभ्यः शत्रुघ्नो वसु कोटिशः । गृहीत्वा तेनृपैर्गुक्तस्तुगस्यानुगो ययौ ॥३॥

दूतोंके साथ भेज दीजिए, अथवा आप स्वयं अपने साथ लेकर हमारे यज्ञमण्डपमें आइए ॥ ६० ॥ भूलसे मैंने आपको पहले निमन्त्रण नहीं दिया था, सो समा कीजिएगा । इस प्रकार दूतोंके मुखसे रामका सन्देश सुनकर महर्षि वाल्मीकिने कहा— ॥ ६१ ॥ हम अपने शिष्योंके साथ स्वयं यज्ञमण्डपमें आयेगे, तुम लोग जाओ । रामके दूतोंने ऋषिराजके वचन सुनकर प्रणाम किया और वहाँसे प्रस्थान करके रामको यज्ञशालाको चल पड़े ॥ ६२ ॥ राम इस भावी घटनाको पहिलेसे ही जानत थे । इसीलिए लौकिक रीति निभाते हुए शिष्योंके साथ वाल्मीकि-जीको पहले यज्ञमें नहीं बुलाया था ॥ ६३ ॥ उधर सीताने भी नौ दिनवाला व्रत समाप्त कर लिया । विष्णुदासने पूछा— जो लोग भामर्ध्यहीन हैं, वे इस व्रतको कैसे करेंगे ? सो बताइए ॥ ६४ ॥ श्रीरामदासने उत्तर दिया— यदि सुवर्णकी पादुका न बनवा सके तो चाँदीकी बनवा लें, वह भी न हो सके तो तामेकी दो चरणपादुकाएँ बनवा ली चाहिए ॥ ६५ ॥ यदि उतने कमलके फूल न मिल सकें तो साधारणतया किसी भी फूलकी अजली दे । यदि इक्कासी द्विजदम्पतीकी पूजा करनेकी सामर्थ्य न हो तो नौ द्विजदम्पतीका ही पूजन करे । उसके भी अभावमें अपनी शक्तिके अनुसार पूजा करे, लेकिन उनमें कंगूमी न होने पाये ॥ ६६ ॥ ६७ । इस व्रतको करनेसे चाहे कितनी ही दूरीपर रहनेवाले भी प्रियजनका मित्राद्य अवश्य हो जाता है । इसके अतिरिक्त जितने भी भविष्यके कार्य होंगे, वे सब सम्पन्न हो जायेंगे । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदानन्द-रामायणे वाल्मीकीये पंच रामतजपाण्डेयकृत ज्योत्स्नाभ.पाटीकासमन्विते जन्मकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास बोले—इस प्रकार रामचन्द्रने ९९ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण कर लिये । अन्तिम सौवें यज्ञके लिए भी घोड़ा अभिषिक्त करके छोड़ा और शत्रुघ्न उसको रक्षा करनेके लिए उसके साथ गये ॥ १ ॥ दक्षिण, पश्चिम, पूर्व और उत्तर दिशाकी प्रशस्ति करके घोड़ा रामचन्द्रजीके यज्ञमण्डपकी ओर लौट पड़ा ॥ २ ॥ रास्तेमें कितने ही राजाओंसे अनेक प्रकारकी भेंटें ले लेकर उन राजाओंको अपने साथ लिये शत्रुघ्न अश्वसमेत

सेनया चतुरंगिण्या च दशमाहसमंख्यया । तस्मिन्निमाने क्रमयः सर्वं राजपयस्तथा ॥ ४ ॥
 शालाणाः क्षत्रिया वैश्याः समाजम्बुः सहस्रजः । चरमाध्वम्भय इष्टं गमम्योन्मवमागताः ॥ ५ ॥
 बाल्मीकिरपि मंगुक्ष गायत्री भूमिजान्मनी । जगाम यज्ञवाटस्य मर्षी मीनया सुखम् ॥ ६ ॥
 मार्गे नृपमपूहेषु शिविकाभ्यां हि जानकीम् । न विदुः पार्थिवाः तर्हि तस्मिन्नेव यथेनरे ॥ ७ ॥
 सुमेधया जनकोऽपि ययौ रामाध्वर प्रति । क्रोशदगानरे पूर्वं यज्ञवाटान्मुनीश्वरः ॥ ८ ॥
 कुम्भा पर्णकुटीरभ्यां ताभ्यां युक्तः स मीनया । बाल्मीकिर्निरियामास पणकुश्यां विदेहजाम् ॥ ९ ॥
 नृपसेनानिवासेषु जनकश्च सुमेधया स्वयंन्येन ययौ नृणां रामेण मी निरोक्षितः ॥ १० ॥
 बाल्मीकिरपि तौ प्राह न्यम्नालकारमण्डितौ । जट्यागजितभर्गौ मीनपुत्रौ महाधिर्यौ ॥ ११ ॥
 यत्र तत्र च गायत्री पुरे ब्रथिषु सर्वतः । राममग्नं प्रणरेत्तं शुश्रूषतेति शश्वतः ॥ १२ ॥
 श्रावन्नकांडाकांडानि न जेषान्यत्र बालकौ । यदा रामेन सह गच्छां गायत्रीं सकल नदा ॥ १३ ॥
 न प्राह्य तद्वाम्यां य यदि किञ्चिदस्यति । इति वा चामदनी तत्र गायमानौ विचेरतुः ॥ १४ ॥
 तथोक्तं श्रुतिना पूर्वं तत्र न्याय्यमायनम् । तौ तु मुश्रुत्वा काकुम्भः पूरयथाकृति ततः ॥ १५ ॥
 अपूर्वरश्चतुर्नादिनेऽथ राममिच्छुतम् । बालभ्यां राघवः श्रुत्वा कृतद्वयमुपेक्षितम् ॥ १६ ॥
 अथ कर्मान्तरे रामः सभाद्वयं मुनीश्वरान् । गच्छेत्तं च पणकुश्यां तैरगमात् ॥ १७ ॥
 पौगण्डिकाञ्छन्दविदो गतकाश्च चिन्तितकान् । नातासीश्वरानेपुर्गाम्थं जटान् द्वित्रिदिक्कान् ॥ १८ ॥
 यज्ञवाटे तु तान्पूज्य गायत्रीं सप्रवेशयन् । ते सर्वे हृष्टमनसो राजाना आश्रयादयः ॥ १९ ॥
 राम तौ दाम्की दृष्ट्वा विस्मिता निनिमेषकाः । अत्रोचन्ममं एवैव परम्परमश्रानयोः ॥ २० ॥
 इमौ रामस्य सद्यो विवाहविमर्शितौ । जटिलौ यदि न स्थितौ न वनकलशरिणौ ॥ २१ ॥

अगस्त्याके समीप आ पहुँच ॥ ३ ॥ उस समय जयधनक साथ इस हजार चतुरंगिण्या सेना ला । उससे अतिरिक्त
 उस विमानम कितने ही शर्पा, बाहुज, क्षत्रिय तथा वैश्यगण दश-दूरसे रामचन्द्रके उस अन्तिम यज्ञका दखने
 आये थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ बाल्मीकि भी जब कुछ तथा सँवकी अपने गाय लेकर रामके यज्ञमण्डपकी ओर चल
 पड़े ॥ ६ ॥ रामने सारा पालक न देता ही । उनका उहाँ गायका तथा और लोगोंन मही जान पाया
 कि इससे बीत है ॥ ७ ॥ जनक और मुनेश्वर भी यज्ञमण्डपकी ओर गये थे । जब दो काम बाकी रह गया,
 वही आन्नाक जो यज्ञके साथ एक पणकुटीर उतर गया । और राम कृत्रिमसे जानकीका छुपा दिया
 ॥ ८ ॥ ९ ॥ जनक अपना पत्नी जनदा तथा सेनाके साहसाय रामके यज्ञमण्डपमें जाकर ठहर गये । वही
 रामसे भट्ट हुई ॥ १० ॥ बाल्मीकिने उन दोनों कुमारान् राजमी इच्छाभूषण उतार तथा जटा और अचला
 पहिन कर कहा कि तुम लोग इस उचर गायीसे मेरे सिखाये रामचरित्रको गाओ । यदि रामचन्द्र स्वयं
 मृगना चाह तो उनको भी सुना देता ॥ ११ ॥ १२ ॥ लेकिन रामके सामने दूर र मायण नहीं माना, जब मैं
 कहूँ । रामने जन्मसे लेकर मीनान्याग पर्यन्तका कथा बिल्कुल अभयन खन्दा । फिर राम मुझे कुछ देना
 चाह तो लेना इनकार कर देता । इस प्रकार बाल्मीकिजके आज्ञाकार वे दोनों वचन र मन्त्रि गान हुए
 घुमने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ जहाँ जहाँ और जिस-जिस प्रकार गुरुजीने जाकर गा-ना कहा था, वहाँ-वहाँ जाकर
 उन्होंने गाया । रामचन्द्रजीके पास भी यह खबर पहुँची और उन्होंने खेतोसे उनका गायनकी प्रशंसा सुनी
 ॥ १५ ॥ छोट-छोट बच्चाके मुखसे इस प्रकार रामचरित्रका गानकी बात सुनकर तेरे हृदयमें बड़ा कौतूहल
 हुआ ॥ १६ ॥ रामने जब रामचन्द्र अपने यज्ञमण्डपकी क्षत्रिय अवकाज गाय । अब अनेक मुनिश्वर, राजाओं,
 शासकों, वैश्या पौगण्डिका, वैशकरणा, उत्तरिपियो तथा अन्य जगत्का प्रभेमें सिद्धा गायिका उसा
 यज्ञशालामें बुलवाया । वही दुर्वाकर रामने मदका पूजा की और उन दाना कुमारका बुलवाया । उन
 राजाओं और ब्रह्मादिकोंन बच्चाका बड़े प्रेममें देखा ॥ १७-१९ ॥ वही लोगोंन एक-कार रामकी आर
 देखा, फिर बच्चोंकी तरफ निहारा तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा । उनकी आँख निनिमेष हो गयी

विशेषं नाधिमच्छामो गधवस्यानयोस्तदा । एवं संवदता तेषां विस्मितानां परस्परम् ॥२२॥
 तदाऽऽह रामदूतोऽपि लवबाणरुजं स्मरन् । गमचन्द्रे यत्तवाटस्थितं वै संभ्रमेण हि ॥२३॥
 लवमंगुलिना वीरं दर्शयश्च मुहुर्मुहुः राम राम महाकाङ्क्षो तमेन पश्य वै लवम् ॥२४॥
 येनाम्माकं शरौर्ध्वं प्रक्षिप्य तव सन्निधौ । नीतानि कनकाब्जानि मुगंधीनि निरंतरम् ॥२५॥
 सीतान्यागनिमित्तेन वेन नेनापि वा मुहुः । कृता निंदा गरिनेन त्वदण्डैकाधिना प्रभो ॥२६॥
 तव दण्डभयादेव पूर्ववैव विलोपितः । श्ववस्त्राभरणानि शस्त्राण्यपि विहाय च ॥२७॥
 धृतानि वल्कलादीनि दीनरूपोऽत्र दृश्यते । त्वयाऽत्र दण्डनीयोऽयं बधुयागानिगर्जितः ॥२८॥
 इति स्वदूतवाक्यानि मृष्यन्मपि गभूतमः । प्रेम्णाऽवलोकयामास मुधाधिभ्यां शिशू मुहुः ॥२९॥
 बालावपि सभामंस्थान्नमस्कृत्य यथाक्रमम् । राधयं स्वपितृव्यांश्च वसिष्ठं प्रणिपत्य च ॥३०॥
 उपाचक्रमतुर्गातुं वीणे रणयतः शुभे । ततः प्रवृत्तं मधुरं गांधर्वं गीतमुत्तमम् ॥३१॥
 श्रुत्वा तन्मधुरं गीतं रामस्तोषमवाप ह । ताम्भ्यां श्रुतं स्वचरितं विलासावध्वनुक्रमान् ॥३२॥
 यद्यदाचरितं पूर्वं सीतया सह मौल्यदम् । ततोऽपराद्धे श्रीरामः प्रसन्नवदनांबुजः ॥३३॥
 उवाच तौ समग्रं वै श्वो मेयं मम सन्निधौ । तथेति रामवचनं तावंगीचक्रतुस्तदा ॥३४॥
 ततो रामो लवं प्राह मे यद्यप्यपराधितम् । त्वया पूर्वं तथापि त्वां तुष्टोऽहं नात्र शिक्षये ॥३५॥
 त्वद्गीतिमचरित्रादि श्रवणादयं मे मनः । परां विश्रान्तिमाप्नोत त्वत्कृतं क्षमिवं मया ॥३६॥
 अधुना मद्भयं त्यक्त्वा न्यं सुखं विचरात्र हि । तद्रामवचनं श्रुत्वा लवो गधवमब्रीड् ॥३७॥
 मयाऽपराधितं गजंस्तव दर्शनकाम्पया । मदपराधिनं स्मृत्वाग्राहूनोऽहं यनस्त्वया ॥३८॥

और वे आपसमें कहते लगे—२० ॥ एक दिवसे निकले दूमेरे प्रतिविम्बको भाँति ये दोनों बालक विष्कुल
 रामचन्द्रके समान हैं । यदि इनके परतकपर जटा न रहे और वल्कल वस्त्र उतार दिये जायें तो इनमें तथा
 राममें कोई अन्तर ही नहीं रह जाता । जब सब लोग विस्मित होकर परस्पर इस प्रकार बातें कर
 रहे थे । तभी लवके बाणोंसे बर्गाचवाली मारकी पाड़ाका स्मरण करता हुआ रामका एक दून प्रबुद्धीकर
 बोला—॥ २१-२३ ॥ हे राम ! हे महाबाहो ! देखिए, यही लव है । जिसने अपने बाणोंसे उठाकर
 मुझे आपके पास फेंक दिया था और सुगन्धित कनककमलके फूलोंको हठान् तोड़कर ले जाया करता
 था । ॥ २४ ॥ २५ ॥ आपको सीतात्यागविषयक बातका लेकर इसीने बड़े घमण्डके साथ आपकी निन्दा की थी । २६ ॥
 ज्ञात होता है कि आपके दण्डस डरकर इसने रथ तथा वस्त्राभरण त्याग दिये हैं और वल्कलवसन
 आदि पहन ल्या दीनरूप धारण करके आया है । किन्तु मेरा यह परामर्श है कि इस अभिमानीको अवश्य
 दण्ड दीजिए ॥ २७ ॥ २८ ॥ इस प्रकार हुतकी बातें सुन करके भी रामानन्द अपनी अमृतमयी आँखोंसे
 उन बच्चोंको प्रेमपूर्वक देख रहे थे ॥ २९ ॥ लड़कीन सभामें पहुँचकर वहाँ बैठे हुए लोगोंको प्रणाम करके
 रामकी, लक्ष्मण आदि अपने चाचाओंकी तथा वसिष्ठ आदि गुरुजनोंकी प्रणाम किया और वीणा
 बजाते हुए रामचरित्र गाने लगा । उस समय सभामें जैसे गांधर्व गायनका रस बरसने लगा ॥ ३० ॥ ३१ ॥
 राम उनका मधुर गायन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । गायनमें रामके उस चरित्रका वर्णन था, जो जन्मसे लेकर
 विलासकाण्ड पर्यन्त सीताके साथ उन्होंने किया था ॥ ३२ ॥ गान-गाते दीपहरका समय हो गया । तब
 रामचन्द्रने प्रसन्नतापूर्वक उन बच्चोंसे कहा—अच्छा, आज समय अधिक बीत चुका । इसलिये रहने दो । कल
 मेरे पास फिर आना और मुझे सारी रामायण सुनाना । रामकी बातको उन्होंने अङ्गीकार कर लिया
 ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर रामने लवसे कहा—यद्यपि तुम हमारे अपराधी हो फिर भी मैं तुमपर प्रसन्न
 हूँ । तुम्हें कोई दण्ड देनेकी इच्छा ही नहीं होती । तुम्हारे गायनोंमें अपनी चरित्रावली सुनकर मेरा हृदय
 शान्त हो गया है और तुमने जो अपराध किया था, उसे क्षमा करता हूँ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अब तुम मुझसे
 दूरी नहीं, निर्भय होकर जहाँ चाहो धूमो । इस प्रकार रामकी बातें सुनकर सबने उत्तर दिया—राजन् ! उस समय

अथ ते दर्शनैर्नैव पौरुषं बुद्धिमग्नम् । कान्तिर्मे मद्गती जाना तत्राग्रे गापनादपि ॥३९॥
 इत्युक्त्वाऽऽर्माह्वयस्त्रुणीं बन्धुना गतुमुद्यतः । ममायासौ गंतुकामौ स्थलं स्वीयं निरीक्ष्य च ॥४०॥
 रामोऽभ्युतं वसु तपोर्भरतेन प्रदापयन् । दापमानं सुरणं तौ न तद्वज्रगृहनुस्तदा ॥४१॥
 राजन् हेम्ना किमेतेन धावां वै वन्यभोजिनां । कृषाग्लोकनेनैव पाहि त्वमात्रयोः सदा ॥४२॥
 इति संत्यज्य तदथ जग्मतुर्मुनिमश्रिधिम् । आर्माच्छ्रुत्वा स्वचरितं रामो हृद्यतिविस्मितः ॥४३॥
 कुशोऽपि सकलं वृत्तं बालमार्कं मातरं तथा । निवेद्य आहूय स्नातुं कौतुकेन पर्या मुत्तम् ॥४४॥
 लघो मुनीनां शिशुभिः शिशुर्कांडनमाचरन् । एतस्मिन्नंतरे यत्र लवः क्रीडां चकार ह ॥४५॥
 बालकैस्तत्र संप्राप्तास्तुर्गाध्वजकारिणः । त्यक्त्वा क्रीडां लवः शीघ्रमश्वं धृन्वोदजातिके ॥४६॥
 वृक्षे ब्रूध शिशुभिः पूर्वगन् क्रीडनं व्यधात् । ततः सो पुष्पकं प्राप्तं दृष्ट्वा बद्धं तुग्धमम् ॥४७॥
 ज्ञात्वा बालकृतं सर्वं शत्रुघ्नाद्या विहस्य ते । दूतानां प्रापयामासुर्मुच्यतां तुरगः सुगम् ॥४८॥
 लवस्तानागतान् दृष्ट्वा वायव्याश्वं वै वृणम् । समन्य तान् मुमोचाथ लीलया शिशुमंयुतः ॥४९॥
 सज्ञावर्तिस्तदा यानं हस्यश्वाथपूतितम् । शत्रुघ्नेनापि तर्दतः खेऽभूत्सद्भ्रमरोपमम् ॥५०॥
 तच्छ्रुत्वा रागचन्द्रोऽपि प्रेषयामास सादरम् । सुग्रीवमद्भुतं नील मेन्दं जाम्बवतं नलम् ॥५१॥
 सुमेधं भरतं वायुपुत्रं तार्क्ष्यं विभीषणम् । सुपेणं पार्थिवान्मवान् स्वस्वामिनर्लभ्युतान् ॥५२॥
 द्विविदं दधिवक्त्रं च बानगन्मकरध्वजम् । ते लव इदुर्गुर्गार्धुर्दं चक्रुस्त्वरान्विताः ॥५३॥
 तानागतान् लघो दृष्ट्वा कम्पचिन्पतित भुवि । दूतस्याश्वमोचनार्थमागतस्य शरासनम् ॥५४॥
 तूणीरं च स्वयं घृत्वा पर्या योद्धुं त्वरान्वितः । टण्ठकृन्व महत्पापं चितयामास चेतसि ॥५५॥

मेन जा अपराध किया था, उमका उद्भूत एकमात्र यही था कि मे किसी प्रकार आपस मिलूं । आपन भी मेरे अपराधवा स्मरण करके भी मुझ दुःखाया सो बड़ी दुःखा की ॥ ३७ । ३८ ॥ आज आपका दर्शन करत ही मेरा गुरुपाप बड़ गया और आपके सामने रामचरित्र गानसे मेरी कीर्ति भी बढ़ा ॥ ३९ ॥ इतना कहकर लव पुन हों गय और अपने ध्याताके साथ आश्रमको जानकी तैयारी करने लगे । उधर रामने उन बन्धोक लिए दस हजार स्वर्णमुद्राय भरतसे दिलवायो । किन्तु उन्होंने वह धन नहीं लिया । उन्होंने कहा-राजन् ! अरभ्यम फल-मूलपर जीवन वितानवाले हम चन्दासी लोग आपको इस मुक्तामयको लेकर क्या करगे । बस, आप अपनी कृपादिसे हमारी रक्षा करने रहिए ॥ ४०-४२ ॥ इस प्रकार उस दानद्रव्यका परिहारा करके वे दोनों बालमार्किकीके पास चले गये । बन्धोक मुहने अपना चरित्र सुनकर रामचन्द्रजा बड़े विस्मित हुए ॥ ४३ ॥ उधर कुश आश्रमपर पहुँच तो वहाँ बालमार्किक तथा सीताको उस दिनका वृत्तान्त सुनाया और स्नान करनेके लिए गंगाजा-को चले गये ॥ ४४ ॥ इधर लव कुछ मुनिरुमांगिक साथ सलन लगा । इसी बीच जहाँ वे सब खेलत रहे, उसी तरफसे अश्वमेधका घोड़ा चारों ओर घूमकर रामकी यज्ञशालामे आ रहा था । उसे देखते ही कौतुकवश लवकोने घेर लिया । लवने आगे बढ़कर घोड़का पकड़ा और अपनी कुट्टिका किनारे से आकर एक गृध्रम बाँध दिया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ लवके फिर खेलने लगे । उसी समय अ.काशम पुष्पक विमानपर बैठे हुए शत्रुघ्नन दखा तो बहुत हसे । उन्होंने सोचा कि यह बन्धोने से ज्यादा किया है । शत्रुघ्नन दूतसे कहा जाओ और घाड़का वहाँसे छान ल आओ । दूत लवके पास पहुँच । त्यों ही लवने एक तिनका उठाया और वायव्य मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उनपर दाल दिया । उसके दालते ही बड़ी जोरसे आँधो चलने लगी और शत्रुघ्न तथा उनका सैनिक हार्थी, बाँडे, रथ आदि आकाशम भीरीकी तरह उड़ने लगे ॥ ४७-५० ॥ यह समाचार सुनकर रामने अपने यहाँके मुद्राव, अङ्गद, नील, जांबवान्, नल, मुमन्य, भरत, हनुमान्, गरुड, विभीषण, सुपेण तथा देश-देशान्तरसे आये हुए राजाओंको शत्रुघ्नकी सहायताके लिए भेजा । इनके अतिरिक्त द्विविद-दधिवक्त्र आदि बानर तथा मकरध्वज आदि बौर गर्वके साथ युद्धभूमिकी ओर दौड पड़े ॥ ५१-५३ ॥ इतनी बड़ी सेनाको सामने देखकर लवने एक साधारण घनुषको, जो घोड़ा छुड़ानेके लिए आये हुए किसी सैनिकका गिर पड़ा था,

न समर्थोऽभि र्व स्थानं गच्छ नोद्येन रियान् ॥ ७२ ॥
 त्वयाऽपराधित बल राक्षस्य मुहुर्दुः ॥ ७३ ॥
 नीनान् रीगन् मन्त्रार्थं वार्जितं गुरुन ॥ ७४ ॥
 तत्सोमित्रेव चः श्रुत्वा लज्जाऽर्धं मन्त्रवर्जित ॥ ७५ ॥
 सीतायामेव युवयोः पीरुष न लो मयि ॥ ७६ ॥
 युवां जित्वाऽद्य समरे सीतादुःखं यन् जये ॥ ७७ ॥
 तस्या विनिष्कृतिं चाहं कन्दुमत्र मम सतः ॥ ७८ ॥
 न स्थितव्य ममाग्रेऽत्र गच्छस्व विश्वोपमा ॥ ७९ ॥
 लक्ष्मणाया धनुर्ध्वं शस्त्रमन्त्रं कृथा तया नृपश्च र्थेयार्णः ॥ ८० ॥
 धीरामराचिवार्थं प्रा धनवज्रमण्डपे ॥ ८१ ॥
 मित्रदेहा लोहिताक्ताः प्रोचू रामं स्मृत्वाऽपि ॥ ८२ ॥
 उपायं चिंतयस्वान्यं वधे तस्य लवस्य च ॥ ८३ ॥
 माहाय्यं कुरु सोमित्रेणेदि धनुः मर्जवितम् ॥ ८४ ॥
 इत्थं कृत्वा लववाक्त्रयानि गधवं ते न्यवेदयन् ॥ ८५ ॥
 लवोऽपि लक्ष्मण धार्णवेव्याथ दशमिदृष्ट ॥ ८६ ॥
 ततः क्रोधपर्वनात्मा लक्ष्मणो वगवतः ॥ ८७ ॥

बालकका सामन दखा ता तुमहारे कृपा करे—दया, कृपा । अब मैं आया हूँ । मेरे सामने किसी तरहका दुखता न करना । तुम मेरे सामने नहीं ठहर सकत । जाओ, चले जाओ, नहीं तो तुम नहीं बच सकोगे । अभी हम तुम्हारे मुखमें बर्क रामचन्द्र सुनना है । इस लिए नहीं मार रहा हूँ । हे अवाच बालक ! तुमने कई बार रामका अपराध किया है । मैं सब जानता हूँ । फिर भी मैं तुमका नहीं मारूँगा ॥ ६९-७३ ॥ यदि तुम्हें अपने प्राणोंका लाभ हो तो तुम्हें जिन लोगोंका पकड़ लिया है, उन्हें लाकर हम दवा और घावोंको लेकर मेरे साथ रामचन्द्रका जणम चला ॥ ७४ ॥ इस तरह लक्ष्मणका बात सुनकर लवने कहा—कनारी साताके ऊपर अपना वास्त, दिखलानेवाले तुमका और रामका मैं अच्छा तरह जानता हूँ । साताके ऊपर तुम्हारा जो दुस्साथ चला था, वह बदल नहीं सकता । साताके दुस्साथ दूर करनेके लिए ही महर्षि बालमाकन मेरा रचना का है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ अब मैं तुम दोनोंका जातकर साताका दुःख दूर करूँगा । तुमने भोली भाली सतक साथ कपटका व्यवहार किया है । उनका प्रतीकार करनेके लिए हाँ मैं यहाँ आया हूँ । साताके दुःखरुपा अग्निम तुमलोगोंका दुस्साथ जल चुना है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ तुम लोगोंका चाहूँ कि मेरे सामने हट जाओ । इस प्रकार लवके वचनरुपा वणोस लक्ष्मणका हृदय विदोष हो गया ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अतः क्रुद्ध होकर सब एक साथ लवकर वणोसों वरन लगे । लवने भी अस्त्रास उनका शास्त्राका निवारण किया और लक्ष्मणके साथ आय हुए मन्त्र-सैनिक आदिका अपने वणोस उठा उठाकर रामके यज्ञमण्डपमें फक दिया । लवके वणोस आहत मन्त्रा आदिका बहुत जहाँ-तहाँ घाव हो गये थे और उनसे धीरे-बहु रहा था । इसी दशा में वे सब रामके पास जाकर कूने लग-ह राम ! इस यज्ञमण्डप घुपघाव बँड-बँड आप क्या देख रहे हैं ? ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ लवको मारनेके लिए कई दूसरा उपाय सोचिये । हे प्रभो ! लव संग्राममें किसी तरहके अन्ध-शक्त्यसे नहीं मर रहा है । हे बन्धुवत्सल ! यदि लक्ष्मणको आविष्ट देखना चाहते हो तो उनकी सहायता करिये । लवके कराल वणोंके प्रहारसे उन्हें बचाइए । इस तरह वहाँका समाचार सुनानके बाद उन वाताका बतलाया, जो लवने रामके विषयमें कहा था । उनकी बातें सुनकर राम कुछ दूरतक चुन बँड रहे । ऊपर लवने दस वणोस लक्ष्मणका घावल कर दिया और वे दसो वण लक्ष्मणके शरीरमें सिरसे लेकर पूछतक धुस गए थे ॥ ८३-८६ ॥ ऐसा सबस्थान लक्ष्मण कापसे आग-

दृष्टेतिव्यग्राचितः सः क्षणं सञ्चिन्म्य वै हृदि । मङ्गास्त्रेण लवं बद्ध्वा माश्वं गङ्गे न्यवेदयन् ॥८८॥
 मङ्गास्त्रं मानयस्तूष्णीं ययौ राम लवोऽपि सः । गधवस्त ममानात दृष्ट्वा लक्ष्मणमब्रवीत् ॥८९॥
 जानन्नपि सुतं स्वीय कौतुकं दर्शयन्नान् । महत्कार्यं कृतं बन्धो त्वमनं विद्धि बाहुजम् ॥९०॥
 द्विजहन्त्याभयं त्यक्त्वा धातयस्त्वनमस्य हि । रामं प्रोवाच सौमित्रिर्नायं शस्त्रमस्मिधति ॥९१॥
 भरताद्यैर्मया चापि नायं किं ताडिनोऽस्मिभिः । अग्न्य देहे क्षतं चैकमपि किं दृश्यते त्वया ॥९२॥
 तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह प्रष्टव्यो बालकश्च यथा । केनोपायेन ते मृत्युर्भवेदिति ममाग्रतः ॥९३॥
 गोपायन्ति निजं मृत्युं न शूरा बधशङ्कया । न वदन्यनृतं क्वापि स्वबलेनैव जीविताः ॥९४॥
 ततः पृष्ठो लक्ष्मणेन लवः प्राहाथ लक्ष्मणम् । जलस्य सेचनादृद्धिं स्वीयां ज्ञान्वा मुनेर्गिरा ॥९५॥
 कापल्यबुद्ध्या लोकान्निर्दर्शयन् स्वपराक्रमम् । जलस्य सेचनेनाद्य मृत्युर्मे निश्चितो भवेत् ॥९६॥
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा शिलायां तं निवेश्य च । सेवनं तोयकलशः कारयामास लक्ष्मणः ॥

अयोध्यावाग्निमिर्नार्गिपुरुषः परमादगत् ॥९७॥

अतुमुस्त्वं पट्टेर्पुनार्तिश्च कोटिशः । तथा कार्पाटिकैश्चापि स्थोष्ठवारणादिभिः ॥९८॥
 जानयित्वा जलं शीघ्रं सिषेच लवबालकम् । यथा यथा जलं स्न हि सेचनं चक्रिरे जनाः ॥९९॥
 तथा तथा लवस्तथ व्यवर्द्धत घनो यथा । मप्रतालप्रमाणोऽभूद्बुद्ध्या भीमपराक्रमः ॥१००॥
 ततस्तं लक्ष्मणः प्राह त्वया लव मृषेरितम् । नायं तव बधोपायः स्वबुद्धयर्थं कृतः सन्तु ॥१०१॥
 लवोऽप्याहाथ सौमित्रं कोटिकन्येन प्रतारयन् । यथा तैलधूने दीपो वृद्धिमते प्रगच्छति ॥१०२॥
 तथायुषः धूये मेऽपि वृद्धिं पश्य क्षणं निमाम् । तद्वाक्यं मानयन्मन्य सेचयत्तं स लक्ष्मणः ॥१०३॥
 जलेर्गर्गैः समानार्तैः पूर्ववच्च पुनः पुनः । काष्ठमोषानमार्गेण सेचनं चक्रिरे जनाः ॥१०४॥

बबूल ही उठे । उन्होंने कई शस्त्र लवपर चलाये, लेकिन जब उन्होंने बरार हान देखा तो घबड़ा उठे । क्षण भर उन्होंने न जान क्या साचा और तब बल स्वस लवका बाध लिया और घाटका भी साथ लेकर अयोध्यामें रामक पास ल आये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ मङ्गास्त्रका मर्यादा रखनक लिए लव भी चुपचाप लक्ष्मणक साथ बल मये । जब रामन लवका देखा तो लक्ष्मणम कहा यद्यपि मैं जानता हूँ कि यह मेरा ही पुत्र है । फिर भी संसारको किला देनके लिए मैं अजा दना हूँ कि दुजहन्त्याक भयको दूर करने आज ही इस मार डालो । इसन बड़े अपराध किया है । लक्ष्मणने उत्तर दिया कि यह किसी शस्त्रास्त्रस नहीं मरेगा ॥ ८९-९१ ॥ हमने तथा भरतजीने इसार कितनी ही बार तलवारक प्रहार किया है, किन्तु दस्तिए न ! इसके शरीरमें कहीं कोई घाव दीखता है ? ॥ ९२ ॥ रामन कहा - इसीस पूछो कि तू किस प्रकार मर सकेगा । जो सच्चे बुराद होत है, वे अपनी मृत्युकें उपायका भी नहीं छिपात । सच्चे वीर कभी झूठ नहीं बोलत ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ इस प्रकार पूछनेपर लव कुछ सोचने लग । एक बार महर्षि वाल्म किने लवस कहा था कि तुम्हारे ऊपर जितना बल डाला जायगा, तुम उतने ही बढ़ोग । इस बातका खाल करके लवने समारकी अपना पराक्रम दिखानेके लिए लक्ष्मणस कहा—जलस सोचनपर मेरी मृत्यु होगी ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ लवकी बात सुनकर लक्ष्मणने लवको पास ही एक पत्थरपर बिठाया और पानीक घड़ास नहलाने लग । अयोध्यानिवासी बहुतसे तरनारी बड़े आदरके साथ लवपर जल डालने लगे । चार मुँहवाल बड़-बड़ चमड़ेक माँट बेल, रथ, हाथा, घाडे, और ऊँटपर लद-लदकर कराड़की संख्यामें वहाँ आन लग और व सब लवक ऊपर डाल दिय गये । जैसे-जैसे पानी पड़ता था, लो लो लव भयक सभान बढ़ने जात था । बहु परम वीर बड़-बड़ने जब सात ताड़की ऊँचाई तक बढ़ा ॥ ९७-१०० ॥ तब लक्ष्मणन कहा—लव ! ज्ञात होता है कि तुम झूठ बोल हो । तुमने मरनके लिये नहीं, अपने बढ़नेका उपाय बताया था ॥ १०१ ॥ लवने भी लक्ष्मणका बहकाकर कहा—द पक जब बुझनेवाला होता है तो उसकी लो कितनी बड़ जाया करता है । उसी तरह आयुके क्षय होनेस मैं भी बड़ रहा हूँ । अबकी बार भी लक्ष्मणने लवकी बात सब मानी और उसी तरह लवक ऊपर जलक कलसे डालते रहे ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ गङ्गाणीसे

अक्षान्नेन विनिर्मुक्तः प्रचचाल लयमदा । भुजावास्फालयामान तथोरु बाललीलया ॥१०५॥
 तं दृष्ट्वा दृष्टुः सर्वे त्यक्त्वा नोययथानपि । शकुन्मूत्रं प्रमुचनो मुक्तकन्ठा लवेक्षणाः ॥१०६॥
 एतस्मिन्नन्तरे कीडन् गंगायां तान् जनान्कुशः । पप्रच्छाद्य मुहुर्तीरं किमर्थं नीयते जवान् ॥१०७॥
 जनाः प्रोचुर्नव हंतुमस्माभिर्नोयने जलम् । विश्वस्मैलववाक्येन तच्छ्रुत्वा न ययौ कुशः ॥१०८॥
 संगृह्य स्वाश्रमाश्रयं तूर्णारं देगवत्तरः । लव मोचयितुं चापं दण्डकृन्वाऽध्वरस्थले ॥१०९॥
 कुशचापचर्चिं श्रुत्वा तस्थौ तूष्णीं लवः क्षणम् । ततो दृष्ट्वा कुशं प्राप्तं ययौ योद्धुं न लक्ष्मणः ॥११०॥
 तं दृष्ट्वा न कुशः प्राह छलिनीं जानकीलवौ । त्वया रामेण लोकेश्वरयोः कर्तुं विनिष्कृतिम् ॥१११॥

अहं प्रामोऽस्मि मां बाल लवश्च न मानय ।

पुत्रयोः पौरुषं नार्थं शिशावस्मीति वेद्व्यम् ॥११२॥

मीनाकलेशानलज्वालासदृशं युवयोर्वलम् । न ममाग्रे स्फुटं कार्यं युवाभ्यामुपहामहन् ॥११३॥
 वाग्मीकिशिष्टिनां विद्यां रामं त्वामद्य दर्शये । इत्युक्त्वा तमुलं युद्धं पितृव्येण चकार मः ॥११४॥
 आयन् कृथा जानकीये लक्ष्मणोन्मृष्टमार्गणाः । रामायणान्कुशो ज्ञान्वा शेष एवात्र लक्ष्मणः ॥११५॥
 जानोऽस्तीति वधे तस्य गारुडास्त्रं मुमोच मः । सात्रधर्मं पुरस्कृत्य न तद्विनाभयं दधे ॥११६॥
 जानन् युद्धे पितुर्हस्तेन जाना चेन्न मयं न्विति । तद्दृष्ट्वा स्वगगनाश्वं मीमित्रेः कुठिना मनिः ॥११७॥
 भयभीतः पृथिव्यां हि पथान लक्ष्मणो गथान् । च्युतं दृष्ट्वा भव्यं तत्र दीक्षायुक्तोऽपि वेगतः ॥११८॥
 धृत्वा चापं च तूर्णारं यष्टकुण्डाग्रतः स्थितः । चापं संधाप ब्रह्माणं मीमित्रेर्जीविनाशया ॥११९॥

जल भर-भरकर आता जा रहा था और सँझी लगाकर लवपर जलकी धारा डाला जाता था ॥ १०५ ॥ उसी समय सबके देखने ही देखने लव ब्रह्मास्त्रसे फूट गया और भुजाएँ तथा ताल डोलता हुआ दौड़ने लगा । उसकी देखकर वहाँके सार नर-नारा अपने-अपने कलसोंको छड़-छाड़कर भाग गये । उसक उस विकराल रूपका देखकर बहुतोंकी भाँतिही धुल गयी । कई एकको तो सारे डरके पंजाव टूटी तक हा गयी ॥ १०५ ॥ १०६ ॥
 उपर कुश बच्चोंको तरह खेलता-कूदता गङ्गाजोके किनारे गया । वहाँ उसने देखा कि बहुतसे लोग पानी भर रहे हैं । उनसे कुशन पूछा—तुमलोग इतना पानी क्यों भरे लिये जा रहे हो ? ॥ १०७ ॥ उन्होंने कहा—
 लवको मारनेके लिए । यह सुनकर कुश अपने आश्रमपर गया और धनुष-बाण लेकर लवको छुड़ानेके लिए रामकी यज्ञशालाके समीप जा पहुँचा और धनुषका धीरेण टंकोर किया ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ कुशके धनुषकी टंकोर सुनकर लव कुछ डेरके लिए जामत लड़ा हो गया और कुशमें युद्ध करनेके लिए लक्ष्मणके मामने जा पहुँच ॥ ११० ॥ लक्ष्मणको देखकर कुशन कहा—तुमन और रामन लव तथा सीताके साथ बड़ा छल किया है । उसीका बदला लेनेके लिए मैं आया हूँ । मुझका लवकी तरह साधारण बालक न समझना । तुम लोगोंकी वीरता म्मा और छोटें छोटें बच्चोंपर ही चल सकता है, यह मैं जानता हूँ । सीताके बनेशकर्पी बधकृता अग्निम तुम्हारा बल जय चुका है । अब अपना उपहास करानेके लिए मेरे मामने लड़नेकी व्यवस्था भये हो । अच्छा, यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो वाग्मीकिना मित्राची विद्या आज मैं तुम्हें और रामको दिखाता हूँ । ऐसा कहकर कुशने लक्ष्मणके साथ तुमल पुद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ १११-११४ ॥ लक्ष्मणने कुशपर जितने वज्र चलाये, वे सब व्यर्थ गये । रामायणकी भविष्यवाणीसे कुशको ज्ञात था चुका था कि अब लक्ष्मणके मित्राच और कोई वीर दाकी वचा ही नहीं है कि जिसके साथ युद्ध करके मारनेकी आवश्यकता हो । यह सोचकर आश्रमके अनुसार उसने बाबाको मामनेमे कोई अपराध न समझकर उन्हें मारनेके लिए गारुडास्त्रका प्रयोग किया ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ उस गारुडास्त्रको अपने ऊपर आते देखकर लक्ष्मण सितपिटा गये । उनको सारी जानुरी झूल गयी और भूछित होकर रथसे पृथ्वीपर गिर पड़े । लक्ष्मणकी रथसे गिरते देखकर राम रोसित होते हुए भी धनुष बाण लेकर दौड़े और लक्ष्मणको बचानेके लिए उन्होंने कुशके छोड़े हुए गारुडास्त्रपर अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया । ब्रह्मास्त्रके पहुँचनेपर गारुडास्त्र आकाशमे ही रुका ही

भविष्यति समस्तं हि वृत्तं बालकयोः शुभम् । ततो मन्त्री मुनेर्वाक्यं राघवाय न्यवेदयत् ॥१३९॥
कुशं लवं समाहूय बाल्मीकिरपि तौ मुदा । समालिख्य कथाभिस्तां निनाय रजनीं सुखम् ॥१४०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये जन्मकाण्डे
कुशलबबोः पराक्रमवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(रामका सीताको पुनः स्वीकार करना)

श्रीरामदास उवाच

अथ प्रभाते रामेण समाहूतावुभौ शिशू । नत्वा मुनिं मानरश्च सभायां जग्मतुर्मुदा ॥ १ ॥
बाल्मीकेराज्या बालौ जटाकुण्डाजिनांवरौ । जन्मकाण्डं स्वेकमेव जगत्तुस्तौ पितुः पुरः ॥ २ ॥
जनैः श्रुत्वा स्वचरितं रामोऽभूदलिविस्मितः ॥ ३ ॥

आसन् जनाश्चापि सर्वे विस्मयाविष्टमानसाः । ज्ञात्वा सीताकुमारौ तौ सन्तोषं परमं ययुः ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे सर्वे लववायस्त्रयीडिताः । शत्रुघ्नाद्या ययुस्तत्र यानस्थाश्चास्रजीविताः ॥ ५ ॥
अंगदाद्याः पार्थिवाश्च मोहनास्त्रैकजीविताः । ययुः मयानराः सर्वे लक्ष्मणोऽपि ययावरुक् ॥ ६ ॥
सर्वे नत्वा रामचन्द्रं तस्थुस्तस्यांतिके मुदा । अथ समन्वयं रामोऽपि तौ विसृज्यादरेण हि ॥ ७ ॥
राक्षसेन्द्र लक्ष्मणं च शत्रुघ्नं मकरध्वजम् । खगगाजं मुपेणं च जावन्तं वचोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥
आनयध्वं मुनिवरं ससीतं देवममितम् । अद्यास्तु पर्यदां मध्ये प्रत्ययो वै सभागणे ॥ ९ ॥
गगाया दक्षिणे तीरे सभा कार्याऽऽयता शुभा । करोतु शपथं सीता ममाग्रे जाह्नवीतटे ॥ १० ॥
मुनीश्वराद्याः सर्वे तौ जानन्तु गतकल्मषाम् । तथा ममापि बाल्मीके शुद्धिं जानंतु वेगतः ॥ ११ ॥

अब सभामें ये दोनों रामायण गाने पहुँचेंगे, उस समय सारा वृत्तान्त ज्ञात हो जायगा ॥ १३८ ॥ तदनुसार मन्त्री लोट आया और बाल्मीकिने जो कुछ कहा था, सो रामको बतला दिया । उधर बाल्मीकिने लव और कुशको पास बुलाकर हृदयसे लगाया और अनेक प्रकारकी कहानियाँ कहते हुए रात बितायी ॥ १३९ ॥ १४० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे प० रामतजपाण्डेयकृत-
'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास बोले—दूसरे दिन सबरे रामने उन दोनों बाल्मीकीको बुलवाया और वे अपनी माता तथा मुनि बाल्मीकीको प्रणाम करके रामकी सभामें गये ॥ १ ॥ जटा एवं बलकल वस्त्र धारण किये हुए उन बच्चोंने उस दिन बाल्मीकिके आज्ञानुसार केवल जन्मकाण्डका गान किया । २ ॥ रामने जब अपना चरित्र सुना तो बड़े विस्मित हुए । सभामें बैठे हुए लोगोकी भी बड़ा आश्चर्य हुआ और जब यह जाना कि ये सीताके बेटे हैं तो बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ ४ ॥ उसी समय लवके बाणोंसे पीड़ित लक्ष्मण-शत्रुघ्न आदि भी कहीं आ पहुँचे । उनके साथ अङ्गद-हनुमान् आदि जो लवके मोहनास्त्रसे मूर्छित हो गये थे, वे भी आये । वहीपर सबोंने रामको प्रणाम किया और उनके समीप जाकर बैठ गये । तब रामने अपने मंत्रियोंसे सलाह करके लव कुशको विदा कर दिया ॥ ५-७ ॥ तदनन्तर विभीषण, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, मकरध्वज तथा अङ्गदको सम्बंधित करके राम बोले—तुम सब जाकर बाल्मीकिके साथ सीताको यहाँ ले आओ । आज इस सभामें यह निश्चय किया जायगा कि सीताका क्या अपराध है । इसी पुनीत जाह्नवीके तटपर सीता शपथ खायगी । यहीपर आये हुए समस्त श्रुतिगण जिससे यह समझ आयें कि सीता सर्वथा निष्कलंक तथा पापोंसे रहित है । साथ ही हमारी ओरसे बाल्मीकीकी भी परीक्षा होगी । इस प्रकार रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणादि बाल्मीकिके पास गये और उन्होंने

इति तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणाद्या सहैव गताः । ऊचुर्यथोक्तं रामेण वाल्मीकिं लक्ष्मणादिकाः ॥१२॥
 रामस्य हृदयं सर्वं ज्ञात्वा वाल्मीकिरब्रवीत् । समचिन्तान् सुमन्त्राद्यान् लक्ष्मणाय ममप्य च ॥१३॥
 युष्मामिः कथनीयं यद्वाक्यं श्रीराघवं प्रति । श्रुः करिष्यति वै माता शपथं जनममदि ॥१४॥
 योषितां परमो देवः पतिरेको न चापरः । पतिं विना गतिः काञ्च्या मार्याश्चान्ति जगन्त्रये ॥१५॥
 लक्ष्मणाद्यास्ततः सर्वे राममागत्य ते पुनः । सुमन्त्रादीश्चतुर्वीरान्नामराय ममप्य च ॥१६॥
 वाल्मीकेर्वचनं कर्पाद्भुजं रघुनायकम् । वाल्मीकिवचनं श्रुत्वा तुनोष राघवोऽपि च ॥१७॥
 सुमन्त्रं मरुतं वायुपुत्रं वानरनायकः । ममाक्षिप्य चतुर्भ्यः म पुनर्जानानमन्वत ॥१८॥
 सीतया पालिताः सर्वे वयं लवजितास्त्विति । कथयामासुः श्रंरामं सुमन्त्राणां कविस्वरम् ॥१९॥
 द्वितीये दिवसे कृत्वा सर्वां श्रेष्ठां मनोरमाम् । सर्वांश्चर्यां समाहूय रामो ययमवाब्रवीत् ॥२०॥
 मूनयः पार्थिवाः सर्वे शृणुत स्वस्थमानमाः । गीतायाः शपथं लोका विजानन्वपुर्मे पुनः ॥२१॥
 इत्युक्त्वा राघवेणाय लोकाः सीतादिदशवः । ब्रह्मणा धर्मणा रचनाः प्रवृत्तं न मत्स्वतः ॥२२॥
 सवानराः समाजग्मुस्तद्विव्यं द्रष्टुमुद्यताः । ततो मुनेरभस्मन्तं तर्जः प्रवृत्तं न ॥२३॥
 अग्रतस्तं मुनिं कृत्वा यांती किञ्चिदवाह्मुनी । उतावलिर्गदा रता जगत् ॥२४॥
 दृष्ट्वा लक्ष्मीमिवायांती श्रीविष्णोरनुयायिनीम् । वाल्मीकिं पुनः सीतां जयश्रीं प्रवृत्तिरे ॥२५॥
 तदा मध्ये जनीधस्थ प्रविश्य मुनिपुङ्गवः । मोतामहायो वाल्मीकिपदा राघवमब्रवीत् ॥२६॥
 इयं दाशरथे सीता सुवृत्ता धर्मचाणिणी । रघया पापलपुग त्यक्त्वा ममाश्रममपीषत ॥२७॥
 लोकापवादमीतेन यमुनादक्षिणे तटे । प्रत्ययं दाश्वने मास्य तदनुज्ञातुमर्हसि ॥२८॥
 इमौ तु सीतातनयौ कुशस्त्वत्तो लवो मया । लर्दिनिर्मितः गीताभयान्त्रयप्रचेतमा ॥२९॥

जो कुछ कहा था, सो कह सुनाया ॥ ८-११ ॥ रामके मनकी बात जानकर वाल्मीकिने कहा—आज तुम लोग जाओ और रामसे कह दो कि कल ममाम जाकर सीता सब लोगोंके सामने शपथ खाएंगी ॥ १२-१४ ॥ स्त्रियोंके लिए पतिके सिवाय और कोई देवता नहीं होना । तभी अवस्थात सीता और नर ही क्या बनती है । पतिके बिना स्त्रीके लिए लोकमें और कोई गति भी नहीं है ॥ १५ ॥ सब लक्ष्मण आदि वहाँसे लौट आये । रामने उनके मुखसे वाल्मीकि का संदेश सुना तो परम प्रसन्न हुए । वे लोग वहाँसे लौटत समय सुमन्त्र आदि चारों बीरोंको, जिनको कि लवन बन्दी बना रक्खा था, अपने साथ लुप्त लाये थे । राम उन सबको अपना छातीसे लगाकर मिले और यह समझा कि इन लोगोंका पुत्र जन्म हुआ है ॥ १६-१८ ॥ उन सबोंने अपना हाथ बलवान् हुए कहा कि यद्यपि लवने हम लोग को कैद कर लिया था किन्तु सीताने पूर्णरूपसे हमारी रक्षा की ॥ १९ ॥ दूसरे दिन एक विशाल सभा आयोजित की गयी । उसमें सब लोगोंको सम्बोधित करके रामने कहा—हे देशविदशसे आये हुए श्रद्धियों ! आज हम सभाम आप लोगोंके समक्ष सीता शपथ खायगी । इससे आप लोगोंको उसके मुकुट तथा दुष्टतका पता लग जायगा । इस प्रकार रामके वचन सुने तो सब लोग सीताको देखनेके लिए उतावले हो उठे । नगरमें भी यह समाचार पहुँच गया । अतएव इस दिव्य शपथकी देखनेकी छालसासे कितने ही साहूजन, कविय, वैश्य तथा शूद्र वहाँ आ पहुँचे ॥ २०-२२ ॥ थोड़ी देर बाद सीताके साथ वाल्मीकि भी सभ में पधारे । आगे-आगे वाल्मीकि थे और उनके पीछे नीचा तिर किये सीता मन्दगतिसे सभामे आयी । उस समय सीता और वाल्मीकि को देखकर ऐसा लगता था कि मानों विष्णुके पीछे-पीछे लक्ष्मी चली आ रही हैं । सीताकी देखते ही लोगोंने जयजयकार किया और वाल्मीकिजी सभाके बीचमें पहुँचकर रामसे कहने लगे—॥ २३-२५ ॥ हे राम ! कुछ दिन हुए जब आपने लोकापवादके भयसे सीताको मेरे आश्रमके समीप छोड़वा दिया था । आज वह हो सीता आपके सामने शपथ खायगी, आप इसके लिए आज्ञा दें । सीताके इन दोनों पुत्रोंमें कुश आपका तथा लव (बलकी बूंदोंसे) बनाया हुआ मेरा बेटा है । उसे मैंने सहसा सीताके डरसे बनाया था । ये दोनों बेटे

सुताविमौ तु दुर्घर्षौ तथ्यमेनद्रयामि ते । प्रचेतमोऽहं दशमः पुत्रो रघुकुलोद्भवः ॥३०॥
 अनृतं न स्मराम्युक्तं यथेमी तत्र पुत्रकौ । बह्वर्पणान् सम्यक् तपश्चर्या मया कृता ॥३१॥
 नोपश्रुतौ फलं तस्या दृष्टेयं यदि मैथिलौ । इत्युक्त्वा राघवस्याङ्गैर्दक्षिणे स्यात्पुत्रं कुशम् ॥३२॥
 लवं क्षिप्रस्य वामाङ्गे तस्या तस्याग्रतो मुनिः । रामोऽपि तौ समालिङ्ग्य गूढ्यैव ग्राय सादरम् ॥३३॥
 लवस्य मस्तके हस्तं मन्थाप्य जगदीश्वरः । अतिद्वयतरं बालं पूर्ववन्मोऽकरोच्च तम् ॥३४॥
 ततो रामोऽपि तौ मीता दृष्ट्वा वृद्धयान्तिताम् । अज्ञात इव संप्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् ॥३५॥
 स्वया भुजः समानीतः मीताया मां पदशितुम् । पुनः तमानयस्वाद्य चेदस्ति रक्षितस्त्वया ॥३६॥
 तथेत्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि पेटिकाभिहितं भुजम् । मीतायाः पुत्रो रामं दर्शयामास सादरम् ॥३७॥
 मीताभुजोपमं दृष्ट्वा भुज मांसादिभिर्युतम् । पञ्चवर्षान्तरे काले क्षामन् सर्वेऽतिविस्मिताः ॥३८॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र पश्यन्तु मकलेषापि । भुजः स सुप्रतां प्राप्तो विश्वकर्माद्भवः अजात ॥३९॥
 तद्दृष्ट्वा कीर्तुं लोकाः क्षम्यन्ति विस्मिताः । रामोऽपि विस्मिनः प्राह वाल्मीकिं प्रणिपत्य च ॥४०॥
 एवमेव महापुत्र एतन् मां त्वयः प्रुता । पुन्यो जनिता मया तव वाक्यैरकिल्बिषैः ॥४१॥
 लकायामां दृष्टो मे वैदेहः प्रचरतो मया । देवतां पुरतस्तेन मन्दिरं सप्रवेशिता ॥४२॥
 सर्वे लोकाश्च पुनः पुनः पुनः पुनः । साता मया रमित्यक्ता तद्भवान् सन्तुमर्हति ॥४३॥
 मनः जतोऽस्मिन् तदा मया दृष्टोऽपि च लवस्यया । लवश्चाभ्या कृतो वेद्य मीताशपमयान्मुने ॥४४॥
 तथापि लाक्षान्नकलान्द्रपु मात उग्रप्र-चरन् । कर्तुं शक्यं नापि मयायां तव सन्निधौ ॥४५॥
 शुद्धायां जगत्तन्ध्ये मातामर्गादगम्यम् । तदा तन्त्रपथं द्रष्टुमांस्त्रिलोकाः समुत्सुकाः ॥४६॥
 सभया जानका चाप तदा कौशिक्यानिना । उदङ्मुखं क्षोभितः प्राञ्जलिर्वाक्यममवीत् ॥४७॥

अमाधारण कर है । कांड भा य द्वा इसक सामन नही टिक सका । विधाताका मैं दसवा पुत्र हूँ । आज तक मैं कभी दंड नहीं बनाया । अनेक वर्षों तक मैंने धार तपस्या की है । यदि सीता किसी तरह भी पापाचारिण होना तो मैं इसक हाथों से जन्मक न मरण करता । इतना कहकर वाल्मीकिने कुशको रामके दाहिना बैठा तया लवको बायाँ ओर बिठाना दिया और स्वयं उसके सामने एक ऊँचे आसनपर बैठे । रामने बड़े स्नेहसे उन बच्चोंका आलिंगन किया, माया, मूँधा और लवके मस्तकपर अपना दाहिना हाथ रखकर कुशक सम्मान हा अवस्थाका उनका भा बना दिया ॥ २७-३४ ॥ इसके अनन्तर रामने सीताकी ओर देखा ता सीताका शरीर अत्यन्त उज्ज्वल होकर देखी । उन्होंने अज तमावस लक्ष्मणका आज्ञा दी कि उस समय जो आज्ञाका भुज काटकर जङ्गलसे गुप्त दिखाने लाय थे, यदि वह सुरक्षित रीतिसे रखी हो तो यहाँ ले आओ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणने 'वृद्धत अकला' कहकर पेटासे रखी भुजा लाकर रामके सामने रख दी ॥ ३७ ॥ इन्ने दिन बीततेर भी ठेक सीताको भुजाओंके समान लटकते मांसके लोपड़े तथा रुधिरसंयुत भुजाओंको देखकर सभामें जितने लोग बैठे थे, वे बड़े विस्मिन हुए ॥ ३८ ॥ इसी बीच लोगोंके देखते ही देखते वह विश्वकर्माकी बनायी भुजा गायब हो गयी । यह कीतुक देखकर लोगोंकी ओर भी आश्चर्य हुआ । तब रामने विस्मित होकर वाल्मीकिसे कहा—हे महापुत्र ! मुझे ता आपकी बातोंसे ही विश्वास हो गया था कि सीता परम पवित्र है ॥ ३९-४१ ॥ लक्ष्मण भी मैंने सीताका शपथ देखी थी । उस समय देवताओंके समक्ष तपस्य लेनेपर ही मैंने इसे अङ्गीकार किया था ॥ ४२ ॥ तबानि लोकपवादके भयसे पवित्र समझकर भी मैंने सीताका परित्याग किया । आज मेरे इस अराग्यकी क्षमा करें ॥ ४३ ॥ यह भी मैं जानता हूँ कि कुश मेरा पुत्र है और लवको आपने सीताके शपथसे बनाया था ॥ ४४ ॥ यह सब होते हुए भी इन संसारवालोंका विव्वास दिलानेके लिए सीता इस सभामें शपथ ले ॥ ४५ ॥ यदि इस जनसमाजमें और इस संसारमें सीता शुद्ध सिद्ध हो गयी तो मैं इसकी किरसे अङ्गीकार कर लूँगा । उस समय सीताको शपथको देखनेके लिए वहाँ बैठे हुए सब लोग उत्सुक हो रहे थे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर सभामें रेशमी कपड़े पहने सीता बड़ी हो गयी और हाथ

रामादन्यमहं चेद्वि मनसाऽपि न चिन्तये । तर्हि मे घग्णी देवि विवरं दातुमर्हसि ॥४८॥
 एवं शपन्त्याः सीतायाः प्रादुरासीन्महादुतम् । भूतलादिव्यमन्वयं सिंहासनमनुत्तमम् ॥४९॥
 भुवो विवरमार्गेण समानीत मनोरमम् । नमोर्द्रेष्ठियमाण तदिव्यदेहं रविप्रभम् ॥५०॥
 भूदेवा जानकीं दोर्म्या धृत्वा दृढितरं निजाम् । स्वायत्तासीति तामुक्त्वाऽऽमने मा मन्यवेशयन् ॥५१॥
 वस्त्रालङ्कारस्वरगन्धसुगन्धः पूज्य मैथिलीम् । समालिङ्ग्याथ भूदेवी वीजयामास मादरम् ॥५२॥
 तदा जगः शर्मेभ्यः सुप्तं सिंहासनं त्वभूत् । सिंहासनस्था वैदेहीं प्रविशन्ती रमातलम् ॥५३॥
 दृष्ट्वाऽऽकाशस्थिता देवास्त्रिधाः सर्वास्तु सम्भ्रमात् । निम्नराभिर्वैदेहीं ववपुः पुष्पवृष्टिभिः ॥५४॥
 साधुवादश्च सुमहान्यभूत् सुरकीर्तितः । अन्नरिक्षे च भूर्मा च सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥५५॥
 तदा यभूत् चकितं शोताश्चपददर्शनात् । ऊचुस्ते वसुधा वाचो वानराश्च नरादिकाः ॥५६॥
 केचिच्चिन्तापराः केचिदासन्ध्यानपरायणाः । केचिद्रामं निरीक्षन्तः केचिर्मीनामभेतमः ॥५७॥
 गृह्णन्तमात्रं तत्सर्वं तूष्णींभूतमचेतनम् । प्रविशन्ती भुवं शीतां दृष्ट्वा सम्प्रीहितं जगत् ॥५८॥
 एतस्मिन्नन्दरे रामः प्रविशन्ती हि भूतके । विदेहतां तदा स्पृष्ट्वा वामहस्तेन सम्भ्रमात् ॥५९॥
 यां दधार करणादौ धृत्वा हस्तेन वै भुवम् । ततस्तीं प्रार्थयामास भुवं स रघुनन्दनः ॥६०॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

देवि त्वं सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम् । अस्मि लोकेकमाता त्वं महानीरोर्ध्वतः सदा ॥६१॥
 वर्तसे पुण्यरूपा न्वं जगुदा सकलान् जनान् । स्वजटगर्दापधीस्त्वं करोषि विश्ववृत्तिदाः ॥६२॥
 त्वं दुर्गा त्वं स्वरा लक्ष्मीसमं विष्णोः प्रिया शुभा । त्वमेवाद्यात्र मे शक्तिर्निमिताऽसि मयैव हि ॥६३॥
 निजोदराद्दामि त्वं धानूर्प्राप्त्या जनान्सदा । श्रमायुक्ता त्वमेवासि सूक्तायुक्तादिकर्मसु ॥६४॥

जोह्वर नीचो निगाह तथा ऊपर मुँह करके बोली—॥ ४७ ॥ हे पृथ्वी माता ! यदि रामके सिवाय अन्य किसीको मैं अपने हृदयसे भी न सन्नाहूँ तो आप मुझे ऐसा अगह दाजिए कि जिससे मैं आपसे समा जाऊँ ॥ ४८ ॥ इस प्रकार सीताके प्रार्थना करतपर नुरस्त एक दिव्य सिंहासन पृथ्वीके भीतरसे निकल । उसको बड़े-बड़े नाग अपने सिरपर उठाये हुए थे । सूर्यक समान ददीप्यमान उन नागोंका प्रकाश था ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इतनेमें साक्षान् पृथ्वी देवीने अपना दानो भुजाओंसे सीताका स्वागत किया । फिर छातीसे लगा तथा गोदमें लेकर उन्हे उरा सिंहासनपर बिठाकर दिया । इसके अनन्तर वन-अलंकार-माला-फल आदिसे सीताकी पूजा की और छातीसे लगाकर पत्ता करने लगी ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इसके बाद धीरे-धीरे वह सिंहासन पृथ्वीके भीतर धुमने लगा । सिंहासनपर बैठी हुई सीताको पातालमें जाती देखकर आकाशमें स्थित सारी स्वामनाएँ उनपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगी ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ आकाश और पृथ्वीमें देवताओं और मनुष्योंने साधुवाद किया । सीताकी उस शपथको देखकर समस्त स्थावर-जंगम प्राणी चकित हो गये और अपनी सुधि-बुधि भूलकर परस्पर बात करने लगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उनमें कुछ लोग चिन्तित थे और कुछ ध्यानमग्न । कुछ लोग रामको देख रहे थे । कुछ लोग अपनी सुधि-बुधि भूलकर सीताकी ओर निहार रहे थे ॥ ५७ ॥ गृह्णन्तमरके लिए वहाँ सारा समाज सन्न हो गया । सीताको पृथ्वीके भीतर समाती देखकर समस्त संसार मुग्ध हो गया ॥ ५८ ॥ राम सीताका पृथ्वीमें घँसती देखकर अपने सिंहासनसे कूद पड़े और पृथ्वीके पास जा पहुँचे । वे उनका हाथ अपने हाथसे पकड़कर इस प्रकार पृथ्वीसे प्रार्थना करने लगे ॥ ५९ ॥ ६० ॥ श्रीरामचन्द्र बाल—हे देवि ! आप सारे संसारकी निवासभूमि हैं । समस्त जगत्की माता होकर महानीरक ऊपर आप स्थित हैं ॥ ६१ ॥ आप पुण्यरूपा हैं । समस्त जनोको हर प्रकारकी सम्पत्तियाँ देनेको सामर्थ्य रखती हैं । आप अपने उदरमें अनेक प्रकारकी अंघ्रि-विषा उत्पन्न करके सबकी रक्षा करती हैं । आप दुर्गा, स्वरा और विष्णुकी प्रिया लक्ष्मी हैं । आप आदिशक्ति हैं और मैंने ही आपको बनाया है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ आप अपने उदरसे भाँति-भाँतिके धानु निकालकर

ज्ञानकी तब कन्येय सभ्रूखं मेऽधुना न्विह । कन्यादान कुरु मुदा त्वया पूर्वं कृतं न हि ॥६५॥

प्रमीदं देवि नोचेन्मे न्वयि कंथा भविष्यति ।

श्रीरामनाम उवाच

इति मंत्रार्थिना चापि राघवेण महान्मना ॥६६॥

नारी काठिन्यभावान्मा नाशृणोद्राघवेरितम् । शनैः शनैः मत्तामहिता सा जगाम ह ॥६७॥

तां गच्छन्तीं पुनर्दृष्ट्वा भूवं रामो धृतामपि । बभूव कोधनाम्नाश्चमदा लक्ष्मणमवतीव ॥६८॥

आपमानय सौमित्रे शिक्षयेऽहं भुव न्विमाम् । मञ्जुगेपमशणेन वसुधेयं विदेहजाम् ॥६९॥

मामद्य दास्यति सिप्रमस्य घातं न रोचये । ततोऽर्मा लक्ष्मणानातं करे कोदण्डमुत्तमम् ॥७०॥

धृत्वा न्यारोपणं कृत्वा शरसंधानमातनोत् । तदा बभौ महान्बाधुशुभुमे लवणार्णवः ॥७१॥

तारा निपेतुर्घरणीं बभूवुः सरजा दिशः । चकम्पे धरणीं मापि प्राहाति वदती मुहुः ॥७२॥

कराभ्यां जानकीं धृत्वा रामस्यांकं न्यवेशयत् । श्रीगमपदयोः पृथ्वी शिरसा नमनं व्यधात् ॥७३॥

तदा स्ने देववाद्यानि नेदुः कुमुदवृष्टिभिः । ववर्जुजानकीं राम देवसखा मुशान्विताः ॥७४॥

ततो रामोऽपि तां दृष्ट्वा पदयोर्नमतीं भुवम् । स्वकोपं शान्तमकरोत्कराभ्यां आपमार्गणी ॥७५॥

विसृज्योत्थापयामास स्वकरेणावनिं प्रभुः । ततः सा राघवं नत्वा प्रमाद्य च पुनः पुनः ॥७६॥

दत्त्वा विदेहकन्यार्यं तं मिहामनमुत्तमम् । सीतां स्तुत्वाऽथ तां पृष्ट्वा तथा मंपूजितार्जपि च ॥७७॥

आमन्त्रय राघवं पृथ्वी क्षणादनहिताऽभवत् । तदा सीतां जनाः सर्वे पुनर्जातां तु मेनिरे ॥७८॥

अथशब्दैः प्रणमुस्तां चक्रुः पूजां पृथक् पृथक् । ददौ दानान्पनेकानि तदा रामो मुदान्वितः ॥७९॥

नववायनिनादाश्च सम्बभूवुः समन्ततः । ननुतुर्वारिनापथं तुष्टुर्वन्दिमामवाः ॥८०॥

ससारी लागाका प्रातिपूर्वक प्रदान करता है। सूक्त और असूक्त जितन भा कम है, उनमें आप समाख्या हैं ॥ ६४ ॥ यह सीता आपका कन्या है। इस बात आप मेरी सास हैं। आपने विवाहके समय कन्यादान नहीं किया था, सो अब कर दीजिए ॥ ६५ ॥ हे देवि ! आप मेरेपर प्रमत्त हो जायें। नहीं तो मैं आपको ऊपर फुट्टा हुआ जाऊंगा। श्रीरामदासन कहा—रामके इस तरह प्रार्थना करनेपर भी पृथ्वीने उनको एक न सुना। क्योंकि स्वभावसे ही नारियोकद हृदय कठिन हुआ करता है। सीता धीरे-धीरे पृथ्वीतलमें समाती जा रही थी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ विनय करनेपर भी जब रामने देखा कि पृथ्वी मेरी बातोंपर कुछ ध्यान नहीं दे रहा है तो मार कायके उनका भाँप लाल हो गयी और लक्ष्मणसे बोले—॥ ६८ ॥ लक्ष्मण ! मेरा धनुष तो उठा लाओ, मैं पृथ्वीका उसक दुराग्रहका दण्ड दे दूँ। मेरे धुरे महेश तोरण बाणसे डरकर यह सीताको लौटा देगा। इस में मारना नहीं चाहता, चाहता हूँ केवल सीताको इसका हाथसे लौटना। तदनुसार तुरन्त लक्ष्मण धनुष उठा लाये। रामने उसे लेकर राधा ठोक किया और बाण चढ़ाया। उस समय आरास आँधा चलन लगा, समुद्रमें प्रलयकालकी लहरें उठने लगीं, तारे टूट-टूटकर गिरने लगे और चारों दिशाएँ घूलते आन्धकारित हो गयीं। ऐसी अवस्थामें “शहि-शहि” करती हुई पृथ्वी काँपने लगी और उसने अपने हाथों सीताका उठाकर रामकी गोदमें बिठा दिया। इसके बाद पृथ्वीने सिंह मुकाकर रामके चरणोंकी बन्दना की ॥ ६९-७३ ॥ उस समय स्वर्गमें देवताओंने देववाद्य बजाये और राम तथा सीतापर फूलोंकी वर्षा की ॥ ७४ ॥ इसके बाद जब रामने देखा कि पृथ्वी मेरे चरणसे झुकी हुई विनती कर रही है तो अपना कोप शान्त कर लिया तथा धनुष-बाणका परित्याग करके अपने दोनों हाथोंसे पृथ्वीको उठाया। इसके अनन्तर पृथ्वीने फिर गगनचुको बार-बार नमस्कार किया, प्रार्थना की और सीता तथा वह मृगमय सिंहासन रामको समर्पण कर दिया। फिर सीताकी स्तुति की। सीताने भी पृथ्वीकी विधिवत् पूजा की। तत्पश्चात् रामकी आज्ञा लेकर क्षण भरके भीतर ही पृथ्वी अस्तर्धान हो गयी। उस समय समार्यें बँटे हुए लोगोंने सीताका पुनर्जन्म समझा ॥ ७५-७८ ॥ सब लोगोंने सीताकी विधिवत् पूजा की और अत्यन्त प्रशंसा करके प्रणाम किया। तब रामने अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ७९ ॥ प्राति-भित्तिके बनीन बाजे बजे,

नवमः सर्गः

(रामादिके बाललोक उपायन-सम्कार)

श्रीरामदाम उवाच

अधोर्मिला मांडवी च श्रुतकीर्तिः सर्वत्र ताः । यधुवृत्तगान्धिकचिदन्वयस्यो महोदगाः ॥ १ ॥
 तासां चकार सीता मा कौतुकानि च मादगम् । तामां पुनर्वनादीनि विविधानि रघूनमः ॥ २ ॥
 आहूय पन्था जनकं कारवामस वन्धुभिः दोहदान् पूर्यामासुस्वामां पौंसुहृन्निधयः ॥ ३ ॥
 तासां सर्वान् समुत्सहानेव कृत्वा रघूनमः बद्धलकारभूषाभिस्तोपयामास ताः सुतम् ॥ ४ ॥
 अधोर्मिला मा तनयं सुपुत्रं परमोदयम् । ततः मा मण्डवी पुत्रं सुपुत्रं परमे दिने ॥ ५ ॥
 ततः मा श्रुतकीर्तिश्च सुपुत्रं यमलौ कृतौ कलां रेणोर्मिलाया द्वितीयस्तनयोऽभवत् ॥ ६ ॥
 तथाप्यस्मिन् मांडव्याः पुत्रः कालांतराद्भूतः तत्रैव दिग्भ्रमकामं कृत्वा रामः पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥
 चकार मरुता विप्रमोन्माहेत्येति च । तत्रैव मरुतां गतो जंघुभिश्चक्रे कनिष्ठकः ॥ ८ ॥
 मांडव्याः पुत्रं ज्येष्ठः तत्रैव तत्रैव श्रुतकीर्तिः सुपुत्रं तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव ॥ ९ ॥
 एत कृतानि च मा ते सुतः तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव ॥ १० ॥
 तेष्वेव मया प्राक्ता मत्सेवेनां तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव ॥ ११ ॥
 वादयामासुर्वाद्यानि श्वर्षुः पुण्यवृष्टिभिः । मयैवः पितृभिर्युक्तान् बालकान् सूर्यसन्निभान् ॥ १२ ॥
 राजद्वारि महानागीदुर्मवश्च नृपाहया । निनेर्दुर्नववाद्यानि ननृतुश्चाप्मरोमणाः ॥ १३ ॥
 वादयन्ति स्म तूर्गाणि दुष्टवृन्दिमागधाः । नगरीं शोभयामासुः पताकापञ्चजतोरणैः ॥ १४ ॥
 सुहृदः पार्थिवाः सर्वे रामादीनां च पूजनम् । दस्त्रैराभरणैश्च चक्रिरे ते पृथक् पृथक् ॥ १५ ॥
 ददुर्दानानि विप्रेभ्यो रामया वंशश्च ते । ब्राह्मणान् भोजयामासुः श्राद्धानि चकुरादगात् ॥ १६ ॥

श्रीरामदाम बाल—कुछ काल बाद उमिस्त्र, माण्डवी तथा श्रुतकीर्तिने साथ साथ गर्भधारण किया ॥ १ ॥
 सीता ने इस समयपर बड़ा मुजबदास्ती की और रामने विधिपूर्वक पुनर्वनादि संस्कार किये ॥ २ ॥ इस संस्कारके समय जनक तथा ममेराको भी रामने बुलवा लिया और उन्हीके द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ । पुरवासिनी स्थितोने उर्मिलाकी आज्ञा इच्छा हुई, सा पूर्ण किया । ३ ॥ रामने इस प्रकार उत्सव करके अनेक तरहके वस्त्र और आभूषण दिए ॥ ४ ॥ इससे बाद समय पूरा होतपर उमिलान एक परम तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया और तब तब तब माण्डवी भी एक पुत्रपन्न उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर श्रुतकीर्तिके एक साथ दो पुत्र उत्पन्न हुए । कुछ दिनों बाद उमिस्त्रने एक और पुत्र और उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ इसी प्रकार कालांतरमें माण्डवी के भी एक और पुत्र हुआ । रामने अपने कुलपुरुष वसिष्ठके साथ उन पुत्रोका जातकवर्मादि संस्कार किया । लक्ष्मणके ज्येष्ठ पुत्रका नाम अक्षद और दूमरे बेटका नाम चित्रकेतु पड़ा ॥ ७ ॥ ८ ॥
 माण्डवीके ज्येष्ठ पुत्रका नाम पुष्कर तथा वनिष्का तथा नाम पड़ा । इसी तरह श्रुतकीर्तिके ज्येष्ठ पुत्रका नाम सुबाहु तथा कनिष्ठ बेटका नाम वृषकेतु पड़ा ॥ ९ ॥ १० ॥ गुरु वसिष्ठने विधिपूर्वक सबका नामकरणदि संस्कार किया । हे शिष्य । यहांपर मैंने तुम्हें संक्षेपमें एक ही एक पुत्रका नाम बतलाया है । इनके सिवाय भी बहुतसे पुत्र हुए । प्रत्येक पुत्रके जन्मसमयपर देवतागण हर्षपूर्वक अपने बाजे बजाते और उनपर तथा उनके माता-पितापर पुष्पोकी वृष्टि किया करते थे । रामचन्द्रजीके आज्ञानुसार राजद्वारपर बड़े-बड़े उत्सव रचाये जाते, नये-नये बाजे बजाते और वेग्याएँ नृत्य करता भी । बन्दीजन तथा सूत-मागध आ-आकर विविध प्रकारकी स्तुतिर्वा किया करते थे । पताका पञ्चा तथा तोरणादिकोसे अयोध्या नगरीका शृङ्गार किया जाता था । रामके मित्र समस्त राजे अनेक प्रकारके वस्त्राभूषणोंको देसकर उनका पूजन करते थे ॥ ११-१५ ॥
 राम-लक्ष्मण आदि चारों भ्राता भी ब्राह्मणोंको दान देते, उन्हें भोजन कराते एवं मान्दीभाद्यादि कृष्णोंको

एवमष्टौ कुमारास्ते रामादीनां मनोरमाः । वष्टुभुवचंद्रवदना मातृभिलालिताः सुखम् ॥१७॥
 मृत्सलावद्धरुक्मादिनिर्मितेषु वरेषु च । प्रखेपु हि कुमारास्ते विरेजू रुक्मभूषिताः ॥१८॥
 भाले स्वर्णमयाश्चत्थपर्णान्यनिमद्धान्ति च । मृत्काफलाग्रलवीनि शोभयन्ति स्म बालकान् ॥१९॥
 कंठे रत्नमणित्रातमध्यर्द्धापिनखरक्षिताः । कर्णयोः स्वर्णमपञ्जरत्नार्जुनसुतालकाः ॥२०॥
 मिजानमणिमंजीरकटिमुत्रागर्द्धयुताः । स्मिनवक्त्राल्पदशना इन्द्रनीलमणिप्रभाः ॥२१॥
 अंगणे रिग्ममाणाश्च मष्कारः मष्कृताः शुभाः । ने पितृन् रञ्जयामासुर्मातृश्चापि विशेषतः ॥२२॥
 मानाशिशुकीडनकंदचेष्टिर्नृमुत्तुवनेः । बालकृत्रिमयुद्धश्च यमनेर्मधुरेरितः ॥२३॥
 ततस्ते बालकाः सर्वे यस्त्रालंकारभूषिताः । सभायां राघवं नत्वा तस्युः सिंहासनोपरि ॥२४॥
 एकदा राघवः प्राह वसिष्ठं मदमि स्थितम् । अवलोक्य बालानां त्व चिह्नानि यथाक्रमम् ॥२५॥
 तच्छ्रुत्वा रामवचन वसिष्ठो भूयुरः मह । आर्द्रां कुर्यां समाहूय दृष्ट्वा रामं वचोऽब्रवीत् ॥२६॥

वसिष्ठ उवाच

पंचसूक्ष्मः पंचदीर्घः समरक्तः षड्भ्रतः । त्रिपृष्ठुर्लघुगंभीरो द्वात्रिंशलक्षणस्तदयम् ॥२७॥
 पंच दीर्घाणि शस्तानि यथा दीर्घायुषोऽत्र च । भुजौ नेत्रे हनुर्ग्रीवा नाम्ना च तनयस्य ते ॥२८॥
 ग्रीवाजंघामेहर्नश्च त्रिभिर्हस्तोऽयमिदितः । स्वरेण सत्त्वनाभिभ्यां त्रिगंभीरः शिशुः शुभः ॥२९॥
 त्वक्केशांगुलिदशनाः पवाण्यङ्गुलिज्ञान्यपि । तथाऽस्य पंच सूक्ष्माणि सूचयन्ति परां श्रियम् ॥३०॥
 पाण्यङ्गितलनेत्रांते तान्दुर्जिह्वाधरोष्ठकम् । मस्राक्ष्ण च सनत्त्वमस्मिन् राज्यमुखप्रदम् ॥३१॥
 वक्षः कुक्ष्यालिकस्कन्धकरश्चक्रं षड्भ्रतम् । तथाऽत्र दृश्यते बाले महर्दश्वर्यभोगभाक् ॥३२॥

किया करते थे । इस तरह रामादि चारों भ्राताओंके आठों कुमार-जिनका चन्द्रमाके समान मुखमण्डल था—
 माताओंसे लालित होकर बहने जाते थे । सोनेके जर्जरोंसे सज्ज हुए एवं तरह-तरहके रत्नोंसे सुसज्जित बालकों-
 पर वे आनन्दकी विलकारियां मरा करते थे ॥ १६ ॥ उन बच्चोंका कितने ही प्रकारके स्वर्णमय आभूषण पहनाये
 जाते और माथेपर पीपलके पत्तेकी नाई सुवर्णका पन्ना बनाकर लगाया जाता था । जिसमें छोटे छोटे मोतियोंके
 झुल्ले लटकते हुए बड़े भले लगने थे । १७ ॥ १८ ॥ गलेमें रत्नों और मणियोंके समूहके बीचमें व्याघ्रका नख
 शांभाषमान हो रहा था । कानोंमें सुवर्णके कुण्डल झूलते रहने थे और उनमें लगा हुआ होरा प्रकाशित
 हो रहा था ॥ १९ ॥ २० ॥ हनुज्जुन करती हुई मणियोंका करवनी पड़ी थी । हाथोंमें कङ्कण तथा
 त्रिजायठ अपना असाधारण निलार दिवा रहा था । जिस समय वे बच्चे तनिक मुस्करा देते तो इन्द्रनील-
 मणिके समान उनके छोटे-छोटे दांत दिखने लगते थे । हाथ और पैरके सहार आंगनमें रंगते हुए वे बालक
 नाना प्रकारके बालविनोद तरह-तरहकी चालें, मुखचुम्बन, बालकीम कृत्रिम युद्ध और मोठो-मोठी बोलोसे
 अपने-अपने माता-पिताकी आनन्दित करने रहते थे । कुछ दिनों बाद वे अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहिनकर
 राजसभामें जाते और वहाँ नियमतः रामचन्द्रको प्रणाम करके अपने आसनपर बैठ जाते थे ॥ २१-२४ ॥
 एक दिन राजसभामें बैठे हुए वसिष्ठजीसे रामन कहा—आप कृपया इन बालकोंका शुभाशुभ लक्षण
 देखकर हमें बतलाइए । यह बात सुनकर वसिष्ठने सबसे पहले कुशको अपने सामने बुलाया और
 रामसे कहने लगे—॥ २५ ॥ २६ ॥ पाँच प्रकारके लक्षण सूक्ष्म, पाँच ही तरहके दीर्घ साठ रक्त, छः
 उन्नत, तीन विस्तृत, तीन ही तीन लघु तथा तीन गंभीर सब मिलाकर ३२ प्रकारके लक्षण
 होते हैं ॥ २७ ॥ जैसे कि इस चिरजीवी कुशके हाथ, नेत्र, बाहु, घुटने, नाक ये पाँच दीर्घ हैं । अतएव
 ये बहुत अच्छे हैं । ग्रीवा, जंघा और लिंग इन तीनोंके छोटे होनेसे इसके तीन लघु हैं । ये भी अच्छे हैं ।
 शब्द, बल तथा नाभि ये तीन गंभीर हैं । इसकी स्वभा, केश, टँगलियाँ, दाँत, शरीरकी संधियाँ तथा
 वक्ष ये पाँच सूक्ष्म इसकी श्रीकी सूचना दे रहे हैं । हाथ, पैर, ललाटे, नेत्रके आस-प्रासवाले भाग तथा तालु,
 निह्ण, जबरोठ और वक्ष ये रक्तवर्णके होनेसे राज्यसुख देनेवाले हैं ॥ २८-३१ ॥ छाती, पेट, कंधा,

ललाटकटिवक्षोभिस्त्रिविस्तीर्णो यथा हर्मो । सर्वनेजो महेश्वर्यं तथा प्राप्स्यति नान्यथा ॥३३॥
 अच्छिन्नां तर्जनीं प्राप्य तथा रेखाऽस्य दृश्यते, कनिष्ठमूलनिर्याता दीर्घायुष्यं यथा भवेत् ॥३४॥
 कमठपृष्ठकठिनावकर्मकणौ कर्गौ । राज्यदेनू गिरीरस्य पादौ चाध्वनि कोमलौ ॥३५॥
 पादौ समामलौ रक्तौ सर्मा सुशोभनौ । ममगुणैः स्वदेहेन स्निग्धार्थदर्शमूचकौ ॥३६॥
 स्वप्नाभिः कररेखाभिश्चरक्ताभिः सदा सुखा । लिंगे कृपणस्वेन राजगजो भविष्यति ॥३७॥
 उत्कटामनगुणकस्किङ्कनाभिरस्यापि वतुला । दाक्षिण्यवर्तमरुण महेश्वर्यमूचकम् ॥३८॥
 धारका मूत्रके यस्य दक्षिणावर्तनी यदि । गधश्च मानमधुनोर्यदि वीर्यं तदा नृपः ॥३९॥
 विस्तीर्णो मांसलो स्निग्धो भुजावस्य मुखोचितौ । वामावर्तो सप्रलंबौ भुजौ भूरक्षणोचितौ ॥४०॥
 श्रीचन्सवचचकाञ्जमन्सपकोददंडभृन् । तथाऽस्य करगा रेखा यथा स्यात्त्रिविदिवस्यति ॥४१॥
 द्वात्रिंशदशनधायं वरकंबुशिगोधरः । कौचदुदुभिर्दमाभ्रम्बरः सर्वेश्वराधिकः ॥४२॥
 मधुपिंगलनेत्रोऽमो नैनं श्रीमन्यजनि कचिन । पंचरेखाललाटभु तथा मिहोदरः शुभः ॥४३॥
 ऊर्ध्वरेखांकितपदो निःशमन्यगमन्धवान् । आच्छद्रूपाणिः मुनयो महालक्षणवानयम् ॥४४॥
 एवं कुशं निरीक्ष्याथ सर्वान् दृष्ट्वा क्रमेण सः । ललाटानां मूर्चिह्वानि पूर्ववत्प्राह राघवम् ॥४५॥
 ततः प्रीतमना रामः पूजयामास तं गुरुम् । वस्त्रगभरणभरं ययौ हर्षितो गृहम् ॥४६॥
 एतस्मिन्वतरे सीता भूमिदत्तवरागमे । गन्धिताना चामरैर्दिव्यैर्दायीभिः परिवाजिता ॥४७॥
 सखीभिः सेविता रम्या धृताधोकोपवर्हणा । मृदुये म्व निर्गन्धती मुखं चन्द्रनिभं वरम् ॥४८॥

हाथ, पसलियाँ और मुँह ये छः जगन दण्ड हैं जो मनुष्य को राजा बनाते हैं ॥३२॥ मस्तक, कमर और छाती ये तीन विस्तीर्ण हैं, जो सब ऐश्वर्य देने वाले हैं इनका कोई सन्देह नहीं है ॥३३॥ हाथकी एक रेखा ठीक तर्जनी पर्यन्त चली गयी है उसका मूलचक्र ॥३४॥ कनिष्ठीकी पीठके समान कहे-कहे इसके हाथ राज्यप्राप्तिकी सूचना दे रहे हैं । इसके कमल, शरावर, लाल, पतले, सुन्दर और बराबर ऐंड़ीवाले पैर भी इसके राज्यप्राप्तिकी सूचना दे रहे हैं ॥३५॥ ३६ रेखा और लाल रेखाकी रेखाएँ यह बतलाती हैं कि यह सदा सुखी रहेगा । इसका लिंग पतला और होरा है । इससे यह जाना जाता है कि यह बच्चा भविष्यमें राजाओंका भी राजा होगा । इसका निमम्ब तथा धुरा मजबूत है और नाभि गहरी तथा सझिणावर्त होकर लाल रेखाकी है । ये सब भी महान् ऐश्वर्यकी सूचना दे रहे हैं । दाक्षिणशास्त्रियोंमें कहा गया है कि मूत्रल्यागके समय जिसके लिङ्गसे मूत्रकी केवल एक धार दक्षिणावर्त करे और उसका बीरस मछली तथा गहरेके समान गन्ध निकले तो वह मनुष्य राजा होता है ॥३३-३९॥ इसका बड़ी भट्टी और चिकनी भुजाएँ गुल भोगने लायक हैं । लम्ब और वामावर्त बाहुदण्ड पुरुषकी लक्षा-रचना ॥३९॥ ४० शीर्ष, वक्ष, चक्र, कमल, मत्स्य, घनुष तथा दण्ड आदिके आकारको ऐसी रेखाएँ दण्डाधोमानी है, जिससे ज्ञात होता है कि यह देव-राजोंका भी राजा होगा ॥४१॥ इसका मुखम पुर वरमण्डल है । शत्रुके समान सुन्दर इसकी प्रीति है । शीघ्र पक्षी, नगाड़ा, हंस तथा भेड़के समान गम्भीर इसका स्वर है । इससे जान पड़ता है कि यह संसारके समस्त राजाओंसे बढ़कर होगा ॥४२॥ मधु (शदह) के समान पिंगल वर्ण इसकी भाँति है, इसके ललाटमें पाँच रेखाएँ हैं, सिंहके समान उदर है, इसके पैरोंकी रेखाएँ ऊपरकी गयी हैं, इसके श्वाससे कमलकी गन्ध आती है और सुन्दर-सी नासिका है, इन सब लक्षणोंसे ज्ञात होता है कि यह असाधारण लक्षणसम्पन्न बालक है ॥४३॥ ४४ इस प्रकार कुशके लक्षणोंको बतलाकर बसिष्ठने बाकी लव आदि बालकोंके भी लक्षण बतलाये । उपनयन रामने अनेक प्रकारके वस्त्रों और आभूषणोंसे बसिष्ठको पूजा की और उनकी आज्ञा लेकर रामचन्द्रजी अपने महलमें चले गये ॥४५॥ ४६ वहाँ सीताजी पृथ्वीके दिये हुए सुन्दर सिंहासनपर बैठी थीं । कितनी ही दासियाँ चँवर पड़े आदि सज रही थीं । बहुत-सी सखियाँ तरह-तरहका सेवामें लगी थीं । उस समय सीताजी पीछे तकिया लगाकर बैठी हुई दर्पणमें अपना मुख देख रही थीं । अब उन्होंने सुना कि

रामस्यागमनं श्रुत्वा संचचालासनाज्ज्वात् । ततो ददर्श श्रीरामं बालकैः परिवेष्टितम् ॥४९॥
 स्वकन्यां यूपकेतुं च दधानमवरं शिशुम् । तथैव दक्षिणे हस्ते दधानं चांगदं शुभम् ॥५०॥
 कुशं लवं पुरस्कृत्य सभायां तं शनैः शनैः । तन्पृष्ठे सा ददर्शाथ लक्ष्मणं बालकान्वितम् ॥५१॥
 तप्तं कन्यां पुष्करं च दधानं दक्षिणे करे । तन्पृष्ठे भग्नं सीता ददर्श मुदितानना ॥५२॥
 चित्रकेतुं शिशुं कन्यां दधानं लक्ष्मणमण्डितम् । तथैव दक्षिणे हस्ते सुबाहुं पंकजेक्षणम् ॥५३॥
 तन्पृष्ठे सा ददर्शाथ शत्रुघ्नं जनकान्मजा । रामशस्त्राणि विभ्रतं सभायां तं शनैः शनैः ॥५४॥
 एवं सा राघवं दृष्ट्वा सीता प्रन्युज्जगाम तम् । शिञ्जन्मञ्जीरश्रुता पीतकौशेयधारिणी ॥५५॥
 कराभ्यां पुरतो यातं लवं धृत्वा चुचुर्व सा । निधाय तं लवं कन्यां धृत्वा हस्तेन तं कुशम् ॥५६॥
 ययौ शनैः सा रामेभ्य वदती स्वस्थलं पुनः । सखीभिर्वेष्टिता सीता रंजयामास राघवम् ॥५७॥
 अथ रामोऽपि सीतायाः स्थित्वा मिहामनोपरि । अक्रयोः पुरतश्चापि बालकान्संस्थिताश्च सः ॥५८॥
 सीतायै दर्शयन् प्रीत्या लालयामास सादरम् । सीतायै राघवः प्राह सभायां गुरुणा पुरा ॥५९॥
 यान्युक्तानि सुचिह्नानि शिशूनां तानि विस्तगन् । श्रुत्वा राममुवाचापि सीता तोषं परं ययौ ॥६०॥
 राघवः प्राह वैदेहोर्मिलापार्थोजिनाम् । सोनेऽङ्गदं चित्रकेतुं लक्ष्मणाकं निवेशय ॥६१॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा सीता शीघ्रं शिशू ययौ । तावदुन्धाय सौमित्रिलज्जया गंतुमुद्यतः ॥६२॥
 तं गन्तुकाम रामोऽपि दृष्ट्वा तौ मांढवीं तथा । श्रुतकान्तिं कजनेत्रमञ्जयाऽचोदयत्तदा ॥६३॥
 ताभ्यां धृतोऽथ सौमित्रिः स्मितारस्याभ्यामुपाविशन् । तावत्तदंक्रयोः सीता तन्पुत्रीं सन्न्यवेशयत् ॥६४॥
 तदुच्च भग्नस्याकं निवेशय तप्तपुष्करौ । शत्रुघ्नाकं सुबाहुं च यूपकेतुं न्यवेशयत् ॥६५॥
 ततः सीता पुनः प्राह स्मितास्यः स रघूदहः । बांजयन्मृमिलाद्याश्च स्य स्व स्वामिनमादरात् ॥६६॥

राम आ रहे हैं तो आसनसे उठ खड़ी हुई । ऊपरसे राम भी बालकोंके साथ सीताके समक्ष आगये ॥ ४९-४९ ॥
 उस समय वे अपनी बायीं गोदमें यूपकेतु तथा दाहिनी गोदमें अंगदको लिये हुए थे और लव-कुश बायें-बायें खल रहे थे । उनके पीछे बालकोंको लिये लक्ष्मणको भी आते हुए सीताने देखा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ लक्ष्मण तप्तको गोदमें लिये थे और पुष्करको अपने दाहिने हाथकी उँगली पकड़ाये बने आ रहे थे । उनके बाद सीताने भरतको आते देखा ॥ ५२ ॥ वे भी चित्रकेतु नामक बच्चेको बायीं गोदमें लिये और दाहिनी गोदमें कमलकी नाईं आँखोवाले सुबाहु नामक बेटको लिये हुए थे । ५३ ॥ उनके पीछे सीताने शत्रुघ्नको देखा । वे रामजाके शस्त्रोंको लिये बीरे-बीरे महलोंकी ओर आ रहे थे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार उन्हें आते देखकर सीता रामको ओर बढ़ी । कमरकी करघनी और सुदृघटिका अपनी रुतझुनकी ध्वनि कर रही थी और शरीरमें रशमी पीताम्बर सुशोभित हो रहा था ॥ ५५ ॥ उन्होंने रामके पास पहुँचते ही लवका मुख चूमा । फिर गादमें उठा लिया और कणको दाहिने हाथकी उँगली पकड़ाकर रामसे बातें करना हुई चली । उस समय भी चारों ओरसे कितनी ही सस्त्रियाँ घेरकर सीता तथा रामको प्रसन्न करती हुई बल रही थीं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजी सीताके मिहामनपर बैठ गये और बच्चोंको गोदमें लेकर खेलाने लगे । कुछ देर बाद रामचन्द्रजाने सीताको बसिष्ठसे सुने हुए बालकोंके शुभ लक्षण कह सुनाये । जिन्हे सुनकर सीता बहुत प्रसन्न हुई ॥ ५८-६० ॥ उर्मिला सीताके ऊपर पंखा झल रही थीं । इसी समय रामने सीतासे कहा कि बङ्गद और चित्रकेतुको ले जाकर लक्ष्मणकी गोदमें बिठा दो ॥ ६१ ॥ रामकी यह बात सुनकर सीता झटपट बच्चोंके पास पहुँची और उन्हें लक्ष्मणकी गोदमें बिठलाना ही चाहती थी कि लक्ष्मण रज्जाके मारे चलनेको तैयार हो गये ॥ ६२ ॥ लक्ष्मणको आते देखकर रामने बाँसोंसे संकेत कर दिया, जिससे भुतिकीर्ति और माण्डवीने लक्ष्मणको पकड़ लिया । तभी सीताने उन दोनों बच्चोंको लक्ष्मणकी गोदमें बिठा दिया ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ उसी प्रकार भरतकी गोदमें तप्त और पुष्कर तथा शत्रुघ्नकी गोदमें सुबाहु और यूपकेतुको बिठलवाया ॥ ६५ ॥ इसके बाद मुस्कराते हुए रामचन्द्रने

ततस्ता द्रुद्रुः सर्वाः मन्त्रीभिर्लज्जिता धृताः । व्यजनैर्गोजयामासुः स्वं स्वं कांतं सुलज्जिताः ॥६७॥
 एवं नानाकौतुकानि भोजनायनकर्मसु । कारयामास वैदेह्या वंश्वादीनां रघूत्तमः ॥६८॥
 अथ रामो वमिष्ठ म एकदा वाक्यमब्रवीत् । कुशस्याथ लवस्यापि व्रतबन्धो विधीयताम् ॥६९॥
 तथेति गुरुणा प्रोक्तस्ततो रामः शुभे दिने । गणकान् स समाहूय मंत्रयामास सादरम् ॥७०॥
 कुशाय पंचमं वर्षं किञ्चिन्पुनं लवाय च । श्रान्त्वा ते गणकाः सर्वे गुरुशुकादिकं बलम् ॥७१॥
 दृष्ट्वा पंचांगपट्टेषु राघवं वाक्यमब्रुवन् । माह्वणम्यष्टमे प्रोक्तो द्वादशे अत्रियस्य च ॥७२॥
 वैश्यस्य पौडशे वर्षे व्रतबंधो मुनीश्वरैः । जन्मात् पष्ठे तथा गर्भस्त्रिप्तमेऽष्टे नृपस्य च ॥७३॥
 व्रतबंधो विधातव्यो यन्नतश्च बलार्थिनः । ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यो विप्रस्य वंशमे ॥७४॥
 राज्ञो बलार्थिनः पष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे । विद्वद्भिश्चोपनयनमेव क्षात्रेषु निर्णयः ॥७५॥
 अतो गर्भस्त्रिप्तमेऽष्टे पुत्रयोश्च रघून्म । सुखं कुरुपनयनं मुहूर्तं मृणु सादरम् ॥७६॥
 अथारभ्य पंचदशदिने दत्तं कुशाय हि । पश्चात्तरेण त श्रुत्वा मुहूर्तं रघुनंदनः ॥७७॥
 गणकान् धनसत्तार्थैः पूज्य लक्ष्मणमब्रवीत् । आकारणीया राजानः सुहृदश्च मुनीश्वराः ॥७८॥
 सांतःपुराः सर्पसाश्च स्वस्वजानपदैः सह । मृद्गाः शिवाः शिवाः शिवाः शिवाः शिवाः शिवाः ॥७९॥
 सोधनीयास्तथा सांघममूहेषु मुधाः शुभाः । दद्याच्चित्राणि लेख्यानि प्रासादेषु समंततः ॥८०॥
 देवालयेषु सर्वेषु मुधा देवा मनोरमा । लेखनीयानि चित्राणि स्थाप्यतां बलवः पृथक् ॥८१॥
 बंधनीयाः पताकाश्च रोषणीया च्चजा अरि । समस्ततस्तोरणानि बंधनीयानि लक्ष्मण ॥८२॥

सीतासे कहा—अब उमिल, अतकोति तथा माण्डवी अपने-अपने पतियोंको पंखा झलें ॥ ६६ ॥ इस बातको सुनकर वे स्त्रियाँ रुद्राके मारे बहोमि भाग खड़ी हुई । किन्तु सखियाँ दौड़कर उन्हें पकड़ लायी और अन्तमे उन्हें रामके आज्ञानुसार अपने-अपने पतिगोपर पंखा झलन पड़े ॥ ६७ ॥ इस तरह भोजन, आसन तथा स्नानके समय रामचन्द्रजी साता तथा भ्राताओंके साथ विविध प्रकारके कौतुक किया करते थे ॥ ६८ ॥ कुछ दिन बातनेपर एक दिन बलिप्रसे रामने कहा—अब कुश और लवका व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत-संस्कार) कर द्यासना चाहिए ॥ ६९ ॥ वमिष्ठने कहा—अच्छी बात है । एक पवित्र दिवसको रामने बहुतसे ज्योतिषियोंको बुलाकर सलाह ली ॥ ७० ॥ जब ज्योतिषियोंको यह बात मानूस हुई कि कुशका पाँचवाँ वर्ष चल रहा है और लवका कुछ कम है । सब उन्होंने गुरु-शुकादिका बलाबल देखा ॥ ७१ ॥ पंचांगमे सब देख-सुनकर उन्होंने रामसे कहा—माह्वणका उपनयन आठवें वर्षमें, अत्रियका बारहवें वर्षमें और वैश्यका सोलहवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार होना चाहिए ॥ यह बटे-बटे ज्योतिषोंने कहा है । अपना वंशस्व बढ़ानेकी इच्छा रखनेवाले मित्र-को गर्भसे पाँचवें वर्षमें, बलवृद्धिकी कामनावाले राजाको छठ वर्षमें एवं धनवृद्धिकी इच्छा रखनेवाले वैश्यको आठवें वर्षमें ही उपनयन-संस्कार करना उचित है । यह शास्त्रोक्त निर्णय है ॥ ७२-७४ ॥ अतएव हे रघूत्तम ! आपके बच्चोंका गर्भसे लेकर यह छठाँ वर्ष चल रहा है । इसलिए इस समय इनका व्रतबन्ध करना अतिशय श्रेयस्कर है । अब बच्चोंके व्रतबन्धके लिए सुन्दर मुहूर्त बतलाता हूँ, सो सुनिए ॥ ७५ ॥ आजसे पन्द्रहवें दिन कुशके यज्ञोपवीतका पवित्र मुहूर्त मिलता है । इस प्रकार एक पक्षके बाद यज्ञोपवीतका मुहूर्त सुनकर राम-चन्द्रजीने अनेक प्रकारके व्रत-वस्त्रसे उन गणकोंको पूजा की और लक्ष्मणसे कहा कि समस्त राजाओं, मित्रों तथा मुँहवोके पास निमन्त्रण भेजकर झुल्ला दो कि सब लोग अपनी स्त्रियों, पुरवासियों तथा देशवासियोंके साथ इस उपनयनसंस्कारके उत्सवमें मेरे यहाँ पधारें । इस अयोध्या नगरीका अच्छी तरह सजवझो । इसके आस-प-सकी सातों सड़ियोंको साफ करवा दो ॥ ७७-७८ ॥ महलोंको धूनेसे पुतवा दो । अटारियों और दीवारोंपर नाना प्रकारके चित्र बनवाओ । अयोध्याके समस्त देवाल्योंको धूनेसे पुतवाकर उनमें माना प्रकारकी चित्रकारियाँ करवाओ और तरह-तरहके पूजनका प्रबन्ध कर दो ॥ ८० ॥ ८१ ॥ चारों ओर पताका

वैद्यः कार्यं रुक्मस्यो वन्धनीयाश्च मंहपाः, श्रुत्वा रानीनां हृदयश्चक्षिबिकाश्च सहस्रशः ॥८३॥
 अन्यञ्चापि यथायोग्यं यद्यजानामि लक्ष्मणः । तन-कुण्ड, यन्त्रां मया तव रघूत्तम ॥८४॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा चकार नन्वर्चं यथा रामेण शिक्षितः ॥८५॥
 ततो मुहूर्ते भीरामः स्नानमभ्यगृह्यकम्, कृत्वा कुमारैर्वदेद्यां वधुस्त्रीभिश्च वधुभिः ॥८६॥
 नानालंकारनस्त्राणि परिधायाथ तैः सह । पुण्याहं च न चक्रे गुरु पूज्य ऋषीश्वरान् ॥८७॥
 नां दीश्राद्वादिकं कृत्वा प्रतिष्ठां देवतस्य च । चकार मगलैर्मन्त्रैर्नन्दः सीतामभन्वितः ॥८८॥
 ततो ययुः कोटिशस्ते पार्थिवाश्च मुनीश्वराः । समद्रोषांस्त्रिभुवाश्च सारोधाः महाहनाः ॥८९॥
 तैः साऽप्योष्या तदा व्यासा विरेजे नितरां वरा । ततो मुहूर्ते दिवसे वसिष्ठो ब्राह्मणैर्युतः ॥९०॥
 रामस्याथ कुशस्याथ मध्ये घृत्वा वर वटम् । उवाच मगलान्वेद सुस्वरैर्मधुगाक्षरैः ॥९१॥

प्यान्वा श्रीगणनायक विधिमुतां शंभुं विधि माधव

लक्ष्मीं शीतमुतां विधेस्तु दयितामिद्र सुगंस्तान् ग्रहान् ।

पुण्यान्श्चावरनिम्नगाश्च सुमुनीन्स्वोयां कुलभ्याधिकं

तानं मानग्मादरेण वटवे भूयान्मदा मगलम् ॥९२॥

तदैव लग्नं सुदिन तदैव नागवलं चन्द्रवल तदैव ।

विद्यावलं देववल तदैव सीतापतेर्यन्मरण विधेयम् ॥९३॥

इति नानामंगलवार्यैस्तूर्ययोपैर्मनोहरैः । ॐकारघोषैः स गुरुर्मुमोर्चानःपटं तदा ॥९४॥
 ततस्तं राघवस्याङ्गे निवेश्य हवनादिकम् । विधिं कृत्वाऽथ कौपीनं दण्डं चाथ कमण्डलुम् ॥९५॥
 बधुश्चादौ रुक्मजां मौजौ वबन्धैणाजिनं तदा । ततः कुशाथ स गुरुर्गायत्रीमुषदिष्टवान् ॥९६॥
 ब्रह्मचर्यव्रतादीनि स कुशाथोपदिष्टवान् । कृत्वोक्तविधिना शीघ्रं कुर्यादाचमनं तथा ॥९७॥
 रुक्मजाओ और जगह-जगहपर ध्वजा अ स्थापित करो । सूर्यणंकां वेदियां बनवाया जायै ॥ ८२ ॥ ८२ ॥ इनके
 सिवाय भी ओ-जो बातें तुम्हें मानूस हों और मैं न बनवाया हो, उन्हें भी ठीक कर देना ॥ ८४ ॥ इस प्रकार
 रामकी बात सुनी तो 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर क्षण चल गया और रामने जेमा बतलाया था, वह सब
 प्रबन्ध कर दिया ॥ ८५ ॥ जिस दिन मुत्त था, उस रोज उबटन लगाकर उन कुमारों तथा सीता और
 भाइयोंके साथ रामने स्नान किया । नाना प्रकारके वस्त्र-अलंकारादि पहने । वसिष्ठ तथा निमन्त्रणमें
 आय हुए ऋषियोंका पूजन करके पुण्याहवाचन, नान्दाश्राद्ध, देवताओंको स्थापना आदि कार्य सुदृढ़ी
 और नगादोंके मंगलमय निनादके साथ राम तथा सीताने सम्पादित किये ॥ ८६-८८ ॥ इसके बाद सातों
 स्त्रीयोंके कराड़ों राजे तथा ऋषि अपने-अपने परिचार एवं वाहनोक साथ वहाँ आ पहुँच । उन लोगोंसे सारी
 खयोष्या भरकर बड़ी सुन्दर मानुस पहने लगी । पञ्चापवीत मुहूर्तके अवसरपर बहुतस बाह्यणोंके साथ
 बसिष्ठजी राम और कुशके मध्यमें एक सुन्दर कपड़ेका पर्दा बाँधकर माँडे तथा स्पष्ट स्वरमें मङ्गलपाठ
 करने लगे ॥ ८९-९१ ॥ उन मङ्गलमय श्लाकोंका अर्थ इस प्रकार है-गणेश, सरस्वती, शिव, ब्रह्मा, विष्णु,
 लक्ष्मी, पार्वती, ब्रह्माणी, इन्द्र, समस्त देवता, सम्पूर्ण ग्रह, पवित्र पर्वत तथा नदियाँ, अच्छे-अच्छे ऋषि, अपनी
 कुलदेवी तथा माता-पिता इन सबको प्रणाम करके आपलोग प्रार्थना करें कि जिस बच्चेका यज्ञोपवीत संस्कार
 होनेवाला है, उसका कल्याण हो ॥ ९२ ॥ वही लग्न लग्न है, वही दिन दिन है, वही विद्यावल तथा देववल
 है, जिसमें सीतापति रामचन्द्रका स्मरण किया जाय ॥ ९३ ॥ इस तरह विविध प्रकारके मङ्गलमय मन्त्रोंका
 पाठ करके गुरु बसिष्ठने ॐकार शब्दके साथ पर्दा खोल दिया । तदनन्तर बसिष्ठने लव-कुशको रामकी गोदमें
 बिठाकर हवनादि विधियोंका सम्पन्न किया । इसके अनन्तर कुशका मुखपर तारोसे बनी करधनी पहनायी,
 मुगचर्म बाँधा और कौपीन पहनायो । फिर दण्ड कमण्डलु दकर समस्त न कुशको गायत्री-मन्त्रका उपदेश
 दिया ॥ ९४-९६ ॥ फिर ब्रह्मचर्यव्रतके नियम आदि बतलाते हुए कहने लगे कि शास्त्रोंमें जो नियम बतलाये

दन्तान् जिह्वां विशोष्याथ कृत्वा मलविशोधनम् । स्नात्वाऽम्बुर्देवर्तमन्त्रैः प्राणानायम्य यत्नतः ॥९८॥
 उपस्थानं रवेः कृत्वा संधयोरुभयोरपि । अग्निं कार्यं ततः कृत्वा ब्राह्मणानभिवादयेत् ॥९९॥
 मुखमुकगोत्रोऽहमभिवादय ह्यपि । धारयन्मेखलां दण्डापवीताजिनमैव च ॥१००॥
 अनिघेषु चरेद्भैक्ष्यं ब्राह्मणेष्व्वात्मवृत्तये । वाग्यतो गुर्वनुज्ञातो धृञ्जीताश्रमकुन्सयन ॥१०१॥
 एकान्नं च समश्नीयाच्छ्रद्धेऽभनीयात्तथाऽऽरदि । द्विवारं नैव धुञ्जीत दिवा कापि द्विओत्तमः ॥१०२॥
 सायंप्रातर्द्विजोऽभनीयादग्निहोत्रविधानविन् । मधु मांसं प्राणिहिंसां मास्करालोकनं जले ॥१०३॥
 स्त्रियं पपुषिनोच्छिद्ये पवित्रादं विवर्जयेत् । यथेष्टचेष्टो न भवेद्गुणैर्नयनगोचरे ॥१०४॥
 न नाम परिगृह्णीयान्परोक्षेऽप्यविशेषणम् । गुह्यनिदां भवेद्यत्र पारवादस्तु यत्र च ॥१०५॥

श्रुता विधाय स्थानस्य यानस्य वा ततोऽन्यतः ।

न मात्रा न पितुः स्वस्रा न स्वस्त्रैकान्तशीलता ॥१०६॥

बलवन्तीन्द्रियाण्यत्र मोहयन्त्यनिकोविदान् । एवमादान्धनेकानि प्रसन्नचारिव्रतानि हि ॥१०७॥
 तस्मै गुरुभ्योपदिश्य ददौ दानान्यनेकशः । भोजयामास तं मात्रा सह मानोत्सर्वस्तदा ॥१०८॥
 कारयिन्वाऽथ पालाशपूजनं विधिपूर्वकम् । तेनापि कुशशालेन देवकस्य विमर्जनम् ॥१०९॥
 चकार राघवेर्णव सीतया स गुरुस्तदा । ततो रामो नृपतिभिर्जनकेनापि पूजितः ॥११०॥
 चकार धनवस्त्रार्घ्यस्तुष्टान् विप्रान्नृपादिकान् । आर्चाढालांस्मदा रामस्तोषयामास मादरम् ॥१११॥
 एवं नानामनुमार्हर्मासमेकं निनाय सः । रामो विमर्जयामास नतस्तान्पार्थिवादिकान् ॥११२॥
 एव कालांतराद्रामो व्रतवध लवस्य च । चकार पूर्ववद्वर्षात्समाहूय नृपादिकान् ॥११३॥

गये हैं, उनके अनुसार शौचसे निवृत्त हुंकर दांत तथा जीभ साफ कर लेनेके बाद वरुण देवत से सम्बन्ध रखनेवाले मन्त्रोंका पाठ करता हुआ स्नान करे। फिर आचमन-प्राणायामादि करके दोनों शासकों सूर्यका उपस्थान करना चाहिये। इसके पश्चात् हुवन करके ब्राह्मणोंको प्रणाम करे ॥ ९७-९९ ॥ प्रणाम करते समय यह भी कहता जाय कि अनुक गायका अनुक ध्वनि से आपको प्रणाम करता हूँ। उच्च जातिके लोगों अथवा जहाँतक हो सके, सुपात्र ब्राह्मणोंके यहाँसे भिक्षा माँगकर अपनी जीविका चलावे। किसीकी निन्दा न करे तथा मोनव्रतका पालन कर और जब गुल्की अनुमति मिल जाय, तभी भोजन करे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ सदा केवल एक अन्नका भोजन करे। धाढ़ादि तथा किसी आपत्तिमय कार्यक भाँ जानपर भी दिनमें दो बार भोजन न करे। ब्राह्मणको चाहिये कि केवल सुबह-शाम भोजन करे। मधु तथा मांसका आहार, प्राणिहिंसा, जलमें सूर्यके प्रतिबिम्बका दर्शन, स्त्रीप्रसंग, बारी और जूठा भोजन तथा दूसरेकी निन्दा इन कामोंको छोड़ दे। गुरुके सामने अपने इच्छानुसार जो चाह, सो न कर डाले ॥ १०२-१०४ ॥ परोक्षमें भी बिना विशेषण लगाये गुरुका नाम न ले। जहाँपर गुरुकी निन्दा हो रही हो अथवा उनकी ठठोली की जाती हो, वहाँ काम डोककर बैठे या वहाँसे उठ जाय। अपनी माता, बुआ अथवा बहिनके साथ भी एकान्तमें न बैठे ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं। वे बड़े-बड़े पण्डितोंको भी बातकी बातमें विचलित कर देती हैं। इस प्रकार गुरुने बहुतसे ब्रह्मचर्य व्रतसम्बन्धी नियम बतलाये ॥ १०७ ॥ इसके अनन्तर अनेक तरहके दान दिये गये। कुशको माताके साथ भोजन कराया गया ॥ १०८ ॥ तब विधिपूर्वक पालाशका पूजन कराया। फिर कृष्ण, सीता तथा रामके द्वारा आहूत देवताओंका पूजन कराया ॥ १०९ ॥ इसके बाद बहुतसे राजाओं तथा जनकजाने रामका पूजन किया। रामने बहुतसे वन-वस्त्रों द्वारा आवे हुए राजाओं तथा ब्राह्मणोंको प्रसन्न करके अवाध्यानिवासी चण्डालसे लेकर ऊँचसे ऊँचे कुल तकके लोगोंको सादर प्रसन्न किया ॥ ११० ॥ १११ ॥ इस तरह माना प्रकारके उत्सवोंके साथ एक महोत्सव समझकर मेहुमानीमें आये हुए राजाओं और ऋषियोंको बिदा किया ॥ ११२ ॥ कुछ समय बीतनेके बाद उसी तरह जराहूँके

ततस्तौ बालकौ रम्यौ वेदाध्ययनमुत्तमम् । चक्रतुर्गुम्फान्निध्वे विधिवद्बुद्धिसत्तमौ ॥११४॥
 एव तेषां तु बालानां सर्वेषां रघुनन्दनः । व्रतबंधविधानानि यथाकाले महोत्सवैः ॥११५॥
 चकार गुरुणा विप्रैः समाहूय नृपादिकान् । विशेषैर्निजपुत्राभ्यां चकार स महोत्सवैः ॥११६॥
 अकरोदाधिकं किञ्चिन्न न्यूनमकरोद्विदुः । ततस्ते बालकाः सर्वे जज्ञचर्पव्रते स्थिताः ॥११७॥
 चक्रस्ते गुरुमान्निध्वे वेदाध्ययनमुत्तमम् । अथ रामोऽपि वेदेष्टा बालकैः परिवारितः ॥११८॥
 विरेजे स्कन्दगणपादिभिर्देव्या यथा शिवः । अथ ते बालकाः सर्वे कृत्वाऽध्ययनमुत्तमम् ॥११९॥
 वेदादीनां गुरुमुखाह्वय्या शानं गुरुरनतः । जगृह्णीर्यानि वै कर्तुं सेनया गुरुपात्रिभिः ॥१२०॥
 पृथिव्या भरते खडे यानि तौर्यानि तानि ते । कृत्वा समायधुः पञ्च मार्गैः स्वां नगरीं शनैः ॥१२१॥

बालान्समागतान् धत्वा शोभयित्वा निजां पुरीम् ।

प्रपुञ्जगाम सौमित्रिः पुरस्कृत्याथ वारणम् ॥१२२॥

ते दृष्ट्वा लक्ष्मण नेमुस्तेनालिगिता अपि । नानोन्मर्षैर्ययुर्वाला अयोध्याया गृहं प्रति ॥१२३॥
 मार्गं मार्गं पुरस्त्राभिः सौधस्थाभिस्तु वपिनाः । शृष्टिभिः कुमुमादीनां दीपैर्नीलगिता अपि ॥१२४॥
 ततस्ते बालकाः सर्वे सभायां रघुनन्दनम् । नेमुस्तेनालिगिताश्च यधुः सीतागृहं ततः ॥१२५॥
 एतस्मिन्नन्तरे सीतोर्मिला सा मांडवी यथा । श्रुतकान्तिश्च वेगेन चक्रनीराजनं पृथक् ॥१२६॥
 दध्योदनमर्बदीपैः पक्वान्नेस्तैलपाचितैः । सर्पपैलवर्णैर्मार्पस्नोयकुम्भैश्च सादरम् ॥१२७॥

ततस्ते बालकाः सर्वे नेमुः सीतां पृथक् पृथक् ।

ततो नेमुः स्वमान्त्रं पूर्वं नत्वा पितामहोः ॥१२८॥

ततस्ते बालकाः सर्वे ददुर्दानान्यनेकशः ।

ब्राह्मणान् भोजयामासुः कोटिशस्ते पृथक् पृथक् ॥१२९॥

साथ सब लोगोंको बुलाकर लवका यशोवतीतमस्कार किया ॥ ११३ ॥ फिर वे दोनों बालक गृह वसिष्ठके पास विधिपूर्वक वेदाध्ययन करने लगे । इसी रीतिसे रामचन्द्रने समय-समयपर लक्ष्मण भरत आदिके बच्चों-का भी अतबन्ध सम्कार कराया और अपने लड़कोंसे बढकर उत्सव-दानादि किये । उनमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं होने दी । वे बच्चे भी संस्कृत होकर विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करते हुए गुरुके पास वेदाध्ययन करने लगे । यह सब हो जानेके बाद साता तथा पुत्रोंके साथ बँडे हुए रामचन्द्रजी पार्वती, गणेश तथा स्वामिकास्तिकेयके साथ बँडे शिवजीके सहज सुन्दर लगते थे । इसके बाद जब उन बालकोंने अच्छी तरह विद्याध्ययन कर लिया तो एक विशाल सेना, गुरु तथा कितने ही मन्त्रियोंको साथ लेकर तीर्थयात्रा करनेको निकले ॥ ११४-१२० ॥ पृथ्वीके भरतखंडमे जितने तीर्थ हैं, उन्हें करके पाँच महीनेमे वे सब बालक अयोध्या वापस आ गये ॥ १२१ ॥ लक्ष्मणने जब सुना कि लवके तीर्थयात्रासे अयोध्या लौट आये हैं तो बहुतसे गाँव-बाँव तथा हाथी-घोड़े साथ लेकर अगवानो करने गये ॥ १२२ ॥ जब उन्होंने लक्ष्मणको देखा तो मस्तक झुका-झुकाकर प्रणाम किया और लक्ष्मणने उनको अपनी छातीसे लगा-लगाकर आलिंगन किया । फिर अनेक प्रकारके उत्सवोंके साथ उनको महलोंमे लं गले । रास्तेमे अयोध्याकी नारियाँ अटारिमोपर चढ़-बढ़कर उनपर फूलोंको वर्षा करतीं और आरती उतारती थीं । इसके बाद बालकोंने राजदरबारमें जाकर रामको प्रणाम किया और वहाँसे सीताके महलोंको गये । वहाँ पहुँचनेपर सीता, उर्मिला, मांडवी तथा धृतिकीर्तिने अलग-अलग उन बालकोंकी आरती उतारी । पकवान, दही, घात, तेलके बने पकवान, सरसों, भजनक, उड़द तथा पानी भरे कलश आदि ढरकाकर बलि दी गयी । इसके बाद उन सबोंने कौसरवा आदि तथा पिता और माइयोंको प्रणाम करके सीता आदि माताओंको प्रणाम किया ॥ १२३-१२८ ॥ उसके बाद उन बालकोंने पाति-भालिके दान दिये और अलग-अलग करोड़ों ब्राह्मणोंको भोजन कराया ।

एवं नानोत्सवास्तत्र बभूवु रामसमनि । अथ ते बालकाः सर्वे स्पर्शनादिषु सस्थिताः ॥१३०॥
 दिव्यवस्त्राणि चित्राणि परिधाय समंततः । अयोध्याराजमार्गेषु हट्टेषु च चतुष्पथे ॥१३१॥
 आरामोपवनारण्यशटिकासु नदीतटे । गमनागमने चक्रुः सेनया मंत्रिबालकैः ॥१३२॥
 एवं साकेतनगरे बालकैः सीतया सुखम् । रेमे स बंधुभिर्पुक्तश्चिरं राजा रघुदहः ॥१३३॥
 एवं शिष्य मया प्रोक्तं जन्मकाण्डमिदं तव । कुशादीनां च जन्मानि वर्णितान्यत्र विस्तरात् ॥१३४॥
 रम्यं पवित्रमानंददायकं च मनोहरम् । पुत्रपौत्रप्रदं जन्मकाण्डमेतत्सुखावहम् ॥१३५॥

जन्मकाण्डमिदं पुण्यं ये शृण्वति नरोत्तमाः ।

तेषां पुत्रैश्च पौत्रैश्च वियोगो न भविष्यति ॥१३६॥

जन्मकाण्डमिदं ये भक्त्या शृण्वति मानवाः ।

तेषां स्त्रीणां वियोगो हि न कदाप्यत्र जायते ॥१३७॥

जन्मकाण्डमिदं पुण्यं याः शृण्वन्त्यत्र वै स्त्रियः । स्वपुत्रवियोगो न ता न गच्छन्ति यथा रमा ॥१३८॥

ग्रामं देशान्तरं तीर्थं ये गताश्च शिरं नराः । तेषामागमनार्थं हि जन्मकाण्डं पठेदिदम् ॥१३९॥

तेषां भावीनि कार्याणि लब्धुं नश्यते मनः ।

तैर्नरैः पठनीयं वै जन्मकाण्डं दिने दिने ॥१४०॥

पूर्वं दिने चैकारं द्विवारं चापरे दिने ।

एव नवदिनं वृद्धिर्नयेकेन क्षयोऽपि हि ॥१४१॥

कार्यो नरैः स्वस्थचित्तस्तेषां कार्यं भविष्यति ।

दर्पमेकं पठेद्विषमपुत्रोऽपि लभेत्पुत्रम् ॥१४२॥

पुत्रार्थी प्राप्नुयान्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ।

इष्टान् कामांश्च कामार्थी जन्मकाण्डश्रवणमेत् ॥१४३॥

इस तरह रामचन्द्रजीके भवनमें अनेक प्रकारके उत्सव हुए । वे सब रथ, हाथी, घोड़े आदि सवारियोंपर सवार हो-होकर बगीचे, उपवन, वन तथा नदीतट आदिपर अयोध्याके चौराहों तथा बाजारमें अनेक प्रकारके वस्त्र-आभूषण पहनकर मंत्रियोंके लड़कोंके साथ आते-जाते लगे ॥ १३६-१३९ ॥ इस तरह उस साकेतपुरीमें उन बालकों तथा सीताके साथ आनन्दपूर्वक रामचन्द्रजी रहने लगे । हे शिष्य ! यह जन्मकाण्ड मैंने तुम्हें सुनाया । जिसमें कुश आदि बालकोंकी विस्तृत जावनी वर्णित है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ यह जन्मकाण्ड परम रम्य, आनन्ददायक, मनोहर, पुत्र-पौत्रप्रदको देनेवाला और पुत्र-पौत्रादिका दाता है । जो लोग जन्मकाण्डको सुनते हैं, उनको कभी अपने पुत्रपौत्रादिक वियोगका दुःख नहीं उठाना पड़ता । जो लोग भक्तिपूर्वक इस जन्मकाण्डका श्रवण करते हैं, उनको अपनी स्त्रीका भी वियोग कभी नहीं होता । यदि स्त्रियाँ इसे सुनती हैं तो उन्हें अपने स्वामासे कभी वियुक्त नहीं होना पड़ना । वल्कि लक्ष्मीके समान वे जन्मभर आनन्दसे अपना जीवन बिताती हैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ यदि किसीके परिवारका कोई मनुष्य किसी तीर्थ या परदेशको चला गया हो तो उसे लौटनेके लिए इस जन्मकाण्डका पाठ करना चाहिए । जिसको अपना कोई भावी कार्य सिद्ध करना हो, उसको चाहिए कि पहले दिन एक बार, दूसरे दिन दो बार, तीसरे दिन तीन बार, इस क्रमसे बढ़ते-बढ़ते नवें दिन नौ बार जन्मकाण्डका पाठ करे । नवें दिनसे एक-एक पाठ घटाता हुआ फिर नवें दिन केवल एक पाठ करे । इस तरह यदि स्वस्थचित्तसे इसका पाठ किया जाय तो प्रत्येक कार्यकी सिद्धि हो सकती है । यदि इस विधिसे एक वर्ष पर्यन्त जन्मकाण्डका पाठ किया जाय तो पुत्रहीन व्यक्ति भी पुत्र प्राप्त कर सकता है ॥ १३७-१४२ ॥ कहनेका

आनन्दरामायणवध्यसंस्पर्धं श्राजन्मकाण्डं तनयप्रदं च ।

पारायणं संश्रवणं तथा वा करोति यो ना स लभेत्सुपुत्रम् ॥१४४॥

इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितामर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे

कुशलवादीनां जन्मकथनव्रतवन्द्यविस्तारो नाम त्वमः सर्गः ॥ ९ ॥

—

जन्मकाण्डे सर्ग आनन्दरामायणे नवैव शास्त्राः । चतुस्तराष्टशतश्लोका विष्णुदास रामदासाभ्यामुपदिष्टा ॥१॥

उपवनदर्शनम् ॥ १ ॥ उपवनक्रीडा ॥ २ ॥ सीतात्यागः ॥ ३ ॥ कुशलवोत्पत्तिः ॥ ४ ॥ रामरक्षा ॥ ५ ॥

कमलहरणम् ॥ ६ ॥ पुत्रार्थो संग्रामः ॥ ७ ॥ सीताग्रहणम् ॥ ८ ॥ बालानामुपनयनम् ॥ ९ ॥

महत्त्व यह कि जन्मकाण्डका पाठ करनेसे पुत्रार्थो पुत्र, धनार्थो धन तथा किसी भी प्रकारकी कामनावालेकी कामना पूर्ण हो सकती है । इस आनन्दरामायणके मध्यमें स्थित जन्मकाण्ड सन्तानदायक है । जो मनुष्य इसका पारायण करता या सुनता है, उसे सपुत्रको प्राप्ति होती है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामतेजपाण्डेयविरचिते ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे त्वमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस जन्मकाण्डमें कुल नौ सर्ग तथा आठ सौ चार श्लोकों द्वारा श्रीरामदासने विष्णुदासको उपदेश दिया है । ॥ १ ॥ उन नवों सर्गोंमें ये कथार्ये वर्णित हैं - (१) उपवनदर्शन, (२) उपवनक्रीडा, (३) सीतात्याग, (४) कुशलवकी उत्पत्ति, (५) रामरक्षा, (६) लव द्वारा कमलहरण, (७) पुत्रोंके साथ रामका संग्राम, (८) सीताका पुनर्ग्रहण और (९) बालकोंका उपनयनसंस्कार ।

इति श्रीमदानन्दरामायणे जन्मकाण्ड समाप्तम् ।

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

श्रीमीतापतये नमः

श्रीबाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गत—

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

विवाहकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(स्वयंवरके प्रसंगमें रामका राजा भूरिकीर्तिको पुगीको प्रस्थान)

श्री. १, मदान उवाच

अथ रामः समाप्तये मन्त्रिभिः परिवेष्टितः । तस्थौ मिहामने रम्ये वरछत्रोपशोभितः ॥ १ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्चिद्भूतः समायाय । नत्वा सभाया श्रीरामं स्वामिद्वत्तन्यवेदयत् ॥ २ ॥
पूर्वदेशाधिपतिना राज्ञा श्रीभूरिकीर्तिना । प्रेषितोऽस्मि महाराज द्रष्टुं न्वत्पादपंकजे ॥ ३ ॥
पत्रं पठित्वा श्रीरामं कार्या मत्स्वामिने कृपा । हन्युक्त्वा रामदूतस्य करे पत्रं समर्पयत् ॥ ४ ॥
रामदूतोऽपि सौमित्रैः पुस्तकपत्रमाश्रित् । स्थापयामास वेगेन गन्वा तस्थौ निजस्थलीम् ॥ ५ ॥
ततः स लक्ष्मणः पत्रं वरबन्धनवेष्टितम् । समुद्रादय राघवाग्रे पथात् संजुलस्वनः ॥ ६ ॥
हंपकुत्रिःपुष्पाग्रेरङ्कितं कुकुमान्वितम् । दर्शनादेव मांगल्यमूचकं तोषकारकम् ॥ ७ ॥
उवाच पत्रलिखितरसरैर्लक्ष्मणः शूनः । स्थितः श्रीरामपुरतो वरसिंहासनादिके ॥ ८ ॥

श्रीमान् श्रीराघवेन्द्रो जयतु दशशिखरेन्दुनाथं जगन्नाथं

कौसल्यायां नृपेशे दशस्थितनयश्चेति नाम्नाऽवतीर्णः ।

तस्याह भूरिकीर्तिः पदजलरुहयोगन्धमाध्रातुकामः

कृत्वा नैज शिरस्तु भ्रमरवदनिष्ठं प्रार्थनां प्रार्थयामि ॥ ९ ॥

श्रीरामदास बोले—एक दिन रामचन्द्र सभामें अपने राजसिंहासनपर बैठे थे । उनके ऊपर सुन्दर छत्र लगा हुआ था और उनके चारों ओर कितने ही मंत्री बैठे हुए थे । इसी समय एक दूत आया और वह अपने प्रभुका सुन्दर सूताने लगा । उसने कहा—पूर्व देशके अधिपति महाराज भूरिकीर्तिने आपके चरणोंका दर्शन करनेके लिए मुझे भेजा है । आप मेरे स्वामीपर कृपा करके वह पत्र पढ़ लीजिए । इतना कहकर उसने वह पत्र रामके दूतको दे दिया । उस दूतने लक्ष्मणके हाथमें दिया और प्रणाम करके चुपचाप वीग गया ॥ १-४ ॥ लक्ष्मणने सुन्दर कपड़ेमें लैके हुए उस पत्रको खोला और बहुत स्वच्छे चौककर रामका सुनाने लगे । पत्रपर सुनानेके फूल बने हुए थे और कुमुदके छोटें पड़ थे । जिसे देवनमात्रसे वह मांगल्यमूचक तथा आनन्ददायक प्रतीत होता था ॥ ५ ॥ ७ ॥ पत्रमें जो लिखा था, उसे रामके पास जाकर धीरे धीरे लक्ष्मण सुनाने लगे— ॥ ८ ॥ रघुकुलमें उत्पन्न श्रीराघवचन्द्रकी जय हो, जो राम रावणको मारनेके लिए दशरथके पुत्र

मम पौत्र्यावुमे राम चंपिका सुमतीति च । तयोः स्वयवरार्थं दद्याताञ्च बहवो नृपाः ॥१०॥
 बंधुपुत्रैर्वंधुमिस्त्वं स्वसुताभ्यां च मंत्रिभिः । सुहृज्जनैस्तथा पौरैः सावरोधः स्वसेनया ॥११॥
 आगच्छस्व मम पुरं मयि कृत्वा महत्कृपायां । विफलां प्रार्थनां मे त्वं मा कुरुष्व त्विमां प्रभो ॥१२॥
 इति पत्रार्थमाकर्ण्य स्वस्थचित्तो रघूनमः । स्वयंवरं ततो गन्तुं गुरुणा निश्चयं व्यधात् ॥१३॥
 ततोऽब्रवीत्स सौमित्रिमद्य सेनां प्रचोदय । श्वोऽहं गच्छामि पुत्राभ्यां स्वयां मंत्रिजनैः सह ॥१४॥
 भरतेनापि युष्माकं पुत्रैः शत्रुघ्नमयुतः । स्वयवरं सावरोधः परैर्जायपदैः सह ॥१५॥
 विजयो नगरी राज्यं पालितुं स्थापितो मया । अद्य वै वस्त्रगेहानि हर्निष्यानि लक्ष्मण ॥१६॥
 पथानं शोधयन्वद्य नानादूतास्त्वयान्विताः । गच्छन्तु सकला नार्यः पुष्पकेण विदायसा ॥१७॥
 तथेति लक्ष्मणश्चोक्त्वा चक्रे स यथोदिनम् । राघवेण यमामध्ये प्रवद्वकरमपुटः ॥१८॥
 ततो द्वितीयदिवसे प्रभाते गवुनन्दनः । स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा निनायाग्नीन् स पुष्पके ॥१९॥
 स्थापयामास कृण्डेषु भुज्या सह सुहृज्जनैः । ततः मीनं समहूय स्वग्यामास गधवः ॥२०॥
 ततः श्विस्तदा सर्वाः मीनाया रुक्मभूषिनाः । यानमारुरुहुः शीघ्रं दिव्यवस्त्रादिमण्डिताः ॥२१॥
 ततो रामो गजारूढो वरलत्रोपशोभितः । यथावग्रे चमराद्यैर्वोजितश्च मुहुर्मुहुः ॥२२॥
 रामाग्रे शारणारूढो ययौ शीघ्रं गुरुस्तदा । राघवस्य पृष्ठभागे कस्मिन् लक्ष्मणो ययौ ॥२३॥
 ततः कुशाघास्ते शरीं चाला जग्मुर्गजस्थिताः । ततो भरतश्चतुर्धनौ जग्मतुर्गजस्थिवौ ॥२४॥
 ततः सर्वे मंत्रिणश्च पौरा जानपदादयः । नानावाहनमस्थास्ते ययुः सर्वे स्वरान्विताः ॥२५॥
 चतुर्दन्ते शुक्लवर्णे शारणैरवतोद्भवे । सस्थितो राघवो रंजे भुक्ताजालविराजिते ॥२६॥
 एवं रामः धनैर्मार्गे बंदिमागधनभृतयः । मृण्वन् बालनिनादाश्च ययौ पूर्वदिशं शूनैः ॥२७॥

होकर कोसल्याभी कोससे जन्मे है । मैं शूरिकानि भ्रमरकी नाईं उनका चरणकमलोंको सौघनकी कामनासे शत-दिन प्रार्थना करता रहता हूँ ॥ ६ ॥ हे राम । मेरी चम्पिका तथा सुमति नामकी दो पौत्रियाँ हैं । उनके स्वयवरमें बहुतसे राजे आवे हुए हैं । अतएव आपका भी प्रार्थना है कि अपने भ्राताओं पुत्रों, भ्राताओंके पुत्रों, मंत्रियों मित्रों, घरकी नारियों, पुरवासियों तथा सेनाके साथ मेरे इहाँ पधारे । हे प्रभो । मेरी इस प्रार्थनाको विफल मत कीजिएगा ॥ १०-१२ ॥ इस प्रकार उस पत्रकी बातोंको स्वस्थचित्त होकर रामचन्द्रजी-ने सुना और स्वयंवरमें आनेके लिए शुरु बसिएस निश्चय किया । इसके बाद रामने लक्ष्मणसे कहा कि आज मेना भेज दो । कल हम, तुम, लव कुश, मंत्रियों, घरत तथा तुम लोगोंके पुत्रों, मित्रों तथा पुरवासियोंको साथ लेकर स्वयंवरमें चलेंगे । विजयको अगोष्ठा नारों तथा दणकी रक्षाके लिए नियुक्त कर दिया जाय । हे लक्ष्मण ! तुम आज अभी तम्बूकनास आदि भेज दो ॥ १३-१५ ॥ शतपट कुछ दूतोंको रास्ता साफ करनेके लिए आगे भेज दो । घरकी सारी स्त्रियोंको पुष्पक विमान द्वारा पहले ही भेज दो ॥ १७ ॥ लक्ष्मणने रामकी सब बातें मान लीं और जैसा उन्होंने कहा था, सो सब ठीक कर दिया ॥ १८ ॥ दूसरे दिन रामने तबरे उठकर स्नान और नित्यकर्म करनेके अनन्तर सब भ्राताओंके साथ बैठकर भोजन किया । अभिहोत्रकी अग्नि मँगवाकर पुष्पक विमानपर रखी ॥ १९ ॥ इसके बाद सोताकी दुलाया और बल्ली तैयार होनेके लिये कहा ॥ २० ॥ सीता आदि नारियोंने मुनहले वस्त्र तथा आभूषण पहने और पुष्पक विमान पर आ बैठीं ॥ २१ ॥ इसके बाद राम एक सुन्दर हाथीपर बैठकर चले । उस समय उनके ऊपर स्वेत छत्र तथा हुवा था और सधक उनपर चौर डुल रहे थे ॥ २२ ॥ सबसे आगे गुप्त बसिएका हाथी था, उनके पीछे राम और रामके पीछे लक्ष्मणका हाथी था ॥ २३ ॥ उनके पीछे कुश आदि भातों वधवों और भरत-शत्रुघ्नका हाथी चल रहा था ॥ २४ ॥ इन सबके पीछे मन्त्री तथा पुरवासी अनेक प्रकारकी सवारियोंपर सवार होकर मोघरासे चले जा रहे थे ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजी ऐरावतके कुलमें उत्पन्न चार दाँतवाले तथा मोलियोंके मुन्नोंके सुशोभित हाथीपर बैठे हुए बड़े सुन्दर लग रहे थे ॥ २६ ॥ इस तरह धन्वीजन-मागध आदिकोंके हाथ

लवापितेक्षणां बालां सुनन्दा वाक्प्रमदवीन् । पश्यैनं बालिकं बालं लवं श्रीराघवात्मजम् ॥३२॥
 स्त्रीकामं स्त्रलवयसं मीनालालिनमृनमम् । बान्मीक्षिकृपया लवविद्यं रम्यं कुशानुजम् ॥३३॥
 पुणोष्वैनं सुखेनैव कण्ठेऽस्य मालिकां कुरु । कुशाकं चपिकेयं ते भवमा यद्वत्स्थिताऽद्य हि ॥३४॥
 तथा त्वमपि मो भुग्धे लवाकं संस्थिता भव । इति तस्या वचः श्रुत्वा सुनन्दायाः स्मितानना ॥३५॥
 लवस्य कण्ठे हर्षेण लज्जयाऽवननानना । सुमतिर्निजबाहुभ्यामर्पयामास मालिकाम् ॥३६॥
 तदा निनेदुर्वायानि जगुन्ने गायकास्तदा । मनृतुर्वारिणार्यश्च तुष्टुर्वन्दिमागधाः ॥३७॥
 भूरिकार्तिनृपस्तुष्टो लवाकं सुमतिं तदा । शीघ्रं निवेशयामास परिपूर्णमनोरथः ॥३८॥
 सोऽपि रघुश्रेष्ठः मीना प्रामादसंस्थिता । जानरंघ्रः सपत्नीकं लवं दृष्ट्वा तुनोष सा ॥३९॥
 ततः सर्वान्पान् पूज्य भूरिकार्तिनृपोत्तमः । प्रार्थयामास विनयवचनैस्तन्पुरतः स्थितः ॥४०॥
 विवाहकीर्तुकं दृष्ट्वा भवद्विर्गम्यतामिति । तथेति ते नृपाः प्रोचुर्गुर्वामस्थलानि हि ॥४१॥
 रामाग्रे मगरं कर्तुमममर्था गनश्रियः । म्लानानना मनोन्मादाः कामबाणप्रपीडिताः ॥४२॥
 रामोऽपि बन्धुभिर्वालययौ वामस्थलं मुदा । अधापरे दिने गन भूरिकार्तिः समाययौ ॥४३॥
 पुगेधसोपविष्टः ममन्वा राम वचोऽब्रवीन् । द्रष्टव्या लज्जादयमः सुमुहूर्तः सुखावहः ॥४४॥
 मामर्गीकुरु रामाय त्वत्पादाश्रयकामुकम् । उभयोस्त्व मण्डपयोः कायाप्याज्ञापय प्रभो ॥४५॥
 तथेति राघवश्चोक्त्वा वमिष्ठं चादयत्तदा । सोऽपि रामाश्रया ज्योतिःशास्त्रज्ञः परिषेष्टितः ॥४६॥
 मुहूर्तं कथयामास पञ्चमेऽहनि राघवम् । तनस्तुष्टो भूरिकार्तिगणेशं लज्जपत्रिकाम् ॥४७॥

सुनन्दाको आगे चलनका सवेत किया ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सुबाहु, गृष्कर, तदा, चित्रकेतु तथा अगदको छाटता हुई वह लवके पास पहुँचा ॥ ३१ ॥ जब सुमति लवकी ओर दखन लगा तब सुनन्दा बाली—हे बाले । इस बालकको देख, यह रामका पुत्र है । यह अपना विवाह करना चाहता है । इसकी याही उमर है । सीताके द्वारा इसका पालन-पोषण हुआ है । बान्मीषिकी कृपासे इस उत्तम विद्या प्राप्त हुई है और यह कुशका छोटा भाई है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तू सुनन्द इस अपना दात बनाकर इसको गलेमें बरमाला डाल दे, जिस तरह तुम्हारी बहिन चम्पिका कुशका गालमें बैठी है, उसी तरह आ तुझ तू भी लवकी गोदमें बैठ जा । इस प्रकार सुनन्दाको बात सुनकर यह मुस्कगया और लज्जवण भरतक मुकाकर उसने अपने हाथोंसे लवके गलेमें बरमाला डाल दी ॥ ३४-३६ ॥ उस रात्रि अनक प्रकारके बाज बज, गायकोने गाने गाये, वेशमार्य नाचने लगी और बन्दोजन स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ महाराज भूरिकार्तिने प्रसन्न होकर सुमतिको लवकी गालमें बिठा दिया ॥ ३८ ॥ यह देखकर रामचन्द्रजा तथा अटारापर बंटा सीता दोनों प्रसन्न हुए । जब झरोखोंमें सीताने लवका गालमें सुमतिको बंटा देख, तो उनकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर राजा भूरिकार्तिने वहाँ जाये हुए सब राजाओंका पूजा करके विनयपूर्वक प्रार्थना की—॥ ४० ॥ जब आप लोग विवाहका भी उत्सव देखकर जाइएगा । राजाओं भी उनकी बात स्वीकार कर ली और अपने-अपने डेरेपर चले गये ॥ ४१ ॥ वे सब राजे रामसे मुद्र करनम असमर्थ थे । अतएव उनकी श्री नष्ट हो गयी थी, मुख कृच्छ्रा गया था, उसाह भग हो गया था और बेचारे कामक बाणोंसे पीड़ित हो रहे थे ॥ ४२ ॥ राम भी अपने चाह्यों और बख्शायक साथ प्रमत्ततापूर्वक डेरेपर गये । इसके बाद दूसरे दिन राजा भूरिकार्ति रामके पास पहुँचे ॥ ४३ ॥ पुराहित उनको साथ था । वे रामके समक्ष बैठे और कहा कि कोई अच्छा लगन-दिवस तथा सुमन्दायक मुहूर्त विचारिए । फिर कहा—हे राम । अपने चरणाके भक्त पुत्र वासकी प्रार्थनाको अङ्गीकार करके दोनों मण्डपोंके लिए जो कार्य करने हो, उनको लिए आज्ञा दीजिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ “अच्छा” कहकर रामने वसिष्ठकी ओर सकेत किया । वसिष्ठने रामका आज्ञासे ज्यतिवकास्त्रको जाननेवाले कितने ही पण्डितोंके साथ विचार करके उसके पाँचवें दिन विवाहका शुभ मुहूर्त बतलाया । इसके अनन्तर प्रसन्न मनसे भूरिकार्तिने गणेशजी, लज्जपत्रिका, गणकी, पण्डितों, वैदिक आदिको तथा रामके साथवाले बंधुबनों और

काचिन्पञ्चना भोजनं तु काचिन्पाकस्य मत्क्रियाम् ।

काचिन्पञ्चमीदृश्या भुक्तकेशा ययौ जवात् ॥४६॥

शान्तनालिंगिना काचिन्निष्कास्य स्वपतेः कथम् । ययौ वेगेन लज्जना परप्रसादनमन्वकम् ॥४७॥
 क्षालयन्ती पतेः पादावेकं प्रक्षाल्य कामिनी । भावजग्रहं स्नाज्यं तु तावच्छुन्वा मयागमम् ॥४८॥
 गीतगा गमनं द्रं हि शीघ्रं दृष्ट्वा मा तदा । काचिद्भर्ता नृम्वशाना दूरं कृत्वा पतेर्मृत्वम् ॥४९॥
 दृष्ट्वा मपत्रं द्रष्टुं प्रापादे सस्तरल्लक्ष । काचिद्विनिटिना भर्ता न्यक्त्वा निद्रां नृमन्विता ॥५०॥
 विम्रीणैकजला मन्दनेत्रा निद्रा मन्विता । नेत्रं म्यां कुचितान् केशान् चान्यन्ती जवाययौ ॥५१॥
 त्यक्त्वाऽन्त्येगं हि काचित्त्वा कुर्वन्तं करमभिधिम् । ययौ वेगेन प्रामादं श्रुत्वा रापवम गमम् ॥५२॥
 काचिद्भजे कनुकीं मा कूर्वके चापरे भुजे । कर्तुंकामा ययौ शीघ्रं तथैव प्रमदोत्तमा ॥५३॥
 काचिदेके पदे कृत्वा मृपुण्दीनि मामिनी । अपरे कर्तुंकामा म तथैवाद्दालमाययौ ॥५४॥
 कथयती शुभां वार्तां म्पन्त्युः पृथक् स्थिता । श्रुत्वा रामं समायन्त दृष्ट्वा गजगामिनी ॥५५॥
 काचिन्मिजवति पात्रे कुर्वन्ता परवेपथम् । धूमो न्यक्त्वाऽन्त्येगं सा ययौ रामं निर्गक्षितुम् ॥५६॥
 काचिस्सन्त्वा दिव्यवस्त्रा कुर्वन्ता म प्रदक्षिणाः । तुरुपी च मदादेवं श्रुत्वा राम ययौ जवात् ॥५७॥
 काचिद्रज्जुयष्टं रूपं कृत्वा तोयार्थमुपना । त्यक्त्वा मज्जुयष्टं रूपं दृष्ट्वा वैदुनिमानता ॥५८॥
 काचिन्स्वशालकं स्नन्य रहः पश्ययती चधुः । कुचरोचालकं धृत्वा तथैव मा ययौ जवात् ॥५९॥
 काचिन्मा परिधायाय वस्त्रं कच्छं करेण सा । कर्तुंकामा ययौ वेगान्नदेवाद्दालमस्तकम् ॥६०॥
 एव कर्मापयनेकानि कुर्वन्त्यस्याः पुम्विधः । विहाय नानि सर्वानि ययौ राम निर्गक्षितुम् ॥६१॥
 दृष्ट्वा रामं गजस्थं ता ववर्षुः पुनरुत्थिताः । ऊचुः परस्परं नार्थः श्वनशोऽद्दालसंस्थिताः ॥६२॥
 धन्या सा रामजननी कामन्या या रघुत्तमम् । मुपूरा गजराजानं पस्विर्णमनोरथा ॥६३॥

भोजन करने की थी और वहाँ भोजन बना पत्नी की मा उसकी उपरका लगे छोटका भागी । कोई बालोंकी सेवाएँ रहा थी, वह वैशालीक हाथसे धाँहे हो दोह पडा । किसीका पति अलिंगन कर रहा था । इतनेमें गमना आगमन मुना हो स्वासिका हाथ छिड़ककर रोड़ प्रायी । कोई अपने पतिके पैर धो रही थी, उसने एक पैर धोकर दूसरा पकड़ा हो था कि उसे खबर लगी कि संताके सहित राम आ रहे है, वह तुरन्त रोड़कर प्रामादपर खड़े गयी । कोई पतिके साथ भस्पापर मंगे थी । ४४-५०॥ इससे उसकी ओलोका काजल मुँहभरसे पुके गया, वह मा यह समाचार पाने हो अँगोके सम्मनेवाले बालोका हटाते हुई रोड़ी ॥ ५१ ॥ कोई उबटन लगा रही थी, वह एक हाथसे सड़ी सम्हालती हुई दोह पडी । किसीका पति कामोरमत्त हाकर आलिंगन करना चाहता था । वह भी एक हाथसे सड़ी सम्हालती हुई खयी आयी । ५१॥ ५३ । कोई कामिनी नूपुर पहन रही थी । वह केवल एक ही पैरमे उसे पहनकर अरता भेटानेपर रोड़ पडी ॥ ५४॥ कोई पतिसे बात कर रहा थी, वह तर्हीतक बात कर चुकी थी वही हो छोटकर रोड़ आयी ॥ ५५ ॥ कोई पतिके लिए भोजन बना रही थी, वह भी पात्रको लोका लगे छोटकर रामको देखने लिए रोड़ पडी । ५६ ॥ कोई स्नान करके लज्जा तथा महादेवकी प्रदक्षिणा कर रहे था, वह भी रामका आगमन सुनकर उसे अवूरा हो छोटकर भाग खयी । ५७ । कोई चन्द्रकुलो रमणी कुँएपर पानी भरने गयी थी, वह रस्मी और घड़ा कुँमे ही फेंककर चले पया ॥ ५८॥ वही एकान्तमे खन्वः दूध पिता रही थी, वह आलसका स्थि दूध ही रोड़ आयी ॥ ५९ । कोई भोजन आदिक काममे निवटकर भट रंगपर जाता पाइती थी, वह आवे कपड़े पहने हुए हो खयी आयी ॥ ६०॥ इस प्रकार अनेक तरहके कामकी क्यतो हुई स्त्रियाँ अपनी-अपनी काम छोड़कर रामके दसनक लिए छुटी और हतोपर आ खड़े हुई ॥ ६१ ॥ हथीपर बैठे हुए रामको देखकर स्त्रियाँ उनपर फूलोका बर्षा करती हुई आपसमे इस प्रकार बातें करती थी— ॥ ६२ ॥ रामकी मता कोमल्या धन्य

काश्चिद्वृक्ष सा धन्या सीता जनकनन्दिनी । यस्या विवाधर्ममसुरीकुरुतेऽत्र मा ॥६४॥
 काश्चिद्वृक्षस्तथा तप्तं जानकया दुष्कर तपः । पूर्वजन्मनि यम्पुत्राद्राजगजप्रियाऽभवत् ॥६५॥
 काश्चिद्वृक्षं मन्दमारुणस्तु जगतीन्तले मंतादस्यो न जातः । स्व गन्धमेव नन्यगः ॥६६॥
 इति नानाविधा वाचस्तापो शृण्वन् शृणुमः । ययौ न राजमागज नृपकल्पामन्दिरम् ॥६७॥
 तत्रावहत् सागेन्द्राद्विकेश वस्मदिरम् । तस्थौ सुप्तेन जानकया बन्धुमित्रालके प्रभुः ॥६८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे

स्वयंवरार्थं भूरिकीर्तः पुरं प्रति श्रीरामगमनं नाम प्रथमः सर्गः । १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(राजा भूरिकीर्तिकी पुत्री चम्पिकाका स्वयंवर)

श्रीरामदास उवाच

अथापरदिने रामं भूरिकीर्तिः समाययौ । नन्वा प्राह रघुश्रेष्ठ मभामागन्तुमर्हसि ॥ १ ॥
 तथेति राघवश्चोक्त्वा बालके रुक्मभूपितेः । रुक्मवत्पुत्रवत्पुत्रकोष्णापमण्डितः ॥ २ ॥
 ऊरु पिथाय त्रिमुखः कटिवदोत्तराधरः । भूपितेःशशिः शत्रु विवेकास्यः समाययौ ॥ ३ ॥
 ममायौ ये नृपाः पूर्वमावसेषु च सस्थिताः । श्रुत्वा राम समायांत मभ्रमात्तपुगे ययौ ॥ ४ ॥
 चक्रुः सर्वे राघवाय प्रणामान्पार्थिवोत्तमाः । तेषां नामानि रामाय शार्वशब्दैः पृथक् पृथक् ॥ ५ ॥
 त्रिवाण्यां रामदूताः श्रोतुं चेतसाययः । बल्ललकरभूषाभिभूषिता मुदितानताः ॥ ६ ॥
 गजगज नृपश्चायं कर्णाटविषये स्थितः । विजयस्ते प्रणामांश्च करोति त्व विलोक्य ॥ ७ ॥
 गजवेन्द्र नृपश्चायं श्रीमान् द्रविडदेशजः । ककुत्स्थो प्रणामांस्ते करोति त्व विलोक्य ॥ ८ ॥
 दीनानाथ नृपश्चायं विदर्भविषये स्थितः । अगनाथः प्रणामांस्ते करोति त्व विलोक्य ॥ ९ ॥

जिनहोने र जाविराज राम जेम पुत्रको जन्म दिया ॥६३॥ कोई कहने लगी कि जनकनन्दिनी सीता
 घर है कि रामचन्द्रजी जिनके अधररत्नका पान करने हुए ॥६४॥ कोई बाय-जात होता है कि सातान
 -जन्ममें दुष्कर तपसा का पी, जिसके प्रभावसे वे आज राजराज रामचन्द्रका त्रिग वधू बना हैं ॥६५॥
 कुछ स्त्रियाँ कहने लगी कि हम लोग बड़ा जमागिता हैं, जो साताको वाता होकर भा रामका सेवा नहीं कर
 सकी ॥६६॥ इस तरह नाना प्रकारका बात सुनते हुए रामचन्द्रजी राजमगस चलकर हाथोंसे उतर और
 राज भूरिकीर्ति द्वारा सजाये हुए भवनमें गये और साता, अताजा तथा बालकोक साथ टिक ॥६७॥६८॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डे प्रथमः सर्गः । १ ॥

श्रीरामदास बोले इससे बाद दूसरे दिन राजा भूरिकीर्ति स्वयं रामक पास पहुँचे और प्रणाम करके
 कहा—हे रघुश्रेष्ठ ! अब सभामें चालिए । "अच्छा" कहकर रामन भा भुवर्जक अनेक आभूषण पहने,
 उनके सूपमें बने अच्छ-अच्छे द्रव्य धारण किये, परतलमें सज्जित कमरबन्द कसा और शिबिकापर बैठकर
 बालकोंके साथ सभाभवनका आर चले ॥ १-३ ॥ जो राज पहल हास सभामें आकर बैठे हुए थे, वे
 रामका आगमन सुनकर अकचका उडे और रामक सामन जा पहुँचे ॥ ४ ॥ उन्होंने भगवानका प्रणाम
 किया । राज-विष्का वर्गद्वी बाँधे और हाथमें बत लिये हुए रामके दूत जारजारस बोलकर इस प्रकार उनका
 मन बतलाने लगे—हे राजाओंके भा राजा राम ! देखिए, कर्णाटक देशका रहनवाला यह विजय नामका राजा
 आपका प्रणाम कह रहा है ॥५॥—आइए देखिए हे राघवेंद्र ! यह द्रविड देशका निवासी ककुत्स्थ नामका राजा
 आपका प्रणाम कर रहा है । हे दीनाथ ! यह विदर्भ देशका अधिपति अगनाथ नामका राजा आपको

महाराज नृपथाय मागधे विषये स्थितः । परन्तुः प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥१०॥
 सीताकांत नृपथायमवनिस्थः प्रतापवान् । उग्रबहुः प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥११॥
 रघुशीर नृपथाय स्थितो हृदयपतने । प्रतापस्ते प्रणामांश्च करोति त्वं विलोकय ॥१२॥
 हे राम नृपनिधाय गृहसेने स्थितो महान् । सुपेणस्ते प्रणामाश्च करोति त्वं विलोकय ॥१३॥
 कोमलेंद्र नृपथाय हरिद्वारस्थितो महान् । नापान्दये यज्ञकीर्तिः करोति नमनं तव ॥१४॥
 अयोध्येश नृपथाय कालगविषये स्थितः । हेमांगदन्तटेऽन्धेश्व करोति नमनं तव ॥१५॥
 रावणारे नृपथाय नागवत्तनमस्थितः । पाण्ड्योऽयं मतिमान् शूरः करोति नमनं तव ॥१६॥
 एव तेषां प्रणामांश्च मानवन् स्वेषणादिभिः । त्रिवेशं यन्धुभिर्बालैः सभायां मन्त्रिभिः प्रभुः ॥१७॥
 तत्र सिंहासने दिव्ये पश्चिमायां ततो दक्षिणः । उपाविशन्म पूर्वस्थश्चतुर्चामरमण्डितः ॥१८॥
 रामस्य मध्ये सौमित्रिककेयवनयाः स्थिताः । तन्मुख्येन रामधामे कुशाद्या मन्त्रिबालकाः ॥१९॥
 शत्रुघ्नसव्ये संतस्थुः सुमन्त्राद्याः सुमन्त्रिणः । सभायामुत्तरे याम्ये पङ्क्तिं सर्वे नृपादिकाः ॥२०॥
 नेत्रिरेखोपमास्तस्थुः स्वमुहपुत्रमन्त्रिणः । पश्चिमाभिमुख्याः सर्वा ननुतुर्वाग्योपिताः ॥२१॥
 अङ्गलसस्या विप्राद्या ददृशुः कानुकमहत । ततो नदन्म वाद्येषु धूपेषु प्रज्वलन्सु च ॥२२॥
 नतन्सु वारनाराणु गायन्सु मागधादिषु । स्तुवन्सु वंदिषुं देषु सभायां नृपपीत्रिके ॥२३॥
 शिबिकास्थे दिव्यवस्त्रदिव्यलङ्कारमण्डिते । नवरत्नमङ्गमालाघूतस्पर्शकरोत्पले ॥२४॥
 ते समाज्जमन् रम्यं समाग्रम्य म्रिजन्तुः । ततो नैव कदापि मन्त्रमर्मस्थला नृपाः ॥२५॥
 बभूवुर्विकलाः सर्वे कामरूपविशेषतः । न तदा लेभिरंशं शुष्करुण्टांशुताडुकाः ॥२६॥
 समीतां चपिकानाम्नीं वल्लिकाणादिवेश ह । ईशकोणाच्च सुमतिः समीतां सविवेश ह ॥२७॥

प्रणाम करता है, इस दक्षिण ८ ॥ २ ॥ है मगर राजा दक्षिण, मागध दशका रहनेवाला यह परमपुत्र नामक राजा आपको प्रणाम करता है ॥ १० ॥ हे मानावान् ! अग्निवेशका निवासा और महाप्रतापशाली यह उग्रबाहु नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥ ११ ॥ हे रघुशीर ! यह हैदरनगरका रहनेवाला प्रदीप नामक राजा आपको प्रणाम करता है ॥ १२ ॥ हे राम ! गृहसेन नगरका रहनेवाला यह सुपेण नामक राजा आपको प्रणाम करता है । हे कोमलेंद्र ! यह हरिद्वारका रहनेवाला नीपवधज यज्ञकीर्ति नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे अयोध्या ! यह हैमागध नामक राजा आपको प्रणाम करता है । हे रावणार ! नागवत्तनका रहनेवाला बुद्धमान् तथा अति पराक्रमी पाण्ड्य नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥ १५ ॥ १६ ॥ रामचन्द्रजी मंत्रकी ओर निहार तथा संस्कृत आदिसे लोगोंके प्रणाम स्वीकार करके आने आताओ और वत्सका साथ सभ, भवनम पत्रारे । वहाँ पश्चिमकी तरफ रखे हुए एक दिव्य सिंहासनपर पूर्वकी ओर मुख करके बैठे । उस समय भी उनके ऊपर छत्र लगा था और चमर चल रहे थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ रामकी दाहिनी बागन्मे लक्ष्मण भग्न आदि आता बैठे । बायीं ओर कुश आदि सब लड़के तथा मन्त्रिगुत्र बैठे । शत्रुघ्नकी दाहिनी बागन्मे सुमन्त्रादि मन्त्रों बैठे । सभाकी उत्तर और दक्षिणी पंक्तिमें गालाकार बनाकर सब राज नृप-पुत्र तथा मन्त्रियोंके साथ बैठे थे और पश्चिमकी ओर मुख करके वेदपाठें नाच रही थीं ॥ १९-२१ ॥ अङ्गारकापर तब हुए आकाश आदि नगरनिवासी वहाँका कोनक देख रहे थे । इसके अनन्तर जब वज्र वज्र लगे, चारों ओरसे धूपकी गुग्गुलि उड़ने लगी, वेदपाठें नाचने लगी, मागध-नट आदि विविध प्रकारके गायन गान लगे और बन्धुजन तम्ह-तरहकी स्तुति करने लगे । उसी समय शिबिकापर बैठकर दिव्य वस्त्र तथा अलङ्कार पहिने, नवरत्नोंकी बनी एक बड़ी-सी माला हाथोंमें लिये वे दोनों सुन्दरी कन्यायें सभामें आयीं । उनके नेत्रकटाक्षमें घायल तथा कामके बाणोंसे विदीर्ण हृदय होकर कितने ही राजे विकल हो गये । उनके होंठ और तालु सूख गये । उस समय कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था । उस सभामें अतिर्कोणसे चामरका तथा ईशानकोणसे सुमति नामवाली कन्या प्रविष्ट हुई

अथोपमाता वृद्धा सा धृतहस्ताग्रयष्टिका मभायां चपिकानाम्बुदै दक्षिणस्थान्पृथक् पृथक् ॥२८॥
 क्रमेण वर्णयामास तदा नृपतिसत्तमान् । तथाऽन्या च मभाग्राच्च धृतहस्ताग्रयष्टिका ॥२९॥
 सुनन्दाख्याऽतिजगृहा सुमर्त्यै नृपतीन्क्रमात् । वर्णयामायोत्तरस्थान्पुमाता पृथक् पृथक् ॥३०॥
 अथ सा चम्पिकां प्राह नीत्वा तां नृपतेः पुरः । निविशाम्बुं चापमाता नन्दा सामर्वाजिता ॥३१॥
 राजकन्ये चपिकेऽत्र मृणुष्व वचनं मम । एन नृप वर्णयामि पश्य त्व मदनोपमम् ॥३२॥
 पांज्याऽयं मतिमासाग्ना नागपत्तनमस्थितः । शूरो रथो नृपदेष्टुः प्रजापालनतत्परः ॥३३॥
 यदि ते रोचते चित्ते वरयैनमनुत्तमम् । अयं न्वं महिषो धृन्वा नागपत्तनमस्थिता ॥३४॥
 क्रीडस्व मुदिताग्नेन वरप्राप्तादराजिपु । नन्दीकं चपिता धृन्वा द्वयर्धं वाक्पमनुत्तमम् ॥३५॥
 न चरन्ध मनस्तस्मिन्नृपतो मतिमत्तरा । सोदयामाम नन्दां तामग्रे गन्तुं नृपन्नम् ॥३६॥
 तदाऽन्यं नृपतिं नन्दा नीत्वा तां शिविकास्थिता । चपिकां प्राह वेनेन पश्येनं वालिके नृपम् ॥३७॥
 कलिङ्गविषयस्थोऽयं नाम्ना हेमाङ्गदो महान् । कोटिशो वरप्राप्ताग्ना न्वं गण्डस्थलादिपु ॥३८॥
 मुक्ताजालानिगुच्छाश्च राजन्ते कमलानने । एतं न्वं महिषो मनः । गार्गाः सागराय च ॥३९॥
 पश्यन्ती कौतुकं चाले क्रोगेपि क्रोडनादिभ्यः । अयं न्वं वृद्धाग्ने त्वं मां मुक्ताऽयं कन्यकं ॥४०॥
 इत्युक्ताऽपि तथा तन्यी नन्दया चपिका नृपे । न चरन्ध मनो न चरन्ध न्य गन्तुं तामचोदयन् ॥४१॥
 सपत्नीमयमालस्य सपत्नीकस्यजिघ्र्यति । अमहानिति शक्ये नन्दया सूचिताऽपि मा ॥४२॥
 ततोऽन्य नृपतिं गन्वा नन्दा प्रोवाच चपिकाम् । पश्येनं नृपतिं मुखे हरिद्वारनिवासिनम् ॥४३॥
 नीषान्वयममृकृतं ह्यध्यायिव निशाकरम् । यदानीं नृपतेरस्य कान्या जयति भण्डले ॥४४॥
 यज्ञकीर्तिरिति ख्यातः पृथ्वीश्वः प्रमदाप्रियः । वरयैनं नृप पुत्रि रुक्मभूषणभूषितम् ॥४५॥

॥ २२-२७ ॥ चम्पिकाके साथ एक उपमाता (धाई) मन्दा जी, जो मन्दा एक छोटी सी छडा लिये थी । वह दक्षिणकी तरफ घड़े राजाओका वर्णन करने लगी ॥ २८-३० ॥ सुनन्दा चम्पिकाको एक राजाके सामने लायी । उस समय भी चम्पिका पालकीपर घड़ी थी और उमरर चरर चर रह थे ॥ ३१ ॥ सुनन्दा चम्पिकाका सम्बोधन करके कहने लगी—हे राजकन्ये चम्पिका ! मर बात सुना देवा, यह कामदेवके समान सुंदर अति बुद्धिमान् पाण्ड्य नामक राजा नागपत्तनरा रहनेवाला बड़ा पराक्रमी, रथी, सब राजाओंमें श्रेष्ठ और प्रजापालनमें तत्पर है । ३२ ॥ ३३ ॥ यदि तुम्हें अच्छा लग तो इसको पसन्द कर लो । तुम इसकी राजरानी बनकर नागपत्तनमें आनन्दक साथ अन्ध अन्धे महर्षिमें के लिए करोगी । सुनन्दाकी ये बात उसे दुर्घर्षक तथा व्यर्थ-सा जान पड़ी । उस राजापर उसका तर्क यत नहीं दृढ़ी और दूसरे राजाके पास चलनका संकेत किया ॥ ३४-३६ ॥ फिर सुनन्दा शिविकामें बैठा चम्पिकाका दूसरे राजाके सामने ले जाकर कहने लगी ॥ ३७ ॥ हे वालिके ! इसे देखो, यह महान् कान्या देशका रहनेवाला हेमाङ्गद नामका राजा है । इसके गण्डस्थलपर हाथियोंका राजमुक्ताओंसे बने गुच्छ स्थित रहने है । इसकी रानी बनकर तुम गङ्गालोकी खिड्कियोंसे समुद्रका लहरोंका कीवृक्ष देखना हुई विहार करोगी । वय अब इसे पसन्द करके तुम इसकी समस्त स्त्रियोंकी प्रधान बन जाओ ॥ ३८-४० ॥ इतना कहते-माननेपर भी उसका मन उस राजापर नहीं जमा और आगे बढनेका संकेत किया । ४१ ॥ क्योंकि चम्पिकाके यह स्पष्ट हुआ कि इसके यहाँ सपत्नी (सौत्र) का डर है । दूसरे “अमहान्” शब्दका प्रयोग करके नन्दाने भी ये डान्वा संकेत कर दिया था ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर दूसरे राजाके पास पहुचकर नन्दा कहने लगी—हे मुखे ! इस राजाको देखो, यह हरिद्वारका निवासी है ॥ ४३ ॥ जैसे समुद्रसे चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार यह पवित्र नाग राजाके वंशमें उत्पन्न हुआ है । अनन्त यज्ञोंको करनेसे जगत् भरसे इसकी कान्ति फैल चुकी है ॥ ४४ ॥ इसलिये लोग इसे यज्ञकीर्ति कहते हैं । सुवर्णके आभूषणोंसे मण्डित इस राजाको तुम बर लो । वह विस्तृत भूभागका मालिक है और

अस्थाद्य महिषी भून्वा गङ्गावीचिपम्पराः । नीकाश्च पश्यमि त्व ॥ इदं वर्येनं नृपोत्तमम् ॥ ४६ ॥
 अस्य पत्नी वरिष्ठा त्व भव साऽग्रे व्रजावत् । इत्युक्त्वा हि तया तस्मिन् वचन्ध निजं मनः ॥ ४७ ॥
 त्वं वरिष्ठा मा भवेति नन्द्याऽग्रे व्रजेति । चादय नाम मा नन्द्यामग्रे गन्तुं नृपात्तमम् ॥ ४८ ॥
 नन्दाऽप्यन्यं नृपं नीत्वा चपिकां प्राह वेगतः । पश्येन नृपतिं मुग्धे शृंगेनाह्वये वरे ॥ ४९ ॥
 देशं करोति वै राज्यं सुपेगोऽरमनुत्तमः । तुम्हा वासुदेवाश्च यस्य पत्नी मृगीदृशः ॥ ५० ॥
 यस्यांगणे वारनार्गनृपघापकवर्हनिशम् । वर्येन चपिके च त्वाननवदाननम् ॥ ५१ ॥
 अस्य त्व महिषी भून्वा जन्यमाकलयतां कुरु । तस्मै लपट् श्रुत्वा तथा वाक्पमनुत्तमम् ॥ ५२ ॥
 न वचन्ध मनस्तस्मिन् नृपती ना प्रवेदयत् । अयं मा चोदिता नन्द्या तयाऽन्य नृपतिं क्षणान् ॥ ५३ ॥
 निनाय शिचिकाम्थां तां चपिकामाह मादम् । पश्येन नृपतिं वले स्थितं दृश्यवने ॥ ५४ ॥
 सहस्रं नृनवंशस्य भूषणं कमले पमम् । प्रताप इव नन्द्याऽं रुवानः शूरे महारथी ॥ ५५ ॥
 वर्येनं नृपं माऽन्य गच्छ हेमवक्रपिणि । अन्य नरं महिषी भूया रेवायां पतिता मद् ॥ ५६ ॥
 कमिष्यमि जलतीडां चपिके शृणु मद्रजः । इत्युक्त्वा तया तन्वी न वचन्ध मनो नृपे ॥ ५७ ॥
 वर्येनं नृपं मेति नन्द्याऽवामहारथी । नृपाऽग्रे चोदिता तस्ये द्वे श्रवा द्वयं वदुत्तमा ॥ ५८ ॥
 एवं नानानृपाणां सा वर्णनानि पृथक् पृथक् स्तुतिष्यन्त्यगात्रा शुश्रूषता नृपान्मता ॥ ५९ ॥
 जगाम शिचिकामस्था सतन्दा भरतानुजम् । सुमन्त्रादीन् तस्य श्रुत्वा श्रीगाममन्त्रिणा ॥ ६० ॥
 ततः प्रोवाच मा नन्दा पश्येनं भरतानुजम् । कोमलेन्द्रस्य रामस्य वन्धुमेकोदरोपमम् ॥ ६१ ॥
 अयोध्यावासिनं रामराजशक्यानुवर्तिनम् । वर्येन तस्मिन्नेऽद्य श्रुतकीर्त्याः स्वमा भव ॥ ६२ ॥
 इत्युक्त्वापि तया तन्वी शत्रुघ्ने निजमानमम् । न वचन्ध भूया संज्ञामग्रे गतुं चकुरताम् ॥ ६३ ॥

रित्रयोमें बड़ा प्रेम करता है । आज यदि तुम वर माधव का हाथ कर ल्या तो मैं अपने बेटे को गङ्गा का अर्पण कर दूँगी । मेरी बात मान लो और इसे अपना पति स्वीकार करो । अब आगे मत बहो । ऐसा कहनेपर भी उसका मन उस राजा पर नहीं रमा और न वह चतुका मरत किया ॥ ४६-४८ ॥ मूनन्दा भी दूसरे राजा के सम्मुख पहुँचकर कहने लगी है मुझे 'इस राजा की आर टनी । यह शूरेन नामक दशमे रजता हुआ राज करता है । इसका शृण नाम है । जाकु के माथे में वेगवाने पट्टम घाड़े इसका पस है । कितनी ही मृगीका तरह नेत्रोवाली चिपका भी इसके पस है । इसके अंगण में राग वर्याये मानत रती है । हे चपिके तू इसे पसन्द कर ले । देख तेरे ही नृपक मान इसका भी मुँह है । राजमहिषी बनकर तू अपना जीवन मुफल कर ले । उस राजा की वर्याम्पट ज नकर चपिका का मन उस राजा पर भी नहीं रमा और नन्दा को आगे चलने के लिए सरेत किया । उसके सरेतसे तारा चपिका को साथ चिप क्षण भरमे एक दूसरे राजा के पास पहुँचकर वाली है बाल । इस राजा को देखा वह है वर्यपत्तनका रहनेवाला, कमल के सृष्ट कोमल तथा सहस्र नृनका वंशज है । यह बड़ा ताड़ा एवं महारथी है और प्रताप इस नामसे विख्यात है ॥ ४६-५५ ॥ इसकी वरकर तू अपने धाम्य सम्मान्य पश्यर पहुँच । इसकी महिषी बनकर तू पतिके साथ मर्मदानदी में सानन्द निहार करेगी ॥ ५६ ॥ इना कहनेपर भी वह चपिका का ऊँछा नहीं लगा । क्योंकि नन्दान भी कहा था— 'नं नृप मा वर' यानी इस मन पसन्द कर' दूसरे 'अमहारथा' शब्दसे भी तिरस्कार ही किया था । इसलिए वह भी अच्छा नहीं लगा । नन्दाक द्वयार्थक वाक्य को वह खूब समझती थी ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ इस प्रकार जनेक राजाओं के पृथक् पृथक् वचन तथा स्तुतिके अन्तर्गत निषयवाक्यों को सुनती हुई पालकी पर बंसा हुआ चपिका राम के मन्त्रा सुमन्त्रादिजों को ल'घकर शत्रुघ्न के पास पहुँची ॥ ५९ ॥ ६० ॥ नन्दाने कहा— ये भरत के लट भाई हैं, किन्तु राम के मगे भाई जैसे मान्य पड़ने हैं ॥ ६१ ॥ ये अयोध्या में रहने हैं और राजा राम की आज्ञाओं का पालन करते हैं । चपिके तू इन्हीं के साथ विवाह करके श्रुतकीर्तिकी वहिम बन जा ॥ ६२ ॥ इतना कहनेपर भी शत्रुघ्न में उसका मन नहीं

ततः सा भरतं नीत्वा नन्दा तामाह मंजुलम् । अत्रुघ्नस्याग्रं चैनं कैकेया जठरोद्भवम् ॥६४॥
 रामसेवारतं शान्तं युवानं दयिताप्रियम् । वर्येन बालिकेऽद्य मांडव्या सगृजले ॥६५॥
 करिष्यमि अलकीडां नौकाया भरतेन हि । तत्तन्मन्संहया नन्दा लक्ष्मणं चपिकां जवात् ॥६६॥
 नीत्वा सौमित्रिकीति तां वर्णयामास मादरम् । पश्येनं लक्ष्मणं बाले सुमित्राजठरोद्भवम् ॥६७॥
 अपोष्वावामिनं रामसेवामक्तं मनोहरम् । वर्येन चपिकेऽद्य मेघनादप्रमर्दनम् ॥

शेषांशमभवं चोर्मिलाया वीरस्वया मव ॥६८॥

सर्वान् भुत्वा रामसेवामक्तान् पन्नोपुतानपि । छत्रचामर्द्दीनांश्च रोचयामास तास सा ॥६९॥
 ततस्तन्मंजुया नन्दा श्रीगमाश्रे स्वयवरम् । नीत्वा तामाह मधुरं स्तोतुं त रघुनन्दनम् ॥७०॥
 महत्ते चपिके देव येन पश्यमि राघवम् । धन्योऽहमपि या रामं दृष्ट्वा स्तोतुं पुरः स्मिता ॥७१॥
 काहं मंदमतिनारी क रामो गुणयोगरः । नाहं तन्मनवने शक्ता बान्मीकिर्यत्र कुण्ठितः ॥७२॥
 छतकोटिमितः श्लोकैश्चरित्रं राघवस्य च । मृनिना वर्णितं तच्च शतकोट्यंश्चवर्णितम् ॥७३॥
 तस्याहं वर्णनं किञ्चिन्करोमि यच्छृणुष्व तत् । सूर्यवंशभूषणं श्रीदशरथनृपात्मजम् ॥७४॥
 कौमल्यातनयं रामं माध्वाचागयणं विभुम् । ताटिकान्तकरं वीरं गाधिजाध्वरपालकम् ॥७५॥
 अहन्योद्धारिणं श्रेष्ठं शिवनार्पकवण्डनम् । जानकीवल्लभं रम्यं जामदग्न्यदवानलम् ॥

नृपवृद्धैकजेतारं भरतप्राणदायिनम् ॥७६॥

ताताज्ञापालक भ्रात्रा सीतयाऽऽप्यवामिनम् । विगधमर्दनं श्यामं सारूपणमर्दनम् ॥७७॥
 त्रिशिरामृगमारीचकवन्धवालमर्दनम् । समुद्रवधनं लंकागक्षसान्तकरं प्रहृष्टम् ॥७८॥
 रावणांतप्रकर्तारं सीतया राज्यकारिणम् । तीर्थयज्ञप्रकर्तारं सीताकीडननन्परम् ॥७९॥

लगा और जाये चलनेका सकत किया ॥ ६३ ॥ इसक बाद नन्दा चम्पिकाकी लिये हुए भरतके सामने पहुँचकर कहने लगी—ये शत्रुघ्नक बेट भाई भरत कैकेयोके गभसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ६४ ॥ ये भी रामकी सेवा करते हैं । इन ज्ञान्त, युवा एवं दयिताप्रिय भरतको बर ले तो नू भाइवी तथा भरतके साथ सगृजके जलमें बिहार करेगी । वे भी ठीक नहीं जब तो चम्पिकाका सकेत पाकर नन्दा लक्ष्मणके सामने पहुँची ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ वह चम्पिकासे कहने लगी—य सुमित्राके गभसे उत्पन्न लक्षण है । य अयाऽऽश्रे रहन हुए रामकी सेवा करते हैं । नू इन सुन्दर, मेघनादका नाश करनेवाले और श्रेष्ठ भगवान्‌के अग्रमे उत्पन्न लक्ष्मणके साथ ब्याह करके उर्मिलाकी बहिन बन जा ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ सब भाइयोंको रामक सेवक, छत्रचमरविहीन तथा ब्याहे सुनकर उसने तीनों भाइयोंसे किमंको भी नहीं पसन्द किया ॥ ६९ ॥ इसक बाद घात्रीके संकेत करनेपर वह भागे बहती हुई रामचन्द्रजीके सामने जा पहुँची । तब घात्री रामका स्तुति करती हुई इस तरह बोली—॥ ७० ॥ हे चम्पिके ! तुम्हारा अहोभाग्य है, जो नुम रामचन्द्रजीको देख रही हो और मैं भी धन्य हूँ, जो रामकी स्तुति करनेके लिए इनके सामने उपस्थित हुई हूँ ॥ ७१ ॥ कहीं मैं एक मंदमति नारी और कहीं गुणोंके सागर रामचन्द्र । मैं इनकी स्तुति करनेमें कैसे समर्थ हो सकती हूँ, जब कि बान्मीकि जैसे महान् कवि भी पूरे तीरसे वर्णन नहीं कर सके ॥ ७२ ॥ उन्होंने सो करोड़ श्लोकोंन जो बयन किया है, भी केवल उनके सो करोड़ अशोंकी स्तुति हुई है ॥ ७३ ॥ मैं अपनी बुद्धिके अनुसार घाड़ी-मा स्तुति कर रही हूँ, सो सुन । य सूर्यवंशके भूषण, महाराज दशरथके पुत्र, कौसल्याके तनय और सबदयावक माझान् नारायण है । इन्होंने दृष्ट ताइकाका बध करके विश्वामित्रक यज्ञकी रक्षा की है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इन्होंने अह-याको शापसे मुक्त किया और शिवधनुष तोड़ा है । य सीताके बल्लभ, परशुरामके कोपरूपी वनके दवानल, राजाओंक समूहको जीतनेवाले तथा भरतके जीवनदाता हैं ॥ ७६ ॥ ये पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले, भाई तथा सीताके साथ बनोंमें रहनेवाले, विराधके नाशक, श्यामरूपधारी और सार-रूपणके नाशक हैं ॥ ७७ ॥ त्रिशिरा तथा मृगरूप धारण करनेवाले मारीचके बधकर्ता, कदम्ब तथा बालिकी मारनेवाले, समुद्रमें से नु भीधनेवाले और लंकानिवासी राक्षसोंके बिना-

जानकीत्यागकर्तारं मीताग्रहणतन्परम् । कुशलवत्सजाश्रयां च वाञ्छार्थं युद्धकारिणम् ॥८०॥
 एकपत्नीग्रस्तं शान्तं सत्यभाषणतन्परम् । एकबाणमसंख्यातनामानं मरुनिध्वजम् ॥८१॥
 कोविदारध्वजं बाणध्वजं वज्रध्वजं शुभम् । तार्क्ष्यध्वजं पुष्पकम् तार्क्ष्यवायुज्वहनम् ॥८२॥
 नानाराजावतंसम्भ्रमुक्तादीप्यंघ्रिशोभितम् । वारिंह्यामनामीने लज्जचारुमण्डितम् ॥८३॥
 वरयैतं चम्पिकेष्टा गीतया भज गद्यम् । नवपेश्याश्चर्यं समर्प्याधिपोऽधि च ॥८४॥
 बाणः पत्नीन्धो यस्य नान्य मा खेदोऽत्र , नवरत्नमालिहामस्य ग्रीवायां कुरु मा व्रज ॥८५॥
 इत्युक्ता नदया बाला स्वर्णपुण्या धिर्वेश्वर । न वचन्ध मरो रामे र्मानां सम्पृत्य चम्पिका ॥८६॥

एकपत्नीग्रस्तं रामं सीतया ह्वयतेति च ।

खेदं मा चर तन्कण्ठे मालां मा कुरु चोदिता ॥८७॥

ततस्त्वसंज्ञया नदा तां निनाय कुशं प्रति । प्रोत्ताव मधुरं वाक्यं कुशवर्णनहृषिता ॥८८॥
 एनं पश्यात्पवयस श्रीरामतनयं कुशम् । जनकीनटरोद्धूतं ज्येष्ठं भार्याशिनं शुभम् ॥८९॥
 लज्जाग्रजं धनुर्देनिपुणं विनयान्वितम् । पित्रा नग्रागकर्तारं बालकीकिमुनिशिक्षितम् ॥९०॥
 एनं वर्णाण्य बाले त्वं सुरमानवमस्तुतम् । नवरत्नमयीं मालामप्य कण्ठे सुखं कुरु ॥९१॥

इति मन्दावचः श्रुत्वा चम्पिका सा स्मितामना ।

मुमोच मालिकां कण्ठे मकराभ्यां कुशस्य हि ॥९२॥

तदा निनेदूर्वाद्यानि तुष्टुर्बन्दिमागधाः । लज्जयाऽधोमुखो रेजे सभायां कुशबालकः ॥९३॥
 तदा तुष्टो भूरिकीर्तिः कुशाके चम्पिकां शुभाम् । स्थापयाम स वगेन पश्यन्मु नृपतीपु च ॥९४॥

शक महाप्रभु है ॥ ७८ ॥ रावणको मारनेवाले, सीताके साथ राज्य करनेवाले, तीर्थ-यज्ञकर्ता एवं सीताके साथ विहारकारी हैं ॥ ७९ ॥ इन्होंने सीताका त्याग किया और फिर वापस लुप्त लिया, इन्होंने अपना यज्ञ पूर्ण करनेके लिए अपने बेटे लव-कुशके साथ भी युद्ध किया था ॥ ८० ॥ ये एकपत्नीव्रती, शान्त, सत्यभाषी, एक बाण तथा असंख्यानामधारी हैं । ये कोविदारध्वज, बाणध्वज वज्रध्वज तथा गरुडध्वज हैं । पुष्पक, गरुड़ तथा हनुमान्जो इनके वाहन हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ये बहुतसे राजाओंके युद्धमणि हैं और मातियोंके प्रकाशसे इनका धरण सुशोभित रहता है । ये एक अच्छे सिंहासनपर बैठते हैं और उसपर सुन्दर छत्र चमर शोभित रहता है ॥ ८३ ॥ हे चम्पिके ! तू इन्हें वर ले और सीताके साथ रहनी हुई इतकी सेवा कर । ये नवो खण्डा एवं सातों दीपोंके अधिपति हैं ॥ ८४ ॥ ये किमा अन्य स्थाविषयक बातोंके बाणकी नाई समझते हैं । अब तू किसी प्रकारका सोच-विचार न करके यह नवरत्नोंकी माला इनके गलेमें डाल दे ॥ ८५ ॥ इस प्रकार नन्दाके समझाने-पर भी माग्यवक्त तथा सीताका स्मरण करके राम भी उसे पसन्द नहीं लाये ॥ ८६ ॥ दूसरे नन्दाने भी अपने वर्णनमें कहा था कि एकपत्नीव्रती है, इसलिए 'सीतया अभज' (सीताके साथ रहना पसन्द न कर) ॥ ८७ ॥ तन्पश्चात् चम्पिकाके सबेले नन्दा उसे कुशके सामने ले गया और इस तरह कुशका भी वर्णन करती हुई कहने लगी- ॥ ८८ ॥ इतकी देखो, इनकी अभी थोड़ा उमर है । ये रामके तनय तथा सीताके पुत्र हैं । इनका नाम कुश है । ये लवके बड़े भाई हैं । अभी इनका विवाह नहीं हुआ है । इसलिए ये भार्याशी हैं । ये धनुर्वद निपुण, विनीत स्वभाव, पिताके साथ मगाम करनेवाले और महामुनि बाल्मीकिके शिष्य हैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥ अतएव मनुष्यों और देवताओंसे सम्मन इन कुशको पसन्द करके तू इनके कंठमें यह नवरत्नमयी माला डाल दे ॥ ९१ ॥ इस प्रकार नन्दाकी बात सुनी तो हँसकर उसने अपने हाथोंसे कुशके गलेमें वरमाला डाल दी ॥ ९२ ॥ उस समय विविध प्रकारके बाज वज उठे और बन्दीजन तथा भाटोंने स्तुति की । उस सभामें लज्जासे नीचा मुग किये बैठा हुआ बालक कुश ही सुन्दर लग रहा था ॥ ९३ ॥ उस समय प्रसन्न होकर राजा भूरिकीर्तिने सब राजाओंके सामने ही चम्पिकाको कुशकी गोदमें बिठा

ददर्श जालरग्रैश्च प्रासादस्था विदेह्या मुमोद नितरा स्त्रीभिर्मुमोद राघवोऽपि सः ॥१५॥

इति श्रीकनकटिरामचरितेन तमनेन श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे

षष्पिकास्वयंवरो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(द्वितीय राजकन्या सुमतिके स्वयवरका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

अथान्यां सा सभाग्रच्च सुमतिश्चोत्तरमिदम् । नृपानीजानदिक्षामान्मुनदा धृतयाष्टिका ॥ १ ॥

कमेण वणयायाम क्षियिकास्था सुनेवनाम् । यान्ते मृणुष्व मे वाक्य पश्येन न्व नृपोत्तमम् ॥ २ ॥

अदन्तिस्थं चोप्रशङ्कतामानं च सनुत्तमम् । गानेन मदृशः कश्चिन्पृथिव्यां वर्तते नृपः ॥ ३ ॥

वर्येन नृपं माऽग्रे गच्छ न्व गजगमिनि । अस्य त्व महिषा भूत्वा क्षिप्रानयथ एकने ॥ ४ ॥

वस्त्रगेहस्थिताऽनेन मुग्यं कीडस्व भाभिनि । अनुत्तम चेत्त वाक्य द्वाये मा सुमतिः पुरा ॥ ५ ॥

भूत्वा मेनं वरयेति सुनदाया वचः पुनः । श्रुत्वा तां चोदयामास मा तां नीत्वा नृपांतरम् ॥ ६ ॥

सुनन्दा सुमति प्राह पश्येन न्व नृपं परम् । अंगनायाह्वय श्रेष्ठ विदर्भविषयस्थितम् ॥ ७ ॥

पूववक्ष्यज मा बाले वृषीर्षेन नृपोत्तमम् । श्लोहामं स्वल्पवयसं भुजकेगुरगजितम् ॥ ८ ॥

अस्य त्व महिषा भूत्वा पयोष्णीजलशोषिषु । मुग्यं बृह जलकाडा नृपगानेन भाभिनि ॥ ९ ॥

एनं वृषीर्षे मा चेति सुपमया मुनोदिता । अग्रे गन्तुं सुनन्दां मा चोदयामास मत्तया ॥ १० ॥

स्तोत्र्य नृपतिं नीत्वा सुनदा तां चोदयामास । पश्येन न्व नृपतिं बाले देशे मागधमस्तके ॥ ११ ॥

राज्यं कुलेत्यर्थं श्रीमान्नाम्ना लघान परापः । वर्येन नृप माऽग्रे गच्छ न्व पार्थिवोत्तमम् ॥ १२ ॥

अस्य त्व महिषा भूत्वा तप्तनीरः पूरयेत् । अग्रर्थाय मदा कं डां हेमन्ते भज भाभिनि ॥ १३ ॥

विधा ॥ १४ ॥ अटारीक सरास्वात सोतान बह मङ्गलमय कार्यं दत्ता सो बहुत प्रसन्न हुई और राघवचन्द्रजा भी अत्यधिक प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥ इति श्रीकनकटिरामचरितेन तमनेन श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामतेजपाण्डेयविरचितेऽज्ञातस्त्रीभाषाटीकासाहस्रे विवाहकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच—तदनन्तर सुनन्दा दूसरी कन्या सुमतिके उत्तरकी ओर बैठे राजाओं के सामने से जाकर ईशान कोणमें प्रमत्त एक-एक राजाको दिखाकर इस प्रकार वर्णन करता हुई बाली—हे बाबू! मेरी बात सुनो, राजाओंमें अष्ट इस राजाको श्रेष्ठ ॥ १ ॥ २ ॥ यह अदन्ति देशका रहनेवाला है। उग्रदाह इसका नाम है। पृथ्वीतलपर इसका समान कोई राजा नहीं है ॥ ३ ॥ हे गजगमिनि! तू आगे मत बढ़, इसीको बर ले। इसका रानो बनकर तू क्षिप्र नदाके तटपर बने हुए इतीम आनन्दपूर्वक विहार करेगी। सुनन्दाने "अनुत्तमम्" तथा "एनं मा वरय" इन दो वाक्योंका दो अर्थोंमें प्रयोग किया था। उसमें एकसे प्रणत और दूसरेसे निन्दा होती थी। इसी कारण सुमतिके यह राजा पसन्द नहीं आया और उसने जाते बढेका संकेत किया ॥ ४-६ ॥ सुनन्दा उसे दूसरे राजाके सम्मुख लाकर कहने लगी—यह विदर्भ देशका निवासि अङ्गनाय नामका राजा है ॥ ७ ॥ तू इस मत छाड़। इसीको अपना पति बना ले। यह इसका इच्छा रखता है। इसकी पीढ़ी उमर है और बाहुओंमें कूट शक्ति हुआ है ॥ ८ ॥ इसके पति बनाकर तू पचास नदीके तरङ्गोंमें इसके साथ सानन्द जलविहार कर ॥ ९ ॥ यही श्री पार्थिके "एनं मा वरय" (इसे मत बर) यह वाक्य सुनकर उसने जाते बढनेका संकेत किया ॥ १० ॥ तदनन्तर सुनन्दा उसे दूसरे राजाके सामने ले जाकर बाली—हे बाबू! इस राजाको देख, यह वरपति मगध देशमें राज करता है। यह बड़ा श्रीमान् है। इसे लोग परमेश्वर कहते हैं। वस, तू इसी श्रेष्ठ राजाको अपना पति बना ले—और जिसके पास मत जा ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसको अपना पति बनाकर जातेके दिनोंमें तू सदा ब्रह्मजीवी गरीम जलम काड़ा किया करेगी।

मैत्रं नृपं वरयेति विज्ञिता सा सुनन्दया । चोदयामास तां वृद्धा मातां नित्ये नृपात्मम् ॥१४॥
 सुनन्दा बालिकामाह भृगुष्व भृगुलोचने । पश्येनं नृपतिं रम्यं द्वाविडे विषये स्थितम् ॥१५॥
 कम्बुकण्ठादयः श्रेष्ठ कान्तिपुर्यां निवासिनम् । एनं नृपं वृष्याप्याद्य सा व्रजान्यं नृपोत्तमम् ॥१६॥
 काञ्चिपुण्यामनेन त्वं मवेतोऽयमनोगमे । कीर्तय भजस्व शिरोर्णो हेमकञ्जसिञ्जिते ॥१७॥
 विष्णुं वरदराजान्यं शिवमेकामरादयम् । पूजयस्व मदाप्तेन कम्बुग्रीवनृपेण च ॥१८॥
 शृगार्धेन नृपं माऽद्य मामान्यन्पदस्यज । इति वृद्धावचः श्रुत्वाऽग्रे तां गन्तुं प्रचोदयत् ॥१९॥
 सुनन्दाऽप्यं नृपं नीत्वा सुमतिं नाक्यमब्रवीत् । एतन्नं नृपतिं शृण्व मत्तमानङ्गगामिनि ॥२०॥
 कर्णाटविषयस्य त्वं विजये पार्थिवोत्तमम् । कमलास्यं कञ्जदन्तं कमलाञ्चिण्मुज्ज्वलम् ॥२१॥
 स्थितस्य कंजनयनं विजयाख्यपुरस्थितम् । शृणुष्व वचनं संजयः शृगार्धेन नृपोत्तमम् ॥२२॥
 अरुण त्वं महिषी भूत्वा वने कृत्वा नदीजले । सुप नृपेण व्रीडाव मदाक्यं भृगु मा व्रज ॥२३॥
 मदाक्यं भृगुमेत्युक्त्वा श्रुत्वा शक्यमनुनमम् । व्रजेति सूचिता बाला चोदयामास तां पुनः ॥२४॥
 एवं नानानुमाणां च वर्णनानि पृथक् पृथक् । स्तुतिरूपनिषेधीनि श्रुत्वा द्वयर्थानि बालिका ॥२५॥
 न वयं मनः कस्मिन्पती तेषु सा नदा । तन्मतां शिबिकामप्यां सुनन्दा च शनैः क्रमात् ॥२६॥
 अतिक्रम्य राममन्त्रिबालिकानपि पूर्ववत् । युपकेतुं शिशुं नीत्वा बालिकां शक्यमब्रवीत् ॥२७॥
 शृणुष्वननयं बाल युपकेतुं मनोहरम् । पितृव्यं रमनमद्वयवाक्यानुवर्तिनम् ॥२८॥
 एन पश्य बालिके त्वं सावधानमवा भव । वरयेनं युपकेतुं पाऽग्रे गच्छ नृपात्मजे ॥२९॥
 मैत्रं वरय गच्छाग्रे वृद्धया सेति चोदिता । सुनन्दा चोदयामासाग्रे गन्तुं सुमतिः पुनः ॥३०॥
 सुषाडु पुष्करं तक्षमेव सा सुमतिः शनैः । चित्रकेतुमङ्गदं च त्यक्त्वा सा तु त्वं वरये ॥३१॥

॥ १३ ॥ यहाँ भी सुनन्दा ने "एनं नृप मा वरय (इस राजाको मत वर, ' यह द्वयवक वाक्य कहा था । जिससे सुमतिन आगे चलनेका संकेत मिला । तब वह उसे दूसरे राजाके समन ले गयी ॥ १४ ॥ और कहने लगी—हे नृपात्मज ! इस सुन्दर राजाका नाम, यह द्विविददन्तका निवास है ॥ १५ ॥ इसका कम्बुकण्ठ नाम है । यह कान्तिपुरीस राजा है । तू इस वर ले । अब किसी अन्य राजाको देखनेको इच्छा मत कर ॥ १६ ॥ कान्तिपुरीस तू आतुर्य विहाय सुखपूर्वकमनसे युक्त मनोरम सर्वसाधुओं के साथ सानन्द विहार करेगी और इसके साथ वरदराज नामक विष्णु भगवान् तथा एकादश नामक शिवका पूजन करेगी । साधारण राजाओंकी तरह इसे भी न छोड़, इसको वर ले । इस प्रकार वृद्धा सुनन्दाकी बात सुनकर सुमतिन उसे आगे चलनेका संकेत दिया ॥ १७-१९ ॥ तब सुनन्दा उस दूसरे राजाके पास ले जाकर कहने लगी—हे मुन्ध ! हे मत्तमानङ्गगामिनि ! तू इस राजाको देख ॥ २० ॥ यह कर्णाटक देशका रहवाला विजय नामक राजा है । कमलके समान इसका मुख है और कमलके ही समान इसका हाथ-पैर भी हैं ॥ २१ ॥ इसका मुख सदा मुस्कुराना रहता है । कमलकी कलियोंकी तरह इसकी आँखें हैं । यह विजयपुरका निवासी है । तू मेरी बात मानकर इस अपना पति बना ले ॥ २२ ॥ इसकी राजमहिषी बनकर तू बना तथा कृष्ण नदीके जलने सानन्द विहार करेगी । मेरी बात मानकर तू और आगे मत बढ़ ॥ २३ ॥ "पदावच मा भृगु (मेरी बात सुन)" यह बात सुनकर उसने सुनन्दाको आगे चलनेका संकेत किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार अनेक राजाओंके वर्णन जो वास्तवमें निषेधमय थे, किन्तु ऊपरस स्तुतिवाक्य मान्यम पड़ते थे । ऐसे द्वयवक वाक्योंको सुन-सुनकर बालिकाने उन राजाओंमेंसे किसीको भी नहीं पसन्द किया । तब सुनन्दा शिबिकामें बैठी हुई सुमतिका लेकर धीरे-धीरे रामके मन्त्रिपुत्रोंको लाँचकर युपकेतुके सामने गयी और कहने लगी— ॥ २५-२७ ॥ वे शत्रुघ्नके सुन्दर पुत्र युपकेतु हैं । ये पितृव्य (ताड़) राजके दानो वट वृक्षस्वके अनुगामी हैं ॥ २८ ॥ हे बालिके ! तू अब अपना मन सावधान करके इन्हें देख । हे नृपात्मज ! अब आगे न जाकर तू इन्हींको अपना पति बना ले ॥ २९ ॥ "मा एन वरय अग्रे गच्छ (इसे न वर, आगे चल)" यह सङ्कुट वाक्य सुमतिने

लवापितेक्षणां बालां सुनन्दा वाक्पयममर्वात् । पश्यन् बालिकं बालं लवं श्रीराघवान्मजम् ॥३२॥
 स्त्रीकामं स्वल्पवयसं सीतालालितमुत्तमम् । वाम्प्रीकिकृपया लज्जविश्वं रम्य कुशानुजम् ॥३३॥
 वृणोर्ध्वनं सुखेनैव कण्ठेऽस्य मालिकां कुरु । कुशांके चपिकेय ते स्वमा यद्वत्स्थिताऽद्य हि ॥३४॥
 तथा त्वमपि भो मृगधे लवांके मन्थिता भव । इति तस्या वचः श्रुत्वा सुनन्दायाः स्मितानना ॥३५॥
 लवस्य कण्ठे हर्षेण लज्जयाऽवननानना । मुमतिर्निजवाहुभ्यामपेयामाम मालिकाम् ॥३६॥
 तदा निनेदुर्वाधानि जगुस्ते गायकास्तदा । ननुतुर्वारितार्थश्च तुष्टुर्वन्दिमागधाः ॥३७॥
 भूरिकार्तिनृपस्तुष्टो लवांके मुमतिं तदा । शीघ्र निवेशयामाम परिपूर्णमनोरथः ॥३८॥
 तोषमाप रघुश्रेष्ठः सीता प्रामादसंस्थिता । जालरंभैः सपत्नीक लवं दृष्ट्वा तुतोष सा ॥३९॥
 ततः सर्वाभूषान् पूज्य भूरिकार्तिनृपोत्तमः । प्रार्थयामाम विनयवचनैस्तत्पुनः स्थितः ॥४०॥
 विवाहकौतुकं दृष्ट्वा भवद्विगम्यतामिति । तथेति ते नृपाः प्रोचुर्यपुर्वापस्थलानि हि ॥४१॥
 रामाग्रं मगरं कर्तुमममर्थां गतश्रियः । स्नानानना गतोन्माहाः कामबाणप्रपीडिताः ॥४२॥
 रामोऽपि बन्धुभिर्बाल्ययो वामस्थल मुदा । अथापरे दिने गत भूरिकार्तिः समाययो ॥४३॥
 पुगेधसोपविष्टः सज्जत्वा राम वचोऽब्रवीत् । द्रष्टव्या लज्जादिवसः सुमुहूर्तः सुखावहः ॥४४॥
 माममीकुरु रामाद्य त्वन्पादाश्रयकामुकम् । उभयोस्त्व मण्डपयोः कायाप्याज्ञापय प्रभो ॥४५॥
 तथेति राघवश्चोक्त्वा वनिष्ठ चोदयत्तदा । सोऽपि रामाज्ञया ज्योतिःशास्त्रज्ञः परिवेष्टितः ॥४६॥
 मुहूर्तं कथयामाम पञ्चमेऽहनि राघवम् । ततस्तुष्टो भूरिकार्तिगणेश लज्जपत्रिकाम् ॥४७॥

सुनन्दाकी आये चलनका सकत किया ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सुबाहु, पुष्कर, तक्ष, चित्रकेतु तथा अंगदकी छाड़ती हुई वह लवके पास पहुँचा ॥ ३१ ॥ जब मुमति लवकी आर दखन लगा सब सुनन्दा बाला—हे बाले । इस बालककी देख, यह रामका पुत्र है, यह अपना विवाह करना चाहता है । हमकी थोड़ी उमर है । सीताके द्वारा इसका पालन-पोषण हुआ है । वाम्प्रीकिकृपा हम उत्तम । सा प्राप्त हुई है और यह कुशका छोटा भाई है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तू सुनन्द हम अपना पति बनाकर हमक गलेमें वरमाला डाल दे, जिस तरह तुम्हारी बहिन धम्पिका कुशकी गालमें बँटी है उसी तरह आ तुम्हारा भी लवकी गोदमें बँट जा । इस प्रकार सुनन्दाकी बात सुनकर वह मुस्कुराया और लज्जविश्व मस्तक झुकाकर उसने अपने हाथोंसे लवके गलेमें वरमाला डाल दी ॥ ३४-३६ ॥ उस समय अनेक प्रकारके वाजे बजे, गायकोंने गाने गाये, वेश्यायें नाचने लगी और बन्दीजन स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ महाराज भूरिकार्तिने प्रसन्न होकर मुमतिकी लवकी गोदमें बिठा दिया ॥ ३८ ॥ यह देखकर रामचन्द्रजी तथा अटारोपर बँटी सीता दोनों प्रसन्न हुए । जब हरौलीसे सीताने लवकी गोदमें मुमतिकी बँटा देखी तो उनकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर राजा भूरिकार्तिने वहाँ आये हुए सब राजाओंकी पूजा करके विनयपूर्वक प्रार्थना की—॥ ४० ॥ अब आप लोग विवाहका भी उत्सव देखकर आइएगा । राजाओंन भी उनकी बात स्वीकार कर ली और अपने-अपने डेरेपर चले गये ॥ ४१ ॥ वे सब राज रामसे मुट्ट करनमें असमर्थ थे । अतएव उनकी श्री नष्ट हो गयी थी, मुख कुम्हला गया था, उत्साह भंग हो गया था और वचारे कामके बाणोंसे पीड़ित हो रहे थे ॥ ४२ ॥ राम भी अपने भाइयों और बन्धुओं साथ प्रसन्नतापूर्वक डेरेपर गये । इसके बाद दूसरे दिन राजा भूरिकार्ति रामके पास पहुँचे ॥ ४३ ॥ पुराहित उनके साथ था । वे रामके समक्ष बैठे और कहा कि कोई अच्छा लग्न-दिवस तथा सुखदायक मुहूर्त विचारिए । फिर कहा—हे राम ! अपने चरणीक भक्त मुझ दासकी प्रार्थनाको ब्रह्मीकार करके दोनों मण्डपोंक लिए जो कार्य करने हैं, उनके लिए आज्ञा दीजिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ “अच्छा” कहकर रामने वसिष्ठकी ओर संकेत किया । वसिष्ठन रामका आज्ञासे उपनिषत्शास्त्रको जाननेवाले कितने ही पंडितोंके साथ विचार करके उनके पाँचवें दिन विवाहका शुभ मुहूर्त बतलाया । इसके अनन्तर प्रसन्न मनसे भूरिकार्तिने गणेशजी, लज्जपत्रिका, गणकों, पण्डितों, वैदिक आदिकी तथा रामके साथवाले बंधुबनों और

सम्पूज्य गणकान्सर्वान्पण्डितान्वैदिकादिकन् । वधुप्रादिभिः सर्वैः धीराम् पूजयन्तदा ॥४८॥
 नत्वा रामं गृहं भान्वा चकार मण्डपादिकम् । समाज्या लक्ष्मणाऽपि चकार मण्डपादिभ्यम् ॥४९॥
 तदा वटपुत्री स्या पाताकाः खजोग्णैः । पुरुषोत्तमराजधारी देजे सागररोधाम् ॥५०॥
 ततो मुहूर्तसमये वधुच्छिष्टां निशां कुशम् । लवं च विष्य तदात्तं सीताया भान्वस्तदा ॥५१॥
 करकुम्भांश्चतुर्दिक्षु जलपूर्णान्सदीक्यान् । सम्भ्रम्य स्नायय मासुमेहावाद्यपुरःसरम् ॥५२॥
 तैलार्थगं निशागुक्तं मोतयाः स्त्रियवाल्क्यैः । सर्वैश्च चक्रुराभ्यर्चयन्ति स्म रुक्ममृषिताः ॥५३॥
 मय्यगर्षकं सन्तुस्ते रामाद्यास्तदा मुदा । ममाह्वय ततः सीता मुक्तानां मय्यभिकोपरि ॥५४॥
 वसिष्ठो मुनिभिर्गुह्यैः क्षिप्रम्या राघवेण हि । गणपार्च्य कस्तुरिन्ध्या पूजयाहादिभ्यः क्रमात् ॥५५॥
 देशाचारान्कुलाचारानिष्टदेवीं प्रपूज्य च । करग्रामास विधिवन्निष्ठां देवकम्य च ॥५६॥
 तदा जनकनन्दिन्या रजनीकुम्भान्निधौ । विरज्य स्नानं कथितं विधायाः पदपङ्क्तौ ॥५७॥
 सीतायास्ताः स्त्रियः सर्वा विविधाः कर्णवर्णैः । तैस्तैश्च विविधैः पुष्पाङ्गुलिपाङ्गणे ॥५८॥
 ततः समाययुः सर्वे मुदा तत्र मुनीश्वराः । स्वयम्भोग्णैश्च पूजं तामना ये सहस्रशः ॥५९॥
 श्रुत्वोमाह विवाहस्य कुशस्य च लक्ष्यते । तान्पर्वान् रामचन्द्रोऽपि ब्रह्माभरणधेतुभिः ॥६०॥
 पूजयामास विधिवन् मोतया लक्ष्मणादिभिः । भूक्तानिर्गुह्यैश्चो महावाद्यपुरःसरम् ॥६१॥
 स्वयं कुशलार्थं गेहं नेतुकामः गमाययी । मण्डपे पूजयामास वीरो राक्षः सुतस्तदा ॥६२॥
 कुशं तथा लवं चापि कर्तव्यान् भूक्तानिजः । हस्तपद्मैश्च विविधैश्च भरणैश्च ॥६३॥
 तदा विरेजतुर्बालौ तथा नेऽप्यसदाद्वयः । नतस्तौ वरणन्दम्यौ दिव्यचाभरणीजिनौ ॥६४॥
 पश्यती नर्तनान्पद्मे वारम्भणां स्मिन्तर्नौ शृण्वती वाद्यघोषांश्च वर्णिती मागधादिभिः ॥६५॥

पुत्रोंके साथ रामकी पूजा की ॥४८॥ तब, वि. २, अ. १०, श्लो. १०० पर गये और वहाँ मण्डपादिकों तैयारी करने लग्ये । रामकी आज्ञासे लक्ष्मण भी वहाँ गये । ॥४९॥ उस समय समुद्रके लक्षण स्थित पुत्रोत्तमकी र. २, अ. १०, श्लो. १०१ पर गये । तब लक्ष्मण पुष्पाङ्गुलि पाङ्गणोंके साथ रामकी पूजा की ॥५०॥ तब वटपुत्री तथा पाताकाः खजोग्णैः पुरुषोत्तमराजधारी देजे सागररोधाम् ततो मुहूर्तसमये वधुच्छिष्टां निशां कुशम् । लवं च विष्य तदात्तं सीताया भान्वस्तदा ॥५१॥ करकुम्भांश्चतुर्दिक्षु जलपूर्णान्सदीक्यान् । सम्भ्रम्य स्नायय मासुमेहावाद्यपुरःसरम् ॥५२॥ तैलार्थगं निशागुक्तं मोतयाः स्त्रियवाल्क्यैः । सर्वैश्च चक्रुराभ्यर्चयन्ति स्म रुक्ममृषिताः ॥५३॥ मय्यगर्षकं सन्तुस्ते रामाद्यास्तदा मुदा । ममाह्वय ततः सीता मुक्तानां मय्यभिकोपरि ॥५४॥ वसिष्ठो मुनिभिर्गुह्यैः क्षिप्रम्या राघवेण हि । गणपार्च्य कस्तुरिन्ध्या पूजयाहादिभ्यः क्रमात् ॥५५॥ देशाचारान्कुलाचारानिष्टदेवीं प्रपूज्य च । करग्रामास विधिवन्निष्ठां देवकम्य च ॥५६॥ तदा जनकनन्दिन्या रजनीकुम्भान्निधौ । विरज्य स्नानं कथितं विधायाः पदपङ्क्तौ ॥५७॥ सीतायास्ताः स्त्रियः सर्वा विविधाः कर्णवर्णैः । तैस्तैश्च विविधैः पुष्पाङ्गुलिपाङ्गणे ॥५८॥ ततः समाययुः सर्वे मुदा तत्र मुनीश्वराः । स्वयम्भोग्णैश्च पूजं तामना ये सहस्रशः ॥५९॥ श्रुत्वोमाह विवाहस्य कुशस्य च लक्ष्यते । तान्पर्वान् रामचन्द्रोऽपि ब्रह्माभरणधेतुभिः ॥६०॥ पूजयामास विधिवन् मोतया लक्ष्मणादिभिः । भूक्तानिर्गुह्यैश्चो महावाद्यपुरःसरम् ॥६१॥ स्वयं कुशलार्थं गेहं नेतुकामः गमाययी । मण्डपे पूजयामास वीरो राक्षः सुतस्तदा ॥६२॥ कुशं तथा लवं चापि कर्तव्यान् भूक्तानिजः । हस्तपद्मैश्च विविधैश्च भरणैश्च ॥६३॥ तदा विरेजतुर्बालौ तथा नेऽप्यसदाद्वयः । नतस्तौ वरणन्दम्यौ दिव्यचाभरणीजिनौ ॥६४॥ पश्यती नर्तनान्पद्मे वारम्भणां स्मिन्तर्नौ शृण्वती वाद्यघोषांश्च वर्णिती मागधादिभिः ॥६५॥

सीतादिभिर्वारिणीषु संस्थिताभिस्तथा पथि । प्रासादोपरि मस्थाभिर्नारीभिः पुष्पवृष्टिभिः ॥६६॥
 हरिद्रापीतधान्यैश्च मागल्यैर्मौक्तिकैरपि । लाजाभिर्हेमपुष्पैश्च वर्णितावीक्षिता मृदुः ॥६७॥
 जम्भतुर्वालकावेवं पश्यन्तौ कौतुकानि हि । ददर्शतुर्वादिकाश्च पुष्पैर्वृष्टिभिर्निर्मिताः ॥६८॥
 तथा कृत्रिमवृक्षाश्च पताकाश्च ध्वजांस्तथा तथोपधिभवान्वृक्षान् वह्निस्पर्शविदीपितान् ॥६९॥

अनदस्थानेष्वधीभिः पूरितान्कृत्रिमान् जनान् ।

तथा व्याघ्रादिकान्हिमनानेष्वधीभिः प्रपूरितान् ॥७०॥

तडिन्मम नान् गगने प्राकारानौषधीभरान् ।

केकिचक्रोपमार्दीश्च चन्द्रज्योत्स्नास्तु कृत्रिमाः ॥७१॥

एवं ददर्शतुर्नानाकौतुकानि नृपान्मर्जी । ततस्तौ भूरिकीर्तेश्च गत्वा मण्डपमुत्तमम् ॥७२॥
 नानामहोन्मदैर्गली चामरच्छत्रमण्डितौ । अवरुध्य गजेन्द्राभ्यां तस्थतुर्मण्डपागणे ॥७३॥
 मधुपर्कविधानानि विष्टरानी नि वै क्रमत् । ीर्गुरु चक्रतुर्गौ ब्राह्मणैः पग्निवेष्टितौ ॥७४॥
 ततो वध्वोः पूजनं च सीताया रघुनन्दनः । चकार गुरुणा युक्तस्तदा स मण्डपागणे ॥७५॥
 ततो लग्नमुहूर्तं तं कुशं चम्पिकायां गुरुः । तथा लवं गुप्तायापि पृथग्वेदिकयोस्तदा ॥७६॥
 कृत्वा सुमस्थितौ चोनी दम्पन्योरन्तरे पटौ । ध्वजोभयोः पृथक् चित्रौ नूतनौ हेमततुर्गौ ॥७७॥
 नानामगल्योपांश्च मुनिदिश्वक्रतुर्मुदा । आगन्मर्वे जनाभ्यर्ण्य मृष्वतो मंगलस्वनान् ॥७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरिते ततः श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये

विवाहकाण्डे चतुर्त्विंशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

एवं वन्दोजर्तकी स्तुतियां मूलतः हुए राजा भूरिकीर्तिके महलोंकी ओर चले जा रहे थे ॥ ६५ ॥ सीतादिक माताएँ हरिणी ओपर बैठी थीं । अट्टरियोपर बैठे हुई नगरवासिनी नारियाँ उनपर फूल बरसा रही थीं । बाव भीचम हस्तीसे रगे पड़े रोक अन्न, मागल्य मौक्तिक, धानके लावे और मुवर्णके बने फूल भी बरसते जा रहे थे । वे नारियाँ कुश लवको प्रेम्भरों दक्षिमें निहार रही थीं । इस तरहके कौतुक देखते हुए वे दोनों बालक चले जा रहे थे । राखस कुलोंकी बर्षा हो म बनी बाटिकाएँ, कृत्रिम वृक्ष, पताका, ध्वजा, ममलके बने ऐसे वृक्ष जो आगकी चित्तगरी पाकर जलने लगते थे ॥ ६६-६९ ॥ उन्हें और गादीपर बैठे हुए औपधिपूर्ण बनाइटी मनुष्यों, भस्मान्नेस भरे हुए व्याघ्र आदि हिंस जन्तुओं, औषधिके संयोगसे विजलीकी नाई चमकत हुए मगलपणों भवनो सया मयूर आदिके छूटने हुए चक्रोंकी वे राजे कौतूहल भरी आँखोंसे देखते जा रहे थे ॥ ७० ॥ ७१ ॥ इस प्रकार मागल्य अनेक कौतुकोंको देखते हुए वे राजा भूरिकीर्तिके उत्तम मंडपमें पहुँचे उस समय लोग स महान् उत्साह दिखायी पड़ता था । उन वच्चोपर छत्र लगे थे और दिव्य चमक चल रहे थे । वहाँ पर्वचक्र वे हारोंसे उतरे और मण्डपाङ्गणमें पहुँचे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ उनके गुरुजनोने ब्राह्मणोंके साथ मधुपर्क दिप्तर आदि विधि सम्पन्न किये । ७४ ॥ इसके अनन्तर रामने सीता तथा गुरुजनोके साथ उस मण्डपमें उन दानो बहूअ की पूजा की ॥ ७५ ॥ तदनन्तर लग्नका मुहूर्त आनेपर गुरु वसिष्ठने कुशकी चम्पिकाके साथ एवं लवको नुमतिके साथ अलग-अलग वेदीपर बिठाया ॥ ७६ ॥ इस तरह दोनों घर-बधुओंका अच्छी तरह विडलाकर उनके बीचमें एक-एक पर्दा डाल दिया और सब लोग चुन्चाप गुरु वसिष्ठके मुखसे उच्चरित नाना प्रकारके मागल्यक भणोंकी सुनने लगे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(लव-कुशके विवाहका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

श्रीसीता रघुनायकश्च गिरिजा शम्भुगणेशम्नया

नन्दीपण्डुगन्धर्भजौ च भरतः कजोद्भवः शत्रुहा ।

सर्वे ते सुनयः सुराश्च दितिजाम्नीथीदिनघो नदाः

दिक्भालाः शशिभाम्कर्गो च हनुमान् कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥ १ ॥

तदेव लघं सुदिनं तदेव तारावलं चन्द्रवलं तदेव । विद्यावलं देववलं तदेव सीतापतेर्यन्मरण विधेयम् ॥

एवं मंगलघोषैश्च नानावाद्यपुरःसरम् । ततस्त्वत्तत्पटी मुक्त्वाऽपुण्याहमिति स्मरन् ॥ ३ ॥

तयोस्ते पाणिग्रहणविधानं विधिपूर्वकम् । लाजाढोमादिकं सर्वं चक्रुर्मंगलपूर्वकम् ॥ ४ ॥

तदा महावाद्यघोषा निनेदुर्मण्डपांगणे, ननृतुर्वारनायश्च तदा सागधवान्दिनः ॥ ५ ॥

जगुर्मंगलगीतानि तुष्टुवुस्ते मदाश्वनैः । तदा दानान्पत्नैकानि चक्रतुस्तौ नृपोनमौ ॥ ६ ॥

भूरिकीर्तिरामचद्री महानोपप्रार्थितौ । अथ तौ बालकौ वध्वौ निजकटगोर्निवेश्य वै ॥ ७ ॥

सीतौर्मिलादिभिः स्त्रीभिर्जम्भतुर्भोजनगृहम् । तत्र गौरीहरी पूज्य चक्रतुश्चाग्रमिचनम् ॥ ८ ॥

सतः कुश्वंषकिया सुमत्या स लघोऽपि च । चक्रतुर्भोजनं चोभौ स्त्रीभिः सर्वत्र वेष्टितौ ॥ ९ ॥

मात्रा सहोपनयने विवाहे भार्यया सह । अन्येन नैव भोक्तव्यं भुक्तं चेन्पतितः स्मृतः ॥ १० ॥

रामोऽपि वन्धुभिः पौरैः सुहृद्भिः पारिवीक्ष्यैः । चकार भोजनं भूरिकीर्तैः सन्नतिं वै मुदा ॥ ११ ॥

एव सीताऽपि नार्शमिश्रकार भोजनं तदा । भूरिकीर्तैः स्नुषाभिः सा प्रार्थिता वंदिता मुदुः ॥ १२ ॥

सतो नानासमुन्माहान् भूरिकीर्तिश्चकार सः । अथ तौ बालकौ रम्यौ स्त्रोवाक्यैर्मातृमित्रिभ्यौ ॥ १३ ॥

स्वश्चाम्भुमिधौ चापि स्त्रीभिः सर्वत्र वेष्टितौ । स्वस्वपत्न्याः पदयोः शिरोरम्यां नमनं मुदुः ॥ १४ ॥

श्रीरामदास कहते हैं—माता, राम, गिरिजा शिव, गणेश, नन्दी, स्वामिकांतिकेय, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सह्या, समस्त ऋषि, देवता, देव्य सारे तार्थ, नदी, दिक्भाल, चन्द्रमा, सूर्य एवं हनुमान्जी ये सब आप लोगका कल्याण करें ॥ १ ॥ वही स्वतः है, वही मर्दिन है और तारावल तथा चन्द्रवल भी वही है, जिससे कि सीतापति रामचन्द्रजीका स्मरण किया जाय ॥ २ ॥ अनेक प्रकारके वाजोंके साथ इस तरह मंगल-घोष करनेके अनन्तर “ऽपुण्याहम्” ऐसा उच्चारण करत हुए बसिष्ठजी ने अन्न पत्थको दूर कर दिया ॥ ३ ॥ विधिपूर्वक हुवनादि कृत्यके साथ-साथ उन दोनों वर-वधुओंके पाणिग्रहण-सस्कार किये ॥ ४ ॥ उस समय मण्डपमें महावाद्यघोष हुए, देण्याएँ नाचों, सागध और नन्दीजनक स्तुतिपाठ हुए और गाने गाये गये । उस समय उन दोनों राजाओं (राम और भूरिकीर्ति) ने अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ५ ॥ ६ ॥ दोनों सम्बन्धो उस समय बड़े आनन्दित थे । तदनन्तर दोनों बालक अपनी-अपनी स्त्रियोंको कमरपर बिठलाकर सीता-सीतादिजोके साथ भोजनशाला गये । वहाँ उन्होंने शिव-पार्वताकी पूजा की और अग्रसिचन-विधि सम्पन्न की ॥ ७ ॥ ८ ॥ तब सब निजगोसे वेष्टित चम्पिकाके साथ बैठकर कुशने और सुमतिके साथ लवने भोजन किया ॥ ९ ॥ क्योंकि शास्त्रका कहना है कि उपनयनसंस्कारसे माताके साथ एवं विवाहमें अपनी स्त्रीके साथ बैठकर घर भोजन करे और किसीके सह नही । यदि किसी औरके साथ भोजन करे तो गृह वर्तित कहा जाता है ॥ १० ॥ उधर राम भी अपने भाइयों, पुरवासियों, सम्बन्धियों और राजाओंके साथ महाराज भूरिकीर्तिके भवनमें गये और वहाँ भोजन किया ॥ ११ ॥ उसी तरह सीतान भी स्त्रियोंके साथ जाकर भूरिकीर्तिकी बहूओंके प्रार्थना करनेपर उन्हींके यहाँ भोजन किया ॥ १२ ॥ इसके पश्चात् राजा भूरिकीर्तिने विविध प्रकारके उत्सव

चक्रतुम्बोपमपूर्णं ते तत्रापि स्मितानन । वधुराश्च ते सर्वे निशापीना विरेजिरे ॥१५॥
 कुकुमांकितपादी ते ददतुर्वल्लभाङ्गयोः । एव नानाममृताहङ्गतिकां दिनत्रयम् ॥१६॥
 चतुर्थे दिवसे रात्रौ वंशपात्रविराजितैः । दापैर्नौगजितौ चोभौ बालकौ नौ विरेजतुः ॥१७॥
 ततस्तौ बालकौ पत्न्या स्वम्बपुष्टं निवेद्य च । चक्रतुम्बाङ्गं सूर्यं कुशलो मण्डपाङ्गणं ॥१८॥
 मातृश्वशुरादिकानु पश्यन्तु च समादम् । पारिवर्ह भूरिकीर्तिः कुशाय च लयाय च ॥१९॥
 ददौ तुष्टमताः शीघ्रं राममम्बन्धहपितः । नियुतान्दग्धेन्द्रांश्च शिथिकाश्चापि तन्मिताः ॥२०॥
 तुरंगान्यश्चनिपुतं नियुतान्यन्दनान्ददौ । डाभ्यां पृथक् पृथक् पीत्रीधनार्थ्या द्रव्यपूरितान् ॥२१॥
 नानालङ्कारवामांसि गा दामीः सेवकांस्तथा । ददौ ताम्भ्यां भूरिकीर्तिपेषां संख्या न विद्यते ॥२२॥
 एवं मम्माम्बितस्तेन श्रीरामो भूरिकीर्तिना । सपत्नीकाभ्यां पुत्राभ्यां गजस्थाभ्यां समन्वितः ॥२३॥
 भीमया वधुभिः पौरैः सुहृद्भिर्भ्रातृभिर्नृपैः । पूर्ववदुन्मयाद्यैश्च स ययौ स्वायमण्डपम् ॥२४॥
 वटपुण्यां ततो रामो मासमेकं निनाय सः । चकार भीमया कौडां नौजायभ्यौ महोदधौ ॥२५॥
 ततः स्नुषाभ्यां श्रीरामो ययौ निजपुरीं सुखम् । अयोध्यायां विजयोऽपि श्रुत्वा रामं ममागतम् ॥२६॥
 यः पुरीं रक्षणार्थं द्वि रामेगात्तापितः पुरा । स पुरीं शोभय माम् पताकाध्वजनोरणैः ॥२७॥
 वारणेंद्र पुरस्कृत्य नूर्यनूर्यपुरांमरम् । विजयो राममन्विरो रामं ग्रन्थुद्ययौ जवात् ॥२८॥
 अथो नदन्तु वाद्येषु रागो बालैः सुहृज्जनैः । स्नुषाभ्यां भीमया वधुपत्नीभिर्भ्रातृभिः पुरीम् ॥२९॥
 विवेश संतया पौरैः पश्यन्मृग्यादिक पथि । तदा देव्या ननतुम्बपुष्ट्यन्दिमागधाः ॥३०॥
 स्वम्बपत्नीयुतौ बालौ वरवाग्मयोः स्थितौ । तदा विरेजतुर्मगि स्त्राभिः पुष्पैः स्वरपिनौ ॥३१॥

किन्तु । उन दोनों बालकान् प्रिययाक वरवधू से मिलाने के लिये पास बैठ गया अर्थात् सास मासिसे बैठे होकर अपनी-
 क्षात्ता मित्रियोंकी वन्दना की ॥ १५ ॥ १४ ॥ उस समय वे वर-वधू अतिशय प्रसन्न होकर मन्द-मन्द मुसका
 र करते थे । रातके होने परकाणसे वे बैठे मन्द-मन्द सोखते थे ॥ १५ ॥ इसके बाद उन दोनों बहुओत कुमकुम-
 से रंगे हुए अपने चरण पतिके गोदमें रख दिये । उन तरह नाना प्रकारके उत्सवोंके साथ तान दिन बीते
 १६ ॥ चौथे दिन रातके समय वाद्यक बत पाषाण दीपक रखकर सब कुशला आरती की गयी । उस समय
 वे उनकी मन्दरता देखने ही योग्य थी ॥ १७ ॥ १८ ॥ अन्तर वे दोनों बालक अपना अपनी स्त्रीको पाठ-
 क विद्याकर मण्डप नन्द करने लगे ॥ १८ ॥ माना नाम आदि मित्रों मण्डपमें बैठे सह कौतुक देख रही थी ।
 रामराज भूरिकीर्तिन अपना दोनों जामनाओंको सब उल्लेख आदि भी दिये ॥ १९ ॥ रामके सम्बन्धसे
 राम हीकर उन्होंने उन्हें एक लाख हाथी, दोनों ही पालकीयाँ, पाँच राज घोड़े, एक लाख रथ, अलग-
 २० ॥ २१ ॥ दोनों ही सम्पत्ती सब ज द्रव्यस भण्डार दोनों वर वधुओंका ही ॥ २० ॥ २१ ॥ इनके सिवाय विविध
 प्रकारके भण्डार, वस्त्र धार, शस्त्री, दान आदि तो इतने दिये कि जिनका गिनती सम्भव नहीं थी ॥ २२ ॥
 २३ ॥ जिस इस प्रकार सम्मानित होकर श्रीराममन्त्र मंत्री समेत दोनों पुरीके साथ हाथीपर सवार होकर
 २४ ॥ २५ ॥ आताओ, पुरवा सियों, नानेद गी तथा राजाओंका सार्वभौम हुए पूर्ववत् उत्साहके साथ अपने मण्डप-
 में गये ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके अन्तर रामने उस वटपुरीमें एक मास बिताया । वहाँ वे कभी कभी नौकापर
 २८ ॥ २९ ॥ मनाके साथ मण्डपकी मर करके थे ॥ २९ ॥ इसके बाद उन्होंने दोनों पतोहुओंकी साथ आनन्दपूर्वक
 ३० ॥ ३१ ॥ पुरीकी प्रशंसा किया । तब अयाध्याम जब दिजगत, जिसको राम नगरीकी रक्षाके लिए छोड़ आये थे,
 ३२ ॥ ३३ ॥ आगमनकी बात सुनी तो उसने ध्वजा-पताक, तीरण आदिसे नगरीकी खूब सजाया ॥ २६ ॥ २७ ॥
 २८ ॥ २९ ॥ हाथीकी अग करके रामका मंत्री विजय रामकी अगजात करने जा पहुँचा ॥ २८ ॥ इसके अन्तर
 ३० ॥ ३१ ॥ कि विविध प्रकारके आते बज रहे थे तब राम अपने पुरी, महज्जनों पतोहुओं, सेना, पुरवासियों तथा
 ३२ ॥ ३३ ॥ साथ पुरीमें प्रविष्ट हुए ॥ ३० ॥ उस समय वेदगा- नाच रही थी और भागध तथा बन्दीजन
 ३४ ॥ ३५ ॥ कर रहे थे ॥ ३० ॥ अपनी-अपनी पत्नीके साथ दोनों बालक (कुश और लव) हाथीपर बैठे हुए

एवं रामो गृहं गत्वा बालाभ्यां स्वीयमग्रनि । कारयित्वा रमाच्च स ददौ दानान्यनेकशः ॥३२॥
 तदाऽलकावस्त्रार्थः संपूज्य रघुनन्दनः । मुहुरः सकलार्थोपनिष्ठान् जानपदाभूषान् ॥३३॥
 आर्चाङ्गालादिकान्मन्त्रान् संतुष्टानकरोन्मुदा । ततः स भूरिकीर्तयेन्नान् मंत्रेणः सैन्यमयुधान् ॥३४॥
 संपूज्य प्रेषयामास स्वदेशं रघुनन्दनः । ततः सवान् जानपदान् मुहुरश्च प्लवगमान् ॥३५॥
 त्रिभीषणादिकांश्चाज्ञां गन्तुं स्नाम्यथल ददौ । ततः सर्वे राघवं ते वस्त्राभरणवाहनैः ॥३६॥
 स्नान्यकौशेय्यं संपूज्य तन्वा राम ययुर्मुदा । स्वं स्वं देशं निर्जैः सैन्यैः श्रीरामेण निजान्विताः ॥३७॥
 अथ रामास्तुषाभ्यां च पुषाभ्यां बन्धुभिः स्त्रिया । गुह्यं चकार राज्यं स भ्रमेणाप्रतिभं चिरम् ॥३८॥
 ततः श्रावणमासस्य दर्शमासस्य षोडश । प्राप्ताभ्यन्तरे यानि यानि ममृन्माहृदिनानि हि ॥३९॥
 तेषु सर्वेषु तं राम मागेशं महालकम् । स्वपूर्णे भूरिकीर्तिः स त्रिनाय परमादमान् ॥४०॥
 पूजयामास विधिवदस्त्रालंकारवाहनैः । कियद्दिनानि सस्याप्य ददाताज्ञां पुनः पुनः ॥४१॥
 सवन्मरममृन्माहृदिनानि षोडशभुजा । विष्णुदास मया तेऽग्रे कथ्यते तानि वै शृणु ॥४२॥
 श्रावणस्याथ मासस्य कुरुः श्रेष्ठा प्रकीर्तिता । भद्रशुक्लचतुर्थी तु विजया दशमी तथा पुनः ॥४३॥
 द्वापान्त्याथ चत्वारि दिनान्यतिमं तानि च । मासार्धे पञ्चाशतिना पृष्टी तथा पुनः ॥४४॥
 सक्रान्तिमकराख्या तु तथा च ख्याता । ह्यु । ति चतुर्विंशत्यं चत्वारि पुनर्मुदा ॥४५॥
 अक्षय्याख्या तृतीया च तथा वै ज्येष्ठ्या जमा । पञ्चमासी शुक्ला षडश्व स्मृतानि हि ॥४६॥
 सवन्मरममृन्माहृदिनान्यतिमता । च । एतेषु भूरिकीर्तिः तं रामं नीत्वा प्रपूजयन् ॥४७॥
 एव कुरुष्व च तथा लवस्यपि सविस्तारम् । विद्वद्भी रणिर्नो शिष्य यथा परं श्रुतौ मया ॥४८॥
 यदा श्रीरामचन्द्रस्य वैकुण्ठरोहणं शुभम् । भविष्यति तदाऽयोध्यापुर्यां वै मय्युजले ॥४९॥

सुशोभित हुआ रहे थे और मानेभ नगरकी महिमा, उनपर पल भरमा रहा थी ॥ ३१ ॥ इस तरह वह उन्माहक साथ वे अपने राजभवनमें पहुँच । वहाँ रहते रहते वन्वाव हथो लक्ष्मीका पूजन कराया और छनेक तरहके दान दिये ॥ ३२ ॥ उस समय रामने अपने सम्बन्धियों, समस्त परवासियों, मित्रों, जन्मपरवासियों और राजाओंमें लेकर साधारण ध्येन वाले बाण्डालो टरका नाता प्रकारके वस्त्रों और आभूषणोंमें सज्जकर सबका प्रसन्न किया । इसमें पञ्चाश महाराज भूमिक निके भविष्य तथा सैनाकी पूजा करके उन्म विदा किया । इसके बाद जगन्मोहिनी । सप्तारिच्यो, वातरौ तथा विभीषण आदि मित्रोंका प्रसन्न भेषण करके दिनामे सम्मानित करके अपने अपने नगरका जाभिका आज्ञा दी । ३३-३६ ॥ इस प्रकार रामके आदर सज्जकरा स्वकार करके उन लोगोंने भी धनसे रामका पूजा का और अपने-अपने देशका गेटे ॥ ३७ ॥ इससे वह राम सत्ता पुत्रा एवं पत्न्या आदि साथ रहने हुए बहुत दिनों तक धर्मोत्तम राज्य करने रहा । ३८ ॥ इनन्तर श्रावणको अमावास्यामें लेकर वर्षमें आन्तिष्ठ वैश्वदेव त्योहारो और उन्माहक दिनामे महाराज भोक्तावन अलपूर समेत रामका अपने यहाँ सादर बुलात था । ३९ ॥ ४० ॥ वहाँ पहुँचनेपर वे श्रम्य अलंकारादि समर्पण करके रामकी पूजा करने थे । कुछ दिन राम वहाँ रहकर फिर अपने राजा बने और पुनः आनन्द पर पदुच जाया करते थे ॥ ४१ ॥ हे विष्णुदास । अब मैं तुम्हें वर्षके उन साठ दिनोंको बतलाता हूँ जिनकी रचना रचना का है, उन्हें स्मरण करो ॥ ४२ ॥ श्रावण मासकी अमावस्या, भाद्रपद शुक्लपक्षकी चतुर्थी कुन्वारकी विजया दशमी ॥ ४३ ॥ और द्वापारकी आगे पालवान चार दिन बड़े महत्वके होते हैं ॥ ४४ ॥ मागेश परक शुक्लपक्षकी पंचमी तथा पक्षा, मकरकी मकरात रथसप्तमी और चैत्र शुक्लकी दुताणती प्रतिपदा भी बड़ा पवित्र विद्य होता है ॥ ४५ ॥ अक्षय जुगावा जात्रको पूर्णिमा और श्रावणके शुक्लपक्षकी नागपंचमी व वर्षके आन्तिष्ठ दिन उत्तम है ॥ ४६ ॥ ये ही सवन्मरके बड़े-बड़े उत्साहदिनमें माने गये हैं इन्ही दिना भूमिक नि सपरिवार रामके, जगने वही बुलाकर पूजन करने थे ॥ ४७ ॥ हे शिष्य । जैसा कि मैंने आजक बहुत दिनों पहले कुश तथा लवका विवाह वृत्तान्त सुना था, उसी तरह वर्णन किया ॥ ४८ ॥ इसके

कुशः स्त्रिया चंपिकया जलक्रीडां करिष्यति । तस्य दक्षिणहस्तस्य कंकणं रुक्मनिर्मितम् ॥५०॥
 सरयुजलमध्ये तु पतिष्यति महोज्ज्वलम् । तत्र तोये कुमुदस्य वसगम्य कुमुदती ॥५१॥
 स्वसा दृष्ट्वा कंकणं तदुपृहीत्वा मग्नयास्यति । कुशोऽपि कंकणार्थं हि वाणं सन्धारयिष्यति ॥५२॥
 सन्धुशोपणार्थं हि मंनद्धश्च भविष्यति । ततः सा कुमुदं गत्वा सरयुः प्रार्थयिष्यति ॥५३॥
 सोऽपि दृष्ट्वा कुशं कुदं स्वसामादाय सादरम् । कुशमगम्य तं नत्वा स्वयां तस्मै प्रदास्यति ॥५४॥
 रत्नानि कंकणं दत्त्वा तेन सरयुं कारिष्यति । एवं कुमुदतीभार्याऽग्रे तस्यान्या भविष्यति ॥५५॥
 तस्याः कुशास्तुतनयोऽतिथिर्नाम्ना भविष्यति । चंपिकायां दुहितरः संभविष्यन्ति नो सुताः ॥५६॥
 अतिथेः सूर्यवंशोऽग्रे चिरं विस्तारयेष्यति । एवं कशम्य द्वे पत्न्यौ वर्णिते शिष्य वै भया ॥५७॥
 अथ स्त्रीयगृहे पत्न्याऽकरोत्क्रीडां कुशः तुल्यम् । तथा स्त्रीयगृहे पत्न्याऽकरोत्क्रीडां लवोऽपि च ॥५८॥

इति धीशतकीटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे
 कुशलवयोर्विवाहवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामका गन्धर्वकन्याओं और नामकन्याओंको जलदेवीके पंजेसे छुड़ाना)

श्रीरामदास उवाच

एकदा रघुवीरः स सीतया बालवधुभिः । पौरुषमन्त्रिजनैरिष्टैः पुण्यकस्थो ययौ वनम् ॥ १ ॥
 पश्यमानाकौतुकानि रजयन् जानकीं मुदा । ययौ स द्रढकारण्यमगस्तेराश्रमान्तिकम् ॥ २ ॥
 राममागामाकर्ष्य रुमजन्मा सुनीश्वरः । ग्रन्थुद्वय रघुश्रेष्ठ निनाय स्वाश्रमं प्रति ॥ ३ ॥
 ततः स गुनिवर्यस्तु स्नात्वा रहसि संस्थितः । अक्षपूर्णं महालक्ष्मीं चितयापास चेवमि ॥ ४ ॥

भागें जब कि रामचन्द्रजाका वैष्णवशरण हा जायगा । तब एक समय अयोध्यापुरीके सरयूजलमें कुश अपनी स्त्री चम्पिकाके साथ जलक्रीडा करत रहेंगे । उसी समय कुशके दाहिने हाथका सुवर्णकंकण जलमें गिर पड़गा । उस अन्तर्ग कुमुद नामक सांघी बहिन कुमुदती उस कंकणको लेकर घर चली जायगी और कुश अपने कंकणके लिए धरुपार वाण चढ़ावे ॥ ५०-५२ ॥ इस प्रकार क्रुद्ध कुश सरयूको सुझा देना चाहेंगे । इसपर सरयू कुमुदके पास जाकर प्रार्थना करेगी ॥ ५३ ॥ कुमुद भी सरयूके कथनानुसार कुशको कुपित देसकर उनके पास आयेगा और उन्हें प्रणाम करके अपनी दाहिन कुमुदती कुशको दे देगा और बहुतेसे रत्न तथा वह खोया हुआ कंकण दकर कुशसे मित्रता कर लेगा । इस तरह कुल समय बाद कुशकी कुमुदती नामकी एक दूसरी भार्या भी होगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उससे कुशका सुन्दर पुत्र अतिथि होगा । चम्पिकासे कन्याएँ ही होंगी, पुत्र नहीं होंगे ॥ ५६ ॥ भागें चम्पिकर उसी अतिथिसे सूर्यवंशका विस्तार होगा । हे शिष्य ! इस प्रकार मैंने कुशका दोनों पत्नियोंकी कथा कह सुनायी ॥ ५७ ॥ यह सब हो जानेपर कुश अपनी स्त्री चम्पिका तथा लव सुमतिके साथ आनन्दपूर्ण जीवनयापन करेंगे ॥ ५८ ॥ इति धीशतकीटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाण्डेयसमयेअशास्त्रिचित्रभाषाष्टे कामहिते विवाहकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदास बोलें - एक बार रामचन्द्रजी बालवधुओं, पुरवासियों, मन्त्रियों तथा इष्टजनोंके साथ पुण्यविमानपर बैठकर अनेक प्रकारके मौजूक देखत और सीताको प्रसन्न करत हुए वनमें गये । वहाँ द्रढकारण्यमें अगम्य ऋषिके आश्रमपर जा पहुँच ॥ १ ॥ २ ॥ अब कि अगस्त्यजीको रामके जानेका समाचार मिला तो अगस्त्यजीके लिए स्वयं गये और उन्हें आदरपूर्वक अपने आश्रममें ले आये ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर स्नान करके अगस्त्यजी एकान्तमें बैठ पीर मन ही मन महालक्ष्मी अन्नपूर्णाका आन किया ॥ ४ ॥

तदा तत्तपसा नृष्टाऽऽविर्बभूव सुरेश्वरः । ददौ तस्मै पाथमेन पूरितं पात्रमुत्तमम् ॥ ५ ॥
 अन्नपूर्णां मुनिं ग्राहं स्थाल्यास्तु विविधानि हि । पद्मानि यथेष्टानि निष्कास्य तव मामिनी ॥ ६ ॥
 सर्वेषामग्रतः शीघ्रं कर्मेतु पाथ्वेणम् । इत्युक्त्वा साऽन्नपूर्णा त मुनिमन्तरेणे तदा ॥ ७ ॥
 लोषामुद्रा मुनेः पत्नी स्थाल्या निष्कास्य वेगतः । विद्यान्नानि विचित्राणि सर्वेषां पुरस्कृता ॥ ८ ॥
 समोचितानां विप्राणां चक्र परित्रेणम् । अध तृष्टं रघुश्रेष्ठ कंकणं रत्ननिमित्तम् ॥ ९ ॥
 ददौ मुदा कुम्भजन्मा सीतार्यं दिव्यकूडले । एवं स पूजितस्तेन मुनिना रघुनन्दनः ॥ १० ॥
 सहितोऽस्तिना स्थित्वा पुष्पके पूर्ववत्पुनः । पश्यन्तौ दण्डकारण्ये कौतुकानि ममन्तः ॥ ११ ॥
 विचचार रघुश्रेष्ठो दर्शयामास मैथिलीम् । नन्वावृक्षान्यर्वनाथ नदीः पश्चिकुलान्मृगान् ॥ १२ ॥
 पद्माप्सरसो नाम ददर्शामि भ्रमन् सरः । तत्र ते राघवो रात्री निवासमकरोन्मुदा ॥ १३ ॥
 एतस्मिन्नंतरे रात्री नृत्यमप्सरसां शुभम् । शुश्राव मधुरं गीतं सीतया मंचके प्रभुः ॥ १४ ॥
 तेषां सर्वे शुश्रुवन्तन्मन्यं गीतं च सुस्वरम् । अद्भुताऽप्सरसस्तत्र तदा स रघुनन्दनः ॥ १५ ॥
 पश्यन् च कुम्भजन्मानं गीतं नृत्यं कुतस्त्विदम् । श्रूयते मुनिना दूरे वदन् नवं सविस्तरम् ॥ १६ ॥
 इति राघवचः श्रुत्वा तमर्मास्त्वचोऽब्रवीन् । राम राजावप्यथ किं न्वं वेन्मि न वै त्विदम् ॥ १७ ॥
 सर्वानेतान्मन्मूलेन वृत्तं आचयितुं मुदा । चेन्मां पृच्छसि मर्हस्य तवाग्रं प्रवदाम्यहम् ॥ १८ ॥
 पुनः गन्धर्वगजस्य पुत्र्यः पच मनाग्भाः । अजम्भा मुदा क्रीडां चक्रन्त सरोवरे ॥ १९ ॥
 एतस्मिन्नंतरे राम नागकन्याः सरोवरान् । क्रीडार्थं निर्ययुः समं बहिरागमयोरनाः ॥ २० ॥
 तासां परस्परं मैत्रीं बभूव रघुनन्दनः । तत्र ता नागकन्याश्च तथा गन्धर्वकन्यकाः ॥ २१ ॥
 यातायानं मुदा चक्रुः क्रीडार्थं सरमन्दरे । सपत्न्या मुनिना तत्र मुहूर्तावर्क्यनिवारिनाः ॥ २२ ॥

उसी समय उनका तपस्यासे प्रसन्न होकर देवताओंकी भी आकृष्टता से देवों अन्नपूर्णा प्रकट हो गयीं । उन्होंने अगस्त्यजीकी स्तोरस भरकर एक पात्र दिया ॥ ५ ॥ और कहा कि इस बटलाईमेंसे विविध प्रकारके पकवान निकाल-
 निकालकर मुष्टादी स्त्री सबके आगे परगम दे । इतना कहकर अन्नपूर्णा अन्तर्धान हो गयी ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर जब कि अगस्त्यजी ने साथियों तथा विप्रों समेत रामकी पूजा कर ली, तब अगस्त्यजीकी पत्नी लोषामुद्रा उसी पात्रमेंसे पकवान निकाल निकालकर सबके आगे परगम दिया । भोजनोपरान्त प्रसन्न मनवाले रामकी अगस्त्यने एक जोड़ा कङ्कण और सीताको कुण्डल दिये ॥ ८-१० ॥ इस प्रकार अगस्त्यसे सम्बृत्त होकर राम अगस्त्यकी अपन साथ स्थित सबके साथ पुष्पके विमलपर जा बैठे और दण्डकारण्यमें चारों ओर विविध प्रकारके कौतुक देखते हुए इधर-उधर घूमने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ रात्रमें नाना प्रकारके वृक्ष, पर्वत, नदी, पक्षी आदि सजाका दिखाने हुए वे पंचासद नामक गरावरपर पहुँच और वहाँपर रामने रात्रिभर निवास किया ॥ १३ ॥ रात्रिक समय जब कि राम सीताके साथ अपनी अग्रापर साथ थे, तब उन्हें माठे-भीडे गीत और नृत्यकी ध्वनि सुग पड़ी ॥ १४ ॥ उनके मित्राद्य रामके साथवालों ने भा वह सुस्वर ध्वनि सुनी, किन्तु अप्सरायें नहीं दीख पड़ी । तब रामने अगस्त्य पूजा हे मुनिश्रेष्ठ । आप मुझे यह बतलाइए कि यह नृत्य गानकी ध्वनि कहाँसे आती मुन्याई द रत्न है, स विस्तारपूर्वक हम बतलाइए ॥ १५ ॥ १६ ॥ रामकी बात सुनकर महर्षि अगस्त्य ने कहा - हे राजाकुलचक्र राम ! क्या अतः यह वृत्तान्त नहीं जानते ? ॥ १७ ॥ वस्तुतः, यदि हमीसे कहलाना चाहते है तो मैं आपको सुना रहा हूँ ॥ १८ ॥ आजसे बहुत दिनों पहल कन्यवराजकी पाँच सुन्दरा कन्यायें जिनका कि राजोद्यम भी नहीं हुआ था, आनन्दपूर्वक इस सरोवरमें जलक्रीडा किया करती थी ॥ १९ ॥ हे राम ! उसी समय एक बार उस सरोवरसे सात नाग-
 कन्यायें भी जलक्रीडा करनेकी निकली । उनकी भी वन्याकन्या थी और यौवनका रंग अभी नहीं बढ़ा था ॥ २० ॥ तदनन्तर उन गन्धर्वकन्याओं और नागकन्याओंमें परस्पर प्रेमसा हो गयी और वे नित्य उस सरो-
 वरमें जलक्रीडा करनेकी आनन्द-जाने लगी । उसी सरोवरपर तपस्या करते हुए एक तपस्वीने उनको कई बार

माऽऽगच्छध्वं मन्त्रिकटे चेति ता दालभावनः । अना यन्मनसि क्व समाजम्भुनरन्तरम् ॥२३॥
 इन्द्रेण बोधिताश्चापि तत्तपोध्वमनं प्रति । मुनिश्चापि नपोनाश दृष्ट्वा क्षापादिना तदा ॥२४॥
 विना क्षापेन तासां स दण्डं मम्मन्त्रयद्वृष्टः । जलदेव्यस्तथा जलदेवीः प्रचीदयत् ॥२५॥
 तद्वाक्याञ्जलदेव्यस्ता मण्याहे स्वीयमदिभ्यः । तिन्युष्टं वा बलादेव यत्र केपा गतिर्न हि ॥२६॥
 गन्धर्वाः पन्नगा यत्र गतुं शक्ता न चामवन् । तपोऽन्ते न मुनिः इत्यं गतस्ता ह्यत्र सस्थिताः ॥२७॥
 ताः सर्वा जलदेवीनां गेहं मन्त्रयुना प्रभो । तदं वृत्तमाधुनिकं विद्वि राम स्मयप्रदम् ॥२८॥
 ता ह्यत्र जलदेवीनां जलागममग्रि । कुशान्तं नृन्यर्गानि तामां सथूयते ध्वनिः ॥२९॥
 एवं राम यथा दृष्टं त्वया सर्वं मया तदा वृत्तं तपोग्रे कथितं कुरु येन हितं भवेत् ॥३०॥
 भर्वासां नागकन्यानां गन्धर्वाणां तथा विभो । मुनिना बोधितश्चेन्ध तदा सीतापतिर्मुदा ॥३१॥
 लक्ष्मण प्राह मे चावमानयाश्च क्षणादिह । मुक्त्वा बाणमोचयामि दग्ध्वा देवी जलस्थिताः ॥३२॥
 कन्यकाः पन्नगानां च तथा गन्धर्वकन्यकाः । इति तदा तस्य स भुन्वा सीमित्रिरादरात् ॥३३॥
 शीघ्रं क्षापं सतूर्णार ददौ श्रगव्यं प्रति । ततः कोदण्डपृथ्वा दण्डकृत्य रघूद्वहः ॥३४॥
 शरं जग्राह तूर्णं निजनामांति शितम् । तदा चचाल धरणा चुलुभुः सम सागराः ॥३५॥
 वशी घोस्तरौ वायु रजोव्यासा दिशोऽभवन् । ताम निपेतुर्धरणी द्रुतुर्बनचारिणः ॥३६॥
 पवताः कपता आसन् वरपुलाहिनं घनाः । तज्ज्ञान्वा जलदेव्यस्ताः भुत्वा चापध्वनिं महत् ॥३७॥
 भयभीताः समाजम्भुस्ताभिः सर्वाभिरादगन् । प्रणमुन्तामनदा राम बालिकास्तास्तु द्वादश ॥३८॥
 राधवायापयामासुदिव्यभूषणभूषिताः । राधवं जलदेव्यस्ताः प्राधयामागुरादरात् ॥३९॥
 राम राम महाबाहोऽस्माभिवदपराधितम् । तन्क्षमस्व रघुश्रेष्ठ मा मुंच स्वपतत्रिणम् ॥४०॥

राककर कहा—॥ २१ ॥ २२ ॥ उहाँ मेरा एक पुत्र ले ग मत्त आया करो । किन्तु दालभावसे मुग्ध वे कन्याएँ
 ऋषिको जान न माला दूँ नि र आन जान रही । इ द्वी भा ऋषिका तपोभंग करनेक लिए उन कन्याओको
 उभाड़ दिया था । अब आपने जल देव्यो मन्त्र विचार किया कि आपादि दकर इन्हें दण्ड देनेसे अपनी तपस्या
 क्षीण होगी । इसी लिए मेरा मन निराश था कि जिससे उन कन्याओं को दण्ड विना शापके दण्ड मिल जाय ।
 जलदेवियों उन कन्याओको पतलकर हुतात् जल में डाल गयी । जहाँ नि गन्धर्वा तथा पन्नगोंकी भी गति
 नहीं थी । अपनी तपस्या पूर्ण करके आपि सीताजीवा चल रहे, किन्तु वे कन्याये इस सरोवरमें जलदेवियोंके
 पास अब भी विद्यमान हैं ॥ २३—२४ ॥ हर मन्त्र कह एक आश्चर्यमयी घटना घट गयी थी । वे ही गन्धर्वों और
 पन्नगोंकी कन्याये जलदेवियोंके घरा न च गयीं, जहाँ नि गान्धर्वी भुज ध्वनि सुनायी देती हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥
 हे राम ! आपने जैसे दृष्ट, मैंने भी सुना था । अब आप ऐसा करिए कि जिससे उन कन्याओका कल्याण हो ।
 इस प्रकार इगम्य जै की प्रणामे राधमन्त्रयद्वृष्ट कहो—हे लक्ष्मण ! मेरा धनुष तो ले आलो । मैं क्षण भरमें
 उन गन्धर्वों और नगर्यों के दण्ड करे जल देव्यो को दण्ड दूँगा । इस तरह राककी बात सुनकर लक्ष्मणने
 पुरत आवरधुवंक तूर्णार तथा बाण लाकर रामको दे दिया । इगक अनन्तर रामने धनुष उठाकर टंकौर
 किया ॥ ३०—३४ ॥ तबनंतर जल देव्योममें अदिम क्षण बाण निकाला, जिसपर रामका नाम लिखा हुआ था ।
 इससे पृथ्वी इगम गत लगी और सना समुद्र में प्रलयह्वर सहरे उठन लगी ॥ ३५ ॥ आरोसे वायु चलने लगी,
 इसी दिशासे धूलस भर गया । सारे हूँ हूँतर गिरा लगे, वन जीव वन छोड़कर भागने लगे, संसारका
 पथतन्त्र काँपने लगा और मेघभण्ड रविममला वर्षा करने लगा । उस सरोवरकी जलदेवियाँ धनुषका
 घनधोर टंकौर सुनकर भयभीत हो गयी । वे तुरन्त उन चारही कन्याओका अपने साथ लिये बाहर आयीं
 और प्रणाम करके दिव्य अलंकारोंसे विभूषित उन कन्याओको उन्होंने रामको सौंप दिया ॥ ३६—३९ ॥
 वे सब इस प्रकार स्तुति करने लगी । उन्होंने कहा—हे महाबाहो राम ! हमने जो अपराध किया है, सो आप सम्य

न कश्चित्सूर्यवशेऽभूत्स्त्रीषु शस्त्रप्रहारकः । त्वयाऽपि रक्षिता पूर्वं स्त्रीन्वाङ्मूर्जाद्विहीरते ॥४१॥
 यदाऽनया तु क्षपथः कुतो मैथिलकन्यया । तादृकादिसाक्षमं पु यत्कृत वाणमोचनम् ॥४२॥
 मद्यन्नीषु त्वया पूर्वं तत्सर्वेषां दिताय च । इति तासां वचः श्रुत्वा विहस्य रघुनन्दनः ॥४३॥
 स्थापयामास नृणीरे पूर्ववत् स्वमार्गणम् । ततस्ताभिः पूजितः स तदा दृष्टो रघूचमः ॥४४॥
 जलदेवीर्ददावाज्ञां स्वस्थलं गम्यतामिति । एतस्मिन्नन्तरे तत्र गन्धर्वाश्चाथ पन्नगाः ॥४५॥
 विदित्वा सकल रामकृतं रामांतिकं ययुः । नन्वा रामं समीतं च तथा तं कुम्भसंभवम् ॥४६॥
 जपापनान्यनेकानि समर्थं रघुनन्दनम् । ऊचुस्ते मज्जुल वाक्यं श्रवद्भकरसंपुटाः ॥४७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे

जलदेवीजावदानं वालिकागोचनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(गन्धर्वों तथा नागोंकी वारह कन्याओंका लक्ष्मणादिके पुत्रोंके साथ विवाह होनेका निश्चय)

गन्धर्वपक्षपा ऊचुः

राम कंजानन स्वामिन्मोचिता वालिकास्त्वया । विवाहान्नरजस्कानां पुत्रेभ्यः कर्तुमर्हसि ॥ १ ॥
 जय धन्या वयं सर्वे नः कुलं पावनं कृतम् । त्वया राम महाबाहो तारिताः स्मो वयं प्रभो । २ ॥
 सप्तजन्मसु यत्पुण्यं कृतमस्ति रघूद्वह । अस्माभिस्तेन सम्बन्धस्त्वयाऽद्य भवतु प्रभो ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा सीतया स रघूद्वहः । अङ्गीकुम्य वचस्तेषामगन्धर्वलोकयत् ॥ ४ ॥
 तदा प्राह कुम्भजन्मा राघव वचनं मृनिः । रामान्याग्रेऽङ्गुदस्य स्वया नाम्ना कुमुदती ॥ ५ ॥
 त्वयि प्राप्ते हि वैकुण्ठ कुशपत्नी भविष्यति । चापिकायां न तनयो भविष्यति रघूद्वह ॥ ६ ॥

कर दें । हमपर इन बाणोंकी आप मत छोड़िये । ४०॥ अब तक आगक सूर्यचरमें मिथ्योपर शस्त्रका प्रहार करने-
 वाला कोई भी नहीं हुआ है । आपने भी उस समय गङ्गा के किनारे सीताका लिये जाते हुई पृथ्वीकी इसी
 लिंग रक्षा की थी कि वह स्त्री थी । इसके सिवाय आपने जो ताड़कापर शस्त्र छेड़ा, उसका कारण यह था कि
 वह ब्रह्माचातिनी थी । उसे तो आपने ब्राह्मणोंके कन्याणार्थ मरा था । उनका ऐसा खिलेता बात सुनी तो
 मुन्कुराकर रामने अपने बाणको फिर तरक्कम रत्न लिया । इनके बाद उन जलदेवियोंसे पूजित रामने
 प्रसन्न होकर उनसे कहा कि अब तुम लोग अपने स्वयंकी उज्जो इसके अन्तर उन गन्धर्वों और
 पक्षिगोत्रों (जिनकी कन्यायें जलदेवियोंके कन्येय थीं) जत्र पहुँ समाचार सुना तो रामके पास आये और
 सीता, राम तथा अगस्त्यकी प्रणाम करके उन्होंने रामको विविध प्रकारकी नदें दीं । तदनन्तर हाथ जोड़कर
 इस प्रकार कहने लगे—॥ ४१-४७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
 पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

गन्धर्व तथा पक्षिगण कहने लगे हे कमल सरीसृप नेत्रोंवाले राम ! आपने हमारा पुत्रियोंको उन
 जलकन्याओंके हाथसे जैसे छुड़ाया है, उसी तरह अब इनका विवाह भी अपने पुत्रोंके साथ कर लीजिए
 ॥ १ ॥ आज हम अपनेकी शपथ समझते हैं : आज हमारा कुल पवित्र हो गया । हे प्रभो ! आपने हमारा
 छुड़ा कर दिया ॥ २ ॥ हमने अपने मातृ-जमाते जो पुण्य किया है, उसका प्रतापसे आज हमारा और
 आपका सम्बन्ध हो जाय ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकारकी बातें सुनकर महाराभी संता और रामने
 उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अगस्त्यकी ओर निहारने लगे ॥ ४ ॥ अगस्त्यने कहा—हे राम ! जत्र
 आप वैकुण्ठधामको चले जायेंगे, तब कुमुदती कुशकी पत्नी होगी । हे रघूद्वह ! कुशकी वर्तमान स्त्री चम्पिकाके

कुशात्पुत्रः कुमुद्व्यामतिथिस्तु भविष्यति । राज्यकर्ता वंशकर्ता स एवाग्रे भविष्यति ॥ ७ ॥
 अतस्त्वमधुना राम नागकन्याः कुशं विना । मम स्वममपुत्रेभ्यः प्रयच्छ विधिना द्विजैः ॥ ८ ॥
 पञ्चगन्धर्वकन्याश्च यूपकेतुं कुश लवम् । विना स्वपञ्चपुत्रेभ्यः प्रयच्छ रघुनन्दन ॥ ९ ॥
 राक्षसेन विवाहेन यूपकेतुः शिशुस्ततः । अग्रे पत्नी महानेप कस्मिन्त्यपरां शुभाम् ॥ १० ॥
 एवं रामसुताः सर्वे स्वस्वस्त्रीभ्यां यथामुखम् । क्रीडद्विष्यति पौत्रास्तान् भविष्यति प्रपौत्रकाः ॥ ११ ॥
 प्रपौत्रस्य प्रपौत्रं त्वं दृष्ट्वा सीताममन्वितः । मुगं याम्यमि वैकुण्ठ बन्धुभिर्नगरीस्थितैः ॥ १२ ॥
 एव श्रुत्वा मुनेर्वाक्यमर्गाहृत्य रघूदृढः । नामां नामानि पश्यन् गन्धर्वन्पद्मगानपि ॥ १३ ॥
 तदाऽब्रवीत्स गन्धर्वः स्वपुत्राणां भविष्यतः । नामां नामानि रामाग्रे पञ्चानां समस्तये ॥ १४ ॥
 चट्टिका चद्रवदना चञ्चला चपला चला । एवं नामानि पञ्चानां क्रमेण रघुनन्दनः ॥ १५ ॥
 श्रुत्वाऽवलोकयामास पद्मगान्तेऽपि चाब्रवन् । कञ्जानना कञ्जनेशा कञ्जोष्ठी च कलावती ॥ १६ ॥
 कलिका कमला चैव मालती मम कनिताः । एवं नामानि पञ्चानां क्रमेण रघुनन्दनः ॥ १७ ॥
 श्रुत्वा ताः पुष्पके स्थाप्य तैर्निद्रामहर्गन्निद्रि । अथ प्रभाने श्रीरामः श्रुत्वा स्नात्वा यथाविधि ॥ १८ ॥
 गन्धर्वपन्नगाश्चारी तदा वचनमब्रवीत् । एभिर्जनमेयां माकं विवाहार्थं गमानलम् ॥ १९ ॥
 नैव योऽर्थं समागन्तुं नन्वलोकनिवासिना । तस्माच्छृणुष्व मद्राक्ष्यं सुहृदः सकलाः शुभम् ॥ २० ॥
 यूयं गन्वा निजस्थानं स्त्रीभिश्च सुहृज्जनः । आगतव्यं विवाहार्थमयोध्यां मे यथासुखम् ॥ २१ ॥
 अधुनाऽहं तु गच्छामि पुगीमग्न क्षयेन हि । विरापमा विमानेन पताकाध्वजमालिना ॥ २२ ॥
 तथेति रामवचनान्तं श्रुत्वा स्वस्थकानि हि । र मोऽपि मुनिना नाभिर्वालिकाभिः सुतैः स्त्रिया ॥ २३ ॥
 विहायमा पुष्पकस्यो ययी पश्यन्वचनानि सः । अयोध्यां प्रदरेणैव मुदा प्राप रघूदृढः ॥ २४ ॥

कोई पुत्र नहीं होगा ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥, कुमुद्वतीमें कुशक अतिथि नामका पुत्र उत्पन्न होगा और वही पुत्र राज्यकर्ता एवं वंशका वहानेव ला होगा । इसमें हे राम ! कुशको छोड़कर बाकी सब कुमारोंका विवाह इन कन्याओंक साथ कर दीजिए । इनमेंस पांच गन्धर्वकन्याओंको यूपकेतु तथा कुश-लवके अतिरिक्त पांच पुत्रोंका द दीजिए : ॥ ९ ॥ आगे चन्द्रवदनुवरेणू राक्षसविवाहके क्रमसे एक अच्छी स्त्रीके साथ विवाह करेंगा ॥ १० ॥ हे राम ! ऐसा करनेसे मय प्रद अपन-अपनी स्थियोंके साथ सुखपूर्वक विहार करेंगे । उनके पौत्र प्रपौत्र आदि भी होंगे ॥ ११ ॥ प्रकार आप आगे प्रपौत्रके प्रपौत्रोंका देखकर सीता अपने बन्धुओं और पुत्रबानियोंके साथ वैकुण्ठगामको जा गे । इस प्रकार अगर-पजाकी बात मुनी ता उन्होंने अच्छीकार कर लिया और इन गन्धर्वोंपद्मगाय-पद्मा कन्याओंक नाम पूछने लगे ॥ १२ ॥ १३ ॥ गन्धर्वराज अपने पांच कन्याओंका नाम बतलाने हुए यों व—चन्द्रवदा, चद्रवदना, चञ्चला, चपला और चला ये इनके नाम हैं ॥ १४ ॥ कन्याओंका नाम पूछकर राम उनके आगे देखने लग । फिर पद्मग इस प्रकार अपनी सात कन्याओंके नाम बतलाने लगे—कञ्जानना, कञ्जनेशा, कञ्जोष्ठी, कलावती, कलिका, कमला और मालती ये सात नाम हैं । इस रीतिसे सबका नाम सुनकर रामने उन कन्याओंको पुष्पक विमानपर चढ़ा लिया और सब साधियोंक साथ सोगये । इसके अनन्तर प्रातःकालक समय राम उठ और विविधक स्नान हवन आदि किया ॥ १५—१८ ॥ फिर वे उन गन्धर्वों तथा पद्मगोंको बुलाकर कहने लगे हे गन्धर्व तथा पद्मगगण ! मैं मद्राक्ष्योंकका निवासी मनुष्य हूँ । इस कारण मैं अपने बन्धुओंके साथ न ता पद्मगाय-पद्मा पाताललाको जा सकूँगा और न गन्धर्वोंक यहाँ स्वर्गलोकको ही अपने बन्धुओंका विवाह करने जा सकूँगा । इससे आप नृद्वज मेरी बात सुनें ॥ १९ ॥ २० ॥ आपलोग अपने अपने घर जायें और इनका विवाह करनेके लिए वहाँस स्त्रियों तथा बन्धु-बाधवोंके साथ आनन्दपूर्वक अयाध्यापधारे ॥ २१ ॥ कुछ देर बाद मैं अपने विमान द्वारा आकाशमार्गसे अपना नगरीको चला आऊँगा ॥ २२ ॥ “बहुत अच्छा” कहकर वे गन्धर्व तथा पद्मग अपने-अपने स्थानको चले गये । इसर रामचन्द्रजी श्री

नीराजितः पुरस्त्रीभिर्विशेष निजमन्दिरम् । वसिष्ठमुनेहे ताः सर्वाः प्रेषयामास राघवः ॥२५॥
 अथ रामः सभामध्ये मौञ्जिस्त्रिमिदमन्वर्त्तन् । आलस्यया राजानः सुहृदश्च मुनीश्वराः ॥२६॥
 सतिःपुराः सर्वाश्च स्वस्वजनपदः सह । मृहृत्पणायामोध्येयं परित्राः सप्त सादरम् ॥२७॥
 शोधनीयास्तथा सौधमण्डपे सुधा शुभा । तेषां चित्राणि लेख्यानि ग्रामादेषु समन्ततः ॥२८॥
 वैत्रालयेषु सर्वेषु सुधा देवा मनोरमा । लेखनीयानि चित्राणि शलयः स्थाप्यतां पृथक् ॥२९॥
 वंशनीयाः पताकाश्च रौप्याश्च स्वजा अपि । नभःस्मरणानि वधनीयानि लक्ष्मण ॥३०॥
 वेद्यः कार्योक्तमस्यो वधनीयाश्च पण्डपाः । शृगमणीया इत्येवञ्चित्रविकाश्च महस्वयः ॥३१॥
 गन्धर्वन्यः पद्मगेभ्यो वस्तु मेहानि वै पृथक् । कुरुष्व नूननाभ्यश्चरुचार्थः पूरितानि च ॥३२॥
 अन्येषां यथायोग्यं यद्यज्ञानामि लक्ष्मण । तत्तन्कुर्व्य यथोक्तं मया तव रघुदह ॥३३॥
 तद्रामवचने श्रुत्वा तथेष्ट्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा चकार तन्महं यथा रामेण शिक्षितः ॥३४॥
 अथ गन्धर्वराजस्तु तथा वै सप्त पन्नगाः । मुहूर्तः पद्मगेधाम्ने ययुः शीघ्रं मुदान्विताः ॥३५॥
 सर्वा मानवरूपेण हस्त्यश्वाश्चरस्थराः । गन्धर्वाश्चपि सैन्यस्ते माकेतोपवन ययुः ॥३६॥
 ततस्तानागतान् श्रुत्वा प्रत्युष्टम्य रघुदहः । नानायायानि नदिश्च नृत्येण ररमां पुरीम् ॥३७॥
 नीत्वा संस्थापयामास चिन्तीषेष्ु गृहेषु सः । अथ तैर्कदा रामः सभायां संस्थितः सुखम् ॥३८॥
 ज्योतिर्विदः समाहूय वसिष्ठं तत्पुणेधपः । पृथक् विवादान्कर्तुं स मुदतांननिमगलान् ॥३९॥
 सम्पत्तिविचारयामास वर्षमध्ये सविज्ञारम् । ज्योतिर्विदस्तदा प्रोचुर्मुहूर्तानि विमोक्षदान् ॥४०॥
 पक्षांतरेण वैशाखे द्वौ मुहूर्तौ शुभावहौ । तथा ददुर्मुहूर्तौ द्वौ ज्येष्ठे पक्षांतरेण ते ॥४१॥
 श्रावेव मार्गशीर्षेऽपि त्रीन् माघे फाल्गुनेऽपि च । एते द्वादशमासाश्च चक्रुर्लोकविनिश्चयम् ॥४२॥

उन बालिकाओं अपने पुत्रों तथा पत्नीयों के साथ पुत्रों के साथ और बालिकाओं के साथ वनाको देखते हुए वह सब कुछ दिये और एक प्रमाण अयोध्या आ गये ॥ २३ ॥ २४ ॥ वही पद्मगेधपद पुरवासिनीः मित्रों ने उनकी अरती बनायी और उन पत्नीयों के साथ पुत्रों के साथ और बालिकाओं के साथ वनाको देखते हुए वह सब कुछ दिये और एक प्रमाण अयोध्या आ गये ॥ २५ ॥
 अयोध्या के सब मकान धुसे धुसाय जाई और उषस्य भोजे उषस्य प्रकाश के चित्र बनाये जायें ॥ २६ ॥
 समस्त देवालयों में अच्छी तरह पुष्प दत्त और पुष्प दत्त के पुत्रों के साथ वनाको देखते हुए वह सब कुछ दिये और एक प्रमाण अयोध्या आ गये ॥ २७ ॥
 जायें ॥ २८ ॥ २९ ॥ पताकाएँ बांधी जाईं ध्वजारों के साथ जायें और मंदिरों के चारों ओर तोरण बांधे जायें ॥ ३० ॥ ३१ ॥ मुहूर्तों में वीरों के वनवास जायें ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ पुष्प दत्त के पुत्रों के साथ वनाको देखते हुए वह सब कुछ दिये और एक प्रमाण अयोध्या आ गये ॥ ३४ ॥
 ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर गवर्धन राज और सत्तों के पुत्रों अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों के साथ हर्षपूर्वक अयोध्या को बल दिये ॥ ३५ ॥ उस समय गवर्धन एवं सत्तों के पुत्रों के साथ वनाको देखते हुए वह सब कुछ दिये और एक प्रमाण अयोध्या आ गये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इसके बाद जब रामचन्द्रजीने मुना कि वे लोग अयोध्या आ गये हैं तो विविध प्रकार के वाजों और नाचों के साथ नगरी में से आये और सुबह लम्बे चौड़े ध्वनियों उनकी ठहराया ॥ इसके अनन्तर एक समय राम सब लोगों के साथ लक्ष्मण बैठे तो वसिष्ठ तथा अनेक ज्योतिषियों को बुलाया और मित्रों के लिए अन्न-अन्न पुत्रों का अच्छी तरह विचार करने का कहा ॥ ज्योतिषियों ने रामने आज्ञाकार अविशय मुखवासी मुहूर्त विचारकर कहा कि एक वर्ष बीतने पर वैशाख मासमें दो मुहूर्त हैं ॥ एक वर्ष के अनन्तर ज्येष्ठ मासमें भी दो ही मुहूर्त हैं ॥ ३८-४१ ॥ दो

लवस्याथांगदस्यापि विवाहौ तैर्विनिश्चितौ । ज्योतिर्विद्विर्वमिष्टेन वैशाखे राघवाग्रतः ॥४३॥
 चित्रकेतोः पुष्करस्य विवाहौ तैर्विनिश्चितौ । ज्येष्ठे मासि क्रमेणैवं पक्षे पक्षे पृथक् पृथक् ॥४४॥
 तक्षस्याथ सुबाहोश्च विवाहौ मार्गशीर्षके । पक्षांशरेण रामाग्रे ज्योतिर्विद्विर्विनिश्चितौ ॥४५॥
 यूपकेतोरंगदस्य चित्रकेतोर्विनिश्चिताः । माघमास्ये विवाहाश्च ज्योतिःशास्त्रविशारदः ॥४६॥
 पुष्करस्याथ तक्षस्य सुबाहोः फाल्गुने शुभे । विवाहा निश्चिताः शिष्य रामाग्रे गणकैस्तदा ॥४७॥
 एवं विनिश्चिताः सर्वे विवाहा द्वादश क्रमान् । ज्योतिर्विद्विर्विनिश्चिताश्च श्रुत्वा तानर्चयद्विभुः ॥४८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितातर्गने श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे

द्वादशविवाहविनिश्चयो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(नागों तथा गंधर्वराजकी कन्याओंका विवाह)

श्रीरामदास उवाच

अथ ते गणकाः सर्वे वसिष्ठस्नातृगोधसः । कुमारीणां विभागांश्च चक्रुः श्रीराघवाग्रतः ॥ १ ॥
 कजाननां लवायाथ कंजाक्षीमगदाय च । गणका निश्चयं चक्रुः कजांघ्रीं चित्रकेतवे ॥ २ ॥
 कलावतीं पुष्कराय तथा तक्षाय कालिकाम् सुबाहवे च कमलां मालतीं यूपकेतवे ॥ ३ ॥
 गणकैः सम ता एवं नागकन्या विनिश्चिताः । चंद्रिकामगदायाथ चन्द्रास्यां चित्रकेतवे ॥ ४ ॥
 चञ्चलाकन्यां पुष्कराय तक्षाय चपलां तथा । सुबाहवे तु अचलां प्रोचुस्ते गणकादयः ॥ ५ ॥
 एवं गंधर्वकन्यास्ताः पंच विप्रैर्विनिश्चिताः । एव हि निश्चयं कृत्वा गणकादीन् रघूत्तमः ॥ ६ ॥
 विमृज्य मैथिलीं मत्वा सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् । ततो ययुः कोटिशस्ते पार्थिवाश्च मुनीश्वराः ॥ ७ ॥
 समद्वीपांतरस्थाश्च माधरोधाः सवालकाः । नानावाहनमंस्थाश्च पौरर्जनपदनिर्जैः ॥ ८ ॥

मुहूर्तं मार्गशीर्षमे, तीन मुहूर्तं माघमे और तीन ही मुहूर्तं फाल्गुनमे बतलाया । इस तरह उन बारहो कन्याओंके विवाहका लगन बन गया । तदनंतर वसिष्ठके साथ साथ उन ज्योतिषियोंने वैशाखवाली लगनमें लव और अङ्गदके विवाहका मुहूर्त निश्चित किया । चित्रकेतु और पुष्करका विवाह ज्येष्ठमासकी लगनमें निश्चित हुआ । तक्ष और सुबाहुका विवाह एक पक्ष बाद मार्गशीर्षके दूसरे पक्षमें निश्चित किया ॥ ४२-४५ ॥ यूपकेतु, अङ्गद तथा चित्रकेतुका विवाह माघ मासमें निश्चित हुआ ॥ ४६ ॥ पुष्कर, तक्ष तथा सुबाहुका विवाह रामके समक्ष बैठे हुए ज्योतिषियोंने फाल्गुन मासकी शुभ लगनमें निश्चित किया ॥ ४७ ॥ इस तरह क्रमशः बारहो विवाहोंके निश्चित हो जानेपर रामने ज्योतिषियोंकी विदित पूजा की ॥ ४८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितातर्गने श्रीमदानन्दरामायणे ६० रामनेत्रपाण्डुरविचित्रभाषाटी कर्महिन विवाहकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—उपर्युक्त प्रकारसे निश्चित हो जानेपर रामके सामने ही वसिष्ठ तथा ज्योतिषियोंने उन कन्याओंका विवाह के कर्के रहने के लिए कि कौन सी कन्या किसको दी जाय ॥ १ ॥ कजानना नामकी कन्या लवके लिए, कंजाक्षीमगदाय के लिए कज्जाक्षी चित्रकेतुके लिए, कलावती पुष्करके लिए, कालिका तक्षके लिए, कमला सुबाहुके लिए और मालती यूपकेतुके लिए देना निश्चित हुआ ॥ २ ॥ ३ ॥ इस प्रकार ज्योतिषियोंने उन सब कन्याओंको देनेका निश्चय कर दिया । चंद्रिका अङ्गदके लिए, चंद्रास्या चित्रकेतुके लिए, चञ्चला पुष्करके लिए, चपला तक्षके लिए और अचला सुबाहुके लिए देनेके लिए उन ज्योतिषियोंने निश्चित किया । इस तरह उन पाँचो गंधर्वकन्याओंके बरोंका निश्चय हो जानेपर रामने आदरपूर्वक ज्योतिषियोंको विदा किया और स्वयं सब क पाल जा पहुँच । जा कुछ सभामें निश्चित हुआ था, सो उन्हें कह सुनाया । इसके बाद सातो द्वीपोंमें रहनेवाले करोड़ो मुनीश्वर तथा राजे अपने परिवार और प्रजा समेत नाना प्रकारकी सवारियापर सवार होकर अयोध्या आये ॥ ४-८ ॥ उस समय उन लोगोंसे सारी अयोध्या भर

तैः साऽयोध्यापुगे व्याप्ता विरेजे नितरां तदा । ययौ विभीषणश्चाथ सुग्रीवोऽपि प्लवंगमैः ॥ ९ ॥
 ययौ स भूरिकीर्तिश्च पुत्राभ्यां क्षीप्रमादरात् । ययौ स जनकश्चापि पुधाजिन्म ययौ तदा ॥ १० ॥
 कोसल्यायाः सुमित्राया च भववाद्याः समारयुः । अथ रामस्तु वैशाखशुक्ले द्विजवरैः सह ॥ ११ ॥
 पुगेधमा सुहृद्भिश्च स्नानमभ्यगपूर्वकम् । कुन्वा लवाय मागल्यम्नानार्थं स्त्रीः प्रचोदयन् ॥ १२ ॥
 तनो मुहूर्तमभये वधुच्छिष्टां निष्ठां लवम् । सम्पत् लिप्थ मुर्वेकाटौ मीनाद्या भान्तस्तदा ॥ १३ ॥
 स्वय मस्तुर्मुदा सर्वाभ्युर्नार्दैः मन्त्रालकाः । अथ रामो देवकस्य प्रतिष्ठां प्राप्नोतैः सह ॥ १४ ॥
 आदौ कुन्वा गणपतेः पूजां सम्यग्यथाविधि । पुण्याहादिवयं चापि कुन्वा पूर्वं सविस्तरम् ॥ १५ ॥
 चकार विधिवत्तुष्टः पूजयामास वै मुनीन् । तनो मुहूर्तमभये गन्वा पद्मगमदिरम् ॥ १६ ॥
 लवस्य कञ्जनयनाविवाहं विनिवर्तयन् । चतुर्थे दिवसे वनपात्रस्थे रत्नदीपकैः ॥ १७ ॥
 नीराजितस्तदा रामो विरेजे मङ्गपे स्त्रिया । तनो निजगृहं गन्वा पूर्वोक्तैस्तुल्यवादिभिः ॥ १८ ॥
 लवेन कारयामास लक्ष्मीपूजनमुत्तमम् । तनो दानान्यनेकानि ददौ स रघुनन्दनः ॥ १९ ॥
 तनस्ते पार्थिवाः सर्वे तथा ते पद्मगा अपि । सुहृदश्चाथ गन्धर्वाः पौरा जानपदादयः ॥ २० ॥
 पूजयामासुः श्रीरामं वस्त्रैराभरणादिभिः । तथा तान् लक्ष्मणादींश्च कुशाद्यांश्चापि बालकान् ॥ २१ ॥
 तनस्ता नृपपत्न्यश्च सुहृत्पत्न्यः पृथक्पृथक् । नागपत्न्यश्च गन्धर्वपत्न्यश्चान्य स्त्रिया स्त्रियः ॥ २२ ॥
 सीताद्याः पूजयामासुर्वस्त्रैराभरणादिभिः । सीताऽपि ताः सुहृत्पत्नीस्तथा पार्थिवकामिनीः ॥ २३ ॥
 पूजयामास विधिवद्वस्त्रैराभरणादिभिः । रामोऽपि सुहृदः पौरान् गन्धर्वान्पन्नगाभृपान् ॥ २४ ॥
 वस्त्रैराभरणैर्यनैः पूजयामास सादरम् । एवं वैशाखमासे तु गिते पक्षे लवस्य च ॥ २५ ॥
 कुन्वा विवाहं रामा स कृष्णपक्षे तु माधवे । चकार पूर्वद्वर्वादिवाहं व्यंगदस्य च ॥ २६ ॥
 चित्रकेतोः पुष्करस्य विवाहो रघुनन्दनः । ज्येष्ठमासे शुक्लकृष्णपक्षयोरकरोन्मुदा ॥ २७ ॥

ययौ और वह बहुत ही सुन्दर दीखने लगी । बहुतसे बानरोंको साथ लिये हुए सुग्रीव, अपन दोनों बेटोंके साथ राजा भूरिकांति, इनके सिवाय विभीषण, जनक, युधाजित्, कोसल्या तथा सुमित्राके बन्धु-बान्धव आदि भी अयोध्यामें आ पहुँचे । इसके बाद वैशाखके शुक्लपक्षमें पुगेहिरो तथा विजोंके साथ रामने अभ्यङ्ग-पूर्वक स्नान किया और लवको मङ्गलस्नान करानेके लिए स्त्रियोंसे कहा । ९-१२ ॥ सीतादिक माताओंने अब मुहूर्त आया, तब बच्चे जूठे हुन्दी-तेल तथा उबटन लेकर लवके जमीरमें लगाया और नूदगे तथा नगाड़े आदि आवाजें साथ बालकोंके संग स्नान भी कराया किया । अथ राम ने पुण्याहादिका स्थापना का ॥ १३ ॥ १४ ॥ स्थापनाके पूर्व यथाविधि गणपतिकी पूजा की और विस्नारस तीन प्रकारका पुण्याहवाचन किया । इसके अनन्तर महमानीमें आये हुए मुनियोंकी पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट किया । शुभ मुहूर्तमें पद्मगोंके यहाँ गये और वहाँ कञ्जनयनाके साथ लवका विधिवत् विवाह सम्पन्न किया । चौथे दिन बसिकी छिटनीमें रखे हुए रत्न-दीपकोंमें रामकी आरती उतारी गयी । उस समय राम सत्ताके साथ बहुत ही सुन्दर दीख रहे थे । इसके अनन्तर पूर्वोक्त उत्सवोंके साथ राम अपने घर गये । वहाँ लवके हाथोंसे अच्छी तरह लक्ष्मीपूजन कराया और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ १८-१९ ॥ इसके बाद उन देश देशान्तरसे आये हुए राजाओं, पद्मगों, सम्बन्धियों, पुरवासियों और जनपदवासियोंने विविध प्रकारके वस्त्रों और आभूषणोंसे राम-लक्ष्मण तथा सब बालकोंकी पूजा की । इसके पश्चात् रानियों, सम्बन्धियोंकी स्त्रियों, नागपत्नियों तथा गन्धर्व आदिकी स्त्रियोंको सोता आदि स्त्रियोंने वस्त्र और आभूषण दे देकर विधिवत् सज्जित किया । रामने भी सम्बन्धियों, पुरवासियों, गन्धर्वों और पद्मगोंकी वस्त्राभूषणसे भली भाँति पूजा की । इस तरह वैशाख मासके शुक्लपक्षमें लवका विवाह सम्पन्न किया और कृष्णपक्षमें पूर्ववत् उत्साह समेत अङ्गदका विवाह किया ॥ २०-२६ ॥ उसी प्रकार ज्येष्ठके शुक्ल और कृष्ण-

ततः सर्वान्नुषादींश्च ददावाज्ञां सुरजिनान् । ततः पुनस्तानाहुय पूर्ववन्मार्गशीर्षके ॥२८॥
 तक्षस्याथ सुवाहोश्च विवाहावकरोत्तदभुः । ततः सर्वान्नुषान् रामो ददावाज्ञां सुहृज्जनान् ॥२९॥
 ततः पुनस्तानाहुय माघमासे सुहृन्नुषान् । पूरकेतोरगदस्य चित्रकेतोर्महोन्मवैः ॥३०॥
 विवाहानकरोद्रामः पार्थिवान्न व्यमजयन् । पुष्करस्याथ तक्षस्य सुवाहोश्च महोन्मवैः ॥३१॥
 चकार फाल्गुने मासि विवाहान् जानकीधरः । एवं कृत्वा त्रिवार्हाश्च रामो द्वादश सादरम् ॥३२॥
 नृपः संपूजितः सर्वान्पूज्याणां नृपतान् ददौ । पूजयित्वा मुनींश्चापि विसमर्ज रघूद्रहः ॥३३॥
 गन्धर्वपन्नगाः सप्त ते साकेनेऽत्र मस्थिताः । राम मुक्त्वा न ते नैजं स्थलं जग्मुर्मुदान्विताः ॥३४॥
 मन्त्रिणः प्रेषयामासुः स्वस्वराज्येषु ते पृथक् । यदा रामः स वैकुण्ठमग्रे गच्छति कालतः ॥३५॥
 तदा सातानि कौन्तेयः गच्छन्ति न मशयः । अथ रामः पन्नगानां गन्धर्वाणां च सद्यसु ॥३६॥
 चापिकेपुन्मवेऽत्र सावरोधः गृहज्जनैः । शीरः स्वायंभोजनादि गत्वा हंसीकरोन्मदा ॥३७॥
 सदा महोन्मदाश्चागम्योभ्यासां गृहे गृहे । आनन्दः सकलानामीमांसीन्कुत्राप्यमगलम् ॥३८॥
 अथ तेषां राघवः पुत्राणां च पृथक् पृथक् । अष्ट कृत्वा तु गेहानि पृथक्कृत्वा च शान्तयः ॥३९॥
 तेषु ते स्थापिताः सर्वे स्वस्वस्त्रीभ्यां पृथक् सुखम् । तथा ते लक्ष्मणाद्याश्च पृथग्गेहेषु बांधवाः ॥४०॥
 पूर्वमेव स्थापिताश्च स्वस्वपत्न्याः सुदान्विताः । सुमित्रायाः स सीमित्राः स्वीयगेहेऽवमन्सुखम् ॥४१॥
 कैकेयी भरतस्याथ गेहे मन्मथुवाय सा । तस्यौ शत्रुघ्नगेहेऽपि माममेकं यथासुखम् ॥४२॥
 एवं मा पुत्रयोगेहेऽकरेऽहम् सुदान्विताः । कामन्त्या ना रामगेहे तस्यौ सीतातिसेविता ॥४३॥
 ते सर्वे बांधवाः पुत्रा निजधानैश्च सेवकाः । स्वदामीमोधनार्थं च सुखमापूः पृथक् पृथक् ॥४४॥
 अथ ते लक्ष्मणाद्याश्च कुशाद्या बालका अपि । स्वस्वगेहेषु वै प्रातः स्नात्वा होमान् शिवार्चनम् ॥४५॥
 पश्चम चित्रवेतु ज्येष्ठ पुष्यका विवाहः सम्पन्नः कियः । २७ ॥ इसके बाद सब राजाओं और मुनियोंको अपने-
 अपने घर जगका आज्ञा दी । फिर माघमास सबका बुन कर तक्ष और सुवाटका विवाह किया । बादमें सबको
 अपने दश ज्ञा का अनुमति दकर माघ म मम सुत्याया और पुष्कतुका विवाह सम्पन्न किया ॥ २८-३० ॥
 माघमें जाये मेरमानोंका विवाह न करके नामन पञ्चानुन मासम पुष्यर, तक्ष तथा सुवाटका विवाह किया ।
 इस तरह बारह विवाहोंका घरक रामन सब महमानोंका स्वय पूजा का और उनका पूजन स्वीकार
 किया । सब सबको अपने-अपनी राजधानियोंका जानका अनुमति दी । इसा तरह उन मुनियोंका भी
 विधिवत् पूजन करके अपने-अपने आश्रानोंका जानका आज्ञा दी ॥ ३१-३३ ॥ किन्तु गन्धर्व और पन्नगमन
 अग द्याम हो रहे । ये अपने-अपने मंत्रियोंका राजधानी भजकर रामक पास रहने लगे । वे तब तक
 अग द्याम रहने, जब तक राम अपने वैकुण्ठकीका नहीं चल जावेंगे । रामके चले जानेपर वे भी
 सातानिक सबको चले जावेंगे । इसके अनिरित् कापिक जसवी और त्योहारोपर राम अपने घरकी
 मित्रियों, मित्रों तथा सम्बन्धियोंक साथ पन्नगों और गन्धर्वराजक यहाँ जाकर भोजन आदि करते थे ॥ ३४-३७ ॥
 उन दिनों अयोध्याम घर घर उमक स्नाय जात थे । उस समय सबत्र आनंद था । कही भी किसी प्रकारका
 अमंगल नहीं दिखलाया पड़ता था ॥ ३८ ॥ इसके पश्चात् रामने उन बारहों पुत्रोंके लिए अलग-अलग घर
 बनवाये और विधिवत् शान्तिपाठ करके उनका अपनी अपनी मित्रियोंके साथ उन घरोंमें असा दिया । उसी
 तरह लक्ष्मण आदि भ्राता गृह व हासे अलग-अलग महलोम अपनी-अपनी मित्रियोंके साथ सुखपूर्वक रह रहे थे ।
 मुमित्राके पुत्र लक्ष्मण अपने महलमें आनंदपूर्वक रहते थे ॥ ३९-४१ ॥ कैकेयी एक महीना भरतके यहाँ
 और एक महीना शत्रुघ्नके यहाँ रहा करती थी । इस तरह अपने दोनों पुत्रोंके साथ रहती हुई वह सुखसे
 समय बिता रही थी । कौगत्या संताका सेवा ग्रहण करती हुई रामके महलमें रहती थी ॥ ४२ ॥ ४३ ॥
 वे सब भ्राता और उनके पुत्र अलग-अलग अपनी सवारों, सेवक, दासी, गोधन आदि अपार सम्पत्तियाँ
 रखकर आनंद ले रहे थे ॥ ४४ ॥ यह सबका नियम था कि लक्ष्मण आदि सब भ्राता और कुश आदि

गोद्विजार्चादि संपाद्य सतस्ते राघवं ययुः । नन्वा रामं जानकीं ते तस्थुर्दिव्यामनोपरि ॥४६॥
 तेषां सर्वाः स्त्रियश्चापि स्नान्वा दुर्गां प्रपज्य च । गन्वा सीतां प्रणेमुस्तास्तस्थुः सीताञ्चयाऽऽपने ॥४७॥
 ततस्ते लक्ष्मणाद्याः कुशाद्याः स्वगुरोर्मुखान् । कथां पौगाणिकीं श्रुन्वा जग्मुः स्वं स्वं गृहं प्रति ॥४८॥
 ततः सर्वे रामगेहे समाहूता मुदान्विताः । उपाहारान् पृथक् चक्रुर्मध्याह्ने भोजनान्यपि ॥४९॥
 एवं तेषां स्त्रियश्चापि समाहूनास्तु सीतया । उपाहारान् भोजनानि चक्रुः सीतागृहे सदा ॥५०॥
 कदा मुदा स्वीयगेहे राघवेणाथ सीतया । उपाहारान् भोजनानि चक्रुस्ते ब्राह्मणादिभिः ॥५१॥
 एवं तैर्बन्धुभिर्भालैः प्राप्तुर्नितरां सुखम् । सीतागमां कदा नापीन्कलङ्कः कापि कस्य हि ॥५२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणं काष्ठीकीयं विवाहकाण्डं

द्वादशविवाहवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(शत्रुघ्नतनय गूपकेतु द्वारा मदनसुन्दरीका हरण)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा दक्षिणे हि शिवकात्यां महापुरि । कबुकंठो नृपः श्रीमान्निजकन्यास्वयवरम् ॥ १ ॥
 कर्तुंकामो नृपान्सर्वानाह्वयामास सादरम् । तदा ते पार्थिवाः सर्वपत्राणि हि पृथक् पृथक् ॥ २ ॥
 पूर्वैरमनुस्मृत्य कुशस्यापि लवस्य च । स्वयंवरे स्वीयमानभगेनोद्धतहृन्स्थितम् ॥ ३ ॥
 प्रेषयामासुर्नृपति न ययुश्च स्वयवरम् । तेषां पत्राणि सर्वाणि कबुकंठो ददर्श सः ॥ ४ ॥
 सर्वेषु लिखितस्त्वेक एवार्थस्त्वं वदाम्यहम् । यदि नापांनि रामस्य बालकास्ते स्वयंवरे ॥ ५ ॥
 वयं सर्वे तर्हि यामो जंबुद्वीपान्तरस्थिताः । तेषामेवमभिप्रायं श्रुत्वा स नृपतिस्तदा ॥ ६ ॥
 न समाहूय श्रीराममाह्वयामास पार्थिवान् । स्वयं चापि स्मरन्वरे तदेवं रामपुत्रयोः ॥ ७ ॥

बालक भवरे स्नान करक हवन, शिवार्चन एवं गो-ब्रह्मणोकी पूजा करत थे, तब रामके पास जाने और वहाँ सीता तथा रामको प्रणाम करके दिव्य आसनपर बैठते थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उसी तरह उनकी स्त्रियाँ भी स्वयरे स्नान और दुर्गापूजनमें निवृत्त होकर सीताके पास जाती, उन्हें प्रणाम करती और आज्ञा पाकर दिव्य आसनापर बैठती थी ॥ ४७ ॥ इसके बाद वे सब लोग गुह वसिष्ठके मुक्तसे पुराणोंकी कथा सुन सुनकर अपने भवनाको जाया करत थे । दोपहरको रामके बुरानपर साथ-साथ जलपात तथा भोजन करत थे । उसी तरह उनकी स्त्रियाँ भी सीताके बुलानपर सीताके यहाँ ही आकर जलपान तथा भोजन करती थी ॥ ४८-५० ॥ कभी-कभी वे लोग राम और बहुतम ब्राह्मणोंको अपन यहाँ बुलाकर भोजन करात थे ॥ ५१ ॥ इस तरह उन बन्धुओं और बालकोंके साथ सीता तथा राम बड़ा सुखसं जीवन व्यतीत कर रहे थे । किसीके साथ कभी किसी तरहका झगड़ा नहीं होता था ॥ ५२ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतजपाण्ड्याविरचित-भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक समय दक्षिणकी शिवकातिपुरीमें बहूँके राजा कम्बुकण्ठने अपनी कन्याका स्वयम्बर करनेके विचारसे सब राजाओंक यहाँ निमन्त्रणपत्र भेजकर बुलवाया । किन्तु कुश-लवके कारण वे महाराज कम्बुकण्ठके यहाँ नहीं आये और एक-एक पत्र लिखकर भेज दिया । कम्बुकण्ठन एक-एक करके सब राजाओंका पत्र देखत ॥ १-४ ॥ उन सब पत्रोंमें एक ही चर्चा थी । वह यह कि यदि रामचन्द्रके लड़के तुम्हारे स्वयवर न आये तो हम सब जम्बुद्वीपके राजे तुम्हारे यहाँ आगम—अन्यथा नहीं । राजा कम्बुकण्ठने उनके अभिप्राय समझकर रामचन्द्रजाके पास निमन्त्रण न भेजकर बाकी सब राजाओंको बुलाया । कम्बुकण्ठको स्वयं भी वह बात याद आ गयी कि रामके पुत्रोंने चम्पिका और सुमतिके स्वयंवरमें

चंपिकासुमतिपाणिग्रहणीयं पृथगतम् । ततस्ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा राघ दिनागतम् ॥ ८ ॥
 समद्रीपातरस्थाय ययुः कान्तिपुरीं प्रति । अथ तां कम्बुकण्ठस्य कन्यां मदनमुन्दरीम् ॥ ९ ॥
 प्रासादसन्धिनां दृष्ट्वा नारदः स्वात्ममाययी । सखीभिः सा मुनिं पूज्य विनयान्पूरतः स्थिता ॥ १० ॥
 पश्यन् नारदं मकन्या विनयावनता शूनैः । कुतः समागतः स्वामिन् गम्यते काधूना वद ॥ ११ ॥
 भवता दर्शनेनाद्य पावित्र्यं परम गता । इति तस्या वचः श्रुत्वा किञ्चित् स्मित्वा मुनिस्तदा ॥ १२ ॥
 तामाह बाले स्वलोकादागतोऽस्म्यधुना त्वहम् । अयोध्यायां राघवस्य पुत्राणां तु पृथक् पृथक् ॥ १३ ॥
 गेहे संभोक्तुकामोऽद्य निर्गतोऽस्मि विहाय सा । एतन्मिन्नतरे कान्तिपुर्याः संन्यानि वै बहिः ॥ १४ ॥
 दृष्ट्वा केषां हि संन्यानि संतीति हृदि चिन्तितम् । ततः पाथमुवाञ्छुन्वा तव चात्र स्वयवरम् ॥ १५ ॥
 तदा विनिश्चितं चित्ते मया रामः स्वयवरे । अत्रैवास्ति ह्यागतश्चतं पश्यामि सत्रालकम् ॥ १६ ॥
 नैवास्ति ह्यागतश्चतं तर्हि यास्याम्यनः परम् । स्वयवरो विना रामं न भविष्यति सान्मजम् ॥ १७ ॥
 पश्याम्यथैव तं राम पृथाऽग्रे गमनं मम । निश्चिन्त्येत्थं समायातस्ततोऽदृष्ट्वा रघूत्तमम् ॥ १८ ॥
 कथं रामो नागतोऽत्र चेति पृष्ट्वा नृपा मया । नृपाभिप्रायमाकर्ण्य तदा विन्नं मनो मम ॥ १९ ॥
 समद्रीपपतिं राम वधुबालकमयुतम् । स्वयवरमनादृप त्वन्पित्रा निश्चितं नृपैः ॥ २० ॥
 अधुनाऽहं प्रगच्छामि साकेतस्थं रघूत्तमम् । मन्दभाग्याऽसि बाले त्वं स्नुषा राघवमस्यतेः ॥ २१ ॥
 यतो जाताऽसि नैवात्र विचित्रा कर्मणा गतिः । इत्युक्त्वा बालिकां पृष्ट्वा नारदो गन्तुमुद्यतः ॥ २२ ॥
 ततः संप्राप्येयामास नारदं बालिकां मुहुः । विन्नचित्ताऽश्रुपर्णाक्षी म्लानास्या स्फुरितावरा ॥ २३ ॥
 रोमांचितननुर्मग्धा गतार्थार्थद्वन्द्वरा । येनाहं मुनिवर्यात्र स्नुषा भीरापवस्य च ॥ २४ ॥
 भविष्यामि तथा कार्यं त्वया त्वां शरणं गता । इत्युक्त्वा मुनिवर्यस्य पादयोः स्थाप्य साशिरः ॥ २५ ॥
 चकार करुणं बाला तदा तां मुनिरब्रवीत् । मा चिन्तां कुरु रभोक समुत्तिष्ठस्व बालिके ॥ २६ ॥

भक्तं वर कर लिया ॥ १-३ ॥ इसके अनन्तर जब सब राजाओं ने यह सुन लिया कि राम नहीं आयेंगे, तब वे कम्बुकण्ठके यहाँ पहुँच । उधर कम्बुकण्ठकी कन्या मदनमुन्दरीकी अटारीपर देखकर नारदजी आकाश-
 मार्गसे उत्तर आये । मदनमुन्दरीने सखियाँ साथ लेकर नारदको पूजा की और उन मुनिके सामने जा बैठी
 , ८-१० ॥ फिर मुनिपूर्वक नारदसे पूछन लगा—स्वामिन् ! आप इस समय कहाँसे आ रहे हैं और
 अब कहाँ जायेंगे, सो बतलए ॥ ११ ॥ आपक दण्डन में आज परम पवित्र हो गया । इस प्रकार उसकी
 शत मुनी तो थोड़ा भुमकाकर नारद कहने लगे—हे बाल ! इस समय मैं स्वर्गलोकसे आ रहा हूँ और
 रामक सब पुत्रोंके वहाँ अलग-अलग भोजन करनके लिए अयात्रा जा रहा हूँ । आत समय मैंने कान्तिपुरी
 नगरीक बाहर सेना देखी । उसे देखकर मुझ बड़ा कीचुहल हुआ । रास्तेमें एक पविकसे पूछनेपर मात हुआ
 कि यहाँ तुम्हारा स्वयम्बर है तो यह साच कि जहाँ तक है, रामचन्द्रजा अपने बालको समेत यहाँ अवश्य
 आये होंगे । चलो, यहाँ ही दण्डन कर ल । यह निश्चय करके मैं यहाँ आया, किन्तु रामचन्द्रजीको नहीं देखा तो
 राजाओंसे पूछा कि राम क्यों नहीं आये ? उन लोगोंने जो कारण बतलाया, उससे मेरा मन बहुत विन्न
 हुआ ॥ १२-१९ ॥ सप्तद्वीपके अधिपति राम तथा उनके लड़कोंका न बुलानेका निश्चय करके ही तुम्हारे पिताने
 और-और राजाओंका बुलाया है ॥ २० ॥ अच्छा, अब मैं अयोध्यामें रामचन्द्रजाके पास जा रहा हूँ । हे
 बाले ! तुम अमागा हो, जो रामचन्द्रजी जैसे राजराजका पतीहूँ नहीं बन रहा हूँ । कर्मकी भी बड़ी विचित्र
 गत होती है । ऐसा कह और कन्यासे पूछकर नारदजा जाने लगे । तब वह कन्या मदनमुन्दरी स्मित मन,
 भ्रू भरी आँखों, म्लानमुख, काँपत हुए अधरो तथा रोमांचित शरीर होकर गद्गद वाणीसे इस प्रकार विनय
 वन्ता हुई कहने लगी—आप कोई ऐसी युक्ति करिए कि जिससे मैं रामकी ही पताहूँ बनूँ । मैं आपकी शरणमें
 हूँ । ऐसा कहकर उसने अपना मस्तक मुनिराजके चरणोंमें रख दिया और रोने लगा । तब नारद मुनिने कहा—

भविष्यमि त्वं रामस्य स्नुषा यन्न करोष्यहम् । इत्युक्त्वा ता मपाश्रास्य समारोहेण मुनिर्ययौ ॥२७॥
 एतस्मिन्नन्तरेऽप्योष्यापुयाः स्वन्दनमस्थितः । यूपकेतुर्न पश्यन्ममार्ताभाययौ ॥२८॥
 किञ्चित्स्नययुतो बालस्तमसायां निमाद्य मः । यावन्सध्यादिकं कर्तुमुपविष्टस्तदा मुनिम् ॥२९॥
 ददर्श नारदं नत्वा पूजयामास मातरम् । ततः परच्छ मुनये यूपकेतुः पुरःस्थितः ॥३०॥
 कुतः समागतं चेति तच्छ्रुत्वा नारदो मुनिः । सर्वं वृत्तं मविस्तारं कथयामास बालकम् ॥३१॥
 तच्छ्रुत्वा सकलं पृष्ठं नत्वा तं नारद मुनिम् । अग्रवीक्षालको वाक्यं मक्रोधः संभ्रममन्वितः ॥३२॥
 मुने नृपाणां सर्वेषां द्वेषवृद्धिश्च राघवे । या जाता माद्य सर्वेषां ज्ञेयाऽनर्थकरी जवान् ॥३३॥
 कथुकठादिभूपानां सारं पश्याम्यहं रणे । रणे न्यक्तपथा मर्शान् जित्वा तामानयाम्यहम् ॥३४॥
 इत्युक्त्वा स ययौ कार्ति पञ्चमेऽहनि सेनया । नारदोऽपि ययौ राम द्राष्टुं प्रीतमनास्तदा ॥३५॥
 रामेण पूजितः प्रमृणा भोजनार्थं निमग्नितः । अथ भोजनकलायां यूपकेतुं रघूत्तमः ॥३६॥
 अदृष्ट्वा लक्ष्मणं प्राह यूपकेतुर्न दृश्यते । बालेषु तं भोजनार्थं लक्ष्मणात्र समाह्वय ॥३७॥
 तदा स मालतीं गत्वा प्रपच्छ लक्ष्मणो जवान् । सा प्राह वनमध्येऽद्य किञ्चित्स्नययुतो गतः ॥३८॥
 वृत्तमेतद्यथावत्स गत्वा राम जगाद ह । अथ रामो भोजनादि सपाद्य मुनिना मुदा ॥३९॥
 ययौ सभायामार्त्तास्तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् । पञ्चपक्षदिनान्पत्रं स्थेयं मद्रचनान्वया ॥४०॥
 तथेति नारदः प्राह सभायां सस्थितः सुखम् । अथ रात्रौ यूपकेतुमदृष्ट्वा रघुनन्दनः ॥४१॥
 उपाहारं कर्तुकामः पुनर्लक्ष्मणमब्रवीत् । आकारय यूपकेतु नायं दृष्टो मया शिशुः ॥४२॥
 तथेति रामवचनात्पुनर्गत्वा तु मालतीम् । प्रपच्छ यूपकेतु म सा प्राह नागतस्त्विति ॥४३॥
 ततः स विह्वलो भूत्वा रामं वृत्तं न्यवेदयन् । रामोऽपि नागत भूत्वा बहुभ्यां विह्वलोऽभवत् ॥४४॥

हे रामास ! हे बालके ! तुम कित्ना प्रसन्न हो चित्ता न करा, उठा ॥ २१-२५ ॥ तुम अवश्य रामकी पताह बनोगे । मैं इसकी लिए उद्यान फरंगा । ऐसा कह और उस इन्म वेशाकर नारदजा आकाशमार्गसे चल दिये ॥ २७ ॥ इसी समय यूपकेतू रथपर बैठकर अयोध्यामें निक्कले और रामके मनोको देखत हुए नमसा नदीके किनार पहुँच ॥ २८ ॥ उस समय योही-सी सेना उनके साथ थी । उसके साथ यूपकेतुने लगभग स्नान किया और सन्ध्यावन्दन करनेकी वंटे हो थे कि आनन्दर्ज की दत्ता । तब उनको प्रणाम करके मादर पूजन किया । इसके बाद नारद मुनिने विस्तारपूर्वक उस कन्या मदनमुदरीका सारा वृत्तान्त कहा । उसे मुनकर ओच और घबराहटसे पूर्ण हाकर यूपकेतुन कहा—॥ २९-३२ ॥ हे मुने ! इस समय जो सब राज रामसे द्वेषवृद्धि रखते हैं, वह उनके लिए अनपकारिणी सिद्ध होगी । ३३ ॥ कम्बुषण्ड आदि राजाओका बल में संग्रामभूमिमें पहुँचकर देखना है । हे मुनिराज ! मैं आपकी कृपासे उन सबको जीतकर मदनमुदरीको लिये आता हूँ ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर यूपकेतु अपना सेनाक साथ पाँचवें दिन कन्तिगुगेमें पहुँच और नारदजी प्रसन्नतापूर्वक रामका दर्शन करनेके लिए अयोध्या चले गये ॥ ३५ ॥ वहाँ पहुँचनेपर रामने प्रेमसे नारदजीका पूजन करके भोजनका निमन्त्रण दिया । जब भोजनका समय हुआ, तब यूपकेतुको न देखकर रामने लक्ष्मणस कहा कि इस समय यूपकेतु नहीं दिखायी देता । हे लक्ष्मण ! और-और बालकोके साथ उसे भी भोजन करनेके लिए बुलाओ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ रामके आज्ञानुसार लक्ष्मण मालतीके पास पहुँच और यूपकेतुको पूछा । उसने कहा कि वे अपने साथ योही-सा सेना लेकर वनकी गये हैं ॥ ३८ ॥ यह वृत्तान्त लक्ष्मणने जाकर रामको सुना दिया । तत्पश्चात् मुनिके साथ राम भोजन आदि करके अपने सभाभवनमें गये और वहीं बैठकर नारद मुनिसे कहन लगे कि आप मेरे कहनेमें पाँच-सात दिन यहाँ ही ठहर जाइये । 'तथान्तु' कहकर नारदजी भी ठहर गये । तदनन्तर भोजनके समय रात्रिमें भी यूपकेतुको न देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा—यूपकेतुको बुलाओ । आज पने दिनभर उस बच्चेकी नहीं देख पाया है ॥ ३९-४२ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर लक्ष्मण फिर मालतीके पास गये और यूपकेतुको पूछा । उसने कहा कि वे अभी तक

ततः सा जानकी श्रुत्वा विह्वला खिन्नमानसा । दृष्ट्वा राघवाग्रे मा मर्वे तूष्णीं कथं स्थिताः ॥४७॥
 इति तान् प्राह वैदेही नदा सर्वेऽतिविह्वलाः । न्यक्-जोषाहागन वेगेन तच्छ्लेधार्थं समुद्यताः ॥४८॥
 तदा तान्विह्वलान्दृष्ट्वा नारदः प्राह राघवम् । कांतिपुत्रं यूपकेतोः प्रयाणादिप्रमादरात् ॥४९॥
 सतमवं राघवः श्रुत्वा किञ्चिन्नुद्यममस्तदा लक्ष्मण प्राह वेगेन शत्रुघ्नोऽद्यैव गच्छतु ॥४८॥
 सेनया चतुरंगिण्या जवान्कांतिं कुशादिभिः । तथेति लक्ष्मणभोक्तृत्वा चापाहारान्विधाय मः ॥४९॥
 सेनया बालकैवगच्छतुघ्नं प्रेषयन्निशि । रामं नन्वाद्य शत्रुघ्नः शीघ्रं स्वयन्दनमस्थितः ॥५०॥
 ययो कांतिमसीपं स पापेऽहन्ति मुदान्वितः । एतस्मिन्नन्तरे कांतिपुर्यां तत्र स्वयंवरे ॥५१॥
 सभायां राजशार्दूलाः मस्थितान्ते मुदान्विताः । अथ मा शिविकामृदुःस्ययो मदनमुन्दरी ॥५२॥
 किञ्चिन्म्लानमुखी दुःस्वप्नस्मरती नारदेरितम् । वृद्धोषमाता तं सर्वान् दर्शयामास पाथिवान् ॥५३॥
 यूपकेतुस्तदा वेगाद्वत्वा तूष्णीं मभांगणम् । मोहनाम्बं निमृज्याथ मोहयामास तं सभाम् ॥५४॥
 मोहितमोहनाम्बेन न्यम्नां नदाहकैर्भुवि । रथेन शिविकां गत्वा धृत्वा मदनमुन्दरीम् ॥५५॥
 निजाभिधानं मश्राव्य तं तुष्टामकरोत्तदा । अथ मा वरयामास वीर मदनमुन्दरी ॥५६॥
 ह्युपोच मान्तां तन्कण्ठे नवरत्नमर्या शुभाम् । ततः स यूपकेतुर्दि रथे मदनमुन्दरीम् ॥५७॥
 निवेश्य कांतिपुर्यां स व हेमत्वा स्थितोऽभवत् । तामाह दायि तं वीरस्त्वदर्शनीं स्व भय त्यज ॥५८॥
 जित्वा सर्वान्नुपानद्य स्वया गच्छाम्यहं पुर्याम् । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा मा प्राह वचनं तदा ॥५९॥
 चहवः सति राजानम्वमेकः स्वल्पसेनया । अमरुथानानि सैन्यानि तेषां पश्य समन्ततः ॥६०॥
 कथं युद्ध भवेदत्र मा कुरुष्वद्य संगम् । शीघ्र मां भय मत्केन ततो रामेण सेनया ॥६१॥

नदी लोट ॥ ४३ ॥ यह मुना तो विह्वल होकर रोधमणन राघव कहा । जब रामने यह मुना तो भ्राताओंके साथ-साथ वे भी विह्वल हो उठे ॥ ४४ ॥ जानकीने मुना से यह भी विह्वल तथा खिन्न होकर दौड़तो हुई रामके पास पहुँचा और कहा कि अब माग शत्रुघ्नका अनुस्थित देखकर भी चलाव बँटे है ? ॥ ४५ ॥ महं भुक्तकर सब लोग घबरा उठे और भोजन रोककर उस वृद्धका तंजारी कर दिये ॥ ४६ ॥ इस प्रकार सबका व्यापृत देखकर नारदजी ने रामसे कांतिपुरीका वृत्तान्त बदलाग और यूपकेतुके प्रस्थानकी भी बात कह मुनायो ॥ ४७ ॥ यह हाज मुना तो रामको आडा मुनाए हुआ और पुनः लक्ष्मणको आज्ञा दी कि मेरा चतुरंगिणा सेना लेकर शत्रुघ्न उसी कांतिपुरी जायें । “बहुत अच्छा” कहकर लक्ष्मणने भोजन आदि कराके रातमें ही सेना और नुज आदि वीर वालोंके साथ शत्रुघ्नको कांतिपुरी भेजा । रामको प्रणाम कराके शत्रुघ्न रथपर सवार हुए और प्रसन्नपूर्वक प्रस्थान कर दिये ॥ ४८-५० ॥ इस तरह अयोध्यासे चलकर ठीक एक दिन शत्रुघ्न कांतिपुरीके पास पहुँच गये । उधर कांतिपुरीमें स्वयंवर हो रहा था ॥ ५१ ॥ सभामण्डपमें बहुतसे राज हर्षपूर्वक बैठ हुए थे । इतनेमें मदनमुन्दरी पालक म बँठो हुई सभामें आयी ॥ ५२ ॥ उस समय वह दुःस्वप्न नारदका बानोका स्मरण कर रही थी । इस कारण उसका मुख दुम्हल्याथा हुआ था । सभामें पहुँचकर बृद्धा वाच ने सब राजाओंको दिखलाया ॥ ५३ ॥ उसी समय वेगके साथ यूपकेतु सभामवनमें पहुँच और मोहनाम्बका प्रयोग करके उन्होंने सारी सभाको भूछिन्न कर दिया ॥ ५४ ॥ मोहनाम्बसे मोहित होकर शिविकावाहकोने भी शिविका जमीनपर गल दी । इतनेमें रथपर बँटे हुए यूपकेतु शिविकाके पास पहुँच और मदनमुन्दरीका हाथ पकड़कर अपना नाम बताया, जिससे वह बहुत प्रसन्न हुई और वीर यूपकेतुके वरकर उसने उनके गनमें वह नवरत्नमयी वरमाया हाक दी । तब प्रसन्न होकर यूपकेतुने मदनमुन्दरीको स्वयं बिठा लिया ॥ ५५-५७ ॥ तब कांतिपुरीमें बाहर निकलकर वे एक स्थानपर रुक गये । वहाँपर उन्होंने मदनमुन्दरीसे कहा कि अब तुम किसी प्रकारका भय न करो ॥ ५८ ॥ मैं सब राजाओंको जीतकर तुम्हारे साथ अयोध्यापुरी चलागा । यूपकेतुकी बात सुनकर उसने कहा - ॥ ५९ ॥ वे राजे बहुतसे हैं और तुम अकेले ही, तुम्हारे साथ सेना भी थोड़ा सी है और देखो न, उनकी असंख्य सेना चारों ओर पड़ी हुई है ॥ ६० ॥

युद्धं कुरु नृपैर्धोरिं मृणु मद्रघनं प्रभो । मा साहसं कुरुष्वामार्थये त्वां मुहुर्मुहुः ॥६२॥
 इति तस्या वचः श्रुत्वा तामाश्वास्य पुनः पुनः । उपमहारधामाम मोहनास्त्रं स लोलया ॥६३॥
 तदा ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा नीनां वधं बलात् । शत्रुघ्नतनयेनेति स्त्रीत्राकर्षः स्थंदने स्थिताः ॥६४॥
 निर्ययुः कोटिशो योद्धुं स्वस्वसेनावृता जघातु । चंपिकायाः सुमन्याश्च पूर्ववरेण दपिताः ॥६५॥
 द्रुमुकुनेमिमार्गेण ददृशुस्तं रथस्थितम् । युक्तं मदनमुन्दर्या विश्रान्तं मालिकां हृदि ॥६६॥
 ततस्तं प्रयुक्तुः सर्वे नानाशस्त्राणि मन्त्रिकाः । यूपकेतुस्तदा वेगाद्गुणरक्तस्य मददनुः ॥६७॥
 बायव्यास्त्रेण तान्सर्वानुद्धय दशदिक्षु सः । प्राक्षिप पार्थिवान् मन्त्र्यैर्नानाशङ्कनमस्थितान् ॥६८॥
 तदा स कंबुकण्ठोऽपि पूर्ववैरमनुस्मरन् । चंपिकायाः सुमन्याश्च स्वयवरममुद्भवम् ॥६९॥
 निमेषान्तिजकन्याया वैरतो हर्षणं बलात् । महाक्रोधान्तिर्ययो म स्वमन्येन परिवेष्टितः ॥७०॥
 कुर्वन् दुन्दुभिघोषांश्च युद्धार्थं यूपकेतुना । यूपकेतुरपि श्रुत्वा दुन्दुभीनां महत्स्वनम् ॥७१॥
 कातिपुर्गुत्तरद्वारपुस्तः मरिचतो रथा । टण्डुकुन्त्य महच्चापं मन्दधे शरमुत्तमम् ॥७२॥
 ये ये वीराः पुरदारान्निर्गताश्च बहिः शनैः । तान् जघान क्षणादेव प्रेतर्द्धां रुरोध सः ॥७३॥
 तं दृष्ट्वा यूपकेतोश्च कंबुकण्ठः पराक्रमम् । यथा स्वयं स्पन्दनेन प्रेतमंधं त्रिदार्प्य च ॥७४॥
 शेषमन्येन संयुक्तो यूपकेतुं क्रुधा जघातु । तदाऽहं यूपकेतुं स मया न्य मङ्गर कुरु ॥७५॥
 किमंतान्मशकान् हन्वा पौरुषं मन्यसे जड । इत्युक्त्वा स प्रभिवर्णैर्यूपकेतुं जघान सः ॥७६॥
 तान्बाणानागतान् दृष्ट्वा यूपकेतुर्निर्जेः शरैः । नांदिष्ठ-वा नवशर्णस्तच्चापं मारुधिनं वज्रम् ॥७७॥
 कवनं मुकुटं छित्त्वा जघान तुग्मानपि । पद्भ्यां तदा कंबुकण्ठो गदामादाय दृष्टुवे ॥७८॥

ऐसी अवस्थामें युद्ध कैसे करोगे ? अ ज तुम संग्राम न करा । युध्वाण अ अरोप्या पट्टंवा रो और वहीसे राम-
 चन्द्रजंकी विशाल सेना लेकर आओ, तब युद्ध करो । हे प्रभो ! ऐन माण्य मारुस करना ठीक नहीं है । मैं
 बार-बार यही विनती करती हूँ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इस प्रकार मदनमन्दरीका वचन सुनकर उन्होंने उसे आश्वा-
 सन दिया और मोहनास्त्रका मंत्रण कर लिया । ६३ ॥ जब उन राजाओं ने विपरीतों के मुखमें मना कि शत्रुघ्न-
 के पुत्र यूपकेतु ने मदनमन्दरीका हर्षण किया है तो अपने-अपने रथापर सवार हो-हाकर बड़ा-बड़ा सेना
 लिये वेगके साथ व लड़नेको निकल पड़े । एक तो मूर्धनि और चम्पिकाक वर का ही वर उन लागीक मनमें
 था, दूसरे अब मदनमन्दरीके हर्षणसे उनका हर्षण और भा डेम लकी ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ फिर कहा था,
 शत्रुक रथके पहियोंका रास्ता देखते हुए वे चले और घोड़ा ही तर जाकर उन्होंने देखा कि यूपकेतु मदन-
 मन्दरीके साथ बैठा है और उसके गलेमें बरमाला पहना हुआ है ॥ ६६ ॥ देखते ही सब राजाओं ने एक साथ
 उस वीर बालकपर कितने ही शरोंका प्रहार कर दिया । यूपकेतु भी उसके साथ अपने धनुषका टङ्कोर
 किया ॥ ६७ ॥ और वायव्य अश्रका प्रयाण करके उन सब रथोंका रथ, बाहन तथा सेना समेत उठाकर
 दूर फेंक दिया ॥ ६८ ॥ महाराज कम्बुकण्ठ भी पूर्ववर्तीका शरण करके विनयकर इस समय वैरवश अपनी
 शस्त्राका हर्षण देखकर अपना सेनाके साथ दूधनमे युद्ध करन लगे द्रुमुमाका घण घणत हुए निकल
 पड़े । यूपकेतुने भी जब द्रुमुमाकी गर्जना सुनी तो वा.नपुराव इससे हारपर पड़ें और अपने धनुषका टङ्कोर
 करके उसपर एक उत्तम शरका संघान किया ॥ ६९-७० ॥ इस युद्धसे जो-जो घोड़ा निकलने, उनको अपने
 बाणोंसे यूपकेतु बराबर मारते जाते थे । इससे थोड़ा ही दूरमें वह द्वार मृतकोंमें भर गया । ७१-७२ ॥ इस तरह
 यूपकेतुका पराक्रम देखकर राजा कम्बुकण्ठ स्वयं अपने रथपर सवार होकर उन शत्रुओंको रोदन हुए बची हुई
 सेनाके साथ यूपकेतुके सामने जा पड़े और क्रोधमें भरकर उन्होंने कहा-अब तू मेरे साथ संग्राम कर ॥ ७३ ॥
 ७४ ॥ अरे जड ! इन मच्छड़ोंका मारकर क्या तू जान पौरुषको पौरुष मानता है ? ऐसा कहकर कम्बुकण्ठने
 तीन बाणोंसे यूपकेतुपर प्रहार किया ॥ ७५ ॥ उन बाणोंको अपनी ओर आन देखकर यूपकेतुने अपने ती बाणोंसे
 कम्बुकण्ठके बाणों, धनुष, शरथी, ध्वजा, कवच और मुकुटको काट डाला और घोड़ेको भी मार दिया । तब

तावत्सहस्रधा बाणैर्यूपकेतुश्चकार ताम् । ततो वदुष्व दृढां मृष्टिं कम्बुकण्ठस्त्वन्वितः ॥७९॥
 हृदये यूपकेतोस्तां जघानाचलमग्निभाम् । तदा स यूपकेतुस्तं श्वशुरं म्यदनोपरि ॥८०॥
 ध्वजे बध्नन् वेगेन स्वह्नां जग्राह सम्भ्रमात् । कम्बुकण्ठशिखरेण कर्तुं तं समुपस्थितम् ॥८१॥
 दृष्ट्वा धृत्वा क्रे तस्य मुखेन सम्भ्रमान्विता । तमाह नन्या माध्वक्षी तदा मदनसुन्दरी ॥८२॥
 विह्वला विगतोन्माहा वेपथी क्षत्रियोचना । मम तानं कम्बुकण्ठमेव हंसि कथं प्रभो ॥८३॥
 मक्षिकापतनं पूर्वं शसि यदभ्यधा कृतम् । सुखारम्भे पूर्वमेव दुःस्वकर्मविलम्बितम् ॥८४॥
 मङ्गाक्यामैव हंतव्यस्तस्मान्वां प्रार्थयाम्यहम् । एवं मदनसुन्दर्या वचः श्रुत्वा विहस्य सा ॥८५॥
 करादिमुज्य तं स्वह्नां स्वयूनं चोदयन्मुदा । सेनया स ययौ यावत्पथाऽयोध्यां पुरीं प्रति ॥८६॥
 तावद्दुर्दुभिनिर्घोषानग्रे शुश्राव सेनया । पुनश्चापं दृढीकृत्य यूपकेतुस्तदा पयि ॥८७॥
 कस्याग्रं वाहिनी चेति चिंतयामास चेतमि । ततः शरं मुमोर्चकं निजनाभाकितं बलात् ॥८८॥
 योजनान्तरसेनायां शरः शत्रुघ्नमग्निधौ । पपान तत्पदाग्रे तं दृष्ट्वा स चकितस्तदा ॥८९॥
 शरपुच्छे यूपकेतोर्नाम दृष्ट्वाऽथ शत्रुहा । निश्चितवान्यूपकेतुमार्गोऽग्रे वर्तने ध्रुवम् ॥९०॥
 तनवापे स शत्रुघ्नः स्वनाम कितमुत्तमम् । शरं संधाय विमुखं यूपकेतुं मुमोच ह ॥९१॥
 स शरो यूपकेतोश्च मस्तकादूर्ध्वतस्तदा । अपतन्पृष्ठभागे स तं ददशं पितुः शरम् ॥९२॥
 तदा दृष्टो यूपकेतुः कुवन्दुर्दुभिनि स्वनान् । गन्वा वेगेन शत्रुघ्नं दृष्ट्वाऽन्तुन्य रथादघः ॥९३॥
 ननाम पितरं पत्न्या कम्बुकण्ठं प्रदर्शयत् । तदा तं मुहुरा ज्ञान्ता मोचयामास शत्रुहा ॥९४॥
 कम्बुकण्ठमुखान्छुन्या सर्वं वृत्तं सविस्तरम् । शत्रुघ्नः प्राधिनस्तेन सुहृदा तन्पुरीं ययौ ॥९५॥

कम्बुकण्ठ पैदल ही गदा लेकर दौड़ पड़ा ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ यूपकेतुन अपने बाणोंसे उनकी गदाके भी हजार टुकड़ कर दिया । उसके बाद वह कम्बुकण्ठके पैरोंपर कटार घुंसा मारा । तब यूपकेतुने अपने समुच्च कम्बुकण्ठको रथकी ध्वजामे बांध लिया और फिर पाटनके लिए वेगके साथ तलवार उठायी ॥ ७९-८१ ॥ इस तरह मिर काटनका उद्योग एवं हाथमें खड़ा लिये यूपकेतुने देवकर मदनसुन्दरीने प्रणाम किया और आँखोंमें आँसू भरकर कहा—॥ ८२ ॥ हे प्रभो ! मेरे पिता कम्बुकण्ठको आप क्यों मारना चाहते हैं ? पहले ही याममें सबखो मिर पड़नके समान आपने मुखके स्थानमें इस दुर्लभायी कर्मको क्यों अपनाया है ? ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ आप मेरी बात ध्यानकर इन्हें मत मारिए । मैं आपसे यही प्रार्थना करती हूँ । यह कहती हुई मदनसुन्दरी विकल हो गयी । उसका उत्साह मट्ट हो गया था, वह काँप रही थी और तेंबोसे आँसूकी धाराएँ बहाती जा रही थी । इस प्रकार मदनसुन्दरीकी बात सुनकर यूपकेतु मुन्कराये और तलवार फेंककर अपने सारथीकी रथ चलातेका संकेत किया । वे अपनी सेनाके साथ अयोध्यापुरीको ओर चले ही थे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ इतनेमें आगेसे दुर्दुभीका घोष सुनायी पड़ा । अब अपना चपुप सम्हालकर सोचने लगे कि आगेसे यह किसकी सेना आ रही है । यह सोचकर उन्होंने अपने नाममें अंकित एक बाण वेगपूर्वक छोड़ा ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ वह बाण उड़ता हुआ एक योजन तक गया और जहाँ सेना पड़ी हुई थी, वहाँ पहुँचकर शत्रुघ्नके घरणोंके आगे गिरा । उस बाणको देखकर शत्रुघ्न चकित हो गये ॥ ८९ ॥ फिर बाणकी पृष्ठमें यूपकेतुका नाम देखकर शत्रुघ्नने निश्चय किया कि यूपकेतु आगे रान्तमें हैं ॥ ९० ॥ तदनन्तर शत्रुघ्नने भी अपने नामसे अंकित एक बाण उठाकर यूपकेतुकी ओर छड़ा ॥ ९१ ॥ वह बाण यूपकेतुके ऊपरसे होता हुआ पीछे जा गिरा । यूपकेतुने अपने पिताका बाण देखा ॥ ९२ ॥ तब प्रमत्त होकर दुर्दुभी जैसा गर्जन करते हुए वेगके साथ शत्रुघ्नके पास पहुँचे । वहाँ पिताको देखते ही वे रथसे बूढ़ पड़े और अपनी स्त्री मदनसुन्दरीके साथ जाकर शत्रुघ्नकी प्रणाम किया और ध्वजामे बंधे हुए कम्बुकण्ठको दिखाया । शत्रुघ्नने उन्हें अपना सम्बन्धी समझकर छुड़ा दिया ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ फिर शत्रुघ्नने कम्बुकण्ठके मुखसे ही विस्तारसे साथ समस्त वृत्तान्त सुना । इसके बाद कम्बुकण्ठके

कांतिपुर्या बहिः स्थित्वा कंबुकंठमनेन सः । आकाशगार्थं लग्नाथ रामं दत्तान्प्रचोदयत् ॥९६॥
 तदा ते कंबुकंठस्य शत्रुघ्नस्यापि वेगतः । आकाशगार्थं श्रीगमं यमुर्दूता मुदान्विताः ॥९७॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितोत्तर्गते श्रीमदानन्दरायायणे विवाहकाण्डे मदनसुन्दरीहरणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(रामका वंशविवस्तर)

श्रीरामदास उवाच

गन्वाऽयोध्यापुरीं दत्ता राम इत्थं न्यवेदयन् । गभीरपि श्रुत्वा तद्भूतं मीठार्थं संन्यवेदयत् ॥ १ ॥
 ततो मुहूर्ते श्रीरामः सावरोभानुजैः सह । पौरैर्ज्ञानपदैः सर्वैः सुहृद्भिः सेनया सह ॥ २ ॥
 नारदेन ययौ कांतिमाघां मुक्तिपुरीं प्रति । ततः श्रुत्वा कंबुकंठः शीघ्रं राघवमागतम् ॥ ३ ॥
 स प्रत्युद्गम्य विनयाश्रित्वा सपूजयन्मुदा । यूपकेतु ततः पूज्य चारणस्थं पुरीं शनैः ॥ ४ ॥
 वास्कीनृत्पगीतैश्च तूर्पकोपैर्निनाय सः । ततः कांतिपुरीं गच्छाः स्त्रियः प्रामादसंस्थिताः ॥ ५ ॥
 दृष्ट्वा रामं यूपकेतुं वरपुंः पुष्पवृष्टिभिः । ततो रामः शनैर्वस्तुं कल्पितं गृहमुत्तमम् ॥ ६ ॥
 गन्वा दृष्ट्वा मुहूर्ते तु पूर्वोक्तकौतुकैः सुखम् । यूपकेतोर्विवाहं स चकार यामोत्सवैः ॥ ७ ॥
 ततो विवाहं निर्वृत्य कंबुकंठेन पूजिताः । हस्त्यश्वरथपादातदामदामीजनादिभिः ॥ ८ ॥
 ययौ मदनसुन्दर्या रामोऽयोध्यापुरीं निजम् । ततो विवेश नागरीं नेदुर्वाद्यानि वै तदा ॥ ९ ॥
 सनृतुयार्त्ताप्यश्च तदुत्सुर्मागधादयः । प्रामादस्थाः स्त्रियो रामं वरपुंः पुष्पवृष्टिभिः ॥ १० ॥
 मार्गे नीराजितः स्त्रीभिविवेश निजमन्दिरम् । कारयित्वा रमापूजां ददौ दानान्यनेकधा ॥ ११ ॥
 मुहुराः पूजयामास राघवो वसनादिभिः । ततो विमर्त्तयामास सर्वान्स्वस्वस्थलं प्रति ॥ १२ ॥

घायना करनेपर उनके साथ ही कांतिपुरी गये ॥ ९५ ॥ वहाँ कम्बुकण्ठकी सलाहसे शत्रुघ्न नगरके बाहर ही ठहरे और रामको बुलानेके लिए दूतोंको भेजा ॥ ९६ ॥ उसी समय शत्रुघ्न तथा कम्बुकण्ठके दूत श्रीरामकी बुलानेके लिए प्रसन्नतापूर्वक चले पड़े ॥ ९७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितोत्तर्गते श्रीमदानन्दरायायणे पंच रामतेजपाण्डेयविरचित'श्रयोत्तमा'भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—वे दूत अयोध्यापुरीमें पहुँचे और रामका कांतिपुरीका सब हाल कह सुनाया । सो सुनकर रामने सोचासे कहा ॥ १ ॥ इसके पश्चात् अच्छे मुहूर्तमें राम अपने अतःपुरकी नारियों, पुरवासियों, जनपदवासियों, समस्त सम्बन्धियों, नारद तथा सेनाके साथ आदिमुक्तिपुरी अर्थात् कांतिपुरीको चले पड़े । जब कम्बुकण्ठने सुना कि रामचन्द्र पुरीके निकट आ पहुँचे हैं, तब आदरपूर्वक स्वागत करने गये । वहाँ पहुँचकर सविनय प्रणाम किया । इसके अनंतर राम तथा यूपकेतुका पूजन करके हाथीपर बिठाकर धीरे-धीरे पुरीको चले ॥ २-४ ॥ रास्तमें वज्राये नाचता-गाता धी और नुहही आदि विविध प्रकारके बाजे बज रहे थे । जघर जब नगरकी स्त्रियोंने आत दत्ता तो राम और यूपकेतुपर पुष्पवृष्टि करने लगीं । तत्पश्चात् राम जनमासेम पहुँचे ॥ ५ ॥ ६ ॥ वहाँ अच्छा मुहूर्त देखकर पूर्वोक्त कौतुकोंके साथ बड़े उत्साहसे यूपकेतुका विवाह किया ॥ ७ ॥ विवाहकी सब रीतियाँ पूरी हो जानेपर कम्बुकण्ठसे पूजित होकर चित्तने ही हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सेना, डास-दासा आदिके साथ मदनसुन्दराको लेकर अपनी अयोध्यापुरीको चले दिये । अयोध्याके पास पहुँचकर वे अपनी नगरीमें घुसे तो विविध प्रकारके बाजे बजने लगे ॥ ८ ॥ ९ ॥ वेश्यायें नाचने लगीं और मागध-चन्दीजन स्तुति करने लगे । नगरवासीनी महिलाएँ अंतरिक्षोपर चढ़-चढ़कर रामपर फूल बरसाने लगीं और कुल स्त्रियाँ मार्गमें आरती उतारने लगीं । इस उत्साहसे राम अपने महल गये । वहाँ उन्होंने लक्ष्मीकी पूजा की और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ १० ॥ ११ ॥ इसके अनंतर तिमंत्रणमें आये हुए

अथ सप्त कुमाराश्च ललाटाः श्वस्रवेष्मनि शत्रुः क्रोडां पृथक् स्त्रीभ्यां कुशश्चपिकयाऽकरोत् ॥१३॥
 चंपिकायां दूहितः कुशाज्जनाः शुभा नवः । कुशस्याग्रे कृमुद्वन्था भविष्यन्त्यष्ट सूनवः ॥१४॥
 भविष्यति तथा कन्या न्वेका चंपकमादिनी । ज्येष्ठ पुत्रोऽन्वियिरिति नाम्ना राज्यं करिष्यति ॥१५॥
 अमुद्वन्त सुमत्याद्याः श्रियः सर्वाः क्रमेण हि । मृगुद्वन्तनयानष्ट कन्वेकाऽपि पृथक् पृथक् ॥१६॥
 स द्वादशशतं पौत्रान्पौत्रैश्च मनीषमाः । त्रयोविंशद्रामचन्द्री लालयामास सीतया ॥१७॥
 कुमुद्वन्ताभाविपुत्रमहिनाः शिशवः शुभाः । विंशच्छतमामंस्ते तथा पौत्र्यस्तडित्प्रभाः ॥१८॥
 अष्टविंशन्मिताश्वामन मवांशोऽद्वान्ति नृपैः तथा श्रीगम्यौत्रैश्च नृपकन्या सनेकशः ॥१९॥
 काश्चिन्स्वयं धरेणैव काश्चिद्राक्षमयोगतः । काश्चिद्वाधवेयोगेन काश्चिद्वैवाहकर्मणा ॥२०॥
 परिणीताः पौरुषेण तामां संरुधा न विद्यते । तामां हि संवति वक्तुं कः समर्थो भवेद्विह ॥२१॥
 एवं य युपकेतोश्च विवादश्चमः शुगः । मयाद्य नादः श्रीमान्सभायां मृगुनन्दनम् ॥२२॥
 रामनाममहत्तमं सुताक्तेर्नातिभक्तिनः । मृगुनन्दा श्रीराश्व पृष्ठा यथावाकाशवर्मना ॥२३॥

श्रीरामदास उवाच

एव रामेण साकेतपुर्यां भोगाभिरं सुखम् । भुक्तास्तेषां वणनेऽत्र कः समर्थो भवेन्नरः ॥२४॥
 एक एव समर्थोऽभूद्वान्वाकिस्त्वयमां निधिः । शतकोटिमितं येन नानाकीडादिसंयुतम् ॥२५॥
 वर्णितं रामचरितं महामंगलकारकम् । यन्मृन्वापि मया किञ्चित्चदग्रे परिगणितम् ॥२६॥
 एव रामस्त्वयाध्यायां पुत्रैः प्रैत्रैः ममन्वितः । प्राद्वैः पौत्रैर्वैश्च रञ्जयामास जानकीम् ॥२७॥
 एवं विवाहकाण्डं च शिष्य त्वां रत्नचरितम् । तत्रमार्गः पवित्रं च श्रवणान्मगलप्रदम् ॥२८॥
 चिवाहकाण्ड परमं ये शृण्वन्त्यपि मानयाः । ते स्त्रीभिः पुत्रपौत्रैश्च वियोगं नाप्नुवति हि ॥२९॥

सर्वाधिपोका वगैर आदि द दक्क पूजा की ओर सबका अपन घर जानकी अनुमति दी ॥ १३ ॥ इसके बाद लव आदि सातों कुमार अपने-अपना मित्रों के साथ अपने-अपने महल में विहास करने लगे और कुश अपनी स्त्री चम्पिका के साथ खेल करन लग ॥ १४ ॥ इस तरह कुछ दिना बाद कुशन चम्पिकास ती कन्यायें उत्पन्न कीं । कुमुद्वन्तासे आठ पुत्र और चम्पकमादिनी नामक एक पुत्र प्राप्त हुए । कुशका सबसे बड़ा पुत्र अतिथि अयोध्यापुरीका राज करण ॥ १५ ॥ इसके सिवाय सुनात जादि चोदह स्वयंने क्रमशः आठ-आठ पुत्र और एक-एक कन्या उत्पन्न का ॥ १६ ॥ इस तरह राम सीताके साथ बारह सौ पौत्रों तथा तेहस सुन्दर पौत्रियोंका लालन पोषण करने लग ॥ १७ ॥ इनके प्रक ७ कुमुद्वन्ताके आती पुत्रों पौत्रोंको भी मिलाकर बीस सौ पौत्र और चौबीस पौत्रियां हुई ॥ १८ ॥ जिनका रामने अच्छे-अच्छे राजाओं के साथ विवाह कर दिया और रामके पौत्रोंका विवाह उनके राजकुमारों के साथ हुआ ॥ १९ ॥ उनमेंसे कुछ कुमारियां स्वयंवरसे आयीं, कुछ राजसूयवाहसे आयी, कुछ मधवयिकाह के यागत आयी और कुछका शुभ विवाहमन्त्रव्य हुआ ॥ २० ॥ इनके विवाह पौरुष और पुण्यापन इत्यादि राजकुमारों के साथ महल में आयी, जिनकी कोई संख्या ही नहीं है । ऐसी स्थितिमें उनको संतानोंका होन दिन सकता है ॥ २१ ॥ इस प्रकार युपकेतुका अन्तिम शुभ विवाह सम्पन्न हुआ जानेपर नान्दन समाप्त होने कह हुए रामनेहन्ताममें अति भावपूर्णक रामकी स्तुति करके जानेकी आज्ञा माँग ली और आकाशमें गन चल गय ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीरामदासन कहा— इस तरह रामने बहुत समय तक सुख भोगा, उसका वर्णन करतमें कोई भी प्राणा समर्थ नहीं हो सकता ॥ २४ ॥ बस एकमात्र तपस्वी चर्मकिजी उनके वर्णनमें समर्थ हुए थे जिन्होंने सौ करोड़ मलाकोमें नाना प्रकारकी पदार्थों सहित रामचरितका वर्णन किया । यह रामचरित परम महत्कारक है । इसका स्मरण करके ही मैं तुम्हारे समक्ष कुछ कहनेमें समर्थ हुआ हूँ ॥ २५ ॥ २६ ॥ इस प्रकार राम अपनी अयोध्यापुरीमें पुत्र पौत्र, प्रपौत्र एवं प्रपौत्रोंके पुत्रोंके साथ रहते हुए सीताको बाल्यादित करते रहे ॥ २७ ॥ हे शिष्य ! इस तरह मैंने नौ सलगुन पवित्र विवाहकाण्डका वर्णन किया, जो सुननेमें सबका महत्सहायक है ॥ २८ ॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्मं धनार्थी धनमप्नुयन् । कामान्ताप्नोति कामार्थी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥ ३० ॥
 स्त्रीकामुकैर्नरे रेतस्पटनीयं निरुद्धम् । विवाहकाण्डं परमं प्राप्नुयन्वत्र ते वधुः ॥ ३१ ॥
 पतिकामा कुमारी धेन्वन्तान् श्रोतृवृत्तिमन्तितः । विवाहकाण्डमेतद् मनोज्ञं पतिमप्नुयात् ॥ ३२ ॥
 समार्यधेन्यटे त्रेतच्छृणुयाद्वाऽत्र मन्तितः । इह स्त्रिया मुखं भुक्त्वाऽप्यगोभिर्दिवि मोदते ॥ ३३ ॥
 मधया मृणुयादेतया नारी काण्डमुत्तमम् । विवाहान्य कदा भर्ता दियोगं नाप्नुयात्तु सा ॥ ३४ ॥
 समदर्शादनैरस्य कार्यं स्त्रीकामुकैर्मुहुः । अनुष्ठानं वर्षमेकं सूर्योऽपि स्त्रियमाप्नुयात् ॥ ३५ ॥
 प्रथमे दिवसे सगं पठेद्दूरी च परेऽहनि । नवमे दिवसे सर्गान्क्रमेण संपठेत्तव ॥ ३६ ॥
 दशमे दिवसेऽष्टौ क्षयस्त्वेकेन वै क्रमान् । एवं समदर्शादननुष्ठानं स्मृतं चतुर्थः ॥ ३७ ॥
 अथवा सकल काण्डं प्रथमे दिवसे पठेत् । परेऽहनि द्विगारं हि नवमे दिवसे क्रमात् ॥ ३८ ॥
 नववारं पठेच्चैदं दशमे दिवसे ततः । अष्टवारं पठेत्काण्डं क्षयस्त्वेवं क्रमान्स्मृतः ॥ ३९ ॥
 एवं नरो वर्षमेकमनुष्ठानान्निश्चयं लभेत् । रिमन्वक्त्रां चारुनामां दिव्यरूपां मनोरमां ॥ ४० ॥

विवाहकाण्डं परमं पवित्रमनन्ददं मङ्गलकारकं च ।

सौन्दर्यं मनोज्ञं श्रुतिमोक्षदं वै नरैः मदा मन्त्ररणीयमेतन् ॥ ४१ ॥

आनन्दरामायणमध्यमंस्थं विवाहकाण्डं परमं हि वष्टम् ।

मृष्यति भक्त्या श्रुतिं मानवा ये लभन्ति कामान्मिलान्मनोऽनान् ॥ ४२ ॥

इति श्रीशतकाटिरामचरितातमंशे श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डे रामवर्णविस्तारकथनं नाम नवमः सर्गः ॥ १ ॥

विवाहकाण्डे सर्गः आनन्दरामायणे सर्वत्र ज्ञातव्यः । पञ्चशतांशे प्रकीर्तितः पञ्चाशत्यापुर्वरितः ॥ १ ॥

जो मनुष्य विवाहकाण्डका अध्ययन करता है, वे भर्ता स्त्री तथा पुत्रप्राप्ति के कामों भी विपुल नहो हूत ॥ २९ ॥ इसका सुननेस धर्मार्थी धर्मका, धनार्थी धनको, कामा कामका और मोक्षार्थी मोक्षका पा लेता है ॥ ३० ॥ जो लोग स्त्रीकी अच्छा रखन हो, उन्हें चाहिए कि निरुद्ध इस विवाहकाण्डका पाठ बिना करे । इससे उन्हें स्त्री भवश्य प्राप्त होगी ॥ ३१ ॥ अच्छे पतिको पानेकी इच्छा रखनवाली कुमारी यदि भक्तिपूर्वक इस काण्डको सुने तो सुन्दर पति पावगी ॥ ३२ ॥ जो स्त्रियाँ मनुष्य इस काण्डका पठना या सुनना है तो वह इस जन्ममें स्त्रीके साथ सुख भोग कर स्वर्गमें अप्सराओंके साथ विहार करना है । जो सधवा नारी इस काण्डको सुनती है, वह कामा पतिवियोगका दुःख नहीं पाती । जो लोग स्त्री चाहते हैं वे सप्तह दिनमें एक आनुत्तिक जन्मसे एक वर्ष पवनान अनुष्ठान कर । ऐसा करनेसे मूल्य मानव भी स्त्री प्राप्त कर सकता है ॥ ३३-३५ ॥ उसका क्रम इस तरह है - पहले दिन एक सर्ग, दूसरे दिन दो सर्ग, तीसरे दिन तीन सर्ग इस क्रमसे नव दिन तो सर्गोंका पाठ करे । फिर दसवें दिन आठ सर्ग और ग्यारहवें दिन सात सर्ग एस एक एक घटाना हुआ सप्तह दिनमें पूरा करे । विद्वानोंन यही अनुष्ठानकी विधि बतलाया है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अथवा वन पड़े ना पड़े रोज विवाहकाण्डका एक बार पाठ कर जाय, दूसरे रोज दो बार, तीसरे रोज तीन बार, इस रीतिमें बराना हुआ दसवें दिन नौ बार इस काण्डका पाठ कर और ग्यारहवें रोज आठ बार, ग्यारहवें दिन सात बार इस विधानसे घटाता हुआ सप्तहवें दिन केवल एक बार पाठ करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इस तरह एक वर्ष तक अनुष्ठान करनेमें वह पुष्कराते मुखड़े, अच्छी मसिका और दिव्य रूपवाली मनोहर स्त्री पाता है । ४० ॥ लोगोंका चाहिए कि इस परम पवित्र, श्रोत्रायक, श्रुतिसुखदायी तथा आनन्द देनेवाले विवाहकाण्डका निश्चय पाठ कर ॥ ४१ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत इस छठे विवाहकाण्डको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सुनते हैं, वे अपना सब कामनाओंका प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४२ ॥ इति श्रीशतकाटिरामचरितातमंशे श्रीमदानन्दरामायणे वाचस्पतीये ५० रामनज्जयदेवविरचिते ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ।

इस विवाहकाण्डमें कुल नौ सर्ग हैं और उनमें पाँच सौ पद्याँ श्लोक कहे गये हैं ॥ १ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्ड समाप्तम् ।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीबाल्मीकिमहाभुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गत—

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया आपाटीकयाऽऽटीकितम्

राज्यकाण्डम् (पूर्वार्द्धम्)

प्रथमः सर्गः

(रामसहस्रनाम)

विष्णुराम उवाच

रामदासं गुरौ प्रोक्तं स्वयां पूर्वं ममांतिके । विशादकाण्डं तत्रममर्षेऽत्र पातकापहे ॥ १ ॥

रामनामसहस्रं नाम्नेन महात्मना । यत्प्रोक्तं तस्यार्था म रामचन्द्रस्तुतस्त्विति ॥ २ ॥

तत्कीदृशं रामनामसहस्रं मां प्रकृतं कथं सूतन कथितं सुनीनामग्रतः पुरा ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक्पुष्टं त्वया शिष्यं सावधानमनाः शृणु । रामनामसहस्रं च सूतोक्तं प्रवदामि ते ॥ ४ ॥

यथा त्वया कृतः प्रश्नः शौनकेन तथा कृतः । प्रश्नः प्रोक्तं तदाकर्ण्य शौनकं नैमिषे वने ॥ ५ ॥

श्रीसूत उवाच

एकदा सुखमर्मान्नीं पार्वतीपरमेश्वरी । अन्त्योन्त्याक्षिप्तदृष्टाह लोकरक्षणतत्परौ ॥ ६ ॥

इन्द्रादिलोकपालैश्च संवितौ च सगन्धर्वौ । पार्वतीं परिपश्यन्तु तदा धर्माननुक्रमात् ॥ ७ ॥

पार्वत्युवाच

प्रश्नाथ जगतां त्राय सर्वज्ञ परमेश्वर । सत्यपादात्मया शान्तिं धर्मशास्त्रमनुत्तमम् ॥ ८ ॥

प्रायश्चित्तं तु पापानां श्रुतं सर्वभक्षेयतः । ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं वक्तुमर्हसि ॥ ९ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो रामदास ! अभी अभी आप मुझसे कह चुके हैं कि पातकोंको नष्ट करने-
वाले विशादकाण्डमे नारदने सुनोक्तं रामसहस्रनाममे सभामे रामचन्द्रजीका स्तुति की थी ॥ १/२ ॥
वह रामसहस्रनाम कैसा है और किस प्रकार आनन्दजीने मुझियाक समझ उसे प्रकट किया था । सो आप
मुझसे कहें ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, सावधान चित्त होकर
सुनो । मैं तुम्हें सूतका कहा हुआ रामसहस्रनाम सुनाता हूँ । आज जिस तरह तुम मुझसे पूछ रहे हो, उसी
तरह शौनकने सूतजीसे पूछा था । उनका प्रश्न सुनकर नैमिषारण्यमे सूतजीने शौनकसे कहा—एक समय
राक्षससभामे सत्पर शिव और पार्वती गलत्रहिनां डाले हुए आनन्दपूर्वक बैठे थे ॥ ४-६ ॥ सर्वश्रेष्ठ देवता शिव
और पार्वतीजी सैवामे इन्द्रादि लोकपाल उपास्थित थे । उस समय शिव-पार्वतीमे कोई घामिक चर्चा चल
रही थी । समय पाकर पार्वतीने शिवजीसे कहा—हूँ हमारे प्रभु जगत्के प्रभु, सर्वज्ञ एवं परमेश्वर ! आपकी
रूपासे मैने समस्त धर्मशास्त्र जान लिया । पापोंका प्रायश्चित्त किस तरह हो सकता है, सो भी सुन चुकी ।

श्रीमहादेव उवाच

मृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत् । सनत्कुमारविघ्नेशसंवादं पापनाशनम् ॥१०॥
उपविष्टं गणाध्यक्षमेकान्ते प्रणिपत्य च । सनत्कुमारः कथञ्च सर्वधर्मविदां वरम् ॥११॥

सनत्कुमार उवाच

भगवन् सर्वधर्मह सर्वविघ्नविनाशन । द्विजदम्बाहरं धर्मं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥१२॥
विना भवन्तं धर्मस्य वक्ता नास्ति जगत्त्रये ।

श्रीगणेश उवाच

साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन्सर्वलोकोपकारकम् ॥१३॥

मया चिरं कृतं कर्म स्मरितं भवताऽनघ । पुराऽहं गजरूपेण जातः पर्वतसन्निभः ॥१४॥
ततो वृक्षान्मृगपात्रं मुनिर्दिष्टां समारभम् । तदा मया मुनिमणा निहता बहवो बलात् ॥१५॥
हाहाकारा महानासावृक्षाद्वानाः समन्ततः । तदा हृत्पामहम्भेग वेष्टितः पतितोऽस्म्यहम् ॥१६॥
निःसंशं मृततुल्यं मां पतितं वीक्ष्य ये पिता । आराध्य जगतामीशं राम सचहृदि स्थितम् ॥१७॥
प्रत्यक्षमकरोदेव मद्देवो रघुनन्दनम् । तदा प्रोज्झ्य भगवान् श्रीरामः पितरं मम ॥१८॥

श्रीराम उवाच

प्रसन्नोऽस्मि महादेव किं मां प्रार्थयसे प्रभो । दास्यामि यदभीष्टं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१९॥

श्रीमहादेव उवाच

द्विशहस्रासमाविष्टं मम पुत्रनिर्म प्रभो । निष्पापं गुरु देवेश यद्यस्ति मयि ते दया ॥२०॥

श्रीगणेश उवाच

तथेत्पुत्रत्वा सदा तेन कृपयाऽहं निरीक्षितः । तत्पुणाल्लब्धवैभवं निर्मलज्ञानचूडितः ॥२१॥
बहुभिर्गणपदैश्च स्तुतवा तं प्रणतोऽभवम् ।

अब आप मुझपर कृपा करके ब्रह्महत्यादि महापापोंका निष्कृति का कोई उपाय बतलाइए । श्रीशिवजी बोले—
हे देवि । मैं तुम्हें अतिमात्र गूढ़ तथा पापनाशक सनत्कुमार और गणपतिको सम्वाद सुनाता हूँ ॥ ७-१० ॥ एक
समय जब कि गणेशजी एकान्तमें बैठे हुए थे, तब सनत्कुमारने जाकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—हे
भगवन् ! हमस्त धर्मोंको जाचनेवाले तथा विघ्नका विनाशक हूँ प्रभो । गुप्त ब्रह्महत्याका विनाश करनेवाला
कोई धर्म बतलाइये ॥ ११ ॥ १२ ॥ आपके सिवाय तीनों लोकमें कोई भी धर्मका वक्ता मुझे नहीं दीखता ।
गणपतिने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुमने मुझसे बहुत ठीक प्रश्न किया है । इससे सारे संसारका उपकार होगा ॥ १३ ॥
तुमने एक ही बातसे पूर्वमें किये हुए मेरे सब कर्मोंका स्मरण दिला दिया है । पूर्वकालमें मैं गजरूपसे संसारमें
जन्मा था और पर्वतकी भाँति लम्बा चौड़ा भरा डाल डील था ॥ १४ ॥ उस समय मैंने पहले तो बहुतसे वृक्ष
चलाडे । फिर मुनियोंकी हिता आरम्भ कर दी । मैंने अपने अपरिमय बलसे कितने ही मुनियोंका बध कर
पायी बन बैठा ॥ १५ ॥ १६ ॥ मेरे हृषा-हवास डिकाने न रहे तथा एक मृतककी भाँई मेरी आवृत्ति हो गयी ।
मेरी दशा देखकर मेरे पिताने संसारके महाप्रभु रामकी आराधना की । इससे प्रसन्न होकर रामचन्द्रजी मेरे पिता-
के सम्मुख जाये और कहन लगे । रामचन्द्रजी बल है महादेव ! मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्न हूँ । दसलाओ,
तुम किसलिए इस प्रकार मेरी प्रार्थना कर रहे हो ? तुम्हारा कामना यदि तात लोकमें दुर्लभ होगा तो भी मैं
नम्र पूर्ण करूँगा ॥ १७-१९ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हे प्रभो ! मेरे पुत्र गणेशका ब्रह्महत्या लग गया है । हे देवेश ।
बखि भावकी मुझपर दया हो तो उसे निष्पाप कर दीजिये ॥ २० ॥ श्रीगणेशजी सनत्कुमारसे कहन लगे—इस प्रकार मेरे
विघ्नकी बातें सुनकर रामचन्द्रने अपनी कृपाभरी दृष्टि एक बार मेरी ओर देखा । उनके देखते ही मैं चैतन्य क्षा
तपा । मेरेसे एक निर्मल ज्ञानका सत्क्षण संचार हो गया ॥ २१ ॥ तब बहुतसे गण-पणों द्वारा मैंने भगवान्की

श्रीरामचन्द्र उवाच

द्विजहत्यासहस्रस्य प्रायश्चित्तं वदामि ते ॥ २२ ॥

जप नामसहस्रं मे हत्याकोटिविनायकम् । इति गुह्यं ददौ रामस्तत्त्वं नाममहस्रकम् ॥ २३ ॥
 तस्य तद्ग्रहणादेव निष्पापोऽहं तदाऽभवम् । तदाऽभ्यास्मि देवानां पूज्योऽहं मुनिसत्तम ॥ २४ ॥
 स्वमप्येतदधीयानो राघवस्य महान्मना । नाम्नां सहस्रं लोकेषु प्रख्यापय महामते ॥ २५ ॥

सनत्कुमार उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि गणाधिप । न्वन्प्रसादान्मयाऽधीतं रामनामसहस्रकम् । ॥ २६ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इति विज्ञाप्य देवेशं परिक्रम्य प्रणम्य च । तदादि मततं जप्त्वा स्तोत्रमेतद्वरानने ॥ २७ ॥

अवाप परमां सिद्धिं पुण्यपापविवर्जितः ।

श्रीपार्वत्युवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश तदहं सर्वकामदम् ॥ २८ ॥

नाम्नां सहस्रं मां ब्रूहि यद्यस्ति मयि ते दया ।

श्रीमहादेव उवाच

अथ वक्ष्यामि भो देवि रामनाममहस्रकम् । शृणुष्वकमनाः स्तोत्रं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥ २९ ॥
 ऋषिर्विनायकश्चास्य ह्यनुष्टुप्छन्द उच्यते । परब्रह्मान्मको रामो देवता शुभदर्शने ॥ ३० ॥

ॐ अस्य श्रीरामसहस्रनाममालामंत्रस्य विनायक ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीरामो देवता
 महाविष्णुरिति बीजं गुणभृन्निर्गुणो महानिति शक्तिः सच्चिदानन्दविग्रह इति कीलकं श्रीराम-
 प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः

ॐ श्रीरामचन्द्राय अंगुष्ठाभ्यां नमः । सीतापतये नर्जनीभ्यां नमः । रघुनाथाय मध्यमाभ्यां नमः ।
 भरताग्रजाय अनामिकाभ्यां नमः । दशरथात्मजाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । हनुमत्प्रभवे करतलकर-
 पृष्ठाभ्यां नमः । श्रीरामचन्द्राय हृदयाय नमः । सीतापतये शिरसे स्वाहा । रघुनाथाय शिखायै वषट् ।
 भरताग्रजाय कवचाय हुम् । दशरथात्मजाय नेत्रत्रयाय वौषट् । हनुमत्प्रभवे अस्त्राय फट् ।

स्तुति की और उनके चरणोंमें लोट गया । फिर रामचन्द्रजी कहने लगे—हजारों द्विजहत्याके पापसे उद्धार पानेका
 अथवा मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २२ ॥ मेरे 'रामसहस्रनाम' का तब कभीकल ब्रह्महत्याजनोंका पाप भी नष्ट कर देता है ।
 ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने अपना गुण सहस्रनाम मुझ बताया और उसके ग्रहणमात्रसे मेरे पाप नष्ट हो
 गये । तभीसे है मुनिसत्तम ! मैं देवताओंका भी पूज्य हो गया हूँ ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम भी इसी रामसहस्रनामका
 पाठ करते हुए ससारमें इसका प्रचार करो । सनत्कुमारने कहा—मैं धन्य हूँ । मुझपर आपकी बड़ी कृपा है ।
 आपहीकी दयासे मैंने रामसहस्रनाम पा लिया । मैं कृतार्थ हो गया । आशिवजीने कहा—इस तरह उस सहस्र-
 नामको जानकर सनत्कुमारने गणेशजीकी परिक्रमा की, प्रणाम किया और तभीसे नित्य इसका जप करने पुण्य-
 पापसे विवर्जित होकर वे परम सिद्धिको प्राप्त हुए । पार्वतीजी बोली—हे देवेश ! सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले
 रामसहस्रनामको मैं भी जानना चाहती हूँ । यदि आपकी मुझपर दया रहती हो तो मुझे बताइए । शिवजी कहने
 लगे—हे देवि ! मैं तुम्हें वह पुनीत सहस्रनाम बतलाता हूँ । तुम भी सावधान मन होकर उस गूढ़ातिगूढ़
 स्तोत्रकी सुनो ॥ २५—२९ ॥ इस रामसहस्रनाम मंत्रमय स्तोत्रके ऋषि विनायक हैं और साक्षात् परब्रह्म राम
 इसके देवता हैं ॥ ३० ॥ 'ॐ अस्य श्रीराम' इस मंत्रसे विनियोग करके 'श्रीरामचन्द्राय' कहकर अंगुष्ठ, 'सीता-
 पतये' कहकर तर्जनी, 'रघुनाथाय' कहकर मध्यकी अंगुली, 'भरताग्रजाय' कहकर अनामिका, 'दशरथात्मजाय'
 कहकर कनिष्ठिका, 'हनुमत्प्रभवे' कहकर दोनों करपृष्ठोंका न्यास करे । फिर 'रामचन्द्राय' कहकर हृदय,
 'सीतापतये' कहकर शिर, 'रघुनाथाय' कहकर शिखा, 'भरताग्रजाय' से दोनों बाहुमूल, 'दशरथात्मजाय'

अथ व्यानम्

ध्यायेद्वाजानुवाहं धृतशङ्खधनुषं वदपद्ममनस्यं
गीतं धामो वमानं नन्दकमलरूपं नेत्रं प्रसन्नम् ।
वामांकारुर्ध्वात्मासुखकमलमिलच्छेचनं नारदाभं
मानालकारदीपं दधत्सुखजटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥३१॥
वैदेहीसहितं सुद्रुमसले हैमे महामण्डपे
मध्ये पुष्पमहामने मणिमये वागमने संस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रसन्नजनसुते तन्त्र मुनिभ्यः परं

व्याख्यातुं शरणादिभिः परिहृतं राम मन्त्रेच्छामलम् ॥३२॥

सीवर्णमण्डपे दिव्ये पुष्पके सुविगजिते । मूले कल्पतरोः स्वर्णपीठे सिंहाष्टमयुते ॥३३॥
मृदुस्लक्ष्णांतरे तत्र जानक्या सह संस्थितम् । रामं नीलोत्पलश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥३४॥
स्मितवक्त्रं सुखामीनं पद्मपद्मनिभेक्षणम् । किरीटद्वारकंयूकुण्डलैः कटकादिभिः ॥३५॥
आञ्जमनं ज्ञानमुद्राधरं वागमनम्वितम् स्मृत्स्नस्तनयोश्च जानक्याः सव्यपाणिना ॥३६॥
वसिष्ठवामदेवाद्यैः सेवितं लक्ष्मणादिभिः । अयोध्यानगरे रम्ये श्रमिषिक्तं रघूद्वहम् ॥३७॥
एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं रामनाममहत्सुकम् । इत्याकौटुम्भो वाऽपि मुच्यते नात्र संशयः ॥३८॥
अंशमः श्रीमान्महाविष्णुर्जिष्णुर्देवद्विनाभः । तन्त्राभा तत्तकं वक्त्रं शाश्वतः सचमिद्विदः ॥३९॥
राजीवलोचनः श्रीमोऽष्टांगमो रघुपुंगवः । रामभद्रः सदाचारो राजेंद्रो जानकीपतिः ॥४०॥
अग्रगण्यो वरेण्यश्च वरदः परमेश्वरः जनार्दनः जितामित्रः परार्थकप्रयोजनः ॥४१॥

से दोनों नेत्र हुए तथा 'हनुमत्प्रसवे' कहकर चुटकी बजावे । अथ व्यानम् । जिनका आजानु बाहु है, जो धनुष-बाण धारण किये हैं, पद्मासन भागकर बैठे हैं, धनुष वस्त्र पहने हैं । तनू कमलजलसे होठ करनेवाली जिनकी दोनों आंखें हैं, जिनके वामागने सीताजी बैठे हैं । मीता तथा राम दोनों आपसमें एक दूसरेके मुखकी शोभा देखनेमें संलग्न हैं, मधीन मेघके सदृश जिनकी मस्तक है, ऐसे विविध प्रकारके अलंकारोंमें अलंकृत तथा लम्बी-लम्बी जटा धारण करनेवाले रामचन्द्रव । व्यान कर ३१ ॥ अन्तर्मुख नीचे सीताजीके साथ एक सुन्दर सुवर्णके मण्डपमें पुष्पनिर्मित महामन जिसमें अनेक प्रकारकी मणिर्गठित हैं, उसपर श्रीराम कीरामनसे बैठे हुए हैं । उनके सामने बैठे हनुमान्जी मुनियोंकी परम सन्धकी धार में मग्न रह रहे हैं । भगतादि तानों आता जिनकी अगल-जगल शब्द हैं । ऐसे श्यामस्वरूप रामका भजन कर ३२ । सुष्ठुनिर्मित दिव्य पुष्पके विमान कल्पतारुके नीचे बसता है । जिसमें आठ सिंह एवं हैं जो कोमल और निकली हैं । ऐसी गर्दभर सीताके साथ बैठे हुए हैं, नीलकमल सरीखे जिनके नेत्र हैं, दो भुजाएँ हैं, पीत वस्त्र हैं, मृदुवाता हुआ मुख है और वे आनन्दसे बैठे हैं । किरीट, द्वार, कंयूर कुण्डल और कटकादिन से सुशोभित हो रहें हैं । दे एक ओर आनन्दुद्रा धारण किये हैं । दूसरी तरफ बायें हाथसे सीताके स्तनको सहता रहें हैं ॥ ३३-३६ ॥ वसिष्ठ, वामदेव तथा लक्ष्मणादिक जिनकी सेवामें तन्त्रर हैं । अयोध्या नगरमें जिनका राज्य भियेक हो चुका है । ऐसे रघूद्वज् रामचन्द्रजीका ध्यान करके सर्वदा इस रामनहन्वनामका पाठ करना चाहिए । ऐसा करनेसे यदि किसीको कहीं-कहीं हत्यामें भी लग्यो हो तो दूर हो जाना है । इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिए ॥ ३७-३८ ॥ अथ सदृशनाम कहत है -राम, श्रीमान्, महाविष्णु, जिष्णु (सबको जीतनेवाले), देवहितावह (देवताओंका कल्याण करनेवाले), तत्त्वान्मस्वरूप, तारकब्रह्म, शाश्वत सर्वोपद्विद (सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाले) ॥ ३९ ॥ कमल सरीखे नेत्रवाले, श्रीराम, रघुपुंगव धीरे, रामभद्र, सदाचार (पृनीत आचारवाले) राजेंद्र, जानकीके पति ॥ ४० ॥ सबके अग्रेसर, वरेण्य (सर्वश्रेष्ठ), वरद (वरदायक)

विश्वामित्रप्रियो दासा शत्रुजिच्छत्रुतापनः । सर्वज्ञः सर्ववेदादिः शरण्यो बालिमर्दनः ॥४२॥
 ज्ञानभक्त्योऽपरिच्छेद्यो वाग्मी सत्यव्रतः शुचिः । ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञः खरध्वंसो प्रतापवान् ॥४३॥
 धृतिमानात्मवान् वीरो जितकोधोऽरिमर्दनः । विश्वरूपो विशालाक्षः प्रभुः परिवृढो दृढः ॥४४॥
 ईशः सङ्गधरः श्रीमान् कौमल्येयोऽनमूयकः । विपुलासो महोरस्कः परमेष्ठी परायणः ॥४५॥
 सत्यव्रतः सत्यमंधो गुरुः परमधार्मिकः । लोकेशो लोकवधश्च लोकान्मा लोककृद्भिभुः ॥४६॥
 अनादिर्भगवान् सेव्यो जितमायो रघूद्वहः । रामो दयाकरो दसुः सर्वज्ञः सर्वपावनः ॥४७॥
 ब्रह्मण्यो नीतिमान् गोमा सर्वदेवमयो हरिः । मुन्दरः पीतवामाश्च मृगकारः पुरातनः ॥४८॥
 सौम्यो महर्षिः कोदण्डः सर्वज्ञः सर्वकोविदः । कविः मृगविवरदः सर्वपुण्याधिकप्रदः ॥४९॥
 भक्त्यो जितारिषड्वर्गो महोदारोऽघनाशनः । सुकीर्तिरादिपुरुषः कान्तः पुण्यकृतागमः ॥५०॥
 अकल्मषश्चतुर्बाहुः सर्वशान्तो दुरासदः १०० । स्मितभाषी निवृत्तात्मा स्मृतिमान् दीर्यवान् प्रभुः ॥५१॥
 धीरो दातो धनश्यामः सर्वयुधविशारदः । अध्यात्मयोगानिलयः सुमना लक्ष्मणाग्रजः ॥५२॥
 सर्वतीर्थमयः शूरः सर्वयज्ञफलप्रदः । यज्ञस्वरूपो यज्ञेशो जगामरणवर्जितः ॥५३॥

परमेश्वर, जनार्दन जितामित्र (शत्रुओंका परागन करनेवाले), परार्थकप्रयोजन (परीषकार करना ही जिनका एकमात्र प्रयोजन है), विश्वामित्रप्रिय आत्मा, शत्रुओंका जितनेवाले, शत्रुतापन (शत्रुको तथानेवाले), सर्वज्ञ, सर्ववेदादि (समस्त वेदोंके आदि कारण), शरण्य, बालिमर्दन (बालिकों परास्त करनेवाले), ज्ञानभक्त्य, परिच्छेद्य वाग्मी (कुशल वक्ता), सत्यव्रत, शुचि, पवित्र, ज्ञानगम्य (ज्ञानद्वारा जानने योग्य), दृढतम (स्थिर बुद्धिवाले), खरध्वंसी, प्रतापवान्, आत्मवान्, वीर, जितकोध (जिन्होंने शोधको जीत लिया है), अरिमर्दन (शत्रुको नीचा दिखानेवाले) विश्वस्वरूप (समस्त ही जिनका स्वरूप है), विशालाक्ष (बड़ी बड़ी आँखोंवाले), प्रभु (समस्त जगत्का ईश्वर) परिवृढ (सत्कर्त) ॥ ४१-४४ ॥ ईश (सब ससारके स्वामी), सङ्गधर (सत्कार धारण करनेवाले), श्रीमान्, कौमल्य (कोस-याके पुत्र), अनमूयक (किसीसे ईर्ष्या न करनेवाले), विपुलास (जिनके खूब चौड़े कन्धे हैं) महोरस्क (जिनकी विशाल छाती है), परमेष्ठी (जो ब्रह्मास्वरूप हैं), सत्यव्रतपरायण (सत्यव्रती), सत्यमंध (सत्यप्रतिज्ञ), गुरु (सबधेष्ठ), परम धार्मिक, लोकेश (सब लोकोंके ज्ञाता), लोकवध (सब लोकोंमें वन्दनीय), लोकान्मा (सब लोकोंके आत्मा), लोककृत् (लोकोंके रचयिता), विभु (सर्वपापी) ॥ ४५ ॥ ४६ । अनादि (जिनका आदि नहीं है), भगवान् (सर्वसम्पत्तिशाली), सेव्य (सेवा योग्य), जितमाय (मायाका जीतनेवाले), रघूद्वह (रघुवशके उजागरकर्ता), राम, दयाकर (दयाके स्वानिस्वरूप), दक्ष (सब कार्योंमें निपुण), सर्वज्ञ, सर्वपावन (सबको पुनात करनेवाले), ब्रह्मण्य (ब्रह्मणप्रक्त), नीतिमान् गास्ता (सर्वरक्षक), सबदेवमय, हरि, सुन्दर, पीतवासा (पीत वस्त्र धारण करनेवाले), पुरातन मृगकार (मृगप्राचीन मृगकार अर्थात् मृगरूपमें प्रयोगके रचयिता), पुरातन (सबसे प्राचीन) ॥ ४७ । ४८ ॥ सौम्य (जिनका समस्त स्वभाव है), महर्षि, कोदण्ड (धनुर्धर), सर्वज्ञ, सर्वकोविद (सब विषयोंके पूर्ण परिणित), कवि, मृगविवरद (मृगोंको अभयवर देनेवाले), सर्वपुण्याधिकप्रद (सब पुण्यसे भी अधिक फल देनेवाले) ॥ ४९ ॥ भक्त्य, जितारिषड्वर्ग (जिन्होंने अपने बलसे शत्रुके भक्त-उत्साहादि छ वगैरोंका जीत लिया है), महोदार (जो सबसे उदार हैं), अघनाशन (पापका नाश करनेवाले), सुकीर्ति (जिनकी सुन्दर कर्ति है), आदिपुरुष (जो सबके आदि पुरुष हैं), कान्त (सर्वप्रिय), पुण्यकृतागम (पवित्रविचारमयप्र) अकल्मष (पापरहित), चतुर्बाहु (चतुर्भुज), सर्वदास (सबके निवासस्थान), दुरासद (बड़ी कठिनाईसे प्राप्त १००) स्मितभाषी । मुग्धुराते हुए बातें करनेवाले), निवृत्तात्मा (जिनकी आत्मा स्वतन्त्र है), जो स्मृतिमान्, दीर्यवान् और सबके प्रभु हैं । धीर, दास (उदारप्रवृत्ति), धनश्याम (मेघकी नाई श्यामस्वरूप), सर्वयुधविशारद (सब शस्त्रास्त्रोंमें निपुण), अध्यात्मयोगानिलय (अध्यात्मयोगके निवास), सुमना (सुन्दर चित्तवाले), लक्ष्मणाग्रज (लक्ष्मणके बड़े भाता), ॥ ५०-५२ ॥ तीर्थमय, शूर (असाधारण पांडा), सर्वयज्ञफलप्रद (सब यज्ञोंके फलदाता) यज्ञस्वरूप

वर्षाश्रमगुरुवर्णी शत्रुजिन्पुरुषोत्तमः । शिवलिंगप्रतिष्ठाता परमात्मा परान्यः ॥ ५४ ॥
 प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः पूर्णः परपुरुजयः । अनन्तर्दृष्टिगानन्दो धनुर्वदो धनुर्वरः ॥ ५५ ॥
 गुणाकरो गुणश्रेष्ठः सच्चिदानन्दविग्रहः । अभिवाद्यो महाकायो विश्वकर्मा विशाखः ॥ ५६ ॥
 विनीतान्मा वीतरागस्तपस्वीशो जनेश्वरः । कन्यागः प्रहृतिः कल्पः सर्वेशः सर्वकामदः ॥ ५७ ॥
 अक्षयः पुरुषः साक्षी केशवः पुरुषोत्तमः । लोकाध्यक्षो महाकायो विधीपणवरप्रदः ॥ ५८ ॥
 आनन्दविग्रहो ज्योतिर्हंतुमन्प्रभुस्त्वया । भ्राजिष्णुः सहनो मोक्षा मन्यवदी बहुश्रुतः ॥ ५९ ॥
 सुखदः कारणं कर्ता भववन्धविमोचनः । देवचूडामणिनंता ब्रह्मर्षो ब्रह्मवर्धनः ॥ ६० ॥
 संसारसारको रामः सर्वदः सविमोक्षकृत् । विद्वन्मो विश्वकर्ता विश्वकृद्विश्वकर्म च ॥ ६१ ॥
 नित्यो नियतकल्याणः सौभाग्योक्तविनाशकृत् । काकुत्स्थः पुण्यार्णवाक्षो विश्वामित्रभयापहः ॥ ६२ ॥
 मारीचमथनो रामो विराधवधपण्डितः । दुःस्वप्ननाशनो रम्यः किरीटी विदयाधिपः ॥ ६३ ॥
 महाधनुर्महाकायो भीमो भीमपराक्रमः । तत्त्वस्वरूपस्त्वचस्तत्त्वस्त्ववादी सुविक्रमः ॥ ६४ ॥
 भूतान्मा भूतकृत्स्वामी कालज्ञानी महावपुः । अनिर्विण्णो गुणग्रामो निष्कलकः कलंकदा ॥ ६५ ॥
 स्वभावमद्रः शत्रुघ्नः केशवः स्याणुराध्वरः । भूतार्ताः शंभुर्गदित्यः स्यविदुः शाश्वतो ध्रुवः ॥ ६६ ॥
 कवची कुण्डली चक्री खड्गी भक्तजनप्रियः । अमृत्युर्वन्मरहितः सर्वजिन्सर्वगोचरः ॥ ६७ ॥
 अनुत्तमोऽप्रमेयात्मा सर्वोत्तमा गुणसागरः २०० समः समान्मा समगो जटामुकुटविमण्डितः ॥ ६८ ॥
 अजेयः सर्वभूतान्मा विध्वंस्यसेनो महातपाः । लोकाध्यक्षो महाबहुरसृतो वेदविनमः ॥ ६९ ॥

(धर्मके गुरु रूप), यज्ञेश (यज्ञोंके स्वामी), जराभरणवर्जित , दुष्टापा और मृत्यु दोनोंसे रहित ,
 वर्षाश्रमगुरु (वर्षा और आश्रमके गुरु), शत्रुजिन् (शत्रुओंको जीतनेवाले) पुरुषोत्तम (सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ),
 शिवलिंगप्रतिष्ठाता (विविध शिवलिंगोंके संस्थापक), परमात्मा, परात्पर प्रमाणभूत विश्वके प्रमाणस्वरूप),
 दुर्ज्ञेय बड़ी कठिनाईसे जानने योग्य), पूर्ण, परपुरुजय, शत्रुनगराक विजिता, अनन्तर्दृष्टि (अपारदृष्टि),
 आनन्द, धनुर्वरके ज्ञाता, धनुर्वारी, गुणाकर (गुण के समुद्र), गुणश्रेष्ठ (सब गुणोंमें श्रेष्ठ), सच्चिदानन्दविग्रह
 (सत् चित् आनन्द इन तीनोंसे जिनका शरीर बना है), अभिवाद्य (सबके धन्दताप), महाकाय,
 विश्वकर्मा, विशाख ॥ ५३-५६ ॥ विनीत आत्मज्ञान, वीतराग (रागद्वेषरहित), तपस्वीश (तपस्वियोंके
 स्वामी), जनेश्वर, कन्याग (कन्याणस्वरूप), प्रहृति (सदा प्रसन्न), कल्प दियति तथा प्रलयकालके
 अधिपति), सवर्ण, सर्वकामद, अक्षय, पुरुष, साक्षी केशव, पुरुषोत्तम, लोकाध्यक्ष, महाकाय,
 विधीपणवरप्रद ॥ ५७ ॥ ५८ : आनन्दविग्रह : आनन्दक मूर्त रूप , अनिर्विण्ण हनुमान्क स्वामी,
 सविनाशा, भ्राजिष्णु (शान्तिसम्पन्न), सहनशील, मोक्षा, मन्यवोंका बहुश्रुत ॥ ५९ ॥ सुखदायो,
 कारणस्वरूप, कर्ता, भववन्धनसे छुड़ानेवाला, देवताओंके मूर्तत्व, ब्राह्मणभक्त, ब्राह्मणोंके सहायक
 ॥ ६० ॥ संसारसारसे सारनेवाले, सब दुखोंमें छुड़ानेवाले अनिर्विण्ण विद्वान्, विश्ववर्चयिता,
 विश्वकर्ता, विश्वके कर्ताव्य कर्मस्वरूप ॥ ६१ ॥ नित्य, कल्याणलताय सौभाग्योक्तविनाशकृत्, काकुत्स्थ,
 काकुत्स्थ, विश्वामित्रभयाहारी ॥ ६२ ॥ मानवचक्री, राम, विराधवधम निगुण, दुःस्वप्ननाशक, रमणीय,
 किरीटीधारी, खड्गविपीत ॥ ६३ ॥ विशाल धनुष धारण करनेवाले, विशालकाय, भयानक, भयानक पराक्रम
 सम्पन्न, तत्त्वोंके गुरुस्वरूप, तत्त्वोंके ज्ञाता तत्त्वविषयके ज्ञाता, असाधारण पराक्रमी ॥ ६४ ॥ प्राणिमात्रोंके
 रक्षक, सबके स्वामी, समर्थके पारशी, विशालशरीरधारी, सदा प्रसन्न, गुणग्राम निष्कलक, कलंकनाशक
 ॥ ६५ ॥ स्वभावतः कल्याणकारी, शत्रुनाशक, केशव, चिरस्थायी, ईश्वर, प्राणियोंके अति, शम्भु अद्वि-
 तनय, स्वार्थी, नित्य, अटल ॥ ६६ ॥ कवचधारी, कुण्डलधारी, चक्रधारी, खड्गधारी भक्तजनोंके प्रिय, अमर,
 अजेय, सबके विजिता, सर्वदशी ॥ ६७ ॥ सर्वोत्तम, अप्रमेयात्मा, सर्वविषा, गुणसागर २०० । सदा सम,
 प्रकृति, समान्मा, समगामी, जटामुकुटविमण्डित ॥ ६८ ॥ अजेय, सर्वभूतारमा, विध्वंस्यसेन, महातपा,

सद्विष्णुः सद्भक्तिः शास्त्राविधयोनिमदेद्युतिः । अतीन्द्र ऊर्जितः प्रांशुरुपेन्द्रो वामनो बलिः ॥७०॥
 धनुर्वेदो विधाता च ब्रह्मा विष्णुश्च शंकरः । ह्रयो मर्गाचर्गोन्निदो रत्नगर्भो महद्भुक्तिः ॥७१॥
 व्यासो वाचस्पतिः सर्वदर्पिनामुग्मदेनः । जानकावल्लभः श्रावण प्रकटः प्रान्तिवर्द्धनः ॥७२॥
 समधोर्जाद्रियो वेद्यो निर्देशो जम्बवान्प्रभुः । मदनो मन्मथो व्यापी विश्वरूपो निरञ्जनः ॥७३॥
 नारायणोऽग्रणी साधुर्जटाग्रप्रान्तिवर्द्धनः । नैकरूपो जगन्नाथः सुरकार्यहिताः प्रभुः ॥७४॥
 जितक्रोधो जितरागिः प्लवगाधिपराज्यदः । रमुदः सुभुजो नैकमाधो भव्यः प्रमोदनः ॥७५॥
 चण्डांशुः सिद्धिदः कल्पः शाणागतवन्मलः । अगदो गेगहर्ता च मन्त्रतो मन्त्रभावनः ॥७६॥
 सौमित्रिवन्मलो धुर्यो व्यक्ताव्यक्तस्वरूपटक् । शमिष्ठो ग्रामगोः श्रामाननुकूलः प्रियवदः ॥७७॥
 अतुलः सात्त्विको धीरः शरामनविशारदः । ज्येष्ठः सर्वगुणोपेतः शक्तिमास्तारुकांतकः ॥७८॥
 वैकुण्ठः प्राणिनां प्राणः कमलः कमलाधिपः । गोवर्धनधरो मत्स्यरूपः कारुण्यसागरः ॥७९॥
 कुम्भकर्णप्रभेता च गोपिगोपालसंवृतः ३०० । मायासो व्यापको व्यापी रेणुकेयवलापहः ॥८०॥
 पिनाकमवनो वद्यः समर्थो गरुडध्वजः । लोकत्रयाश्रयो लोकभरितो भरताग्रजः ॥८१॥
 श्रीधरः संगतिलोकगाभो नारायणो विभुः । मनोरूपो मनोवेगो पूर्णः पुरुषपुंगवः ॥८२॥
 यदुश्रेष्ठो यदुपतिर्भूतावसः सुविक्रमः । तेजाधरो धराधरश्चतुर्भुजमहानिधिः ॥८३॥
 चाणूरमधनो वद्यः शान्तो भरतमदितः । शब्दार्तगो गर्भारत्ना कोमलागः प्रजागरः ॥८४॥
 लोकोर्ध्वगः शेषशायी क्षारान्धितिलपाञ्चलः । आत्मज्योतिरदानात्मा सहस्रार्चिः सहस्रपात् ॥८५॥
 अमृतांशुर्महीगर्तो निवृत्तविषयभृद्गः । त्रिकालज्ञो मुनिः सार्क्षो विहायसर्गतिः कृता ॥८६॥
 पर्जन्यः कुमुदो भूतावासः कमललाचनः । श्रावणवक्षाः श्रीवासो वारहा लक्ष्मणाग्रजः ॥८७॥
 लोकाभिरामो लोकाग्रमर्तनः सेवकप्रियः । सनातनतमा मधव्यामला राक्षसांतकः ॥८८॥

लोकलोकेश्वरः, महाबाहुः अमृत, वदजोम श्रेष्ठ ॥ ६६ ॥ सद्विष्णुः, सद्भक्तिः, शास्त्र, विश्वयानि, परमकान्ति-
 मन्त्रश्च अतीन्द्र (इन्द्रस्य श्रेष्ठः, तत्र परमः सर्वज्ञः, उपन्द्र, वामनः, बलिः ॥ ७० ॥ धनुर्वेदविधाता, ब्रह्मा,
 विष्णुः, शंकरः, ह्रमः, मर्गाचिः, गाविन्दः, रत्नगर्भः, महद्भुजस्वी ॥ ७१ ॥ व्यासः, बृहस्पतिः, सभी अभिमानो
 अमुराके धातकः, जानकावल्लभः, श्रामान्, प्रकटः, प्रान्तिवर्द्धनः ॥ ७२ ॥ समधः, अतोन्निदः, वेद्यः, निर्देशः,
 जानकानुके स्वामी, मदनः, मन्मथः, सर्वद्वारा विश्वरूपः, निरञ्जनः ॥ ७३ ॥ नारायणः, अग्रणी, साधु जटागुके
 प्रान्तिवर्द्धकः, अनेकरूपः, जगन्नाथः स्वकार्यमाधकः, प्रभुः ॥ ७४ ॥ जितक्रोधः, शत्रुविजता, सृष्टीवराज्यदायकः,
 वसुदाता, बहुभुज विविधमाश्रयारी, भव्यः प्रमोदनः ॥ ७५ ॥ चण्डांशुः, सिद्धिदायकः, कल्पः, शरणागत-
 वन्मलः, अगदः रोगहर्ता, मन्त्रज्ञः मन्त्रभावनः ॥ ७६ ॥ लक्ष्मणप्रियः, धुर्यः, व्यक्त-अव्यक्तस्वरूपधारी, वसिष्ठः, ग्रामीणः,
 श्रीमान्, अदुक्कलः, प्रियवर्णी ॥ ७७ ॥ अनुवर्तनः सात्त्विक धीरः, बहुविधार्थं निगुणः, श्रेष्ठः, सर्वगुणसम्पन्नः,
 शक्तिमान्, ताडकाक धातकः ॥ ७८ ॥ वैकुण्ठः, प्राणिकेक प्राणः, कर्मठः, कमलाधरः, गोवर्धनधारी, मत्स्य-
 रूपधारी वरुणसागरः ॥ ७९ ॥ कुम्भकर्णक नाशकः, गोपिगोपालसंवृतः ३००, मायावी, व्यापकः,
 व्यापी, रेणुकेय (परशुरामके बलनाशकः) ॥ ८० ॥ धनुषभञ्जकः, वद्यः, समर्थः, गरुडध्वजः, तीतो लोकोके आश्रयः,
 लोकभरितः, भरतके बडे आता ॥ ८१ ॥ श्रीधरः, सद्भक्तिः, लोकसाधः, नारायणः, विभुः, मनोरूपः, मनो-
 वेगो पूर्णः, पुरुषपुंगवः ॥ ८२ ॥ यदुश्रेष्ठः यदुपति भूतावासः, सुविक्रमः, तेजाधरः, धराधरः, चतुर्भुजः,
 महानिधिः ॥ ८३ ॥ चाणूरमधनः वद्यः शान्तः, भरतमदितः, शब्दार्तगो, गर्भारत्ना, कोमलागः, प्रजागरः
 ॥ ८४ ॥ लोकोर्ध्वगामी, शेषशायी, क्षोणधितिलयः, अमलः, आत्मज्योतिः, अदीनात्मा, सहस्रार्चिः, सहस्रवरणः
 ॥ ८५ ॥ अमृतांशुः, महीगर्तः, विषयकः, मृदासे रहितः, त्रिलोकज्ञः, मुनिः, सार्क्षः, विहायसर्गतिः, कृती ॥ ८६ ॥
 पर्जन्यः, कुमुदः, भूतावासः, कमललाचनः, श्रावणवक्षा, श्रीवासः, वारहा, लक्ष्मणाग्रजः ॥ ८७ ॥ लोकाभिरामः, लोका-

दिव्यायुधधरः श्रीमानप्रमेयो जितेन्द्रियः । भूदेववधो जनकप्रियकुम्भप्रितामहः ॥८९॥
 उत्तमः सान्द्रिकः सत्यः सत्यसन्धस्त्रिविक्रमः । सुवृत्तः सुगमः सूक्ष्मः सुधोषः सुखदः सुहृत् ॥९०॥
 दामोदरोऽच्युतः शाङ्गो वामनो मधुराधिपः । देवकीनन्दनः शौरि शूरः कैटभमर्दनः ॥९१॥
 सप्ततालप्रभेत्ता च मिश्रवंशप्रवर्धनः । कालस्वरूपी कालान्मा कालः कल्याणदः ४०० कलिः ॥९२॥
 सवत्सरो ऋतुः पक्षो क्षयनं दिवसो युगः । रावणो विविक्तो निलेपः सर्वव्यापी निराकुलः ॥९३॥
 अनादिनिघनः सर्वलोकपूज्यो निरामयः । रमो रमज्ञः सारज्ञो लोकसारो रसात्मकः ॥९४॥
 सर्वदुःखातिगो विद्याराशिः परमगोचरः । शेषो विशेषो विगतकल्मषो रघुपुङ्गवः ॥९५॥
 वर्णश्रेष्ठो वर्णभाज्यो वर्णो वर्णगुणोज्ज्वलः । कर्मसाक्षी गुणश्रेष्ठो देवः सुखप्रदः ॥९६॥
 देवाधिदेवो देवार्थदेवामुरनमस्कृतः । सर्वदेवमयश्चक्री शार्ङ्गपाणी रघूत्तमः ॥९७॥
 मनोगुप्तिमहकारः प्रकृतिः पुरुषोऽव्ययः । न्यायो न्यायी नयी श्रीमान् नयो नगधरो ध्रुवः ॥९८॥
 लक्ष्मीविश्वम्भरो भर्ता देवेन्द्रो बलिमर्दनः । बाणारिभर्दो यज्ञानुत्तमो मुनिसेवितः ॥९९॥
 देवाग्रणीः शिवध्यानतन्परः परमः परः । सामगेयः प्रियः शूरः पूर्णकीर्तिः सुलोचनः ॥१००॥
 अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो दशास्यद्विपकेसरी । कलानिधिः कलानाथः कमलानन्दवर्धनः ॥१०१॥
 पुण्यः पुण्याधिकः पूर्णः पूर्वः पूरयिता रविः । जटिलः कल्मषध्वान्तप्रभजनविभावसुः ॥१०२॥
 जयी जितारिः सर्वादिः शमनो भवभञ्जनः । अलकरिष्णुश्चलो रोचिष्णुर्विक्रमोत्तमः ॥१०३॥
 आशुः शब्दपतिः शब्दागोचरो रंजनो लघुः । निःशब्दपुरुषो माया स्थूलः सूक्ष्मो ५०० विलक्षणः ॥१०४॥
 आत्मयोनिरयोनश्च सप्तजिह्वः सहस्रपान् । सनातनतमः स्रग्वी पेशलो विजिताम्बरः ॥१०५॥
 शक्तिमान् शस्त्रभृन्नाथो गदाधरथांगभृत् । निरीहो निर्विकल्पश्च चिद्रूपो वीरसाध्वसः ॥१०६॥
 सनातनः सहस्राक्षः शतमूर्तिर्धनप्रभः । हृत्पुङ्गवकश्यपः कठिनो द्रव एव च ॥१०७॥
 सूर्यो ग्रहपतिः श्रीमान् समर्थोऽनर्धनाशनः । अधर्मशत्रु रवीध्नः पुरुहूतः पुरस्तुतः ॥१०८॥

रिमर्दन, सेवकप्रिय, सनातनतम, मेघश्यामल, राक्षसान्तक ॥ ८९ ॥ दिव्यायुधधर, श्रीमान्, अप्रमेय, जितेन्द्रिय, विप्रवध, पितामह प्रियकर्ता, प्रितामह ॥ ८९ ॥ उत्तम सान्द्रिक, सत्य, सत्यसन्ध, त्रिविक्रम, सुवृत्त, सुगम, सूक्ष्म, सुधोष, सुखद, सुहृत् ॥ ९० ॥ दामोदर, अच्युत, शाङ्गो, वामन, मधुराधिपति, देवकीनन्दन, वासुदेव, शूर, कैटभमर्दन ॥ ९१ ॥ सप्ततालप्रभेत्ता, मिश्रवंशवर्धन, कालस्वरूपी कालात्मा, काल, कल्याणद ४०० कलि, ॥ ९२ ॥ सवत्सर, ऋतु, पक्ष, क्षयन, युग, स्तव्य, विविक्त, निलेप, सर्वव्यापी, निराकुल ॥ ९३ ॥ अनादिनिघन, सर्वलोकपूज्य, निरामय, रस, रसज्ञ, सारज्ञ, लोकसार, रसात्मक ॥ ९४ ॥ सर्वदुःखातिग, विद्याराशि, परमगोचर, शेष, विशेष, विगतकल्मष, रघुपुङ्गव, ॥ ९५ ॥ वर्णश्रेष्ठ, वर्णभाज्य, वर्ण, वर्णगुणोज्ज्वल, कर्मसाक्षी, गुणश्रेष्ठ, देव, सुखप्रद ॥ ९६ ॥ देवाधिदेव, देवर्षि, देवामुरनमस्कृत, सर्वदेवमय, चक्री, शार्ङ्गपाणि, रघूत्तम, ॥ ९७ ॥ मन-बुद्धि महकार, प्रकृति, पुरुष अव्यय, न्याय, न्यायी, नयी, श्रीमान्, नय, नगधर, ध्रुव, ॥ ९८ ॥ लक्ष्मी-विश्वम्भर, भर्ता, देवेन्द्र, बलिमर्दन, बाणारिभर्दन, यज्ञा, उत्तम, मुनिसेवित ॥ ९९ ॥ देवाग्रणी, शिवध्यानतन्पर, परम, पर, सामगेय, प्रिय, शूर पूर्णकीर्ति, सुलोचन ॥ १०० ॥ अव्यक्तलक्षण, व्यक्त, दशास्यद्विपकेसरी, कलानिधि, कलानाथ, कमलानन्दवर्धन ॥ १०१ ॥ पुण्याधिक, पूर्ण, पूरयिता, रवि, जटिल, कल्मषध्वान्तप्रभजनविभावसुः ॥ १०२ ॥ जयी, जितारि, सर्वादि, शमन, भवभञ्जन, अलकरिष्णु, अचल, रोचिष्णु विक्रमोत्तम ॥ १०३ ॥ आशु शब्दपति, शब्दागोचर, रंजन, लघु, निःशब्द, पुरुष, मायो, स्थूल, सूक्ष्म ५००, विलक्षण ॥ १०४ ॥ आत्मयोनि, अयोनि, सप्तजिह्व, सहस्रपान्, सनातनतम, स्रग्वी, पेशल, विजिताम्बर ॥ १०५ ॥ शक्तिमान्, शस्त्रभृन्, नाथ, गदाधर, रथांगभृन्, निरीह, निर्विकल्प, चिद्रूप, वीरसाध्वस ॥ १०६ ॥ सनातन

ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः । हिरण्यगर्भो ज्योतिष्मान् सुललाट सुविक्रमः ॥१०९॥
 शिवपूजार्त श्रीमान् भवानाप्रियकृद्दर्शी नरो नारायण इयाम कपर्दी नीललोहितः ॥११०॥
 रुद्रः पशुपतिः स्वाणुविश्वामित्रो द्विजेश्वरः । मातामहो मातरिवाः विरिञ्चिविष्टभवा ॥१११॥
 असौम्य सर्वभूतानां चण्डः मन्यपगकम् । बालविरयो महाकल्प कल्पवृक्ष कलाधरः ॥११२॥
 निदाघमन्यनो मेघः शुक्रः परबलापहृन् । वसुधवा कव्यवाह प्रतपो विश्वभोजनः ॥११३॥
 रामो नीलोत्पलश्यामो ज्ञानकन्दो महाद्युतिः । कव्यमयनो दिव्य कम्पुग्रोव शिवप्रियः ॥११४॥
 सुखो नीलः सुनिष्पन्नः सुलभः शिशिरान्मकः । अममृष्टोऽतिथिः शूरः प्रमाथी पापनाशकृन् ॥११५॥
 पवित्रपादः पापारिमणिपूरो नभोगतिः । उन्मत्ता दुष्कृतिहा दुर्धर्पो दुःमहो बलः ६०० ॥११६॥
 अमृतेशोऽमृतवपुर्धर्मो धर्मः कृपाकरः । भगो विश्वानादिन्यो योगाचार्यो दिवस्वतिः ॥११७॥
 उदारकीर्तिरुद्योगो वाङ्मयः मदमन्मयः । नक्षत्रमानी नाकेश स्वाधिष्ठानः पडाश्रयः ॥११८॥
 चतुर्वर्गकलं वर्णशक्तिवक्त्रकलं निधिः । निधानगर्भो निर्व्याजो निर्गुणो व्यलमर्दनः ॥११९॥
 श्रावणध्वजिवास्म शान्तो भद्रः समन्तसः । भूशायी भूकृद्भूतिर्भूषणः भूतवाहनः ॥१२०॥
 अकायो भक्तकायस्थः कलहानी महापटुः । परार्थवृत्तिरचलो विविक्तः श्रुतिसागरः ॥१२१॥
 स्वभावभद्रो मन्त्रस्थः ससारभयनाशनः । वेद्यो वैद्यो विप्रदोषा सर्वामरमुनीश्वरः ॥१२२॥
 सुरेन्द्रः कारणः कर्मकरः कर्मा अवोभजः । धर्मोऽग्रधुर्मो धार्मीशः सकल्पः शर्वरीपतिः ॥१२३॥
 परमार्थगुरुर्दृष्टिः सुचिराश्रितवन्मलः । विष्णुजिष्णुविभुर्यज्ञो यज्ञेशो यज्ञराजकः ॥१२४॥
 प्रभुविष्णुर्मणिष्णुश्च लोकान्मा लोकपालकः । केशवः केशिहा काव्यः कविः कारणकारणम् ॥१२५॥
 कालकर्ता कालशेषो वासुदेवः पुरुष्टनः । आदिकर्ता वराहश्च वामनो मधुसूदनः ॥१२६॥
 नारायणो नरो हंसो विष्वक्मेनो जनार्दनः । विश्वकर्ता महायज्ञा ज्योतिष्मान्पुरुषोत्तमः ७०० ॥१२७॥

सहस्राक्ष, शतमूर्ति, धनप्रद, हृत्पण्डरोक्शयन, कठिन, द्रव ॥ १०९ ॥ सूर्य, प्रहवति, श्रीमान् समर्थ, अनर्थ-
 नाशन, अघर्मशत्रु, रक्षोघ्न, पुष्टन, पुष्टत, ॥ १०९ ॥ ब्रह्मगर्भं, बृहद्गर्भं, धर्मधेनु, धनागम, हिरण्यगर्भं,
 ज्योतिष्मान्, सुललाट, सुविक्रमः ॥ १०९ ॥ शिवपूजार्त, श्रीमान् भवानाप्रियकृन् वशी, नर, नारायण, इयाम,
 कपर्दी, नीललोहितः ॥ ११० ॥ रुद्र, पशुपति, स्वाणु विश्वामित्र, द्विजेश्वर, मातामह, मातरिवा, विरिञ्च,
 विष्टभवा ॥ १११ ॥ असौम्य, चण्ड, मन्यपगकम्, बालविरय, महाकल्प, कल्पवृक्ष, कलाधरः ॥ ११२ ॥
 निदाघ, तपन, मेघ, शुक्र, परबलापहारी, वसुधवा, कव्यवाह प्रतप्त, विश्वभोजनः ॥ ११३ ॥ राम, नीलो-
 त्पलश्याम, ज्ञानकन्द, महाद्युति, कव्यमयन, दिव्य, कम्पुग्रोव शिवप्रियः ॥ ११४ ॥ सुखो, नील, सुनिष्पन्न,
 सुलभ, शिशिरान्मकः असमृष्ट अतिथि, शूर, प्रमाण पापनाशकारी ॥ ११५ ॥ पवित्रपाद, पापारि, मणि-
 पूर, नभोगति उत्ताण, दुर्ग, दुःमह, बल ६०० ॥ ११६ ॥ अमृतेश, अमृतवपुः, धर्मो, कृपाकर, भग,
 विश्ववान्, आदित्य, योगाचार्य, दिवस्वति ॥ ११७ ॥ उदारकाति, उद्योगो वाङ्मय, सरसन्मय, नक्षत्र-
 माना, नाकेश, स्वाधिष्ठान, पडाश्रय ॥ ११८ ॥ चतुर्वर्गकल, वर्णशक्तिवक्त्रकल, निधि, निधानगर्भं निर्व्याज,
 निर्गुण, स्वात्ममर्दन ॥ ११९ ॥ श्रीबालध, शिवारम्भ, शान्त, भद्र, समन्तस, भूशायी, भूति, भूतवाहन ॥ १२० ॥
 अकाय, भक्तकायस्थ, कालजानी महापटु, परार्थवृत्ति, अचल, विविक्त, श्रुतिसागर ॥ १२१ ॥ स्वभावभद्र,
 मन्त्रस्थ, ससारभयनाशन देह वैद्य विप्रदोषा, सर्वामरमुनीश्वर ॥ १२२ ॥ सुरेन्द्र, कारण, कर्मकर,
 नर्मी, अवोभज, धर्मो, उग्रधुर्मो धार्मीश, सकल्प शर्वरीपति ॥ १२३ ॥ परमार्थगुरु, दृष्टि सुचिराश्रितवन्मल,
 विष्णु जिष्णु, विभु यज्ञ, यज्ञेश यज्ञपालक ॥ १२४ ॥ प्रभु विष्णु प्रसिष्णु लोकार्मा, लोकपालक, केशव,
 केशिहा, काव्य, कवि, कारणकारण ॥ १२५ ॥ कालकर्ता कालशेष, वासुदेव, पुरुष्टन, आदिकर्ता, वराह,
 वामन, मधुसूदन ॥ १२६ ॥ नारायण, नर, हंस, विष्वक्मेन, जनार्दन, विश्वकर्ता, महायज्ञ, ज्योतिष्मान्,

वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरचितः । नारसिंहो महाभीमो वज्रदंष्ट्रो नखायुधः ॥१२८॥
 आदिदेवो जगत्कर्ता योगीशो गरुडध्वजः । गोविन्दो गोपतिर्गोप्ता भूपतिर्भुवनेश्वरः ॥१२९॥
 पद्मनाभो हृषीकेशो धाता दामोदरः प्रभुः । त्रिविक्रमस्त्रिलोकेशो प्रह्लादः प्रीतिवर्धनः ॥१३०॥
 संन्यासी शास्त्रस्वज्ञो मन्दिरो गिरिशो नवः । वामनो दुष्टदमनो गोविन्दो गोपबल्लभः ॥१३१॥
 भक्तप्रियोऽन्युतः सत्यः सत्यकीर्तिर्दृतिः स्मृतिः । कारुण्यः करुणो व्यासः पापहा शान्तिवर्द्धनः ॥१३२॥
 बदरीनिलयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतः प्रभुः । भूतवासो महावामा श्रीनिवासः श्रियः पतिः ॥१३३॥
 तपोवामो मुदावामः सत्यवामः सनातनः । पुरुषः पुष्करः पुण्यः पुष्कराक्षो महेश्वरः ॥१३४॥
 पूर्णमूर्तिः पुराणज्ञः पुण्यदः प्रीतिवर्धनः पूर्णरूपः । कालचक्रप्रवर्तनसमाहितः ॥१३५॥
 नारायणः परं ज्योतिः परमात्मा सदाशिवः । शंखी चक्री गदी शङ्खी लंगूली मुसली हली ॥१३६॥
 किराटी कुंडली हारी मेखली कवची ध्वजा । योगी जेता महावीर्य शत्रुघ्नः शत्रुनापनः ॥१३७॥
 शास्ता शास्त्रकरः शास्त्रं शकरः शंकरस्तुतः । सारथी सान्त्विकः स्वामी सामवेदप्रियः समः ८०० ॥
 पवन सहितः शक्तिः सम्पूर्णज्ञः समृद्धिमान् । स्वर्गदः कामदः श्रीदः कीर्तिदः कीर्तिदायकः ॥१३९॥
 मोक्षदः पुण्डरीकाक्षः शिराब्धिकृतकेतनः । सर्वात्मा सर्वलोकेशः प्रेरकः पापनाशनः ॥१४०॥
 वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः सर्वदेवनमस्कृतः । सर्वव्यापी जगन्नाथः सर्वलोकमहेश्वरः ॥१४१॥
 सर्गस्थित्यन्तकृद्देवः सर्वलोकसुखावहः । अक्षयः शाश्वतोऽनन्तः सयवृद्धिविजितः ॥१४२॥
 निर्लेपो निर्गुणः सूक्ष्मो निर्विकारो निरञ्जनः । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः सत्तामात्रव्यवस्थितः ॥१४३॥
 अधिकारी विभुर्नित्यः परमात्मा सनातनः । अचलो निश्चलो व्य.पा. नित्यतृप्तो निराश्रयः ॥१४४॥
 व्यापी युवा लोहिनाक्षो दीप्या शोभितमायणः । आजानुवादुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥१४५॥
 सत्त्ववान् गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा । कालात्मा भगवान् कालः कालचक्रप्रवर्तकः ॥१४६॥

पुरयोत्तम ७०० ॥ १२० ॥ वैकुण्ठ, पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, सूर्य, सुरचित नारसिंह, महाभीम, वज्रदंष्ट्र, नखायुध ॥ १२८ ॥ आदिदेव, जगत्कर्ता योगीश, गरुडध्वज, गोविन्द, गोपति गोप्ता, भूपति, भुवनेश्वर ॥ १२९ ॥ पद्मनाभ, हृषीकेश, धाता, दामोदर, प्रभु, त्रिविक्रम, त्रिलोकेश प्रह्लाद, प्रीतिवर्धन ॥ १३० ॥ संन्यासी, शास्त्रतत्त्वज्ञ, मन्दिर, गिरिश, नव, वामन, दुष्टदमन, गोविन्द, गोपबल्लभ, ॥ १३१ ॥ भक्तिप्रिय, अन्युत, सत्य, सत्यकीर्ति, दृति, स्मृति, कारुण्य, करुण, व्यास, पापहा, शान्तिवर्द्धन ॥ १३२ ॥ बदरीनिलय, शक्ति, तपस्वी, वैद्युत, प्रभु भूतवास, महावामा श्रीनिवास, श्रीपात ॥ १३३ ॥ तपोवास, मुदावास, सत्यवास, सनातन, पुष्कर, पुण्य, पुष्कराक्ष, महेश्वर ॥ १३४ ॥ पूर्णमूर्ति, पुराणज्ञ, पुण्यज्ञ, प्रीतिवर्द्धन, पूर्णरूप, कालचक्रप्रवर्तन, समाहित ॥ १३५ ॥ नारायण, परंज्योति, परमात्मा, सदाशिव, शंखी, चक्री, गदी, शङ्खी, लंगूली, मुसली, हली ॥ १३६ ॥ किराटी, कुण्डली, हारी, मेखली, कवचा, ध्वजा, योगी, जेता, महावीर्य शत्रुघ्न, शत्रुनापन ॥ १३७ ॥ शास्ता, शास्त्रकर, शास्त्र, शंकर, शकरस्तुत, सारथी, सान्त्विक, स्वामी, सामवेदप्रिय, सम ८०० ॥ १३८ ॥ पवन, सहित, शक्ति सम्पूर्णज्ञ, समृद्धिमान्, स्वर्गद, कामद, श्रीद, कीर्तिद, कीर्तिदायक ॥ १३९ ॥ मोक्षद, पुण्डरीकाक्ष, शिराब्धिकृतकेतन, सर्वात्मा, सर्वलोकेश, प्रेरक, पापनाशन ॥ १४० ॥ वैकुण्ठ, पुण्डरीकाक्ष सर्वदेवनमस्कृत, सर्वव्यापी, जगन्नाथ, सर्वलोकमहेश्वर ॥ १४१ ॥ सर्गस्थितिअन्तकृद्देव, देव, सर्वलोकसुखवह, अक्षय, शाश्वत, अनन्त सयवृद्धिविजित ॥ १४२ ॥ निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वोपाधिविनिर्मुक्त, सत्तामात्रव्यवस्थित ॥ १४३ ॥ अधिकारी, विभु, नित्य, परमात्मा सनातन, अचल, निश्चल, व्यापी, नित्यतृप्त, निराश्रय ॥ १४४ ॥ व्यापी, युवा, लोहित, क्ष, शोभितमायण, आजानुवादुः सुमुख, सिंहस्कन्ध, महाभुज ॥ १४५ ॥ सत्त्ववान्, गुणसम्पन्न, अपने तेजसे दीप्यमान, कालात्मा, भगवान्, काल,

नारायणः परं ज्योतिः परमात्मा सनातनः । विश्वकृद्विश्वभोक्ता च विश्वगोप्ता च शाश्वतः ॥ १४७ ॥
 विश्वेश्वरो विश्वमूर्तिविश्वात्मा विश्वभावनः । सर्वभूतसुहृच्छातः सर्वभूतानुकम्पनः ॥ १४८ ॥
 सर्वेश्वरः सर्वशर्वः सर्वदाऽऽश्रितवन्मलः । सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वभूताश्रयस्थितः ॥ १४९ ॥
 अभ्यन्तरस्थस्तमसद्वेत्ता नारायणः परः । अनादिनिधनः स्रष्टा प्रजापतिपतिर्हरिः ॥ १५० ॥
 नरसिंहो हृषीकेशः सर्वात्मा सर्वदृग्वर्णः । जगन्मन्थुषधैव प्रभुर्नेता सनातनः १०० ॥ १५१ ॥
 कर्ता धाता विधाता च सर्वेषां पतिर्राज्वरः । महत्समूर्धा विश्वात्मा विष्णुविश्वदृगव्ययः ॥ १५२ ॥
 पुण्यपुरुषः श्रेष्ठः सहस्राक्षः सहस्रपान् । तच्च नारायणो विष्णुर्वामुदेवः सनातनः ॥ १५३ ॥
 परमात्मा परं ब्रह्म सन्निदानदविग्रहः । परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परान्परः ॥ १५४ ॥
 अच्युतः पुरुषः कृष्णः शाश्वतः शिव ईश्वरः । नित्यः सर्वगतः स्थाणु रुद्रः माक्षी प्रजापतिः १५५ ॥
 हिरण्यगर्भः सविता लोककृल्लोकसुखिभुः । अकारवान्यो भगवान् श्रीभूलीलापतिः प्रभुः ॥ १५६ ॥
 सर्वलोकेश्वरः श्रीमान् सर्वज्ञः सर्वतोमुखः । स्वामी सुशीलः सुलभः सर्वगः सर्वशक्तिमान् ॥ १५७ ॥
 नित्यः संपूर्णकामश्च नैमग्निकसहस्रमुखः । कृपापायुषजलधिः शरण्यः सर्वशक्तिमान् ॥ १५८ ॥
 श्रीमान्नारायणः स्वामी जगतां प्रभुर्गोपः । मन्मथः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः ॥ १५९ ॥
 रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की परान्परः । अयोध्याेशो नृपश्रेष्ठः कुशवालः परन्तपः ॥ १६० ॥
 लववालः कजनेत्रः कजांघ्रिः पकजाननः । सीताकान्तः सीम्यरूपः शिशुजीवनतन्परः ॥ १६१ ॥
 सेतुकृच्चित्रकूटस्थः शर्वरीमस्तुनः प्रभुः । योगिध्वेयः शिवध्वेयः शान्ता रावणदर्पहा ॥ १६२ ॥
 श्रीशः शरण्यो भूतानां सश्रितार्थाष्टदायकः । अनन्तः श्रीपति रामो गुणभृन्निर्गुणो महान् १००० ॥
 एवमादीनि नामानि क्षमस्यान्यपराणि च । एकैकं नाम रामस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १६४ ॥
 सहस्रनामकलदं सर्वैश्वर्यप्रदायकम् । सर्वसिद्धिकरं पुण्यं मुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १६५ ॥

बालचक्रवर्त्तक ॥ १४६ ॥ नारायण, परज्योति, परमात्मा सनातन, विश्वकृत्, विश्वभोक्ता, विश्वगोप्ता, शाश्वत ॥ १४७ ॥ विश्वेश्वर, विश्वमूर्ति विश्वात्मा, विश्वभावन सर्वभूतसुहृत्, शा-न्त, सर्वभूतानुकम्पन ॥ १४८ ॥ सर्वेश्वर, सर्वशर्व, सर्वदा आश्रितवन्मल, सर्वग, सर्वभूतेश, सर्वभूताश्रयस्थित ॥ १४९ ॥ अभ्यन्तरस्थ, अन्धकारनाशक, नारायण, पर, अनादिनिधन, त्वा, प्रजापति, हरि ॥ १५० ॥ नरसिंह, हृषीकेश, सर्वात्मा, सर्वदृक्, वर्णो, स्थावर तथा जगत् विश्वके प्रभु, नेता, सनातन ६०० ॥ १५१ ॥ कर्ता, धाता, विधाता, सर्वके पति ईश्वर, महत्समूर्धा, विश्वात्मा विष्णु विश्वदृक्, अद्यय ॥ १५२ ॥ पुण्यपुरुष, श्रेष्ठ, सहस्राक्ष, सहस्रपान्, तन्त्र, विष्णु, नारायण, वामुदेव, सनातन ॥ १५३ ॥ परमात्मा, परब्रह्म, सन्निदानदविग्रह, परज्योति, परधाम, पराकाश, परान्पर ॥ १५४ ॥ अच्युत कृष्ण शाश्वत, शिव, ईश्वर, नित्य, सर्वगत, स्थाणु, रुद्र, साक्षी, प्रजापति ॥ १५५ ॥ हिरण्यगर्भ, सविता लोककृत्, विभु अकारवान्य, भगवान्, श्रीभूलीलापति, प्रभु ॥ १५६ ॥ सर्वलोकेश्वर श्रीमान्, सर्वज्ञ, सर्वतोमुख, स्वामी, सुशील, सर्वग, सर्व-सर्वशक्तिमान्, प्रभु ॥ १५७ ॥ समूर्जनाथ नैमग्निकसहस्र मुखी, कृपापायुषजलधि, सर्वके शरण्य ॥ १५८ ॥ श्रीमान्, नारायण, स्वामी, सर्व भवनात्क प्रभु, ईश्वर मन्मथ कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन ॥ १५९ ॥ राम, कृष्ण, बौद्ध, कल्की, परान्पर, अयोध्याेश, नृपश्रेष्ठ, कुशके पिता, परन्तप ॥ १६० ॥ लवके पिता, सेतुकृत्, चित्रकूटस्थ, कमलनयन, कमलचरण, कमलमुख, सीताकान्त सीम्यरूप, शिशुजीवनतन्पर ॥ १६१ ॥ शर्वरीसस्तुन, प्रभु योगिध्वेय, शिवध्वेय, शान्ता, रावणदर्पहा ॥ १६२ ॥ श्रीश शरण्य, आश्रितोके अर्थाष्टदायक, अनन्त, श्रीपति, राम गुणभृत् निर्गुण महान् १००० ॥ १६३ ॥ यहाँ रामसहस्रनाम पूर्ण हुआ । इसी तरह ओर भी भगवान् के बहुतसे नाम हैं, जिनकी गणना ही नहीं की जा सकती । रामका एक-एक नाम सब प्रकारके पापको हरने तथा सहस्रनामका फल देनेवाला है । यह रामनाम सब प्रकारकी समृद्धियों एवं

मन्त्रात्मकमिदं सर्वं व्याख्यातं सर्वमंगलम् । उक्तानि तव पुत्रेण विघ्नराजेन धीमता ॥१६६॥
 सनत्कुमाराय पुरा तान्युक्तानि मया तव । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स तु ब्रह्मपद लभेत् ॥१६७॥
 तावदेव चलं तेषां महापतकदन्तिनाम् । यावन्न श्रूयते रामनामपञ्चाननध्वनिः ॥१६८॥
 ब्रह्मपुत्रश्च सुरापुत्रश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः । शरणागतघाती च मित्रविघ्नासघातकः ॥१६९॥
 मातुहा पितृहा चैव भ्रूणहा वीरहा तथा । कोटिकोटिमहत्त्राणि क्षुपरापानि यान्यपि ॥१७०॥
 सर्वस्वरं क्रमाज्जप्त्वा प्रत्यहं राममग्निधी । निष्कण्ठकसुखं भुक्त्वा ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥१७१॥

भूत उवाच

एवं शौनक पार्वत्यै रामनामसहस्रकम् । यथा शिवेन कथितं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥१७२॥

श्रीरामदास उवाच

यथा शिष्य त्वया पृष्टं गमनमहस्रकम् । तन्मृतोक्तं भविस्तारं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥१७३॥

अनेन रामे मदसि नारदः स्तुतवान्मुनिः । गमनामहस्रेण भुक्तिमुक्तिप्रदेन च ॥१७४॥

श्रीरामनाम्नां परमं सहस्रकं पापापहं सौख्यविबुद्धिकारकम् ।

मवापहं भक्तजनैकपालकं स्त्रीपुत्रपौत्रप्रदमृद्धिदायकम् ॥१७५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वान्मोक्षीये राज्यकाण्डे

पूर्वार्धे रामसहस्रनामकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(कल्पवृक्ष और पारिजातके पृथ्वीपर आनेका कारण)

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वया रामनाममहस्रं राघवस्य च । ध्यातं कल्पतरोर्मूले कथितं स्वर्णपीठके ॥ १ ॥

सिद्धियोंका करनेवाला और मुक्ति-मुक्तिका दाता है । हे पार्वति ! मैंने अभी जो सहस्रनाम तुम्हें बतलाया है, यह मन्त्रात्मक और सर्वमंगलकारक है । इसे तुम्हारे पुत्र गणेशजीने त्वयं सनत्कुमारको बतलाया था । उसे मैंने आज तुमसे कहा है । जो कोई इस सहस्रनामको पढ़ता और सुनता है, उसे ब्रह्मपद प्राप्त होता है ॥ १६४-१६७ ॥ महापातकरूपी भक्तवाले हाथियोंका बल तभी तक रहता है, जब तक रामनामरूपी पञ्चानन (सिंह) की गर्जना नहीं सुनायी देती । १६८ । जो मनुष्य ब्रह्महत्याग, मद्यप, गुरुकी शय्यापर शयन करनेवाला तथा चोर हो । जो शरणागतको मारनेवाला, मित्रकं साथ विश्वासघात करनेवाला, माता पिता, भ्रूण (गर्भस्थ संतान) तथा वीर मनुष्यकी हत्या करनेवाला हो तथा जिमने संसारमें करोड़ों पाप किये हों, वह भी यदि श्रीरामके पास बैठकर एक संवत्सर पर्यन्त प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करे तो संसारमें निष्कण्ठक सुख भोगकर अन्तमें मोक्ष पाता है ॥ १६९ ॥ १७० ॥ भूतजी बोले हे शौनक ! शिवजीने पार्वतीको जिस प्रकार रामका सहस्रनाम सुनाया था वही मैंने आज तुम्हें बताया है । १७१ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! जैसे तुमने हमसे रामका सहस्रनाम पूछा वैसे मैंने तुम्हें बतलाया । इसी सहस्रनामसे नारदने सभामें रामजीकी स्तुति की थी । क्योंकि यह स्तोत्र भुक्ति-भुक्ति सब कुछ देनेवाला है ॥ १७२-१७४ ॥ यह रामका सहस्रनाम पापोंका नाशक सौख्यवर्द्धक, सांसारिक पापोंका नाशक, भक्तजनोंका पालक और स्त्री-पुत्र-पौत्र तथा सम्पत्तिका देनेवाला है । १७५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंचमोऽध्यायः

श्रीविष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने रामका सहस्रनाम बताते समय कहा था कि कल्पवृक्षके नीचे

सदेहस्तेन मे जातः कल्पवृक्षः कथं भुवि । मयोध्यायां रामगेहे स्वर्गलोकान्यमागतः ॥ २ ॥

अमुं मे संशयं छिधि कृपां कृत्वा ममोपरि ।

सम्यक् पृष्ट विष्णुदाम मावधानमनाः शृणु ॥ ३ ॥

एकदा राघवं द्रष्टुं दुर्वासा मुनिरभ्यगान् । शिष्यः पट्टिमहस्त्रैश्च वेष्टितोऽर्चितयन्पथि ॥ ४ ॥
विष्णुर्मनुजरूपेण रामो जातोऽत्र वेषग्रहम् । तथापि लोकान् रामस्य दर्शयिष्यामि पौरुषम् ॥ ५ ॥
एवं निश्चित्य साकेतं मुनिः शिष्यैर्विवेश ह । विलम्ब सोऽष्टकक्षास्तः सीतागेहं पयी मुनिः ॥ ६ ॥
सीतागेहे महद्द्वारसंस्थितं मुनिसत्तमम् । दुर्वाससं शिष्यपुत्रं दृष्ट्वा वै वेत्रपाणयः ॥ ७ ॥
श्रीघ्नं निवेदयामासुर्दास्या रामं रघुः स्थितम् । रामोऽपि श्रुत्वा सप्राप्तं मुनिं प्रत्युज्जगाम सः ॥ ८ ॥
नन्वा तानानयामास सद्यः द्यामनमर्पयत् । एतस्मिन्मन्तरे रामं निष्टुन्स मुनिमत्तमः ॥ ९ ॥
अत्रवीन्मधुरं वाक्यं शिष्यैः सर्वत्र वेष्टितः । अद्य धर्ममहस्राणामुपवामममापनम् ॥ १० ॥
अतो भोजनमिच्छामि मणिघेन्वनलैर्विना । मिदमन्नं मुहुर्नेन मशिष्याय समर्पय ॥ ११ ॥
मद्य मनोऽभिलषितं नानाविक्रान्तमयुतम् । तथा मां पूजनार्थं हि शभोः पुष्पाणि मानवैः ॥ १२ ॥
अदृष्टान्यानयस्वाद्य गार्हस्थ्यं चेन्प्रक्षमि । नोचेन्नाहं ममार्थोऽस्मीत्युक्त्वा मां न्वं विसर्जय ॥ १३ ॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा विहस्य रघुनन्दनः । सर्वमर्गाकृतं चेति विनयेनाब्रवीन्मुनिम् ॥ १४ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तुष्टस्तं मुनिरब्रवीत् । स्नान्वा सरस्वां शीघ्रं न्वामागच्छामि त्वगं कुरु ॥ १५ ॥
मदुक्तं सफलं कर्तुं मिदं वयंश्च जानकी । तथेत्युक्त्वा मुनिं रामः स्नानार्थं च व्यमर्जयत् ॥ १६ ॥
तदा ते लक्ष्मणाद्यश्च वंघ्र्यो जानकी तथा । कुशाद्या बालकाः सर्वे तेऽभूवन् भयविह्वलाः ॥ १७ ॥

स्वर्गनिर्मित चौकीपर बैठे हुए भगवानका कथान करे ॥ १ ॥ सो मुनकर मुझे यह सट्ठ हो रहा है कि कल्प-
वृक्ष स्वर्गलोकसे रामचन्द्रजीक अवतनमे कैसे आया । मुसपर नृपा करके आप हम संशयका निवारण
कीजिये । श्रीरामदासजीने कहा — हे विष्णुदाम तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । मावधान होकर मुनो
॥ २ ॥ ३ ॥ एक बार रामचन्द्रजीका दर्शन करनेके लिये सठ हजार शिष्योंमे पारवेष्टित दुर्वासा मुनि
अयोध्याको जा रहे थे । रास्तमे जाने-जान दुर्वासाने सांचा कि स्वर्ग विष्णुभगवान् मनुष्यका रूप धारण करके
ममारमे आये है यह मैं जानता हूँ । फिर भी आज समाजके साधारण मनुष्योंका मैं उनका पीछे दिख-
लाऊंगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसा निश्चय करके मैं अपने शिष्योंके साथ अयोध्या नगरमे प्रविष्ट हुए और सबको साथ
लिये हुए आठ चौक लीचकर सीताक भवनमे आ पहुँचे ॥ ६ ॥ सीतार्जक विशाल द्वारपर शिष्यों समेत
आये हुए दुर्वासानो दसकर छींदारोने मुरन्त रामचन्द्रजीकी खबर दी । यह समाचर सुनते ही भगवान्
दुर्वासा मुनिक पास आ पहुँचे । उन्हें प्रणाम किया और सबको वड़े आदर समेत भवनके भीतर ले गये । वहाँ
बैठनेके लिये सट्ट मुन्दर मे सज दिया । अ.सनपर बैठे हुए दुर्वासाने बड़ी मधुर वाणीमे रामचन्द्रजीसे कहा
महाराज । आज एक हजार वर्षका मेरा उपवामव्रत पूरा हुआ है । इस कारण मेरे शिष्योंके साथ मुझे भोजन
चाहिए । इसके लिये आपको केवल एक मुहूर्तका समय मिलेगा और वह भोजन मणि, कामधेनु तथा अग्निकी सहा-
यतासे न तैयार किया जाय । बस, एक मुहूर्तमे इस मेरी इच्छाके अनुकूल भोजन मिले । जिसमे विविध प्रकार-
के पकवान सम्मिलित रह । यदि तुम अपना गार्हस्थ्य रत्ने रहना चाहते होओ तो शिवजीकी पूजाके निमित्त
प्राप्त ऐसे फल मैंगवा दो, जिन्हें अवतक किसीने न देना हो । यदि ऐसा न कर सकत हो तो माफ माफ कह दो
कि मैं ऐसा करनेमे असमर्थ हूँ । यह कहकर मुझे बिदा कर दो । ॥ १३ ॥ मुनिकी बातको मुनकर सुनकाने हुए
राम नअत पूर्वक बोले—“तुम सब कुछ अगे कर दो” ॥ १४ ॥ रामकी बातमे प्रसन्न होकर दुर्वासाने कहा कि
मैं पीछे सरयूमे स्नान करके आता हूँ । ॥ १५ ॥ हमारे कथनानुसार सब चीजोंकी तैयारीके लिए अपने भ्राताओं
तथा सीताकी भी र्श घत के लिए कह देना । ‘अच्छा’ कहकर रामचन्द्रजीने दुर्वासानको स्नान करनेके लिये

ऊचुः परस्परं सर्वे रामन्यस्तेक्षणाः शनैः । किं याचितं हि मुनिना किं रामोऽग्रे कश्चिदिति ॥१८॥
 विना गोवर्द्धिमणिभिः कथमन्नं प्रदास्यति । ततो गते मुनौ गमः पत्रं सौमित्रिणा तदा ॥१९॥
 विलेख्य वद्ध्वा बाणे तन्मुमोव शरमुन्मसम् । स शरो वायुवेगेन शीघ्रं गन्वाऽमरावतीम् ॥२०॥
 सुधर्मायां सुर्ग्युक्तस्वेन्द्रस्याग्रे पथान् ह । तं शरं मधवा दृष्ट्वा चकितो भयविह्वलः ॥२१॥
 कम्पायमिति चोक्त्वा तद्रामनाम व्यलोकयत् । सुवर्णमयं चण्डपुच्छस्थं पापदाहकम् ॥२२॥
 उतो ज्ञात्वा राघवस्य शरोऽयमिति देवगट् । तस्मिन्वन्धं विधुन्यामौ पत्रं नन्वा पपाठ च ॥२३॥
 एतस्मिन्नन्तरे बाणः पुनः श्रीराघवं ययौ । विदेशं गमन्तूनांरे पूर्वन्मस्थितोऽभवत् ॥२४॥
 मधवाऽपि सुधर्मायां भावयामास निर्जरान् । गममुद्राकितं पत्रं भयविन्मयसंयुतः ॥२५॥
 मधवस्त्वं सुखं तिष्ठ स्वर्गोऽहं त्वां सदा स्मरे । मन्त्रियोगमृणुष्वद्य याचितोऽस्म्यधुना त्वदम् ॥२६॥
 विना गोवर्द्धिमणिभिश्चान्नं शिष्यैर्युतेन च । वरैः षष्टिमहर्षेभ्य तथाऽन्यैर्मुनिसन्ततैः ॥२७॥
 सहस्राब्जसुधितेन क्रोधिनाऽतितपस्विना । दुर्वामिमां मुहूर्तांस्तु मयाऽप्यंगीकृतं हि तत् ॥२८॥
 याचितान्यपि पुष्पाणि तेनादृष्टानि मानवैः । सर्वांगोक्तस्य सकलं स्नानार्थं ते विमज्जिताः ॥२९॥
 अतः शीघ्रं कल्पवृक्षपारिजातौ समुद्रजौ । प्रेषयस्व क्षणान्मां स्वमल्लिखेन मादगन् ॥३०॥
 मा रात्रिणाश्चिच्छेत्तुः प्रतीक्षां स्वामिपोः कुरु । एव संश्राध्य नन्दनं नृगानिद्राः सुरैः सह ॥३१॥
 समग्र्याथ कल्पवृक्षपारिजातौ विगृह्य मः । विमानेन सुर्ग्युक्तः श्रीरामनगरं ययौ ॥३२॥
 इन्द्रमागतमाज्ञाय तं प्रत्युद्रम्य लक्ष्मणः । त्रयोप्याथी नितयेन्द्र ममाद्यं गृह्यतन्दनम् ॥३३॥
 कल्पवृक्षपारिजातौ मधवा गृह्यतन्दनम् । ममर्ष्य नन्वा श्रीरामं य उपाविशदामने ॥३४॥
 एतस्मिन्नन्तरे शिष्यं दुर्वामा मुनिमब्रवीत् । गन्वा त्वं पश्य रामं तु किं करोम्यधुना गृहे ॥३५॥

भोज दिया ॥ १६ ॥ इधर लक्ष्मणारिक आता, जानकी और वल्लभ और बाँक सबके साथ भोजन वित्त हो
 गये और वे रामका और निर्निमेष दृष्टिसे देखते हुए अपने मनमें कहने लगे कि मुनिने यही अभुत
 वस्तुएँ माँगी हैं । देखें, राम अब क्या करते हैं । विना गो, मणि तथा आभूषण किसे प्रकट भोजन तैयार करके
 देते हैं ॥१७॥१८॥ मुनिके चले जानेपर रात्रिचन्द्रजने लक्ष्मणराज एव पत्र लिखते थे । उसे अपने बाणमें बाँध
 कर धनुषपर चढ़ाया और छोड़ दिया । वह बाण काटते ही समान वेगसे अमरावतीपुरीमें जाकर सुधर्मा नामकी
 देवसभामें इन्द्रके सामने गिरा । उस बाणका इन्द्रने देखा तो भयभीत होकर बड़ा ॥ १९-२१ ॥ 'यह
 बाण किसका है ?' यह कहकर उगपर लिखे रामक नामकी देखा और पत्र पल्लव पड़ा, पत्र से जान
 माला बाण बड़ीसे फिर रामजीके लक्ष्मण लौट आया ॥ २२-२४ ॥ मधु और विन्मः युक्त इन्द्रने वह
 पत्र सभामें घेरे हुए देवताओंका सुनाया ॥ २५ ॥ उस पत्रपर लिखा था -- 'ह इन्द्र तुम स्वर्गमें सुखी रहो ।
 मैं सख तुम्हारा स्मरण किया करता हूँ । हाँ, इस समय तुम्हें मग्न अज्ञा दे रहा हूँ । आज एक हजार वर्षके
 भूखे एवं उग्र शोधी दुर्वामा मुनि अपने साठ हजार अच्छे शिष्योंके साथ मेरे यहाँ आये हुए हैं । वे ऐसा भोजन
 चाहते हैं कि जो गो, मणि अथवा आभूषणके द्वारा न बना हो । साथ ही उन्होंने शिवपूजनके लिए ऐसे फूल
 माँगे हैं, जिन्हें अबतक मनुष्यानि न देखा हो । मेने उनका माँग स्वीकार कर ली है । इस समय मैंने उन्हे
 स्नान करनेको भेज दिया है ॥ २६-२८ ॥ इनसे तुम छतपट कल्पवृक्ष और पारिजात, जो कि वायसागरमें
 निकले हैं, क्षणभरमें आदरपूर्वक मेरे पास भेज दो ॥ ३० ॥ देखो, वही राघवका विनाश करनेवाले मेरे
 बाणकी प्रतीक्षा न करने लगना ।' इस प्रकार वह पत्र देवताओंको सुनाकर इन्द्रदेव सुरन्त सबके साथ भोजना
 करके कल्पवृक्ष और पारिजात ले तथा देवताओं समस्त विमानपर चढ़कर अयोध्यापुरीमें जा पहुँचे ॥ ३१ ॥
 ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणने जब यह जाना कि देवराज इन्द्र आ गये हैं तो उनके पास गये और आदरपूर्वक अयोध्यामें
 रामके पास ले आये ॥ ३३ ॥ इन्द्रने पारिजात तथा कल्पवृक्ष रामको अर्पण करके प्रणाम किया । फिर एक

अस्माकं कल्पितं किञ्चिदन्नमस्त्ययवा न वा ।

चितायुक्तोऽस्ति वा तूष्णीं संस्थितोऽप्यत्र किं कृतम् । ३६॥

बहिः सपादितं सर्वं मया यद्यन्न याचितम् । रहः स्थितः शनैर्दृष्ट्वा शीघ्रं त्वं याहि मां पुनः ॥ ३७॥
तथेत्युक्त्वा मुनिं शिष्यः स ययौ राममद्गृहम् । तत्र दृष्ट्वा कल्पवृक्षपारिजातौ सनिर्जरी ॥ ३८॥
सनिर्जरीशं रामं च मुदितं सीतयाऽन्विनम् । ततस्तूष्णीं ययौ शिष्यः परावृण्वन् मुनिं प्रति ॥ ३९॥
कथयामास सकलं यथावृत्तं निरीक्षितम् । तच्छ्रुत्वा शिष्यश्च चनं दुर्वासा विस्मयान्वितः ॥ ४०॥
ययौ शिष्यः परिवृतो विदेशं नृपतेर्गृहम् । तं मुनिं रापवो दृष्ट्वा प्रस्युद्धम्य पुनः सुरैः ॥ ४१॥
नमस्कृत्य मुहुर्वेगाद्दावासनमुत्तमम् । ततो मुनेः पूजनं सः सशिष्यस्य रघूत्तमः ॥ ४२॥
चकार सीतया सार्द्धं लक्ष्मणादिभिरन्वितः । पारिजातप्रसूनानि नैक्षितान्यत्र मानवैः ॥ ४३॥
ददौ शंभोः पूजनार्थं रामो दुर्वाससे तदा । तानि दृष्ट्वा मुनिस्तूष्णीं तैश्चकारेश्वरार्चनम् ॥ ४४॥
ततः सर्वान्मुरार्यपूज्य परिवेषणकर्मणि । चोदयामास श्रीरामो जानकीं लक्ष्मणेन सह ॥ ४५॥
ततः सा जानकी वेगाद्विष्यालकारमण्डिता । कल्पवृक्षपारिजातौ सम्पूज्य नूपुरस्वना ॥ ४६॥
पात्राणि कल्पवृक्षाः स्थापयामास कोटिशः । मीता तं प्रार्थयामास कल्पवृक्षं नगोत्तमम् ॥ ४७॥
क्षीरसागरमभूत् देवानां चिन्तिनप्रदः । दुर्वाससे कल्पवृक्ष सशिष्यायाश्च तोषय ॥ ४८॥
तन्मीतावचने श्रुत्वा हेमरात्राणि कोटिशः । विशाखैः पूरयामास क्षणात्कल्पतरुस्तदा ॥ ४९॥
तैरन्नैर्होमपात्रेषु जानकी परिवेषणम् । क्षणाच्चकार मनुष्यैः क्षुमिलाचंपिकादिभिः ॥ ५०॥
ततस्तुष्टो मुनिर्देवः शिष्यैरशनमादगात् । चकार रघुकीरेण प्रार्थितः स मुहुर्मुहुः ॥ ५१॥
ततः कृत्यः भोजनं हि करमुद्धि विधाय सः । तांबूलं दक्षिणां चापि जग्राह रघुनायकान् ॥ ५२॥

भासनपर जा खंडे ॥ ३४ ॥ उभर सगुणके चिनारेमे दुर्वासाने अपना एक शिष्य भंजा और उससे कह-
"तुम जाकर देखो कि राम इस समय क्या कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ मैंने जो जो बतलाया था, उसमें कुछ अन्न तैयार
है या नहीं । अथवा अभी तक चिन्ता करते हुए पूर्ण ही नुपवास बैठे हैं । ३६ ॥ यदि मेरे आज्ञानुसार काम कर
रहे हैं तो अतक क्या-क्या किया है । मैं जैसा कहा था, वे सब चीज उन्होंने इकट्ठी कर ली या नहीं ।
कहीं शिखर पुष्पाप यह सब देखो और शीघ्र मेरे पास गीट आओ " ॥ ३७ ॥ "अच्छा" कहकर शिष्य राम-
चन्द्रजीके भवनमें जा पहुँचा । वहाँ कल्पवृक्ष, पारिजात, इन्द्र, देवताओंकी मण्डली एवं प्रसन्न राम तथा सीताको
देखकर फिर दुर्वास मुनिक पास लोट गया और जैसा देखा था, सब समाचार कह सुनाया । शिष्यको बात
सुनकर दुर्वासको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३८-४० ॥ रत्नानके बाद शिष्योको साथ लेकर वे रामचन्द्रजीके गुन्दर
मन्तमें पहुँचे । मुनि दुर्वासका देख देवताओंके साथ उठकर रामचन्द्रजीने बड़े आदरके साथ समस्त शिष्यों
समेत मुनिकी प्रणाम किया और बैठनेके लिये उनमें आसन देकर सीता तथा लक्ष्मणादिके साथ उनकी पूजा
की । मनुष्योंने पारिजातके फूल नहीं देखे थे ॥ ४१-४३ ॥ सो उन फूलोंको शिवपूजनके निमित्त मुनिके सामने
रक्ता । दुर्वासाने उन्हें एक बार विरामित नेत्रोंसे देखा और चुपचाप शिव तथा सब देवताओंको पूजन किया
॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने लक्ष्मण और जानकीको भोजन परोसनेकी आज्ञा दी ॥ ४५ ॥ सब दिग्धा
लक्ष्मणोंको स्मरण किये सीताने कल्पवृक्ष और पारिजातका पूजन करके करोड़ों बर्तन लाकर उनके नीचे रख दिया
और इस प्रकार प्रार्थना करने लगी-॥ ४६-४७ ॥ "हे क्षीरसागरसे जायमान तथा देवताओंकी अभिलाषा पूर्ण
करनेवाले कल्पवृक्ष ! आज शिष्यो समस्त दुर्वासको आज सन्तुष्ट कर दजिए" ॥ ४८ ॥ सीताको प्रार्थना सुनकर
लक्ष्मणने कल्पवृक्षने करोड़ों पात्रोंको विविध प्रकारकी भोजनमाधियोंसे भर दिया । उन भोजनोंकी उमिलादि-
के साथ सीताने नृपतेके शत्रुमें परोसा और महर्षि दुर्वास ने प्रसन्न होकर अपने समस्त शिष्योंके सब
रामचन्द्रजीके द्वारा प्रार्थित होनेपर भोजन करना आरम्भ किया ॥ ४९-५१ ॥ भोजन करनेके बाद उन्होंने

ततः सुराणां पुगतो वेदवाक्यैः सविस्तरम् । दुर्वासा राघवं स्तुत्वा तमाह्वानं दनिर्भरः ॥५३॥
 राम गजवपत्राद्यं त्वं साऽऽजगदीश्वरः । अत्र रावणघातार्थमवतीर्णोऽसि वेदम्यहम् ॥५४॥
 जनान्स्वल्पीरुषं हातुं मयैतयाचित्रं तव । विना गोवह्निमग्निमिद्विद्वान्नं रघुनन्दन ॥५५॥
 प्रयुजान्पृथ्वाप्यह्मनि मानवैर्जगतीतले । किं राम दुर्घटं तव यस्य भ्रूमङ्गमावतः ॥५६॥
 लघो ब्रह्मादिकानां च ज्ञायते संभयोऽपि च । मन्दरं मञ्जमानं तु दृष्ट्वा त्वं क्षीरसागरे ॥५७॥
 कूर्मरूपेण जलोर्ध्वं धत्ते तु मन्दराचलम् । निष्कामितानि रत्नानि तदा देवैश्चतुर्दश ॥५८॥
 तव साहाय्यमाश्रेण सर्वं ज्ञानाम्पहं प्रभो । लक्ष्मीः सोमः कामधेनुः कीस्तुमश्च सुधा विषम् ॥५९॥
 ऐरावतश्चाप्सरसः कल्पवृक्षो भिरश्वराः । उच्चैःश्रवाः पारिजातो मुरा ज्येष्ठेति रावणः ॥६०॥
 चतुर्दश सुरत्नानि विभक्तानि पुरा स्वया । देवेभ्यो यानि तान्वेते मोक्षयति कृपया तव ॥६१॥
 त्वदाक्षापात्तनः सर्वे शङ्कराद्याश्च निर्जराः । सर्वपां ज्विनोपायास्त्वया सर्वे पृथक् पृथक् ॥६२॥
 कल्पिता येन रामेण तत्र किं दुर्घटं तव । ममामिलपितं भोज्यं दातुं त्वत्कीतुके मया ॥६३॥
 अद्यावलोकितं राम जनानपि प्रदर्शितम् । त्वं पात्रां सवलोकानां जनकश्चापि धानकृद् ॥६४॥
 अस्माकं गतिदाता त्वं मे धूमस्वापराधितम् । एवं नानाविधं स्तुत्वा तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥६५॥
 राममममन्य दूयामा ययो शिष्यैः स्वमाश्रमम् । अथ तान्निर्जरान्प्राह रामः कनकलोचनः ॥६६॥
 कल्पवृक्षपारिजाती गृहीन्वा गम्यतां दिवम् । तद्रामवचनं धुत्वा चाक्षयतिः प्राह राघवम् ॥६७॥
 यावत्कालं तिष्ठामि त्वं भूम्यां तावन्नगोत्तमो । अयोध्यायां निष्ठुवस्त्वौ कल्पवृक्षसुरद्रुमौ ॥६८॥
 त्वांश्च वैकुण्ठमाशाने दिव्यं नौ यास्यतो भुवः । तथेति तन्मुग्धगुणैः प्रतिनद्यं वचः प्रभुः ॥६९॥

हाय पाया और रामसं तांबूल दीनागा ॥ ५२ ॥ फिर उन देवताओंके सामने ही वेदवाक्यों द्वारा विचारपूर्वक रामचन्द्रजीकी स्तुति की और अजन्तसे गद्गद होकर कहने लगे— ॥ ५३ ॥ हे राम ! हे कमलदल सरोवर नेत्रवाले भगवन् ! मैं जानता हूँ कि तुम सदात्त जगत्पति हो और रावणका विनाश करनेके लिए इस बरातन्त्रपर आये हो ॥ ५४ ॥ समारा जनको तुम्हारा पौछ दिखलानेके लिए हो मैं गोवह्नि और पणियो न सिद्ध हुआ अतः तथा अनुप्यासे अष्ट पृथ्वीपूजनेके निमित्त मगि मे ! हे राम ! तुम्हारे लिए यह कुछ दुर्घट कार्य नहीं है तुम्हारे भ्रूमङ्गमासे ब्रह्मादिक देवताओंका भी विनाश एवं उद्भव होता है जिस समय मन्दराचलकी क्षीरसागरसे तुमने उद्भव दया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तब भूमङ्ग परकर उसे अपर्णः पीछपर उठा लिया था । उस समय एकमात्र तुम्हारे सहायतासे ही देवताओंके क्षीरसागरसे ये चोदह रत्न निकाले थे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ जिनके नाम हैं—लक्ष्मी, सोम, कामधनु, कीस्तुम, सुधा, विष, ऐरावत, अन्तराष्ट्र, कल्पवृक्ष, कल्पन्तरी, उच्चैःश्रवा, पारिजात, मुरा और ज्येष्ठ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ उन चौदह रत्नोंको तुमने चोदह देवताओंका बाँट दिया और तुम्हारा ही कृपासे वे सब आनन्दार्थक इनका उपयोग कर रहे हैं ॥ ६१ ॥ शंकरादिक समस्त देवता तुम्हारी ही आज्ञाका पालन करते हैं । इस जगत्में स्थित सब प्राणियोंके जीवनका उपाय तुम्हीं करते हो ॥ ६२ ॥ तब यदि तुमने हमारे इच्छानुसार आज्ञाकी सामर्थ्यसे धुटा दी तो इसमें कोई आश्चर्यका बात नहीं है । यह तो मुझ इन साधारण भेणाके मनुष्यको तुम्हारा कीटुक दिखाना था, सो दिखा दिया ॥ ६३ ॥ हे राम ! तुम्हें समस्त लोकोर रक्षक, अष्ट तथा संसारक नाशक ही ॥ ६४ ॥ तुम्हीं हमारे गतिदाता हो । मुझसे जो कुछ बात हुई हो, सो समा कर दो । इस तरह गंगा प्रकारके वाक्यों द्वारा स्तुति करके दुर्वासेन बारम्बार प्रणाम किया और रामचन्द्रजीकी आज्ञा लेकर सब शिष्योंको साथ लिये हुए अपने आश्रमकी ओर चले दिये । इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने उन देवताओंसे कहा—कल्पवृक्ष और पारिजातको लेकर अब आप लोग भी अपने लोकका जाते जायें । इस प्रकार रामकी बात सुनकर देवगुरु नृदस्वपति कहने लगे— ॥ ६५-६७ ॥ "जबतक आप भूमण्डलमें रहेंगे, जबतक कल्पवृक्ष तथा पारिजात ये दोनों भी इस अयोध्यामें ही रहेंगे ॥ ६८ ॥ जब आप अपने वैकुण्ठ लोककी जाने लगेंगे, तब ये भी आपके साथ चले

पुष्पके स्थापयामास कल्पवृक्षसुरद्रुमौ । ततस्ते राघवं नत्वा ययुरिन्द्रादिकाः सुराः ॥७०॥
 स्वर्गलोकं सुसंतुष्टा राघवेणातिपूजिताः । एवं प्राप्नो कल्पवृक्षपरिजातौ सुत्रं दिवः ॥७१॥
 तयोरेतत्कारणं ते प्रोक्तं पृष्टं यथा त्वया । तदारभ्य सुरतरु पुष्पकस्यौ विरेजतुः ॥७२॥
 साकेते सीतया रामस्ताम्यां सुखमवाप सः । कल्पवृक्षतले दिव्यपर्यङ्के सीतया सह ॥७३॥
 नानाभोगात्रायचन्द्रः स बुभुज विर सुखम् । अतः पूर्वं मया रामव्यान कल्पतरोः स्थले ॥७४॥
 सहस्रनामसकेते प्रोक्तं शिष्य तवाग्रतः । तदारभ्य परिजातवृक्षांश्चाः शतशो भुवि ॥७५॥
 पारिजातनगा जाता वर्तन्तेऽद्यापि तेऽत्र हि । नानेन सदृशं पुष्पं वर्तते रामनोपदम् ॥७६॥
 कल्पवृक्षांशरूपाश्च ज्ञातव्यास्तत्र - मानवैः । अश्वत्थाः सेवनाद्यैश्च सर्वत्राहितदायकाः ॥७७॥
 पुण्याधिक्येन सेवन्ते नोपेक्षते युगत्रये । बायाधिक्येनापि सेवां नरा वाञ्छति नो कली ॥७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विंदाहकाण्डे

चम्पिकास्ववरो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(रामोपासक तथा कृष्णोपासकका पत्स्वर मधुर विवाद)

विष्णुदास उवाच

रामदास गुरो भूम्पां रामकृष्णौ परौ भुनौ । मया दशावतारेषु ज्ञातवानुमौ पुरा ॥ १ ॥
 तयोरपि च कः श्रेष्ठस्तत्त्वं वद ममाग्रतः । य भुत्वा सर्वदा तस्य श्रोष्येऽहं चरितं शुभम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं विष्णुदास सावधानमनाः शृणु । रामावतारः श्रेष्ठोऽत्र विशेषः सर्वदा नरैः ॥ ३ ॥
 अस्मिन्नर्थे पूर्ववृत्तां कथां शृणु मनोहराम् । द्विजाम्यां वादरूपेण कीर्तितां पुण्यदायिकाम् ॥ ४ ॥

आदिने । रामने सुरगुरु बृहस्पतिकी बात स्वीकार कर लो ॥ ६९ ॥ देवताअग्नि उन दोनोंको पुष्पक विमानमें रखकर भगवान्की प्रणम्य किया और राम द्वारा पूजित हाकर सब अपन अपने लोकको बल गये ॥ ७० ॥ इस प्रकार कल्पवृक्ष और पारिजात स्वर्गसे मृत्युलोकमें आय उनके आनेका जो कारण था, वह तुम्हारे प्रश्नानुसार मैंने कह सुनाया । तभीसे दोनों सुरतरु पुष्पकमें विराजमान रहे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ अगोप्यासे सीताके साथ रामचन्द्रजी उन्ही वृक्षोंके नीचे दिव्य पर्यङ्क ऊपर विहार करते हुए विविध प्रकारके सुखोंको भोगते थे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ इसीलिए मैंने रामसहस्रनामका कथन करते समय कल्पवृक्षके नीचे रामका ध्यान करनेको कहा था । तभीसे पारिजातके संकड़ों अंश पृथगतलमें उत्पन्न हुए और वे आज भी इस परतीतलमें विद्यमान हैं । इसके समान रामचन्द्रका प्रसन्न करनेवाला कोई दूसरा फूल नहीं है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ कल्पवृक्षके अंशसे पीपल वृक्षकी भी उत्पत्ति हुई है । उसकी आराधना करनेसे सब प्रकारका कामना पूर्ण होती है ॥ ७७ ॥ अन्य युगोंमें पुण्य अविक था । इस कारण लोग पीपलके वृक्षकी आराधना करते थे । किन्तु कलियुगमें पापकी अधिकता होनेके कारण लोग उसका पूजन नहीं करना चाहते । ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे १० रामतेजपाण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना'प्रपाठाकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! भगवान्के दस अवतारोंमें रामकृष्ण दो अवतार श्रेष्ठ माने जाते हैं । यह मैंने पहले कई बार सुना है ॥ १ ॥ अब आप हमको यह बतलाइए कि इन दोनों अर्थों राम और कृष्णमें कौन बड़ा है । जिसको आप श्रेष्ठ बतलायेंगे, मैं सर्वदा उसका चरित्र सुना करूँगा ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे विष्णुदास ! तुमने ठीक प्रश्न किया है । सावधान मन होकर सुनो । इन दोनों अवतारोंमें मनुष्यकी श्रेष्ठता अवतार ही श्रेष्ठ समझना चाहिए ॥ ३ ॥ इसके लिए एक मनोहर कथा आपसमें दो ब्राह्मणोंके

अयोध्याविषये कथिद्विजो रामाह्वयस्त्वभूत् । द्वारकायां तथा विप्रः कृष्णारूपोऽभूत्परः सुधीः ॥५॥
चक्रतुः संयत्नं चोभी सर्वदा रामकृष्णयोः । तादेकदा माघमासे प्रयागे मिलितौ द्विजौ ॥ ६ ॥
उभौ स्नात्वा त्रिवेण्यां हि माघत्रयं परिपूज्य च । कथां पौराणिकमुवाच द्रोणं तत्पुराः स्थितौ ॥ ७ ॥
सुश्रुतुः कथं तत्र प्रसंगाद्वाचकस्य च । रामारूपो रामभक्तः स भूत्वा राघवमन्त्रकथाम् ॥ ८ ॥
तुष्टस्त्वं पूजयामास मुदा पौराणिकं तदा । कृष्णारूपः क्रोधसंयुक्तस्तदा वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

(कं क्लेशिनोऽद्य रामस्य कथां श्रुत्वाऽतिह्वितः ।

पूजितोऽपि कृत्वा व्यासस्त्वं षडोऽर्मानि वेश्यहम् ॥१०॥

नान्यच्चरित्रं कस्यापि पावनं ध्रुवितोऽयम् । यथा कृष्णस्य मे रम्यं नामाक्रोडापुरःसरम् ॥११॥
तत्कृष्णवचनं श्रुत्वा रामारूपः प्राह सस्मिन् ।

रामोपासक उवाच

रामः क्लेशो कथं प्रोक्तस्त्वया कृष्णः कथं सुखी ॥१२॥

कथं कृष्णस्य ते रम्यं चरित्रं दृष्टितपहम् । कथं रामस्य मे रम्यं चरित्रं नेरितं त्वया ॥१३॥
वदाद्य विस्तरेणैव शृण्वन्वेते सभासदः ।

कृष्णोपासक उवाच

रम्यं कृष्टं त्वया राम सावधानमनाः शृणु ॥१४॥

वदामि राघवस्याथ कृष्णस्य चरित्रं त्वहम् । क्लेशद तोषदं तया शृण्वन्वेते सभासदः ॥१५॥
तत्र रामस्य जन्मादौ जानः शाश्वतः पितुः पुरा । शत्रुत्यादावपि पूरा तद्धेतो राघवेन हि ॥१६॥
लंकां तत्पितरौ नीतौ शरमे दुःखमीदृशम् । मम कृष्णस्य जन्मादौ तत्पित्रोः सौख्यदायकैः ॥१७॥
विवाहमंगलैः कंसः पूजयामास सादरम् ।

विवादरूपमें कहो गयी थी । वह कथा परम पुण्यवायिका है, उसे सुनो ॥ ४ ॥ एक समय अय ज्ञानि राम नामका एक ब्राह्मण रहा भरला था । उस तरह द्वारकापुरीमें कृष्ण नामका विद्वान् विप्र रहता था ॥ ५ ॥ वे दोनों सदा रात और कृष्णकी उपासना किया कर रहे । एक समय माघ मं नभ त्रिवेणीके तटपर उन दोनोंको भेट हुई ॥ ६ ॥ उन्होंने त्रिवेणीमें स्नान किया और वेणोमाघत्रयकी पूजा करके हिंसा करके एक पौराणिकके पास कथा सुननेकी इच्छासे जा बैठे ॥ ७ ॥ दोनों कथा सुन रहे थे । उनमें कहें रामका प्रसंग आ गया । उसे सुनकर वह राम नामवाला ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और हर्षपूर्वक पौराणिकका भक्त्य भक्ति पूजा की । इसने कृष्ण नामवाला ब्राह्मण मारे गोवक लाल हो गया और कहने लगा—जगत्की कष्ट देनेवाले रामकी कथा सुननेसे तुम्हें क्या लाभ हुआ, जो तुम इतने प्रसन्न हो और तुमने स्वयंकी ऐसी पूजा की । मेरी समझमें तो यही आता है कि तुम बड़े मूर्ख हो ॥ ८-१० ॥ मुझ से और कितना चरित्र इतना सुन्दर नहीं लगता, जितना श्रीकृष्णका । क्योंकि उस चरित्रमें त्रिविध प्रकारकी लीलाएँ भरी हुई हैं ॥ ११ ॥ कृष्ण नामक कृष्णकी यह बात सुनकर रामोपासक मुसकाता हुआ कहने लगा कि तुमने रामचन्द्रकी कंस दुःखी बतलाया और कृष्णकी सुखी ॥ १२ ॥ तुमने कृष्णचरित्रको कंस पापनाशक बतलाया और रामचन्द्रजीका नाम लेना भी पसन्द नहीं किया । तुम इसे विस्तारपूर्वक कहो । जिससे ये सभासद भी सुनें । कृष्णोपासकन कहान्हे राम ! तुमने बहुत बौद्ध प्रश्न किया है । वह सावधान होकर सुनो ॥ १३ ॥ १४ ॥ मैं रामचन्द्र तथा कृष्णचन्द्र इन दोनोंका चरित्र सुनाया हूँ । उनमें रामचरित्र कंस क्लेशप्रद और कृष्णचरित्र कितना सुखकर है, सो सब सभासद सुनते आये ॥ १५ ॥ तुम्हारे रामके अन्धके पहले ही उनके पिताको अन्धके पिताका रूप मिल चुका था । उसके भी पहले उनके माता-पिताको अन्धण अपनी लंकासे उठा ले गया था । इस प्रकार रामके जन्मके पहले उनके माता-पिताको

रामोपासक उवाच

रे रे मृगु त्वं दुर्वृद्धे न स शङ्गे वरोऽर्पितः ॥१८॥

यत्प्रसादादपुत्रस्य मृतस्य तनयस्त्वभूत् । तथा मद्राममीन्या तौ नीतावपि विसर्जितौ ॥१९॥
 दशास्थेन तत्पितरौ जन्मादौ पौरुषं निदम् । तव कृष्णस्य जन्मादौ पित्रोः कारागृहस्थितिः ॥२०॥
 राजभोगनिषेधार्थं शपो यदुकुलाय च । जन्मापि त्रदिशालायां वियोगश्च तयोरपि ॥२१॥
 सहोदरवधश्चापि उद्धवोर्मार्तुलेन हि । न बाह्वुजश्च वैश्यश्च यस्य ताताबुभौ स्मृतौ ॥२२॥
 गोरक्षकस्य तनयः प्रवासः शैशवंऽपि च ।

परेण वोपितश्चापि कनीयान् बलभद्रतः । एवं नानाविध दुःखं तव कृष्णस्य नो सुखम् ॥२३॥

कृष्णोपासक उवाच

आत्मार्थं तव रामेण ताटिका स्त्री विदारिता । नार्थं विमोचितो बाणः पित्रोः खेदो वियोगतः ॥२४॥

रामोपासक उवाच

द्विजघ्ना निहता दृष्टा मम रामेण ताटिका । मुनियज्ञाक्षणार्थं मुदा राहाऽर्पितौ शिशू ॥२५॥
 तव कृष्णेन रक्षार्थमात्मनः पूतना हता । तथाऽऽन्मार्थं प्राणिहिंसा बहु तेन कृता व्रजे ॥२६॥
 गोपैश्च सङ्गतिस्तस्य तथैव गोशरणम् । गोवधः सर्पघातश्च स्वगन्ताजिवधस्तथा ॥२७॥
 रामभयवृषघातश्च चौर्यं घ्नन् वनेऽटनम् । कंबलावरणं शोऽपजन्वोष्णप्रपीडनम् ॥२८॥
 चुत्तद्भ्यां पीडनं निन्यग्गोपालोच्छिष्टसेवनम् । आत्मार्थं याचितं चाक्षं द्विजस्त्रीभ्यो वने मुदुः ॥२९॥
 इन्द्रध्वजपूजनादिवृद्धाचारप्रलोपनम् । परस्त्रीगमनं ज्येष्ठनारीभिः क्रीडनं चिरम् ॥३०॥

कितना क्लेश हुआ । इसके विपरीत हमारे कृष्णके जन्मके पहले कंसने उनके माता-पिताको वैशाखि तया मङ्गलमयी सामप्रदोस पूजा की थी । रामोपासकने कहा—अरे दुर्वृद्ध ! वह रामचन्द्रके पिताको साथ नहीं, बल्कि वरदान मिला था । जिसके प्रसादस्वरूप निपुण महाराज दशरथके घरमें रामचन्द्रादि चारों माहयोधों जन्म हुआ और हमारे रामचन्द्रजोंके हृत्से ही रावण उनके माता-पिताको ले जाकर भी व्योम्हामे लौटा गया था ॥ १६-१९ ॥ जन्मके पहले ही मेरे रामचन्द्रजोंमें इतना पौरुष था । तुम्हारे कृष्णके जन्मके प्रथम ही उनके माता-पिता कारागारमें बन्द थे । दूसरे यदुकुलको राजभोगनिषेधके निमित्त पहले ही शप प्राप्त हो चुका था । उनका जन्म भी हुआ तो जेलखानमें और वही यादी ही देरमें माता-पितासे वियोग हो गया । कृष्णके कितने ही सगे भाई मामाके द्वारा पहले ही मार डाले गये । उनको जो कृत्रिम माता-पिता मिले भी, वे न तो क्षत्रिय थे और न वैश्य ॥ २०-२२ ॥ तुम्हारे कृष्ण एक ग्वासेके लड़के बने । इस प्रकार वे गंशयास्यामें ही प्रवास्य हो गये । औरतों उनका रक्षा की और तुम्हारे कृष्ण बलरामसे छोटे थे । इसीलिए कृष्णको अनेक प्रकार का दुःख मिला, मार बूझ भी नहीं ॥ २३ ॥ कृष्णोपासक बोला—अपनी रक्षा करनेके लिए तुम्हारे रामन ताडुका नामवाली एक स्त्रीका वध किया और रामके वियोगसे उनके माता-पिताको महान् क्लेश हुआ ॥ २४ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामन बाह्याणोंको हत्या करनेवाली स्त्री ताडुकाको मारा था और द्विजघ्ना के यज्ञरक्षाके लिए उन्हें पिता दशरथने प्रसन्नतापूर्वक मुनिके साथ भेजा था ॥ २५ ॥ किन्तु तुम्हारे कृष्णने पूतनाको मारा था । इसी प्रकार उन्होंने आत्मरक्षाके लिए वज्रसे और भी बहुत-सी प्राणिहिंसाएँ की थी ॥ २६ ॥ गोप-गालोंका साथ था और वे गोपोंकी ही रक्षा करते थे । उन्होंने गौ (धनुकासुर), पत्नी (वकासुर), धात्रि (केसो), राक्षस तथा वृष आदिको मारा, चोरी की, जुमा खेले और वनोंमें इधर-उधर घूमते रहें । सीत बर्षा तथा आतपसे बचनेके लिए अपने ऊपर केवल एक कम्बल डाले रहते थे ॥ २६-२८ ॥ भूख-प्याससे दुर्बल होकर ग्वालोंका नृत्न खाते थे । अपने लिए उन्होंने वनमें बाह्याणोंकी स्त्रियोंसे बार-बार ब्रह्म माँगा ॥ २९ ॥ इन्द्रध्वज-पूजन आदि वृद्धोंको कुलपरम्परासे चलनेवाली प्रथाका उन्होंने लोप किया । वे परस्त्रियोंके साथ घूमते

नग्नस्त्रीदर्शनं बहिःप्राशनं दामवन्धनम् । उन्मूलनं च यमयोर्मृत्युर्धुपितसेवनम् ॥३१॥
 रोदनं नवनीतार्थं मुहुर्मात्रा प्रताडनम् । गोगोपिकासु चास्नेहः पूर्वस्थलविसर्जनम् ॥३२॥
 कृता रजकहत्या च युद्धं सत्रियवत् कृतम् । राजहत्या मल्लहत्या युद्धं मातुलमर्दनम् ॥३३॥
 नैऋत्यभासवर्गेषु राज्यप्राप्तिस्तथैव च । नृपाज्ञावर्तनं चापि क्रीडा दास्या कुरूपया ॥३४॥
 युद्धात्पराजयश्चापि रिपवे पृष्टदर्शनम् । गिरौ दग्धः परैर्ज्ञातः स्वोयस्थलत्रिमोचनम् ॥३५॥
 अग्धितारनिवासश्च बलात्स्त्रीहरणं कृतम् । भीमासुरपरद्रव्यहरणं परस्त्रुतः ॥३६॥
 स्वीयगोत्रवधार्थं हि पांडुजायोपदेशितम् । ज्ञानैः स्तेषावरोपाश्च वृधार्थं सक्तरः सुरैः ॥३७॥

कृष्णोपासक उवाच

किं न्वं जल्पसि शृण्वद्य तव रामस्य कामिनः । कस्य सा दुहिता ब्रूहि कृतः स वर्णमङ्कुरः ॥३८॥
 शिवचापस्य भंगेन शिवस्याप्यपराधितम् । जामदग्न्यमानमङ्गकरणं मुद्गलस्य च ॥३९॥
 आज्ञां विना लक्ष्मणेन तद्रत्नस्रोतिताः शुभाः । सदारण्यचरः स्वार्थं पशुर्हिसापरायणः ॥४०॥
 वनाश्रमी वन्यजीवी मांसाहारी धनुर्धरः । व्याधकर्मगतः शीतपर्जन्योष्णप्रपीडितः ॥४१॥
 पादगामी चर्मवासा जटावल्कलवान्मखी । श्मश्रुधारी तरुज्ज्वालाश्रयी पात्रविवर्जितः ॥४२॥
 राक्षसेन हता पत्नी तव रामस्य कामने । पत्न्यर्थं हि कृतः शोकस्तथा दास्या प्रयुजितः ॥४३॥

रामोपासक उवाच

रामेण मोचिता पत्नी कृता छायामयी पुरा । न सा दासी तु शबरी मुनिसेवनतत्परा ॥४४॥

और अपनेसे बड़ी स्त्रियोंके साथ खेलते फिरते थे । वे नङ्गी नारियोंको देखते थे । उन्होंने मिट्टी खायी और किसने ही बार तो लोगके जूठन तक खाये थे । रस्सोसे बाँधे गये तो समल-अर्जुन नामक दो वृक्षोंको उखाड़ डाला ॥ ३० ॥ ३१ ॥ घोटोंसे माखनके लिए राने लगते थे और माता यश दाके द्वारा बार बार पीटे भी गये । अन्तमें अपनेसे अतिशय प्रेम रखनेवाली गोपिकाओंके प्रति निठुराई करके उस पवित्र वृजधामको छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ मथुरामें रजककी हत्या की और (खाले हाकर) दात्रियोंके समान युद्ध किया । उन्होंने गजहत्या और मल्लहत्या करके मामाकी भी हत्या की ॥ ३३ ॥ अपनेके साथ निठुराई करके उन्होंने राज पाया । फिर भी एक दूसरे राजाकी आज्ञामें बँधकर रहे । बादमें एक कुरूप द सीके साथ क्रीड़ा की ॥ ३४ ॥ युद्ध हुआ तो उसमें पराजित होकर शत्रुको पीठ दिखायी और पर्वतपर जाकर छिपे । शत्रुओंने अपनी समझसे उन्हें जला ही दिया था । फिर अपने स्थान मथुराकी छोड़कर समुद्रके किनारे जाकर रहने लगे । वहाँ भी बरबस बहुतेरी स्त्रियोंका हरण किया । भीमासुरके द्वयोको उन्होंने चुराया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अपने माइयों तथा वृद्धस्त्रियोंको मारनेके लिए पाण्डवोंको उपदेश दिया । लोगोंमें उन्हें स्वयन्तक मणिकी चोरी लगायी । एक वृक्षके लिए उन्होंने श्वेताश्वोंके साथ सग्राम किया ॥ ३७ ॥ कृष्णोपासक बोला—क्या व्यर्थ बकवास करते हो, सुनो । आज मैं तुम्हारे कामी रामकी करनी तुम्हें सुनाता हूँ । बताओ, जिसको उन्होंने अपनी भार्या बनायी थी, वह वर्णसंकर कन्या थी या नहीं ? ॥ ३८ ॥ शिवजीका धनुष तोड़ करके शिवका अपराध किया । परशुरामका शान भङ्ग किया । मुद्गलकी आज्ञाके बिना ही लक्ष्मण द्वारा उन्होंने लतायें तोड़ मंगवाई । जङ्गलमें इधर-उधर घूमते हुए पेट भरनेके लिए पशुहिंसा करते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ बहुत दिनों तक वनमें आश्रम बनाकर रहे । वनके फल-मूल तथा मांस खाते और धनुष धारण किये बहेलियाका काम करते रहे । सर्वदा बेचारे शीत-आतप तथा मेहके सताये रहते थे ॥ ४१ ॥ पैदल चलते, चमड़ा पहिनते, बड़े-बड़े नख तथा जटा-बल्कल धारण किये रहते थे । बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछ रखाये पेड़ोंकी छायामें रहकर समय बिताते थे । उनके पास एक पात्र भी नहीं रहता था कि जिसमें खा-पी सकें ॥ ४२ ॥ वनमें उनकी स्त्रीको एक राक्षस चुरा ले गया । उसके लिए विविध प्रकारका विलाप करते रहे और उनकी पूजा एक दासी शबरीने की ॥ ४३ ॥ रामोपासकने

जीवन्मुक्ता वत्कृपया मोक्षमाय सुविप्रता । तव कृष्णस्य ताः पत्नीर्भक्षयंत्यद्यापि कृपवः ॥४५॥
जित्वाऽर्जुनं वशादेव हताः पूर्वं सहस्रशः । स्त्रांसि त्वं विद्या दत्तः क्रयकोनश्च नारदात् ॥४६॥
सर्वास्तौ कामपर्ययं निशि निद्राविर्वाजितः । बंधुर्मां गोपिका भुक्ता मातृदुन्या ग्योधिकाः ॥४७॥

कृष्णोपासक उवाच

बधुना तव रामश्च पशुभीत्या न निद्रितः । बंधुपन्न्यपिंता शारा सुग्रीवस्य यथासुखम् ॥४८॥
वानरैश्च कृता मैत्री स्पर्शितं दुन्दुभेः श्वम् । निरर्थकं हतो बाली माहाय्यं वानरैः कृतम् ॥४९॥
वानरो यस्य वै यानं ब्रूया ताता त्रिदारिताः । सागरो रोधितो येन लङ्का सा ज्वानिता वरा ॥५०॥

रामोपासक उवाच

हरिद्रेण सुदाम्ना ते कृष्णेन मैत्रिकी कृता । न ज्ञेया वानरास्तेऽपि सर्वे देवांशरूपिणः ॥५१॥
कापट्येन हतो येन चरासंधो निरर्थकः । साहाय्यं सर्वदा यस्य कृतं गोपैर्व्रजे वने ॥५२॥
गोपालस्य कृतं यानं क्रीडनं सर्वदा वने । ज्वालिता येन सा काशी सहद्रुकमो विरूपितः ॥५३॥
शिवभक्तेन समरः कृतो बाणेन सादरम् । शिवेनापि कृतं युद्धं चैवं न निद्रितो मुहुः ॥५४॥
परैः पौत्रौ द्वितौ यस्य येन छोणां परस्परम् । कृता विप्रता चात्र पारिजातार्पणादिभिः ॥५५॥

कृष्णोपासक उवाच

तवापि रामपुत्रेण सुदृढदो रणे जितः । शिवभक्तदशास्येन रामेण समरः कृतः ॥५६॥
द्विजहत्या कृता येन धुनिना निद्रितोऽपि यः । तथा मित्रं जितो यस्य बंधुजेन विभीषणः ॥५७॥
परमेष्ठिपता पत्नी पुनर्वेनाधिता सुखम् । नेष्टुपं च कृतं पत्न्या स्त्रोणां कामा न पूरिताः ॥५८॥

कहा—हमारे रामने अपनी छायामयी पत्नीको राक्षसके हाथसे छुड़ाया था । जिसको तुम दासी कह रहे हो, वह दासी नहीं, बल्कि मुनियोंकी सेवामें तत्पर बहरी थी ॥ ४४ ॥ रामचन्द्रजीकी कृपासे वह जीवन्मुक्त हो गयी और उसे मोक्ष मिल गया । किन्तु तुम्हारे कृष्णकी पत्नियोंकी आज भी उनके शत्रुगण शोक एवं हैं ॥ ४५ ॥ कृष्णकी हजारों स्त्रियोंकी भ्रज्जसे दण्डुलोग छीन ले गये थे । कृष्ण पूरे दर्शन थे । उनकी एक स्त्रीने तो उन्हें दान दे दिया था और बादमें उसी सत्यचामनि नारदसे उन्हें खरीदा ॥ ४६ ॥ सब स्त्रियोंकी कामपूर्तिके लिए उन्हें रात रात भर बलगना पड़ना पड़ा । दोनों भाइयोंने उन बड़ी स्त्रियोंके साथ ब्रीडा की थी, जो माताके समान थी ॥ ४७ ॥ कृष्णोपासकने कहा—तुम्हारे राम पशुओंके क्लेशसे रात रात भर जागा करते थे । बड़े भाईकी हठी साक्षात् रामने बड़ी हँसी खुसोके साथ सुग्रीवको दे दी थी । वानरोंके साथ उन्होंने मैत्री की और दुन्दुभी नामक राक्षसके शवका स्पर्श किया । बालि देवारेको बिना किसी अपराधके मार डाला । वानरोंने उनकी सहायता की ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ वानर ही उनकी सवारीका काम देते थे । बिना किसी प्रयोजनके उन्होंने रात रात गृध्रोंको काटकर पिरा दिया । सागरमें पुल बनाया और सोनकी सुन्दर लङ्कापुरी जलवा दी ॥ ५० ॥ रामोपासक बोला—तुम्हारे कृष्णने एक वर्षभर शाहूण सुदामाके साथ मित्रता की थी । जिन्हें तुम वानर कह रहे हो, वे वानर नहीं, बल्कि वानरका शरीर धारण करके सब देवता रामकी सेवाको बाधे थे ॥ ५१ ॥ तुम्हारे कृष्णने कपट करके व्ययं जरासन्धका बध करवाया था । वनमें सदा गोपगण उनकी सहायता करते रहते थे ॥ ५२ ॥ उन्होंने गोपोंको अपनी सवारी बनायी और सदा वनमें इधर-उधर खेलते रहे । उन्होंने काशी नगरोंकी जलवा डाली और अपने सगे साने हस्तीको कुहव कर दिया ॥ ५३ ॥ शिवभक्त बाणाशुरके साथ उन्होंने युद्ध किया और स्वयं शिवकी भी उनके साथ युद्ध करना पड़ा । शिशुपालने उनकी खूब निन्दा की ॥ ५४ ॥ शत्रुओंने उनके पौत्रको जीतकर अपने भजने कर लिया और पारिजातादिको देते समय अपनी स्त्रियोंमें भी उन्होंने भेदभाव किया ॥ ५५ ॥ कृष्णोपासकने कहा—तुम्हारे रामके बेटों भी तो अपने सख्त, बाँध लिया और रामने शिवभक्त रावणके साथ युद्ध किया था ॥ ५६ ॥ उन्होंने ब्रह्महत्या तक कर डाली और मुनि जगस्थने उनकी बन्धी तरह निन्दा की । अपना काम बननेके लिए रामन रावणके भाई विभीषणकी कोढ़कर मित्र

यानारुढा कृता यात्रा वेश्याः स्पृष्टास्तथा रहः । पतिव्रतायां सीतायां दोषारोपः कृतोऽपि च ॥६९॥
पुत्रं हंतुं कृता चाद्या शूद्रसिंहवधौ कृतौ । पत्नीसक्ताऽऽश्रिता येन यस्याज्ञा पालिता नृपैः ॥६०॥

रामोपासक उवाच

अते कृष्णस्य ते शापादंशच्छेदो बभूवुर्द्विज । अन्धिना लोपिता यस्य नगरी द्वारका शुभा ॥६१॥
स्वगोत्रस्य वधस्त्वन्ते मद्यपानादि यत्कुले । दर्शनं हर्जुनायान्ते येन मित्राय नार्पितम् ॥६२॥
स्वस्यानं गमनं येन कृतमेकाकिना तथा । स क्षतोऽपि कृतस्त्वन्ते व्याघ्रेनान्पेन पत्रिणा ॥६३॥

कृष्णोपासक उवाच

तव रामेण समरः पुत्रेणापि कृतो महान् । तथा सीता मया त्यक्ता चेति लोकं प्रतार्य च ॥६४॥
बाल्मीकेराधमं गत्वा दृष्टौ सीतासुतौ रहः । पिण्याकेन तथेक्षुया पिडदानादिकं कृतम् ॥६५॥
दंडके तव रामेण स्वपित्रे भ्रमताऽर्पितम् । तथैरावणमुक्तायाः स्पृष्टः स मञ्चका स्थले ॥६६॥
तपाऽश्नत्यच्छेदनार्थं महान् यतः कृतो मुहुः । स्वमित्रिणश्च शेषायुःपूर्त्यर्थं सङ्गरोऽपि च ॥६७॥
कारितो यमराजेन पूर्वजेन लवादिभिः । पुष्पास्वादनमात्रादिपत्न्याः सिद्धा तथा कृता ॥६८॥
मम कृष्णेन बालत्वे लीलया पूतना हता । हतास्त्रुणामुराद्याश्च धृतोऽङ्गुल्या गिरिस्तथा ॥६९॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण बालत्वे लीलया शट्टिका हता । मारीचाद्या हताश्चापि पर्वतास्तारिता जले ॥७०॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णस्वरूपेण गोपिका मोहिता मजे । मोहिता राधिका श्रेष्ठा मदनस्यापि मोहिनी ॥७१॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण देवानां मोहिताः स्वीयरूपतः । देवपत्न्यो रदो रात्रौ मातृतुन्या विचित्रिताः ॥७२॥

बनाया ॥ ५७ ॥ दूसरेके घरमें रहो हुई स्त्रीको लाकर घरमें रख लिया । फिर उसी स्त्रीके साथ निठुराई की । बहुत-सी स्त्रियाँ कामयाबचाके लिये पहुँचीं, किन्तु उनकी कामना उन्होंने पूर्ण नहीं की ॥ ५८ ॥ सवारोपर चलकर तीर्ययात्रा की । एकान्तमें वेश्यागमन करके पतिव्रता सोतापर झूठझूठा दोषारोप किया ॥ ५९ ॥ उन्होंने अपने पुत्र लख तकको मारनेकी आज्ञा दे दी और शम्बुक शूद्र तथा सिंहका वध किया । ६० । रामोपासकने कहा—हे द्विज ! अन्तमें तुम्हारे कृष्णका ब्राह्मणके शापसे वध नष्ट हुआ था । उनकी द्वारिका-पुरीको समुद्रने लय कर लिया ॥ ६१ ॥ उन्होंने मद्यपान करवाकर अपने वृद्धमित्रोंका वध किया । अन्तिम समयमें अपने अतिप्रिय मित्र अर्जुनको भी दर्शन नहीं दिया ॥ ६२ ॥ उन्होंने अकेले ही यहूति गोलोककी यात्रा की । एक बहेलियेके साधारण बाण द्वारा उन्होंने अपना अन्त किया ॥ ६३ ॥ कृष्णोपासक बोला—तुम्हारे रामने अपने पुत्रके साथ महान् संग्राम किया था । “मैंने सीताका परित्याग कर दिया है” ऐसा संसारको दिखलाते हुए भी बाल्मीकिके आश्रमपर आकर भुपकेसे सीताको और अपने बेटेको देख आये । पिण्याक और इंगुदीके फलसे अपने पिताको पिण्डदान दिया ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ जब दण्डकारण्यमें इधर-उधर धूम रहे थे, सब भी इन्हीं फलोसे पिताका श्राद्ध किया था । ऐरावत द्वारा भीगे हुए मंचको उठाकर पृथ्वीतलमें ले आये ॥ ६६ ॥ अशक्तकाटनेके अपराधपर रामने एक महायज्ञ किया । मन्त्रियोंको शेष आयुकी पत्तिके निमित्त अपने बड़े बेटेको यमराजसे छड़ा दिया और केवल फूल सौंघ लेनेसे स्त्रियोंको भी उन्होंने दण्ड दिया ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ हमारे कृष्णने बाल्यकालमें खेल-खेलमें ही पूतनाको मार डाला । वृणासुर आदि देवोंको मारकर गोवर्धन गिरिको उँगलियोंपर उठा लिया ॥ ६९ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने बाल्यकालके समय खेल-खेलमें साहका तथा मारीचादि किसने ही राजसोंको मार डाला और पानीमें पत्थर तैराया ॥ ७० ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे प्रभु कृष्णने अपने सुन्दर रूपसे

ताः कृतार्थाः स्ववराद्यतो जातास्तु गोपिकाः । तांबूलोच्छिष्टस्वरसं दासी रामस्य भक्तितः ॥७३॥
पीत्वा यस्यैव वरतो व्रजे सा राधिका ह्यभूत् । अतो मे सपत्नो धन्यो यस्यैका दयिताऽत्र हि ॥७४॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन पत्न्यश्च सहस्राणि हि षोडश । साष्टोचरशतान्यत्रोद्वाहिताश्च विधानतः ॥७५॥

रामोपासक उवाच

मम रामस्वरूपेण सर्वास्ता मोहिताः स्त्रियः । मातृवन्मोहितास्तेन वीरेण पुरुषार्थिना ॥७६॥
कृष्णेन रत्तिकामेन मोहिता गोपिकाः स्त्रियः ।

* कृष्णोपासक उवाच

गजेन्द्रो मम कृष्णेन लीलया निहतो द्विज ॥७७॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण नागेंद्रस्त्रिपुरस्थापदो हतः ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापेन यमुना खंडिता त्वभूत् ॥७८॥

रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापेन खंडिता जाह्नवी त्वभूत् ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन वै स्वर्गादानीतः सुरपादपः ॥७९॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण स्वर्गादानीतो सुरपादपौ ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन स्वगुरोर्मातुश्चापि सुता मृताः ॥८०॥

सुजीविताः समानीताः सप्त राभ्यां निवेदिताः ।

व्रजकी समस्त गोपियोंको मोहित कर लिया और रावानामवाली उस सुन्दरीको मुग्ध कर लिया था, जो अपने असाधारण सौन्दर्यसे कामदेवकी भी लजाती थी ॥ ७३ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने अपने सौन्दर्यसे देवपत्नियोंको मोहित किया था । वे सब रात्रिके समय एकांतमें रामके पास पहुँचीं । किन्तु उन्हें रामने अपनी माताके समान माना और वरदान देकर कृतार्थ किया । वे ही जन्मान्तरमें गोपिकायें हुई । उस समय रामचन्द्रके मुखसे ताम्बूलके निकाले हुए पोंगको पीनेवाली दासी दूसरे जन्ममें राधा हुई । इससे मेरे रामचन्द्र धन्य हैं । क्योंकि वे एकपत्नीव्रतधारी हैं ॥ ७४-७५ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णचन्द्रजीने सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियोंके साथ विविध विवाह किया था ॥ ७६ ॥ रामोपासकने उत्तर दिया कि हमारे रामचन्द्रजीने अपनी सुन्दरतासे सत्सारी समस्त नारियोंको मोह लिया था, किन्तु स्त्रोके भावसे नहीं—अपितु माताके भावसे । क्योंकि हमारे राम वीर और पुरुषार्थी थे ॥ ७७ ॥ कृष्णने गोपोंकी नारियोंपर मोहिनी डाली थी अपनी कामवासनाकी पूर्तिके लिए । कृष्णोपासकने कहा—हे द्विज ! हमारे कृष्णने खेल खेलमें कुबल्यापीड हाथीको मार डाला था ॥ ७८ ॥ रामोपासक बोला—मेरे रामने अष्टापद नामक राक्षसको खेल खेलमें मार डाला था । कृष्णोपासकने कहा—मेरे कृष्णने अपने प्रतापसे यमुनाकी धारा खण्डित कर दी थी ॥ ७९ ॥ रामोपासकने कहा—मेरे रामके प्रतापसे गंगा खण्डित हो गयी थी । कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्ण अपने पराक्रमसे कल्पवृक्ष ले आये ॥ ८० ॥ रामोपासकने कहा—हमारे

रामोपासक उवाच

मम रामेण साकेते सप्त मर्त्याः सुजीविताः ॥८१॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन पौरुष्याद्विप्रस्य जीविताः सुताः ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण सचिवः सुमंथो जीवितः पुनः ॥८२॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन द्रौपद्याः संधितं हि फलं वरो ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण वैदेह्याः संधितं तुलसीदलम् ॥८३॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापश्च जनान्संदर्शितः पुरा । दुर्वाससाऽनयाश्चा सा गोपिकानां कृता वृजे ॥८४॥

रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापश्च जनान् सन्दर्शितः पुरा । दुर्वाससाऽनयाश्चा सा कृता रामस्य तत्पुरि ॥८५॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन रूपाणि बहून्पञ्च कृतानि हि ।

रामोपासक उवाच

बहूनि राघवेणापि स्वरूपाणि कृतानि हि ॥८६॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन मित्राय दत्तं स्वर्णमपं पुरम् ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण मित्राय दत्ता स्वर्णमयी पुरी ॥८७॥

कृष्णोपासक उवाच

धूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे स्नानं कृष्णेन मे कृतम् ।

रामचन्द्रजीने अयोध्यामें बैठे-बैठे स्वर्गसे कल्पवृक्ष तथा पारिजातको मंगा लिया था । कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णजी अपने गुरुजीके मरे हुए सात पुत्रोंको यमपुरीसे लाने और उन्हें जीवित करके अपने गुरुजीको दे दिया था । रामोपासकने कहा—हमारे रामचन्द्रजीने अयोध्यामें मरे हुए सात भनुष्योंको जीवित कर दिया था ॥ ८० ॥ ८१ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णने द्रौपदीके कथनानुसार विना फलवाले वृक्षमें भी फल लगा दिया था । रामोपासक बोला—हमारे रामने भी सीताके कहनेपर तुलसीदलके दो टुकड़ोंको जोड़ दिया था ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ कृष्णोपासक कहने लगा—हमारे श्रीकृष्णजीने जंगलमें दुर्वासाके अश्रु मार्गनेपर उनकी मार्ग पुरी को भी ॥ ८४ ॥ रामोपासक बोला—हमारे रामने भी अयोध्यामें दुर्वासाके अश्रु मार्गनेपर उनकी इच्छा पूर्ण की थी । इससे हमारे रामका प्रताप सब सभार देख चुका है ॥ ८५ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने अनेक रूप धारण किये थे । रामोपासकने कहा—हमारे राम भी लंकासे लीटकर अयोध्या आनेपर अनेक रूप धारण करके सबसे एक साथ मिले थे । कृष्णोपासक बोला—श्रीकृष्णने अपने मित्र सुदामाको स्वर्णको मगरी दे डाली थी । रामोपासकने कहा कि हमारे रामने भी अपने मित्र विभीषणको सोनेकी लंका दे दी थी ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने सूर्यग्रहणपर कुरुक्षेत्रमें जाकर स्नान किया था । रामो-

राजपासक उवाच

सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे रामेणाप्यवगाहितम् ॥८८॥

मे रामस्य वचनेकं मन्यमेव च मान्यथा । ते कृष्णस्य हनेशनि वचनान्दत्तानि हि ॥८९॥
 रामस्य मे शस्त्रेकः शत्रुनिर्दहनक्षमः । विफलस्तत्र कृष्णस्य चद्रोजोपेण मार्गणाः ॥९०॥
 एका स्त्री मम रामस्य ते कृष्णस्य वक्षस्त्रयः । पत्न्याः शय्या विना नान्या दृष्ट्वा रामस्य वै ममा९१॥
 स्त्रीणां क्षत्र्यां विना वल्लीः शय्याः कृष्णस्य ते द्विज । रामस्मिदतिमध्यदेशं मार्कते मय्युन्ते ॥९२॥
 अन्धेऽन्धे पश्चिमे ते स्थितिः कृष्णस्य वै तत्र । शत्रुभयं मे रामस्य कृष्णस्यैकोऽग्रजस्तत्र ॥९३॥
 गौमणिः पुष्पकं वृद्धौ कटके मुनिनाऽर्पिते । ऐरावतगुलेऽध्वनस्तुर्दन्तजो गजोऽपि च ॥९४॥
 एतानि मम रामस्य नर रत्नानि संति हि । मणिद्वयं पारिजातस्त्रिणि रत्नत्रयं तत्र ॥९५॥
 कृष्णस्य मणि मो विप्र त्वं तं ह्रीं पिकथं वृथा । मय्यर्पयेश्वरो रामो मम पूर्वाश्रयदितः ॥९६॥
 ईशत्वं जगदीश्वर्यं सममेव द्वयं कथं नृप । अतो न मम मय्येव तुल्यं कृष्णं विचिन्तय ॥९७॥
 यस्य चापं हि द्रोणह यस्याक्षय्याः पतत्रिणः । विप्रैष्टपूरणं यस्य वनं दिन्यं द्विजोत्तम ॥९८॥
 यस्य सिंहासनं उग्रं व्यजनं यामरद्वयम् । यस्य यानं पुष्पकं तन्सुग्रीवो ही विनुः समो ॥९९॥
 अद्यापि पालयते यस्य दत्तं दानं द्विजोत्तमान् । रामनाथपुस्त्यैव गज्यं रामस्य मे नृपैः ॥१००॥
 तत्र कृष्णेन किं दत्तं वदं यद्विज्ञेऽधुना । वरात्यहर्निशं शत्रुभाषि मं रामचितनम् ॥१०१॥
 तारकं मे रामनाम काश्यपं शत्रुव्रतान्सदा । मृगयन्मुखास्ताम्पार्थं द्विजोऽदिशति स्वयम् ॥१०२॥
 अनन्व जनोंवापि सर्वत्र मरयोन्मुखात् । स्वीयान्मुहुः शिशयति भ्यो रामोऽधुना स्थिति ॥१०३॥
 तथा प्रागिविप्रोक्तार्थं सदा तच्छब्दनाहकः । रामामेति रामेति नाम भूष्यामुदीर्यते ॥१०४॥
 यन्माममहिमा चोक्तं तं स्तौम्यधुना मुहुः । राजमीकिनाऽप्यत्र एव पूर्वं तन्वर्तितं कृतम् ॥१०५॥

पासकने कहा कि हमारे रामन भा तो नुसल म्मान किया था ॥ ८८ ॥ मेरे राम मदा सत्य वचन बोले थे, किन्तु तुम्हारे कृष्णकी बहुत-सी बात झूठी हो गयी थी ॥ ८९ ॥ मेरे रामका एक बाण लड़का मारनेके लिए पवात हुआ है, किन्तु तुम्हारे कृष्णक ने जान कितने बाण निकाले हैं ॥ ९० ॥ हमारे रामकी सेबल एक स्त्री सीधा है और तुम्हारे कृष्णकी बहुत सी स्त्रियाँ हैं । पत्नीका शय्याके समीप ही हमारे रामकी कोई और शय्या नहीं है, लेकिन तुम्हारे कृष्णका बहुत सी ऐसी शय्या है, जो दिनरात एक ही है । हमारे राम सायूके तटपर अधोधामे रहते हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इसका विपरीत तुम्हारे कृष्ण पश्चिमी समुद्रक किनारे रहते हैं । मेरे रामकी तीन भर्तृ हैं और तुम्हारे कृष्णके केवल एक भर्तृ है ॥ ९३ ॥ हमारे रामके पास कामधेनु गौ, मणि, पुष्पक, कल्पवृक्ष, पारिजात धुनि अलग-अलग द्वारा दिए हुए दो कण्डू, ऐरावत वरमे उत्पन्न शत्रुहन्ता हाथी व नी रत्न सदा दितमान रहते हैं । हे विप्र ! तुम्हारे कृष्णके पास दो मणि तथा पारिजात वम ये ही तीन रत्न हैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ तब नाहक एक कृष्णका वर, वर्य स्तुति करते हो ? रामचन्द्रजी सात हाथोंके स्वामी एवं राजाभाष मा चन्द्रित हैं ॥ ९६ ॥ राम ईश भा है और जगदाश भा, उनम दना पिलोवताये हैं । तब मेरे रामके बरबद कृष्णकी मति माना । उनके पास घनपु है और अश्व सयक है । वे शाल्यगीकी इच्छा पूरा करनेका सदा तत्पर रहते हैं ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ चिदक पास सिंहासन है, दो चमर एवं छत्र है, जिनके पुरस्क विमानकी सवारो है और पिताके सदा पुणवान दो वट हैं । जिनका दान दिया हुआ रामनाथपुर आज भी विद्यमान है । तुम्होंने बताया कि तुम्हारे कृष्णन गया चीज दानम दा है, जो आजतक विद्यमान है । साक्षात् जिनको भी सदा मेरे रामका पूजन करते हैं ॥ ९९ - १०१ ॥ काशीय मरणा-मुख प्राणियोंको शिवजी घूम-धूमकर रामतारक मज सुनाया करते हैं । इतीन्द्र संसारके लोग मरते समय कहते हैं - "रामका ध्यान करा भैया, रामका पूजन करो" ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ नृत प्रणोंकी मोक्षप्रप्तिके निमित्त ही जबकी उल्लासाले भाग भी रामनामका उच्चारण करते चलते हैं ॥ १०४ ॥ जिनके नामकी ऐसी महिमा है, वे उन रामकी स्तुति करता हैं । इसीप्रित

अनकोटिमित श्रेष्ठ यस्मिन् सभायणे द्विज । कृष्णादीनां चित्राणि मन्ति ह्यनर्गदानि हि ॥१०६॥
श्रीरामराम उवाच

एव तयोर्विददते द्विजोश्च परस्परम् । चभृदाकाशजा बाजा तां तौ सर्वे च सुश्रुतुः ॥१०७॥
रामस्याग्र स्तुतिः केषामपि कर्तुं घटेन न इति तां खेचरी वार्णां श्रम्य सर्व मभामदः ॥१०८॥
चक्रजम्बूस्वनान्दहतीति स्म तालिकाः । तं रामोपासकः सर्वे वर्षपुः पुष्पवृष्टिभिः ॥१०९॥
निजैरा अपि ते सर्वे विमानस्था मुदान्विताः । तं रामोपासकं श्रान्त्या वर्षपुः पुष्पवृष्टिभिः ॥११०॥
तदा कृष्णोपासकः स लज्जया नतमस्तकः । तं रामोपासकं नन्वा प्रार्थयामास वै मुहुः ॥१११॥
तदा रामोपासकोऽपि तं नन्वाऽऽलिभ्य वै दृष्टम् । उवाच भयुः वाक्य शृणु कृष्ण द्विजोत्तम ॥११२॥
न नन्दयुनोः पृथगस्ति रामो न रामोऽन्यो वसुदयमनुः ।

तथाऽप्ययोध्यापुरपालवाले मरुक्षणे धावति मे मर्जापा ॥११३॥

अतः स्तुतो मया रामः कृष्णस्य निदनं कृतम् । तवैष्येया द्विजश्रेष्ठ वेदि नी द्वा ममाविति ॥११४॥
राम एवात्र कृष्णश्च कृष्ण एवात्र राघवः । उभयोर्नान्तर विप्र कीर्तुकाञ्च मयेरितम् ॥११५॥
मानयत्यन्तर यो ना तयोः श्रीरामकृष्णयोः ।

परस्परं स निरये पतिष्यति न मंशयः । स्वद्वयैपरिहास्ये खेचर्या राघवः स्तुतः ॥११६॥
इत्युक्त्वा सान्त्वयित्वा तं रामः कृष्णाह्वय द्विजम् । तूष्णीं तस्थौ मभामध्ये ममावृद्धिः सुपूजितः ॥११७॥
ततस्तौ माघमासाने स्वं स्वं देशं प्रजग्मनुः । तस्माच्छिष्टावतारेषु न राममदृशः परः ॥११८॥
अतस्तं भज भावेन तस्यैव चरितं शृणु । यदन्यद्वर्णयाम्यग्रं महामगलकारकम् ॥११९॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकाण्डे प्रथा ।

श्रीरामकृष्णोपासकयोर्विवादो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

वृत्त दिन पहले ब्रह्माविने रामायण बनाया था ॥ १०५ ॥ जिसकी श्लोकसंख्या सो करोड़ है और तुम्हारा समस्त कृष्णचरित्र उसमें समा जाता है ॥ १०६ ॥ श्रीरामराम उवाच - जिस समय वे दोनों इस प्रकार परस्पर विवाद कर रहे थे, सभी आकाशवाणी हुई - 'रामक आगे स्तुति करनेवा माग्य विमान नहीं है' । उसे उत दोनों तथा अन्य लीगोने सुना । इस प्रकारकी आकाशवाणी सुनकर तौ बड़े हुए मममन सभासद रामकी जय-अयकार करते हुए तालियाँ बजाने लगे और उस रातापासक पर पुष्पवृष्टि की ॥ १०७-१०९ ॥ इतना ही नहीं, स्वतागण भी विमानोपर आ-आकर हवन रामोपासक पर पूर बरमाने लगे । तब लज्जासे नतमस्तक होकर कृष्णोपासकने रामोपासकको प्रणाम करके बार-बार दिनता की ॥ ११० ॥ १११ ॥ रामोपासकने भी उसे प्रणाम करके छातीसे लगा लिया और कहा-- ॥ ११२ ॥ हे द्विजोत्तम । न कृष्णमे पृथक् राम है, न राम-मे पृथक् कृष्ण है । फिर भी अयोध्या नगर के पराक्रमी राजागणों ने कृष्णवधारी रामको ही भजनेकी मेरी आज्ञा हाता है ॥ ११३ ॥ इसी कारण अब मैंने रामकी स्तुति का और कृष्णका निन्दा । यह सब केवल तुम्हारी ईर्ष्यासे कहा-सुनी हुई । नहीं तो वास्तवमें मे दोनोंका समान समझना है ॥ ११४ ॥ राम ही कृष्ण है और कृष्ण ही राम है । इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है । अभी मैंने जो कुछ कहा, वह सब वीतुकमात्र था ॥ ११५ ॥ ओ मनुष्य राम और कृष्णमें अन्तर मानता है उसे नरकगामा होना पड़ना । इसमें कोई संशय नहीं है । केवल तुम्हारा गव दूर करनेके लिए अभी आकाशवाणीन भी रामकी स्तुति की थी ॥ ११६ ॥ ऐसा कह तथा कृष्णनामक द्विजकी सान्त्वना देकर सभासदोंमें पूजित होता हुआ राम विप्र सभामें बुलाए बैठ गया ॥ ११७ ॥ माघमास व्यतीत हो जानेपर ने दोनों अपने अपने देशका लौट गये । इस लिये मैं कहता हूँ-हे मित्र । समस्त अवतारोंमें रामावतारके सहस्र कोई भी अवतार नहीं है ॥ ११८ ॥ अतएव तुम उन रामका भजन करो और उनकी वह कथा सुनो जो आगे चलकर मैं सुनाऊँगा ॥ ११९ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे १० रामनेजपाण्ड्यविरचित उवाचोन्मापाडकासमन्विते राज्यकाण्डे प्रथा द्वि तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(रामका मौ स्त्रियोंको वरदान एवं मूलकासुरोपाख्यान)

धर्मरामदास उवाच

एकदा राघवः शिष्य गभामंस्थो जनैर्दृतः । ददर्श द्राक्षावल्लीनां मण्डपे काकमुत्तमम् ॥ १ ॥
 उभयोर्नेत्रयोरेकनेत्रमृतिममन्त्रितम् । अनिदीन कृश व्यग्रदृष्टिं नीरर्षस्वरं चलन् ॥ २ ॥
 मृदुमृदुश्च पश्यन्मात्मानं श्रन्दपूषेकम् । तं दृष्ट्वा तन्कृपायिष्ठः स्मृत्वा कोपं पुरा कृतम् ॥ ३ ॥
 उवाच काकं श्रीरामः सुखमागच्छ मेऽन्तिकम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा द्राक्षावल्गुपाश्च मण्डपात् ॥ ४ ॥
 क्षीप्रमुहूर्तं काकस्तु रामाग्रे सदसि स्थितः । रामं पश्यन्दीर्घरवं स चकार मृदुमुहुरः ॥ ५ ॥
 तदा तं राघवः प्राह तन्कृपायिष्ठमानसः । नेत्रं विना वरानन्यान् काक याचस्व मां प्रति ॥ ६ ॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा काकः प्राहोवनीपतिम् । कृपाश्लोकनं राम पश्यस्तु तव सर्वदा ॥ ७ ॥
 किं वरं गिरैर्व्यर्थं रिद्धेयं सुदृष्टार्थकः । तन्काकवचनं श्रुत्वा रामस्तं वाक्यमधर्षात् ॥ ८ ॥
 दीपान्तरेषु यद्वृक्ष भविष्य भवमेव च । सर्वान् च भक्तं स्वन्नेत्रपिरेऽस्तु तत् ॥ ९ ॥
 भादिकार्याणि मदाणि काक त्वं वै । चक्षुराः जनाः पश्यन्तु ते गन्धाः शकुनाश्च निरन्तरम् ॥ १० ॥
 स्थिरत्वे स्थिरकार्याणि गते स्वयमिच्छन्तः । भविष्यन्ति हि कार्याणि नृणां शकुनं निविने ॥ ११ ॥
 पश्यन्तु सकला भूमा जनाः कायर्पापदने । ग्रामे गृहप्रदेशे चैव रामभागे न चेद्भूतिः ॥ १२ ॥
 गमने दक्षिणे भागे यदि ते गमनं तदा । लोकानामस्तु शकुनं महामगलकारकम् ॥ १३ ॥
 प्रेतदशाहविंशत्य यदि स्पर्शा भवन्त ने माऽस्तु तदि गतिमेषां प्रेतानां मम वाक्यतः ॥ १४ ॥
 अन्तर्काष्ठे मानवस्य वाञ्छितं नैव पुणेतम् । प्रेतदशाहविंशत्यास्पर्शाज्जानतु तन्नराः ॥ १५ ॥
 प्रेतस्य वञ्चजः कश्चिद्ययनेतस्य वीर्यम् । तत्तं स्पर्शादिदिश्या तु म यदा पूरयिष्यति ॥ १६ ॥

श्रीरामदास कहते हैं—हे राघव । एक दिन बहुत बड़े मनुष्य ने फिर हुए रामचन्द्रजी सभामें बैठे थे । सभी अंगूरका रसतामागें बैठ एक कोणका दायाँ हिस्सा एक ही नयने दोनो नयनोंका काम ल रहा है । कोना अपनी भावनाओं और मन, प्रवृत्तियों, ऊँच मंदस्वभावों और चन्दल दीवली है ॥ १-२ ॥ रामचन्द्रजीने देखा कि वह राघव... और दया गृहीतु और काँव काँव काँव के बोलता भी जाता है । उसकी यह दशा देखकर रामका हृदयभ दया आया और अपने मूल किम हुए कोणका स्पर्श करके कोणसे बोले—हे काक ! मुझे पस आया । यह तुम्हारे कोण, उसे दृष्टि आये उड़ा और रामके भागे आकर बैठ गया । सभा... वह रामका दयालुता हुआ और औरस विचार लया ॥ ३-४ ॥ रामने कोणसे कहा—तुम अपने नेत्रोंके सिवाय जो कुछ भी बड़ भावना चहे, मर्दान ॥ ५ ॥ इस प्रकारकी बातें सुनकर पृथ्वीपति रामसे कोणा कहने लगा—हे राम ! मेरे ऊँच दस, ताँद सदा आपकी कृपादृष्टि बनी रहे ॥ ६ ॥ कबल इस लोकमें सुख देनेवाले अन्य वरदानोंका लक्ष्य मे क्या कहेंगे ॥ ७ ॥ कोणका बात सुनकर रामचन्द्रजीने कहा—किसी द्रोणान्तरमें भा हानवाला भूत, भविष्य और वर्तमानकी सब बातें तुम्हारा अधिकार सामने रहेंगे ॥ ८ ॥ होवाले अर्थों भविष्यके सब कार्योंका तुम मर वरदानसे जान लगे । मनुष्य कहीं जाते समय सदा तुम्हारा शकुन देखा करगे ॥ ९ ॥ जब तुम बैठ रहेंगे, सब देखनेवाले पक्षिका काम एक जायगा और तुम चलते रहेंगे तो उसका कार्य काम पूर्ण हो जायगा । इस प्रकार लोग तुम्हारा शकुन देखेंगे ॥ १० ॥ रामप्रवेश यह गृहप्रवेशके समय तुम जिनकी दाहिनी ओरसे निकल जाओगे, वह परम मङ्गलकारक शकुन होगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ प्रेतके दशाहविंशकी अब तक तुम नहीं छू लो, तब तक उस प्रेतकी संपत्ति कदापि नहीं होगी ॥ १४ ॥ यदि प्रेतके दशाहविंशकी नहीं छुओगे तो उसके घरवाले लोग समझेंगे कि अभी प्रेतकी इच्छा पूरी नहीं हुई है । प्रेतका कोई वञ्चज, तुम जिन-दिन भाजोंको बर्हें छुओगे,

तदा पिंडं स्पृशस्य त्व नोरेन्मा स्पृश सर्वथा । अन्यमेक वरं दधि लिपिमात्रे तु पुस्तके ॥१७॥
 यत् किञ्चित्लेखकंश्च विम्बन् दत्त मद्रात् । कुर्वन्तु पदविह ते सर्वत्र जगतां तले ॥१८॥
 न्यन्द पुस्तके दृष्टा जगत् जलन्तु विम्बन्तम् । लिखितं पार्श्वभागेषु लेखकैः पुस्तकस्य यत् ॥१९॥
 इति दत्ता चरन्तु रामस्तुष्टिभार्यान्किमननः । काकोऽपि तुष्टः श्रीरामं न बोद्धीय मतम्बदा ॥२०॥
 एवं जानाचरित्रिणि चरन्तु स्पृशन्न्दनः । एकदा रात्रौ रात्रौ पारिजातकोरधः ॥२१॥
 निद्रितो हं मयपरे जलकपःस्पृशयथा चित् । एतस्मिन्मन्तरे तस्यां रात्रौ ते समरशकाः ॥२२॥
 द्रुतपाश्वपि दास्यथ दामायाः सकलास्तदा । ययुर्व कीर्त्तनं श्रोतु कापि रामस्य मन्तितः ॥२३॥
 दृष्ट्वा तं समय वेदान्कामयाणप्रपीडितः । पौरुषां क्षुन्नार्थस्य वस्त्रालंकारभूषिताः ॥२४॥
 मरुप्यमदमंभ्रांता हेमकुम्भपयोधराः । चद्राजनाः शुक्रघाणाः कमलांबयो मृगीदृष्टाः ॥२५॥

पातकीशेयवमना रुक्मनुपूरुनिःस्वताः ।

परस्परं ताः संमन्य प्रथमे रयमि स्थिताः । ययुः सर्गाः पुष्पके श्रीगन्धर्वं रहमि स्थितम् ॥२६॥
 काञ्चिनं योजयामास श्रीरामं व्यजनेन हि । काचिदधर रामं च स्वकरे पुष्पजलिकाम् ॥२७॥
 काञ्चित्तांघ्रदशायं च कञ्चिन्मभ्य उरस्य मा । पात्र निष्ठेव न स्यान्त्या सा दधार चिलमिनी ॥२८॥
 दधार चन्दन काञ्चिन्कार्चिद्वरान्नपूनम् । काञ्चिन्पद्मन्नर्धेय काञ्चिद्रंभाफलादिकम् ॥२९॥
 एतस्मिन्मन्तरे कञ्चिन्पद्ममादत्त दत्तैः । रामस्य कर्तुमुद्यक्ता तन्पट पणिनास्पृशत् ॥३०॥
 तेन रामः प्रवृद्धोऽभूत्स्मृशस्युऽया विदेहजाप् । केन मे स्पर्शितः गदधकिन्ध्रेन्पुषाविशन् ॥३१॥
 तारद्दश श्रीगन्धर्वं शतश्वं युगः स्थिताः । पौरुषां प्रमदाः सर्वा रुक्मालङ्कारमण्डिताः ॥३२॥
 रामं मधुस्थितं दृष्ट्वा प्रणेपुन्नाम्बदा युधि । स्वशिर्षमि निधायाश्च नृपयुर्विधिभोक्तिभिः ॥३३॥

उनका आगे समझाए जब पूर्ण चरता, तब जगत् उस प्रेम्की सहायि पाएन होगी । तुम भी उसके दयाहीन हो जाओ । तभी पूरा, जब उनका प्रत्येक अंग पूर्ण हो जाय । कुछ दूसरा संवाद यह भी देता है कि जो सेनाएँ लगने समय पर भूत जागीं, वे सहावर लुम्हारे पैरों का चिह्न बना दिया करेंगे ॥ १५-१८ ॥ पुस्तकके पार्श्वभागाँ पुस्तक के चिह्न लगाए जाय समस्त आदम कि वही पर कुछ भूत है ॥ १९ ॥ इस प्रकार इस को एक संवाद कर । मकरजी मुक । दृष्ट्वा पुष्टा गये । बोझा भी भग । मुका प्रणाम करके वही भी उठ गया ॥ २० ॥ २१ नन्द रामचन्द्रजी विविध प्रकारकी आभूषणों किया लम्ब थे । एक दिन रात्रिके समय पारिजात वृक्षके नीचे राजस्वलायात के चित् नाम अनेके मयर्णों पलगये मा रहे थे । उसी रात्रिमे जितने भी द्वापान्दरास आदि के वन्दन भक्तिदश करी रामकी तन मननेके लिए चले गये थे ॥ २१-२३ ॥ उसी रात्रि भीका पाकर सो न । विविध प्रकारके वस्त्र द्रव्य धातु विविध कामके वाणसे पीडित होकर रामचन्द्रजीके पास जा पहुँची ॥ २४ ॥ वे सब लम्बाई मद्रास भरी थी, मयर्णवन्दने सजान उनके स्तन थे, चन्द्रमाकी चर्चित उनका सुगन्ध । तोपकी टाँके समान उनकी नाविका थी, बमनकी नई उनके पाँव थे और मृगि गैर समान उनका नख थे ॥ २५ ॥ वे सब पीले कपड़ा बना किये थी । सातहें लुप्ट हलपुन करके बाल रहे थे । उनकी उगार मा बहुत छोटी थी । वे सब पुस्तक संशोष एकान्तम साथ हुए रामचन्द्रजीके पास जा पहुँची ॥ २६ ॥ वहाँ जाकर कई रात्राँ देवा दान लगी और कोई अनेक हाथम फूलोंको माला लेकर उनके उज्जकी प्रार्थना करने लगी । विमान पानदान किया और किसीने जलसे भरी झारो थी । किसीने पोगदान उठाया, किता हमनी विलसितनाम चन्दन दिया, जिसान दिवा पदवान और कोई नाना प्रकारके फल लेकर रामचन्द्रजीके जागनेकी प्रार्थना करने लगी ॥ २७-२८ ॥ इसी बीच एक स्वान रामचन्द्रजीका पैर दवानेकी आवासे घरे-घीरे उनका पैर उठाया ॥ २९ ॥ इससे वे चर्कि पड़े और सोचने लगे कि सीता तो इस समय अगृह्य है, तब यह कोन देव उठा रहा है । यह विचार करते-करते चर्कित भावसे वे उठ बंटे ॥ ३० ॥ तब अपने सामने उरस्थित उन सो न । विचारे उनको, दृष्टि पड़ी । तब रामने

ताः सर्वा राघवः प्राह किमर्थमिदं धृष्टके । रात्रौ नमराः सर्वास्तथ्यं मां कथ्यतां स्त्रियः ॥ ३४ ॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा विलज्जन्तः पुरस्त्रियः । अवाङ्मुखा मस्मितास्तस्मिन्मोदेव समंततः ॥ ३५ ॥
 तामु काचिच्छदा रामे गजलज्जाऽवर्गादयः । नरे वलनि प्रमदो यदर्थमागता वयम् ॥ ३६ ॥
 उपेक्षणीया नो राम वर्य सर्वाः स्त्रियस्तथा । इति तातामभिप्रायं कृत्वा न रघुनन्दनः ॥ ३७ ॥
 भद्रबोन्मधुरं वाक्यं शृणुष्व प्रपदोक्तयाः । एकस्मिन्मित्रेन मेऽस्ति मातृतुल्याः स्त्रियो मम ॥ ३८ ॥
 इतराः सकलाः सीतादितामहे जन्मनि । गच्छन्ति निजपेदांनि मां वाऽपरोऽस्तु मयि नृपे ॥ ३९ ॥
 राज्यं क्षमति भो नार्यः क्षमिन् चोऽपगधितम् । इति ताः रामवाम्बाणैः कामवाणप्रपीडिताः ॥ ४० ॥
 ताहिताश्च विशेषेण निपेतुर्मूर्छिता भुवि । पतितास्ता निर्गन्धाय सर्वा रामोऽतिचिह्नलः ॥ ४१ ॥
 ता उवाच पुनः शीघ्रं सुपुत्रार्यैः कृगन्त्रियः । शृणुष्व मे वचो नार्यः सकृद्रूपा मया सह ॥ ४२ ॥
 युष्माकं न भवेत्तुष्टिर्वेतमज्ञोऽपि मे भवेत् । मतः शृणु न मे वाक्यं यागे पूर्वं मयाऽर्पितः ॥ ४३ ॥
 गुरवे रुक्मजायैव सीतायाः शतपूर्वयः । तां फलेन युष्माभिर्दोषरे क इतं चिन्तम् ॥ ४४ ॥
 करिष्यामि न मदेहः कृष्णरूपेण वै सुखम् । नानानृपाणां युष्माभिर्ध्वजं योषिरस्तदा ॥ ४५ ॥
 भोग्यासुश्च युष्माकं नदरिष्यति वै यदा । तदा सर्वा मोक्षयामि हन्वा तं जगतीशुनम् ॥ ४६ ॥
 करिष्यामि विशदाश्च युष्माभिर्दोषकापुरि । स्त्रीषोडशहस्ताजमूर्ध्वतोऽन्याः शनं न्वहम् ॥ ४७ ॥
 इति रामवचः श्रुत्वा तुष्टास्ताः पुरषोपिताः । न्वा राम यदुः सर्वस्तूष्णीं स्वैः स्व गृहं गति ॥ ४८ ॥
 ततः श्रींस्ता विमर्शार्माणो दाम्नीः ममाह्वयत् । दृष्ट्वा कामपि नो दम्नीं गम्यो दामांस्तदाह्वयत् ॥ ४९ ॥
 तेषां प्येकं न दृष्ट्वा स द्वाग्पालान्नमाह्वयत् । तानप्यदृष्ट्वा रामस्तु रक्षकांश्च भमाह्वयत् ॥ ५० ॥

देखा कि वे सब पुर्यासिनी स्त्रियाँ मुणोंके अलङ्कार पहने हैं । भगवान रामको उठ्य हुआ देखकर उद्धान प्रणाम किया और अपना मस्तक पृथीपर रखकर दिविष प्रकारसे घण्टानुकी स्तुति करने लगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उनमें रामने पूछा कि तुम सब यहाँ इतना रात्रिम किस लिए आयी हो ? मुन सब-सब बतला दो ॥ ३४ ॥ रामको बात सुनकर वे पुर्यासिनी स्त्रियाँ लज्जित हुनी हुई माया नाच करके चुपचाप लौट गईं ॥ ३५ ॥ किन्तु उनमेंसे एकने विलज्ज होकर कहा—हे प्रभा । आप सब जानते हुए भी हमसे आनेका कारण पूछ रहे हैं ? हम् जिम लिए आयी हैं, आप वर सब जानने हैं ॥ ३६ ॥ हे राम ! अब आप हमारा उपहास न कीजिये । इस प्रकारकी बातसे राम उनका धमिप्राय समझ गये और मंत्री बातामें समझाते हुए कहते लगें—१ मुन्दरिया । मैं एकस्मिन्मित्रेन है । मेरे लिए इस जन्ममें सीताके सिवाय सत्कारकी सब नारियाँ माताके समान हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तुम सब अपने-अपने घरोंको जाती जाव । मैं राजा हूँ । मेरे ऊपर तुम सब पाप न लादो ॥ ३९ ॥ जब तक मैं प्रयागका नासक हूँ, तबतक ऐसा अनर्थ नहीं हो सकता । जाओ, मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा किया । यह मुना तो कामवाणसे पीडित वे स्त्रियाँ रामके वाक्यपूर्ण बाणोंसे चिड और मूर्छित होकर पृथीपर गिर पड़ी । इनको इस प्रकार गिरा देखकर रामचन्द्रजी बहुत विलज्ज हो गये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ वे कृपापूर्ण उनसे कहने लगे—हे नारियो । मैं तुम्हारा मनोभाव जानता हूँ, किन्तु केवल एक बारकी रतिसे तुम लोगोकी इच्छा नहीं भरेगी और मेरा व्रत भा भंग हो ज.यगा । इसलिए मेरी बात सुनो—अ.जन्म बहुत दिनों पहले यज्ञमें मैंने सीताकी ही सुवर्णमयी मूर्तिप्रीतन दी है । उन्हीके जन्मसे द्वापरमें मैं शृणु होकर बहुत दिनोंतक तुम सब के साथ काका करूँगा ॥ ४२-४३ ॥ तुम सब उस समय अनेक राजाओंका पुत्रिय होकर जन्म लगी । जब भीनासुर तुम सबको बुरा ले ब.यगा, तब मैं वहीं पहुँचकर उसे मारूँगा और तुम्हें उससे छुड़ आँगा । तुम सबका विवाह द्वाग्पाल-पुराण होगा । उस समय तुम्हारा सत्य सोलह हजारसे भी ऊपर रहेगा और मैं में हो रहेगा ॥ ४४-४७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हीने भगवान्को प्रणाम किया और चुपचाप अपने-अपने घरोंको लौट गयीं । उन स्त्रियोंकी विदा करके रामचन्द्रजीने दासियोंको बुलाया, किन्तु

तेष्वप्येकं न दृष्ट्वा स गवदथातिविस्मितः । विमानाद्वाल्मीकिः सौमित्रि वै समाह्वयत् ॥५१॥
 उर्मिला रामवाक्यं तच्छ्रुत्वा त चालयत्पतिम् । उर्मिलाचालनाच्छात्रं प्रबुद्धोऽभूत्स लक्ष्मणः ॥५२॥
 रामवाक्यं सोऽपि श्रुत्वा रतिशालावहिर्ययी । दत्तं प्रत्युत्तरं राम ययी वेगेन लक्ष्मणः ॥५३॥
 एतस्मिन्नतरे रामो रोदनं नगराद्बहिः । शुश्राव स्त्रीकृतं घोरं किमिदं चेति विस्मितः ॥५४॥
 ततो दृष्ट्वा स सौमित्रिं ययं वृत्तं न्यवेदयन् । लक्ष्मणां रामवाक्यं तच्छ्रुत्वा दूताभिजांस्तदा ॥५५॥
 श्रेष्ठं दूतान्कीर्तनस्थानादाह्वयामास वेगनः । रामदूतास्तदोचुःश्रुत्वा कथं आरामकीर्तनम् ॥५६॥
 अममामं विहायाद्य गन्तव्यं स्वामिनं प्रति । नैवेद्यं केचिदुच्यते पालनीया तु सेवकैः ॥५७॥
 प्रमोदत्रासश्च चास्माभिर्नो चेन्नः शतकं स्पृशेत् । केचिदुच्यन्ति तस्य कीर्तनं महत्प्रदम् ॥५८॥
 स्वाम्यान्नाममदोषघ्नं कथं त्यक्त्वा प्रगम्यताम् । केचिदुचुः कीर्तनस्थानं श्रुत्वाऽस्मान्म सुखी भवेत् ५९
 इति सदित्थचित्तास्ते न तदा राघवं ययुः । ततो लक्ष्मणदूतास्ते रामं वृत्तं न्यवेदयन् ॥६०॥
 ततः किञ्चित् क्रोधयुक्तः सौमित्रिं प्राह राघवः । मन्कीर्तनममामक्तान्नाहं दण्डयितुं क्षमः ॥६१॥
 तथाप्येतन्न योग्यं हि किञ्चिच्छिष्टां करोम्यहम् । इत्युक्त्वा तां तु रुदतीं पुनः श्रुत्वा बहिः प्रभुः ॥६२॥
 विमानं प्राह गच्छाद्य बहिः पुर्याः स्त्रियं प्रति । तथेति रामवाक्येन ययी तन्नगराद्बहिः ॥६३॥
 यत्र साऽतिविलापं स्त्री करोति सगृह्यते । तामजननिनां नार्गं रुदतीं राघवोऽब्रवीत् ॥६४॥

राम उवाच

किं ते दुःखं वदस्वाद्य का त्वं रोदिषि वै कथम् । इति रामवचः श्रुत्वा सा राम वाक्यमब्रवीत् ॥६५॥
 चिरकालं करोम्यत्र रोदनं रघुनन्दन । अद्य श्रुतं न्वया राम किञ्चित्पुण्यवयान्मुनेः ॥६६॥

वहाँ कोई दासी नहीं दिखायी दी । तब सेवकोंको बुलाया । उनमेंसे भी कोई नहीं बोला । तब पहरेदारोंको पुकारा, किन्तु उनमेंसे भी कोई नहीं बोला । जिससे रामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ और विमानके ऊपरवाली अंटीसीसे लक्ष्मणको पुकारा । रामचन्द्रकी आवाज उर्मिलाको सुनायी दी और उसने तुरन्त लक्ष्मणको जगाया । जागनेपर लक्ष्मणने भी रामकी आवाज सुनी और तत्काल उनको बातका प्रत्युत्तर देकर तुरन्त रतिशालाके बाहर आकर वेगसे रामचन्द्रजीकी ओर चले ॥ ५८-५९ ॥ इधर रामचन्द्रजीने नगरके बाहर किसी स्त्रीका रोदन सुना । "हे, यह क्या है !" यह कहकर वे वड़े विस्मित हुए ॥ ६० ॥ तब तक लक्ष्मण भी आ पहुँचे और रामने उन्हें सब वृत्तान्त सुनाया । लक्ष्मणने तुरन्त अपने दूतोंका उस स्थानपर जानेकी आज्ञा दी, जहाँपर कीर्तन हो रहा था । लक्ष्मणके दूतोंने वहाँ पहुँचकर रामके दूतासे कहा—चलो, रामचन्द्रजी कहते हैं तुम सबको बुला रहे हैं । उन सबने जवाब दिया कि बिना रामकीर्तन समाप्त हुए अधूरा छोड़कर हम सब कैसे आये । उनमेंसे किसीने कहा कि सेवकोंका धर्म है, स्वामीकी आज्ञाका पालन करना ॥ ५५-५७ ॥ यदि उनकी आज्ञा न मानगे तो हमको पातक लगेगा । उनमेंसे कोई बोल उठा कि यह रामकीर्तन तो विविध प्रकारके पातकोंको नष्ट करनेवाला है । अब इसको छोड़कर कहाँ जायेंगे ॥ ५८ ॥ कुछ लोगोंने कहा कि जब वे हमको कीर्तनमें आया सुनगे तो प्रसन्न होंगे ॥ ५९ ॥ इस प्रकार अममञ्जसमें पहुँचकर वे लोग रामके पास नहीं आये । इधर लक्ष्मणके दूतोंने रामके पास आकर उनका हाल सुनाया ॥ ६० ॥ तब किञ्चित् क्रोधयुक्त रामने लक्ष्मणसे कहा कि यद्यपि मैं कीर्तन सुननेमें मग्न सेवकोंकी दण्ड नहीं दे सकता ॥ ६१ ॥ किन्तु यह भी उचित नहीं है कि मैं उन सबको कुछ शिक्षा भी न दूँ । इतना कहकर रामने फिर वह नगरके बाहरवाला रोदन सुना ॥ ६२ ॥ तब उन्होंने विमानकी आज्ञा दी कि नगरके बाहर कोई स्त्री रो रही है, तुम उसके पास चलो । 'बहुत अच्छा' कहकर विमान चल पड़ा और सरयूके तटपर जा पहुँचा, जहाँपर वह स्त्री विलाप कर रही थी । अञ्जनके समान उस काली-कलट्टी स्त्रीकी देखकर रामने पूछा—॥ ६३ ॥ ६४ ॥ तुम्हें क्या कह है ? तुम क्यों हो और क्यों इस प्रकार रो रही हो ? रामकी बात सुनकर उस नारीने कहा—॥ ६५ ॥

निर्मिता विधिना पूर्वं निद्रानाम्नी त्वहं प्रभो । दशं तेन समं स्थानं कुम्भकर्णे चिरं सुखम् ॥६७॥
 यावत्कालं स्थिता राम स त्वया निहतो रणे । ततो नष्टनिवासाऽहं गता शीघ्रं विधिं प्रति ॥६८॥
 तेन त्वां प्रेषिता राम नतः प्राप्ता त्विमां पुरीम् । सीमाचारभयादस्यां नगर्यां न गतिर्नमः ॥६९॥
 अत्रैव सस्थिता राम शोचन्ती सरयुतटे । मे स्थानं वद रामाथ यत्र स्थाम्याम्यहं सुखम् ॥७०॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा गधयो वाक्यमब्रवीत् । स्मृत्वा दूतकृतं पूर्वं तदा क्रोधेन चोदितः ॥७१॥
 निद्रे मृणु वचो मेऽद्य ते स्थानं कीर्तयाम्यहम् । पापात्मानो नरा भूम्यां ये मृण्वन्ति हि कीर्तनम् ॥७२॥
 पुराणश्रवणं वैश्वठनं पूजनं जपम् । तपो ध्यानं च होमादि यद्यत् कुर्वन्ति पापिनः ॥७३॥
 तेषु त्वं तिष्ठ मद्वाक्यार्जुनदेवनरेष्वपि । अडे चालेऽद्य मुर्विण्यामुपवामोत्तरोऽश्विने ॥७४॥
 तथा विद्यार्थिनि भाते चाते जागृक्कामुके । एतेषु ते स्थलं दत्तमेतान्मोहय मद्वरात् ॥७५॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा सा तुष्टा प्रणनाम तम् । ययौ रामः स्वनगरीं सुखं निद्रां चकार वै ॥७६॥
 तदारभ्य पुरोक्तं वामं निद्राऽकरोन्सुखम् । पापान्मनामतो निद्रा बाधते पुण्यकर्मसु ॥७७॥
 तदारभ्य सेवकेषु नरेष्वप्यवनीतले । निद्राप्रस्थेषु पुण्यान्मा सहस्रेभ्यः कथम् ॥७८॥
 शुश्राव तत्कीर्तनादिं चकार पूजनादिकम् ।

श्रीरामदास उवाच

अथान्यां सप्रवक्ष्यामि कथां सीतायश्चस्करीम् ॥७९॥

कुम्भकर्णस्य पुत्रस्य निकुम्भस्य च मुर्विणी । प्रभृत्यर्थं पितुर्गेहं गता द्वीपांतरं त्रिया ॥८०॥
 रावणादिवधे जाते तस्यां जातस्तु पौंड्रकः । मायापुर्वा सतशिराः सतद्वयकरः पुरा ॥८१॥

हे प्रभो ! यह बहुत समयकी बात है कि जब बहान मुझे बनाया था । मेरा नाम निद्रा है और ब्रह्माने मुझपर रक्षा करके कुम्भकर्णका दहमे रहनका स्थान दिया । तब मैं बड़ आनन्दसे उसमें रहन लगा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ लेकिन आपने उसे भी मार डाला । मर रहनका एक आपड़ा था, उस भी आपने उजाड़ दिया । ऐसी अवस्थामें रीती-कल्पसी हुई मैं ब्रह्माके पास गया और उह अपनी गाथा सुनायी । उन्होंने मुझे आपके पास भेजा और मैं इस जाहू जा पहुँची । मैं गारक्षकोंके मयसे इस नगरीमें घुसनेका साहस नहीं हुआ । इसलिए इसी सरयूके किनारे बैठा बैठी विलाप किया करती हूँ । हे राम ! अब आप कृपा करके मेरे रहनक लिए कोई स्थान बतला दीजिए, जहाँ मैं रह सकूँ ॥ ६८-७० ॥ इस प्रकार उसकी बात सुनकर रामचन्द्रको पहले दूतकी बातें सोचकर कुछ गुस्सा आ गया और निद्रासे बात—॥ ७१ ॥ हे निद्रा ! सुना, मैं तुम्हें तुम्हारे रहनेके लिए स्थान बतलाता हूँ । जो पापी मनुष्य मेरा कातन सुनने जायें और वे पुराणश्रवण, वैश्वठन, पूजन, जप, ध्यान आदि जो कुछ भी करने लगें, उनमें तुम अपना डरा जमाओ । जो लोग होत प्रकृतिक हो, वे चाहे देवता हों या मनुष्य, जब, बालक, गर्भिणी स्त्री, प्रतोसर भोजन करनेवाले, विद्यार्थी और बड़े हुए मनुष्योंमें तुम रहो । जो लोग ज्यादा आगत हों, उन लोगोंमें मैं तुम्हें रहनक लिए स्थान देता हूँ । मेरे बरवानसे तुम इन्हींपर अपनी मोहजाल फैलाओ ॥ ७२-७४ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वह प्रसन्न हुई और उसने भगवान्-को प्रणाम किया : उबार रामचन्द्र भी अपनी नगरीमें लौट आये और रातभर खूब अच्छी तरह सोये ॥ ७५ ॥ तभीसे उसने कहे हुए लोगोमें निद्रा निवास करने लगी । इसीलिए यदि पापी मनुष्य कोई पुण्यकर्म करने लगता है, तब उसे निद्रा मत्ताती है ॥ ७७ ॥ तभीसे पृथ्वीमण्डलमें निद्रान सेवकोंपर अपना मोहजाल फैलाया । सहस्रों निद्रालु मनुष्योंमें कहीं एक मनुष्य भी मुझिल्लसे ऐसा मिलेगा, जो अक्षय-कीर्तन आदि शुभ कर्म करनेवाला पुण्यात्मा हो ॥ ७८ ॥ श्रीरामदास कहन लगे—अब मैं सीताके यहाँसे भरी एक दूसरी कथा सुना रहा हूँ ॥ ७९ ॥ कुम्भकर्णके बेटे निकुम्भकी गर्भिणी स्त्री अच्छा पैदा करनेके लिए किसी दूसरे द्वीपमें रहनेवाले अपने पित्तके घर गयी थी ॥ ८० ॥ जब रामके साथ युद्ध करके रावण बँध समेत गड़ हो

श्रोतानदीनटे चर्मोद्वेषणः क्षीरमाशरे । सहायान्पोडुक्कस्तोद्वेषयित्वा विभीषणम् ॥८२॥
 शताननेन वै सार्धं लङ्कास्य चकार स । ततो विभीषणो गच्छं गत्वा सर्वं न्यवेदयत् ॥८३॥
 सीताविभीषणाभ्यां वै रामो लकां ययौ द्रुतम् । निहत्य रावणं मीना युद्धे रामे जिज्ञेऽथ तम् ॥८४॥
 विभीषणा न लकां हन्वा न पोण्डुकं ददौ । अर्थकदा ममाभस्य रावणं विभीषणः ॥८५॥
 ययौ विषण्णः सन्निवृत्तुभिः समुतः स्त्रिया । नन्वा रामं माश्रुतत्रश्चोच्छ्वसन् कपिताश्वरः ॥८६॥
 उवाच सकलं धृते लकायाः प्रप्लवङ्गिणः । रामं राज्ञिपश्यामि त्राहि मां शयणागतम् ॥८७॥
 मूलर्धे कुम्भकर्णं जातः पुत्रः पुगं चने । दर्शन्यक्तो वृक्षमूले बालकस्तत्र धियतः ॥८८॥
 मक्षिकाभिः स्वयमनक्तलस्य विदुभिर्मुहूः । माऽपुना तरुणः श्रन्वा न्वन्कुतं रक्षकुलस्यम् ॥८९॥
 तस्य तोष्य ब्रह्माणं तद्वरेणानिर्दिष्टः । पातालस्य राक्षसैश्च लकार्या ममुपागतः ॥९०॥
 मया तेन तु पणमायं कृतं युद्धं महत्तमम् । मां जित्वा स पुरीं यावत्तदाश्च भविष्यैः स्त्रिया ॥९१॥
 मधुवो गुममाभेण भूमजेन पलायितः । दर्शनं विस्मयार्थेण लकाया योजनोपरि ॥९२॥
 रात्री बहिर्विभिर्गन्धर्विणाञ्च समुपागतः । मूलर्धे यः समुत्पन्नस्तस्मै विवर्द्धितः ॥९३॥
 मूलकासुरनाम्नाऽनः पगं रुवातिं गतोऽपुना । सगरं तेन मागुक्तमर्शं त्वां तु विभीषणम् ॥९४॥
 हन्वा लकां पूर्णं प्राप्य ततो गच्छामि राघवम् । भविता निहतो येन निहतं सकलं कुलम् ॥९५॥
 तं रामं सगरं हन्वाऽनृण्यं गच्छाम्यहं पितुः । आसमिष्यति सोऽत्रापि त्वां योद्धुं रघुनन्दन ॥९६॥
 हृदनीं यादृतं चाग्रं तन्कुरुष्व रघुत्तम । तनस्य सकलं वृत्तं श्रुत्वा गपोऽतिविस्मितः ॥९७॥
 लक्ष्मणं प्राह वगेन पारिवान् जगतामने । स्वस्वगजस्थितान्मर्दान्दर्शनं गच्छाम्यापुना ॥९८॥

गया त। उस राक्षस पोण्डुक नामका पुत्र जायमान हुआ । ८२ ॥ श्रोतानदीके तटपर मायापुरी नामकी नगरी-
 में एक सी चित्रवाला रावण रहता था । उसके २०० भोजार्थे यों । पोण्डुके उस रावणकी सहायतासे विभीषण-
 को परास्त कर दिया और शताननेन रावणके साथ लकाका राज्य स्वयं करने लगा । उस समय विभीषण
 रामके पास गया और उन्होंने अपना सब कुशल गुन जा । ८३ ॥ ८४ ॥ मित्रकी उस दुःखगरी कहानीको
 सुनकर राम हाता और विभीषणके साथ लकाका चले दिये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस सी मुँहवाले रावण
 तथा पोण्डुका मारा और फिर विभीषणका लकाके निहासनपर बिठाकर बजाया सौट आये । इसके बाद
 एक दिन राम अपना सप्ताम बैठे थे । तब अरनी मक्ष पुत्र तथा मंत्रियोंके साथ विषण्ण भावसे बैठे हुए विभी-
 षणने कहा—हे राम । हे राजावरनाथ । मैं आगई शरणमें हूँ, मेरी रक्षा कीजिए । ८५—८७ ॥ बहुत दिनों-
 की बात है, जब मूल लक्ष्मण कुम्भकर्णके एक पुत्र हुआ था । कुम्भकर्णने दूतों द्वारा उस लड़केको जङ्गलमें
 छोड़वा दिया । वहाँ मधुमन्त्रियोंने उसके मुँहमें मधुकी एक-एक थुँद टपकाकर उसकी रक्षा की । वह इस समय
 बड़ा हुआ है । जब उसने लोगोंके मुँहसे यह सुना कि रामने मेरे पिता तथा कुटुम्बियोंका नाश किया है
 । ८८ ॥ ८९ ॥ तब उग्र तपस्या द्वारा उसने प्रजाको मन्त्रु करके वर प्राप्त कर लिया । वरके प्रभावसे गर्वित
 होकर पातालनिवासी राक्षसोंका सहायतासे उसने लकापर चढ़ाई कर दी । मैंने छः महीने तक उसके साथ
 प्रमाणात् युद्ध किया । अन्तमें उसने हम परास्त करके लकापर अधिकार कर लिया । ऐसी अवस्थामें मैं
 बाधी रातको अपने पुत्र, स्त्री एवं मंत्रियोंके साथ एक सुरङ्गके रास्तेसे भागा । ९०—९२ ॥ एक योजन दूर
 भाग जानेपर ठहर गया जब रात्रि व्यतीत हो गयी । तब आगं बड़ा और आपके पास आ पहुँचा । वह मूल
 लक्ष्मणमें पैदा हुआ तथा वृक्षोंके नीचे उसका पालन-पोषण हुआ है । इसीलिए लोग उसे मूलकासुर कहते हैं ।
 युद्ध करते-करते एक बार उसने मुझसे कहा था कि हम रणभूमिमें पहलें तुझको मारकर लकापर अविकार कर लेने-
 के बाद मैं उस राक्षसके पास आऊँगा, जिसने मेरे पिता तथा मेरे कुलका मंहार किया है । ९३—९५ ॥ मयामधुमिमें
 रामको मारकर मैं अपने पितृकुलसे उच्छ्व हो जाऊँगा । हे रघुनन्दन । मैं अहंताक जानता हूँ, भीष्ट ही वह बाप-
 है जो युद्ध करनेके लिए आयेगा । ९६ ॥ ऐसी अवस्थामें आप जी उचित समझे सी करे । विभीषणका हाल

तथेति रामवचनाद्वाताज्ञापयन्दा । लक्ष्मणस्तेऽपि देगेन गन्वा दूताः समागताः ॥९९॥
 प्रोचुः ममायां श्रीराम नृणां धननानि ते । केचिन्नृपा पालयन्ति तदासां ह्यनन्दन ॥१००॥
 केचिन्नृपा पालयन्त्याज्ञां तत्र तत्कारणं भूम् । चपिकाया मुमन्याश्च स्वयंवरमुद्रवम् ॥१०१॥
 दुःखं हृदयसस्यं यत्तदद्यापि गतं न हि । पुःकेतुशराघानाभिन्नमर्मस्थलाः पुनः ॥१०२॥
 स्मृत्वा मदनमुन्दरीं दुःखं कान्पुद्रव नृपाः । आता न पालयन्त्यद्य तत्र राघव सन्प्रभो ॥१०३॥
 पालिता येनवाज्ञा ते सुग्रीवाद्या नृपोत्तमाः । स्वयंकोटिबर्तुक्ताः ममायातः महस्रयः ॥१०४॥
 तदुद्वेगवचनं श्रुत्वा रामो राज्ञावदीचनः । प्राह माणधातांस्ते स्पृहयन्ति नृशमपाः ॥१०५॥
 आदी हन्वा कौशकीं तान्मच्छामि तनस्वहम् । हन्तुं कन्या मुदिने रामः सेनया बहुभिर्जवात् ॥१०६॥
 मूलकासुरघातार्थमादी पूर्वा ग्रहियर्था । विचिन्मैन्ययुतं पुर्वा यूपकेतु न्यवश्यत् ॥१०७॥
 कुशाद्याः सप्त पालास्ते गमेण सह निर्ययुः । विमाने मकुतां सेनां स्थापयामास राघवः ॥१०८॥
 तावत्ते पायिवाः सर्वे नानावाहनमस्त्रिनाः । वेष्टिता स्वस्वमैन्यैश्च नन्वा रम्प पुरः स्थिताः ॥१०९॥
 तान् रामः स्थापयादास विमाने मैन्ययुतान् । अशदशपयमितैः कविभिः कविगद् ययौ ॥११०॥
 आरुगेह विमानाश्च कपिभी राघवाङ्गपा नतः सीतां विना रामः स्वयं स्थित्वा तु पुष्पके ॥१११॥
 पश्यन्मानविधान् देशान्यथा लङ्कां विहायसा । यात्राकाले यथा यान्तरवताऽऽसीत्तथा पुनः ॥११२॥
 नतो राम ममायानं श्रुत्वा स मूलकागुरः । यथा लङ्कामधिपौर्दुषु राघवेण वर्तमानता ॥११३॥
 दशकोटिमितां सेनां विभ्रन् स वरदपितः । तनस्ते राघवाः पट्टिर्निहन्त्युः प्लवगान् मुहुः ॥११४॥
 वावरा राघुभांश्चापि निहन्त्युगन्दपुष्पकैः । एव श्रुत्वा तद्युद्धं तमुत्तं दितममकम् ॥११५॥

मुनकर राम बड़े विस्मित हुए ॥ ९७ ॥ तुरन्त लक्ष्मणसे उन्होंने कहा कि संसारमें जितना राज है, उनका पास दूत भेजकर शांति बुलवा जा ॥ ९८ ॥ लक्ष्मणने रामके आज्ञानुसार दूत भेजे । दूतोंने शांति लौटकर रामसे कहा— हम लोग सब राजाओंके पास हो आये । उनमें कुछ राज तो आपकी आज्ञा का पालन कर रहे हैं और कुछ नहीं ॥ ९९ ॥ १०० ॥ इनका कारण यह है कि चपिका और मुमनिके स्वयंवरके समय उनके हृदयमें जो दोष उपजा था, वह अब तक उद्यो गये बना है । फिर पुष्पके का कारणसे उनका हृदय बलग विदीर्ण हो चुका है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ जब वे मदनमुन्दरीकी उस अनन्या भाविका याद करते हैं तो उनका फलेजा टुकड़े-टुकड़े हो जाता है । इन्हीं कारणोंसे वे आपको आज्ञाका पालन नहीं करना चाहते ॥ १०३ ॥ उन सुग्रीव आदि नृपतियोंने आपको आज्ञाका पालन किया है, वे अपने दलबल समेत अयोध्या आ रहे हैं ॥ १०४ ॥ दूतकी बात सुनकर रामबन्धने कहा—वे नीचे राज अवतक हमारे साथ ईर्ष्याभाव रखने हैं ? अस्तु, पहले कुम्भकर्णके बेटे मूलकासुरको मारकर उन लोगोंपर भी बढ़ाई करूँगा । इस प्रकार निश्चय करके रामने कुछ दिन और मुहूर्तन अपनी विशाल सेना तथा लक्ष्मण-भरत आदि भ्राताओंके साथ मूलकासुरको मारनेके लिए अयोध्यासे प्रस्थान कर दिया ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ पुरके बाहर आकर उन्होंने कुछ सेनाके साथ यूपकेतुको अयोध्याको रस्ताके लिए छोड़ दिया और बाकी कुछ आदि सान लट्ठकोंको अपने साथ ले गये । रामने यात्राके समय सारी सेनाको पुष्पक विमानपर बिठा लिया ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ रास्तेमें रामके अनुगामी राज भी अपनी अपनी सेनाके साथ आकर रामसे मिल गये ॥ १०९ ॥ उन लोगोंको भी रामने विमानमें बिठा लिया । इस यात्रामें सुग्रीव अठारह पय बन्दरोंके साथ आये थे ॥ ११० ॥ उनको भी रामने पुष्पकपर बिठास लिया । इसके अनन्तर पीताम्बी छोड़कर राम विमानपर बैठे । जाकाशमार्गसे अनेक देशोंको देखते हुए वे लङ्काकी ओर बढ़े और अल्प समयमें ही निदिष्ट स्थानपर पहुँच गये । उधर जब मूलकासुरने वह समाचार सुना तो रामबन्धके साथ युद्ध करनेके लिए दस करोड़ सेना लेकर लङ्काके बाहरवाले मैदानमें आ उठा ॥ १११-११३ ॥ उस समय ब्रह्माके वरदानसे वह बड़े घमण्डमें था । फिर क्या कहना था, लक्ष्मणन वानरोंको साथसे मारने लगे । बाहरयूवने पहाड़के बड़े-बड़े टुकड़ों तथा वृक्षोंसे

तत्र ये ये मृगा युद्धे शानरास्तान्स मरुतिः । द्रोणाच्चल मभानीय जीवयामास पूर्ववत् ॥११६॥
 ततः सा राक्षसी सेना चतुर्थीशयशेषिता । तान्नष्टान् राक्षसेन्द्रः स दृष्ट्वा क्रोधयुतस्तदा ॥११७॥
 मन्त्रिणभोदयामास तथा सेनापतीन् बलैः । तन्नागानान् गणमुत्र रामवाराः सहस्रशः ॥११८॥
 शनघ्नीभिर्हस्तयंत्रैर्भेदिगालमुष्णुण्डिभिः । पण्डितैः पट्टिणैः शूनैः कुतैः खड्गैर्विभर्दयन् ॥११९॥
 तेष्वपि तालैस्तमालैश्च हितालैश्च दृक्स्वर्गैः । शालैः शिलाभिः श्रान्तमर्वाभान् संपर्दयन् रणे ॥१२०॥
 पुनर्युद्धं मङ्गलार्मानुमुलं रोमहर्षणम् । तत्तन्नान् मन्त्रिणः मर्वास्तथा सेनापतीनपि ॥१२१॥
 रामवाराः क्षणेनैव चक्रुः सयमतागवान् । तान् मवान्निहतान् श्रुत्वा क्रोधेन मन्त्रकामुगः ॥१२२॥
 स्वयं दिशरथे स्थित्वा किं केनर्मन्वयुतो ययौ नृपाग्नौ नृपा दृष्ट्वा ययुषोर्द्वं सहस्रशः ॥१२३॥
 वयसुः शरजालैश्च चक्रुर्दुन्दुभिनिस्वनान् । तान्मर्वाण् राक्षसेन्द्रः स च क्षात्रं क्षात्रं मूर्धनान् ॥१२४॥
 तान् मूर्धितान् नृपान् दृष्ट्वा योर्द्वं तेन पुनर्ययुः । मुर्मराया मन्त्रिणश्च राक्षसस्याक्षया बलैः ॥१२५॥
 तान्मर्वान्मूर्धितान् राणश्चकार मूलकामुगः । मूर्धितान्मन्त्रिणो दृष्ट्वा कृशाद्या बालका ययुः ॥१२६॥
 ततो बभूव तुमुलं युद्धं तल्लमहर्षणम् । ततः कुशः स्ववर्षावैलकाया मूलकामुरम् ॥१२७॥
 प्राक्षेपद्वन्द्वमध्ये स ययान पुनरुन्धितः । ततोऽमिचार्गिकं होमं स्वशस्त्रार्थमुत्तमम् ॥१२८॥
 कर्तुं निवेद्य स मुहूर्तं बहुधा द्वारण्यनेकशः । ततो विभीषणः प्राह होमधूमं निर्गन्धं च ॥१२९॥
 गन्धं कल्पवृक्षाभः संस्थितं बंधुवेष्टितम् । होमं कनोन्ययं द्रुष्टः प्रेक्षयन् कर्षण्णुनः ॥१३०॥
 होमे समारंभजेयः स मन्त्रिष्यति महामुगः । एतस्मिन्नरे त्रया ययौ रामं सुर्य्युतः ॥१३१॥
 मत्वा तं राक्षसश्चापि पूजयामास सादरम् । तदाऽऽह स्वयं त्रया वास्तवस्मै मयाऽपितः ॥१३२॥

प्रहार करना आरम्भ कर दिया । इस तरह तीन दिन तक उन दोनों सेनाओंमें घमासान युद्ध होता रहा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ उस संध्यामें श्री जो बानर मरने में तो दृष्ट्वा नी द्रोणाच्चल परतवालों औपचित्य कर लहे जावित कर दिया करने में ॥ ११६ ॥ आनन्द राज राक्षसोंका एक चौथाई सेना रह गयी, शेष सब मार डाले गये । मूलकामुगने जब देखा कि अब वीरमें राक्षस सब रण गये हैं तो युद्ध होकर अपने मन्त्रियों सेनापतियों और सेनाका भजकर उसने बड़ा वीरताके साथ लड़नेका लय रग । उधर जब रामदशरथ वीरोंने देखा कि राक्षसोंकी और भी सेना आ गयी है और वे अपना बाण, तखार, बन्दूको आदिसे मेरी सेनाको मारकर हार क्रिये डे रहें हैं तब वे भी ताल, तमाल, हिताल आदि वृक्षों तथा पर्वणकी बड़ी बड़ी चट्टानोंका लेकर फिर युद्ध करने लगे और योही ही दामे भद्रक मंत्री, सेनापति तथा सेनाको समुप पट्टा दिया ॥ ११७-११९ ॥ जब मूलकामुगने मना कि वह सेना भी साफ हो गयी तो मने क्रोधेन समतमा उठा और स्वयं एक दिश रथपर सवार हो तथा पोंछ-सी मेरा साथ लेकर लड़नेको बल दडा । रामके पार्श्ववर्ती राजाओंन अब उसे लड़नेको तैयार देखा तो वे हजारों राजे भी बरिकर बाँध बाँधकर मंदानमे आ गये ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ उन लगान दुन्दुषोकी धनघोर नजंनके साथ उस राक्षसपर बाणवर्षा प्रारम्भ कर दी लेकिन मूलकामुगने क्षणधरमे उन लोगोंका भुँकल कर दिया ॥ १२४ ॥ जब राजा प्रोता मूर्धित देखा तो राक्षसोंकी आजसे सुमन्त्र आदि मन्त्री अपना-अपनी सेनाके साथ लड़नेके लिए जा उठ । मन्त्री भी वेष्टा हो गये तो कुश आदि बालक जाकर लड़ने लगे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ कुश आदिके पटुवनपर वहाँ भीषण युद्ध हुआ । कुश देर बाद कुशने अपने बाणोंसे मूलकामुगको उठाकर फक दिया और वह लड़की राजगम जा गिरा । किन्तु नुरस्त उठ खड़ा हुआ और उत्तम शस्त्र तथा रथ प्राप्त करनेकी इच्छासे एक बन्दरामे पुन गया, इर बन्द कर दिया और वहाँ आधिचार्गिकी क्रियाके अनुसार हवन आदि करने लगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ जब दिभीषणने हवनके पूर्णको देखा तो ब्राह्मणोंकी मण्डलीमे कल्पवृक्षक नीचे बैठे हुए रामचन्द्रके पास आकर इस प्रकार कहने लगे—हे राम ! वह दुष्ट कन्दरामे वीर हवन कर रहा है । अनएव फिर बानरोंको भेजिए । यदि कहीं हवन सम्पन्न हो गया तो फिर वह कहींसे भी नहीं जीवा जा सकेगा । इसी वीरमें ब्रह्मसे देवताओंके साथ

यदा वीराज मे मृत्युर्भवन्निति पुरा मम । अनेन याचितं राम तपोन्तेऽङ्गीकृतं मया ॥१३३॥
 अतोऽस्य पुरुषान्मृत्युर्न भविष्यति राघव । स्त्रीहस्तान्मरणं चास्य विद्धि त्वं रघुनन्दन ॥१३४॥
 अन्यत् किञ्चित् प्रवक्ष्यामि कारणं मरणेऽस्य हि । एकदा शोकयुक्तेन पुराऽनेन द्विजाग्रतः ॥१३५॥
 सीताचंडीनिमित्तेन जानो मे हि कुलक्षयः । इति यन्निष्ठुरं वाक्यमुक्तं तन्मुनिभिः श्रुतम् ॥१३६॥
 तेष्वेकस्मिन् मुनिः क्रोधाद्ददौ शापं हि राक्षसम् । या चंडीति त्वयोक्ता माऽद्यैव त्वां मारयिष्यति ॥१३७॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा तं जघान स राक्षसः । तङ्गीत्या मुनयः सर्वे तूष्णींभूताः स्थिता पुरा ॥१३८॥
 तस्मात्तन्मुनिवाक्येन ममापि वरदानतः । सीताहस्तान्मृतिश्चास्य भविष्यति न संशयः ॥१३९॥
 अतः सीतां समानीय तयैव नहि राक्षसम् । इत्युक्त्वा राममामंश्यं ययौ वेधा निजं पदम् ॥१४०॥
 रामोऽपि ब्रह्मवचनं श्रुत्वा प्राह विभीषणम् । मूलकासुरहोमाय न कार्यं विघ्नमद्य हि ॥१४१॥
 सीतायाभ्यत्र यात्रायां विघ्नं कार्यं प्लवंगमैः । इत्युक्त्वा गरुडं प्राह रामः पुष्पकमस्थितः ॥१४२॥
 अयोध्यां गच्छ शीघ्रं त्वं वायुपुत्रेण मदगिरा । तामम्रानय वैदेहीं स्वपृष्ठे तां निवेश्य च ॥१४३॥

समतनन्तां दुष्टेभ्यः पथि रक्षतु मासतिः ।

तथेति रामवचनमुरगीकृत्य सादरम् । तानुभौ राघवं नत्वाऽयोध्यां शीघ्रं प्रजग्मतुः ॥१४४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे

शतनारीवरप्रदानं मूलकासुराख्यानं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(राम-सीताविरह)

श्रीरामदास उवाच

अथ भूमिसुताऽयोध्यापुत्री सा हृदि गधवम् । स्मरंत्यासीन्नदिरहाद्व्याकुला नाप शं क्षणम् ॥ १ ॥

ब्रह्माजी वहाँ आ गये ॥ १२९-१३१ ॥ रामने उनको प्रणाम करके विचित्र पूजन किया । थोड़ी देर बाद ब्रह्माने रामसे कहा-हे रघुनन्दन । बहुत दिनोंका वान है, मूलकामूर घोर तपस्या कर रहा था । अन्तमे मांगनेपर मैंने उसे यह वरदान दिया था कि तुम किसी वीरके मारनेसे नहीं मरोगे ॥१३२॥१३३॥ अतएव पुरुषके हाथसे इसकी मृत्यु न होगी । यह किसी स्त्रीके हाथों मारा जा सकेगा ॥ १३४ ॥ एक कारण यह भी है कि एक बार शोकाकुल होकर मूलकासुरने एक ब्राह्मणमंडलीके समक्ष कहा था कि चंडी सीताके कारण ही मेरे कुलका नाश हुआ है । इस निष्ठुर बातको सुनकर एक ऋषिने उसको शाप दे दिया कि जिस सती-साध्वी सीताके लिए तू ऐसे अधमानजनक शब्दोंका प्रयोग कर रहा है, वही सीता तुझे भी शीघ्र ही मारेगी ॥ १३५-१३७ ॥ मुनिका शाप सुनकर मूलकामुरने उसे तुरन्त मार डाला । फिर उसके डरसे ऋषि चुपचाप बैठे रह गये । मेरे कहनेका मतलब यह है कि उस ऋषिके शाप तथा मेरे वरदानसे सीताके हाथों ही इस अधमकी मृत्यु होगी । इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १३८-१४० ॥ रामने ब्रह्माकी बातें सुनकर विभीषणसे कहा कि आज मूलकासुरके यज्ञमें विघ्न डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । जब सीता यहाँ आ जायें, तब वानरीको उसके यज्ञमें विघ्न डालनेकी आज्ञा दी जायगी । फिर राम गरुडसे कहने लगे—तुम जाओ और सीताको अपनी पीठपर बिठाकर यहाँ से आओ ॥ १४१-१४३ ॥ चलते समय रास्तेमें हनुमानजी दुष्टोंसे उनकी रक्षा करते रहेंगे । रामचन्द्रकी आज्ञाको सादर स्वीकार करके वे दोनों वहाँसे अयोध्याके लिए चल पड़े ॥ १४४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासने कहा—उधर रामचन्द्रजीके चले जानेपर सीता अयोध्यामें श्रीरामका स्मरण करती हुई उनके वियोगसे व्याकुल रहा करती थीं । क्षण भरके लिए भी उनके हृदयको चन नहीं मिलती थी ॥ १ ॥

प्रासादे सा कदा तस्यै कदा प्रासादमूर्धनि । कदा द्राक्षामहपाथः कदा सन्वस्तभूषणा ॥ २ ॥
 कारस्त्रीणां कदा नृत्यं ददर्श जनकान्मजा । कदा जयार्थं रामस्य कार्तवीर्यमपूजयत् ॥ ३ ॥
 कदाऽकरोच्च तुलसीशिवाश्वन्धान् प्रदक्षिणाः । मन्थुसूक्तानि विप्रैश्च पाठयामास जानकी ॥ ४ ॥
 गोमयेर्नाजनेयं सा कुड्या कृत्वाऽर्घ्यं जानकी । अकरोन्प्रणयं पुच्छवृद्धिं स्वांगुलिमात्रतः ॥ ५ ॥
 शतरुद्रीयसूक्तस्थ जयार्थं राघवस्य सा । दुर्गायाः पूजनं निन्य चकार नियतव्रता ॥ ६ ॥
 गणेशं मारुतिं शुम्भं स्थण्डिले स्थाप्य प्रेमरः । चकार वद्ध्वा द्वागणि गराश्वं सेचयच्चजलम् ॥ ७ ॥
 कार्तवीर्यस्य यंत्राणि स्थापयामास जानकी । मचके राघवेन्द्रस्य पूजयामास सदा ॥ ८ ॥
 कदा सखीमध्यगा सा त्यक्तालंकारमण्डना । जलयत्रांतिके निद्रां नाप सद्दिग्दहनिना ॥ ९ ॥
 कदा निरीक्ष्य प्रासादे काकमाह विदेहजा । यदि शीघ्रं राघवस्य दर्शनं मे भविष्यति ॥ १० ॥
 तर्हि त्वं गच्छ वेंगेन नो चेदत्र स्थिरो भव । तन्मीतुवचनं श्रुत्वा काकस्तूङ्गाय वेमतः ॥ ११ ॥
 तेन किञ्चिन्ममाश्रस्ता पवनं प्राह जानकी । स्पृष्ट्वा त्वं राघवांगानि मां स्पर्शं कर्तुमर्हमि ॥ १२ ॥
 कदा चंद्रं निशि प्राह न्व स्पृष्ट्वा धीतलैः करैः । श्रीरामं मां स्पृशन्वाद्य स्वकरैः मुखकार्कसैः ॥ १३ ॥
 शुक्लपक्षे द्वितीयायां सीताऽलंकारमण्डिता । स्नान्वा प्रासादशिखरान्मन्वीभिः परिरेष्टिता ॥ १४ ॥
 अपश्यच्छाश्विनं हर्षादेनं रामोऽद्य पश्यति । अन्तरेणाद्य रामस्य सयोगो मां भवेदिति ॥ १५ ॥
 राघे गते कदा सीता हग्निद्राकजलादिकैः । नान्मानं भूषयामास ह्यत्रिपन्थयितं विना ॥ १६ ॥
 चदनं पुष्पमालाश्च पुष्पशय्यां विदेहजा । नांशीचकार श्रीरामविग्रहानलपीडिता ॥ १७ ॥
 शकुनान् सा ददर्शाथ आगमदर्शनेच्छया । तुष्टाऽभूच्छकुनैः श्रुत्वा शीघ्रं रामममागमः ॥ १८ ॥

वे कभी अंटारीपर, कभी छतपर और कभी अंगुरोंकी झालीमें अपने वस्त्राभूषण उतारकर बैठो रहती थीं ॥ २ ॥ कभी देखाओंके नृत्य देखकर जो बहलाना चाहती और कभी रामचन्द्रको विप्रदकामनास कार्तवीर्य भगवान्का पूजन करती थीं ॥ ३ ॥ तुलसी गोपल आदिके वृजोंकी प्रदक्षिणा करती थीं । ब्राह्मणों द्वारा मन्थु-सूक्तका पाठ करवाती थीं । कभी पृथ्वीपर गोबरसे हनुमानजीकी प्रतिमा बनकर पूजन करती और हर रोज एक अंगुल उनकी पूछ बहाया करती थीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ रामचन्द्रकी अपके लिए ब्राह्मणों द्वारा सौ सौ रुद्रोंका पाठ करवाती और दुर्गाजीकी पूजा करती थीं ॥ ६ ॥ गणेश, मारुति तथा शिव, इनको जलम बिछाकर दरवाजे बाद कर लेती । फिर बिड़कीसे उनपर जलधारा डाला करती थीं ॥ ७ ॥ रामचन्द्रजीके मन्थर कार्तवीर्यके यंत्र स्थापित करके सदा सर्वदा उनका पूजन करती थीं ॥ ८ ॥ कभी सहेलियोंमें बैठो बैठो अपने अलंकारोंको फेंक देती और सखियाँ उन्हें फौजारेके पास ले जाकर मुलानेकी चेष्टा करतीं, फिर भी निद्रा नहीं आती थीं ॥ ९ ॥ कभी अंटारीपर बैठे हुए कौएको देखकर सीता कहने लगती—‘यदि मुझे शीघ्र रामचन्द्रके दर्शन होतेवाले हों तो ऐ कौए । तू यहाँम उड़ जा, नहीं तो बैठ’ सीताको बात सुनकर कौआ उड़ जाता । उससे सीताके हृदयको बहुत कुछ दाइस बँध जाया करता था ॥ १० ॥ ११ ॥ इसके बाद सीता पवनसे कहती—‘हे पवन ! तू पहले रामचन्द्रका स्पर्श करके मुझ स्पर्श करो तो बड़ा उपकार हो’ ॥ १२ ॥ रात्रिके समय कभी-कभी चन्द्रमासे चिन्तन करती—हे चन्द्रदेव ! तू अपनी ठट्टी किरणोंसे रामचन्द्रके करीरका स्पर्श करके उन सुखदायिनी किरणोंको मेरेपर डालो ॥ १३ ॥ शुक्लपक्षकी द्वितीयाकी सीता विविध प्रकारके वस्त्र और आभूषणोंको पहनकर सखियोंके साथ प्रासादके ऊपर जाती और इस भावनासे चन्द्रदेवका दर्शन करती कि राम आज जहाँ कहीं भी होंगे, चन्द्रमाका दर्शन अवश्य करेंगे । ईश्वर चाहेंगे तो शीघ्र ही हमारा और उनका मिलन होगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ अबसे रामचन्द्रजी गये थे, तबसे उन्होंने अपने करीरमें त हल्दी लगायी, न आँखोंकाजल दिया और न किसी प्रकारके वस्त्राभूषण पहने ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रके विग्रहानलसे पीडित सोसने चन्दन, पुष्प, फूलकी मालाएँ, फूलकी शय्या आदि कुछ भी नहीं बज्जीकार किया ॥ १७ ॥ रामके दर्शनोंकी इच्छासे वे सदा शकुन उठाया करती थीं । यदि

मवेदिति सखीयुक्ता ददौ सर्वान्तुर्जकाः । कदा पश्येह सीता न ययौ गयं विना ॥१९॥
 नैका तस्यौ कापि सीता स्वाम्यगे दर्शनं जहा । न मिष्टान्नं न ताम्बूलं न गीतं केशवधनम् ॥२०॥
 अंगीचकार श्रीरामविग्रहानलदोषिता । सस्यपणं स नान्देन पुरुषेणाकरोन्कदा ॥२१॥
 भाकरोत्सम्मितं चक्र नोपार्प्यऽन्नं ददत्त मा । अन्पार्प्योत्तरं न्यधून्तं गतुष्टाऽमयन्कदा ॥२२॥
 पर्यंके क्षयनं सीता नाकरोद्राघवं दिना । मुकुरे न ददशेत्थं श्रुत्वा विवृष्टपादुङ्गम् ॥२३॥
 न दधौ वसनं चित्रं न चित्रां कंचुकीं दधौ । न तस्यौ द्वावक्ष मा ददन्त्यगणधूमपु ॥२४॥
 न ययौ सरयूं स्नातुं ययौ नोपवनं वनम् । आगमं न ययौ सीता न तथा पुष्पवाटिकाम् ॥२५॥
 न चकार स्वतो दूरं मागन्त्यानि विदेहजा । वस्तूनि द्विजपन्नास्तेनोपयामास जानकी ॥२६॥
 निपमानकरोन्नानां देवीनां च पृथक् पृथक् । निर्मथं वर्तमानस्यां सत्यं नित्यं विदेहजा ॥२७॥
 वटकानां मह मातामर्पयामि हन्तुमवे । मण्डकात् वनराजस्य दास्यामि पूष्णान्वितान् ॥२८॥
 पिष्टान्नेनापि नैवेद्यं ते दास्यामि गणधिव । दूर्गे त्वां चान्नदानं च दास्यामि प्रमीद मे ॥२९॥
 चण्डिके त्वां प्रदास्यामि रक्त जिह्वोद्भव न्यहम् । मुष्टवन्नं मायमयुक्तं बलिर्दीपममन्वितम् ॥३०॥
 शीघ्रं रामो जप प्राप्स्य शिशुभिर्यातु वै पुण्यम् । मदशरं करिष्यामि पत्रं चोपोषणान्यहम् ॥३१॥
 गोपभोक्ष्यामि मधुरं नोपभोक्ष्याम्यहं धृतम् । माममेकं करिष्यामि वनान्तेव सविस्तरात् ॥३२॥
 कृष्णपक्षे तृतीयायां चतुर्थ्यां च महेश्वरि । किञ्चिन्किञ्चिन्मामि मामि निलवृद्धिं विवाप च ॥३३॥
 गुडेनाह तिलान्भोक्ष्ये यावच्छ्रीरामदर्शनम् । भविष्यति कुशाद्यं च लक्ष्मणाद्यं च धुमिः ॥३४॥
 मन्वरं नवरात्रं च सखीभिश्च करोम्यहम् । एकस्मिन्नेव दिवसे नवभिः प्रभुदर्शने ॥३५॥

शकुन अच्छा उठ जाता तो बड़ा हर्ष होता था । वे समझता कि शत्रु हो रामचन्द्रजीका दर्शन होगा । इसी खुशीमें सखियोंको वे मिठाईयां बांटती थी । सबसे राप परदाग गय, तबसे वे किसके घर नहीं गयी ॥ १८ ॥ १९ ॥ तभीमे सीता कभी सवेरों नहीं बैठती, शररंभे उबटन नहीं लगाती, मिठाई नहीं खाती, ताम्बूल नहीं चढ़ती और अपने केशोका भा नहीं मँवाती थी । जबमे राम गये, तबसे उन्होंने किसी पुरुषके साथ संभाषण नहीं किया ॥ २० ॥ २१ ॥ कभी किसीमे मुरगुगकर नहीं बोलीं, ऊपर बैठ उठाकर किसीको छोड़ नहीं निहारा, कभी किसी पक्षमे दण्ड नहीं देव पाया और कभी भी उनकी आत्माको चैन नहीं मिले ॥ २२ ॥ रामके विरामे पंक्ति सीतान कभी शय्यापर शयन नहीं किया और विरहमे पीने पड़े हुए अपने पुष्पमण्डलका प्राशन नहीं देखा । न उन्होंने कभी रत्नबिंबके कपड़े पहने और न रत्न बिंबकी चाली ही धारण की । तबसे वे कर्म दण्डावके चोखटपर नहीं खर हुई ॥ २३ ॥ २४ ॥ सरयू-म न करनेको नहीं गयी और किसी वन या उपवनमें स्नान करने नहीं गयी । किसी बगीचे तथा पुष्पवाटिकामे भी नहीं गयी ॥ २५ ॥ तबसे उन्होंने कोई मागलिक कार्य नहीं किया । अनेक प्रकारकी मन्त्रों दे देकर उन्होंने ब्राह्मणियोंको प्रसन्न किया और कितने ही तरहके वन करके अनेक देवियोंकी पूजाएँ की । इस तरह बहुतसे वतोंकी करके वे अपने उन नीरस दिनोंको बिताती रही ॥ २६ ॥ २७ ॥ सदा इस तरह मकौती मानती थी—हे देवियों ! और स्वयं श्री यदि रामचन्द्रजी विजयी होकर अपने भाइयो और पुत्र भ्रमेत शीघ्र अवोधा वापस आये तो हे हनुमन् ! मैं बड़ी भारी भाला बनवाकर आपको पहनाऊँगी । मैं गणेशजी ! आपको पूरी और लड्डूका भाग लगाऊँगी । अनेक प्रकारके पकवान बनवाकर आपको समर्पण करूँगी । हे दुर्गे ! मेरे ऊपर प्रसन्न होओ । यदि राम लौट आएँ तो भापके लिए बलिदान करूँगी । हे चण्डिके ! मैं आपको विविध प्रकारके रसादिष्ट अन्न तथा बलिर्दीपके साथ अपनी जीमका रक्त चढ़ाऊँगी । मैंच अङ्गलवारका व्रत करूँगी । एक महीने एक मिठाई और दान न खाऊँगी ॥ २८-३२ ॥ हे महेश्वरी ! कृष्णपक्षकी तृतीया तथा चतुर्थीको छोड़े छोड़े गुरुके साथ तिल खाऊँगी । यह व्रत तब तक चल्ता रहेगा, जब तक मुझे लक्ष्मणादि भ्राताओंके साथ श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन नहीं मिले ॥ ३३ ॥ हे चण्डिके ! यदि मुझे

रविवारे करिष्यामि रवेऽहं पूजनं तव । इत्थं दिने दिने सीता नियमानकरोत्तदा ॥३६॥
 आश्लेषैरर्घ्यदानं च कारयामास जानकी । न सा सुखाप रात्री तु दिवा वा वरवर्णिनी ॥३७॥
 एवं दिने दिने सीता श्रीगमविग्रहातुरा । न अमाप क्वापि वेशे श्रीगमापितमानसा ॥३८॥
 एवं सा उमिलाद्याश्च चपिकाद्यापि वै स्त्रियः । स्वस्वस्वामिवियोगाभिज्वलिता व्याकुलाः क्षणम् ३९॥
 न सुखं क्वापि वै प्रापुः स्वकांतापितमानसाः । सर्वास्ता ललुटुर्नार्पि मणिभूमौ मृगीदृशः ॥४०॥
 काचिश्वर्तयति क्रीडामयूरं न मुदा तदा । शुकं न पाटयन्त्यन्या पञ्जरस्थं कुतूहलान् ॥४१॥
 लालयेन्मकुलं नान्पा नालापयति मार्किकाम् । अपराज्जीव मंतमा नैव खेलति सारसैः ॥४२॥
 मेजिरे न विलासं ता रेमिरे नैव मंदिरे । सखाभिरुचिरे नालं वीणावाद्यं न शुश्रूवुः ॥४३॥
 कल्पद्रुमप्रसूतं यद्रवतन्मुधोपमम् । मदारकुसुमामोदं न पपुर्मधुरं मधु ॥४४॥
 योगिन्य इव सा भ्रुधा नासाग्रन्यस्तलोचनाः । अलक्ष्यग्यानमधानाः स्वनाथापितमानसाः ॥४५॥
 चद्रकांतमणिच्छन्ने स्रवद्भारिकणद्रवैः । क्षणशतायने स्थित्वा जलपत्रेक्षणं क्वचित् ॥४६॥
 रचयंति क्षणं शय्या दीर्घिका भोजिर्नादलैः । वीज्यमानाः मर्त्याभिरुताः श्रोतलैः कदलीदलैः ॥४७॥
 इत्थं युगसमा रात्रिं दिनं ता मेनिरे सदा । कथञ्चिद्भारणा कृत्या विह्वलाः मज्जराः स्थिताः ॥४८॥
 एतस्मिन्नंतरे सीता नियमैश्च व्रतादिभिः । समानीतावाञ्जनेश्वगरुडावीयतुः पुरीम् ॥४९॥
 प्राक्पुरच्छ भुजो वामः सीताया नयनं तथा । सुचिह्नं मन्यमाना सा किंचित्तुष्टाऽमवत्तदा ॥५०॥
 अथ ही कंपनोद्धतगरुडौ सदमि स्थितम् । अयोध्यायां यूपकेतु वृचं कथयतो जवात् ॥५१॥
 तच्छ्रुत्वा यूपकेतुः स वृच मीतां न्यवेदयत् । सा तु तुष्टमनाः सीता तस्मिन्नेव दिने शुभे ॥५२॥

शोध मेरे प्रभुका दर्शन मिल जाय तो मैं अपनी सहेलियोंके साथ नवरात्रका व्रत करूँगी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे सूर्य भगवान् ! प्रत्येक रविवारको मैं आपका विधिवत् पूजन करूँगी । इस प्रकार रामके वियोगवाने दिनोंमें सीता प्रतिदिन अनेक प्रकारकी मनोती माना करती थी ॥ ३६ ॥ वे आश्लेषासे अर्घ्यदान करती रहती थी । रात-दिन कभी नहीं सोती थी । इस तरह रामके वियोगसे दुःखिनी सीता कहीं भी सुख नहीं पाती थी ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इसी तरह उमिला और चम्पिकादिक स्त्रियाँ भी अपने-अपने स्वामियोंके वियोगरूपो ज्वलितसे दाख होकर व्याकुल रहती थीं । वे समस्त स्त्रियाँ अपने महलोकी मणिमयी भूमियोपर लोट-झोटकर दिन काटती थीं । उन्हें समाजके किसी भी प्रदेशमें आनन्द नहीं मिलता था ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उनमेंसे न कोई क्रीडामयूर नचाती, न पिजरेमें बैठे हुए तांतको पहाती, न पाले हुए नेवलेको प्यार करती, न मैना पहाती और न कोई स्त्री सारसोंके साथ खेलवाड ही करती थी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उन्होंने किसी मुखका उपभोग नहीं किया । महलोभ उन्होंने आनन्द नहीं लिया । वे न अपना सहेलियोंके साथ हँसी-दिल्लगी करती थीं, न वीणा बजातीं और न सुनती थीं ॥ ४३ ॥ कल्पवृक्षके पुष्पसे उत्पन्न कृमुमकी अमृतसरीखी सुगन्धिका भी उपभोग नहीं करती थीं ॥ ४४ ॥ वे नारियाँ योगियोंसे समान अपनी दृष्टि नासाग्रभागमें रोककर रात-दिन अपने-अपने पतियोंका ध्यान किया करती थीं । उन्होंने अपना-अपना मन अपने-अपने पतियोंकी अर्पण कर दिया था ॥ ४५ ॥ वे भरोखेमें लगे हुए धन्द्रकान्न मणिके समीप, जिसमें सदा रातके समय जलकी धारा बहा करती थी, वहाँ बैठकर कुछ देर बसियोंको निहारा करती थीं ॥ ४६ ॥ कभी कमलके पत्तोंकी शय्यापर सोनीं और सखियोंसे केलेके पत्तोंका पंखा झलवाती थीं ॥ ४७ ॥ इस प्रकार एक-एक रात्रिको युगके समान मानकर बड़े सन्तापसे विह्वल होकर समय बिताती थीं । जब सीता इतनी कठिन यंत्रणा भोग रही थी, इसी समय गरुड और हनुमान्जी वहाँ आ पहुँचे । सहसा सीताकी बायीं आँख तथा भुजा फड़कने लगीं । इसे शुभ शकुन मानकर वे अपने मनमें कुछ प्रसन्न हुईं ॥ ४८-४९ ॥ थोड़ी देर बाद गरुड और हनुमान्जी राजसभामें बैठे हुए यूपकेतुके पास पहुँच और उन्होंने रामका सन्देश सुनाया ॥ ५१ ॥ उसे सुनकर यूपकेतुने सीताको बतलाया और रामके आज्ञानुसार सीता उसी दिन कुछ आहुत्यों, पुरोहितों

रामवाक्यादाहं गुरुं वेगवत्तरम् । अग्निहोत्र पुरस्कृत्य ऋन्विग्मश्च पुरोधमा ॥५३॥
 पतिं बिनाऽग्निमा नाग्नी सीमासुल्लङ्घ्य न व्रजेत् । म दपोऽत्र न विज्ञेयः मीनोद्योगो विहायमा ॥५४॥
 मये प्राप्ते प्रयामोऽपि स्त्राणामुक्तोऽग्निनिधिः सह । पतिना रहिताना न न दोषः कथ्यतेऽत्र हि ॥५५॥
 भूमिर्गर्वाक्षपार्थिव न देवचरितं चरेत् । ततः स रक्षयामास मारुतिस्तां समन्ततः ॥५६॥
 पश्यंती विविधान् देशान् सीता लकां ययौ मुदा । ददर्श कल्पवृक्षाधः पुष्पकस्थं रघूत्तमम् ॥५७॥
 ननाम शिरसा भक्त्या साऽत्ररुहं स्वगाधिपान् । तां दृष्ट्वा राघवः प्राह सीते नैऽप्य मुञ्चं कथम् ॥५८॥
 विवर्णमंगयष्टिस्ते कृशाऽप्य परिलभ्यते । तद्वामवचनं श्रुत्वा जानकी सस्मितानना ॥५९॥
 विलम्ब्यती विनोदेन राघवं प्राह मादरम् । स्वाभिस्त्वद्विरहादेतत्सर्वं त्वं विद्धि राघव ॥६०॥
 न निद्रामि न ज्ञामि नास्नामि न पिबाम्यहम् । व्यायाम्यहं केवलं त्वां योगिनीं च त्रियोगिनी ॥६१॥
 निद्रादग्निद्रनयना स्वप्नेऽपि न तवाननम् । आनदि सर्वथा यन्मे मंदमाग्या विलोक्ये ॥६२॥
 त्वदाननप्रतिनिधिर्विबुर्विभुरथा मया । उद्दिनोऽपि न चालोकि नापं वै स्ववतुक्कामया ॥६३॥
 त्वदालापममालाप कल्पयन् किल काकलीम् । कोकिलोऽपि मयाऽऽकृणो नालकाकीर्णकर्णया ॥६४॥
 नाना यमाश्च नियमा जयार्थं तव राघव । कुर्वत्या मम नैवाभून्मुखं त्वद्विरहाग्निना ॥६५॥
 ततो विहस्य श्रीरामस्त्रामलिंग्य पुनः पुनः । कराम्भां तत्स्तनौ स्पृष्ट्वा पपी विवाधरामृतम् ॥६६॥
 अथापरदिने रामः स्नात्वा स्नातां विदेहजाम् । अस्त्रविद्यां अस्त्रांश्चामच्छाहानविसर्जने ॥६८॥

तथा अग्निको साथ लेकर गुरुवर जा बैठा ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ यह एक नियम है कि स्त्री बिना अग्निके अपने
 गौशकी सीमाको लाँघकर कहीं नहीं जाती । अग्निको साथ ले लेतेसे वह दाँप नहीं रहता ॥ ५४ ॥ दूसरे एक
 जगह शास्त्र यह भी काजा देता है कि यदि किसी प्रकारके छतरेका आवसर आ जाय तो अग्निको साथ लेकर
 यह प्रवास भी कर सकते हैं । यदि उस समय वह पतिसे वियुक्त हो तो उसको ऐसा करनेपर कोई दाँप नहीं
 लगता ॥ ५५ ॥ मरुत्लाकन्विमिवो तथा ब्राह्मणोको चाहिए कि वे दकताओंका अनुकरण न करें । अस्तु,
 सीता गुरुवर स्वामि हुई । हन्मन्जी सीताकी रक्षा करने लगे और योंही रास्तेके अनेक देशोंको देखती हुई
 लङ्काकी तरफ चली । इस प्रकार बहुत गांध्य लङ्कामें पहुँचकर उन्होंने देखा कि रामचन्द्रजी वहाँ कल्पवृक्षके
 नीचे बैठे हुए हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ वहाँ पहुँचो तो उतरकर उन्होंने रामचन्द्रका प्रणाम किया । रामने कहा—सात ।
 मैं देखता हूँ कि तुम्हारा मुँह कुम्हलाया हुआ है और शरीर दुर्बल हो गया है । रामकी बात सुनकर मुस्कराती
 हुई सीता लङ्काके साथ कहने लगी—हे स्वामिन् ! यह सब आपका विरहका प्रभाव है ॥ ५८-६० ॥ मुझे न
 नींद आती है, न जाग ही पता है और न खाती पाता हूँ । आपसे वियुक्त होकर योगिनीके समान सदा
 आपका ध्यान किया करता हूँ ॥ ६१ ॥ निद्राकी दरिद्र मेरी आँख स्वप्नमें आपके ही मुखको देखा करती
 है । उसीमें इनको अनन्द मिश्रता है ॥ ६२ ॥ आपके मुखका प्रतिनिधस्वरूप चन्द्रमा भी उदित होता है
 तो मुझे अच्छा नहीं लगता । सन्तापका दूर करनेको कामनासे भी उसकी ओर निहारनेको मन नहीं करता
 ॥ ६३ ॥ यद्यपि तुम्हारी ही बालोंका तरह कोकिलको बोल होता है, किन्तु वह भी सुननेकी इच्छा नहीं होती ।
 उसकी बोल कानोंको शूणके समान लगती है ॥ ६४ ॥ यद्यपि तुम्हारे बच्चोंके स्पर्शके समान ही मधुर घृते
 मुखसे मिली वायु भी है, किन्तु उसका भी मैंने कभी आलिंगन नहीं किया ॥ ६५ ॥ आपकी विजयके लिए मैं
 विविध प्रकारके प्रती और उपवासोंको करत रहा । आपकी विरहाग्निसे तत्पक्ष होनेका कारण कभी मुझे
 भूख नहीं मिला ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर हैसकर रामने बार-बार सीताको अपनी छाँट से लगाया, स्तनस्पर्श
 किया और होठोंको चुभा ॥ ६७ ॥ इसका बाद दूसरे दिन रामने स्नान किया, सीताको भी स्नान करवाया
 और सब अस्त्रविद्या, शस्त्रविद्या एवं उनके आवाहन तथा विसर्जनकी रीति सिखायी । कहनेका तात्पर्य यह कि
 उन्होंने थोड़े ही समयमें सीताको समस्त धनुर्वेदकी शिक्षा दे दी । रामकी आज्ञासे सङ्गमने रथ तैयार

शिक्षयामास सकलां धनुर्विद्यां सविस्तराम् । रामासुया लक्ष्मणोऽपि रथं सिद्धं चकार सः ॥६९॥
 दारुकाः सारथिर्यस्मिन् शस्त्राण्यस्त्राण्यनेकशः । गदापथं तु यत्रास्ति यत्रास्ति गरुडो ध्वजे ॥७०॥
 यस्मिन् शैव्यश्च सुग्रीवस्तथा चैव बलाहकः । मेघपुष्पश्च चत्वारो बाधुमास्तुगोचराः ॥७१॥
 यत्र छत्रं वरं दिव्यं हेमदंडं विराजते । यस्मिन् शुक्ले घामरे द्वे यस्मिन्कीलादिरुक्मज्जम् ७२॥
 तं रथं राघवो दृष्ट्वा जानकीं वाक्यमब्रवीत् । सीते स्थित्वा स्यंदनेऽस्मिन् जहि त्वं मूलकासुरम् ७३॥
 तथेति रामवाक्याच्छायां सीता प्रचोदयत् । तामसी साऽपि तं नत्वा परिक्रम्य पुनः पुनः ॥७४॥
 आहरोह रथं वेगाद्घोरा घर्घरनिःस्वना । एतस्मिन्ननरे रामप्रेरिता वानरोचमाः ॥७५॥
 लक्षां गत्वा पूर्ववच्च हवनात्तं प्रचालयन् । ततस्ते वानराः सर्वे ययुः श्रीराघवं पुनः ॥७६॥
 ययौ स्थित्वा रथे योद्धुं क्रोधेन मूलकासुरः । मार्गे भुवि पपातास्य मुकुटः स्खलितो भुवि ॥७७॥
 अनिवर्त्यासुरो गर्वाधर्यो रणभुवं जवात् । सीताछायाऽपि सैन्येन ययौ मा लक्ष्मणादिभिः ॥७८॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितातर्गते श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकांडे पूर्वार्धे सीताविरहो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामके द्वारा राज्यका विभाजन)

श्रीरामदास उवाच

अथ छाया टणन्कृत्य शार्ङ्गं तच्च महद्भुजः । ययौ रणभुवं वेगान्तां ददर्शासुरोऽपि सः ॥ १ ॥
 करालदंष्ट्रानयनां विधुत्पिगाशिरोरुहाम् । तालजघां शूर्पपादां दरिद्रकपां घनप्रभाम् ॥ २ ॥
 लोमशां प्रललच्चिह्नां विदीर्णास्यां महच्छिराम् । तां दृष्ट्वा कौभकर्णिः स भीतः प्राह स्खलद्विरा ॥ ३ ॥
 का त्वं समागताऽस्यत्र किमर्थं योद्धुमिच्छसि । मम सर्वं वदस्व त्वं मदग्रे मा स्थिरा भव ॥ ४ ॥

किया ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ उस रथका दारुक सारथी था, विविध प्रकारके अस्त्र आस्य एवं गदा-पथ उसमें रखे थे और रथके ऊपर गरुडसे अंकित पताका फहरा रही थी ॥ ७० ॥ उसमें शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामवाले चार घोड़े जुते हुए थे ॥ ७१ ॥ उसपर बढ़िया छत्र लगा था और सुवर्णके दण्ड लगे दो सफेद चमर रखे थे । उस रथमें जगह-जगह सुवर्णका कलं लगी हुई थी ॥ ७२ ॥ इस प्रकार उस सुसज्जित रथका देखकर रामने सीतासे कहा - सीत ! अब तुम इस रथपर बैठकर मूलकासुरका मारो ॥ ७३ ॥ सीताने रामकी बात अङ्गीकार की और अपनी तामसी छायाकी प्रेरित किया । उस तामसी छायारूपिणी सीताने बार-बार रामकी प्रदर्शना की और घर्घर बन्द करत हुए रथपर जा बैठी । उसी समय रामके द्वारा प्रेरित वानर लक्ष्मण पहुँचे और उन्होंने मूलकासुरको हवनकर्मसे विचलित कर दिया । फिर लौटकर वे वानर रामके पास पहुँच और सब समाचार सुनाया । उधर मूलकासुर क्रुपित होकर रथपर जा बैठा और संग्रामके लिए बल पड़ा । जात-जात रास्तेमें एक जगह उसका मुकुट भागसे खिसककर जमीनपर गिरा और वह स्वयं भी फिसलकर गिर पड़ा ॥ ७४-७७ ॥ फिर भी वह लौटा नहीं, उसी गवक साथ रणभूमिमें पहुँचा । इधर सीता भी रथपर बैठी और अपने लक्ष्मणादि वीर सैनिकों के साथ रणभूमिको ओर चल पड़ी ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितातर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंचमः रामतेजसांडेयकृतज्यास्ता भाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे पूर्वार्धे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा-इसके अनन्तर उस छायामयी सीताने अपने धनुषका विकराल टंकोर किया और संग्रामभूमिमें जा डटी । तब मूलकासुरने भी उन्ह देखा ॥ १ ॥ उस समय सीताके बड़े-बड़े दाँत, डरावनी आँखें, विजलीके समान पीतवर्णके केशपाश, तालकी नाई लम्बी चौड़ी जाँघ, सूपकी तरह चौड़े पैर, कन्दराके समान भयावना तथा मेघके समान काला मुँह, लपलपाती जाम्भ और बड़ा भारी माया था । उन्हें देखकर कूभकर्णके बटेने घबराकर कहा-॥ २ ॥ ३ ॥ तुम कौन हो ? यहाँ बुद्ध करनेके लिये क्यों आयी हो ? इन बातोंका

यदि जावितुमिच्छासि न मे स्वाध्यासि तर्ह्यसि । अत्र नर नर इत्यादिमानं नमुहं गच्छिता ॥ ५ ॥
 तमुवाच तदा छाया गिरि निर्देष्टी गिरिम् । मूलकासुरतां सीतां चर्त्ता सीतां चर्त्ता चर्त्ता ॥ ६ ॥
 यन्निमित्तान्कूल मष्टं नर लला प्रवर्षिता । मन्त्रपात्रिनं सिद्धं पूर्वं न्व हावानमि ॥ ७ ॥
 तस्यानृण्य गमिष्यामि त्वां हन्ताऽथ स्याज्जिरे । शत्रुकन्या न पमानस्य पंचदणैर्जघान तम् ॥ ८ ॥
 ततः सोऽपि धनुर्वेत्ता छायां वाण नमुहोच ह । ननु द्र पाथिव्यनाम्ने जीविता मे हन्मता ॥ ९ ॥
 ददृशुर्वासरः सर्वे पुष्पकः कुलमास्थिताः । सीतायां नमुहोचस्तु कल्पवृक्षले स्थितः ॥ १० ॥
 रुक्ममाणिक्यपर्यंके दामोभिः परिर्वर्जितः । रत्नवर्धनपुष्टः स धृताधोकोपवर्धनः ॥ ११ ॥
 युद्धं ददर्श तच्छाया मूलकासुरो मेदय । मूलकासुरमन्यकां वाणांश्छाया सवागतान् ॥ १२ ॥
 छित्त्वा स्ववाणजालैस्तानन्पुनर्वाणान्मुहोच सा । चतुर्भिस्तुरगान् हन्वा मुहुट कवचं धनुः ॥ १३ ॥
 सा विभेदं त्रिभिर्वाणैस्तदा पद्भ्यां महामुरः । गन्वाऽन्य रथमस्य छाया योद्धुं पुनर्यथै ॥ १४ ॥
 ततश्छायां मुहोचार्त्ता बह्वक्षत्र मन्त्रकासुरः । छाया मुहोच मेघास्त्र तद्वह्वक्षत्र न्यवर्तयत् ॥ १५ ॥
 पर्वतास्त्र कौम्भकणिम्बतश्छायां मुहोच सः । न्यधारयच्छाया सा पवनान्त्रेण पार्वतम् ॥ १६ ॥
 पुनर्मुहोच वेगेन सर्पास्त्रं मूलकासुरः । गारुडान्त्रेण तच्छाया चकार विफलं क्षणात् ॥ १७ ॥
 एव तन्मुलं युद्धं बभूव दिनममरम् । तदा छाया महारोद्रा चण्डिकाऽस्त्रेण तं रिपुम् ॥ १८ ॥
 हनुकाया महाम्ब तन्मुहोच मूलकासुरम् । तदा चचाल जगती सर्पादायन्वयस्तदा ॥ १९ ॥
 लघयामासुरजसा व्यामात्रामस्तदा दिशः । चण्डिकास्तु तु चिच्छेद मूलकासुरसञ्छिरः ॥ २० ॥
 पपात कायो लकायां गजद्वारि महञ्छिरः । हाहाकारो महानासील्लंकायां रक्षसा तदा ॥ २१ ॥

उत्तर दो ओर यदि तुम्हें अपने प्राण प्रिय होना मरे अंगेन हट जाओ । त्रिधास लङ्कनके लिए मृगमं पुण्यापं नहीं है । थोड़ी हा दर बाद भीता आकलाम रामक साथ विमानपर बंठा हुई विखायी पयो ॥ ४ ॥ ५ ॥
 वही हस अपना अनघार बाणाभ पवनाका भा भवेत, हुई सीता कहन लगा—ह मूलकासुर ! इस समय उय रूप धारण किया मैं चण्डिका साता हू । जिसके कारण तुम्हारा सारा कुल नष्ट हो गया था और लंका ध्वस्त हो गयी थी, वही साता मैं हूँ । तुमने मर पक्षान्त, एक बह्मणकी मार डाला है ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसके बदले आज तुम्हें मारकर मैं उसके आत्म मुहोच ज ऊन । इतना कहकर सीताने अपना धनुष उठाया और तदातक पाँच बाणोंसे मूलकासुरपर प्रहार किया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर उस दैत्यने भी अपना धनुष सम्हालकर साताक ऊपर कई बाण चलाये । उन दान्तके उस मुमुक्षु युद्धका दायनके लिए ब बहुतस रात्र तथा वासर पुष्पक विमानपर बंठा थे, जिनका हनुमानज ने सजावली वृत्तास जावित कर दिया था ॥ ९ ॥ थोड़ा दर बाद वासरान दत्ता कि राम सीताके साथ बन्धुवृक्षक छायामें स्वर्णजाटत आसनपर बंठे ॥ १० ॥ दसवीं पक्षा मूल रही है और उनके आगपदे तक्रिया लगी हुई है ॥ ११ ॥ रामचन्द्रजी बहाम वंठ-वंठ छायामें साता तथा मूलकासुरका युद्ध देखत रहे । सीता मूलकासुरका धोरसे भाय बाणोंका शत्रुतक साथ काट-काटकर अपने बाणोंका उसके ऊपर छाडती जान थी । चार बाणोंस सातान मूलकासुरक रथम मुत घटो और तानसे उसके माथका मुकुट, धनुष तथा कवच काट डाला ॥ १२ ॥ १३ ॥ ऐसा अवस्थामें बहु पैदल दोडता हुआ गया और एक दूसरे रथपर सवार होकर फिर सीतासे युद्ध करनेके लिए भा डटा ॥ १४ ॥ वही पट्टवत ही उसने सीतापर बह्वक्षत्र छाड़ा । स ताने मेघास्त्रका प्रयोग करके उसके बह्वक्षत्रका सान्त कर दिया ॥ १५ ॥ फिर उसने सीतापर पर्वतास्त्र छोड़ा । सीताने पवनास्त्र छाडकर उसका निवारण किया । इसके अनन्तर वेगके साथ उसने सर्पास्त्र चलाया । सीताने गरुडास्त्र छेड़कर उसे व्यर्थ कर दिया ॥ १६ ॥ १७ ॥ इस प्रकार सीता और मूलकासुरमें सात दिन पर्यन्त महान् युद्ध होता रहा । तदनन्तर कुचित हाकर सातान मूलकासुरका भाग करनेके लिए अपना एक महान् अस्त्र चलाया । जिससे पृथ्वी दगमगत लगी और समुद्र अपनी मर्यादाको काँवर बड़ी-बड़ी लहरें उछालने लगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ दसो दिशाएँ धूलसे व्याप्त हो गयी और उन बह्वक्षत्रधारिणी

निनेदुर्देववाधानि देवाश्चाकाशमास्थिताः । वषट्पुः कुसुमैश्छायां राम सीतां मुहुमुहुः ॥ २२ ॥
 सतो निवर्त्य सा छाया ययौ सीतान्तिके पुनः । नन्वा राम च सीता च सीतादहे लभं ययौ ॥ २३ ॥
 तदा निनेदुर्वाधानि नचतुश्चाप्मरोमणाः । तुष्टुमुर्मागवाद्याश्च जगुर्मात नटादयः ॥ २४ ॥
 ततः सुरगणैः सर्वैर्वैद्याः श्रागधव ययौ । नन्वा राम च सीता च तुष्टाव जानकीं मुदा ॥ २५ ॥

ब्रह्म वाच

जनकजात्मजे गणवप्रिये कनक्षभसुरे भक्तपालिके ।
 दशरथात्मजप्राणवह्नुमे तव पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥ २६ ॥
 मूलकामुखप्राणधानके रामरक्षिते राममेविते ।
 राममोहिनि स्वन्दनस्थिते त्वपदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥ २७ ॥
 राममञ्जुकाश्रिष्टिते रमे रामरक्षिते रामलालिते ।
 रामममन्तुते रामरक्षिते त्वन्यदाम्बुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥ २८ ॥
 लोकपावनि श्रारजे वरे भूमिकल्पके लोकपालिके ।
 पद्मलोचने धरात्मजे परे त्वन्यदाम्बुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥ २९ ॥
 कंजलोचने नागगामिनि स्वीयसत्सुखे रम्यरूपिणि ।
 रुक्मभूषिते मौक्तिकशंकिते त्वन्यदाम्बुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥ ३० ॥
 जलरुहानने चित्रवामिनि त्वमवमि सर्वदा स्वीयसेवकान् ।
 मुनिरिपून् सदा दुःखदायिके त्वन्यदाम्बुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥ ३१ ॥

सीताके उस महान् अस्त्रने बातकी बातगे मूलकानुरक मुण्डको आगे गये अलग कर दिया ॥ २० ॥ उसका घड़ लवाक राजद्वारपर जा गिरा । इस घटनासे लक्ष्मण जीके हृदय पर शोक भर गया ॥ २१ ॥
 उधर देवताओंने प्रसन्न होकर अपना दुःसुभी बज धी, अपने-अपने विमानपर धीरे-धीरे आकाशमें आये और राम तथा सीतापर उम्होंने पुष्पवृष्टि की ॥ २२ ॥ इसके बाद सीताको छाया रणमणसे नीटककर रामके समीप पहुँची । वहाँ वह राम तथा सीताकी प्रणाम करके उन्हींके आश्रयमें आ गया ॥ २३ ॥ उस समय फिर देवताओंने अपने मण्यवाद्य बजाये और अमरगण नाचने लगे । मातृवन्दोजनारिकीने सीताकी स्तुति की और नटोंने उनका यज्ञांगन किया ॥ २४ ॥ बाड़ा दर-दर बढ़ा ही ममरत देवताओंके साथ रामचन्द्रके पास पहुँच और उनको नवा सीताका प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगे । ब्रह्मने कहा-हे जनकात्मजे ! हे सुवर्णहृश दमकनेवालो भद्रसर्गविषयिणी सन्त ! हे नन्दरक्षिते ! हे सीताका पालन करनेवाली माँ ! हे रामचन्द्रकी प्रेयसी ! हमें ऐसा आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भोरा बना रहे ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे मूलकामुखातिनि ! हे रामरक्षिते ! हे रामचित् ! हे रामको मुग्ध करनेवाला ! हे रथपर मारुद् होकर दुष्टोंका हर्ष दूर करनेवाली संत ! हम आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ २७ ॥ हे रामके साथ दिव्य निहामनपर बैठनेवाली ! हे लक्ष्मी ! हे रामजीविते ! हे रामलालिते ! हे राममन्तुते ! हे रामरक्षिते सीते ! हम आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ २८ ॥ हे लोकपावनि ! हे धा ! हे अज ! हे वरे ! हे भूमिकल्पके ! हे लोकपालिके ! हे पद्मलोचने ! हे धरात्मजे सीते ! हम आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ २९ ॥ हे कंजलोचने ! हे गजगामिनि ! हे स्वीयसत्सुखे ! हे रम्यरूपिणि ! हे रुक्मभूषित ! हे मौक्तिकशंकिते सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणोंका भोरा बना रहे ॥ ३० ॥ हे कमल सरीखे मुखवाली सीते ! हे चित्रवसने ! तुम सदा अपने भक्तोंकी रक्षा करती हो । ऋषियोंको दुःख देनेवाले राक्षसोंको दुःख देनेवाली हैं सीते ! तुम ऐसा कुछ करो कि जिससे हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ ३१ ॥

त्वन्मुखेक्षणद्वयस्य पतिः प्राप संक्षयं रामसन्निधये ।
 त्वद्दृगोक्षणगालिज्जिता मृगी न्यत्पदां वृजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३२॥
 कुशलवाचिके जलरुहानने जलरुशेषे पापदाहिके ।
 मधुसूयने नृपुण्ड्रने स्वल्पदां वृजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३३॥
 प्राणमुत्तम ते विमतानने तेऽध्वरः शुभो विंशसन्निधः ।
 अद्य वै त्वया मूलकामुने मारितो रणे नातिशयम् ॥३४॥
 ब्रह्मणेति नववमुत्तम मान्कर्मादये परमपि यः पूमान् ।
 सर्ववांछितं लभति मोऽत्र नाप्राप्नुयान्सुरां रामसन्निधिन् ॥३५॥

इति स्तुत्वाऽमर्गद्वया वस्त्रलंकारमण्डनैः । सीतां राम च संपूज्य राघवेणापि पूजितः ॥३६॥
 प्रययौ रामसमग्र सन्यस्तकं जलरुमन्तः ततो विभीषणः प्राह लंकायां न त्वया पुनः ॥३७॥
 ममागतमिदानीं त्वं मां कृतं कुरु प्रसन्नं तद्येन प्रतियुज्यात् तदाकथं मृतनन्दनः ॥३८॥
 विमानेन ययौ लंकामध्ये विमानं प्राप ततो विभीषणं राज्ये लंकायां त्वभ्यर्चयत् ॥३९॥
 तदा सहोत्सवश्चापीलंकायां पश्यन्तः ततो विभीषणो रामं सीतां तल्लक्ष्मणादिकान् ॥४०॥
 वस्त्रैरामायै रत्नैः पूजयामास आदरः यदयमाय सर्वेषु स्वीयं रामाय रक्षसः ॥४१॥
 तदा कपिलवाराहमूर्तिं रामपूजितवत् रामसां रोषवशान्न गोऽपि रामाय तां ददौ ॥४२॥
 मनसा कपिलेनैव पुनः मूर्तिं विनयित्वा चित्रकालं तमारुध्य लब्ध्वा मचवता तु या ॥४३॥

हे रामसन्निधये ! तुम्हें देखते हैं हमारा राजा मूलकामुन नष्ट हो गया । तुम्हारी आँखोंकी शोभा देखकर मृगी लज्जित हो जाती है । इस प्रकार तुम्हारे स्पर्शकला के सीने ! हम यहाँ आसानीसे दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ ३२ ॥ हे तुम स्वकी माता हे कमलके समान मुखवाली ! हे कमलके समान आँखवाली ! हे पार्वीकी नष्ट करनेवाली ! हे सीते स्वरवाली ! हे नूपुर सदृश मधुर स्वरवाली सीते ! हमें आसानीसे दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ ३३ ॥ हे मुकुराहट भर मुखवाली सीते ! तुम्हारी नाभिक, बहुत सुन्दर है । विफलके समान तुम्हारे लाल ओष्ठ है । आज तुमने सगामधूमम मूलकामुन का मार डाला । इससे मरानोका उद्धर हो गया ॥ ३४ ॥ श्रीरामदासने वह-सी प्राप्त कालके समय ब्रह्माजीका द्वारा मुनि के गये इन सी वरोंकी पाठ करता है, उसकी सम्पत्ति कामनाएँ पूर्ण हो जाती । जोर अन्य समयमें उस रामचन्द्रजाके समाप स्वप्न मिलता है ॥ ३५ ॥ इस तरह सहान स्तुति करके विविध प्रकारके कथाभूषणों राम और सीताका पूजा की । रामने भी ब्रह्माजीका विधि-वत् पूजन किया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर रामने आज्ञा लेकर समस्त देवताओंके साथ ब्रह्मा अपने लोकको लौट गये । तब विभीषणने भगवान्से प्रार्थना की कि पहले तब आप रावणकी मारनेके लिए लंकामे आये थे तो भिताकी आज्ञा न होनेके कारण आरने नगरीमें प्रवेश नहीं किया था ॥ ३७ ॥ किन्तु अबकी बार आप मेरे घर पधारकर मुझे कृतार्थ काजिए । रामने बहु प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपने पुरस्क विमानपर बैठकर लंकाम अपने मित्र विभीषणके भवन्म पधारें । वहाँ पहुँचकर रामने विभीषणका अभियेक करके लंकाके राजसिंहासनपर बिठाया । उस समय लंकाका उद्धार उसने मनाया गया । इसके बाद विभीषणने राम, सीता तथा लक्ष्मणादिक विविध रत्नों और कथाभूषणों सत्कार किया । तत्पश्चात् उन्होंने अपने सारी सम्पत्ति रामको अर्पण कर दी ॥ ३८-४१ ॥ उस समय विभीषणकी सारी सम्पत्तिसे रामकी कपिलवाराहकी मूर्ति अच्छी लगी । जिसका पूजा रावण स्वयं करता था । विभीषणने रामकी बहु मूर्ति दे दी ॥ ४२ ॥ उस मूर्तिके विध्वंस ऐसा सुना जाता है कि कपिल भगवान्ने अपनी मन-शक्तिसे उस मूर्तिकी रचना की थी । बहुत दिनों तक कपिल मुनिन स्वयं उसको पूजा की । उसके बाद वह इन्द्रके हाथ लग गयी ।

तं जित्वा रावणेनैव समानीता निर्जा पुर्णम् । यां नदा पूजयाधाम लकार्या रावणशिरम् ॥४४॥
 विभीषणेन सा दत्ता राक्षसाप दण्डमयी । तां वृत्ति स्थापयामास विमाने रघुनन्दन ॥४५॥
 ततः सीतां च रामेण देवर्ष्यालङ्कितेन अशोक निवां गत्वा शिशुपावृक्षमुत्तमम् ॥४६॥
 दर्शयामास रामाय यत्र पूर्वं स्थिता स्वयम् । ततो वामकरेणैव रामस्य हि कनिष्ठिकात् ॥४७॥
 धृत्वा दक्षिणहस्तस्य सीतां वक्षसः नदाम्बुः स्नानात्मनः प्रकृत्वा पूर्वं यत्र यत्र कृतं वने ॥४८॥
 राम नोन्वा तत्र तत्र दर्शयामास जानकी । तवस्तां विजटां हीनं पश्यैराभरणादिभिः ॥४९॥
 कुन्दाडितितुष्टां रामाय मातां वक्षसमवीत् , श्रमणां रक्षिता पूर्वं राक्षसाग्रहणीतिनः ॥५०॥
 मत्तुल्या माननीयेषु सर्वदा रामे न्वरा । इत्युक्त्वा मरमाहस्ते विजटाकरमर्पयत् ॥५१॥
 ततो वामस्थलमोता यया रामेण सा धनैः । एव निवृत्तिमादीनि दृष्ट्वा नानास्थलानि हि ॥५२॥
 पुष्पकस्थो यया रामो विभीषणमनिरित । विभीषणस्य मातुः लकार्या मन्यवेशयत् ॥५३॥
 रामः करे धनुर्धृत्वा लकार्याः परिगृह्य प्र. विभीषणं देगाङ्गमयामास मादरम् ॥५४॥
 ततो विभीषणं प्राह वचनं रघुनन्दन . राक्षसे ! चाप रक्षार्थं भूमिनि तव ॥५५॥
 ततो रामो विमानेन यया शीघ्रं निहायमा । विभीषणः राक्षसं तस्यैवानुमतेन च ॥५६॥
 मत्तुल्यापरेखाः पुष्पकस्थो दृ. स्त्रीर्षां र्षां मरिष्यति । अमुं दण्डयामास दण्डं च गृह्णाण विभीषण ॥५७॥
 मम नाम्नाङ्कितं त्वां दण्डयामास प्रणम्य राक्षसः । यदपरेखा रावणहन्ता देवर्ष्या धर्मविषयि ॥५८॥
 मत्तुल्याहस्तं त्वां कश्चिन्न विपुर्धर्मविषयि । इत्युक्त्वा तं वृद्धी वाण विभीषणकरे प्रभुः ॥५९॥
 प्रणमाम मुदा रामं वाणदहो विभीषणः । ततो रामो विमानेन पश्यन् देशान् मनोरमान् ॥६०॥

जब रावणने इन्द्रसे सप्राप्त करके उहे पसर्जित किया । तब रावण उस भूमिको इन्द्रसे छीन लाया और बहुत समय तक उसका पूजन करता रहा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ आज उसे ही विभीषणने रामको अर्पण कर दिया । रामने वर प्रमत्त उसे अपने पुष्पक विमानपर रखवा ॥ ४५ ॥ इसके पश्चात् अपने पति राम और एशमणारि देवगो तथा जग आदि वक्षोक्त साथ सता उस गिजवा वृक्षके नीचे पहुँची, जहाँ रावणके हर ले जानेपर बहुत दिनों तक रह चुका था । जहाँ तब तक सीताने वनमाया कि वह वही स्थान है, जहाँ आपसे वियुक्त होकर मैं बहुत दिन तक रही । इसके अनन्तर रामव दहिन् हाथकी उँगली पकड़कर सीता वक्षोक्तवाटिकामे डगर-उधर घूमती हुई उन स्थानीको निम्नस्थाने लगी, जहाँ स्नानादि कृत्य करती थी । घूमती घूमती सीता विजटाके स्थानपर पहुँची और विविध प्रकारके वस्त्राभूषणोसे विजटाका सत्कार किया ॥ ४६-४९ ॥ जब विजटा प्रसन्न हो गयी तो विभीषणको मन्त्रों सम्भासे सीताने कहा—जिस समय राक्षसिया अपना भगानक मुँह दिखाकर मुझे डराने या कावने थी तब यह विजटा हा मेरी रक्षा करती थी । हे सरमे ! मैं तुमसे विनयपूर्वक कहती हूँ कि सर्वदा तुम मेरी ओर यह इसका सम्मान करना । इसना कहकर सीताने विजटाका हाथ सगम के हाथोमे घुमा दिया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इस तरह घुम-फिरकर राम सीताके साथ डेरेपर पहुँचे और लंकामे भग्नोको राजपकी देख-भाल करनेके लिए छोड़कर विभीषणको अपने साथ लिये हुए ही अयोध्याको प्रस्थान कर दिया । अपने भक्त विभीषणके प्रार्थना करनेपर रामने उसकी रक्षाके लिए अपना धनुष उठाकर बड़े बेगके साथ लंकाके चारों ओर घुमाया और इस प्रकार कहने लगी—हे राक्षसेन्द्र ! मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये यह धनुष घुमाया है । मेरे चतुर्गुणी यह रेवा शत्रुके लिए दुस्तर होगी । तुम्हें यह बाण भी दे रहा हूँ, इस ग्रहण करो ॥ ५२-५७ ॥ इसम मेरा नाम जिन्हा वृक्ष है । यह भदा तुम्हारे प्राणका रक्षक होगा । एक बात और भी है । यह यह कि तुम इस बाणको लिये हुए मेरे धनुषको इस रेखाको साँपोंगे तो तुम्हें यह कोई कष्ट नहीं पहुँचावेगी । ५८ ॥ मेरा बाण जब लिये रहोगे, उस समय कोई शत्रु भी तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं करेगा । इसना कहकर रामने अपना बाण विभीषणको दे दिया ॥ ५९ ॥ बाणको हाथोमे लेकर विभीषणन रामको प्रणाम किया । इसके अनन्तर राम पुष्पक विमानपर

पूजितो दानमानैश्च नृपैः स्वतर्गि ययौ । तदा निनेदुर्गद्यानि ननुतुश्चाप्सरोगणाः ॥६१॥
 प्रपुञ्जगाम श्रीरामं पुष्पकेतुः मन्मथः । प्रान्नादशिवगण्डाः पौरनाथः सहस्रशः ॥६२॥
 सीतां राम निरीक्ष्यथ ववपुः पुष्पवृष्टिभिः ततो विवेश श्रीरामः । मभां तां पार्थिवैः सह ॥६३॥
 विवेश स्वीयमेहं मा आनर्का तुष्टमानसा । मेहे कपिलानहमृति रामो न्यवशयन् ॥६४॥
 एकदा राघवस्तुष्टः शत्रुघ्नाय हि तां दत्ता मन्ताऽपि सा पुनः प्रान्दन्वमांश्च नियमादिकान् ॥६५॥
 सकृन्वयामास सर्वास्वांश्चकार यथाविधि । उद्यापनान्यनैकानि मयेषां माऽकरोन्मुदा ॥६६॥
 एकदा मुनयः सर्वे यमुनार्ताम्वासिनः । आजगमु राघवं द्रष्टुं भयाल्लक्षणरक्षयः ॥६७॥
 कृत्वाऽग्रे तु मुनिश्रेष्ठ भार्गवं न्यवनं द्विजा । अमरुघातः सशिष्यास्ते रामादभयकांक्षिणः ॥६८॥
 तान् पूजयित्वा पश्या भक्त्या शत्रुकुलाद्बहः । उवाच मधुरं वाक्यं हपेयन् मुनिमडलम् ॥६९॥
 करवाणि मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम् । भर्त्याऽस्मि यदि युष्म मां प्रीत्या द्रष्टुमिहागताः ॥७०॥
 सुदुष्कर वा यन्कार्यं भवतां तत्करोम्यहम् । आतापयन्तु मां अन्यं ब्रह्मणा देवतं हि मे ॥७१॥
 तच्छ्रुत्वा सहसा दृष्टव्यवनो वक्ष्यमब्रवीत् । मधुनामा महादेव्यः पुनः राम कृने युगे ॥७२॥
 आर्मादनीव धर्मान्मा देवब्राह्मणपूजकः । तर्म्म तुष्टो महादेवो दत्तो शलमनुत्तमम् ॥७३॥
 तं प्राहानेन यं हसि म तु मग्नीभविष्यति । राघवस्यानुत्तमं तस्य भार्गा कुर्मानसी स्मृता ॥७४॥
 तस्यां तु लवणो नाम राक्षसो भामविक्रमः । आसीद्दुर्गमा दूर्ध्वो देवब्राह्मणहिमकः ॥७५॥
 मधुः स तत्र हस्तेन मृतः पूर्वं यतस्तदा । मधुसूदननामाऽभूत्तुवात्तुवनम् ॥७६॥
 पीडिता लवणेनाथ कथं त्वां शम्पं गताः । तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्याह मा भार्गो मुनिपुंगवः ॥७७॥

वेडे और अनेक देशोंको देखन हुए अयाध्याका कर पड़े ॥ ६० ॥ रामराम अनेक राजाओंके भट तो स्वीकार करने हुए व अवनी नगरोंमें पहुँच । रामके वहाँ परचमपर माना प्रकारके दात वज और असंगत नाची ॥ ६१ ॥ शत्रुकुतु बहुतसे लोगोंको साथ लिये हुए रामकी अगवाना करने पड़े । अयाध्यानि रासिनी कारियोंने कोठेपर चढ़कर सीता और रामका दर्शन कर करके उनपर पुराही वृष्टि की । तबसे राम अनेक महिमायोंके साथ अपने सभाभवनमें गये । सीता अपने महलमें चली गयी । बादमें रामचन्द्रजान वहाँ राजलक्ष्मी भक्तिकी स्थापना की ॥६२-६४॥ एक दिन रामचन्द्रजान प्रमत्त होकर बहू भक्ति शत्रुघ्नका द द । मन्मथने रामका विदागकालमें जिन सत्तों और नियमाका मनोता माना था, उनका वैसे विधि विधान समेत सम्पन्न करके उनका उद्यापन भी यन्त्रके साथ किया ॥६५॥६६॥ एक दिन शत्रुघ्न तटपर खड़ेवाले मन्मथके लवणामूर नामक राक्षसमें अभ्यर्चन करके रामके पास आये ॥ ६७ ॥ उन जागान भयव चरण चरित्वा अपना अङ्गुली वजा । और हजारोंसे अधिक संरक्षक एकत्रित होकर रामके पास जा पड़े ॥ ६८ ॥ रामने उन जागान विधिवन् पूजन किया और उनका प्रमत्त करने हुए इस प्रकार करने लग्य—मन्मथ मुनिगण । आग लग किम कार्य मेरे पास आये है ? आपकी जो आज्ञा हो, उसे पूर्ण करूँगा । तबसे मन्मथ ने । मैं अपनेवा घन्य समझन हूँ जो आप सब मुझे देखनेके लिए मेरे यहाँ पधारे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ यदि कोई अत्यन्त दुष्कर कार्य होगा तो मैं उसे भी करनेके लिए कर बर प्रस्तुत हूँ । क्योंकि ब्राह्मण मेरे लिए दत्तमा सदृश है । आपका जिन विधि अङ्गुली मुझ सेवकको आज्ञा दीजिए ॥ ७१ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर उनसे चरण नामक शत्रु घट्टाकर हाकर कहने लगे—हे राम ! बहुत दिन हुए, मधु नामका एक महादेव आया । वह ब्राह्मणोंका पूजक एवं बड़ा धर्मात्मा था । उसकी इस सहृदयतासे प्रसन्न होकर शिवजी ने उसे एक गिराल दिया कीद कह्य—॥ ७२ ॥ ७३ ॥ तुम इस गिरालसे जिसे मारोगे, वह भस्म हो जायगा । रावणके छोटे भाई कुम्भकर्णकी कुम्भानसी नामकी भार्या थी । उससे लवण नामके एक राक्षसकी उत्पत्ति हुई । जो इस प्रकार मधुना दुष्ट तथा देवताओं और ब्राह्मणोंके स्थि दुस्कार्य है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ मन्मथने अपने मधुना राक्षसको मारा था । इसलिये मधुना मधुसूदन नाम पड़ा था । मधुके समान ही आज लवणामूरसे अनुत्तमकर हम आपको शरणमें आये

लवणं नाशयिष्यामि गच्छतु विगतज्वराः । इत्युक्त्वा प्राह रामोऽपि शत्रुघ्नं मदमि स्थितम् ॥७८॥
 अथ त्वामभिप्रेक्ष्यामि मधुराराज्यकारणात् । तद्रामवचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नो वाक्यमब्रवीत् ॥७९॥
 नाङ्गीकरोम्यहं राज्यं त्वं मा निजपदात्प्रभो । न ह्य कुरु राजेन्द्र प्रार्थयामीति ते मुहुः ॥८०॥
 नत्तस्य वचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य रघून्मः तथैव भरतं प्राह न मोऽप्यङ्गीचकार तत् ॥८१॥
 ततो रामः सुबाहुं च यूपकेतुं द्विजैर्नृपैः । अभिषिञ्चाम्यग्रीढाक्षं शत्रुघ्नं पूरतः स्थितम् ॥८२॥
 दत्त्वा तस्मै शरं दिव्यं निजनामाङ्कितं शुभम् । अनेनैव हि बाणेन लवणं लोककटकम् ॥८३॥
 हनिष्यामि क्षणादेव वृत्रं देवपतिर्यथा । स तु संपूज्य तं शूलं गेहे गच्छति कामनम् ॥८४॥
 भक्षणार्थं हि जंतूनां धानं कर्तुं समुद्यतः । स तु नायाति मदमं यावद्वनचरो भवेत् ॥८५॥
 तावदेव पुरद्वारि निष्ठं त्वं घृतकामुकः । योन्स्यने स रथा क्रुद्धस्तदा बाणेन घातय ॥८६॥
 अनेनैकेन बाणेन क्षणादेव मरिष्यति । तं हन्वा लवणं क्रूरं तद्वने मधुमंशिते ॥८७॥
 निर्माय मधुरानाम्नीं नगरीं यमुनातटे । तस्यां स्थाप्य सुबाहुं च पत्नीभ्यां बालकैः सह ॥८८॥
 यूपकेतुं च विदिशानगरे शत्रुनिषूदन । सस्थाप्य दयिताभ्यां च मन्येन बालकैः सह ॥८९॥
 ततो ममान्तिकं याहि शीघ्रं शत्रुनिषूदन । अश्वानां पचमाद्वर्गं रथानां च तदर्धकम् ॥९०॥
 गजानां पद्मशतान्येव पत्तीनामयुतत्रयम् । आगमिष्यन्ति त्वत्पश्चादग्रे साधय राक्षसम् ॥९१॥
 आगते त्वयि पश्चाद्वि नृपान् जेतुं पुनस्त्वहम् । गंतुमिच्छामि तस्मात्तव शीघ्रमगच्छ मां प्रति ॥९२॥
 इत्युक्त्वा मूर्च्छयन्प्रायः शत्रुघ्नं रघुनन्दनः । प्रपयाभासं तैर्विप्रैराशीर्मिरमिनन्दितः ॥९३॥
 शत्रुघ्नोऽपि नमस्कृत्य रामं मधुवनं यया । निनाय पूजनार्थं तां मूर्तिं सोऽप्यन्मनः प्रियाम् ॥९४॥
 अग्रे संप्रेष्य शत्रुघ्नं ततः श्रीरघुनन्दनः । सुबाहुयूपकेतुं तां स्वस्वस्त्रीभ्यां च बालकैः ॥९५॥

ह । मुनिश्रेष्ठ प्यवनवी बात सुनकर रामने कहा—हे ऋषियों ! आप लोग मत डरें ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ आप सब अपने-अपने आश्रमकी जाते जायें । मैं उस दुष्ट लवणासुरको मारूँगा । उनसे इतना कहकर राम शत्रुघ्नसे बोले—शत्रुघ्न ! आज मैं तुम्हारा अभिषेक करूँ तुम्हें मधुरा राज्यका भेजूँगा । उत्तरमें शत्रुघ्नने कहा—हे राजेन्द्र ! मुझे राज्य नहीं चाहिए । मेरे ऊपर कृपा करके आप मुझे अपने चरणोंसे दूर न कीजिए । इसके बाद रामने वही बात भरतसे कही और उन्होंने भी अस्वीकार कर दिया ॥ ७८-८१ ॥ तब रामने सुबाहु और यूपकेतुको तैयार करके अनेक साहसियोंके साथ उनका अभिषेक किया और सामने बैठे हुए शत्रुघ्नको अपने नामसे अङ्कित बाण देते हुए कहा कि लागोंके लिए कटकस्वरूप लवणासुरको तुम इसी बाणसे क्षण भरमें उसी तरह मार डालोगे, जैसे इन्द्रने वृषानुरको मारा था । वह लवणासुर सदा घरमें उस त्रिशूलका पूजन करके अकालमें पशुओंको मारतक लिए चला आया करता है । सो तुम ऐसे ही समय उसके घर पहुँचो, जब वह वनकी चला गया हो । उसके द्वारपर तबतक बैठे रहो, जबतक वह वनसे न लौट आये । जब वह आये तो उसे भीतर जानेका अवसर मत दो, द्वारपर ही छेड़-छाड़ करके युद्ध शुरू कर दो । वह भी तुरन्त कोधातुर होकर लड़ने लगेगा । तब तुम इसी बाणसे उसे क्षणभरमें मार डालोगे । उस दुष्ट लवणासुरको मारकर मधुवनमें ॥८२-८३॥ यमुना नदीके तटपर मधुरा नामकी नगरी बसा तथा उसमें स्त्री-अच्छों समेत सुबाहुको बिठाकर विदिशा नगरीमें वच्चों तथा सेनाके साथ जाकर यूपकेतुको राजगद्दीपर बिठा देना । यह सब काम करके हे शत्रुनिषूदन ! तुम फिर मेरे पास लौट आओ । तुम आगे-आगे जाओ, तुम्हारे पीछे पाँच हजार घोड़े, दस हजार रथ, छः सौ हाथियाँ और दो हजार पैदल सैनिक तुम्हारी सहायताके लिए भेजता हूँ । जब तुम वहसि लौट आओगे, तब मैं एकबार फिर राजाओंको जोतनेके लिये यात्रा करूँगा ॥ ८८-९२ ॥ इतना कहकर रामने शत्रुघ्नका माया सूँघा और अनेकजः आशीर्वाद देकर उन साहसियोंके साथ भेज दिया ॥ ९३ ॥ शत्रुघ्न भी रामको प्रणाम करके मधुवनकी ओर चल पड़े । साथमें रामकी दो हुई वह कपिल वाराहकी मूर्ति भी लेते गये । रामने उव विप्रोंके साथ

प्रेषयामास सैन्यैश्च दार्मादासैश्च गोधनैः । शत्रुघ्नोऽपि तथा चक्रे यथा रामेण शिक्षितः ॥९६॥
 हत्वा तं लवणं वेगान्मथुगमकरोत्पुगीम् । स्फोटान् जनपदांश्चक्रे माधुरान्दानमानतः ॥९७॥
 मथुरायां सुबाहुं तं स्थाप्य स्त्रीभ्यां सुतादिभिः । स्त्रीभ्यां पुत्रैर्वृषकेतुं विदिशानगरे तथा ॥९८॥
 सस्थाप्य सैन्यैः शत्रुघ्नो मथुरायां कियदिनम् । स्थित्वा सुबाहुं मूर्तिं नदा तुष्टो ददौ मुखम् ॥९९॥
 अद्यापि मथुरायां सा मूर्तिस्तत्रैव वर्तते । शत्रुघ्नोऽपि ततः सैन्यः शीघ्रं रामांतिकं ययौ ॥१००॥
 सर्वं धृतं राघवाय कथयामास मादरम् । अर्थकदा मे भरतः कैकेयीनन्दनो महान् ॥१०१॥
 पुषाजिता मातुलेन साहूतोऽगान्ममैनिकः । रामाज्ञया गतस्तत्र हत्वा मध्वर्चनायकान् ॥१०२॥
 तिस्रः कोटीः पुरे द्वे तु निषेधे रघुनन्दनः । पुष्करं पुष्करावन्यां पूर्वमेवाभिषेचितम् ॥१०३॥
 अयोध्यायां राघवेण स्थापयामास सेनया । स्त्रीभ्यां पुत्रैर्दामदामाज्जगार्थैः परिवेष्टितम् ॥१०४॥
 ततो ब्रह्मर्षे भरतस्तत्र तक्षशिलाह्वये । नगरे स्थापयामास राघवेणाभिषेचितम् ॥१०५॥
 अयोध्यायां पूर्वमेव महामगलपूर्वकम् । स्त्रीभ्यां पुत्रादिभिस्तक्षस्तस्थौ तक्षशिलाह्वये ॥१०६॥
 उमौ कुमारी सौमित्रे गृहीत्वा पश्चिमां दिशम् । गन्वा मल्लान्विनिजिन्य दुष्टान्सर्वापकारिणः ॥१०७॥
 पुनरागत्य भरतो रामसेवापरोऽभवत् । ततः प्रीतो रघुश्रेष्ठो लक्ष्मण वाक्यमब्रवीत् ॥१०८॥
 द्वावंगदचित्रकेतू महामन्त्रपराक्रमौ मयाभिषेचिता वीरा स्त्रीभ्यां पुत्रवर्लेयुता ॥१०९॥
 द्वयोर्द्वे नगरे कृत्वा गजाश्वधनरत्नकैः । स्थापयित्वा तथाः पुत्रौ शीघ्रमागच्छ मां पुनः ॥११०॥
 रामाज्ञां स पुनस्कृत्य गजाश्वधनवाहनैः । गन्वा हत्वा रिपून् सवान् गजाश्वऽङ्गदनामकः ॥१११॥
 धनरत्ने चित्रकेतू स्थापयामास देहजी । स्वस्वस्त्रीभ्यां बालकैश्च दासीदासैर्वर्लान्वितौ ॥११२॥
 सौमित्रिः पुनरागत्य रामसेवापरोऽभवत् । अथ रामः ममाहूय गणकान् परिपूज्य च ॥११३॥

आगे आगे शत्रुघ्नको और पाण्डु नित्यगो-वान्तको समेत मुवाहु एवं पूरकपुत्रको उपयुक्तसंयुक्त सेनाके साथ भज दिया । वहाँ पहुँचकर शत्रुघ्नन ठाक बैसा ही किया, जसा रामन कहा था । इस प्रकार शीघ्र ही उन्होंने लवणामुगको मारकर मथुरा नगरी बसाया । मथुरावासीका अनेक प्रकारका दान मान देकर मथुराका कुछ दिनोंमें ही उन्होंने एक सुन्दर नगर बना दिया । शत्रुघ्नने एक विशाल सेनाके साथ मुवाहुका वहाँकी गद्दीपर बिठाला और स्त्री तथा पुत्रों सहित यूपकेतुवा अपने साथ लेकर विदिशा नगरीका प्रस्थान कर दिया ॥ ९४-९८ ॥ वहाँ पहुँचकर यूपकेतुको गद्दीपर बिठाया । इसके बाद फिर मथुग लौट आये और कुछ दिन वहाँ रहे । एक राज प्रसन्न होकर शत्रुघ्नन वह कपिलवाराह्वो मूर्ति मुवाहुका दत्ता । आज भी मथुरामें वह मूर्ति विद्यमान है । इसके अनन्तर शत्रुघ्न सेनाके साथ रामके पास अयोध्या आय और वहाँ पहुँचकर उन्होंने रामको मथुराका सब समाचार सुनाया ॥ ९९ ॥ १०० ॥ एक समय गङ्गानन्दन भरत अपने मामा युवाजिनके बुलावेपर रामकी आज्ञाम ब्रह्मर्षे सैनिकोंके साथ निहिताय गये । वहाँ गन्धर्वोंका मारा और तान करीड़ नागरिकोंको विभक्त करके श पुगी बगवा । वहाँपर पूर्वमे ही अभिषिक्त पुष्करका राजगद्दीपर बिठाया । तदनन्तर कितने ही दासी-दास तथा स्त्री-पुत्रोंको साथ लेकर पुष्कर वहाँ रहने लगे ॥ १०१-१०४ ॥ इसके बाद भरतने तक्षको तक्षशिला नामका नगरमें अभिषिक्त करके बिठाया । यह सब काम करके भरत अयोध्या लौट आये और फिर पहुँचकी तरह रामचन्द्रजीकी सेवा करने लगे । इसके बाद एक दिन प्रसन्न होकर रामने लक्ष्मणसे कहा—लक्ष्मण ! तुम अपने दोनों पुत्रोंको साथ लेकर पश्चिम दिशाकी ओर जाओ । वहाँ सब लोगोंका अपकार करनेवाले दुष्ट मल्लोंको जतकर अंगद तथा चित्रकेतु इन दोनों बेटोंकी, जिनका अभिषेक मैं पहले ही कर चुका हूँ, वहाँकी गद्दीपर बिठाल दो । वहाँ दो धुरी बसाकर गज-वाजि तथा धनसे परिपूर्ण करके मेरे पास लौट आओ ॥ १०५-११० ॥ रामकी आज्ञा स्वीकार करके लक्ष्मण दोनों पुत्रोंको साथ लेकर ब्रह्मर्षी सेनाके साथ वहाँ पहुँच और बातका मतम

अवनीं जेतुमुद्युक्तो मुहूर्तं तानपृच्छत । ततश्चैर्मर्षकैर्देवो मुहूर्तः परमः शुभः ॥११४॥
 त श्रुत्वा तान पुनः पूज्य सर्वान् रामो व्यमर्जयत् ,
 ततो गमोऽवधीद्वाक्यं लक्ष्मण पुनः स्थितम् ॥११५॥
 अवनिस्थाकृपान् जेतुं सोऽहं गच्छामि पाथिवैः । विमानेनैव गच्छामि सेनां चोदय सन्धरम् ॥११६॥
 नानाशस्त्राणि यंत्राणि वाहनानि समन्ततः । स्थापयस्व विमानेऽद्य क्षतघ्न्यः शतशो वराः ॥११७॥
 धनधान्यतृणादीनां सग्रहं कुरु पुष्पके । पुनीं गोमं सुमत्रोऽस्तु सैन्येन परिवेष्टितः ॥११८॥
 एवमाज्ञाप्य सौमित्रि श्रीरामो जानकीगृहम् । ययौ चकार सौमित्रिर्यथा रामेण शिशितः ॥११९॥

इति श्रीभक्तवीटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीय राज्यकाण्डे
 पूर्वार्द्धे राज्यविभागो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(रामकी भारतवर्षपर विजय)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो रटः सीतां स्वोद्योगमवच्छिनैः । अवनिस्थाकृपान् जेतुं पुत्राभ्यां बन्धुभिर्नृपैः ॥ १ ॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा जानकी प्राह लज्जिता । नाहं त्वद्विग्रहं सोढुं समर्था रघुनन्दन ॥ २ ॥
 त्वयाऽहमवनीं द्रष्टुं यास्यामि जगतां प्रभो । तथेन्युकृत्वा रघुश्रेष्ठो लालयामास जानकीम् ॥ ३ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे सर्वा उर्मिलाद्याः स्त्रियश्च ताः । कुशस्य च लवस्यापि पत्न्यः श्रुत्वाऽवनेर्जयम् ॥ ४ ॥
 कर्तुं रामयमुद्योगं पुत्राभ्यां बन्धुभिर्नृपैः । जानकीं प्राथयामासुर्यास्यामोऽद्य त्वया सह ॥ ५ ॥
 स्वस्वकान्तवियोगं च सोढुं नैव क्षमा वयम् । सीता तानां वचः श्रुत्वा राघवं श्राव्य तद्वचः ॥ ६ ॥

शत्रुओकी परामर्श करके राजाश्वपुरम अङ्गदका तवा वनरगलपुरमे चियकेतुका विठाल दिया और वहाँसे लौट-
 कर लक्ष्मण फिर रामकी सेवामें लग गये । इसके अनन्तर रामने ज्योतिषियोंकी बुलाकर उनकी पूजा
 की और पृथ्वीविजय करनेके लिए शुभ मुहूर्त पूछा । इन गणकोंने भी रामको बहुत ही बढ़िया मुहूर्त बताया
 ॥ १११-११४ ॥ मुहूर्त सुनकर रामने फिर उनकी पूजा की और विदा कर दिया । फिर रामने लक्ष्मणसे
 कहा-मैं पृथ्वीपर रहनेवाले समस्त राजाओंको जीतनेके लिए विमानसे यात्रा करूँगा । तुम जाकर सेनाको
 तैयार करके भेजो । विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और संकटोंकी संख्यामें अच्छी-अच्छी तोपें लेकर मेरे
 विमानमें रखवाओ । खर्चके लिए वन घान्त्व तथा घास आदिका ठोकसे प्रवन्ध करके पुष्पक विमानमें
 रखवा दो । अशोघ्यापुत्रोंको रक्षाके लिए कुछ सेनाके साथ तुमन्त्र यहाँपर ही छोड़ दिये जायेंगे ॥ ११५ ॥
 ॥ ११६ ॥ इस प्रकार आज्ञा देकर राम अपने रनिवासमें चले गये और लक्ष्मण रामके आज्ञानुसार सेना
 आदिकी तैयारीमें लग गये ॥ ११७-११९ ॥ इति श्रीभक्तवीटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे पंचमः रामतेज-
 पाण्डेयविरचित 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास फिर कहने लगे-इसके पश्चात् राम एकान्तमें सीतासे बोले कि मैं अपने पुत्रों तथा बान्धवों-
 की साथ लेकर पृथ्वीके राजाओंको जीतनेके लिए जाऊँगा । इस प्रकारकी बात सुनी तो लज्जित होकर सीताने
 रामसे कहा-हे रघुनन्दन ! मैं आपका विरह नहीं सहन कर सकूँगी । मैं भी इस पृथ्वीतलकी देखनेके लिए
 आपके साथ-साथ चलूँगी । रामने सीताको मर्ग स्वीकार कर ली ॥१-३॥ यह खबर धीरे-धीरे उर्मिलादिक स्त्रियों
 तथा कुश-लव आदिकी पत्नियोंके पास पहुँची और उन्होंने सीतासे प्रार्थना की कि आप हमको भी अपने साथ ले
 चले । हम भी अपने-अपने पतिवियोंका वियोग सहन करनेमें असमर्थ हैं । सीताने उनकी बातें सुनीं तो रामसे

रामानुया तदा मर्वास्तोषयन्ती वचोऽब्रवीत् । आर्गतव्यं मया माकं युष्माभिर्निश्चयेन हि ॥ ७ ॥
 गच्छन् स्वर्गगोदानि सर्वास्तुष्टा गतज्जराः । एवं सीतारचः श्रुत्वा तदा ताः कञ्जलोचनाः ॥ ८ ॥
 सीतां नत्वा ययुः मर्वाः मनुष्टासु इतान्ता । न्यस्वगोदानि वगेन रुक्मन्पुर्गनिःसृताः ॥ ९ ॥
 अथ रामस्तु तां रात्रिं निनाय मोदना मुखम् । बाह्ये मुहुर्ने श्रुत्वा स वन्दिगात मनोगमम् ॥ १० ॥
 रामः प्रबुद्धस्तु जवान्कृतशीचादिमन्त्रिकः । स्नान्वा नित्यायधि कृत्वा कृत्वा शमोः प्रपूजनम् ॥ ११ ॥
 कथां पौगाणिकीं श्रुत्वा दत्त्वा दानान्धनेरुशः । कुन्वोद्योगावेधानं च संपूज्य गणनायकम् ॥ १२ ॥
 कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं घृतश्राद्धं मयिस्मरम् । कामधेनुं कल्पवृक्षं पुष्पकं च सुगन्धमम् ॥ १३ ॥
 मणिद्वयं पृथक् पूज्य मर्वाः कृत्वा तु भोजनम् । घृत्वा यस्त्राणि शस्त्राणि बद्ध्वा मातुः प्रणम्य च ॥ १४ ॥
 ययौ स शिविकारुढः पुष्पकं बन्धुभिर्नृपैः । पुत्राभ्यां सचिर्वः सैन्यः सेवकैर्वादिनादिभिः ॥ १५ ॥

यानमारुह्यः मर्वाः सीताद्यास्ताः स्त्रियः शुभाः ॥ १६ ॥

कौमल्याद्या मातरश्च तस्थुर्यानि यथासुखम् । यात्राकाण्डे यथा शिष्य विमानरचना पुग ॥ १७ ॥
 ते वर्णिता मया तद्वदधुनाऽऽर्वाच्छुभा पुनः । तदा निनेदुर्वाद्यानि तष्टुर्मागधादयः ॥ १८ ॥
 ननृतुर्नार्यश्च नटा गान प्रचक्रिरे । अथ गमोऽब्रवीद्यान गच्छ एवंदित्र प्रति ॥ १९ ॥
 तथेन्युक्त्वा पुष्पकं तद्यथाशक्त्यचर्मना । नत्वा रामं सुमन्त्राऽपि नर्त्या पुर्या यथासुखम् ॥ २० ॥
 पूज्येन नृपाः सर्वे श्रुत्वा रामं समगनम् । प्रन्यज्जम् राघवर्षं प्रवदूकरमपुष्टाः ॥ २१ ॥
 प्रणेमुस्ते रमानाथ नानोपायनपणयः । पूजयामास श्रीगमं नान्वा राजपे निजं निजम् ॥ २२ ॥
 रामानुया मर्मन्याश्च तस्थुर्यानि नृपेत्तमाः । स्वकीशार्दीनि रामं स ममर्थं स्थिरमानसाः ॥ २३ ॥
 मागधान् ममतिकस्य विमानेन गृह्णतमः । पश्यन्मानाविधान् देशान् भूरिकीर्तः पुरं ययौ ॥ २४ ॥

सलाह की । फिर रामके आज्ञानुसार से ता सबका प्रसन्न करता हुई कहन लगी—तुम लोग भी मेरे साथ चलो । अब कोई चिन्ता मत करो और अपने अपने महलोंमें जाकर हमारे साथ चलनेकी तैयारी करो । इस तरह सीताकी बात सुनकर कमल सरीखे नेत्रोवाली उन विभोगेन सीताकी प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक सुनहले नूपुरोंका झंकार करती हुई अपने महलोंको चली गयी । ७-९ । तदनन्तर रामने सीताके साथ वह रात्रि सुखपूर्वक बितायी । बाह्य मुहूर्तमें उन्होंने बन्दीजनोंके मुखमें नील पुष्प ता जाय । सब शीघ्र शीघ्रादि क्रियायें कीं और स्नानादि नित्यकर्म करनेके पश्चात् शिवाय । धिन्त पूजन १० ॥ ११ ॥ बादमें पौराणिकी कथाएँ सुनीं, अनेक प्रकारके दान दिये और अनेक उपचारोंसे गणपतिकी पूजा की ॥ १२ ॥ तब आभ्युदयिक श्राद्ध तथा घृतश्राद्ध करके कामधेनु कल्पवृक्ष, पुष्पक पारिजात वृक्ष तथा दार्णे मणियोंका पूजन किया । इसके बाद अपनी समस्त माताओंका प्रणम करके कपड पहने, अनेक प्रकारके शस्त्र बाँधे और बन्धुओं तथा कितने ही राजाओंके साथ बालकाम सवार होकर पुष्पक विमानके पास जा पहुँचे ॥ १३-१५ ॥ वहाँ अपने पुत्रों, मन्त्रियों, सेनाओं, सेवकों तथा बाहनों संगत विमानपर पहन सातादि स्त्रियाँ और कौमल्यादि माताएँ सवार हुई । रामदासने कहा—हे शिष्य ! यात्राके पटल में जिस प्रकार यानकी रचना कह आया है ॥ १६ ॥ १७ ॥ ठीक उसी तरह इस यानका भी रचना थी । इनकी यात्राके समय अनेक प्रकारके बाजे बजे और मागध तथा बन्दीजनोने स्तुति की, वेश्यायें नाचों और गादकान् गन गाये । इसके अनन्तर रामने विमानको पूर्व दिशाकी ओर चलनका आज्ञा दी ॥ १८ ॥ १९ ॥ तब पुष्पक रामके आज्ञानुसार आकाशमार्गसे उड़ता हुआ चला । रामकी प्रणाम करके सुमन्त्र अरु दशपुंगव आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ २० ॥ जब पूर्व देशके लोगोंने सुना कि राम आये हैं तो वहाँके बड़ेबड़े राज हाथ जाड़कर उनके पास गये ॥ २१ ॥ सामने पहुँचकर उन्होंने भगवान्का प्रणाम किया और अनेक प्रकारके धन उनकी सेवामें उपस्थित कीं और विचित्र पूजन किया ॥ २२ ॥ इसके बाद उन्होंने अपना समस्त कण आदि रामको अर्पण कर दिया और उनकी आज्ञासे

तेनानिपूजितो गमः जनैर्यानेन दक्षिणम् । यथावन्निहतैर्नैव द्राविडं देशमुत्तमम् ॥२५॥
 कृष्णातोऽप्रदेशां गन्तुं पश्यन् गमः जनैः जनैः । कांतिं ययौ विमानेन कञ्चुकं ऽपि राघवम् ॥२६॥
 पूजयामास विधिवन्कोशार्थः सुहृदं निजम् । आम्बारं महादेशं तथा तच्छोलमण्डलम् ॥२७॥
 समतिक्रम्य श्रंगामस्तत्रस्थैः पूजितो नृपैः । ययौ स केरलान् देशानां च कर्णाटकं ययौ ॥२८॥
 पूजितो विजयेनार्पि विजयापुरमग्निना । कोकणस्थान् नृपान् जित्वा महाराष्ट्रं ययौ प्रभुः ॥२९॥
 दुर्गं दक्षिणं नाम चक्रात् स्ववशं क्षणान् । तथान्यान्यपि दुर्गाणि स्वाधीनान्पकरोद्विभुः ॥३०॥
 कृत्वा विराट्देशं च देशान् विध्याचलाश्रितान् । पश्यन् ययौ स रेवायास्तीरेणोकागमीश्वरम् ॥३१॥
 मालवस्थान् नृपान् जित्वा ययौ गमः स उज्जयाम् । उग्रबाहुं रणे जित्वा ययौ हैहयपचनम् ॥३२॥
 जित्वा प्रनीपं श्रीरामः स ययौ हस्तिनापुरम् । एतस्मिन्नन्तरे सोमवंशजास्ते प्रयो नृपाः ॥३३॥
 पुरुरवास्तथाऽमाल्यचाल्पर्मन्येत वै पुरात् । रामेण संग्रहं कर्तुं नानाचाहनमस्थितः ॥३४॥
 ययुधवर्णः शस्त्राणि पुष्पकस्थं शृणुत्तमम् । युद्धं बभूव तैः साकं त्रिदिनं रोमहर्षणम् ॥३५॥
 तदार्माद्रक्तपूर्णा सा जाह्नवी पापनाशिनी । चतुर्थ दिवसे रामस्तान् जित्वा तत्पुरं ययौ ॥३६॥
 सुगेणं वानराणां च वैद्यं वानरसेनया । गजाङ्घ्रये पुरे स्थाप्य तांस्त्रीन् सोमान्वयोद्भवान् ७॥
 कारागृहस्थितान् कृत्वा सुग्रीवार्थं श्रूतमः । ययौ स मधुगं द्रष्टुं सुबाहुपरिपालिताम् ॥३८॥
 दृष्ट्वा सुबाहुं राज्यस्थं विदिशानगरं ययौ । युष्केतुं तत्र दृष्ट्वा राज्यस्थं तेन वन्दितः ॥३९॥
 कुरुक्षेत्रं पुष्करं च दृष्ट्वा रामो विहाय सा । मरु च समतिक्रम्य ययौ गुर्जरश्रूतमम् ॥४०॥
 प्रभासं च ततो गत्वा महर्षदेशं ययौ ततः । गजाश्वनगरे दृष्ट्वा गदं राज्यपदस्थितम् ॥४१॥
 धनरत्नैश्चित्रकेतुं दृष्ट्वा राज्यपदस्थितम् । आनतं स ययौ रामस्तत्रस्थैः परिपूजितः ॥४२॥

अपना सनाक साय पुष्पक विमानपर सवार होकर रामक साथ साथ चले ॥ २३ ॥ मगध देशका लाँघकर
 राम रास्तेके अनेक देशोका देखन हुए भूरिकीर्ति नामके राजाको राजधानीमें पहुँच ॥ २४ ॥ उनसे पूजित
 होकर विमान द्वारा घाट-घारे इतिहास देशाको चल और समुद्रतट चल्कर द्रविड देशमें जा पहुँच ॥ २५ ॥
 कृष्ण नदीके आम पासवाने देशोका देखन हुए राम कार्तिकेयम जा पहुँचे । वहाँ कञ्चुक नामके राजाने
 उनका आदर-सत्कार किया और फिर वहाँसे आम्बार महादेश और चोलदेशको लाँघकर ॥ २६ ॥ २७ ॥
 वहाँके राजाओंसे पूजित हान हुए केरल देशका गये । वहाँ विजयपुरम रहनेवाले विजय नामके राजासे पूजित
 होकर कोकणदेशमें रहनेवाले राजाओंका परामर्श कर महागण्डम पहुँच ॥ २८ ॥ २९ ॥ वहाँ दक्षिणरि नामके
 किजेको क्षणभरम अपने अर्थान करव और भी बहुतसे किलोका अपने कब्जेमें कर लिया ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर
 विराट् देशमें जाकर विद्याचलक जासय, सवाल देशोका देखन हुए रेवातटमें ओकांश्वर पहुँच । वहाँ मालव
 देशक राजाओंको जीतकर उज्जयिनी गये । वहाँपर राजा उग्रबाहुका जीतकर हैहयनगरमें गये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥
 उसके समीपवर्ती राजाओंका ४ ॥ ३३ ॥ श्रीरामचन्द्र हस्तिनापुरा पहुँच । सभी सोमवंशी तीन राजे तथा
 पुरुरवा नामके राजा छोड़कर २ ॥ ३४ ॥ रामचन्द्रसे युद्ध करनेके लिए आ पहुँचा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ वहाँ
 पहुँच ही पुष्पक विमानपर बैठ हुए रामक ऊपर उन लोगान भयोंका क्या प्रारम्भ कर दी । तब उनके
 साथ रामके तीन दिन तक लामहर्षण युद्ध किया । उस समय जाह्नवी रत्तसे पूर्ण हो गयी थी । चौथे दिन
 रामने उनका परास्त करके उनकी पुरीपर अधिकार कर लिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हस्तिनापुरोमें वानरोंके बैठ
 सुगेणको गद्दीपर विठाकर सोमवंशी राजाओंको जलमें डूब दिया और वहाँसे सुबाहुपरिपालित मधुग पुरीको
 देखनेके लिए गये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सुबाहुका राज्यगद् पर आसीन देखकर विदिशा नगरीको गये । वहाँ
 युष्केतुने रामका विधिवन् आपर सत्कार किया । वहाँसे कुरुक्षेत्र पुष्कर आदि तीर्थोंको देखकर आकाशभागसे
 रामचन्द्रजी महर्षदेशका लाँघने हुए गुर्जरत गये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ फिर प्रभासक्षेत्र जाकर मल्लदेश गये । वहाँ
 गजाश्वपुरम अङ्गदकी राज्यासनपर देखकर धनरत्न नामक नगरक राज्यासनपर बैठे हुए चित्रकेतुको देखा ।

प्रययौ पुष्करं द्रष्टुं राज्यस्थं पुष्करावतीम् । ततो रामो विमानेन ययौ तक्षशिलाह्वये ॥४३॥
 तथं दृष्ट्वा पदस्थं तं ययौ भरतमातुलम् । युवाजिना पूजितः स रामो राजीवलोचनः ॥४४॥
 ययौ विहायसा शीघ्रं शकदेशं मनोरमम् । जित्वा यवनदेशस्थाश्रुपान् मर्वान् रघूत्तमः ॥४५॥
 पश्यन्नानाविधान् देशांस्ताम्रदेशं ययौ ततः । ततो मायापुरीं गन्वा कलापग्राममाययौ ॥४६॥
 नरनारायणौ दृष्ट्वा चोपास्यौ रघुनन्दनः । उपामकं नारदं च ययं भारतसंज्ञके ॥४७॥
 तावत्त्वाऽर्च्यं रघुश्रेष्ठस्तत्रस्थैः परिपूजितः । भारतेशं रणे हत्वा तत्पदे स्थाप्य स्वानुगम् ॥४८॥
 भारतं पृष्ठतः कृत्वा पुण्यदेशं मनोरमम् । योजनानां सहस्रैश्च नवभिः परिविस्तृतम् ॥४९॥
 अग्रे ददर्श श्रीरामो हिमालयमहाचलम् । योजनानां महस्राभ्यां गम्य विपुलमुत्तमम् ॥५०॥
 त्रिसप्ततिसहस्रैश्च दीर्घः प्रोक्तस्तु योजनैः । तत्र नानाकौतुकानि ददर्श रघुनन्दनः ॥

दर्शयामास वैदेह्यै विमानस्थो मुदान्वितः ॥५१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे
 भारतवर्षजयो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(रामद्वारा जम्बूद्वीप-विजय)

श्रीरामदास उवाच

अथ ह स किंपुरुषं नाम वर्षे नवसहस्रयोजनविस्तीर्णं स्वीयानादिसिद्धराममूर्तिदेवतोपास्य-
 विराजमानपवनसुतोपासकमधिष्ठितमुपजगाम ॥ १ ॥ तत्र ह बाव दक्षितनाकौतुकस्तद्वर्षनृप-
 समूहपरिवेष्टितः पुष्पकसमधिष्ठितो नववाद्यस्वनपुरःसरः पुरतोऽनुसरार ॥ २ ॥ अथ हेमकूटं नाम
 पर्वतमतिकमनीयं द्विसहस्रयोजनविपुलमेकाशीतिमहस्रयोजनदीर्घं नानाधातुविराजितं समुन्नत-

इसके बाद आनर्त देशको गये । वहाँवालोंने रामका अच्छी तरह सत्कार किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ वहाँसे पुष्करावती-
 के राज्यासनपर बैठे हुए पुष्करको देखते गये । फिर तक्षशिलाकी राजधानीमें सिंहासनपर बैठे हुए तक्षको देख-
 कर भरतके ननिहाल गये । वहाँ पहुँचनेपर राजा युवाजित्ने रामका पूजन किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसके
 बाद आकाशमार्गसे सुन्दर शकदेशको गये । वहाँ यवनदशमे रहनेवाले राजाओंको जीतकर अनेक प्रकारके
 देशोंको देखते हुए ताम्रदेशको गये । फिर मायापुरी हाते हुए कलापग्रामको गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वहाँ सबके
 उपास्य नर-नारायणका दर्शन करके नारदका दर्शन किया । फिर भारतसंज्ञक देशमें गये । वहाँ संग्राम
 करके भारतनरेशको मार डाला और अपने किसी सैन्धवको वहाँका राजा बनाकर नौ हजार योजन विस्तृत
 पुण्यदेश (पूना) को गये ॥ ४७-४९ ॥ इसके अनन्तर महापर्वत हिमालयक पास गये, जो एक हजार
 योजन है । वहाँ रामने अनेक प्रकारके कौतुक देखे, फिर विमानपरसे ही सीताको भी वहाँका कौतुक
 दिखाया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमः रामतेजकाण्ड-
 विरचित"ज्योत्स्ना"भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर राम नौ हजार योजन विस्तृत किम्पुदप नामक देशको गये ।
 वहाँ बहुतसे देवताओं तथा हनुमान्जीकी मूर्तिक साथ रामकी अनादि मूर्ति स्थापित थी ॥ १ ॥ उस
 देशमें अनेक प्रकारके कौतुक देखते हुए वहाँके राजाओंसे परिवेष्टित होकर पुष्पक विमानपर बैठे बैठे आगे
 बढ़े ॥ २ ॥ जाते-जाते अतिशय कमनीय हेमकूट पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन विस्तृत

शिखरविराजमानं पुष्पकमधिष्ठितो रघुनाथ उपजगाम । ३ ॥ अथ तृतीयं वर्षं नाम नवमहस्र-
योजनपरिमितं नृसिंहोपास्यप्रह्लादोपासकविगजमानमतिकमनीयं दशरथनयः समनुययौ ॥ ४ ॥
तद्वर्षवामिनृपप्रवृन्दतुमुलमयाममम्पादितजयश्रीरिपुकोशादिपूजितनृपदयितागर्जितकनीराजितजनक-
जादशितमानकौतुकघञ्जपताकातोरणघटाकिंकिणीविगजमानपुष्पकमधिष्ठितः श्रीरघुनन्दन उपज-
गाम ॥ ५ ॥ अथ निषधं नाम पर्वतं द्विमहस्रयोजनविपुलं नवमहस्रयोजनदीर्घमतिकमनीयं स
रघुनन्दनो नयनगोचरं चकार । ६ ॥ अथ सुवर्णाद्रिसमततश्चतुर्दिक्षु समानमानमिलावृतं नाम
चतुर्थं वर्षं चतुस्त्रिंशन्महस्रयोजनपरिमितं स रघुनायक उपजगाम ॥ ७ ॥ तत्र ह वाज मेरोराश्रय-
भूते मेरोर्दक्षणादिस्थिते मेरुमद्रपर्वतेऽतिविराजमाने समुन्नतजवृक्षमनिविशालं जंबूद्वीपाख्यसूचकं
सकलमपूर्वमतिकमनीयं स रामचन्द्रोऽवतिदुहित्रे दर्शयामास ॥ ८ ॥

ततो मेरुपश्चिमतो मेरोराश्रयभूते मुपार्श्वपर्वते विराजमानकदंबवृक्षमनिसमुन्नतमतिविपुल-
मतिकमनीयं पुष्परंजितं स रघुनायको नैश्विषयं चकार । ९ ॥ अथ मेरोरुनग्नस्तस्याश्रयभूते
कुमुदनाम्नि पर्वते विराजमानमनिसमुन्नतं वटवृक्षमनिविशालमतिस्थूलं स कौमल्यानन्दनो नृपसमूह-
विराजितो जनकजायं दर्शयामास ॥ १० ॥ अथ मेरुपूर्वतस्तस्याश्रयभूते मद्रपर्वते विराजमानमति-
विशालमनिसमुन्नतमतिस्थूलं सहकारवृक्षमतिकमनीयं सुपक्वमधुस्रघटतुल्यफलभारविभ्रं पश्यन्स
रघुवंशभूषणो जनकजाजानिः ॥ ११ ॥ तत्रेलावृते विराजमानमंरुषणोपास्यरुद्रोपासकं स रघुनायको
दयितासहायः शिख्या प्रणनाम ॥ १२ ॥ तद्वर्षवामिनृपप्रवृद्धकरकमलशिगेवदितपदजलरुद्वद्धः स
रघुनायकः पूर्वादिशमनुजगाम । १३ ॥ अथ स गधमादनपर्वतं द्विमहस्रयोजनविपुलं चतुस्त्रिंशन्स-
हस्रयोजनदीर्घं नयनगोचरं चकार ॥ १४ ॥ अथ भद्रार्क्षं नाम पंचमवर्षमेकत्रिंशत्सहस्रयोजनदीर्घं
हयग्रीवोपास्यभद्राश्वोपासकमधिष्ठितं स रघुनायक उपजगाम । १५ ॥ तत्र कचिन्संग्रामस्तद्वर्ष-
विराजमाननृपसमूहेभ्यः कचिच्छरणागतप्रवृद्धकरयुगलावनिपतिभ्यः स्वकरभारान्लभमानः स

तथा हवयाभी हजार योजन लम्बा था, जिसपर अनेक प्रकारकी घातने विद्यमान थी । जिसके ऊँचे ऊँचे शिखर
आकाशसे बातें कर रहे थे ॥ ३ ॥ उसके आगे ताम्र देशम गये, जो नृसिंह भगवान्के भक्त प्रह्लादका वसावा
हुआ था ॥ ४ ॥ उस देशके राजाओंमें तुषुत मग्याम वरुण राम विष्णु का लम्ब करन हुए शत्रुओंकी सम्पत्ति
अपने अधीन करके सीताको मांगने निमित्त प्रकारके कौतुक दिए गए कितने ही ध्वजा, पताका, तोरण,
घंटा और किंकिणीसे सुशोभित पुष्पकविमानपर वे हुए आगे चले ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर दो हजार
योजन विस्तृत तथा नौ हजार योजन लम्बे अति सुन्दर निषध पर्वतपर पहुँचे ॥ ६ ॥ उसके आगे चारों
ओर सुवर्ण पर्वतोंसे परिवेष्टित इलावृत नामक चतुर्थ दशम गये । जो चौधालिस हजार योजन लम्बा-
चौड़ा था ॥ ७ ॥ वहाँ सीताका समूह पर्वतके दक्षिण ओर खड़े ऊँचे और अतिशय विशाल जम्बू-
द्वीपको सूचित करनेवाले एक बड़े भागे जामूनके वृक्षको दिखाया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर पश्चिमकी ओर
मुपार्श्व पर्वतपर बड़े भारी कदम्ब वृक्षको दखा, जो बहुत ऊँचा और पूरोंमें लदा हुआ था । ९ ॥ इसके अनन्तर
मेरुके उत्तर ओर कुमुद नामक पर्वतपर अतिशय विशाल सर्वस्थूल एक वटवृक्ष सीताको दिखाया ॥ १० ॥
मेरुके उत्तर ओर उसके पासवाले मंदर पर्वतपर स्थित खूब लम्बे चौड़े, खूब पके तथा घटके बराबर फलोंसे
लदे एक आजवृक्षको दखा ॥ ११ ॥ उस इलावृतमें बलरामजाके पूज्य रुद्रभगवान्को सीताके साथ रामने
प्रणाम किया ॥ १२ ॥ उस देशके निवासी राजाओंने हाथ जाड़कर रामका प्रणाम किया और राम वहाँसे
आगे पूर्व दिशाकी ओर बढ़े । १३ ॥ तदनन्तर वे गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन
चौड़ा तथा बीनीस हजार योजन लम्बा था ॥ १४ ॥ तदनन्तर भद्रार्क्ष नामक पाँचवे देशम पहुँचे, जो एक-
तीस हजार योजन लम्बा था और वहाँ हयग्रीवके उपास्य भद्राश्व भगवान् रहते थे ॥ १५ ॥ उस देशके बहुतसे

जनकजाजानिरुपमयो परिपुण्य पश्चिमाभिमुखः ॥ १६ ॥ अथ मेरोः पश्चिमदिक्स्थितं मात्स्यवंतं
पर्वतं द्विमहस्रयोजनविस्तीर्णं चतुस्त्रिंशन्महस्रयोजनदीर्घमतिकर्मर्थाय स जनकजारजनो नयनगोचरं
चकार ॥ १७ ॥ तत्पश्चिमतः केतुमाल नाम षष्ठ वर्षे एकत्रिंशन्महस्रयोजनविस्तीर्णं चतुस्त्रिंशन्स-
हस्रयोजनदीर्घं कामदेवोपास्यलक्ष्म्युपासिकासमधिष्ठितमनोहरं स रामचन्द्रोऽनुजगाम ॥ १८ ॥
तद्वर्षेनृपसमूहमुकुटावन्तमपरागपूजितचरणविंदयुगलः स रघुकुलदीपकः सीतया पुष्पकस्थोऽ-
तिमुदमवाप ॥ १९ ॥ अथ मेरोहलग्नः स नीलपर्वतं द्विमहस्रयोजनविस्तीर्णं नवतिमहस्रयोजनदीर्घं
रघुकुलनिलको नयनविषयं चकार ॥ २० ॥ अथ रम्यकं नाम मममं वर्षे नवमहस्रयोजनपरिमितं
मत्स्योपास्यमनूपासकविमानमधिष्ठितः स रघुनन्दन उपजगाम ॥ २१ ॥ तत्रस्थैरवनिपालैः स्वको-
शादिपूजितः स रघुनायकः मीनारञ्जयन् पुरतोऽनुममार् ॥ २२ ॥ तस्योत्तरतः श्वेतपर्वतं द्विमहस्र-
योजनविस्तीर्णमेकाशीतिमहस्रयोजनदीर्घमतिकर्मर्थाय स स्वलोचनविषयं चकार ॥ २३ ॥ अथ
हिरण्यं नामाष्टमं वर्षे नवमहस्रयोजनपरिमितं कूर्मोपास्यार्यभोपासकमधिष्ठितमतिकर्मर्थाय स
समनुययो ॥ २४ ॥ तद्वर्षेनामिन्द्रदयिताशिरोभूषणमणितेजोदापितजानकीचरणारविंदयुगलमीक्षमाणः
स रघुनन्दनो मुदमवाप ॥ २५ ॥ तस्योत्तरतः शृङ्गवन्तं पर्वतं द्विमहस्रयोजनविस्तीर्णं त्रिमस्रतिसहस्र-
योजनदीर्घं स रघुनन्दनो ददर्श ॥ २६ ॥ अथोत्तकुरुवर्षे नवमं नवमहस्रयोजनपरिमितं
वागहोपास्यभूम्युपासिकाममधिष्ठितमनोहरं स रामचन्द्रस्तमनुययो ॥ २७ ॥ तद्वर्षेचाग्रिण्यकं-
पितावयवनृपमहाव्रतममणिमुक्ताचिराजितपदजलरुहद्वन्द्वः स रघुनायको मुदमवाप ॥ २८ ॥ अथ
रामो लव जम्बूद्वीपपतिं कृग्मिष्यामीति निश्चिन्त्य किमिदं तदधिकारे विजय नाम स्वमन्त्रिणं
स्थापयामास ॥ २९ ॥ एतेषां जम्बूद्वीपांतर्गतवर्षाणां तथा सर्वद्वीपांतर्गतवर्षाणां यानि यानि नामानि

राजाओंके साथ रामन संग्राम किया और बहुतांको शरणमें आ जानपर समा प्रदान किया । तदनन्तर सबसे
कर लेते हुए वहाँमें लौटकर पश्चिम दिशाको ओर बढ़े ॥ १६ ॥ इसके बाद मेरु पर्वतके पश्चिम मात्स्यवान् पर्वतपर
पहुँचे, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा चौतीस हजार योजन लम्बा था ॥ १७ ॥ इसके आगे केतुमाल नामक
छठ देशमें पहुँचे, जो इकतास हजार योजन विस्तृत एवं चौतीस हजार योजन लम्बा था और वहाँ कामदेवकी
उपासिकाएँ रहती थी ॥ १८ ॥ जब उस देशके राजाओंने अपना मुकुटविभूषित मस्तक रामचन्द्रजाके चरणोंपर
रख दिया तो साक्षात् तब रामको बड़ा प्रसन्नता हुई ॥ १९ ॥ फिर मेरु पर्वतके उत्तर ओर विराजमान नील
पर्वतको देखा, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा नव्वे हजार योजन लम्बा था ॥ २० ॥ इसके अनन्तर रमणक
नामके सातवें देशमें पहुँचे, जो नौ हजार योजन विस्तृत था । वहाँ मत्स्यभगवान्के बहुतसे उपासक लोग
रहा करते थे ॥ २१ ॥ वहाँके राजाआने अपना काश आदि दकर रामकी पूजा की और रघुनाथजी सीताकी
प्रसन्न करते हुए आगे बढ़े ॥ २२ ॥ उसके उत्तर ओर रामने श्वेत पर्वतका देखा, जो दो हजार योजन
विस्तृत तथा इकतासी हजार योजन लम्बा था ॥ २३ ॥ इसके बाद हिरण्य नामके आठवें देशमें पहुँचे, जहाँ
कूर्मभगवान् तथा सूर्य नारायणके उपासक लोग रहा करते थे ॥ २४ ॥ उस देशके राजाओंकी स्त्रियोंने
जब जानकाके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया तो रामचन्द्रजाको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २५ ॥ उसके उत्तर
को हजार योजन विस्तृत तथा तिहत्तर हजार योजन लम्बा शृङ्गवान् नामक पर्वतको देखा ॥ २६ ॥ इसके
अनन्तर नवें देश उत्तर कुरुम पहुँचे, जो हजार योजन लम्बा-चौड़ा था । वहाँ विशेष करके चाराह भगवान्के
उपासक तथा भूमिकी उपासिका स्त्रियाँ रहा करती थी ॥ २७ ॥ जब उस देशके राजे संग्रामभूमिमें भयसे
काँपकर रामके चरणोंमें लोट गये, तब रामको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २८ ॥ इसके बाद रामने जम्बूद्वीपके
राजाको मार डाला और मनमें यह निश्चय किया कि यहाँमें लौटकर अधोभ्या पहुँचनेपर लवको जम्बूद्वीपका
अधिपति बनाऊँगा । तबतक कुछ दिनोंके लिए अपने विजय नामके मन्त्रीको वहाँको देख-भाल करनेके लिए
छोड़ दिया ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीपके अन्तर्गत जितने राज्य थे, वे सब प्रियव्रत नामके राजाके जीवोंके नामसे प्रसिद्ध

तानि प्रियव्रतनृपपौत्रनामसूचिनानि मन्ति । तेषु ये ये नृपा जायन्ते ते तद्वर्षनामसूचिता एव भवन्त्यतः सर्वेषां पृथक् नामानि मयाऽत्र नोच्यन्ते ॥ ३० ॥ एवं जम्बूद्वीपमायामविस्ताराम्यां लक्षयोजनपरिमितमतिकमनीयं समवर्तुलं पुष्करपत्रोपमं नववर्षमण्डितं स रघुनाथकः स्ववशं चकार ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वताग्रेऽष्टपुर्योऽष्टदिक्पालानां संति । तत्पालकाः सुरार्धाशत्रुह्रियमनिर्गन्धिवरुणवायु-कुबेरेशास्ते सर्वे ममाज्ञा परिपालयन्त्विति निश्चित्य स रघुनाथकस्मान् प्रति जगाम ॥ ३२ ॥ ता अष्टपुर्यः पृथक् पृथक् सार्धद्विसहस्रयोजनपरिमाणेनायामविस्तारान्तो ज्ञातव्याः ॥ ३३ ॥ मेरुलक्षयोजनमुन्नतो मूर्ध्नि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविनतो मूले षोडशसहस्रयोजनविदत्तश्चाधः षोडश-सहस्रयोजनमितो भूम्यां प्रविष्टश्चतुर्गुणानिमहस्रयोजनमितो भूम्या वद्विर्घत्तूरगुणपवद्दृश्यते ॥ ३४ ॥ तत्र मेरुपर्वताग्रेऽष्टदिक्पालपुरीणां मध्ये ब्रह्मपुरी दशसहस्रयोजनायामविस्तारान्तो ज्ञातव्या ॥ ३५ ॥ सर्वे वर्षमर्यादीभूताष्टपर्वता दशसहस्रयोजनममुन्नता ज्ञातव्याः ॥ ३६ ॥ वर्षदीर्घता पर्वतसमाना ज्ञातव्या ॥ ३७ ॥ जम्बूद्वीपस्योपद्वीपानष्टौ द्वेक उपदिशन्ति ॥ ३८ ॥ समरात्मजरधान्वेषणं मर्धा परितो निखनद्विरुपकल्पितान् ॥ ३९ ॥ तद्यथा स्वर्णप्रस्थः चन्द्रशुक्र आवर्तनो रमणकः मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यं सिंहलो लङ्का चेति ॥ ४० ॥ तेषु लकां विना ममसु यदा यद्यस्ममीषं तदा तत्र तत्र गत्वा तत्रस्थानुपद्वीपपालकान् श्रारामचन्द्रः स्ववशं चकार । ४१ ॥ भारतेला-वृतवर्षाम्यां विना ममसु वर्षेऽवमख्याता नष्टो गिरयश्च मन्ति । तेषां विस्तारं को वक्तुं क्षमः ॥ ४२ ॥ अथेलावृतसंस्थिता मुख्यतया एवोच्यन्ते ॥ ४३ ॥ अरुणोदाजवुनदीपयोदधिधूनमधुगुडान्नां धर-शय्यामनाभरणमंठा नदास्तदा पञ्च मधुधाराश्च स्नाना मीनाऽलकनन्दा चक्षुर्मद्रेति मेरोरचश्चतुर्दिक्षु पतिता जाह्नवीभेदाश्चत्वार एवमिलावृततयाः ॥ ४४ ॥ तामु सीता पूर्वममुद्रं चक्षुर्मद्रा पश्चिमसमुद्रं मद्रोचरसमुद्रमलकनदा दक्षिणस्यां दिशि भारते वर्षे जलनिधिं प्रविशति ॥ ४५ ॥ मास्तेऽस्मिन्

ये । जहाँका जो राजा था, उसीके नामसे वह राज्य विख्यात था । इसीलिये सबका अलग-अलग नाम मैं नहीं बतला रहा हूँ ॥ ३० ॥ इस प्रकार एक लाख योजन लम्बा चौड़ा, अतिशय सुन्दर एवं वस्तु-आकार कमल-पत्रके समान विराजमान जम्बूद्वीपको उन्होंने कीर्त लिया ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वतके आगे आठ लोकपालोंका आठ पुरियाँ हैं । वे सब भी मेरी आज्ञाकर पालन कर । इसी विचारसे रामचन्द्रजी आगे बढ़े ॥ ३२ ॥ वे आठों पुरियाँ अलग-अलग अढ़ाई अढ़ाई हजार योजन लम्बी चौड़ी हैं । मेरु पर्वत एक लाख योजन ठँका है और उसकी चोटीपर बसीस हजार योजन लम्बा-चौड़ा मैदान है । नाचे सोलह हजार योजन विस्तार है और सोलह ही हजार योजन वह पूर्वक भाँतर समाया हुआ है । चौरासी हजार योजनको लम्बाई चौड़ाईवाला यह पर्वत घनूरके फूलकी तरह दीखता है ॥ ३३ ॥ ३४ । मेरु पर्वतके आगे पूर्वोक्त आठ पुरियोंमें ब्रह्मपुरीकी लवाई-चौड़ाई विस्तारमें ढीक दस हजार योजन है । ३५ । जिन-जिन पर्वतोंपर व आठों पुरियाँ हैं, वे प्रत्येक पर्वत दस-दस हजार योजन ऊँचे हैं ॥ ३६ ॥ प्रत्येक पुरीका विस्तार पर्वतके विस्तारकी तरह ही समझना चाहिए ॥ ३७ ॥ जम्बूद्वीपके भी आठ उपद्वीप हैं ॥ ३८ ॥ जिस समय महाराज सगरके साठ हजार पुत्र समुद्रको खाद रहे थे, तब उन्होंने ही इन द्वीपोंकी रचना की थी ॥ ३९ ॥ उन आठों द्वीपोंके नाम इस प्रकार हैं । स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्त, रमणक, मन्दरहरिण, पाञ्चजन्य, सिंहल और लङ्का ॥ ४० ॥ इनमेंसे लङ्काको छोड़कर शेष सब द्वीपोंमें जाकर वहाँके राजाओंको रामने अपने वशमें कर लिया । ४१ ॥ भारत और इलावतको छोड़कर सातों देशोंमें असम्भ्य पर्वत और नदियाँ हैं, जिनका विस्तार बतलानमें कोई समय नहीं है ॥ ४२ ॥ इलावत द्वीपमें जो मुख्य मुख्य नदियाँ हैं, उन्हें ही हम बतलाते हैं । वे हैं—॥ ४३ ॥ अरुणादा, जम्बूनदी, दूध, घी, मधु, गुड़, अम्र, वस्त्र, शम्पा, आसन और आभरणसंज्ञक नदियाँ हैं । इनमें पाँच नदियाँ तो ऐसी हैं, जिनमें सदा मधुकी धारा बहती रहती है । मेरु पर्वतसे सीता, अलकनन्दा, चक्षु, मद्रा तथा जाह्नवी ये पाँच नदियाँ निकली हैं

वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवः ॥ ४६ ॥ तद्यथा मलयो मंगलप्रस्थो मनाकसिकूटः श्रवणः कुटकः सहो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वैकटो महेन्द्रो वारिधरो विन्ध्यः शक्तिमान्श्रुगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिश्चेत्यन्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नित्यप्रभवा नदा नद्यश्च संत्यसंरुपाताः ॥ ४७ ॥ चन्द्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कुतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावती तुंगभद्रा कृष्णा वेणा भीमरथी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी मही सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिंधुः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिः ऋषिकुल्या प्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती वृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रुचन्द्रभागा मरुधन्वा वितस्ता अमिकनी विश्वेति महानद्यः ॥ ४८ ॥ एव शिष्य रघुनायको नायकः सोपद्वीपं जम्बुद्वीपं स्ववशं कृत्वा लक्षयोजनविस्तीर्णं जंबुद्वीपपरिखोपमं समुल्लङ्घ्य प्लक्षकस्थः प्लक्षं नाम द्वितीयं द्वीपं ददर्श ॥ ४९ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

पूर्वार्धे जंबुद्वीपजयो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(राम द्वारा प्लक्षादि छः द्वीपोंकी विजय)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो ययौ श्रीमान् प्लक्षद्वीपं मनोरमम् । द्विलक्षयोजनमितं सप्तवर्षसमन्वितम् ॥ १ ॥
उपास्यो यत्र वै सूर्यो ब्राह्मणाश्च ध्रुवामकाः । द्वीपाख्याकृन्व यत्रास्ति प्लक्षवृक्षो हिरण्ययः ॥ २ ॥
यथाऽऽरामाद्बहिर्ज्ञेयाः परिखाश्च समन्ततः । जंबुद्वीपान्च क्षरोदाद्बहिर्द्वीपस्तथा त्वयम् ॥ ३ ॥

॥ ४४ ॥ उनमेंसे सातों पूर्व समुद्रमें, चक्षुर्भद्रा पश्चिम समुद्रमें और अलकनन्दा दक्षिण समुद्रमें जाकर मिलती हैं ॥ ४५ ॥ भारतवर्षमें भी बहुत-सी नदियाँ और पर्वत हैं ॥ ४६ ॥ मलय, मंगलप्रस्थ, मनाक, त्रिकूट, श्रवण, कुटक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वैकट, महेन्द्र, वारिधर, विन्ध्य, शक्तिमान्, श्रुगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि ये पर्वत हैं । इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से पर्वत हैं, जिनकी तलहटीसे बहुत-से नद और नदियाँ निकली हैं । जैसे—॥ ४७ ॥ चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कुतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावती, तुंगभद्रा, कृष्णा, वेणा, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, तापी, मही, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती । सिंधु और शोण ये दोनों महानद हैं । वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, प्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, वृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुधन्वा, वितस्ता, अमिकनी और विश्वा ये महानदियाँ हैं ॥ ४८ ॥ हे शिष्य ! इस प्रकार उपद्वीपों समेत जम्बुद्वीपको अपने वशमें करके राम एक लाख योजन विस्तृत लवणसमुद्र, जो कि जम्बुद्वीपको लाईके समान था, उसे पार करके पुष्पक विमान द्वारा प्लक्ष नामके एक दूसरे द्वीपमें जा पहुँचे ॥ ४९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे प० रामतेजपांड्यविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते आनन्दरामायणे राज्यकाण्डे पूर्वार्धे अष्टमः सर्गः । ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—इसके बाद श्रीमान् रामचन्द्र अतिशय मनोरम प्लक्षद्वीपको गये, जो दो लाख योजन विस्तृत था और उसमें सात देश थे ॥ १ ॥ वहाँ सबके आराध्य देवता सूर्य और देवाराधक ब्राह्मण थे । वहाँ सुवर्णका एक बड़ा सा प्लक्ष (पाकड़) का वृक्ष था और उस प्लक्षके ही कारण उसका प्लक्षद्वीप नाम पड़ा था ॥ २ ॥ जिस तरह किसी बगीचेके चारों ओर लाई बना दी जाय, ठीक उसी तरह उसको चारों ओरसे

मेरोः पूर्वदिशायां वै तत्र वर्षं शिवार्जुनम् । आदौ ययौ रामचन्द्रः क्षणादेव विहापसा ॥ ४ ॥
 नदी यत्रारुणा नाम्नी सर्वपापघ्नाशनी । तस्यां स्नान्वा रघुश्रेष्ठः शीघ्रं तद्वर्षं ययौ ॥ ५ ॥
 तेन वर्षाधिपेनैव युद्धमार्मान्मुदारुणम् । तं जित्वा पञ्चमार्गैश्च तैश्च पार्थिवमत्तमैः ॥ ६ ॥
 पूजितो रघुनाथस्तु वज्रकूटाचलं ययौ । वज्रकूटं महाश्रेष्ठ द्वयोः सागरयोः स्थितम् ॥ ७ ॥
 परस्परं वर्षयोश्च सीमाभूत ददर्श मः । तं गिरिं पृष्ठतः कृत्वा वर्षं यवयमं ययौ ॥ ८ ॥
 नृम्णानदीजले स्नान्वा ययौ यावयसेधरम् । तेन सपूजितो रामस्तनस्तद्वर्षपार्थिवैः ॥ ९ ॥
 सहितः पुष्पकेनैवमुपेन्द्रसेनपर्वतम् । दृष्ट्वा कृत्वा पृष्ठतस्तं सुमद्र वर्षमाययौ ॥ १० ॥
 अंगीरमीनदीतोये स्नान्वा स रघुनायकः । वर्षाधिपेन कोशैः संपूजितः पार्थिवैः सह ॥ ११ ॥
 ज्योतिष्मान् गिरिं गन्वा तं कृत्वा पृष्ठतः क्षणात् । शान्तिर्वर्षेऽथ सावित्रीनदीतोये विगाह्य च ॥ १२ ॥
 तद्वर्षेऽथ नृप जित्वा तथा तद्वर्षसंस्थितान् । नृपान् जित्वा क्षणादेव सुवर्णपर्वतं ययौ ॥ १३ ॥
 ततो गत्वा क्षेमवर्षं सुप्रभातानदीजले । स्नान्वा रामः क्षेमपेन स्वकोशैः परिपूजितः ॥ १४ ॥
 हिमवयुवीनमानं गिरिं रम्यं विलम्ब्य च । वर्षेऽमृते तन्नृपेण पार्थिवैः परिपूजितः ॥ १५ ॥
 ऋतभरानदीतोये चकार स्नानमादगन् । मेघमाल गिरिं त्यक्त्वा पृष्ठतः पुष्पकेण हि ॥ १६ ॥
 वर्षेऽमये तन्नृपतिं क्षणाजित्वा रणे प्रभुः । मन्यभरानदीतोये स्नान्वा स रघुमत्तमः ॥ १७ ॥
 सुचन्द्राख्यं नृपं प्लक्षद्वीपेश तीक्ष्णमंगरः । कृत्वा वै स्वपदाक्रान्तं तेन नद्वीपपार्थिवैः ॥ १८ ॥
 मणिकूट गिरिवरं समतिक्रम्य वै क्षणात् । इक्षुरमोदनामानं द्रिक्क्षयोजनं वरम् ॥ १९ ॥
 तीर्त्वा तं सागरं भीमं प्लक्षस्य परिक्षोपमम् । तथा च शाल्मलीद्वीपं चतुर्लक्षमितं ययौ ॥ २० ॥
 द्वीपारूपाकुच्चं यत्रास्ति शान्मली द्वीपपादपः । यत्रोपास्यश्चमोमोऽस्मि तत्रस्थास्तदुपासकाः ॥ २१ ॥
 विस्तारद्वीपमानानि दीर्घनायाः स्मृतानि च । तत्र क्रमेण वर्षाणि कथ्यन्ते पूर्ववन्मया ॥ २२ ॥

रवण समुद्र घेरें हुए था ॥ ३ ॥ मेरुपर्वतकी पूर्व ओर प्लक्षद्वीपमें शिवजीके नामका एक देश था । रामचन्द्रजी क्षणमात्रमें आकशमागसे वहाँ पहुँचे ॥ ४ ॥ वहाँपर सब पापोंका नाश करनेवाली अरुणा नदी बहती थी । जिसमें उन्होंने स्नान किया और उस देशके राजाके पास गये ॥ ५ ॥ उस राजाके साथ रामका भयङ्कर युद्ध छिड़ गया । पाँच महीनेतक घमासान युद्ध होनेके पश्चात् वहाँका राजा रामके वशमें आ गया और उसने उनकी पूजा की ॥ ६ ॥ फिर वहाँसे वज्रकूटाचलपर गये । वह पर्वत दो सागरोंके बीचमें स्थित होकर दोनों देशोंकी सीमाका काम कर रहा था । उसको लौघकर यवयस नामक देशको गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ वहाँ उन्होंने नृम्णा नदीमें स्नान किया और यवयस देशवाले राजाके पास गये । उसने रामको पूजा की । इसके बाद रामने वहकि भी बहुतसे राजाओंको अपने पुष्पक विमानपर बिठा लिया और आगे उपेन्द्रसेन नामक पर्वतपर पहुँचे । उसे देखकर वे सुभद्र देशको गये ॥ ९ ॥ १० ॥ वहाँ अंगिरसी नदीमें स्नान करनेके पश्चात् वहकि राजासे मिले । उसने बहुतसे धनका धन्य करके रामचन्द्र तथा उनके साथवाले राजाओंका सत्कार किया । ११ ॥ फिर ज्योतिष्मान् नामक पर्वतको लौघकर वे शान्तिदेशको गये । वहाँ सावित्री नदीमें स्नान करके उस देशके राजाको परास्त किया और उसके आगे सुवर्ण पर्वतपर गये । वहाँसे क्षेमदेशमें पहुँचे । वहाँ रामने सुप्रभाता नामकी नदीमें स्नान किया और क्षेमदेशके राजाने रामका विधिवत् पूजन किया ॥ १२-१५ ॥ इसके अनन्तर ऋतभरा नदीमें स्नान करके मेघमाल नामके पर्वतको लौघते हुए राम अभय देशमें पहुँचे । वहाँकि राजाको क्षणमात्रमें जीतकर सत्यभरा नदीमें स्नान किया । फिर सुचन्द्र नामक राजा जो प्लक्षद्वीपका शासक था, उसे भयानक युद्धमें हराकर वहकि बहुतसे राजाओंको अपने साथ लेकर इक्षुरमोद नामके भयङ्कर समुद्रको पार किया । वह प्लक्षद्वीपकी साईके समान दो लाख योजन विस्तृत था । वहाँसे चलकर शाल्मली द्वीपमें पहुँचे, जो चार लाख योजन विस्तृत था ॥ १६-२० ॥ वहाँ एक विशालका शाल्मली (सेमर) का

मेरोः पूर्वदिगाभ्य सर्वत्र क्रम उच्यते । सुरोचनं सीमनस्य तथा रमणकं शुभम् ॥२३॥
 देववर्षं पारिभद्रनामाप्यायनमनुत्तमम् । अविज्ञातं ममम च मम वर्षाणि वै क्रमात् ॥२४॥
 अनुमती मिनीवाली तथैव च मस्वती । कुहूश्च रजनी नन्दार् राका नद्य प्रकीर्तिता ॥२५॥
 शतशृङ्गो वामदेवो कुदश्च कुमुदमथा । पुष्पवर्षः पञ्चमश्च सहस्रश्रुतिरुत्तम ॥२६॥
 स्वरसः पर्वता मम ज्ञेयाः सीमासु वै क्रमात् । एतेषु ममवर्षेषु वर्षपालान् विजिग्य सः ॥२७॥
 जित्वा द्वीपेश्वरं रामः सुवाहुं मृदमाययी । सुगेदं च चतुर्लक्षमिह तीर्त्वा पयोनिधिम् ॥२८॥
 कुशद्वीपमष्टलक्षमिह रामो ययी क्षणान् । तत्रोपास्यो जातवेदाः सर्वपां द्वीपवामिनाम् ॥२९॥
 द्वीपाख्याकृच्च यत्रास्ति कुशस्तवः सुरैः कृतः । तत्र क्रमेण वर्षाणि कथ्यन्ते मम वै मया ३०॥
 वसुं च वसुदानं च तथा दृढरुचिं शुभम् । नाभिगुप्तं तथा सत्यव्रतं विविक्तमुत्तमम् ॥३१॥
 वामदेवं सममं च वर्षं ज्ञेयं क्रमेण हि । रमकुल्या मधुकुल्या मित्रविंदा नदी शुभा ॥३२॥
 श्रुतिविंदा देवगर्भा तथा चैव धृतच्युता । मन्त्रमाला क्रमेणैव नद्यः ममसु वै क्रमात् ॥३३॥
 चतुःशृङ्गश्च कपिलश्चित्रकूटो मनोरम । देवान्नीक ऊर्ध्वरोमा द्रविणश्चक्र ईरितः ॥३४॥
 एते सीमासु वर्षाणां गिरयः मम वै क्रमात् । एतेषु ममवर्षेषु मन्थितान्पार्थिवोत्तमान् ॥३५॥
 राघवः संगरे जित्वा लब्ध्वा चानुत्तम यशः । कुशद्वीपपतिं जित्वा महासेनं तुनोष सः ॥३६॥
 अष्टलक्षमिह तीर्त्वा धृतोद सागरोत्तमम् । क्रौञ्चद्वीपं ययी रामः पुष्पकेणातिभाम्बता ॥३७॥
 कुशद्वीपाच्च स ज्ञेयो द्विगुणो द्वीप उत्तमः । द्वीपाख्याकृच्च यत्रास्ति क्रौञ्चनामा गिरिर्महान् ॥३८॥
 यत्रोपास्योऽस्मयो देवो हरिस्तद्द्वीपवामिनाम् । तत्रापि मम वर्षाणि कथ्यन्तेऽत्र क्रमेण हि ॥३९॥
 आमं मधुरहं मेघपृष्ठं चैव मनोहरम् । सुधामानं च भ्राजिष्ठं लोहितार्णं वनस्पतिम् ॥४०॥

वृक्ष था । इसीलिए वह देश शात्मनी द्वीपके नामसे विख्यात था । वहाँ चन्द्रदेव सद्यके आराध्य देवता हैं और वहाँके निवासी चन्द्रमाकी ही उपासना करते हैं । पीछे जिन द्वीपोंका जो विस्तार कह आये हैं, उन्हींके अनुसार वह भी विस्तृत था । वहाँके जो देश हैं, अब उनको बतलाता हूँ ॥ २१ ॥ २२ ॥ मेरुके पूर्व ओरसे लेकर क्रमशः सब देशोंका नाम कहूँगा । जैसे—सुरोचन, सीमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात ये सात देश उस द्वीपमें हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ वहाँपर अनुमती, मिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका ये नदियाँ हैं ॥ २५ ॥ शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्द, कुमुद, पुष्पवर्ष, सहस्रश्रुति और स्वरस ये उस देशके सात पर्वत हैं, जो उसकी सीमाका काम कर रहे हैं । इन मानों देशोंका राजाओंको रामने जीत लिया ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर उस द्वीपके अधीश्वरको जीतकर चार लाख योजनके लगभग लम्बे-चौड़े मृगसमुद्रको लूँधकर वे सुवाहुके पास पहुँचे ॥ २८ ॥ फिर क्षणमात्रमें राम आठ लाख योजन विस्तृत समुद्रको लाँधकर कुशद्वीप गये । उस द्वीपके समस्त निवासी अग्निके उपासक हैं ॥ २९ ॥ द्वीपके नामको स्पष्ट करनेके लिए वहाँपर एक कुशका जंगल देवताओं द्वारा लगाया हुआ है । अब वहाँके जो सात देश हैं, उनको बतलाने हैं— ॥ ३० ॥ वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत, विविक्त और सायवा वामदेव नामक दश हैं । उन मानों देशोंमें रमकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविंदा, श्रुतिविंदा, देवगर्भा, धृतच्युता तथा मन्त्रमाला ये सात नदियाँ हैं । चतुःशृङ्ग, कपिल, चित्रकूट, देवान्नीक, ऊर्ध्वरोमा, द्रविण और चक्र ये सात पर्वत उस द्वीपमें हैं ॥ ३१-३४ ॥ इन सातों देशोंके राजाओंको रामने जीतकर कुशद्वीपके अधिपति महामेन नामक राजाको भी उन्हींने जीत लिया । इससे रामकी प्रशम्भना हुई ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ फिर आठ लाख योजन विस्तार धृतोद नामके सागरको पार करके वे अपने देशीप्यमान पुष्पक विमान द्वारा क्रौञ्चद्वीप गये ॥ ३७ ॥ कुशद्वीपको अपन २८ द्वीप दुगुना लम्बा-चौड़ा है । वहाँ उस द्वीपका नाम सार्वक करनेके लिये एक विशाल क्रौञ्च पर्वत है ॥ ३८ ॥ वहाँके समस्त निवासी वरुणके उपासक हैं और विष्णुभगवान्

एतानि सप्त वर्षाणि शृण्वान्मुनिमानि हि । वर्द्धमानो भोजनश्च तथोऽवर्द्धणो महान् ॥४१॥
 नन्दश्च नन्दनश्चैष्टः सर्वलोभश्च एतः । हृच्छला समाचलाः प्रोक्ता सीमायु परमाः शुभाः ॥४२॥
 अमृता अमृतौघा च तथा चैतरेभ्यः सुखाः । तत्र तार्क्ष्यवती रम्या वृत्तिरूपवती तथा ॥४३॥
 पवित्रवती सुपुण्या वै शृङ्गलाने सप्त कीर्तिताः समवर्षेषु नद्यश्च स्नानान्पातकनाशनाः ॥४४॥
 एतेषु समवर्षेषु पारिवर्ष्यो निजः प्रभुः । कश्मारं पृथगलब्ध्वा तैः सर्वैः परिपूजितः ॥४५॥
 कौचद्वीपपतिं युद्धे जित्वा तं कञ्जलोचनम् । हस्तपृथगतुरगं कोशाद्यैस्तेन पूजितः ॥४६॥
 स्तुतो मागधवयैश्च नितरां सुदमाय मः । ततस्तीर्त्वा तु क्षीरोदं कौचद्वीपममं मुदा ॥४७॥
 शकद्वीपं ययौ रामो द्वात्रिंशलक्षसमितम् । द्वीपः ख्यातश्च यत्रास्ति शकशृङ्गोऽतिरञ्जनः ॥४८॥
 यत्रोपाख्यो वायुरूपी हरिस्तद्द्वीपशान्तिनाम् । तत्रापि सप्त वर्षाणि कथ्यन्ते पूर्ववन्मया ॥४९॥
 पुरोजवं नाम वर्षं तथा सत्त्वं मनोजवम् । परमान महच्छ्रेष्ठं भूभ्रानीकं मनो मम् ॥५०॥
 बहुरूषं चित्ररूपं विश्वाधार तथा स्मृतम् । एव सप्तसु वर्षेषु नद्यश्चापि त्रीन्पदम् ॥५१॥
 अनघा च तथाऽऽयुर्दा चोभयसृष्टिरेव च । तथाऽपराजिता पुण्या शुभा पञ्चपदी स्मृता ॥५२॥
 सहस्रश्रुतिरन्या सा प्रोक्ता निजवृत्तिस्तथा । एवं सप्तसु वर्षेषु सप्त नद्यः शुभावहाः ॥५३॥
 उरुशृङ्गो बलभद्रस्तथान्यः शतकेसरः । सहस्रस्रोतोऽन्यः प्रोक्तो देवपालो महानमः ॥५४॥
 ईशानाः पर्वताः सप्त मीमांस्वेते प्रकीर्तिताः । एवं सप्तसु वर्षेषु तत्र तत्र नृपोत्तमं ॥५५॥
 पूजितो रघुनाथः स शकद्वीपपतिं रणे । सुन्दराख्यं नृपं युद्धे समाहोभिर्महाबलम् ॥५६॥
 जित्वा संपूजितस्तेन वादयाम स दुन्दुभीम् । तान्वा तं दधिमण्डोदं द्वात्रिंशलक्षसमितम् ॥५७॥
 चतुःषष्टिलक्षमितं पुष्करद्वीपमाख्या । सखलावत्तम्य मध्ये पर्वतं ककणोपमम् ॥५८॥
 मानसोत्तराचलाख्यं तं ददर्श भृङ्गद्वयः । द्वे वर्षे तत्र वै प्रोक्तं पूर्वं रमणकं शुभम् ॥५९॥

वहकि देवता हैं । उस द्वीपमें भी बड़े-बड़े सात देश हैं । उन्हें बतलाने है—॥ ३९ ॥ आम, मयूख, मेघपृष्ठ, सुषामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति ॥ ४० ॥ ये द्वा कौचद्वीपके सात देश हैं । वर्द्धमान, भोजन, उपवर्द्धण, नन्द नन्दन, सर्वलोभश्च और शृङ्गलाने नामक सात देशों में आम उस द्वीपको घेरे हुए है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अमृता, अमृतौघा, आरंका, तार्क्ष्यवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती और पुण्या ये पवित्र नदियाँ उन सातों देशोंमें बहती हैं । जितम स्नान करनेसे समस्त पापका नाश हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इन सातों देशोंके राजाओंसे रामने अलग-अलग कर लिया और उन राजाओंमें रामकी पूजा की ॥ ४५ ॥ तदनन्तर रामने श्रीबद्धीपके अधीश्वरको मयामभूमिम परान्त किया और उमर बढ़ा देने हारा, घेरे, ख, ऊट आदिका उपहार पाकर पूजित हुए ॥ ४६ ॥ वहीपर वा पुरोजवं नामकी नदी बहती है जिससे रामचन्द्रजी परम प्रसन्न हुए । इसके बाद क्षीरोदनामक समुद्रको पार करके कौचद्वीपमें भगवान् श्री ब्रह्मदेव नामक राजाके लगभग स्थित शकद्वीपमें गये । जहाँपर द्वीपके नामकी वृत्ति नामक एक बड़ा भू-भाग बसता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ वहीपर वायुरूप धारण करनेवाले विष्णुभगवान्के उपासक रहते हैं । वही भू-भाग है, जिसे कह रहा हूँ—॥ ४९ ॥ पुरोजव, मनोजव, परमान, भूभ्रानीक, चित्ररूप, बहुरूष और विश्वाधार ये द्वा सात देश हैं । अनघा, आयुर्दा, उभयसृष्टि, अपराजिता, पञ्चपदी सहस्रश्रुति तथा निजवृत्ति ये नदियाँ उन सातों देशोंमें बहती हैं । उरुशृङ्ग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल, महानम और ईशान ये सात पर्वत उन देशोंको सीमापर स्थित हैं । उन सातों देशोंके राजाओंने रामका पूजाकी और सुन्दर नामक शाकद्वीपके अधीश्वरको उन्होंने सात दिन पर्यन्त युद्ध करके हरा दिया ॥ ५०-५६ ॥ इसके बाद रामने श्री रामकी पूजा की । रामके इस मुकुटसे प्रसन्न होकर देवताओंने दुन्दुभी वजाये । तबपश्चात् रामने निज-नामक नदीसे दधिमण्डोद नामक समुद्रको पार करके चौसठ लाख वीरों के विस्तृत पुष्करद्वीपमें गये । जिसके मध्यमें सखलाके समान मानसाचल

अपरं तद्वातकीत्याख्यातं ते कंकणोपमम् । तद्वर्षी नृपौ जित्वा ततो द्वीपेश्वरं नृपम् ॥ ६० ॥
 उत्तरांगह्वयं रायः परां मुदमवाप सः । ददर्श पुष्करं तत्र द्वीपाख्याकारकं वरम् ॥ ६१ ॥
 कमलामनस्य यज्ज्ञेयं ब्रह्मणः परमामनम् तत्र कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयन् ॥ ६२ ॥
 वर्षयोर्बहुला नद्यः पापनिष्कृन्तनक्षमाः दशमादस्रमानेन प्राशुर्ज्ञेयः स पर्वतः ॥ ६३ ॥
 तस्मिन् गिरी पूर्वभागे पुरी मधवतः शुभा । देवधानीति नाम्ना सा मनोज्ञा ज्वलनप्रभा ॥ ६४ ॥
 गिरी तस्मिन् दक्षिणम्यां दिशि मयमनी पुरी । यद्गजस्य सा ज्ञेया मनोज्ञा ज्वलनप्रभा ॥ ६५ ॥
 पश्चिमे वरुणम्याथ पुरी निम्लोचनी स्मृता । उत्तरम्यां तु कौवेरी पुरी ख्याता विभावरी ॥ ६६ ॥
 मिथ्याः पुर्यश्चिन्मा ज्ञेया मेरुधाम्यः शुभावहाः यथा नृपस्य स्थानानि क्षणेकानि तथा निवसाः ॥
 सर्वे सोमापर्वतास्ते विस्तीर्णाश्च पृथक् स्मृताः । द्विदृश्ययाजनैश्च प्रोच्यतां ते वदाम्यहम् ॥ ६८ ॥
 सर्वेषां दशमादस्रयाजिनः प्रोच्यते, गता । ननर्त्तन्वां तु शुद्धोद पुष्करद्वीपममितम् ॥ ६९ ॥
 सीतायाः कौतुकार्थं हि स जगाम शृणुमः । उद्गातारं श्वावलोकानत्रस्थानां नृणामपि ॥ ७० ॥

ततोऽग्रे भूमिं मार्घममलक्षोत्तरमार्दकोटि (१५७५००-०) परिमितां कञ्चिन् प्राणिमहितां
 रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७१ ॥ तैः सर्वभूमिनिवसिभिः सपूजितो रघुनन्दनो मथिलो राजार्यमग्रे जगाम
 ॥ ७२ ॥ सैकचन्वारिशतमहस्रममलक्षोत्तरं मार्दकोटि (१५७४०००) योजनपरिमितं मेरुमान-
 मोत्तमचलयोरतराले मानं ज्ञातव्यम् ॥ ७३ ॥ ततोऽग्रे आदयन्तोपमां कांचनीं भूमिं देवैर्गधिष्ठितां
 चकोनचन्वारिशतलक्षोत्तरकोट्यष्ट (८३९,०००००) परिमितां दृष्ट्वा देवैः सपूजितः श्रीरामचन्द्रो
 मुदमवाप ॥ ७४ ॥ ततोऽग्रे लंकालोत्पर्वतं मार्द्वद्वादशकोटि (१२५००००००) परिमितं विस्ती-
 र्णञ्चितया भूमिप्राकारोपमं केनाप्यलक्ष्य स रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७५ ॥ यस्मिन्नष्टदिक्षु द्विरदप-
 तयः श्वभमः पुंडरीकः पुष्करचूडः कुमुदो धामनः पुष्पदन्तः उपराजितः सुप्रतीक इत्यष्टौ दिग्गजाः

पर्वतं विद्यमान है, उसे रामने देखा । उस द्वीपमें तो प्रधान दश हैं—पहला चमणक देश और दूसरा घातकी ।
 ये दोनों देश उस द्वीपके कङ्कुष्क समान हैं । रामने इन देशोंके राजाओं तथा पुष्करद्वीपके स्वामी
 उत्तरांगकी जीत लिए, जिसे उन्होंने बहुत प्रसन्न हुए । इसके अनन्तर उस द्वीपके नामका सार्थक करनेवाले
 पुष्कर सरावरकी दशा ॥ ६०-६१ ॥ वे दोनों देशोंके द्वीपोंका एक दिग्ग आमने है । यहाँपर कर्ममय ब्रह्माकी
 मूर्तिका स्थापित पूजित है ॥ ६२ ॥ उन दोनों देशोंमें लङ्का मरु कर्मसमर्थ बहुत-सी नदियाँ बहती हैं ।
 वे पर्वत दस हजार याजनके समान उंचा है । उसपर पुष्कर और इन्द्रकी देवधानीपुरी है । पश्चिम और
 वरुणकी निम्लोचनी नामकी पुरी । उत्तर में कौवेरी नामकी पुरी है ॥ ६३-६६ ॥ मेरु पर्वतपर
 देवताओंका जो पुरी है, उनके नामों के अनुसार जानना चाहिए । जहाँ राजाके एक नहीं, अनेक स्थान
 होते हैं, उन्हीं तरह इनके विषयमें भी जानना चाहिए ॥ ६८ ॥ उनके आस पास जितने सोमापर्वत हैं ।
 वे सब अलग-अलग दो दो हजार याजन उंचे हैं । इस तरह सब मिलकर एक हजार दोजन उनकी उंचाई है ।
 इसके बाद रामचन्द्रजी उद्गातार नामके सुदृढ़ पाद कंक सीताके कौतुक या वह कहिये कि उस द्वीपके
 निर्वासियोंका अपन दशों के पुत्रों के समान समझें । ६८-७० ॥ उद्गातार साडे नाव लाख योजन
 विस्तृत भूभाग जहाँ के देवों के भक्तोंकी आश्रय थी, उस देशको देखा ॥ ७१ ॥ वहाँके निवासियों सीतारामकी
 पूजा की आदयें लोग दोगे बड़े ॥ ७२ ॥ मरु और मानमाराराज्यके बीचमें उद्गातार साडे सात लाख
 एकतालीस हजार योजन परिमित अमराल है । इसके अनन्तर रामने शाश्वतके समान चमकता कांचनमयी
 भूमि देखी, वहाँ कि देवता लोग रहते हैं । जिसका विस्तार आठ करोड़ उनतालिस लाख याजन है । वहाँके
 भी निवासियों रामकी पूजा की और वे प्रसन्न हुए । इसके अनन्तर साडे बारह करोड़ योजन परिमित विस्तीर्ण
 तथा उंचे लोकालोक नामके पर्वतको देखा, जिसे कि आजतक कोई नहीं लांघ सका है ॥ ७३-७५ ॥ जहाँकी

सकललोकस्थानहेतवः ॥ ७६ ॥ तस्मिन्नेव गिरिवरे भगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपतिः
सकललोकहिनाय आसने ॥ ७७ ॥ ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धाष्टदाहरन्ति ॥ ७८ ॥ एवं पञ्चा-
शत्कोटिगुणिता भूगोलको ज्ञेयः ॥ ७९ ॥ एवं पञ्चविंशतिकोटिमितां भूमिं लोकलोकमध्यवर्तिनीं
स गन्धनन्दनः स्ववशां कृत्वाऽऽकाशपथां परिक्रम्य सर्वान् द्वीपान् पूर्ववत्पश्यन् जम्बुद्वीपे भारत-
वर्षमध्यगतां स्वां राजधानीमयोध्यां समर्द्धापनृपपत्निवैष्टितांऽनुययौ ॥ ८० ॥ ततो रामोऽयोध्या-
निकटं गन्वा दूतैः स्वागमनं सुमंत्रं सूचयामास ॥ ८१ ॥

समायातं रामचन्द्रं श्रुत्वा स मंत्रिमनमः । अयोध्यां भूषयामास पताकाध्वजतोरणैः ॥ ८२ ॥
वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य पौरैर्जानपदैः सह । प्रपृष्टम्य रामचन्द्रं नन्वाऽयोध्यां निनाय सः ॥ ८३ ॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृनुश्चापमरोगणाः । तुष्टुधुर्मागधाद्याश्च नटा गानं प्रचक्रिरे ॥ ८४ ॥
रामागमनमाकर्ण्य पौरनार्यः सुभूषिताः । प्रामादशिखरारूढा ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥ ८५ ॥
राजद्वारं विमानेन शनैः स गन्धनन्दनः । गृह्णन् पौरोपायनानि स्त्रीभिर्नौगजिनः पथि ॥ ८६ ॥
ययौ यानाद्वरुणं समायां निज आसने । तस्थौ ममन्ततः सर्वैर्नृपैश्च पत्निवैष्टितः ॥ ८७ ॥
ततः स्थलानि सर्वेषां वस्तुमाज्ञाप्य लक्ष्मणम् । दक्षिश्राद्धादि सम्पाद्य कृतकार्यममन्यत ॥ ८८ ॥
आत्मानं सकलान्पृथ्वीस्थितान् जित्वा समुद्रतान् । ततस्तैः समर्द्धापस्यैः पार्थिवैः परिपूजितः ॥ ८९ ॥
रामः स्वभ्रातरं विप्रैर्मन्त्रं भारताधिपम् । चकार पार्थिवैर्युक्तो लक्ष्मणानुमतेन सः ॥ ९० ॥
आदावेव वसिष्ठेन ह्युक्तं भरतनाम तत् । विचिन्त्येदं भावि वृत्तं ज्ञातकर्मणि निश्चितम् ॥ ९१ ॥
पूर्वमाज्ञापितं स्वायसेवकं भरतस्य च । रक्षणे तं रामचन्द्रः कार्यान्तरमकल्पयत् ॥ ९२ ॥

आगे दिशाओंमें कृष्ण, पुण्डरीक, पुष्करचूड़, कुमुद, वासन, पुष्पदन्त, अपराजित और सुप्रतीक ये सभी लोकोंको अपने मिरपर धारण करनेवाले आठ दिग्गज विद्यमान हैं ॥ ७६ ॥ उगी पर्वतके ऊपर परममहा-
पुरुष और महाविभूतिपति भगवान् परमस्त समस्तके हितकी कामनामें रहा करते हैं ॥ ७७ ॥ इसके आगे
विशुद्ध योगेश्वरकी ही गति है, ऐसा लोग कहते हैं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार सब मिलाकर पचास करोड़गुना
विस्तृत भूगोल है । उनमेंसे पचासको अपने वशमें करके राम आकाशमार्गसे लौटकर रास्तेके विविध द्वीपो-
को देखते हुए जम्बुद्वीपके भारतवर्षमें आया नामकी अपनी राजधानीमें सातो द्वीपोंके राजाओंके साथ
बापस आये ॥ ७९ ॥ अयोध्याके सभी पञ्चक रामने एक दूत द्वारा समन्त्रको अपने आगमनकी सूचना दी ।
सुमन्त्रने रामका आगमन सुना तो पताका, ध्वजा तथा तोरणादिकसे अयोध्याको सुसज्जित करवाया ॥ ८२ ॥
फिर एक बड़े भारी हाथोंकी आगे करके गृहवासियोंके साथ रामके समक्ष पहुंच और उन्हें प्रणाम करके
अयोध्या लाये ॥ ८३ ॥ उस समय अनेक प्रकारके बजे बाजे अमराएँ नाचीं, गायकोंने गाने गाये और
बन्दीजनोंने स्तुति का ॥ ८४ ॥ रामका आगमन सुनकर अयोध्याकी स्त्रियाँ भीति-भीतिके वस्त्राभूषण पहनकर
अपने कोठोंपर चढ़ गयीं और वहाँसे फूलोंका वर्षा करने लगीं ॥ ८५ ॥ रामचन्द्रजी धीरे धीरे पुरवासियोंकी
भेटें स्वीकार करते हुए पुष्पक विमान द्वारा अपने राजद्वारपर पहुंचे । रास्तेमें स्त्रियोंने रामकी आरती
उतारी ॥ ८६ ॥ राजद्वारपर पहुंच तो पुष्पक विमानमें उतरकर सभाभवनमें गये और अपने सिंहासनपर
बैठे । उनके साथ जा राजे आये ये, वे भी सिंहासनके चारों ओर बैठ गये ॥ ८७ ॥ इसके अनन्तर
सब मेहमानोंको ठहरनेके लिए स्थान वतलानेके निमित्त लक्ष्मणसे कहकर राम दक्षिश्राद्धादि कार्योंमें
लग गये । इस प्रकार पृथ्वीपर रहनेवाले उद्भूत राजाओंको परास्त करके रामने अपनेको कृतकृत्य समझा ।
इसके अनन्तर उन सातो द्वीपोंके राजाओंने फिरसे रामकी पूजा की ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ तदनन्तर लक्ष्मणसे
सलाह लेकर रामने भरतको भारतवर्षका अधिपति बना दिया ॥ ९० ॥ इस भावी बातको सोचकर ही
वसिष्ठने भरतका नाम भरत रक्खा था ॥ ९१ ॥ पहले जिस सेवकको रामचन्द्रजीने भारत देखकी रक्षाके

जम्बूद्वीपतिं रामश्चकार स्वसुतं लवम् । लवोऽपि विजयं स्वीयसचिवं चाकरोन्मुदा ॥९३॥
 नक्षत्रपि च वर्षेषु यातायातं पुनः पुनः । चकार विजयेनैव पुनः कार्यार्थमादरात् ॥९४॥
 शत्रुघ्नो यौवराज्ये स्वे भग्नतेनाभिषेचितः यौवराज्यपदे स्वीये कृत्वा रामः कुशं मुतम् ॥९५॥
 चकार लक्ष्मणं मुख्यं सचिवेषु सुमन्त्रिणम् । समद्वीपपतिः श्रीमान्स्वयमासीद्वृत्तमः ॥९६॥
 स्वस्वकार्येषु सर्वे ते शासनं तत्परमानयाः । ततः सर्वाङ्गपान्पूज्य ददावाज्ञां रघूद्वहः ॥९७॥
 ततस्ते राघवं दत्त्वा ययुः स्वं स्वं स्थलं मुदा । ततो भारतवर्षस्य परामर्शं मदा मुदा ॥९८॥
 चकार भरतः श्रीमान् भरताधिपतिः प्रभुः । जम्बूद्वीपपरामर्शं च चकार लवस्तथा ॥९९॥
 समद्वीपपरामर्शं रामचन्द्रः कुशेन च लक्ष्मणेन सहैवापि स्वयमेवाकरोत्प्रभुः ॥१००॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धं
 कुशादिषड्वीपविजयदर्शनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

(रामका संन्यासी, शूद्र तथा गृध्रको दण्डदान)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः सारमेयदीर्घरवं मुहुः । राजद्वाराद्वहिः श्रुत्वा समास्थो दूतमब्रवीत् ॥१॥
 कथं दीर्घस्वरेणैव श्लाघ्यं क्रोशति पश्यताम् । तथेति रामदूतोऽपि गत्वा राजसभाद्वहिः ॥२॥
 न्यवारयत्सारमेयं राजद्वारात्स्वघर्षणैः । रामं नन्वाऽब्रवाद्वाक्यं तूष्णीं श्वा क्रोशति प्रभो ॥३॥
 मया निवारतो दूरं गतः स गवणांतकः । ततो द्वितीयदिवसे तच्छब्दान् राघवोऽशृणोत् ॥४॥
 दूतेन पूर्ववच्चापि सारमेयो निवारितः । ततस्तृतीये दिवसे तद्रावानशृणोत्प्रभुः ॥५॥
 सदातिचकितः श्राद्धं लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् । श्लाघ्यं दिनप्रयं बन्धो कथं क्रोशति संततम् ॥६॥

लिए नियुक्त किया था, उसे दूसरे काममें लगा दिया ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर अपने लव नामक बेटेको जम्बू-
 द्वीपका अधिपति बनाया । लवने विजय नामके उस सेवकको मंत्री बना लिया, जिसे कि रामचन्द्रजीने कुछ
 दिन तक भरतक्षेत्रको देखभाल करनेके लिए नियुक्त किया था ॥ ९३ ॥ अब विजयके साथ कार्यवशा तवों
 द्वीपोंमें बराबर आया-जाया करते थे ॥ ९४ ॥ भरतने अपनी जगह शत्रुघ्नका युवराजपदपर अभिषेक कर
 दिया । रामने कुशको युवराजके पदपर अभिषिक्त करके लक्ष्मणको अपना सर्वश्रेष्ठ मंत्री बनाया । किन्तु
 सातों द्वीपोंके अधिपति राम स्वयं थे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ये सब लोग अपने कार्योंको वहीं तत्परताके साथ निभाते थे ।
 इसके अनन्तर रामने साथ आये हुए राजाओंको अपने देश जानेकी आज्ञा दी और वे रामचन्द्रजीको प्रणाम
 करके अपने-अपने देशको चल गये ॥ ९७ ॥ भारतवर्षका शासन भरतजी प्रसन्नतापूर्वक करते थे । जम्बूद्वीपका
 शासन लव करते थे और भरत, कुश तथा लक्ष्मणसे सलाह लेकर रामचन्द्रजी सातों द्वीपोंका शासन कर रहे
 थे ॥ ९८-१०० ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित-
 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामदास कहने लगें—एक समय रामचन्द्रजी सभामें बैठे थे । सहसा कई बार एक कुत्तेके रोनेकी
 आवाज सुनी तो दूतसे बोले—॥ १ ॥ देखो तो इतने ऊँचे स्वरमें कुत्ता क्यों चिल्ला रहा है । रामके आज्ञानुसार
 दूत कुत्तेके पास गया । उसे घमकाकर वहाँसे हटा दिया और राममें जाकर वहाँ—हे रावणान्तक ! उसे
 मैंने दूर भगा दिया है, अब वह नहीं चिल्लायेगा । दूसरे दिन फिर रामने उसी प्रकार उस कुत्तेका रोदन
 सुना तो दूतसे भगवाया ॥ २-५ ॥ तीसरे दिन फिर उसका रुदन सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा—आज तीन दिनसे

किं दुःखं सारमेयाय प्रष्टव्यं मत्पुरस्त्वया । तथेति लक्ष्मणो दूतानत्रवीत्समभ्रमान्वितः ॥७॥
 समामाकारणीयः श्वा युष्माभिस्त्वद्य सादरम् । तथेति रामदूतास्ते सारमेयं वचोऽब्रुवन् ॥८॥
 आकारितोऽग्निं रामेण त्वमेहि राघवातिक्रम । त्वद्वैवं कलितं चाद्य पूर्वपुण्योदवेन हि ॥९॥
 रामदूतवचः श्रुत्वा तुष्टः श्वा तान्यचोऽब्रवीत् । देवगृहे यज्ञघाटद्वोमशालासु वै तथा ॥१०॥
 वृन्दावने समीपां च मठे पार्थिवमङ्गुह्ये । गोष्ठं पुण्यस्थाने पुण्ये तीर्थे देवालयेऽपि च ॥११॥
 पाकस्थाने रतिस्थाने स्नानसंस्थास्थलादिषु । गन्तु नार्हा वयं पापयोनिस्था वाक्यतां प्रभुः ॥१२॥
 ततस्ते विस्मयाविष्टास्तद्वाक्यं राममब्रुवन् । राघवस्तद्वचः श्रुत्वा विहस्य सम्भ्रमेण च ॥१३॥
 आनीयतां पादुके मे त्विति दूतान् वचोऽब्रवीत् । ततस्त्वेरपिते दिव्ये पादुके कृत्य पादयोः ॥१४॥
 रत्नदण्डं करे घृत्वा श्वनैः सर्वैः समन्वितः । मुद्रिकास्नदारेण मणिद्वयविगजितः ॥१५॥
 मुकुटेनावतंसेन केयूगम्यां समन्वितः । नूपुगम्यां कंकणाभ्यां कुण्डलाभ्यां सुशोभितः ॥१६॥
 पदकैः शृङ्खलाभिश्च वरवस्त्रैर्विराजितः । गजद्वाराद्वहिर्देशे सारमेयानिकं ययौ ॥१७॥
 कृत्वा दण्डं स्वकसेऽथ किञ्चिद्वक्रः स्थितः प्रभुः । कृत्वा वामजान्वयो स्वां जंघां रामः स दक्षिणाम् ॥१८॥
 अब्रवीत्सारमेयं तं किञ्चित्कृत्वा स्मिताननम् । मदग्रे वद किं दुःखं सारमेय तवास्ति यत् ॥१९॥
 मद्राज्ये सहसा माऽस्तु दुःखं केषां कदापि च । इति रामगिरं श्रुत्वा सारमेयः पुनः पुनः ॥२०॥
 नमस्कृत्वा राघवेन्द्रं छिन्नपादोऽब्रवीन्मुदा । मदर्थं श्रमिनोऽस्यत्र चिरं जीव दयानिधे ॥२१॥
 निरपराधो यतिना प्राण्णाऽब्राह्म प्रमादितः । छिन्नपादोऽस्मि राजेन्द्र त्वामद्य शरणं यतः ॥२२॥
 तद्वाक्यं राघवः श्रुत्वाऽऽकारयामास दण्डिनम् । रामाज्ञया यतिश्चापि विह्वलो राघवं ययौ ॥२३॥
 दृष्ट्वा यतिं तं श्रीरामस्तदा वचनमब्रवीत् । स्वामिन् किमर्थं युष्माभिश्छिन्नः पादोऽस्य वै शुनः ॥२४॥

यह कुत्ता क्यों राजदरबारके समक्ष जाकर राता है। मेरे सामने घुलकर पूछो कि उसे किस बातका कष्ट है। लक्ष्मणने भी धवड़ाकर दूतोंको आज्ञा दी कि जाओ और आदरपूर्वक उस कुत्तेको सामने से आओ। "बहुत अच्छा" कहकर दूत कुत्तेके पास पहुँचे और उससे कहने लगे—॥ ९-८ ॥ आप पूर्वसंचित पुण्यसे तुम्हारा भाम्योदय हुआ है। चला, श्रीरामचन्द्रजी तुम्हें बुला रहे हैं ॥ ९ ॥ दूतोंकी बात सुनी तो प्रसन्न होकर कुत्ता कहने लगा—देवालय, यज्ञशाला, हवनमूह, तुलसीका बगीचा, सभा, मठ, राजभवन, गोशाला, पवित्र तीर्थ, रसाईघर, रतिस्थान तथा स्नान-मन्थ्यादि करनेके स्थानोंपर मैं जानेके क्षयोम्य हूँ। क्योंकि मेरा जन्म पापयोनिमें हुआ है। तुम जाकर रामसे कह दो ॥ १० ॥ ११ ॥ इतना सुनकर वे दूत बड़े विस्मित हुए और जंगल उसने कहा था, जाकर रामको सुना दिया। राम उसकी बात सुनकर हँस पड़े और दूतोंसे कहा कि हमारा सखाऊँ ले आओ! दूतोंन आज्ञाका पालन किया। रामने सखाऊँ पहिना, एक रत्नजटित छड़ी हाथमें ली और सब लोगोंके साथ उस कुत्तेकी ओर चले। उस समय रामचन्द्रके हाथोंमें अंगूठियाँ थीं, रत्ननिर्मित हार गलेमें था, मस्तकपर मुकुट तथा कानोंमें कुण्डल झूल रहे थे, भुजाओंमें बिजायड और कङ्कण था। गलेमें हार तथा सिकदियाँ शोभित हो रही थीं। इनके सिवाय और भी कई प्रकारके आभूषण और सुन्दर वस्त्र सुशोभित हो रहे थे। इस तरह सज-सजकर राम कुत्तेके पास जा पहुँचे ॥ १२-१७ ॥ वहाँ पहुँच तो छड़ी बगलमें देवा ली और बाएँ घुटनेको तनिक मोड़कर कुछ तिरछे खड़े हो गये ॥ १८ ॥ पुचकारकर राम कुत्तेसे बोले—हे सारमेय! तुम्हें जो कुछ कष्ट हो, वह मुझे बताओ ॥ १९ ॥ क्योंकि मैं चाहता हूँ कि मेरे राज्यमें किसीको किसी प्रकारका कष्ट न हो। इस तरह प्रभुकी बात सुनकर कुत्तेने रामको अनेकशः प्रणाम किया और हर्षित होकर कहने लगा—हे दयानिधि! आपने मेरे लिए बड़ा कष्ट किया, जो यहां पधारे। हे महाराज! मैंने कोई अपराध नहीं किया था। फिर भी एक संन्यासीने पत्थरसे मुझे ऐसा मारा कि जिससे मेरा पैर टूट गया। इसीसे दुःखी होकर मैं आप की शरणमें आया हूँ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ उसकी बात सुनकर रामने उस संन्यासीको बुलवाया।

तद्रामवचनं श्रुत्वा यतिः प्राह मधूतमम् मिश्रार्थं भ्रमनो मार्गं भिक्षाग्नं स्पृशितं मम ॥२५॥
 शुनाऽनेन राघवेन्द्र मध्याह्नं जुधिनस्य च । मयाऽनः क्रोधचित्तेन शुनेऽस्मै अपराधिने ॥२६॥
 धर्षितुं चोपलः क्षिप्तस्तेन भिन्नं पदं शुनः । तद्यनेवचनं श्रुत्वा पुनस्तं प्राह राघवः ॥२७॥
 ज्ञानहीनः पशुश्चायं मर्ष्यं स्वायं निर्गन्धं च । स्पृशितस्त्वां तस्य दोषो नैवायं वैद्ययहं यते ॥२८॥
 त्वमेवास्पृश्यापराधी तद्दण्डं मादुर्महमि । इत्थुक्त्वा मारमेयं तं राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥२९॥
 यन्निश्चाय तेऽपराधी तत्र हस्तेऽपिनो मया । यं त्वमिच्छामि वै कर्तुं तस्मै दण्डं मुखं कुरु ॥३०॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा सारमेयाऽब्रवीत् प्रभुम् । शिवालयधिपत्ये च स्थापनीयो यतिः प्रभो ॥३१॥
 तथेति रामचन्द्रोऽपि शिविकायां निवेद्य तम् । सख्यस्वचन्दनार्घ्यं च सम्पूज्याथ यतिं मुदा ॥३२॥
 वाद्यघोषैर्नर्तनार्घ्यैरुत्सवं च शिवालयम् । नान्नां शिवालयस्थाधिपत्ये संस्थापयन्प्रभुः ॥३३॥
 तदाऽज्ञानाद्यनिर्देवं फलितं चैन्यमन्यत । ततो रामो जनैर्युक्तः स्वां ममां सविदेशं ह ॥३४॥
 उत्सवं कर्तुं कंठ्या पीराः प्रोचू रघूनामम् । कथं शुनाऽद्य यतये शिषेदृक्माधिना प्रभो ॥३५॥
 अन्नार्थं भ्रमन्तस्तस्य यतेर्देवं पदं महत् । तेनातिमोक्षं सञ्जातं यतये शिक्षितं न तद् ॥३६॥
 तत्पारवचनं श्रुत्वा राघवस्तान् वचोऽब्रवीत् । प्रष्टव्यः श्वा तु युष्मामिदं सन्देहं हरिष्यति ॥३७॥
 तथेति मारमेयं तं पप्रच्छुर्नागराश्च तद् । तान्प्रोवाच मारमेयः शृणुष्व यन्मयोच्यते ॥३८॥
 कृपिमञ्जानधान्यौघम्वलसम्मानकारिणः । शिवालयमठारामदानग्रामाधिकारिणः ॥३९॥
 अनाथस्त्रीवालविवहारिणः कूरनिःस्वनाः । गोविप्रशिववित्तम्य द्वारिणोऽन्यापकारिणः ॥४०॥

रामके आज्ञानुसार वह संन्यासी था कि कुछ भावसे रामके पास आया । २३ ॥ रामने उसको प्रणाम किया और कहने लगे—कहिए स्वामीजी । आपने किस अपराधसे इन कुत्तेका पैर तोड़ डाला ? ॥ २४ ॥ उसने उत्तर दिया कि मैं भिक्षा लिये रात्रिसे जा रहा था । नबी इसने मेरा भिक्षाग्र छू दिया । वह मध्याह्नका समय था । मैं भूखा था । इसके उस अपराधसे मुझे काँध आ गया और इसको घमकातेकी इच्छामें मैं एक पत्थर फेंककर मारा । वह इसके पैरमें लगा, जिससे इसका पैर टूट गया । यतिकी बात सुनकर राम उससे कहने लगे— ॥ २५-२७ ॥ यह एक ज्ञानविहीन पशु है । यदि इसने अपना मर्ष्य पदार्थ देकर आपको छू दिया तो मैं इसमें इसका कोई दोष नहीं समझता । यह तो इसकी स्वाभाविक प्रकृति है । इसलिए आप ही इसके अपराधी हैं । यतिके प्रति इतना कहकर कुत्तेमें कहने लगे—यह संन्यासी तुम्हारा अपराधी है । मैं इसे तुम्हें सौंपता हूँ । तुम जो दण्ड चाहो, इसे दे सकते हो ॥ २८-३० ॥ रामकी बात सुनकर कुत्तेने कहा—इसे किसी शिवालयका महन्थ बना दिया जाय । ३१ ॥ रामने उसकी बात स्वीकार कर ली और सुन्दर वस्त्र, चन्दन तथा माला आदिसे यतिको सुशोभित करके एक पालकीमें बिठाया और विविध प्रकारके वाजे बजाने हुए उत्सवके साथ एक शिवालयमें ले गये और उसे वहाँका महन्थ बना दिया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उस समय अज्ञानतावश यतिने अपना भाग्योदय समझा । कुछ देर बाद रामचन्द्रजी अपने साधियों समेत राजसभामें लौट आये ॥ ३४ ॥ इस प्रकारका कौतुक देखकर कितने ही उन्मुख नागरिकोंने रामसे कहा—ह प्रभा ! इस कुत्तेने यतिको इस प्रकारका दण्ड क्यों दिया ? यतिने तो पत्थरसे उसकी टाँग तोड़ दी और जब आपने कुत्तेको उसके क्रियेका दण्ड देनेके लिए कहा तो उसने दण्डक स्थानपर यतिको महन्थ बनवा दिया । ३५ ॥ ३६ ॥ इस प्रकार नागरिकोंकी बात सुनकर रामने कहा कि आप लोग इस कुत्तेसे ही पूछ लें कि उसने ऐसा क्यों किया । वह आप लोगोंकी शङ्काका भण्डो भालि समाधान कर दगा । ३७ ॥ रामके आज्ञानुसार उन लोगोंने कुत्तेसे पूछा तो उसने कहा—मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे मानवाने होकर आप लोग सुनें ॥ ३८ ॥ तेनम उत्पन्न अप्र रक्षानेवाले, शिवालय, मठ, बगीचा, दानग्राम इन स्थानोंके अधिपति, अनाथ स्त्री तथा बालकोंके धनका अपहरण करनेवाले, गाली-नालोच करनेवाले, गो-विप्र तथा शिवके लिए अर्पित धनका अपहरण करनेवाले, अन्याय करनेवाले, राजाके धरपर पहुँचे हुए याचकोंके भगानेवाले, दूसरेका धन हड़पनेवाले, प्रायश्चित्तके

नृपगेहे प्रविष्टानां पाचकानां निवारिणः । परद्रव्यापहर्त्ताः प्रायश्चिन्नाधिकारिणः ॥४१॥
 विप्रभोजनद्रव्यस्य होमद्रव्यस्य हारिणः । बहुद्रव्यापहर्ताश्चैते सर्वेऽप्यजन्मन्ति ॥४२॥
 गच्छन्ति वै शुनो योनिं मन्मेतद्रजो मम । मया मठाधिपत्याञ्जलध्या योनिः शुनः स्वयम् ॥४३॥
 अतो मयाऽद्य यतये शिक्षितुं पदमर्पितम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य नागरादित्यन्ममश्रयाः ॥४४॥
 तै ययुः स्वीयगेहानि ययाश्चाऽपि निजस्थलम् । देहांते स यतिर्जनः शुनो योनौ रक्षन्निवत् ॥४५॥
 आप मया शुभां मुक्तिं ह्युक्त्यादौ रक्षीयकिल्बिषम् । न ज्ञेयोऽयं यतिः शिष्य माकंनेऽत्र मृतस्त्विति ॥४६॥
 स्थलान्तरे मृतश्चाय गतः कार्यार्थमात्मनः । अयोध्यायां मृतानां च पुनर्जन्म न विद्यते ॥४७॥
 क यतिः सारमेयवं क स आ क मतिश्च सा । महता कर्मणश्चात्र गतिर्जया महान्मभिः ॥४८॥
 क यतिः सारमेयः क न्यायश्चेत्थं रमापतेः । आर्मीत्सन्धः मर्दवात्र नान्याऽयस्मन्मुमुक्षुणात् ॥४९॥
 अथैकदा तु साकेतवामिनो भृशुस्त्व च । पञ्चत्वं पञ्चवर्षीयः पुत्रः प्राप्तः शिशुः प्रियः ॥५०॥
 तदा विप्रः सपत्नीकस्तत्प्रेतमरुणोदये । राजद्वारं समानीय कुरोदोर्चः स्वर्गद्विदुः ॥५१॥
 अत्रचीत् पुत्रशोकेन व्यथितः क्रोधमंगुत । सीतामालिङ्ग्य गतेन्द्र कथं त्वं निद्रितोऽसि हि ॥५२॥
 त्वद्वाज्येऽधर्मतः कस्य मृतो मे बालकः प्रियः । त्वत्तोऽधर्मोऽयवान्याच्च जानाऽधर्मो न वेत्तयहम् ॥५३॥
 नृपे पापिनि त्रियन्ते नरा ह्यन्यायुपः श्रुतम् । यस्य राज्ये जनेः सर्वयोऽधर्मः क्रियते शुचि ॥५४॥
 भोऽपि ज्ञेयो नृपस्यैव पनस्तेषां न शिक्षितम् । अतस्तेऽधर्मिणो राज्ञो राज्ये मेऽप्य शिशुर्मृतः ॥५५॥
 उपायं चिन्तयस्वास्य जीवनेऽद्य त्रनन्नुप । नोचेदावां चिन्ति चारोहावस्तनयेन हि ॥५६॥
 स्मर वृत्तं श्रवणस्य हेतोर्यज्जनकाय ते । जानं शापादिकं पूर्वं तद्वदत्रापि ते भवेत् ॥५७॥

लिए दिने घनको ग्रहण करनेवाले, ब्राह्मणभोजनके लिए जुटाई सामग्र्यसे चारी करतकाल और बड़ेमानी करके अधिक घन इकट्ठा करनेवाले लोग मरकर दूसरे जन्ममें कुत्तेकी योनिमें जन्म पाते हैं ॥ ४१-४२ ॥ इस प्रसङ्गमें मैंने जो बातें कही हैं, वे सब सत्य हैं । मैंने स्वयं मठाधिपत्यके कारण ही कुत्तेकी योनि पायी है ॥ ४३ ॥ उस संन्यासीको उसकी कर्मोंका फल दन हो के लिए, मैंने उसे यह पद दिलाया है । इस प्रकार उसकी बात सुनकर सारे पुरुषासिंहोंका सन्देह निवृत्त हो गया और सब लोग अपने-अपने घरोंको चले गये । कुत्ता भी अपने स्थानको चला गया । उस संन्यासीने मठाधिपत्यके मरने आकर जो पाप किये, उनसे जन्मान्तरमें उसे कुत्तेकी योनि मिली ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वह कुत्ता जिसमें कि रामचन्द्रजीके यहाँ दावा किया था, उसे कुछ दिनों बाद शुभ गति मिली । किन्तु वह यति जो अपने पापोंसे कुत्ता हुआ था अयोध्यामें न मरकर किसी दूसरे स्थानपर मरा । इस लिए उसे मुक्ति नहीं मिली । जो लोग अयोध्यामें शरीर त्याग करते हैं, वे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं । कर्मकी गति वही निश्चित होती है । कहाँ वह कुत्ता होकर भी मुक्त हो गया और वह यति होकर भी कुत्ता हो गया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ कहाँ कुत्ता और कहाँ संन्यासी । रामने उन दोनोंका कितना अच्छा न्याय किया । सब तो यह है कि रामक राज्यमें किसीका मुँह देखकर न्याय नहीं किया जाता था । बल्कि जो न्याय्य बात होती, वही होती थी ॥ ४९ ॥ एक समय अयोध्यामें एक ब्राह्मणके पञ्चवर्षीय बालककी मृत्यु हो गयी ॥ ५० ॥ सबरा होते हैं वे ब्राह्मणदम्पती बच्चेके शवको लेकर राजद्वारपर आये और बड़े जोर-जोरसे रोने लगे ॥ ५१ ॥ पुत्रशोकसे कुपित होकर उस ब्राह्मणने कहा हे राम ! सीताको गोदमें लेकर तुम अब भी आनन्दके साथ पड़े सो रहे हो ? ॥ ५२ ॥ तुम्हारे राज्यमें किसीके अवमंसे मेरे बच्चेकी मृत्यु हुई है । इसमें तुम्हारा कोई अघर्म है अथवा किसी दूसरेका । यह मैं नहीं जानता ॥ ५३ ॥ मैंने ऐसा सुना है कि राजाके अघर्म होनेसे ही उसके राज्यमें अकाल मृत्यु होती है । जिस राजाके राज्यमें अघर्म होता है, उसका ही कारण राजा ही होता है । क्योंकि वह अपनी प्रजाका अच्छी तरह शिक्षा नहीं देता । इससे यह निश्चित है कि तुम अघर्म हो । इसी लिए मेरे बालककी मृत्यु हुई है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अतएव हे राजा ! इसके लिए शीघ्र कोई उपाय करो, नहीं तो हम दोनों (स्त्री-पुरुष)

ततो विप्रप्रिया प्राह सानां प्रोचस्वरेण हि । कथं न्व एतिमान्निभ्य निद्रिण्डमि सुखं शुभे ॥५८॥
 त्वमप्यसि पुत्रवती मे दुःखं चान्मनः कुरु । उपायं करयस्वाद्य भर्ताऽस्य जीवने शिशोः ॥५९॥
 इति तद्वर्तीवाक्यं श्रुत्वा मर्षे पुगीक्ष्मणः । आसन्नव्यग्रचिन्तास्ते प्रेममाचार्य मन्थिताः ॥६०॥
 सीतारामावपि तयोर्वाक्यं श्रुत्वाऽनिच्छिन्ना । विनिर्गोर्ना रतिशालावहिम्नदुःखदुःखितौ ॥६१॥
 निवार्य बन्दिगीतानि राजद्वारं तथोः पुरः वेगेन जग्मतुः पट्टिः सीतागमौ गतश्रियौ ॥६२॥
 दृष्ट्वा सीतां च रामं च तौ शोकं चक्रतुर्मुहुः । तावत्कालं रामचन्द्रस्तदाऽऽह गदगदधरः ॥६३॥
 मा शोकं कुरुतश्चोभौ मदिरं शृणुतस्त्रिति । कुत्रोपायं हि पुत्रयाः पुत्रं मर्जीवयाम्यहम् ॥६४॥
 न जीवितश्चेद्युवयोः पुत्रस्मर्त्तव्यं कुशम् गिर मन्थामिमां चोभौ पश्यतस्त्रिवह मेऽद्य हि ॥६५॥
 ततः सीता विप्रपत्नीमाश्वासयाह गिरं शुभाम् । रामेण ते प्रतिहानं कुशदानेन मामिने ॥६६॥
 अहमप्यद्य ते वचिष तव दुःखस्य शान्तिने । न जीवि-श्चेदामेण मयाऽप्य न्वाच्छिद्युः प्रियः ॥६७॥
 तर्हि त्वदुदुःखशान्तिमर्थमर्पयेऽहं लव प्रियम् । नाम्भ्यां कुशलवाङ्मनं न्व पुत्रदुःखं न्यजिष्यसि ॥६८॥
 भजिष्यसि न्व मन्मोक्षयन्तः शौरं दुरुध्व मा । ततः प्राह द्विजं रामस्त्वं पत्न्याऽत्र स्थितो भव ॥६९॥
 मा कुरुष्व मुहुः खेदं न्वन्पुत्र जीवयाम्यहम् । इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनैव तत्प्राण्यां शव शिशोः ॥७०॥
 निधाय कृमिदुग्धेन्दुस्फुणप्रशान्तये । स्वयं स्नान्वा निन्ययिधि चाकरोत्त्रिभ्रमानमः ॥७१॥
 ततः सभासस्थितः सन् वसिष्ठ प्राह राघवः । राज्यं शान्तिं धर्मेण तत्राय वै शिशुः कथम् ॥७२॥

अपने प्रिय पुत्रके साथ चित्तमें जलकर भस्म हो जावेग ॥ ५६ ॥ अथवाक वृत्तान्तका स्मरण करा । जिस प्रकार तुम्हारे पिता द्वारा अपने पुत्रवचक दुःखस दुःख होकर उसके मां वपन दण्डवत्का साथ दकर अपन प्राण त्याग दिये थे, वही दशा हमारी भी होगी ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर ब्राह्मणान द्वाराक साथ घाताका संबोधित करके कहा—हे शुभे ! तुम क्यों पतिका आलस्यन करके आनन्दक साथ सा रहा हो ? तुम भी पुत्रवती हो । इस कारण मर दुःखका आर ध्यान दकर मर बन्धका जितानक लिये अपन पात द्वारा शास्त्र कोई उपाय करवाओ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार उस विप्रदम्पताक वाक्य सुनकर वहाँक सब पुरवासी आश्चर्य हो उठे और उस शवको चारों आरसे धरकर रख हा गया ॥ ६० ॥ उधर राम तथा सीता दोनों ब्राह्मणका बासीसे विह्वल होकर रतिशालाम बहर निकल आए । नाच आकर रामन वन्दनाजन का स्तुति तथा गान-बजानवालोंक गान-बाजे राक दिये और वगव साथ दोड़त हुए उन दानोक पास पहुँच । उस समय उस दुःखमें सीता तथा रामका मुख कुम्हला गया था ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ महाराज राम तथा सीताका देखकर व दानो और भी जोर-जोरसे चिन्ता-चिन्त कर रान लग ॥ उनका आश्वासन दत हुए गदगद कण्ठस रामन कहा कि आप लोग इतने ध्याकुरु न हो, मैं जो कुछ कह रहा हूँ उस सुन । मैं कोई उपाय करके तुम्हारे पुत्रको जीवित करूँगा ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ यदि तुम्हारे बेटका जीवित न कर सकूँगा तो मैं अपना पुत्र कुश आपको द दूँगा । मेरा वादका साथ समझकर आप विश्वास कर ॥ ६५ ॥ इसके अनन्तर सीताने विप्रपत्नीके पास जाकर कहा—हे भामिना ! तुम सुने रही हो कि रामने क्या प्रतिज्ञा की है ? तुम्हारे पतापक लिए मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि रामचन्द्रजी आपके बन्धे का जीवित न कर सक तो मैं अपने छोट पुत्र लवका दे डूँगा । उन दाना पुत्रक पानस तुम्हारा पुत्रशाक दूर हो जायगा ॥ ६६-६७ ॥ अब शाक मत करो । तुम्हारा पुत्र न जिये तो अभी जा मुख में भाग रही हैं, वह तुमको प्राप्त होगा । इसके अनन्तर रामने ब्राह्मणस कहा कि आप अपना पत्न्याक साथ यहाँ बैठ और किसी प्रकारका खेद न करो । मैं आपके बेटका जीवित करूँगा । इनका कहकर रामन लक्ष्मणस कहकर एक तेलसे मरी हुई नौका मंगायी । जिसका मद सड़-सड़ नहीं, उसमेंसे दुग्ध न निकले या काड़े न पड़ें । इस विचारसे उस शवको उसमें रखवा दिया और स्वयं लिज लाकर सन्ध्यादि निराकृत्य करनेका चले गये । इसके अनन्तर सभामें बैठकर रामने अपने कुलपुत्र वसिष्ठसे कहा कि जब मैं अमर्त्यक राज्यशासन कर रहा हूँ तब

बाल्यत्वे पञ्चतां प्राप्तस्त्रोषाय विचिन्त्यताम् । इति यावद्गुरु गमः प्रोवाच तावदम्बरात् ॥७३॥
 नारदः प्रयया वृणां रण्यन तत्सभां जवत् । प्रत्युद्गम्याथ तं रामः परिपूज्य यथाविधि ॥७४॥
 सभ्राव्य सकलं वृत्त पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् । त्वयोपायोऽत्र वक्तव्यः शिशोश्चास्य प्रजीवने ॥७५॥
 पुत्राभ्यां हि प्रतिजात द्विजाय मानया मया । किमर्थं मम राज्येऽथो मृतस्त्रीदृष्ट्वा वैश्यहम् ॥७६॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवः प्राह नारदः । राम त्वद्विषयेऽधर्मं न कोऽप्याचरते जनः ॥७७॥
 भूम्यां सर्वत्र द्रष्टव्यं त्वया गन्वाऽद्य मद्विग । यद्यप्यहं विजानामि भूम्यां वृत्तं च जानतः ॥७८॥
 तथापि जनशिक्षार्थं त्वामेव प्रेषयाम्यहम् । त्व दृष्ट्वाऽधमनिरतं जनं शिक्षय सादरम् ॥७९॥
 अधर्मोऽछेदनेनाय जीवयिष्यति वै शिशः । तथेति राघवश्चोक्त्या विमर्ज्य नारदं मुनिम् ॥८०॥
 सीतया नागरैः सर्वैर्भ्रातृभिर्गुरुणा सह । पुत्राभ्यां मन्त्रिभिर्वृक्तः पुष्पकं चारुगेहं सः ॥८१॥
 एतस्मिन्नन्तरेऽग्रेऽभूमहान्कोलाहलस्तदा । त श्रुत्वा चकितो रामः स ददर्श समन्ततः ॥८२॥
 तावद्दर्शं पुरः पौरैः मवेष्टिनां स्त्रियम् । श्रममप्यपरं शृङ्गवेरतश्च ममागतम् ॥८३॥
 राम दृष्ट्वा पुष्पकस्थं रुदतीं ब्राह्मणीं पुरः । दीर्घस्वर्गेण प्रोवाच हस्ताभ्यां हृदि ताड्य सा ॥८४॥
 राम गमः महाबाहो ते राज्ये गतमर्तुका । अहं जानाऽस्मि त्वदोपायमां दृष्ट्वा त्वं न लज्जसे ॥८५॥
 मद्भर्तारं जीवयनं नोचेच्छास्य ददामि ते । इति तस्या वचः श्रुत्वा राघवः विभ्रमानसः ॥८६॥
 अत्रवीन्यभुरं वाक्यं ब्राह्मणीं तोषयन्मुहुः । क्रोधं शमय रम्भोरु ते भर्तारं प्रजीवये ॥८७॥
 अस्म्येव हेतोर्गेच्छामि त्वं मद्गेहे सुखं वस । इत्युक्त्वाऽऽश्वास्य तां रामस्तच्छत्रं चापि पूर्ववत् ॥८८॥
 तैलद्रोण्यां स्थापयित्वा सुमत्रं वाक्यमब्रवीत् । आगमिष्याम्यहं यावत्तावन्वत्स्यापि नो शयम् ॥८९॥

इस बाह्यणके बच्चको अवाल मृत्यु कथी हुई ॥ ६९-७२ ॥ इसक लिय क ई उपाय साचना चाहिये । इस प्रकार रामने गुरु वसिष्ठसे प्रश्न किया ही था कि इतनेमें आकाशमार्गसे वृणा अजात हुए नारदजो उस सभाभवनमें आ पहुँच । रामचन्द्रजने उठकर नारदकी पूजा की ओर सारा वृत्तान्त कह सुनाया । इसके पश्चात् वे बोले- हे मुनिगज ! आप ही इस विप्रपुत्रके जीवनका कोई उपाय बतलाइय । हमने तया सोताने यह प्रतिज्ञा की है कि यदि इस बालककी मैं जीवित न कर सका तो अपन दोनो पुत्र वृष तथा लव उस विप्रको अपण कर दूँगा । मेरे राज्यमें इस प्रकार अकाल मृत्यु कैसे हुई, यह मुझे मालूम नहीं हो रहा है ॥ ७३-७६ ॥ इस प्रकार रामके वचन सुनकर नारदने कहा—हे राम ! तुम्हारे राज्यमें कोई भा मनुष्य किसी प्रकारका अधर्म नहीं करता । फिर भी मेरे क्यतानुसार आपको यह उचित है कि अपन राज्यभरमें घूमकर देख । यदि कहीं कोई किसीतरहका अधर्माचरण करता हुआ देखे तो उसे आप दण्ड दें । इस प्रकार अधर्मका मूलोच्छेद करनेपर यह बाह्यणबालक जीवित हो जायगा । रामने भी नारदकी सलाह मान ली । नारद मुनिको सादर विदा करके राम सीता, कुछ नगरवासो जनो, अपने ११ तारा, गुरु वसिष्ठ दोनो पुत्रो तथा मन्त्रियोको साथ लेकर पुष्पक विमानपर आरुढ़ हुए ॥ ७९-८१ ॥ उस समय आगका आगसे ओरोका कोलाहल सुनाई पड़ा । उसे सुनकर राम और भी विभ्रित हुए और च तो आर निहारने लगे । तबतक उन्होंने देखा कि एक स्त्रीको चारो ओरसे बहुतसे पुग्वासी घेर हुए हैं । उनक जाने शृङ्गवरपुरकी तरफमें एक और शव लड़ा हुआ आ रहा है । स्त्रीने जब रामको पुष्पक विमानपर बैठे देखा तो अपन हाथोसे छाती पटकर कहने लगी—हे राम ! हे राम ॥ तुम्हारे राज्यकालमें दिववा होकर मैं यहाँ आती हूँ मुझे इस दशामें देखकर तुम्हें लाज नहीं आती ? मेरे पतिको मृत्यु तुम्हारे ही अधर्मसे हुई है । इस कारण जैसे बने, तैसे मेरे पतिको जिलाओ । नहीं तो मैं शाप दे दूँगी । इस प्रकार उस स्त्रीकी बात सुनकर रामने खिन्न होकर मीठी वाणीसे आश्वासन देते हुए उत्तर दिया—हे रम्भोरु ! तुम कागका पत्नियाग करके शान्त होओ । मैं तुम्हारे पतिको जिला दूँगा । मैं भी इसी कामके लिए आ रहा हूँ । तुम आनन्दके साथ मेरे भवनमें चलकर रहा । इस तरह उसे समझा-बुझाकर रामने उस शवको भी पहलेके समान तेलकी नौकाम रखवाया और सुमन्त्रको सबत कर दिया कि

त्वया बहौ ज्वालनीयं रक्षणीयं प्रयन्नतः । सर्वानपि त्वया भूम्यां भ्रातृभ्यं दंदुमिनिःस्वनैः ॥९०॥
 त कस्यापि श्वं दग्धं कापि कार्यं जनैस्त्रिणि तथेति राघवं चोक्त्वा दूनः संश्रान्य तद्वचः ॥९१॥
 सुमंत्रः सकलान् भूम्धान् साकेते न्यवमन्मुखम् । रामोऽपि पुष्पकेणैव पश्चिमां चोत्तरां दिशम् ॥९२॥
 पूर्वामपि स्वनैः पश्यन् दक्षिणाभिमुखो यया । एतस्मिन्ननरेऽयोध्यापुर्यां पञ्च शवानि हि ॥९३॥
 समानीतानि तैलस्य द्रोण्यां तान्यपि पूर्ववत् । सुमंत्रः स्थापयामास श्रीगमस्याज्ञयाऽऽदरात् ॥९४॥
 तेषु पञ्चशवेष्वेव चैकं मधुपुरि स्थितम् । क्षत्रियस्य च तज्ज्ञेयं सनानीतं मुहुजनैः ॥९५॥
 प्रयागस्य द्वितीयं च श्वं वैश्यस्य तत्स्मृतम् । पूर्वं वयमि पञ्चान्वान्समानीतं हि तज्जनैः ॥९६॥
 हस्तिनापुरमस्थं तत्तृतीयं शरमोरितम् । तैलकास्य तज्ज्ञेयं समानीतं हि तज्जनैः ॥९७॥
 श्वं चतुर्थं तज्ज्ञेयं हरिद्वारस्थितं द्विजं लोहकास्नुपायाश्च समानीतं हि तज्जनैः ॥९८॥
 उज्जयिनीस्थं पञ्चमं च श्वं ज्ञेयं महामते । चर्मकारदुहितायाः समानीतं हि तज्जनैः ॥९९॥
 एव पञ्च शवान्यामन् पूर्व द्वे ब्राह्मणस्य च मध्यायोध्यापुर्यामप्ये श्वान्येव स्थितानि हि ॥१००॥
 रामोऽपि दृढकं पश्यन् स वभ्राम समंततः । यया विंध्याचलं धीमान् रेवावाग्निपिप्तुतम् ॥१०१॥
 तत्र वृक्षे लंबमानं धूमं पातुमधोमुखम् । शूद्रं निरीक्ष्य स्वर्गेच्छं तं हतुं समुपस्थितः ॥१०२॥
 तदा त राघवः प्राह भो शूद्र शृणु मद्वचः । ब्राह्मणादित्रिभिर्वर्णैस्तपः कार्यं न चेत्तरः ॥१०३॥
 शूद्रश्च द्विशुश्रूषा मदा कार्याऽतिभक्तिः । द्विजकृत्यं त्वया चात्र कृतं पापं मनो जड ॥१०४॥
 इदानीं त्वां हनिष्यामि जीवयिष्यामि तान्मृतान् । तुष्टोऽहं न्वां न्वनपमा वरं वरय वंछिनम् ॥१०५॥
 इति रामवचः श्रुत्वाऽधोमुखो गमपादजः । उवाच भयभीतः मन्नत्या रामं मुहुर्महूः ॥१०६॥
 राम रावणदर्पघ्न यदि तुष्टोऽमि मां प्रभो । तर्हि ते वरयाभ्यस्त येन शूद्रगतिर्भवेत् ॥१०७॥

जबतक मैं लौट न आऊँ तबतक तुम किसी भी शवका अग्निमरकाय न करने देना ॥ ८२-८९ ॥ साथ ही मेरे राज्यमें यह दुर्गा पिटवा दो कि जबतक मैं लौट न आऊँ तबतक कोई भी शव न जलाया जाय । सुमन्त्रने रामकी आज्ञा स्वीकार करके इन दो द्वारा पिटवाकर रामकी वह आज्ञा सब लोगोको सुनवा दी और आनन्दपूर्वक राज-काज देखते हुए रहने लगे । पछर रामचन्द्रजी पुष्पर विमानपर बैठकर पश्चिम तथा उत्तरकी दिशाओंको घीरे घीरे अच्छी तरह देखन हुए दक्षिण दिशाकी ओर बढ़े । इसी बीच अयोध्यामें पाँच शव और आकर एकत्र हो गये । उन्हें भी सुमन्त्रने पूर्ववत् तैलकी नौकामें रखवा दिया ॥ ९०-९४ ॥ उन पाँचोंमेंसे एक शव मधुपुर गाँवमें रहनेवाले एक क्षत्रियका था । जिसे उसके मुहुजन रामके दरबारमें ले आये थे । दूसरा शव प्रयागनिवासी एक वैश्यका था । थोड़ा ही अयोध्यामें उसकी मृत्यु हो गयी थी । इसी लिए उसके घरवाले रामके पास ले आये । तीसरा शव हस्तिनापुरनिवासी एक तैलीका था । उसे भी उसके घरवाले रामके पास ले आये थे । चौथा शव हरिद्वारनिवासी एक लोहारकी पुत्रवधूका था । पाँचवाँ शव उज्जयिनीनिवासी एक बमारकी लड़कीका था और उसके घरवाले उसे अयोध्या ले आये थे । इस प्रकार ये पाँच शव तथा पूर्वके दो ब्राह्मणके सब मिलाकर अयोध्यामें मान शव एकत्र हो गये ॥ ९५-१०० ॥ राम-चन्द्रजी भी दण्डकारण्यमें अच्छी तरह घूमकर रेवानदीसे परिशुद्ध विन्ध्यपर्वतको ओर बढ़े । वहाँ उन्होंने देखा कि एक शूद्र उलटा टंगा है और नोचे आगकी धुनी घटक रही है । वह शूद्र घुब्रा पीता हुआ मूँह बाये लटका हुआ है । इस प्रकारकी उय तपस्या करके स्वर्ग चाहनेवाले उस शूद्रको राम मारनके लिए तैयार हो गये और उसके पास जाकर कहने लगे-हे शूद्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्णोंके लिए ही तपस्या करनेका विधान है, शूद्रोंके लिए नहीं । उन्हें तो सर्वदा इन तीनों वर्णोंकी सेवा करनी चाहिए । अरे जड़ ! तुम पापीने अपने धर्मकर उल्लंघन करके द्विजोंके समान कर्म किया है ॥ १०१-१०४ ॥ इस समय मैं तुझे मारकर उन लोगोको जीवित करूँगा, जो तेरे धर्मविरुद्ध आचरणसे अकालमृत्युके श्रास बने हैं । मैं तेरी इस तपस्यासे प्रसन्न हूँ । बोल, तेरी क्या कामना है ? इस प्रकार रामकी वाणी सुनकर भयभीत हो

ममापि येन कीर्तिः स्यात्तं वरं दातुमर्हमि । इति शूद्रवचः श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽब्रवीद्वचः ॥१०८॥
 मम रामेति यन्नाम तच्छूद्रैः सर्वदेव हि । जपनोय कर्त्तव्यं चिन्तनीयं मुहुर्मुहुः ॥१०९॥
 भविष्यति गतिस्तेषामनेन मन्परो भव । तवानेनोपकारेण कीर्तिः शूद्रेषु वै भवेत् ॥११०॥
 इति रामवरं श्रुत्वा पुनः शूद्रोऽब्रवीद्वचः । शूद्राः कलौ मदधियो भविष्यन्ति रघूत्तम ॥१११॥
 व्यग्रचित्ता भविष्यन्ति कृषिकमादिभिः प्रभो । तदा तेषां कृतो बुद्धिर्जपादिषु भविष्यति ॥११२॥
 अतस्तदनुरूपोऽयं वरो देवो विचार्य च । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽब्रवीत् पुनः ॥११३॥
 परवन्दनकालेषु रामरामेति सर्वदा । शूद्रा वदन्तु सर्वत्र तेन तेषां गतिर्भवेत् ॥११४॥
 तवापीयं कथाकीर्तिः स्मरिष्यति मद्राजिजाः । त्वं मया निहतस्त्वद्य वैकुण्ठं प्रति यास्यसि ॥११५॥
 पुनर्ययाचे श्रीरामं वरमन्यं स्वकारणान् । अस्मिन् शूले मदा तिष्ठ संतालश्मणमप्युतः ॥११६॥
 अशनस्ते पूर्वमेव दर्शनं मम ये नराः । करिष्यन्ति ततः पश्चाद्ये नरास्तव दर्शनम् ॥११७॥
 कुर्यन्ति सहितं भक्त्या मोक्षमेव व्रजन्ति ते । महर्शनं विना मन्याम्या पश्यन्त्यविचारतः ॥११८॥
 तेषामुद्धरणं राम कुरु मद्वचनात् प्रभो । तथोवाच तदा रामो भक्तिं तस्मै ददा हरिः ॥११९॥
 इति कृत्वा सुमंतुष्टं हत्वा शूद्रं रघूत्तमः । जीवयामास विप्रादीन्मम साकं नमस्यितान् ॥१२०॥
 तदारम्यात्र शूद्रैस्तु विष्णुदामावर्त्तितले । परवन्दनकालेषु रामरामेति कीर्त्यते ॥१२१॥
 तं हत्वा रघुवीरः स परिश्रुत्य मुदान्वितः । मर्त्ता नानाकौतुकानि दर्शयन्स्वर्गं ययौ ॥१२२॥
 एतस्मिन्नंतरे मार्गे गृध्रीलक्ष्मीं निरोक्षितौ । विवदमार्तो रामेण चान्तरानं द्रष्टुमागतौ ॥१२३॥
 तावुवाच रघुश्रेष्ठः किमर्थं हि युवामुभौ । विवदमार्तो मंशार्तो मां व्रतस्त्वद्य विस्तरान् ॥१२४॥

और नीचा मस्तक किये हुए बार-बार प्रणाम करके उस शूद्रने कहा—हे रावणके अभिमानका दूर करनेवासे राम । यदि वास्तवमें आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे वह वरदान दार्जय कि जिससे शूद्रजातिका भी सद्गति प्राप्त हो, साथ ही मेरा भी उद्धार हो जाय । इस तरह शूद्रकी दामनापूर्ण बात सुनकर रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए और कहन लगे— ॥ १०५-१०८ ॥ 'राम' इस पवित्र नामका जो शूद्र सदा जप, कीर्तन तथा चिन्तन करत रह्यो, उन लोगोंकी सद्गति प्राप्त होगी और तुम भी इस तपस्याको छाड़कर मेरा चिन्तन करो । तुम्हारे इस उपकारसे शूद्रोंमें तुम्हारी कीर्ति होगी । इस प्रकार रामचन्द्रजीके द्वारा वर पाकर शूद्रने कहा— हे रघुत्तम ! आगे महाप्रचण्ड कलियुग आनवाला है । उसमें शूद्रजातिके लोग बड़े मूर्ख होंगे । वे सर्वदा अपनी खती-बारीक काममें ही व्यस्त रह्यो । ऐसी अवस्थामें उन्हें जप तथा कीर्तन करनेका अवसर ही कहीं मिलेगा । इन शुभ कर्मोंकी ओर उनकी बुद्धि कैसे जायगी । अतएव उनको अनुरूप कोई वरदान दीजिए । उसकी यह बात सुनी तो प्रसन्न होकर रामने कहा कि वे लोग एक-दूसरेकी प्रणाम-आशीषके समय 'राम-राम' ऐसा कह्यो, इससे उनका उद्धार हो जाया करेगा ॥ १०९-११४ ॥ उस शूद्रममाजमें तुम्हारे बड़ा कीर्ति होगी । आज तुम हमारे हाथों मरकर वैकुण्ठ्यामकी प्राप्त होओगे । इसके अनन्तर उसने रामसे यह वर माँगा कि आप सीता तथा लक्ष्मणक साथ सर्वदा इस पर्वतपर निवास करें ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ जो लोग यहाँ आकर पहले मेरा दर्शन करनेके पश्चात् आपका दर्शन करें, उनको मोक्षपद प्राप्त हुआ करे । इसके सिवाय जो लोग भ्रमवश विना मेरा दर्शन किये ही आपका दर्शन कर ले, उनका भी उद्धार हो जाय । रामने 'तथास्तु' कहकर भक्तिका वर दिया और उसे मारकर उन अकाल मृत्युमें भरे हुए लोगों की जीवित किया, जो ब्राह्मण-क्षत्रियादि सात प्राणी अवोध्यामें मरे पड़े थे ॥ ११७-१२० ॥ हे विष्णुदास ! तभीसे इस पृथ्वीवलमें शूद्रलोग आपसमें प्रणाम-आशीषक अवसरपर 'राम राम' कहा करते हैं । शूद्रको मारकर हर्षपूर्वक राम-चन्द्रजी सीताको रासके अनेक मनोहर दृष्योंको दिखाने हुए अवोध्योंके लिए लौट पड़े । उसी बीच एक गृध्र और उलूक परस्पर विवाद करत हुए रामके दर्शनोंके लिए उनके सम्मुख आये । रामने उन्हें देखकर

तद्रामवचनं श्रुत्वा तदोत्कृष्टोऽब्रवीत् प्रभुम् । मया पूर्वं कृतं राम नगोपरि गृहं वने ॥१२५॥
 तत्कालेन मया त्यक्तं तत्र गृध्रोऽस्ति संस्थितः । नानेन दीयते मया मम गेहं रघूत्तम ॥१२६॥
 तदुत्कृष्टवचनः श्रुत्वा गृध्रमाह रघूदहः । किमर्थं दीयते नास्य त्वया गृध्र गृहं वद ॥१२७॥
 तदा गृध्रोऽब्रवीद्वाक्यं राघवं दीर्घनिःस्वनः । मया पूर्वं कृतं राम नगोपरि गृहं वने ॥१२८॥
 तत्कालेन मया त्यक्तं तदोत्कृष्टः किरद्दिनम् । श्विनस्नेनापि तत्त्यक्तं तत्राह संस्थितः पुनः ॥१२९॥
 इथाऽयं स्पृष्टुं राम मन्वा गेहं ममेति च । माऽधर्मं कुरु राजेन्द्र त्वद्वशेऽभूत् पातकी ॥१३०॥
 तावुवाच रघुश्रेष्ठो पुत्राभ्यां हि यदा गृहम् । कृतं नम्यात्र कः माक्षी तदा तौ नेति चोचतुः ॥१३१॥
 विमानस्थास्तदा सर्वात्राघवः प्राह मस्मिनः । इदमप्यथ मग्धार्थं दृष्टं मां पुरस्त्विह ॥१३२॥
 कथं न्यायोऽत्र वै कार्यः कस्मै गेहं प्रदायनाम् । तद्रामवचनं श्रुत्वाऽऽमन्मर्षेऽतिविस्मिताः ॥१३३॥
 तदोत्कृष्टं विभुः प्राह कृतं गेहं त्वया कदा । उत्कृष्टः प्राह भूध्वं यदा जाता तदा कृतम् ॥१३४॥
 तदुत्कृष्टवचनः श्रुत्वा गृध्रं गमोऽवलोकयत् । गृध्रः प्राह यदा चेय महानारेऽवनिस्तदा ॥१३५॥
 शूतश्ले कृतं विद्धि पुन गेहं मया विभो । तद्गृध्रवचनं श्रुत्वा तदा तं प्राह राघवः ॥१३६॥
 कथं विनाऽऽश्रयेणासन्महानारे नगम्यदा । मोक्षाऽक्षयवटः सोऽपि चूतवृक्षस्त्वया स्मृतः ॥१३७॥

तस्माद्बुद्ध्या स्वया गृध्रं स्पृष्ट्वेतेऽनेन निश्चिनम् ।

मयाऽथ तत्र वाक्येन धिक् त्वां दृष्टपतत्रिणम् ॥१३८॥

इत्युक्त्वा राघवो दूतैस्तं गृध्रं पर्वतोपरि । त्रिशूलाग्रेषु चतुर्ष्व प्रपयामास स्वं पदम् ॥१३९॥
 धन्यः स गृध्रो विज्ञेयो रामाग्रं यस्य वै मृतिः । अभूत्तद्दर्शनमात्रं यस्य देहविसर्जने ॥१४०॥

कहा कि तुम लोग क्यों लड़ रहे हो ? मुझे विस्मयपूर्वक कारण बतलाओ ॥ १२१-१२४ ॥ रामकी बात सुनकर उलूकने कहा कि मैंने एक वृक्षपर रहनेके लिए एक घोंसला बनाया था । कार्यदेवता उसी समय उसे छोड़कर मुझे स्वर्गान्तरको चला जाना पड़ा और यह गृध्र उसमें रहने लगा । अब मेरे माँगेपर यह गुज्रों केरा घोंसला नहीं बँ रहा है । इस प्रकार उलूककी बात सुनकर रामने गृध्रसे कहा कि तुम इसका घोंसला इसे क्यों नहीं देते ? गृध्रने तटवकर कहा—हे राम ! पहले मैंने उस वृक्षपर यह घोंसला बनाया था । कुछ दिनोंके लिए मैं बाहर चला गया तो यह उलूक उसमें रहने लगा । फिर यह अब उसे छोड़कर कहीं चला गया तो मैं आकर अपने घरमें रहने लगा । यह अर्थ हमसे लड़ाई कर रहा है । हे राम ! इसकी जानीमें आकर कहीं आप अधर्म न कीजियेगा । क्योंकि आपके वंशमें कभी कोई पातकी नहीं हुआ है ॥ १२५-१३० ॥ उन दोनोंसे रामने कहा कि तुमने उस घोंसलेको बनाया था, इसका कोई साक्षां दे सकन हो ? इस प्रकारके प्रश्न होनेपर वे दोनों चुप हो गये । क्योंकि उन दोनोंके पास कोई गवाह नहीं था । ऐसी दशामें मुस्कराते हुए रामने विमानपर बैठे हुए लोगोंसे कहा कि यह विकट समस्या आगे आ गयी है । इस सगडंका कैसे न्याय हो ? किसको वह घोंसला दिया जाय ? इस तरह रामकी बात सुनकर सब लोग बीचकसे रह गये । किसीको कोई युक्ति नहीं सूझी ॥ १३१-१३३ ॥ फिर रामने उलूकमें कहा कि तुमने कब अपना घोंसला बनाया था । उसने उत्तर दिया कि मैंने अपना निवासस्थान उस समय बनाया था, जब इस पृथ्वीकी रचना हुई थी । इस प्रकार उलूककी बात सुनकर रामने गृध्रको आर देखा । गृध्रने उत्तर दिया कि मैंने उस घोंसलेको आसके वृक्षपर उछा समय बना लिया था, जब पृथ्वी जलमग्न थी—उसका उद्धार ही नहीं हुआ था । गृध्रसे रामने कहा कि जब पृथ्वीकी उत्पत्ति ही नहीं हुई थी, तब वह आसका वृक्ष किसके सहारे खड़ा था । वृक्षोंमें तुमने अक्षयवट भी नहीं बताया, जो किसी तरह रह भी जाता है । इसलिए भातूम पड़ता है कि दुष्टहारी बात झूठ है । तुम उलूकको ध्वंश सता रहे हो । तुम जैसे दुष्ट पक्षोंको धिक्कार है ॥ १३४-१३८ ॥ इसना कहकर रामने दूतों द्वारा गृध्रको शूलपर चढ़वाकर उस अपना परम पद दे दिया । वह गृध्र धन्य था, जिसकी मृत्यु रामके सम्मुख हुई और रामका दर्शन करते हुए उसने अपने प्राणोंका परित्याग किया । इस प्रकार उसे

दृष्ट्वा गौहमुत्क्राय ययौ रामो निर्जां पुरीम् । विवेश नगरं नृत्यवाद्यगीतिपुरःसरम् ॥१४१॥
 शिशुं विप्रं क्षत्रियं च वैश्यं चापि चतुर्थकम् । तैलकारं पञ्चमं च लोहकारस्तुषां तथा ॥१४२॥
 चर्मकारदुहितरं सप्तैतान् हि सुजीवितान् । दृष्ट्वा रामः समायातानात्मानं द्रष्टुमादरात् ॥१४३॥
 तुतोष नितरां पत्न्या तैः सर्वैः संस्तुतो मुहुः । ततः सपूज्यः तान् सर्वान् विसर्ज्य रघूद्वहः ॥१४४॥
 तदा महोत्सवश्चासीदयोध्यायां समन्ततः । एव नानाचरित्राणि चकार रघुनन्दनः ॥१४५॥

इति श्रीकृतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वान्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वाह्णे

यत्तिषूद्रगृध्रशिक्षोपकरणं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

(चार विप्रकन्याओंको रामका वरदान)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा रामचन्द्रो मृगयार्थं वनं ययौ । सीतया बन्धुभिः सैन्यैर्हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ॥१॥
 पश्यन् वनानि सर्वाणि मृगयारसिको भृशम् । कौतूहलममाविष्ट आखेटव्यूहसंवृतः ॥२॥
 उपानद्गूढपादश्च नीलोष्णीधी हरिच्छदः । नीलगोधांगुलित्राणो घनुष्पाणिः शरी नृपः ॥३॥
 अश्वारूढः खड्गचर्मधारी भूपैः पदातिभिः । वेष्टितः कवची रामो विवेश गहन वनम् । ४॥
 सीतया जालरंघ्रैश्च वारं वारं निरीक्षितः । स रामो बन्धुवर्गैश्च पुत्राभ्यां नृपसत्तमैः ॥५॥
 क्रीडां तदाऽकरोत्तत्र कुंजेषु मृगयन्मृगान् । हन्यतां हन्यतामेपो मृगो वेगात्पलायते ॥६॥
 इति जल्पन् स्वभृत्येषु स्वयमुत्पत्य हन्ति च । गांधारेषु च रभ्येषु वनेषु विपुलेषु च ॥७॥
 उल्लङ्घितमहास्रोता युवा पञ्चास्यविक्रमः । इतस्ततः पुनर्याति कचिन्पश्यन् वनस्थलीम् ॥८॥

दण्ड देकर घोसला उलूकको दे दिया और वहाँसे अपनी अयोध्या नगरीकी ओर चल पड़े। अयोध्यामें पहुँचे तो क्या देखा कि वहाँ नाच-गान हो रहे हैं। ब्राह्मणका लडका, मधुरपुरवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तेली एवं लोहारकी पतोड़ तथा जमारकी लड़की ये सब जावित हाकर रामके दर्शनोंको खंड हैं। उनको जीवित देखकर सीता समेत राम अत्यन्त प्रसन्न हुए। वहाँ पहुँचे तो लोगोंने रामकी स्तुति की और रामने भी उनका सत्कार करके उनके ग्रामोंको भेज दिया। उस समय अयोध्या भरमे चारों ओर उत्सव ही उत्सव दीखता था। इस तरह राम अनेक प्रकारका लीलाये करते रहते थे ॥ १३६-१४५ ॥ इति श्रीकृतकोटिराम-चरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतंजपाण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वाह्णे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके बहुत दिनों बाद रामचन्द्रजी एक समय शिकार खेलनेके लिए सीता तथा भ्राताओं और बहुतसे हाथी-घोड़े आदिकी साथ लेकर वनमें गये। मृगयाके आनन्दसे आनन्दित होकर वे बहुतसे वनोंको देखते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। उस समय उनके साथ शिकार सेलानेवाले भीलोंका एक बहुत बड़ा दल था। रामचन्द्रजी जूता पहने थे, नीले रङ्गकी पगड़ी मस्तकपर बँधी थी, हरे कपड़े पहने हुए थे और नीले ही रङ्गकी गोवांगुली उँगलियोंमें बँधी थी। हाथमें घनुष-बाण धारण किये थे ॥ १-३ ॥ वे घोड़ेपर सवार थे, तलवार और ढाल बगलमें झूल रही थी। बहुतसे पैदल चलनेवाले राजे उनके साथ थे और उनके शरीर पर कवच पहना था। इस प्रकारका देश धारण किये वे गहन वनमें जा पहुँचे। उस समय सीता पालकीकी खिड़कियोंसे रामकी ओर निहार रही थीं और रामचन्द्रजी अपने भ्राताओं और मित्रोंके साथ कुञ्जोंमें मृगोंको ढूँढते हुए हर्षपूर्वक मृगया कर रहे थे। कभी-कभी 'मारो-मारो, यह मृग वेगसे भागा जा रहा है' इस प्रकार चिल्ला पड़ते। यदि कोई उसे मारनेको नहीं पहुँच पाता तो वे उसे स्वयं मार दिया करते थे। एक

विटपोद्भीनमप्रस्तलीनकेकिङ्कुलकुलाम् । हरिर्णिगजमंत्रस्तां धावच्छापददिङ्मुखाम् ॥ ९ ॥
 कचिन्करवफुन्कारझिझारावविर्भाषिणाम् । सङ्गयुधैः कचिच्छस्त्रां दधानामिव दंतिनाम् ॥ १० ॥
 कचिन्कोटरमविष्टशुक्रां नादयिनादिनीम् । मृग निपटमुदाभिमुद्रितां च कचिन् कचिन् ॥ ११ ॥
 शार्दूलनखनिभिन्नरोहिद्रक्तारुणां कचिन् । पांश्वरस्तनमारातमुन्निगधमहिषागणैः ॥ १२ ॥
 अवरोधांजरक्षोणिं सूक्ष्मपन्तामिव कचिन् । कचिद्बुधक्षयनच्छायां वनपुष्पसुगंधिनीम् ॥ १३ ॥
 कचिच्छतागृहद्वारभूमडलमतोगणाम् । यर्धनिःसृतनिर्मोकनागर्भापमहकिलाम् ॥ १४ ॥
 वृत्तास्याजगर्भ्यामां कचिन्निर्मुक्तमर्षिणाम् । कचिद्वाधानलज्वालाशिसावपातमहीरुहाम् ॥ १५ ॥
 ज्वलन्निर्जनिगच्छदृक्कृष्याग्रमद्भट्टाम् । व्यमुचंस्तु शुनां यूयं शशकेषु कचिन् कचिन् ॥ १६ ॥
 पन्वलेषु च विश्रांतः पुनर्यानि वनादरम् । ततो मध्याह्नममये निवास सरसस्तटे ॥ १७ ॥
 कारयामास सेनायाः सीतायाश्च रघून्तमः । स्वयं मुदाऽकरोत्क्रीडामाखेटव्यूहमयुतः ॥ १८ ॥
 दुद्राव मृगपृष्ठेषु सुवन्त्रा बाण जघान तान् एवं खेलति राजेन्द्रे व्याघ्रवर्गे च वै द्विज ॥ १९ ॥
 तत्र कोलाहलव्रस्तः पंचाम्यो निर्गतो वनात् । स केसरी महावेगस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयावहः । २० ॥
 स्फुरद्भगवत्पाकांतदुर्गमार्गमर्हातलः । कदाचिद्भगवत्तदुदः कदाचिद्भूमिगमलः ॥ २१ ॥
 न स्याच्छ्रयतां याति धन्विनां पृष्ठगामिनाम् । कचिद्दृष्टपथ याति दर्शनागोचरः कचिन् ॥ २२ ॥
 वक्रस्रोतोऽतिगमोर कंटकीद्रुमनंकुलम् । इकृष्याग्रममार्काणं पर्वतेश्च भयंकरम् ॥ २३ ॥
 प्रविष्टो विषमारण्यं गमस्तस्य पदानुगः । दृग्दूरं ततो गन्वा देशदेशं च निर्जनम् ॥ २४ ॥

झाड़ोंकी छोड़कर दूसरामें और दूसरोंको छोड़कर तीसरीमें, इस तरह बार बार इधर उधर घनस्थलीमें दौड़ रहे थे ॥ ४-८ ॥ उस समय यही वृक्षोंपर रहनेवाले मयूरक परिवार भागे डरके वृक्षोंके खोदगोम छिप जाये, हरिणयां चकित नचाये इधर-उधर निहायता हुई भाग जातो, खनले जाव कालाहुलस प्रस्त होकर अपनी मोड़से निकल पडते, कहीं अपने बिलमें निकलकर संप्रगण पुष्पकार मारत थे और कहीं झींगुराकी भाषण मनकार सुनाई देता था । कहीं गेंडोंके समान शोभाकी बाण क्रिये हुए हाथी भाग रहे थे, कहीं काटरये बैठे हुए तोत अनेक प्रकारकी बोलियाँ बोल रहे थे, कहीं शरक पैरोंके निशान दिखाई देते थे और कहीं किसी सिंहके द्वारा मार गये हरिणके रुधिरसे पृथ्वा रक्तवण हो गयी थी । कहींकी भूमि बड़े-बड़े स्तनावाली भैंसोंसे भक्त पुरके अग्निसदृश भा, म पडता था और कहींकी पृथ्वी घट वृक्षोंकी छायासे छायामयी हो गयी थी । कहीं वनपुष्पकी सुगन्धमें बहु स्थली मगन्धमयी हो रही थी और कहीं प्राकृतिक ऐतिस सत्तामण्डव वन गया था । उसपर जो भीर मंडरा रहे थे, वे उसके तारण सहज जान पडते थे । कहीं मौपक शरीरमें आवा केचुली छूटकर बिलक मुखपर लगी थी । इस प्रकार बड़े-बड़े सर्पोंकी बिले दिखाई पडती थी ॥ ९-१४ ॥ कहीं मुँह बाये हुए बड़े-बड़े अजगर सर्प बैठे थे । कहीं साँपोका कंपुलियाँ दिखायी देती थी । कहींपर दावानल श्यानके कारण जलने हुए निकुञ्जोममें ध्यामि वृक्ष आदि बड़े-बड़े जन्तु निकल निकलकर भाग रहे थे । रामके साथ आये हुए शिकारी खरगशापर कुत्ते दौड़ा रहे थे । कई तरैया मिल जानपर वे लोग वहाँ कुछ देर विधाम करके आये, दूसरे वनमें चले जाते थे और मध्याह्नक समय किसी बड़े सरोवरपर सीता आदिकें साथ आराम करते थे ॥ १५-१७ ॥ तीसरे पहर उठकर फिर शिकारमें लग जाते थे । रामचन्द्रजी किसी भी मृगको देखकर उसके पीछे दौड़ पडते और उस बाणोंसे मार डालते थे । इस प्रकार रामचन्द्रजी मृगया कर ही रहे थे, तभी दूसरी ओरसे 'सिंह आया-सिंह आया' यह कोलाहल होत लगा । सिंह इसमें उबकर और भा बैगसे चला । उसके बड़े बड़े दाँत थे । देखनेमें वह बड़ा भयावना मान्य पडता था । वह बड़े बगसे दुर्गम मार्गको तै करता हुआ इन लोगोंकी ओर बढ़ता आ रहा था । वह कभी छल्लाग मारकर आकाशमार्गसे चलता और कभी पृथ्वी-पर दौड़ता चलता था ॥ १८-२१ ॥ अतिशय वेगसे भागनेके कारण उसका पीछा करनेवाले लोग कभी उसे देख पाते थे—कभी नहीं । इस तरह भागता हुआ वह एक ऐसे दुर्गम स्थानपर पहुँच गया, जहाँ एक टेढ़ा-

एकाकी हयमारुहो विवेश गिरिगह्वरम् । सर्वे व्याधाश्च दूताश्च लक्ष्मणाद्याश्च बधवः ॥२५॥
 रामादर्शनसञ्जाता वध्रमुस्त हनस्ततः । अथ रामः केसरिणं जघान शिखपत्रिणा ॥२६॥
 ततः स दिव्यरूपेण नत्वा प्राह रघूत्तमम् । पुरा विद्याधरश्चाह मया भुक्ता पतिव्रता ॥२७॥
 मुनिपत्नी हटेनैव तया शमस्त्वहं क्रुधा । सिंहवन्निग्रहो यस्मान्नवया मयि कृतोऽद्य हि ॥२८॥
 अतस्त्वं मद्विरा सिंहा भवार्थव महावने । तदा मया प्रायिता सा पुनर्मामाह राधव ॥२९॥
 चिराद्रामशरस्पर्शाच्छापांश्चुक्तिर्मवेत्तव । अतोऽद्य त्वच्छरस्पर्शाच्छापांश्चुक्तश्चिराद्दहम् ॥३०॥
 इत्युक्त्वा राममामंश्य स स्वर्गं प्रययौ मुदा । ततः स रामचन्द्रोऽपि तुरगस्थो मुदान्वितः ॥३१॥
 तत्र तस्थौ क्षणं यावत्तावत्तद्विरिगह्वरे । गुहाद्वारे शिलामेकां ददर्श योजनायताम् ॥३२॥
 महतीं तां शिलां दृष्ट्वा रामो विस्मितमानसः । वनुष्कोट्याऽक्षिपद्दूरं गुहायां सविवेश ह ॥३३॥
 कियद्दूरं ततो गत्वाऽग्रे प्रकाशं ददर्श सः । तत्र द्रोण्यां पर्वतस्य तपस्यंत्यः स्त्रियः प्रभूः ॥३४॥
 ददर्श रामश्चत्वारः किञ्चिदंतरसास्थिताः । अस्थिचर्मावशिष्टश्च देहैर्दृग्गोचरीकृताः ॥३५॥

आसीः सर्वावित्ताश्चेति ज्ञातवान्ता रघूत्तमः ॥३६॥

निजरूपाणि चत्वारि कुन्वादी नन्पुरः स्थितः । अत्रवीन्मधुर चाक्यं भिन्नरूपेण ताः पृथक् ॥३७॥
 वरयध्वं वरन्नार्यः प्रमन्नोऽहं रघूत्तमः । ततस्ता राममंस्पर्शान्मामरक्तादिधातुभिः ॥३८॥
 पूरितानि शरीराणि ददृशुर्नयननिर्जैः । श्रुत्वा तद्रामवाक्य तास्तदा स्वपुरतोऽक्षिभिः ॥३९॥

मेका नाला बह रहा था । बहुतसे कंटीले वृक्षोंकी झाड़ियाँ उसके आस-पास उगा थीं । चारों ओरसे पर्वत-की दीवारें खड़ी थीं और भड़िय तथा ध्यात्र आदि हिंसक जीव उसमें भरे पड़े थे । ऐसी अवस्थामें भी राम उसके पीछे-पीछे दौड़ते चले जा रहे थे । उस समय रामचन्द्रजी अपने माधियोंसे बिछुड़कर बहुत दूर निर्जन वनमें उसके साथ निकल गये । अन्तमें वह सिंह परेतका एक विणाल कन्दराम घुस गया और रामचन्द्रजी भी घोड़ेपर चढ़ हुए उसके साथ कन्दराम घुस गये । इधर रामके लक्ष्मणादि भ्राता, उनके दूत तथा शिकार खेलानेवाले बहेलिये धवराकर रामको इधर-उधर खोजने लगे ॥ उसी समय रामने सिंहको एक विकराल बाणसे मारा ॥ २२-२६ ॥ तब वह एक दिव्य पुरुषके रूपमें परिणत हो और उनको प्रणाम करके कहने लगा—हे राम ! मैं पहल विद्याधर था । मैंने एक बार एक पतिव्रता मुनिपत्नीके साथ हठान् भोग किया । जिससे कुपित होकर उसने मुझ शपथ दे दिया कि तूने सिंहके समान वरवध मेरी आबरू उतारी है, इसलिए मेरी बाणसे तू अभी सिंह हो जा । इस प्रकार शपथ या जानेपर मैंने उससे विनती की तो उसने कहा कि आजसे बहुत दिनों बाद जब रामचन्द्रजी तुझे अपने बाणसे मारेंगे तब तू शरस्पर्श होने ही शपथसे मुक्त हो जायगा ॥ सो बहुत समय बाद आपकी दयामें मैं आज उस शपथसे मुक्त हो गया । इस तरह अपना पूर्ववृत्तांत सुनानेके बाद उसने रामसे आज्ञा माँगी और अपने लोकको चला गया ॥ रामचन्द्रजी अपने घोड़े-पर बैठे ही बैठे थोड़ी देर वहीं ठहरे तो उन्होंने क्या देखा कि उस गुहाद्वारपर पाजनों लम्बो-चौड़ी एक शिला लगी हुई है । इतनी बड़ी शिला देखकर राम विस्मित हुए और अपने घनूषकाँ कीरसे उसे दूर हटा दिया । तब वे उसके भीतर घुसे । कुछ दूर अगे जानेपर उन्हें कुछ प्रकाश सा दिखायी पड़ा । और आगे बढ़े तो उन्होंने क्या देखा कि चार स्त्रियाँ तपस्या करती हुई बैठी हैं । उनके शरीरमें हड्डों और चमड़ेके सिवाय मांसका नाम भी नहीं था । उनका स्वास चल रहा था । इससे उनको यह ज्ञान हुआ कि वे स्त्रियाँ अभी मरीं नहीं, प्रत्युत जीवित हैं । ऐसी अवस्थामें रामने अपना चार शरीर बनाया और सबके सम्मुख जाकर कहने लगे—‘हे नारियो ! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह घर माँग लो । मैं राम तुम लोगोंको तपस्या-से प्रसन्न हूँ ।’ इसके अनन्तर रामने अपने हाथों उनका शरीरका स्पर्श किया । जिससे उनकी सूखी देहमें रक्त-मांसादिका संचार हो गया ॥ २७-३८ ॥ शरीर भर जानेपर उन सबोंने अपने नेत्रोंसे रामको देखा । उस समय प्रत्येक स्त्रीके सामनेवाले राम कीटि सूर्यकी दीप्तिके समान देदीप्यमान

नार्यो विलोकयामासुः सर्वाः श्रौतृणावकावः । काव्यव्यवसायकानां व्यापराणि मिथारिणः ॥४०॥
 इयारुद्वान्नुषेपेण सर्वासां पुनः स्मिताम् । चतुर्भुजायामप्यस्य तृणा कजलोचना ॥४१॥
 अतिविस्मयमापन्नास्मदोचुस्मात् पृथक् पृथक् । केचन वचिन्मन्त्राः । केचन मन्त्रागतः ॥४२॥
 यूयं देवा दानवा वा गम्यते स्वाधुना पुनः । अस्माकं दशवर्गस्यैव तथैव नापि वा वयम् ॥४३॥
 अस्माकं दुःशरीराणि कमर्नायानि वै कथम् । जानान्यद्य महादन्त्या दुर्दृभिः सोऽस्मि वा मृतः ॥४४॥
 इति तामां वचः श्रुत्वा राघवस्त्वा वचोऽब्रवीत् । अहं चतुर्भुजश्च रामस्त्वका न मशयः ॥४५॥
 सप्तर्षीपतिः श्रीमान् सूर्यवशममुद्रयः । मृगयार्थं मपायात् केसरो निहतो वने ॥४६॥
 घनुस्कोट्या शिलां त्यक्त्वा युष्मदभिमानतः । स्वस्वस्वार्थेऽप्यत्र दूरगम्य शुभान हि ॥४७॥
 मया कृतानि युष्मार्कं वाजेता दुर्दृभिहतः । म मया निहता वाजा राघवस्यान्तकारिणा ॥४८॥
 समापिता वगन् दातु यूयं मया मयाऽद्य हि । नाग्रऽस्ति नन कार्यं हि पश्यत्ये पुरीं व्रजे ॥४९॥
 यन्पृष्टं तन्मया चोक्तं का यूयं कथयतां मम । तिमिरं दुर्दृभिः पृष्टः का वाञ्छा त्रियता वगन् ॥५०॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा दुर्दृभिर्निहनस्त्रिभानि । शिलां निष्कामत्या चापि सर्वास्तु पृथरा ययुः ॥५१॥
 उचुः सर्वास्तदा राममानन्दोऽपुल्लोचनाः । वयं ब्राह्मणपुत्रश्च चत्वारस्त्वय पादस्य ॥५२॥
 सहस्राणि नृपाणां च वेङ्ग्यानां कवकाः पुनः । समानीता चलादेव तेन दुन्दुभना प्रभो ॥५३॥
 लक्षस्त्रीभिर्विशालांश्च सर्वानकदिने त्वहम् । करामी ते मन्यमानः स्त्रीरन्तानि जहार सा ॥५४॥
 यानि यानि जहार स्त्रीरन्तानि रघुनन्दन । अस्यां द्रोण्यां स्थाप्य तानि दत्त्वा द्वारं शिला वरास ॥५५॥
 अचलां त्वद्विनान्यश्च स्त्रीः समानेनुमादरात् । पुनाश्चर मतो दत्त्वा वयमत्रैव सस्थिताः ॥५६॥

हो रहे थे और घनुष-वाण तथा तलवार लिये हुए थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वे मनुष्यका वेश धारण करके घोड़ेपर सवार होकर एक-एक स्वरूपसे उन जागोके सम्मुख खड़े थे और उन सब स्त्रियाँका भी समान स्वरूप था और एक ही तरहकी वेष्ट भूषा थी । ऐसे रामका देखकर उन स्त्रियाँको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कहने लगीं—“आप लोग कौन हैं ? घोड़ेपर सवार होकर कहाँसे आए आ रहे हैं ? आप सब देवता हैं या दानव ? आप कहाँ जायेंगे ? कृपया हम यह भी खतलाइये कि आप हमसे क्यों बात करना चाहते हैं ? हम लोगोंका यह जीर्ण-शार्ण शरीर इस प्रकार सुन्दर कैसे हो गया ? यह दुष्ट दुन्दुभी जावित है या मर गया ?” ॥ ४१-४४ ॥ इस प्रकार उनकी बातें सुनकर रामने उन सबसे कहा ‘सूर्यवशन उत्पन्न और सातों द्रोणोंका अधिपत राम नामका मैं एक राजा हूँ । इस समय अपने एक ही रूपको चार भागोंमें विभक्त करके तुम सबके सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ । मैं यहाँ जङ्गलमें शिकार करने आया था और इसी कन्दराम मैंने एक सिंहको मारा है । फिर तुम्हारे गुफा द्वारपर एक लम्बा-चौड़ा शिला देखी । उसे अपने धनुषका कारसे दूर हटाकर तुम्हारे समीप आया और अपने हाथके स्पर्शसे तुम्हारे जीर्ण शरीरको पवित्र तथा सुन्दर बना दिया है । दुन्दुभी राक्षसको बालिने मार डाला । रावणका विनाश करनेवाले भुक्त र मन उस वरुणका भी मार डाला है ॥ ४५-४८ ॥ केवल तुम्हें वरदान देनेका इच्छास मैंने तुमसे संभ्रमण किया है । अब जहाँसे आगे जानेका हमारा कोई कार्यक्रम नहीं है । इससे अपनी अयोध्या नगरका लौट जाऊँगा । तुमने हमसे जो कुछ पूछा, मैंने उसका उत्तर दे दिया । अब यह बताओ कि तुम कौन हो ? दुन्दुभीको तुमने क्या पूछा ? तुम्हारा क्या कामना है ? इच्छित वर भुक्तसे माँग लो ।” जब उन सबोंने रामके मुखसे यह सुना कि दुन्दुभी मार डाला गया और हमारे द्वारपर लगी हुई शिला भी हट गयी है तो वे बहुत प्रसन्न हुई और आनन्दसे प्रवृत्त होकर उ होन कहा—हे राम ! बहुत दिन हुए, वह दुन्दुभी राक्षस हम चार ब्रह्मणकी पुत्रियों तथा सत्सह हजार दानवों तथा वंश्योंकी कन्याओंको हर लाया था । उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं एक ही दिन एक लाख स्त्रियोंके साथ विवाह करूँगा । इसी विचारसे वह अच्छा-अच्छे, कन्याओंका अपहरण किया करता था । ४९-५४ ॥ हे रघुनन्दन ! वह जिन सुन्दरियोंको लाता था, उन्हें इसी कन्दराम डालकर दरवाजपर एक इतनी बड़ी शिला लगा दिया करता

वतन्तेऽग्रे नृपाणां च वैश्यानां बालिकाः प्रभो । वायुपर्णाशुनाः सर्वाः श्रीविष्णुर्वापितमानसाः ॥६७॥
 तत्तामां वचनं श्रुत्वा भिक्षुरूपैः पुनः प्रभुः ता उवाच स्त्रियः सोऽहं विष्णुरेव न सशयः ॥६८॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा पुनस्ता राममब्रुवन् । दर्शयस्व निजं विष्णुरूपं चेन्मत्प्रवागमि ॥६९॥
 ततस्ता दर्शयामास विष्णुरूपं निजं प्रभुः । तानि चत्वारि रूपाणि परावर्त्य रघूत्तमः ॥७०॥
 ततस्ताः पुरतो विष्णुं दृष्ट्वा नेष्टुः स्वमस्तकैः । ततो विष्णुः स ताः प्राह वः सन्देहो गतो न वा ॥७१॥
 ता ऊचुर्दर्शनात्तेऽद्य भवकेश्या गता हि नः । क्रियांस्तु तत्र सन्देहस्त्वज्ञानव्रणितः प्रभो ॥७२॥
 ततः पुनः क्षणाद्रामो रूपं ता दर्शयन्मुदा । एकमेव हि सर्वाणां मध्ये जनकजापतिः ॥७३॥
 ततो रामोऽब्रवीत्ताः स वरं वरयतामिति । ता ऊचुः कामवाणेन पीडिता राघव मुदा ॥७४॥

मयं भर्ता त्वमेवाद्य गांधर्वविधिना वने ।

अस्मामिन्स्व कुरुष्व त्र मुखं क्रीडां चिरं प्रभो ॥७५॥

ततो नय पुरीं स्वीयां नस्त्व माञ्ज्याद्विचिनय । तत्तामां वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥७६॥
 एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति न वाक्यममर्थं मृषा । ततस्ता बहूला श्रुत्वा निपेतुर्नगतीतले ॥७७॥
 पुनस्ताः प्राह रामः स शृणुष्व वचनं मम । द्वापरे कृष्णरूपेण यूयं क्रीडां भजिष्यथ ॥७८॥
 मित्रविंदा नामजिती भद्राऽन्या लक्ष्मणाह्वया एवं नामानि युष्माकं भविष्यति तदा मया ॥७९॥
 भविष्यति विशद्वाश्च सर्वाणां नात्र सशयः । तदा नानाविधान् भोगान् भजन्तु वं मया सह ॥८०॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा किञ्चित्तुष्टमनाः स्त्रियः । रामं प्रोचुः पुनर्वीक्ष्य त्वमग्रे गन्तुमर्हसि ॥८१॥
 ताभिः शनैस्ततो रामो ययौ तुरगमस्थितः । योजनोपरि ताः सर्वाः सहस्रं पीडिताः शुभाः ॥८२॥

या कि जिस आपक सिवाय किसी अन्य व्यक्ति में हटानका सामर्थ्य नहीं था वह हम लोगोंकी इस कन्दराम बालकर कहीं चला गया है । तबसे हम ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्याओंकी कन्याएं यहां पड़ी हुई हैं । वायु तथा वृक्षाका पत्तियां हमारा भोजन है और श्रीविष्णुभगवान्के चरणाम हमने अपने मन लगा दिये हैं । इस प्रकार उनको बात सुनकर सबके समक्ष एक-एक स्वरूपमें खड़े श्रीरामचन्द्रजीन कहा कि जिन विष्णुमें तुमने अपना मन लगा रखा है, वह मैं ही हूं । रामका बात सुनकर उन स्त्रियोंन कहा कि यदि तुम यह सब कह रहे हो तो अपना विष्णुरूप हम दिवाओ । इसक अनन्तर भगवान्ने अपने उन चारों स्वरूपोंको अपनेमें समेट लिया और विष्णुरूपमें सबका दर्शन दिया । जब उन्होंने विष्णुभगवान्को अपने सम्मुख देखा तो मस्तक झुकाकर प्रणाम किया । विष्णुभगवान्ने उनसे पूछा कि अब तो तुम्हारा सन्देह निवृत्त हुआ ? उन्होंने कहा कि आपक इन पुनान दर्शनसे मेरा सब क्लेश दूर हो गया तो फिर भ्रमज्ञानसे जाग्रमान सम्बन्धके विषयमें क्या कहना है ॥ ५५-६२ ॥ क्षणभरके बाद वे फिर रामके स्वरूपमें उनसे सम्मुख खड़े दिखाई दिये और उनसे बाल कि तुम लोगोंकी जा इच्छा ही, वह वर मांगो । तब कामवाणसे पीडित होकर उन स्त्रियोंन कहा कि यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो हम लोगोंके साथ गांधर्व विवाह करके हमारे पति बनिये और अधिक समस्तक अनन्तपूर्वक हम कन्दराम हम लोगोंके साथ विहार कीजिए । उनको यह प्रार्थना सुनकर रामने कहा कि ऐसा तो नहीं हो सकता । क्योंकि मैं एकपत्नीव्रतवादी हूं । मैं कभी सूठ नहीं बाँटता, तुमसे सब कह रहा हूं वह बात नुनत हो व स्त्रियां मूर्छित होकर पृथीपट्ट गिर पड़ीं ॥ ६३-६७ ॥ ऐसी दशामें राम उनका समझान हुए कहने लगे—इस प्रकार अघोर न होकर मेरी बात सुनो । अभी तो नहीं द्वापरे युगमें कृष्णरूपसे मैं तुम लोगोंके साथ विहार करूँगा । मित्रविंदा, नामजिती, भद्रा तथा लक्ष्मणा इस प्रकार तुम लोगोंका नाम पड़गा और उस समय तुम सबका विवाह मेरे साथ होगा । इसमें कोई सन्देह नहीं है । उस समय तुम सब मेरे साथ नाना प्रकारके सुख भोगोगी । रामकी बातोंको सुनकर उनका मन कुछ सन्तुष्ट हुआ और कहा कि अब आप चाहे तो जा सकते हैं । राम उन चारों कन्याओंके साथ धीरे धीरे जागे बढ़े । एक योजन आगे जाकर गण्डका नदीके किनारे एक झाड़में

ददर्श गण्डकीतीरे वृक्षपण्डे रघूदहः । निर्मलितदृशः शुष्कास्तपसा दग्धयौवनाः ॥७३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्धे
द्विजकन्याचतुष्टयवरदानं नामकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

(सोलह हजार ललनाओं तथा कालिन्दी आदि चार स्त्रियोंको रामका वरदान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः शनैः सर्वाः स्पृष्ट्वा निजकरेण ताः । कृत्वा तारुण्यपूरोषपूरिताः प्राह सादरम् ॥ १ ॥
पूर्ववत्सकलं वृत्तं सर्वाः मश्राव्य विस्तरान् । वरं वरयतां शीघ्रमिन्युकृत्वा च रघूत्तमः ॥ २ ॥
इत तं दुन्दुभिं श्रुत्वा हर्षोन्फुल्लाननाः स्त्रियः । पूर्वार्द्धविष्णुरूपाणि महस्त्राणि हि षोडश ॥ ३ ॥
सन्दर्शितानि रामेण तार्क्षति च स्थितानि हि । रामरूपाणि ता दृष्ट्वा ज्ञान्वा विष्णुं परात्परम् ॥ ४ ॥
तं वरान्वरयामासुस्त्वन्नो भर्ता भव प्रभो । ततो राममुखान्कृत्वा चैकपत्नीव्रतस्थितम् ॥ ५ ॥
परस्परं ताः मम्मन्व्य प्रोचुः सर्वा मृगीदृशः । मया वृतम्बुधः चायं न्वया वृतस्तथा मया ॥ ६ ॥
एवं तासु च सर्वासु वदन्तीषु रघूत्तमः । श्रुत्वा तद्वचनं शिष्य तदा चित्तेऽविचारयत् ॥ ७ ॥
इमा वदन्ति किं सर्वा मां श्रुत्वाऽपि व्रतस्थितम् । बलात्कारेण मां भोक्तुं मन्त्रयन्ति परस्परम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मरुद्रमधवादयः सुरा ये च मिद्धमुनयः पुरातनाः ।

तेऽपि योगबलिनो विमोहिता लीलया तदबलाभिरुद्धतम् ॥ ९ ॥

योषिता नयननीक्षणसायकैर्भूलतामुदृष्ट्वापनिर्गतेः ।

घन्विना मकरकेतुना हतः कस्य नो पतितो मनोमृगः ॥१०॥

तावदेव दृष्टचित्तता नृणां तावदेव गणना कुलस्य च ।

तावदेव तपसः प्रगल्भता तावदेव नियमव्रतादयः ॥११॥

उम सोलह हजार स्त्रियोंको देखा । वे सब आँखें मूँढ़े थीं, तपस्यासे उनका शरीर झूल गया था और यौवन नष्ट हो चला था ॥ ६८-७३ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

श्रीरामदास धीने—इसके अनन्तर रामने अपन हाथके स्पर्शसे उन सबको यौवनपरिपूर्ण कर दिया तो वे भी पहलेवाली चारों स्त्रियोंके समान अपना वृत्तान्त बता गयी । रामने उनसे कहा कि तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वरदान मुझसे माँग लो । उन्होने भी जब दुन्दुभीके मरनेका समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुई । इसक अनन्तर रामने उन्हें भी अपना विष्णुरूप दिखा तथा सोलह हजार रामरूप धरकर प्रत्येक स्त्रीको अलग-अलग दर्शन दिया । स्त्रियोने इस प्रकार रामरूपको देखकर उन्हें सर्वश्रेष्ठ विष्णुभगवान् जाना ॥ १-४ ॥ उन्होने भी पहलेवालियोंकी तरह रामसे प्रार्थना की कि आप मेरे पति बनें । जब उनको रामने अपनेको एक-पत्नीवती बतलाया तो वे आपसमें सलाह करके कहने लगीं कि जैसे मैंने इनको पसन्द किया है, उसी तरह तुमने भी तो किया है । सब आओ, हम सब मिलकर कोई ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे हमारी कामना पूर्ण हो जाय । इस प्रकार जब रामने उनकी सलाह सुनी तो अपने हृदयमें विचार करने लगे कि एकपत्नीव्रतमें स्थित देखकर भी ये स्त्रियाँ बरबस मेरे साथ संभोग करना चाहती हैं ॥ ५-८ ॥ ब्रह्मा रुद्र, इन्द्रादिक देवता एवं जितने पुरातन सिद्ध मुनि हो गये हैं, वे सब योगी होकर भी कामिनियोंकी अद्भुत लीलासे मुग्ध हो गये थे ॥ ९ ॥ स्त्रियोंके नेत्ररूपी सायकको अनुषांटी कामदेव जिसके ऊपर छोड़ता है तो किसका मनरूपी

यावदेव चानेतोन्मदं सर्वं माद्यति द्रुतमदेन पूरुषः ।
 मोहयतु मदयन्तु रागिण योऽपि स्वचरितैर्मनोहरैः ॥१२॥
 मोहयन्ति मदयन्ति मामिमा धर्मरक्षणपरं हि कर्तुर्गुणैः ।
 मामरक्तमलमूत्रपूग्निं योऽपि वधुपि निर्गुणेऽशुचौ ॥१३॥
 कामिनस्तु परिकल्प्य चारुतामरभन्ति सुविमूढचेतसः ।
 दारुणः परिकीर्तिताऽङ्गनापन्तिधिविमलबुद्धिर्वातिभिः ॥१४॥
 यावदेव न मभीषमाणतास्तावदेव हि ब्रजाम्यदृश्यताम् ।
 तर्हि मे व्रतमिदं सुनिर्मलं नान्यथा कथमहं करोम्यहम् ॥१५॥

अथवा किं करिष्यन्ति मामेकदामिताप्रियम् । इति निश्चिन्य श्रीरामस्तत्र तूष्णीं स्थितोऽभवत् ॥१६॥
 एतस्मिन्नन्तरे मर्यास्तास्त शत्रुर्जपोत्तमम् । वृत्तम्वं नूनपस्माभिर्नात्र कार्या विचाराणा ॥१७॥
 एकपत्नीव्रतं किं ते पार्थिवस्य शूतम् । अस्ति चेन्मृगता प्रामं न्यफलं भोक्तुमर्हसि ॥१८॥
 इत्युक्त्वा तास्तदा मर्या गन्वा तन्मनिधिं जवान् । सव्यापमन्वयन्धेन भुजपाशान् प्रचक्रिरे ॥१९॥
 तद्दृष्ट्वा राघवः प्राह शृणुध्वं वचनं मम । पृष्ठाभिरुन्ने भद्रपनुकूलं प्रियं वचः ॥२०॥
 घतिनस्तन्न योऽयं मे मा स्वेदं गन्तुमर्हथ । आरुण्यं रामशक्त्यानि तमूचुस्माः समन्ततः ॥२१॥
 मकामध्वनिनोन्कण्डाः कोकिला इव माधवे ।

योऽशमद्वन्द्वस्थितः कुः

धर्मद्विर्ध्वजः कामः कामाद्भर्मफलोदयः ॥२२॥

इत्येव निधयं शान्ते वणेशन्ति विपश्चितः । स कामो व्रतवाहृत्यान्धुरस्ते ममपस्थितः ॥२३॥
 सेव्यतां विविधभोगैः स्वर्गभूषणैश्च ततः । श्रुत्वा तद्वचनं तामां रामपत्नाः प्राह सस्मितः ॥२४॥

मृग उस वाणसे घायल नहीं हो जाता ॥ १० ॥ मनुष्यका चित्त तभी तब इह रहता है, तभी तक कुलकी मर्यादा रहती है, तभी तब तपस्यामें मन लगता है, तभी तक नियम व्रत आदि होते हैं, जबतक स्त्रियोंके चञ्चल कटाक्षसे पुरुषका मन मरवाला नहीं हो जाता और जबतक स्त्रियों उनपर माहिनी डालकर अपने मनोहारी हावभावोंसे पुरुष नहीं बना देती ॥ ११ ॥ १२ ॥ एतन् अपन, धर्मरक्षणमें तत्पर जानकर भी अपन गणोंसे मुग्ध करता खाहता है । मास, रक्त और मल मूत्रसे परिपूर्ण गिरगोका अपवित्र देहपर कानी पुरुष सोन्दर्यको कल्पना करके आनन्द लूटता है । मेरी समझमें तो बेलाग पूरे बाबल है । क्योंकि विमल बुद्धिवाले लामोका कहना तो यह है कि भ्रमोका मग्न बड़ा ही दारुण पाण्यामकावा होता है । अच्छा, जबतक ये मेरे समीप नहीं आ जातीं । इसी वचन पर चले हुं तो अच्छा हो, मेरा व्रत निर्मल रह जाय । इसके सिवाय और कोई उपाय भी तो नहीं देखता ॥ १३-१४ ॥ अच्छा, यह भी देख लूँ कि ये मेरे साथ क्या करती हैं । यह निश्चय करके रामचन्द्रजी चूँचाप बन्द कर ॥ १५ ॥ उग्रा मर्या उन सब स्त्रियोंसे एक स्वरसे कहा कि हम लोगोंने आपको अपना पति मान लिया है । अब आप अपने प्रणारका वितार मत करिये ॥ १७ ॥ हे राम क्या आपने एक व्रत व्रत पाठना किया है ? यह यदि करता है तो अब उससे प्राप्त फलका उपयोग कीजिए ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर सब उस वचन पढ़ी और दक्षिणा-बायी दोनों भजाओंसे रामको अपने भुजपाशमें भर लकड़ी चढ़ा करत लगी ॥ १९ ॥ ऐसी अवस्थामें आपने उनसे कहा कि आप सब ओ कुछ कह रही है, वह ठीक ही है । किन्तु हमारे जैन ब्रह्मसूत्र, वेद आदि वह उचित नहीं है । इस लिए तुम सब किसी प्रकारका खुद न करके ऐसा दुष्टधर्म अंग हो जाओ । इन तरह रामकी वाणी सुनकर सारी बारासे वे सब कहने लगीं । उस समय ब्राह्मणों उनसे कण्ठकी ध्वनि बसन्त शृंगुके कोकलके समान मधुर सुनाई देती था ॥ २० ॥ २१ ॥ सीलह हुनार स्त्रियाँ वाली—धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है अर्थसे काम प्राप्त होता है और कामसे धर्मफल मिलता है । विद्वान् लोग शास्त्रोका यही निर्णय बतलाते हैं । यही काम आपके

श्रीरामदास उवाच

हरान् दास्यापि युष्माकं नान्यं श्रोष्यामि किञ्चन । इत्युक्ताः पुनरुचुस्ताः किं त्वं वदसि राघव ॥२५॥

ता ऊचुः

दिष्यौषधं ब्रह्मभियो रमायनं मिद्धिनिधिः सायुकुला वरांगनाः ।

मन्त्रमन्त्रा इत्यजले च धर्मतो नेमे निषेध्याः सुधिया ममागताः ॥२६॥

कार्यं तु देवाद्यदि मिद्धिममृतं तस्मिन्नुपेक्षां न च याति नीतिगाः ।

यस्मादुपेक्षा न पुनः फलप्रदा तस्मान्न दीर्घीकृण प्रशस्यते ॥२७॥

सांज्ञातुरागाः कुलजन्मनिषेधाः स्नेहार्द्रचित्ताः सुमिगः स्वयम्बराः ।

कन्याः सुरुपाः परिपूर्णयौवना धन्या लभन्तेऽत्र वरास्तु नेतरे ॥२८॥

क वरं भूरिमौदर्यः कर्षकपत्नीव्रतं तव । तस्मादस्मानिदानीं त्वं मा निराकर्तुमर्हसि ॥२९॥

माधवेण विवाहेन नान्यथा नोऽस्तु जीवितम् । श्रुत्वा वाक्यं तु तत्तामो राघवः प्राह ताः पुनः ॥३०॥

मो मृगाक्ष्यः कथं त्थाजपो धर्मो धर्मविचक्षणैः । धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैतच्चतुष्टयम् ॥३१॥

वयोक्तं सफलं हेयं विपरीतं तु निष्फलम् । तस्मान्मयोक्तं यन् पूर्वमेकपत्नीव्रतं निजम् ॥३२॥

आप्सन् जन्मनि तन्नाहं त्यक्तुमिच्छामि भोः स्त्रियः ।

एवं श्रुत्वाऽऽश्रयं तस्य ताः समीक्ष्य परस्परम् ॥३३॥

करात्करान् प्रमुखास्तु जगद्गुरोर्नि तदाऽवलाः । अत्रोन्मत्तं वि रामस्य भुजौ तु जगद्गुरुताः ॥३४॥

एव तामिदं दृष्टवानमन्मानं धीक्ष्य राघवः । अन्तर्धानमगागश्च तामो मध्ये क्षणात् प्रहः ॥३५॥

किं कुर्यान्नि विमाः सर्वा अन्तर्धानं गते मयि । एवं तामां कीतुकं हि शुभरूपो ददर्श सः ॥३६॥

इतकी प्रवृत्ततासे स्वयं प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ २३ ॥ विविध प्रकारके भोगोका उपभोग करे तो इससे लब्धि नहीं है कि वह मरत्यलोक ही आपके लिये स्वर्ग बन जायगा । उनको बात सुनकर बकाये हुए रामचन्द्रजी कहने लगे कि सिवाय वर मांगनेके मैं तुम्हारा एक बात भी नहीं सुनूँगा । रामके ऐसा कहनेपर उन स्त्रियोंने कहा— हे राघव । आप कह क्या रह है ? ॥ २४ ॥ २५ ॥ दिव्य औषधि, ब्रह्माका जाननेसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें, राजमन्त्र, सिद्धिके सन्धाने, निधिर्षा, अच्छी कलापे, अच्छा स्वा और अन्न-जल पाकर सञ्जनजन कभी नहीं छोड़ते ॥ २६ ॥ जो कोई काम देवात् सिद्ध हो सकता है ता नीतिम जन उसकी कभी उपेक्षा नहीं करते । फिर उसकी उपेक्षा करनेसे कोई लाभ नहीं हो ता उसको उपेक्षा हो बुरी की जाय । धर्मका आदम्बर बढ़ानेका क्या आवश्यकता ? ॥ २७ ॥ गाढ़े प्रेमयुक्त, अच्छे कुटुम्बे उत्पन्न, जिनका चित्त रहस्ये आश्रित हो गया हो, जो अच्छे-बुरी बातें करती हो, जो वरके पास स्वयं आ पहुँची हो, जिनका सुन्दर स्वरूप हो और जिनका जीवन भी पूरी तरह उपलब्ध जाय हो । ऐसी स्त्रियोंको जो लोग पान हैं, वे धन्य हैं । साधारण श्रेणीके लोग ऐसी स्त्रियोंको नहीं चाहते ॥ २८ ॥ कहाँ हम जेमी सुन्दरी स्त्रियाँ और कहाँ आरका एकपत्नीव्रत । इस कारण हम तिर पी कम्पती है कि आप हमारा निगदर न कीजिए ॥ २९ ॥ बिना आपके साथ सम्बन्ध विवाह किसे हम लोग नहीं जो सकते । उनको बात सुनकर रामने कहा । श्रीराम बाने—हे मृगके समान नेत्रवाली स्त्रियाँ ! तुम-कंधे यह कह रही हो कि कामको प्राप्त देखकर धर्मका परित्याग कर दो । धर्म, धर्म, काम और मोक्ष ये चार पदार्थ हैं । यदि एकके बाद एकका अच्छी तरह साधन किया जाता है तो वह सफल होता है । अन्यथा निष्फल हो जाता है अथवा विपरीत फल सामने आता है । अतः जो मैंने अपने एकपत्नीव्रतके कारण बतलाया है, इसका परित्याग नहीं कर सकता । इस प्रकार रामका आशय जानकर वे आपसमें एक दूसरेका मुँह दिखावे लयीं ॥ ३०—३३ ॥ तदनन्तर हाथ छोड़कर स्त्रियोंने रामका वर पकड़ लिया, किन्तु कुछ स्त्रियोंने हाथ भी पकड़े रखा ॥ ३४ ॥ इस तरह उन लोगोंसे अपनेको घिरा हुआ देखकर राम कहाँ ही अस्तचित हो पड़े ।

अदृष्ट्वा राघवं सर्वास्ताः क्षणाग्रमदोत्तमाः । दृष्ट्वा तदद्भुतं कर्म विस्मयाविष्टमानसाः ॥३७॥
 वित्रस्तहृदयाः सर्वाः कुलं गच्छन् इव कातराः । संभ्रांतनयना दीना इत्यच्युताः परस्परम् ॥३८॥
 व्यामं च हृदयं तामां तदैव विरहाग्निना । ज्वलज्ज्वालानलेनैव सुस्निग्धं सार्द्रकाननम् ॥३९॥
 स्यजेद्वज्रजालिकां मायां कांतं दर्शय सन्धरम् । स्वान्मानं नर्मणा युक्तं प्राग्भासे भक्षिकाऽपतत् ॥४०॥

स्वयं कुरु

हा कष्टं दर्शितः कस्माद्वात्रा किं रचितं त्विदम् ।
 ज्ञानं महत्तमं तार्य दानुं नन्व समागतः ॥४१॥
 कच्चित्तं निर्दयं धैतः कच्चिदस्मान् परीक्षसि ।
 कच्चिद्दृष्टोऽमि हे कांत कच्चिन्मुष्णासि नो मनः ॥४२॥
 कच्चिन्नो ग्रन्थोऽस्मासु कच्चिदस्मासु नो रतिः ।
 कच्चिद्विनोदयसि नः कच्चिन्मायाविशारदः ॥४३॥

कच्चिच्चित्ते प्रवेष्टुं त्वं वेत्सि विज्ञानलाघवम् । कच्चिद्विनोदयसि नन्वस्मासु प्रकुप्यसि ॥४४॥
 कच्चिद्दुःखं न जानामि परेषां विप्रलम्भजम् । त्वदर्शनं विना नूनं हृदयेऽथ रमाप्रतम् ॥४५॥
 न जीवामोऽथ जीवामः पुनस्तद्दर्शनाशया । अस्मांस्तत्र नय त्वं हि यत्र नाथ गतो ह्यसि ॥४६॥
 सर्वथा दर्शनं देहि कारुण्यं मज सर्वथा । पर्यन्तं न हि पश्यति कस्यचित्स्मज्जना जनाः ॥४७॥

इत्थं विलप्य ताः सर्वाः प्रतीक्ष्य च बहुश्रुणम् ।

रामं द्रष्टुं वने सर्वा बभ्रमुग्धा इतस्ततः ॥४८॥

वृक्षान् वनेचरान् रामो दृष्टोऽस्माकं पतिर्न वा ।

एवं सर्वास्तु पप्रच्छ रामविश्लेषमज्वराः ॥४९॥

रे रे पिप्पल वृक्षाणामधिपस्त्वं ब्रवीहि नः । रामो दृष्टोऽथ वा नैव वयं त्वां शरणं गताः ॥५०॥

फिर भी ये क्या करती हैं, यह देखनेके लिए राम गुप्तस्वयं वहाँ लड़-लड़के देख रहे थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ क्षणाग्रमें रामको अलक्षित देखकर वे बहुत चकरायीं । फिर अवाकुल होकर हरिजियेकी नाई चञ्चल नेत्रोंसे इधर-उधर देखती हुई आपसमें कहन लगीं । ३७ ॥ ३८ ॥ उस समय उसका हृदय विरहाग्निमें पूर्ण हो गया था । उनकी उस विरहाग्निकी ज्वालासे उस अद्भुतमें भी थोड़ी देरके लिए कृष्णाकी घारा बह्न लगी ॥ ३९ ॥ वे बोली—हे कांत इस ऐन्द्रजाल (उगहारी) मायाका परित्याग करके हमें या धर्म दर्शन दीजिए । हमने आपसे हँसी की और पहले ही घासमें मक्खी गिरनेके समान इतना बड़ा विघ्न आकर उपस्थित हो गया ॥ ४० ॥ किसने दुःखकी बात है । हे विधाता ! तुम्हारी क्या इच्छा है ? हे चिन्तार । जान पड़ता है कि तुम हम सबको सन्ताप देनेके लिए ही यहाँ आये थे ॥ ४१ ॥ तुम्हारा हृदय हा निष्ठुर है या हम लोगोंकी परीक्षा ले रहे हो । हमसे नाराज हो या हमारा चित्त चुरा रहे हो ? ॥ ४२ ॥ क्या हमारे ऊपर तुम्हारा विश्वास नहीं है ? क्या हमसे प्रेम नहीं करते हो ? हम लोगोंके साथ छठोली तो नहीं कर रहे हो ? क्योंकि तुम मायाजाल फँसानेमें भी बड़े निपुण हो ॥ ४३ ॥ तुम किसीके चित्तमें घुसनेका कोई वैज्ञानिक एवं सूक्ष्म साधन जानते हो । बिना किसी अपराधके हमसे इतने क्यों क्रुद्ध गये हो ? ॥ ४४ ॥ दूसरेको धोखा देनेमें जो दुःख होता है, क्या तुम उसे नहीं जानते ? बिना तुम्हारा दर्शन पाये हम लोग नहीं जा सकेंगी और यदि जीयगी भी तो तुम्हारे दर्शनोंकी ही इच्छासे, अन्यथा नहीं । हे नाथ ! हमें भी वहाँ ही ले चलिए, जहाँ आप गये हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ दया करके हमें दर्शन दीजिए । सज्जनजन कभी किसीका दृष्ट नहीं देख सकते ॥ ४७ ॥ इस तरह बहुत देरतक विलाप करके उन्होंने उनके आनेकी प्रतीक्षा की । तब भी जब वे नहीं आये, तब वे उनको ढूँढनेके लिए वनमें इधर-उधर घूमने लगीं ॥ ४८ ॥ रास्तेके प्रत्येक वृक्ष और वनेमें पशुओंसे वे रामविरहिणिया यह

भो भो तुलसि नो नाथस्त्वयारामो निरीक्षितः । वद शाश्वत्सुखं त्वं नो वने रामो निरीक्षितः ॥५१॥

त्वं कोकिल सदा शब्दान् करोषि परमान् शुभान् ।

यदाय जानकीकातस्त्वयाऽरण्ये निरीक्षितः ॥५२॥

भो कदम्ब-यदस्व त्वं तव पृच्छामहे वयम् । दीनानाथो रमानाथः सीतानाथस्त्वयेक्षितः ॥५३॥

पिक त्वमुत्तरं देहि सदा शब्दान् करोषि हि । पतिर्नः श्रीपतिः सीतापतिर्दृष्टोऽथवा न वा ॥५४॥

भो वारण सदोन्मत्तं च वारणसमः प्रभुः ।

सप्तद्वीपपतिः श्रीमान् रामोऽरण्ये निरीक्षितः ॥५५॥

शुक नः कथयाद्य त्वं प्रसूदृष्टोऽथ वा न वा ।

वद पुण्ये सारस्वच्छ्रे किं तूष्णीं संस्थिताऽयुना ॥५६॥

नः प्रभुः सप्तद्वीपानां प्रभुरत्र निरीक्षितः ।

भो वायो कथयाद्य त्वं सीतारामो निरीक्षितः ॥५७॥

श्रीरामदास उवाच

एवं ता रामविश्लेषसम्भावाः शुशुचुर्वने । ततस्त्वा गङ्गीतीरं गत्वा गीतं प्रचक्रिरे ॥५८॥

त्रिषु ऊचुः

किं प्रभो त्वया जानकी यदा तेन रक्षमाऽरण्यमग्नयतः ।

स्वस्थलं हृता गीतमोतटात्तत्कृते त्वया नैव शोचितम् ॥५९॥ १॥

त्वद्विषोमतस्तमानसाः सर्वतो वने शोकमागताः ।

एकदा प्रभो देहि दर्शनं देहि नो वरान् माऽस्तु वै रतिः ॥६०॥ २॥

नो बांछामो राघव त्वचो रतिमयं यद्वदत भूमुरजाम्भो धरदानम् ।

तद्वचस्त्व पूरय कामान्वरदानैर्वाञ्छामस्ते सेवनमग्रये जननेऽपि ॥६१॥ ३॥

पूछनी जाती थी कि तुमने हमारे पति रामको तो इधर कहा नहीं देखा है ? ॥ ५९ ॥ व कहती थी कि हे नृसिंहे
राजा पिप्पलदेव ! हमें बताओ कि तुमने रामको तो नहीं देखा है ? हम आपका गणनम है ॥ ५७ ॥ हे तुलसी
देवी ! तुमने तो रामको नहीं देखा है ? हे वानरगण ! इस वनमें तुमने कहा रामका तो नहीं देखा है ?
॥ ५१ ॥ हे काकिल ! तू बड़ा मोठा वाणा बोलता है, अब उसी वाणासे हम यह बता द कि तूने वनमें
कहा रामचन्द्रको तो नहीं देखा है ? ॥ ५२ ॥ हे कदम्ब ! तुझमें हम सब स्त्रियों यही पूछना चाहती
है कि तूने सीतापति रामको तो कहाँ नहीं देखा ? ॥ ५३ ॥ अरे पिक ! तू सदा पीपल-याकहा' बोलता
रहता है । अब हमें यह बता कि तूने कही जानकीवल्लभ रामको देखा है ? देखा हो तो बतला दे ॥ ५४ ॥
हे मतभाई गजराज ! मनुष्योम हाथके समान श्रेष्ठ रामचन्द्रजीको तो तूने नहीं देखा है ? ॥ ५५ ॥ हे शुक !
तू ही बता दे कि इस वनमें कही रामको देखा है ? हे पवित्र नदी ! तू क्या चुप है ? सप्तद्वीपक अकाश्वर
और हम लोगोंके प्रभु रामचन्द्रजीको तो तूने नहीं देखा है ? यदि देखा हा तो बता दे । हे वायो ! कहो,
तुमने इस वनमें कही सीतापति रामका देखा है ? ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—इस प्रकार रामके
विषयसे पगली सी होकर ये स्त्रियाँ विलाप करती हुई चलती चली गङ्गा नदीके किनारे जाकर इस
तरह प्रार्थनाभरे गायन गाने लगी— ॥ ५८ ॥ हे प्रभो ! जब राघव वनमें सीताका हरण करके अपनी
रामपानी लम्बूको ले गया था, तब क्या उनके लिए आपस कोई भाव नहीं किया था ? ॥ ५९ ॥ १ ॥ हे नाथ !
आपके विषयसे हमारा हृदय जला जा रहा है । शोकने यशस्व हाकर हमें नय इस वनमें आ पहुँची है ।
हे प्रभो ! हमें एक बार अपना दर्शन दे दे और कुछ धरदान दे दे । यदि हममें प्रेम नहीं
करना चाहते तो न करिए ॥ ६० ॥ २ ॥ हे राघव ! वचन हमें नय कहें । हमें प्रेम नय कहें । अब
उसकी इच्छा भी नहीं रह गयी । जिस प्रकार अपने प्रभु के चरणों में हाथ रखकर प्रार्थना करता था, उसी

अस्माभिर्यत्तच्चलभानादपराद्धं तन्मयं त्वमा स्मर पूर्वं कुरुष्वानः ।
 नः प्राणास्ते दर्शनहेतोस्तनुमये निष्ठानि त्वां पदपङ्क्तयान्मा कियतेऽद्य ॥६२॥४॥
 भो भो राघव मा कष्ट त्वं क्रोधं मा यत्र दासीष्यद्य ।
 पर्यंत न हि पश्यतीन्ध बांजामो न हि त्वत्तः कामम् ॥६३॥५॥
 देहि त्वं निजदर्शनलाभं जन्माग्रयेऽप्य नो वरदानम् ।
 पादि त्वं श्रृणु ह्युपयानाः सर्वास्तान्य नः प्रणमामः ॥६४॥६॥
 राम त्वं किं निर्दयहृदयस्त्वमि नः किं भायान्यद्य स्त्रीजनकरुणा हृदये ते ।
 इत्थं क्रोध त्वत्पदयुगले पतितासु कर्तुं विष्णो नाहंमि वरदो मय नोऽद्य ॥६५॥७॥
 बाले दोनं स्त्रीजनविमले तनये स्वे नो कुर्वन्तीन्ध बहुविधला मरिमंतः ।
 क्रूर क्रोध त्वं त्यज वरदो भव नोऽद्य वारं वारं करकमलैस्त्वा प्रणमामः ॥६६॥८॥
 हे माय राघव रमेश्वर रावणारे श्रीनागने रिपुनिवृद्धन कञ्जनेत्र ।
 त्वं देहि गम निजदर्शनमद्य विष्णो दुःस्वार्णवात्यस्तदं नय कामिनीर्नः ॥६७॥९॥
 न्वत्पादपद्मवत्सेवनमयेयामो जन्मान्तरे कुरु दयां करुणाममुद्र ।
 नोचेत्तवाद्य चिरहाबिजजायितानि न्यस्याम एव निदयं महिमाद्य नयाम् ॥६८॥१०॥

श्रीगणदास उवाच

नारीर्मान राघवश्चापि श्रुत्वा प्रत्यक्षोऽभून्कामिनीनामवाग्रं ।
 दृष्ट्वा राम ताः स्त्रियश्चानितुष्टाः प्रोक्तुल्लास्यास्त प्रणेषुः शिरोभिः ॥६९॥११॥
 नारीर्मान मानवश्चापि श्रुत्वा सर्वान् कामान्प्राप्तुयान्निश्चयेन ।
 तस्मादेतन्संवा कीर्तनार्थं श्लोकार्कीय प्रापट उन्दिचित्रम् ॥७०॥१२॥

तच्छ्रु वरदान देकर हमारे भो कामना पूर्ण करे । हम किसी अगल जन्ममें ही आपकी सेवा करना चाहती हैं ॥६१॥३॥ हमने करुणावश अथवा चंचलतासे कोई अपराध किया हा तो उस आप भूल जायें । मेरे प्राण आपके दर्शनार्थ ध्याकुल हैं । इस समय हम आपके दर्शन कर हा भाख मांग रहा हैं । ॥६२॥४॥ हे राघव ! आप माराज न हो और दासियोंपर क्रोध न दिखल य । हम सब आपसे कामचासनाका पूति नहीं चाहती । ॥६३॥५॥ इस समय आप हम अपना दर्शन और दूसरे जन्मके लिये वरदान दें । हम सब आपको शरणमें हैं । आप हमारी रक्षा करके हमारा निस्तार करिए । हम आपका प्रणाम करता हैं ॥६४॥६॥ हे राम ! क्या बात अपने निरंयी हैं कि जो हम स्त्रियोंको हम प्रकार दुःखा देखकर भी आपके हवयमें दया नहीं जाती ? हे विष्णो ! आपके पंरोमें यही हुई हम अबदाआपसे आपका हम प्रकार काव नहीं करना चाहिए । हमपर दया करके हमें वरदान दीजिए । ॥६५॥७॥ बुद्धिमान् लोग बच्चोंपर, गरीब स्त्रियोंपर तथा अपनी सन्तानपर इस प्रकार कोप नहीं किया करते । इस कारण अपन क्रूर कायका प्रत्याहार कीजिए । हम सब आप जोड़कर प्रणाम करता हैं हम वरदान दीजिए । ॥६६॥८॥ हे माय ! हे राघव ! हे रमेश्वर ! हे रावणारे ! हे श्रीनागने ! हे रिपुनिवृद्धन ! हे कञ्जनेत्र ! हे विष्णो ! हे राम ! अवता दर्शन देकर आप हम कामिनीजोंको दुःस्वार्णवासे पर कीजिए ॥६७॥९॥ हे करुणाके समुद्र ! अब दया कीजिए । हम दूसरे जन्ममें आपका सेवा करनेकी इच्छा हैं । हम आपसे यही भिक्षा मांगता हैं । यदि ऐसा नहीं करेगे तो आपके विरहदुःखसे दुःखित हम सब स्त्रियाँ इसी गण्डकी नदीमें कूदकर अपन प्राण त्याग देगी । ॥६८॥१०॥ रामदासने कहा—इस प्रकार वग कामिनीयोंका विलाप सुनकर रामचन्द्रजा उनके सामने प्रकट हु गये । रामको प्रत्यक्ष देखकर ये स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न हुईं और विकसित बदन हाकर बार-बार प्रणाम करने लगी । ॥६९॥११॥ प्रत्येक मनुष्य इस नारीबीतकी सुनकर अपनी अभिलषित कामनाएँ पूर्ण कर सकता है । इसलिए लोगको बाहिए कि सदा रह नारीभीत-

अथ रामो ददौ तान्यो वरांस्तस्मिन्प्रभुः । पूयं भृगुध्वं मो नार्यः पुरा कथावाग्रतो मया ॥७१॥

बहुस्त्रीहेतुना रुक्मसूतयः षोडशाभिनाः ।

तासां दानेन मन्तुष्टास्ते त्रिषा मां तदाऽब्रुवन् ॥७२॥

फलं सहस्रगुणितं तवास्तु रघुनन्दन । अतस्तत्कलनश्चाहं द्वापरे कृष्णरूपधृक् ॥७३॥

करोमि पाणिग्रहण युष्माकं द्वारकापुरि ।

पूयं नानानृपाणां च भवध्वं बालिकास्तदा ॥७४॥

भीमासुरस्तदाऽयं वै दुद्रुभिस्तु भविष्यति । भीमासुश्च युष्माकं पूर्ववत्स हरिष्यति ॥७५॥

तदा सर्वा मोचयामि हत्वा तं जगतीसुतम् ।

ततो मया सुखेनैव क्रीडष्यं हि यथान्वि ॥७६॥

एवं ता रामावाक्यं तच्छ्रुत्वा प्रमुदिताननाः ।

आनन्दोन्फुल्लनयनाः सुखमापुवराङ्गनाः ॥७७॥

एतस्मिन्नतरे रामं पश्यन्तो लक्ष्मणादयः । शनैस्तत्राप्युस्तत्र पदांकितपयः प्रभुम् ॥७८॥

षोडशस्त्रीमहस्राणां मध्ये दृष्ट्वा रघूनमम् । परं विस्मयमाप्नुते प्रगेमुर्जगदीश्वरम् ॥७९॥

श्रुत्वा राममुखात्मवं यथावृत्तं सावेस्तुम् । सर्वं सन्तुष्टमनसस्तस्युः आराधयन्तः ॥८०॥

ततो रामाज्ञया दत्ताः शतशोऽथ सहस्रशः ।

बाहनान्यातयामासुः सेनासमर्थान्मुदा ॥८१॥

तेषु ताः स्त्राः सुमस्थाप्य बाहनेषु रघूत्तमः ।

शनेः सेनानिवासे स ययौ मातातकं प्रभुः ॥८२॥

ततस्तां जानकीं नेष्टुः सीतां वृत्तं रघूत्तमः । यथा वृत्तं तथा सर्वं कथयामास कौतुकात् ॥८३॥

ततस्ताः पूजयामास बस्त्राभरणरसाः । ततो रामः स कासारं सेनासमर्थलोचिके ॥८४॥

के श्लोकोंका पाठ किया करें ॥ ७० ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर उनको वरदान देते हुए रामचन्द्रजी कहने लगे—हे स्त्रियों ! बहुत दिनोंकी बात है कि मैंने एक समय बहुत-सी स्त्रियोंको पानका इच्छासे व्यासजीके सम्मुख सुषर्णकी सोलह स्त्रियाँ बतवाकर ब्राह्मणोंको दान दिया था । इससे प्रसन्न होकर उन विप्रोंने हमसे कहा—हे रघुनन्दन ! तुम्हें इस दानका सहस्रगुणा फल प्राप्त होगा अर्थात् सोलहके बरसे सोलह हजार स्त्रियाँ प्राप्त होगी । अतएव उनके आशीर्वादानुसार द्वापरमे कृष्णका रूप धारण करके ॥ ७१-७३ ॥ मैं तुम सबोंका द्वारकापुरीमें पाणिग्रहण करूँगा, उस जन्ममें तुम अनेक राजाओंकी कन्याएँ होओगी । दुद्रुभी राक्षस जिसको कि बालिने मार डाला है, उस जन्ममें भीमासुर होगा और इस जन्ममें समान ही तुम्हारा हरण करेगा ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उस समय मैं भीमासुरकी मारकर तुम सबोंको छुड़ाऊँगा और तबसे तुम सब सानन्द हमारे साथ विहार कराओगी ॥ ७६ ॥ इस प्रकार रामके वाक्य सुनकर उनका चेहरा खिल उठा और वे अत्यन्त आनन्दित हुई ॥ ७७ ॥ इसी समय रामको खोजते हुए उनके पैरोंके निशान देखते-देखते लक्ष्मणादि साथी भी वहीं आ पहुँच । जब उन्होंने सोलह हजार स्त्रियोंके बीचमें रामकी देखा तो बड़े विस्मित हुए और जगदीश्वर रामको उन लोगोंने प्रणाम किया । ७८ ॥ ७९ ॥ जब रामने उन स्त्रियोंका वास्तविक वृत्तान्त बतलाया तो वे बहुत प्रसन्न हुए और रामके आगे बैठ गये ॥ ८० ॥ इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे हजारों बाहन आये । जिनपर उन स्त्रियोंको बिठाकर रामचन्द्रजी शिविरकी ओर चले, वहाँ कि सीताजी बैठी थीं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वहाँ पहुँचकर उन सब स्त्रियोंने सीताको प्रणाम किया और रामने उनका जो सच्चा-सच्चा हाल था, सो कह सुनाया ॥ ८३ ॥ इसके बाद सीताने अनेक वस्त्रों-आभरणोंसे उनको सज्जित किया । जोड़ी-दर-बाद रामने अपने शिविरके पास ही एक उत्तम सरोवर देखा, जो अपनी

ददर्श सुमहच्छ्रेष्ठं स्वर्द्वयंतमपां पतिम् । धनपादपमध्यस्थं सुतार्थसलिलं शुभम् ॥८५॥
 विशालं विकचांभोजमधुमत्तमधुत्रतम् । पांचनीपत्रमंयुक्तं छन्नं साकतैस्त्रि ॥८६॥
 स्वच्छदधुच्छलन्मन्त्र्यं स्वच्छमाधुमनो यथा । चलञ्जलचराद्भिन्नवर्णविराजिबिगजितम् ॥८७॥
 अन्तर्भाद्रिगणक्रूरं खलानामिव मानसम् । कचिच्छतालद्रुगम्यं कृपणस्यैव मंदिरम् ॥८८॥
 नानाविहङ्गसवातिं शमयतं दिवा निशम् । उदागमय सर्वस्वैरायन्नातिहरं महत् ॥८९॥
 तपयतं हिमाग्भोमिः क्षापदान्स्वपितनिव । हरतं श्रवमताप हिमांशुमिव चाद्विकम् ॥९०॥

तं दृष्ट्वाभूत्सुमनुष्टुः सीतया रघुनन्दनः ।

तत्र स्तान्वा सुखं रामः कृतमाध्याह्निकक्रियः ॥९१॥

शुक्न्वा वन्धुजनैः सर्वैराखेटगणसंयुतः । उवाच मरुसर्तारे स्म्याः सकथयन्क्रियाः ॥९२॥

ततः शरामने चापं कृत्वा रात्रौ स्थितास्नगैः ।

व्याधाः संधानमास्थाय कुरुषुः ककुभां पयः ॥९३॥

एवं स्थितेषु बीरेषु चने विस्तार्य द्वापुरा । निशार्घं निर्गतं यूयं शूकरगणां सस्सट्टे ॥९४॥

चरित्वा सारसीकंदान् पपात व्याधमकृले । राज्ञा विद्रास्तदाक्राडा व्याधैश्च बहवो हताः ॥९५॥

क्षणेनैव बराहास्ते विद्राः पेतुर्महीतके ।

तान्दत्वा तुमुलं नादं चक्रुर्व्याधाः सुदुर्गताः ॥९६॥

धावन्तोऽपि मुदा तत्र मिलिता यत्र भूपतिः । तानादाप मर्तेर्भूषः सेनावामं ययौ पुनः ॥९७॥

एवं सप्तदिनान्यव स्थित्वा रामा चने सुखम् ।

शुक्न्वा नानाविधान् भागान् सीतया स्त्रपुणं ययौ ॥९८॥

गहराईत समुद्रको मत कर रहा था । उसको आस पास घना वृक्षावलय लगी हुई थी, स्थान-स्थानपर घाट बन हुए थे और पवित्र जल भरा था ॥ ८५ ॥ ८५ ॥ उसको लम्बाई चौराई भी थोड़ी नहीं थी, लिले हुए कमलक फूलापर मोर गुञ्जाए रहें थे, फूल हुए गुरदनक खड बड़ पत्तें सरकती । उमान सुन्दर लग रहे थे ॥ ८६ ॥ सज्जन प्राणोंके मनकी तरह स्वच्छन्दतापूर्वक मछीनगी उछल रहा था । जलधर प्राणोंके इच्छा-उत्तर चलनके कारण बार-बार उसमें लहर उठ रही थी ॥ ८७ ॥ खल मनुष्यक हृदयक समान उसमें कितने ही घड़ियाल धरे थे । कहीं-कहीं कजूर प्राणोंके शरकों तरह सवार भर धें, इससे उसमें प्रविष्ट होना दूभर लगता था ॥ ८८ ॥ दिनरात कितने ही पक्षा आश्रय लेकर अपना भकावट दूर कर रहे थे । इससे बहु सरावर किसी ऐसे सज्जनक समान मालूम पड़ता था, जो अपना स्वस्व सुटाकर गरावा तथा ज्ञानागत जनोंको रक्षाम तत्पर हो ॥ ८९ ॥ अपने ठंड जलसे बहु उसी तरह नौज जावाकी प्यास बुझा रहा था, जिस कद्रमा दिन भरके शरिअमसे दुखी जनोंको समस्त पीडा रातमें हरम लिया करता है ॥ ९० ॥ उस सरावन्का देखकर सीता तथा रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए । उसमें स्थान किया, मध्याह्न का रक्षा विधिविधाय की और भोजन किया । फिर सार शिकारियोंको साथ लेकर उसी तड़ागके समीप डेरा डाल दिया और उनको तरहका कहानिवां कहते-कहते समय फाटन लगे ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ जब रात्रिका समय हुआ तो बहलियान अनेक सामान लेकर चारों ओरसे उस तड़ागको घेर लिया और रामचन्द्रजी अपना धनुष बाण ठीक करके एक वृक्षके ऊपर जा बैठे । ९३ ॥ जब कि व्याध जाल बिछाकर तत्परताके साथ सरोवरके चारों तरफ बैठ गये और एक आधा रातका समय हुआ, सब बनेले शूकरोंका एक गूँथ आ पहुँचा ॥ ९४ ॥ तालाबमें उत्पन्न कंद खाकर बहु शूकरगूँथ बहलियाके ऊपर दूध पड़ा । उस समय बहुतसे शूकरोंको रामचन्द्रजीने मार डाला और बहलियोंको बहलियान समाप्त कर दिया ॥ ९५ ॥ अणभरमें वे सारे शूकर मार डाले गये । उनको मारनेके अनन्तर व्याधोंने प्रसन्नताका कोलाहल मचाया ॥ ९६ ॥ सब बहलिये मारे वृक्षाके दीर्घते हुए उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ रामचन्द्रजी बैठे थे । सब राम जब सबोंको तथा

ततो विप्रान्नुषान् वैश्यान् ममाह्वय गृधूनमः ।

या यस्य दुहिता नागी या यस्य पुत्रपुत्रिका ॥१०९॥

नम्मै तम्मै ददौ तां नामेवं सर्वा व्यमर्जयन् ।

वस्त्रालकारभूषाद्यैः शोभयित्वा पृथक् पृथक् ॥११०॥

ते विप्राद्याः पुनर्जाता मेनिरे निजबालिकाः ।

सतः स्वं स्वं पुनं नोन्वा नृथा वैश्याः प्रमोहिता ॥१११॥

नृपुत्रैर्वैश्यपुत्रैस्तासां शक्रः सुमंगलम् । रामप्रसन्नान्तः प्रापुः पतिमंगमुखं स्त्रियः ॥११२॥

ताश्चापि द्विजपुत्र्यस्तु पितृणामेव सन्नसु ।

निन्पुः स्त्रीयायुष तत्र व्रतचर्यादिभिः सुखम् ॥११३॥

विवाहकालातिक्रमणाञ्च ता उद्धाहिता द्विजैः ।

जन्मान्तरेण ता सर्वाः कृष्णः पन्नीः करिष्यन्ति ॥११४॥

अथ रामः सच होश्च पुत्रस्तु मथुरां पुरोम् । विवाहार्थं सीतया स परंर्जनपदंर्ययी ॥११५॥

तत्र वैवाहिकं कर्म मपाद्य गृधूनन्दनः । नम्यां तत्र कियन्काल मथुरायां यथामुखम् ॥११६॥

एकदा जानकीवाक्यशक्तकालिदाः मकने शुभे । निशायां हेमस्यंके मुख सुप्राप राघवः ॥११७॥

एतस्मिन्नन्तरे दामीर्दामान् रक्षा विनिद्रितान् ।

स्त्रीरूपेणाय कालिदी रामांश्चि मंस्पृशन्छनैः ॥११८॥

ततो रामः प्रबुद्धोऽभूददर्शं पुरतः स्थिताम् ।

सूर्यस्य तनयां पुण्यां कालिदीं कंजलोचनाम् ॥११९॥

दिग्पालंकारवस्त्राढ्यां दिव्यन् पुग्गजिनाम् । नीलोत्पलदलश्यामां हेमकुंभपयोधराम् ॥१२०॥

स्मिताननां सुरभोरु किंकिणाजालमालिकाम् ।

केयूरकुडलाढ्यां तां प्रोन्नृज्जघनां वराम् ॥१२१॥

सैनिकोंको साथ लेकर अपने निदिरको लोट आये । इस प्रकार सात दिन वनमें रहते हुए अनेक तरहके सुखोंका उपभोग करके राम अपनी अयोध्यापुरीका लोट पड़े ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ इसके अनन्तर दुग्दुभी द्वारा हरण की हुई उन कन्याओंको जो जिसकी पुत्रा थी, उन-उन राजाओं, ब्राह्मणों तथा वैश्योंको बुलाकर वे ही और उन बालिकाओंको वस्त्राभूषणादिसे अलंकृत करके विदा कर दिया ॥ ११९ ॥ १२० ॥ वे ब्राह्मणादिक अपनी कन्याओंका पुनर्जन्म मानकर रामके आज्ञादुसार अपने-अपने घरोंको ले गये और नृपों तथा वैश्योंने अच्छे घरोंके साथ उनका विवाह कर दिया । रामचन्द्रजीको कृपासे उन सबको पतिके साथ विहार करनेका मुक्त प्राप्त हुआ ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ उनमेंसे जो ब्राह्मणकी व लिकाय थीं, वे विवाहकाल व्यस्तात हो जानेके कारण विवाह न करके यूँही पिताके घरपर व्रत-उपवासादि करके अपना जीवन यापन करने लगीं । क्योंकि उनको यह विश्वास हो गया था कि दूसरे जन्ममें स्वर्ग श्रीकृष्णचन्द्रजी मेरे पति होंगे ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ कुछ दिनों बाद सुबाहुका विवाह करनेके लिये रामचन्द्रजी सीताके साथ मथुरापुरी गये ॥ १२५ ॥ वहाँपर विवाहका सारा कार्य सम्पादन करके कुछ दिन मथुरामें ही रहे ॥ १२६ ॥ एक दिन सीताके कहनेसे रामचन्द्रजी यमुनाके तटपर सोये । उस समय वहाँके सब दासों और दासियोंको निद्रित देखकर एक स्त्रीका रूप धारण किये यमुना स्वर्ग रामके पास गयी और धीरेसे उनका पैर पकड़ा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ उसके ऐसा करनेपर रामचन्द्रजी जाग गये और सामने सूर्यकी पुत्री तथा कमलके समान नेत्रोंवाली कालिन्दीको देखा ॥ १२९ ॥ उस समय उसके शरीरमें दिव्य वस्त्राभूषण पड़े थे । पैरोंमें सुन्दर नूपुर छनछना रहे थे । नील कमलकी पंखुइयोंके समान उसका रङ्ग था और सुवर्णकलशके समान उसके स्तन थे ॥ १३० ॥ मुस्कराता हुआ मुख

तां तादृशीं प्रभुर्दृष्ट्वा क्षणं तूष्णीं व्यचिन्तयत् । घन्यो विधाता येनेयं कालिंदी रचिता पुरा ॥११२॥
इत्याश्चर्यमना भून्वा तत्सौंदर्यं व्यलोकयत् । अथ रामः स तां प्राह वशागमनकारणम् ॥११३॥
सा प्राह तं विलज्जती सर्वं न्वं वेन्मि राघव । ततो रामोऽब्रवीद्वक्त्यं चैकपत्नीमृतं मम ॥११४॥

इह जन्मनि कालिदि न्वं याहि स्वस्थलं जवात् ।

यावन्सीता प्रवृद्धा न जायेत तावदेव हि ॥११५॥

सा रामवाक्यश्रेणैव भिरुमर्दस्थला भुवि । मूर्च्छामवाप तत्रैव तां दृष्ट्वा सोऽब्रवीत् पुनः ॥११६॥
उचिष्टोत्तिष्ठ कालिदि मृणु न्य वचनं मम । द्वापरे कृष्णरूपेण त्वा करिष्याम्यहं स्त्रियम् ॥११७॥

त्रियाहेनैव मच्छाद्य तदा मोक्षयामि मन्सुखम् ।

इति श्रुत्वा रामवाक्यं किञ्चित्तुष्टमना नदी ॥११८॥

नन्वा रामं ययौ तूष्णीं रामध्यानपराऽभवत् ।

ततो रामोऽपि सैन्येन सीतया स्वपुर्गे ययौ ॥११९॥

एवं साकेतनगरे रामः स्त्रीबधुदेहजैः ।

चरितान्यकरोन्माना पापघ्नानि श्रमादिना ॥१२०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितावतारं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वाह्णे
षोडशसहस्राधिककालिदादिपञ्चश्रीवन्दनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

या, केलेके सम्नेकी नाई उसकी जंघाएँ थीं । विकणी केगुर, नण्डल आदि आभूषण अपनी छटा दिखा रहे थे ॥ १११ ॥ इस प्रकारकी एक अपरिचित नारीको अपने सामने देखकर राम थोड़ी देर तक यह सोचते रहे कि विधाता घन्य है, जिसने कालिन्दी जैसी नारीकी रचना की है ॥ ११२ ॥ इस प्रकार विचार करते हुए वे उसका मीन्दर्य देखते रहे । इसके अनन्तर उससे कहने लगे-तुम अपने आनेका कारण बतलाओ ॥ ११३ ॥ रामकी बात सुनकर सकुचानी हुई कालिन्दीने कहा—हे राघव ! तू मग कृष्ण जानते हो । फिर रामने कहा कि हे कालिन्दी ! इस जन्ममें मैंने एकपत्नीयुक्त धारण कर रक्खा है । इसलिये सीता आग आय, इसके पहले ही तू मग यहाँसे चली जाओ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ रामके ये वाक्य बाणके समान उसका हृदयमें लगे, जिससे वह वहींपर भूषित होकर गिर पड़ी । फिर रामने कहा—कालिन्दी ! उठो-उठो, मेरी बात तो सुनो । द्वापर-युगमें मैं कृष्ण होकर तुम्हें अपनी स्त्री बनाऊँगा, आज तू लौट जाओ । जन्मान्तरमें तू मेरे साथ निहार करके सुखी होओगी । इस प्रकारकी बात सुनकर यमुनाको कुछ सन्तोष हुआ ॥ ११६-११७ ॥ तदनन्तर रामको प्रणाम करके उनका ध्यान करती हुई वह लौट गयी । उधर राम भी अपनी सेना तथा सीताके साथ अयोध्या चले गये ॥ ११८ ॥ इस तरह रामचन्द्रजी साकेतपुरीमें अपने पुत्रों तथा साक्षरके साथ अनेक मीठायें किया करते थे, जिनका श्रवण करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १२० ॥ इति शतकोटि-रामचरितावतारे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामदेवपांडेयविरचिते'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासम्बन्धिते राज्यकाण्डे पूर्वाह्णे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

॥ इति राज्यकाण्डे पूर्वाह्णे समाप्तम् ॥

शारामचन्द्रर्पणमस्तु ।

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशनकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

राज्यकाण्डम् (उत्तरार्द्धम्)

त्रयोदशः सर्गः

(राम द्वारा राज्यभरमें हास्यपर प्रतिबन्ध)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा रमाजानिः सुहृद्भिः सदसि स्थितः । वीजितश्चामरेणैव लक्ष्मणेनातिशोभितः ॥ १ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पौरः कश्चित्समास्थितः । वाराङ्गनानां नृत्यादिं दृष्ट्वा हास्यं चकार सः ॥ २ ॥
तद्वाक्यं राघवः श्रुत्वा सस्मार पूर्वचेष्टितम् । लंकायां घुट्टसमये रावणस्य शिरांसि खात् ॥ ३ ॥
रामघाणान्मृतिं लब्ध्वाऽस्माभिश्चेति विहस्य च । श्रीरामं वन्दनं कर्तुं पतन्ति स्म प्रभुं पुनः ॥ ४ ॥
तेषां विकालतां दृष्ट्वा दंतादीनां रघूत्तमः । मामत्तुं हि पुनर्यान्ति शिरांस्येतानि स्वादिति ॥ ५ ॥
रामो भीत्या पुनस्तानि खे शिरांस्यक्षिपच्छरैः । एकोत्तरज्ञानान्येव वारं वारं त्वरान्वितः ॥ ६ ॥
तद्भूष राघवः स्मृत्वा किं दशास्पस्य वै शिरः । समागत सभामध्येऽत्रेति पार्श्वेऽप्यलोकयत् ॥ ७ ॥
मायाविनो राक्षसाश्च संत्यजेति विचिन्त्य च । एव यदा यदा हास्यं स शुश्राव रघूत्तमः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासजी बोले—एक दिन रामचन्द्रजी अपने मित्रोंके साथ सभामें बैठे थे। उस समय रामपर चेंबर चल रहे थे और लक्ष्मण रामके पास बैठे हुए थे। इसलिए रामकी शाभा कईगुना अधिक दिखायी दे रही थी ॥ १ ॥ इसी समय सभाका कोई नागरिक वेश्याओंका नृत्य देखकर जोरोंके साथ हँस पड़ा ॥ २ ॥ उस हास्यको सुना तो रामको उस समयकी एक बात याद आ गयी, जब वे लंकामें रावणके मस्तकोंको अपने बाणोंसे काटकर आकाशमें उड़ा देने थे तो वे मस्तक यह समझकर कि रामके बाणोंसे मेरी बुद्धि ठिकाने आयी है। इस भावसे हँसते हुए ऊपरसे फिर नीचे आकर रामके चरणोंमें छोटते हुए वन्दना करने लगते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनके दानों आदिकी विकालता देखकर रामका यह ख्याल होता था कि ये मस्तक मुझे खाने आ रहे हैं। इस लिए उन्हें फिर बाणों द्वारा आकाशमें उड़ा दिया करते थे। यह उपाय रामको एक दो बार नहीं पूरे एक सौ एक बार करने पड़े थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसी बातको स्मरण करके रामने सोचा कि कहीं रावणके मस्तक ही तो इस सभामें आकर ठहाका नहीं मार रहे हैं। इस भावसे उन्होंने अपने आस-पास विस्मयभरे नेत्रोंसे देखा ॥ ७ ॥ क्योंकि उनका ख्याल था कि राक्षस मायावी होते हैं, शायद यहाँ भी आ जायें तो क्या आश्चर्य है। इस तरह राम जब कभी किसीका हास्य सुनते

तदा तदा पूर्ववृत्तं स्मृत्वा पार्श्वे व्यलोकयन् । ततो रामः क्षुण्णचित्ते चिंतयामास सादरम् ॥ ९ ॥
 यदा यदा श्रूयतेऽत्र हास्यं केनापि यत्कृतम् । तदा तदा दशाक्ष्यस्य शिराहास्यं स्मराम्यहम् ॥ १० ॥
 मायाविनो राक्षसास्ते मां विस्मर्य पुनश्चिरान् । मामनुमत्र यास्यन्ति त्विति मन्वा स्वचेतमि ॥ ११ ॥
 अन्यथ निदिर्तं हास्यं नानिशास्त्रेषु मर्यदा । अतो हास्यं वर्जयामि सर्वेषां भूनिवासिनाम् ॥ १२ ॥
 इति निश्चिन्य हृदये लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीन् । दुर्दुर्मिं धोषयस्वाद्य पुण्यां राष्ट्रेऽवनीनले ॥ १३ ॥
 स्मिताननो नरः कश्चिन्मारी वाऽथ मुहञ्च वा । सीता वा तनयो बंधुः स मे दृष्ट्या भवेदिति ॥ १४ ॥
 तथेति समवाक्यान्म धोषयामास दुन्दुभिम् । पौगं जनपदाः सर्वे श्रुत्वा शिक्षाञ्च नि प्रभोः ॥ १५ ॥
 रामदण्डमयान् सर्वे न चक्रुस्ते स्मिताननम् । वार्गगनानृत्यभीते नटगीतप्रवर्तने ॥ १६ ॥
 स्त्रोमिः मुहुर्द्विभिर्ब्रैश्च विनोदानुत्सवान् वगन् । भांगल्यानि च कर्माणि हास्यकारीणि नाचरन् ॥ १७ ॥
 वशस्तंभकलाभिश्च कौतुकानि हि यानि च । तूर्यघोषादिमाङ्गल्यकर्मणि विविधाः कथाः ॥ १८ ॥
 सावन्मग्नोऽसदान् सर्वान् यात्रायज्ञोन्मवान् शुमान् । कौतुकानुत्सवांश्चैव विवाहादिषु कर्मसु ॥ १९ ॥
 वार्ताश्चित्रकथाश्चापि न चक्रुश्च कदा जनाः । ययौ नारदश्चकान्कार्याद्विना सदमि कः प्रभुम् ॥ २० ॥
 पुराणानीनिहामाश्च न पठन्ति स्म केचन । गर्भाधाने पुत्रजन्मनामकर्मदिषुत्सवान् ॥ २१ ॥
 पौगं जानपदाः सर्वे समर्द्धीपनिवासिनः । एतानि हास्यकारीणि नानाकर्माणि भूतले ॥ २२ ॥
 रहस्यपि न चक्रुस्ते रामदण्डमयान् कदा । एवमार्माद्वयमेकं तदा भूम्प्रां कदापि हि ॥ २३ ॥
 स्मिताननं कस्य नामीन्न चक्रुर्मंडनादिकम् । तदोत्साहदेवताश्च नानाकर्माद्भुदेवताः ॥ २४ ॥
 इन्द्राय कथयामासुस्तद्वृत्तं जगतीभवम् । इन्द्रादीनां मुराणां च कर्माण्युजनादि हि ॥ २५ ॥
 नासीद्यदा जगत्यां हि तदेन्द्रोऽकथयद्विधिम् । तदा सुरान्विधिः प्राह न गमाग्रे बलं हि नः ॥ २६ ॥

तो उनका ध्यान उसी ओर आकृष्ट हो आया करता था और अपने अगल-अगल निहारने लगते थे । इस समय रामने उस हास्यको सुनकर सणभर विचार किया और लोगोंसे कहने लगे—॥ ८ ॥ ९ ॥ जब कसो मैं किसीका हास्य सुनता हूँ तो मुझे रावणकी हँसी स्मरण आ आया करती है और यह ख्याल होता है कि वे आयावी राक्षस जिनका कि मैं न मार डाला है, घोखा देकर मुझे खानेके लिए लिए तो नहीं आ गये हैं ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ दूसरे नीतिशास्त्रमें भी हास्यकी निन्दा की गयी है । इसीलिए आजसे मैं भूतलपर रहनेवालोंको हँसनेकी मनाही करता हूँ । इसके बाद लक्ष्मणसे बोले कि मेरे राष्ट्र तथा पृथ्वीतल भरमें दुर्गभी पिटवाकर कहला दो कि कोई स्त्री, पुरुष, मेरा मित्र, स्वयं सीता तथा मेरे बेटा या भाई भी न होंगे । जो इस आज्ञाके विपरीत चलेगा, उसे दण्ड भुगतना पड़ेगा ॥ ११-१४ ॥ लक्ष्मणने रामके आज्ञा नुसार चारों ओर दुर्गभी बजवाकर रामकी यह आज्ञा घोषित करा दी । जितने पुरवासी अथवा देशवासी थे, उन्होंने प्रभुकी इस शिक्षाञ्चनिकी सुनकर दण्डभयसे हमशाके लिये हँसना छोड़ दिया । वेश्याओंके नृत्य, गाने, नाटक, स्त्रियों या मित्रोंके साथ हँसी-दिल्लगी आदि ऐसे सब कार्य बन्द कर दिये गये, जिनमें हँसी आनका अन्देशा रहता था ॥ १५-१७ ॥ उस समय बाँसपर चढ़कर नाचने आदिकी कला, तुडही-नगाड़े आदिके बाज, यात्रा, यज्ञ, सांत्सरिक उत्सव, विवाह आदि मङ्गल कार्योंमें भी हँसी खानेवाले खेल-कूद और गप-शप आदि बातोंको बन्द कर दिया और बिना किसी विशेष कामके कोई रामकी मध्यामें भी नहीं जाता था ॥ १८-२० ॥ लोगोंसे पुराण-इतिहास आदिका भी पढ़ना छाड़ दिया । गर्भाधान, पुत्रजन्म, नामकर्म आदि उत्सवोंमें हँसी न आने देनेका पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जान लगा । मतलब यह कि सारे पुरवासी एवं देशवासी हास्यान्यादक कामोंको नहीं करते थे । रामके दण्डभयसे कोई एकान्तमें भी नहीं बैठता था । यह अवस्था एक वर्ष तक च-लती रही । इस बीचमें भूतलनिव सिधोंमेंसे किसीका भी सुखमण्डल मुस्कराता हुआ नहीं देखा और किसीने भी अपना शृङ्गार आदि नहीं किया । ऐसी अवस्थामें कितने ही कर्माङ्गदेवता और बहुतसे उत्साहदेवता एकवित्त हाकर इन्द्रके पास गये ॥ २१-२४ ॥ उन्होंने पृथ्वीतलके उस समाचारका कह सुनाया । जब इन्द्रने सुना कि हम देवताओं-

नैवोपदेष्टुं योग्यः स ममापि जनकस्तु यः । पुत्र्या कार्यं साधयामि येन वोऽयं हितं भवेत् २७ ।
 इत्याद्यास्य सुरान् सर्वान्विधिर्भूमण्डलं ययौ । अयोध्यायाश्च सोमायां दृष्ट्वा वेधाः सुविप्लवम् ॥ २८ ॥
 स्वयं विवेच्य तन्मन्ये दृष्ट्वा पाथान् जहाम सः । एतस्मिन्मारे कश्चिन्काष्ठमागृह्यः पुमान् ॥ २९ ॥
 भुत्वा पिप्पलहास्यं जनेन दीर्यं जहाम सः । ततः स भारवाहश्च ययौ हर्षे प्रभोः पुरीम् ॥ ३० ॥
 काष्ठभारविक्रयार्थं तत्र स्मृत्वा स्मितं हृदि । चतुपत्रस्य सोऽप्युच्चैर्न ममर्थो निरोधितुम् ॥ ३१ ॥
 भारवाहस्य हास्यं तद्वाजदूतोऽयं शुश्रुवे । राजदूतो जहामोच्चैर्न समर्थो निरोधितुम् ॥ ३२ ॥
 राजदूतः समां गत्वा भारवाहस्य यन् स्मितम् । हृदि स्मृत्वा जहामोच्चैस्तच्छ्रुत्वा ते ममामदः ॥ ३३ ॥
 सभायां जहसुः सर्वे तच्छ्रुत्वा राघवोऽपि तः । उच्चैर्जहाम सदमि वरमिहामने स्थितः ॥ ३४ ॥
 रामो विचारयामास किमर्थं हमितं मया । यन्निमित्तं सदा दण्डपीरान् जानपदान्निजान् ॥ ३५ ॥
 अहं करोमि सोऽप्यहं सभायां हमितः कथम् । दण्डविश्रुतिर्मां कोऽयं किमां पीरा वदति हि ॥ ३६ ॥
 अस्माकमेव शिक्षाऽस्ति सर्वदा राघवस्य सा । य कथं हमितश्चायं सर्वेषां पुनः स्फुटम् ॥ ३७ ॥
 शिक्षां करिष्यति विभोः कोऽस्य न्विति वदति ते । मानयिष्यति नातस्ते ममाग्रं शिक्षितं भुवः ॥ ३८ ॥
 नर्मतन्न प्रतं योग्यमिति राघवस्त्वमन्यत । पुनर्जहाम भीरामस्तन्निरोद्धुं न स क्षमः ॥ ३९ ॥
 तजो रामाऽध्वीन्यौराम् समास्थान्स स्मितावनः । किमर्थं हमिता युव येभ्यो हास्यं ममापि हि ॥ ४० ॥
 प्रमाणतं सभामध्ये पीरा, प्रोचुर्नृपोत्तमम् । दृष्ट्वा स्वदूतहास्यं हि तेनास्माकं समागतम् ॥ ४१ ॥
 तद् पीरवचनं श्रुत्वा दूतमाह रघूत्तमः । वया किमर्थं हमितं सोऽध्वीन्द्रपुनन्दनम् ॥ ४२ ॥

के कर्माणि पूजनार्थि सत्कार्यं लुप्त होने जा रहे है तो ब्रह्माके पास जाकर यह बात बतायी । ब्रह्मान कहता कि रामचन्द्रजीके आगे हम लोगोंने कुछ भी शक्ति नहीं है ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैं उन्हें उपदेश नहीं दे सकता । क्योंकि वे मेरे पिता है । इसलिए मैं किसी पुत्रिसे अपना कार्यसाधन कर्मेगा कि जिसमें आप लागाका कल्याण है ॥ २७ ॥ इस प्रकार उन्हें आश्वासन देकर ब्रह्माजी भूमण्डलको और चल पड़े । अयोध्याकी सीमापर एक विशाल पिप्पल वृक्षको देखकर वे स्वयं उसके भीतर प्रविष्ट हो गये और उस रातमें मान-बाजेवाले लोगोंको देख-देखकर जोरसे हँसने लगे । उसी समय एक लकड़हारा लकड़ोका बोझ माथेपर रख कर वहाँ आ पहुँचा । उसे भी देखकर पापलके भीतर बैठे हुए ब्रह्माजी हँसे ॥ २८ ॥ २९ ॥ पीपलका हमी सुनकर लकड़हारा दूने जोरसे हँसा और लकड़ोका बोझ लिये हुए अयोध्या नगरीमें जा पहुँचा । रास्तेमें उसे पीपलकी हँसोवाली बात याद आ गयी और ठहाका मारकर हँस पड़ा । लेकिन शन भरवाह उसे रामकी मनाहीका रमण हो जाया जिससे बेचारा सकित हो उठा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ लकड़हारेको हँसते देखकर औराह-पर कहा सिपाही भी अपनी हँसी नहीं रोक सका ॥ ३२ ॥ सिपाही सभामें गया तो उस वहाँ लकड़हारेकी हँसी याद आ गयी, जिससे वह हँस पड़ा । सिपाहीको हँसते देखा तो सभामें बैठे हुए लोग भी अपनी हँसी नहीं रोक सके और वे भी हँसने लगे ॥ ३३ ॥ सभामें सभाके लोगोंको हँसते देखकर रामचन्द्रजी भी हँसने लगे ॥ ३४ ॥ तब रामचन्द्रजी तुरन्त हँसी रोककर सोचने लगे—और लोग हँसे तो हमें, मैं क्यों हँसा ? अब मैं सारे भूतलवासियोंको इस कामसे रोक रहा हूँ और दण्ड देता हूँ । तब मैं क्यों हँसा ? मुझे कौन दण्ड देगा ? और वे पुरवासी क्या कहेंगे ? यही न कि राम दूसरोको ही शिक्षा देता है, प्रजाके वास्ते हो दण्डविधान करत है और स्वयं जो मनमें जाता है, सो कर डालते हैं । सब लोगोंके लिए जो हँसनेकी मनाही कर दी है, किन्तु स्वयं हजारों मनुष्योंके सामने ठठाकर हँसत हैं ॥ ३५-३७ ॥ इसका परिणाम यह होगा कि वे अविष्यन् मेरी बात नहीं मानेंगे । यह सब विचारकर रामने यह ठहराया कि मैंने बड़ी भारी भूल की है । लेकिन शनभर बाद ही रामको फिर हँसी आ गयी । पूरी चेष्टा करके भी वे हँसनेसे नहीं रोक सके ॥ ३८ ॥ तब रामचन्द्रजी सभाके लोगोंसे कहने लगे—आपलोग किस बातपर हँसे ? आप लोगोंको हँसते देखकर मैं भी हँस पड़ा । सभामें बैठे हुए पुरवासियोंने उत्तर दिया कि आपके सिपाहीको हँसते देखकर हमें

भारवाहस्य हास्यं तन् स्मृत्वा प्रहमितं मया । तद्दूतवचनं श्रुत्वा भारवाहं तदा प्रभुः ॥४३॥
 दूतरानीय सदमि तमाह मधुनन्दनः । मा भीतिं भज मत्तस्त्वं सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥४४॥
 हङ्गे किमर्थं हमितं स्वयाऽद्य कथयस्व माम् । स भारवाहश्चक्रिणः शुष्ककंठोष्ठनानुकः ॥४५॥
 वेपमानः स्खलद्वाचा राघवं वाक्यमब्रवीन् । अयोध्यायाश्च सीमायामश्वत्थस्य मयाऽद्य हि ॥४६॥
 दृष्ट्वा प्रहमितं राजतु हङ्गे हास्यं तथा कृतम् । नदपूर्वां तद्विरं स प्रभुः श्रुत्वा मुनिस्मितः ॥४७॥
 दूतानुवाच श्रीरामस्त्वनेन मह वेगतः । गुर्यं गन्वाऽद्य द्रष्टव्यं किं मन्य कथ्यते न वा ॥४८॥
 अनेन भारवाहेन ते तथेति त्वरान्विताः । गन्वाऽश्वत्थस्यर्षां हि दृष्टुं स्नेहिनः सुदुः ॥४९॥
 तदाश्चर्याच्च ते दूताः प्रहसन्तोऽतिवेगतः । अश्वत्थमस्मिन् रामं गन्वा सर्वे न्यवेदयन् ॥५०॥
 तद्दूतवचनं श्रुत्वा राघवश्चानिविस्मितः । राज्यं ममैतद्दुश्चिह्नं मे शिखा लङ्घ्युमग्रतम् ॥५१॥
 इति निश्चिन्त्य मनसि दूतांश्चाज्ञापयन्तदा । छिद्यन्तं चलपत्रः स समाज्ञाभगकारकः ॥५२॥
 तद्रामवचनादेव शतशोऽथ महस्रशः । कुटारपाणयः शीघ्रमश्वत्थं दृष्टुमुन्मदा ॥५३॥
 हास्यमानं नगं दृष्ट्वा ते सर्वेऽर्त्ताव विम्बिताः । कुटारैस्तं तदा छेत्तुमुग्रता राघवाज्ञया ॥५४॥
 तांश्छेत्तुकामान् सकलान् ग्रामान् स्वनिकटं विधिः । दूतान्पन्तः पुराणोऽयं श्वत्थनिर्गतैः ॥५५॥
 उपलैश्छिन्नभिन्नांगास्ते दूता लोहिताकिताः । कोलाहलं प्रकुर्वन्त रामं वृत्तं न्यवेदयन् ॥५६॥
 नतोऽतिविस्मितो रामः पुनर्दूतान् सहस्रशः । प्रेषयामास त छेत्तुं धनुर्वाणासिधारिणः ॥५७॥
 तेऽपि गत्वा नमं तेन ताडिता उपलङ्घ्येदम् । छिन्नांगा राघवं वेगान्सर्वे वृक्षं न्यवेदयन् ॥५८॥
 नतो रामोऽतिमक्रुद्धः सुमत्र सेनया युतम् । प्रेषयामास त वृक्षं छेत्तुं बुद्धिपुङ्गवसम् ॥५९॥

हंसी आ गयी ॥ ३९-४१ ॥ पुरवासियोंकी बात सुनकर रामने सिपाहोंसे पूछा कि तुम क्यों हँसे ? उसने कहा कि एक लकड़हारेकी हथेली देखकर मुझे हँसा आ गयी । दूतकी बात सुनकर रामने दूतों द्वारा लकड़हारेकी पकड़वा मंगाया और उससे कहा कि क्या प्रकारका भय न करके मुझे यह बतलाओ कि तुम बाजारमें क्यों हँसे ? ॥ ४२-४४ ॥ वदन्तः रामकी बात सुनकर चौकन्ता हो गया । उसके कंठ, ओष्ठ और ताल सुन्न गये, शरीर कांपने लगा और भगाए हुए स्वरसे उसने उत्तर दिया कि अयोध्याके समीप ही एक पोपलका वृक्ष है । मैंने बाजार आन समय उस वृक्षकी हंसी सुनी और हँस पड़ा । नगरमें आया तो यहाँ भी एकाएक वह बात याद आ गयी और चष्टा करके भी मैं हँसाको नहीं रोक सका । उसकी यह बात सुनकर मुस्कराने हुए रामचन्द्रजीने दूतोंको आज्ञा दी कि तुम लोग इसके साथ जाकर देखो कि यह जो कह रहा है, वह ठीक है या नहीं ॥ ४५-४६ ॥ उस भारवाहाके साथ-साथ दूत चले, पोपलके समीप गये और उसकी हंसी सुनी तो स्वयं खूब हँसे और लोटकर रामका वहाँका सच्चा वृत्तांत सुना दिया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ दूतोंकी बात सुनकर राम बहुत विस्मित हुए और सोचने लगे कि हमारे राज्यमें यह एक बड़ा दुश्चिह्न उत्पन्न होकर मेरे शासनको ही लुप्त कर देना चाहता है । इस प्रकार विचार करके रामने दूतोंको आज्ञा दी कि उस पोपलके वृक्षको काट डालो । क्योंकि वह मेरी आज्ञा अङ्ग कर रहा है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ रामके आज्ञानुसार मकड़ों हजारों व्यक्ति कुठार ल लेकर उस वृक्षकी ओर चले पड़े । उस समय भी उस वृक्षकी हँसते देखकर सब उसे काटनेका उद्यत हो गये । उनका देखकर ब्रह्मा, उस वृक्षपरसे ही पत्थरके टुकड़े फक फँककर मारने लगे । इस उत्पातसे कितने ही लोगोंकी गहरी चोट आयी । खिन्नसे उनका शरीर भीषण गया और चिल्लाते हुए उन्होंने रामके पास पहुँचकर वहाँका हाल बतलाया ॥ ५३-५६ ॥ सो सुनकर रामकी ओर भी आश्चर्य हुआ और फिर हजारों दूतोंका वह वृक्ष काटनेके लिए भेजा । धनुष बाण एवं तलवार धारण किये हुए दूत जब वृक्षके पास पहुँच तो फिर ब्रह्माने पत्थर फक फँककर मारा, जिससे भिन्नमस्तक हो उठे सबने लोटकर रामको यह समाचार सुनाया ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तब रामने क्रुपित होकर बहुत सी सेनाके साथ

सुमन्त्रो राघवं नन्वा सैन्या नं नगं ययौ । तत्रदृष्ट्वापराजैर्ग्रे गन्तुं न म क्षमः ॥६०॥
 ततो राघवभीत्या स शनैः सैन्येन तत्पुरः । ययौ नावन्नगोज्ज्वलं पापार्णस्तडितोऽपगत् ॥६१॥
 सुमन्त्रं पतितं दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् । अयोध्यायां च तत्र तदङ्गनमिवाभवत् ॥६२॥
 सुमन्त्रं पतितं श्रुत्वा पुत्राभ्यां रघुनन्दनः । सैन्येन प्रेक्ष्य तत्पुण्यं तं नगं पुनः ॥६३॥
 ततस्तस्मात्कौतुकं श्रुत्वा पौरनार्यः महम्मथः । आमादशिवरामदा उध्वास्य स्त व्यलोकयन् ॥६४॥
 तर्जन्या दर्शयामासुः मोक्षध्वजं ता मिथः । चानहन्त भ्रूयोः स्थाप्य त्रिदीपान्धवारयन् ॥६५॥
 कुञ्चितानलकान्नेप्रपतितान् करपल्लवैः । स्थियो निवार्य आमादगोपूरकुलमंस्थिताः ॥६६॥
 निद्रामभ्रान्तनयनाश्चान्योन्यं दर्शयन्तगम् । एव तन्नगरं सर्वं चकितं चाभवत्तदा ॥६७॥
 शत्रुघ्नोऽथ पुराद्यावत्सैन्येन निर्गतो बहिः । तावत्तद्व्यवाहृत्य मंस्थिता एव ते पथि ॥६८॥
 ताडिता अपि मूलेन मोक्षस्थुस्तुरगोत्तमाः । कुशस्थाय लवस्यापि रथताहास्तयेव च ॥६९॥
 ताडिता रुक्मदंष्ट्रैश्च नोत्तम्युः पथि मंस्थिताः । आश्रयेण च तद्वृत्तं राघवाय न्यवेदयन् ॥७०॥
 रामोऽपि श्रुत्वा चकितस्तदा चिन्तेऽपि चरयन् । विचारः कर्ण्णीयाऽव ह्यविचरोऽयं नोचितः ॥७१॥
 अस्त्यत्र कारणं किञ्चिन्प्रष्टव्योऽयं पुणेहितः । जानन्नपि रामायाः स्वयं सर्वं तथापि मः ॥७२॥
 मानुष भावमाश्रिन्य पुरोहितमथाह्वयन् । सोऽपि रामाज्ञया श्रुत्वा तं मया प्रययौ गुरुः ॥७३॥
 प्रत्युद्गम्य गुरुं रामो ददाशमनमुत्तमम् । ततः सम्पूज्य विधिवन् सर्वं कृतं न्यवेदयत् ॥७४॥
 तच्छ्रुत्वा राघव प्राह समिधो मुनिमशमः । वाल्मीकिस्त्वय प्रष्टव्यो येन ते चरितं कृतम् ॥७५॥
 तत्पुण्योर्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकिं म समाह्वयन् । सोऽपि रामाज्ञया श्रुत्वा ययौ श्रीराघव प्रति ॥७६॥

सुमन्तको वृक्ष काटने के लिए भेजा । सुमन्त रामको प्रणाम करके अश्वत्थकी आर वड़े । किन्तु वृक्षसे थोड़ी दूरपर ही थे । इतनेमें पत्थरोंकी वर्षा होने लगी । जिसमें उस वृक्षके पासतक नहीं पहुँच सके ॥ ५६ ॥ ६० ॥ लेकिन रामके भयसे सुमन्त पीछे न लौटकर आगे ही बढ़ने लगे और उधरसे बराबर पत्थरोंकी वृष्टि होती रही । जिसमें वे घायल होकर गिर पड़े ॥ ६१ ॥ सुमन्तको गिरा देना तो सेनामें घर कोल हल होने लगा । सारे अयोध्यावासियोंका यह एक अनहोना सं बात मान्ते पड़ी । ६२ ॥ सुमन्तको घायल मृता तो रामने अपने दोनों पुत्रोंके साथ एक बड़ी सेना भेजी ॥ ६३ ॥ इस कोटिकी मृता तो नगरकी बहुत सी मित्रियाँ अपनी-अपनी अटारियोंपर चढ़कर मरतक लटायें हुए उस वृक्षका देखने लगी और युद्धके प्रकाशका निवारण करनेके लिए अपना बायाँ हाथ भोक्षेपर रक्ख-रखकर एक दूसरीकी परापर उँगलियोंमें वह वृक्ष दिखाने लगी ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ नेत्रके सामने आये हुए केशोंकी हटाती हुई वे स्त्रियाँ मकानकी छतों, कमरों और अटारियोंपर अधिकसे-अधिक सन्ध्यामें एकत्र हो गयी ॥ ६६ ॥ कितनोंकी आँखें उस वृक्षका निहारते-निहारते नींदकी बोझसे बोझिल हो गयी । इस तरह उस समय सारा नगर विस्मित हो रहा था ॥ ६७ ॥ उधर शत्रुघ्न अपनी सेना लेकर चले । नगरमें बाहर निकले ही थे कि उनके रथवाले धाँड़े रास्तेमें बैठ गये और कोचवानके बार-बार मारनेपर भी नहीं उठे । यही दशा कुश और लवक भी रथकी हुई । उनके घोड़े भी रास्तेमें बैठ गये और कितने ही उठे खानपर भी नहीं उठे तो वे सब लौटकर आश्रयके साथ रामके पास पहुँचे और यह हाँछ बताया ॥ ६८-७० ॥ यह मृता तो वे समझे विचारते लगे कि इस विषयमें पूर्णतया विचार करके काम करनेकी आवश्यकता है । आज अविचारितासे काम नहीं चलनेका है ॥ ७१ ॥ इसमें जरूर कोई कारण है । बात पहले पुरोहितको बुलाकर पूछ लेना जरूरी है । यद्यपि रामचन्द्रजी सब कुछ जानते थे, फिर भी मनुष्यभावमें उन्होंने पुरोहितको बुलवाया । रामके आज्ञानुसार तुरन्त गुरुजी राजसभामें जा पहुँचे । तब राम गुरुके आगे गये और एक उत्तम आसनपर बिठाकर पूजन करनेके अनन्तर सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ७२-७४ ॥ यह सब सुनकर गुरु बसिष्ठने कहा कि इस विषयमें आप वाल्मीकिजीसे पूछ-ताछ करें तो अच्छा होगा । क्योंकि उन्होंने ही आपके चरित्रको बताया है ॥ ७५ ॥ गुरुके आज्ञानुसार रामने वाल्मीकि

प्रत्युद्गम्य मुनिं रामो ददाश्वामनमुत्तमम् । नन्वा ममूज्य विधिवन् सर्ववृत्त न्यवेदयत् ॥७७॥
 ततो विहस्य वाल्मीकिः प्रोवाच रघुनन्दनम् । सर्वं वेत्ति भवान् राम किमर्थं मां तु पृच्छसि ॥७८॥
 त्वं चेत्पृच्छसि रामात्र मानुषं भावमाश्रितः । तर्हि ते कथयाम्यद्य भृशुष्व रघुनन्दन ॥७९॥
 त्वयाऽत्र वर्जितं हास्यं त्वद्भिया मकर्त्तव्यैर्जनैः । हास्यकाणि कर्माणि संप्रयत्नान्ववर्त्तते ॥८०॥
 विवाहादिसमुन्मादाः कथावार्तादिकौतुकम् । मङ्गलोन्माहरीणानि नृत्यं यज्ञादिमन्त्रिकाः ॥८१॥
 यात्राः संवत्सरोन्माहास्यका एवावर्त्तते । यद्यद् कर्म तोषकारि हास्यकारि च तन्मरैः ॥८२॥
 एकमम्बत्सरं नात्र क्रियते रघुनन्दन । उन्माहदेवताः सर्वास्तथा कर्माङ्गदेवताः ॥८३॥
 इन्द्रादिलोकपालाश्च दृष्ट्वा स्वीयं प्रयत्नम् । त्वं भूम्यां ततो गम तद्वत् कथयन्विधिम् ॥८४॥
 ततो विधिवत्तच्छ्रुत्वाऽममर्थस्त्वां निवेदितुम् । त्वयि कृष्टिमामर्ष्यः सोऽश्वत्थे सप्रवेशितः ॥८५॥
 हितार्थं निर्जराणां च सोऽद्य तिष्ठति पिप्पले । प्रक्षिपन्ध्रुपत्नान् राम छेत्तुकामन् समागतान् ॥८६॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवः क्रोधमापयो । अहमेवायं गच्छामि मारं पश्यामि ब्रह्मणः ॥८७॥
 कथं नाम रघुश्रेष्ठः स्वशिक्षां परिवर्त्तयेत् । ह्युक्त्वाह्वापयामास स्वीयां सेनां तदा प्रभुः ॥८८॥

ततस्तं बोधयामास वाल्मीकिमुनिमत्तमः ।

क्रोधं त्यज रघुश्रेष्ठ भृशुष्व वचनं मम । सच्चिदानन्दरामस्त्वमानन्दचरितं तव ॥८९॥
 मयाऽस्ति वर्णितं राम तत् किञ्चिन्पुत्रयोर्मुखात् । त्वयाऽपि यत्तममये श्रुतं गङ्गातटे पुरा ॥९०॥
 यस्य मश्वरणादेवानन्दरूपो मधेन्नरः । हास्यं व्रजेपि न च चेत्तर्हि ते चरितं त्रिदम् ॥९१॥
 न जनाः कीर्तयिष्यति सुस्वरूपं स्मितं विना । अन्यत् किञ्चित् प्रवक्ष्यामि प्रभो वृत्तं तवःप्रतः ॥९२॥
 छतकोटिमितं तेऽत्र चरितं यन्मया कृतम् । पुरा त्वया विविक्षं यन् सर्वत्र रघुनन्दन ॥९३॥

का बुल्बाया । यह संदेश पाते ही वाल्मीकि रामसे मिलनेका चय पड़े ॥ ७६ ॥ वहाँ पहुँचनेपर रामने उठकर उनको आगवानो की ओर एक मुनार आसनपर बिठाकर पूजन किया । फिर ज कुछ वृत्तान्त बताना था, सो बताया ॥ ७७ ॥ यह सब सुना तो हंसवर वाल्मीकिने कहा—हे राम ! आपसे कुछ छिपा नहीं है, आप सब जानते हैं । फिर हमसे क्यों पूछते हैं ? ॥ ७८ ॥ हाँ यदि मानवभावका आश्रय लेकर आप हमसे पूछते हैं तो बताना हूँ, मुनिम् ॥ ७९ ॥ आपने अपने राज्यमें सेनाका प्रनाश कर दी है । इससे सब लोगोंने ऐसे गुप्त कार्योंका करना बन्द कर दिया है, जो हमी-खशास ही सम्पन्न हो सकते हैं ॥ ८० ॥ विवाह, कथावार्ता, खेल-तम शी, नाच गान, यज्ञादि सर्त्कयाएँ, यात्रा और सांवत्सरिक उत्सव आदि कम लाग नी कर रहे हैं । कहनेका मतलब यह कि जितने कार्य हृदयको आनन्दित करनेवाले हैं, वे सब आज एक वर्त्तमान हैं । इससे व्याकुल होकर समस्त उन्माहदेवता, कर्माङ्गदेवता तथा इन्द्रादि लोकपाल भूमण्डलपर अपनी पूजाको नुस्त होते देख बह्मके पास गये और उन्हें अपना दुःख सुनाया ॥ ८१-८४ ॥ इसके बाद बह्माजी आरसे कुछ कहने-सुननेमें असमर्थ होकर उस पीपल वृक्षमें गुप्तस्वसे प्रविष्ट हो गये हैं । देवताओं की कल्याणकामनासे वे आज भी उसमें बैठे हुए हैं । जो कोई उस वृक्षको काटनेके लिये जाता है, वे उसपर पत्थर बरसाते हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ मुनिराज वाल्मीकिने मुख्यसे यह हाल मुनवर रामको श्रुत आ गया और उन्होंने कहा कि आज मैं स्वयं जाकर बह्माका पराक्रम देखता हूँ । रघुवंशका एक श्रेष्ठ सन्निध अपने आदेशमें किसी प्रकार का उलट-फेर नहीं कर सकता । इतना कहकर रामने अपनी सेना तैयार करनेकी आज्ञा दी ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ तब वाल्मीकि समझाने लगे—हे रघुश्रेष्ठ ! इस प्रकार क्रोध न करके मेरी बात सुनिये । आप सञ्ज्ञात् सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म हैं और आपका चरित्र लोगोंको आनन्दित करनेवाला है । उस मैने ही बनाकर आपके पुत्रोंके मुखसे यज्ञशालामें सुनवाया था, उसे आपने भी सुना है । फिर जिसके मुनन मात्रमें मनुष्य आनन्दमग्न हो जाता है, ऐसे पुनीत चरित्रको लोग—यदि आप न हंसनेका नियम रखेंगे—तो नहीं सुन सकेंगे । क्योंकि कथा सुनकर आनन्दको प्राप्त लोग हंसते बिना नहीं रह सकेंगे । इसके सिवाय हे प्रभो ! मुझे आपसे कुछ और भी कहना

भागाद्भारतवर्षात्तर्गताद्रामायणान् प्रभो । सारं सारं प्रगृह्णाथ यद्यद्रम्यं मनोरमम् ॥ ९४ ॥
 कथानकं तेन तेन व्यासेन मुनिनाऽत्र हि । अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ॥ ९५ ॥
 कृतान्यन्येऽपि ध्रुवः पट्टशस्त्रादीन्यनेकशः । अग्रे सर्वे करिष्यति सारं रम्यं प्रगृह्णा च ॥ ९६ ॥
 ततोऽग्रे शोकरूपं च यन्मया दृष्टं येन । चतुर्दशवर्त्मनश्च कंकेपीदृष्टभावनः ॥ ९७ ॥
 कृतं चित्रं मीनाया विरहादि च राघव । तत् किञ्चिच्छेषभूतं हि चतुर्विंशन्महत्प्रकम् ॥ ९८ ॥
 तावन्मात्रं वदिष्यन्ति यद्वाल्मीकेः कृतं त्विति । तन्मयं सकल ज्ञान्वा भावि शृत रघूत्तम ॥ ९९ ॥
 शोकस्तदुपयोगश्च पूर्वमेव मयेति नः । युद्ध प्रमाने भातव्य शोकश्चैवापराद्धके ॥ १०० ॥
 रतिनिशायां श्रोतव्याऽऽनन्दरामायणं मदा । युद्धं ज्ञेयं भारतं हि रतिर्मानसं स्मृतम् ॥ १०१ ॥
 शेषभूतं चतुर्विंशमहम् शोक उच्यते । तत्र भाविषरेणतदानन्दचरितं तत्र ॥ १०२ ॥
 शतकोटिमितं पूर्वं यन्मयैव विनिर्मितम् । नवकाण्डमितं रम्यं यद्वादशसहस्रकम् ॥ १०३ ॥
 नवोत्तरशतं सर्वं क्वचिन् स्थाम्यति भूतले । तत्र भाविष्यद्गदाम न कोऽप्येतां मनोरमाम् ॥ १०४ ॥
 अष्टोत्तरशतः सर्गेर्निर्मिता मेरुणान्विताम् । तत्र कर्तनमालां नो खडयिष्यति भूतले ॥ १०५ ॥
 नवकाण्डयुतं रम्यं दृष्ट्वा त्वत्तद्विहेतवे । एतद्धि रक्षायिष्यति यात्रन्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १०६ ॥
 यदा तत् खडितं पूर्वं व्यासेन मुनिना तत्र । शतकोटिमितं रामचरितं यन्मया कृतम् ॥ १०७ ॥
 तदा किञ्चिद्विदितं दृष्ट्वाऽहं तूष्णीमेव सन्धितः । भविष्यति कलौ मन्दमनसोऽन्धायुषो नराः ॥ १०८ ॥
 न ममर्था मम ग्रन्थं त्विम श्रोतु कदापि हि । अतो व्यासेन मुनिना मत्काव्यं यन्पृथक् कृतम् ॥ १०९ ॥
 तत्सम्यगित्यहं मत्वा परां तुष्टिं गतः प्रभो । अनन्तरं प्रार्थयाम्यद्य नवकाण्डमितं त्विदम् ॥ ११० ॥
 आनन्दरामचरितं न विरूपय राघव । वर्जयिष्यमि चेद्भास्यं तदा दुःखमयं प्रभो ॥ १११ ॥

है । मैंने जो सौ करोड़ श्लोकोमें आपके चरित्रका वर्णन किया है, उसे हे रघुनन्दन ! आप कुछ समय पहले कई भागमें बाँट चुके हैं ॥ ८९-९३ ॥ उनमेंसे जो भाग भारतवर्षके लिये चुना था, उसके सार अथवा लेख जो कथानक अच्छे थे, मूलतः मात्रसे समझमें आ जाते या कानोंकी प्रिय लगत थे, उन्हींके आधारपर व्यास-देवने अष्टादश पुराणों तथा उपपुराणोंको बना दिया है । इनके अतिरिक्त भी बहुतसे ऋषि उन्हींकी सहायतासे पट्टशस्त्र आदि कितने ही शास्त्र बनायेंगे ॥ ९४-९६ ॥ कुछ ही समय बीतनेके बाद कंकेपीको दृष्टासे आपकी श्रीदृष्टि पर्यन्त जो दुःख झेलने पड़े थे, संताक विरह आदिका दुःख जो चौबीस हजार श्लोकोसे कुछ कम है, उतने ही चरित्रकी त्याग मुक्त वात्सल्यिका बनाया हुआ मानने । इस भावी स्थितिको समझकर ही मैंने आपके उतने शोकमय चरित्रको विशेष उत्साहके साथ लिखा है । सब लोगोंको चाहिये कि सबेरे धुड़-चरित्र तथा दीपहरके बाद शोकचरित्रका श्रवण करें । युद्धचरित्रका मतलब महाभारत, रति-चरित्रका श्रीमद्भागवत तथा वाकी चौबीस हजार श्लोकोका मतलब शोकचरित्र माना गया है । आपके भावी वरदानके प्रभावसे आपका यह आनन्दरामायण, सौ करोड़ श्लोकोवाला मेरा बनाया रामचरित्र, नौ काण्डोवाला द्वादश सहस्रात्मक रामचरित्र एवं एक सौ नौ श्लोकोवाली रामायण ये सब पृथ्वीतलमें कहीं न कहीं रहेंगे ही । आपके भावी वरदानसे एक सुन्दर कर्तनमाला, जिसमें १०८ सर्ग हैं, सुमेरुकी मनकासदृश अलगसे लगी है, इसका कोई भी खण्डन नहीं कर सकेगा । इस नौ काण्डोवाले चरित्रको जोत आपकी प्रसन्नताके लिए तबतक सम्हालेंगे, जब तक कि संसारमें सूर्य-चन्द्र विद्यमान रहेंगे ॥ ९७-१०६ ॥ मेरे बनाये सौ करोड़ श्लोकोवाले रामचरित्रका खण्डन करने जब व्यासजीने १८ पुराण बनाये थे, तब उससे किसी प्रकारका कल्याण देखकर ही मैं चुप रह गया था । उस समय मेरे विचारमें आया कि जाँच चलकर कालियुगमें लाग मन्दबुद्धि तथा अल्पायु होंगे । इस कारण वे मेरे इतने बड़े ग्रन्थको कभी नहीं सुन सकेंगे । व्यासजीने मेरे काव्यसे कषायें अलग करके जो पुराणोंको बनाया, सो बहुत अच्छा किया । उससे

भविष्यति शेषवद्वि चैतन्वापि मनोदम् । अतस्ते कथयाम्यद्य येन ते शिशितं भुवि ॥११२॥
 भविष्यति मृषा नैव येन तुष्टास्तु देवताः । भविष्यति जनाश्चापि मर्या मन्कथिता भवेत् ॥११३॥
 जना हसन्तु सर्वे प्र दानानां दानं विना । आप्यमाच्छाद्य वस्त्रेण कदा कौतुकदर्शनान् ॥११४॥
 हाम्य लक्ष्मीसूचकं हि हस्मिन् गौरवदायकम् । भागवत् हस्मिन् चैतदास्पाच्छृणु न किञ्चन ॥११५॥
 नारी स्मिता नना यस्मिन् मेरे तन्मन्दिरं स्मृतम् । लक्ष्म्याऽपि स्मर्यते तत्र निश्चल रघुनन्दन ॥११६॥
 स एव पुरुषो धन्यो यस्य म्यात्र स्मिता ननम् । स तत्र पुरुषो निधो यस्यास्य क्रोधमयुतम् ॥११७॥
 प्रमदा निदिता सापि यस्याः क्रोधयुतं भुवम् । गर्ददन्पानहास्य हि सर्वदा ते मुनीश्वराः ॥११८॥
 अतस्त्वां प्रार्थयाम्येतन्मानय त्वं वचो मम । न कमेति विधिर्गर्वं त्वं तात वेत्ति राघव ॥११९॥
 आनविष्यामि क्षरणं तवाहं चतुराननम् । एवं बाल्मीकिरेचनमर्गकृत्य रघूत्तमः ॥१२०॥
 एवमस्त्विति तं प्राह भुवि नष्टवपुर्गोश्वान् । तद्रामवचन श्रुत्वा बाल्मीकिस्तुष्टमानसः ॥१२१॥
 शिष्यं संप्रेष्य ब्रह्माणभनयाग्रामं पिप्पलात् । अथाः सर्वं समुत्तम्युर्णुष्मने नगरीं प्रति ॥१२२॥
 ययौ सैन्येन शत्रुघ्नो रामपार्श्वे स्थितोऽभवत् । रामपुत्रो यमाथार्ता पितुरग्रे निपेदतुः ॥१२३॥
 रामाक्षया भारवाहस्ततो दुर्नयिभञ्जितः । कुतेरेण मुधावृष्टिः सुमन्त्राद्याः सुत्राविताः ॥१२४॥
 सुमन्त्राद्या रामदूतास्तन्क्षणं शयन् ययुः । नन्वा राममुमन्त्रः स रामपार्श्वे स्थितोऽभवत् ॥१२५॥
 वसुः सुरैर्यथाविद्रुः श्रेष्ठार्थं प्रणमाम मः । रामं नन्वाऽत्रवीक्ष्य ब्रह्मा भया यदपराधितम् ॥१२६॥
 तन्ममस्व रघुश्रेष्ठ स्वस्पाक्याः सर्वदा वयम् । पृगऽम्माहं हितार्थं हि त्वया रामावनीतले ॥१२७॥

पुजे बड़ी प्रसन्नता है । अतएव आज आगम से प्रार्थना करती हूँ कि हम गौ काण्डवाले आनन्दरामायणकी शोभा न दिगाविए । यदि आप मदीके लिए लोगोंका हमना रोक दें तो बड़ा अनर्थ होगा । मेरी रामायण किसी कामकी नहीं रह जायगी, इसलिये मैं आपसे कहता हूँ कि कोई ऐसा उपम्य कीजिए, जिससे आपके आदेशमें भी किसी प्रकारका खल्ल न पड़े और दवता तथा मनुष्य भी प्रसन्न रहें और मेरी कविता भी सत्य हो जाय ॥ १०७-११३ ॥ लोग हंस सहा, किन्तु उनके दिल न दियायी द । किन्तु कौतुकको बेलकर यदि लोगोंको हँसी आ जाय तो कण्ठस मुँह टोककर हँस ॥ ११४ ॥ क्योंकि हँसी लक्ष्मीसूचक है, हँसी सबको सुख लानालो वस्तु है और हँसी भगवन्मयो मानी गयी है । कहनेका भाव यह कि हँसीसे बढ़कर कोई चीज है ही नहीं ॥ ११५ ॥ जिस घरमें मुक्कामों दुई नारी रहता है, वह घर दवमदिरके समान पवित्र होता है और सभी बड़ोंपर हा निवास करती है । हे रघुनन्दन ! हममें किसी प्रकारका संशय नहीं है ॥ ११६ ॥ वही पुरुष धन्य है, जिसका मुखमण्डल सदा हमना हुआ दोषे और वही पुरुष प्रधम है, जिसका मुख सदा क्रोधसे युक्त रहे ॥ ११७ ॥ वह स्त्री भी निच है, जो सदा लालचयुक्त मुँह बनाये रहती है । बड़े-बड़े मुनिगण आदि ह्मरको सदासे निन्दा करन आव है ॥ ११८ ॥ अतएव मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी यह बात मान लीजिए । बहुत किसी तरह अभिमान न करके आपको अपने पिता के समान मानते हैं ॥ ११९ ॥ मैं स्वयं जाकर बड़ाको आपका शरणम लाऊँगा—वे आपसे क्षमा माँगेंगे । रामने बाल्मीकिके वाक्यगौरवको सम्झकर उनकी बात मान ली और कहा कि जैसा आप कहते हैं, वैसा ही होगा । रामकी स्वीकृति मत्कर बाल्मीकि परम प्रसन्न हुए और अपनी एक शिष्य भेजकर उस पीपलपरसे ब्रह्माजीको बुलवाया । यह हो आनेपर शत्रुघ्न तथा लक्ष्मणके जो घोड़े अबतक राममें बँडे थे, वे उठ सड़े हुए और अयोध्याको वापस चल दिऐ । शत्रुघ्न और लक्ष्मण भी अपनी सेना लिये हुए आये और रामके पास आकर बैठ गये ॥ १२०-१२३ ॥ रामकी आज्ञासे इतने एकबहारेको छोड़ दिया । इन्होंने आकर अप्रतक्षे वर्षा की । जिससे सुमन्त्रादि जो योद्धा मूर्खित पड़े थे, वे मचेह हो गये ॥ १२४ ॥ इसके अनन्तर बृद्धको छाटनेके लिए गड़े हुए लोग रामके पास आये । सुमन्त्र रामके पास आकर बैठ गये, घोड़ी देर बाद बैराजोंके साथ-साथ इन्द्र और ब्रह्मा भी रामकी समामें आये और बैठ गये । रामकी प्रणाम

अवताराश्च बहवो धृता नो रिपवो हताः संतामुरो वेदहर्ता मत्स्वरूपेण दारिताः ॥१२८॥
 तथालम्बाकं सुधां दातुं मज्जतं मंदराचलम् । दृष्ट्वा म कूर्मरूपेण त्वया पृष्ठे धृतो गिरिः ॥१२९॥
 ममृच्छतीति स्पर्द्धमानं हिरण्याक्षं निहन्य च । त्वया शराहरूपेण जलात्पृथ्वी समुत्पृता ॥१३०॥
 प्रह्लादवचनास्तस्मिन्भादाविर्भूय त्वया पुनः । नगमिहस्वरूपेण हिरण्यकशिपुहन्ताः ॥१३१॥
 तथा राज्यं हतं दृष्ट्वा पुनः तु मघवस्त्वया । बलिर्वाभनरूपेण पातले विनिवेशितः ॥१३२॥
 नृपैरधर्मनिरर्तैर्दृष्ट्वा व्याप्तां भुवं पुनः । त्वयैकविंशद्वारं हि जामदग्न्यस्वरूपिणा ॥१३३॥
 पितृवैर पुरस्कृत्य निःसत्री पृथिवी कृता । दशास्यकुम्भकर्णौ तौ रामरूपेण राक्षसौ ॥१३४॥
 पत्नीवैर पुरस्कृत्य त्वया दृष्टौ हताविह । उद्धारितौ तौ स्वयणौ द्विवारं देवघाततः ॥१३५॥
 एकवारं पुनस्त्वग्रे त्वं तावेवोद्धरिष्यसि । नन्वत्रावचनं श्रुत्वा वसिष्ठो मुनिमत्तमः ॥१३६॥
 सर्वं जानस्यपि जनान्तातुं पप्रच्छ तं विधिम् ॥१३७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे
 उत्तरार्धे रामहस्त्यप्रतिरोधो नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

(वाल्मीकिकी जन्मगाथा तथा बहुतेरे मंत्रोक्ता निरूपण)

श्रीरामदास उवाच

कौ गणै देवघ्नौ तौ कथमुद्धारितौ वद । धृता द्विवारं रामेणाग्रे कथं चोद्धरिष्यसि ॥१॥
 तद्वसिष्ठवचः श्रुत्वा विधिः प्राह विद्वस्य तम् । सर्वं वेत्ति भवान् लोकान् ज्ञापितु मां हि पृच्छसि ॥२॥
 तदा वदाम्यह सर्वं गणयोः क्षापकारणम् । एकदास्य महाविष्णुर्वैकुण्ठे रमया रहः ॥३॥
 संस्थितश्च तदा द्वारि विष्णुं द्रष्टुं सुरोत्तमौ । तावद्विनीकुमारौ हि समाजग्मतुगदरात् ॥४॥

करनेके पश्चात् बह्मने कहा—मैंने जो कुछ क्षपराय किया है, सो क्षमा करें । हे रघुश्रेष्ठ ! आपका कर्तव्य है कि आप हमारा रक्षा करें । पहले भी आपने हमारी रक्षा करनेके लिए पृथ्वीतलपर कितने ही अवतार लेकर हमारे सत्राओंको मारा है । वेदको चुरानेवाले बालासुरको आपने मत्स्यका रूप धारण करके मारा था ॥१२५-१२५॥ हम सबको क्षमृत पिलानेकी इच्छासे, समुद्रमन्थनके समय जब मन्दराचल टूटा जा रहा था, तब कूर्मरूप धारण करके उसे अपनी पीठपर रखता था । “यह पृथ्वी मेरी है” इस प्रकार कहकर डींग मारनेवाले हिरण्याक्षको मारकर आपने शराहरूप धारण करके जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया ॥ १२६ ॥ १३० ॥ प्रह्लादके बचनसे आप तन्मोहमें प्रकट हुए और हिरण्यकशिपुका संहार किया । जब दैत्योंने इन्द्रसे राज्य छीन लिया था, तब आपने वामनरूप धारण करके सोलह मीलों और बलिको पाताल लोक भग्न दिया ॥१३१॥ १३२॥ जब इस पृथ्वीप्रण्डलमें पाणो राजाश्रीका अध्याचार देखा तो परमेश्वरामका रूप धारण करके पितृवैरके स्वाजसे पृथ्वीको क्षयिष्यविहीन कर दिया । रावण और कुम्भकर्णको आपने पत्नीवैरके बहाने यमपुर पहुँचाया । दो बार आपने देवताओंके चापसे अपने गणोंको रक्षा की है और वसिष्ठमें फिर एक बार उनका उद्धार करेंगे । बह्मकी बातको सुनकर सब कुछ जानते हुए भी वसिष्ठने प्रह्लादसे पूछा—॥ १३३-१३७ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमोऽध्यायः समाप्तः ।

वसिष्ठजी कहने लगे—वे दोनों कौनसे गण थे, जिनको देवताओंका शाप प्राप्त हुआ था और आपने उनका उद्धार किया था और फिर भी उद्धार करेंगे, सो कहिए ॥ १ ॥ इस प्रकार वसिष्ठकी बातसुनकर बह्मने हँसकर कहा—आप सब कुछ जानते हैं, किन्तु मुझे ज्ञान प्राप्त करानेके लिए मुझसे पूछ रहे हैं तो मैं भी उन गणोंके शापका कारण बखलाता हूँ । एक समय महाविष्णु एकान्तमें

समागतौ देवर्ष्यौ तौ दृष्ट्वा हारम्भकौ । जयविजयनामानौ तयोः प्रहसन्तुः ॥ ५ ॥
 ताम्प्रां वंदी तदा प्रोक्तौ विष्णुस्तिष्ठति वैरहः । नायं कालो दर्शनस्य तच्छ्रुत्वा प्रोचतुः सुगौ ॥ ६ ॥
 अभुना इष्टुमिच्छावो विष्णुं कथयतां गणौ । द्वार्यावयोरगमनं युवां मृणुत चेति ॥ ७ ॥
 तत्तयोर्वचनं श्रुत्वा तौ पुनः प्रोचतुर्गणौ । न गच्छावो मदाविष्णुमावां लभ्या रहः स्थितम् ॥ ८ ॥
 एवं प्रिवारं ताम्प्रां तौ प्रोक्तौ नेयुश्चतुर्गणौ । तदाऽश्विनीकुमारौ तौ प्रोचतुः क्रोधमूर्च्छितौ ॥ ९ ॥
 आवयोर्वचनं नैव युवाभ्यां हि श्रुतं गणौ । यत्प्रिवारं तस्माद्दि युवां जन्मवयं भुवि ॥ १० ॥
 लभयश्च न सदेहस्तच्छ्रुत्वा रचनं तयोः । गणावपि तयोः श्रापं ददतुर्देववैद्ययोः ॥ ११ ॥
 विनापराधतः श्रापो यस्मादसम्भु श्रावयोः । एकवारं युवां चापि जन्मानश्चतुर्ब ॥ १२ ॥
 एवं परस्परं श्रापं लब्ध्वा हाहेति चक्रुः । तदा कोलः हलधः सीदह्वयामास तान् हरिः ॥ १३ ॥
 तत्तन्मन्त्रकलं श्रुत्वा प्रोचुस्ते जगदीश्वरम् । चत्वारस्ते महाविष्णुं प्रार्थयामासुः सदा ॥ १४ ॥
 येन शीघ्रं विमुक्तिः स्थापन्नो वद महेश्वर । ततः प्रोवाच तान् विष्णुर्मुक्तिः शीघ्रं शुभाऽत्र हि ॥ १५ ॥
 मयि भक्त्या विरोधिण्या जायते नात्र मन्त्रयः । सप्तजन्मानरेणैव भद्रकृपा जायते मतिः ॥ १६ ॥
 युष्माकं रोचते या सा भक्तिः कस्याश्च नीतले । तद्विष्णोर्वचनं श्रुत्वा ते प्रोचुर्जगदीश्वरम् ॥ १७ ॥
 नोऽस्तु भक्त्या विरोधिण्या शीघ्रं ते दर्शनं पुनः । तथेन्युक्त्वा रमानाथस्तान् सर्वान् स व्यसर्जयत् ॥ १८ ॥
 ते जन्मानि ततः प्रापुर्जगन्त्यां ह्यनिमग्नम् । जयो जातो हिरण्याक्षो हिरण्यकशिपुस्तथा ॥ १९ ॥
 आतोऽत्र विजयः पूर्वं तौ इतो विष्णुना पुनः । वारहरूपिणाऽनेन हिरण्याक्षो विदारितः ॥ २० ॥
 नरसिंहस्वरूपेण हिरण्यकशिपुहतः । ततः पुनर्जन्म तौ हि द्वितीयं प्राप्नुवृषि ॥ २१ ॥

लक्ष्मीके साय वीरे थे । वही समय उनके दर्शनार्थे अश्विनो कुमार वहाँ जा पहुँचे ॥ २-४ ॥ उन देवर्ष्योको देखकर जय विजय नामक दोनों द्वारपाल उनके सामने पहुँचे और कहने लगे—इस समय भगवान् एकान्तमें हैं । अतएव आप लोग दर्शन नहीं कर सकते । यह सुनकर वे दोनों देवता बोले—विष्णुभगवान्से जाकर कह दो कि हम अभी इसी समय आपका दर्शन करना चाहते हैं । देवताओंकी बात सुनकर जय-विजयने कहा कि हम अभी उनके पास नहीं जायेंगे । वे लक्ष्मीके साथ एकान्तमें बैठे हैं ॥ ५-८ ॥ इस तरह तीन बार अश्विनो कुमारोंके कहनेपर भी जब जय-विजयने उनकी बात नहीं मानी तो क्रुद्ध होकर उन्होंने आप दत्ते हुए कहा कि तीन बार तुम लोगोंने मेरी बातका उल्लंघन किया है, इसलिए तुम्हें तीन बार गृध्रलोकमें जन्म लेना पड़ेगा । उनके इस शापको सुनकर जब विजयने भी अश्विनो कुमारोंको साप देव हुए कहा कि विना अपराध तुमने हमको साप दिया है । अतएव तुम दोनोंका भी एक बार गृध्रीमन्थर जन्म लेना पड़ेगा ॥ ९-१२ ॥ इस प्रकार आपसमें साप पाकर वे चारों हास्यकार करके पक्षताने लगे और वैकुण्ठभरमे कोलाहल मच गया । तब विष्णुभगवान्ने उनका अपन पास बुलाया ॥ १३ ॥ भगवान्ने उनका वृत्तान्त सुना । इसके अनन्तर आदर्शपूर्वक उन चारों भगवान्से प्रार्थना की—॥ १४ ॥ हे महेश्वर ! जिससे हमलोग शीघ्र इस शापसे मुक्त हो जायें, हमें आप वही उपाय बताइय । विष्णुभगवान्ने उन्हें समझाते हुए कहा कि घबड़ाओ नहीं, शीघ्र ही तुम लोग शापसे मुक्त हो जाओगे । किन्तु उपाय दो है । एक यह कि तुमलोग हमारी भक्तिसे विरोधभाव रखो । दूसरे उपायस हमारी भक्ति करके मुक्ति पानकी चष्ट करो । यदि मेरी भक्तिके विरुद्ध रहोगे तो शीघ्र मुक्ति मिल जायगा और भक्तिके साथ जाहूँ तो मन्त्र श्राप जन्म लेना पड़ेगा । इन दोनोंमेंसे जो उपाय अच्छा लगे, उसे चुन लो । इस प्रकार विष्णुको सब सुनकर उन लोगोंने उत्तर दिया कि हम आपकी भक्तिके विरुद्ध भाव रखते, जिससे शीघ्र मुक्त हो जायें । भगवान्ने भी 'अच्छी बात है' यह कहकर उन लोगोंको बिदा कर दिया । १५—१८ ॥ तदनन्तर वे लोग मृत्युन्त्योकमें जाकर जन्मे । उनमें जब हिरण्याक्ष नामका तथा विजय हिरण्यकशिपु नामका होकर जन्मा । इसके अनन्तर वाराहव्य घोर करके विष्णुभगवान्ने हिरण्याक्षको भाग और नरसिंह-स्वरूप धरकर हिरण्यकशिपुका संहार किया ॥ १९ ॥ २० ॥ दूसरे जन्ममें

जयो जातो रावणोऽत्र कुम्भकर्णस्तथाऽपरः । जातो विजयनामा हि रामेणानेन सौ हतौ ॥२२॥
 तावद्विनीकुमारी हि एक ऐरावण स्मृतः । मैरावणश्च स्वपरं एव सौ अनितावधः ॥२३॥
 पाताले चरदानाच्च रामहृत्पान्मृतिं गतौ । अग्रे जयः शिशुपालो मविष्यति न मंशयः ॥२४॥
 विजयो दन्तवक्त्रश्च मविष्यत्यवर्नातले । द्वापरे कृष्णरूपेण शिशुपालं हरिः स्वयम् ॥२५॥
 वधिष्यति दन्तवक्त्रं तथैव मुनिमत्तम । एवं जन्मत्रयं प्रापाद्भुक्त्वा नो भगवद्गणौ ॥२६॥
 जयविजयनामानौ पूर्ववन् स्वास्यतः शुभौ । द्वारदेशेऽस्य वै त्रिणोर्विकुण्ठे दुःखदर्जिते ॥२७॥
 तावद्विनी देववैद्यो पूर्ववद्विनि ती स्थितौ । एवं मुने त्वया पृष्टं तन्मया परिवर्णितम् ॥२८॥
 भगवद्गणयोः क्षाण्कारणं च पुरातनम् । एव राघव चाग्रे त्वं द्वापरे परमे शुभे ॥२९॥
 नरासंधादिवारिश्च कसार्धरपि भूदलम् । खिन्नं दुष्टाऽत्रावतीर्य कृष्णरूपेण लीलया ॥३०॥
 सर्वान्हुत्वा तोषयुक्तं करिष्यमि महीदलम् । तान् बौद्धान्बुद्धरूपेण कलावग्रे विजेष्यसि ॥३१॥
 वर्णसकरमालक्ष्णं कलेभ्यो रघूत्तम । कल्पिरूपेण सकलान्संहरिष्यमि लीलया ॥३२॥
 एवं दशावताराश्च तथान्येऽपि सप्तमशः । त्वया हितार्थमस्माकं धृताश्चाग्रे धरिष्यसि ॥३३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं स्तुवन्तं ब्रह्माणं समालिख्य रघूत्तमः । मनिवेश्यामने प्राह स्वदर्थं च मुनेर्गिरा ॥३४॥
 हास्यमाश्रयितं किञ्चिज्जनाः कुर्वन्तु ते सुखम् । यथा वाल्मीकिना श्रोतं तथा मा विस्तरास्तु वै ॥३५॥
 सद्रामवचनं श्रुत्वा तदा दृष्टाः सुरादयः । प्रपञ्चं च वाल्मीकिं सभायां रघुनन्दनः ॥३६॥
 ममावतारतः पूर्वं त्वया मन्थरितं कृतम् । कथं ज्ञानं त्वया पूर्वं केन त्वामुपदेशितम् ॥३७॥
 पूर्वजन्मनि कस्त्वं हि किं पुण्यं हि त्वया कृतम् । तन्मये विस्तरेणैव कथयस्वाद्य मां प्रति ॥३८॥

वे दोनों रावण और कुम्भकर्ण हाकर जन्मे और भगवानन रामका रूप धारण करके उन्हें मारा ॥ २१ ॥ २२ ॥
 दोनों अश्विनीकुमारीमसे एक ऐरावण एवं दूसरा मैरावणक रूपसे धरतीपर आया और पाताललोकमें रामके हाथों उन दोनोंकी मृत्यु हुई । अगले जन्ममें जब शिशुपाल तथा विजय दन्तवक्त्रके नामसे जन्मेगा । द्वापरमें भगवान् कृष्णरूपसे उन दोनोंका सहार करगे । इस तरह आपसके शाय शर्यसे ये लोग तीन जन्ममें अपनी कर्मोंका फल भोगकर फिर पहलकी तरह जय विजयके नामसे भगवान्के रारपाल हो जायेंगे, सब उन्हें फिर कोई भेष नही होगा ॥ २३-२७ ॥ तबसे अश्विनीकुमार भी आनन्दके साथ स्वर्गलोकमें निवास करेंगे । हे मुनिराज ! आपने हमसे जो कुछ पूछा, वह मैंने बतलाया । इसका सारांश यह निकला कि उन दोनों भगवद्गणोंके लिए एक प्राचीन ज्ञाप कारण था । उसमें कोई नयी बात नहीं थी । हे राघव ! आगे द्वापर युगमें भी पृथ्वी जब कस तथा जरासंध आदि दुष्टोंके अत्याचारोंमें घबड़ा जायगी, तब आप कृष्ण अवतार लेकर दुष्टोंका सहार करने हुए पृथ्वीका भाग उतारंगे । उसी प्रकार कल्पयुगमें बुद्धका रूप धारण करके आप बौद्धोंको पराजित करेंगे ॥ २८-३१ ॥ हे रघूत्तम ! कल्पयुगके अन्तमें जब समस्त ससार वर्णसकुर हो जायगा, तब आप कल्किरूप धारण करके सबका सहार करेंगे । इस तरह इस व्या, हजारों अवतार आपने हम लोगोंके कन्य पाथं लिया है और अविष्यमें भी लेंगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीरामदास बोले—इस तरह स्तुति करते हुए महाका रामने हृदयमें लगा लिया और अपनी बगलमें बिठाकर कहा कि वाल्मीकिने कथनानुसार मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम्हारे सुखके लिये लोग हैंसे या जो कुछ करें, मुझे कोई आपत्ति नहीं है । वाल्मीकिने जो कहा है, उसके अनुसार मेरी प्रजाके लोग काम करेंगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ रामकी इस बातकी सुनकर जितने देवता थे, वे सब प्रसन्न हो गये । इसके पश्चात् रामने वाल्मीकिसे कहा कि भरे अवतारसे पहले ही आपने मेरा चरित्र रामायण बना डाला है । सो अविष्यकी बातें आपको कैसे पाक्षूम हुई ? उन्हें किसने बताया थी ? ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ पूर्वजन्ममें आप कौन थे और आपने कौनसे पुण्यकार्य किये थे, तो मुझसे कहिए । इस प्रकार रामके प्रश्न

तद्रामवचनं श्रुत्वा वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः । सभायां राघवं सर्वं वक्तुं समुपचक्रमे ॥३९॥

वाल्मीकिस्त्वाच

सम्यक् पृष्टं त्वया राम सावधानमनाः शृणु । राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् ॥४०॥

यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान् । शृणु राघव मत्तत्त्वं कथा मे पूर्वजन्मनः ॥४१॥

पंपातीरे द्विजः कश्चिच्छंखो नाम महायशसः । गुणेः सिद्धिं गतश्चागाक्षदीं गोदावरीं प्रति ॥४२॥

तीर्त्वा भीमरथीं पुण्यां कांतारे कंटकाविले । निर्जले विजने धीरे वैशाखे तापकर्षितः ॥४३॥

वनं चोपरिवेशामौ मभ्याह्नसमये द्विजः । तदा कश्चिद्दुराचारी व्याधश्चापधरः शठः ॥४४॥

निर्भूषः सर्वभूतेषु कालांतक इवापरः । तं कुण्डलधरं विप्रं दीक्षितं भास्करोपमम् ॥४५॥

अङ्गेन मीषपित्वा तु जग्राह कुंडलादिकम् । उपानह्यो तच्छत्रं च वस्त्राणि च कमण्डलुम् ॥

पश्चादित्वाऽथ तं विप्रं गच्छेन्त्याह म मूढधीः ॥४६॥

तथा स मच्छन्पथि शर्कराविले सूर्याशुतप्ते अनवजिते सुरे ।

संतप्तपादस्तृणगोपिते स्थले क्वचिच्च वस्त्रोपरि संस्थितोऽभवत् ॥४७॥

स वै द्रुतं तापतप्तोऽपि निष्टुन्हाहेति वादी प्रजगाम विप्रः ।

दृष्ट्वा मुनिं तं बहुखिन्नमानसं मध्यं गते पूर्णि यदाऽतितीव्र ॥४८॥

व्याधस्य जाता भतिरीदृशी वै तस्मै ददामीति च पादरक्षे ।

स्वीयेन धर्मण तु तस्करेण वने गृहीत सकल च तन्मे ॥४९॥

चीयेण च स्वधर्मेण यद्गृह्णीत वनान्तरे । तदीयमेव तन्मैव व्याधानो धर्मनिर्णयः ॥५०॥

तस्मादुपानह्यो दास्ये मुहुदुःखापनुत्तरे । तेन श्रेणो भवेद्यच्च तद्भवेन्मम पापिनः ॥५१॥

जीर्णो चोपानहावेतौ हस्तौ स्तश्च पदोर्मम । न चाभ्यामस्ति मे कार्यं तस्मात्तस्मै ददाम्यहम् ॥५२॥

करनेपर वाल्मीकिजीने बतलाता प्रारम्भ किया । उन्होंने कहा—आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान भित्त होकर सुनिये । हे राम ! आपके नामकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जिसके प्रभावसे आज मैं ब्रह्मर्षिपदपर बैठा हूँ । अच्छा, पहले अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त ही बतलाता हूँ । कम्पा सरोवरके पास कोई एक महान् यशस्वी शङ्ख नामका ब्राह्मण रहता था । उसने गुरुके पाससे सिद्धि प्राप्त की और कुछ दिनों बाद गादावरी नदीपर गया । उसे पार करके भीमरथी नदी पार किया और एक ऐसे निर्जन वनमें पहुँचा, जहाँ जलतक मिलता नहीं था । वह वैशाखका महीना था । भारे गर्मीके उसका जी बेचैन था । दोपहरके समय चकरकर वह उसी वनमें बैठ गया । उसी समय धनुष-बाण लिये एक दुष्ट व्याध उसके पास आ पहुँचा ॥ ४०-४४ ॥ वह दूसरे यमराजके समान भयानक और निर्दयी था । उसने उस सूर्यके समान तेजस्वी ब्राह्मणको तलवारसे भयभीत करके उसके कुण्डलादि बाभूषण, जूते, छत्रो, वस्त्र तथा कमण्डलु आदि छीन लिये । इसके बाद उसने "जाओ" कहकर छोड़ दिया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ बेचारा ब्राह्मण कङ्कड़-मत्थर तथा सूर्यके तापसे जलती हुई चानुकाव्याप्त मार्गसे चलने लगा । जब उसके पैर ज्यादा जलने लगते तो किसी तृण आदिपर पैर ठंडा करके आगे बढ़ता था । चलते-चलते जब पैर बहुत जलने लगे तो वह कपड़ा बिछाकर एक स्थानपर बैठ गया ॥ ४७ ॥ थोड़ी देर बाद उत्कर उस कड़ाकेकी घूपमें पैरके जलनेसे हाहाकार करता हुआ वह फिर आगे बढ़ा । उस ब्राह्मणको जलती छुपहरीमें इस तरह दुःखित देखकर व्याधके मनमें आया कि मैंने इसकी सारी वस्तुयें तो छीन ली हैं । न ही, इसे इसके जूते लौटा दूँ । इसकी सब चीजें छीनकर देने अपने धर्मका पालन किया ही है । हे राम ! वनमें आने-जानेवाले पथिकोंके सामान छीन लेना, उन चोरोंके धर्ममें सम्मिलित है । उस चोरने सोचा कि इसके जूते इसे दे दानूँ तो इसका क्लेश दूर हो जायगा और उससे जो पुण्य होगा, सो मुझ

इति निश्चित्य मनसि नृणां गत्वा दरीं च त्री । धर्मं च तत्र दत्तं । अजयति । सौदमे ॥५३॥
 उपानहो गृहीत्वाऽसौ निर्वृतिं च परां दरीं । सुप्तं च तत्र न प्रपद्ये । पुनरुपनीत् ॥५४॥
 पूर्वपुण्येन ते जाता श्रमा मुद्विर्बनेन च । नृणां पुण्यं दत्तं दत्तं पुनरुपनीत् ॥५५॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा दारिद्र्यं व्याधोऽभवत्तद्वचः । किं मयाऽऽनरत्नं पूर्वं नृणां वक्तुमहेमि ॥५६॥

अथ उवाच

आतपो बाधते धीरो नात्र छाया न वै जलम् । तन्मास्थलार्थं गत्वा यत्र छायास्तु वर्तते ॥५७॥
 तत्र गत्वा जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः । तस्मै सुकृतं पुं मयिस्मरं वदाम्यहम् ॥५८॥
 इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राह कृताजलिः । इतोऽपि दूरे मलिलं वर्तते च सगेवरे ॥५९॥
 कपिन्धास्तत्र वै संति फलमारेण पांडिताः । गन्धर्वस्तत्र मनुष्यैर्भविता नात्र मगधः ॥६०॥
 व्याधेनैव समादिष्टस्तेन साकं यया मुनि । किन्दूदूरं ततो गत्वा ददर्शादयं सगेवरम् ॥६१॥
 स्नात्वा मय्याह्वेलायां तस्मिन्परमि निर्मले । वामपीपतिधायकं कृत्वा माध्याह्निकीः क्रियाः ॥६२॥
 देवपूजां तथा कृत्वा फलमूलमलहितः । व्याधोऽपनीतं सुखादु कपिन्धुं श्रमहारि च ॥६३॥
 सुकृत्वा सुखं जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः । सुप्तोऽपि दूरे प्राह पूर्वपुण्यं वदामि ते ॥६४॥
 शाकले नगरे पूर्वं द्विजन्मं वदाम्यहम् । स्तम्भो नाम महापापी तथा श्रीवत्सगोत्रजः ॥६५॥
 तदेष्टा गणिका काचित्पदाऽऽसीत्प्रमदोपनः । त्यक्तनिर्वाक्रियो नित्यं सुदृढं नृणां मार्गमा ॥६६॥
 शून्याचारस्य मूढस्य परिन्द्यक्तक्रियस्य च । ब्रह्मणी ते नदाऽऽधर्मीद्वायां वी. तमयी तथा ॥६७॥
 सा त्वां पर्यचरन्सुभ्रुः सवेष्ट्य ब्राह्मणाधमम् । उभयोः धालयन्ती च पादौ न्वन्प्रियकाभ्यया ॥६८॥
 उभयोरप्यधः शीते उभयोर्वचने रता । वेद्यया वायमाणाऽपि दिनकार्ये द्वयोः स्थिता ॥६९॥

राजीके पक्षमें अच्छा ही होना ॥ ५८-५९ ॥ मे नृ भी पुण्य और छोटे हैं । इसलिए मेरे पैर में न बाधेंगे । तब इसे दे ही डालूँ । इस प्रकार निश्चय करके तीव्रता हुआ वह उस घुड़ सभा कंकड़ियोंके गड़नेसे दुःखी ब्राह्मणके पास पहुँचा और उसे उसमें जूत दिये ॥ ५८-५९ ॥ जूता मिलनेपर उसे बड़ा आनन्द मिला और ब्राह्मणने कहा—तुम सुखी होओ । हे वनेचर । पूर्वजन्मके विषय पुण्यसे तुम्हारे पैरों में बुद्ध हुई है । जिससे तुमने वैशाख महीनेमें इस जूतका दान दिया है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणकी बात सुनकर व्याधने कहा कि पूर्वजन्ममें मैंने कौनसा पुण्य किया था । मैं आप विलम्बपूर्वक मुझे बताइये ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणने कहा कि इस समय मुझे धाम ज्यादा लय रहा है । इस आनन्द ने तो पानी छेड़ न दिया ही है । इसलिए किसी एक स्थान पर चलो, जहाँ कि छाया और पानी मिल सके । वहाँपर ही मैं तुम्हें तुम्हारे पूर्वजन्मका कृतार्थ सुनाऊँगा ॥ ५९ ॥ ६० ॥ इस प्रकार ब्राह्मणकी बात सुनी त. हाथ जड़कर व्याधने कहा कि पास ही सरोवरमें पानी है और उसमें आस-पास बहुतस केदक वृक्ष फलसे लदे हुए विद्यमान हैं । वहाँपर रहनेसे आप सन्तुष्ट हो जायेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ व्याधने ऐसा कहनेपर ब्राह्मण उसके साथ चलकर उस सरोवरके पास पहुँचा । दोपहरके समय उसने स्नान किया, कपड़ पहने और मध्याह्निकारकी क्रियाएँ पूरी कीं । फिर देवताका पूजन करके व्याधने अपने हुए कंधेके फल खाए, सरोवरका मीठा पानी पिया और छायामें सुखसे बैठकर विप्र बाला—भव मैं तुम्हारे पूर्वजन्मके पुण्य बताऊँगा ॥ ६१-६४ ॥ पूर्वजन्ममें शाकल नामकी नगरीमें तुम वेदपरगामा स्तम्भ नामके ब्राह्मण थे । श्रीवत्स गोत्रमें तुम्हारा जन्म हुआ था, किन्तु तुम बड़े भारी पापी थे । तुम इसके बादवश नृम एक वेदपापर मुग्ध हो गये । तुमने अपनी सारी निष्क्रियाएँ छोड़ दीं और शूद्रके समान सूत्रों के मार्गपर चलने लगे । तुम जैसे मूर्ख तथा आचार विहीन ब्राह्मणके घरमें एक ब्रति रूपवत्ता व्याही थी थी । वह उस तेष्याकी सेवा तुम्हारी खूब सेवा करती थी । तुम्हें प्रसन्न रहनेकी इच्छासे वह तुम दोनोंके पैर धोती थी ॥ ६१-६४ ॥ तुम दानोंकी अपेक्षा नीची श्रम्यापर

एवं शुभ्रपयस्या हि भर्तारं वेदयथा सह । जगाम सुमहान्कालो दुःखिताया मदीतले ॥७०॥
 अपरस्मिन्दिने भर्ता माहिष्यं मूलकाञ्चनम् । अमक्षयञ्चुद्रकर्मा निष्पावांस्तिलमिश्रितान् ॥७१॥
 तमपथ्यमशित्वा तु वमथैव वरैरेवम् । अपथ्यदाहणो रोमा व्यजायत मगदरः ॥७२॥
 स दहमानो रोगेन दिवागत्रं तु भूरिशः । यावदास्ते गृहे वित्तं तावद्वेदय च सस्वित्ता ॥७३॥
 गृहीत्वा सकल वित्तं पश्चान्नोशाम मन्दिरे । अन्यस्य पाश्वमासाद्य तस्यौ घोराऽतिनिर्घृणा ॥७४॥
 ततः स दीनवदनो व्याधिव्याधामुर्पाडितः । उक्तवान्सुरुद्रभायार्थं रुजा व्याकुलमानसः ॥७५॥
 परिपालय मां देवि वेदयामक्त मुनिष्ठम् । न मयोपकृतं किञ्चित्तव सुन्दरि पावनि ॥७६॥
 यो मार्या प्रणता पापो नानुपन्येन मृदयीः । स पटो भवतीत्यत्र दश जन्मानि मम च ॥७७॥
 दिवागत्रं महामामे निन्दितः साधुभिर्जनैः । पापयोनिमयास्यामि त्वा माध्वीमवमन्य वै ॥७८॥
 अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि सदा निष्ठुरभाषणः । एवं ब्रूवाण भर्तारं कृताञ्जलिपुटाऽब्रवीत् ॥७९॥
 न दैन्यं भवता कार्यं न क्रोडाकांत मां प्रति । न चापि त्वयि मे क्रोधो वर्तते मुमनामपि ॥८०॥
 पुन कृतानि पापानि दुःखानि भवन्ति हि । तानि यः क्षमते साध्वीपुरुषो वा स उत्तमः ॥८१॥
 यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि । तद्भुञ्जन्त्या न मे दुःखं न विषादः कथंचन ॥८२॥
 इत्येवमुक्त्वा भर्तारं मा सुभ्रान्वपालयन् । आनीय जनकाद्वित्तं बन्धुभ्यो वरवर्णिनी ॥८३॥
 क्षीरोदवामिनं विष्णु भर्तुर्देहं व्यचिन्तयन् । शोधयन्ती दिवागत्रो पूर्णं भूषमेव च ॥८४॥
 नखेन कर्पती भर्तुः कुमीन्देहाच्छनैः शनैः । न मा स्वपिति रात्रौ तु दिवा वा वरवर्णिनी ॥८५॥
 भर्तुर्दुःखेन संतप्ता दुःखितेदमथाब्रवीत् । देवाश्च पातु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः ॥८६॥
 कुर्वंतु रोगहीन मे भर्तारं हृत्कल्पमपम् । चाडिकार्यं प्रदास्यामि रक्तं मांसं मुखोद्भवम् ॥८७॥

सोती और दोमाकी आज्ञाका पालन करता रहती थी ॥ दशपि वेग्या उसे अपनी सेवा करनेसे रोकती, फिर भी वह न मानती और तुम दोनोंकी परिचर्याम रात दिन लगा रहती थी । इस तरह सेवा करते करते उस बुद्धिवाके बहुत दिन बीत गये । एक दिन स्तम्भने तिलमिश्रित कुछ ऐसी चीजें खा ली, जिसमें कैदस्त होने लगा और कुछ दिनों बाद उसने अतिदारुण अमन्दर रोगका रूप धारण कर लिया ॥ ६९-७२ ॥ उस रोगसे स्तम्भ रात-दिन मलने लगा । जब एक धर्म सम्पत्ति थी, तब तक वेण्या रही । बादमें घरकी रही-सही पूँजी खुराकर निकल भागी और तिसा दूसरेके घर जा बँडे । ऐसी अवस्थाम रीता हुआ स्तम्भ अपनी स्त्री-के कहने लगा—॥ ७३-७५ ॥ हे देवि ! मुझ वेग्यामामा तब निष्ठुर पुरुषकी रहा करो । हे सुन्दरि ! हे पावनि ! मैंने जीवनभरम तुम्हारा कोई उपकार नहीं किया है । शाम्भ कहना है कि जो पापी शीलवती भार्याका निरादर करता है, वह सत्रह जन्म तक नतुनक हाकर जन्म लेता है । अच्छे पुरुष ऐसे मनुष्योंकी रात-दिन निन्दा करते हैं । तुम जैसी स्त्री साधवा नाराका अपमान करके मुझ किसी नीच योनिमे जाना पड़ेगा ॥ ७६-७८ ॥ क्योंकि मैं सदा तुम्हारे ऊपर क्रुपित रहना और हस्त्री बातें बोला करता था । इस प्रकार दीनभावसे प्रार्थना करने हुए पतिस स्त्रीन हाथ जाडकर कहा—हे कान्त ! आप किसी प्रकार दुखी न हों और उन बीती बातोंके लिए पश्चात्ताप न कर । मुझ तुम्हारेपर उनका लिए कोई चिन्ता या श्राव नहीं है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अपने पूर्वजन्मके किये हुए पाप ही दुःखरसे प्राप्त होने हैं । जो स्त्री या पुरुष उन दुःखोको सह लेता है, वे उत्तम हैं । मुझ परिनिर्गत पूर्वजन्ममे जो पाप किये थे, उनको भागत हुए मुझे किसी तरह का दुःख या विषाद नहीं है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ इतना कहकर उसने अपने पतिको हाइस बँचाया और पिता तथा भ्राताओंके पाससे धन माँग लाकर सेवा करने लगा । वह उस रोमी पतिके शरीरमे क्षारसागरनिवासी विष्णुमणवान्का निवास मानती हुई रात-दिन मल-मूत्र उठाकर सेवा करती रही ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ पतिके शरीरमे पड़े हुए कीड़ोको नाखूनसे निकालती रहती थी । इस प्रकार सेवा करनेसे रात-दिन कभी उसे सोनेतक की छुट्टी नहीं मिलती थी । स्वामीके दुःखसे दुःखित होकर वह देवताओको मनाती, पितरोसे विमती करती

सुहृन्नं माहिषोपेतं भर्तुरागोप्यहेतवे । मोदकानपि दास्यामि विघ्नेशाय महात्मने ॥८८॥
 मन्द्वारे करिष्यामि सदैवाहमुपोषणम् । नोपभोक्ष्यामि मधुरं नोपभोक्ष्यामि वै धृतम् ॥८९॥
 तैलाभ्यङ्गविहीनाऽहं सदा स्थास्यामि भून्ते । जीवन्वयं भोगहीनो भर्ता मे शरदां शतम् ॥९०॥
 एवं सा ध्याहरदेवी वामरे वामरे गते । तदा चागन्मुनिः कश्चिन्महान्मा देवलाङ्गुथः ॥९१॥
 वैशाखमासे धर्मात्तः स ययौ तस्य वै गृहे । तदा ते भार्यया चोक्तं वयोऽयं गृहमागतः ॥९२॥
 तेन ते रोगहानिः स्यात्तस्यानिध्यं करोम्यहम् । यदाज्ञपयामि त्वं मां नोचेन्नैव करोम्यहम् ॥९३॥
 शत्वा त्वां धर्मविमुखं भिषग्व्याजेन वञ्चितम् । तस्यानिध्यं तु वै कर्तुं दत्ताऽऽता वै पुगन्वया ॥९४॥
 तस्य पत्नी तदा तुष्टा पूजयामास मां मुनिम् । पादावनेजनं कृत्वा तज्जलं मृद्भिर्न तैऽगृहम् ॥९५॥
 पातुं तुभ्यं ददौ तीर्थं त्वामुक्त्वा मेषजं न्विति । पानकं च ददौ तस्मै धर्मात्ताय महात्मने ॥९६॥
 दिव्यान्नैर्भोजयामास सुगन्धव्याजने ददौ । त्वयाऽनुमादिता मायं धर्मतापं न्यवारयत् ॥९७॥
 स प्रातरुदिते सूर्ये मुनिर्ग्रामांतरं ययौ । अथ चाल्पेन कालेन सन्निपातोऽवचच ॥९८॥
 त्रिकटुं मुख आधान्मा भर्ताऽहुलिमखण्डयत् । कफेन दन्तपक्तिभ्यां मालिनाभ्यां दृढं तदा ॥९९॥
 ते वक्त्रेऽहुलिलखण्डं तत्स्थितमेवानिकोमलम् । खड्गपिण्डांगुलिं तस्याः पञ्चत्वं त्वं गतः पृथग् ॥१००॥
 क्षर्यायां सुमनोज्ञायां स्मरस्तां पुश्रलीं हृदि । मृतं विज्ञाय भर्तारं भार्या कान्तिमया तव ॥१०१॥
 विकीत्वा बलये स्वे त्वां गृहीत्वा चंदनं बहु । चक्रे चिन्ति तेन माध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा ॥१०२॥
 समालिख्य भुजाभ्यां ते पादौ चादिलिख्य पादयोः । मुखे मुखं निजं कृत्वा हृदये हृदयं तथा ॥१०३॥
 गुह्ये कृत्वा तु गुह्यं स्वमेव सा राममानसा । दाहयामास कन्याणीं भर्तुर्देहं रुजान्वितम् ॥

आत्मना मद् तन्वद्भी ज्वलिते जानवेदमि ॥१०४॥

एवं वरा सा ललना पनिग्रता दददमानं मुपमिद्वद्भी ।

विमुच्य देह सदसा अगाम पनि नमस्कृत्य सुगतिर्योक्तम् ॥१०५॥

और चण्डिकाके समीप यह प्राप्तिना करती-हे देवि ! यदि मेरे पतिदेव जो अब अन्धे हो जायें तो मैं महिषके रक्त और मांससे मिला हुआ अन्न आपका समर्पण करूँगी । यदि वह भी अन्धे हो जायें तो मैं गणेशजीको लड्डू खाऊँगी और प्रत्येक शनिवारका व्रत करूँगी । मैं मिठाई खाना छोड़ दूँगी, घी भी नहीं खाऊँगी, छरीरमें तेल और उबटन लगाता त्याग दूँगी और मर्यादा अमान्यकर साऊँगी । लेकिन मेरे पतिदेव रोगमुक्त हो जायें और सैकड़ों वर्ष जीवित रहें ॥८५-८७॥ इस तरह वह निम्न मानता माना करती थी । इसा बीच एक दिन महात्मा देवल ऋषि सहसा उसके घर पहुँच । वह वैशाखका महीना था । स्तम्भकी स्त्री पतिके पास आकर कहने लगी कि एक कोई बंध एक एक मेरे घर आ गया है । वह अवश्य किसी उपायसे आपका रोग नष्ट कर देगा । आप यदि आज्ञा दें तो मैं उसकी सेवा करूँ, नहीं तो नहीं ॥ ८९-९३ ॥ स्तम्भ (तुम) ने सेवा करनेकी आज्ञा दे दी । स्त्रीने प्रसन्न मनसे देवलकी पूजा की । उनके चरण ओकर उस जलको माथे चढ़ाया और थोड़ा-सा जल दवाके व्याजसे स्तम्भ (तुम) को भी पिला दिया । फिर उन देवल ऋषिको उसने पानी पिलाया । अन्धे-अन्ध पकवान बनाकर भोजन कराया और तुम्हारे कहनेसे उनको पत्नी भी हलकर उनका सन्ताप दूर किया ॥ ९४-९७ ॥ रातभर देवलऋषि उनका घर रहे और मंदरे दूसरे गाँवकी चले गये । थोड़े दिन बाद स्तम्भकी (तुमकी) सन्निपात हो गया । स्त्रीने त्रिकटु (सोठ, मिर्च, पीपल) का काढ़ा बनाकर स्तम्भके (तुम्हारे) मुखमें दिया, इसनमें कफके प्रकोपसे दाँत जकड़ गये और तुमने स्त्रीको एक उँगली काट ली । तुम्हारे मुखमें वह कोमल उँगली पड़ी हो रही और तुम्हारी मृत्यु हो गयी ॥ ९८-१०० ॥ मरणकालमें छव्यापः पड़े हुए उसी पुश्रली वेश्याका स्मरण करने-करते तुमने प्राण त्याग दिया । जब उस सतीने जाना कि तुम्हारी मृत्यु हो गयी है तो अपने दोनों करुण घेबकर बहुत-सी बन्दनकी लफड़ी पहरीदी और उसको धिता बनायी । फिर दोनों भुजाओसे भुजाएँ, पैरसे पैर, मुखसे मुख तथा हृदयसे

त्वमन्तःकाले मणिकेचलया हि देहं त्यक्त्वा त्यक्तकर्म दुर्गत्मा ।
 व्याधजन्म प्रापितं घोरधर्मं हिनामक्तः सर्वदोषमकारी ॥१०६॥
 दत्तं त्वया पानकमपि तु वै भस्मैः पुनः माधवे मद्बुद्धिजाय ।
 भिषग्बुधजाज्ञेन जाता मुचुद्धिर्धमं कर्तुं पादरक्षेऽपि ते वै ॥१०७॥
 घृतं मूर्ध्ना पादशौचावलेपं जलं मुनेः सर्वशय्यपहारि ।
 तेनैव ते सङ्गनिर्मे वनेऽस्मान् जाता श्रोतुं स्वीयपुण्यं मतिश्च ॥१०८॥

‘ब्रूते कृत्वांगुलिं यस्मान्मृतः पूर्वमयांवरे । तस्मादत्र वने मां नादास्तेऽभूदनेश्वर ॥१०९॥
 वेदया वा भिल्लिनी जाता भार्या या तव वर्तते । श्रवणादां मरणमेऽत्र श्रयनं भुवि सर्वदा ॥११०॥
 इति ते सर्वमाख्यातं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । तन्कर्म पुण्यं पपं च दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥१११॥
 अतः परं भारि वृक्षे शृणु तेऽहं वदामि वै । कृष्णनाम धुनिस्त्वग्रे कस्मिंश्चिच्च सरोवरे ॥११२॥
 करिष्यति तपस्तीव्रं चान्नज्यापारजितः । पञ्चालयोविशमांते तन्नेत्राभ्यां बहिः सुतम् ॥११३॥
 वीर्यं दृष्ट्वेवगी काचित्स्वयं स्वलिप्तमलमा । प्रदीप्यति धनोः काले तस्मात्तत्पुण्यतस्तदा ॥११४॥
 किराटाः शालयिष्यति किरातस्त्वं भविष्यसि । उपानद्धारिणेऽत्र यस्मात्तत्पुण्यतस्तदा ॥११५॥
 मविष्यति सङ्गविस्ने वने मत्सुनीश्वरः । तेषां प्रमादादात्तकीकिर्मुनिस्त्व हि भविष्यसि ॥११६॥
 यस्त्वं रामकथां दिक्ष्यां सुप्रबन्धैः करिष्यसि ।

वाल्मीकिरुवाच

इति व्याधं समादिश्य धर्मान्वंशासु जानपि ॥११७॥

उपदिश्य सविस्तारं प्रतस्थे गीतमीं नदा । म धन्यः कुण्डलाद्यैश्च तद्वैस्तुष्टमानसः ॥११८॥
 व्याधोऽपि शङ्करचनत्तस्मिन्नेव वने चिरम् । तन्मन्त्रेणास्त्वमागं यान्धर्मान्प्रीत्याऽकरोच्छुमान् ॥११९॥

इत्युक्तवा आलिंगन करके तुम्हारे साथ धन्यता जिनान् शरीरकी ख्यामकर धृष्ट राममें रमी पतिव्रता स्त्री सती
 हुंकर वैकुण्ठलोकको चले गयी ॥ १०६-१०८ ॥ अ न बाह्योचित कामोंको त्यागते हुए तुमने अन्तःसमय-
 में वेदयाका चिन्तन करते हुए प्राण त्यागे थे । इससे पंचदोषमकारी तथा हितामे आसक्त इस घोरकर्ममय
 व्याधोको मोनिमें उत्पन्न हुए हो । उस समय भिक्षात्र कहीनम आये हुए देवल अधिपति पूजाके लिए तुमने अपनी
 स्त्रीको आज्ञा दे दी थी उसी पुण्यम तुम्हारे हृदयमें धर्म दुष्ट उत्पन्न हुई है । इससे इस समय तुमने मेरे जूने
 बापस दे दिये हैं । तुम्हारी स्थाने देवाक वनासे बाह्यलका घरण जन्म तुम्हारे माधे चलाया था, उसी पुण्यसे
 आज हमारी भट हुई है और तुम अपन पूर्वजन्मका कृतात सुन रहे हो ॥ १०६-१०८ ॥ तुमने पूर्वजन्ममें
 अपनी स्त्रीको उगयी काट ली थी । इसलिए हे वनेश्वर ! म समय तुम भाग्यहीन हो । वह वेदया इस समय
 में लिनी है । मरत समय तुम शरीरपर हा पड़ रहे इस कारण इस जन्ममें तुम्हें सर्वदा भूमिपर शयन करना
 पड़ता है । मैंने अपनी दोगदृष्टिमें तुम्हारे पूर्वजन्मका पाप-पुण्य देखकर तुम्हें बतलाया है ॥ १०६-१११ ॥
 इसके अनन्तर अब मैं तुम्हें तुम्हारे भावी जीवनका हाल बतलाता हूँ सुनो । कृष्णनामके कोई तपस्वी वन
 त्यागकर एक सरोवरके निकट तपस्या करने लगे । तपस्यामें अन्तमें उनकी आँखोंसे वीर्य निकलेगा । उसे
 देखकर कोई सपिणो ला जायगी । उसीके उदरमें तुम किरातके रूपमें उत्पन्न होओगे ॥ ११२-११४ ॥
 किरात लोभ तुम्हारी रक्षा करेगा और तुम उन्हींके साथ रहोगे । जो तुम इस समय पुत्रों मेरा जन्म बापस दे रहे
 हो, इसी पुण्यम एक बार तुम्हारा पक्ष अधिपति भट होगी और उनका दयामें तुम वाल्मीकि नामक अधि
 होओगे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ अपनी अच्छा रचनासे तुम रामकथाका निर्माण करोगे वाल्मीकिजी कहते हैं
 कि इस प्रकार वंशाख मासका धर्म तथा विविध उपदेश कर व्याधमें कुण्डल आदि पाकर प्रसन्न मन काल
 गीतमी नदीकी ओर चले गये । व्याधन श्री शङ्करके उपदेशसे मैंने फलमूल द्वारा ही वंशाख मासके धर्मोंको

न्यायजन्मान्यये जाते कृणः पुत्रस्त्वहं ततः । पद्मगीजठगोभूतस्त्वरण्ये रघुनन्दन ॥१२०॥
 अहं पुरा किरातेषु किरातः सह वर्द्धितः । जन्ममात्रे द्विजन्त्रं मे शूद्राचारग्नः सदा ॥१२१॥
 शूद्रायां बहवः पुत्राश्चोत्पन्ना मेऽजितान्मनः । तत्तर्थाग्रेषु सगन्ध्यं चांगोष्ठमभवं पुनः ॥१२२॥
 घनुर्बाणधरो नित्यं जीवितानामतर्कापमः । एकदा मुनयः सप्त दृष्ट्वा महति कानने ॥१२३॥
 स्वतेजसा प्रकाशतो ज्वलनार्द्धमप्रभाः । तानन्वधावं लोभेन तेषां सर्वपरिच्छदान् ॥१२४॥
 गृहीतुकामस्तथाहं निष्ठतां निष्ठतामिति । अत्रय मुनयोऽपृच्छन् किमायामि द्विजाधम ॥१२५॥
 अहं तानमवं किञ्चिदादातुं मुनिमनसाः । पुत्रदागदयः सति बहवो मे वृधुभिनाः ॥१२६॥
 तेषां संश्रुणार्थाय चरामि गिरिकानने । ततो मामृचुम्ब्यग्राः पृच्छन्त्वा कुटुम्बकम् ॥१२७॥
 यो यो मया प्रतिदिनं क्रियते पापमन्त्रयः । युयवद्भागिनः किं वा नेति नेति पृथक् पृथक् ॥१२८॥
 वयं स्थास्यामहे यावदागमिष्यामि निश्चयान् । यन्पापं ब्रह्महत्यायां यन्पापं मद्यपानतः ॥१२९॥
 तेन पापेन लिप्तामो यदि गच्छामहे वयम् । यन्पापं हेमचौर्येण गुरुदागममात्रं यत् ॥१३०॥
 तेन पापेन लिप्तामो त्वामपृष्ट्वा वनेचर । चेद्वृजामा वयं सर्वे इतस्ते पृष्ट्वा बहिः ॥१३१॥
 संसर्गजनिता पापं ब्रह्मस्वहरणाच्च यत् । तेन पापेन लिप्तामो यदि गच्छामहे वयम् ॥१३२॥
 एवं तच्छपर्यन्तानाविधेः प्रत्ययमागतः । नयेत्युक्त्वा गृहं गत्वा मुनिभिर्यदुदीरितम् ॥१३३॥
 अपृच्छं पुत्रदागदीर्क्षस्त्वनोऽहं रघूनम । पानं तर्पय तन्मर्त्यं त्वं तु फलभागिनः ॥१३४॥
 तच्छ्रुत्वा जातनिर्वेदो विचार्य पुनरागतः । मुनयो यत्र निष्ठन्ति करुणपूर्णमानसाः ॥१३५॥
 मुनीनां दर्शनादेव शूद्रातःकरणोऽभवम् । धनुर्गादि परिन्वज्य दंडं गन्धर्विनोऽम्बुहम् ॥१३६॥

निष्ठाया । व्याधका जीवन वितानेक पञ्चान् मे पद्मगीकी लेनिसे वृणुका पुत्र हाकर जन्मा । मै उस समय किरातों ही में बड़ा और उन्हीके साथ रहन लगा । केवल जन्म मेरा ब्राह्मणके वीर्यमे हुआ था । किन्तु कर्म मेरा सर्वथा शूद्राचित था ॥ १२०-१२१ ॥ एक शूद्रासे मेरा विवाह हुआ और उससे कई पुत्र उत्पन्न हुए । कुछ दिनों बाद मै चोरोसे जा मिली और घनुष-बाण धारण करके संसारां ओंवाक लिए । यमराज सट्टन भयानक चोर हो गया । एक बार मैं एक विकराल ज दून्म सप्त ऋषियोंका दम्बा ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ जलस्त्री हुई अग्नि तथा सूर्यके समान उनका प्रकाश था । उन्हे देखन हा उनके कण्ठमने दीनतके लिए मै चोरोसे दौड़ पड़ा और "ठहरो ठहरो" कहकर विन्मलन लगा । तत्र ऋषिगन कहा -अरे द्विजाधम ! क्यों दौड़ा आ रहा है ? ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ मैंने उत्तर दिया कि आपसे कुछ सैनिक लिये । क्योंकि मेरे परिवारसे सब लाग भूख बैठे है । उन्हीका पालन पोषण करनेक लिए मै वन वन घूम रहा हूँ । तब सप्तर्षियोंने हमसे कहा-अपने कुटुम्बियोंसे जाकर पूछो कि मै ओ नित्य यह पापवी कमाई कर रहा हूँ । तुम लोग अलग-अलग बतलाओ कि उस पापका फल भी भोगीये गा नहीं ? ॥ १२६-१२८ ॥ यह विश्वास रखो कि जबतक तुम लौटकर नहीं आओगे, तब तक मै यहाँ ही रहूंगा । जो पाप ब्रह्महत्या करनेमे और जा पाप मद्य पीनम लगत हैं, हमलोग उन्ही पापोंके भागी हो, जा बिना तुम्हारे आवे यहाँमि जायँ । जो पाप मोना चुराने या गुरुपत्नीके साथ अपमिचार करनेमे होता है, हमलोग उन पापोंके भागी हों, यदि तुमसे बिना पूछे यहाँस जायँ ॥ १२९-१३१ ॥ संसर्गजनित अथवा ब्राह्मणका घन हृदय लेनसे जो पापक लगता हो, हम सब उस पापके भागी हों, यदि यहाँसे पीठ पीछे हटें ॥ १३२ ॥ इस तरह उनके विविध प्रकारकी कसमे खानेपर मुझे विश्वास हुआ और अपने घर गया । वहाँ जंसा उन ऋषियोंने कहा था, उसी तरह घग्के लोभीको हकट्टा करके मैंने पुत्र-स्त्री आदिसे पूछा । उन्हीने उत्तर दिया कि तुम जा पाप कर रहे हो, उससे हमे कोई मतलब नहीं । हम तो केवल फल चाहते हैं ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ उनको बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मै लौटकर फिर वहीं आया, जहाँ दयासे परिपूर्ण हृदयवाले वे सप्तर्षि बैठे मेरा रास्ता देख रहे थे ॥ १३५ ॥ उन मुनियोंके दर्शन हां से मेरा हृदय पवित्र हो गया । तुरन्त घनुष-बाण आदि सस्त्रास्त्र फेंककर मै उनके चरणोंमे दण्डवत् लोट गया ॥ १३६ ॥

रक्षोघ्नं मां मुनिश्रेष्ठाः पतितं नरकाणवे । इत्यग्रे पतितं दृष्ट्वा मामृचुर्मुनिवत्तमाः ॥१३७॥
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सफलः मन्ममागमः । उपदेशयामहे तुभ्य किञ्चित्तेनैव मोक्षयसे ॥१३८॥
 परस्परं समालोक्य द्रुष्टोऽयं द्विजाधमः । उपदेश्य एव सदृत्तस्त्वापि शरणं गतः ॥१३९॥
 रक्षणीयः प्रयत्नेन मोक्षमार्गोपदेशतः । इत्युक्त्वा गमने नाम व्यस्यस्ताक्षरपूर्वकम् ॥१४०॥
 मुनयो मामुपदिदिद्युर्मन्कृपापूर्णमानसाः । एकाग्रमनसाऽर्चय मरेति जप सर्वदा ॥१४१॥
 आगच्छामः पुनर्पावतावदुक्तं सदा जप । इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे मुनयो दिव्यदर्शनाः ॥१४२॥
 अहं यथोपदिष्टमस्तथाऽकस्मिन्मया । जपन्नेकाग्रमनसा चाद्य विस्मृतवानहम् ॥१४३॥
 साक्ष्यं तपमस्तत्र दृष्टोऽग्रे स्थापितो मया । एवं बहुविधे काले गते निश्चलरूपिणः ॥१४४॥
 सर्वसङ्गविहीनस्य बल्मीकोऽभून्ममोपरि । दण्डोऽग्रं न नगा रम्यो बभूव मत्तपोबलान् ॥१४५॥
 ततो युगमदस्तांते ऋषयः पुनरागमन् । मामृचुर्निर्गमस्वेति तच्छ्रुत्वा तूर्णमुन्धितः ॥१४६॥
 बल्मीकाभिर्गतश्चाहं नीदामदिव मास्कन् । मामप्याहुर्मुनिगणा चान्मृकिस्त्वं मुनीश्वरः ॥१४७॥
 बल्मीकात्समयो यस्माद्विर्तायं जन्म तेऽभवत् । इत्युक्त्वा ते ययुर्दिव्या गतिं स्फुटलास्तम ॥१४८॥
 अहं ते रामनाम्नश्च प्रभावादीदृशोऽभवम् । एकदा सम्भुवचमाऽयं विधिः श्रुतवास्तव ॥१४९॥
 चरितं वेदवाक्यंश्च कलासे परमे शुभे । अनेन विधिना तच्च कथितं नारदाय हि ॥१५०॥
 नारदः कथयामास वेदवाक्यैर्ममात्र तत् । ततः क्रीचं हन दृष्ट्वा व्याधेन तमसातटे ॥१५१॥
 शोचन्तीं सान्त्वयन्क्रीचीं ममास्यान्निर्गमस्तदा । द्वात्रिंशदश्वः प्रोक्तः शोकः श्लोकान्वयागतः ॥१५२॥

और कहने लगा—हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं नरक के मगसदुःख में गिर गया हूँ । मेरी रक्षा करिए ॥ १३७ ॥ इस तरह मुझे आगे पड़ा देखकर उन्होंने कहा—“उठो ! उठो ॥ आज हम लागोका समागम तुम्हारे लिये बड़ा ही कल्याणकारी हुआ । हम तुम्हें कोई ऐसा उपदेश देंगे, जिससे हम सब पापों से छूट जाओगे ।” इसके बाद उन लोगों ने परस्पर संवत्सा करके कहा—नियम तो यह है कि गदाचारा मनुष्यों को ही उपदेश देना चाहिये । यह साक्षात्पाप एक असाधारण दुराचारी है । फिर भी हमलागाकी शरण आता है । इसलिये इसे कोई उपदेश देकर इसकी रक्षा करनी चाहिये । इस प्रकार निश्चय करके वे राम । उन्होंने आगे उल्टे अक्षरों के नाम (मरा) का उपदेश दिया और हमसे कहा कि तुम एकाग्र मन से ‘मरा’ नामका जप करने रहो । जब तक हमलोग उधरसे लौटकर न आएं, तब तक तुम बराबर इस नामका जप करने रहना । ऐसा कहकर वे दिव्यदृष्टि ऋषिगण वहाँ से चले गये ॥ १३६-१४२ ॥ जैसा उन्होंने बतलाया था, कीक उसी तरह मैं एकाग्र मन से जप करने लगा । मेरा मन उस जपमें इतना रम गया कि मुझ अपने शरीरकी भी मूर्ति नहीं रही ॥ १४३ ॥ साक्षों के लिए मैंने अपने सामने एक दण्ड गाड़ दिया था, इस तरह निश्चल भाव से भजन करते-करते बहुत दिन बीत गये और बल्मीको (दीमकी) ने मेरे शरीर पर मिट्टी का ढेर लगा दिया । मेरे तपोबल से वह सामनेका गड़ा हुआ दण्ड एक सुन्दर वृक्ष बन गया ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ एक हजार युग बीतने के बाद वे सप्तऋषिगण फिर लौटे और मेरे बिमोट के समीप खड़े होकर उन्होंने पुकारा और कहा कि “निकलो” । उसे सुनकर मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ । जिस समय बिमोट के भीतर मैं निकला, उस समय मेरी शोभा वैसी ही थी, जैसी कि कुहरे के भीतर से निकलने हुए भूयंतागणकी होती है । तब मुझसे मुनियों ने कहा कि बल्मीक (बिमोट) से तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है । इसलिये तुम मृतोत्तर बाल्मीकि हो गये हो ॥ १४६-१४८ ॥ इतना कहकर वे ऋषि दिव्य (आकाश) मार्ग से चले गये । आपके रामनाम के प्रभाव से मैं ऐसा ऋषि हो गया । एक बार श्रीशिवजी के मुख से इन शब्दों ने वेद से भयकर निकलने हुए आपके चरित्रको सुना था । १४९ ॥ तब इन्हीं (ब्रह्मा) ने उसे अपने बेटे नारदको बताया और उन्होंने वह सारा चरित्र हमें सुनाया । कुछ समय बाद एक व्याधि द्वारा मारे गये श्रीचक्र दुःख से दुःखिता श्रीचक्रों देखकर पुत्रों जो शोक हुआ, वही शोक बत्तीस अक्षरोंवाले श्लोक के रूप में मेरे मुख से निकल पड़ा (श्लोक यह है—मा निषाद प्रतिष्ठा स्वमगमः

ततोऽपि विधिनाऽनेन चरितं ते प्रवर्णितम् । सनागत्य तु सक्षेपादिपिता मे वरा अपि ॥१५३॥
 ततोऽस्य ब्रह्मणो हाक्यात्कृतवत्चरितं तव । आनन्ददायकं रम्यं श्रुत्वादिप्रविस्तरम् ॥१५४॥
 एवं त्वया यथा शृष्टं तथा सर्वं निवेदितम् । एव शान्तीर्मात्राकार्यश्च सर्वं जानन्नपि प्रभुः ॥१५५॥
 पृष्ट्वा श्रोतुं जनान्सर्वान् श्रावयामास राघवः । एतास्मरन्तरे रामं वाक्पतिः प्राह सादरम् ॥१५६॥
 राम किं चरितं मेयं तवानन्दस्वरूपिणः । यस्य नामाद्यवर्णेश्च शब्दमात्रोऽत्र मीयते ॥१५७॥
 लौकिका वैदिका वापि अकाराद्यास्तु षोडश । स्वरास्तथैव वर्णाश्च चतुस्त्रिंशच्छ्रुमात्रहाः ॥१५८॥
 ककाराद्याः क्षकारांता मन्त्ररूपाः सुमात्रहाः । एव वर्णाश्च पञ्चाशद्ये कीर्यते नरैर्भुवि ॥१५९॥
 ते न्व नामाद्यवर्णाश्च सर्वं ज्ञेया रघूत्तम । तव नामाद्यवर्णेश्च व्याप्तं सर्वं चराचरम् ॥१६०॥
 चराचराणां सर्वेषां यानि नामानि स्तानि ते । तेषु वर्णपरत्वेन नामान्यद्य वदामि ते ॥१६१॥

सक्षेपाच्चव पञ्चाशत्तानि शृण्वन्तु सज्जनाः ।

ओमनन्ता १ नन्दमय २ श्रेष्ठापूर्तफलप्रदः ३ ॥१६२॥

ईश्वरश्च ४ तथोत्कृष्ट ५ आध्वरेता ६ अतमरः ७ ।

ऋयुक्तश्च ८ लृशश्चैव ९ लृपक १० अक ११ एव च ॥१६३॥

ऐश्वर्यद १२ ओजदश्च १३ तथैवादायचंचुरः १४ ।

अंतरात्मा १५ चार्द्धगर्भ १६ स्तथैव करुणाकरः १७ ॥१६४॥

खड्गो च १८ गतिदर्चश्च १९ घनश्याम २० स्तथैव च ।

डुणन २१ अमिताशेषदुष्कृतश्च २२ तथैव हि ॥१६५॥

छत्री २३ जगन्मय २४ शैव झपरूपी २५ अटेश्वरः २६ ।

टणत्कारिधनु २७ छानवन्धो २८ डमरुसत्करः २९ ॥१६६॥

दुणुल्लुनितपापश्च ३० णकर्णश्च ३१ तथैव हि ।

तपोरूप ३२ स्थव ३३ शैव दक्षो ३४ धन्वी ३५ तथैव च ॥१६७॥

शाश्वती. समाः ॥ यत्कौचमिथुनादेकमन्त्रीः काममाहितम् ॥ } ॥ १५०-१५२ ॥ इसके अनन्तर इन ब्रह्माज्योने
 आकर मुझे संक्षेपरूपसे आपका चरित्र सुनाया और वरदान भी दिया । तब इन्हींके कहनेसे मैंने सी
 करीह श्लोकोंमें आपका चरित्र रचा ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ अपने जैसे पूछा, वह सब वृत्तान्त मैंने कह सुनाया ।
 यद्यपि रामचन्द्रजी इन सब बातोंको जानने थे, किन्तु संसारके लोगोको सुनानेके लिये उन्होंने वाल्मीकिजीसे
 इस प्रकारके प्रश्न किये थे । इसके बाद ब्रह्माजी बाल—। १५५ ॥ १५६ ॥ हे राम ! आप जैसे आनन्दस्वरूप-
 के चरित्रका कोई कहीं तक गान करेगा । जिसके नामके पहले ही अक्षरमें संसारके सारे शब्द आ जाते हैं ।
 लौकिक तथा वैदिक अकारादि सोलह मन्त्र और अकारसे लेकर अक्षर पर्यन्त वर्णित वर्णों से पचास अक्षर,
 जिन्हें कि संसारो लोग जानते हैं । वे सब आपका नामके पहले ही अक्षरमें आ जाते हैं, आपका नामके पहले
 अक्षरसे सारा विश्व व्याप्त है ॥ १५७-१६० ॥ इस चराचर संसारमें जितने नाम लिये जाते हैं । उन्हें वर्णक्रमसे
 मैं आपको बतला रहा हूँ । संक्षेपमें वे पचास नाम हैं । उनको सज्जन लोग सुनते जायें—अकारसे 'अनन्त' ।
 आकारसे 'आनन्दमय' । इकारसे 'इष्टापूर्तफलप्रद', ईकारसे 'ईश्वर' । उकारसे 'उत्कृष्ट' । ऊकारसे 'ऊध्वरेता' ।
 ऋकारसे 'ऋतमर' । ॠकारसे 'ऋणमुक्त' । लृसे 'लृश' । लृसे 'लृपक' । एसे 'एक' । ऐसे 'ऐश्वर्यद' । ओसे
 'ओजद' । औसे 'औदायचंचुर' । असे 'अंतरात्मा' । असे 'अर्द्धगर्भ' तथा कसे 'करुणाकर' ॥ १६१-१६४ ॥
 खसे 'खड्गो' । गसे 'गतिद' । घसे 'घनश्याम' । डसे 'डुणन' । चसे 'चमिताशेषदुष्कृत' । छसे 'छत्री' । जसे
 'जगन्मय' । झसे 'झपरूपी' । ञसे 'अटेश्वर' । टसे 'टणत्कारिधनु' । ठसे 'छानवन्ध' । डसे 'डमरुसत्कर' ॥ १६५ ॥
 ॥ १६६ ॥ ठसे 'दुणुल्लुनितपाप' । णसे 'णकर्ण' । तसे 'तपोरूप' । थसे 'स्थव' । दसे 'दत्त' । धसे 'धन्वी' ॥ १६७ ॥

नष्टोद्धरणधीरश्च ३६ तथैव परमेश्वरः ३७ ।
 तथा फलप्रदश्चैव ३८ तथा बलिवरप्रदः ३९ ॥ १६८ ॥
 भगवान् ४० मधुघाती च ४१ तथा यज्ञफलप्रदः ४२ ।
 रघुनाथश्च ४३ लक्ष्मीशो ४४ वशिष्ठश्च ४५ तथैव हि ॥ १६९ ॥
 शरण्यः ४६ षड्गुणेश्वर्यसम्पन्नश्च ४७ तथैव हि ।
 सर्वेश्वरो ४८ हयग्रीवः ४९ क्षमो ५० नामानि ते त्विति ॥ १७० ॥

पंचाशद्वर्णचिह्नानि चैभिर्वर्णैर्जगन्त्रयम् । व्याप्तं श्रीराम सर्वत्र धवर्णेन घटः स्मृतः ॥ १७१ ॥
 पवर्णेन पटो ज्ञेयस्त्वेवं वर्णात्मकं जगत् । एकैकस्य च वर्णस्य भेदनामानि ते श्वक् ॥ १७२ ॥
 नाहं समर्थो व्याख्यातुं पञ्चास्योऽपि न च क्षमः । यत्र शेषः सहस्रास्यो वर्णने कुण्ठितस्त्वभूत् ॥ १७३ ॥
 एवं ते तद्विभा राम कोऽत्र वर्णयितुं क्षमः । तथापि धन्यो बाल्मीकिर्येन ते चरितं कृतम् ॥ १७४ ॥

सतकोटिमितं राम त्वैव कृपया प्रभो ।

श्रीरामदास उवाच

इत्युक्त्वा म गुरुदेवं राधवेणापि पूजितः ॥ १७५ ॥

१७५। रामं ययौ स्वर्गं सत्यलोकं ययौ त्रिभिः । बाल्मीकिश्चापि प्रयया चित्रकूटं निजाश्रमम् ॥ १७६ ॥
 तदारभ्य जनाः सर्वं चमूदास्थ मुद्वेव ते । मांगल्यकर्माण्युन्साहकर्मणि जगतीतले ॥ १७७ ॥
 चक्रुः सर्वे पूर्ववत् नाविहास्यं प्रचक्रिरे । स्वाभिर्नराः सुसन्तुष्टाः भाडाहस्यादि चक्रिरे ॥ १७८ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये राज्याकाण्डे उत्तरार्धे
 बाल्मीकिजन्मतत्तन्मन्त्रवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥



मसे 'नष्टोद्धरणधीर' । मसे 'परमेश्वर' । मसे 'फलप्रद' । मसे 'बलिवरप्रद' । मसे 'भगवान्' । मसे 'मधुघाती' ।
 मसे 'यज्ञफलप्रद' । मसे 'रघुनाथ' । मसे 'लक्ष्मीश' । मसे 'वशिष्ठ' । मसे 'शरण्य' । मसे 'षड्गुणेश्वर्यसम्पन्न' ।
 मसे 'सर्वेश्वर' । मसे 'हयग्रीव' । मसे 'क्षमो' ॥ १६८-१७० ॥ ये ही पचास नाम पचासो अक्षरोंके
 आकार हैं और इन्हींमें आकाश, पाताल, मृत्यु ये तीनों लोक व्याप्त हो रहे हैं । धवर्णसे घटका बोध
 होता है और पवर्णसे घट जाना जाना है । घट और पट इन दोनों शब्दोंके ही अन्तर्गत समस्त जगत् है ।
 एक-एक वर्णके भेदसे सम्पूर्ण नामोंका वर्णन करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ मैं ही नहीं,
 यदि पचास्य अर्थान् शिवजीको बतलाता पड़े तो वे भी असमर्थ हों रहेंगे । जिसकी महिमाका वर्णन करनेमें
 एक सहस्र मुखवाले गणजी भी असमर्थ हो गये, उसका वर्णन कौन कर सकेगा । फिर भी बाल्मीकिजी
 अन्य हैं, जिन्होंने सौ करोड़ श्लोकोंमें आपके चरित्रका वर्णन किया है ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ हे प्रभो ! जो कुछ
 बाल्मीकिजीने किया है, सो सब आपकी कृपा है । श्रीरामदास कहते हैं कि इतना कहकर समस्त देव-
 आओंके साथ देवगुरु बृहस्पति स्वर्गलोकको चले गये और ब्रह्माजी भी रामसे पूछकर अपने सत्यलोकको लौट
 गये । बाल्मीकिजी अपने आश्रम चित्रकूटको चल दिवें ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ उसी समय सब लोग बाल्मीकि
 साथ हंसने-खेलने और संसारमें पहलेकी तरह मंगलमय तथा उत्साहमय सारे कार्य करने लगे । तबसे लोग
 प्रसन्नताके साथ परस्पर हँसी-विल्ली कर रहे लगे । फिर भी अतिहास्य कोई नहीं करता था ॥ १७७ ॥ १७८ ॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंचो रामतज्जपाण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते
 राज्याकाण्डे उत्तरार्धे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः

(राम और रामराज्यकी विशेषतायें)

श्रीरामदास उवाच

रामराज्ये सदानन्दः सर्वानामीजनान्भुवि । नार्यान्कुत्रापि कन्दर्वायै निदामय तदा ॥ १ ॥
 राज्यमामीदमापन्न समृद्धवल्गवाहनम् । ऋषिभिर्हृष्टपुष्टश्च रम्य हाटकभूषणः ॥ २ ॥
 सज्जुष्टमिष्टापूर्तानां धर्माणां नित्यकर्तृभिः । सदा संपन्नशम्य च सुनिर्गं क्षेत्रमकुलम् ॥ ३ ॥
 सुदेश सुप्रजं सुम्यं सुवृण बहुगोधनम् । देवदत्ताननाना च गजिभिः परिगजितम् ॥ ४ ॥
 सुयूपा यत्र वै ग्रामाः सुनवित्ताद्विगजिताः । सुपुष्टवृत्रिभोजनतः सुसदाकलपादपाः ॥ ५ ॥
 सुपद्मार्नीककापारा राजन्ते यत्र भूमयः । सदा निम्नगार्गत्रये मन्ति न मानवाः ॥ ६ ॥
 कुलान्येव कुलीनानि न धान्यायधनानि च । विभ्रमो यत्र नारीषु न विद्वन्सु च कर्हिचिन् ॥ ७ ॥
 नद्यः कुटिलगामिन्यो न यत्र विषये प्रजाः । तमोयुक्ताः सदा यत्र बहुलेषु न मानवाः ॥ ८ ॥
 रजोयुजः स्त्रियो यत्र न धर्मवहूला नगः । धर्मगन्धो यत्रास्ति जना नैव च भोजनात् ॥ ९ ॥
 अनपस्यास्पदं यत्र न च वै राजपुरुषः । दण्डः पशुकुटिलालन्यजनगजिषु ॥ १० ॥
 आतपत्रेषु नान्यत्र कचिन् क्रोधोऽपराधजः । अन्यत्रास्तिकद्वन्द्वेभ्यः सन्निवृत्त पण्डितवनम् ॥ ११ ॥
 आशिका एव दृश्यन्ते यत्र पार्श्वपाणयः । जलप्रवाहा जलेभ्यः स्वामध्या एव दृवलाः ॥ १२ ॥

श्रीरामदास बाले—हे शिष्य ! रामचन्द्रजीकें राज्यमें समस्तके सब लोगोंको सदा आनन्द है आनन्द रहता था । उस समय न कहीं चारा होता, न लड़ा, झगड़ा होता, न काहू किसीको निन्ना करता और न कोई किसीसे डरता था ॥ १ ॥ राज्य भी उस समय शशुओस रहित और विविध प्रकारके बाहन तथा सेनासे परिपूर्ण था । रामराज्यमें ऋषिगण हृष्ट-पुष्ट थे और राज्यकें रहनेवाले लोग सोन-चांदीके गहनोंसे लदे रहते थे । इष्ट-आपूर्त आदि धार्मिक कृत्य होत रहते थे और सार सब धान्यसे परिपूर्ण रहा करता थे ॥ २ ॥ ३ ॥ भाव यह है कि उस समय समस्त दशा सुखी थी, प्रजा प्रसन्न थी और रहन-सहन उत्तम था । गौओंके चरनेको सुन्दर घास उपजता था । नाघनका अधिकता था । सारा देश दयालयोंसे भरा पड़ा था ॥ ४ ॥ उस राज्यकें सब गाँवोंमें यज्ञक सुन्दर पूष गड हुए थे । प्रजाकें सब लोग धन धान्यसे परिपूर्ण रहते थे और अच्छे-अच्छे कून्ने तथा सदा फल दनवा न कृत्रिम बर्गचास सारा राज्य भरा रहता था ॥ ५ ॥ सदा बहनेवालों कितना ही नदियाँ राज्यकी भूमिपर बह रही थी । ऐसे ही कुछ स्थान बचे थे जहाँ कि मनुष्योंका निवास नहीं था । बाकी सारी पृथ्वी मनुष्योंमें भरी थी ॥ ६ ॥ उस समयके सभी मनुष्य कुलीन थे । अन्धाय नहीं होता था और धनकी कमी नहीं रहती थी । उस समय स्त्रियोंमें विभ्रम (लज्जा) दीखता था, किन्तु पण्डितोंमें विभ्रम (बड़ी भूल) नहीं रहता था ॥ ७ ॥ उस समय दण्ड कुटिल (टेढ़ा बड़ा) बहनेवालों नदियाँ थी, किन्तु प्रजा कुटिलता (दुष्टता) से सर्वथा बचा हुई थी । कृष्णपक्षकी रात्रिमें केवल तम (अँधकार) था, मनुष्योंमें तम (तामस गुण) नहीं दीखता था । यना सारे मनुष्य उस समय सात्त्विक थे ॥ ८ ॥ स्त्रियाँ रजोयुक्त (रजस्वला) होती थीं, पुरुष रजोयुक्त (राजस गुणयुक्त) नहीं थे । उस समय राज्यके लोग पैसेसे (अन्ध) अन्धे नहीं थे, किन्तु अन्ध (अंध) में कोई अन्ध नहीं था । अर्थात् सब लोग खाने-पीनेमें सबको दीखते थे । उस समय राजपुरुषों (अधिकारियों) में अन्याय नहीं दीखता था । दण्ड केवल कुन्हाड़ी, कृतान तथा पंखों ही में दीखता था । प्रजापर राजाको दण्डप्रयोगकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी ॥ ९ ॥ १० ॥ सन्ताप (धाम) केवल छतरियोंपर रहता था । रामराज्यकी प्रजामें सन्ताप (मानसिक दुःख) नहीं रहता था । केवल रथ हाँकनेवाले सारथियोंके हाथमें पाश (घोड़े या बैलकी रास) रहता था, किन्तु प्रजाके किसी मनुष्यको पाश (फाँसीका बण्ड) मिलता नहीं देखा गया । जड़ता (ठंडक) की बात केवल जलमें रहती थी ।

कटोद्गदग यत्र मीमन्निन्धो न मानवाः औषधेष्वेव यत्रास्ति कुष्ठयोगो न मानवे ॥१३॥
 वैशोऽभ्यन्तःसु रन्नेतु शूलं मूर्तिर्द्विषु वै । कपः सात्त्विकभावेत्यो न भयान्क्वापि कस्यचिन् ॥१४॥
 मज्जगः क्लमजो यत्र दामिद्वयं क्लृप्तमिव च । दूलेभ्यः पातकस्य मुकुतं न च वस्तुनः ॥१५॥
 इमा एव प्रमत्ता वै युद्धं वीच्याजलाशये । दानहा नर्गजेष्वेव द्रुमेष्वेव हि कण्टकाः ॥१६॥
 जनेष्वेव बहामा वै न कस्यचिदङ्गस्थला । वनेषु गुणैश्श्लेषो वन्द्योक्तिः पुस्तके दृढा ॥१७॥
 दण्डन्यायः सर्ववाम्नि यत्र पाशुपदं जने । दण्डवानां सदा यत्र कृतमन्यामकर्मणाम् ॥१८॥
 मर्मणाश्चारकेष्वेव भिक्षुका व्रजभारिणः । यत्र क्षपणका एव दृश्यन्ते मलधारिणः ॥१९॥
 प्राया मधुव्रता एव यत्र चकन्धनयः । इत्यदि णवद्देशे रामा राज्यं शशाम मः ॥२०॥
 धर्मण राजा धर्मरुः सीतागमः प्रतापराज । नन्दमयोऽन्धमयोऽप्यायां सुनिश्चलम् ॥२१॥
 विधाय राजधानीं तौ विस्तृतां पश्चित्त्वान्वि । नृपः पार्श्वे महाबुद्धः पञ्चा धर्मेण पालयन् ॥२२॥
 तनाप सूर्य इव स दुर्हृदां हृदि मेव यो । मीमन्नुद्गदगार्मान्मानसेषु स्वकेष्वपि ॥२३॥
 अखण्डमाखण्डलान् कोदण्डं कलयन्मणे । पलयमानगलोक्तिं शत्रुर्मन्यत्रलाहकं ॥२४॥
 स धर्मगजाद्राजा धर्माधर्मविश्वरुः । दण्डेऽदण्डयन्नातो दण्ड्याश्च परिदण्डयन् ॥२५॥
 पार्श्वे पाशपाचके वैरेचकं विदग्धः । गोऽभून्पुण्यजनाधीशो रिपुशक्षमवर्द्धनः ॥२६॥
 जगन्प्राणवमानश्च जगन्प्राणनतन्परः । राजराजः स एवाभून्मर्वेषां धनदः सताम् ॥२७॥

किसी मनुष्यमें नङ्गा । मूर्तता) नहीं था । केवल शिथिली वस्त्रमें दुर्बलता रहती थी, मनुष्योंके हृदयमें नहीं ॥११॥१२॥ कटोद्गदग विहासक स्वराम न ना वा गन्तोः स्वराम नहीं केवल औषधोंमें कुष्ठ (कुछ औषधिविशेष) का पाग दाखता था, किसी मनुष्यमें कुष्ठराग नहीं था ॥ १३ ॥ वध (छिद्र) केवल रक्तोंमें रहता था । शूल (छानो) केवल मूर्ति बनानेवाले चारागता होकर रहता था । केवल सात्त्विक भावके उदय होनेपर लोगोंको कम्प होता था-भयसे सता । दुर्हृदा पातक के अन्तर्गततावाइं यन्तु अलभ्य नहीं थी ॥ १४ ॥ १५ ॥ मत्तवाले हाया हातें थे, माथ्य नहीं । युद्ध के लक्ष्य नहीं बना जाता था । दानहानि (भद्रक प्रवाहका रुक जाना) केवल हाथियामें था । वृक्ष में ही कण्टक (काँट) रहते थे ॥ १६ ॥ मनुष्योंमें विहार होता था, किन्तु किसीकी दरस्यला छाता, एम नहीं रखा जाता, जो दरस्य रहता है । केवल वाणान गुणविणय (अत्यन्तका विषम) था, दृढत्व में ही (काँटिन वननका वल) केवल गुणवर्धन लिए था ॥ १७ ॥ शिवभक्तोंके लिए केवल दण्डत्याग किया जाता था । रामा इम एव नृपतिमा जतु था । केवल संन्यासवोम दण्डवार्ता (दण्डग्रहण-सम्बन्धी बातचत) होता था ॥ १८ ॥ मर्मण, वध, क्षपण, य प्रपरा न य प्रजागे कोई मार्गण (भिक्षारी) नहीं था । केवल भिक्षुचारी भिक्षुक था । केवल क्षपण (मर्मण) लज्जाल (चोवर वस्त्र) चारी थे ॥ १९ ॥ प्राय भीरोम वंचकता दाखता था । इम प्रवाणके युगलान् दम रामचन्द्रजी राज्य करते थे ॥ २० ॥ धर्मका तत्त्व जाननेवाले प्रतापशाली रामचन्द्रजी न वदुन रदना तक निन्द्यभावर न ज्ञ किया, उन्होंने अनेक प्रकारकी खाद्यास मुसज्जित करके अयोध्या का अरनी राजधानी बनाने और धर्मपूर्वक प्रजापालन करते हुए प्रजाको मलाभाति उन्नति का ॥ २१ ॥ २२ ॥ वे शत्रुओंके हृदयमें सदा सूर्यकी भांति तपते थे और मित्रोंके हृदयमें चन्द्रमाकी तरह ईद्व पट्टवान् थे । इन्द्रक समान समरांगणमें अपना धनुष चमकाते हुए शत्रुसेनारूपी मेघोंका भग्न देते थे । ऐसा बराबर दत्ता गया है । महाराज रामचन्द्रजी धर्मराजकी तरह भलीभांति धर्म-अधर्मकी विवेचना करके काम करते थे । जो दण्डके योग्य नहीं होता, वह दण्ड नहीं देते थे और जो दण्डके योग्य होता, उसे अवश्य दण्ड देते थे । शत्रुओंके समूहकी यमराजकी तरह उन्होंने बाँध रखता था । रिपुओंकी राक्षसोंका भी उपकार करके रामचन्द्रजी संसारके सब महात्म्योंमें ऊँचे पदपर पहुँच चुके थे ॥ २३-२६ ॥ जगत्की रक्षामें तत्पर रामचन्द्रजी जगन्के प्रण समान थे । अच्छे मनुष्योंको धनकी सहायता देकर वे स्वयं राजराज (कुबेर) हो रहे थे । शत्रुओंको धन दिखाकर रद्द बन गये थे । यही कारण था कि जिससे

स एव रुद्रमूर्तिश्च प्रैक्षिष्ट रिपुभीषणे । विश्वेदेवास्तनस्य तु स्तुवन्ति न भजन्ति च ॥२८॥
 असाध्यः स हि साध्यानां वसुभ्यो वसुनाधिकः । ग्रहाणां विग्रहधरो दसतोऽजस्ररूपधृक् ॥२९॥
 मरुद्गणानगणयस्तुपितास्तोषयन् गुणैः । मरुदधराधरो यस्तु नमोदधराधरैश्चरिष ॥३०॥
 अगर्वानेव गन्धर्वान्यश्चक्रे निजगीर्तिभिः । रक्षुयंश्चमामि तद्दुग्धं स्वर्गमोदरम् ॥३१॥
 नागा नागास्तिरश्चक्रुस्तस्य राज्ये बलायमः । दनुजा मनुजाकारं कृत्वा तं तु मियैरिरे ॥३२॥
 जाता गुह्यचरा यस्य गुह्यकाः पणितो नृपु । मसे न्यामहे रजन मुगम्भां स्वस्वैर्भवैः ॥३३॥
 वयं ततस्त्वद्विषये सुराग्रामोऽपि दुर्लभः । इत्युक्त्वा गमचन्द्र ते मधवाद्याः मियैरिरे ॥३४॥
 अशिक्षयन्क्षितिपतेरिह यस्य तुरङ्गमान् । अशुगश्च शरामिन् पत्रमाने पथि स्थितः ॥३५॥
 अगजान्यस्य तु गजानगगर्भसु वर्पणः । अजस्रदन्तिनो दृष्ट्वाऽभयसन्त्येऽपि दानिनः ॥३६॥
 सदोऽजिरे च योद्धारो योद्धाश्च ग्याजिरे । न शर्माणि जनः कश्चिन्नामैः केनचिन्कचिन् ॥३७॥
 न नेत्रविषये जाना विषये यस्य भूभृतः । मदा नष्टपदा हृष्यास्तथा नष्टापदः प्रजाः ॥३८॥
 कलवानेक एवास्ति त्रिदिवेऽपि दिवीकामम् । तस्य क्षोणं भृतः क्षोण्यां जनाः सर्वे कलालयाः ॥३९॥
 एक एव हि कामोऽस्ति स्वर्गं मोऽप्यङ्गवर्तनः । माङ्गोपङ्गश्च सर्वेषां सर्वे कामा हि तद्भवि ॥४०॥
 तस्योपवर्तनेऽप्येको न भृतो गोत्रभिन्कचिन् । स्वर्गं स्वर्गमदार्माक्षो गोत्रभिन्परिकीर्तितः ॥४१॥
 क्षयी च तस्य विषये कोऽप्यकारिण न केनचिन् । त्रिविष्टपे शपानाथः पतो पक्षे क्षयिष्यते ॥४२॥
 नाके नवग्रहाः भर्ता दशास्तम्यान्वग्रहाः । हिरण्यगर्भः कालोकेऽवक एव प्रकाशने ॥४३॥
 हिरण्यगर्भाः सर्वेषां तर्पणार्णामिहालयाः । ममाश्च एकः कालो के नितनं भासतेऽशुमान् ॥४४॥

सब विश्वेदेव उनकी स्तुति और भजन करते थे । वे साधव (ऋद्धिगण एतान्निर्गेष) के लिए भी असाध्य थे । वसु (धन) की अधिकतासे वे अष्टवमुद्रोग भी श्रेष्ठ थे । नरगणों के साक्षात् स्वरूप से और अश्विनीकुमारों के समान सदा सुन्दर रूप धारण किए रहते थे ॥ २८-२९ ॥ वे अपने असाधारण पराक्रमसे मरुद्गणों से भी श्रेष्ठ थे । कितने ही सद्गुणों से वे छानाम नृपिताका प्रसन्न कर चके थे । वे समस्त विश्व धराक शिरोमणि थे और अपने गीतके माधुर्य से उन्होंने गन्धर्वोंका भाग्य सर्व कर दिया था । संसारभरके यक्ष-गण-स स्वर्गके समान कमनीय रामके किलेकी रक्षा करने थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ स्वर्गलोक के राजा रामके हृत्तिसंग्रहसे पराजित हो गये थे । सारी दुनियाके दानव मनुष्यका वध बना दन कर रामकी सेवा कर रहे थे ॥ ३२ ॥ उनके गुह्यचर राज्यके मनुष्यों से घुसकर अपना मतलब सिद्ध करनेके लिए गुह्यको (पणिभद्रादिको) से भी बाजी मार चुके थे । इन्द्रादि देवता रामके समीप जाकर बहता थे—'राजन् ! हमारे पास जः कुछ वैभव है, वह सब लगाकर हम आपकी सेवा-शुभ्रपा करनेको प्रस्तुत हैं' ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस संसारसे जिसके घाड़े वायु देवताको भी जल्दी चलना सिखाते थे, जिसके पर्वतके समान ऊंचे बड़े-बड़े हाथियोंका अजस्रदानिता (सन्त मदप्रवाह अथवा दानशीलता) देखकर संसारके कृपण मनुष्य भी दाना बन गये थे । जिसको राजसभाके बुद्धिमान पण्डित और सेनाके बड़े-बड़े योद्धा शास्त्र तथा शस्त्रसे कभी पराजित नहीं हुए थे ॥ ३५-३६ ॥ उन रामके राज्यमें जैसे शत्रु कहीं नहीं दीप्तता था, वैसे ही प्रजासे कभी किसी प्रकारकी विपत्ति भी नहीं दिखायी देती थी ॥ ३७ ॥ देवताओंके स्वर्ग जैसे राज्यमें केवल एक कल्याणान् चन्द्रमा था किन्तु रामके राज्यमें सब मनुष्य कल्याणके चन्द्रमा थे । स्वर्गमें केवल एक कामदेव था, सो भी अनङ्ग (अर्थात् बिना शरीरका) । किन्तु रामराज्यके सारे मनुष्य सागोपाय कामदेव (जैसे सुन्दर) थे । रामके राज्यभरमें खोजनपर भी कोई नात्रभिन् (जानिसे बहिष्कृत) मनुष्य नहीं मिल सकता था, किन्तु स्वर्गमें देवताओंके राजा स्वर्ग गोत्रभिन् (इन्द्र) थे ॥ ३८-४१ ॥ राम-राज्यमें कोई क्षयी (क्षयरोगी) नहीं सुना गया, किन्तु स्वर्गमें चन्द्रमा पक्ष-पक्षमें क्षय होत पाते हैं ॥ ४२ ॥ स्वर्गमें सर्वदा भी यह रहते हैं, किन्तु रामका राज्य अनवरुह (शान्ति आपसी

सदशुक्राः प्रतिगृहं बहुश्वान्पुंगवः । सदप्सरा यथा स्वर्भूस्तनुर्यपि सदप्सराः ॥४५॥
 एकैव पद्मा वैकुण्ठे सीयते विष्णुबलभा । तत्पौगणं गृहेष्वामञ्छनपद्मा पृथक् पृथक् ॥४६॥
 अनीतयश्चलद्दामा न राजपुरुषाः कर्त्तव्यम् । गृहे गृहेऽत्र धनदा नाक एकोऽलकापतिः ॥४७॥
 एवं रामो महान् श्रेष्ठः शौर्यगुणशोभनः । सौभाग्यशोभा रूपाढ्यः शौर्योदार्यगुणान्वितः ॥४८॥
 विजितानेकनगरः श्रामर्षापि शमार्गणः । सन्तारजितवर्मा उग्रः परपुत्रत्रयः ॥४९॥
 जनकगुणमूर्त्तिः पूर्णचन्द्रनिभश्चरितः । सन्तापमृधस्मिन्मूर्ध्वजः क्षितिर्पर्वभः ॥५०॥
 प्रजापालनमपन्नः कोशप्रीणीतभृशुरः । पार्वतीकांतचरणपुमलघ्यानतत्परः ॥५१॥
 विश्वेश्वरकथलापपरिक्षिप्तदिनश्रवः । सीतासंशालितपदस्नन्कीडापरितोषितः ॥५२॥
 इशाम् राज्यं धर्मेण बन्धुपुत्रममन्वितः । रामे श्वासति साकेतपुर्यै राज्यं सुखेन वै ॥५३॥
 हृष्टाः पुष्टा प्रजाः सर्वाः फलवंतोऽभवन्नगाः । आमन्सदा सुकुसुमैर्वनम्राः मील्यदा नृणाम् ॥५४॥
 एकपत्नीव्रताः सर्वे पुमांसस्तस्य मण्डले । नारीषु कांचन्नैवामीदपतिव्रतधर्मिणी ॥५५॥
 अनधीतो न विप्रोऽभून्न शूरो नैव बाहुजः । वैश्योऽनमिश्रो नैवासीदधोपार्जनकर्मसु ॥५६॥
 अनन्यवृत्तयः शूद्रा द्विजशूत्रार्णं प्रति । तस्य राष्ट्रं समभवन्मौनारामस्य भूपतेः ॥५७॥
 अविप्लुतमम्यार्थस्तद्राष्ट्रे मल्लचारिणः । निन्यं गुरुकुमार्थिना वैदग्रहणतत्पराः ॥५८॥

स्वर्ग-सगहसे रहित था । स्वर्गमें केवल एक हिरण्यगर्भ (विष्णुभगवन्) रहने हैं, किन्तु रामराज्यके
 हर्येक घर हिरण्यगर्भ थे अर्थात् उनमें सुवर्ण सरं हुए थे । स्वर्गमें केवल एक सताश्व अशुमान् (सूर्य)
 है, किन्तु रामके राज्यमें प्रत्येक व्यक्ति अशुमान् (अच्छे कपड़े पहननेवाले) और सातको कौन कहे, किन्तु
 ही घोड़े बाँधनेवाले लोग विद्यमान थे । जिस तरह स्वर्गमें अच्छी-अच्छी जम्भराई हैं, उसी तरह रामके
 राज्यमें भी बहुत-सी अच्छी-अच्छी अम्बरराई रहती थी ॥ ४३-४५ ॥ ऐसा कहा जाता है कि स्वर्गमें केवल
 एक विष्णुकी प्रिया पद्मा (लक्ष्मी) है, किन्तु रामके राज्यमें संकड़ोंमें भी अधिक पद्मपति (पद्मसम्यक्
 रूपसे रखनेवाले) लोग थे । रामके राज्यमें कभी किसी प्रकारका अकाल नहीं पड़ा और ऐसे राजपुरुष नहीं
 थे, जो कान्तिविहीन रहे हों । स्वर्गमें केवल वृंक्ष-वन (लेन-देनके व्यवहारी) हैं, किन्तु रामके राज्यमें असंख्य
 धनद थे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इस तरह रामचन्द्र अनेक मन्त्रगुणोंसे युक्त और सर्वश्रेष्ठ थे । रामचन्द्र सौभाग्य,
 स्व, शौर्य और शौदार्य आदि गुणोंसे युक्त थे । जनक युद्धोंमें उन्होंने विजय पायी थी और संतारकी दरिद्रताको
 उन्होंने लक्ष्मीके हाथों से दूर किया था । उनके सम्प्रदायमें सीताजी बैठी रहती थी । इस कारण उनकी
 शोभा और भी बढ़ गयी थी । वे सबसे उग्र तथा शत्रुओंके नगरको विजय करनेमें सिद्धहस्त थे । अनेक
 गुणोंके एकत्रित होनेसे वे पूर्ण हो चुके थे और पूर्ण चन्द्रमाक समान उनकी कान्ति थी । सर्वदा अवभृथ
 (पञ्चाल) स्नान करनेसे उनके केश भीगे रहने थे और सब राजाओंमें श्रेष्ठ माने जा चुके थे ॥ ४८-५० ॥
 प्रजाका पालन करनेमें वे वर्णतया हतचित्त रहने थे और स्वजानेके घनसे आह्वानोंको प्रसन्न रखते थे । वे सदा
 शिवके ध्यानमें तत्पर रहते थे । वे सर्वदा शिवजीकी कथाएँ कहने सुनने दिन रात बिताते थे । सीता उनके
 पैर धोया करती थी । उनके साथ विविध प्रकारका क्रीडावे करनेसे राम प्रसन्न रहने थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥
 उन्होंने शत्रुओं और पुत्रोंके साथ रहकर अच्छी तरह राज किया । रामके शासनकालमें प्रजा सुखी तथा
 हृष्ट-पुष्ट रहती थी और वृक्ष फल-फूलसे लदे रहनेके कारण झुके रहने और मनुष्योंको सुखी रखते थे
 ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ उनके राज्यमें सब पुरुष एकपत्नीव्रती थे और नित्योमें भी कोई ऐसी नहीं थी, जो अपने
 पारिव्रतधर्मका पालन न करती हो ॥ ५५ ॥ उस समय कोई ऐसा बाहुण नहीं था, जो बिना पद्म हो
 और कोई अनिय भी ऐसा नहीं था, जो योद्धा न रहा हो । कोई ऐसा वैश्य नहीं था, जो धन कमानेकी कला-
 से अनभिज्ञ हो । राजा रामके शासनकालमें राज्य भरके शूद्र और किसी प्रकारकी वृत्ति न करके एकमात्र
 द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) की सेवामें लगे रहते थे । उनके राज्यमें ब्रह्मचर्यकी रक्षा करते हुए

अन्येऽनुलोमजन्मानः प्रतिलोममवा अपि । स्वपारम्पर्यतो द्रष्टु मनाग्रन्मै न तत्पुत्रः ॥५९॥
 अनपस्यो न तद्वाष्ट्रं धनहीनस्तु कोऽपि न विरुद्धसेवो ना कश्चिदकालमृतिमाङ् च ॥६०॥
 न शठा नैव वाचाटा वञ्चका नो न हिंसकाः । न पाखंडा नैव भडा न रडा नैव शोडिकाः ॥६१॥
 अनिघोषा हि सर्वत्र स खवादः पदे पदे । सर्वत्र सुभगालापा मुदा मगलगीतयः ॥६२॥
 वीणावेषुप्रवादाश्च मृदंगधुरम्बनाः । सोमपानं विनाऽन्यत्र पानगोष्ठा न कर्णमा ॥६३॥
 मांसाशिनः पुरोडाश नैवान्यत्र कथंचन । न द्रुगेदग्निो यत्राधर्मिणो न च तस्कराः ॥६४॥
 पुत्रस्य पित्रोः पदयोः पूजन देवपूजनम् । उपवासो व्रतं तीर्थं देवनाराधनं परम् ॥६५॥
 नारीणां मर्त्यपदयोः स्वर्चन तद्वचःश्रुतिः । समर्चयति सततं निजमग्रजमादरान् ॥६६॥
 समर्चयति मुदिता भृत्याः स्वामिरदाम्बुजम् । होनवर्णोऽग्रवर्णो वण्यने गुणगौरवैः ॥६७॥
 चरित्रस्पर्ति भूयोऽपि त्रिकाल भूमिदेवताः । सर्वत्र सर्वे विद्वांसः समर्चन्ते मनोरथैः ॥६८॥
 विद्वद्भिश्च तपोनिष्ठास्तपोनिष्ठैर्जैतेंद्रियाः । जिरेन्द्रेयैर्ज्ञाननिष्ठा ज्ञानिभिः शिवलिङ्गिनः ॥६९॥
 मंत्रपूतं महाहं च विधियुक्तं सुमस्कृतम् । वाढवानां मस्त्रास्त्रां च हृयनेऽहनिष्ठं हविः ॥७०॥
 वापीकूपतडागानामागमणां पदे पदे । शुचिभिर्द्वन्द्वसंभारैः कर्तव्यं यत्र भूरिशः ॥७१॥
 तद्वाष्ट्रं हृष्टपुष्टाश्च दृश्यन्ते सर्वज्ञानयः । अनिन्द्यसेवामंपन्ना विना मृगधुर्मनिकान् ॥७२॥
 यस्य राज्ये पताकासु चचला भीर्न राष्ट्रके । ऐरावतस्त्रेक एव शुभ्रः स्वर्गे गजो महान् ॥७३॥
 चतुर्दन्तो रामराज्ये तद्वन्नागाः सहस्रशः । इन्दुध्यात्रुभावेव शोभेते गमनांगणे ॥७४॥
 रामराज्येऽत्र नारीणां सीमंतस्था अनेकशः । वृषोऽस्त्येकः स कलासे गीपते परमः सितः ॥७५॥

गुरुकुलमें रहकर वेदवाक्य बन करते थे ॥ ५९-६८ ॥ अनुग्राम जातिम उन्वन्न सोमोने यह कभी नहीं चाहा कि मैं अपने दर्जेसे ऊँच पद रहूँ । रामके राजम कोई सन्तानविहीन तथा निर्धन नहीं था और कोई ऐसा भी नहीं था, जो अपनी मर्यादाके विरुद्ध आचरण करनेवाला हो । उनके राजम कोई अकाल मृत्युका प्रास नहीं बन सका । उस समय न कोई शठ, न बक्कादी, न बंचक, न हिंसक, न पाखण्डो, न भोड़, न स्वीचिह्नम और न घूर्त ही था ॥ ५९-६१ ॥ पद पदपर वदवनि तथा शाश्वतमम्बनी वाद-विवाद मुनायी देता था । चारों ओर अच्छी-अच्छी बातें हमी खूणोके मंगलगीत, वीणा वंशी तथा मृदंगका मीठा स्वर मुनायी पड़ता था । सोमपानके सिवाय और किसी मादक वस्तुके खाने-पीनेकी बात नहीं मुनायी देती थी । यज्ञके प्रतिष्ठा दूमरे समयपर मांस खानेवाले मनुष्य, जुआ डंडा, अवर्मा और चोर कहीं भी नहीं थे ॥ ६२-६४ ॥ पुत्रके लिए माता-पिताके पदपूजन ही देवपूजन, उपवास, व्रत, देवनाराधन और तीर्थ था । नारोंके लिए अपने पतिके चरण-पूजन और उनकी बातें वेदवाक्य सदृश मानना ही सबसे श्रेष्ठ धर्म माना जाता था । सदा छंटा भाई बड़े भाईकी पूजा करता था । सेवक प्रमत्त मनसे अपने मालिककी सेवा करने थे । नीच जातिवा मनुष्य अपनेसे ऊँच वर्णवालेका पुण-गौरव बखानता था ॥ ६५-६७ ॥ सब लोग बाह्यणोंकी पूजा करते और विद्वानोंके मनोन्मत्त पूर्णकरनेको उद्यत रहने थे । विद्वान्से तपस्वी, तपस्वीसे जितेंद्रिय तथा जितेंद्रियसे भी ज्ञानी मनुष्य श्रेष्ठ माना जाता था और ज्ञानीसे भी संप्राप्ती उच्च पदपर माने जाते थे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ सदा मंत्रसे पवित्र किया हुआ हवि विप्रोंके मुखानिसे पड़ता रहता था ॥ ७० ॥ काली, कूप, तडाग तथा वद-पदपर बगीचा रुगवातेवाले और पवित्र द्रव्योंको एकत्र करके यज्ञादि शुभ कर्म करनेवाले कितने ही घर्मात्मा जहा करते थे ॥ ७१ ॥ रामके राजमें सब जातिके मनुष्य हृष्ट पुष्ट दिखायी पड़ने थे । शिकारी तथा सैनिकोंके सिवाय सब लोग सराहनीय कामोंमें लगे हुए थे । उनके राज्यमें सक्तीकी चंचलता केवल पताकामें रहती थी, राष्ट्रमें नहीं । स्वर्गमें केवल एक ऐरावत हाथी बड़ा, चतुर्दन्त और श्वेत वर्णका है । किन्तु रामके राज्यमें हजारों हाथी चार दाँतवाले तथा श्वेत वर्णके थे । स्वर्गमें केवल सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश करते हैं, किन्तु रामराज्यकी स्त्रियोंके केशोंमें (मणिके) बीसे-बीसे अनेक चन्द्रमा-सूर्य चमकते दिखाई देते थे ॥ ७२-७४ ॥ सुना

तद्वद्गुणायामराज्ये कृषिकर्मणि योजिताः । एणोऽस्त्येकश्चन्द्रलोके कृष्णवर्णो मनोरमः ॥७६॥
 तद्वदत्र शिशूनां हि क्रीडार्थं संत्यनेकशः । अप्सरःसु वरा स्वर्गे गीयते सा तिलोत्तमा ॥७७॥
 गेहे गेहे संति नार्यः सर्वास्त्वत्र तिलोत्तमाः । रुक्मभूषणभूषाढ्या गतिन् पुरनिःस्वनाः ॥७८॥
 सहस्राक्षोऽस्त्येक एव महान्स्वर्गं प्रगीयते । रामराज्ये चामराणि सहस्राक्षीष्यनेकशः ॥७९॥
 सुधापानं त्वेकमेव स्वर्गेऽस्ति परमं वरम् । तद्वन्नानाग्मानां च पानमत्र गृहे गृहे ॥८०॥
 सुधापानेन सहृष्टा यथा स्वर्गसुरोत्तमाः । दयिताऽधरपानेन तथाऽत्र सुखिनो जनाः ॥८१॥
 सागरेष्वेव सा दृष्टा मर्यादा सर्वदा नरैः । रामराज्येऽत्र चालेषु मर्यादा सर्वदेक्ष्यते ॥८२॥
 विचरंति गजारूढाः भ्रूयंते पार्थिवाः पुरा । पौरा जानपदाः भवे विचरन्त्यत्र ते गजैः ॥८३॥
 पूर्वं ध्रुवं शिशूनां हि चुम्बनं दिवसे मुहुः । रामराज्येऽनिशं नारीचुम्बनानि मुहुर्मुहुः ॥८४॥
 क्रीडा परिमलद्रव्यैः फाल्गुने सा श्रुता पुनः । क्रीडा परिमलद्रव्यैः पौराश्चक्रः सदाऽत्र ते ॥८५॥
 एवं तद्रामराज्यं हि महामंगलसंयुतम् । आसीदनुपमेयं च श्रवणान्मंगलप्रदम् ॥८६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

उत्तरार्धे रामराज्यधर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

(रामका लव-कुश तथा भ्राताभोंको राजनीतिक उपदेश)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः श्रीमान्समाहूय कुशं लवम् । लक्ष्मणं भरतं चापि शत्रुघ्नं रहसि स्थितः ॥ १ ॥

भाता है कि कैलासपर एक ऐसा बेल है, जो अतिशय घबल वर्णका है । किन्तु रामराज्यमें वैसे-वैसे कितने ही बेल हल जोतनेका काम करते थे । चन्द्रलोकमें एक ऐसा मृग है, जो बड़ा सुन्दर और कृष्ण वर्णका है । किन्तु रामराज्यमें लड़कोंको खेलनेके लिए वैसे-वैसे कितने ही मृग रखा करते थे । सुनते हैं कि स्वर्गलोकमें कोई तिलोत्तमा नामकी बड़ी सुन्दरी अम्भरा है ॥ ७५-७७ ॥ किन्तु रामराज्यमें घर-घरकी स्त्रियाँ तिलोत्तमाके समान सुन्दरी तथा सुवर्णके भूषणोंसे भूषित होकर चलते समय नूपुरका दममुन शब्द करती चलती थीं ॥ ७८ ॥ सुनते हैं कि स्वर्गमें केवल एक सहस्राक्ष (इन्द्र) है, किन्तु रामके यहाँ अनेको सहस्राक्ष चमर चलते थे । स्वर्गमें केवल अमृत पान करनेकी वस्तु है और रामराज्यमें घर-घर विविध प्रकारकी रसमयी पेय वस्तुयें विद्यमान रखा करती थीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ जिस तरह अमृतको पीकर देवता स्वर्गमें प्रसन्न रहते हैं, उसी प्रकार स्त्रीके अघरोष्ठका पान करके अयोध्याके सब मनुष्य प्रसन्न रहते थे ॥ ८१ ॥ आजतक संसारी मनुष्योंने केवल समुद्रकी भर्यादा देखी थी (वानी वह अपनी सोमाके बाहर जाता नहीं देखा गया), किन्तु रामके राज्यमें छोटे-छाटे बच्चोंमें भी भर्यादा दिखायी देती थीं ॥ ८२ ॥ सुनते हैं कि पहले राजा ही लोग हाथियोंपर चढ़कर इधर-उधर घूमते-फिरते थे, किन्तु रामके राजमें सारे पुरवासो और देशवासी हाथियोंपर सवार होकर घूमते फिरते दिखायी देते थे ॥ ८३ ॥ सुनते हैं कि पहले लोग बच्चोंको ही बार-बार चूमते थे, किन्तु रामके राजमें स्त्रियोंको भी लोग बड़े आनन्दके साथ दिन रातमें अनेकों बार चूमते थे ॥ ८४ ॥ सुना जाता है कि पहले फाल्गुनके महीनमें ही रङ्ग तथा सुगन्धित वस्तुएँ एक-दूसरेपर छाड़ते हुए लाग फाय खेलते थे, किन्तु रामके राजमें लोग सर्वदा वैसे खेल खेला करते थे ॥ ८५ ॥ इस प्रकार रामका राज्य महामङ्गलप्रद अनुपमेय और नाममात्र सुननेसे ही कल्पानुदायक हो रहा था ॥ ८६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंच रामतेजपाब्देयकुत'ज्योत्स्ना'भाषाटोकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

श्रीरामदासने कहा कि एक बार श्रीमान् रामने एकान्तमें लव, कुश, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नको

राजनीतिं विस्तरेण शिक्षयामास मादरम् । शृणु वत्स कुशाग्र त्वं युयं सर्वे लवादिकाः ॥ २ ॥
 शृणुताञ्च स्वस्थचित्ता राजनीतिं वदाम्यहम् । कुश त्वं पृथिवीपालो भविष्यसि गते मयि ॥ ३ ॥
 वैकुण्ठं शृणु तस्माच्छ्रेयं साधयानमना भव । अनृतं नैव वक्तव्यं नृपेणा चिरजीविना ॥ ४ ॥
 नातिकामी न वै क्रोधी राजा न मुखमर्हति । परदारगतिस्त्वाज्यः सर्वथा पार्थिवेन हि ॥ ५ ॥
 मत्वं शीघ्रं दया क्षातिरःर्जुनं मधुरं वचः । द्विजगोयनिमद्भक्तिः समैते शुभदा गुणाः ॥ ६ ॥
 निद्रालस्यं मद्यपानं घृतं वारांगनाग्निः । अतिक्रीडाऽतिमृगया सप्त दोषा नृपस्य च ॥ ७ ॥
 पुत्रवत्पालनीयाश्च प्रजा नृपतिना धृवि । पष्टांशः कर्मभारश्च राज्ञा ग्राह्यः सदैव हि ॥ ८ ॥
 ज्ञेयं चारैः सदा वृत्तं पृथिव्याः पार्थिवेन वै । परराष्ट्रे मदा दत्ता नानावेषविरूपिताः ॥ ९ ॥
 पञ्च पंचायत्ना द्वी द्वी प्रेषणीया नृपेण हि । न विश्वसेत्पारकीयजने दूते नृपोत्तमः ॥ १० ॥
 दण्डो भेदस्तथा साम दानं कालोचितं चरेत् । स्वकार्यं साधयेद्युक्त्या काले प्राप्तं नृपोत्तमः ॥ ११ ॥
 मनसा चिंतितं कार्यं कथनीयं न कम्पचित् । कृत्वा कार्यं दर्शनीयं जनान्मित्रजनानपि ॥ १२ ॥
 मासे मासे स्वकोशस्य परामर्शो नृपोत्तमैः । गृहणीयः सर्वदैव विश्वसेत्सेवकेषु न ॥ १३ ॥
 वर्षे वर्षे नगराश्च प्राकाशस्य नृपोत्तमैः । परिखानां परामर्शः कार्यो मन्त्रिजनैः सह ॥ १४ ॥
 चतुर्मासेषु शस्त्राणां मार्गाणां पार्थिवोत्तमैः । परामर्शः मदा कोष्ठागारादीनां प्रकाशयेत् ॥ १५ ॥
 पञ्च पक्षे चारणानां तुरंगाणां तथाऽष्टभिः । दिवसेर्माममात्रेण वस्त्राणां पार्थिवोत्तमैः ॥ १६ ॥
 परामर्शः सदा कार्यः पिशादीनां त्रिभिर्दिनैः । सीमान्चारजनानां च षण्मासैश्च नृपोत्तमैः ॥ १७ ॥
 परामर्शः सदा कार्यस्तथा जानपदस्य च । मासे मासे स्वमन्यस्य वापीनामयनेन हि ॥ १८ ॥

बुलाया ॥ १ ॥ उन्हें विस्तारपूर्वक राजनीतिकी शिक्षा देते हुए कहने लगे—हे वत्स कुश तथा भर्तादिक
 भ्राताओं । तुम लोग स्वस्थचित्त होकर मुझ (मैं) तुम्हें राजनीतिकी शिक्षा दे रहा हूँ । हे कुश ! मेरे वैकुण्ठ
 चले आयेपर तुम राजा होओगे । इसलिये तुम विजय रीतिसे मेरी शिक्षाको सुन रखना । जिस राजाको
 चिरकाल तक इस संसारमें जीवित रहना हो, उसे चाहिये कि वह झूठ कभी न बोले । २-४ ॥ जो राजा
 कामो और क्रोधी नहीं होना, वही सुखसे रह सकता है । राजाका चाहिये कि वह दूसरेको हतोसे प्रेम न
 करे ॥ ५ ॥ सत्य, शीघ्र (पवित्रता), दया, क्षमा, स्वभावसे कोमलता, मोठो बातें, श्लाघनीय सन्त
 तथा सज्जनोपर श्रद्धा, ये सात गुण राजाके लिए परम कल्याणकारी है ॥ ६ ॥ निद्रा, आलस्य,
 मद्यपान, घृत (जुआ), वेषाभोस प्रेम, उगादा मज्जुद और अधिक शिकार सेलना, ये राजाके सात
 दोष हैं ॥ ७ ॥ राजाको चाहिए कि वह राज्यकी प्रजाका पुत्रवत् समान पालन करे और उसमें आयका पष्टांश
 कर सर्वदा लेता जाय ॥ ८ ॥ राजाका यह बर्तव्य है कि वह गुप्तचरो द्वारा राज्य भरका समाचार मालूम
 करता रहे । दूसरे राजाके राज्यकी भी गति विधि देखनेके लिए वेध बदलकर पाँच पाँच या दो-दो दूत
 नियुक्त कर दे । अपने दूतोंके सिवाय किसी और व्यक्तिको विश्वास न करे ॥ ९ ॥ १० ॥ समय-समयपर
 जैसा उचित समझे, साम-दान आदि नीतियोंका प्रयोग करता रहे । समय पाकर युक्तिके साथ अपना
 कार्य साधम करे ॥ ११ ॥ जो कार्य अपने मनमें साच, वह किसीसे न कहे । स्वयं चुपचाप करता रहे ।
 नौकरोंके विश्वासपर राजकाज न छोड़ दे । १२ ॥ महीने महीने अपने सजानेकी देख-भाल स्वयं करे ।
 नौकरोंके ही विश्वासपर न छोड़ दे ॥ १३ ॥ साल-मासपर साढ़ अपने मंत्रियोंके साथ नगरकी जाई
 आदिकी भी जाँच करे ॥ १४ ॥ चार-चार महीनेमें अपने शस्त्रों, मार्गों तथा कोठार आदिका निरीक्षण
 करता रहे ॥ १५ ॥ एक पक्षमें या आठवें रोज हाथों छोड़े आदि देखे । महीने-महीने कपड़ोंको देख-
 रेख करे ॥ १६ ॥ प्रति तीसरे दिन अपने यहाँ पाले हुए सुगो-कोयल आदि चिड़ियोंको देखे और हर
 छठवें महीने अपनी सीमापर नियुक्त अधिकारियोंकी निगरानी करे । सर्वदा अपने राज्यमें रहनेवाले
 मनुष्योंपर ध्यान रखे । महीने महीने सेनाकी देखभाल करे और छठव महीने राज्यके कुएँ-बावली आदि

कार्यः पुष्पवाटिकानां मासे मासे नृपोत्तमैः । परामर्शः स्वयं गत्वाऽथ वा मन्त्रिजनोत्तमैः ॥१९॥
 वर्षे वर्षे समुद्योगः षण्मासैरथवा त्रिभिः । मासैर्नृपेण स्वे राष्ट्रे कार्यः सैन्येन यत्नतः ॥२०॥
 देवानां ब्राह्मणानां च गुरुणा यतिना तथा । अमतोपो नैव कार्यः पार्थिवेन कदाऽपि हि ॥२१॥
 द्रव्यादाय सदा पश्येन्स्वव्ययं तु निरीक्षयेत् । आदायस्य चतुर्थांशैर्व्ययः कार्यो नृपोत्तमैः ॥२२॥
 तृतीयांशेन वा कार्यस्त्वर्षांशेन कदापि न । इष्टाः कार्या मन्त्रिणश्च नानिकोप समाचरेत् ॥२३॥
 नातिमान्या मन्त्रिणश्च वर्षनीयाः कदापि न । न विरोध्याः कदा राज्ञा दुर्गपालास्तथैव च ॥२४॥
 आक्षरणां पट्टणानां दुर्गाणां गिरिवामिनाम् । अग्न्यवामिनां मिथुपद्मीपनिवामिनाम् ॥२५॥
 सिन्धुतीरस्थितानां च नानादेशनिवामिनाम् । वर्षान्तरस्थितानां च द्वीपांतरनिवासिनाम् ॥२६॥
 द्वीपे द्वीपे पृथग्वर्षवामिनां पार्थिवोत्तमैः । परामर्शः सदा कार्यश्चरैः पश्चात्तरेण हि ॥२७॥
 परगद्गादुगुमरूपैः काषायांवरधारिभिः । अवधूतादिवेषश्च तथा कार्पाटिकोपमैः ॥२८॥
 वणिग्पुष्पधरैर्दूर्तवृत्तं वेद्यं नृपोत्तमैः । तत्र तत्राधिपाः सर्वेऽदेऽदे कार्यास्तु नूतनाः ॥२९॥
 एक एव चिरं राज्ञा न स्थाप्यः सेवकः क्वचित् । परमेन्यानि वेद्यानि द्रष्टव्यं स्ववलं सदा ॥३०॥
 परराष्ट्रागतो दूतः स्वीयराष्ट्रे विलोकयेत् । पृष्ट्वैर्ज्ञैश्च दण्डवः स परदूतं न शिषयेत् ॥३१॥
 परदूतो मोचनीयः सम्मानेन नृपोत्तमैः । स्वसीमारक्षिणो दूताः शिक्षणीया मुहुर्मुहुः ॥३२॥
 परदूतः कथं मुक्तः स्वीयराष्ट्रे पुरेऽथवा । अद्यारभ्य सूक्ष्मदृष्ट्या द्रष्टव्यं चेति पार्थिवैः ॥३३॥
 अश्वमेधं पार्श्वगौ च पश्चाद्भागस्य रक्षकम् । सेनापति मन्त्रिण च स्वीयं प्रतिनिधिं तथा ॥३४॥
 घृतं चामरदस्तं च दूतं निकटवर्तिनम् । दानमानसेतोपये च सदा राज्ञा सुबुद्धिना ॥३५॥
 देश कालं बलं कोशं निजोन्साहं नृपोत्तमैः । आदौ बुद्ध्या निरोक्ष्याथ रिपोश्चापि परीक्षयेत् ॥३६॥

देखे ॥ १७ ॥ १८ ॥ महीने महीने बगीचोंमें स्वयं जाकर देखभाल करे या मन्त्रियोंको भेज दे ॥ १९ ॥
 साल-साल भर बाद, छठें अथवा तीसरे महीने सेनाके साथ-साथ राजा अपने राज्यमें दौग करे । इस बातका सदा ध्यान रखे कि दवताओं, ब्राह्मणों, यतियों तथा गुरुजनोमें किसी प्रकारका अस-तोष न फैलने पाये ॥ २० ॥ २१ ॥ धनका आय-व्यय स्वयं देख और आयका अनुपाशमात्र व्यय करे । किसी विकट समस्याके आ जानेपर आयका तृतीयांश खर्च करे, किन्तु आयका आधा खर्च कभी भी न होने पाये ॥
 मन्त्रियोंको सदा प्रसन्न रखे । न विशेष क्रोध करे और न किसीसे विशेष प्रेम ही रखे । दुर्गकी रक्षा करनेवालोंके साथ कभी विरोध न करे ॥ २२-२४ ॥ खानोंके पास रहनेवाले, राजधानीसे दूर किसी नगरमें रहनेवाले, दुर्ग तथा पर्वतनिवासी, जंगलमें रहनेवाले, समुद्रके टापुओंमें निवास करनेवाले समुद्र-तटपर रहनेवाले, विदेशोंमें रहनेवाले, द्वीपान्तरक निवासियों तथा किसी भी देशके रहनेवाले लोगोंको प्रत्येक पक्षमें राजा देख भाल करता रहे ॥ २५-२७ ॥ गुप्तचरधारी, सन्ध्यासंवेपचारी, अवधूत, वणिक् तथा नागाका धेज बनाकर दूसरेके राजमें घूमनेवाले गुप्तचरोसे अन्य राष्ट्रका समाचार मालूम करता रहे । उन दूसरे-दूसरे देशोंमें प्रति वर्ष नये-नये अधिकारी बदलता जाय ॥ २८ ॥ २९ ॥ राजाको यह उचित है कि किसी प्रदेशका अधिकारी बनाकर किसी नौकरको उपादा दिनों तक उस प्रदेशमें न रहने दे । दूसरे राजाओंकी सेना तथा अपना सैन्यबल बराबर देखता रहे ॥ ३० ॥ यदि किसी दूसरे राष्ट्रका गुप्तचर अपने राष्ट्रमें दिखायी दे जाय तो उसे किसी प्रकारका दण्ड न दे । दूसरे राष्ट्रके दूतको दण्ड न देना नीतिशास्त्रका नियम है । यदि दूसरे देशका दूत मिल जाय तो राजाको चाहिए कि उसे सम्मानपूर्वक छोड़ दे । अपने सीमाप्रांतमें रहने वाले निजी दूतोंको बराबर शिक्षा देता रहे । यदि दूसरे राष्ट्रका दूत मिल जाय तो राजाको चाहिए कि सूक्ष्मदृष्टिसे इस बातपर विचार करे कि उस देशके राजाने किस लिए मेरे राष्ट्रमें अपना दूत भेजा है ॥ ३१-३३ ॥ जो अपने आगे चलनेवाले हों या पीछे चलते हों, उनकी तथा सेनापति मन्त्रों, अपने प्रतिनिधि, सारथी, अमर बुलानेवाले तथा पास रहनेवाले लोगोंकी दान-मानसे प्रसन्न रखे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ देश, काल,

निजमित्रा नृपाः सर्वे तथा स्वसुहृदो नृपाः । सुहृदां सुहृदश्चापि मित्रमित्रान्निरोधयेत् ॥३७॥
 निजमित्रबलं दृष्ट्वा मित्रमित्रबलं तथा । बलं स्वसुहृदां चापि स्वसुहृदसुहृदो बलम् ॥३८॥
 आदौ नृपैः परीक्षया रिपोश्चैव निरीक्षयेत् । के स्वीयाः पार्थिवा राष्ट्रे पारकाया नृपश्च के ॥३९॥
 सुहृदः स्वनृपाणां च बलं तेषां निरीक्षयेत् । द्रष्टव्या रिपवः स्वीया गिण्णो रिपवस्तथा ॥४०॥
 दृष्ट्वा रिपूनां रिपुभिः कार्या रक्षा हि मैत्रिकी । परस्य शत्रुः पान्थो न पान्थश्चेत् पराधयेत् ॥४१॥
 पान्थं शत्रुबलं दृष्ट्वा शत्रुमित्रबलं तथा । पान्थं शत्रुसुहृन्मैत्र्यं दृष्ट्वा पान्थं सुगुह्ययेत् ॥४२॥
 परराष्ट्रे चारनेत्रैर्नयो दुर्गाणि पर्वताः । अरण्यानि दृष्ट्वा मार्गाभ्यारमाणां जलाश्रयाः ॥४३॥
 शातव्याः स्वपुरे पूर्वमुद्योगञ्च स्तश्चरेत् । परराष्ट्रेऽपि दृष्ट्वा हि गन्तव्य पार्थिवैः सुखम् ॥४४॥
 यत्राग्रे गमनं स्वीयं केषां वाच्यं न तत्कदा । पूर्वं गन्तुं निजैश्चा चेन्निक्षिपेदुत्तरे ध्वजम् ॥४५॥
 उत्तराभिमुखः कार्यः सेनावाप्तो नृपेण हि । अग्रेभ्यः चोत्तरं हि नृपेण शस्य सादरम् ॥४६॥
 क्रोशाद्गन्ते गतं दृष्ट्वा गच्छेन्पूर्वं स्वयं नृपः । एव ध्वजः कदा पश्ये पश्चिमे वा परादिशि ॥४७॥
 परराष्ट्रे रोपणीयश्चार्धवृत्तं तु वेदयेत् । स्वराष्ट्रे गमनं यस्यां दिशि तस्यां नृरोत्तमैः ॥४८॥
 रोपणीयो ध्वजः प्रोच्ये, सेनावामस्तथाचरेत् । यन्त्राणां मायुधानां च वाहनानां बलस्य च ॥४९॥
 राज्ञा दृष्टिः मदा कार्या कार्यो धान्यादिमग्रहः । राष्ट्रे दुर्गे पुरे स्त्रीषु पत्नये निजले बने ॥५०॥
 जलाश्रयाः शुभा कार्याः कृत्वा कोशव्ययं बहु । प्राकाशार्थेऽथ दुर्गार्थेऽथ जलाश्रये वो वयवः कृत्वा ॥५१॥
 न श्रेयः स व्ययो राज्ञा श्रेयं रक्षणमात्मनः । धर्मायैव व्ययो जनः मोक्षे श्रेयस्तु सदाहः ॥५२॥
 आपदर्थे धनं रक्षेद्दाराजसेद्धनैरपि । आत्मानं मतत्वं रक्षेद्दारेरपि धनैरपि ॥५३॥
 पादपुद्रामिव द्रव्यं राज्ञा दायो निरीक्षयेत् । नावलोक्यं यथाकालं व्यये तत्कोटिसमितम् ॥५४॥

बल, कोश और अपना उत्साह देखकर अच्छी तरह विचारे और शत्रुके भी बल आदिका निरीक्षण-परीक्षण करे । फिर अपनी बल, मित्रबल, मित्रके मित्रका बल और अपने सुहृदके सुहृदों का बल दखकर राजका चाहिये कि अपने शत्रुका बल-बल दखे । तब इस बातपर विचार करे कि कौन राजे अपनी साथ देनेवाले हैं और कौन शत्रुका ॥ ३६-४० ॥ इसके बाद उसे चाहिये कि शत्रुओंके शत्रुमें मित्रना करे । दूसरेके शत्रुकी वृत्ति तो रक्षा हो न करे और यदि रक्षा करे भी तो खूब अच्छी तरह देख-मानकर ॥ ४१ ॥ यदि शत्रुको सेना किसी प्रकार अपने पास आ ही जाय तो उसकी रक्षा करे । शत्रुक मित्रको सेना एवं शत्रुके सुहृदका सेनाकी रक्षा करे ॥ ४२ ॥ दूसरेके राष्ट्रेमें गुप्तचरका नियुक्त करके वहाँके पर्वतों, नदियों, बनों, कुत्तोंके रास्तों, गुप्तचरोके रास्तों तथा जलाशय आदिकर दृष्टि रखकर अच्छी तरह समझ ले । पठले अपने राज्यको रक्षाका पूर्ण प्रबन्ध करके ही किसी दूसरेके राज्यपर मटाई करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वहाँ अपनेको जाना हो, वह कभी बात कभी किसीका भी न बताये । यदि पूर्वको ओर यात्रा करना हो तो उत्तरको तरफ लम्बा भेजे और सेनाके ठहरनेका शिविर आदि भी उत्तरको ओर ही बनवाये । सेना भी उत्तरकी ओर ही चले, किन्तु बाधा कोस जागे जाकर पूर्वकी ओर मुड़कर राजाकी जहाँ जाना हो, वहाँ जाय । इसी तरह कभी लम्बेको दक्षिणको ओर तथा कभी पश्चिम दिशाको ओर भेजे ॥ ४५-४७ ॥ किसी दूसरे राजाके राष्ट्रेमें अपनेकी गादकर गुप्तचरों द्वारा वहाँका हाल-चाल मासूम करे । अपने राज्यमें उसी ओर लम्बा पाड़े, जिस ओर अपनेको जाना हो ॥ ४८ ॥ शिविर आदि भी उसी तरफ बनवाये । राजाको चाहिये कि अपने यहाँ शीप-बन्दूक आदि यन्त्र तथा अन्य आयुध, वाहन और सेनाको सदा बढ़ाता हुआ धन-धान्य आदिका भी बली प्रकार संग्रह करता रहे । अपने राष्ट्रे किलाओं, बाजारों, अपनी खास राजमन्दी तथा निजल बनोंमें प्रचुर दान लक्ष्य करके बड़े-बड़े जलाशय बनवा दे । जो घन आस-पासको खाई, किले, जलाशय आदिमें लक्ष्य हो, उसे क्षय न समझ । उसे तो अपनी रक्षाका साधन माने । धर्मकार्यमें जो व्यय हो, उसे आगेके लिए संग्रह माने ॥ ४९-५२ ॥ आपत्तिसे बचनेके लिए धनकी रक्षा करे, धनसे भी भेष्ट समझकर स्त्रीको रक्षा

न सेनारहितं राजा गतव्यं कूपगृहहिः । नैकाकी विचरेद्ग्रामे नैकाकी कदापि सविशेत् ॥५५॥
 नैकाकी कदापि वै स्थेयं न पद्मगां विचरेद्गृहिः । न गच्छेत्परमेष्ठेण वारं वारं नृपोत्तमः ॥५६॥
 न विश्वसेद्द्वारपालं जलदं रजकं तथा । धौतवस्त्राणि बुद्ध्या हि नृपः सम्यक् परीक्षयेत् ॥५७॥
 तांबूलवर्षाटिकां ग्राह्यान्तरं दृष्ट्वा परादिना परदत्तं जलं ग्राह्यं राज्ञाऽक्षिभ्यां विलोक्य च ॥५८॥
 कर्णानि परदत्तानि पराक्षेत्पार्श्वोत्तमः । नृगस्थेन नृपेर्भाव्यं न तेषां निकटे चरेत् ॥५९॥
 समं राज्ञा प्रगतव्यं द्विवारं स्वेकदाप्यवा । अथयाम सभासध्ये स्थेयं राज्ञा न वै चिन्म ॥६०॥
 स्वद्वेष्टा भगवद्राष्ट्राद्धिः कार्यो नृपोत्तमैः । पादौ प्रसायं न स्थेयं सभायां नृपमन्त्रमैः ॥६१॥
 न बाहुबन्धनं जान्वीः कृत्वा स्थेयं नृपोत्तमैः । नातिस्मितं कदा कार्यं सभायां पार्श्वोत्तमैः ॥६२॥
 सभायां समलैर्वस्त्रैर्न गन्तव्यं कदा नृपैः । गणिका गणका वैशा गायका वन्दिनो नटाः ॥६३॥
 पण्डिता धर्मशास्त्रज्ञास्तार्किका वैदिका द्विजाः । सदा पाव्या नृपेर्गते दानमानैरहर्निशम् ॥६४॥
 न विश्वसेत्सपिताय तोषयेत्तं धनार्थिभिः । प्रजानां गोभवं कार्यं दण्डयेन्न वृथा प्रजाः ॥६५॥
 शक्येषुक्ताः प्रजाः सर्वा नैव कार्याः कदाचन । राज्यद्वारस्थितैर्दूतैः सर्वैः ते पार्श्वोत्तमाः ॥६६॥
 मुक्तकचुकबन्धाश्च विमुक्तकटिबन्धनाः । मन्थ्यदृष्ट्वा स्यस्तशस्त्राः प्रेषणीया नृपोत्तमम् ॥६७॥
 राज्ञाज्ञया नृपं नरत्राऽऽमने घोषविशेष्कमाद् । नृपेर्माण्डलिकैः सर्वैः स्थातव्यं पुरतोऽप्यवा ॥६८॥
 सभालिपि इस्तौ पादौ च राजन्यस्तविलोचनैः । न हसेद्वाजपुरतो न जृम्भेन्न जुवेन्मुहुः ॥६९॥
 तथा न धावनं कार्यं सर्वमाण्डलिकैर्नृपैः । आगमे गमने सर्वैर्दन्तयो नृपो मुहुः ॥७०॥
 नास्त्युच्चैः संवदेद्वाजमाभिध्ये पार्श्वेतरैः । कन्तुकेन विना राजा सभायां नोपमविशत् ॥७१॥

करे और स्त्री तथा छतसे भी बंदकर अपना रक्ष करनी चाहिए ॥ ५३ ॥ अपनी आपसमें एक-दूसरे को किसीसे पाना ही ही लेकर छुड़ । किन्तु समय पड़नपर यदि कगडाक सवकी आवश्यकता पड़ जाय तो लपके कर दे, कपयका मुँह न देख । अपने नगरक बाहर बिना सेनाक नहीं न जाय । अपने ग्राममें भी अकेला न घूमे-फिरे और न कहीं अकेला बैठे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ कहीं अकेला न ठहर, न पैशल बले और बार-बार किसीके घर न जाय । द्वारपाल, पानी देनेवाले सेवक और धनः इनरर कमो भा विश्वास न कर । कपडा धुलकर आये तो राजाको चाहिए कि अपनी बुद्धिसे खूब अच्छा तरह उसका परीक्षा करके ही पहन । पानका बीड़ा खानेको आये तो पहन उस किम्बा दूसरको मिलाकर स्वयं दूसरा बीड़ा खाय । पानी पानेको आये तो अच्छी तरह उसका परीक्षा करके भरना अर्थात् देखकर पिय ॥ ५६-५८ ॥ दूसरेके दिये फूलोको भी भलो भाँति परीक्षा कर ले । जो रात्रे मिलने आय, उनसे दूरसे ही बतकीत कर । न स्वयं उनके पास जाय और न उन्हें अपने पास आन दे । प्रतिदिन एक या दो बार सभामें जाय और आये पहरेसे अधिक वहाँ न ठहरे । अपनेसे द्वेष करनेवालोको नगरसे बाहर कर दे । सुभ्रम कभी पैर फँसकर न बैठे और न घुटनोको सिक्केडकर हाँ बँडा करे । राजाको चाहिए कि सभामें कभी ज्यादा न हँसे ॥ ५९-६२ ॥ सभामें कभी मँले कपडे पहिनकर न जाय । गणिका, गणक (उपनिषा), वैद्य, गायक, वन्दीजन, नट, पण्डित, धर्मशास्त्री, तर्किक, वैदिक तथा ब्राह्मण इनका दान मान आदिस सब सम्मान करता रह ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ नाईपर कभी भा विश्वास न करे । उसे हमशा रुपये-पैसे दकर प्रसन्न रखे । सब लोगोका सम्मान करता हुआ प्रजाको व्यर्थ बँड न दे ॥ ६५ ॥ हम बातकी सदा ध्यान रखे कि प्रजाक लोगोका किसी प्रकारका क्लेश न होने पाये । राजद्वार-पर रहनेवाले दूतको चाहिये कि जो राज मिलने आय, उनके सन्नाह उतरवाकर परतले खुलवा दे । जो कुछ अस्त्र शस्त्र उनके पास हो, उन्हें अलग रखवा दे । फिर अच्छा तरह देख भालकर राजासे मिलनकी भीतर जाने दे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जो कोई राजासे मिलने जाय वह राजाको प्रणाम करके संकेतित आसनपर बैठे । जो माण्डलिक राजा हो, उनके लिये राजाके सामन कुर्सी डाला जाय । वे राजाके सामने हाथ पैर समेटकर राजाको और निहारत हुए बैठे । राजाके सामने न हँसे, न जम्हाई ले और न बार-बार छीक ॥ ६८ ॥ न बार-बार

मृगयायां वारणेशो नैव हन्यो नृपोत्तमैः । नातिर्वन्ती मृगी राज्ञा हन्तव्या विपिने कदा ॥७२॥
 न निद्रितश्च हन्तव्यः पिवन्तीं वनेचरः । तथा स्वशरणं प्राप्तो विश्वस्तो वा कदाचन ॥७३॥
 क्रीडामक्तो वने प्राणी नैव हन्यो नृपोत्तमैः । भीमाचागन्धर्दिक्षु संस्थाप्य मृगयां चरेत् ॥७४॥
 रात्रौ मित्रेण सहितस्त्वर्णामेव नृपोत्तमः । आत्मानं कथनेनैव सवाच्छाय बहिश्चरेत् ॥७५॥
 पुग्द्वारस्थितानां च बागेलोदि निर्गच्छेत् । जनानां मापितं सर्वं श्रोतव्यं हि शुभाशुभम् ॥७६॥
 एवं स्वयं प्रगन्तव्यमथवा प्रेषयेद्वितम् । रात्रौ रात्रौ पुरे बुद्ध्या श्रोतव्यं मकलेरितम् ॥७७॥
 न कार्यः कलहो मेहे गृहकुलं सभास्थितं । न वाच्यमणुमात्रं हि न नृपिणीं वृत्तं चरेत् ॥७८॥
 न कङ्क्षेच्च शिरो राज्ञा सभायां स्वकरेण वै । श्रुत्वा मित्रं मुक्त्वा न त्यजेद्वैर्यमात्मनः ॥७९॥
 पलायनं न संशमाद्राज्ञा कार्यं कदाचन । न रिपूणां निजा पृष्टिर्दुर्लभा कदाचन ॥८०॥
 नोदुपेन तरेद्राजा नदीं मुख्यं कदापि हि । सेतुं विना नदी राज्ञा नोत्तीर्या हि कदाचन ॥८१॥
 नोत्तीर्या नौकया राज्ञा नदी कदापि सुतादिभिः । कार्या नैव जलक्रीडा नौकायां स्वमुक्तैः सह ॥८२॥
 न स्थेयं दृढमध्ये हि तथा चैव चतुर्पथे । न ताडयेच्चिन्तां पत्नीं नरा पुत्रं न ताडयेत् ॥८३॥
 स्वमुद्राङ्कितपत्रेण विना केषां पुगादृहिः । न निर्गमः प्रवर्तव्यस्तथैवागमनं नृणाम् ॥८४॥
 कर्तुमाज्ञापनीयं न मुद्रापत्राङ्कितं विना । नाग्नये नृपटनं चौरैः पथि कार्यं नृपोत्तमैः ॥८५॥
 न कार्यं मुण्डनं राज्ञा विना तीर्थं कदाचन । पर्यकान्ते गृहे नैव स्नातव्यं पाथिपोत्तमैः ॥८६॥
 न पादेन स्पृशेच्चार्थं न पादेन शरं स्पृशेत् । नानिर्काङ्क्षेन्नारिकाभिर्दिर्जवाद् न वै चरेत् ॥८७॥
 न तिष्ठेद्द्वारदेशं वै न स्थानव्यं नृपेर्भुवि । राज्ञा मार्गं न वै स्थेयं न खेदं नृपतिर्भजेत् ॥८८॥
 तोयानयनमार्गं हि स्त्रीणां स्तेयं नृपेण न । धान्यं ममर्थं कर्तुं वै दण्डयेद्यवमायिनः ॥८९॥

पुके । जब राजाके सामने जाय और लोट, तब बराबर राजाको प्रणाम करे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ राजाके सामने और-ओरसे बात न करे । राजाको चाहिए कि वह सभ में कबच कारण किये बिना न बैठे । जब शिकार खेलने जाय तो वहाँ हाथी तथा गमिणी मृगीका शिकार कभी न करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जो जीव पानी में रहा हो, जो सोया हो और जो भाग करके अपनी शरण आया हो, ऐसे जीवोंका शिकार कभी न करे । शिकार खेलने जाय, तब आठो दिशाओंमें कुछ लोगोंका नियुक्त करके शिकार खेलें । रात्रिके समय अपने किसी मित्रके साथ कम्बल ओढ़कर महलमें बाहर निकले ॥ ७३-७५ ॥ पुरंदारके फटकामे लग्न हुए अंगला-दण्ड आदि देखे । रात्रिमें लोग जो अटपटी बात कर रहे हो, उन्हें सावधान मनसे सुने । इस प्रकार प्रत्येक रात्रिकी स्वयं जाय या अपने विश्वासपात्र मित्रका भेज दिया करे, जो हर रात्रिमें लोगोंकी बातें सुनता रहे । घरमें लड़ाई-सगडा न करे, सभामें कोई घरनू काम-काज न करे । घरसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई बात भी न करे । सभामें चुपचाप बैठे और धूके नहीं । सभामें मित्र न खजलावे । शत्रुका उक्थं सुनकर घबरा न छोड़े । राजाको चाहिए कि कभी संग्रामभूमिसे भागे नहीं और शत्रुकी कभी अपनी पीठ न दिखावे ॥ ७६-८० ॥ राजाको चाहिए कि कभी अपने बालवच्चोंके साथ नौकापर चढ़कर नदी न पार करे । अपने लवकोंके साथ नौकापर बैठकर जलक्रीडा न करे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ बाजारमें या किसी चौराहेपर न बैठे । अपनी स्त्री और पुत्रको न धमकाये । राजाका मुहर लगा पत्र देकर लोगोंको अपने नगरसे बाहर जाने दे । यही नियम नगरके भीतर आनेवालोंके लिए भी रखने । वनों तथा रास्तेमें चोरी करनेवालोंको ऐसा भीका न मिलने पाये, जिससे वे चोरी कर सकें ॥ ८३-८५ ॥ तार्थके निवाय किसी दूसरी जगह राजा मुण्डन न करवाये । कोई पर्वकाल या पर्व तो घरमें स्नान न करे, बल्कि किसी तीर्थको चला जाय । शत्रु और बाणको पैरसे न छुए । घोष-पचीसी आदि न खेलें । ब्राह्मणोंके साथ ज्यादा वाद-विवाद न करे । अपने द्वारपर तथा काली जमीनपर न बैठे । रास्तेमें भी कभी न बैठे और किसी तरहका खेद न करे ॥ ८६-८८ ॥ जिस रास्तेसे स्त्रियां पानी भरने जाती-आती हों, वहाँ कभी न बैठे । अश्वोंको सस्ते भावसे

दृष्ट्वा किञ्चिन्महर्षे तु स्वीयराष्ट्रे हि भूमता । न्यूनः कार्याः करभारः किञ्चिद्देशसुखाय च ॥९०॥
 नातिशायं कदा कार्यमौदार्यं दर्शयेज्जनान् । द्रव्यं गृहीत्वा गत्वा हि मोचनीया न तस्कराः ॥९१॥
 मुख्यं दृष्ट्वा न वै कार्यो राज्ञा न्यायः कदापि हि । न न्यायश्च परैः कार्याः स्वयमेव प्रकारयेत् ॥९२॥
 अर्तानां सकलं वृत्तं श्रोतव्यं सादरं नृपैः । आर्त्त आकारणीयो हि निकटे कृपया नृपैः ॥९३॥
 आत्मानं मानयेन्नैव वैद्यं च गणकं नटम् । पण्डितं वैदिकं वीरं गायकं कृतधर्मिणम् ॥९४॥
 यज्ञो दानं जपो होमः सन्ध्या ध्यानं शिवार्चनम् । स्नानं पुराणश्रवणं मक्त्या कार्यं नृपोत्तमैः ॥९५॥
 न मादकं वस्तु सैव्यं न कृच्छ्रादिकमाचरेत् । न यात्रा स्वपदा कार्या समद्वीपाधिपेन हि ॥९६॥
 फलाहारश्च कर्तव्यो राज्ञा एकादशीदिने । निर्जलश्लेषवासश्च न कार्यः पृथिवीभृता ॥९७॥
 येन यद्याचितं राज्ञे भूसुरेणार्पयेच्च तत् । तस्मै विप्राय राज्ञा हि नृपा भूसुरदेवताः ॥९८॥
 उत्साहे बन्धनान्मोच्या ये ये क्रोधान्मुरक्षिताः । निजाज्ञाभंगतां दृष्ट्वा ज्ञेयं स्वीयं हृतं शिरः ॥९९॥
 स्वीयदूतापमानो यः स स्वीयश्चित्रयेन्नृपः । स्वीयदूतस्य सम्मानो राज्ञा ज्ञेयः स आत्मनः ॥१००॥
 एवं कुशं मया प्रोक्ता राजनीतिः सविस्तरा । दिनचर्या मया यद्वर्तिक्रियते त्वं तथा कुरु ॥१०१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितसतगते श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकाण्डे राजनीतिविक्षेपं

नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

(कुशकी पुत्री हेमाका स्वयम्बर)

श्रीरामदास उवाच

एकदा कुशकन्याया हेमायाश्च स्वयम्बरम् । अयोध्यायां चकाराथ रामश्चातिमद्बोत्सवैः ॥ १ ॥
 समाहूता नृपाः सर्वे नानाद्वीपांतरस्थिताः । समाजग्मुः सुवेपाश्च सभायां तस्थुरासने ॥ २ ॥

निकवानेके लिए अनियोंको दण्ड देता रहे । यदि अपने राष्ट्रमें महंगी वहु जाय ता राजाको चाहिये कि देशको सुखी रखनेके लिए करभार कुछ हल्का कर दे ॥ ९० ॥ ९१ ॥ कभी अतिशयता न करे और रुपये लेकर धोरोंकी न छोड़े । राजाको यह उचित है कि मुंहदस्त्रा न्याय न करे । न्याय करनेका भार दूसरोंके ऊपर न डाल कर स्वयं करे । यदि कोई दुखी राजाके पास अपना दुख सुनाने पहुँचे तो राजाको चाहिये कि दुखियोंके सारे दुःख आदरपूर्वक सुने । दुखिया मनुष्यसे किसी प्रकारको घृणा न करके उसे अपने पास बुलये और उसकी दुःखमयी कहानी सुने । किसी तरहका घमण्ड न करे वैद्य, ज्योतिषी, नट, पण्डित, वैदिक, वीर, गायक और धर्मात्मा इनका आदर करे । यज्ञ, दान, अय, हाम, सन्ध्या, शिवार्चन, स्नान और पुराणश्रवण आदि शुभ कार्य भक्तिपूर्वक करता रहे ॥ ९१-९५ ॥ राजाको चाहिये कि प्रत्येक एकादशीको केवल फलाहार करके रहे और कभी भी निर्जल उपवास न करे । राजाके समीप पहुँचकर ब्राह्मण जो मांगे, सो दे । क्योंकि ब्राह्मण देवताके समान होता है । शोधक जिन-जिन लोगोंको जेलमें डाल दिया गया हो, कोई उत्साहका समय आनेपर उन्हें छोड़ दे । यदि किसीके द्वारा आज्ञा भंग हो रहा हो तो अपना सिर कट गया समझे । अपने दूतका अपमान अपना अपमान और अपने दूतका सम्मान अपना सम्मान जाने । हे कुश ! इस प्रकार मैंने तुम्हें सारी राजनीति बतला दी । रह गयी दिनचर्याकी बात, सो मैं जैसा करता हूँ वैसे ही तुम भी करते चलो ॥ ९६-१०१ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामतेजपाण्ड्यविरचिते ज्योत्स्नाभाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे उत्तराष्ट्रे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—रामने एक समय कुशकी पुत्री हेमाका स्वयम्बर बड़े धूमधामके साथ ठाना । उसमें द्वीप-द्वीपान्तरके अनेक राजे अच्छे-बुरा भूषणसे सुसज्जित होकर आये और सुन्दर-सुन्दर

यपुर्देवाः सगन्धर्वा मुनयोऽपि समापयुः ॥ ३ ॥

तदा सभायामानीता हेमालङ्कारभूषिता । आरुह्य शिखिकायां तु रुक्ममय्यां वरानना ॥ ४ ॥
 नवरत्नमयी माला विभ्रती सा स्वयम्बरा । ददर्श नृपनीम्नर्वाभ्यपुत्रान्मविस्तरम् ॥ ५ ॥
 तद्भूषापविनिर्मुक्तैस्तत्कटाक्षपत्रभिः । सभिक्षाम्ने नृपाः सर्वे के वयं न विदुस्तदा ॥ ६ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्रावन्तिनायसुतो महान् । चित्रांगदो समायाच तां जहार कुशात्मजाम् ॥ ७ ॥
 दृष्ट्वा कार्यान्तरन्यग्रान्नामादीन्वेगवत्तरः । मोहनास्त्रेण सकलान्कीरान् कुन्वादिमोहितान् ॥ ८ ॥
 रथे निवेश्य तां हेमां हेमामां वेगवत्तरः । चित्रांगदो बहिर्गन्वा कोशमात्रे स्थितोऽमरत् ॥ ९ ॥
 किं तूष्णीं चीरवन्नेया मयेयं कुशचालिका । इति निश्चिन्य मेधावी तस्थौ चित्रांगदो महान् ॥ १० ॥
 एतस्मिन्नन्तरे पुनर् हाहाकारो महानभूत् । नीता हेमा चोद्यवाहोः पुत्रेणातिवलीयमा ॥ ११ ॥
 नृपाः सर्वे समुत्तस्थुः सभायां विन्नमानमाः । उपमहरिते तेन मोहनास्त्रेण विमम्भमानम् ॥ १२ ॥
 चित्रांगदेन योद्धुं ते स्वर्मन्यैर्निर्ययुर्नृपाः । बहिः साकेतनगरान् क्रोधादारक्तलोचनाः ॥ १३ ॥
 तूष्णीमेवोद्यवाहुः स ददर्श पुत्रकौतुकम् । एतस्मिन्नन्तरे सर्वे तद्रथं पार्थिवोत्तमाः ॥ १४ ॥
 सर्वेष्टथ कोटिशः शस्त्रैर्ववर्षुश्चोद्यवाहुजम् । तदा चित्रांगदो वीरो बायव्यास्त्रेण पार्थिवान् ॥ १५ ॥
 गगने भ्रमयामास वाहनायैः समन्वितान् । ततो रामाज्ञया सप्त लवाद्या निर्ययुः पुरात् ॥ १६ ॥
 उन्सवार्थं समायाताः स्वस्वराज्यात् बालकाः । अङ्गदाद्या निर्जैः सैन्यैः सलवाः सप्तर ययुः ॥ १७ ॥
 तदा बभूव तुमुलं युद्धं तल्लोमहर्षणम् । चित्रांगद ववर्षुस्ते नानाशस्त्राणि राघवाः ॥ १८ ॥
 चित्रांगदः स्वमार्णार्घभिश्चा शस्त्राणि तानि हि । निजवर्णैर्गुपकेतुं चकार विरथं सणात् ॥ १९ ॥
 तथा चकार विरथं सुबाहुं पुष्करं तथा । तस्यैव चित्रकेतुं च सङ्गद बलवत्तरः ॥ २० ॥

आसनोपर बैठ । यह बात राजाओं ही तक नही पो, बल्कि देवता, गन्धर्व, ऋषि-मुनि, विद्यापति, नाग, किन्नर भी आ-आकर उस उत्तमवम सम्मिलित हुए थे । इन सबके आ जानेपर एक सुवर्णको पालकीमें बैठी सुमुखी सन्दरी हेमा हाथोंमें नवरत्नोसे बनी माला लिय आ पहुच । सभाके प्राङ्गणमें पहुँचकर उसने वहाँपर बैठ हुए समस्त राजाओं तथा राजपुत्रोंको आर दृष्टानसे देखा ॥ १-५ ॥ हेमाको मोहकपी धनुषसे छूटे हुए कटाक्ष-रुगी बाणोंसे घायल हाकर सबके सब राजे अपने-अपका भूल गये । उनको यह भी ज्ञान न रहा कि हम कौन हैं । उसी समय अवन्तिदेशके राजा अग्रवाहुका पुत्र चित्रांगद कुशकी पुत्रीका हरण करके ले आया । उसने दया कि राम आदि बड़े बड़े अपने कर्मोंमें व्यस्त हैं । वस, उसने एक माहनास्त्र छोड़ा । जिससे वही निमन्त्रणमें आये हुए राजे मोहित हो गये । तब वह सुवर्णके समान नेत्रस्विनी हेमाको रथपर बिठाकर भगा ले गया और वहाँसे एक कोमकी दूरीपर जाकर रुका । उसने अपने मनमें साचा कि चोरीकी तरह हेमाको लेकर भाग जाना ठीक नहीं है । इसलिये वही वह रुद्धर गया ॥ ६-१० ॥ उधर सारी पुरीमें यह हाहाकार मच गया कि राजा अग्रवाहुका पुत्र चित्रांगद हेमाका हरण कर ले गया ॥ ११ ॥ चित्रांगदके द्वारा माहनास्त्रका सवरण हो जानेपर सब राजे होशमें आकर उठे और अपनी-अपनी सेना लेकर कावसे लाल-लाल आँखें किये अयोध्यासे बाहर निकले ॥ १२ ॥ १३ ॥ वहाँपर ही बैठा हुआ राजा अग्रवाहु अपने पुत्रका कौतुक देख रहा था । उसी समय सब राजे चित्रांगदके पास पहुँचे और उसका रथ आगे औरसे घेरकर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे । तब चित्रांगदने बायव्य दस्त्र चलाया । जिससे सब राजे अपनी सेना तथा बाहुनके साथ आकाशमण्डलमें उड़ने लगे । इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे सब आदि सातों बट नगरसे निकल पड़े । उनके अतिरिक्त उत्सव-में आये हुए राजकुमार भी अपनी-अपनी सेना लेकर लड़नेको बल दिये । उस समय चित्रांगदके साथ रौंगटे बने कर देनेवाला नृपुत्र युद्ध होने लगा । रघुवंशके ये बालक चित्रांगदपर विविध प्रकारके अस्त्र-सस्त्र चलाते लगे ॥ १४ - १८ ॥ अपने बाणोंसे प्रहार बचाने हुए चित्रांगदने अपने शस्त्रोंसे सणभरमें धूपकेतुका रथ ध्वस्त कर डाला । उस वीर बालकने थोड़ी ही देरमें सुबाहु, पुष्कर, तल, चित्रकेतु तथा अंगदको भी विरथ कर

तद्दृष्ट्वा कौतुकं तस्य ज्ञात्वा तत्रापसः फलम् । लवश्चिच्छेद बाणौघैस्तद्वनुर्दिव्यसुरामम् ॥२१॥
 ततो लवः स्वबाणौघैरुग्रबाहुसुतं मुदा । चकार व्याकुलं शीघ्रं तद्दृष्ट्वा लवचेष्टितम् ॥२२॥
 उग्रबाहुर्ययौ योद्धुं लवेन वेगवन्तरः । लवस्तमपि बाणौघैश्चकार विरथं क्षणात् ॥२३॥
 उग्रबाहुस्तदा वीरोऽन्ये रथे चारुरोह सः । ववर्ष निशितैर्बाणैर्मूर्छयामास तं लवम् ॥२४॥
 लवं विमूर्छितं दृष्ट्वा हाहाकारो महानभून् । तदा ययौ कुशो योद्धुमुग्रबाहुनृपेण वै ॥२५॥
 कुशमागतमाज्ञाय ह्यज्ञदाद्यास्तदा पुनः । रथस्था युयुधुस्तेन उग्रबाहुनृपेण वै ॥२६॥
 पुनस्तानज्ञदादींश्च चकार विरथान्नुप । तदा कुशः स्वबाणौघैरुग्रबाहुं नृपं क्षणात् ॥२७॥
 चकार विरथं वीरश्चिच्छेद तस्य कार्मुकम् । उग्रबाहुस्तदा व्यग्रो बभूव चक्रितस्तदा ॥२८॥
 तं घृन्वा स कुशस्तोषाद्वादयामास दुन्दुभीम् । अथोग्रबाहु ससुतं निन्ये श्रीरामसन्निधिम् ॥२९॥
 रामस्तं भोचयामास मत्वा तं सुहृदं वरम् । तदा रामो विजयिने कङ्कणं मुनिनाऽर्पितम् ॥३०॥
 ददौ कुशाय प्रीत्या स पुनः कुम्भजन्मनः । कुशस्तदाऽतिशुशुभे वरकंकणमण्डितः ॥३१॥
 तदा कुशो मुनिं प्राह नन्वा तं कुम्भसम्भवम् । त्वया लब्धं कुतश्चेदं कङ्कणं वद मां मुने ॥३२॥
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वाऽगस्तिः प्राह कुश मुदा । पुरेन्द्ररिपवो वत्स बहवः सागरेण हि ॥३३॥
 कृताः स्वातन्त्रिवासाश्च तदाऽहं नाकर्णार्थितः । कृत्वा स्वचतुर्भुजैर्द्वि तं पीतबाँछीलयैव हि ॥३४॥
 ततो लुप्ता द्वीपयोर्हि मर्यादा मध्यवर्तिनीम् । दृष्ट्वा पुनर्नाकपेन प्रार्थितो हतशत्रुणा ॥३५॥
 मूत्रवत्सागरं भीमं सजीवं मुक्तवानहम् । तदाऽन्धिनाऽर्पितं मयां कुश तत्कङ्कणं वरम् ॥३६॥
 नानारत्नविचित्रं च रवितेजोविराजितम् । तद्रामायार्पितं पूर्वं मया तेन त्वयार्पितम् ॥३७॥

दिया । इस कौतुकको देखकर लवने समझ लिया कि यह सब चमत्कार उसकी सपस्याका है । यह विचार-
 कर लवने अपनी बाणवर्षास चित्रागदके उस उत्तम धनुषको काट डाला और इतनी शीघ्रतासे बाणवर्षा को
 कि चित्रागद व्याकुल हो गया ॥ १६-२२ ॥ ऐसी अवस्थाम उग्रबाहु (चित्रागदका पिता) स्वयं लवके साथ
 युद्ध करनेके लिये रणमें उतर पड़ा, किन्तु लवन योद्धो ही वरम उमका भी रथ ध्वस्त कर दिया । तब उग्रबाहु
 तुरन्त एक दूसरे रथपर बैठकर युद्ध करने लगा और अपने तीले बाणोंका मारसे लवको मूर्छित कर दिया ।
 उसे मूर्छित देखकर सपामभूमिमें हाहाकार मच गया । तभी उपर्य हुसे युद्ध करनेके लिए रामका दूसरा पुत्र कुश
 भी आ पहुँचा । कुशको आया देखकर वे अज्ञद आदि रघुवंशी राजकुमार रथोपर बैठ बैठकर उत्साहपूर्वक
 उग्रबाहुसे युद्ध करने लगे । किन्तु उग्रबाहुने अपने युद्धकौशलसे धाँडा ही दग्धे अज्ञद आदि सभी राजकुमारोंके
 रथोंको नष्ट कर डाला । उधर अपने आसाओपर प्रहार करते देखकर कुशने उग्रबाहुको क्षणभरमें विरथ
 कर दिया और उसका धनुष काट डाला । उग्रबाहु उस समय आश्चर्यके साथ व्यग्र हो उठा ॥ २३-२७ ॥
 तब कुशने झटपट उन बाए बेटोंको बन्दी बना लिया और अपनी विजयदुन्दुभी सजवा दी । चित्रागद तथा
 उग्रबाहुको अपने साथ लेकर कुश रामचन्द्रजीके सामने गये ; वहाँ पहुँचनेपर उग्रबाहुको अपना मित्र समझ-
 कर रामने छुड़ा दिया और विजयो कुशको अगस्त्य ऋषिके समक्ष अगस्त्यका ही दिया हुआ कङ्कण दिया । उस
 कङ्कणके पहिननेसे कुशकी शोभा और भी बढ़ गयी । २८-३१ ॥ इसके बाद कुशने अगस्त्यऋषिसे कहा—
 हे मुने ! आपने यह कङ्कण कहाँ पाया था ? मैं हमसे कहिए ॥ ३२ ॥ कुशको बात सुनकर अगस्त्यने कहा—
 हे वत्स ! आजके बहुत समय पहले इन्द्रके बहुनरे ऋषि समुद्रके भूतर घर बनाकर रहा करते थे । इन्द्रके
 प्रार्थना करनेपर मैं समुद्रको चुल्हूम भरकर पो लिया । जब इन्द्रने अपने सारे ऋषियोंको मार डाला, तब दो
 द्वीपोंके मध्यकी सोमाकी नष्ट देखकर इन्द्रने मुझसे समुद्रको फिर पूर्ववत् बना देनेकी प्रार्थना की ॥ ३३-३५ ॥ तब
 मैंने ऋषिके मार्गमें फिर समुद्रको सजीव करके बहा दिया । उसी समय समुद्रने मुझे उपहारके रूपमें यह कङ्कण
 दिया था ॥ ३६ ॥ अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित तथा सूर्यके तेजकी भाई तेजोमय यह कङ्कण मैंने रामको दे

तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा कुशस्तं प्राह वै पुनः । लवस्य जीवनोपायं वद मामद्य भो मुने ॥३८॥
 कुशस्य वचनं श्रुत्वाऽगस्तिस्तं प्राह सादरम् । विमूर्च्छितो यदा पूर्वं भरतः पथि पार्थिवः ॥३९॥
 मूर्च्छितः पतितश्चास्ति रणे गिपुशैर्हृतः । मुद्गलाश्रमतो बल्ल्यस्तदाऽऽनीनाः शुभावहाः ॥४०॥
 सीमित्रिणा तदाऽद्य त्वं मुद्गलाश्रमतः पुनः । महौषधी समानीय जीवयैनं लवं जवान् ॥४१॥
 अथवा त्वं हनूमतं प्रेषयस्वाश्रमं मुनेः । एवं यावच्च स मुनिः कथयामास तं कुशम् ॥४२॥
 तावच्चद्वचनं श्रुत्वा मुनेर्मरुतिना क्षणात् । समानीयाश्रमादल्लीर्मुद्गलस्य तपोनिधेः ॥४३॥
 तामिस्तं जीवयामास लवं सैन्यममन्वितम् ।

विष्णुदास उवाच

गुरो तस्यैव च मुनेर्मुद्गलस्याश्रमे कथम् ॥४४॥

मृतसंजीवनीबल्यादिका बल्ल्योऽत्र निर्मताः । कथं ता हि समीपस्था विस्मृत्य द्रोणपर्वतम् ॥४५॥
 प्रेषितोऽञ्जनिपुत्रः स तेन जीवता पुनः । अमुं मत्संशयं छिधि कृपां कृत्वा मुनीश्वर ॥४६॥

श्रीरामदास उवाच

यदा मातुर्विमोक्षार्थममृतस्य स्वगाधिपः । कलशं स्वमुखे धृत्वा नाकलोकात्समानयत् ॥४७॥
 तदा तत्कलशादेगाद्विदुस्तत्रापतत्पुरा । तद्धेतोर्मुद्गलस्यापि मुनेस्तपःप्रभावतः ॥४८॥
 आसन् बल्ल्यश्च तस्यैव आश्रमे हि द्विजोत्तम । नैना वेद शुभा कल्लीर्जीवयान्स वनेचरः ॥४९॥
 द्रोणाचलं त्वतस्तेन प्रेषितो बापुनन्दनः । इति त्वया यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम् ॥५०॥
 इदानीं शृणु शिष्य त्वं शुभां तां प्राक्तनीं कथाम् । ततो लवादिकाः सर्वे यथुस्ते स्वपुरीं मुदा ॥५१॥
 नत्वा मुनिं च रामादींस्तस्थुः श्रीराघवाग्रजः । तना महोत्सवश्चार्मात्पूर्या तल्लवदर्शनात् ॥५२॥
 ततो दृष्ट्वा लवं रामो जीवितं वायुजेन हि । समालिख्य दृढं प्रेम्णा परं तोषमवाप सः ॥५३॥

दिया और रामने इसे आज तुम्हें दिया है ॥ ३७ ॥ मुनिकी बात सुनकर कुशने कहा— अब हम कोई ऐसा उपाय ढूँढना है, जिससे लव जीवित हो जाय ॥ ३८ ॥ वह इस समय शत्रुओं से अस्त्रों से घायल होकर रणभूमि में पड़ा हुआ है । कुशकी प्रार्थना सुनकर अगस्त्यने कहा— उस समय जब कि जनकपुरके मार्गमें राजाओंने भरतकी मूर्छित कर दिया था, तब मुद्गल ऋषिके आश्रममें कल्याणदायिनी लताएँ लक्ष्मण द्वारा आयी थीं । उसी प्रकार आज तुम मुद्गलके आश्रममें वह लता लाकर लवको भी जीवित कर ला ॥ ३९-४१ ॥ अथवा हनुमान्जीको भेज दो । ये ही वह लता ले आयेंगे । मुनिकी बात सुनते ही हनुमान्जी छल बड़ और पाड़ा ही देरमें मुद्गल-ऋषिके आश्रममें वह लता लाकर रखेगा और उन्हीं लताओंसे कुशन सणमायमें सेना समेत लवको जीवित कर लिया । इतनी कथा सुनकर विष्णुदासने कहा— हे गुरो ! वे मृतसंजीवनी लताएँ मुद्गल ऋषिके आश्रमपर आकर कैसे उग गयीं । फिर जब वे इतनी समीप थीं, तब लक्ष्मणकी मूर्छाके समय जाम्बवान्ने हनुमान्जीको द्रोणाचलपर क्यों भेजा—हे मुनीश्वर ! मरे ऊपर कृपा करके मेरी इस शकाका समाधान कीजिये ॥ ४२-४६ ॥ श्रीरामदासने कहा— जिस समय अपनी माताको छुड़ानेके लिए गरुड़ स्वर्गसे चोचम अमृतकलश लेकर चले तो मुद्गल ऋषिके आश्रमपर आते ही कलशमेंसे अमृतकी एक बूंद वहीं गिर पड़ी । इसीलिए और ऋषिके सपाँवलसे उसी स्थानपर वे मृतसंजीवनी बल्लरियाँ उग गयीं । वनेचर जाम्बवान् इस स्थानकी लताओंको जानते ही नहीं थे । इसी कारण हनुमान्जीको द्रोणाचलपर भेजा था ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ जैसा तुमने प्रश्न किया, मैंने उसका उत्तर दे दिया । अच्छा, अब अपनी पुरानी कथापर आ जाओ—उसे सावधान मनसे सुनो । उस औषधिसे जीवित लव आदि चौर लौटकर सहर्ष अपनी अयोध्यापुरीमें आ गये ॥ ४९-५१ ॥ रामकी सन्नामें पहुँचकर लव आदिने बसिष्ठजीको प्रणाम किया और रामके सामने बैठ गये । लवकी देखनेसे उस रीज पुरीमें बड़ा उत्साह था । जब रामने देखा कि हनुमान्जीके पुहवापसे लव जीवित होकर

ततो गमो वायुजाय कंकणे रत्नमण्डिते । ददौ परमसनुष्टम्भाभ्यां स शुशुभे कपिः ॥५४॥
 ततो लशाय श्रीरामस्त्वपरं कंकण वारम् । ददावगमिना दत्तं पूर्वं यद्रत्नमण्डितम् ॥५५॥
 लवस्तेनानिशुभे वाक्कंकणमण्डितः । लवस्तदा मुनिं प्राह भन्वा तं कुम्भसम्भवम् ॥५६॥
 त्वया लब्धं कुतश्चेदं कंकणं वद मां मुने । ततस्तद्वचनं श्रुत्वाऽगमिनिः प्राह सव मुदा ॥५७॥
 एकदा दण्डकारण्येऽहं स्नातुं हि गतः सरः । तस्मिन्स्नान्त्वा निन्यविधिं कृत्वा तत्र स्थितः सण्ण ॥५८॥
 एतस्मिन्नतरे तत्र स्वान्स्वर्गी ममृशागतः । दिव्यं विमानमारूढः शतश्रीपरिवेष्टितः ॥५९॥
 दिव्यमान्पांश्वरधगे दिव्यगन्धादिचर्चितः । स स्वर्गी स्नानसभायातो यावत्तावत्सरोवरात् ॥६०॥
 शवं विनिर्गतं श्रेष्ठं स्फुटितं हि मयंकरम् । दुर्गन्धमहितं दुष्टं ग्रामं गन्धरमस्तटम् ॥६१॥
 वयस्कृष्टं विमानोपात्मं स्वर्गी तच्छवं ययौ । छिन्वा तच्छवमांसं वै मक्षयामास यादरम् ॥६२॥
 ततः पीत्वा जलं स्वर्गी विमानं चारुरोह सः । निश्चयं तच्छवं चापि पुनस्तस्मिन्सरोवरे ॥६३॥
 स्वर्गिणं शतुकामं तदृष्ट्वाऽहं चातिविस्मितः । अद्भुतं मधुरं वाक्यं रे रे दिव्यस्वरूपशृङ्ग ॥६४॥
 क्षणं तिष्ठोत्तरं देहि कान्तुकं ते मयेक्षितम् । ईदृशस्ते शत्रुहारः कथं स्वर्गनिवासिनो ॥६५॥
 इति मद्वचनं श्रुत्वा स स्वर्गी प्राह मां तदा । संपृक्तं पृष्ठं त्वया ममृशन् शृणु सर्वं मयोच्यते ॥६६॥
 सुदेवाभ्यो हि वैदभ्यो नृपतिश्चाम्बवत्पुंगव । तत्पुत्रोऽथेनपुत्र्यौ श्वेतोऽहं पार्थिवोऽभवम् ॥६७॥
 नैव दानं मया तस्मिन् जन्मन्यत्र कृतं कदा । स्वीयगजपदोद्भूतः पापकर्मगतः सदा ॥६८॥
 ततोऽपुत्री त्वहं राज्यं कृत्वा तं सुगन्धानुजम् । वार्तिके तु वनं प्राप्तपस्त्रीञ्च समाचरम् ॥६९॥
 एकदा स्नातुमुद्युक्तो निमग्नोऽहं सरोवरे । ततो मृतो दिवं प्राप्तस्त्वहं स्वीयतपोवलात् ॥७०॥

सामन घंटे है तो प्रेमपूर्वक मावतिका छालीसे लगा लिया और बड़े प्रेमसे हुए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसके बाद रामने हनुमान्जीको रत्नोंसे सजित दो कंकण दिये । जिन्हें पहनते हनुमान्जी बहुत सुन्दर दीखने लगे । फिर रामजीने एक दूसरा कंकण जिसे अमरवज्रके दिया था, वह लवका दे दिया । उस बट्टमूय कंकणको पहि-
 ननेसे लव भी अतिशय सुगोभीन हुए । तब लवन अमरवज्रका प्रणाम करके कहा—॥ ५४—५६ ॥ हे मुनिराज ! यह कंकण आपको कहाँ मिला था ? सा हम बतलाइए । इस प्रकार लवका प्रश्न सुनकर अमरवज्र परम सन्ततापूर्वक कहने लगे—॥ ५७ ॥ एक बार मैं दण्डकारण्यमें एक सरोवरपर स्नान करने गया । वहाँ स्नान-निन्यकर्म आदि कर लेनपर या डी दरके लिए बैठ गया ॥ ५८ ॥ इसी बीच आकाशमार्गसे एक स्व-
 र्गीय प्राणी संकडों स्थितिसे घिरा हुआ दिव्य विमानपर आरूढ होकर वहाँ आया ॥ ५९ ॥ वह दिव्य मान्य आदि धारण किये हुए दिव्य रत्नसे चर्चित था । उस स्वर्गीय आते ही सरोवरसे एक मयानक दूषित तथा दुर्गन्धपूर्ण शव निकलकर तटपर आ गया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर वह स्वर्गीय प्राणी अपने विमानसे उतरकर उस क्षवक पास पहुँच और उसके मांसको उसके बड़े प्रेमसे खाया । फिर जल पिया और अपने विमानपर आ बैठा । उसर शव फिर डब गया । उस पमनोन्मुख स्वर्गीय पास पहुँचकर मैंने उससे कहा—
 हे दिव्यस्वरूपधारिन् ! थोड़ी दूरके लिए रुककर मेरी बातोंका उत्तर देने जाओ । तुम्हारे इस कार्यको देखकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ है । अच्छा, हमें यह बताओ कि इस प्रकार स्वर्गीय प्राणी होकर भी तुम मुर्दा क्यों खाते हो ? ॥ ६२—६५ ॥ मेरी बात सुनकर उसने उत्तर दिया हे बहान् ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सुनो, मैं सब बतलाता हूँ पूर्वसमयमें विदर्भ देशके अचिपति सुदेव नामके एक राजा थे । उनके प्रवैत और सुरथ नामके दो पुत्र थे । जिनमें प्रवैत मैं था और राज्य भी मेरे ही हाथोंमें था ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस अन्धमें राज्यमदसे मत्त होकर मैंने कोई दान नहीं किया । हमेशा पापकर्ममें रत रहा ॥ ६८ ॥ मेरे कोई शन्तति नहीं थी । इसलिए वृद्धावस्थामें अपने छोटे भाई सुरथको मैंने राज्यासनपर बिठा दिया और जगलमें जाकर कठोर तपस्या करने लगा । एक बार स्नान करनेके लिए एक सरोवरमें डूबने लगायी तो वहीं डूबकर मर गया । मरनेके बाद अपनी तपस्याके प्रभावसे मैं स्वर्गलोकमें पहुँचा । तपस्याके फलस्वरूप वहाँ

तपसश्च फलैस्तत्र ममामन्तर्वर्षपदः । अष्टा मस्तिनं किञ्चिन्मया पृष्टः सुराधिपः ॥७१॥
 वर्तन्ते विविधास्तत्र मम भोगाः सुदुर्लभाः । कथं नास्तीदृश्वणार्थं कथं मेऽत्र सुखं भवेत् ॥७२॥
 इति मद्रचनं श्रुत्वा मामिन्द्रः प्राह सस्मितः । नैव दानं न्वया भूमौ कृतं राज्यमदनं हि ॥७३॥
 अदत्तं लभ्यते नैव नृप पुण्यैः कदेतरैः । अतस्त्वं प्रप्यहं मत्वा विमानेन सरोवरम् ॥७४॥
 मध्वयस्व श्वं पुष्टं मिष्टान्नैः पोषितं च यत् । चिरकालं भवेत्तत्तं क्षयं यास्यति नैव तद् ॥७५॥
 इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा स पृष्टश्च पुनर्मया । दिव्यान्नानि कथंचाहं प्राप्नुयां तद्वदस्व माम् ॥७६॥
 इति मद्रचनं श्रुत्वा सदेन्द्रः प्राह मां पुनः । अधुना दण्डकारण्यं वतते हानमानुषम् ॥७७॥
 विष्वद्वृद्धिनिषेधार्थमगस्तिः सुरयाचितः । यदा यास्यति पत्न्या वै मुक्त्या काशीं हि दण्डकम् ॥७८॥
 सरस्यस्मिस्तदा स्नात्वा स्थितं पश्यसि तं मुनिम् । तदा तस्मै कंकणस्व देहि तोर्यः परिप्लुतम् ॥७९॥
 तेन कंकणदानेन दिव्यांधः प्राप्स्यसे नृप । इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा तदारभ्य चिरं मुने ॥८०॥
 अत्रागत्य श्वाहारः क्रियते वै सदा मया एतावत्कालवयं न । नात्र कश्चिन्मयेक्षितः ॥८१॥
 मया दृष्टस्त्वमेवात्र वेदि त्वां कुम्भसंभवम् । अद्य त्वया तारितोऽहं दानं स्वीकुरु मे त्विदम् ॥८२॥

अगस्त्य उवाच

इत्थं स्वर्गो ममाशुक्त्वा ददौ कंकणमुज्ज्वलम् । मद्यं सार्द्रं ततः स्वर्गं ययौ स्वर्गी मुदा पुनः ॥८३॥
 तदारभ्य श्वं तोयासद्वहिस्तत्र ययौ कदा । दिव्यान्नानि तु संप्राप नाकलाके यथासुखम् ॥८४॥
 इति यत्कंकणं लब्धं मया लव पुरा वने । अपित राघवायेदं तेन तच्चापि तेऽर्पितम् ॥८५॥

श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्त्यवचः श्रुत्वा लवः पप्रच्छ तं पुनः । किमर्थं दण्डकारण्यं तद्रभूव विजनं वद ॥८६॥

अगस्त्य उवाच

इत्थाकुर्वंशसंभूतोऽभून्नृपो विष्वदक्षिणे । नाम्ना दण्डकेति ख्यातः पापकर्मरतः सदा ॥८७॥

सब चीजें तो विद्यमान थीं, लेकिन खानेक लिए कुछ नहीं था । तब मैंने इन्द्रसे कहा—हे देवेन्द्र ! यहाँ मेरे भागनेक लिए तो और सब कुछ है, किन्तु खानेक लिए कुछ भी नहीं मिलता । बताइए, इस तरह मैं क्योंकर सुखी रह सकूँगा ॥ ६९-७२ ॥ मेरी बातका सुनकर मुस्कराते हुए इन्द्र कहने लगे—तुमने राज्यमद वक्ष पृथ्वीपर कोई दान नहीं किया था । बिना दिये कुछ भी नहीं मिलता । इसलिए तुम प्रतिदिन विमानसे जाकर उस मिष्टान्नसे परिपुष्ट अपने शरीरको खा आया करा । वह बहुत दिनों तक मष्ट न होकर ज्योंका त्यों बँता रहेगा ॥ ७३-७५ ॥ इस प्रकार इन्द्रकी बात सुनकर मैंने कहा—यह बतलाइये कि मुझे स्वर्गीय अन्न किस तरह प्राप्त होगा ? मेरी बात सुनकर इन्द्रने उत्तर दिया कि अभी तो दण्डकारण्य मनुष्यविहीन है । जब विष्वप पर्वतकी वृद्धि रोकनेके लिए अगस्त्यजी देवताओंके प्रार्थना करनेपर काशी छाड़कर दण्डकारण्यको जायें, तब तुम उसी सरोवरमें स्नान करके अपना कंकण उन ऋषिको दे देना ॥ ७६-७९ ॥ उस कंकणके दानसे तुम्हें स्वर्गीय अन्न मिलने लगेगा, अतएव ईदृके आज्ञानुसार मैं बहुत दिनोंस आकर यह शय खाया करता हूँ । इतने दिन बीत गये, किन्तु यहाँ मुझ कोई नहीं दिखाया पड़ा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ आज तुम्हो दीख रहे हैं । इससे ज्ञात होता है कि तुम अगस्त्य ऋषि ही हो । आज तुमने मेरा उद्धार कर दिया । अब कृपा करके मेरे दानको स्वीकार करो ॥ ८२ ॥ अगस्त्यने कहा कि इस तरह कहकर उस स्वर्गीय प्राणीने अपने कंकण उतारकर हमें दे दिये और प्रसन्न मनसे विमानपर सवार होकर स्वर्गलोकको चला गया । तबसे वह सब उस सरोवरमें कभी नहीं उतराया और वह स्वर्गी स्वर्गलोकमें दिव्य अन्नको पाने लगा । हे लव ! मैंने जिस कङ्कणको उस समय दण्डकारण्यमें पाया था, उसे रामको दिया और रामने आज आपको दे डाला है । श्रीरामदासने कहा—तब लवने अगस्त्यसे पूछा कि उस वनका दण्डक यह नाम क्यों पड़ा ? अगस्त्य कहने

एकदा स वनं यातो मृगयार्थं स्वसेनया । ततो दृष्ट्वा मृगं राजा मृगशृष्टे प्रदुर्दृष्टे ॥८८॥
 एकाकी हयमारुढो देशादेशान्तरं ययौ । एवं हि गच्छतस्तस्य मृगोऽदृश्योऽभवत्तदा ॥८९॥
 ततः सोऽतिवृथाकातः प्रययौ वै जलाशयम् । तत्र पान्त्वा जलं स्वच्छं स राजा सरसस्तटे ॥९०॥
 अज्ञान्वा स्वगुणेशेति भृगोराश्रममाययौ । तत्र तानविद्वानां तामरजम्बी भृगोः सुताम् ॥९१॥
 दृष्ट्वा चन्द्रानना राजा सोऽभून्कामविमोहितः । तनन्तीं प्रार्थयामास रत्यर्थं साऽब्रवीन्नुपम् ॥९२॥
 स्ववशा नृप नैवाहं नानाधानाऽस्मि सांप्रतम् । बहिर्भृगुस्तत्र गुरुमतस्त्वां वेदुष्यहं नृपम् ॥९३॥
 यदि मामिच्छसि त्वं हि नहिं तं स्वगुरुं भृगुम् । प्रार्थयिन्वा भज सुखं मां वन्तीं त्वं विधाय च ॥९४॥
 इत्युक्तोऽपि तथा राजा दंडरतां कामपीडितः । भुक्त्वा सुखं बलादेव जगाम नगरीं निजाम् ॥९५॥
 ततोऽरजस्का सा बाला दृष्ट्वा तातं ममागतम् । शोचन्ती सकलं वृत्तं श्रावयामास विह्वला ॥९६॥
 तद्वृत्तं स मुनिः श्रुत्वाऽञ्जलीं कृत्वा जलं क्रुधा । अब्रवीन्स्वमुतां बालां सांख्यपन् रक्तलोचनः ॥९७॥
 दंडेन सह दंडस्य राज्यं वै शतयोजनम् । भवन्वय क्षणादर्थं मद्भाक्याच्च समंततः ॥९८॥
 हीनोदकं तथा चास्तु तथा नष्टचराचरम् । इति तच्छापमाकर्ष्य तात सम्प्रार्थ्य बालिका ॥९९॥
 प्रार्थयामास शापस्य सषाडधिं विनयान्विता । ततो भृगुः सुतामाह यदा यास्यति कुंभजः ॥१००॥
 मुनिः काश्यास्त्वर्मुं देशं तदाऽयं सजलो भवेत् । देशस्तथाऽत्र वासं हि करिष्यंति मुनोश्चराः ॥१०१॥
 अरण्यं दंडहृतादि जातं तस्मान्मदा नराः । अमुं देशं वदिष्यन्ति दंडकारण्यमव हि ॥१०२॥
 यदा भविष्यत्प्रेऽत्र रामागमनमुत्तमम् । भविष्यन्ति तदाऽत्र नानाक्षेत्राणि दण्डके ॥१०३॥
 रामप्रसादात् क्षेत्राणि भविष्यन्ति ततो जनाः । रामक्षेत्रमिति सदा वदिष्यन्ति हि दण्डकम् ॥१०४॥
 मुनिरामप्रसादाच्च देशोऽयं पूर्ववत्पुनः । भविष्यन्मुत्तमः पुण्यः सीरुपदश्च मनोरमः ॥१०५॥

छन्दः—इत्याहुर्वंशम उत्पन्न दण्डक नाम्ना एक बड़ा पपी राजा था । वह सदा पापकर्म रत रहा करता था ॥ ८८-८९ ॥ एक बार वह शिकार खेलने के लिए अपनी सेना के साथ वन में गया । वहाँ एक मृग के पीछे राजाने अपना घोड़ा दौड़ाया । वह अन्तर्लब्ध हो उस मृग के पीछे पीछे भागता हुआ देशान्तर में जा पहुँचा और वहाँ वह मृग गायब हो गया । इसके बाद बहुत व्यासा वह राजा एक जलाशय के तट पर गया । वहाँ जल पिया, किन्तु उसे यह नहीं ज्ञात हुआ कि मैं अपने गुरु भृगु के आश्रम पर पहुँच गया हूँ । वहाँ भृगु की कन्या थी । जिसको कि अभी राजावत नहीं हुआ था । उस चन्द्रमा के सदृश मुखवाली (चन्द्रानना) कन्या को देखकर राजा काममाहित हो गया और उसके समाप आकर रतिके लिए प्रार्थना की । कन्याने उत्तर दिया कि हे राजन् । मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ । इस समय मेरे ऊपर पिता का अधिकार है और भृगु (मेरे पिता) इस समय कहीं बाहर गये हुए हैं । मैं आपको जानती हूँ ॥ ८८-९३ ॥ यदि आप मुझ चाहते हैं तो अपने गुरु (भृगु) से जाकर कहें और मुझे अपनी पत्नी बनाकर आनन्द के साथ भाग करें । उसके ऐसा कहने पर भी राजाने एक न सुनी और हुआ उस के साथ भाग करके अपनी नगराका लौट गया । इसके अनन्तर जब उसके पिता भृगु घर आये तो विलाप करती हुई उस अरजन्का कन्याने सारा समाचार कह सुनाया । इस वृत्तान्त को सुनते ही भृगु भारे क्रोध के लाल हो गये और अञ्जली में जल भरकर कन्या को सन्तुष्ट करने के लिए उन्होंने शाप दिया कि दण्डक के साथ-साथ उसका सौ योजन राज्य चारा ओर में जलकर भस्म हो जाय ॥ ९४-९८ ॥ उसी जगह पर जल भी न रहे और न कोई जीव ही निवास करे । इस प्रकार शाप सुनकर कन्याने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि अपने इस शाप की अवधि भी नियत कर दीजिये । कन्या के प्रार्थना करने पर भृगुने कहा कि जब अगस्त्य ऋषि काशी छोड़कर त्रिंश्रके उस पार चले जायेंगे । उस समय वह स्थान सजल हो जायगा और वहाँ बड़े-बड़े ऋषि निवास करेंगे । राजा दंडक के दुराचार से उस देश की ऐसी दशा हुई है । इसीलिए लोग उसे दण्डकारण्य कहा करेंगे ॥ ९९-१०२ ॥ आगे चलकर जब रामचन्द्रजी उस देश में जायेंगे तो उसमें कितने ही क्षेत्र बन जायेंगे और तबसे लोग उसी दंडकारण्य को रामक्षेत्र के नाम से पुकारेंगे ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ अगस्त्य

देशेभ्यः सकलेभ्यश्च सुपुण्यं दण्डकं भवेत् । दण्डकेन समो देशो न भूतो न भविष्यति ॥१०६॥
इति तां बालिकाशुक्त्वा भृगुस्तप्तुं हिमालयम् । ययौ तां मुनये दत्त्वा विभिना मुनिसंज्ञितः ॥१०७॥
भृगोः शापाच्च दण्डेन दर्शं तद्राज्यमुत्तमम् । शतयोजनमानं तदभवद्वि समंततः ॥१०८॥
मद्रामासमनाभ्यां च ततः स्वस्थं न भूव तत् । पूर्ववद् उकारण्यं षराचरासमाकुलम् ॥१०९॥
इति त्वया यथा पृष्टे तथा लव मयोदिते । कंकणस्य दण्डकरस्य विचित्रे त्वां कथानके ॥११०॥

श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्तिमुखाच्छ्रुत्वा लवस्तुष्टोऽभवत्तदा । नत्वा मुनिं च श्रीरामसेवायां तत्परोऽभवत् ॥१११॥
अथ रामश्चोत्सवेन तस्मै चित्रांगदाय ताम् । हेमां ददौ विवाहेन महामंगलपूर्वकम् ॥११२॥
पारिवर्द्ध ददौ कोटिममितं वारणादिकम् । महान्महोत्सवश्चासीदयोष्यायां प्रभोगृहे ॥११३॥
ततो त्रिजयामास चोग्रबाहुं नृपं प्रभुः । धुनयः पाथिवाश्चापि ययुः स्वं स्वं स्थलं प्रति ॥११४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमत्तन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे
हेमास्वयंवरो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः

(राम द्वारा जाम्बवन्तीको रामनाथपुर राज्यका दान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामस्त्वयोष्यायां रजयामास जानकीम् । जुगोप मेदिनीं कृत्स्नां सप्तमागरमेखलाम् ॥ १ ॥
राममुद्रां विना कस्य नाकेते शस्त्रधारिणः । नैवासीन्सुप्रयश्च रामराज्ये कदाचन ॥ २ ॥
नैवासीन्निर्गमश्चापि विना मुद्रां कदा बहिः । राममुद्राकितं पत्र गृह्णात्वा ते नृपोत्तमाः ॥ ३ ॥
गमनागमने चक्रुर्भूम्यां कुत्राप्यकुण्ठिताः । राममुद्रास्वरूपं च ते वदामि शृणुष्व तत् ॥ ४ ॥

मुनि तथा रामचन्द्रकी कृपासे वह देश फिर ज्योका ल्यों हो जायगा और वहाके लोग सुखी हो जायेंगे । फिर वहाँ सुन्दरता दिखायी देने लगेंगी । वह पृथ्वीके समस्त देशोंसे पवित्र दश माना जाने लगेंगा ॥ १०५ ॥ उस बालिकासे भृगुन कहा—भविष्यमे लोग कहेंगे कि दण्डकारण्यके समान न कोई देश हुआ है और न होगा ॥१०६॥ ऐसा कहकर भृगुने उसे एक मुनिको सौ दिया और स्वयं बहुतसे ऋषियोंके साथ सपस्या करनेको हिमालय-पर्वतपर चले गये । इस प्रकार भृगुके शापसे दण्डकका सौ योजन राज्य जल-भूमिकर राख हो गया ॥ १०७ ॥ ॥ १०८ ॥ हमारे और रामके आगमनसे वह फिर पूर्ववत् हो गया और उसमें विविध प्रकारके जीव जन्तु आकर निवास करने लगे । इस प्रकार हे लव ! तुमने हमसे जो प्रश्न किये, सो दण्डकारण्य तथा इस कंकण-विषयक कथानक वह सुनाया ॥ १०९ ॥ ११० ॥ श्रीरामदासने कहा—इस तरह अगस्त्यकी बात सुनकर लव परम प्रसन्न हुए और अगस्त्यजीका प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रकी सेवामे अग गये ॥ १११ ॥ इसके अनन्तर रामने उत्सवके साथ उस हेमा कन्याका विधिवत् सप्तमारोह विवाह करके चित्राङ्गदको दे दिया । उन्होंने कन्याके विवाहमें दहेजस्वरूप बहुतसे हाथ-घोड़े आदि करोड़ोंकी सम्पत्तिका दान दिया । इसके बाद महाराज उग्रबाहुको विदा किया और निमन्त्रणमें आये हुए राजे तथा ऋषिगण अपने अपने स्थानको लौट गये ॥ ११२-११४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमत्तन्दरामायणे पञ्च रामतेजपाण्डेयविरचितेऽयोत्सना-भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

श्रीरामदास बोले—इसके बाद रामचन्द्र सोताकी प्रसन्न करते हुए सप्तसगर मेखालावाली पृथ्वीकी रक्षा करते रहे । रामके राज्यमें कोई भी शस्त्रधारी मनुष्य विना राममुद्रा-अंकित पत्र लिये नहीं आता था और बिना मुद्राके कोई बाहर भी नहीं जाने पाता था । राममुद्रासे चिह्नित पत्र लेकर संसार भरके राजे जहाँ चाहते

तिर्यगूर्ध्वं पञ्चदश रेखाः प्रकल्पयेत् । शीता प्रथमिका पंक्तिस्तुर्दिशु प्रकारयेत् ॥ ५ ॥
 पंक्तिर्द्वितीया शुभ्रं च तृतीयं च तथाऽष्टमी । ततश्चैष्टदिगारभ्य उत्तोयायां प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥
 वक्ष्यमाणपदान्येव कृष्णानि हि सप्तचरेत् । आरंभश्चोत्तरम्यां हि समाभिर्दक्षिणे स्मृता ॥ ७ ॥
 पश्चिमाभिमुखा स्वाग्ना मुदा तत्रात्मसम्भुम्भा । पूर्वास्येन सदा स्येयं तदा कर्त्रा विनिश्चयन्त ॥ ८ ॥
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठमष्टमे । अष्टमं नवमं चैव तथैकादशमुच्यते ॥ ९ ॥
 सप्तमश्चतुर्था पंक्तौ हि चतुर्थं षष्ठमष्टमे । तथैकादशमं ज्ञेयं पञ्चमायाः क्रमोऽधुना ॥ १० ॥
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठमष्टमे । नवमैकादशे चापि षष्ठायाश्च क्रमोऽधुना ॥ ११ ॥
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठमुत्तमम् । नवमैकादशे चापि सप्तमी सकलाऽमिता ॥ १२ ॥
 नवम्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं हि सप्तमं चापि नवमं दशमं स्मृतम् ॥ १३ ॥
 तथैव द्वादशं चापि दशम्याश्च क्रमोऽधुना । चतुर्थं च तथा षष्ठं सप्तमार्कं तथाऽमिते ॥ १४ ॥
 एकादश्याश्च प्रथमं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठाष्टनवमान्येव दशमार्कं तथाऽमिते ॥ १५ ॥
 द्वादश्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं च सप्तमं चापि शष्टमं नवमं तथा ॥ १६ ॥
 दशमार्कं तथा प्रोक्ता कृष्णा कृष्णता त्रयोदशी । एव मुद्रया पूर्यित्वा राजा रामेति वै स्फुटम् ॥ १७ ॥
 सितवर्णं रामनाममुद्रायां हि निरीक्षयेत् । एव राममुद्रिकायाः स्वरूपं ते मयोदितम् ॥ १८ ॥
 एव मुद्रांकितां रामाः शिला विप्रैश्च आदत्ताः । दशैः साद्यापि भूम्यां हि रामनाथपुरेऽस्ति हि ॥ १९ ॥

विष्णुदास उवाच

किमर्थं भूतुरेभ्यश्च राघवेण समर्पिता । रामनाथपुरे पूर्वं स्वीयमुद्रांकिता शिला ॥ २० ॥
 तत्त्वं विस्तरेणैव कथयस्वाद्य मां गुरो । आश्चर्यं च न्वया प्रोक्तं श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ॥ २१ ॥

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवं श्रुत्वा विशा बलिहृदायिनम् । ह्यौदुम्बरापुरस्थास्ते दाक्षिणात्वा द्विजोत्तमाः ॥ २२ ॥

आते जाते, कहीं भी उक्त रोक नहीं थी । अब मैं तुम्हें राममुद्राका स्वरूप बताता हूँ, सो सुनो ॥ १-४ ॥
 काल रंगकी सधी-बेड़ी पन्द्रह रेखाएँ खोचे । उसमें चारों ओरकी पहली पंक्ति पेंने रङ्गसे रवे ॥ ५ ॥ दूसरी
 और आठवीं पंक्ति सफेद ही रहने दे । इसके बाद ईशानकोणमें नेकर तीसरी रेखातक आगे कहे जानेवाली
 पंक्तियाँ काले रंगसे लिख । लिख बट उत्तरकी तरफसे प्रारम्भ करके दक्षिणमें समाप्त करनी चाहिए ॥ ६ ॥
 मुद्राका मुख सदा सामने अर्थात् पश्चिमाभिमुख बनाये और स्वयं पूर्वकी ओर मुख करके बैठ ॥ ७ ॥ पहली,
 दूसरी, चौथी, छठवीं, सातवीं, आठवीं, नवीं, ग्यारहवीं और सोनवीं रेखाकी चौकिरी नया पहलो, दूसरी, चौथी,
 छठवीं, नवीं, ग्यारहवीं तथा सातवीं चौकी यह सब काले रङ्गका रहनी । फिर नवीं रेखाकी पहली, दूसरी,
 चौथी, छठी और सातवीं चौकी भी काले रङ्गका रहनी ॥ ८-११ ॥ फिर ग्यारहवीं रेखाकी पहली, दूसरी, चौथी,
 छठी, सातवीं, आठवीं, नवीं तथा दसवीं चौकी भी काले रङ्गका रहनी । बारहवीं तथा नवहवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहनी । इस प्रकार अपनी
 बुद्धिमें उपयुक्त कोष्ठकीको पूर्ण करनेसे "राजा राम" यह शब्द साफ साफ संकेत वर्णोंसे लिख जायगा
 ॥ १२-१७ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें राममुद्राका स्वरूप बतलाया । इस प्रकारकी मुद्रामें चिल्लिय शिला रामने
 ब्राह्मणोंकी दानस्वरूप दी थी, जो आज भी रामनाथपुरमें रहनेवाले ब्राह्मणोंके पास विद्यमान है ॥ १८-१९ ॥
 विष्णुदासने पूछा कि रामने रामनाथपुरवाले उन ब्राह्मणोंको वह अपनी मुद्रासे अङ्कित शिला किस लिये दी
 थी ? यह सब कथा विस्तारपूर्वक हमें बतलाइये । आपने यह आश्चर्यमयी बात कह दी । इसका पूरा विवरण
 मैं आपके ही मुखसे सुनना चाहता हूँ ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रीरामदास कहने लगे कि एक समय रामचन्द्रकी यह

ययुस्ने राघवं द्रष्टुमयोष्यायां मुदान्विताः । २३ ॥

गन्धर्वराजगेहे स भोजनं कर्तुमुद्यतः । स्नान्वा तत्र मुहूर्तगेहे सीतया बन्धुभिः सुखम् ॥ २४ ॥
 पुत्राभ्यां भोजनं कर्तुमायने संस्थितोऽभवत् । गन्धर्वराजः श्रावणं पूजयामास सादरम् ॥ २५ ॥
 परिवेषितानि पात्राणि मुहूर्त्वाभिस्तदा जवत् । दिव्यान्नैर्मधुरैश्चित्रैः पक्वान्नैर्विविधैरपि ॥ २६ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे विप्रा रामनाथपुरस्थिताः । मुहूर्तगेहे गत राम भुञ्जता तत्र ययुर्मुदा ॥ २७ ॥
 गन्धर्वराजद्वारस्थैर्दूतैः श्रावणवाच हि । भूमुराणामागमनं तदा शीघ्रं निवेदिताम् ॥ २८ ॥
 तद्वद्वचनं श्रुत्वा राघवश्चानिमम्भमात् । प्रत्युद्गम्य स्वयं विप्रान्ननाम शिम्मा प्रभुः ॥ २९ ॥
 गन्धर्वराजगेहे ताभीत्वा दस्वाऽऽयनानि हि । स्नातुमाज्ञापयन्मवान् भोजनार्थं रघूत्तमः ॥ ३० ॥
 तदा ते मन्त्रयामामुविप्राः सर्वे परस्परम् । भोजनान्पूर्वमेवैनं याचनीयं स्ववाञ्छितम् ॥ ३१ ॥
 केचिदनुस्तदा विप्रा निर्वधं च रघूत्तमे । नोपेक्षाऽस्मि मर्दवायं ददाति द्विजवाञ्छितम् ॥ ३२ ॥
 व्रतमेवास्य रामस्य द्विजवाञ्छितपूरणम् । एव तान्मन्त्र्यमाणांश्च रामो दृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः ॥ ३३ ॥
 शतं मयाऽभिलषितं पुष्पाकं मुनिपुङ्गवाः । राज्येच्छया ममायाताः किमर्थं श्रमिता द्विजाः ॥ ३४ ॥
 कथं न प्रेषितः शिष्यस्तद्वाक्येनैव वै मया । वाञ्छाऽभविष्यत्पुष्पाकं पूरिता क्षणमात्रतः ॥ ३५ ॥
 एवं तान्ब्राह्मणानुक्त्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः । मया ब्रह्मपुरस्याद्य निप्रेभ्यो राज्यमर्पितम् ॥ ३६ ॥
 शिलायां लिख मन्नाम दानं दत्तमिदं न्विति । तथेति रामवाक्येन लक्ष्मणश्चातिमम्भमात् ॥ ३७ ॥
 दण्डकारान्समाहूय झिलामानोयनामिति । शीघ्रमाज्ञापयामास ते जग्मुर्वगवत्तराः ॥ ३८ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे विप्राः प्रोचुस्ते राघव मुदा । कृत्वाऽशनं लेखनीया शिला पश्चाद्रघूत्तम ॥ ३९ ॥
 किमर्थं क्रियते राम त्वरा लेखनकर्मणि । परिवेषितानि पात्राणि त्रयं चापि क्षुधादिताः ॥ ४० ॥

प्रणसा सुनकर कि वे ब्राह्मणोंको कामना पूर्ण करते हैं । दक्षिण देशके रहनेवाले बहुतसे ब्राह्मण हजारोंकी संख्यामें एकत्रित होकर रामसे मिलने गये । उद्यर राम प्रसन्न मनसे गन्धर्वराजके भवनमें भोजन करने गये हुए थे । सीता तथा भ्राताओंके साथ उन्होंने वहाँ ही स्नान किया था और अपने दोनों बेटोंके साथ भी भोजन करने बंटे थे । गन्धर्वराजने सादर रामका पूजन किया ॥ २२-२५ ॥ गन्धर्वराजके घरकी स्त्रियों तथा मित्रोंन शीघ्रतसे दिव्यान्न तथा विविध प्रकारके पकवान आदि परोमना प्रारम्भ किया ॥ २६ ॥ इसी समय रामनाथपुरके निवासों विप्रगण रामके द्वारपर आये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि राम अपने सम्बन्धीके घर गये हैं । बस, वे लोग भी गन्धर्वराजके यहाँ जा पहुँच और द्वारपालोंने रामको यह खबर दी कि रामनाथपुरके ब्राह्मण आये हैं । दूतकी बात सुनकर स्वयं राम तुरन्त उठे और उन लोगोंके पास जाकर प्रणाम किया और उन्हें गन्धर्वराजके घरमें ले गये । आमनपर विडाकर उनसे स्नान भोजन करनेके लिये कहा ॥ २७-३० ॥ उस समय उन सबोंने मन्त्रणा करके निश्चय किया कि भोजन करनेके पहले ही हम लोग अपनी माँग उपस्थित कर दें । उनमेंसे कुछने कहा कि इतनी जल्दी क्या है, राम कभी याचकोंको उपेक्षा नहीं करते । बल्कि वे सदा ब्राह्मणोंको याचका पूरी करनेका तैयार रहने हैं । इन रामका यही वचन है कि ब्राह्मणोंकी माँग पूर्ण किया करें । इस प्रकार परस्पर सलाह करते हुए ब्राह्मणोंको देखकर रामने कहा कि इन आप लोगोंकी इच्छाको जान गये हैं । आप लोग राज्यकी इच्छा से मेरे पास आये हैं । सो इसके लिए आपने इतना परिश्रम क्यों किया ? ॥ ३१-३४ ॥ आप अपने किसी शिष्यको ही भोजन दिये होंगे तो मैं क्षणभरमें आपकी इच्छा पूर्ण कर देना ॥ ३५ ॥ इस तरह उन ब्राह्मणोंसे कहकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि आज मैंने ब्रह्मपुरका राज्य ब्राह्मणोंको दान दे डाला है । एक शि यापर मेरा नाम लिख दो और उसमें यह भी लिखवा दो कि मैंने ब्राह्मणोंको ब्रह्मपुरका राज्य दान दे दिया है । "बहुत अच्छा" कहकर लक्ष्मणने तुरन्त पत्थर खोदनेवाले सन्तरासोंको बुलवाया और एक बड़ी शिला मँगवायी । दूत लक्ष्मणके अज्ञानुसार तुरन्त चले पड़े ॥ ३६-३८ ॥ तब उन विप्रोंने रामसे

उत्तेषां वचनं श्रत्वा फलमारान्विचित्रितान् । पुरस्तात्स्थापयामास विप्राणां वरमादरात् ॥४१॥
 उवाच मधुरं वाक्यं राघवः स्मितपूर्वकम् । फलानीमानि भो विप्रा भक्षयध्वं यथासुखम् ॥४२॥
 लेखयित्वा शिलायां हि यदा मुद्रां करोम्यहम् । तदाऽश्नादिकं कर्म भवमन्यत्करोम्यहम् ॥४३॥
 क्षणं वित्त क्षणं चित्तं क्षणिकं च स्वजीवितम् । यमोऽनिनिर्घृणः सोऽस्ति धर्मं शीघ्रमतश्चरेत् ॥४४॥
 शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत् । लक्षं त्यक्त्वा तु दानव्यं कोटिं त्यक्त्वा शिवं भजेत् ४५
 कोटिविघ्नानि गीतायां दशकोटीनि जाह्नवीम् । शतकोटीनि जायन्ते दाने विघ्नानि भूसुराः । ४६॥
 अतः कार्या त्वरा दाने सर्वदा तु नरोत्तमैः । निद्रायाः पूर्वकाले तु निद्रायाः परतस्तथा ॥४७॥
 भोजनान्पूर्वकाले तु भोजनान्परतस्तथा । क्षणे क्षणे मतिभिश्च जायतेऽत्र द्विजोत्तमाः ॥४८॥
 तस्मान्कार्या त्वरा दाने मनिर्या प्रथमे क्षणे । कृता क्षणमापरे माऽस्त्येतदेव मतं मम ॥४९॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र दण्डकार्कः शिला वग । ममानीता गण्डकीजा नवहस्ता ममन्ततः ॥५०॥
 तस्यान्ते लेखयामासुर्दण्डकाराः स्फुटाभरः । सूर्यवशोद्भवेनाथ समुद्रीपेश्वरेण हि ॥५१॥
 श्रेतायां दाशरथिना रामराज्ञा द्विजोत्तमान् । मया ब्रह्मपुत्रस्यैव राज्यदानं कृतं मुदा ॥५२॥
 यावत्तपति स्ते भानुर्यावदस्यत्र मे कथा । यावन्प्रवर्तते वायुस्तावदानं ममास्त्विदम् ॥५३॥

सम्मान्योऽयं धर्मसेतुद्विजानां काले काले पालनोपो भवद्भिः ।

सर्वानेतान् मायिनः पार्थिवंदान् भूयो भूयो पाषते रामचन्द्रः ॥ ५४ ॥

एवं विलेख्य भीरामः शिलायां निजमुद्रिकाम् । रामनामांकितं वायुपुत्रेणास्पर्शयत्तदा ॥५५॥

आंजनेयस्य भारेण शिला जाता तदङ्किता । राजारामेति तस्यान्ते ददृशुश्च स्फुटाभरम् ॥५६॥

कहा कि आप पहले भोजन कर लीजिये, तब शिलालेख लिखवाइयेगा । हे राम । आप लिखनको इतनी जल्दी क्यों कर रहे हैं ? पात्रोमें सामग्रियां परासी जा चुकी है और हम लोग भी भूखे हैं । ३९ ॥ ४० ॥ उनकी बात सुनी तो रामने बीरामके बाँझ विविध प्रकारके फल मँगवाकर उनके सामने रखवा दिये और कहा-हे विप्रगण ! आप लोग सुखमें यह फल खाइए । हम तो शिश्न लिखवाकर और उसपर अपनी मुहर अंकित कर देनेके बाद ही भोजन करेंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ घन क्षणम्यायी है, चित्तवृत्त क्षणिक है, अपना जीवन भी क्षणभंगुर है और यमराज बड़ा निर्दयी है । इसलिये जितने शीघ्र हो सकें, धार्मिक काम पूर्ण कर डालें ॥ ४४ ॥ सौ काम सामने हों तो उन्हें त्यागकर पहले भोजन करना चाहिए, सहस्र कामोंको त्यागकर पहले स्नान करना चाहिए, लाख कामोंको त्याग करके पहले दान करना चाहिए एवं करोड़ों कामोंको छोड़कर पहले शिवका भजन करना चाहिए ॥ ४५ ॥ हे विप्रों ! गीताका पाठ करते समय करोड़ विघ्न, गणान्नाम दस करोड़ विघ्न और दान-कर्ममें सौ करोड़ विघ्न आकर उपस्थित होते हैं ॥ ४६ ॥ इसलिये सज्जनोंको चाहिए कि दानमें सर्वदा शीघ्रता करें । निद्राके पूर्वकालमें, निद्राम उठनेके बाद, भोजनके पहले और भोजनके बाद क्षण क्षणमें बुद्धि बदल करती है । इसीलिए प्रथम क्षणमें जैसी अपनी बुद्धि हो गयी हो, उसके अनुसार दानकर्म शीघ्र कर डालना चाहिये । यह मेरा निजी मत है ॥ ४७-४८ ॥ उसी समय संतरामोंने भी हाथकी रुम्बी-चौड़ी गण्डकी नदीकी एक अच्छा-सी शिला लाकर रामके सामने रख दी ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर संतरामोंने साफ-साफ बक्षरोमें उस शिलापर खींचकर लिखा कि "सूर्यवंशमें उत्पन्न और सप्तद्वीपके अधीश्वर महाराज दशरथका पुत्र मैं राजा राम प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मपुत्रका राज्य दान करके ब्राह्मणोंको दे रहा हूँ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ जब तक कि आकाशमें सूर्य दवता सप्त रहें, जब तक संसारमें मेरा नाम रहे और जब तक कि पवन चलता रहे, तब तक मेरा यह दान दान माना जाय ॥ ५३ ॥ मेरे आगे ओ राजे होनेवाले हैं, उनसे मैं राम बार-बार यही आज्ञा माँगता हूँ कि 'ब्राह्मणोंके इस धर्मसेतुकी आप लोग सदा रक्षा करते रहिएगा' ॥ ५४ ॥ इस प्रकार लिखवाकर रामने हनुमानजीके द्वारा उसपर अपनी रामनामांकित मुहर लगावा दी ॥ ५५ ॥ हनुमानजीके भारसे शिलापर रामकी मुहर खुद गयी और उसमें "राजा राम" यह शब्द साफ-

रामनाथेन यद्वत् पुरदानं द्विजोत्तमान् । रामनाथपुरं चेति तदारभ्य प्रयां गतम् ॥५७॥
 तस्य ब्रह्मपुरमिति नाम प्राथमिकं स्मृतम् । रामनाथपुरं चेति तस्यैवाख्याऽपरा स्मृता ॥५८॥
 शिलामारमितं द्रव्यं दक्षिणार्धं निधाय सः । तां शिलां पूज्य विप्रेभ्यः श्रीरामः सीतया ददौ ॥५९॥
 ततोऽब्रवीद्वायुपुत्रं भोजनानन्तरं त्वया । विमानेन शिलां नेया रामनाथपुरं द्विजैः ॥६०॥
 कम्बुकण्ठं ततः पत्रं लेखयामास राधवः । आह्वणार्तां त्वया कार्यं साहाय्यं सर्वदेति वै ॥६१॥
 ततस्तुष्टा द्विजाः सर्वे ददुराशीः सहस्रशः । अकारं भोजनं रामस्ततस्तैः परिदेष्टितः ॥६२॥
 ततः सर्वे विमानेन ययुर्विप्राः पुरं प्रति । तान्पृष्ट्वा मारुतिश्चापि विमानेन ययौ पुनः ॥६३॥
 एवं अकारं दानानि समदीयांतरेषु हि । सहस्रशो रामचन्द्रस्तेषां सख्या न विद्यते ॥६४॥
 रामनाथपुरस्थास्ते विप्राः कालांतरेण वै । दुष्टराज्यभयादग्रे तां शिलां भयविह्वलाः ॥६५॥
 तटाकैः प्रक्षिपिष्यन्ति ततः कष्टं भजन्ति ते । मर्तुकान् द्विजान्दृष्ट्वा तटाकान्मारुतिः पुनः ॥६६॥
 बहिर्निष्कास्यति शिलामग्रे कालान्तरेण हि ।

विष्णुदास उवाच

किं कष्टं भूसुरानग्रे भविष्यति स्वजीविते ॥६७॥
 यतस्ते त्यक्तकामाश्च भविष्यन्ति वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

अग्रे कश्चिद्दुष्टराजा भविष्यत्यवनीतले । ६८॥

स तान्निबध्य विप्रांश्च तद्राज्यहरणेच्छया । वदिष्यति कलौ राजा युष्माकं दानमर्पितम् ॥६९॥
 यदि रामेण तदानपत्रं मे दृष्टिगोचरम् । कर्णीयं न चेच्छीघ्रं यावत्कालं पुरोद्भवम् । ७०॥
 युष्माभिर्वसु यद्भुक्तं तत्सर्वं दीयतां मम । नोद्येत्सर्वान्वधिष्यामि भूसुराणां यमस्त्वहम् ॥७१॥
 ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे भुन्वेदं नृपनेर्वचः । भयमीता मंत्रयित्वा नृपं प्रोचुस्त्वरान्विताः ॥७२॥

साफ दिखायी देने लगा ॥ ५६ ॥ रामने ब्राह्मणोंको वह पुरदान दिया था, इसीसे उसका रामनाथपुर नाम पड़ गया ॥ ५७ ॥ पहले उसका ब्रह्मपुर नाम था । जबसे रामने उसको दान दे दिया, तभीसे रामनाथपुर उसको संज्ञा हुई ॥ ५८ ॥ उस शिलाके तौल भर द्रव्य दक्षिणाके निमित्त रखकर सीताके साथ रामने उन विप्रोंकी पूजा की और वह शिला उनको दे दी ॥ ५९ ॥ इसके बाद रामने हनुमान्जीसे कहा कि भोजन कद लेनेके बाद इन ब्राह्मणोंके साथ जाकर यह शिला रामनाथपुरमें पहुँचा आता ॥ ६० ॥ इसके बाद रामने कम्बुकण्ठको एक पत्र लिखवाकर उन ब्राह्मणोंकी दिया, जिसमें लिखा था कि आर सदा इन ब्राह्मणोंकी सहायता करते रहें ॥ ६१ ॥ तदनन्तर प्रसन्न मनसे विप्रोंने आशीर्वाद दिया और रामने उन सबके साथ बैठकर भोजन किया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर वे सब विप्र पुष्पक विमानपर बैठकर अपने आश्रमको चले और रामसे पूछकर हनुमान्जी भी विमानपर बैठकर उनके साथ-साथ गये ॥ ६३ ॥ इस तरह सातों द्वापरीमें रामने हजारों दान किये । ठीक तरहसे जिनकी सही संख्या नहीं जानी जा सकती ॥ ६४ ॥ रामनाथपुरमें रहनेवाले वे विप्र भविष्यमें दुष्ट राजाओंके भयसे उस शिलाको तालाबमें फेंक देंगे, जिससे उनको बड़ा कष्ट प्राप्त होगा । जब वे मरनेपर उतारू हो जायेंगे तो हनुमान्जी उस शिलाको फिर निकालेंगे ॥ ६५ ॥ विष्णुदासने पूछा कि ब्राह्मणोंको जागे चलकर अपने जीवनमें कौन-सा कष्ट उठाना पड़ेगा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जिसके लिये उन्हें वह शिला त्यागनी पड़ेगी, सो कहिये । श्रीरामदासने कहा कि पृथ्वीतलमें आगे चलकर एक कोई दुष्ट राजा होगा ॥ ६८ ॥ वह कलियुगी राजा उन ब्राह्मणोंको मारकर उनका राज्य छीननेकी इच्छासे कहेगा कि यदि रामने तुमको यह राज्य दान करके दिया है तो यह दानपत्र दिखाओ । नहीं तो इतने दिनों तक इस राज्यकी जितनी आय तुम लोगोंने ली है, वह सब लाकर दे दो । नहीं तो मैं सबको मार डालूँगा । क्योंकि ब्राह्मणोंके लिए मैं

मासेनैकेन पत्रं ते दर्शयिष्यामहे वयम् । ततो मृगोचतान् राजा तेषां नृणां पुरं ययुः ॥७३॥
 तटाकस्य तटं भिरवा प्रवाहाः शतशस्ततः । मोचयामासुः सर्वत्र नातं तस्य जलस्य ते ॥७४॥
 ददृशुः सकला विप्रास्ततस्ते प्राणसंकटम् । शान्त्वा तत्र निराहारा निपेदुः सरमस्तटे ॥७५॥
 राघवं परमात्मानं चितयामासुर्गदरात् । एवं मासे न्वतिक्रान्ते वषट् शान्त्वान् मनो नृणां ॥७६॥
 भयात्प्राणास्त्यक्तुकामा द्यास्तस्मिन् जलाशये । तदा तेषां स्त्रियः पुत्राश्चक्रुः कोनाहल भृशम् ॥७७॥
 तान्सर्वान्सांत्वयामासुर्नानानीन्युत्तरैर्द्विजाः । स्वयं स्नान्वा द्विजाः सर्वे ददुर्दानान्यनेकशः ॥७८॥
 चक्रुः प्रदक्षिणाः सप्त तटाकायोच्चराननाः । ऊचुर्दीर्घस्वरैर्गैव प्रवदुःकसंपुटाः ॥७९॥
 हे राम आनकीकां त्वद्दानादीदृशी गतिः । ज्ञाताश्चमाकं मृताभस्त्वं सर्वान्यश्य रघूनम ॥८०॥
 पुरोद्भवं तु यदुद्भव्यं पूर्वजैर्भुक्तमेव तन् । एतावन्कालपयेन्ममस्माभिश्चाधुना कुतः ॥८१॥
 तत्त्वदेवमर्मरुयात्तुमस्तस्यस्याम जीविनम् । इत्युक्त्वा ब्राह्मणाः सर्वे निमीन्य नयनानि ते ॥८२॥
 चितयामासुः स्वीयेष्टां देवतां मरणोन्मुक्ताः । एतस्मिन्नतरे तत्र देवागारे इनुपतः ॥८३॥
 पाषाणमूर्तेः प्रकटः संवभृवाञ्जनीमुतः । दीर्घस्वरं तान् प्राह भूतान्ममप्रमाद्वरिः ॥८४॥
 पूय मा जीवितान्यद्य त्वज्जन्म ब्राह्मणोत्तमाः । आगतो राघवस्याह दामोऽञ्जनिममुद्भवः ॥८५॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा द्विजास्ते विस्मयान्विताः । उन्मील्य नयनान्यग्रे ददृशुर्वापुनन्दनम् ॥८६॥
 दीर्घबाहु महाघोरं पिङ्गकेशविराजितम् । जरठ पञ्चेनाकारं रामनामप्रभाषिणम् ॥८७॥
 तं दृष्ट्वा ते द्विजाः सर्वे प्रणेमुर्दृष्टमानसाः । कथयामासुस्त सर्वं स्वीयं वृत्त सविस्तरम् ॥८८॥
 ततः स मारुतिर्वेगात्परसस्तां शिलां बहिः । निष्कास्य विप्रवर्यैस्तैः शिलां घृत्वा स्वयं कपिः ॥८९॥

ममराज हूँ ॥ ६९-७१ ॥ राजाको ऐसी बात सुनकर ब्राह्मण भयभीत हो तथा परस्पर सलह करके उससे बोले कि एक महीनमे मैं आपको वह दानपत्र साजकर दिखाऊँगा । यह सुनकर राजान ब्राह्मणोंको छोड़ दिया और वे चुपचाप लौटकर अपने-अपने घर चले गये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वही पट्टचक्र उन्हान उस ता तबका बाँध सोड़ दिया । जिससे सैकड़ों सोने वह निकले और चारों ओर फैलकर वहनपर भी नहागका जग नहा चुका । जब ब्राह्मणोंने देखा कि अब प्राण संकटम आ गया है तो सबके सब उसाके एक ऊँच कारार उपवास करने हुए बैठ गये और परमात्मा रामचन्द्रजीका ध्यान करने लगे । इस प्रकार एक महीना चला जानेपर जब उन विप्रोंने साचा कि अब वह दुष्ट राजा हमको मार डालेगा तो भयम अपने प्राण त्यागनेके लिए तैयार हो गये । उस समय उनके घरकी स्त्रियाँ तथा बच्चे अत्यधिक दुःखित हानके कारण सबके सब चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे ॥ ७४-७५ ॥ तब उन्होंने स्त्रियों बच्चोंको अनक प्रकारका नतिमयी बात सुनाकर सांत्वना दी । स्वयं उन विप्रोंने स्नान करके नाना प्रकारके दान दिये । फिर उन्होंने उस तालाबकी सात परिक्का की ओर उत्तरकी ओर मुख करके सड़े हो गये । हाथ जोड़कर ऊँच स्वरसे वे कहने लगे हे राम ! हे आनकीकान्त !! तुम्हारे दिये हुए दानसे आज हमारी यह दुर्दशा हो रही है । हे रघूत्तम ! अब तुम हम लोगोंको मरा हुआ समझो ॥ ७८-८० ॥ पूर्वकालमे हमारे पूर्वजोंने जो धन इस राज्यसे पाया, वह सब उन्ही लोगोंने लूट कर दिया । अब हम कहींसे असस्य धन लाकर इस राजाका दान । उतना धन जुटाना हमारी शक्तिसे बाहर है । अतएव हम अपने शरीरको त्याग देंगे । इतना कहकर उन मरणान्मुख विप्रोंने नेत्र मूँद लिये और अपने इष्टदेवका ध्यान करने लगे । उसी समय पासके देवालयमे पाषाणमय, मूर्तिसे हनुमानजी प्रकट हुए और जोर-जोरसे चिल्लाकर कहने लगे — ॥ ८१-८४ ॥ हे ब्राह्मण ! तुम लोग अपने प्राण मत त्यागो । रामचन्द्रजीका सेवक अञ्जनीपुत्र मैं हनुमान् आगया । इस प्रकार उनकी बात सुनकर विस्मित भावसे उन सबोंने नेत्र खोलकर हनुमान्जीको देखा ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ उस समय उन हनुमान्जीका सम्झा तथा भयानक रूप था, पीले-पीले केश थे, बूढ़ी अवस्था थी, पर्वताकार शरीर था और वे निरन्तर रामनामका उच्चारण करते जाते थे ॥ ८७ ॥ उनको देखा तो प्रसन्न चित्तसे उन ब्राह्मणोंने प्रणाम किया और विस्तारपूर्वक अपने

जगाम दुष्टराजानं दशेयामास तां शिलां । रघुदत्तकता द्यूतं विप्रराजाऽहं स्मिन् ॥ १०॥
 तं तदा रोपयामास शूराग्रं वामृजो नृपम् । तस्मिन्नेव नदीके ह नृज विप्राः स्थिताः पुनः ॥ ११॥
 नृपं मोचयितुं ये ये राज्ञूताः समापनुः । राज्ञोऽपि याताः पुनश्चेन्नैव म माताः ॥ १२॥
 द्विजहृत्पापशमनाद्धृताश्चमनं । रः । वदुः रास्मिन् तन्पुण्यं तत्र श्रीनायुमृतुना ॥ १३॥
 राज्यदानेन रामस्वीकारं लोकान्प्रदक्षिणुः । उदारराधिवशात्पुनः सम्भुः सस्योपतः शुभः ॥ १४॥
 उदारराधश्चेति नाम्ना मूर्तिः प्राप्ता ॥ १५॥

स्नानदिना तस्मिन्नेव नृपां वापत्रय न हि ॥ १६॥

ततः प्राह पुनर्विशान्दन्मांस्तुष्टमनः । भूम्पां कृन्वा गुहां श्रेष्ठं तत्रैव स्थारः तां शिला ॥ १६॥
 न मयं वोऽस्तु भो विप्रा शुष्माकसाधमस्तुह ॥ नवदास्मिन् न मेऽपि समरध्वं रघुनन्दनम् ॥ १७॥
 हनुक्त्वा गुप्तरूपोऽभूत्सोऽयमुन्नी द्विजग्रतः ।

तां शिलां स्थापयामासुर्मूर्धामेऽतिरत्नतः ॥ १८॥

ततस्तुष्टा द्विजाः सर्वे जम्पुः स्व स्व गृहं प्रति । तदाऽऽरभ्य न केनऽपि तपां राज्यं हृतं कदा ॥ १९॥
 एवं शिष्य मया प्रोक्ता कथा माता तवाग्रतः । पूरमेव क्षान्दृष्ट्वा कौतुकाग्रं सावस्तरा ॥ २०॥
 अद्यापि तत्र तैर्वर्गैस्तद्राज्यं भुज्यते सदा ।

ये ये जाता नृपा भूम्पां रामाणां मानयन्ति ते ॥ २०१॥

एव नाना कौतुकानि राधवेश कृताः न हि । पुनाम्पां नीतिः स्यादप्युपार्जयन्तेः सह ॥ २०२॥

इति श्रीशतकोटिनामचारिणा श्रीमदानन्दरामायणे पाणिनाकाय राजकाण्डे

रामनाम्पुरराज्यप्रदानं नामाष्टमः सर्गः ॥ १८ ॥

सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ८८ ॥ इसके अनन्तर लुप्तपुत्र राजा जितन निकालकर उनके साथे रत्न दी और ब्राह्मणों से उसे उक्त दुष्ट राजा के लिये बंदर निरूपित । रघुदत्त के चिह्नित चिह्नित उस शिलाको देखकर राजा बहुत अकरा ॥ ८९ ॥ ९० ॥ तभी लुप्तपुत्र राजा का पकड़कर उसी सरोवरके तटपर ले गये और शूलोपर बद्धा दिया । राजा की दुष्टता के लिये माता । उनके पास आये, हनुमान्जीने अपनी लम्बा पूछके आरंभ हा उन रत्न का मर डाला ॥ ९१ ॥ ब्राह्मणों सन्नाप हनुमान्जीने उसी सरोवरपर हरण किया , इसान्द उपाय के हृत्पापशमन नाम पड़ गया ॥ ९२ ॥ राज्यदानसे रामकी उदारता ससारका दिवाने के लिए उस स्थानपर हनुमान्जी उदारराधवेश नामक शिवलिंगकी स्थापना की ॥ ९३ ॥ उस सराधेश के लिये करनेसे मनुष्य के दीहक, दीवक और मानसिक ये तीनों ताप दूर हो जाते हैं ॥ ९४ ॥ इसके बाद हनुमान्जी ने उनके सन्नाप विप्रसे कह — पृथ्वी एक गुफा बनाकर उसीमें यह शिला रख दो ॥ ९५ ॥ हे विप्रा, तुमको किस प्रकार का भय नहीं है । मैं सब तुम्हारे पास रहूँगा । तुम सब सर्वदा भगवान् रामका स्मरण करते रहो । इतना कहकर सबके समक्ष हनुमान्जी अपनी उसी पाषाणमयी प्रतिमा लेन हा गये । असा एक हनुमान्जी ने व लाया था, विप्रोंने गुफा खोदकर बड़े यत्नसे यह शिला उसीके भीतर रख दी ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ इसके अनन्तर प्रमत्त मनसे ब्राह्मण लोटकर अपने-अपने घरोंको चले गये । तबसे इसी राजा ने उनके राज्यका हरण नहीं किया । श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! मैंने भावी वृत्तान्त तुम्हें कह सुनाया । अज भगवान् ब्राह्मण उस राज्यका उपयोग कर रहे हैं । पृथ्वीतलपर जितने राज हुए, व बराबर रामकी आज्ञा का मानते आये हैं । इस प्रकार अवोप्याये राम अपने पुत्रों, सीता तथा ब्राह्मणोंके साथ नाना प्रकारके कौतुक करते रहे ॥ ९८-१०२ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतजपाण्डेयविरचिते व्यासनीमपाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः

(रामकी दिनचर्या)

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य वदाम्यद्य रामसङ्गः शुभावहा । दिनचर्या राज्यकाले कृता लोकान् हि शिञ्चितुम् ॥ १ ॥
 प्रभाते गायकैर्गीतैर्बोधितो रघुनन्दनः । नववाद्यनितादांश्च सुखं शुश्राव सीतया ॥ २ ॥
 ततो ध्यात्वा शिवं देवीं गुरुं दशरथं सुगन् । पुण्यतीर्थानि मानश्च देवतापवनानि च ॥ ३ ॥
 नानाक्षेत्राण्यरण्यानि पर्वतान्पागरास्तथा । नदांश्चैव नदाः पुण्यास्ततः सीता ददर्श सः ॥ ४ ॥
 प्रणमन्तीं समुत्थाप्य धृत्वा सीताकरं प्रभुः । मञ्चकादवतीयाथ दामोभिः परिवेष्टितः ॥ ५ ॥
 वह्निः कक्षां शनैर्गत्वा सम्पाद्यावश्यकं प्रभुः । ययौ पुनः न दामीभिः क्रीडाशालां रघूत्तमः ॥ ६ ॥
 कृत्वा शौचविधिं रामो दन्तशुद्धिं चकार सः । ततः स्नानं कदा गेहे सरयवां वाज्जगेन् प्रभुः ॥ ७ ॥
 आरुह्य शिविकायां स भूसुरैर्यानि सस्थितैः । वेष्टितः सरयूं गन्वा पानं मुक्त्वा गटे प्रभुः ॥ ८ ॥
 पङ्कथामेव शनैर्गत्वा सरयूं प्रणिपद्य च । सरयवाः पुरतः स्थाप्य नारिकेल सदक्षिणम् ॥ ९ ॥
 सताचूलं पुनर्नत्वा स्तुत्वा सम्पक् प्रसाद्य च । स्नान्वा यथाविधानेन ब्रह्मघोषपुङ्गवसम् ॥ १० ॥
 प्रातः सन्ध्यां ततः कृत्वा ब्रह्मयज्ञं विधाय च । दत्त्वा दानान्यनेकानि ययौ गेहं रथेन हि ॥ ११ ॥
 रुक्मबन्धैर्वेष्टितेन रौप्यरत्नमयेन च । सुस्नातघृततुरगयुक्तेन च्चनितेन च ॥ १२ ॥
 हुत्वा होमं विधानेन शिवं सम्पूज्य सादरम् । कौसल्यां च सुमित्रां च कैंकेयीं च समर्चयत् ॥ १३ ॥
 कामधेनुं कल्पवृक्षं पारिजातं तु पुष्करम् । चित्तामणिं कौस्तुभं च पूज्य सीतायुतो हरिः ॥ १४ ॥
 मुनिपुङ्गवं वटं पिल्वमश्वत्थं तुलसीं तथा । शमीं पल्लवं दुर्वां च राजवृक्षमर्जयत् ॥ १५ ॥
 भानुं सम्पूज्य त नन्वा सम्पूज्य द्वारदेवताम् । गोशृपाश्ववारणांश्च रथं शस्त्राणि भूसुरान् ॥ १६ ॥
 कोष्ठागाराणि कोशाश्च पक्कशालामर्जयत् । मिहामने तथा छत्रं चामरे व्यजने तथा ॥ १७ ॥

श्रीरामदास बाले—हे शिष्य ! सुनो, अब मैं रामचन्द्रजीकी दिनचर्या बताता हूँ । जिसे वे सबको शिक्षा देनेके लिए किया करते थे । राम प्रतिदिन प्रातःकाल गायकोंके गीत तथा बाजोंके भाँडे स्वर सुनकर सोताके साथ जागते थे । इसके अनन्तर शिव, देवी, गुरु, देवताओं, दशरथ, पवित्र तीर्थों, माताओं, देव-मन्दिروं, अनेक प्रकारके क्षेत्रों, अरण्यों, पर्वतों, सरोवरों, नदों और नदियोंका स्मरण करके सीताको देखते थे ॥ १-४ ॥ प्रणाम करती हुई सीताको उठाकर राम उनका हाथ पकड़े हुए भस्मसे उतरते थे । फिर बहुत-सी दासियों-से घिरे हुए जाते और आवश्यक कार्योंका संपादन करते थे । इसके बाद दासियोंके साथ-साथ क्रीडाशालाको जाते और वहाँ शौचविधि करनेके पश्चात् दन्तशुद्धि करते थे । इसके अनन्तर कभी घरपर और कभी सरयूमें जाकर स्नान करते थे ॥ ५-७ ॥ जब सरयूस्नानको जाते तो पालकीपर सवार हो तथा बहुतसे ब्राह्मणोंसे परि-वेष्टित होकर जाते और तटपर पहुँचते ही पालकीसे उतर जाते एवं पैदल चलकर सरयूके आगे पानदक्षिणा-युक्त नारियल रखकर प्रणाम और प्रार्थना करते थे । फिर ब्राह्मणोंके वेदघोषके साथ स्नान करते थे । इसके बाद प्रातःकालीन सन्ध्या तथा ब्रह्मयज्ञ करके ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान देते और रथपर सवार होकर महलोंको लौटते थे ॥ ८-११ ॥ उस रथमें स्थान-स्थानपर सुवर्णमूत्रके बन्धन लगे रहते और स्वैतवर्णके वस्त्र छटकते रहते थे । सरयूमें सारथी तथा घोड़े नहाये रहते थे और उस रथमसे एक प्रकारकी ध्वनि निकलती रहती थी ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर विधानपूर्वक हुवन करके राम सादर शिवजीका पूजन करते और कौसल्या, सुमित्रा और कैंकेयीकी पूजा करते थे ॥ १३ ॥ फिर कामधेनु, कल्पवृक्ष, पारिजात, पुष्पकविमान, चित्तामणि, कौस्तुभ आदिकी सोताके साथ-साथ राम पूजा करते थे । पश्चात् अगस्त्य, वट, बिन्व, पीपल, तुलसी, शमी, पलाश, दुर्वा, राजवृक्ष तथा सूर्यभगवान्की पूजा करके द्वारदेवताको नमस्कार और पूजन करते थे । तदनन्तर

संपूज्य मुकुटं रामः पूजयामास पञ्चकम् । दीपिकां दर्पणं पूज्य पुस्तकादीनपूजयन् ॥१८॥
 पुनः संपूज्य स्वगुरुं पूर्वं विप्रेषु पूजितम् । उच्चासनस्थितं नन्वा कथां शुभाव सन्मुखाद् ॥१९॥
 पुत्राभ्यां बन्धुभिः पत्न्या पण्डितैः पत्निवेशिनः । ततः संप्राथिनो रामः सीतया स मुहुमुहुः ॥२०॥
 विप्रादिभिश्चोपाहारं चकार स्वस्थमानसः । कामधेनुद्रव्यैश्चान्नैः कल्पवृक्षममुद्धरैः ॥२१॥
 मणिद्वयनिर्मितश्च वर्हा मीनाकूर्तरपि । ततो धुक्त्वा हि तांबूलं त्रिश्रद्धासांमि राघवः ॥२२॥
 बद्ध्वा कटिं दिव्यचस्त्रैः शस्त्राण्यपि दधार मः । एतस्मिन्ननतरे पूर्वं समाहूतो यया मियक् ॥२३॥
 गणकोजपि राघवेण प्रत्युद्गम्यातिमातिनी । निषेदतु राघवये पूजयाम स तौ मधुः ॥२४॥
 ततो मियक् सुखं स्थित्वा राघवग्रे तदाज्ञया । ददर्श दक्षिणकरे नाडीं रामस्य सादरम् ॥२५॥
 रत्नमुद्राकंकणार्धैः शोभितस्योज्ज्वलस्य च । कर्मणां गुह्यमूले या धमनी जीवमाक्षिणी ॥२६॥
 तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञायते च मियग्वरैः । अनन्ता वैद्यवर्यः स सूक्ष्मबुद्ध्या वग्नोक्तयन् ॥२७॥
 रामकर्णे विहस्याह रात्रावचरितः श्रमः । तद्वैद्यवचने श्रुत्वाऽकरोद्रागः क्षिताननम् ॥२८॥
 ततो वैद्याय तांबूलं ददौ रामः सदक्षिणम् । ततः स गणकः प्राह विप्रतार्य सुस्फुटाक्षसम् ॥

पञ्चाङ्गपत्र चित्रं च राघवग्रे स्थितः मुधीः ॥२९॥

विघ्नेश्वरो ब्रह्महर्गश्चराः सुगं भानुः शशी भूमिसुतो बुधः शुभः ।

गुरुश्च शुकः शनिगह्वरेनरः मरुं ग्रहा मंगलदा भवतु ते ॥३०॥

लक्ष्मीः स्यादचला निधिभ्रवणतो वातात्तथाऽऽयुश्चिरं नक्षत्रं कृतपापमचयहरं योगी वियोगाशहः ।

सर्वाभीष्टकरं तथैव कारणं पञ्चांगमेतन्स्पृष्टं श्रोतव्यं प्रतिज्ञामरे द्विजमुवाचल्लेखकरं संग्रहम् ॥३१॥

स्वस्ति श्रीभागवादास्ति निधिश्च दशमी मिता । भानुवारः सुनक्षत्रं पुण्याख्यं स्वयं वर्तते ॥३२॥

वृष, अश्व, हाथो, रथ, शास्त्र, साधन, क, शर, बाण, राक्षशाला, मिहामन छत्र, चमर, स्वयंजन, मुकुट, पञ्च, दीपिका और दर्पणको पूजा करके पुस्तकादिकाका पूजन करत थे ॥ १४-१८ ॥ फिर ऊँचे आसनपर बैठे अपने गुरुकी पूजा और नमस्कार काक उनके मुखमें कथा सुनते थे ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर अपने भ्रातायो, पुत्रो और पण्डितोके साथ बार बार सीताके प्रार्थना करनेपर ब्राह्मणक सब स्वस्थ मनसे कामधेनु, कल्प-वृक्ष और दोनों मणियोसे उत्पन्न तथा अग्निपर बसाये अन्नका भाजन करके पान काने थे । तदनन्तर सुन्दर कपडे पहिन तथा दिव्य वस्त्रसे कभर इनके अति भाविके अस्त्र शस्त्र धारण करत थे । इसके बाद पहिलेसे ही बुलाये हुए वैद्य तथा ज्योतिषी आन । उनको आत देखकर राम उठ खडे होते और दो पग आगे बढ़कर स्वागत करके उन्हे लाते एवं अतिशय सम्मान वरत थे । वे आकर सामने बैठ जाते और राम उनकी पूजा करते थे ॥ २०-२४ ॥ इसके बाद वैद्य आनन्तरपूर्वक बैठकर रामके आज्ञानुसार रत्न, मुद्रा तथा कंकण आदिसे सुशोभित उनके दाहिने हाथकी नाडी देखता था । हाथके अंगुठोकी नीचेवाली की जीवमाक्षिणी नामकी नाडी है, उसे देखकर वैद्यगण प्राणीके मुख दुख जान लिया करते हैं । इसलिये वह वैद्य अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे देखता और कानसे कहता कि 'रातको ज्यादा मेहनत किये हैं न ?' वैद्यकी बात सुनकर नाभ मुस्करा देते थे ॥ २५-२८ ॥ इसके बाद राम दक्षिणक साथ वैद्यकीको पान देने थे । तदनन्तर ज्योतिषीजी स्वच्छ कभरो और चित्रोसे सुसज्जित पञ्चांग कपाकर रामके सामने बैठत और इस प्रकार मङ्गलाचरण तथा पञ्चांग-अवणका माहात्म्य सुनाते थे । विघ्नेश्वर (गणेशजी), ब्रह्मा, महेश, समस्त देवता, सूर्य, शनि, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक, राहु, केतु आदि सारे यह आपके मंगलदाता हों ॥ २९ ॥ ३० ॥ त्रिविके सुननेसे लक्ष्मी जबल हांसी है, बारके भ्रवणस आयु बढ़ी है, नक्षत्रभ्रवण पुराकृत पावोके समूहको नष्ट करता है, योग अपने प्रियजनके विर्य गसे बचाता तथा करण सब प्रकारकी मन कामना पूर्ण करता है । अतएव ब्राह्मणके मुखसे प्रतिदिन इनका भ्रवण करना चाहिए । क्योंकि यह प्राणियोंका सब प्रकारसे कल्याण उल्ला है ॥ ३१ ॥ स्वस्तिश्री रामचन्द्रजी । आज शुक्लपक्षकी दशमी तिथि है, रविवार है, पुष्यनामक मुनसत्र है,

ततश्च रथकक्षायां नृपान्योरान्सुहृज्जनान् । समागतान्दर्शनार्थं ददर्श रघुनन्दनः ॥५१॥
 ततः पञ्चमकक्षायां पुष्करं पुष्पवाटिकाः । दूतान्दर्शं श्रीरामः शङ्खहस्तान्सहस्रशः ॥५२॥
 ततः स षष्ठकक्षायां पञ्चकूटान्सहस्रशः । वीरान्दर्शं श्रीरामः प्रबद्धकरमम्पुटान् ॥५३॥
 ततः सप्तमकक्षायां ययौ रामः सभां प्रति । शिखिकायाश्चावनीर्य जनैः मिहामनं ययौ ॥५४॥
 सस्य कृत्वा नमस्कृत्य भोषानैः स जनैः प्रभुः । मिहामनमाश्रोह वरछत्रमुशोभितम् ॥५५॥
 दधार छत्रं सीमित्रिधामर भरतस्तदा । शत्रुघ्नोऽप्यजनं रम्य पादुके वायुनन्दनः ॥५६॥
 सुग्रीवो जलपात्रं च दगदर्शं विभीषणः । दधार हस्ते ताम्बूलपात्रं स बालिनन्दनः ॥५७॥
 बल्लकोशं आचर्वाश्च दधार बेगवत्तरः । तस्यो मिहासने रामः स पृष्ठांकोपवर्धनः ॥५८॥
 तस्थौ पृष्ठं लक्ष्मणश्च भरतः सस्यपादुके । शत्रुघ्नोऽसौ नामपाशे पुरतो वायुनन्दनः ॥५९॥
 बायव्यकोणे रामस्य सुग्रीवः सविधनोऽमरुत् । ईशान्यां राक्षसेन्द्रः स आग्नेय्यामङ्गदः स्थितः ॥६०॥
 नैर्ऋत्यां जांबवांश्चापि वीराः सर्वे समन्ततः । राघवाग्रे नृपाः सर्वे स्थिताः सम्बद्धपाणयः ॥६१॥
 पार्श्वयोस्ते राघवस्य प्रोच्चस्थाने मुनीश्वराः । पुरतो ननतुः सर्वा वारवेश्याः सहस्रशः ॥६२॥
 ततो वीरास्ततो दूताः समायां संस्थिताः क्रमान् । निषेदुर्मुनयः सर्वे रामपुत्री निषेदतुः ॥६३॥
 राममित्रा निषेदुस्ते तथा रामाक्षया नृपाः । ये ये मुख्या निषेदुस्ते तथा वीराः सुहृज्जनाः ॥६४॥
 एभ्योऽन्ये ते स्थिता एव न निषेदुः प्रभोः पुराः । तेषां मध्ये रामचन्द्रः शुशुमेऽनुपमस्तदा ॥६५॥
 सेवकाद्या न निषेदुः सुमन्त्र एव तस्थिवान् । एवं स्थित्वा समायां स कृत्वा कार्याण्यनेकशः ॥६६॥
 नानाकापेषु बन्धुंश्च पुत्रावाहाप्य राघवः । दृष्ट्वा नानाकौतुकानि पूर्ववद्गृहमावयौ ॥६७॥
 तदा निषेदुर्वाद्यानि गोमुत्सादीन्यनेकशः । श्रुत्वा वाद्यनिनादांश्च जानकी सम्भ्रमात्पुरः ॥६८॥

रथ सङ्गे रहते थे । जिनमें अनेक प्रकारके जलद्वार लगे रहते और जन्धे कपड़ोंका ओहार पड़ा रहता था । ॥ ५० ॥ इसके बाद उस आगनमें बाहरसे आये हुए उन राजाओं, पुरवासियों और मित्रोंको देखते थे जो वहाँ रामकी प्रतीक्षामें पहुँचे ही से उपस्थित रहा करते थे ॥ ५१ ॥ फिर पाँचवीं चौकमें पुष्पकविमान, पुष्पवाटिका तथा सस्य घारण किये हजारों सिपाहियोंको देखते थे ॥ ५२ ॥ फिर छठी चौकमें जाकर हाथ जोड़े हुए हजारों घोड़सवार वीरोंको देखते थे ॥ ५३ ॥ इसके बाद सातवीं चौकमें पहुँचकर अपनी राजसभामें जाते थे । वहाँ पालकीसे उतरकर सिंहासनके पास जाते थे ॥ ५४ ॥ दाहिनी ओर सिंहासनको प्रणाम करके जनैः जनैः सीढ़ियोंसे चढ़कर सिंहासनपर बैठते थे । वह मिहामन छत्रसे सुशोभित रहता था ॥ ५५ ॥ रामके बैठ जाने-पर लक्ष्मण, छत्र लेते, भरत चमर लेने, पंखा शत्रुघ्नजी सेकर सङ्गे होते और हनुमान्जी रामकी चरणपादुका लिये रहते थे । इनके सिवाय सुग्रीव जलकी सारा, विभाषण एक सुन्दर-सा दण्ड, अङ्गद ताम्बूलका पात्र और वस्त्रकी सज्जक जाम्बवान् लिये रहते थे । राम पीठपर तकिया लगाकर सिंहासनपर बैठते और उनके वंछे लक्ष्मण, दाहिनी ओर भरत, बायीं ओर शत्रुघ्न, सामने पवनकुमार, बायव्य कोणमें सुग्रीव, ईशान कोणमें विभीषण और आग्नेय कोणमें अङ्गद सङ्गे हाथ थे ॥ ५६-६० ॥ नैर्ऋत्य कोणमें जाम्बवान् रहते और बहुतसे पुरवासी चारों ओर सङ्गे रहते थे । रामचन्द्रजीके सामने सब राजे हाथ जोड़-जोड़कर सङ्गे रहा करते थे ॥ ६१ ॥ रामके दाहिने बायें दोनों ओर एक ऊँचे आसनपर मुनिगण बैठते थे । सामने हजारों बेग्यायें गावती थी ॥ ६२ ॥ इसके बाद वीरगण और फिर दूतगण सङ्गे रहा करते थे । समस्त ऋषीश्वर तथा दोनों राजकुमार भी आकर अपने-अपने आसनपर बैठ जाते थे ॥ ६३ ॥ रामके मित्र तथा राजे रामके आज्ञा-नुसार बैठते थे । जो नगरके मुख्य निवासी थे, वे तथा मित्रगण भी बैठते थे ॥ ६४ ॥ इनके सिवाय और कोण रामके सामने नहीं बैठते थे, उन्हें लड़ें ही रहना पड़ता था । उन सबोंके बीचमें रामकी एक अनुपम शोभा होती थी ॥ ६५ ॥ सेवक आदिमसे कोई भी नहीं बैठता था । उनमेंसे केवल सुमन्त्र बैठते थे । इस प्रकार सभामें बैठ और नाना प्रकारके राजकार्य करके माइयों और बेटोंको कितने ही काम सौंपकर विविध प्रकार-

प्रत्युद्गम्य तोयहस्ता तन्प्रतीक्षां चकार मा । रामोऽपि पूर्वलोकान्ममकक्षास्त्रनुकमात् ॥६९॥
 प्रविशन्मकलानां ददौ तांस्तान्स्वनोपयत् । ततोऽग्रे बन्धुभिर्मेहं पुत्राभ्यां संविवेश सः ॥७०॥
 ददर्श जानकीं रामः पीतकौशेयधारिणीम् । साऽपि रामं ययौ मीता कञ्जयाऽवनतानना ॥७१॥
 वस्त्रनेत्रकटाक्षैश्च मोहयन्ती रघूत्तमम् । नानालङ्कारमपुक्ता वरनूपुरनिःस्वना ॥७२॥
 मतो रामो जलं स्पृष्ट्वा धृत्वा सीताकरं मुदा । लक्ष्मणादीन्मविमर्ष्य सीतामेहं विवेश सः ॥७३॥
 बहिर्दृष्ट्वा श्रुतं वाऽपि यद्यन्कांतुकमुत्तमम् । तन्मत्वं जानकीं प्राह तोषयामास तां मुहुः ॥७४॥
 ततः सर्वान् समाहूय भोजनाय मभ्युद्यतः । स्नानं कृत्वा स मध्याह्नकर्म चक्रे रघूत्तमः ॥७५॥
 तर्पयित्वा पितृंश्चापि नैवेद्यान् क्षम्यते ददौ । वैश्वदेवं ततः कृत्वा बलिदानं विधाय सः ॥७६॥
 दत्त्वा भूतबलिं चापि पितृंश्चापि स्वधेति च । बहिर्दृष्ट्वा काकबलिं त्वनिधीन्पूज्य सादरम् ॥७७॥
 यतींश्च ब्राह्मणान्पूज्य हेमपात्रेषु गधवः । परिवेष्टितेषु जानक्या विपदासु धृतेषु च ॥७८॥
 तैः सर्वभोजनं चक्रे स्तुषामिर्वीजितो मुदा । कश्चिद्दि ततः कृत्वा भुक्त्वा तांश्चलमुत्तमम् ॥७९॥
 ददौ तेभ्यो दक्षिणांश्च विप्रेभ्यो रघुनायकः । गत्वा शतपदं रामो निद्राशालां ययौ शनैः ॥८०॥
 एतस्मिन्तरे सीता भुक्त्वा रामान्तिकं ययौ । बीजयामास श्रीरामं मञ्चकस्थ पुरस्थिता ॥८१॥
 चकार निद्रां श्रीरामो मञ्चके सीतया सह । ता दास्यो बीजयामासुर्दिव्यालङ्कारभूषिताः ॥८२॥
 ततः प्रबुद्धा सा सीता प्रबुद्धोऽभूद्रमापतिः । सारिभिः मीनया क्रीडां तथा बुद्धिबलेन हि ॥८३॥
 नानाकृत्रिमसैन्यं चाकरोदन्यैरपि प्रभुः । ततो द्वाभ्यामण्डपाधो जलयन्त्रादिकौतुकम् ॥८४॥
 दृष्ट्वा पक्षिकुलान्सर्वान्पञ्जरस्थान्दर्शय सः । गत्वा सोपानमार्गेण प्रामादाग्रं पुरीं निजाम् ॥८५॥

के कौतुक देखनेके बाद पहिलेकी तरह अपने घरको लौट आने थे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ उस समय गोमुक्तादि बाज
 बजने लगते थे । उन बाजोंको सुनकर घबड़ायी हुई सीता हाथमें जलकी क्षारी लेकर रामके आने-
 की प्रतीक्षा करने लगती थी । राम भी पहिलेकी तरह सातों चौक लाँघकर ॥ ६९ ॥ ७१ ॥ चलते हुए सब
 लोगोंको प्रसन्न करने जाते थे । फिर भाई तथा पुत्रोंके साथ आगे बढते हुए अन्ध भवनमें जाते थे
 ॥ ७० ॥ वहाँ पीले रङ्गके रेशमी कपड़ पहने सीताको देखते और सीता भी लज्जाके मारे सिर
 मुकाये अपने तिरछे नेत्रकटाक्षोंसे रामको मुग्ध करती हुई सामने जाती थी । उस समय सीताके अलङ्कारों
 और नूपुरोंके अनेक प्रकारकी झनकार सुनायी पड़ती थी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ इसके बाद राम जल लेकर हाथ-
 पैर धोने, कुत्सा करने और सीताका हाथ अपने हाथमें पकड़कर उठने थे । तब लक्ष्मण आदिको विदा करके
 सीताके महलमें जाते थे ॥ ७३ ॥ वहाँपर बाहर जो कुछ कौतुक देख रहते, वह सब एक एक करके सीताको
 सुनाते हुए उन्हें प्रसन्न करने थे ॥ ७४ ॥ इसके बाद सब लोगोंको भोजनका बुलावा भेजते और स्वयं स्नान
 करके मध्याह्नकालीन कर्म करते थे ॥ ७५ ॥ पितरोंका तर्पण करके शिवजीके लिये नैवेद्य अर्पण करते थे । फिर
 बलिर्वैश्वदेव करत और काकबलि आदि देते थे ॥ ७६ ॥ तदनन्तर भूतबलि देकर पितरोंकी 'स्वधा' शब्दका
 उच्चारण करके नृपत्त करते, काकबलि बाहर निकाल देते और उसके बाद आदरपूर्वक अतिथियोंका सत्कार
 करते थे ॥ ७७ ॥ ब्राह्मणों और यतियोंका पूजन कर सेनेके पश्चात् सामने तिराईपर रखे हुए सुवर्णके पाशोंमें
 जानकीके हाथों मेंसे अनेक प्रकारके पकवानोंको सब लोगोंके साथ खाते थे । उस समय सब पुत्रवधुर्ये उन
 लोगोंका पंखा झला करती थीं । भोजन करनेके पश्चात् हाथ धोते और उत्तम ताम्बूल खाकर ब्राह्मणोंको
 दक्षिणा देते थे । फिर सो पग धरकर अपनी निद्राशालामें पहुँच जाते थे ॥ ७८-८० ॥ इसी बीच सीता
 भी भोजन करके रामके पास पहुँच जाती और वहाँ मञ्चके ऊपर बड़े हुए रामके पास बैठकर पंखा झलने
 लगती थी ॥ ८१ ॥ बादमें राम सीताके साथ मध्यपर शयन करते थे, तब दासियाँ उनपर पंखा
 झलने लगती थीं ॥ ८२ ॥ कुछ देर शयन करनेके बाद सीता उठ जाती और राम भी जाग जाते थे । तब
 राम सीताके साथ बुद्धिबलसे कुछ देरतक चोसर आदिके खेल खेलते थे । फिर अंगूरको हाड़ीके नीचे डाले

वनारामान्विता दृष्ट्वा हृदयीभ्याऽतिरजिताम् । शनैर्ययौ प्रभृगोष्ठं नानधेनूददर्श सः ॥८६॥
 तां सम्प्रेष्य गृहं सीतां स्वदामीपरिवेष्टिताम् । द्वारान्तिकं ययौ रामस्तत्र ते लक्ष्मणादयः ॥८७॥
 चक्रुः प्रणामं श्रीरामं तैः सहैव शनैः शनैः । वाजिशालां ययौ रामो दृष्ट्वा तत्र स वाजिनः ॥८८॥
 गजशालामुष्टशालां दृष्ट्वा रामः शनैः शनैः । ददर्श सस्रशालां च व्याघ्रशालां प्रसुर्ययौ ॥८९॥
 दृष्ट्वाऽथ शिविकाशालां माहिषेयीं विलोक्य च । महिषाशृपशालां च रथशालां ददर्श सः ॥९०॥
 आरुह्य स्यन्दने रामः शनैः सर्वैर्बहिर्ययौ । समकक्षाः समुल्लङ्घ्य तत्रस्थः पूर्ववज्जनैः ॥९१॥
 सर्वैर्युक्तवाष्टमां तां श्रेष्ठां कक्षां ददर्श सः । तत्र यन्त्राणि श्रेष्ठानि शतघ्नीः शकटस्थिताः ॥९२॥
 तृणकाष्ठादिमयानि दूतस्थानान्यपश्यत् । ततो नवमकक्षायां ददर्श रघुनन्दनः ॥९३॥
 शस्त्रपाणीन्वारणस्थानं तुग्गस्थाननेकशः । रक्षयन्ति हि ये सर्वे स्वीयं गेहं त्वहर्निशम् ॥९४॥
 एवं स नवकक्षां समुल्लङ्घ्य रघूत्तमः । बहिः स मघनो दृष्ट्वा परिखाः सज्जता नव ॥९५॥
 शनैः पश्यन्मयोध्यां तां राजमार्गे मृदान्वितः । शीघ्रं ययौ पुरन्दारं ददर्श द्वाररक्षकान् ॥९६॥
 नवकक्षास्त्वयोध्यायाः समुल्लङ्घ्य शनैः प्रभुः । परिखाश्च नवापश्यन्तोयवह्न्यादिपूरिताः ॥९७॥
 ततो नानावनारामकीटकानि रघूत्तमः । पश्यन्स बन्धुपुत्रैश्च सरय्यासीरमाययौ ॥९८॥
 तत्र स्थित्वा सुनीकापां कीटां कृत्वा कियत्क्षणम् । नद्यास्तटे मभायां स तस्थौ मेन्यपुनः प्रभुः ॥९९॥
 तत्रापि बारवश्यानां पश्यन्मयानि राघवः । कियत्कालमतिक्रम्य ययौ शीघ्रं ततः पुरीम् ॥१००॥
 ततः शनैः समां गत्वा पूर्वोक्तेशोपचारकैः । लक्ष्मणाद्यैः सेवितश्च तस्थौ सिंहासनोपरि ॥१०१॥
 ततः कृत्वा घनेकानि नानाकार्याणि राघवः । आज्ञाप्य बन्धुपुत्राश्च पूर्ववत्समं गृहं ययौ ॥१०२॥

कोदार जाई देखत ये ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ फिर पीछे रोम पाने हुए पक्षियोंका दलन थे । तत्पश्चात् सीताके मार्गसे सर्वोच्च प्रासादपर चढ़ जाते और वहाँसे बनी और बगीचोंसे अञ्जकृत, बाजारों तथा गलियोंसे अतिरजित अपनी अयाध्यापुरीका देखन थे । फिर धारे-धारे गोशालामें जाते और वहाँका गौओंको देखा करते थे ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ इसक अनन्तर दासियों समेत सीताको घर में देन और स्वयं कोहारेको और जाते थे । वहाँ लक्ष्मण आदि भ्राता रामका सविनय प्रणाम करते थे ॥ ९० ॥ फिर उनका साथ लेकर राम धारे-धारे अश्वशालाको जाते । वहाँ घोड़ोंका देखकर ॥ ९१ ॥ गजशाला और उष्ट्रशालाको देखत हुए अश्वशाला तथा व्याघ्रशालाका अलोकन करते थे ॥ ९२ ॥ फिर शिविकाशाला और महिषीशालामें जाकर शिविकाओं तथा भैंसाको देखतक बाद रथशाला देखत थे ॥ ९३ ॥ तत्पश्चात् एक रथपर सवार होकर शनैः शनैः बाहरकी तरफ जाया करते थे । बादमें महलके सातों ओरका लापत एवं पहलेका तरह उपस्थित सब लोगों देखत हुए बाठवें फाटकवाले बागनमें पहुँचते थे । वहाँपर सहाय्योम काम आनवाले कितने ही यन्त्र तथा बहुत-सी ताप रक्सी रहती थी ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ उन्हें देखकर दूनोंक निवाससंस्थान तथा तृण काष्ठ दिके संग्रहभवनका देखनेके अनन्तर नवें बागनमें पहुँचते थे ॥ ९६ ॥ वहाँ यह देखते थे कि हाथमें शस्त्र लिये घाड़ें और हाथीपर सवार होकर सिपाही रात-दिन अपने-अपने स्थानोंकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ९७ ॥ इस प्रकार नवों कक्षाओंका लापकर कोटके चारों ओर जलसे भरी बाहरकी नौ स्नायुको देखत थे ॥ ९८ ॥ इसके बाद राजमार्गसे चलकर अयोध्याको देखत हुए शीघ्र पुरन्दारपर पहुँचते और वहाँपर रहनेवाले द्वाररक्षकोंकी देख-रेख करते थे ॥ ९९ ॥ फिर अयोध्याकी नौ कक्षाओंको लापकर जल और अग्निसे परिपूर्ण नौ परिखाएँ और अनेक बाग-बगीचोंके कौतुक देखते हुए अपने घाड़ों और पुत्रोंके साथ सरयूके तीर पहुँचते थे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ वहाँ एक अच्छी नौकापर बैठ तथा कुछ देरतक सँवर करके सेनाके शिविरमें जाते और सैनिकोंके साथ समामें बैठते थे ॥ १०२ ॥ वहाँ कुछ समय तक बेरयाओंके नृत्य देखकर पुरीमें लौट आया करते थे ॥ १०३ ॥ तदनन्तर समामें जाते और पूर्वमें जो कह आये हैं, उन सबके साथ लक्ष्मणादि भ्राताओंसे सेवित होकर सिंहासनपर बैठते थे ॥ १०४ ॥ वहाँ अनेक कार्योंको करनेके पश्चात् भाइयों और पुत्रोंको अपने-अपने घर जाने-

सायकाले ततः संध्यां कृत्वा हुत्वा यथाविधि । गंधार्घ्यैरुपचारैश्च शिवं सम्पूज्य भक्तितः ॥१०३॥
 कृत्वोपहारं विप्रैश्च पुत्राभ्यां बन्धुभिः सह । शिरिकायां पुनः स्थित्वा देवभयनेषु च ॥१०४॥
 साकेतस्थेषु श्रीरामो गत्वा नत्वा शिवादिकान् । नानाविधान्देवसंघान् फलैः पृथ्वैरपूजयत् ॥१०५॥
 देवालयेषु सर्वेषु सुराणां तेषु राघवः । मृण्मनानाकीर्तनानि वाग्न्यनर्चनान्यपि ॥१०६॥
 पश्यन्ननानाकौतुकानि परां मुदमवाप सः । बाहनारूढदेवानामपश्यन्कौतुकानि च ॥१०७॥
 ततो ययौ बाह्यणेन इष्टमार्गेण राघवः । रत्नदीपप्रकाशैश्च विवेश निजमदिरम् ॥१०८॥
 ततो नानाकथाभिश्च वार्ताभिः पुत्रबन्धुभिः । सार्धयामां निशां नीत्वा रतिगृहे विवेश सः ॥१०९॥
 एतस्मिन्नंतरे तत्र सीताऽग्रे रतिमन्दिरे । पुष्पशय्यादि सम्पाद्य तन्प्रतीक्षां चकार सा ॥११०॥
 तावदायातमालोक्य सहस्रोत्थाय जानकी । धृत्वा हस्ते राघवेन्द्र रतिशालां निनाय सा ॥१११॥
 सर्वा विसर्ज्य दासीश्च मुक्ताजालान्यनेकशः । समंततो विमृच्यथ तस्थौ रामः स मंचके ॥११२॥
 ततस्तां मैथिलीं धृत्वा मंचके सन्पवेशयत् । नाना कान्ठा विधायाथ तस्थौ रामः स मंचके ॥११३॥
 ततस्तुष्टं रमानाथं जानकी लज्जिताऽब्रवीत् । राम राजावपत्राक्ष किञ्चिन्पृच्छामि मे वद ॥११४॥
 कुशजन्मानन्तरं हि कथं गर्भो मया न वै । धार्यते कारणं त्वस्य किमस्ति तद्वदस्व माम् ॥११५॥
 तत्सीतावचनं श्रुत्वा सस्मित प्राह राघवः । हे मीते कजनयने सम्यक् पृष्टं त्वया मम ॥११६॥
 तत्सर्वं ते वदाम्यद्य तच्छृणुष्व सुमध्वमे । किमर्थं न बहून् पुत्रांस्त्वत्र त्वं वाञ्छसि प्रिये ॥११७॥
 सदृशे बहवः पुत्रा न योग्यास्त्वत्र वै भुवि । कर्दकस्य दुराचाराङ्कुलस्य लाञ्छनं भवेत् ॥११८॥
 अतएव ममेच्छा न बहुपुत्रेषु मैथिलि । मदिच्छया त्वया गर्भो धार्यते न कदाचन ॥११९॥
 पुत्रस्त्वेकः प्रतीक्ष्यो हि यः कुल भूषयेद्गुणैः । किं जाता बहवः पुत्रा दृष्टास्ते कृमयो यथा ॥१२०॥
 को आशा देकर स्वयं भी अपने घर चले जाते थे ॥ १०२ ॥ सायंकाल के समय विधिपूर्वक सन्ध्या और हुक्म
 करके पुष्प-दीप-गन्धादि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक शिवजीको पूजा करत थे ॥ १०३ ॥ फिर भोजन करके पुत्रों तथा
 बांधवोंक साथ पालकाम बैठकर देवताओंक मन्दिरोंको जाते थे ॥ १०४ ॥ साकेतपुरी (अयोध्या) के सब
 मन्दिरोंमें जाकर शिवादिक देवताओंको नमस्कार करके फल-फूलसे पूजन करत थे ॥ १०५ ॥ उन्हीं
 देवालयांमें थोड़ी देर तक हरिकीर्तन सुनते तथा गणिकाओंका नृत्य देखते थे ॥ १०६ ॥ इस प्रकार विविध
 कौतुकाको देखकर राम बहुत प्रसन्न होते थे । तदनन्तर देवताओंका सवारीक कौतुक देखते थे ॥ १०७ ॥ इसके
 बाद सवारीपत्र पहनकर रत्नके बने दीपकोंके प्रकाशमें चलते हुए राजमार्गसे अपने घर जाते थे ॥ १०८ ॥
 फिर पुत्रों तथा भ्राताओंके साथ कुछ वरतक इधर उधरको बात करते और देह पहर रात बीतनेके बाद
 रतिशालामें प्रविष्ट होते थे ॥ १०९ ॥ उधर सीता अपनी रतिशालामें फूलोंकी शय्या बिछाकर रामके आनेकी
 प्रतीक्षा करती रहती थी ॥ ११० ॥ वे रामको आते देखतों तो तुरन्त आगे बढ़ती और उनका हाथ पकड़कर
 रतिशालाके भीतर ले जाती थी ॥ १११ ॥ वहाँ सीताका सेवाम उपास्यत दासियोंको विदा करके रामचन्द्र
 कमरेकी सारी खिड़कियां खोलकर शय्यापर बैठते थे ॥ ११२ ॥ इसके बाद सीताका हाथ पकड़कर उन्हें भी
 बैठाते और विविध क्रीडा करके सीताको प्रसन्न करने लग जाते थे ॥ ११३ ॥ इस प्रकार प्रसन्न रामको देख-
 कर एक दिन सीताने लज्जित भावसे कहा— हे राजीवपत्राक्ष राम ! मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि कुशके
 जन्म लेनेके बाद फिर मेरे गर्भ क्यों नहीं रहता ? इसका कारण बतलाइये ॥ ११४—११५ ॥ इस प्रकार सीता-
 का प्रश्न सुनकर मुस्कराते हुए राम कहने लगे—हे कमलनयनी सीते ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं
 सब कारण बतलाता हूँ ॥ ११६ ॥ हे सुमध्वमे ! तुम सावधान होकर सुनो । हे प्रिये ! पहले मुझे यह बतलाओ
 कि तुम अधिक पुत्र क्या चाहती हो ? ॥ ११७ ॥ इस संसारके अच्छे कुलमें अधिक पुत्र होना ठीक नहीं है ।
 बहुतेरे पुत्रोंमें यदि एक पुत्र भी दुराचारी निकल गया तो सारे कुलपर लाञ्छन लग जाता है ॥ ११८ ॥ इसलिये
 हे मैथिलि ! मुझे अधिक पुत्रोंकी इच्छा नहीं है । मेरी इच्छा न रहनेके कारण ही मुझे गर्भ नहीं रहता ॥ ११९ ॥

द्वावेवास्ता कदाचिन्न यथा नेत्रे भुजौ यथा यथा नौ शशिमुखौ च यथाऽहं लक्ष्मणस्यथा ॥१२१॥
 तवापि जानौ द्वौ पुत्रौ माऽप्रेऽनुमन्तिस्मृतयः । तनः प्राह पुनः सीतान् जलदुहिताम् ॥१२२॥
 एकाऽपि कारणं तत्र किमस्ति नट्टदम्भमात्रं । नन्वोपवृत्तश्च श्रुत्वा जानौ प्राह राक्षसः ॥१२३॥
 स्वत्कन्या च मया कर्म देयऽत्र जगतां ले । मन्मानो नृपः कऽन्तमनङ्गोऽप्यतिबहान् ॥१२४॥
 यस्य पत्न्यै र्वया कार्ये शिरसा नमनं नृप । को गोऽन्तजगतां हि नृपऽनयो ममान् ॥१२५॥
 प्रक्षालनीयां चरणां विवाहे यस्मै वै मया । अतएव ममेच्छऽत्कन्यायाम् । न प्रिये ॥१२६॥
 कुशादीनां तु याः कन्याभ्याम्ने किं नैव बलिकाः । किं यावन्मदान्मोने माह प्राप्ताऽभि भूले ॥१२७॥
 आत्मानं विस्मृताऽस्यैव ब्रूते च यजननीमिति । यदत्र विन्दे स्त्राम्य दृश्यते तनयशजम् ॥१२८॥
 धीरुपं दृश्यते यच्च सच्च मयं समाशजम् । अत्र स्त्रापृथ्या ये च ते पुत्रदुहिताम्नव ॥१२९॥
 एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां वजेन । इति यद्वचनं सीते मामन्यं विद्व नो वरम् ॥१३०॥
 एकः स तनयो धन्यः कुलं यस्मात्प्रेमिजम् । कुम्भितुल्याश्च ते पुत्राः शतशो दुष्टमार्गगाः ॥१३१॥
 इति यद्वचनं सीते वरिष्ठं तन्मृतं वृधैः । अन्त्ये कारणं वन्नि यस्मात्त बहवः सुताः ॥१३२॥
 मया नैवापिनाम्नवत्र तच्छृणुष्व शुचिस्मिने । विनोदाने वदाम्यस्य माऽन्यथा कुरु मद्वचः ॥१३३॥
 बहुपुत्रैश्च नागीणां नारुण्यं स्थाप्यते न हि । मन्वति नरं नारुण्यच्छेदिनी बहुमन्नातिः ॥१३४॥
 न मयाऽत्रापिन्ता सीते गुणं विद्वोति मे प्रिये । यदाच्छाऽस्ति बहूनां ते तनयानां विद्वजे ॥१३५॥
 तर्हि ते द्वापरे कृष्णरूपेण द्वारकापुरि । दशपुत्रान् प्रदास्यामि नदा तेषां सुखं भव ॥१३६॥

केवल एक ऐसे पुत्रकी इच्छा करना चाहिए कि जो अपने अग्रे एक गुणस कुलका विभूषित कर सक। कोहों-
 की तरह व्यर्थ जन्म लेनवाले बहुतरे दुष्ट पुत्राम क्या लाभ ॥ १२० ॥ मस, य दोनो चिरञ्जीवो रहें। ये मेरे
 दो मेत्र, दो भ्राता, चन्द्र मूर्ति और हमारे तथा लक्ष्मणके सदृश है। तुम्हारे दो बेटे तो ही हो गये हैं, अब और
 सन्तति न हो यहाँ ठाक है। फिर सात न कहा—जिन हमारा कोई कन्या क्या नहीं हुई ॥ १२१ ॥ १२२ ॥
 इसका क्या कारण है ? सा हमसे कहिये। सायाका यह प्रश्न सुनकर रामन कहा कि यदि तुम्हारे कन्या हाता
 तो मैं किसको देता ? संसारमें कौन ऐसा है, जो मरा जामाना बन सक ? हमारे बराबर कौन राजा है, जो
 सातों द्वारोंका अर्धाश्वर है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ जिसका राजा गुप्त भवक मुकाकर प्रणाम कर सक। संसारमें
 कौन ऐसा वर मिल सकता है कि विवाहमें जिसके पैर में अन्न हायासे घता। इस कारण मैंने पुत्रकी इच्छा
 नहीं की ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ फिर कुण आदिके जो कन्याएँ उत्पन्न हुई हैं, ये क्या तुम्हारी नहीं हैं ? हे साते ! जीवन-
 क मदसे तुम पागल नो नहीं हो गयी हो ? ॥ १२७ ॥ जाताना लाकोकी माता हाकर भी ऐसी ऊटपटांग
 बात कर रहा हो। इस संसारमें जितना स्वरूप दीवता है, वह सब तुम्हारे ही अंशमें आयमान हुआ है ॥ १२८ ॥
 संसारमें जितना भी पुरुषरूप है, वह मेरे अंशमें उत्पन्न हुआ है। यहाँ जितने पुरुष-स्त्रा हैं, ये सब तुम्हारे
 लड़के और लड़कियाँ हैं ॥ १२९ ॥ शास्त्रोमें जो यह बात कही गयी है कि “एक ही नहीं, मनुष्यको कई पुत्र
 उत्पन्न करनेकी इच्छा रखनी चाहिए। सम्भव है कि उनमेंसे कोई ऐसा सपूत निकल आवे, जो गयामें
 धाऊ करके कुलका उद्धार करे।” यह एक साधारण बात है। यह कोई श्रेष्ठ उक्ति नहीं कहा जा सकती
 ॥ १३० ॥ मेरा रायम तो अपने कुलका विस्तार करनेवाला केवल एक पुत्र हो। दूषित मागपर चलनवाले
 कंदेकी तरह उत्पन्न सैकड़ों बेटोंसे कोई लाभ नहीं ॥ १३१ ॥ मैं जिस बातका कह रहा हूँ, बहुतसे विद्वानों-
 ने उसे श्रेष्ठ माना है। दूसरा कारण भी बतलाता हूँ कि मैंने तुमसे कई पुत्र क्यों नहीं उत्पन्न किये।
 हे शुचिस्मिने ! मैं विनोदवत्त इस बातको कह रहा हूँ। इसे व्यर्थ मत जाने बना, ठाकसे समझना
 ॥ १३२ ॥ बहुत पुत्रोंके होनेसे स्त्रीका लक्षणाई नहीं रह जाती। बहुत सन्तान होनेसे तुम्हारे जीवनका
 नाश हो जाता ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ यहाँ सोचकर मैंने अविक सन्तति नहीं उत्पन्न का। यह गुप्त रहस्य
 जानना। हे विदेहज ! फिर भी बहुत सन्तान पानेकी ही तुम्हारी इच्छा हो तो द्वापरमें कृष्णरूपसे मैं तुम्हें

कन्यामपि तदैकां तेऽहं दास्यामि न मक्षयः । तदा ते बहुपूर्वश्च तारुण्यं स्थास्यते न हि ॥१३७॥
 अतः स्त्रीणां महत्तानि षोडशैकशतं पुनः । तथा मुख्यामन्वष्ट नार्यस्त्वया सह करोम्वहम् ॥१३८॥
 तदा बहूनां पुत्राणां स्तुपाणां त्वं सुखं भज । अहं चापि बहुस्रोगां तदा सौख्यं भजामि वै ॥१३९॥
 इति रामवचः श्रुत्वा तदा सीता स्मितानना । राघवं हर्षिता प्राह वाक्चातुर्यं कृतः प्रभो ॥१४०॥
 एतच्छब्दं त्वया राम येन रक्षयमीह माम् । एवं प्रोक्ता मया शिष्यं दिनचर्यां रमापतेः ॥१४१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितातर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

उत्तरार्धे रामदिनचर्यावर्णनं नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः

(भगवानके विविध अवतार)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा वसिष्ठं हि प्रभाते चात्रवील्लवः । किंचित्ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद मुनीश्वर ॥ १ ॥
 सर्वं यद्यपि जानामि वाल्मीकेश प्रसादतः । तथापि लोकान्सकलान् शतं पृच्छामि तेऽद्य हि ॥ २ ॥
 यदाऽस्माभिर्निशायां हि सर्वैर्निद्रा विधीयते । तदा सभूयते कर्णे भस्वत्कस्य वै ध्वनिः ॥ ३ ॥
 अमुं भस्मसंशयं छिधि परं कौतूहलं गुरो । लवस्येति वचः श्रुत्वा वसिष्ठस्तमथात्रवीत् ॥ ४ ॥
 बहुयश्च ब्रह्महत्याश्च रावणेन कृतः पुरा । येन देहेन सोऽद्यापि लकायां ज्वलते लव ॥ ५ ॥
 रावणो रामहस्तेन बथान्मुक्तिं गतः क्षणात् । रामचित्तनृपण्येन वैरबुद्ध्या कृतेन च ॥ ६ ॥
 आत्मनः सकलं पापं तेन दग्धं पूर्वं हि । देहेन न कृतं तस्य देवानां नमनं पुरा ॥ ७ ॥
 सम्मार्जनादिकं कर्म देवागारेऽपि नो कृतम् । न कृता तीर्थयात्रा हि तेन देहेन भक्तितः ॥ ८ ॥

दस बेटे दूँगा । उस समय तुम बहुत सन्तानका भी मुख भोग लेना ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ उस समय मैं तुम्हें एक कन्या भी दूँगा । इसमें कोई संशय नहीं है । किन्तु इतना अवश्य होगा कि अधिक सन्तान हानसे तुम्हें रा यौवन हल जायगा ॥ १३७ ॥ इसी कारण मुझे सोलह हजार एक सौ स्त्रियों के साथ विवाह करना पड़ेगा और तुम्हारे साथ आठ मेरी मुख्य स्त्रियाँ भी होंगी ॥ १३८ ॥ उस समय तुम बहुतसे पुत्रों और बहुओं का सुख भोगोगे और मैं भी बहुतसी स्त्रियों का सुख भोग दूँगा ॥ १३९ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर स ताने मुमकाकर कहा—हे प्रभा ! तुमने बातचेंत करनेका इतना चतुराई कहाँस सीखी ? जिससे इस तरह मेरा मनोरंजन कर रहे हो । इस तरह रामने बहुत देर तक आपसमें बातें की और दोनों एक दूसरेका आलिंगन करके आधी रातके समय सो गये । हे शिष्य ! मैं इस प्रकार तुम्हें रामचन्द्रकी दिनचर्या सुनायी ॥ १४० ॥ १४१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक दिन सबेरे लवने वसिष्ठसे कहा कि हे मुनीश्वर ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ उसे आप बताइए ॥ १ ॥ यद्यपि वाल्मीकिजीकी कृपासे मैं सब कुछ जानता हूँ । फिर भी संसारी लोगोंकी ज्ञान प्राप्त करानेके लिए आज आपसे पूछ रहा हूँ ॥ २ ॥ जब कि रात्रिमें हम लोग सोते हैं, तब कानमें घोंकनीकी तरह किसकी ध्वनि सुनायी देती है ॥ ३ ॥ मेरे इस संशयका निवारण करिए । इसका मुझे बड़ा कौतूहल है । लवकी बात सुनकर वसिष्ठने कहा—॥ ४ ॥ रावणने जिस देहसे बहुत-सी ब्रह्महत्याएँ की थीं हे लव ! वह देह आज भी लंकामें जल रही है ॥ ५ ॥ रामके हाथों वध होने, रामका स्मरण करने और उनके साथ वैरबुद्धि रखनेसे रावण क्षण भरमें मुक्त हो गया । आत्माके सारे पापोंकी वृद्ध पहले ही जला

न देहेन न निष्कामं तपश्चर्यात्रितं कृतम् । न देहः श्रमिन्नस्वरस्य शीतोष्णमहनादिभिः ॥ ९ ॥
 एतादृशस्तस्य देहो बहुभ्रातृणहिमकः । लङ्कायां ज्वलनेऽद्यापि निशायां श्रयनेऽत्र सः ॥ १० ॥
 ज्वालानां भस्मवच्छब्दो यः पृष्टो मां स्वयां लव । जनशब्दादिने नैव श्रयनेऽत्र जनैः सदा ॥ ११ ॥
 चितायां यस्य चाद्यापि वायुपुत्रेण ग्रन्थहृत् । काष्ठभारगतं नीत्वा लङ्कायां शिष्यते मृदुः ॥ १२ ॥
 यदा तत्पापशान्तिः स्यात्तदा मग्नीभविष्यति । अन्यत्वे कारणं ब्रह्मि तच्छृणुष्व शिष्यो लव ॥ १३ ॥
 देहान्ते रावणेनापि रामाय याचिनो वरः । वरेण येन लोकानां स्मरणं मे भविष्यति ॥ १४ ॥
 स त्वया मे वरो देयस्तच्छृत्वा राघवोऽब्रवीत् । त्वद्देहज्वलिनि ज्वालाशब्दः सर्वे अना भुवि ॥ १५ ॥
 भोष्यन्ति सप्तद्वीपेषु तेन ते स्मरणं मदा । भविष्यति हि सर्वेषां ब्रह्मांडांतनिवासिनाम् ॥ १६ ॥
 एवं भन्वा दशम्यः स वरं रामे लयं ययौ । एवं यच्च त्वया पृष्टं नन्मर्वं कथितं मया ॥ १७ ॥
 गुरोरिति वचः श्रुत्वा तं नन्वा म लवोऽपि च । स्वर्गेहं गतमदेहः प्रययौ शिविकास्थितः ॥ १८ ॥
 एकदा बन्धुभिर्गर्हे पुत्राभ्यां सीतया सह । भुनिर्मिर्गुरुणा रामः संस्थितः ग्राह हपितः ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

मृण्वंतु मुनयः सर्वे सर्वे मृण्वंतु बन्धवः । पुत्री सीता मन्त्रिणश्च सर्वाः मृण्वन्तु मातरः ॥ २० ॥
 यथा यथाऽवतारेऽस्मिन् सुखं भुक्तं हि मीतया । न तथाऽन्येषु सर्वेषु अवतारेषु वै कदा ॥ २१ ॥
 अवतारास्तु बहवः शतशोऽत्र मया धृताः । नानाकार्याणि वै कर्तुं तेषां संख्या न विद्यते ॥ २२ ॥
 सप्तावतारास्तेष्वेव श्रेष्ठान्वत्र मया धृताः । ईदृशं न सुखं तेषु कदा भुक्तं मया भुवि ॥ २३ ॥
 शस्त्रासुरो महार्हत्यः पूर्वं जातो महोदधौ । येन वेदा हनाः सर्वे सत्यलोकात् कृते युगे ॥ २४ ॥
 तदर्थं मत्स्वरूपेण, ह्यवतारो मया धृतः । तं हन्वा क्षणमात्रेण विष्णुरूपं मया धृतम् ॥ २५ ॥

धुका था, किन्तु शरीरसे उसने कभी दकताओकी नमस्कार भी नहीं किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ न कभी देवमन्दिरकी सफाई की, न उस शरीरसे तोययात्रा की, न अपने शरीरसे कोई निष्काम तपश्चर्या की और न शीत-उष्णकी हो सहन करके शरीरसे परिश्रम किया । ब्राह्मणोंका हत्या करनेवाली उसकी देह आज भी लङ्कामें जल रही है । उसका शब्द प्रत्येक मनुष्यको मुनाई देता है । ज्वालाकी घकघकाहुटका तिनार धौंकीकी तरह सुनाई पड़ता है ॥ ८-१० ॥ दिनके समय मनुष्योंके कोलाहलमें वह शब्द नहीं सुन पड़ता । आज भी हनुमान्‌जीको रोज सौ बार लकड़, उसकी चितामें डालनी पड़ती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ जब उसके पाप नष्ट होंगे, तब कहीं उसका शरीर जलेगा । हे बन्धु लव ! मैं एक दूसरा कारण भी बतलाता हूँ, सो सुनो ॥ १३ ॥ अपने देहान्तके समय रावणने रामसे यह वरदान माँगा था कि आप हमें कोई ऐसा वर दीजिए, जिससे संसारके लोग मेरा भी स्मरण किया करें ॥ १४ ॥ रामने कहा कि तुम्हारी देह जलानेवाली आगका धक्का धक्का शब्द सातों द्वीपोंके दूर एक व्यक्तिको मुनाई पड़ता रहेगा ॥ इसीसे सबको तुम्हारी याद आती रहेगी ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस प्रकारका वरदान पाकर वह रामके शरीरमें लीन हो गया । इस तरह तुमने हमसे जैसा प्रश्न किया, सो सब कह मुनाया ॥ १७ ॥ गुप्तकी बात मुनकर लवका सन्देश निवृत्त हो गया और वे पालकीमें बैठकर अपने घर चले गये ॥ १८ ॥ एक दिन सब भाइयों, पुत्रों, सीता तथा गुरुके साथ रामचन्द्रजी बैठे थे । प्रसङ्गवश हृषिक होकर राम कहने लगे— ॥ १९ ॥ समस्त ऋषि, मेरे सब भाई, दोनों बेटे सीता, समस्त मन्त्री और माताएँ सब लोग मेरी बात सुनें ॥ २० ॥ मैंने इस अवतारमें सीताके साथ जितना सुख भोगा है, उतना किसी भी अवतारमें नहीं भोगा ॥ २१ ॥ विविध प्रकारके कार्यसाधन करनेके लिए मैंने इतने अवतार लिये, जिनकी कोई संख्या नहीं है ॥ २२ ॥ फिर भी मेरे सात अवतार मूल्य हैं, लेकिन उन सातोंमें भी मैंने इतना आनन्द नहीं पाया ॥ २३ ॥ आजसे बहुत दिनों पहले महोदधिमें एक कङ्कासुर नामका दैत्य हुआ था, जो सत्यलोकसे चारों वेदोंको चुरा ले गया था । उसके लिये मैं मत्स्वरूप धारण किया और उसे मारकर फिर विष्णुरूपधारी बन गया ॥ २४ ॥ २५ ॥ उस मत्स्य तथा त्रिर्यक् (वराह) योनिमें कोई विशेष सुख नहीं था ।

किं मुखं हृष्यन्त्यां हि निर्व्योम्नोऽपि महिः ॥ । अन्तस्मिन्नावतारे न स्थितं हि चिरं मया ॥२६॥
 ततः समुद्रमधने मज्जनं मन्दराचलम् । दृष्ट्वा धृत्वा कर्मरूपं स्वपृष्ठे पर्वतो धृतः ॥२७॥
 तच्चापि महिर्न मे मया न चिरं धृतम् । किं नानिन्द्रजम्बां हि सुखं तत्र भवेज्जले ॥२८॥
 ततो दृष्ट्वा मागने हि मज्जन्तीं पृथिवीं मया । क्रोडरूपं महद्भृत्वा दृष्ट्वायामवनिर्धृता ॥२९॥
 मम पृथ्वीनि मत्पृथ्वीं हिरण्यक्षो गया ह्यः । किं सुखं पशुगेन्यां हि महितायां भवेज्जले ॥३०॥
 अन्तस्मिन्नावतारे न लब्धं ह सुखं मया । प्रह्लादवचनान्मन्मथानिदम्बररूपधृक् ॥३१॥
 अवतीर्णस्त्वं ह भूम्यां त्रिण्यक्षिणः क्षणात् । मया तदा हतः क्रोधात्तद्रूपमलिमास्वरम् ॥३२॥
 यद्भवान्निकटं कोऽपि प्रह्लादाच्च विनाऽपरः । न मानवः स्थितो भूम्यां तत्र वार्ता सुखस्य का ॥३३॥
 तदाऽतिक्रोधरूपेण सिंहयोन्यां तु किं मुखम् । मयाऽणुभूतं विपुलं सुखेच्छावृत्तिमाप न ॥३४॥
 ततो ब्रह्मेर्हिनार्थं ग्र्यरूपं तु वामनम् । धृत्वा कृत्वा त्रिपद्याञ्च भूमेः पतालमः कुतः ॥३५॥
 तत्र किं मुनिदेहेन वने मौल्य भवेन्मम । न यत्रास्ति यथायोग्य देहमप्यतिसुन्दरम् ॥३६॥
 तत्र का सुखवार्ताऽस्ति भूम्यां मे ब्रह्मचारिणः । अन्तर्देव महमा नाकलोकं गतं मया ॥३७॥
 पुनर्दिप्रोद्भवेनैव जामदग्न्यम्बरिणः । एवमितिचार हि निःश्वसा पृथिवीं कृता ॥३८॥
 महमार्जुननामा म महार्वांगो हतस्मदा । तच्चापि क्रोधमयुक्तं मुनिरूपं मया धृतम् ॥३९॥
 सुखवार्ता मुनीनां हि का तत्र वनचारिणाम् । ज्ञानेन्य जन्मना तेन तपश्चर्या मया कृता ॥४०॥
 किं मुखं तपस्तत्र वने मे जनमुत्तमम् । एवं पश्ये धृताः पूर्वमतारा मया भुवि ॥४१॥
 न जाता सुखवार्ताऽपि तत्र कापि मुनीश्वराः । द्वापरेऽग्रे कृष्णरूपं गोकुलेऽत्र कगेम्यहम् ॥४२॥

इसीनिये उस अवतारमें उस रूपमें मैं उगड़ा दिनोंतक नहीं रहा ॥ २६ ॥ इसके बाद समुद्रमन्थनके समय जब मैंने मन्दराचल पर्वतको डूबने देखा, तब कूर्म (वज्र) का रूप धारण करके उस पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया ॥ २७ ॥ उस स्वरूपको भी अच्छा न समझकर मैं अधिक दिनोंतक उस रूपमें नहीं रहा । भला जलधर आति तथा जलमें रहकर मैं मुन्ता कैसे हो सकता था ? ॥ २८ ॥ तदनन्तर पृथ्वीको समुद्रमें डूबनी देखकर मैंने क्रोड (गुस्सा) रूप धारण करके पृथ्वीको अपने दाँतीपर रखकर उठाया ॥ २९ ॥ इस पृथ्वीपर मेरा राज्य है । अतएव यह पृथ्वी मेरी है । इस प्रकार डींग मारनेवाले हिरण्यक्ष नामक असुरका मैंने संहार किया । पशुयोनिमें रहकर भी इस कोई विशेष सुख नहीं मिला । इसलिए उस रूपको भी ऊन्ही ही त्याग दिया । फिर प्रह्लादके वचनानुसार नासिरूप धारण करके खनसे निकलना पड़ा ॥ ३० ॥ ३१ उस समय अदतार लेकर मैंने क्षणमात्र ही हिरण्यक्षरूपको समझ कर दिया । मेरा वह रूप बड़ा तेजस्वी था ॥ ३२ ॥ उसके अरसे प्रह्लादके मित्राय मेरे पास जानेकी मामूर्य किसीम नहीं थी । बताओ, ऐसी योनिम मैं सुखी कैसे रह सकता था । उस समय मेरा वह क्रोधपूर्ण रूप था, दूसरे सिंहकी योनि थी । उस योनिकी मैंने अनुभव कर लिया । इच्छा थी कि इन रूपमें मैं कुछ आनन्द पाऊँ, लेकिन नहीं पा सका ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तपश्चान् बलिकी नीचा दिख नेके लिए मैंने बहुत ही छोटा वामनका रूप धारण किया और तान पैरोंमें सारी जिलोकी नापकर बालिकी पाताल लोकमें भेज दिया । ३५ ॥ उस समय भी एक तो मुनिका वेष, दूसरे वनोम रहना, तीसरे शरीर भी जितना चाहिए उतना सुन्दर नहीं था ॥ ३६ ॥ वनचरकी दशमं पृथ्वीपर रहकर सुख कहाँ था ? इसी लिए उस रूपको भी भीष्ट त्यागकर मैं स्वर्गलोकको लौट गया ॥ ३७ ॥ फिर मैंने ब्राह्मणरूपसे परशुरामका अवतार लेकर इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियभूत कर डाला । उसी समय महार्वांग सहमार्जुनका वध किया । उस समय भी एक काधी मुनिका रूप धारण करना पड़ा था ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तबसे रहनेवाले मुनीको भला कब सुख मिल सकता था । यह समझकर मैंने उस जन्मम भी तपस्या ही की ॥ ४० ॥ उस तपस्वी जीवनमें वनोंमें रहकर मुझे क्या सुख मिला होगा, इसका आप लोग भी अनुमान कर सकते हैं । इस तरह मैंने छः

नेदृष्टं तत्र मोक्षयामि सुखं मृणुत विस्तृतम् । कागद्विधितिः पित्रोर्जन्मादावेव मे भवेत् ॥४३॥
 मातृपितृविहीनश्च तदा स्यास्यामि शैशवे । पार्श्वे नन्दगेहे वृद्धिं गच्छामि गोकुले ॥४४॥
 गोपवेषस्य किं सौख्यं गोपृष्ठे भ्रमनो मम । स्त्रीगोनागाश्वपक्ष्यादि बह्वैस्तत्र निहन्म्यहम् ॥४५॥
 देवपत्नीवरान्कुर्यां पशून्वागमनादिकम् । नानार्चायादि दुष्कर्म कृत्वाऽहं गोकुले ततः ॥४६॥
 मधुरायां हनिष्यामि मगजं कममातुलम् । तत्र दास्या रतिं कुर्यां नैष्ठुर्यं गोपिकादिषु ॥४७॥
 यदुक्ता गोपिकाः सर्वा रामो बन्धुर्मजिष्यति । अन्यन्त्र काल्यवनमयान्मे हि परामवः ॥४८॥
 न परामवतो दुःखं किञ्चिदस्ति जगत्त्रये । ततोऽहं स्वस्थलं त्यक्त्वा तटाके सागरस्य च ॥४९॥
 स्यास्यामि स्वल्पकालं हि चिन्कालं न मे स्थितिः । न स्थलं मध्यदेशे हि न राज्यं मे भविष्यति ॥५०॥
 विना राज्येन किं सौख्यं पगन्नावश्ववर्तिनः । छत्रादिराज्यभोगाश्च तस्मिन् जन्मनि मे न हि ॥५१॥
 बहुस्त्रीणामेकदेहस्नदाऽहं मे भविष्यति । तदा कामां सुखं देयं दुःखं कामां तदा मया ॥५२॥
 एवं मदा व्यग्रचित्तस्नामां रजनकमणि । तत्र का सुखवार्ताऽस्ति निशयां भ्रमनो मम ॥५३॥
 घटिकायां च षट्त्रिंशन्पञ्चशतगृहाणि हि । पर्यटन्नप्यष्टत्रिंशन्स्त्रीगेहानि तदा मम ॥५४॥
 शेषाणि गंतुं नैवास्ति कालो भानुकदेष्यति । त्रिंशद्वटीमयी रात्रिस्त्वेवं मे मा भविष्यति ॥५५॥
 तदा मे भ्रमनो रात्रौ कुनो निद्रा कुनः सुखम् । यदा भवेन्निशःशुद्धिः किञ्चिन्निद्रां तदाऽऽनुयाय ॥५६॥
 यस्येच्छाऽस्यत्र दुःखं हि भोक्तुं तेन नरेण हि । कर्तव्या बह्वयः पन्नयो द्रष्टव्यं तत्फलं ततः ॥५७॥
 एवं भवेन्न मे सौख्यं द्वापरे कृष्णजन्मनि । भविष्यन्त्यवतारस्य ममाभिर्विप्रज्ञापतः ॥५८॥

अवतार लिये ॥ ४१ ॥ लेकिन उन छहोंमें मुझे सुखका नाम भी नहीं मिला । आगे द्वापर युगमें इस पृथ्वीपर
 गोकुलमें कृष्णरूपसे मैं अवतार लूँगा ॥ ४२ ॥ लेकिन ऐसा सुख उस अवतारमें भी नहीं पा सकूँगा । मुनिए,
 उस अवतारका विवरण विस्तारपूर्वक आप लोगोंको बतलाता है । जन्मके पहले ही मेरे माता पिता कारागारमें
 रहेंगे ॥ ४३ ॥ जंगल जालमें हो माता-पितासे वियुक्त होकर एक अन्य व्यक्ति (नन्द) के घर गोकुलमें रहकर
 पालूँगा । उस गोपवेषमें गोओंके पीछे-पीछे घूमनेमें मुझे क्या सुख मिलेगा ? फिर गो (वासासुद), हनो (पूतना),
 नाग (कालिया), अश्व (केशी) तथा पत्नी (वक्रामर) को मारूँगा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ देवस्त्रियोंके बरदानस परस्त्रीगमन
 आदि (पाप) करूँगा । फिर गोकुलमें चोरी आदि दुष्कर्म कर लेनेके बाद मथुरा जाकर हाथी कुबलयापीडके
 साथ मामा कसको मारूँगा । वहाँ मुझे गोपियोंके साथ निद्राई करके दासी (कुबड़ी) के साथ विलास भी
 करना पड़ेगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ जिन गोपियोंको मैंने भोगा होगा, भविष्यमें बलरामजी उन्हें भोगेंगे । फिर
 काल्यवनके मयसे मुझे परामत भी होना पड़ेगा । ४८ ॥ पराजयसे बड़कर संसारमें और कोई दुःख नहीं हो
 सकता । फिर समुद्रके किनारे अपना निवासस्थान बनाकर कुछ दिनों तक वहाँ ही रहूँगा । यह निश्चित है
 कि उस अवतारमें भी मैं अधिक दिनतक संसारमें न रहूँगा । मध्य देशमें निवासस्थान न रहनेके कारण
 मेरे पास कोई राज्य भी नहीं रहेगा ॥ ४९ ॥ ५० ॥ राज्यरहित होकर दूसरेकी आज्ञामें रहनेसे क्या क्या
 सुख मिल सकता है ? उस जन्ममें राजाओंकी उपभोग्य वस्तुएँ छत्र चमर आदि भी मेरे पास नहीं रहेंगे
 ॥ ५१ ॥ बहुत-सी स्त्रियोंके बीच मेरा अकला शरीर रहेगा । उस समय रात-दिन यही चिन्ता रहा करेगी कि
 इनमेंसे किसे सुख दे और बिसे दुःख । तदा मुझे उनका अनुहार करना पड़ेगा । भला रातभर एक घरसे
 दूसरे घरकी दौड़ मारनेमें मुझे क्या सुख मिल सकता है ? ॥ ५२, ५३ ॥ उस समय एक घड़ीमें पाँच सौ छत्तीस
 धरोका चक्कर लगानेपर भी अठ्ठाईस घर छूट जायेंगे और यही सोचना पड़ेगा कि मूर्खोंदयका समय हो रहा
 है, जब किसीके यहाँ आनेका समय नहीं है । इस तरह तोस घड़ीकी रातें बीतेगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उस समय
 रातभर घूमनेमें निद्रा तथा सुख व्योकर मिल सकेगा ? हाँ, जब रात कुछ बड़ी होगी तो बाढ़े बड़ी
 आधी घड़ी सोनेके लिये समय मिल जाय ॥ ५६ ॥ जिस मनुष्यको संसारमें दुःख भोगनेकी इच्छा हो,
 वह कई स्त्रियोंको रस ले और फिर देखे उसका फल ॥ ५७ ॥ भाव यह है कि मुझे उस अवतारमें भी कुछ सुख

ततो दैत्यान्यश्चकर्मसक्तान्दृष्ट्वा पुनस्त्वहम् । कलात्रये बुद्धरूपं धरिष्याम्यतिमोहनम् ॥५९॥
 निजवाक्यैर्मतिमत्तेषां दैत्यानां यश्चकर्मतः । परिवर्त्य कियत्कालं स्थास्यामि जगतीतले ॥६०॥
 तदाऽहं मौनमाश्रिन्य मलिनः केशलुञ्चकः । युगादिजीवधारी च सर्वेषामुपदेशकृत् ॥६१॥
 अहिमनघनं सर्वान् दर्शयिष्याम्यहं जनान् । तज्जन्मन्यतिदुःखं मे केशयुक्तामलादिना ॥६२॥
 ततोऽग्रेऽहं धरिष्यामि कालिकरूपं महत्कलेः । अन्ते दृष्ट्वा जनानां च सर्वत्र वर्णसंकरम् ॥६३॥
 भून्वाऽथ विप्रदेहेन खड्गधारी हयस्थितः । सहारं क्षणमात्रेण दुष्टानां हि करोम्यहम् ॥६४॥
 सोऽवतारो नातिचिरं मम स्थास्यति भूतले । न तत्र सुखलेशोऽपि मे भविष्यति भूसुराः ॥६५॥
 प्रवर्तयिष्यति पुनस्ततोऽग्रं तन् कृतं युगम् । पूर्वञ्च पुनस्तत्र क्षयतारान्करोम्यहम् ॥६६॥
 एवं नरावतारेषु न भुक्तं हि सुखं मया । अतस्त्वस्मिन्प्रवतारे सुखं भुक्तं यथेच्छया ॥६७॥
 नानेन सदृशः कश्चिदवतारोऽवनीतले । पूर्वं भूतो ममाग्रेऽपि न भविष्यति वै कदा ॥६८॥
 सप्तलोकाधिपत्यं च नारी सीता च वर्तते । यत्रेमौ बालकी पुत्री महाभीती धनुर्धरी ॥६९॥
 यत्र त्वेते बंधवश्च त्रैलोक्यजयिनः शुभाः । कामधेन्वादिरत्नानि सप्त यत्र समान्तिके ॥७०॥
 साक्षादथ वेदरूपो वसिष्ठस्त्वस्ति मे गुरुः । आर्वाचर्ते पुण्यदेशेऽयोध्यायां वसतिर्मम ॥७१॥
 राज्यभोगादिभोगानां मोक्ताऽहं न्वत्र नोऽपरः । यत्र सत्यव्रतं मेऽस्ति यत्रैकदपितावतम् ॥७२॥
 यत्रैकैव वाणेन मया बाल्यादिका हताः । यत्रैकैव हि सीताया मम शरपा न चापरा ॥७३॥
 यत्राप्रतिहताज्ञा मे त्रैलोक्ये हि मुनीश्वराः । यत्र यानं पुष्पकं तु यत्र दूतोऽञ्जनीसुतः ॥७४॥
 सुग्रीवराक्षसेन्द्रौ च यत्र मित्रे ममान्तिके । कोदण्डमदृशं चापं यत्र मेऽरिनिपूदनम् ॥७५॥
 सूर्यवंशे यत्र जन्म ततो दशरथो वरः । कौसल्या यत्र जननी यत्राहं स्ववशः सदा ॥७६॥

नहीं मिलेगा । अन्तमें ब्राह्मणके शापसे मेरे उस अवतारकी समाप्ति होगी ॥ ५८ ॥ इसके अनन्तर कलिमें दैत्यों को यज्ञकर्म करते देखकर मैं अतिशय मनामोहक बौद्ध अवतार लूंगा ॥ ५९ ॥ अपनी बातोंसे उन दुष्टोंकी मति यज्ञकी ओरसे फेरकर कुछ दिनों तक मैं संसारमें रहूंगा ॥ ६० ॥ उस समय मैं मौनग्रस्त धारण करने में लगे-कुर्चेले कपड़े पहने और फितले हो जूँ आदि जीवोंको शरीरमें पाले हुए सारे संसारके लोगोंको उपदेश दूँगा । सबको अहिंसाव्रतका अभिनय दिखाऊँगा । उस जन्ममें बाल्यमें पड़े हुए जूएँ, कपड़ोंके धूलर तथा खटमल आदिसे महान् दुःख उठाना पड़ेगा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ फिर कलिपुणके अन्तमें सब लोगोंको वर्णसंकर होत देखकर मैं कालिक अवतार लूँगा । ६३ ॥ उस जन्ममें एक विप्रक यहाँ उत्पन्न हो और घोड़ेपर सवार होकर क्षणमात्रमें दुष्टोंका सहार कर दानूँगा ॥ ६४ ॥ हे ब्राह्मणों ! वह अवतार भी चिरस्थायी नहीं होगा । अतएव उसमें मैं कुछ सुख नहीं भोग सकूँगा ॥ ६५ ॥ उसके बाद फिर सत्ययुग आ जायगा और मैं पहलेकी तरह फिर अवतार लेता रहूँगा ॥ ६६ ॥ इस तरह नौ अवतारोंमें कुछ सुख नहीं मिलेगा । किन्तु इस अवतारमें मैंने अपने इच्छानुसार सुख भोग लिया है ॥ ६७ ॥ इस अवतारके समान कोई अवतार जगतीतलमें न हुआ है, न होगा ॥ ६८ ॥ जिसमें सातों द्वीपोंका प्रभुत्व, सीता जैसी स्त्री, कुशलव जैसे महावीर और वनुर्धारी पुत्र, तीनों लोकोंको जीतनेवाले भ्राता और कामधेनु आदि सात रत्न विद्यमान हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥ जहाँ वेदके साक्षान् स्वरूप वसिष्ठ जैसे गुरु हैं, आर्वाचित जैसे पवित्र देशमें निवासस्थान है, राज्यभोगक प्रतिद्विष्टा करनेवाला और कोई नहीं है, जहाँ सत्यका व्रत है, जहाँ अटल एकप नीव्रत है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जहाँ केवल एक वाणसे शत्रुको मारनेकी सामर्थ्य है, जहाँ सीताकी और हमारो एक शय्या है । ७३ ॥ जहाँ मुनिगण चारोंदिक जहाँ चाहें तहाँ आ जा सकते हैं । जहाँ कि पुष्पकविमान जैसी सवारी है ॥ ७४ ॥ सुग्रीव और विभीषण जैसे मित्र हैं, शत्रुओंका नाश करनेवाला कोदण्ड जैसा धनुष है ॥ ७५ ॥ सूर्यवंशमें जन्म हुआ है, दशरथ जैसे पिता और कौसल्या जैसी

सुमेधासदृशो यत्र मे शत्रूः स्नेहवर्धिता । विदेहः शत्रुगो यत्र विद्यादो यत्र गाधिजः ॥७७॥
 लक्ष्मणो यत्र मे मन्त्री सरयूर्यत्र मे नदी । पार्श्वगा शत्रुदाद्याश्च चतुर्दन्तो गजो महान् ॥७८॥
 द्विजेच्छापूर्णं यत्र व्रतं मेऽकुण्ठितं सदा । इदं वैकुण्ठसदृशं गृहं यत्रानिभामुग्मम् ॥७९॥
 चिन्तामणिरलंकारो हृदये यत्र वर्तते । एकादश महस्याणि वर्षण्यापुश्चिरं मम ॥८०॥
 अनघं मे शिरश्चेद् केषामप्यवनीभूताम् । एष सदा मुखं भुक्तमिह जन्मनि भूमुराः ॥८१॥
 नाल्पा वाप्युर्वरिताऽस्ति सुखेच्छा मम भूतले । अनन्वाचनारोऽयं पूर्णरूपान्मया धृतः ॥८२॥
 भूतमाव्याचनारा ये तेषां देव मया धृताः । यद्वनं तु यने पूर्वं सीतया बन्धुना मया ॥८३॥
 तच्च लोकोपदेशार्थं भूभारहृणाय च । जनोपदेशः कीदृक् स कुनम्नं प्रवदाम्यहम् ॥८४॥
 पितुर्वचो माननीयं यद्यप्यतिशमप्रदम् । पुत्रैर्गिन्युपदेशार्थं मया वाक्यं पितुः कृतम् ॥८५॥
 न तदा किं भृषा कर्तुं पितुर्वाक्यं बलं मयि । तथापि लोकशिक्षार्थं तद्वाक्यं पालितं मया ॥८६॥
 न हतव्या मया कोधाद्दृष्टा किं कैकेयी तदा । तथा मा नथरा चापि मे राज्ये विघ्नकारिणी ॥८७॥
 किं तदा कुठिता शक्तिः कैकेयीमथरावधे । स्त्रीहत्या नैव कर्तव्या चेति सर्वान्मुशिक्षितम् ॥८८॥
 सापत्नमावृताक्यं तु पालनीयं स्वमानवन् । स्वमुखायं चधोऽन्यस्य न कर्तव्यो जनैरिति ॥८९॥
 उपदेष्टुं मया नैव कैकेयीमथरे हते । न वृद्धिमा कर्तव्या परमाज्यं न कांक्षयेन् ॥९०॥
 अहमुपदिशस्वित्यं जनान्बभूव्हतो न म । मृते पितर्यपि हन न तद्राज्यं बलान्मया ॥९१॥
 राज्यामक्ता नरा भूम्यां भोगामक्ता भवन्तु न । उपदेष्टुं जनान्निघ्ननहं पूर्वं वनं गतः ॥९२॥
 मातृपितृसुहृन्पुत्रस्नेहामक्तिं न कारयेत् । इत्थं मयोपदिशता न्यक्तः स्नेहस्तदा द्विजाः ॥९३॥

माता है, जहाँ कि मैं सदा स्वाधान रहता हूँ ॥ ७६ ॥ स्नेहका बहानेवला मन्त्रा जनी मास है, विदेह जैसे शत्रु है, विश्वामित्र जैसे विद्यादाता गुरु है ॥ ७७ ॥ लक्ष्मण जैसा मन्त्री है, सरयू जैसी नदी है, अङ्गदादि वीर अङ्गरक्षक है, बड़ा भारी चतुर्दन्त हाथी है ॥ ७८ ॥ राजगोपी इच्छा पूर्ण करना जवा अकुण्ठित व्रत है, वैकुण्ठके समान सुन्दर भवन है ॥ ७९ ॥ चिन्तामणि जैसे, अन्तरा सरा हृदयपर रहता है, जहाँ बारह हजार वर्षोंकी लम्बा आयु है ॥ ८० ॥ किसी भी राजका सामने न झुकना यह मस्तक है। यहाँ जो मुख है, सा नया अन्वय मिल सकता है ? हे विभा ! इस समाश्रम में तिन गुणोंका भोग किया है, सो बतला दिया ॥ ८१ ॥ अब मेरे हृदयमें किसी प्रकारका भी सुखभाग स्वकी कामना शेष नहीं रह गयो है। इसीलिए मैंने पूर्णरूपसे इस अवतारका कारण किया था। भूतनरा भाँपने अन्ताराम जो अंश बाँकी रह गये थे, उनके समेत यह अवतार लिया है। जो वाग्जालम मया तथा भाटके साथ बनकी यात्रा की थी, वह दुःख भोगनके लिए नहीं। बल्कि दुनियाँके लोगोंको उपदेश देनेके लिए की थी। उसमें मैंने संभारी अनेकों कोन-सा उपदेश दिया है, सो भी बतला रहा है। ८२-८४। चहे आनजय परिधमसाधर हा, फिर भी पिताकी बात माननी चाहिये। यह उपदेश देनेके लिए मैंने उस समय पितृका आज्ञाका पालन किया था ॥ ८५ ॥ क्या पिताकी बात टाटनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं थी ? था, पर लोकशिक्षके लिये उनकी बात मान ली थी ॥ ८६ ॥ क्या उस समय दृष्टा कैकेयी तथा राजर्शनिलकमें विघ्न डालनेवाली शशिनी मन्थराके बध करनेका पराक्रम मुझमें नहीं था ? था, पर उनकी दण्ड न टकर मैंने संभारकी यह शिक्षा दी कि स्त्रीका बध कभी भी न करना चाहिए और अपनी सीतली माँको आज्ञाका भी उसी तरह पालन करना चाहिए, जैसे लोग अपनी सगी माताका करते हैं। दूसरे मुझे लोगोंको यह भी उपदेश देना था कि अपने मुखके लिए परायेका बध न करना चाहिए। इसीसे कैकेयी और मन्थराकी नहीं मारा ॥ ८७-८९ ॥ अपने भाईकी हिसा न करे और दूसरेका राज्य न हड़पना चाहे। यह उपदेश देनहूँ, क लिये मैंने सरनपर भाँव नहीं उठाया, उन्हें नहीं मारना चाहा। पिताके स्वर्गवासो हो जानेपर भी मैंने उस राज्यको नहीं स्वीकार किया। ९० ॥ ९१ ॥ राज्यमें आसक्त लोग सर्वथा बिलासी न हो जायें, यह उपदेश देनेके लिए हो मैं बनकी गया था ॥ ९२ ॥ माता, पिता, मित्र,

सुख दुःखं मम ज्ञेयं सुखं द्वयं न मानयेद् शोकः कार्यो विषयौ न चेति लोकान् प्रदर्शितम् ॥९४॥
 राज्यसौख्यं मया त्यक्त्वा भुक्ताः क्लेशास्तदा वने । कामादीनां रिपूणां च दृष्टानां हि वधी भुवि ॥९५॥
 जनेः कार्यं सदा चेति ह्यपदेष्टुं मया वने । बहवो निहतास्तत्र रक्षसा मुनिहिंसकाः ॥९६॥
 स्त्रीमगः सर्वदा त्याजस्त्वेकाकी च तदश्वरेन् । नायक्त निजचित्तं हि स्त्रीषु कार्यं नरैः कदा ॥९७॥
 इत्थं मयोपदिशता सीतायाश्च तदा वने । त्रियोगो दर्शितो लोकान् भक्तो भिक्षा न जानकी ॥९८॥
 कदापि जायते विप्राः सन्य चेदं त्रयीम्यहम् । आनस्य रक्षणं कार्यं कार्यो दुष्टस्य निग्रहः ॥९९॥
 मयोपदिशता चैत्थं जनान्मुग्धीमाक्षनी । तद्विनी निहतौ बालिरावणवितरे हताः ॥१००॥
 कीर्तिः कार्या जनेष्वत्र मयोपदिशता त्विति । पाशपातनाग्निना नीरे किमाकाशगतिर्न मे । १०१॥
 यद्यपि शृङ्गे स्वे चित्ते विरुद्धं च जनेषु यत् । त्यक्तव्यं तन्प्रियं चापि मयोपदिशता त्विति । १०२॥
 जनानपापान् शान्त्वाऽपि लङ्कायां दिव्यदानतः । लोकापवादमन्या मा पुन न्यक्ताऽत्र जानकी ॥१०३॥
 स्वयमेवात्र यत्त्यक्तं शृङ्गं ज्ञान्वा हि तन्पुनः । अगोकार्यं जनैर्बुद्ध्या मयोपदिशता त्विति ॥१०४॥
 जनानर्गीकृता सीता पुन न्यक्ता मया शुभा । एकपत्नीव्रतादानि राजकर्माण्यनेकशः ॥१०५॥
 अश्वमेधादियज्ञश्च सदाचारो जपस्ततः । स्नानमध्याधिक यथन्मया त्रि क्रियते सदा ॥१०६॥
 तन्मयं जनशिक्षार्थं मुक्तसगस्य किं मम । कर्मनीतम्य भो विप्राः सदानन्दस्वरूपिणः ॥१०७॥
 अहं सदाऽऽनन्दमयः सुखान्मा सुखदो नृणाम् । अवतारपद्मेन सुखं दुःखं मयाऽकथि ॥१०८॥
 यदत्र भवतामग्रे कीर्तुकार्यं न मशयः । उग्रामकानां तपोधर्मवतारः स्वयं मया ॥१०९॥

पुत्र आदिके स्नेहमे अधिक आगन् न हो जाना चाहिए । यह उपदेश देता हूँ मैंने स्नेहका परि त्याग कर दिया था ॥ ९४ ॥ सुख दुःख दोनोंका समान समझना चाहिए । सुखम न विनाश होपित हो, न दुःखमे घबड़ाये । यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने राज्यसुखको छोड़कर वनमें वनेशोंको अपनाया था । काम-काब आदि दुष्ट शत्रुओंको मारना चाहिए । ९४ ॥ ९५ ॥ यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने वनमें रहकर बहुतसे मुनिहिंसक राक्षसोंको मारा था । ९६ ॥ त्विष्यं मे अधिक आसक्त होना ठीक नहीं, बल्कि उनका सङ्ग त्यागकर दूर रहता हुआ तपस्या करे । ९७ ॥ यह उपदेश देनेके लिए मैंने वनमें मनाका भोजनकर उनसे वियाग दर्शाया था । वास्तवमें सीता हमसे पृथक् कभी नहीं हो सकती ॥ ९८ ॥ हे ब्रह्मणो ! यह सब बातें मैंने सर्वथा सत्य कहा है । मनुष्यमात्रका चाहिए कि यह दुःख, जनका रक्षा कर और दुष्टोंको दण्ड दे ॥ ९९ ॥ सुग्रीव और विभीषणकी रक्षा धरकर दुष्ट बाण और रावणका मारकर ससारका मैंने यही उपदेश दिया है ॥ १०० ॥ इस समारम मनुष्यका चाहिए कि यह अपनी न. का विचार करे । इसलिये मैंने समुद्रके पानोम पत्थर तैराय थे । वैसे मैं चाहता था क्या आसक्तता से चलकर लड़ता नहीं पहुँच सकता था ? ॥ १०१ ॥ यदि कोई वस्तु अपनी प्रिय हो, किन्तु दुःस्वार्थसे विरुद्ध हो तो उस प्रिय वस्तुका भी परि त्याग कर देना चाहिए । यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने लङ्काम अग्निका साक्षात् तथा पवित्र जानकर भी लोकापवादके भयवश सीताका परि त्याग कर दिया था ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ भ्रमवश यदि किसी पवित्र वस्तुको त्याग दे और बादमें मा. हो रि वह शुद्ध है तो उसको फिरसे बर्झकार कर लेना चाहिये । यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने पहल त्याग लड़ा था सीताका फिर स्वीकार कर लिया । उसी प्रकार एकपत्नीव्रत, अनेक तरहके राज्यकार्य, अश्वमेधादि यज्ञ, सदाचार, जप, तप, स्नान, सध्या आदि जिज्जना भी काम हम करन हैं, सो सब लोगोंको उपदेश देनेके लिए ही कर रहे हैं ॥ १०४-१०६ ॥ वैसे तो ससारी मायाजालसे भ्रम, सदा आनन्दस्वरूप, कर्मसे पर, सदा आनन्दमय, सुखात्मा और समस्त मनुष्योंके सुखदाता मुझ रामके लिए इन सब बातोंसे क्या मतलब ? ये सुख दुःख जो बताये, वे अवतारके आधारपर आप लोगोंके कीर्तुके लिए कहे हैं, इसमें कोई संशय नहीं है । अपने भक्तोंके सन्तोषार्थ विशेष-गुणसम्पन्न ये अवतार गिनाये, वास्तवमें मेरे लिए सब अवतार बराबर हैं । किन्तु अपनी बुद्धिसे भली भाँति

विशेषगुणवानुक्तः सन्ति सर्वे समा मम । सम्यग्बुद्ध्या विचारञ्च वरिष्ठः मकलेश्वरम् ॥११॥
 द्वावतारौ जलचरौ तथा वनचरौ च द्वौ । द्वौ तौ च वल्कलधरौ एको वैश्यश्च गोपकः ॥१११॥
 एकस्तु मलिनश्चापि परश्च क्षणिकमनया । एवं भूना भविष्याश्चवतारास्तोषदा न मे ॥११२॥
 अयं सर्वविशिष्टोऽत्र ह्युपासकजनप्रियः अवतारस्त्यहं देहि सेवनान्मगलप्रदः ॥११३॥
 चरित्राण्यतिरम्याणि पानकधनानि वै मया । कुपान्यस्मिन्नवतारे श्रवणान्मुक्तिदानि हि ॥११४॥
 सदा जना भजन्त्यत्र ह्यवतारममु मम । भक्ता येऽस्यावतारस्य ते मेऽर्तो व प्रियाः सदा ॥११५॥
 एवं सर्वमिदं विद्या आनन्देन मयोदितम् । दोषमारोपयन्त्यस्मिन्नवतारेऽप ये जनाः ॥११६॥
 ते मद्द्वेष्या नरकेषु पतन्ति सह पूर्वजैः ।

श्रीरामदास उवाच

एवमुक्त्वा रामचन्द्रः सम्पूज्य हि मुनीश्वरान् ॥११७॥

विसृज्य सकलान्सीतां रंजयामास रावतः । एव शिष्य मया प्रोक्तमवतारप्रवणनम् ॥११८॥

इति श्रीभक्तकोटिरामचरितावतंते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे

अवतारवर्णनं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः

(रामका अपने दासको वरदान देते हुए दो रूप धारण करना)

श्रीरामदास उवाच

एकदा जानकी इष्टुं सप्तद्वीपांतरस्त्रियः । मुनीनां पार्थिवानां च तुहदा व्यवसायिनाम् ॥ १ ॥

सामान्यक्षत्रियाणां च वैश्यानां च सहस्रशः । चैत्रस्तानमिषेणैव यधुबोहनमस्थिताः ॥ २ ॥

दृष्ट्वा समागतास्तथा जानकी गजगामिना । प्रपुद्गम्यानयामास स्वाशालामनिसाद्रात् ॥ ३ ॥

विचार करके मैं इस निम्नोपर पहुँचा हूँ कि समस्त अवतारों में वह रामवतार सर्वश्रेष्ठ है ॥ १०७-११० ॥

दो अवतार जलचर रूपके, दो वनचर, दो वल्कलधारी, एक वैश्यवर्णका गायरूप, एक मलिनवश-
 वाला और एक क्षणिक ये भूत तथा भावधरक सारे अवतार मर मनक नहीं है—इनमें मैं प्रसन्न नहीं हूँ ॥१११॥

॥ ११२ ॥ मैं जहाँतक जानता हूँ, समस्त अवतारों में उपासक जनका प्रिय तथा सेवनस मङ्गलप्रद यह
 रामावतार है ॥ ११३ ॥ इस अवतार में मैं जितने काम किये हूँ वे सब अतिशय रम्य, पातकोंको नष्ट करनेवाले

तथा सुगन्धसे मुक्ति देनेवाले हैं ॥ ११४ ॥ भक्तोंका चाहिये कि मरे इस अवतारका भजन कर । जो लोग इसका
 उपासना करते हैं, वे मुझे सदासे अत्यन्त प्रिय हैं ॥ ११५ ॥ हे विद्या ! यह सब गहन्य मैं आनन्दक साथ आप

लोगोंको सुनाया । जो लोग मेरे इस अवतार में भी दापाराप करते हैं, वे मर जाय हूँकर अपन पूर्वजोंके साथ
 नरकमें गिरते हैं ॥ ११६ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—इस प्रकारका वान करके रामन उन मुनियोंका पूजन किया

और सबको विदाई दी ॥ ११७ ॥ तत्पश्चात् साताका प्रसन्न करनेवाला बात करन लग्य । हे शिष्य ! मैंने इस
 तरह तुम्हारे समक्ष सभी अवतारोंका वर्णन किया ॥ ११८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये प० रामतज्ज-

काण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे अवतारवर्णनं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक बार सीताको देखनेके लिये साता द्वीपोंका स्थिती जिनमें मुनियोंको, राजाओं-
 की, मित्रोंकी, व्यवसायियोंकी ॥ १ ॥ साधारण श्रेणोंके क्षत्रियोंकी तथा वैश्योंका हजाराका संख्यामें तारिखों
 चैत्रस्तानके व्याजसे अनेक प्रकारके वाहनोपर सवार हाँ-हाँकर अयाध्या आयी ॥ २ ॥ उन्हें आता देखकर गजके
 प्रमान मन्दगतिसे चलनेवाली सीता शीघ्र उनके आगे पहुँची और आदरके साथ अपनी स्त्रीशालामें ले गयी ॥३॥

पूजयामास ताः सर्वा नानालंकारभूषणैः । ताः सर्वाः पूजयामासुः सीतां सिंहासनस्थिताम् ४ ॥
 दिव्यालंकारवस्त्राद्यैर्नानादेशोद्भवैर्वरैः । परिवार्य ततः सीतां तस्थुः सर्वाः स्त्रियश्च ताः ॥ ५ ॥
 श्रुत्वा सीतामुन्वाहामचरित्राणि महन्नशः । तास्तुष्टाः श्रोतुमुद्युक्तास्तत्पाणिग्रहणं शुभम् ॥ ६ ॥
 स्मितस्यास्ताः स्त्रियः सर्वास्तदा प्रोचुर्भिदेहजाम् । स्वत्पाणिग्रहणात्साहं श्रातुं वाञ्छामहे वयम् ॥ ७ ॥
 तत्सर्वं विस्तरेणाद्य वक्तुमर्हसि जानकि । इति तासां वचः श्रुत्वा लज्जया जानकी तदा ॥ ८ ॥
 स्या सखी नोदयामास तुलसीं रुक्मभूषिताम् ।

तुलस्युवाच

शृणुन्वं सकला नार्यः पाणिग्रहणमुत्तमम् ॥ ९ ॥

जानक्याः कथयाम्यद्य महामगलदायकम् । वस्त्रोषार्थं हि मक्षेपाच्छ्रवणान्पुण्यवर्द्धनम् ॥ १० ॥
 साकेतद्रष्टुर्नन्दनेन स मुनिर्भ्रात्रा युतेनाश्रमं स्व गत्वा विनिहत्य राक्षमचलं तेनेव यज्ञं निजम् ।
 संपाद्याशु रथस्थितश्च मिथिलामार्गं हरेरग्निः संप्रशस्त्रितकल्मषां समकरोद्भार्या मुनेर्माधिजः ॥ ११ ॥
 गत्वा गाधिजमयुतश्च मिथिलां भ्रात्रा सभामस्थितश्चापाधः पतितं निरीक्ष्य च रिपुं स्वोयं मुनेराज्ञया ।
 तं नत्वा गिरिजेश्वरस्य च धनुः कृत्वा त्रिस्रङ्गं क्षणान्मीताहस्तविसर्जितां निजगले मालां दर्शयामास ॥ १२ ॥
 वभूतां च निजं विधाय मिथिलापुर्यां विवाहान् शुभान् पितृभ्यां सह भार्यया रघुपती राज्ञाऽतिसंपूजितः
 त्यक्त्वा नां मिथिलां ययौ निजपुरीं मार्गं क्रुधा निष्ठतो दुर्दर्पं जमदग्निं तस्य धनुषा मोषाहरच्छीलया ॥ १३ ॥
 एवं नार्यश्च सीताया विवाहः कथितो मया । पुष्पाभिः कौस्तुभात्पृष्टो यः सर्वमंगलप्रदः ॥ १४ ॥

श्रीरामदास उवाच

एष स्त्रियश्च ताः श्रुत्वा परमां मुदमाप्नुयुः । ततस्ताः पूजयामासुः पुनः सीतां मुदान्विताः ॥ १५ ॥

सीताने अनेक तरहके भूषणोंसे उनकी पूजा की और उन १५ नयनों भी सिंहासनपर बिठनाकर दिव्य अलङ्कारोंसे सीताका पूजन किया । इसके अनन्तर वे सब सीताकी चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ सीताके मुखसे रामके सहस्रों चरित्र सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुई और उन्होंने सीताके मुखसे ही सीताका विवाहसम्बन्धी वृत्तान्त सुननेकी इच्छा प्रकट की ॥ ६ ॥ वे मुस्कुराती हुई सीतासे कहने लगीं कि हम आपको विवाह-समारोहका वृत्तान्त सुनना चाहते हैं । ७ ॥ हे सखी ! वह सारा हाल विस्तारपूर्वक हमका सुनाइए । इस प्रकार उनका प्रश्न सुनकर सीता लज्जावश कुछ नहीं बोली और अपना सहेली तुलसीको, जो कि सुवर्णमय आभूषण पहने बैठी थी, संकेत किया और तुलसी कहने लगा—आज लोग सीताके महलमय विवाहका वृत्तान्त सुनें ॥ ८ ॥ ९ ॥ आप लोगोका प्रसन्न करनेके लिए उस महामहलदायी और सुननेसे पुण्य बढ़ाने-वाले विवाहका मैं संक्षेपमें वर्णन करता हूँ ॥ १० ॥ अयोध्यापुरीसे विश्वामित्र राम और लक्ष्मणको साथ लिये हुए अपने आश्रम पहुँचे । वहाँ राम-लक्ष्मणनं राक्षसोंको प्रबल सेनाका सहार किया और मुनि विश्वामित्रके यज्ञ कर लेनेके बाद रथपर बैठकर मुनिके साथ दोनों भाई मिथिलाकी ओर चले । रास्तेमें विश्वामित्रने रामके चरणोंका स्पर्श कराकर गीतम ऋषिको पत्नी अहङ्गाको शापसे मुक्त कराया ॥ ११ ॥ फिर मुनिके साथ जनकपुर पहुँचे । स्वयंस्वरके समय रामने सभाम मुनि विश्वामित्रका आज्ञासे शिवके घनुषको प्रणाम किया और क्षण भरमें उसे तोड़कर तीन टुकड़े कर डाले । फिर सीताके हाथोंको बरमालाको रामने अपने गलेमें धारण किया ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर रामने मिथिलापुरीमें ही अपना और अपने सब भाइयोंका विवाह किया । फिर पत्नी, पिता, माता आदिके साथ जनकसे पूजित होकर राम मिथिलासे अयोध्याकी चले । रास्तेमें श्रीधर परशुराम मिले और उनके संभाषण घनुषकी चढ़ाकर रामने उनके दुर्गको दूर कर दिया ॥ १३ ॥ हे नारियों ! तुमने कौतुक वश सीताके जिस सर्वमङ्गलप्रद विवाह-वृत्तान्तको पूछा था, सो देने कह सुनाया ॥ १४ ॥ श्रीरामदास कहते हैं कि इस प्रकार सीताके विवाहका वर्णन सुनकर वे स्त्रियाँ बहुत

सीतया पूजिताः सर्वास्तां नन्वामन्य जानकीम् । चैत्रस्नानं समाप्याथ जग्मुः स्व स्व स्थलं प्रति ॥१६॥
अथैकदा गुगेरास्याद्रामाग्रे संस्थितो लवः । मृण्मण्डपं पप्रच्छ श्रोतुं सर्वान् जनान्गुरुम् ॥१७॥
गुगे ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद मुनीश्वर । पुष्पकेषु च सर्वत्र पत्रे पत्रे पृथक् पृथक् ॥१८॥
एकत्र लिख्यते श्रीति रामेत्येकत्र लिख्यते । किमर्थं मानवैस्तत्र तन्मयं कथयस्व माम् ॥१९॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा गुरुर्नमः शक्यमब्रवीत् ।

वसिष्ठ उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया बन्धु लोकमदेहहृन्परम् ॥ २० ॥

श्रीरामचरितं पूर्वं व्यासेन मुनिना पृथक् । अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ॥२१॥
कृतान्यन्यैश्च मुनिभिः षट्शस्त्रादीन्यनेकशः । श्रीरामचरितादेव श्लोकमात्रमपीह यत् ॥२२॥
सर्वमस्तीति तदोद्भूमादावेकत्र श्रीति च । विलिख्यैकत्र रामेति तन्मध्ये परिलिख्यते ॥२३॥
अनया सप्तया सर्वे शास्त्रं त्वग्रे अना मुनि । श्रीराम मध्ये लिखितं श्रीरामचरितादिदम् ॥२४॥
कृतमस्ति पृथक् भिन्नं पुरा व्यासादिभिस्त्रिविधं । एतस्मान्कारणाद्व्यास सूचनार्थं विलिख्यते ॥२५॥
श्रीरामेति पृथक् पत्रे सर्वत्र जगतीतले । अन्यत्र कारणं वक्ष्ये तच्छृणुष्व शिशो लव ॥२६॥
अष्टुदं लिखितं पञ्चाङ्गान्तो भ्रातृवोऽपि हि । पत्रं तच्चातिशुद्धं हि भवन्विति मनीषया ॥२७॥
श्रीरामेति च सर्वत्र पत्रे पत्रे विलिख्यते । यदकितं श्रीरामेति नाम्ना पत्रं तु लेखकैः ॥२८॥
ज्ञेयं तच्चातिशुद्धं हि गतदोषस्तु लेखकः । भवत्यत्र जगत्यां हि सत्यं लव वदाम्यहम् ॥२९॥
इति श्रुत्वा गुरोर्वक्षिं वसिष्ठं प्रणिपत्य च । लवः स गतमन्देहस्तूष्णीमामीन्मुदाम्बितः ॥३०॥
एकदा रघुनाथस्तु मन्त्रकोपरि संस्थितः । मुखात्ताञ्जुलस्य रसं प्रथमं दोषकारकम् ॥३१॥
त्यक्तुकामो न ददर्श पात्रं निष्ठीवनस्य सः । तस्यातिके स्थिता दामी नाम्ना वै सुगुणेति च ॥३२॥

प्रसन्न हुई और उन्होंने फिरसे सीताका पूजन किया ॥ १६ ॥ साताने श्री फिर उनका पूजन किया और वे सीताको प्रणाम करके और उनसे आज्ञा लेकर चैत्रस्नान समाप्त हो जानेपर अपने अपने घर चली गयीं ॥ १६ ॥ इसके बाद एक दिन गुरु वसिष्ठ बैठे पुराणोंकी कथा सुना रहे थे । रामचन्द्रजी और लव भी बैठे हुए थे । कथा सुनते-सुनते लवने सब लोगोंको ज्ञान प्राप्त करानेके लिए वसिष्ठसे कहा—॥१७॥ हे गुरु ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, सो बताइए । प्रायः ऐसा कहा जाता है कि सब पुस्तकोंके पन्ने-पन्नेमें एक ओर 'श्री' और दूसरी ओर 'राम' ऐसा लिखा जाता है । लोग ऐसा क्यों करते हैं ? यह कृपया हमें बता दीजिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस प्रकार लवका प्रश्न सुनकर वसिष्ठने कहा—हे लव ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । इससे बड़ोंका सन्देह दूर हो जायगा ॥ २० ॥ पहले व्यास मुनिने श्रीरामचन्द्रके चरित्रात्मक अष्टादश पुराण और अष्टादश ही उपपुराण बनाये ॥ २१ ॥ उसी तरह और-और ऋषियोंने षट्शस्त्र आदि बनाकर तैयार किये । सब ग्रंथोंके सभी श्लोक श्रीरामचरितसे बने हैं । इसी बातको बनानेके लिए प्रत्येक पन्नेमें 'श्री' लिखकर 'राम' लिखा जाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस सकलसे सतारके मनुष्य पुस्तक देखकर यह समझेंगे कि ये सब ग्रंथ श्रीरामचरितके अन्तर्गत हैं । हे लव ! श्रीराम लिखनका एक कारण यह है, जो बता चुका । दूसरा भी बतलाते हैं—हे लव ! सो भी सुन सो ॥ २४-२६ ॥ अज्ञानतासे या भ्रमवश पन्नेमें जो कोई शब्द अशुद्ध लिख गया हो, वह पन्ना अत्यन्त शुद्ध हो जाय । इस विचारसे भी पन्नेमें लेखकगण श्रीराम लिखते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ ऐसा करनेसे अशुद्ध भा शुद्ध हो जाता है और लेखकको कोई दोष नहीं लगता । हे लव ! मैं तुमको यह सब सच्ची बातें बतला रहा हूँ ॥ २९ ॥ इस प्रकार समाधान सुनकर लवका सन्देह मिटित हो गया और वे चुपचाप बैठ गये ॥ ३० ॥ एक बार राम मन्त्रपर बैठे थे । मुखमें ताम्बूल था । ताम्बूलका प्रथम रस दोषकारक होता है, इस व्याससे उन्होंने पूछना चाहा । किन्तु निष्ठाव्रतपात्र (योगालुदान) नहीं दिखायो पड़ा । रामके पास ही लड़ी सुगुणा नामकी दासी रामकी इच्छा

तादृशं राममालोक्य पात्रं दूरं विलोक्य च । कुन्वा पात्रं स्वहस्ताभ्यामंजलावेव तद्रसम् ॥३३॥
 रामेण मुक्तमास्याञ्च जग्राह वेगवसरा । ततः सा प्राशुन रामोच्छिष्ट दासी चकार तत् ॥३४॥
 महाप्रसादं तं भत्वा देवाल्लब्धं विचिन्त्य च । तदाऽतिनुष्टः श्रीरामस्त्वं तत्कर्मणाऽब्रवीत् ॥३५॥
 वरयस्व वरं दासि यत्ते मनसि वर्तते । तद्रामवचनं श्रुत्वा दासी प्राह रघूचमम् ॥३६॥
 एकपत्नीव्रतं तेऽस्ति सांप्रतं निवह जन्मनि । जमातिरे त्वया संगं वाञ्छामि रघुनायक ॥३७॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् । यदाऽग्रे कृष्णरूपेण गोकुलेऽवतरास्यदस् ॥३८॥
 तदा राधेति नाम्नी त्वं गोपिकासु भविष्यसि । तदा मया चिरं क्रीडां त्वं मोक्षयसि न मञ्जयः ॥३९॥
 तदा ममानिप्रीता त्वं गोपिकासु भविष्यसि । इति दासी रामचन्द्राद्वरं लब्ध्वा तुनोष सा ॥४०॥
 अन्यच्छृणु विष्णुदास रामचन्द्रकथानकम् । यन्प्रोच्यते मया तेऽग्रे महत्कौतुककारकम् ॥४१॥
 एकदा राघवः श्रीमान्ममायामामनोपरि । मस्तिनो वन्धुभिः पुरैमन्त्रिभिः पुत्रासिभिः ॥४२॥
 एतस्मिन्नतरे कश्चिद्वस्त्राचारी ममाययौ । युवा दण्डधरः श्रेष्ठः कमण्डलुकरः शुचिः ॥४३॥
 ऐणकृष्णाजिनधरः काषायवसनो व्रती । तं दृष्ट्वा राघवः श्रीमानवतीर्य वरामनात् ॥४४॥
 प्रत्युद्गम्याथ तं नत्वाऽऽमने समुपवेश्य च । पूजयामास विधिना घेनुमग्रे निवेश्य च ॥४५॥
 ततः सम्पूजितं त्रिषं राघवो वाक्यमब्रवीत् । अद्य धन्योऽस्म्यहं विप्र यतस्ते दर्शनं मम ॥४६॥
 कार्यमाज्ञाप्यतां किञ्चिद्यदर्थं भवताऽऽगतम् । तद्राघववचः श्रुत्वा वस्त्राचारी वचोऽब्रवीत् ॥४७॥
 बाल्मीकिना प्रेषितोऽहं यस्मात्तच्छृणु राघव । यष्टुर्नामो महायज्ञ म बाल्मीकिर्महामुनिः ॥४८॥
 स्वामाकारयितुं मां त्वज्जिकटं वगवत्तरम् । प्रेषितवाननम्वं हि सीतया वन्धुभिः सह ॥४९॥
 प्रस्थानं कुरु राजेन्द्र सुहृत्स्त्वद्य वर्तते । एवं वदति श्रीराम भूमुरे मदमि स्थिते ॥५०॥

समझ गयी, किन्तु पात्र दूर था । इसलिये राघवकी गृहकेके लिए उसने अपनी अञ्जली फेंका दी ॥ ३१—३३ ॥ रामने भी वह प्रथम रस उसको हाथमें धुके दिया । दासी उसको लेकर तुरन्त चाट गयी । उसने मनमें साक्षात् कि यह महाप्रसाद है और भगवत्प्राप्त आज मुझे मिल गया है । उसने इस व्यवहारसे राम बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा— ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अरा दाता मेरा जा इच्छा हो, वह वर माँग ले । रामकी बात सुनकर उसने कहा—इस जन्ममें आप एकपत्नीव्रती हैं । इसलिए हे रघुनायक ! मैं दूसरे जन्ममें आपको साथ एकान्त सहवास करना चाहती हूँ । ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उसकी यह बात सुनकर रामने कहा कि अगले जन्ममें मैं कृष्णरूपसे गोकुलमें अवतार लूँगा, तब तूमे राधा नामसे विरगात एक गोपपत्नी होओगी । उस समय बहुत दिनों तक तूमे मेरे साथ क्रीडाका साथ भोगी, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वृत्तक सारा गोपियोंमें तूमे मुझे भवने प्रिय होओगी । दासी इस तरह रामचन्द्रजीसे वरदान पाकर प्रसन्न हो गई ॥ ४० ॥ हे विष्णुदास ! रामचन्द्रजीकी एक दूसरी कथा भी मैं तुम्हारे आगे कह रहा हूँ । वह बड़ा कौतुकजनक है ॥ ४१ ॥ एक समय राम सभाम सिंहासनपर आहूय, पुरी तदा मंत्रियोंके साथ बैठ थे ॥ ४२ ॥ उसी समय एक युवा वस्त्राचारी दण्ड धारण किये और हाथमें कमण्डलु तथा पवित्र मृगचर्म लिये और काशाय वस्त्र धारण किये वहाँ आ पहुँचा । उसे देखते ही श्रीमान् रामचन्द्रजी आसनसे उठ खड़े हुए । थोड़ा आगे बढ़कर उसे प्रणाम किया और एक अच्छे आसनपर बिठलाया । फिर गोदान देकर उन्होंने उसकी पूजा की ॥ ४३—४५ ॥ पूजन कर लेनेके पश्चात् रामने कहा—हे विप्र ! आज आपके दर्शनसे मैं अपनेका वन्द्य समझता हूँ ॥ ४६ ॥ अच्छा, अब आप मुझे वह आज्ञा दीजिए कि जिसके लिए आप यहाँ आये हो । रामकी यह बात सुनकर वस्त्राचारी कहने लगा— ॥ ४७ ॥ श्री बाल्मीकिजीने मुझे आपके पास भेजा है । वे एक महायज्ञ करना चाहते हैं । इसीलिए आपको बुलानेके लिए हमें भेजा है । हे राजेन्द्र ! आज बड़ा अच्छा मुहूर्त है । अतएव सीता तथा अपने आताआके साथ आप शीघ्र प्रस्थान कर दीजिए । इस प्रकार वह

समाययौ ब्रह्मचारी द्वितीयो गाधिजाश्रमान् । तं दृष्ट्वा पूर्ववद्रामः प्रत्युद्रम्य द्विजोत्तमम् ॥५१॥
 आसनेऽन्ये चोपवेश्य पूजयामास मादगम् । ततस्तत्पुनः स्थित्वा तं प्रपच्छ रघूत्तमः ॥५२॥
 यदर्थं श्रामेतोऽसि न्य तन्नमाज्ञापयतां मृते । तद्रामवचनं श्रुत्वा ब्रह्मचारी बचोऽब्रवान् ॥५३॥
 राम त्वां गाधिजेनाह प्रेपताऽस्मि जज्ञेन हि । यत्पुत्राधो महायज्ञं विश्वामित्रोऽस्मि गयव ॥५४॥
 त्वं तेनाकास्मिन्नामि प्रस्थानं कुरु मन्वाग्म् । ब्रह्मचारिणोस्तद्वाक्यमुद्यमयोः स रघूत्तमः ॥५५॥
 श्रुत्वा विहस्य प्रोवाच द्विजार्थ्या वै तथेति च । तदाश्रयं जनाः प्रादुः प्रोचुस्ते तु परस्परम् ॥५६॥
 कथमद्योमयोः साकं रामो गच्छति तन्मयी । केचिद्वृत्तं गयवाय किमशक्यं तथाऽत्र हि ॥५७॥
 यथा स्त्रीणां वने पूर्वं यथाऽस्माकं हि दर्शनम् । यथा गतोऽस्मि लकायाः पुनः भरतदर्शने ॥५८॥
 भिक्षुरूपेण रामेण सर्वेषामपि पृथक् । तद्वदत्रापि द्विरिधा भूत्वा गन्वा च तन्मयी ॥५९॥
 किमाश्रयमिदं चाद्य किमशक्यं परात्मनि । एवं वदन्तु पौरुषेण लक्ष्मण प्राह राघवः ॥६०॥
 अद्यैवाहं गमिष्ये मि भोजनानन्तरं वहिः । वामोर्गेहानि नेयानि वहिः सेनां प्रचोदय ॥६१॥
 आज्ञापनीयं वाद्यानां ध्वनिं कर्तुं हि सेवकान् । तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेष्टृक्त्वा स लक्ष्मणः ॥६२॥
 कारयामास वाद्यानां ध्वनिं दूर्तश्च सभ्रमान् । सर्वं प्रचोदयामास वहिर्वामोर्गेहाण्यपि ॥६३॥
 नेतुमाज्ञापयामासुर्दूतास्ते निन्युरादगन् । ततो रामोऽपि विप्राभ्यां गृहं गन्वा विदेहजाम् ॥६४॥
 सर्वं वृत्तं निवेद्या च कृत्वा विप्रैरहिं भोजनम् । सार्तां च कर्णिणीपृष्ठे बन्धुनाऽऽरोहयन् प्रभुः ॥६५॥
 पुष्पके पौरनागश्च कर्णिणीमृमिलादिकाः । समारोहय-र्द्धागमः स्वयं तस्थौ गजोपरि ॥६६॥
 लक्ष्मणाद्या गजेष्वेव ते समारुहहस्तदा । निनेदुश्चाथ वाद्यानि ननृतुर्वाग्योपिताः ॥६७॥

ब्राह्मण कह ही रहा था कि इतनेमें एक दूसरा ब्रह्मचारी विश्वामित्रक आश्रमसे आ पहुँचा । पहलेकी तरह रामने उसका भी स्वागत किया । ४८-५१ ॥ उसे एक दूसरे आमनपर बिठाकर उन्होंने उसकी भी उसी तरह पूजा की । इसके अनन्तर उसके भा आगे बैठकर उन्होंने कहा कि जिस कार्यक लिए आपने कष्ट किया हो, मुझे आज्ञा दीजिए । रामकी बात सुनकर ब्रह्मचारीने कहा - ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे राम ! मुने विश्वामित्रजीने आपके पास भेजा है । वे एक भूयज्ञ करना चाहते हैं । उसमें उन्होंने आपका बुलाया है । इसलिए आप शीघ्र प्रस्थान कीजिए । रघूत्तम राम उन दोनों ब्रह्मचारियोंक संदेश सुनकर मुनकराए ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उन दोनोंसे कहा—“अच्छा चलेग ” । इस बातकी सुनकर सभाके दोनोंको बड़ा दिग्भ्रम हुआ । वे परस्पर कहने लगे— ॥ ५६ ॥ राम इन दोनोंके साथ जाकर कैसे उन दोनों यज्ञमें सम्मिलित हो सकेंगे । जिसने कहा कि रामके लिए अशक्य कौन-सा काम है, वे क्या नहीं कर सकें ? ॥ ५७ ॥ जैसे वनमें उन्होंने उन हजारों श्वियोंकी हजारों रूपोंसे दर्शन दिया था । जिस प्रकार लंकासे लौटकर आनेपर भरत-मल्लाहके समय प्रत्येक मनुष्यसे मिले थे ॥ ५८ ॥ उसी तरह इस समय भी राम अपना दो हर बनाकर दोनों जगह चले जावेंगे ॥ ५९ ॥ इसमें आश्रय करनेकी बात ही कौन-सी है । जिसकी आत्मा इनने ऊँच दर्जेपर पहुँच गयी है और जो साक्षात् परमात्मा है, उसके लिए अशक्य कोई काम नहीं है । इस तरह लोग आपसमें वचनही कर रहे थे, तभी रामने लक्ष्मणसे कहा— ॥ ६० ॥ लक्ष्मण ! आज ही भोजन करनेके पश्चात् हमलोग बाहर चलेंगे । तम्बू कनास आदि भेजवा दो और सेना भी तैयार करवाओ ॥ ६१ ॥ बाद्य बजानेके लिए सेवकोंकी आज्ञा दे दो । रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने “तथास्तु” कहा ॥ ६२ ॥ तत्काल उन्होंने दोनोंकी नुडही बजानेकी आज्ञा दी । लक्ष्मणके आज्ञानुसार सेवक सब सामान ठाँक करने लगे । इसके अनन्तर राम उन दोनों ब्रह्मचारियोंके साथ साँताके महलोंमें गये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ जानकीजी की भी निमन्त्रणका समाचार सुनाया और दोनों ब्रह्मणोंके साथ भोजन किया । फिर बन्धुओंके साथ सीताकी हाथीपर सवार कराया । बाकी पुरवासिनी नारियोंकी पुष्पक त्रिमानपर एवं उर्मिलादिकी हाथीपर बिठाया । उन सबकी सवारियोंपर बिठाकर स्वयं भी एक हाथीपर सवार हुए और लक्ष्मणादि भी हाथीपर बैठे । उस समय विविध प्रकारके बाजे बजने लगे और

तुष्टुमर्गिषाद्याश्च प्रजगुः सुम्भरं तटाः । एवं मयाययौ रामम्मादा वामोऽगृहाणि सः ॥६८॥
 तां रात्रिं समतिक्रम्य प्रभाने रघुनन्दनः । स्नानात् निम्नगिरिं कृत्वा गजऋतोऽभवन्पुनः ॥६९॥
 क्रौञ्चद्वयं ततो गन्वाऽग्रे द्वौ मार्गौ निर्गच्छ च । समन्तो द्वे निजे देहे चकार रघुनन्दनः ॥७०॥
 तदा द्वयोर्मर्गयोश्च समन्तौ मीतया ७१ । पुत्राणां वन्धुभिर्षक्तौ द्वौ रमौ सकला जनाः ॥७१॥
 ददृशुः पुष्पके द्वे च द्वौ जगौ वन्यवर्णिनः । वाल्मीकिं प्रज्ज्वरी श्वेकः स श्वं गुरुं ययौ ॥७२॥
 विश्वामित्राश्च चान्यः श्रीरामेण मुदा गतः । स पित्रे न प्रज्ज्वरी श्वेकः स श्वं गुरुं ययौ ॥७३॥
 वाल्मीकेरध्वर चान्यः श्रीरामेण यथा मुदा । एवं ते नाम्ने ततः सर्वदेहद्वयानि हि ॥७४॥
 निजानि ददृशुस्तत्र विन्यस्यतिष्ठमान्मातः । एवं ते रघुर्गौ हि तपोमृन्योस्तदाश्रमे ॥७५॥
 समन्तौ सीतया युक्तौ वन्धुपुत्रसमन्तौ । जन्मपुरे स नभ्यौ हि प्रत्युत्पत्त्यातिपूजितौ ॥७६॥
 तयोर्मर्गौ विधायाश्च परिपूर्णौ पुनः पूर्णः । समाजगमदुः श्रीरमौ समन्तौ पूर्ववन्मुदा ॥७७॥
 यत्र द्वे निजदेहे वै कृते तत्र रघुजनी । समागत्य पुनश्चक्रे निजदेहं चकार सः ॥७८॥
 वाल्मीकीयो ब्रह्मचारी विश्वागोत्रद्विजन्मया । भिन्नदेहे श्वेरुत्तमं भजतस्मां तदा द्विजौ ॥७९॥
 समन्तं पुष्पकं चापि श्वैर्वृकं तु पूर्वजन्तः । श्रीरामचन्द्रः स विंश नगरीं निजाम् ॥८०॥
 तदा निनेदुर्वाधानि ननुर्वाचयोपिनः । पौरुषार्थो विमानस्था धरपुः पुष्पवृष्टिभिः ॥८१॥
 तुष्टुमर्गिषाद्याश्च प्रजगन्ते भटादयः । एवं नानाकौतुकानि पश्यन्मार्गे शनैः शनैः ॥८२॥
 ययौ निजगृहं रामः सभायां संविवेक्ष ह । सीताऽपि निजगेहं सा संविवेशोमिलादिभिः ॥८३॥
 एवं भूसुर रामेण कौतुकानि महान्ति च । अमानुषाणि यान्यत्र कृतानि च सदृशशः ॥८४॥
 वाल्मीकिना विस्तरेण वर्णितानि हि कृत्स्नशः । सारं सारं मया तेभ्यः सगृह्याथ कथानकम् ॥८५॥

वेष्यायें नाचने लगीं ॥ ६४-६७ ॥ बन्दीजन रामको विकटावली सुनाने तथा नटगण मांढे मीठे स्वरोमें गाने लगे । इस प्रकार अपने राजमवनमें प्रस्थान करके राम रास्तेमें बने हुए डेरेपर पहुँच ॥ ६८ ॥ वह रात्रि रामने वहाँ बितायो । सुबह उठे तो स्नानादि निम्नगिर्या की ओर फिर हाथीपर बैठकर चल दिये ॥ ६९ ॥ दो कोस आगे जानेपर अहाँसे विश्वामित्र तथा वाल्मीकिके आश्रमोंके रास्ते अन्त होते थे, वहाँसे उन्होंने मेना समेत अपना दो स्तलव बना लिया ॥ ७० ॥ उस समय दोनों रास्तेमें राम सेना, सीता तथा पुत्रवधू आदिसे युक्त होकर चले । उम समय जितने भी मनुष्य साथ थे, वे सब एकके दो दिखायी दिये ॥ ७१ ॥ पुष्पक विमान भी दो हो गया और दोनों ब्रह्मचारिणोंमें एक रामको विश्वामित्रके आश्रमकी ओर ले चला, दूसरा वाल्मीकिके आश्रमको ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ उस समय मनुष्यसे लेकर सायके कुत्ते तक दो हो-होकर दिखायी दे रहे थे । वे लोग अपने दो शरीरोंको देख-देखकर बड़े विन्मित हुए ॥ ७४ ॥ इस प्रकार वे दोनों राम अपनी-अपनी सेना, सीता और वन्धुओंके साथ दोनों आश्रमोंको चले । जब कि आश्रमपर पहुँचे तो दोनों ऋषियोंने अग्यानी करके उनकी पूजा की ॥ ७५ ॥ इस प्रकार पहुँच-पहुँचकर उन दोनोंका यज्ञ समाप्त हो जाने-पर फिर वे दोनों राम पहलेकी तरह अग्राध्याको लीठे । ७६ ॥ ७७ ॥ जाने समय जिस स्थानपर रामने अपना दो रूप बनाया था, वहाँ पहुँचनेपर फिर एक हो गया । विश्वामित्रका ब्रह्मचारी तथा वाल्मीकिका ब्राह्मण ये दोनों भी एक ही एक हो गये ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ दोनों तरह पुष्पक विमान और सेना भी एक हो गयी । इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी आनन्दपूर्वक अपने अग्रोद्यान नगरीमें प्रविष्ट हुए ॥ ८० ॥ उस समय भी नाना प्रकारके बाजे बजे और वेष्यायें नाची । पुराणिकों नाटिकों पुष्पक विमानसे रामपर फूलोंकी वर्षा की, बन्दीजनेनि स्तुति की और गानेवालोंने अच्छ-अच्छ गाने गाये । इस प्रकार रास्तेमें तरह-तरहके कौतुक देखते हुए धीरे-धीरे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वे अपने भवजमे लगे और अन्तम पहुँचकर राजमिहामनपर बंटे । सीता उमिला आदिके साथ महलके भीतर गयी ॥ ८३ ॥ हे मित्र ! रामने बताया प्रचारके जिन महान् और अलौकिक कामों-को किया था, उनका वाल्मीकिने विस्तृत वर्णन किया है और मैंने उसे सार-सारमात्र लेकर सब कथा सुनायी

अग्रेऽप्येवं स्त्रियः सर्वाः करिष्यन्त्यत्र वै श्रुति । सीतादजितपाणिं तस्मान्निष्ठतां करोम्यहम् ॥११॥
 एव मनसि निश्चिन्त्य ततः य इष्टुर्नन्दनः । तुलसीमेष गृहं गन्वा पूर्ववज्जानकीं मुदा ॥१२॥
 राज्यामाम् विविधैर्नानाकाङ्क्षाभिर्होतुकैः । सीतापि पेटिकां सर्वां राघवाग्रे सहजशः ॥१३॥
 आर्माय दर्शयामास कल्पवृक्षादिदूर्गताः । समोऽपि दृष्ट्वा ताः सर्वाः समुद्यम्य पृथक् पृथक् ॥१४॥
 प्रेषयामास वधूनां गेहेषु दश यत्र च कल्यार्दानां पेटिकाश्च नानाचित्रविचित्रिताः ॥१५॥
 मानाणां मकलानां च गृहेश्वरिण्यपि तथा पुनः । पुत्रयोः सुहर्षा चापि मन्दिनां च गुरोस्तथा ॥१६॥
 पौर्णमासी चापि गेहेषु सेवकानां गृहेश्वरिण्यपि । दामीभ्यश्च शुभा दत्त्वा पेटिकाः सम पञ्च च ॥१७॥
 सीतार्यं शतशो दत्त्वा मुदा ताम्यो रधूतमः । कलानि दश पञ्चष्टम्य भुक्त्वा ततः परम् ॥१८॥
 एकादशानि सुपुष्पाणि विभज्य पृथक्पुनः । सीतार्यं शतशो दत्त्वा स्वयभर्मीचकार ततः ॥१९॥
 अज्ञात इव तद्गृहं गोपयामास चेवमि । अर्धकदा जनकजं हनिदिन्यामुपेक्षणम् ॥२०॥
 कृत्वाऽपरे दिने स्नान्वा गयो वृन्दावनान्तिकम् । तुलसीं पूजयित्वा तां सा चकार प्रदक्षिणाः ॥२१॥
 एतस्मिन्नन्तरे सीता निराहता श्रमान्विता । त्यक्त्वा प्रदक्षिणाधानं विचित्रदेव चचाल सा ॥२२॥
 चलिनायाश्च सीतायाः पल्लवेन हि धामयः । पत्रमेकं तुलस्याश्च पपात श्रुतिं वै तदा ॥२३॥
 अन्यत्र जानकीं दृष्ट्वा द्वादश्यां दृष्ट्वा शुभम् । हान्याऽधमैः कृतकैश्चि भयभासाऽमयनदा ॥२४॥
 ततः सा तन्करेणैव गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् । गन्वा वृन्दावनं सीता चित्रेण पद्मादरात् ॥२५॥
 ततः प्रदक्षिणाः कृत्वा भार्यविन्दां मुहुर्मुहुः । तुलसीं सा ययौ गेहं नञ्जयामास राघवम् ॥२६॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र नारदश्च समाययौ । वीणावाद्यस्वनेनैव कुर्यन्कीर्तनमुत्तमम् ॥२७॥
 पालय मां दीनमिति राघवेति पुनः पुनः । पालय मां दीनमिति मनु पञ्चदशाक्षरम् ॥२८॥

लिया ॥ १० ॥ यदि मैं इस समय चुप रह जाता हूँ तो सीता के दिव्य दे इस मार्गपर चलकर मध्य स्त्रियाँ ऐसा ही करने लगेंगी । इसलिए मैं ताकी इनका सहायता हूँ ॥ ११ ॥ ऐसा निश्चय करके राघव चुपचाप सीताके घर पहुँच ॥ १२ ॥ वहाँ गदाकी तरह विविध प्रकारके कला-कौतुक करने उन्हीन सीताकी प्रत्यक्ष किया । सीताने भी बहुत सब पिटारियाँ सौववाकर रामके जागे राव दी । वे सब नाना प्रकारके फलों फुलसे भरी थीं । रामने भी ऊँह अलग-अलग खोलकर देखा । १३ ॥ १४ ॥ उनमेंसे पन्द्रह पिटारियाँ भाइयोंके वहाँ भिजवा दीं । इसके बाद सब माताओंके पास भर्ता । उसी तरह दोनो पुत्रों सम्बन्धियों, मन्त्रियों, गुरुजनों, पुरवासियों, सेवकों तथा दासियोंके घर भी पाँच-पाँच सान मान पिटारियाँ भिजवायीं । इसके अनन्तर सौववाकी पिटारियाँ सीताका दी और उनमेंसे स्वयं भी दस पाँच फल निकालकर दाय ॥ १४-१८ ॥ इसके बाद कमल आदि अच्छे-अच्छे फूलोंको पूर्ववत् विभक्त करके सैकड़ों फल सोववाक दिये और स्वयं भी लिये ॥ १६ ॥ किन्तु सीताने रामकी अपेक्षा किम बिना ही जा कर मूँघ लिया था, उस बातको जानने हुए भी राघव अनजान जैसे बने रहे । इसके अनन्तर एक दिन मदन एकदशीका व्रत दिया ॥ २० ॥ दूसरे दिन वे वृन्दावन (तुलसीका बगीची) में गया । वहाँ तुलसीकी पूजा करके प्रदक्षिणा करने लगी ॥ २१ ॥ उस समय एकादशीका व्रत करनेसे उन्हें थकावट सी लगी थी । जिसने प्रदक्षिणाका मार्ग छोड़कर वे दूसरी ओर चलने लगीं ॥ २२ ॥ चलते-चलते सीताके कपड़ोंका पटला लगनेसे तुलसीका एक पत्र टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २३ ॥ द्वादशीके दिन इस गिरे पत्रको देखकर सीताने सोचा— 'ओह ! मैंने बड़ा भारी भयंकर कर डाला' यह सोचकर वे कुछ भयभीत-सी हो गयीं ॥ २४ ॥ इसके पश्चात् सीताने वह पत्र उठा लिया और उसे प्रणाम करके आदरसे उसी वृन्दावनमें फेंक दिया ॥ २५ ॥ ऐसा करनेके बाद प्रदक्षिणा करके बारम्बार प्रार्थना की, फिर मङ्गलमें आकर रामचन्द्रजीका मनोरञ्जन करने लगीं ॥ २६ ॥ इसी समय वीणा बजाते और हरिकीर्तन करते हुए नारदजी वहाँ आ पहुँचे ॥ २७ ॥ वे आते ही "मुक्त कीन-

कीर्तयामास स मुनिर्वारं वारं मुदान्वितः । कलकंठस्वरेणैव महापातकनाशनम् ॥२९॥

॥ पालय मां दानं राघव पालय मां दानम् ॥ इति मंत्रः

तं मुनिं राघवो दृष्ट्वा प्रमृष्टम्याथ भक्तिनः । नन्दोऽयमेव मानिनाः । न्याम म सादरम् ॥३०॥

ततः प्रक्षाल्य तन्पादौ सीतया श्रुतनन्दनः । धेतुं निवेद्य भयं देहं तं मुनिपुंगवम् ॥३१॥

हेमपात्रं भोजनार्थं हुनेरग्रे निवेद्य च । पश्चिदप्यार्थं श्रीरामस्तथा नाम जानकीम् ॥३२॥

सीताऽपि कामधेनुन्धराक्षानि विमृश्य मा । हेमपात्रे यथा वेगान्यातेषु परिषण्णम् ॥३३॥

कर्तुं कंकणमंजीरकिंकिणीन् पुष्पमाला । वा द्युः सादरः । तं पादौ श्रीराघव तदा ॥३४॥

राम राज्ञीवपत्राक्ष नाहं गीताममर्षितः । दिव्यकैः जनं च यः कर्षयामि शृत्तम ॥३५॥

तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा सीताऽऽसीच्चकिता तदा । अज्ञानं च रामोऽपि अभ्रमेण मुनिं तदा ॥३६॥

पप्रच्छ कारणं व्यग्रः सर्वकर्ता स्वयं प्रभुः । किं कारणं वद मुने विमर्षमनयाऽर्षितः ॥३७॥

अस्मैस्त्वं भोजनं नाथ करोषि मुनिपुङ्गव । इति रामवचः श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥३८॥

नारद उवाच

सीतयाऽद्य कृतं पापं किंत्वं वेत्सि न र्षे प्रभो । यदि न्य नैव जानामि तर्हि शृणु वदामि ते ॥३९॥

द्वादश्यां तुलसीपत्रमनयाऽद्य निकृतिवत् । यद्यस्य नहि पश्य गन्वा वृन्दावने प्रभो ॥४०॥

संक्रमेषु चतुर्दश्योद्वादश्योः पानपरम् । तुलसी न हरेन्मध्ये भृङ्गगारापगच्छके ॥४१॥

नष्टे सूर्येन्दुग्रहणे प्रसूतिमग्ने तथा । तुलसीं ये निकृतिं ते छिदति हरेः शिरः ॥४२॥

द्वादश्यां तुलसीपत्र धात्रीपत्रं तु कार्तिके । लुनाति यो नरो गच्छन्निरयानतिगर्हितान् ॥४३॥

अकाले तुलसीपत्रं छेदयत्यः स्त्रियः पुमान् । पत्रमेकं ब्रह्महत्यासममाहुर्मनीषिणः ॥४४॥

एवं तु वचनं सर्वैर्मुनिभिर्हि प्रकात्यते । पुरुषाणामयं दोषस्तत्र स्त्रीणां कथाऽत्र का ॥४५॥

की रक्षा करा । हे राघव । मेरा पालन कर ” इस मद्राण तक नाशक पञ्चदशाक्षर मन्त्रका सहर्ष उच्चारण करने लगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ 'पालय मां दानम्, राघव पालय मां दानम् ।' यह पञ्चदश अक्षर मन्त्रका स्वरूप है । राम नारदको देखते ही सड सडे हुए । उन्होंने आगे बढ़कर प्रणाम किया और आसनपर बिठाया । तब सादर पूजन किया ॥ ३० ॥ स ताक साथ रामने मुनिक पैर धावे और गोदान दिया । इसके पश्चात् उनके सामने मुखक पात्र रखस और शंभ परासनके लिये सात्तासे कहा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ सीता भा कामधनुसे उपत्र अच्छ अच्छ सामान परासनके लिये कल्लुण, मञ्जारी तथा द्युपदा धरनि करती हुई चली । सीताको चली देखकर नारदन रामसे कहा—हे राम । हे राजावपत्राक्ष ” मे आज संताक हाथो परास हुए दिव्यात्र नहीं खाऊँगा ॥ ३३-३४ ॥ मुनिकी बात सुनकर सीता चकरा गयी और सब कुछ करतवाले स्वयं प्रभु रामने भी अनजान बनकर विस्मित हो व्यग्रभावेसे पूछा—बो मुनिराज ! आज आप सीताक हाथका अन्न बो नहीं ग्रहण करमे ? इस प्रकार रामकी बात सुनकर नारदन कहा—॥ ३५-३६ ॥ आज इन्होंने एक बड़ा पाप किया है । सो क्या आपको नहीं मालूम है ? अच्छा मैं हा मुनाता हं ॥ ३७ ॥ आज द्वादश्याका इन्होंने तुलसीपत्र तोड़ डाला है । यदि आप मेरी वचन नच न मानते हो तो स्वयं चत्कर देख लीजिये ॥ ४० ॥ संक्रान्ति, चतुर्दशी, द्वादशी, प्रतिदिन सवेरे सांझके समय, शुक्ल और मङ्गलके दिन तथा दोपहरके बाद, सूर्य-चन्द्रग्रहणके समय, वरमे सन्तति होनेपर या किसोका देहान्त होनेपर जो लोग तुलसीका पत्र तोड़ते हैं, वे मानो तुलसीका पत्र न तोड़कर भगवान्का सिर काटते हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ जो द्वादशीको तुलसीपत्र तोड़ता है या कार्तिकमासमें आवलेकी पत्तियां तोचता है, वह अतिशय निन्दित नरकमे जाता है ॥ ४३ ॥ जो लोग अस्मयमे तुलसीका एक भी पत्र तोड़ते हैं । विद्वान् लोग ऐसोको ब्रह्महत्या कहते हैं ॥ ४४ ॥ इस प्रकारका वचन समस्त मुनियोने कहा है । फिर अब पुरुषोके लिये ऐसा नियम बना हुआ है तो स्त्रियोके लिये क्या

एनन्निमित्तं श्रीराम सीतया परिप्रेषितैः । वरान्नभोजनं नाद्यं कल्पयामि व्रतस्थितः ॥४६॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तं पुनः । मुने न्वमेव सीतां मे पूतां कर्तुमिदार्हमि ॥४७॥
 वरदानं व्रतं वाऽपि येन पूता भवेत्क्षणात् । त्वामहं प्रार्थयाम्यद्य स्त्रीयं पल्लवमुत्तमम् ॥४८॥
 प्रसूय शिरसा चापि नमस्कृत्य पुनः पुनः । तद्रामवचनं श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥४९॥
 ब्रह्महत्यादिपापानां निःकृत्यर्थं मुनीश्वरैः । प्रायश्चित्तानि चोक्तानि सति नानाविधानि च ॥५०॥
 द्वादश्यां तुलसीपत्रच्छेदनाद्यप्रशान्तये । प्रायश्चित्तं मया नैव दृष्टं राघवमत्तम ॥५१॥
 उपायस्त्वेक एवात्र वर्तते रघुनन्दन । पातिव्रतवलाग्भीता एव तत्तुलसी पुनः ॥५२॥
 योजयिष्यति मेऽजोऽद्य तदिह पूता भविष्यति । क्षणादेव न मन्देहः सत्यमेव वचो मम ॥५३॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा रामः सीतां व्यलोकयन् । तदा सीताऽब्रवीद्वाक्यं शृणु ब्रह्ममुनोत्तम ॥५४॥
 अग्राहं योजयिष्यामि पत्रं तत्तुलसी पुनः । पातिव्रत्यवलेनैव तवाग्रे पश्य कौतुकम् ॥५५॥
 इत्युक्त्वा जानकी देवाः तन्पात्रमन्नपूरितम् । पाकस्थाने पुनर्नीत्वा स्थापयामास वेगतः ॥५६॥
 ततो वृन्दावनं सीता ययौ नृपुत्रनिःस्वना । नारदो रामचन्द्राद्या ययुर्बृन्दावनं प्रति ॥५७॥
 तदा सा उर्मिलायाश्च चण्डिकायाः स्त्रियो ययुः । लक्ष्मणाद्या बभूवश्च कुशश्चाथ लवस्तथा ॥५८॥
 तेषां मध्यगता सीता तदा वृन्दावनस्थिता । नन्वातां तुलसी भक्त्या प्राह वाक्यं मल्लीयुता ॥५९॥
 भो भो तुलसि मद्राक्यं शृणुष्वद्य सुशोभने । पातिव्रतवले पूर्णं मयि यद्यस्ति पावनम् ॥६०॥
 सर्वस्य तव पत्रस्य त्वयि सन्धिर्भविष्यति । एवमुक्त्वा जानकी सा यावत्पश्यति वै पुरः ॥६१॥
 तावत्पत्रं तुलस्यां तन्मधि नैव गतं तदा । तदा विषण्णा सा सीता बभूव चकिताऽपि च ॥६२॥
 तदा देवाः सगंधर्वा यक्षा नागाः सकिन्नराः । गुह्यता श्रवणः सर्वे तद्द्रष्टुं कौतुकं ययुः ॥६३॥
 ततः सीतां विषण्णां तां दृष्ट्वा स नारदो मुनिः । एकांते जानकीं नीत्वा बोधयामास सादरम् ॥६४॥

कहना ॥ ४५ ॥ इसी कारण आज प्रसक्त पारण करनेक समय में सीताका परोसा अन्न नहीं खाऊँगा ॥ ४६ ॥
 इस प्रकार नारदकी बात सुनकर रामन कजा-ह मुने । तब मुनी गताका पवित्र कर दो ॥ ४७ ॥ यह वरदान
 तथा व्रत जिस उपायसे पवित्र हो सक, वैसा करो । एतदर्थ मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ और मस्तक
 झुकाकर पुन पुन नमस्कार करता हूँ । रामका विनय सुनकर नारदने कहा—॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ब्रह्महत्यादि
 पापसे छुटकारा पानेके लिये तो मुनीश्वराने अनेक प्रकारके प्रायश्चित्त बतलाये है ॥ ५० ॥ किन्तु द्वादशीको
 तुलसीपत्र तोड़नेसे जो पापक हाना है । उसका प्रायश्चित्त तो मैंने कहा देखा ही नहीं ॥ ५१ ॥ हे रघुनन्दन ।
 इस विषयमें केवल एक उपाय है । वह यह कि माना अन्न पातिव्रतके बलसे वह पत्र फिर वृक्षमें जोड़ दे तो
 य क्षणभात्रमें पवित्र हो सकती है । इसमें क ई म देह नहीं है । मैं जो कह रहा हूँ सो सत्य है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥
 नारदके ऐसा कहनेपर रामने सीताकी ओर देखा । सीताने कहा—हे ब्रह्म क पुत्रामें श्रेष्ठ पुत्र नारद । ॥ ५४ ॥
 अभी मैं आपके सामने ही अपने पातिव्रतके बलसे उस तुलसीपत्रका डालमें जोड़ दूँगी, आप यह कौतुक देखें
 ॥ ५५ ॥ ऐसा कहकर सीता वह अन्नपात्र वेगके साथ लौटा ले गयी और रख दिया ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर वे वृन्दा-
 वनमें गयीं । नारद और राम भी वहाँ पहुँचे ॥ ५७ ॥ उर्मिलादिक स्त्रियाँ तथा लक्ष्मणादि बन्धु एवं लव कुश
 आदि पुत्र भी वृन्दावनमें पहुँचे ॥ ५८ ॥ उन सबके बीचमें सीताने उस तुलसीके वृक्षको प्रणाम किया और
 भक्तिपूर्वक कहने लगी—॥ ५९ ॥ हे सुशोभने तुलसि । मेरी बात सुनो । यदि मुझमें पातिव्रतका बल हो तो
 यह टूटा हुआ पत्र फिर तुम्हारे अङ्गमें जुड़ जाय । ऐसा कहकर सीताने सामने पत्र देखा तो वह जुटा नहीं,
 पौं ही पड़ा था । उस समय आश्रयके साथ-साथ सीताको बड़ा विषाद भी हुआ ॥ ६०-६२ ॥ समस्त देवता,
 गन्धर्व, यक्ष, नाग, किन्नर, गुह्यक तथा ऋषिगण वह कौतुक देखनेकी एकजिह हो गये थे ॥ ६३ ॥ जब सीताको
 इस प्रकार दुःखित देखा तो नारद मुनि उन्हें एकान्तमें ले गये और आवरपूर्वक समझाया । नारदने

शृण्वत्र कारणं मीते सर्वं त्वां प्रवदाम्यहम् । पन्नित्रनाभिर्नारीभिर्विना स्वपतिना मुदा ॥६५॥
 पुष्पादीनां तुगन्धोऽपि नात्रग्राह्यः कदाचन । मेऽनग्रहिनः पूर्वं मुदा नामरमस्य च ॥६६॥
 तद्बुद्ध्वा रामचन्द्रेण मायेय रचिताऽद्य हि तदिच्छया तुलस्याश्च तन्त्रं पतितं भुवि ॥६७॥
 त्वद्वस्त्रपल्लवाग्रं शिक्षां कर्तुं तत्रात्र हि । रामस्यांतर्गतं ज्ञान्वा दोषारोपः कृतस्त्वयि ॥६८॥
 मया मीते क्षमस्वाद्य माक्रोधं भज मां प्रति । नारीणामुत्कारार्थं तेन त्वामग्रं शिक्षितम् ॥६९॥
 नोचेन्मद्विहितपथा म्रियः सर्वाः पतिं विना । एवमेतच्छिष्यस्ति नानामोघान्मुदान्विताः ॥७०॥
 इदानीं शृणु मद्राक्ष्यं येन श्रीगयराग्रतः । एतस्य च तुलस्याश्च दृढा मन्धिभेविष्यति ॥७१॥
 घृन्दावने पुनर्मया त्वं ब्रूहि यन्मयोक्त्यने । विना पद्मपुगन्धम्यारघ्राणाद्यदि राक्षसम् ॥७२॥
 पातिव्रत्यं मयास्म्यत्र तर्ह्यतत्तुलमादलम् । तुलस्यां सविमानोतु नोचेन्नाप्नोतु वै न्वियम् ॥७३॥
 अनेन वचनेनाद्य तन्पत्रं मन्धिभःप्लुयात् । तुलस्याः शृणमात्रेण पूर्ववच्च मविष्यति ॥७४॥
 अतस्त्वं यात्रि तुलसीं विषादं भज मां रमे । इत्युक्त्वा सीतया शीघ्रं तुलसीं नादो ययौ ॥७५॥
 सीताऽपि तुलसीं नत्वा शृण्वन्मु सकलेष्वपि । समहेतुं मुनीनां च देवादीनां वचोऽब्रवीत् ॥७६॥
 विना पद्मपुगन्धम्यारघ्राणाद्यदि राक्षसम् । पातिव्रत्यं मयाऽस्म्यत्र तर्ह्येतत्तुलमादलम् ॥७७॥
 तुलस्याः सविमानोतु नोचेन्नाप्नोतु वै न्विदम् । एव रदति जानकया वाक्ये पद्मक्षणेन तत् ॥७८॥
 प्राप्तं सन्धिं पूर्ववच्च पश्यन्मु सकलेष्वपि । तदा निनेर्ह्याद्यानि देवानां राघवस्य च ॥७९॥
 देवनायो विमानाग्रे मरियताः पुष्पवृष्टिभिः । वरपुर्जान्कतिं रामं विशा ऊचुर्जयस्वनान् ॥८०॥
 तदा सीतां समालिख्य राघवो मुदितावनान् । आह तुष्टमनाः श्रीमान् वयनाहारभूषिताः ॥८१॥
 हे सीते कञ्जनयने मुनीनामपि मोहिनि । नेदं मया शिक्षितं ते सर्वस्वीणां सुशिक्षितम् ॥८२॥
 धर्मसंस्थापनार्थाय मातुर्ना पालनाय च । दृष्टानां च विनाशाय मयेदं रूपमाश्रितम् ॥८३॥

कहा-हे सीते । इस पत्रके न जुटनेमें जो कारण है, वह मैं बतलाता हूँ । पन्नित्रना भिष्योको च हि कि यदि उनके पतिने सर्वपूर्व साध्य न किया हो तो स्वयं भी पुष्पादिबका मगन्ध न ले । अपने इस रोज रामके मूँधे विना ही कमलका फूल सूँघ लिया था ॥ ६५-६६ ॥ रामको यह बात मन्त्रम हुआ था । इससे उन्होंने यह माया रची है । तुलसीका पत्र भी उन्होंने ही इच्छासे रच दिया था ॥ ६७ ॥ आपको शिक्षा देने ही के लिए उन्होंने ऐसा किया है । रामको इच्छा दख रहा है मैं आपपर दोषारोप किया है । सा समा कर । मेरे ऊपर कुपित न हो । नारीजातिको शिक्षा देने के लिए ही उन्होंने यह बोटुक रचकर आपको उपदेश दिया है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ वे यदि ऐसा न करेंगे तो आपके बनाये मार्गके अनुसार संसारभी समस्त स्त्रियाँ अपने-अपने पतिको अलग करके स्वयं विविध प्रकारके भागोंका उपभोग करने लगनी ॥ ७० ॥ सुनिए, अब मैं बतलाता हूँ कि किस तरह वह पत्र वृक्षमें जुड़ेगा ॥ ७१ ॥ आप फिर घृन्दावनमें जाकर कहें कि उस कमलका फूल सूँघनेके सिवाय यदि मेरा पातिव्रत धर्म सुरक्षित हो तो यह पत्र जुड़ जाय और यदि मैं अपने धर्मको सुरक्षित न रख सका होऊँ तो न जुड़े ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ आगे इस बचनसे तत्काल वह जुड़कर पहिलेकी तरह हवाभरा हो जायगा ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मीस्वरूपिणी सीते ! अब चले, किरा प्रकारका विषाद न करें । ऐसा कहकर नारदजी सीताके साथ साथ उस वृक्षमें पास गये ॥ ७५ ॥ सीता भी अब समस्त पतिवारके सभी लोग तथा सारे देवता एकत्र हाजर मुन रहें, तब उन्होंने कहा- ॥ ७६ ॥ यदि उस कमलका मुगन्ध लेनेके अतिरिक्त मेरा पातिव्रत धर्म सुरक्षित हो तो यह तुलसीदल अपने स्थानपर जुड़ जाय, अन्यथा नहीं जुड़े । सीताके ऐसा कहने ही शृणमात्रमें वह पत्र पड़ेकी तरह वृक्षमें जुड़ गया । सब लोग सबे यह कौतुक देख रहे थे । पत्रके जुड़ने ही देवताओंने बाजे सजाये और देवनारियोने पुष्पवृष्टि की एवं बाह्यणोंने एक स्वरसे अयजयकार किया ॥ ७७-८० ॥ इसके बाद रामने सीताको हृदयमें लगा लिया और प्रसन्न मनसे कहा कि हे मुनियोंके भा मनको मोहनेवाली सीते । यह मैंने तुम्हेंको नहीं, समस्त नारीजातिको शिक्षा दी है । धर्मको

पातिग्रन्थं सदा स्तुतिभिः पालनीयं धियेति च । मया ने प्रीक्षितं संते मा विपादं भज प्रिये ॥ ८४ ॥
 इत्याश्वास्य मुहुः नीतां कन्यां नामनिहपिराम् । विमर्तयित्वा श्रीगमः सुगदीन्ममपूजयन् ॥ ८५ ॥
 ततः सर्वान्नामशरीन् ज्ञानको परेक्षणम् । येमाच्चकार मुदिता स्वेदविद्रकिनामना ॥ ८६ ॥
 ततः सर्वं नारदाद्यश्चक्रुर्भोजनमृतमम् । ततो मुकुराऽथ नाचुर्न रामं तुष्टाव नारदः ॥ ८७ ॥

श्रीनारद उवाच

श्रीगमं मुनिविश्राम जनमद्रम हृदयगम सीतारञ्जनमन्यमनाननराजारामं धनश्यामम् ।
 नागीमस्तुनकादिदीनतानिद्र प्रथितभूषात्त रामं त्वां शिरसा मनत प्रणमामिच्छेदितमन्तालम् ॥ ८८ ॥
 माताराभुमहन्तार शरधर्तार जननाधरं धर्तारमदनमागरवन्धननानाकीतुककर्तारम् ।
 पीतानन्ददनागीनोषकस्तुरायुतमङ्गल राम त्वां शिरसा मनत प्रणमामि च्छेदितमन्तालम् ॥ ८९ ॥
 श्रीकान्तं जगतीकान्तं स्तुतमद्भुतं बहुमद्भुतं मद्भुतहृदयेष्मिन्पूरकपञ्चाक्ष नृपजाकान्तम् ।
 पूर्यीजापतिविश्रामित्रमुधिशिवादाशनमच्छीलं राम त्वां शिरसा मनत प्रणमामि च्छेदितमन्तालम् ॥ ९० ॥
 सीतारञ्जितविशेष धामपूजाश मुरलोकेश प्राचोद्गायणमवणमर्दनतद्भ्रातृकृतलोकेशम् ।
 किष्किधाकृतमुग्रीवं प्लवगवृन्दाधिपमन्पाल राम त्वां शिरसा मनतं प्रणमामि च्छेदितमन्तालम् ॥ ९१ ॥
 श्रीनाथ जगतां नाथ जगतीनाथ नृपतीनाथ भूदेवामुरनिर्जगन्मगन्धर्वादिकमन्नाथम् ।
 कोदण्डधृततूर्णारन्वितमग्रमे कृतभूषाल राम त्वां शिरसा मनत प्रणमामि च्छेदितमन्तालम् ॥ ९२ ॥
 रामेश जगताम श्र जम्बुद्वीपेश नवलोकेशं वान्ध्याकिङ्कृतसम्बद्धपितृमीतालालितवागीशम् ।
 पृथ्वीश इन्द्रभूमाश नतयोगीन्द्र जगतीपाल राम त्वां शिरसा मनतं प्रणमामि च्छेदितमन्तालम् ॥ ९३ ॥

स्थापना करने, सज्जनोका रक्षा तथा दुष्टानां विनश करनेक प्रिय हो मैने यह अवलम्ब लिया है ।
 स्त्रियाका अपना बुद्धिसे पातिग्रन्थ धर्मको रक्षित करनी चाहिए । यह मैने तुम्हें उपदेश दिया है । इससे कही
 मुषित न हो जाना ॥ ८१-८४ ॥ इस प्रकार आनन्दराम सत्ताको आशवासन देकर रामने ऊँह फिर हृषित कर
 दिया और उन आये हुए दक्षत भक्तों का पूजन किया ॥ ८५ ॥ फिर लोहद्वार मुनियोंको साथ लेकर महलमें गये ।
 वहाँ जगदीश सीताने भोजन परोसा ॥ ८६ ॥ इसमें अनेक प्रकार का भोजन भोजन किया । फिर लाम्बूल खाकर
 नारद रामकी स्तुति करने लगे ॥ ८७ ॥ नारद ने कहा । मैं उन रामका मस्तक पूजाकर प्रणाम करता हूँ, जो
 मुनियोंके विश्रामस्थान है निजजनक गुरु का धाम है, राजाके अनन्त दानवा, सत्ताको प्रमत्त रखनेवाले,
 सत्य, सनातन राजा राम, भयका नष्ट राम, अनायास, प्रमत्ता आदिम वन्दित, निद्रामें प्रथित
 उन भूपाल रामकी, जिन्होंने बरभराया नारा वृत्तारा एक बन्धन गिरा दिया था, मैं प्रणाम करता हूँ
 ॥ ८८ ॥ अनेक राक्षसोंके प्राण नष्टकर, दुर्वाणधर्मों जननेक अवधार, बालिक नाशक, समुद्रमें सेतु बाधने
 और अनेक प्रकारके कौतुक करनेवाले, पुरुषादिपोंके आनन्दराम, नारिपोंके प्रसन्नकर्ता और मायेमें
 कस्तूरीका निलक लगानेवाले आप रामकी मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८९ ॥ लक्ष्मीके पति, जगत्पति, अच्छे अच्छे
 भक्तोंसे वन्दित, जिनके बहुतसे भक्त हैं, जो मानसिक कर्मता पूर्ण करनेवाले तथा पृथ्वीकी पृथ्वी सीताके
 पति हैं, विश्रामित्रका मुविद्यामें जिनका शाल्य उत्तम हो गया है, एसे महान् सान्तालक वृक्षोंको काटने-
 वाले आप रामकी मैं मस्तक नवाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९० ॥ सीताका प्रमत्त करनेवाले, समस्त विश्वके
 ईश, पृथ्वीके ईश, देववृन्दके अधिपति, (अश्वत्थामा) पञ्चरका उष्टर करनेवाले, रावणके विनाशकारी,
 रावणके भ्राता विमोषणका लक्ष्मण जननेअनेक राक्षसोंके किष्किन्धका अधिपति जननेअनेक, वानरोंके
 अधिपति सुग्रीवका भर्ता भाति रक्षा करनेवाले और महान् सत्त्व वृक्षोंको काटनेवाले रामकी मैं प्रणाम
 करता हूँ ॥ ९१ ॥ लक्ष्मीके नाथ, जगन्ने के नाथ, जगन्नाथ, राजाओंके राजा, विप्र, अमुर, देवता, पन्नग
 तथा गन्धर्वाके नायक, धनुष और तरकस लेकर नारायण सहजबसे राजा राम जिन्होंने महान् तालवृक्षोंको
 काट गिराया था, मैं उनको प्रणाम करता हूँ ॥ ९२ ॥ ईश, जगन्ने के ईश, जम्बुद्वीपके ईश, समस्त लोकपालोंके

चिद्रूपं जितसद्रूपं नतसद्विर्षं नतमद्रूपं समद्वीपजवर्षजकामिनिसंतीराजितपृथ्वीपम् ।
 नानापार्षिवनानोपापनमम्यक्तोषितमद्रूपं रामं त्वां शिरसा मननं प्रणमामि च्छेदितमत्तालम् ॥९४॥
 संसेव्य मुनिभिर्गेयं कविभिः स्तव्यं हृदि संधार्य नानाषण्डिततर्कपुराणजवाक्यादिकृतमत्काव्यम् ।
 साकेतस्थितकौसल्यासुतगन्धाश्चकिनमद्भालं रामं त्वां शिरसा मननं प्रणमामि च्छेदितमत्तालम् ॥९५॥
 भूपालं घनसन्नीलं नृपसद्भालं कालमद्भालं सीताजानिवरोत्पललोचनमन्त्रीमोषिततत्कालम् ।
 श्रीसीताकुतपधास्वादनमम्यक्शिक्षिततत्कालं रामं त्वां शिरसा मननं प्रणमामि च्छेदितमत्तालम् ॥९६॥
 हे राजन् नवमिः श्लोकैर्भुवि पापघ्नं नष्टकं मम ये बुद्ध्या कृतमुत्तमनूतनमेतद्राघव मन्यानाम् ।
 श्रीपौत्रान्नादिकक्षेमप्रदमस्मन्मद्वरदभालं रामं त्वां शिरसा मननं प्रणमामि च्छेदितमत्तालम् ॥९७॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

एवं स्तुत्वा रमानाथं राघवं भक्तवत्सलम् । प्रणम्याज्ञां प्रभोः प्राप्य प्रययौ नगदो मुदा ॥९८॥
 अमरा मुनयः सर्वे जग्मुस्ते स्वस्थलानि वै । एवं श्रीरामचन्द्रेण नररूपधरेण च ॥९९॥
 कौतुकानि विचित्राणि कृतानि जगतीतले । कस्तान्यत्र क्षमो वक्तुं विस्तरेण द्विजोत्तम ॥१००॥
 तेषु यद्यद्यद्वाघवेण स्मरितं निवह वै मम । तत्तत्प्रकथ्यते शिष्य तवाग्रे राघवाजुषा ॥१०१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

उत्तरार्द्धे सीतया तुलसीपत्रमन्धिर्नाम द्वाविंश सर्गः ॥ २२ ॥

प्रभु वाल्मीकिसे नमस्कृत, प्रसन्न सीताके द्वारा लालन, वामीन, पृथ्वीन, भूमारहारी, योगीन्द्रासे नमस्कृत, जगतीके पालक और विशाल तालवृक्षको काट गिरानेवाले रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ । ९३ ॥
 चिद्रूप, अच्छे-अच्छे राजाओंको भी परास्त करनेवाले, अच्छे-अच्छे दिक्पालोंसे नमस्कृत, बड़े-बड़े राजाओंसे नमस्कृत, सप्तद्वीप तथा समस्त देशमें उत्पन्न नागियोंसे नीराजित, पृथ्वीके पालक, अनेक राजाओंके द्वारा अनेक प्रकारके उपहार देकर प्रसन्न किये गये राजा राम जिन्होंने विशाल तालके वृक्षोंको काट गिराया था, उन रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९४ ॥ जो मुनियोंके सेव्य, मंत्रियोंमें गेय, हृदयमें धारण करने योग्य, अनेक गडितों द्वारा विविध प्रकारके तर्क पुराण तथा काव्योंसे सन्कृत एवं साकेत-निवासिनी कौसल्याके पुत्र हैं और गन्धादि द्रव्योंसे जिनका मस्तक अलङ्कृत है, सात तालके वृक्षोंको काट गिरानेवाले आप रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९५ ॥ भूपाल, मेघके समान ध्यामस्वरूप, महाराज इशरथके अच्छे पुत्र, पापोंके लिये बालस्वरूप, सीतापति, सुन्दर, कमलकी नाई आखोवाले, प्रबल कालके मालसे अपने मन्त्रीको तत्काल छुड़ानेवाले, पतिको बिना अपेक्ष किये कमलका फूल मूँघ लेनेपर सीताको श्रीसीता शिक्षाके दाता, विशाल तालके वृक्षोंको काट गिरावाले उन रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९६ ॥ हे राजन् ! संसारके प्राणियोंका पाप नष्ट करनेवाले इन नौ श्लोकोंमें मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार आपकी स्तुति की है । मेरे वरदानसे यह स्तुति स्त्री-पुत्र आदि सब वस्तुओंको देनेवाली होगी । विशाल तालके वृक्षोंका भेदन करनेवाले रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९७ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार भक्तवत्सल, रमानाथ, राघव, रामचन्द्रकी स्तुति करके और उनसे आज्ञा लेकर नारदजी प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे विदा हुए ॥ ९८ ॥ तब सब देवता तथा मुनिगण भी अपने-अपने स्थान-को चले गये । नररूपधारी रामचन्द्रने ऐसे-ऐसे कितने ही कौतुक किये हैं । हे द्विजोत्तम ! विस्तारपूर्वक इनका वर्णन करनेके लिए इस संसारमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥ ९९ ॥ १०० ॥ उन चरित्रोंमेंसे स्वयं रामचन्द्रजीने जो जो चरित्र हथें स्मरण कराया है, वह वह उन्हींकी आज्ञासे मैंने तुम्हारे आगे कहा है ॥ १०१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे १० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषा-टीकातहिले राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः

(आनन्दरामायणकी महिमा)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः स वैदेशा रन्ध्रभिस्तनयादिभिः । चकार राज्यं धर्मेण लोकत्रयपदांशुजः ॥ १ ॥
 एतस्मिन्नन्तरेऽयोध्यापुर्यां श्रीगुह्यायकम् । नन्वेकदाऽम्बोषूदतो हे राम कञ्जलोचन ॥ २ ॥
 करोमि तत्र सेवां न तपश्चर्यां करोम्यहम् । ददस्वाशां मम त्वं हि गच्छामि निजमन्दिरम् ॥ ३ ॥
 तथेति राघवेणोक्तः स ययौ निजमन्दिरम् । तत्र गत्वा शुचिर्भत्त्वाऽऽनन्दरामायणं शुभम् ॥ ४ ॥
 पठित्वा नगरात् तु ततस्तूर्णं बहिर्ययौ । एतस्मिन्नन्तरे एकदेशे पौरा मृतं नृपम् ॥ ५ ॥
 दृष्ट्वा तस्य सुतं बालं ज्ञात्वा कर्तुं हि मन्त्रिणम् । चक्रन्ते निश्चयं तत्र केचिदचरयं शुभः ॥ ६ ॥
 केचिदचरय नैव कार्यो मन्त्री खलस्त्वयम् । एवं विवदमानास्ते चक्रुर्वै निश्चयं तदा ॥ ७ ॥
 करिणी निजशुण्डाग्रमालया यं वरिष्यति । सोऽस्तु मन्त्री निश्चयेन ततस्तां करिणीं वरः ॥ ८ ॥
 वसुलङ्कारभूषाद्यः शोभयामासुगदरात् । तच्छुण्डायां रत्नमालां दत्त्वा तां मुमुचुस्तदा ॥ ९ ॥
 ततस्ते नवदाद्यानि वादयामासुगदरात् । तदा सा करिणी ग्रामाद्वहिस्तूर्णं ययौ हनैः ॥ १० ॥
 त्रयोध्यायाः पथाऽयोध्यां ययौ देशान् विलंघ्य सा । तत्पृष्ठे मकलाः पौरा नानावाहनमस्थिताः ॥ ११ ॥
 ययुस्तूर्णं कौतुकेन कोटिशो मुदिताननाः । ततः सा कारिणी गत्वाऽयोध्यां हृष्टस्थितं तदा ॥ १२ ॥
 तं दृष्टं वरयामास येन पारायणं कृतम् । आनन्दरामचरितस्याहो तन्कौतुकं महत् ॥ १३ ॥
 बभूव सकलान् लोकान् ततस्तं मालयांकितम् । करिष्या मन्त्रिणं चक्रुस्ते पौरा ये समागताः ॥ १४ ॥
 तं नित्युः करिणीसस्यं पत्नीपुत्रसमन्वितम् । स्वदेशे मन्त्रिणं चक्रुस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १५ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर संसारसे बन्धित राम जब सोता, पुत्रों और भ्राताओंके साथ धर्मपूर्वक राज्य कर रहे थे ॥ १ ॥ उसी समय एक दूतने अयोध्यापुरीमें रामके पास आकर कहा कि हे कमललोचन राम ! अब आपकी सेवा न करके मैं तपस्या करना चाहता हूँ । मुझे आज्ञा दीजिए तो अपने घर जाऊँ ॥ २ ॥ ३ ॥ रामने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वह अपने घर चला गया । वहाँ पवित्र मनसे उसने नौ रात्रि तक इस कव्याणुदायक आनन्दरामायणका पाठ किया और बादमें घरसे बाहर निकला । उसी समय एक देशका राजा मर गया था ॥ ४ ॥ ५ ॥ उसका पुत्र बालक था । सो उसके लिये किसीको मंत्री बनानेकी आवश्यकता पड़ी । अब पुरवासियोंमें मंत्रणा होने लगी कि किसको मंत्री बनाया जाय । कोई किसीको कहता कि अपुन मनुष्य अच्छा है, उसे मंत्री बना दिया जाय । किन्तु उसकी बात काटकर दूसरा कहता कि नहीं, वह बड़ा दुष्ट है । उसे मंत्री नहीं बनाया जा सकता । इस तरह परस्पर झगड़ा करते करते यह निश्चय हुआ कि ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजाकी हथिनी अपनी सूँड़में माला लेकर जिसके गलेमें डाल दे, वही व्यक्ति राजकुमारका मंत्री बनाया जाय । तदनुसार अच्छे-बुद्धे वस्त्र-आभूषण आदि पहिनाकर हथिनीको सुसज्जित किया गया और उसकी सूँड़में एक माला देकर उसे छोड़ दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसके बाद वे लोग हर्षसे बाजे बजाने लगे । वह हथिनी धीरे-धीरे नगरसे बाहर निकली ॥ १० ॥ वहसि चलकर वह अयोध्या पहुँची । उसके पीछे अनेक प्रकारके बाहनोंपर सवार होकर माघरिक लोग भी कीलुकवन बड़े वेगके साथ प्रसन्न मनसे अयोध्या तक चले आये । उस हथिनीने बाजारमें लड़े उस मनुष्यके गलेमें माला डाल दी जिसने नौ रात्रि तक आनन्दरामायणका पाठ किया था । उन लोगोंके लिये यह एक असाधारण कौतुककी बात हुई ॥ ११-१३ ॥ तब माछा पहिने हुए उस दूतको लोभोने राजकुमारका मंत्री चुन लिया । उसी हथिनीपर विठाकर पत्नी-पुत्र समेत उसे अपने देश ले गये और राजकुमारके

ततः परस्परं श्रुत्वा राजदूताः सहस्रशः । नानादेशेषु सर्वत्र सांकेतं ऽपि तदा मुदा ॥१६॥
 राजसेवां परित्यज्य जग्मुस्ते स्वगृहाणि हि । ततः सर्वे स्वगृहेष्वानन्दरामायणस्य च ॥१७॥
 केचिन्पारायणं चक्रुः केचित्तन्सूत्रं मुदा । केचित्तत्पठनं वाऽपि कर्त्तुं चक्रुश्च कर्त्तनम् ॥१८॥
 केचित्चक्रुश्च व्याख्यानमेवं तन्निष्ठपानमाः । बभूवुः सकला दूताः कोटशां जगतां तले ॥१९॥
 तदा केन धनं लब्धं केन लब्धं महदनम् । केन राजपदं लब्धं केन लब्धं गृहं चरम् ॥२०॥
 केन ग्रामाधिक्यं च केन लब्धं कृषिर्वरा । केन वृत्तिः शुभा लब्धा केन स्वर्गो मनोरमः ॥२१॥
 केन लब्धं तु पानालं कैलेंका विविधाः शुभाः । लब्धं केचिन्मूर्धपदं लब्धं स्वर्गं मनोहरम् ॥२२॥
 केचिदिन्द्रपदं प्रापुः केचिदग्निपूरं गताः । केचित्ते धर्मराजस्य लोकं वा निश्चिंतेरापे ॥२३॥
 बल्लभस्याथ वायोश्च कुर्वन्त्येभ्यस्तथा च । लोकान् जग्मुस्तदा दूतास्तदद्भुतमिवामस्तु ॥२४॥
 केचिज्जगद्भुतलोकं केचिद्भुवपदं गताः । केचित्ते जललोकं च वैकुण्ठं चापि केचन ॥२५॥
 एवं यथा यस्य पुण्यं दूतस्थान्यजनस्य च । आनन्दरामचरितपाठश्रावणसमस्तु ॥२६॥
 तथा तस्य गतिर्ज्ञाता सद्य एवावनातले । तदा कोऽपि न कस्यासीद्दूता दशान्तरेष्वपि ॥२७॥
 त्यक्त्वा सेवां ममस्ताश्च राघवस्यापि ते गताः । रामं पृष्ट्वा गताः केचिदशुभं गताः परे ॥२८॥
 एवं सर्वत्र देशेषु दूताभावोऽभरत्तदा । एकदा राघव द्रष्टुं मन्तु सर्वे नृपाश्चमाः ॥२९॥
 सैन्यान्वाकारयामासु र्सीयानि तु पृथक्पृथक् । तदा कुत्रापि सन्त्यानि ददृशुर्न नृपालमाः ॥३०॥
 आः किमेतदिति शोक्त्वा स्वसुदृक्किः सुतादांभः । वयस्ते राघवं द्रष्टुं विस्मयादष्टमानमाः ॥३१॥
 तानामतान् नृपान् ज्ञात्वा तान्पुरो गन्तुमादरात् । आकारयन्त्वर्मन्त्रानि न तदा प्राप लक्ष्मणः ॥३२॥
 मन्त्रिभ्यश्च विज्ञां दद्यात् । यह घटना एक भद्भुत प्रकारस घट गया ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ फिर क्या था, जब रामके दूतोंको यह खबर मिली तो जग-जगपुरीके तथा अन्यान्य देशोंके हजारों दूत प्रसन्नतापूर्वक अपना-अपना नौकरी छोड़कर घर चले गये । घर-घर कुछल आनन्दरामायणका पाठ करना प्रारम्भ किया ॥ १६ ॥ १७ ॥ कुछ इसे इसरेके मुखस सुनन लग, कुछ इसका पारायण करने लग और कुछ लोग इसका कर्त्तनमे लग गये ॥ १८ ॥ कुछ लोग इसकी व्याख्या कान लग और कुछन लोग आनन्द अवल चित्तपूर्वक हटाकर इसी आनन्दरामायणमें लग दी । इस तरह राजसेवा छोड़कर आनन्दरामायणका आराधन करनेवालोंको सन्त्या ससारमे कराड़ोंके लगभग हो गयी ॥ १९ ॥ ऐसा कर्मसे कुछको धन मिली, कुछको बहुत अधिक सम्पदा मिली, किसीको राज्यपद प्राप्त हुआ और किसीको अच्छा-सा घर मिला ॥ २० ॥ कुछको ग्रामका अधिकार मिला, किसीको अच्छी सती मिला, किसीका सुन्दर जायका मिली और किसीका मनोरम स्वर्गलोक प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ किसीको पानाल्लोक मिल्य और कुछ लोगोका विविध प्रकारके अच्छे-अच्छे लोक प्राप्त हुए और कुछ लोगोकी सूर्यलोक मिल्य ॥ २२ ॥ कुछ लोगोका इन्द्रपद प्राप्त हुआ, कुछ आग्निनाभकी गय, कुछ धर्मराजके लोक तथा कितने ही लोग निश्चिन्तलोकका चले गये ॥ २३ ॥ कुछ अरुणलोकका, कुछ कुवरेलोकका, कुछ चन्द्रलोकका, कुछ भुवनेलोकका, कुछ ब्रह्मलोकका तथा कुछ लोग वैकुण्ठलोकमे जा पहुँचे ॥ २४ ॥ २५ ॥ इस तरह आनन्दरामायणके पाठसे उन दूतों तथा अन्य लोगोको भी वे ही लोक प्राप्त हुए, जिनका जैसा पुण्य था । इस प्रकार पृथ्वीलोकमे सबका शुभ गति प्राप्त हुई । उस समय अयोध्या तथा दशान्तरेमे भी कोई सिपाही नहीं रहा ॥ २६ ॥ २७ ॥ सर्व रामका भी सारा त्याग त्यागकर चले गये थे । उनमेसे कुछ लोग तो रामसे पूछकर गये थे, कुछ बिना पूछे-जाँच ही चले गये ॥ २८ ॥ इस तरह उस समय सारा देश दूतविहीन हो रहा था । एक बार ससारके जितने अच्छे-अच्छे राज थे, वे सब रामचन्द्रजीसे मिलने जागके लिये तैयार हुए । उन्होंने जब साथ चलनेके लिए सेना बुलायी तो पता चला कि सेना ही नहीं ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह खबर पाकर राजाभान कहा-आह ! यह क्या हुआ ? विस्मितभावसे वे अपने-अपने मित्रों और पुत्रोंको साथ लेकर अयोध्या आये ॥ ३१ ॥ जब अयोध्यामे लक्ष्मण तो यह सन्वाद मिला तो

ततो निवेदयामास तद्भूतं राघवाय सः । तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्यासीदस्मयाविष्टमानसः ॥३३॥
 सुहृज्जनैर्युतं बन्धुं लक्ष्मणं प्रेम्ण पार्थिवान् । स्वपुरीमानयामास ते नेम् रघुनायकम् ॥३४॥
 ततस्ते नस्थुः सदसि सेनायुतं न्यवेदयन् । रामोऽपि कथयामास स्वसेनायुतमादरात् ॥३५॥
 तदा विहस्य आरामः समाहूय निजं गुरुम् । पृष्टवान्मम सैन्यानि नृपाणां चापि वै गुरो ॥३६॥
 किं जातानि क्व वै सन्ति तद्वदस्व सविस्तरम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा कृत्वा प्यानं क्षणं गुरुः ॥३७॥
 तदा ग्राह्यं सभामध्ये विहस्य रघुनन्दनम् । राम राम महाबाहो सर्वं वेत्सि स्वमेव हि ॥३८॥
 यदि पृच्छसि मांःराम तर्हि सर्वं वदाम्यहम् । शतकोटिमितं रामचरितं तव पावनम् ॥३९॥
 बान्धीकिना कृतं पूर्वं तन्मध्ये रघुनन्दन । आनन्दरामचरितं नवकाण्डसमन्वितम् ॥४०॥
 तस्य श्रवणपाठार्थः सर्वसैन्येषु वै नराः । ते गतास्त्वत्पदं केचित्केचित्लोकांतरादिषु ॥४१॥
 न सन्ति भुवि सैन्यानि सस्य राम वचो मम । नवकाण्डमिति तच्च रम्यमानन्ददायकम् ॥४२॥
 तस्यैतच्छ्रवणाद्विद्धि फलं रघुकुलोद्भव । येन ते हीनजातिस्था दूताश्च मुक्तिगामिनः ॥४३॥
 सारकाण्डभवादेव संसारान्मुच्यते नरः । यात्राकाण्डेन यात्राणां लभ्यते मानवैः फलम् ॥४४॥
 यागकाण्डेन यज्ञाणां लभ्यते फलमुत्तमम् । विलासकाण्डश्रवणादप्सरोभिविमोदते ॥४५॥
 जन्मकाण्डेन चाप्नोति नरः पुत्रादिसन्ततिम् । विवाहकाण्डश्रवणाद्भुवि रम्यां स्त्रियं लभेत् ॥४६॥
 राज्यकाण्डेन राज्यं हि मानवैर्भुवि लभ्यते । काण्डं मनोहरं श्रुत्वा लभ्यते मानसंप्सितम् ॥४७॥
 पूर्णकाण्डभवादेव पूर्णं पदं लभेत् । सर्वं तान्मानवैः श्रुत्वाऽऽनन्दरामायणं भुवि ॥४८॥
 सच्चिदानन्दरूपे ते लीनो भवति मानवः । एवं राम त्वया पृष्टं तत्सर्वं कथितं मया ॥४९॥
 यदग्रेऽत्र चिकीर्षां ते तत्कुरुष्व रघूत्तम । इति रामं वसिष्ठस्तु यावत्प्राह नृपप्रतः ॥५०॥

उन्होंने राजाओंकी अगवान्नी करनेके लिए सेना बुलवायी तो उन्हें भी सेना नहीं मिली ॥ ३२ ॥
 लक्ष्मणने रामको यह वृत्तान्त सुनाया तो राम भी भीषक-से रह गये ॥ ३३ ॥ अन्तमें रामने भी
 अपने परिवारके लोगोंको भेजकर राजाओंकी अगवाना करायी । राजाओंने अपनी-अपनी सेनाका
 समाचार सुनाया । सो सुनकर रामने आदरपूर्वक अपना भाग सब हाल कहा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तदनन्तर
 रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठको बुलवाया और हँसकर उनसे कहा—हे पुरोपी हमारा तथा इन
 राजाओंकी सेना कहाँ चली गयी है, सो विस्तारपूर्वक बतलाइए । रामकी बात सुनकर वसिष्ठने
 कहा—हे राम ! हे महाबाहो ! आप स्वयं सब बातोंको जानते हैं ॥ ३६-३८ ॥ फिर भी यदि हमसे
 पूछ रहे हैं तो बतलाता हूँ । बहुत दिनों पहले महर्षि बान्धीकिने सौ करोड़ श्लोकोमें आपके पावन चरित्रका
 वर्णन किया था । उसका मध्यमें नौ काण्डोंका आनन्दरामायण है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसका श्रवण तथा पाठ
 करनेसे आपको सेनाके सारे सैनिकोंमेंसे कुछ तो आपके परमपद (वैकुण्ठ) का और कुछ अन्यान्य
 श्लोकोंको चले गये हैं ॥ ४१ ॥ हे राम ! आप मेरी इस बातको सच मानिए । इस समय संसारमें कोई भी
 सेना नहीं है । नौ काण्डोंवाला आनन्ददायक एवं रमणीय वह आनन्दरामायण है ॥ ४२ ॥ उसका श्रवण
 करनेसे नाच जातिवाले लोग भी मुक्तिपद प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४३ ॥ सारकाण्डके श्रवणसे प्राणी संसारसे मुक्त
 हो जाता है । यात्राकाण्डके श्रवणसे तीर्थोंकी यात्राका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ यागकाण्डसे यज्ञोंका शुभ
 फल प्राप्त होता है । विलासकाण्डके श्रवणसे प्राणी स्वर्गकी अप्सराओंके साथ आनन्द करता है ॥ ४५ ॥ जन्म-
 काण्डके श्रवणसे पुत्रादि सन्तति पाता है । विवाहकाण्डको सुननेसे मनुष्य संसारमें सुन्दरी स्त्री पाता है ॥ ४६ ॥
 राज्यकाण्डके सुननेसे प्राणी राज्यपद पाता है और मनोहरकाण्डके सुननेसे अपनी अभिलाषाके अनुसार सब
 वस्तुयें पा जाता है ॥ ४७ ॥ पूर्णकाण्डके श्रवणसे पूर्णपद प्राप्त होता है और समस्त आनन्दरामायण श्रवण
 करके मनुष्य सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मामें लीन हो जाता है । हे राम ! आपने मुझसे जो पूछा, सो सब मैंने

तावन्मया हि किं जातं तच्छृणुष्व सविस्तरम् । गतिं श्रुत्वा तु दूतानां ज्ञानादेक्ष्यु ये नराः ॥५१॥
 तेऽपि सर्वे तदानन्दरामायणश्रवादिभिः । जानाविमानमंस्थास्ते ययुः स्वर्लोकमुत्तमम् ॥५२॥
 शून्यं दृष्ट्वा निजं लोकं यमो विधिममन्त्रितः । कैलासे शकर गन्त्रा मयं वृत्तं न्यवेदयत् ॥५३॥
 शिवः श्रुत्वा विहस्याथ यमेन केन दुर्गया । ययौ म वृषभारूढः साकेतं वेष्टितोऽमरः ॥५४॥
 शिवमागतमाशाय मन्पुद्गम्य रघूद्वहः । मिहामनेक्षितं देव्या निवेश्य पूजनं कथधात् ॥५५॥
 ससीतो ब्रह्मणश्चापि सुराणां च यमस्य च । एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा राघवं प्राह वै तदा ॥५६॥
 राम राजीवपत्राश्रयं पश्य निरुद्यमम् । शून्या संयमवी जाताऽऽनन्दरामायणभवात् ॥५७॥
 शून्योऽजातोऽस्तिभूलोकः सेऽवकाशो न दृश्यते । सर्वेषां तत्र वै वस्तुमग्नं किञ्चिद्विचार्य ॥५८॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा समाहूय रघूत्तमः । शत्रुघ्नं प्रेष्य वाल्मीकिं तर्प्य पूर्णं न्यवेदयत् ॥५९॥
 शोऽपि श्रुत्वा विहस्याथ राघवं वाक्यमब्रवीत् । येन मन्कावितानाशो न भविष्यति वै हवि ॥६०॥
 तथा सुखं च सर्वेषां तेन तत्कुरु राघव । तथेति राघवश्चोक्त्वा तदा वचनमब्रवीत् ॥६१॥
 सप्तजन्माजितं पुण्यं ममार्चनमुद्भवम् । यम्य स्यात्तस्य चानन्दरामायणकथारुचिः ॥६२॥
 भविष्यति न सर्वेषां मवन्वन्न कदाचन । इति राघववचः श्रुत्वा सर्वे सन्तुष्टमानसाः ॥६३॥
 ययुः स्वं स्वं पदं देवाः स्वं स्वं देसं नृपा ययुः । तदारभ्य विष्णुदाम शतकाटिमते शुभे ॥६४॥
 रामायणे शिवेनोक्तमानन्दारुच्यमिदं शुभम् । रामायणं कचित्कुर्व काभद्रेत्स्पाति मानवः ॥६५॥
 न भूम्यां सकला लोका वेत्स्यन्ति द्वापरे कला । सप्तजन्माजितं पुण्यं येषां वेत्स्यति ते नराः ॥६६॥

कह मुनाया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ भविष्यमें आप जो कुछ करना चाहत हो, सो करत चलिए । इस प्रकार बसिष्ठ
 रामसे कह ही रहे थे, तब तक पृथ्वीमण्डलमें क्या हुआ सो कहते हैं । उन दूतोंका गति मुनकर ससारमें जिसने
 मनुष्य थे ॥ ४० ॥ वे जब आनन्दरामायणके पठन और श्रवणसे अनेक प्रकारके विमानोपर चढ़-चढ़कर उसमें
 स्वर्गलोकको चले गये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अपने लोकका शून्य देख यमराज ब्रह्माका साथ शकर शकरभीके पास
 पहुँचें और प्रणाम करके उन्हें सारा वृत्तान्त कह मुनाया ॥ ४३ ॥ शिवजी यह समाचार सुनकर ब्रह्मा, पार्वती
 और यमराजको साथ ले तथा बहुतसे देवताआसे वेष्टित हाकर अयोध्यामें रामके पास गये ॥ ४४ ॥ जब
 राभको यह समाचार मिला कि शिवजी आये हैं तो प्रेसपूर्वक भगवान्नी करके पार्वतीके साथ शिवजीको एक
 दिव्य सिंहासनपर बिठाकर उनकी पूजा की ॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा तथा यमादि देवताओंकी भी
 पूजा की । बाड़ी देर बाद ब्रह्मान रामसे कहा— ॥ ४६ ॥ हे राजीवपत्राश्रय राम ! सर्वथा निश्चय हम
 यमराजकी ओर निहारिए । आनन्दरामायणके श्रवणसे इनकी सयमनों पुरी मूली हो गयी है ॥ ४७ ॥
 भूलोक खाली हो चुका है और स्वर्गमें उन सबके रहनेके लिए कुछ जगह ही नहीं रह गयी है । जब उनको
 रहनेके लिए कोई और स्थान शोधिये ॥ ४८ ॥ इस प्रकार शिवजीकी बात सुनकर रामने शत्रुघ्नको बुलावा
 और उनको यह समाचार सुनानेके लिये वाल्मीकि के पास भजा ॥ ४९ ॥ शत्रुघ्न गये और वाल्मीकिका बुला
 लाये । रामके मुखसे यह वृत्तान्त सुना तो वाल्मीकि हैसकर कहने लगे—जिस तरह संसारमें मेरी कविताका
 नाम न हो ॥ ५० ॥ और सब लोग प्रसन्न भी रहे, ऐसा कोई उचित उपाय सत्त्वकर करिये । रामने उनकी
 बात मान ली और बोले— ॥ ५१ ॥ मेरा पूजन करत-करत जिनके पास सत्त जन्मोंका पुण्य एकत्रित होगा,
 उनकी ही शक्ति आनन्दरामायण सुननेकी होगी ॥ ५२ ॥ भविष्यमें साधारण लोगोंकी रुचि हो इस ओर नहीं
 होगी । इस प्रकार रामकी भाणी सुनकर सबका मन प्रसन्न हो गया ॥ ५३ ॥ तब देवतागण अपने-अपने लोकोंको
 तथा राजा लोग अपने-अपने देशोंका लौट गये । तभीसे ही विष्णुदत्त । शतकाटिरामचरितान्तर्गत इस
 आनन्दरामायणके विषयमें ऐसा हो गया कि कहीं-कहीं कोई ही कोई मनुष्य आनन्दरामायणको जानने लगा
 ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ द्वापर और कलियुग तो बहुत ही कम लोग इसे जाननेवाले होंगे । क्योंकि उस समयमें यह
 निषेध बन गया है कि रामचन्द्रके पूजनसे सत्त जन्मोंके पुण्य अब एकत्रित होंगे, तब आनन्दरामायणमें

सद्रामवचनाङ्गुल्यां बभूव पूर्ववत्तदा । नाभूत्कस्य कदा मेधाऽऽनन्दरामायणं प्रति ॥६७॥
सदृशेषु नरः कश्चित्सप्तजन्मसु पुण्यवान् । आनन्दरामचरितं वेद स्तोत्रं न चापरः ॥६८॥

इति श्रीमत्कार्तिकारामचरितगतं श्रीपदानन्दरामायणे वाल्मीकीयं राज्यकाण्डे
उत्तराद्ध आनन्दरामायणमहिमावर्णनं नाम त्रयोविंशः सर्गः । २३ ॥

चतुविंशः सर्गः

(रामकी यमकी लपटेश, सुमन्त्रकी वैकुण्ठगमन और प्रजाकी रामकी शिक्षा)

श्रीरामदास उवाच

एकदा संस्थितं राम सभायां सेवकोज्ज्वलात् । राजराज महाराज रविवंशैरुमण्डन ॥ १ ॥
सुमन्त्रस्तेजतवृद्धः स मन्त्री नाकं गतः प्रभा । तत्पत्न्यस्तेन गन्तुं त्वामाज्ञां पृच्छन्ति राघव ॥ २ ॥
तद्भूतवचने श्रुत्वा चाकतः स्त्रिकनानसः । शीघ्रं सुमन्त्रगहं स ययौ यानेन राघवः ॥ ३ ॥
सुमन्त्रजन्मपट्टं तस्यायुःसंख्यां ददत्त सः । जन्मकालात्सहस्राणि नव नवशतानि च ॥ ४ ॥
नवेनवातिवर्षाणि मासास्त्वकादशच । दि । एकावशदिनाश्चातकांताः शेषा दिना नव ॥ ५ ॥
हात्वेत्यं रामचन्द्रः स तदा प्राह शुरु शत । कुत युगे तु लसायुः सहस्रं द्वापरे स्मृतम् । ६ ॥
मृतवर्षं कलौ प्रोक्तं सहस्राणि दशैव च । ज्ञायां कायतं चायुस्तन्मद्राज्ये मृषा कृतम् ॥ ७ ॥
यमेन मामवज्ञाय मदण्डं लब्धुमच्छता । दिनानि नव शेषाणि सति ये मन्त्रिणः कथम् ॥ ८ ॥
यमेन नीतस्त्वर्धव यम इदृश्या नयाम्यहम् । सुमन्त्रं जाययाम्यद्य पश्य मे त्वं पराक्रमम् ॥ ९ ॥
हयुक्त्वा गरुडारूढः कोदण्डं कलपत् कर । वेगेन रघुनाथः स ययौ संयमनीं पुरीम् ॥ १० ॥
तावन्मार्गे सुमन्त्रं तं पाशवदं यमायुगः । गच्छन्तं राघवा दृष्ट्वा तान्सर्वस्तादृश्यन्मुहुः ॥ ११ ॥
सुमन्त्रं मोक्षयामास लिङ्गरूपधर प्रभुः । लदा तु राघवं प्रोत्तुधापराद्धं तवाद्य किम् ॥ १२ ॥

लोगोंकी हाँस हाँसी और तभी लोग इस जानक्य, तबसे रामक कथनानुसार किसीका युद्धि आनन्दरामायणकी ओर नहीं गयी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ क्योंकि हजारराम कहो एक-प्राय मनुष्य है। हात जन्मोका पुण्यवान् हुआ और वही आनन्दरामायणकी जान पायेगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीमत्कार्तिकारामचरितान्तर्गत आनन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामतज्जपाण्ड्यराचिते ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तराद्ध त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक बार राम अपनी सभामें बैठे थे। तभी एक सेवकने आकर कहा—हे राजराज ! हे सूर्यवंशके अष्टद्वारस्वरूप महाराज आपक बड़े मन्त्री सुमन्त्र स्वर्ग चले गये। उनकी स्त्रियाँ सती होकर पतिका अनुसरण करनके लिये आपका आका आहुताई ॥ १ ॥ २ ॥ इस प्रकारका सन्देश सुनकर राम एक रथपर सवार होकर सुमन्त्रके घर गये ॥ ३ ॥ वहाँ उन्होंने उनकी जन्मकुण्डली मेंवाकर दखाँ, जिससे ज्ञात हुआ कि ९९९९ वर्ष आगे महाना सुमन्त्रका आयु था। जिसमें सब तो जात गया, कबल भी दिन बाकी रह गया थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसा जानकर रामने गुरु वसिष्ठका बुलवाकर उनसे कहा कि सत्ययुगमें मनुष्यकी आयु लाख वर्षोंकी, द्वापरमें हजारकी, कलियुगमें तो वर्षका उदा चैतयुगमें दस हजार वर्षकी कही गयी है। श्री यमराजने मेरे राज्यमें मरत अपमान करके उस नियमका उल्लंघन किया है ॥ ६ ॥ ७ ॥ ऐसा ज्ञात होता है कि वह मेरे द्वारा दण्ड पाना चाहता है। पर मन्त्राकी आयुमें अभी भी दिन बाकी हैं। तो यम उसे यहाँसे क्यों ले गया। मैं आज यमकी बाँधकर लाता हूँ और सुमन्त्रकी जिलाता हूँ। मरत पराक्रम देखिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर राम गरुडपर बैठ और रघुनाथ टहलार करते हुए यमकी संयमनी पुरीकी ओर चले दिये। तब तक रास्ते ही मैं उन्होंने पाशवद सुमन्त्रको ल आते हुए कुछ यमदूतोंकी दखाँ। देखते ही रामने यमदूतोंका मारकर लिङ्गरूपधारी सुमन्त्रको छुड़ा लिया। तब यमदूतोंने विनयपूर्वक

अस्माभिश्चेदृशो दंडो यतोऽस्माकं कृतस्त्वया । तदा तान्नाथः प्राह दिनान्यान्युर्नवास्य हि ॥१३॥
 वर्तन्ते शेषभूतानि कथमद्यैव नीयते । भविष्यन्ति दिनान्यग्रे यदा नव यमानुगाः ॥१४॥
 तदाऽऽनेयः सुखेनायं न निषेधं करोम्यहम् । इति रामवचः श्रुत्वा तमनुस्ते यमानुगाः ॥१५॥
 अपूर्वमभवज्जन्म सुमन्त्रस्यास्य राघव । मातुर्योन्या बहिष्वास्य मृतं हस्तौ विनिर्गतौ ॥१६॥
 पूर्वं ततोऽस्य दशमे दिवसे दैवयोगतः । उदरादीन्यधोऽङ्गानि पदानि शनैः शनैः ॥१७॥
 विनिर्गतानि भीरुः सुमन्त्रं रक्षितो बुधैः । यस्माज्जन्मन्ययं तस्यान्सुमन्त्राख्याऽस्य मारिणा ॥१८॥
 अतः पूर्वदिनारभ्य संख्ययाऽऽयुः प्रपूतितम् । अस्य तु तद्विनाशस्य संख्यया दिवसा नव ॥१९॥
 शेषभूताश्च भवता कीर्त्यन्ते वे रघूत्तमाः । अतोऽस्माकं नाथराघः संदिग्धं जन्म चास्य हि ॥२०॥
 कथाऽयं नीयते राम कथा शिश्वाऽपि नः कृता । इति तेषां वचः श्रुत्वा रामः प्राह यमानुगान् ॥२१॥
 अस्य सौत्यदिनो ज्ञेयोऽप्रथमो हि यमानुगाः । यस्मिन् दिने सुप्रसन्निरभवज्जन्मास्य मातृका ॥२२॥
 उत्साहदिवसो ज्ञेयः स एव जानकं तथा । तस्मिन्नेव दिनेऽस्यात्र कर्तुं पित्रा द्विजोत्तमैः ॥२३॥
 ज्योतिर्विदा जन्मपत्रे स एव लिखितो दिनः । अतः शेषदिनाः मन्य ज्ञेयास्तस्यापुत्रो नव ॥२४॥
 अतो पुष्पाभिर्गन्तव्यं नेयोऽयं दशमे दिने । पुनरागत्य सान्निभ्यान्मे निषेधं करोमि न ॥२५॥
 इति रामवचः श्रुत्वा तूष्णीमेव यमानुगाः । साश्रुनेत्राश्च छिन्नांगा यमराजं शनैर्ययुः ॥२६॥
 रामोऽपि परिवर्त्याथ ययौ स्वनगरीं प्रति । स्त्रोभिर्नोर्गजितो मार्गं विवेश मन्त्रिणो गृहम् ॥२७॥
 तावत्सर्वान्प्रमुदितान्मुम्रेण समन्वितान् । ददर्श रामचन्द्रः स तावदृष्ट्वा रघूत्तमम् ॥२८॥
 प्रणनाम सुमन्त्रः स पूजयामास राघवम् । ततो रामो ययौ गेहं सर्वे प्रमुदिनाननाः ॥२९॥
 दिनानि नव शेषायुर्वात्वा दानादिकं सुधीः । नकार प्रत्यहं भक्त्या सुमन्त्रो राघवाज्ञयाः ॥३०॥

कहा—हमने आपका क्या अपराध किया था, जिसके लिए आपने हमें ऐसा दण्ड दिया ? रामने कहा कि अभी इसके जीवनके नौ दिन बाकी हैं ॥ १०-१३ ॥ तब तुम आज ही इसे क्यों लिये जा रहे हो ? जब इसके दिन पूरे हो जायें, तब आकर आनन्दपूर्वक ले जाना । तब मैं भी कुछ नहीं बोलूँगा । इस प्रकार रामकी बाणी सुनकर रामके अनुचर कहने लगे—॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राघव ! इसका जन्म भी एक अपूर्व प्रकारसे हुआ था । पहिले दिन माताको योनिसं इसके दोनो हाथ तथा मुख बाहर निकल आया था । तदनन्तर दसवें दिन धीरे-धीरे इसके और अङ्ग निकले थे ॥ १६ ॥ १७ ॥ अच्छे मंत्रोंमें पण्डितोंने इसकी रक्षा कर ली थी । अतएव इसका सुमन्त्र नाम पड़ा था ॥ १८ ॥ इसके पूर्व दिनमें अर्थात् जिस दिन इसका हाथ तथा भस्तक बाहर आया, उस दिनसे लेकर आज तकमे इसकी आयु समाप्त हो गयी । आप जो इसके नौ दिन बाकी बतलाते हैं, वे संदिग्ध हैं । इसीलिए हे राम ! हमारा कुछ रोष नहीं है ॥ १९ ॥ २० ॥ आप व्यर्थ इसे छीने लिये जात हैं, हमको व्यर्थ आपन मारा भी है । उनको बात मनकर यमदूतां रामने कहा—॥ २१ ॥ हे यमानुचर ! वह अन्तका दिन अर्थात् जिस दिन माताके गर्भमें इसका अच्छी तरह जन्म हुआ है, वही जन्मका दिन माना जायगा ॥ २२ ॥ जिस दिन इसके जन्मका उत्सव मनाया गया है, वास्तवमें वही जन्मदिन है । उसी रोज इसके पिता तथा ज्योतिर्विदोंने इसका जन्म लिखा है । इसलिए अभी इसके नौ दिन बाकी हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम लोग जाओ और दसवें दिन आकर इसे ले जाना । तब मैं तुम लोगोंको नहीं रोकूँगा ॥ २५ ॥ रामकी बात सुन और छिन्नब्रह्म होकर आँखोंमें आँसू भरे हुए वे दूत यमलोकको लौट गये ॥ २६ ॥ राम भी लौटकर अशोषा चले आए । वहाँ स्थित होने उनकी आरती उतारी और राम सुमन्त्रके घर गये ॥ २७ ॥ वहाँ सब लोगोंको सुमन्त्रके साथ प्रणम देवा । सुमन्त्रने रामको देखते ही प्रणाम किया और उनकी पूजा की । इसके बाद राम अपने भवन गये । तबसे सब लोग परम प्रसन्न रहे ॥ २८ ॥ २९ ॥ सुमन्त्रने अपने जीवनके केवल नौ दिन बाकी जानकर रामके आज्ञानुसार बूढ़ दान-गुण्य

अथ ते यमदूताश्च साश्रुनेत्राः समागताः । उष्णीषाणि करैः क्रोधादास्फाण्य भुवि बाभ्रुवन् ॥३१॥
 कथं करोम्यधिकारं तवाज्ञाकारिणां त्विमांश्च । दृष्ट्वाऽवस्थां न लज्जा ते जायते हृदये यम ॥३२॥
 तावदास्माकं राघवेण सुमन्त्रो मोक्षितः पथि । दिनानि नव श्लेषायः पूर्वार्थमधुना वयम् ॥३३॥
 रैहत्यान् जले कुर्मो न जीविष्याम यदि यम । तद्दूतवचनं श्रुत्वा प्रज्ज्वाल यमस्तदा ॥३४॥
 प्राह दूतानघ रामं वदुष्या दण्डं करोम्यहम् । चोदनीयानि मेन्यानि देवेन्द्रं सूचयाम्यहम् ॥३५॥
 हस्युष्वा स्वगतो गत्वा वृत्तमिदं न्यवेदयन् । पुनरिदं यमः प्राह माहाय्यं क्रियतां मम ॥३६॥
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रो यममब्रवीत् । किं भ्रान्तोऽसि यमाद्यत्वं विष्णुना योद्धुमिच्छसि ॥३७॥
 मय्य तुष्णीं संयमनीं रामस्य किं करिष्यसि । तद्विया हि पुन दत्तो मया नौ मरुपादयौ ॥३८॥
 एवं तद्वचनं श्रुत्वा वह्निलोकं ययौ यमः । अग्निना भाषितम्वेवं निर्भर्ति वरुणं तथा ॥३९॥
 वायुं कुबेरमीशानं तवि चन्द्रं बुधं गुरुम् । शुक्रं शनैश्च राहुं केतुं धूमिमुतं ध्रुवम् ॥४०॥
 प्रार्थयामास युद्धाय साहाय्यं क्रियतामिति । उत्तराणीन्द्रवन्मर्वे ददुर्भन्ति यम हि ते ॥४१॥
 ततो गत्वा विधिं चापि पातालान्तरवामिनिः । समद्रीपवामिनश्च यमः संप्रार्थयन्नुवाच ॥४२॥
 तैऽन्यनुर्न करिष्यामः साहाय्यं राघवाग्रतः । ततः क्रोधममाविष्टः स्वमेन्येन ममन्विनः ॥४३॥
 रामेव सङ्गरं कर्तुमयोध्यां स यमो ययौ । स्वगणैः सह वेगेन महामहिषमम्पिलः ॥४४॥
 अयोध्यां वेष्टयामास नवद्वारविराजिताम् । नवप्राकाशसहितां शतघ्नीयन्त्रसंपुताम् ॥४५॥
 नवभिः परित्वाभिश्च समन्नान्पश्चिष्टिताम् । दृढरत्नकषाट्ठाढ्यां रत्नभिषिचिगजिताम् ॥४६॥
 सगरुवेष्टितां रम्यां रविकोटिममप्रभाम् । जनाप्रासादवृन्दैश्च पताकाध्वजशोभिताम् ॥४७॥

बारम्ब कर दिया ॥ ३० ॥ उधर से यमदूत यमके आगे पहुँचे और अपनी पगही जमीनसे फँस कर कहने लगे—
 ॥ ३१ ॥ हे यमराज । तुम कैसे अपने अधिकारकी रक्षा करते हो ? अपने आज्ञाकारी हम सेवकोंकी यह दशा देखकर तुम्हें लाज नहीं आती ? ॥ ३२ ॥ राहनेमें रामने मारकर सुमन्त्रको छुड़ा लिया । क्योंकि उसके जीवनके नौ दिन बाकी थे । राम बड़े नौ दिन पूरा कर नेनेपर सुमन्त्रकी आने लगे ॥ ३३ ॥ अब हम लोग जलमें डूबकर अपने प्राण दे देंगे । इस प्रकार दूतोंको बात सुनकर यमराज भारे क्रोधके लाल हो गये ॥ ३४ ॥ उन्होंने दूतोंसे कहा—घबड़ाओ मत, आज ही रामको बांधकर मैं उनकी इस घृष्टताका दण्ड दूँगा । तुम जाकर सेना तैयार करो । तबतक मैं इन्द्रको सूचित करता आऊँ । ३५ ॥ ऐसा कहकर यमराज तुरंत इन्द्रके पास गये । उन्हें सारा हाल सुनाया और सहायता करनेकी प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ यमराजकी बात सुनकर इन्द्रने कहा—यमराज ! क्या नम पागल हो गये हो, जो विष्णुभगवानके साथ युद्ध करना चाहते हो ? ॥ ३७ ॥ चुपचाप अपनी संयमनी नगरीको लौट आओ । रामका तुम क्या कर लगे ? उनसे दूरकर मैंने अपने हाथोंसे पारिजात और कल्पवृक्ष इन दोनों देवदण्डोंको उठाकर दे आया था ॥ ३८ ॥ ऐसा वचन ममकर यम अग्निलोक गये, उनसे सहायता माँगी तो अग्निने भी वैसा ही उत्तर दिया । इसके अनन्तर निर्भर्ति, गृष्ण, ॥ ३९ ॥ वायु, कुबेर, ईशान, रवि, चन्द्र बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु तथा मङ्गललोक गये ॥ ४० ॥ सर्वत्र उन्होंने सहायताकी प्रार्थना की, किन्तु उस मतवाले यमराजको सबने इन्द्रके समान ही शुष्क उत्तर दिया ॥ ४१ ॥ तब यमराज लौटकर कहाके पास गये । पातालमें रहनेवाले राजाओं तथा मन्त्रशुक्लके राजाओंसे भी जाकर सहायताकी प्रार्थना की ॥ ४२ ॥ किन्तु उन्होंने भी कहा कि रामके विरुद्ध मैं तुम्हारी सहायता नहीं करूँगा । इसके बाद क्रोधाविष्ट होकर यमराज अपनी ही सेना लेकर रामके साथ युद्ध करने अयोध्या चले । उस समय उनके समस्त गण साथ थे और यमराज एक बड़े भारी पैसेडर सवार थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने चारों ओरसे उस अयोध्या नगरीको घेर लिया । जिसमें नौ बड़े बड़े फाटक थे और नौ ही बाइपाई बूझी थीं । कितनी ही बन्दूके और तोपें रक्खी थीं । जिनमें रत्नजटित कषाट रत्ने थे और रत्न ही की दीवार बनी हुई थी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिनके उत्तर सरयू बह रही थी और करोड़ों सूर्यके प्रकाशकी भाई जिसका

यमेन' वेष्टिता दृष्ट्वा पुरीं रामो महामनाः । लवमाज्ञापयामास गच्छ योद्धुं यमेन हि ॥४८॥

लवस्तदा रथासूदो दुन्दुभीनां महास्वनेः ।

अयोध्याया बहिर्गत्वा चकार सङ्गरं महन् ॥४९॥

तदा लवशराघातछिन्नदेहा यमानुगाः । निपेतुः क्षणमात्रेण कोटिशो रणभूमिषु ॥५०॥

तान्सर्वान्निहतान् दृष्ट्वा यमो महिषमस्थितः । चकार तुमुलं युद्धं लवनेन क्रोधभासुरः ॥५१॥

स्वबाणैर्घर्ममः शीघ्रं रथं घ्नन् बलं धनुः ।

कवचं मुकुटं चापि विच्छेद म लवस्य च ॥५२॥

तदा लवश्चातिकुदः स्वमैन्येन स्थित पुनः । चकार मङ्गरं घोरं यमेनातिभयंकरम् ॥५३॥

तदाऽपरा विमानस्था ददृशुर्गुदकौतुकम् । ततो लवः स्वबाणैर्घर्महिषं मूर्छितं भुवि ॥५४॥

कृत्वा तं ताडयामास शतबाणैर्ममं जवान् ।

ततो यमोऽप्यतिकुदो यमदण्डं मुमोच तम् ॥५५॥

तं दण्डं मोचितं दृष्ट्वा ब्रह्मास्त्र मन्दये लवः । ब्रह्मास्त्रमागतं दृष्ट्वा यमदण्डो न्यवर्तत ॥५६॥

तदा यमोऽति विकलः पलायनपरोऽभवत् । ब्रह्मास्त्र तस्य पृष्ठं तद्ययौ कालानलप्रभम् ॥५७॥

तदा दृष्ट्वा रविः शीघ्रं स्वीयां भिन्नां प्रकल्प्य च ।

रथे मूर्तिं ययौ वेगात् प्रार्थयामास तं लवम् ॥५८॥

रे रे बाल यमं ग्राहि चोपसंहारयाद्य हि । त्वयोन्मृष्ट ब्रह्मास्त्र त्वमेवास्त्रविदा वरः ॥५९॥

त्वं मे वंशसमुद्भूतस्त्वयं मे तनयो यमः । कथं स्वपूर्वजं त्वद्य त्वं यमं हन्तुमिच्छसि ॥६०॥

चेदेको मूर्खतां यावः सर्वे मूर्खा भवन्ति न ।

शत्रुं रणान्परिभ्रष्ट वीरास्तं रक्षयन्ति हि ॥६१॥

प्रकाश था । उसमें नाना प्रकारके महल बने थे और वह पुरी बहुत-सी पताकाओं तथा रवजाओंसे भलकृति थी ॥ ४७ ॥ यमराजसे घिरी अयोध्याको देखकर रामने लवसे कहा—तुम यमराजसे युद्ध करनेके लिए जाओ ॥ ४८ ॥ तब दुन्दुभीके विकराल तिनारके साथ लव रथपर आरुढ़ होकर अयोध्याके बाहर आये और यमराजके साथ मयदुर युद्ध किया ॥ ४९ ॥ उस समय लवके बाणोंसे निहने होकर यमके करोड़ों अनुयायी क्षणमात्रमें घराशायी हो गये ॥ ५० ॥ उन सबको मरा देखकर बांधमे तमतमाये हुए यमराजने स्वयं लवके साथ तुमुल युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५१ ॥ यमराजने अपने विकराल बाणोंकी बर्षासे शीघ्र लवके रथ, सारथी, धनुष, कवच तथा मुकुटको काट डाला ॥ ५२ ॥ तब अत्यन्त कुपित लवने एक दूसरे रथपर आरुढ़ होकर यमराजके साथ महामयंकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५३ ॥ उस समय समस्त देवता अपने विमानोंपर आरुढ़ होकर समरक्षेत्रमें आये और वह युद्ध देखने लगे । इसके अनन्तर लवने अपने बाणोंकी वर्षासे यमराजके भैसेको मूर्छित कर पृथ्वीपर लोटा दिया और वेगके साथ बाण चलाने हुए सौ बाणोंकी बर्षासे यमराजपर प्रहार किया । तब यमराजने अतिशय क्रुद्ध होकर लवपर यमदण्ड छोड़ा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ यमदण्डको देखकर लवने ब्रह्मास्त्र चला दिया, जिससे यमदण्ड लौट पड़ा । तब यम विकल होकर भाग निकले और कालानलके समान ब्रह्मास्त्र उनके पीछे पीछे चला ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ उस ब्रह्मास्त्रको देखकर सूर्यने समझा कि इससे यम नहीं बच सकता । मेरा बेटा अवश्य मारा जायगा । तब सूर्यदेव स्वयं रथपर आरुढ़ होकर लवके पास आये और प्रार्थना करने लगे ॥ ५८ ॥ सूर्यने कहा—अरे अरे हे बच्चे ! इस अस्त्रको लौटाकर यमको बचाओ । तुम्हीं इसे चलाया है और तुम्हीं इसका निवारण भी कर सकते हो । तुम अस्त्रविद्या जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हो ॥ ५९ ॥ तुम हमारे वंशमें उत्पन्न हुए हो और यम भी मेरा ही पुत्र है । क्या अपने पूर्वज यमको ही तुम मार डालना चाहते हो ? ॥ ६० ॥ यदि एक लड़का मूर्ख हो गया तो क्या उसके साथ सब मूर्ख हो

इत्यादिनानावचनैः प्रार्थितो रविणा यदा ।

तदा लवोऽपि मंहारं चकाराश्रमस्य ब्रह्मणः ॥६२॥

ततो लवं पुरस्कृत्य यमेन तपतः पुरीम् । त्रिवेश रघुनाथस्य दर्शनार्थं मुदान्वितः ॥६३॥

तदा के देववाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः । लवं ववर्षुरमरा नमृतुश्चाप्सरोमणाः ॥६४॥

पौरनार्यो लवं मार्गे ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । गोपुरादालमंस्थाश्च ददृशुस्त मुहुर्मुहुः ॥६५॥

नेदुर्नानासुवाद्यानि नमृतुर्वारयोषितः । तुण्डतुर्भागधाद्याश्च जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥६६॥

एवं नानासमुत्साहैः स्त्रीभिर्नीराजितः पथि ।

ययौ स विजयी बालः प्रणनाम रघूत्तमम् ॥६७॥

रविमागतमाज्ञाय प्रत्युद्गम्य रघूत्तमः । नन्वा रविं करे घृत्वा समायां सत्रिवेश ह ॥६८॥

ततः सिंहासने भातु निवेश्य स्वीयपूर्वजम् । पूजयामास श्रीरामः षोडशोपचारकैः ॥६९॥

तदाऽज्रवीद्विं गमः समायां पुरतः स्थितः ।

पूर्वजस्त्वं धमस्वाद्य यन्लवेनापराधितम् ॥७०॥

तद्रामवचनं श्रुत्वा रामं प्राह रक्षितदा । त्वन्नाभिकमलाद्ब्रह्मा समुद्भूतो रघूत्तम ॥७१॥

मरीच्याद्या विधेः पुत्रा मरीचैः कश्यपः सुतः ।

कश्यपाच्च ममोत्पत्तिः पौत्रपौत्रस्त्वह तव ॥७२॥

धमस्व मम पुत्रेण यद्यमेनापराधितम् । एवं संप्राप्य श्रीरामं चासने संन्यवेशयद् ॥७३॥

यमेन कारयामास रघुनाथाय वन्दनम् । तदा समाययुर्देवा नेसुः सर्वे रघूत्तमम् ॥७४॥

रामोऽपि सकलान्देवान्पूजयामास सादरम् ।

ततो रामाज्ञया चेन्द्रः सुधावृष्ट्या रणे मृतान् ॥७५॥

श्रीधमुत्थापयामास सर्वान्वीरान्तवाहनैः । ततो रामो यमं प्राह यावद्राज्यं करोम्यहम् ॥७६॥

आर्यगे । श्रीर लोह संग्रामभूमिसे भागे हुए शत्रुकी भी रक्षा ही करते हैं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार कितनी ही बातोंसे सूर्यके प्रार्थना करनेपर लवने ब्रह्माश्रमका सम्बरण कर लिया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर लवको आगे करके यमराजके साथ-साथ सूर्य रामचन्द्रका दर्शन करनेके लिए हृष्यपूर्वक अयोध्या नगरीमें गये ॥ ६३ ॥ उस समय देवताओंने अपने बाजे बजाये, लवपर फूलोंकी वर्षा की और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ६४ ॥ पुरवासिनी स्त्रियें भी रास्तेमें कोठपरसे फूल बरसाती हुई बार-बार लवको निहार रही थीं ॥ ६५ ॥ उस समय विविध प्रकारके बाजे बजे, गणिकाय नाचने लगीं और मागध, गन्धर्व तथा किन्नरगण स्तुति करने लगे ॥ ६६ ॥ इस तरह अनेक उत्सवोंके साथ रास्तेमें आरती उतरवाता हुआ वह विजया बालक लव रामके पास पहुँचा और प्रणाम किया ॥ ६७ ॥ रामने सूर्यभगवानका आगमन सुनकर उनको अगवान्नी की, प्रणाम किया और हाथ पकड़कर सभाभवनमें ले गये ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर अपने पूर्वज सूर्यको रामने सिंहासन-पर बिठलाया और षोडशोपचारसे उनकी पूजा की ॥ ६९ ॥ फिर रामने सूर्यभगवानसे कहा—आप हमारे पूर्वज हैं । अतएव लवने जो कुछ अपराध किया हो, सो क्षमा कीजिये ॥ ७० ॥ रामकी ऐसी बात सुनकर सूर्यने भगवानसे कहा—हे रघूत्तम । आपही के नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे और उनसे भराचि आदि उत्पन्न हुए । मरीचिसे कश्यप हुए और कश्यपसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ । अतएव मैं आपके पौत्रका पौत्र हूँ ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ हमारे पुत्र यमने जो अपराध किया हो, सा क्षमा करिय । इस प्रकार विनय करके सूर्यने रामको आसनपर बिठलाया और यमसे प्रणाम करवाया । इसके बाद समस्त देवतायुँद वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने रामचन्द्रजीकी वन्दना की ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ रामने भी सादर सब देवताओंकी पूजा की । इसके बाद राम-की आज्ञासे इन्द्रने संग्राममें भरे हुए लोगोपर अमृतकी वर्षा की और वाहनसमेत समस्त वीरोंको उठा-

तावत्स्वया तु पूर्णायुर्नरो नेयो न चेतारः ।

तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्याह यमस्तदा ॥७७॥

उतः प्राप्ते सुदशमे दिने श्रीशिविर्निगाथा सः । सुमन्त्रो राघवं नन्वा तदग्रे जीवनं जही ॥७८॥

ततः स दिव्यदेहाभिः स्वस्त्रीमिदिव्यदेहधृक् ॥७९॥

सुमन्त्रः पूजितः सर्वविमाने मस्थितो वभौ । राघाग्रे मरणादेव सूर्यः सर्वत्र वेष्टितः ॥८०॥

ततः दृष्ट्वा स्त्रीं रामं यमेन स्वस्थलं ययौ ।

ययौ सुमन्त्रः स्वस्त्रीमिर्वकुण्ठं निर्जरा दिवम् ॥८१॥

रामः सुमन्त्रपुत्रेण तत्क्रियादि सुमन्तुना । कारयित्वा यथाशास्त्रं तत्पदे तं न्यवेशयत् ॥८२॥

ततो रामो लक्ष्मणेन पृथिव्यां घोषयन्मुहुः ।

गजान्यस्तां दुन्दुभिं स्त्रीं पशुकाध्वजशोभिताम् ॥८३॥

तथेति लक्ष्मणश्चापि दूतानाञ्चापस्तदा । दूताभ्येऽथ गजारूढाः सप्तद्वीपान्तरेषु हि ॥८४॥

रामांशं श्रावयामासुर्जनान्दुन्दुमिनिःस्वनेः । अर्णायुर्मृतः कश्चिन्नेनवरो राघव प्रति ॥८५॥

पौराणिकाः स्थापनीया नेहे शमे पृथक् पृथक् ।

निन्यनैमित्तिकं कर्म न न्याज्य वै कदाचन ॥८६॥

नावमान्या भूसुगन्ध द्वेषः कार्पो न कश्चिन् । हव्यं कव्यं मदा देवं दण्डनीयाश्च तक्षराः ॥८७॥

शासनीया दुराचारस्तत्परा ये जना भुवि । वन्दनीया सदा माता वन्दनीयः सदा पिता ॥८८॥

पूजनीयाः सदा देवा कार्या धर्मो निरन्तरम् ।

चैत्रस्नानं सदा कार्यमयोध्यायामथापि वा ॥८९॥

रामतीर्थेषु सर्वत्र कार्या धर्मो विशेषतः ।

द्रवर्का सदा गन्त्रा कार्ये रैशास्त्रमज्जनम् ॥९०॥

ऊर्जे कादशी पञ्चनपदे स्नातव्यं विधिपूर्वकम् । मत्वा प्रयागे प्रत्यर्च्य कर्तव्यं माघमज्जनम् ॥९१॥

कर लडा किया । तदनन्तर रामने यमराजसे कहा कि जवनाक मै पृथ्वीपर शासन करता रहूँ, तबतक तूम उन्हीं मनुष्योंको अपने लोकमें ले जाओ, जिनकी आयु पूर्ण हो गयी हो और किसीको नहीं । रामकी बात सुनकर यमराजने कहा कि "ऐसा ही होगा" ॥ ७५-७७ ॥ इससे पञ्चान् दसवें दिन स्वियोको साथ लेकर सुमन्त्रने रामको प्रणाम करके उनके सामने ही प्राण त्याग किया ॥ ७८ ॥ सुमन्त्रकी श्रितोंने भी उसी समय प्राण त्याग दिया और उन स्वियोके साथ दिव्यरूप धारण करके सुमन्त्र सब लोगोंसे पूजित होते हुए विमान-पर बैठकर अस्तिगय मोहित हुए । रामके समक्ष मरनेसे वे समस्त देवताओंके साथ दिव्यलोकको गये ॥ ७९ ॥ ॥ ८० ॥ इसके पश्चात् सूर्य भी रामसे आज्ञा लेकर यमक साथ लौट पड़े । रामने सुमन्त्रके पुत्र सुमन्त्रके हाथों सुमन्त्रकी क्रिया करवायी और पिताके आसनपर उसी पुत्रको बिठाया ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तदनन्तर रामने लक्ष्मण-को पृथ्वीतलमें इस बातकी घोषणा करनेकी आज्ञा दी ॥ ८३ ॥ लक्ष्मणने भा "बहुत अच्छा" कहकर दुन्दुभी बसानेवालोंको आज्ञा दे दी । वे हाथीपर सवार हो तथा सातों द्वीपोंमें जा जाकर नगाड़े बजाते हुए रामकी आज्ञा सुमाने लगे । उन्होने कहा—राजा रामचन्द्रका आदेश है कि यदि मेरे राज्यमें कोई मनुष्य बिना आयु पूर्ण हुए ही मरे तो उसे मेरे पास ले आया जाय ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ घर-घर तथा गाँव-गाँवमें पुराणों-को जाननेवाले पौराणिक रखे जायें । कोई मनुष्य अपने नित्यनैमित्तिक कर्मोंको न छोड़े ॥ ८६ ॥ ब्राह्मणोंका कोई अपमान न करे, कोई किसीके साथ द्वेषभाव न रखे, कोई किसीके द्रव्यको न ले और चोरोंको दण्ड दे ॥ ८७ ॥ भी लोग दुराचारी हों, उनपर कडा शासन किया जाय । धर्म-धर्म सदा होता रहे । अयोध्यामें अपना किसी अन्य रामतीर्थमें जाकर लोभ चैत्रस्नान किया करें ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ विशेषतः

चातुर्मास्यव्रतादीनि कर्तव्यानि व्रतानि हि । अन्यंगणेषु तुलसी पूजनीया हि सर्वदा ॥९२॥

न निराकरणीयोऽत्र त्वतिथिश्च कदाचन ।

न विप्रयाश्च कर्तव्या मृषा कापि कदाचन ॥९३॥

यदीच्छेत्स ततो देयं सर्वस्वं ब्राह्मणाय वै । ग्रामे गृहे कचिन्नैव कलहं तु समाचरेत् ॥९४॥

सदा गुरुर्वन्दनीयः कर्तव्यं श्रवणं सदा । प्रातःस्नानं सदा कार्यं होतव्या विविनाऽन्यः ॥९५॥

कार्यो जपः शक्यस्य श्रेयो निन्य महेश्वरः । एकांते हि तपः कार्यं द्वाभ्यामन्ययनं तथा ॥९६॥

त्रिमिर्गीतानि कार्याणि चतुर्भिर्विश्वरेत्पथि ।

परदाररतिस्नयज्या नानलोक्याऽन्यकापिनी ॥९७॥

परलक्ष्म्याः स्फुटं कार्या न नार्थ कदाचन । तीर्थं विना पुण्यकाले न स्नानं च गृहेऽपि ॥९८॥

न द्वेष्या गणका वंशास्ते पोष्याश्च पुरे पुरे । न वेत्त्यागमनं कार्यं न दासी स्फुटयेद्बुद्धि ॥९९॥

नित्यकर्म यथाकाले कर्तव्यं सर्वदा नरैः ।

नावमान्या हि गुरुवः परनिन्दा न कारयेत् ॥१००॥

जलाशया वने कार्या रोषणीया नगाः पथि । धर्मशाला पृथक्कार्या न नगा वीक्षयेद्बभूवु ॥१०१॥

असप्तप्राणि कार्याणि पुरे ग्रामे वने तथा । भङ्गुर्वन्तु वने रक्षा मार्गस्थानां वनेचराः ॥१०२॥

मय माऽस्तु वने कापि निशानां मार्गगामिनाम् ।

वैश्येऽप्यस्तु करो ब्रह्मो नेतरेषां कदाचन ॥१०३॥

बादयोः पादुके घृत्वा तीर्थं देवं गुरुं प्रति । गोष्ठं वृन्दावनं होमशालां गच्छेत् सर्वदा ॥१०४॥

पारायणानि श्रयानां वेदानां च सदा नरैः ।

कर्तव्यानि तु निष्कामं मामकार्याणि कारयेत् ॥१०५॥

लोग धर्म-कर्म करते रहें । द्वारकापुरीमें जाकर लोग वंशावृत्तान्त करते ॥ ९० ॥ कार्तिक मासमें कार्शकी पञ्चगव्यमें और प्रतिवर्ष माघमासमें प्रयोग जाबर स्नान कर ॥ ९१ ॥ चातुर्मास आदिका व्रत करते रहें । हर एक घरके आंगनमें तुलसीकी पूजा होती रहनी चाहिए ॥ ९२ ॥ घरे राज्यमें कभी कोई आये हुए अतिथि-का प्रसाद न करे । कभी कोई किसी ब्राह्मणकी मांग व्यर्थ न करे ॥ ९३ ॥ यदि वह चाहता हो तो ब्राह्मणके लिये अपना सर्वस्व दे डाले । किसी घर या गाँवमें कोई छड़ाई झगडा न करे ॥ ९४ ॥ सदा गुरुकी वन्दना करे, उनसे सर्वश्रवण सुनना रहे, निरा प्रातःस्नान करे और विप्रपूर्वक अग्निहोत्र करता रहे ॥ ९५ ॥ नित्य शिवजीका ध्यान और जप करता हुआ एकान्तमें तपस्या करे । दो शक्ति साथ बैठकर अध्ययन करे, तीन मनुष्य साथ बैठकर गाय-वजाय और चार मनुष्य साथ होकर टहलने निकले । दूसरोकी स्त्रीसे प्रेम न करे, दूसरकी स्त्राको देखे भी नहीं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ दूसरकी लक्ष्मीकी पानेकी इच्छा न करे, किसी पर्वकालके समय घरमें स्नान न करे, बल्कि किसी तीर्थस्थानपर चला जाय ॥ ९८ ॥ ज्योतिषी तथा वैद्यके साथ कोई बिगाड़ न करे । यदि किसी दूसरे गाँवमें भी रहते हों तो उनका पालन करे । न कोई वैश्यागमन करे और न दासीसे प्रेम करे ॥ ९९ ॥ ठाक समयपर लोग अपने नित्यकर्म करने रहें । गुरुजनोका अवमान कभी न करे और न दूसरोकी निन्दा ही करे । वनोमें जलाशय बनवाये । अलग-अलग धर्मशास्त्राये बनवाये । कभी न झूठी स्त्रीकी न देखे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ पुर, ग्राम और वनोंमें जहाँ-तहाँ मत्तक्षेत्र खोले । वनचर मनुष्य वनमें पहुँचे हुए पथिकोकी रक्षा करे ॥ १०२ ॥ रात्रिके समय भी चलनेवालोंकी वनमें किसी प्रकारका भय न रहे । केवल वैश्योंसे कर लिया जाय और लोगोंसे नहीं ॥ १०३ ॥ पाँवमें जूता पहिनकर किसी तीर्थस्थान देवता तथा पुत्रके पास न जाय । गोशाला तथा तुलसीकी बगीचीमें भी जूता पहिनकर न जाय ॥ १०४ ॥ धर्मग्रन्थों और वेदोंका पारायण सर्वदा सब लोग निष्कापभावसे करते रहें ॥ १०५ ॥

यतयो वन्दनीयाश्च भोजनीया गृहे गृहे । यतये कमण्डलवः कीपीन पादुका तथा ॥१०६॥

संशदण्डाः सदा देयाः सदा तोष्याः सुमार्णवैः ।

न खेदयेदभू स्वीया दिने निद्रा न कारयेत् ॥१०७॥

हस्तिदिन्यां न भोक्तव्यमुपोष्या च चतुर्दर्शा ।

कृष्णपक्षमवा तस्यां रात्रौ कार्यं शिवाचनम् ॥१०८॥

नानामहोत्सवाद्यैश्च यथाविधिपुरःसरम् । अष्टमी कृष्णपक्षस्य सदापोष्या शुभा निधिः ॥१०९॥

देवालयेषु कर्तव्या वलयो भक्तिपूर्वकाः । नानावक्त्राचनेकेष्वाम्बुदेवैर्मय्य ममर्पयेत् ॥११०॥

धेनुदानं वाजिदानं गजदानं प्रकल्पयेत् । भूतुरेभ्यः प्रदेवानि गृहदानानि सादरम् ॥१११॥

गोहे गोहे सदा कार्यं धेनुविधप्रपूजनम् ।

वयन्ते चन्दनं देयं छत्राणि व्यजनानि च ॥११२॥

पानकं जलकुम्भाश्च कार्यं पादावनेजनम् । दधि तक्र हि जर्धार देयं विप्रैर्मय आदरान् ॥११३॥

कार्तिके दीपदानानि रात्रौ जागरणानि च । तुलसीसेवनं धार्त्रीछायाभ्याश्रित्य भोजनम् ॥११४॥

गीतवृत्तादिकर्णं विष्णोत्रये निरन्तरम् ।

त्रिपुरारेः ममोष हि पूर्णिमायां हि कार्तिके ॥११५॥

कर्णायो महादाहो घृताक्तवर्तिकादिभिः । माघे देवानि काष्ठानि कर्बलाश्च त्रितास्तथा ॥११६॥

चैत्रे तांबूलदानं च तथा रम्भाकलानि च । उर्गारुमानि देवानि चन्दनं दधिनक्रकम् ॥११७॥

आदर्शदानं कस्तूरीदानं जार्ताफलस्य च । एलाकपूरदानानि मधुमासि प्रकल्पयेत् ॥११८॥

एशाऽग्रजं न स्पृशेच्च न पादं पर्पयेत्पदा । द्वाभ्यां कराभ्यां कर्तुं मस्तकस्य न कारयेत् ॥११९॥

दातव्यः करभारो हि विना विप्रैर्नृपाय हि ।

नोपेक्षणीयो राजश्च जनैर्दण्डः कदाचन ॥१२०॥

माननीयाश्च श्वसुराः पोष्याः पान्याः सदैव हि । सुहृदस्तोषणीयाश्च भित्ते कोपं न कारयेत् ॥१२१॥

महाराजोको वन्दना को जाय और घर घर भोजन कराया जाय । ऊह कमण्डलु, कीपीन, चरणपादुका आदि दान दिया जाय ॥ १०६ ॥ उह बांसकी छड़ी भी दे और मोठो मोठा बातेस प्रसन्न करे । कभी कोई अपनी हठीकी दुःखित न करे और दिनम शयन न करे । एकादमीको अन्नक अहार न कर और कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका भी खल किया करे । उस रात्रिम लग उत्साहस शिवजीका पूजन करे ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ कृष्णपक्षकी अष्टमीका भी वन सब लग किया करे । क्योंकि यह बड़ी शुभ निधि है ॥ १०९ ॥ देवालयेमें भक्तिपूर्वक पूजन करके विविध प्रकारके नैवेद्य देवताओको समर्पित किये जायें ॥ ११० ॥ लग समय-कमयपर धेनुदान, वाजिदान, गजदान आदि दान आदरपूर्वक ब्राह्मणोंको दिया करे ॥ १११ ॥ घर घरमें सदा गोओं तथा विप्रोंका पूजन होता रहना चाहिये । वसन्त ऋतुमें चन्दन, छत्र तथा पल्लका दान करे ॥ ११२ ॥ पानी पीनेके लिये लोटा, जल भरनेके लिए बड़ा, पैर धोनेके लिए झरी, दही, मट्ठा और नीबूका दान ब्राह्मणोंको दे ॥ ११३ ॥ कार्तिक मासमें दीपदान, रात्रिकी जागरण, तुलसीकी सेवा और आँवलेकी छायामें भोजन करे ॥ ११४ ॥ निरन्तर विष्णुभक्त्यान्क सामने नाचे-गाये । कार्तिकका पूर्णिमाकी शिवजीके सामने भीमें भीगी बत्ती आदिका महादान करे । माघ मासमें एकद्वियों तथा रक्त-विरजे कम्बलका दाव करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ चैत्रमें तांबूल तथा केलेक फल दान करके अगर, चन्दन, दही और मट्ठा आदि दे ॥ ११७ ॥ वैशाखके महीनेमें लीला, कस्तूरी, जायफल, हलधकी तथा कपूरका दान करे ॥ ११८ ॥ पैरसे बड़े भाईको न छुए, पैरसे पैर न रगड़े, दोनों हाथोंसे सिर न खुजलाये ॥ ११९ ॥ ब्राह्मणके अतिरिक्त सब लोच गजाको राज्यकर देते रहे । राजाके दिये वण्डकी उक्ता न करे ॥ १२० ॥ अपने-अपने स्वशुरकी इज्जत करे

न कर्तव्यो विष्णुर्ना च विश्वामश्र कदाचन ।

कार्पण्यं नैव कर्तव्यं दानकर्मसु सर्वदा ॥१२२॥

न घृतेन कृता कार्याः क्रोडा दाग्निचमूचिनी ।

न धीमन्या कदा वार्ता मयानां च नरोन्मैः ॥१२३॥

तीर्थयात्रा मया कार्या कृच्छ्रकादि समाचरेत् । काय लिंगार्चनं नित्यं कोटिलिङ्गानि आवणे ॥१२४॥

कर्तव्यानि नरैर्भक्त्या सर्वदाप्य च कारयेत् । लघुबुद्ध्यान्महाबुद्ध्यान्निबुद्ध्यान्समाचरेत् ॥१२५॥

दानानि पुस्तकानां च कर्तव्यानि निरन्तरम् ।

कीर्तनानि च कार्याणि देवागारेषु वा गृहे ॥१२६॥

साधूनां पूजनं कार्यं नमस्कार्यः सदा रविः । ग्रामे ग्रामे वायुपुत्रप्रतिमाः सर्वदा पूज्यक् ॥१२७॥

सिंदुराक्ताश्च तैलाक्ताः पूजनीया निरन्तरम् । चतुर्धर्पा गणराजस्य पूजनानि प्रकारयेत् ॥१२८॥

अपवेष्टुणराजाय मोदकान्पूजाप्रदितान् ।

पञ्च स्वाद्यानि सिंदूरदूर्वादीन्यर्पयेन्मदा ॥१२९॥

सदाऽऽजमवर्चा कर्तव्या स्तात्रपाठान्प्रकारयेत् ।

गीतायाः पठनं वदानध्यापयेन्मदा ॥१३०॥

सदैव शान्तिमूक्तानि पुण्यमूक्तान्यनेकदा । पुण्यं पुरुषमूक्तं च श्रीमूक्तादीनि च पठेत् ॥१३१॥

सदा धर्मं मतिः कार्या कार्या धर्मस्य संप्रदः । दुष्टबुद्धिः सदा त्याज्या धानं परिमाज्येत् ॥१३२॥

शतव्यं चपल चायुः क्रूरा ज्ञयो यमो महान् ।

दारुणा नारकी पांडा स्मर्तव्या इति सर्वदा ॥१३३॥

गतस्तातो मृता माता गतश्च प्रपितामहः । पितामहो गतश्चति गमनं स्वं निरीक्षयेत् ॥१३४॥

गतं यथाऽत्र बालित्वं तारुण्यं च गतं यथा ।

यथा गच्छति शब्दकथं स्मरणं यमशासनम् ॥१३५॥

और भीकरीका सदा पालन करता रहे । अपने नामदागीकी प्रसन्न रखे । मित्रपर कोप न करे ॥ १२१ ॥ कभी भी कष्टपर विपदास न करे और दानादि कर्ममें कभी कृपणता न करे । कभी जुवान खले । क्योंकि यह दरिद्रता-को पास धुलानवाला रोग है । अच्छे लोग कभी भाग्यकी बात सो न सुन ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ सदा तीर्थों की यात्रा करे और कभी कभी कृच्छ्रवा-न्दायण आदि व्रत भी किया करे । प्रतिदिन शिवालिंगका पूजन करे और आवणमोक्षमें एक करीह शिवालिंग बनाकर उनकी पूजा करे ॥ १२४ ॥ वन पड़े तो सदा ऐसा करे । लघुबुद्ध, महाबुद्ध एवं अतिबुद्ध इन तीनों दशोंकी बराबर करता जाय ॥ १२५ ॥ निरन्तर पुस्तकदान करे । घरमें अथवा देवालयमें जाकर प्रतिदिन कर्तन करे ॥ १२६ ॥ सब लोग साधुओंका पूजन और प्रतिदिन सूर्यको नमस्कार करे । शनि-गोविमें हनुमन्जीका मूर्तिया रखी जाय ॥ १२७ ॥ तैलस मिला सिंदूर लगाकर नित्य उनकी पूजा की जाय । प्रत्येक चतुर्थी तिथिको गणेशजीका पूजन किया जाय ॥ १२८ ॥ मादक तथा पुस्तपुत्री आदि पक्वान बनाकर गणेशजीको अर्पण करे और सिंदूर-दूर्वा आदि भी चढ़ावे ॥ १२९ ॥ प्रतिदिन आत्मज्ञान-सम्बन्धी चर्चा, स्तात्रपाठ, गीताका अध्ययन तथा वेदोंका अध्ययन-अव्यापन करता रहे ॥ १३० ॥ नित्य शान्तिमूक्त तथा श्रीमूक्त आदिका पाठ किया करे ॥ १३१ ॥ सदा अपनी बुद्धि धर्ममें स्थित रखे और धर्मका संग्रह करता खले । दुष्ट बुद्धिका परित्याग करे और किये हुए पापोंसे छूटनेका उपाय करता रहे ॥ १३२ ॥ आयुको चंचल तथा धर्मराजकी मद्भाजूर समझे । नरककी दायण पीडाओंका सदा स्मरण करता रहे ॥ १३३ ॥ यह सचता रहे कि पिताजी, बाल पदे, माता मर गया, पितामह और प्रपितामह भी चल बसे, अब हमारी बारी है । जिस तरह बालकाल गुजर गया, तदुगई बीत गयी, उसी तरह यह बुद्धा-

मता दंता भते नेत्रे श्लया जाता त्वमत्र हि । कृष्णकेशः मित्रा ज्ञता मृत्युर्ज्ञेयः पुरःस्थितः ॥१३६॥
दाने विलसो नो कार्यः कार्यं विचि सुनिर्मलम् । तुपवच्च धनं देयं मा कार्पण्यात्प्ररक्षयेत् ॥१३७॥

एवं श्रीरामदूतास्ते सप्तद्वीपानरस्थितान् ।

आवयित्वा राधवातां महादुन्दुभिनिःस्वनैः ॥१३८॥

अयोध्यां स्वां ययुः सर्वे रामं वृत्तं न्यवेदयन् ।

संभ्राविता तवास्माभिश्चाज्ञा सर्वान् जनान्मुहुः ॥१३९॥

सप्तद्वीपेषु सर्वत्र दुन्दुभीनां महास्वनैः । नत्तेषां वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽभरत्तदा ॥१४०॥

एव रामेण भूम्यां हि चरित्राणि महानि च । आचरितान्यनेकानि कस्तान्यत्र वदिष्यति ॥१४१॥

एवं शिष्य मया प्रोक्तं राज्यकाण्डं मनोरमम् ।

चतुर्विंशसुधर्मैश्च

महामङ्गलकारकम् ॥१४२॥

राज्यकाण्डं नृपा यत्र पठन्ति भक्तितन्पराः । न ते राज्यान्परिभ्रष्टा भवन्ति हि कदाचन ॥१४३॥

राज्यकाण्डं महापुण्यं महामांगल्यदायकम् । ये शृण्वन्ति नग भूम्यां ते मांगल्यं मज्जन्ति हि ॥१४४॥

एकैकवर्धितः सर्वैरेकैकेन ध्येन च । समचत्वारिंशदिनैः नुष्ठानं सुमिद्विदम् ॥१४५॥

आधिपत्यं नराः प्राप्य राज्यकाण्डं पठन्ति ये ।

आधिपत्यान्परिभ्रष्टा न भवन्ति कदाचन ॥१४६॥

राज्यकाण्डं पठित्वा तु रणे वादे जयो भवेत् । ऊर्णं शत्रवः क्षीघ्रं याम्पत्येतच्छत्रादिना ॥१४७॥

आनन्दरामायणमध्यमस्थं ये गन्धकाण्डं मनुजाः पठन्ति ।

राज्याच्छ्रुता राज्यपदं लभन्ते भवन्ति भ्रष्टा न तु ते पदस्थाः ॥१४८॥

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं तत्रापि काण्डेषु विचित्रमुत्तमम् ।

श्रीराज्यकाण्डं परमं सुमौग्यद मदाऽतिभक्त्या धवणीपमादरात् ॥१४९॥

यस्था भी बली जायगी, यह सोचकर धर्मके कठोर शासनका स्मरण करे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ दाँत टूट गये, बीखीसे कम भूमिने लग, शरीरके धमड़े टूले पड़ गये और काले काले बाल श्वेत हो गये । तब यह समझे कि अब मृत्यु सामने आकर खड़ा है ॥ १३६ ॥ दानमें बिलम्ब न करे और अपना चित्त निर्मल रखे । भूमीको तरह समझकर धनका दान करे । केजूम बनकर उसकी रक्षा न करे ॥ १३७ ॥ इस तरह सालो द्वीपोंमें रहनेवालोंको रामकी आज्ञा सुनाकर वे रूत रामके पास लौट गये और उनकी सब समाचार सुनाते हुए कहने लगे—हे राधव ! हमने सप्तद्वीपके निवासियोंको दुन्दुभीकी गर्जनाके साथ आपकी आज्ञा सुना दी । उनकी बात सुनकर राम प्रसन्न हुए ॥ १३८-१४० ॥ इस प्रकार रामने इस पृथ्वील्लपर कितने ही बड़े-बड़े काम किये । उन सबको पूरी तरह बतलानेवाला कौन है ? ॥ १४१ ॥ हे शिष्य ! इस नीतिसंमेलने तुम्हें चौकीस सर्गोंमें महा मङ्गलकारक मनोहारी राज्यकाण्ड सुनाया ॥ १४२ ॥ भक्तितत्पर होकर राजा लोग यदि इस राज्यकाण्डका पढ़ें-सुनें तो वे कभी भी अपने-अपने राज्यसे च्युत न होंगे ॥ १४३ ॥ यह राज्यकाण्ड बड़ा पवित्र और महामङ्गलदायक है । जो मनुष्य पृथ्वील्लपर इसे सुनगा, उनका सदा कल्याण होगा ॥ १४४ ॥ प्रतिदिन एक एक सर्ग बढाता हुआ और पूरा होनेपर एक एक कम करता हुआ यदि इसका अनुष्ठान करे तो यह सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करता है ॥ १४५ ॥ कहीका आधिपत्य पाकर जो इसका पाठ करते हैं, वे अपने आधिपत्यसे कभी भी भ्रष्ट नहीं होते ॥ १४६ ॥ राज्यकाण्डका पाठ-पूजन आदि करनेसे शत्रु शोध्य अपनी शरणमें आ जाते हैं ॥ १४७ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत इस राज्यकाण्डको जो लोग पढ़ते हैं, वे यदि राज्यसे भ्रष्ट हो गये हों तो फिर राज्यधिकारी हो जाते हैं । फिर कभी वे उसमें भ्रष्ट नहीं होते ॥ १४८ ॥ पहले तो आनन्दरामायण ही उत्तम है, फिर उसके सब काण्डोंमें यह राज्यकाण्ड उत्तम है । यह हर तरह सुलदायक

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गत-

आनन्दरामायणम्

‘उयोत्सना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

मनोहरकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(लघुरामायण)

विष्णुदास उवाच

गुरो ते श्रुमुनिच्छामि यत्तत्त्वं चक्षुर्महसि । वेदवाक्यं पुरा प्रोक्तं नारदेन महारम्भना ॥ १ ॥
रामायणं वाल्मीक्ये संक्षेपाच्चेति तेऽकथि । तावदेवार्थमादाय श्लोकरूपं वदस्व माम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वरस सावधानमनाः शृणु । यन्पृष्टं च त्वया सर्वं तद्वदामि दवाग्रतः ॥ ३ ॥
नारदाद्वेदवाक्यैश्च यथा वाल्मीकिना श्रुतम् । तावदेवार्थमादाय तेन वाल्मीकिना पुरा ॥ ४ ॥
शतश्लोकमितं रामचरितं पापनाशनम् । शतकोटिमितायां स्वकवितायां मनोरमम् ॥ ५ ॥
आदावेवोक्तमेवास्मि तत्तवाग्रे वदाम्यहम् । शतकोटिमितं रम्यं लघुरामायणाद्वयम् ॥ ६ ॥
कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराश्रयम् । आरुह्य कविताशाखां वंदे वाल्मीकिशोकिलम् ॥ ७ ॥
वाल्मीकेर्मुनिर्निर्दिष्टस्य कवितावनचारिणः । शृण्वन् रामकथानाद् को न याति परां गतिम् ॥ ८ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो। मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि वेदवाक्योंका सारांश लेकर संक्षेपमें नारदजीने पढ़ाया वाल्मीकिसे कौन सो रामायण कहि भी ? उसी सार वस्तुको श्लोकरूपमें बनाकर वाल्मीकिने आपको सुनाया था, वह हमसे भी कहिए ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वरस । तुममें अच्छा प्रश्न किया है । अब सावधान होकर सुनो । तुमने जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर तुम्हारे आगे कह रहा हूँ ॥ ३ ॥ जब वाल्मीकिजीने नारदके मुखसे वेदवाक्योंसे संकल्पित रामचरित्र सुन लिया, तब उसी अर्थको लेकर उन्होंने सो श्लोकोंमें पापनाशक लघुरामायणकी रचना की और अपने रामायणके आदिमें उन्होंने उसी लघुरामायणको स्थान दिया । वही सो श्लोकोंवाला लघुरामायण आज मैं तुम्हारे आगे कह रहा हूँ ॥ ४-६ ॥ कवितारूपिणी शाखापर बँडकर सीढ़ी सीढ़ी अक्षरोंमें रामनामका गान करनेवाले वाल्मीकिरूपी कोकिलको मैं वन्दना करता हूँ ॥ ७ ॥ कवितारूपी वनमें विहार करनेवाले तथा मुनियोंमें सिद्धसहस्र वाल्मीकिसे रामकथारूपिणी गर्जनाको सुनकर संसारमें कौन ऐसा प्राणी है, जो उत्तम गतिको न

यः पिबन्मतन रामचरितस्मृतमागम्य । अमुपस्तं मुनिं वंदे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ ९ ॥
 गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् । रामायणमहामालारत्नं वंदेऽनिलान्मजम् ॥ १० ॥
 अञ्जनीनन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् । कर्पीशमश्वहतारं वंदे लङ्काभयङ्कम् ॥ ११ ॥

उल्लंघ्य मिथोः मलिन मलीलं यः शोकवह्निं जनकान्मजायाः ।

आदाय तेनैव ददाह लंकां नमामि तं प्राञ्जलिराजनेशम् ॥ १२ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।

वातात्मजं वानरगृधमुख्यं श्रीरामदत्तं मनसा स्मरामि ॥ १३ ॥

रामाय भद्राय रामचन्द्राय वैधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ १४ ॥
 जितं ममवता तेन इग्णिना लोकधारिणा । अनेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ॥ १५ ॥

इति मंगलाचरणम्

तपःप्राधायनिरत तपस्वी वाग्विदां वरम् । नारदं परिप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम् ॥ १ ॥
 को न्यस्मिन्माप्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥ २ ॥
 वाग्विद्रेण च को युक्तः भवभूतेषु को हितः । विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चकः प्रियदर्शनः ॥ ३ ॥
 आत्मवान्को जितक्रोधो बुनिमान्कोऽनमूयकः । कस्य विभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥ ४ ॥
 गतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कीतृहलं हि मे । महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ॥ ५ ॥
 श्रुत्वा चैतद्विलोक्यो वाल्मीकेर्नारदो वचः । श्रूयतामित्युपामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥
 बहवो दुर्लभाश्चैते ये त्वया कीर्तिता गुणाः । मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नराः ॥ ७ ॥

प्राप्त होता हो ? कोई नहीं ॥ ५ ॥ जो निरन्तर रामचरितरूपी अमृतसागरका पान करते हुए भी कभी नहीं तृप्त होने आते, ऐसे कल्मषरहित श्रीवाल्मीकि मुनिको मैं प्रणाम करता हूँ । विशाल समुद्रको जिन्होंने गीके छुर डूबने योग्य बनाया, राक्षसोंको मच्छड़ समझा और जो इस रामायणरूपीणा महामालाके रत्न हैं, उन हनुमान्जोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ९ ॥ १० ॥ अञ्जनीके मरुत, जानकीके शोकनाशक, वानरोंके प्रभु, अक्षयकुमारके संहारकारी तथा लंकाके लिए भयावह वीर मारुतिका में वन्दना करता हूँ ॥ ११ ॥ जो खल खेलम समुद्रको जलरागिको लाँघकर लङ्का पहुँचे, वही सीताके शाकरूपी अग्निको लेकर जिन्होंने उसीसे सारी लंकाको भस्म कर दिया, उन अञ्जनीनन्दनों में हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥ १२ ॥ जिनमें मनके समान वेग है, वायुक सदृश स्वर है, जिन्होंने इन्द्रियाँ जोत ली हैं, जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, ऐसे वायुके पुत्र, वानरसभके मुखिया और श्रीरामके दूत हनुमान्को मैं मनसे स्मरण करता हूँ ॥ १३ ॥ राम, रामभद्र, रामचन्द्र, विष्वातास्वरूप, रघुवंशके भाग्य, जगन्नाथ और सीतापति रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥ भगवान्, संसारके बालक, अज, और विश्वरूप उन रामने निर्गुण होकर भी सगुणरूपसे सारे संसारका अपने वशमें कर लिया है ॥ १५ ॥

इति मङ्गलाचरणम् ।

विद्वानेति श्रेष्ठ, तपस्वी और स्वाध्यायमे सलग्न मुनिश्रेष्ठ नारदसे तपस्वी वाल्मीकिने पूछा— ॥ १ ॥ इस संसारमें इस समय गुणवान्, पराक्रमशाली, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता और अपने व्रतपर दृढ़ कौन है ? ॥ २ ॥ कौन ऐसा है, जो सत्त्वरित्रयुक्त है ? कौन सब प्राणियोंके हितमें लगा हुआ है और कौन ऐसा है जो विद्वान्, समर्थ तथा देखनेमें सुन्दर है ॥ ३ ॥ कौनसा ऐसा पुरुष है जो आत्मज्ञानी, क्रोधको वशमें किये हुए तथा तेजस्वी है और दूसरेसे ईर्ष्या नहीं करता ? संग्रामभूमिमें जिसके कुपित होनेपर देवता भी भयभीत होजायें, ऐसा कौन है ? ॥ ४ ॥ यह मैं सुनना चाहता हूँ । उसे जाननेके लिए मुझे बड़ा कीतृहल है । हे महर्षि । आप उक्त प्रकारके पुरुषको जान सकने हैं ॥ ५ ॥ तिलोकीके ज्ञाता नारद वाल्मीकिको बात सुनकर बोले—अच्छा, सुनो । इस तरह संशोधन करके महर्षि नारद कहने लगे— ॥ ६ ॥ हे मुने । आपने जिन गुणोंका वर्णन किया है, वे बहुत ही दुर्लभ हैं । फिर भी मैं अच्छी तरह विचार करके

इक्ष्वाकुवशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः । नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्मृतिमान्वशी ॥ ८ ॥
 बुद्धिमान्मतिमान्वाग्मी श्रीमान् शत्रुनिवर्हणः । विपुलांशो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥ ९ ॥
 महोरस्को महेश्वरामो गृहजत्रुगर्दिमः । आजानुबाहुः सुशिवाः सुनन्दाटः सुविक्रमः ॥ १० ॥
 समः समविमक्तांगः स्तिम्भवणः प्रतापवान् । पीनव्रक्षा विशालाश्रो लक्ष्मावान् शुभलक्षणः ॥ ११ ॥
 धर्मज्ञः सन्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः । यशस्वी जनमंथनः शुचिर्दयः समाधिमान् ॥ १२ ॥
 प्रजापतिममः श्रीमान् धाता ग्निपुनिपुटनः । रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिश्रिता ॥ १३ ॥
 रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता । वेदवेदांगतत्त्वज्ञो धनुर्वेद च निष्ठितः ॥ १४ ॥
 सर्वशान्तिार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिमानवान् । सर्वलोकप्रियः सागुर्दीनात्मा विचक्षणः ॥ १५ ॥
 सर्वदाऽभिगतः सद्भिः समुद्र इव मित्रभिः । आर्यैः सर्वममर्थं च सर्वं प्रियदर्शनः ॥ १६ ॥
 स च सर्वगुणोपेतः कौमल्यानन्दवर्धनः । समुद्र इव गरमाये धैर्येण हिमवानिव ॥ १७ ॥
 विष्णुना सदृशो वीर्यं मोमवन्प्रियदर्शनः । कालाग्निमदृशः क्रोधे क्षम्य पृथिवीममः ॥ १८ ॥
 धनदेन समस्यागे मन्वे धमे दशरथः । तमेवगुणनम्यन्तं रामं सन्यसगक्रमम् ॥ १९ ॥
 ज्येष्ठ ज्येष्ठगुणयुक्तं प्रियं दशरथः सुतम् । प्रकृतीनां हिते युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया ॥ २० ॥
 यौवराज्येन मयोक्तुमैच्छत्प्रान्या महीपतेः । तस्याभिप्रेक्ष्य मम गच्छद्वा भार्या च कंकरी ॥ २१ ॥
 पूर्वं दत्तवरा दत्तो वामेनमवाचन । विद्यामन च गमस्य भरतस्याभिपेचनम् ॥ २२ ॥
 स सन्यवचनाद्राजा धर्मपाशेन मग्नतः । निर्यामयामास मुतं राम दशरथः प्रियम् ॥ २३ ॥

उन गुणोंमें युक्त मनुष्यको बतलाना है ॥ ७ ॥ जिसके विषयमें मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ । उन्हीं लोगों
 राम कहते हैं । वे आन्धजानी, महाबल, राजस्वो, धर्मज्ञान और जितन्द्रिय हैं ॥ ८ ॥ वे बुद्धिमान्,
 नीतिज्ञ, वक्ता, श्रीमान् और शत्रुशोक विनाशक हैं । उनका भ्रूव लम्बा-चोरा कम्पा है । लम्बा-लम्बी
 भुजाएँ हैं । शत्रुको तरह उनकी योग्यता है और विशाल गठ्ठे हैं ॥ ९ ॥ उनका विशाल छाता है । वे हथाम
 विशाल धनुष धारण निय रहते हैं । उनकी पसलियाँ टिगा रहती हैं । वे शत्रुभावा दमन करनेकी
 प्रबल शक्ति रखते हैं । जानु (घुड़नी) तक पहुँचनेवाले उनके हाथ हैं, सुन्दर गाँगा है, बढिया ललाट है,
 सहायनीय पराक्रम है, दशरथ और मृदौक उनका स्मृति है, सनाहृदिगता हव है और उनका प्रताप भी
 साधारण नहीं है । उनकी मूर्द्ध छाती है, बड़ा-बड़ा आंग है । वे लक्ष्मणमग्न हैं और उनमें सभी शुभ
 लक्षण विद्यमान हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ वे धर्मज्ञ और सन्यसत्र (अपनी प्रतिज्ञाको निभानेवाले) हैं । वे सदा
 प्रजाके हितमें रत रहते हैं । वे यशस्वी, ज्ञानसमन्, पवित्र, वशी और समाधिमान् हैं ॥ १२ ॥ वे राम
 प्रजापतिके समान श्रीमान्, जगन्के पालक एवं शत्रुशोक विनाशक हैं । वे गमस्त ससारकी तथा धर्मकी
 सर्वथा रक्षा करते हैं ॥ १३ ॥ वे धर्मके रक्षक हैं और निज जनोकी रक्षा करते हैं । वे वेद वेदाङ्गके सारे
 तत्त्वोंको जानते हैं और धनुर्वेदमें एक असाधारण प्रतिभा रखते हैं ॥ १४ ॥ वे सपूर्ण शास्त्रोंके अर्थ तथा
 तत्त्वोंको जाननेवाले, समृद्धिमान्, प्रतिभाशाली, मयको प्रिय, साधु, अशनात्मा और पण्डित हैं ॥ १५ ॥
 जैसे समुद्र नदियोंसे मिलता है वैसे ही वे सदा सज्जनोंसे मिलते हैं और उनका दर्शन सबको सुख-
 दायी होता है ॥ १६ ॥ वे राम सर्वगुणमन्थ, कीसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले, समुद्रके तुल्य गम्भीर तथा
 हिमालयके समान धैर्यशाली हैं ॥ १७ ॥ वे वीर्य एवं बलम विष्णुक सदृश हैं, चन्द्रमाके सदृश सबको
 उनका दर्शन प्रिय है । वे क्रोधमें कालाग्निके समान और क्षमाम पृथ्वीके समान हैं ॥ १८ ॥ त्यागमें
 कुवेरके सदृश, सत्यमें दूसरे धर्मराजके समान तथा सब गुणोंसे युक्त हैं । सब पुत्रोंमें बड़े, प्रज के हितमें
 संलग्न एवं प्रजाप्रिय उन सत्यपराक्रम रामका राजा दशरथने प्रजाके हितके लिए युवराज बनानेका निश्चय
 किया । श्रीरामके अभिषेककी सँवारी देखकर पूर्वकालमें वरप्राप्त दशरथकी प्यारी रानी कंकरीने उसी
 समय अपने पतिसे रामके निर्वासन तथा भरतके राज्याभिषेकका वर माँगा ॥ १६ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ तदनुसार

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् । पितुर्वचननिर्देशार्त्तकेत्याः प्रियकाङ्क्षान् ॥२४॥
 तं व्रजत प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह । स्नेहाद्विनयसपन्नः सुमित्रानन्दवर्द्धनः ॥२५॥
 भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन् । रामस्य दयिता भार्या नित्य प्राणवमा हिता ॥२६॥
 जनकस्य कुले जाता देवमायायैव निर्मिता । सर्वलक्षणमपक्वा नागीणामुत्तमा बधूः ॥२७॥
 सीताऽप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणीं यथा । पीरैरनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च ॥२८॥
 शृङ्गवेगपुरे स्रुतं गङ्गाकुले व्यमर्जयन् । गुह्यमाद्य धर्मात्मा निपादाधिपतिं प्रियम् ॥२९॥
 गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया । ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ॥३०॥
 चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शामनान् । रम्यमावमथ कुन्दा रममाणा वने प्रयाः ॥३१॥
 देवमधर्मकाशास्तत्र ते न्यवसन्सुखम् । चित्रकूट गते रामे पुत्रशोकातुरङ्गादा ॥३२॥
 राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम् । मते तु तस्मिन् भग्नो वमिष्ठप्रमुख्यैर्द्विजैः ॥३३॥
 निष्ठुज्यमानो राज्याय नैच्छद्वाज्यं महाबलः । स जगाम वनं वीरो रामपादप्रपादकः ॥३४॥
 गत्वा तु सुमहान्मार्गं रामं मत्पराक्रमम् । अथावद्भ्रातरं राममार्यभावपुष्कृतः ॥३५॥
 त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत् । रामोऽपि परमोदारः सुमुखः सुमहायशाः ॥३६॥
 न चेच्छन्पितुरादेशाद्वाज्यं रामो महाबलः । पादुके चाभ्य राज्याय न्याम दत्त्वा पुनःपुनः ॥३७॥
 निवर्तयामास ततो भरतं भगताग्रजः । स काममनवाप्यैव रामपादावुत्सृजन् ॥३८॥
 तन्दिग्रामेऽकरोद्वाज्यं रामागमनकांक्षया । गते तु भगने श्रीमन्मन्यमन्धो जितेन्द्रियः ॥३९॥
 रामस्तु पुनरात्तस्थ नागरस्य जनस्य च । तत्रागमनमेकाग्रो दण्डकान्प्रविवेश ह ॥४०॥

भयवचनलक्ष्मी धर्मक वन्धनम् बंध हुए राजा दशरथने अपन प्रिय पुत्र रामका निर्वासित कर दिया ॥ २३ ॥
 वीर राम माता सीतेकी भलाई और पिताको प्रतिज्ञाका पालन करनेके निमित्त उनकी आज्ञा मानकर
 वनको चल दिये ॥ २४ ॥ सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले स्नेह और विनयसंग्रह प्रिय भ्राता लक्ष्मणने
 भाईको वन जाने देखा तो उन्होंने भी स्नेहवश उनका साथ दिया ॥ २५ ॥ सुमित्रानन्दन लक्ष्मण भली
 भाँति भ्रातृत्व निधाने थे और रामके भार्या सीता सदैव रामका प्राणक समान प्रिय समझती हुई उनके
 हितमें मग्न रहती थीं । वह जनकके कुलम उत्पन्न देवमायासे निमित्त, सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त एवं सब
 नारियोंमें एक उत्तम नारी थी ॥ २६ ॥ २७ जिस तरह राहिणी चन्द्रमाका अनुगमन करती है, सीताने
 भी रामका उसी प्रकार अनुगमन किया । उस समय पुरवामो तथा पिता दशरथ भा भाड़ा दूरतक रामको
 साथ गये ॥ २८ ॥ गंगाके किनारे शृङ्गवेगपुरमें पहुँचकर रामने सागधी (सुमन्त्र) को विदा किया और
 निपादाके राजा धर्मात्मा एवं प्रिय मित्र निपादराजसे भेट की ॥ २९ ॥ निपाद, लक्ष्मण और सीताके साथ-साथ
 राम एक वनके बाढ़ दूमेरे वन तथा बड़ी बड़ी नदियोंको पार करके भरत नामी अज्ञासे चित्रकूट वनमें
 एक सुन्दर आश्रम बनाकर रहने लगे ॥ ३० ॥ ३१ । देवताओं तथा गन्धर्व आदिक समान थे तानो वहाँ
 सातन्त्र रह रहे थे । रामके वन जाने ही पुत्रविश्राम राजा दशरथ पुत्र रामके लिए विलाप करने करते
 अपन प्राण त्याग दिये । उनके देहावसानके अनन्तर बलिष्ठ दि मूर्ख मुन्त्र ब्राह्मणोंने राज्य ग्रहण करनेके लिए
 भरतसे बहुत कहा, किन्तु और भरत राज्यके प्रति अनिच्छा प्रकट करके रामको मनानेके लिए वनको चल दिये
 ॥ ३२-३४ ॥ भरतने पराक्रमी रामचन्द्रजीसे प्रार्थना करते हुए कहा — हे प्रजापति : आप ही अयोध्याके राजा
 बनें । परमोदार, सुमुख और कीर्णाली रामचन्द्रने पिताकी आज्ञाका पालन अपना धर्म समझकर राज्यसे
 अनिच्छा प्रकट की और भरतको समझाकर राज्यके लिये अपना पादुका दा और लौटनेका बार-बार अनुरोध
 किया ॥ ३५-३७ ॥ इस प्रकार रामने भरतको लौटाया और अपनी कामना सफल होते न देख भरत भी
 रामके चरणोंका स्पर्श करके अयोध्या लौट आये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर रामके आगमनको प्रतीक्षा करते हुए
 भरत नन्दिग्राममें रहकर करने लगे । भरतके जाने जानेपर सत्यसव, श्रीमान् एवं जितेन्द्रिय

प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजवचोवतः । विरेधं गच्छन् हन्ता शम्भवं ददर्श सः ॥४१॥
 मुनीक्षणं चाप्यगस्त्य च ह्यगस्त्यभ्रान्तं तथा । अगस्त्यवचनाच्चैव जगद्देहं शरासनम् ॥४२॥
 खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयमायकी । दन्तमनस्य रामस्य वने वनचरैः सह । ३॥
 ऋषयोऽभ्यागमन्मर्वे वधापामराक्षमाय । न तेषां प्रतिशुभ्रान् राक्षसानां वधाय च ॥४४॥
 प्रतिज्ञातश्च रामेण वधः संयति रामाय । सुतीक्ष्णमग्निक्लृप्तानां दण्डकारण्यवामिनाम् ॥४५॥
 तेन तत्रैव दमता जनस्थाननिवासीनां । निमेषेण शरैश्चैव राक्षसां कामरूपिणी ॥४६॥
 ततः शूर्पणखावाक्यादुद्युक्तान् मर्वेण तदा । तत्र विविधैश्चैव दूषणैश्चैव राक्षसम् ॥४७॥
 निजघ्नान् रणे रामस्तेषां चैव पदानुगतान् । वनतन्मिन्नियमता जनस्थाननियान्वितानाम् ॥४८॥
 राक्षसां निहतान्यामन्महम्नापि चतुर्दश । नरो ज्ञानिवधं धूम्रा रावणः क्रोधमूर्छितः ॥४९॥
 महायं वरयामास मारीचं नाम राक्षसम् । रामेणः मुग्धदृशा मारीचेन स रावणः ॥५०॥
 न विरोधो बलवता श्रमो रावण तेन ते । अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥५१॥
 जगाम महमारीचमनम्याश्चमरदं तदा । तेन मायाविना दृग्मपवाह्यं नृपात्मजौ ॥५२॥
 जहार भार्गी रामस्य हन्ता शूत्रं जटायुषम् । शूत्रं च निहतं दृष्ट्वा हतां श्रुत्वा च मैथिलीम् ॥५३॥
 राघवः शोकसक्तो विललपकुलेद्रियः । तनूस्तेजैश्च शोकैश्च शूत्रं दग्ध्वा जटायुषम् ॥५४॥
 मारीचाणो वने सीतां राक्षसं स ददर्श ह । कन्यं नामरूपेण विकृतं धारदर्शनम् ॥५५॥
 तं निहन्य महाबाहूर्देहाहं स्वर्गतश्च मः । स चास्य कथयामास श्वरीं धर्मचारिणाम् ॥५६॥
 श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव । सोऽभ्यगच्छन्महानेजाः श्वरीं शत्रुमुदनः ॥५७॥
 श्वरीं पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः । पपार्तीरे हनुमता गङ्गातो वानरण इ ॥५८॥

राम वही निख नगरवासियोंकी भाँट आता देखकर दण्डकारण्यका चल पड़े ॥ ३९ ॥ ४० ॥ कमलकं सदृश नेत्रोवल रामन उस महागण्डम चाकर फिर १२ हस्तका मारा ओर जगभङ्ग करिस प्रिय ॥ ४१ ॥ उस वनमे मुतं ह्य, अगस्त्य तथा अगस्त्यके भारी हस्तदिस मिलन । वहाँ ही २ हस्तका श्वरी दृष्ट्वा डटधनुष, तलवार, तरकस तथा बाण ग्रहण किये और जनस्थानक साथ निवास करने लग ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ एक दिन वहाँक सब ऋषि राक्षसोंके वधका अनुगोच कर-क गिये रामके वान अव । तदनन्तर रामन दण्डकारण्यनिवासा उन अग्निके समान तजसी ऋषियोंके समक्ष पृ-व हो सर २ तमोका वच करनका प्रतिज्ञा का ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वहाँ ही रामन जनस्थाननिवासीना तथा कामरूपिणी राक्षसा शूर्पणखाका नाकवान काटकर कुरूप किया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर रामन शूपायका दु रा १२ हस्तसेना सहित खर, त्रिशिर तथा दूषणादि राक्षसाका मारा और जनस्थाननिवासा चौदह राज, २ राक्षसोंका नाक नाचन पडुवा दिया । इस प्रकार अपनी जातिका संहार हात मुनकर रावण क्रोधसे मूर्छित हो गया और अपने महायनाक लिए मारीच नामक राक्षसको बुलाया । मारीचने अनेक प्रकारसे समझाते हुए कहा- १२ राणा १ बलवान्के साथ विरोध करना ठीक नहीं है, किन्तु कालप्रेरित रावणने उसकी एक भी बात नहीं माना और उसक साथ रामके आश्रमपर पहुँचा । वहाँ वह मायावा मारीच मृग बनकर राजा दशरथके पुत्र राम और लक्ष्मणको दूर भगा ले गया ॥ ४७-५२ ॥ इसी बीचमें रावण जटायु नामके गिड़की मारकर रामका ललाटे मोटाके हारने गया । गिड़की मरा हुआ देख एवं सीताका हरण मुनकर राम सबस संतप्त हुकर दिला, २ करने लग और उगी शाजावस्थाम जटायुको अपने हाथोंसे जलाकर परम पद पहुँच या ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ वनमे सीताका १ दिन १ दिन रामने एक महाभयङ्कर तथा विचित्र रूपवाले कन्य नामक राक्षसको देखा ॥ ५५ ॥ महाबाहु रामन उस मारकर जला दिया । जब वह स्वर्गको जाने लगा तो उसाने धर्मचारिणा श्वरीका पता बताया ॥ ५६ ॥ और कहा-हे राघव ! वह धर्मनिपुणा श्रमणा नामकी श्वरी है, आप उसक पास जाइए , तदनुसार महातजस्वी एवं शत्रुविनाशकारी रामचन्द्रजी श्वरीके पास गये ॥ ५७ ॥ श्वरीने रामका वडा आदर किया । वहाँसे पन्पासरपर जाकर राम हनुमान्जीसे मिले ॥ ५८ ॥

हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समगतः । सुग्रीवाय च तत्पर्व शंसद्रामो महाबलः ॥५९॥
 आदिनस्नयथावृत्त सीतायाश्च विद्वेषतः । सुग्रीवश्चरि तन्मत्रं श्रुत्वा रामस्य वानरः ॥६०॥
 चक्षार मख्यं रामेण प्रातर्धनान्निवाशिकम् । ननो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति ॥६१॥
 रामायाश्चेदितं सर्वं प्रणयाद्दुःखितेन च । मतिहातं च रामेण तदा वालिवध प्रति ॥६२॥
 वालिनश्च वलं तत्र कथयामास वानरः । सुग्रीवः शङ्कितश्चापीभिन्यं वार्येण राघवे ॥६३॥
 राघवग्रन्थयार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम् । दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वतमभिभम् ॥६४॥
 उत्समयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः । पादोगुष्ठेन चिक्षेप संपूर्णं दशयोजनम् ॥६५॥
 विमंद् च पुनस्तालान्मसैकेन महेपुणा । गिरिं रमानलं चैव जनयन्प्रत्यय तदा ॥६६॥
 ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महापतिम् । किष्किन्धां राममहितो जगाम च गुहां प्रति ॥६७॥
 ततोऽगर्जद्गरिवरः सुग्रीवो हंसपिगलः । तेन नादेन महता निजंगाम हरीश्वरः ॥६८॥
 अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः । निजधानं च तत्रैव शरैरेकेन राघवः ॥६९॥
 ततः सुग्रीववचनाद्दत्त्वा वालिनमाहवे । सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयन् ॥७०॥
 स च सर्वान्ममानीय वादरान्वानरपमः । दिशः प्रम्यापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥७१॥
 ततो गृध्रस्य वचनान्मपातेर्हनुमान्बली । शत्रुयाजनविस्मयीं पूज्यै लवणार्णवम् ॥७२॥
 सत्र लङ्कां समामाद्य पुरीं रावणवालिनाम् । ददर्श मीनां व्यापन्नीमशोकवनिकां गताम् ॥७३॥
 निवेदयित्वाऽभिज्ञानं प्रवृत्तिं च निवेद्य च । समाश्रास्य च वैदर्ही मर्दयामास तोरणम् ॥७४॥
 पञ्च सेनाग्रगान्धवा मम मन्त्रिमुत्तानपि । शूयमश्च विनिधिव्यग्रं ग्रहणं ममुपागमन् ॥७५॥

हनुमान्जीके कहनेपर राम सुग्रीवसे मिल और महाबली रामचन्द्रजन उम अपना सारा हाल कह सुनाया ॥ ५९ ॥ रामने भी सुग्रीवसे अपना सब वृत्तान्त कहा और सीताहरणका हाल विजेयकूपसे वर्णन किया । सा मुनकर सुग्रीवने प्रमत्तचित्तसे अग्निका माक्षा देकर रामसे मित्रता का और वानरराज सुग्रीवने भी वालिके साथ अपने वैरका हाल बतलाया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ दु खिन सुग्रीवने बड़ा नम्रता तथा प्रेमपूर्वक रामसे अपना सब हाल कहा । यह मुनकर रामने वालिका मारनका पण किया ॥ ६२ ॥ तब सुग्रीवने वालिके बलका वर्णन किया । क्योंकि उसे सन्देह था कि वे वालिका मार सकत था नही ॥ ६३ ॥ तत्पश्चात् सुग्रीवने रामकी परोक्षा सेनक लिए पर्वतके समान लम्बा जोड़ा दुन्दुभि राक्षसका बङ्गाल दिखाया ॥ ६४ ॥ महाबाहु रामने मुक्कराकर उसे देखा और उस राक्षसकी छठरीका परक आँसे उठाकर दस घातन दूर फेंक दिया ॥ ६५ ॥ फिर सात सालके वृक्षाको एक ही बाणसे काट तथा पर्वत और दस तलका भेदकर मृग वक हृदयम यह दृढ विश्वास उत्पन्न कर दिया कि हम वालिको मारसक समर्थ है ॥ ६६ ॥ रामके पराक्रमको देखा तो विश्वास करके सुग्रीव वही प्रसन्नतापूर्वक रामके साथ किष्किन्धा नामके पर्वतकी गुफाके द्वारपर पहुँचा ॥ ६७ ॥ वहाँ पहुँचकर सुवर्णके समान पोतवर्ण वानरश्रेष्ठ सुग्रीवन घर गर्जना की । उस भयङ्कुर गर्जनको सुनते ही बन्दरीका राजा बालि किष्किन्धाके बाहर निकल आया ॥ ६८ ॥ उस समय ताराकी बात न मानते हुए और उसका अनादर करके बालि सुग्रीवके साथ युद्ध करनेके लिए आया और एक ही बाणसे उसे रामने यमपुर पहुँचा दिया ॥ ६९ ॥ सुग्रीवसे की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार वचनवद्ध होनेके कारण रामने वालिकी मृत्युके पश्चात् किष्किन्धाका राज्य सुग्रीवका दे दिया ॥ ७० ॥ इसके अनन्तर कपिराज सुग्रीवने सीताका पता लगानेके लिए दसो दिशाओंमें बंनमें अन्दरोंको भेजा ॥ ७१ ॥ सम्पाती गिद्ध द्वारा सीताका पता पाकर महाबली हनुमानने सी योजना विरहून क्षारसमुद्रका लांघकर पार किया ॥ ७२ ॥ रावणसे सुरक्षित लङ्कामें जाकर हनुमानने अज्ञोक वनमें बंड़ी तथा रामका छान्न करती हुई सीताको देखा ॥ ७३ ॥ तब हनुमान्जीने सीतासे रामका सारा समाचार एवं सन्देश कहा । सीताकी आश्वासन देकर रणमें पाँच सेनापतियों, साठ मन्त्रिपुत्रों और परमवार असयकुमारको मारकर स्वयं बहुपाद्यमें वैद्य यथे

अस्त्रेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा पैतामहाद्वरान् । मर्दयन् राक्षसान्भीरो मंत्रिणस्तान्पटञ्जया ॥७६॥
 ततो दग्ध्वा पुर्णिं लङ्कां क्रान्ते सीतां च मैथिलीम् । रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः ॥७७॥
 सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् । न्यवेदयद्मेयान्मां दृष्ट्वा सीतेति तत्त्वतः ॥७८॥
 ततः सुग्रीवमहितो गत्वा तीरं महोदधेः । समुद्रं धोमशामाय शरैरादित्यमभिर्भेः ॥७९॥
 दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितां पतिः । समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत् ॥८०॥
 तेन गत्वा पुर्णिं लङ्कां दग्ध्वा रावणमाहवे । रामः सीतामनुप्राप्य परां ब्रौडाभुषागमत् ॥८१॥
 तानुवाच ततो रामः पुरुषं जनममदि । अमृष्यमणा सा सीता विवेश ज्वलनं प्रति ॥८२॥
 ततोऽग्निवचनात्सीतां ज्ञात्वा विगतकन्मपाप् । कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥८३॥
 सदेवपिंगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः । वभौ रामः सुमंतुष्टः पूजितः सर्वदेवतैः ॥८४॥
 अभिषिच्य तु लंकायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् । कृतकृत्यस्त्वदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह ॥८५॥
 देवताभ्यो वरं प्राप्य समुन्थाप्य च वानरान् । अयोध्यां मस्विनो गमः पुष्पकेण सुहृन्पुनः ॥८६॥
 भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः । भरतम्यानि के गमो हन्मन्त व्यमर्जयत् ॥८७॥
 पुनराख्यायिकां जल्पन्सुग्रीवमहितस्त्वदा । पुष्पकं तन्ममारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥८८॥
 नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रान्ताभिः सहितोऽनघः । गमः भीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥८९॥
 न पुत्रमरणं केचिद्दृश्यति पुरुषाः कश्चित् । नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यति पतिव्रताः ॥९०॥
 प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः । निगमयो ह्यगोश्व दुर्भिक्षमययजितः ॥९१॥
 ना चाग्निर्जं भयं किञ्चिन्नाप्यु मज्जति जतवः । न चातर्जं भयं किञ्चिन्नापि ज्वरकृतं तथा ॥९२॥
 न चापि छुद्ध्यं सत्रं न तस्करमयं तथा । नगराणि च गणाणि धनधान्ययुतानि च ॥९३॥

॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इसके बाद ब्रह्मांक वरदानसे उग बह्मराजन अनेको मुक्त देवकर हुमानुने रावणके मन्त्रियों
 तथा बड़े बड़े राक्षसोंको मारा । तदनन्तर सीताको निवासस्थानत्वा दृष्ट्वा सारी लङ्का जलाकर रामको सीताका
 कृतान्त सुनानेके लिये लौट आये ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ वन्ही हनुमान्ने महात्मा रामचन्द्रजीके पास जाकर उनकी
 प्रदक्षिणा की और लङ्काका सारा कृतान्त सुना दिया । ॥ ७८ ॥ तदनन्तर राम सुग्रीवके साथ समुद्रतटपर गये
 और मूर्खके समान अपने तेजस्वी बाणोंसे समुद्रको अभिषि किया ॥ ७९ ॥ तब नदिशका पति समुद्र हाथ
 जोड़कर रामके समक्ष आया और उसकी सलाहसे रामने नल द्वारा सेतु नैगार करवाया ॥ ८० ॥ उस सेतुसे
 लङ्कामें पहुँचकर रामने रावणको मारा । फिर सीताको पाकर अनन्त लज्जन हुए ॥ ८१ ॥ उस समय
 रामने भरौ सभामें सीताको कुछ बहुत वचन कहे । जिने सहनमें अपमर्द होकर परम सतो सीता अग्निमें
 प्रविष्ट हो गयीं ॥ ८२ ॥ तदनन्तर अग्निके कथनानुसार रामने सीताको निष्पाप समझा । रामके इस
 कर्मसे सचराचर त्रिलोकी, देवता तथा ऋषि सब लोग प्रसन्न हुए । प्रसन्न हृदय राम देवताओंसे पूजित हाकर
 बहुत शोभित हुए ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ तदनन्तर लङ्का राक्षसक्षेत्र विभीषणका राजनिलक टकर राम सन्ताप-
 से मुक्त, कृतकृत्य एवं आनन्दित हुए ॥ ८५ ॥ वहाँ देवताओंसे वर पाकर वानरो तथा प्रियवनोंके साथ
 पुष्पक विमानसे अयोध्याको लौट पड़े ॥ ८६ ॥ भरद्वाजके आश्रम प्रयागमें पहुँचकर सत्यपराक्रम रामने
 हनुमान्को भरतक पास भेजा ॥ ८७ ॥ फिर परन्तर वानरागण करते हुए सुग्रीवके साथ पुष्पकविमानपर बैठे
 राम नन्दिग्रामको चले ॥ ८८ ॥ वहाँ पहुँचता भाइयोंके साथ जटा त्यगकर निष्पाद रामने सीताको पाकर
 पुनः राज्य प्राप्त किया ॥ ८९ ॥ रामके राज्यमें लोग हृष्ट, पुष्ट, सन्तुष्ट, सुखी, धार्मिक, नीरोग तथा दुर्भि-
 क्षादिके भयसे रहित रहते थे । उस समय गिनाके सामने किसीके पुत्रकी मृत्यु नहीं होती थी । उस
 राज्यकी स्त्रियाँ सीमावर्ती एवं पतिव्रता होती थीं ॥ ९० ॥ ९१ ॥ उस समय अग्निका भय, जलमें डूबनेका
 भय, वायुसंवर्षी भय, ज्वरादिका भय, पेटकी चिन्ता तथा खेर आदिका भय नहीं रहता था । सारे नगर
 और सारे राष्ट्र धन-धान्यपूर्ण थे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ उस राज्यमें सत्ययुगकी भाँति सब लोग सर्वत्र सुखी रहते थे । सी

नित्यप्रमुदिताः सर्वे यथा कृत्युभे तथा । अश्वमे वसुतैरिष्टा तथा बहुमुचर्णकैः ॥९४॥
 भवां कोट्ययुतं दत्त्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति । जमरुयेयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायज्ञाः ॥९५॥
 राजवंश्यान् शतगुणान्स्थापयिष्यति राघवः । चातुर्वर्ग्यं च लोकेऽभिमन्त्रे स्वे लोके निधीक्ष्यति ॥९६॥
 दशवर्षमहस्त्राणि दशवर्षशतानि च । रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयस्यति ॥९७॥
 इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्य वेदैश्च संमितम् । यः पटेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९८॥
 एतदारुणानमायुष्य पठन् रामायणं नरः । सुपुत्रपौत्रः भराजः प्रेत्य स्वर्गं महीयते ॥९९॥

पठन् द्विजो वामृषभन्वमीयान्स्यात्क्षत्रियो भूमिपनिष्प्रमायात् ।

वणिग्जनः पण्यपतित्वमीयाज्जनश्च शूद्रोऽपि महस्त्वमीयान् । १००॥

एवं क्षिप्य नारदेन मुनिना यत्तु धीमता । बाल्मीकिश्च वेदवाक्पैर्यचिन्मात्रं विवेदितम् ॥१०१॥
 तावदेवार्थमादाय श्लोकवद्धं मनोरमम् । बाल्मीकिना कृतं पूर्वं लघुरामायणाभिधम् ॥१०२॥
 शतश्लोकमितं स्वीयकवितायां च तन्मया । तत्राग्रे कथितं सर्वं श्रवणान्पुण्यवर्द्धनम् ॥१०३॥
 ब्रह्मदत्तवरेणैव सर्वं ज्ञात्वा स वै मुनिः । शतकोटिमितां गमकीडां श्लोकैर्वबन्ध ह ॥१०४॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकांडे लघुरामायणं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(कौमल्यादि माताभोक्ता वैकुण्ठवाम)

श्रीनारद उवाच

अथैकदा सभापक्ष्ये पौरा जाल्पदादयः । ज्ञात्वा राम परत्मान पप्रच्छुर्नियान्विताः ॥ १ ॥
 राम राम महाराज किञ्चिदुपदिशस्व नः । विषयामकचित्तानां ज्ञान येन भविष्यति ॥ २ ॥
 इति तेषां वचः श्रुत्वा राघवः सन्मिलोऽब्रवीत् । निरन्तरं ह्यपदेशो मुखाभिः श्रूयते न किम् । ॥ ३ ॥
 प्रहरे प्रहरे रात्रौ मदूर्ध्वः क्रियते सदा । अन्तु तच्च मतं पूर्वदिदानीं सकलैर्जनैः ॥ ४ ॥

अश्वमेध यज्ञ करकं नृवणयुक्तं अन्कः पोटि गोपे विविधयुक्तं विद्वान् ब्रह्मणाको देवर राम हजारो राजाभोके वंशको स्थापना करके चारो वणोंको अपने अपने धमपर लिपुक्त करने ६४-६६ ॥ ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य करके राम अपने ब्रह्मणाको चले जायंग ॥ ६७ ॥ पदिय पापनाशक, पुण्यकारी तथा वेदममत इस रामचरितका जा प्राणी पडाता, यह समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा ॥ ९८ ॥ यह रामायणकी कथा आबु-वर्द्धिनी है, इसको पहलेसे मनुष्य पद बोलेस शांतिन हाकर मरनेके बाद स्वर्गस्थकमे पूजित होना है ॥९९॥ इस लघु रामायणकी पढ़नेसे ब्राह्मण विद्वान् हाता है, क्षत्रिय भूमिका स्वामी होता है, वैश्य व्यापारमे सफल होता है और शूद्र महत्त्व पाता है ॥१००॥ इस प्रकार हे शिष्य ! बुद्धिमान् नारदने वैशवाक्यको आधारपर बाल्मीकि जीसे जितना रामचरित कहा था ॥ १०१ ॥, उतना ही अर्थ लेकर बाल्मीकिन पहले १०० श्लोकोंसे श्लोकवद्ध करके अपनी कविताम इस लघुरामायणकी रचना की । सो मैंने तुम्हारे आगे कहा । इसे सुननेसे पुण्यकी वृद्धि होती है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ मुनिराज वल्मीकिने ब्रह्म जाके दित हुए सरदानके प्रभवसे सब कृत्त जानकर सो करोड़ श्लोकाम रामचरितका वर्णन किया ॥ १०४ ॥ इति आशतकोटिरामचरितात्मते श्रीमदानन्दरामायणे प० रामनजपाष्टकृत उदैत्सना माध नौकासहिने मनोहरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदासने कहा—६४ दित समान पुत्रामिने तथा जन्मपद्वामियोने रामको परमात्मा समझकर विनयपूर्वक कहा—॥ १ ॥ हे राम ! हे महाराज ! हम लोगोंको कुछ उद्देश दीजिए । जिससे हम विषयसक्त मनवालोंको भी ज्ञान प्राप्त हो जाए, ॥ २ ॥ उनका ब्रह्म सुनकर मुग्धवात हुए रामने कहा—क्या नित्य आप लोग हमारे उद्देशोंको नहीं सुनते ? ॥ ३ ॥ रात्रिक समय पहर-पहरपर मैंने इस उपदेश देते

अथ तद्वचनं निशायां बुद्धिपूर्वकम् । श्रुत्वा विचार्य पञ्चान्मां प्रष्टव्यं यत्तु रोचते ॥ ५ ॥
 तथेति रामवचनान्मर्वे गत्वा निजं निजम् । गेहं ते स्वस्थचित्ताश्च स्वस्त्रीभिर्मञ्जुकादिषु ॥ ६ ॥
 दूतवचने दत्तकर्णां रात्रौ तस्थुरनिद्रिताः । तावन्ते रामदूताश्च सार्द्धयामे सर्दापकाः ॥ ७ ॥
 धृतशस्त्रा दण्डहस्ता नानाबाहुनमस्थिताः । गजेषु दुन्दुभीन्धृत्वा तथा बाघान्यनेकशः ॥ ८ ॥
 धृत्वा पृथक् पृथङ्नामायानेषु मञ्जुलानि हि । राजमार्गेषु सर्वत्र दीर्घशब्दालुदीरयन् ॥ ९ ॥
 हे जनाः श्रूयतां सर्वे किं मोहेन विनिद्रिताः । नेय निद्रा सर्वार्चना कदाऽनर्था भविष्यति ॥ १० ॥
 स्वस्थचित्तास्त्वद्य सर्वेभूत्वा नः श्रूयतां वचः । नवद्वाराण्ययोध्यायामेकं तु लघु वर्तते ॥ ११ ॥
 रामाज्ये भयं नेति कारणाद्द्वारक्षके । दीयन्ते वा न दीयन्ते कवाटादीनि वै तदा ॥ १२ ॥
 नार्गला भृत्पलादीनि सन्ति द्वारेषु भो जनाः । कुण्वर्णो महाश्वो गेह्याभ्याशायां स्थितस्त्विनि ॥ १३ ॥
 श्रूयते न कदा दृष्टः केनापि भूवि माश्रितम् । एवं मन्यपि नोपेक्षा रोगशान्त्यै प्रकार्यते ॥ १४ ॥
 गुप्तरूपास्तस्य दूताः साकेने विचरन्ति हि । न ज्ञायते कदाऽम्माभिर्नागरा इव संस्थिताः ॥ १५ ॥
 आगन्तव्यत्परो दूतस्त्वेके दुर्गे तथा क्षणात् । भेदं कृत्वा तु सर्वत्र दुर्गपालो निहन्यते ॥ १६ ॥
 इत्थं श्रुतं यदाऽम्माभिस्तनन्वस्पां महमशः । वर्तन्ते परदूताश्च नानावेषधरा जनाः ॥ १७ ॥
 जीवन्त्येव चिरं राजा एवं मन्यपि नो भयम् । अयोध्यायां जायते हि तद्वल को वदिष्यति ॥ १८ ॥
 एभिर्दूतैस्तस्मात् राहु आत्मारामस्य चात्र हि । करणीयं भभोः किं हि सच्चिदानन्दरूपिणः ॥ १९ ॥
 तेषां भयं तु युष्माकं दुर्बलाणां सदाऽस्ति हि । अज्ञातुर्वो दुर्बलोऽयं बल्यर्थं दीयते जनेः ॥ २० ॥
 दत्तो बलिस्तु सिंहस्य कदा केन श्रुतोऽत्र न । अतो यूयं हीनवलाः किं निशायां विनिद्रिताः ॥ २१ ॥

रहते हैं, सो क्या आप नहीं जानते ? अम्नु, जो समय गया सो गया । आज सब लोग रातको ध्यानसे मेरे दूतोंकी बातें सुनें और उनपर विचार करें । इसके बाद जो आप लोगोंकी इच्छा हो सो पूछिएगा ॥ ४ ॥ ५ ॥
 “तथाऽम्नु” कहकर वे सब अपने अपने घर गए और अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ पलङ्गण पड़े-पड़े जागते हुए रामके दूतोंके शब्दपर कान लगाय रहें । उड़े पहर रात चलनेपर हाथीमें दीपक लिये, दण्ड तथा अनेक प्रकारके शस्त्र धारण किये, एक हाथीपर दुन्दुभी तथा विविध प्रकारके वस्त्र बजाते हुए गलियों तथा राजमार्गपर घूमने और उन बाजाकी धार निनाद करन हुए व दूत आय और कहने लगे — ॥ ६-९ ॥
 हे गुरुवासियो ! क्या तुम मोहनिद्रामें पड़े सो रहें हो ? यह नींद अच्छी नहीं है । इससे कभी बड़ा भारी अनर्थ हो जायगा । आज तुम लोग स्वस्थ चित्तसे मेरी बात सुना । हम अयोध्यामें मुल नौ द्वार हैं और एक छोटा सा दसवां द्वार भी है ॥ १० ॥ ११ ॥ रामके राज्यमें कोई भय नहीं है । इस कालसे द्वारपाल कभी द्वार बन्द करने हैं, कभी नहीं भी बन्द करने ॥ १२ ॥ उन द्वारोंमें न कोई अर्गलादण्ड है और न जंजीरें ही लगी हैं । सुनते हैं कि नगरकी दक्षिण ओर कोई एक काला खोर रहता है, किन्तु इस नगरमें आज तक उसे किसीने नहीं देखा । वह जान हुए था रोगशान्तिके विषयमें उपक्षा न करना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ उसके दूत गुरुत्वमें अर्जुनमें घूमते रहने हैं । यदि हम लोग असावधान रहे और उसका एक भी दूत किलमें घुम आया तो वह क्षणभरके भीतर हमारा भेद लेकर सब दुर्गपालोंकी मार डालेगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ हमने यह भी सुना है कि उस चारके हजारों दूत नाना प्रकारके वेश धारण करके घूमते हैं ॥ १७ ॥ हमारे राजा राम विशुद्धजीवी हो । जिनके प्रभावसे उन क्षत्रियोंके इतना करनपर भी कोई भय नहीं है । उन रामके बलका अणन कोन कर सकता है ॥ १८ ॥ शत्रुके दूत इन आत्माराम और सच्चिदानन्दस्वरूप रामका क्या कर सकते हैं ? ॥ १९ ॥ हाँ, उन दूतोंमें यदि कुछ भय है तो वह सुन्दहारे जैसे दुर्बलोंको है । ससारी लोग दुर्बल जाव वकरेका ही बलिदान करते हैं ॥ २० ॥ आज तक कहीं यह नहीं सुना गया किसीने सिंहकी बलि दी हो । इस प्रकार विचल होकर भी तुम लोग रातको सोने हो ? ॥ २१ ॥

कदा कृत्वाऽत्र ते मेदं चोरमत्रानयति हि । स कालो ज्ञायते नैव तस्माच्चिद्रा शुभा न हि ॥२२॥
 स्वस्थचित्तास्त्यक्तनिद्रास्त्वस्यां पुर्यामहर्निशम् । पुर्य भूत्वा सदा सन्नः श्रितो धार्यः स्वमग्निधौ ॥२३॥
 कवचानि शरीरेषु सदा धार्याणि मो जनाः । धैर्यं धृत्वा न मेनव्यं यो जागर्ति निरन्तरम् ॥२४॥
 अयोध्यायां न तस्यास्ति चांगदपि कदा मयम् । नैतद्विस्मरणीयं हि मदाऽस्माकं वचः शुभम् ॥२५॥
 सावधानाः सावधानाः सावधानाः सदा जनाः । भवध्वं चात्र साकेतपुरि स्याहि निरन्तरम् ॥२६॥
 हृत्पुङ्खा ते राजदृताः कृत्वा दुन्दुभिनिःस्वनान् । वाद्ययामासुर्वाद्यानि मनुजानि महान्ति च ॥२७॥
 एव सर्वत्र पुर्यां ते विचेरु रामसेवकाः । एवं निशायां नैर्दनेस्त्रिवारं किञ्चिदवगात् ॥२८॥
 पौराद्या बोधिताः प्रापुर्ज्ञानं तस्य विचारतुः । ततः प्रभाते ते सर्वे पौग जानपदादयः ॥२९॥
 सभायां राघवं नत्वा तुष्टाः प्रोचुः पुरः स्थिताः । राम राजीवपद्माश्च त्वद्दूतवचनानि हि ॥३०॥
 श्रूयन्तेऽत्र सदाऽस्माभिर्न विचारस्तदा कुतः । अद्यास्माभिर्निशायां हि त्वद्दूतवचनं शुभम् ॥३१॥
 श्रुत्वा कुतो विचारो हि हृदि बुद्ध्या तवाज्ञया । लब्धं ज्ञानं प्रभोऽस्माभिस्त्वज्ञानं तद्गतं हि नः ॥३२॥
 नेदानीमुपदेशं हि त्वत्तो वाञ्छाम राघव । इति नेपां वचः श्रुत्वा तान् रामः प्राह सस्मितः ॥३३॥
 कथं लब्धं हि तज्ज्ञानं किं भूतं किं विचिन्तितम् । तन्मेऽग्रे कथनीयं हि विस्तरेण यथाक्रमम् ॥३४॥
 इति रामवचः श्रुत्वा जनाः प्रोचुर्मुदान्विताः । शृणु राम महाबाहो यन्लब्धं ज्ञानमुच्यते ॥३५॥
 मोह एव निशा ज्ञेया निद्रा भ्रान्तिस्तु कथ्यते । नेय भ्रान्तिः समोर्चानाऽनर्थो मृत्युर्ग्रमिष्यति ॥३६॥
 अयोध्येयं स्वीयदेहस्तत्र छिद्राणि वै नव । लघु तन्मन्तके ज्ञेयं दत्ताद्या द्वारश्रकाः ॥३७॥
 पश्मौष्ठादीनि द्वारेषु कपाटान्तरितानि च । प्राणाश्च ते राजदृताः पुर्यां नित्यमदति हि ॥३८॥

न जाने कब वे तुम्हारा भेद लेकर उस चोरको यहाँ बुला लाते। उस समयको कोई जान नहीं सकता। इसलिए इस प्रकार सोना ठीक नहीं है ॥ २२ ॥ तुम सब निद्रा त्यागकर रात-दिन इस पुरीमें जागते रहो और अपने पास एक हीक्षण खड़ा रखो ॥ २३ ॥ शरीरपर कवच धारण करो, हृदयमें धैर्य रखो, किसीसे डरो नहीं। जो इस तरह जागता है ॥ २४ ॥ उमें इस अयोध्यामें उस चारसे कोई डर नहीं है। हमारे इन हितकर वचनोंका कभी भूलना मन ॥ २५ ॥ हे अयोध्यावासियों! फिर भी तुमसे कहता हूँ सावधान। सावधान ॥ इस पुरीमें सदा सावध न होकर रहना ॥ २६ ॥ इतना कहकर वे दूत दुन्दुभी तथा अन्यान्ध मन्त्रलमय वाद्य बजाने लगे ॥ २७ ॥ इस रीतिसे दूत रातभर सारी अयोध्यामें घूम-घूमकर थोड़ी-थोड़ी दूरमें तीन-तीन बार लोगोंको वही बात सुना-सुनाकर सजग करत रहे ॥ २८ ॥ दूतोंकी बताया बातोंपर विचार कर-करके वे सब नगरनिवासी जानो हो गये। सब नागरिक और जनपदवासी सभामें रामके पास पहुँचे और प्रणाम करके कहने लगे—हे राजीवपद्माक्ष राम! वैसे तो हम नित्य आपके दूतोंकी बातें सुनते थे। किन्तु अभीतक उसपर विचार नहीं किया था। आज रात्रिमें उनकी बातें सुनकर हमने उनपर आपके आज्ञानुसार विचार भी किया है। हे प्रभो! अब हमारा अज्ञान नष्ट हो गया और ज्ञान प्राप्त हो गया है ॥ २९-३२ ॥ हे राघव। अब मैं आपसे उपदेश नहीं सुनना चाहता। इस तरह उनकी बात सुनकर मुस्कराते हुए राम कहने लगे—॥ ३३ ॥ अच्छा, हमें यह तो बताओ कि वह ज्ञान तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ और तुम लोगोंने उसपर किस प्रकार विचार किया है। मैं विस्तारसे कहूँ सुनाओ ॥ ३४ ॥ रामका प्रश्न सुनकर वे लगे प्रसन्नतासे कहने लगे—हे राम! जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, सो हमलाग कहते हैं। सुनिश्च ॥ ३५ ॥ मोह रात्रि है और भ्रान्ति निद्रा है। यह भ्रान्ति कभी अच्छी नहीं माना जा सकती। इसके फेरमें पड़नेसे अनर्थ यह होगा कि एक न एक दिन मृत्यु घर दवायगी ॥ ३६ ॥ अयोध्या अपना शरीर है। इसमें मुँह-कान आदि नौ द्वार हैं और दसवां द्वार मस्तकमें है। जिसे लोग बहिरंध्र कहते हैं और दाँत आदि इन द्वारोंके रक्षक हैं ॥ ३७ ॥ आँखोंकी पलकें और और ओंठ आदि इनके दरवाजे हैं। प्राण ही राजदूत हैं। जो सदा इस पुरीमें घूँककर लगाते

आत्मा ज्ञेयस्त्वत्र राजा जीवधेन्द्रियदेवता । ज्ञेयाश्च देहनगरे पीरान्त्र रघूत्तम ॥३९॥
 कालो ज्ञेयो महावीरः त्रिदोषाद्या गदाश्च ये । कालस्य सेवका ज्ञेया नागरा इव संस्थिताः ॥४०॥
 दुर्बलास्तेऽत्र जीवाद्यास्नेपापेवास्मि तद्भयम् । किं मोहे पतिता आंताः कालमत्रानयन्ति ते ॥४१॥
 न ज्ञायते मृत्युकालस्तस्माद्भ्रान्तिः शुभाऽत्र न । ज्ञानमेव महासूक्तो वैराग्यं तीक्ष्णता न्वसेः ॥४२॥
 सच्छील कवचं शयं धैर्यं भक्तिर्दृढा न्वयि । आत्मज्ञानेन जागर्ति न तस्यास्ति भयं कदा ॥४३॥
 सावधानं ज्ञाननिष्ठं भक्तिवर्ण्यं सदाऽत्र हि । वाद्यानि वचनान्येव माधनं बोधदानि वै ॥४४॥
 सदा धृतानि हृदये तानि बुद्ध्याऽवलोकयेत् । मोहक्षयः प्रभानोऽयमिदानीं त्वत्पुनः स्थितः ॥४५॥
 त्वमेवान्मा ममेयं ते निवामस्थानमीदृशम् । तवाग्रे ये स्थिताः सर्वे वयं त्वां मुक्तिमागताः ॥४६॥
 किमिदानीं ते प्रष्टव्यं बोधदेयं न्वयाऽद्य किम् । तव कीर्तनमात्रेण नरा मुक्तिं लभन्ति हि ॥४७॥
 वयं स्वदन्तिकाः सर्वे मुक्ता एव न मञ्जयः । इति तेषां वचः श्रुत्वा मस्मिनः प्राह तान्प्रभुः ॥४८॥
 सम्यग्बुद्ध्या परिज्ञातं मुखे स्थेयं सदा जनाः ।

नान्यथा स्वमनिः कार्याऽऽत्मनो राम पृथक् स्थितम् ॥४९॥

इत्युक्त्वा सकलान्नामो ययौ सीतामृहं मुदा । पीताद्या गतमोहास्ने चान्मान मेनिरे पम् ॥५०॥
 एव गमेश भोः शिष्य दूतवाक्यं सुबोधिताः । पीराः सर्वे यथा तच्च मया ते विनिवेदितम् ॥५१॥
 एकदा कैकर्या गममागत्य प्रणिपत्य मा । अवतीन्मभुर वाक्यं विनयान्पूरतः स्थिता ॥५२॥
 राम राजावपराक्ष मया यदपराधितम् । पुराऽज्ञानाख्या तच्च सन्नव्यं वै कृपानुना ॥५३॥
 अहं ते शरणं प्राप्ता मामुद्धर जगन्पते । किञ्चिदुपदिशस्व त्वं येनाज्ञानं विनश्यति ॥५४॥

रहते है ॥ ५० ॥ इनमें आत्मा राजा है और जीव तथा इन्द्रिया इस नगरके निवासी है ॥ ३९ ॥ काल महान्
 चोर है और वात, पित्त, कफ आदि उसके सेवक छुपे देशमें नागरिकोंकी तरह रहते हैं ॥ ४० ॥ इस नगरमें
 जीव आदि नागरिक दुबल है । अतः उस उन्हीकी चोरका विशेष भय रहता है । यदि वे नागरिक मोहग्रस्त
 होकर भ्रममें पड़ जायें तो अवसर पाकर वे चोरके सेवक अवश्य अपने स्वामी कायका बुदा लायंग ॥ ४१ ॥
 मृत्युका समय किसीको मालूम नहीं है । इस कारण गाफिल रहना ठीक नहीं है । इसके लिए ज्ञान साधन है
 और वैराग्यको उसकी तीखी धार समझना चाहिए ॥ ४२ ॥ सदाचार कवच है और आपमें दृढ़ भक्तिका हाना
 ही धैर्य है । जो मनुष्य आत्मज्ञानपूर्वक नित्य जागता रहता है, उसे कभी किसी प्रकारका भय नहीं रहता ॥ ४३ ॥
 यदा सब लोगोंकी जाननिष्ठ हाना चाहिए, यही सावधान रहनेका मन्यव्य है । साधुओंके ज्ञानदायक बातोंके
 समान उन दूतोंके वाक्य है ॥ ४४ ॥ सब लोगोंकी चाहिए कि इन बातोंका हृदयमें रखें और अपनी
 बुद्धिदृष्टिमें देखें । इस प्रकार है राम । आज हमारे मोहनाशका प्रभाव आपके सामने उपस्थित है ॥ ४५ ॥
 आप ही आत्मा हैं और यह सच्चा आपका निवासस्थान है । आपके सामने हम जितने राग उपस्थित हैं,
 सब मुक्त हो गये हैं ॥ ४६ ॥ और आपसे क्या पूछना है और क्या हमारे लिए आपको उपदेश देना है ? हमारा
 तो यह विश्वास है कि आपके नाम-कीर्तनमात्रसे प्राणी मुक्त हो जाते हैं ॥ ४७ ॥ आपके समाप पदुब दृढ़ हम
 सब लोग मुक्त हैं । इसमें कोई संदेह नहीं है । इस तरह उनका बात सुनकर मुनकाने हुए राम बाले—॥ ४८ ॥
 तुम लोगोंने अपनी बुद्धिमें सब कुछ समझ लिया है । अब आनन्दपूर्वक रहो । कभी अपनी बुद्धिमें यह बात
 न आने देना कि राम मुझसे अलग है ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर राम प्रसन्नपूर्वक स ताके महलमें चले गये ।
 जिन पुरवासियोंके किसी प्रकारका अज्ञान था, अब वह सब नष्ट हो गया और वे आत्मज्ञानों बन गये ॥ ५० ॥
 हे शिष्य ! जिस तरह रामके दूतोंसे उनकी आज्ञा जागृत हुई, वह सारी कथा मैंने कह सुनायी ॥ ५१ ॥ एक
 समय कैकयी रामके पास गयी और प्रणाम करके मोठो-मीठा बातोंमें कहने लगा—॥ ५२ ॥ हे कमलवक्त्रके
 समान नेत्रोवाले राम ! मैंने उस समय अज्ञानवश जो अपराध किया था, उसे क्षमा कर दो । क्योंकि तुम
 कृपालु हो ॥ ५३ ॥ मैं जगत्पते । हे तुम्हारी शरणमें आयी हूँ । मेरा उद्धार करो और मुझे कोई ऐसा उपदेश

तत्त्वया वचन श्रुत्वा रामो राजावलोकनः । उवाच कैकेयी वाक्यं मयूर प्रहमन्निव ॥५५॥
 न त्वया मेऽपराधं हि मच्छन्दोऽहं सरस्वती । स्थित्वा तवास्ये मा प्राह वरवाञ्छादि यत्पुनः ॥५६॥
 त्व च कैकेयि शुद्धाऽमिन्वयि क्रोधो न मेऽस्ति वै । श्रुत्वा नीन्वोपदेश हि कारयिष्यति लक्ष्मणः ॥५७॥
 हन्पुक्त्वा तां विमर्षाथ लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् । शिविकास्था हि कैकेयी श्वः प्रभाते गिरा मम ॥५८॥
 न्वया नेया बहिः पुण्याः मरुवाश्च तटे प्रति । अविमृष्टसंस्थानं वर्तते यत्र तत्र हि ॥५९॥
 अविष्टुन्दानिक नान्दा कैकेयी शिविकास्थिताम् । अविवाक्यानि आध्यानि मुहुर्न मम वाक्यतः । ६०॥
 आनेतव्यं ततश्चैव कैकेयी मम सन्निधौ । इति तद्रामवचनं श्रुत्वा स लक्ष्मणोऽपि च ॥६१॥
 तथेत्युक्त्वा तदा राम तूष्णीं तस्थौ तदग्रतः । अथ प्रभाते मौमित्रिगेन्वा भरतमन्दिरे । ६२॥
 शिविकायां स कैकेयी समारुह्य मुदन्विताम् । दासीभिः सेवकैश्चैव वेष्टितां वेत्रपाणिभिः । ६३॥
 तां निनाय बहिः पुण्याः मरुवाश्च तटे वरे । अविष्टुष्टातिकं यानं स्थापयामास लक्ष्मणः । ६४॥
 मुष्तातां कैकेयीं विप्रास्ते ज्ञान्वा दक्षिणेच्छया । दृष्टुः शिविकापृष्ठे लक्ष्मणस्तान्वयवाग्यत् । ६५॥
 अतिमूर्खाश्च पञ्चाद्या ये ते ज्ञेया डिजादयः । दानार्हाः पण्डिता न ते श्रोत्रिया न प्रतिष्ठिताः । ६६॥
 ततो दूतान्निराकृत्य मुक्ताजालानि लक्ष्मणः । ऊर्ध्वं कृत्वा स्वहस्ताभ्यां कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् । ६७॥
 पश्य कैकेयि मानस्त्वमविशुध्य पुनःस्थितम् । रामेण प्रेषिताऽमि त्वमुपदेशार्थमादरात् । ६८॥
 तन्मौमित्रिवचः श्रुत्वाऽऽश्चयमुक्ताऽथ कैकेयी । प्रतारिताऽहं रामेण किमत्र प्रेष्य मादरम् । ६९॥
 इति तर्कान्कुर्वती मा तस्थौ तूष्णीं श्रुणु तदा । तावच्छुश्राव मा मे मे त्वविवाक्यानि वै मुहुः । ७०॥
 तानि श्रुत्वाऽथ कैकेयी तदा चित्तेऽविचारयत् । मे मे त्विति मुहुश्चात्र किमर्थं वचनानि हि ॥७१॥
 अन्यः सर्वा वदन्यत्र गृहोऽर्थस्त्वत्र वर्तते । ततो निर्माल्य कैकेयी नेत्रं ध्यान्वा क्षणं हृदि । ७२॥

तो, जिससे मेरा अज्ञान नष्ट हो जाय । ५४ ॥ इस प्रकार कैकेयीकी बात सुनकर सीता ने मेरे हंसते हुए राम कहने लग्य - । ५५ ॥ हे माता ! तुमने हमारा कोई अपराध नहीं किया है । उस समय हमारी ही इच्छासे सरस्वतीने तुम्हारे पुत्रसे बैठकर यह वर माँगा था । ५६ ॥ हे कैकेयी ! तुम मुझ हो, तुम्हारे ऊपर मर हृदय-मे कुछ भी राध नहीं है । कल लक्ष्मण तुम्हें वहीं ले जाकर उपदेश दिया दगे । ५७ ॥ ऐसा कहकर उसे बिदा कर दिया और लक्ष्मणसे कहा कि हमारे कथनानुसार कल कैकेयीको नगरके बाहर सरयुतटपर जहाँ कि भेड़ रहती है, वहाँ ले जाओ और उन भेड़ोंके पुत्रसे हो य-उम उपदेशमय वाक्य सुनवाकर कैकेयीको यहाँ मर पास ले आओ । इन प्रकार रामका आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने वैसा करना मीकार कर लिया और चुपचाप रामके सम्मुख बैठ रह । इसके अनन्तर सपर लक्ष्मणजा भरतके भवनम पहुच । ६० ६१ ॥ वहाँम कैकेयीको पालकीमे बिठाकर दास दासी तथा छोई दार आदिके साथ उसे अयोध्यापुराके बाहर सरयुतटपर जहाँ कि भेड़ रहती थी, ले गये । वहाँ पहुचकर उन्होंने रथ रोक दिया । ६२ ॥ ६३ ॥ जब कि सरयुतटस लक्ष्मण पालक के साथ जा रहे थे, तब घ टके व हाथोने समझा कि कैकेयी स्तन करके लौट रहा है । फिर गया था, झुण्डा, झुड़ झ हाथ दाखणा लेनक लिये दीड़ पडे । लक्ष्मणने उन्हें रोका । क्योंकि व सत्र झ झुण्डा महामूर्ख, पंगु और अन्य आदि थे । उनमसे कोई भी ब्राह्मण ऐसा न था, जो प्रतिष्ठित श्रोत्रिय रहा हो । ६४-६५ ॥ जब लक्ष्मणके मन करसेपर भी उन लोगोंने पीछा नहीं छोडा, तब विवश होकर उन्होंने सेरकों द्वारा उन्हें हटवाया और मौतियोंकी छड़ोंके बने पर्दोंके अपने हापसे उठाकर कैकेयीसे कहा— । ६६ ॥ हे माँ कैकेयी ! सामने भेड़ोंका झण्डा और देखो । रामका जीवन आदरपूर्वक तुम्हें इन्नीसे उपदेश लेनके लिये भेजा है । ६७ ॥ लक्ष्मणकी बात सुनकर उसे बडा आश्चर्य हुआ और वह अपने मनम सोचने लगी— "रामन यहाँ भेज-कर मुझ बाँझा तो नहीं दिया है ।" इस प्रकार तरह-तरहके तर्क-वितर्क करती हुई कैकेयी क्षणभर चुप-चाप बैठो रहा । तभी उसने कई बार भेड़ोंके पुत्रसे 'मे-मे' की ध्वनि सुनी । ६८ ॥ ७० ॥ सो सुनकर कैकेयान अपन मनमे सोचा कि भेड़ बार-बार 'मे-मे' क्यों करती हैं । इसम कोई न कोई गूढ़ भाव छुपा हुआ

सर्वं ज्ञत्वा मताज्ञाना मुनीष निवर्ग नरा । मतः स्मिन्नानना प्राद लक्ष्मण पुरतः स्थितम् ॥७३॥
लब्धं ज्ञानं मया कल नव मां राघवं प्रति । इति तस्या दचः श्रुत्वा द्रुतं जात्यान्निमुच्य सः ॥७४॥
द्वान्दुर्गगान्धेगादाहूय नगरीं प्रति । कैकेयीमनयादाम रीतागेहं विवेश सा ॥७५॥
तत्र दृष्ट्वा समामीन सीतया रघुनन्दनम् । वदुष्यमानं करशिरसि त्रिवेण्यापं करेण हि ॥७६॥
मीतास्त्रघृतादर्शं पश्यन्त्यं मुनेन्द्वला । तं नन्वा पत्न्या भवता कैकेयी वाकरमश्रवीन् ॥७७॥
राम ते कृपया स्तब्धमविनाकषद्विशरतः । दृष्ट्वा मे गतो मेहधदानो न प्रयोजनम् ॥७८॥
उपदेशेन ते राम मदा मुक्ताऽस्मि नारायण । ननरुणः च न श्र वा मां स्थितः प्राह तां विभुः ॥७९॥
कथं हातं त्वया ज्ञानं विचारश्च कथं कुत । तन्मत्वं विस्तेरेणो नमः प्र दद कैकायि ॥८०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा कैकेरी प्राद राघवम् । शृणु राम तदा लब्धं ज्ञानं तव वदाम्यहम् ॥८१॥
मयाऽविवचनान्येव तत्राविशूययगिरी । श्रुत्वा मे मे स्थिति मया हृदये मन्त्रितं सगम् ॥८२॥
मे ये त्रिविदि समताश्च श्रावयन्ति मुहुर्मेदूः । श्रुत्वा मे मे निजिनि मदा चेद्वाच्यं तर्हि वै मया ॥८३॥
मे मे प्रकल्पने निन्यं पशुपुत्रगृहादिषु । अनो वदतु तोषदंष्ट्राऽय मामेताभिरुच्यते ॥८४॥
तर्ह्यं चोपदेष्टोऽय निषेधं मां प्रकल्प्यते । अनोऽहं न कदा मे मे प्रवदामान्यत पश्य ॥८५॥
मे माता मे सुतश्चाय मे चतुर्षु गृहं वरम् । मे राजर्षं मे सरस्नाय मे मायस्यसुतस्यपम् ॥८६॥
मे शरीरमिदं कान्तं मे दिव्याभरणं वरम् । मे मयग प्रिया दामो पुत्रादीत्यष्टुभा मतिः ॥८७॥
याऽस्मि मे म स्थिति मा त्वच्छब्देति मापना । योऽयामामुर्वचनैः स्पर्शयैः स्पष्टं स्थूतम् ॥८८॥
अन्यद्वाप नरान्सर्वास्ताश्चल्यो बोधयति हि । मेमेवुद्रया मदऽस्माभिः पूर्वजन्मनि वर्तितम् ॥८९॥
देहस्त्वतो हृदेलब्धो गुप्ताभिमे मनिस्तु मा । मन्त्रेनः माऽत्र त्वच्छब्दा नागीकार्या कदाचन ॥९०॥

है। इसके बाद उसने अग्निकुण्ड की ओर आगे बढ़ा और एक गौर वस्त्र धारिणी लगी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ उसका सारा भद्र नष्ट हो जानेपर वह बहुत प्रसन्न हुई और मुस्कुराकर लक्ष्मणसे कहा—वत्स! मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया। अब रामके पास ले चलता। उसकी बात सुनकर लक्ष्मण पश्चात्पराशर डाल दिया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ दूरपर बैठे हुए दोनोंको जोरसे बुलाया और नगरका पीछा किया। वे चला सोताके महाप्रभ पड़वा दिया और वह भीतर चली गया ॥ ७५ ॥ वहीं पहुँचकर बंसी बजायी, विष्णु नाम के पास बैठे हुए मित्रों पर एक विशिष्ट प्रकारकी षण्डी बाध रह गई ॥ ७६ ॥ सोना हाथो, कौन सा शक्ति रक्षा? और राम अपना पुत्रकमल देखने जा रहे हैं। कंकरीयन पट्टबत है। रामका प्रणाम लिया और कहने लगा—॥ ७७ ॥ हे राम! अपरा कृपासे मैंने मेरीक काशी द्वारा मूर्खान्त प्राप्त कर लिया। मन्माद नष्ट हो गया। अब मुझे आपके उद्देश्यकी आवश्यकता नहीं रहा। हे राघव! मैं मदक निराश्रित हूँ। इस प्रकार कंसकी दास मुक्कर मुक्कराते हुए राम बोले—॥ ७८ ॥ ७९ ॥ तुम्हें ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ? नर सिंहास्यार्थक मुने स्तब्धाभा ॥ ८० ॥ रामके इस प्रश्नको सुनकर कंसकीन कहा—॥ ८१ ॥ राजा! तुम मुझसे ज्ञान प्राप्त हुआ है, तो सुनाती हूँ ॥ ८२ ॥ उस महर्षि समूह के पास पहुँचकर मैंने उनमें कुशल लिखने हुए "न-मः" का आवरण सुना। फिर बाँधी देर तक हृदयम विचार किया। तब मैंने विचार किया कि यदि "न-मः" करके मुझे यह सुनाती है कि संसारके लोग या सर्वदा अपने वास्तविकों, घरदार, पशु नातिन "न-मः" में ही हैं। ऐसे कुछ के अभिम पडकर अपना सर्वस्व नष्ट कर जाते हैं। यह ठीक है। इसलिए हे राम! सबसे भी इस समस्ताके बन्धनमें कभी भी नहीं पड़ोगी ॥ ८३-८४ ॥ अभी तक ना मैं—यह यथा है यह भाई है यह मेरा सुन्दर घर है, यह मेरा राज्य है, यह मेरी मोत है, यह भीत्या है, यह मेरा शत्रु है, ये विध्य मर झलकार हैं, यह मेरी प्रिय दासी मंदरा है, ये मेरे बच्चे हैं आदि समस्त, सब नष्ट करने वाली थी। इसके लिए उन भेदोंने मुझे स्पष्ट उपदेश दिया है कि ममता त्याग दो ॥ ८५-८६ ॥ नर सिंहारित स्वामीके अव्याज्य लोगोंको भी ये यही उपदेश देती रहती है कि पूर्वजन्मकी ममता दुर्जन ही मुझे इस दशाको पहुँचाया है और यह भेषका छद्मीर मिला है। अतएव तुम

मेमेमन्या मतिर्जिता याऽस्माकं सकला जनाः । मेमेवुद्वेगा हि युष्माकं मतिः सैव भविष्यति ॥९१॥
 एवं ता शोभयन्त्यत्र जनान्मवचनैः सदा । न तद्वाक्यं जनेषुद्वेगा कदा चित्ते विचार्यते ॥९२॥
 तायां वाक्शेषद्वयेन प्रमदोत्तरं राघव । मेमेवुद्वेगांस्तु मत्तस्त्वतो मुक्ताऽस्म्यहं त्विदम् ॥९३॥
 मे देहस्तिग्मं हि वाङ्मयं यत्तु मयाऽब्रवीं तदा किं ज्वलन्त्यत्र मयारे दुःखदायके ॥९४॥
 अस्त्वयं वा त्वयं यातुं ददौ वाङ्मयं त्वम् । कः पुनः कस्य ह्यो आता सर्वं ब्रह्म न सशयः ॥९५॥
 अहमेव परं ब्रह्म मत्तो ब्रह्म परं न हि । मये यदुद्वेगते चेद् मायेयं तव राघव ॥९६॥
 नश्वरं बुद्बुदकारं सौतं चेद् मया प्रभा । इत्यस्मात्तुः श्रुत्वा श्रीरामः प्राह मस्मिन्तः ॥९७॥
 सम्पक् विचारितं बुद्ध्या स्वभावितं यत्तु त्वम् । गच्छेत् तं पुनः तद्वत्तु जन्ममुक्ताऽति कैकयि ॥९८॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा कैकेयी तोषयाम्ना । देहाभिमानदाना सा नन्या सीतां यद्वत्तम् ॥९९॥
 ययौ भरतमेहं हि नासुक्ता यवापि मा त्वभूत् । एव शिष्यं मया श्रोतमत्रिगण्योपदेशतः ॥१००॥
 यथा ज्ञानं हि कैकेयी ज्ञातं तत्कथितं तव । इदानीं शृणु यच्चान्यत्तं वदामि कुतूहलम् ॥१०१॥
 सुमित्रा त्वेकदा रामं सीतया गृह्णन् स्थितम् । निराक्षयं नचा तं प्राह राम राजीवलोचन ॥१०२॥
 किंचित्ते प्रार्थयाम्यस्य किंचिदुपदिशम्य मया । नन्या वचनं श्रुत्वा तामाह रघुनन्दनः ॥१०३॥
 का त्वं चेति वदती मां पथदुर्गं गमामि ते । यच्छेत्तेह स्वस्वबुद्ध्या हृदि मम्यग्रिचार्य च ॥१०४॥
 श्वो मामेव मम प्रकृत्योत्तरं दर्शय तवः । भक्तपुरदेक्षाम्यस्य येन तुष्टा भविष्यति ॥१०५॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा सुमित्रा विस्मितानना । तूष्णमेव यथा गदं रामवक्त्रे व्यचिन्तयत् ॥१०६॥
 काऽहं पृष्टा राघवेण किं वा देयं मयाऽस्मिन् । काऽहं देयी चातुरा वा मानवी राक्षसी तथा ॥१०७॥
 मानुषी चेत्पहं मत्वा यदि राम वदामि वै । तर्हि नानाशरीराणि ध्रियन्ते नटवन्मया ॥१०८॥

श्लोकोक्तं चाहि कि इस समयताका परिस्थिति बरहे, आपको अगोकार कभी न करे ॥ ८६ ॥ ९० ॥ 'यह मेरा है' इस बुद्धिमें भेदवानि प्रतीत होयगा जो गति हमारी हुई है, वही गति तुम्हारी भी होगी ॥ ९१ ॥ अपने मनमें सबदा सब लोकाका उपदेश देता रहनी है । किन्तु सारा लोका उनका कर्तोपर विचार नहीं करते ॥ ९२ ॥ हे राघव ! आपको देवा और उन भेदका भेद मरी समन बुद्धि नष्ट हो गयी है । इसलिए अब मैं मुक्त हो गयी हूँ ॥ ९३ ॥ 'यह इह मेरा है' इस विचारमें मैं आसक्त था । वह दुःखदायिनी आसक्ति नष्ट हो गयी, तब और रह ही क्या गयी है । यहाँ कौन विमत्ता बड़ा है, कौन किसकी माना है ? सब सच्चिदानन्दमय ब्रह्मका रूप है । इसमें न ई सगुण नहीं है । ९४-९५ ॥ मैं तो पब्रह्म हूँ । मुझ पर कुछ है ही नहीं । हे राघव ! ससारमें जो कुछ दिखायी पड़ रहा है वह सब नृणांसी मां ग है ॥ ९६ ॥ मेरे इस अवम शरीरकी पानीके बुलबुलेकी तरह नश्वर समझ लिया है । इस प्रकार कैकेयीकी बात सुनकर मुस्कराते हुए राम बोले— ॥ ९७ ॥ ठीक है, तुमसे भेदोंका कर्तोपर बहुत अच्छा विचार किया है । अब जाओ और सुखसे अपने घरमें बसो । हे कैकेयि ! अब तुम जीवन्मुक्त हो गयी ॥ ९८ ॥ रामकी बात सुनकर प्रसन्न मन कैकेयी देहाभिमानसे रहित होकर सीता तथा रामको प्रणाम करके अपने बेट भरतके भवनमें चली गयी और तबसे वह किसी वस्तुमें आसक्त नहीं हुई । इस प्रकार भेदकी बातसे कैकेयीकी किस तरह ज्ञान प्रप्त हुआ यह भी वृत्तांत कह सुनायें । अब मैं तुम्हें एक और वृत्तहल भरा वृत्तांत सुनाता हूँ ॥ ९९-१०१ ॥ एक दिन राम सीताके साथ किसी एकान्त स्थानमें बैठे थे । तब तक सुमित्रा वहाँ आ पहुँची और कन लगीं हे राजीवलोचन राम ! मैं तुमसे विनम्र करती हूँ कि मुझे भी कुछ उपदेश दे दो । उसकी बात सुनकर रामने कहा—पहले मुझे यह बतलाओ कि तुम कौन हो ? अपने घर जाओ और स्वस्वबुद्धिसे विचार करके काल मेरे पास आकर बताओ । उस समय मैं तुम्हें ऐसा उपदेश दूँगा, जितसे तुम बहुत प्रसन्न होओगी ॥ १०२-१०३ ॥ इस तरह रामका आदेश सुनकर वह आश्चर्य भरे मनसे उसी बातकी सोचती हुई चुपचाप चली गयी ॥ १०४ ॥ वह सोचने लगी कि

तदा केदं मानुषीन्वमन्य जायते घटेच्च मे । सदाहं मानुषी नैव न चैवान्या कदाचन ॥१०९॥
 मानुषी राक्षसी चेतीमानि नामानि सानि न । देहाद्यैश्च कथ्यते देहस्तु नश्वरः स्मृतः ॥११०॥
 देहाद्विष्णोस्मि कथ्यन्त्या साऽहं रूपं यदेकशः । धर्माणि सर्वदा भूयसां सा काऽहं चेति वेद्यते ॥१११॥
 इदानीं तु मया ज्ञातं यथा विष्णुस्तथा स्वहम् । नामाख्याणि सोऽप्यत्र मन्त्र्यादीनि दधानि हि ॥११२॥
 तथा नानास्वरूपाणि धार्यन्तेऽप्रापि वै मया । एवमेव हि वक्तव्यं तद्धि मे तस्य चामरम् ॥११३॥
 स्ववशोऽस्मि महाविष्णुस्त्वं हि विष्णुवशा सदा । अतो विष्णोः कृत्वा चाहं सन्यमेव मशयः ॥११४॥
 विष्णोर्मे नैव भेदोऽस्ति यथा गङ्गा स्थले घटे । तर्कवाक्यत्र तद्वच्च विष्णुनेवाहमस्मि हि ॥११५॥
 अहमेव यदा विष्णुस्तदा किं चावशेषितम् । एतद्वच्यं तु गमाय जीवन्मुक्ताऽहमस्मि वै ॥११६॥
 एव सुमित्रा संचित्य गताज्ञाना मुदान्विता । अतिक्रम्य निशां तां मा प्रभाते राघवं ययौ ॥११७॥
 गत्वा राम तदा प्राह मया रात्री विविचिता । का ह्य प्रष्टा न्यया पूर्वं तस्यहं मया गधव ॥११८॥
 स्वतो नान्यच्च प्रष्टव्यं त्वद्विष्णाऽहं कदापि न । अन्यकृत्वा मा यथा गेहे निशि म्वे हृदि मंदितम् ॥११९॥
 तन्मवं भावयित्वा तं जीवन्मुक्ताऽभवत्तदा । सुमित्रं गधयोऽप्याह मया यद्यथा विविचिता ॥१२०॥
 जीवन्मुक्ताऽपि चास्वन्नं गच्छ गेहं सुखम् । ततः सुमित्रा मनुष्या रामोहा मृतमव ॥१२१॥
 सीता चापि पृथक् नीत्वा ययौ लक्ष्मणसहितः । एवं शिष्य मया प्रोक्त काऽहं चेति विचारतः ॥१२२॥
 जीवन्मुक्ता सुमित्रा सा बभूव सुखनिर्भरा । अन्यच्च ते वदाम्यद्य तच्छृणुस्व द्विजोत्तम ॥१२३॥

रामने हमसे यही पूछा है न कि मैं कौन हूँ ? मैं इसका क्या उत्तर दूँ । आखिर मैं देवी हूँ, दानवी हूँ, राक्षसी हूँ या मानुषी हूँ क्या हूँ ? यदि रामसे जाकर कह दूँ कि मैं मानुषी हूँ, तो भी नहीं बनता । क्योंकि ऐसा कहना हम नाटकक पात्रका तरह अनेक रूप धारण करने पड़ता है । हमसे निश्चय हुआ कि मैं न मानुषी हूँ, न और हो कुछ । पूर्वजिन मानुषी राक्षसी आदि सारी मजाओं से दूरकी है और वह देह नाशवान् पदार्थ है । इसमें यह मानूँ ही नहीं है कि मैं जगत्में पुण्य हो मैं कोई हूँ और पृथ्वीपर तरह-तरहके रूप धारण करती हूँ । लेकिन यह जो मैं हूँ क्या है ? यह नहीं जानता ॥ १०-१११ ॥ हाँ, अब यह ज्ञात हुआ । जिस तरह भगवान् अनेक रूप धारण करके इस पृथ्वीमें आने हैं, ठीक उसी तरह मैं भी हूँ । वे भी मत्स्य-कूर्म आदि कितने अवतार धारण करके आने आते हैं । वे भी ही समय-समय पर विविध प्रकारके रूप धारण करके जगत्में मैं भी आती-जाती हूँ । फिर इसमें और विष्णुभगवान् अन्तर्गत क्या है ? ॥११२॥११३॥ अन्तः यही है कि विष्णु स्वाधीन है और मैं विष्णुभगवान्के अधीन हूँ । अतएव यह निश्चय हुआ कि मैं विष्णुभगवान्की एक कला हूँ ॥ ११४ ॥ अब यह भी निश्चित हो गया कि हममें और भगवान्में कोई भेद नहीं है । जिस तरह गङ्गाका जल गङ्गाके प्रवाहमें रहता हुआ गङ्गाजल रहता है, उसी तरह घनेमें जाकर भी गङ्गाजल ही रहता है । इसका सार यह निकल कि हममें और भगवान्में कोई भेद नहीं है । हम और भगवान् एक ही हैं । जब मैं स्वयं विष्णुभगवान् हूँ तो वाकी क्या रहा, जो जाकर रामसे पूछूँ । मैं तो जीवन्मुक्त हूँ ॥११५॥११६॥ इस प्रकार विचार करनेसे उनका अज्ञान नष्ट हो गया । वह रात्रि बिताकर सबरे प्रसन्नतापूर्वक रामके पास पहुँची ॥ ११७ ॥ वहाँ रामको प्रणाम करके सुमित्रा कहने लगी-कल आपने मुझसे जो पूछा था कि मैं कौन हूँ ? सो विचार करनेपर मुझे मालूम हुआ कि मैं साक्षात् ब्रह्म हूँ ॥ ११८ ॥ अब मुझे आपसे कुछ भी नहीं पूछना है । क्योंकि मैं आपसे पूछ हूँ ही नहीं । ऐसा कहकर रात्रिकी उन्होंने अपने हृदयमें जैसा विचार किया था सो कह सुनाया । वह सब सुनकर वह वास्तवमें जीवन्मुक्त हो गयी । वह सोचकर रामने कहा- हे माता ! तुमने बहुत ठीक विचार किया है ॥ ११९ ॥ १२० ॥ अब तुम जीवन्मुक्त हो गयी । जाकर आनन्दसे अपने घरमें निवास करो । इससे सुमित्राका मोह नष्ट हो गया और वे राम तथा सीता दोनोंको अलग-अलग प्रणाम करके लक्ष्मणके यहाँ चली गयीं । हे शिष्य ! इस विचारसे कि मैं कौन हूँ, सुमित्रा जीवन्मुक्त हो गयी और उनके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा । हे द्विजोत्तम ! मैं तुम्हें एक और वृत्तान्त बतलाता हूँ, सो सुनो

देहवृद्धिर्यदा मष्टा तदा किं शेषमस्ति हि । सुखं दुःखं तु ब्रूयात् न मे किञ्चिद्वृत्तम् ॥१३॥
 निष्ठत्त्वयं वा पततु देहो भोगाश्रयः प्रभो । अहं स्वदेश एवात्र पृथगुपाधितः स्मृता ॥१४॥
 यथा कुम्भे रीभिर्लो दृश्यतेऽत्र घृपाधितः । त्वचोऽहं न कदा भिजा ब्रह्मवाक्यहरेण वै ॥१५॥
 इति तन्मातृवचनं श्रुत्वा रामः स्मितात्मनः । कीमन्वाश्रय मातृव मुक्ताश्मय न संशयः ॥१६॥
 सम्यग्विचारितं चित्ते दन्मदाकर्ममयिन्द्रियम् । गच्छ त्विदं मुनिं मेहं त्विमां बुद्धिं ददां कृत् ॥१७॥
 किमयं न मया पूर्वं युष्माकम्बवचनेन हि । उपदेशः दत्तस्त्वय तन्मयं न्वं त्रियेष्वपि ॥१८॥
 उपदेशा गुरुर्हेयो युष्माकं तनयस्त्वहम् । कथं युष्माकश्च मातृवहं चोपदिशामि वै ॥१९॥
 स्त्रीणां पतिगुरुर्ज्येयः श्वभिर्नान्यो गुरुः कदा । कार्यस्तस्मात् मया नैव युष्मान् स्वाभ्योपदेशितम् ॥२०॥
 पौगणं च मुह्यन्तस्तथा स्त्रीयपुगोहितः । अतस्तेषां मयि नया दत्तवाक्योपदेशितम् ॥२१॥
 पगस्यैरेव युष्माकमुपदेशः कुतो मया । गच्छ मेहे पुन त्विष्टं सदा मां परिगच्छ ॥२२॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा कीमन्वा तुष्टमानसा । राम नन्वा ययो मेहं मनुष्या मन्विता मुखम् ॥२३॥
 एवं ता रावचन्द्रेण बोधिता मातरः शुभाः । स्वस्वाधुनाः सये गर्वाः स्वदेहान्मुमुक्षुः सुखम् ॥२४॥
 रामसाक्षिष्यमात्रेण विमानवर्ममन्विताः । तन्मु नयन्तु वंकुष्ठं रावदेर्णव मन्विताः ॥२५॥
 शिष्य तासां महद्वाक्यं यामां रामादिभिस्त्रिभिः । परलोकादि सत्त्वमं महर्षिर्निर्दिशत् ॥२६॥
 एव शिष्य मया प्रोक्ता तासामूर्ध्वगतिस्तथा । उपदेशस्तथा तासां प्रोक्ताश्चावचने भया ॥२७॥
 इति श्रीशतकीटिरामचरितातर्गते श्रीमदानन्दरामायणे । नन्दकाण्डे मन्मथपुत्रादौ नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

— ४३८ —

जबम यह समझ लिया है कि यह 'अहं' शब्द देहमें सम्बन्ध रखता है—आत्मासे नहीं । तबसे मैं इसका परित्याग कर दिया है । ऐसा करनेमें मेरे यह देहबुद्धि भी नष्ट हो गयी है कि मैं देहकी हूँ ॥१४॥ अब कि वह बुद्धि नष्ट हो गयी, तब फिर बाकी हो क्या रह गया । हे गुरुवत्तम ! मेने समझा है कि मैं मर्यादा मया दत्त इस देहके लिए है मर-आत्मा, के लिए नहीं । ॥१४॥ भोगका आश्रय विना यह क्या है या नष्ट हो जाय । हे प्रभो ! वास्तवमें तो मैं अपना एक अंग हूँ । माताशब्द तो के : उपाधिमात्र है ॥१५॥ जो तरह जैसे कि घाघमें यह सब सेंसेपर उसमें एक सूर्य और दिशा उस जगत्ता है । आपसे आ ग होकर मैं भी रह ही नहीं सकती । मैं ही रहता हूँ ॥१६॥ इस प्रकार माता का शब्द मुनिकर मुनिकर दत्त मन्मथ नाम दत्त । तुम आज मुक्त हो गयी । इनमें कुछ भी संशय नहीं । ॥१७॥ तुम्हें जन्म ब्रह्मका वचन देकर जोकि विचार किया है । अब जाओ, अनन्दम चरण रहो और अपनी इस बुद्धिसे दृष्टि कर लो ॥१८॥ हे माताजी ! जब आप लोगोंने मुझसे उपदेश सुनता चाहा था और मैं कुछ न कह सका । तब आपने उपदेश दिया, उसका भी कारण गुनो ॥१९॥ इसमें यह अर्थ है कि उपदेश जोका : दत्त माता है, विष्णु म आका पुत्र है । ऐसी दशामें उपदेश किस तरह हूँ ? ॥२०॥ शास्त्र भी कहता है कि स्वयं का पुत्र एकमात्र परिगच्छता है उसका उपदेश और कोई हा ही नहीं रखता । त्रिगोत्रा का विचार भी यह है कि स्वयं का पुत्र और विष्णु का आना मुक्त न बनाय । इसी लिए मैंने आपकी आज्ञा सुनने का उपाय नहीं दिया । ॥२१॥ ॥२२॥ यदि दूसरी ही क मुझसे उपदेश दिया । जाजा परम आनन्दपुत्र के देह और माता का ज्ञान करती रहो । ॥२३॥ रामकी बात सुनकर कामरूप प्रमत्त मनन अपने मन्मथ चली गयी और मुझमें रहने लगी । ॥२४॥ इस तरह रामचन्द्रजीके द्वारा उपदेश प कर वे माताएँ बहुत दिनों तक अनन्दम रहो और आयु समाप्त हो जानेपर उन्होंने हीर स्वाग दिया ॥२५॥ रामके पास रहनेके कारण उन अन्ध विम मन्मथ के सब वंकुष्ठवाम गयी ॥२६॥ हे शिष्य ! उन माताओंका वचन भयंकर था जिनका पशुपतिक क्रियाओंको दाम दत्त आदिन दत्त सम्बन्ध किता । ॥२७॥ इस प्रकार मैंने दत्त माता के अर्धगतिसे तन्मय स्वयं ही बने तथा उपदेश आदि कह मुनाया ॥२८॥ इति श्रीशतकीटिरामचरितातर्गते श्रीमदानन्दरामायणे मान्मीतीय ५० रामनेजयःपण्डितकृत उपाध्याय पण्डितकाण्डे दत्त माता सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(रामपूजाका विस्तार)

विष्णुदास उवाच

कथं श्रीगणेशाय रामोपासकमानवः । कार्या वै मानसी पूजा बहिःपूजा तथा शुभा ॥ १ ॥
 कथं चोपासना ग्राह्या गुरो श्रीगणेशाय च । का श्रेष्ठोपासना चात्र कः श्रेष्ठोऽत्र गुरुस्तथा ॥ २ ॥
 के के मन्त्रा गणेशस्य भक्तानां मिष्टिदायकाः । निधिम्नोपदा तस्य किं किं ततोपवर्द्धनम् ॥ ३ ॥
 कः श्रेष्ठोऽत्र वरो देवो यस्य ग्राह्या हुपासना । तन्मये विस्तरेणैव गुरो त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । सर्वं तद्विस्तरंणाय त्वदग्रे कल्पने मया ॥ ५ ॥
 आदौ गुरुं परीक्षपात्रं तच्चिह्नैश्च द्विजोत्तम । उपदेशस्तनस्तस्माद्ग्राह्यमर्थे विधानतः ॥ ६ ॥
 गुरोर्ध्वं वात्र चिह्नानि तत्रादौ प्रवक्ष्याम्यम् । क्रोधी कुप्टी महाभोगी मलिनो निर्धुङ्गो जडः ॥ ७ ॥
 अपण्डितो निन्दकश्च लोलुपो विषयातुरः । दांभिको गर्वमगुक्तः पाषाण्मा दुष्टवशजः ॥ ८ ॥
 घातो परद्रोहकर्ता परद्रव्यापहारकः । अजितान्मा वेदवाद्यः परदारस्तः सदा ॥ ९ ॥
 परदोषारोपकश्च कृपणश्चाजितेन्द्रियः । वेददेवद्विजानीनां यतितीर्थगतामपि ॥ १० ॥
 तुलसीवह्निसर्पाणां द्वेषा योग्यो गुरुर्न हि । वेत्ता सकलधर्माणां शास्त्रेषु परिनिष्ठितः ॥ ११ ॥
 सन्यवाङ् मितभुग्ज्ञानी कलाबान्ध्वजयशजः । सन्कर्मनिष्ठो धर्माणामुपदेष्टा सुबुद्धिदः ॥ १२ ॥
 योगाभ्यासकलाभिज्ञो योगदान्ममदर्शनः । कृतकर्मा तीर्थसेवी धर्माधर्मविवेचकः ॥ १३ ॥
 ब्रह्मचारी गृहस्थो वा ज्ञानप्रस्थाश्रमी यतिः । स्वाश्रमाचारमभिष्ठो बुद्धिमान्विजितेन्द्रियः ॥ १४ ॥

विष्णुदासन कहता—हे गुरो ! इस संसारमें रामको उपासना करनेवालोंको रामको मानसी पूजा किस प्रकार करनी चाहिए ? ॥ १ ॥ और फिर गुरुके नामसे उपासना किस प्रकार ग्रहण करनी चाहिए ? समस्त उपासनाओंमें सर्वश्रेष्ठ उपासना कौन-सी है, और श्रेष्ठ गुरु कौनसा होता है सो भी बतला दीजिए ॥ २ ॥ साथ ही यह भी बतलाइए कि रामके कौन-कौनसे ऐसे मन्त्र हैं, जिनसे भक्तोंका आनन्द प्राप्त होता है । कौन-कौन-सी तियाथी ऐसी हैं, जिनसे भक्तोंका मन मन्तुष्ट होता है ॥ ३ ॥ इस संसारमें कौन श्रेष्ठ देवता है, जिसकी उपासना की जाय । हे गुरो ! यह सब आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥ ४ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य । तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । मैं तुम्हारे प्रश्नके अनुसार सारी बातें विस्तारपूर्वक कहता हूँ । सावधान हाकर सुनो ॥ ५ ॥ लोगोंको चाहिये कि पहले गुरुको परीक्षा करके उनके चिह्न समझें । इसके अनन्तर किसी पवित्र तीर्थमें उनसे विविध उपदेश ग्रहण करे ॥ ६ ॥ प्रसन्नवश पहले मैं तुम्हें गुरुके लक्षण बतलाता हूँ । जो क्रोधी, कुप्टी, ग्रहरोगका रोगी (जिसको भूत-वैताल आदि लगते हों), मला कुर्वला, निन्दकी, जड ॥ ७ ॥ अपण्डित (अच्छा बुरा न जाननेवाला), निन्दक, लोलुप, विषयी, पाषण्डी, अभिमानी, पापी, दुपित कुलमें उत्पन्न ॥ ८ ॥ विश्वासघाती, दूसरेमें दोह करनेवाला, दूसरेका धन अपहरण करनेवाला, अजितात्मा (जिसने अपनी आत्माको नहीं जीता है) वेदसे बहिष्कृत (नामितक), दूसरेको स्त्रोसे प्रेम करनेवाला ॥ ९ ॥ दूसरेपर दोषारोप करनेवाला, कृपण (कजूस) तथा वेद, देवता, ब्राह्मण, सन्त, तीर्थ, गौ, तुलसी, अग्नि और सूर्य इनसे द्वेष रखनेवाला हा । ऐसीको भूलकर भी गुरु नहीं बनाना चाहिए । जो सब धर्मोंका ज्ञाता, शास्त्रोंपर विश्वास करनेवाला ॥ १० ॥ ११ ॥ सच बोझनेवाला, मिताहारी, ज्ञानी, कलाविद् ब्राह्मणके वंशमें उत्पन्न, अच्छे कामोंमें लगा हुआ, धर्मका उपदेष्टा, अच्छी बुद्धि देनेवाला ॥ १२ ॥ योगाभ्यासकी कलाओंका ज्ञाता, योगी, सबको समान दृष्टिसे देखनेवाला, केवल उपदेश न देकर स्वयं कर्म करनेवाला, तीर्थसेवी, धर्म-अधर्मकी विवेचना करनेमें निपुण ॥ १३ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, ज्ञानप्रस्थाश्रमी, योगी,

क्षमी कृपामूर्ध्नुवाक् सुमुक्तः सौम्यदर्शनः । अनिद्रश्च समुद्योगी शान्तात्मा परतोषकृत् ॥१५॥
 औदार्यवान् ज्ञाननिष्ठः शुचिस्वयक्तपरिग्रहः । इत्यादिगुणयुक्तो यः स गुरुः परमोत्तमः ॥१६॥
 तस्य सेवां चिरं कृत्वा सेवया तं प्रमाद्य च । तस्मादुपामना ग्राह्या सुतीर्थे विधिपूर्विका ॥१७॥
 उपामनास्त्रयः सन्ति सान्त्विकी राजसी तथा । तामसी च तृतीया सा महिंताञ्च निगद्यते ॥१८॥
 भूतवेतालकूर्मादपिशाचानामुपामना । सा ज्ञेया तामसी धीरा देवानां सान्त्विकी स्मृता ॥१९॥
 यक्षाणां राक्षसानां च या ज्ञेया सा तु राक्षसी । शैवा सौराश्च गणेशाः शाक्ताश्च वैष्णवास्तथा ॥२०॥
 अवतारास्त्वमंरुपासाः पंचानां सन्ति भूतले । तेषामुपामना ग्राह्या गुणेरास्याद्भिजातिभिः ॥२१॥
 पचानामवतारेषु विष्णोरेव वदाम्यहम् । चतुश्चत्वारिंशन्मिदानवतारान्महत्तमान् ॥२२॥
 पुरुषोत्तमो विधिश्चैव रुद्रो नारायणस्तथा । हर्मोऽथ दत्तात्रेयश्च कुमारी कृपमस्तथा ॥२३॥
 हयग्रीवस्तथा मत्स्यः कूर्मा बाराह एव च । नारमिहो वामनश्च जामदग्न्यस्तथैव च ॥२४॥
 रामः कृष्णस्तथा बौद्धः कल्किर्यज्ञो हरिश्चनया । बालविन्ध्योद्धारकश्च पृथुर्धन्वंतरिस्तथा ॥२५॥
 मोहिनी नारदो व्यासः कपिलः केशवस्तथा । माधवाश्च गोविंदो मधुसूदन एव च ॥२६॥
 त्रिविक्रमः श्रीधरश्च पद्मनाभस्तथा स्मृतः । दामोदरस्तथा मकरपेणः प्रद्युम्न एव च ॥२७॥
 अनिरुद्धोऽश्वत्थश्च सन्ध्याश्च जनार्दनः । उपेन्द्रश्च हृषीकेशस्त्वैने ज्ञेया महत्तमाः ॥२८॥
 मत्स्याद्या अवताराश्च दर्शतेऽपि चोत्तमा । दशावताम्भयेऽपि रामकृष्णौ महत्तमौ ॥२९॥
 ताम्रामपि वरः पूर्वः सन्यसंधो रघूत्तमः । एकपत्नीव्रतो वीरस्त्वेकधाणो नृपोत्तमः ॥३०॥
 सप्तद्वीपपतिः श्रीमालश्च चामरमण्डितः । एवं ज्ञात्वोपामनाऽत्र ग्राह्या श्रीगव्यस्य च ॥३१॥
 गुरूपदिष्टविधिना सुमुहूर्ते शुभस्थले । अथवा तत्तद्देवानां ग्राह्या तज्जन्मपत्तिधौ ॥३२॥

जिस आश्रममें हो उनके नियमोंका पालन करनेवाला, बुद्धिमान्, इन्द्रियोंकी वशम रखनेवाला, ॥ १४ ॥
 क्षमाशाल, कृपा नु मयुरमायी, अच्छे सुखवाला, सौम्यदर्शी, कम सोनेवाला, सदा उद्योगमें लगा हुआ,
 शान्तात्मा, दूसरोंको प्रसन्न करनेमें तत्पर, ॥ १५ ॥ उदार, ज्ञाननिष्ठ, पवित्र और दान आदि ग्रहण करनेसे
 पराङ्मुख, इन गुणोंसे विभूषित पुरुष ही उत्तम गुरु होता है ॥ १६ ॥ ऐसे गुरुका बहुत दिनोंतक सेवा
 करके उसे प्रमत्त करे । तब किसी अच्छे तीर्थमें उससे विधिपूर्वक उपासनाका उपदेश ग्रहण करे ॥ १७ ॥
 उपासना भी तीन प्रकारकी होती है । सान्त्विकी, राजसी और ताम्रमां । इनमें तामसी उपासना निन्दित
 मानी गयी है ॥ १८ ॥ भूत, वेताल, कूर्माण्ड और पिशाच आदिनी घोर उपासना तामसी कही गयी है ।
 देवताओंकी उपासना सान्त्विकी कही जाती है ॥ १९ ॥ यक्षों और राक्षसोंकी उपासना राजसी उपासना
 कहलाती है । शिव, सूर्य, गणेश, शक्ति तथा विष्णु इन पाँचों देवोंके अमर अवतार हैं । स्त्रियोंकी चाहिये कि
 गुरुके मुखसे इन्हों पाँच देवोंमें किसी एककी उपासना ग्रहण करे ॥ २० ॥ २१ ॥ ऊपर कहे गये देवताओंमें मैं
 यहाँ विष्णु भगवान्के बड़े बड़े चौशल्लिख अवतार बतला रहा हूँ ॥ २२ ॥ पुरुषोत्तम, गरुड, नारायण, हंस,
 दत्तात्रेय, कुमार, कृपम, हयग्रीव, मत्स्य, कूर्म, बाराह, रुद्रिह, वामन, परशुराम, ॥ २३ ॥ २४ ॥ राम, कृष्ण,
 बौद्ध, कल्कि, यज्ञ, हरि, बालविन्ध्य, उद्धारक, पृथु, धन्वंतरि, मोहिनी, नारद, व्यास, कपिल, केशव, माधव,
 गोविन्द, मधुसूदन, ॥ २५ ॥ २६ ॥ त्रिविक्रम, श्रीधर, पद्मनाभ, दामोदर, मकरपेण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अश्वो-
 त्तम, अक्रुत, जनार्दन, उपेन्द्र और हृषीकेश ये श्रेष्ठ अवतार माने गये हैं । इन अवतारोंमें भी मत्स्य-कूर्मादि
 दस अवतार श्रेष्ठ माने जाते हैं और इन दसोंमें भी राम और कृष्ण श्रेष्ठ माने गये हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥
 इन दोनोंमें भी सत्यप्रतिज्ञ रामबन्ध सबसे श्रेष्ठ है । क्योंकि ये एकपत्नीव्रती, वीर, एक वाणधारी और सब
 राजाओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ ये सातों द्वीपोंके अधिपति, श्रीमान्, छत्र और चमरसे सुशोभित हैं । ऐसा समस्त-
 कर भक्तोंकी चाहिए कि गुरुके द्वारा उपदिष्ट विधिके अनुसार अच्छे मुहूर्त तथा पवित्र स्थानमें
 श्रीरामचन्द्रजीकी उपासनाका मन्त्र लें । अथवा ऊपर गिनाये देवताओंमेंसे जिसपर जिसकी शक्ति हो, उसीकी

चैत्रे मासि दिने पक्षे नवम्यां रामजन्मनि । उपासनानन्तरं हि रामं भक्त्या प्रपूजयेत् ॥३३॥
 एवं यस्यावतारस्य गृहीतोपासना नरैः । तैस्तस्य जन्मदिवसे कार्यं पूजा महोत्सवैः ॥३४॥
 अथो दशावताराणां शिष्य जन्मदिनानि ते । प्रोच्यन्तेऽत्र मृणुष्व त्वं येन कल्पयेन्नरः ॥३५॥
 चैत्रे तु शुक्लपक्षम्यां भगवान्मीनरूपधृक् । ज्येष्ठे तु शुक्लद्वादश्यां कूर्मरूपधरो हरिः ॥३६॥
 चैत्र शुक्लनवम्यां तु हरिर्वागिह रूपधृक् । वैशाखेऽभ्युच्चतुर्दश्यां शुक्लपक्षे चक्रेश्वरी ॥३७॥
 मामिमाद्रूपदे शुक्ले द्वादश्यां वामनस्त्वभूत् । वैशाखे जामदग्न्यस्तु तृतीयायां मिते त्वभूत् ॥३८॥
 चैत्रशुक्लनवम्यां तु मध्याह्ने राघवस्त्वभूत् । कृष्णाष्टम्यां श्रावणे हि कृष्णोऽभून्मधुरापुरि ॥३९॥
 पौषशुक्ला सप्तमी या बुद्धजन्मतिथिस्तु सा । माघशुक्लतृतीया तु कल्किनः सा तिथिः स्मृता ॥४०॥

अहो मध्ये वामनो रामरामौ मत्स्यः क्रोडधापगङ्गे विभागे ।

कूर्मः सिन्धो बुद्धकल्की च सायं कृष्णो रात्रौ कालमाम्ये च पूर्वे ॥४१॥

एवं तज्जन्मकालश्च ज्ञात्वा तेषामुपासकैः । उन्मवः परमः कार्यस्मन्तद्देवप्रपूजने ॥४२॥
 निम्नपूजा प्रकृत्या भक्त्या तेषामुपासकैः । विशेषाज्जन्मदिवसे कार्यं तत्पूजने मृदा ॥४३॥
 गुरोर्गृहातो यो मन्त्रस्तं निम्न हृदये जपेत् । राममन्त्रास्त्यनेकाश्च शतवर्णान्मनो मनुः ॥४४॥
 पञ्चाशद्वर्णकश्चापि द्विचत्वारिंशदक्षरः । द्वात्रिंशदक्षरश्चाथ सप्तविंशाक्षस्तथा ॥४५॥
 पञ्चविंशद्वर्णकश्च चतुर्विंशाक्षरस्तथा । एकविंशद्वर्णकश्च त्रिदश्यात्मकस्तथा ॥४६॥
 अष्टादशवर्णकश्च षोडशाक्षर एव च । पञ्चदशवर्णकश्च चतुर्दशाक्षरस्तथा ॥४७॥
 त्रयोदशाक्षरश्चापि द्वादशाक्षर एव च । एकादशाक्षरश्चापि तथा मन्त्रो दशाक्षरः ॥४८॥
 नवाक्षरोऽष्टवर्णश्च सप्ताक्षरमनुस्तथा । षडक्षरो राममन्त्रस्तथा पञ्चाक्षरो मनुः ॥४९॥

जन्मतिथिपर उसकी उपासना ग्रहण करे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ रामकी उपासना ग्रहण करनेवालोंको चाहिए कि
 चैत्रमासके शुक्लपक्षमें नवमी (रामजन्म) के दिन उपासना ग्रहण करे । उसके बाद भक्तिपूर्वक रामका पूजन
 कर ॥ ३३ ॥ इस तरह जिस अवतारको उपासना ग्रहण करनी हो, उसके जन्मदिवसपर महान् उत्सवके
 साथ पूजा करना चाहिए ॥ ३४ ॥ हे शिष्य ! अब मैं तुम्हें दसों अवतारोंके जन्मदिवस बतलाता हूँ । जिनमें
 लोगोंको अपने उपास्य देवताका पूजन करना चाहिए ॥ ३५ ॥ चैत्र शुक्ल पक्षमेंको भगवान्ने मत्स्यावतार
 लिया था । ज्येष्ठ शुक्लपक्षकी द्वादश्याको भगवान्ने कूर्मरूप धारण किया था । चैत्र कृष्ण नवमासी भगवान्ने
 वागहिरूप धारण किया था । वैशाख शुक्ल चतुर्दश्याको नृत्तिरूप धारण किया था ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ माद्रूपद
 शुक्ल द्वादश्याको वामनरूप धारण किया था । वैशाख शुक्ल तृतीयाको ये परशुराम बने थे । ३८ ॥ चैत्र
 शुक्ल नवमीको मध्याह्नकालमें भगवान्ने रामका अवतार लिया था । भाद्रपद कृष्णपक्षकी अष्टमीको भगवान्ने
 मधुराम कृष्णरूपसे अवतार लिया था ॥ ३९ ॥ पौष शुक्ल सप्तमीको बुद्धकी जन्मतिथि होती है । माघ
 शुक्ल तृतीयाको कल्कि भगवान्की जन्मतिथि होती है ॥ ४० ॥ दोपहरके समय वामन राम और कल्कीका
 जन्म हुआ था । मत्स्य बाराह इन दोनोंका जन्म दिनके तीसरे पहर हुआ था । कूर्म, नृसिंह, बुद्ध और कल्कीका
 अवतार सन्ध्याके समय हुआ था और श्रीकृष्णचन्द्रजीका जन्म आधी रातको हुआ था ॥ ४१ ॥ इस प्रकार
 अनेक-अनेक उपास्य देवोंका जन्मकाल जानकर उस समय महान् उत्सव मनाते हुए उनकी पूजा करनी चाहिए
 ॥ ४२ ॥ उपासकोंको उचित है कि निम्न अपने आराध्य देवोंकी पूजा करे । विशेषकर उनके जन्मदिवसको
 उत्सव और पूजन अवश्य करना चाहिये ॥ ४३ ॥ गुरुसे जो मन्त्र मिले, हृदयमें सर्वदा उसका जप
 करता रहे । राममन्त्र भी अनेक प्रकारके हैं । उनमेंसे एक सौ अक्षरोका, एक पचास अक्षरोका, एक
 बत्तीस अक्षरोका, एक बीस अक्षरोका, एक सत्ताइस अक्षरोका, एक चौबीस अक्षरोका, एक द्वादसी
 अक्षरोका, एक बीस अक्षरोका, ॥ ४४-४६ ॥ एक अठारह अक्षरोका, एक सोलह अक्षरोका, एक पन्द्रह
 अक्षरोका, एक चौदह अक्षरोका, एक तेरह अक्षरोका, एक बारह अक्षरोका, एक ग्यारह अक्षरोका, एक दश

चतुर्वर्णात्मकश्चापि तथा वर्णप्रयान्मकः । इयस्यो राममन्त्रश्च मनुस्त्वेषाक्षरोऽपि च ॥५०॥
 एवं वानाविधा मन्त्राः श्रुत्योऽथ महत्प्रभः । गुणोस्त्वेको गृहीत्याऽथ जपेन्स्त्रीराममभिधी ॥५१॥
 उपासनाविधानं च रामोपासकमानसैः । यथा मन्त्रस्य रूपं हि विज्ञेयं मन्त्रशास्त्रतः ॥५२॥
 अधुना मानसी पूजाविधानं च मनोवदते । यदण्डके सुतीक्ष्णाय कथितं कुम्भजनमना ॥५३॥
 सुतीक्ष्णस्त्वेकदाऽण्डस्त्वं दृष्ट्वा महति संस्थितम् । प्रणम्य परमा भक्त्या प्रोवाच विनयान्वितः ॥५४॥

सुतीक्ष्ण उवाच

हृदये मानसी पूजा कीदृशी च वद प्रभो । उपचारैः कतिविधैः पूज्यते रघुनन्दनः ॥५५॥

अगस्त्य उवाच

राम पद्मविज्जालाक्षं कालाभ्युदयमप्रभम् । स्मितशक्त्रं मुष्माभीनं चिन्तयेच्चित्तपुष्करे ॥५६॥
 रागादिकलुपं चित्तं वंताग्रेण तुर्निर्गतम् । कृत्वा च्छात्रं नदा रत्नं भक्त्यन्धविमुक्तये ॥५७॥
 प्रागः शुद्धयपुर्भूया श्रीराममिस्ताद्रेतः । विविक्तदेशवासित्वं ध्यानं पूजां सप्ताहमेव ॥५८॥
 नाभिकुन्दसमुद्भूतं कदलीकुमुदोपमम् । अष्टपत्रं स्निग्धवर्णं ध्यायेद्दृष्ट्वा दयपंकजम् ॥५९॥
 तन्पद्मं रामनाम्नैव पुष्पलं कृत्वाऽस्य मध्यमे । भासयेन्मूर्त्तिसोपाग्निमण्डलानुत्तरात्तरम् ॥६०॥
 तस्योपरि त्र्यसेदिव्यं पाठं रत्नमयोज्ज्वलम् । तन्पद्मे राघवं ध्यायेन्मूर्त्तौ तसमप्रभम् ॥६१॥
 इंदीवरनिभं शीतं विज्जालाक्षं सुवक्षसम् । उग्रदाधितमद्भास्वन्कुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥६२॥
 सुनासं सुकिरीटं च सुकपोलं शुचिस्मितम् । विज्ञानमुद्रं त्रिभुजं कंबुग्रीवं सुकुन्तलम् ॥६३॥
 नानारत्नवर्षादिज्वहारैर्भूषितमन्ययम् । त्रिधु-पुञ्जप्रतीकांश्च वस्त्रपुष्पधरं हरिम् ॥६४॥

अक्षरोका, एक नौ अक्षरोका, एक भाठ अक्षरोका, एक सात अक्षरोका, एक छ अक्षरोका, एक पांच अक्षरोका, एक चार अक्षरोका, एक तीन अक्षरोका, एक दो अक्षरोका और एक एक अक्षरोका राममंत्र है ॥ ४७-५० ॥ एक तरह अनेक प्रकार के राममंत्र हैं । उपासकको चाहिये कि उनमें से किसी भी एक मंत्रका गुरुसे ग्रहण करे और श्रीरामचन्द्रजीके पास बैठकर उसका श्रवण करे ॥ ५१ ॥ रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि उपासनाकी विधि और मन्त्रका स्वरूप मन्त्रशास्त्रसे समझ लें ॥ ५२ ॥ अब मैं यहाँ रामकी मानसी पूजाका विधान बतला रहा हूँ । जिसे कि दण्डक वनमें अगस्त्यजीने मुतीक्ष्ण ऋषिको बतलाया था ॥ ५३ ॥ एक दिन अगस्त्यजी एकान्तमें बैठे थे । उसी समय मुतीक्ष्णजी आकर परम भाक्तसे अगस्त्यको प्रणाम किया और विनयपूर्वक कहने लगे ॥ ५४ ॥ मुतीक्ष्णने कहा—हूँ प्रभो ! उपासकोका मानसी पूजा कैसे करनी चाहिये । इस पूजामें किन किन उपचारोंसे रामका पूजन किया जाता है, सा भाव बतलाइए ॥ ५५ ॥ अगस्त्यने कहा कि उपासकको चाहिए कि पहले वह अपने हृदयरूपी कमलपर बैठे हुए रामका इस प्रकार ध्यान करे—जिनके कमलको तरह विशाल नेत्र हैं । काल भस्मके समान नील वर्ण हैं । मुस्कराता हुआ मुख है और वे आनन्दपूर्वक बैठे हैं ॥ ५६ ॥ उपासकका यह भी कर्तव्य है कि राग द्वेष आदिने कर्तुपित्त चित्तको वंताग्रेसे निर्मूल करे । तब अवपाशसे मुक्त होनेके लिए रामका ध्यान करे ॥ ५७ ॥ सबसे शरीरको पवित्र करके तन्दावों सर्वथा छोड़कर हिसा एकान्त स्थानमें ध्यान और पूजन करे ॥ ५८ ॥ नाभिकुण्डसे निकले हुए कदलीपुष्पके समान आठ दलीयाने और चिकने हृत्परुषी कमलका ध्यान करे ॥ ५९ ॥ उस कमलको रामनामसे विकसित करके बीचमें सूर्य, सोम एवं अग्निमण्डलसे भी अधिक प्रकाशमान तेजका ध्यान करे ॥ ६० ॥ उसपर रत्नमय उज्ज्वल धोकी रखनेकी भावना करके उसके बीचोबीच कराड़ों सूयके समान प्रकाशमान रामका ध्यान करे ॥ ६१ ॥ कमलका नाई जिनका विशाल अंश है । दमकती हुई रीप्तिसे प्रकाशित कुण्डल जिनके कानोंमें पड़े हैं ॥ ६२ ॥ जिनकी सुन्दर नासिका है, जो सुन्दर किरीट धारण किये हैं, जिनका सुन्दर कपोल है, मोठी मुसकान है, वे विज्ञानमुद्रा धारण किये हैं, उनकी दो भुजाएँ हैं, हाँसके समान ग्रीवा है, उनके कानों और कमरके हुए केशपाश हैं, जो अनेक रत्नोंसे गूथी दिव्य माला पहने हैं, जिनका कभी भी

वीगसनस्थ मंथानतरमूलनिवासिनम् । महासुगन्धलिप्ताङ्गं वनमालाविराजितम् ॥६५॥
 वामपाशे स्थितां सीतां चामीकानमप्रभाम् । लालारक्षधरां देवीं चारुशर्मा शुभाननाम् ॥६६॥
 पश्यन्तीं स्निग्धया दृष्ट्या दिव्यां कल्पविराजिताम् । छत्रचामरहस्तेन लक्ष्मणेन सुसेवितम् ॥६७॥
 हनुमत्प्रमुखैर्नित्यं चानरैः परिवागितम् । स्तूरमानं कपिगणैः सेवितं भरतादिभिः ॥६८॥
 मनन्दनादिभिश्चान्यैर्योगिद्वैतैः स्तुतं मदा । यवशास्त्रार्थकुशल योगज्ञं योगसिद्धिदम् ॥६९॥
 एवं ध्यात्वा रामचन्द्रं मणिद्वयसुशोभितम् । शुद्धेन मनसा रामं पूजयेन्मार्तं हृदि ॥७०॥
 इति ध्यातम् ।

आवाहयामि विश्वेश जानकीवल्लभं त्रिभुम् । कौमल्याउनयं विष्णुं श्रीरामं प्रकृतेः परम् ॥७१॥
 राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महीपते । रत्नसिंहासन तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ॥७२॥
 श्रीगमागच्छ भगवन् रघुवीर रघूत्तम । जानक्या सह राजेन्द्र सुस्थिरो भव सर्वदा ॥७३॥
 रामचन्द्र महेश्वर रावणात्क राघव । यावत्पूजा समाप्येऽहं तावत् सन्निधी भव ॥७४॥
 रघुनन्दन राजर्षे राम राजीवलोचन । रघुवंशज मे देव श्रीगमाभिमुखो भव ॥७५॥
 प्रसीद जानकीनाथ सुप्रसिद्ध सुरेश्वर । प्रसन्नो भव मे राजन् सर्वश मधुसूदन ॥७६॥
 शरणं मे जगन्नाथ शरण भक्तवत्सल । वरदो भव मे राजन् शरण मे रघूत्तम ॥७७॥
 त्रैलोक्यपावनानन्त नमस्ते रघुनाथक । पादं गृहाण राजर्षे नमो राजीवलाचन ॥७८॥
 परिपूर्णं परानन्द नमो रामाय वेधसे । गृहाणाभ्यं मया दत्तं कृष्ण विष्णो जनार्दन ॥७९॥
 अन्नमो वासुदेवाय तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे । मधुपर्कं गृहाणंमं राजाराजाय ते नमः ॥८०॥

विनाश नहीं होता, जो विष्णु पुत्रके समान दमक व हुए वस्त्रोंके जाड़े पहने है, धीरासनसे बंटे हैं, कल्पवृक्षके नीचे निवास करत है, उनमें सुगन्ध जिनके शरीरभरमें मन्त्र छुई है और जो वरमाणा धारण किये हुए है ॥ ६५-६५॥ जिनके बायें बगलमें सीताजी बंठी हैं, उनका भी सुवर्ण मर सा तज है, व हाथोंमें लालारक्ष लिय है, मुखपर मन्द मुक्कराह है, मुन्दर चेहरा है और प्रमदर ह उस रामका निहायत हुई कल्पवृक्षके नाच बंटी है । हाथमें छत्र और चमर लेकर लक्ष्मणजी रामकी सेवा कर रहे हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ हनुमान और वानरोंसे व नित्य घिरे रहते हैं । कितने ही क्षाप स्तुति करत है और भरत आदि आता उनका सेवा कर रहे हैं । सनन्दन आदि कितने ही यागी उनका स्तुति कर रहे हैं । व राम समस्त शस्त्राक अर्थ जाननेमें कुशल है । यागीश्वरको भी वे जानते हैं और यागासिद्धि दता है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ कौमुद तया चिन्तामाण इन दोनों माणवांस सुशोभित रामचन्द्रका ध्यान करके शुद्ध मनसे ताव जल्वा विधिक अनुसार सदा हृदयमें उनका पूजन करे ॥ ७० ॥ संसारक ईश, जानकीके वल्लभ, कौमल्याक पुत्र, प्रह्लादसे पर और विष्णुलक्ष्मणों धारामका मे आवाहन करता हूँ ॥ ७१ ॥ हे राजाआक राजा रामचन्द्र । हे महापते । मे आपका रत्नमय सिंहासन दता हूँ, उसे स्वीकार कर ॥ ७२ ॥ हे धाराम ! हे भगवन् । हे रघुवीर । हे रघूत्तम । हे राजेन्द्र । आप जानकाजीक साथ आइये और इस हृदयासनपर बाठए ॥ ७३ ॥ हे रामचन्द्र ! हे महान् धनुष धारण करनेवाले । हे रावणान्तक । हे राघव ! जब तक मैं पूजन समाप्त न करूँ, तब तक आप मेरे पास रहिए ॥ ७४ ॥ हे रघुनन्दन । हे राजर्षे । हे राजावलाचन राम ! हे रघुवंशज ! हे देव ! हे श्री राम ! आप मेरे सम्मुख प्रकट हो ॥ ७५ ॥ हे जानकीनाथ ! हे सुप्रसिद्ध सुरेश्वर । आप मेरे पर प्रसन्न हो । हे राजन् ! हे सर्वेश ! हे मधुसूदन ! आप मेरे पर प्रसन्न हो ॥ ७६ ॥ हे जगन्नाथ ! मैं आपकी शरणमें हूँ । हे भक्तवत्सल । आप मेरे वरदाता हो । हे रघूत्तम ! मैं आपकी शरणमें हूँ ॥ ७७ ॥ हे अनन्त ! हे त्रैलोक्यपावन । हे रघुनाथक ! आपको प्रणाम है । हे राजर्षे ! इस पद्मकी ग्रहण कीरण । हे राजावलाचन राम ! आपको प्रणाम है ॥ ७८ ॥ परिपूर्ण परमानन्द ब्रह्मरूपधारी रामकी प्रणाम है । हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे जनार्दन ! मेरे दिये हुए अर्जनोंको आप ग्रहण करें ॥ ७९ ॥ तत्त्वज्ञानके साक्षात् स्वरूप आनुदेवकी प्रणाम है । हे राहाराज ! आपको प्रणाम है । अन्न मेरे

नमः सत्याय शुद्धाय बुध्याय ज्ञानरूपिणे । गृहाणाचमनं देव सर्वलोकैकनायक ॥८१॥
 ब्रह्मांडोदरमध्यस्थेस्तीर्थेश्वर रघुनायक । इनापयिष्याम्यहं भक्त्या त्वं गृहाण जनार्दन ॥८२॥
 संतसकाचनप्रख्यं पीताम्बरमिमं हरे । संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥८३॥
 श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्द राघव । ब्रह्मसूत्र सोत्तरीयं गृहाण रघुनायक ॥८४॥
 किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलमेखलाः । ग्रंथेयकौस्तुभं हारं रत्नकंकणनूपुरान् ॥८५॥
 एवमादीनि सर्वाणि भूषणानि रघूत्तम । अहं दास्यामि ते भक्त्या संगृहाण जनार्दन ॥८६॥
 कुंकुमागरुकस्तूरीकपूगेन्मिश्रचन्दनम् । तुभ्यं दास्यामि विश्वेश श्रीराम स्वीकुरु प्रभो ॥८७॥
 तुलसीकुन्दमन्दारजातिपुन्नागचरपकैः । कदम्बकद्वयोर्गैश्च कुसुमैः शतपत्रकैः ॥८८॥
 नीलांबुजत्रिज्वदलैः पुष्पमाल्यैश्च राघव । पूजयिष्याम्यहं भक्त्या संगृहाण नमोऽस्तु ते ॥८९॥
 वनस्पतिर्गैर्दिव्यैर्गन्धाढ्यैः सुमनोहरैः । रामचन्द्र महोपाल भूषोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥९०॥
 ज्योतिषां पतये तुभ्यं नमो रामाय वेधसे । गृहाण दीपकं राजंश्चैलोक्यपतिमिरापदम् ॥९१॥
 इदं दिव्यान्नममृतं रमैः षड्भिर्विगजितम् । श्रीराम राजराजेन्द्र नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥९२॥
 नागवल्लीदलैर्घृक्तं पूर्णफलममन्वितम् । तांबूलं गृह्यतां राम कर्पूरादिममन्वितम् ॥९३॥
 मङ्गलार्थं महोपाल नीराजनमिदं हरे । संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥९४॥

अथ नमस्कारापरमः प्राः

ॐ नमो भगवते श्रीरामाय परमात्मने । सर्वभूतान्तरस्थाय समीताय नमो नमः ॥९५॥
 ॐ नमो भगवते श्रीराम रामचन्द्राय वेधसे । सर्ववेदांतवेद्याय समीताय नमो नमः ॥९६॥
 ॐ नमो भगवते श्रीविष्णवे परमात्मने । परात्पराय रामाय समीताय नमो नमः ॥९७॥

किये हुए इस पूजनका ग्रहण करिए ॥ ८० ॥ सत्य, शुद्ध, बुद्धि और ज्ञानस्वरूप भगवान्‌को प्रणाम है । हे देव ! हे सर्वलोकैकनायक ! मेरे दिये हुए इस आचमनका आप ग्रहण करें ॥ ८१ ॥ ब्रह्माण्डमें जितने तीर्थ हैं, उनके जलसे मैं आपको स्नान कराऊँगा । सो आप स्वीकार कर ॥ ८२ ॥ हे हरे ! अच्छी तरह तपाये हुए सुवर्णके समान इस पीताम्बरको आप ग्रहण कीजिए । हे जगन्नाथ ! हे रामचन्द्र । आपको प्रणाम है ॥ ८३ ॥ हे श्रीराम ! हे अच्युत ! हे यज्ञेश ! हे श्रीधरानन्द ! हे राघव ! हे रघुनायक ! उत्तरीय वस्त्रके साथ दिये हुए मेरे इस यज्ञपवीतको आप ग्रहण करें ॥ ८४ ॥ किरीट, हार, केयूर, रत्नजटित कुण्डल, मेखला, माला, कौस्तुभका हार, रत्नजटित कंकण, नूपुर, इस प्रकार सब तरहके आभूषण मैं आपका भक्तिपूर्वक दूँगा । सो आप ग्रहण करिए ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ कुसुम, अगुरु कस्तूरी तथा नूपुरसंमिश्रित चन्दन हे विश्वेश ! हे श्रीराम ! हे प्रभो ! मैं आपको दूँगा । सो आप स्वीकार कर ॥ ८७ ॥ तुलसी, कुन्द, मन्दार, जूही, पुन्नाग, चम्पक, कदम्ब, करवीर तथा शतपत्रके फूल, नीलकमल, त्रिज्वपत्र और पुष्पमाल्योंसे मैं आपका पूजन करूँगा । उसे आप ग्रहण करें । मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ वनस्पतिके दिव्य रसों और सुगन्धसे मिश्रित दिव्य धूप आपको आप्रापन कराऊँगा । हे रामचन्द्र ! हे महोपाल ! आप इसे ग्रहण करें ॥ ९० ॥ संसारके सारे ज्योतिर्मय पदार्थोंके पति हे राम ! हे वेध ! आपको नमस्कार है । हे राजन् ! तीनों लोकका अधिकार नष्ट करनेवाले इस दीपकको आप ग्रहण करिए । छः रसोंमें युक्त तथा अमृतके समान सुस्वादु यह दिव्यान्न तैयार है । हे श्रीराम ! हे राजराजेन्द्र ! आप इस नैवेद्यको ग्रहण करिए ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ पानके पत्तोंसे बाँड़े हुए, सुपारी तथा कर्पूरादि मसालोंसे युक्त इस ताम्बूलको आप ग्रहण कर ॥ ९३ ॥ हे महोपाल ! हे हरे ! मङ्गलक निमित्त दिये हुए मेरे इस नीराजनको आप ग्रहण करें । हे जगन्नाथ ! हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है ॥ ९४ ॥ अब आठ नमस्कार बतलाते हैं । भगवान्, श्रीराम, परमात्मा, सब प्राणियोंके भाँवर रहनेवाले, सीताके साथ रामचन्द्रजी-को प्रणाम है ॥ ९५ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्र, वेदा और सब वेदांत जाननेवाले सीताके पति रामको प्रणाम है ॥ ९६ ॥ भगवान् विष्णु, परमात्मा, परात्पर एवं सीताके साथ विराजमान रामको प्रणाम है ॥ ९७ ॥

ॐ नमो भगवते श्रीरघुनाथाय शक्तिणे । चिन्मयानन्दरूपाय सीताय नमो नमः ॥९८॥
 ॐ नमो भगवते श्रीराम श्रीकृष्णाय चक्रिणे । विशुद्धज्ञानदेहाय सीताय नमो नमः ॥९९॥
 ॐ नमो भगवते श्रीवासुदेवाय श्रीविष्णवे । पूर्णानन्दरूपाय सीताय नमो नमः ॥१००॥
 ॐ नमो भगवते श्रीराम रामभद्राय वेधसे । सर्वलोकशरणाय सीताय नमो नमः ॥१०१॥
 ॐ नमो भगवते श्रीरामायामिनयेजसे । ब्रह्मानन्दरूपाय सीताय नमो नमः ॥१०२॥

इति नमस्काराष्टकमन्त्रः ।

नृत्यगीतादिवाद्यादिपुराणपठनादिभिः । राजोपचारैरविलैः सन्तुष्टो भव राघव ॥१०३॥
 विशुद्धज्ञानदेहाय रघुनाथाय दिग्गवे । अन्तःकरणमशुद्धिं देहि मे रघुनन्दन ॥१०४॥
 नमो नारायणान्त श्रीराम कृष्णनिधे । मामुद्धर जगन्नाथ घोरसंसारसागरात् ॥१०५॥
 रामचन्द्र महेश्वर शरणागततत्पर । त्राहि मां सर्वलोकेश तापत्रयमहादलात् ॥१०६॥
 श्रीकृष्ण श्रीकर श्रीश श्रीराम श्रीनिधे हरे । श्रीनाथ श्रीमहाविष्णो श्रीनृसिंह कृपानिधे ॥१०७॥
 गर्भजन्मज्जराव्याधिघोरसंसारसागरात् । मामुद्धर जगन्नाथ कृष्ण विष्णो जनार्दन ॥१०८॥

श्रीराम गोविन्द मुकुन्द कृष्ण श्रीनाथ विष्णो भगवन् नमस्ते ।

प्रोढारिषड्दर्शनमहामयेभ्यो मां त्राहि नारायण विश्वमूर्ते ॥१०९॥

श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्द राघव । श्रीगोविन्द हरे विष्णो नमस्ते जानकीपते ॥११०॥
 ब्रह्मानन्दकवितानं त्वन्नामस्मरणं नृणाम् । त्वत्प्रदायुजमद्भुतिकं देहि मे रघुवल्लभ ॥१११॥

नमोऽस्तु नारायण विश्वमूर्ते नमोऽस्तु ते शाश्वत विश्वयोने ।

त्वमेव विश्वं सचराचरं च त्वामेव सर्वं प्रवदति सन्तः ॥११२॥

नमोऽस्तु ते कारणकारणाय नमोऽस्तु कैवल्यफलप्रदाय ।

नमो नमस्तेऽस्तु जगन्मयाय वेदान्तवेद्याय नमो नमस्ते ॥११३॥

भगवान्, श्रीरघुनाथ, शक्ति, चिन्मयानन्दरूप और सीतादात रामको प्रणाम है ॥ ९८ ॥ भगवान्, श्रीरामकृष्ण, चक्र, विशुद्ध ज्ञानदेहधारी, संत के साथ रामको प्रणाम है ॥ ९९ ॥ भगवान् श्रीवासुदेव-स्वरूप, विष्णु, पूर्णानन्दरूप सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ १०० ॥ भगवान्, श्रीरामभद्र, वेध (ब्रह्मा) और सब लोक शरणदाता सीत, के साथ रामको प्रणाम है ॥ १०१ ॥ जो अनन्त तेजधारी भगवान् रामचन्द्रजी हैं । उन ब्रह्मानन्दके एकमात्र रूपधारी सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ १०२ ॥ हे राघव ! मेरे नृत्य, गीत, वाद्य तथा पुराण-पठन आदि समस्त राजोपचारोंसे आप प्रसन्न हों ॥ १०३ ॥ विशुद्ध ज्ञानरूप देह धारण करनेवाले श्रीरघुनाथजी का प्रणाम है । हे रघुनन्दन ! आप हमें अन्तःकरणकी शुद्धि प्रदान करिए ॥ १०४ ॥ हे नारायण ! हे अनन्त ! हे श्रीराम ! हे कृष्णनिधे ! आपको प्रणाम है । हे जगन्नाथ ! हमारा घोर संसारसागरसे उद्धार करे ॥ १०५ ॥ हे रामचन्द्र ! हे महेश्वर ! हे शरणागत तत्पर ! हे सर्वलोकेश ! हमें तापत्रयरूपी महानलमें बचाइए ॥ १०६ ॥ हे कृष्ण ! हे श्रीश ! हे श्रीराम ! हे श्रीनिधे ! हे श्रीनाथ ! हे महाविष्णो ! हे श्रीनृसिंह ! हे कृपानिधे ! गर्भ, जन्म, जरा तथा व्याधिरूप घोर संसारसागरसे मुझे उबारिए । हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे जनार्दन ! ॥ १०७, १०८ ॥ हे श्रीराम ! हे गोविन्द ! हे मुकुन्द ! हे कृष्ण ! हे श्रीनाथ ! हे विष्णो ! हे भगवन् ! आपको नमस्कार है । हे नारायण ! हे विश्वमूर्ति ! प्रोढ़ अरिषड्दर्शनके महाभयसे मेरी रक्षा करिए ॥ १०९ ॥ हे श्रीराम ! हे अच्युत ! हे यज्ञेश ! हे श्रीधर, नन्द राघव ! हे गोविन्द ! हे हरे ! हे विष्णो ! हे जानकीपते ! आपका नमस्कार है ॥ ११० ॥ हे रघुवल्लभ ! आपका नामस्मरण ब्रह्मानन्दक विज्ञानकी उत्पन्न करता है । आप हम अपने चरणकमलकी सद्भक्ति प्रदान करिए ॥ १११ ॥ हे कारणोंके भी कारण ! आपको नमस्कार है । हे कैवल्य फल प्रदान करनेवाले प्रभो ! आपको प्रणाम है । हे जगन्मया ! हे वेदान्तवेद्य ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ११२ ॥ हे भरतके अप्रज !

नमो नमस्ते भरताग्रजाय नमोऽस्तु यज्ञप्रतिपालनाय ।

अनन्त यज्ञेश हरे सुकुन्द गोविन्द विष्णो भगवन्मुगरे ॥११४॥

श्रीवल्लभानन्त जगन्निवास श्रीगम राजेन्द्र नमो नमस्ते ।

श्रीजानकीकांत विशालनेत्र राजाधिराज त्वयि मेऽस्तु भक्तिः ॥११५॥

तप्तजाम्बूनदेनैव निर्मित रत्नभूषितम् । स्वर्णपुष्पं रघुश्रेष्ठं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ॥११६॥

हृषिकर्णिकामध्ये सीतया सह राघव । निवस त्वं रघुश्रेष्ठ सर्वैरावरणैः सह ॥११७॥

मनोवाक्कायजनितं कर्म यद्वा शुभाशुभम् । तन्मम प्रीतये भूयान्नमो रामाय शार्ङ्गिणे ॥११८॥

अपराधसहस्राणि कियंतेऽहर्निशं मया । दाभोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व रघुपुंगव ॥११९॥

नमस्ते जानकीनाथ रामचन्द्र महीपते । पूर्णानन्दस्वरूप त्वं गृहाणापर्यं नमोऽस्तु ते ॥१२०॥

एवं यः कुरुते पूजां बहिर्वा हृदयेऽपि च । सकृन्पूजनमात्रेण राम एव मवेन्नरः ॥१२१॥

किं पुनः सततं ब्रह्मण्येवं पूज्य स्थितो हि सः । सर्वान्कामानवाप्नोति चेह लोके परत्र च ॥१२२॥

एवं सुतीक्ष्ण ते प्रोक्तं यथा पृष्ठं त्वया मम । हृदये मानसीपूजाविधानं राघवस्य च ॥१२३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य सुतीक्ष्णाय मुनयेऽगस्तितना पुरा । यन्प्रोक्तं तन्मया सर्वं तव प्रोक्तं सविस्तरात् ॥१२४॥

शिष्याधुना बहिःपूजाविधानं च मयोज्यते । नरः प्रातः समुन्धाय कृत्वा शौचादिकाः क्रियाः ॥१२५॥

स्नात्वा सध्यादिकं कृत्वा देवपूजां सभारमेत् । तीर्थे देशालये वाऽपि गोष्ठे पुण्यस्थलेषु च ॥१२६॥

नद्यास्तटे देवगोहे तुलसीमन्निधौ तथा । लिप्त्वा भूमिं गोमयेन ततो पत्रानि लेखयेत् ॥१२७॥

सितरक्तहरितपीतनीलकृष्णादिर्मन्त्रैः । नानावर्णैश्चित्रितानि तत्र पूजां समाचरेत् ॥१२८॥

हे यज्ञका प्रतिपालन करनेवाले ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है । हे अनन्त ! हे यज्ञेश । हे हरे ! हे सुकुन्द ! हे विष्णु ! हे मुरारे ! हे श्रीवल्लभ ! हे अनन्त ! हे जगन्निवास । श्रीराम ! हे राजेन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे श्रीजानकीकान्त ! हे विशालनेत्र ! हे राजाधिराज ! आपमे मेरी भक्ति हो ॥ ११३-११५ ॥ तपाये हुए सुवर्णसे निर्मित और रत्नोसे विभूषित यह सुवर्णपुष्प मैं आपको अर्पण करता हूँ । हे प्रभो ! इसे आप स्वीकार करें ॥ ११६ ॥ हृदयरूपी कमलक बीचोबीच सीता तथा समस्त आवरणोंके साथ उसपर बैठिए ॥ ११७ ॥ मन, वचन अथवा शरीरसे मैंने जो शुभ या अशुभ कर्म किया हो, वह सब आपकी प्रसन्नताका कारण बने । हे अनुचारी राम ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ११८ ॥ हे रघुपुंगव ! रात-दिन मैं हजारों प्रकारके पातक करता हूँ । मुझे अपना दास समझकर आप क्षमा कर दें ॥ ११९ ॥ हे जानकीनाथ ! हे महीपते ! हे रामचन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे पूर्णानन्दस्वरूप ! मैं आपको अर्घ्य देता हूँ, इसे आप ग्रहण करें ॥ १२० ॥ इस रीतिसे जो मनुष्य हृदयके भीतर या बाहर पूजन करता है वह केवल एक द्वारके पूजनसे साक्षात् राम हो जाता है ॥ १२१ ॥ फिर उसके लिए क्या कहना, जो रात-दिन उसीमें लीन रहता हो ! वह प्राणी इहलोक और परलोक, दोनोंकी अभीष्ट कामनाएँ प्राप्त कर लेता है । हे मुनीक्षण ! तुमने हमसे जैसे पूछा, उस प्रकार मैंने मानसी पूजाका सारा विधान कह सुनाया ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ श्रीरामदासने कहा - हे शिष्य ! इस तरह सुतीक्ष्ण मुनिके लिए अगस्त्य ऋषिने उस समय जो विधान बतलाया था, सो मैंने विस्तारपूर्वक तुम्हें बतला दिया ॥ १२४ ॥ हे शिष्य ! अब मैं बाह्यपूजाका विधान बतला रहा हूँ । उपासकको चाहिये कि प्रातःकाल उठे और शौचादिसे निवृत्त होकर स्नान संध्या आदि करे । फिर किसी तार्य, देवालय, गोशला या पवित्र स्थानमें देवपूजा प्रारम्भ करे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ ऊपर बताये स्थानोंके सिवाय किसी नद्यापटपर, देवमन्दिर तथा तुलसीके पास गोवरसे छोपकर सफेद, लाल, हरे, पीले, नीले, काले, इस तरह नाना प्रकारके रंगोंसे चित्र-विचित्र पद्म बनाकर पूजन प्रारम्भ करे ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ एक आसन एक हजार आठ श्रीरामनामका बनता है । एक आसन आठ

अष्टोत्तरसहस्रश्रीरामलिङ्गात्मकासनम् । वाष्टोत्तरशतं श्रीमद्रामलिङ्गात्मकासनम् ॥१२९॥
 अष्टोत्तरसहस्रश्रीरामभद्रासनं हि वा । वाष्टोत्तरशतं श्रीमद्रामभद्रासनं शुभम् ॥१३०॥
 बहून्यन्यानि शतशः संति लङ्घ्यामनानि हि । तेषां मध्यादेकमेवासनं संस्थाप्य चित्रितम् ॥१३१॥
 पीठोपरि कृतं वस्त्रं पत्रादिपि वा कृतम् । आसनोपरि जानक्या राघवादीन्निवेशयेत् ॥१३२॥
 आसने सर्वतोभद्रमध्ये पद्मोपरि न्यसेत् । सीतया राघवं रम्यं वरविहामने स्थितम् ॥१३३॥
 रामस्य पृष्ठभागे च लक्ष्मण स्थापयेत्ततः । रामस्य दक्षिणे पार्श्वे भरतं विन्यसेच्छुभम् ॥१३४॥
 रामस्य वामपार्श्वे हि शत्रुघ्नं विन्यसेच्छुभम् । पुरतो रामचन्द्रस्य वायुपुत्रं तु विन्यसेत् ॥१३५॥
 रामस्य वायुदिरभागं सुग्रीवं स्थापयेत्ततः । ईशान्यां रामचन्द्रस्य विन्यस्य च विभीषणत् ॥१३६॥
 रामस्य बहिर्दिग्भागे विन्यसेद् मद् ततः । नैर्ऋत्यां रामचन्द्रस्य जांबवंतं तु विन्यसेत् ॥१३७॥
 पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राग्दिग्ज्याऽर्चने न्विह । सर्वशास्त्रेष्वेवमेव निर्णयः कथ्यते धुर्यः ॥१३८॥
 लक्ष्मणस्य करे देयं छत्रं मुक्ताविराजितम् । भरतस्य करे देयं चामरं रुक्ममण्डितम् ॥१३९॥
 शत्रुघ्नस्य करे देयं व्यजनं चित्रितं शुभम् । हनुमतः करे देयं रामस्य पादुकाद्वयम् ॥१४०॥
 सुग्रीवस्य करे देयं जलपात्रं मनोहरम् । करे विभीषणस्यापि देयं मुकुटमुत्तमम् ॥१४१॥
 देयं ताम्बूलपात्रं च वालिनन्दनमत्करे । जांबवंतः करे देयो वस्त्रकोशो महत्तमः ॥१४२॥
 नवायतनमेवं हि स्थापयेद्राघवस्थ च । अथवा पञ्चायतनं स्थापयेदामनोपरि ॥१४३॥
 सीतया रामचन्द्रं च मध्ये पृष्ठे तु लक्ष्मणम् । भरतं सन्यपार्श्वे च शत्रुघ्नं वामपार्श्वके ॥१४४॥
 पुरतो वायुपुत्रं च पूर्वोक्तैरुपचारैः । एवं संस्थापयेद्भक्त्या रामं भद्रासनोपरि ॥१४५॥
 अथवा सीतया रामं मध्ये स्थाप्य ततः परम् । रामस्य पृष्ठे सीमित्रिं रामाग्रे वायुनन्दनम् ॥१४६॥
 स्थाप्यैवं पूजयेद्भक्त्या रामं घृतशरासनम् । अथवा सीतया रामं लक्ष्मणं परिपूजयेत् ॥१४७॥

सौ रामके नामसे अङ्कित करके बनाया जाता है । एक हजार आठ नामोंसे अङ्कित करके एक श्रीराम-
 भद्रासन बनता है । दूसरा एक सौ आठ नामोंसे अङ्कित करके श्रीरामभद्रासन बनता है ॥ १२९ ॥ १३० ॥
 इसी तरह बहुतसे और भी छोटे छोटे आसन बनते हैं । उनमेंसे रंगकर कोई एक आसन बनाये ॥ १३१ ॥ इस
 आसनकी रचना वस्त्र बिछाकर पीछेपर करे । उसके ऊपर जानकी तथा राम आदिको बैठाये ॥ १३२ ॥
 सर्वतोभद्रके मध्यमें बने हुए कमलके ऊपर पहले एक सुन्दर सिंहासनपर राम तथा सीताको बिठाये ॥ १३३ ॥
 रामके पीछे लक्ष्मणको स्थापित करे । रामके दाहिने बगल भरतको स्थापित करे और रामके पार्श्वमें शत्रुघ्नको
 बिठाये । रामचन्द्रजीके आगे हनुमानजीकी स्थापना करे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ रामके बायव्य कोणमें सुग्रीवकी
 स्थापना करे । ईशानकोणमें विभीषणको स्थापित करके अग्निकोणमें अक्रुदको तथा नैर्ऋत्यकोणमें जाम्बवान्-
 की स्थापना करे ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ पूज्य और पूजक इन दोनोंके लिए प्राची दिशा ही पूजन करनेमें धेठ है ।
 षण्डितोका कहना है कि समस्त शास्त्रोंमें इसी प्रकारका निर्णय किया गया है ॥ १३८ ॥ रुक्मणके हाथमें
 मोतियोंसे मुसज्जित छत्र दे । भरतके हाथमें मुवर्णसे मण्डित चमर दे ॥ १३९ ॥ शत्रुघ्नके हाथमें चित्रित
 व्यजन (पंखा) दे और हनुमान्जीके हाथमें रामकी दोनों पादुकाएँ दे ॥ १४० ॥ सुग्रीवके हाथमें मनोहर जल-
 पात्र और विभीषणके हाथमें उत्तम शीशा दे । १४१ ॥ अङ्गदके हाथमें सुन्दर ताम्बूलपात्र दे, जाम्बवान्के हाथमें
 कपड़ोंकी पेंटी दे । इस तरह श्रीरामचन्द्रजीके नवायतनकी स्थापना करे ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ मध्यभागमें सीताके साथ
 रामचन्द्रजीको बिठाये, पीछे लक्ष्मणको, दाहिने बगल भरतको, बायें बगल शत्रुघ्नको तथा सामने हनुमान्जी-
 को पूर्वोक्त उपचारोंके साथ बिठाये । इस तरह सुन्दर आसनपर रामकी स्थापना करे । इसे ही रामपञ्चायतन
 कहते हैं ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ अथवा सीताके साथ-साथ रामको मध्यमें बिठाकर रामके पीछे लक्ष्मण और आगे
 हनुमान्जीकी स्थापना करके घनुर्घारी रामका पूजन करे । अथवा सीताके साथ राम और लक्ष्मणकी पूजा

सीतानुग्रौ विना पूजा रामस्यैकस्य माचरेत् । कृता चेद्विघ्नकर्त्री सा भवदत्र न मशयः ॥१४८॥
 नवायतनपूजा सा भेष्टा हेषा शुभप्रदा । या पञ्चायतनी पूजा श्रेया सा मय्यभाऽत्र हि ॥१४९॥
 त्रिदैवत्या तु या पूजा कनिष्ठा सा निगद्यते । अतिकनिष्ठा पूजा सा द्विदैवत्या स्मृता हि सा ॥१५०॥
 कोदण्डं वामहस्ते च तूणीरं वामपार्श्वके । निजनामाङ्कितं बाणं दधानं दक्षिणे करे ॥१५१॥
 एवं भीरावदं स्थाप्य ततः पूजां समारभेत् । आत्मनो वामभागे च जलकूर्मं निधाय हि ॥१५२॥
 आत्मनो दक्षिणे भागे पूजापात्रं निवेशयेत् । आत्मनः पुरतः पात्रं स्थापयेद्विस्तृतं वरन् ॥१५३॥
 प्राङ्मुखः सुखमासीनो धृतपद्माननः शुचिः । मीनो धृताश्वतुल्मीमालो निश्चलमानसः ॥१५४॥
 वदप्रधिष्ठितः शुद्धवस्त्रो धृतपवित्रकः । मुद्गदारावतीमृत्कृत्तिलको मुद्रिकाकिनः ॥१५५॥

नत्वादी गणराजं च निधिवागादि कीर्तयेत् ।

भूमिशुद्धिं भूतशुद्धिं न्यासी कृत्वा यथाक्रमम् । प्रोक्षणीपात्रमेकं तु जलपूर्णं प्रकाशयेत् ॥१५६॥
 दूर्वागन्धाक्षतपुष्पैस्तन्पात्रं परिपूरयेत् । प्रोक्षयेत्तेन नीरेण पूजाद्रव्यं महात्मना ॥१५७॥
 पाद्यार्घ्याचमनार्थं तु त्रीणि पात्राणि विन्यसेत् । गणराजं पूजयित्वा सम्पूज्य वरुणं ततः ॥१५८॥
 पांचजन्यं पूजयित्वा मोक्षयेत्तज्जलैरपि । पूजाद्रव्यं पूर्ववच्च स्वान्मानं च भुवं तथा ॥१५९॥
 धेनुशङ्खचक्रपश्चिराजमुद्राः प्रदर्शयेत् । शैली दारुमयी लोही लेखा लेख्या च मैकरी ॥१६०॥
 मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता । अथ स्थापयेद्रामचन्द्रं मर्मात पुरतः स्थितम् ॥१६१॥
 द्विभुजं धृततूणीरं चापबाणधृतायुधम् । दिव्यालङ्कारसंपुक्तं पीतक्रीशेयशामभम् ॥१६२॥
 सलक्ष्मणं सशत्रुघ्नं भरतेन समन्वितम् । हनुमान्सेवितपद्मं सिंहासनविराजितम् ॥१६३॥
 सितछत्रसमायुक्तं दिव्यचामरवीजितम् । विभीषणममायुक्तं सुग्रीवपरिवर्तितम् ॥१६४॥

करे ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ सीता और लक्ष्मणक बिना अकल रामकी पूजा कभी न करे । यदि एसी पूजा की जाती है तो वह प्रायः विघ्न करनेवाली ही हुआ करती है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १५८ ॥ नवायतनपूजा सर्वश्रेष्ठ और पञ्चायतन पूजा मध्यम होती है ॥ १५९ ॥ त्रिदैवकी पूजा कनिष्ठ कहा गया है । वह पूजा तो अत्यन्त कनिष्ठ होती है, जिसमें केवल दो देवताओंकी पूजा की जाती है ॥ १५० ॥, जिनके बायं हाथमें धनुष और बायें बगल तरफसे हैं, अपने नामसे अङ्कित बाण दाहिने हाथमें है ॥ १५१ ॥ इस तरहके रामचन्द्रकी स्थापना करके पूजा प्रारम्भ करे । पूजा करते समय वामभागमें एक कलश भी अवश्य रख लेना चाहिए ॥ १५२ ॥ अपने दाहिने बगल पूजापात्र रखना चाहिए और आगे भी विस्तृत पात्र रखना उचित है ॥ १५३ ॥ उपासकको चाहिए कि आनन्दपूर्वक पूर्वकी ओर मुल करके पद्यासनसे बैठे और निश्चल मन करके तुलसीकी माला लिये, शिखाम ग्रन्थि दिय, हाथोंमें पवित्री तथा शरीरमें पवित्र वस्त्र धारण किये, द्वारकाकी शुद्ध मृत्तिकाका तिलक लगाकर ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ पहले गणेशजीको प्रणाम करे । फिर क्रमशः त्रिविन्दार आदिका उच्चारण करके भूमिशुद्धि, भूतशुद्धि तथा अग्न्यास-करन्यास करके प्रोक्षणीपात्रमें जल भरे । दूर्वा, गन्धाक्षत, पुष्प आदि उसमें डाले और प्रोक्षणीपात्रके जलसे पास रखी हुई पूजनसामग्रियोंका प्रोक्षण करे । पाद्य, अर्घ्य एवं आचमनके लिये सामने तीन पात्र रखे । फिर गणेशजी, वरुण तथा पांचजन्य शक्तका पूजन करके उसके जलसे अपना, पूजन-सामग्री तथा पृथ्वीका प्राक्षण करे ॥ १५६-१५६ ॥ इसके अनन्तर सुरभी, गोल, चक्र, गरुड एवं राममुद्रका प्रदर्शन करे । पत्थरकी, काष्ठकी, धूना-ईटकी, रङ्गसे बनी, चित्रकारी की हुई, बालुकामयी, मानसी और मणिमयी के आठ प्रकारकी प्रतिमाएँ होती हैं । ऊपर बतलायी क्रियाएँ कर लेनेके बाद उपासकको चाहिए कि सीताके साथ बैठे हुए इस प्रकारके रामका ध्यान करे-जिनके दो भुजाएँ हैं, जो तूणीर तथा धनुष-बाण आदि विविध प्रकारके शस्त्र धारण किये हैं, उनके शरीरमें दिव्य अलङ्कार पड़े हैं और वे दायाँ क्रीशेय वस्त्र धारण किये हैं ॥ १६०-१६२ ॥ लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न उनके साथ हैं, हनुमान्जी उनके चरणकी सेवा कर रहे हैं और राम उत्तम सिंहासनपर बैठे हैं ॥ १६३ ॥ ऊपर सफेद छत्र लगा है, दिव्य चमर चल रहे हैं, विभीषण और सुग्रीव

जाम्बवता समायुक्तमङ्गदेन परिष्कृतम् । अयोध्यावासिन राममेवं हृदि विचिंतयेत् ॥१६५॥
 सीताराम समागच्छ मदग्रे त्व स्थिरो भव । गृहाण पूजां मदनां कुनमावाहन तव ॥१६६॥
 हिरण्यमयं रत्नयुक्तं नानाचित्रविचित्रितम् । सिंहासनं सयस्त्रं च ह्यासनार्थं ददामि ते ॥१६७॥
 चन्दनागुरुसयुक्तैर्जलैस्तीर्थसमुद्भवैः । पार्थ गृहाण श्रीराम मया दत्तं प्रसीद मे ॥१६८॥
 पुष्करादिषु तीर्थेषु गङ्गादिषु सरित्सु च । यत्तु यत्तन्मयाऽऽनीतं दत्तमर्घ्यं गृहाण भोः ॥१६९॥
 सुगन्धवासितं तोयं बहुतीर्थसमुद्भवम् । आचमनार्थमानीतं गृहाण त्वं सुरेश्वर ॥१७०॥
 हरिद्राकुङ्कुमैर्युक्तं सुगन्धद्रव्यमिश्रितम् । सुगन्धस्नेहसमिश्रमुद्भूतं नमोऽस्तु ते ॥१७१॥
 कामधेनुद्वयं क्षीरं नन्दिन्या दधि सुन्दरम् । कपिलाया घृतं श्रेष्ठं मधु विष्ण्याद्रिसम्भवम् ॥१७२॥
 सितोपलसमानाम् सितायुक्तं मनोहरम् । पञ्चामृतमयाऽऽनीतं स्नानार्थं त्वं गृहाण भोः ॥१७३॥
 गङ्गा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती । नर्मदा सिन्धुकावेरी सरयु गण्डकी तथा ॥१७४॥
 ताम्रपर्णी भीमरथी कृष्णा वेणी महानदी । गोमती सागराः सप्त पयोष्णी भवनाशिनी ॥१७५॥
 पूर्णा तापी तुङ्गभद्रा क्षिप्रा वेगवती तथा । पिनाकी प्रवरा सिन्धुफेणा सार्द्धं त्रयो नदाः ॥१७६॥
 श्रुतमाला कुतमाला मही निक्षेपिका तथा । पयोष्णी प्रेमगङ्गा च चित्रगङ्गा करानदी ॥१७७॥
 नीरा चर्मण्वती वृद्धा बजरा च पुनः पुनः । सिन्धुक्षीरा च वैकुण्ठाऽलकनन्दा च वारणा ॥१७८॥
 इत्यादिसर्वतीर्थेषु यत्तु यत्तन्मयाऽऽनीतममया स्नानं कुरु रघून्मम ॥१७९॥
 पुनराचमनं रम्यं सर्वतीर्थसमुद्भवम् । गृहाण रघुनाथ त्वं दीयते यन्मया तव ॥१८०॥
 सुवर्णवस्तुमिश्रितं पीतकौशेयसम्भवम् । वस्त्रयुग्मं प्रदास्यामि गृहाण रघुनाथक ॥१८१॥
 शुद्धं हेममयं रम्यं नवतन्तुसमुद्भवम् । ब्रह्मप्रस्थसमायुक्तं ब्रह्मयज्ञं प्रगृह्यताम् ॥१८२॥

आगे लड़े बन्दना कर रहे हैं ॥ १६४ ॥ जाम्बवान् के साथ-साथ अङ्गदजी लड़े स्तुति कर रहे हैं । इस प्रकार
 अयोध्यावासी रामका मनमें ध्यान करे ॥ १६५ ॥ और कहे-हे सीताराम ! आप मेरे सामने आकर बैठिए ।
 मैं आपका पूजन करूँगा । मैं आपका आवाहन करता हूँ । आप आइए और मेरी पूजा स्वीकार करिए ॥ १६६ ॥
 सुवर्णका बना हुआ तथा रत्नसजित हुनेसे चित्र-विविध मान्य पड़नेवाला और सुन्दर वस्त्रसे वेष्टित सिंहासन मैं
 आपको बैठनेके लिए देता हूँ ॥ १६७ ॥ चन्दन और पुष्पसे मिले हुए तीर्थोंके जलका पत्र बनाकर आपको
 देता हूँ । इसे आप स्वीकार करें और मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ १६८ ॥ पुष्कर आदि तीर्थों तथा गङ्गा आदि नदियों-
 से लिये जलका अर्घ्य बनाकर मैं आपका देता हूँ, इसे स्वीकार करिए ॥ १६९ ॥ सुगन्धसे वासित एवं कितने
 ही तीर्थोंसे लाया हुआ जल मैं आपको आचमनके लिए देता हूँ । हे सुरेश्वर ! इस आप ग्रहण कीजिए ॥ १७० ॥
 हरी कुम्कुम और बहुतसे सुगन्धद्रव्योंसे मिश्रित तथा सुगन्धमय तेल आदिसे मिला हुआ जल मैं आपको
 स्नान करनेके लिये देता हूँ ॥ १७१ ॥ कामधेनुका दूध नन्दिनी गौका दही, कपिला गौका घृत, विष्णु-
 पर्वतसे उत्पन्न उत्तम मधु, ॥ १७२ ॥ सफेद पत्थरके समान चमकती हुई चीनीसे मिला पंचामृत मैं
 आपको स्नान करनेके लिये देता हूँ । इसे आप ग्रहण करिए ॥ १७३ ॥ गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती,
 नर्मदा, सिन्धु, कावेरी, सरयू, गण्डकी, ताम्रपर्णी, भीमरथी, कृष्णा, वेणी, महानदी, गोमती, सातों
 सागर, भवनाशिनी, पयोष्णी, पूर्णा, तापी, तुङ्गभद्रा, क्षिप्रा, वेगवती, पिनाकी, प्रवरा, सिन्धुफेणा, सड़े तीन
 नद, श्रुतमाला, कुतमाला, मही, निक्षेपिका, पयोष्णी, प्रेमगङ्गा, चित्रगङ्गा, करानदी, नीरा, चर्मण्वती, वृद्धा,
 बजरा, सिन्धुक्षीरा, वैकुण्ठा, अलकनन्दा, वारणा इत्यादि ॥ १७४-१७८ ॥ नदियोंमें जो पवित्र जल विद्यमान
 है, वह मैं आज यहाँ से लाया हूँ । हे रघून्मम ! आप इसीसे स्नान कीजिए ॥ १७९ ॥ सब तीर्थोंका पवित्र जल
 मैं आपको पुनराचमनके लिये दे रहा हूँ । इसे आप ग्रहण कीजिए ॥ १८० ॥ सुवर्णके सूत्रोंसे बना तथा चित्र-विचित्र
 दोखनेवाला पीत कौशेय वस्त्र मैं आपको दे रहा हूँ, इसे स्वीकार करिये ॥ १८१ ॥ शुद्ध, सुवर्णमय,

सुदृढं कुण्डले रम्ये मुद्रिकाः कङ्कणे तथा । नूपुरे रञ्जनामालाः केयूरे रत्नमण्डिते ॥१८३॥
 इत्यादीन्परमान् दिव्यान्स्वर्णमणिवनिमिं । न्वदर्थं च मयानीतानलकांगान् गृहाण भोः ॥१८४॥
 छत्रं सज्जजनं रम्यं चामरद्वयसंयुतम् । त्वदर्थं च मयाऽऽनीतं गृह्णीष्व गिरिमूदन ॥१८५॥
 सुगन्धं चदनं दिव्यं कृष्णागुरुविमिश्रितम् । रक्तचदनमयुक्तं गृह्णीष्व न्वं मयाऽर्पितम् ॥१८६॥
 अञ्जनाञ्च वगान् दिव्यान्मुक्ताफलानि मिमिवान् । कम्बुर्गा कुङ्कुमेनाक्तान् गृहाण परमेश्वर ॥१८७॥
 माण्ड्यादीनि सुगन्धीनि मालत्पादोनि वै प्रभो । मयाऽऽहूयानि पूजार्थं गृहाण रघुनायक ॥१८८॥
 वनस्पतिसौम्यं गन्धद्वयं गन्धमुत्तमम् । आग्रय सर्वदेवानां धूपं गृह्णीष्व राघव ॥१८९॥
 साज्वं त्रिवर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया । दीपं गृहाण भो राम वैलोक्यविमिश्रितम् ॥१९०॥
 धूपमयुक्तेन सयुक्तं सपायसधूनान्वितम् । छर्कसामधुमयुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥१९१॥
 आम्रादीनि पुष्पकानि फलानि विविधानि च । समर्पितानि ते राम गृह्णीष्व रघुनन्दन ॥१९२॥
 रूमीफलमयुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् । ज्ञाताञ्चतुष्टययुतं तावन् स्वोक्तं प्रभो ॥१९३॥
 हिरण्यं मङ्गलसंयुतं वह्निरेजःसमुद्भयम् । दीपये दक्षिणां ते गृह्णीष्व रघुनन्दन ॥१९४॥

एवं मया षोडशकोषचाराः सन्निभर ते कथिताः शिशोऽत्र ।

आवाहनाद्याश्च हि दक्षिणांताः शेषां च पूजांसकलां हि वक्ष्ये ॥१९५॥

वचवर्तिममयुक्तं कपिलाऽज्यविमिश्रितम् । वह्निना योजितं रम्यं गृह्णीष्व त्वं निराजनम् ॥१९६॥
 ज्ञाती चंपकमन्दारी केतकी तुलसी तथा । रमनो मुनिकुन्दे च वनत त्विति वै नव ॥१९७॥
 एभिर्नैवेद्यैः पुष्पैर्मन्त्रपुष्पाणि राघव । मयाऽर्पितानि गृह्णीष्व प्रसीद परमेश्वर ॥१९८॥
 यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च । तानि सर्वाणि नश्यतु प्रदक्षिण पदे पदे ॥१९९॥

रम्य, ननीन सुवसे बना तथा वयमन्विष्टं बहमूत्र मे आपका देता है । इसे आप स्वीकार करिये ॥ १८३ ॥
 सुदृढ, रम्य कुण्डल, मुद्रिका कङ्कण, नूपुर, रञ्जनिनिभ जङ्गीरको माला, रत्नमण्डित केयूर इत्यादि परम रम्य,
 दिव्य, रत्न और मणिवयसे बने मालाकर मे आपके लिए लाया है । इन्हें आप ग्रहण करिए ॥ १८४ ॥ १८५ ॥
 सज्जन और चमर संयुक्त छत्र मे आपके लिए लाया है । हे रघुमूदन ! इसे आप स्वीकार करिए ॥ १८६ ॥
 मुन्दर, रत्नयुक्त, दिव्य, कृष्ण अगुरुमिश्रित तथा माला चन्दन मिला चन्दन मे आपका लिए लाया है, तो
 आप ग्रहण कीजिए ॥ १८६ ॥ मालाके टुकड़ोंसे बनाया हुआ कम्बूरी और कुम्कुममिश्रित अञ्जत मे आपको
 समर्पण करता है, इसे आप ग्रहण करें ॥ १८७ ॥ मालाओं आदि सुगन्धित फूलोंसे बनी माला मे आपको
 पूजाके निमित्त लाया है, हे रघुनायक । इस आप ग्रहण कीजिए ॥ १८८ ॥ वनस्पतिके रससे उत्पन्न, गन्ध-
 युक्त, उत्तम सुगन्धवाला और सब देवताओंके मुखसे योग्य धूप आपके लिए लाया है । इसे ग्रहण कीजिए
 ॥ १८९ ॥ घीसे भीरी तीन बतियोंवाले दीपकका लाया है । हे तानो लाकोंका अन्धकार दूर करनेवाले
 राम ! इसे आप ग्रहण करिए ॥ १९० ॥ लाते पाप, अन्न, दूध, चर्मा, चानी तथा मधुमिश्रित नैवेद्य मे
 आपको अर्पण करता है, इसे ग्रहण करिए ॥ १९१ ॥ आम्र आदि खुर पके अन्धे-अन्ध फल मे आपको
 अर्पण करता है, इसे ग्रहण करें ॥ १९२ ॥ सुगन्ध युक्त पानके पत्तोंसे जंझा हुआ और जनेक मसरोंसे
 युक्त लाम्बूच आप ग्रहण करें ॥ १९३ ॥ हे रघुनन्दन ! बहूत उत्पन्न तथा अग्निके तेजसे जायमान सुवर्ण
 मे दक्षिणाके लिए आपको देता है, उसे आप स्वीकार कर ॥ १९४ ॥ हे वर ! इस तरह मेने निस्तारपूर्णक
 आवाहनसे दक्षिणा तकके षोडश उपचारोंको कह सुनाया । षोड पूजाविधि आगे बतलाता है ॥ १९५ ॥
 यदि बतियोंसे युक्त, कपिला कीके पतसे मिश्रित एवं अग्निके तयोजित रम्य नीरुपन मे आपको अर्पण
 करता है तो स्वीकार करिए ॥ १९६ ॥ मुद्गी, चम्पा, मन्दार, केतकी, तुलसी, रमणक, जनेक और दो
 प्रकारके मुनिकुन्द इन ती फूलोंका मन्त्रयुक्त मे आपको देता है । हे परमेश्वर ! इसे स्वीकार करिए और मेरेप
 प्रसन्न होए ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ जन्मान्तरमें भी देने जित किन्हीं पापोंको किया हो, वे नष्ट हो जायें ।

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचना तथा । पङ्क्त्यां कराम्यां जानुभ्यां साष्टांगश्च नमोस्तुते ॥२००॥
 आवाहनं न जानामि न जानामि विमर्जनम् । पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर ॥२०१॥
 मन्त्रहानं क्रियाहीनं भक्तिहीनं रघूत्तम । यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२०२॥
 एवं श्रीरामचन्द्रस्य भक्त्या कार्यं प्रपूजनम् । निरन्तरं तथा कार्यं नवम्यां च विशेषतः ॥२०३॥

विष्णुदास उवाच

गुरो नवविधैः पुष्पैस्त्वया पुष्पाञ्जलिः कथम् । निवेदितीऽत्र रामस्य पूजने तद्वदस्व माम् ॥२०४॥
 त्वत्तो नानाविधाः पूजाः सुगणां च मया श्रुताः । पूर्वं तामु श्रुतो नैव नवपुष्पाञ्जलिः कदा ॥२०५॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः मृगु । आसीत्पुरा द्विजवरः कावेर्या उचरे तटे ॥२०६॥
 रामनाथपुरे कश्चिन्सुन्दराख्योऽतिभक्तिमान् । तस्यामश्रव पुत्राश्च रामचित्तनतपत्तराः ॥२०७॥
 चन्द्रोऽतिचन्द्रश्चन्द्रामचन्द्रास्यश्चन्द्रशेखरः । चन्द्राशुजितचन्द्रश्च चन्द्रचूडोऽष्टमः स्मृतः ॥२०८॥
 रामचन्द्रश्चाति नव गृहामाश्च नव स्मृताः । एकदा ते त्वयोऽध्यायां रामं भक्तकृपाकरम् ॥२०९॥
 प्रष्टुं यद्युद्यममासे तस्थुस्ते सरयुतटे । तावत्तत्र ममायाता नानादेशांतरस्थिताः ॥२१०॥
 जनोधानां कोटयश्च नानावाहनमस्थिताः । सरय्यां रामतीर्थे हि चैवस्नानमादरान् ॥२११॥
 तेषां समागतानां हि समदर्शस्तत्र वै दृष्टम् । समर्दाद्रामचन्द्रस्य तेषां नाभूच्च दर्शनम् ॥२१२॥
 तदा ते मन्त्रयामासुर्नव विप्राः परस्परम् । कथं श्रीगववस्यात्र समर्दं दर्शनं भवेत् ॥२१३॥
 चेज्जातं त्वनियत्नेन तर्हि तत्किं न दर्शनम् । यावत्समर्थेन मनसा राधयो न निरीक्षितः ॥२१४॥
 तावत्तद्दर्शनं नैव तुष्टिं नो जनयिष्यति । तदा चन्द्रोऽब्रवीज्ज्येष्ठस्त्वत्रैव रामदर्शनम् ॥२१५॥

एक-एक पग चलकर मैं आपकी प्रशंसा करता हूँ ॥ १९९ ॥ हृदयसे, मस्तकसे, दृष्टिसे, मनसे, वचनसे, हाथोंसे, पैरोंसे और घुटनोंसे मैं साष्टांग प्रमाण करता हूँ ॥ २०० ॥ हे परमेश्वर ! मैं आवाहन करना जानता हूँ, न विसर्जन करता आता हूँ । पूजन करना भी मैं नहीं जानता । यदि कुछ भ्रम हुआ हो तो आप क्षमा कर ॥ २०१ ॥ हे रघूत्तम ! मंत्रसे, क्रियासे और भक्तिसे हीन मैंने जो कुछ पूजा की है हे देव ! वह सब परिपूर्ण हो जाय ॥ २०२ ॥ इस तरह निरन्तर भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिए और नवमीको विशेष करके ऐसा करना उचित है ॥ २०३ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! इस पूजनके प्रसङ्गमें आपने नौ प्रकारके फूलोंसे पुष्पाञ्जलि देनेका विधि क्यों बतलायी है ? सो आप हमसे कहिये ॥ २०४ ॥ अबतक आपने मुझे बहुतसे दस्तावेजोंका विविध पूजन बताया, किन्तु उनमें नवपुष्पाञ्जलि आपन कहीं नहीं बतलायी ॥ २०५ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सा सावधान मन होकर सुनो । बहुत दिनोंकी बात है, कावेरी नदीके उत्तर तटपर रामनाथपुरमें अति भक्तिमान् सुन्दर नामका एक ब्राह्मण रहता था । वह रामका ध्यान करता था । रामका ध्यान करनेवाले उस भक्तके नौ बेटे थे ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ चन्द्र, अति-चन्द्र, चन्द्राभ, चन्द्रास्य, चन्द्रशेखर, चन्द्राशु, जितचन्द्र, चन्द्रचूड़ और गृहाम रामचन्द्र ये उन लड़कोंके नाम थे । एक बार चैत्रके महान्तमें वे नवों लड़के भगवान् रामचन्द्रका दर्शन करनेके लिये अयोध्या गये । वहाँ पहुँचकर वे सरयूके तटपर पहुँचे । तब तक अनेक देशोंके रहनेवाले करोड़ों मनुष्य चैत्रमास स्नानके लिये अनेक प्रकारकी सवारियोंपर चढ़कर वहाँ आ पहुँच ॥ २०८-२११ ॥ उन आये हुए लोगोंकी भारी भीड़के कारण वे नवों ब्राह्मणकुमार रामचन्द्रजीका दर्शन नहीं पा सके ॥ २१२ ॥ उस समय उन्होंने परस्पर मन्त्रणा की कि इस प्रकारका भाड़म रामचन्द्रजीका दर्शन कैसे हो ॥ २१३ ॥ बहुत प्रयत्न करनेपर यदि थोड़ा-सा दर्शन हो भी जाय तो जबतक अच्छी तरह उन्हें न देख सकूँ तो दर्शनसे लाभ हा क्या ? ॥ २१४ ॥ उस क्षणिक दर्शनसे हमें संतोष नहीं होगा । उनमेंसे ज्येष्ठ जाता चन्द्र बोला कि हमलोग तीव्र तपस्या करके वहाँ ही रामचन्द्रजीका

वर्षं शेषेण तपसा प्राप्स्यामस्तप्यतां तपः । तच्चन्द्रवचनं श्रुत्वा पुनः प्रोचुर्द्विजोत्तमाः ॥२१६॥
 एककाले तु सर्वेषां तपतामन्तरेण हि । कस्यादां रामचन्द्रश्च दास्यत्यत्र प्रदर्शनम् ॥२१७॥
 कस्य दास्यति पश्चाच्च त्रिदितं तद्भविष्यति । कस्यास्मासु दृष्टा भक्तिविदिता सा भविष्यति ॥२१८॥
 एव परस्परं चोक्त्वा ते सर्वे द्विजसूनवः । त्यक्त्वाहागं वायुमध्याश्रयकान्ते तत्परेण हि ॥२१९॥
 गत्वाऽतिदूरं संमर्शतेषुः सर्वे तपो महत् । नन्मर्षं गवजो ज्ञत्वा सर्वसाक्षी जगन्प्रभुः ॥२२०॥
 तेषां स्वदर्शनं दातुं नवमे दिवसे मुदा । मंथायामास श्रीरामः क्षणं चित्तं समास्थितः ॥२२१॥
 एककाले तु सर्वेषां यदि दास्यामि दर्शनम् । तर्ह्येव तुष्टिः सर्वेषां भविष्यति न चेन्न हि ॥२२२॥
 अतोऽद्याहं करिष्यामि नव रूपाणि निश्चयान् । एवं ममन्थ श्रीरामो लक्ष्मणं प्राह सादरम् ॥२२३॥
 शिविकामानयस्वाद्य बहिर्गच्छाम्यहं मुदा । तथेति रामवाक्येन शिविकां लक्ष्मणस्तथा ॥२२४॥
 आनयामास दूतैः स राघवाय न्यवेद्यत । तदा मिहामनाद्वापश्चोर्त्तार्य शिविकास्थितः ॥२२५॥
 चन्धुमिर्मन्त्रिर्व्यश्च सुहृन्मित्रादिभिर्भुजैः । बहिः शर्नग्योध्याया ययौ रामो मुदान्वितः ॥२२६॥
 ततस्तं जनसंघं समतिक्रम्य राघवः । चकार नव रूपाणि ह्यात्मनः परमेश्वरः ॥२२७॥
 शिविकाः सुहृते भ्रातृन्तान्मित्रान्मवाहनान् । चकार नवधा रामस्तदा स क्षणमाश्रितः ॥२२८॥
 निरोक्षितुं ममायाता नात्मज्ञानं तान् जनानपि । चकार नवधा रामस्तदद्भुतमिदमभवत् ॥२२९॥
 ततस्तैस्तैर्जनैर्मित्रैर्दूतैर्बन्धुजनैः सह । नवानां भूसुराणां हि ययानग्रे रघूत्तमः ॥२३०॥
 ततस्ते भूसुराः सर्वे तदैकममये प्रभुम् । आत्मनः पुरतो रामं ददृशुस्तं पृथक् पृथक् ॥२३१॥
 तत्पुष्टमनसः सर्वे प्रणम्य रघुतन्दनम् । शिविकाभ्यस्ततो रामस्त्वत्सुहा पृथक् पृथक् ॥२३२॥
 नवरूपधराः सर्वान्विप्रानालिख्य सादरम् । ऊचुर्मुरया चाचा प्रमत्तमुखपङ्कजाः ॥२३३॥

दर्शन वा लेंगे । चन्द्रको इस राघवको सुनकर वे सब बाल उठे कि यदि हम सब भाई एक साथ तपस्या करने लग जायें तो रामचन्द्रजी किसकी पहलें दर्शन देंगे ॥ २१५-२१७ ॥ और किसका सबसे बड़े ? हमसे यह बात भी बात हो जायगी कि हममेंसे किसकी भक्ति बड़ा है ॥ २१८ ॥ इस तरह परस्पर बातचीत करके वे सब ब्राह्मणबालक उस भौडमें दूर जा बैठे और म जन त्यागकर केवल जन् पीते हुए एकाग्र मनसे तपस्या करने लगे । सारे संसारके साक्षा तथा निखिल जगत्के प्रभु रामचन्द्रसे यह बात छिपी नहीं रहती ॥ २१६ ॥ २२० ॥ नवें दिन उन्होंने अपनी सभामें उनको दर्शन देनेके विषयमें मन्त्रिणा की ॥ २२१ ॥ इसके बाद क्षण भर अपने मनमें विचार किया कि यदि उनको एक ही समयमें दर्शन न दूँगा तो वे मनुष्ट नहीं होंगे ॥ २२२ ॥ इस कारण आज मैं भी रूप धारण करूँगा । ऐसा निश्चय करके उन्होंने लक्ष्मणसे आदरपूर्वक कहा— ॥ २२३ ॥ हे लक्ष्मण ! पालकी मंगाओ । आज मैं बाहर घूमने जाऊँगा । बहुत अच्छा कह तथा दूनी द्वारा लक्ष्मणने पालकी मँगवाकर रामचन्द्रजीको इसकी खबर दी । तब मिहामनसे उतरकर राम पालकीमें बैठे और भाद्यों, मन्त्रियों, सम्प्रविष्यों तथा मित्रोंके साथ घारे-घारे अयोध्यासे बाहर निकले ॥ २२४-२२६ ॥ उस विशाल भौडको पार करके रामचन्द्रने नौ रूप धारण किया ॥ २२७ ॥ क्षण भरके भीतर रामने पालकी, सम्बन्धी, सब भाई, दूत तथा बाहन समेत सब मित्रोंको भी रूपमें परिणत कर दिया ॥ २२८ ॥ केवल अपने तथा अपने सापियों ही की उन्होंने नौ सूर्या नहीं बनायी, बल्कि जो लोग बहाँ दर्शन करने आये थे, उनको भी उन्होंने नौ सूर्यामें विभक्त कर दिया । यह एक विचित्र बात हुई । २२९ ॥ इसके अनन्तर उन मनुष्यों, मित्रों दूतों, बन्धुजनों तथा ब्राह्मणोंके सागे-आगे रामचन्द्रजी चले लगे ॥ २३० ॥ फिर क्या था, उन सबों ब्राह्मणोंने एक ही समयमें प्रभुको अपने-अपने आगे लड़े देखा ॥ २३१ ॥ इससे प्रसन्न होकर उन्होंने रामको प्रणाम किया । इसके बाद वे नवों राम अपनी-अपनी पालकियोंसे उतरे और उन ब्राह्मणोंको गलेमें लगाया । फिर मोठी मोठी बाणोंमें उनसे बोले ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ उन्होंने कहा—हे ब्राह्मणों ! आप लोगोंने बड़ा कष्ट किया है ।

भो विप्राः श्रमिता यूयं युष्माकं कृतनिश्चयम् । बुद्ध्वा वयं पृथक् रूपैर्जाताः स्मो नवधाऽद्य हि ॥२३४॥
 एकाकालेऽत्र तपतां सर्वेषां दर्शनं निजम् । कस्य देयं तु पूर्वं हि पश्चान्नकस्य प्रदीयताम् ॥२३५॥
 इति सम्मन्त्र्य हृदयेन त्वयैकममयेन हि । युष्माकं दर्शनं दत्तं वरपध्वं वरानितः ॥२३६॥
 रामाणां वचनं श्रुत्वा ते प्रोचुर्भृशुरोत्तमाः । येनास्माकं मवेत्कार्तिः स वरो दीयतां तु नः ॥२३७॥
 तत्सर्षा वचनं श्रुत्वा रामाः प्रोचुर्द्विजन्पुनः । युष्माकं दर्शनार्थं हि नवरूपधरा वयम् ॥२३८॥
 अद्य जाता यतस्माद्युष्माकं नामभिः सदा । नव रामाः परा रुपाणि शमिष्यन्त्यवनीतले ॥२३९॥
 अस्माकं नव यन्किञ्चित्प्रियं हि भविष्यति । ते तेषां तु रामाणां वाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तमाः ॥२४०॥
 सन्तुष्टस्ते नता नेमुः स्वं स्वं रामं मुहुर्मुहुः । तदा सर्वे जना रामान् लक्ष्मणान् भरतादिकान् ॥२४१॥
 आत्मानं नवधा जातान्दृष्ट्वा विस्मयमाश्रिताः । ततो रामाः शिविकासु स्थित्वा पृष्ट्वा द्विजोत्तमान् ॥२४२॥
 परावृत्त्य ययुः सर्वे मार्गं त्वेकोऽभवन्पुनः । सर्वे जातास्त्वेकरूपास्तथा ते विस्मयं ययुः ॥२४३॥
 ततो रामो बन्धुभिश्च पूर्ववश्रगरीं ययौ । गत्वा गेहे तु सीतार्यै सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥२४४॥
 अतस्ते नव विप्राणां नामभिर्जगतीतले । रुपाणि रामा ययुस्तत्र नव यद्यच्च तत्प्रियम् ॥२४५॥
 यथाकां द्वादश प्रोक्ता एकविंशद्गणाधिपाः । रुद्रा एकादश प्रोक्ता यथाष्ट भैरवाः स्मृताः ॥२४६॥
 नव दुर्गा यथा तत्र तथा रामा नव स्मृताः । प्रियं द्वादश सूर्याय एकादश शिवप्रियम् ॥२४७॥
 एकविंशत्प्रियं यद्गङ्गेशाय महान्मने । प्रियमष्ट भैरवाय दुर्गार्यै तु नव प्रियम् ॥२४८॥
 यथा यथाऽत्र रामाय नव शिष्य प्रियं सदा । तस्मात्तद्विधैः पुष्पैरञ्जलिस्तत्प्रियो मतः ॥२४९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकाण्डे रामपूजाद्विस्तारो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

आपके कष्टको देखकर ही मैं अलग-अलग रूप धारण करके एक ही समयमें सबके समक्ष आया हूँ ॥ २३४ ॥
 मैंने अपने मनमें सोचा कि ये सब भई एक साथ एक ही समयमें तपस्या करने बैठे हैं । ऐसी अवस्थामें मैं
 किसे पहले दर्शन दूँ और किसे पछे ॥ २३५ ॥ यह विचारकर मैंने आज एक ही समय तुम लोगोंको दर्शन
 दिया है । अब अपने द्वात्रिंशानुसार वर भी माँग लो ॥ २३६ ॥ उनकी वाणी सुनकर ब्राह्मणोंने कहा—हे प्रभो !
 जिससे संसारमें हमारी कीर्ति हो, हमें आप वही वरदान दीजिये ॥ २३७ ॥ इस तरह उनकी बात सुनकर रामने
 उन ब्राह्मणोंसे कहा कि आप लोगोंको दर्शन देनेके लिये मैंने नौ रूप धारण किया है । अतएव आप लोगोंके
 नामसे ही मैं नौ रामके नामसे विख्यात होऊँगा ॥ २३८ ॥ २३९ ॥ ओ कोई भी नौ चीजें चुझे देगा, वे हमें
 अतिशय प्रिय होंगी । इस तरह उनका बात सुनकर प्रसन्न मनसे उन ब्राह्मणोंने बार-बार रामको प्रणाम किया ।
 उधर रामके साथशाले लक्ष्मण भरत आदि लोग अपनेको नौ सख्यामें देखकर बड़े चकराये । सदनन्तर वे सब
 राम पालकियोंमें बैठे और उन ब्राह्मणोंसे पूछकर अयोध्याके लिये होट पड़े ॥ २४०-२४२ ॥ रास्तेमें रामने
 उन नवो रामोंका रूप समेट लिया और फिर उन्हीं लो एक राम हो गये । यह घटना देखकर भी लोगोंको
 बड़ा विस्मय हुआ ॥ २४३ ॥ इस तरह राम अपने दानवोंके साथ नगर को गये । घर पहुँचकर उन्होंने
 सीताको उस दिनका सारा समाचार कह सुनाया ॥ २४४ ॥ हे शिष्य ! इसी कारण राम उन नौ नामोंसे विख्यात
 हुए और जो-जो चीजें नौ सख्याकी दी जाती हैं, वे उन्हें विदेव प्रिय हुआ करती हैं ॥ २४५ ॥ जैसे बारह
 आदित्य माने गये हैं, इक्कीस गणेशजी, ग्यारह रुद्र, आठ भैरव तथा नौ दुर्गायें मानी गयी हैं उसी तरह राम
 भी नौ माने जाते हैं ॥ २४६ ॥ बारह सख्याको चीजें सूर्यको एकादशसंज्ञक रुद्रको, इक्कीस गणेशजीको, आठ
 भैरवको और नौ वस्तुयें दुर्गाको प्रिय होती हैं ॥ २४७ ॥ २४८ ॥ इसी तरह जो चीजें नौ होंगी, रामको अत्यंत
 प्रिय हुआ करेगी । इसीलिये नौ प्रकारके फूलोंसे अञ्जलीदानका विधान मैंने बतलाया है ॥ २४९ ॥ इति श्रीकृत-
 कोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे ज्योत्स्ना भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(लघुगमतोमद्रका विस्तार)

श्रीविष्णुदास उवाच

स्वामिस्त्वया रामनाम्नामष्टोत्तरसहस्रकम् । भद्रमुक्तं तथा चाष्टोत्तरशतमनुत्तमम् ॥ १ ॥
 रामनाम्नां भद्रमुक्तं रामचन्द्रप्रपूजने । तत्कीदृशे ते तु भद्रे लेखनीये मनोरमे ॥ २ ॥
 ते मां विस्तरतो ब्रूहि यथाऽहं वेष्टि तत्त्वतः । तयोरे ये विशेषाश्च भद्रयोस्तेऽपि मां वद ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

मृणु सिष्य प्रवक्ष्यामि भद्राणां रचनाः शुभाः । यथा पृष्टा त्वया मया रामनाम्नां मनोरमाः ॥ ४ ॥
 अष्टोत्तरशतं रामलिङ्गतोमद्रमुत्तमम् । आदौ मया विस्तरेण कथ्यते तन्निशामय ॥ ५ ॥
 अत्रोपास्या राममुद्रा रुद्रयोपासकः स्मृतः । श्रीरामलिङ्गतोमद्रमत एवोच्यते बुधैः ॥ ६ ॥
 तिर्यगूर्ध्वं तदा रेखा द्वे पाते रेखयाधिके । तत्रादौ कृष्णपरिविस्तृतो रक्तः पितस्ततः ॥ ७ ॥
 ततः पीतश्च परिधिः कोणेन्दुस्त्रिपदः स्मृतः । चन्द्राग्रे मृत्खला कृष्णा स्मृता द्वादशपादिका ॥ ८ ॥
 हरिता च ततो वल्ली त्रयोविंशत्पदान्मिका । ततः पीता मृत्खला च स्मृता द्वादशपादिका ॥ ९ ॥
 विंशत्पादमयं भद्रं रक्तं वापी सिता ततः । त्रयोदशपादा ज्ञेया लिङ्गं षड्विंशत्पादजम् ॥ १० ॥
 कृष्णश्चतुष्पदो मूर्द्धा नाभिर्धूम्रपदः स्मृतः । मूलस्कंधा पटपदजौ पार्श्वे तुर्यपदात्मके ॥ ११ ॥
 ततो रक्तश्च परिधिर्मर्यादारूपोऽर्कपादजः । ततो भद्रा तुर्यतुर्यभूमिपादमिता स्मृता ॥ १२ ॥
 ततो मर्यादापरिधिर्लिङ्गमुद्राः पुनः पुनः । एवं हरानव ज्ञेया मुद्राश्चार्ष्टी प्रकीर्त्तिताः ॥ १३ ॥
 परिधयः षोडशीव हस्ते लिङ्गोर्ध्वार्धवर्के । निर्मेयं भद्रं नवपदैः पीतं वा हरितं कचित् ॥ १४ ॥
 रक्तभद्रोर्ध्वतः शेषपादानि यानि सति हि । पथेच्छ चित्ररणेन मृत्खलार्थे नियोजयेत् ॥ १५ ॥

विष्णुदासने कहा—हे स्वामिन् ! आपने हमें रामनामका अष्टोत्तर सहस्रका भद्र (भासन) और अष्टोत्तरशत नामका भद्र रामचन्द्रकी पूजाके प्रसङ्गमें बतलाया है । उन भद्रोंको किस प्रकार बनाना चाहिए, यह हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए । जिससे कि मैं ठीक तरहमें समझ सकूँ । उनको जो विषयतामें हों सो भी हमें बतला दीजिए ॥ १-३ ॥ श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! उन भद्रोंकी रचनाका प्रकार जिस तरह तुमने पूछा है, सो मैं पहले अष्टोत्तरशत रामलिङ्गतोमद्रका रचनाप्रकार विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ, सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसमें राममुद्रा उपास्य है और रुद्र उपासक है । इसी कारण लोग इसे रामलिङ्गतोमद्र कहते हैं ॥ ६ ॥ यह भद्र बनानेवालोंको चाहिए कि सीधी और वेड़ी दो सौ रेखाएँ खींचे । उसमें पहलेकी परिधि काली, फिर लाल, फिर सफेद रक्खे ॥ ७ ॥ इसके बादकी परिधि पाली और फिर कोणमें त्रिपद चन्द्रका आकार बनाये । चन्द्रमाके आगे काले रङ्गकी ऐसी शृङ्खला बनाये, जिसमें द्वादश पाद (कीष्टक) विद्यमान हों । फिर हरे रङ्गकी तेईस पादकी बन्नी बनावे । फिर द्वादश पादकी पीली शृङ्खला रक्खे ॥ ८ ॥ ९ ॥ फिर वीस पादका भद्र बनाये । तदनन्तर सफेद रक्तकी वापीका निर्माण करे । जिसके तेईस पाद बने हों । फिर छव्वीस पादका लिङ्ग बनाये । फिर चार पाद (कीष्टक) का काले रक्तसे मस्तक बनाये, फिर दो पादकी नाभि बनाये । उसके दो मूठ स्कन्ध छ. छ. पार्श्वोंके बनाये और चार पादका पार्श्वभाग बनाये । फिर बारह पादकी मर्यादा बनाये, जो लाल रक्तसे रङ्गी हो । फिर चार-चार पादोंकी मुद्रा बनाये । फिर मर्यादाकी परिधि एवं लिङ्गमुद्रा बनाये । इसी तरह नौ शिव एवं भाठ मुद्रायें बनाये ॥ १०-१३ ॥ फिर लिङ्गके ऊपर और बगलमें सोलह परिधिषोंकी रचना करे । फिर नौ पादोंसँ वही पीले और कहीं हरे रङ्गके भद्र बनावे ॥ १४ ॥ रक्त भद्रके ऊपर जितने भी धरण हों, उनको शृङ्खलाके लिए विच-

तदर्थञ्च द्वितीयायाः प्रथमं च द्वितीयकम् । चतुर्थं सप्तमं षष्ठं द्वाष्टमं नवमं तथा ॥३४॥
 तथैकादशमं चापि कृष्णवर्णानि पूरयेत् । तदर्थञ्च तृतीयायाश्चतुर्थं षष्ठसप्तमे ॥३५॥
 तथैकादशमं चापि कृष्णवर्णानि पूरयेत् । चतुर्थ्याः प्रथमं च द्वितीयकम् ॥३६॥
 चतुर्थं सप्तमं दशमं नवमं रुद्रमेषितम् । तदर्थञ्च पञ्चमाश्व प्रथमं च द्वितीयकम् ॥३७॥
 चतुर्थं च तथा षष्ठं नवमैकादशे तथा । रामेति द्वेक्षरं शुक्ले द्रष्टव्ये पञ्चपत्तिकम् ॥३८॥
 पञ्चपत्तिकं च द्वाष्टमं प्रथमायाश्चतुर्थं पूरयेत् । तदर्थञ्च द्वितीयायाः प्रथमं च द्वितीयकम् ॥३९॥
 चतुर्थं सप्तमं षष्ठं नवमं दशमं तथा । तथा चैव द्वादशमं कृष्णवर्णानि पूरयेत् ॥४०॥
 तृतीयायाश्चतुर्थं च षष्ठमकं च सप्तमम् । चतुर्थ्याः प्रथमं षष्ठं द्वितीयं च चतुर्थकम् ॥४१॥
 अष्टमं नवमं चाकं दशमं चापि पूरयेत् । पञ्चमायाः प्रथमं च द्वितीयं च चतुर्थकम् ॥४२॥
 षष्ठमर्काष्टमं चापि सप्तमं दशमं तथा । नवमं कृष्णवर्णानि रामेति द्वेक्षरं लोकेयम् ॥४३॥
 राजा रामेति चत्वारि द्वाष्टमणि निर्दिशयेत् । पञ्चमं शनराजेति द्वाष्टमं कर्त्तव्यं नरः ॥४४॥
 अथवा राम रामेति तृतीयं नाम कायेयम् । विष्णु नववर्णाभिः द्वाष्टमं पञ्चसु पत्तिकम् ॥४५॥
 पञ्चदशतः प्रथमं षष्ठं कृष्णेन कायेयम् । नाकायनः द्वाष्टमं रामनामावलोकयेत् ॥४६॥
 अथवा राम रामेति विष्णुपञ्चोदधपत्तिकम् । प्रथमा पञ्चदशेया द्वितीयायाश्चतुर्थः षष्ठः ॥४७॥
 प्रथमं च द्वितीयं च तृतीयं पञ्चमं तथा । अष्टमं नवमं षष्ठं तथैकादशमं त्वरि ॥४८॥
 तृतीयायाश्च प्रथमं रुद्रं षष्ठं च पञ्चमम् । चतुर्थ्याः प्रथमं चैव द्वितीयं च तृतीयकम् ॥४९॥
 पञ्चमं सप्तमं चापि द्वाष्टमं नवमं तथा । तथैकादशमं चापि कृष्णवर्णानि पूरयेत् ॥५०॥
 पञ्चमायाः प्रथमं च द्वितीयं च तृतीयकम् । पञ्चमं सप्तमं षष्ठं द्वाष्टमं नवमं तथा ॥५१॥
 तथैकादशमं चापि रामेति द्वेक्षरं मितम् । नामान्यतानि चत्वारि चतुर्धाश्वेषु याजयेत् ॥५२॥

पत्तिको भरे और पहली तथा इंजानवाणकी पत्तिका काय रङ्ग का रङ्गकर वाचक ॥ ३३ ॥
 उसके नीचे दूसरा पत्तिको पहली, दूसरी, चौथी, छठी, सातवीं, नवा तथा द्वादशवाणकी पत्तिका काय रङ्ग का
 भरे । उसके नीचे तीसरा, चौथा, छठा, सातवा और द्वादशवाणकी पत्तिका काय रङ्ग का भरे । सात पत्तिका, पहली
 दूसरा, चौथा, सातवीं, छठी, नवा और द्वादशवाणकी पत्तिका काय रङ्ग का भरे । सातवाणकी पत्तिका काय रङ्ग का
 पहली पत्तिकामें 'राजा' यह दो अक्षर सन्देश रङ्गके द्वाष्टम में दिए ॥ ३४-३५ ॥ प्रथम पत्तिकामें पहली पत्तिक
 कोठीकी पूर्ववत् रख्य । उनके नीचे दूसरा पत्तिको पहली दूसरा, चौथा, सातवा तथा द्वादशवाणकी काठी
 काय रङ्ग का भरे ॥ ३६ ॥ ४० : तासरी पत्तिको चौथा, छठी, द्वादशवाणकी तथा सातवीं काठी काय रङ्ग का
 चौथी पत्तिको प्रथम, दूसरा, चौथा, छठी, द्वादशवाणकी, नवा, सप्तमी और नववाणकी काय रङ्ग का भरे । जिसमें 'राम' यह दो अक्षर साफ दिखे ॥ ४१-४२ ॥ यह सब हो जानेपर उसमें 'राजाराज' ये
 चार अक्षर दिखाने देने लगे । अपना बुद्धिमान समझे । उसके नामराजा' नाम भरे लक्षण है । अथवा
 राम राम राम इन तीनों नामोंकी कल्पना करे । उसके नीचे पञ्चदशवाणकी पत्तिका काय रङ्ग का भरे । अथवा 'राम' नाम
 ॥ ४४ ॥ ४५ : चौथी पत्तिको पहली कोठीका काय रङ्ग का भरे । इसमें छठी, सातवा, अष्टमी, नवमी तीसरी
 और 'राम' यह साफ-साफ मालूम पड़ने लगें ॥ ४६ ॥ अथवा 'राम' नाम यह सन्देश भरे । इसकी
 पहली पत्तिक पूर्ववत् रहेगा । इसका बाद दूसरा पत्तिको पहली, दूसरा, तीसरा, चौथी, छठी, नवा, छठी
 तथा द्वादशवाणकी काठी, सासरी पत्तिको पहली द्वादशवाणकी छठी, पाचवीं, चौथा पत्तिको पहली, दूसरा, तीसरा,
 पांचवीं, सातवीं, आठवीं, नवा तथा द्वादशवाणकी काठीका कृष्णवर्ण का भरे ॥ ४७-५० ॥ पञ्चम पत्तिको पहली,
 दूसरा, तीसरा पांचवीं, छठी, आठवीं, नवा तथा द्वादशवाणकी काठीका भी काय रङ्ग का भरे । एना करनेसे

लघुमुद्रान्वितं रामलिङ्गाख्यं भद्रमुच्यते । मया शिक्षाधुना तत्र धृणुष्व स्वरस्यमानसः ॥५३॥
 नियोगूर्ध्वमेकपञ्चाशद्रेखास्तत्पदेषु च । मम ममपदा ने द्वौ परिधी पातवर्णके ॥५४॥
 कार्यौ तत्र कोणदेशेष्विन्दुत्रिपदशुक्लकः । शृङ्खलमुपरा कृष्ण त्रयोदशपदा लता ॥५५॥
 हरितेशो वसुपदः कृष्णवर्णः प्रकारवेत् । त्रिपदं लोहितं ज्ञेयं भद्रं बल्लभ्यन्निकम्पितम् ॥५६॥
 पण्डितादात्मिका मुदा तत्रेन्द्रियदिक्स्थिता न्यक्त्वा पंक्तिः कोणकोष्ठ मिथुनं शुभितस्तथा ॥५७॥
 विभक्तुं कर्ता च मममायाः पक्तेः पदस्य च । मणिषा पूरयेत्तत्र भाति रामेति सन्पदम् ॥५८॥
 तत्रादायप्रमुद्रा स्यान्मीमापयिष्यस्तथा । रक्तलिङ्गद्वयं भद्रं तथा लिङ्गोपरि स्थितम् ॥५९॥
 पदद्वयं पातवर्णं वीथीबल्लया नियोजयेत् । द्वितीये न्वेकमुद्रा द्वौ परिधी द्वौ शिरो मता ॥६०॥
 भद्रं नवपदं लिङ्गबल्लयोर्मध्ये रमान्मकम् । मर्दयान् लिङ्गोपरि रक्त तुर्यपदन्मकम् ॥६१॥
 लिङ्गस्कन्धपदे द्वे द्वे हरिते वीथिकाऽपि च । मद्राणि त्रिणि ज्ञेयानि पातद्रे लोहितेऽत्र द्वि ॥६२॥
 लतोऽन्तः सर्वतोभद्रं कार्यं तत्र नृवापिका । चतुर्विधस्य पदं भद्रमकं कौष्ठं लते मिते ॥६३॥
 त्रिष्टोऽञ्जः पञ्चपदा शृङ्खला परिधिस्ततः । मध्ये पद्म रक्तवर्णं त्र्यवेष्टा विविचित्रितम् ॥६४॥
 शीतशुक्लरक्तकृष्णाश्चांते परिधयो मताः । एतन्पोडशमुद्राभी रामलिङ्गाख्यं भद्रकम् ॥६५॥
 मदानन्दमयं रामं चिन्त्योतिपमनामयम् । सर्वत्रभामकं त्रितयं स्यान्मानं समुद्रास्पदे ॥६६॥
 चन्द्रकलं गमलिगतोभद्रं यद्विकल्पितम् । निर्विकारं नास्ति तस्मिन्निवेकः साधविच्यते ॥६७॥
 कल्पितः स नरो राजा गमलितयुतः स्मृतः । रमणाद्रात्म इत्युक्तो योगिगम्यः परं महः ॥६८॥
 लीयन्ते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिङ्गं परं व्योमेत्युक्तं ब्रह्मविदुत्तमः ॥६९॥

"राम" य दा अक्षर सफर दोखन लगैये । इन चारो नानोका चारो ओर रख द ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ह शिक्षे
 अब लघुमुद्रान्वित रामलिङ्गाख्य भद्र वतल्यात है । सा तम स्वस्यचित्त होकर सुनो ॥ ५३ ॥ खड़ा और बड़ी
 ५१ रेखाएँ लीत । उनके साथ साथ खनाय पात रंगवा दो परिधिवा बनाये ॥ ५४ ॥ कोणभागम तीन
 कोणका म स पद रंगके दो पन्तु बनावे । छ कोणको एक शृङ्खला और तरह कोणको लता बनाव ॥ ५५ ॥
 आठ पादका हरे रंगका शिव बनावे । लाल रङ्गके बल्लय पाम हूँ । तान पादका भद्र बनावे ॥ ५६ ॥ साठ
 पादकी मुद्रा और चन्द्रमा यास्ये प्राणम रहगा । इन कोण और दस कोणको छहकर ऊपर बनलायो
 गयो मुद्रा रखनी चाहिए । इसके अनन्तर सनवी पातके मध्यम कोणको काटा स्याहोत भर दो तो
 "राम" ऐसा स्पष्ट दिखायी देने लगगा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ उसके आदिम अग्निमुद्रा और उसकी चारों परिधियाँ
 लाल रङ्गसे रत । दानो कोणके भद्र तथा लिङ्गके ऊपर शिवन दाया पाद पातवर्णसे रंगन चाहिये । इसमें
 बई बनाया तथा बल्लिया बनालो चाहिये । दूसरे में एक मुद्रा, दो परिधि दो शिव, नौ पादका भद्र, ललग
 और बल्लके मध्यम छः भद्र बनावे । लिङ्गके ऊपरवाला भद्र पाले रङ्गका हो और चार कोणको लाल रङ्गसे
 रंगना चाहिये ॥ ५९-६१ ॥ लिङ्गके स्कन्धस्थानमें दादा हरे रङ्गके भद्र रङ्गे और बाधियाँ हरे हरे रङ्गकी
 रहनी । यहाँपर तान भद्र रहगे, एक मोल्य और दो लल । इसके मध्यभागमें सर्वतोभद्र वेगा । जिसमें चौबीस
 का क रहगे, नौ कोणको लता बनाया और शिव भा इनगे । ६२ ॥ तीन पादका अञ्ज (कमल) और पाँच
 पादकी शृङ्खला और परिधि रहगा । मध्यम रक्तवर्ण य कई रङ्गके कमल बनावे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इसके अन्तमें
 पात, सफर, लाल और काले रङ्गका परिधि रहनी । इन षोडश मुद्राओंसे रामलिङ्गोभद्र बनता है ॥ ६५ ॥
 सदा आनन्दमय, चिन्त, ज्योतिर्मय, व्यापिरहित और सबके अवभासक, ऐसा अपन आन्मा रूप रामका मे
 उपासना करता हूँ । ६६ ॥ सोलह कलाआका यह रामलिङ्गोभद्र जो मेन बतलाया है, वह विचार विहीन
 नहीं है । इसमें जा विचार है, अब उसको विवेचना करने है ॥ ६७ ॥ राजाराम हम चिह्नका निमणि करने-
 वाला मनुष्य अन्य है । सब लोगोंकी आनन्द देनेके कारण रामका "राम" यह नाम पड़ा है । योगीजनोंकी
 ही प्रति जनक है । उनका सर्वोत्कृष्ट तज है ॥ ६८ ॥ उन्हीमें सत्कारके सब प्राणी लीन होत हैं और फिर

लिन्यते चिन्यते येन भावेन भगवान् शिवः । लिंगरूपो स रामेति लिंगं चेति द्विनामकः ॥७०॥
 बहुनि सन्ति नामानि रामेशस्य महान्वनः । गताणि गगयन्कोऽपि भूमनेवात्रिलेगितुः ॥७१॥
 तस्मिन्मन्मर्तोभद्रं हृदयं तन्प्रकीर्तितम् । मय पञ्चमष्टपत्रं मर्कटामर्कणिकम् ॥७२॥
 तत्स्थानं रामलिंगस्य ध्यानाय परिकल्पितम् । अन्यथा सर्वगतस्यास्य कथं देहादिभेदना ॥७३॥
 दिव्योतिः परमान्मस्य स्वमायावृत्ता मयः । धर्माध्यामप्रोश्चार्थं सृष्ट्युपाधिं प्रविष्टवान् ॥७४॥
 तस्य चेतन्यचन्द्रस्य षोडशेमाः कलाः पराः । विदुषांश्च द्वाभ्यां चट् दीप्तिपदानिह । ७५॥
 प्रकाशयन्ति गृह्णन्ति त्यजन्ति च संसारतः । त्रिदिवेकाऽन्यत्र मयिना सन्निकृष्टा शिवान्वनः ॥७६॥
 अतो ज्ञानप्रधाना सा नञ्ज्ञानं चक्षुरदिपु प्रमृत्त रुद्रजन्दादौ ज्ञानानि मुखसंज्ञाः ॥७७॥
 चतुर्धा वृत्तिभेदेन प्रोक्ता तत्त्वाधेदशिभिः । प्रयोजनं न तेनात्र प्रकृतं नाद्विविच्यते ॥७८॥
 क्रियाप्रधानः प्राणश्च पञ्चाशाऽमो स्ववृत्तिनः । प्राणपानौ तथा व्यानः समानोदानकाविति ॥७९॥
 वागादिकर्मेन्द्रियेषु क्रिया प्राणाश्चया मया । अरण नयन घ्राण त्वग्रसनेन्द्रियं तथा ॥८०॥
 पञ्चेषानि चेन्द्रियाणि ज्ञानद्वाराणि वै विदुः । वाक्पाणिपादपायुपस्थाश्च कर्मेन्द्रियाणि च ॥८१॥
 एव षोडशमन्यान् कलान्मुच्यते चतुर्थः । तामु मयासु चैतन्यं रामनामनि विश्राम् ॥८२॥
 - प्रविष्ट दीप्पते शरात्तेन विश्वं विचेष्टते । अनादिमसाररुः कमूलकलान्वकः ॥८३॥
 देहामिमामिनो जीवाः फलभोगाय पक्षिणः । यथाकम सुखं दुःखं स्वादन्ति स्वोच्चरापितम् ॥८४॥
 कश्चिज्जन्मसहस्रेषु ज्ञानवान् जायते यदा । तदान्वस्य रासरूपं ज्ञानं मोक्षो मयत्यलम् ॥८५॥

उन्हीमसे आविर्भूत होना है । इसी कारण बहुतको जलनयात्र और न्यागने इस परम व्याम कहा है ॥ ६९ ॥
 जिस भावसे भगवान् शिवकी पूजा की जाती है । वे ही राम निम और राम दत्त दी नामस पुकार जाते हैं ॥ ७० ॥ उन महात्मा रामक बहुतसे नाम हैं । ससारका कोई प्राणी पृथ्वीके रजकणको गिन स ।
 किन्तु भगवान्के नामोंकी गणना कोई भी नहीं कर सकता । १ । उसमें जो सर्वतोभद्र है, वही हृदय जानता चाहिये । उसमें आठ पत्रोंका बेलर और पसुष्टिधो पुन जो कमल है, वह रामक लिंगका ध्यान करनेके लिए ही बनया जाता है । नहीं तो सर्वजगत् भगवत्की उणादिभदता किम प्रकार मानी जाती ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ विजयोतिर्मय वे परमान्मा अपनी मायके वशाभूत हुकर घर्म, अन्, काय और बोध इस अनुदगका साधन करनेके लिए ही संसारमे आय प ॥ ७४ ॥ उस चेतन्य चन्द्रका षोडश कलाएँ सबधेष्ट मानी गयी हैं । वे संसारका सब वस्तुप्राप्त विद्यमान रहता है ॥ ७५ ॥ ये स्वभावसे ही सबका प्रकाशित करतीं, समस्त परमेश्वर फिर छह दत्ता और कलाकला फिर अपनेप समेट लिया करता है । पवित्र आत्माबालोक लिए दुर्द्धिमात्र कला है और वह सबका पास रहती है ॥ ७६ ॥ इससे वह चक्षु आदिन रहती हुई ज्ञानप्रधान मानी जाती है । वह शब्दरूपारि समारंभ फेंक हुए पदार्थोंका अच्छी तरह जानता है ॥ ७७ ॥ वह वृत्तिभेदसे चार प्रकारका मानी गयी है । यही उसके विषयमे निन्दे विवेचनकी कोई आश्चर्यकता नहीं जान पड़ती । अतएव इस विषयमे वास्तविक विवेचना करत है ॥ ७८ ॥ अपनी वृत्तिके अनुसार प्राणिक्या प्रभाव मानी जाती है और इसके पाँच भेद है—प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान ॥ ७९ ॥ वाक् आदि कर्मेन्द्रियोंकी सारी क्रियाएँ प्राणाश्चयी हुआ करती हैं । अरण, नयन, घ्राण (नाक), त्वचा और जोष ॥ ८० ॥ वे ही पाँच जनेन्द्रियाँ मानी गयी हैं । वाक्, पाणि, हाथ, पाद, पायु (पुरा), उल्क्य (लिङ्ग), वे पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं ॥ ८१ ॥ इसीलिए कलाओंकी मोल्ह सख्या नहीं गयी है । उन सबोम उन रामनामकी चेतन्य शक्ति विद्यमान रहती है ॥ ८२ ॥ उन्हीके प्रवेशसे यह संसार देहाव्यमान होता है और उन्हीको चेष्टासे लच्छ रहता है । वे अनादि संसाररूपी वृक्ष हैं और सबका कर्मानुसार फल देते हैं ॥ ८३ ॥ देहका अभिमान करनेवासे जीव पक्षियोंकी तरह अपने प्रभुके द्विये हुए सुख-दुःखरूपों कर्मोंको भोगते हैं ॥ ८४ ॥ हजारों बार जन्म लेनेके बाद कहीं कोई ज्ञानवान् होता है और अपनी आत्मासे स्थित रामका रूप जानकर मोक्षपद-

इन्द्रियाणि पराण्येदं नेन्यो बुद्धिः परा मना । तन्परः परमात्मा च सर्वमासी विनिश्चितः ॥८६॥
द्वौ सुष्णवैकृन्तं समाश्रित्य स्थितौ तयोः । एकः साफल्यं सगुं स्वादन्यन्यो विचक्षते ॥८७॥

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोग्यश्च यद्भवेत्

तेभ्यो विन्यक्षणः साक्षीत्याह चाधरणी श्रुतिः ॥८८॥

यच्चास्तीह यत्स्फुरति यच्चाजन्दयति स्वयम् । यस्मिंश्च महमि प्रणये सर्वे वेदाः समन्विताः ॥८९॥

विषयादि शीपर्वन्तं जडं सर्वमनात्मकम् । यस्यार्थे च प्रियं चैतन्ममाना महाप्रियः ॥९०॥

सर्वेषां प्राणिनां म्यान्मा परमैमात्म्यं मया । यत्तु सर्वैक एव नेह नानान्ति शब्दनि ॥९१॥

चिद्रासं हृदयं ज्ञानं योऽसौ बोद्धुमिच्छया । अजायते च या सम्पत् परमोपमान गतः ॥९२॥

आवृत्तिरमकृन्त्यापान्फलाभूते परात्मनि । बाधद्वलं पुनस्तस्य न कार्यं विद्यते भवे ॥९३॥

सर्वेऽप्युपायाः शास्त्रेषु यस्तानार्थं प्रयोजिताः । स चेदासि कृच्छन्देन हृद्यानिः किं परं तवः ॥९४॥

दृष्टेऽस्मिन्नचित्ते भद्रं यद्येव प्रविचार्यते । तदा चित्ते परं प्राप्तर्जायते विदुषां सताम् ॥९५॥

नमो रामाय शान्ताय लिङ्गरूपधराय च शम्भवे विष्णवे तुभ्य शङ्कराय शिवान्मने ॥९६॥

अथवाऽऽद्ये स्थले भद्रं कार्यं नवपदान्मकम् । निर्वर्णं भद्रं पदपदजं रक्तपातेऽत्र ते स्मृते ॥९७॥

द्विद्विषादात्मके कार्ये शेषं सर्वं हि पूर्ववत् । रामतो भद्रमेतच्च केवलं रामतुष्टिदम् ॥९८॥

स्थले द्वितीयभद्रं हि रक्तं विश्वम्पदात्मकम् । तत्रैव भद्रं नवपदं पातं चित्ते तु गृह्यते ॥९९॥

नन्वेशानं राममानन्दकन्दं मायार्तितं निर्विकारं निर्गन्धम् ।

विद्यावीशं षड्गुणैकात्म्यं च वक्ष्ये भद्रं रामनामांशकितं तत् ॥१००॥

को प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ पहल तो इन्द्रिय ही प्रधान है, उनमें बुद्धि प्रभु है और उसमें भी श्रेष्ठ सर्वमासी परमात्मा है ॥ ८६ ॥ दो पक्षों तक पुनरुद्भूत है । उनमें एक तो मूर्खता का फल ही रहा है, दूसरा दुःख दुःख साक्षी है ॥ ८७ ॥ तीनों धामों जो भाव्य वस्तु, भातय तथा भातय पदार्थ हैं । उन सबसे साक्षी परमात्मा विन्यक्षण है । यह अर्थ वद कहता है ॥ ८८ ॥ इस शरीर में जो चलायमान रहता है और जिसके लक्ष्य आनन्दको प्राप्त होता है । उसके विषय में वद एक मन्त्र लेकर कहता है कि विषय लेकर बुद्धिवन्त सब वस्तुएँ जड़ और नात्मनिहृत हैं । जिसके लिए व सब प्रिय साधुस हाव है, वे परमात्मा राम सर्वप्रिय है ॥ ८९ ॥ ९० ॥ समारक सब प्राणिनां अपना आत्मा सबसे दक्षिण प्रिय होता है । यद्यपि वह एक है फिर भी अनेक रूपों में विद्यमान रहता है ॥ ९१ ॥ जो प्राणी साक्षात् इस भावना में चिन्मय रामको अपने हृदय में सदा वतमान सम्मिलित करके पदों में वद ईश्वर रामको उपासना करता है, वह परमात्मा ही है । भद्राके फलीभूत हान पर अन्तर्गत वद इस संसार में जन्म लेता है, किन्तु ज्ञान के दृढ़ हो जाने पर फिर संसार में उसे कुछ करना बाकी नहीं रह जाता अर्थात् उसका मुक्ति हो जाता है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ शास्त्रों में जितने भी उपाय बतलाये गये हैं, उनका एवमात्र प्रयोजन ज्ञान प्रप्ता करता है । यदि वह सात्त्विक उपायों से प्राप्त हो सके तो फिर क्या कहना ॥ ९४ ॥ यदि उक्त प्रकारसे बने हुए भद्रों के ज्ञान से दक्षिण उसपर विचार किया जाय तो विद्वानों के हृदय में ईश्वर की प्रति महाप्राप्तका उत्पत्ति होता है ॥ ९५ ॥ शान्त, लिङ्गरूपधारा, शम्भु, विष्णु, शङ्कर तथा शिवान्मा रामको प्रणाम है ॥ ९६ ॥ यदि उक्त प्रकारका भद्र अपने को न स्वता ही पादका भद्र बनावे । इस तिरछे भद्र में छः पाद (काठक) होंगे और दो भद्र लाल और नील रहेंगे ॥ ९७ ॥ फिर दूसरा लाल भद्र दोस पादका होगा । तिरछा भद्र भी पादका होगा । इसका पाला रङ्ग रहण और कई रङ्गाक भद्रों से इसमें दोन्दा पादों की दा शृङ्खलाएँ बनायी जावेंगी, ९८ ॥ बाका सब पूर्ववत् रहेगा । इस भद्रका नाम रामतोभद्र है और यह केवल रामचन्द्रका प्रसन्न करनेवाला है ॥ ९९ ॥ आनन्दकन्द, मायार्तित, निर्विकार, विरीह, विद्याके स्वाधी और षड्गुणों के एकमात्र आश्रय शिवकी यह भद्र नहीं प्रसन्न कर सकता । इसलिए है

प्राभुवरा दिशतमंकनवाधिका २०५ श्व रेखाः ममाः सुपरिकल्प्य यदेष्टु तामाम् ।

कोणांतगाऽत्र उपगीदृशकुंतमन्वयाः २१ पीताश्च ते परिधयः पञ्चिकल्पनीयाः ॥१०१॥

कोणरजमृत्तललताः सितकृष्णनीला शूद्राणि भिन्नरचनान्यरुणानि तानि ।

मुद्राश्च तन्परिधयश्च मिनाश्च रक्ताः सपरिनाश्च जनयानि रनिं सुनीलाम् ॥१०२॥

शूद्रा तु पट्टिपदसखलिना च तत्र पक्षी विहाय यमवामवदिकनस्थे ।

प्रत्येककोणकपदानि चतुष्टयादि पक्षिद्वयं रसतुर्गयक्रमञ्जनाभम् ॥१०३॥

कृत्वा पदक्रमवतस्त्वय मममायम्नेनानिसुन्दरतर परिभाति मारम् ।

रामेति द्वयभ्रमुमेशजपं निधान प्राणप्राणममये जपतां महीदयम् ॥१०४॥

रचयेददितः सम्यग्यावद्विशन्धनार्थं सर्वत्र राममुद्रायु मध्येषु परिधिद्वयम् ॥१०५॥

आदौ तन्त्रमिता मुद्रास्त्रयेविंशन्मितास्वनः । द्वाविंशकविंशविंशपट्टमपदयुगापराः ॥१०६॥

षष्टचतुर्दशत्रयोदशद्व्यदशकः । नवष्टमपट्टत्वे त्र्यंशकाश्चाप्यनुक्रमत् ॥१०७॥

भद्रं षोडशपादे च विंशन्विशन्पट्टाग्रिकम् ।

चतुरस्रं तन्त्रमितं त्रिंश क्षिपिंशुविंशकम् ॥१०८॥

तन्त्रपट्टमिनेत्रांशुनिधिर्विशन्नर्थाऽग्रिकम् ।

पट्टविंशन्षोडशपादे तन्त्रे त्रिंशद्विंशमिधुकम् ॥१०९॥

विंशत्कोष्ट क्रमादेवं भवेन्पार्श्वचतुष्टये । पट्टविंशन्पट्टे भद्रमेककोष्ठं च वापिका ॥११०॥

चतुर्विंशपदा कायां परिधयन्तोऽष्टपात्रिकम् । भद्रोपरि यत्र यत्र पदान्पूर्वमिनानि च ॥१११॥

तिर्यक् भद्रमृदुलार्थं यथेच्छ पर्येद्विधा । सर्वत्र भद्रतन्त्राः पञ्चपदनेकादशी लता ॥११२॥

त्रिपदश्च शशी ज्ञेयः परिधयो बहिः क्रमन कृष्णरक्तशुक्लरूपानाश्चतुर्दिषु समततः ॥११३॥

एतदष्टोत्तरदशशतं १०८८ तेषु रामस्य भद्रकम् ।

अथवा मनु १४ रेखाणां वृद्धिं कृत्वा प्रकल्प्य च ॥११४॥

एक दूसरा भद्र बनाना रहा है ॥ १०० ॥ पहले उत्तरको ओरसे २२१ रेखा ली जायें । उसमें २१ कोष्ठकोसे पीले रंगका परिवर्तिता बनावे ॥ १०१ ॥ कोणमें कमल बनाकर सफेद, काले और नीले रंगकी शृङ्खला और छत्ताएँ बनावे । उनमें बने सब कोष्ठों में मित्र-भद्र प्रकारके लाल रङ्गके रहेंगे । उसमें बनी सफेद और लाल रङ्गकी मुद्रायें मुनियोंके हृदयमें भी अमृताण उपरत किये बिना नहीं रहती ॥ १०२ ॥ इसमें साठ कोष्ठकोशी मुद्रा बनायी जाती है किन्तु दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण कोणकी पक्षियाँ सादी छोड़ दी जाती हैं । प्रत्येक कोणके चार पाद, दो पक्षि तथा छठी और चौथी पक्षि काले रङ्गकी रहेंगी ॥ १०३ ॥ इसके अतिरिक्त सातवीं पक्षिके नीचे एक पाद काले रङ्गका बनावे जो वह भद्रके सारको तरह बहुत ही सुन्दर लगेगा । राम यह दो अक्षर शिवजीके जपमुञ्जका एक बड़ा मन्त्राना है । यदि प्राण निकलने समय इसका जप किया जाय तो बड़ा कल्याण हो ॥ १०४ ॥ आदिसे लेकर बाईसवें कोष्ठक पर्यन्त भद्रकी रचना करता जाय । हर एक राम-मुद्राके बीचमें दो परिधियाँ रहनी ॥ १०५ ॥ पहले पञ्चाश मुद्रायें रहनी । इसके बाद बाईस, इसकीस, बस, अठास, सत्तर, सत्तर, चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, नौ, आठ, सात, छ, चार, तीन, दो, एक ये मुद्रायें रहेंगी ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ इस भद्रमें नील, लाल, छनील, सोनह, पञ्चोस, लाल, वरालीस, वीह, पञ्चोस, छत्तीस, स्यालीस, ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ इस प्रकार बीस बीस कोष्ठ च गे और रहेंगे । इक्कीस काष्ठका भद्र रहेगा और नौ कोष्ठकी बायीं बनेगी ॥ ११० ॥ चौबीस काष्ठकोसे परिवर्तिके पास कमल बनेगा । जो पाद बाकी बचे हों, उन्हें अपनी बूढ़िसे भरे । इसमें पाँच पादकी शृङ्खलाएँ रहनी और ग्यारह पादकी छत्ताएँ बनायी जायेंगी ॥ १११ ॥ ११२ ॥ तीव पादका चन्द्रमा बनेगा और उसके आस-पास चारों ओर काली, लाल, सफेद तथा

परिधिस्तत्र लिङ्गानामेविंशाधिकं शतम् । वाप्यो भद्राणि चद्रादिचतुःपार्श्वेषु योजयेत् ॥११५॥
 चतुर्विंशपद लिङ्गं वाप्यष्टशतपादिका । द्वे भद्रे नव नव पदे षष्ट षष्ट पदानि पट् ॥११६॥
 त्रिंशद्विंशानि वाप्यस्तु सप्तविंशन्मिता मताः । एकस्मिन् पार्श्वके लिङ्गाधिक्ये भद्रे प्रकल्पयेत् ११७॥
 षष्टषष्टपदे शेषाण्येककोष्ठानि योजयेत् । लिङ्गं कृष्णं मिता वाप्यः शेषं सर्वं पुणोदितम् ॥११८॥
 पदानि शेषभूतानि यत्र यत्रेह तानि च । भद्रभृङ्गलयोग्यानि तदर्थे चिनियोजयेत् ॥११९॥
 कृष्णरक्तशुक्लपीता अत्र परिधयो मताः । एवं लिङ्गयुतं रामतोभद्रं परिकीर्तितम् ॥१२०॥
 अनेन देवी सुप्रीता रामेशी भवतस्त्विह । रामस्य पूजनार्थं हि त्विदं प्रोक्तं प्रगमनम् ॥१२१॥
 आचार्यान् ज्ञानसंपन्नं भत्वा तेषां प्रसादतः । वक्ष्येऽहं रामतोभद्राकृतिं च संभृम्ययुताम् ॥१२२॥
 प्रकृतिं रामतोभद्रं विकृतिं लिङ्गमयुतम् । अन्ये विकाराः संज्ञेयास्तत्र कृतिस्त्रिधोच्यते ॥१२३॥
 तिर्यग्ध्वमन्यधिकाः शतरेखाः प्रकल्पयेत् । तत्पदेषु परिधयः पट्पडन्ते पडेव तु ॥१२४॥
 पीताः कोणेषु त्रिपदः शुक्लेन्दुः भृङ्गलापमिता । पञ्चपदैकादशिका बह्वी भद्रसक्रमात् ॥१२५॥

तिन्युषोडशमूर्यनुयुगोडशकोष्ठकम् ।

कल्पयेत्तत्रकोष्ठेषु राममुद्रां हि पूर्ववत् ॥१२६॥

अष्टौ पट्ट च पञ्चमिधुवह्निचन्द्रमिताः शुभाः ।

तामां सीमापरिधयस्त्वेकाम् लोहिताः ॥१२७॥

रजनीशनेत्रमिधुपंक्तिषु मध्यमास्त्रयः । मर्यादाख्याः परिधयो भवन्ति द्विगुणीकृताः ॥१२८॥
 अंतिमं तु परिध्वन्ते सर्वतोभद्रकं लिखेत् । त्रिंशद्विंशतं वापी न चतुर्विंशपदान्मिका ॥१२९॥
 भद्रं नवपदं पञ्च परिध्वन्तः सुलोहितम् । पीता नन्कर्णिका कार्या अन्ते परिधयोऽपि च ॥१३०॥

पीली परिधियां रहेगी । ११३ ॥ यह एक हजार आठ नामोंका भद्र है । अथवा चौदह रेखाओंको बतलना करके उनकी वृद्धि कर । इसमें एक भी हकीस कोष्ठोंकी परिधि बनेगी । वापी-भद्र आदि पहलेकी तरह रखे ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ चौदास कोष्ठोंका लिङ्ग बनेगा और अठारह पादकी वापी बनायी जायगी । दो भद्र नौ-नौ पादके रहेंगे और दस-दस पादोंके छ. भद्र बनावे जायेंगे ॥ ११६ ॥ उनमें सांस तथा बीस पादोंके लिङ्ग रहेंगे और सत्ताइस पादोंकी वापी बनायी जायेगी । जो कुछ बाकी पाद बच उनमें दस-दस पादोंसे दो भद्रोंकी रचना करे ॥ ११७ ॥ बाकी नौ कोष्ठोंको यथास्थान रखे । इसमें लिङ्ग काला और वापी सफेद रहेगी । बाकी सब पहलेके भद्रोंकी तरह ज्यों के त्यों रहेंगे ॥ ११८ ॥ बाकी जितने पाद हैं, वे सब भद्र और भृङ्गलाके काममें आ जायेंगे ॥ ११९ ॥ काले, लाल, सफेद और पीले रङ्गकी इसको परिधियां रहेगी । इस प्रकारके लिङ्गसे रामतोभद्रकी रचना बतलायी गयी ॥ १२० ॥ इस भद्रमें राम तथा शिवजी दोनों प्रसन्न होते हैं । यही रामका पूजन करनेके लिये वरासन बतलाया गया ॥ १२१ ॥ अब मैं ज्ञानसम्पन्न आचार्योंको प्रणाम करके उनकी कृपासे शम्भुमयुक्त रामतोभद्रकी रचनाका प्रकार बताऊँगा ॥ १२२ ॥ इसमें रामतोभद्रकी प्रकृति विकृत रहती है । और भी कई तरहकी विकृतियाँ इसमें होती हैं ॥ १२३ ॥ लम्बी और बेंड़ी कुछ एक सौ तीन रेखाएँ लीचे । इसमें भी छ-छ पादोंकी परिधियां रहेगी ॥ १२४ ॥ कोनोमें तीन-तीन पाद बीसे रङ्गके रहेंगे । चन्द्रमा उज्ज्वल रहेगा और भृङ्गला काले रङ्गकी रहेगी । सोलह पादकी बहारी बनायी जायगी ॥ १२५ ॥ चार, सोलह, बारह छ, चार, सोलह पादके जमसे कोष्ठकोष पूर्ववत् राममुद्राकी रचना करे ॥ १२६ ॥ आठ, छ, पाँच, चार, तीन एक, इस पादक्रमसे इसको परिधियां बनेंगी और एक परिधि काल रङ्गकी रहेगी ॥ १२७ ॥ एक, दो, चार और दस इनकी द्विगुणित क्रमसे मर्यादाख्या परिधियां होती हैं ॥ १२८ ॥ अन्तिम परिधिके बीचमें सर्वतोभद्र बनाना चाहिये । यहाँ यह विशेषता है कि इसमें बीस-स बीस कोष्ठोंकी वापी बनायी जायगी ॥ १२९ ॥ नौ कोष्ठोंका भद्र बनेगा और परिधिके भीतर लाल

पीतशुक्लरक्तकृष्णवर्णा यत्र पदानि च । भद्रोऽर्थं शेषभूतानि तानि युक्त्या प्रपूरयेत् ॥ १३१ ॥
तिर्यग्भद्रमृत्खलाद्यैः पीतचित्रे च ते स्मृते । एतदष्टोत्तरशतं रामतोमद्रमीग्नित् ॥ १३२ ॥

एकं संसारशून्यं सकलसुखनिधिं सच्चिदानन्दकन्दं

मायायोगेन विश्वान्मकमिदममल ब्रह्मविष्णुशिवंभुम् ।

मृष्टिस्थिन्यन्तरेतुं निगमकपिनुत सर्वभूतान्मभूतं

सर्वज्ञं सर्वशक्तिं रणहर्मभूत तन्महो भावयेऽहम् ॥ १३३ ॥

नन्वा श्रीदेशिकेन्द्रस्य पादाब्जममप्रदम् । वक्ष्ये चाभ्यान्मिहीं मूर्ध्नि मतां चित्तचमन्कृतिम् ॥ १३४ ॥
पशूनां नखरोमादि सर्वमर्थाय कल्पने । मृतस्य नरदेहस्य मृष्टिर्दोषावहोदिता ॥ १३५ ॥
एकमेवामुना माध्य ज्ञानं यन्मस्वरूपदम् । तद्विना तु पशुभ्यश्च नरो हीनतरो मतः ॥ १३६ ॥
प्रतिभायान्पुण्यतमः श्रद्धावान् गुरुधोक्षते । कोटिष्वेकः स्वयं साक्षात्तरो नारायणो भवेत् ॥ १३७ ॥
केनचिद्रामतोमद्र मुदा षष्टिपदान्मिता । रामांकिता च संकल्पे विविच्यते च ते उभे । १३८ ॥
लोकाः मम यथाऽर्जुनस्मृत्या तत्र प्रकल्पिताः । तेनेव रचना तुल्या ज्ञान्या हन्त्यमुदीर्यते । १३९ ॥
मन्त्रांड रामतोमद्र मुदाभूतानि ममताः । रामचैतन्ययुक्तानि मम्मतानि तु मूर्ध्निभिः । १४० ॥
यस्यां स्यान्मुद्रित वस्तु या मुद्रेति निगद्यते । मुद्रेण विद्धितं चाथ पिहितं व्यर्थो भवेत् ॥ १४१ ॥
तद्वन्मर्मासु चैतासु ब्रह्ममुद्रितमुच्यते । तथाप्यासां मयाद्यातर्चनन्यः संप्रकाशते ॥ १४२ ॥
आच्छादितोऽपि कलशे स्फटिकेऽन्तर्बहिः किल । दीपः प्रकाशते कम्पन लोपयेच्च तश्चेत्यने । १४३ ॥
मृपामिव त्राग्रम् तदाकारं प्रपद्यते । तथा ब्रह्म निगकारं मुद्राकारं विभामते ॥ १४४ ॥

रङ्गका कमल रहेगा । प ले रङ्गमे उस कमलके दल अन्तरे जायेग ॥ १३० ॥ प ले, सफेद, लाल और काले रङ्गकी परिधिवा रहीगी । भद्रसे बाकी वचनितन को कहेंगे, उह पुनिके साथ रणाम पूर्ण कर दें ॥ १३१ ॥ इसकी आद्वयता तथा भद्र पीले और विविध रङ्गके होंगे । १३२ ॥ मैं भगवान्के उस स्वरका ध्यान करता हूँ जो ससारमे अकेला है, समस्त भूतका निधान है, भविष्य और आनन्दयन्त्र है । जिसमे अपनी मायाके योगसे इस निर्मल विश्वके प्रभुओंको ब्रह्मा, विष्णु और शिवके नामसे अभिहित कर रक्ता है । जो मृष्टि, पालन और विनाशका हेतु है । जिसका कविप्रीति काव्य रचि पा है, जो सब प्राणियोंका प्राण है, जो सब कुछ जानता है, जिसमे काम सब प्रकारकी कल्पिता है, जो लयापका अन्तक और अमृतस्वरूप है ॥ १३३ ॥ अब मैं श्रीदेशिकेन्द्रके भ्रमरपद प्राण कगनेवाले चरणरत्नका गणनाम करके सज्जनोंके चित्तमे चमत्कार उत्पन्न करनेवाला आद्य भिमी मुनि गोका अर्पण बनेगा ॥ १३४ ॥ मृत पशुशोक नखलोम आदि सब पदार्थ काम आ जाते हैं, किन्तु मनुष्यके मर जानपर यह मायाम दाना है कि विद्यादाने इसका मृष्टि करके बड़ा भाग अथवा विद्या है ॥ १३५ ॥ इस शरीरसे अस्माका स्वरूप पहचाननेकी मायना का जा सकती है । यदि यह काम नहीं किया तो वह मनुष्य पशुन भी हीन माना जायगा ॥ १३६ ॥ करोड़ों मनुष्योंमे बड़ी कोई एक मनुष्य पवित्र गुरु तथा भगवान्के अहं रखवाया होता है । जैसा होता है, वह साक्षात् नारायण ही है ॥ १३७ ॥ कुछ लोग ऊपर चलते व हूँ गमते, भद्रही रचना करके उसमे साठ कोटकोंकी मुद्रा बनाकर उस प्रकार विवचना करते हैं — ॥ १३८ ॥ जम ब्रह्माण्डमे किनमे ही लोक है, ठाक उसी तरह यह रामतोमद्र भी है । १३९ ॥ रामतोमद्र ब्रह्मण्ड है इसका मुद्र मे ही प्रणिमपूत बसत है । उसमे रामरूप चैतन्य (जीव) है । ऐसा कितने ही तन्त्रदर्शित न कता है । १४० ॥ जिसमे कोई वस्तु मुद्रित हो (अर्थात् लपटकर रखी हो) उसे लोग मुद्रा कहते हैं । मुद्रितका अर्थ है—विद्धित या पिहित (पिटाया हुआ) । यह सारी मृष्टि ब्रह्मसं मुद्रित है । फिर भी इसका कारण चैतन्यका प्रकाशन हो रही है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ स्फटिक मणका कलश बना और उसके भीतर दीपक रखकर बाहे वह चारों ओरसे टांक दिया जाय, फिर भी दीपकका प्रकाश कोई मुद्रा नहीं कर सकता । ठाक वही दगा उस ब्रह्माकी भी है ॥ १४३ ॥ जिस तरह कि

पुरश्चक्रे प्रभुः सर्वाः पुरः पुनश्च आनिञ्जत । इत्युक्तं कण्ठशास्त्रार्थां अन्यत्रापि हि पश्यते ॥ १४५ ॥
 एको ब्रह्मा सर्वभूतान्तर्गमेति श्रुतेर्यद्वचः । एको देवः सर्वभूतेष्विति चैवापि श्रुतिः ॥ १४६ ॥
 पुरः सृष्टाः परेशेन नैव ताभिस्तुतोय मः । मृष्टेमा मानुषीं मृष्टां परं तोषमशर मः ॥ १४७ ॥
 देवताश्चास्रमुकमर्थं दृष्टुमां पौरुषीं तनुम् । दृष्टुमां दृष्टुमां मुकुतं वनेति श्रुते स्फुटम् ॥ १४८ ॥
 पुरुषं न्वेवापिस्मरमान्मेन्याह श्रुतिः स्वयम् । पुरः सृष्टः सर्वभूतेस्तुष्टद्वयः स्वराट् ॥ १४९ ॥
 ब्रह्माब्रह्मोमधिपण नर दृष्टा मुद्र मतः । इत्यस्मादिति विष्णुश्रुतिः श्रुते भगवद्वचः ॥ १५० ॥
 मुद्रं कनेति देवस्य द्वावयेद्दुःखपातके । इति मुद्रानिमुक्तित्वं मन्त्रशास्त्रेऽपि श्रुते ॥ १५१ ॥
 अतः सर्वेषु देहेषु सद्रूपप्रण कृत्स्नम् । स्वर्गापरमार्थोऽप्योऽधिकारोऽस्मिन्न चेतरे ॥ १५२ ॥
 लोके प्रसिद्धिर्यः कश्चिद्वाजमुद्राङ्कितो नरः । अधिकारोऽपि मन्त्रेण पूज्यन्त्यादरादिभिः ॥ १५३ ॥
 तथानयाङ्कितो जीवोऽधिकारी शास्त्रभूमिषु । नान्याभिर्यो निमित्ताः । श्रुयते स्वस्मिन् पदम् ॥ १५४ ॥
 तस्मिंश्चैव नरोपार्थं पदानि सति मति हि । तानि संश्लेषतः मन्त्रश्च प्रदत्तः सन्नेऽवबुद्धये ॥ १५५ ॥
 अविद्याकामकर्मणि भोक्तृभोगी मृष्टमिका । पदपदानि तु चेतानि देहे कारणमङ्गके ॥ १५६ ॥
 तमोऽज्ञानमविद्येति शब्दा एकादशाचिनः । अत्रा गुणग्रहो नात्र दृश्यते पदम् भो द्विज ॥ १५७ ॥
 लिंगे पुर्यष्टकेऽविद्याकामकर्मग्रहः स्मृतः । तद्यथात्र तु हेतुत्वान्त्रयाणां ग्रहणं कृतम् ॥ १५८ ॥
 कार्यभावेऽप्यवस्थानान्कारणे कारणान्मना । कामस्य कर्मणश्चात्र विद्यते सूक्ष्मरूपता ॥ १५९ ॥
 अविद्या या मुच्यतेऽत्र विद्यते कारणान्मना । उच्यतेऽत्र न कामोऽत्र कामना वा श्रुतेर्मतम् ॥ १६० ॥

सुवर्णमें सामा बाला जाता है तो भवण उसे अपने रंगम मिणा नेता है । यही दशा उस निराकर ब्रह्मकी भी है ॥ १४४ ॥ प्रसन्न रहने इस अन्तर्गत । सृष्टि की । तत्पश्चात् उसमें मुख्यका समावेश किया । ऐसा कथन स्वाम कहा गया है । अन्य स्थानों में भी ऐसा ही बात कह करती है । उच्यते भावनाता है ॥ १४५ ॥ श्रुतिको काम है कि सब प्राणियों का अन्तर्गतान रहनेवाला एक ही परमात्मा है । दूसरी श्रुति भी इस बातकी पुष्ट करती हुई कहती है कि वह एक ही देवता है, जो सब एक सब प्राणियों का विद्यमान रहता है । १४६ ॥ श्रुतिकर्तन पहले अनक तरहकी सृष्टियों की, किन्तु उसने उस मन्त्रों को दृष्टा । फिर जब उसने इस माय्या मुद्राकी सृष्टि की, तब उसे बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १४७ ॥ अत्रा भाग कामके लिए देवताओंने मुख्यका शरीर देखा तो हर्षसे गर्व होकर बाह्य रूप—आपने वह बहुत अच्छा किया जो माय्या शरीरकी सृष्टि कर दी ॥ १४८ ॥ विस्तारविहीन सूक्ष्म आत्मको ही श्रुतिन पुन्य कहा है । पञ्च ब्रह्मण और और प्राणियोंकी सृष्टि का, किन्तु उनका हृदय प्रसन्न नहीं हुआ और अब ब्रह्मका प्राण कर्मवत् ने मनुष्यका उच्यते देवता ता बहुत प्रसन्न हुए । हे विष्णुश्रुति ! इस प्रकार इस जीवों भगवद्वच श्रुति है ॥ १४९ ॥ १५० ॥ वह ब्रह्म देवताओंको प्रसन्न करता हुआ सब दुःखों और पापों को पानी पानी करके ब्रह्म देता है । इस प्रकार मुद्राओंको निमित्त मन्त्रशास्त्रमें भी कहा गया है ॥ १५१ ॥ तमः पुर्यष्टक सद्रूप सद्रूपका अङ्गना पर देता है । स्वर्ग और अपवर्गका अधिकार भी इसी नर शक्तिका दिया गया है—औरको नहीं ॥ १५२ ॥ नसारम भी यह दान प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्यके पास राजाकी मूर्तका काष्ठ प्रमाणपत्र होता है । उस लान अधिकारी समस्त है और उसको पूजा करता है । १५३ ॥ इसी प्रकार इस रामनामकी मुद्रा में अङ्कित जीव शास्त्रभूमिका अधिकारी माना जाता है । अन्य यानिके जात्र अपना-अपना आत्मपद नहीं जान सकते ॥ १५४ ॥ नरकी उपाधिमें कुल साठ पद है । उनको जाननेके लिए यहाँ अच्छा तरह बतलाव है ॥ १५५ ॥ कारणसंज्ञक देहम अविद्या, काम, कर्म, भोक्ता, भाग और मुपुष्टिके स्थान है ॥ १५६ ॥ हे द्विज ! तम, अज्ञान और अविद्या इन तीनों शब्दोंका एक ही मतलब है । इससे इसमें किसी गुणका ग्रहण किया जाना नहीं दोषवत् ॥ १५७ ॥ सातवें शरीररूपम अविद्या, काम और कर्मका ग्रहण किया गया है । फिर भी कारण वज इन तीनोंको ग्रहण हो करना पड़ता है ॥ १५८ ॥ कारणका चाहे कोई कार्य हो या न हो, वहाँ कारणरूपसे रहता ही है ।

अष्टविंशत्पदानाह विद्यन्ते षष्ठ्यन्तरेके । दशद्विंशति पञ्च प्राणा बुद्धिर्मदस्त्विति ॥१६१॥
 सप्तदशान्मर्कं लिङ्गं प्रसिद्धं शास्त्रवन्मतम् । पञ्चविंशत्प्रदणं पञ्च कर्माक्रियाम्मतः ॥१६२॥
 पञ्च सप्राणव्यापाराः सकल्यो निश्चयान्त्विति । सप्तदश चैव धर्मोः प्रसिद्धाः शास्त्रप्रसङ्गाः ॥१६३॥
 स्वप्नाभिमानिनी भोगी रजश्चेति चतस्र्यम् । देवानामिन्द्रियाणां च स्यान्नाभावोऽपवृत्तिरुः पदे ॥१६४॥
 स्थूलदेहे षोडशैव पदानि सम्मतानि हि । गणाः सप्तदश तेषामपानव्यापारयोः पदे ॥१६५॥
 पायुर्व्यवस्थानयोर्ज्ञेये वाचोरपि निकेतने । प्राणस्य मनसश्चापि बुद्धिस्थाने पदं निवृत्ति ॥१६६॥
 पदानि द्वादशे मासि भोक्तृभोगी तथा गुणः । अवस्था जायन्तिऽचेति कथितानि मनीषिभिः ॥१६७॥
 मुद्रामेतादृशीं प्राप्य वेद वेदान्मात्रिन्पदम् । तस्य जन्म कृतार्थं स्यान्मद्वतो नष्टिरन्यथा ॥१६८॥
 मुद्रारूपं विविच्यैव पञ्चाङ्गानां सांक्रियेति च । उक्तं तदधुना किञ्चित्संक्षेपेण निरुच्यते ॥१६९॥
 रामेति लोकमगणाद्रमन्ते योगिनोऽमले । परमानन्दपदं निर्व्यं तेन राम इतीर्यते ॥१७०॥
 रसेनैवाधुना सर्वे जीवा जीवन्ति नान्यथा । इमं रमयन्त्यध्वा भवन्त्यानन्दिनोऽखिलाः ॥१७१॥
 विज्ञता येन विश्वं सर्वं चेतयने जगत् । न तं चेतयते कश्चिन्म राम इति कीर्त्यते ॥१७२॥
 सत्ता येनाखिलं विश्वं स देवेति प्रतीरते । अमन्मत्ताप्रदः साक्षाद्राम इत्यभिधीयते ॥१७३॥
 यथा प्रसिद्धं रामेति ब्रह्मणे व्याभयानकम् । तथा लिङ्गं पदं व्याम निष्कलः परमात्मनः ॥१७४॥
 लीयन्ते यत्र भूतानि निगच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिङ्गं पदं व्याम निष्कलः परमः शिवः ॥१७५॥
 इति शास्त्रविदां वार्त्ता श्रूयते तत्त्वदर्शनाम् । अतः सर्वाणि नामानि स्यान्नाम चानिरागमनः ॥१७६॥
 सति तेन शब्दभेदे रूपभेदेऽपि मयथा । तत्त्वतो नैव भेदोऽस्ति त्वय्यस्यैकस्य वस्तुनः ॥१७७॥

उस शरीरमें काम और क्रिया की प्रतीति मूलमरूपसे रहती है ॥ १५९ ॥ इस कारणलाग्याम अविद्याकी प्रधानता है । वास्तवमें न इसमें काष्ठ रहता है और न कागज ही रहता है । वह धातुका सिद्धांत है ॥ १६० ॥ इस सूक्ष्म देहमें कुल सात पद हैं । दस पद इन्द्रिया, पाँच पद प्राणिका, बुद्धि, मन और चिन्मय सत्त्व पद शास्त्रोक्त कहा गया है । पाँच पद शिवय प्रदण अमलवाणी इन्द्रियोका, पाँच कर्माक्रियाओका और पाँच प्राणोके व्यापारका । कुल सत्रह ही पद समशास्त्रवन्मत है ॥ १६१-१६२ ॥ शब्द, अस्मिताली, भाग और रज ये चार दशताओ और इन्द्रियोम प्रवृत्ति नती करवाने इमालिय स्वयं शरीरमें सत्त्वह दो पद माने गये हैं । किन्तु गण सषट्क ही रहता । उनमेंसे दो पद ज्ञान और व्यापन वायुका है ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ पायु और स्वव्यापनका दो दो, वाग और हृदयका दो दो प्राण, मन तथा बुद्धि एक एक पद ॥ १६६ ॥ ये बारह पद, भान्ता और भगवा पद, इन्द्र विद्यामोक्त गुण, अवस्था तथा जायति कहा है ॥ १६७ ॥ इस प्रकारका मुद्रा प्राप्त करके प्रणा वदका अविनाशी पद पालना है । इसका पानसे जन्म कृतार्थ हो जाता है । अन्यथा तद् ही हो जाता है ॥ १६८ ॥ मुद्राके रसका विवचना करके उसके नामोसे संकेतित मुद्राओकी अब सक्षयरूपसे बतलाते हैं ॥ १६९ ॥ भसारक प्राणियोका आनन्द देनेके कारण भगवानका 'राम' नाम पडा है । य योगी इसा असल परमानन्द पदम आनन्द लेते हैं । इस लिए भा राम 'राम' कहे जाते हैं ॥ १७० ॥ इसी रमसे संसारके भव जीव जाते हैं, इस सरस पदको पाकर लोग आनन्दमय हो जाते हैं ॥ १७१ ॥ जो जगन्म प्रविष्ट होकर सारे जगत्को चेतन्य कर देता है । जिस रामको चेतन्य करनेवाला कोई भी नहीं है, वे ही राम 'राम' कहे जाते हैं ॥ १७२ ॥ जिन भगवन्का सत्ता समस्त विश्वमें है । वे इसी कारण दवता कहलाते हैं । वे अमन् जगन्म भी अपनी सत्ता बनाये रखते हैं । अतएव लोग उन्हें राम कहते हैं ॥ १७३ ॥ जिस तरह उनका राम यह नाम प्रसिद्ध हुआ । उसी तरह परमात्माके लिङ्ग और रूप भी हैं ॥ १७४ ॥ लोग लिङ्गका अर्थ इस प्रकार करते हैं—जिसमें जगत्के सब प्राणी अन्तमें लीन होते और सृष्टिके आदिमें जिससे प्रादुर्भूत होते हैं, उसकी रिय संज्ञा है । वह लिङ्ग, शून्य निष्कल और परम कल्याणकारी है ॥ १७५ ॥ इस प्रकार तत्त्वदर्शी शास्त्रजोकी बातें सुनायी पड़ती हैं । इससे यह

म ऋषा म शिवश्चाथ स हरिः, म सुरेश्वरः । मोक्षधरः परमेश्वर म भृगुः । वेदवाक् ॥१७८॥
 यम्येमे मन्त्रिदानन्दाः म व्यासः सर्ववस्तुषु । नैतान्ति च त्रिषु भावि वस्तुमात्रं प्रदृश्यते ॥१७९॥
 अन्तरिक्षे च सर्वेषु रामत्रयान्मकीर्तनम् । अदिपद्यावमानेषु श्रूयते गुर्वनुग्रहान् ॥१८०॥
 ऐनरेयके आत्मा वा उदमंकः पुरा जनैः । आर्षात्तेनैव लोकानां पालानां सृष्टिरिच्छया ॥१८१॥
 कृतायः भवदेवानामन्नमुक्त्यर्थमाप्तिनम् । ददावायतनं तान्न सृष्टं तेभ्यस्तनः परम् ॥१८२॥
 विचार्य स्यायस्यामित्यमीमांशारा प्रविष्टवान् । तत्रात्मानं ब्रह्म तन दृष्ट्यशेषेन्द्रतां किल ॥१८३॥
 साध्यमस्मिन् सप्रश्ने येन पश्यति त्रिप्रति । इत्यादिभिर्विनिर्णय तदेतद्ब्रह्मादिभिः ॥१८४॥
 प्रज्ञानस्यास्य नामानि चोक्त्वा तन्मतेनायमा । एष ब्रह्मेत्यादिशब्दैर्द्रोशित चाखिलं जगत् ॥१८५॥
 प्रज्ञानेन च प्रज्ञाने प्रतिष्ठेनेत्यनेन हि । प्रज्ञानं ब्रह्म ध्रुव्यान्ने त्रिकाले प्यतिदर्शितम् ॥१८६॥
 तद्राम सच्चिदानन्दप्रधानं न सशयः । तैत्तिरीयकशाखायां ब्रह्मणे लक्षणं पुरा ॥१८७॥
 मन्य शानमनन्तं सङ्कीर्त्य वेदगुहादिरम् । यथासक्यं श्रुते कामान्मर्यान्मुपदेव हि ॥१८८॥
 फलज्ञानस्य चोक्त्वाऽथ तस्माद्ब्रह्मान्मकं किल । क्रमोन्पत्तिर्हि गुमानां कौशल्याचक्रेदनम् ॥१८९॥
 तत्फलं तदन्तान्मन्त्रं मप्रददर्यान्निरन्तरः । पुच्छं ब्रह्मेति निर्णय तदन्तान्मन्त्रनीतिनः ॥१९०॥
 अनन्मद्भवनि ह्यत्र संकीर्त्य च ततः परम् । कामयितुं तदेवेह सन्मन्त्रं जगदान्मना ॥१९१॥
 कृत्वा तस्मिन् प्रविष्टुं सच्चामच्चामवन्किल । अपानप्राणयोश्चेष्टा यस्यामित्ये प्रजायते ॥१९२॥
 अन्मव गम एव आनन्दयति चाखिलान् । मयहेतुस्तदेवेह यानादीनां प्रदर्शितम् ॥१९३॥
 मानुषारभ्य ब्रह्माणा आनन्दा ये शतोत्तराः । विदवस्ते परब्रह्मानन्दस्येति विनिश्चितम् ॥१९४॥

निम्न दृष्टा कि उस अन्तरात्मा के ही नाम और रूपमें रहत हुए भी वास्तवमें सब एक हैं। इसकी वास्तविक स्थितिमें कोई भी अन्तर नहीं आता ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ वे ही ब्रह्मा, वे ही शिव, वे ही विष्णु और वे ही देवराज इन्द्र हैं। वे ही अजर ब्रह्म और वे ही वेदवाक्य तथा विभक्त सभाएं हैं ॥ १७८ ॥ वे ही सब वस्तुधर्म सन् चित् और आनन्द रूपसे व्याप्त रहत हैं। इन्हींके कारण सब चीज अच्छी लगती हैं ॥ १७९ ॥ सब ब्रह्मोंमें रामहारी ब्रह्मका कीर्तन विद्यमान है। गुह्यनाक अनुग्रहम आदि, मध्य, अन्त सब समयमें रामहारा कीर्तन सुनायी पड़ता है ॥ १८० ॥ ऐनरेय उपनिषदमें लिखा है कि सर्वप्रथम यह आत्मा अकला था। उसका यह इच्छा हुई कि हम लोका और लोकपालोंकी सृष्टि करें ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ विचार होतपर उसने सृष्टिके प्रारम्भ तथा दधना इन दोनोंको, और उनमें पड़ने अन्नकी सृष्टि की ॥ १८२ ॥ तदनन्तर उन्होंने अपत-अपत स्व मित्तका विचार किया और एक सामान्य देवताओंके राजा इन्द्र बने ॥ १८३ ॥ जो कि हम ससारका देवता तथा समस्तका वर्तमान, गणना है, वह कौन है ? इसका ज्ञान आदि नाम बतलाने हुए "यह ब्रह्म ही सब कुछ है" आदि वाक्योंमें उन्होंने इस प्रश्नको ही किया और बतलाया कि सन् चित् आनन्दसे लेकर ये सब-सब नाम ही राम हैं। पूर्व समय तैत्तिरीयक शास्त्रमें ब्रह्मका लक्षण बतलाने हुए रामन सत्य, ज्ञान और अनन्तका उपाधि दी है। इस संसारमें जो एक साथ भोगोंको भोगता और ग्याता-वर्तता है, वह ब्रह्म ही है ॥ इसमें जो यह सब पाया गया कि समस्त सृष्टि ब्रह्ममयी है। सब प्राणियोंको क्रमोन्पत्ति, पंचकोशका ज्ञान और आत्माकी विभिन्नता आदि विचारकर बतलाया है कि सन् और असत्को प्रतीतियोंमें इन सबका मूल कारण ब्रह्म ही है ॥ १८४-१८७ ॥ १८८ ॥ कहकर कहा कि सन् और असत् यह क्या वस्तु है ? इन प्रश्नों पर कहते हुए कहते हैं कि जो अणुम आकर और जननका आत्मा बनकर कामनाओंको चाहता हुआ उनमें लीन हो जाता है, वही सन् है। जिसके अस्तित्वमें प्राण और अपानकी चेष्टा जायमान होती है, उसे असत् कहते हैं ॥ १८९ ॥ १९० ॥ यह आत्मा ही सारे ससारको आनन्दित करता है। बानादिक एकमात्र ब्रह्म भवहेतु है ॥ १९१ ॥ मनुष्यसे लेकर ब्रह्मपर्यन्त तथा इसका भी आग जो आनन्दविन्दु है, वह एकमात्र परब्रह्मानन्दका ही आभास है।

स यक्षाय नरोपाधादिन्येयश्च वर्तते । स एक इति ज्ञात्वा पाप पुण्य कृताकृते ॥१९५॥
 न सतापयतस्त्वेवं मम्यक् सर्वं प्रकीर्तितम् । यद्वृत्रहमहिमाऽपेक्ष्यः तद्रामेति न संशयः ॥१९६॥
 छांदोग्येऽपि स वेदेति ब्रह्मोपक्रम्य ब्रह्मणः । तेजोऽयमादिका सृष्टिः सम्मूला मा धिनिर्हृतिः ॥१९७॥
 जीवात्मना प्रवेशश्च व्याकृतिर्नामरूपयोः । श्वेतकेतोस्त्वपदस्य तत्पदं नैक्यताऽपि च ॥

मदमभावना । च मद्रात्रे च महक्तिता ॥१९८॥

तज्ज्ञाने च गुणोक्तान् ज्ञानान्मोक्षोऽपुनर्भवः ।

मम्यत्रह्माभिमंथस्येन्येवं मद्रात्रकर्तनम् । तद्रामेति पर ब्रह्म सृष्टिस्थित्यनदेतुक्रम् ॥१९९॥
 अन्यस्यामपि शाखायां प्रदत्तप्रत्युक्तिः स्फुटम् । मनःप्रणोद्विद्याणां यन्मनः प्रणोद्विद्य हितम् ॥२००॥
 सर्वेषामनुभूतेः मद्रिदितानिदितान्परम् । विषयोनेन्द्रियादीनामिन्द्रियकृत् तस्य आधनम् २०१॥
 सर्वदशो सर्वेचेतूदेवानां जयकारणम् । तदज्ञानं च देवानां गुणोक्तानमुपास्तिता ॥२०२॥
 विद्यैव नान्यन्मानुष्यं प्राप्य जन्म न वेद चेत् । विनाष्टिमेतत् तस्य चेति प्रोक्तं ततः परम् ॥२०३॥
 अप्यान्माधिदेवमिदा विद्यापाधनमेव च । ब्रह्मज्ञानेन पापानां हानिरन्यथाप्रित्ययम् ॥२०४॥
 ब्रह्मणो महिमा श्रुत्या कीर्तितो व्यासतः श्रवणम् । तद्रामेति गुणोक्तं नान्यथा ग्रन्थकोटिभिः ॥२०५॥
 मुडकेऽपि परा विद्या विषया ब्रह्म ब्रह्मणः । सृष्टिश्चानेकदृष्टान्तरुक्ता तस्मिन् च मस्थिता ॥२०६॥
 लक्ष्म्यापि हि तत्रैव विद्यं सर्वं हि नन्मयम् । तारण धनुषा वेश्य लक्ष्य आन्मापणं तथा ॥२०७॥

एसा निश्चित है । जा मनुष्यका उपोध्यम सूर्य ज्ञानमान है । उस एकमात्र प्रभुका ज्ञान स्तपह कम-
 अक्रम तथा पाप पुण्य कुछ शय नहीं रह जाता ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ तब किसी प्रकारका सन्ताप नहीं होल्ना
 पड़ता । ये सब गुण जिसमें है, वह ब्रह्म ही है । उसका मोहमा दबकर निश्चित होता है कि वह ब्रह्म
 श्रीरामचन्द्रजी ही है । इसमें शङ्का नहीं है ॥ १९६ ॥ छांदोग्य उपनिषद्में भी कहा है कि ब्रह्मसे ही
 ब्रह्मादिककी सृष्टि हुई है और उन्होंने ब्रह्मणसे इस जगत्का पालन-पोषण होता है ॥ १९७ ॥ जीवात्माके
 द्वारा ही आत्माका प्रवेश होता है, किन्तु वहक आचारवशा उसका नाम और रूपमें अन्तर पड़ जाता है ।
 स्वतन्त्रता उसकी रितान शिखा दी था कि उस पद जन्ता ब्रह्मादिक साथ एकता होता ही मुक्तिका सर्वप्रसस्त
 साधन है । जब तक सन् पदका त्याग नहीं होगा, तब तक एकता रहता है और सद्भावके विद्यमान रहनेपर
 एकताक स्थानपर बहुतव आ जाता है । उस सन् पदका ज्ञान होनेसे गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है और
 ज्ञान प्राप्त होनेपर पुनर्जन्मविहीन मोक्षपद प्राप्त होता है ॥ १९८ ॥ सत्यका ब्रह्ममें जिसका स्थान लग
 जाता है, उसका दमना ही ब्रह्मकर्तन है कि वह राम ही परब्रह्म है । उन्होंने द्वारा इस जगत्की सृष्टि,
 पालन और प्रलय होता है ॥ १९९ ॥ अन्य शास्त्राओंमें भी प्रश्न और उत्तरके रूपमें अनेक प्रश्न और प्रत्युक्तियाँ
 हुई हैं । उनसे भी यही सिद्ध होता है कि मन, प्राण और इन्द्रियाका जो मन, प्राण और इन्द्रिय है । वह ब्रह्म
 ही है । वह सत्यस्वरूप ब्रह्म जन् और अज्ञान इन दोनोंसे परे है । यही सबका अनुभव है । किन्तु वह
 इन्द्रियोंके विषयगोचर नहीं होता अर्थात् अनुभवमें ही जाना जाता है । यह कहकर उसका संशयन किया
 गया है ॥ २०० ॥ २०१ ॥ वह सत्य सब कुछ दत्तता है, सब जानता है, दत्तताओंके विजयका कारण है
 और वह देवताओंके लिए भी अज्ञात रहता है । गुरुका उपासना करनेसे ही ज्ञानका प्राप्ति होती है ॥ २०२ ॥
 विद्या ही मनुष्यका मनुष्यत्व है । इस समारम्भ जन्म लेकर जिमने विद्या नहीं पाया ता वह उसका एक
 बहुत बड़ा विनाश है । ऐसा कहा गया है ॥ २०३ ॥ आधदेवका भी भजन करनेवाले ब्रह्मज्ञानसे विद्याका
 साधन होता है, पापोंका नाश होता है और अन्तमें उसे ब्रह्मका प्राप्ति होता है ॥ २०४ ॥ श्रुतिने स्वयं
 विस्तारपूर्वक ब्रह्मकी महिमाका गान किया है । इसलिए जिज्ञासुका चाहिए कि वह गुरुसे रामका ज्ञान
 प्राप्त कर । जैसे कराडों ग्रन्थ पढ़नेसे भी उनका सम्बन्ध ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता ॥ २०५ ॥ मुण्डक उपनिषदमें
 कहा गया है कि ब्रह्म और ब्रह्मका विषय ज्ञानके लिए गुरु प्रधान है । उनसे उपनिषदने अनेक दृष्टान्तोंसे
 सृष्टिका वर्णन किया है ॥ २०६ ॥ वह कहती है कि यह सारी सृष्टि उसी ब्रह्ममें स्थित है और अन्तमें उसीमें

तद्राम परमं अथ योगिगम्यमानयम्, अनन्तनामरूपं च विश्वाकारं स्वमायया ॥२२३॥
 भूत्वा सर्वेषु भूतेषु व्यापकं भूतचालकम् । स्फुटमप्यस्फुटं तेषामज्ञानं स्वान्मनः मदा ॥२२४॥
 ब्रह्मज्ञाने परो हेतुः सर्वेऽपि वदेर्यज्ञताः । मानसाः सन्ति तेनेदं चिद्ब्रह्म न प्रकाशते ॥२२५॥
 परां चिन्तां प्रभुगा मृष्टानि देवने नराक वाञ्छन्ते नांतगात्मानं प्रमिदुं श्रुत्युदात्तिम् ॥२२६॥
 सर्वेऽपि मनुजो दामो निवन्तोऽपुत्रान्ममम् । किं स्वः कामदामोयं तेनांतश्चिन्तया काशते ॥२२७॥
 यदि भूयात्सदानंदस्वान्मा मां न भुङ्क्ष्वपि । तदा किं मामं गेचेन व्यामादन्त्यन्नस्य हि ॥२२८॥
 आन्मानं चेद्विज्ञातीयादयमन्मतां, दृश्यः दृष्टिमिच्छतुं कस्य कामाय शरीरमनुमज्जरेत् ॥२२९॥
 इत्याह च श्रुतिः सार्धं बृहदात्मनो ययम् । यस्यान्मरतिरेव व्यादात्मनश्च मानवः ॥२३०॥
 आन्मन्येव च मन्तुमस्मिन् कार्यं न विद्यते । इति न भ्रातृमन्त्रायोऽर्जुनाय प्रोक्तं तान्स्वयम् ॥२३१॥
 भोगामक्तः पुमान्पूरमेकाही रमने न च । एषामयमस्मद्गो यतनेऽर्थाय निन्यदा ॥२३२॥
 स लोकेऽयुधिषा श्रुत्वा पुत्रो-पात्तनस्यरः । जायां सम्पादयत्यादावनियन्नेन मृदधीः ॥२३३॥
 पुत्रानुत्पाद्य कलशेन देवतोऽतिमिता । तुष्टमन्तरणाय च यागार्थं वा धनेच्छया ॥२३४॥
 अनिश दुह्यते चित्ते न प्राप्नोति यथेष्टमनम् । क्षास्त्रहोत्रापमन्त्रियायानथदायः प्रतिग्रहम् ॥२३५॥
 धनिनां यान्मगवतां ग्रमे कलेश्वरः यदा । अयु-पन्नमनानां तु काशनां स्वान्मचिन्तने ॥२३६॥
 अनेकपुण्यपुञ्जैः सन्कुले जन्मात् । बाहुभिः । मज्जते मद्भिरुक्तेन मार्गजनि यदा तदा ॥२३७॥
 रामब्रह्मदत्तनार्थं मुदा स्वो पश्यन्तु । युक्त्या न दत्तया मज्जने स्वयाऽमूलया कचिद् ॥२३८॥

योगियोंके ध्यानगम्य और व्यापित्वमयी अपने अनन्तरूपसे अपनी माया द्वारा विश्वका आकारवाले बनकर सब प्राणियोंमें विद्यमान रहते हुए प्रत्येकका संचालन करते हैं । जो लोग ज्ञानसे पराङ्मुख हैं, उनके अंतर्गुह या अस्पृष्ट अर्थमें सन्तुष्ट होकर तथा तथा भी बहुत धारण करने लगते हैं ॥ २२२-२२४ ॥ उस ब्रह्मका ज्ञानमें अपनी आत्मा ही सर्वप्रधान है । तब समग्र जगत्, जो अंतर्देवदत्तवाह्यको चात्राको देखती है । यहाँ कारण है कि उक्त वह चिद्ब्रह्म ही व्यापक नहीं होता ॥ २२५ ॥ एक प्रसिद्ध श्रुतमें भगवान्ने कहा है कि प्राणियोंकी भाँति मैं बाहर बनाया है । इसलिये त्याग अन्तरात्माकी नहीं देख पाए ॥ २२६ ॥ संसारके सब मनुष्य अपने धन, स्त्री और पुत्रके दास बन रहते हैं । इसी कारण अन्तरात्मा उन्हें देखती ही नहीं ॥ २२७ ॥ यदि उनके दास न होकर सदा आनन्दमय रह, विष्णुमें परे हो और अपनी आत्माकी माझी बनाकर सब कार्य करें तो उन्हें जन्मान् का जाने रख ही नहीं ॥ २२८ ॥ यदि लोग आत्माका जानकर यह समझ लें कि मैं ही वह परम पुण्य ब्रह्म हूँ तो फिर किसके लिए अपने शरीरको सामयिक उजालाम भुन । यह ब्रह्मदारण्यकोपनिषद्में कहा गया है । इसके अतिरिक्त गीतामें स्वयं भगवान्ने अर्जुनसे कहा है कि जो प्राणी और किसी ओर अपनी चित्तवृत्ति न लगाकर आत्मासे प्रेम करता है, आत्मामें ही तृप्त रहता है और आत्मासे सन्तोष करता है । उसके लिए संसारमें कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता अर्थात् उसमें उसका सब काम पूर्ण हो जाता है ॥ २२९-२३१ ॥ भोगोंमें आसक्त प्राणी पहले एकाएक इस ओर नहीं मुक्तता । वह तो तीन प्रकारकी इच्छाओंके चक्करमें पड़कर सदा बन पानेकी चेष्टा करता रहता है ॥ २३२ ॥ वह मूर्ख किसे यदि स्वयं को अपुत्री सुनता है तो पुत्रके उत्पादनमें तत्पर हो जाता है और इसके लिए जिनसा चला कर सकता है, करता है ॥ २३३ ॥ देवत ओ तथा तीर्थोंकी सेवासे यदि पुत्र उत्पन्न कर लेता है तो कुम्भक भक्षण-पोषण तथा यज्ञके लिए धनकी इच्छासे मन ही मन रात दिन जला करता है, फिर भी अपनी कामना नहीं पूर्ण कर पाता । चाहे शान्त्वज्ज पंडित तथा सत्तम क्रियावान् हो क्यों न हो, यदि वह धनका मोहो है तो धनिकाके घर कुत्तोंकी तरह दौड़ता रहता है । फिर यदि कोई व्युत्पन्नमति (समझदार) नहीं है तो उसके लिए आन्मचिन्तनकी चर्चा किस कामकी ॥ २३४-२३६ ॥ अनेक प्रकारके पुण्य एकत्रित होनेपर प्राणी अष्टे नृन्म जन्म और सज्जनोंकी संगति पाता है । फिर उनकी शर्तोंपर चलता हुआ कभी-कभी रामरूप ब्रह्मके दर्शनार्थ मुद्राओंकी भी पूर्ण करनेका उपाय करता है और

तं पूरणप्रकारं तु सक्षेपेणोच्यतेऽधुना । यथा लोकेऽञ्जनं सम्यक् संपाद्य पूर्वतेऽपि च ॥२३९॥
 निधिः प्रत्यक्षतस्तस्य दर्शनं यानि नान्यथा । एवमत्रापि तत्तन्मयं साधनं यच्च चतुष्टयम् ॥२४०॥
 सम्पाद्य वेक्षते शुद्धं रामेति पदमव्ययम् । मायाव्यमित्यर्थं यद् वक्ष्ये तन्साधनं यथा ॥२४१॥
 शुद्धाविद्यामयं चेति प्रोच्यते तत्त्वदर्शिनः । शास्त्रशास्त्रं च शास्त्रं च मिथ्याऽविद्यामयं त्रयम् ॥२४२॥

ज्ञानोत्तरमिति मनः तस्मात्तद्वर्णमस्ति ॥

चतुष्पादसाधनं तत्पूर्णेभ्योभिधीयते । अन्येकं साधनं यच्च चतुःसाधनमुच्यते ॥२४३॥
 विवेकवैराग्यशमादिषट्कं मृष्टचुता चेति प्रमिद्वमेतत् ।

लक्ष्माणि अन्येकमुशन्नमानि प्रोक्तान्यभीषां स्मृतिभूमिकाम् ॥२४४॥

साधनानां चतुष्कं च होषणान्यागपूर्वकम् । सन्यासश्च गतोः संन्यास्यणादित्रयं ततः ॥२४५॥
 पूर्वोत्तरसमाधिं च पुञ्जं एकादशात्मकः । एतेषां तु मयः साश्चान्द्राशाद्या मङ्गलमिमेया ॥२४६॥
 मुमुक्षया तु न्यासादिषुणां मायादिहोच्यते । ममाधिरुत्तराद्यापि पृथगेवेति मम्मतः ॥२४७॥
 पूर्वत्रयाणां न त्रिना मुमुक्षाः षडभिमतः । एतैः साधनमयैश्च पदानि पूर्यन्त्यलम् ॥२४८॥
 सर्वाणि तानि प्रोच्यन्ते श्रोतव्यामवबुद्धये । दर्शयेद्व्याणि तेषां तु गोलकानि सर्वत्र तु ॥२४९॥
 प्राणावानी मनोबुद्धौ तस्माद्दर्माश्च तन्मिताः । बुद्धिर्ज्ञानं यथाऽप्योश्च क्रिया तत्तत्रता मता ॥२५०॥
 उभयेन्द्रियधर्माणामनोऽर्मीषामनाग्रहः । सप्तविंशतिसंख्यानि पदानीमानि साधनैः ॥२५१॥
 योग्यानि लोहितुं सम्पक् पूर्यन्त्येव सर्वथा । तदा यत्परमं ब्रह्म रामेति पदमव्ययम् ॥२५२॥
 याति प्रत्यक्षतस्तेन कृतकृत्यो हि जायते । एतावता विधानेन रामनोभद्रमुद्रिके ॥२५३॥
 रामश्च कथितश्चाथ सर्वतोभद्रमीयते । स्थानतो नामनथापि संशयस्यापनुत्तये ॥२५४॥

परि उसके साथी सञ्जन युनिसे उमे सहो सान्त्वन ले जाते हैं तो वह अपना साधना पूरा भी कर लेता है ॥२३९॥२४०॥ इसका पूर्ण करनेका प्रकार भी यही साधन कहते कहता है । जैन सत्तारम देखा जाता है कि अमीसे एक प्रकारका अंजन लगाकर लोग त्रिप हुए, गजानोका भी प्रत्यक्ष देख लेते हैं । उमी प्रकार पूर्वजो द्वारा बताये हुए चारों साधनोका सम्पादन करने प्राणा 'राम' इस शुद्ध और नाशरहित पदको प्राप्त कर लेता है । जिस तरह कि मायावी और अमित बलवाला ब्रह्म सद्ब्रह्मकी प्राणिका साधन है । उमी तरह तत्त्वदर्शियोने शुद्ध और विद्यमान साधन बतलाये हैं । काम्ता, शास्त्र और शास्त्र्य व तीनों मिथ्या और अविद्यामय है ॥२४१-२४२॥ सत्तारम जिसने भी मिथ्या है, वे सब प्राणोको जानके पाम पहुँचाते हैं । जिसने चतुष्पाद साधन है, वे पूर्ण कहे जाते हैं और प्रायः सब साधन सत्तारम ही हुआ करते हैं ॥२४३॥ स्मृतिकी भूमिकासे विवेक वैराग्य, शम, दम आदि छ घर्म और मायाकी रूढ़ि का उद्वेग होना ये साधकके उत्तम चिह्न बतलाये गये हैं ॥२४४॥ इन साधनोने सबसे पहला साधन इच्छाओंका त्याग करना है । फिर संन्यास, मुमुक्षी सेवा, श्रवण, सजन, कीर्तन, पूर्वोत्तर समाधि तथा एकादश प्रकारके पुञ्ज हों साधन है । इन सबके साथ प्राण आदिकी संगति होती है ॥२४५॥ - ४६॥ मोक्ष प्राप्तके लिए यहाँपर छ प्रकारके न्यास आदि काममें लाने चाहिये । किन्तु उत्तर समाधि इसमें अलग ही रहेगी, वह यान सब लोग मान चुके हैं ॥२४७॥ पूर्वको तीन समाधियोके बिना मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता । इन साधनममूलासे सब पद सरल रीतिसे पूर्ण हो जाते हैं ॥२४८॥ मुनतवालोको वाच करानकी इच्छासे उनको यहाँ बतला रहे हैं । उनके विचारमें कुछ इस इन्द्रियाँ हैं और नो गोलक है ॥२४९॥ अनागव प्राण अज्ञान, मन, बुद्धि, इन इन्द्रियोसे इतने ही प्रकारके घर्म उत्पन्न हुए । बुद्धिसे ज्ञानकी उत्पत्ति हुई । प्राणेन्द्रिय अपने इच्छानुसार जो चाहे वह करे उसके लिए कोई नियम नहीं है ॥२५०॥ जनेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय इन दोनों प्रकारका इन्द्रियोके धर्मसे और प्रणके धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है । इस तरह इन सत्ताइस प्रकारके पदोको साधन करके पूर्ण करना चाहिए । ऐसा करनेपर जो अव्यय परब्रह्म रामका पद है, वह प्रत्यक्ष देखने लगता है । जिससे प्राणी कृतकृत्य हो

कल्याणं सर्वतः पुंसां चिन्ताद्यस्य ब्रह्मणः । तद्भद्रवाचकं मुख्यं मंगलानां च मंगलम् ॥२५५॥
 यत्र यद्व्यज्यते साक्षात्तन्मात्रा तदुदीर्यते । अधिदैव तथाऽध्यात्मं सर्वतोभद्रमिष्यते ॥२५६॥
 विविच्यतेऽब्रोभयं च प्रोच्यते वस्तुव्यक्तये । अधिदैवे तु यद्भद्र तदादायुष्यतेऽमृतम् ॥२५७॥
 अंडहृद्ब्रह्मलोकस्तु सर्वतोभद्रमुच्यते । तेनैव भद्र सर्वेषां लोकानां मिति हि स्थितिः ॥२५८॥
 तत्र स्वर्णमयं वैष्णवं निमिर्नं प्रभुणा स्वयम् । तन्वचमिति विज्ञेयं यत्र कार्यचिन्तिः स्वयम् ॥२५९॥
 न्यासेन सर्वमन्त्रानां मन्त्रानां सर्वयोगिनाम् । प्राणोपासननिष्ठानां ब्रह्मणा चिन्त्रकृतम् ॥२६०॥
 ब्रह्मणा सह ते सर्वे इति स्मृतिश्चागमः । क्रममुक्तेऽन्वयं पथाः श्रुतिस्मृतिमनोऽमलः ॥२६१॥
 आप्यात्मे हृदये यत्तन्मर्वतोभद्रमीर्यते । तेन भद्रेण कल्याणं सर्वेष्ववयवेष्विह ॥२६२॥
 तत्र यन्पुण्डरीकं तद्ब्रह्मणः स्थानमुच्यते । श्रुतावेव प्रसिद्धिर्हि दहर्गं युज्येदमनः ॥२६३॥
 साधनमपत्न्यं युक्तामन्त्रमिष्ये तु समाहिताः । गुरुपरिष्ठाया युक्त्या तेषां ब्रह्म प्रकाशते ॥२६४॥
 परमः पुरुषो भूर्मा स एवाध्वन्योपरि । इत्यादिश्रुत्या यन्प्रोक्तं तन्न पारोक्ष्यमिष्यति ॥२६५॥
 आह चाहमेवाधस्तादिन्यादिगमन्यामिनाम् । गूढानामपि सर्वेषां देहेऽहमिति दृश्यते ॥२६६॥
 माधुन्यमत्रम इत्यर्थमात्मैवति पुनर्वचः । एकात्मस्वरूपोऽन्वयोर्भेदशङ्कानिवृत्तये ॥२६७॥
 सर्वामृषनिषन्वेव ब्रह्म द्वैतं सुनिश्चितम् । ब्रह्मैव तन्मन्त्रमिष्याह चाध्ववेणी श्रुतिः ॥२६८॥
 तत्त्वमेव त्वमेवेतदिति कैवल्यं वचः । तत्त्वमसीति श्रुतिर्लोके ब्रह्मात्मैक्यं न भेदधीः ॥२६९॥
 एकत्व पदयोः स्पष्टं श्रुत्या यत्प्रतिपादितम् । साक्षात्मुक्तेः कारणं तद्ब्रह्मधस्तेषां स एव हि ॥२७०॥

जाता है। इतने विधानोपे रामतोभद्रकी मुद्राये बनायी और रामस्वरूप भी बनवाया। अब गन्देश न०
 करनेके लिए प्रसंगवश सर्वतोभद्रका स्वरूप बतला रहे हैं ॥ २५१-२५४ ॥ जिस ब्रह्मका स्मरण करनेसे
 प्राणियोंका सब प्रकार कल्याण होता है, उसे लोग भद्र कहते हैं। भद्र एक वस्तु है और मङ्गलका भा-
 मङ्गलकारी है ॥ २५५ ॥ जहाँ कि वह ब्रह्म साक्षात् हमसे अधिदैव या अध्यात्म रीतिसे व्यवस्थित होता है,
 उसीको लोग सर्वतोभद्र कहते हैं ॥ २५६ ॥ अब यहाँ इसका वास्तविकताको सिद्ध करने के लिए उन शक्तियों
 का रीतिसे दिखलाते हैं। अधिदैवके अन्तर्गत जो भद्र रहता है उस विमल भद्रका पहले बतलाते हैं ॥ २५७ ॥
 इस भद्रको हरण करनेवाला लोक ब्रह्मलोक कहलाता है और इसीकी सर्वतोभद्र संज्ञा भी है। क्योंकि उसी
 लोकसे सबका कल्याण होता है और उसीके सहस्र सब संकाका स्थिति बनी हुई है ॥ २५८ ॥ वहाँपर
 प्रभुने स्वयं एक मुद्रांमय घर बनाया है। उसे पद्य या कार्यकी चेतना, जो चाहो सो कहो ॥ २५९ ॥
 न्यासके द्वारा सब प्राणियों, सब पाणियों तथा प्राणकी उपासनाम लगे हुए प्राणियोंका वह नित्य
 एव दीर्घने लगता है ॥ २६० ॥ इससे ब्रह्म भी प्राप्तमान होन लगता है। यह स्मृतिका मत है और
 वेद भी इसी मतको स्वीकार करते हैं, वास्तवमें तो यह पवित्र मार्ग श्रुति और स्मृति इन दोनोंको मान्य
 है ॥ २६१ ॥ अध्यात्मका जो हृदय है उसे लोग सर्वतोभद्र कहते हैं। उस भद्रसे सब अवयवोंका कल्याण
 होता है ॥ २६२ ॥ वहाँपर जो कमल है, वह ब्रह्मका स्थान है, श्रुतियोंमें भी यह बात प्रसिद्ध है कि
 साधनरूपा सम्पत्तिके सम्पत्तिशाली जो लोग वहाँ रहते हैं, उन लोगोंकी गुरुजनोंकी उपदिष्ट मुक्ति द्वारा
 ब्रह्म प्रकाशमान दीखने लगता है ॥ २६३, २६४ ॥ न केवल ऊपर तथा मध्य इन तीनों स्थानोंमें वह
 पुरुष विद्यमान रहता है। इन श्रुतियोंमें जो कुछ कहा गया है, वह परोक्षमें नहीं प्रत्यक्ष ही जानना
 चाहिये ॥ २६५ ॥ प्रभुने स्वयं कहा है कि सूर्य आदिके साथ मैं समारमें व्याप्त रहता हूँ और समारी मनुष्योंके
 भी रहता हूँ ॥ २६६ ॥ किसीको भ्रम न हो इस विचारमें "आत्मा एव" आदि वाक्योंका फिर-
 फिर दुहराया गया है। 'एकात्मरूपी उस आत्माके भेदकी शंकाकी निवृत्त करनेके लिए सब उपनिषदोंमें
 इस ब्रह्मको अद्वैत बतलाया गया है। "ब्रह्म एव इदं अमृतं" आदि अथर्व वेदमें कहा गया है ॥ २६७ ॥ २६८ ॥
 'तत्त्वमेव' तथा 'त्वमेवेतत्' इन श्रुतियोंसे तथा 'तत्त्वमसि' इस छान्दोग्यके महावाक्यसे ब्रह्मके एकत्वका प्रति-

यत्तु किञ्चिज्जगत्तु दृश्यते अयमेऽपि । अनन्तश्च तत्त्वम् अथाप्य नारायण स्थितः ॥२७१॥
इदं सर्वं यदयमार्त्तकर्मणेऽदिनीयकम् । सर्वं स्वच्छिदमिच्छादिश्रुतयो यदनुवन्ति हि ॥२७२॥
सर्वभूतेषु चान्मानं सर्वभूतानि चात्मनि सपदस्वात्मयातीति परमार्थं मनोर्वचः ॥२७३॥
एतद्गुणैः वेधेन भूत्या जगन्मरूपकम् । कृतकृपाः स्वयं सर्वं सच्छिदमग्राहयन्ति च ॥२७४॥
अत्रोक्तं अन्यभिप्राय जानन्ति त्रिपदेऽलिलम् । किं बहुवनन चेद्विष्टं संक्षेपेणोपमं ह्यम् ॥२७५॥

नारायणाय नमः जनार्दन वासुदेव गोविन्द माधव मुकुन्द रमेश विष्णो ।

मकर्षणात् नरसिंह पावरात्मन्मामोरुताय शिव वामन पादि शिष्यम् । २७६ ।

येनेदं विदुः विश्वं विशता येन चेतनम् । यन्निश्चयं यन्प्रतिष्ठं च तत्त्वं सर्वान्मने नमः ॥२७७॥
इदानीं रामनोभद्रस्याष्टोत्तरशतस्य च । नानाभेदाः प्रकल्पन्ते लघुमुद्रान्वितस्य हि ॥२७८॥
पूर्वांशेऽष्टाविंशतीनां रेखावृद्धिं प्रकल्पयेत् । परिधीं द्वात्रिंशद्विंशतिं तन्पञ्चशोऽष्टाविंशतिं योजयेत् ॥२७९॥
प्रथमे तिथिमितीशाश्रुतिविंशत्पदान्मकाः । वाक्यः षोडशमन्त्राणां चोदशपदान्मकाः ॥२८०॥
भद्र तन्त्रमिति चाथ द्वितीयेऽर्चमिताः शिवाः । वाक्यस्योदशमिताः स्यष्टादशपदान्मकाः ॥२८१॥
भद्रमर्कपदं शेषं यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । एतद्रामलिंगतोभद्रजनं च यमुत्तरम् ॥२८२॥
अथवाऽऽद्ये रसमुद्रा रसेमा वापिकाश्च षट् । त्रयोदश पदाः चाद्या भद्र तन्त्रकलात्मकम् ॥२८३॥
द्वितीये पञ्च मुद्राश्च लिङ्गपट्टकं च वापिकाः । तन्मिताश्च भद्रकर्मपदमग्रेऽष्टमावधि ॥२८४॥
तुयेपंचतुयेत्र चन्द्रसंख्याश्च मुद्रिकाः । पणनेत्रनयनननेन्दुशंकरास्तथा ॥२८५॥
भद्र षट्पदमर्कादि षट्पदं विंशपादकम् । षोडशोऽष्टिगुणमपादं क्रमाज्ज्ञेयं विचक्षणैः ॥२८६॥

पादन किया गया है । वही मुक्तिका कारण है और उसका बीच होकर तो प्राणी माछान् बच ही हो जाता है ॥ २८६ ॥ २७० ॥ इस जगत्तु बाहर-भीतर जो कृष्ण रत्ना और मुक्ता जगता है, उन सबको बाधत होकर वह नारायण स्थित है ॥ २७१ ॥ इस जगत्तु जो कृष्ण है, उसमें एकमात्र वही अद्वितीय आत्मा है । “सर्वं स्वच्छिदं ब्रह्म” आदि वाक्यों में धृतिप्राप्ति भी यही बात कहती है ॥ २७२ ॥ जो प्राणी संसारकी सब बन्धुओमें अपनेको देखता है और सब प्राणियोंका प्रतिबिम्ब अपनेमें देखता है । उस आत्मज्ञानके लिये वह कोई माचारण बात नहीं है । यह मनु भगवान्का कथन है ॥ २७३ ॥ इस प्रकारके ज्ञानसे लगे रहता मन्त्र होकर अपनेको कृतकृष्ण मानते हुए स्वयं तो तरने ही है, साथ ही अपने अच्छे शिष्योंका भी पर उपदेशागृहीत पिलाकर अवसागरमें पार उतार देता है । ॥ २७४ ॥ यहाँपर ब्रह्मण्यो हुई धृतिप्राप्ति अतिप्रसन्नता । विद्वान् नाम अच्छी तरह जानने हैं । अधिक कहना सुनना व्यर्थ है । मध्यमे इस उद्देश्यका उपसंहार कर दिया गया है ॥ २७५ ॥ हे नारायण, कच्छुत, जनार्दन, वासुदेव, गोविन्द माधव, मुकुन्द, रमेश, विष्णो मकर्षण । ब्रह्मण्यो, कृष्णके बड़े आता, नरसिंह, परावरात्मन्, राम, गङ्गागामिन्, शिव, वामन । आप इस शिष्यकी रक्षा कीजिए ॥ २७६ ॥ समग्री जीवोंमें प्रविष्ट होकर जिसने इस विश्वको चेतन किया है, जिसमें सब जीव स्थित हैं, जिसमें सब प्रतिष्ठित हैं, ऐसे सर्वविद्या रामको प्रणाम है ॥ २७७ ॥ अब लघुमुद्राके साथ-साथ एक सौ आठ रामनोभद्रोंके अत्यन्त भेद बतलाते हैं ॥ २७८ ॥ पूर्वोक्त २८ रेखाओंका वृद्धि कर । उसमें दो परिधि अतिक्रमनावे । फिर उनमें लिंगोंकी योजना करे ॥ २७९ ॥ प्रथम पंक्तिमें १४ ईश और सोलह पादोंका २४ भद्र बनावे ॥ २८० ॥ फिर दूसरी पंक्तिमें १२ शिव और १८ पादोंकी १३ वाषा बनाना चाहिए । पहलेकी तरह १२ पादोंका भद्र बनावे । यह रामलिंगतोभद्र १०८ संख्याका है ॥ २८१ ॥ २८२ ॥ अथवा छः मुद्रा छः ईश और १३ पादसे छः वापिकाई बनावे और १६ पादका भद्र बनावे ॥ २८३ ॥ दूसरी पंक्तिमें पाँच मुद्रा बनावे और लिङ्ग तथा छः ही वापी बनावे । आगे आठवीं पंक्तिमें लेकर चार, पाँच, दो, एक, इन संख्याओंकी मुद्राये बनावे । फिर छः, दो, दो, दो, दो, एक, इस क्रमसे शिवकी रचना करे । इनमें छः पादका, बारह पादका, दो पादका, बीस पादका, सोलह पादका, चार पादका क्रमशः प्रत्येक पंक्तिमें भद्र बनाने । ऐसा विद्वानोंको जानना चाहिए ॥ २८४-२८६ ॥

अथवाष्टपदे मुद्रां विधाय तत्फलमकम् । रचयेन्मन्त्रानके तुर्ये भद्रं विश्वदात्मकम् ॥२८७॥
 सर्वत्र सममुद्रासु मध्ये च परिधिद्वयम् । मुद्रां सीमाभिगगता वापरद्वां तुर्यकोष्ठम् ॥२८८॥
 लिङ्गस्कन्धगता कोष्ठा वर्णैरिष्टैः प्रकल्पयेत् । बह्विंशत्शोभेभ्यगानि पदान्नुचंस्ताम् ॥२८९॥
 भद्रशृङ्खलयोग्यानि तदर्थं निनियोजयेत् । अथवाष्टये दश मुद्रां सीमापरिधयस्तथा ॥२९०॥
 भद्रमर्कपदं मध्ये परिधी द्वे प्रकल्पयेत् । एवमग्र परिधयस्तुतीयेऽष्टम् मुद्रिकाः ॥२९१॥
 चतुष्पादात्मकं भद्र पञ्च मुद्राश्च पञ्चमे । अर्कपादात्मकं भद्र नात्र द्वौ परिधी स्मृती ॥२९२॥
 सममेऽग्रिमिता मुद्रा भद्र तुर्यपदात्मकम् । द्वये त्रयोदशेशाश्च वाप्यश्चापि चतुर्दश ॥२९३॥
 भद्रं तच्चमितं तुर्ये नरेश दश वापि ताः । भद्रं तच्चमितं पष्ठे पञ्चेश वापिकाश्च षट् ॥२९४॥
 भद्र तच्चमितं शेष यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । अथवाष्टये पञ्चदश शिवा नेत्रेऽष्ट मुद्रिकाः ॥२९५॥
 शिवद्वयं त्रिपट्पाद त्रिपट्पादा च भद्रिकाः । षट् तुर्ये पञ्च मुद्राः स्फुर्वाणे त्रिभुमितास्तथा ॥२९६॥
 पष्ठे द्वे मुद्रिके मुद्रा गिरी मुद्रा गजेन्मथा । शिवद्वयं वापिके च मममान्न भद्रदिदम् ॥२९७॥
 भद्रमान तत्तयोष्ट षट् डरगिने च । विगपे डशमिवापि क्रमेणैव प्रकल्पयेत् ॥२९८॥
 यद्वा द्वौ मुद्रिके मेकां मध्यलिङ्ग प्रकल्पयेत् । भद्रमिदं कृत्वा तल्लिङ्ग रचयेद्भजे ॥२९९॥
 भद्रे गजे तच्चोष्ट शेष सर्वे तु पूजयेत् । अथवाष्टविपकषु पञ्चाष्टाग्रिमिताः स्मृतान् ॥३००॥
 मुद्रामन्ये नियोजयन् त्रयोदशपरिधिनः । भद्रमन्येन न प्रथमा षट्पदा च द्वयार्जिका ॥३०१॥
 द्वितीया विश्वकोष्ठा न्यायु द्वे द्वे वाप्यौ च लिङ्गके । रचयेन्पार्श्वयोः सम्यक् शेषं सर्वं पुणेदिनम् ॥३०२॥
 अथोक्ताः प्रथमाः सप्त षट्चतुर्यकाः । बह्विन्शच्चन्द्रमुद्राः सीमापरिधयस्तथा ॥३०३॥
 षट्सु स्थानेषु च शिवास्तुर्गमिताः स्मृताः । विशेषान् लिङ्गद्वय त्रयोऽस्त्रिपट् त्रिपट् पदम् ॥३०४॥

अथवा अठ्ठा पादक मुद्रा बनाकर चौध स्थानों में लिङ्गको रचना करे और वस पादका भद्र बनावे ॥ २८७ ॥
 जितनी समसंख्यक मुद्रा हो, उन सबके मध्य में दो परिधि बनावे । लिङ्गकी सीमा में दो आर चार पादकी
 वापा बनावे ॥ २८८ ॥ लिङ्गके कन्धके ठाढ़ी अथवा त्रिपट्पादकी निम्नोक्त मुद्राओं में से जो चापके
 बीचवाले बीच वाप्योक्ता, यदि वह भद्र तथा लिङ्गकी रचना करे, हा तो उक्त उक्त काममें ल आये । अथवा
 आदिकी दस मुद्राओं और सीमाकी परिधि होव । अदिम पादक कर दो ॥ २८९ ॥ वाचम वारह पादका
 भद्र बनावे और दो परिधियोंको रचना कर । इसा तत् तत् पन्निमें केवल अष्ट मुद्राओं की योजना कर
 ॥ २९१ ॥ चार पादका भद्र बनावे और पञ्चवस्य नव मुद्रा में बनाकर वारह पादका भद्र बनावे । विशेषता
 केवल इतना होगा कि इतम दो परिधियों नहीं रहती और चार पादका भद्र बनावे । इनमें तरह उक्त रचने और
 चौदह वापियों बनती ॥ २९२ ॥ २९३ ॥ चौदह २५ पादका भद्र बनावे, नौ ईश रहने, दस वापा बनना और २५
 भद्र बनने । छठमें पाँच ईश, छः वापा, पञ्चोस भद्र, व की सब पूर्ववत् रहने । अथवा आदिम पञ्चदश शिव अष्टादश
 मुद्राये, नौ पादक दो शिव और नौ ही पादका मुद्राये बनावे । चौथे छः या पाँच मुद्राये, पाँचवें सात मुद्राये,
 छठमें दो मुद्राये, सातवें एक मुद्रा, अठवें एक मुद्रा, दो शिव और दो वापा रहेंगे । यह क्रम आदिसे लेकर
 सातवें स्थान तक चलेगा ॥ २९४-२९७ ॥ इनमें भद्रका मान पञ्चोस, छः, सातह, वाटह, छः, वंस, सोलह, दस
 प्रकार है । बनानेवालेका चाहिए कि इसमें इनकी योजना करे ॥ २९८ ॥ अथवा दो मुद्रा बनाकर एकको लिङ्ग-
 के मध्यमें रखे और सातह काठकोका भद्र बनाकर सनवस लिङ्गको रचना करे ॥ २९९ ॥ सातवेंमें पञ्चोस
 काठकोका भद्र बनावे । वक्त सब पूर्ववत् रखे । अथवा आदिका तान पन्निमें पाँच, सात, तीन, सङ्ख्याओं-
 का शिव बनावे ॥ ३०० ॥ मुद्राके मध्यमें मर्यादा और परिधिकी रचना करे । भद्रको संग्रह पहले जितनी ही
 रहनी और छः, दो या वारह पाद उनमें रहने ॥ ३०१ ॥ दूसरा पंक्ति व स कोष्ठकोका रहनी और लिङ्गके बगलमें
 दो वापियोंकी रचना करे । व की सब पूर्ववत् रहने ॥ ३०२ ॥ अथवा आदिसे लेकर छः पन्नि तथा सात, छः,

वाप्योऽपि तन्मिताः कार्या भद्राणि यक्षयणनः तच्चकोष्ठं कला ओष्ठं तुयकोष्ठं च षट्पदम् ॥३०५॥
 षट्पदं च कलाकोष्ठं द्वेष सर्वं पुणोदितम् । अथवा प्रथमाद्यावत्पञ्चमस्थानकावधि ॥३०६॥
 षट् षट् पञ्च तुर्यवह्निमुद्राय मध्यशङ्करान् । तुर्यनेत्राक्षिनेत्राक्षिमर्यादापरिवींस्तथा ॥३०७॥
 विशेषस्तु लिङ्गद्वयं बाणैः षट् त्रिषट् पदम् । भद्रसंख्येन्दुकलेन्दुकलाकतुरसान्मिकाम् ॥३०८॥
 प्रकल्प्यारचयेद्बुद्ध्या शेषं सर्वं पुणोदितम् । वं नानाविधा भद्रा बहवः सन्ति भो द्विज ॥३०९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे श्रीरामदासविष्णुदास-
 सम्वादे लघुरामतोभद्रविस्तारो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामलिङ्गतोभद्र तथा अनेक लिङ्गतोभद्रांका रचनाप्रकार)

श्रीरामदास उवाच

पूर्वोक्तश्रेष्ठमुदीर्य रामतोभद्रचिन्तरान् । वदान्महं तत्राग्रं हि विष्णुदाम शृणुष्व तान् । १ ॥
 तिर्यगूर्ध्वरक्तरेखा एकपष्टमिताः शुभाः । अन्तान्कृष्णरक्तशुक्लरीताः परिधयः क्रमान् ॥ २ ॥
 द्वादशांते पीतकृष्णरक्तशुक्लाः पुनः स्मृताः । पञ्चमः पीतवर्णाऽपि सर्वतोभद्रमालिखेत् ॥ ३ ॥
 बहिः पंक्तौ द्वादशांते सीमापरिधयः स्मृताः । पीता वा लोहिताः कार्या मध्ये द्वौ परिधा स्मृतौ ॥४॥
 ततो मध्यगह्वरोर्ध्वे मुद्रिके वेदवर्णके । चतुर्पार्श्वेषु चत्वारि नामानि पूर्वमलिखेत् ॥ ५ ॥
 कोणगोत्रेषु कोणेन्दुस्त्रिपदः शुक्लवर्णकः । एकादशपदा कृष्णा शृङ्खला पीतवर्णका ॥ ६ ॥
 दशपदा शृङ्खलाऽन्या बह्वर्गी हारता स्मृता । एकोनविंशत्पदा भद्रं रक्तं नवात्मकम् ॥ ७ ॥

चार, पाँच, तीन, दो अथवा एक मुद्रा बनावे और सीमाक, पारिधिका और छोटे स्थानोमें चार-
 चार शिबोका रचना करे । विशेषना कहल इतना रह्या कि पाँच या दोनो पादोके लिङ्ग बनेगे । बापियाँ
 पूर्वोक्त संख्याके अनुसार ही रह्या, किन्तु भद्रकी संख्या बक्ष्यमाण संख्याके अनुसार रह्या । कुछ भद्र पञ्चवीस
 काष्ठकोके, कुछ सोलह काष्ठकोके, कुछ चार काष्ठकोके, कुछ छ काष्ठकोके, फिर छः काष्ठको, कुछ सोलह
 काष्ठकोके, इस प्रकार भद्र बनेगे । बाका सब पहलके समान हुआये । अथवा पहली पंक्तिसे पाँचवी पंक्ति
 पर्यन्त ॥ ३०३-३०६ ॥ छः, पाँच चार, तीन मुद्राएँ बनावे । बीचमें चार, दो, दो, दो शिबोका रचना
 करे और मर्यादा तथा पारिधयोको ठाकसे बन कर रखे ॥ ३०७ ॥ विशेषना इतना है कि पाँच, तीन, छ,
 तीन, छः पादका लिङ्ग बनावे । इसमें भद्रकी संख्या सोलह, सोलह, तथा छः रह्या । इस तरह कल्पना
 करके अपनी बुद्धिसे रचना करे । बाका सब पूर्ववत् रह्ये । इत प्रकार है द्विज ! इस भद्रके बहुतेसे भेद हैं,
 ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामतजपाण्डेयकृत-
 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनाहरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदास कहते हैं - हे विष्णुदास ! अब मैं तुम्हारे आगे पूर्वोक्त रामतोभद्रका विस्तार बतलाता हूँ ।
 उसे तुम सावधान मनसे सुनो ॥ १ ॥ भद्र बननेके लिये चाहिए कि बड़ा और सोचा ६१ रेखायें खींचे । अन्तमें
 काली, लाल, सफ़ेद तथा पीली परिधियाँ बनावे ॥ २ ॥ बाहरकी पंक्तिमें आगे पीत, कृष्ण, रक्त तथा शुक्ल
 रङ्गकी सीमापरिधियाँ रह्येगी । बाहे तो पाँचवाँ स्थान पाले रखे भा बना सकता है । बाहरके बाह बाहरकी
 पंक्तिमें पीले या लाल रङ्गकी परिधि रह्या । बीचमें और दो परिधियाँ बनेगी ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर
 मध्यके दोनों धरोंमें चार रङ्गोंको दो मुद्राएँ बनेगी । इसके अनन्तर चारों बगल पूर्ववत् चार नाम लिखने
 चाहिए ॥ ५ ॥ कोणवाले काष्ठकमें तीन पाद और शुक्लवर्णका इन्दु बनावे । ग्यारह पादको शृङ्खला बनावे
 और उसे कृष्ण वर्णकी रखे । दस पादकी एक दूसरी शृङ्खला पीले रङ्गसे बनावे । हरे रङ्गसे सत्तीस पादकी

त्रयोदशपदा कापी ॥ १० ॥ त्रिपदा चतुर्दश ॥ रक्तं भद्रं पीतभद्रं तिर्यङ्मनवपदान्मकम् ॥ ८ ॥
 मद्रया शृङ्खला रक्ता विष्टेव नमन्तः ॥ अष्टमुद्रान्मकं रामलोभद्रं ने मयोदितम् ॥ ९ ॥
 त्यक्त्वा पीतां शृङ्खलां दत्तां कृष्णं विष्टवद्भु ॥ त्रिपदा चतुर्दशपदा मद्रं लोहितं रक्तैः ॥ १० ॥
 तिर्यग्भद्रं पीतवर्णं विष्टितं वेदजं नया लिङ्गाध्वं मालिका रक्ता त्रिपदा वा त्रिलोचना ॥ ११ ॥
 अष्टमुद्रान्मकं चैवन्मलि ॥ रामभद्रम् ॥ त्रिपदगूर्ध्वं त्रिपदाशुद्राः सर्वं हि पूर्ववत् ॥ १२ ॥
 मुद्रिकापिग्धीनां च पट्टकं स्वेच्छं प्रपन्नेव ॥ चतुर्मुद्रान्मकं चैवन्मलि ॥ वापि पूर्ववत् ॥ १३ ॥
 तिर्यगूर्ध्वं त्रिसमाश्च रेखाः कार्याः तुल्यदि ॥ तामु चतुर्गुणार्धेषु कार्याः परिधयः क्रमात् ॥ १४ ॥
 कृष्णरक्तशुक्लपीता इत्यादि पदेषु च ॥ कार्यः पुनश्चतुर्गुणार्धे परिधिः पीतवर्णकः ॥ १५ ॥
 तदग्रे रक्तार्धे च परिधिर्दि ममन्तः ॥ ततोऽष्टपदः परितः परिधिः पीतवर्णकः ॥ १६ ॥
 ततः षष्ठपदाध्वं च पुनः पीताः प्रकाशयेत् ॥ आद्यस्थानं च समाख्याः पीता परिधोऽप्यवा ॥ १७ ॥
 रक्ता वेदामिताः कार्या इदानीं पदेषु च ॥ कोणगृहं पूर्ववच्च मध्ये च मुद्रिकात्रयम् ॥ १८ ॥
 ततो द्वितीयस्थाने हि चद्रः कृष्णा च शृङ्खला ॥ समपदा वल्लरा च चतुर्दशसु पादिका ॥ १९ ॥
 वल्ल्यानिर्धोजनं कार्यं रक्तं भद्रं हि पट्टम् ॥ त्रयोदशपदा कार्या वाप्या वेदामिताः मिताः ॥ २० ॥
 षड्विंशन्पदाः कार्याः स्वाश्रिताः कृष्णवर्णकाः ॥ वाप्यस्त्रयोदश लख्या हि लिङ्गमध्ये पदेषु च ॥ २१ ॥
 रामात् रामानामात् मद्रया कर्तव्यं नव मुद्रा चतुर्दश जयः पादाभ्यां कण्ठ ईरतः ॥ २२ ॥
 चतुर्दश लिङ्गाध्वं पादस्थानं हि पट्टपदा ॥ शान्तस्थलं शुक्लं द्व पदं रचयेद्विधा ॥ २३ ॥
 वाप्युपारष्टाच्छपाण पातनं त्रिपदानं च ॥ तत्र रक्तानि त्राण्यादींश्च पातानि चोपरि ॥ २४ ॥
 मध्येऽथ सप्तमीभद्रं पूर्ववच्च ना परम् ॥ सवल्लङ्गामभद्रत्रयमकं मयेरितम् ॥ २५ ॥

बहलरी बनाये ॥ ८ ॥ रङ्गस नी पादका भद्र बनावे ॥ ९ ॥ ७ ॥ सफेद रङ्गस तरह पादका बाया बनावे । तीन पादसे लाल रङ्गका एक दूसरी भद्र बनावे । रङ्गस नी पादका एक तिरछा भद्र और बनावे ॥ ८ ॥ इन दोनों भद्राका शुद्ध सा लाल रङ्गक और चारों तरफ कवल दो पादका रहणा । इस प्रकार अष्टभुजात्मक रामतोभद्र भैरव नृभका बतलाये ॥ ९ ॥ अथवा पाला नुवराका छाडकर कले रङ्गस नी पादका लिङ्ग बनावे । चार पादका एक खण्डवाया और छ पादस लाल रङ्गका भद्र बनाये ॥ १० ॥ ऊपर बतलाये तिरछे और पीले भद्रम सात या चार पादका भद्र बनावे । एक ऊपर लाल रङ्गका मालिका या तीन पादके शिव बनावे ॥ ११ ॥ यह अष्टभुजात्मक सलङ्गगमभद्र है । पूर्ववत् साधा और बडी तिरपन रेखाये बाये ॥ १२ ॥ मुद्रा और पाराधनाक छ छ पादोका अपन इच्छानुसार पहलक समान पूर्ण करे । यह चतुर्मुद्रात्मक र.म.दि.ङ्गनाभद्र कहता है । इसक सिवाय सब च.ज पूर्ववत् रहती है ॥ १३ ॥ लाल रङ्गसे सोधा और बडी तिरहतर रेखाये खाच और क्रमशः चारा बगल पाराधना बनावे ॥ १४ ॥ बारह पादोका काला, लाल तथा गुच्छ दोका भद्र बनावे । हर उसक चारो ओर पल वर्णका परिधि बनाये ॥ १५ ॥ उसके आगे चारो ओरस लाल रंगका परिधि बनावे । फिर आठ पादका परिधि उसके चारों तरफ बनावे ॥ १६ ॥ ऊपरका और छ पादका पाराध पाल रंगस बनावे । आदिम स्वानम सोमा नामकी परिधियाँ अथवा लाल रंगस चार परिधियाँ बनावे । पहलका तरह काणक धरोम तान मुद्रायें बनावे ॥ १७ ॥ १८ ॥ इसक अनन्तर दूसर स्वानम चन्द्रना बनाकर कले वर्णका शृङ्खला बनावे । सात पादकी बहलरी अथवा चौदह पादोसे बहलरीयाका निमांग कर और लाल रङ्गसे छ पादका भद्र बनावे । सात पादसे सफेद रंगकी बा बाधियाँ बनाये ॥ १९ ॥ २० ॥ तदनन्तर कल रंगस छ पादस पादोके तीन शिव बनावे । लिंगके मध्यवाले बाधकांम तरह बाधियाँ बनावे ॥ २१ ॥ फिर उत्तम स्याहीसे कङ्कणके समान रामके नाम लिखे । इसमें चार पादसे मस्तक, दो पादस कंठ, चार पादस लिंग और पार्श्वभाग, छ पादसे स्कन्ध, तीन पादसे पैर बनावे । सफेद रंगके दो पाद बाका रहने दे ॥ २२ ॥ २३ ॥ अथवा ऊपरसे मो आठ पाद बाकी बचे है,

एतद्द्वादशमुद्राभी रामलिङ्गात्मकं शुभम् । अंतर्गम्य विविधं च रामपुष्ट्यर्थमोरितम् ॥२६॥
 तिर्यगूर्ध्वमंकमस्य रेखाः सर्वे हि पूज्यम् । चतुर्मुद्रात्मकं भद्रं यथा तद्वच्च मध्यमे ॥२७॥
 आद्ये तिस्रः स्थले मुद्रा मीम पारथयस्तथा । मध्यमयक्ष्णपां ज्ञेयास्तु द्वौ द्वा शुभौ स्मृतौ ॥२८॥
 ततः षोडशमुद्राभी रामताम्रमागन्तुं ज्ञेयमहं कुं लिङ्गं मल्लिङ्गं पांडुलिङ्गमात्मकम् ॥२९॥
 तिर्यगूर्ध्वभूमिवाणवेदरेखाः ४-१ सुकाहिताः । अष्टमुद्रात्मकं मध्ये रामतीक्ष्णं लिङ्गम् ॥३०॥
 तिर्यगूर्ध्वं परिधयः पातार्थं ममन्ततः । द्वादशानि रचनायां बाहिः परिधयोऽपि च ॥३१॥
 पूर्ववत् कोणगोहानि मुद्राणां च क्रमाजुना । उक्तं द्वं मुद्राके पूर्वं तद्वच्च वेदमुद्रिकाः ॥३२॥
 मध्ये सर्वत्र परिधियं सान्धस्थलं कदा । तत्र रत्नानना द्वाष्टावशेषः पञ्चम स्थले ॥३३॥
 षण्मुद्रिका वेद वाप्यश्चतुर्गोत्रिपादकाः । सप्तमस्तत्तद्वर्णद्वयं कृष्णं द्वादशपादजम् ॥३४॥
 वापीपार्श्वेषु भद्राणि चत्वारि लाहितानि च । पृथक् पृथक् पञ्चदशपदैर्दशानि नानि हि ॥३५॥
 षष्ठे स्थाने द्वादशैव मुद्रा द्वाष्टे चतुर्दश । षड्दशाष्टादशमायं त्रिमुद्राविंशमुद्रिकाः ॥३६॥
 चतुर्विंशाय षड्विंशा द्वाष्टाविंशतुमुद्रिकाः । त्रिमुद्राविंशतुमुद्राणां स्थानं षोडश मुद्रिकाः ॥३७॥
 साप्यः षोडश विहृषा मय्यं वापादय स्मृतम् । अष्टाचतुर्दश च रामताम्रमागन्तुं ॥३८॥
 तिर्यगूर्ध्वं हि चत्वारिंशदरेखाः सुकाहिताः । मयलिङ्गरत्नमद्रयमकं पुरातनम् ॥३९॥
 तद्वच्च मध्ये लेख्यं हि मध्यमुद्रात्मकं ततः । द्वि मत्तपदः त्रयः कृष्णरत्नः प्रकारयत् ॥४०॥
 षट्त्रिंशद्रामनामान वै लेख्यानि च हस्त्याः । कृष्णं त्रिकोणकं कांतिं चतुर्दश शिरः स्मृतम् ॥४१॥
 कटिश्चतुर्पदैः कार्या पार्श्वे द्वादशपादजं स्तम्भं त्रिंशत्पदं मया भूतं त्रिंशत्पदात्मकम् ॥४२॥

उनके आदिवाल तीन पादका लाल रङ्गस और पांच पल रङ्गस रंग ॥ २४ ॥ उनके बीचम पूर्ववत् सर्वतोभद्रकी रचना कर । इस प्रकार में तुमका तन भद्रका रामताम्र वतलाया ॥ २५ ॥ यह द्वादश मुद्राओंस युक्त लिङ्गात्मक रामताम्र आनन्द, विषय तथा रत्नाना अलङ्कृत करतलाया है ॥ २६ ॥ साधा और बड़ा उग्रासी रेखाय पहलेकी तरह साथ । ऊपर में चतुर्दशमक रत्नमद्र बनाया आय है, उसी तरह बीचमें भद्रका रचना कर ॥ २७ ॥ आदिकी पदम तीन मुद्राय बनाकर पहलके समान सामाका पारंवि बनावे । बीचम तीन तीन और अन्यम भा लततन पारथी दन शुभ ॥ २८ ॥ यह षोडशमुद्रात्मक रामतीभद्र में तुमका बनाया । चौदहसक मध्यममन शिवाका भा रचना कर दो जाय तो यहा सालङ्ग-रामतीभद्र हो जायगा ॥ २९ ॥ उनका कम इस प्रकार है —सावा और ताक्षः ४५१ रेखाय लाल रङ्गस खोब । उनके बीचम अष्टमुद्रात्मक रानत भद्र लिख ॥ ३० ॥ इसके चारों ओर पल रङ्गका पारंविगी रहगा, व परिधिया द्वादश पादक अन्तरपर बनायी जायगी ॥ ३१ ॥ पहलकी तरह कोणवला मुद्राओंका कम बतला रहे हैं । सबके ऊपर दो मुद्राय और उनके नाच चार मुद्राय बनावे ॥ ३२ ॥ सब तरफ दो पारंविगी बनावे । इसके बाद छः मुद्राय बनव । फिर आठ मुद्राय बनव । पंचम स्थानम कुछ विशेषता है, सा बतात है ॥ ३३ ॥ इसमें छः मुद्राय, चौरासी पादका चार वाप और उता वायाक अन्तर्गत काल रङ्गस बारह पादका कुंड बनाव ॥ ३४ ॥ वापीके आस-पस लाल रङ्गक चार भद्र बनव । व अन्यम अलग पन्द्रह पादक बनाव जायें ॥ ३५ ॥ छठी पंक्तिमें केवल बारह ही मुद्राय रहगा । अग चौदह, फिर दस, बाइस, चौत्रास, छत्त्रास, अष्टा-इस, तौस, बत्तीस, ये मुद्राय रहगा । और अपन स्थानपर पूर्ववत् व सालह मुद्राय रहगा । इसमें वापा भी मोलह रहेंगी और मध्यम दो वाविया रहगा । इस तरह में तुम्ह अष्टात्तरसहस्र रामतीभद्रका कम बतलाया ॥ ३६-३८ ॥ लाल रङ्गस खड़ा बड़ा और ५६८ रेखाएँ । जैसा कि मैं पहले ही सर्वलिङ्गात्मक रामतीभद्रकी रचनाका प्रकार बतलाया है । उसी तरह यहाँ भी बनावे । उसके बीचमें मुद्राकी जगहपर बहतर पादके शिवाकी रचना करे । इसका वर्ण लाल रहगा । अथवा हाथसे ३६ रामनाम लिखे । काले रंगसे उनकी कणिका और चार पादसे सिर बनावे ॥ ३९-४१ ॥ चार पादको कटि

षड्विंशपदजे ज्ञेये द्वे बापीशक्ने मिने । द्वाभ्यां शिवस्य च नेत्रे मिने शेषदानि हि ॥४३॥

पञ्च रक्तानि चन्द्राणि पीनानि शिवकर्णयोः ।

स्थाने तृतीये मुद्राश्च तिस्रो द्वौ शङ्करौ च । स्थाने चतुर्थे मुद्राश्च चत्वारश्चिज्जिवाः स्मृताः ॥४४॥

एवमग्रे क्रमेणैव विज्ञेयं जयगम्यहम स्थाने चतुर्थे मुद्राश्चतुर्दश शिवास्तथा ॥४५॥

पञ्चदशे हि तिष्ठेय एवमग्रे शिवा तिष्ठेय । कोणस्थगेह्याः कार्यौ द्वौ शिवौ च त्रिषट्पदौ ॥४६॥

अष्टमुद्रात्मके भद्रे मणिले च कर्णौ यथा । मद्रक्तौ लिङ्गवृद्धिर्हि कर्णव्या धरमावधि ॥४७॥

स्थाने द्वाविंशतिथे मुद्रा द्वाभ्यां चैरिता । शराशिवश्च लिङ्गानि षडिः परिधयस्ततः ॥४८॥

एवं युक्त्या रचनीये शेष सर्वे पुरोदिनः ।

अष्टोत्तरसहस्रं च रामशिरात्मकं त्रिदश । रामासनं गच्छं हि राघवस्यातितुष्टिदम् ॥४९॥

तिर्यग्गूर्ध्वं बाणादाश्चतुर्दिशोऽपि पूजयेत् । अष्टमुद्रात्मकं मध्ये परिधयः समतलाः ॥५०॥

तिर्यग्गूर्ध्वं द्वादशाने मणिः पञ्चाशत्तथा । मणः संमागमिच्छिद्यं नान्यन्स्थले कदा ॥५१॥

नेत्रस्थाने वेदमुद्रा । अष्टमे द्वात्रिंशके तिस्रः बाणश्चिपुद्राश्च अष्टमे च चतुर्थके ॥५२॥

पञ्चमे दश गम्याश्च द्वे पञ्चमौ पुरोदिनश्च अष्टमश्च । रामनोभद्रं ते मयोदिनम् ॥५३॥

तिर्यग्गूर्ध्वं त्रिपूर्णातिरेकाः कर्णश्च पूजयेत् । नोदिनं रामभद्रयमेकं पुरोदिनम् ॥५४॥

तदत्र मध्ये लेख्यं हि मध्यमुद्रा स्थले तिता । बाणां कार्या द्वादशाने परिधयश्च पूर्ववत् ॥५५॥

तिर्यग्गूर्ध्वं शुभा कार्या षडिः परिधयस्तथा । स्थाने तृतीया मुद्राश्च तिस्रो द्वौ शङ्करौ च ॥५६॥

चतुर्थे वेदमुद्राश्च त्रयस्त्रिंशदङ्गाः स्मृताः । पञ्चमे पञ्च मुद्राश्च चत्वारश्च दश वराः ॥५७॥

षष्ठे स्थाने च षण्मुद्राः शिवाः समं प्रकीर्तिताः । कोणस्थगेह्याः कार्यौ द्वौ द्वौ च त्रिषट्पदौ ॥५८॥

बनावे । बाहू पादमे दोनों पादों और दोन पादों के बीच बनावे ॥ ४२ ॥ छत्तीस पादसे शिव तथा बाणा बनावे जो द्वादश शिवों के समान रूप बनावे ॥ ४३ ॥ बाकी कोण्टेकोण्टेसे पाँच कोण्टक लाल रङ्गसे, चार पद रङ्गसे दशवी तथा तीस । पञ्चम पाद मुद्राय और दो शंकर बनावे । चौथी पङ्क्तिमें बाण मुद्राय और तीन शिव बनावे ॥ ४४ ॥ इस क्रमसे बनावेके अनन्तर इसमें जो कुछ विशेषतायें हैं, उन्हें बतला रहा है । चौदहवीं पङ्क्तिमें चौदह मुद्राय और चौदह शिव बनावे ॥ ४५ ॥ यहाँ क्रम पन्द्रहवीं पङ्क्तिमें भी रहेगा । बाकी सब पाद वृद्धि अनुसार पूरा करे । दाताक बानों परसे नौनी पादके दो शिव बनावे ॥ ४६ ॥ अष्टमुद्रात्मक रामनोभद्र लिङ्गमुद्रा पर लेख्य बाण अन्तर्पर्वत मुद्राके अनुसार लिङ्गकी वृद्धि करता जाय ॥ ४७ ॥ छत्तीसवीं पङ्क्तिमें बाहू मुद्राय बनावे । उनमें नौम लिङ्ग बनाकर बाहूकी परिधियाँ भी बनावे ॥ ४८ ॥ इस प्रकार युक्तिके साथ इस रामनोभद्रको बनावे । शेष अंश पहलेके समान ही रहेगा । यह अष्टोत्तरसहस्रक रामनोभद्र रामचन्द्रजीको प्रमत्त करनेवाला सर्वश्रेष्ठ आसन है ॥ ४९ ॥ सीधी तथा तिरछी १६५ रेखायें खींचे और अष्टमुद्रात्मक रचना करे । उसके बाचम भद्र रहेगा । चारों ओरसे बाहूकी पङ्क्तिके बाहू परिधियाँ रहेगी । मध्यमें सोमा परिधि रहेगी और किसी पङ्क्तिमें कुछ भी नहीं रहेगा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इसकी दूसरी पङ्क्तिमें चार मुद्राय रहनी । तीसरी पङ्क्तिमें कुछ विशेषता है, सी बतलाते हैं । आठवीं और चौथी पङ्क्तिमें क्रमशः तीन बापी और तीन मुद्रायें बनावे ॥ ५२ ॥ पाचवीं पङ्क्तिमें दश मुद्रायें बनाकर बाकी पूर्ववत् रचना । यह मैं तुमको अष्टोत्तरशत रामनोभद्र बतलाया ॥ ५३ ॥ सीधी और तीली २०३ रेखाएँ खींच । फिर पूर्वोक्त रातिके अनुसार चन्द्रमयात्मक रामनोभद्रकी रचना करके उसीके समान समस्त लिङ्गोंकी स्थापना करे ॥ ५४ ॥ इनके मध्य पहली पङ्क्तिमें सफेद रंगका एक भद्र और सफेद रङ्गकी ही एक बापी बनावे । फिर पहलेकी तरह बाहू पङ्क्तिमें बाहू परिधियाँ बनावे ॥ ५५ ॥ बाहूकी तीली और साधो परिधियाँ बनाकर तीसरी पङ्क्तिमें पाँच मुद्रा और दो शिव बनावे ॥ ५६ ॥ चौथी पङ्क्तिमें चार मुद्रा और तीन शंकर बनावे । पाँचवीं पङ्क्तिमें पाँच मुद्रा और चार शिवकी रचना करे ॥ ५७ ॥

अष्टमुद्रात्मके भद्रे मलिमे च कृतौ यथा । स्थाने च समने मुद्रा, मरु विज्ञाने चष्ट वै ॥६९॥
 कोणस्थगृहयोः कार्यौ द्वौ द्वौ च त्रिपटपटौ एतदष्टोत्तरशने रामलिङ्गात्मकं स्मृतम् ॥६०॥
 पष्ठे स्थाने कोणगेहेऽथवा शंभु न कारयेत् । स्थाने तु कृते दृष्टेऽपि कार्यौ द्वौ द्वौ हरावपि ॥६१॥
 एतच्छतात्मकं भद्रं रामलिङ्गात्मकं मया । अष्टोत्तरशने रामतोभद्रे बहुमन्त्रे ॥६२॥
 एतेव मुद्राः कर्तव्या अत्र स्थाने हि पंचमे । पंच मुद्रा, पञ्च वाप्यः सप्त द्वात्मकं विज्ञेय ॥६३॥
 अष्टोत्तरसहस्रे श्रीरामतोभद्रेके चरे । वाप्यस्थाने त्रिपटपटौ द्वौ द्वौ हरावपि ॥६४॥
 सहस्रराममुद्राणां रामतोभद्रीरितम् । अष्टोत्तरसहस्रे श्रीरामलिङ्गात्मकं स्मृतम् ॥६५॥
 स्थाने चतुर्दशे कोणगेहे शंभु न कारयेत् । मुद्रास्थाने च द्वौ द्वौ मरु विज्ञाने कारयेत् ॥६६॥
 सहस्रराममुद्राणां रामलिङ्गात्मकं स्मृतम् । पोटपटौ वाप्यस्थाने विज्ञेयौ च ॥६७॥
 मध्यमुद्रास्थले वाप्यस्तिष्ठः कार्यो भद्रतमा । पञ्चमोऽथवा पञ्चमोऽथवा ॥६८॥
 अथवाऽऽथस्थले मध्यमुद्रास्तु वेददिनु च । पञ्चमोऽथवा पञ्चमोऽथवा ॥६९॥
 वाप्यश्चैतद्विज्ञेयं नवमुद्रात्मकं शुभम् । रामतोभद्रे वाप्यस्थाने ॥७०॥
 तिर्यगूर्ध्वं वाणूर्ध्वभूमिरेवाथ पूर्वम् । पञ्चमोऽथवा पञ्चमोऽथवा ॥७१॥
 भुवामध्ये हि द्वौ वाप्यौ परिधयोऽकमेध्यमाः । द्वौ द्वौ मरु मध्येऽपि च न चकारात् ॥७२॥
 आतव्यं रामतोभद्रं तोषदं तत्त्ववादिनाम् । कोणगेहेऽपि विज्ञाने नेत्रस्थाने हि पश्चिमे ॥७३॥
 कार्यं वापीस्थले लिङ्गं पञ्चविंशतिमं वरम् । पञ्चविंशतिमुद्राणां रामलिङ्गात्मकं स्मृतम् ॥७४॥
 अथोच्यन्ते देवताभि रामामनभवानि च । मरु मध्येऽपि रामतोभद्रे तन्मुद्राम् ॥७५॥
 ततो वहिस्तु लिङ्गेषु रुद्रं वापीषु वै नलम् । तयोऽथवा मध्येऽपि हि द्वौ द्वौ मरु मध्ये ॥७६॥
 पीतासु च मृद्वलासु क्षगदं परिकल्पयेत् । पञ्चमोऽथवा पञ्चमोऽथवा ॥७७॥
 छद्मं पञ्क्तिर्मे छ मृद्रा तथा क्षात शिव वनावे । कोनेऽथवा पञ्चमोऽथवा ॥७८॥
 ॥५८॥ लिङ्गयुक्तं अष्टमुद्रात्मकं रामतोभद्रं वना तत्त्वपरं उक्तं मरु मध्ये पञ्चमं आत मुद्रा और
 शङ्ख लिङ्ग वनावे ॥५९॥ कोनेवाले दोनों धरोमें तीनों पापीके दा शिव वनावे । पञ्चमोऽथवा अष्टोत्तर-
 स्रलिङ्गात्मकं रामतोभद्रं वतलाया ॥६०॥ छद्मं पञ्क्तिर्मे छ मृद्रा तथा क्षात शिव वनावे ।
 तीसरी पञ्क्तिमें एक मुद्रा, दो वापी तथा दो शिवका वनावे ॥६१॥ मरु मध्ये लिङ्गत्मकं भुवामध्ये
 वतलाया । पूर्वदिक् अष्टोत्तरसहस्रं रामतोभद्रं चौदहवीं पञ्क्तिमें अष्टोत्तरसहस्रं अष्टोत्तरसहस्रं
 पञ्क्तिमें पांच मुद्रा और पांच वापी वनावे ता इस लीग अष्टमुद्रात्मकं रामतोभद्रं वतु है ॥६२॥ ६३॥
 पूर्वोक्तं अष्टोत्तरसहस्रं रामतोभद्रं पांचवीं पञ्क्तिमें छ मृद्रा और चार मुद्रा वनावे ता इस लीग अष्टमुद्रा-
 रामतोभद्र कहते हैं । रामलिङ्गात्मकं अष्टोत्तरसहस्रं रामतोभद्रं चौदहवीं पञ्क्तिमें कोणगेहे वरमं हि-
 त्री रचना न करे और मुद्राके स्थानमें ध्वं को-कोच दो कारियें वना वे और कुछ न वनावे ॥६४॥ ६५॥ ६६॥
 इसे लीग रामलिङ्गात्मकं सहस्ररामतोभद्र कहते हैं । पञ्चविंश रामतोभद्रकी पहली पञ्क्तिमें तीनों शिवात्मक
 मध्यमुद्राके स्थानमें वडा-बडी तीन वापियें वनावे और कोच इस अष्टमुद्रात्मकं रामतोभद्र कहते हैं ॥६७॥ ६८॥
 अथवा पहली पञ्क्तिमें मध्यमें मुद्राओं तथा चारों ओर चार वापी वनावे और तीन दिशाओंमें तीन वापियों
 रचना करे ॥६९॥ रामचन्द्रजीकी प्रसन्न करनेवाली यह तीसरी मुद्रात्मकं रामतोभद्र है ॥७०॥ देवी और सीध-
 चन्द्रह रेखायें पूर्ववत् त्रयोदशभद्रात्मकं रामतोभद्रके समान स्वीच । उसमें वै चम तन मुद्रा ये वनावे ॥७१॥
 मुद्राओं की रचना करे और मध्यम मूर्ध्नि वनाकर पञ्चि वनावे । दो-दो पादकी परिधिवा वनावे
 इसे लीग तत्त्वमुद्रात्मकं रामतोभद्र कहते हैं ॥७२॥ यह रामतोभद्र तत्त्ववादिनोंके लिए आनन्ददायक है । को-
 के धरोमें लीकोकी रचना करे । पश्चिमकी ओर नेत्रके स्थानमें पञ्चोक्त लिङ्ग वनावे । यह पञ्चविंशतिमुद्रात्मकं
 रामतोभद्र कहलाता है ॥७३॥७४॥ अब रामासनके देवताओंको वतलाते हैं । सर्वतोभद्रके बाच तथा सर्वतोभद्र

कृष्णवर्णशृङ्गलासु समावाह विभीषणम् । बन्लीषु च जावन्तं मेदं खंडेदुषु स्मरेत् ॥७८॥
 द्विविधं परिधिष्वेव मुद्रायां राघवं स्त्रिया । मुद्रायाः पश्चिमे चाथ दक्षिणे ह्यनरं पुरः ॥७९॥
 लक्ष्मणं मरुतं चापि शत्रुघ्नं वायुनन्दनम् । पूज्यपूजकयोर्मध्ये ज्ञेया पूर्वदिग्ध हि ॥८०॥
 सितापरिधिष्वत्रैव सुषेणं पण्डितयेत् । सर्वत्र पदमात्रेषु चितयेत्सर्वशानरान् ॥८१॥
 बहिःस्थितिधिष्वेव त्रिवेणीं परिचितयेत् । चतुर्दिशालामिमुखा इग रुद्राश्च वापिकाः ॥८२॥
 कर्तव्या बालामिमुखाः कायां वा पद्मसंभ्रवाः । चतुर्दिशालामिमुखा एव भद्रेषु मेऽकथि ॥८३॥
 पक्षत्रये वरिष्ठास्ता वदंतीत्यं मुनीश्वरः । पूर्वोक्तभद्रे वेत्ता हि सपूज्यादौ ततः परम् ॥८४॥
 समारमेद्राघवस्य भेषु पूजां सविस्तराम् । पद्मस्य कर्णिकायां च समीतं राघवं न्यसेत् ॥८५॥
 अष्टपद्मदलेष्वेव तस्यावरणदेवताः । पूजयेदिति सर्वत्र बुधंस्तु परिक्रम्यते ॥८६॥
 पद्मे सङ्कोचमालक्ष्य प्रकारान्तर्गमुच्यते । सर्वतोभद्रकमले घान्धराशौ घटं न्यसेत् ॥८७॥
 जलपूर्णं च तस्यास्त्रे केतकीपत्रपूरिते । तामपात्रं विमृशं च न्यस्य वंद्यलपूजितम् ॥८८॥
 तत्र इव सावाणं रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । शैली दाहमयी लोही लेख्या लेख्या चर्मकनी ॥८९॥
 मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता । सर्वेषु रामभद्रेषु मुद्रापूजयो रघूत्तमः ॥९०॥
 वज्रकथं शिवो ज्ञेयो भद्राद्या रामपार्षदाः । श्रीरामलिंगतोभद्रमन एवोच्यते बुधै ॥९१॥
 एवं नानाविधा भेदा बहवः संति मा द्विज । श्रीभद्रामतोभद्राणां येषां संख्या न विद्यते ॥९२॥
 मया भेदाः कियतोऽत्र तवाग्रे विनिवेदिताः । नरबुद्धयः प्रकर्तव्याः पूजनार्थं गमापतेः ॥९३॥
 हेमर्तुमवं चंद्रं कार्यमामनमुत्तमम् । राघवार्थं महच्छ्रेष्ठं रौप्येनान्तुमवं तु वा ॥९४॥

देवताओंका आवाहन करे । इसके बाद बाहरके लिंगोमें बदका, वापियोमें नलका, भद्रोमें सुधावका, तिरछे
 भद्रोमें पोका ॥ ७९ ॥ ७९ ॥ और पीले रङ्गकी शृङ्गलाओंमें अन्नदका आवाहन करे । आदि भद्रकमें पीत
 शृङ्गलाका अभाव हो तो तिरछे भद्रमें अन्नदका आवाहन करे ॥ ७७ ॥ कृष्णवर्णकी शृङ्गलाओंमें विभीषणका,
 बलिलयोमें आम्बवानका और सण्डेबुओमें मैन्दका आवाहन करे ॥ ७८ ॥ परिविके ओंत्तरवाली मुद्रामें
 सीताके साथ-साथ रामका आवाहन करे । मुद्राके पश्चिम, दक्षिण, उत्तर तथा पूर्वकी ओर कमल लक्ष्मण
 भरत, शत्रुघ्न और हनुमान्जीका आवाहन करे । यही पूज्य-पूजक दोनोंके लिए पूर्वदिशा उत्तम मानी
 गयी है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ सफेद रङ्गकी परिधियोमें सुषेणका तथा बाकी सब स्थानोंमें सारे बानरोंका आवाहन
 करना चाहिए । बाहरकी ताने परिधियोमें त्रिवेणीका आवाहन करे । हर, रुद्र और वापिकाओंसे चारों
 दिक्पालोंके अभिमुख कर दे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ यह विद्या बन,नेवाले आचार्यने मुझे बतलाया है कि
 अत्यंत भद्रमें हर, रुद्र तथा वापिकाओंको अपने सम्मुख करे या अपने आकरका बना दे अथवा
 दिक्पालोंके अभिमुख कर देना चाहिए ॥ ८३ ॥ मुनिगण ऐसा कहते हैं कि इन तीनों पक्षोंमें सर्वश्रेष्ठ
 पक्ष यह है कि पूर्वोक्त भद्रमें देवता आदिकाकी पूजा करके रामचन्द्रजीका विस्तृत पूजन प्रारम्भ करे ।
 पद्मकी कर्णिकामें सीताके सहित रामचन्द्रजीका ध्यास करे । आठ दलवले कमलमें उनके आवरण-
 देवताओंका पूजन करना चाहिए । पण्डितोंका कथन है कि यह नियम सर्वत्रके लिए है ॥ ८४-८६ ॥
 यदि कमलमें कोई सङ्कोच दोखे तो उसके लिए प्रकारान्तर बतलाते हैं । सर्वतोभद्रके कमलमें घान्धरी
 राशिपर घट स्थापन करे ॥ ८७ ॥ केतकीके पत्रसे भरे हुए घटके मुँहपर चाँदले भरा एक बड़ा-सा तामेका
 वर्तन रखे । उसके वस्त्रपर आवरणदेवताके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी पूजा करे । हर एक भद्रमें पद्मकी,
 लक्ष्मी, लोहेकी, मुनेईटकी, बालूकी, रहसे रत्नकर बनायी हुई, मनसे कहीरात अथवा मणिमयी
 इन आठ प्रकारोंमें जो रुचे, उसकी प्रतिमा बनाकर श्रीरामका पूजन करना चाहिए ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥
 शिवजी पूजक हैं और भद्र आदि रामजीके पार्षद हैं । इसीलिए विद्वान् लोग इसे श्रीरामलिंगतोभद्र
 कहते हैं ॥ ९१ ॥ हे विज ! इस तरह श्रीरामतोभद्रके बहुतसे भेद हैं । जिनको कोई संख्या हो नहीं
 है ॥ ९२ ॥ यह भेद उनमेंसे कुछ भेद बतलावे हैं । जोशोको उचित है कि रामकी पूजाके लिए बुद्धि

अथवा पट्टहस्तस्य चैव कार्यं परामनम् । अथवा लेखनेनपत्रे मर्माभावे द्विजोत्तमैः ॥९५॥
 भूर्जपत्रे विलिखितं विशेषान्मिद्विदं नृणाम् । वा वस्त्रोपरि लेख्यं वा कर्तव्यं चित्रान्तनुभिः ॥९६॥
 विनामनेन या पूजा सा पूजा निष्फला भवेत् । रामभद्रासने पूजा सा पूजाऽतिफलप्रदा ॥९७॥
 यद्यश्नामपरं कर्म तत्तच्च द्विजपुंगवैः । रामासनस्थितं राम पुष्कलं संपारभेत् ॥९८॥
 रामभद्रासनदीनं यत्कर्म तच्च निष्फलम् । तस्मादेवं स्वमेवैतन्कर्तव्यं रामपूजने ॥९९॥
 अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिंगात्मकं हि यत् । आसनं तद्वरिष्ठं हि राधवस्यातिनोपदम् ॥१००॥
 तदधो रामतोभद्रमष्टोत्तरसहस्रकम् । तदधो रामलिंगात्म्यमष्टोत्तरशतात्मकम् ॥१०१॥
 तदधो रामतोभद्रमष्टोत्तरशतात्मकम् । तदधः पञ्चविंशच्छारामभद्रासनं शुभम् ॥१०२॥
 तदधो रामतोभद्र षोडशात्मकमीशितम् । त्रयोदशात्मकं चामतोभद्र तदधः स्मृतम् ॥१०३॥
 द्वादशं च नवार्थं च षष्टमुद्रात्मकं तथा । चतुर्मुद्रात्मकं चापि पूर्वतश्चापरं ह्यधः ॥१०४॥
 एवं क्रमेण ज्ञेयानि रामभद्रासनानि हि । श्रेष्ठामनेषु या पूजा तस्याः श्रेष्ठं फलं स्मृतम् ॥१०५॥
 लघ्वामनेषु या पूजा तादृशं तत्फलं स्मृतम् । एवं ज्ञान्वा फलं बुद्ध्या श्रेष्ठमेवास्मिन् श्रुतम् ॥१०६॥
 यत्नेनैव प्रकर्तव्यं रामोपासनं मानवैः । प्रतिवर्षं नवोत्तमं च कार्यमासनमादरात् ॥१०७॥
 एकस्मिन्धासने पूजा न वर्षादुर्ध्वतः शुभा । एवं शिष्टासनानां च भेदाः पृष्टास्त्वया पुरा ॥१०८॥
 तवाग्रे हि मयाख्याताः श्रीरामस्यातिनोपदाः । त्वन्पृष्टारामतोभद्रवर्णनस्य प्रसङ्गतः ॥१०९॥
 स्मागता रामचन्द्रस्य किञ्चिच्छीला मयाऽयं हि । वदाम्यहं तवाग्रे तं न्व मृणुष्व द्विजोत्तम ॥११०॥
 प्रत्यब्दं श्रावणे मासे गुरुशक्याद्रघून्ममः । चत्वारिंशद्विंशतिमुवर्णस्य पृथक् पृथक् ॥१११॥

लगाकर मद्रोमि उनको रचना करें ॥ ९५ ॥ उपासकको चाहिए कि मुवर्णके तारोका एक सुन्दर आसन रामचन्द्रजीके लिए बनवावे । यदि मुवर्णके तारका न हो सके तो चौदाके तारका हा बनवा ले । वह भी न बन पड़े तो रेशमके सूतका अच्छा सा आसन बनवावे । यदि इनमेंसे कोई भी न बनवा सके तो किसी पत्तेपर आसन लिखवा ले ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ भूर्जपत्रपर लिखा हुआ आसन विशेष सिद्धिदायक होता है । इसके अतिरिक्त कपड़ेपर लिखवा ले या रङ्गोन मूनमे बुनवा ले ॥ ९६ ॥ विना आसनके जो पूजा की जाती है, वह अर्थ होती है और रामभद्रासनके ऊपर जो पूजाकी जाती है, वह अतिशय फलदायिनी हुआ करती है ॥ ९७ ॥ द्विजश्रेष्ठ ब्राह्मणोंको चाहिए कि श्रीरामचन्द्रक प्रत्यर्थ जो-जो कार्य करना हो, वह रामको सामने करके उसके आगे ही करें ॥ ९८ ॥ रामभद्र सनसे रहित जो काम होता है, वह निष्फल होता है । इससे रामके पूजनमें आसनकी रचना अवश्य करे ॥ ९९ ॥ जो अष्टोत्तरसहस्र रामलिंगात्मक भद्र है, वह रामचन्द्रजीको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला सर्वश्रेष्ठ आसन है ॥ १०० ॥ उससे कुछ मध्यम अष्टोत्तर सहस्र रामतोभद्र है । उससे भी मध्यम अष्टोत्तरशत रामलिंगात्मक भद्र है ॥ १०१ ॥ उससे मध्यम अष्टोत्तरशत रामतोभद्र तथा उससे मध्यम पञ्चविंशत् श्रीरामभद्रासन है ॥ १०२ ॥ उससे मध्यम षोडशात्मक रामतोभद्र है । उससे मध्यम त्रयोदशात्मक रामतोभद्र है ॥ १०३ ॥ उससे भी न्यून क्रमशः द्वादशात्मक, नवात्मक, षष्टमुद्रात्मक, चतुर्मुद्रात्मक भद्र है ॥ १०४ ॥ इस क्रमसे रामचन्द्रके आसनोंको जानना चाहिए । जितने ही श्रेष्ठ आसनपर पूजा की जाती है, वह उतनी ही अधिक फलवती हुआ करती है ॥ १०५ ॥ जितने ही साधारण आसनपर पूजा की जाती है, उतना ही साधारण फल भी प्राप्त होता है । ऐसा समझकर रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि बुद्धि लगाकर धीरे-धीरे श्रेष्ठ आसनकी ही रचना करें और प्रतिवर्ष पूजनके समय नयी-नयी किम्बक आसन बनाया करे ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ एक किस्मके आसनपर एक वर्षसे अधिक समयतक पूजन करना अच्छा नहीं होता । हे शिष्य ! तुमने पहले हमसे आसनोंका भेद पूछा था । सो रामका प्रसन्न करनेवाले उन भेदोंको मैंने तुम्हारे सामने कह सुनाया । हाँ, तुम्हारे पूछे हुए रामतोभद्रके प्रसङ्गवश मुझे रामचन्द्रजीकी एक लीला याद आ गयी है । हे द्विजोत्तम ! उसे मैं

प्रत्यहं लङ्घलिगानि कृत्वा पत्न्या पुतोऽर्चयेत् । अष्टोत्तरसहस्रैश्च लिङ्गैर्यद्वद्रमुत्तमम् ॥११२॥
 सच्छमोरासनं ज्ञेयं महाप्रोतिविवर्द्धनम् । तन्मध्यगतकमले चैकं लिङ्गं निवेश्य च ॥११३॥
 षोडशैरुपचारैस्तरसपूज्यं स रघूनमः । हेममुद्रां दक्षिणार्थं दत्त्वा सपूज्य भूमुरम् ॥११४॥
 तस्मै लिङ्गं सासनं तददीं प्रत्येकमादरात् । एवं स कोटिलिगानि त्रयस्त्रिंशद्दिनैर्ददौ ॥११५॥
 एवं व्रतं भावणे हि प्रतिवर्षेऽकरोद्विभुः । दिव्यैरामरणैर्वस्त्रैर्द्विजा रामार्पितैर्विभुः ॥११६॥
 हेमतंतुममुद्भूतान्पकरोदामनानि सः । उद्यापनं च हवनं चकार रघुनन्दनः ॥११७॥
 विष्णुदास उवाच

अष्टोत्तरसहस्रैर्वल्लिङ्गतोभद्रपीरितम् । कथं कार्यं तस्य मेदा विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥११८॥
 हेमतंतुममुद्भूतमकरोदासनं विभुः । स हेमान्यपि लिगानि चाकरोच्च वरामि हि ॥११९॥
 दिव्यैरामरणैर्वस्त्रैर्करोत्स द्विजार्चनम् । अशक्तौ तद्वनं मिद्वयेऽन्वयं तद्वक्तुमर्हसि ॥१२०॥
 श्रीरामदास उवाच

शक्तौ च पट्टकूलस्य कवलस्याथवा नरैः । कार्यं तदथवा वस्त्रं नतुभिश्च प्रकारयेत् ॥१२१॥
 लेख्यं वस्त्रेऽथवा रंगैलेख्यं पत्रादिमन्स्थले । अशक्तौ रत्नान्येव लिगानि ताग्रजानि च ॥१२२॥
 किंवा पारदभूतानि स्फाटिकान्यौषलानि वा । दारुजानि चन्दनैर्वा गोमयेन मृदाऽपि वा ॥१२३॥
 कृत्वा लिगानि पूज्यानि स्वशक्त्या पूजयेद्द्विजान् । इदानीं लिगतोभद्ररचनां ते वदाम्यहम् ॥१२४॥
 तिर्यगूर्ध्वं रक्तरेशा द्वे शनेऽष्टादश स्मृताः । तासां पदानामेकेन पूर्णमख्या भवेदिह ॥१२५॥
 पीताः परिधयः कार्याः पट्पदान्तेऽत्र सर्वतः । युगेन्दुममितास्नेषु लिगादि रचयेद्विधा ॥१२६॥
 चतुष्काणेषु शस्त्रिनस्त्रिपदः परिकल्पयेत् । तदग्रे शृङ्खला पञ्चपादः कार्या च सर्वतः ॥१२७॥

तुम्हारे आगे कह रहा हूँ, सुनो ॥१०८॥१०९॥११०॥ गुरु वसिष्ठके आज्ञानुसार रामचन्द्रजी प्रत्येक श्रावणमासमें चौवालिख टंक सुवर्णसे प्रतिदिन एक-एक लाख शिर्वाणिग बनाकर अरना स्त्रीके साथ उनका पूजन करते थे । अष्टोत्तरसहस्रलिगात्मक जो मद्र है वह उत्तम माना जाता है । वही श्रावणमासके प्रोतिवर्द्धक आसन है । उसके मध्य विद्यमान कमलमें एक लिङ्ग रचकर वे उसका षोडशोपचारसे पूजन करते और दक्षिणाके निमित्त ब्राह्मणोंको सुवर्णमयी मुद्राका दान दिया करते थे । वह लिङ्ग तथा आसन भी उन्हीं ब्राह्मणोंको मिला करता था । इस तरह श्रीरामचन्द्रजी तैत्तिरीय दिनोमें एक करोड़ शिर्वाणिग बनवाकर दान दिया करते थे ॥१११-११५॥ वे सर्वव्यापक भगवान् प्रविष्ट श्रावणमासमें इस वनका पालन करने थे । उसी समय विविध प्रकारके दिव्य आभरण वा वाकर रामराज्यके ब्राह्मण मुणोमित होत थे ॥११६॥ उस समय रामचन्द्रजीने सुवर्ण-तन्तुका ही आसन बनवाया और उद्यापन तथा हवन कराया ॥११७॥ विष्णुदासने कहा—अभी आपने जो दो अष्टोत्तरसहस्र लिगतोभद्र बनवाया है, उसके भेद किस प्रकार करने चाहिये । सो विस्तारपूर्वक आप हमें बतलाइये ॥११८॥ मैंने माना कि रामचन्द्रजी सुवर्णतन्तुका आसन और सुवर्णके लिङ्ग बनवाते थे । दिव्य वस्त्रों और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे । लेकिन जिसमें उतनी सामर्थ्य नहीं है, उसका मत किस प्रकार सिद्ध हो, यह भी हमें बतलाइये ॥११९॥१२०॥ श्रीरामदासने कहा कि यदि न सामर्थ्य हो तो रेशमके या कम्बलके सूतसे अथवा साधारण कपड़ेपर आसनकी बुनाई करा ले ॥१२१॥ अथवा पत्र आदिपर रङ्गसे लिखवा ले । यदि सुवर्णमय लिङ्ग बनवानेकी शक्ति न हो तो चाँदी, ताँबा, पारा, स्फटिकमणि, रुक्मी, चन्दन, मोहर अथवा मिट्टीका लिङ्ग बनाकर पूजन करे । जितनी अपनी सामर्थ्य हो, उतने ही ब्राह्मणोंका पूजन करे । अब मैं तुम्हें लिगतोभद्रकी रचनाका प्रकार बतला रहा हूँ ॥१२२-१२४॥ दंडों और खंडों २१८ रेखाएँ लाल रङ्गसे खींचे । इस प्रकार रेखा खींचनेसे पूर्वात्क २१८ कोष्ठक बन जायेंगे ॥१२५॥ इस भद्रमें छः छः पाद-बाली पीले रङ्गको परिधियाँ बनेंगी । उनमें अपनी बुद्धिमें चौदह लिङ्ग आदि बनावे ॥१२६॥ उसके चारों ओरोंमें तीन-तीन पादके चन्द्रमा बतावे । उसके आगे चारों तरफ पाँच पादकी शृङ्खलायें बनायी जायेंगी

एकादशपदा वल्ली चापी त्रिदशपादिका । अष्टादशपदः शम्भुः सर्वत्रैव लिखेत्कमात् ॥१२८॥
 तत्र प्रथमपरिधेरर्वाक् लिङ्गानि योजयेत् । त्रिरेकादशमंरूपानि वाप्यस्त्रेवाधिकास्ततः ॥१२९॥
 भट्टेऽर्काकपदः कार्या द्वितीये लिङ्गसंततिः । एकत्रिंशन्मिता कार्या भट्टे नवनवात्मके ॥१३०॥
 तृतीये नवनवत्रयमख्या भट्टे तु षट् पदे । तुर्ये षड्विंशल्लिङ्गानि भट्टेऽर्काकपदे मते ॥१३१॥
 पञ्चमे तुर्यनेत्रेशा भट्टे नवनवात्मके । षष्ठे द्वादशल्लिङ्गानि भट्टे षट् षट् पदे स्मृते ॥१३२॥
 सप्तमे लिङ्गविततिरेकोनविंशत्संख्यकाः । भट्टेऽर्काकपदे ज्ञेयेऽष्टमे सप्तदशेश्वराः ॥१३३॥
 भट्टे नवनवपदे नवमे मनुशंकराः । भट्टे शशिकलासंख्ये दशमेऽर्कमिताः शिवाः ॥१३४॥
 भट्टेऽर्काकपदे ज्ञेये तथा त्वेकादशे दश । शिवा नव नवपदे भट्टे ज्ञेये मनोरमे ॥१३५॥
 द्वादशे मम लिङ्गानि भट्टे चन्द्रकलात्मके । त्रयोदशे पञ्च दश भट्टेऽर्काकपदे मते ॥१३६॥
 चतुर्दशे त्रिंशल्लिङ्गानि भट्टे नवनवात्मके । षष्ठे ततस्तु रचयेत्सर्वतोभद्रमुत्तमम् ॥१३७॥
 खंडेदुष्विपदः कोणे शृङ्खला षट्पदात्मिका । त्रयोवृक्षपदा वल्ली चापी तन्वमितिर्पिता ॥१३८॥
 भट्टे षोडश षोडशपदेऽन्तः परिधिर्भवेत् । तदन्तरे पञ्च पञ्च पदः पञ्च समुद्ररेत् ॥१३९॥
 विचित्र विचित्रं च ज्ञेयेन्दुः शृङ्खलाऽसिता । चापी शुक्लाऽमितः शम्भु रक्तः भट्टे प्रकल्पयेत् ॥१४०॥
 नीला वल्लीधरस्कन्धकोष्ठाश्चित्रा यथारुचि । यत्र यत्र पदानीह शेषभूतानि तानि तु ॥१४१॥
 यथायोग्यं धिया तत्र शृङ्खलार्थे नियोजयेत् । शुक्लरक्तकुण्डवर्णा ज्ञेये परिधयस्तथा ॥१४२॥
 वा पूर्वपीठपरिधिं दत्त्वा देवासुरयस्ततः । एतेषां परिधीनां वै पदान्यष्टाधिकानि हि ॥१४३॥
 नोक्तानि पूर्वमग्न्याया ज्ञात्वेत्थं वृद्धिमाचरेत् । अग्रेऽप्येवं हि बोद्धव्यं परिधीनां चतुष्टये ॥१४४॥
 एतदष्टोत्तरदशशतं भद्रं लिङ्गोद्भवं स्मृतम् । एकस्त्वयं प्रकारो हि प्रकारांतरमुच्यते ॥१४५॥

॥ १२७ ॥ ग्यारह पादकी वल्ली और तेरह पादकी चापी बनायी जायगी । अष्टारह पादके शंभु बनाये जायेंगे । इसी क्रमसे लिख ॥ १२८ ॥ उसमें पहली परिधिके पहले लिङ्गोंकी योजना करे । इसके अनन्तर चौबीस चापियाँ बनावे ॥ १२९ ॥ सत्यश्वात् भद्रमे बारह बारह पादके ३१ लिङ्ग बनावे । फिर तासरी पंक्तिमें नौ-नौ पादके २९ भद्र बनावे । फिर छः पादके दो भद्रोंकी रचना करे । चौथी पंक्तिमें बारह-बारह पादके २६ लिङ्ग बनावे ॥ १३० ॥ १३१ ॥ पाँचवी पंक्तिमें नौ-नौ पादके २४ लिङ्ग बनावे । छठी पंक्तिमें छ-छः पादके भद्रोंमें १२ लिङ्गोंकी रचना करे ॥ १३२ ॥ सातवी पंक्तिमें बारह पादवाला १९ लिङ्गोंकी श्रेणी बनाव । आठवी पंक्तिमें नौ पादके भद्रोंमें १७ लिङ्ग बनावे । नवी पंक्तिमें सोलह सोलह पादात्मक भद्रोंमें १४ शङ्कर बनावे । दसवी पंक्तिमें बारह-बारह पादके भद्रोंमें बारह लिङ्ग बनावे ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ ग्यारहवी पंक्तिमें नौ-नौ पादात्मक भद्रोंमें दस लिङ्गोंकी रचना करे ॥ १३५ ॥ बारहवी पंक्तिमें सोलह सोलह पादात्मक भद्रोंमें सात लिङ्गोंकी रचना करे । तेरहवी पंक्तिमें बारह बारह पादात्मक भद्रोंमें पाँच लिङ्ग बनावे ॥ १३६ ॥ चौदहवी पंक्तिमें नौ-नौ पादात्मक भद्रोंमें तीन लिङ्गोंकी रचना करे । अन्तमें उत्तम सर्वतोभद्र बनावे ॥ १३७ ॥ कोणभागमें तीन पादका एक खंडेन्दु और छः पादकी शृङ्खला बनावे । तेरह पादकी वल्ली और पंचवीस कोष्ठकी चापी बनावे ॥ १३८ ॥ भद्रमें सोलह-सोलह पादकी परिधि बनावे । इसके बाद पाँच-पाँच पादका कमल बनावे ॥ १३९ ॥ उस कमलका रङ्ग चित्र-विचित्र रहेगा । दल प्रवेतवर्ण और शृङ्खला काले वर्णकी रहेंगी । चापी सफेद, शिव शुक्ल, लाल भद्र, नील वल्ली रहेंगी और वल्ली तथा शिवके स्कन्धवाले कोष्ठक अपने-अपने इच्छानुसार विचित्र-विचित्र वर्णके बनावे । इसमें भी जो पाद शेष बचें, वे अपने इच्छानुसार रङ्गसे रङ्गें आकर शृङ्खलानिर्माणके काममें आ जायेंगे । अन्तकी तीन परिधियाँ सफेद, लाल और काले वर्णकी रहेंगी ॥ १४०-१४२ ॥ अथवा पहली परिधि दोले रङ्गकी बनाकर तीन परिधियाँ और बनावे । इन सब परिधियोंमें आठ पाद अधिक रहा करे ॥ १४३ ॥ किन्तु ये पाद पूर्वसंख्याकी गणना करते समय नहीं गिनाये हैं । ऐसा समझकर वृद्धि करे । इसके आगे चारों परिधियोंमें भी यही क्रम रहेगा ॥ १४४ ॥ यही अष्टोत्तरदशशतं रामतोभद्रका क्रम है । यह एक प्रकार हुआ । अब दूसरा प्रकार

द्वे शते सप्त पञ्चाशद्रेखाः पूर्वोत्तराः स्मृताः । पूर्वा, पश्चिमा, कात्या, उत्तरा च भवेनः ॥१४२॥
 समंदसंख्या रचयेद्दिग्गता योजनेदिशा । सर्वेष्वभिन्ना च द्यु-भवे-भिन्ना परा ॥१४३॥
 समाक्षितमिता त्वन्या दधयमानानि धारय । वागाक्षाग्रिनरना नेत्रमंत्राः । ति शक्तिः ॥१४८॥
 गर्जेंदुगिरिवन्द्रा च वणंदूहाशुक जगो . रुद्रा दग न्यष्टामेता एत चन्द्राणि प्रचन्द्रमाः ॥१४९॥
 प्रतिपत्तिमेकवार्य लिङ्गेभ्यस्त्वविका भवेत् । चतुरिंशत्पदै विंग वर्षा रश्मिद्वयादिका ॥१५०॥
 भद्रमंरुपा क्रमेणैव जानीयाद्दध्यमाणतः । पूर्वपक्ती च पञ्चम्या नवम्या हि तथैव च ॥१५१॥
 त्रयोदश समदशयोर्भेटं त्रिशपदैः स्मृतम् । डितीथाया च पट्ट्या च दशपदै च गतो तथा ॥१५२॥
 चतुर्दश्यां स्मृत भद्र पञ्चविंशपदैः स्मृतम् । नृगीयायां च समस्यामकादश्यां तथैव च ॥१५३॥
 पञ्चदश्यां हि पक्ती च भद्र त्रिशपदान्तम् । पट्ट्याशिद्धिः पदेभद्र चतुर्धा चतनः स्मृतम् ॥१५४॥
 षष्ठकपोडशीप्तेन भद्र पोडशपादजम् । मरेकोणषु त्रिषदश्चन्द्रः शुद्ध लिकावदोः ॥१५५॥
 पञ्चभिरेकादशमितेना कार्या ततोऽन्तरे । मरेतोभाद्रके मय्य चतुरिंशत्तु राविका ॥१५६॥
 भद्र नवपद सर्वेशार्थवेव प्रकल्पयेत् । परिध्यन्तमरेस्पृशं रक्तं चित्र यदाहचि ॥१५७॥
 कृष्णं लिङ्गं शुद्धजापि भद्र रक्तं च चापिका । श्वेतः शर्शा मिनी तेयस्तया नीला स्मृता लता ॥१५८॥
 शिष्टानीह पदान्येव भद्राद्यर्थं नियोजयेत् । दीनशुक्लकृष्णरक्ता ह्यन्ते परिधयः स्मृताः ॥१५९॥
 अष्टोत्तरसहस्राख्य लिङ्गतोभाद्रकं त्रिपदम् । एवं विकल्पतः प्रोक्ता रचना द्विविधा मया ॥१६०॥
 अथान्यत्ते प्रनक्षत्राणि प्रकाशारमुत्तमम् । संकरिशुक्लउतकिमौलिङ्गतोभाद्रमादगत ॥१६१॥
 अष्टादशरेखाः ग्राम् याम्याः पश्चिमोत्तरदिक्षु च । मगार्शानिपदेभ्यश्च लिङ्ग ना पञ्च पक्तयः ॥१६२॥
 शासु प्राथमिकायाश्च विम्बारः कथ्यन्तेऽरुना । पृथक् कोणेषु त्रिपदैः क्षणी श्वेतस्तदग्रतः ॥१६३॥

बतलाते हैं ॥ १८५ ॥ पूर्व और उत्तरक कोने २४८ रखा खोब । छ, पादक अन्तम कोण और परिधिवा
बनावे ॥ १८६ ॥ अपनी दुष्टिके अनुमान १७ लिये दलावे । चारों ओर १० दि. रज्ज, किन्तु आदिकी पक्ति
में २२ दि. रज्ज ॥ १८७ ॥ इसके आगे चतुर्दश २ । २४ इतना लेवन है । य. भी समान हो । इसके आगे
२५, फिर २३ फिर २२ फिर २०, इसके बाद १७ फिर १५ फिर १३ बारह, दस, आठ, छ, चार,
तीन और एक लिये रज्ज ॥ १८८ ॥ प्रत्येक पक्ति १८५ का आधा एक बाधा अधिक रहेगी । चौबीस
पादका लिये और अठारह पादकी बाधा बनेगा ॥ १८९ ॥ आ. के कर जमा बतलाने है, उस क्रमसे मद्र-
की समान जाननी चाहिए । पन्द्रह पादकी, नवौं लखवा और सत्तु पादकी पक्ति दोन पादका मद्र बनाना
चाहिए । दूसरी, छठी दसवी तथा चौदहवीं पक्ति पन्द्रह पादका मद्र बनाना चाहिए । तीसरी, सातवीं,
ग्यारहवीं तथा पन्द्रहवीं पादके दस पादका मद्र बनावे । चौथी पक्ति छ-बीस पादका मद्र बनावे
॥ १८९-१९४ ॥ आठवीं, बारहवीं तथा १८ रज्जों पक्ति सत्तु पादका मद्र बनाना चाहिए । हर एक कोनेमें
तीन पादका चन्द्रवा बनेगा और पाँच पादकी सत्तु बनेगी । इसके अनन्तर ग्यारह पादकी बल्ली बनायी
जायगी । तब त्रयोविंशत घरेगा और चौबीस पादकी बाधा बनेगी । सब आ. भी पादका मद्र बनेगा और
परिधिके बीचमें लाल रङ्ग का जयवा जैसी अपनी रुचि हो वैसे कमल बनावे ॥ १९५-१९७ ॥ लिय और
शुद्धला काली, मद्र लाल, बाधा सफेद, चन्द्रवा सफेद और बल्ली काया रहणी ॥ १९८ ॥ बाकी सब मद्र
आदिके लिए नियत कर दे । पीठ, शुक्ल, कागो और लाल, क्रमशः अन्तमें ये परिधिवा रहणी ॥ १९९ ॥ यह
अष्टोत्तरसहस्र नामका नियतोम है । इस लख दिक्पथ में रक्षकों दो प्रकार बतलावे ॥ २०० ॥ अब
मैं तुम्हें दूसरा और उत्तम प्रकार बतलाता हूँ । इसके लिये चारों ओर इस लियतोमद्रकी रक्षा होगी ॥ २०१ ॥
बट्टासी रेखाएँ पूर्व-पश्चिम तथा अष्टासी ही रेखाएँ उत्तर-दक्षिण खोबे । सत्तासा पादोम केवल लियके लिये
पाँच पक्तियाँ छोड़ दी जायेंगी ॥ २०२ ॥ अब मैं गहलो पक्ति का विस्तार बतलाता हूँ । प्रत्येक कोणमें तीन-

मृङ्खला कृष्णवर्णा च पर्दः पञ्चमिरुत्तमा तस्याः पाञ्चदशे कार्ये वन्त्यो हरितवर्णके । १६४॥
 पृथगेकादशपर्दस्ततः पीते तु मृङ्खले । पङ्क्तिः पर्दरुमयतो मद्रं पौडशपादजम् ॥ १६५॥
 आरक्तं च मिता वाप्यो दशपादजपादजाः । कृष्णान्यष्टादशपर्दनेव लिङ्गानि कारयेत् ॥ १६६॥
 मस्तकोपरि मद्रस्य लोहिते मृङ्खले शुभे । द्वाभ्यां पदाभ्यां च पृथङ् मध्ये हरिमृङ्खला ॥ १६७॥
 रचिता त्रिपदा रम्या वापीना मस्तकोपरि । आरक्ते द्वे पदे कार्ये चक हर्मिमृङ्खला ॥ १६८॥
 उभयोः पाञ्चयोलिङ्गमस्तकस्य मिते पदे । एव सर्वत्र बोद्धव्यं परिधिः पीतवर्णकः ॥ १६९॥
 समाशीतिपर्दश्चैव समामा प्रथमा ततिः । प्रोच्यतेऽग्रे द्वितीया तु पक्तिस्त्रिपदपदजा ॥ १७०॥
 शशी च मृङ्खलावल्ग्वी मृङ्खले द्वेऽत्र पूर्ववत् । भद्रं विंशपर्दज्ञेयं नव वाप्यस्त्रयोदशः ॥ १७१॥
 पर्दरष्टात्र लिङ्गानि भद्रयोर्मस्तकोपरि । द्वाभ्यां कार्ये मृङ्खलेऽत्र लोहिते ह्युत्तरैतयोः ॥ १७२॥
 द्विपदा मृङ्खला पीता हरिता त्रिपदा स्मृता । आरक्तं च चतुर्दश कार्ये वापीना मस्तकोपरि ॥ १७३॥
 पूर्ववन्सकलं ह्ययमेकपट्टिपर्दः शुभाः । परिधिः पीतवर्णश्च जाता पक्तिर्द्वितीयका । १७४॥
 उर्नकेन पदा पट्टिपर्दः पक्तिस्त्रितीयका । भद्रं पङ्क्तिः पर्दः प्रोक्तं समलिङ्गानि कारयेत् ॥ १७५॥
 वसु वाप्यः स्मृताः शेष पूर्ववच्च प्रकीर्तितम् । समचचारिशुभर्दः परिधिश्च प्रकीर्तितः ॥ १७६॥
 जाता तृतीया पवितर्हि चतुर्थ्या निगद्यते । पञ्चचचारिशुभर्दस्य पक्तिरुदाहता ॥ १७७॥
 भद्रमर्कषर्दज्ञेयं पञ्च वाप्योऽत्र कीर्तिताः । तुर्यलिङ्गानि कार्याणि मद्रं मस्तकोपरि ॥ १७८॥
 आरक्ता षट्पदा वल्लो परिधास्त्रिभिः पर्दः । जाता चतुर्थपवितर्हि पञ्चमैकात्रिभिः पर्दः ॥ १७९॥
 मद्रं नवपर्दं ज्ञेयं त्रिवाप्यो द्वौ हरी स्मृतौ । त्रिपदा मृङ्खला स्वता भद्रम्योपरि कीर्तिता । १८०॥
 एकोनविंशतिपदः परिधिः सप्तकीर्तितः । जातेयं पञ्चमा पक्तिस्त्रिपदं मद्रदशैः पर्दः ॥ १८१॥

तीन पादका श्वेत चन्द्रमा बनावे । पाँच पादसे काले रंगका सुन्दर मृङ्खला बनावे । उसका दागो बगल हरे रंगसे ग्याग्रह पादकी बल्लिया बनावे । इसका बाद छ पादसे पीले रंगका मृङ्खला बनावे और सोनह पादसे दोनों ओर भद्र बनावे, जिसका रंग लाल रक्ते ॥ १६३-१६५ ॥ तदनन्तर अष्टादश पादसे सफेद वापिय बनाये । अष्टाग्रह पादसे काले रंगकी नी लिंगोकी रचना कर । षट्के मस्तकपर लाल रंगकी दो मृङ्खलाये बनावे । दो पादोसे अलग और बीच बीचमे हरे रंगकी मृङ्खला बनाव ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ जिसमे कुल तीन पाद रहगे । बापीके मस्तकपर लाल रंगकी दो पादोकी मृङ्खला हरे रंगकी बगी । आस-नाम तथा लिंगके मस्तकपर सफेद रंगसे दो पादकी मृङ्खला बनगे । इसी तरह सर्वत्र जानना चाहिये । इसकी परिधिपी पीत वर्णकी रहेगी । इस तरह सत्तासी पादोकी पहली पंक्ति समाप्त हुई । अब तिहत्तर पादोवाली दूसरी पंक्तिके विषयमें कहते हैं ॥ १६८-१७० ॥ इसमें चन्द्रमा, मृङ्खलाय नया बल्लिया ये पूर्व पंक्तिरु समान रहगा । बाँस पादका भद्र और तेरह पादकी नी वापिये बनगी । तरह ही पादोसे भद्रक मस्तकपर आठ लिंग बनाये जायेंगे । इसी आगह दो पादोसे लाल रंगकी दो मृङ्खलाय बनाव । दो पादसे पीली मृङ्खला और तीन पादकी हरी मृङ्खला बनाये । बापीके मस्तकपर कुल लाल पाद रक्ते ॥ १७१-१७३ ॥ बाकी सब चीज पहली पंक्तिके समान ६१ पादोसे बनेगी । दूसरी पवितर्की परिधि पीले वर्णकी रहेगी । यह दूसरी पंक्ति समाप्त हो गयी ॥ १७४ ॥ उनसठ पादकी तीसरी पंक्ति रहेगी । छ-छ पादोमे एक भद्र, सात लिंग और आठ वापिय बनावे । बाकी सब पहली पंक्तिकी तरह रहगा । इसमें सैतालिस पादोका परिधि बनायी जायगी ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ इस प्रकार तीसरी पंक्ति समाप्त हुई । अब चौथी पंक्तिके विषयमें बतलान है । यह चौथी पंक्ति पैंतालिस पादोकी रहेगी ॥ १७७ ॥ इसमें बारह पादका एक भद्र बनेगा । पाँच वापिय बनगे । भद्रके मस्तकपर चार लिंग पनेंगे ॥ १७८ ॥ छ पादोसे बिल्कुल लाल वर्णकी बल्लो बनगी । तीन तीन पादोकी परिधि बनेगी । इस तरह चौथी पंक्ति समाप्त हुई । पाँचवी पंक्ति कुल इकतीस पादोकी रहेगी ॥ १७९ ॥ इसमें नी पादका भद्र पनेगा, तीन वापिये बनेगी और दो शिवकी रचना की जायगी । भद्रक मस्तकपर लाल रंगकी तीन पादवाली

चतुष्कोणं समं तत्र सर्वतोभद्रमालिखेत् । तस्यापि क्रम एवाय त्रिपदश्च शशी मितः ॥१८२॥
 कृष्णाः पंचपदैः कार्याः शृङ्खलाः सर्वतः शुभाः । पदैश्चादशैर्लिंगं पश्चिमे तस्य पार्श्वयोः ॥१८३॥
 त्रयोदशपदैर्वाप्यो भद्रं तुर्यपदान्मके । पाम्यप्रागुनरेध्वेय मध्ये निम्नश्च वापिकाः ॥१८४॥
 भद्रं नवपदैः कार्या बल्लपो दशपदान्मिकाः । बल्लपोः म्याने पश्चिमेऽत्र द्वाद्यन्ने हरिते पदे ॥१८५॥
 मध्येऽत्र त्रुटिता बल्ली भद्रं यच्च नवान्मकम् । तस्योपरिपदाभ्यां हि रक्तऽत्र शृङ्खला स्मृता ॥१८६॥
 वापीनां मस्तके कार्यं पद रक्तं च पार्श्वयोः । मिते द्वे द्वे पदे कार्ये परिधिः पंचपादत्रः ॥१८७॥
 रक्तमष्टदलं मध्ये कार्यं नवपदान्मकम् । कणिका पीतवर्णा च दक्ष्याः परिधयः क्रमात् ॥१८८॥
 पीतशुक्लरक्तकृष्णाः सैकविंशशान्मकम् । कथितं लिङ्गतोभद्रं सर्वेषां शुक्रदोषमम् ॥१८९॥
 प्रकाशंतरमन्यच्च शृणु शिष्य भवीमि ते । नियोगैर्देवता रेखास्तथाधिकाः शनमन्तरकाः ॥१९०॥
 शनं द्व्यधिककोष्ठेषु रचयेद्विगणकयः । नशाष्टमचचारि द्व्येकमन्याश्चतुर्दिशम् ॥१९१॥
 लिङ्गमंघ्याधिका चार्णा प्रतिपत्ति भवेद्विद्वः । षट्सु परिधयश्च पट्टदाने तु वापिकाः ॥१९२॥
 कोणेऽपिदुःशृङ्खला च बल्ली च रचयेन्क्रमान् । त्रिपदैर्कादशपदे लिङ्गं त्र्यष्टमिन त्रिपट् ॥१९३॥
 वापी भद्राणि कमलः पट्त्रिंशद्विंशतपात्रम् । विंशत्पट्त्रिंशान्मकं च पार्श्वके ॥१९४॥
 एकस्मिन् रचयेद्विद्वद्वयं भद्रे रमान्मके । तस्योपरि भवेन्पञ्चतोभद्रं तत्र वापिका ॥१९५॥
 चतुर्विंशत्पदं भद्रमकमंघ्या ततः परम् । पश्चिन्ने तुर्यतुर्यपदैः पत्रं समुदरेन् ॥१९६॥
 चित्रं वा लोहितं लिङ्गशृङ्खले कृष्णवर्णके । इति वा बल्ली भद्रं रक्तं शुद्धेऽब्जवापिके ॥१९७॥
 एकविंशोत्तरशतं लिङ्गतोभद्रमोरितम् । प्रकाशंतरमन्यच्च शृणु शिष्य भवीमि ते ॥१९८॥

शृङ्खला बनायी जायगी ॥ १८० ॥ उत्तम पदीको परिधि बनायी जायगी । इस तरह यह पांचवी पक्ति समाप्त हुई । आगे छठी पक्ति कुछ सत्रह पदीकी रहेगी ॥ १८१ ॥ इसका चारी कोनोभद्र सर्वतोभद्रकी रचना करे । उसका क्रम इस प्रकार है । इसमें तीन पादसे सफेद रङ्गका च दशा बनेगा ॥ १८२ ॥ पांच पादोसे चारों ओर काले रङ्गकी शृङ्खला बनावे । अष्टारह पादका लिङ्ग बनाकर उसके दोनों बगल तरह पात्रकी दो वापियाँ बनावे । दक्षिण, पूर्व तथा उत्तर दिशाओंके मध्यम तीन बाणियाँ बनावे ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ नौ पादोमें भद्र बनाकर दस पादकी बल्लियाँ बनावे । पश्चिमवाली दोनों बल्लियाँ हरे रङ्गकी रहेंगी ॥ १८५ ॥ इस पक्ति के बीचकी बल्ली टूट जायगी और नौ पादवाने भद्रक स्थानमें लाल रंगकी शृङ्खला रहेगी ॥ १८६ ॥ वापी के मस्तकपर काल रंगका पाद रहेगा और आस-पासके दो पाद सफेद हों रहेंगे । पांच परिधियाँ बनेंगी ॥ १८७ ॥ बीचमें लाल और नौ पादका अष्टदल कमल बनेगा । इसकी कणिका पीली रहेगी और परिधियाँ क्रमशः पीली लाल और काली रहेंगी ॥ १८८ ॥ यह मैने एकविंशतिशतात्मक लिङ्गतोभद्रका क्रम बतलाया । जीवनक जितने भी भद्र बतलाये हैं, उनमें सर्वतोभद्र मुकुटके समान रहेगा ॥ १८९ ॥ हे शिष्य । अब मैं प्रकाशान्तर बतलाता हूँ, सुनो । लङ्को और वैङ्को कुछ १०३ रेखाएँ लीच ॥ १९० ॥ उनमेंसे १०३ कोष्ठमें लिङ्गकी पत्तिका बनाये, इसके चारों ओर नौ, आठ, छ, चार, दो ओर एक स्रग्गके कोष्ठक लिङ्गके लिये निर्धारित होंगे ॥ १९१ ॥ प्रत्येक पत्तिके लिङ्गसंख्याका ओंक्षा चारोंको स्रग्ग अधिक रहेगी । छ पादोकी परिधियाँ रहेंगी । उसके बाद वापी रहेंगी ॥ १९२ ॥ कोनोमें इन्द्र शृङ्खला तथा बल्ली बनायी जायगी । कमलः तीन, पांच और ग्यारह पादोसे २४ लिङ्ग बनाये जायेंगे और अट्ठ रह वापी बनेगी । फिर क्रमशः छतीस, बीस, पञ्चवीस, सोस, छतीस और बीस पद बनाये जायेंगे । अन्तिम पत्तिके बगल एक स्थानपर छ'छ' पादके दो भद्र बनावे । उसके ऊपर सर्वतोभद्र रहेगा । चौबीस पादकी वापी बनेगी और नौ भद्र बनाये जायेंगे । परिधिके अनन्तर सोलह सोलह पादके पद बनावे ॥ १९३-१९६ ॥ उन कमलोका रंग विजयणं अथवा लाल रहेगा । लिङ्ग और शृङ्खलायें काले रंगकी रहेंगी । बल्लरों हरे रंगकी, भद्र लाल और कमल तथा वापी सफेद वर्णकी होंगी ॥ १९७ ॥ यह मैने तुम्हें एकविंशोत्तरशत लिङ्गात्मक भद्रकी रचनाका प्रकार बतलाया ।

षडधिकाशीतिरेखास्तिर्यग्ध्वं प्रकल्पयेत् । पञ्चाशीति पदानि स्युः पञ्क्तयस्तत्र सर्वतः ॥१९९॥
 तत्र षट् षट् पदान्ते स्यान्परिधिः पीतवर्णकः । मर्त्योऽन्तेन विधिना चतुःपरिधयः क्रमात् ॥२००॥
 तेषु वै पानिकोष्ठेषु लिङ्गानि स्युर्ध्वदिश्या । कोणेषु त्रिपदचन्द्रस्तदादि शृंगला मता ॥२०१॥
 ततो बह्वी ततो भद्र वापी लिङ्ग क्रमाद्भवेत् । तत्र प्रथमपक्षौ तु शृंगला पञ्चपादिका ॥२०२॥
 एकादशपदा बह्वी भृङ्गला षट्पट्टात्मिका । भद्रमेकपदं वापी त्रिपट् कोष्ठीः प्रकल्पयेत् ॥२०३॥
 ईशानस्तन्मते कार्यं एवं ते तत्समंशयया । भवन्ति वाप्यो दश ता भद्रद्वयममीमितम् ॥२०४॥
 द्वितीयपक्षौ वापी तु त्रयोदशपदा मता । भद्रं तु षट्पदं शेष पूर्व ममीमितम् ॥२०५॥
 अष्टौ लिङ्गानि वाप्यस्तु भवन्ति नवममिताः । तृतीयायां तुर्यपदं भद्रं शेष तु पूर्ववत् ॥२०६॥
 अष्टौ वाप्यः सप्त हराः क्रमशः स्युः समुद्भूताः । द्वे वाप्य वन्ति मे स्युर्नेत्रिभिः कोष्ठैस्तु मंस्मृते ॥२०७॥
 चतुर्थपक्षौ वाप्यस्तु चन्द्रः शंकरत्रयम् । भद्रं द्विदशक शेष शेष पूर्ववद्भवेत् ॥२०८॥
 चतुर्थपरिधुपरि वाणान्ते परिधिभवेत् तत्पक्षौ शृंगले न्युने पदेनकेन बह्वी ॥२०९॥
 द्वाभ्यां पदाभ्यां चन्द्रस्तु यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । भद्रद्वयं षट्पट्टपदं त्वन्यं भद्रं नवान्मके ॥२१०॥
 त्रयोदशपदैर्वापी तत्र तत्र प्रकल्पयेत् । भद्रयोरुर्ध्वं स्याद्द्वद्वयं षट्पट्टपदं शुभम् ॥२११॥
 संसृष्टानि पदान्येव शृंगलायै नियोजन । तस्योपरि परिधिस्तत्र वाणांते परिकल्पयेत् ॥२१२॥

उभयोर्मन्त्रे वापी त्रयोदशपदान्मिका ॥२१३॥

भद्रद्वयं षट्पट्टपदं शेष सर्व यथोदितम् । अन्तिमैस्ततः पञ्चपञ्चपदैः एव समुद्भवेत् ॥२१४॥
 रक्तं वा चित्रवर्णं च श्वेतश्चन्द्रोऽमिता मता । शृंगला हरिता बह्वी पीतं तच्छृङ्गलाद्वयम् ॥२१५॥
 रक्तं भद्रं मिता वापी लिङ्ग कृष्णं प्रकल्पितम् । लिङ्गस्कथगताः कोष्ठाः शोभाकोष्ठाः प्रकल्पयेत् ॥२१६॥

हे शिष्य । अब मैं तुम्हें प्रमाणान्तर बतला रहा हूँ गुनो ॥ १९८ ॥ सीधो और टेडो टि. मासो-छियासी रेखायें खींच । ऐसा करनेपर इसमें च. गी और पचास पचास पादको एक-एक पक्षियां तैयार होंगी ॥ १९९ ॥ उसमें छ-छ पादके बाद पीले रंगको परिधि रहने । इस रीतिमें तमश चार परिधियां बनेंगी उनकी पक्षि तथा कोष्ठकम अपनी कृष्टिके अनुसार १०८ अ. दिका रचना कर । प्रत्येक जाडोमें तीन-तीन पादका उम्बु बनावे और उसक आदिमें शृङ्गलाकी रचना करे ॥ २०० ॥ फिर उसके बाद बह्वी, फिर छ पादका शृङ्गला, एक पादका भद्र और अष्टादश पादको वाप्योका निर्माण कर ॥ २०१ ॥ २०२ ॥ उनना ही सराके शिव बनावे । इस प्रकार दस वापिय और दो भद्र बनव ॥ २०४ ॥ इसमें पक्षिमें तेरह पादका व पी बनेगा । मोलह पादका भद्र बनेगा । बाकी सब चीज पट्टाको पक्षि समान रहना ॥ २०५ ॥ तमरी पक्षिमें आठ लिङ्ग, नौ वापिय और चार पादका एक भद्र रहना । बाकी सब चीज पूर्ववत् रहेगा ॥ २०६ ॥ अठ वाप्यो, सात शिव एवं अन्तिमें तीन पादकी दो वाप्यो बनेंगी ॥ २०७ ॥ चौथी पक्षिमें चार वाप्यो, तीन शकर, बारह भद्र बनेंगी । बाकी सब पहली पक्षिके समान रहेगा ॥ २०८ ॥ चौथी परिधिक ऊपर पांचवी परिधिके बाद भा परिधि रहेगा । इस पक्षिमें पूर्व पक्षिकी अपक्षा एक कम शृंगला रहेगा और एक पादको बह्वी बनाया जायगी ॥ २०९ ॥ तदनन्तर पहलेकी तरह दो पादोका चन्द्रमा बनावे । छ छ पादका दो भद्र बनावे । बाकी दो भद्र नौ नौ पादके रहेंगे ॥ २१० ॥ अपने अपने स्थानपर तरह-तरह पादको वाप्यो बनावे । दोनों भद्रों के ऊपर छ छ पादके दो भद्र बनावे ॥ २११ ॥ शृंगलाके लिये बने पादोको निगुण कर । उसके ऊपर पांच पादक अनन्तर परिधिकी रचना करे ॥ २१२ ॥ इन दोनोंके बीच तेरह पादका एक वाप्यो बनायी जायगी ॥ २१३ ॥ छ छ पादके बाद दो भद्र बनावे । बाकी सब पूर्ववत् रहने । अन्तिम पक्षिमें पांच-पांच पादोके कमल बनावे । उसका वर्ण लाल अथवा बहुरंग रहे । चन्द्रमा सफेद और शृङ्गला काल वर्णका रहेगी । इसी प्रकार बन्धरी हरी, उसकी दोनों शृङ्गलायें पीली, लाल भद्र, सफेद वापी और काला लिङ्ग रहेगा । लिङ्गके स्कन्धवाले कोष्ठक वा भाके लिये रहेंगे ॥ २१४-२१६ ॥

पदानि शेषभूतानि यत्र क च भवन्ति हि । तानि तत्र यथायोग्यं धिया सम्यङ्नियोजयेत् ॥ २१७ ॥
 यद्वा तुर्यपरिध्वर्ध्वमेकादशपदात्मकम् । परिधिः स्यात्तयोर्मध्ये कोणे चन्द्रो यथोदितः ॥ २१८ ॥
 शृङ्खला दशपादा स्याद्बहुली स्यादेकविंशतिः । शृङ्खलाऽन्या रुद्रपदा भद्रं त्रिंशत्पदान्मकम् ॥ २१९ ॥
 एकपट्टिपदैर्वापी सस्यगुदया प्रकल्पयेत् । अथवा द्वे पदे चान्ये सयोज्य गिरिहस्तिषु ॥ २२० ॥
 पदेषु रचयेद्गुदया लिंगानां पक्तयः क्रमान् । नवाष्टरमत्रीष्येका शेषं पूर्वं यथोदितम् ॥ २२१ ॥
 विशेषस्तत्र भद्रेषु षड्लिंगे षोडशात्मकम् । एकलिंगे त्रिंशत्पदं द्वाभ्यामन्यत्र चाधिकम् ॥ २२२ ॥
 पूर्ववत्सर्वतोभद्रं पञ्चवणास्तु पूर्ववत् । पीतशुक्लरक्तकृष्णा वहिः परिधयः स्मृताः ॥ २२३ ॥
 एतदष्टोत्तरशतं लिंगतोभद्रमीरितम् । प्रकागन्तगमन्यत्ते शृणु शिष्य भवामि यत् ॥ २२४ ॥
 तिर्यगूर्ध्वं गता रेखा नवाष्टलोहिताः स्मृताः । तत्कोष्ठपरिधनेत्राग्निकोष्ठकं रचयेद्द्विधा ॥ २२५ ॥
 सर्वतोभद्रकं रम्यं परितः परिधिर्मतः । ततो रसरमाने स्युश्चतुःपरिधयः शुभाः ॥ २२६ ॥
 तत्र चतुर्षु पार्श्वेषु कोणैर्द्विषदः स्मृतः । शृङ्खला पञ्चभिर्वन्तली त्वेकादशपदा मता ॥ २२७ ॥
 लिंगं चतुर्विंशत्पदं वापी त्वष्टादशा भवेत् । नव मम तथा पञ्चयुगनेत्रमिताः शिवाः ॥ २२८ ॥
 पञ्चपङ्क्तय एव स्युर्वापिकैश्चाधिका ततः । तुर्यलिंगानि द्वे वाप्यां त्रयोदशपदात्मिके ॥ २२९ ॥
 षडङ्कार्करमरसभद्रसख्या क्रमान्पूर्वेन । सर्वतोभद्रके वापी युगनेत्रमिता तथा ॥ २३० ॥
 नवकोष्ठमितं भद्रं शेषं सर्वं तु पूर्ववत् । ततोऽन्तःपरिधिः कार्यस्तत्र पत्र समुद्धरेत् ॥ २३१ ॥
 षोडोऽम्बः शृङ्खला कृष्णा नीला वल्लुगिकाऽरुणा । भद्रवापी मिता कृष्ण लिंग परिधयोऽन्तिमाः २३२ ॥
 पीतशुक्लरक्तकृष्णा ज्ञेयाः र्षाश्च मध्यमाः । एतदष्टोत्तरशतं लिंगतोभद्रमीरितम् ॥ २३३ ॥

इनमें जहाँ कोई कोष्ठक बाकी बच जाय, उसे अपनी इच्छासे जिस रंगसे चाहे रंग दे ॥ २१७ ॥ अथवा चौथी परिधिके ऊपर ग्यारहवें पादके आगे एक परिधि बनावे । उसके बीचवाले कोणमें उक्त प्रकारसे चन्द्रमा बनावे ॥ २१८ ॥ इसमें पहली शृङ्खला दस तथा दूसरी ग्यारह पादकी बनेगी और भद्र तीस पादका रहेगा ॥ २१९ ॥ एकसठ पादकी वापी बनेगी । उन सबको अच्छी तरह मन लगाकर बनावे । अथवा और दो पादोंकी योजना करके सातवें और दसवें पादमें अपनी कुट्टिसे लिंगोंका रचना करे । नी, आठ, छ, तीन और एक यह उनकी संख्या रहेगी । बाकी सब पूर्ववत् रहेगा ॥ २२० ॥ २२१ ॥ इन भद्रोंमें छ लिंगवाले भद्रमें एक सोलह पादका और दूसरा बीस पादका लिंग रहेगा । दासे अधिक लिंगवाले भद्रमें पूर्ववत् सर्वतोभद्रकी रचना होगी । इसके बाहरका परिधियाँ पीत, रक्त तथा कृष्ण वर्णकी रहेगी ॥ २२२ ॥ २२३ ॥ यह मैंने तुम्हें अष्टोत्तरशत लिंगतोभद्रका प्रकार बतलाया । अब दूसरा प्रकार बतलाता हूँ मुनो ॥ २२४ ॥ खडो और बेंडा कुल नवासी रेखाएँ खींच । उसके कानवाले चार, दो, तीन कोष्ठकोसे सुन्दर सर्वतोभद्र बनावे । उसके चारों ओर परिधि रक्खे । इसके अनन्तर छ, छ पादोंके बाद परिधियोंकी रचना करे ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ उसके चारों ओरफे कोनोंमें तीन-तीन पादके चन्द्रमा बनावे । पाँच पादसे शृङ्खला और ग्यारह पादकी बल्ली बनावे ॥ २२७ ॥ चौबीस पादका लिंग और ग्यारह पादकी वापी बनानी होगी । इसमें नी, सात, पाँच, चार, दो क्रमशः शिव बनाये जायेंगे ॥ २२८ ॥ इसमें कुल पाँच पक्षियाँ रहेगी और वापियोंकी संख्या एक-एक करके बढ़ती जायगी । इसमें चार लिंग और तेरह-तेरह पादकी दो वापियाँ रहेगी ॥ २२९ ॥ छ, नी, बारह, छ, छ, इस क्रमसे भद्रकी संख्या रहेगी । सर्वतोभद्रमें चार और दो वापी बनेगी ॥ २३० ॥ इनमें नी कोष्ठकका भद्र बनेगा । बाकी सब बाते पहलेके समान रहेगी । इस प्रकार भद्रकी रचना कर लेनेके बाद उसके भीतर परिधि बनाकर कमलकी रचना करे ॥ २३१ ॥ कमलका रंग सफेद रहेगा और उसकी शृङ्खला काली रहेगी । बल्लरियाँ नीली तथा भद्र लाल रहेगा । वापी सफेद लिंग काला और अन्तिम परिधियाँ नाली, सफेद, लाल तथा कृष्ण वर्णकी रहेगी । यह भी एक प्रकारका अष्टोत्तरशत लिंगतोभद्र बतलाया ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ अथवा

तिर्यगूर्ध्वं पञ्च पञ्च रेखाः कार्या मुलोहिताः । तन्कोष्ठेषु परिधयः षट् पडंते त्रयः स्मृताः ॥२३४॥
 त्रिदशकूलिगरचना चतुर्विंशतिपादिका । वापी नवपादशब्दा षट्त्रिंशद्द्विदशकूलकम् ॥२३५॥
 भद्रं भद्रं पीतमन्यद्भद्रपाद्वै प्रकल्पयेत् । प्रथमं नवपादं स्याद्द्वितीयं षट्पदान्मकम् ॥२३६॥
 वापीपाद्वै च त्रिपदा शृंगला लोहिता भवेत् । त्रिपाद्वै भवेदेतच्छृंगला पञ्चपादिका ॥२३७॥
 एकादशपदा वल्ली त्रिपदश्चन्द्र इति । चतुर्विंशपदैर्ज्ञेयं लिङ्गं परमसुन्दरम् ॥२३८॥
 मध्ये चन्द्रः शृंगला च त्रिपदा षट्पदा लता ।

भद्रमर्कपदं लिङ्गमष्टाविंशत्पदान्मकम् । लिङ्गमस्तकशार्धस्थे पदानि पीतकानि तु ॥२३९॥
 लिङ्गं कृष्णं मिता वापी भद्रं रक्तं मितं शशी । शृंगला कृष्णहस्तिना वल्ली वर्णास्त्रिर्वर्णरिताः ॥२४०॥
 परिधिः पीतवर्णः स्यात्पदान्युर्वर्गिनानि तु । यथेष्टं रज्ज्वेदेन द्वाणाक्षिलिङ्गमाधनम् ॥२४१॥
 पीतशुक्लरक्तकृष्णा धायाः परिधयः क्रमान् । प्रकाशं नरमन्यदा शृणु शिष्यं ब्रवीम्यहम् ॥२४२॥
 चन्द्राब्धिपदमन्यासु सर्वतस्तन्वगमितम् । लिङ्गपादं विग्नचयेन्यडने परिधी मती ॥२४३॥
 तयोर्वर्गालिङ्गपत्तिद्वयं सम्यक् प्रकल्पयेत् । अष्टादशपदं लिङ्गं वापी त्रिदशपादिका ॥२४४॥
 त्रिपदोऽब्जः शृंगला च पञ्चपादशवल्लरी । प्रथमा युगलिङ्गाऽन्या पत्तिलिङ्गद्वयान्विता ॥२४५॥
 आद्री भद्रं नवपादं परं भद्रं तु षट्पदम् । परिधये त्रयस्त्रिंशन्कोष्ठैर्लिङ्गं प्रकल्पयेत् ॥२४६॥
 मूलस्कन्धी सप्तममपदर्जो षट्पदः शिरः । पञ्चपञ्चपदः पार्श्वो कटिः शोभोन्निपादजः ॥२४७॥
 चतुर्दिक्षु हस्त्यास्य चतुर्भद्रं नवाग्रिकम् । चन्द्रीऽत्र त्रिपदो ज्ञेयः शृंगला द्विपदा स्मृता ॥२४८॥
 वल्ली पञ्चपादा स्याच्छृङ्गलाऽन्या त्रिपादजा । लिङ्गस्कन्धगताः कोष्ठाः पीताः कार्याः शुभावहाः ॥२४९॥

सीधो और हाथी लाल वर्णकी पाँच-पाँच रेखाएँ सीधे । उनके कोष्ठकोमे छः परिधियाँ और छः परिधिके आगे फिर तीन परिधि बनावे ॥ २३४ ॥ चौदास पादस तीन, दो अथवा नौ लिङ्ग बनाना होगा । अट्टारह पादकी वापी बनेगी । छत्तीस, बीस, नौ इन सत्यकोक भद्र बनावे ॥ २३५ ॥ उन भद्रोंक पास ही दूसरे पीत वर्णके दो भद्रोंकी रचना कर । जिसमें पहला नौ पादकी और दूसरा छ पादका रहेगा ॥ २३६ ॥ वापीके पास तीन पादकी लाल शृंगला रहेगी । इस प्रकार हर वर्णमें पाँच पाँच पादकी शृंगलाय रह्यो ॥ २३७ ॥ इसमें ग्यारह पादकी वल्ली और तीन पादकी लता रह्यो । बारह पादकी लिङ्ग बनेगा । २३८ ॥ मध्यमें एक चन्द्रमा, तीन पादकी शृंगला और छ पादकी लता रहेगी । वरह पादकी भद्र और अट्टाईस पादकी लिङ्ग बनेगा । लिङ्गके मस्तकपर तथा वर्णमें पीले वर्णके कुछ खाली कोष्ठक भी रह्यो ॥ २३९ ॥ इसमें लिङ्ग कृष्ण, वापी उज्ज्वल, लाल भद्र, उज्ज्वल चन्द्रमा, वापी शृंगला, हरित वर्णकी वल्ली ये वर्ण रह्यो ॥ २४० ॥ इसकी परिधि पीले वर्णकी रहेगी । बाकी जितने कोष्ठक बचे, उनका अपने इच्छानुसार रंग चाहें रंग दे । पञ्चास लिङ्ग इस भद्रके प्रधान साधन माने गये हैं । २४१ ॥ बाहरकी परिधियाँ पीली, सफेद लाल तथा काली रहेगी । हे शिष्य ! अब मैं तुम्हें इसी भद्रका प्रकारान्तर बतला रहा हूँ ॥ २४२ ॥ एकतालिस पादोंमें पञ्चोम लिङ्ग और छः लिङ्गके बाद दो परिधि बनावे ॥ २४३ ॥ उन दोनों परिधियोंके पहले दो पत्तियोंमें लिङ्गोंकी रचना करे । इसमें अट्टारह पादकी लिङ्ग बनेगा और नवह पादकी वापी बनायी जायगी ॥ २४४ ॥ तीन पादकी कमल और पाँच-पाँच पादके शिव तथा वल्लीकी रचना की जायगी । पहिली पत्तिमें पाँच और अन्य पत्तियोंमें दो लिङ्ग रहा करमे ॥ २४५ ॥ पहला भद्र नौ पादका रहेगा । बाकी सब भद्र छ-छः पादक रह्यो । परिधिके बाद तैंतीस पादकी लिङ्ग बनावे ॥ २४६ ॥ इसके मूल स्कन्ध सात साठ पादके रह्यो । छः पादकी मस्तक, पाँच पाँच पादकी पार्श्वभाग और तीन पादकी कटि बनेगी ॥ २४७ ॥ शिष्यके चारों ओर नौ-नौ पादके चार भद्र बनाये जायेंगे । इसमें चन्द्रमा तीन पादकी, शृंगला दो पादकी, वल्ली दो पाँच पादकी और दूसरी शृंगला तीन पादकी रहेगी । लिङ्गके स्कन्धवाले खाली कोष्ठक पीले रङ्गसे रङ्ग दिये

अन्यानि शेषभूतानि पदानि पूरयेद्विधा । यथेच्छं च परिश्रय कार्या वेदमिता बहिः ॥२५०॥
 पञ्चविंशच्छिर्वरेती प्रकाशो ह्यो मयोदितो । अनिमित्तो शक्यो ज्ञानवर्धो द्विजसत्तम ॥२५१॥
 नमस्कृत्य महद्ब्रह्म गुरुपादमरोरुहम् । संसारताम्बु वक्ष्ये कथामध्यात्ममग्रहाम् ॥२५२॥
 पञ्चविंशतिसख्याक लिङ्गतोभद्रमीप्सितम् । केनचिन् कल्पितं तन्कि तन्व तन्कथ्यते स्फुटम् ॥२५३॥
 लिङ्गतोभद्रमित्येतन्निरुक्तमर्थवद्भवेत् । लिङ्गं गमकमित्याहुर्ज्ञानं ज्ञापकमित्यपि ॥२५४॥
 पीयूषवापनाद्वार्या भद्रं भद्रममीक्षणात् । माध्यमशब्दाः प्रमिद्रा हि वर्तन्ते माधनेष्वपि ॥२५५॥
 तस्मिन् शुक्लमुत्त नीलमित्यादिभ्युनिशामनान् । वर्णा अपि परास्मिन्पामनार्थं भवन्ति हि ॥२५६॥
 तद्वत् परमं लिङ्गं महत्त्वं भद्रवाचकम् । महत्त्वं महत्त्वानां च शिवं शान्तमिति स्फुटम् ॥२५७॥
 लीयते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिङ्गं परं व्योम निष्कलः पामः शिवः ॥२५८॥
 सत्त्वं रजस्तमोवर्णत्रय मायामु वेष्टितम् । मनश्चन्द्रो महामोहः मृद्वला स्नेहवह्निका ॥ ५९॥
 तैरिदं सर्वं तस्मात् वेष्टितं घटव्योभवत् । तिर्यग्ध्वमहङ्कारः प्रसृतः पटवन्तुवन् ॥२६०॥
 तेन स्थानानि जातानि लक्षणां चतुरष्ट हि । गुणास्तेषु प्रपूर्यन्ते यथा चित्रपटो भवेत् ॥२६१॥
 भासीदेकं पुनरप्यत्र तस्मिन्मायानियोगतः । कामो बहुधा भवति भवत्यमिति मादरम् ॥२६२॥
 एकः सन्निति चान्मानं स्वयमकुरुतेति च । इन्द्रो मायाभिरिति च एकधा बहुधेति हि ॥२६३॥
 ऊचुश्च भुवयः माय्यो ब्रह्मणो भवनं प्रति । तज्जलानिति च ध्रुवान् ततोऽस्मि हि किञ्चन ॥२६४॥
 यद्यप्येवं तथाप्यस्मिन्न स्थितिर्मोहनो भवेत् । यावदहङ्करो भावलावन्समर आयतः ॥२६५॥
 भिन्नोऽहमिति हृद्ग्रन्थी न संसारस्तदाश्रयः । गते नेजम्यंयु यानि स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥२६६॥

जायेगी ॥ २५८ ॥ २५९ ॥ बाकी जितने कोशक खाने वने, उन्हें अपने इच्छानुसार रङ्ग दे । बाहरकी ओर खेचले से आर परिश्रय बनाये ॥ २५० ॥ ये दोनों प्रकार मेने पक्षीस शिवके बनलाये हैं । हे द्विजसत्तम ! ये दोनों भद्र शिवज के परम प्रमत्त करनेवाले हैं ॥ २५१ ॥ अब मैं अपने गुरुके महद्ब्रह्मस्वरूप चरणकमलकी प्रणाम करके समस्तारक एक माध्यमिक कथा सुनाऊंगा ॥ २५२ ॥ किसोत पञ्चविंशति लिङ्गतोभद्र-का रचना क्यों की ? अब उसका स्पष्ट तन्व बनाना है ॥ २५३ ॥ पहले 'लिङ्गतोभद्र' इस शब्दका अर्थ बताते हुए कहते हैं कि लिङ्ग का गमक, ज्ञान अथवा ज्ञापक नामसे पुकारा जाता है ॥ २५४ ॥ पीयूष (अमृत) का वपन करनेसे वापीका 'वारी' यत्र नम पड़ा है । भद्र वारी कल्याणका समीक्षण करनेसे 'भद्र' का भद्र नाम रखवा गया है । प्रत्येक सधोम उसके साध्य शब्द बनलाये जाते हैं ॥ २५५ ॥ "तस्मिन् शुक्लमुत्त नीलम्" अर्थात् त्रितयोरु कथनानुसार उदासनाके लिए वणकी भी आवश्यकता पड़ती है ॥ २५६ ॥ वह परब्रह्म ही लिङ्ग एवं महत्त्ववाचक भद्र शब्दसे अभिहित होता है । महत्त्वका भी महत्त्व करनेवाला शिव अर्थात् शान्त कहलाता है ॥ २५७ ॥ पञ्चवर्णके समग्र त्रिमये सब प्राणी स्थान हो और मृष्टिकायमे उसीमेसे निकल आये उसीको 'लिङ्ग' कहते हैं । ऐसा क्यों है ? वह परम व्योम, कलारहित तथा परम महत्त्वकारी शिव है ॥ २५८ ॥ सत्त्व, रज और तम ये तीन वर्ण मायाके जालसे वेष्टित हैं । हममें मन चन्द्रमा, महामोह मृद्वला और स्नेह बल्परियाँ हैं ॥ २५९ ॥ इन सबसे आत्मा उसी तरह वेष्टित है, जैसे व्योम (आकाश) से घट-पट आदि जगत्के पदार्थ वेष्टित रहते हैं । उसपर भी तन्त्रुके समान अहङ्कार उस चारों ओरसे घेर रक्खा है ॥ २६० ॥ इसीसे चौगसी लाख योनियोंकी उत्पत्ति हुई है । उनमें गुणाका उसी तरह समावेश हो जाता है, जैसे एक कपड़ेपर कई रङ्ग चढ़ा दिये जायें, जिससे उसका रङ्ग विचित्र प्रकारका हो जाय ॥ २६१ ॥ मृष्टिके पहले केवल एक तन्व वारी ब्रह्म था । मायावे यागसे उसमें बहुत प्रकारकी कामनायें उररि हुईं । तब उसे अकेले ब्रह्मने मायायोगसे अपने इच्छानुसार उस अकेले रूपसे बहुतरे रूप बना लिये ॥ २६२ ॥ २६३ ॥ इसके अनन्तर धृतियोंने ब्रह्मकी उत्पत्तिके लिए 'तज्जलान्' इस धृतिसे उस ब्रह्मकी प्रार्थना की । तब ब्रह्मकी उत्पत्ति हुई ॥ २६४ ॥ यद्यपि ये सब कार्य हुए हैं । तथापि मोहवश इसमें ब्रह्मकी स्थिति नहीं हो सकती । जबतक

एतदर्थं विरक्तः सन् जिज्ञासुः श्रेय उच्यते । आश्रयेन्मद्गुरुं साक्षं ब्रह्मभूतं निरामयम् ॥२६७॥
 तेन प्रबोधितः सिद्धमान्मानं सन्मानमनि । जानीयाद्ब्रह्मभावेन जगच्चिन्तं स्थितं मदा ॥२६८॥
 ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे संस्थितोऽमलः । एकोऽद्वितीयः परमो नानः प्रज्ञादिलक्षणः ॥२६९॥
 अक्षरः सच्चिदानन्दोऽमरोऽजर उच्यते । निर्विकारो निराकारो निरामय उदीरितः ॥२७०॥
 अलिङ्गोऽरूप एवमाद्यैकत्वगणनात्परः । मायया लिङ्गरूपाव श्रेष्ठ इत्यभिधीयते ॥२७१॥
 पुरुषश्च प्रकृतिश्च व्यक्तोऽहंकार एव च । चतुर्लिङ्गानि प्रोक्तानि लक्षणानि शिवस्य च ॥२७२॥
 कार्यकारणभूतानामेकमेव हि पञ्चकम् । सत्त्वं रजस्तम इति वसुलिङ्गानि चात्मनः ॥२७३॥
 दशेन्द्रियाणि च मनो बुद्धिर्द्वादशकं स्मृतम् । लिङ्गानां परमेशस्य चित्रं कोऽत्र प्रतिष्ठितः ॥२७४॥
 इति कारणलिङ्गानि कार्यलिङ्गान्पनेकशः । शतं सहस्रमप्युतं कोटिशः संति संख्यया ॥२७५॥
 सर्वाणि ज्ञापकान्येव शिवस्य परमान्मनः । वस्तुनस्तु परं तत्त्वं सज्जानीयादिदीनकम् ॥२७६॥
 विचारे वर्तमाने तु तन्वाद्येव पटादि न । एवं सर्वं शिवो भाति न सर्वं शिव एव हि ॥२७७॥
 बिन्दुनादमकारादि मात्रत्रयमुदीरितम् । आन्मैव पञ्चधा साक्षात्तथा ब्रह्मेश्वरो हरिः ॥२७८॥
 विधिरुद्रौ पञ्च पञ्च सद्योजातादिरूपकः । शुद्धः सार्धो तथा प्राज्ञस्तैजसो विश्व एव च ॥२७९॥
 सच्चिन्मसुखप्रयं नामरूपे ब्रह्मैव केवलम् । जानं पञ्चात्मकं नान्यद्ब्रह्मैवेदमिति श्रुतिः ॥२८०॥
 प्रधानं महदहं च पञ्चतन्मात्रकं च तन् । अष्टवक्रुदिरित्येतच्छास्त्रेषु परिगीयते ॥२८१॥

अहंभाव है, सभीसक इस ससारका विस्तार है ॥ २६४ ॥ “अहं” इस अन्धिये भिन्न होत हो न ससार रहता है और न उसका आश्रय ही रह जाता है । तेजके विलीन होन ही जगका भी नाश हो जाता है । जैम कि निद्राका नाश होनेके साथ ही स्वप्न भी नष्ट हो जाता है ॥ २६५ ॥ इसलिए जिज्ञासुको चाहिए कि वह विरक्त, साक्षात् ब्रह्मस्वरूप तथा योगकरहिन किता सद्गुरुका शरण ले ॥ २६७ ॥ जब कि उसके उपदेशोंसे वह प्रबुद्ध हो जाय और अपनी आत्मामें ही सिद्ध हो जाय, तब अपने जगन्स्वरूप चित्तको ब्रह्मभावसे दखे ॥ २६८ ॥ सब प्राणियोंके हृदयमें वह अमल ईश्वर निवास करता है । वह एक, अद्वितीय और सर्वश्रेष्ठ है । न उसका अन्त है और न प्रज्ञा आदि लक्षणोंसे ही वह जाना जा सकता है ॥ २६९ ॥ वह अक्षर (कभी नष्ट न होनवाला), सच्चिदानन्द, अजर, अमर और सर्वसं श्रेष्ठ विद्वान् है । इसलिये वह निर्विकार, निराकार और निरामय कहलाता है ॥ २७० ॥ उसका न कोई रूप है, न लिङ्ग है । वह अकेला रहकर भी गणनासे परे है । वह अपनी मायाके साथ लिङ्गरूपमें दातृता है, किन्तु वास्तवमें रहता है अकेला ही ॥ २७१ ॥ पुरुष, प्रवृत्ति, व्यक्त, अहंकार, ये चिह्न उस लिङ्गरूप ब्रह्मको पहचाननेके लिए बताते हैं ॥ २७२ ॥ प्राणियोंका कार्य, कारण, सत्त्व, रज, तम इनका भी कुछ लक्षण आत्माका लक्षण बताते हैं ॥ २७३ ॥ कुछ लोग दस इन्द्रिय तथा मन और बुद्धि, इन बारहको भी उसके चिह्न बतलाते हैं । इस प्रकार यही उस परमेश्वरके लिङ्गोंका विचार किया गया है ॥ २७४ ॥ ऊपर बतलाये हुए सब चिह्न कायक हैं । इनके अतिरिक्त कारणके भी बहुतसे लिङ्ग हैं । इन लिङ्गोंकी सख्या सैकड़ा, हजार, दस हजार एवं कत्तहो पर्यन्त है ॥ २७५ ॥ उस माङ्गलमय परमात्माकी तो ससारकी समस्त वस्तुएँ ही ज्ञापक हैं । लेकिन वास्तवमें वही सर्वप्रज्ञान तत्त्व है और उसका कोई सजातीय और विजातीय नहीं है ॥ २७६ ॥ अच्छी तरह विचार हो जनेपर यही निश्चित होता है कि वह केवल सत्तु ही है, पट आदि नहीं ॥ २७७ ॥ जिस तरह बिन्दुगात्रसे वह अकारादि मन्त्राख्यात्मक कहा जाता है । उसी तरह वह ब्रह्म, ईश्वर या हरि अकेला रहता हुआ भी पाँच प्रकारका है ॥ २७८ ॥ सद्योजातादि रूपधारी विधि (ब्रह्म) और शिव भी पाँच ही पाँच प्रकारका है । वह स्वयं शुद्ध, साक्षी, प्राज्ञ, तैजस तथा विश्वरूप है ॥ २७९ ॥ नाम और रूपके भेदसे वह सत्, चित् तथा आनन्द तीन प्रकारका है । किन्तु वह अकेला ही है । “सर्वोवेदम्” इस श्रुतिसे भी यही सिद्ध होता है कि वह अकेला ब्रह्म ही पाँच प्रकारका हुआ था ॥ २८० ॥ प्रधान, महत्, अहंकार, पाँच तन्मात्रायेँ और

अष्टमूर्तिस्वरूपं सद्भवशर्वादिनामभृत् । वस्त्वष्टकस्वरूपेण मायया भाति सर्वतः ॥२८२॥
 ज्योतिर्लिङ्गद्विष्टकं च द्वादशादिन्यनामकम् । दर्शोद्विगमनोबुद्धिनामभिर्भाति सन् स्फुटम् ॥२८३॥
 दर्शोद्वियाणि च प्राणपंचकं भोग्यपंचकम् । येनश्चतुष्कमान्मेव पंचविंशमतो बुधः ॥२८४॥
 लघाणां चतुरशीति भोगायतनविस्तरः । तस्यैव कल्प्यते भ्रान्त्या कर्मभिर्गुणभेदतः ॥२८५॥
 जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिं च भोगस्थानानि चान्मनः । भोगो भोक्ता भोजयिता सर्वं ब्रह्मैव न पृथक् ॥२८६॥
 अध्यात्ममधिदेवं च अधिभूतमिति त्रिधा । स्थूल सूक्ष्म कारण च सर्वं ब्रह्मैव न पृथक् ॥२८७॥
 एतज्ज्ञानं च ध्यानं च त्रिवेकश्च विरागिता । जीवेश्वरजगद्भानमात्मैवेति न तु पृथक् ॥२८८॥
 सर्वं खल्विदमिति चेदं सर्वं यदयमात्मना । ब्रह्मैवेदं सर्वमिति श्रुतयः प्रवदति हि ॥२८९॥
 अयं सिद्धस्य विषयो यन्मर्त्यान्मनि दर्शनम् । आरुरुक्षुः शान्तदांस्तिनिष्ठुः सर्वतो भवेत् ॥२९०॥
 स्वदेशे प्राप्तपुरुष निवर्णति वर्णीकृतम् । तेनार्मी विषयाः प्रोक्ता मुमुक्षुस्तावन्निवर्जयत् ॥२९१॥
 विविक्तसेवी लब्धाशीन्यादि भागवत वचः । किं बहूक्तेन विधिना समाप्त शास्त्रहृदयम् ॥२९२॥

इत्तं मे गुरुणा किमप्यजडमानदान्मवस्त्वद्वय

यत्संभूत इदं तदात्मकमहं च चाशु नष्ट तमः ।

आपूर्णं सहस्रोदितं महं श्रूय गभीरमव्याकृतं

येनाच्छादितमिन्दुसूर्यपवन विश्व विशेषात्मकम् ॥२९३॥

तिर्यगूर्ध्वगता रेखाश्चत्वारिंशत्समाः शुभाः । तामामंकात्रिकाष्टेषु परिधीं द्वीं प्रकल्पयेत् ॥२९४॥
 समांति प्रथमाज्ज्यास्तु ततो बाणांतकोष्टके । तन्मध्यं रुद्ररुद्रशु पदेष्वष्टादशैः पदः ॥२९५॥
 आठ प्रकृतिर्पाँचे शास्त्रोक्त बतलायी गयी है ॥ २८१ ॥ उन आठो मूर्तियोंका स्वरूप सद्भवशर्व आदि नामोंसे विख्यात है और मायावश वे आठ वस्तुओंके नामसे भी अभिहित होते हैं ॥ २८२ ॥ आठ ज्योतिर्लिङ्ग, द्वादश आदित्य, दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन नामोंसे भा वह विश्वम स्पष्ट दिखायी देता है ॥ २८३ ॥ दस इन्द्रियाँ, पाँच प्राणवायु, भोग्यपंचक और चार प्रकारका चित्त यह सब मिलाकर वह पच्चीस प्रकारका माना गया है ॥ २८४ ॥ बीससां साय यात्रियाँ हा उसका भोगरूपी घरका विस्तार है । भ्रान्तिवश या गुण-कर्मक भेदसे उसीमें इन सबका कल्पना की जाती है ॥ २८५ ॥ जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति ये आत्माके भोगस्थान हैं । भोग, भोक्ता भोज्य ये सब वह सद् ही है और कोई नहीं ॥ २८६ ॥ अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत, स्थूल और सूक्ष्मका कारण एकमात्र ब्रह्म ही है ॥ २८७ ॥ यह ज्ञान, ध्यान, विवर्क, विरागिता, जीव, ईश्वर, जगत्का भान यह सब वह आत्मा ही है और कोई नहीं ॥ २८८ ॥ “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” “यदयमात्मा” “ब्रह्मैवेदम्” ये छूटियाँ भी इसी बातकी पुष्टि करती हैं ॥ २८९ ॥ संसारकी सब वस्तुओंकी अपनी आत्मासे देखना, यह विषय सिद्धपुरुषोंका है । जो प्राणी सिद्धिक शिखरपर चढ़ना चाहता हो । उसे चाहिये कि वह शान्त, दान्त (इन्द्रियोंका दमन करनेवाला) और तितिक्षु बने ॥ २९० ॥ अपने देशमें आये हुए पुरुषोंकी ये सांसारिक विषय बाँध लेते हैं । इसीसे इन्हें लोग विषय (विशेषेण सिन्वन्तीति विषयाः । अर्थात् भली-भाँति जकड़ लेनेवाले) कहते हैं । मुमुक्षु प्राणीको चाहिए कि इनका परित्याग कर दे ॥ २९१ ॥ “एकान्त स्यानमे रहे, थाका साय” इत्यादि बात भगवानने गीतामें स्वयं कही हैं । यहाँ विशेष विधि-विधान बतलानेकी आवश्यकता नहीं है । हृदयमें ज्ञानका प्रकाश होते ही सारे शास्त्र समाप्त हो जाते हैं ॥ २९२ ॥ यदि किसी सद्गुरुने कृपा करके जड़तारहित आनन्दारमक ज्ञानरूप वस्तु दे दी तो ‘वह’ ‘हम’ सब एक हैं । यह भाव उत्पन्न होनेसे हृदयका अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया । एक अनिर्वचनीय प्रकाश और चन्द्रमा-मूर्त तथा पवनपर भी आघिरत्य जमानेवाली शक्तिसे सहसा यह विश्व आलोकित हो उठा, तब और किसी उपदेशकी आवश्यकता ही क्या है ? ॥ २९३ ॥ सीखो और टेढ़ी चालीस रेखायें बराबर-बराबर खींचो । उनके उनतालीस कोष्ठकोंमें दो परिधियें बना दे ॥ २९४ ॥ आठ

लिंगमेकं खंडवाप्या तुर्यतुर्यपदान्तिके । अष्टकोष्टान्तिकं भद्र प्रोक्तं पञ्चचतुष्टये ॥२९६॥
 शृङ्खला द्विपदा चन्द्र त्रिपदा वल्लरी तथा । पञ्चपदः स्मृता वल्लर्यो त्रिपार्श्वेषु निर्मालयेत् ॥२९७॥
 द्वितीये त्रिपदश्चन्द्रः शृङ्खला वेदपादिका । वल्लो नवपदा भद्रत्रयं नवपदात्मकम् ॥२९८॥
 त्रयोदशपदं वापीद्वयं पार्श्वे तु शृङ्खले द्विपदे रक्तवर्णे च भद्रं तुर्यपदं हरिम् ॥२९९॥
 प्रनिपार्श्वे भवेदेतन्प्रथमाधःसु योजयेत् । प्रतिपार्श्वे चतुर्लिंगं वापीनां पञ्चकं तथा ॥३००॥
 अष्टादशपदं लिंगं वापी त्रयोदशात्मिका । भद्रं सप्तपदं त्रयं वल्ली रुद्रपदात्मिका ॥३०१॥
 शृङ्खला पञ्चभिः पार्श्वैस्त्रिपदश्चन्द्र ईरितः । लिंगोपरितना बीबी नीलवल्लर्या नियोजयेत् ॥३०२॥
 यद्वा रमांते परिधिं विधाय तदनन्तरम् । त्रिलिंगान्येकलिंगं च द्वयोः पञ्चयोः प्रकाशयेत् ॥३०३॥
 आदौ चन्द्रकलं भद्र पदमर्कपदः स्मृतम् । शृङ्खलापञ्चमिवर्त्ता रुद्रकोष्ठा समीरिता ॥३०४॥
 वापीचतुष्टयं पूर्वं परं वापीद्वयं स्मृतम् । पूर्ववत्सकलं शेष बाह्याः परिधयः क्रमात् ॥३०५॥
 पीतशुक्लरक्तकृष्णा ज्ञेयाः सख्याधिकाः शुभाः । एतन्मन्त्रेन्दुलिंगात्म्यं पाठं सम्पद्यदाहृतम् ॥३०६॥
 अथवाऽस्मिन्निकोष्ठानि वद्धयित्वा क्रमेण तु । पश्चात्ते परिधिं कार्यां तत्र लिङ्गानि योजयेत् ॥३०७॥
 प्रथमे त्रीणि लिंगानि द्वितीये चैकमर्कितम् । चतुर्विंशत्परिलिङ्गं वाष्पष्टादशपादजा ॥३०८॥
 आदौ वेदमिता वाप्यो द्वे वाप्यौ च द्वितीयके । आदौ नवपदं भद्र द्वितीयेऽर्कपदं स्मृतम् ॥३०९॥
 चन्द्रवल्ल्यादिपूर्वोक्तं मध्ये लिंगं प्रकाशयेत् । अष्टविंशत्परित्यज्य चतुःपार्श्वः शिरः कटिः ॥३१०॥
 अर्कपदं चतुर्दिक्षु मध्ये भद्रचतुष्टयम् । चन्द्रश्च त्रिपदः कोणे शिवमन्त्रकपाश्वके ॥३११॥
 अर्कपदं चतुर्दिक्षु मध्ये भद्रचतुष्टयम् । चन्द्रश्च त्रिपदः कोणे शिवमन्त्रकपाश्वके ॥३१२॥

कोष्ठकीके बाद पहिली परिधि बनाकर बाकी परिधियाँ पाँच पाँच कोष्ठकीके बाद बनावे । उनके बीचमें एक से एक पादोंमेंसे अष्टारह पादका एक एक लिंग बनावे । फिर चार-चार पादकी दो खण्डवापियोंकी रचना करे । इसके चारों बगल अष्टकोष्टान्तिक भद्र बनावे ॥ २९५ ॥ २९६ ॥ इसके बाद दो पादकी शृङ्खला, एकसे चन्द्रमा और तीन पादकी वल्लरी बनाकर इसके तीन बगलमें पाँच पाँच पादकी वल्लरियाँ बनावे ॥ २९७ ॥ दूसरी परिधिमें तीन पादका चन्द्रमा, चार पादकी शृङ्खला, नौ पादकी वल्लरी, नौ-नौ पादके तीन भद्र, तेरह पादकी दो वापियाँ, बगलमें दो लाल शृङ्खलाये और चार पादसे हरे भद्रकी रचना करे ॥ २९८ ॥ २९९ ॥ यह क्रम प्रत्येक पार्श्वभागमें रहेगा । प्रत्येक पार्श्वभागमें चार लिंग, पाँच वापी, अष्टारह पादका लिंग, तेरह पादकी वापी, छ पादका भद्र, चारह पादकी वल्लरी, फिर पाँच पादकी वल्लरी और तीन पादका चन्द्रमा बनेगा । लिंगक ऊपरकी बीबी नीली रहेगी और उसके साथ-साथ वल्लरी भी नीली रहेगी ॥ ३०० ॥ ३०१ ॥ ३०२ ॥ अथवा छ कोष्ठकीके बाद परिधि बनाकर तान लिंग या एक लिंग दोनों पक्षियोंमें बनावे ॥ ३०३ ॥ पहले सोलह पादका भद्र बनाकर बारह पादकी शृङ्खला और बारह कोष्ठकीमेंसे पाँच पादकी वल्लरी बनावे ॥ ३०४ ॥ पहले चार वापी और फिर दो वापीकी रचना करे । बाकी सब पूर्ववत् रहेंगे और बाहरकी परिधियाँ क्रमशः पीली, सफेद, लाल और काली रहेंगी । यह सप्तान्दुलिंगात्मक पाठ मैने अच्छी तरह बखलाया । ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥ अथवा इसी पीठमें दो काष्ठक और बढाकर छ, के बाद दो परिधि बनावे और इस प्रकार लिंगोंकी योजना करे । ३०७ । प्रथम पक्षिमें तीन और दूसरीमें एक लिंग बनावे । इसी पीठमें चौबीस पादका लिंग बनेगा और अष्टारह पादकी वापी बनेगी ॥ ३०८ ॥ आदिमें चार वापियाँ और दूसरेमें दो वापी रहेंगी । आदिमें नौ पादका भद्र बनेगा और दूसरेमें बारह पादका भद्र बनेगा । चन्द्रमा तथा वल्लरी आदि पूर्वोक्त नियमके अनुसार ही रहेंगे और मध्यम लिंगकी रचना की जायगी । उसमें अष्टादश पाद रहेंगे और चार पादमें सिर तथा कमरकी रचना होंगी । बारह-बारह पादसे दो खण्डवापियाँ बनायी जायेंगी । दो पादकी शृङ्खलाये बनेंगी । पाँच पादकी वल्लरी बनायी जायगी । तीन पादसे पीतवर्णकी शृङ्खला बनेगी ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥ बारह पादसे चारों ओरकी शृङ्खला बनेगी ।

नेत्रार्धे द्वे पदे शुक्ले शेषाणि च पदानि हि । लिङ्गपार्श्वे पञ्च पञ्च यथेच्छं तानि पूरयेत् ॥३१३॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णा वहिःपरिधयो मताः । एतन्ममदशलिङ्गैर्लिङ्गनोभद्रमीरितम् ॥३१४॥
दशकं कारणानां च प्राणानां पञ्चकं मनः । षोडशेमाः कला आत्मा साक्षी ममदशः स्मृतः ॥३१५॥
अर्कलिङ्गात्मकं भद्रं शृणु शिष्य मयोच्यते । प्रागुदीच्या गता रेखाः पट्त्रिंशद्वि प्रकल्पयेत् ३१६॥
पदानि द्वादशशतं पञ्चविंशतिरेव च । स्रग्दंष्ट्रिपदः कोणे शृङ्खला पट्पदात्मिका ॥३१७॥
त्रयोदशपदा बल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः । भद्रोर्ध्वं त्रिपदा ज्ञेया द्वितीया पीतशृङ्खला ॥३१८॥
त्रयोदशपदा बापी लिङ्गमष्टादशैः स्मृतम् । लिङ्गं नियम्य पत्नी तु शोभाकोष्ठाश्चतुर्दश ॥३१९॥
तेषामुपरि पत्नी तु कोष्ठाः ममदर्शव तु । पूजापत्तिः मिता ज्ञेया परितः परेकल्यता ॥३२०॥
पूजापत्त्यन्तरापत्नी कोष्ठा अर्शानिसम्प्रया । परिधिः स च विज्ञेया मंडलां रयोर्द्वयोः ॥३२१॥
परिधयन्तरकोष्ठेषु सर्वनोभद्रमालिङ्गेव । विशेषश्चात्र चतुर्थो शृङ्खला पट्पदा भवेत् ॥३२२॥
त्रयोदशपदा बल्ली भद्रं तु द्वादशैः पदैः । पञ्चविंशत्पदा बापी परिधिः षोडशात्मकः ॥३२३॥
मध्ये नवपदैः पञ्च कर्णिकाकेमगान्वितम् । सत्त्व रजस्ममोवर्णाः पतितो मंडलस्य च ॥३२४॥
त्रयः परिधयः कार्यास्तत्र द्वाराणि कारयेत् । मित्रेन्दुः शृङ्खला कृष्णा बल्ली नीला प्रपूरयेत् ॥३२५॥
भद्रं रक्तं शृङ्खलाऽन्या पीता बापी मिता स्मृता । लिङ्गानि कृष्णवर्णानि पार्श्वेषु द्वादशैव तु ॥३२६॥
परिधिः पातवर्णः स्यात्कमलं पञ्चवर्णकम् । कर्णिका च केमराणि पीतवर्णानि कारयेत् ॥३२७॥
प्रकारान्तरमन्यत्ते शृणु शिष्य मयोच्यते । पूर्वोत्तरगता रेखा ममविंशन्मिताः शुभाः ॥३२८॥
तन्पट्त्रिंशत्पदेऽप्येव सर्वनोभद्रमुत्तमम् । अधिष्ठेत्त्रिंशकोष्ठं रचयेत्पूर्ववच्छुभम् ॥३२९॥

मध्यमे चार भद्र बनेगे । कोणमे तीन पादका चन्द्रमा बनेगा । शिवजाके मस्तकके पास नेत्रके लिए दो पाद साया ही छोड़ दे । जितने पाद हैं, उनमेंसे लिङ्गक आसन-सवाले पाँच-याँच पादोंको अपने इच्छानुसार पूर्ण करे ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥ बाहरकी सब परिधियाँ पान, शुक्ल, रक्त तथा कृष्ण वर्णको रहेंगी । यह सप्तदशलिंगात्मक भद्रकी रचनाका प्रकार बतलाया गया ॥ ३१४ ॥ दस इन्द्रियोकी, पाँच प्राणोकी, एक मनकी ये सोलह कलायें होती हैं और मन्त्रहवी आत्मा साक्षी माना जाता है ॥ ३१५ ॥ हे शिष्य ! अब मैं द्वादशलिंगात्मक लिङ्गाभद्रकी रचनाका प्रकार बतलाता हूँ, सुन । पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिणको ओर छत्तीस छत्तीस रेखायें खींच ॥ ३१६ ॥ इसमें कुल बारह सौ पच्चीस पाद होंगे । तीन पादसे लण्डेन्दु बनेगा और कोणकी ओर छ पादकी शृङ्खला रहेंगी ॥ ३१७ ॥ त्रह पादकी दो बल्लरी, नौ पादका भद्र, स्रग्दके ऊपर तीन पादकी पोली शृङ्खला, तेरह पादकी बापी और अट्ठारह पादका लिङ्ग बनाकर पत्तिमें चौदह कोष्ठक शोभाके लिये रहने दें । उनके ऊपरवाला पत्तिम सबहूँ काउक रहेंगे और चारों ओरसे सफेद रङ्गकी एक पूजापत्ति रहेंगी ॥ ३१८-३२० ॥ पूजापत्तिका आनरवाली पत्तिम अम्सा कोष्ठक रहेंगे । वे उन पत्तियोंके बीचमें परिधिका काम देगे ॥ ३२१ ॥ परिधिके भीतरवाले कोष्ठकोमें सर्वनोभद्रकी रचना करे । इस भद्रमें जो विशेषता है, उसे समझ लो । इसको शृङ्खला छ पादका रहेंगी ॥ ३२२ ॥ तेरह पादकी बल्लरी बनेगी । बारह पादका भद्र रहेंगा । पञ्चस पादकी बापी रहेंगी और सोलह पादका परिधि बनेगी ॥ ३२३ ॥ बीचमें नौ पादका एक कमल बनेगा, जिसमें कर्णिका तथा केसर आदि भा रहेंगे । मण्डलके चारों ओर सत्त्व, रज तथा इन तीनों गुणोंकी रचना करनी होगी ॥ ३२४ ॥ इसमें तीन परिधियाँ रहेंगी और कई द्वार भी रहेंगे । इसमें उज्ज्वल चन्द्रमा, काली शृङ्खला, नील बल्लरी और काल भद्र रहेंगा । दूसरी शृङ्खला पीत वर्णकी और बापी सफेद रहेंगी । आस पान कृष्ण वर्णके बारह गिण बनेगे ॥ ३२५ ॥ ३२६ ॥ परिधि पीले रङ्गकी और कमल पाँच रंगका बनेगा । उसकी कर्णिका तथा केसर पीतवर्णका रहेंगा ॥ ३२७ ॥ हे शिष्य ! अब मैं इसका एक दूसरा प्रकार बतला रहा हूँ । पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण दोनों ओर सत्ताईस-छत्ताईस रेखायें खींच ॥ ३२८ ॥ इसके छत्तीस पादोंसे सर्वनोभद्र तथा ३२४ पादसे अन्य वस्तुओंकी रचना करे

परिधित्तममंताच्च प्रकल्प्यः पीतवर्णकः । अष्टोत्तरशतैर्लिंगतोभद्रं कथितं यथा ॥३३०॥
 तस्य चतुर्षु पार्श्वेषु रचयेदकलिंगकम् । कोणे कोणे त्रिपदोऽब्जः शृङ्खला सप्तपादिका ॥३३१॥
 वल्लोमनुपदा भद्रं षट्पदं श्रींश्चापिका । लिंग षड्विंशपदञ्च भद्रं स्याद्वापकोपरि ॥३३२॥
 लिङ्गपार्श्वपदान्येव षट् पीतानि प्रकल्पयेत् । लिंगोपरितना वीथी नीला वल्क्योनियोजयेत् ३३३॥
 चतुष्पदैर्लिङ्गशिरस्तथा परिधयो बहिः । सर्वाणि तु यथापूर्वमुक्तवर्णैः सुरञ्जयेत् ॥३३४॥
 चतुर्विंशतिरालेख्या रेखाः प्राग्दक्षिणायताः । कोणेषु शृङ्खला पञ्चपदा वल्क्यश्च पार्श्वतः ॥३३५॥
 पदैर्नवभिर्गलेख्याभ्रतर्मिलेषुशृङ्खलाः । लघुवल्क्यः पदैः षड्भिस्तनोऽष्टादशभिः पदैः ॥३३६॥
 कुन्वा लिंगानि बाष्पस्तु त्रयोदशभिरन्तरा । ततो वीथीद्वयेनैव पठं कुर्याद्विचक्षणः ॥३३७॥
 तस्य पादाः पञ्चदश द्वासप्तयपि तथैव च । एकाशीनिपदं मध्ये पञ्च स्वस्तिकमिष्यते ॥३३८॥
 कोणेषु शृङ्खला कार्याः पदैस्त्रिभिरनः परम् । पदैश्चतुर्भिर्दिक्षु स्युर्भद्राभ्यंघ्रां समन्ततः ॥३३९॥
 एकादशपदे वल्क्यौ मध्येऽष्टदलमादिभ्येत् । पञ्च नवपदं श्वेत्तल्लिंगतोभद्रमिष्यते ॥३४०॥
 शृङ्खला कृष्णवर्णेन वल्ली नीलेन पूरयेत् । रक्तेन शृङ्खला लघ्वी वल्ली पीतेन पूरयेत् ॥३४१॥
 लिंगानि कृष्णवर्णानि श्वेतेनाप्यथ वापिका । पीठ स्वपादं श्वेतेन पीतेन द्वारपूरणम् ॥३४२॥
 मध्ये स्युः शृङ्खला रक्ता वल्लीनीलेन पूरयेत् । भद्राणि पीतवर्णानि पीता पंकजकणिजा ॥३४३॥
 दलानि श्वेतवर्णानि यद्वा चित्राणि कल्पयेत् । तिस्रो रेखा बहिः कार्याः मितरक्तासिताः क्रमात् ३४४॥
 ऊर्ध्वलिंगोद्धवः अष्टलिंगतोभद्रमुच्यते । अन्यन्मयातिरम्यं तच्छृणु शिष्यात्र कौतुकात् ३४५॥
 अष्टाविंशतिरेखाश्च निर्यगूर्ध्वं समन्ततः । सप्तविंशतिकोष्ठेषु पठन्ते परिधयः स्मृताः ॥३४६॥
 कोणेषु त्रिपदैश्चन्द्रः शृङ्खला पञ्चपादिका । बाष्पकपादजा भद्रषट्कं षट्पदपदात्मकम् ॥३४७॥

॥ ३२६ ॥ उसके चारों ओर पीतवर्णका परिधि बनावे । पहले जो मैंने अष्टोत्तरशतात्मक लिंगतोभद्र बतलाया है, उसके चारों बगल आदश लिंगकी रचना करे । प्रत्येक कोणमें तीन पादका कमल बनाकर सप्त पादकी शृङ्खला बनावे ॥ ३३० ॥ ३३१ ॥ फिर चौदह पादकी वल्करी, छ पादका भद्र, तीन तीन पादका चन्द्रमा और वापी तथा छबोस पादका लिंग वापिकाके ऊपर बनाया जायगा ॥ ३३२ ॥ लिंगके बगलवाले छ पाद पीले रङ्गसे रङ्ग दिये जायें । लिंगके ऊपरवाली शृङ्खला नील वल्करीयोंके बीचमें नियुक्त कर दे ॥ ३३३ ॥ चौदह पादसे लिंग, मस्तक तथा परिधियाँ बनावे । बाकी सब जगता ऊपर कह आये हैं, उसके अनुसार ही रङ्गने से ॥ ३३४ ॥ पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिणकी ओर चौदास चौदास रेखायें खींचे । कोणमें पाँच पादकी शृङ्खला तथा नौ पादकी वल्करीयाँ बनावे । चार पादकी छोटी शृङ्खला बनावे । छ पादकी लघु वल्करी बनावे । अष्टारह पादोंसे लिंग एवं तेरह पादकी वापियाँ बनावे, फिर दो वीथियोंसे पीठकी रचना करे ॥ ३३२-३३३ ॥ उस पाठका पंर पाँच पादसे तथा द्वार पाँच पादसे बनाकर मध्यमें इक्यासी पादका कमल बनेगा ॥ ३३८ ॥ तीन-तीन पादोंसे कोनोंमें शृङ्खलायें बनावे । चारों दिशाओंमें चार-चार पादके भद्र बनेंगे ॥ ३३९ ॥ यद्वारह पादकी दो वल्करीयाँ बनावे । नौ पादमें मध्यमें अष्टदल कमलकी रचना करे । यह भी एक प्रकारका लिङ्गतोभद्र है ॥ ३४० ॥ इसमें जो शृङ्खला कृष्ण वर्ण और वल्करी नीले रङ्गसे पूर्णकी जायगी । रक्त वर्णसे लघु शृङ्खला एवं पीत वर्णसे शंख वल्करीका पूर्ण की जायगी ॥ ३४१ ॥ इसका लिंग कृष्ण वर्णके और वापी सफेद रङ्गकी रहेगी । इसकी पीठ और इसके पाद भा स्वयं रङ्गमें और पीत वर्णसे इसके द्वार रंगे जायेंगे ॥ ३४२ ॥ मध्यमें रक्त वर्णकी शृङ्खला और नील वर्णसे वल्करी पूर्ण की जायगी । सब भद्र पीतवर्णके रहेंगे और कमलकी कणिका भी पीले रङ्गकी रहेगी ॥ ३४३ ॥ कमलके दलोंको सफेद या चित्र वर्णसे पूर्ण करे । बाहुर तीव्र रेखायें रहेंगी और क्रमशः उनका वर्ण उज्ज्वल, रक्त तथा कृष्ण रहेगा ॥ ३४४ ॥ अब हम ऊर्ध्वलिंगात्मक अष्टलिङ्गतोभद्रकी रचनाका दूसरा प्रकार बतलाने हैं, उसे मन लगाकर सुनो ॥ ३४५ ॥ सीधी और तिरछी अठ्ठाईस-अठ्ठाईस रेखायें खींचे । सत्ताईस कोष्ठक पर्यन्त छः छः कोष्ठकके बाद परिधियाँ रहेंगी ॥ ३४६ ॥ कोणमें

ऊर्ध्वे भद्रे रविपदे पदैरष्टादशैः शिवाः । आत्मनोऽभिभुम्भाः सर्वे कार्पा लष्ट शुभावहाः ॥३४८॥
 त्रयोदशाधिजा वापी तत्रयं पश्चिमे स्मृतम् । पूर्वे त्वेका द्वे शकले शेषं सर्वं तु पूर्ववत् ॥३४९॥
 निर्यग्भद्रे वेदपदे पदत्रयोर्ध्ववल्ली । दक्षिणोत्तरतश्चापि वापीनां शकलाष्टकम् ॥३५०॥
 त्रयोर्लिङ्गयोर्माला सा त्रिभिर्नयनैः स्मृता । सर्वत्र नेत्रे द्वे ज्ञेये दक्षिणोत्तरयोस्त्रिभिः ॥

पृथक् चत्वारि भद्राणि स्युधोभद्रे चतुष्पदे ॥३५१॥

दक्षिणोत्तरदिग्भागे पूर्ववन्धौ च मध्यवेत् । उपरान्ते मध्ये तु परिधिः पञ्चविंशैर्जलेरुहम् ॥३५२॥
 शृङ्खला द्विपदा मध्ये वल्ली पदपादजा स्मृता । वाप्यः पञ्चपदैर्ज्ञेया भद्रं वेदपदान्मकम् ॥३५३॥
 शिवा वापी शिवः कृष्णः पद्मभद्रे च लोहिते । निर्यग्भद्रं लिङ्गमाले परिधी पीतवर्णकौ ॥३५४॥
 नेत्रेन्दु धवली कृष्णः शृङ्खला हरिता लता । पदत्रयं हि वाप्युर्ध्वं तद्यथा रुचिं पूरयेत् ॥३५५॥
 पीतशुक्लरक्तकृष्णा बहिः परिधयः स्मृताः । अष्टलिङ्गान्मकं ज्ञेयं लिङ्गतोभद्रमुत्तमम् ॥३५६॥
 अथवाऽन्यौ द्वौ प्रकारौ प्रोच्येते शृणु तावपि । द्वात्रिंशच्चरणेष्वेवं चतुर्लिङ्गं तथाऽष्टकम् ॥३५७॥
 युक्त्या विरचयेत्तत्र विशेषोऽथ निगद्यते । आद्यं लिङ्गं चतुर्विंशपदमष्टैर्दुर्वापिका ॥३५८॥
 भद्रं विंशपदं चान्यलिङ्गमष्टादशान्मकम् । भद्रं नवपदं शेषं यावदवधिं योजयेत् ॥३५९॥
 रेखास्त्रयष्टादश प्रोक्ताश्चतुर्लिङ्गमष्टद्वये । कोणेन्दुस्त्रिपदः ज्ञेतस्त्रिपदैः कृष्णशृङ्खला ॥३६०॥
 वल्ली सप्तपदा नीला भद्रं रक्तं चतुष्पदम् । भद्रपाद्वर्षे महालिङ्गं कृष्णमष्टादशैः पदैः ॥३६१॥
 शिवपाश्वे तु वापी च कुर्यात्पञ्चपदां मितान् । पदमेकं तथा पीतं भद्रं वाप्यस्तु मध्यतः ॥३६२॥
 शिरसि शृङ्खला पाद्वर्षे कुर्यात्पीतं पदत्रयम् । लिङ्गानां स्कन्धतः कोष्ठा विंशत्यो रक्तवर्णकाः ॥३६३॥

तो न पादका चन्द्रमा रहेगी और पाँच पादकी शृङ्खला बनायी जायगी । बाहर पादकी वापी और छः छः पादके छः भद्र बनेंगे ॥ ३४७ ॥ ऊपरके दोनों भद्र बाहर पादके रहेंगे और अट्टारह पादके भद्र बनाये जायेंगे । इन सबको अपने अभिमुख बनावे ॥ ३४८ ॥ तरह पादकी कुल वापियाँ रहेंगी । तिसमें पश्चिमकी ओर तीन वापी, पूर्वकी ओर एक वापी तथा दो खण्डवापी बनायी जायगी । शेष सब पूर्ववत् रहेंगे ॥ ३४९ ॥ इसमें बड़ा भद्र चार पादका और तीन पादकी ऊर्ध्ववल्ली रहेगी । दक्षिण और उत्तरकी ओर खण्डवापियें रहेंगी ॥ ३५० ॥ तीन नेत्रोंसे इन दोनों लिङ्गोंकी माला बनायी जायगी । दक्षिण और उत्तर दो-दो और तीन-तीन पादोंके दो नेत्र बनेंगे । चार भद्र पृथक् बनाये जायेंगे और उनमें नीचेवासे दोनों भद्र चार पादके रहेंगे ॥ ३५१ ॥ दक्षिण और उत्तरकी ओर दो वल्लियोंकी योजना की जायगी । तीन पादसे मध्यमें परिधि बनेगी और पञ्चोत्त पादका कमल बनेगा । ३५२ ॥ इसमें शृङ्खला दो पादकी और मध्यमें छः पादसे बल्ली बनायी जायगी । पाँच पादकी वापियाँ बनेंगी और चार पादका भद्र बनेगा ॥ ३५३ ॥ इसकी वापियाँ सफेद, शिव कृष्ण, पद्म और भद्र रक्तवर्णके रहेंगे । निरल्ल भद्र, लिङ्ग माला तथा दोनों परिधियाँ पीत वर्णकी रहेंगी ॥ ३५४ ॥ नेत्र तथा इन्दु ये दोनों सफेद रहेंगे । शृङ्खला काली और लता हरी रहेगी । वापीके ऊपरवाले तीन पादोंको जैसी अपनी रुचि हो उस प्रकार रङ्गकर बनावे ॥ ३५५ ॥ इसके बाहरकी परिधियाँ क्रमशः पीली, सफेद, लाल तथा काली रहेंगी । यह मैंने तुमको अष्टलिङ्गान्मक लिङ्गतोभद्र बनलाया ॥ ३५६ ॥ अब इसके अन्य दो प्रकार बतलाते हैं, उन्हें भी सुन लो । नेत्रसं चरणोंसे चार या आठ लिङ्ग युक्तिपूर्वक बनावे । अब उसमें जो विशेषतायें हैं, उन्हें बतलाते हैं । आदिवाली पक्षिमें चौदस पादकी अट्टारह वापियाँ बनेंगी ॥ ३५७ ॥ ३५८ ॥ बीस पादका भद्र बनेगा । दूसरा लिङ्ग अट्टारह पादका बनेगा । नौ पादका भद्र बनेगा । बाकी सब पहलेके समान बनेंगे ॥ ३५९ ॥ चतुर्लिङ्गान्मक भद्रमें अट्टारह रेखायें होंच । इसमें भी कोणका चन्द्रमा तीन पादका और कृष्ण वर्णकी शृङ्खला रहेगी ॥ ३६० ॥ सात पादसे नीले रङ्गकी वल्लरी, चार पादसे रक्त वर्णकी भद्र और भद्रके पास अट्टारह पादसे कृष्ण वर्णका महालिङ्ग बनावे ॥ ३६१ ॥ शिवके पास पाँच पादकी सफेद वापी बनावे ।

परिधिः पीतवर्णस्तु पर्दः षोडशभिः स्मृतः । पर्दस्तु नवभिः पञ्चात्पद्यं विभ्रं सकर्णिकम् ॥३६४॥
 तिर्यगूर्ध्वं गता रेखाः कार्याः स्निग्धास्त्रयोदश । कोणेंदुस्त्रिपदः कार्यः शृङ्खला त्रिपदा स्मृता ॥३६५॥
 वल्ली च षट्पदा नीला रक्तं भद्रं प्रकल्पयेत् । पर्दैर्द्वादशभिः सप्तशतवरे पूर्वदक्षिणे ॥३६६॥
 पश्चिमार्धं महारुद्रमष्ट विंशतिकोष्ठके । लिंगपार्श्वं तथा मूर्ध्नि सप्त कोष्ठास्तु पीतकाः ॥३६७॥
 लिंगमेकं तथा गौर्यास्तिलकं श्लोकमण्डले । पूजयेन्मण्डले चैव सम्यगौरी प्रसीदति ॥३६८॥
 प्रागुदीच्यां गता रेखाः कुर्यादेकोनविंशतिः । स्वर्णेंदुस्त्रिपदः कोणे शृङ्खला पञ्चभिः पर्दैः ॥३६९॥
 एकादशपदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पर्दैः । वतुविंशत्यदा वापी परिधिर्विंशकैः पर्दैः ॥३७०॥
 मध्यं षोडशभिः कोष्ठैः पञ्चमष्टदलं स्मृतम् । श्वेतेंदुशृङ्खला कृष्णा वल्ली नीलेन पूरयेत् ॥३७१॥

भद्रारुणं मिता वापी पाते परिधिकर्णिके ।

रक्त वा विभ्रितं पद्यं बाह्याः सत्त्वरजस्तमाः । सर्वतोभद्रकं चेदं कर्त्तव्यं सर्वकर्मसु ॥३७२॥
 एवं लिंगतोभद्राणां रचनाः कथिता मया । एताः शिवपरा ज्ञेया न योग्या विष्णुपूजने ॥३७३॥
 रामलिंगात्मकं योग्यं श्रीविष्णोर्दर्शनस्य च । पूजने त्वेक एवात्र तद्विस्तारेण कथ्यते ॥३७४॥
 शिवस्य पूजने लिंगशुभास्यं परिचिन्तयेत् । उपासिका राममुद्रा ज्ञेया तद्वद्भवानपि ॥३७५॥
 लिंगतोभद्रवच्चात्र समावाह्याविबुद्धितः । रामतोभद्रकं यच्च ज्ञेयं विष्णुपरं हि तत् ॥३७६॥
 रमा रामेति वर्णवच्चिह्नितं भद्रकं कृतम् । धिया देवीपरं तच्च शातव्यं सर्वकर्मसु ॥३७७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे रामदासविष्णुशस-

संवादे रामलिंगतोभद्राणां तथा लिंगतोभद्राणां रचनाप्रकारकथनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

एक पादका एक पीला भद्र बनावे । मध्यमे वापी, मस्तकपर शृङ्खला, बगलमे पीले रक्तके तीन पाद और लिंग, स्कन्धमें लाल वर्णके वास कोष्ठक बनावे ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥ सोलह पादोंसे पीत वर्णको परिधि और उसके आगे नौ पादोंसे विविध वर्णकी कर्णिकायुक्त कमल बनावे ॥ ३६४ ॥ तीसरी और सीधो तरह रेखायें खींचे । कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनावे ॥ ३६५ ॥ पीले वर्णसे छः पादकी बल्ली और रक्त वर्णका भद्र बनावे । फिर उत्तर-पूर्व दक्षिण तथा पश्चिम कोणमें बारह पादोंसे बट्टाईस काष्ठकोमें महारुद्रका निर्माण करे । लिंगके बगलमें तथा मस्तकके आठ कोष्ठकोको पीले रक्तसे रत्ने ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥ इसके मण्डलमें गौरीका लिङ्ग बनावे । जो माणी इस मण्डलका पूजन करता है, उसपर गौरी प्रसन्न होता है ॥ ३६८ ॥ पूर्व और उत्तरकी ओर १९ रेखायें खींचे । कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनावे । पाँच पादकी शृङ्खला, ग्यारह पादकी बल्ली और नौ पादोंसे भद्रकी रचना करे । चौबीस पादकी वापी और बीस पादकी परिधि बनावे ॥ ३६९ ॥ ३७० ॥ मध्यमें सोलह पादका अष्टदल कमल बनावे । इस भद्रमें चन्द्रमा सफेद, शृङ्खला काली, बल्ली नीली, भद्र लाल, वापी सफेद, परिधि पीले वर्णकी, कर्णिका लाल और विविध वर्णका कमल बनावे । बाहर सत्त्व, रज और तम रहेगा । इस सर्वतोभद्रको सब कामोंमें बनाना चाहिए ॥ ३७१ ॥ ३७२ ॥ यह सब लिङ्गतोभद्रकी रचनाका प्रकार मैंने बतलाया है । ये सब शिवकी पूजामें ही काम देंगे, विष्णुपूजनमें नहीं ॥ ३७३ ॥ विष्णुकी पूजामें श्रीरामलिंगतोभद्रका ही उपयोग करना चाहिए । प्रत्येक पूजनमें एक देवताको ही प्रधानता रहती है । इसी बातको अब विस्तारपूर्वक बतला रहे हैं ॥ ३७४ ॥ शिवकी पूजामें लिङ्ग उपास्य रहता है । इसलिये उसीका ध्यान करना चाहिए । इसमें उपासिका राममुद्रा है और लिंगतोभद्रके समान ही इसमें भी आवाहन किया जाता है । रामतोभद्र विष्णुपरक है ॥ ३७५ ॥ ३७६ ॥ इसमें रमा राम ये वर्ण चिह्नित किये हुए रहते हैं । इसलिए कुछ लोग रामतोभद्रको देवीपरक भी कहते हैं । अस्तु, कहनेका भाव यह है कि यह भद्र सब कामोंमें प्रयुक्त किया जा सकता है ॥ ३७७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच-रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामतोमद्रमें देवताओंकी स्थापनाविधि तथा रामनवमीकी कथा)

अथ सर्वतोमद्रं तद्देवताश्च लिख्यन्ते । प्राणानायस्य देशकाली स्मृत्वा रामतोमद्रदेवतास्थापनं वा रामलिंगतोमद्रदेवतास्थापनं वा रामानामतोमद्रदेवतास्थापनं वा रामानामतोमद्रदेवतास्थापनं करिष्ये इति संकल्प्य । ब्रह्मजज्ञानमिति मन्त्रस्य वामदेवश्चापिः त्रिष्टुप्छन्दः ब्रह्मादेवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः ॥ 'ब्रह्मजज्ञान०' सर्वतोमद्रमध्ये ब्रह्माणवावाहयामि ॥ १ ॥ उत्तरे वापीश्रावणामे 'आप्यायस्वस०' सोमाय नमः सोममावाहयामि ॥ २ ॥ ईशान्यां खंडेदौ 'तमीशानंज०' ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि ॥ ३ ॥ पूर्वस्यां वाप्यां 'आतारमिद्र०' इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि ॥ ४ ॥ आग्नेय्यां खंडेदौ 'अग्निद्रुत०' अग्नये नमः अग्निमावाहयामि ॥ ५ ॥ दक्षिणस्यां वाप्यां 'यमायस्वांगिर०' यमाय नमः यममावाहयामि ॥ ६ ॥ नैऋत्यां खंडेदौ 'असुन्दत०' निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि ॥ ७ ॥ पश्चिमायां वाप्यां 'तत्त्वाशामि०' वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि ॥ ८ ॥ वायव्ये खंडेदौ 'आनोनिष्टुद्धिः०' वायवे नमः वायुमावाहयामि ॥ ९ ॥ वायुसोममध्ये मद्रं 'निवेशनीमंगमनीवधूनां०' ध्रुवं अध्वरं सोम अपः अनिलं जनलं प्रत्युषं प्रमासमित्यएवमनावाहयामि ॥ १० ॥ सोमेशानमध्ये मद्रं 'नमस्ते रुद्र०' वीरभद्रं शम्भुं गिरिशं अर्जकपादं अहिर्बुध्न्यं पिनाकिनं भुवनाधीश्वरं कपालिनं दिक्पतिं स्थाणुं रुद्रमित्येकादश रुद्रानावाहयामि ॥ ११ ॥ ईशानेद्रमध्ये मद्रं 'आकृष्णेन०' भगं वरुणं सूर्यं वेदांगं भानुं रविं गमस्तिं हिरण्यरेतसं दिवाकरं मित्रं आदित्यं विष्णुमिति द्वादशोदित्यानावाहयामि ॥ १२ ॥ इन्द्राग्निमध्ये मद्रं 'अश्विना तेजसा चक्षु०' अश्विनीकुमाराभ्यां नमः अश्विनौ देवावाहयामि ॥ १३ ॥ अग्निपममध्ये मद्रं 'समाश्रपणिर्धृतो०' सर्वहृकान् देशानावाहयामि ॥ १४ ॥ यमनिर्ऋतिमध्ये मद्रं 'अभित्यं देव०' यमस्यो नमः यमानावाहयामि ॥ १५ ॥ निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये मद्रं

अथ सर्वतोमद्र और उसके देवताओंके आवाहन तथा स्थापनके विधि बतलाते हैं । प्राणायामपूर्वक देश-काल आदिका उच्चारण करके "रामतोमद्रके देवताका स्थापन, लिंगतोमद्रके देवताका स्थापन, रामानामतोमद्रके देवताका स्थापन अथवा रामारमलतोमद्रके देवताका स्थापन करूँगा," ऐसा संकल्प करके "ब्रह्मजज्ञानम्" आदि मंत्रको पढ़ता हुआ विनियोग करे । "ब्रह्मजज्ञानम्" यह मंत्र पढ़कर ब्रह्माका आवाहन करे । उत्तर वापीके पास 'आप्यायस्व' यह मंत्र पढ़कर सोमका आवाहन करे ॥ १ ॥ २ ॥ ईशानके खण्डेन्दुमें 'तमीशानं' इस मंत्रसे ईशका आवाहन करे ॥ ३ ॥ पूर्वकी वापीमें 'आतार' इस मंत्रसे इन्द्रका आवाहन करे ॥ ४ ॥ अग्निकोणके इन्द्रुमें 'अग्निद्रुतं' इस मंत्रसे अग्निका आवाहन करे ॥ ५ ॥ दक्षिण वापीमें 'यमायस्वा' इस मंत्रसे यमका आवाहन करे ॥ ६ ॥ नैऋत्यके खण्डेन्दुमें 'असुन्दतं' इस मंत्रसे निर्ऋतिकका आवाहन करे ॥ ७ ॥ पश्चिम वापीमें 'तत्त्वाशामि' इस मंत्रसे वरुणका आवाहन करे ॥ ८ ॥ वायव्य कोणके खण्डेन्दुमें 'आनो निष्टुद्धि' इस मंत्रसे वायुका आवाहन करे ॥ ९ ॥ वायु और सोमके मध्यवाले मद्रमें 'निवेशनीमंग' इस मंत्रसे ध्रुव, अध्वर, सोम आदि आठ वस्तुओंका आवाहन करे ॥ १० ॥ सोम और ईशानके मध्यवाले मद्रमें 'नमस्ते रुद्र' इस मंत्रसे वीरभद्र, शम्भु, गिरिश, अर्जकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, भुवनाधीश्वर, कपाली, दिक्पति, स्थाणु और रुद्र इन एकादश रुद्रोंका आवाहन करे ॥ ११ ॥ ईशान और इन्द्रके मध्यवाले मद्रमें 'आकृष्णेन' इस मंत्रसे भग, वरुण, सूर्य, वेदांग, भानु, रवि, गमस्ति, हिरण्यरेतस, दिवाकर, मित्र, आदित्य और विष्णु इन द्वादश सूर्योंका आवाहन करे ॥ १२ ॥ इन्द्र और अग्निके मध्यवाले मद्रमें 'अश्विना तेजसा' इस मंत्रसे अश्विनीकुमारोंका आवाहन करे ॥ १३ ॥ अग्नि और यमके मध्यवाले मद्रमें 'समाश्रपणिः'

‘आयगीः०’ भूतनागेभ्यो नमः भूताभागानावाहयामि ॥ १६ ॥ वरुणवासुमध्ये भद्रे ‘नदीभ्यः पौञ्चिभ्यः’ गन्धर्वाप्सरगेभ्यो नमः गन्धर्वाप्सरस आवाहयामि ॥ १७ ॥ ब्रह्मसोममध्ये वाप्या ‘यदक्रन्दः प्रथमं०’ स्कन्दाय नमः स्कन्दावाहयामि ॥ १८ ॥ ‘नमः शंभवे०’ नदीश्वराय नमः नदीश्वरमावाहयामि ॥ १९ ॥ ‘भद्रं कर्णेभिः०’ शूलाय नमः शूलमावाहयामि ॥ २० ॥ ‘विश्वकर्मा- इज०’ महाकालाय नमः महाकालमावाहयामि ॥ २१ ॥ ब्रह्मज्ञानमध्ये वल्लीषु ‘आदिनिर्घोरं’ ऋक्षादिभ्यो नमः ऋक्षादीनावाहयामि ॥ २२ ॥ ब्रह्मेन्द्रमध्ये वाप्या ‘श्रीश्वने०’ दुर्गायै नमः दुर्गमा- वाहयामि ॥ २३ ॥ ‘इदं विष्णु०’ विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि ॥ २४ ॥ ब्रह्माग्निमध्ये वल्लीषु ‘उदीरिता०’ स्वधायै नमः स्वधामावाहयामि ॥ २५ ॥ ब्रह्मवर्ममध्ये वाप्या ‘अमृत्यो०’ मृत्यवे नमः मृत्युमावाहयामि ॥ २६ ॥ ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्या ‘गणनां त्वा०’ गणपतये नमः गणपति- मावाहयामि ॥ २७ ॥ ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्या ‘शशोदेवी०’ अद्भ्यो नमः अप आवाहयामि ॥ २८ ॥ ब्रह्मवायुमध्ये वल्लीषु ‘मरुतो यस्य०’ मरुते नमः मरुतमावाहयामि ॥ २९ ॥ ब्रह्मणः पादमूले कर्णिकाधः ‘स्योनापृथिवि०’ पृथ्व्यै नमः पृथ्वीमावाहयामि ॥ ३० ॥ तत्रैव ‘पञ्च नद्यः सरस्वती०’ गंगादिसर्वनदीरावाहयामि ॥ ३१ ॥ तत्रैव ‘धाम्नो धाम्नीराजस्ततो वरुण०’ सप्तसागरेभ्यो नमः सप्त- सागरानावाहयामि ॥ ३२ ॥ ततः कर्णिकोपरि नाममंत्रेण मेरवे नमः गदामावाहयामि ॥ ३३ ॥ ततः पीतपरिधौ सोमादिसन्निधौ क्रमेण आयुधानि । सोमसमीपे गदायै नमः गदामावाहयामि ॥ ३४ ॥ ईशानसमीपे शूलाय नमः शूलमावाहयामि ॥ ३५ ॥ इन्द्रसमीपे वज्राय नमः वज्रमावाहयामि ॥ ३६ ॥ अग्निममीपे शक्तये नमः शक्तिमावाहयामि ॥ ३७ ॥ यमसमीपे दण्डाय नमः दण्डमावाहयामि ॥ ३८ ॥ निर्ऋतिसमीपे खड्गाय नमः खड्गमावाहयामि ॥ ३९ ॥ वरुणसमीपे पाशाय नमः पाशमावाह- यामि ॥ ४० ॥ वायुसमीपे अंकुशाय नमः अंकुशमावाहयामि ॥ ४१ ॥ पुनः सोमस्योत्तरे सदा समीपे

इस मन्त्रसे सर्वैतुक विश्वेदेवका आवाहन करे ॥ १४ ॥ यम और निर्ऋतिके बीचवाले भद्रसे ‘अमित्य देव’ इस मन्त्रसे यज्ञोका आवाहन करे ॥ १५ ॥ निर्ऋति और वरुणके बीचवाले भद्रसे ‘आयगी’ इस मन्त्रसे भूतों और नागोंका आवाहन करे ॥ १६ ॥ वरुण और वायुके मध्यमे ‘नदीभ्यः’ इस मन्त्रसे गन्धर्वों और अप्सराओंका आवाहन करे ॥ १७ ॥ ब्रह्मा और सोमके मध्यवाली वापीमें ‘यदक्रन्दः’ इस मन्त्रसे स्कन्दका आवाहन करे ॥ १८ ॥ ‘नमः शंभवे’ में नदीश्वर, ‘भद्रं कर्णेभिः’ से शूल और ‘विश्वकर्मा’ इस मन्त्रसे महाकालका आवाहन करे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ ब्रह्मा और ईशानके मध्यवाली वल्लियोंमें ‘आदिनिर्घोरं’ इस मन्त्रसे ऋक्ष आदिका आवाहन करे ॥ २२ ॥ ब्रह्मा और इन्द्रके मध्यवाली वापीमें ‘श्रीश्वने’ इस मन्त्रसे दुर्गाका आवाहन करे ॥ २३ ॥ ‘इदं विष्णुः’ इस मन्त्रसे विष्णुका आवाहन करे ॥ २४ ॥ ब्रह्मा और अग्निके मध्यवाली वल्लीमें ‘उदीरिता’ इस मन्त्रसे स्वधाका आवाहन करे ॥ २५ ॥ ब्रह्मा और यमके मध्यवाली वापीमें ‘अमृत्यो’ इस मन्त्रसे मृत्युका आवाहन करे ॥ २६ ॥ ब्रह्मा और निर्ऋतिके मध्यवाली वल्लियोंमें ‘गणानां त्वा’ इस मन्त्रसे गणपतिका आवाहन करे ॥ २७ ॥ ब्रह्मा और वरुणके मध्यवाली वापीमें ‘शशो देवी’ इस मन्त्रसे जलका आवाहन करे ॥ २८ ॥ ब्रह्मा और वायुके मध्यवाली वल्लियोंमें ‘मरुतो यस्य’ इस मन्त्रसे मरुतका आवाहन करे ॥ २९ ॥ ब्रह्माके पाँवके पासवाला कर्णिकाके नीचे ‘स्योना पृथिवि’ इस मन्त्रसे पृथ्वीका आवाहन करे ॥ ३० ॥ वहाँ ही ‘पञ्चनद्यः’ इस मन्त्रसे गंगा आदि सब नदियोंका आवाहन करे ॥ ३१ ॥ वहाँ ही ‘धाम्नो धाम्नी’ इस मन्त्रसे सप्त सागरोंका आवाहन करे ॥ ३२ ॥ इसके बाद कर्णिकाके ऊपर नाममन्त्रसे मेरुका आवाहन करे ॥ ३३ ॥ पीत परिधिमें सोम आदिके पास क्रमशः आयुधोंका आवाहन करे । गदाके नाम- मन्त्रसे गदाका, ईशानके समीप शूलके नाममन्त्रसे शूलका, इन्द्रके समीप वज्रका, अग्निके पास शक्तिका, यमके समीप दण्डका, निर्ऋतिके पास खड्गका और वरुणके पास पाशका आवाहन करे ॥ ३४-४० ॥ फिर वायुके

गौतमाय नमः गौतममावाहयामि ॥४२॥ ईशान्यां भरद्वाजाय नमः भरद्वाजमावाहयामि ॥४३॥
 पूर्वे विश्वामित्राय नमः विश्वामित्रमावाहयामि ॥४४॥ आग्नेय्यां कश्यपाय नमः कश्यपमावाहयामि
 ॥४५॥ दक्षिणे जमदग्निवे नमः जमदग्निमावाहयामि ॥४६॥ नैऋत्यां वसिष्ठाय नमः वसिष्ठमावाह-
 यामि ॥४७॥ पश्चिमे अत्रये नमः अत्रिमावाहयामि ॥४८॥ वायव्यां अरुन्धत्यै नमः अरुन्धतामावा-
 हयामि ॥४९॥ पुनः पूर्वदिक्कमेण पूर्वे विश्वामित्रमपीषे ऐन्द्र्यै नमः ऐन्द्रामावाहयामि ॥५०॥
 आग्नेय्यां कौमार्यै नमः कौमारीमावाहयामि ॥५१॥ दक्षिणे ब्राह्मण्यै नमः ब्राह्मणमावाहयामि ॥५२॥
 नैऋत्यां वाराह्यै नमः वाराहीमा० ॥५३॥ पश्चिमे चामुण्डायै नमः चामुण्डामा० ॥५४॥ वायव्ये वैष्णव्यै
 नमः वैष्णवीना ॥५५॥ उत्तरे माहेश्वर्यै नमः माहेश्वरीमा० ॥५६॥ ईशान्यां वेंनायक्यै नमः वेंनाय-
 कीमा० ॥५७॥ अष्टदलमध्ये सूर्याय नमः सूर्यमा० ॥५८॥ बाह्यपूर्वाद्यष्टदिषु यथास्थानेषु
 पूर्वे सोमाय नमः सोममा० ॥५९॥ आग्नेय्यां भौमाय नमः भौममा० ॥६०॥ दक्षिणे बुवाय नमः
 बुधमा० ॥६१॥ नैऋत्यां बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमा० ॥६२॥ पश्चिमे शुक्राय नमः
 शुक्रमा० ॥६३॥ वायव्यां शनैश्वराय नमः शनैश्वरमा० ॥६४॥ उत्तरे राहवे नमः राहुमा० ॥६५॥
 ईशान्यां केतवे नमः केतुमा० ॥६६॥ एता देवताः सर्वतोभद्रं प्रतिष्ठाप्य ततः परिधिभूतपत्नी
 सुपेणाय नमः सुपेणमा० ॥६७॥ सर्वेषु लिङ्गेषु रुद्राय नमः रुद्रमा० ॥६८॥ सर्वासु बापांषु नल्लाय नमः
 नल्लमा० ॥६९॥ सर्वेषु भद्रेषु सुग्रीवाय नमः सुग्रीवमा० ॥७०॥ सर्वेषु तिर्यग्भद्रेषु गवयाय नमः
 गवयमा० ॥७१॥ सर्वासु पीठशृङ्खलासु अंगदाय नमः अंगदमावा० ॥७२॥ सर्वासु कृष्णशृङ्खलासु
 विभीषणाय नमः विभीषणमा० ॥७३॥ सर्वासु बल्लीषु जांबवते नमः जांबवतमा० ॥७४॥ सर्वेषु
 स्तम्भेषु मैदाय नमः मैदमा० ॥७५॥ सर्वासु परिधिषु द्विविदाय नमः द्विविदमा० ॥७६॥ मुद्रायां
 रामज्ञानकांभ्यां नमः रामज्ञानकीमा० ॥७७॥ मुद्रायाः पश्चिमे पीठपरिधौ लक्ष्मणाय नमः
 लक्ष्मणमा० ॥७८॥ मुद्राया उत्तरे भरताय नमः भरतमा० ॥७९॥ मुद्राया दक्षिणे शत्रुघ्नाय नमः
 शत्रुघ्नमा० ॥८०॥ मुद्रायाः पुरतः वायुपुत्राय नमः वायुपुत्रमा० ॥८१॥ बहिस्त्रिपरिधिषु श्वेतपरिधौ

समोप अंकुशका आवाहन करे ॥४१॥ तदनन्तर सोमके उत्तर ओर गदाके पास गौतमका आवाहन करे
 ॥४२॥ ईशान काणम भरद्वाजका, पूरुम विश्वामित्रका, आग्नेयमे कश्यपका, दक्षिणम जमदग्निका,
 नैऋत्यमे वसिष्ठका, पश्चिमम अत्रिका और वायव्यकाणम अरुन्धतीका आवाहन करे ॥४३-४६॥ फिर
 पूर्व आदि दिशाओंक क्रमसे पूर्वम विश्वामित्रके समोप ऐंद्रीका आवाहन करे ॥५०॥ आग्नेय कोणमें
 कौमारीका, दक्षिणमें ब्रह्मीका, नैऋत्यम वाराहीका, पश्चिममें चामुण्डाका, वायव्यम वैष्णवीका, उत्तरमें
 माहेश्वरीका और ईशान काणम वेंनायकीका आवाहन करे ॥५१-५७॥ अष्टदलके मध्यम सूर्यका आवाहन करे,
 बाह्यके पूर्व आदि आठो दिशाओंम यथास्थान निम्नलिखित देवताओंका आवाहन करे । पूर्वम सोमका
 आग्नेय कोणमें भौमका, दक्षिणम बुधका, नैऋत्यमें बृहस्पतिका, पश्चिममें शुक्रका वायव्यमें शनैश्वरका, उत्तरमें
 राहुका और ईशान कोणमें केतुका आवाहन करे ॥५८-६६॥ सर्वतोभद्रम इन देवताओंकी स्थापना करके
 परिधिभूत पंक्तियोंमें सुपेणका आवाहन करे ॥६७॥ सब लिङ्गोंमें रुद्रका सब वापियोंमें नल्लका, सब भद्रोंमें
 सुग्रीवका, सब तीर्थ भद्रोंमें गवयका, सब पीठ शृङ्खलाओंमें अङ्गदका और सब कृष्ण शृङ्खलाओंमें
 विभीषणका आवाहन करना चाहिए ॥६९-७३॥ सब बलियोंमें नाममन्त्रसे जाम्बवान्का आवाहन करे
 ॥७४॥ उसी प्रकार सब शण्डोंमें मैदका, सब परिधियोंमें द्विविदका, मुद्रामें राम और जानकीका आवाहन
 करे ॥७५॥ ७६॥ ७७॥ मुद्राकी पश्चिमवाली पीठ परिधिमें लक्ष्मणका आवाहन करे ॥७८॥ मुद्राके उत्तर
 ओर भरतका आवाहन करे ॥७९॥ मुद्राके दक्षिण ओर शत्रुघ्नका आवाहन करे ॥८०॥ मुद्राके बाहे

भागीरथ्यै नमः भागीरथीमा० ॥ ८२ ॥ रक्तपरिधौ सरस्वत्यै नमः सरस्वतीमा० ॥ ८३ ॥ कृष्णपरिधौ यमुनायै नमः यमुनामा० ॥ ८४ ॥ एवमेव रमारामभद्रेऽप्यावाहनं कार्यम् । रमारामभद्रे मुदायामेव विशेषः । आदौ रमाभावाद् रामभावाद्देवत् । एवमावाहनं कृत्वा षोडशोपचारैः पूजयेत् । शेषाग्नेन दिग्बलिः कार्यः ॥

इति आनन्दरामायणात्तर्गतारामतोभद्रदेवतास्थापनविधिः ।

अथ रामनवमीकथा

श्रीरामदास उवाच

शिष्य यद्यन्प्रियं तस्मै रामाय तद्वदाम्यहम् । म सेषु चैत्रमासस्तु राघवस्यातिवन्लभः ॥ १ ॥
पक्षयोः मितयक्षस्तु प्रियोऽस्ति राघवस्य हि । सर्वासु तिथिषु श्रेष्ठा नवमी राघवप्रिया ॥ २ ॥
सूर्यवंशममुद्रुतस्तस्माच्च भानुवासरः । प्रियोऽतिराघवस्यैव नक्षत्रेषु पुनर्वसुः ॥ ३ ॥
चंपकः पुष्पजाती हि तुलसी वै तथैव च । अथवा नवकं चापि पुष्पाणां राघवप्रियम् ॥ ४ ॥
जातिश्वंशमंदारी तुलसी मुनिमालती । दमनः केतकी निंदी पुष्पाणां नवकं स्मृतम् ॥ ५ ॥
तथा नवविधं चान्नं राघवस्यातिवन्लभम् । मोदको लड्डुको मडो पूर्णगर्माथ फेणिका ॥ ६ ॥
बटकः पर्पटः खाद्यं घृतपक्वं नवं त्रिविधं । एतानि नव भक्ष्याणि राघवस्य प्रियाणि हि ॥ ७ ॥
अथवाऽन्यन्प्रवक्ष्यामि दिग्वाहनवकं शुभम् । मोदको लड्डुको मडो बटकः फेणिका तथा ॥ ८ ॥
वरान्नमोदनः शाकं पायसं नवकं शुभम् । अन्पच्छृणुष्व भो शिष्य नवान्न राघवप्रियम् ॥ ९ ॥
एकाक्षीति कुडवं च गोक्षीरं तण्डुलास्तथा । सप्तद्विकुडवाथ मुद्राथ त्रितुशास्तथा ॥ १० ॥
कुडवस्त्वेक एवाथ अर्करो कुडवा नव । त्रिकुडवं मधु प्रोक्तं घृतं च कुडवद्वयम् ॥ ११ ॥
माषीचं कुडवाष्टांशमितं नारीफलं तथा । कुडवस्त्वेक एवाथ जातीरप्रिस्तथैव च ॥ १२ ॥

हनुमान्जोका आवाहन करे ॥ ८१ ॥ बगहरको तीन परिधायोमसे श्वेत परिधिम भागीरथी गंगाजाका आवाहन कर ॥ ८२ ॥ रक्त परिधिम सरस्वतीजाका आवाहन करे ॥ ८३ ॥ काला परिधिमें यमुनाका आवाहन करे ॥ ८४ ॥ रमा और रामके भद्रम भी इसी तरह आवाहन करना चाहिए । रमानामके भद्रकी मुद्रामे ही विशेषता है । पहले रमाका आवाहन करके रामका आवाहन करना चाहिए । इस तरह आवाहन करके षोडशोपचारसे पूजन कर और बाकी बचे अन्नसे दिग्बलि दे ॥

इति रामतोभद्रदेवतास्थापनविधिः ।

श्रीरामदासने कहा — हे शिष्य ! रामचन्द्रजीका जो-जो वस्तुयें प्रिय हैं, अब उन्हें बतलाता हूँ । सब महीनोमें चैत्रका महोत्सव रामको प्रिय है । १ । शुक्ल कृष्ण इन दोनों पक्षोंमें रामकी शुक्लपक्ष प्रिय है । सब तिथियोंमें नवमी तिथि प्रिय है ॥ २ ॥ सूर्यवंशमें रामका जन्म हुआ था । इसलिये उन्हें रविवार विशेष प्रिय है । सब नक्षत्रोंमें उन्हें पुनर्वसु नक्षत्र प्रिय है ॥ ३ ॥ फूलोंमें चंपक तथा तुलसी प्रिय हैं । नौ पुष्प रामको विशेष प्रिय हैं ॥ ४ ॥ जैसे—जूही, चम्पा, मन्दार, तुलसी, वंजयन्ती, मालती, दमनक, केतकी और सिंदी इन्हीं फूलोंको एकत्र करके रामचन्द्रको अर्पित करना चाहिये ॥ ५ ॥ उसी तरह नौ प्रकारका अन्न भी भगवान्को प्रिय है । वे नवों ये हैं मोदक, लड्डुक, मड, पूरनगुडो, बटक, बताशफेनी, पापड़, खासड़ा घीमें बना हुआ पक्वान्न, ये नौ भी भक्ष्य पदार्थ रामचन्द्रजीको प्रिय हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ अब दूसरे नौ प्रकारके खाद्य पदार्थ बतलाते हैं—मोदक, लड्डुक, मड, बटक, फेणिका, भात, शाक, पर्पट और पायस ये ही नौ अन्न हैं । हे शिष्य ! अब रामको दूसरे प्रिय अन्न बतलाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ एषासी कुडव गौका दूध, उतना ही चावल, सवा दो कुडव छिस्का उतारी हुई मूँग ॥ १० ॥ एक कुडव चनी, तीन कुडव मधु, दो कुडव घी, एक कुडवका अष्टमांश काली मिर्च, एक कुडव तारियलकी गरी, एक कुडवका अष्टमांश जावित्री, इनको मिलाकर बनाया हुआ पाक रामचन्द्रजीको प्रिय है । इसलिये लोगोंको चाहिये कि ये पदार्थ बनाकर भगवान्को अर्पण करें ॥ ११ ॥ १२ ॥

प्राद्या मरिचमानेन नवाक्षं नवभिस्त्विदम् । तोषदं रामचन्द्रस्य भक्त्या कार्यं मदा नरैः ॥१३॥
 लघु नवाक्षं वक्ष्यामि नैवेद्यार्थं निरंतरम् । कुडवा नव गोक्षीरं तंडुलाः कुडवस्य च ॥१४॥
 चतुर्पाशमिना प्राद्याः कुडवाष्टांशममिताः । प्राद्या वितुषमुद्राश्च कुडवार्धं मिता स्मृता ॥१५॥
 घृतं सुदृढमं प्राद्या तावन्मानं मधु स्मृतम् । तावन्मानं श्रीफलं च मरिचं टंकसंमितम् ॥१६॥
 टंकार्धा जातिपत्रश्च नवाक्षं लघु कीर्तितम् । कुडवोऽर्कटकमितष्टको मापचतुष्टयम् ॥१७॥
 लघु नवाक्षमेतच्च राघवाय निवेदयेत् । निरतरं हि पूजायां राघवस्यातिहर्षदम् ॥१८॥
 शृतजम्बुकपिन्धाश्च बीजपूरं च दाडिमम् । खजूरौ नारिकेलश्च कदलीफलमेव च ॥१९॥
 पनसं चेति रामाय फलानि नव सर्वदा । एतान्यतिप्रियाण्यत्र पूजायां तन्निवेदयेत् ॥२०॥
 सीताफलं च जंबीरं नारंगं स्निग्धमञ्जकम् । जातीफलं मातुलुगं तथा द्राक्षाफलं शुभम् ॥२१॥
 उर्वाकं तथा धात्रीफलं चैतानि वै नव । फलानि रामपूजायामुक्तानि मुनिभिः सदा ॥२२॥
 नवोपचारस्तांबूलो राघवाय निवेदयेत् । नागवल्लीः कस्तुरं च खदिरः सीध एव च ॥२३॥
 जातीपत्रो लवणं च जातीफलवरांगके । एला चेति नवविधस्तांबूलः कीर्त्यते बुधैः ॥२४॥
 नवराजोपचाराश्च राघवाय निवेदयेत् । छत्रं सिंहासनं यानं चामरं ध्वजनं तथा ॥२५॥
 पानतांबूलपत्रं च पार्श्वं निष्ठीवनस्थं च । वस्त्रकोशश्चेति राज्ञामुपचारा नव स्मृताः ॥२६॥
 नवाश्च भोग्यवस्तूनि राघवाय निवेदयेत् । चंदनं पुष्पमालां च द्रव्यं परिमलं तथा ॥२७॥
 अवतंसः फलं चापि सुगन्धतलमुत्तमम् । ताम्बूलं कस्तुरी चापि तयारक्ताभताः शुभाः ॥२८॥
 एतानि भोग्यवस्तूनि राघवाय निवेदयेत् । नवोपचाराः शय्याऽपि राघवाय समर्पयेत् ॥२९॥
 धर्मकूतलिका रम्या वित्तानं चोपवर्णनम् । आदर्शो दीपिका तोयपात्रं प्रावरणं शुभम् ॥३०॥
 ध्वजनञ्चेति शय्यायाश्चोपचारा नव स्मृताः । नव वस्त्राणि रामाय देयान्पतिमहोति च ॥३१॥
 पीतांबरमुत्तरीयं चोष्णीपं कचुकं तथा । उष्णीपोर्ध्वस्थितं दिव्यं तथा च कटिबंधनम् ॥३२॥

॥ १३ ॥ अब मैं अर्पण करने योग्य लघु नवाक्ष बतलाता हूँ— नौ कुडव गायका दूध, एक कुडवका चतुर्पाश चाबल, कुडवका अष्टमांश बिना छिलकेकी घुनी मूंग, आधा कुडव चीनी, मूंगके बराबर ही धो, उतना ही मधु, उतना ही श्रीफल, एक टंक काली मिर्च, आधा टंक जातिपत्र, ये लघु नवाक्ष कहलाते हैं । बारह टंकका एक कुडव होता है और चार मासेके बराबर एक टंक होता है । यह लघु नवाक्ष रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिए । यदि निरन्तर यह नवाक्ष रामचन्द्रजीको अर्पण किया जाय तो भगवान् अतिशय प्रसन्न होते हैं ॥ १४-१८ ॥ आम, जामुन, कंथा, बीजपूर, अनार, खजूर, नारियल, केला और कटहल ये नौ फल रामचन्द्रजीको अतिशय प्रिय हैं । पूजामें इन्हें भी अर्पण करना चाहिये । कुम्हड़ा, नीबू, नारंगी, कसेरू, जायफल, बिजौरा, अंगूर, ककड़ी तथा आवला ये नौ फल रामकी पूजामें आना आवश्यक है ॥ १९-२२ ॥ उसी तरह नौ उपचारोंके साथ ताम्बूल भी रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिये । ताम्बूलके नौ उपचार ये हैं—पान, सुपारी, खैर, चूना, जावित्री, जायफल, कपूर, केसर और इलायची । नौ राजोपचार भी रामचन्द्रजीको अर्पण करने चाहिए । जैसे—छत्र, सिंहासन, रथ, चमर, पंखा, गिलास, पानदान, ओगलदान और कपड़ेकी पिटारी, ये ही राजाओंके नौ उपचार बतलाये गये हैं । उसी प्रकार नौ भोग्य वस्तु भी रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिए । वे वस्तुयें इस प्रकार जाननी चाहिये—चन्दन, फूलोंकी मालाएँ, इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य, तरह-तरहके फल, उत्तम सुगन्धित तेल, ताम्बूल, कस्तूरी और लाल बज्र, इन भोग्य वस्तुओंको रामचन्द्रजीको अर्पण करे । इसी तरह नौ उपचारयुक्त शय्या भी देनी चाहिये ॥ २३-२९ ॥ पलङ्ग, गद्दा, बढ़िया चाँदनी, तकिया, सीता, शीपक, जलपात्र, चदरा और ध्वजन, ये शय्याके नौ उपचार हैं । इसी तरह अत्यन्त सुन्दर नौ कपड़े भी रामचन्द्रजीको अर्पण करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जैसे—पीताम्बर, उपरना, पगड़ी, कंचुकी, पगड़ाके ऊपर बँधनेवाला

मुखशोधनार्थं च त्रिमुक्तं ह्यकयोग्यकम् । तथा प्रावरणं दिव्यं नव वस्त्राणि भो द्विज ॥३३॥
 नव दिव्याम्बलकरा देयाः श्रीगणवाय हि । कुडले कंकणे माला केयूरे नूपुरे तथा ॥३४॥
 पदजं कटिसूत्रं च भृङ्गला मुद्रेकेति च । एते नव त्वलंकारा देया रत्नाय भक्तितः ॥३५॥
 नव गिण्य मया रामप्रतिदानि महान्ति च । नरकान्पन्नगव्याणि तवाग्रे दीक्षितानि हि ॥३६॥
 मुख्याम्बुज पदार्था हि नवकेषु मया स्मृताः । एभ्यस्त्वन्ये पदार्थाश्च ये ये सति महत्स्रशः ॥३७॥
 ते सर्वे राघवाशक्तिभक्त्या देयास्तु पूजने । प्रत्यहं रामचन्द्रस्य त्रिकाल पूजन नरैः ॥३८॥
 कार्यं विद्यानुसारेण न कदा शास्त्रमाचरेत् । प्रतिपदिनमारम्य यावच्च नवमीतिथिः ॥३९॥
 तत्रद्विशेषतः कार्यं प्रत्यहं रामपूजनम् । विविधैर्मण्डपाद्यैश्च सपूज्य रघुनन्दनम् ॥४०॥
 पारायण नदग्रे हि कर्तव्यं नवभिदिनैः । आनन्दरामचरितं पठनीयं तु सर्वदा ॥४१॥
 नवम्यां राघवं रामतीर्थे वाहनमस्थितम् । नीत्वा मंगलनृत्याद्यैर्ध्वजाद्यैर्द्वन्द्वमिस्वनः ॥४२॥
 अभिषेकस्तत्र कार्यो रुद्रसूक्तैः सुगुणदैः । तथा पुरुषसूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च ॥४३॥
 त्रिण्यसूक्तादिभिः सूक्तैरभिषिच्य रघूतमम् । पूजनं विष्णुरेणाथ कृत्वा गेहं समानयेत् ॥४४॥
 ततो हरेः कान्तनानि स्वयं कार्याणि वा परैः । गायकैः कर्णीयानि श्रेयसाभिर्नर्तनान्यपि ॥४५॥
 ततः स्वयमुपोष्याथ भक्त्या विप्रप्रपूजनम् । कार्यं वै गायकानां च पूजनं विस्तरेण हि ॥४६॥
 रात्रौ जागरणं कार्यं कथाभिर्गीतनृत्यकैः । दशम्यां प्रातुरुत्थाय स्नात्वा सपूज्य राघवम् ॥४७॥
 मध्यह्ने रामचन्द्रस्य पूजनं ब्राह्मणेषु हि । कार्यं तस्य विधानं ते वदाम्यद्य शृणुष्व तन् ॥४८॥
 एकं धूम्रं तु विप्रस्य विप्राष्ट च निमंत्रयेत् । भूमिं गृहे विलिङ्ग्याथ गोमयेनातिविस्तृताम् ॥४९॥
 रंगवल्क्याश्च पद्मानि नीलपोतादिवर्णकैः । तत्र समंततः कृत्वा मध्ये सिंहासनं शुभम् ॥५०॥
 स्थाप्य तत्र महावस्त्रैरासनं परिकल्पयेत् । अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिंगात्मकं शुभम् ॥५१॥

दिव्य वस्त्र, कमरबन्द, रुमाक, अल्की तथा दुपट्टा ये नौ दिव्य वस्त्र श्रीरामचन्द्रजीकी देना चाहिए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इसी तरह नौ प्रकारके दिव्य अलङ्कार भी समर्पण करे । कुण्डल, कंकण, माला, केयूर, नूपुर, पदक, कटिसूत्र (करचन), मिकडो और मुँररी, ये नौ अलङ्कार रामचन्द्रजीकी भक्तिपूर्वक देने चाहिये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे गिण्य ! इस तरह मेरे रामको प्रसन्न करनेवाले अनिश्चय नवक (नौ वस्तुओंका संग्रह) बतलाया । इनमें मेरे मुख्य मुख्य चीजोंका ही दिग्दर्शन कराया है । इनके अतिरिक्त भी हजारों पदार्थ हैं । पूजाम उन्हीं भा भक्तिपूर्वक अर्पण करना चाहिए । भयंका उचिन है कि प्रतिदिन रामचन्द्रजीकी त्रिकाल पूजन कर ॥ ३६-३८ ॥ अपनी जैसी सामर्थ्य हा, उसके अनुसार त्वं भी कर । रामचन्द्रजीकी पूजामें कभी कार्पण्य तो करना ही नहीं चाहिए । प्रतिपदासे लेकर नवमी पर्यंत प्रतिदिन विशेष पूजन करनेका विधान है । वह इस प्रकार है-चित्र विचित्र मंडप बनाकर उसमें रामचन्द्रजीकी पूजा करके उनके आगे नौ दिनोंमें इस आनन्दरामायणका पारायण करे ॥ ३९-४१ ॥ नवमीको भगवान्की सवारीपर बिठाकर मंगलमय गुड़ही-नगाड़े आदि बाजो तथा ढव्वा आदिके साथ परम ध्वज रुद्रमूक, पुरुषसूक्त, श्रीसूक्त तथा विष्णुसूक्त आदिसे रामतीर्थमें रामचन्द्रजीका अभिषेक करे । इसके अनन्तर शिश्नारपूर्वक पूजन करके उन्हें घरपर ले जाय ॥ ४२-४४ ॥ रातको स्वयं हरिकीर्तन करे या और लोगोंसे करावे । तदनन्तर भक्तिपूर्वक विप्रों तथा गायकोंका पूजन करे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कथा गीत तथा नृत्य आदि करता हुआ रात्रिभर जागरण करे । दशमाको सवेरे उठकर स्नान करे और रामचन्द्रजीका पूजन करके मध्याह्नके समय ब्राह्मणोंके बीचमें उनका पूजन करे । हे गिण्य ! मैं उसका विधान बतलाता हूँ सुनो ॥ ४७ , ४८ ॥ एक ब्राह्मणदम्पती तथा आठ अन्य ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे । घरकी भूमिको गोबरसे खूब फँसावमें लिखावे । फिर नील-पोत आदि वर्णोंसे चारों ओर चौक पुरवाकर बीचमें शुभ सिंहासन रखे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदनन्तर बड़े-बड़े धम्पोंसे सिंहासनको

अथवाऽष्टोत्तरशतं रामलिङ्गात्मकं शुभम् । अष्टोत्तरमहस्रं वा रामतोभद्रमुत्तमम् ॥५२॥
 अथवाऽष्टोत्तरशतं रामतोभद्रमुत्तमम् । विद्रामने निधायथ रामस्यामनमुज्ज्वलम् ॥५३॥
 भद्रोपरि सपत्नीकं तत्र विप्रं निवेशयेत् । पश्चिमाभिमुखे वामभागे तन्त्रीं निवेशयेत् ॥५४॥
 सीतारामौ तु दम्पत्योरावाह्यं तदनन्तरम् । तन्पुत्रे लक्ष्मणं विप्रं चितयेच्च ततः परम् ॥५५॥
 भरतं राममप्ये तु आवाह्यं भृगुरे तथा ॥५६॥

विप्रेऽञ्जनिमुतं चापि रामस्याग्रे विचित्रयेत् । रामस्य वायुदिग्भासान्मुग्रीवादीन् विचिन्त्येत् ॥५७॥
 चतुष्कोणेषु विप्रेषु ततः पूजनमाचरेत् । नवपत्रनूपुरैश्च शेषा श्रीराघवस्य हि ॥५८॥
 अथवा पञ्चायतनं पञ्चविप्रेषु चितयेत् । समानं शक्तिहीनेन नरेण सर्वदा भुवि ॥५९॥
 अथवा यत्नितं रामस्थाने भक्त्या निवेशयेत् । पूज्यं कल्पयति साक्षां यतिनामे निवेश्य च ॥६०॥
 कार्यं मध्यमपूजनं च ततो गेहे मुद्रामिनीम् । सीतां मन्त्रा पुनः पूज्य भोजनीयां सविस्तरम् ॥६१॥
 आदौ सीताराघवाभ्यां कृत्वा पूजनमुत्तमम् । ततः पूजा तु सर्वेषां कार्या नानोपचारकैः ॥६२॥
 क्रमेण लक्ष्मणादीनामुपचारैस्तु पौडशैः । अथवा महं तन्त्रेण रामपूजनमाचरेत् ॥६३॥
 आदाववाह्यं विप्रेषु देयमायनमुत्तमम् । ततः प्राश्नाल्य पादौ च सर्वेषां च पृथक् पृथक् ॥६४॥
 यतिपादोदकं भिन्नं स्थानीयं नरोत्तमम् । ततः पृथक् पृथग्दर्शान् दत्त्वा मुचन्दनादिभिः ॥६५॥
 ततश्चाचमनं दत्त्वा स्नानार्थं जरुमुन्मृजेत् । ततो वस्त्रं समर्प्यार्थं देयान्याभरणानि हि ॥६६॥
 समर्प्य ब्रह्मभराणि गन्धं देयं मनोहरम् । ततो रक्ताक्षता देयाः पुष्पमालास्तथाऽपराः ॥६७॥
 ततो माङ्गल्यवस्तूनि ततश्छत्रं च चामरम् । व्यजनं च ततो देयं देयस्तूर्णारकस्तथा ॥६८॥
 देया घाणाश्च चापानि देयानि हि पृथक् पृथक् । दत्त्वा परिमलादीनि भोग्यवस्तूनि विस्तरात् ॥६९॥
 श्रुत्वा देवस्तथा दीपो नैवेद्यो दीयतां ततः । अथवाऽन्यच्छर्करादि नैवेद्यार्थं समर्पयेत् ॥७०॥

संकरे । उसपर अष्टोत्तरशत अथवा अष्टोत्तरसहस्र लिङ्गात्मक भद्र अथवा रामतोभद्र बनाकर भद्रके ऊपर विप्रदम्पतीको विद्रामने, विप्रके वामभागमें पश्चिमाभिमुख उसकी स्त्री बैठे ॥ ५१-५४ ॥ तदनन्तर उसी विप्रदम्पतीमें सातारामका आवाहन करके ब्राह्मणके पीछे लक्ष्मणका आवाहन करे ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणके दाहिनी ओर भरतका ध्यान करे । रामचन्द्रजीके आगे उस ब्राह्मणमें ही अञ्जनीपुत्रका ध्यान करे । रामके बायव्य कोणमें मुग्रीव आदिका ध्यान करे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ फिर चारों कोनोंमें ब्राह्मणोंका पूजन करे । यह श्रीगणेशचन्द्रजीका नवायतन पूजन है ॥ ५८ ॥ अथवा पाँच ब्राह्मणोंमें रामका पञ्चायतन पूजन करे । लेकिन यह विधान उसीके लिए है कि जो सामर्थ्यविहीन हो ॥ ५९ ॥ अथवा रामचन्द्रजीके स्थानमें यतिकी स्थापना करे । सुगरीमें सीताका कल्पना करके उसे यतिके वामभागमें रख दे ॥ ६० ॥ तदनन्तर अच्छी तरह रामका पूजन करे । इसके बाद सोहागिन विप्रपत्नीको सीता मानकर विस्तरपूर्वक पूजन कर और भोजन करा दे ॥ ६१ ॥ पहले सीता और रामचन्द्रजीका पूजन करके अन्य लोगोंका भी नाना प्रकारके उपचारोंसे पूजन करे । क्रमशः लक्ष्मण आदिका पौडश उपचारोंसे पूजन करे । अथवा शास्त्रानुसार रामका पूजन करे ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ पहले विप्रोंका आवाहन करके उत्तम आसन दे । फिर अलग-अलग उन लोगोंके पैर धुकर उनकी पादोदक अलग रख दे । तदनन्तर अच्छे चन्दन आदिसे पृथक् पृथक् अर्घ्य आदि दे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ तदनन्तर आचमनके लिए जल देकर स्नानके लिए जल छोड़े । तत्पश्चात् वस्त्र प्रदान करके पूजन समर्पित करे ॥ ६६ ॥ फिर यज्ञोपवीत देकर मनोहर गन्धदान दे । इसके बाद लाल अक्षत एवं पुष्प-दान दे ॥ ६७ ॥ इसके पश्चात् मांगल्य वस्तुयें, फिर छत्र, चमर, व्यजन तथा तूणार दे । तदनन्तर घुघु-व-ष आदि देकर इत्र आदि भोग्य वस्तुओंको विस्तरपूर्वक प्रदान करे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ तदनन्तर धूप, दीप, नैवेद्य दे । यदि नैवेद्यके लिए कोई एकवान आदि न बना सके तो उसके निमित्त शर्करा आदि प्रदान करे ॥ ७० ॥

नानाफलानि दैवानि दैयस्तांबूल उत्तमः । दक्षिणां च ततो दत्त्वा दैयो भुङ्क्ते उज्ज्वलः ॥७१॥
नीराजनं ततः कृत्वा मंत्रपुष्पाणि दीयताम् । प्रदक्षिणानमस्कारान् च कृत्वा ततः परम् ॥७२॥
मृत्युगीतादिकं कृत्वा प्रार्थयेद्गुणायकम् । विनिमील्य करौ पादौ रामाग्रे संस्थितैर्नरैः ॥७३॥

वामे भूमिमुता पुरस्तु हनुमान् पृष्ठे सुमित्रासुतः

शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वद्वयोर्वायव्यकोणादिषु ।

सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तागमुनो जाम्बवान्

मण्यो नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥७४॥

रामो हत्वा दशास्यं द्विजवचनगुरुत्वेन यात्राऽस्त्यज्ञान

कृत्वा हुक्मन्वातिभोगानवनितलविशर्गी गृहीत्वाऽथ सीताम् ।

लब्ध्वा नानास्तुपास्तान्धवनितलगतान्पाधिवादौश्च जित्वा

कृत्वा नानोपदेशान् गजपुरनिकटे स्वीयलोकं जगाम ॥७५॥

नवकाण्डमयः श्लोकः पठित्वाऽयं हरेः पुरः । ततः क्षमाप्य श्रीगमं पूजां तस्मै समर्पयेत् ॥७६॥

मया माधवते रामनवम्यां यन्प्रपूजनम् । पागण्णादिकं सर्वं नवरात्रेऽपि यत्कृतम् ॥७७॥

सन्मते तेऽर्पितं त्वद्य प्रसन्नो भव मे प्रभो । नरायनपूजेयं या कृता नवमीदिने ॥७८॥

नवविप्रेषु साऽप्यद्य तेऽर्पिता राम वै मया । त्वं गृहाण यथाशक्यं कृतां तां च प्रसीद मे ॥७९॥

एवं समर्प्य रामाय सकलं पूजनादिकम् । ततो भोजनरोन्या तां सन्निवेद्याथ भोजयेत् ॥८०॥

पुनर्दत्त्वा तु तांबूलं दक्षिणां तु विमर्जयेत् । ततः स्वर्गं विप्रतीर्थं गृहीत्वा च ततः परम् ॥८१॥

यतिपादोदकं प्राश्य देवतीर्थं ततः परम् । गृहीत्वा भोजनं कार्यं सुहृन्मित्रजनैः सह ॥८२॥

समर्पितं यद्यतये ततश्च ब्राह्मणाय हि । दैयं स्वगुणैः सर्वं ब्रह्मसूत्रादिकं शुभम् ॥८३॥

एवं व्रतं राघवस्य पक्षे पक्षे प्रकारयेत् । अथवा शुक्लपक्षे हि कार्यं व्रतमिदं शुभम् ॥८४॥

इसके बाद नाना प्रकारके फल, ताम्बूल, दक्षिणा, सुन्दर दर्पण, नीराजन, मन्त्रपुष्प, प्रदक्षिणा, नमस्कार आदि क्रमशः समर्पण करे । तदनन्तर मृत्यु-गीत आदि करके सब लोग सामने खड़े होकर रामचन्द्रजीसे प्रार्थना करें ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वामभागमें सीता, सामने हनुमान्जी, पीछे लक्ष्मणजी, दोनों बगल भरत और शत्रुघ्न, बायव्य आदि कोणोंमें सुग्रीव, विभीषण, युवराज अङ्गद, जाम्बवान् आदि खड़े हैं और उनके बीचमें बैठे हुए नील कमलके समान कोमल दीप्तिसम्पन्न श्याम स्वरूपधारी रामका मैं भजन करता हूँ ॥ ७४ ॥ रामन रावणको मारकर ब्राह्मणके वास्यरूपी गौरवसे प्रेरित हो यात्रा तथा अस्त्यज्ञ आदि किये और विविध प्रकारके भोग भोगे । फिर पाताललोक जाती हुई सीताको उन्होंने पृथ्वीसे वापस लिया । इसके बाद पृथ्वी-मण्डलके बड़े बड़े राजाओंको परमत्त करके हस्तिनापुरके आस-पासवाले बहुतसे देशोंको जीता । उन राजाओंको कुमारियोंके साथ अपने पुत्रोंके ब्याह किये और अन्तमें अपने परम धामको चले गये ॥ ७५ ॥ इस भी काण्डात्मक श्लोकको रामके सामने पढ़कर क्षमा माँगे और जो हुई पूजा भावान्को अर्पण करे ॥ ७६ ॥ साथ ही यह कहता जाय कि हे प्रभो ! मैंने इस मासवतमें रामनवमी तथा नवरात्रमें जो पूजन-पारायण आदि किया है, वह सब आपको अर्पण है । हे प्रभो ! आप मरे ऊपर प्रसन्न हो । रामनवमीके जो नौ विप्रोंमें मैंने आपकी नवरायन पूजा की है, वह भी आपको अर्पित है । यथाशक्ति की हुई इस पूजाको स्वीकार करके आप मुझपर प्रसन्न हो ॥ ७७-७९ ॥ इस तरह राघवका सब पूजन आदि समर्पण करके विधिवत् उन विप्रोंको आसनपर बिठाकर भोजन कराया ॥ ८० ॥ फिर ताम्बूल और दक्षिणा देकर उन्हें विदा करे । तदनन्तर स्वर्ग ब्राह्मणोंके चरणोदक, यतियोंके पादोदक एवं देवताओंके चरणोंके पुनः चरणजलसे आशमन करके नातेदारों, मित्रों तथा बान्धवोंके साथ स्वयं भोजन करे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तदनन्तर

मासे मासे सर्वदेव रामोपासकमानवैः । एवं मामव्रतं प्रोक्तं राघवस्यातितोषदम् ॥८५॥
 संति व्रतान्यनेकानि जगन्त्या पुण्यदानि हि । तथाप्यनेन सदृशं न भूतं न भविष्यति ॥८६॥
 व्रतानामुत्तमं चैतद्भक्तिमुक्तिप्रदायकम् । अवश्यमेव कर्तव्यं रामोपासकमानवैः ॥८७॥
 एवं शिष्य मया प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । सविस्तारं तत्राग्रे हि राघवस्यातितोषदम् ॥८८॥

विष्णुदास उवाच

श्रीरामनवमीमासव्रतस्योद्यापनं वद । कदा कार्यं कथं कार्यं गुरो कृत्वा कृपां मयि ॥८९॥
 श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वन्द्य सावधानमनाः शृणु । नवमं वन्द्यमासनवमीव्रतमुत्तमम् ॥९०॥
 कृत्वा चोत्थापनं कार्यं चैत्रे श्रीरामजन्मनि । नवम्यां समुपोष्याथ कर्तव्यमधिवामनम् ॥९१॥
 गृहे वृन्दावने वाथ गोष्ठे देवगृहादिषु । समार्जनं गोमयेन कार्यं वा चन्दनादिभिः ॥९२॥
 ततः पाषाणचूर्णैश्च नानाधारादिकानि हि । भुवि संलेखनीयानि नीलपीतादिवर्णकैः ॥९३॥
 रञ्जनीयानि रम्याणि ततः पत्रादिमस्थले । पूर्वाङ्कगममद्राणां मध्ये त्वेकं वरासनम् ॥९४॥
 लिखित्वा चित्रवर्णैश्च प्रोक्तैरेव सुरङ्गयेन् । तस्योपरि महान् रम्यश्चित्रवर्णश्च मण्डपः ॥९५॥
 देयो द्वागणि चत्वारि कार्याणि तोरणानि च । कदलीस्त्रिमयुक्तानि चेतुदण्डयुतानि च ॥९६॥
 नानापटाकिंकिणीभिर्वर्णितान्युज्ज्वलानि च । रम्यादर्शमण्डितानि विचित्राणि शुभानि च ॥९७॥
 चित्रध्वजैर्वितानैश्च मुक्ताहारैर्पुनान्यपि । अथ तद्राममद्रस्थे कलशे वारिपरिते ॥९८॥
 ताम्रपात्रं रामचन्द्रं नवाभननचिह्नितम् । मातया पूजयेद्वात्री महोत्साहपुरःसरम् ॥९९॥
 नवपलमितां मूर्तिं हौमी कृत्वा प्रपूजयेत् । मोता हौमी प्रकर्तव्या शुभाऽष्टपलममिता ॥१००॥
 राजमास्ते लक्ष्मणाद्याः पृथक् पञ्चपलैः स्मृताः । अशर्का च तदर्धेन तदर्धार्धेन वै पुनः ॥१०१॥

यतिगो तथा ब्राह्मणोको जा कृच्छ्र दिया हा, वही अपने गुठका भी दे ॥ ८३ ॥ इस तरह हर पक्षमें रामचन्द्र-
 जोका व्रत करे । अथवा दाना पक्षमें न कर सके तो केवल शुक्लपक्षमें यह रामव्रत करे ॥ ८४ ॥ रामकी
 उपासना करनेवालेके लिए रामको प्रसन्न करनेवाला यह मासव्रत मैने बतलाया ॥ ८५ ॥ यद्यपि संसारमें
 बहुतसे पुण्यदायक व्रत हैं । फिर भी इस व्रतके बराबर न कोई व्रत हुआ है और न होगा ॥ ८६ ॥ यह सब
 व्रताम उत्तम और भूति-भुक्ति देनेवाला व्रत है । रामके उपासकोंको यह व्रत अवश्य करना चाहिए ॥ ८७ ॥
 हे शिष्य ! इस प्रकार रामको अन्यन्त प्रसन्न करनेवाला सब व्रताम उत्तम व्रत मैने विस्तारपूर्वक तुम्हे कह
 सुनाया ॥ ८८ ॥ विष्णुदासन कहा—अब अब मुझपर कृपा करके यह बताइए कि श्रीरामनवमीके व्रतका
 उद्यापन कब और कैसे करना चाहिए । ८९ ॥ श्रीरामदासन कहा—हे बरह ! तुमने बहुत ही अच्छी बात पूछी
 है । इसे सावधान मन होकर सुना । दो वर्ष पूर्वन्त रामका मासनवमी व्रत करना चाहिए । इसके बाद
 चैत्र मासमें श्रीरामनवमीके दिन इसका उद्यापन करना चाहिए ! यह कार्य नवमीको उपवास करके किया
 जाना चाहिए ॥ ९० ॥ ९१ ॥ घरमें, वृन्दावन (तुलसीको बगीचा) में, गाथाश्रम अथवा किसी मन्दिरमें
 चन्दन या गोबरसे चौका दिलाकर पाषाणके चूर्ण आदिस अनेक प्रकारके नील-पीत कमल आदि बनावे
 ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ इसके बाद पत्र आदिपर पूर्वोक्त राममद्रामसे किसी एक मद्रको बनावे । उसके बीचमें एक
 सुन्दर आसन रखे ॥ ९४ ॥ आसन भी अनेक प्रकारके रङ्ग-विरङ्गे रङ्गोंसे रङ्गे और उसके ऊपर अतिशय
 सुन्दर और चित्रवर्णका मण्डप बनावे ॥ ९५ ॥ उसमें चार द्वार बनाकर केलेके लते तथा इन्द्रदण्डके साथ-
 साथ तोरण लगावे ॥ ९६ ॥ उसमें अनेक प्रकारके चंद्रा किंकिणी आदि बाजे बाँधकर उसका शृंगार करे ।
 उसे चित्र-विचित्र ध्वजा, वितान, मोतियोंके हार आदिसे सुमंजस करे । इसके अनन्तर रामतोषकके बीचमें
 जलपूर्ण कलशपर ताम्रका पात्र रखकर नवयवनके चिह्नसे चिह्नित सोदा समेत रामका पूजन करे ॥ ९७-९८ ॥
 नौ पलकी सुवर्णमयी रम्यमूर्ति बनवाना चाहिए । आठ पत्रका सातामूर्ति बनेगी ॥ १०० ॥ लक्ष्मण आदि-

तस्याप्यर्थं तदर्थार्थं वित्तशाल्यं न कारयेत् । षोडशैरुपचारैश्च पूजोक्ता निशि जागरः ॥१०२॥
 दशम्यां प्रातरुन्धाय स्नान्वा सपूज्य राघवम् । राममंत्रेण हवनं कार्यं नवमहस्रकम् ॥१०३॥
 तिलाग्रैः पायमाद्यैश्च नवान्नेनाथ तस्मृतम् । तद्दशांशेन क्षीरेण तर्पणं हि प्रकारयेत् ॥१०४॥
 तस्यापि च दशांशेन मार्जनं द्विजभोजनम् । कर्ममुद्रां हस्तमुद्रां वमने जलामृश्रकम् ॥१०५॥
 चित्रामनमुत्तरीयं मुकुटं झञ्जरीं तथा । कांस्यपात्रं भोजनस्य नवान्नेन प्रपूतम् ॥१०६॥
 घृतपात्रं कांस्यमयं नवान्नोपरि सस्थितम् । पादुके पुष्पकं दिव्यं यत्किञ्चिद्राघवस्य च ॥१०७॥
 तांबूलं दक्षिणां चापि प्रत्येकं भूमुराय हि । अपयेन्मकलं चैन्धमेव सर्वान् समर्पयेत् ॥१०८॥
 ततो गुरुं समभ्यर्च्य प्रणम्य च पुनः पुनः । तामर्चामर्पयेन्मर्चां गुह्ये दक्षिणान्विनाम् ॥१०९॥
 ततो गुरुं प्राययेत्तं प्रणम्य च पुनः पुनः । मासे मासे नवम्यां तु सोऽद्यपनत्रनं मया ॥११०॥
 यत्कृतं नव वर्षाणि तेन तुष्यतु राघवः । अग्रेऽपि यावज्जीवामि तावन्कालं करोम्यहम् ॥१११॥
 व्रतानामुत्तमं चेदं तुष्टयर्थं राघवस्य च । गुरो त्वत्कृपया रामो मां प्रसीदतु सीतया ॥११२॥
 एवं सप्रार्थ्य स्वीयं तं गुरुं नत्वा विमर्जयेत् । ततः स्वयं हि भुञ्जीत मुहन्मित्रमुनादिभिः ॥११३॥
 एवमुद्यापनं कृत्वा कार्यमग्रे व्रतं पुनः । मासे मासे राघवस्य न त्याज्यं सर्वथा नरैः ॥११४॥
 एकादशीव्रतं नित्यं यथा तत्क्रियते नरैः । तथा मामव्रतं चेदं नित्यमेव स्मृतं धुर्ध्रुवैः ॥११५॥
 अशक्तेन यथाशक्त्या कार्यमुद्यापनं व्रतम् । उपोष्या नवमी शुक्ला सर्वदेव नर्भृवि ॥११६॥
 नवम्यां शुक्लपक्षे यो भुङ्क्तेऽन्नं मूढधीर्नरः । गौरवे कल्पपर्यन्तं तस्य धामः स्मृतो बुधैः ॥११७॥
 एव शिष्य त्वया यच्च पृष्टं तत्ते निवेदितम् । का तेऽन्या श्रोतुमिच्छामि नां वदस्व वदामि ते ॥११८॥

की मूर्तियाँ पाँच-पाँच पल चाँदाका बनना । यदि ऐसा करनका सामर्थ्य न हो तो उससे आधे वजनकी मूर्ति बनवाये और यदि वह भी न कर सके तो आधेक आधे वजनका मूर्तियाँ बनवाना चाहिए । वह भी न हो सके तो उसके भी आधे वजनकी बनवाये, किन्तु कतृसा न कर । षोडश उच्चरोस पूजन तथा रात्रिको जागरण अवश्य करना चाहिए ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ दशमीको सबरे उठकर स्नान और रामका पूजन करके नौ हजार हवन करे ॥ १०३ ॥ हवन नित्यसे, स्वयंसे अथवा नवाग्रसे करना उचित है । तदनन्तर हवनके दशांश दूधसे तर्पण करे । उसका भी दशांश मार्जन करे और मार्जनका भी दशांश ब्राह्मणोंको भोजन करावे । इसके अनन्तर हस्तमुद्रा तथा कर्ममुद्राके साथ वस्त्र, यज्ञार्घ्यत, चित्रासन, उत्तरीय वस्त्र, मुकुट, झारी, भोजन-के लिए नवाग्रमे पूर्ण कांस्यपात्र, घृतपात्र, इन सबके साथ कांस्यमय पात्रोमे नवाग्रपर रखकर घरणपादुका, दिव्य आनन्दरामायणकी पुस्तक, तांबूल, दक्षिणा ये सब वस्तुएँ प्रत्येक ब्राह्मणका ॥ १०४-१०७ ॥ तदनन्तर गुरुका पूजन करके उसे एक गौ दे और दक्षिणा समेत वह पूजनमाग्यी गुरुको अर्पण करे ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ इसके बाद गुरुको बारम्बार प्रणाम करके कहे—हे गुरो । महोने महीने उद्यापनके साथ मैने जो नौ वर्षपर्यंत रामव्रत किया है । इससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हों । आगे भी जब तक जाँवित रहूँगा, बराबर यह उत्तम व्रत भगवान्को प्रसन्न करनेके लिए करता रहूँगा । हे गुरो । आपकी कृपासे मुझपर सोता और राम प्रसन्न हों ॥ ११०-११२ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करनके बाद अपन गुरुजोंका प्रणाम करके उनको विदा करे । इसके बाद सम्बन्धियों, मित्रों और पुत्रादिकोंके साथ स्वयं भी भोजन कर ॥ ११३ ॥ इस तरह उद्यापन करके महीने-महीने यह व्रत करता रहे, त्यागे नहीं ॥ ११४ ॥ जिस तरह लोग एकादशीका व्रत करते हैं । उसी तरह यह मासव्रत भी सदा करन रहना चाहिए ॥ ११५ ॥ यदि विशेष सामर्थ्य न हो तो अपनी शक्तिके अनुसार ही इसका उद्यापन करे । संसारके लोगोंको चाहिए कि सर्वदा शुक्लपक्षकी नवमीको अवश्य उपवास किया करे ॥ ११६ ॥ जो मूर्ख मनुष्य शुक्लपक्षकी नवमीको अन्न खाता है, उसे एक कल्पतक रौरव नरकमें नियास करना पड़ता है । यह बात कितन ही विद्वानोंकी कहो हुई है ॥ ११७ ॥ रामदासने कहा—हे शिष्य । तुमने भी पूछा, यह मैं तुमसे कहा । अब और क्या सुनना चाहते हो, यह नवमीको तो मैं कहूँ ॥ ११८ ॥

विष्णुदास उवाच

गुरो न्वया राघवस्य श्रीगमनवमीव्रतम् । मःसे मःसे प्रकर्तव्यमिति प्रोक्तं ममग्रतः ॥११९॥
 तत्केनाचरितं पूर्वं मिदिल्लब्धाऽत्र केन हि । तन्मये विस्तरेणैव वद कृत्वा कथं मये ॥१२०॥
 अन्यथे प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि । अस्तकेन नरेणेदं ब्रूतं कार्यं कथं महत् ॥१२१॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सम्यक् पृष्टं स्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । आसीत्पुरा द्विजः कश्चिन्केरले राघव-पतेः ॥१२२॥
 नाभूत्तस्य विवाहोऽत्र निर्धनस्य जनस्य च । नामीतस्मै गेहमपि न माता न पिताऽपि च ॥१२३॥
 तस्मैको नियमश्चासीद्विद्वस्य च तं शृणु । निन्यं प्रातः समुन्धाय कृतमालानदी तले ॥१२४॥
 स्नात्वा नदीमिकतायां मिकतावेदिका नव । कृत्वा तत्र जनकजाग्रहितं रघुनन्दनम् ॥१२५॥
 पत्रनिर्मितश्रीरामलिङ्गात्मकवरामने । मय्यमयां वेदिकायां सन्ध्याप्य धातुनिर्मितम् ॥१२६॥
 अष्टदिषु वेदिकासु तरुपत्रामने पृथक् । ममनतो राघवस्य लक्ष्मणादीन्व्यवेक्ष्यत् ॥१२७॥
 ततः स राघवं प्राह रामं राजावलोचनम् । कर्तुमावश्यकं कर्म गन्तुमर्हसि सन्धरम् ॥१२८॥
 इत्युक्त्वान्न स्वयं पृष्ठे निवेश्य रघुनन्दनम् । कियद्दूरं रहा वृक्षखंडे गत्वा द्विजोत्तमः ॥१२९॥
 रामं वृणुष्विति स्थाप्य तदग्रे पात्रमुत्तमम् । मज्जलमृत्तेकां चापि सन्ध्याप्य च जवन हि ॥१३०॥
 किञ्चिद्दूरं स्वयं गत्वा स्थितवान् स किपन्क्षयम् । राधानिकं पुनर्गत्वा पादप्रक्षालनदिकम् ॥१३१॥
 अकरोन्मृत्तिकाशीघ्रं च तस्य स्वकरेण हि । दन्त्राऽन्यपन्नतोपेन रामायाचमनं ततः ॥१३२॥
 दत्तकाष्ठेन तद्वतान्नशोभ्य भक्तिपूर्वकम् । गृहपार्श्वे जलं दत्त्वा कपोलं शीतलं पुनः ॥१३३॥
 समर्पाचमनार्थं स वस्त्रेणास्यं प्रमार्जयत् । मंभाज्यं हस्तौ पादौ चरामस्य रामना द्विजः ॥१३४॥
 तं विगृह्य पुनः पृष्ठं नम्राभूतः शनैः शनैः । मिकतावेदिकायां च पूर्वस्थाने न्यवेशयत् ॥१३५॥
 एवं सीतां लक्ष्मणं च भरतं लवणानकम् । मुग्धाशरीरं पृथक् नीत्वा वक्ष्यकादीन्पकारयत् ॥१३६॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरु ! अभी आपने हमसे कहा है कि यह न महान योगमनवमा स्नान करना चाहिए ॥११९॥
 इस वक्तो किसने किया था और इसके प्रभावसे किसका सिद्धि प्राप्त हुई थी ? कृपा करके यह विस्तारपूर्वक
 हमें बतलाइये ॥१२०॥ हाँ, एक बात मैं आपसे और पूछना चाहता हूँ । वह यह कि जा प्राणा असमर्थ है, वह
 यह पत कैसे करे ? ॥१२१॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान
 मनसे सुनो । एक समय रत (केरल) देशमें रामका प्रतिम तत्पर एक ब्राह्मण रहा करता था ॥१२२॥
 दीनताके कारण न उसका क्याह हुआ था, न सन्तकार था और न माता-पिता हो थे ॥१२३॥ किन्तु उस
 द्रविडका एक नियम था, उसे सुनो । वह प्रतिदिन सबरे उठता तो एक सुन्दर माला बनाना । फिर नदीमें
 स्नान करके बासूने नौ वेदियाँ बनाकर उनपर पत्र लिखकर के श्रीरामलिंगके असनपर लक्ष्मणेश्वरमें धातु-
 निर्मित रामकी प्रतिमा बैठाकर तरुपत्रके असनोपर धातु और राम लक्ष्मण आदिको बिछालता था ॥१२४॥१२५॥
 ॥१२६॥१२७॥ इसके बाद राजावलोचन रामसे कहता—हे राम ! मैं आपका पूजन करूँगा । इसलिए
 कृपा करके पधारिए ॥१२८॥ ऐसा कहकर रामको अपनी पीठपर लादता और कुछ दूर एकांतकी आड़ियों-
 में ले जाकर किसी घास उगी हुई जगहपर बिछालता । उनके आगे जलसे भरा हुआ उत्तम पात्र और
 मृत्तिका रखकर स्वयं वहाँसे कुछ दूरीपर जाकर बैठता और थोड़ी देर बाद गोटकर जाता तो अपने हाथोंसे
 उनका पादप्रक्षालन और मृत्तिकाशुद्धि आदि करता । फिर एक दूसरे पात्रके द्वारा जल देकर रामकी कुत्से
 करता था ॥१२९-१३२॥ वृत्तान्तके काष्ठकी दालीनसे उनके शीन मोजकर पड़ने कुछ गरम और बाजमें
 शीतल अन्धसे कुत्से करवाता था । इसके बाद तोम्रिसे उनके मुँह आदि पीठपर हाथोंपर आदि
 पीछता और फिर अपनी पीठपर लेकर धीरे-धीरे सिक्ताकी बनी हुई वेदिकापर बिछाल दिया करता
 था ॥१३३-१३५॥ इसी तरह सीता, लक्ष्मण, भरत, लवणन और मुग्धा आदिको पृथक्-पृथक्

ततः पृथक्चोष्णेन तलाभ्यगान्विधाय सः । नीरंगास्नापयन् सर्वान् कृत्वा सोद्वर्तनान्यपि ॥१३७॥
 ततो धूजादिपत्राणि वस्त्रार्थं स पृथग्दर्शो । ततः पत्रैः फलैः पुष्पैर्लेब्धैस्तानवर्षत्क्रमान् ॥१३८॥
 ततः स स्थूलघ्राहीणां कृत्वोदनमनुत्तमम् । स्नात्वा माष्याद्विक कृत्वा पुनः संपूज्य राघवम् ॥१३९॥
 दध्नीदनस्य नेत्रेभ्य वैश्वदेव विधाय च । किञ्चिद्विश्रामतिथये मत्स्यपान्यामण्डजादिकान् ॥१४०॥
 दद्यात्पृथक्पृथक् विप्रश्चक्रं रामाशयाऽशनम् । ततो राम पुनः पृष्ठे समारोहयदादरात् ॥१४१॥
 ततः सीतां ततः सर्वान् लक्ष्मणादीन्क्रमेण हि । पूजोपकरणं सर्वं पेटिकायां निधाय सः ॥१४२॥
 कृत्वा तां पेटिकां कक्षे जगामाथ घर्तद्विजः । स वनागमोपवनं गत्वा रामं वचोऽब्रवीत् ॥१४३॥
 राम राज्ञोऽपराधं वनागमादिकौतुकम् । जानकीमहितः पश्य नानां डनमृगादिकान् ॥१४४॥
 ततो ययौ ग्रामहट्टं दर्शयन्कौतुकं विभुम् । समर्द्धं ताडयामास मार्गार्थं यान् स यष्टिना ॥१४५॥
 तेऽपि तत्कौतुकाविष्टा जनाः कोपं न मनिरे । एवं नानाकौतुकानि दर्शयामास राघवम् ॥१४६॥
 ततः शून्ये तृणगृहे रामं तानवस्तु च । काष्ठनिर्मितपर्यंकं कारयामास निद्रितान् ॥१४७॥
 ततो वगाद्वृद्धमध्ये गत्वा स बाष्पणोत्तमः । याश्चपानडुलान् तैलं धूनं शार्कं फलानि च ॥१४८॥
 बायवलोदलादीनि कमुकं कुकुमादिकम् । लब्ध्वा ताम्रमयं किञ्चिद्द्रव्यं रामान्तिकं ययौ ॥१४९॥
 तदग्रामवासिनः सर्वे ये ये हृष्टे स्थिता जनाः । स्वस्वनानाव्यवसायतुरगसस्ते द्विजोत्तमम् ॥१५०॥
 भोरामनिष्ठं तु दृष्ट्वा ददुस्तथाचिन्तं मुदा । विप्रः शून्यगृहे रामं रामाग्रे दीपमुत्तमम् ॥१५१॥
 प्रज्वालपागतिकं कृत्वा गन्धार्यैः परिपूज्य च । बीजरायाम रामादीन् पक्ष्मवेन मुदान्वितः ॥१५२॥
 ततः स्तुत्वा मुहुर्जप्त्वा कृत्वा चापि प्रदक्षिणाः । चकार कर्तनं वक्ष्यमाणैः यन्मनुमिर्दिजः ॥१५३॥

से आकर शीतविधि पूर्ण किया करता था । १३६ ॥ तदनन्तर राम-सीता आदिक शरीरमें तेल लगाकर घोड़े गरम जलमें स्नान कराता था । तदनन्तर भोजन आदिक पत्ते कपड़ेके लिए प्रदान करता और धन, फल, पुष्प आदि जो कुछ मिल जाता, उससे क्रमशः उनका पूजन किया करता था ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ फिर मोटे चावलका उत्तम भात बनाता और स्नान सवा मसालाका तथा आदि कियायें कर लेनेके बाद रघुनाथजीका पूजा करता, और अतिवैश्वदेव करके वह मातका भोग बनक सामने रखता था । तदनन्तर उससे कुछ अतिथियोंके भिक्षार्थ कुछ मछलियों और पक्षियोंके लिए, कुछ शीशों तथा सीटों आदिक लिए निकालकर रामकी आज्ञा पा जानपर त्वर भोजन किया करता था । तदनन्तर फिर रामको आदरपूर्वक पीठपर लादकर क्रमशः सेता-लक्ष्मण आदिकों तथा पूजनकी गामघ्री पेटोम भरकर पेटों बालमें दबाता और सबका पीठपर बैठकर कह'सु चलता था । इसके बाद किसी सुन्दर वगावमें पहुँचकर रामसे कहता—हे राजावल्लभ राम ! सीताके साथ आप इस वगावका तथा बाँधमें रहनेवासे पशुपक्षियोंका अवलोकन करिए ॥ १३६-१४४ ॥ इसके बाद वह घोड़ेवाले बाजारमें जाता और अनेक भगवान्को वहाँके कौतुक दिखाता था । उस समय जोड़मे भगवान्के लिए रास्ता बनाते समय वह किसीका उपदेश मार भाँ दता तो कोई बुरा नहीं मानता था । इस तरह वह नित्य रामचन्द्रजीका नाता प्रसारके कौतुक दिखाया करता था ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ इसके बाद वह सूना तृणशालामें ले जाकर उन लँगोका उता'ता और काटता खटामेंपर सुला दिया करता था ॥ १४७ ॥ तदनन्तर दूरन्त वह बाजारमें जाता और चावल, तेल, धो' साग, फल, फूस पान सुगरी, कुमकुम तथा कुछ पैसे माँगकर अपने रामके पास लौट आता करता था ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ उस समयमें रहनेवाले अनेक प्रकारके व्यवसायोंमें लगे हुए लोग उसे अद्वितीय रामभक्त समझकर वह जो कुछ माँगता, सो दे दिया कात थे । विप्रसूने धरम पहुँचकर रामक अ'यें उत्तम दीपक जलाता, फिर बारता उतारता और धूर, दीप, गन्ध आदिस उनको पूजा करके किसी पत्थर आदिसे पंखें हल्ला करता था ॥ १५०-१५२ ॥ तत्पश्चात् वह रामकी स्तुति, जप तथा प्रदक्षिणा करके भाग्य कह' जानेवाले मंत्रों द्वारा हरिकीर्तन किया करता था ।

ततस्तु याचितान्येव वस्तूनि मिश्रितानि हि । पृथक्कृत्वा तु सर्वेषां त्रीन् मार्गाश्च चकार सः ॥१५४॥
 द्वौ भागौ स स्वनिकटे स्थाप्यैकं भागमुत्तमम् । मित्रगेहे न्यासभूतं नवम्यर्थं चकार सः ॥१५५॥
 ततः स्वयं द्वारमध्ये चकार शयनं द्विजः । पुनः प्रभाते चोत्थायाचम्य गीतादिभिः प्रभुम् ॥१५६॥
 बालशयैः प्रबोध्याथ तान्पृष्टे स्थाप्य पूर्ववत् । नदीतीरं ययौ विप्रः पूजयामास पूर्ववत् ॥१५७॥
 एवं निस्थपूजनं च चकारादृतमानसः । नवम्यां च विशेषेण पूजयित्वाऽथ राघवम् ॥१५८॥
 स्वयञ्चोपोषणं कृत्वा स्वयं चक्रे सुकीर्तनम् । रात्रौ जागरणं चापि राघवं पूज्य वै पुनः ॥१५९॥
 चकार कीर्तनैश्चाथ नर्तनाद्यैः स्वयं कृतैः । ततः प्रभाते श्रीरामं दशम्यां परिपूज्य च ॥१६०॥
 प्रतिपदिनमारम्य नवरात्रेऽथ यत्कृतम् । आनन्दरामचरितपरायणमनुत्तमम् ॥१६१॥
 तत्समाप्य पूजयित्वा पुस्तकं ब्राह्मणाश्रय । निमंत्रितान् ममाहूय तेष्वेकं सपत्निकम् ॥१६२॥
 द्विजमाकारयामास ततः संचितनंदुलाः । मित्रगेहे न्यासभूतास्तेषां कृत्वाऽन शुभम् ॥१६३॥
 यथा संचितशकादि तथा लब्धानि यानि सः । तानि सर्वाणि संस्कृत्य वराभीर्दानि चाकरोत् ॥१६४॥
 बालुकावेदिकायां वै मध्ये पत्नीयुतं द्विजम् । अष्टकोणेषु विप्रांस्तानष्ट मवेश्य वै क्रमात् ॥१६५॥
 षोडशरूपचारिस्तान् पूजयामास भक्तितः । रंभादलेषु च ततो विप्रीर्जेषु द्विजोत्तमः ॥१६६॥
 चकार तैः कर्तारैः स मुदा परिवेषणम् । ततस्ते भोजनं चक्रुस्तद्वक्त्याऽतिपुद्गान्विताः ॥१६७॥
 ततो दत्त्वा सुतांश्चुलं दक्षिणां तान् प्रणम्य च । विमर्जयामास विप्रांस्तान्श्चक्रेऽशनं द्विजः ॥१६८॥
 एवं विप्रो मासि मासि नवायतनपूजगम् । नवम्याः पारणायाश्च दिवसे दशमीदिने ॥१६९॥
 चकार नवविप्रेषु यात्रां कृत्वाऽपि भक्तिनः । एवं गतानि वर्षाणि नव तस्य द्विजन्मनः ॥१७०॥
 एकदा आवणे मासि तद्ग्रामे सेनया नृपः । कश्चिद्ययौ तदा विप्रः स्वस्थले निशि निद्रितः ॥१७१॥

या । कुछ देर बाद उन माँगकर लाये हुई वस्तुओंका तीन भाग करके दो भाग तो अपने पास रख लेता, बाकी एक भाग अपने निकटवर्ती मित्रके यहाँ नवमाके उत्सवके लिये घरोहरके तौरपर रख आया करता था ॥ १५३-१५५ ॥ इन सब निम्न नियमोंसे निवटकर वह द्वारपर गायन करता और फिर सबरे उठकर गीतापाठ आदिसे भगवान्‌जी स्तुति करता हुआ तारी बजाकर राम आदिको जगाता और निश्च-नियमके अनुसार फिर उनको अपनी रंझार लादकर नदीके तटपर पहुँच आया करता और पूर्वोक्त विधिसे पूजन करता था ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ इस तरह आदर भरे मनसे वह निश्च पूजन किया करता था । किन्तु नवमोको उपवास करके विशेष उपकरणोंके साथ पूजन करके भला प्रकार कीर्तन और रात्रिके समय जागरण करता था ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ फिर दशमोंके दिन रामका पूजन करके प्रतिपदासे लेकर नवरात्र पर्यन्त आनन्दरामायणका पारायण करता था ॥ १६० ॥ उसे समाप्त करके नौ ब्राह्मणोंका पूजन करता था । तदनन्तर एक ब्राह्मणदम्पतीको बुलाकर मित्रके घरमें डकट्टा किये हुए तण्डुलसे बहिया भात बनाकर जो कुछ शाक आदि एकत्र हुना, उन में भली भाँति बना करके अच्छी तरह बालुकाकी बना हुई वेदीपर बीचमें उस सपन्नक ब्राह्मणको बिठाकता और दोनोंमें उन आठ विप्रोंको बिठाकर षोडश उपचारोंसे भक्तिपूर्वक उनका पूजन करता था । तदनन्तर केलोंके पत्तोंको उनके आगे बिछाकर उन बने हुए अन्नोको दही प्रमथनाके साथ परोसना था और वे ब्राह्मण उमकी भक्तिसे मद्गद होकर बड़े प्रेमसे भोजन करते थे ॥ १६१-१६३ ॥ हमक बाद बहिया पान तथा दक्षिणा देकर उन ब्राह्मणोंको बिदा करता । तब स्वयं भी भोजन करता था ॥ १६४ ॥ इस तरह वह ब्राह्मण प्रतिमासकी नवमी तथा दूसरे पारणवाले दिन नौ ब्राह्मणोंमें नवायतनका पूजन किया करता था ॥ १६५ ॥ इस तरह उस ब्राह्मणके नौ वर्ष बीत गये ॥ १७० ॥ एक बार आवणके महीनेमें उसके यहाँ एक बड़ी सेना अपने साम लिये एक राजा का पहुँचा, किन्तु ब्राह्मण रात्रिके समय अपने घरमें पड़ा सो रहा था ॥ १७१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वृष्टिपीडिता नृपसेवकाः । ग्रामे गेहानि विविशुः शून्यगेह ययुर्दश ॥१७२॥
 अश्वरुढाः सद्यस्त्रास्ते द्वारमध्ये द्विजोत्तमम् । दृष्ट्वा विनिद्रितं प्रोचुर्द्विजोत्तिष्ठ ज्वेन हि ॥१७३॥
 मार्गे देहि वयं वृष्ट्या पीडिताः स्मश्रिर बहिः । शून्यगेहेऽत्र स्यास्याम सुखसाध्याः ससेवकाः ॥१७४॥
 तत्तेषां वचनं श्रुत्वा सभ्रमेण द्विजोऽजवीन् । रामचन्द्रः सीतयात्र निद्रितोऽस्ति स्वबन्धुभिः ॥१७५॥
 न वर्ततेऽत्र युष्माकं स्थलं मन्यं वचो मम । गच्छध्वं नगरे नानास्थलान्यन्यानि सन्ति हि ॥१७६॥
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा राजदूताः पुनर्द्विजम् । प्रोचुस्ते हस्ति आगमः सोऽपि निर्यातु वै बहिः ॥१७७॥
 सीतया बन्धुमिर्युक्तः स्थलं नो देहि भो द्विज । पुनरगह द्विजस्तान् स कथं रामं विनिद्रितम् ॥१७८॥
 प्रवृद्धं वै करेभ्यश्च निशायी राजसेवकाः । युष्मकं प्रार्थना त्वय क्रियते वै मया मुहुः ॥१७९॥
 प्रणम्य विधिवद्य गच्छध्व वै स्थलान्तरम् । ततस्तन्निग्रह दृष्ट्वा तेऽतिवृष्ट्या प्रपीडिताः ॥१८०॥
 तं विप्रं ताडयान्कुरुस्तदा प्राह द्विजोत्तमः । रामं बहिः वराम्यद्य तिष्ठध्वं राजसेवकाः ॥१८१॥
 इत्युक्त्वाऽऽचम्य श्रीराम भूमुखो वाक्यमब्रवीन् । रामोत्तिष्ठ बहिर्दुष्टाः स्थिताः संन्यधसस्थिताः ॥१८२॥
 तेषां वस्तु स्थलं देहि वयं यामो बहिर्निशि । इत्युक्त्वा निजपृष्ठे तानारोहयन्म पूर्ववत् ॥१८३॥
 ततः कृत्वा महाकोशं वस्त्रादीनां द्विजोत्तमः । घृत्वा कसे तोयकुशं घृत्वा वामकरेण सः ॥१८४॥
 यष्टिं घृत्वा सन्यहस्ते स्मर्त्तद्द्वाराद्वहिर्यगी । ते द्विज तादृश दृष्ट्वा भ्रान्तं सं येनिरे स्वलाः ॥१८५॥
 ततो दृष्ट्वाऽतिवृष्टिं स गेहाग्राभा बहिर्द्विजः । नम्रीभूतस्तदा तस्यो गेहे सचिविशुः स्वलाः ॥१८६॥
 तनोऽतिथमितो विप्रश्चितयामास चेतसि । पुराणे वायुपुत्रस्य मया सारं श्रुतं बहु ॥१८७॥
 तत्सर्वं तु मृषा त्वद्य किमस्त्यत्र प्रयोजनम् । इति निश्चित्य विप्रः स क्रोधेन महता वृतः ॥१८८॥
 शीघ्रं घटं भुवि स्थाप्य वामहस्तेन मारुतेः । पुच्छं घृत्वा प्राक्षिपत्तमाकाशे वंगवत्तरः ॥१८९॥

इसी समय बरसानसे सताये हुए कुछ राजसेवक ब्राह्मणक घरको खाली समझकर द्वारपर पहुंचे ॥ १७२ ॥ वे सप्तस्र सेवक घोड़ेपर सवार थे । द्वारपर पहुंचने ही ब्राह्मणका जगते हुए उन्होंने कहा—हे ब्राह्मण ! अखी उठो, मुझे जगह दो । मैं बड़ी देरसे भीग रहा हूँ । इस सूने घरम मैं अपने सेवकों और घोड़ोंके साथ ठहरूँगा ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ इस प्रकार उनका बात सुनकर घबड़ाहटके साथ ब्राह्मणने कहा कि इस घरमे रामचन्द्रजी अपने बन्धुओंके साथ सो रहे हैं । यहाँ आप लोगोंके लिए जगह खाली नहीं है । मेरी इस बातको कुछ मानिएगा । नगरमें चले जाइए । वहाँ आप लोगोंको बहुत जगह मिल जायँगी ॥ १७५ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणके वचन सुनकर सिपाहियोंने कहा कि यदि इस घरमे राम हैं तो उन्हें भी बाहर निकाल दो और हम लोगोंको ठहरनेके लिये जगह खाली कर दो । ब्राह्मणने कहा—हे राजसेवक ! जब कि राम सो रहे हैं तो उन्हें कैसे जगाऊँ । मैं आप लोगोंसे प्रार्थना करता हूँ कि दूसरी जगह चले जाइए । इस प्रकार ब्राह्मणका हठ देखकर उन वृष्टिपीडित राजसेवकाने उसे मारा । ब्राह्मणने कहा—अच्छा, हे राजसेवको ! ठहरिए, मैं अभी रामचन्द्रजीका बाहर किये देता हूँ ॥ १७६-१८१ ॥ ऐसा कहकर उसने आचमन किया और रामके पास जाकर कहा—हे राम ! उठिए । बाहर वे दुष्ट घुड़मवार खड़े हैं । आप उनको रूनेके लिए यह जगह खाली कर दीजिए, हमलोग रातोंरात कहीं दूसरे स्थानपर चले चलें । ऐसा कहकर ब्राह्मणने रोजकी तरह उनकी अपनी पीठपर लादा ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ इसके बाद उसने वर्मोंकी एक बड़ी गठरी बनाकर बाँसमे दबायी, पानाका घड़ा वायें हाथमे लिया और दाहिने हाथमे छड़ी लेकर धीरे-धीरे बाहर निकला । इस तरह तैयारी करके जते हुए ब्राह्मणको देखकर उन सिपाहियोंने समझा कि यह कोई पागल है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ विप्र बाहर निकला ता देखा कि बड़े जोरोमें वृष्टि हो रही है । ऐसी अवस्थामें यह ब्राह्मण झुककर बारजेके नीचे लुका हो गया और सिपाही पीछर घुब गये ॥ १८६ ॥ खड़े-खड़े जब यह मया सो मन ही मन सोचने लगा कि मैंने तो पुराणोंमे सुना था कि हनुमान्जीमे बड़ा बल है ॥ १८७ ॥ स्तिमित वे सब बातें दूखी हैं । ऐसा सोचकर उसने छड़ी दीवारसे सँटाकर खड़ा कर दी, बाँसे हाथके पकड़कर

तदा सा मारुतेर्भातुमयी मूर्तिः शुभावहा । गन्धाऽऽकाशे गर्जना वै चकारातिभयकराम् ॥१९०॥
 तां गर्जनां महावीरा ग्रामस्याश्च बहिः स्थिताः । ध्रुवाऽतिभयमंत्रणा मृताः सर्वे ध्रुवेन हि ॥१९१॥
 अथा नागा वृषाद्याश्च मृताः सर्वे तदा क्षणान् । तद्यदग्रामे बहिर्वाऽपि चरं पुरुषमञ्जितम् ॥१९२॥
 पुत्रगर्भाश्च नारीणां सर्वे प्रापुः क्षयं तदा । तदा म पुरुषस्तवेको न मृतो ब्राह्मणोत्तमः ॥१९३॥
 कृपया रामचन्द्रस्य मारुतेः कृपयाऽपि च । ततः प्रभाते ता नार्यः सर्वान्स्वपुरुषान्मृतान् ॥१९४॥
 दृष्ट्वाऽतिविस्मयं प्रापुस्ताभिनेव ध्रुवो ध्वनिः । तदा विप्रं जीवितं तं दृष्ट्वा पकेऽपि मारुतिम् ॥१९५॥
 एतितं विस्मयाविष्टाः पप्रक्षुर्धने द्विजोत्तमम् । ततः स सकलं वृत्तं नारीः सभाजयत्तदा ॥१९६॥
 ततस्ताः प्रार्थयित्वा तं चक्रुः स्वीयपुगाधिपम् । मोऽपि रामाश्रया राज्यं चकार तत्पुत्रस्य च ॥१९७॥
 पुरस्थितानां नारीणां स एवामान्यतिस्तदा । तन्मारुतेर्भाजनं हि काले काले तु पूर्ववत् ॥१९८॥
 अद्यापि श्रूयते तस्मिन्मगरे घनशब्दवत् । तच्छ्रुत्वा पुत्रगर्भाश्च प्रस्वलति हि योषिताम् ॥१९९॥
 स्त्रियाः सहस्रश्वामन् पुरुषस्तथैव एव सः । तदारभ्य तन्महाराज्यं कथ्यते मानवोत्तमः ॥२००॥
 ततः कालान्तरेणैव स विप्रश्च मृतो यदा । तदा स्वर्धपुण्येन विष्णुमायुज्यमाप सा ॥२०१॥
 ततस्ताभिस्तु नारीभिः कश्चिन्पाथः समारुतः । स एव कियते भर्ता न त ता मोचयति हि ॥२०२॥
 हात्वा तं गर्जनाकालं पुरुषान्विवरेषु हि । गोपयित्वा दृढमूर्तां संखानां निःश्वनादिभिः ॥२०३॥
 स भावयति तेषां न ध्वनिं मारुतमभवाम् । अनिकानेऽथ तत्काले तान्पुनर्जीवितानिति ॥२०४॥
 मत्वा नानोन्मर्षः पूज्य तैर्भोगि ता भजति हि । नार्या तच्छास्यते राज्यं सदैव द्विजसत्तम ॥२०५॥
 स्त्रीणामेव मदीयपत्तिर्जायते पुरुषस्य न । तद्राज्यनिकटस्था ये देशास्तेष्वपि भो द्विज ॥२०६॥

जमीनमें रख दिया और बायें हाथसे हनुमान्जीकी पुच्छ पकड़कर बड़े शीघ्र और बेगके साथ बाकाशमें उछालकर फेंका ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ हनुमान्जीकी वह धातुमयी मूर्ति बाकाशमें पहुँचकर बड़े जोरसे मरझी ॥ १९० ॥ वह शीघ्र गर्जना उन सिपाहियों, गाँववालों तथा बाहुन्वालोंको भी मृतायी दी । उसे सुनते ही सब घबड़ा-घबड़ाकर मर गये । उस गर्जनासे घाटे हाथों और बेल आदि मुख्यनामधारी जितने जीव थे उनमेंसे उन बाहुणके सिवाय और कोई नहीं बचा । यहाँ तक कि त्रिविक्रम गन्धम जो खन्व थे, वे भी मर गये । किन्तु श्रीरामचन्द्रजीकी कृपा और हनुमान्जीका दयासे वह बाहुण ज्योंका त्यों सदा रह गया । सधरा हुआ तो उन नारियोंन, जिनके पति गतका भर गये थे, अपने स्वामीकी मृत देखा तो बड़ी चकरायी । तदनन्तर जब उन्होंने उस बाहुणकी जड़ित तथा हनुमान्जीकी मूर्ति काँचड़म पड़ी देखी तो उन्हें बाहुणसे वे सब पूछन लगीं । बाहुणने उन त्रिविक्रम रात्रिका सारा हाल कह सुनाया । १९१-१९६ ॥ इसके अनन्तर उन त्रिविक्रम प्रार्थना करके बाहुणको उस नगरीका राजा बना दिया । रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वह विप्र वहाँका राज करने लगा ॥ १९७ ॥ उस समय उस नगरीकी सब त्रिविक्रम वही पति था । हनुमान्जीकी वह गर्जना कभी-कभी विकराल मेघगर्जनके समान अब भी सुनायी पड़ आया करता है । उस मुनकर जिन त्रिविक्रमोंके उदरमें पुत्र रहता है, उनका गर्भ गिर जाता करता है ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ उस विप्रके नाम हजारों स्त्रियाँ थीं और उनके बीचमें वह अकला पुरुष था । तभीसे लोगोंने उसे इन्द्राज्य कहना आरम्भ कर दिया । कुछ दिनों बाद जब उस विप्रका मृत्यु हुई तो अपने पूर्वजित पुण्यके प्रभावसे उसे विष्णुकी सायुज्य मूर्ति मिली ॥ २०० ॥ ॥ २०१ ॥ इसके बाद जा कोई राहो पुरुष मिले जाय, उसे ही वे स्त्रियाँ अपना पति बना लिया करती थीं और उसे किसी तरह नहीं छोड़ती थी ॥ २०२ ॥ यदि कभी हनुमान्जीकी गर्जनाका समय आ जाता तो वे स्त्रियाँ उस पुरुषकी बिलमें छिपा छिपा करती । जिसमें उसे वह गर्जना न सुन पड़े इसलिए नगाड़े शल आदि बाजे बजाने लगती थीं । जब वह समय कुशमूर्त्तिक ओत जाता तो नारियाँ अपने पतिविक्रमोंका पुनर्जीवन मानकर बड़ी खुशियाली बनातीं और उसीके साथ भाग करती हुई अपना समय बिताया करती थीं । हे द्विजोत्तम ! सबसे सदा वहाँपर त्रिविक्रम ही राज्य रहता है । स्त्रियाँ ही वहाँकी प्रजापर शासन करती हैं

मारुतेः शब्दसंस्पृष्टवायुना स्पर्शिता नराः । अशक्ता एव जायते न तेष्वामीन्सुपौरुषम् ॥२०७॥
 अतस्तेषामशक्तानां वीर्यक्षीणतया द्विजः । भवन्ति दुहितर एव कचिन्पुत्रः प्रजायते ॥२०८॥
 आधिक्ये रजसः कन्या शुक्राधिक्ये सुतो भवेत् । नपुमकः समन्वेन यथेच्छा पारमेस्वरी ॥२०९॥
 अन्यत्ते कारणं वच्मि न भवन्ति सुता यतः । कारणं भृशं नभ्येद विष्णुदाम द्विजोत्तम ॥२१०॥
 तेषु देशेषु नार्यश्च निजराज्यमदेन हि । रतिकालेऽधः पुरुष कृत्वा क्रीडां मजति ताः ॥२११॥
 न स्त्रीयां रतिकाले ताः पृष्ठं भूमिं स्पृशन्ति हि । अनएव रतिकाले शुक्रं तु स्रवते बहिः ॥२१२॥
 सूक्ष्मछिद्रे तथा गर्भस्थाने तन्नेत्र गच्छति । नामानयनकर्णानां द्वे द्वे रज्रे प्रकीर्तिते ॥२१३॥
 मेढनायानवक्त्राणामेकैकं रंध्रमुच्यते । दशमं ममके प्रोक्तं रंध्राणीति नृणां विदुः ॥२१४॥
 स्त्रीणां ग्रीव्यभिकानि स्युः स्तनयोर्गर्भवर्त्मनः । मुखिकाग्रममान्येव नानि छिद्राणि सति हि ॥२१५॥
 गर्भछिद्रं रतिकाले किंचिद्विकसितं द्विज । भृत्वा मार्गं तु वीर्यस्य ददाति पुरुषस्य च ॥२१६॥
 तन्मार्गेण गत वीर्यं चेत् सम्यक् पुरुषस्य च । गर्भस्थाने तदा पुत्रो जायते नात्र संशयः ॥२१७॥
 स्वल्पं प्रविष्टं वीर्यं च तदा कन्या प्रजायते । रजस्र्वाधिकत्वेन जानीष्वेवं त्रिनिश्चयम् ॥२१८॥
 तस्माद्यदाऽधः शेते वै तद्देशेषु नरोत्तमः । रतिकाले तस्य वीर्यमूर्ध्वं गच्छति नैव तत् ॥२१९॥
 यदि दंबवशात्किंचिद्गतं स्त्रीरंध्रमार्गतः । तदा दंबवशात्पुत्रो जायते सोऽपि षडवतः ॥२२०॥
 अतएव हि तद्देशे बहुकन्या भवन्ति हि । एवं ते कारणं प्रोक्तं कन्योन्वसेद्विजोत्तम ॥२२१॥
 एवं सर्वेषु देशेषु चेन्नार्या अधिकं बलम् । अस्ति तर्हि मवेत्कन्या पुत्रः पुरुषस्यतः ॥२२२॥

॥ २०३-२०५ ॥ वहाँपर विशेष करके कन्याओंकी ही उत्पत्ति होती है, पुरुष तो बहुत ही कम होते हैं ।
 हनुमान्जीकी गर्जनासे मिली वायुके सम्पशसे उस राज्यके आस-पासवाले राज्योंके लोग भी प्रायः अशक्त
 (नपुंसक) होते हैं । इसलिये वहाँके पुरुषका वीर्य कमजोर होता है और अधिकांश कन्याय ही उत्पन्न होती हैं,
 पुत्र तो नायब ही कभी कहीं हो जाता हो ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ २०८ ॥ अब कि स्त्रीके रजकी अधिकता होती
 है तो कन्या और पुरुषके वीर्यकी अधिकता होता है, तब पुत्र होता है । यदि पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रज ये
 दोनों बराबर हो जाने हैं, तब नपुमक उत्पन्न होता है । इन बातोंके सिवाय सबसे मुख्य बात तो यह है कि
 परमेश्वरकी जैसी इच्छा होती है, वही होता है ॥ २०६ ॥ हे द्विजोत्तम विष्णुदाम ! वहाँ विशेष करके कन्याओंके
 उत्पन्न होनेका एक कारण और भी है, उसे सुनो ॥ २१० ॥ उस देशकी स्त्रियाँ अपने राज्यमदसे मतवाली
 हो पुरुषको नीचे मुला तथा स्वयं ऊपर सेटकर रति करती हैं । रतिकालक समय वे अपनी पीठको जमीनमें
 नहीं लगने देतीं । इसीलिए पुरुषका वीर्य बाहर ही रह जाता है । गर्भक मूदम छिद्रतक वह नहीं पहुँच पाता ।
 पुरुषके नाक, नेत्र और कान इनमें दो-दो छिद्र रहने हैं ॥ २११-२१३ ॥ लिंग, गुदा तथा मुखम एक-एक
 छिद्र रहता है । ये सब मिलाकर नौ हुए और दसवाँ छिद्र ब्रह्मांडम होता है । ऐसा लोगोंने बतलाया है
 ॥ २१४ ॥ किन्तु स्त्रियोंके तीन छिद्र अधिक होते हैं । दो छिद्र दोनों स्तनोंमें और एक गर्भके रास्तेमें । गर्भके
 भागवाला छिद्र सूईकी नोकके समान बारीक होता है ॥ २१५ ॥ किन्तु रतिकालमें गर्भवाला छिद्र कुछ
 चौड़ा होकर पुरुषके वीर्यको भीतर जानेके लिये रास्ता दे देता है ॥ २१६ ॥ उस मार्गसे गया हुआ वीर्य
 यदि अच्छी तरह अपने स्थान तक पहुँच जाता है, तब पुत्रका उत्पत्ति होती है । इसमें कोई संशय नहीं है ।
 यदि उस समय गर्भाशयमें कम वीर्य जाता है तो कन्याकी उत्पत्ति हुआ करती है । क्योंकि ऐसी दशामें
 स्त्रीका रज अधिक और पुरुषका वीर्य कम पड़ जाता है ॥ २१७ ॥ २१८ ॥ इसीसे जब बहावाले पुरुष नीचे
 सेटते हैं, तब उनका वीर्य गर्भाशयके छिद्र तक नहीं पहुँच पाता । यदि दंबवश कभी थोड़ा सा वीर्य उछलकर
 ऊपर स्त्रीके गर्भाशय तक पहुँच भी जाता है तब नपुमक उत्पन्न होता है ॥ २१९ ॥ २२० ॥ इसी कारण उस देशमें
 अधिकांश कन्याय ही होती हैं । हे द्विजोत्तम ! मैं इस प्रकार तुम्हें वहाँ विशेष कन्याओंके उत्पन्न होनेका
 कारण बतलाया ॥ २२१ ॥ यह प्रायः सब देशोंमें देखा जाता है कि जिस जगह स्त्री बलवती होती है तो कन्या

तस्मान्पुत्रार्थिना नारी पोषणीया कदापि न । पोषयेच्च सदाऽऽन्मानं नानास्वाद्यरसायनैः ॥२२३॥
 अतएव हि वैद्याश्च पालनीयाः सदा नरैः । बलाबलप्रवेत्तारस्तैर्ज्ञेयं स्वबलाबलम् ॥२२४॥
 पुष्टदेहं निरीक्ष्याथ न तेयं त्वधिकं बलम् । वातेनापि पुमान्पुष्टो जायतेऽत्र सर्वत्र हि ॥२२५॥
 अतो वैद्यं विना तच्च न शास्यमिह बलाबलम् । अतो वैद्यास्ते प्रष्टव्याः सदा भक्तिपुरःसराः ॥२२६॥
 मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे वैद्येऽथ गणके गुरौ । यादृशी भावना स्वीया मिद्धिर्मवति तादृशी ॥२२७॥
 अतो वैद्योक्तमार्गेण सदा गच्छेन्नरोत्तमः । बलाबलविचारेण पुत्रा एव भवति हि ॥२२८॥
 एक एव वरः पुत्रः किं जाता दश कन्यकाः । पुत्राग्नौ नरकान्पुत्रस्तारयेन्स्वकुलं क्षणात् ॥२२९॥
 कन्या स्वीयदुर्गचारात्क्षणाभिजपितुः कुलम् । तथा भर्तुः कुलं चापि नरके पातयेच्च सा ॥२३०॥
 तस्मान्नरैश्च पुत्रार्थं यत्नः कार्यस्त्वहनिष्ठम् । एष्टव्या इहैव पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥

यजेत वाऽश्वमेधेन नील वा वृषमुन्सृजेत् ॥२३१॥

जीवतो वाक्यकरणात्प्रत्यन्दं भूरि भोजनान् । गयायां पिण्डदानेन त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥२३२॥
 एवं शिष्य स्वयां पुष्टमसक्तेन कथं व्रतम् । कायं तच्च मया सर्वं भूमुरस्य कथानकम् ॥२३३॥
 तवाग्रे कथितं रम्यं रम्यं त्वत्तोषार्थमतुलमम् । तस्य व्रतस्य सामर्थ्यात्स दरिद्रो द्विजोत्तमः ॥२३४॥

लब्ध्वा तद्विपुलं राज्यं भुक्त्वा मोगान् मनोरमान् ।

सायुज्यं प्राप विष्णोश्च स्वायुषश्च क्षये द्विजः ॥२३५॥

एव तद्रामचन्द्रस्य व्रतं कोऽत्र तु नाचरेत् । सुखेन भुक्तिर्द चात्र परलोके विमुक्तिदम् ॥२३६॥
 मुनिभिश्च सुरैर्नागैर्गंधर्वैः किन्नरैर्नृपैः । सदाऽनुभाषितं चंद्रं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥२३७॥

ही जनमत्तो हैं और पुत्र्य बला हो तो पुत्रकी उत्पत्ति अधिक होता है ॥ २२२ ॥ इसलिए जिन लोगोंको पुत्रकी अभिलाषा हो, उन्हें चाहिए कि स्त्रियाँका ज्यादा माल सिलाकर तगड़ा न करे । बल्कि स्वयं बड़िया चीजें तथा रसायन खाकर बलवान् बन ॥ २२३ ॥ लोगोंको यह भी उचित है कि बलाबल जाननेवाले अच्छे वैद्योंको अपने नगरमें रखने और समय-समयपर उनसे परीक्षा करा लिया करे ॥ २२४ ॥ शरीरको मोटा देखकर ही यह न समझ ले कि इसमें अधिक बल है । सदा ऐसा देखा गया है कि लोग वायुसे भी मोटे हो जाया करते हैं ॥ २२५ ॥ इसीसे वैद्यक विना बलाबल शीक शीरसे नहीं जाना जा सकता । अतएव लोगोंको चाहिए कि सदा वैद्योंसे आदरपूर्वक अपने स्वास्थ्यके विषयमें पूछताछ करते रहे ॥ २२६ ॥ मंत्रमें, तीर्थमें, ब्राह्मणमें, वैद्यमें, देवता और ज्योतिषीमें, जमी जिसकी भावना रहती है, वैसा ही उसे फल मिलता है ॥ २२७ ॥ अतएव वैद्य जिस तरह व्रतनाये, उसी तरह लोग चले । यदि अच्छी तरह बलाबलका विचार करके पुरुष स्त्रीके साथ रति करे तो पुत्र ही होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ २२८ ॥ केवल एक पुत्रका होना अच्छा, किन्तु दस कन्याओंका होना ठीक नहीं है । यदि पुत्र होता है तो वह सगमात्रमें अपने कुलको 'पु' नामक नरकसे तार देता है ॥ २२९ ॥ इसके विपरीत कन्या दुराचार करके अपने पिता तथा पति दोनों कुलोंको क्षणभरमें नरकमें गिरा देती है ॥ २३० ॥ इसीलिए लोगोंको चाहिए कि सदा पुत्रके लिये यत्न करें । एक ही पुत्रसे संतोष न कर ले, बल्कि कइयोंको इच्छा रखें । न मानूम उनमेंसे कौन गयामें जाकर पिण्डदान कर आवे या अश्वमेध यज्ञ करे अथवा नील वृषभ (काला साँड़) छोड़े ॥ २३१ ॥ जबतक पिता रहे, तबतक उसका कहना माने । मर जानेपर प्रतिवर्ष बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन करावे और गयामें जाकर पिण्डदान करे । इन्हीं तीन कामोंसे पुत्रकी पुत्रता सायंक होती है ॥ २३२ ॥ इस प्रकार हे शिष्य ! तुमने मुझसे जो पूछा था कि अशक्त प्राणी किस प्रकार व्रत करे । सो मैंने एक ब्राह्मणकी कथा सुनाकर समझा दिया । इस व्रतकी सामर्थ्यसे वह दरिद्र ब्राह्मण विपुल राजसधर्म तथा तरह-तरहके मनोरम भोगोंको भोगकर आयु समाप्त होने-पर शिष्यसगवान्की सायुज्य मुनिको प्राप्त हुआ ॥ २३३-२३५ ॥ इस प्रकार उन रामचंद्रजीके व्रतकी कौन नहीं करेगा, जो इस लोकमें आनन्दके साथ भुक्ति और परलोकमें मुक्ति प्रदान करनेवाला है ॥ २३६ ॥ अनेक

स्त्रीपुत्रधनदं चैतत्सर्वसौख्यप्रदं मृणाम् । इदंलोकं परं चापि विष्णोः सायुज्यदायकम् ॥२३८॥
 संहि मृतान्यनेकानि स्वर्गं मर्त्यं रसातले । तथापि मामनवमोममानं व्रतमुत्तमम् ॥२३९॥
 विष्णुदास द्विजश्रेष्ठ न भूतं न भविष्यति । तस्मात्सदा नरैः कार्यं व्रतं येदं महत्तमम् ॥२४०॥
 एवं त्वया यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम् । किमन्यच्छ्रोतुमिच्छास्ति तद्वदस्व वदामि ते ॥२४१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीयं राज्यकांडे
 आदिकाण्डे नवमीन्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तः सर्गः

(लक्षरामनामोद्यापनविधि)

विष्णुदास उवाच

अन्यदुगुरो राघवस्य तुष्टिर्दं किं वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

मृणुष्व विष्णुदास त्वं यत्तेजसं प्रयदामि च । तुष्ट्यर्थं रामचन्द्रस्य नित्यं पत्रे तु मानवैः ॥ १ ॥
 लेखनीयं रामनामशतानि नव भूतपदम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं पूजनीयं सविस्तरम् ॥ २ ॥
 एवं कोटिमितं लेख्यं लक्षं वा तु ततः परम् । हवनं हि दशांशेन कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥ ३ ॥
 इदं विष्णुरिति ऋचा तिलाज्यैः पायसेन वा । नयान्नेनाथवा कार्यं राघवं परिपूज्य च ॥ ४ ॥
 हवनांगे राघवादिदेवानां पूजने नरैः । आमनाथे तु भद्रं च स्थापनीयं प्रयत्नतः ॥ ५ ॥
 अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिंघात्मकं शुभम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं रामलिंघात्मकं शुभम् ॥ ६ ॥
 अष्टोत्तरसहस्रं वा रामतोभद्रमुत्तमम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं रामतोभद्रमुत्तमम् ॥ ७ ॥
 एवं होमं लेखनं च पूजनादि च यत्कृतम् । अर्पयेद्रघुनाथाय तत्सर्वं त्वतिभक्तिदः ॥ ८ ॥

मुनियों, देवताओं, नागों, गन्धर्बों, किन्नरों और राजाओंने कितने ही बार इस व्रतका अनुष्ठान किया है ॥ २३७ ॥ यह व्रत इस लोकमें स्त्री-पुत्र धन तथा सब सुख देनेवाला है और परलोकमें विष्णुभगवान्की सायुज्य-मुक्ति प्रदान करता है ॥ २३८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास ! वैसे तो स्वर्ग, मर्त्य और रसातलमें बहुतेरे व्रत हैं । किन्तु उनमेंसे रामनवमी व्रतके बराबर न कोई व्रत है और न होगा । इसी कारण लोगोंको चाहिए कि सदा इस रामनवमीके महान् व्रतको करें ॥ २३९ ॥ २४० ॥ इस तरह तुमने जा कुछ हमसे पूछा, सो कह सुनाया । अब और क्या सुनना चाहते, हो सो कहो ॥ २४१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्द-रामायणे वाल्मीकीये प० रामतेजपाण्डेयकृतज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते सनोहरकांडे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाली कोई और युक्ति बतलाइए । रामदास कहने लगे—हे विष्णुदास ! मैं तुम्हें जो बतला रहा हूँ, उसे सुनो । रामकी प्रीतिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको चाहिए कि काणजपर प्रतिदिन नौ सौ या एक सौ आठ रामनाम लिखकर विस्तारके साथ उनका पूजन करे ॥ १ ॥ २ ॥ इस तरह लिखत हुए जब एक करोड़ अथवा एक लाख नामोंको लिख ले तो उनका दशांश विधिवत् हवन करे ॥ ३ ॥ हवन 'इदं विष्णु०' इन मन्त्रसे करे । तिल, घी और खीरसे हवन करना चाहिए । यदि ये वस्तुएँ न इकट्ठी हो सकें तो तबोंन अन्नसे रामका पूजन करके हवन करना चाहिए ॥ ४ ॥ हवनके अङ्गोंमें भद्रआदि बनाकर राघवआदि देवताओंका पूजन करके अष्टोत्तरसहस्रात्मक रामलिंघतोभद्र अथवा अष्टोत्तरशत रामलिंघात्मक भद्र बनावे । अथवा अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्र या अष्टोत्तरशत रामतोभद्रकी रचना करे ॥ ५-७ ॥ इस तरह होम-लेखन-पूजन आदि जो कुछ करे, सब भक्तिपूर्वक रामचन्द्रजीको अर्पण कर दे ॥ ८ ॥

विष्णुदास उवाच

त्वया गुरो शुभं प्रोक्तं रामनामप्रलेखनम् । न तस्योद्यापनं प्रोक्तं तद्वदस्व ममाधुना ॥ ९ ॥

श्रीरामदास उवाच

भूषु शिष्य भविष्यांते कथां वक्ष्यामि भूतवत् । रामनामोद्यापनस्य विस्तरेण मनोरमम् ॥ १० ॥

पाण्डुपुत्रो महावीरो बंधुभिश्च युधिष्ठिरः । स्त्रिया मात्रा भद्रराजपो वने वासं करिष्यति ॥ ११ ॥

तं द्रष्टुं द्वापरे कृष्णः कदा गच्छति वै वने । तं कृष्णं पूजयित्वा स तस्मै प्रभं करिष्यति ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

देवदेव जगन्नाथ भक्तानां वरदायक । किञ्चित्त्वां प्रष्टुमिच्छामि मयि तुष्टोऽसि चेत्प्रभो ॥ १३ ॥

लक्ष्मीप्राप्तिकरं पुण्यं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् । व्रतमाख्याहि देवेश राज्यभ्रष्टस्य मेऽधुना ॥ १४ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

शुद्धाबुद्धतमं भोतुं यदि वाञ्छसि भूपते । तदा निगदतो मत्तः सकाशाच्छृणु सादरम् ॥ १५ ॥

रामनाम्नः परं नास्ति मोक्षलक्ष्मीप्रदायकम् । तेजोरूपं यदव्यक्तं रामानामामिधीयते ॥ १६ ॥

तस्माच्चक्षाम जप्त्वा वै रामरूपो भवेन्नरः । एतदेव हि रामेण मारुतिं प्रति भाषितम् ॥ १७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कस्मिन्काले हनुमते रामेणैवोपदेशितम् । एतद्विस्तरतो मूढे सुमते रुक्मिणीपते ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा रामावतारे च सीता नीता सुरारिणा । हनूमंतं समाहूय गमचन्द्रोज्ज्वलीद्वयः ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

वायुसुनो महावीर सीतान्वेषणहेतवे । समस्तां दक्षिणदिशं गत्वा शुद्धिं समानय ॥ २० ॥

श्रीहनुमान् उवाच

रघुनाथ जगन्नाथ दक्षिणस्यां हि सागरः । महवो राक्षसाः संति तत्र शक्तिः कथं मम ॥ २१ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने रामनाम लिखनेकी जो युक्ति बतलायी, वह बहुत ही उत्तम है । लेकिन उसका उद्यापन नहीं बतलाया । उसे भी मुझे अभी बतला दीजिए ॥ ९ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—हे शिष्य ! मैं तुम्हें भविष्यकी एक कथा भूतकालमें समन्वित करके बतला रहा हूँ ॥ १० ॥ पांडुके पुत्र युधिष्ठिर जब राज्यसे वञ्चित हो गये, तब अपनी माता तथा बन्धुओंको साथ लेकर वनमें निवास करने लगे ॥ ११ ॥ उनको देखनेके लिए कृष्णचन्द्रजा वनमें गये । तब उन लोगोंने बड़े आदरसे श्रीकृष्णकी पूजा की और युधिष्ठिरने कहा—हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे भक्तोंको वर देनेवाले ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे देवेश ! यह तो आप जानते ही हैं कि इस समय मैं राज्यसे भ्रष्ट हो चुका हूँ । अतएव आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतलाइए । जो लक्ष्मीको देनेवाला पवित्र और पुत्र पौत्रको बढ़ाने-वाला हो ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रजाने कहा—हे भूपते ! यदि आप हमसे गुप्त व्रत सुनना चाहते हैं तो मैं कहता हूँ, आप सुनिये ॥ १५ ॥ रामनामके जपसं बहुरं मास और लक्ष्मीका देनेवाला और कोई उपाय नहीं है । यह तेजोरूप और अव्यक्त है ॥ १६ ॥ इसी कारण रामनामका जप करके लोग रामरूप हो जाते हैं । यही बात स्वर्ध रामचन्द्रजाने हनुमान्जीसे कही थी ॥ १७ ॥ युधिष्ठिरने कहा—हे रुक्मिणीपते ! रामचन्द्रने हनुमान्जीसे कब इस बातकी चर्चा का की ? श्रीकृष्णजीने कहा—रामावतारमें जब कि राजा सीताको हर ले गया, तब रामने हनुमान्जीकी बुलाकर कहा—॥ १८ ॥ १९ ॥ हे महावीर ! हे वायुसुनो ! तुम सीताजीको ढाँढनेके लिए पारी दक्षिण दिशामें भ्रमण करो और शीघ्र उनका समाचार लाओ ॥ २० ॥ आहनुमान् बोले—हे जगन्नाथ !

श्रीरामचन्द्र उवाच

मारुते रावणादीनां राक्षसानां निवारकम् । मंत्रं ददामि सुगमं येन सर्वजयी भवेत् ॥२२॥

श्रीहनुमान्वाच

महाराज कृपासिन्धो दीनानां त्वं सुतारकः । उपदेशोऽधुना कार्यस्तस्य मंत्रस्य तत्त्वतः ॥२३॥

श्रीरामदास उवाच

इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं रहस्याह्वय सत्वरम् । मारुतेर्दक्षिणे कर्णे श्रीरामेत्युपदेशितः ॥२४॥

तस्य मंत्रस्य सकलं पुरश्चरणमुत्तमम् । लक्षसख्यं विधापाशु प्रतस्ये दक्षिणां दिशम् ॥२५॥

तन्मंत्रस्य प्रभावेण नानाजलचराचरम् । दुर्गमं सागरं तीर्त्वा लंकां गच्छे समाययी ॥२६॥

न स लेभे तत्र शुद्धिमशोकाख्यवनं गतः । वृक्षमूले स्थितां सीतां दूरतोऽग्रे ददर्श सः ॥२७॥

तां दृष्ट्वा शीघ्रमागत्य हर्षनिर्भरमानसः । सीतायाश्चरणौ नत्वा दंढवत्पतितो भुवि ॥२८॥

अत्यंतं सूक्ष्मवपुषं बालकाकारसंयुतम् । तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा सीता वचनमब्रवीत् ॥२९॥

आगतोऽसि कुतो बाल कुत्रत्यः कस्य बालकः ।

श्रीहनुमान्वाच

सीता माता पिता रामो रामचन्द्रसमीपतः ॥३०॥

समागतोऽस्मि हनुमान् ग्राह्यैका मुद्रिका त्वया । रामनामांकितां मुद्रां शुद्धकांचननिर्मिताम् ॥३१॥

ज्ञात्वा रामस्य सा सीता परमं तोषमाययी । तां ज्ञात्वा तोषसहितामांजनेयोऽज्वीद्वचः ॥३२॥

मातः सुधाञ्जलपति मम त्वद्यातिक्लेशकारिणी । अस्मिन्वनेऽतिमधुरः फलसघोऽतिदुर्लभः ॥३३॥

तवाप्तयाऽहं सीतेऽद्य करिष्ये भक्षणं ध्रुवम् ।

सीतोवाच

भो बालक महावीर रावणोऽस्ति वनाधिपः ॥३४॥

हे रघुनाथ ! दक्षिण दिशामे तो विशाल सागर है और बहुतसे राक्षस हैं, फिर वहाँपर मेरी शक्ति कैसे काम देगी ? ॥ २१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मारुते ! रावण आदि राक्षसोंका निवारण करनेवाला मैं एक बहुत ही सरल मंत्र बताता हूँ । जिसकी सहायतासे सर्वत्र तुम्हारी विजय होगी ॥ २२ ॥ हनुमान्जीने कहा—हे महाराज ! हे कृपासिन्धो ! आप दीनोंका उद्धार करते हैं । हे प्रभो ! हमें उस मन्त्रका अच्छी तरह उपदेश दीजिए ॥ २३ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हनुमान्जीके इस प्रकार विनय करनेपर रामने उन्हें एकान्तमें ले जाकर उनके कानमें 'श्रीराम' इस नामका उपदेश दिया ॥ २४ ॥ हनुमान्जीने उस मन्त्रका उत्तम रीतिसे एक लाख जप करके दक्षिण दिशाको प्रस्थान किया ॥ २५ ॥ उसी मंत्रके प्रभावासे विविध प्रकारके जलजन्तुओंसे भरे दुर्गम सागरको पार करके वे लक्ष्मी पहुँच गये ॥ २६ ॥ वहाँ बहुत खोज करनेपर भी सीताका पता न पाकर अशाक्त बनमें गये, तब वहाँ एक वृक्षके नीचे बैठा हुई सीताको दूरसे देखा ॥ २७ ॥ सीताको देखकर उनका हृदय हर्षसे भर आया और तुरन्त उनके पास पहुँचकर प्रणाम किया । फिर दण्डकी तरह पृथ्वीमें लोट गये ॥ २८ ॥ उस समय हनुमान्जीने बच्चेके समान अपना एक छोटा-सा रूप धारण कर रक्खा था । उनको पृथ्वीमें पड़े देखकर सीताने कहा—॥ २९ ॥ बच्चे ! तुम कहाँसे आये हो ? कहाँ तुम्हारा घर है और तुम किसके बेटे हो ? हनुमान्जीने कहा कि सीता मेरी माता है और पिता श्रीरामचन्द्र हैं । इस समय मैं उन्हींके पाससे आ रहा हूँ ॥ ३० ॥ मेरा नाम हनुमान् है । आप इस अंगूठीको लीजिये । यह शुद्ध सुवर्णकी बनी हुई है और इसमें श्रीरामचन्द्रजीका नाम लिखा हुआ है ॥ ३१ ॥ जब सीताको यह ज्ञात हुआ कि यह मुद्रिका रामजीकी है तो वे बहुत प्रसन्न हुईं । सीता माताको प्रसन्न देखकर हनुमान्जीने कहा—माँ ! मुझे बड़ी भूख लगी है । इससे बड़ा कष्ट हो रहा है । इस वयोचर्मे मैं बहुत मीठे और दुर्लभ फल खा रहा हूँ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यदि

न शक्तिर्न च शक्यं ते कथं त्वं मश्चयिष्यसि ।

हनुमानुवाच

श्रीरामेति परो मन्त्रः शस्त्रं मे हृदयांतरे ॥३५॥

तेन सर्वाणि रक्षांसि तृणरूपाणि सांप्रतम् । इत्युक्त्वाऽथ तदीयाणां गृहीत्वा वनभूरुहान् ॥३६॥
उन्मूलनं चकाराय श्रुत्वा रक्षांसि चाययूः । युद्धं च तुमुलं जातं पश्चान्मन्त्रप्रभावतः ॥३७॥
दलितं राक्षसवल्गं दग्धा लंका हनूमता । पुनर्गत्वाऽशोकवनं सीतां नत्वा च मारुतिः ॥३८॥
तदर्लंकारमादाय रामचन्द्रं समाययौ । रामायालंकृतिं दत्त्वा तस्यौ तत्पादसन्निधौ ॥३९॥
रामोऽलंकृतिमादाय तच्छ्रुत्वा मुदितोऽभवत् । रामनामप्रभावोऽयं महाराज युधिष्ठिर ॥४०॥

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र रामनामजपं कुरु ।

युधिष्ठिर उवाच

कथं जपो विधेयोऽस्य पुरश्चरणकं फलम् ॥४१॥

कथमुद्यापनं चैव सर्वमाख्याहि यत्नतः ॥४२॥

श्रीकृष्ण उवाच

अथवा पुस्तके लेख्यं स्मरणं हृदयेऽथवा । कोटिमख्यापरिमितमथवा लक्षसंमितम् ॥४३॥

मंत्रा नानाविधाः सन्ति शतशो राघवस्य च । तेभ्यस्त्वेकं वदाम्यद्य तव मंत्रं युधिष्ठिर ॥४४॥

श्रीशब्दमाद्यं जयशब्दमध्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।

त्रिःसप्तकृत्वो रघुनाथनामजपो निहन्त्याद्भिजकोटिहस्याः ॥४५॥

अनेनैव च मन्त्रेण जपः कार्यः सुमेधसा । लक्षमंत्ये कृते तस्मिन्नुद्यापनविधिं चरेत् ॥४६॥

आप आज्ञा दें तो मैं थोड़ेसे फल तोड़कर खा लूँ । सीताने कहा—हे महावीर बालक । इस बगीचेका मालिक रावण है ॥ ३४ ॥ तुममें कुछ भी शक्ति नहीं मालूम पड़ रही है । तब तुम किस तरह फल खाओगे ? हनुमान्जीने कहा कि मेरे हृदयमें 'श्रीराम' के नामका एक प्रबल शस्त्र है । उसके प्रभावसे लक्ष्मण के सब राक्षस मेरे सामने तिनकेके बराबर हैं । ऐसा कह और सीताजीकी आज्ञा पाकर हनुमान्जी बगीचेमें घुस पड़े और पेड़ोंको उखाड़ उखाड़कर फेंकने लगे । यह समाचार सुनकर बहुतसे राक्षस आ गये और उनके साथ तुमुल युद्ध हुआ । किन्तु अन्तमें श्रीरामनाममन्त्रके प्रभावसे हनुमान्जीने उन सब राक्षसोंको मार डाला और लक्ष्मण नगरीको भी जलाकर राख कर दिया । फिर लौटकर अशोकवनमें गये । वहाँ सीताको प्रणाम किया ॥ ३५-३८ ॥ फिर उनका अलंकार लेकर रामचन्द्रजीकी ओर लौट पड़े । रामके पास पहुँचकर उन्होंने वह अलंकार रामकी दिया और उनके चरणोंके पास बैठ गये ॥ ३९ ॥ रामने वह अलंकार हाथमें ले लिया और सीताका समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुए । हे युधिष्ठिर ! यह सब रामनामका माहात्म्य है ॥ ४० ॥ इसलिए हे राजन् ! तुम भी रामनामका जप करो । युधिष्ठिरने कहा हे कृष्ण ! इस रामनामके जप करनेका क्या विधान है ? इसका पुरश्चरण कैसे किया जाना है और उद्यापनकी क्या विधि है ? यह सब आप हमें अच्छी तरह समझाइए । श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा—हे राजेन्द्र ! साधकको चाहिए कि स्नान करके किसी पवित्र स्थानपर बैठे और तुलसीकी मालापर रामनामका जप करे । अथवा किसी पुस्तकपर लिखे या हृदयमें स्मरण करे । अपनी संख्या एक करोड़ अथवा एक लाख होनी चाहिए ॥ ४१-४३ ॥ वैसे तो रामचन्द्रजीके अनेक मन्त्र हैं, किन्तु उनमेंसे एक उत्तम मन्त्र मैं तुमको बतलाता हूँ ॥ ४४ ॥ पूर्वमें श्रीराम शब्द, मध्यमें जय शब्द और अन्तमें दो जय शब्दोंसे मिला हुआ (श्रीराम जय राम जय जय राम) राममन्त्र यदि इक्कीस बार जपा जाय तो वह करोड़ों ब्रह्महत्याओंके पापोंको नष्ट कर देता है । ४५ ॥ बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि

जपाच्छतगुणं पुण्यं रामनामप्रलेखने । लक्षे लक्षे पृथकार्यमुद्यापनमनुत्तमम् ॥४७॥
 उद्यापनविधानं च संक्षेपेण वदामि ते पूर्वशुहरवामो स्याद्रात्रौ मडपिकांतरे ॥४८॥
 रामलिङ्गात्मके भद्रे रामतोभद्रकेऽथवा । अष्टोत्तरमहस्राख्ये द्वाष्टोत्तरशतेऽथवा ॥४९॥
 धान्यराशी मन्थदेशे कलशं स्थापयेत्ततः । तन्मुखे स्वर्णपात्रे वै वरवस्त्रोपशोभिते ॥५०॥
 सीतालक्ष्मणसंयुक्तां राघवप्रतिमां शुभाम् । आमाषान्पलपर्यन्तां मौवर्णीं प्रतिमां यजेत् ॥५१॥
 राजती वा ताम्रमयी विसृज्या न कारयेत् । उपचारः षोडशभिः पूजयेत्सुममाहितः ॥५२॥
 रामनामांकितं हेमपत्रं तन्पुरतोऽर्चयेत् । कथां श्रुत्वा च विभिवदेवदेवं क्षमापयेत् ॥५३॥
 स पराधं च क्षणं त्वद्भक्तिनिरतं हि माम् । दीनानाय कृपामिन्धो त्राहि समारसागरात् ॥५४॥
 रात्रौ जागरणं कृत्वा गीतवार्द्यं च मंगलं । ततः प्रभातममये स्नान्वा होमं समारभेत् ॥५५॥
 दशांशेनैव होमः स्वात्तदशांशेन तर्पणम् । गव्येन पयसा कार्यं रामसंत्रेण यत्नतः ॥५६॥
 तस्यापि च दशांशेन कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । आचार्याय सवन्मां गां सालंकारां सवाममाम् ॥५७॥
 भक्त्याऽर्पयेत्सुवर्णां व्रतमपनिहेतवे अन्धानपि द्विजांस्तोष्य राज्यं लक्ष्मीं ममाप्नुयात् ५८॥
 पुत्रार्थं लभते पुत्रं धनार्थं लभते धनम् । नानादानानि तीर्थानि प्रदक्षिणतपामि च ॥५९॥
 तानि सर्वाणि लक्षांश्चममान्यस्य भवन्ति च । निष्कामो वा सकामो वा यः कुर्याद्भक्तिसंयुतः । ६०॥
 तस्य सर्वेऽपि लक्षांश्चममान्यस्य भवन्ति च । लिखिन्वा पुस्तकं वापि वरं रामायणस्य च ॥६१॥
 एवमुद्यापनं कार्यं श्लोकसंख्यादर्शागतः । पूर्ववद्व्रतं कार्यं तद्दशांशाच्च तर्पणम् ॥६२॥

इसी मन्त्रका रूप करे और अब उपकी सूत्रों एक साथ ही साथ, तब उद्यापन करे ॥ ४६ ॥ उपकी उपेक्षा सो गुना अधिक पुण्य रामनामके लिखनेमें है । साधकका चाहिये कि जब अब रामनामकी लेखसंख्या पूरी एक स्रस हो आय, तब सब उद्यापन करे ॥ ४७ ॥ अब संक्षेपमें उद्यापनकी भी विधि बतलाना है । जिस दिन उद्यापन करना हो, उस दिन पहले उपवास करे और रात्रिके समय उद्यापनके लिये बनायो हुई मण्डपिकाम या रामलिङ्गात्मक भद्र तथा रामतोभद्र, अष्टोत्तरमहस्राख्य या अष्टोत्तरशताख्य भद्रमे धान्यराशि स्थापित करके उसके मध्यमें कलश रखे । कलशके मुखपर एक स्वर्णपात्र रखकर उसपर सुन्दर कपड़ा ओढ़ावे और सीता-लक्ष्मणके साथ साथ रामकी शुभ प्रतिमा स्थापित करे । प्रतिमा कमसे कम एक मासे सोतेकी होनी चाहिये ॥ ४८-५१ ॥ यदि सुवर्णका प्रतिमा न बन सके तो चांदी या तामेकी बनवा ले । किन्तु कंजूसी करना ठीक नहीं है । प्रतिमा स्थापन करनेके अनन्तर षोडश उपचारोंसे उसकी पूजा करे ॥ ५२ ॥ रामनामसे अंकित सुवर्णपात्र प्रतिमाके सामने रखकर उसकी भी पूजा करे और भगवान्की कथा सुनकर समा-प्रार्थना करे ॥ ५३ ॥ फिर बहे—हे दीनानाय ! हे अनापनाय ! हे कृपासिन्धो ! मैं बड़ा अपराधी हूँ, किन्तु आपका भक्त हूँ । मुझे इस संसार-सागरसे उबारिए । ५४ ॥ रातभर गाने और वाजे आदिके साथ जागरण करे और सबरे उठे तो स्नान आदि नित्यकर्मसे निवटकर हार कर ॥ ५५ ॥ जितना जप करके पुरश्चरण किया गया हो, उसका दशांश हवन और हवनका दशांश तर्पण करना चाहिये । तर्पण गौके दूधसे करनेका विधान है ॥ ५६ ॥ तदनन्तर तर्पणका दशांश ब्राह्मणभोजन कराये और व्रत पूर्ण करनेके लिए आचार्यको वस्त्राभूषणसे अलंकृत एक सवत्सा गौ दे ॥ ५७ ॥ आचार्यके अतिरिक्त जो और-और ब्राह्मण माये हों, उन्हें भी प्रसन्न करे । ऐसा करनेसे प्राणीको राज्य एवं लक्ष्मीका प्राप्ति होता है ॥ ५८ ॥ जो पुत्र चाहते हों, उन्हें पुत्र और जो धन चाहते हों, उन्हें धनकी प्राप्ति होती है । संसारमें मिलने दान, तीर्थ, प्रदक्षिणा तथा तपस्यायें हैं, वे सब इस व्रतके लक्षांशके बराबर हैं । जो मनुष्य निष्काम या सकाम भावसे अनिपूर्वक यह व्रत करता है, उसकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं । यदि इस आनन्दरामायणकी पुस्तक लिखकर किसी विद्वान् ब्राह्मणको दी जाय तो उसके पुण्यका तो किसी तरह वर्णन हो नहीं किया जा सकता ॥ ५९-६१ ॥ इसके उद्यापनका विधान एक इस प्रकारका हुआ । दूसरा प्रकार यह है कि आनन्दरामायणकी जितनी श्लोकसंख्या है,

हस्यापि च दशांशेन कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । पूर्वश्लोकेन चाऽन्येन हवनं हि प्रकीर्तितम् ॥६३॥
 अथवा ग्रंथश्लोकानां दशांशैर्हवनं स्मृतम् । अथवाऽग्रे वक्ष्यमाणरीत्या वै शक्यमस्य च ॥६४॥
 श्लोकं लिप्तास्य वै ग्रंथादाचरेद्भवनं हि कम् । अथवा रामगायत्र्या राममंत्रस्तु वाऽऽचरेत् ॥६५॥
 हेमपत्रे त्वेक एव लेख्यः श्लोकः शुभाशुभः । अर्चयित्वा पूर्ववच्च ह्रमपत्रे सविस्तरम् ॥६६॥
 राममूर्तेः पुरः स्थाप्य सर्वं तद्गुणवेऽर्पयेत् । श्रीरामचरितां कृत्वा त्वेवमुद्यापनं नरैः ॥६७॥
 अवश्यमेव कर्तव्यं कविताफलमीप्सुभिः । देवालयगङ्गाशानां वृक्षाणां वापिकूपयोः ॥६८॥
 सर्वाणिनां पण्यानां विद्वार्थं योपिनां नृणां । काव्यानां च कीर्त्या च पथारीनां च सर्वथा ॥६९॥
 राजप्रासादास्तूनां नामकर्म विशिष्यते । विना कर्णोपदेशेन स्थावराणां विधानकम् ॥७०॥
 कृत्वा नामकर्मणश्च कार्यमुद्यापनं नतः । लक्षगुणैः पूजनादि यद्यच्छ्रीराघवस्य च ॥७१॥
 सगोपार्थं कृतं सस्य कार्यमुद्यापनं वरम् । एव राजन् मया सर्वं तवाग्रे विनिवेदितम् ॥७२॥

रामनामप्रभावेण स्वीयं राज्यं लभिष्यसि ।

श्रीरामदास उवाच

युधिष्ठिरस्तु तच्छ्रुत्वा कथिष्यति यथाविधि । ७३॥

प्रासत्रयेण तस्यैव राज्यप्राप्तिर्निश्चिष्यति । अन्ते च परमं स्थानं गमिष्यति मनोर्वलात् ॥७४॥
 एव कथा भविष्यति च तवाग्रे विनिवेदिता । रामनाममहिमानमिमं नरः शृणोति यः ॥७५॥
 परमभक्तिसमेतः पुत्रपौत्रजनसुखम् । सुखं भुङ्क्वा प्राप्नुयात्परमं मोक्षपदं तु सः ॥७६॥
 निन्द्य व्याख्या श्रीरामाग्रे कर्तव्यास्त्वतिभक्तितः । आनन्दरामचरितस्याथवाऽन्यस्य विस्तरात् ॥७७॥
 सर्गस्य वाऽर्थसर्गस्य पादसर्गस्य वा तथा । नवश्लोकमिता वापि श्लोकमात्रस्य वा तथा ॥७८॥

उसके दशांशसे हवन करे । हवनका दशांश ब्राह्मणभोजन कराये । यह उद्यापनका दूसरा प्रकार हुआ । अब हीमरा प्रकार बतलाते हैं । आगे बतलाये जानेवाले क्रमके अनुसार इस प्रयत्नसे उतन श्लोक निकालकर हवन आदि करे । अथवा रामगायत्री या राममंत्रसे हवन आदि करे ॥ ६२-६५ ॥ मुण्डके वनपर केवल एक श्लोक या पूर्वकथित विस्तृत स्तुतिसे कोई श्लोक लिखकर उसकी पूजा करे और अन्तमें उसे गुणको अर्पित कर दे । अथवा रामचन्द्रजीके विषयकी कोई एक कविता बनाकर उद्यापन करे ॥ ६६ । ६७ ॥ जिन लोगोको कविताका फल पानकी इच्छा हो, उन्हें तो उद्यापन अवश्य करना चाहिए । कोई देवालय, गङ्गाला तथा अथवाला वनवाले समय, वृक्ष लगाते समय, बाग़ी या गार्की प्रविष्टाके समय, किसी पुरुष या स्त्रीके विवाहके समय यह उद्यापनविधि अवश्य करनी चाहिये । इनके अनिर्गुण कविता या काव्य बनानेके समय और राजप्रासादके निर्माणकालमें भी उद्यापन करना लाभदायक है । उद्यापनके अनन्तर रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये जैसा कि पीछे बतला आयेगा, उसके अनुसार एक लाख पृष्ठांश रामकी पूजा करे । इसके सिवाय भी श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये जो जा साधन बतलाये गये हैं, उन्हें उद्यापनके समय अवश्य करे । इस प्रकार हे राजन् ! मैंने आपके समक्ष उद्यापनकी विधि बतलायी ॥ ६८-७२ ॥ यदि ऐसा करेंगे तो इसमें कोई शक्य नहीं है कि रामनामके प्रभावसे आप अरने खाये हुए राज्यको फिर वापस पा जायेंगे । श्रीरामदास कहते हैं— श्रीकृष्णचन्द्रजीकी बतलायी हुई स्तुतिके अनुसार युधिष्ठिर तीन मास तक इस श्रुतका विधान करनेसे अपना राज्य फिर पा जायेंगे और उसी मंत्रके वनसे वनमें परमधामको प्रस्थान करेंगे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे विष्णुदास ! मैंने तुम्हें यह भविष्यकी कथा बतलायी है । जो मनुष्य भविष्यपूर्वक इस रामनामकी महिमाका भ्रमण करता है, वह संसारमें जड़नक रहता है तबतक पुत्रपौत्र आदि सासारिक मूल्योंकी भोगता है और अन्तमें मोक्षपद प्राप्त करता है ॥ ७५ । ७६ ॥ रामभक्तको चाहिये कि प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजीके सामने इस आनन्दरामायण भगवा कीनी हमारे रामचरितकी भक्तिपूर्वक विस्तारसे व्याख्या किया करे ॥ ७७ ॥ यह आवश्यक नहीं कि व्याख्या ग्रन्थके अधिक अथकी हो । वह चाहे एक सर्गकी,

श्लोकार्धं श्लोकपादं वाऽऽनन्दरामायणस्थितम् । ये पठन्ति नरा निन्यं ते नरा मुक्तिभागिनः ॥७९॥

येऽश्वत्थमूले मुनिवृक्षमूले तथा तुलस्याश्च समीपदेशे ।

पुण्यस्थले भास्करभूमिगग्रे श्रीरामचन्द्रस्य पुरा सदैव ॥८०॥

तथा सभायां द्विजवृन्दमध्ये नद्याम्नटे वा रघुनायकस्य ।

आनन्दरामायणमादरेण पठन्ति धन्या भुवि मानवास्त्रे ॥८१॥

रामायणं लिखित्वा तु दातव्यं भूमुराय हि । समग्रं वा कांडमेकं सर्गो वाऽतिसुपुण्यदः ॥८२॥

सर्गस्त्येकः प्रत्यहं हि लिखित्वा भूमुराय हि । स पूज्य देयश्चानन्दरामायणममुद्भवः ॥८३॥

अशक्तेन सव श्लोकाः सदा देया विलेख्य च । प्रीत्यर्थं रामचन्द्रस्य विप्रेभ्यः परिपूज्य वै ॥८४॥

नित्यदानमेतदेव कर्तव्यं सर्वदा नरैः । नित्यं सुवर्णमुद्राया दानेन यत्फलं स्मृतम् ॥८५॥

तत्फलं प्रत्यहं सर्गदानेन लभ्यते नरैः । नानेन सदृशं दानं राघवस्यातिशेषदम् ॥८६॥

तस्मादवश्यमेवैतद्दानं कार्यं निरंतरम् । श्रीरामचन्द्रायै नवपूजफलैस्तथा ॥८७॥

नामवल्लोनयदलैस्ताम्बूलः सोपचारकः । पृथङ्मन्त्रभूमुरेभ्यो देयो नित्यं सदक्षिणः ॥८८॥

अशक्तेनैक एवापि देयस्ताम्बूल उत्तमः । न तांबूलमम दानं किञ्चिदस्ति जगन्त्रये ॥८९॥

ताम्बूलः शुद्धिदः प्रोक्तस्ताम्बूलो मंगलप्रदः । ताम्बूलः श्रीरामो ज्ञेयस्ताम्बूलो राघवाप्रियः ॥९०॥

तस्मान्प्रयत्नतस्तस्या देयस्ताम्बूल उत्तमः । सदा राम पूजयेच्च सदा राम विचिंतयेत् ॥९१॥

श्रीरामस्मरणं नित्यं कार्यं भक्त्या मुहुर्मुहुः । यस्य वाण्यां रामनाम हस्तौ पूजननन्तरौ ॥९२॥

श्रीरामचरितान्येव श्रोतुकामा च यच्छ्रुतिः । रामतीर्थानि रापेशान् रामक्षेत्राणि यानि च ॥९३॥

यदग्री गतुकामी तु रामपूजोत्सवान् वरान् । मद्राष्टुक्षमां यज्ञेव्री स धन्यः पुरुषः स्मृतः ॥९४॥

आधे सर्गकी, सर्गके चतुर्थांशकी, नौ श्लोकोकी, केवल एक श्लोककी, आधे श्लोककी, आधे या चौथाई श्लोककी, जैसे बने ध्यान्वा अवश्य करता जाय । जो लोग नित्य ऐसा करते हैं, वे मनुष्य अवश मुक्तिके भागी होते हैं ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जो लोग वीरमके नीचे, अश्वत्थ वृक्षके नीचे, तुलसीके पास, किसी पवित्र स्थानमें, सूर्यदेव या ब्राह्मणके सामने अथवा रामचन्द्रजीके समक्ष, किसी सभामें, ब्राह्मणोंकी मण्डलीमें या नदीके तटपर जो लोग आनन्दरामायणमें लिखे हुए चरित्रका पाठ करते हैं वे मनुष्य धन्य हैं ॥ ८० ॥ ८१ ॥ समग्र एक काण्ड अथवा एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर यदि किसी ब्राह्मणको दिया जाय तो भी बड़ा पुण्य होना है । रामके उपासकको चाहिये कि नित्य एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर उसको पढ़ा करे और किताब ब्राह्मणको दान दे दे ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ यदि पूरा सर्ग लिखनेमें असमर्थ हो तो रोज केवल नौ श्लोक ही लिखकर उसकी पूजा करे और रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये विप्रको दान दे दिया करे । ८४ ॥ लोगोंका चाहिये कि और दान के चक्करमें न पड़कर सर्वदा इसीका दान दिया करे । नित्य सुवर्णको मुद्रा दान करनेमें जो फल मिलता है, वही फल केवल एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर दान देनेसे प्राप्त होता है । रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाला इससे बढ़कर और कोई भी दान नहीं है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ अतएव निरंतर अवश्यमेव इसका दान करना चाहिए । अथवा रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिए नौ सुपाठी अथवा अन्य वस्तुओं और दक्षिणाके साथ नौ पानके पत्ते नौ ब्राह्मणोंको दान दिया करे । यदि ऐसा न कर सके तो केवल एक ताम्बूलदान दिया करे । क्योंकि तोनों लोकोंमें ताम्बूलदानके बराबर और कोई भी दान नहीं है । ताम्बूल शुद्धि देनेवाला, मङ्गलप्रद, लक्ष्मीको बढ़ानेवाला और रामचन्द्रको प्रिय है ॥ ८७-९० ॥ इसीलिये लोगोंका चाहिये कि प्रयत्न करके उत्तम ताम्बूलका दान करें, सदा सब लोग रामकी पूजा करें, रामका ध्यान करें और रामका स्मरण करें । जिनकी वाणीमें रामनाम विराजमान है, जिनके हाथ रामकी पूजामें लगे हुए हैं, जिनके कान रामका गुणगुवाद सुननेमें लगे हैं, जिनके पाँव रामेश्वर, रामतीर्थ और रामक्षेत्रमें जात रहते हैं और जिनके नेत्र रामपूजनोत्सव देखनेमें लगे

राम रामेति रामेति ये वदन्ति जना ह्यत्र । महापातकिनस्तेऽत्र मुक्तिं यांति न संशयः ॥९५॥
रामचन्द्रेति मन्त्रोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी । तथापि निरये घोरे पततीन्मद्भुतं महत् ॥९६॥

श्रीगणेशाय नमः । अमृतमन्त्रोऽयमत्रोच्यते । चैवमस्मि प्रविष्टा ।

हालाहलं वा प्रलपानलं वा मृत्योर्मृत्युं वा विजितां कृतो भोः ॥९७॥

आमने च तथा निद्राकाले भोजनकर्मणि । क्रीडने गमने निन्य शमने च विचिन्तयेत् ॥९८॥
अरणीयः कीर्तनीयश्चिन्तनीयः सदा नरैः । गोपश्च रामो ह्युपदेष्टो राम एवावनीतले ॥९९॥
स्वर्गे सुराणाममृतं यथाऽस्ति परमं सुखम् । रामनामामृतं भूषणं क्षयं नाप्नोति वै कदा ॥१००॥
गोपीचन्दनलिमङ्गो राममुद्राङ्कितो नरः । रामनामोच्चारकश्च तुलसीकाण्डमानिकः ॥१०१॥
शङ्खध्वजगदापद्मधारको राममन्त्रमन्त्रः । यस्मिन्मन्त्रे नरो धन्यो नेतश्च कदाचन ॥१०२॥
स एव पुरुषोऽयं यो रामनाम सदा वदेत् । स एव पुरुषो निघस्त्वत्र रामं स्मरेन्नरः ॥१०३॥
ये नराः शिवमद्भुक्तिं कृत्वा निदन्ति गद्यवम् । पूजयेच्च स्वगर्भेऽपि नरा ज्ञेयाऽवनीतले ॥१०४॥
राम एव हरे ज्ञेयः शिव एव रघुनन्दनः । उभयोर्नार्तिरत्र भेददृष्ट्वा नारकी नरः ॥१०५॥
रामशङ्करयोरत्र भिन्नम् येन ध्यानितम् । अत्रागच्छन्तवश्च तस्य जन्म वृथा गतम् ॥१०६॥
सुभोश्च हृदयं रामो रामस्य हृदयं शिवः । नैवानरं कन्यानीयं कुतश्चापि धनैर्नरैः ॥१०७॥
रामेति द्वयक्षरं नाम ये वदन्ति त्वहनिगम् । न कस्यापि भयं तेषां जीवन्मुक्तं च ते नराः ॥१०८॥
राममुद्राङ्कितं दृष्ट्वा नरं ते यमार्किकराः । पलायन्ते दक्ष दिशः सिंह दृष्ट्वा गजा यथा ॥१०९॥
ललाटे पृष्ठदेशे च कुक्ष्यादौ जठरे तथा । हृदये बुधयोर्दौ हि मन्त्राके त्वनि वै नर ॥११०॥

रहत है, वे पुरुष धन्य हैं ॥ ९१-९४ ॥ जो लोग इस मन्त्रार्थ 'राम-राम' यह नाम जपने हैं, ये महापातकी होत हुए भी मुक्ति की प्राप्ति होत है ॥ ९५ ॥ जिनके पास 'रामचन्द्र' यह मन्त्र है और वाणी अपने वशमें है, फिर भी वे लोग घोर नरकमें पड़ते हैं, यह महान् आश्चर्य की बात है ॥ ९६ ॥ श्रीगणेश, मन्त्रों अमृतमन्त्र-बोजकी सञ्जीवनी यदि मनमें बैठ गये तो हालाहल विष, प्रलपानल और मृत्युके मुक्कम भी घुम जायस कोई भय नहीं रह जाता ॥ ९७ ॥ लोगोंकी तात्चाहिए कि उज्ज, उद्व, स न, खान, प न, लपन, बुरे या कहीं जाते-जाते समय एकमात्र रामका ध्यान करें ॥ ९८ ॥ सदा उन्हीके गुणगुण-मन्त्र । उन्हीके चरित्रका कीर्तन करें और उन्हीका गुण गाते ॥ ९९ ॥ स्वर्गमें जिस प्रकार अमृत परम मङ्गलकार है । उन्हीके मन्त्र मन्त्रद्वारा कर्मों भी नष्ट हुनवाला रामनामही अमृत है ॥ १०० ॥ जो मनुष्य गोपीचन्दन लगाते, राममुद्रामें अङ्कित रहते, रामनामका उच्चारण करते तुलसी (काष्ठ) की माला पहनते, मख, चम, गदा और पद्मका चिह्न धारण करने और मनमें सब समय रामका स्मरण करने ह । ऐसे प्राणी जहाँपर रहते हैं, वह स्थान और वे मनुष्य धन्य हैं ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ वही पुरुष नर पुरुषोत्तम अग्रगण्य सकता है, जो सदा रामनामका जप किया करता है और वही पुरुष निन्दाका भाजन है, जो कभी रामचन्द्रजीका स्मरण नहीं करता ॥ १०३ ॥ जो मनुष्य शिवजीको भक्ति करके रामचन्द्रजीकी निन्दा करते हैं, उन्हें इस भूमण्डलमें कभी समझना चाहिये ॥ १०४ ॥ राम ही शिव है और शिव ही राम हैं । इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है । जो प्राणी इनमें कोई भेदभाव मानता है, वह नरकगर्भी होता है ॥ १०५ ॥ इस ससारमें जिसने राम और शिवमें कोई भेद माना तो बकरीके गलेके स्तनके सपान उसका जीवन नृया गया ॥ १०६ ॥ शिवजीके हृदय राम है और रामके हृदय शिवजी है । लोगोंको चाहिए कि विविध प्रकारके कुतर्कोंमें पड़कर इनमें कोई भेद न माने ॥ १०७ ॥ जो लोग रात दिन 'राम' ये दो अक्षर कहा करते हैं, उन्हें किसीका भय नहीं रह जाता और वे प्राणी जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥ १०८ ॥ राममुद्रासे चिह्नित मनुष्योंको देखकर यमके दूत उसी तरह दसों दिशाओंमें भाग जाते हैं, जैसे सिंहको देखकर हाथी भाग खड़े होते हैं ॥ १०९ ॥ अतएव लोगोंका यह परम कर्तव्य है कि गोपीचन्दनसे अङ्कित राममुद्रा धारण करें । क्योंकि राममुद्रा महान् श्रेष्ठ वस्तु है और सब प्रकारके

राममुद्रा धारणीया गोपीचन्दनचिह्निता । राममुद्रा महाश्रेष्ठा सर्वदोषनिकृंतनी ॥१११॥

सदा देहे नरैर्धार्या गोपीचन्दनचिह्निता । राममुद्राऽस्ति यदेहे त पाप स्पृशने न हि ॥११२॥

स्तुतिः सर्वत्र रामस्य स्तोत्रैः कार्या त्वहर्निशम् । प्रार्थनैश्च नमोनैश्च स्वबुद्ध्या रचितैर्गपि ॥११३॥

म काविवर्गा जनताऽथ विप्रश्चो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धव्यपि ।

नामान्यनंतस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति माधवः ॥११४॥

कवित्वमत्यशुद्धं च रामनाम्नां कर्तुं च यत् । गज्ज्वल्यमतिशुद्धं च श्रवणान्पातकापहम् ॥११५॥

यस्मिन् रामस्य कृष्णस्य चरित्राणि महानि च । कवित्वे तन्मुपयत्नं सदा श्रेयं मदसमं ॥११६॥

मृणु शिष्य तत्राग्रेऽन्यद्गुह्यं किञ्चिद्वर्गस्यहम् । कविताविषयं यच्च सर्वमन्दैहनाशकम् ॥११७॥

अश्वत्थामा बलिर्धर्मो हनुमांश्च विमोषणः । कृपः परशुरामश्च मर्मज्ञे चिरजीविनः ॥११८॥

एवं यद्वचनं शिष्य प्रोच्यते सर्वदा वृथैः । तदग्रे सर्वदा सत्यं श्रेयं कल्पिगुणेऽपि च ॥११९॥

येषु मन्त्रबलं भूम्यां वर्ततेऽत्र नरेषु हि । अश्वत्थामांश्चभूतास्ते श्रेयाश्च पुरुषा वृथैः ॥१२०॥

न्यायोपाजितद्रव्येण राज्यं कुर्वन्ति धर्मतः । अन्यशभूतास्ते श्रेया मानवा जगतीतले ॥१२१॥

रामस्तुतिं कवित्वे ये चरित्रं वर्णयन्ति च । व्यासांश्चभूतास्ते श्रेया मानवा जगतीतले ॥१२२॥

ये ये वीरास्त्वथ भूम्यां वायुपुत्रांश्चरुणि । ते ते श्रेया नरान्मन्य चिरजीविन्वचनकाः ॥१२३॥

ये ये शान्ता रामभक्ताः सत्यत्र मानवा भुवि । विमोषणांश्चभूतास्ते श्रेयाश्च मरुतेर्जनैः ॥१२४॥

ये धैर्यवतो योद्धारः सत्यत्र मानवा भुवि । कृपाचार्यांश्चभूतास्ते श्रेयाः सर्वे वृथैः सदा ॥१२५॥

ये वीराः क्रोधयुक्तास्तेऽत्र सर्वेऽवनीतले । जामदग्न्यांश्चभूताश्च सदा श्रेया नरेत्तमैः ॥१२६॥

दोषोंको नष्ट करती है। अतएव मलाष्ट, पृथ्वी, दोनों कुक्षि, रदर, हृदय, दोनों भुजाओं और मस्तक इत स्यानोंमें नौ राममुद्राओंको धारण करना चाहिए । ११० । १११ । ये मुद्रा धारण करना परमावश्यक है। क्योंकि जिसके शरीरमें राममुद्रा विद्यमान रहती है, उसे किसी प्रकारका पातक नहीं लगता । ११२ ॥

उपासकोंका यह भी उचित है कि विविध प्रकारके स्तुति द्वारा रामचन्द्रजीकी स्तुति करे। वन्तोंच प्राचीन हों, नवीन हों या अपनी बुद्धिसे बनाये गये हों ॥ ११३ ॥ रामरूपमें अद्भुत मन्त्रमय गुणानुवादसम्बन्धी वचनोंका प्रवाह प्राणियाँक महान् पातकोंको भी दूर करने जाता है। अतः लोग इस गुण, गाये और मनन करें। रामके नामसे अद्भुत कविता चाहे अतिशय अशुद्ध हो, फिर भी उसे अतिशुद्ध मानना चाहिये। उसके सुननेसे सब तरहके पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ जिस कवित्वमें राम और कृष्णके महान् चरित्रोंका वर्णन किया गया हो, वह अत्यन्त पवित्र होता है। बड़े लोगोंका चाहिए कि सदा ऐसी कविताका गान करें ॥ ११६ ॥ श्रीरामदासजी विष्णुदाससे कहते हैं—हे शिष्य अब मैं तुम्हारे आगे सब प्रकारके सन्दर्भोंको निवृत्त करतवाला एक गुप्त कविताका विषय कह रहा हूँ ॥ ११७ ॥ अश्वत्थामा, बलि, ध्याम, हनुमान्, विमोषण, कृपाचार्य और परशुराम ये सप्त चिरजीवी हैं ॥ ११८ ॥ प्रायः पण्डित लोग इस बातको कहा करते हैं। इसे इस कल्पियुगमें भी सत्य ही मानना चाहिए । ११९ ॥ इस पृथ्वीपर जिन लोगोंके पास मन्त्रबल विद्यमान है, उनका अश्वत्थामाका अशत्रु मानना चाहिए ॥ १२० ॥ ओ राजे न्यायोपाजित द्रव्यसे धर्मपूर्वक राज्य करते हैं, उनको इस संसारमें बलिक अशत्रु उत्पन्न समझना चाहिये ॥ १२१ ॥ जो लोग कविता करते हुए रामको स्तुति करते या उनके चरित्रोंका वर्णन करते हैं, जगतीतलमें उन मनुष्योंको व्यामके अशत्रु मानना चाहिये ॥ १२२ ॥ इस भूमण्डलमें जो जो वीर हैं, वे सब हनुमान्जके अशत्रु हैं। ऊपर बतलाये हुए गुण ही उनके प्रकारके मनुष्योंके चिरजीवित्वकी सूचना देने रहते हैं ॥ १२३ ॥ इस पृथ्वीमें जितने शान्त रामभक्त हैं, उन्हें सब लोग विमोषणके अंशसे उत्पन्न समझें ॥ १२४ ॥ इस संसारमें जे धैर्यके साथ युद्ध करनेवाले लोग हैं, उन्हें कृपाचार्यके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये ॥ १२५ ॥ इस पृथ्वीमण्डलमें जितने क्रोधी वीर हैं, उन सब लोगोंको

चिरंजीवीति व्यासः कः कथं ज्ञेयो जनैर्भुवि । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु ॥ १२७ ॥
 ये शीर्वाण्या कविश्रानि करिष्यन्त्ययनीतले । व्यामांशभूतास्ते ज्ञेयाः पंडिता मानवास्त्विह ॥ १२८ ॥
 ये रामचंद्रं कृष्णं च शिवं स्तुत्यास्तुवंति हि । वर्णयन्ति चरित्राणि ते ज्ञेया व्यासमूर्तयः ॥ १२९ ॥
 ये राजानं च गणिकां नारो राक्षः सर्पा तथा । नरस्तुवंति स्तुत्या ते न ज्ञेया व्यासमूर्तयः ॥ १३० ॥
 यावद्भूम्यां तु रामस्य चरित्राणि स्तुवीत हि । तावदत्र स्मृतो व्यासप्रदो मुक्तिमभिष्यति ॥ १३१ ॥
 किं फलं कस्य पाठाच्च तद्ब्रवीमि तदाधुना । शृणु स्वस्थमना शिष्य विस्तरेणोत्तरं च यत् ॥ १३२ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकाण्डे रामनामलक्षणानादिवर्णने नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(वेदादिकोंको फलश्रुति)

श्रीरामदास उवाच

शिरोव्याहृतिमयुक्ता गायत्री परिकीर्तना वेदाश्रयणां तुल्या सा श्रुतेन मुनिभिः स्मृता ॥ १ ॥
 चतुःश्रुतेन गायत्र्याः समितः परिकीर्तितम् । पापघ्नं महापुण्यं तदुक्तं तदुक्तं तदुक्तम् ॥ २ ॥
 तद्योपनिषदः पुण्या गायत्र्यक्षरसंख्यायाः प्रोच्यते पुण्यं तु लोके पुण्यं तु लोके पुण्यं तु लोके ॥ ३ ॥
 सहितपाठनः प्रोक्तं द्विगुणं पदपाठनः । त्रिगुणं क्रमपाठे व्याजजटापाठे तु पङ्क्तुगुणम् ॥ ४ ॥
 महाभारतपाठस्तु वेदतुल्यः प्रकीर्तितः । पुराणानां तदर्धेन स्मृतोनां च तथोच्यते । ५ ॥
 भारते भगवद्गीता तथा नामपुस्तकम् । गायत्र्याश्च समं प्रोक्तं पुण्यं पापक्षयदायि च । ६ ॥
 पाठेन यत्फलं प्रोक्तमथेतानाञ्चतुर्गुणम् । सुदुर्लभं श्रवणाच्च पुण्यं दशगुणं स्मृतम् । ७ ॥

परशुरामके अगले उत्पन्न सप्तमः सर्गः ॥ १२३ ॥ निरञ्जनी व्यासकी इस संसारन कंस पहचानका चर्हिण । इसके लिए उसका स्वका बनाने है । तम सावधान होकर शृणु ॥ १२७ ॥ जो-जो लोग संस्कृत वाणीमें कविता करेगें, वे पण्डित एतद्विद्वान्के अंशके उत्पन्न माने जायेंगे ॥ १२८ ॥ जो लोग रामचंद्र कृष्णचंद्र तथा शिवजीकी स्तुति में कसबा उनके चरित्रका वर्णन करें उनको व्यासकी भाक्षान् मूर्ति समझना चाहिये ॥ १२९ ॥ जो लोग राजा, गणिका, श्रो, राजपक्ष तथा किसी व्यक्ति-विशेषका स्तुति करने हैं, वे व्यासका मूर्ति नहीं माने जा सकत ॥ १३० ॥ इस पृच्छीरद शर्णा जवतक रामजी स्तुति करता है, तबतक वह व्यास चूता है और अन्तमें मुक्तिपद प्राप्त करता है ॥ १३१ ॥ किसी ग्रन्थका पठ करनेसे बड़ा फल होता है । अब मैं इस बातको बतलाऊंगा । हे शिष्य ! तुम स्वस्थ मन होकर सुनो, मैं विस्तारपूर्वक बतलाता हूँ ॥ १३२ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे पंचमः रामतेजशष्टेऽविरचित-
 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे-वेदकी शिरोव्याहृतिसे युक्त सौ अक्षरीवाली गायत्री कही गयी है ॥ १ ॥
 चार सौ गायत्रीके बराबर पापघ्न नामक महापुण्य है, जिसमें छः सौ ऋचाओंका समावेश किया गया है ॥ २ ॥ गायत्रीकी अक्षरसंख्याके अनुसार उपनिषदोंके पाठसे पुण्य प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ सहितपाठकी अपेक्षा द्वागुना पुण्य पदपाठ करनेमें है । क्रमके पाठ करनेमें त्रिगुना पुण्य है और जटाके पाठसे छगुना पुण्य होता है ॥ ४ ॥ महाभारतका पाठ वेदपाठ सदृश होता है । पुराणोंका पठ अर्धे वेदपाठका पुण्य देनेवाला है और उससे भी आधा पुण्य स्मृतिश्रुतियोंके पाठसे होता है ॥ ५ ॥ महाभारतके अन्तर्गत भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम, वे दोनों गायत्रीके समान पुण्यदायक एवं पापक्षयकारी माने गये हैं ॥ ६ ॥ पाठसे जितना पुण्य होता है, उससे बीगुना पुण्य उसका अर्थ समझनेसे होता है और अच्छे-अच्छे भक्तोंको सुननेसे दशगुना पुण्य प्राप्त होता

भूमिदानं यथा लोके महादानमितीति । । १४ ॥ दानं दशगुण ततोऽपि स्यात्फलप्रदम् ॥ ८ ॥

अनन्तरात् उवाच

कर्म दानं प्रकरोमि तु यणन्देहस्य । । १५ ॥ कथं वा पञ्चतामेति ब्राह्मणश्चेतरोऽथवा । ९ ॥

अनन्तरात् उवाच

वसन् गुरुकुले यस्तु शिक्षान्नाशी श्रुतिः । । १६ ॥ यथाश्च शाखा पूर्णा स यथोक्त लभते फलम् ॥ १० ॥

शिव्यस्याध्यापकस्यापि स हि सा पठतः फलम् । । १७ ॥ प्रयत्नं तु गार्ग्यीमहून्पाठकल लभेत् ॥ ११ ॥

पदपठे तद्वदे स्यात्तद्वदे कथयताः । । १८ ॥ तद्विस्तारः कथो विद्वन् गार्ग्यपाठकल स्यात् ॥ १२ ॥

ततोऽप्युत्तिष्ठन् पठेत्तु गार्ग्यपि । । १९ ॥ पठेत्तु पठतु तुर्यं फलं वै शुभाश्रयतः ॥ १३ ॥

अधोनाम्निगुणं तु मयः फलं वै कथयताः । । २० ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ १४ ॥

अधोऽप्यपि न यथा स्वः पठतु मयः फलम् । । २१ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ १५ ॥

प्रज्ञायावति । । २२ ॥ नु विप्रस्येति श्रुतेन । । २३ ॥ यथाश्रयः प्रज्ञा मृगं जगता प्रजेन ॥ १६ ॥

गार्ग्येन्द्रोऽथ गार्ग्यं पठता । । २४ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ १७ ॥

पठतु मयः । । २५ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ १८ ॥

प्रयत्नं तु मयः फलं वै कथयताः । । २६ ॥ पठेत्तु पठतु तुर्यं फलं वै शुभाश्रयतः ॥ १९ ॥

गार्ग्यपि न यथा स्वः पठतु मयः फलम् । । २७ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ २० ॥

अधोनाम्निगुणं तु मयः फलं वै कथयताः । । २८ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ २१ ॥

गार्ग्यपि न यथा स्वः पठतु मयः फलम् । । २९ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ २२ ॥

प्रज्ञायावति । । ३० ॥ नु विप्रस्येति श्रुतेन । । ३१ ॥ यथाश्रयः प्रज्ञा मृगं जगता प्रजेन ॥ २३ ॥

गार्ग्येन्द्रोऽथ गार्ग्यं पठता । । ३२ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ २४ ॥

पठतु मयः । । ३३ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ २५ ॥

प्रयत्नं तु मयः फलं वै कथयताः । । ३४ ॥ पठेत्तु पठतु तुर्यं फलं वै शुभाश्रयतः ॥ २६ ॥

गार्ग्यपि न यथा स्वः पठतु मयः फलम् । । ३५ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ २७ ॥

अधोनाम्निगुणं तु मयः फलं वै कथयताः । । ३६ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ २८ ॥

गार्ग्यपि न यथा स्वः पठतु मयः फलम् । । ३७ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ २९ ॥

प्रज्ञायावति । । ३८ ॥ नु विप्रस्येति श्रुतेन । । ३९ ॥ यथाश्रयः प्रज्ञा मृगं जगता प्रजेन ॥ २३ ॥

गार्ग्येन्द्रोऽथ गार्ग्यं पठता । । ४० ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ ३१ ॥

पठतु मयः । । ४१ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ ३२ ॥

प्रयत्नं तु मयः फलं वै कथयताः । । ४२ ॥ पठेत्तु पठतु तुर्यं फलं वै शुभाश्रयतः ॥ २६ ॥

गार्ग्यपि न यथा स्वः पठतु मयः फलम् । । ४३ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ ३३ ॥

अधोनाम्निगुणं तु मयः फलं वै कथयताः । । ४४ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ ३४ ॥

गार्ग्यपि न यथा स्वः पठतु मयः फलम् । । ४५ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ ३५ ॥

प्रज्ञायावति । । ४६ ॥ नु विप्रस्येति श्रुतेन । । ४७ ॥ यथाश्रयः प्रज्ञा मृगं जगता प्रजेन ॥ २३ ॥

गार्ग्येन्द्रोऽथ गार्ग्यं पठता । । ४८ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ ३६ ॥

पठतु मयः । । ४९ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ ३७ ॥

प्रयत्नं तु मयः फलं वै कथयताः । । ५० ॥ पठेत्तु पठतु तुर्यं फलं वै शुभाश्रयतः ॥ २६ ॥

गार्ग्यपि न यथा स्वः पठतु मयः फलम् । । ५१ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ ३८ ॥

अधोनाम्निगुणं तु मयः फलं वै कथयताः । । ५२ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ ३९ ॥

गार्ग्यपि न यथा स्वः पठतु मयः फलम् । । ५३ ॥ तद्वदे नैव यथा फलमुक्तं मर्त्यपरिषत् ॥ ४० ॥

प्रज्ञायावति । । ५४ ॥ नु विप्रस्येति श्रुतेन । । ५५ ॥ यथाश्रयः प्रज्ञा मृगं जगता प्रजेन ॥ २३ ॥

उपविद्याश्चतस्रः श्रुतं समष्टादश स्मृतयः । शिक्षा कल्पोऽप्यकरण निरुक्त छन्द उज्योतिषश्च ॥ २३ ॥
 इत्यंगानि तु वेदस्य योऽङ्गेने तन्मूलं शृणु । मन्त्रिपठनोऽप्यर्थं लभने पाठिनः फलम् ॥ २४ ॥
 शिक्षा ग्रन्थ तु वेदस्य कल्प पाथी मन्त्रोक्तिः । मन्त्र व्याकरण श्लोक निरुक्त अथर्ववेद के ७ ।
 उज्योतिष नयन पाहुमछन्द पादगिति श्रुते । शिक्षा कल्प व्याकरण छन्द उज्योतिष ॥ २५ ॥
 सकृद्योग प्रकुर्यात् फल तेषां चतुर्गुणम् । मन्त्रेणैव तस्य उज्योतिषं चतुर्गुणम् ॥ २६ ॥
 सहिताराठनं पुण्यं गणितज्ञो लभे फलम् । उज्योतिषा मन्त्रिपठनादयः फलम् ॥ २७ ॥
 जातकप्रश्नयोगेन न किञ्चन्यप्यधीनम् । वेदोऽप्यप्यधीनो नोऽपि ज्ञानोऽप्यधीनः ॥ २८ ॥
 न वेति गणितं यत्तु ज्ञेयो वक्ष्यम्वचकः । दानं नाहंति विद्वद्भ्यः सन्तु ॥ २९ ॥
 शिल्पमपि च स्था शास्त्रां योऽनधीत्य द्विजावमः । अंगदिष्वन्यशास्त्रेषु नक्तः स तु ॥ ३० ॥
 किञ्चिच्छास्त्रमधी यापि पश्येत्तन्निपदः पठेत् । ज्ञानादिष्वन्यशास्त्रेषु नक्तः स तु ॥ ३१ ॥
 अधीते ज्ञानपात्रे स्थान्पुण्याधिक्येन युज्यते । ततोऽप्यधीनः स पृथग्यथा ज्ञानः ॥ ३२ ॥
 शान्तिविक्रयेषु तेषु स्थान्पुण्याधिक्येन युज्यते । ततोऽप्यधीनः स पृथग्यथा ज्ञानः ॥ ३३ ॥
 शान्तिविक्रयेषु तेषु स्थान्पुण्याधिक्येन युज्यते । ततोऽप्यधीनः स पृथग्यथा ज्ञानः ॥ ३४ ॥
 शान्तिविक्रयेषु तेषु स्थान्पुण्याधिक्येन युज्यते । ततोऽप्यधीनः स पृथग्यथा ज्ञानः ॥ ३५ ॥
 न हि ज्ञानेन सत्यं परित्यज्य धिक् । न हि ज्ञानेन सत्यं परित्यज्य धिक् ॥ ३६ ॥
 परं वादिनये शक्तिर्यस्य सत्त्वद्वयं पदः । य एव सत्त्वं यत्तु पठ्यमानं सत् ॥ ३७ ॥
 वेदोऽप्यधीनः सत्त्वद्वयं पदः । य एव सत्त्वं यत्तु पठ्यमानं सत् ॥ ३८ ॥
 ज्ञानाधिक्येन लभने वेदार्थज्ञानम् फलम् । न नांश द्विविधा नोक्ता कर्मयोगे ब्रह्मसूत्रम् ॥ ३९ ॥

धर्मशास्त्र ये चौदह विद्यार्थ हैं । आयुर्वेद, धनुर्वेद, वन्यवेद और अथर्वनाम ॥ १५-२२ ॥ ये चार उपविद्याएँ हैं-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्द और उज्योतिष के छ वंशके अंग हैं । इनके अध्ययनका जो फल होता है, उसे मुक्तो । इनका पाठ करनेसे मन्त्रिपठका आवा फल मिलता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ जो फल होता है, उसे मुक्तो । इनका पाठ करनेसे मन्त्रिपठका आवा फल मिलता है ॥ २३ ॥ २४ ॥
 वेदकी नौमिका शिक्षा, कल्प दोनो हाथ, मन्त्र व्याकरण, निरुक्त कान, उज्योतिष नय और छन्द कथ्य । पर फल तेषां चतुर्गुण फल प्राप्त होगा है । वेदका पाठ करनेसे उज्योतिषमन्त्रके अर्थज्ञानका भी फल मिल जाता है ॥ २५ ॥
 ॥ २६ ॥ २७ ॥ गणितकी ज्ञाननवाळा विद्वान् सति पठ्यमानं पुण्य पाता है । सहिताराठनं ज्ञान रहनेसे उज्योतिष-शास्त्रके अध्ययनका आवा पुण्य मिलता है ॥ २८ ॥ किन्तु उज्योतिष भी ज्ञानविद्वान् केवल जातकका प्रश्न-मात्र जानता है और वेदाध्ययनविहीन है, उसे कुछ भी पुण्य नहीं होता । यह कोरा जानक प्रश्नका जवाब ही कहा जायगा ॥ २९ ॥ जो ब्राह्मण गणित नहीं जानता, सब कर्मोंमें निश्चिन्त वह विद्वत् किन्ती प्रकारका दान लेनेका अधिकारी नहीं कहा जा सकता ॥ ३० ॥ जो ब्रह्मण अन्त वेदका वाक्य उच्चारण करके कल्प व्याकरण-उज्योतिष आदि वेदाङ्गोंमें ही लगा रहता है, वह द्विजायम भी निश्चिन्त होता है ॥ ३१ ॥ जो ब्राह्मण शास्त्र भी उज्योतिष आदि वेदाङ्गोंमें ही लगा रहता है, वह द्विजायम भी निश्चिन्त होता है ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मण शास्त्र भी उज्योतिष आदि वेदाङ्गोंमें ही लगा रहता है, वह द्विजायम भी निश्चिन्त होता है ॥ ३३ ॥ जो ब्राह्मण शास्त्र भी उज्योतिष आदि वेदाङ्गोंमें ही लगा रहता है, वह द्विजायम भी निश्चिन्त होता है ॥ ३४ ॥ जो ब्राह्मण शास्त्र भी उज्योतिष आदि वेदाङ्गोंमें ही लगा रहता है, वह द्विजायम भी निश्चिन्त होता है ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण शास्त्र भी उज्योतिष आदि वेदाङ्गोंमें ही लगा रहता है, वह द्विजायम भी निश्चिन्त होता है ॥ ३६ ॥ जो ब्राह्मण शास्त्र भी उज्योतिष आदि वेदाङ्गोंमें ही लगा रहता है, वह द्विजायम भी निश्चिन्त होता है ॥ ३७ ॥ जो ब्राह्मण शास्त्र भी उज्योतिष आदि वेदाङ्गोंमें ही लगा रहता है, वह द्विजायम भी निश्चिन्त होता है ॥ ३८ ॥ जो ब्राह्मण शास्त्र भी उज्योतिष आदि वेदाङ्गोंमें ही लगा रहता है, वह द्विजायम भी निश्चिन्त होता है ॥ ३९ ॥

वेदार्थज्ञानतुल्याया द्वितीययाः फलं शृणु अन्यश्च तु लभने गायत्रीशतजं फलम् ॥४०॥
 ये तूपशोगिनः पाश्चादुग्रन्थ स्नेहो भवति हि । तेऽप्यर्थफलदा ज्ञेया व्यवधानाच्च पादशः ॥४१॥
 वेदोपनिषदामर्थे ज्ञानाधिक्याय चेन्पठेत् । प्रदीप सर्वविद्यानां यो मिद्वान्यायविस्तरात् ॥४२॥
 वेदार्थज्ञानतुल्यं तु फलं तस्य प्रकीर्तितम् । के ल जी विदार्थ तु यः पठेन्न्यायविस्तरम् ॥४३॥
 हेतुवादरतो ब्रह्मनिज्ञामां नैव यः पठेत् । स शृगालो भवेदेव बहिरक्षामख्यया ॥४४॥
 वर्षाणि नान्न भवेदा वृषामायणनन्तरः पुराण वैष्णवं मास्म्यं कौर्म भागवतं तथा ॥४५॥
 आदित्यं गरुड स्कान्द मार्कण्डेयमथाष्टमम् ब्रह्मवृद्धां हर्षेभ्यः शक्तैर्वर्तमेव च ॥४६॥
 भविष्योत्तरमाश्वमेयं पाद्मं वापनमेव च । वाराहं चैव वायव्यं ह्यष्टादशानि वै त्विनि ॥४७॥
 महापुराणान्येतादि रामायणभवानि हि । रामायणान्पुराणानि व्यासेन खण्डितानि हि ॥४८॥
 अतः पुराणं नाम भूदेतेषां जगतीतले । आदौ कृतानि यान्यत्र तेषां ज्येष्ठस्त्वचकः ॥४९॥
 महाशब्दः प्रोच्यते हि वैष्णव दिपु पटत्रिपु । पुराणानां तु सर्वेषां फलं शिष्य ब्रवीम्यहम् ॥५०॥
 वेदतुल्यफलं पाठे श्रवणे च तदर्द्धकम् । अर्थश्रवणतश्चास्य पुण्यं दशगुणं स्मृतम् ॥५१॥
 वक्तुः स्याद्दशगुणं पुण्यं श्रवणस्यानुश्रवणाधिकम् । अन्यान्युपपुराणानि सति तेषां फलं शृणु ॥५२॥
 विष्णुधर्मोत्तरं शैवं बृहन्नारदमेव च । भगवत्पुण्यं च लघुनारदमेव च ॥५३॥
 भविष्यत्पंचपटं स्यान्नन्त्रं भागवतं तथा । अष्टमं नारसिंहं स्यात्पुराणं रेणुकाभिधम् ॥५४॥
 दशमं तत्त्वसारं स्याद्वायुप्रोक्तं तथैव च । नदिप्रोक्तं द्वादशं स्यात्तथा पाशुपताभिधम् ॥५५॥
 धमनारदमवादस्तथा । हंसपुराणकम् । विनायकपुराणं च बृहद्ब्रह्मांडमेव च ॥५६॥
 पुण्यं विष्णुरहस्यं स्यादिति ह्यष्टादशानि वै । एतान्युपपुराणानि पुराणार्थफलानि च ॥५७॥

फल मिलता है ॥ ४० ॥ जब ज्ञान बढ़ जाता है तो इनसे आप वेदका अर्थ ज्ञात हो जाता है । मीमांसा-शास्त्रके दो प्रकार हैं । एक कर्मपरक दूसरा ब्रह्मपरक ॥४१॥ इन दोनोंमें पहले अर्थान् कर्मका मार्ग बतलानेवाले मीमांसाका अध्ययन करनेसे वेदअध्ययनका पुण्य प्राप्त होता है और दूसरे ब्रह्मपरक मीमांसाको पढ़नेसे जो पुण्य होता है, उसे सुनो । उत्तर मीमांसाका अध्ययन करनेवाला प्राणी जितने अक्षरोंको पढ़ता है, प्रत्येक अक्षरसे उसे सौ गायत्रीज अपका पुण्य प्राप्त होता है । ४० ॥ ऐसे लोग बड़े हो नपयोगी विद्वान् होते हैं और ग्रन्थोंको उत्पत्ति उन्होंने लोगोंसे हाता है ४१ ॥ जो मनुष्य वेदों और उपनिषदोंके अर्थज्ञ तार्थ दिष्टाओंके प्रदीपस्वरूप व्याय-शास्त्र पढ़ते हैं, उन्हें वेदार्थज्ञ तके तुल्य फल मिलता है । किन्तु जो केवल जिक्रके लिये व्यायशास्त्रका अध्ययन करता है और केवल हेतुवादमें भगवत् रहकर ब्रह्मजिज्ञासे के निमित्त नहीं पढ़ता । वह सूडा मनुष्य व्यायके जितने अक्षर पढ़ रहा है, उनमें ही वर्षा तथा शृगाव हो-हाकर जन्म लेता है । इसमें कोई संशय नहीं है । अब पुराणोंको गिनाते हैं । वैष्णव मत्सर कर्म, भागवत, ॥ ४२-४५ ॥ आदित्य, गरुड स्कन्द, मार्कण्डेय, ब्रह्मा, ब्रह्माण्ड, शिव, ब्रह्मवैवर्त, भविष्योत्तर, आनन्द, पद्म वामन, वाराह और वायु ये अष्टादश महापुराण हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ये सभी महापुराण रामायणसे ही उत्पन्न हुए हैं । किन्तु व्यासजीने रामायण और पुराण इन दोनोंमेंसे बहुतसे अक्षर काट दिये हैं । ४८ ॥ इसी कारण इनका पुराण यह नाम पड़ा है । सबसे पहले जो पुराण बनाये गये, उनका ज्येष्ठमूचक महाशब्द है । हे शिष्य । अब मैं तुम्हें पुराणोंके पाठका फल सुना रहा हूँ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ पुराणोंका पाठ करनेसे वेदमात्रका फल मिलता है और उन्हें सुननेसे उससे आधा फल मिला करता है । किन्तु पुराणोंके अर्थका श्रवण करनेमें उससे दशगुना अधिक फल होता है ॥५१॥ वक्ताको शृणुता और व्याख्या करनेवालेको श्रोतुता पुण्य होता है । इनके अतिरिक्त अठारह उपपुराण भी हैं । अब इनका नाम सुनो— ॥ ५२ ॥ विष्णुधर्मोत्तर, शैव, बृहन्नारद, भगवत्पुण्य, लघुनारद भविष्यत्तका छठी पर्व, भागवत, नारसिंह, रेणुका ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ दशवीं तत्त्वसार, वायु द्वारा कहा हुआ ग्यारहवीं, नदी द्वारा कहा हुआ नारहवीं, पाशुपत, मय और नारदका सम्वाद, हंसपुराण, विनायकपुराण, बृहद्ब्रह्मांड और पवित्र

भारतं वेदतुल्यं स्यादर्थतोऽधिकमुच्यते । तत्रापि भगवद्गीता विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥६८॥
 दशाधिकफलं श्रेष्ठं भारतादापि सर्वशः । श्रोताऽर्धफलमाप्नोति भक्तितः शृणुयाच्च यः ॥६९॥
 भारतं न्वितिहासश्च रामायणसमुद्भवम् । सद्देदशतपुण्यं दत्तं च रामायणस्य च ॥६०॥
 पाठात्तदद्वैतं भवने व्याख्यातुश्च दशाधिकम् । शार्ङ्गमार्गिणा कृतं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥६१॥
 तत्सर्वेषामादिभूतं महामंगलकारकम् । रामायणादेव नाना नति रामायणानि हि ॥६२॥
 शेषभूतं चतुर्विंशत्सहस्रं प्रथमं स्मृतम् । तथा च योगान्निष्ठमध्यात्मार्थं तथा स्मृतम् ॥६३॥
 बाणपुत्रकृतं चापि नारदोक्तं तथा पुनः । लघुरामायणं चैव बृहदारामायणं तथा ॥६४॥
 अगस्त्योक्तं महाश्रेष्ठं सागररामायणं तथा । देहरामायणं चापि वृत्तरामायणं पुनः ॥६५॥
 ब्रह्मरामायणं रघुवंशं भारद्वाजं तथैव च । शिवरामायणं कौचभारतस्य च जैमिनेः ॥६६॥
 आत्मधर्मं श्वेतकेतुः कृपेऽर्थं जटाध्रुवः ॥६७॥

रवेः पुलस्तेर्देव्याथ गुह्यकं मंगलं तथा । मायित्रं च गुनी, जं च सुग्रीवं च विभीषणम् ॥६८॥
 तथऽनन्दरामायणमेतन्मंगलकारकम् । एव महत्सुतः पति श्रीरामचरितानि हि ॥६९॥
 कः समर्थोऽस्ति तेषां हि सङ्कां चक्रे सविस्तरम् ।

शतकोटिभिर्नाश्व विभक्तानि पृथक् पृथक् ॥७०॥

सर्वेष्वप्यनन्दमञ्जु वरिष्ठं श्रोच्यते न्दिदम् । अत्र पाठेन दशपुण्यं तत्र शिष्य इदाम्पम् ॥७१॥
 शतकोटिमितं श्रुत्वा एकं न लभ्यते नरैः । एतन्मन्दं तदद्वैतं हि श्रेष्ठं शिष्य शुभप्रदम् ॥७२॥
 भवणाद्विगुणं पठे दशाधिकपुण्यं दशाधिकम् । तस्मादेतन्पदाऽनन्दमञ्जु आवर्षं नरोत्तमैः ॥७३॥
 नानेन सहस्रं किञ्चिद्भूतं नाग्रे भविष्यति । सर्वेष्वपि च शास्त्रेषु पाञ्चरात्रागमोऽधिकः ॥७४॥

विष्णुसहस्रनाम अष्टादश उपपुण्यं हृत् । इनका पाठ करनेसे पुण्यपाठका आधा फल मिलता है ॥ ५५ ॥
 ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ महाभारत तो शस्त्रवेत्त समान है । उसमें कहीं हुई भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम ये दोनों महाभारतसे भी दसगुना अधिक पुण्य दान हैं । जो श्रोता भक्तिपूर्वक उन्हें सुनता है, वह आधा फल पाता है । महाभारत रामायण ही निकला हुआ है । राम है । अर्ध पाठसे जो पुण्य होता है, वही फल रामायणके पाठसे है ॥ ५८-६० ॥ मूल-मूल पाठ करनेसे आधा पुण्य मिलता है और व्याख्या करनेसे दसगुना अधिक फल प्राप्त होता है । सो करोड़ श्लोकों का रामायण बालक हिन त्रिम रामायणकी रचना की है, वह सब रामायणोंका मूल और महामूलनाम है । रामायणमें ही विदिव प्रकारकी रामायणोंकी रचना हुई है ॥ ६१ ॥ उसीके परिशिष्ट अंगसे चला और रामायण सङ्ग्रहमें आती हुई चौबीस हजार श्लोकोंवाली वाल्मीकिरामायण, योगवासिष्ठ, अष्टात्मरामायण, दशपुण्य (शुमान्जी) की रामायण, नारदरामायण, लघुरामायण, बृहदारामायण, अगस्त्यजीकी बनायी महान्देव सागररामायण देहरामायण, वृत्तरामायण, भारद्वाजरामायण, शिवरामायण, श्रीरामायण, भरतरामायण, जैमिनिरामायण आदि बहुतेरी रामायणें हैं ॥ ६२-६६ ॥ इनके अतिरिक्त आत्मधर्मकी, जटाध्रुकी, श्वेतकेतु कृपिकी, पुच्छस्त्यकी, देवीजाकी, विश्वामित्रकी, सुतीक्ष्णकी, सुग्रीवकी, विभीषणकी और यह मङ्गलमय आनन्दरामायण, इस तरह रामधरित्रिका वर्णन करनेवाली हजारों रामायणें बनी हैं ॥ ६७-६९ ॥ उन सबकी सविस्तर सख्या बतलानेमें कोई भी समय नहीं हो सकता । वाल्मीकिजीके सौ करोड़ श्लोकात्मक रामायणसे ही इन सबका निर्माण हुआ है ॥ ७० ॥ किन्तु ऊपर सिनायी हुई सब रामायणोंमें यह आनन्दरामायण ही श्रेष्ठ है । ऐसा लोगोंने कहा है । इसके पढ़नेसे बड़ा पुण्य होता है, सो हे शिष्य ! मैं तुमको इसका माहात्म्य बतला रहा हूँ ॥ ७१ ॥ पूर्वोक्त शतकोटिसङ्ख्यात्मक वाल्मीकिरामायणके सुननेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उसका आधा पुण्य इस आनन्दरामायणके पाठसे होता है । इसको सुननेसे दशगुना और व्याख्या करनेसे दसगुना पुण्य होता है । इस कारण लोगोको चाहिए कि इस आनन्दरामायणका श्रवण करें ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ इसके सहस्र पावक कोई ग्रन्थ न अवतक हुआ है और न

मगवद्गीतया तुल्यं फलं तस्याखिलस्य च । भारतीयकाव्यं मद्भक्तैरेव निमित्तम् ॥७५॥
 तत्काव्यं यः पठेन्प्राप्नोति दशांशं फलमाप्नुयात् । मद्भक्तैर्निमित्तं तत् शतांशफलदं स्मृतम् ॥७६॥
 यः करोति स्वयं काव्यं कल्पयित्वा स्वयंकथाम् तच्छ्रुत्वा व्यक्तमेति तदर्थेना च दोषभाक् ॥७७॥
 पौराणीं भारतीं वापि तथा रामायणस्थिताम् । तथा ह्युपपुराणस्थानं कथां प्रथति यः स्वयम् ॥७८॥
 रामभक्तोऽपि लभते शक्रलोकाभिधानताम् । शत्रुघ्नं वर्षमेकं वामनस्य भवेद्भुजम् ॥७९॥
 रामभक्तः पुराणेश्वरः कथां प्रथति यः पुनः । व्यासमूर्तिः स लभते बृहस्पतिमयोक्ताम् ॥८०॥
 दीहित्रयोपितः शिष्य आगमश्च जलाशयः । मद्भक्त्यकरणं पुत्रः ते पुत्रा वै प्रकीर्तिता ॥८१॥
 एवं भूम्पसंश्रुतैर्नस्ते विचरन्ति हि अधस्तादादयः सप्त ये चिर्जीविनः सदा ॥८२॥
 अतः श्रीरामभक्तैश्च कविर्वैश्वानरतुतिः कृता । सापि मान्या सदा श्रद्धापाठनीया बुधैर्बुधैः ॥८३॥
 भारताच्च शतांशेन फलदात्री स्मृताऽत्र हि । निर्दोषे भक्तकृतावतितां ते खराः स्मृताः ॥८४॥
 तत्तद्भाषाकृतं काव्यं रामवर्णनसंयुतम् । भारतस्य सप्त्यांशं श्रेष्ठैस्तुः फलं स्मृतम् ॥८५॥
 निर्मातुस्तु मन्त्रेणुष्यं स धुशब्दजतांशतः । गीर्तिर्दत्ता कृता सं प्रवि व्यापांश ईरिता ॥८६॥
 स्वस्वभाषाकवितानां कर्तारस्ते कर्णधराः । न निर्दोषाः अपि पदान्वयसमन्विता ॥८७॥
 अर्थप्रमाणमहिता सर्व मान्या न चेतरा । दग्तुनि तु यः कदाचिदर्थं कतिः कचिन् ॥८८॥
 निष्फलमनल्लभः प्रोक्तस्तदर्थेना च दोषभाक् । उन्मादेन तु यः कुर्यान्नामिनीनां तु वर्णनम् ॥८९॥
 स हि श्रयोतिं प्राप्नोति वर्षाण्यष्टासंख्यः । वेदोक्तार्थादुन्मारेण मन्त्राणां स्मरकाः स्मृताः ॥९०॥

अविध्यमं होता । सब शास्त्रोंसे पाञ्चरात्रके आगमका विशेष महत्त्व दिया गया है । उसका पाठ करनेसे भगवद्गीता-पाठके तुल्य फल प्राप्त होता है । महाभारतके कथासंकोच और जिनका अन्ते अन्ते भगवद्भक्तने बनाया है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उन काव्योंको जो मनुष्य पढ़ता है, उसे रामायणके पाञ्चरात्र दशांश पुण्य प्राप्त होता है । अन्य भक्तोंके बनाये काव्योंका अध्ययन करनेमें ज्ञानार्ज फल मिलता है ॥ ७६ ॥ जो मनुष्य कथाकी कल्पना करके स्वयं काव्य बनाता है, उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है और उसका पाठ करनेवाला भी दोषका भागी बनता है ॥ ७७ ॥ जो कवि पुराणोंमें, महाभारतमें, रामायणमें तथा उपपुराणोंमें लिखी हुई कथाओंका संग्रह करता है, वह रामभक्त होकर इन्द्रलोकमें निवास करता है । वह प्राणी जितने अक्षरोंको लिखे रहता है, उतने ही वर्षतक इन्द्रलोकमें रहता है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जो रामभक्त पुराणोंसे कथाओंका संग्रह करता है, वह साक्षात् व्यासदेवके समान पूज्य होता हुआ बृहस्पतिक लोकमें निवास करता है ॥ ८० ॥ अपनी छहकोका छहका, पौण्य पुत्र, शिष्य, बर्ग वा, तालाव तथा मद्भक्त्यका रचना, अपना निजी पुत्र, इतने सत्पुत्र माने गये हैं ॥ ८१ ॥ वे लोग अज्ञभूत मनुष्यों अर्थान् अर्थानामा आदि जो सात चिन्तोंको धतसाये गये हैं, उनके साथ पृथ्वीमण्डलपर विचरते हैं ॥ ८२ ॥ अतएव बहून्ने रामभक्त ने अपनी कवितामें श्रीरामकी स्तुति की है । इसलिए लोग उनकी भी कविताओंका आदर करें, बारम्बार सुन और पढ़ें ॥ ८३ ॥ रामभक्तोंकी कविता महाभारतका शतांश फल देनेवाली होती है । जो लोग किसी रामभक्तकी बनायी कविताका निरादर करते हैं, वे एक प्रकारके गर्ध हैं ॥ ८४ ॥ मङ्कनस्य पके अनिरिक्त और-और भाषाओंमें रामके चरित्रवर्णन युक्त कवितायें ओला-वसाको महाभारतके सहस्र अंशका फल देनेवाली होती हैं ॥ ८५ ॥ अन्ते शब्दोंमें की हुई कविता कविको ज्ञानार्ज फल देती है । संस्कृतमें कविता करनेवाला प्राणी व्यासका अंश होता है ॥ ८६ ॥ अपनी-अपनी भाषाओंमें कविता करनेवाले कव्येश्वर अथवा संस्कृतमें रचना करनेवाले कवियोंमेंसे जिनकी कविता पद और अन्वय संयुक्त हो, जिसमें अर्थ तथा प्रमाण दोनों विद्यमान हों, वे ही मान्य हैं, और नहीं । जो कवि अपने स्वादके लिए किसी मनुष्यकी स्तुतिमयी कविता करता है, उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है अन्य उसका अध्ययन करनेवाला प्राणी भी दोषका भागी बनता है । जो कवि उन्मादवश स्त्रियोंका वर्णन करता है, वह कवितामें लिखे हुए जितने अक्षर हैं, उतने वर्षतक भोजनकी नीतिमें

विवेकस्य कर्तव्यो द्रव्यदाने विशेषतः । यन्नस्य तु भिनः पात्रं पान्तीत्यस्य पिपासितः ॥१०७॥
 द्रव्यदाने तु कर्तव्य विशेषात्पात्रशीलम् । सन्त्यागं तत्रैव द्रव्यं दद्यात्तु धर्मचरमे विषम् ॥१०८॥
 पात्रापात्रविचारेण सन्त्यागे दानमुत्तमम् । यथा पुण्यं तद्वत्पात्रं तद्वत् दानं फलाधिकम् ॥१०९॥
 ज्ञानाधिक्याद्भवेत्पुण्याधिक्यान्पात्र श्रेणेण वा सन्त्यागः । तत्रैव दद्यात्तु न मर्त्यथा ॥११०॥
 रामदेवी वर्जनीयो दर्शनालपनादिषु । भगवन् तं न दद्यात्तु नान्यथा ॥१११॥
 यच्छक्तेरधिक दद्यात्तदानं परिकीर्तितम् । वित्तश्राद्धयन् यदानं न तदानं स्मृतं युवैः ॥११२॥
 देशकालविशेषेण तत्तन्पत्रविशेषतः । दानस्य फलमुद्दिष्टमधिकं न्यूनमेव च ॥११३॥
 विप्रशुक्लं तु यो मृडो न दद्याच्छक्तिमन्वयम् । विष्ठाकिमिर्भवदेव सुरणरेव सम्यया ॥११४॥
 दिव्यवर्षाणि नैवात्र न्यया कार्यन् सज्जयः । यत्तु ज्ञानवता कर्म क्रियते पुण्यदायकम् ॥११५॥
 अधिकं तत्फलं प्रोक्तमज्ञानिकृत्वकर्मणः । यथा यथाऽधिकं ज्ञानं यथाऽनिम्नथा तथा ॥११६॥
 यत्तु ज्ञानवता कर्म क्रियते पापहृत्करम् । तन्न्यूनफलदं मोक्षमज्ञानिकृत्वपातकात् ॥११७॥
 यथा यथाऽधिकं ज्ञानं पापहानिम्नथा तथा । यथेधामि पविद्रोऽपि न्ययाऽनकुरुते क्षणम् ॥११८॥
 ज्ञानाग्निर्दुष्टकर्माणि नस्ममान्कुरुते न ह । वयाधिक्यं यथा हेम्नो रक्षेद्यगेन जायते ॥११९॥
 पुण्याधिकं तथा क्षिप्य ज्ञानियगेन जायते । पुण्येन दहते पुण्यं पापं न्यल्पं च जायते ॥१२०॥
 पापेन पापवृद्धिश्च पुण्यं स्वल्पं च जायते । अग्निहोमो विचारोऽपि दूषयः स्थूलदृष्टिभिः ॥१२१॥
 तथाप्येव विचार्य स्यात्तन्त्रज्ञानानुसारतः । यस्तु सन्त्यधिकारेऽपि ज्ञाने वा पठनेऽपि वा ॥१२२॥

धनुर्वेद और दण्डनेति, ये दोनों शास्त्रोंकी जं विषयों हैं ॥ १०३-१०५ ॥ किन्तु क्षत्रियोंकी वे वेदेष ठका फल देती हैं। ऊपर दत्तलागे हुई सब शक्तियोंम ज्ञानके अनुसार ही पुण्य होता है। इसलिये लोगोंको चाहिए कि विशेष करके द्रव्यदानके विषयमें विचार करें। भूलकी अप्रदान और प्यासेकी पानी पिलाना श्रेष्ठ कर्म है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ द्रव्यदान देने समय पात्रका विचार करना आवश्यक है। क्योंकि कुछ गोमें भी दूष होता है और सर्वक पदम पद्व जानपर दूष भी विष बन जाता है ॥ १०८ ॥ इस तरह पात्र और अपात्रका विचार करके सत्पात्रमें दान देना अच्छा है। दानका पात्र जितना ही अच्छा होगा, उतना ही अधिक पुण्य होगा ॥ १०९ ॥ इस पात्र और अपात्रका विचार, ज्ञानकी अधिकता, पुण्यकी अधिकता तथा परिश्रमकी अधिकता देखकर किया जाता है। जो मनुष्य रामका भक्त है, वही पात्र है और जो रामभक्तिसि रहित है, उसीका अपात्र जानना चाहिए। जो मनुष्य रामसे द्वेष रखता हो, उसका दर्शन और उससे सम्भाषण आदि कदापि न करे। जो रामका भक्तवा साथ करता है, वह अशुचि मनुष्य भी पवित्र हो जाता है ॥ ११० ॥ १११ ॥ अपनी शक्तिसे अधिक जो दान दिया जाता है, वही दान दान है और कज्जलाक साथ जो दान दिया जाता है, वह दान दान नहीं है ॥ ११२ ॥ देशकाल एवं पात्र अपात्रका विषयताके अनुसार अधिक या न्यून फल कह गमा है ॥ ११३ ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणको पारिश्रमिक नहीं दता, वह उन वैश्याकी संख्याके अनुसार दिव्य वर्षों तक विष्टाका क्रिमि बना रहता है। इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिये। ज्ञानवान् मनुष्य जिन पवित्र कर्मोंको करता है, अज्ञानियोंका संवेदा उस अधिक फल मिलता है। जैसे-जैसे ज्ञानकी मात्रा बढ़ता जाती है, वैसे-वैसे उसके पाप नष्ट होते जाते हैं ॥ ११४-११६ ॥ ज्ञानी मनुष्य यदि कोई पाप करता है तो अज्ञानिया द्वारा विषे पातकोंकी अपेक्षा उस पापका भी न्यून ही कुफल मिलता है ॥ ११७ ॥ जैसे-जैसे ज्ञान होता जाता है वैसे-वैसे पाप अपन आप नष्ट होन जाते हैं। जिस तरह जलती हुई अग्नि लकड़ियोंको जलाती है, उसी तरह ज्ञानाग्नि समस्त कर्मोंको भस्म कर डालती है। जिस तरह अग्निके संयोगसे कंचनकी कान्ति अधिक हो जाता है, उसी तरह ज्ञानियोंका भक्त करनेसे पुण्यकी मात्रा बढ़ती जाती है। पुण्यसे पुण्य बढ़ता है और पाप कम होता जाता है ॥ ११८-१२० ॥ पापसे पापकी वृद्धि होती है और पुण्य कम होता जाता है। यह बड़ा ही सूक्ष्म विचार है और स्थूलदृष्टिवालोंके लिए तो और

प्रयत्नं नैव कुर्वीत स मनो जायते पशुः । ज्ञानद्वन्द्वमप्युत्तरं विप्रस्य वर्धने ॥ २३ ॥
 इति संक्षेपतः मोक्षमेव-पृष्टं तत्राऽन्यः उक्तं च । तत्रैतत् । न ज्ञानवर्धने वा ॥ २४ ॥
 धर्मास्तु बहवः सति तथा पापान्वयेऽप्यहम् । ज्ञानेनैव नैव कुर्वेः ॥ २५ ॥
 कर्तव्यानि जनेस्तामिसम्यग्बुद्ध्या विना न च । तर्कैरपि न शोकाः ॥ २६ ॥
 ग्रहणीयं प्रयत्नेन न ह्यमक्ताय दायात् ॥ पुनरेवैव नैव न च ॥ २७ ॥

इति षष्ठकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्द-
 सर्वज्ञ दशमोऽंशः कृतिर्नामः ॥ २८ ॥

नवमः सर्गः

(रामकाण्ड-अष्टमः सर्गः)

विष्णुः क उवाच ।

गुरोऽन्यद्रामचन्द्रस्य विशेषेण च पूजनम् । रामचन्द्रस्य प्रसन्नं नैव कल नैव नैव माम् ॥ १ ॥

विष्णुः क उवाच ।

शृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि कालं पुनस्तु पुनः । रामचन्द्रस्य पूजनं विशेषतः ॥ २ ॥
 माघस्य शुक्लपक्षस्य या पुनः पञ्चमी तिथिः । पुनार्थाश्वनीनाम्नी या नव्याऽऽरित जम् त्रये ॥ ३ ॥
 तदारभ्य सार्धमासद्वयं गमं महोत्सवं । पूजयेन्मन्त्राणां यावदेकादशे कृष्णपक्षजम् ॥ ४ ॥
 माघकृष्णचतुर्थ्याञ्च नवमी मनुशुक्लजा । यावत्तत्कलाहरो चैकाशीति दिनानि हि ॥ ५ ॥
 सीतारामस्य नित्यं हि केचित्कुर्वन्ति पूजनम् । पौर्णिमान्ताः स्मृताश्चात्र मामाः सर्वत्र भो द्विज ॥ ६ ॥
 प्रत्यहं वाहनारूढं कृत्वा राम मदीनैः । भेरीदुन्दुभिनिर्वोषैर्महाशयपुरःसरैः ॥ ७ ॥

भा० कठिन है ॥ १२१ ॥ यह सब होना हुए भी तत्त्वज्ञानक अनुसार इसपर दिचार करना ही चाहिए । जो मनुष्य अविकारी होता हुआ भी जन्म-मरण प्रवृत्ति नहीं करता, वह पशुमानव जन्म पाता है । ज्ञान अथवा अध्वयनसे विप्रका पुण्य बढ़ता है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ हे जनश ! तुम्हें जो कुछ पूजा, मैंने उसे संक्षेपमें कह सुनाया । लोगोंको चाहिए कि इसका अनुसार बार आठ पुष्पका निष्य कर लिया करे ॥ १२४ ॥ पुष्प और पाप ये दोनों बहुत प्रकारक है । पाण्डित्य रामचन्द्रमयपर पापत प्रायश्चित्त बतलाये हैं ॥ १२५ ॥ लोगोंको चाहिए, कि उनका अपनी बढिसे अच्छी तरह विचारकर कर । सब धर्मोंका तार एवं रहस्य मैंने तुम्हारे आगे कह सुनाया । इसे यत्नके साथ ग्रहण करना चाहिए । इस भक्तिविहिन प्रार्थकों न देकर उसे देना चाहिए जो शुश्रूषु, साधु एवं रामभक्त हैं ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ इति श्रीमत्षोडशरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्द-रामायणे पं० रामतजपाण्डेयवृत्त उपासना भाषाटकासहित मनोहरकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीविष्णुदासने कहा—हे गुरो ! रामचन्द्रजीका विशेष पूजन किस समय करना चाहिए । वह समय आप मुझे बतलाइये ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! सुनो, मैं तुम्हें रामकी पूजाका परम पुनीत समय बतलाता हूँ । रामचन्द्रजीका पूजन करनेके लिये वह समय बहुत ही उपयोगी होता है । माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथि बड़ी ही पवित्र तिथि है । श्रीपञ्चमी उसका नाम है । इसी नामसे वह तीनों लोकमें विख्यात है ॥ २ ॥ ३ ॥ तबसे लेकर अत्यन्त वैशाखके कृष्णपक्षकी पञ्चमी न आ जाय अर्थात् द्वादश महीनेतक महात् उत्सवोंके साथ रामचन्द्रजीका पूजन करे ॥ ४ ॥ माघके कृष्णपक्षकी चतुर्थीसे चैत्रके शुक्लपक्षकी नवमी तक अर्थात् इक्यासी दिन केवल फलाहार करके रहे ॥ ५ ॥ जो लोग नित्य सीतारामका पूजन करते हैं, उनके लिये पौर्णिमान्त ही माना जाता है ॥ ६ ॥ प्रतिदिन वाहनपर बैठे हुए रामको भेरी-दुन्दुभी आदि बाजे-गाजे, बेहशाओंके नृत्य, छत्र, चमर, तोरण, विविध प्रकारकी पुष्पवर्षा, नाना प्रकारके स्तोत्र-भाठ, तरह-तरहके सुगन्धित

वारस्त्रीणां नृत्यगीतैश्छत्रचामरैश्चैः । नानाकुसुमवर्षाद्यैर्नानास्नोत्रादिपाठनैः ॥८॥
 नानापरिमलद्रव्याञ्जलीनां मोचनैर्दिविः । नानामांगल्यवस्तूनामञ्जलीभिः सुशोभनैः ॥९॥
 नानाकुसुमरंगानां तैलानां च परम्परम् । गम च वागतायैश्च जलयन्त्रैः करे धृतैः ॥१०॥
 मुद्गुर्मुद्गुः मिषनाद्यैस्तथा स्त्रिणां सुगायनैः । द्विजानां वेदघोषैश्च धूपैर्नाराजनादिभिः ॥११॥
 सहकाराराममध्ये नीन्वैश्च परमोन्नतैः । सहकारवृक्षवद्दोलके तं निवेशयेत् ॥१२॥
 नागेन वा पुष्पकेण शेषयानेन राजिना । गन्धेन गरुडेनापि तथा सिंहामनेन च ॥१३॥
 तथा शिविकया चापि वायुपुत्रेण वा तथा । यानैर्नवभिर्नेत्रैश्च सदा नेयो रघून्ममः ॥१४॥
 आस्रवृक्षाराममध्ये वल्लीपुष्पनगाजिने । अवनि चन्दनैर्लिप्त्वा विकीर्य कुसुमानि च ॥१५॥
 आच्छाद्य नानावस्त्रैश्च शोभनायाऽपि शुभा । हेमनहान्नसर्वैश्च कृत्वा दोलकमुत्तमम् ॥१६॥
 चूतवृक्षस्य शाखायां तं चट्वा शृङ्खलदिभिः । तत्र श्रीगामनोभद्रे रामचन्द्र प्रपूजयेत् ॥१७॥
 नानानवविधैः पुष्पैः पौड्यैश्च परचार्यैः । मृदुज्य सीतया बन्धुमुग्राचार्यैः समन्वितम् ॥१८॥
 आंदोलयेद्दोलकं तं शिशुशालकचर्चनैः । नानावज्या चाग्नेयास्तदाग्रे शनशो मुदा ॥१९॥
 गायत्रीया गायकाश्च नर्तितव्या नटादयः । वादनीयानि वाद्यानि ज्वालनीयाः सुधूपकाः ॥२०॥
 बीजनीयश्चामरार्घ्यैः सीतया रघुनन्दनः । नटैर्मैः कीर्तनान्येव कागयित्वा महोन्नतैः ॥२१॥
 पुनः पूज्य पूर्ववच्च समानांशो गृहं प्रति । मपूजनीयः श्रीरामः कुभदापार्तिकादिभिः ॥२२॥
 एव नित्यं सार्धमासद्वयं रामं प्रपूजयन् । चूतवृक्षतले नीन्वा पूजयेच्च सविस्तरम् ॥२३॥
 यदा रामश्च सीता च बहिर्नेया निजगृहात् । तदा तयोनयनाधः कस्तूर्यांगुलिनाऽसिताः ॥२४॥
 देयाश्च पिदवो यस्नान्पगदुर्दृष्टिनाशनाः । एवं दोलापूजनं च शिष्य ते कथितं मया ॥२५॥
 विशेषं शृणु तत्रापि कथ्यते यो मयाऽधुना । वसनपूजनात्पूर्वदिवसे गणनायकम् ॥२६॥
 साधशुक्लचतुर्थ्यां हि पूजयेद्दिघ्ननाशनम् । माधशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणः ॥२७॥

दशमोका अञ्जलीदान, विविध प्रकारक पुष्पाक रत्नो तत्र तैलीम परस्पर वेग्याओंक पिचकारी छोड़ने, स्त्रियोंके सुन्दर गायन, ब्राह्मणोंके वेदघोष, धूप, नाराजन और वस्तुहस्तों आमक वर्ग चमे ले जाय और वहाँ भगवानको आस्रवृक्षमें पड़े हिंडोलेपर बिटाले ॥ ७—१२ ॥ हाथ से, पुष्पकस, घोषकी सवारीसे, घोड़ोंसे, रथसे, गरुडसे, सिंहासनसे, शिविका द्वारा तथा वायुपुत्र द्वारा इन नौ रुदाग्योंपर रामका ले जाना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ आस्रवृक्षके बगीचे जिसमें कि बल्लारियों तथा पुष्पोंके वृक्ष लग्य हो, पृथ्वीको चन्दनसे लीपकर फूल दिसेरे ॥ १५ ॥ नाना प्रकारके वस्त्रोंसे ढाँककर उस पृथ्वीका भूगण धरे । सुवर्णका सिंहासन बनाकर भुखला आदि-के द्वारा आमके वृक्षमें झूल डालकर रामका बिटाल ओर सर्वतोभद्र बनाकर उनकी पूजा करे ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदनन्तर विविध तथा नौ प्रकारक फूलों एवं पौड्य उपचारोंसे सीता, बन्धु तथा सुग्रीव आदि मित्रोंके साथ भगवान्का पूजन करके बच्चोंकी तरह उस झूलको धीरे-धीरे रस्सी खींचकर झुलाये । उनके आगे संकटों बेरयायें नचायें, गायकोंसे गाने गवाये, नटोंसे नृत्य कराये, विविध प्रकारके वाजे बजवाये और माना प्रकारके धूप-दीप आदि जलाये ॥ १८—२० ॥ सीता तथा रामपर चमर आदि हाँके और रामभक्तोंको बुलाकर कीर्तन आदि कराये ॥ २१ ॥ इसके बाद पूर्वोक्त विधिक अनुसार फिर पूजन करके रामचन्द्रजीको घरपर ले आये । घर पहुँचनेके बाद भी कलश, दीप तथा आरती आदिसे रामकी पूजा करे ॥ २२ ॥ इस तरह प्रतिदिन हाई महीने तक आस्रवृक्षके नीचे भगवान् रामका पूजन करे ॥ २३ ॥ जब राम और सीताको घरसे बाहर जाना हो तो उनकी आँखोंके नीचे कस्तूरीकी काली चिन्दी लगा दे ॥ २४ ॥ इसको लगानेसे लोगोंकी दुर्दृष्टि उनपर नहीं पड़ेगी । हे शिष्य ! इस प्रकार मैंने तुम्हें दोलापूजनका प्रकार बतलाया । २५ ॥ इसमें भी जो

ये हुंदि पूजयिष्यति तेऽर्घ्याः स्युस्तुष्टुहाव । माघमासे चतुर्थी तु तस्मिन्काल उपोषितः ॥२८॥
 अर्चयित्वा विघ्नराजं लाभं तत्र कारयेत् । चतुर्थी कुन्दनाम्नीयं कुन्दपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥२९॥
 माघशुक्लपंचमी मा हंया थापचमी शुभा । नम्यं निर्य गमानाय रामचन्द्रे विघ्नार्चयेत् ॥३०॥
 माघशुक्लचतुर्थी तु शरमशाख्य च श्रिया । पञ्चम्या कुन्दकुमुदैः पूजां कुर्यान्ममृदये ॥३१॥
 नोत्वा रामं चतुर्ध्वजले होलकमस्थितम् । सीतारामं पूजयेच्च गेहे वाऽथ प्रपूजयेत् ॥३२॥
 प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्यदि नृपः । कृत्वा पावपकार्याणि भक्त्यै विवर्देवताः ॥३३॥
 वन्दयेद्दोलिकाभूमिं सर्वदुःखोपशान्तये । धदिताऽपि सुदृष्टं व्रजगा श्रद्धया च ॥३४॥
 अतस्त्वं पाहि मां देवि भूते मृतिप्रदा भव । चैत्रे मामि महापुण्ये पुण्ये तु प्रतिपदिने ॥३५॥
 यस्तत्र शपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः । न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाशयेत्थायवो नृप ॥३६॥
 वृत्ते तुपायसमये मित्रपञ्चदश्याः प्रातर्भक्तममये ममृगस्थिते च ।

संप्राश्य चतुर्ध्वजं सह चन्दनेन मन्यं हि विप्रपुरुषोऽथ मत्ताः मुनी स्यात् ॥३७॥

चतुस्रं वसन्तस्य माकद कुमुदं तत्र । मयन्दनं विशाख्यं मयंकामार्गमिदये ॥३८॥
 पञ्चम्या माघमासेऽपि चतुष्पुष्पं सचन्दनम् । प्राशनीयं तर्पणकरं कलकटो भविष्यति ॥३९॥
 चतुष्पुष्पप्राशनेन कोकिलास्वरपल्लवः । अस्मिन्नि मा-वानां कलकटो मनोरमः ॥४०॥
 सीताराम चतुष्पुष्पैस्तथा कोमलपल्लवैः । पूजयेन्ममृदं कृत्वा होलकस्थ महोत्सवैः ॥४१॥
 चैत्रकृष्णप्रतिपदि चतुष्पुष्पं सचन्दनम् । पीत्वा महोत्सवैर्न सीतारामं प्रपूजयेत् ॥४२॥

विशेष यह है, उन्हें खतला रहा है। वसन्तपूजा में एक दिन बहुत विशेष जोर देना पड़ेगा ॥ २५ ॥ २६ ॥ माघशुक्ल चतुर्थीको गणपतिका पूजन तथा उपवास करना चाहिए। इस दिन रामचन्द्रजी और गणपतिका पूजन करता है, यह प्राणी देवताओं तथा असुरोंका भी पूजनेवाला है। इस दिन रामचन्द्रजी लोगोंको चाहिए कि माघशुक्ल की चतुर्थीको उपवास करके गणेशजीका पूजन और रात्रि भर जागरण करे। इसका नाम 'कुन्द'चतुर्थी है। इसलिये इस राजकुन्दक फूलोंमें गणेशजीका पूजन करना चाहिए ॥ २८ ॥ २९ ॥ माघशुक्लकी पञ्चमीको 'धर्मपंचमी' समझकर उस राज रामचन्द्रजीका भी पूजन करना चाहिए। इससे यह मतलब निकला कि माघ शुक्ल चतुर्थीको भी पूजन करके पञ्चमीको कुन्दक फूलों अथवा समृद्धिके लिये पूजन करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ विशेष अच्छा तो यह हो कि रामचन्द्रजीवां आज्ञापूर्वक नीचे ले जाय और झूलेमें बिठाकर पूजन करे। यदि ऐसा न कर सके तो घर ही में पूजन कर ले ॥ ३२ ॥ चैत्रमास लगते ही प्रतिपदाको सूर्योदयके समय आवश्यक कामोंमें विश्राम नितराया तर्पण करे और सब प्रकारके दुःखकी शान्तिके निमित्त होलिकाभूमिकी वन्दना करता हुआ वन्दना करे। कुन्द, बह्म तथा शङ्करजीने आपकी वन्दना की है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अतएव हे देवि! तुम मेरे लिए भी भूतिदयिनी बन जाओ। परम पवित्र चैत्रके महोत्सव पुष्य नक्षत्र और प्रतिपदाको जो मनुष्य शपच (डोम) को छूकर स्नान करता है, उसे न किसी प्रकारका पातक लगता है और न किसी प्रकारका आविधाचि हो सताती है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जाड़ेके दिन बीत जाने और वसन्त ऋतुके आनेपर चैत्रशुक्लपञ्चमीके पूर्वमाका प्रातःकाल चन्दनके साथ आमका बौर चाटे तो हे विप्र! यह प्राणी साल भर बड़ा सुखसे रहता है ॥ ३७ ॥ बौरको चाटते समय 'चतुस्रं वसन्तस्य' यह मंत्र पढ़ता जाय। जिसका मतलब यह है कि हे सहकार पुत्र! मैं वसन्तऋतुके अग्रिम भागमें तुम्हारा फूल चन्दनके साथ इस वाद्य चाट रहा हूँ कि मेरी सब अमिलयित कामनायें पूर्ण हो जायें ॥ ३८ ॥ माघमासकी वसन्त पञ्चमीको भी चन्दनके साथ बौर चाटना चाहिये। ऐसा करनेसे उसका स्वर कोकिलके समान मीठा हो जाता है ॥ ३९ ॥ उस दिन आज्ञापूर्वक प्रश्रन करनेसे प्रत्येक मनुष्यका स्वर कोयलके स्वरकी तरह मीठा हो सकता है ॥ ४० ॥ प्रतिदिन सदा नया गमको झूलेमें बिठाकर आदमी और तथा कोमल पल्लवोंसे सांझा पूजन करे ॥ ४१ ॥ चैत्रकृष्णकी प्रतिपदाको चन्दनके साथ आमका

एवं तच्च दिनं नात्वा तत्रापि दिनशयम् । तत्राहं सुगीतार्थनीत्या चैव ततः परम् ॥४३॥
 पञ्चम्यां चैव हस्तेऽपि नानाद्वयव्यापके । तत्रापि कैशरपालाशकुन्तरागः शुभाग्रहैः ॥४४॥
 चित्रितानि हि दशार्थाय विनाशो ज्ञानः । जन्मायुगं कालं वैरव्यञ्जं तून्निश्चयैः ॥४५॥
 जानक्यै रामचन्द्राय कुन्दा नन्दिना जुगः । केसरिभ्यां रमेशं वामोभि चित्रितानि हि ॥४६॥
 दत्त्वा रामाय सीतायै ततोऽप्ययं पञ्चमेऽहम् । रमेशं दत्त्वा पुनश्च तन्नाममालयैश्च ॥४७॥
 नामादानानि देवगणैः चित्रांगमहद्वजः । तत्रापि दत्त्वा चैव गृहीत्वा च पञ्चपरम् ॥४८॥
 एकैकोपरि विधेयं महाभारतद्वयकरम् । मिथ्यादर्शोऽप्येद्विप्रान् स्वयं चापि मुहूर्जनः ॥४९॥
 भाक्यं तु वसन्ती पञ्चम्यां सानयैः शुभम् । वसन्तपञ्चमीनाम्नी महापुण्यात्मिका मिता ॥५०॥
 पक्षे पक्षे तु पञ्चम्यामप्यप्यपञ्चमीम् । एतं गमं पूजयेच्च यावद्वशास्त्रपञ्चमी ॥५१॥
 विशेषेण नावम्यां हि पक्षे पक्षे प्रपूजयेत् । अथवा मावशुक्लायां कृष्णायां चैव मामि वै ॥५२॥
 कृष्णायां माघेऽपि पञ्चम्यां पूजयेत्तदा । महोत्सहेन श्रीगमो दीलकस्थोऽपि यन्नतः ॥५३॥
 ततश्चैव शुक्लायां प्रविशति नरोत्तमैः । तत्राभ्यङ्गं स्वयं कृत्वा समयाभ्यङ्ग्याचरेत् ॥५४॥
 पूजयेन्नवग्रहं न याचन्वा नवमीं तदा । इत्यग्रे नवग्रहा बलिपञ्चे तद्वच्च ॥५५॥
 तत्राभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्ये । अतीने कालदुर्गे नापि ग्रामे चैव महोत्सवे ॥५६॥
 पुण्येऽहि विषलपिने प्रपादानं यत्तदा । तत्रापि त्रैलोक्येऽपि मानवः ॥५७॥
 अरण्ये निर्जले देशेऽपि ग्रामेऽपि हि । तत्रापि त्रैलोक्येऽपि मानवः ॥५८॥
 अस्याः प्रदानापितरस्तृप्तवन्तु हि हि । तत्रापि त्रैलोक्येऽपि मानवः ॥५९॥
 देवालयेषु शिवाणां देवाणोऽवमलंतेनः । तत्रापि त्रैलोक्येऽपि मानवः ॥६०॥

और पकर सीतारामकी पूजा न नाच ॥ ४३ ॥ तत्राहं सुगीतार्थनीत्या चैव ततः परम् ॥ ४४ ॥ पञ्चम्यां चैव हस्तेऽपि नानाद्वयव्यापके । तत्रापि कैशरपालाशकुन्तरागः शुभाग्रहैः ॥ ४५ ॥ चित्रितानि हि दशार्थाय विनाशो ज्ञानः । जन्मायुगं कालं वैरव्यञ्जं तून्निश्चयैः ॥ ४६ ॥ जानक्यै रामचन्द्राय कुन्दा नन्दिना जुगः । केसरिभ्यां रमेशं वामोभि चित्रितानि हि ॥ ४७ ॥ दत्त्वा रामाय सीतायै ततोऽप्ययं पञ्चमेऽहम् । रमेशं दत्त्वा पुनश्च तन्नाममालयैश्च ॥ ४८ ॥ नामादानानि देवगणैः चित्रांगमहद्वजः । तत्रापि दत्त्वा चैव गृहीत्वा च पञ्चपरम् ॥ ४९ ॥ एकैकोपरि विधेयं महाभारतद्वयकरम् । मिथ्यादर्शोऽप्येद्विप्रान् स्वयं चापि मुहूर्जनः ॥ ५० ॥ भाक्यं तु वसन्ती पञ्चम्यां सानयैः शुभम् । वसन्तपञ्चमीनाम्नी महापुण्यात्मिका मिता ॥ ५१ ॥ पक्षे पक्षे तु पञ्चम्यामप्यप्यपञ्चमीम् । एतं गमं पूजयेच्च यावद्वशास्त्रपञ्चमी ॥ ५२ ॥ विशेषेण नावम्यां हि पक्षे पक्षे प्रपूजयेत् । अथवा मावशुक्लायां कृष्णायां चैव मामि वै ॥ ५३ ॥ कृष्णायां माघेऽपि पञ्चम्यां पूजयेत्तदा । महोत्सहेन श्रीगमो दीलकस्थोऽपि यन्नतः ॥ ५४ ॥ ततश्चैव शुक्लायां प्रविशति नरोत्तमैः । तत्राभ्यङ्गं स्वयं कृत्वा समयाभ्यङ्ग्याचरेत् ॥ ५५ ॥ पूजयेन्नवग्रहं न याचन्वा नवमीं तदा । इत्यग्रे नवग्रहा बलिपञ्चे तद्वच्च ॥ ५६ ॥ तत्राभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्ये । अतीने कालदुर्गे नापि ग्रामे चैव महोत्सवे ॥ ५७ ॥ पुण्येऽहि विषलपिने प्रपादानं यत्तदा । तत्रापि त्रैलोक्येऽपि मानवः ॥ ५८ ॥ अरण्ये निर्जले देशेऽपि ग्रामेऽपि हि । तत्रापि त्रैलोक्येऽपि मानवः ॥ ५९ ॥ अस्याः प्रदानापितरस्तृप्तवन्तु हि हि । तत्रापि त्रैलोक्येऽपि मानवः ॥ ६० ॥ देवालयेषु शिवाणां देवाणोऽवमलंतेनः । तत्रापि त्रैलोक्येऽपि मानवः ॥ ६१ ॥

प्रत्यहं धर्मघटको वस्त्रसंवेष्टिताननः । आङ्गणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः ॥६१॥
 तांबूलफलधान्यैश्च दक्षिणामिः समन्वितः । एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवारामकः ॥६२॥
 अस्य प्रदानास्तफलाः सर्वे सन्तु मनोरथाः । अनेन विधिना यस्तु धर्मम्कुम्भं प्रयच्छति ॥६३॥
 प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न संशयः । तृतीयायां चैत्रशुक्ले सीतारामौ प्रपूजयेत् ॥६४॥
 कुङ्कुमागुरुकपूरमणिवस्त्रसुगंधकैः । स्नानं धूपदीपैश्च दमनेन विशेषतः ॥६५॥
 आंदोलयेत्ततः सीतारामौ च दोलकस्थितौ । वसन्तमममामाद्य तृतीयायां द्विजोत्तम ॥६६॥
 सौभाग्याय तदा स्त्रीभिः सौभाग्यशयनव्रतम् । कार्यं महोन्मथेनैव सुखं पुत्रसुखेऽसुखे ॥६७॥
 विशेषं चात्र वक्ष्यामि तृतीयायां द्विजोत्तम । तृतीयायां तु भार्गविः शुक्लपक्षे मघौ शुभे ॥६८॥
 स्नात्वा मृण्मयदुर्गं हि कार्यं चित्रविचित्रितम् । तत्राष्टादश धान्यानि वापयेत्तदनंतरम् ॥६९॥
 पुष्पवृक्षांश्चुम्भांस्तत्र व.पयेन्मर्चनस्ततः । जन्मपत्राणि कार्याणि चित्राण्यपि विलेखयेत् ॥७०॥
 तूर्पद्वाराणि कार्याणि पूर्ववन्मंडपादिकम् । यथा श्रीरामपूजायामुक्तं तद्वन्प्रकारयेत् ॥७१॥
 दुर्गोपरि घटं स्थाप्य सज्जलं पुष्पगुफितम् । दोलकं च नतो न्यस्य घटपृष्ठे महच्छुभम् ॥७२॥
 काचनीं राजतीं मूर्तिं सीतायाः परिकल्प्य च । रामस्यापि शुभां मूर्तिं कृत्वा तौ पूजयेत्ततः ॥७३॥
 दोलकोपरि संस्थाप्य माममेकं प्रपूजयेत् । केचिच्छिष्टपात्र पार्वत्या शिवेन च प्रपूजनम् ॥७४॥
 वदन्ति ह्यनयस्तत्र निर्णयं शृणु वक्ष्यते । रामस्य हृदयं शंभुः श्रीरामो हृदयं स्मृतः ॥७५॥
 शंकरस्य तथा गौरीहृदयं जानकी स्मृता । जानक्या हृदयं गौरी शिवा नैवांतरं कदा ॥७६॥
 रामस्य च शिवस्यापि सीतागिरिजयोस्तथा । ये मानयन्ति वै भेदं तेषां वामस्तु रीरवे ॥७७॥
 अतश्चैत्रतृतीयायां सीतारामौ प्रपूजयेत् । अशक्नोतामत्र मूर्ती कार्यं वा काष्ठनिर्मिते ॥७८॥

महा बांधकर जलधारा देनेका प्रवन्ध करे ॥ ६० ॥ उन दिनों प्रतिदिन एक घंटेमें ठण्डा और निमल जल भरके उसका मुँह कपड़ेके बांधकर तांबूल, फल, धान्य तथा दक्षिणा आदिके साथ किसी मुपात्र आङ्गणके घर दे आया करे । यह घड़ा विष्णु शिवमय घटदान करनेसे मेरे सब मनोरथ सफल हो जायें । दान करते समय यह कहना जाय । आ प्राणी इस रातिस धर्मकुम्भका दान करता है, उस प्रपादानका फल प्राप्त होता है । इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ६१-६४ ॥ चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीयाको कुमर, अगुरु, कपूर, मणि, वस्त्र तथा सुगन्धित आलाओ, विशेषकर दमनकके फूलसे सीतारामका पूजन करे ॥ ६५ ॥ इसके बाद झूलेपर बिठालकर झूला झुलावे । जिनको पुत्रसुख आदि पाना हो, वे त्रियां वसन्तमाससे लेकर तृतीया तक एक महान् उत्सवके साथ सौभाग्यशयन व्रत कर ॥ ६६ ॥ तृतीयाय कुछ विशेषनायें हैं, सो तुम्हें बतलाता हूँ । उस चैत्रशुक्लकी तृतीयाको स्नान करके मिट्टीका एक चित्र-विचित्र दुर्ग बनावे । उसमें अष्टादश प्रकारके धान्य बोये । वहाँपर अन्धे-अन्धे फूलोंके वृक्ष लगाय और उसमें नाना प्रकारके जन्मपत्रोंकी रचना करे ॥ ६७-७० ॥ उस दुर्गमें पहलेकी तरह मण्डप आदि बनावे । जैसा कि पहले श्रीरामपूजाके प्रकरणमें बतला आये हैं ॥ ७१ ॥ उस दुर्गके ऊपर जलसे पूर्ण और पुष्पसे गुम्फित घटका स्थापन करे । घटके पंछे सूत्र रखकर सुवर्ण या चाँदीकी सीताजीकी मूर्ति बनवाय और रामचन्द्रजीकी भी गुन्दर प्रणिमा बनवाकर दोनोंकी पूजा करे । इस प्रकार झूलेपर बिठालकर एक मास तक पूजन करे । हे शिष्य ! पार्वतीजीके साथ शिवजीकी पूजा करे, कुछ सोच ऐसा कहते हैं । अब इस विषयका निर्णय तुम्हें सुनाता हूँ । रामचन्द्रजी शिवजीके हृदय हैं और शिवजी रामके हृदय हैं ॥ ७२-७५ ॥ उसी तरह गौरी सीताजीका हृदय है और सीताजी गौरीका हृदय हैं । इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है ॥ ७६ ॥ राम, शिव और सीता तथा गिरिजायें जो लोग किसी प्रकारका भेदभाव मानते हैं, वे रीरव भरकमें बास करते हैं ॥ ७७ ॥ इसीलिये चैत्रकी तृतीयाको सीतारामका पूजन करना चाहिए । यदि सामर्थ्य न हो तो सुवर्ण या चाँदीकी प्रतिमा न बनवाकर ताम्र अथवा काष्ठकी बनवाये ॥ ७८ ॥

पापाणिमिमे चापि मुनी कार्ये यथाशुभम् । अन्यहं मंगलद्रव्यैः सर्वस्त्रीभिः प्रपूजयेत् ॥७९॥
 माममेकं न नगंसिः स्नानं हि शीतलाभिधम् । अथयमेव कर्तव्यं सीतातीर्थे विशेषतः ॥८०॥
 यत्र यत्र रामतीर्थे तस्य कामेऽर्नालने सीतातीर्थं तत्र तत्र ज्ञेयं सीताकृतं शुभम् ॥८१॥
 चैत्रशुक्लतृतीयायामास्य गन्धर्वसंज्ञिता । याद्यत्तृतीया वैशाखशुक्ला सावन्निम्नतरम् ॥८२॥
 शीतलाभक्तक स्नानं स्त्रीभिः सीताश्रमाचरेत् चैत्रशुद्धतृतीयायामभयशयां तथापि च ॥८३॥
 तृतीयाया तु नारीभिरस्नानं प्रकृतयेत् अन्यत्र दिवसे स्नामिर्नलाभ्यं न कारयेत् ॥८४॥
 अन्यह चोत्सवाः कायाः नातायाः पुनः सुखाः सुखमिनां पुनरं च कार्यं सकन्या दिने दिने ॥८५॥
 सुखमिनीनां देयानि वायनानि शुभानि च निरन्तरं पूजनार्थं यदि शक्तिर्न यने ॥८६॥
 तदा कार्यं चैकदिने शुभानां प्रपूजनम् । सुखाभिनानां देयं हि अन्यह भोजनं वरम् ॥८७॥
 भानापकान्मययुक्तं धृतपायसमयुतम् अलकागन्धं वस्त्राणि कचुकयादि च यच्छुभम् ॥८८॥
 भर्तुराधुप्यवृद्धयर्थं नारीभिर्येयमुत्तमम् । एव स्नाना मासपात्रं शीतलाभ्यामनुत्तमम् ॥८९॥
 अक्षुध्यायां नृत्तायायां पञ्चयित्रा विशेषतः त्रिजन्तुशान्तिनाम्नश्च दातव्यं भोजनार्थिभ्यः ॥९०॥
 गुरुपत्नीं निजा पृथक् सख्यैः सर्वैः प्रियतेयेन एव स्त्रियां यत्र प्रोक्तं मन्त्रमात्रं द्विजोत्तम ॥९१॥
 अन्यद्विषयं उल्लेख्य तदाग्रे शृणु चोत्तमम् । अत्राहोऽहोमिन्तु चैत्रशुक्लष्टमं दिनं ॥९२॥
 सीतासमीपं पूजयित्वा महापद्मपद्मम् अशोककलिकाद्यष्टौ ये पिबन्ति पुनरपि ॥९३॥
 चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शाकमध्यान्तुयः । आमशोऽकर्मभीष्टं मधुमासमगृह्यते ॥९४॥
 पिबामि शोकमन्मथो मामशोकं सदा कुरु । पुनर्यमुद्युधोपेता चैत्र मासि सिताष्टमे ॥९५॥

आशुभकता पडतपर अन्यर्का प्रतिमा धनवायो जा सकता हे । इस तरह मूर्ति बनवाकर सुखपूर्वक
 विविध मङ्गलमय द्रव्योंसे स्त्रियोंके साथ पूजन करे ॥ ७९ ॥ एक महाना स्त्रियोंकी साथ जोतलन नामक
 स्नान करे । यदि सोतातीर्थमें जाकर स्नान करे तो विशेष अच्छा है । ८० ॥ जहाँ जहाँ रामतीर्थ है वहाँ-
 वहाँके रामके वामभागपर सीताका बनाया सोलनार्थ भी विद्यमान रहता है ॥ ८१ ॥ चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीया-
 से लेकर जबतक वैशाखकी अक्षय तृतीया न आए, तबतक निरन्तर सीतातीर्थमें जाकर शीतलाभ्यास करे
 ॥ ८२ ॥ स्त्रियोंको भी चाहिये कि मन्त्राज्ञाका प्रयत्न करनेके लिए यत्न करें । चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीया तथा
 अक्षय तृतीयाको स्त्रियोंके साथ जनारम केन्द्रकी मार्गज कराना चाहिये । इसका मित्र और किसी रोज
 स्त्रियोंके साथ नैऋत्यागोका विधान नहीं है । ८३ ॥ ८४ ॥ प्रतिदिन स्त्रियोंके साथ-साथ सीताके समक्ष तरह-
 तरहके उत्सव करना चाहिये । निरन्तर भक्तिपूर्ण स्त्रियोंका पूजन करना भी आवश्यक है । ८५ ॥ माहागिन
 स्त्रियोंको इन दिनोंमें वायन दत्ता भी उचित है । यदि निरन्तर पूजन करनेकी सामर्थ्य न हो तो केवल
 एक ही दिन माहागिन स्त्रियोंका पूजन करे और उक्त विविध पद्माञ्जलि अञ्जलि अञ्जलि भोजन कराये
 ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ नाता प्रकारके वस्त्र आभूषण आदि भी वे स्त्रियाँ अवश्य दिया करें, जो अपने पतिकी
 आशुवृद्धि करना चाहती हों । इस तरह एक महीना शीतलाभ्यास करनेके बाद अक्षय तृतीयाका विशेष रानिसे
 पूजन करके तब माहागिन स्त्रियोंको नाता प्रकारके भोजन दत्त आदि दे । ८८ ९० ॥ इसके बाद अपने
 गुरुकी पत्नीका पूजन करके उसे भी वस्त्र-आभूषण आदि प्रदान करें । हे द्विजात्तम ! इस तरह मैंने तुम्हें
 स्त्रियोंके लिए एक मासका व्रत बतलाया ॥ ८९ ॥ अब मैं कुछ विशेष बातें बतलाता हूँ, सौ सुनीं । चैत्रशुक्ल
 अष्टमीको अशोककी कलिकासे सीता और रामका पूजन करके प्रातः प्रातः अशोककी कली पीसकर पुन-
 र्धनु नामक नक्षत्रमें पीते हैं, उन्हें कभी किसी प्रकारका शाक नहीं करना पड़ता । उस कलीका पान करते
 समय "त्वामशोककराभीष्ट" इस मन्त्रका पाठ करते रहना चाहिये । मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है—हे
 अशोक ! तुम्हारा जैसा नाम है, उसी प्रकार तुम लोगोंको शाकरहित भी करत हो । इसी कारण चैत्रमासमें
 उत्पन्न तुम्हारी कलिकाको मैं पी रहा हूँ । तुम मुझे सदा शोकरहित किये रहना । जो लोग पुनर्वसु नक्षत्र तथा

प्रातस्तु विधिवन्नाम्ना वाजपेयफलं लभेत् । चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ ॥९६॥
 उदये गुरुगौरांश्वोः स्वोच्चस्थे ग्रहपंचके । मेघे पूरणि मंग्रामे लग्ने कर्कटकाह्वये ॥९७॥
 आविराराममहाविष्णुः कामल्यार्था परः पुमान् । तस्मिन्दिने तु कर्तव्यमुपवासघनं नरैः ॥९८॥
 तत्र जागरणं कुर्याद्रघुनाथपुरे जनेः । चैत्रशुद्धा तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि ॥९९॥
 मैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् । केवलाय मदीपोण्या नवमीशब्दमंग्रहात् ॥१००॥
 तस्मान्मर्गान्मना सर्वैः कार्यं वै नवमीव्रतम् । श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिद्वयग्रहादिका ॥१०१॥
 उपोषणं जागरणं पितृनुहिष्य तर्पणम् । तस्मिन् दिने तु कर्तव्यं जन्मप्राप्तिमभीप्सुभिः ॥१०२॥
 सर्वेषामप्ययं घर्मो भुक्तिमुक्त्यैकसाधनः । अशुचिरपि पापिष्ठः कृन्वेद् व्रतमुत्तमम् ॥१०३॥
 पूज्यः स्यान्मर्त्यभूतानां यथा राममन्त्रेव सः । यस्तु रामनवम्यां वै भुंक्ते मोहान् मृदधीः ॥१०४॥
 कुपीषाकेषु घोरेषु पण्यते नात्र मशयः । श्रुत्वा रामनवमीव्रतं सर्वव्रतोत्तमम् ॥१०५॥
 व्रतान्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभागभवेत् । आचार्यं चैव मपूज्य मृणुयान्प्रार्थयेन्निशि ॥१०६॥
 श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येऽहं द्विजोत्तम भक्त-राज ये भव प्रीतः श्रीरामोऽसि त्वमेव च ॥१०७॥
 स्वगृहे चोत्तमे देशे दानस्योज्ज्वलमण्डपम् । शस्त्रचक्रहन्मण्डपः प्राग्द्वारे समलकृतम् ॥१०८॥
 गहनमच्छद्वैरागेश्व दक्षिणे समलकृतम् । पद्मावहासदंश्चैव पश्चिमे सुविभूषितम् ॥१०९॥
 पद्मस्वस्तिकर्तुर्लेश्वर्केश्वरे समलकृतम् । मध्ये हस्तचतुष्पाच्च वैदिकपुष्कमायनम् ॥११०॥
 अष्टोत्तरसहस्रं गालिगान्मकं शुभम् । अर्चयामास रामनवम्यां वैदिकायामनुत्तमम् ॥१११॥
 ततः सकल्पयेद्देव राममेव स्मरन् द्विज । अस्यां रामनवम्यां च रामागधननन्तरः ॥११२॥

पुराणान्तर्गत दुक्त चैत्रशुद्धाशुक्ला अष्टमिका प्रवक्तव्य विविधव्रतं स्मृतं यत् । उक्तं वाजपेय यज्ञका फल प्राप्ति
 हुता है । चैत्रशुद्धाशुक्ला अष्टमिका जब कि पुनर्वसु नक्षत्र था उचित व्रतव्रति तथा चन्द्रमाके साथ-साथ पंच ग्रह
 उच्चान्तरात्मक वेद धर्म, मुख्य मेघ राशिपर धर्म, कर्कटमाश्वी, उम समय महाविष्णु भगवान् राम कोसल्यासे उत्पन्न
 हुए थे । इसलिए लोगोंका उम से ज उपवास करना चाहिए ॥ ९२-९८ ॥ लागाया उचित है कि इस तिथिका
 अपराधपुण्यमें जाकर रात्रिभर जागरण करें । चैत्रशुद्धाशुक्ला नवमी उचित पुनर्वसु नक्षत्रमें युक्त हो तो
 यह महापुण्यवती मानी जाती है । यदि पुनर्वसु नक्षत्रयुक्त नवमा न हो तो भी व्रत करना ही चाहिए क्योंकि
 सर्वत्र नवमी इस शब्दका ही संग्रह किया गया है ॥ ९९ ॥ १०० ॥ इसलिए सब लोगोंका अच्छा तरह
 नवमीका व्रत करना चाहिए । यह रामनवमी बड़े-छोटे सूर्यग्रहणसे भी अधिक पुराना मानी जाती है ॥ १०१ ॥
 जिस लागावा ग्रहावधिप्राप्त होता हो, उक्त चाहिए कि उस दिन उपवास, जागरण तथा पितरोंको नृप्य करनेके
 उद्देश्यसे तर्पण कर ॥ १०२ ॥ क्योंकि सब लोगोंके लिए यह राम भुक्ति और मुक्तिका साधक है । यदि
 कोई मनुष्य अशुचि या पापी हो तो इस व्रतका करनेसे वह उमा प्रकार सब प्राणिमाका पूज्य हो जाता है,
 जैसे रामचन्द्रजी स्वयं सबके आराध्यदेव हैं । जो भूत नागनयमाका भोजन करता है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥
 वह बहुत समय तक कुम्भीयाक आदि घोर नरकोम पड़कर सदमा है । सब व्रताम श्रम इस रामनवमीका
 व्रत न करके जो प्राणी और और व्रतोंको करता है, उस व्रत व्रत करनेका फल नहीं मिलता । व्रतके दिन
 रात्रिको आचार्यकी पूजा करके प्रार्थना करे—हे द्विजोत्तम ! आज मैं भक्तिये श्रीरामचन्द्रजीकी प्रतिमाका
 दान करूँगा । हे आचार्य ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ तदनन्तर अपने घरके
 किसी उत्तम स्थानपर बधिया मण्डप बनावे । उसके पूर्वद्वारपर अलखत्र एवं हनुमान्जीकी स्थापना
 करे ॥ १०८ ॥ दक्षिण द्वारपर गण्ड, वज्र तथा बाणकी स्थापित करे । उत्तर दिशाम कमल तथा
 स्वस्तिकका स्थापना करके उसे अलंकृत करे । बीचमें चार हाथकी लम्बी चौड़ा बनी बनाव । वेशीपर
 अष्टोत्तरसहस्र रामलिंगारमक रामतीर्थकी रचना करे ॥ १०९-१११ ॥ इसके अनन्तर हे द्विज !
 श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करता हुआ संकल्प करे कि इस रामनवमीको श्रीरामचन्द्रजीकी आराधनामें तत्पर

उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि । इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां च प्रयत्नतः ॥११३॥
 श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमने । प्रातो रामो हस्तशशु पापानि सुबहूनि मे ॥११४॥
 अनेकजन्मसमिद्धान्यभ्यस्तानि महति च ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमानतः ॥११५॥
 निर्मितां द्विभुजां दिव्यां वामां कस्थितजानकीम्, विभ्रतीं दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां मनोरमाम् ॥११६॥
 यामेनाश्रुकरेणागराद्देवीमालिग्य मस्थिताम् । मिहामने राजते च पलद्वयविनिर्मिते ॥११७॥
 अशक्तो यो महानत्र स तु विज्ञानुमारतः । पलेन वा तदर्थेन तदर्थार्थेन वा पुनः ॥११८॥
 सौवर्णं राजतं वापि कारयेद्रघुनन्दनम् । पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ धृतछत्रकरावुभौ ॥११९॥
 चापद्वयमसमायुक्त लक्ष्मण चापि कारयेत् । मातुरङ्गत राममिदं नीलसमप्रभम् ॥१२०॥
 पञ्चामृतस्नानपूर्वं सम्पूज्य विधिवत्ततः । अशोककुसुमैर्भुक्तमर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः ॥१२१॥
 दशाननवधार्थाय धर्ममस्थापनाय च । राक्षसानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥१२२॥
 परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं आहुभिः सहितोऽनघ ॥१२३॥
 दिव्यं विधिवत्कृत्वा रात्रौ जागरणं चरेत् ततः प्रातः समुत्थाय स्नानमध्यादिकाः क्रियाः ॥१२४॥
 समाप्य विधिवद्भक्तं पूजयेद्विधिवन्मुने, ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमंत्रेण मन्त्रचित् ॥१२५॥
 पूर्वोक्तमण्डपे कुटे स्थण्डिले वा समाहितः, लौकिकार्त्तौ विधानेन शतमष्टोत्तरं शनैः ॥१२६॥
 साज्येन पायसेर्नय स्मरन् राममनन्यधीः । ततो भक्त्या सुमनोष्य ह्याचार्यं पूजयेद्भुजः ॥१२७॥
 ततो राम स्मरन् दद्यादेवं मन्त्रमुदीरयन् । इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्किताम् ॥१२८॥
 चित्रवस्त्रयुगलद्वयां रामोऽहं राघवाय ते । श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः ॥१२९॥
 इति दत्त्वा विधानेन दद्याद्दक्षिणां भुवम् । नक्षत्रहत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१३०॥

होकर मे आज प्रहरणक उपवास करके यह स्वर्णमयी प्रतिमा रामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये किसी बुद्धिमान् रामभक्तको दूगा । इससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हो और गये उन महापापीको हरे लगे जो मेने अनेक जन्मके अभ्यागवण लिये हो तदनन्तर एक पल सुषणकी बनी रामकी प्रतिमा, जिसमें दो भुजाएँ बनी हो, वामभुजा में सीताजी और दाहिनी भुजा में ज्ञानमुद्रा विराजमान हो ॥ ११२-११६ ॥ ये वाये हाथसे देवाका आरगन किये दो पल बाँदाकी बनी चौकीपर बैठे हों ॥ ११७ ॥ जो प्राणी सर्वथा असमर्थ हो, वह अपने विज्ञानानुसार एक पल, आधा पल अथवा आधेके भी आधे पल सुवर्ण या चाँदीकी प्रतिमा बनवाये रामके पास हो छत्र और चमर लिये भरत तथा शत्रुघ्न खड़े हो और दो घनपु धारण किये लक्ष्मणजीकी प्रतिमा बन वे सातको गोदमें विराजमान इन्द्रनीलमणिकी प्रभाक समान प्रभाशाली रामकी पञ्चामृतसे स्नान कराकर विधिवत् पूजन करे और अशोक पुष्पयुक्त अर्घ्य प्रदान करे अर्घ्य देने समय 'दशाननवधार्थाय' आदि मन्त्र पढ़ता जाय । जिसका अर्थ इस प्रकार है ॥ ११८-१२१ ॥ राक्षसोंको मारने, धर्मका स्थापन, राक्षसोंका विनाश और साधुओंको रक्षाके लिए स्वयं विष्णु भगवान्ने अवतार लिया था । सब भ्राताओंके साथ आप मेरे इस अर्घ्यको स्वीकार करिए ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ यह सब विधि विधान दिनको करके रात्रिभर जागरण करे, तबरे उठकर स्नान संध्या आदि क्रियायें करके विधिवत् पूजन करे । फिर भक्तों ज्ञाननवाला वज्रमान मूलमन्त्रसे हाम करे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ यह हुवनविधि पूर्वोक्त मण्डपमें अथवा स्थण्डिलमें किया जाय और लौकिक अग्निमें विधानपूर्वक एक सौ आठ आहुतियाँ घीर घीरे दी जायें । इसकी सामग्री भूत और खोरका रहता आवश्यक है । हुवन करते समय अपने चित्तको इधर उधर न दोड़ाकर रामका स्मरण करने रहता चाहिए ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ तदनन्तर 'इमां स्वर्णमयीं' इस मन्त्रका उच्चारण करता हुआ प्रतिज्ञा करे कि सब तरहसे अलङ्कृत यह सुवर्णमयी रामकी प्रतिमा श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्न करवके हेतु मैं दान करुगा । इससे श्रीरामजी प्रसन्न हो ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ इष्ट

एवं शिष्य चैत्रमासे नवम्यां भृशुगाय हि । दानं देयं शय्यस्य शान्तवृत्तेन च ॥१३१॥
 अन्यद्विशेषं वक्ष्यामि चैत्रं मासि शृणुष्व नन । चैत्रस्य शुक्लैकादश्यां दोलकस्य शृणुष्व नमः ॥१३२॥
 पूजयेन्मानवी भक्त्या आश्विनशतले स्थितम् । चैत्रमासस्य शुक्लत्रयोदश्यां तु नमस्कृत्य ॥१३३॥
 आंदोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्तमः । द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लत्रयोदश्यां दमनोत्तमः ॥१३४॥

बोधायनादिभिः प्रोक्तः कृतव्यः प्रतिबन्धम् ।

ऊर्ध्वं वत्तं सधौ दोला श्रावणे संतुष्टजनम् । चैत्रे च दमनागपमकुसुमो यजन्यधः ॥१३५॥

वह्निविरिंचो गिरिजा गणेशः कणो विशालो दिनकृन्महेशः ।

दुर्गास्तको विश्वहरिः स्मरश्च शत्रुः शशी च तिथिषु प्रपूज्याः ॥१३६॥

अथ चैत्रपौर्णिमायां भक्त्या रामं प्रपूजयेत् । मानसा दोलकस्य च दमनेन महोत्तमः ॥१३७॥

चैत्री चित्रायुता चैत्ययानदा पुण्य महातिथिः । ज्ञेया मर्यादिका सा हि स्नानदानजपादिषु ॥१३८॥

स्त्रोभिर्देयं चित्रमत्र तस्याः साधारणदायकम् । मानागर्मा चित्रयमैः पूजनीया महोत्तमः ॥१३९॥

मंदे वाक्ये गुणे वापि वरेष्वेतेषु चैत्रकम् । तत्राश्वमेधजं पुण्यं स्नानश्राद्धादिमिलितम् ॥१४०॥

सर्वस्वकृताचार्यः साफल्यान्वालिन्मानसुगन् । दमनेनाश्वमेधचैत्र्यां विश्वेभ्य रघुत्तमम् ॥१४१॥

चैत्रस्तानोद्यापनं च तिथौ नम्यां श्रुतं ब्रुवैः ॥१४२॥

अथ वैशाखकृष्णार्था पञ्चम्यां परमोत्तमः । मानसं मां प्रपूज्याय देवकस्यौ तु वसुधः ॥१४३॥

उद्यापनं तत्र कार्यं महाफलमभापुना । वैशाखे कृष्णपक्षे तु चतुर्थ्यां समुपोष्य च ॥१४४॥

विधानसे दान देकर पृथ्वीकी दक्षिणा दे । ऐसा करनेसे यही बहुदृष्ट्या यदि पलकोमें भी मुक्त हो जाता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥१३०॥ हे शिष्ये । इस प्रकार चैत्र मासकी तृतीया तिथिको रामजीके प्रीत्यर्थ ब्रह्मको दान दे ॥१३१॥ चैत्रमासमें आश्विन विजयताप, अथ करना है । चैत्रशुक्लपक्षकी एकादश्यां ज्ञेयम विशालकर आश्विनशतके रूप में मानके पूजा करने चाह ॥१३२॥ १३३ । नवमस्तु ज्ञेया ज्ञानका विधान है । इसके बाद चैत्रशुक्ल द्वादश्यां महोत्तम नामका वर्तते ॥१३४॥ यह बीच बीच आदि आचार्योंका मत है । ऐसा हर वर्ष का (चाहिए) कार्तिक मास में चैत्रमास में द्वादश्यादिमास में दमनागपम और श्रावणमें तन्तुद्वारा स्नान करके आश्विनमास में प्रकरक प्रवृत्त करके उक्त अध्यापन हो ॥१३५॥ अथ, ब्रह्मा, गिरिजा, गणेश, कणो विशाल, सूर्य, दिनकृन्महेश, वह्निविरिंचो, विश्वहर, विश्वभुगवान्, कामदेव, नंद और चन्द्र । ये दमनकृष्ण अक्षी अनातिथिमास पूजन करनेका । १३६ है । ऊपर श्रुत है कि एक-एक तिथिके स्वामी हैं । जैसे—प्रपूज्याय अग्नि, द्वितीयाके ब्रह्मा, तृतीयाकी स्वाती, चैत्रमास की चैत्रिका, अदि ॥१३७॥ चैत्रशुक्लपक्षकी पूर्णिमाका भक्तिपूर्वक सीता सहित रामको स्नान दित कर देना स्नान महापुण्यक साथ पूजन करने चाहिए ॥१३८॥ यदि ऊपर बताया हुई चैत्रमास पूर्णिमा चित्रा नक्षत्रमें पड़े तो उस पूर्णिमा में स्नान और जप आदिम महापुण्यदायिन समझना चाहिए ॥१३९॥ विश्वेशको चाहिए कि उक्त राम सहित एक बन्धनदान दे । इससे उनके सीमानकी वृद्धि होती है । उसी दिन महान् उत्तमक साथ दाता तथा रामको पूजा करने चाहिए ॥१४०॥ शनिवार, रविवार अथवा शुक्रवार इन चारोंमें यदि चैत्रती पूर्णिमा पड़े तो इसमें स्नान दान तथा श्राद्ध करनेसे अत्यंत फलका फल प्राप्त होता है ॥१४१॥ पूरे सालभरक लिए किसी विद्वान्को आचार्य बनाकर अपनी कामना सकल करनेके लिए समस्त देवताओंकी विशेषतः रामको दमन नामक महोत्सवसे पूजा करनी चाहिए ॥१४२॥ चैत्रस्तानका उद्यापन भी इसी तिथिके करना चाहिए । ऐसा विद्वानोंका कथन है ॥१४३॥ उस तिथिको उद्यापन करनेसे महाफलको प्राप्ति होती है । वैशाखकृष्ण चतुर्थीको उपवास करके रात्रिके समय पृथ्वीपर होमे । सबेरे किसी पवित्र स्थानमें मण्डप आदि बनाकर रामलिंगरामक

निशार्था च प्रकर्तव्यमधिवाहनमुत्तमम् । शुचौ देशे मंडपादि कृत्वा पूर्वोक्तवच्छुभम् ॥१४५॥
 रामलिंगान्तके भद्रे धान्यराशौ महत्तमम् । मजलं कलशं स्थाप्य ताम्रपात्र तु तन्मुखे ॥१४६॥
 स्थाप्य वस्त्रं दोलकस्थं रामचन्द्र प्रपूजयेत् । हैमा वा राजतो वापि दोलकस्त्रिपलैः स्मृतः ॥१४७॥
 हैमी पलमिता राममूर्तिः कार्या मनोरमा । तान्निमिता रुक्ममूर्तिः सीतायाश्चापि कारयेत् ॥१४८॥
 नानोपचारैः संपूज्य राशौ जागरणं चरेत् । नृत्यगीतसंगलाद्यैः पुष्पाभ्रवणादिभिः ॥१४९॥
 प्रभाते तं पुनः पूज्य रामं सीतासमन्वितम् । मङ्गलं हवनं कार्यं नित्याज्यपापमादिना ॥१५०॥
 तर्पणं रामभक्त्यै ह्यरेणैव प्रकारयेत् । ततो गुरु मपन्नाकं संपूज्य वचनादिभिः ॥१५१॥
 रामाय प्रार्थयेद्भक्त्या प्रबद्धकरसंप्लुतः । सार्द्धमागड्यं गान वसन्ते तत्र पूजनम् ॥१५२॥
 दोलकस्थस्य जानक्या यथाशक्त्या मया कृतम् । प्रसादानेन श्रीराम मामुद्धर मरणवान् ॥१५३॥
 एवं संप्रार्थ्य श्रीरामं तामर्चा मूर्तिमयुताम् । दद्यान्मन्त्रगुप्ते भक्त्या तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥१५४॥
 पंचसप्ततियुग्मानि ह्यष्टाविंशन्निनानि वा । तदर्धान्यश्चरा शक्त्या भोजयेद्गुरुणा सुखम् ॥१५५॥
 ततः स्वयं सुहृन्मित्रैः कार्यं वै भोजनं सुखम् । अत्र कोऽपि यथाशक्त्या व्रतमेतत्तु सर्वदा ॥१५६॥
 करोतु रामनुष्टयार्थं वसंतपूजनं वरम् । न्य शिष्य त्वया पृष्ट विशेषेण च पूजनम् ॥१५७॥
 सीतारामस्य तस्मिन् दोलकस्थस्य ते भया ।

विष्णुः न उवाच

गुरो ने प्रष्टुमिच्छामि यच्च वद नदिमरान् ॥१५८॥

कया कामतया कस्य कार्यं पूजनमुत्तमम् । तन्मयां वक्ष्यमिह मयि कृत्वा परां कृपाम् ॥१५९॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । ब्रह्मवर्चमकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् ॥१६०॥

इदमिन्द्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् । देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् ॥१६१॥

भद्रम् एक वक्ता भारी धाम्परीशका स्थापन करके उमयत सज्जत करके रक्ता और उनका सामने एक ताम्र-
 पात्र धर । फिर तूनपर कपडा बिछाकर रामर का चित्राले और उनको पूजा कर । वह तूला तान पल
 मुखर्ण, चाँदा या ताम्रका वन, व, एक पल मुखर्ण र रका प्र वमा ननाव । तूला वजनके मुखर्णसे म नाकी
 प्रतिमा भी वनातः चाहिए । १४६-१४८ ॥ इसके आनन्द तना प्रहारके उपचांगेस पूजन करके रामर
 जागरण और उम समत नृत्य गीत आदि महत्तम कर कर ॥ १४९ ॥ सर्वर फिर रामकी पूजा करके
 नित्र, घा तना रार आ रं सहस्र हवन और रतमन्त्राः उच्चारण करता हुआ दूधम तर्पण करे ।
 तत्पश्चात् सपत्नीक गुरुको दन्व अभ्यंण छ दिने पूजा करे ॥ १५० ॥ १५१ ॥ इसके बाद हाथ जोड़कर
 रामकी प्रार्थना करता हुआ कह-हे राम ! मेरा उई महत्तम दान्म न तुम सेत के साथ आर्का पूजा
 की है । मेरे इस कामम आप प्रसन्न हो और भवम, गरा मरा उद्धर कर ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ इस तरह
 प्रार्थना करके अनन्तर प्रतिमा समक्ष वह पुजना अपने मुखता द दे और उन्हे बार बार प्रणाम करे
 ॥ १५४ ॥ इसके बाद इंदु सो, अर्चनास अधदा अपना शक्तिक अनुसार इससे अर्चमन्त्रक ब्राह्मणोंको
 भोजन करावे ॥ १५५ ॥ इसके पश्चात् अपने समर्पित्यो और मित्रक साथ साथ स्वयं भी भोजन
 करे । कोई प्राणा यदि अणक्त हो तो उसे अपना शक्तिक अनुसार हो वह यत्र और वसन्तऋतुमें राम-
 चन्द्रजीका पूजन करना चाहिए । हे शिष्य ! तुमने मुझसे रामकी पूजाके विषयम जा प्रश्न किया था । सो
 मैंने दोलकस्थ राम तथा सीताक पूजनके विषयको सब बात कह सुनायी । विष्णुदासने कहा-हे गुरो ! मैं
 आपसे कुछ और पूछना चाहता हूँ । वह आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए । यदि आप ऐसा करेंगे तो खड़ी
 कया होगी । दया करके आप हमें यह बतलाइए कि किस कामनासे किस देवताका पूजन करना चाहिए

३-१५९ ॥ श्रीरामदासने कहा-हे वरस ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सावधान मनसे सुनो ।

श्री अपना ब्रह्मपूज ब्रह्मना हो, उसे ब्रह्मणस्पतिको पूजन करना चाहिए ॥ १६० ॥ इन्द्रियकी कोई

वसुकामो वसुन् रुद्रान्वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् । अन्नादिकामस्त्वदिनि स्वर्गकामोऽदिनेः सुतान् १६२॥

विश्वान् देवान् राज्यकामः साध्यान्ममाधको विशाश्व ।

आयुष्कामोऽद्विनी देवीं पृष्टिकाम इत्यां यजेत् १६३॥

प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदमो लोकमातङ्ग । रुपाभिकामो मन्धरान् स्त्रिं शोऽप्यर उर्यशोम् १६४॥

आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत् परमेष्ठिनम् । यज्ञं यजेत्तृणशकामः कोशकामः प्रचेतसम् १६५॥

विद्याकामस्तु गिरिश दापय्यार्थमुमां सतीम् । धर्मार्थं उत्तमश्लोकं तनुं तन्वनं पितृन् यजेत् १६६॥

रक्षाकामः पुण्यजनाभोजकामो मरुद्गणान् । राज्यकामो मनूदेवान् निर्ऋतिं स्वभित्त्वं यजेत् १६७॥

कामकामो यजेत्सोममकामः पुरुषं पशुम् । अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ॥१६८॥

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत् रघुनन्दनम् । रामेण मदृशो देवो न भूतो न भविष्यति ॥१६९॥

रुक्मान्सर्वप्रयत्नेन रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । तस्याश्रयणमामर्थाद्यदुस्त्वत्र रादिकम् ॥१७॥

परं श्रेष्ठं मापन्नं विस्तारेण वदाम्यहम् । रुक्म रत्नं रथो रामा राश्रमो रजतं रजः ॥१७१॥

रक्षा रणो रमा रक्तं रजको रामरामटी । रजा रोगो रवी रानी राज्य रजस्वला तथा ॥१७२॥

एवामदीन्यनेकानि श्रेष्ठान्येवात्र मां द्विज । रुक्म पातं महार्हं च रत्नं रथं मुदुलमम् ॥१७३॥

रथो यानं राश्रं च रामा यस्या इदं जगत् । राक्षसो देवभयदो रजतं तन्मुदुलमम् ॥१७४॥

रजः साक्षान्परमाणुनित्यः सोऽत्र प्रकान्यते । रक्षा रक्षाकरी ज्ञेया रणो जयकरः स्मृतः ॥१७५॥

कामना पूर्ण करनेकी अभिलाषा हो तो इन्द्रकी, सन्तानकी इच्छा हो तो प्रजापतिकी, श्रृंगवृद्धिकी इच्छा हो तो मायादेवीकी, तेजोवृद्धिकी अभिलाषा हो तो सूर्यभगवान्की, वनवृद्धिकी इच्छा हो तो आर्यों वसुओंकी, पराक्रमकी अभिलाषा हो तो रुद्रभगवान्की, अन्न आदिकी इच्छा हो तो अदितिकी, स्वर्गकी इच्छा हो तो अदितिके पुत्रों अर्थात् देवताओंकी, ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ राज्यकी इच्छा हो तो इलाकी, प्रतिष्ठा चाहनेवालेको लोकमाताओंकी, सौन्दर्यकी अभिलाषा हो तो गन्धर्वोंकी, स्त्रीका कामना हो तो उर्वशी आदि अप्सराओंकी और आधिपत्यकी इच्छा हो तो सब देवताओंका पूजा करे । जिसे यज्ञ पानेकी इच्छा हो, उसे यज्ञ करना चाहिये । कोशकी इच्छा हो तो वरुणकी, विशाकी इच्छा हो तो शिवका, दम्पत्यमुखकी इच्छा हो तो पार्वती जीकी, घर्मकी अभिलाषा हो तो उत्तमश्लोक (विष्णु भगवान्) की और यज्ञविस्तारकी इच्छा हो तो पितरोंकी पूजा करनी चाहिए ॥ १६३-१६६ ॥ आत्मरक्षाकी इच्छा हो तो पृथ्वीको, तेजोवृद्धिकी अभिलाषा हो तो मरुद्गणोंकी, राज्यकी इच्छा हो तो बौद्ध मनुष्योंका, आभिवारिकी किरा करनी हो तो राक्षसोंकी, मनोऽभिप्रेत काम पूर्णकी इच्छा हो तो चन्द्रमाकी, निष्काम होनेकी अभिलाषा हो तो परम पुष्प परमश्वरकी, अकाम या सकामभावसे मोक्षकी कामना रखता हो तो उसे चाहिए कि तीव्र भक्तियागसे रघुनन्दन रामचन्द्रकी पूजा करे । रामचन्द्रजीके समान न कोई देवता हुआ है और न हो न होगा ॥ १६७-१६९ ॥ अतएव हर तरह प्रयत्न करके रामचन्द्रजी पूजा करे । उनके नामके आदिम वर्ण 'र' की सामर्थ्यसे समारम्भ जितनी वस्तुएँ रकारादि हैं, वे सब अतिशय श्रेष्ठ मानी गयी हैं । उन वस्तुओंको अब मैं विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ । जैसे-रुक्म (सुवर्ण), रत्न, रथ, रामा (स्त्री), राक्षस (विभाषण आदि), रजत (चाँदी), रज (धूलि), रक्षा, रण, रमा (लक्ष्मी), रक्त, रजक (घोड़ी), राग, रामठ (हींग), राजा, रोग, रवि (सूर्य); रात्रि, रज्य, रजस्वला आदि अनेक नाम श्रेष्ठ माने गये हैं । ऊपर बताया हुआ रुक्म (सुवर्ण) पातवर्णकी बहुमूल्य घातु है । रत्न देखनेमें सुन्दर लगता है और कठिनाईसे प्राप्त होता है । रथ एक श्रेष्ठ सवारी है । रामा (स्त्री) वह वस्तु है, जिससे जगत् उत्पन्न हुआ है । राक्षस ऐसे भयानक होते हैं, जिनसे देवता भी भयभीत रह जाते हैं । रजत (चाँदी) भी एक दुर्लभ वस्तु है । रज (धूलि) साक्षात् परमाणु और नित्य है । रक्षा रक्षाकारी है । रण (संग्राम) विजयदायक होता है ॥ १७०-१७५ ॥

रमा सा दुर्लभा न्वत्र रक्तेऽस्ति रक्तना वरा । रजको निर्मलकरो रागः प्रीतिः मुखप्रदा ॥१७६॥
 रामठः शुद्धिरोऽस्य रुचिदयः प्रकीर्तितः । राग्यं मौक्त्यकरं श्रेष्ठं पुत्रदा मा रजमाला ॥१७७॥
 एवं यद्यदास्य तत्तन्ल्लेष्टं भुवि स्मृतम् । रामायवर्णमामर्त्याद्विष्णुराम मधेनिगम् ॥१७८॥
 अन्यच्छिष्यः शृणुष्व त्वं यन्मया कथ्यते तत्र । यथा श्लोका रामनाममुद्रा तत्र मया शुभा ॥१७९॥
 तथा नान्यस्य देवस्य नाममुद्रा प्रजायते । रामनाम विना नाममुद्रिकायां मृदासम् ॥१८०॥
 न कदा दद्याने षाष्टमेतच्च महद्द्रुतम् । अत्र प्रभावो रामस्य न्व विद्धि द्विजपुङ्गव ॥१८१॥
 अतएव रामनाम काश्यां विद्येश्वरः मदा । स्वयं जप्त्वोपदिशति जनूनां मुक्तिहेतवे ॥१८२॥
 स गणैर्वसमग्ने नरं यस्मात्प्रेम्ननुः । स एव तारकस्त्वत्र राममत्रः प्रकथ्यते ॥१८३॥
 तारकारुपस्त्वयं रामनामपत्रो न चेतः । अत एवांतकालेऽपि मनुकामनरस्य च ॥१८४॥
 कर्णे सर्वत्र देवेशरामनामोपदिश्यते । अन्तकाले नृणां रामस्मरणं च मुहुर्मुहुः ॥१८५॥
 इति कुर्वन्पुपदेशं मानवा मुक्तिहेतवे । अन्यथापि श्रवणार्हं मदा लोकेऽमुद्गुम्भुः ॥१८६॥
 रामनामैव मुख्यार्थं श्रवणं पश्चि कीर्त्यते । रामनाम्नः परो मत्रो न भूतो न भविष्यति ॥१८७॥
 रामनाम्नो जरो निन्यं क्रियते शृङ्गनापि च । पार्वत्या नारदेनापि वायुपुत्रादिभिः सदा ॥१८८॥
 रमयति जनान् रामो रमते वा सदात्मनि । राक्षसानां मारणाद्वा रामनाम महत्तमम् ॥१८९॥
 रसानलाद्रकारो हि त्वकारोऽवनिममत्रः । महर्लोकान्मकारश्च त्रिवर्णात्मकमुच्यते ॥१९०॥
 रकारेण निजं भवत भवाब्धेः परिरक्षति । अकारेणानिर्माक्यं हि स्वभक्तस्य करोति यत् ॥१९१॥
 मनोरथान्मकारेण ददाति स्वजनस्य यत् । अथवा निजभक्तस्य मरणादि मुहुर्मुहुः ॥१९२॥

रमा (लक्ष्मी) इस संसारमें दुर्लभ है । रक्तमें एक असाधारण लालिमा विद्यमान रहा करती है । रजक (घोंघा) मलको घोंकर साफ करता है । राग प्रीतिका नाम है जिसने सारे संसारको अपनी मुट्टीमें कर रक्खा है ॥१७६॥ रामठ (हीन) अन्नको पवित्र करनेवाले और एक रुचिकर वस्तु है । राजप मुखकारा होता है । रजस्वला स्त्री पुत्रदायिनी होती है । इस तरह जितने भी रकारादि वर्णक नाम हैं, वे सब श्रेष्ठ माने गये हैं । हे विष्णुरास ! जगत् में तुम्हें बताया है, इन सबके श्रेष्ठ होनेका कारण वही रामक आदिम वर्णकी समानता है ॥ १७७ ॥ १७८ ॥ हे शिष्य ! अब दूसरी बात तुमसे कहना है, उस भुनी । जिस तरह पहले मे तुम्हें रामनामकी मुद्रा बतला आया है, वही नाममुद्रा और किसी द्रव्यकी नहीं है । रामनामके बिना किसी नाममुद्राम इस प्रकार [राजाराम] जैसा स्पष्ट अक्षर नहीं बनता । यह एक अद्भुत बात है । हे द्विजपुङ्गव ! इसमें तुम रामका ही प्रभाव जानो १७६-१८१ ॥ इसीलिए काश्याम विश्वनाथजी रामनामका जप करके प्राणियोंको मुक्त होनेका उपदेश स्वयं दिया करते हैं ॥ १८२ ॥ जो मन्त्र सत्तारक्षी समुद्रमें डूबे हुए मनुष्यका सार सके, उसी राममन्त्रका 'तारक' मन्त्रा है ॥ १८३ ॥ एकमात्र यह रामका नाम ही तारक है । इसीलिए सर्वत्र किसीके मरत समय उसके कानमें रामनामका ही उपदेश दिया जाता है । मुमुर्षु प्राणीकी मुक्तिके लिए उससे बार-बार यही कहा जाता है कि 'राम' का स्मरण करो । सबको ले जानवाले शीघ्र राम नामका ही कीर्तन करते हैं । रामनामसे श्रेष्ठ कोई मन्त्र न आज तक हुआ है और न होगा ॥ १८४-१८७ ॥ स्वयं शिवजी भी नित्य रामनामका ही जप किया करते हैं । उसी तरह हनुमान्जी, नारद तथा पार्वतीजी भी सदा रामनामका जप करते हैं ॥ १८८ ॥ भक्तोंके हृदयमें विहार करने या नित्य स्मरण करने अथवा राक्षसोंका संहार करनेके कारण ही रामनाम सर्वश्रेष्ठ माना जाता है ॥ १८९ ॥ 'राम' इस शब्दमें रकार रसान्तर आकर, अकार भृण्डरूपसे एवं मकार भट्टीरूपसे आया है । इसी कारण यह त्रिवर्णात्मक राममन्त्र है ॥ १९० ॥ वे श्रीरामचन्द्रजी रकारके द्वारा भवविग्रहमें अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं । आकारसे राज भक्तोंकी अतिशय सौदा प्रदान करते हैं । मकारसे अपने भक्तोंकी कामना पूर्ण करते हैं अथवा मकारसे बार-बार अपने भक्तोंकी मरण आदि बाधाएँ दूर करते रहते हैं ।

निशरयति तत् क्षीघ्रं रामनाम वरं ततः । अयमेव सदा जप्यो रामेति द्रव्यशूरो मनुः ॥१९३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वात्मीकीये मनोहरकाण्डे
उत्तरार्द्धे विशेषकालपरत्वेन पूजाविस्तारो नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

(अयोध्यामें चैत्रमासकी महिमाका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य त्वया पूर्वं ये ये प्रश्नाः कृताः शुभाः । श्रीरामविषये ते ते मयोक्ताः परमादरात् ॥ १ ॥
इदानीं ते पुनः श्रोतुमिच्छाऽस्ति तां वदस्व माम् । यद्यन्वृच्छसि भो वत्स तत्सर्वं ते वदाम्यहम् ॥ २ ॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं गुरोर्वचः श्रुत्वा विष्णुदामोऽब्रवीन्पुनः ।

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वयाऽयोध्यायां चैत्रमासफलं महत् ॥ ३ ॥

प्रोक्तं तद्विस्तरेणाद्य कथयस्व मर्मांतिकम् । किं दानं किं फलं तत्र कमुद्दिश्य चरेद्व्रतम् ॥ ४ ॥
को विधिश्च कदारंभः सर्वं विस्तरतो वद । यत्सरय्यां रामतीर्थे स्नातव्यं चेति कीर्तितम् ॥ ५ ॥

श्रीरामदास उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ शुभः प्रश्नः कृतस्त्वया । अधुना चैत्रमासस्य महिमा प्रोच्यते मया ॥ ६ ॥
भास्वानां प्रथमो मासश्चैत्रमासः प्रकीर्त्यते । मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्टफलप्रदः ॥ ७ ॥
दानयज्ञव्रतसमः सर्वपापप्रणाशनः । धर्मसारः क्रियामारस्तपःसारः सदाऽर्चितः ॥ ८ ॥
विद्यानां वेदविद्येव मंत्राणां प्रणवो यथा । भूरुद्वाणां सुरतरुर्धेनूनां कामधेनुवत् ॥ ९ ॥

इसलिए रामनाम सर्वश्रेष्ठ मंत्र है । अतएव लोगोंको चाहिए कि 'राम' इस दो अक्षरके मंत्रको सदैव जपते रहें ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजापाण्डेयकृत-
'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामदास बोले—इस तरह है शिष्य ! अबतक तुमने हमसे रामविषयक जो-जो प्रश्न किये, मैंने उनका उत्तर आदरपूर्वक दिया ॥ १ ॥ अब तुम्हें जो कुछ सुनना हो, सो कहो । हे वत्स ! हमसे तुम जो भी पूछोगे, वह सब मैं तुम्हें बतलाऊंगा ॥ २ ॥ श्रीशिवजी बोले—अपने गुह्यके इन वचनोंको सुनकर विष्णुदास फिर बोले । विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आप अयोध्यामें चैत्रमासका बड़ा फल कह आये हैं । अब उसे विस्तारपूर्वक कहिए । उसमें क्या दान करना चाहिए, उसके करनेसे क्या फल होता है और किस उद्देश्यसे वह व्रत किया जाता है । इस व्रतको करनेकी क्या विधि है । इसे कब आरम्भ करना चाहिए । यह सब आप मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइए । सरयूके रामतीर्थमें स्नान करना चाहिए, यह जो आप कह चुके हैं । इसका भी विधि-विधान बता दीजिए ॥ ३-५ ॥ श्रीरामदासने कहा—ठीक है, हे महाबुद्धिमान शिष्य । तुमने बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है । अब मैं चैत्रमासकी महिमा बतला रहा हूँ ॥ ६ ॥ सब मासोंमें चैत्रमास वर्षका सर्वप्रथम मास माना गया है । यह मास सब प्राणियोंका माताके समान हितकारी है और सबको अभीष्ट फल देता है ॥ ७ ॥ यह समस्त दानो, यज्ञों और व्रतोंके समान फलदायक है । यह सब धर्मोंका सार, समस्त क्रियाओंका सार और सब प्रकारकी तपस्याओंका सार है ॥ ८ ॥ यह मास सब विद्याओंमें [वेदविद्याके समान, सब मन्त्रोंमें प्रणव (ईंकार) मन्त्रके समान, वृक्षोंमें शारिजातके समान, गोओंमें काम-

शेषवत्सर्वनामानां पक्षिणां गरुडो यथा । देवानां तु यथा विष्णुवर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥ १० ॥
 प्राणवन्प्रियवस्तूनां भार्यव सुहृदां यथा । आरुगानां यथा गंगा तेजसां तु रविर्यथा ॥ ११ ॥
 आयुधानां यथा वज्रं धातूनां कांचनं यथा । वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कौस्तुभो यथा ॥ १२ ॥

पुष्पेषु च यथा पर्जन्यं सरसां मानसं यथा ।

मामानां धर्महेतूनां चैवमासम्नथा स्मृतः । नानेन मद्दशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः ॥ १३ ॥
 चैवस्नाने च निगते मोने प्रागृणोदयात् । लक्ष्मोमहायो भगवत्प्रीतिं नस्मिन्करोत्यलम् ॥ १४ ॥
 जंतूनां प्रीणनं यद्वदन्नेन हि जायते । तद्वच्चैत्रे च स्नानेन विष्णुः प्रीणान्पमंशयः ॥ १५ ॥
 यश्चैवस्नाननिरतान् जनान् दृष्ट्वाऽनुमोदते । क्षावताऽपि विमुक्ताधो विष्णोर्लोके महीयते ॥ १६ ॥
 सकृत्स्नात्वा मीनमस्थे सूर्ये प्रातः कृताह्निकः । महापादैर्विमुक्तोऽर्मा विष्णुमायुज्यमाप्नुयात् ॥ १७ ॥
 स्नानानार्थं चैवमासे यः पादमेकं चलेद्यदि । सोऽश्वमेधायुतानां च फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥ १८ ॥
 अथवा कृत्वाचित्तस्तु कुर्यात्सकल्पमात्रकम् । सोऽपि क्रतुशतं पुण्यं लभन्त्येव न संशयः ॥ १९ ॥
 यो गच्छेदनुगम्य स्नानं मीनगते रणे । सर्ववधयिर्निर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ २० ॥
 त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्मांडान्तर्गतानि च । तानि सर्वाणि भाशिष्य मति बाह्यजनेऽल्पके ॥ २१ ॥
 तार्क्ष्यं ह्यस्ति पापानि गर्जन्ति यमशासने । याचन्नं कुरुते उत्तुर्ध्वे स्नानं ब्रह्मक्षये ॥ २२ ॥
 तीर्थादिदेवताः सर्वाश्चैत्रे भासि द्विजोनमः । बहिर्जले ममाश्रित्य मदा मनिहिताः शिशोः ॥ २३ ॥
 सूर्योदयं समागम्य यावत् षड्वटिकावधि । निष्ठति चाक्षया विष्णोर्नगणां दिनकाभ्यया ॥ २४ ॥
 तथाप्यवर्जता स्नानं शार्पं दद्यात् सुदारुणम् । स्वस्थानं यांति भो शिष्य तस्मान्स्नानं समाचरेत् ॥ २५ ॥

धेनुके समान, सर्पोंमें शेषनागके समान, पक्षियोंमें गरुडके समान, देवताओंमें विष्णुभगवान्के सदृश और वर्णोंमें ब्राह्मणके समान श्रेष्ठ है ॥ १० ॥ १० । संसारको प्रिय धम्नुओंमें प्राणकी भांति, मित्रोंमें भार्यकी तरह, नांदियोंमें सुहृदकी तरह, तेजस्वियोंमें सूर्यकी भांति, शास्त्रोंमें वज्रकी तरह, धातुओंमें सुवर्णकी तरह, वैष्णवोंमें रुद्रभगवान्के समान, रत्नोंमें कौस्तुभ मणिकी तरह, कल्याण कर्मलोकोंमें लक्ष्मणोंमें मानसगणेशकी तरह धर्म-हेतुके सब मामोंमें यह चैत्रमास सर्वश्रेष्ठ है । समारम्भे विष्णुके प्रति प्रीति बढ़ानेवाला और कोई मास नहीं है ॥ ११-१३ ॥ जब कि मीन लग्नपर सूर्य हो, तब चैत्रमासमें अरुणोदयके पहले स्नान करनेसे रुद्रकी स व-साय विष्णुभगवान् भी प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥ प्रिय तरह मत्स्याके प्राणी अन्नमें जितन तथा प्रसन्न रहते हैं । उसी तरह चैत्रमासमें स्नान करनेसे विष्णुभगवान् वृत्त होते हैं । इसमें कोई मज्ज नहीं है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य किसी-की चैत्रस्नानमें सहज देखकर उसका अनुमोदन करता है तो इतने ही स उसके सब पाप छूट जाते हैं और वह प्राणी विष्णुलोकमें सम्मान पाता है ॥ १६ ॥ जब कि सूर्य मीन राशिपर हो, ऐसे समय केवल एक बार प्रातःकालके समय स्नान और नित्यकर्म करनेवाला प्राणी बड़े बड़े पापोंमें मुक्त होकर विष्णुभगवान्की सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ १७ ॥ चैत्रमासमें स्नानके निमित्त जो मनुष्य एक पग भी चलाता है, वह दस हजार अश्वमेध यज्ञका फल पाता है ॥ १८ ॥ जो प्राणी फिर चित्रामे चैत्रस्नानका सकल्पमात्र करता है, वह भी संकल्य यज्ञ करनेका फल प्राप्त कर लेता है । इसमें कोई मज्ज नहीं है ॥ १९ ॥ मीनगत सूर्यके समय जो प्राणी एक धनुष विस्तृत मार्ग भी चैत्रस्नानके लिए चलता है, वह सब बन्धनोंसे छूटकर विष्णुकी सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ २० ॥ त्रैलोक्य या ब्रह्माण्डके अन्तर्गत जितने भी तीर्थ हैं, वे सब उस समय वहीके बाँडेसे जलमें विद्यमान रहते हैं ॥ २१ ॥ जब तक प्राणी चैत्रमासमें किसी ब्रह्मक्षयमें स्नान नहीं करता, तभीतक यमराजके आज्ञानुसार सब पातक गरजते हैं ॥ २२ ॥ हे शिशो ! सभी तीर्थ और सब देवता चैत्रमासमें जलके बाहर आकर ठहर जाते हैं ॥ २३ ॥ सूर्योदयमें लेकर छ. घड़ी दिन चड़े तक विष्णुभगवान्के आज्ञानुसार सब देवता मनुष्योंके कल्याणार्थ जलके बाहर बँडे रहते हैं ॥ २४ ॥ उस समय भी यदि कोई स्नान नहीं करता तो

न हि चैत्रमासो मासो न कुनेन सर्वं युगम् । न च वेदनमं श्राव्यं न तीर्थं गंगया समम् ॥२६॥
 न जलेन समं दानं न सुप्तं भायंया समम् । न हि चैत्रमनं लोके पवित्रं कस्यो विदुः ॥२७॥
 तस्मादयं चैत्रमासः शेषशेषिप्रियः मदा । अत्रनेन भवेद्यस्तु चांशालथ म त्रायते ॥२८॥

यथा गृहं सर्वगुणोपपन्नं परिच्छेदहीनपशोभने तथा ।

एवं चैत्रमासकर्मण्युत्कर्षयुक्ताऽपि ज्ञान्यनिलशृणोज्झिताः ॥२९॥

शाकं तु पदस्त्वपेन हीनं न शोभने सर्वगुणोपपन्नम् ।

यथा ललामैव विना ममा नैवैव हीना ललना च त्रिप्य ॥

तथाज्यमासेषु कृतो हि धर्मश्चैव हीनश्च कृमैव यानि ॥३०॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन येन केनापि वेदिना । चैत्रमासस्य यो धर्मः कर्तव्य इति निश्चयः ॥३१॥

न नदयनोः पृथगस्ति रामो न रामनाम्नो वसुदेवपुत्रः ।

अनरं यथाध्यपुं राजकर्म्यं चैत्रं तु कारं विधिवत्प्रयत्नम् ॥३२॥

ज्ञानकीर्तिमुद्दिश्य मीनपक्षे दिवाकरः प्रातः स्नान्वा जपेद्राममन्त्रया नमस्कृत् व्रजेत् ॥३३॥

चैत्रमासो हि सकलः स नारायणदेवनः । यद्यत्कर्म हि तन्मैव तमुद्दिश्य चरेन्नरः ॥३४॥

ज्ञानकीर्तिं हे राम चैत्रे मीनपक्षे रते । प्रातःस्नानं कर्ष्यामि निर्विघ्नं कुरु राघव ॥३५॥

चैत्रेऽयं मीनपक्षे भातो प्रातःस्नानपरायणः । प्रयत्नं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण यधुनायक ॥३६॥

गंगायाः मग्निः सर्वस्नीधानि उत्पदा नदाः । प्रतिगृह्य मया दत्तमर्थं सम्यक् प्रसीदथ ॥३७॥

महाया देवताः सर्वे कस्यो ये च वैष्णवाः । ने गृह्णतु मया दत्तं प्रसीदन्वर्षदानतः ॥३८॥

उसे दाहण जाय देकर न वरता अपन स्नानका चले जात है । अतएव हे राघव । इस समय अवश्य स्नान करना चाहिए । २४ ॥ चैत्रक समान कोई मास नहीं है, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं है वेदके समान कोई शास्त्र नहीं है, एगारक समान कोई सैन्य नहीं है जलदानक समान कोई दान नहीं है, भावार्थ समान कोई सुख नहीं है, उतः तरह चैत्रक समान और कोई धन्य पवित्र नहीं है ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसलिये यह चैत्रमास सदा विष्णुभगवान्का प्रिय रहा है । आ मगुन विना यत्र प्रिय हो यह मास प्रिता देता है, वह बड़ाफ होता है ॥ २८ ॥ जिस तरह कि सर्वगुणमय्यत्र हायर भी बिना छात्रके घर नहीं अच्छा लगता, जिस तरह कि कोई कन्या सब सुखलगाय पुन हावी हुई भी जीवत्यतिका न हो तो वह नहीं अच्छी मालूम होती, जिस तरह कि नमस्कृ विना एक अच्छा महा लगता, जिस तरह बिना उत्पत्तकी सभा नहीं अच्छी लगती, जेत नस्त्रावदान जारी नहीं शापिन हाता, उतः तरह और और मासमे धर्मकार्य करनेमे भी कोई लाभ नहीं होता अर्थान् वह व्यर्थ हो जाता है ॥ २९ ॥ ३० ॥ अतएव कोई भी मनुष्य हो, उसे चैत्रमासके धर्मकार्य पालन करना ही चाहिए ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णसे पूछक् भंगम नहीं है और न भारामसे पूछक् शोककृष्ण ही है । इसलिये मनु उचित है कि चैत्रमासमे अगोप्यानुरूपपालक श्रीरामचन्द्रजीका विधिबन् पूजन करे ॥ ३२ ॥ जब कि सूर्यदेव भाव राशिपर चने गये हों, उस समय प्रातः स्नान करके रामनामका वष करना चाहिए । जो ऐसा नहीं करता, वह नरकगामी हाता है ॥ ३३ ॥ सारे चैत्रमासके देवता राम और शंता ही हैं । अतएव उस समय जो कुछ भी कार्य करे, वह सब उन्हीक वदेस्पसे करे ॥ ३४ ॥ स्नानके रहने इस तरह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हे जलकाकान्त ! हे राम ! सूर्यके मीन राशिपर आनके अनन्तर मैं चैत्रमासमे प्रातः स्नान करूंगा । कृपया मेरे इस पुनंत स्नानकार्यको निर्विघ्न समाप्त होव रीजिए ॥ ३५ ॥ आज सूर्यदेवके मीन राशिपर चले जातक अनन्तर मैं प्रातःस्नान करके आपका अर्घ्य दूंगा । हे यधुनायक ! उसे आप स्वीकार करिएगा । गंगा आवि रुव नदी, सारे तीर्थ, मेघ तथा नद आदिका जल लाकर मे क्षपको धर्ष्य पादम कर रहा हूँ, इससे आप प्रसन्न हो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ महाया आदि देवता, समस्त नदिनी और सब वैष्णव

ऋषभः पापिनां शास्त्रा यमं न्वं समदर्शनः । गृहाणाद्यै मया दत्तं यथोक्तफलदो भव ॥३९॥
 इति चाद्यै समर्प्यार्थं पश्चान्नानं ममाचरेन् । वामसी परिधायाथ कृत्वा कर्माणि सर्वशः ॥४०॥
 जानकीकांतमभ्यर्च्य प्रसूनैर्मधुमंभवेः । श्रुत्वा रामकथां दिव्यामेतन्मासप्रशंसिनीम् ॥४१॥
 कीटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात् । चैत्रे यः कांस्यभोजी हि तथा चाश्रुतमन्त्रधः ॥४२॥
 न स्नानश्चाप्यदाना च नरकानेव विंदति । यथा माघः प्रयागे हि स्नानवपः पुण्यमिच्छता ॥४३॥
 कार्तिकेऽपि यथा काश्यां पञ्चगंगाजले स्मृतः । द्वारकायां यथा प्रोक्तो वैशाखो माधवप्रियः । ४४॥
 अयोध्यायां रामतीर्थे तथा चैत्रे प्रकीर्तितः । प्रयागे माममात्रेण यत्फलं प्राप्यते नरैः ॥४५॥
 अयोध्यायां रामतीर्थे सकृन्स्नानेन तत्फलम् । वैशाखद्वादशभवं पुण्यं यद्रोमतीजले ॥४६॥
 तत्पुण्यं सरयूतोयेऽयोध्यायां प्राप्यते नरैः । चैत्रे मामि त्रिभिः स्नानैः रामतीर्थे न संशयः ॥४७॥
 कार्तिके पंचगङ्गायां यैः स्नानं द्वादशान्द्रकम् । अयोध्यायां रामतीर्थे चैत्रे पक्षेण तत्फलम् ॥४८॥
 अयोध्या दुर्लभा लोके नराणां पापकारिणाम् । तावद्वर्जन्ति पापानि यावद्दृष्टा न मा पुरी ॥४९॥
 अयोध्याया यदाऽभावस्तदा रामकृतानि च । जगन्त्यां यानि तीर्थानि तत्र स्नानं विधीयताम् ५०॥
 यत्रायोध्यापुरी नास्ति स्नानार्थं सरयून् च । रामतीर्थं न यत्रास्ति नदा तीर्थेषु कारयेद् ॥५१॥
 तैलाभ्यंगं दिवास्वापस्तथा वै कांस्यभोजनम् । तटयानिद्रा गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम् ॥५२॥
 चैत्रे तु वज्रयेदष्टी द्विधुक्तं नक्तभोजनम् । चैत्रे मासे तु मध्याह्ने भ्रातॄणां च द्विजन्मनाम् ॥५३॥
 पादावनेजनं कुर्याच्चवृधनं तु व्रतोत्तमम् । मार्गेऽप्यगानां यो मर्त्यं प्रपादानं च चैत्रके ॥५४॥

ऋषि मेरे इस अर्घ्यदानको ग्रहण करते हुए प्रसन्न हो ॥ ३९ ॥ हे पापियोपर शासन करनेवाले यमदेवता । आप समदर्शी हैं । पर इस अर्घ्यदानको ग्रहण करिए और यथाचित्त फल दीजिए ॥ ३९ ॥ इस तरह अर्घ्य समर्पण करनेके अनन्तर स्नान करे । तदनन्तर कण्ठे बंद्यकर और कोई काम करना चाहिए ॥ ४० ॥ इसके बाद वसन्त ऋतुमें उत्पन्न पुनोसे जानकीकान्तका पूजन करे और चैत्रमासको प्रशंसा करनेवाली कथायें सुने ॥ ४१ ॥ ऐसा करनेसे कहींही जन्मके एकचित्त पातक नष्ट हो जाते हैं । जो मनुष्य चैत्रमासमें कौंसेके पात्रमें भोजन करता है और अच्छी अच्छी कथायें नहीं सुनता, न किसी पवित्र तीर्थमें स्नान करता है और न दान ही देता है, उसे नरकके सिवाय और किसी गतिका प्राप्ति नहीं होती । जिस तरह कि पुण्यप्राप्तिके लिए लोग माघमासमें प्रयागस्नान करने हैं । ४२ ॥ ४३ ॥ जैसे कार्तिकमासमें काशीको पञ्चगङ्गामें स्नान करते हैं, जैसे वैशाखमासमें द्वारकाजामें स्नान करने हैं, उसी तरह रामचन्द्रको चाहिए कि चैत्रमासमें अयोध्या-स्नान अवश्य करे । एक महीना प्रयागमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल अयोध्याके रामतीर्थमें केवल एक बारके स्नानसे मिल जाता है । बारह बार वैशाखमासमें द्वारकाको गोमती नदीमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वही फल अयोध्याके सरयूजलमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है । किन्तु वह फल तब मिलता है, जब चैत्र मासमें तीन बार रामतीर्थमें स्नान किया जाय ॥ ४४-४७ ॥ बारह बार तक कार्तिकमें काशीको पंचगङ्गामें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल केवल एक पक्षतक अयोध्या-की सरयूजलमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ पापियोंके लिए अयोध्या दुर्लभ तीर्थ है । पापगण सभी एक वर्जन करते हैं, जबतक प्राणी अयोध्यापुरीका दर्शन नहीं कर लेता । ४९ ॥ यदि किसी भावुक भक्तको अयोध्या प्राप्त न हो सके तो रामचन्द्रजान जिन तीर्थोंका निर्माण किया हो वहीपर स्नान करे ॥ ५० ॥ अहाँ कि न अयोध्या है, न सरयूजो है और न कोई रामतीर्थ ही है । वही जो कोई भी तीर्थ हो, उसीमें स्नान कर ले ॥ ५१ ॥ तेल लगाना, दिनमें सोना, कांस्यपात्रमें भोजन करना, चारपाईपर सोना, घरमें स्नान करना, किसी प्रकारका निषिद्ध भोजन, रात्रिक समय भोजन तथा दिनमें दो बार भोजन इन आठ बातोंको चैत्रमासमें छोड़ देना चाहिए । चैत्रमासमें जो प्राणी दीपहरक समय यके हुए बाह्यणोंके पैर धोता है, वह मानो सर्वोत्तम व्रत करता है । जो प्राणी चैत्रमासमें राह चलनेवालोंको जल पिनाता है और रास्तेमें

मार्गे छायां तु यः कुर्यान्म स्वर्गे च महोयते । मलिलं मलिलाकांक्षी छायाधो छायाभिच्छति ॥५॥

व्यजन व्यजनाकांक्षी दानमेतच्च चैत्रके ।

जलं छत्रं तु व्यजनं दानं मीनं विशिष्यते । चैत्रे मासे तु मग्राय ब्रह्मणाय कुटुम्बने ॥६॥

अदस्त्वोदककुम्भं तु चानको भुवि जायते । चैत्रे देव जल चान्न द्वा रात्र्या म-रणा ॥७॥

आदर्शदानं तांबूलगुडदानं प्रकाशयेत् । गोधूमनृवरीदानं दानं दृष्योदनस्य च ॥८॥

घृतयुक्तं कांस्यपात्रं दानमिन्नुरमस्य च । तथा श्रीकरदानं च दानं चात्रफलस्य च ॥९॥

सूक्ष्मवस्त्रमंचकयोः पानपात्रं कमण्डलुम् । यतानां दण्डदानं च तैलदानं मटेषु च ॥१०॥

जीर्णोद्धारं भठानां च घटानां करणं तथा । प्रासादकरणं चैव वर्षाकृपादिकं तथा ॥११॥

मार्गस्थानां छत्रदानं भक्ष्याह्नेऽतिथिपूजनम् । कर्मपात्रं यतीनां च गोश्राय तु गवामपि ॥१२॥

एतानि चैत्रमासे तु दानानि कथितानि हि । फलं शाकं तु मूलं च वृक्षं पुष्पं तु चन्दनम् ॥१३॥

उशीरः शीतलं द्रव्यं कर्पूरं कस्तूरी शुभा । दीपदानं धेनुदानं गेहदानं तथा स्मृतम् ॥१४॥

गोरमानां पृथग्दानं यतिब्राह्मणभोजनम् । मुनिमिर्नापूजनं च रामनामप्रलेखनम् ॥१५॥

पुस्तकानां तथा दानं तथा कुकुमकेभरे । ज्ञानफलं लवणश्च जातिपत्रीरंगके ॥१६॥

घातकीं नागरं धूपं बाजपूरं कलिगरुम् । जवारं पनमञ्चैव कपिन्धं मानुलंगकम् ॥१७॥

कृष्णोददानमागमकरणं माषगोधनम् । तथोशनहदानं च गजवाजिभवं तथा ॥१८॥

एतानि चैत्रमासे तु दानानि कथितानि हि । यानि चैत्रे तु वज्र्यानि तानि ते प्रवदाम्यहम् ॥१९॥

सर्वाणि चैव मांमानि क्षौद्रं मीर्चायुक्तं तथा । राजमाणादकं चापि चैत्रस्नानी प्रवर्जयेत् ॥२०॥

परान्नं च पद्मोदं परदारागमं तथा । तीर्थघ्नानि सर्वत्र चैत्रस्नानी प्रवर्जयेत् ॥२१॥

द्विदलं तिलतलं च तथाऽन्नं शल्यदूषितम् । भावदुष्टं शब्ददुष्टं चैत्रस्नानी तु वर्जयेत् ॥२२॥

छायाका प्रबन्ध करता है, वह स्वर्गलोकमें जाकर वहाँवालाक द्वारा पूजित होता है । इस मासमें लोगोका चाहिए कि जो मनुष्य पत्नी चाहता हो, उसे पत्नी दे । जो छायाका इच्छुक हो, उसे छाया दे । जो पानी चाहता हो, उसे पानी पिलाये । यह दान विशेष करके चैत्रमासके लिए बड़ा ही उपयोगी है । जो मनुष्य चैत्रमास आनेपर किसी बुद्धिवा ब्राह्मणको जलभरा घटदान नह देता, वह भरकर पातक होता है । इसीलिए चैत्रमासमें जल अन्न तथा मुन्दर शय्याका दान देना चाहिये ॥ ५२-५७ ॥ इनके अतिरिक्त दर्पणका दान, ताम्बूल और गुडका दान, गहूँ, तोरा, दही, चावल, धोस भरे हुए कास्यपात्रका दान, ऊँखे रसका दान, बेलका दान, आमका दान, महोन कपड़े और पलंगका दान, जल पीतका पात्र, कमण्डलु तथा संन्यासियोंके लिये दण्डदान, मटोम तलका दान, भठोका जीर्णोद्धार, घटाघर बनवाना, मकान बनवाना, कुआँ बावली आदि बनवाना, मार्गमें चलनेवालोंके लिये छत्रदान, दोपहरके समय अतिथियोंका पूजन, यतियोंका कमण्डलु-दान और गौओंको गोश्रासदान ये चैत्रमासके दान बतलाये गये हैं । इनके अतिरिक्त चैत्रमासमें ये दान और बतलाये गये हैं । जैसे—फल, शाक, मूल, कन्द, पुष्प, चन्दन ॥ ५८-६३ ॥ खस, इसी तरह और-और ठण्ठी बीजें, कपूर, कस्तूरी, दीपदान, धेनुदान, गृहदान, गोरसदान, यतियों और ब्राह्मणोंका भोजनदान, सोहार्गिन स्त्रियोंका पूजन, रामनमका लेखन, पुस्तकदान, कुयकुम्भ और केसरका दान, आयफल, लौंग, जावित्री ॥ ६४-६९ ॥ घातकी, नागरमोथा, धूप, धूप, बाजपूर, तरबूज, जम्भीरी नीबू, कटहल, कंधा, कृष्णोददान, शरीर रोगवाना, रास्ता साफ करवाना, जूनका दान, हाथों एवं घोंड़ेका दान, ये सब दान चैत्रमासके लिए कहे गये हैं । अब मैं तुम्हें यह बतलाता हूँ कि चैत्रमासमें किन-किन वस्तुओंका परित्याग करना चाहिए ॥ ६७-६९ ॥ चैत्रस्नान करनेवालेको सब प्रकारके मास, मधु, कांजी एवं राजमाष आदि वस्तुओंका परित्याग कर देना चाहिए ॥ ७० ॥ दूसरेका ब्रह्म, दूसरेसे ब्रह्म और दूसरेकी स्त्रीके साथ समागम, चैत्रस्नानी इन कामोंको सर्वदाके लिए छोड़

देववेदाद्विज्ञानां च गुरुगोत्रसिनां तथा । स्त्रीराजमहतां निदां चैत्रस्नानी विवर्जयेत् ॥ ७३ ॥
 प्राण्यग्नममिष चूर्णं फले जर्जरमांसपम् । धान्ये मसूरिका प्रोक्ता चान्नं पर्युषितं तथा ॥ ७४ ॥
 मक्षचयममसुप्तं पत्रावल्यां च भोजनम् । चतुर्थकाले भुञ्जीत कुर्यादेवं सदा व्रती ॥ ७५ ॥
 सवन्सप्रातपाद तैलाभ्यंगं तु कारयेत् । चैत्रस्नानी नरोऽन्यत्र तैलाभ्यंगं न कारयेत् ॥ ७६ ॥
 अलाघु चापि वृताकं कूष्मण्डं घृह्णीफलम् । श्लेष्मानकं कलिगं च कपित्थं चैव वर्जयेत् ॥ ७७ ॥
 रजस्वलां त्यज श्लेच्छपतितश्चानकः सह । द्विजद्विड्वेदवाह्यैश्च न वदेन्मर्वदा व्रती ॥ ७८ ॥
 पलाहुं लघुन चैव छत्राकं गृजनं तथा । नालिकापूलकं शिग्रुं चैत्रस्नानी विवर्जयेत् ॥ ७९ ॥
 एभिः स्पृष्टं श्वशकंश्च सूतकान्नं च यजयेत् । द्विपात्रितं च दग्धन्नं चैत्रस्नानी विवर्जयेत् ॥ ८० ॥
 एतानि वजयेन्नित्यं व्रती सर्वत्र तेष्वपि । कुन्दुशं च प्रकुञ्जीत स्वशक्या रामनुष्टये ॥ ८१ ॥
 क्रमान्कृष्णान्द्विद्वताछत्राकं मूलकं तथा । श्रीफलं च कलिगं च फल धात्रीभवं तथा ॥ ८२ ॥
 नारिकेलमलावुं च पटोलं बदरीफलम् । चर्मवृन्ताकं वल्लीशकं तुलामिजं तथा ॥ ८३ ॥
 शकान्येता न वज्यानि क्रमान्प्रतिपदादिषु । धात्रीफलं रवीं तद्वद्वर्जयेन्मर्वदा गृही ॥ ८४ ॥
 एभ्योऽन्यद्वर्जयेत्किञ्चित्प्राप्तमप्रीनये नरः । दद्यात् व्रतानि विप्राय मक्षयेन्सर्वदेव हि ॥ ८५ ॥
 फल्गुनीर्पाणिमारभ्य यावच्चैत्रो तु पौर्णिमा । चैत्रस्नानं तु तावदे नरः कार्यं च भक्तिः ॥ ८६ ॥
 अथवा मीनगो मानुषाश्चावन्प्रकारयेत् । दशमीं फाल्गुनीं शुद्धां ममारभ्य मघाः मिता ॥ ८७ ॥
 यावद्भवेत् दशमी तावन्स्नानं प्रकाशयेत् । स्नानस्यैवं त्रयो भेदाः शिष्य ते समुदीरिताः ॥ ८८ ॥
 चैत्रशुक्लतृतीयायां यावद्विंशत्यसमवा । तृतीया शुक्लपक्षस्य द्वात्ययेति स्मृताऽत्र या ॥ ८९ ॥

दे । क्योंकि ये तीर्थक सब पुण्योंकी नष्ट करनेवाले उत्पात हैं । ७१ ॥ दाल, तिलका तेल, कंकड़-परचर मिला हुआ अन्न, भावसे दूषित और शस्त्रदूषित अन्नोका चैत्रस्नानी मनुष्य न खाये ॥ ७२ ॥ देवता, वेद, ब्राह्मण गुरुजन, गोयता, स्त्रा, राजा और अपनसे बड़ोका निन्दाका भा परित्याग कर देना चाहिए । ७३ ॥ प्राणियोंक अङ्गका मांस, मांस-मत्स्यका चूर्ण, फलोंम जभारा न वृ, धान्योम मसूर और गूदा अन्न ये सब भोजनार्थ होत हैं । इसलिये इनका न खाये । ब्रह्मचर्य, गृह्यांशर जपन, पक्ष्यम भोजन और चौथ पहरमें भोजन करता हुआ व्रती मनुष्य इन नियमोंका बराबर पालन करे । ७४ ॥ ७५ ॥ केवल संवत्सरका समप्तिवाली प्रतिपदाका शरीरमें तेल लगाये और किसी समय नहीं ॥ ७६ ॥ लोवा, भटा, कुन्दुश, छंटा भण्टा, रिस डा, हनुवृज तथा कंथा, इन वस्तुओंका न खना चाहिए ॥ ७७ ॥ स्नेह पतित रजस्वला, चाण्डाल, द्विजद्वया तथा वेदस बहिष्कृत मनुष्योंसे वत भा न कर ॥ ७८ ॥ पराज, गृह्णुन, छत्राक, भुईकोर), गाजर, मूला तथा सहिजन इन वस्तुओंका भी चैत्रस्नानी मनुष्य न खाये ॥ ७९ ॥ ऊपर बतलाये पतितो, कुल तथा वीर्यसं पृष्ट एवं सूतकके अन्नका भी परित्याग कर देना चाहिए । दो वाक्का पकाया और जला हुआ अन्न भी चैत्रस्नानी मनुष्य न खाये ॥ ८० ॥ ऊपर बताया श्वज न खाये और अपनेसे दन पड़ता रामचन्द्रजका प्रसन्न करनेके लिए कुन्दुचा-द्रायण आदि वत भी करे ॥ ८१ ॥ कुन्दुश, भंटा, भुईकड, मूली, बेल, तरवृत्र, आंवलेका फल, नारियल, लोआ, परवल, वैर, चर्मवृन्ताक, बल्लीशक और तुलसी, इन्हें क्रमशः प्रतिपदा आदि तिथियोंका न खाये । उसी तरह रविवारका आधाफल (आंवला) न खाये ॥ ८२-८४ ॥ इनके अतिरिक्त भी रामको प्रसन्न करनेके लिए अपनी तरफसे कुछ वस्तुओंका परित्याग कर दे । किन्तु व्रतसमाप्तिके अनन्तर ब्राह्मणको उस वस्तुका दान देकर खाये तो कोई हर्ज नहीं है ॥ ८५ ॥ फाल्गुनकी पूर्णिमासे लेकर चैत्रकी पूर्णिमा पर्यन्त भक्तिपूर्वक चैत्रस्नानका व्रत करना चाहिये ॥ ८६ ॥ अबवा जबतक सूर्य मीन राशिपर रहें, तबतक व्रत करता रहे । फाल्गुन कृष्णपक्षकी दशमीसे लेकर चैत्रशुक्लकी दशमी तक स्नान करना चाहिए । इस तरह है शिष्य ! इस चैत्रस्नानके भेद भेदे तुमको बतलाये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ चैत्रशुक्लकी तृतीयासे लेकर विंशति शुक्लपक्षकी

हावन् श्रीवत्स गौरी स्नतव्या सुसलक्षणे । भीतार्थे तु नारीभिः पूजनीया च जानकी ॥९०॥
 हर्तव्या वा तु चैत्रस्य मितपञ्चोद्भवा तथा । वैशाखशुक्लपक्षे वा तृतीयाऽथव्यमङ्गिका ॥९१॥
 नारी वा क्षीनलागौरीव्रतस्नानपरायणा । अर्धमा मा क्रोन्वन्त्योन्मिथ्योर्नान्यदिने कदा ॥९२॥
 त्रिंशच्च तिथयः पुण्याश्चैत्रमासे महत्तमाः । तथापि हि त्रिंशोऽत्र तिथीनां वर्ण्यते मया ॥९३॥
 चैत्रमासे कृष्णपक्षे पंचमी दशमी तथा । एकादशी द्वादशी च शिवरात्रिरुक्ता तथा ॥९४॥
 एताः शुभार्थैश्च कृष्णे महापातकनाशनाः । इदानीं चैत्रमामस्य मितपञ्चोद्भवाः शुभाः ॥९५॥
 वर्ण्यन्ते तिथयः श्रेष्ठा नराणां दिनकाम्यया । सर्वस्मिन्प्रतिपदमारभ्य दशमीदिनम् ॥९६॥
 यावत्पञ्चम्याः सर्वाः स्नानदानादिकर्मणि । यत्कृतं च प्रतिपदि स्नानदानव्रतादिकम् ॥९७॥
 द्वितीयायां च तृतीयायां द्विगुणं नात्र संशयः । यत्कृतं च द्वितीयायां त्रयसां स्नानादिकं नरैः ॥९८॥
 द्विगुणं तत्तृतीयायां चैत्रमासे तृतीयायां । एवं मयाम् तिथयः यत्कृत्याम्यमा शुभा ॥९९॥
 एवं त्रिंशो ज्ञातव्यो यथाऽष्टादिसुचरणेन । यदा क्षीरं दधि त्रैलोक्यं दधाम्यु नवर्नामकम् ॥१००॥
 नवर्नामकं यद्वत्तथाऽत्र तिथिनिर्णयः । चैत्रमासस्य मामानां तत्र पक्षः तिथी वरः ॥१०१॥
 सितपक्षे कर्मण्येव पावस्ता नवमी तिथिः । तावदेकैकशः श्रेष्ठा भवन्ति नवमी वरा ॥१०२॥
 यस्यां ज्ञातं रामजन्म धर्मेऽस्थापनाय हि । तस्मात्तिथिस्तु मा ज्ञेया कर्मनिर्णयनधमा ॥१०३॥
 तस्यां दत्तं हुतं जपं यत्किञ्चित्च कृतं शुभम् । सर्वं तदक्षयं विद्यान्नात्र कार्पा विचारणा ॥१०४॥
 प्रतिपदिनमारभ्य नवरात्रमुपोषवेन । प्रत्यहं शृङ्गारस्य पूजनं चैव कारयेत् ॥१०५॥
 सर्वस्मिन्प्रतिपदि ध्येताः सौधोपरि स्थिताः । दिव्यवस्त्रैश्च मन्त्रैश्च सहिताश्च मनोरमाः ॥१०६॥

अक्षयवृत्त या तक इस संसारम आतला गोरुका निवास रहता है । इसलिये मित्रलोक मन्त्रप्राप्तिके लिए
 सीतास्थितम आकर स्नान तथा सात्त्विकीका पूजन करना चाहिए ॥ ९६ ॥ ९० ॥ वैशाखशुक्लपक्ष तृतीया तथा
 वैशाखशुक्लकी तृतीया ये दोनों तृतीयाय अक्षयवृत्तक अर्थात् मया है ॥ ९१ ॥ अतएव जानाया जानला
 गौरीवा व्रत कर रही हो, उसे जानिए कि इन दोनों तिथियोंको ज्ञात करने लगे रहण । इनके मित्राय और
 किसी अन्य दिनमें ऐसा करना कठिन है ॥ ९२ ॥ वंश ता चैत्रमासकी त नों तिथियों पर कि । फिर मा इसमें
 जो विशेषता है, उसे मैं तुमको सुनाता हूं । ९३ ॥ चैत्र कृष्णपक्षका पञ्चमा रात्रा एकत्राशी, द्वादशी,
 त्रयोदशी, चमावत्या, ये चैत्र कृष्णपक्षकी तिथियाँ बड़ी पवित्र और महाद पातवाक नाश करनेवाले कहो
 गयी है । तब मैं चैत्रक शुक्लपक्षकी शुभ तिथियाँ गिना रहा हूं । ९४ ॥ ९५ ॥ इसमें पञ्चम्याका बड़ा कल्याण
 होगा । यह मेरा हृदय विश्वास है । संवत्सर-प्रम तिथी प्रतिपदम लेकर दशमी परन्तु जितना तिथियाँ हैं,
 वे सब स्नान दान आदि कर्मोंमें शुभ कहा गया है । उनमें भी प्रतिपदाको स्नाद दान आदि करनेका जो फल
 शास्त्रमें कहा गया है, उसमें द्वितीया द्विगुणित फलदायक होती है । द्वितीयाको जो फल कहा है, उससे
 तृतीयाय द्विगुणित फल होता है । इस तरह नवमी तिथि परन्तु सब तिथियाँ शुभ हैं । इसमें इसी प्रकारकी
 विशेषता है कि जैसे उसका रस प्रथम गीठमें लेकर आखिरी गीठतक कमल में ठा होता है । जैसे बीसे
 दूध होता है, दूधसे इही तैयार होता है, इहीसे मक्खन निकलता है और मक्खनसे घी तैयार होता है । इसी
 तरह यही तिथियोंका भी निर्णय होता है । पहले ता भय मामोम चैत्रमास हो श्रेष्ठ है । उनमें जो शुक्लपक्ष
 श्रेष्ठ है और शुक्लपक्षमें भी प्रतिपदासे लेकर नवमा तककी तिथियाँ श्रेष्ठ हैं । उनमें भी नवमा तिथि सर्व-
 प्रधान तिथि है ॥ ९६-९७ ॥ नवमी तिथिवा घमेंकी रक्षापत्र, करणक लिए रामका जन्म हुआ था,
 इसीसे यह तिथि समस्त कर्मोंको नष्ट करनेवाला मानी गयी है ॥ ९८ ॥ उसमें जो कुछ दान दिया जाता,
 हुवन किया जाता, तप किया जाता अथवा जो कोई भी शुभ कर्म किया जाता है, वह सब अक्षय होता है ।
 इसमें संशय कोई करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ९९ ॥ इसलिये सागाक चाहिए कि प्रतिपदा तिथिसे लेकर नौ
 रात्रिक उपवास करके रामचन्द्रजीका पूजन करे ॥ १०० ॥ सर्वस्वको प्रतिपदाको भक्तिके ऊपर दिव्य वस्त्र

रामजन्मसूचनार्थं प्रान्त्यर्थं राघवस्य च । गृहे गृहे नरैः कार्याः पूजनीयाश्च भक्तितः ॥१०७॥
 गृहे देवालये वाऽथ गोष्ठे वृन्दावने शुभे । ममाजनादिकं निमित्तं कार्यं चन्दनवारिभिः ॥१०८॥
 ततः पापघर्षणैश्च नानापद्मादिकानि हि । लेखनीयानि भूम्यां तु नीलपीतादिवर्णकैः ॥१०९॥
 अष्टोत्तरसहस्राक्ष्यं रामतोभद्रमुत्तमम् । शतान्य वा लिखेद्भद्रमथवाऽन्यन्मनोरमम् ॥११०॥
 तस्योपरि महान् रम्यश्चित्रवर्णश्च मण्डपः । देवो द्वाराणि चत्वारि कार्याणि तोरणानि च ॥१११॥
 कदलान्तर्गद्युक्तानि ह्यक्षुब्धवृत्तानि च । नानापण्टाकिकिणीभिर्ध्वनितान्युज्ज्वलानि च ॥११२॥
 रम्यादशमंडितानि विविक्ताणि शुभानि च । नानाचित्रवितानैश्च सुक्ताहारैर्युतानि च ॥११३॥
 तस्यां षोडशमार्गैश्च प्रतिमा काचनोद्भवा ॥११४॥

द्विभुजा रामचन्द्रस्य सर्वालक्षणलक्षिता । चतुर्विधनिर्माणैश्च प्रतिमा रजनोद्भवा ॥११५॥
 कौशल्यायाः शुभा कार्या पूजनाया मनोरमा । यथादिनानुसारेण पूजयेन्प्रत्यहं नरः ॥११६॥
 भेरीमृदगनूयैश्च गीतनृत्यादि करयेत् । नानापद्माभनवर्द्धरूपचारैः सुपूजयेत् ॥११७॥
 प्रतिपदिनमारभ्य यावत् नवमीदिनम् । रामायण तावदेव पठनीयमिदं शुभम् ॥११८॥
 षट् बाल्मीकिना गीतं श्रवणान्ममलगदम् । आनन्दमशक्तं रम्यं पठनीयं मनोरमम् ॥११९॥
 नव कांडानि नवभिर्दिनैरेव पठेन्नरः । दिवसे दिवसे कांडं पठनीयं प्रयत्नतः ॥१२०॥
 अथवा प्रत्यहं सर्गः पठितव्यास्तु द्वादश शपस्वेकः कदा मध्येऽधिकः सोऽपि पठेन्नरः ॥१२१॥
 अष्टोत्तरशतैः सर्गैः रामकीर्तनमालिका । मेरुयुक्ता पठेदेवं रामाग्रे नवभिर्दिनैः ॥१२२॥
 सर्वार्थेषु यन्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् । रामायणस्य पठनात्तत्फलं नवरात्रके ॥१२३॥

और माला आदिसे अत्यन्त धन्यार्थ रामजन्मकी सूचक तथा रामको प्रसन्न करनेके लिए घर-घर स्थापित करके भक्तिपूर्वक उनका पूजन करना चाहिए ॥ १०६॥ १०७॥ घरमें, देवालयमें, गोशालामें तथा तुलसीकी बगीचोंमें उन दिनों चन्दनके जलका छिड़काव करना चाहिए ॥ १०८॥ इसके बाद पत्थरके चूर्णसे नील-पीत आदि वर्णोंवाले कमल आदि बनाने चाहिए । तदनन्तर अष्टोत्तरसहस्राक्षक रामतोभद्र या शतारमक अथवा जो अपनेको जन्म, उस भद्रका स्तुति कर ॥ १०९॥ ११०॥ उसके ऊपर अतिशय सुन्दर चित्र-विचित्र वर्णोंका मण्डप बसाय । उन मण्डपमें चार द्वाज बनावे और न्याय-अन्याय तोरणकी स्थापना करे ॥ १११॥ जहाँ-तहाँ कलह खम्भे तथा डगरण स्तम्भ कर । सम तट तटके धण्ट और किकिणी आदि लगा दे, जिनकी मधुर ध्वनि सुनारी पड़ना रहे ॥ ११२॥ जहाँ-तहाँ मन्दार और चड़चड़ शब्दों लगा दे, विविध प्रकारके चित्र लगावे, तरह-तरहकी चोदनी लगावे और मोतियाके हल्ले लटकावे । उसमें सुवर्णमय एवं रत्नमण्डित मंचका रचना कर और उसपर अक्ष-अम्बु करणोंका सम-रम शासन बिछावे । फिर उसपर सोलह मासेकी वाचनमयी प्रतिमा स्थापित करे ॥ ११३॥ ११४॥ रामचन्द्रकी यह सुवर्णमयी प्रतिमा सब सुलक्षणोंसे लक्षित होनी चाहिए । इसके अनन्तर चौदस पलकों रजनम ॥ प्रतिमा कौशल्याकी बनावे और उसकी पूजा करे । जैसा अपने सामर्थ्य हो, उसके अनुसार प्रतिदिन पूजन करे ॥ ११५॥ ११६॥ उनके सामने भेरी, मृदंग, मुहुरी आदि बजे बजावे और नाच-गाय । नाना प्रकारके नच्यों और उपचारोंसे पूजन करे ॥ ११७॥ प्रतिपरातिदिन लेकर नवमी तिथि पर्यन्त इस आनन्दरामायणका पाठ करे ॥ ११८॥ इसका बाल्मीकि मुनिने गान किया है । यह नूनमेम मंगलग्रह और मनोरम है । इससे इसका पाठ आवश्यक है ॥ ११९॥ इसके नौ कांडोंको नौ दिनमें समाप्त करना चाहिए । पाठ करनेवालेको चाहिए कि प्रयत्नपूर्वक प्रतिदिन एक-एक कांडका पाठ करे ॥ १२०॥ यदि ऐसा न हो सके तो प्रतिदिन बारह सर्गोंका पाठ करे । ऐसा पाठ करनेसे एक सर्ग बाकी बचता । उसे बीचमें किसी राज पूरा कर देना चाहिए ॥ १२१॥ इस तरह अष्टोत्तरशत सर्गात्मक इस रामकीर्तन-मालिकाका नौ दिनमें रामचन्द्रजीके समस्त पाठ करना चाहिए ॥ १२२॥ सब

श्लोकं वा श्लोकपादं वा यद्रामायणसंभवम् । नवरात्रे पठिष्यन्ति चैत्रे ते मोक्षभागिनः ॥१२४॥
 एवं हि प्रत्यहं कार्यं कौमल्यासामपूजनम् । सपुत्राणां तु नागीणां तत्र कार्यं प्रपूजनम् ॥१२५॥
 सपुत्रद्विजवर्षाणां विशेषात्पूजनं स्मृतम् । पश्चाच्छलङ्कारयुतं चित्रभोजनभोजनम् ॥१२६॥
 एवं कृत्वा विधिं सर्वं नवम्यां च विशेषतः । पूजयित्वा रामचन्द्रं त्रादनाच्छुभमम् ॥१२७॥
 मेरीमुदगशोर्बन्धं तूर्यदुन्दुभिनिःस्वनैः । शार्ङ्गोक्तनृत्यैश्च गायकानां च गायनैः ॥१२८॥
 एवं नानामधुनसाहर्मदितं नवशोभितम् । चामरैरीज्यमानं च पुष्पकैः सन्धितं वारम् ॥१२९॥
 रामतीर्थार्थिकं नीत्वा पश्चामृतघटैर्दरैः । स्नापयेत्प्रधुक्तेरं हि पुष्पनोर्यप्नतः परम् ॥१३०॥
 रुद्रमूर्त्तर्विष्णुमूर्त्तः सहस्रनाभमिस्तु वा । मागस्यद्रव्यमभिर्ध्वजैर्जम्भमभिपेक्षयेत् ॥१३१॥
 मागस्यद्रव्यैश्च युक्तं तन्मगलाभिधम् । प्रोक्षते मयलम्नानं तर्जने दुर्लभं नृणाम् ॥१३२॥
 तत्पश्चात्पूजनीयं तु तीर्थमग्रे विनिश्चिपेत् । तत्र सर्वैर्जनैः शीघ्रं स्नातव्यं तदनन्तरम् ॥१३३॥
 सहस्रावमृथस्नानैर्यत्फलं प्राप्यते नरैः । तत्फलं रामचन्द्रस्य मंगलानान्कारणात् ॥१३४॥
 पुष्पादिषु-तीर्थेषु गङ्गाद्यासु मग्निषु च । प्राप्यते यत्फलं स्नानान्मङ्गलस्नानकृत्स्न यत् ॥१३५॥
 एवं रामं तु सस्नाप्य सीतायुक्तं प्रपूज्य च । पुनः पूर्वोक्तवाद्यादि मंगलैर्गनयेद्गुहम् ॥१३६॥
 गृहे रामं पुनः पूज्य रामायणकृतं वरम् । पादाय च ममोपाय पुष्पकं पूजयेच्छुभम् ॥१३७॥
 मानोत्सर्वदिनं नीत्वा कार्यं जागरणं निश्चि । दशम्यां प्रातश्चर्याय भोजयित्वा द्विजान् बहून् ॥१३८॥
 पूजयित्वा पुनः सर्वं गुरुषु तन्निवेदयेत् । ततः स्वयं मुहूर्त्तमग्नैः कुर्याद्भोजनमुत्तमम् ॥१३९॥
 एवं व्रतं समाख्यातं चैत्रस्य नवरात्रके । अतस्तन्मन्त्ररात्रे हि श्रेष्ठं चैत्रं महत्तमम् ॥१४०॥
 नवरात्रेऽपि सा रामनवमी परमार्थदा । तन्ममाना विधिर्नान्या चैत्रमासे शुभमद्रा ॥१४१॥

सीधोमि नीर सब दानोमे जो पुण्य है, बहुत फल नवरात्रमे इस रामायणक पाठ करनेमे है ॥ १२३ ॥ नवरात्रमे जो लोग एक श्लोक अथवा श्लोकके एक चरणका भी पाठ करग, वे मोक्षके भाग होग ॥ १२४ ॥ इस तरह प्रतिदिन कौसल्या और रामका पूजन करना चाहिए । उस समय पुत्रवती स्त्रोके पूजनका विधान है ॥ १२५ ॥ इस अवसरपर पुत्रवान् ब्राह्मणोंके भी पूजनका विशेष महत्त्व माना गया है । पूजनके बाद उन्हीं विविध प्रकारके वस्त्र, बल्लकुर और तरह तरहके भोजन दे ॥ १२६ ॥ इस विधिसे नवरात्रमे विजयकर नवमा तिथिकी बाहुतपर आरुढ़ रामका पूजन करके भरी, मृदंग, तुरही, दुन्दुभी आदिके गम्भीर निनाद, गणिकाओंक नृत्य, माधवोंके गायन आदि नाना प्रकारके उत्साहोत्समदित, मुन्दर छत्रसे मुनीभित, चमरसे अलंकृत, पुष्पक विमानपर भाण्ड रामचन्द्रजीको रामतीर्थपर ले जाकर पश्चामृतक पड़ा तथा पवित्र जलमे स्नान करावे ॥ १२७-१३० ॥ स्नान कराने समय रुद्रमूर्त्त, विष्णुमूर्त्त अथवा महेश्वरामावलीका पाठ करता जाय । पहले ही जलमे विविध प्रकारके मङ्गलमय द्रव्य मिला ले ॥ १३१ ॥ इस तरह मङ्गलद्रव्य मिले जलसे स्नान करानेको मङ्गलस्नान कह्ये है । यह चैत्रमासमे किया जाता है और बहुत कठिनाईसे भागका ऐसा सुयोग प्राप्त होता है ॥ १३२ ॥ उस स्नानके पश्चात्पूजनीय किसी वस्त्रमें डाल दे और पूजामे जितने लोग सम्मिलित हुए हों, वे सब उस तीर्थमे जाकर स्नान करें । सभी प्राणाका मङ्गलस्नानका फल प्राप्ति होता है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ पुष्पक आदि तीर्थों तथा गङ्गा आदि नदिगोमे स्नान करनेसे जा फल मिलता है, वही फल मङ्गलस्नान करनेवालेको प्राप्त होता है ॥ १३५ ॥ इस तरह सीता समेत रामको स्नान कराकर उनको पूजा करे और पूर्वोक्त वाद्येगायिकोंके साथ फिर उन्हें अपने घर ले जावे ॥ १३६ ॥ घरपर रामको लाकर उनकी पूजा करे । तदनन्तर आनन्दरामायणका पारायण समाप्त करके पुस्तककी पूजा करे ॥ १३७ ॥ नाना प्रकारके उत्सव मनाता हुआ दिन बिनाये और रात-भर जागरण करे । दशमीको सबेरे उठे और नित्यकृत्यसे निवृत्तकर बहूतरे ब्राह्मणोंका भोजन करावे ॥ १३८ ॥ इसके बाद गुरुको पूजा करके उन्हें सब वस्तुओं दान दे । तत्पश्चात् सम्प्रतिषो और मित्रोंके साथ स्वयं भाजन करे ॥ १३९ ॥ चैत्रके नवरात्रमे इस तरह व्रत करनेका विधान बतलाया गया है । इसीलिए लोगोंने चैत्रके

अतः परं प्रवक्ष्यामि चैत्रोद्यापनकं विधिम् । यच्छ्रुत्वा सकलं सर्वं चैत्रस्नानं तु जायते ॥१४२॥
 चैत्रे मामि मिते पक्षे या वै एकादशी तिथिः । मर्वांशु तिथिषु श्रेष्ठा चोपोष्या वतकारिभिः ॥१४३॥
 श्रेष्ठा सा द्वादशी ज्ञेया तस्यां तु यमपूजनम् । कार्यं दध्योदनं दत्त्वा जलकुंभः प्रदीयताम् ॥१४४॥
 तिस्रश्च तिथयः श्रेष्ठाश्चैत्रे मामि महत्तमाः । त्रयोदशी तथाभूता पूर्णिमार्थी तथैव च ॥१४५॥
 यासु स्नानञ्च दानं च सर्वशान्तिदयकम् । यैर्न स्नानं चैत्रमासे न स्नात नवरत्रके ॥१४६॥
 तैस्तु चान्यदिने स्नान्वा चैत्रस्नानफलमेतत् । तामु श्रेष्ठा पूर्णिमा हि सर्वपापकनाशिनी ॥१४७॥
 तस्यामुद्यापनं प्रोक्तं चैत्रस्नानफलमये । उपोष्य च चतुर्दश्यां पूर्ववन्मण्डपादिकम् ॥१४८॥
 कृत्वा तस्मिन् धान्यराशौ कलशं वारिपूरितम् । स्थापयित्वा तदुपरि हेमपात्रं सुविस्तृतम् ॥१४९॥
 पञ्चरत्नयुतं स्थाप्य वस्त्रेणाच्छादयेच्च तत् । तस्मिन्मार्गानायुतं रामं मौर्वणं विधिपूर्वकम् ॥१५०॥
 भ्रातृमित्राद्युपुत्रेण सुग्रीवेण समन्वितम् । विभीषणामदाभ्यां तु जाम्बवन्सहितं तथा ॥१५१॥
 पूजयेद्देवदेवेश परमं गुह्यनुज्ञया । उपचारैः षोडशभिर्नानाभक्ष्यममन्वितैः ॥१५२॥
 रात्रौ जागरणं कुर्याद्गोत्रवाद्यादिमर्कैः । ततस्तु पूर्णिमाभ्यां च सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ॥१५३॥
 त्रिंशन्मितानर्थकं वा स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत् । ततस्तान्भोजयेद्विप्रान्पापमान्नादिना व्रती ॥१५४॥
 भूतो देवा इति द्वाभ्यां गृह्णात्तिलसर्पिणा । भीत्यर्थं देवदेवस्य देवातां च पृथक् पृथक् ॥१५५॥
 दक्षिणां च यथाशक्त्या प्रदद्याच्च ततो नमेत् । पुनर्देवं समभ्यर्च्य देवांश्च तुलसीं तथा ॥१५६॥
 ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिना व्रती । गुरुत्रयोपदेशारं वस्त्रालकाग्रमण्डनैः ॥१५७॥
 सपत्नीकं समभ्यर्च्य ततो विप्रान् क्षमापयेत् । युष्मन्प्रसादाद्देवेशः सुप्रसन्नोऽस्तु वै मम ॥१५८॥

नवरात्रको बहुत ही श्रेष्ठ माना है ॥ १४० ॥ नवरात्रम भी रामनवमी परमार्थदायिनी है । इसके समान शुभप्रद तिथि चैत्रमास भरमे कोई भी नहीं है ॥ १४१ ॥ इसके अनन्तर चैत्रके उस उद्यापनका विधान बतलाते हैं, जिसके वर्णसे चैत्रस्नान सकल हा जाता है ॥ १४२ ॥ चैत्रमासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी पड़ती है, वह सब तिथियोंमें श्रेष्ठ होती है । इसलिए चैत्रव्रत करनेवालोंको यह एकादशीव्रत अवश्य करना चाहिए ॥ १४३ ॥ इसी तरह चैत्र शुक्लपक्षको द्वादशी भी श्रेष्ठ है । इस रात्रि दही-भानस यमका पूजन करके जलसे पूर्ण घड़ेका दान करना चाहिए ॥ १४४ ॥ चैत्रमास भरम तीन तिथियाँ श्रेष्ठ हैं । जैसे-द्वादशी, त्रयोदशी और पूर्णिमा ॥ १४५ ॥ इनमें स्नान-दान करनेसे ये तिथियाँ सब कामनाओंका पूर्ण करती हैं । जिसने चैत्रस्नान नहीं किया और जो नवरात्रस्नान भी नहीं कर पाया, वह अन्तिम दिन अथवा पूर्णिमाको स्नान करके चैत्र-स्नानका फल प्राप्त कर लेता है । क्योंकि चैत्र भरकी सब तिथियोंमें पूर्णिमा तिथि श्रेष्ठ है और सब पातकोंको नष्ट करती है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ अतः चैत्रस्नानका फल पानके लिए इस पूर्णिमामें भी उद्यापन करना चाहिए । इसका विधान यह है कि चतुर्दश्याको उपवास करके पूर्ववत् मण्डप आदि बनाये और उसमें धान्यराशि तथा वारिपूर्ण कलश रखकर उसके ऊपर एक बड़ासा स्वर्णपात्र रखे ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ उसमें पञ्चरत्न डालकर वस्त्रमें ढाँक दे । तदनन्तर साता, लक्ष्मण आदि भ्राताओं, हनुमान्जी, सुग्रीव, विभीषण, बह्मद तथा जाम्बवान् सहित रामकी सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करके गुरुको आज्ञासे देव-देवेश रामकी षोडश उपचारों एवं विविध भक्ष्य पदार्थोंसे पूजन करे ॥ १५० ॥ १५१ ॥ रात्रि भर जागरण करता हुआ गाव-बजावे और सबरे सोस सपत्नीक ब्राह्मणों अथवा जैसा सामर्थ्य हो, उसके अनुसार ब्राह्मणोंको बुलाकर खीर-पूड़ी आदि भाजन करावे ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ इसके बाद 'भूतो देवा' इस मन्त्रके द्वारा तिल और घीसे हुक्क करे । इस हुक्कसे देवदेव राम तथा अन्योन्य देवताओंको प्रसन्न किया जाता है ॥ १५५ ॥ यह सब करनेके बाद ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा देकर प्रणाम करे । फिर समस्त देवताओं तथा तुलसी देवीका फिरसे पूजन करके विधिपूर्वक कपिला गौका पूजन करे और नाना प्रकारके वस्त्र-आभूषण देकर व्रतके उपदेश सपत्नीक गुरुकी पूजा करे ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ यह सब करनेके बाद ब्राह्मणोंसे क्षमाप्रार्थना करता हुआ

ब्रतादस्माच्च यदपायं सप्तजन्मकृतं मया । तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चास्तु संततिः ॥१५९॥
 मनोरथास्तु सफलाः संतु नित्यं ममार्चनात् । देहांते वैष्णवं स्थानं मम चास्त्वतिदुर्लभम् ॥१६०॥
 इति समाप्य तान् विप्रान् प्रसाद्य च विसर्जयेत् । तामर्चां गुरवे दद्याद्भक्त्युक्तां सदा व्रती ॥१६१॥
 ततः सुहृत्प्रियैर्युक्तः स्वयं भुंजीत भक्तिमान् । एवमुद्यापनविधिशैत्रस्नानफलाप्तये ॥१६२॥
 सविस्तरम् कर्तव्यं शैत्रस्नानपरायणः । एवं च कुरुते भक्त्यक् चैत्रस्नानव्रतं नरः ॥१६३॥
 सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुमायुज्यमाप्नुयात् । सर्वव्रतः सर्वतीर्थैः सर्वदानैश्च यत्फलम् ॥१६४॥
 सत्कोटिगुणितं पुण्यं सम्यगस्य विधानतः । देहस्थितानि पापानि नाशमायांति तद्भयात् ॥१६५॥
 क्व यास्यामो वदत्येवं यच्चैत्रव्रतकृत्तरः । तस्मादवश्यमेवैतच्चैत्रस्नानं समाचरेत् ॥१६६॥

श्रीचैत्रव्रतकथनं पठन्ति भक्तया ये वै तद्द्विजयतिवैष्णवान्वदति ।

ते सम्यक् व्रतकरणात् फलं लभन्ते तत्सर्वं कलुषविनाशनं लभन्ते ॥ १६७॥

इति श्रीशक्तकीटिरामचरितातर्गते श्रीमदानन्दरामायणं वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे

आदिकाण्डे चैत्रमहिमवर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

(चैत्रस्नानका महात्म्य)

विष्णुदास उवाच

किमर्थं सर्वमासेषु चैत्रमासः स्मृती वरः । तत्कारणं वदस्वाद्य गुरो संतोषहेतवे ॥ १ ॥

श्रीरामदास उवाच

मृण शिष्य महाबुद्धे सम्यक् पृष्टं त्वया मम । ब्रह्मप्रार्थनया विष्णुर्यदा भूम्यां द्विजोत्तम ॥ २ ॥

अयोध्याशालकस्याथ राज्ञो दशरथस्य हि । कौसल्यायास्तु भार्याय जठराग्निर्गतो बहिः ॥ ३ ॥

कहे कि आप लोगोंकी कृपासे देवेश रामचन्द्रजी हमपर सदा प्रसन्न रहे ॥ १५८ ॥ मैने सात जन्म तक जो पाप किये हों, वे सब व्रतसे नष्ट होजायें और मेरी सन्तति स्थायी हो ॥ १५९ ॥ इस पूजनके प्रभावसे मेरे सब मनोरथ सफल हो और देहान्त होनेपर हमें अतिशय दुर्लभ वैकुण्ठ धाम प्राप्त हो ॥ १६० ॥ इस तरह क्षमायाचना करके उन ब्राह्मणोंको प्रसन्न करता हुआ विदा कर और रत्न तथा प्रतिमा समेत पूजनको सब वस्तुयें गुरुको दान दे दे ॥ १६१ ॥ इसके बाद मातदारों और मित्रोंके साथ भोजन करे । इस तरह चैत्रमासका फल प्राप्त करनेके लिए उद्यापन करनेका विधान है ॥ १६२ ॥ जो लोग चैत्रमासके व्रतमें लगे हों, उन्हें विस्तारसे यह उद्यापन करना चाहिए । जो मनुष्य अच्छी तरह चैत्रस्नानका व्रत करता है, वह सब पातकोंसे छूटकर विष्णुभक्तमान्को सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है । समस्त व्रतों, सब तीर्थों और समस्त दानोंमें जो फल प्राप्त होता है, उसका करीबोभूत अविक फल इस चैत्रमासके व्रतसे प्राप्त होता है । इसके भयसे चैत्रव्रतीके देहमें रहनेवाले समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं । वे पाप कहते हैं कि अब हम कहाँ जायें ? अतः चैत्रव्रत करलेवाले मनुष्यको चैत्रस्नान अवश्य करना चाहिए ॥ १६३-१६६ ॥ जो लोग इस चैत्रव्रतको कषाको चढ़ते या विप्र तथा संन्यासी वैष्णवोंको सुनते हैं, वे अच्छी तरह व्रत करनेका फल पाते हैं और उनके समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ १६७ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये प० रामतेजपाण्डेयकृत 'व्योम्ना'-मावाटीकासहिते मनोहरकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरुदेव ! सब मासोंमें यह चैत्रमास क्यों श्रेष्ठ माना गया है ? तो मेरे सन्तोषके लिए कहिए ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे महाबुद्धिमान् शिष्य । तुमने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है । मैं

चैत्रे मासि मिते पक्षे नवम्या परमे दिने । पुनर्वसुर्धनस्तत्रे प्रोच्यस्थे ग्रहपंचके ॥ ४ ॥
 मध्याह्ने प्रकटो जातः श्रीरामो राजमशनिः । आनन्दश्च तदा जातः सर्वत्र जगतीतले ॥ ५ ॥
 देवदुन्दुभयो नेदुः पुण्यवृष्टिः शुभादतन् । राजमशनि वाद्यानां संध्या नेदुः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥
 ननुत्तुर्वारनार्यश्च जगुर्गीतं मनोरमम् । तदा सर्वे हि भूमिस्था जना द्रष्टुं शिशुं शुभम् ॥ ७ ॥
 प्रयपुर्नृपजं बालं दृष्ट्वा मुदमवाप्नुयुः । नानाविमानमावृष्टा दिवि देवाः सवासवाः ॥ ८ ॥
 मिलिता राघवं द्रष्टुं कौमल्याजठरोद्भवम् । ब्रह्मा रुद्रश्च सूर्यश्च देवैर्द्रादिसुराः शुभाः ॥ ९ ॥
 उत्सवान् विदधुः सर्वे तदा श्रीरामजन्मनि । एवमुन्माह्वयमये देवा हर्षादिवि स्थिताः ॥ १० ॥
 नमस्कृत्वा रामचन्द्रं तुष्टुविविधैः स्तवैः । प्रोचुस्तदा सुराः सर्वे हर्षदेवै रघूत्तमम् ॥ ११ ॥
 अद्य धन्या वयं देव मुक्ताश्चासुरजाङ्गयात् । यन्निमित्तं त्वया देव स्रवतारः कृतो भुवि ॥ १२ ॥
 अस्माकं हर्षकालोऽयं देवदेव कृपानिधे । तस्मादयं सदा पुण्यः श्रेष्ठः कालो भविष्यति ॥ १३ ॥
 त्वं चाप्यंगीकुस्त्वाद्य देहस्मै सुयदून् वरान् । इति तेषां वचः श्रुत्वा देवानां राघवः शुभम् ॥ १४ ॥
 तुतोष नितरां तेषु देवेषु भगवान्हरिः ।

श्रीराम उवाच

सम्यक् प्रोक्तं सुराः सर्वे तन्त्रैलोक्योपकारकम् ॥ १५ ॥

मयद्भिः प्रार्थितोऽहं तु हर्षकाले मत्तमे । गृणुष्वं वचनं मेऽद्य यदर्थान्प्रोच्यते मया ॥ १६ ॥
 सर्वपामेव मागानां श्रेष्ठथाय भविष्यति । वैशाखांकारिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्माण गच्छ ॥ १७ ॥
 माघमासादरथायं चैत्रमासो भविष्यति । चैत्रमासे कृत दत्त दूनं स्नातं विवितितम् ॥ १८ ॥
 सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तमयोध्यायां विशेषतः । यच्छ्रेयश्चात्रमेधेन यदोमेधेन वै फलम् ॥ १९ ॥
 यन्फलं सोमयागेन तच्चैत्रे स्नानमात्रतः । सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेयः स्नानदानतः ॥ २० ॥

उसका उत्तर देता है सुतो-॥ २ ॥ अयोध्या नगरीके पालक महाराज दशरथको रानी कौमल्याके उदरसे चैत्रमासके शुक्लपक्षाको नवमी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्रमे जब कि पांच ग्रह ऊँच स्थानमे बँडे थे, तब मध्याह्नके समय अवधन दशरथके घरमे श्रीरामचन्द्रजी अवतरे । उस समय जगतीतलमे सर्वत्र आनन्द छा गया ॥ ३-५ ॥ देवताओंने दृन्दुमिर्या बजायीं और पुण्यवृष्टि की । राजाके महलोंमे अलग-अलग विविध प्रकारके बाजे बजे ॥ ६ ॥ वेध्यापे नाचने और गाने लगीं । उस समय पृथ्वीमण्डलके प्रमुख मनुष्य उस वच्चेको देखनेके लिए आये और उस देव दत्तकर बड़ प्रसन्न हुए । उसी तरह नाना प्रकारके विमानोंपर चढ़-चढ़कर इन्द्र आदि देवता भी एकत्र होकर कौमल्याके गभस उत्पन्न रामको देखनेके लिए आये । उस समय ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य तथा देवेन्द्र आदि देवताओंने श्रीरामचन्द्रजीके जन्मके उपरन्ध्रमे विविध उत्सव किये । इस तरह उत्साहके समय आकाशमे विद्यमान देवता रामको प्रणाम करके नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर रहे थे । समय पाकर देवताओंने रामसे कहा-॥ ७-११ ॥ हे देव ! आज हम लोग धन्य हैं । अब हम लोग राक्षसोंके भयसे मुक्त हो गये । क्योंकि इसीलिए आपने अवतार लिया है ॥ १२ ॥ हे देव ! हे कृपानिधे ! यह हम लोगोंके लिए महान् हर्षका समय है । इसीके कारण यह पवित्र समय सर्वश्रेष्ठ माना जायगा ॥ १३ ॥ अब भी इस बातको अच्छीकार करते हुए इस समयको बहुतेरे वरदान बाँजिए । उनकी ऐसी बात सुनकर भगवान् रामचन्द्रजी उनपर बहुत प्रसन्न हुए और कहा-हे देवताओं ! आपलोगोंने बड़ी अच्छी बात कहा है और तीनों लोकोंके उपकार करनेवाले विविध स्तोत्रोंसे स्तुति की है । इससे मैं बहुत प्रसन्न होकर कहता हूँ-॥ १४-१९ ॥ यह मास सब मासोंमें श्रेष्ठ होगा । वैशाखसे कार्तिक श्रेष्ठ है, कार्तिकसे माघ श्रेष्ठ है और माघसे भी यह चैत्रमास श्रेष्ठ होगा । इस मासमें किया हुआ दान, हवन, स्नान और ध्यान यह सब कर्म करोड़गुना फल देगा और अयोध्यामें तो उससे भी विशेष फल प्राप्त होगा । जो फल ब्रह्ममेधसे होता है, जो फल गोमेधसे होता है

चैत्रे मासि मिते पक्षे नवम्या परमे दिने । पुनर्वसुर्धनस्तत्रे प्रोच्यस्थे ग्रहपंचके ॥ ४ ॥
 मध्याह्ने प्रकटो जातः श्रीरामो राजमशनिः । आनन्दश्च तदा जातः सर्वत्र जगतीतले ॥ ५ ॥
 देवदुन्दुभयो नेदुः पुण्यवृष्टिः शुभादतन् । राजमशनि वाद्यानां संध्या नेदुः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥
 ननुत्तुर्वारनार्यश्च जगुर्गीतं मनोरमम् । तदा सर्वे हि भूमिस्था जना द्रष्टुं शिशुं शुभम् ॥ ७ ॥
 प्रयपुर्नृपजं बालं दृष्ट्वा मुदमवाप्नुयुः । नानाविमानमावृष्टा दिवि देवाः सवासवाः ॥ ८ ॥
 मिलिता राघवं द्रष्टुं कौमल्याजठरोद्भवम् । ब्रह्मा रुद्रश्च सूर्यश्च देवैर्द्रादिसुराः शुभाः ॥ ९ ॥
 उत्सवान् विदधुः सर्वे तदा श्रीरामजन्मनि । एवमुन्माह्वयमये देवा हर्षादिवि स्थिताः ॥ १० ॥
 नमस्कृत्वा रामचन्द्रं तुष्टुविविधैः स्तवैः । प्रोचुस्तदा सुराः सर्वे हर्षदेवै रघूत्तमम् ॥ ११ ॥
 अद्य धन्या वयं देव मुक्ताश्चासुरजाड्यात् । यन्निमित्तं त्वया देव स्रवतारः कृतो भुवि ॥ १२ ॥
 अस्माकं हर्षकालोऽयं देवदेव कृपानिधे । तस्मादयं सदा पुण्यः श्रेष्ठः कालो भविष्यति ॥ १३ ॥
 त्वं चाप्यंगीकुस्त्वाद्य देहस्मै सुयदून् वरान् । इति तेषां वचः श्रुत्वा देवानां राघवः शुभम् ॥ १४ ॥
 तुतोष नितरां तेषु देवेषु भगवान्हरिः ।

श्रीराम उवाच

सम्यक् प्रोक्तं सुराः सर्वे तन्त्रैलोक्योपकारकम् ॥ १५ ॥

मयद्भिः प्रार्थितोऽहं तु हर्षकाले मत्तमे । गृणुष्वं वचनं मेऽद्य यदर्थान्प्रोच्यते मया ॥ १६ ॥
 सर्वपामेव मागानां श्रेष्ठथाय भविष्यति । वैशाखांकारिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्माण गच्छ ॥ १७ ॥
 माघमासादरथायं चैत्रमासो भविष्यति । चैत्रमासे कृत दत्त दूनं स्नातं विवितितम् ॥ १८ ॥
 सर्वं कीटिगुणं प्रोक्तमयोध्यायां विशेषतः । यच्छ्रेयश्चात्रमेधेन यदोमेधेन वै फलम् ॥ १९ ॥
 यन्फलं सोमयागेन तच्चैत्रे स्नानमात्रतः । सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेयः स्नानदानतः ॥ २० ॥

उसका उत्तर देता है सुतो-॥ २ ॥ अयोध्या नगरीके पालक महाराज दशरथको रानी कौमल्याके उदरसे चैत्रमासके शुक्लपक्षाको नवमी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्रमे जब कि पांच ग्रह ऊँच स्थानमे बँडे थे, तब मध्याह्नके समय अवधन दशरथके घरमे श्रीरामचन्द्रजी अवतरे । उस समय जगतीतले सर्वत्र आनन्द छा गया ॥ ३-५ ॥ देवताओंने दृन्दुमियां बजायीं और पुण्यवृष्टि की । राजाके महलोंमे अलग-अलग विविध प्रकारके बाजे बजे ॥ ६ ॥ वेध्यापे नाचने और गाने लगीं । उस समय पृथ्वीमण्डलके प्रमुख मनुष्य उस वचनेको देखनेके लिए आये और उस देव दसकर बड़ प्रसन्न हुए । उसी तरह नाना प्रकारके विमानोंपर चढ़-चढ़कर इन्द्र आदि देवता भी एकत्र होकर कौमल्याके गभस उत्पन्न रामको देखनेके लिए आये । उस समय ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य तथा देवेन्द्र आदि देवताओंने श्रीरामचन्द्रजीके जन्मके उपरक्ष्यमें विविध उत्सव किये । इस तरह उत्साहके समय आकाशमे विद्यमान देवता रामको प्रणाम करके नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर रहे थे । समय पाकर देवताओंने रामसे कहा-॥ ७-११ ॥ हे देव ! आज हम लोग धन्य हैं । अब हम लोग राक्षसोंके भयसे मुक्त हो गये । क्योंकि इसीलिए आपने अवतार लिया है ॥ १२ ॥ हे देव ! हे कृपानिधे ! यह हम लोगोंके लिए महान् हर्षका समय है । इसीके कारण यह पवित्र समय सर्वश्रेष्ठ माना जायगा ॥ १३ ॥ अब भी इस बातको अच्छीकार करते हुए इस समयको बहुतेरे वरदान बाँजिए । उनकी ऐसी बात सुनकर भगवान् रामचन्द्रजी उनपर बहुत प्रसन्न हुए और कहा-हे देवताओं ! आपलोगोंने बड़ी अच्छी बात कहा है और तीनों लोकोंके उपकार करनेवाले विविध स्तोत्रोंसे स्तुति की है । इससे मैं बहुत प्रसन्न होकर कहता हूँ-॥ १४-१९ ॥ यह मास सब मासोंमें श्रेष्ठ होगा । वैशाखसे कार्तिक श्रेष्ठ है, कार्तिकसे माघ श्रेष्ठ है और माघसे भी यह चैत्रमास श्रेष्ठ होगा । इस मासमें किया हुआ दान, हवन, स्नान और ध्यान यह सब कर्म करोड़गुना फल देगा और अयोध्यामें तो उससे भी विशेष फल प्राप्त होगा । जो फल ब्रह्ममेधसे होता है, जो फल गोमेधसे होता है

कुटुम्बमोज दस्मै मूर्जामैरिदमनाम् । लक्ष्मीनाम्नी तु मन्माना तावुभौ रामवत्परी ॥३५॥
 पुत्रान्पांचमदृष्ट्वा तौ वृद्धौ पुत्रायमुद्यता । स्वदायारिहारार्थमुपायं कर्तुमुद्यता ॥३६॥
 निवासालये पुर गत्वा दंपती माहर्तां क्षुमाम् । स्वीयेष्टदेवतामम्भं प्रवरातीरवासिनीम् ॥३७॥
 दृष्ट्वा देव्याश्च तौ सेशां नित्यं तत्र प्रचक्रतुः । गते बहुतिथे काले वरदा या महालया ॥३८॥
 प्रसन्ना त द्विजं भूत्वा ग्राहं सदापशान्तये । हे नृसिंह महाबुद्ध मञ्ज्यायोध्यापुरी मति ॥३९॥
 तत्र वै सद्युताये रामतीर्थे महत्तमे । चैत्र मासि वसन्तर्तौ यदा स्थान्मीनगा रविः ॥४०॥
 चैत्रस्नानं मासमेकं कुरु तत्र द्विजोत्तम । पानकं मकलं तपक्नवा पुत्र प्राप्स्यस्यस्यनुत्तमम् ॥४१॥
 इति देव्या वचः श्रुत्वा द्विजश्चितापरस्तदा । ययौ मार्गे हृदि श्यायस्योध्याग्यां पुनीं शुमाम् ॥४२॥
 चित्तया परया व्याप्तः कथं कर्तुं हि शक्यते । मयाऽयोध्यापुरी दूरीतः कष्टं च ज्ञेयितम् ॥४३॥
 इति विनायुतो मार्गे कचित्तिष्टन्वचिन्मखलन् । भार्याप्राप्त्यं करे धृत्वा वृद्धश्चैत्रं ययौ द्विजः ॥४४॥
 एवं गोदावरीतीरं गत्वा स्नान्वा द्विजोत्तमः । राममूर्तिं पुरः स्थाप्य पूजयामास भक्तितः ॥४५॥
 तावत्तस्मै प्रसन्नोऽभूद्रामो देव्याः प्रसादतः । द्विजं ग्राहं गृध्रेष्टो भो नृसिंह द्विजोत्तम ॥४६॥
 माऽयोध्यां त्वमिहो गच्छ शृणु मे वचनं शुभम् । इतः पूर्वं ह्यहं हि योजनद्वयसमितम् ॥४७॥
 प्रतिष्ठानाभिधं क्षेत्रं गोदावरी उत्तरे तटे । तत्रास्ति रामर्थाय हि मन्नाम्ना च मया कृतम् ॥४८॥
 तत्र त्वं गच्छ विप्रेन्द्र स्नान्वा शीघ्रं हि भार्यया । चैत्रमासे वसन्तर्तौ यदा स्थान्मीनगो रविः ॥४९॥
 तदा कुरु विशेषेण पूजयित्वा च मां शुभम् । शपस्यः पुत्रलाभो भविष्यति न संशयः ॥५०॥
 इत्युक्त्वा रघुर्वागस्तु तत्रैवांतरधीयत । यत्र गंगाद्वयं रामः प्रसन्नोऽभूद् द्विजाम हि ॥५१॥
 तस्मात्स वै रामदेवो नाम्ना सर्वत्र कीर्तयते । तद्गामवचनादिप्रः प्रतिष्ठानपुरं ययौ ॥५२॥
 मासमेकं च वै स्थित्वा चैत्रस्नानं चकार ह । सूर्योदये समुन्वाय कृत्वा चादिसत्क्रियः ॥५३॥

लक्ष्मीनाम्नी मरा माता और पिता य दाना असाधारण रामभक्त थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ । किन्तु वृद्धावस्था पर्यन्त पुत्रका अभाव देखकर उन्होंने अपना दास शाली करनक ॥३५॥ उपाय करना प्रारम्भ किया ॥ ३५ ॥ इसके लिए वे प्रवराके तीरपर रहनेवाली अपनी इष्टदेवा अम्बा माहर्ताक पास गये ॥ ३६ ॥ उनका दण्डन करके उन्होंने बहुत दिनों तक देवार्का आराधना की । कुछ दिनों बाद देवा प्रसन्न होकर कहने लगी—ह महाबुद्धमान् नृसिंह ! तुम यहाँसे अयोध्यापुरा जाओ । वहाँके महालय सरयू नदीके जलन जब वसन्त ऋतुक समथ मूर्ध मानर, शिवर जायें, तब एक महान वनस्नान करो । ऐसा करनेसे तुम्हारे सब पातक नष्ट हो जायेंगे और तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी ॥ ३७-४१ ॥ देवाको यह बात सुनकर वे अयोध्यापुराका ध्यान करते हुए चले । उन्हें यह बड़ा चिन्ता थी कि अयोध्यापुरा तो यहाँसे बहुत दूर है और मुझ अपना जावन भी भारी हो रहा है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ऐसा सोचते हुए वे कभी बैठ जायें, कभी गिर पड़त और कभी अपना स्त्रोक्ता हाथ पकड़कर वे मेरे वृद्ध पिता चलत थे ॥ ४४ ॥ इस तरह किसी प्रकार वे गोदावरीके तटतक पहुँच । वहाँ उन्होंने स्नान किया और सामने रामकी मूर्ति रखकर भक्तिपूर्वक पूजन करने लग ॥ ४५ ॥ तबतक देवाके आशीर्वादसे रामचन्द्रजी प्रसन्न होकर सामने आय और कहने लग—है द्विजोत्तम नृसिंह ! अब तुम अयोध्या मत जाओ । यहाँसे केवल तीन योजन दूर गोदावरीके उत्तर तटपर प्रतिष्ठान नामक क्षेत्र है । वहाँ मेरे नामसे प्रसिद्ध रामतीर्थ है । मैंने ही उसका स्थापना की है ॥ ४६-४८ ॥ तुम वहाँ जाओ और चैत्रमासमें जब सूर्य जीव राशिपर जायें, तब भार्याके साथ स्नान करके मरा विधिवन् पूजन करो । ऐसा करनेसे तुम्हारे सब पातक नष्ट हो जायेंगे और तुम्हें पुत्रका प्राप्ति होगी । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ऐसा कहकर रामचन्द्रजी वहाँ ही अन्तर्धान हो गये । जित गङ्गानामक सरावरक तटपर राम प्रसन्न हुए थे, वह स्थान रामहृदके नामसे विख्यात हुआ । रामके कथनानुसार ब्रह्मणदेवता अपनी भार्याके साथ उस प्रतिष्ठानतीर्थकी गये

स्नात्वा तस्मिन् रामतीर्थे सरयुसंगसमन्विते । रामचन्द्रं स्वर्णगिरौ पूजयामास भक्तिः ॥५४॥
 प्रदक्षिणाः स्वर्णगिरेश्चकार नव प्रण्यहम् । नयपुष्पैश्च नैवेद्यैः पूजयामास राघवम् ॥५५॥
 चैत्रशुक्लतृतीयाया यावद्वैशाख्यमभवा । तृतीया शीतला गौरी स्नानं चक्रे च भार्यया ॥५६॥
 एवं भार्यं व्रतं कृत्वा स द्विजस्तुष्टमानसः । अञ्जकं प्रति मार्गेण यया लक्ष्म्या समन्वितः ॥५७॥
 यात्रन्मार्गे द्विजोऽञ्जलिं वा वदुर्दृष्टिभिर्नरैः । पिशाचैः सुतृणैः कानिष्ठानुदार्य सभार्यथा ॥५८॥
 ययौ स्वनगरं रम्यं गोदानान्विजिजिषम् । चैत्रस्नानप्रभावेण ज्ञात्स्नस्मात्सुतस्त्वहम् ॥५९॥

तस्मान्मया ते कथितं वरं हि स्नानं मयी ते सरयुजले वै ।

साकेतपुर्यां नरामतीर्थे भुक्तिप्रदं मोक्षदमुत्तमं च ॥६०॥

विष्णुदास उवाच

कथं पिशाचयोन्थास्ते मुक्ता विप्रेण वै व्रतः । कस्मान्पाषाण्य ते सर्वे पैशाचीं योनिमाश्रिताः ॥६१॥

तस्मै विस्तरेणैव श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।

श्रीराघवास उवाच

मृणुं शिष्यं प्रवक्ष्यामि रम्भानाम्नी वरऽप्पगतः ॥६२॥

चैत्रे स्नात्वा वरायोष्यासरयुर्निर्मले जले । आर्द्रवस्त्रपुता च रुद्धाक्ष्यालंकारमण्डिता ॥६३॥
 गृहीत्वा सरयुतीर्थं रत्नकांचननिर्मिते । पञ्चे गमेश्वरं सेतौ द्रष्टुं मौनेन सा जवात् ॥६४॥
 ययावाकाशमार्गेण पिशाचा यत्र ते व्रतः । तदार्द्रवस्त्रचांचन्याङ्घ्रिदुभिः प्रोक्षिताश्च ते ॥६५॥
 क्रस्वभावमुत्सृज्य चाश्रयं परमं ययुः । पूर्वजन्मानुस्मरणमभूत्तेषां तदा नृप ॥६६॥
 विस्मयाविष्टचित्तास्ते तां दृष्ट्वाऽप्सरसं द्विवि । बहुधा प्रार्थयामासुस्तान्ता पश्यन्तु संतथा ॥६७॥

॥ ५१ ॥ ५२ ॥ वहाँ रहकर उन्होंने एक मास पर्वन्त चैत्रस्नान किया । उनका यह नियम था कि प्रतिदिन सुबो-
 दयमें पहले सोकर उठ जाने और नित्यकृत्यसे निवटकर सरयुसंगसंग विद्यमान तीर्थमें स्नान करते और
 भक्तिपूर्वक स्वर्णगिरिपर रामचन्द्रजी की पूजा किया करते थे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ प्रतिदिन वे उस स्वर्णगिरि की नौ
 परिक्रमा करते और नौ पुण्यों और विविध प्रकारके नैवेद्यांसे रामका पूजन करते थे । वह व्रत उनका
 सवतक चल रहा, अबतक वैशाखके शुक्लपक्षका तृतीया नहीं आयी । तृतीयाके आनेपर उन्होंने शीतलागौरी
 नामक स्नान किया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस तरह एक मास तक व्रत करके प्रसन्न चित्तसे वे ब्राह्मणदेवता अपनी
 पत्नीके साथ कमलपुरी चले ॥ ५७ ॥ जाते जाते रातमें उनको तीन पिशाच मिले । वे तीनों बड़े भूखे थे ।
 मेरे पिता-माता ने उनका उद्धार किया और अपने नगरको गये । उसी चैत्रस्नानके प्रभावसे मैं उनका पुत्र होकर
 जन्मा ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इसीलिए मैंने चैत्रमासमें अयोध्याके पवित्रनाथमें भुक्ति-भुक्तिप्रद सरयुजलमें स्नानका
 विधान बतलाया है ॥ ६० ॥ विष्णुदासने कहा-वे तीनों पिशाच किस तरह उस पिशाचमार्गसे छूटे और
 किस पापसे वे पिशाचयोनिमें पड़े थे । यह कृतान्त भी विस्तारपूर्वक मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ ।
 श्रीराघवास कहने लगे-हे शिष्य ! मुनो, यह कथानक भी मैं कहता हूँ । रम्भा नामकी एक सुन्दरी अप्सरा थी
 ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ उसने चैत्रमासमें अयोध्याके सरयुजलमें स्नान किया । उसका कपड़े भीग गये थे, अन्द मुस्कान
 उसके होठोंपर खेल रही थी और उसके अंगमें पड़े हुए विविध प्रकारके आभूषण अपनी आसुधारण शोभा
 दिखा रहे थे ॥ ६३ ॥ स्नानके अवन्तर उठने रत्न और कांचनसे बने हुए पात्रमें रामेश्वर शिवको स्नान करानेके
 लिये सरयुजल घरा और मौन होकर आकाशमार्गसे रामेश्वरको चल पड़ी । जाते-जाते वह उस स्थानपर
 पहुंची, जहाँ वे तीनों पिशाच रहते थे । रम्भाके भीगे वस्त्रसे पत्नीकी कई बूंदें गिरकर इन पिशाचोंपर
 पड़ी ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इससे उनका क्रूर स्वभाव छूट गया और उन्हें पूर्वजन्मकी सब बातें याद आ गयीं ॥ ६६ ॥
 तदनन्तर वे तीनों विस्मित होकर बहुत तरहसे प्रार्थना करने लगे । रम्भाने साकेतमें उनसे पूछा- ॥ ६७ ॥

कस्माद्यं पिशाचा हि जानास्तत्कथयतां मम । इति तन्करुन्संतापेरितास्ते प्रयस्तदा ॥६८॥
 तेषु द्वौ वर्तमानौ हि कथयामासुश्च ताम् । शृणु भाभिनि चारां हि पूर्वजन्मनि भूमुरात् ॥६९॥
 विज्जायां ममुपनी श्रोत्रिवाटुरक्षमणः । उभाश्च ध्यानं कर्तुं कचित्रागयणाह्वयम् ॥७०॥
 शुश्रूषया तोषयित्वा गुरुं नम्रैव तस्थतुः । नारायणमुतां चारुहासां चन्द्रनिभाननाम् ॥७१॥
 दृष्ट्वा परम्परं मैत्र्यं बहुधा प्रार्थ्य तां स्त्रियम् आगम्यां च हि मा मृक्ता तज्जान गुरुणा चिरात् ॥७२॥
 आवाभ्यां च ददौ शापं तस्यै चापशयक्रुधा । युवां चापि कुमारीयं पिशाचत्वं गमिष्यथ ॥७३॥
 ततोऽस्माभिस्त्रिभिस्तं तु मुनिं नत्वा पुनः पुनः । शापस्यांतस्तनो लब्धस्तच्छृणुष्व मनोगमे ॥७४॥
 चैत्रमासे नृमिहारायः कथिद्विष्टश्च कानने ददति स्नानत्रं पुण्यं तदोद्वागे भविष्यति ॥७५॥
 एवं जाना पिशाचा हि त्वयं नृद्वस्रचिदुभिः । प्रोक्षिताः स्मोऽयं नैर्जाना पर्वजन्ममृतिः शुभा ७६॥
 तत्तपां वचनं श्रुत्वा ज्ञान्वा शापस्य मोक्षणम् । सान्त्वयित्वा करेणैव शीघ्रं स नृहरिः स्त्रिया ॥७७॥
 आगमिष्यति मा चितां कुरुतेति वरांगना । ययौ रामेश्वरं शीघ्रं पूजयित्वा गता दिवम् ॥७८॥
 चैत्रमासे ह्यतिक्रांते सर्गे स नृहरिर्द्विजः । मार्यया मद्विनो दष्टः पिशाचैर्नः पिता मम ॥७९॥
 स्थित्वा दूरं च ते सर्वे तमचूर्नुर्हारं द्विजम् । नैजे हृतं समस्तं हि शापस्यापि विमोक्षणम् ॥८०॥
 तच्छ्रुत्वा नृहरिर्विप्रस्तान्प्रोवाच भृदान्वितः । मा भैतव्यं पिशाचत्वाद्यथा शमुद्विजेन सः ॥८१॥

राक्षसो भोचितः पूर्व भोचयिष्याम्यहं तथा ।

पिशाच उवाच

कः शंभुश्च कदा मुक्तो राक्षसः कः मविस्तरम् ॥८२॥

तुमलोग इस पिशाचयोनिको वशी प्राप्त हुए हो सा कहो । इस प्रकार रम्भाके हाथोका संकेत पाकर उन तीनोंमेंसे दो बील-हं भाभिनी । मुनो पूर्वजन्मम हम दोनों विज्जा नाम्ना स्त्रीद्वारा हर णर्मा नामक ब्राह्मणसे उत्पन्न हुए थे । अवस्थानुसार हम दोनों विचार पटलके लिए नारायण नामक एक गुरुके यहाँ गये वहाँ उनको सेवा करते हुए रहने लगे । गुरुजीकी एक सुन्दरी कन्या थी । उसका मनोहारिणी मुस्कान थी और चन्द्रमा के समान मुख था ॥ ६८-७१ ॥ उसे देखकर हम दोनों उससे मित्रता कर ली और समय पाकर बहुत अनुग्रह वित्तय करके हम दोनों उसके साथ भाग किया । बहुत दिनों बाद यह बात गुरुजीको ज्ञात हो गयी ॥ ७२ ॥ उन्होंने कृपित होकर हम तथा उस कन्याको शाप देने हुए कहा कि इस कुमारके साथ तुम दोनों पिशाच हो जाओ ॥ ७३ ॥ इसके बाद हम तीनों उन मुनीश्वरकी बार-बार प्रणाम करके किसी तरह शापके अन्तका वचन पाया सो भी मूल लो ॥ ७४ ॥ उन्होंने कहा कि चैत्रमासमें कोई नसिह नामका ब्राह्मण इस वनमें आयेगा और वह अपने चैत्रस्तानका पुण्य तुम्हें प्रदान करेगा, तब तुम्हारा उद्धार होगा ॥ ७५ ॥ इस तरह हमलोगोंका यह पिशाचपान मिली । अज हम आगेके वनप्रविष्टुमें प्रोक्षित हो गये । इस कारण हमें पूर्वजन्मकी सब बातें याद आ गयी हैं ॥ ७६ ॥ इस प्रकार उनको बात सुनकर रम्भान संकल्प ही कहा कि तुम लोग जिये रहो । अब शीघ्र ही तुमहें ब्राह्मण अपनी रथीक साथ इस वनमें आनेवाले हैं ॥ ७७ ॥ तुमलोग किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो । इनका कहकर रम्भा रामेश्वर चला गयी । वहाँ उसने गिरीजीका पूजन किया और आकाशमार्गमें ही लीटकर स्वर्गको चला गयी ॥ ७८ ॥ चैत्रमास बीतनेपर नसिह अपनी भाविके साथ उस वनमें पहुँच और उन पिशाचोंको दया ॥ ७९ ॥ वे तीनों पिशाच नृमहके पास न आकर थोड़ी दूरपर खड़े हो गये और अपने पूर्वजन्मका वृत्तांत एवं शापसे मुक्ति पानका उपाय कह सुनाया ॥ ८० ॥ उनकी बात सुनकर मेरे पिताजीने कहा-तुम लोग धन्यवादी नहीं । जिस प्रकार शम्भुनामक ब्राह्मणने उस राक्षसको पिशाचयोनिसे मुक्त किया था उसी तरह मैं भी तुम लोगोंको इस योनिसे मुक्त कर दूँगा । उनकी बात काटकर पिशाचोंमेंसे एकने कहा कि शम्भु विप्र कौन वे और वह राक्षस कौन था ? यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक आप हमें

कथयस्व द्विजश्रेष्ठ कथां कृत्वा तु कौतुकात् ।

नृमिह उवाच

मृणुष्वं कथयिष्यामि यद्वृत्तं च पुरातनम् ॥८३॥

शिवकांचीपुरीमध्ये कश्चिद्विप्रः शुचित्रनः । शंभुनः सा चिरं कालं तस्थौ स च स्वभार्यया ॥८४॥
स कस्मिंश्चिदने विप्रश्चैकांशश्चिवांतिके । पौराणिकमुखाच्चैत्रमाममाहात्म्यवर्तिनीम् ॥८५॥
कथां श्रोतुं समायातस्तत्र श्रुत्वा महत्फलम् । अयोध्यायां हि चैत्रस्य स्नानान्कैवल्यदायकम् ॥८६॥
ततो बहुगते काले सस्मरन् तां कथां शुभाम् । ज्ञात्वा समागतं चैत्रं स्वगृहाभिर्गतस्तदा ॥८७॥
भार्यया सहितो विप्रः शनैर्मार्गेण वै यया । तीर्त्वा तां जाह्नवां रम्यां यात्रदग्रे स गच्छति ॥८८॥
सावबुद्धो हि मिल्लेन कर्कशाखवेन कानने । गृहीत्वा मक्षरं चापं धर्पयित्वा च भूसुरम् ॥८९॥
लुलुठ कर्कशः क्रूरो वस्त्रेणकेन तं द्विजम् । मुमोच तस्य पाथेयं गृहीत्वा सकलं शुभम् ॥९०॥
द्विजोऽपि प्रार्थयामास कर्कशं च पुनः पुनः । वस्त्रादिकं गृहाण त्वं मक्षरपिष्टं ददस्व माम् ॥९१॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा मुक्त्वा तद्वस्त्रवधनम् । सर्वं ददर्श पाथेयं नानाविधमनुत्तमम् ॥९२॥
तन्मिन्ददर्श स व्याधो दग्ध रमाफलानि वै । अपकान्यनिशुष्काणि ततश्चित्तेऽविचारयत् ॥९३॥
एतैः फलैर्न मे कार्यं जानामि ब्राह्मणोत्तमम् । तर्हि दास्याम्यहं दीनं क्षुधाक्रांतं च सस्त्रिकम् ॥९४॥
इति निश्चित्य स व्याधो ददौ तानि द्विजन्मने । गृहीत्वाऽमक्षयद्विप्रः प्रारम्भे भार्यया मधौ ॥९५॥
तद्रमाफलदानेन कर्कशस्य तदा शुभा । जाता बुद्धिः क्षणादेव सात्त्विकी क्रूरता गता ॥९६॥

एवं पिशाचाः सकलास्ततः परं मिन्लाय तस्मै तु शुभा मतिर्धभूत् ।

समागतं चात्र कृतः स गृष्टवान् विप्रं स वै प्राह वने च कर्कशम् ॥९७॥

शम्भुरुवाच

कांचिपुर्याः समायातो गम्पतेऽयोध्यायां पुरीम् । चैत्रमासेऽवगाहार्थं सरयूनिर्मले जले ॥९८॥

बतलाइए । हे द्विजश्रेष्ठ ! हमपर इतनी कृपा करिए । नृमिह कहन लगे—अच्छ सुनो । मैं एक पुरातन कथा तुम लोगोंको सुनाऊंगा ॥ ८१-८३ ॥ शिवकांचिपुरीमें पवित्रयत्रधारी एक ब्राह्मण रहता था । उसका नाम शम्भु था । वह बहुत दिनों तक अपनी स्त्रीके साथ उस नगरीमें रहा ॥ ८४ ॥ एक दिन वह ब्राह्मण किसी वनमें एकांबर नामक शिवके समीप पौराणिकके मुखसे चैत्रमाम माहात्म्यकी कथा सुनने गया । वहाँ पहुँचकर उसने चैत्रमासमें अयोध्यास्नानका बड़ा फल सुना ॥ ८५ ॥ बहुत दिनों बाद उस कथाका स्मरण करके वह चैत्रमास लगनेके पहले ही अयोध्या जानके लिए अपने घरसे निकल पड़ा । उसने अपने साथ अपनी स्त्रीको भी ले लिया था । वह धीरे धीरे अयोध्याकी ओर चला । राहमें गंगाजी पड़ी तो उन्हें पार किया । वहाँसि थोड़ी दूर आगे गया । वहाँ था कि वनमें कर्कश नामका एक भाल धनुष-बाण लिये हुए मिला । उसने ब्राह्मण-देवताको घमकाकर सब कुछ छीन लिया और केवल एक कपड़ा पहनाकर छोड़ दिया । यहाँ तक कि उसने इन लोगोंका पवित्र पाथेय भी ले लिया ॥ ८६-८८ ॥ तब ब्राह्मणन उससे प्रार्थना की कि मेरे कपड़े-लत्ते सब कुछ ले लो । लेकिन रास्तेमें खानेकी वस्तुओवाली वह पोटली वापस दे दो ॥ ८९ ॥ ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने वह पोटली खाली और देखा कि उसमें बहुत-सी खाने पीनेकी चीजें वैबी हैं ॥ ९० ॥ उस व्याधने उसमें दस केलेके फल भी देखे , वे फल कच्चे और सूखे हुए थे । उन फलोंको देखकर उसने मनमें सोचा कि इन फलोंकी तो हमें कोई आवश्यकता है नहीं, फिर इसे क्यों न दे दूँ ॥ ९१ ॥ ऐसा निश्चय करके उसने केले वापस दे दिये और उस सपत्नीक ब्राह्मणने चैत्रमासके प्रारम्भमें वे कनेक फल खाये ॥ ९२ ॥ उस रमाफलके दानसे कर्कश व्याधके हृदयमें शुभ बुद्धिका प्रादुर्भाव हो गया । जिससे उसकी क्रूरता नष्ट हो गयी और सात्त्विकता आ गयी ॥ ९३ ॥ हे पिशाचा ! जब उस भालकी मति पवित्र हो गयी तो उसने

इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः । किं लभ्यते हि स्नानेन तन्मे वद सविस्तरम् ॥१९॥
 पुनः प्राह स विप्रैर्द्रः कर्कश भक्तितः फलम् । स्नानेन मधुमासे हि रघुनाथः प्रसीदति ॥१००॥
 प्रसादात्सकलान्भोगान् लभते मानवा भुवि । अंते मोक्षोऽपि मो भिल्ल लभ्यते नात्र संशयः ॥१०१॥
 इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः । मोक्षस्वरूपं कथय कृपां कृत्वा ममोपरि ॥१०२॥
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा पत्नी प्राह द्विजोत्तमः । पश्य पश्य वरारोहे कौतुकं महद्बहुतम् ॥१०३॥
 यद्रामफलदानेन चैत्रे मासि वरानने । अयं क भिल्लजालीयः क प्रश्नश्चेद्दशः शुभः ॥१०४॥
 मोक्षस्वरूपज्ञानार्थं तस्मादानं प्रशस्यते । इत्युक्त्वा तां प्रियां विप्रः कर्कशं प्राह मादरम् ॥१०५॥
 साधु साधु महाव्याध सम्यक्प्रश्नः कृतस्त्वया । इदानीं प्रोच्यते मोक्षस्वरूपं तन्निशामय ॥१०६॥
 स मोक्षस्त्वं हि जानीहि यतो नास्ति पुनर्भवः । इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः ॥१०७॥

तस्य प्रामिर्यथा स्यान्मे तन्मे वद द्विजोत्तम ।

भृशु कर्कश तन्प्रामिर्यथा स्यात्तद्वदामि ते ॥१०८॥

दाग्ध्रगृहादीनां प्रीतिं मुक्त्वा जनार्दनम् । दिव गात्रं चिन्तयित्वा सर्वदेहस्य चालकम् ॥१०९॥
 आत्मानं बहुपुण्यार्थनिर्मलीकृत्य मानसम् । तन्स्वरूपे यदा तिष्ठेन्म मुक्तो नेतरो जनः ॥११०॥
 एवं वदति विप्रैर्द्रः व्याधो मुक्त्वा शरं धनुः । शंभुभादौ जवान्नन्वा प्राहि प्राहीति वै वदन् ॥१११॥
 प्रोवाच द्विजवर्य स व्याधो मामुदरेति च । एतस्मिन्ननरे तत्र राक्षसो शरदर्शनः ॥११२॥
 दुद्राव दीर्घशब्देन यत्रामस्ते त्रयो वने । आपातं राक्षसं दृष्ट्वा चक्रुस्ते तु पलायनम् ॥११३॥
 तावज्जवेन तान् धर्तुं निकटं राक्षसो ययौ । तं दृष्ट्वा निकटं शंभुर्भुविका मजलां निजाम् ॥११४॥

उन ब्राह्मण देवतासे पूछा कि आप किस कार्यसे इधर आ पहुँचे ? ॥ १०७ ॥ शम्भुने उत्तर दिया कि मैं कांची-पुरीसे आया हूँ और अयोध्या जा रहा हूँ । वहाँ चैत्रमासमें स्नान करूँगा ॥ १०८ ॥ इस तरह ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने कहा कि चैतस्नानसे क्या लाभ होता है ? यह आद विस्तारपूर्वक हम बतलाएँ ॥ १०९ ॥ ब्राह्मण भक्तिपूर्वक कर्कशको चैत्रमासके स्नानका फल बतलाने लगा । उसने कहा कि चैत्रस्नानसे भगवान् रामचन्द्र प्रसन्न होते हैं ॥ ११० ॥ संसारके प्राणी उन्हीकी कृपासे सब प्रकारके सुखोंको भोगते हैं और अन्तमें उन्हें मोक्ष भी मिलता है । इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १११ ॥ इस तरह विप्रका बात सुनकर कर्कशने कहा कि कृपा करके आप हमें मोक्षका स्वरूप बतलाएँ ॥ ११२ ॥ इस प्रकार कर्कशका प्रश्न सुनकर ब्राह्मणने अपनी पत्नीसे कहा—प्रिये ! देखो तो कितने आश्चर्यकी बात है ! चैत्रमासमें केलेके फलोंके दानसे यह भील कैसे-कैसे प्रश्न कर रहा है ! इतनी बात अपनी स्त्रीसे कहकर ब्राह्मण प्रेमपूर्वक कर्कशसे कहने लगा— ॥ ११३-११४ ॥ हे महाव्याध ! तुम्हारा प्रश्न बहुत ठीक है ! अब मैं तुमको मोक्षका स्वरूप बतला रहा हूँ । तुम सावधान मनसे सुनो ॥ ११५ ॥ मोक्ष उसे कहते हैं, जिस पाकर प्राणीको फिर जन्म न लेना पड़े । इस तरह ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने फिर कहा—उसकी प्राप्ति मुझे जिस तरह हो सके, वह उपाय बतलाएँ । शम्भु ब्राह्मणने कहा—हे कर्कश ! जिस तरह तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो सकना है । वह उपाय मैं बतलाता हूँ, सुनो ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ जो मनुष्य स्त्री, पुत्र, गृह आदिका प्रीतिका परित्याग करके रात-दिन सब प्राणियोंके संचालक भगवान् जनार्दनका ध्यान करता है और बहुतसे पुण्योंसे अपने चित्तको निर्मल करके उन्हीके स्वरूपमें ली लगावे रहता है, वही प्राणी मुक्त होता है और कोई नहीं । ११८ ॥ ११९ ॥ ऐसा कहने-पर कर्कशने अपना धनुष-बाण पेंक दिया और वेगके साथ शम्भुके पंरोंपर गिर पड़ा और कहने लगा—हे ब्राह्मणदेवता ! हमारी रक्षा करो । उसी समय एक राक्षस दौड़ता हुआ उस स्थानपर आ पहुँचा, जहाँ वे दोनों बैठे वार्तालाप कर रहे थे । राक्षसको आते देखकर वे दोनों भाये । राक्षस भी उन्हें पकड़नेके लिए

कुन्वोर्त्वा प्राक्षिपन्मिमं रामचन्द्रं मयान् दृष्ट्वा । भद्रितं रामनाम्ना च यत्तोय मधुमापि वै ॥११५॥
 तत्सेकाद्रक्षमस्यापि जना पूर्वमवस्थितिः । ततः स गन्धर्वा दूरं स्थित्वा शशु व्यजिज्ञपत् ॥११६॥
 मधुह्रा मुनिश्रेष्ठ चेराद्रक्षमदेहनः । दृष्ट्वा वै गतोऽम्बुधरा जना पूर्वम्यतिर्मम ॥११७॥
 इति तत्कृतिक दृष्ट्वा राक्षस प्राह स द्विजः । कम्माने राक्षसन्व हि जात तच्च यदाऽधुना ॥११८॥
 राक्षसः प्राह मेमेन कश्चिद् इति निज तदा । जन्म्याने पुन चाह विप्रः कर्मवशाद्भुवः ॥११९॥
 प्रतिग्रहपरः पापी दुर्गामव्यमनी मदा । एतस्मिन्नेव चरे मम भार्या मनी शुभा ॥१२०॥
 स्नानार्थं रामतीर्थे मा मामृष्ट्वा गृहायती । सा मार्गे च मया दृष्टा घृन्वा मार्गे च तां शुभाम् ॥१२१॥
 प्रोक्ता क्रोधान्मया गृहे ममृष्ट्वा कथास्थिति । सा प्राह भयभीता तु रामतीर्थे प्रगम्यते ॥१२२॥
 मनुमास्यगद्गदार्थं न मया दृष्टं कृतम् । एवं ध्रुव्यापि दक्षाक्षरादिना मा मया चलात् ॥१२३॥
 प्रेषिता स्वगृहं मार्गात्ततः कार्यान्तरे गते । मृताऽहं च तदा नीतो यमलोकं यमातुरीः ॥१२४॥
 चित्रगुप्तोऽपि दृष्ट्वा मां धिक्कृत्वापि पुनः पुनः । यमराजं म वै प्राह धर्पयन्मां स्वर्गजितैः ॥१२५॥
 भो धर्मराज पाशोऽयं चैव नाननिवारकः । लुक्क्यादी गन्धर्वा योनिं निरयान् भोक्तुमर्हति ॥१२६॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा यमः प्राहादुर्गामिदा । भो मया राक्षसो योनिदीपतां निर्जने बने ॥१२७॥
 रापिनेऽस्मै च मठावशात्तत्तैश्च यमातुरीः । दत्त्वा मे राक्षसीं योनिं त्यक्त्या चात्र गता यमम् ॥१२८॥
 तदारभ्य बने चहं क्षुण्णस्यतिर्षादिनः । पञ्चद्विंशत्सहस्राणि वर्षाण्यत्र स्थितश्चिगम् ॥१२९॥
 किं मया कृतं पूर्वं कृतं यस्माद्वदे तव । संगतिश्चायं वै जाता माधुमनो मतिप्रदः ॥१३०॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा शंभुश्चरन्ति धुण हृदि । ज्ञान्वा तन्मुकृतं पूर्वं राक्षसाय न्यवेदयत् ॥१३१॥
 मृणु राक्षस यन्पूर्वं कृतं वै मुकृतं त्वया । तस्माज्जाता संगतिर्मे बने निर्मानुषे शुभा ॥१३२॥

बिल्कुल समीप पहुँच गया । उस निन्दित दरबार शम्भुस रामचन्द्रजकार स्मरण करके अपना गुप्तांक जल्द उस राक्षसक मुखमें फेर दिया । । रामनाम्ने अभिमन्त्रित जल्दके पढ़नेसे उस राक्षसको अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया । इसलिये वह दूर ही से । हुकर आश्रयमें बहने लगा—हे मुनिराज ! इस घोर राक्षसदेहसे आप मेरी रक्षा करिए । मैं अपना शरण हूँ । उसने जलानिवेकसे मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया है ॥ १११-११७ ॥ इस प्रकारका कौतुक दत्तक ब्राह्मणने उस राक्षससे कहा—पहले तुम हमें यह बतलाओ कि इस राक्षसदेहका विषु तब द्रष्टु हुए ॥ ११८ ॥ राक्षसने अपने पूर्वजन्मका हाल बताना प्रारम्भ किया । उसने कहा—इसके पहले मैं अपने कर्मोंसे पराजित हुए एक ब्राह्मण था ॥ ११९ ॥ उस समय मैं जैसे-तैसे दान भेता हुआ दुर्गचार और व्यसनोंमें अपना जीवन बिता रहा था । उन्ही समय मेरी स्त्री बिना मुझसे पूछे ही चैत्रस्तान कर्मोंके लिए रागती गई। बल नहीं । मैंने उसे रास्तेमें देखा तो पकड़ लिया और उससे कहा—भरी राख ! बिना हमसे पूछे तू कहाँ जा रह है ? भयभीत होकर उसने उत्तर दिया कि मैं चैत्रस्तान करनेके लिए रामतीर्थ (अयोध्या) जा रही हूँ ॥ १२० ॥ १२१ ॥ ऐसा करनेमें मैं कोई पाप नहीं समझता, इसीलिए चल पड़ी । ऐसी निष्पद बात सुनकर भी मैंने उसे बहुत मर और धर लौटा दिया । कुछ दिन बाद मेरी मृगु हुई और उसके दून पक्षकार मुझे यमलोक ले गये ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ चित्रगुप्तने मुझे दत्ता तो बहुत धिक्कारा और धमकाकर यमराजसे कहा—हे धर्मराज ! इस पापान्तर अस्त्री स्वका चैत्रस्तानसे रोक था । अतएव यह पहले राक्षसी योनिमें घोलकर दत्तक भेजने का अधिकारी है ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ इस प्रकार चित्रगुप्तकी बात सुनकर यमराजने अपने आश्रीतो आज्ञा दी कि इसे बिना निर्जन वनमें राक्षसी योनि दे दो । उनके आज्ञानुसार यमदूत मुझे इस वनमें छोड़कर हीट गये । तभीसे भूत-प्यासे रहकर मैंने पैसीठ हजार वर्ष बिताये हैं ॥ १२७-१२९ ॥ मुझे नहीं मालूम कि मैंने जीवन का पुण्य किया था, जिसके प्रभावसे इन निर्जन वनमें आप जैसे सज्जनके सद्गतिप्रद दर्शन प्राप्त हुए ॥ १३० ॥ उसको यह सुनकर मैंने भूतभर अपने हृदयमें उत्तक पूर्व सुकृतका ध्यान किया और कहने लगा—॥ १३१ ॥ हे राक्षस ! तुमने पूर्वजन्ममें जो सुकृत किया था, वह

एकादश्यां चैत्रशुक्ले कृत्वा न्यश्नाद्भोजनम् । तावूलो दक्षिणायुक्तः कट्यां वस्त्रे त्वया घृतः ॥१३३॥
द्वादश्यां प्रातरुत्थाय गत्वा स्नानं त्वया कृतम् । पतितः स हि तावूलो तस्मिन्त्या गौतमीतटे ॥१३४॥
दक्षिणामहिनीं दृष्टः स केनापि द्विजेन वै । गृहीत्वा स हि द्वादश्यां न ज्ञातश्च त्वया घृतः ॥१३५॥

तावूलदानाद्वैत्रमासे जाता वने मेऽद्य हि मंगतिस्ते ।

तस्मान्मर्धा राक्षस मानर्वाह तावूलदान करणायमेतन् ॥१३६॥

इत्युक्त्वा राक्षस शम्भुश्चैत्रमाहान्यमुत्तमम् । उमाभ्यां आश्रयित्वाऽथ कर्कशं वाक्यमब्रवीत् ॥१३७॥
भो कर्कश महाबुद्धे शृणुस्व वचनं मम । आगच्छ त्वं महींवाद्य मयाऽयोध्यापुरीं प्रति ॥१३८॥
सरयूस्नानमात्रेण मधौ पापादिभोक्ष्यसे । इत्युक्त्वा कर्कश शम्भुस्ततः प्रोवाच राक्षसम् ॥१३९॥
भो राक्षस त्वमत्रैव माममात्र स्थिरो भव । अयोध्यायां प्रवेशश्च राक्षसानां न विद्यते ॥१४०॥
अतोऽहं मधुमासे हि स्नान्वाऽनेन पथा पुनः । यदागच्छामि कांचीं त्वां चोदयिष्याम्यहं तदा ॥१४१॥
मा संदेहोऽस्तु ते चित्ते शपथेन ब्रवीम्यहम् । यन्पापं भद्रहत्यायास्तथा गीयति निन्दनात् ॥१४२॥
नोद्धृत्य त्वां हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । मद्यपाने च यन्पापं हेमस्तेयादिकं च यन् ॥१४३॥
नोद्धृत्य त्वां हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । यन्पापं भ्रूणहत्यायास्तथा चैत्रे ह्यमजनान् ॥१४४॥
नोद्धृत्य त्वां हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । इत्यादि शपथैस्तर्हि राक्षसं हर्षयन् द्विजः ॥१४५॥
यावन्पश्यति सर्वत्र तावज्ज्ञातं हि कीर्तकम् । व्याधाय चैत्रमामस्य माहान्यस्योपदेशतः ॥१४६॥
तत्रैव फलिनो जाता परितो दशयोजनम् । पत्रैः पुष्पैर्वनम्राश्च सौमधः पवनो वयौ ॥१४७॥
नद्यस्तोयं वहत्यश्च ननृत्तुर्बहिर्णिगो वने । तद्दृष्ट्वा कर्कशश्चापि चैत्रमाहान्यकीर्तनात् ॥१४८॥
दुर्वनं सुवनं जातं चैत्रार्थपृथग्मन्यत । ततस्ते हि त्रयस्त्रिमाहानान्मार्गेण निर्गताः ॥१४९॥

मैं बतला रहा हूँ उसकी प्रभावसे हमारा नुम्हारा साक्षात्कार हुआ है । एक बार तुमने चैत्रशुक्ल एकादशीकी किसीके यहाँ भोजन किया, तावूल दक्षिणा ली और एक वस्त्रम रखकर उसे तुमने अपनी कमरमें लपेट लिया ॥१३३॥ द्वादशीको तुम सधरे उठे और गङ्गास्नान करने चले गये । वह कमरमें लिपटी हुई दक्षिणा और तावूल भूलसे गौतमी नदीके तटपर गिर गया । उस किसी ब्राह्मणने उठा लिया, किन्तु उसकी विषयमें तुम्हें कुछ ख्याल नहीं था ॥१३३-१३४॥ चैत्रमासमें उस दक्षिणा और तावूलके दानसे ही आज इस निर्जन वनमें हमसे साक्षात्कार हुआ है । देखो, चैत्रमें तावूलके दानका जितना बड़ा माहात्म्य है । अतएव इस मासमें तावूलदान अवश्य करना चाहिए ॥१३६॥ इस तरह उभ राक्षसको चैत्रमासका माहात्म्य सुनाकर शम्भुने कर्कशसे कहा—हे महाबुद्धिमान् कर्कश । मेरी बात मानो और आज ही मेरे साथ अयोध्यापुरीकी चलाओ ॥१३७॥ १३८॥ चैत्रमासमें सरयूस्नानम करने तुम सब पापोंमें मुक्त हो जाओगे, ऐसा कर्कशसे कहकर शम्भुने उस राक्षससे कहा कि तुम महींनगर इसी स्थानपर रहो । क्योंकि अयोध्यानगरमें राक्षसलोक नहीं जा सकता ॥१३६॥ १४०॥ इस कारण जब मैं चैत्रस्नान करके उधरसे लौटूँगा और यहाँ आऊँगा, तब तुम्हारा उद्धार करूँगा ॥१४१॥ तुम इसमें कुछ सणय मत करो । मैं कसम खाता हूँ कि ब्राह्मणहत्या करने तथा गौ एवं मुनियोंकी निन्दा करनेसे जो पातक होता है, वह पातक मुझे लगे, यदि मैं तुम्हारा उद्धार किए बिना जाऊँ । मद्य पीने और सुवर्ण चुरानेसे जो पातक होता है, यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ तो मुझे वे पातक लगे । जो पाप भ्रूणहत्या तथा चैत्रमासमें स्नान न करनेसे लगता है, वह मुझे लगे । यदि बिना तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ । इस तरह विविध प्रकारकी शपथें खाकर शम्भुने उस बहुराक्षसका आश्वासन दिया । इसके बाद जब व्याघ्रन चारों ओर दृष्टि उठाकर देखा तो चैत्रस्नानका माहात्म्य सुननेके कारण उस वनके दस योजन तक उसे सब वृक्ष फल फूलसे लद दिनाया दिये और सुगन्धित वायु चलने लगा ॥१४२-१४७॥ उस वनकी सब नदियाँ भी घनघोर निनाद करता हुआ जल बहने लगा और मयूरमण्डल

शूनैः शूनैरयोध्यायाः पथपथयन्वनम्वलीम् तत्रच्छब्दो महान् ज्ञातः निदमानमसभवः ॥१५०॥
 धावन्नग्रे तु मानगः पृष्ठे धावन्ध केमरा । एवं नौ जभुम निन्द्य प्र मं कलहकारिणौ ॥१५१॥
 मार्गरोधकरो दुष्टो नौ दृष्टा शशुग्रवीन् । पदय कर्कश विघ्नानि चैस्नाने पदे पदे ॥१५२॥
 संभवतीति वै बुद्ध्या चैत्रस्नानं न लघयेन् । काश्या विवाहे गीतायां गतायां रामचिन्ते ॥१५३॥
 चैत्रस्नाने महादाने विघ्नानि संभवन्ति हि । एवं वदति विप्रेन्द्रे नौ दुष्टौ करिभिर्हका ॥१५४॥
 चैत्ररामभवात्पूर्वजन्मस्मृत्याऽतिविस्मिता भूत्वा वै ब्राह्मिवाहीति कृन्वा दीर्घं महाश्वम् ॥१५५॥
 शरणं द्विजवर्याय जन्मतुः शशुग्रमेण माऽपि शशुश्रुताभ्या हि पृष्ठवान् तन्कृपान्वितः ॥१५६॥
 किमयं दुष्टजातिर्हि प्रामा तन्कथयतां मम । इति विप्रदत्तः श्रुत्वा केमरा वाक्यमब्रवीन् ॥१५७॥
 सेतो रामेश्वरक्षेत्रे पूर्वजन्मन्यह द्विजः । निन्दकः सर्वधमाणा पाषण्डाकन्यकतन्परः ॥१५८॥
 कदाचिच्चैत्रमासे तु तत्र श्रीराममशके । तीर्थे जनपमुडे च श्रुत्वा योगाणकीं कथाम् ॥१५९॥
 पौराणिकेन कथिता चैत्रमाहान्यष्टचिकाम् । कृतवान् निदनं चाहं वार वार पुनः पुनः ॥१६०॥
 तन्मन्त्रत निदनं च कश्चिद्विप्रश्चरन्स्थितः । शृत्वाव मकलं दुष्ट नेन शमोऽस्म्यह तदा ॥१६१॥
 क्रूरां ज्ञातिं त्वर गच्छ यदा चैत्रशक्तीर्नम । भाविष्यति महाश्वे शापशान्तिस्मर्दान च ॥१६२॥
 एव प्रोक्तं मया सर्वं पूर्वजन्मनि यन्कृतम् । तेन शापेन ज्ञातोऽस्मि कस्य भयकारकः ॥१६३॥
 चैत्ररामभवाज्जाता पूर्वस्मृतिरनुमता । इदानीं रक्ष मां विप्र त्वं चतुर्भिर्देहेतुः ॥

इति मिहस्य वृत्त तु हास्येवाच गत द्विजः ॥१६४॥

कस्माच्च मानस गतोऽसि दुष्टजाती वदस्वाद्य महाधमधान् ।

स चापि मातंगधरः समस्त वृत्तं निजं चाकथयच्च जार्णम् ॥१६५॥

नाचने लगी । चैत्रमासिक वानरक माहात्म्यम वनका यह भुषमा दत्तकर ककशने भी चैत्रमासका सब मासोंस थोड़ा माना । तदनन्तर वे दोनों उस वनेमें मागमे आ गये । १४८ ॥ १४९ ॥ वे वनम्वलीकी शाखा देखते हुए चले जा रहे थे । तबतक उन्होंने निह और हाथ का महान् गजन सुना ॥१५०॥ आग आग हाथी मागा जा रहा था और उसे पक्षम सिंह खदरता जाता था । लड़ते हुए वे दोनों उमा मागपर आ पहुँचे, जहाँसे वे दोनों अयोध्या जा रहे थे ॥ १५१ ॥ उन दुष्टाका रास्ना रावन देखकर शशुने कर्कशसे कहा—इसी ककश ! चैत्रस्नान करनवालेके पदपदपर विघ्न आता है । किन्तु लोगोंका चेहरे कि विघ्न-बाधाभासे डरकर पीछे न हट । काशी-वासि, पुत्र-पुत्राक विवाहम, गोनापाठम, रामका ध्यान करनम, चैत्रस्नानम और नुआ आदि महादानम बड़े-बड़े विघ्न आया करता है । शास्त्रणक उन शब्दोंका सुनकर उन दोनों दुष्टों (हाथी और सिंह) का अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया । जिसमें मरा रखा करो-मेरी रक्षा करो' इस तरह कहते हुए वे चित्तलन लगे ॥ १५२-१५५ ॥ वे उस शम्भुनामक ब्राह्मणकी शरणमें गये । शम्भु भी उनपर दयालु होकर उनसे पूछने लगे कि तुम लोगोको यह दुष्टगति क्यों मिली ? यह वृत्तान्त हम सुनाओ । इस तरह विप्रका प्रश्न सुनकर सिंहने कहा— ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ हमके पूर्वजाल जन्ममें मैं राम-चरक्षेत्रका निवासों एक ब्राह्मण था । मैं सब धर्मोंका निन्दक था और पाषण्डमें भरो वाते किया करता था ॥ १५८ ॥ एक बार चैत्रके महोत्समें श्रीरामतीर्थमें एक ब्राह्मणके मुखसे मैंने चैत्रमासका माहात्म्य सुन लिया और उसकी भरपूर निन्दा की । मेरी उन निन्दाकी बातोंको पास ही बैठे हुए किसी सपत्नी ब्राह्मणने सुन लिया और उसने उसी समय मुझे शाप देते हुए कहा—तूने चैत्रमासको निन्दा की है । इसलिए तू किसी भूज्जातिमें जाकर जन्म ले । जब कि एक वनमें तू किसी ब्राह्मणके मुखसे चैत्रमासका माहात्म्य सुना, उन समय तेरे शापकी शान्ति होगी ॥ १५९-१६२ ॥ हे विप्र ! इस तरह मैंने आपको अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त कह सुनाया । उसीके शापसे मैं महाश्वयायिनी इस सिंहकी योगिनीमें आ पड़ा हूँ ॥ १६३ ॥ आज आपको मुखसे चैत्रमासमें रामनाम सुननेसे मुझे मेरे पूर्वजन्मकी बातें स्मरण हो गयीं । हे विप्र ! अब मुझे इस सिंहयानिस बचाए ॥ १६४ ॥ इस प्रकार सिंहको बाह

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पूर्ववृत्तं मया कृतम् । रामनाथपुरे चाहं कावेर्या उत्तरे तटे ॥१६६॥
 विप्रः परमदुर्वृत्तः सर्वशास्त्रपराङ्मुखः । लक्ष्मीभगमदाक्रान्तः पुण्यस्त्राभोगकारकः ॥१६७॥
 एकदा सुहृदा चाह भोजनार्थं निमग्नितः । आडाहे मधुमासे हि शुक्ले श्रीनवर्मादिने ॥१६८॥
 मया भुक्तं सुहृद्गोहे नवम्यां द्विजमत्तम । तेन शापेन जनोऽस्मि करिजानी न संशयः ॥१६९॥
 सर्वदा प्रतिमासेऽपि नवम्यां न हि भोजनम् । कार्यं विशेषतो रामनवम्यां निदिन च तत् ॥१७०॥
 इदानीं न हि जानामि केन पुण्येन तेऽत्र वै । संगतिश्च वने जाना सर्वेषां परमानिहन् ॥१७१॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा शम्भुध्यानेऽविचारयत् । श्रुत्वा मातंगपुण्यं तु प्रोवाच करिणं द्विजः ॥१७२॥
 शृणु मानस वक्ष्यामि यत्पुण्यं न स्वया कृतम् । पूर्वजन्मनि तन्मयं येन मे सगतिर्नये ॥१७३॥
 जाना त्वामुद्दिश्यामि मा चित्तां कुरु सर्वथा । रामनाथपुरे रम्ये कावेरीनटशोभिने ॥१७४॥
 रामायणकथा चैत्रे श्रुत्वा श्रीनवर्मादिने । रामतीर्थे त्वया स्नानं दृष्ट्वा रामेश्वरः शिवः ॥१७५॥
 तेन पुण्येन ते जाना सगतिर्मम कानने । इदानीं शृणु मिह त्वं शृणोतु च करी महान् ॥१७६॥
 साकेने मधुमासे हि स्नान्वाऽनेन पथा पुनः । यदा गच्छामि तां काचीं युवामुद्राग्याम्यहम् ॥१७७॥
 मा सदेहोऽत्र कर्तव्यः शपथैः प्रज्जरीम्पहम् । मतापार्थं युवाभ्यां हि प्रोच्यन्ते शपथा मया ॥१७८॥
 परस्त्रीगमनान्पाप तथा मित्रवधादिकम् । युवां नोदृत्य गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु ॥१७९॥
 ब्रह्मस्वहरणान्पापं यत्स्मृतं मातृनिदनान् । युवां नोदृत्य गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु ॥१८०॥
 इत्युक्त्वा द्विजवर्यः स स्त्रिया भिल्लेन सयुतः । कार्त्तिकी वने स्थाप्य गच्छन्मार्गं शनैः शनैः ॥१८१॥

सुनकर ब्राह्मणने हाथीसे कहा कि तूम किस पापसे इस दुष्टयोनिके आये हो ? तब हाथीने अपने पूर्वजन्मका हाल सुनात हुए कहा-हे विप्र ! मैं भी अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाता हूँ, मुनिग । उस जन्ममें मैं कावेरी नदीके उत्तरी तटपर रामनाथपुर नामक नगरमें बड़ा दुर चारी, सब कार्योंमें पराङ्मुख, धनके मदसे मत्तवाला और बेवशालस्यट ब्राह्मण था । एक बार चैत्रमासमें नवमीको मेरे किसी मित्रने आदम भोजन करनेके लिए मुझे निमन्त्रण दिया ॥१६५-१६८॥ तदनुसार तू द्विजश्रेष्ठ ! नवमीक दिन मैंने मित्रके यही भोजन किया । उसी पापसे इस हाथीकी यानिमें आ पड़ा हूँ ॥ १६९ ॥ क्योंकि शास्त्रोंका यह विधान है कि प्रत्येक मासकी नवमीको किसीके यहाँ भोजन न कर । यदि ऐसा न हो सके तो चैत्रशुक्ल रामनवमीको तो अवश्य इस बातपर ध्यान दे ॥ १७० ॥ मैं नहीं जानता कि किस पुण्यसे इस समय सब प्रकारके बलेशोको हरनेवाला आपका तत्संग प्राप्त हुआ ॥ १७१ ॥ उसका यह बात सुनकर शम्भुन सणभर अपने मनमें ध्यान किया और उसके पुण्यको जानकर कहने लगा-हे मातंग ! सुनो, तूमने जो पुण्य किया है सो मैं तुम्हें बतलाता हूँ । उसीके प्रभावसे आज हमसे भट हुई है ॥ १७२ ॥ ॥ १७३ ॥ अब तूम घबड़ाओ मत, मैं तुम्हारा हर तरहसे उद्धार करूँगा, उस जन्ममें तूमने रमणीक कावेरीके तटपर स्थित रामनाथपुरमें श्रीरामनवमीको रामकी कथा सुनी थी । उस दिन तूमने रामतावमें स्नान और रामेश्वर शिवका दर्शन भी किया था ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ उसी पुण्यसे आज इस वनमें हमसे भट हुई है । अब हे मातंग और सिंह ! मेरी बात सुनो, मैं इस समय चैत्रमासका स्नान करनेके लिए अयोध्या जा रहा हूँ । स्नान करके जब मैं काचीकी ओर लौटूँगा, तब यहाँ आकर तूम दानोंका उद्धार करूँगा ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ मेरी बातपर किसी प्रकारका संदेह मत करना । तुम्हारे विश्वासके लिए मैं शपथ खाता हूँ, सुनो ॥ १७८ ॥ यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ तो परस्त्रीगमन करने और मित्रको मारनेसे जो पातक लगता है, मैं उस पातकका भागी बनूँ ॥ १७९ ॥ जो पाप ब्राह्मणका धन हड़पने और माताकी निन्दा करनेमें होता है, उन सब पापोंका भागी बनूँ, यदि तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ ॥ १८० ॥ इतना कहकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने अपनी स्त्री तथा उस भोलकी साथ लिया और वहाँसे अयोध्याके लिए चल पड़ा । उसने हाथी तथा सिंहको उस वनमें ही छोड़ दिया ॥ १८१ ॥

ददर्शान्यपथा यान्तं श्रेष्ठं कार्पटिकोत्तमम् । वहन्तं रामलिंगार्थं श्रेष्ठं भागीरथीजलम् ॥१८२॥
शम्भुः पप्रच्छ तं नत्वा नम्रं कार्पटिकोत्तमम् । कुतः समागतं विप्र गम्यते काधुना वद ॥१८३॥

कार्पटिक उवाच

प्रयागादागतं विद्धि मां त्वं भूमुरमत्तम् । मधुमासेऽवगाहार्थमयोध्यां प्रति गम्यते ॥१८४॥
इदानीं त्वं निजं वृत्तं वद ब्राह्मणमत्तम् । कुतः समागतं चात्र गम्यते काधुना वद ॥१८५॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा शम्भुः श्रोत्राच्च तं तदा शिवकांच्याः समागतमयोध्यां प्रति गम्यते ॥१८६॥
चैत्रमासेऽवगाहार्थं गम्यते कथितं मया । इति शम्भुवचः श्रुत्वा पुनः कार्पटिकोत्तमः ॥१८७॥
पप्रच्छ द्विजवर्याय कौतुकाविष्टमानसः । शिवकांच्यां शम्भुनामा कश्चिद्विप्रोऽस्मि भो द्विज ॥१८८॥
तस्यैव वचनं श्रुत्वा पुनः शम्भुस्तमवसीत् । बहवः शम्भुनामाना वर्तन्ते द्विज तत्र हि ॥१८९॥
कस्त्वया पृच्छयते तस्य वद श्रोत्रापनामना । इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः कार्पटिकोऽब्रवीत् ॥१९०॥

भारद्वाजकुलान्पन्न

चक्रगोपधुपनामकम् ।

महादेवमुतं सर्ववेदशास्त्रविशारदम् । ब्राह्मणं शम्भुनामानं जानीषे त्वं न वा वद ॥१९१॥
एवं महाकार्पटिकेन सर्वं श्रोत्रापनामादिकमादरेण ।
प्रोक्तं यथा तत्र स भूमुरोऽपि ज्ञात्वा निजं सर्वमथावदत्तम् ॥ १९२ ॥
भो भो कार्पटिकश्रेष्ठ किमर्थं त्वं हि पृच्छसि तद्वदस्य सविस्तारं मा शंकां कुरु चात्र हि ॥ १९३ ॥

कार्पटिक उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि यदर्थं पृच्छयते मया । यदाऽहं गतवान् गंगामागर् द्रष्टुमादरात् ॥१९४॥
सीताकुण्डसमीपे हि देशे कैरटनामके । दृष्टोऽहं मार्गमध्ये च पिशाचेनोग्रूपिणा ॥१९५॥
मां हन्तुं निकटं प्राप्तं तं दृष्ट्वाऽहं तदा द्विज । क्षाणमकीर्तनं दीर्घं कृतवान् भयकम्पितः ॥१९६॥
कीर्तनाद्रामचन्द्रस्य स पिशाचः पलायनम् । मनः कृत्वा दूरदेशे स्थित्वा शुश्राव कीर्तनम् ॥१९७॥

रास्तेमें शम्भुने एक कार्पटिको देखा, जो रामेश्वर शिवक लिंग गंगाजी का उत्तम जल लिये जा रहा था ॥ १८२ ॥ उसे देखकर शम्भुने पूछा—हे विप्र ! इस समय तूम कहाँ आ रहे हो और कहाँ जाओगे ? ॥ १८३ ॥ उमन उत्तर दिया - हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इस समय मैं प्रयागमें आ रहा हूँ और चैत्रमास करनेके लिए अयोध्या जा रहा हूँ ॥ १८४ ॥ अब आप अपना वृत्तान्त बतलायत हुए कहिए कि कहाँ आये है और कहाँ जायेंगे ? ॥ १८५ ॥ ब्राह्मणका प्रश्न सुनकर शम्भुने कहा कि मैं शिवकाँचीसे आता हूँ और अयोध्या जा रहा हूँ ॥ १८६ ॥ हम भी चैत्रमास करना है । इस प्रकार शम्भुकी बात सुनकर ब्राह्मणने कहा कि हे द्विज ! शिवकाँचीमें कोई शम्भु नामका वृद्ध रहता है ? ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ ब्राह्मणकी बातके उत्तरमें शम्भुने कहा कि शिवकाँचीमें बहुतसे शम्भु नामके ब्राह्मण हैं ॥ १८९ ॥ आप किम शम्भुकी पूछते हैं ? जिसे पूछते हो, उसका गोत्र और उपनाम बतलाइए । शम्भुका बात सुनकर उस ब्राह्मणने कहा कि जिन्हें मैं पूछता हूँ, वे भारद्वाज कुलमें उत्पन्न हुए हैं और चक्रगोपा उनका उपनाम है । वे महादेवके पुत्र हैं । वे सब वेदों और शास्त्रोंको जानते हैं । उन शम्भुको आप जानते हैं या नहीं, सो बतलाइए ॥ १९० ॥ १९१ ॥ इस तरह ब्राह्मणके मुखसे अपना गोत्र और उपनाम आदि सुनकर शम्भुने कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तूम शम्भुको क्यों पूछ रहे हो, मुझे विस्तारपूर्वक बतलाओ । इसमें किसी प्रकारका सन्देह मत करो ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ कार्पटिकने कहा - हे विप्र ! जिसलिए मैं उन्हें पूछ रहा हूँ, सो बतलाता हूँ । जब कि मैं गंगासागरका दर्शन करने गया था तो सीताकुण्डके समीप कैरट देशमें मुझे एक उग्ररूपधारी पिशाचने देख लिया ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ वह मारनेके लिये बिल्कुल मेरे पास आ पहुँचा । मैं उसे देखकर जोर-जासे रामनामका कीर्तन करने और अंगसे काँपने लगा ॥ १९६ ॥ रामनामके कीर्तनसे वह भाग छड़ा हुआ और मेरे पाससे थोड़ी दूरपर रुककर कीर्तन

तस्माज्जाता पूर्वजन्मस्मृतिस्तस्य शुभावहा । ब्राहि शहीति मां प्राह मया पृष्टः स वै पुनः ॥ १९८ ॥
 कस्मान्पिशाचदेहे त्वं जातस्तद्वद मन्वस्य । इति मे वचनं श्रुत्वा पिशाचः प्राह मां पुनः ॥ १९९ ॥
 कांचीपुर्यां द्विजश्रावं दुष्टिनामा पुरा स्थितः । नाशदानं मया पूर्वं कृतं स्वल्पमपि क्वचित् ॥ २०० ॥
 तस्मान्पिशाचदेहत्वं प्राप्तं कार्पटिकोत्तम । इति तस्य वचः श्रुत्वा पुनः प्रोक्तः स वै मया ॥ २०१ ॥
 कथं पिशाचयोन्यास्तु ते मुक्तिश्च भविष्यति । नतः पुनः स मां प्राह यदि मे वनयः शुचिः ॥ २०२ ॥
 चैत्रे ददौ ममोद्देशान्नदानं करिष्यति । भविष्यति ममोद्देशान्नदानं स संशयः ॥ २०३ ॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्रोक्तः स वै मया । वर्तते क सुतस्ते हि किं नामा वद मां प्रति ॥ २०४ ॥
 तस्मत्तेन यथा प्रोक्तं भागद्वाजाय चिह्नजम् । तन्प्रोक्तं च मया सर्वं निकटे तव भो द्विज ॥ २०५ ॥
 पिशाचं हि पुनश्चाहमुक्तवान् तद्वदाम्यहम् । रामेशार्थं भो पिशाच नीयते जाह्नवीजलम् ॥ २०६ ॥
 मया कम्बुमध्ये हि यदा गच्छामि दक्षिणाम् । दिशं कालेन कांचीं हि प्रवेक्ष्यामि यदा तदा ॥ २०७ ॥
 तत्र पुत्राय वृत्तं हि कथयिष्याम्यहं तव । इति मद्वचनं श्रुत्वा सन्तोष परमं गतः ॥ २०८ ॥
 पिशाचः प्राह मां विप्र स्तुत्वा नन्वा पुनः पुनः । अवश्यमेव वक्तव्यं मे वृत्तं मम सुतवे ॥ २०९ ॥
 यथा द्रष्टुं त्वया पांथं यथोक्तं च मया तव । अन्यच्च कथ्यतां तस्मै मम पुत्राय मादगम् ॥ २१० ॥
 मधुदर्शेऽन्नदानस्य महिमा श्रूयते दिनि । अतस्त्वं हि ममोद्देशान्नदानं मया कुरु ॥ २११ ॥
 एवमुक्त्वा स पिशाचः शपथं मां चकार ह । न कृपे स्मरणं कृत्वा मम पुत्राय तद् द्विज ॥ २१२ ॥
 भविष्यति वृथा सर्वमात्रा नव मद्रामने । इति मद्वचनं श्रुत्वा मांस्ययित्वा च तं पुनः ॥ २१३ ॥
 निर्गतोऽस्मि मया स्नानुमयोध्यां गंतुमादरात् । कृत्वाऽयोध्यापुरीमध्ये चैवस्नानं महाफलम् ॥ २१४ ॥
 यदा गच्छामि तां कांचीं तदा तस्मै वदाम्यहम् । अतएव मया प्रष्टुस्तव शुर्द्धिर्नोत्तमः ॥ २१५ ॥

सुनने लगा ॥ १९७ ॥ उस कान्तके श्रवणसे उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण का गया और जोशक साथ 'ब्राहि ब्राहि' कहकर निरन्तर गया । मैने उससे पूछा कि तुम क्या इस पिशाचशरीरको प्राप्त हुए हो, भो मुझे सीधे बताओ । मेरी बात सुनकर पिशाचन बोला— ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ हे विप्र ! पूर्वजन्मसे काचापुरीनिवासी मैं दुष्टिनामका ब्राह्मण था । उस जन्ममें मैंने कही था— भो अन्नदान करी दिया था ॥ २०० ॥ इसी कारण इस पिशाचदेहको प्राप्त हुआ हूँ । उसकी बात सुनकर मैने कहा— जिस उपायसे, मैं पिशाचशरीरसे मुक्त होऊँगे ? यह सुनकर उसने कहा कि यदि चैत्रका अमावस्याकी मेरी पुत्र मेरे लिए अन्नदान कर तो तक्षण मैं उद्धार हो जाय । इसमें कोई संशय नहीं है । ॥ २०१ ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ इस प्रकार उनको बात सुनकर मैने पूछा कि तुम्हारा वह लड़का कहाँ रहता है ? मैं हँस बोलता हूँ ॥ २०४ ॥ इसका बाद उसने मुझ से व पणित्य बताया दिया, जो अभी मैने आपसे कहा है । ॥ २०५ ॥ फिर मैने कहा— हे पिशाच ! मैं इस काँदरमें गंगाजल लिये रामेश्वर शिवपर चलाया जा रहा हूँ । कुछ दिनों बाद जब मैं दक्षिण दिशाकी ओर लौटूँगा तो काचापुरी अवश्य जाऊँगा । वहाँ पहुँचकर तुम्हारा कटका तुम्हारा सब समाचार कहूँ सुन ऊँगा । मेरी बात सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और मुझ वार-वार प्रणाम कर । उसने कहा— हे विप्र ! मेरा वृत्तान्त मेरे पुत्रसे अवश्य कहिएगा ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ आपने मेरी जो अवस्था बताई है जो कुछ मैने आपका बताया है और इसके अतिरिक्त भी जो उचित समझिए, वह मैंने लक्ष्मी के रूप में दे दिया ॥ २०८ ॥ सुनता हूँ कि चैत्रमासमें अन्नदान करनेका बड़ा माहात्म्य है । इसीलिए तुम चैत्रमासमें मेरे उद्देश्यसे अन्नदान करो । ऐसा कहकर उसने मुझे शपथ दिलायी कि यदि आप स्थल करके मेरे सन्देशका मेरे पुत्रसे नहीं कहेंगे तो मैं महाभय । आपकी यात्रा व्यर्थ हो जायगी । उसकी बात सुनकर मैने बारम्बार उसे मानवना दी और चैत्रमास करनेके निमित्त अयोध्या चल पड़ा । महाफलदायी चैत्रमासका स्नान करनेके अनन्तर जब मैं कांची जाऊँगा तो उसका पुत्रको पिशाचका सन्देश सुना दूँगा । इसीलिए मैने आपसे धम्मके विषयमें पृष्ठताछ की है

प्रोक्तं गोत्रादिभिरिह वर्तते चेददस्व माम् । इति शंभुः पितुर्वृत्तं ज्ञात्वा मूर्छां गतस्तदा ॥२१६॥
 आश्वासितश्च भिल्लेन विप्रः प्रोवाच तं पुनः । भो भोः कार्पटिकश्रेष्ठ न मनोऽस्ति नरोऽधमः ॥२१७॥
 यस्त्वया पृष्ठयते शम्भुः सोऽहं विद्धि न मशयः । मया पृष्ठेण न कृतं स्वपितुर्मोक्षदायकम् ॥२१८॥
 अभदानादिकं कर्म धिग्भिद्भ्येऽयं वृथा भवः । इदानीं तव वाक्येन दास्याम्यक्षमं वित्तुः ॥२१९॥

एतं शम्भुः कार्पटिकाय शोकन्वाऽशोष्यं रम्यां दूतं वंददत्तं ।

ते प्रणेमुस्तां दंपतीपांथमिह्नास्मनः शंभुश्चावदन्कर्कशं मः ॥२२०॥

शम्भुश्चाव

पश्य रश्य महामिल्ल महायोध्यापुरीं शुभाम् । यस्यां स्नानं समायाता दृश्यते कोटिशो जनाः ॥२२१॥
 जनौघाणां च्वनिश्चायं श्रूयते मेघशब्दवत् । नानाध्वजपताकाश्च दृश्यन्ते चेन्द्रचापवत् ॥२२२॥
 यथा वाद्यध्वनिश्चायं श्रूयते हि मनोहरः । अग्निहोत्राग्निधुर्मोक्षदायकं पश्य नमोऽङ्गणम् ॥

कैलार्मागिरिमास्थानि पश्य सौधानि कर्कश ॥२२३॥

नमप्रतोलीपरिखावलयाकृतमखलाम् । उभुङ्गदम्यां विलपन्तताकाशतमकुचाम् ॥२२४॥
 अश्रंलिहमहामीधसुवर्णकलजोज्ज्वलाम् । पश्यामोघ्यापुरीं श्रेष्ठा मय्युत्तारनादिताम् ॥२२५॥
 हाटकोद्घाटिता रत्नखनिनैर्था कषाटकैः । सुमयूतैर्विवृतेः श्वैरुन्मिषंतीन् लक्षयते ॥२२६॥
 दीप्यमानैर्मरुता यनाकांचलपुचिनैः । आह्वयन्तीन् पुण्यो लक्षयते पथिकान् जनान् ॥२२७॥
 अधःकृताधोभुवना जेतुमैकामरावतीम् । प्रामादशूलव्याजेन मन्त्रद्वेवायं लक्षयते ॥२२८॥
 पवित्रेऽभिन्नमहाक्षेत्रे निवसन्ति निरोहिताः । त्रैलोक्यहाग्निभिः सर्वदेवास्ते ऋषयोऽमलाः ॥२२९॥
 कुबेरस्यर्द्धया यत्र चिन्वन्ति वसुमन्त्रयान् । दत्तं मोक्तं जनाः सर्वे स्वधर्मनिरताः मदा ॥२३०॥
 गेहे गेहे मदानन्द एवामीयत्र यं पुरि । येषां प्रक्षालयन्ति स्म चरणान् वापवादिताः ॥२३१॥

इस तरह अपने पिताकी हालत सुनकर शम्भु मूर्च्छित हो गया ॥ २११—२१५ ॥ उसकी यह दशा देखकर उस भील और ब्राह्मणने उसे बहुत कुछ आश्चर्यजनक दिशा । होशम आनेपर शम्भुन कहा—हे कार्पटिकश्रेष्ठ ! जिस शम्भुके बारेमें आप पृष्ठ रहे हैं, वह मेरा ही है । मगर वरावर अवम और कोई नहीं हो सकता । मुझ अवम पुत्रने अपने पिताकी मूर्त्तिके लिए वृक्ष भी अछड़ान नहीं किया । मेरे जन्मको धिक्कार है । मैं अब आपके कथनानुसार इस चैत्रमासमें अवश्य अवदान दूंगा ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ २१८ ॥ २१९ ॥ ऐसा कहकर शम्भु चल पड़ा और रम्य अयोध्या नगरीको दूधमे देवकर स्त्रियां पुत्र, शम्भु पतिव्रत एवं भीलने प्रणाम किया और शम्भुने कंकषासे कहा—हे महाशक्ति ! इस अवधवापुरीको दत्ता त्रिगुण स्नान करनेके लिए करोड़ों मनुष्य आये हुए हैं ॥ २२० ॥ २२१ ॥ महान् जलमगुदायक । ध्वनि मयाजलके समान मुनारों दे रहा है । उड़ता हुई विविध प्रकारकी पताकाये इन्द्रयुगले समान रंग रंगी है । आगकी मनीषा ध्वनि मुनारों देनी है । अग्निहोत्रके धूमसे सारा आकाशमण्डल धर गया है । हे कर्कश ! यही कैलार्मागिरिके समान उज्ज्वल और ऊंचा अट्टानिकाये दीख रहो है ॥ २२२ ॥ नर्मो नदी अट्टानिकी और पारखाओंसे मारी नगर घिरी हुई है । ऊंच ऊंच भवन बने हैं और उनमें संरक्षित पताकाये फहरा रही हैं । अकालको तमनेवाले बड़े-बड़े भवनापर सुवर्णके कलशोंसे अयोध्यापुरी शोभित हो रही है । रत्नमे खचित और सुवर्णसे मण्डित दरवाजोंसे भरा नगरी उनके खुलने और बन्द होनेपर मसा लगता है कि वह पलक खाल भूँद रहा है । पताकाक्षपी अचल पवन द्वारा उड़नेसे शांत होता है कि वह नगर दूर हो न पताकाको बुझ रहा है ॥ २२३—२२७ ॥ इस नगरने अपनी शोभासे पताललोकको भी नीचा दिखा दिया है । अब कवन अमरावती पुराको जतना वाको है । सो ऐसा लगता है कि प्रासादरूपी शूरको लिये हुए यह पुरी उस भी जीतनेकी तैयारी कर रही है । इस पुनीत क्षेत्रमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवके साथ-साथ सब देवता और ऋषि गुप्तरूपसे निवास करत हैं ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ यहाँके निवासी कुबेरको आतनेके लिए और दान तथा भोगके वास्ते घन बटोर रहे हैं ॥ २३० ॥ इसी पुरीमें

ते द्विजाः कस्य नो वद्या अयोध्यानगरीस्थिताः । औदार्ये कल्पतरुो गांभीर्ये सागरा इव ॥२३२॥
 क्षमया क्षमया तुल्या जंगमा निगमा इव । दैन्यग्राहमहामोधिग्रासामस्त्यमहर्षयः ॥२३३॥
 निवसन्ति द्विजा यत्र वद्याः सर्वमहीभुजाम् । चतुर्वर्गफलोपेत चतुराश्रममुज्ज्वलम् ॥२३४॥
 चातुर्वर्ण्यमिहैवास्ते चतुराश्रमपमार्गगम् । कृमिकीटपतङ्गानां विना ज्ञानममाधिभिः ॥२३५॥
 अत्र निर्वाणपदवी सुलभाश्चिन्त बनेचर । एनःपानघटान् भोक्तुं तरंगानंकुशानिव ॥२३६॥
 विमतिं मरुतोयं निःश्रेणिभोगमोक्षयोः । पश्य स्फाटिकमोपाननिविष्टमुनिसस्तुताम् ॥२३७॥
 सरयूनदीमुत्तरीयां कृतामिव पुगास्तया । इन्द्रनीलमहानुंगप्रनोलीचारुदर्शनः ॥२३८॥
 रामचन्द्रस्य दिव्योऽयं प्रासादस्तुङ्गतोरणः । प्रनोली यस्य घटिना काश्मीरैरुपलैर्गलम् ॥२३९॥
 सीतायाश्च महानिष प्रासादो रत्नतोरणः । नानास्नैमण्डितश्च हेमस्तम्भविराजितः ॥२४०॥
 स्फाटिकैरुपलैश्चित्रः मरुतोर्मसंश्रितः । रामनोर्थमर्मापेऽयं सीतारामस्य वै परः ॥२४१॥
 प्रासादो विमलो भाति तप्तकांचननिर्मितः । पताकाभिर्विचित्राभिः कलशैः सुविराजितः ॥२४२॥

उत्तमजात्रनदग्न्नकुम्भः

प्रवालवैदूर्यनिवद्धभूमिः ।

हेमप्रनोलीरचिनः स एव प्रासादधर्योऽस्ति हि लक्ष्मणस्य । २४३ ।

चातुर्यं यत्र विश्रान्त मकलं विश्वकर्मणः । मोऽय मरुतराजस्य प्रासादो हेमतोरणः । २४४ ।
 तथा देदीप्यमानोऽय रत्नभित्तिविनिर्मितः । प्रसादो दृश्यते रम्यः शत्रुघ्नस्य शुभावहः ॥२४५॥
 स्फाटिकैर्भित्तिभिश्चित्रः प्रोच्चः कनकरेखितः । प्रासादो वायुपुत्रस्य दृश्यतेऽयं महोज्ज्वलः । २४६॥

य एष मुक्ताफलजालशोभी सुदर्शनांकः स्वर्गागत्रकेतुः ।

कुशस्य रम्यस्त्वयमाविरास्ते प्रासादकुम्भः किमु शालमूर्धः । २४७ ।

सदा आनन्द छाया रहता है । जहाँके निवासी ब्राह्मणोंके पैर इन्द्रादि देवता भी घोषा करते हैं, तब वे मल्ल किसके वन्दनीय न होंगे । यहाँके विप्र उदारतामें कल्पवृक्ष, गम्भीरतामें समुद्र, क्षमामें पृथ्वी, जंग-मोमें वद तथा दारिद्र्यवन्तोंमें महान् समुद्रक शायणम् अगस्त्यके सदन हैं । संसारके सब राज इनको मस्तक झुकाकर प्रणाम करता है । इनको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थोंमेंसे किसीकी भी कमी नहीं रहती । ये आनन्दके साथ ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं सन्ध्याम, इन चारों आश्रमोंका उपभोग करते हैं ॥ २३१-२३४ ॥ यहाँपर चारों वेदोंके अनुसार चार वर्णोंके लोग निवास करते हैं । हे वनचर ! यहाँ ज्ञान और समाधिके बिना ही काट-पतङ्ग आदिकोंके लिए भी मुक्ति सुलभ है । यहाँ पापस्वी घड़ोंका जल पीनेके लिए योग और मोक्षकी निसेनी बनेकर सरयूका जल शोभित हो रहा है । देखो न ! स्फटिक मणिकी बनी सीतेशीघर मुनिगण बैठे हुए स्तुति कर रहे हैं । अयोध्याका उत्तर दिशामें इन्द्रनीलमणिसे बने मार्गके समान सुन्दर सरयू नदी बह रही है ॥ २३५-२३८ ॥ यह रामचन्द्रजीका दिव्य और ऊँचा प्रासाद है, जिसमें ऊँचे कमरे बने हुए हैं । इसके आस-पासके मार्ग कश्मीरके पत्थरोंसे बने हैं ॥ २३९ ॥ इस ओर सीताका महाभवन दिखाई पड़ता है । जिसमें रत्नके तोरण और मुवर्णके स्तम्भ लगे हुए हैं ॥ २४० ॥ जहाँतहाँ स्फटिक मणिक पत्थर लगे हैं, जिससे यह चित्र विचित्र मालूम पड़ रहा है । रामनाथके पास ही सीता-रामका एक दूसरा भवन मुवर्णसे बना है । उसमें भी विचित्र प्रकारको पताकाय लगी हैं और सुन्दर कलश सुशोभित हो रहे हैं ॥ २४१ ॥ २४२ ॥ जिसमें तपाये मुवर्ण तथा रत्नोंके कलश हैं, सुन्दर प्रवाल और वैदूर्यमणिकी दीवारें बनी हैं । इसको भी आस पास मुवर्णके मार्ग बने हैं । यह शालक्ष्मणजीका भवन है ॥ २४३ ॥ वह सामनेका भवन जिसके बनानेमें विश्वकर्मणकी सारी शान्तुरी समाप्त हो चुकी है, श्रीमरुतजीका भवन है । इसमें भी सुवर्णके तोरण लगे हुए हैं ॥ २४४ ॥ रत्नोंसे बनी दीवारवाला यह रम्य प्रासाद शत्रुघ्नजीका है ॥ २४५ ॥ अतिर-ऊँचा और स्फटिक मणिसे बनी दीवारका यह सुवर्णमय प्रासाद वायुपुत्र श्रीहनुमान्जीका है ॥ २४६ ॥

प्रासादोऽयं लवस्यात्र बहुरन्नविराजितः । यत्र चित्राण्यनेकानि मोहयन्ति सुग्रीदृशाम् ॥२४८॥
 चक्षुषि जातरागाणि योगिनामपि मानमम् । विन्यस्तगन्तविन्यासः शानकुम्भश्रुवो बहिः ॥२४९॥
 हेपयतीव सततं रत्नमानुमहाप्रभाम् । रत्नप्रासादमंगुक्तामरोध्यां पश्य सुप्रभाम् ॥२५०॥
 यद्गण शालयनो नदीयं स्थायैर्जलैः सोऽयमनर्घ्यरत्नः ।
 अभ्रकपेहैममयः स्वकुम्भैर्विराजितोऽयं खलु चित्रकेतोः ॥२५१॥
 दिव्यप्रवालप्रटिते कपाटे यत्र चञ्चले । प्रासादोऽयमंगदस्य रुक्मभित्तिविनिर्मितः ॥२५२॥
 गरुडोद्गारप्रटितप्रतोलीपरिशोभिनः । प्रासादः पुष्करम्यायं नयनानन्दनो नृणाम् ॥२५३॥
 विशुद्धजायुनददिव्यभूमिर्नमन्पातकस्त्रिदशमिवयः ।
 प्रासाद एषः परमो मनोज्ञस्तप्तस्य वीरस्य महान् दिभाति ॥२५४॥
 यस्याधिभूमिं नवरत्नमिहस्त्रिभिः पदैरे विजिनास्त्रयोऽपि ।
 लोकश्चतुर्थो न हि दृश्यतेऽनः पदं समुद्रस्य किमाविराम्ने ॥२५५॥
 अधोऽधस्तकर्मिणां घटा दारयितुं किमु । उदयचरगो यस्य रत्नमिदो विराजते ॥२५६॥
 सोऽयं हेमभित्तिमयः प्रासादः प्रन्नतः शुभः । सुवाहोः पश्य भो भिल्लरत्नमानुविराजितः ॥२५७॥
 रत्नप्रवालस्फटिकनीलकाश्म रनिर्मितः । प्रासादोऽयं गृध्रकेतोर्महान् दोमिमयः शुभः ॥२५८॥
 कङ्कारुरुत्पलैः शोणैररविन्दैः शनञ्जुटैः । विराजित पापहरं रामनीर्थं प्रदश्यते ॥२५९॥
 इन्दुत्पलं रत्निदलनिवद्रा यस्य भूमयः । हरति ग्रीष्ममनापं निष्पदमार्करोन्मरः ॥२६०॥
 अमन्दकुरुविदानां विन्यामैर्यत्र चारुभिः । मुच्यन्ति शुक्येनापि सुदृढाडिमशक्या ॥२६१॥
 एवं पश्य शुभां रम्यां पताकामिविराजिताम् । भिक्षायोग्यां मुक्तिपुर्णं दिनीयमभरावतीम् ॥२६२॥

जिसमें म तियोकी शालर मगो है, सुग्रीन चर एवं गरुडके चिह्नम चिह्नित पताकायें पहरा रही हैं, बालसूर्यकी तरह सुन्दर यह भवन पुणका है ॥ २४८ ॥ बहुतरे रत्नसे विराजित यह लवका दिव्य भवन है जिसमें बने हुए विप्र स्थियोंका मन मोह लेता है ॥ २४९ ॥ जहाँ कि यागियोंकी भा औन पद्विचर रागमयी बन जाते हैं, जिस नगरके भवनोमें विविध प्रकारके रत्नोकी पञ्चोकारी की हुई है जिसके बाहरकी भूमि मुवणमयी है, जिसकी बटारियां मुवणकूटको तरह देशप्रमान हो रही हैं, तैसी अर दारा, रोको देगा । जिसके प्रांगणका घोटा हुई यह मरू नदी विराजमान है । आक शको दृन्वाय बर बने प्रासादके कलशसे सुशोभित यह पुरा साक्षान् चित्रकेतु गन्धर्वकी पुरीक समान सुन्दर दीप्य रही है ॥ २४९-२५१ ॥ दिव्य प्रवाल मणिमें बने हुए कपाट जिसमें लगे हैं और मुवर्णकी दावारें बनी हैं यह अन्नदका भवन है । गरुडमणिकी गिगम प्रतोलियां बनी हैं, नयनोंका आनन्द देववाला यह भवन पुष्करका है । जिसके फजं दिगुद्ध मुवर्णकी बनी है और सुन्दर पताकायें जिसमें पहरा रही हैं, यह परम मनोज्ञ प्रासाद वीर नयका है ॥ २५२-२५४ ॥ इसर दलो, नवरत्नमय मिह विद्यमान है । इस नवरत्नमय मिहकी बड़ी महिमा है । इसके प्रभायम वामन भगवान्ने तीन पेरसे तीनों लोकोंको नाप लिया था । चौथा कोई लोक हों नहीं बचा था, जिसे नापते ॥ २५५ ॥ जिसके धरमें ऊपरकी पेर उठाये तवरत्नका मिह विराजमान हो तो अध (पाप) सभी मत्तवान् हाथियोंका उसे कुछ भी मय नहीं रह जाता ॥ २५६ ॥ हेमभित्तिमय रत्नके शिखरमें विराजित यह प्रासाद सुवाहका है ॥ २५७ ॥ रत्न, प्रवाल, स्फटिक और नील काश्मरसे निर्मित यह प्रासाद गृध्रकेतुका है ॥ २५८ ॥ कङ्कार, उत्पल, शोण, अरविन्द तथा शनपत्रसे विराजित समस्त पापोंकी हरनेवाला यह रामतीर्थ दिव्यकारी पड़ रहा है ॥ २५९ ॥ जिसकी भूमि चन्द्रकान्त मणिसे बनी है । अतएव टपकते हुए ठण्डे जलकी बूंदोंके गिरनेसे शीघ्र-शून्यका सन्ताप दूर हो जाता है । इसके हुए कुरुविन्द मणिके लगे रहनेसे यहाँ शुकोंकी मृग और अनारके फलका भ्रम हो जाता है ॥ २६० ॥ २६१ ॥ इस प्रकारकी सुन्दर, रम्य और पताकाओंसे विराजित दूसरी

यत्र कार्त्तस्वरघटाः प्रतोलोशिरसि स्थिताः । रामं द्रष्टुमनतास्तं प्राप्ताः सूर्या इवावभुः ॥२६३॥

नृसिंह उवाच

एवमुक्त्वा कर्कशेन पन्था कार्पटिकेन च । सहितश्च तदा शंभुस्तां पुनः संविवेश सः ॥२६४॥

रामतीर्थं ततो गन्वा कृत्वा क्षौणादिकं विधिम् । उपोष्य दिनमेकं हि तीर्थं श्राद्धं चकार सः ॥२६५॥

अमावास्यां शुभां चैत्रे प्राप्तां ज्ञान्वा द्विजोत्तमः । मुक्यथै स्वपितुश्चक्रे ह्यन्नदानं यथाविधि ॥२६६॥

तच्चैत्रमासे रजनीश्रमंक्षये दत्तं पितुर्वैज्यमदं मनोहरम् ।

विप्रेण चासं पथिकस्य वाक्पतस्तन्मन्त्रिणां निश्चितः ॥ २६७॥

अयोध्यायां ततः शंभुः कृत्वा चैत्रेऽवसादनम् । उद्यपनविधिं चापि यथोक्तं च चकार सः ॥२६८॥

कर्कशोऽपि मर्धो स्नात्वा मुक्त्वा पापीधभूधरम् । अयोध्यानगरीमध्ये साधुवृत्त्याऽवमच्चिरम् ॥२६९॥

श्रीरामचितन कुर्वन्निनाथापुष्यमक्षयम् । ततः प्राप हरेर्लोकमयोध्यामरणेन सः ॥२७०॥

शंभुश्चापि मर्धो स्नानं कृत्वा कांचीपुरीं पुनः । गतुं प्रतरथे श्रीराम नवाऽयोध्यां पुनः पुनः ॥२७१॥

भार्यया सहितः शंभुस्तेन कार्पटिकेन च । ययौ पूर्वेण मार्गेण यत्र तौ करिकाहलौ ॥२७२॥

स्थापितौ शपर्यः कृत्वा शनैस्तत्र भ्रमामतः । दत्त्वा दिनद्वयं पुण्यमुभयोर्यौ मधुमासजम् ॥२७३॥

दत्त्वा स्वीयांजलौ तौयं तयोर्मुक्तिं चकार सः । ततस्तौ करिमिहौ च दिव्यमाख्यं तुलेपितौ ॥२७४॥

दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोकं गतावुभौ । ततोऽग्रे द्विजवर्याः सः ययौ मार्गेण भार्यया ॥२७५॥

स यत्र राक्षसः पूर्वं स्थापितः शपर्यवने । तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठ भार्यौ प्राह द्विजोत्तमः ॥२७६॥

अपि काश्याह्वये रम्ये शृणु मे वचनं शुभम् । या त्वया शीतला गौरी स्नाता वै सरयूजले ॥२७७॥

तस्यैकदिवसस्याद्य देहि पुण्यं शुभावहम् । राक्षसाय हि मद्राक्याद्गृहीध्व जलमज्जलौ ॥२७८॥

अमरावतीपुराके सुमान दन्तीप्यमान इस अयोध्यापुरीको देखो ॥ २६२ ॥ जहाँ कि प्रतालीके मस्तकपर विराजमान सुवर्णक भजन ऐस दीख रहे हैं, जैसे अनन्त सूर्य एक साथ रामचन्द्रजीका दर्शन करने आ गये हो ॥२६३॥ नृसिंहन कहा—इस तरह कहकर अपनी पत्नी, कार्पटिक तथा कर्कशके साथ-साथ शम्भु अयोध्या पुरीम प्रविष्ट हुआ ॥ २६४ ॥ पहल रामनार्थपर पहुँचकर उसने और आदि कराया और एक दिनका उपवास करके तथैव आहूत किया ॥ २६५ ॥ अब चैत्रकृष्ण अमावास्या तिथि आया तो उसने अपने पिताकी मुक्तिके लिए विधिवत् अन्नदान किया ॥ २६६ ॥ उस चैत्रमासमें अमावास्याको शम्भुने कार्पटिकके कथनानुसार भी अन्नदान किया, उसके पुण्यसे तन्नाल उसका पिता पिशाचमोनिसे मुक्त होकर स्वर्गको चला गया ॥ २६७ ॥ तदनन्तर शम्भुने अयोध्यामें चैत्रस्नान और शास्त्राक्त विधिसे उसका उद्यपन किया । कर्कश भी चैत्रस्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो गया और साधुवृत्तिसे उसने अयोध्यामें ही बहुत दिन बिताये ॥ २६८ ॥ २६९ ॥ अन्तमें रामका स्मरण करते-करते उसने शरीर त्याग दिया । अयोध्यामें मरनेसे उसे विष्णुलोकको प्राप्ति हुई ॥ २७० ॥ शम्भुने भी स्नान करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीको बारम्बार प्रणाम करके काश्यापुरीको जानेकी तैयारी की ॥ २७१ ॥ अपनी स्त्री और उस कार्पटिकको साथ लेकर शम्भु उसी मार्गसे लौटकर उधर चला, जहाँ कि अयोध्या आते समय सिंह और हार्योको छोड़ आया था ॥ २७२ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने हाथमें जल लिया और चैत्रस्नानके पुण्यसे दो दिनका पुण्य देकर उन दोनोंकी उस मोनिसे मुक्ति कर दी । इसके अनन्तर वे दोनों हाथी और सिंह दिव्यमाख्यसे अन्वृत्त हो और दिव्य विमानपर आरुढ़ होकर विष्णुलोकको चल गये । इसके बाद शम्भु अपनी स्त्रीके साथ आगे बढ़ा ॥ २७३-२७४ ॥ जात जात वह उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ कि जाते समय शपथ करके उस राक्षसको वनमें छोड़ आया था । वहाँ राक्षसको सामने देखकर शम्भुने अपनी स्त्रीसे कहा—हे काशिके ! जो तुमने शीतल गौरीका व्रत किया है । हाथमें जल लेकर उसके एक दिनका पुण्य इस राक्षसको दे दो ॥ २७५-२७६ ॥

इति शंभुवचः श्रुत्वा पद्मनेत्रा कुशोदरी । काशीनाम्नी द्विजपत्नी ददौ पुण्यं निजं तदा ॥२७९॥
 ततः स राक्षसभेष्टस्त्यक्त्वा देहं मलीमपम् । दिव्यं विमानमारुह्य नत्वा भार्यायुतं द्विजम् ॥२८०॥
 दिग्गमालयान्तरधरो हरिलोकं जगाम सः । शम्भुश्चापि प्रियायुक्तो मधुमामं विवर्णयन् ॥२८१॥
 ययौ काशीपुरीं भेष्टां जनान् वृत्तं निवेदयन् । भो पिशाचा यथा पृष्टं भवद्विष्य कथानकम् ॥२८२॥
 तन्सर्वं च मयाऽऽख्यातं राक्षसोद्धारणादिकम् ।

श्रीरामदास उवाच

इत्युक्त्वा नृहरिविप्रो गृहीत्वा स्वांजलौ जलम् ॥२८३॥

ददौ दिनद्वयस्यास्य पुण्यं चैत्रकृतं निजम् । ततः प्रोवाच भार्या तु रम्ये चन्द्रप्रभे प्रिये ॥२८४॥
 या त्वया शीतलागीरी स्नाता मीठाकृते वरे । तीर्थे तस्य दिनेकस्य देहि पुण्यं शुभानने ॥२८५॥
 पिशाचिन्यै समुद्धर्तुं मा विशारोऽस्तु ते इदि । इति मर्त्यवचः श्रुत्वा रम्या पद्मजलोचना ॥२८६॥
 लक्ष्मीनाम्नी मम माता ददौ पुण्यं निजं तदा । ततः पिशाचास्ते सर्वे मुक्ताः शीघ्रं शुभावहाः ॥२८७॥
 निजरूपाणि वै प्रापुः प्रणमुर्नृहरिं जवान् । नत्वा स्तुत्वा पुननत्वा नृसिंहं तं प्रियायुतम् ॥२८८॥
 आपृच्छथ जग्मिरे सर्वे स्वगुरोराश्रमं प्रति । गुरुश्चापि सुतां स्त्रीयां तां ददावतिर्हापितः ॥२८९॥
 तयोज्येष्टाय शिष्याय कनिष्ठायपरां सुताम् । स्त्रीषोदस्मष्टुपत्नीं ददावप्रतिमां वराम् ॥२९०॥
 ततस्तौ सखियौ विप्रौ जग्मतुस्तीं मुदान्विता । स्वस्वपितुश्चाश्रमं हि तयोस्तां पितरावपि ॥२९१॥
 दृष्ट्वा पुत्री समापाती सखियां तोषमायतुः । नृहरिश्च प्रियायुक्तोऽञ्जकं प्रति समाययौ ॥२९२॥
 चैत्रस्नानेन तन्पुत्री रामदामाभिधस्त्रहम् । जानस्ततस्तौ देहान्ते जग्मतुर्वैष्णवं पदम् ॥२९३॥
 एवं शिष्य मधुस्नानमहिमा बहुभिनेरः । दैवः मिद्वैश्च गधर्वैः सदाऽनुमन्त्रिताऽस्तं हि ॥२९४॥
 तस्मान्मन्त्राववश्यं हि स्नातव्यं मानवोत्तमैः । रामतीर्थेषु सर्वत्र रामचन्द्रं प्रपूजयेत् ॥२९५॥

इस प्रकार शंभुकी आज्ञा सुनकर उस काशी नाम्नी द्विजपत्नीने अपना पुण्य उसका दे दिया ॥ २७९ ॥ इसके प्रभावसे उस राक्षसने अपना वह अघम देह छोड़ दा और दिव्य विमानपर चढ़कर काह्मण तथा ब्राह्मण-पत्नीको प्रणाम करता हुआ विष्णुलोकको चला गया । शम्भु भी चैत्रमासक माहात्म्यका वणन करता हुआ काशीपुरीका चल पड़ा । हे पिशाचगण ! आइ लागान ज, कया पूछा, सा राक्षसाक उद्धारसे सम्बन्ध रखतवाली सब बात कह मुनायो । रामदामन कहा-एसा कहकर नोमहन अजलाम जल लिया और अपने चैत्रस्नानके पुण्यसे दो दिनका पुण्य उसे दे दिया । फिर अपना स्वास कहा कि तुमने चवम जा शातला गौरीका स्नान किया है । उससे एक दिनका पुण्य इस पिशाचिनीका दे दो ॥ २८०-२८५ ॥ इससे इसका उद्धार हो जायगा । इसपर कुछ विचार मत करो । इस प्रकार स्वामीकी आज्ञा सुनकर उस कमलनयनाने अपना पुण्य दे दिया । तब शीघ्र ही वे सब पिशाचयोनिसे मुक्त होकर ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ अपने-अपने रूपका प्राप्त हो गये । इसके अनन्तर उन्होंने नृसिंहको प्रणाम किया, बारम्बार उनकी स्तुति की और उनसे पूछकर अपने गुरुके आश्रमको चले गये । गुरुन भी अतिशय हर्षित होकर अपना कन्या उन्हें दे दा । उनसे पक्ष भ्राताको ज्येष्ठ कन्या तथा कनिष्ठको एक दूसरी सगी कन्या समर्पित की ॥ २८८-२९० ॥ इसके अनन्तर वे दोनों अपनी-अपनी स्त्रीको साथ लेकर पिताके आश्रमपर गये ॥ २९१ ॥ उनके माता-पिता भी स्वाके साथ अपने बेटको आते देखकर प्रसन्न हुए । नृसिंह भी अपनी भार्याक साथ अञ्जक नगरको चल पड़े ॥ २९२ ॥ चैत्रस्नानके पुण्यसे उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम रामदास है और कह मै हूँ । कुछ दिनों बाद मेरे माता पिताका देहांत हो गया और वे विष्णुलोकको प्राप्त हुए ॥२९३॥ हे शिष्य ! इस प्रकार चैत्रस्नानकी महिमाका कितने ही मनुष्य, देवता, सिद्ध तथा गन्धर्वादि अनुभव किया है ॥ २९४ ॥ इस कारण अच्छे मनुष्योंको चाहिए कि चैत्रमासमें अवश्य

एवं त्वया यथा पृष्टं तथा सर्वं निवेदितम् । मया काऽन्या स्पृहा तेस्ति श्रोतुं नद्वद वच्म्यहम् ॥ २९६ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे
चैत्रस्नानमाहात्म्ये एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

(श्रीरामचन्द्र द्वारा अद्वैतभावका प्रदर्शन)

विष्णुदास उवाच

गुरोऽन्यद्रामचन्द्रस्य चरित्रं वद मां प्रति । शृण्वतो मे मुहुर्नास्ति तृप्तिः श्रोतुं स्पृह्यते ॥ १ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । एकदा हयमारुहो पुत्रवधुवलैः सह ॥ २ ॥
वनं ययौ विहारार्थं रामचन्द्रो मुदान्वितः । तत्र दृष्ट्वा मृगं श्रेष्ठं तं हन्तुं रघुनन्दनः ॥ ३ ॥
बाणमाकृष्य तन्पृष्ठे ययौ वेगेन सादरम् । वनाद्दूर्नातरं रामा मृगस्य च पदानुगः ॥ ४ ॥
एकाकी हयमारुहो विवेश गहनं वनम् । पश्चाद्दूरस्थिताः सर्वे लक्ष्मणाद्या बलैः सह ॥ ५ ॥
रामोऽपि निजबाणेन मृगं हत्वा वनेऽचरत् । निर्जलमतिवृषाक्रांतः क्षुधाव्याप्तोऽप्यभून्मदा ॥ ६ ॥
ततो रामो वृक्षतले क्षणं तस्थौ श्रमान्वितः । तावत् शबरी काचिद् दृष्ट्वा रामं मुदान्विता ॥ ७ ॥
सृपं ज्ञात्वा राजचिह्नं प्रणम्य पुरःस्थिता । तां दृष्ट्वा राघवोऽप्याह वाक्यं शबरि मे शृणु ॥ ८ ॥

लक्ष्मणाद्याः स्थिता दूरं क्षुत्तृड्मया पाण्डितोऽस्म्यहम् ।

किंचिद्यत्नं कुरुष्वान्न येन मेऽयं सुखं भवेत् ॥ ९ ॥

तद्रामवचनं श्रत्वा शबरी वाक्यमब्रवीत् । इतोऽविदूरे श्रीराम दुर्गास्ति सरसस्तटे ॥ १० ॥

भौमवारेऽयं नार्यश्च बहवोऽत्र समागताः । तत्र त्वं च मया राम यदि पार्षपसि सांप्रतम् ॥ ११ ॥

स्नान करके रामतीर्थीम जाकर रामचन्द्रजीका पूजन करें ॥ २९६ ॥ तुमने जो पूछा, भेन सब कुछ कह सुनाया । अब क्या सुननेकी इच्छा है, सो कहो । मे सुनाऊं ॥ २९६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामनजपाण्डयकृत ज्योत्स्नाम.वा.टाकासहित मनोहरकांडे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरु ! अब रामचन्द्रजीका कहें और चरित्र सुनाऊँ । क्योंकि रामचरित्र सुनते-सुनते मुझ तृप्ति नहीं होती । जितना ही सुनता हूँ, सुननेकी इच्छा बढ़ती जाती है ॥ १ ॥ श्रीरामदासनं कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत ही अच्छी बात कही है, अब सावधान मनसे मेरा बात सुनो । एक बार छोड़ेपर सवार होकर रामचन्द्रजी अपने भाइयों, पुत्रों तथा सनासे साथ मृगयाविहार करनेके लिए वनमें गये । वहाँ एक अच्छा-सा मृग देखा और उसे मारनेके लिए वनुषपर बाण चढ़ाकर उसके पीछे-पीछे दौड़ चले । जाते जाते वे गहन वनमें पहुँच गये । फिर भी राम एक वनसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे वनमें मृगके पीछे पीछे दौड़ते चले आ रहे थे । लक्ष्मण आदि साथी सनासे साथ-साथ बहुत पीछे छूट गये । २-५ ॥ अन्तमें थड़ी दूर जाकर रामने उस मृगकी मारा । वह स्थान निर्जल था और उन्ह भूख-प्यास जोरोसे लगी थी ॥ ६ ॥ वहाँ ही वे एक वृक्षके नीचे बैठ गये । उसी समय किसी शबरीने रामको देखा और उनकी वेश-भूषासे पहचान लिया कि ये कोई राजा हैं । वह रामके पास जा तथा प्रणाम करके सामने बैठ गयी । उसे देखकर रामने कहा—हे शबरी ! तू मेरी बात सुन ॥ ७ ॥ ८ ॥ मेरे लक्ष्मण आदि साथी पीछे छूट गये हैं । मैं भूख-प्याससे बहुत दुखी हूँ । तू कोई ऐसा उपाय कर कि जिससे मेरा दुःख दूर हो जाय ॥ ९ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर शबरीने कहा—हे राम ! यहाँसे छोड़ी दूरपर तालावके

तदिह तत्र विचित्रान्नैस्तुष्टिं प्राप्स्यसि वै क्षणात् । तनस्या वचनं श्रुत्वा शबरी प्राह राघवः ॥१२॥
 अहमत्रैव तिष्ठामि प्रतीक्षायै कुक्षस्य च । लवस्य लक्ष्मणादीनां सैन्यस्य वनवासिनि ॥१३॥
 गच्छ त्वमेव तां दुर्गां स्त्रीर्मे धृतं निवेदय । तदामवचनं श्रुत्वा तथेन्युक्त्वा न्वरान्विता ॥१४॥
 स्त्रोर्गत्वा शबरी प्राह शृणुष्व वचनं मम गतो रात्रीवप्राशो मृगयां कर्तुमागतः ॥१५॥
 अविदूरे वृक्षजले क्षुधाकांतः स्थितोऽस्ति हि । तेनाह प्रेषिताऽस्म्यद्य सूचनार्थं वनननाः ॥१६॥
 युष्माकं कथितं वृत्तं तस्य गच्छाम्यहं पुनः । शवर्यास्तद्वचः श्रुत्वा वानार्थः मग्नमान्विताः ॥१७॥
 अग्निवद्य निर्जवाक्यैः शबरीं तां ब्रुमुमहुः । परस्य तदा प्रोचुस्मा नार्यः शतशो मुदा ॥१८॥
 धन्योऽद्य दिवसोऽस्माकं यस्मिन् राघवदर्शनम् । भविष्यति वरान्नैश्च तोषयामो रघूत्तमम् ॥१९॥
 आदौ दुर्गां पूजयित्वा नैवेद्यं तां निवेद्य च । ततः ममार्थं रामाय भोक्ष्यामश्च वयं ततः ॥२०॥
 इति संमन्यतां नार्यो रुक्मालकात्मपिठनाः । पीनकौशेयवामिन्यो दरास्या मृगलोचनाः ॥२१॥
 विप्रसत्रिपवैश्यानां सुद्राणो चापि वंगतः । नैवेद्यवर्जस्तां दुर्गां ययुर्नृपुगतिः स्वनाः ॥२२॥
 एतस्मिन्नंतरे देवी स्थालपश्य ममनतः । कवटानि दृष्ट वक्ष्वा नृणां चार्माद्विरीन्द्रजा ॥२३॥
 ततस्तां दारभाषाय द्वारं वद्धं निरीक्ष्य च । वभ्रमुः सर्वदागणि न मार्गं लेभिरे स्त्रियः ॥२४॥
 तदाश्चर्मनाः सर्वा द्वाग्देशे स्थिताः सणम् । तावदेवालयाच्छन्दो निर्गतः शुश्रुवुः स्त्रियः ॥२५॥
 अहमेषां मीताऽस्मि रामः माभ्रान्दद्वैधरः । ये भिन्नं मानयन्त्यत्र मां मीतां राघवं हरम् ॥२६॥
 ते कंटिकल्पपर्यन्तं वन्यन्ते रोगेषु हि । अनो यूय हि भो नार्यो मन्तार्थं च जगन्प्रभुम् ॥२७॥
 तोषयस्व वरान्नैश्च तच्छेषेण त्वहं ततः । तुष्टा भवामि गच्छस्व क्षुधितं त रघूत्तमम् ॥२८॥
 इति नार्यो वचः श्रुत्वा देव्यास्तां विस्मयान्विताः । दृष्टुर्दुर्गां न गामिन्यः शबरीचरणानुगाः ॥२९॥

किनारे एक दुर्गा-मन्दिर है ॥ १० ॥ आज भद्रलक्ष्मी है । इसलिए वहाँ बहुत-से स्त्रियें आयी होंगी । यदि मेरे साथ वहाँ चल जाओ तो आपको नाना प्रकारके विचित्र अन्न खानेको मिलेगा । जिससे आप लोगभरमें तृप्त हो जायेंगे । शबरीकी सलाह सुनकर रामने उत्तर दिया कि मैं यहाँ कुछ अदिकी प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा हूँ । हे वनवासिनि ! तू ही जाकर उन स्त्रियोंको मेरा हाल सुना दे । रामके आज्ञानुसार शबरी तुरन्त चल पड़ी ॥ ११-१४ ॥ उसने वहाँ पहुँचकर उन स्त्रियोंसे कहा—कमल ! समान नैवेद्यानि भगवान् रामचन्द्र यहाँ निकार खेलने आये थे । वे पास ही पटक न चूम-प्रासे करें हैं । उन्होंने आप लोगोंको यह सन्देश सुनानेके लिये भूते भेजा है ॥ १५ ॥ १६ ॥ अब आदल्याग जो कुल कह, वह बकर मैं रामचन्द्रजीको सुना दूँ । शबरीकी बात सुनी तो विस्मित भावसे उन्होंने शबरीको धन्यवाद दिया और कहा—॥ १७ ॥ १८ ॥ हमारे लिए आजका दिन वन्य है, जिसमें श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन प्राप्त होंगे और हम अन्न-अन्न अन्नोले उन्हें सन्तुष्ट करेंगे ॥ १९ ॥ हम पहले दुर्गाजकी पूजा करके उनको नैवेद्य चढ़ायेंगे । उसके बाद रामको भोजन कराकर स्वयं भोजन करेंगे ॥ २० ॥ यह सुनकर मृगणोंके अन्तर्कारोसे अन्तर्गत, पीले कपड़े पहने, सुन्दर मुख एवं मृगीके समान नेत्रोवाला वे बहूण, अत्रिय, वीर्य तथा शूद्रके धर्मोंकी स्त्रियें तुरन्त हाथोंमें नैवेद्यके पात्र लेकर नूपुरकी ममोहर ध्वनि करते हुई चल पड़ी ॥ २१ ॥ २२ ॥ उधर दुर्गाजीने बाथों औरसे मन्दिरका फाटक बन्द कर लिया और भीतर वृत्तचल बैठ गयी ॥ २३ ॥ वे स्त्रियाँ मन्दिरमें पहुँची तो द्वार बन्द पाया । एक एक करके वे सब द्वारोपर धूम आयीं । लेकिन किसी तरफसे भी उन्हें भीतर जानेका मार्ग नहीं मिला ॥ २४ ॥ ऐसी अवस्थामें वे विस्मित होकर वहीं बैठ गयीं । योको देर बाद मन्दिरके भीतरसे यह बाणी सुन्यो की, जिससे उन स्त्रियोंने मुन—॥ २५ ॥ मैं ही सीता हूँ और राम साक्षात् स्थित है । जो हममें और सीतामें, राममें तथा शिवमें भेद मानते हैं, वे करेको अग्न पर्यन्त रौरव नरकमें सड़ते हैं । इस कारण हे स्त्रियो ! पहले तुमलोग अच्छे-अच्छे वस्त्रोंसे मेरे प्रभु रामको प्रसन्न करो । उनसे जो बने, सो लाकर मेरी पूजा करो । इससे मैं प्रसन्न हूँगी । अच्छा, अब तुम लोग जाओ । रामचन्द्रजी मुखे-प्यासे बैठे हैं ॥ २६-२८ ॥

ततः सा शयनी ताभ्यो दशयामाय राघवम् । ता नेत्रपङ्कजैः सर्वा हृष्टा नन्वा रघूत्तमम् ॥३०॥
 दिव्याभ्यानि पुरः स्थाप्य हेमपात्रैर्जलान्पि । ततस्तं प्रार्थयामासुः स्त्रियः सर्वा पुरःस्थिताः ॥३१॥
 स्वयाऽद्य तारिता राम वयं नार्यः सहस्रशः । श्वरीं प्रेष्य गहने वनेऽत्र परमादरात् ॥३२॥
 जम्बानि स्वीकुरुष्व न्व देव्या त्वां प्रेषितानि हि । तन्नामा वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह सस्मितः ॥३३॥
 देव्या किमुक्तं भो नार्यः कथर्नायं ममाद्य तन् । ताः प्रोचू राघवं नार्यो दुर्गावाक्यं सविस्तरम् ॥३४॥
 दुर्गावाक्यं शृणुष्वद्य त्वहमेवात्र जानकी । रामः साक्षान्महादेवो नात्र मेदः कदाचन ॥३५॥
 मानयंत्यत्र मेद ये रौरवेषु पतन्ति ते । अतो रामं तोषयित्वा तदुच्छिष्टं त्वहं ततः ॥३६॥
 मोक्षयामि नार्यो गच्छन्त्वं क्षुधानं रघुनन्दनम् । देव्येन्य भाषितं राम ततस्त्वां समुपागताः ॥३७॥
 अग्रे त्वं पूर्वपुण्यैर्नो भुङ्क्ष्वन्नं रघुनन्दन । ततस्ताः प्राह श्रीरामो विहस्य मुदिताननः ॥३८॥
 यदि देवीवचः सत्यं तर्ह्यत्र गहने वने । सीतारूपेण सा दुर्गा मां समायातु सत्वरम् ॥३९॥
 पुष्पन्नारीसमूहात्तु काचिन्नारी गिरीन्द्रजाम् । गत्वा मद्वचनं दुर्गां आवयन्वद्य कौतुकात् ॥४०॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा स्वेका स्त्री स्त्रीकदम्बकात् । गत्वा दुर्गां राघवाक्यं आवयामास सादरम् ॥४१॥

दुर्गा श्रुत्वा रामवाक्यं तथेत्युक्त्वा तु तां स्त्रियम् ।

किञ्चिन्कपाटमुद्घाटय सोनारूपेण निर्ययी ॥४२॥

ततः पुनर्दृष्ट्वा कपाटं जानकी जवान् । तोषपात्रं करे धृत्वा ययौ रामं स्मितानना ॥४३॥
 नमस्कृत्वा रामचद्र तत्पात्रं सस्थिताऽभवत् । तदा ताः सकला नार्यस्त्वभूवन् विस्मिता हृदि ॥४४॥
 ततो रामो वरान्नानि विप्रस्त्रीणां तथा पुनः । सुत्रियाणां च नारीणां भोक्तुं स्नानार्थमुद्यतः ॥४५॥
 ततः श्वरासने बाण संधाय जगदीश्वरः । भुवं भित्वाऽप पातालाजालं तत्र समानयत् ॥४६॥

इस तरह देवीकी बात सुनकर वे सब गजगामिनी स्त्रियें विस्मित होकर श्वरीके पीछे-पीछे चलीं ॥ २६ ॥
 वहाँ जाकर श्वरीने उन सब स्त्रियोकी रामचन्द्रजीका दर्शन कराया । उन नारियोनि कमल सरीसे नेत्रों-
 धसे रामको देखा और प्रणाम किया । इसके बाद दिव्य भाजन सामने रखकर सुवर्णके पात्रोंमें जल भरकर
 रक्षा और उन सब स्त्रियोने एक स्वरसे भगवान्से प्रार्थना की—॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे राम ! आपने श्वरीके द्वारा
 अपने जानिका संदेश मेजकर हम लोगोको तार दिया है ॥ ३२ ॥ साक्षान् दुर्गाजीके द्वारा भेजवाये इन साक्ष
 पदार्थोंको आप स्वीकार करें । उनकी बातोंको सुना तो मुमकाकर राम बोल-हे नारियो ! दुर्गाजीने हमारे
 विषयमें क्या कहा था, सो तो बतलाओ । स्त्रियाँ विस्तारपूर्वक दुर्गाजीके द्वारा कही गयी व ते बतलाती हुई कहने
 लगी—उन्होंने कहा था कि राम साक्षान् महाेश्वर हैं और मैं जानकी हूँ । जो लोग हम दोनोंमें किसी प्रकारका
 भेद मानते हैं, वे रौरव नरकमें पड़ते हैं । इसलिए तुमलोग पहले रामको भोजन कराके प्रसन्न कर आओ ।
 उनसे जो कुछ वचेगा, सो मैं सहर्ष स्वाकार कहूँगी । हे स्त्रियो ! अब तुमलोग उन भूले रामजीके पास
 जाओ । इस तरह देवीकी बात सुनकर हम सब आपके पास दौड़ आयीं ॥ ३३-३७ ॥ अब हमारे पूर्वसंचित
 पुण्योंके प्रतापसे इस अन्नको ग्रहण करिए । इसके अनन्तर हुँकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—॥ ३८ ॥ यदि
 देवीकी बात सच है तो वे सीतारूपसे यहाँ मेरे पास आयें ॥ ३९ ॥ तुमसे कोई स्त्री जाकर मेरा यह संदेश
 दुर्गाजीको सुना आये ॥ ४० ॥ रामके आज्ञानुसार उनसे एक स्त्री दीवती हुई दुर्गाजीके पास पहुँचा
 और रामका संदेश कह सुनाया ॥ ४१ ॥ उस स्त्रीके मुखसे इस प्रकार रामका संदेश सुनकर दुर्गाजीने
 षोडशा दरवाजा खोला और सीतारूपसे बाहर निकल आयीं ॥ ४२ ॥ उन्होंने मन्दिरके दरवाजेको
 मजबूत बन्द किया और हाथमें जलपात्र लेकर मुमकराली हुई रामकी ओर चल पड़ीं ॥ ४३ ॥ वहाँ
 पहुँचकर उन्होंने रामको प्रणाम किया और उनकी वगलमें जा बैठीं । यह कौतुक देखकर सब स्त्रियाँ बहुत
 विस्मित हुईं ॥ ४४ ॥ इसके बाद राम उन ब्राह्मणों, क्षत्रियो तथा वैश्योकी स्त्रियोंका अन्न खानेके लिए स्नान
 करनेको उद्यत हुए ॥ ४५ ॥ एतदर्थ रामने अपने धनुषपर बाण चड़ाया और पृथ्वीको फोड़कर पाताल-

तत्र मन्त्री रामचन्द्रः कृत्वा मायाद्विकृततः । याचद्भोक्तुं मनश्चक्रे तावत्तेऽपि ममाययुः ॥४७॥
 कुशाद्याः सर्वमैन्मैश्च रामवाजिपदानुगाः । ते सर्वे जानकीं दृष्ट्वा विस्मयं ययुः ॥४८॥
 ततस्ते शबरीवाक्यात्मवै भुत्वा कुशादिकाः । गतमोहा गमचन्द्रं मेनिरे चन्द्रशेखरम् ॥४९॥
 संतां गिरीन्द्रजां चापि मेनिरे ते विनिश्चयात् । ततो रामः कुशाद्यैश्च मुदा सैन्येन सीनया ॥५०॥
 भुक्त्वा पीत्वा जलं स्वच्छं वाक्यं स्त्रीः प्राह सादरम् । वरपद्म वरभायो यूपमाकं यत्तु रोचते ॥५१॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा स्त्रियः प्रीचू रघूत्तमम् । येनास्माकं मदेन्कीर्तिस्तं वरं दातुमर्हसि ॥५२॥
 ततः प्राह रामचन्द्रस्ता वारीस्तुहमानयः । मम नामास्तु युष्माकं रामेति जगतीतले ॥५३॥
 युष्माकं मयि सद्भक्तिः पुरुषेभ्योऽपि चाधिका । भविष्यति सदा नाप्यो वरेण मम निश्चयात् ॥५४॥
 देवे विप्रे कथायां च धर्मे भक्तिर्मन्त्रियति । मदा यूप पवित्राय मवर्ष्यं सधवाः स्त्रियः ॥५५॥
 मांगन्ये शकुने सर्वकर्मसु च पुरःसराः । यूपं भवष्यं सर्वत्र त्रिवेणीधूनमस्तकाः ॥५६॥
 मम बाणतक्तुं तीर्थं यन्नास्नेदे भविष्यति । इति रामवचनः श्रुत्वा स्त्रियः प्रीचू रघूत्तमम् ॥५७॥
 जन्मावरेऽपि त्वं रामदर्शनं देहि नः पुनः । तत्तामां वचनं श्रुत्वा शयनो वाक्यमब्रवीत् ॥५८॥
 द्वापरे कृष्णरूपेण युष्माकं दर्शनं मम । भविष्यति वने यज्ञे त्वमयाश्चाप्रमंगताः ॥५९॥
 द्विजपत्न्यस्तदा यत्नं भविष्यति स्त्रियो वने । इयं तु प्रवरी पत्नी विप्रप्यैव भविष्यति ॥६०॥
 महर्षिनार्थमुद्युक्तामेनामस्याः पतिर्विदा । स्तम्भे बद्ध्वा महादण्डं तं करिष्यति वै गृहे ॥६१॥
 तदेयं मद्गतमना वने यास्यति मां प्रति । भिन्नदेहेन शबरी कौतुकं तद्भविष्यति ॥६२॥
 तदा ययं स्त्रियः सर्वास्तदृष्ट्वा कौतुकं महत् । भूत्वाऽत्र मद्गतमना मां ध्यान्ता सर्वदा हृदि ॥६३॥
 अंते मन्त्रलोकशास्य भोक्ष्यथ सुसभृतमम् । रामेति ताकं नाम मम नित्यं हि सर्वदा ॥६४॥

लोकसे बल निकाला ॥ ४६ ॥ उससे स्नान किया और मध्याह्न नायक की यात्रासे पुरस्त पायो । तब जैसे ही भोजन करनेको तैयार हुए, तैसे ही कुश आदि भी सेना के साथ उस स्थान पर आ पहुँचे । उन्होंने वहाँ जानकी-को देखा तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ फिर शबरीके मुखसे उन्होंने सब समाचार सुना, तब उन लोगोको विश्वास हुआ कि रामचन्द्रजी साक्षात् जिव ही हैं ॥ ४९ ॥ और सीताजी साक्षात् पार्वती हैं । अतएव रामचन्द्रजीने कुश आदि वाक्यको तथा सेनाके साथ भोजन किया, स्वच्छ जल पिया और उन स्त्रियोसे कहा—‘हे स्त्रियो ! अब तुम स्लागोकी जो इच्छा हो, वह वर माँग लो’ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इस तरह रामकी बात सुनकर स्त्रियाँ बोलीं कि जिससे मंगारथ हमारे मुकति हो, कोई ऐसा वरदान दीजिये ॥ ५२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर उन नारियोसे कहा कि जो नाम हमारा है, वही तुम्हारा भी “रामा” यह नाम विख्यात होगा ॥ ५३ ॥ हे स्त्रियो ! हमारे वरदानके प्रभावसे पुरुषोकी अपेक्षा नारियोको हमारेमें विशेष भक्ति रहेगी ॥ ५४ ॥ देवता, ब्राह्मण, हरिकृपा एवं धर्म तुम्हारी विशेष रुचि रहा करेगी । तुम अंगो सधवा स्त्रियाँ सदा पवित्र रहेगी ॥ ५५ ॥ अपने मन्त्रकर मान भी चारण करनेवाली स्त्रियाँ किसी मङ्गलमय कार्य तथा शकुन आदि सब कार्योंमें आगे आगे चलेगी ॥ ५६ ॥ मेरे बाणसे हम शरोवरकी रचना हुई है । अतएव वह तीर्थ मेरे ही नामसे विख्यात होगा । इस तरह रामके द्वारा वरदान पाकर उन स्त्रियोने कहा—हे राम ! आप जन्मान्तरमें भी हम लोगोको अपना दर्शन दीजिएगा । उनकी बात सुनकर रामने कहा—द्वापरे अब मांगनेके प्रसङ्गमें ही कृष्णरूपसे मैं तुम लोगोको दर्शन दूँगा ॥ ५७-५८ ॥ उस समय जब वनमें नुम हमें मिलोगी, तब तुम सब ब्राह्मणका मित्र रहे रहोगी । यह शबरी भी उस समय द्विजपत्नी होगी ॥ ५९ ॥ मेरे दशकके लिए जानेको उद्यत इस नाराका अब इसका पति समन कंधकर दण्ड देगा तो यह अपना मन मुझे अर्पण करके अन्य रूपसे मेरे समीप चली आवेगी । उस समय यह कौतुक देखकर तुम सब बड़ी विस्मय होगी और तबसे मुझसे अपना मन लगाकर सर्वज्ञ मेरा भान करोगी ॥ ६१-६३ ॥ अन्तमें मेरे

युष्माभिर्जपनीयं वै तेनास्तु गतिरुत्तमा । इति दृष्ट्वा वरांस्ताम्भ्यः सीतामाह पुरःस्थिताम् ॥ ६५ ॥
 सुखं यदि स्थलं स्वीयं तर्धेन्युक्त्वा विदेहजा । रामं प्रणम्य स्त्रीयुक्ता ययी देवालयं पुनः ॥ ६६ ॥
 देवालयगता भूत्वा दुर्गारूपं दधार मा । तदतिविस्मयं प्राप्नुता नार्यो निजचेतयि ॥ ६७ ॥
 तास्तां दुर्गाप्रद्वयाय नार्यो जग्मुः स्वलं निजम् । रामोऽपि बन्धुपुत्राद्यैवेयी निजपुर्गं प्रति ॥ ६८ ॥
 ततो गेहे ह्यशुः सीतां पप्रच्छ वनचेष्टितम् । दृष्टवच्च यथा वृत्तं तथा सीता न्यवेदयम् ॥ ६९ ॥
 ततस्ते लक्ष्मणाद्याश्च मेनिरे राघवं हम् ॥ सीतां मासान्महादुर्गां मेनिरे गनत्रिभ्रमाः ॥ ७० ॥
 एवं श्लिष्य जनानां च रामेण परमत्पना । द्वेन बुद्धिः स्थण्डिले च वने कृत्वा तु कौतुकम् ॥ ७१ ॥
 एवं वरेण रामस्य रामा नर्यत्र कथ्यते । तामामपि मनुशाय स्मृतो रामेति द्वयश्वरः ॥ ७२ ॥
 नान्यो मन्त्रोऽस्ति नारीणां शूद्राणां चापि भो द्विज सर्वेभ्यो मन्त्रवर्षेभ्यो रामप्याय मनुर्वरः ॥ ७३ ॥
 श्रासे भये महापापे दायायां सर्वदा नरैः । गमेति द्वयश्वरो मरः कीर्त्यते जगतीतले ॥ ७४ ॥
 कृत्वा पापं महाघोरं पश्चाच्चापेन यो नर । मरुद्रापेति मर हि कीर्त्यतेऽनु द्विमरुतयम् ॥ ७५ ॥
 गमेति मंत्रराजोऽयं गमने भोजने तथा । शयने क्रोडने राज्ञोऽभ्यने कार्यान्तरे नरैः ॥ ७६ ॥
 जपनीयः सर्वदेव संख्ययोरुभयोरपि । चतुर्वर्णं मरुद्राप्यश्वतुगाश्रमवासिभिः ॥ ७७ ॥
 नास्य मन्त्रस्य कालोऽस्ति जपार्थं कालरूपिणः । तस्माज्जने देव रोयः सर्वदा मरुतुत्तमः ॥ ७८ ॥
 राममन्त्रो भूत्वे यस्य देहो मुद्रांकितस्तथा । राममुद्रांकितं वस्त्रं यस्य तं नेभ्यश्चेष्टमः ॥ ७९ ॥
 राममुद्रांकितं वस्त्रं समुद्रं वस्त्रमृच्यते । सर्ववस्त्रेषु तच्छ्रेष्ठं पवित्रं पापनाशकम् ॥ ८० ॥
 समुद्रं वसनं वेहे विश्रुतं मानयोत्तमम् । कृतं पापं न लिप्येत पश्चादत्र मिवाभयम् ॥ ८१ ॥
 समुद्रवस्त्रसंयुक्तं दृष्ट्वा भुवि नरोत्तमम् । यमदत्ताः पलायते सिंह दृष्ट्वा मृगा यथा ॥ ८२ ॥

श्लोकको प्राप्त करके तुम सब उत्तम मुख भोग गी । मेर 'र म' इस तरह मन्त्रको तुम लोग सदा जपता रहना,
 इससे तुम्हें उत्तम गति प्राप्त होगी । इस तरह उन स्वर्गोंको तरदान देकर सामन बैठो हुई सीताआसे कहा
 कि अब आप आनन्दसे अपने मन्दिरकी आइए । 'तयास्तु' कहकर वे भी उन स्थियोंक साथ मन्दिरकी ओर
 चली गयीं ॥ ६४-६६ ॥ देवालयमें पहुँचकर उन्होंने फिर पहलकी तरह दुर्गाका रूप धारण कर लिया ।
 उस समय वे स्त्रियाँ और भी विस्मित हुईं ॥ ६७ ॥ इसक बाद उन स्त्रियोंमें दुर्गाकी पूजा की और
 अपने अपने घरोंको चली गयी । राम भी अपने बन्धुमा, पुत्रों एवं सदा आदिका साथ लेकर खोखला
 चल दिये ॥ ६८ ॥ घर पहुँचकर कुञ्जे सीतासे वह वृत्तान्त पूछा ता मानने इस तरह सब कह सुनाया कि जैसे
 उन्होंने अपनी आँखों सब कुछ देखा है ॥ ६९ ॥ तबसे लक्ष्मण आदिन मन्देहरहित होकर रामको महेश्वर और
 सीताको महादुर्गा माना ॥ ७० ॥ हे शिष्य ! अपने भलाकी हेतु बुद्धिको दूर करनेक लिए ही रामने वनमें
 इस प्रकारका कौतुक किया था ॥ ७१ ॥ रामचन्द्रजाके दरबानसे है स्त्रियाँ रामा कहलाती है । उन लोगोंके
 लिए भी 'राम' वह दो अक्षरोंका मन्त्र बतलाया गया है ॥ ७२ ॥ स्त्रियाँ और शूद्रोंक लिए इसके सिवाय और
 कोई मन्त्र नहीं है । सब मन्त्रोंमें यह राममन्त्र सर्वश्रेष्ठ है ॥ ७३ ॥ किसी प्रकार नाम बाधा या भय आनेपर
 लोग इसी नामका उच्चारण करने हैं ॥ ७४ ॥ महाघोर पाप करके म जो पापी पञ्चास्तारपूर्वक 'राम' इस
 मन्त्रका कीर्तन करता है, उसको शुद्धि हो जाती है ॥ ७५ ॥ लोगोंको चाहिए कि वही आते समय, भोजन
 करते समय, सोन समय, खेलन कृत्न समय अथवा कोई भी कार्य करने समय और सार्यकालको, चाहे वे
 किसी वर्ण तथा किसी आश्रमके हो, राम इस मन्त्रका जप करने रहे । क्योंकि यह बड़ा उत्तम मन्त्र है
 ॥ ७६-७८ ॥ जिसके मुखमें राममन्त्र है, जिसका शरीर रामनामसे अंकित है और जिसकी देहपर राममुद्रा-
 से अंकित वस्त्र पहना रहता है, उसे यमराज नहीं देख पाते ॥ ७९ ॥ राममुद्रासे अंकित वस्त्र समुद्र वस्त्र कहलाता है ।
 यह वस्त्र सबसे श्रेष्ठ, पवित्र और पापनाशक होता है ॥ ८० ॥ उस समुद्र वसनधारो प्राणीको किसी प्रकारका
 पातक नहीं लगता । जैसे कमलके पत्तेपर जलका असर नहीं होता ॥ ८१ ॥ समुद्र वस्त्र धारण किये हुए मनुष्यको

पुरैकदा तु मुनयः संमन्योच रघूत्तमम् । राम गेम महाबाहो कलावग्रे द्विजोत्तमाः ॥८३॥
 व्यग्रचित्ता मंदधियो भविष्यत्यवनीतके । निजजाट्यपूर्यर्थं द्वाराद्वारं भ्रमन्ति हि ॥८४॥
 कुतोऽवकाशः स्मरणे तत्र तेषां भविष्यति । अतस्तेषां हितार्थाय त्वां याचामोऽयं राघव ॥८५॥
 तेषां हितार्थं किञ्चिन्मया वक्तुमर्हति । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा मुनीनां रघुनन्दनः ॥८६॥
 तवाच वाक्यं सतुष्टस्तन्मुनीन्प्रहमन्प्रभुः । मम्यगुक्तं मुनेभ्यः शृणुष्व वचनं मम ॥८७॥
 मम मुद्रांकितं वस्त्रं कलौ धार्यं जनैः सुखम् । मम मुद्रांकितं वस्त्रं विभ्रतं मानवोत्तमम् ॥८८॥
 न स्पर्शेत्पातकं किञ्चिन्कृतं चापि नरेण हि । शङ्खचक्रमदापचनाममुद्रांकितं शुभम् ॥८९॥
 वस्त्रं धार्यं नरैर्भक्त्या मुद्रपैत्रांकितं तु यः । शङ्खदिपञ्चभिर्धुक्तं सदा वस्त्रं मम प्रियम् ॥९०॥
 मन्मुद्रांकितं वापि वस्त्रं मत्तोषदं स्मृतम् । स्नान्वा धार्यं सदा तच्च जपकाले विशेषतः ॥९१॥
 मलमूत्रोन्मर्जने च शयने क्रीडने तथा । अशुचौ च क्षये वृद्धौ दृष्टे राजसभासु च ॥९२॥
 पथि दुर्जनसंसर्गे मुद्रावस्त्रं न धारयेत् । ना मोक्षणकालेऽपि विहारे नैव धारयेत् ॥९३॥
 स्नानकाले अने तीर्थे पूजायां पितृभूमिषु । होमे दाने जपे क्रान्द्रावणव्रतादिषु ॥९४॥
 नित्यकर्मसु काम्येषु तथा नैमित्तिकेष्वपि । तथा तपसु मन्मुद्रावस्त्रं धार्यं सर्वदा हि ॥९५॥
 मम मुद्रांकितं वस्त्रं विभ्रतं मनोत्तमम् । अहं मोक्षं प्रदस्यमि मन्यं मन्यं मुनीश्वराः ॥९६॥
 एवं श्रुत्वा राघवाक्यं मुनयस्ते मुदन्विताः । राम पृष्ट्वाऽऽश्रमं स्वराज्यं मुदितामनः ॥९७॥
 तस्मान्मदा राममुद्रावस्त्रं धार्यं नरैर्भुजैः । रामेति द्व्यक्षरं नमोऽर्पनीयस्तु सर्वदा ॥९८॥
 राममुद्रा शुभा धार्या गोपीचन्दनसयुता । मदाऽत्र मानर्धर्मकन्या रामनारायणसदरात् ॥९९॥

देखकर यमके दूत उसी तरह भ्रमण हैं, जैसे मिहका देखकर मृग भाग जात है ॥ ८२ ॥ एक बार बहुतसे मुनि एकत्र होकर रामसे बोले—हे महाबाहू ! अगे चलकर कलियुगमें ब्रह्माण बड़े मन्दबुद्धि होंगे और पट पालनेके लिये व्यग्र रहने हुए द्वार द्वार घूमग ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ उनका आपका स्मरण करनेके लिए अवकाश कैसे मिलेगा । अतएव उनके कल्याणार्थ हम आपसे यह भिक्षा माँग रहे हैं कि उनके हितके लिये कोई उपाय बतला दीजिए । उन मुनियोंकी बात सुनकर रामचन्द्रजी प्रसन्न मनसे बोले कि आपने बहुत उत्तम प्रश्न छोड़ा है । अच्छा सुनिए ॥ ८५-८७ ॥ उन लोगोंका चाहिए कि सदा मेरी मुद्रासे अंकित वस्त्र धारण करें । जो मेरी मुद्रासे अंकित कपड़े पहने रहेंगे, उनसे यदि किसी प्रकारका पातक भी हो जायगा तो वह उनको नहीं लगेगा । इसलिए वे सदा शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे अङ्कित कपड़े पहन । यह भी न हो सके तो बबल मरे नाम ही से चिह्नित कपड़े पहने । शङ्ख आदिसे चिह्नित वस्त्र भी मुझ बड़े प्रिय हैं ॥ ८८-९० ॥ राममुद्रासे अंकित वस्त्र मुझे प्रसन्न करते हैं । इसलिए लोगोंको चाहिए कि स्नान करके ऐसे ही कपड़े पहने और जबक समय इसक लिए विशेष दान रखें ॥ ९१ ॥ मलमूत्र त्यागते समय, विछोनेपर, खेलते समय, अपवित्रावस्थाम, किसी वृद्धत्वके मरनेपर, बाजारमें, राजसभामें, रास्तेमें और दुर्जनोके ससंगमें इस मुद्रावस्त्रको कभी भी न पहन । सोजन करते समय और स्वार्थके साथ विहार करते समय भी इसे न पहने ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ स्नान करनेके अनन्तर, व्रतमें, तीर्थमें, पूजा करते समय, पितृश्राद्ध करते समय, होम, दान, जप आदि करते समय, चान्द्रावण आदि व्रतमें, नित्यकर्म करते समय, काम्य कर्ममें, कोई नैमित्तिक कर्म करते समय और तपस्या करते समय मेरी मुद्रासे अंकित वस्त्र अवश्य पहनना चाहिए ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ हे मुनीश्वरो ! यह बात विष्णुकुल सत्य है कि मेरी मुद्रासे अंकित वस्त्र पहननेवालोंको मैं स्वयं मुक्ति देता हूँ ॥ ९६ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वे सब बहुत प्रसन्न हुए और रामसे आज्ञा लेकर अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ॥ ९७ ॥ इसीलिये लोगोंको यह चाहिए कि हमेशा राममुद्रासे अंकित कपड़े पहनें और 'राम' इस दो अक्षरके मंत्रका जप करें ॥ ९८ ॥ गोपीचन्दनसे राममुद्रा

पूजा सदा राघवस्य कार्याऽत्र मानवैर्भुवि । सदा स्नानं रामतीर्थे नरैः कार्यं प्रयत्नतः ॥१००॥
 सदा रामायणं चेदं श्रवणीयं नरैर्भुवि । चिन्तनीयः सदा रामो जन्ममृत्युनिवारकः ॥१०१॥
 स्तोतव्यः कीर्तनीयश्च वन्दनीयोऽत्र राघवः । न किञ्चिदणुमात्रं हि विनारामं सदाऽऽचरेत् ॥१०२॥
 हनुमत्कवचं दिव्यं पठित्वाऽऽदौ नरैर्भुवि । ततः श्रीरामकवचं पठनीयं हि सर्वदा ॥१०३॥
 पठन्ति रामकवचं हनुमत्कवचं विना । अरण्ये रोदनं तैस्तु कुतमेव न संशयः ॥१०४॥
 स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रं सर्वभीतिनिवारकम् । श्रीरामकवचं नित्यं पठनीयं नरैर्भुवि ॥१०५॥

विष्णुदास उवाच

गुरोर्द्धं श्रेतुमिच्छामि हनुमत्कवचं शुभम् । तथैव रामकवचं वद कृत्वा कृपां मयि ॥१०६॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । हनुमत्कवचं रामकवचं च वदामि ते ॥१०७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे
 आदिकाव्ये रामेणार्द्धतत्प्रदर्शनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः

(हनुमत्कवच तथा रामकवच)

श्रीरामदास उवाच

एकदा सुखमासीनं शकरं लोकशंकरम् । पप्रच्छ गिरिजाकांतं कर्पूरधवलं शिवम् ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच

भगवन् देवदेवेश लोकनाथ जगत्प्रभो । शोकाकुलानां लोकानां केन रक्षा भवेद्भुवम् ॥ २ ॥

संग्रामे संकटे घोरे भूतप्रेतादिके भये । दुःखदायाप्रिसतप्तचेतसां दुःखभागिनाम् ॥ ३ ॥

धारण करें । इससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होंगे । ६६ ॥ संसारमें मनुष्योंको चाहिए कि सदा रामचन्द्रजीकी पूजा करें और प्रयत्न करके रामतीर्थमें स्नान करें ॥ १०० ॥ सर्वदा इस आनन्दरामायणका पाठ करते हुए जाम और मृत्युका दुःख दूर करनेवाले रामचन्द्रजीका ध्यान करते रहे । उन्हींकी स्तुति करें और उन्हींका गुणानुवाद गाये । कहनेका भाव यह है कि रामचन्द्रके भजनके मित्राय कोई और काम न करें ॥१०१॥१०२॥ पहले हनुमत्कवचका पाठ करके श्रीरामकवचका पाठ किया करें ॥ १०३ ॥ जो लोग हनुमत्कवचका पाठ किये बिना ही श्रीरामकवचका पाठ करते हैं, वे मानो अरण्यरोदन करते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १०४ ॥ सब स्तोत्रोंमें उत्तम तथा सब प्रकारके भयका निवारण करनेवाले श्रीरामकवचका पाठ सांसारिक मनुष्योंको अवश्य करना चाहिए ॥ १०५ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! हम आपके मुखसे हनुमत्कवच और रामकवच सुनना चाहते हैं । मेरे ऊपर कृपा करके बतलाइए ॥ १०६ ॥ रामदासने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं हनुमत्कवच और रामकवच इन दोनों कवचोंको कहूँगा । तुम सावधान होकर सुनो ॥ १०७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे पंचमोऽध्यायः । रामतेजपाण्डेयविरचितं ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक बार संसारका कल्याण करनेवाले शिवजी बैठे हुए थे । उसी समय पार्वतीजीने कहा—हे भगवन् ! हे देवदेव ! हे लोकनाथ ! हे जगत्प्रभो ! जो लोग किसी प्रकारके शोकसे व्याकुल हों, उनकी किस प्रकार रक्षा की जा सकती है ? जो लोग घोर संग्राम, महान् संकट, भूत प्रेत आदिकी बाधाओं अथवा दुःखरूपी दावानलसे जल रहे हों, उनके उद्धारार्थ कोन उपाय किया जा सकता है ? ॥ १ ॥

देवेन्द्रप्रमुखं प्रशस्तयक्ष्मं देदीप्यमानं रुचा ।

सुग्रीवादिममस्मयानरयुतं सुव्यक्तनयप्रियं

संस्कारुणलोचनं पवनजं पीतांबरालंकृतम् ॥ १ ॥

उद्यन्मार्तण्डकोटिप्रकररुचियुतं चारुवीरामनम्भं

मौजीयज्ञोपवीताभरणरुचिशिखं शोभिर्न कुण्डलाकम् ।

भक्तानामिष्टदं तं प्रणतमुनिजनं वेदनादप्रमोदं

व्याघ्रेदेवविधेमं प्लवङ्गकुलपतिं गोप्यदीभूदवधिम् ॥ २ ॥

वज्रांग विगकेशाख्य स्वर्णकुण्डलमंडितम् । भिगूटमुपयगम्य पारावारपराक्रमम् ॥ ३ ॥

स्फटिकाभं स्वर्णकान्तिं द्विभुजं च कृतांजलिम् । कुण्डलद्वयमंशोभि सुसुखमोजं हरिं भजे ॥ ४ ॥

सव्यहस्ते गदायुक्तं तामहस्ते कमण्डलुम् । उग्रहस्तिणदोदण्डं हनुमन् विचिंतयेत् ॥ ५ ॥

अथ मंत्रः

ॐ नमो हनुमते शोभिताननाय यशोऽलंकृताय अजनीमर्भमम्भूताय रामलक्ष्मणानन्दाय
कपिसैन्यप्रकाशनपर्वतोत्तराटनाय सुग्रीवमातृकरणपरोच्चाटनकुमारमल्लचर्यगभीरक्षब्दोदय हीं सर्वदुष्ट-
ग्रहनिवारणाय स्वाहा । ॐ नमो हनुमते एहि एहि एहि सर्वग्रहभूतानां शाकिनीडाकिनीनां
विषमदुष्टानां सर्वेषामाकर्षयाकर्षय मर्दय मर्दय छेदय छेदय मन्यान्मारय मारय शोषय शोषय
प्रज्वल प्रज्वल भूतमण्डलपिशाचमण्डलनिरमणाय भूतज्वरप्रेतजडान्तुथिकज्वरमक्षराक्षमपिशाच-
छेदनक्रियाविष्णुज्वरमहंज्वरान् छिंधि छिंधि भिंधि भिंधि अक्षिशूले शिरोऽभ्यन्तरे ह्यक्षिशूले गुल्मशूले
पित्तशूले ब्रह्मराक्षसकुलप्रचलनामकुलावेपथिविषं क्षातिनि अटिति । ॐ ह्रीं फट् घे घे स्वाहा । ॐ नमो
हनुमते पवनपुत्र वैश्वानरमुखपापहृष्टिहनुमतेको आज्ञाफुरे स्वाहा । स्वगृहे द्वारे पट्टके
तिष्ठ तिष्ठति तत्र रोगभय राजहूलभय नास्ति तस्योच्चारणमात्रेण सर्वे ज्वरा नश्यन्ति ।
ॐ ह्रीं ह्रीं हूं फट् घे घे स्वाहा ।

कालके सूर्यं सरीखा जिनका तजस्वी स्वरूप है, जो राक्षसोंका अभिमान दूर करनेमें समर्थ है और जो
देवताओंमें एक प्रमुख देवता माने जाते हैं जिनका प्रशस्त यश तमों लोकोमें फैला हुआ है ।
जो अपनी कसाधारण शोभान देदीप्यमान हो रहें हैं । सुग्रीव आदि बड़े-बड़े वानर जिनके साथ हैं ।
जो सुव्यक्त सत्त्विक प्रेमी हैं । जिनकी आँखें अतिशय लाल-लाल हैं । पीले वस्त्रोंसे अलंकृत उन हनुमान्-
जोका मैं ध्यान करता हूँ ॥ १ ॥ उदय तीन हुए करे हो सूर्यक समान जिनका प्रकाश है । जो सुन्दर
पीरासनसे बड़े हुए हैं । जिनके शरीरमें मौजा-वशाद्वंश आदि पड़े हैं और उनकी किरणोंसे जो और भी
शोभासम्पन्न दोस्त रहे हैं । जिनके कानोंमें पड़े हुए कुण्डल अपनी मनोहर शोभा दिखा रहे हैं । भक्तोंकी
कामना पूर्ण करनेवाले, मुनिजनोंसे वन्दित, वरक मन्त्रोंकी श्रद्धा सुनकर प्रसन्न होनेवाले, वानरकुलके
अग्रणी और समुद्रको गीके खुर भर जलवाला बना देनेवाले हनुमान्जोका ध्यान करना चाहिए ॥ २ ॥ वज्रके
समान कठार जिनका शरीर है मस्तकपर पीला केश मुशोभित हो रहा है और कानोंमें सुवर्णके कुण्डल पड़े
हैं, ऐसे हनुमान्जोका मैं अतिशय आग्रहके साथ ध्यान करता हूँ । क्योंकि उनके पराक्रमरूपी समुद्रकी कोई
थाह नहीं है ॥ ३ ॥ स्फटिकमणिके समान जयवा मुवर्ण सरीखी जिनकी कान्ति है, दो भुजायें हैं, जो हाथ
जोड़े खड़े हैं, दोनों कानोंमें पड़े दो सुवर्णके कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं, ऐसे कमलके समान सुन्दर मुखवाले
हनुमान्जोका मैं ध्यान करता हूँ ॥ ४ ॥ जिनकी दाहिनी भुजामें गदा है, बायें हाथमें कमण्डलु है और जिनकी
दाहिनी भुजा कुछ ऊपर उठी हुई है, ऐसे हनुमान्जोका ध्यान करना चाहिये ॥ ५ ॥ अथ मन्त्रः—“ॐ
नमो हनुमते” यहाँसे लेकर ‘ह्रीं, ह्रीं, हूं, फट् घे घे स्वाहा’ यहाँ तक हनुमत्कवचमन्त्र कहा गया है ।

श्रीरामचन्द्र उवाच

हनुमान् पूर्वतः पातु दक्षिणे पवनान्मजः । पातु प्रतीच्या ग्धोदनः पातु सागरपारमः ॥ १ ॥
उदीच्यापूर्वतः पातु कैवरीप्रियमन्दनः । अधस्तु रिणुवन्मस्तु पतुमध्यं च पावनि ॥ २ ॥
लङ्काविदाहृदः पातु सर्वापङ्कयो निरन्तरम् । सुग्रीवमचिः पातु पञ्चक वायुदन्दनः ॥ ३ ॥
भानं पातु महावारो अशोर्मध्ये निरन्तरम् । नेत्रे छायापहाणि च पातु नः प्लवंगेश्वरः ॥ ४ ॥
कपोले कर्णभूले च पातु श्रीगणेशकिङ्करः । नाभ्यग्रन्थनीमुतुः पातु चक्रं हरश्चरः ॥

वाचं रुद्रप्रियः पातु जिह्वां शिखरोच्चनः ॥ ५ ॥

पातु देवः कान्गुनेष्टशिवकं दैत्यदण्डा । पातु कण्ठं च दैत्यारिः स्फुरन् पातु मुहूर्तचितः ॥ ६ ॥
भुजौ पातु महातेजाः कर्णौ च चरणायुधः । पञ्चानलायुधः पातु कूर्चं पतु रश्मिश्च ॥ ७ ॥
बलौ मुद्रापहातौ च पातु पार्श्वे भुजयुध । लङ्कां रञ्जयः पातु पृष्ठं च निरन्तरम् ॥ ८ ॥
नाभिं च रामदूतस्तु दादौ पञ्चानलान्मजः । गुह्यं पातु महाप्राज्ञो लिङ्गं पातु त्रिप्रियः ॥ ९ ॥
ऊरु च जानुनी पातु लङ्काप्रामादमन्तः । जघे पातु रुद्रिश्रेष्ठो गुल्फं पातु महाबलः ॥

अचलोद्धारकः पातु पारी मास्कस्मश्रिभः ॥ १० ॥

अङ्गान्यमिनमन्त्राढ्यः पातु पादाङ्गुलीन्वतः । मर्द्वाङ्गानि महाशूरः पातु रं मणिनाम्नवेत् ॥ ११ ॥
हनुमन्कवचं यस्तु पठेद्विद्वान्त्रयक्षयः । स एव पुरुषश्रेष्ठो भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ॥ १२ ॥
त्रिकालमेककालं वा पठेन्मामत्रयं ततः । सर्वान् विघ्नान् शयान् जिह्वां स पृथ्वान् श्रियमाप्नुयात् ॥
मन्थरात्रे जले स्थित्वा यस्मात् पठेद्यदि । क्षयापम्याङ्कुपुद्गादिनायत्रयां नभारणम् ॥ १४ ॥

अब हनुमन्कवच प्रारम्भ होता है । १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अश्वत्थमूलेऽर्कवारे स्थित्वा पठति यः पुमान् । अचलां श्रियमाप्नोति संग्रामे विजयं तथा ॥१५॥
 बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयत्वमरोगताम् । सुदृढां वाक्स्फुरन्वं च हनुमत्स्मरणाद्भवेत् ॥१६॥
 मारणं वैरिणां मद्यः शरणं सर्वमम्पदाम् । शोकस्य हरणे दक्षं वरे तं रणदाहणम् ॥१७॥
 लिखित्वा पूजयेद्यस्तु सर्वत्र विजयी भवेत् । यः करे धारयेन्नित्यं स पुमान् श्रियमाप्नुयात् ॥१८॥
 स्थित्वा तु बन्धने यस्तु जपं कारयति द्विजैः । नक्षत्रान्भुक्तिमाप्नोति निगडात्तु तथैव च ॥१९॥

ईश्वर उवाच

मान्द्विदोभरणारविद्युगलं कौपीनभौजीधरं कांचिश्रेणिधरं दृढलवमनं यज्ञोपवीताञ्जिनम् ।
 हस्ताभ्यां धृतपुस्तकं च त्रिलमद्धारवलिं कुण्डलं यश्चालं त्रिशिखं प्रमन्नवदनं श्रीवायुपुत्रं भजे ॥२०॥
 यो वारानिधिमन्थपञ्चलमिषोल्लंघ्य प्रतापान्वितो वेदेहीघनशोकतापहृणो वैकुण्ठभक्तप्रियः ।
 अध्याद्यजितराक्षसेश्वरमहादर्पापहारी रणे सोऽयं वानरपुङ्गवोऽवतु सदा योऽस्मान्मभीरान्मजः ॥२१॥

वज्रांगं पिंगनेत्रं कनकमयलसकुण्डलाकांतगण्डं
 दम्भोलिस्तंभमारं प्रहरणमुवशीभुतगर्भोधिनाथम् ।
 उद्यत्लांगूलसप्तप्रचलचलधरं भीममूर्तिं कर्पाद्रिं
 ध्यायेत् रामचन्द्रं अमरदृढकरं सत्यसारं प्रमन्नम् ॥२२॥
 वज्रांगं पिंगनेत्रं कनकमयलस-कुण्डलैः शोभनीयं
 सर्वापाङ्ग्यादिनाथं करतलविधृतं पूर्णकुम्भं दृढं वा ।
 भक्तानामिष्टकारं विदधति यः सदा सुप्रमन्नं हृगश्च
 त्रैलोक्यप्राप्तुकामं सकलधुवि गतं रामदत्तं नमामि ॥२३॥

जो मनुष्य रविवारको पोषल्लके नीचे बैठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे अचल लक्ष्मी प्राप्त होती है और वह विजयी होता है ॥ १५ ॥ बुद्धि, बल, पशु, धैर्य, निर्भयत्व, अरोगिता, दृढता और वाक्प्राप्त्य, ये सब हनुमान्जी के ध्यानसे प्राप्त हो सकते हैं ॥ १६ ॥ जो सब वैरियोंको मारनेवाले और सब संपत्तियोंके निधान है, जो शोकका अपहरण करनेमें अतिशय कुशल है, मैं उन रणदाहण हनुमान्जीको प्रणाम करता हूँ ॥ १७ ॥ जो मनुष्य लिखकर इस कवचका पूजन करता है वह सर्वत्र विजयी होता है और जो अपनी मुआओमें हमेशा बांधे रहता है, उसे लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ १८ ॥ यदि प्राणी किसी तरह बन्धनमें पड़ गया हो, वह बाह्यणों द्वारा इस कवचका जप कराये तो तराजण बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ १९ ॥ शिवजी बोले सूर्य और चन्द्रमाके समान शोभासम्पन्न जिसके चरणकमल हैं, जो कौपीन और भौजी धारण किये हैं, जो काची श्रेणियों को पहने हैं, वस्त्र धारण किये हैं, यज्ञोपवीत तथा मृगचर्म अलग भुशोमित रहा है, जो हाथमें पुस्तक लिये हैं और धमकता हुआ द्वार जिनके वक्षस्फलपर सुशोमित हो रहा है । ऐसे प्रसन्न मुखवाले वायुपुत्रको मैं प्रणाम करता हूँ । जो समुद्रको एक साधारण सलैया समझकर लांघ गये, जिन्होंने सीताके महाशोक और तापको हर लिया, विष्णु भगवान्को भक्तिके प्रेमी, संग्राममें अक्षयकुमार आदि उद्दंड राक्षसोंके दर्पको दूर करनेवाले वानर पुंगव तथा वायुके पुत्र हनुमान् हमारी रक्षा करें । जिनका वज्रके समान शरीर है, पोली-पैली आँखें हैं, सुवर्णमय कुंडलोंसे जिनका कपोलभाग भरा हुआ है, वज्रस्तंभके समान जिनका भजवत शरीर है, रावणको मारनेके लिए जिन्हें तुरन्त शस्त्र मिल गया था, उन पूँछ ऊपर उठाये, सत्त पर्वतोंको लांघे और भयङ्कर रूपधारी हनुमान्जीका ध्यान करना चाहिये । साथ ही अब श्रीरामचन्द्रजीका भी ध्यान करना उचित है, जो सब सत्त्वोंके सार हैं और सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ २०-२२ ॥ वज्रके समान कठिन जिनकी देह है सुवर्णके कुंडल जिनके कानोंमें पड़े हैं, जो सब आभूषणोंके स्वामी हैं, जिन्होंने अपनी हथेलीमें पूर्णकुम्भको धारण कर रक्खा है, जो भक्तोंकी कामना पूर्ण करते हैं, जो सर्वदा प्रसन्न रहते हैं और तीनों लोकोंकी रक्षा करनेकी कामना रखते हैं, समस्त भुवनमें

वामे करे वैरिभिर्दं वहतं सैलं परं शृङ्खलहारकण्डम् ।
 दधानमाच्छाद्य सुपर्णवर्णं भजे ज्वलन्कुण्डलमाञ्जनेयम् ॥२४॥
 पद्मरागमणिकुण्डलन्विता पाटलीकृतकपोलमण्डलम् ।
 दिव्यदेहकदलीचरान्तरे भाषयामि पद्माननन्दनम् ॥२५॥
 यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमन्तकाञ्जलिम् ।
 बाष्पवापिगिर्णलोचनं मारुतिं नमन् राक्षसानकम् ॥२६॥
 मनोजवं मारुततुल्यदेवं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
 वातात्मजं वानरयुधमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥२७॥

त्रिवादे दिव्यकाले च धृते राजकुले रणे । दशवारं पठेद्वात्रो मिनाहागे जितेन्द्रियः ॥२८॥
 विजयं लभते लोके मानवेषु नरेषु च । भृते प्रेते महादुर्गैरप्ये मागस्संप्लवे ॥२९॥
 सिंहव्याघ्रमध्ये चोग्रे शरशङ्खस्त्रपातने । गृध्रलक्ष्मधने चैव कारागृहनिषंघने ॥३०॥
 कोपे स्तम्भे वह्निचक्रे क्षेत्रे घोरे मुद्रारुणे । शोके महागणे चैव अक्षग्रहनिवारणम् ॥३१॥
 सर्वदा तु पठेन्नित्यं जयमाप्नोति निश्चितम् । भूर्जे वा प्रमने रक्ते क्षौमे वा तालपत्रके ॥३२॥
 त्रिगंधिना वा मध्या वा विलिख्य धारयेन्नरः । पचममत्रिलोहैर्वा गोपितः सर्वतः शुभम् ॥३३॥
 करे कट्यां बाहुभूले कठे शिरसि ध्यानिम् । सर्वान्कामानवाप्नोति सत्यं श्रीरामभाषितम् ॥३४॥
 अपराजितं नमस्तेऽस्तु नमस्ते रामरजित । प्रस्थानं च कर्त्स्यामि मिद्धिर्भवतु मे सदा ॥३५॥
 इत्युक्त्वा यो व्रजेदग्रामं देशं तीर्थान्तरं रणम् । आगमिष्यति शीघ्रं स क्षेमरूपे गृहं पुनः ॥३६॥

इति वदति त्रिशेपाद्राघवे राक्षसेन्द्रः प्रमुदिनवरचितो रावणस्थानुजो हि ।

रघुवरपदपद्मं वदयामास भूयः कुलमहितकृतार्थः शर्मदं मन्यमानः ॥३७॥

भुवनमें विराजमान उन रामदूत हनुमानजीकी मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २३ ॥ जो बाँवें हाथमें शत्रुओंको मारने-
 वाला पर्वत लिये है, जिनके कण्डमें शृङ्खलाका हार और देरीप्यमान सुपर्णका कुण्डल कानोंमें पड़ा हुआ है,
 मैं ऐसे हनुमान्जीको प्रणाम करता हूँ ॥ २४ ॥ कुण्डलमें जड़े हुए पुष्कराज मणिकी कान्तिसे जिनका कपोल
 पाटल वर्णका हो गया है, बेलोंके बनें झड़ू और दिव्य रूप धारण किये हनुमान्जीका मैं दशन करता हूँ
 ॥ २५ ॥ जहाँ जहाँ राक्षसों की कथा होती है, वहाँ माया यका तथा हाथ जाडकर जो खड़े रहने हैं और आँसूमें
 जिनके नेत्र भरे रहने हैं, राजमोंका जल करनेवाले उन हनुमान्जीको प्रणाम करो ॥ २६ ॥ मनके समान
 जिनका वग है, जिन्होंने इन्द्रियोंकी जीत लिया है और जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ है, ऐसे वायुपुत्र एवं वानरयुधके
 मुखिया श्रीरामदूतको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ २७ ॥ किसीसे बहस करते समय, जुआ खेलते
 समय, मपय लें तें समय, राजकुलमें, मग्नममें और मग्नम मिताहार होकर जितेन्द्रियतापूर्वक दस बार जो
 इस कवचका पाठ करता है, वह सब मनुष्यों और जन्तुओंपर विजय प्राप्त कर लेता है । भूत, प्रेत, महादुर्ग,
 गरुड और सागरमें बह जानेपर, सिंह व्याघ्र आदिका मय आ जानेपर, बाण तथा अस्त्र मस्त्रके तिरनेपर,
 जंजीरोंसे बंध जानेपर, कारागृहमें बन्द हो जानेपर, किसीके कुपित होनेपर, अजिकी लपटमें पड़ जानेपर
 किसी कारण क्षेममें, जोकके समय, महामग्नम और बहामग्नमका निवारण करते समय इन सब समयोंमें
 इसका पाठ करना चाहिए । ऐसा करनेसे उसकी विजय होती है । भूर्जपत्रपर, जाल कपड़ेपर, रेशमी वस्त्रपर,
 तालपत्रपर ॥ २८-३२ ॥ त्रिगंघ्र मध्या स्याहसे लिख एवं पत्र, सप्त तथा त्रिलोहसे बनी तानीयमें
 रक्तकर हाथ, कमर, भुजा, कण्ठ या मस्तककपर जो मनुष्य इसे बाँधता है, उसकी सब कामनाएँ
 पूर्ण होती हैं । यह गमका कहा वचन कभी झूठ नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कभी भी पराजित नहीं
 होयेगा और रामसे पूजित है हनुमान्जी । मैं आपको प्रणाम करता हूँ । मैं जिस कामसे बाहर जा

तं वेदशास्त्रपरिनिष्ठितशुद्धबुद्धिं शर्मप्रदं सुसुनीन्द्रनुतं कपीन्द्रम् ।

कृष्णत्वचं कनकपिंगजटाकलापं व्यामं नमामि शिरसा तिलकं मुनीनाम् ॥३८॥

य इदं प्रातरुत्थाय पठेन कवचं सदा । आयुरारोग्यसंज्ञानैस्तस्य स्तव्यः स्तवो भवेत् ॥३९॥

एवं गिरीन्द्रजे श्रीमद्भुमत्कवचं शुभम् । त्वया पृष्टं मया प्रीत्या विस्तराद्विनिवेदितम् ॥४०॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिवमुखाच्छ्रुत्वा पार्वती कवचं शुभम् । हनूमतः सदा भक्त्या पयाठ तन्मनाः सदा ॥४१॥

एवं शिष्यं त्वयाऽप्यत्र यथा पृष्टं तथा मया हनुमत्कवचं चेदं तवाग्रे विनिवेदितम् ॥४२॥

इदं पूर्वं पठित्वा तु रामस्य कवचं ततः । पठनीयं नरैर्भक्त्या नैकमेव पठेत्कदा ॥४३॥

हनुमत्कवचं चात्र श्रीरामकवचं विना । ये पठन्ति नराश्चात्र पठनं नदृश्या भवेत् ॥४४॥

तस्मात्सर्वैः पठनीयं सर्वदा कवचद्वयम् । रामस्य वायुपुत्रस्य सद्भक्तैश्च विशेषतः ॥४५॥

इति हनुमत्कवचम्

अथ रामकवचम्

इदानीं रामकवचं शृणु शिष्य वदामि ते । परं गुह्यं पवित्रं च सर्ववाञ्छितपूर्कम् ॥४६॥

सुतीक्ष्णस्त्वैकदाऽगस्तिं प्रोवाच रहसि स्थितम् ।

भगवन् परमानन्द तत्त्वज्ञ करुणानिधे । गुणे त्वं मां वदस्वाद्य स्तोत्रं रामस्य पावनम् ॥४७॥

आजानुवाहमर्गविन्ददलायनाक्षमाजन्मशुद्धरमहाप्रसन्नप्रभादम् ।

श्यामं गृहीनशरचापमुद्गररूपं रामं सराममभिराममनुस्मरामि ॥४८॥

शृणु वक्ष्याम्यहं सर्वं सुतीक्ष्ण मुनिमत्तम । श्रीरामकवचं पुण्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥४९॥

रहस्य हैं, वह काम पूरा हो जाय ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर जो किसी दूसरे गौवको जाता है, वह कुशलपूर्वक अपना काम पूरा करके शोध लौटता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीके कहनेपर रावणके भ्राता विभीषण परम प्रसन्न हुए । उन्होंने रामके चरणोत्ती वन्दना की और सपरिवार अपनेको घन्य माना ॥ ३७ ॥ समस्त वेदों और शास्त्रोंमें जिनकी बुद्धि प्रविष्ट है, देवता तथा मुनिगण जिनकी वन्दना करते हैं, ऐसे शुभदाता हनुमान्जी और जिनके शरीरकी त्वचा कृष्णवर्णकी है, सुवर्णके समान पीली जिनकी जटा है, ऐसे मुनियोंके अग्रणी श्रोत्र्यासजीकी मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य सच्चे उठकर सदा इस कवचका पाठ करता है, उस आयुःआरोग्य और सन्तान आदि सब वस्तुयें प्राप्त हो जाती हैं और सब लोग उसकी स्तुति करने लग जाते हैं ॥ ३९ ॥ हे गिरीन्द्र ! जैसा तुमने प्रश्न किया, उसके अनुसार मैंने तुम्हें हनुमत्कवच बतलाया ॥ ४० ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! इस तरह शिवजीके मुखसे हनुमत्कवच सुनकर पार्वतीजीने उसी दिनसे तन्मयताके साथ उसका पाठ आरम्भ कर दिया ॥ ४१ ॥ जैसे तुमने पूछा, मैंने भी तुमको हनुमत्कवच कह सुनाया ॥ ४२ ॥ पहले इसका पाठ करके ही भक्तिपूर्वक श्रीरामकवचका पाठ करना चाहिये । अकेले किसी भी कवचका पाठ न करे ॥ ४३ ॥ जो लोग हनुमत्कवचका पाठ किये बिना रामकवचका पाठ करेंगे, उनका वह पाठ व्यर्थ हो जायगा ॥ ४४ ॥ इस लिये सब लोगोंको चाहिए कि सदा दोनों कवचोंका पाठ किया करें । रामके भक्त तो इस बातपर विशेष ध्यान रखें ॥ ४५ ॥ हे शिष्य ! अब तुमको रामकवच बतलाता हूँ । यह भी परम गोप्य, परम पवित्र और सब कामनाओंका पूर्ण करनेवाला कवच है ॥ ४६ ॥ एक बार सुतीक्ष्णने अपने गुरु अगस्त्यको एकांस्तमे देखकर कहा हे भगवन् ! हे परमानन्ददाता ! हे तत्त्वज्ञ ! हे करुणानिधे ! आज हमें श्रीरामचन्द्रजीका कोई पुनीत स्तोत्र सुनाइए ॥ ४७ ॥ अगस्त्यने कहा कि आजुपर्यन्त जिनकी बाहु हैं, कमलदलके समान जिनके विशाल नेत्र हैं, जन्मसे ही जिनका प्रसन्नमुख है, जिन्होंने वन्य और बाणको धारण कर शक्ता है, जिनका उदार स्व है, ऐसे अभिराम रामका मैं ध्यान करता हूँ ॥ ४८ ॥ हे मुनिसत्त-

अद्वैतानन्दचैतन्यशुद्धमत्त्वं कलक्षणः । बहिरतः सुतीक्ष्णात्र रामचन्द्रः प्रकाशते ॥५०॥
 तत्त्वविद्यार्थिनो नित्यं रमते चित्सुखात्मनि । इति रामपदेनामौ परब्रह्ममिधीयते ॥५१॥
 जय रामेति यन्मम कीर्तयन्नभिवर्णयेत् । मर्षपापैर्विनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥५२॥
 श्रीरामेति परं सर्वं तदेव परमं पदम् ।

तदेव तारकं विद्धि जन्ममृत्युमयापहम् । श्रीरामेति वदन् ब्रह्ममाश्रमाप्नोन्ममंशयम् ॥५३॥

अस्य श्रीरामकवचस्य अगस्त्यश्रुतिः अनुष्टुप्छन्दः मोतालक्ष्मणोपेतः श्रीरामचन्द्रो देवता

श्रीरामचन्द्रप्रसादमिद्वर्धय जपे विनियोगः ।

अथ ध्यातं प्रवक्ष्यामि सर्वाभीष्टफलप्रदम् । नीलजाम्बूनमकाशं विद्युद्गर्भाश्वरावृतम् ॥५४॥
 कोमलांगं विशालाक्षं युवानमतेसुन्दरम् । मोतामौमिविमहितं जटामुकुटधारिणम् ॥५५॥
 सासितूणधनुर्वाणपाणिं दानवमर्दनम् । सदा चोरभये राजभये शत्रुभये तथा ॥५६॥
 ध्यात्वा रघुरतिं युद्धे कालानलममप्रमम् । चीरकृष्णाजिनधरं मरुतोद्ध्वलितविग्रहम् ॥५७॥
 आकर्णाकुण्डमश्वकोदण्डभुजमण्डितम् । शणे गिदून् गवणादीर्घास्त्रमार्गणवृष्टिभिः ॥५८॥
 महरतं महावीरमुग्रमेद्रयन्धिनम् । लक्ष्मणाद्यैर्महार्च्यैर्वृत्तं हनुमदादिभिः ॥५९॥
 सुग्रीवाद्यैर्महावीरैः शैलशृङ्गकरोद्यतैः । वेगात्करालहंकारैर्भुम्भुकारमहारवैः ॥६०॥
 नदद्भिः परिवादद्भिः समरे रावण प्रति । श्रीराम शत्रुमघान्मेहन मर्दय स्वादय ॥६१॥
 भूतप्रेतपिशाचादीन् श्रीरामास्तु विनाशय । एवं ध्यात्वा जपेद्रामकवचं सिद्धिदायकम् ॥६२॥
 सुतीक्ष्णं वज्रकवचं मृणुं वक्ष्याम्यनुत्तमम् । श्रीरामः पातु मे सूर्ध्वं पूर्वं च रघुवंशजः ॥६३॥
 दक्षिणे मे रघुवरः पश्चिमं पातु पावनः । उत्तरे मे रघुपतिर्भाल दशरथात्मजः ॥६४॥

सुतीक्ष्ण ! सुनिष्ठ, मैं आज सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला रामकवच वतलाऊँगा ॥ ५१ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! इस संसारके बाह्य-भीतर सब स्थानोंमें मैं अद्वैत, आनन्दस्वरूप, शुद्ध और सत्त्वगुणमय रामचन्द्रजी प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ५० ॥ परमात्माके तत्त्वको जाननेको इच्छा रखनेवाले लोग जिसके चित्सुखमें आनन्द लूटते हैं, वे ही परब्रह्म 'राम' इस नामसे पुकारे जाते हैं ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य 'जय राम' इस मंत्रका कर्तन करता है, वह सब पापास छूटकर विष्णुभगवान्के परम पदको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ श्रीराम यह सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है यह परमपद है, यह मृत्यु-भय आदिको दूर कर देता है और श्रीराम कहता हुआ प्राणी परब्रह्मको प्राप्त होता है । इसमें कोई संशय नहीं है । विनियोगके बाद सब कामनाओंका पूर्ण करनेवाला ध्यान बतला रहा हूँ । जिनका नील मेघके समान श्याम शरीर है, जो बिजलीके समान चमकते हुए पीले वस्त्रको धारण किये हुए हैं, जिनके कोमल अङ्ग हैं, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, जो अतिशय सुन्दर और युवा हैं, जिनके साथ साता और लक्ष्मण विद्यमान हैं, जो जटामुकुट धारण किये हैं, तलवार, तरकस, धनुष-बाण हाथमें लिये हैं और जो दानवोंका संहार करते हैं । मनुष्यका चाहिए कि राजभय, चोरभय और मर्यामका भय आ जाय तो कालानलके समान क्रुद्ध रामचन्द्रजीका ध्यान करे । जो पीताम्बर तथा कृष्णमृगचर्म धारण किये हैं और धूलिसे जिनका शरीर घूसरित हो रहा है ॥ ५३-५७ ॥ कानसक जिन्होंने धनुषकी डारी खींच रखी है, सग्रीमभूमिमें रावण आदि राक्षसोंपर जो तीव्र बाणवृष्टि कर रहे हैं ॥ ५८ ॥ इन्द्रके रथपर बैठे जो महावीर शत्रुका संहार करनेमें लगे हुए हैं और जो लक्ष्मण हनुमान्जी आदि वीरोंसे घिरे हुए हैं ॥ ५९ ॥ जिनके साथ सुग्रीव आदि योद्धा हाथमें पाषाणखण्ड और बड़े-बड़े वृक्ष लिये शत्रुओंका संहार कर रहे हैं । ऐसे हैं राम । इसको धारो—इसको सा-जामो और भूत, प्रेत, पिशाच आदिको नष्ट कर दो । इस प्रकार रामचन्द्रजीका ध्यान करके सिद्धिदायक रामकवचका जप करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ अगस्त्यजी कहते हैं कि हे सुतीक्ष्ण ! मैं अतिशय उत्तम वज्रकवच कहता हूँ । श्रीराम मेरे मस्तक और पूर्व दिशाकी रक्षा करें । दक्षिणकी ओर रघुवर तथा

श्रुयोर्द्वादलद्वयामस्तयोर्मध्ये जनार्दनः । ओष्ठं मे पातु राजेंद्रो दृष्टौ राजीवलोचनः ॥६५॥
 घ्राणं मे पातु राजपिंगडं मे जानकीपतिः । कर्णमूले स्वरध्वंसी मालं मे रघुवल्लभः ॥६६॥
 जिह्वां मे वाक्पतिः पातु दन्तवन्त्यो रघूत्तमः । ओष्ठौ श्रीरामचन्द्रो मे मुखं पातु परात्परः ॥६७॥
 कंठं पातु जगद्वधः स्कन्धौ मे रावणांतकः । वक्षो मे पातु काकुत्स्थः पातु मे हृदयं हरिः ॥६८॥
 सर्वाण्यंगुलिपर्वाणि हस्तौ मे राक्षसांतकः । वक्षो मे पातु काकुत्स्थः पातु मे हृदयं हरिः ॥६९॥
 स्तनौ सीतापतिः पातु पार्श्वौ मे जगदीश्वरः । मध्यं मे पातु लक्ष्मीशो नाभिं मे रघुनायकः ॥७०॥
 कौसल्येयः कटिं पातु पृष्ठं दुर्गतिनाशनः । गुह्यं पातु हर्षाकेशः सन्धिनी सत्यविक्रमः ॥७१॥
 उरू शार्ङ्गधरः पातु जानुनी हनुमन्प्रियः । जंघे पातु जगद्वधार्पा पादौ मे ताटिकांतकः ॥७२॥
 सर्वांगं पातु मे विष्णुः सर्वसंधीननामयः । ज्ञानेन्द्रियाणि प्राणादीन्पातु मे मधुसूदनः ॥७३॥
 पातु श्रीरामभद्रो मे शब्दादीन्विषयानपि । द्विषदादीनि भूतानि मत्सवधीनि यानि च ॥७४॥
 जामदग्न्यमहादर्पदलनः पातु तानि मे । सौमित्रिपूर्वजः पातु वागादीर्नाद्रियाणि च ॥७५॥
 रोमांकुराण्यशेषाणि पातु सुग्रीवराज्यदः । बाहुमनोबुद्धयहंकारैर्होनाशनकृतानि च ॥७६॥
 जन्मान्तरे कृतार्नाह पापानि विविधानि च । तानि सर्वाणि दग्ध्वाशु हरकोदंडसूदनः ॥७७॥
 पातु मां सर्वतो रामः शार्ङ्गभाणधरः सदा इति श्रीरामचन्द्रस्य करच वचनममितम् ॥७८॥
 गुह्याद्गुह्यतमं दिव्यं सुतीक्ष्णं मुनिसत्तम । यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रवयेद्वा समाहितः ॥७९॥
 स याति परमं स्थानं रामचन्द्रप्रसादतः । महापातकयुक्तो वा गोघ्नो वा भ्रूणहा तथा ॥८०॥
 श्रीरामचन्द्रकवचपठनाल्लुब्धिमाप्नुयात् । ममहन्पारिधः पार्ष्ण्यते नात्र संशयः ॥८१॥

पश्चिमकी पावन (पवनपुत्र) रक्षा कर । ऊपरकी ओर रघुपति और ललाटकी दशरथारमज रक्षा करें । दूर्वादलके समान श्याम जनार्दन ओष्ठोके मध्यभागकी रक्षा करें, कानोंकी राजेन्द्र, आँखोंकी राजीवलोचन ॥ ६३-६५ ॥ नाककी राजपि, गंडस्थलकी जानकीपति, कर्णमूलकी स्वरध्वसी और रघुवल्लभ ललाटकी रक्षा करें ॥ ६६ ॥ उसी प्रकार जिह्वाकी रक्षा वाक्पति, दन्तवल्कीको रघूत्तम, दोनों होठों और मुखकी रक्षा परात्पर भगवान् कर ॥ ६७ ॥ कंठकी जगद्वध, दोनों कंधा रावणान्तक और मेरी दोनों भुजाओंकी रक्षा वालिको मारने-वाले घनुर्बाणधारी राम करें ॥ ६८ ॥ मेरी सब उँगलियों और दोनों हाथोंका रक्षा राक्षसान्तक, वक्षस्थलकी काकुत्स्थ और हरिभगवान् मेरे हृदयकी रक्षा कर ॥ ६९ ॥ दोनों स्तनोंकी सीतापति, पार्श्वभागकी जगदीश्वर, मध्यभागकी लक्ष्मीपति और नाभिकी श्रीरघुनायक रक्षा करें ॥ ७० ॥ कमरकी कौसल्येय, पीठकी दुर्गतिनाशन, गुप्तभागकी हर्षाकेश और सत्यविक्रम भगवान् हृद्भुजोंकी रक्षा करें ॥ ७१ ॥ शार्ङ्गधर भगवान् दोनों घुटनोंकी, हनुमान्जोके प्रिय दोनों जानुभागकी, जगद्वधार्पा दोनों जंघोंकी और ताडुकाका नाश करनेवाले भगवान् मेरे पैरोंकी रक्षा कर ॥ ७२ ॥ विष्णुभगवान् मेरे सब अङ्गोंका, अनामय मेरे शरीरकी, सन्धियोंकी और मधु-सूदन भगवान् मेरे प्राणादि तथा ज्ञानेन्द्रियोंकी रक्षा करें ॥ ७३ ॥ श्रीरामचन्द्र मेरे शब्दादि विषयोंकी रक्षा कर । मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने दो पैरके जन्तु (मनुष्य) हों, उनकी रक्षा महान् दर्पको नष्ट करनेवाले परशुराम भगवान् कर । सौमित्रिपूर्वज (राम) मेरी वाक् आदि इन्द्रियोंकी रक्षा कर ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ सुग्रीवकी राज्य देनेवाले श्रीरामचन्द्रजो मेरे सारे रोमकूपोंकी रक्षा करें । मन, बुद्धि, बहद्धार, ज्ञान एवं अज्ञानसे किये हुए इस जन्म तथा जन्म-न्तरके पातकोंका जलाकर भस्म करते हुए शिवजीका धनुष लोढ़नेवाले घनुर्बाणधारी श्रीराम मेरी सब ओर रक्षा कर । हूँ मुनिसत्तम सुतीक्ष्ण । यह ब्रह्मसदृश रामकवच गूढ़से भी गूढ़ है । जो प्राणी इसे पढ़ता, सुनता या दूसरोंकी सुनाता है, वह रामचन्द्रकी कृपासे परम धामकी प्राप्ति करता है । वह चाहे महापातकी, गोघाती या भ्रूणहत्याकारां ही क्यों न हो ॥ ७६-८० ॥ इस श्रीरामकवचका पाठ करनेसे प्राणा शुद्ध होकर ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे भी मुक्त हो जाता है । इसमें कोई संशय नहीं है ।

भोः सुतीक्ष्ण यथा पृष्टं त्वया मम पुरा शुभम् । तथा श्रीरामकवचं मया ते विनिवेदितम् ॥८२॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य त्वया पृष्टं श्रीरामकवचं वरम् । हनुमत्कवचं चापि तथा ते विनिवेदितम् ॥८३॥

वायुपुत्रस्य रामस्य कवचेऽत्र नरैर्भुवि । विना सीताकवचेन पठनीयं न वै कदा ॥८४॥

आदौ पठित्वा कवचं वायुपुत्रस्य धीमताः । पठनीयं ततः सीताकवचं सौख्यवर्द्धनम् ॥८५॥

ततः श्रीरामकवचं पठनीयं महत्तमम् । एवमेव हि संश्रय जपनीयास्तथाः क्रमात् ॥८६॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि सीतायाः कवचं शुभम् । तथान्यान्यपि वैदेह्याः स्तोत्रादीनि वदस्व तत् ॥८६॥

सीतायास्तोपद भूम्यां तत्सर्वं विस्तरेण च ।

श्रीमहादेव उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा रामदासोऽब्रवीद्वचः ॥८८॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे कवचद्वयवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

(सीताकवच आदिका निरूपण)

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि सीतायाः कवचं शुभम् । पुरा प्रोक्तं सुतीक्ष्णाय पृच्छते कुंभजन्मना ॥ १ ॥

एकदा कुंभजन्मान सुतीक्ष्णः प्राह वै मुनिः । रहः स्थितं गुरु दृष्ट्वा प्रणम्य भक्तिपूर्वकम् ॥ २ ॥

सुतीक्ष्ण उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि सीतायाः प्रीतिदानि हि ।

यानि स्तोत्राणि कर्माणि तानि त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

अगस्त्य उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । आदौ वक्ष्याम्यह रम्यं सीतायाः कवचं शुभम् ॥ ४ ॥

॥ ८१ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! जैसा तुमने मुझसे पूछा था, मैं श्रीरामकवच तुम्हें सुना दिया ॥ ८२ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! तुमने हमसे श्रीरामकवच और हनुमत्कवच पूछा था, मैं तुम्हें कह सुनाया ॥ ८३ ॥ रामकवच तथा हनुमत्कवचका पाठ सीताकवचके बिना न करना चाहिए ॥ ८४ ॥ पहले बुद्धिमान् वायुपुत्रके कवचका पाठ करके मुझ बढ़ानेवाले सीताकवचका पाठ करना चाहिए ॥ ८५ ॥ उसके बाद सर्वश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रकवचका पाठ करना चाहिए । इस तरह इन तीनों कवचोंका एक साथ पाठ करे ॥ ८६ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं सीताकवच तथा सीताके अन्यान्य स्तोत्रोंको सुनना चाहता हूँ, सो आप मुझसे कहिए ॥ ८७ ॥ जिससे सीताजी प्रसन्न हो सकें, वह सब स्तुतिपत्र विस्तारपूर्वक कहें । श्रीमहादेवजीने कहा कि इस प्रकार विष्णुदासकी बात सुनकर रामदास बोले ॥ ८८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे प० चतुर्दशः सर्गः ॥ १३ ॥

श्रीरामदास कहते लगे—हे शिष्य ! अब मैं सीताकवच बतलाता हूँ, जिसे अगस्त्यजीने सुतीक्ष्णसे कहा था ॥ १ ॥ एक बार जब कि अगस्त्यजी एकान्तमें बैठे थे, सुतीक्ष्णने आकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा—हे गुरो ! मैं सीताजीको प्रसन्न करनेवाले स्तोत्र और कवच सुनना चाहता हूँ । आप कृपा करें

या साताऽवनिस्तस्याऽथ सावत्याप केन संवाहता पद्माश्रनुपदेः सुता नलगता या मातुलुङ्गेज्जवा ।
या रत्ने लयम गता जन नर्था आवाह गतऽल या ना मृगलावता शशिमुखो मां पानु गमप्रिया ॥५॥

अस्य श्रीसीताकवचस्तोत्रसदस्य अक्षरकपि । श्रीमान्ता देवता । अनुष्टुप्छन्दः । रामोति
शोजम् । जनकजेने इति । अथ नजेने जीलकम् । पद्माक्षमुत्तम्यस्त्रम् । मातुलुङ्गेति कवचम् ।
मूलकासुरघातनीति मन्त्रः । श्रीसीतारमचन्द्राऽन्यदे मकलकामनामिदृशं जपे विनियोगः ।
अथ अंगलिन्यामः । ॐ ह्रीं नीतायै अगुष्टाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं गमार्यै तर्जनीभ्यां नमः । ॐ ह्रीं
जनकजायै मध्यमाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं अवनिजायै अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं पद्माक्षमुतायै
कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं मातुलुङ्गे कान्तलतापुष्टाभ्यां नमः ॥ एवं हृदयाद्यगन्ध्यामः कार्यः ।

अथ ध्यानम्

सीता कमलपत्राक्षी विश्वपुञ्जनमप्रभाम् । द्विभुजां सुकुमारोर्गां पीतकौशेयतामिनीम् ॥ ६ ॥
सिंहासने रामचन्द्रवामभागमिद्विता वराम् । नातालङ्कृरमंयुक्तां कुण्डलद्वयधाम्निनीम् ॥ ७ ॥
चूडाकणकेयूरश्रुतां पुगन्विताम् सीमते रश्मिचन्द्राभ्यां निटिले तिलकेन च ॥ ८ ॥
मयराभरणेनाप प्राणेशतेशोमिता शृणाम् हरिद्रां कज्जल दिव्य कुङ्कुमं कुसुमानि च ॥ ९ ॥
विश्वेशीं सुगमिद्रव्य सुगन्धस्नेहमुत्तमम् । स्मितातनां रोगवर्णां मदारकुसुमं करे ॥ १० ॥
विभ्रन्तीमपरं हस्ते मातुलुङ्गमनुत्तमम् । रम्यहासां च चिरोष्ठा चन्द्रादनलोचनाम् ॥ ११ ॥
कलानाथममानास्या कलकण्ठमनोग्गामम् । मातुलुङ्गेज्जवां देवी पद्माक्षदृढिनां शुभाम् ॥ १२ ॥
मैथिलीं रामदयितां दामोभिः पञ्चिजिताम् । एव ध्यात्वा जनहर्ता हेमकुम्भपरोधराम् ॥ १३ ॥
सीतायाः कवचं दिव्यं पठनीयं शुभावहम् ॥ १४ ॥

श्रीसीता पूर्वतः पातु दक्षिणेऽवनु जानकी । प्रताच्यां पातु वैदेही पानूदीच्यां च मैथिली ॥ १५ ॥
अधः पातु मातुलुङ्गी ऊर्ध्वं पद्माक्षजाऽवनु मध्येऽवनिमुता पातु सर्वतः पातु मां रमा ॥ १६ ॥

कहिए ॥ २ ॥ ३ ॥ अगस्त्यजान कहा-हूँ वाम । तुमन बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान होकर सुनो ।
पहले मैं सीताजीका कवच सुनाता हूँ । ४ ॥ जो सीता पृथ्वीसे उतरते हुई और भियल, नरेणक द्वारा पाली-
पासी गयी, जो मातुलुङ्गसे उतरते हुए पद्माक्ष नामक राजाकी पुत्री कहा गयी, जो समुद्रक रत्नोम सीत
हुई और बार बार लड़ा गयी, ऐसा चन्द्रवदनी, मृगवदनी और रामकी प्रेयसी सीता मेरी रक्षा करे ॥ ५ ॥
"अस्य श्री" से लेकर "एवं हृदयं च गन्ध्याम" यहाँ तक विनियोग तथा अङ्गन्यासका विधान बतलाया गया
है । इसके बाद ध्यान है । जिसका अर्थ इस प्रकार जानना चाहिए—कमलकी पखुडियोंके समान जिनके नेत्र
हैं, विश्वपुञ्जके समान जिनका दीर्घ है, जिनके दो भुजाएँ हैं और जो पताम्बर पहने हैं । जो सिंहासनपर
रामके वामभागमें बैठे हैं, कानोंमें कुण्डल पहने हैं, जूटमें चूडामणि भुजाओंमें केयूर तथा कमरमें करघनी
पहने हैं, जिनके समस्तभागमें मूर्ध् चन्द्रमाके समान आभूषण सुशोभित हो रह है, माथेमें तिलक लगा
हुआ है, नाकमें मूँदके आकारका सुन्दर आभूषण पड़ है ॥ ६-९ ॥ हरिद्रा, काजल, कुङ्कुम, विविध प्रकारके
फूल तथा तरह तरहके मुग्धपित द्रव्य और इत्र आदि गमक रहे हैं जिनका मूँदकता हुआ मुखमण्डल है,
गौर वर्ण है, जो एक हाथमें मन्दारके फूल धिये है, दूसरे हाथमें उत्तम मातुलुङ्ग विराजमान है, जिनकी मृदु
मुस्कान है, विश्वके समान ओष्ठ है, मृगके नेत्रोंके समान जिनके नेत्र हैं, चन्द्रमाके समान मुख है, कायल-
के समान जिनकी मटां वाणी है, जो मातुलुङ्ग (विजोरा नीलू) से उत्पन्न होनेवाली पद्माक्ष नृपतिकी
पुत्री और रामकी भविनी है, जिन्हें दक्षिणों पक्ष सज रही है, सुवर्णकलशके समान जिनके स्तन हैं, ऐसी
सीताका ध्यान करके इस दिव्य सीताकवचका पाठ करना चाहिए ॥ १०-१४ ॥ पूर्वकी ओर सीता मेरी रक्षा
करें, दक्षिणकी तरफ जानकी रक्षा करें, पश्चिमकी वैदेही रक्षा करें, उत्तरकी मैथिली रक्षा करें ॥ १५ ॥ निचन

स्मितानना शिरः पातु पातु भाल नृपान्मजा । पद्माऽवतु भ्रुवोर्मध्ये मृगशी नयनेऽवतु ॥१७॥
 कपोले कर्णमूले च पातु भीरामवह्नुमा । नागाग्र मण्डिकी पतु पातु वक्षसं तु राजनी ॥१८॥
 तामसी पातु मद्राणी पातु जिह्वां पतिव्रता । दन्तान् पातु सगमाग्र चिरुक कनकप्रभा ॥१९॥
 एतु कंठ सौम्यरूपा स्कंधौ पातु सुगचिता । भुजौ पातु वरगोदा कर्ण कवचमण्डिता ॥२०॥
 नखान् रक्तनखा पातु कुक्षौ पातु लघूदरा । वक्षः पातु रामकनी पार्श्वे गवल्मोहिनी ॥२१॥
 पृष्ठदेशे वह्निगुमाऽवतु मां सर्वदेव हि । दिव्यप्रदा पातु नाभिं कटिं लक्ष्ममोहिनी ॥२२॥
 गुह्यं पातु रत्नगुप्ता लिङ्गं पातु हरिप्रिया । ऊरु रक्षतु रंभेरुज्जानुना । प्ररभापिणी ॥२३॥
 जघे पातु सदा सुभ्रुगुल्फौ चामरवीजिता । पादौ लक्ष्मणा पातु पादगान्धिका कुशत्रिका ॥२४॥
 पादांगुलीः सदा पातु मम नृपुगनिःस्वना । गोमण्यवन मे निन्य पीतकीशेषवामिनी ॥२५॥
 रात्रौ पातु कालरूपा दिने दानैकतन्त्रा । सर्वकालेषु मां पातु मूलकामुखातिनी ॥२६॥
 एवं सुतीक्ष्ण सीतायाः कवचं ते महेष्टिम् । इदं प्रतः समुत्थाय स्नान्या निन्य पटेन यः ॥२७॥
 जानकीं पूजयित्वा च सर्वान्कामानवाप्नुयान् । धनार्थं प्राप्नुय इदं च पुत्रादीं पुत्रमाप्नुयाद् ॥२८॥
 स्त्रीकामार्थं शुभां नारी सुतार्थं मौल्यमवाप्नुयान् । अष्टवारं जपनीय सीतायाः काच पद ॥२९॥
 अष्टभ्यो विप्रवर्येभ्यो वरः प्रीत्याऽर्पयेन्मदा । फलपुष्पादिषादीनि यादि तानि पृथक् पृथक् ॥३०॥
 सीतायाः कवचं चेदं पुण्यं पानकनामम् । ये पठन्ति नरा सक्न्याते धन्या मानवा भुवि ॥३१॥
 पठति रामकवचं सीतायाः कवचं विना । तथा विना लक्ष्मणस्य कवचेन पृथा स्मृतम् ॥३२॥
 तस्मात्सदा नैर्जाप्यं काचानां चतुष्टयम् । आदौ तु वायुपुत्रस्य लक्ष्मणस्य ततः परम् ॥३३॥
 ततः पठेच्च सीतायाः भीरामस्य ततः परम् । एवं यदा जपनीयं कवचाणां चतुष्टयम् ॥३४॥

इति सीताकवचम् ।

भागकी मातुंगी, उपर पद्माक्षजा, मध्यभागकी अवन्तिमता और चरी और रमा रक्षा करें ॥ १६ ॥
 स्मितानना मुखकी, नृपान्मजा मस्तककी भीरोक बीचप पद्मा और मेरे ग्रीवकी मृगशी रक्षा कर ॥ १७ ॥
 श्रीरामचन्द्रजीकी त्रेपसा कपोल और कर्णमूला रक्षा करें ; सारिकी नामिकाक अवभागी, राजसी मुखकी,
 तामसी बाजीकी, पतिव्रता जिह्वाकी, मद्रमाया दोन रा, कनकप्रभा चिरुककी, सौम्यरूपा कण्ठकी सुरविता
 कवोका, वरगोदा बाहुका और कंठमण्डिता ह्रस्वकी रक्षा करें ॥ १८-२० ॥ रक्तनखा नाखूनोंकी, लघूदरा
 कुक्षिकी, रामकनी वक्षमण्डिकी, गवल्मोहिनी पार्श्वभागकी और वह्निगुप्ता सदा मेरे पृष्ठदेशकी रक्षा कर ।
 दिव्यप्रदा मेरी नाभिका और लक्ष्ममोहिनी कसरकी रक्षा करें ॥ २१ ॥ २२ ॥ रत्नगुप्ता गुह्यकी और हरिप्रिया
 लिङ्गकी रक्षा करें । रंभार मेरे दोनो पृष्ठनाकी और शिवभापिणी जानुभागकी रक्षा करें ॥ २३ ॥ सुभ्रु जाँघोंकी,
 चामरवीजिता गुल्फकी तथा कुण्डलिका शरीरके सब अङ्गोंकी रक्ष कर ॥ २४ ॥ नृपुगनि स्वना पैरकी त्रैलोक्यी-
 की और पीताम्बरधारिणी मेरे रामाकी रक्ष कर ॥ २५ ॥ रात्रिक समय कालरूपा, दिनकी दानैकतन्त्रा और
 सब समय मूलकामुखातिनी मेरी रक्षा करें ॥ २६ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! इस प्रकार मेने तुम्हें सीताकवच बतलाया ।
 जो प्राणी सबरे स्नानके बाद नित्य इसका पाठ करके जानकीजीका पूजा करता है, वह जरती सब इच्छाये
 पूर्ण कर लेता है । जनको बाहनेवाला धन और पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाला पुत्र पाता है ॥ २७ ॥ २८ ॥
 स्त्रीकी कामनावाला सुन्दरी स्त्री और मुख चाहनेवाला सौन्दर पाता है । उपासकको चाहिए कि सदा आठ
 बार सीताकवचका जप करे । आठ ब्राह्मणोंकी फलपुष्प आदि वस्तुयें पृथक्-पृथक् दान दे ॥ २९ ॥ ३० ॥
 यह सीताकवच बड़ा पवित्र और पापोंका नाशक है । जो लोग भक्तिपूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे
 प्राणी संसारमें धन्य हैं ॥ ३१ ॥ जो लोग सीता तथा लक्ष्मणकवचका पाठ करते हैं उनका वह पाठ व्यर्थ हो
 जाता है ॥ ३२ ॥ इसलिए लोगोंकी चाहिए कि सदा इन चारों कवचोंका पाठ करें । इसका क्रम इस प्रकार है-
 पहले हनुमन्जीका, फिर लक्ष्मणका, इसके बाद सीताका, तदनन्तर श्रीरामकवचका पाठ करना चाहिए

एवं सुनोष्ण सीतायाः कवचं ते मयेरितम् । जनः परं मृणुष्वान्पसीतायाः स्तोत्रमुत्तमम् ॥३५॥
यस्मिन्मष्टोत्तरशतं सीतानामानि सन्ति हि । अष्टोत्तरशतं सीतानाम्नां स्तोत्रमनुत्तमम् ॥३६॥
वे पठति नरान्मन्त्रं तेषां च सकृदो भवः । ते धन्या मानवा लोके ते वैकुण्ठं व्रजति हि ॥३७॥

अथ श्रीसीतानामष्टोत्तरशतमंत्रस्य अगतिश्चरितम् । अनुष्टुप् छन्दः । रमेति दीर्घम् ।
मातुलुंगीति शक्तिः । पद्माक्षजेति कीलकम् । अवनिजेत्यस्त्रम् । जनकजेति कवचम् । मूलकासुर-
मर्दिनीति परमो मन्त्रः । श्रीसीतारामचन्द्रप्रीत्यर्थं सकलकामनासिद्धयर्थं जपे विनियोगः ।
अथांगुलिन्यामः । ॐ सीतार्यै अंगुष्ठाय नमः । ॐ स्मार्यै तर्जनीभ्यां नमः । ॐ मातुलुंग्यै
मध्यमाभ्यां नमः । ॐ पद्माक्षजायै अनामिकाभ्यां नमः । ॐ अक्षनिजायै कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐ जनकजायै करतलकण्ठपुष्पाभ्यां नमः । अथ हृदयादिन्यामः । ॐ सीतार्यै हृदयाय नमः ।
ॐ स्मार्यै शिरसे स्वाहा । ॐ मातुलुंग्यै शिखायै वषट् । ॐ पद्माक्षजायै नेत्रत्राय वषट् ।
ॐ जनकान्मजायै अस्त्राय फट् । ॐ मूलकासुरमर्दिन्यै इति दिग्बधः ॥

अथ सीताष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रम् ।

वामांगे रघुनाकस्य रुचिरे या सस्थिता शोभना या विप्राधिपयानरम्यनयना या विप्रपालनना ।
विद्युत्पुञ्जविराजमानवमना भक्तादिमन्त्रण्डना श्रीमद्राघवपादपद्मयुगलन्यस्तेष्वना माऽवतु ॥३८॥
श्रीसीता जानकी देवी वैदेही राघवप्रिया । रमाऽवनिमुता रामा राक्षसान्तप्रकारिणी ॥३९॥
रत्नगुप्ता मातुलुंगी मैथिली भक्तोषदा । पद्माक्षजा कंजनेशा स्मितास्या नूपुरस्वना ॥४०॥
वैकुण्ठनिलया मा श्रीभुक्तिदा कामपूरणी । नृपात्मजा हेमवर्गा मृदुलांगी सुभाषिणी ॥४१॥
कुशाम्बिका दिव्यदा च लवमाता मनोहरा । हनुमद्वन्दितपदा मुग्धा केयूरधारिणी ॥४२॥
अशोकवनमध्यस्था रावणादिकमोहिनी । विमानसंस्थिता सुध्रुः सुकेशी रञ्जनान्विता ॥४३॥

॥ ३३ ॥ ३४ ॥ आस्त्यजो कहते हैं—हे सुनोष्ण ! इस तरह मैंने तुम्हें सीताकवच सुनाया । इसके अनन्तर
सीताजीका एक दूसरा स्तोत्र सुनाता हूँ ॥ ३५ ॥ जिसमें एक तो आठ साताके नाम गिनाये गये हैं । इसलिये
इसका नाम "सीताष्टोत्तरशतनाम" रखा गया है ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य इसका पाठ करते हैं, उनका जन्म
सफल हो जाता है । वे मनुष्य धन्य हैं और वे अन्तमें वैकुण्ठलोककी जाते हैं ॥ ३७ ॥ "अस्य श्री" यहाँसे
"मूलकासुरमर्दिने" यहाँ तक विनियोग तथा अगत्यास आदिका विधान बतलाया गया है ॥ अथ न्यामम् ॥
जो एक सुन्दर सिंहासनपर रामके वामांगमें बैठी है, पूरके नेत्रोंकी भाँति जिनके नेत्र हैं, जो चन्द्रवदनी हैं,
जो बिजलीके समझकी तरह दमकनेवाले कपड़े पहने हैं, जो अपने भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेमें कुछ भी बल
नहीं रखतीं, जिनके नेत्र श्रीरामचन्द्रजीके चरणमें लगे हुए हैं, वे सीता हमारी रक्षा कर ॥ ३८ ॥ अब यह
शतनाम चलता है । जैसे—(१) श्रीसीता, (२) जानकी (३) देवी, (४) वैदेही अर्थात् विदेह जनककी पुत्री,
(५) राघवप्रिया, (६) रमा, (७) अवनिमुता (पृथ्वीकी कन्या), (८) रामा, (९) राक्षसान्तप्रकारिणी (राक्षसों-
का नाश करनेवाली), (१०) रत्नगुप्ता, (११) मातुलुंगी (१२) मैथिली (१३) भक्तोषदा (भक्तोंको प्रसन्न
करनेवाली) (१४) पद्माक्षजा (पद्माक्षनामक राजाकी कन्या), (१५) कंजनेत्रा (कमलके समान नेत्रोंवाली),
(१६) स्मितास्या (जिनका मुस्कराता हुआ मुख है), (१७) नूपुरस्वना, (१८) वैकुण्ठनिलया (वैकुण्ठलोकमें
निवास करनेवाली) (१९) मा, (२०) श्री, (२१) भुक्तिदा (२२) कामपूरणी (अपने भक्तोंकी इच्छा पूरी
करनेवाली), (२३) नृपात्मजा, (२४) हेमवर्गा, (२५) मृदुलाङ्गी (जिनका कोमल अङ्ग है), (२६) सुभाषिणी,
॥ ३९-४१ ॥ (२७) कुशाम्बिका (कुशकी माता), (२८) दिव्या (संकसे लौटनेपर रामके हृदय बाह्य सुन्दर
वस्त्र धारण करनेवाली), (२९) लवमाता, (३०) मनोहरा, (३१) हनुमद्वन्दितपदा (हनुमान्जीमें जिनके चरणोंकी
बन्दना की थी), (३२) मुग्धा, (३३) केयूरधारिणी, (३४) अशोकवनमध्यस्था (अशोकवनमें निवास करनेवाली)

रजोरूपा सत्त्वरूपा तामसी बह्निवामिनी । हेममृगावक्तृचित्ता वाल्मीक्याश्रमवासिनी ॥४४॥
 पतिव्रता महामाया पीतकौशेयवामिनी । मृगनेत्रा च त्रिचोष्टी धनुर्विद्याविशारदा ॥४५॥
 सौम्यरूपा दशरथस्तुषा चामरवीजिता सुमेधादुहिता दिव्यरूपा त्रैलोक्यपालिनी ॥४६॥
 अन्नपूर्णा महालक्ष्मीर्धौर्लज्जा च सरस्वती । शान्तिः पुष्टिः क्षमा गौरी प्रभाऽप्योघ्यानिवामिनी ॥४७॥
 वसन्तशीतला गौरी स्नानमनुष्ठमानया रमाऽनाममद्रसंस्था हेमकंकणमण्डिता ॥४८॥
 सुरार्चिता धृतिः कान्तिः स्मृतिर्मेधा विभावरो । लघूदरा वरारोहा हेमकंकणमण्डिता ॥४९॥
 द्विजपत्न्यर्पितनिजभूषा राघवतोषिणी । श्रीरामसेवनरता रत्ननाटकधारिणी ॥५०॥
 रामवामांगसंस्था च राघवचन्द्रैकरजनी । सम्यूजलसक्रीडाकारिणी राममोहिनी ॥५१॥
 सुवर्णतुलिता पुण्या पुण्यकीर्तिः कलावती । कलकण्ठा कम्बुकण्ठा रभोरुर्गजगामिनी । ॥५२॥
 रामपितृमना रामवदिता रामवल्लभा । श्रीरामपदचिह्नांका रामरामेति भाषिणी ॥५३॥
 रामपर्यङ्कशयना रामाग्निसालिनी वरा । कामधेन्वससन्तुष्टा मातुर्गुणकरे धृता ॥५४॥
 दिव्यचन्दनसंस्था श्रीमूलकासुरमर्दिनी । अष्टोत्तरशतनाम्ना सीतायाः स्तोत्रमुत्तमम् ॥५५॥
 ये पठन्ति नरा भूम्यां ते धन्याः स्वर्गगामिनः । अष्टोत्तरशतनाम्नां सीतायाः स्तोत्रमुत्तमम् ॥५६॥
 जपनीयं प्रयत्नेन सर्वदा भक्तिपूर्वकम् । सति स्तोत्राण्यनेकानि पुण्यदानि महाति च ॥५७॥

(३५) रावणादिकमोहिनी, (३६) विमानमन्विता (३७) सुभ्रू (३८) मुकेशी, (३९) रजनान्विता, (४०) रजाम्बरा
 (४१) सत्त्वरूपा (४२) तामसी, (४३) बह्निवामिनी (अग्निम निवास करनेवाली), (४४) हेममृगा-
 सत्त्वचित्ता (सुवर्णक मृगमे जिनका मन आसक्त हो गया था) (४५) वाल्मीक्याश्रमवासिनी (वाल्मीकि ऋषिक
 आश्रममे निवास करनेवाली) ॥४२-४४॥ (४६) पतिव्रता, (४७) महामाया, (४८) पीतकौशेयवासिनी
 (रेशमी पीताम्बर धारण करनेवाला), (४९) मृगनेत्रा, (५०) त्रिचोष्टी, (५१) धनुर्विद्याविशारदा (धनु-
 विद्यामे निपुण) (५२) सौम्यरूपा (५३) दशरथस्तुषा (५४) चामरवीजिता, (५५) सुमेधादुहिता, (५६)
 दिव्यरूपा, (५७) त्रैलोक्यपालिनी, (५८) अन्नपूर्णा (५९) गौरी, (६०) क्षमा, (६१) प्रभा, (६२) अन्नदा-
 निवासिनी, (६३) वसन्तशीतला, (६४) गौरी (६५) स्नानम अनुष्ठमानया (वसन्त ऋतुमे शीतला गौरी
 व्रतके अवसरपर स्नान कामसे सन्तुष्ट होनेवाली) (६६) रमा (६७) रमा (६८) हेमकंकणमण्डिता, (६९)
 सुरार्चिता, (७०) धृति, (७१) कान्ति (७२) स्मृति, (७३) मेधा, (७४) विभावरो, (७५) लघूदरा,
 (७६) वरारोहा, (७७) हेमकंकणमण्डिता, ॥४८-४९॥ (८०) द्विजपत्न्यर्पितनिजभूषा (जिसने अपने सब
 आभूषण एक बाहुणीको दिय थे), (८१) राघवतोषिणी, (८२) श्रीरामसेवनरता, (८३) रत्ननाटक-
 धारिणी (रत्नके बने कण्ठक पहननेवाली), ॥५०॥ (८४) रामवामांगस्था, (८५) राघवचन्द्रैकरजनी,
 (८६) सम्यूजलसक्रीडाकारिणी (सम्यूजीके जलम बिहार करनेवाला), (८७) राममोहिनी, (८८) मरण-
 तुलिता, (८९) पुण्या (९०) पुण्यकीर्ति, (९१) कलावती, (९२) कलकण्ठा, (९३) कम्बुकण्ठा, (९४)
 रभोरु, (९५) गजगामिनी, (९६) रामपितृमना, (९७) रामवदिता, (९८) रामवल्लभा, (९९)
 श्रीरामपदचिह्नांका, जिनके हृदये श्री रामचन्द्रजीके चरणका चिह्न विद्यमान है, (१००) रामरामेतिभाषिणी
 (सदा राम राम कहनेवाली) (१०१) रामपर्यङ्कशयना, (१०२) रामाग्निसालिनी (रामके पैर घोंचनेवाली),
 (१०३) कामधेन्वससन्तुष्टा, (१०४) मातुर्गुणकरेवता, (१०५) दिव्यचन्दनसंस्था (मूलकासुरघातिनी
 (दिव्य चन्दनपर स्थित एवं मूलकासुरका नाश करनेवाली) ये एक ही आठ सीताजीके नाम बड़े
 पुण्यदायी हैं ॥ ५१-५५ ॥ जो लोग इस अष्टोत्तरशतनामका पाठ करते हैं, वे धन्य और स्वर्गगमा
 होते हैं । यह स्तोत्र सर्वोत्तम है ॥ ५६ ॥ इसलिए लोगोंको चाहिए कि सदा भक्तिपूर्वक इसका पठ
 किया करें । यद्यपि बहुतसे बड़े-बड़े और-और पुण्यदायक स्तोत्र हैं, किन्तु हे भूपुर ! वे सब इसके

नानेन सदृशानीह तानि सर्वाणि भूपुर । स्तोत्राणामुत्तमं चेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं तृणाम् ॥५८॥
 एवं सुतीक्ष्ण ते प्रोक्तमष्टोत्तरशतं शुभम् । सीतानाम्नां पुण्यदं च श्रवणान्मंगलप्रदम् ॥५९॥
 नरैः प्रातः समुत्थाय पठितव्यं प्रयत्नतः । सीतापूजनकालेऽपि सर्वत्रांछितदायकम् ॥६०॥
 अन्यत्सीतातोषदानि व्रतादीनि महांति च । यानि सन्यस्य ते शिष्य तानि सन्यस्यदाम्यहम् ॥६१॥
 नारीभिस्तु सदा कार्यं सीतायास्तुष्टिहेतवे । वसन्तशीतलागौरीस्नानं तीर्थं तु तत्कृते ॥६२॥
 यत्र सीताकृतं तीर्थं राधातीर्थं न वर्तते । तथा लक्ष्म्याश्च गौरीश्च सरस्वत्यादियोषिताम् ॥६३॥
 तीर्थेषु च सदा कार्यं सदभावे नदीषु च । यत्र यत्र रामतीर्थं तद्वामे जानकीकृतम् ॥६४॥
 होय तीर्थं तु सर्वत्र नैक होयं तु राधावम् । वसन्तशीतलागौरीस्नानं सीतायवर्द्धनम् ॥६५॥
 न कुर्वरेयं यः नायः स्नानं ताः समजन्मम् । भवन्ति विधवास्तस्मान्मदा स्नानं समाचरेत् ॥६६॥

सुतीक्ष्ण उवाच

भो गुरो शीतलागौरीस्नानव्योद्यापनं कथम् । स्त्रीभिः कार्यं वदस्वाद्य सविस्तारं शुभावहम् ॥६७॥

अर्नास्तिस्वाद्य

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सुतीक्ष्ण शृणु मादम् । चैत्रमासे मिते स्त्रीभिस्तृतीयायाः सदाऽत्र वै ॥६८॥
 कार्यं तु शीतलागौरीस्नानं त्रिशद्दिनानि हि वैशाखस्य मिते पक्षे द्वितीयायामुपोष्य च ॥६९॥
 स्त्रीभिश्च विधिना कार्यं निश्चयामधिरामनम् । पूजयेच्च प्रकर्तव्यं मण्डपादिकमुत्तमम् ॥७०॥
 तत्र रमानाममदमष्टोत्तरसहस्रकम् अथवाऽष्टोत्तरशतं सूक्ष्माप्यन्यानि वा क्रमान् ॥७१॥
 स्थापनीयं मन्थदेशे तन्मध्ये पङ्कजोपरि । धान्यराशौ तोयपूर्णः स्थापनीयो घटः शुभः ॥७२॥
 तन्मुखे ताम्रपात्रं च स्थापनीयं तु विस्तृतम् । आच्छाद्य पात्रं कीशयन्त्रेण तन्मनोरमम् ॥७३॥
 तस्मिन्सीतारामयोश्च द्वे मूर्ती स्वमनिर्मिते स्थापनीये पूजनीये षोडशैरुपचारकैः ॥७४॥
 नवमाषात्मको रामः सीताऽष्टमायनिर्मिता । निजशक्त्याऽथवा कार्ये द्वे मूर्ती रजतस्य वा ॥७५॥

भरावर नहीं हो सकते । यह स्तोत्र सब स्तुतियोंमें उत्तम तथा भुक्ति-मुक्तिदायक है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥
 हे सुतीक्ष्ण ! इस तरह मैं तुमसे सीताजीका अष्टोत्तरशतनाम कहा, जो पुण्यदायक और सुननेसे
 मङ्गलदायी है ॥ ५९ ॥ लोगोंका चाहिये कि राज सबरे उठकर और सीताका पूजन करके अवश्य
 इसका पाठ करें । ऐसा करनेसे उनकी कामनाय पूर्ण हो जायगी, इसके अतिरिक्त और भी बहुतसे ऐसे व्रत
 आदि हैं, जिनसे सीताजी प्रसन्न हो सकती हैं । हे शिष्य ! उन्हें आज मैं बतलाया हूँ । ॥ ६० ॥ ६१ ॥ सीताजी-
 की प्रसन्न करनेके लिए स्त्रियोंका चाहिए कि मन्थके द्वारा स्थापित किमी भी तीर्थमें जाकर शीतलागौरीका
 व्रत कर ॥ ६२ ॥ यदि अस-वाम कोई सीताजीके न हो तो लक्ष्मी, गौरी तथा सरस्वती आदि किसी भी
 देवीके तीर्थमें उक्त व्रत करें । यदि वह भी न हो तो किसी नदीके तटपर जाकर व्रत करें । जहाँ-जहाँ
 रामतीर्थ है, उसके वामभागमें सीतानीय अवश्य रहता है । कहींपर भी अकेला रामतीर्थ नहीं रहता ।
 वसन्तशीतला गौरी नामक व्रत स्त्रियोंका सीमाव्यवधान है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ जो स्त्रियाँ इस व्रतकी नहीं करती,
 वे सात जन्म तक तट विधवा रहकर जीवन बिताती हैं । इससे स्त्रियोंको सदा शीतलागौरीका स्नान करना
 चाहिए ॥ ६६ ॥ सुतीक्ष्णने कहा-हे गुरो ! इस शीतला गौरीका स्नान करनेके अनन्तर इसका उद्यापन कैसे
 करना चाहिए । सो मुझे आप विस्तारपूर्वक बताइए ॥ ६७ ॥ अगस्त्यजीने कहा-हे शिष्य सुतीक्ष्ण !
 तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, मुने । चैत्रशुक्ल तृतीयासे लेकर तीस दिनतक शीतलागौरीका स्नान करके
 और वैशाख शुक्ल द्वितीयाको उपवास करके रात्रिक समय पूर्वोक्त विधिके अनुसार मण्डप आदि बनावे
 ॥ ६८-७० ॥ उसमें अष्टोत्तरसहस्रात्मक रमानामतोम्र अष्टोत्तरशतारमक या और कम संख्याका म्र
 बनाकर उसके मध्यमें कमलपर धान्यराशि रखकर जलसे भरा घट स्थापित करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ कलशके
 मुखपर एक बड़ा-सा ताम्रपात्र रखे और उसको रेशमी वस्त्रसे ढाँक दे ॥ ७३ ॥ उसपर सुवर्णकी बनी हुई सीता

गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यवस्त्रादिकम् । सर्वं पृथगष्टविधं जानक्यै तु निवेदयेत् ॥७६॥
 ततः स्त्रीणां वायनानि वस्त्रालंकारवस्तुभिः । कुकुमादिपूतितानि देयानि विविधानि च ॥७७॥
 देयानि कांस्यपात्राणि पक्वाक्षपूरितानि च । त्रयस्त्रिंशत्तथा वाऽष्टौ स्त्रीभिर्देयानि शक्तितः ॥७८॥
 त्रयस्त्रिंशच्च युग्मानि भोजयेच्च प्रयत्नतः । अथवाऽष्टौ यथाशक्त्या भोजनीयानि पट्टसैः ॥७९॥
 रात्रौ जागरणं कार्यं गातवाद्यादिगलैः । प्रातःकाले तृतीयायां स्नान्वा सम्पूज्य जानकीम् ८० ।
 होमश्चापि प्रकर्तव्यः भीतामन्त्रेण यत्नाः । तिलाज्यैः पायमेश्वारि सहस्राण्यष्टभूसुरैः ॥८१॥
 मुद्रहीनं नवान्नं च ज्ञेयमष्टाक्षमुत्तमम् । तन्मीनातोषदं ज्ञेयं तेन वा जुहुयात्सुखम् ॥८२॥
 ततः स्वयं सुहृन्मित्रैर्मन्त्रित्वं च यथानुबन्धम् । एवमुद्यापनविधिस्तथाग्रं विनिवेदितः ॥८३॥

श्रीरामदास उवाच

अगस्तिना सुनीदृणाय यदिदं कथितं पुरा । उत्पन्नं च त्वया पृष्टं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥८४॥

त्रिष्णुदास उवाच

कथं रमानामभद्रं कार्यं स्त्रीभिः प्रपूजने । तत्सर्वं विस्तरेणाय कथयस्व ममाग्रतः ॥८५॥

श्रीरामदास उवाच

यथा शोक्तं मया शिष्य रामतोभद्रमुत्तमम् । कार्यं रमानामभद्रं तथैव सकलं शुभम् ॥८६॥
 किञ्चिद्विशेषस्तथास्मिन् ननुभ्य कथयाम्यहम् । लिङ्गस्थलेषु कर्तव्या वापिकार्थैश्च पूर्ववत् ॥८७॥
 मुद्रायामेव किञ्चित्च विशेषोऽस्ति शृणुष्व तत् । नकारश्च मकारश्च पूर्ववद्भवेदधः ॥८८॥
 ऊर्ध्वं रमेत्यक्षरे इ रचनीये तु पूर्ववत् । एवं कृत्वा रमानाम श्वेतवर्णं निरीक्षयेत् ॥८९॥
 एतद्रमानामभद्रं देवानां पूजनादिषु । नानाकर्मसु सर्वेषु कर्तव्यं च प्रयत्नतः ॥९०॥
 विना रमानामभद्राद्यानि देव्याः कृतानि हि । पूजनादीनि कर्माणि तानि ज्ञेयानि मानवैः ॥९१॥

और रामकी दो मूर्ति रक्व और पाटशाप-चारस उनका पूजा करे ॥ ७४ ॥ मूर्तियोंमें नौ मास सुवर्णसे रामकी और आठ मासे सुवर्णसे सीताकी मूर्ति बनवावे । यदि ऐसा न हो सके तो अपनी शक्तिके अनुसार चाँदी की दो प्रतिमाये बनवा ले ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा आठ प्रकारके वस्त्र आदि सीताका अर्पण करे ॥ ७६ ॥ इसके बाद वस्त्र-अलंकार आदि वस्तुय तथा कुमकुम आदिके साथ विविध प्रकारके वायन दे ॥ ७७ ॥ तदनन्तर तरह-तरहके पक्वानसे भरकर तैलीस, आठ अथवा तीन कांस्यपात्र अर्पण करे ॥ ७८ ॥ इसके बाद तैलीस ब्राह्मणदम्पती, आठ ब्राह्मण अथवा जैसी अपनी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार ब्राह्मणदम्पतीको भोजन करावे ॥ ७९ ॥ रात्रिमें गीत वाद्य आदि मङ्गलमय कार्य करता हुआ जागरण करे । तृतीयाका प्रातःकाल स्नान करके जानकीजीका पूजन करे और तिरु, घो तथा क्षीरसे आठ ब्राह्मणोंके साथ सीतामन्त्रस होम करे ॥ ८० ॥ ८१ । मूर्गको छोड़कर अन्य नौ प्रकारके बज्र सीताजीको बहुत प्रिय है यदि हो सक तो जम्होम हवन करे ॥ ८२ ॥ इसके बाद अपने हित मित्रादिके साथ सुखपूर्वक भोजन करे । इस तरह उद्यापनविधि मैंने तुमसे कही ॥ ८३ ॥ श्रीरामदासने कहा-तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने यह सब बातें कह दीं, जो सुनीदृगकी अगस्त्यजीने बतलायी थीं ॥ ८४ ॥ त्रिष्णुदासने कहा कि जब स्त्रियाँ पूजन करने लगे तो रमानामक भद्रकी रचना किस प्रकार कर । यह आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए ॥ ८५ ॥ श्रीरामदासने कहा-पहले मैंने जो रमतोभद्र रचनाकी विधि बताया है, ठीक उसी तरह रमानामतोभद्रकी भी रचना होगी ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ इसकी मूद्राम आड़ीसो विशेषता है । सो मैं तुमको बताये देता हूँ, सुनो । चाकार और मकार ये दोनों पहलेकी ही तरह निचने भागमें बनावे ॥ ८८ ॥ ऊपर रमा इन दो अक्षरोंकी भी पहले ही की तरह रचना करे । ऐसा कर लेवेके बाद रमा इस नामकी भद्रके इवेत भागमें उभड़ा देखे ॥ ८९ ॥ देवी आदिकी पूजाके अवसरपर अथवा औरऔर प्रकारके शुभ कर्मोंमें प्रयत्न करके इस रमानामतोभद्र

अकृतान्यत्र तस्माद्वि कर्तव्यं यत्नतस्त्विदम् । कृता रमानामभद्रं या पूजा मानवैर्भुवि ॥९२॥
 सा देव्यै तोषदा ज्ञेया तस्मान्कार्या प्रयत्नतः । पूर्वोक्तानि दैवतानि तान्येवात्र विचिन्तयेत् ॥९३॥
 आवाहयेच्च मुद्रायां जानकीं रघुनन्दनम् । अन्यच्छृणुष्व भी शिष्य सीतारामप्रपूजने ॥९४॥
 रमानामतोभद्रं च कार्यं वा मानवैर्भुवि । तच्चापि पूर्वोक्तसर्वं कर्तव्यं मानवैर्भिया ॥९५॥
 इदं सीतारामयोश्च पूजनार्थं प्रकल्पयेत् रामनाम्ना रमानाम्ना इदं भद्रं महत्तमम् ॥९६॥
 यत्र द्वयोर्नामनी च रमा रामेति चोत्तमे । रमागमतो भद्रं च तस्माच्छ्रेष्ठं प्रकाशयेत् ॥९७॥
 रमानोऽमान्येव दैवान्यत्र विचिन्तयेत् । एवं शिष्य त्वया पृष्टं यद्यत्तत्तन्मयोदितम् ॥९८॥

का तेऽन्यास्ति स्पृहा श्रोतुं वदतां तद्वदाम्यहम् ।

विष्णुदास उवाच

कवचं लक्ष्मणस्यापि पठनीयमिति स्मृतम् ॥९९॥

पुरा गुरो न्वया तच्च मां वदस्व भविस्तरात् । भरतस्यापि कवचं शत्रुघ्नस्य तथा वद ॥१००॥

श्रीरामदास उवाच

एवमेव सुतीक्ष्णेन पृष्टं च कुंभजन्मना । पुरा तद्विस्तरेणाद्य तवाग्रे कथयाम्यहम् ॥१०१॥

सुतीक्ष्ण उवाच

गुरो न्वया पुरा प्रोक्तं कवचं लक्ष्मणस्य च । पठनीयं जर्तश्चेति तन्मामद्य प्रकाशय ॥१०२॥

भरतस्यापि कवचं शत्रुघ्नस्य तथा वद ।

अगस्त्युवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । आदौ सौमित्रिकवचं कथयतेऽद्य मया शुभम् ॥१०३॥

इति श्रीमहात्माकोटिरामचरितस्तोत्रगतं श्रीः आनन्दरामायणे वात्सीकीये मनोहरकाण्डे

सीतारामकवचादिनिर्माणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

की रचना करे ॥ ९० ॥ बिता रमानामतोभद्रक दवापूजन आदि जितना भी कृत्य किया जाता है, वह सब व्यर्थ हो जाया करता है । अतएव रमानामतोभद्रकी स्थापना अवश्य करनी चाहिये । रमानामतोभद्र-में लगाने जो पूजन आदि करते हैं, वह सफल होता है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ उससे देवी प्रसन्न होती हैं । इस कारण यत्नपूर्वक ऐसा करना चाहिए । पूर्वमें जितने देवता वह आये हैं, वे सब इस भद्रमें भी रहेंगे ॥ ९३ ॥ हाँ, यह बात अवश्य है कि इस भद्रमें राम और सोनाका आवाहन करे । हे शिष्य ! सीतारामके पूजनके विषयमें और भी कुछ विशेष बातें हैं । उन्हें कहता हूँ मनो ॥ ९४ ॥ कोई भी पूजन करते समय रमानाम-तोभद्रकी स्थापना अवश्य करे । उस भद्रमें पूर्वोक्त रीतिके अनुसार ही सब बातें रहनी ॥ ९५ ॥ सीता और रामकी पूजाके निमित्त इसकी स्थापना की जाती है और केवल रमानामतोभद्र अथवा केवल रामतोभद्रसे यह भद्र श्रेष्ठ है ॥ ९६ ॥ इस भद्रमें रमा और राम इन दोनोंके नाम आ जाते हैं । इसीलिए यह भद्र सर्वश्रेष्ठ माना गया है ॥ ९७ ॥ रामतोभद्रमें कहे हुए हो देवता इस भद्रमें रहेंगे इस तरह हे शिष्य ! तुमने हमसे जो पूछा, वह मैंने तुमसे कहा ॥ ९८ ॥ अब वया सुननेकी इच्छा है सा बताओ, मैं कहूँ । विष्णुदास बोले- आपने कहा था कि लक्ष्मणके कवचका भी पाठ करना चाहिए । तो उसे भी बताइए ॥ ९९ ॥ श्रीरामदास- मैं कहूँ कि इसी तरह सुतीक्ष्णने भी अगस्त्यजीसे प्रश्न किया था । तो उन्होंने सुतीक्ष्णमें जो कुछ कहा था, वही मैं तुमसे कह रहा हूँ ॥ १०० ॥ सुतीक्ष्णने कहा-हे गुरो ! आपने एक बार हमसे कहा था कि लोगोंकी लक्ष्मणकवचका भी पाठ करना चाहिए । तो कृपा करके आप हमें लक्ष्मणकवच बताइए । उसके साथ साथ भरत तथा शत्रुघ्नकवच भी बतला दीजिए । अगस्त्यने कहा-हे वत्स ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है । सावधान होकर सुनो । पहले मैं लक्ष्मणकवचका ही वर्णन कर रहा हूँ ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे प० रामतेजपाण्डेयविरचितेऽथोत्तनाभाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः

(लक्ष्मण-भजन तथा शत्रुघ्नकवच)

सौमित्रिं रघुनाथकस्य चरणद्वेक्षणं यामलं विभ्रन्तं स्वकरेण रामशिरसि छत्रं विनिर्जं दम् ।
 विभ्रन्तं रघुनाथकस्य सुगहन्तीदं डवाकापने न वंदे कमलेक्षणं जनकजगकये मया तत्परम् ॥ १ ॥
 ॐ अस्य श्रीलक्ष्मणकवचमन्त्रम् । अगस्त्यश्रुतिः । अनुष्टुप्छंदः । श्रीलक्ष्मणो देवता ।
 शेष इति बीजम् । सुमित्रानंदन इति शक्तिः । रामानुज इति कीलकम् । रामदास इत्युत्तमम् ।
 रघुवंशज इति कवचम् । सौमित्रिणि मन्त्रः । श्रीलक्ष्मणप्रान्वयं सकलमनोऽभिलषितमिदं यथै जपे
 विनियोगः । अथांगुलिन्यामः । ॐ लक्ष्मणाय अमुष्ठाभ्यां नमः । ॐ शेषाय तर्जनाभ्यां नमः ।
 ॐ सुमित्रानंदनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ रामानुजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ रामदासाय
 कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ रघुवंशजाय कर्णलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयाश्रयन्यामः ।
 ॐ लक्ष्मणाय हृदयाय नमः । ॐ शेषाय शिरसे स्वाहा । ॐ सौमित्राय शिरस्यै वषट् । रामा-
 नुजाय कवचाय हुम् । रामदासाय नेत्रत्रयाय वीषट् । रघुवंशजाय प्रस्त्राय फट् ।
 ॐ सौमित्रये इति दिग्बन्धः ।

अथ सप्तार्च लक्ष्मणकवचम्

रामपृष्ठस्थितं रम्यं रत्नकुंडलधारिणम् । नीलोत्पलदलदयामं रत्नकंकणमडितम् ॥ २ ॥
 रामस्य मस्तके दिव्यं विभ्रन्तं छत्रमुत्तमम् । वीरं पीतांबरधरं मुकुटेनानिशोभितम् ॥ ३ ॥
 तूणीरे कर्मुके चापि विभ्रन्तं च स्मिताननम् । रत्नमालाधरं दिव्यं पुष्पमालाविराजितम् ॥ ४ ॥
 एवं ध्यात्वा लक्ष्मणं च रत्नचन्द्रस्तलीचन्द्रम् । कवचं जपयितुं हि ततो भक्त्याऽत्र मानवैः ॥ ५ ॥
 लक्ष्मणः पातु मे पूर्वं दक्षिणे राघवानुजः । प्रोक्ष्यां पातु सौमित्रिः पातुदोक्ष्यां रघूत्तमः ॥ ६ ॥
 अधः पातु मदभीरुधोर्वं पातु नृपात्मजः । मध्ये पातु रामदासः सर्वतः सत्यपालकः ॥ ७ ॥
 स्मिताननः शिरः पातु भाल पातुसिंहासनः । श्रुकोर्मध्ये धनुर्धारी सुमित्रानंदनोऽक्षिणी ॥ ८ ॥
 कपोले राममन्त्री च सर्वदा पातु वै नमः । क्षणमूले सदा पातु कवचध्वजखडगः ॥ ९ ॥

अगस्त्यजीने कहा—मैं उस लक्ष्मणजीको बनरना करता हूँ, जो सदा रघुनाथजीके दोनों चरणकमल देखा करते हैं, जो अपने हाथसे रामचन्द्रजीके शिरपर छत्रकी छाया किये रहते हैं । जो कंधेपर रामचन्द्रजीका शत्रुघ्न धारण किये रहते हैं । जो सर्वदा जानकीजीकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर रहते हैं और कमलके समान जिनको आते हैं ॥ १ ॥ "अस्य श्री" से लेकर ॐ सौमित्रये इति दिग्बन्धः" यहां तक विनियोग और अंगन्यासकी विधि बतलायी गयी है । उनके अगले लक्ष्मणजीका ध्यान है—जो रामचन्द्रजीके पाले बैठे हैं, जिनका मनोहर स्वरूप है, रत्नजटित कुण्डल जिनके कानोंमें झूल रहे हैं, नील कमलके समान जिनके मुखका आभा है और जिनके हाथोंमें रत्नचन्द्रित कवच पड़े हैं ॥ २ ॥ और लक्ष्मण रामके ऊपर दिव्य छत्र लगाये हुए हैं, सुन्दर पीताम्बर धारण हैं और मुकुटमें जो अतिशय शोभायमान दीख रहे हैं ॥ ३ ॥ जो तूणीर तथा शत्रुघ्न धारण किये हैं, मुस्कगता हृत्वा जिनका मुखान्वित है, रत्नकी माला जिनके गलेमें पड़ी है, जिनका दिव्य वेष है और जो फूलोंकी माला गेसे और भी सुन्दर दीख रहे हैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीपर दृष्टि लगाये लक्ष्मणजीका ध्यान करके लोगोंको चाहिए कि भक्तिपूर्वक लक्ष्मणकवचका पाठ करें ॥ ५ ॥ लक्ष्मणजी भेरे पूर्वभागकी रक्षा करें और दक्षिणभागमें राघवानुज पश्चिम ओर सौमित्र तथा उत्तर भागकी रघूत्तम रक्षा करें ॥ ६ ॥ विचित्र भागमें रघुवीर, ऊपर नृपात्मज, मध्यमें रामदास और चारों ओर सत्यपालक रक्षा करें ॥ ७ ॥ शिरकी स्मिता-

नामाग्र मे मदा पतु मुमित्रान्दवर्द्धनः । रात्र्यभ्यक्षेणः पतु मदा मेऽत्र मुख धुवि ॥१०॥
 सीतावाक्यकरः पतु मम वाणी मदाऽत्र हि । मौम्यरूपः पतु जिह्वामननः गाम् मे द्वि तान् ॥११॥
 चिबुक पतु रक्षोघ्नः कटु पान्मुगार्त्तनः । स्मर्यो पतु त्रितगमिर्भुवो पङ्कजलाननः ॥१२॥
 कर्ण ककलधारी च चदान रक्तनयोजन । तृप्ति पतु त्रिनिद्रो मे वक्षः पतु त्रिनेन्द्रियः ॥१३॥
 पार्श्व रात्र्यपुटस्थः पृष्ठदेश मनोरमः । नाभि गर्भाग्नभिन्नु कटि च हृष्यमेखलः ॥१४॥
 गुह्य पतु महामध्यः शतु लिङ्ग हरप्रियः । ऊरु पतु विष्णुवन्द्यः सुमुखाऽग्नौ जनुनी ॥१५॥
 नामोद्रः पतु मे जय मुक्ता नूरुशान्मम । पादावगदातोऽव्यान् पश्यगानि सुलोचनः ॥१६॥
 चित्रकेतुपिना पतु मम पादांगुलीः मदा रोमाणि मे मदा पतु त्रिविंशममृद्रवः ॥१७॥
 दशमधसुतः पतु निशाया मम तादरन् । भृगोलधारा मां पतु दिग्मे दिवसे मदा ॥१८॥
 सर्वकालेषु मामिद्रजिह्वाऽत्रन् सर्वदा । एव ममित्रिकवच सुशोभन कथितं मया ॥१९॥
 इदं प्रातः समुत्थाय मे पठन्वन्न मानवः । ते धन्यामानवा लाके नपां च मफलो भवः ॥२०॥
 ममित्रेः कवचम्यास्य पठनात्तिशयेन हि । पुत्रार्थं कर्मो पुत्रान् धनार्थं धनमाप्नुयान् ॥२१॥
 पर्नीकामो लमेन्पह्ना गोधनार्थं तु गोधनम् । धान्यार्थं प्राप्नुयाद्वान्य रात्र्यार्थां रात्र्यमाप्नुयात् ॥२२॥
 पठित रामकवचं ममित्रिकवच विना । घृतेन दीनो नैवयन्नेद दत्ता न भवत्यः ॥२३॥
 केवलं रामकवचं पठित मानवीर्यदि तत्पाठे । सुनन्दन न मरिच्युनदनः ॥२४॥
 अतः प्रयत्नतश्चेद् राममित्रिकवचं नरः । पठनीयं सर्वदा पश्येत्तिशदा रक्षेत् ॥२५॥

नन, ललाटका उमितायव, भोमो वाचने अनुवागे और अखोकी मुमित्र नमस्त रक्षा कर ॥ १० ॥ कपोलकी
 रात्र्यभ्यक्षेणः सुदा रक्षा करत ॥ और कानोकी जहने भवम्बका मुताकी रण्डन करनवाले लक्ष्मणजी रक्षा
 करत ॥ ११ ॥ मुमित्रया आनन्द बड्ढावान मरी गाम्-र अग्रमणकी रक्षा करे । रात्रका अत्र निहृरत
 हुए लक्ष्मण सवेदा मर मुखकी रक्षा कर ॥ १० ॥ सीता । आजका पठन कानेवाले लक्ष्मणजी सर्वदा मेरी
 वाणीकी रक्षा कर । सोम्यरक्षारी जिह्वक, तथा प्रनन्वपत्र रो लक्ष्मण मेरे दातीकी रक्षा करे ॥ ११ ॥
 राक्षसाके बधकारी मर चिबुककी रक्षा कर अगुर्वा पदगाम करवाने पण्डकी रक्षा करे, शशुकी जीतने-
 वाले मेरे कन्धाकी रक्षा कर और कमल सरीखे रक्षाग लक्ष्मण मरी भुज जोड़ा रक्षा कर ॥ १२ ॥ कंकणकी
 धारण करनेवाले हाथकी रक्षा कर, लल लाल नयन मर ललाटे रक्षा करे निद्रम रहित लक्ष्मणजी मरी
 कोखकी रक्षा कर और जिता द्रव्य लक्ष्मणजी मेरे वक्षस्वकी रक्षा करे ॥ १३ ॥ रात्र्यभ्यक्षक पाछे बैठनेवाले
 लक्ष्मणजी मेरे पृष्ठभागकी रक्षा कर, मन्धार नाभि, नूरुशान्मम नाभिगी तथा मुद्रणमया मखन्याव ले मेरी
 कमरकी रक्षा कर ॥ १४ ॥ पश्यगाम लक्ष्मण न । मुखाक तथा हृदिप्रिय लक्ष्मण मेरे लिङ्गकी रक्षा करे ।
 विष्णुके सरण रूपवाले लक्ष्मणजी धुडनोकी तथा सुन्दर हृष्यरा मेरे जाडुभागकी रक्षा करे ॥ १५ ॥ सर्पके
 राजा मेरी जवाओकी, तृप्यवरा मेरे गु कमानकी, अह्वरान मेरे पैनेहा तथा सुन्दर अखोवाले लक्ष्मणजी
 मेरे समस्त अङ्गोकी रक्षा करे ॥ १६ ॥ चित्रकेतुके पिना मेरे पैरकी उंगलियो तथा नूरुवंगम उत्पन्न होनेवाले
 लक्ष्मण मेरे रीमकी रक्षा करे ॥ १७ ॥ रात्रिक समय रात्र्यभ्यक्षे पुत्र मरी करे और दिनक समय मूला-
 वारी लक्ष्मणजी मरी रक्षा करत ॥ १८ ॥ इन्द्रजित । मेघनद को मरनवाले सबदा मेरी रक्षा करत
 रहे । हे सुताय ! इस तरह दिन तुम्ह लक्ष्मणकवच कह मुनाया ॥ १९ ॥ जो लाभ सवेरे बैठकर इस कवचका
 पाठ करते हैं, व अनुपम धन्य है और उनका वम सुख है ॥ २० ॥ लक्ष्मणजीक इस कवचका पाठ करनेसे
 पुत्रार्थ पुत्र तथा धनार्थ धन पाता है । इनमें कोई सशय नहीं है ॥ २१ ॥ पर्नीका कामनावाला प्राणा परको,
 रोषन चाहनेवाला गोधन, धान्यका इच्छुक धान्य और रात्र्यकी इच्छा रखनेवाला रात्र्य पाता है ॥ २२ ॥
 बिना लक्ष्मणकवचका पठ विद्य रामकवचका पाठ ठीक तरह धर्य जाता है, जिस तरह धीक बिना नैवेद्य
 लगाया जाय ॥ २३ ॥ केवल रामकवचका पाठ करनेसे रामचन्द्रजी विशेष प्रसन्न नहीं होते । २४ ॥ इसलिये

अतः परं भरतस्य कवचं ते वदामहम् । सर्वपापहरं पुण्यं सदा श्रीगामभक्तिदम् ॥ २६ ॥
कैकेयीतनयं सदा रघुरन्ध्रस्तेश्च श्यामलं समद्वीपपतेर्विदेहतनयाकांतस्य वाक्ये रतम्
श्रीसीताधरमव्यपाश्वेनिरुटे स्थित्वा परं च मां घृत्वा दक्षिणं करेण भक्तं तं वीजयत भजे ॥ २७ ॥

ॐ अस्य श्रीभक्तकवचमंत्रस्य अगस्त्यकृपिः । श्रीभरतो देवता अनुष्टुप्छन्दः । शत्रु
इति बीजम् । कैकेयीनन्दन इति शक्तिः । भक्तखण्डेश्वर इति कीलकम् ।
रामानुज इत्यस्त्रम् । समद्वीपेश्वर इति कवचम् । रामांशज इति मन्त्रः श्रीभरतप्रीयर्थ
सकलमनोरथमिद्वयार्थं जपे विनियोगः । अथांगुलिन्यामः । ॐ भरताय अंगुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ कैकेयीनन्दनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ भक्तखण्डेश्वराय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ रामानुजाय
कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ शम्बाय शिरसे स्पर्शः ॐ कैकेयीनन्दनाय जिह्वायै रषट् । ॐ
भक्तखण्डेश्वराय कवचाय ह्रस्वः । ॐ रामानुजाय नेत्रत्रयाय दीर्घः । ॐ समद्वीपेश्वराय अक्षाय
फट् । रामांशजाय चेति दिग्बन्धः ।

अथ सध्वानं भरतकवचम्

रामचन्द्रमव्यपाश्वे स्थितं कैकेयजामुदम् । रामाय चत्तरेणैव वीजयन्तं मनोरमम् ॥ २८ ॥
रत्नकुण्डलकेयूरकंकणादिविभूषितम् । पीताम्बरपरोधानं वनमालाविराजितम् ॥ २९ ॥
मांडवीधौतचरणं रश्मिनाम् पुगन्धितम् । नीलोत्पलदलश्यामं द्विजराजमनामनम् ॥ ३० ॥
आजानुवाहं भक्तखण्डस्य प्रतिपालकम् । रामानुज स्मितास्वं च शत्रुघ्नपतिवन्दितम् ॥ ३१ ॥
रामन्यस्तेश्च सौम्यं विद्युत्पुञ्जममप्रभम् । रामभक्तं महावीरं वदे त भरतं शुभम् ॥ ३२ ॥
एवं ध्यात्वा तु भरतं रामपादेश्च हृदि । कवचं पठनीयं हि भरतस्येदमुत्तमम् ॥ ३३ ॥
ॐ पूर्वतो भरतः पातु दक्षिणे कैकेयीसुतः । नृपात्मजः प्रतीच्यां हि पानूदीच्यां रघूत्तमः ॥ ३४ ॥
अधः पातु श्यामलांगशोर्ध्वं दशरथात्मजः । मध्ये भारतवर्षेशः सर्वतः सूर्यवंशजः ॥ ३५ ॥

लोगोंको चाहिए कि प्रयत्न करके सब प्रकारकी कामना पूर्ण करनेवाले इस लक्ष्मणकवचका पाठ अवश्य
करें ॥ २५ ॥ हे मुनि दण्ड ! अब मैं तुम्हें श्रीभरतजीका कवच बताऊंगा, जो पापोंकी हरनेवाला, पवित्र एवं
श्रीरामचन्द्रकी भक्ति देनेवाला है ॥ २६ ॥ मैं उन भरतजीकी बन्दना करता हूँ, जो श्रीरामचन्द्रजीकी ओर
निहार रहे हैं । जिनका श्याम स्वरूप है । जो सातों द्वीपोंके अधिपति रामचन्द्रजीकी आजामे तत्पर रहते हैं ।
जो रामकी दाहिनी ओर बैठकर दाहिने हाथसे सुन्दर चमर हाँक रहे हैं । उन भरतजीका मैं ध्यान करता
हूँ ॥ २७ ॥ “अस्य श्री” से लेकर “रामांशजाय चेति दिग्बन्धः” तक अंगन्यास आदिकी विधि बतलायी गयी है ।
इसके बाद ध्यान है—श्रीरामचन्द्र जीकी दाहिनी ओर बैठकर रामगर चमर चलाते हुए सुन्दर रत्नजटित कुण्डल,
केयूर तथा कंकण आदिसे विभूषित, पीताम्बर धारण किये, वनमालासे अलंकृत, जिनके चरण मांडवी
घोती हैं, रश्मि और नूपुरसे विराजित, नील कमलके समान श्यामस्वरूप एवं चन्द्रमाके समान मुखवाले
॥ २८-३० ॥ जानुपर्यन्त भुजाओंवाले, भरतखण्डके प्रतिपालक, रामके छोटे भ्राता, शत्रुघ्नसे परिवन्दित,
मुस्कुराहटपुक्त मुखवाले, रामकी ओर दृष्टि लगाये हुए, सौभाग्यस्वरूप, विद्युत्पुंजके समान प्रभाशाली,
रामभक्त एवं महापराक्रमी भरतजीका ध्यान करके पोड़ी देरतक रामचन्द्रजीके चरणोंका स्मरण करें ।
उसके बाद इस भरतकवचका पाठ करें ॥ ३१-३३ ॥ पूर्वकी ओर भरत मेरी रक्षा करें, दक्षिणकी तरफ
कैकेयीसुत और पश्चिमकी ओर नृपात्मज मेरी रक्षा कर । उत्तरकी ओर रघूत्तम मेरी रक्षा करें ॥ ३४ ॥
नीचे श्यामल अङ्गोंवाले, ऊपर दशरथात्मज, मध्यमें भारतवर्षके प्रभु, चारों ओर सूर्यवंशमें उत्पन्न होनेवाले

शिस्तक्षपिता पातु भालं पातु हरिप्रियः । भूयोर्मध्यं जनकजाः कर्णैकतन्परोऽवतु ॥३६॥
 पातु जनकजायाता मम नेत्रे सदाऽत्र हि । कर्णौले मांडवीकानः कर्णमूले म्मिताननः ॥३७॥
 नामाग्र मे सदा पातु कैकेयीनोषवर्द्धनः । उदरं मे हृष्ये पातु पातु वार्णा जटाधरः ॥३८॥
 पातु पृष्कगन्तानो मे जिह्वा दंतान् प्रभामयः । चिबुकं वल्कलधरः कटे पातु वराननः ॥३९॥
 स्कन्धौ पातु जितारानिभुजो क्षत्रुघ्नचंद्रिणः । कवचं कवचधरो च नतान् मङ्गधरोऽवतु ॥४०॥
 कुक्षौ रामानुज पातुः वक्षः श्रीर नन्दलभः । पार्श्वे गवयपार्श्वेऽपि पातु पृष्ठं मुष्माणः ॥४१॥
 जठरं च धनुधारी नाभिं शरकरोऽवतु । कटिं पद्मेक्षणः पातु मुखं रमैकमानसः ॥४२॥
 गममित्रः पातु लिङ्गमूकं श्रीरामसेवकः । नादग्रामस्थितः पातु जानुनी मम सर्वदा ॥४३॥
 श्रीरामपादकाधारो पातु जघ्ने सदा मम । गुल्फौ श्रीरामवन्धुश्च पादौ पातु सुगन्धिनः ॥४४॥
 रामाङ्गाशालकः पातु ममाङ्गान्यत्र सर्वदा । मम पादाङ्गुलीः पातु ग्णुवंशविभूषणः ॥४५॥
 रोमाणि पातु मे रम्यः पातुरार्त्रा सुधार्मम नृगीरधरी दिवसे दिवशतु मम सर्वदा ॥४६॥
 सर्वकालेषु मां पातु पोचजन्यः सदा क्षुरि । एव श्रीभरतस्येदं सुतीक्ष्णं कवचं शुभम् ॥४७॥
 मया प्रोक्तं तवाग्रे हि महामङ्गलकारकम् । स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रमिदं ज्ञेयं सपुण्यदम् ॥४८॥
 पठनीयं सदा भक्त्या रामचन्द्रस्य हर्षदम् । पठित्वा भरतस्येदं कवचं रघुनन्दनः ॥४९॥
 यथा याति परं तोष तथा स्वकवचेन न । तस्मादेतन्मया जप्यं कवचानामनुत्तमम् ॥५०॥
 अस्यात्र पठनान्पत्न्यैः सर्वान्कामानवाप्नुयान् । विद्याकामो लभेद्विद्यां पुत्रकामो लभेन्पुत्रम् ॥५१॥
 पत्नीकामो लभेत्पत्नीं धनार्थी धनमाप्नुयान् । यद्यन्मनोभिः कल्पितं तत्तत्कवचापाठतः ॥५२॥

भरत मेरी रक्षा करें ॥ ३५ ॥ तल्ले पिता मेरे मस्तकका रक्षा कर, हरिप्रिय मेरे ललाटका रक्षा करें, जानकीकी आज्ञा तत्पर रहनेवाले भरतजी भोड़ोंके मण्डपभागी रक्षा करें ॥ ३६ ॥ साताको माताके समान मानने वाले भरतजी मेरा छाँवोंकी रक्षा कर । मण्डवीके प्रियतम मेरे कर्णोंकी रक्षा करें । मुखकात मुख-मण्डलवाले भरतजी मेरे कर्णमूककी रक्षा करें ॥ ३७ ॥ कैकेयीके आनन्दको बढानेवाले मेरे नासाग्रकी, उग्र अङ्गुलीके मुखकी और जटाधारी भरत मेरी वार्णिक रक्षा कर ॥ ३८ ॥ पृष्करके पिता जिह्वाका, प्रभामय दाँतोंकी, वल्कलधारी चिबुककी और सुन्दर मुखवाले भरत मेरे कवच रक्षा कर ॥ ३९ ॥ क्षत्रुघ्नी जितनेवाले मेरे कन्धोंकी, शत्रुघ्नचन्द्रित भजाओंकी, कवचधरा हाथोंकी और स्वधुधारी नखोंका रक्षा करें ॥ ४० ॥ रामके छोटे भ्राता उदरकी, श्रीरामवल्लभ वक्षस्थलकी, रामके पास बैठनेवाले भरतजी गमलियोंकी और सुन्दर भाषण करनेवाले पृष्ठभागकी रक्षा कर ॥ ४१ ॥ धनुर्वारी जठरकी, शरकर न भिको, कमलके समान नेत्रोंवाले कमरकी और एकमात्र रामनामका स्मरण करनेवाले मेरे गुह्यभागकी रक्षा कर ॥ ४२ ॥ रामके मित्र लिङ्गकी रक्षा करें, श्रीरामके सेवक ऊरुभागकी और नन्दिग्राममें रहनेवाले भरत सर्वदा मेरे जानुभागकी रक्षा करें ॥ ४३ ॥ श्रीरामकी पादुकाकी धारणकरनेवाले मेरी जघाओंकी, श्रीरामवन्धु दानो गुल्फभागका तथा सुगन्धित भरतजी मेरे पैरोंकी रक्षा करें ॥ ४४ ॥ रामका आज्ञापालन करनेवाले सदा मेरे मूत्र अंगोंका और रघुवंशके उत्तम भूषण मेरे पैरोंके उँगलियोंकी रक्षा करें ॥ ४५ ॥ रम्य वपुधारी भरतजी मेरे मित्र नंगोंका, २ बिक समय सुन्दर बुद्धिवाले और दूतारधारी भरत दिनके समय सब दिशाओंकी रक्षा करें ॥ ४६ ॥ पाँचजन्य सब समय मेरी रक्षा करते रहे । हे सुतीक्ष्ण ! इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रीभरतजीका कवच कह मुनागा । यह बड़ा मङ्गलकारी, सब स्तोत्रोंमें उत्तम और भली भाँति पुण्यशाला है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ लोगोंको चाहिये कि श्रीरामचन्द्रजीको आनन्द देनेवाले इस भरत-कवचका पाठ करके ही रामकवचका पाठ किया करें । इस कवचके पठने रामचन्द्र जितने प्रसन्न होते हैं, उतने अपने कवच अर्थात् रामकवचका पाठ सुनकर नहीं प्रसन्न होते । इस कारण लोगोंको चाहिये कि सब कवचोंमें श्रेष्ठ इस कवचका पाठ अवश्य करें ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस कवचका पाठ करनेसे प्राणी सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । विद्याकी कामनावाला विद्या, पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुत्र, पत्नी चाहनेवाला पत्नी और

लभ्यते मानवैरत्र सत्यं सत्यं वदाम्यहम् । तस्मात्सदा जपनीयं रामोपासकमानवैः ॥५३॥

अथ शत्रुघ्नकवचम्

अथ शत्रुघ्नकवचं सुतीक्ष्ण शृणु सादरम् । सर्वकामघटं रम्यं राममङ्गलवर्द्धनम् ॥५४॥

शत्रुघ्नं धृतकामुकं धृतमहातूणीरवाणोत्तमं च श्रेष्ठं श्रीशत्रुघ्नन्दनस्य विनयाद्वामे स्थितं सुन्दरम् ।

रामं स्वीयकरेण तालदलजं घृन्वाऽतिविश्र वर सूर्याभ व्यज्जनं मभास्थितमह तं बीजयतं भजे ॥५५॥

ॐ अस्य श्रीशत्रुघ्नकवचमंत्रस्य अगस्तिश्रुषिः । श्रीशत्रुघ्नो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । सुदर्शन इति बीजम् । कैकेयीनन्दन इति शक्तिः । श्रीभगवानुज इति कीलकम् । भरतमन्त्रीत्यस्त्रम् । श्रीरामदाम इति कवचम् । लक्ष्मणांशज इति मन्त्रः । श्रीशत्रुघ्नप्रीत्यर्थं सकलमनःकामनाभिद्वयार्थं जपे विनियोगः । अथांगुलिन्यासः । ॐ शत्रुघ्नाय अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ सुदर्शनाय तर्जनीभ्यां नमः । ॐ कैकेयीनन्दनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ भरतानुजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ भरतमन्त्रिणे कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ श्रीरामदासाय कतरलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादिन्यासः । लक्ष्मणांशजेति दिग्बन्धः ।

अथ ध्यानम्

रामस्य संस्थितं वामे पाश्वे विनयपूर्वकम् । कैकेयीनन्दनं मौम्यं मुकुटेनातिरजितम् ॥५६॥

रत्नककणकेयूरवनमालाविराजितम् । रशनाकुंडलधरं रत्नहारमनूपुरम् ॥५७॥

व्यज्जनेन बीजयतं जानकीकांतमादरात् । रामन्यस्नेक्षणं वीरं कैकेयीदोषवर्द्धनम् ॥५८॥

द्विभुजं कंजनयनं दिव्यपीताम्बरान्वितम् । सुभुजं सुंदरं मेघश्यामलं सुन्दराननम् ॥५९॥

रामवाक्ये दत्तकर्णं रत्नोद्धृतं खड्गधारिणम् । धनुर्वाणधरं श्रेष्ठं धृततूणीरमुत्तमम् ॥६०॥

सभायां संस्थितं रम्यं कस्तूरीतिलकांकितम् । मुकुटस्थावतसेनं शोभितं च स्मिताननम् ॥६१॥

रविवंशोद्भवं दिव्यरूपं दशरथान्मजम् । मधुरावासिनं देवं लवणासुरमर्दनम् ॥६२॥

एवं ध्यात्वा तु शत्रुघ्नं रामपादेक्षणं हृदि । पठनीयं वरं चेदं कवचं तस्य पावनम् ॥६३॥

पूर्वं त्ववतु शत्रुघ्नः पानु याम्ये सुदर्शनः । कैकेयीनन्दनः पानु प्रतीच्यां सर्वदा मम ॥६४॥

धनार्थी धन प्राप्त करता है । इस तरह उसे जिम किसी वस्तुकी इच्छा होती है, वे सब इस कवचके पाठसे प्राप्त हो जाती हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ यह बात मैं विष्णुल सब कह रहा हूँ—भूठ कुछ भी नहीं । रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि सदा इस कवचका पाठ किया करे ॥ ५३ ॥ हे भुतीक्ष्ण ! अब मैं तुम्हें शत्रुघ्नकवच बताऊँगा । तुम आदरपूर्वक सुनो । यह शत्रुघ्नकवच भी सब कामनायें पूर्ण करने और रामकी सद्भक्ति बढ़ानेवाला है ॥ ५४ ॥ धनुष धारण करनेवाले, बड़ा-सा तरकस धारण किये, श्रीरामचन्द्रजीके पास वामभागमें लड़े, अपने हाथसे तड़का पंखा झलते हुए, सूर्यके समान अतिशय विचित्र उस पंखेकी दीप्ति है, ऐसे शत्रुघ्नजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५५ ॥ "अस्य श्री" से लेकर "लक्ष्मणांशजेति दिग्बन्धः" तक अङ्ग-न्यास आदिकी विधि बतलायी गयी है । इसके आगे ध्यात है—रामके पास वामभागमें विनयपूर्वक लड़े कैकेयीके आनन्ददाता, सौम्यस्वरूप, मुकुटसे अतिरंजित, रत्नजटित कंकण, केयूर तथा वनमालासे अलंकृत, सिकड़ी और कुण्डल धारण किये, रत्नहार तथा सुन्दर नूपुर पहने, आदरपूर्वक रामचन्द्रजीको पंखा झलते और रामकी ओर निहारते हुए, कैकेयीका आनन्द बढ़ानेवाले वीर, जिनके दो भुजायें हैं, कमल जैसे नेत्र हैं, दिव्य पीताम्बर पहने, सुन्दर भुजावाले, मेघके सदृश श्यामल तथा सुन्दर मुखवाले, रामकी बातोंमें कान लगाये, राक्षसोंको मारनेवाले, खड्ग धारण किये, धनुष और वाणसे सुनजित बड़ा सा तूणीर धारण किये, सभामें स्थित, रम्य, कस्तूरीका तिलक लगाये, मुकुट और कुण्डलसे सुशोभित, मुस्कराते मुखवाले, सूर्यवंशमें जायमान, दिव्यरूपधारी, दशरथके पुत्र, मधुरानिवासी लवणासुरका मर्दन करनेवाले और श्रीरामके चरणोंमें

पानूदीच्या रामचन्द्रः पान्वधो भरतानुजः । रविशंशोद्भवधोर्ध्व मध्ये दशरथात्मजः ॥६५॥
 सर्वतः पातु मामत्र कैकेयीतोषवर्द्धनः । श्यामलांगः शिरः पातु भाल श्रीलक्ष्मणांशजः ॥६६॥
 भ्रुवोर्मध्ये सदा पातु मृमुचोऽश्वनीतले । श्रुतकीर्तिपतिर्नेत्रे कपोले पातु राघवः ॥६७॥
 कर्णी कुंडलकर्णोऽव्याजामाग्र नृपवशजः । मुख मम युवा पातु गणी पातु म्फुटाक्षरः ॥६८॥
 जिह्वां सुवाहुनातोऽव्याधूपकेतुपिना द्विजान् । चिबुकं रम्यचिबुकः कटं पातु सुभाषणः ॥६९॥
 स्कन्धौ पातु महानेजा भुजौ राघवराजपटुः । कर्ग मे कर्कणधरः पातु खड्गो नखन्मम ॥७०॥
 कुक्षिं रामप्रियः पातु पातु वक्षो रघूत्तमः । पार्श्वे सुरार्चिनः पातु पातु पृष्ठिं वराननः ॥७१॥
 जठरं पातु रक्षोघ्नः पातु नाभिं सुलोचनः । कटिं भरतमर्था म मुख श्रीरामसेवकः ॥७२॥
 रामापितमनाः पातु लिङ्गमूळं मिमनाननः । कोदण्डपाणिं पान्वत्र जानुनी मम सर्वदा ॥७३॥
 राममित्रः पातु जघे गुल्फौ पातु सूतपूरः । पार्श्वे नृपतिपूज्योऽव्याधुर्द्विमान्पादांगुलीर्मम ॥७४॥
 पान्वगानि समस्तानि हृदागंगः सदा मम । शेषानि रमणीयेऽव्याधार्थी पातु सुधार्मिकः ॥७५॥
 दिवसे मन्यमधोऽव्याधोऽने शरमन्करः । गमने कन्दकटोऽव्यात्मवेदा लवणातकः ॥७६॥
 एवं शत्रुघ्नकवचं मया ते समुदीरितम् । ये पठन्ति नरास्त्वेतत्त नराः मोक्षप्रभागिनः ॥७७॥
 शत्रुघ्नस्य वरं चेद कवचं मंगलप्रदम् पठनीयं नरेभ्यः । पुनर्पात्रप्रवर्द्धनम् ॥७८॥
 अस्य स्तोत्रस्य पाठेन यं यं कामं नरोऽर्थयेत् । तं न लभेन्निश्चयेन सत्यमेतद्वचो मम ॥७९॥
 पुत्रार्थी प्राप्नुयान्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयान् । इच्छाकामं न कामार्थी प्राप्नुयान्पठनादिना ॥८०॥
 कवचस्यास्य भूम्यां हि शत्रुघ्नस्य विनिश्चयान् । तस्मादेतन्मदा भक्त्या पठनीयं नरैः शुभम् ॥८१॥

नेत्र लगाये हुए शत्रुघ्नजीका ध्यान करके हम उत्तम शत्रुघ्नकवचका पाठ करना चाहिए ॥६५॥ पूर्वकी ओर शत्रुघ्न, दक्षिण तरफ सुवर्जन और पश्चिम ओर कैकेयीतन्दन हमारी रक्षा करे ॥ ६६ ॥ उत्तरम रामचन्द्र, नीचे भरतके छोटे भ्राता, ऊपर मूर्खराज और मध्यमे दशरथात्मज मेरी रक्षा कर ॥ ६७ ॥ वक्षोपीको आनन्द देने-वाले मेरी चारो ओर रक्षा करे । श्यामल अङ्ग वाले शत्रुघ्न भरतकका और लक्ष्मणक अंशज मेरे ललाटकी रक्षा करें ॥ ६८ ॥ सुन्दर मुखवाले सदा मेरे भोक्षक मध्यभागकी, श्रुतकीर्तिक पति नेत्रोका तथा राघव दोनों कपोलोंकी रक्षा करें ॥ ६९ ॥ कानोमे कुण्डल धारण करनेवाले मेरे कानोका नृपवंशज नासिकाके अग्रभागकी युवारूपधारी शत्रुघ्न मेरे मुखकी एवं म्फुट अक्षर बोल्नेवाले मेरी बाण की रक्षा करे ॥ ६९ ॥ सुवाहुके पिता कन्धोकी, मृपकेतुके पिता दांतोकी, सुन्दर चिबुकवाले मेरे चिबुकका और सुन्दर बातें करनेवाले मेरे कण्ठकी रक्षा करें ॥ ६९ ॥ महातेजस्वी कन्धोकी, रामका अङ्ग पालन करनेवाले भुज का, कर्कणधारी मेरे हाथोंकी और खड्गकी धारण करनेवाले शत्रुघ्न नखकी रक्षा कर ॥ ७० ॥ रामके प्रिय मेरे उदरकी, रघूत्तम वक्षस्थलकी, सुरचित पार्श्वभागकी और वरानन पृष्ठभागकी रक्षा कर ॥ ७१ ॥ रक्षोघ्न जठरकी, सुलोचन नाभिकी, भरतके मंत्री कटिभागकी और श्रीरामसेवक गुह्यप्रदेशकी रक्षा करे ॥ ७२ ॥ जिन्होंने अपना मन रामको अर्पित कर दिया है वे शत्रुघ्न लिङ्गकी मुसकाते मुखवाले ऊरुभागकी और हाथोमे वनस्प धारण करनेवाले सर्वदा मेरी जानुओंकी रक्षा करें ॥ ७३ ॥ राममित्र जोधोकी, सुन्दर तपूर पहननेवाले गुल्फकी, नृपतिपूज्य पैरोकी और श्रीमान् मेरी उँगलियोंकी रक्षा करें ॥ ७४ ॥ उदार अङ्गवाले शत्रुघ्न सदा मेरे समस्त अङ्गोंकी रक्षा करें । रमणीय आवृत्तिवाले मेरे लोमोकी, रात्रिके समय सुधार्मिक, दिवसके समय सत्यसंध, भोजनके समय सुन्दर बाण धारण करनेवाले, गमनके समय सुन्दर बाणां बोलनेवाले और सब समय लवणामुरकी धारनेवाले शत्रुघ्न मेरी रक्षा करे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें शत्रुघ्नकवच का सुनाया । जो लोग भक्तिपूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे सुखभागी होते हैं ॥ ७७ ॥ यह कवच बड़ा सुन्दर, मंगलप्रद तथा पुनर्पात्र बढ़ानेवाला है ॥ ७८ ॥ इन स्तोत्रका पाठ करनेवाला प्राणी जो-जो वस्तुये चाहता है, उन्हें अवश्य पाता है । मेरी बात सब मानो । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ७९ ॥ पुत्र चाहनेवाला पुत्र, धन चाहनेवाला धन तथा जो प्राणी जो

आदौ नरैर्मरुतैश्च पठित्वा कवचं शुभम् । ततः शत्रुघ्नकवचं पठनीयमिदं शुभम् ॥८२॥
 पठनीयं भरतस्य कवचं परमं ततः । ततः सौमित्रिकवचं पठनीयं सदा नरैः ॥८३॥
 पठनीयं ततः सीताकवचं भाग्यवर्द्धनम् । ततः श्रीरामचन्द्रस्य कवचं सर्वशोचनम् ॥८४॥
 पठनीयं नरैर्भक्त्या सर्ववाञ्छितदायकम् । एवं पठ्य कवचान्यत्र पठनीयानि सर्वदा ॥८५॥
 पठनं पठकवचानां श्रेष्ठं मोक्षकसाधनम् । ज्ञात्वाऽत्र मानवैर्भक्त्या कार्यं यः पठनं सदा ॥८६॥
 अशक्तेनात्र चत्वारि पठनीयानि सादाम् । हनुमत्तश्च सौमित्रैः सीताया राघवस्य च ॥८७॥
 इमानि पठनीयानि चत्वारि कवचानि हि । चतुर्णां कवचानां च पठने मानवस्य च ॥८८॥
 न यद्यत्रावकाशश्चेत्तदा त्रीणि पठेन्नरः । मारुतेऽथ सीतायास्तथा श्रीराघवस्य च ॥८९॥
 त्रयाणां कवचानां च न पाठावसरो यदा । पठत्यर्थं मानवस्य तदा द्वे कवचे स्मृते ॥९०॥
 मारुतेऽथ रामस्य सीताया राघवस्य वा । नैकमेव पठेत्तत्र श्रीरामकवचं शुभम् ॥९१॥
 अवकाशे कवचानां पठकमेव सदा नरैः । पठनीयं क्रमेणैव कर्तव्यो नालसः कदा ॥९२॥
 यदाऽवकाशो नास्त्येव तदा तेषां सुव्रतमेव । मया विशेषः प्रोक्तोऽयं न सर्वेषां मयेरितः ॥९३॥

इति शत्रुघ्नकवचम् ।

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य स्वया यद्यन्पठं तत्तन्मयोदेवम् । अन्यन्किञ्चित्प्रवक्ष्यामि नन्दृणुष्याम्य मादम् ॥९४॥
 कीर्तः प्रवर्धः श्रीरामः सदा गेयोऽत्र मानवैः । त्रीणावाद्यादिभिर्भक्त्या नृपान्यपि समाचरेत् ॥९५॥
 दशरथनन्दनेति पूर्वमुक्त्वा ततः परम् । मेघश्यामेति चै चोक्त्या तथा रत्नकुलेति च ॥९६॥
 मंडनराजामेति द्वारिशाक्षजपस्त्वयम् । मनुः सदा जपनीयो त्रीणावाद्येन सुस्वरम् ॥९७॥

दशरथनन्दन मेघश्याम रत्निकुलमंडन राजाराम इति मनुः ।

कीर्तनेऽस्य मनोर्नैव कार्यो न्यामो जपे स्मृतः । एवं सर्वेषु मन्त्रेषु बोद्धव्यं मानवैर्भुवि ॥९८॥

भा चाहता है, सो उस मिलता है ॥ ८० ॥ इस भूमण्डलमें शत्रुघ्नकवच बड़ा उत्तम है । अतएव मनुष्यको अवश्य इसका पाठ करना चाहिए ॥ ८१ ॥ लोगोंको चाहिए कि पहले हनुमत्कवचका पाठ करके इस शत्रुघ्न-कवचका पाठ करें ॥ ८२ ॥ इसके बाद भरतकवच और भरतकवचके बाद सौमित्रकवचका पाठ करें ॥ ८३ ॥ इसके बाद भाग्यको बढ़ानेवाले सीताकवचका पाठ करके श्रीरामकवचका पाठ करें ॥ ८४ ॥ इस तरह सब वाञ्छित फल देनेवाले छ कवचोंका प्रतिदिन पाठ करत रहे ॥ ८५ ॥ इन छहों कवचोंका पाठ श्रेष्ठ और मोक्षका साधन है । ऐसा सप्रजकर लोगोंको सर्वदा इनका पाठ करते रहना चाहिए ॥ ८६ ॥ यदि ऐसा न कर सके तो हनुमान्जी, लक्ष्मण, सीता तथा रामके कवचका पाठ करे । यदि इन चारोंके पाठ करनेका समय किसी प्राणीको न मिले तो हनुमान्जी, सीता तथा रामके कवचका ही पाठ करे ॥ ८७-८८ ॥ यदि तीन कवचके पाठ करनेका भी अवसर न मिल सके तो हनुमान तथा राम इन दोनों कवचोंका ही पाठ करे । किन्तु इतना अवश्य ध्यान रखते कि ऊपर बतलाये कवचोंमेंसे किसी एकका अवकाश रामकवचका ही पाठ करके न रह जाय ॥ ९० ॥ ९१ ॥ जब समय मिले, तब सह्यो कवचोंका क्रमशः पाठ करे । आलस्यवश टाल न दे ॥ ९२ ॥ यदि किसी विशेष अड़चनके कारण कुछ भी समय न मिल सके, तब उसके लिए वह परिहार बतलाया गया है । यह सब समय और सबके लिए लागू नहीं है ॥ ९३ ॥ रामदासने कहा-हे शिष्य ! तुमने हमसे जो पूछा, वह सुनाया । अब और कुछ बातें बतला रहा हूँ, उन्हें धादरपूर्वक सुनो ॥ ९४ ॥ लोगोंको यह भी चाहिए कि सदा जीत-कवित्त आदिसे रामचन्द्रजीका गुण गाया करे और बीणा आदि वाद्योंके साथ भक्तिपूर्वक गावे ॥ ९५ ॥ पहले 'दशरथनन्दन' ऐसा कहकर 'मेघश्याम' फिर 'रत्निकुलमंडन' ऐसा कहकर 'राजाराम' कहते हुए 'दशरथनन्दन मेघश्याम रत्निकुलमंडन राजाराम' इस मन्त्रका कीर्तन और जप किया करें ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ इस

रामजयेति चोक्त्वा तु त्रिशारं चात्र सुस्वरम् । रामेति द्वेऽध्वरे त्वन्ने सोक्त्वा वीणास्वरेण च ॥१९९॥

अनुदशाक्षरध्यायं कीर्तनार्थं मयेति ॥१००॥

राम जय राम जय राम जय राम इति मनुः ।

मंत्रशास्त्रेषु ये मंत्रास्ते जपार्थं प्रकीर्तिताः । इमे मंत्राः कीर्तनार्थं ज्ञातव्या मानवोत्तमैः ॥१०१॥

एतेषामपि चेद्वक्त्या मन्त्राणां च जपः कृतः । तदा मस्मीमविष्यति तेषां पापानि वै क्षणम् ॥१०२॥

अन्यान् मन्त्रान् प्रवक्ष्यामि तान् शृणुष्व द्विजोत्तम । राजीवलोचनेन्युक्त्वा मेघश्यामेति वै ततः ॥१०३॥

तथा सीतारंजनेति राजारामेति वै ततः । एकोनविंशद्वर्णश्च राममंत्रस्त्वय स्मृतः ॥१०४॥

राजीवलोचन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम इति मंत्रः ।

अयं मंत्रः सुस्वरेण कीर्तनीयो मुहुर्मुहुः । वीणास्वरेण सयुक्तश्चास्तने गमनेऽपि च ॥१०५॥

श्रीशब्दपूर्वं जयशब्दमध्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।

त्रिःसमकुत्वा शृणुताधनाम जपं निहन्पाद्द्विजकोटिहत्याः ॥१०६॥

त्रयोदशाक्षरध्यायं राममंत्रः शुभाग्रहः । जपनीयः कीर्तनीयः सर्वदाऽयं मुहुर्मुहुः ॥१०७॥

श्रीराम जय राम जय जय राम इति मनुः ।

अयं मंत्रः सुस्वरेण तथा वीणास्वरादिना । कीर्तनीयो मुदा मन्त्रैर्मंत्रशास्त्रेऽप्ययं स्मृतः ॥१०८॥

तस्मात्सदा जपनीयः सर्वसिद्धिप्रदायकः । अष्टादशाक्षर मंत्र त्वन्यं शृणु शुभाग्रहम् ॥१०९॥

उक्त्वा सीतारंजनेति मेघश्यामेति वै ततः । कौसल्यासुतेन्युक्त्वा च राजारामेति वै ततः ॥११०॥

सीतारंजन मेघश्याम कौसल्यासुत राजाराम इति मनुः ।

अष्टादशाक्षरध्यायं कीर्तनीयो महामनुः । वीणास्वरादिना कलकंठेन सुस्वरः ॥१११॥

रविवरकुलजातं वन्दे चेति प्रकीर्त्यं च । सुरभूसुरेन्युक्त्वाऽग्रे गीतं चेति ततः परम् ॥११२॥

मन्त्रका जप करत समय न्यास आदि करतकी काई आवश्यकता नहीं पुरहता । ऐसी तरह आगे बतलाये जानवान मन्त्रोंके भी विषयमें जानना चाहिए ॥ १०० ॥ 'रामजय' ऐसा तीन बार कहकर वीणाके स्वरसे 'राम' इस दो अक्षरका उच्चारण करना चाहिए । यह अनुदशाक्षरध्याय मन्त्र मैन भक्तोंकी कीर्तन करनेके लिए बतलाया है । 'राम जय राम जय राम राम जय राम' यह मन्त्र है । मन्त्रशास्त्रसे जितने मन्त्र बतलाये गये हैं, वे सब जप करनेके लिए हैं । किन्तु ये मन्त्र कीर्तन करनेके लिए भी लिखे गये हैं ॥ १९१०१ ॥ यदि भक्तिपूर्वक इनका जप भी किया जाय तो क्षणभरम जप करनेवालेके सारे पापक जल जायंगे ॥ ११०॥ हे द्विजोत्तम ! तुम्हें मैं और भी बहुतसे मन्त्र बतलाऊंगा । 'राजीवलोचन' ऐसा कहकर मेघश्याम तथा 'सीतारंजन' और 'राजाराम' ऐसा कहे । यह उन्नीस अक्षरोंका मन्त्र है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ 'राजीवलोचन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम' यह मन्त्र है । अच्छी तरह माँटे स्वरसे बारम्बार इस मन्त्रका कीर्तन करता रहे । चलते-फिरते उठते बैठते सदा इस मन्त्रका कीर्तन करे ॥ १०५ ॥ आदिमें 'श्री' उसके बाद 'जय' फिर दो जपके बीचमें 'राम' इक्कीस बार नाम जपनेवाला मनुष्य करोड़ों सहस्रहत्याके पापक नष्ट कर देता है ॥ १०६ ॥ यह त्रयोदशाक्षर राममन्त्र बड़ा कल्याणदायक है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि बारम्बार इस मन्त्रका जप और कीर्तन करते रहे ॥ १०७ ॥ 'श्रीराम जय राम जय जय राम' यह मन्त्र है । लोगोको उचित है कि इस मन्त्रको वीणा आदिके स्वरके साथ साथ प्रातिपूर्वक कीर्तन करे । मन्त्रशास्त्रमें भी इस मन्त्रका उल्लेख है ॥ १०८ ॥ इसलिए सर्वदा इस मन्त्रका जप भी करना चाहिए । क्योंकि यह सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाला है । अब मैं एक और अष्टादशाक्षर मन्त्र बतला रहा हूँ । वह भी बड़ा मंगलकारी है ॥ १०९ ॥ 'सीतारंजन' ऐसा कहकर 'मेघश्याम' फिर 'कौसल्यासुत' कहकर 'राजाराम' कहना चाहिए ॥ ११० ॥ 'सीतारंजन मेघश्याम कौसल्यासुत राजाराम' यह मन्त्र है । इस अष्टादशाक्षर महामन्त्रका कीर्तन करना चाहिए । कीर्तन वीणाके स्वरके साथ तथा कोकिलके समान मीठे स्वरोमें होनेसे विशेष लाभदायक होता है ॥ १११ ॥ 'रविवरकुलजात'

ममदशसुव षष्ठ्य राममंत्रस्त्वय शुभः । कीर्तनीयः सुम्बरं हि वीणावाद्यस्वरादिना ॥११३॥

रविवरकुलजातं वन्दे सुसुभसुरगीतम् इति मनुः ।

विष्णुदाम मृण्मन्यान् राममंत्रान् शुभावहान् । येषां स्मरणमात्रेण मङ्गलार्थं लभ्यं भजेत् ॥११४॥

कौसल्यासुतेन्युक्त्वाय रामेति द्वेऽक्षरे तथा । तथा सीतारंजनेति मेघश्यामेति चै ततः ॥११५॥

षोडशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः शुभावहः । वीणास्वरपूर्वकश्च कलकंठेन सुम्बरः ॥११६॥

कौसल्यासुतस्य सीतारंजन मेघश्याम इति मनुः ।

षोडशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः सदा नरैः । गर्वपापक्षयकरः मन्त्रोऽस्मिन्नायकः ॥११७॥

दशरथनन्दनेति पूर्वमुक्त्वा ततः परम् । मेघश्यामेति चै चोक्त्वा सीतेति द्वेऽक्षरे तथा ॥११८॥

रंजनेति ततश्चोक्त्वा राजारामेति चै ततः । विंशाक्षरमनुश्चायं महापातकनाशनः ॥११९॥

दशरथनन्दन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम इति मनुः ।

अयं विंशाक्षरी मन्त्रः कीर्तनीयः सुखप्रदः । वीणास्वरममेतश्च महापुण्यप्रदः स्मृतः ॥१२०॥

वन्दे रघुवीरमिति चोक्त्वा चैव ततः परम् । उक्त्वा सीताकान्तमिति रणवीरमिति क्रमान् ॥१२१॥

चतुर्दशाक्षरश्चायं राममन्त्रः शुभावहः । कीर्तनीयो जनैर्भक्त्या महामंगलकारकः ॥१२२॥

वन्दे रघुवीरं सीताकान्तं रणवीरम् इति मनुः ।

जय राम जय राम संकीर्त्य सुम्बरं ततः । जय जपेति संकीर्त्य रामेति द्वेऽक्षरे पुनः ॥१२३॥

चतुर्दशाक्षरश्चायं तृतीयः कथिनी मनुः । कीर्तनीयो जनैर्भक्त्या महापातकनाशनः ॥१२४॥

जय राम जय राम जय जय राम इति मनुः ।

मनुः सीतावाद्यवेति पंचवर्णान्मिकः स्मृतः । जपनीयः कीर्तनीयो वीणावाद्येन सुम्बरः ॥१२५॥

सीतावाद्य इति मनुः

वन्दे" इसका उच्चारण करने के 'सुसुभसुर' ऐसा कहकर 'मनु' का उच्चारण कर ॥११३॥ यह सुन्दर वर्णों से इस शुभ राममंत्रका रचना की गयी है । लोगों को चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ भीड़े स्वरसे इस मंत्रका कीर्तन किया करें ॥ ११३ ॥ 'रविवरकुलजातं वन्दे सुसुभसुरगीतम्' यह मंत्रका स्वरूप है । रामदास कहते हैं कि हे विष्णुदास ! अब मैं ओर ओर बहुतसे शुभ मंत्र तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो । जिनके स्मरणमात्रसे बड़े बड़े पाप भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ११४ ॥ 'कौसल्यासुत' ऐसा कहकर 'राम' इसका उच्चारण करे । तदनन्तर 'सीतारंजन' और उसके बाद 'मेघश्याम' कह ॥ ११५ ॥ यह षोडशाक्षर मंत्र बड़ा शुभ है । इसीलिए लोगोंको चाहिए कि मैं जो आवाजसे कान्ना आदि वाद्योंके साथ-साथ इसका कीर्तन करे ॥ ११६ ॥ 'कौसल्यासुत राम सीतारंजन मेघश्याम' यही मंत्रका स्वरूप है । इस षोडशाक्षर मंत्रका स्मरण सर्वदा कीर्तन करें । क्योंकि यह समस्त पापोंका नाशक और सब प्रकारका अप्रिय कामनाओंका पूर्ण करनेवाला महामन्त्र है ॥ ११७ ॥ 'दशरथनन्दन' ऐसा कहकर पहले 'मेघश्याम' और उसके बाद 'सीता' इन दो अक्षरोंको कहकर 'रंजन' ऐसा कहते हुए 'राजाराम' कह । यह बीस अक्षरोंवाला राममंत्र बड़े-बड़े पातकोंका नाशक है ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ 'दशरथनन्दन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम' यह इस मंत्रका स्वरूप है । भक्तोंको चाहिए कि सब प्रकारका सुख देनेवाले इस विंशाक्षर मंत्रका में डे स्वर तथा वीणा आदि वाद्योंके साथ कीर्तन करें । क्योंकि यह बड़ा पुण्यदायक मन्त्र है ॥१२०॥ 'वन्दे वां रघुवीरम्' ऐसा कहकर 'सीताकान्तम्' तथा 'रणवीरम्' ये वाक्य कहें ॥ १२१ ॥ यह परम सुखदायक चतुर्दशाक्षरमन्त्रक राममन्त्र है । लोगोंको उचित है कि महामंगल करनेवाले इस मंत्रका भक्तिपूर्वक कर्तन करें ॥ १२२ ॥ 'वन्दे रघुवीरं सीताकान्तं रणवीरम्' यह इस मंत्रका स्वरूप है । 'जय राम जय राम' ऐसा कहकर 'जयजय' ऐसा कहते हुए 'राम' ये दो अक्षर कहें । 'जय राम जय राम जय जय राम' यह इस मंत्रका स्वरूप है । चतुर्दशाक्षर मंत्रमें यह तीसरा मंत्र है । लोगोंको चाहिए कि महापातकोंका नाश करनेवाले इस मंत्रका कीर्तन किया करें ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

भजेति द्वेऽक्षरे पूर्वं सीताराममिति क्रमात् । मानसेति ततश्चोक्त्वा भजेति द्वेऽक्षरे पुनः ॥१२६॥
ततो राजाराम इति मंत्रः पञ्चदशाक्षरः । कीर्तनीयो मनुष्याय वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१२७॥

भज सीताराम मानस भज राजारामम् इति मनुः ।

श्रीसीताराममित्युक्त्वा वन्दे चोक्त्वा ततः पुनः । श्रीराजाराममिति च कीर्तयेत्सुस्वरं ब्रुहः ॥१२८॥
द्वादशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः सदा जनेः । वीणावाद्यादिना पुण्यः सर्ववाञ्छितदायकः ॥१२९॥

श्रीसीतारामं वन्दे श्रीराजारामम् इति मनुः ।

रावणमर्दनेत्युक्त्वा रामेत्युक्त्वा ततः षष्ठम् । राघवति ततश्चोक्त्वा बाली चेति ततः क्रमात् ॥१३०॥
मर्दनेति पुनश्चोक्त्वा रामेति द्वेऽक्षरे पुनः । स्मृतोऽष्टादशवर्णश्च द्वितीयोऽयं मनुः शुभः ॥१३१॥

रावणमर्दनं राम राघवं बालामर्दनं रामेति मनुः ।

अयं मंत्रः कीर्तनीयः सदा मानवोत्तमैः । श्रीसीताराममिति च मानसेति ततः षष्ठम् ॥१३२॥
भजेति द्वेऽक्षरे चोक्त्वा रामेति द्वेऽक्षरे पुनः । राममिति द्वेऽक्षरे च मंत्रोऽयं षष्ठः शुभः ॥१३३॥
चतुर्दशाक्षरश्चायं चतुर्थश्च मयेरितः । कीर्तनीयः सुस्वरोऽयं वीणावाद्यपुरःसरः ॥१३४॥

श्रीसीतारामं मानस भज राजारामम् इति मनुः ।

सीताराम जयेत्युक्त्वा राजारामेति वै ततः । अयं दशाक्षरो मंत्रः कीर्तनीयोऽत्र सुस्वरः ॥१३५॥
सीताराम जय राजाराम इति मनुः ।

श्रीसीताराममिति च वद राममिति क्रमात् । जयं रामं ततश्चोक्त्वा त्रयोदशाक्षरो मनुः ॥१३६॥
कीर्तनीयः सदा मर्त्यैः सर्वपातकनाशनः । वीणावाद्यादिना नित्यं द्वितीयोऽयं मनुः स्मृतः ॥१३७॥

श्रीसीतारामं वन्दे रामं जय रामम् इति मनुः ।

मां पाहितीति चोक्त्वा दीनं राघवं चेति हि । त्वन्पदयुगलीनं वै चेत्येष षोडशाक्षरः ॥१३८॥

‘सीताराघव’ यह पंचवर्णत्मिक मंत्रमंत्र है । पूर्ववत् भीठे स्वर और वीणा आदि वाद्योंके साथ इस मंत्रका कीर्तन और जप कर ॥ १२५ ॥ ‘सीताराघव’ यह इस मंत्रका स्वरूप है । पहले ‘भज’ यह शब्द कहकर ‘सीतारामम्’ कहे । उसके बाद ‘मानस’ यह शब्द कहकर ‘भज राजारामम्’ ऐसा कहे । यह पंचदशाक्षरात्मक राममंत्र है । इसे भी जपे पर भीठे स्वर तथा वीणा आदि वाद्योंके साथ कीर्तन करे ॥ १२६-१२८ ॥ ‘भज सीताराम मानस भज राजारामम्’ यह इस मंत्रका स्वरूप है । पहले ‘श्रीसीतारामम्’ ऐसा कहकर ‘वन्दे’ कहे और उसके बाद ‘श्रीराजारामम्’ कहकर इस मंत्रका कीर्तन करे । यह द्वादशाक्षरात्मक मंत्र है । ‘श्रीसीतारामं वन्दे श्रीराजारामम्’ यह इस मंत्रका स्वरूप है । लोगोंका उक्ति है कि सब प्रकारकी कामनामें पूर्ण करनेवाले इस मंत्रका जप और कीर्तन करे ॥ १२९ ॥ पहले ‘रावणमर्दन’ फिर ‘राघ’ उसके बाद ‘राघव’ फिर ‘बालामर्दन’ तदनन्तर ‘राम’ ऐसा कहे । अष्टादशक्षर मंत्रोंमें यह दूसरा मंत्र है । ‘रावणमर्दन राम राघवं बालामर्दन राम’ यह इस मंत्रका स्वरूप है । राजानोंको चाहिए कि सर्वदा इस मंत्रका जप किया करे । पहले ‘सीतारामम्’ उसके बाद ‘मानस’ फिर ‘भज’ और उसके पश्चात् ‘राजारामम्’ ऐसा कहे । यह बड़ा पवित्र मंत्र है ॥ १३०-१३४ ॥ चतुर्दशाक्षरात्मक मंत्रोंमें यह चौथा मंत्र है । इसका भी वीणा आदि वाद्योंके साथ कीर्तन तथा जप करना चाहिए । ‘श्रीसीतारामं मानस भज राजारामम्’ यही इस मंत्रका स्वरूप है । पहले ‘सीताराम जय’ फिर ‘राजाराम’ ऐसा कहे । यह दशाक्षर राममंत्र है । लोगोंको चाहिए कि भीठे स्वरसे इस मंत्रका भी कीर्तन किया करे ॥ १३५ ॥ ‘सीताराम जय राजाराम’ यही इस मंत्रका स्वरूप है । पहले ‘सीतारामम्’ फिर ‘वन्दे रामम्’ और इसके बाद ‘जय राम’ ऐसा कहे । यह त्रयोदशाक्षर राममंत्र है । संसारके प्राणियोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ नित्य इस मंत्रका कीर्तन करे ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ ‘श्रीसीतारामं वन्दे रामं जय रामम्’ यह मंत्रका स्वरूप है । पहले ‘मां पाहि मति’

कीर्तनीयो मनुर्मर्त्यैः सर्वपातककृतनः । वीणावाद्यस्वरेणोच्चैः कलकंठेन सुस्वरः ॥१३९॥

मां पाह्यतिदीनं राघव त्वत्पदयुगलीनमिति ।

द्वितीयोऽयं मया प्रोक्तो मंत्रो वै षोडशाक्षरः ॥१४०॥

जय जयेति वै चोक्त्वा राघवेति ततः परम् । मन्त्राक्षरमनुश्चायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४१॥

जय जय राघव इति मनुः ।

जयजयेति संकीर्त्य तथा रघुवरेति च । अष्टाक्षरमनुश्चायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४२॥

जय जय रघुवर इति मनुः ।

त्वं मां पालयेत्युक्त्वा सीतारामेति वै पुनः । नवाक्षरमनुश्चरमनुश्चायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४३॥

वीणावाद्यस्वरेणैव महापातकनाशनः ॥१४४॥

त्वं मां पालय सीताराम इति मनुः ।

सीताराम जयेत्युक्त्वा मनुः षडक्षरः स्मृतः । कीर्तनीयः सदा मर्त्यैर्वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१४५॥

सीताराम जय इति मनुः ।

श्रीसीतारामेति मनुर्ज्ञेयः पञ्चाक्षरः शुभः । कीर्तनीयः सदा मर्त्यैर्वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१४६॥

श्रीसीताराम इति मनुः ।

सीतारामेति मनुश्चतुर्वर्णात्मकः स्मृतः ।

सीताराम इति मनुः ।

श्रीरामेति त्र्यक्षरश्च रामेति द्व्यक्षरो मनुः ॥१४७॥

श्रीराम इति मनुः । राम इति मनुः ।

राकारो बिंदुना युक्तश्चैकवर्णात्मको मनुः । अयं सदा जपनीयः कीर्तनीयो न वै कदा ॥१४८॥

रां इति मनुः ।

रामजयेति चोक्त्वाऽऽदौ सीतारामेति वै ततः । राघवेति ततश्चोक्त्वा मंत्रस्त्वेकादशाक्षरः ॥१४९॥

फिर 'दीनं राघव' इसके बाद 'त्वत्पदयुगलीनम्' ऐसा कहे । यह षोडशाक्षर मन्त्र सब प्रकारके पापोंको काटनेवाला है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि बाजो और कोकिला जैसे मीठे तथा ऊँचे स्वरसे इस मन्त्रका कीर्तन करें ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ "मां पाह्यतिदीनं राघव त्वत्पदयुगलीनम्" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । षोडशाक्षर मन्त्रोंमें यह दूसरा मन्त्र है ॥ १४० ॥ पहले 'जय जय' ऐसा कहकर "राघव" कहे । यह सप्ताक्षर मन्त्र है । लोगोंको इसका भी कीर्तन करते रहना चाहिए ॥ १४१ ॥ "जय जय राघव" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "जय जय" कहकर "रघुवर" कहे । यह अष्टाक्षर मन्त्र है । लोगोंको इसका भी जप करते रहना चाहिए ॥ १४२ ॥ "जय जय रघुवर" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "त्वं मां पालय" ऐसा कहकर "सीताराम" ऐसा कहे । यह नवाक्षर मन्त्र है । लोगोंको इस मन्त्रका भी जप तथा कीर्तन करते रहना चाहिये । क्योंकि यह बड़े बड़े पापोंका नाशक है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ "त्वं मां पालय सीताराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम जय" यह षडक्षर राममन्त्र है । संसारके लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि बाजोंके साथ इस मन्त्रका भी कीर्तन करें । "सीताराम जय" यह मन्त्रका स्वरूप है । "श्रीसीताराम" यह पञ्चाक्षर राममन्त्र है । यह भी महान् पापोंका नाशक है । इसलिए लोगोंको इसका जप तथा कीर्तन करते रहना चाहिए ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ "श्रीसीताराम" यह मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम" यह चतुर्वर्णात्मक राममन्त्र है । "श्रीराम" यह त्र्यक्षर राममन्त्र है । "राम" यह द्व्यक्षर मन्त्र कहा गया है ॥ १४७ ॥ "श्रीराम" और "राम" यह मन्त्रका स्वरूप है । राकारको बिंदुयुक्त (रा) कर देनेसे एकाक्षर राममन्त्र हो जाता है । लोगोंको

राम जय सीताराम राघवेति मनुः ।

दशरथनन्दनेति रघुकुलेति वै ततः । भूषणेति ततश्चोक्त्वा कौमल्येति ततः परम् ॥१५०॥

विश्रामेति ततश्चोक्त्वा पंकजलोचनेति च रामेति द्वेऽक्षरे चापि द्वाविंशाक्षरे मनुः ॥१५१॥

अयं सदा कीर्तनीयो वीणावाद्येन सुस्वरः । प्रोक्तः पानकविश्रामो सर्वेषां छिन्नदायकः ॥१५२॥

दशरथनन्दन रघुकुलभूषण कौमल्याविश्राम पंकजलोचन रामेति मनुः

सीताराम जयेत्युक्त्वा राघवेति ततः परम् । रामेति द्वेऽक्षरे चापि मन्त्रस्त्रैकादशाक्षरः ॥१५३॥

कीर्तनीयः सुस्वरऽयं मन्त्रो वीणास्वरेण च । महापातकहन्प्रोक्तः सर्वविघ्नदायकः ॥१५४॥

सीताराम जय राघव रामेति मनुः ।

एकादशाक्षरमयं मन्त्रः प्रोक्तो मयाऽत्र हि । द्वितीयः परमः श्रेष्ठो महापातकनाशनः ॥१५५॥

पञ्चवटीस्थितेन्युक्त्वा रामजयजयेति च । दशरथनन्दनेति रामेति द्वेऽक्षरे तथा ॥१५६॥

एकविंशाक्षरमयः कीर्तनीयो महामनुः । कलकण्ठेन मर्त्यैश्च महापातकनाशनः ॥१५७॥

पञ्चवटीस्थित राम जय जय दशरथनन्दन रामेति मनुः ।

दशरथसुतेन्युक्त्वा बालं वन्दे त्विति क्रमान् । रामं घननीलमिति मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ॥१५८॥

तृतीयोऽयं मया प्रोक्तः कीर्तनीयो मनोरमः । वीणावाद्यस्वरेणैव महापुण्यविघ्नहन् । ॥१५९॥

दशरथसुतबालं वन्दे रामं घननीलमिति मनुः ।

कोदण्डखड्गेन्युक्त्वा दशशिरमर्दनेति च । कौमल्यासुत रामेति सीतारजन चेति वै ॥१६०॥

राजारामेति वै चोक्त्वा ह्येकोनविंशवर्णकः । कीर्तनीयो मनुश्चायं वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१६१॥

कोदण्डखड्गेन दशशिरमर्दन कौमल्यासुत राम सीतारजन राजारामेति मनुः ।

बाहिए कि इस एकाक्षर मन्त्रका केवल जप करे, कीर्तन नहीं ॥ १४८ ॥ 'रा' यह एकाक्षर मन्त्रका स्वरूप है । पहले 'राम जय' कहकर 'सीताराम' और इसके बाद 'राघव' ऐसा कहे । यह एकादशाक्षराम्बक राममन्त्र है ॥ १४९ ॥ 'राम जय सीताराम राघव' यह इस मन्त्रका स्वरूप है । पहले 'दशरथनन्दन' फिर 'रघुकुल' फिर 'भूषण' फिर 'कौमल्याविश्राम' फिर 'पंकजलोचन' और इसके बाद 'राम' ऐसा कहे । यह अट्ठाईस अक्षरोंका राममन्त्र है ॥ १५० ॥ १५१ ॥ लोगोंको वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे सदा इस मन्त्रका जप और कीर्तन करना चाहिए । क्योंकि यह सब प्रकारका पातक नष्ट करनेवाला और अभीष्ट कामनाओंका पूरा करनेवाला मन्त्र है । 'दशरथनन्दन रघुकुलभूषण कौमल्याविश्राम पंकजलोचन राम' यह इस मन्त्रका स्वरूप है । 'सीताराम जय' ऐसा कहकर 'राघव' और उसके बाद 'राम' ऐसा कहे । यह एकादशाक्षर मन्त्र है ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ यह भी सब प्रकारका पातक नष्ट करनेवाला है । 'सीताराम जय राघव राम' यह इस मन्त्रका स्वरूप है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे इसका जप और कीर्तन करे । क्योंकि यह सब प्रकारकी कामनायें इससे पूर्ण हो जाती हैं ॥ १५४ ॥ 'पञ्चवटीस्थित' ऐसा कहकर 'राम जय जय' और उसके बाद 'दशरथनन्दन राम' ऐसा कहे । यह एकविंशाक्षर राममहामन्त्र है । इसका भी मीठे स्वरसे कीर्तन करना चाहिए । क्योंकि यह महामन्त्र बड़े-बड़े पातकोंको नष्ट कर देता है ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ 'पञ्चवटीस्थित राम जय जय दशरथनन्दन राम' यह इस एकविंशाक्षर राममन्त्रका स्वरूप है । 'दशरथसुत' ऐसा कहकर 'बालं वन्दे' और इसके बाद 'रामं घननीलम्' यह कहे । यह षोडशाक्षर राममन्त्र है । षोडशाक्षर मन्त्रोंमें यह बड़े-बड़े पातकोंको नष्ट करनेवाला महामन्त्र है । इसे भी वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे गाना चाहिए । क्योंकि यह अतिशय पुण्यवर्धनकारी मन्त्र है ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ 'दशरथसुतबालं वन्दे रामं घननीलम्' यह इस मन्त्रका स्वरूप है । 'कोदण्डखड्गेन' ऐसा कहकर 'दशशिरमर्दन' इसके बाद 'कौमल्यासुत राम सीतारजन' और 'राजाराम' कहे । यह मन्त्र एकोनविंशाक्षराम्बक है । इसका भी वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे

कोदण्डमञ्जनेन्युक्त्वा रावणमर्दनेति च । कौमल्यानि तन्मञ्जोक्त्वा विश्रामेति ततः परम् ॥१६२॥
सीतारञ्जनेति ततो राजारामेति वै ततः । मन्त्रविशाक्षरमर्थं मनुः प्रोक्तः शुभपदः ॥१६३॥

कोदण्डमञ्जन रावणमर्दन कौमल्याविश्राम सीतारञ्जन राजारामेति मनुः ।

कोदण्डखण्डनेन्युक्त्वा बालीताडन चेति वै । लङ्कादाहनेति ततः पाषाणनारणेति च । १६४।
रावणमर्दनेन्युक्त्वा रविकुलेति वै ततः । भूषणेति तन्मञ्जोक्त्वा कौमल्येति ततः परम् ॥१६५॥
विश्रामेति तन्मञ्जोक्त्वा सीतारञ्जन चेति वै । २ राजारामेति वै चाक्त्वा पचाशदशरो मनुः ॥१६६॥
अर्थं सदा कीर्तनीयो बाणावाद्येन सुस्वरः । मन्त्रः । हि तन्मित्रेऽयं महापातकनाशनः ॥१६७॥

कोदण्डखण्डन बालीताडन लङ्कादाहन पाषाणनारण रावणमर्दन रविकुलभूषण

कौमल्याविश्राम सीतारञ्जन राजारामेति मनुः ।

एवं नानाविधा मन्त्राः सन्ति शिष्य मदम्बशः । महामन्त्रपर्यन्तं कस्मान् वक्तुं मयेत् समः ॥१६८॥
एते सर्वे कीर्तनाया वीणावाद्येन सुस्वरा । इमे मन्त्रा जपनीया न शेषा मानगोचराः । १६९॥
मन्त्रशास्त्रेषु ये प्रोक्तानि जप्या एव मानवैः । ते मन्त्राः विवेकाधान कीर्तनीयास्त्रिमे स्मृताः १७०॥
एतान् मन्त्रान् पुरस्कृत्य प्रवधा विविधाः शुभाः । रचयिष्या बुद्धिमान् विना नामाभिगदगात् ॥१७१॥
ये ये नोक्ता मया मन्त्रास्तान् युक्त्या रचयेत्ततः । रचने नैव देयेऽस्ते नैव पुष्टे जायन् हरिः ॥१७२॥
मन्त्रैः प्रवधैः काव्यैश्च स्तुतिभिः कीर्तनादिभिः । प्राचीनैर्वा कल्पितैर्वा रामो मेघः सदानरः ॥१७३॥
येन केन प्रकारेण कार्यं राघवचिन्तनम् । पापगतिः क्षणदग्धा श्रीरामचिन्तनेन हि ॥

भवत्यत्र न मद्देहः पावकेन यथा कुटी ॥१७४॥

दमेन वातिमक्त्या वा निष्कामाद्वा सकामतः । यद्यत्र राघवो गीतस्तेन पापं हुनं मवेत् ॥१७५॥

स्वरसे कीर्तन करना चाहिए ॥ १६१ ॥ १६० ॥ 'कोदण्डखण्डन दशशिरमर्दन कौमल्यामुत राम सीतारञ्जन राजाराम' यह इस मन्त्रका स्वरूप है । 'कोदण्डमञ्जन' कहकर 'रावणमर्दन' इसके बाद 'कौमल्याविश्राम' और 'सीतारञ्जन राजाराम' कहे । यह सप्तविशाक्षररत्नक शुभ राममन्त्र है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ 'कोदण्डमञ्जन रावणमर्दन कौमल्या विश्राम सीतारञ्जन राजाराम' यह इस मन्त्रका स्वरूप है । 'कोदण्डखण्डन' कहकर 'बालीताडन' और इसके बाद क्रमशः 'लङ्कादाहन' 'पाषाणनारण' 'रावणमर्दन' 'रविकुलभूषण' 'कौमल्याविश्राम' और 'सीतारञ्जन राजाराम' ऐसा कहें । यह पांच अक्षररत्नक राममन्त्र है । इसे भी वीणा आदि वाद्योंके साथ मोठे स्वरसे गाना चाहिए । यह मन्त्र सब राममन्त्रोंमें श्रेष्ठ है और बड़े बड़े पातक नष्ट कर देता है ॥ १६३-१६६ ॥ 'कोदण्डखण्डन बालीताडन लङ्कादाहन' इन पाषाणनारण रावणमर्दन रविकुलभूषण कौमल्याविश्राम सीतारञ्जन राजाराम' यह इस मन्त्रका स्वरूप है । हे शिष्य ! इस प्रकार हजारों राममन्त्र हैं । जिन्हे कोई हजारों वर्ष तक कहता जाय, फिर भी पूरी शीर्षसे नहीं कह सकता ॥ १६७ ॥ ऊपर बतलाये सब मन्त्रोंको वीणा आदि वाद्योंके साथ मोठे स्वरसे गाना चाहिए । श्रेष्ठ मन्त्रोंको यह भी जान लेना चाहिए कि ये सब मन्त्र जपनेके लिए नहीं बल्कि कर्तन करनेके लिए हैं । इनके अतिरिक्त मन्त्रशास्त्रोंमें जितने मन्त्र बतलाये गये हैं, वे सब जपनेके लिए हैं, कर्तन करनेके लिए नहीं । बुद्धिमान् कवियोंको चाहिए कि इन्होंने मन्त्रोंके आधारपर विविध भाषाओंमें विविध प्रकारके प्रवन्धोंकी रचना कर ॥ १६८-१७० ॥ मैंने जिन जिन मन्त्रोंको नहीं बतलाया है, उन्हें भी बुद्धिमान् लोग चहेता बराबर काममें ला सकते हैं । उन मन्त्रोंकी रचना करनेमें कोई दोष नहीं होता, बल्कि ऐसा करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं । १७१ ॥ मन्त्र, प्रवन्ध, काव्य, स्तुति, कीर्तन ये सब प्राचीन हो या अवनत औरसे नये बनाये गये हों, उनका कीर्तन करना चाहिए । किसी भी प्रकारसे रामका स्मरण करना अच्छी है । क्योंकि रामका धर्म रचनेमें मारी पापगति उमा तरह क्षणभरमें नष्ट जाती है । जैसे फूसकी कुटीमें आग लगती है तो जलमयमें उसे जलाकर भस्म कर देता है ॥ १७२-१७४ ॥ दम्भसे, भक्तिसे, निष्काम या सकाम जिस किसी तरह भी रामनामका कर्तन करनेसे पाप नष्ट होते हैं ॥ १७५ ॥

यथा बह्विस्तूलाग्निं स्पर्शितः कामनां विना । कामेन वा दहत्येव क्षणात्तद्वन्न संशयः ॥ १७६ ॥

मन्त्रैः प्रबन्धैः काव्यैश्च नानाचारित्रवर्णनैः

अत्यशुद्धैः स्तुतो रामः कल्पितैरपि स्वेच्छया । तैश्च तुष्टो भवत्यत्र श्रीरामो नात्र संशयः ॥ १७७ ॥

विनाश्रयेण रामस्य यत्कृतं स्तवनादिकम् । तेनापि तुष्टः श्रीरामो भवत्येव न संशयः ॥ १७८ ॥

आश्रयेणापि या निन्दा कृता श्रीराघवस्य च । सा भवेन्नकार्यैव नात्र कार्या विचारणा ॥ १७९ ॥

किं शास्त्रैश्च पुराणैश्च पठितैः पाठितैरपि । यदि रामे रतिर्नास्ति तर्मेवेन्मानवस्य किम् ॥ १८० ॥

रामप्रीतियुतस्यात्र भूर्भुवःस्थितं नरस्य च । तद्वाप्यकृतस्तुत्याद्यैः प्रमथो जायते हरिः ॥ १८१ ॥

रामचन्द्रस्य प्राप्त्यर्थं यत्कृतं मानवैर्भुवि । तेनातितुष्टः श्रीरामो भवत्येव न संशयः ॥ १८२ ॥

रामो गेयश्चिन्तनीयोऽत्र रामः स्तव्यो रामः सेवनीयोऽत्र रामः ।

ध्येयो रामो वंदनीयोऽत्र रामो दर्श्यो रामः सर्वभूतान्तरेषु ॥ १८३ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितातमंत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे

लक्ष्मणाश्वीनां कवचादिनिरूपणं नाम ध्वजदशः सर्गः ॥ १४ ॥

षोडशः सर्गः

(हनुमत्पताकागोपणं व्रत)

श्रीरामदास उवाच

एवं यद्यप्यथा पृष्टं तन्मया परिवर्णितम् । किमन्यच्छ्रोतुकामस्त्वं तद्वदस्व वदामि ते ॥ १ ॥

विष्णुदास उवाच

रामायणं नरः श्रुत्वा किं विधानं समाचरेत् । तच्च वद महाभाग यद्यस्ति तत्सविस्तरम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

रामायणे श्रुते दद्याद्रथं हेममयं सुधीः । चतुर्भिर्बाजिभिर्युक्तं तथा क्षौमपताकया ॥ ३ ॥

जिस तरह बड़ीसे बड़ी रुईकी राशिकी अग्नि जला डालती है, उसी तरह किसी कामनासे या विना कामना होके रामका कीर्तन तत्क्षण पापराशिकी भस्म कर देता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १७६ ॥ मन्त्र प्रबन्ध तथा विविध प्रकारके चरित्रोंसे पूर्ण काव्योंसे या अपने बनाये अतिअशुद्ध पदोंसे ही रामका कीर्तन किया जाता है तो भी भगवान् प्रसन्न होते हैं । इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १७७ ॥ विना किसी आधारके भगवने काव्योंसे रामकी स्तुति करनेसे रामचन्द्रजो प्रसन्न होते हैं । यदि रामका आधार लेकर काव्य बनाया जाय और उसमें भगवान्की निन्दा की जाय तो वह तरकका ही साधन होता है । इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ यदि राममें प्रीति नहीं है तो बहुतेरे शास्त्रों और पुराणोंके पठन-पाठनसे कुछ भी लाभ नहीं होता ॥ १८० ॥ राममें प्रीति रखनेवाला मनुष्य चाहे भूलें ही हो, किन्तु वह यदि अपनी टूटी-फूटी भाषामें भगवान्का गुण गाता है तो उससे भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १८१ ॥ इनके अतिरिक्त रामचन्द्रजोकी प्राप्तिके लिए जो कुछ भी उपाय किये जाते हैं, उनसे भगवान् अतिशय प्रसन्न होते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १८२ ॥ इसलिये लोगोको चाहिए कि सदा रामका गुण गाये, उनका स्मरण करें, सेवा करें, ध्यान करें, और संसारके प्रत्येक प्राणीमें भगवान्की अलौकिक उपोत्तिका दर्शन करे ॥ १८३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमोऽध्यायः ॥ रामतेजपाण्ड्यकृत ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते मनोहरकांडे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा, सो मैंने कह सुनाया । अब क्या सुनना चाहते हो, सो कहें ॥ १ ॥ विष्णुदासने कहा—आनन्दरामायण सुननेके अनन्तर लोगोको क्या-क्या विधान करना चाहिए, सो आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस रामायणको सुननेके अनन्तर

एतैश्चैव समाधुक्तं किंकिणीनादनादितम् । संपादितैश्च सम्यग्वै वेत्तुं दद्यात्पथस्विनीम् ॥ ४ ॥
 ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चान् शतमष्टोत्तरं सुधीः । एवं कृते विधाने तन्महाकाव्यं कलप्रदम् ॥ ५ ॥
 रामायणं भवेन्नूनं नात्र कार्या विचारणा । यस्मिन् रामस्य संस्थानं रामायणमथोच्यते ॥ ६ ॥

एवं त्वया यथा पृष्टं मया कृते निवेदितम् ।

विष्णुदास उवाच

किञ्चिद्भूतं हनुमतस्त्वं मां वक्तुमिहार्हसि ॥ ७ ॥

श्रीरामदास उवाच

यदा रामस्त्रिकूटाद्रौ नागपाशैस्तु पीडितः । नारदस्य वचः श्रुत्वा सस्मार विनतासुतम् ॥ ८ ॥
 तदाऽसौ काश्यपो वीरः समागम्य रणांगणे । प्रणाममकरोत्तस्मै रामायामिततेजसे ॥ ९ ॥
 निवार्य यक्षगाश्च तन्मेघनादसमीरितम् । तुष्टात्र रघुवीरं तं ससैन्यं च सलक्ष्मणम् ॥ १० ॥

उवाच प्रणिपत्याथ रामभद्रं खगेश्वरः ।

गरुड उवाच

आश्चर्यमिदमत्यन्तं यद्भवानस्मरद्भि माम् ॥ ११ ॥

सति वीरे महाकूटे सगमे श्रीहनुमति । सुग्रीवे च नले नीले सुषेणे जाम्बवत्यपि ॥ १२ ॥
 अकूदे दधिवक्त्रे च तारे च तरले तथा । मेदे मति महावीर्ये किं मेऽत्रास्ति प्रयोजनम् ॥ १३ ॥

श्रीराम उवाच

भवद्भीतिमुत्तामया विदुताश्च भुजङ्गमाः । एतेषु सत्सु वीरेषु किमु सैन्यमपीडयन् ॥ १४ ॥

गरुड उवाच

रामदेव महाबहो कपीनां चरितं शृणु । आत्मनोऽपि समाविष्टान्मा कुरुष्वान्न गर्हणम् ॥ १५ ॥
 साक्षात्त्वं भगवान्विष्णुर्लक्ष्मीस्तु जनकान्मजा । सौमित्रिः फणिरजोऽयं रुद्राश्च कपयः स्मृताः ॥ १६ ॥

बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि वह चर धोड़ो जुने और रेशमी पताकासे सुशोभित रथ कथावाचक ब्रह्मणको दान दे । विविध प्रकारसे अलंकृत गौका दान करे । इसके बाद एक सौ आठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये । जो प्राणा आनन्दरामायण सुनकर ऐसा करता है, उसे इस महाकाव्यके श्रवण करनका फल प्राप्त होता है । इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिए । जिसमें श्रीरामचन्द्रजीका निवास हो, वही रामायण है अथवा जिसमें राम विद्यमान रहे, वह रामायण है ॥ ३-६ ॥ इस तरह तुमने मुझसे जैसा प्रश्न किया, मैंने उसका उत्तर दे दिया । विष्णुदासने कहा—हे गुरु ! अब मुझे हनुमान्जीका भी कुछ बात बतला दीजिए ॥ ७ ॥ श्रीरामदासने कहा—जिस समय राम त्रिकूट पर्वतपर नागपाशमें बँध गये थे, उस समय उन्होंने नारदके कथनानुसार गरुडका स्मरण किया । उसी समय गरुडजी वहाँ जा पहुँचे और उन्होंने संग्रामभूमिमें भगवान्को प्रणाम किया ॥ ८ ॥ ९ ॥ तदनन्तर मेघनाद द्वारा प्रेरित नागपाशका निवारण करके समस्त सेना और लक्ष्मण सहित रामकी स्तुति की । फिर प्रणाम करके गरुडजी भगवान् रामचन्द्रजीसे कहने लगे—हे प्रभो ! यह सोचकर मुझे आश्चर्य होता है कि श्रीहनुमान्जीके रहते हुए भी मुझ दासको आपने स्मरण किया ॥ १० ॥ ११ ॥ हनुमान्जीके अतिरिक्त सुग्रीव, नल, नील, सुषेण, जाम्बवान्, अकूद, दधिवक्त्र, तार, तरल, मेद आदि वीर थे । इन वीरोंके रहते हुए श्रीमान्को मुझे स्मरण करनेकी आवश्यकता क्यों पड़ी ? ॥ १२ ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—आपके भयसे सब सपं भाग गये, किन्तु ये लोग यहाँ रहकर भी स्वयं उनके पाणम बँध गये थे ॥ १४ ॥ गरुडजी बोले—मैं आपको वानरोंका चरित्र सुनाता हूँ, सुनिए । यद्यपि यहाँ बहुतसे आत्मीय वानर बँडे हैं, फिर भी मैं कहूँगा । इन लोगोंके चाहिए कि मेरी बातको अपनी निन्दाके रूपमें न माने ॥ १५ ॥ आप साक्षात् विष्णु भगवान्

सुग्रीवो वीरभद्रोऽयं शङ्खरेण स्मृतो नलः । विद्धि दाशरथे नूनं गिरिशो नील एव च ॥ १७ ॥
 महापथाः सुपेणोऽयं जायर्वाश्चाप्यर्जकपत्न । अहिर्बुध्न्यस्त्वंगदोऽग्नदधिचक्रः पिनाकधृक् ॥ १८ ॥
 अयुताजिह्वयं तारः स्थाणुश्च तरलो मतः । मेदो भर्गतनुः साक्षान् हनुमान् भगवान् स्मृतः ॥ १९ ॥
 अवतीर्णा महारुद्रास्त्वदर्थं रघुनन्दन । अयम् सर्वदशेषु नानापर्वतमध्यतः ॥ २० ॥
 धृत्वा च कपिरूपाणि अवतेरुर्महांतले । सर्वेऽपि कपितां प्राप्ताः कारणं तद्व्रभीमि ते ॥ २१ ॥
 पुरा देवासुरैः मिथोर्मथिता ह्याधयोऽभवन् । नातापीडाकराः सर्वा लृणाविस्फोटकादयः ॥ २२ ॥
 तैरेव व्याधिभिः सर्वं पीडित जगतीतलम् । ऋषयोऽपि नृपालाश्च ब्रह्माण शरणं ययुः ॥ २३ ॥
 ऊचुश्च जगतां नाथं ब्रह्माण कमलोद्भवम् । त्राहि त्राहि जगन्नाथ व्याधिभ्यो जगतीमिमाम् ॥ २४ ॥
 पीडितां दारुणैर्दोषैर्ज्वराग्रैश्च महोन्वर्णः । त्रिदोषैर्जर्जरीभूतां विश्रमैर्व्याकुलोकृताम् ॥ २५ ॥
 औषधानि न सिद्ध्यन्ति संव्रयन्त्राणि चैव हि । पीडयन्ति महारोगा मानवान्नाशकारिणः ॥ २६ ॥

एतत्तं कथितं सर्वं ब्रह्मस्त्वत्पुरतः सुधीः ॥ २७ ॥

तत्तेषां वचनं श्रुत्वा रुद्रान्मप्रार्थयद्विधिः । तेऽपि श्रुत्वा ब्रह्मवाक्यं रुद्रा एकादशामलाः ॥ २८ ॥
 समाश्वास्य विगिञ्चि ते वीरभद्रादयः मराः । अभूय वानरध्वज सुगीवप्रह्लाहा इमे ॥ २९ ॥
 पर्वटन् पर्वताग्राणि मण्डलानि च स्वयः । साध्यन्तो जगत्सर्वं सुसुकारिः सुदरुणैः ॥ ३० ॥
 स्वेडितैः क्रीडनैस्तेषां व्याधयो नाशमाप्नुयुः । तनस्तु सकलां दृष्ट्वा वानरैर्वै एतां भुवम् ॥ ३१ ॥

ततोपि भगवान्ब्रह्मा ददौ तेभ्यो वरान् बहुन् ।

ब्रह्मावाच

पृथ्वाप्यपि च मुद्राऽस्तु मृतमंजीरनी कला ॥ ३२ ॥

आज्ञास्तु सर्वजगति वेगोऽस्तु मनसः समः । पृथ्वाप्यमरुति ये मन्याः पूजयन्ति भवत्तनुः ॥ ३३ ॥

हैं, श्रीसीताजी लक्ष्मी, लक्ष्मण जीव भगवान्, ये सब वानर रुद्रगण, सुग्रीव वीरभद्र और नल साक्षात् शिव-
 जीके अंशज गोत्र हैं । हे दाशरथे ! ये नील भू शिवजीके अंशज गिरिण हैं । इसी तरह महापथास्की सुपेण
 महापथा, काम्बवान् अर्जकपान्, अङ्गद, अहिर्बुध्न्य, अधिपत्य पिनाकधृक्, तार, अयुताजिह्व, तरल स्थाणु,
 मेद भर्गतनु और हनुमान् साक्षान् शिव है ॥ १७-१९ ॥ ये सागरी रुद्र आपके लिए इत्थन होकर सब वेशोमें
 अनेक पर्वतोपर रहते थे ॥ २० ॥ किन्तु अब वानरका रुद्र धारण करके इस पृथ्वीलपर आये हैं । ये सब
 वानर क्यों हुए, इसका कारण भी मैं आपका वतला रहा हूँ ॥ २१ ॥ एक समय देवताओं तथा दैत्योंने मिल-
 कर समुद्रका मन्थन किया । उससे अनेक दुष्ट दैत्योंने जन्म और विस्फोट आदि बहुतसे रोग उत्पन्न
 हुए ॥ २२ ॥ उन रोगोंमें तीनों लोक संकटमें पड़ गए । ऐसा अवस्थामें बहुतसे ऋषि और देवता एकत्र
 होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये और कहने लगे- हे जगन्नाथ ! इन दारुण व्याधियोंसे इस विश्वकी रक्षा करिए
 ॥ २३ ॥ २४ ॥ संसारके प्राणियोंको ज्वर आदि अनेक रोगों और वात, पित्त तथा कफ इन तीन दोषोंने
 घेर लिया है । इनकी शान्तिके लिए जिस किसी औषध तथा यंत्र मंत्र आदिका प्रयोग किया जाता है, वह
 भी सफल नहीं हो पाता । मनुष्योंका नष्ट करने में रोग सदैव उन्हें सताते रहते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥
 हे ब्रह्मा ! इस तरह मैंने लोगोंका कष्ट आपको कह सुनाये ॥ २७ ॥ उनकी ऐसी बात सुनकर
 ब्रह्माजीने रुद्रोंसे प्रार्थना की । ब्रह्माकेवय मृतक में वीरभद्र आदि एकादश रुद्रगण ब्रह्माको सान्त्वना
 देकर सुग्रीव प्रभृति वानर होकर बड़े बड़े पर्वता तथा जङ्गलोंमें मण्डल बाँधकर घूमते हुए अपने दारुण
 शब्द तथा क्रीड़ासे उन व्याधियोंको नष्ट करने लगे ॥ २८-३० ॥ इसके बाद समस्त पृथ्वीको वानरोंसे वेष्टित
 देखकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए और बहुतसे वरदान दिये । ब्रह्माजीने कहा कि तुम लोगोंकी मुद्राओंमें अमृत
 संजीवनी नामकी कला विद्यमान रहेगी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तुम्हारा वेग मनके समान होगा । जो लोग तुम्हारे

पताका विविधाः कृत्वा चित्रतोरणसंयुताः । भक्ष्यभोज्यानि स्वाद्यानि तेषां पेयं च सर्वम् ॥३४॥
 शुष्मानुदिव्य ये मन्या जुहन्ति हि हुताग्ने । इतिः पुण्यतमं रुद्रास्तेषां सिद्धिर्न संशयः ॥३५॥
 पायसेनैव साज्येन तथैव निलमपि वा । यजति भवतां इदं ते याति परमं पदम् ॥३६॥
 एवं वै रुद्रमखिलं गथा वैश्वानरीस्तथा । मानस्तोकंति वा मन्त्रो मनोज्योतिरथापि वा ॥३७॥
 भवतां यजनं चात्र गायत्र्या वा प्रकीर्तितम् । एवं ये मानवा लोके विधानं परिकुर्वते ॥३८॥
 व्याधिं मुक्त्वा सुखामीनास्त्वन्ते यात्यश्वयं पदम् ।

गण्ड उवाच

इति राम पुराष्टुतं कपीनां कथितं मया ॥३९॥

एषु रुद्रेषु सर्वेषु हनुमान्मद्रनायकः ॥४०॥

विधानं तत्र कर्तव्यं यन्नास्ते हनुमत्तनुः । गोपुरे हनुमन्मूर्तिः शिलायां च प्रतिष्ठिता ॥४१॥
 तत्र सर्वं प्रकर्तव्यं विधानं सुरसत्तमः ।

श्रीराम उवाच

केन केन प्रकारेण क्रियते कपिपूजनम् ॥४२॥

पताकाः कीदृशीस्तत्र कति कार्या विहङ्गव । हवनं कति संख्याक किं द्रव्यं कीज्योऽत्र वै ॥४३॥
 किं दानं केन विधिना तन्मन्त्राचक्ष्य सुभक्त ।

गण्ड उवाच

वनमारे समुत्पन्ने ग्रामे वा पत्तनेऽपि वा ॥४४॥

प्रमत्तयौषधं नैव मणिमन्त्रपुरःक्रमाः । विधानं तत्र कर्तव्यमेकादश्यां तिथौ नृष ॥४५॥

प्रातःकाले समुत्थाय कृदशीचो द्विजोत्तमः । स्नात्वा गङ्गाजले पुण्ये तिलामलकसंस्कृतः ॥४६॥

एकादश द्विजान् श्रेष्ठान्सोषयामान्निमन्त्रयेत् । जागरस्तस्तु कर्तव्यः सर्वोपस्करसपुनः ॥४७॥

आदौ तु मण्डपं कृत्वा सर्वत्रापि सुशोभितम् । पुष्पमण्डपकामध्ये मण्डपे स्थपयेद्भरान् ॥४८॥

शरीरकी पूजा और स्मरण करगे । विविध रङ्गका पताकाये, चित्र विचित्र तारण, तरह तरहके भक्ष्य-भोज्य तथा पेय पदार्थ आपके उद्देश्यसे जो अग्निमें हुवन करगे, उनका रुद्रसिद्धि प्राप्त होगी । इसमें कोई शक्य नहीं है ॥ ३३-३५ ॥ जो लोग धो मिलाकर खीरका हुवन करते हैं, उनका परम पद प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार "एवं वै रुद्रमखिलं" इस मन्त्रसे अथवा 'वैश्वानर' या 'मानस्तोक' इस मन्त्र तथा 'मनोज्योति' इस मन्त्र अथवा गायत्रीमन्त्रसे आपके लिए हुवन करनेका विधान है । जो लोग संसारमें इस विधिका पालन करते हैं, वे सब प्रकारका व्याधिप्रोक्त मुक्त होकर अश्वय पद प्राप्त करते हैं । गण्डउवाचो कहते हैं राम । यह धीने बानरोका एक प्राचीन इतिहास कह सुनाया ॥ ३७-३८ ॥ इन श्रारहो रुद्राये हनुमान्जी सबके मुखिया हैं । इसलिए ऊपर बतलाये हुए सब विधान उसी स्थानपर करने चाहिए, जहाँ कि हनुमान्जीकी मूर्ति विद्यमान हो । अथवा गोपुर या किसी पाषाणखण्डपर हनुमान्जीकी मूर्ति स्थापित करके पूर्वलिखित विधिसे पूजन करे । श्रीरामचन्द्रजाने पूछा-हे पक्षिराज । किस-किस प्रकारसे कपिपूजन करना चाहिये ॥ ४०-४२ ॥ इनकी पूजामें कैसी पताका बनवाये, कितनी आहुतियाँ दे, किस मन्त्रका जप करे और किस-किस विधिसे क्या दान करे ? से सुन्नत ! वे सब बातें हमें बतलाए । गण्डने कहा-हे प्रभो ! जिस समय ग्रामीण या प्राणिक मनुष्योपर महामारी जैसी विपत्ति आ पड़े । मणि-मन्त्र आदिका प्रभाव कोई काम न करे तो एकादशी तिथिको यह विधान सम्पन्न करे ॥ ४३-४५ ॥ किसी उत्तम बाह्यणकी च.हिए कि वह प्रातःकाल उठे । शरीरमें तिल और आंवले लगाकर पवित्र जलसे स्नान करे । इसके अनन्तर उपवास किये हुए ग्यारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे और सब सामग्रियें एकत्रित करके उन लोगोंके साथ राहभर जागरण करे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ पहले चारों ओरसे सुशोभित मंडप तैयार करवाये और उसमें फूलोंका एक छोटा-सा भण्डि बनाकर बीचमें

पञ्चामृतैस्तु स्नपनं रुद्रेभ्यः परिकल्पयेत् । ततस्तु कुमुदैः पूजा शतपत्रादिभिः शुभैः ॥४९॥
 चन्दनं च मकरं रुद्रेभ्यो लेपनं व्रतम् । दशांगधूम्रादद्य ह्यपैर्नाराजयेत्ततः ॥५०॥
 नैवद्यं विविधं दद्यात्तावृत्तेनैव मधुनम् । एकादश पत्राकास्तु पटैः सुपरिकल्पयेत् ॥५१॥
 या या यस्मै समुद्दिष्टा पत्राका च सुशोभना । तस्य तस्यैव रूपं तु तस्यामेव प्रकल्पयेत् ॥५२॥
 एव कृते विधाने च सुपत्राकास्तुतारणैः । प्रातःकाले तु राजेन्द्र आगरांते द्विजोत्तमः ॥५३॥
 कुतस्तनो नदताये होमं कुर्यान्ममाहितः । पायसेन तु साज्येन तथैव तिलमर्पिषा ॥५४॥
 अपूर्तं हवनं कृत्वा पुनः पत्रां प्रकल्पयेत् । पत्राका हनुमद्द्वारे तस्यैव च निधापयेत् ॥५५॥
 राजद्वारे तु सौम्रादीं मर्पेणोपापणे न्यसेत् । नलनीलपत्राके च शिवद्वारे तु विन्यसेत् ॥५६॥
 तारस्य नलस्यपि मैदस्य ह्यपदस्य च । ग्रामद्वदिधनदित्तु मार्गेषु स्थापयेद्विधा ॥५७॥
 जलस्थाने जायवन्तीं दाधिवक्त्रीं चतुष्पदे । स्थापयेन्ग्रामां दिग्वां महावाद्यादिमगलीः ॥५८॥
 द्वारवेशे जनानां च रुद्रमूर्तिं विलेखयेत् । चित्रितां पञ्चवर्णैश्च ग्रामसूत्रैश्च वेष्टयेत् ॥५९॥
 प्रत्यहं कारयेद्विद्वान् भक्त्या ब्राह्मणतपेणम् । दद्याद्दत्तं णि ऋत्विग्भ्यो सालकाराणि भूरिशः ॥६०॥
 छत्राणि करपत्रैश्च पादुकाश्च विशेषतः । धेनु परश्विनीं दद्यादाचार्याय सवन्मन्त्राम् ॥६१॥
 सदसिणां सवस्त्रां च सालकारां भुगान्वितान् । द्विजैश्च महिषीं दद्यात्तथैव पृथिवीरते ॥६२॥
 अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च समं धान्यानि भूरिशः । लक्षणं मधून देय तैलं च सगुडं तथा ॥६३॥
 शय्यादानानि भूर्गाणि छत्राणि विविधानि च । एतन्कृत्वा विधानं च राजा क्षेममवाप्नुयात् ॥६४॥
 रुद्र एवात्र निर्दिष्टो जपः सर्वैः सुलक्षणाः । अथवा हान शस्त्रं मानस्तोक इति स्फुटम् ॥६५॥

इति हनुमत्पत्राकाभिधानं व्रतम् ।

इति श्रीशतकोटिरामचरितानाम्ते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे

हनुमत्पत्राकापणव्रतवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

बानरोंको स्थापित करे ॥ ४८ ॥ तदनन्तर उन पत्राका पञ्चामृतम स्नान कराये और शतपत्र आदिक फूलोंसे
 विधिवत् पूजन करे । कपूर मिल हुए चन्दनका लेपन, दशांग धूम्रका आघ्राण और नीराजन करे । फिर
 हाम्बूलके साथ विविध प्रकारके नैवेद्य समर्पित करे और रुद्र वस्त्रोंसे ग्यारह पत्राका बरवाये । जो
 पत्राका जिस रुद्रके लिए निर्धारित की गयी हैं, उसमें उसका चित्र बनवाये ॥ ४९-५२ ॥ ये विधियाँ करनेके
 अनन्तर सुन्दर पत्राका आदि समर्पित करे । वह ब्रह्मण सवर उठे और नदीके जलमें स्नान करके सावधान-
 मतापूर्वक तिल और घी मिले खीरमें अग्निवृण्डमें दस हजार अर्घुनिर्वा दे । इसके बाद फिर उन सबकी पूजा
 करे । हनुमान्जोंके द्वारपर हनुमान्जों की पत्राका, राजद्वार पर सुगन्धका पत्राका, आपण (बाजार) में सुपेणकी
 और शिवद्वारपर नल-नीलका पत्राका स्थापित करे । ५३-५६ ॥ तत्पश्चात् तार, तरल, मैद और अङ्गदकी
 पत्राकाओंको ग्रामके बाहर चारों दिशाओंमें स्थापित करे । ५७ ॥ जलस्थानपर जाम्बरान् और चौराहेपर
 दाधिवक्त्रकी पत्राकाको विविध वस्त्रों की धनिकें साथ स्थापित करे । मनुष्योंके द्वारदेशपर पाँच वर्णोंसे
 चित्रित रुद्रमूर्ति बनाये और ग्रामसूत्रोंसे उसे परिवेष्टित करे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ समग्रद्वार लोगोंकी चाहिए कि
 प्रतिदिन ब्राह्मणोंको अच्छी तरह भोजन कराये और ऋत्विजोंका विविध आभूषण और वस्त्र दान दे ॥ ६० ॥
 छत्र, पादुका तथा दूध देनेवाली सवस्त्रा गो आचार्योंको दे । उस गौके साथ पर्याप्त दक्षिणा, अलंकार, वस्त्र आदि
 भी दे । उस यज्ञमें जो ब्राह्मण ब्रह्मा बना है, उसे एक भैंसका दान दे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसके अतिरिक्त और
 जितने ब्राह्मण हों, उन्हें भी शय्यादान और छत्र आदि दे । जो राजा इस विधानसे रुद्रपूजा करता है, उसका
 सब प्रकारसे कल्याण होता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इस विधानमें रुद्रमन्त्र अववा "मानस्तोके" यह मन्त्र जरना
 लाभकारी होता है ॥ ६५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितानाम्ते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामसेव-
 वाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

(श्रीरामचन्द्रोपदिष्ट साररामायण)

श्रीरामदास उवाच

विष्णुदास स्वया यद्यन्पृष्टं तत्तन्मयेरितम् । रामाज्ञया तव प्रीत्याऽऽनन्दचाग्निप्रमुत्तमम् ॥ १ ॥
 रामेणैव ममास्येन तवोपदिष्टमादरात् । स्वयस्ति रामसंप्रीतिस्तस्माद्रामेण मे द्विज । २ ॥
 आशापितं पूजनांते पुरा तव तपोबलान् । आनन्दगमचरितं ममेदं मंगलप्रदम् ॥ ३ ॥
 विष्णुदासाय विप्राय कथयस्वेति वै मुहुः । त्वदर्थं पूजतांते मे दर्शनं दत्तवान्निजम् ॥ ४ ॥
 नवोत्तरशतश्लोकमाररामायणेन च । पुरा मे ग्रथितेनात्र रामेण स्मारितोऽप्यहम् ॥ ५ ॥
 श्रीराघवोपदिष्टेन महामंगलदेन च । नवाधिकशतश्लोकमाररामायणेन च । ६ ॥
 यद्यन्मया विस्मृतं च श्रुतं पूर्वकथानकम् । मम तच्चापि स्मारितं वाल्मीकिमुखनिर्गतम् । ७ ॥
 ततो मया विष्णुदाम राघवस्य ज्ञया तव । शतकोटिमिताद्रामचरितान्मविविच्य च ॥ ८ ॥
 सारं सारं च कथितं महामांगल्यकारकम् ।

विष्णुदास उवाच

त्वयैतत्कथितं चेदमानन्दमञ्जकं मम ॥ ९ ॥
 श्रीरामचरितं रम्यं मम तोषार्थमुत्तमम् । शतकोटिमितात्तन्किं कथितं च विविच्य च । १० ॥
 अथवा भारतखण्डानर्भाद्भुक्तं वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

शतकोटिमितं कृन्तनं मया रामायणं शुभम् ॥ ११ ॥
 विविच्य ज्ञानदृष्ट्याऽत्र तवेदमुपदेशितम् । विद्वेषात्स्मारितं चापि साररामायणश्रवात् ॥ १२ ॥
 रामोपदेशिताद्रम्यास्ततस्ते कथितं मया ।

विष्णुदास उवाच

शतकोटिमिते रामचरिते पातकापहे । १३ ॥
 कति कांडानि सर्गाश्च तन्मां वक्तुं त्वमर्हसि ।

श्रीरामदास कहा -हे विष्णुदास । तुमने हमसे जो कुछ पूछा, सो मैंने कह सुनाया । यह समस्त आनन्दरामायण रामचन्द्रजीकी आज्ञासे अबवा यूँ कहो कि साक्षात् रामचन्द्रजीन ही मेरे मुखसे कहा है । तुम्हारे हृदयमें रामकी भक्ति है । इसलिये उस दिन पूजनके अन्तमें तुम्हारे तपोबलसे प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे तुमको आनन्दरामायण सुनानेकी आज्ञा दी थी । उन्होंने कहा था -यह आनन्दरामायण बड़ा मंगलकारी ग्रन्थ है, तुम इसे विष्णुदासको सुनाओ । तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर ही मैं पूजनके अन्तमें तुम्हें अपना दर्शन दे रहा हूँ ॥ १-४ ॥ रामचन्द्रजीके स्मरण करानेपर ही मैंने एक सौ नौ श्लोकोमें रामायणका सार सुनाया था । जिन-जिन कथानकोंको मैं भूल गया था । वे भी वाल्मीकिजीके मुखसे निकले रामायण द्वारा स्मरण होते गये ॥ ५-७ ॥ इसके बाद मैंने रामचन्द्रजीकी आज्ञासे रामायणके सुहृद-मुख्य अंश लेकर कहा है । विष्णुदास बोले कि आपने मुझे आनन्द देनेके लिये यह रम्य आनन्दरामायण कहा है तो कृपा करके अब यह भी बतलाइए कि सौ करोड़ संख्यात्मक रामायणसे आपने कहाँ कहाँसे क्या क्या अंश लेकर कहा है? ॥ ८-१० ॥ अबवा भारतखण्डसे कौन-कौन अंश लिये हैं ? श्रीरामदास कहने लगे-तूरी रामायण सौ करोड़ श्लोकोंको है ॥ ११ ॥ ज्ञानकी दृष्टिसे विवेचना करके मैंने तुम्हें इसका उपदेश दिया है । हमें तो रामायणके सारका अध्ययन

श्रीरामचन्द्र उवाच

नव लक्षणि कांडानि शतकोटिमिते द्विज ॥१४॥

सर्गा नवतिलक्षाश्च ज्ञातव्या मुनिकीर्तिताः । कोटीनां च शत श्लोकमानं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥१५॥

विष्णुदास उवाच

गुरोर्हं श्रोतुमिच्छामि यत्र श्रीरावणे हि । उपदेष्टुं मय्यं हि साररामायणं शुभम् ॥१६॥

नवोत्तरशतश्लोकमामिदं च मनोहरम् । तत्र च ददाधुना पुण्यं वर कीदृहलं मम ॥१७॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्ट त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । साररामायणं तेऽद्य प्रोच्यते रामकीर्तितम् ॥१८॥

आविर्भूत्वा पूजनांते मद्ग्रे आत्माभिः श्रिया । मां प्रोवाच रघुधेष्टः प्रसन्नमुत्तुपकृतः ॥१९॥

(अथ साररामायणम्)

श्रीरामचन्द्र उवाच

रामदास शृणुष्वक्षयत्सारं प्रोच्यते नव । चरितं मङ्गलं स्वीयं मया तत्रैव प्रविष्टम् ॥ १ ॥

विष्णुदासाय शिष्याय मद्भक्तिनिरताय च । कथयस्व तथाऽन्यच्च ज्ञानाद्दृष्टं यथाश्रुतम् ॥ २ ॥

यथा भारतखंडान्तमार्गे चापि त्वयेक्षितम् । स्मरणार्थं त्वहं किञ्चित्त्वं वक्ष्यामि मादरम् ॥ ३ ॥

पार्वतीशिवसंवादः सूर्यवशार्धपाधिवाः । मन्त्रिब्रह्मण लंकां रावणेन विमर्जनम् ॥ ४ ॥

दशरथविवाहश्च कैकेय्यं द्विवर्षणम् । कैकेय्यं द्विजशापश्च वरदानकराय च ॥ ५ ॥

राजः शपो वैश्यहत्या शृणुष्वङ्गार्थमुद्यमः । ऋष्यशृङ्गमुनेस्तेजःप्रतापद्वहिताऽर्पितम् ॥ ६ ॥

पायसं तद्विभक्तं च गृध्री भागं गिरौ नयन् । अन्तर्भा नृपसत्यमनामामामन्सुदोहदाः ॥ ७ ॥

सती भूम्या ब्रह्मणा मे प्रार्थनं मथराजनिः । चैत्रे मासि ममोत्पत्तिर्बधुमिश्रं हनुमता ॥ ८ ॥

बालकीडा मन्कना च यतबंधमनो मम । वेदाभ्यासो वसिष्ठाच्च तीर्थयात्रा च बधुभिः ॥ ९ ॥

करनसे ही बहुत-सी बातें याद आ गयी थी । उन्होंने रामदास अज्ञात में मुझे सुनाया है ॥ १२ ॥ १३ ॥ विष्णु-
दासने पूछा—उस शतकोटिमन्त्रात्मक रामायणमें कितने काण्ड और कितने सर्ग हैं ? सो कृपा करके हमें
बतलाइए । श्रीरामदासने कहा—हे द्विज ! सो कराड संग्रह्यक रामायणमें कुल नौ लाख काण्ड तथा नब्बे
लाख सर्ग हैं ॥ १४ ॥ कुल मिलाकर उस रामायणमें सौ कराड बराबर हैं ॥ १५ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! अब
मैं आपसे वह रामायण सुनना चाहता हूँ, जिसे स्वयं रामचन्द्रजीन आरको बतलाया था ॥ १६ ॥ जिसमें एक
सौ नौ श्लोक हैं । कृपया अब मुझे वह सुनाइए । उसकी सुननेके लिए मैं हृदयमें बड़ा कौतूहल है ॥ १७ ॥
श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सावधान होकर सुनो । आज मैं तुम्हें वह
साररामायण सुनाऊँगा, जिसे श्रीरामचन्द्रजीने मुझसे कहा था ॥ १८ ॥ एक दिन जब कि मेरा पूजन समाप्त
हो गया था, तब भगवान् अपने तीनों भ्राताओंके साथ मेरे समक्ष आये । उन्होंने प्रसन्न होकर यही सार-
रामायण कहा था ॥ १९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे रामदास ! मेरे चरित्रोका जो सार अंश है, सो तुमसे
कह रहा हूँ । इसे विस्तृत रूपसे तुम विष्णुदास नामके अपने शिष्यको सुनाना । क्योंकि वह मेरी भक्तिमें
निमग्न है । इन चरित्रोक्त अतिरिक्त तुमने अपने ज्ञानमें जो कुछ देखा सुना हो या भारतखंडमें देखा हो,
वह सब भी उसे सुना दना स्मरण रखनेके लिए कुछ चरित्र मैं तुम्हें बतला रहा हूँ ॥ १-३ ॥ शिव पार्वती-
संवाद, आर्य सूर्यवंशज राजाओंका चरित्र, मेरे माता पिताका हरण रावण द्वारा उनका लंका भेजा जाना,
वक्षरथविवाह, कैकेयीको दो वरदान देना, कैकेयीके लिए ब्रह्मणका श्राप, वरदान देनेवाले विप्रको राजाका
काप, वैश्यहत्या, ऋष्यशृङ्गका लानेका उद्योग, शृणुष्वङ्गके प्रथम वसे अग्निद्वारा महाराज दशरथको पायस
मिलना ॥ ४-६ ॥ उसके हिंसे लगानपर उनका एक भाग एक गृध्रीका पर्वतपर लेकर चली जाना, र नियोका
गर्भिणी होना, भूमिके साथ महाका आकर मेरी स्तुति करना, मथराकी उत्पत्ति, चैत्रमासमें अपने सब भाइयों
सुना हनुमान्जीके साथ मेरी उत्पत्ति, मेरी की हुई बाललीलायें, मेरा यज्ञोपवीतसंस्कार, वसिष्ठके पास वेदाध्ययन

विश्वमित्रादनुविद्या ताटिकामर्दनं वने । प्रारम्भो रणदीक्षायाः सुबाहोर्मर्दनं मत्से ॥१०॥
 मारीचक्षेपणं चापि अहल्याद्वेषणं मया । स्वयंवरं च शापश्च मुनिपत्न्याः सविस्तरम् ॥११॥
 नौकापेन हि गङ्गायां मर्दन्निशालनं कृतम् । शवं धनुर्जामदन्यन्यस्तं भग्नं सभागणे ॥१२॥
 सीतोत्पत्तिश्च सीताया लङ्कागमननिर्गमौ । बधूनां मे विवाहाश्च जामदन्यपराजयः ॥१३॥
 दीपावल्यात्सवश्चापि नृपैः पथि महारणः । जीवनं भरतस्यापि मङ्गावि मुनिनेरितम् ॥१४॥
 वृन्दाशापः पितुः पुण्यं कैकेयीपूर्वकर्म च । नतो मद्दिनचर्या च गर्भाधानमहोत्सवः ॥१५॥
 नारदाग्रे प्रतित्ता मे यौवराज्यार्थमुद्यमः । कैकेयीवरदानेन दंडके गमनं मम ॥१६॥
 दर्शनं गुहकस्यापि सीतावाक्यं च ज्ञाह्वीम् । भारद्वाजवन्मोक्षयोर्दर्शनं च गिरौ स्थितिः ॥१७॥
 काकाक्षिभेदनं चापि राक्षसं मरणं पुरि । दर्शनं भरतस्यापि भरतस्य विसर्जनम् ॥१८॥
 सीतायास्तिलकोऽरण्येऽनुसूयाभूषणार्पणम् । विराघमर्दनं मार्गे नानाऽऽश्रमविलोकनम् ॥१९॥
 अगस्त्येऽथ गृध्रस्य दर्शनं सांघमर्दनम् । विरूपणं शूर्पणखायाः खरादीनां प्रमर्दनम् ॥२०॥
 सीतादेहविभागश्च मार्गेऽथ वधो मया । सीताया हरणं लंका संगरश्च जटायुषः ॥२१॥
 इन्द्रेण पायसं दत्त सीतायै गिरिजेश्वरम् । कवन्धमर्दनं मार्गे शबर्या पूजितस्त्वहम् ॥२२॥
 ततः सरुपं कपीन्द्रेण शिरशः क्षेपण मया । छेदनं समताडानां सर्पेण मालिका हता ॥२३॥
 बालेर्घातो मया तत्र सीताशुद्ध्यर्थमुद्यमः । हनुमताऽन्धितरणं लंकायां जानकीधनम् ॥२४॥
 मन्दोदरीममुत्पत्तिर्वनपाक्षादिमर्दनम् । लङ्कादाहश्च देहान्तं कर्तुं मिट्टोऽभवन्कपिः ॥२५॥
 जांबूनदवृक्षशाखाकथाऽन्धेस्तरणं पुनः । बहुमुद्रादर्शनं च सेतुबंधस्ततः परम् ॥२६॥
 विभीषणाभिषेकश्च विश्वनाथकथा शुभा । गन्धमादनेशाख्यानं संगरश्च ततः परम् ॥२७॥

भ्राताओंके साथ तीर्थयात्रा, विश्वामित्रसे धनुर्विद्याकी प्राप्ति, ताडकासंहार, रणदीक्षाका प्रारम्भ, यज्ञभूमिमें सुबाहुका मर्दन, मारीचका समुद्रपार फेंका जाना, मेरे द्वारा अहल्याका उद्धार, सीतास्वयंवरमें गमन, अहल्याके शापकी विस्तृत कथा ॥७-११॥ गंगाम निपाद द्वारा मेरे पैर धोया जाना, परशुरामजीके द्वारा लाकर रखे हुए शङ्खुरजोका वनुष मेरे द्वारा तोड़ा जाना, सीताको उत्पत्ति, सीताका लंका जाना और वहाँसे फिर वापस आना, मेरा तथा मेरे भ्राताओंका विवाह, परशुरामकी पराजय, ॥१२॥ १३॥ दीपावलीका उत्सव, रास्तेमें राजाओंके साथ महान् सग्राम, भरतका पुनर्जीवन, वृन्दाका शाप, मेरे पिताके पुण्य, कैकेयीके पूर्वकर्म, मेरी दिनचर्या, गर्भाधानमहोत्सव, ॥१४॥ १५॥ युवराज न बननेके लिए नारदके समक्ष मेरी प्रतिज्ञा, मुझे युवराजपदपर अभिषिक्त करनेको तैयारियाँ, कैकेयीके वरदानसे दण्डक-वनगमन, निपादके साथ वार्तालाप, गङ्गाजीके लिए सीताकी कुछ मनीतियाँ, भारद्वाज और बान्मीकि ऋषिके दर्शन, चित्रकूट पर्वतपर निवास, जयन्तके नेत्रभेदन, अयोध्यामें महाराज दशरथका मृत्यु, भरतजीका दर्शन और विसर्जन ॥१६-१८॥ वनमें मेरे द्वारा सीताके माथेमें तिलक लगाया जाना, अनुसूया द्वारा भूषणार्पण, विराघमर्दन, अनेक आश्रमोंके दर्शन, ॥१९॥ अगस्त्य और गृध्रके दर्शन, साम्बमर्दन, शूर्पणखाका विरूपकरण, खर आदि राक्षसोंका संहार, सीताके शरीरका विभाजन, मेरे द्वारा मारीचका वध, सीताहरण, रावण-जटायुसंग्राम, इन्द्र द्वारा सीताके लिए पायस प्रदान, कवन्धमर्दन, शबरी द्वारा पूजित होकर सुग्रीवके साथ मित्रता, दुन्दुभीके अस्थि-को फेंकना, सात तालोंका भेदन, सर्पद्वारा मालिकाहरण, मेरे द्वारा बालिका संहार, सीताका पता पानेके उद्योगकी तैयारियाँ, हनुमानजी द्वारा समुद्रसंघन, लंकामें जानकीजीका दर्शन मन्दोदरीकी उत्पत्ति-कथा, अशोकवनमें हनुमान्जीके द्वारा राक्षसोंका मारा जाना, लङ्कादाहन, हनुमान्जीका शरीर त्याग करनेका आग्रहण, ॥२०-२४॥ जाम्बूनद वृक्षकी शाखाका वृत्तान्त, पुनः सिन्धुसंतरण, बहुमुद्रादर्शन, सेतुबन्धन, विभीषणका अभिषेक, विश्वनाथकी कथा, गन्धमादन पर्वतस्थ शिवजीका वृत्तान्त, राम-रावणसंग्राम, कास-

कालनेमिवधश्चाथ तथैरावणमर्दनम् । मैरावणमर्दनं च मया मंचकभञ्जनम् ॥२८॥
 कुम्भकर्णवधश्चापि मेषनादस्य मर्दनम् । ततो होमस्य विश्वसस्ततो रावणमर्दनम् ॥२९॥
 सीताया दिव्यदानं च स्वपुरीगमनं मम । रणदीक्षासमाप्तिश्च राज्याभिषेचनं मम ॥३०॥
 उत्पत्ती रावणादीनामिन्द्रजेत्परक्रमः । मानभंगो रावणस्य बालिसुग्रीवजन्मनी ॥३१॥
 वायुपुत्रजन्मकर्म वरदानं हनुमतः । शापोऽपि वायुपुत्रान्च अगस्त्यश्च विसर्जनम् ॥३२॥
 इति सारकाण्डम् ॥ १ ॥

गंगायात्रासमुद्योगः सरयुमेदनं ततः । मया स्वबाणरेखा च सीतावाक्यविसर्जनम् ॥३३॥
 कुम्भोदरस्य वाक्येन पृथ्वीयात्रा मया कृता । कुमारीवरदानं च सुरभी केन भेषपिता ॥३४॥
 चिन्तामणेः शिवान्तामस्ततोऽयोध्याप्रवेशनम् ।

इति यात्राकाण्डम् ॥ २ ॥

आरंभो वाजिमेघस्य पृथ्व्यां वाजी विमोचितः ॥३५॥

नुरगाय मसैन्याय मार्गदानं तु गंगया । पृथ्वीप्रदक्षिणां कृत्वा वाटेऽश्वस्य प्रवेशनम् ॥३६॥
 तमसातटशाला च कुम्भोदरप्रदर्शनम् । अष्टोत्तरशत नाम्ना मम स्तोत्रं मुनीरितम् ॥३७॥
 दिनचर्याश्वजारोपावचभृथोन्मयो मम । सीतादानं च तन्मुक्ती रामतीर्थादिवर्णनम् ॥३८॥
 ततो यज्ञसमाप्तिश्च दश यज्ञा विशेषतः ।

इति यागकाण्डम् ॥ ३ ॥

ततो मम स्तवराजः क्रीडाशालाप्रवर्णनम् ॥३९॥

पक्षिणां नवकं स्तोत्रं जानक्या वर्णनं मया । देहरामायणं पत्न्यै मया कथितमुत्तमम् ॥४०॥
 दिनचर्या पुनर्मे हि सीतालङ्कारवर्णनम् । पक्वान्मानां च विस्तारो जलक्रीडा च सीतया ॥४१॥
 माध्याह्निकं भोजनादि मम कर्मप्रवर्णनम् । द्विजपत्न्यै भूषणानां दानं जनकजाकृतम् ॥४२॥
 राज्ञौ नानास्थलेष्वत्र क्रीडाश्च विविधाः स्त्रियः । रुक्मषोडशमूर्तीनां न्यामाग्रे दानमर्पितम् ॥४३॥

मेमिवध, ऐरावणमर्दन, मैरावणवध, मंचकभञ्जन, कुम्भकर्णवध, मेषनादमरण, होमविश्वस तथा रावणवध, ॥ २६-२९ ॥ सीताकी वापय, अयोध्या पुनरागमन, रणदीक्षाकी समाप्ति, मेरा राज्याभिषेक, रावण आदि-
 की उत्पत्ति और मेषनादके पराक्रमकी कथा, रावणका मानभंग, बालि-सुग्रीवके जन्मकी कथा, वायुपुत्रके
 जन्म कर्मका वृत्तान्त, हनुमान्जीके लिए वरदान, हनुमान्जीके लिए शाप और अगस्त्यकृषिका विसर्जन,
 इतनी कथायें सारकाण्डमें कही गयी हैं ॥ १ ॥ ३०-३२ ॥ गंगायात्राकी तैयारी, सरयुमेदन, मेरे द्वारा बाणकी रेखा
 खिचना, कुम्भोदरके वाक्यसे मेरी पृथ्वीयात्रा, कुमारीको वरदान, मेरे लिए ब्रह्मा द्वारा सुरभी-दानका वृत्तान्त
 ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ शिवजीके पाससे चिन्तामणिकी प्राप्ति और फिर अयोध्या वापस आना, ये इतनी कथायें
 यात्राकाण्डमें कही गयी हैं ॥ २ ॥ अश्वमेध यज्ञका आरम्भ, पृथ्वीप्रदक्षिणाके लिए घोड़ेका छाड़ा जाना, गङ्गाजीका
 मेरी सेना तथा घोड़ेके लिए रास्ता देना, समस्त पृथ्वी घूमकर धाड़ेंका वापस आना, कुम्भोदर द्वारा तमसा-
 की तटशालाका अवलोकन, कुम्भोदर द्वारा कहा हुआ मेरा शतनामस्तोत्र, ॥ ३५-३७ ॥ मेरी दिनचर्या,
 श्वजारोपण, अवभृथोत्सव, सीतादान, रामतीर्थ आदिका वर्णन, यज्ञसमाप्ति और दस यज्ञोंका वर्णन, ये
 इतनी कथायें यागकाण्डमें कही गयी हैं ॥ ३ ॥ इसके बाद मेरा स्तवराज क्रीडाशालाका वर्णन, ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ नौ
 पक्षियोंका स्तोत्र, मेरे द्वारा जानकीकी शोभाका वर्णन, मेरे द्वारा सीताके लिए देहरामायणका वर्णन
 ॥ ४० ॥ मेरी दिनचर्या, सीताके अलङ्कारोंका वर्णन, पक्वानोंका विस्तार और सीताके साथ जलक्रीडा
 ॥ ४१ ॥ तदनन्तर भोजन आदि मेरे माध्याह्निकालीन कर्मोंका वर्णन, सीताजीके द्वारा विप्रपत्नीके

ततो निजरपत्नीभ्यो वरदानं मयाऽर्पितम् । गुणवत्यै वरदानं पिपलायै वरापेणम् ॥४४॥
सीतायाः प्रत्ययार्थं च दिव्यदानं मया मुदा । कुरुक्षेत्रेऽगस्तिपत्न्या सशस्त्रे जानकीवपः ॥४५॥
इति विलासकाण्डम् ॥ ४ ॥

सीताया दोहदार्थं हि स्त्रीदाऽऽजामादिषु कृता । सोमन्तोन्नयनादीनि नानाकर्मणि वै ततः ॥४६॥
वितर्जितश्च जनको बान्मीकेराधर्मं मया । सीतया हं निजे रूपे कृतं मद्राक्षवर्गारवात् ॥४७॥
अंगुष्ठोभ्यो लिखितः कंकेटपारावगो महान् । लोकानां रजकस्यापि क्षपरादाद्विरेहजा ॥४८॥
मया रजस्तमोयुक्ता त्यक्ताऽऽनीतश्च तद्गुणः । गुप्तरूपेण पुत्रस्य कृतं गत्वा तु जातकम् ॥४९॥
क्षतयुक्ता मया गत्वा कृताः भोजाद्दर्शितरे । दान्भीकिना लवानां च लवः पुत्रः कृत परः ॥५०॥
तयोः कृतं तु हृदिना दानरक्षाभिन्नवपः । कमलानां च हरणे लवस्व विजयो महान् ॥५१॥
रामायणस्य भवणं पुत्रास्याभ्यां मयाऽश्वरे । युद्धं लवकृतं चाथ जलैस्तस्याभिषेचनम् ॥५२॥
मम युद्धं हृदयेनाथ सीतायाः क्षपयस्ततः । सीताया ग्रहणं चारि विभ्रंस्या भूतलं पुनः ॥५३॥
ततो यज्ञममासिश्च बन्धुपुत्रजनस्ततः । बालकीडोपनयनं वेदानां ग्रहणं क्रमात् ॥५४॥
बालानां शुभचिह्नानि सीतायाः पुत्रलालनम् । मर्चया व्रतवेषाश्च तेषां यातास्ततः परम् ॥५५॥
इति जन्मकाण्डम् ॥ ५ ॥

भूरिकीर्तः पत्रिकया तत्पुत्रं मयनं मम । व्यग्रताऽऽर्मान्पुग्म्रीणां दर्शनार्थं तदा मम ॥५६॥
वदितोऽहं नर्यः सर्वस्तदा राजममोगणे । क्रमेण वर्णनं चापि पार्थिवानां हि नदया ॥५७॥
कुशकण्ठे चम्पिकया रत्नमालाविसर्जनम् । क्रमेण वर्णनं चाथ पार्थिवानां सुनन्दया ॥५८॥
सुमत्या रत्नमालाया लवकण्ठे विसर्जनम् । उत्साहोऽथ विवाहस्य नानामम्मामपूर्वकः ॥५९॥
शमनं हि स्नुषाभ्यां च सीतया स्वपुत्री मम । निग्रहो जलदेवीनां बालकानां प्रमोचनम् ॥६०॥

४१
लिए पूषणदान, बहुत सी स्त्रियोंके साथ रात्रिके समय ऋषि और सूर्यमयी जोडल स्त्रियोंका दान, देवपत्नीयोंके लिए मेरा वरदान, गुणवती और पिपलायके लिए वरदान ॥ ४२-४४ ॥ सीताके विश्वासाय भेरी बाण, कुरुक्षेत्रमें बगस्यकी पत्नीके साथ बातबातमें जानकीकी विजय, इतनी कषायें विलासकाण्डमें वर्णित हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ सीताकी गर्भकालीन इच्छा पूर्ण करनेके लिए बगीचे आदिमें विहार, सोमन्तोन्नयन आदि विविध संस्कार, मेरे द्वारा राजा जनको बान्मीकके आश्रमपर भेजा जाना मेरे कहनसे सीताकर दो रूप धारण करना, ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ सीताके मर्दित अंगुष्ठके अनुसार कंकेटी द्वारा रावणका पूरा स्वरूप बनाया जाना, अपनी प्रजाके कतिपय लोगों और एक घोड़ीके मुखसे अपनी निन्दा सुनकर मेरे द्वारा सीताका परित्याग और उनकी प्रजा काटकर नैगवाना, गुप्तरूपसे बातमाकिके आश्रमपर पहुँचकर बन्धुके जातकर्म-संस्कार करना, बङ्गलाके तटपर मेरे द्वारा सौ आश्रमेय राज सम्गरित होना, बाल्याकि द्वारा लव-बिन्दुओंसे सब नामक दूसरे पुत्री सृष्टि होना, फिर उन दोनों बच्चोंका बात्मीकि द्वारा रामरश्मामन्त्रसे अभिमन्त्रित होना, कमलहरण करते समय लवकी एक बड़ी विजय ॥ ४८-५१ ॥ यज्ञभूमिमें लवकुशके मुखसे मेरा रामायणव्यवण, उनके साथ मेरे संतियोंका युद्ध और जलके घड़ीसे लवको न्याय कराया जाना, मेरे साथ कुशका संग्राम, सीताकी बाण, पृथ्वीमें प्रवेश करती हुई सीताको मेरे द्वारा पुनः पदूण करना, वनसमाप्ति, मेरे आलाबोली पुत्रोत्पत्ति बन्धुकी बालकीडा, बन्धुका उपनयनसंस्कार, बन्धुका वेदाध्ययन, बालकीके शुभ चिह्नका वर्णन, सीता द्वारा पुत्रोका लालन-पालन, सब पुत्रोका व्रतवच (उपनयन संस्कार) ॥ ५२-५५ ॥ ये इतनी कषायें जन्मकाण्डमें हैं ॥ ५ ॥ भूरिकीर्तकी पुत्रीके स्वयंवरका समाचार पाकर मेरा प्रस्थान, उस पुत्रीकी स्त्रियों की मेरे दर्शनके लिए व्यग्रता, वहाँके सब राजाओंका मेरी बत्तना करना, नन्दा द्वारा सब राजाओंकी गोष्ठा और वनवका वर्णन, चम्पिकाका कुशके गलेमें रत्नमाला डालना, सुमति द्वारा लवके कण्ठमें मालाप्रक्षेप, विविध सम्मानपूर्वक विवाहोत्सव, सीता और अपनी पुत्रबन्धुओंके साथ रामका बयोध्याकी कौटना, जलदेवी द्वारा

सर्वेषां तु विवाहाश्च पृथक् पुत्रगृहाणि हि । कान्तिपुर्याश्च मदनमुन्दरीहरणं ततः ॥६१॥
यूपकेतोर्विवाहश्च पौत्राणां गणना ततः । पौत्राणां गणना चापि सर्वैः सौख्यं ततो मम ॥६२॥

इति विवाहकाण्डम् ॥ ६ ॥

सहस्रनामस्तोत्रं मे कल्पवृक्षसुन्दरी । समानीदौ मया स्वर्गाद्भिरं दुर्वससेवणात् ॥६३॥
मत्कुम्भीपासकयोश्च संवादश्च परस्परम् । काकाय वरदानं च शतस्त्रीणां वरार्पणम् ॥६४॥
स्थानान्युक्तानि निद्रायै कृतः क्रोधोऽनुपादिषु । शनशोष्णो रावणस्य पौंड्रकस्य वधोऽपि च ॥६५॥
सीताया विरहो जातो हतश्च भूलकासुरः । सीतायाश्च स्तुतिः केन लंकायां च प्रवेशनम् ॥६६॥
लंकायाः परित्यक्त्य भ्रामयित्वा पुनं गतः । लाभः कपिलवाराहमूर्तेर्दत्ता च वधश्च ॥६७॥
लवणसुरघातश्च मथुरायां निवेशनम् । पुत्राणां राज्यभागमात्रं समद्वीपजयो मया ॥६८॥
पतिशूद्रगृध्रशिक्षा समप्रेतसुजीवनम् । शूद्राणां वरदानं च द्विजस्त्रीणां वरार्पणम् ॥६९॥
षोडशस्त्रीसहस्राणां वराश्च मृगया मम । कार्लिन्धे वरदानं च पिप्पलं छेत्तुमुद्यमः ॥७०॥

इति राज्यकाण्डं पूर्वार्धम् ॥ ७ ॥

शान्मीकेर्वचनादास्य कतुमाज्ञापितं जनान् । शापोऽश्विनैः कुमारस्यां गणयोश्च परस्परम् ॥७१॥
ब्रह्मणा मेऽवताराणां वर्णनं च पृथक्कृतम् । जन्मत्रयं च वाल्मीकिवरदानस्मृतिर्मम ॥७२॥
मद्राज्यवर्णनं चाथ हेमायश्च स्वयंवरम् । त्रिचांगदेन संग्रामः कथा कंकणयोस्तथा ॥७३॥
लवस्य जीवदानं च रामशूद्रा सविस्तरा । रामनाथपुत्रदानं विप्रैरेष्टश्च माकृतिः ॥७४॥
दिनचर्या मम ततः स्वल्पसंततिकारणम् । कर्णध्वनेः कथा चापि मेऽवतारेष्वयं वरः ॥७५॥
पत्रपार्श्वे श्रीरामेति लेखनस्य च कारणम् । सुगुणायै वरदानं द्वे रूपे च मया दत्तम् ॥७६॥
तुलसीपत्रसधिश्च रामायणश्रुतेः फलम् । सुमित्रजीवदानं च संग्रामश्च यमेन हि ॥७७॥

बच्चोका निग्रह और मेरे द्वारा उनका उद्धार ॥ ६६-६० ॥ सब बच्चोका विवाह, सब बालकोंके लिए अलग-अलग गृहनिर्माण, कान्तिपुरीसे मदनमुन्दरीका हरण, यूपकेतुका विवाह, मेरे पोतों और पोतियोंकी गणना, सब लोगोंके साथ मेरा सौख्यवर्णन, ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ये इतनी कथाएँ विवाहकांडमें कहों गयी हैं ॥ ६ ॥ मेरा सहस्रनामस्तोत्र, मेरे द्वारा कल्पवृक्ष और पारिजातका स्वर्गसे अपोद्धा लाया जाना, मेरे और कृष्णके उपासकका संवाद, कौएके लिए मेरे द्वारा वरदान, सौ स्त्रियोंके लिए वरदान, अपने अनुचर आदिपर क्रोध, निद्राके लिए स्थानकषण, शतमुख रावण तथा पौंड्रकका वध, मेरा और सीताका विरह, भूलकासुरका वध, ब्रह्मा द्वारा सीताकी स्तुति और मेरा लंकामें प्रवेश, ॥ ६३-६६ ॥ लंकाको चारों ओर घुमकी रेखा बनाकर अपनी पुरीको प्रस्थान, बन्धुके लिए कपिलवाराहकी मूर्तिका दान, लवणसुरका वध, मथुरामें प्रवेश, पुत्रोंके लिए राज्यविभाजन, मेरे द्वारा सासों द्वीपोंकी विजय, शक्तिशूद्र और गृध्रका न्याय, सप्त प्रेतोंका पुनर्जीवन, शूद्रोंको वरदान, द्विज स्त्रियोंके लिए वरार्पण, शीलह हजार स्त्रियोंके लिए वरदान, मृगयावर्णन, कार्लिन्धीके लिए वरदान, पीपल वृक्ष काटनेके लिए उद्योग ॥ ६७-७० ॥ ये इतना कथाएँ राजकाण्डके पूर्वार्द्धमें वर्णित है ॥ ७ ॥ मेरे द्वारा हास्यपर प्रतिवध, वाल्मीकिके परामर्शानुसार लोगोंको हंसनेके लिए मेरे द्वारा आज्ञा दिया जाना, अश्विनोक्तुमारों और मेरे गणोंके परस्पर वापसदान, ब्रह्माजीके द्वारा मेरे अवतारोंका वर्णन, वाल्मीकिके वरदानसे तंत अमोक्तकका स्मरण रहना, मेरे राज्यका वर्णन, हेमाका स्वयंवरवर्णन, त्रिचांगदके साथ संग्राम, दोनों कंकणोंको कथा, लवको जीवदान, सविस्तर रामशूद्राका वर्णन, रामनाथपुत्रका दान, विप्रों द्वारा हनुमान्जीका दर्शन ॥ ७१-७४ ॥ मेरी दिनचर्या, स्वल्प सन्तुष्टिका कारण, कर्णध्वनिकी कथा, अन्य अवतारोंमें एक विशेष वरदान, पोषीके पत्नेकी वगलमें "श्रीराम" यह लिखनेका कारण, सुगुणायै वरदान, मेरा दो रूप वारण करना ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तुलसीपत्र-

सप्तद्वीपेषु सर्वत्र धर्मशिक्षा मया कृता ।

इति राज्यकाण्डमुत्तरार्धम् ॥ ७ ॥

नारदोक्तं शनश्लोकैश्चरितं मम पावनम् ॥ ७८ ॥

पौराणामुपदेशश्च मन्मातृणां परास्यतः । मनःपूजा बहिःपूजा नररूपधरस्त्वहम् ॥ ७९ ॥
 रासलिभतोभद्राणां नानाभेदा विचित्रिताः । मामनवम्या विस्तारः कथा सारराज्यमभवत् ॥ ८० ॥
 मम नामलेखनस्योद्यापनं दानविस्तारः । विमर्जजिन्वविस्तारा वेदादीनां ध्रुनेः फलम् ॥ ८१ ॥
 सार्द्धमासद्वयं नाम ते व्रतं तिथिविस्तारः । गौरीव्रतस्य विस्तारो दोलके मम पूजनम् ॥ ८२ ॥
 नवम्यां मूर्तिदानं च मदनोत्सवविस्तारः । काम्यदेवताविस्तारो रकाराद्यग्रे गुणः ॥ ८३ ॥
 मम नाम्नश्च महिमा मन्नाभार्य उदाहृतः । चैत्रव्रतस्य विस्तारो राक्षसादिगतिः स्मृता ॥ ८४ ॥
 अद्वैतं दक्षितं लोकान्नारीणां च वरार्पणम् । मन्मुद्रावस्त्रमहिमा कवचं मे हनुमतः ॥ ८५ ॥
 सीताया लक्ष्मणादीनां कवचानि पृथक् पृथक् । शान्ताव्रतमाहान्मयं तस्य चोद्यापनं तथा ॥ ८६ ॥
 रामनामतोभद्रं च मंत्राश्च कौर्तनाय च । पताकारोपणं नाम व्रतं मारुतिनोपदम् ॥ ८७ ॥
 पयोपदिष्टमेतत्ते सारराभाषणं त्वयि । हनुमता शरसेर्वाग्जुनस्यात्र खंडनम् ॥ ८८ ॥
 इति मनोहरकाण्डम् ॥ ८ ॥

वाल्मीकिना सोमवंशनृपवृत्तानिबेदनम् । पृत्रयोगभिषेकश्च प्रस्थानं हस्तिनापुरम् ॥ ८९ ॥
 ततो महात्म्यंगरश्च पुत्रयोश्च जयो मम । वज्रणा प्रार्थना मेऽत्र वाल्मीकिश्च कुशश्च च ॥ ९० ॥
 रिपुस्त्राणां प्रार्थनया सीता पुत्रं न्यवारयन् । ततो विजेश्च वाक्येन वैकुण्ठं गन्तुमुद्यमः ॥ ९१ ॥
 सोमवंशोद्भवायाश्च दत्तं वै हस्तिनापुरम् । आजमीडाभिषेकश्च मवशां च विसर्जनम् ॥ ९२ ॥
 कुशस्य गमनं स्वीयपुरि राज्यं शशाम सः । मर्षस्वनुः कुमुदत्या वाग्मवसमुद्भवः ॥ ९३ ॥

की सन्धि, रामायणश्रवणका फल, सुमंत्रक लिए जीवनदान, यमराजक साथ सगान, सप्तद्वीपमे सर्वत्र मेरा धर्मशिक्षाका प्रचार किया जाना, ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ इतनी कथाएँ राज्यकाण्डके उत्तरार्धमें वर्णित हैं ॥ ७ ॥ नारद द्वारा सौ श्लोकोंमें मेरे पावन चरित्रका वर्णन, पुरवासिजाक लिए उपदेश, दूसरो द्वारा अपनी माताओं-के लिए उपदेश, मनःपूजा, बहिःपूजा, रासलिभूतोभद्रक अनेक भद्र, मामनवम्याका विस्तार, सारराज्यको उत्पत्ति-की कथा, मेरे नामलेखनका उद्यापन, दाना विस्तार, विमर्जजाविन्वका विस्तार, वंशक श्रवणका फल ॥ ७९-८१ ॥ हाई महीनेके लिए दत्त, तिथिका विस्तार, गौरीव्रतका विस्तार, दोलकमें मेरी पूजा, नवमीको मूर्तिदानकी विधि, मदनोत्सवका विस्तार, काम्य देवताओंका विस्तार, रकारादि अक्षरोंके गुणवर्णन, मेरे नामकी महिमा, मेरे नामके लिए उदाहृत चैत्रव्रतका विस्तार, राक्षसादि गतियोंका वर्णन, लागोंका अद्वैत स्वरूपका दर्शन, स्त्रियोंके लिए वरार्पण, मेरी मुद्रा, मेरे नामसे अर्द्धिज वस्त्रका महिमा, हनुमत्कवचका वर्णन ॥ ८२-८४ ॥ राम, सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नकवच, शान्ताव्रतका माहान्म्य, शान्ताव्रतका उद्यापन, रामनामतोभद्र मंत्रका कौर्तन, पताकारीहृग और हनुमान्जीको प्रसन्न करनेवाले व्रतका वर्णन ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें सारराभाषण सुना दिया । इसी रामायणके अन्तर्गत हनुमान्जीके द्वारा अर्जुनके शरसेतुके सङ्गनकी भी कथा वर्णित है ॥ ८८ ॥ इतनी कथाएँ मनोहरकाण्डमें बतलाई गयी हैं ॥ ८ ॥ वाल्मीकिवर्णित सोमवंशके राजाओंका वृत्तान्त, दोनों पुत्रोंका अभिषेक, हस्तिनापुरके स्थानका वर्णन, दोनों पुत्रोंके साथ मेरा महासंग्राम, मेरी विजय, ब्रह्माजीके द्वारा मेरी, वाल्मीकिकी तथा लवकुशकी स्तुति, रिपु-स्त्रियोंकी प्रार्थनासे सीताका अपन पुत्रोंको पुष्ट करनेसे रोक्ना, ब्रह्माके वाक्यसे मेरी वैकुण्ठयात्राकी तैयारी, सोमवंशियोंके लिए हस्तिनापुरका राज्यदान, आजमेरुका राज्याभिषेक, सब लागोंकी विदाई ॥ ८९-९३ ॥ लवकुशका अपना राजधानीमें पहुँचना और वहाँ शासन करना, कुमुदतीसे सन्तानोत्पत्ति, लक्ष्मण एवं सुग्रीव आदि मानरो तथा

वरदानं लक्ष्मणाय वानरैर्म्यस्तथा मया । अयोध्यासंस्थितानां च ततो देहविसर्जनम् ॥९४॥
 वानरास्ते सुरा जाताः सीता जाता रमा मम । लक्ष्मणः पञ्चगो जातः शत्रोऽभूद्भरतस्तदा ॥९५॥
 सुदर्शनं च शत्रुघ्नो विष्णुरूपधरस्त्वहम् । तदोर्मिलादिकानां च प्रयाणं सर्वयोषिताम् ॥९६॥
 नीताजनं सुग्रीभिस्तेषां सांत्वनिकं पदम् । शत्रुघ्ना संस्तुतवाहं गरुडारोहणं मम ॥९७॥
 पुष्पवृष्टिमेयि तदा वैकुण्ठे गमनं मम । वैकुण्ठे रमया स्थित्वा देवानां च विसर्जनम् ॥९८॥
 सूर्यवंशानुक्रमश्चानन्दरामायणस्य च । काण्डसंख्या सर्गसंख्या ग्रंथसंख्या फलश्रुतिः ॥९९॥
 रामायणश्रवणस्योद्यापनं च महत्तमम् । ग्रंथदानमनुष्ठानं प्रकाराः पञ्च वै ततः ॥१००॥
 अनुष्ठानोद्यापनं च शत्रुघ्नस्य च विस्तरः । संवादस्य पूर्णतापि ध्रुवयोर्गुरुशिष्ययोः ॥१०१॥
 आशङ्काछेदनं देव्याः कलाऽस्य पठनस्य च । रामायणस्य महिमा चैकश्लोकेन वै त्विदम् ॥१०२॥

मम ध्यानं चेशदेव्योः संवादस्यापि पूर्णता ।

इति पूर्णकाण्डम् ॥ ९ ॥

एवं मया रामदास साररामायणं तव ॥ १०३ ॥

स्मरणार्थं चरित्राणां संक्षेपेण निवेदितम् । इदं गोप्यं स्वयां कार्यं महत्पुण्यप्रदं स्मृतम् ॥१०४॥
 शतकोटिमितग्रन्थात्सारं सारं मयोदितम् । कः क्षमः सकलं वक्तुं विना वाल्मीकिना भुवि ॥१०५॥
 स एव धन्यो वाल्मीकिर्येन मच्चरितं कृतम् । साररामायणमिदं ये पठन्त्यत्र मानवाः ॥१०६॥
 तेभ्यो भुक्तिश्च मुक्तिश्च द्वित्र दास्याम्यहं मुदा । कुत्स्न रामायणं श्रोतुं पठितुं वा नरोत्तमान् ॥१०७॥
 अप्रकृतो यदा नास्ति तदैतत्संपटेश्वरः । अन्यद्यद्यन्मया कर्म कृतं पूर्वं शुभाशुभम् ॥१०८॥
 एन्मच्छन्दाश्चन्मृन्माभिर्गमिष्यति निश्चयम् । स्वदृष्टिगोचरं कुत्स्नं चरितं मे भविष्यति ॥१०९॥
 विष्णुदासाय शिष्याय वद त्वमधुना सुखम् ॥११०॥

अयोध्यावासियोंके लिए वरदान, अपनी देहका त्याग, वानरोंका अपना शरीर छोड़कर फिर देवता बनना, सीताका लक्ष्मी बन जाना, लक्ष्मणका सेधरूप हो जाना, भरतका पांचजन्य शङ्ख होना, शत्रुघ्नका सुदर्शन ध्वज हो जाना और मेरा विष्णुरूप धारण करना, उर्मिला आदि स्त्रियोंका प्रयाण, देवाङ्गनाओं द्वारा सब लोगोकी आरती, शिवजी द्वारा मेरी रतुति, मेरा गरुडारोहण, मेरे ऊपर पुष्पवृष्टि, मेरा वैकुण्ठगमन, वैकुण्ठमें लक्ष्मी-के साथ विराजमान होकर देवताओंका विसर्जन, ॥ ९३-९८ ॥ सूर्यवंशकी अनुक्रमणिका, आनन्द-रामायणकी काण्डसंख्या, सर्गसंख्या, रामायणश्रवणका महाफल, ग्रन्थदानविधि, अनुष्ठानके पाँच प्रकार, ॥ ९९ ॥ १०० ॥ अनुष्ठान, उद्यापन, शत्रुघ्नका विस्तर, तुम दोनों गुरु शिष्योंके संवादकी पूर्णता, देवीका माणकाछेदन, इसके पाठकी कलाएँ, रामायणके एक-एक श्लोकके पाठकी महिमा, मेरा ध्यान और शिव-पावतोंके संवादकी समाप्ति, ये इतनी कथाएँ पूर्णकाण्डमें कही गयी हैं ॥ ९ ॥ हे रामदास ! इस तरह मैंने तुम्हें संक्षेपमें साररामायण बतलाया । इससे तुमको मेरे चरित्रोंका स्मरण करनेमें बड़ा सहायता मिलेगी । यह बड़ी पुण्यदायक रामायण है । इसलिए इसे सदा गुप्त रखना । सौ करोड़ संख्यावाली रामायणका सार अक्ष लेकर ही इसे मैंने तुमको बताया है । वाल्मीकिके मित्राक्षर भला और कौन है, जो पूरे तौरसे रामायणका वर्णन कर सके ॥ १०१-१०५ ॥ वे वाल्मीकिजी धन्य हैं, जिन्होंने अच्छी तरह मेरे चरित्रोंका वर्णन किया है । जो लोग इस साररामायणका पाठ करते हैं । उन्हें मैं भुक्ति और मुक्ति सब कुछ देता हूँ । यदि किसी सज्जनको पूरे रामायण पढ़ने या सुननेका अवकाश न मिले तो उन्हें इस साररामायणका ही पाठ कर लेना चाहिए । इनके अतिरिक्त भी मैंने जो शुभ अशुभ कर्म किये हैं, वे मेरी इच्छासे तुम्हें मेरे चरित्र वर्णन करते समय अपने-आप स्मरण होते जाएँगे । मेरे सारे चरित्र तुम्हारे दृष्टि-गोचर होंगे ॥ १०६-१०९ ॥ अब तुम इसे अपने शिष्य विष्णुदासको आनन्दके साथ सुनाओ ॥ ११० ॥

श्रीरामदास उवाच

एवं श्रीरामचन्द्रेण यथाञ्च कथितं मम । साररामायणं रम्यं तदिदं ते निवेदितम् ॥१११॥
 इदं रम्यं पवित्रं च महापातकनाशनम् । सर्वदा मानवैर्जप्यं मुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥११२॥
 कृत्स्नं रामायणं श्रुत्वा यत्फलं प्राप्यते नरैः । तदस्य पठनादेव सत्यं सत्यं वचो मम ॥११३॥
 तस्माद्भूमिः सदा जप्य सर्वेषां शान्तिकारकम् । पुत्रपौत्रप्रदं सौख्यं महत्सौख्यप्रदं नृणाम् ॥११४॥
 रामायणानि शतशः सन्ति शिष्यावनीतले । तथाऽप्यनेन सदृशं न भूतं न भविष्यति ॥११५॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्ये मनोहरकाण्डे रामदास-
 विष्णुसंवादे श्रीरामचन्द्रोपनिषत् साररामायणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः

(हनुमान्जीके द्वारा अर्जुननिर्मित शरसेतुमंजन)

श्रीविष्णुदास उवाच

कपिष्वजोऽर्जुनश्चेति मया पूर्वं श्रुतं गुरो । तन्नामकारणं मां त्वं विस्तराद्भुजमर्हसि ॥१॥
 श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । द्वापरान्तं भाविकथां त्वां वदामि चमत्कृताम् ॥२॥
 एकदा कृष्णरहितोऽर्जुनः स्यन्दनसंस्थितः । यथावरण्ये विचरन्मृगयार्थं हि दक्षिणाम् ॥३॥
 एकाकी मृतसंस्थाने स्थित्वा तत्कृत्यमाचरन् । हत्वा वने मृगान्धन्वी मध्याह्ने स्नातुमुद्यतः ॥४॥
 ययौ रामेश्वरं सेतौ धनुष्कोट्या विगाह्य च । मध्याह्नकृत्यं संपाद्य पुनः स्यन्दनसंस्थितम् ॥५॥
 अश्वेस्तटे विचचार किञ्चिद्वर्षसमन्वितः । एतस्मिन्नवरेऽरण्ये पर्वतोपरि संस्थितम् ॥६॥
 ददर्श भावति वीरः सामान्यकपिरुधिगम् । राम रामेति जल्पतं विंगलोमधरं शुभम् ॥७॥

शस बोले—जिस तरह रामचन्द्रजीने मेरे समक्ष साररामायणका वर्णन किया था, सो मैंने कह सुनाया ॥१११॥ यह साररामायण दिव्य, पवित्र और महान् पातकोंको नष्ट करनेवाला है। लोगोंको चाहिए कि मुक्ति और मुक्ति देनेवाले इस रामायणका पाठ करें ॥११२॥ पूरी रामायणके सुननेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल इस साररामायणके भी श्रवण करनेसे प्राप्त हो जाता है। मेरी बात सर्वथा सत्य है ॥११३॥ इसीलिए लोगोंको सर्वदा इसका पाठ करते रहना चाहिए। क्योंकि यह सबको शान्ति प्रदान करता है। यह पुत्र, पौत्र, स्त्री तथा महान् सुखोंका दाता है ॥११४॥ हे शिष्य ! वैसे तो इस पृथ्वीतलमें संकड़ों रामायण हैं, किन्तु इसके समान अवतक न कोई रामायण हुई है और न बागे होगी ॥११५॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्री-मदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्न'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे साररामायणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरो ! मैं कभी आपके मुखसे अर्जुनका कपिध्वज यह नाम सुन चुका हूँ। उनका यह नाम क्यों गढ़ा, सो कृपा करके आप हमें बतलाइए ॥ १ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—हे शिष्य ! तुमने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है। सावधान होकर सुनो। यद्यपि यह कथा द्वापरके अन्तकी है, फिर भी तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २ ॥ एक दिन कृष्णजीको छोड़कर अकेले अर्जुन वनमें शिकार खेलने गये और धूमते धूमते दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥३॥ उस समय सारथीके स्थानपर वे स्वयं वे और झोंड़ोंको हाँकते हुए चले जा रहे थे। इस तरह वनमें धूम-धूमकर दोपहरके समय तक उन्होंने बहुतसे वनजन्तुओंको मारा। इसके बाद स्नान करनेकी तैयारियाँ करने लगे ॥ ४ ॥ स्नान करनेके लिये वे सेतुबन्ध रामेश्वरके धनुष्कोटितीर्थपर गये, वहाँ स्नान किया और कुछ गर्वसे समुद्रके तटपर धूमने लगे। तभी उन्होंने एक पर्वतके ऊपर साधारण बाँकरका स्वरूप पाटन करके हनुमान्जीको बैठे देखा। उस समय हनुमान्जी रामनाम जप रहे थे।

तमर्जुनोऽब्रवीद्वाक्य किं नामास्ति कपे तव । सदर्जुनवचः श्रुत्वा चिह्नस्य कपिरब्रवीत् ॥८॥
 यत्प्रतापाच्च रामेण शिलामिः शतयोजनम् । बहोऽयं सागरे सेतुस्तं मां त्वं विद्धि वायुजम् ॥९॥
 इति तद्गर्वमदित्वा वाक्यं श्रुत्वाऽर्जुनस्सदा । गर्वाद्धिहस्य प्रोवाच मारुतिं पुनः स्थितम् ॥१०॥
 इथा रामेण सेतुवर्धं श्रमः पूर्वं कृतस्त्वयम् । कथं तेन शरैः सेतुं कृत्वा कार्यं कृतं न हि ॥११॥
 तदर्जुनवचः श्रुत्वा मारुतिः प्राह तं पुनः । मत्पुन्यकपिभारेण शरसेतुः पयोनिधौ ॥१२॥
 न्युञ्जिष्यतीति कृत्वा तं नाकरोद्घुनन्दनः । तत्कपेर्वाचनं श्रुत्वाऽर्जुनो मारुतिमब्रवीत् ॥१३॥
 कपिमारुद्यदा सेतुर्जले मग्नो भविष्यति । धनुर्विद्यां धन्विनः का तदा वानरसत्तम ॥१४॥
 अधुनाहं करिष्यामि शरसेतुं तवग्रतः । न्व तस्योपति नृन्प्रादि कुरुष्वत्र यथासुखम् ॥१५॥
 धनुर्विद्यां मयाद्य त्वं कपे पश्यतुमर्हसि । तदर्जुनगिरं श्रुत्वा तमाह सारिमतुः कपिः ॥१६॥
 ममाग्रगुप्ठमारेण शरसेतुस्त्वया कृतः । चेन्ममः स्यान्ममुद्रे हि तदा कार्यं त्वयाऽत्र किम् ॥१७॥
 तत्कपेर्वाक्यमाकर्ण्य सोऽर्जुनः प्राह तं पुनः । यदि ममः शरसेतुस्त्वं द्वागत्तर्ह्यहं कपे ॥१८॥
 विश्राम्यन्नानलं मत्स्यं त्वं चाप्यद्य पणं वद । तन्प्रतिज्ञां कपिः श्रुत्वाऽर्जुनं वचनमब्रवीत् ॥१९॥
 मया स्वांगुष्ठमारेण स्वसेतुश्चेन्न लोपितः । तर्हि त्वद्वज्रसंख्योऽहं तव साहाय्यमाचरे ॥२०॥
 तथाऽस्तिवत्यर्जुनः प्राह टण्कृत्य महद्बनुः । निमेषे शरमज्जालं सेतुं दृढतरं घनम् ॥२१॥
 शतयोजनविस्तीर्णं सागरस्योर्ध्वतः स्थितम् । तं सेतुं मारुतिर्दृष्ट्वाऽर्जुनाग्रऽङ्गुष्ठमारतः ॥२२॥
 अकरोत्सागरे मग्नं क्षणमात्रेण लीलया । तदा देवाः मगंधराः किन्तरोत्तराक्षराः ॥२३॥
 विद्याधराश्चाप्सरसः सिद्धाद्या गगनस्थिताः । मारुतिं धर्जुनस्याग्रे वक्त्रं पुष्पकृष्टिमिः ॥२४॥
 तत्कर्मणाऽर्जुनश्चापि चितां कृत्वाऽन्धिरोधमि । निवारितोऽपि कपिना देवं त्वक्तुं समुद्यतः ॥२५॥

पीले रहूँके रोएँ उनके भारोपर बड़े अच्छे लग रहे थे ॥४-७॥ उन्हें देखकर अर्जुनने पूछा—हे वानर ! तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? अर्जुनका प्रश्न सुना तो हंसकर हनुमान्जी बोले कि जिनके प्रतापसे रामचन्द्रजीने मधुपर्वत को योजन विस्तृत सेतु बनाया था, मैं वही वायुपुत्र हनुमान् हूँ ॥८-९॥ इस तरह गर्वभर घबरा मुग्धकर अर्जुनने भी गर्वसे हंसकर कहा कि रामने ध्येय इतना कष्ट उठाया । उन्होंने वाणोंका सेतु बनाकर क्यों नहीं अपना काम चला लिया ॥१०॥ ११॥ अर्जुनकी बात सुनकर हनुमान्जीने कहा—हम जैसे बड़े बड़े वानरोंके बाझसे बड़े बाणका सेतु डूब जाता, यही सोचकर उन्होंने ऐसा नहीं किया ॥१२॥ १३॥ अर्जुनने कहा—हे वानरसत्तम ! यदि वानरोंके बोझसे सेतु डूब जानेका भय हो तो उस धनुर्विद्याकी धनुर्विद्याको ही मया विशेषता रही ॥१४॥ अभी अभी समय में अपने कौशलसे वाणोंका सेतु बनाये देता हूँ, तुम उसके ऊपर आनन्दसे नाचा-कूटो ॥१५॥ इस प्रकार मेरी धनुर्विद्याका नमूना भी देख लो । अर्जुनका ऐसा बात सुनकर हनुमान्जी मुसकराते हुए कहने लगे कि यदि मेरे पैरोंके अंगूठोंके बाझसे ही आपका बनाया सेतु डूब जाय तो क्या करियेगा ? ॥१६॥ १७॥ हनुमान्जीकी बात सुनकर अर्जुनने कहा कि यदि तुम्हारे भारसे सेतु डूब जायगा तो मैं चिता लगाकर उसकी आगम जल भरूँगी । अच्छा, अब तू भी कोई बाझ लगाया । अर्जुनकी बात सुनकर हनुमान्जी कहने लगे कि यदि मैं अपने अंगूठोंका भारसे तुम्हारे बनाये सेतुको न डूबा सकूँगा तो तुम्हारे रथको ध्वजके पास बैठकर जीवनभर तुम्हारी सहायता करूँगा ॥१८-२०॥ “अच्छा, यही सही” ऐसा कहकर अर्जुनने अपने धनुषका टंकोर किया और अपने वाणोंके समूहमें बहुत थोड़े समयमें एक मुहूर्त सेतु बनाकर तैयार कर दिया ॥२१॥ उस सेतुका विस्तार सौ योजन था और वह सागरके ऊपर ही उतरा रहा था । उस सेतुको देखकर हनुमान्जीने उनके सामने ही अपने अंगुष्ठके भारसे रुका दिया । उस समय गन्धर्वोंके साथ-साथ देवताओंने हनुमान्जीपर कूलोंकी वर्षा की ॥२२-२४॥ हनुमान्जीके इस कर्मसे चिन्तित होकर अर्जुनने

एतस्मिन्मन्त्रे कृष्णस्तं प्राह बहुरूपधृक् । ज्ञात्वाऽर्जुनमुखात्सर्वं पूर्ववत् पणादिकम् ॥ २६ ॥
 उभाभ्यां यद्यवधारितं पूर्वं तच्च श्रुत्वा गतम् ।
 साक्षित्वेन विना कर्म सत्यं मिथ्या न बुध्यते ॥ २७ ॥
 साक्षित्वेनाधुना मेऽत्र पुत्राभ्यां कर्म पूर्ववत् ।
 कर्तव्यं तदहं दृष्ट्वा सत्यं मिथ्या ब्रह्मात्म्यहम् ॥ २८ ॥
 तद्वदोर्वचनं श्रुत्वा द्वावचतुस्तथेति च । ततश्चकार गांडीवी शस्त्रेण हि पूर्ववत् ॥ २९ ॥
 सेनोरतर्गतं चक्रं श्रीकृष्णश्चाकरोत्तदा ।
 ततः स्वांगुष्ठभारेण कपिः सेतुं प्रपीडयत् ॥ ३० ॥
 सेतुं दृढं कपिर्ज्ञात्वा पादजानुकरादिभिः ।
 बलेन पीडयामास स सेतुर्नश्चाल न ॥ ३१ ॥
 तदा तूष्णीं हनुमान्स मंत्रयामास चेतमि । पूर्वं मयांगुष्ठभारात्सेतुश्चाब्धौ विलोपितः ॥ ३२ ॥
 हस्तादिभिः कथं नायमिदानीं न विलुप्यते ।
 कारणं बहुरेवात्र बहुनाय हरिस्त्वयम् ॥ ३३ ॥
 अस्तीत्यहं विजानामि स्मृतं पूर्ववरादिकम् ।
 मद्रवपरिहारोऽत्र कृष्णेनानेन कर्मणा ॥ ३४ ॥
 कुतोऽस्त्यत्र क कृष्णाग्रे मन्मर्कटमुपौरुषम् । इति निश्चिन्त्य मनमि कपिः सोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥
 जितं स्वयां बटोर्मोमात्तत्र साहाय्यमाचरे ।
 नाय बहुस्त्वयं कृष्णः सेतुचक्रमवेशकृत् ॥ ३६ ॥
 स्वत्साहाय्यार्थमयातः सत्यं ज्ञातो मयाऽर्जुन ।
 अनेन रामरूपेण श्रेयासां मे वरोऽपितः ॥ ३७ ॥

समुद्रके तटपर ही चिता तैयार की और हनुमान्जीके रोकनेपर भी वे उसमें कूदनेको उद्यत हो गये ॥ २५ ॥ इसी समय एक ब्रह्मचारीका रूप धारण करके श्रीकृष्णचन्द्रजी वहाँ आय और उन्होंने अर्जुनसे चित्तमें कूदनेका कारण पूछा । अर्जुनके मुखसे ही सब बात मालूम करके कहा कि तुम लोगोंने उस समय जो बाजी लगायी थी, वह निःसार थी । क्योंकि उस समय तुम्हारी बातोंका कोई साक्षी नहीं था । साक्षीके बिना साँच झूठका कोई ठिकाना नहीं रहता । इस समय मैं तुम्हारे समय साक्षीके रूपमें विद्यमान हूँ । अब तुम लोग फिर पहले-की तरह कार्य करो तो मैं तुम्हारे कर्मोंको देखकर विजय-पराजयका निर्णय करूँगा ॥ २६-२७ ॥ ब्रह्मचारीकी बात सुनकर दोनोंने कहा—ठीक है और फिर अर्जुनने पूर्ववत् सेतुकी रचना की ॥ २९ ॥ अबकी बार सेतुके नीचे कृष्णचन्द्रजीने अपना सुदर्शन चक्र लगा दिया । सेतु तैयार होतपर हनुमान्जी पूर्ववत् अपने अंगूठेके भारसे उसे डुबाने लगे ॥ ३० ॥ अब हनुमान्जीने अबकी बार सेतुको मजबूत देखा तो पैरों, घुटनों तथा हाथोंके बलसे उसे दबाया, किन्तु वह जो भर भी नहीं डूबा ॥ ३१ ॥ पुनःपुनः हनुमान्जीने सोचा कि पहले तो मैंने अंगूठेके ही बोझसे सेतुको डूबा दिया था तो फिर यह हाथ-पैर आदि मेरे पूरे शरीरके बोझसे भी क्यों नहीं डूबता । इसमें ये ब्रह्मचारीजी ही कारण हैं । ये साहाय्य नहीं, बल्कि साक्षात् कृष्णचन्द्रजी हैं और मेरे गर्वका परिहार करनेके लिए ही इन्होंने ऐसा किया है । वास्तवमें है भी ऐसा ही । भला, इन भगवान्के सामने हम जैसे बानरकी सामर्थ्य ही क्या है । ऐसा निश्चय करके हनुमान्जीने अर्जुनसे कहा कि आपने इन ब्रह्मचारीकी सहायतासे मुझे परास्त कर दिया है । ये कोई बट्ट नहीं, साक्षात् भगवान् हैं । इन्होंने सेतुके नीचे अपना सुदर्शन चक्र लगा दिया है ॥ ३६-३७ ॥ हे अर्जुन ! हमें यह बात मालूम हो गयी है कि ये आपकी

दास्यामि दर्शनं तेऽहं द्वापरे कृष्णरूपधृक् । तत्सत्यं वचनं वाद्य कृतं त्वत्सेतुदेहतः ॥३८॥

इत्यर्जुनं कपिर्यावदब्रवीत्सर्वदप्रतः ।

बहुरेवाभवन्कृष्णः पीतपासा धनप्रभः ॥३९॥

सदर्शनोर्ध्वरोमाऽभूत्प्रणनामाञ्जनीसुतः ।

आलिङ्गिनोऽपि कृष्णेन स मेने कृकृतत्पताम् ॥४०॥

अत्रं ययौ यथास्थानं श्रीकृष्णस्याज्ञया तदा । सागरेण स्वकल्लोलैः सरसेतुर्विलोपितः ॥४१॥

तदाऽर्जुनो गर्वहीनो मेने कृष्णेन जीवितः ।

कृष्णस्तदाऽर्जुनं प्राह त्वया रामेण स्पर्द्धितम् ॥४२॥

हनुमता धनुर्विद्या तवातोऽत्र मृषा कृता ।

यन्प्रतापादिति गिरा न्वयाऽपि वायुनन्दन ॥४३॥

रामेण स्पर्द्धितं यस्मात्तस्मादर्जुन संजितः । अतः परं वीतगर्वस्त्वं मां भज निरन्तरम् ॥४४॥

इत्युक्त्वा मारुतिं पृष्ट्वाऽर्जुनेन तन्पुरं ययौ ।

अतः कपिष्वजश्चेत जनैर्जुन ईर्यते ॥४५॥

इति भाविकया पृष्टा त्वया साऽपि मयोदिता ।

किमग्रे श्रोतुकामोऽसि तत्पृच्छस्व वदामि ते ॥४६॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽधुना राधवस्थ वैकुण्ठारोहणोत्सवम् ।

मां वदस्व सविस्तारं येनाहं तोषमाप्नुयाम् ॥४७॥

श्रीरामदास उवाच

पूर्वकांडं तावाद्याहं वदिष्यामि शृणुष्व सत् ।

सहायताके लिए ही यहाँ आये हैं । यही रूप धारण करके जेतामें रामने हमें वरदान दिया था कि द्वापरके अन्तमें मैं तुम्हें कृष्णरूपसे दर्शन दूँगा । आपके सेतुके बहाने इन्होंने अपना वरदान भी आज पूरा कर दिया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हनुमान्जी अर्जुनसे ऐसा कह ही रहे थे कि इसनेमे भगवान् अपने बटुरूपको त्यागकर कृष्ण बन गये । उस समय वे पीले वस्त्र पहने थे और नवनीरदके समान उनका श्याम शरीर था । उन कृष्णचन्द्रजीका दर्शन करते ही हनुमान्जीके रोंगटे छड़े हो गये और उन्होंने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया ॥ जब श्रीकृष्णने हनुमान्जीको उठाकर अपने हृदयसे लगाया, तब हनुमान्जीने अपनेको कृतकृत्य मान लिया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ श्रीकृष्णके आज्ञानुसार अत्र सेतुसे निकलकर अपने स्थानको चला गया और अर्जुनका बनाया सेतु भी समुद्रकी तरंगोंमें लुप्त हो गया ॥ ४१ ॥ इस तरह अर्जुनका गर्व नष्ट हो गया और उन्होंने समझा कि कृष्णने हमें जीवित रख लिया । कुछ देर बाद श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे कहा कि तुमने रामके साथ स्पर्धा की थी । इसलिए हनुमान्जीने तुम्हारी धनुर्विद्याको व्यर्थ कर दिया था । इसी प्रकार हे पवनसुत ! तुमने भी रामसे स्पर्धा की थी । इसी कारण तुम अर्जुनसे परास्त हुए । तुम्हारा गर्व नष्ट हो गया । अब आनन्दके साथ मेरा भजन करो । ऐसा कह और हनुमान्जीसे पूछकर श्रीकृष्ण अर्जुनके साथ हस्तिनापुर चले गये । हे शिष्य ! इसी कारण अर्जुन कपिष्वज कहे जाते हैं ॥ ४२-४५ ॥ यद्यपि तुमने हमसे यह भविष्यकी कथा पूछी थी, फिर भी मैंने कह सुनाया । अब आगे क्या सुनना चाहते हो सो बताओ । मैं तुमको सुनाऊँ ॥ ४६ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! अब मैं रामचन्द्रजीके वैकुण्ठारोहणका वस्तुन्त सुनना चाहता हूँ । सो आप विस्तारपूर्वक हमें बताइए, जिससे हमारे हृदयको सन्तोष हो । श्रीरामदासने कहा—आगे मैं तुमसे पूर्वकांड कहनेवाला हूँ । उसमे भगवान्के वैकुण्ठारोहणका वृत्तांत तुम्हें अच्छी तरह सुननेको मिलेगा ॥ ४७ ॥

यस्मिंश्च रामचन्द्रस्य वैकुण्ठारोहणोत्सवम् ॥४८॥
 इदं मनोहरं काण्डं मया ते समुदीरितम् ।
 ये शृण्वन्ति नरा भूम्यां तेषां रामे रतिर्भवेत् ॥४९॥
 मनोऽभिलषितान् कामांस्ते लभन्ते न संशयः ।
 पुत्रार्थी प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥५०॥
 इदं रम्यं पवित्रं च श्रवणान्मंगलप्रदम् ।
 पठनीयं प्रयत्नेन रामसद्भक्तिवर्द्धनम् ॥५१॥
 आनन्दरामायणमध्यसंस्थं मनोहरं काण्डमिदं विचित्रम् ।
 पठति शृण्वन्ति गृणन्ति मर्त्यास्ते स्वीयकामानखिलान् लभन्ते ॥५२॥
 इदं पवित्रं परमं विचित्रं नानाचरित्र त्वत्तिपुण्यदं च ।
 सुदा नरैः श्रान्यमिदं सुदा श्रीसीतापतेर्भक्तिविवृद्धिकारि ॥५३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे रामदासविष्णु-
 दाससंवादे हनुमता शरसेतुभंगो नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

मनोहरकाण्डे सर्गा आनन्दरामायणेऽष्टादशः सातव्याः ।
 एकत्रिंशच्छताः श्लोका रामदासमुनिना पापनुदः प्रोक्ताः ॥ १ ॥
 अथ मनोहरकाण्डे प्रकरणानुक्रमः ।

लघुरामायणम् ॥ १०४ ॥ वैकुण्ठारोहणम् ॥ १५५ ॥ रामपूजा ॥ २७५ ॥ लघुरामतोमद्रम्
 ॥ ३०९ ॥ रामलिंगतोमद्रम् ॥ ३७७ ॥ नवमीव्रतम् ॥ २४१ ॥ रामनवम्पुद्यापनम् ॥ १३२ ॥ वेदा-
 दिकाव्यपूजा ॥ १२७ ॥ विशेषकालपूजा ॥ १९३ ॥ चैत्रमहिमावर्णनम् ॥ १६७ ॥ पिशाचमुक्तिः

॥ ४८ ॥ मैंने तुम्हें यह मनोहरकाण्ड सुनाया है । जो लोग इस काण्डको सुनते हैं, उन्हें रामचन्द्रजीकी भक्ति
 प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ वे अपना मनोऽभिलषित फल प्राप्त कर लेते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है । इसको
 सुननेवाला यदि पुत्र चाहता हो तो पुत्र और धनार्थी धन पाता है ॥ ५० ॥ यह काण्ड बड़ा रम्य, पवित्र और
 सुननेसे मङ्गलदायक है । इसलिए लोगोंको प्रयत्न करके इसका पाठ करना चाहिए । इसके पाठसे रामके
 चरणोंमें भक्ति बढ़ती है ॥ ५१ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत यह मनोहरकाण्ड बड़ा विचित्र है । जो लोग इसका
 पठन-श्रवण तथा मनन करते हैं, वे अपना सारी कामनायें पूर्ण कर लेते हैं ॥ ५२ ॥ यह काण्ड परम पवित्र,
 विचित्र, भगवान्‌के विविध चरित्रोंसे भरा हुआ और अतिशय पुण्यदायक है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि
 रामकी भक्ति बढ़ानेवाले इस मनोहरकाण्डका अवश्य श्रवण करें ॥ ५३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं
 श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत उद्देश्ये 'भाषाटोकासहिते मनोहरकाण्डे
 अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

इस मनोहरकाण्डमें कुल अठारह सर्ग हैं और इसमें रामदास मुनिने पापनाशकारी एकतीस सौ
 श्लोक कहे हैं ॥ १ ॥ मनोहरकाण्डका प्रकरणानुक्रम—लघुरामायणमें १०४ श्लोक, वैकुण्ठारोहणमें १५५, राम-
 पूजामें २७५, लघुरामतोमद्रमें ३०९, रामलिंगतोमद्रमें ३७७, नवमीव्रतमें २४१, रामनवमीपुद्यापनमें १३२,

॥२९६॥ अद्वैतवर्णनम् ॥ १०७ ॥ कवचद्वयम् ॥ ८८ ॥ सीताकवचम् ॥ १०३ ॥ लक्ष्मण-भरत-
शत्रुघ्नकवचानि ॥ १८२ ॥ हनुमत्पताकारोपणम् ॥ ६५ ॥ साररामायणम् ॥ १५२ ॥ शरसेतुमङ्गः
॥ ५३ ॥ इति प्रकरणानि । एवं मिलित्वा मनोहरकाण्डे श्लोकसंख्या ॥३१००॥ इयं मंत्रवृत्तादि-
रहिता संख्याऽस्ति ।

वेदादिकाध्यपूजामें १२७, विशेषकालकी पूजामें १९३, चैत्रमहिमावर्णनमें १६७, पिशाचमुक्तिमें २६६,
अद्वैतवर्णनमें १०७, हनुमत्कवच तथा रामकवचमें ८८, सीताकवचमें १०३, लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्नकवचमें
१८२, हनुमत्पताकारोपणमें ६५, साररामायणमें १५२ और शरसेतुमङ्गमें ५३ श्लोक कहे गये हैं और ये ही १८
प्रकरण वर्णित हैं । सब मिलाकर ३१०० श्लोक इस काण्डमें हैं । किन्तु यह संख्या मन्त्र और वृत्त आदि-
की संख्या छोड़कर बतायी है ।

॥ इति आनन्दरामायणे मनोहरकाण्डं समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ।



श्रीसीतापतये नमः
श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्



पूर्णकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(सीमवशी राजाओंकी कथाका विस्तार)

श्रीरामदास उवाच

अथ क्षासति राजेन्द्रे रामे सीताभिगञ्जिते । सभायामेकदा दूतः सुषेणस्य गजाह्वयात् ॥ १ ॥
सभाययौ स विकलो रामं नत्वाऽवतीक्ष्णः । राम राजावपन्नाक्ष सोमवंशाद्भवन्तृपैः ॥ २ ॥
सर्वेष्टितं मज्जपुरं नलार्घ्यश्चिन्तीविभिः । तद्दूतवचनं श्रुत्वा राघवोऽतीव विस्मितः ॥ ३ ॥
वसिष्ठ प्राह मद्राज्ये न कदा पार्थिवसत्तमाः । समागता मया योर्दुर्गं किमिदानीं हि श्रूयते ॥ ४ ॥
किं कारणं गुरो ह्यत्र विचारय सविस्तरम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा तं गुरुः प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥
प्रष्टव्यमस्य वाल्मीकिं येन ते चरितं कृतम् । तच्छ्रुत्वा लक्ष्मण प्रप्य समाह्वय्य तं मुनिम् ॥ ६ ॥
सीतया पूजनं कृत्वा रामो वृत्तं न्यवेदयत् । वाल्मीकिस्तु तदा प्राह राम किंचिद्विद्विहस्य सः ॥ ७ ॥
किं त्वं न वदस्व राजेन्द्र विनोदान्मां तु पृच्छसि । शृणुष्व तदि मे वाक्य सर्वं शृण्वन्तु ते प्रियाः ॥ ८ ॥
एकादश सहस्राणि वत्सराणि तथा पुनः । एकादश समाश्वापि मासास्त्वकादशव दि ॥ ९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—जब कि रामचन्द्रजी सीताके साथ सुख भोगते हुए अयोध्याका राज कर रहे थे । उन्हीं दिनों सुषेणका एक बवड़ाया हुआ दूत हस्तिनापुरसे आ पहुँचा । उसने भगवान्की प्रणाम करके कहा—हे राजावपन्नाक्ष राम ! सोमवंशी राजे नल आदिन हस्तिनापुरका चारों आरस घेर लिया है । दूतकी यह बात सुनकर रामचन्द्रजी बड़े विस्मित हुए ॥ १-३ ॥ वे गुरु वासिष्ठसे बोले—हे गुरुवर ! यह मैं क्या सुन रहा हूँ ? आज तक तो कभी ये राज मेरे साथ युद्ध करने नहीं आये थे ॥ ४ ॥ कुरा करके आप इसपर सविस्तार विचार करिए । रामकी बात सुनकर वासिष्ठजीने कहा कि यह बात आप वाल्मीकिजीसे पूछें । क्योंकि उन्होंने ही आपके चरित्रकी रचना की है । यह सुनकर रामने लक्ष्मणका भेजकर वाल्मीकिजीका बुलवाया ॥ ५ ॥ ६ ॥ वाल्मीकिने आनेपर सीताके साथ-साथ रामन उनकी पूजा की ओर हस्तिनापुरका सब समाचार कह सुनाया । वाल्मीकिने हँसकर कहा—क्या आपको ये बातें नहीं मालूम हैं ? मालूम हैं । किन्तु कौतुक वश आप हमसे पूछ रहे हैं । अच्छा, आपकी वही इच्छा है तो सुनिए । आपके प्रियजन भा सावधानीके साथ मेरी बात सुनें ॥ ७ ॥ ८ ॥ ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष, ग्यारह महीना, ग्यारह दिन, ग्यारह घण्टा और ग्यारह पलका समय

एकादश दिनान्यत्र घटिकाश्चापि तन्मिताः । एकादश पलान्येव ते राज्यं निश्चितं मया ॥१०॥

शतकोटिमिते काष्ठे पुर्वं तेऽवतारतः ।

तन्मध्येऽत्र ह्यतीतानि सहस्राणि तथा सेमाः । अतीताः शेषभूताश्च मासाः शेषं दिनानि च ॥११॥
अष्टादशदिनैर्न्यूनमग्रे वर्षं प्रमोऽत्र यत् । शेषभूतं सङ्गरेण परिपूर्णं भविष्यति ॥१२॥
अयं कालोऽवतारस्य समाप्तेस्ते समागतः । गत्वा मासीरधीं पुण्यां पूर्वजेनावनातलम् ॥१३॥
प्रापितां तत्र राजेन्द्र तस्यां स्नात्वा यथाविधि । स्तुतो नद्यादिकैः सर्वैः पदं स्वीयं गमिष्यसि ॥१४॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्पमत्रवीत् । एतावत्कालपर्यन्तं नलाद्याः कुत्र संस्थिताः ॥१५॥
कुतोऽधुना समायातास्तन्सर्वं विस्तराद्ब्रू । तद्रामवचनं श्रुत्वा वाल्मीकिर्वाक्पमत्रवीत् ॥१६॥
मृणु राम महाबाहो सर्वं ते कथयाम्यहम् । अत्रिर्मुनिः पुनः राम पूर्णिमायां कृते पुनः ॥१७॥
वैशाख्यमासकदा सोमं दृष्ट्वा नारीमुखोपमम् । सुमोच वीर्यं भूम्यां स तस्मान्पुत्रो बभूव ह ॥१८॥
सोमस्य दर्शनान्जातः सोममुखः स बभूव ह । सोऽरण्ये जाह्नवीनरे चकार तप उत्तमम् ॥१९॥
एतस्मिन्समये तत्र कश्चिदस्ती समायथी । निहतः पक्षिभिस्तत्र तद्दृष्ट्वा कौतुकं महत् ॥२०॥
सोमो विचारयामास पक्षिभिर्निहतः कुरी । अस्या भूम्याः प्रभावोऽयं पुरं तत्र चकार सः ॥२१॥
हस्तिनाशात्पुरं जातं तस्मात्तद्ब्रह्मिनापुरम् । तत्र पौरैः कृतो राजा सोम एव रघूत्तम ॥२२॥
तस्य जातो बुधः पुत्रस्तावुभी जगतीतलम् । स द्वीप स्वयं कृत्वा सुरलोकं प्रजग्मतुः ॥२३॥
तत्र जित्वा सुरान्सर्वान्सुरस्त्रीभिश्च मयुता । मुक्त्या देवान्स्वर्गलोके निवासं चक्रतुर्मुदा ॥२४॥
तपोर्ददौ वरान्महा युवां मदश्चमभवी । युवाभ्यां मोचिन्स्त्वय देवमघपुनस्त्वहम् ॥२५॥
युवाभ्यां तर्ह्यहं बन्धि वारंश्छृणुत बालकी । युष्मदंशे नृपाः कैचिदग्रे त्रिपुरोर्ध्वतः ॥२६॥

आपको राज्य करनेके लिए मैंने निर्धारित किया था ॥ ६ ॥ १० ॥ ये बातें मैं आपके अवतारके पहले ही अपने शतकोटिसंख्यात्मक रामायणमें लिख चुका हूँ । वे ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष व्यतीत हो गये । अब ग्यारह महीना और ग्यारह दिन तथा घड़ी-पल आदि ही बाकी बच है ॥११॥ सब मिलाकर अष्टादश दिवस ग्यून एक वर्ष बाकी है । वह समय संग्राममें समाप्त होगा ॥ १२ ॥ आपके अवतारका समय समाप्त हो रहा है । अब मैं अपने पूर्वज अर्थात् भगीरथ द्वारा लायी हुई गङ्गामें विधिवत् स्नान करके ब्रह्मादिक समस्त देवताओंसे संस्तुत होकर अपने परम धामका अवगमन ॥ १३ ॥ १४ ॥ वाल्मीकिजी बात सुनकर रामन कहा कि अबतक ये जल आदि राजे कहाँ थे ? ॥ १५ ॥ इस समय कहाँसे आ गये हैं, यह सब आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए । रामका वचन सुनकर वाल्मीकि बोले-हे राम ! हे महाबाहो ! मैं सब कुछ कहता हूँ, सुनिए । बहुत दिन हुए, सत्ययुगमें अत्रि ऋषिने वैशाखकी पूर्णिमाका चन्द्रमाका मुख एक स्त्रीक समान मन्दर देखकर अपना बीय त्याग दिया और उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १६-१७ ॥ चन्द्रमाको दत्तनसे वह पुत्र उत्पन्न हुआ था । इसलिए वह सोम कहलाया और वनमें जाकर गङ्गाजीके तटपर उत्तम तप करने लगा ॥ १९ ॥ उसी समय वहाँ एक हाथी आ गया । उस हाथीको कुछ पक्षियोंने मिलकर मार डाला । यह महाकोपुक देखकर सोमने अपने मनमें सोचा कि यहाँके पक्षियोंने हाथीको मार डाला है । यह अवश्य इस भूमिका ही प्रभाव है । ऐसा विचार करके सोमने उसी स्थानपर एक नगर बसाया ॥ २० ॥ २१ ॥ उसी स्थानपर पक्षियोंने हाथीका विनाश किया था । इस कारण उसका हस्तिनापुर नाम पड़ गया । हे रघूत्तम ! वहाँके पुरवासियोंने आग्रह करके सोमको ही वहाँका राजा बनाया ॥ २२ ॥ सोमके बुध नामका पुत्र हुआ । फिर गया था, बुध और सोमने मिलकर सब द्वीपोंको अपने अधीन कर लिया और कुछ दिनोंक अनन्तर स्वर्गलोकको गये ॥ २३ ॥ उन्होंने स्वर्गमें देवताओंको जोतकर छोड़ दिया और वे सस्त्रीक वहाँ रहने लगे ॥ २४ ॥ उन दोनोंको ब्रह्माने अनेक वरदान दिये । ब्रह्माने

अन्यैः पराजिताः सप्त पुरुषा न भवति हि । इति दत्त्वा वरं मत्वा ययौ निजपदं प्रति ॥२७॥
 ततः सोमाय दौहित्री दत्ता पद्मावती शुभा । इन्द्रेण तत्र तौ मोमबुधौ स्वैरं स्थितौ चिरम् ॥२८॥
 बुधस्य सनयो भूम्या नाम्नाख्यातः पुरुरवाः । चकार राज्यं धर्मेण तथा तद्वस्तिनापुरे ॥२९॥
 सस्य पुत्रश्च गन्धोऽभूद्व्यपुत्रोऽप्य उच्यते । अल्पपुत्रो नल श्रीमान् दिक्पालान् जेतुमुद्यतः ॥३०॥
 राज्ये पुरुरवादींश्च त्रीन् स्थाप्य निजपूर्वजान् । समद्वीपनृपैर्युक्तः प्रययौ मेरुमुन्नतम् ॥३१॥
 आदौ जित्वा सबहि द्वि यमं जित्वाऽथ निर्ऋतिम् । प्रययौ वरुणं जेतुं रावणादिभिरन्विनः ॥३२॥
 एतस्मिन्नंतरे राम तूर्णं मैन्येन रावणः । प्रययौ नाकलोकं हि सुगानिन्द्रादिकान् रणे ॥३३॥
 जित्वा निनाय स्वां लंकां सोमो पुद्गाय मान्मजः । निर्ययौ मुहुरः सर्वान्मेन्द्रान् मोचयितुं सुरान् ॥३४॥
 तदा निवारयामास मत्वा सोमं त्वरान्वितः । विष्णुर्भूत्वा नृशेपेण रावणं हि हनिष्यति ॥३५॥
 त्वं माऽद्य रावणं याहि वरस्वस्मै मयाऽर्पितः । तद्ब्रुवात्तत्तत्तं भुत्वा ययौ सोमोऽमरावतीम् ॥३६॥
 भूम्यां नलस्तनो गत्वा वरुण पवनं तथा । जित्वा कुबेरमीशान् कृतकार्यममन्यत ॥३७॥
 आत्मानं च ततः स्वर्गं चेद्र जेतुं समुद्यतः । एवं नलेन भ्रमता गत तच्च कृतं युगम् ॥३८॥
 त्रेतायुगसमामो स ददर्श सकलं बलम् । तत्रादृष्ट्वा रावणं स द्वाच्छ्रुत्वाऽवनीं त्विति ॥३९॥
 देवान्स्वश्वान् कृत्वा लंकां स्वां स गतः पुनः । तत्र माप्ते तु भ्रमतो नलस्य नयुक्तः सुतः ॥४०॥
 पुत्रस्यैव जानीकस्तत्सुतो वसुदः स्मृतः । तस्य पुत्रो लघुभ्रुतः सुरधस्तत्सुतः स्मृतः ॥४१॥
 अजमीदस्तु तत्पुत्रस्त्वेवं वंशोऽभवत्पथि । ततः स मत्रयामास नलो मंत्रिजनैः सह ॥४२॥
 किमर्थमिदलोकं तं गन्तव्यमभुना यदि । भुवि देवाः समानीताः लङ्कायां रावणेन हि ॥४३॥

कहा-तुम दोनों मेरे बंशज हो। तुमने मेरे सहित समस्त देवताओंको जीतकर भी छाड़ दिया है। इसलिए मैं तुम्हें यह वरदान देता हूँ कि तुम्हारे बंशम तान पर्वत के आगे सात युग तक बितने राजे होंगे, वे किसीसे भी पराजित नहीं होंगे। इस प्रकार वरदान देकर मत्वा अपने ध्यानका चले गये ॥ २५-२७ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रेण पद्मावती नामकी अपनी सुन्दरी नजिना समको दे दी। इस तरह वे सोम और बुध आनन्दके साथ बहुत दिनों तक स्वर्गलोकमें रहे ॥ २८ ॥ बुधका पुत्र इस संसारमें पुरुरवा नामके विष्णुगत हुआ। उसने धर्मपूर्वक हस्तिनापुरमें राजद किया ॥ २९ ॥ उसका पुत्र गव्य हुआ। गव्यका पुत्र अहर और अहरका पुत्र नल हुआ। नल इतना प्रबल बोर था कि उसने इसा दिवा, लोका जीतनेकी इच्छा की। सेनाकी तैयारी करके वह हस्तिनापुरमें पुरुरवा आदि तीन पूर्वजोंको छोड़कर सानों द्वीपोंके राजाओंके साथ उन्नत मिलरवाले मेरु-पर्वतपर चढ़ गया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ वही पट्टंचकर उसने पहले अग्निको, फिर यमको और उनके बाद निर्ऋ-तिको जीतकर रावण आदि दैत्योंके साथ वरुणको जीतनेके लिए गया ॥ ३२ ॥ उसी समय रावण अपनी सेनाके साथ स्वर्गलोक पहुँचा और इन्द्रादि देवताओंको संग्राममें जीतकर अपनी लंकाको वापस चले गया। तब सोम अपने मित्रों तथा पुत्रोंको साथ लेकर रावणसे युद्ध करने तथा इन्द्रादि देवोंको छुड़ानेके लिए चले पड़ा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उसी समय ब्रह्माजीने आकर सोमको रावणपर चढ़ ई करनेसे रोक दिया और कहा कि स्वयं विष्णुअपवान् अनुप्यका रूप धारण करके रावणका संहार करेंगे। तुम आज रावणके पास मत जाओ। ब्रह्माकी बात मानकर सोम लंका न जाकर अमरावतीपुरी गया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर वही सोम नलरूपसे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुआ और अपने पराक्रमसे कुबेर एवं ईशानको परास्त करके उसने अपनेको कृतकृत्य माना ॥ ३७ ॥ कुछ दिनों बाद इन्द्रकी जीतनेके लिए नल स्वर्गलोकमें जा पहुँचा। इस तरह उसके घूमते फिरते सत्ययुग बीत गया ॥ ३८ ॥ त्रेतायुगके समाप्त हो जानेपर नलने सब बीरोंको तो देखा, किन्तु रावण नहीं मिला। अन्तमें नलने फिर सब देवताओंको व्रतमें किया। लंकापर भी आधिपत्य जमाया। आगे चलकर नलके नयुक्त, नयुक्तके जातोंकर, जातीकरके वसुद, वसुदके लघुभ्रुत, लघुभ्रुतके सुरय, सुरयके अजमीद पुत्र हुआ और इस प्रकार नलकी सन्तति बढ़ी। एक दिन नलने अपने मंत्रियों-

अस्माकं सेवकः सोऽस्ति दशास्यः करमादः । निजं पुरं प्रगन्तव्यमधुना चिरकालतः ॥४४॥
 दिमाश्रयादयं सर्वे जीविताः स्म चिरं विद्मः पुरुरवादिनास्ते नः पूर्वजाः सति वा मृताः ॥४५॥
 नास्माभिश्चिरकालं हि तद्रूपं भ्रमनः श्रुतम् । अतः स्वीयपुरं गन्वा द्रष्टव्यास्तेऽत्रिपूर्वजाः ॥४६॥
 चेन्मोमपुत्रयोर्नाकं गन्तव्यं दर्शनेच्छमाः । तर्हि ताम्भ्यां युता देवाः किं जेता रावणेन हि ॥४७॥
 किं ताम्भ्यां रहिता देवा जिताश्चेति न देशयहृत् । अश्वत्थकलं वृत्तं विदितां हस्तिनापुरे ॥४८॥
 भविष्यति ततो यदि कर्तव्यं त- ॥ ४९ ॥ । अति निश्चित्य न नलः जनैः स्वनगरं ययौ ॥४९॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामं त्वं जनोऽस्य वर्तते । हन्वा तं रावणं देवा मोचितास्ते दिवं गताः ॥५०॥
 समद्वीपांतरस्था ये नृपास्ते रावणोक्तयाः । पुरुरवादिनाः स्त्रीश्च निष्कास्याश्च गजाह्वये ॥५१॥
 सुपेणः स्थापितः पूर्वं वानरैः सहितस्त्रया । ततः पुरुरवाद्यास्ते स्वकालेन मृतान्स्त्वह ॥५२॥
 इदानीं ते ममायाताः मोमवंशोद्भवा नृपाः । नलाद्याः मम स्वपुरं समद्वीपनृपोत्तमाः ॥५३॥
 त्वत्कृताः स्ववशमा ये च द्वीपांतरस्थाः । नृपास्तेषां पूर्वजाश्च स्वमैत्र्यैस्ते नृपोत्तमाः ॥५४॥
 बलिनः कोटिभः सर्वे ममायाता गजाह्वयः । भविष्यति त्वया तैश्च संग्रहः सोमवशजैः ॥५५॥
 तदा ब्रह्मा सुरैर्वृक्तः समशान्त्य तवानिहम् । पदयोस्ते प्रणामाश्च नलाद्यैः कारयिष्यति ॥५६॥
 कृत्वा कः प्रार्थनी तेऽपि त्वां वैकुण्ठं प्रणेष्यति । एव राम सविस्तारं तवाग्रे कथितं मया ॥५७॥
 यन्पृष्टं मां त्वया पूर्वं नलादीनां कथानकम् । विवाहकादमारब्धं त्वयं रामायणं शुभम् ॥५८॥
 समग्रं हि मया रामं पुण्यं श्रवितं तव । पुत्रास्यामधुना सर्वं शृणुष्व रघुनन्दन ॥५९॥
 इत्युक्त्वा कुशलवयोश्चकारात्तं मुनिस्तनः । विवाहकाण्डाण्डाण्डानि चत्वारि जगत्तुः शिशू ॥६०॥

ये भगवान् कीं किं जब रावण सब देवताओंको पकड़कर पृथ्वीतलपर ही ले आया है, सब हम स्वर्गलोकको नहीं चले ॥ ३९-४३ ॥ रावण हमारा सेवक है, वह हम कर देना है । हम लोगोंको घूमते-घूमते भी बहुत दिन हो गये हैं । इसलिए अब अपनी पुरीको छोड़ चला आ रहा है । जिनकी दिशाओंमें घूमते फिरते हमलोग बहुत समय तक आविष्ट रहे, किन्तु पुरुरवा आदि हमारे पूर्वज जं वित है या मर गये । मुझे उनकी कुछ भी खबर नहीं है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अतएव चला, अपने राजवंशोंको वापस चला । वहाँका हाल बाल देख और अपने लोगों पूर्वजोंका दर्शन करे ॥ ४६ ॥ तस्मिन् नगर- बाल भी नहीं जान है कि मोम और बुध भी तो और और देवताओंके साथ रावण द्वारा बन्दी नही बना लिये गये । हस्तिनापुर चलेसे ये बातें सी जान हो जायेंगी । उसके बाद जो करना उचित होगा, सो किया जायगा । ऐसा निश्चय करके वह अपने नगरको छोटा ॥ ४७-४९ ॥ इसी समय है राम । आपका अवतार हुआ मया । आपने रावणको मार बाला और देवताओंको छुड़ा लिया । जिससे वे सब देवता स्वर्गलोकको चले गये ॥ ५० ॥ सातों द्वीपोंमें रहनेवाले राजाओंको आपने अपने वशमें कर लिया, वे पुरुरवा आदि तन राजे भी आपका वशमें हो गये । तब आपने उनको हस्तिनापुरसे निकालकर वानरोंके साथ सुपेणको उसका गढ़ पर बिठाकर दिया । कुछ दिनों बाद समय आनेपर पुरुरवा आदि भी मर गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इस समय नल आदि मोमवंशी राजे उन सात राजाओंके साथ यहाँ आ रहे हैं, जिनको कि आपने अपने वशमें कर लिया था और अब तक वे किसी दूसरे वशमें रखा करते थे । वे राजे अकेले नहीं, बल्कि अपने पूर्वजों तथा करोड़ों विजाल सेन के साथ हस्तिनापुरपर चढ़े आ रहे हैं । उन मोमवंशियोंके साथ आपका युद्ध करना पड़ेगा ॥ ५३-५५ ॥ उस समय सब देवोंके साथ ब्रह्माजी आकर नल आदिसे आपको प्रणाम करवायेंगे । ५६ ॥ इसके बाद ब्रह्मा आपकी विधिवत् स्तुति करके अपने साथ आपको वैकुण्ठलोक ले जायेंगे । हे राम । इस तरह मैंने आपको आज से उन नल आदि चन्द्रवंशी राजाओंका वृत्तांत विस्तारपूर्वक बताया ॥ ५७ ॥ हे रघुनन्दन ! बहुत दिन हुए, जब मैंने विवाहकांड- से लेकर सारी रामायण आपको सुनायी थी । अब आप अपने पुत्रोंके मुखसे वह पुनीत कथा सुनिए ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इतना कहकर वाल्मीकिने कुश और लवको रामचरित्र सुनानेकी आज्ञा दी और वे विवाहकांड-

वत्सवं राघवः भुत्वा परां मुदमवाप सः । विदुः सर्वं जनाश्चापि वैकुण्ठारोहणं प्रभोः ॥६१॥

इति शतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे
सोमवंशनृपकथाविस्तारो नाम प्रथमः सर्गः ॥ ८ ॥

—०००—

द्वितीयः सर्गः

(रामका सोमवंशिपोंसे पुद्गले लिए प्रस्थान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामस्तदा प्राह वाल्मीकिं मुनिसन्मपम् । आगतव्य स्वया तत्र मुनिमिस्तु गजाह्वयम् ॥ १ ॥
तथेति स मुनिः प्राह राघवं भक्तवत्सलम् । ततः स लक्ष्मणं शीघ्रं राघवो राक्षसप्रवीत् ॥ २ ॥
पत्राणि प्रेषयन्नाथ कुमारान्राज्यसंस्थितान् । स्वस्वरज्ये मन्त्रिणश्च कृत्वाऽत्रामम्यतां मलः ॥ ३ ॥
एवमेव प्रलेख्यानि जम्बूद्वीपतीन्त्रगान् । तथा द्वीपपर्वतापि दृतास्तांस्त्वरयंतु नः ॥ ४ ॥
तथेति लक्ष्मणश्चोन्वा तथा चक्रे यथोदितम् । राघवेण समामध्ये वाल्मीकिगुरुसन्निधौ ॥ ५ ॥
ततः प्राह पुनः श्रीमान् राघवो लक्ष्मण मुदा । वासोगेहानि नेयानि बहिर्भूत रघूदह ॥ ६ ॥
मूहूर्तो वर्तते क्षौ वै सेनां चोदय सादरात् । आयुधान्यथ यंत्राणि जीर्णानि च बहूनि हि ॥ ७ ॥
पूर्वजैर्विहितान्वेव कोशागारेषु वै सदा । तानि निष्कामनीयानि तेषां कालोऽद्य वर्तते ॥ ८ ॥
अन्तःपुराणि सर्वाणि बहिर्नेयानि मेऽग्रतः । अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य सीताप्यग्रेऽनुगच्छतु ॥ ९ ॥
कोशागाराणि सर्वाणि बहिर्नेयानि बाह्वनैः । हस्तश्चरधरादाता नेयाः सर्वे बहिस्त्वया ॥ १० ॥
इत्याज्ञाप्य रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं विनयान्वितम् । मन्त्रिणौ नैगमाश्चैव वसिष्ठं चेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥
अभिप्रेक्ष्यामि भरतं सप्तद्वीपपतेः पदे । लक्ष्मणो मां विना नैव भूम्यां वासं करिष्यति ॥ १२ ॥

के बादवाले कांडोंकी कथाओंकी मिल जुलकर गाने लगे ॥ ६० ॥ यह मंत्र कथाये मुनिकर रामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और सर्वसाधारणके लोगोंको भी मनतानकी स्वर्णारोहणसम्बन्धी बातें श्रोत हो गयीं ॥ ६१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामलेखनाष्टकेकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीका-सहिते पूर्णकांडे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदास बोले—इतनी कथा सुनकर रामचन्द्रजीने वाल्मीकिसे कहा कि आप भी हस्तिनापुर अवश्य आइएगा ॥ १ ॥ महर्षि वाल्मीकिने भक्तवत्सल रामसे कहा—'बहुत अच्छा' । इसके बाद राम लक्ष्मणसे कहने लगे कि सब राज्योंके मिहानसपर बड़े हुए कुमारोंके पास पत्र लिख दो कि वे अपने-अपने मन्त्रियोंके ऊपर राज्यका भार छोड़कर अपना सेनाके साथ वहाँ आ जायें ॥ २ ॥ ३ ॥ इसी प्रकारक वच जम्बूद्वीपवाले तथा द्वीपान्तरनिवासी राजाओंके पास लिख दो और लोगोंको कहो कि उन्हें जंगल वहाँ आनेकी कहे ॥ ४ ॥ "तथास्तु" कहकर लक्ष्मणजीने भी वंसा हो किया, जैसा कि रामचन्द्रजी ने तभीय वाल्मीकि तथा गुरु वसिष्ठके सम्मुख कहा था ॥ ५ ॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने फिर लक्ष्मणसे कहा कि हमारे सम्बन्धकनात आदि सामान बाहर ले चले ॥ ६ ॥ बल बड़ा अच्छा मृत्त है, सीताको भी शीघ्र तैयार हो जानेकी आज्ञा दे दो । बहुतसे शस्त्र बीज हो गये थे, जिनको मेरे पक्षजोंने धरोमें बन्द कर दिये थे उनको निकाल लो । क्योंकि आज उनके उपयोगका समय आ पहुँचा है ॥ ७ ॥ ८ ॥ अन्तःपुरकी जितनी दिव्या है, उनको भी बाहर ले आओ । अग्निहोत्र लेकर सीता को मेरे साथ चले ॥ ९ ॥ मेरे जितने सजाने हैं उनको हाथी, घोड़े तथा दण्डकी सहायतासे बाहर ले आओ ॥ १० ॥ इस तरह लक्ष्मणजीको आज्ञा देकर मन्त्रियों, विद्वानों तथा वसिष्ठजीसे कहा कि अब मैं सातों द्वीपोंके आधिपत्यके पदपर भरतजीको बिठाऊँगा । क्योंकि मेरे बिना लक्ष्मण इस धूमण्डल

एवं वदन्ति राजेंद्रे पौरास्ते मयविह्वलाः । दुःखा इव छिन्नमूला दुःखार्ताः पतिता भुवि ॥१३॥
 मूर्छितो भरतश्चापि श्रुत्वा रामामिमांशितम् । गर्हयामास राज्यं स प्राह दुःखाद्घूतमम् ॥१४॥
 सत्येन तु शपे नाहं त्वां विना दिवि वा भुवि । कांक्षे राज्यं तद्युश्रेष्ठ शपे त्वपादयोः प्रभो ॥१५॥
 अमुं योग्यं वरं राज्ञन्मभिषिचस्व रम्भिव । अयोध्यायां कुश वीर सप्तद्वीपपतेः पदे ॥१६॥
 अस्त्युत्तरकुश्वत्र जम्बूद्वीपपतेः पदे । लवोऽभिषेचितः पूर्वं स एव तेषु गच्छतु ॥१७॥
 भरतेनोदितं श्रुत्वा पतितास्ताः समीक्ष्य च । प्रजा वै मयमंविम्ना रामविश्लेषकावराः ॥१८॥
 वमिष्ठो भगवान् राममुवाच सदयं वचः । पश्यतामादरसर्वाः पतिता भूतले प्रजाः ॥१९॥
 तामां भावानुयं राम प्रसादं कर्तुमर्हमि । श्रुत्वा वमिष्ठवचनं ताः समुन्वाप्य पूज्य च ॥२०॥
 सस्नेहोऽधुनायस्ताः किं करोमीति चाब्रवीत् । ततः प्राञ्जल्यः प्राचुः प्रजा मकन्या रघूद्विजम् ॥२१॥
 गन्तुमिच्छसि वैकुण्ठं त्वमस्माकं नप प्रभो । यत्र गच्छसि त्वं राम शत्रुगच्छामहे वयम् ॥२२॥
 अस्माकपेषा परमा प्राप्तिर्धर्मोऽयमवयः । त्वानुगमने राम हृदता नो दृढा मतिः ॥२३॥
 पुत्रदारादिभिः मार्द्धमनुयामोऽद्य सर्वथा । तपोवनं वा स्वर्गं वा पुरं वा रघुनन्दन ॥२४॥
 शान्त्वा तेषां मनोदाह्यं कारुण्याद्रघुनायकः । भक्तं पौरजनं दीनं वादमित्यब्रवीद्वचः ॥२५॥
 कृत्वैवं निश्चयं रामस्तस्मिन्नेवाहनि प्रभुः । कुशं तमभिषेक्तुं वै चोदयामास लक्ष्मणम् ॥२६॥
 सौमित्रिश्चापि गुरुणा विप्रैः पौरजनैस्तदा । शोभयित्वा स्वनगरीं सुश तमभ्यषेचयत् ॥२७॥
 अभिषेके कुशस्यामीन्महोरसाहो गृहे गृहे । रामावरोधे सुमहान्समुन्मादस्तदाऽभवत् ॥२८॥
 तदा सिंहासनारूढं छत्रचामरशोभितम् । प्रजाः कुशं पतिं प्राप्य प्रणामं चक्रुरादरात् ॥२९॥

पर नहीं रह सकते ॥ ११ ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर वे सब पुरवासी जइसे कटे हुए वृक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े । रामकी बात सुनकर भरतजी भी मूर्छित हो गये । शोभ आनंदपर उन्होंने राज्यकी भरपूर निन्दा की और दुःखित होकर उन्होंने रामचन्द्रजीसे कहा—मैं आपको चरगोकी भयब खाकर कहता हूँ कि आपके बिना मैं पृथ्वी अथवा स्वर्गलोकका भी राज्य नहीं चाहता ॥ १३-१५ ॥ हे राजन् ! हे राघव ! आप वीर कुशको इस सप्तद्वीपपतिके आसनपर बिठाल दीजिए ॥ १६ ॥ उत्तरकुश नामके देशमें जम्बूद्वीपपतिके बदपर तो आपने लवका बहुत दिनों पहले ही अभिषेक कर दिया है, वह अपने पदपर चला जाय ॥ १७ ॥ इस प्रकार भरतकी बात सुनकर वहाँके जितने प्रजाजन थे, वे सब रामके वियोगरूपी दुःखसे विह्वल और अश्रीत हो गये ॥ १८ ॥ उनकी यह वशा देखकर दवानु वसिष्ठजीने रामसे आदरपूर्वक कहा— हे राम ! देखिए, ये सब कितने दुःखी हैं । अब जिस तरह इनकी सन्तोष हो सके, वही काम करिए । वसिष्ठजीकी बात सुनकर रामने उन लोगोंको उठाया, उनका सत्कार किया और पूछा कि मैं क्या कहूँ, जिससे आप लोग लगे प्रसन्न हो सकेंगे । यह सुना तो सब लोग हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक रामचन्द्रजीसे कहने लगे—हे राम ! आप अब यदि वैकुण्ठलोकको जाना चाहते हों तो हमें भी अपने साथ लेते बलिए, हम सब भी आपके साथ-साथ चलेंगे ॥ १९-२२ ॥ इससे बढ़कर हमको और कोई लाभ नहीं होगा । हम लोगोंके लिए यह अक्षय धर्मकार्य है । हे राम ! आपके साथ चलनेके लिए हमने यह निश्चय कर लिया है ॥ २३ ॥ आज हम सब अपने परिवारके साथ आपके सङ्ग वैकुण्ठलोकको, तपोवनको, स्वर्गको अथवा अयोध्याको जायेंगे ॥ २४ ॥ रामचन्द्रजीने जब भर्ता और पुरजनोंकी इसकी दृढ़ता देखी तो साथ ले चलनेकी स्वीकृति दे दी ॥ २५ ॥ इस तरह निश्चय करके रामने उसी दिन कुशका अभिषेक करनेके लिए लक्ष्मणसे कहा और रामके आशानुसार कुश, विप्र एवं पुरवासियोंके साथ लक्ष्मणने उसी दिन कुशका राज्याभिषेक कर दिया ॥ २६ ॥ २७ ॥ कुशका अभिषेक करते समय अयोध्याके घर-घरमें महान् उत्सव मनाया गया । बिसेक्कर रामके आस-पूरकी नारियोंने उत्सव मनाया ॥ २८ ॥ जब कि छत्र और चमर आदिसे सुसज्जित होकर कुश सिंहासनपर

तदा कुक्षौ नृपो विप्रान्वनं बहुतरं ददौ । प्रजास्य पूजयामासुवस्त्रालकारादहर्नः ॥ २० ॥
 वतः प्रापुजयन्सर्वाः प्रजाः स कुक्ष्यभूषतिः । भोजयामासु विप्रान्कोटिभ्यः स कुक्षेभरः ॥ २१ ॥
 अथ रामाञ्जया शीघ्रं सौमित्रिः सौवदा नद । अन्तःपुराणि सर्वानि निजाय नगराद्गृहेः ॥ २२ ॥
 नानादाहनपंथानि नृन्वनाथादिमर्कतः । ततो गतः स्वयं बन्धुपुत्राद्यैः सर्वतो वृतः ॥ २३ ॥
 सुनिभिर्जयशब्दैश्च स्तुतो मगलनिःस्त्रनैः । अवोधयाक वदिः पार्ययौ मागधमस्तुतः ॥ २४ ॥
 रथाकूटश्चामराद्यैर्वोजिनश्च सैन्यमुदा । विदेशं कामोदयति तदा रामो जयः गद ॥ २५ ॥
 ननुतुर्वारनार्यश्च तदा श्रीरथवाग्रतः । ततः पौगः मावरोधावांडालान् गिनिर्ययुः ॥ २६ ॥
 निन्युस्ते सारथेयांतान् पुराः पौगश्चतुष्पदम् । नामन्यधिकुलां गधास्तनुयुषीं ते वरिष्ययुः ॥ २७ ॥
 नार्त्तान्कोटिषु तदा पुर्या जनशून्या यभूव सा । अयोध्यादमरो पुण्या राजभुक्तकपित्थवन् ॥ २८ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे सर्वे द्रोणांतरनिगमिनः । जघूर्दपातस्त्रयाश्च ययुः सैन्यैर्नृपोजयाः ॥ २९ ॥
 कोटिष्ठो राघवं नेमुस्ततो नेमुः कुक्षेभरम् । उपायनानि रामाय कृशाय च पृथक् पृथक् ॥ ३० ॥
 दत्त्वा सपूजितास्त्रांशं तस्युः सर्वे दूतोजयाः । ततोऽह्मदधिवक्त्रेण पुष्टम्स्तत्र एव च ॥ ३१ ॥
 सुगन्धयुपकतुश्च ययुः सर्वे निजमर्कतः । सारंगेधाः मधुनश्च सुपात्रान्ते स्तुपादिभिः ॥ ३२ ॥
 प्रणम्य राघवादींश्च सीतादींश्चापि सादरम् । रामेणालिखिताः सर्वे सीतया भोजिता अपि ॥ ३३ ॥
 तस्याः सर्वे सभायां ने स्वस्वपैतजसः सह । तदागतान् नृपान्मर्शयन् रामो वृत्तं न्यवेदयत् ॥ ३४ ॥

वैदे, उस समय सब प्रजाजनोत उनका माथाग प्रणाम किया ॥ २० ॥ उस समय कुक्षी बाहुणका वस्त्र सा धन दिया और प्रजाजनने विविध प्रकार के वस्त्र तथा आभूषणों के कुक्षी पूजा का ॥ २० ॥ इसके बाद कुक्षी सब लावाका आदर-सत्कार दिया और कहाँ के बाहुणकी भोजन कराया ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर रामको आज्ञासे लक्षण साता नदि आगे पुरी में सब नाविकका विविध सब शिरोधार्य विठाकर भगवत् बाहुर न गये ॥ २२ ॥ इस समय सब नगर के नृप मर्कत आदि मङ्गलमय कार्य, गद गद ॥ इस अनन्तर राम भी बन्धुभा, पुत्रादिक तथा जनक मन्त्रियों के साथ अवधारा नद पुरी शिराका आर लिय हुए अयोध्या के बाहुर आ गये ॥ उस समय कितने ही तरह के धातु वस्त्र और चन्द्रीजन आसनका निकटतलाका मानार गहे थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ जन समय राम एक पुरी के वैदेय, उनका छत्र लग हुआ था और समस्त सब रहे ॥ इस तरह चले चलते राम नद से पुरी पहुँचे, वहाँ लक्षणका वस्त्र, लावाका था ॥ २५ ॥ राम वहाँ एकर आसपास सब गये ॥ वैदेय ने राम के मानन आदर न करने लगे ॥ कुछ देर बाद कुछ जातिसे लेकर एण्डाल जाति तबके अयोध्या के समस्त पुरीका जन आ-वस्त्रका सब दिव्य अयोध्या के बाहुर निकल गये ॥ वे लोग अपने-अपने वृत्त तथा वैदेय के आदि पशुओं के साथ लेकर आये थे ॥ वहाँ तक कि पाली में कुल एक बाहुर आ गये ॥ २६ ॥ २७ ॥ उस समय मारा अश्वारा सुना हा गये ॥ कोई भी उस नगर में ही रह गया ॥ इस पुनीत नगरको सब दशाह गया था, जो दशाह शोक पटल मिरर केवल होता है ॥ हलक यह कि हाथी जब कंधे के पालान लगाता है तो सब पालान लम्बा हो फल ला जाता है और मध्यवर्ग सब समय के बीच दायनय समस्त ही दिखाने है, किन्तु यह लानिकता ठीकर मार दी जायता पट आता उनसे कुछ तस्व नहीं रह जाता ॥ वही दशाह अश्वारा में आ गया था ॥ ऊपर से देखने पर तो अयोध्या के लो लो देखता है, किन्तु उसमें कोई रहनेवाला नहीं था ॥ २८ ॥ उपायय अनेक हाथों के कितने ही जहाँ अपनी-अपनी सेनाके साथ आ पहुँचे ॥ २९ ॥ उनसे सब आकर रामका तथा नदीव राजा कुक्षी तम किया और दोनोंको अलग-अलग विविध प्रकारसे उपहार दिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस पुरीसे नवा मुख दु दि राजपुत्र भी अपने आतुरको दिव्य और पुत्रादिकों के साथ आ पहुँचे ॥ वहाँ राम ऊपर से सब दि पात्राओं तथा रामको प्रणाम किया ॥ रामने उनका उपहार हुआ मला, आ और लाने पुत्रों अपने गोले परीमकर भोजन कराया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इसके बाद वे सब अपने अपने नगरों के लान आकर सभी-

पुनः पप्रच्छ तान्मवर्त्तन्मिथितान् रघुनन्दनः । गृध्राक्षं पूर्वजाः सर्वे समायाता गजाह्वये ॥४५॥
 भयतां रोषते युद्धं यदि नैः पूर्वजैः सह । आगन्तव्यं तर्हि सर्वं मया सह गजाह्वयम् ॥४६॥
 नोचेद्भद्राद्विर्गन्तव्यमित एव निजम्वलम् । निर्वन्धोऽयं न मे तेभ्यः सर्वैः पार्थिवमलमैः ॥४७॥
 इति रामवचः श्रुत्वा नृपा राघवमब्रुवन् । राम राम महार्वाय वयं सर्वे त्वानुगाः ॥४८॥
 त्वयैव वद्विताः सर्वे त्वान्नैः पोषिता वयम् । शीराः क्षत्रियवंशीया रणे नमप्रहाग्निः ॥४९॥
 तवाज्ञया वधामोऽद्य पित्रपुत्रान् रणाजिरे । ताम्प्रांस्त्वं विद्धि गजेन्द्र म्नामिकायै पराङ्मुखान् ॥५०॥
 इति तेषां वचः श्रुत्वा तानालिख्य स राघवः । संपूज्याभरणैर्वस्त्रैः सुखे सुखाप सीतया ॥५१॥
 ततः प्रभाने श्रीरामो गन्वा तां मम्युनदीम् । स्नान्वा दानादि वैदक्ष्या सीतया त्रिधिपूर्वकम् ॥५२॥
 नत्वा तां सरयूं पुण्यां गन्तुं पप्रच्छ वै मुहुः । तटामवचनं श्रुत्वा सरयु राममब्रवीत् ॥५३॥
 एतावत्कालपर्यन्तं स्थिता नृददर्शनेच्छया । अहमद्य त्वया राम यास्यामि न्वन्वदं त्वित ॥५४॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा तामाह राघवः पुनः । यावत्कथा मम शुभा स्यास्यन्धवाघनाशिनी ॥५५॥
 तावत्समंश्रूयाऽत्र वयं लोकाघनाशिनी । तथेति रामवचनदशरूप निघाप सा ॥५६॥
 साकेतोऽत्र पूर्णरूपं यया शमेष नृपदम् । अथ रामः मरुताऽपौ परिक्रम्य नितां पुरीम् ॥५७॥
 साष्टांगं तां नमस्कृत्य गन्तुं पप्रच्छ पूज्य ताम् । अयोध्येऽस्य नमस्तेऽस्तु न्वयाऽहं रक्षितस्मिह ॥५८॥
 आतां ददस्व पृच्छामि मयस्थलं गन्तुमुद्यत । भवन्तं वेऽपगधास्त्रं पुनदर्शनमस्तु ते ॥५९॥
 इति रामवचः श्रुत्वा पुरीं राघवमब्रवीत् । एतावत्कालपर्यन्तं स्थिता नृददर्शनेच्छया ॥६०॥
 यास्ये त्वया समर्था न मोदुं त्वद्विरह स्वहम् । ततस्या वचनं श्रुत्वा पुरीमाह रघूत्तमः ॥६१॥

मे बैठे । और-और राज भी वहाँ एकत्रित हुए तो रामने उनको अपना विचार सुनाया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामने उन राजाओंसे कहा कि आपको पूजा हेतुनापुरीय बुद्धर विष्णु मंगे थे ॥ ४५ ॥ तो यदि आपलोगों-को भी बुद्ध करना हो तो मेरे साथ हस्तिनापुर चलिए ॥ ४६ ॥ यदि न इच्छा हो तो आप लोग अपनी-अपनी राजधानीकी लौट आइय । मैं आपलोगोंमें किसी प्रकारका आपह नही करना चाहता ॥ ४७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर उन राजाओंमें कहा-हे राम ! हे महाबाही ! हम सब आपके अनुगामी हैं । आपने ही हम लोगोका अभ्युदय किया है । आपको ही भजते हम पन हैं । वार क्षत्रियोंके वंशमें मेरा जन्म हुआ है । इस कारण आप यदि आज्ञा देंगे तो हम अपने पित्रपुत्रोंको मयागम अवश्य करेंगे । हे राजेन्द्र ! आप कभी भी ऐसा न ममक्षितेण कि हम मरुता आप के काममें पराङ्मुख होंगे ॥ ४८-५० ॥ इस प्रकार उनको बतते सुनीं तो रामने उन सब राजाओंको हृदयसे लगाया, विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषणोंसे उनको पूजा की और लेकर आनन्ददूर्वन सीताके साथ आयेन किया ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर सर्वे सीताके साथ रामचन्द्रजीने सरयूके तटपर जाकर स्नान दान किया । इसके बाद उन्होंने प्रणाम करके सरयूजीसे अपने जन्म परम नाम जानकी आज्ञा माँगी । रामकी प्रार्थना सुनकर सरयुने कहा—॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अबतक आपके यज्ञोंकी इच्छासे मैं भी यहाँ थी । किन्तु हे राम ! अब आप जा रहे हैं तो मैं भी आपके श्रीचरणोंके साथ चलूँगी ॥ ५४ ॥ सरयूकी बात सुनकर रामने कहा—जबतक सब पापोंको नष्ट करने-वाली मेरी मूर्धन कथा इस संसारमें विद्यमान है तबतक अमरुतसे तुम भी यहाँ रहती हुई सबके पाप दूर करती रहो । रामके कहनेपर सरयुने तत्कार अपना एक अंजना बनाया, जिसमें वह अर्घ्यध्यामे रह गई और पूर्णरूपसे रामके साथ चल पड़ी । सरयूकी साथ चकर रामने अपनी यावत् पुरीकी परिष्का की और साष्टांग प्रणाम एवं पूजन करके परमधाम जाकर आज्ञा माँगी और कहा—हे अम्ब अयोधे ! तुमने मेरी रक्षा की है । मैं अब अपने वैकुण्ठलोक जानकी आता माँगता हूँ । मेरे अपराधोंकी क्षमा करो और मुझे आशीर्वाद दो कि फिर कभी मैं दुःखीय नहीं बन सकूँ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर अयोध्यापुरीमें कहा कि इतने दिनों तक मैं आपका दर्शन करनेके लिए यहाँ रही । आपके चले जानेपर मैं

यावत्कथा मम शुभा स्थास्यत्राघनाशिनी । तावत्तमशरूपेण वसात्र मृन्मयी चिरम् ॥६२॥
 तथेति रामवचनादेशरूपाऽत्र मृन्मयी अयोध्या संस्थिता दिव्या हैमा गणेन साधयौ ॥६३॥
 अयोध्याया सगत्याऽपि रामः सेनापदं ययौ । अयोध्याया सगत्याश्च प्रभातो न गतौ निवतः ॥६४॥
 अथ सीता महानागीमाहोह मर्धाजनैः । पृथक् नागं मुमिक्षाद्यास्ताः समारुरुह्मन्दा ॥६५॥
 अत्र रामो मुदा वेगान्ममारुह्य गजोपरि । उवाच लक्ष्मण वाक्यं पुष्पके मकलान् जनान् ॥६६॥
 पौरानारोहयस्व त्वं स्वबन्धुभ्यां सुतादिभिः । नागरुहैः पृथक् शास्त्रं ममारुह्य गजोपरि ॥६७॥
 अनुगच्छस्व मत्पुष्टं लक्ष्मणः स तथाऽकरोत् । अथ सर्वे नृपतयो नानाधानेषु सस्थिताः ॥६८॥
 ययुः स्वसर्बलैर्युक्ताः शस्त्रं श्रीरामपाश्वर्यतः । यथावग्रे न्यग्रसगे रज्जुकुडालधारिभिः ॥६९॥
 दृषन्कारैस्तवक्षरैश्च कुशाटैरुपाणिभिः । ततो ययौ महानागः पताकाध्वजशोभितः ॥७०॥
 ततो ययुर्यन्त्रहस्ता नानावाहनसंस्थिताः । ततो ययुः शस्त्रनाभिः पूगिताः शुकटाः शुभाः ॥७१॥
 ततोऽश्वमस्था वाद्यानि बादयन्तो ययुर्मताः । ततोऽश्वरम्भाः शतशो ययुस्ते वज्रपाणयः ॥७२॥
 ततो ययुर्मागधाश्च वदिनो यानमस्थिताः । ततो नटाश्चाभ्याश्च यानस्थाः मुनिभूषिताः ॥७३॥
 ततस्ता वारनायश्च काष्ठमचकवाहिनाः । मण्डकेषु भट्टनागो नृपतयः प्रययुः सुखम् ॥७४॥
 ततो ययुर्भूषितास्ते श्रीरामस्य तुरङ्गमः । ताः पुनरादयान्निभ्रम्यः प्रमदानमाः ॥७५॥
 ययुस्तरुण्यः शतशः शस्त्रहस्ताः सुभूषिताः । गण्डितस्थाः कञ्चुकिन्यस्तुगन्धादिषु भास्यताः ॥७६॥
 ततो ययुर्दंडहस्ता दार्ढ्यापुत्राः सुभूषिताः । ततो ययौ रामचन्द्रसन्पुष्टं लक्ष्मणं ययौ ॥७७॥

रहती हुई मैं आपको विनोदका हुआ नहीं सह सकूँगी । इसलिए मैं भी आपको साथ ही चम्पकालेंदवार बँडा हूँ । उसकी ऐसी बात सुनकर रामन अयोध्यापुत्राग कहा कि जबतक जगन्ममे मेरा पावनाशिनी कथा विद्यमान रहे, तबतक तुम अशक्तसे मृन्मयी होगी यही निवास करो ॥ ६३-६२ ॥ रामके कथनानुसार उसने अपने अंशरूपसे मृन्मयी होकर रहना आरम्भ कर दिया और मृन्मयी तथा सपत्नी अयोध्या रामके साथ चल पड़ा ॥ ६३ ॥ इसके बाद राम अयोध्या तथा सगुप्त साथ नरने सेनाशिनिविवो लोड गया । यद्यपि अयोध्या तथा सगुप्त य दोनों अरन अरन रहाने न गये । किन्तु ममा म पुतका प्रभाव उताका न्यो बना रहा । वह नहीं गया ॥ ६४ ॥ इसके अनन्तर म मा एक अरुन्ध-म, द्विनिपत्र मदार हुई और अमिला आदि दूसरी हविनियोंपर जा खड़ी ॥ ६५ ॥ इसके बाद राम भी म यन्त्रहस्त हुआ पर मर र हुप् और लक्ष्मणसे कहा कि समस्त वन्धु-बान्धवोंके साथ अयोध्या विद्योती पुत्रके विमानपर सवार हो । इसके बाद तुम अपने परिवारवालोंको हाथीपर बिठाकर मेरे पीछे-पीछे आओ । रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणन मर द्रव्य डाक कर दिया । इसके बाद मव राज अनेक प्रकारकी सवारियोंपर सवार हो-हाकर अपनी-अपनी सनाके साथ रामके पास आये । अगो-अगो वे मजदूर चने, जा रन्मिव तथा कुशल न्द्रिय थे । पत्थर काटनेवाले तथा बटई आदि विविध प्रकारके औजार लिये थे । उनके पीछे-पीछे एक बड़ा हाथी पताका और ध्वजाओंसे अलंकृत होकर चला । उसके पीछे अपने-अपने हाथोंसे वस्तुके आदि विविध प्रकारके शस्त्रवाहों मैनिक तरह-तरहके बाहनोपर सवार हाकर चले । उनके पीछे न प आदिने नदी वैश्यादिन चला जा रही थी । ६६-६१ । उनके पीछे-पीछे अनेक प्रकारके बाजे बजानेवाले लोग बाँहोपर बैठ-बैठकर चले । उनके पीछे बहुतसे पुंड-सवार हाथमें बत लिये हुए चले ॥ ७२ ॥ उनके पीछे बाहनोपर आहूत होकर बहुतसे मायध और वन्दीजन चले जा रहे थे । उनके पीछे नदलाग और मजो चौकि रोंपर बँडा हुई वैश्याये पावी बजानों और नाचती हुई चली जा रही थी ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ उनके भी पीछे रामके सजाव हुए ध्वजे और उनके पीछे पुष्पक समान वेप बाण किये, अनेक प्रकारके अलंकार पहने, तरह तरहके शस्त्र लिये, पदसे अपने मुक्क लिये और घाँडे आदि विविध सवारियोंपर सवार म्द्रिय चली जा रही थी ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ उनके पीछे हाथमें लाठिये लिये तरह-तरहके मामूयण पहन दासीपुत्रागन चले जा रहे थे । उनके पीछे भगवान् रामचन्द्र और लक्ष्मण, भरत,

तत्पृष्ठे भरतश्चापि शत्रुघ्नश्च ततो ययौ । ततः कुशो लवश्चाथ ततः सोऽप्यंगदो ययौ ॥७८॥
 ययौ ततश्चित्रकेतुः पुष्करश्च ततो ययौ । ततस्तक्षः सुबाहुश्च यूपकेतुस्ततो ययौ ॥७९॥
 ततः सीता ययौ शीघ्रमुर्मिला च ततः परम् । माडर्या श्रुतकीर्तिश्च स्तुषाः सर्वाः क्रमाद्ययुः ॥८०॥
 ततस्ते मन्त्रिणः सर्वे शिविकामस्थिता ययुः । ततो ययुर्वानरश्च कोटिशः पर्वतोपमाः ॥८१॥
 ततो ययुर्नृपाः सर्वे कोटिशो वारगन्धिताः । ततो नृपाणां भैन्यानि ययुर्वानिस्थितानि हि ॥८२॥
 ययुस्ततस्ते यन्त्राणां शकटाः कोटिशो वराः । शनन्नीसङ्गचर्मादिपूरिताः शकटास्तदा ॥८३॥
 ततो वारणमुख्याश्च नवशय्यसमन्विताः । ततश्चोष्ट्राः सुवणानां ततः पृष्ठे स्तरादयः ॥८४॥
 एवं रामः शनैर्मार्गं चामराद्यैः सुवीजितः । मोतया आलम्ब्यैव च वीक्षितश्च मुहुर्मुहुः ॥८५॥
 ययौ शनैः शनैः श्रीमान्स्तुतो मत्तगन्धर्वदिभिः । पश्यन्नुन्यान्यप्सरसां शृण्वन्स गायनान्यपि ॥८६॥
 सेनानिवेशस्थानानां यात्राकाण्डे यथोदिता । मया पूर्वं सुरचना तद्वदासीत्पुनस्त्विह ॥८७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणं वाल्मीकीये आदिकाव्ये पूर्णकाण्डे
 रामदासविष्णुमवादे रामप्रस्थानं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(रामका सोमशिशियोंके साथ युद्ध)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः शनैर्मार्गे नानादेशान्विलम्ब्य च । एकादशदिनैः प्राप सेनरा तदज्ञह्वयम् ॥ १ ॥
 राममायनमाज्ञाय सुपेणो वेगवस्तरः । प्रन्युद्यथा स्वकपिभिर्विशङ्कशममन्वितैः ॥ २ ॥
 नत्वा रामं च सीतां च सर्वं वृत्त न्यवेदयेत् । गम राम मदावाहो शनापान्च वै मया ॥ ३ ॥

शत्रुघ्न, कुश, अङ्गद, चित्रकेतु, पुष्कर, तक्ष और उनके पीछे राजपुत्र सुबाहु चले जा रहे थे । राज-
 पुत्रोंकी टोलीके पीछे सीता, उर्मिला, माडर्या, श्रुतकीर्ति और उनके पीछे उनकी पत्नीद्वय चली जा रहा थी ।
 उनके पीछे रामके मन्त्रिगण पालकियोंपर बैठ चले जा रहे थे । उनके भी पीछे पर्वतक समान बड़े-बड़े
 आकारवाले वानर और उनके पीछे विविध प्रकारकी सवारियोंपर सवार सब राज चले जा रहं थे । उनके
 पीछे उन राजाओंकी सेनाये घोड़ोंपर सवार हाकर चली जा रही थी । उनके पीछे कितनी ही वैल्गाडियोंपर
 लदे हुए तोप आदि यन्त्र चल जा रहं थे ॥ ७८-८३ ॥ उनके पीछे मुर-मुल हाया अनेक प्रकारके बाघ लदे
 हुए चले जा रहे थे और उनके भी पीछे एक बहुत बड़ा हायी चल रहा था जिसपर राष्ट्रके पताका सुशोभित
 हो रहो थी । उनके पीछे सुवर्णसे लदे हुए ऊँट और उनके पीछे और-और सामान लदे हुए गधे तथा खच्चर
 आदि चल रहे थे ॥ ८४ ॥ इस तरह राम धीरे-धीरे चले जा रहे थे । उनके ऊपर चमर ध्वजन आदि चल
 रहे थे और सीताजी अपनी सवारीके झरोखोस द्वार द्वार रामको निहार रही थीं ॥ ८५ ॥ माण्डव-चन्द्रीजन
 आदि विविध प्रकारका स्तुतिमें कर रहे थे और कितनी ही अप्सराओंके नृत्य-गान हो रहे थे ॥ ८६ ॥ राम-
 चन्द्रजीके पड़ाव ठीक उसी तरह इस समय भा थे, जैसे कि पीछे यात्राकांडमें बतलाये जा चुके हैं ॥ ८७ ॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणं पूर्णकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस तरह धीरे-धीरे चलते हुए राम अपनी सेनाके साथ अनेक देशोंको लौधते हुए ग्यारह दिनमें
 हस्तिनापुर पहुँच ॥ १ ॥ रामके पहुँचतेका समाचार पाते ही सुपेण वीस लाख सैनिकोंको लेकर आ पहुँचा
 ॥ २ ॥ रामके समक्ष पहुँचकर उसने सीता-रामका प्रणाम किया और कहने लगा—हे महाबाहो राम ! आपके

चतुर्दशदिनं युद्धं कृतमेभिः सुदृक्कम् । अधुना त्वं समायात कर्तते स्थास्यन्ति भूतले ॥ ४ ॥
 सुषेणस्य वधः श्रुत्वा नमप्याश्रमयन्प्रभुः । अथ रामः स जाह्नव्याश्चोत्तरे परमे तटे ॥ ५ ॥
 सेनानिवासमकरोद्ददर्श रिपुवाहिनीम् । तां निशां समतिक्रम्य द्वितीये दिवसे ततः ॥ ६ ॥
 चोदयामास युद्धाय वानगन् रघुनदनः । ततस्ते वानराः सर्वे जाह्नव्यामवप्युत्थ च ॥ ७ ॥
 राम सीतां नमस्कृत्य निर्ययुः समग्रं मुदा । ततस्ते वानराश्चक्रुः सिंहनादान्मयंकरान् ॥ ८ ॥
 वादयामासुर्वाद्यानि दृष्टुः शत्रुवाहिनीम् । नलाद्यास्तेऽपि श्रीगमसेनां दृष्ट्वाऽनिविस्मिताः ॥ ९ ॥
 चाकिता मयमीताश्च निर्ययुः संग्ररं जयान् । ततस्ते वानराः सर्वे गंगामुल्लङ्घ्य वेगतः ॥ १० ॥
 दृपद्भिः पर्वतैर्बुधैः शिलाभिर्मृष्टिभिः पर्दः । निजघ्नुः शत्रुवीरांस्ते कर्तयतो रघुनमम् ॥ ११ ॥
 नलवीरश्च ते सर्वे शस्त्रैर्वीरुणैः कपीश्वरान् । निजघ्नुः समरे वेगाद्बभूव तुमलो रणः ॥ १२ ॥
 अथ तैर्वानरैः सर्वे बलाढ्यैः प्रपीडिताः । पराङ्मुखः कृताः सर्वे रणात्ते नलमैनिकाः ॥ १३ ॥
 तान् दृष्ट्वा ते नलाद्याश्च रणाङ्गीरान् पराङ्मुखान् । निहतज्ज्वलिशीरैश्चाक्षोद्यन्मृपतीस्तदा ॥ १४ ॥
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जम्बूद्वीपनिवासिनः । तथा द्वीपांतरगोद्भूता ये शूद्राश्च पुण्ड्रिणाः ॥ १५ ॥
 ययुर्युद्धाय सञ्चद्रा नानावाहनमस्थिताः । तान्मयांनगनान्दृष्ट्वा ययुः श्रीगममैनिकाः ॥ १६ ॥
 जम्बूद्वीपांतरस्थाश्च तथा द्वीपांतरस्थिताः । पुष्यवान् नृपाः सर्वे नानावाहनमस्थिताः ॥ १७ ॥
 सुग्रीवश्चांगदश्चाथ हनुमांश्च विभीषणः । जांबवान्श्च सुषेणश्च मपातिर्मकरध्वजः ॥ १८ ॥
 गुहको भूरिकर्तिश्च कंबुकः प्रतापवान् । तथाऽन्ये जनकाश्च ययुः सग्रामभूतलम् ॥ १९ ॥
 तदोभयोर्महानामीत्मैन्ययोर्वीरिनिःस्वनः । नरवाद्यानि वै नेदुरुभयोः सैन्ययोः पृथक् ॥ २० ॥
 तदा ब्रह्मादयो देवाः शिवेन सहिताश्च स्ते । सवुधेनाथ सोमं देवेन्द्रेण युता मुदा ॥ २१ ॥
 नानाविमानमारुढा ददृशुर्बुद्धकौतुकम् । अथ चद्रादयो देवाश्चक्रमन्त्रं परस्परम् ॥ २२ ॥

प्रतापसे मैने चौदह दिनो तक इन लोगोके साथ भयंकर युद्ध किया है । अब आप भी आगये हैं तो ये दुष्ट बचकर कहाँ जायेंगे ॥ ३ ॥ ४ ॥ सुषेणकी बात सुनकर रामने भी उसे आश्वासन दिया और गङ्गाके उत्तरी तटपर अपना सेनानिवास बनाया ॥ ५ ॥ वहाँसे ही शत्रुकी सेना देखी । रात बीत जानेपर सबरे ही रामने वानरोको युद्धके लिए बिदा किया । रामकी आज्ञासे वे लोग सीता तथा रामको प्रणाम करके बड़ी प्रसन्नतासे गंगाजीको पार करके सग्रामभूमिमें जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने भयंकर सिंहनाद किया, विविध प्रकारके मारु बाजे बजाये और शत्रुकी सेनापर घावा बोल दिया । रामकी रैनाको देखकर वे नल आदि राजे बड़े विस्मित हुए ॥ ९-६ ॥ वे तुरन्त अपनी सेनाके साथ युद्धके लिए जा डटे । इसके अनन्तर वे सब वानर पत्थरके बड़े-बड़े लफ्ड़ और कृत्त ले-लेकर रामचन्द्रजीकी जयजयकार करत हुए शत्रुपक्षके योगोंका संहार करने लगे ॥ १० ॥ ११ ॥ ऊपर नलकी सेनाके भी धीरे अपने तान्न शस्त्रोंसे वानरोको मारने लगे । इस तरह कुछ देर तक घमासान युद्ध हुआ और वानरोंने अपनी कृत्त पाषाणबर्षासे शत्रुओंके छक्के छुड़ा दिये । जिससे नलके सेनिकोंको वहाँसे पाछे हटना पड़ा ॥ १२ ॥ १३ ॥ इस तरह अपन वीरोको भागते देखकर नल आदिने और-और राजाओंको प्रोत्साहित किया । १४ ॥ इससे जम्बूद्वीपके अन्यान्य द्वीपोंके राजे जिनकी गणना पीछे कर आये हैं, वे सब अनेक प्रकारके वाहनोपर आरुढ़ हो-होकर बड़ी सैयारीके साथ भिक्ल पड़े । उन लोगोंको युद्धभूमिमें उपस्थित देखकर रामके सैनिक जा डटे ॥ १५ ॥ १६ ॥ ऊपर जम्बूद्वीप तथा अन्यान्य द्वीपोंके राजे उपरियन थे । इधर सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान् विभीषण, जाम्बवान्, सुषेण, सम्पाती, मकरध्वज, भूरिकर्ति, कंबुकण्ड तथा जनक आदि वीर लड़नेके लिए सग्राम-भूमिमें डटे हुए थे । उस समय दोनों ओरके सैनिक बहुत जोर-जोरसे सिंहनाद कर रहे थे और विविध प्रकारके बाजे बज रहे थे ॥ १७-२० ॥ उस समय शिव, बुध, सोम और इन्द्र आदि देवताओंको साथ लेकर

महाभयं समुत्पन्नं प्रलयोऽद्भ्यः भविष्यति । ब्रह्मदत्तवराश्वते सोमवंशोद्भवा नृपाः ॥२३॥
 रामो विष्णुरयं साक्षान्कथं जयपराजयौ । भविष्यतः कथं युद्धाभिर्वृत्तिरुभयोरपि ॥२४॥
 भविष्यति उपायः कः कार्यो युद्धानवाग्ने । तदा ब्रह्मा सुगताहं किञ्चिद्दृष्ट्वा वयं रणम् ॥२५॥
 करिष्यामस्तयोः सख्यं राममोमजयास्त्विह । हन्युक्त्वा सकलान्वेधा ददर्श ण्णकौतुकम् ॥२६॥
 तथोभयोः सैन्ययोश्च वधुवृषत्रनिःस्वनाः । यत्रोन्धवह्निज्वालाभिव्याप्ता दश दिक्षोऽभवन् ॥२७॥
 यत्रोन्धनानागटिकाभिर्निजन्तुस्ते परस्परम् । शत्रुघ्नोभिस्तथा जम्बुः शकटस्याभिगदगत् ॥२८॥
 तथा वीरा निजन्तुस्ते वारणैः तृङ्गैः पश्वरैः । परस्परं तेमर्गश्च मिदिपालैश्च सुद्वरैः ॥२९॥
 परिधैश्चक्रवारणैश्च कूर्तैः शूलैश्च पट्टिगैः । तदा जघान पितरं पुत्रः पुत्र तथा पिता ॥३०॥
 पितामहस्तथा पौत्रं प्रपौत्रश्चापि पितामहम् । अन्योन्यं कुलजात्यागदशदिकं मथ्राव्य वै मुहुः ॥३१॥
 तथा रणे प्रपौत्रं च जघान प्रपितामहः । तथा वारणैः प्रपौत्रोऽपि जघान प्रपितामहम् ॥३२॥
 मातामहं तु दीहित्रस्तथा वारणैरनाडयन् । तथा नानामहश्चापि दीहित्रं च रणेऽहनन् ॥३३॥
 एव परस्परं चाम्बीशुद्रं गल्लीमहर्षणम् । तत्र वे दे हत वीराः संगरे रामसेवकाः ॥३४॥
 तान्सर्वान् जीवयामास तदा एवमनन्दनः । द्रोणाचलीपर्थाभिश्च वारं वारं स्वमैत्रिकान् ॥३५॥
 रिपुमैत्र्ये मृता ये ते मृता एव तु नोन्मिताः । एव तदा सोमवंशनुयास्ते क्षीणतां ययुः ॥३६॥
 तदा लोहितपूरा सा बभूव सुरनिम्नगा । अरुपञ्चमिता सेना नलादीनां तदा रणे ॥३७॥
 निपातिता राक्षसीयैर्नृपैः सा दरसंगरैः । एवं बभूव ममरः षण्मासं हस्तिनापुरे ॥३८॥
 ततस्ते सोमवंशस्था नृपाः किञ्चिदलैर्दुताः । निषण्णा विगतोत्साहा निर्ययुः संगरं स्वयम् ॥३९॥
 तानामतांस्तदा वीक्ष्य कुशाद्या बालकाश्च ते । रामदोनां ययुस्त्वयं गृहस्था रणभूतलम् ॥४०॥

अपने वाहनपर बैठे हुए ब्रह्माजी आकाशमण्डलमें आ पहुँचे और उन लोगोका वह भवान्क युद्ध देखने लगे । कुछ देर बाद चन्द्रमा आदि देवताओंन आपसमें कहा कि यह बड़ा भयावह समय आ पहुँचा है । ऐसा लगता है कि आज प्रलय हो जायगा । इधर वे सोमवंशी राजे ब्रह्मसे घर प्राप्त किये हुए हैं, इसलिए किसीसे पराजित नहीं होंगे । उधर रामरूप धारण किये साक्षान् विष्णुभगवान् लड़न आये हैं । ऐसी अवस्थामें जय-पराजय कैसे हो सकता है ? और यदि यह सगड़ा है वर नका विचार किया जाय तो कैसे हो ॥२१-२४॥ उनकी बात सुनकर ब्रह्मान् कहा कि हम थोड़ा देरतक इनका युद्ध देखकर इन दोनोंमें सन्धि करवा देंगे । ऐसा कहकर ब्रह्माजी युद्धकोतक देखने लगे । उस समय दोनों सेनाओंमें नाप बन्दुक आदिकी भयंकर गजना सुनायी पड़ रही थी । उन दशक मुखसे निकली आगें लपटें से दोनों दिशाएँ व्याप्त हो गयी । २५-२७ ॥ दशककी गोलीयोंसे आपसमें एक दूसरेको मार रहा था । हमारी ओर बड़ी-बड़ी गाड़ियाँपर रस्सों हुई तोरें अलग अलग उगल रही थी । दोनों पक्षक बार आवसतें पट्टि आगेंसे लड़ रहे थे । उस समय युद्धक मदसे मतवाले हुकर पिता पुत्रको, पौत्र पिताको, पौत्र पितामहका तथा पितामह पौत्रको अपना ग्राम-कुल आदि बतलाकर मार रहा था । प्रपितामह प्रपौत्रको, प्रपौत्र प्रपितामहको, दीहित्र मातामहको और मातामह दीहित्रको निःशङ्कभावसे मार रहा था ॥ २८-३३ ॥ इस तरह परस्पर सन्तर्पक युद्ध हो रहा था । उस समय संग्राम-भूमिमें जो-जो रामके सैनिक मरते थे, उन्हें हनुमान्जी प्राणावलका संजीवनी वृक्षसे जोखित कर लिया करते थे ॥ ३४ ॥ किन्तु शत्रुकी सेनामें जो मरे, वे मरे ही रह गये । इस कारण वे सब सोमवंशी राजे धीरे-धीरे क्षणबल हो गये ॥ ३५ ॥ उस संग्रामसे रुधिरकी गंगा बह चली और रामके सैनिकोंने नल आदि राजाओंकी बारह पद्य सेनाका संहार कर डाला । इस तरह छः महीने तक हस्तिनापुरमें वह महासंग्राम होता रहा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ अन्तमें वे सोमवंशी राजे अपनी थोड़ी-सी सेना लेकर स्वयं संग्रामभूमिमें आये ॥ ३९ ॥ उनकी आये देखकर कुश आदि बालक रथ-

नलं ययौ कुञ्जः शीघ्रं नद्युक्तं स ययौ लवः । जालीकरमगदय सदा च वसुदं नृपम् ॥ ४१ ॥
 चित्रकेतुर्ययौ शीघ्रं सदा लघुभृतं नृपम् । ययौ स पुष्करः शीघ्रं तक्षकः सुरयं ययौ ॥ ४२ ॥
 अजमीढं सुबाहुश्च यूपकेतुर्ययौ बलम् । यूपकेतुर्हि तत्सैन्यं चकाराणोपरं शूरैः ॥ ४३ ॥
 रापध्याश्रेण चित्तोप लवस्तं लवणाभसि । तदा ते समं वीरान् च नलायाः पर्वता एव ॥ ४४ ॥
 पुत्रश्च तद्युवोरस्य बालकैः सह संगरे । न चिरेजुर्वैतैर्होनाः स्वधर्हीननयोपमाः ॥ ४५ ॥
 कुञ्जो विन्यास बाणैस्तं नलं सप्रामर्ष्यनि । तदा नलः प्रमिषाणाः स्वबाणैस्तं व्यतर्जयत् ॥ ४६ ॥
 गतः कुञ्जः स्वबाणोर्ध्वनलस्याध्वान्च जघनुः । छत्रं सागपिनं छिन्वा नलं बाणैरशङ्कयत् ॥ ४७ ॥
 नद्युक्तं चापि विन्यास स्वबाणोर्ध्वनलवस्ततः । नद्युक्तश्च लवं बाणैस्तदा क्वाकुलमावबोध ॥ ४८ ॥
 नद्युक्तं निजबाणोर्ध्वकार विरयं लवः । एवं जालीकरं बाणैरगदः सप्रलाडयत् ॥ ४९ ॥
 धतः श्वजालीकरः पणिगेर्गागदं तदा । लतो जालीकरं बाणैरगदोऽपत्ययहृवि ॥ ५० ॥
 चित्रकेतुः स्वबाणोर्ध्वः कोशेन वसुदं नृपम् । चित्तोप स्वदनाद्रेमाचदङ्कतमिवामवत् ॥ ५१ ॥
 तथा लघुभृतो बाणैर्हृदि विन्यास पुष्करम् । तदा स पुष्करः कोपाद्बाणैर्लघुभृतं रवे ॥ ५२ ॥
 भित्तिचित्रोपरं कुञ्जा बाधयामास दुन्दुभिम् । सुगन्धश्चापि तप्तं स ववर्ष शङ्खशिभिः ॥ ५३ ॥
 गतस्तक्षकः स्वबाणोर्ध्वः सुरयं गगनागमे । मरुतं प्रापयामास शुष्कपर्णं यथा मरुत् ॥ ५४ ॥
 अजर्मिष्ठस्तदा सर्वान्निर्वजान् न्याकुलीकृतान् । वीरश्च रामात्मजाद्यैस्तैर्ववर्ष उरशिशिभिः ॥ ५५ ॥
 सुबाहुस्तं स्वबाणोर्ध्वकार विरयं तदा । अजमीढस्ततोऽन्वे स रवे स्थित्वा ययौ पुनः ॥ ५६ ॥
 हुमोश्च पवनान् स कुशादीनां रवे क्रुधा । तं दृष्ट्वा नृपकेतुस्तं पद्मगामं हुमोश्च सः ॥ ५७ ॥
 तदा सै कोटिभ्यः सर्पाः पपुस्तं कंपनं क्षणात् । शय्यः च नलः सर्पान्द्रष्ट्वा गारुडमुत्तमम् ॥ ५८ ॥

हर सवार होकर राजपूषिमे जा डटे ॥ ४० ॥ उन समय नलके सम्मुख कुञ्ज, नद्युक्तके सामने लव, जालीकरके सामने वज्रद, वसुदक सम्मुख चित्रकेतु, लघुभृतके सामने पुष्कर, सुरयके समक्ष तक्षक, अजमीढके सामने सुबाहु और बल नामक राजाके सामने यूपकेतु जा पहुँचे । यूपकेतुन बोले ही समयमें समस्त सेनाका नाश कर डाला ॥ ४१-४३ ॥ छत्रने अपने बाधक्य अग्नये उन मरे हुए सैनिकोंको लारे समुद्रमें फेंक दिया । ऐसी अवस्थामें पर्वतकी भाई बड़े बड़े के नल आदि सप्तों और रामजीके बालकोंके साथ युद्ध करने लगे । यह सब करते हुए भी वे राजे उसी तरह ओछे लग रहे थे, जिस तरह दानी और पत्नीसे विहीन वृद्ध हों ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ बोली देर बाद कुञ्जने अपने बाणोंसे नलको घायल कर दिया । तब नल भी दूने बैगके साथ कुञ्जपर लगटा, किन्तु लोका पाकर गूजने बाणों द्वारा नलके रथ, घोड़े, भोजा, वनुष, छत्र और सावधीको नष्ट करके उसके अरोरपर भी प्रहार किया ॥ ४६ ॥ ॥ ४७ ॥ उपर लवन अपने बाणमण्डसे नद्युक्तको और नद्युक्तने अपने शस्त्रोंसे लवको शय्यकुल कर दिया ॥ ४८ ॥ अन्तमें लवने अपना बाणवर्षामें नद्युक्तके रथको काट डाला । इसी तरह वज्रदने जालीकरपर प्रहार किया और जालीकरने परिष बलभक्त वज्रदपर प्रहार किया । अन्तमें वज्रदने अपने बाणोंसे जालीकरको पद्मगामी कर दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इसी प्रकार चित्रकेतुने अपने बाणोंमें वसुदको उसके रथसे उठाकर दूर फेंक दिया । यह एक बड़ी कौतुकमयी घटना थी ॥ ५१ ॥ उपर लघुभृतने अपने बाणोंसे पुष्करपर प्रहार किया और पुष्करने क्रुपित होकर अपने बाणोंमें लघुभृतको एक तलवारकी तरह उसके रथमें ही बंध दिया और अपनी विजयध्वजभी बजा बो ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर तलकने अपनी बाणवर्षामें सुरयको रथ समेत नष्ट किया, जिस सूखे पत्तीको वायु नचा देता है ॥ ५४ ॥ उसी समय अजमीढने वज्र देखा कि रामके वीर पुत्र उसके पूर्वजोंका बहुत मर्ता रहे हैं तो वह इन साथीपर पार बाणवृष्टि करने लगा ॥ ५५ ॥ इसी बीच सुबाहुने अजमीढके रथको काट डाला और वह दूसरे रथपर आलस्य होकर फिर लंका-पुषिमें आ डटा ॥ ५६ ॥ आते ही उसने कुञ्ज आदिकी मददके लिए पवनारुक्का दयोज किया । उसके पवनपूर पवनारुक्को देखकर यूपकेतुने पद्मिनाक्षर बलाया ॥ ५७ ॥ जिससे क्षणभरमें उन सर्पोंने सब हाथ पी ली । उपर

सुमोच पञ्चमास्त्रस्य निवृत्त्यर्थं ततोऽञ्जनित् । तदा कुशः प्रभृमोच राक्षसास्त्रं भयावहम् ॥५९॥
 नद्युक्त्वा तदा वेगाद्ब्रह्मस्त्रं तं व्यसर्जयत् । तदा क्रोधाच्छ्रवणापि मेघास्त्रं तं व्यसर्जयत् ॥६०॥
 तदा लघुश्रुतश्चापि पवनास्त्रं सुमोच सः । तदा स हनुमान् शीघ्रं व्यादाय विकटाननम् ॥६१॥
 अपिवन्मरुतं वेगान्ननाद जलदस्वनः । एवं तच्च महायुद्धं पुष्पकारामसंस्थितौ ॥६२॥
 सीतारामौ मुदा युक्तौ लक्ष्मणाद्यैर्दर्शयतः । एवं युद्धं पञ्चमामान्सैकादश दिनान्यभूत् ॥६३॥
 एकादशे दिने मार्गे गतास्तेऽस्मिन्सर्मारिताः । एवमेकादशैर्मामैकादशदिनैरपि ॥६४॥
 त्रेतायुगभवैर्दिव्यैः समाप्तिं संगरस्थ च । अदृष्ट्वा स कुशो वेगाद्ब्रह्मस्त्रं संदधे तदा ॥६५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितगतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे रामदास-
 विष्णुदाससंवादे सोमवंशोद्भवन्पाणा युद्धवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंमें मैत्री)

श्रीरामदास उवाच

भयास्त्रं संदधानं तं दृष्ट्वा वेधाः सुरैः सह । सोमेन च वृषेनापि विमानेन ययौ भुवम् ॥१॥
 विमानादत्रुष्माय तदा ब्रह्मा कुशं ययौ । कुशं तं प्रार्थयामास मा त्वमस्त्रं विसर्जय ॥२॥
 पालयस्व वषो मेऽद्य नाके सोमाय वै मया । क्षापरंतं वरो दत्तस्त्वजेयाश्च रणाजिरैः ॥३॥
 भविष्यन्ति नलायाश्च सर्वे पुष्पकुलोद्भवाः । पुरा त्विति सुरात्रे हि कस्मिदिबत्कारणांतरे ॥४॥
 अतस्त्वं कुश माऽस्त्रं मे नलाद्येषु विसर्जय । तद्वनमवचनं श्रुत्वा कुशो वाक्यमथाब्रवीत् ॥५॥
 अधुना क्षणमात्रेण सर्वान्दरघान्करोम्यहम् । तोषेन्कथय रामाय त्वयाह्नां मानयाम्यहम् ॥६॥

रथपरसे नलने जब पञ्चमास्त्र देखा तो गरुडास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५८ ॥ उसकी निवृत्तिके लिए कुशने बड़े ही भयानक राक्षसास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५९ ॥ उसी समय नद्युक्ते ब्रह्मस्त्र चलाया । तब भारे क्रोधके लवने उसपर मेघास्त्रका प्रयोग कर दिया ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर लघुश्रुतने पवनास्त्र छोड़ा । इसी समय हनुमान्जीने अपना मुख फैलाकर सब हुवा पी ली और मेघकी तरह बीमत्स स्वरमें गरजे । ऊपर विमानपर बैठे हुए पुष्कर, राम तथा सेताजी उस महायुद्धकी देख रही थीं । इस तरह वह युद्ध पाँच महीना म्यारह दिन चला ॥ ५९-६३ ॥ म्यारह ही दिनके लगभग असोघ्यासे हस्तिनापुर आनेमें लगे थे । सब मिलाकर त्रेतायुगके दिनोंके हिसाबसे उस युद्धमें म्यारह महीने और म्यारह दिन लगे ॥ ६४ ॥ ऊपर जब कुशने देखा कि अब कोई अन्य उपाय वहीं है तो ब्रह्मास्त्रका संधान किया ॥ ६५ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमोऽध्यायः पूर्णकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदासने कहा-जब ब्रह्माने देखा कि कुश ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करने जा रहा है तो वे बहुतसे देवताओं और ब्रह्म तथा सोमको साथ लिये हुए विमानपर बैठकर पृथ्वीतलपर आये । यहाँ पहुँचे तो विमानसे उतरकर कुशके पास गये और प्रार्थना की कि तुम इस ब्रह्मास्त्रका प्रयोग मत करो ॥ १ ॥ २ ॥ आज मेरे कहनेसे मेरी बात मान ली । क्योंकि एक बार मैंने स्वर्गलोकमें इन सोमवंशियोंको वरदान दिया था कि क्षापर तक संग्रामभूमिमें तुम किसीसे भी पराजित नहीं होओगे ॥ ३ ॥ जागे चलकर तुम्हारे वंशमें नल आदि बड़े प्रतापशाली राजे होंगे ॥ ४ ॥ इस कारण है कुश ! तुम इन नल आदि राजाओंपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग न करो । ब्रह्माकी बात सुनकर कुशने कहा कि मैं अभी क्षणमात्रमें इन दुष्टोंको भस्म किये देता हूँ । यदि आज कुश कहना चाहते हों तो जाकर रामचन्द्रजीसे कहिए, मैं उन्हींकी बात मानूँगा ॥ ५ ॥ ६ ॥

यदा त्वया वरो दत्तस्तदा किं विदित तव । नार्साच्छीराममामर्ष्यं शत्रुना प्रार्थ्यसे मुधा ॥ ७ ॥
 त्वयि चेद्वर्तते किञ्चित्सारं धर्तुं रणे मया । तर्हि कुरुष्व साहाय्यं नलादोनां सुरैर्युतः ॥ ८ ॥
 त्वया रणे सगरोऽयं मम पश्यतु राघवः । सीताऽपि पुष्पकामीना जालरथैश्च पश्यतु ॥ ९ ॥
 एवं कुशस्य वचनं श्रुत्वा लज्जापूतो विधिः । सोमेनाथ बुधेनापि नलाघान्प्राह वेगतः ॥ १० ॥
 रे रे मूढाः शृणुष्व मे वचनं हि गतापृषः । साक्षात्पारायणं रामं युयं योक्नुयुः समुद्यताः ॥ ११ ॥
 केनेयं शिक्षिता बुद्धिः सर्वेषां घातकारिणी । गच्छध्वं शरणं राम नोवेष्टुं मरिष्यथ ॥ १२ ॥
 ममार्य जनकः साक्षाद्दामो त्रिणुर्न मशयः । इति धिक्कृत्य तान्वेधाः कुशं वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥
 यावथास्याम्यहं रामान्पुनस्त्वां कुशबालकः । तावच्चेन्मोक्ष्यसे बाणं तर्हि मां हतवानसि ॥ १४ ॥
 इत्युक्त्वा तं कुश वेधा नलायैः परिवेष्टितः । यया रामं सुरैर्युक्तः पुरस्कृत्य वृषच्चक्रम् ॥ १५ ॥
 शिवमागतमाज्ञाय पुष्पकाद्रघुनन्दनः । प्रत्युद्गम्य शिवं नत्वा प्रणनाम ततो विधिम् ॥ १६ ॥
 ततस्तान्पूजयामास शिवादीन्प्रघुनन्दनः । ततः सभायां रामस्य तिष्ठन्वेधा नलादिभिः ॥ १७ ॥
 प्रणामान्कारयामास सोमेन च बुधेन च । ततस्तान्महसोत्थाय रामचन्द्रः करेण हि ॥ १८ ॥
 श्रुत्वा तेषां हि नामानि विधेरास्यान्पृथक्पृथक् । ततः पप्रच्छ वेगेन ब्रह्माणं पुरतः स्थितम् ॥ १९ ॥
 सर्वे किमर्थमानीतास्त्वग्रैते सोमवंशजाः । बद्धत्वं कारणं शीघ्रं सत्यमेव ममाग्रतः ॥ २० ॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा रामं वेधा बचोऽब्रवीत् । राम राम महाबाहो पालयस्वाद्य मे वचः ॥ २१ ॥
 श्वस्रैतान्पुनः वरदानान्मम प्रभो । द्वापरान्तमजेयत्वं दत्तमस्ति मया पुरा ॥ २२ ॥
 ममाग्रं सन्दधानं निवारय कुशं सुतम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा विदस्य रघुनायकः ॥ २३ ॥
 सभायामाह ब्रह्माणमजेयत्वं त्वयोदितम् । क्व गतं चाद्य समरात्किमर्थमिह आगताः ॥ २४ ॥

अब आपन उनको वरदान दिया था, तब क्या रामकी सामर्थ्यका आपका ध्यान नहीं था ? तब तो रामको कुछ समझे नहीं, अब झट मूठकी प्रार्थना करने आये हैं ॥ ७ ॥ मैं कहता हूँ कि यदि आपमें कुछ शक्ति हो तो देवताओंको साथ लेकर आप नल आदिकी सहायता करिए । मैं आपको साथ घनघोर मुठ कहें और रामचन्द्रजी तथा सीता पुष्पक विमानके प्ररोखोंसे मेरा और आपका सचयें देख ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस प्रकार कुशकी बात सुनी तो ब्रह्माजी लज्जित हो गये और नल आदिको फटकारते हुए कहने लगे—मरे मूठे ! जान पड़ता है कि तुम लोगोंकी आयु समाप्त हो गयी है, जो साक्षात्पारायणस्वरूप रामचन्द्रजीसे युद्ध करने आये हो ॥ १० ॥ ११ ॥ सर्वनाश उपस्थित करनेवाली यह दुर्युद्धि तुमको किसन दी है ? अब यदि अपना कल्याण चाहते हो तो रामकी शरणमें आओ, नहीं तो एक एक करके तुम सब मार डाले जाओगे ॥ १२ ॥ मेरे पिता विष्णुभगवान् ही तो रामरूपसे इस पृथ्वीतलपर अवतरे हैं । इस तरह उन लोगोंको डाँट-फटकार करके ब्रह्माजी कुशसे कहने लगे कि मैं रामके पास जा रहा हूँ । जबतक उनके पाससे न लौट आऊँ, तबतक बाणका प्रहार न करना । ऐसा करोगे तो मानो उनका नहीं, नुयने मेरा बच किया ॥ १३ ॥ १४ ॥ ऐसा कुशसे कहकर ब्रह्माजी शिवजीको आगे करके नल आदिके साथ-साथ श्रीरामचन्द्रजीके पास गये । जब रामने सुना कि शिवजी आ रहे हैं तो पुष्पक विमानसे उतरकर उनका स्वागत और प्रणाम करके ब्रह्माजीको भी अभिवादन किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर रामने शिवजी आदिकी विधिवत् पूजा की और सब लोग सभाभवनमें गये । वहाँ ब्रह्माने सोम और बुधसे श्रीरामको प्रणाम करवाया । तब रामने उनको अपने हाथोंसे उठा लिया और ब्रह्माजीके मुखसे उनका नाम सुना । कुछ देर बाद रामने ब्रह्मासे पूछा कि आप इन सोम-बुधियोंको यहाँ किस लिए लाये हैं ? जो इसका वास्तविक कारण हो, वह मुझे बतलाइए ॥ १७-२० ॥ रामकी बात सुनकर ब्रह्माने कहा—हे राम ! हे महाबाहो ! आज आप मेरी बात मानकर इन नल आदि राजाओंको रक्षा कीजिए । मैं इन लोगोंको यह वरदान दे रखता हूँ कि द्वापरपर्यन्त तुम लोग किसीसे पराजित नहीं होओगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ ऊपर कुश मेरे शस्त्र (ब्रह्मास्त्र) का संज्ञान करके आये हैं । उन्हें भी

तद्रामपचने भ्रुवा राम प्राह विधिः पुनः । सर्वेषां पुनो मेऽस्ति बलं न तु तत्राग्रतः ॥२५॥
 त्वं तु मे जनकः माक्षादनन्त्रां प्रार्थयाम्यहम् । ततो रामः पुनः प्राह विद्वस्य चतुराग्रतः ॥२६॥
 न भोष्यति वचो मेऽद्य कुशोऽयं यौवनस्थितः । प्रायः कुमारो वृद्धानां वाक्यमग्रे मज्जन्ति न ॥२७॥
 अन्यथापि शृणुष्व न्व यच्छास्त्रेऽप्युच्यते वचः । लालयेत्यंश वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ॥२८॥
 प्राप्ते तु पोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् । अतस्ते बालकाः सर्वे कुशाद्याः स्वार्थतन्त्राः ॥२९॥
 न भोष्यति वचो मेऽद्य नान्गन्वा प्रार्थयस्व हि । ततः प्राह पुनर्ब्रह्मा रणक्रोधान्कुशो मया ॥३०॥
 वाक्यं श्रम्यं मञ्जुलं च नैवाद्य वदति प्रभो । ततः प्राह विधिं रामः पुनर्वाक्यं विनोदयन् ॥३१॥
 विधे न्व गच्छ वाल्मीकिं स त्वां युक्तिं वदिष्यति । ततः स रामवाक्येन वाल्मीकिं पुण्यके स्थितम् ॥३२॥
 हुनिभिर्मुनिशालायामूर्ध्वं सर्वैः स्थित विधिः । नलाद्यैः सहितो गन्वा वृत्तं सर्वं न्यवेदयत् ॥३३॥
 विधिमाहाथ वाल्मीकिर्ज्ञात्वा राममनोगतम् । स्त्रीलब्धजीविताश्चेते भवन्तु मुनिनम्विति ॥३४॥
 नलादीनां स्त्रियः सर्वाः प्रार्थयन्तु विदेहजाम् । कुशोऽपि जानकावाक्याच्छान्तिमेप्स्यति बालकः ॥३५॥
 तथेति ते नलाद्याश्च दूतान् प्रेष्याथ मादरम् । जानोय स्वकलत्राणि शतशस्तु तदा जवात् ॥३६॥
 जानकीं प्रेषयामातुस्ताः सर्वाः पार्थिवस्त्रियः । उपायनानि मगृह्य जानकीं प्रययुर्जवान् ॥३७॥
 ददृशुर्जानकीं नारीशलापां स्वमग्नीवृताम् । स्नुषाभिः सेविनपदां पर्यङ्के निद्रितां मुदा ॥३८॥
 ततः स्त्रीः समागताः मीना दृष्ट्वा धामरजीविनाः । मनकादवरुद्धाश्च घृष्टाश्चोपबह्वणा ॥३९॥
 स्वपृष्ठे मञ्चकं कृत्वा सस्थिताऽऽर्मात्मस्वीवृता । स्नुषाभिर्वाजिभिः श्रम्यां प्रणेमुस्तां परस्त्रियः ॥४०॥
 तासां मीमन्तरत्नौघप्रभया पदपङ्कजे । विरेजन्तुस्ते सोनायाश्चित्ररागविचित्रिने ॥४१॥
 उपायनानि संगृह्य ताभ्यः सा जनकान्मता । समालिख्य निवेदयाम् ताः प्राह सुस्वरं वचः ॥४२॥

आप रोक दीजिए । ब्रह्माकी बात मुनिकर रामने कहा कि आपन जब इनका अवयव कर दिया था, तब फिर ये लोग संग्रामभूमि छोड़कर यहाँ मेरे पास क्यों आये हैं ? ॥ २३ ॥ २४ ॥ रामकी यह बात मुनिकर ब्रह्मा कहने लगे—सब लोगोंके लिए तो मेरे पास बल है, किन्तु आपके लिए मेरेम कुछ भी सामर्थ्य नहीं है ॥ २५ ॥ आप मेरे पिता हैं, इसी नाते मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ । फिर राम बाले कि कुश युवावस्थामें है । संसारमें प्रायः देखा जाता है कि कुमार लोग वृद्धोंकी बात नहीं मानते ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके अतिरिक्त शास्त्रमें भी कहा गया है कि पाँच वर्षकी अवस्थातक बच्चोंका दुःखार करे, दस वर्षकी अवस्था तक डराये-घमकाये, किन्तु सोलह वर्षका हो जानपर बटक साथ मित्रताका व्यवहार करना चाहिए । इसी कारण ये स्वार्थी बालक मेरी बात नहीं मानेंगे । आप स्वयं जाकर उनसे प्रार्थना कीजिए । ब्रह्माने कहा कि संग्राम-जनित क्रोधके कारण आज तो यह हमसे सीधी बात भी नहीं करता । फिर विनोदवश रामने ब्रह्मासे कहा कि आप वाल्मीकिके पास जाएँ । वे आपको कोई युक्ति बतलायेंगे । रामके कथनानुसार ब्रह्मा नल आदिको अपने साथ लेकर वाल्मीकिके पास गये । वाल्मीकिजा उस समय रामके साथ पुण्यक विमानपर ही रहा करते थे । इससे उनके पास पहुँचनेमें विशेष समय नहीं लगा । वहाँ आकर ब्रह्माने वाल्मीकिको सब वृत्तांत कह सुनाया ॥ २८-३३ ॥ रामका मनोगत अभिप्राय जानकर वाल्मीकिने ब्रह्माजीसे कहा कि अयनी स्त्रियोंको कृपासे ये लोग जीवनदान पा सकते हैं । उसका उपाय यह है कि नल आदिको स्त्रियाँ सीताके पास जाकर अपने पतियोंके जीवनकी भीख माँगे । यदि सीता प्रसन्न हो गयी तो कुश भी मान आयगा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वाल्मीकिके कथनानुसार नल आदिने अपनी स्त्रियोंको लिबा लानेके लिए संकटों दूत भेजे और वे तुरन्त उनको लिये हुए आ पहुँचे । इसके अनन्तर वे स्त्रियाँ विविध प्रकारके उपहार लेकर सीताके पास गयीं । वहाँ पहुँचकर उन स्त्रियों-ने देखा कि सीता अपनी स्त्रियोंसे धिरो हुई बैठी अपनी ले रही है और पलोकिए उनकी सेवामें तत्पर हैं ॥ ३६-३८ ॥ जब सीताने उन स्त्रियोंको देखा तो सकिया बगलमें कर ली और उठ बैठी । उस समय उन स्त्रियों-ने उनको प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उन राजरानियोंके सामन्तरत्नौघ प्रभासे सीताके पैर चित्र विधि

किमर्थमागता वयं वा मेनश्चमिनः परम् । कथयन्त्यं श्रोयमिष्टः श्रोतुं करोम्यहम् ॥४३॥
 तदा ताः कथयामासुः सर्वं वृत्तं मरिस्तरम् । देहि ककण्ठाशानानि कुशं युद्धाभितारय ॥४४॥
 तथेति जानकी चोक्त्वा श्रान्त्वा राममनोगतम् । नातिहस्तान्मोचनीयार्थने निर्वरवर्तिवति ॥४५॥
 आरुह्य शिविकायां सा ताभिर्युक्ता कुशं ययौ । तदा तं सात्वयामास क्षीर्घ्नं न्यज कुशाधुना ॥४६॥
 निवर्त्तस्व रणादयं मृणु मे वचनं शिशो । तथेति जानकीराक्यादिहम्याथ कुशमन्त्रा ॥४७॥
 माया सर्वधूमिर्युक्तः सेनया संन्यवनत । पुष्पकं प्रययौ सीता नृपस्त्रीपरिवेष्टिता ॥४८॥
 कुशायास्ते कुमारश्च सभायां राघवं ययुः । ततो बान्धवाकिना ब्रह्मा नलाद्यैः सहितमन्त्रा ॥४९॥
 सनिर्वरः सभां गन्त्वा नम्यो श्रोगाधवग्रतः । कुशाद्याग्नेऽपि धीरम प्रणम्य तस्य सनिधौ ॥५०॥
 तस्थुस्तेनालिङ्गिताश्च स्त्रोभिर्नारीणां ता अपि । तदा रामोऽब्रवीद्वाक्यं ब्रह्माणं मदसि स्थितम् ॥५१॥
 रणाभिवर्तिता बालाः किमग्रे तव चांछितम् । न मे राज्ये छत्रपतिर्द्वितीयोऽत्र भविष्यति ॥५२॥
 करणीयं नलाद्यैः किं तद्वदस्व मरिस्तरम् । तदाऽऽमनादुन्धितः स वेधा रामाग्रतः स्थितः ॥५३॥
 उवाच मधुरं वाक्यं मभार्यां मधुनन्दनम् । राम गम महाबाहो भूमाश्च त्वया हतः ॥५४॥
 चिरकालं कृतं राज्यं वैकुण्ठं पालयामुना । कुरु मन्यं वचो मेऽयं ददस्व हस्तिनापुरम् ॥५५॥
 नलादिभ्यस्त्वयोभ्यायां कृशो राज्यं प्रशामतु । तदा रामो विधिं प्राह ममाप्येनत्त रोचते ॥५६॥
 वैकुण्ठं शो गमिष्यामि सीतया बन्धुभिर्युतः । दशवर्षमहस्त्राणि प्रोक्तमायुर्गुणैश्च हि ॥५७॥
 तन्मया स्वीयसामर्थ्यान्कृतमयं विधं मृषा । एकदश महस्त्राणि समास्त्वेकादशैव तु ॥५८॥
 तर्जकादश मासाश्च गता मे दिवसा अपि । शेषमायुश्च किञ्चिन्मे तच्छ्रुत्वा पूर्णं भविष्यति ॥५९॥

प्रकारके दीख रहे थे ॥ ४१ ॥ इसके बाद सताने उनका भेटे श्रीराम की ओर उनका हृदयसे लगाकर कहने लगी कि तुम लोग यहाँ किस कामसे आये हो ? अपना इच्छा प्रकट करा तुम जा कुछ भी चाहोगा मैं उसका प्रबन्ध कर दूँगी ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तब उन रानिधान युद्धसम्बन्धी सब वृत्तान्त कतान हुए कहा हे दाँव ! आज आप मेरी उतरती हुई बूढ़ी रक्तक लिए कुशको युद्ध करके राक लाविए ॥ ४४ ॥ सतान मन ही मन रामकी इच्छा जान ली । उन्होंने संघा-वे बाहूँ है कि मित्रियों द्वारा नर आदिको जँबनदान मिले । यह सोचकर उन्होंने उन रित्रियोंसे कहा—अच्छी बात है । इसके अनन्तर वे तुरन्त पालकीपर सवार हुई और कुशक पास जा पहुँची और कहा—बेट कुश ! अब तुम अपने प्रायका पारदगम कर दो ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ मरा बात मानकर सयामधूमिसे छोट पड़ी । जानकीकी बात सुनकर कुश मुस्कराये और अपने बन्धु-बान्धवों तथा सेनाको साथ लेकर छोट पड़े । सीता कुशका तथा उन रित्रियोंकी अपने साथ लिये अपने पुष्पक विमानपर जा पहुँचीं । वहाँ पहुँचनेपर कुश आदि बालक सभामें रामचन्द्रजीके पास चले गये । इसके अनन्तर ब्रह्माजी भी बालमोकि तथा नल आदिका साथ लेकर सभामें रामचन्द्रजीके पास पहुँच । कुश आदि बालक भगवान्को प्रणाम करके एक ओर खड़े हो गए ॥ ४७-४८ ॥ रामने उनकी अपने हृदयसे लगा लिया और रित्रियोंने उनकी आरती उतारी । कुछ दूर बाद रामने ब्रह्माजीसे कहा कि आपके इच्छासुसार कुश आदि बालक तो सयामधूमिसे छोट आये । अब आपका क्या इच्छा है ? अबमे मेरे राज्यमें कोई दूसरा छत्रधारी राजा नहीं रहेगा ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अब आप यह भी बतला दीजिए कि नल आदिका क्या करना चाहिए । रामकी यह बात सुनते ही ब्रह्माजी उठकर रामके आगे जा खड़े और कहने लगे—हे राम ! हे महाबाहो ! आपने पृथ्वीका प्राय छतार लिया । बहुत दिनोंतक पृथ्वीपर राज्य भी किया । अब चलकर वैकुण्ठधामकी रक्षा करिए और मेरी बात सब करनेके लिए नल आदिको हस्तिनापुरी द डालिए ॥ ५१-५२ ॥ कुश जानन्दके साथ अयोध्याका राज्य करे । तब रामने ब्रह्मासे कहा कि यहाँ बात मुसे भी जँब रही है ॥ ५३ ॥ कल मैं सीता तथा अपने बान्धवोंके साथ वैकुण्ठधामका चल दूँगा । इस युगमें मनुष्यका आयु दस हजार वर्ष निर्धारित की गयी है । किन्तु हे ब्रह्माजी ! मैं अपनी सामर्थ्यसे उस नियमको व्यर्थ करके आरह हजार आरह वर्ष और आरह

द्वादश्यां घटिकायां सोऽहं वैकुण्ठमाश्रये । ततो विधिं कुशः प्राह नलाद्या यदि मां विधे ॥६०॥
 दास्यंति करभारं मे तर्हि विष्टु चात्र ते । मदाज्ञां पालयन्त्वेतं तव वाक्यात्सुरक्षिताः ॥६१॥
 छत्रहीनाः सुखं त्वद्य वसन्तु हस्तिनापुरे । तद्वाक्यं स विधिं श्रुत्वा पुनः प्राह कुशं प्रति ॥६२॥
 छत्रमाज्ञापयस्वैतांस्तवाज्ञावशवर्तिनः । दास्यंति करभारं त्वां मम वाक्यं हि पालय ॥६३॥
 तथेति स कुशः प्राह विधिं किञ्चित्स्मिन्नाननः । अथ ते सोमवंशस्था नृपाः सर्वे विधिं तदा ॥६४॥
 प्रोचुर्वयं त्वया स्त्रीभिर्मास्यामो दिवसश्च वै अजमादोऽद्य नृपतिर्भवत्त्वत्र गजाह्वये ॥६५॥

तथेति तान् विधिश्चोक्त्वा ममायां समुपाविशत् ।

अथ ब्रह्माऽजपीढाय ब्राह्मणैरभिषिच्य च । गजाह्वये तं राजानं चकार राघवाक्षया ॥६६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे
 सोमसूर्यवंशजयो मंत्रीकरणे नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामका मित्रों तथा राजाओंको विदा करना)

श्रीरामचन्द्र उवाच

अथ रामं सुषेणश्च सुग्रीवश्च विभीषणः । वानराः प्रार्थयामासुर्वयं राम त्वया दिवम् ॥ १ ॥
 यास्यामो नात्र जीवामस्त्वया राम विना भुवि । ददस्वाज्ञां त्वया गतुं तथाह राघवोऽपि सः ॥ २ ॥
 विभीषण त्वया स्थेयं लंकायां मम वाक्यतः । प्रचरिष्यति यावन्मे रामनामावनीतले ॥ ३ ॥
 त्वं गच्छाद्यैव मे वाक्यान्तथेति स विभीषणः । नत्वा रामं ययी लंकां राघवेणातिमानितः ॥ ४ ॥
 ततः प्राह जांबवतं राघवः पुरतः स्थितम् । हे जाम्बवन्स्त्वया स्थेयं यावद्भूम्यां कथामम ॥ ५ ॥

महीने इस संसारमें रहा ॥ १७ ॥ १८ ॥ थोड़ी-सी आयु शेष बची थी, सा भी कल पूरी हो जायगी ॥ १९ ॥
 ठीक बारह घड़ी बाद मैं वैकुण्ठधामके लिए चल दूंगा । तदनंतर कृष्णने ब्रह्माजीसे कहा कि यदि नल
 आदि राजे मुझे करभार दें और भरे आजानुसार चले तो मैं आपकी आज्ञासे इनको हर तरहसे सुरक्षित
 रखूंगा । इनको छत्र धारण करनेका अधिकार नहीं रहेगा । अर्थात् छत्रविहीन होकर ये लोग आनन्दके साथ
 रह सकेंगे । कुशकी बात सुनकर ब्रह्माने कहा कि आप इन्हें छत्र धारण करनेका आज्ञा दे दीजिए । हाँ, ये
 सदैव आपकी आज्ञाका पालन करते हुए करभार देते रहेंगे । ६०-६४ ॥ कृष्णने ब्रह्माकी बात स्वीकार कर ली ।
 इसके अनन्तर उन सोमवंशी राजाओंने ब्रह्मासे कहा कि हमलोग अपनी रिवये लिये हुए आपके साथ
 स्वर्गको चले चलेंगे । अब इस हस्तिनापुरीका राजा यह अजमाइ बनेगा ॥ ६५ ॥ ब्रह्माने भी उनकी बात
 स्वीकार कर ली और सभामें बैठ गये । इसके बाद रामकी आज्ञासे ब्रह्माने ब्राह्मणों द्वारा अजमोदका राज्या-
 भिषेक कराके हस्तिनापुरीका राजा बना दिया ॥ ६६ ॥ इति श्रुतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे
 वाल्मीकीये १० रामतजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासने कहा-इसके बाद सुषेण, सुग्रीव, विभीषण तथा अन्यान्य वानरोने भगवान्से प्रार्थना की-
 हे राम । हमलोग भी आपके साथ स्वर्गको चलेगे । आपके बिना हमारा इस पृथ्वीपर जोवित रहना
 कठिन है । कृपया हमें भी अपने साथ चलनेकी आज्ञा दीजिए । यह सुनकर रामने कहा-हे विभीषण ! तुम मेरे
 कहनेसे तबतक लंकामें ही रहो, जबतक संसारमें मेरे नामका प्रचार होता रहे । तुम आज ही लंका चले
 जाओ । विभीषणने भी भगवान्की बात मान ली और प्रणाम करके लङ्काको प्रस्थान कर दिया । चलते समय
 भगवान्ने विभीषणका बहुत सम्मान किया ॥ १-४ ॥ इसके अनन्तर जाम्बवान्से बोले-हे जाम्बवान् ! जबतक
 इस संसार मेरी कथा प्रचलित रहे, तब तक तुम इसी लोकमें रहो । आपरके अन्तमें फिर तुम हमारा दर्शन

प्रचरिष्यति तावच्च द्वापरान्ते पुनर्मम । भविष्यति दर्शने ते गच्छाद्यैव सुखं वस ॥ ६ ॥
 स्वया कृतं यन्माहाय्यं लंकारां मे वनेऽपि च । अतस्त्वं श्वशुरो भूत्वा द्वापरे रुयानिमेष्यमि ॥ ७ ॥
 तथेति रामवचनाद्रामं मीनां प्रणम्य मः । जांबवान्निर्ययौ शीघ्रं राघवेणानिपूजितः ॥ ८ ॥
 रामः प्राह हनुमन्तं वन्द्य निष्ठ यथामुग्रम् । यदा सेनो पणम्ये हि द्वापरांतेऽर्जुनेन वै ॥ ९ ॥
 भविष्यति शरैः सेतुं कर्तुं मे दर्शनं तदा । न्वलभिष्यमि गच्छाद्य सुखं वस भजस्व माम् ॥ १० ॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा नन्वा रामं च लक्ष्मणम् । मीनां प्रणम्य हनुमान् गमनायोपचक्रमे ॥ ११ ॥
 ततो रामो निजान्कण्ठान्नवगन्निभृषितम् । हार ददौ तथा मीना तं ददौ बाहुभूषणे ॥ १२ ॥
 ततो नन्वा रामचन्द्रं सार्द्रनेत्रः स मारुतिः । पश्चिम्य ययौ वेगान्पुनं तु हिमशर्वतम् ॥ १३ ॥
 ततोऽङ्गदं रामचन्द्रः पूज्य वस्त्रादिमण्डनैः । प्रेषयामास किष्किर्धा भृंगवेरं तु गूढकम् ॥ १४ ॥
 पातालं प्रेषयामास राघवो मकरध्वजम् । द्रुवादिभिस्त्रोपयित्वा सुहृदः स्वम्यलानि हि ॥ १५ ॥
 ततो रामः समाहूय यूपकेतुं महामनाः । वस्त्रादिभिस्त्रोपयित्वा विदिशानगरं प्रति ॥ १६ ॥
 प्रेषयामास सैन्येन सोऽपि नन्वा रघूत्तमम् । जानकीं च ययौ वेगात्स्त्रीपुत्रैः परिवारितः ॥ १७ ॥
 एवं रामः सुबाहु तं मथुरां प्रेषयत्तदा । एव रामः पुष्करं च प्रेषयामास बालकम् ॥ १८ ॥
 सैन्येन पुष्करावत्यां तक्षं तक्षशिलाह्वये । ततोऽङ्गदं गजाश्वं च प्रेषयामास राघवः ॥ १९ ॥
 धनरत्नं चित्रकेतुं स्त्रीपुत्रवलगाहनैः । प्रेषयामास श्रीरामस्त्रोपितं वसन्तादिभिः ॥ २० ॥
 ततो लवं समाहूय ममीनो रघुनन्दनः । वस्त्रालकारयानार्थस्तोष्य स्त्रीपुत्रसंयुतम् ॥ २१ ॥
 उत्तरेषु कुरुष्वत्र प्रेषयामास सैनया । कामधेनुं ददौ सीता लवाय व्रजते मुदा ॥ २२ ॥
 ततः कुशं समाहूय रामः स्त्रीपुत्रसंयुतम् । प्रेषयामास माकेतं सैन्येन पार्थिवैर्युतम् ॥ २३ ॥

करोगे । तुम भी आज ही प्रस्थान कर दो और आनन्दके साथ किसी स्थानपर निवास करो ॥ ५ ॥ ६ ॥
 तुमने लका और वनम भरी जा सहाता की है, उसीके प्रभावसे द्वापरम तुम मेरे श्वशुरके रूपमें विख्यात होओगे । ७ ॥ रामकी बात स्वीकार करके जाम्बवान् सीताजी तथा रामको प्रणाम करके चल दिवें ।
 चलते समय रामने उनका भी अच्छा तरह सम्मान किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर हनुमान्जीसे रामने कहा—हे बत्स ! तुम भी आनन्दके साथ इसी लोकमें निवास करो । द्वापर युगके अन्तमें जब तुम्हारी बर्जुनके साथ सेतुविषयक झोड होगी, उस समय तुम मेरा दर्शन करोगे । अब जाओ और मेरा भजन करते हुए आनन्दके साथ रहो ॥ ९ ॥ १० ॥ रामकी यह बात सुनकर हनुमान्जाने राम-लक्ष्मण तथा सीताको प्रणाम किया और चलनेकी तैयारी कर दी ॥ ११ ॥ चलते समय रामने अपने गलेसे एक रत्नमाला उतारकर हनुमान्जीकी सी और सीताने अपना बाहुभूषण उतारकर दे दिया ॥ १२ ॥ इसके पश्चात् हनुमान्जीने आँखोंमें आँसू भरकर भगवान्को प्रणाम किया और पश्चिमा करके तपस्व्य करनेके लिए हिमवान् पर्वतपर चले गये ॥ १३ ॥ इसके बाद रामने अङ्गदको विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषण दिये और उन्हें किष्किन्धा भेज दिया । निषादराज-को भृंगध्वजपुर भेज दिया ॥ १४ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजीने मकरध्वजको पातालपुरी भेजा । मकरध्वजको चलते समय रामने विविध प्रकारकी भेंट दी । इनके अतिरिक्त और-और मित्रोंको भी आदर-सत्कार करके अपने-अपने स्थानको भेज दिया । १५ ॥ थोड़ी देर बाद रामने यूपकेतुको बुलाया और विविध प्रकारके वस्त्राभूषण देकर विदिशानगरीको भेज दिया । यूपकेतुने भी राम तथा सीताको प्रणाम किया और अपनी सेना तथा परिवारको साथ लेकर चल पड़े ॥ १६ ॥ १७ ॥ इसी तरह रामने सुबाहुको मथुरा भेज दिया । पुष्करको भी उनकी सेनाके साथ पुष्करावली तथा तक्षकी तक्षशिला भेज दिया । फिर अङ्गदको हस्तिनापुरी-के लिए और चित्रकेतुको स्त्री-सेना तथा बाहुनोंके साथ उनकी राजधानीको भेज दिया । चलते समय विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषणोंसे रामने इनका भी सत्कार किया ॥ १८-२० ॥ तदनन्तर राम और सीताने स्व-को बुलाकर कितने ही प्रकारके वस्त्राभूषण प्रदान किये और उनकी स्त्री तथा पुत्रके साथ उन्हें उत्तरकुब देशमें

तेऽपि नत्वा कुशं स्वस्थलं जग्मुन्नुपोत्तमाः । करभारं ददुस्वस्मै तदाज्ञावशवर्तिनः ॥३९॥
मन्थरारजकौ द्वौ तौ देवान्पूर्या बहिर्मुनौ । प्रापतुर्जन्म माकेने नृनानां न पुनर्भवः ॥४०॥
अथ रामोऽब्रवीत्सर्वान्वानगान् जाह्नवीतटे । मदर्थं भ्रमिताः सर्वे युयुवानगम्यचमाः ॥४१॥

द्वापराग्रे पुनः सर्वे व्रजे गोपा भविष्यथ ।

युष्माभिः सहिताः प्रीन्या कर्गिष्याम्यशनादिकम् ॥ ४२ ॥

तदाऽब्रवीत्स सौमित्रि रामः प्रीन्या पुरस्थितम् । महान् श्रमः कृतः पूर्वं सेवार्थं मम दण्डके ॥४३॥
भवत्वं द्वापरे ज्येष्ठः शुश्रूषां ते करोम्यहम् । तनूनाङ्गावयः प्राह ऋक्षान्पौरान्कपीनपि ॥४४॥
सर्वानिव मया मार्धं प्रयातेति दधान्वितः । ततो ददौ कक्षवृक्षपारिजातौ सुगन्धिपम् ॥४५॥

ततस्तं पुष्पकं प्राह कुबेरं वह सादरम् ।

गच्छाद्यैव तथेन्युकन्वा रामं नत्वा तु पुष्पकम् ॥ ४६ ॥

सीतां पृष्ट्वा ययौ शीघ्रं गघवेणातिमन्तिवम् । ततः प्राह रघुश्रेष्ठश्चोर्मिला मांडवीं तथा ॥४७॥
श्रुतक्रीति ममाहूय चान्मर्केश्व मुनेः पुरः । युष्माभिर्भर्तृदेहैश्च निजदेहादि वेगतः ॥४८॥
श्वोऽग्रौ दग्ध्वा स्वर्गलोकं गन्तव्यं मम २ कथनः । तथेति राघव प्रोचुस्तदा ताश्चोर्मिलादिकाः ॥४९॥
रामं नत्वा ययुः सर्वाः स्वस्य तद्वयनगृहम् । अथ रामोऽपि तां रात्रिं सीतया रुक्ममचके ॥५०॥
ऋषिभिः शिष्यैश्च द्याम्नश्चुष्मश्चैव ममगाः । सौमित्राद्याः पत्नीभिः शिष्यैरे परया मुदा ॥५१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे

सर्वेषां विसर्जनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

पूजन अ लियन करके बिदा किया ॥ ३८ ॥ वे राजे भी कुशको प्रणाम करके अपनी अपनी नगरीको चले गये और वहाँपर कुशक आज्ञाम रहते हुए पूर्ववत् करभार देते रहे ॥ ३९ ॥ देववश वह रामनिन्दक घोबो तथा दासी मन्थरा ये दोनों अयोध्यापुरीम न मरकर अयोध्याके बाहर भर । इसी लिए उन्हें फिर जन्म लेना पड़ा । वैसे तो जय रामे जो लोग मरने है, उन्हें फिर माताके गर्भम नहीं आना पड़ता ॥ ४० ॥ उबरे सब लोगोंको बिदा करके रामने सब वानरोस बहा-हं वानरप्रमण । तुम सबने मेरे लिए बड़ा कष्ट उठाया और मेरे साथ मारे-मार फिरते रहे । आगे चलकर द्वापरम तुम सब गोर होओगे । उस समय मैं तुम्हारे साथ भोजन तथा विविध प्रकारको खेलावे करूँगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ दूसरे बाद रामने लक्ष्मणसे कहा कि उस समय तुमने दण्डकवनम मेरी सेवा करने समय बड़ा कष्ट उठाया था । अब मैं द्वापर युगमे तुम मेरे ज्येष्ठ भ्राता बलराम होआगे और मैं स्वर्ग नुस्त्राग सेवा करूँगा । इससे अत्यन्त रामने उन भालुआ वानरो तथा पुरवासियोंसे कहा कि तुम लोग मेरे साथ चलो । तत्पश्चात् रामने जम्बवृक्ष और परिजात ये दोनों वृक्ष इन्द्रको दे दिये । फिर पुष्पक विमानसे कहा कि तुम आज ही जाकर आदरपूर्वक कुबेरकी सवारीका काम करो । यह सुनकर पुष्पक राम तथा सीताको प्रणाम करके चले पड़ा । चलते समय भगवानने उसका भी अच्छी तरह आदरसंस्कार किया । वाल्मीकिके सम्मुख रामने माण्डवी (भरतपत्नी), उर्मिला (लक्ष्मणकी स्त्री) तथा श्रुतकंति (शत्रुघ्नकी पत्नी) से कहा—तुम सब अपने-अपने पतिक शरीरके साथ कल अपना शरीर चिताकी अग्निमे जलाकर स्वर्गलोक चलो जाना । उर्मिला आदिन भगवान्की आज्ञा स्वीकार कर ला ॥ ४२-४९ ॥ वे रामको प्रणाम करके अपने-अपने तम्बुओम चली गयीं । इससे अनन्तर राम उस रात्रिमे सीताके साथ एक सुवर्णमय मञ्चपर सो गये । शिव-ब्रह्मा आदि देवता भी ऋषियोंके साथ वहाँ ही ठहरे रहें और लक्ष्मण आदि भी वहाँ ही ठहरे रहें । ऋषियोंके साथ मानन्द सोते ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति शतकोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमः रामतत्त्वपाण्डेयकृत उद्देशनाभाषाटीकामहिने पूर्णकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामका वैकुण्ठारोहण)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः समुन्धाय प्रमाते सीतया सह । अजमीढं समाहूय मञ्जुलं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
 जघाह मातया स्वीयं पदं गच्छामि बन्धुभिः । वानरैः सकलैः पौरैस्त्वया श्रेष्ठं तु यञ्जलम् ॥ २ ॥
 बलपृहादिकं सर्वं प्रेषणीयं कुशं प्रति । यन्चरं कीटकांतं तन्मया वास्यति वै दिवम् ॥ ३ ॥
 अतस्त्वं तं कुशं गन्वा सर्वं हृत्तं निवेदय । करोतूनरकार्याणि कुशोऽस्माकं सविस्तरम् ॥ ४ ॥
 मा करोतु कुशोऽस्माकं सेदं तं त्वं निवारय । इति गमवचः श्रुत्वा साश्रुनेत्रस्तथेति सः ॥ ५ ॥
 अजमीढस्तदा ग्राह ननाम रघुनायकम् । अथ रामः शूनैः पौरैः स्नान्वा भागीरथीजले ॥ ६ ॥
 कृत्वा नित्यविधिं पूर्वं हृत्वा बद्धिं सविस्तरम् । ददौ दानान्यनेकानि गङ्गासंकृतमस्थितः ॥ ७ ॥
 ततः प्रास्थानिकं कर्म चकार स यथाविधि । बद्धिं विमर्जयामास वैकुण्ठं प्रति सधवः ॥ ८ ॥
 तदा रामस्य पश्चात् सा गता दक्षिणहस्ततः । मूर्तिरूपधरा वेदा वैकुण्ठपाययुस्तदा ॥ ९ ॥
 त्रिपदा प्रणवं नैव श्रीरामास्याद्विनिर्गता । नन्वा रामं ययौ शान्तिः क्षमा मेधा धृतिर्दया ॥ १० ॥
 तेजो बलं यशः शौर्यं ययौ सर्वं तदा पुरः । ततः पीरा वानराश्च सर्वे भार्गवीजले ॥ ११ ॥
 स्नान्वा निरुध्य वार्यश्च निजदेहानि तन्त्यजुः । अथ रामो मुदा गङ्गां स्पृष्ट्वा दर्भासनोपरि ॥ १२ ॥
 दर्मपाणिः स्थितस्तृष्णीमुत्तरामिमुस्तः स्त्रिया । तावत्सर्वे ददृशुस्ते देवा विष्णुं पुरःस्थितम् ॥ १३ ॥
 चतुर्भुजं नीलकांतिं पीतकीशेयघारिणम् । कौस्तुभांकितहृद्देशं श्रीवत्सांकोपशोभितम् ॥ १४ ॥
 सीता बभूव सा लक्ष्मीर्विष्णोर्वाभांक्रमस्थिता । शेषो बभूव सौमित्रिः कणामिरतिभामुरः ॥ १५ ॥

श्रीरामदासने कहा - सबसे रामचन्द्रजी सीताके साथ सोबर उठे तो अजमर्द इको बलाकर मीठी बातोंमें समझाकर कहने लगे कि आज मैं सीता, बन्धुओं, समस्त वानरो और प्रजाजनोके साथ अपने परमधामकी यात्रा करूँगा ॥ १ ॥ २ ॥ मेरे जितने भी सम्बन्धु-जन आदि सम्बन्धु हैं, उन्हें कुशके पास अयोध्या भेज देना । बड़े जीवसे लेकर कीट पर्यन्त सब प्राणी मेरे साथ वैकुण्ठ जायेंगे । मर चले जानेपर तुम कुशके पास चले जाना और मेरा सब समाचार कह गुलाना और यह भी कह देना कि कुश हमारी ओर्ध्वदंष्ट्रिकी क्रियाओंको खूब अच्छी तरह सम्पन्न करे । यदि मेरे परमधाम जानेके कारण कुश किसी प्रकारका भेद करने लगे तो तुम उसे अच्छी तरह समझा देना । रामकी बात सुनकर अजमीड़ने आँखोंमें आसू भरकर उनकी आज्ञा स्वाकार की और भगवानको प्रणाम किया । इसके अनन्तर रामने सबके साथ गङ्गाजीमें स्नान किया, नित्यकृत्य किये, हवन किया और गङ्गातटपर स्थित बाह्यणोंको तरह-तरहके दान दिये ॥ ३-७ ॥ इसके बाद यात्रासे सम्बन्ध रखनवाले जितने कर्म थे, वह सब किये । चलते समय हवनकी अग्निको वैकुण्ठलाक भेज दिया ॥ ८ ॥ उस समय रामस्वधारी विष्णुकी लक्ष्मी सात्विकी सीता रामके दक्षिण भागसे वैकुण्ठधामको चली गयी । उस समय सब वेद अपने मूर्तरूपसे वैकुण्ठलोकमें जा पहुँचे ॥ ९ ॥ रामके प्राणायाम करने ही शान्ति, क्षमा, धृति और दया आदि गुण चले गये ॥ १० ॥ उसी तरह तेज, बल, यश और शौर्य आदि भी वृत्त कर गये । इसके अनन्तर सब पुरवासियों तथा वानरोंने भी गङ्गाजीमें स्नान और प्राणायाम करके अपने शरीरका परित्याग कर दिया । इसके बाद सीताके साथ रामने गङ्गाजलका स्पर्श किया और कुशासनपर बैठे ॥ ११ ॥ १२ ॥ हाथमें कुशा लेकर वे उत्तरकी ओर मुख करके बैठे । उसी समय राम देवताओंके सम्मुख विष्णुभगवान्के रूपमें पारंगत हो गये ॥ १३ ॥ उन भगवान्के चार भुजायें थीं । नीलकमलके समान श्याम शरीर था । वे अपने शरीरपर पीले वस्त्र धारण किये हुए थे । कौस्तुभमणिसे उनका हृदय मुशोभित हो रहा था और धीवत्स अपनी निखार अलग ही दिसा रहा था ॥ १४ ॥ गङ्गाजीके तटपर रामके वामांगमें बैठी हुई सीता लक्ष्मीके

ब्रह्मो बभूव भवनः श्रोत्रिणोः सत्यमन्त्ररे वामे करे बभूवाथ शत्रुघ्नश्च सुदर्शनम् ॥१६॥
 देवेषु विविधैः सर्वे वायव्याग्ने क्षणालदा । शार्ङ्गालहमिकाटाता अयोध्यापुत्रासिनः ॥१७॥
 प्राप्नुस्ते दिव्यदेहानि विमाने गन्धिना बहुः । तदा नितेदूर्वाद्यानि देवानां गगनांगणे ॥१८॥
 इवर्षुर्देवपत्न्यश्च पुष्पवृष्टिमिगदगन् । नटुर्बुधैः सप्तमो जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥१९॥
 मणनाम तदा तार्क्ष्यः श्रोत्रिणु रविभामुगम् । देहानि यमुनुः सर्वे श्रीभिः सोमादिकाश्च ते ॥२०॥
 पतिदेहानि चानिग्य तदा ता उर्मिनादिकाः । देवान्यग्री बहुः सर्वा रम्ये मार्गारिधानटे ॥२१॥
 अथ ता देवपत्न्यश्च रत्नदर्पिः महस्वशः । विष्णुं नीगजयामासुर्नर्भीयुक्तं महामुजम् ॥२२॥
 विष्णुस्ततोऽब्रवीद्वाक्यं वेधश्च मनुज शनैः । अयोध्यावासिनः सर्वे निर्पद्माश्चादयः शुभा ॥२३॥
 एते समागता ब्रह्मर्षेण स्थानं वदाधुना । तद्विष्णोर्वचनं श्रुत्वा तदा ब्रह्माऽऽदिचक्षः ॥२४॥
 मल्लोकादुपरिष्ठाच्च लोकान्मानानि काञ्चुमान् । एते यांतु जनाः सर्वे त्वदर्शनपहोऽम्बिताः ॥२५॥

ततः प्राह पुनर्विष्णुर्गयोध्यायां मृताश्च ये ।

अग्रं नेऽपि ममायांतु लोकान्मानानि काञ्चुमान् ॥२६॥

तथेति स विधिः प्राह महाविष्णुं मुदान्वितः । ततस्ते दिव्यदेहाश्च मार्केतुपुत्रासिनः ॥२७॥
 नानाविमानमग्धाश्च दिव्यवस्त्रविभूषिताः । दिव्यालङ्कारमयुक्ता धम्मराभिर्निक्षेपिताः ॥२८॥
 नानासुगन्धगन्धार्घ्यदिव्यचामरकीर्तिनाः । विरेनुर्गगने चद्रचदना रविभामुगाः ॥२९॥
 ततो ब्रह्मादयो देवाः प्रणम्युर्विष्णुमादगन् । तुष्टुर्विविधैः स्तोत्रैर्वन्दयोर्भुनीयताः ॥३०॥
 तदा तुष्टाव सभुस्तं विष्णुं त्रैलोक्यपालकम् । वनमालां दधानं न दिव्यचन्दनचंचितम् ॥३१॥

रूपमें और सक्षमण कणोंस मुग्धाभित जेय भगवान्को स्वरूपमें परिणत हो गये ॥ १५ ॥ भरतजा शलक रूपमें परिवर्तित होकर विष्णुभगवान्को दाहिने हाथमें आ विग्राहे । शत्रुघ्नन विष्णुके सुदर्शनचक्र बनकर काम भुजामें बहुत जमा लिया ॥ १६ ॥ वहाँपर जितने वातर थे, वे सब छग भग्नमें अपने अंगरूपमें देवताओंके शरीरमें प्रविष्ट हो गये । चण्डालस लहर कृमिकोट पणेत सर्षा अयोध्यानिवासा अपन-अपन शरीरको छोड़कर दिव्य देह धारण करके विमानोंपर मुग्धाभित होन लगे । उस समय गगनागलम देवताओंके विविध प्रकारके बाजे बज रहे थे ॥ १७ ॥ देवागनाय प्रेमपूर्वक कुसुमवर्षा कर रही थी । अप्सरायें नाच रही थी और गन्धवनय तरह-तरहके गायन गा रहे थे ॥ १८ ॥ उसी समय गरुड़ने आकर मूर्तसदृश देहाप्यमान भगवान्को दण्डवत् प्रणाम किया । क्षीर सागर आदि राजा और भा अपन-अपने समेत अपने-अपने शरीरको छोड़ दिया ॥ २० ॥ इन लोगोंके परम घाम खजे जानेके बाद उगिला, माण्डवी तथा भुतकालिते अपने-अपने पतिके शरीरका आलिंगन करके चिनामें जनकर शरीर छोड़ दिया ॥ २१ ॥ ऊपर समस्त देवताओंकी स्त्रियोन हजारों रत्न-मय दीपक जलाकर लक्ष्मीके समेत विष्णुभगवान्की आरती उताली ॥ २२ ॥ कुछ इर बाद विष्णुभगवान्ने ब्रह्मासे कहा कि मेरे साथ जो अयोध्याके सब पुरवासी तथा तिरंग्याति तकके प्राणी यहाँ आये हैं, इनके लिए कोई स्थान बतलाइए । विष्णुभगवान्का बात सुनकर ब्रह्माजी बोले कि आपके दर्शनसे ये पवित्र प्राणी मेरे लोकसे भी ऊपर एक साम्प्रतिक लोक है-वही हो जाकर निवास करें ॥ २३-२४ ॥ इसके बाद विष्णुभगवान्ने फिर कहा कि इनके अतिरिक्त भी जो प्राणी अयोध्यामें शरीर त्याग करे, वे सब साम्प्रतिक लोक प्राप्त करें ॥ २५ ॥ ब्रह्माने भगवान्की यह बात भा स्वीकार कर ली । इसके अनन्तर वे सब अयोध्यावासी दिव्य शरीर धारण करके नामा प्रकारके विमानोंपर जा बैठे । उस समय वे छोटे-मछड़े गहने-कपड़े पहने थे और कितनी ही सुन्दरों आसराय उनके शरीरमें सुगन्ध भर रही थी । उनपर दिव्य चमर चल रहे थे । सूर्यके समान देहाप्यमान तथा चन्द्रमुखी नारिणी सब प्रकारको सेवाये कर रही थी ॥ २७-२८ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओंके विष्णुभगवान्की प्रणम किया और बड़े-बड़े ऋषि वेदकी श्रुचाओंसे भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥ सब लोगोंके बाद श्रीशिवजी त्रैलोक्येश्वरश्च विष्णुभगवान्की स्तुति करने लगे । उस

शंभुवाच

रघवं करुणाधरं भवनाशनं दुर्गितापहं भाभव स्वर्गगामिनं जलरूपिणं परमेश्वरम् ।
 पालकं जननारकं भवहारकं त्रिपुरारकं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३२ ॥
 भूधरं वनमालिनं धनरूपिणं धरणीधरं धीहरिं त्रिगुणान्मकं तुलसीधरं मधुरस्वरम् ।
 श्रेष्ठं शरणप्रदं मधुमरकं ब्रजपालकं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३३ ॥
 विदुलं मधुरास्थितं रजकान्तकं गजपादकं सन्तुलं चक्रमारकं वृकवानकं सुगन्धिनम् ।
 जन्तुजं वसुदेवजं वलियुगलं सुगन्धकं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३४ ॥
 केशवं कान्धेष्टिनं कपिमारकं मृगमर्दिनं सुन्दरं द्विजपालकं दिनिजर्दनं दनुजाधनम् ।
 शालकं मृगमर्दिनं श्वपिप्लिनं मुनिचिन्तितं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३५ ॥
 शकरं जलशायिनं कुशपालकं रथवाहनं मरुत्तनं प्रियपुष्पकं प्रियभूमुर लवचालकम् ।
 श्रीधरं मधुसूदनं भगताग्रजं गरुडध्वजं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३६ ॥
 गङ्गाधरं गुरुपुत्रदं चन्दनं वरं करुणानिधिं भक्तपं जनतोषदं सूरपूजितं श्रुतिभिः स्तुतम् ।
 भुक्तदं जनमुक्तिदं जनरंजनं नृपनन्दनं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३७ ॥
 चिद्वनं चिरजीविनं मणिमालिनं वसुदेवमुत्तमं श्रीधरं शान्तिदायकं चलध्वजं गनिदायकम् ।
 शान्तिदं जननारकं शरधारिणं गजगामिनं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३८ ॥
 शार्ङ्गिणं कमलाननं कमलादृशं पदपङ्कजं श्यामलं रविभासुरं शशिमीक्यदं करुणार्णवम् ।

समय भगवान् धनमाला धारण किये थे और उनके शरीरमें दिव्य चन्दनका लेप किया हुआ था ॥ ३१ ॥
 शोणवर्जित कहा रघुवंशम उत्पन्न, वरुण कर, समारण आचार्यगणमें भुक्त करनेवाले, पापनाशकारी, लक्ष्मीके
 पति, जलरूपी परमेश्वर, सबके पालक, भक्तोंका तारनवाले, भयदंशक नाशक, पापमहारकारी, नररूप-
 धारी है जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ पृथ्वापति वनमालाधारी, मधुनामक
 राक्षसका मारनवाला, ब्रजके पालक, सबान मोरद्वारा समान शासक, तुलसीका रक्षा करनेवाले, सत्त्व, रज
 और तम इन तीनों गुणोंमें युक्त, नृपनामके पति, मोर स्वस्ववान, शांताका विस्तार करनेवाले, नररूपधारी
 जगदीश्वर है रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३३ ॥ द्विजस्वामे मागमे निवास करनेवाले,
 रजनमहारा, गजान्तकारी, सज्जनोंमें मंगल, चक्रागुर, वृकागुर और कणाको मारनेवाले, तन्दमुवन, वसुदेवके
 पुत्र, वसुदेवकी पत्नीके यक्षमें जानेवाले, देवताओंके पालक, नररूपधारी है जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका
 भजन करता हूँ ॥ ३४ ॥ केशव, वानरीसे घिरे हुए, वायु वानरको मारनेवाले, मृगरूपधारी मारीचको
 मारनेवाले, सुन्दर, बाह्यणोंके रक्षक राक्षसोंका संहार करनेवाले, सबका बालकपुत्री, स्वर्गको मारनेवाले,
 प्रायियोंमें पूजन, मुनियों द्वारा चिन्तित और नररूपधारी है जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन
 करता हूँ ॥ ३५ ॥ संसारका कल्याण करनेवाले, जिनके कुश जैसे पराक्रमी बालक हैं, रथ जिदकी सवारा
 है मधु स्वयं जिनकी नमस्कार करती है, तिनका पुष्पक विमान श्रेष्ठ प्रिय है, जो ब्रह्माण्डमें अतिशय प्रेम
 रखता है लव नामका जिनका बालक है, जो लक्ष्मीकी रक्षा करने है, जिन्होंने मधुनामक दैत्यका संहार
 किया था, जो भरतके बड़े भ्राता हैं और जिनको राजा में गरुडका चिह्न बना हुआ है, ऐसे नररूपधारी है
 जगदीश्वर रघुनन्दन ! हम आपका भजन करने हैं ॥ ३६ ॥ जिनका शी विष्णु प्रिय है, जो यमलाकमें गुरुपुत्रको
 लोटा लाये थे, जो वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, जो करुणाके समुद्र हैं, जो सब तरह अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं,
 जो अपने भक्तोंको प्रसन्न रखते हैं, देवतागण जिनकी पूजा करने हैं सारी वेद जिनकी स्तुति करने है, जो
 सब प्रकारके भोग प्रदान करते हैं और जो अपने भक्तका मुक्ति प्रदान करने है, महाराज दशरथके पुत्र है
 जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३७ ॥ चिद्वनस्वामि चिरञ्जीवी, मणियोंकी माला धारण
 करनेवाले, वसुदेवमुत्तम, श्रीधर, शान्ति प्रदान करनेवाले, गनिदायक, वरध्वजधारी, शान्तिदाता जनतारक, शर-
 धारी, गजगामी, नररूप धारण करनेवाले है जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३८ ॥ धनुष

सत्पतिं नृपबालकं नृपवदितं नृपनिप्रियं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३९॥
 निर्गुणं सगुणान्मकं नृपमण्डनं मनिवर्द्धनवन्धुनं पुरुषोत्तमं परमेष्ठिनं भिन्नभाषिणम् ।
 ईश्वरं हनुमन्नुतं कमलाधिपं जनमार्क्षिणं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥४०॥
 ईश्वरोक्तमेतदुत्तमादराच्छ्रवणनामकं यः पठेद्भुवि मानवस्तथ भक्तिमांस्तथनोदये ।
 त्वत्पदं निजवन्धुदागमुत्तुनधिरमेत्य नो मोऽस्तु ते पदसेवने बहुनन्परो मम वाक्यतः ॥४१॥
 इति स्तुत्वा महाविष्णुं प्रोवाच मित्रिजापतिः । आरुह्य गमानाथ गरुडोपरि वेगतः ॥४२॥
 वैकुण्ठारोहणस्यायं कालो बान्मीकिना कृतः । एकादश महमाश्च यमास्वेकादशैव च ॥४३॥
 तथैकादश मामाश्च दिनान्येकादशैव च । तथैकादश नाड्यश्च पलान्येकादशैव च ॥४४॥
 गतानि तेऽत्र भूम्यां हि जन्मादागम्य राघव । वयन्तपश्च सीतामती तिविधैवामिताऽयं हि ॥४५॥
 पुण्येऽहि स्वपदं गन्तुं त्वरां कुरु रमेश्वर । तदा विद्वम्य भ्राविष्णुर्बान्मीकिं मुनिपुङ्गवम् ॥४६॥
 समालिख्य मुनीन्पृष्ट्वा तस्यैव स गरुडोपरि । धनन्तु देवगणेषु स्तुतन्तु नारदादिषु ॥४७॥
 पुष्पैर्वर्षन्तु देवेषु प्रनर्तन्स्वप्नरासु च । नानादिमानजालैश्च सर्वत्र परिवर्षितः ॥४८॥
 ययौ विष्णुः स वैकुण्ठं लोकान्प्रदयन्शर्नः शर्नः । वैकुण्ठे स्वपदं स्थित्वा त्रिमसज शिवादिकान् ॥४९॥
 तस्यैव लक्ष्म्याऽऽनन्दमयः परिपूर्णमनोग्रथः । त्वगोद्रेऽसितपदः शेषतन्पविभूपितः ॥५०॥
 अयोध्यावासिनः सर्वे ययुः मांतामक पदम् । तस्मिन् मुनयः सर्वे ययुः स्वं स्वं स्थलं प्रति ॥५१॥
 रामवाक्यात्साऽजर्मादः सांत्वयामास तं कुशम् । स्वर्गारोहण वन्दारं कथयामास तं कुशम् ॥५२॥

धारण किये, कमलक समान मुखवान, कमलक धोति मयोसने, कमलक हा सगंध चरणकमलवाले, श्याम वर्ण, मूर्धके समान देदीप्यमान, चन्द्रमाको मुख दनकाल, कृष्णाके समुद्र, एक अरु प्रभु, राजाओंके रक्षक, राजाओंसे वन्दित, राजाओंके प्रिय और नररूपधारा है जगदीश्वर रघुनन्दन । मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३९ ॥ निर्गुण हात हुए भी सगुणस्वरगारा, राज भाऊ कुम्भभूषण, बुद्धिबद्धनकारा, परम पूजनीय, मुष्कराकर बालनवान, जगत्क प्रभु, हनुमानजस नमस्तुत, भक्तोंके मन्त्रा, लक्ष्मक पति और नररूपधारा है जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ४० ॥ इस प्रकार स्तुति करत हुए शिवजाने अन्तमे कहा कि प्रातःकाल सूर्योदयक समय जो कोई प्रणाम करे हेतु हुए इस शतनाम स्तावका पाठ करेगा, वह मेरे आर्जावर्दिसे अपन बन्धुभा तथा स्थापुत्रादिकाक साथ यही आकर बहुत कालतक आपके चरणोंकी सेवाका सुयोग पायगा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार स्तुति करतक पञ्चम शिवजन कहा—हे रमानाथ ! आप शीघ्र गरुडपर आरुह हो । क्योंकि बान्मीकिजन आपके वैकुण्ठारोहणाय यहाँ समय अपने रामावर्णमे निर्धारित किया है । इस समय रागर्ह हजार ध्यार्ह दय, रागर्ह महाता, रागर्ह दिन, रागर्ह नाडा तथा ध्यार्ह पल पूरे हो रहे हैं । आज सब भूषणपञ्चका पञ्चमा निर्वि है ॥ ४२-४५ ॥ इस पवित्र दिवसका अब परमधाम आनेके लिए श्रध्ना करिए । उस समय प्रभु नुनकाप । उन्होंने मुनपुङ्गव बान्मीकि कपिका हृदयसे लगाया, श्रुतियोसे आज्ञा मांगा और गरुडक ऊपर मकार हा गया तब देवताओंने विविध प्रकारक बाज बजाये, नारद आदि महर्षिओंने स्तुति का, देवताओं भगवान्पर फूल बरसान लगे और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ४६-४८ ॥ इस तरह गरुडपर बैठकर भगवान् राम सब लोगके दस्तन-देखते वैकुण्ठलाकको चले गये । उस धाममें पहुँचकर वे अपन मित्रामनवर वंश और शिव आदि देवताओंको विदा कर दिया । वे आनन्दमय महाप्रभु हर प्रकारसे परिपूर्ण मनारथ हाकर लक्ष्मकाक साथ आनन्दपूर्वक बड़ी रहने लगे । उस समय गरुड भगवानक चरणोंकी सेवा करने के और वे दिष्णु भगवान जेयकी शय्यापर सान थे ॥ ४९ ५० ॥ वे सब अयोध्यावासा भगवान्के कथनानुसार सान्त्वितिक स कर्म जा विराज । इसके अनन्तर भगवान्का स्वर्गारोहण देखनेके लिए आये हुए श्रुथ भी अपन अपने आश्रमोंका चले गये ॥ ५१ ॥ रामचन्द्रजोंके कथनोंनुसार हस्तिनापुरके राजा अजमाव अयोध्याम कुगक पास गया और भगवान्की परमधामयात्रा-सम्बन्धी

कुशेन मानिनः सोऽपि ययौ स्वीयमज्जह्वयम् । लब्ध्वा कुमुद्वतीं तस्यां कुशः पुत्रान्म निर्भये ॥५३॥
 एवं श्रीरघुनाथस्य स्वर्गारोहणार्थात्कुम्भ । ये शृण्वन्ति नरा भक्त्वा तेषां स्वर्गं प्रयाति हि ॥५४॥
 वैकुण्ठारोहणाध्यायमिमं नित्यं पठेत्तु यः । सोऽन्ते गच्छति वैकुण्ठं रामचन्द्रप्रसादनः ॥५५॥
 इति श्रीशतकांठिरामचरितान्तर्गतश्रीभट्टानन्दरामायणे चत्वारिंशः पूज्यवाङ्मे वैकुण्ठारोहणं नाम पञ्चः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(सूर्यवंशवर्णन)

श्रीरामदास उवाच

एवं त्वया यथा शृष्टं स्वर्गारोहणमङ्गलम् । श्रीरामस्य मया चैतत्तवाग्रोऽत्र निवेदिनम् ॥ १ ॥
 किमन्यच्छ्रोतुमिच्छाऽस्ति तां त्वं वद वदाम्यहम् । एव गुणैर्वैचः श्रुत्वा विष्णुदामस्तमववीत् ॥ २ ॥

विष्णुदास उवाच

कुशातः सूर्यवंशोऽत्र गुणैः पूज्यैः तस्यैवितः । कुशाग्र श्रोतुमिच्छामि सूर्यवंशं सविस्तरम् ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

विष्णोरारभ्य कथिता एकपष्टितयाः पुरा । एकपाष्टितया घट्टे तान्वदामि सविस्तरम् ॥ ४ ॥
 श्रीरामस्य कुशः पुत्रोऽतिथिः पुत्रः कुशस्य सः । निषधस्तत्रातिथेः पुत्रो निषधस्यात्मजो नभः ॥ ५ ॥
 नभाज्जातो पुण्डरीकः क्षेमधन्वा तु तत्पुत्रः । देवानीकस्तत्पुत्रोऽभूद्देवानीकपुत्रो महान् ॥ ६ ॥
 अहीनः प्राच्यतः सान्द्रः पायात्रस्तत्पुत्रः स्मृतः । पायात्रस्य बलः पुत्रः स्थल पुत्रो बलस्य हि ॥ ७ ॥
 स्थलस्य वज्रनाभस्तु खगणस्तस्य कात्यवे । खगणाद्विधूतिजातो विधूतस्तनयः शुभः ॥ ८ ॥
 जातो हिरण्यनाभस्तु तस्य पुष्पः प्रकात्यतः । पुष्पात्स ध्रुवसंधिस्तु ध्रुवसंधेः सुदर्शनः ॥ ९ ॥
 सुदर्शनादाग्नवर्णस्तस्माच्छीघ्रः प्रकात्यतः । शीघ्राज्जातो मरुः पुत्रा मनाश्च प्रश्रुतः सुतः ॥ १० ॥
 प्रश्रुतस्य च सार्धाद् संधेः पुत्रस्तु मयणः । मयणस्य महस्वाथ विश्वनाहश्च तन्सुतः ॥ ११ ॥

मय वार्ते बतलायो और समझा दिया कि आप किस प्रकारका शाक न करें ॥ ५२ ॥ कुमार ने भा: अजमीरका भरपूर आदर-सत्कार किया । कई दिना अयाध्याम रहकर वे हास्तिनापुरके घात गये । कुछ दिनों बाद कुशकी कुमुद्वती नामकी एक दुसरी भार्या प्राप्त हुई । उससे कुशक बहुतने पुत्र हुए ॥ ५३ ॥ इस प्रकार भगवान्‌के स्वर्गारोहण-वार्ताको जो लोग भक्तिक्रवक सुनते है, वे भी स्वर्गलाक प्राप्त करते हैं ॥ ५४ ॥ जो प्राणी वैकुण्ठारोहणक इस सर्पका नित्य पठ करता है, वह रामचन्द्रजीकी कृपासे अन्तम वैकुण्ठ धामको प्राप्त करता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीशतकांठिरामचरितान्तर्गत श्रीभट्टानन्दरामायणे चाल्मीकीये पंच रामतंजपाण्डेयकुल'भ्यात्तना'भाषाटकासहित पूर्णकाण्ड पद्य सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने जिस तरह हमसे भगवान्‌का स्वर्गारोहण वृत्तांत पूछा, वह मैंने कह सुनाया । अब तुम क्या सुनना चाहते हैं ? वह भी मैं सतत्प्रार्थना । इस तरह गुरुकी बात सुनकर विष्णुदास कहने लगे—हे गुरुवर ! आपने कुमत्क सूर्यवंशका वर्णन किया, सो मैंने सुना । अब यह जानना चाहता हूँ कि कुशके आगे कौन-कौन राजे हुए । यह हम विस्तारपूर्वक बतलाइए ॥ १-३ ॥ श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! विष्णुभगवान्‌से लेकर एकसठ राजाओंका चरित्र मैं पहले सुनाया है । उनके बाद जो एकसठ राजे और हुए हैं, उन्हें मैं विस्तारपूर्वक बतलाता हूँ ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीक पुत्र कुश, कुशके पुत्र अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके नभः, ॥ ५ ॥ नभके पुण्डरीक, पुण्डरीकके क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाके देवानीक, देवानीकके अहीन, अहीनके पायात्र, पायात्रके बल, बलके पुत्र स्थल ॥ ६ ॥ ७ ॥ स्थलके वज्रनाभ, वज्रनाभके खगण, खगणके पुत्र विधूति, विधूतिके हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभके पुष्प, पुष्पके ध्रुवसंधि, ध्रुवसंधिके सुदर्शन, ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुदर्शनके अग्निवर्ण, अग्निवर्णके पुत्र शाघ्र, शाघ्रके मरु, मरुके पुत्र प्रश्रुत,

तस्मात्प्रसेनजिन्प्रोक्तस्तस्माज्जातस्तु तक्षकः । बृहद्वल्गुतक्षकाश्च तस्माज्जातो बृहद्रथः ॥१२॥
 तस्मादुरुक्रियः प्रोक्तो वत्सवृद्धस्तु तन्सुतः । वत्सवृद्धस्य व्योमस्तु व्योमाद्भानुः प्रकीर्त्यते ॥१३॥
 भानोः पुत्रो दिवाकस्तु सहदेवश्च तन्सुतः । सहदेवाभ्यमनो वीरो वीरस्य तनयः शुभः ॥१४॥
 बृहदश्व इति ख्यातस्तस्य पुत्रस्तु भानुमान् । भानुमनः प्रतीकाशः सुप्रतीकश्च तन्सुतः ॥१५॥
 सुप्रतीकस्य पुत्रोऽभून्मरुदेव इति स्मृतः । मरुदेवान्सुनक्षत्रः सुनक्षत्राच्च पुष्करः ॥१६॥
 पुष्करस्यान्तरिक्षश्च सुतपा अन्तरिक्षः । सुतपान्नयो मित्रो मित्रजित्सुतः शुभः ॥१७॥
 बृहद्राज इति ख्यातस्तस्य बर्हिः स्मृतो बृध्नः । बर्हः कृतजयः पत्रस्य पुत्रो रणजयः ॥१८॥
 रणजयान्मजयस्तु संजयाच्छक्य उच्यते । शक्यपुत्रस्तु शुद्धोदः शुद्धोदाल्लालः स्मृतः ॥१९॥
 प्रसेनजिह्लांगलस्य तन्पुत्रः क्षुद्रकः स्मृतः । क्षुद्रकाद्रणकः प्रोक्तो रणकान्मुखः स्मृतः ॥२०॥
 सुगन्धान्नयो जातस्तनयस्य मुनो महान् । नाम्ना मुमित्र परमः पूर्णो वंशवन्दः परम् ॥२१॥
 पूर्वमुक्तो मरुर्इति नाम्ना यो नृपतिर्मया कलापग्राममाश्रित्य हिमार्द्रो वद्रिकाश्रमे ॥२२॥
 स तपश्चिरकालं हि करोन्त्यत्र समाधिमान् । कृते सृगे पुनः प्रमे सूर्यवंशं कम्प्यति ॥२३॥
 एवं मया समाख्यातः सूर्यवंशो मनोरमः । विष्णोरस्य कथिता एकपष्टिनमा मया ॥२४॥
 एकपष्टिनृपाश्चाग्रं मध्ये गमो विगजते । त्रयोविंशोत्तमस्तत्रैव विष्णोर्मयोदिताः ॥२५॥
 एवं यथा त्वया पृष्टं शिष्य वशानुकीर्तनम् । नन्मया कथितं सर्वं श्रवणापुण्यवर्द्धनम् ॥२६॥

विष्णुः न उवाच

गुरो मया श्रुतं कस्यचिन्मुनेर्मुखतः पुनः । रामायणं सविस्तारं तच्चेदं नैव भामते ॥२७॥
 तस्मादत्रांतरं प्रोक्तं त्वया सर्वत्र मां गुरो । संदेहोऽनेन मे जातस्तं त्वं छेतुमिदार्हसि ॥२८॥

श्रीरामदास उवाच

पुनः पुनः कल्पभेदाज्जाताः श्रीराघवस्य च । अवताराः कोटिशोऽत्र तेषु भेदः क्वचित्कचित् ॥२९॥

॥ १० ॥ प्रथुसके संधि, संधिके पुत्र मर्षण, मर्षणके महर्षवान्, महर्षवानके विश्ववाह ॥ ११ ॥ विश्ववाहके प्रसेनजित्, प्रसेनजित् के तक्षक, तक्षकके बृहद्रथ बृहद्रथके उरुक्रिय उरुक्रियके वत्सवृद्ध, वत्सवृद्धके व्योम, व्योमके भानु ॥ १२ ॥ १३ ॥ भानुके पुत्र दिवाक, दिवाकके सहदेव, सहदेवके वीर, वीरके पुत्र बृहदश्व, बृहदश्वके भानुमान्, भानुमान्के प्रतीकाश, प्रतीकाशके पुत्र सुप्रतीक ॥ १४ ॥ १५ ॥ सुप्रतीकके मरुदेव, मरुदेवके सुनक्षत्र, सुनक्षत्रके पुष्कर, ॥ १६ ॥ पुष्करके अन्तरिक्ष, अन्तरिक्षके सुतपा, सुतपाके पुत्र मित्र, मित्रके मित्रजित् ॥ १७ ॥ मित्रजित्के बृहद्राज, बृहद्राजके बर्हि, बर्हिके कृतजय, कृतजयके पुत्र रणजय, ॥ १८ ॥ रणजयके संजय, संजयके शक्य, शक्यके शुद्धोद शुद्धोदके लाल ॥ १९ ॥ लालके पुत्र प्रसेनजित् प्रसेनजित्के क्षुद्रक क्षुद्रकके रणक, रणकके मुख ॥ २० ॥ मुखके तनय और तनयके पुत्र मुमित्र हुए । बस, यहाँ ही तक चलकर सूर्यवंश पूर्ण हो जाता है । २१ . पूर्वम हम मरु नामक राजाका नाम गिना आये हैं । वे हिमालयपर वद्रिकाआश्रममें तप कर रहे हैं । मत्स्यपुराणमें वे फिर सूर्यवंशका विस्तार करेंगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस तरह मैंने विष्णुभागवान्से लेकर एकसठ राजाओं तक सूर्यवंशका वर्णन किया ॥ २४ ॥ एकसठ राजाओंके मध्यमें भगवान् रामचन्द्रजी विराजमान हैं और उनके आगमाले एकसठको लेकर कुल एक सौ तेईस राजे हुए ॥ २५ ॥ इस तरह हे शिष्य ! मैंने तुम्हें सूर्यवंशका विवरण कह सुनाया । इसके सुननेसे पुण्यकी वृद्धि होती है ॥ २६ ॥ विष्णुदामने कहा-हे गुरो ! मैंने किसी मुनिसे सुना था कि रामायण इससे भी विस्तृत है, किन्तु पूरी रामायण इन संसारमें विद्यमान नहीं है । फिर आपन जो रामायण सुनायी है, वह तो सब रामायणोंसे भिन्न है । यह एक प्रकारका सन्देह मेरे हृदयमें उत्पन्न होता है । कृपा करके आप इसका निवारण करिए ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीरामदासने कहा कि कल्पभेदसे रामके कितने ही अवतार हुए हैं और

कृतोऽस्ति गधवेणैव न सर्वे सदृशाः कृताः । गमायणान्यपि तथा पुरा वाल्मीकिनैव हि ॥ ३० ॥
 अनेकान्यन्तरेणैव कीर्तितानि सविस्तरात् । शतकोटिमिता तेषां सर्वेषां गणना कृता ॥ ३१ ॥
 तस्मात्त्वया न सदेहः कार्यः शिष्यात्र बुद्धिमन् । यन्मथा कथितं ते हि तच्चथ्यं विद्धि नान्यथा ॥ ३२ ॥
 आगाद्भरतखंडांतर्गताद्रामायणान्पुरा । नारदादिपुराणानि व्यासेनात्र कृतानि हि ॥ ३३ ॥
 तेषु भन्कथितं चेदं सम्यग्विस्तरितं द्विज । तत्र ज्ञातो यथा शिष्य सदेहोऽत्र कथान्तरात् ॥ ३४ ॥
 भविष्यति तथाऽन्येषामग्रे यदि कदा क्वचित् । नारदादिपुराणेषु दर्शनीयं हि तर्जनैः ॥ ३५ ॥
 दृष्ट्वा मदुक्तं सर्वेषु पुराणादिषु ण्डितं । त्यक्तव्याः स्वायम्देहाः सन्यं ज्ञेयं मयेरितम् ॥ ३६ ॥

इति शतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये पूर्णकाण्डे

सूर्यवंशवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(आनन्दरामायणकी सर्गानुक्रमणिका)

श्रीविष्णुदास उवाच

गुरोऽधुना वदस्व न्वं यन्मथा पृच्छथ्यते तव । अनुक्रमणिकामर्थं तथा पाठादिभिः फलम् ॥ १ ॥
 कांडसंख्यां सर्गसंख्यां श्लोकसंख्यां सविस्तराम् । उद्यापनं ग्रन्थदानफलं च शकुनेक्षणम् ॥ २ ॥
 अनुष्ठानविधानं च श्रोतुं कालविनिर्णयम् । कांडानां च पृथक् संख्यां सर्वं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

अनुक्रमणिकासर्गः प्रोच्यतेऽयं मयाऽधुना । यस्याः संश्रवणात्प्रोक्तं सर्वप्रथमं फलं शुभम् ॥ ४ ॥
 सर्गेऽत्र प्रथमे प्रोक्तं कौमल्यायाः स्वयंवरम् । गमादीनां सुजन्मानि द्वितीये कीर्तितानि हि ॥ ५ ॥
 सीतास्वयंवरं प्रोक्तं तृतीये मिथिलापुरि । दशशापादिकथनं चतुर्थे मृदलेन हि ॥ ६ ॥

उन अवतारोमें कुछ न कुछ भेद पड़ हो गया है । यद्यपि रामकी लीलाय प्रत्येक रामायणमें वर्णित है, किन्तु उन सबमें कुछ न कुछ भेद है । स्वयं वाल्मीकिजीने जो शतकोटि श्लोकात्मक रामायण बनायी है, उसमें भी अन्तर विद्यमान है । इस कारण है शिष्य । तुम किना प्रचारका सन्देह न करके सीने ओकुछ कहा है, उसे सच मानो ॥ २६ ३२ । भरतखण्डके अन्तर्गत विद्यमान रामायणके भागके ही आचारपर व्यासजीने नारदादि विविध पुराणोंकी रचना की है । उसी खण्डके सहारे मैंने भी इस सविस्तर आनन्द-रामायणका वर्णन किया है । जिस तरह आज तुम्हें मेरा यह कथा सुनकर सन्देह उत्पन्न हुआ है, उसी तरह यदि आगे चलकर और किसी ओता-वक्ताको सन्देह हो तो उसे चाहिए कि उन नारद आदि पुराणोंको देखकर सन्देह निवृत्त कर ल ॥ ३३-३५ ॥ ण्डितोंको भी उचित है कि सब पुराणोंका देख ओर उनमें मेरी कही बातें देखकर अपना सन्देह मिटा ल और समझ ले कि मैं जो कुछ कहता हूँ, वे बातें सच हैं या नहीं ॥ ३६ ॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रासत्रयपाण्डवकृत ज्योत्स्न भव-टीकासहिते पूर्णकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो । अब आप हमें इस रामायणकी सर्गानुक्रमणिका तथा इसके पाठका फल बताइए ॥ १ । साथ ही इसकी काण्डसंख्या, सर्गसंख्या और श्लोकसंख्या आदि भी विस्तरपूर्वक कहिए । इसका उद्यापन, ग्रन्थके दानका फल, शकुनेक्षणविधान, अनुष्ठानविधि, इसके श्रवणका समय और काण्डकी संख्या आदि भी कहिए ॥ २ । ३ । श्रीरामदासने कहा—अब मैं तुम्हें इस रामायणकी सर्गानुक्रमणिका बताता हूँ । जिसके श्रवणमात्रसे समस्त रामायणके श्रवणका फल मिल जाता है ॥ ४ ॥ सारकाण्डके पहले सर्गमें कौसल्याका स्वयंवर, दूसरेमें राम आदिका जन्म, तीसरे सर्गमें जनकपुरमें सीताका स्वयंवर, चौथे

दशमपूर्वजन्म कैकेयाश्वापि ॥ ७ ॥ पञ्चमसर्गस्य प्रोक्ता एते मन्त्रिनः ॥ ७ ॥
 विराधखगमारीचवधादिमममेऽकथि ॥ विविधाः वारिधयः सप्तमे कृतः ॥ ८ ॥
 नवमे जानकीशुद्धिलंका दृष्टवान्मया ॥ दशमे तेऽस्य गम्यते तीर्थार्थश्रमगमः ॥ ९ ॥
 एकादशे रावणदिवधाः प्रोक्ताश्च रावणान् ॥ सप्तमस्य दशमे दशमेऽप्युदीयते ॥ १० ॥
 त्रयोदशे राघवस्य विक्रमश्च हनुमन्तः ॥ समाप्तमस्मिन् हि सप्तमस्य दशमेऽप्युदीयते ॥ ११ ॥
 बाल्मीकेः प्रथमे सर्गे श्लोकोत्पत्तिः प्रकीर्तिता ॥ रामायणस्य तु द्वितीयेऽप्युदीयते ॥ १२ ॥
 तृतीये सीतया रामो यात्रार्थं प्राधिनो मुदा ॥ चतुर्थे रामचन्द्रस्य प्रस्थानं च हर्षं प्रदि ॥ १३ ॥
 पञ्चमे मुनिवाक्येन यात्रां गंतुं विनिश्चयः ॥ षष्ठे प्रोक्ता पूर्वदेशार्थयात्रा मरिचिना ॥ १४ ॥
 प्रोक्ता दक्षिणार्थीनां यात्रा रामस्य सप्तमे ॥ तीर्थार्थेन पश्चिमायामष्टमे राघवस्य च ॥ १५ ॥
 यात्रोत्तमप्रदेशस्य राघवस्य नवमेऽकथि ॥ यात्राकाण्डसमाप्तं तु यागकाण्डमुदीयते ॥ १६ ॥
 सप्तमेऽत्र प्रथमेऽप्युदीयते गुरुः ॥ द्वितीये रामचन्द्रस्य यागारम्भोऽयं वर्णितः ॥ १७ ॥
 तृतीयेऽप्युदीयते रामस्य यागारम्भोऽयं वर्णितः ॥ चतुर्थके ॥ १८ ॥
 पञ्चमे गमनाम्नां वै ह्यष्टोत्पत्तिः शुभः ॥ षष्ठेऽप्युदीयते हि सप्तमेऽप्युदीयते प्रकीर्तिहम् ॥ १९ ॥
 स्वजारोपविधानं च सप्तमे समुदाहृतम् ॥ अष्टमेऽप्युदीयते राघवस्य च वर्णितम् ॥ २० ॥
 नवमे शत्रुघ्नस्य समाप्तिः कीर्तिताऽत्र मा ॥ दशमेऽप्युदीयते हि विलम्बात्तुमुदीयते ॥ २१ ॥
 प्रथमेऽप्युदीयते स्वयंराजोऽयं कीर्तिताः ॥ द्वितीये रतिशल्यायां जानक्याश्वापि वर्णनम् ॥ २२ ॥
 तृतीये राघवेणोक्तं देहगमायणां स्त्रियैः ॥ दिनचर्याभ्युपगानि जानक्याश्च चतुर्थके ॥ २३ ॥
 जलपत्रगता क्रीडा पञ्चमे शेषमाह्विकम् ॥ द्विजस्य पश्यन् प्रामादे पट्टेऽलङ्कारमण्डनम् ॥ २४ ॥
 सर्गमे मुद्रा कृषिका मिलना तथा वृन्दाशाला आदि वर्णितः ॥ २५ ॥ ६ ॥ पञ्चमे सर्गमे दशमस्य और कैकेयीके पूर्वजन्मका वृत्तात् है । छठे सर्गमे रामका वनगमन और सातवम विराध-अटायु-मारीच आदिका वध तथा आठवें सर्गमे किष्किन्धा पर्वतपर बालिवध वर्णित है ॥ ७ ॥ ८ ॥ नवें सर्गमे सीताकी सौज और लङ्कादहन, दसवें सर्गमे सेतुमंहात्म्य तथा काशी विष्णुनाथके आगमनका वर्णन है ॥ ९ ॥ एकादश सर्गमे रामके द्वारा रावण आदिका वध तथा बारहवें सर्गमे सीताके साथ रामके अगोष्ठी गौतम और राज्याभिषेकका वर्णन है ॥ १० ॥ त्रहवें सर्गमे राम और हनुमान्जीके पराक्रमका वर्णन है । दस, कौटुम्भिक काण्ड समाप्त हो जाता है ॥ ११ ॥ अब यात्राकाण्ड कहने हैं । इसके पहले सर्गमे बाल्मीकि द्वितीयायाम् उद्यत दूसरे सगम रामायणका विभाजन वर्णित है ॥ १२ ॥ तीसरे सर्गमे सीता द्वारा यात्राका प्रारम्भ और चतुर्थ सगम जानकी और रामकी यात्राका वर्णन है ॥ १३ ॥ पञ्चवें सर्गमे कुम्भादर मुनिकी सलाहसे यात्राका उत्तर वर्णन है । छठे सर्गमे पूर्व देशकी यात्राका वर्णन है ॥ १४ ॥ सातवें सर्गमे दक्षिण भारतके तीर्थोंका यात्रा और आठवें सर्गमे पश्चिम प्रदेशके सब तीर्थोंकी यात्राका वर्णन है ॥ १५ ॥ नवें सर्गमे उत्तर प्रदेशके तीर्थोंकी यात्राका वर्णन है । दस, यात्राकाण्ड यहीं समाप्त हो जाता है । अब यागकाण्डक विषय वर्णन है ॥ १६ ॥ इसके पहले सर्गमे यज्ञोंका सामयिकोका सविस्तर वर्णन है । दूसरे सर्गमे रामचन्द्रजीके द्वारा यागारम्भ, तीसरे सर्गमे यज्ञाय अश्वकी गृहीप्रदक्षिणा, चौथे सर्गमे राम और कुम्भादर मुनिका संवाद है ॥ १७ ॥ १८ ॥ पञ्चवें सर्गमे रामका अष्टोत्तरशतनाम स्ताव है । छठे सर्गमे अश्वमेध यज्ञका जानेवाला रामकी दिनचर्याका वर्णन है ॥ १९ ॥ सातवें सर्गमे स्वजारोपणविधान, आठवेंमे अवभृथस्नान और नवें सर्गमे अश्वमेध यज्ञकी समाप्ति वर्णित है ॥ २० ॥ दस, यहाँ यागकाण्ड समाप्त हो जाता है । अब विलम्बात्तुमुदीयत होता है ॥ २१ ॥ इसके प्रथम सर्गमे रामस्तवरज और दूसरे सर्गमे जानक्याकी रतिशल्याका वर्णन है ॥ २२ ॥ तीसरे सर्गमे सीताकी रामने देहरामायण सुनायी है । चौथे सर्गमे सानाका दिनचर्याका वर्णन है ॥ २३ ॥ पञ्चवें सर्गमे जलपत्रकी क्रीडाके और बाल्मीकि कृतका विवेचन है । छठे सर्गमे ब्राह्मणपत्नीके लिए सीता द्वारा मलङ्कार-दानका वर्णन है ।

मूर्तिनां सप्तमे दानं देवस्त्रीणां वगस्तथा । गुणवन्त्या पिंगलाया वरदानमथाष्टमे ॥२५॥
 कुरुक्षेत्रस्य यात्रायां नवमे जानकीजयः । विलासकाण्ड समाप्तं हि जन्मकाण्डमुदीर्यते ॥२६॥
 आरामे दोहदक्रीडा सीतायाः प्रथमेऽकथि द्वितीये विविधाः क्रीडाः सीमनोन्नयनोत्सवः । २७॥
 रत्नकस्योदितं श्रुत्वा सीतान्यासस्तृतीयके जन्मकर्म चतुर्थेऽत्र कुशस्यापि लवस्य च ॥२८॥
 सर्गेऽत्र पञ्चमे प्रोक्ता रामरक्षा सुखावहा । षष्ठे लवस्य कमलदरणे जय ईरितः ॥२९॥
 युद्धादिकौतुकं प्रोक्तं पुत्रयोः सप्तमे विभोः । सीतादिव्यं च तष्टामोऽष्टमे प्रोक्तोऽत्र मंडने ॥३०॥
 जन्मोपनयनादीनि बालानां नवमेऽकथि । जन्मकाण्ड समाप्तं हि विवाहकाण्डमुदीर्यते ॥३१॥
 स्वयंवराय गमनं रामस्य प्रथमेऽकथि । स्वयंवरं चंपिकाया द्वितीये समुदाहृतम् ॥३२॥
 स्वयंवरं सुमत्याश्च तृतीये परिकीर्तितम् । कुशस्यापि लवस्यापि विवाहौ द्वौ चतुर्थके ॥३३॥
 गन्धर्वनागकन्यानां मोचनं पञ्चमेऽकथि । षष्ठे तायां विवाहानां निश्चयः समुदाहृतः । ३४॥
 विवाहा द्वादशे प्रोक्ताः सर्वासां सप्तमेऽत्र हि । अष्टमे युपकेतुश्च दण्डिर्नाश्व पराक्रमः ॥३५॥
 प्रोक्तो मदनमुन्दर्या विवाहो नवमे मदान् । पूर्णं विवाहकाण्डं च राज्यकाण्डमुदीर्यते ॥३६॥
 रामनाममहम्बं च सर्गे प्राथमिकेऽकथि । द्वितीयेऽत्र समानीतो रामेण मुग्धादर्षी । ३७॥
 रामकृष्णोपासकयोः संवादश्च तृतीयके । शत्रुस्त्रीणां च निद्राया वरदानं तथा पुनः ॥३८॥
 रामविश्लेषविरहः सीतायाः पञ्चमेऽकथि । मूलकामुरधातश्च षष्ठे राज्यानि चैष्टयम् ॥३९॥
 जयो भरतस्योदस्य रामेण सप्तमे कृतः । जम्बूद्वीपजयः प्रोक्तोऽष्टमे रामस्य विन्नरात् । ४०॥
 षट्द्वीपानां जयः प्रोक्तो नवमे राघवस्य च । यतिशूद्रगृध्रशिक्षा रामेण दशमे कृता । ४१॥
 चतुःस्त्रीणां वरदानं रामेर्णकादशे कृतम् । स्रंगोडशयदहम्बाणां द्वादशेऽत्र वगर्पणम् ॥४२॥
 अश्वत्थहसित हास्यमुक्तंगजा त्रयोदशे । चतुर्दशे बान्धवैकिना मयजन्मत्रयमीरितम् ॥४३॥

॥ २४ ॥ सप्तमं सर्गम मूर्तियाका दान और देवस्त्रियोंके वरदानका विधान है । अष्टम सर्गम गुणवन्ती और पिंगलाके वरदानका वर्णन है ॥ २५ ॥ नवम सर्गमे कुरुक्षेत्रकी यात्राम जानकीविजयका वर्णन है । बस, यहाँ ही विलासकाण्ड समाप्त हो जाता है ॥ २६ ॥ अब यहाँसे जन्मकाण्डका वर्णन करना है—पहले सर्गमें दोहदक्रीडा तथा दूसरे सर्गमें विविध प्रकारका क्रीडाओं और सीमन्तान्नयन सम्बन्धका विधान है ॥ २७ ॥ तृतीय सर्गमें सीतात्याग तथा चौथे सर्गमें कुश-लवका जन्म-कर्म वर्णित है । पाँचव सर्गमें रामरक्षास्तोत्रका विधान है । छठे सर्गमें लवका कमलदरण और उनकी विजय वर्णित है ॥ २८ ॥ २९ ॥ सप्तम सर्गमें युद्धादिके कौतुकका विधान है और अष्टम सर्गमें सीताकी तपस्यका वर्णन है ॥ ३० ॥ नवम सर्गमें बालकाके जन्म और उपनयनका विधान है । बस, जन्मकाण्ड यहाँ ही समाप्त हो जाता है । अब यहाँसे विवाहकाण्ड प्रारम्भ होता है ॥ ३१ ॥ इसके प्रथम सर्गमें रामके समनकी बातें हैं । दूसरे सर्गमें चम्पिकाके विवाहका वृत्तान्त है । तीसरे सर्गमें मुमतिके विवाहका वर्णन है । चौथे सर्गमें कुश और लवके विवाहकी बातें हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ पञ्चम सर्गमें गन्धर्वों तथा नागोंकी कन्याओंके छुड़ानेका हाल है । षष्ठ सर्गमें इन लोगोंके विवाहकी बात एककी हो जाती है ॥ ३४ ॥ सप्तम सर्गमें सबके विवाहका वर्णन तथा अष्टम सर्गमें युपकेतुके पराक्रमका वर्णन है ॥ ३५ ॥ नवम सर्गमें मदनमुन्दरके विवाहका वृत्तान्त है । बस विवाहकाण्ड यहाँ ही समाप्त हो जाता है । अब राज्यकाण्ड चलता है ॥ ३६ ॥ राज्यकाण्डके प्रथमसर्गमें रामसहस्रनाम तथा दूसरे सर्गमें रामके द्वारा स्वर्गसे कल्पवृक्ष और पाण्डिता नामक वृक्षोंके लानेकी बातें हैं । ३७ ॥ तीसरे सर्गमें रामकृष्णके उपासकोंका सम्वाद, चौथे सर्गमें निद्राके लिए वरदान, पाँचवें सर्गमें सीतारामका वियोग और मूलकामुरका वध, छठे सर्गमें राज्यकार्यका वर्णन है । ३८ ॥ ३९ ॥ सातवें सर्गमें रामके द्वारा भरतस्युद्धकी विजय, आठवें सर्गमें जम्बूद्वीपविजय, नवें सर्गमें रामके अन्य छः द्वीपोंको जीतनेका वृत्तान्त है । दसवें सर्गमें संन्यासी, शूद्र तथा गृध्रकी शिक्षाका वर्णन है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ग्यारहवें सर्गमें रामके

पंचदशे रामराज्यवर्णनं विस्तरान्कृतम् । वर्णिता राजनीतिः श्रीगणेशेणात्र षोडशे ॥४४॥
 सप्तदशेऽत्र कथितं कुशहन्त्याम्वयवम् । अष्टादशे रामनाथपुरं दत्तं द्विजन्मनाम् ॥४५॥
 एकोनविंशे रामस्य दिनचर्यादिना शुभा । राज्ञां विंशेऽवनारं तुल्येऽपि प्रोक्तं सप्तम्य महान् ॥४६॥
 एकविंशे गणवेशे हार्यं दत्तो वरं मुदा । मीनाया तुल्यप्राप्तं द्वाविंशे सधिनं शुभम् ॥४७॥
 त्रयोविंशे स्मृताऽऽनन्दराभायणकलभ्रुविः । चतुर्विंशे श्रवणेश्वरं न भूतले ॥४८॥
 राज्यकाण्डं समाप्तं हि मनोहरमृदीयते । सर्गेऽत्र प्रथमे प्रोक्तं लघुरामायणं शुभम् ॥४९॥
 नागराणां च मातङ्गाण्युपदेशं द्वितीयके । रामपूजापावनविधिस्तत्र तृतीयके ॥५०॥
 रामतोमद्रविस्तारश्चतुर्थे समुदीरितः । रामलिंगतोमद्राणां भेदाः प्रोक्ताश्च पञ्चमे ॥५१॥
 नवमीवर्षविस्तारः षष्ठे प्रोक्ता च तत्कथा श्रीगणेशात्मनां लक्ष्मणोपासनादानि सप्तमे ॥५२॥
 वेदादीनां हि सर्वेषामष्टमे कथयामि नृप । गार्दमामद्राणां पूजा कथिता नवमे विभोः ॥५३॥
 दशमे चैत्रमामस्य महिमा समुदीरिता । एकादशे मञ्जुवर्णनामपर्यायं शनिरीमिता ॥५४॥
 अद्वैतं दशितं राज्ञा द्वादशे प्रोक्तदम्परम् । यागपुत्रस्य रामस्य कवचे द्वे त्रयोदशे ॥५५॥
 मीनायाः कवचादीनां प्रोक्तान्यत्र चतुर्दशे । पंचदशे कवचादि नष्टनृपतां स्मृतानि हि ॥५६॥
 अतः हनुमन्तः प्रोक्तः षष्ठाकाव्ये हि षोडशे । प्रोक्तं सप्तदशे मारगमार्गमनुत्तमम् ॥५७॥
 अष्टादशे शरमेतोः स्वडनं च हनुमता । त्रिंशं मनोहरं काण्डं पूणकाण्डमथोच्यते ॥५८॥
 बाल्मीकिना सोमवंशविस्तारः प्रथमेऽकथितः । रामचन्द्रस्य विज्ञानं द्वितीये हस्तिनापुरम् ॥५९॥
 सूर्यसोमवंशजयोर्पुण्ड्रं प्रोक्तं तृतीयके । सोमपुत्रवंशजयोर्विंशिका च चतुर्थके ॥६०॥
 कुशादीनां च वंशेऽत्र पञ्चमेऽत्र विमर्जनम् । वैकुण्ठावतारं षष्ठे गङ्गायां गव्यरूपे च ॥६१॥
 सप्तमे सूर्यवंशावतारानां वर्णनं कृतम् । अनुक्रमणिकामगोः प्रोक्तोऽष्टमष्टमो महान् ॥६२॥

द्वाग बार स्थितोका वरदानप्राप्ति, बारहवें सर्गमें सोलह स्थितोका वरदान पानेका वृत्तांत, नवद्वे सर्गमें पापलके
 भूलकी हैसी, बीसद्वेमें बाल्मीकिने तीन जन्मका वृत्तांत है ॥ ६०॥ ४३॥ पन्द्रहवें सर्गमें रामर गान्यका सविस्तर
 वर्णन और सोलहवें सर्गमें रामकी कही राजनीतिका चर्चा है ॥ ४८॥ गणेश्वर सर्गमें कुशका कथनका स्वयम्बर,
 अठारहवें सर्गमें मातङ्गोके लिए रामनाथपुरके राज्यका दान ॥ ४५॥ अतः सब सर्गमें रामका दिनचर्या और बीसवें
 सर्गमें सब अवतारोमें रामावतारकी श्रेष्ठता कही गयी है ॥ ४६॥ दशमसर्व सर्गमें शरीर किं ग रामका वरदान,
 अर्धसर्व सर्गमें सोता द्वारा दूट तुलसीपत्रकी पुत जोड़नेकी कथा है । नवमव सर्गमें अ नन्दराभायणका श्रवणफल,
 चौबीसवें सर्गमें यमका शिखा एवं छर्मगिन्नाका वर्णन है ॥ ४७॥ ४८॥ बस, राज्यकाण्ड यहाँ ही समाप्त
 हो जाता है । अब मनोहरका प्रारम्भ होता है । इसके पहलें सर्गमें लघुरामायण, दूसरे सर्गमें नगरवासियों
 तथा माताओंके लिए उपदेशदान, तीसरे सर्गमें रामपूजा और उपासनाका सविस्तर वर्णन है ॥ ४६॥
 ॥ ५०॥ चौथे सर्गमें रामतोमद्रका विस्तार, पाँचवें सर्गमें रामलिंगतोमद्रका विस्तार, छठे सर्गमें नवमीवर्षका
 विस्तार, सातवें सर्गमें लक्ष रामनामजपका उद्घापन है ॥ ५१॥ ५२॥ आठवें सर्गमें वैदर्भके गुनतका फल और
 नवें सर्गमें द्वाई महीने तक रामके पूजनका विधान है ॥ ५३॥ दसवें सर्गमें चैत्रमाममें पूजन करनेकी
 महिमा, ग्यारहवें सर्गमें चैत्रस्नानसे सबको सद्गति पानेका उपाय और बारहवें सर्गमें रामन बह्वनसां स्थितोको
 अद्वैत पदकी वचन स्तुति है । बारहवें सर्गमें राम तथा हनुमान्कोका कवच और चौदहवें सर्गमें मात के कवच
 आदिका वर्णन है । पन्द्रहवें सर्गमें रामका आनाआग कवच आदिका वर्णन है ॥ ४४-५६॥ सोलहवें सर्गमें
 हनुमान्का पताकारोपणव्रत है । सत्रहवें सर्गमें साररामायण कहा गया है । अठारहवें सर्गमें हनुमान्का द्वारा
 अर्जुनके बनाये शरसेनुका स्वडन वर्णित है । बस, मनोहरका यहाँ ही समाप्त हो जाता है । अब पूर्णकाण्डके
 विषय गिनाते हैं ॥ ५७॥ ५८॥ पूणकाण्डके प्रथम सर्गमें सोमवंशी राजाओंका वंशावली, दूसरे सर्गमें रामचन्द्रजो-
 की हस्तिनापुरके लिए यात्रा ॥ ५९॥ तामरे सर्गमें सूर्य और सोमवंशी राजाओंका युद्ध और चौथे सर्गमें सोम-

ग्रंथश्रुतिकलादीनि नवमे कीर्तितानि हि । नवमं पूर्णकाण्डं सम्पूर्णं नवमं त्विदम् ॥६३॥
 अनुक्रमणिका चेयं मया शिष्य प्रवर्णिता । अस्याः श्रवणमात्रेण रामायणश्रुतेः फलम् ॥६४॥
 रामायणपुस्तकस्य नित्यं कार्यं प्रपूजनम् । विशेषं पूजनस्यापि शृणु शिष्य वदामि ते । ॥६५॥
 सारकाण्ड विमोः स्थाने लक्ष्मणाये द्विर्नायकः । नवः सारकाण्डेऽथ दोषाणि श्यापयेत् क्रमात् ॥६६॥
 सप्त काण्डानि विधिवत्तेषां पूजनमाचरेत् । अथवा राज्यकाण्डस्य पूर्वार्धं राममस्थले ॥६७॥
 राज्यकाण्डस्योत्तरार्धं सीतास्थाने निवेशयेत् । लक्ष्मणाये मरकाण्डं दीपाण्यग्रे क्रमेण तु ॥६८॥
 एवं संस्थाप्य काण्डानि तेषां पूजनमाचरेत् । नवायतनपूजायाः फलमेतेन कीर्तितम् ॥६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितातर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे

अनुक्रमणिकावर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(ग्रन्थकी फलश्रुति)

श्रीरामचन्द्र उवाच

मारं यात्रा च यागाख्य विलासाख्यं तु जन्मसुखं । विवाहाख्यं हि राज्याख्यं श्रीमनोहरपूर्णके ॥१॥

काण्डान्यनुक्रमेण आनन्दरामायणे नव । अष्टादश सारकाण्डे सप्त । बाल्मीकितेति ॥२॥

यात्राकाण्डे नव श्रेया यागकाण्डेऽपि वै नव । नव श्रेया विलासाख्ये जन्मकाण्डेऽपि वै नव ॥३॥

नव श्रेया विवाहाख्ये चतुर्विंशत्ये राज्यके । मनोहराख्ये सातव्याः सर्गा अष्टादशात्र वै ॥४॥

पूर्णकाण्डे नव श्रेयाः सर्गाः पापहरा नृणाम् । एवं नवोत्तरशतं १०९ सर्गा श्रेयाः शुभावहा ॥५॥

वंशों और सूर्यवंशी राजाओंकी मित्रताका वर्णन है ॥ ६० ॥ पाँचवें सर्गमें रामचन्द्रजीके द्वारा कुश आदिके विसर्जनको कथा है । छठें सर्गमें गङ्गाजी के तटपर रामका परमवामयात्राका वर्णन है ॥ ६१ ॥ सातवें सर्गमें सूर्यवंशों राजाओंका वर्णन है और आठवें सर्गमें आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका बतलायी गयी है ॥ ६२ ॥ नवें सर्गमें आनन्दरामायणके श्रवणका फल आदि वर्णित है । वस्तु, पूर्णकाण्ड यहीं समाप्त हो जाता है । हे शिष्य ! इस प्रकार मैंने तुमको समस्त आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका बता दी । इस अनुक्रमणिकामात्रके सुननेसे समस्त रामायण सुननेका फल प्राप्त हो जाता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ भक्तोंकी चाहिए कि नित्य इस रामायणका पूजन करें । अब इसको पूजाम जो विशेषतार्थ है उन्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥ ६५ ॥ सारकाण्डको भगवान् रामचन्द्रजी, दूसरे काण्डकी लक्ष्मण तथा तीसरे काण्डकी सीता समझकर स्थापित करें । इस तरह सात काण्डोंमें क्रमशः नवायतनों स्थापना करके पूजन करें अथवा राज्यकाण्डके पूर्वार्धभागको रामके स्थानमें तथा उत्तरार्धको साताके स्थानमें स्थापित करके पूजन करना चाहिए और सारकाण्डकी लक्ष्मणकी जगहपर स्थापित करके पूजन करें । इसी तरह शेष काण्डोंकी क्रमशः भरत आदिके स्थानमें स्थापित करके पूजन करना चाहिए । इस तरह इस रामायणकी पूजा करनेसे रामनवायतन-पूजनका फल प्राप्त होता है ॥ ६६-६९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितातर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये १० रामतेजपाण्डेयकृत-ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा-हे शिष्य ! सार, यात्रा, याग, विलास, जन्म, विवाह, राज्य, मनोहर तथा पूर्णकाण्ड ये ही इस रामायणके नौ काण्ड हैं । सारकाण्डमें वाल्मीकिजीने तरह सर्ग, यात्राकाण्डमें नौ सर्ग, जन्मकाण्डमें नौ सर्ग, विवाहकाण्डमें नौ सर्ग, राज्यकाण्डमें चौबीस सर्ग, मनोहरकाण्डमें अठारह सर्ग और पूर्णकाण्डमें पापोंको हरण करनेवाले कुल नौ सर्ग हैं । इस तरह इस आनन्दरामायणमें कुल मिलाकर एक सौ नौ (१०९) सर्ग हैं ॥ १-५ ॥

सारकाण्डे पंचविंशच्छतं श्लोकाः सत्रिंशकाः । यात्राकाण्डे सप्तशतं पञ्चविंशच्छतं स्मृताः ॥ ६ ॥
 यागकाण्डे षट्शतं च पंचविंशच्छतं शुभाः । विद्याकाण्डे षट्शतं च सप्तशतं सम्मृताः ॥ ७ ॥
 जन्मकाण्डे द्वाविंशतिः सट्श्लोकाः प्रकीर्तिताः । विवाहाण्डे पञ्चशतं कीर्तिताः सप्तशतयः ॥ ८ ॥
 सद्वाविंशतिः राज्यकाण्डे सुषट्विंशच्छतं स्मृताः । एकविंशच्छतं श्लोकाः प्रोक्ताः काण्डे मनोहरे ॥ ९ ॥
 पूर्णकाण्डे पञ्चशतं सप्तममतिमिश्रिताः । आनन्दरामचरिते सप्तसप्तति हि द्वादश ॥ १० ॥
 द्वे शते च द्विपञ्चाशच्छ्लोकाः शेषा मनीषिभिः । एव शिष्य मया प्रोक्त यथा पृष्ट त्वया पुरा ॥ ११ ॥
 रामस्य तोषचरितं श्रवणात्पातकापहम् । पूर्णकाण्डमिदं शेषं श्रवणान्पुण्यवर्धनम् ॥ १२ ॥
 सारकाण्डश्रवादेव संसारान्मुच्यते नरः । यात्राकाण्डेन यात्राणां लभ्यते मानवैः फलम् ॥ १३ ॥
 यागकाण्डेन यज्ञानां लभ्यते फलमुत्तमम् । विलासकाण्डश्रवणादप्यसरोभिर्विमोदते ॥ १४ ॥
 जन्मकाण्डेन प्राप्नोति नरः पुत्रादिमन्तनिम् । विवाहकाण्डश्रवणाद्रम्या स्त्री लभ्यते भुवि ॥ १५ ॥
 राज्यकाण्डेन राज्यं हि मानवैर्भुवि लभ्यते । काण्डं मनोहरं श्रुत्वा लभ्यते मानसेप्सितम् ॥ १६ ॥
 पूर्णकाण्डश्रवादेव विष्णोः पूणपदं लभेत् । सर्वं विष्णुस्तः श्रुत्वाऽऽनन्दरामायणं त्विदम् ॥ १७ ॥
 सच्चिदानन्दरूपं ममो नो भवति मायम् । गणायणं नरैः श्रुत्वा कायमुद्यापनं नरैः ॥ १८ ॥
 रामायणे श्रुते दद्याद्रथं देवमयं सुधाः । चतुर्णां जिभित्तुं नद्या क्षीमस्ताकया ॥ १९ ॥
 यत्रैश्वर्यं समागुक्तं किंकिपादिनादि न । मरुतैरेष्य सप्तम्यं धेनु दद्यान्पथास्त्रनीम् ॥ २० ॥
 ब्राह्मणान्भोजयेन्नाद्या लामदानं सुधाः । अथ कृत्वा धनं तु नदाज्यं फलपदम् ॥ २१ ॥
 रामायणं भवन्तुं नाशं कया विचार्या । यस्मिन्समयं सप्तमं रामायणमथाच्यते ॥ २२ ॥
 नरः प्रातः सप्तम्याऽनन्दरामायणं पठेत् । यः स कामानवाप्नोति तत्फलं दिवि दुर्लभम् ॥ २३ ॥

सारकाण्डमें २५३० श्लोक, यात्राकाण्डमें ७२५ श्लोक, यागकाण्डमें ६२५ श्लोक, विलासकाण्डमें ६७५ श्लोक, जन्मकाण्डमें ८०२ श्लोक, विवाहकाण्डमें ५६३ श्लोक ॥ ५-८ ॥ राज्यकाण्डमें २६०२ श्लोक, मनोहरकाण्डमें ३१०० श्लोक और पूर्णकाण्डमें ५७७ श्लोक हैं । इस आनन्दरामायणमें कुल मिलाकर १२३५२ श्लोक हैं ॥ ९ ॥ हे शिष्य ! तुमने हमसे जम पूछा, मैंने रामचन्द्रजीका प्रसन्न करने और पापीका नष्ट करनेवाले रामचरितकी कह नूनाया । यह पूणकाण्ड पुण्यका बड़ागा है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ सारकाण्डके सुननेसे प्राणी इस संसारसे मुक्त हो जाता है । यात्राकाण्डका श्रवण करनेसे प्राणी सब तार्थोंका यात्राका पुण्य प्राप्त करता है ॥ १३ ॥ यागकाण्डके सुननेसे प्राणी यज्ञोंके करनेका फल पाता है और विलासकाण्डके सुननेसे स्वर्गकी अप्सराओंके साथ आनन्द करता है ॥ १४ ॥ जन्मकाण्डका श्रवण करनेसे प्राणी संसार पाता है और विवाहकाण्ड सुननेसे सुन्दर स्त्री मिलता है ॥ १५ ॥ राज्यकाण्डके सुननेसे संसारका राज्य प्राप्त होता है, मनोहरकाण्डको सुननेसे अपनी इच्छित कामना पूर्ण होती है और इन पूणकाण्डको सुननेसे प्राणी सक्षात् विष्णुभगवान्का पूणपद पाता है । जो प्राणी सप्तमं आनन्दरामायण सुन लेता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ वह सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान्में लीन हो जाता है । जो लोग यह रामायण सुने, उन्हें इसका उद्यापन भी करना चाहिए ॥ १८ ॥ रामायण सुन लेनेके बाद श्रीता सुनानेवालेकी एक ऐसा स्वर्णरथ दे, जिसमें चार घोड़े जुन हो और ऊपर रेशमी पताका फहरा रहो हो ॥ १९ ॥ उसमें विविध प्रकारके यन्त्र लगे हों और किंकिपादिका मीठी गन्धि निकल रही हो । इसके बाद एक दुवार गौ दे ॥ २० ॥ इसके पश्चात् १०८ ब्राह्मणोंका भोजन कराये । ऐसा करनेपर यह महाकाव्य पूर्ण फलदायी होता है । इसमें कितो प्रकारका सद्गुण न करना चाहिए । जिसमें भगवान्का निवास हो, उसे "रामायण" कहत हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ जो प्राणी सबरे उठकर इस आनन्दरायणका पाठ करता है वो देवताओंकी भी दुर्लभ उसका कामनाय पूर्ण होता है ॥ २३ ॥ चैत्र शुक्ल नवमाका रामजन्मके अवसर-

चैत्रमासे त्रिंशे पक्षे चतुर्थ्यां रामायणम् । शतमपसुवर्णं वायुपुत्रं त्रिधा च ॥२४॥
 एकविंशति मर्पैर्न त्रयं शक्यं दद्यात् नरः । वायुपुत्रं सचित्रं आनन्दरामायणं त्रिदश ॥२५॥
 मौल्यद्वारा लिखितं तन्मूर्तिर्यदि कदा ना भवहस्ततः । तद्दत्ताय त्रयं यथैषिण सुविशोधितम् ॥२६॥
 वेष्टितं पट्टनूत्यार्घ्येन नमोऽर्प्यं पुस्तकं शुभम् । शक्यं आमाहूते रूपं पूजितं दक्षणाभिरतम् ॥२७॥
 मन्वाहं ब्राह्मणं पूज्यं नानाशस्त्रैश्चरदन् । तस्मै देयं पुस्तकं तद्वायुपुत्रममन्वितम् ॥२८॥
 एवं यः कुरुते दानं तस्य पुण्यं वदाम्यहम् । कटिभारमुत्तर्णस्य कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥२९॥
 दानेन पुण्यं यन्वक्तुं तस्मादेच्छता विद्वन् । अक्षय्यं यत्र यावन्ति सति आनन्दमञ्जके ॥३०॥
 तावद्युगमहन्वाजे वैकुण्ठे मन्दनं नरः । भजनं यत्कुरुते प्रसन्नोऽयं वेदपारमः ॥३१॥
 रम्यं पवित्रं आनन्ददायकं च मनोहरम् । आनन्दमञ्जकं रामचरितं पुण्यवर्द्धनम् ॥३२॥
 रामायणमिदं येऽत्र भक्त्या शृण्वन् मानवाः । पुनः पुनः सुहृद्भिश्च न विद्यां लभन्ति ते ॥३३॥
 रामायणमिदं येऽत्र भक्त्या शृण्वन् मानवाः । तत्रास्मात्परागाऽत्र न कदापि हि जायते ॥३४॥
 आनन्दमञ्जकं पुण्यं वाः शृण्वन् यथैषिणः । स्वर्गं च भवयागं ता न गच्छन्ति यथा समा ॥३५॥
 ग्रामं देशान्तरं तार्यं न गताश्च चिरं नराः । तत्र मागन्तार्यं हि पठनायमिदं सदा ॥३६॥
 येषां भार्या न कदापि लब्धुं शक्यते मनः । आनन्दमञ्जकं तस्तु पठनीयं प्रयत्नतः ॥३७॥
 प्रथमे दिने काण्डानि कुरुते । पठेत्तुम् । नवमे च द्वादशमे च द्वादशमे दिने पठेत् ॥३८॥
 एवं कुरुते काण्डानि द्वादशानि । नवमे च द्वादशमे च द्वादशमे दिने सम्पठेन्नरः ॥३९॥
 अष्ट काण्डानि दशमं क्षयस्त्रकेन च कुरुते । ततश्चादित्यस्तमे तुष्टानामिदं महत् ॥४०॥
 अथवा क्रमणं काण्डानि प्रथमं प्रथमं पठेत् । द्वादशमे च द्वादशमे च नवमे दिने ॥४१॥
 दशमं दशमं प्रोक्तं क्षयः कार्यः क्षयणं हि । ततश्च द्वादशमे दिने तुष्टानामिदं सुखायहम् ॥४२॥

पर सी मास हनुमान्जीकी मूर्ति बनवाकर, उसके अगले उस इक्कास मास अथवा जैसा अपना कालि हो, उसके अनुसार मन्त्रकी भूति बनवाना चाहिये । इसका जननपर लेख है इकर या अपन हायस यह ग्रन्थ लिखकर इसमें त्रिविध प्रकारक चित्र बनाय और अच्छा तरह सजावन कर । फिर दक्षिणाक साथ इस रामायणको रमणा कपडक दुकड़म बांधकर हनुमान्जीक काथपर रख ॥२४-२५॥ फिर रायहूके समय इसका कथा कहने-वाल त्रिविध शस्त्राक जता ब्रह्मण्य पूजा कर । उस अच्छ-अच्छ करड पहनाय और वह हनुमान्जीकी प्रतिमा तथा पुस्तक उस ब्रह्मण्यका दान दे ॥ २६ ॥ इस तरह दान करनेका जो फल होता है, वह मे तुमका बतलाता हूँ । सूरप्रहण लगनपर कुरुक्षेत्रम एक कराडभार सुवर्ण न करनस जो फल प्राप्त होता है उसमें सक्डो-गुना अधिक फल इस प्रकार आनन्दरामायणका दान करनेसे प्राप्त होता है । ऐसा करनेपर इस आनन्दरामायणम जितने अक्षर है, उतने हजार पुण्य नक प्राणा वैकुण्ठ लक्ष्मी आनन्द करता है । इसका बाद सात जन्म तक विप्रक घरम उसका जन्म होता है और इसका वर देव एक करण नामा ब्राह्मण होता है ॥ २६-३१ ॥ यह आनन्दरामायण पवित्र ग्रन्थ, मनाहरे एवं पुण्य अक्षर जो नाम इसका श्रवण करता है, वे अपन पुत्र भोज तथा मित्रास कथा भा विपुक्त नही होता ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जो इस रामायणका भक्तिपूरक सुनते है वे अपनी स्त्रियोस कथा भा विपुक्त नही होता । जो स्वामी इस नाम पका श्रवण करता है, वे लक्ष्मीका तरह सुखी रहता हुई कथा भा अपन अवन शतस विपुक्त नही होता ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ यदि किसी घरवाले किसी गाँव, देश-स्तर अथवा तार्थयात्राका गय हो तो उन्हे दुःखयन्त्र मोड़नेके लिए इस आनन्दरामायणका पाठ करना चाहिए ॥ ३६ ॥ जिनका अपन किसी आवा क रका विपय बन्ता हो और उस शत्रु पूर्ण करना चाहत हो तो वे प्रयत्नपूर्वक इस आनन्दरामायणका पाठ करे ॥ ३७ ॥ एक रोज बचए एक कांड, दूसरे रोज पहला और दूसरा दान दस कांडाका पाठ करे । तिसरे दिन पहला, दूसरा और तिसरा दान ताना काण्डाका, इस क्रमसे बढ़ाता हुआ नव रोज नवा काण्डाका पाठ करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ फिर आठव रोज आठ कांड, सातवें दिन

अथवा पृथक् काण्डेषु सर्गवृद्धिभयः कृतान् । एवमेकदिनानुष्ठानसमाप्त्यधरेद्वयम् ॥४३॥
 अथवा प्रथमे सर्वस्त्वेष एव पठेन्नरः । तौ नरौ च द्वितीयेऽहि वृद्धिस्त्वेष क्रमेण हि ॥४४॥
 नवोत्तरयते प्राप्ते दिने कृतान् निवर्त पठेत् । पुनः त्रयेऽनुक्रमनस्तत्र सप्तदिनोत्तरैः ॥४५॥
 सप्तमासैरनुष्ठानं ज्ञेयं कार्यकमाधरात् । अथवा प्रथमे चाहि सर्गं प्राथमिकं पठेत् ॥४६॥
 द्वितीयेऽहि द्वितीयश्च तृतीयेऽहि तृतीयकम् । नवोत्तरयते प्राप्ते दिने च चरमं पठेत् ॥४७॥
 दशोत्तरयते प्राप्ते दशोत्तरयताभिधम् । पठेन्नरं क्रमेणैव शिष्य सप्तदिनोत्तरैः ॥४८॥
 सप्तमासैरनुष्ठानं ज्ञेयं साधारणं नृणाम् । पञ्चानुष्ठानभेदाश्च मयैव परिकीर्तिताः ॥४९॥
 अनुष्ठानसमाप्तौ हि होमः कार्यो यथाविधि । पृथक् श्लोकं पमुच्यार्थं स्वाहान्तं पायसः फलैः ॥५०॥
 नवाग्नेनाथवा कार्यो होमो द्वितरैः सह । ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र अनुष्ठानदिनमितान् ॥५१॥
 एतत्प्रातः समुत्थायानन्दसमायणं क्षुपम् । ये पठन्ति तदा शयन्याये सुखं प्राप्नुवन्ति हि ॥५२॥
 द्वादशपामपि चैतद्वै पठतीत्यं प्रयत्नतः । पारायणं नवदिनैः कायन्त्यस्य सुखावहम् ॥५३॥
 काण्डं सर्गोऽथवा श्लोकस्त्वानन्दारवमयं प्रत्यहम् । न नरः कदापि त्यक्तं तेषां जन्म निरर्थकम् ॥५४॥
 पुत्रार्थं रतिशालायां धृणोति पृथुः स्त्रिया । निवायां वातान्द्रोऽपुत्री पुत्रप्राप्तयुयात् ॥५५॥
 नवराशिषु ब्रीहीणां ध्यात्वा कार्यं तु विन्दसेत् । पूर्वाफलानि चत्वारि पूर्वण काण्डमुच्यते ॥५६॥
 द्वितीयेन हि सर्गस्तु तृतीयेन फलेन हि । दशमोऽस्य च विज्ञेयश्चतुर्थेन फलेन च ॥५७॥
 श्लोको ज्ञेयः पूर्वाशेषः सर्वेषां गणने रता । सर्वत्रात्येन श्लोकैः विपर्यितं फलं स्मृतम् ॥५८॥
 एवं सर्वैर्दर्शनीयः शङ्कनश्च शुभोऽशुभः । एवं शिष्य स्वर्गा यद्यत्पृष्टं तत्तन्मयोदितम् ॥५९॥

सात काण्ड, छठे दिन छ काण्ड इस क्रमसे पढ़ता हुआ सप्तह दिनमें यह अनुष्ठान पूर्ण करे । वैसा न कर सके तो पहले रोज पहला, दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा, इस क्रमसे नौ रोजमें नौ काण्ड समाप्त करे । फिर दसवें रोज आठवाँ काण्ड, बारहवें रोज सातवाँ काण्ड, इस क्रमसे घटता हुआ सप्तह दिनोंमें यह अनुष्ठान पूर्ण करे ॥ ४०-४२ ॥ अथवा प्रत्येक काण्डमें सर्गवृद्धिके क्रमसे पाठ करता हुआ सात महीनेमें अनुष्ठान पूर्ण करे ॥ ४३ ॥ ऐसा भी न कर सके तो पहले रोज पहला सर्ग, दूसरे दिन दूसरा सर्ग, तीसरे दिन तीसरा सर्ग, इस क्रमसे एक सौ ती दिनोंमें पूर्ण करके फिर उसी क्रमसे पढ़ाये । इस अनुष्ठानमें भी सात हो महीनेका समय लगता है । इस अनुष्ठानको करनेसे एक कार्यकी सिद्धि हो सकती है । अथवा पहले रोज पहला सर्ग, दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा, इस क्रमसे पाठ करता हुआ एक सौ नवें दिन अन्तिम सर्गका पाठ करे ॥ ४४-४७ ॥ फिर एक सौ दसवें दिन एक सौ आठवाँ सर्ग, एक सौ ग्यारहवें दिन एक सौ सातवाँ सर्ग, इस क्रमसे पाठ करता हुआ सात महीनेमें इसे समाप्त करे । इस तरह मैंने अनुष्ठानके पाँच भेद बताये । अनुष्ठान समाप्त हो जानेपर विधिबन् हवन करना चाहिए । होम करते समय ब्राह्मणोंके साथ बैठकर आनन्दरामायणके एक-एक श्लोकका उच्चारण करता हुआ खीर, फल अथवा नवे अन्तरे हवन करें । हवन हो जानेपर जितने दिनोंका अनुष्ठान किया हो, उतने ब्राह्मणोंको भोजन कराये ॥ ४८-५१ ॥ जो लोग सबेरे उठकर इस रामायणका पाठ करते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं । द्वादशीको तो अवश्य इसका पाठ करना चाहिए । नौ दिनोंमें इसका सुखावह पारायण पूर्ण करना चाहिए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जो लोग इस रामायणके एक काण्ड, एक सर्ग अथवा एक श्लोकका भी पाठ नहीं करते, उनका जन्म निरर्थक है ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य अपनी स्त्रीके साथ रतिशालामें पुत्रप्राप्तिके लिए इस रामायणका श्रवण करता है, वह यदि पुत्रविहीन हो तो अवश्य पुत्र प्राप्त करता है ॥ ५५ ॥ अब प्रश्नकी रीति बताते हैं । अन्नकी नौ राशियें बनाकर अपने कार्यका ध्यान करे । इससे बाद चारों दिशाओंमें चार पूगीफल (सुपारी) रखे । पहली सुपारीमें काण्ड, दूसरीमें सर्ग, तीसरीमें दशक तथा चौथी सुपारीमें श्लोकका स्थापन करे । पूर्वकी राशिसे सबकी गणना करनी चाहिए । सब जगह जो अन्तिम श्लोक निकले, उससे विपरीत फल होता है ॥ ५६-५८ ॥ अथ

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं नवोत्तरं सर्गगतं मयैरितम् ।
 कांडानि यस्मिन्नथ कीर्तितानि ते हे विष्णुदासाग्रहरं मनोहरम् ॥६०॥
 दिने दिने पापत्रयान्मर्कुर्नरः पठेत् श्लोकमपीह भक्त्या ।
 विमुक्तसर्वापचयः प्रयाति रामस्य सालोक्यमनन्यलभ्यम् ॥६१॥
 आनन्दरामायणमेतदुत्तमं ये रामदासस्य मुखेन कीर्तितम् ।
 श्रीराघवेणैव जनाघनाशनं नानाचरित्रैर्वैरकौतुकैर्युतम् ॥६२॥
 धन्यः स वाल्मीकिमुनिः कवीश्वरो रामायणं वै शतकोटिमपितम् ।
 कृतं पुरा येन सविस्तरं शुभं यस्माच्च सारं कथितं मया तव ॥६३॥
 आनन्दरामायणमेतदुत्तमं श्रीजानकीक्रीडनकौतुकैर्युतम् ।
 शृण्वन्ति गायन्ति वदन्ति वाऽपराङ्मुखेन्ये परायणमादराच्च ये ॥६४॥
 लभन्ति पृथगन्तिबुद्धिमत्तरान्स्त्रीश्चापि पौत्रान्परगान्मनोहरान् ।
 धनानि धान्यानि पशूश्च प्रायसाः श्रीरामचन्द्रस्य पदं प्रयांति ते ॥६५॥
 आनन्दसंज्ञं पठत्यथ नित्यं श्रोतुश्च भक्त्या लिखितुश्च रामः ।
 अतिप्रसन्नश्च सदा समीपे सीतासमेतः श्रियमातनोति ॥६६॥
 आनन्दरामायणजह्नुवीर्यं पापपहंत्री मलिनस्य अंतोः ।
 आनन्दरामायणकामधेनुस्त्वयं जनानामतिकामदोग्ध्री ॥६७॥
 रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यं ब्रह्मादिभिः सुखैरपि संस्तुतं च ।
 श्रद्धान्वितः पठति शृणुयात्स नित्यं विष्णोः प्रयाति सदनं स विशुद्धदेहः ॥६८॥
 नवोच्चारणैः सर्गे रामकीर्तनमालिकाम् । कृत्वा कण्ठे सुखं तिष्ठ शिष्येमां त्वं मयोदितम् ॥६९॥

श्रीशिव उवाच

आनन्दरामचरितमिदं स्वीयगुरोर्मुखात् । श्रुत्वा स विष्णुदासस्तं ननामार्च्य पुनः पुनः ॥७०॥

प्रकार लोगोंको चाहिए कि शुभाशुभ फल जानना हो तो इस शकुनसे जान लें । हे शिष्य ! तुमने हमसे जो कुछ पूछा, वह मैंने बतलाया ॥ ५९ ॥ इस तरह हमने तुमको एक सौ नौ सर्गोंवाली यह उत्तम रामायण सुनायी । इसमें समस्त पापोंको हरनेवाले नौ बांड कहे गये हैं ॥ ६० ॥ दिनों दिन पाप करनेवाला मनुष्य भी यदि इस रामायणके एक श्लोकका भी पाठ करता है तो उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह रामके चरणोंकी सालोक्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥ ६१ ॥ इस आनन्दरामायणको श्रीरामदासने सुनाया है, जिसमें रामचन्द्रजीकी अनेक कौतुकमयी कथाएँ वर्णित हैं ॥ ६२ ॥ कवीश्वर वाल्मीकि ऋषि धन्य हैं कि जिन्होंने ती करोड़ श्लोकोंमें विस्तारपूर्वक रामचरितका वर्णन किया है । उसीका सारांश मैंने तुम्हें सुनाया है ॥ ६३ ॥ जो लोग श्रीसीताजीकी क्रीडाओंसे युक्त इस आनन्दरामायणका सादर श्रवण और गायन करते अथवा औरोंको सुनाते हैं, वे बड़े बुद्धिमान् लोग पुत्र, स्त्री, विशाल वैभव, अन्न तथा उत्तम पशुओंको प्राप्त करते हैं और अन्तमें रामचन्द्रजीके चरणोंको प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ जो प्राणी नित्य इस आनन्दरामायणका पाठ करते, सुनते अथवा लिखते हैं । उनपर रामचन्द्र परम प्रसन्न होकर सीताके साथ उनके हृदयमें विराजमान रहते हुए सब तरहसे उनका कल्याण करते हैं ॥ ६६ ॥ यह आनन्दरामायणरूपिणी गङ्गा पापियोंके समस्त पाप हरती है और आनन्दरामायणरूपिणी यह कामधेनु मत्तोंकी सब कामना पूर्ण करती है ॥ ६७ ॥ यह आनन्दरामायण अति मनोहर और ब्रह्मादि देवताओंसे भी संस्तुत है । जो श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे लोग विशुद्धकाम होकर अन्तमें विष्णुभगवान्के लोकको पाते हैं । हे शिष्य ! एक सौ नौ सर्गोंवाली इस रामकीर्तनरूपिणी मालाको धारण करके तुम जहाँ चाहो, सुखसे रहो ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ श्रीशिवजी बोले—अपने गुरु श्रीरामदासके मुखसे इस

रामदासः स्वशिष्यायानन्दरामायणं प्रिये । एवमुक्त्वा मुनिः संध्यां कर्तुं गोदां गमिष्यति ॥७१॥
 एवं देवि तवाग्रेऽथ मयाऽपि परिकीर्तितम् । आनन्दरामचरितं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥७२॥
 रामकीर्तनमालायां मेरुस्थाने स्वयं महान् । सर्गो मया ते कथितः श्रवणान्मंगलप्रदः ॥७३॥

श्रीपार्वत्युवाच

यदा वाल्मीकिना देव कृतं रामायणं वरम् । तदा क रामदासः स संवादोऽभिस्त्वयाऽकथि ॥७४॥
 क तदा विष्णुदासोऽपि संशयो मेऽत्र जायते ।

श्रीशिव उवाच

त्रिकालया ज्ञानदृष्ट्या मुनिनाऽत्र कथान्तरे ॥७५॥
 उभयोर्भाविसंवादः सोऽपि पूर्वं प्रवर्णितः । यथा रामस्य चरितं रामान्पूर्वं प्रवर्णितम् ॥७६॥
 मंदेहोऽत्र स्वया नैव कार्यः पर्वतकन्यके । रामदासमुखेनैतद्राघवर्णनं वर्णितम् ॥७७॥

आनन्दरामायणमादरेण श्रीरामचन्द्रेण मुनेर्मुखेन ।
 तद्रामदासस्य मुदेव चोक्तं भक्तिप्रदं मुक्तिदमेतदत्र ॥७८॥
 आनन्दरामायणमादरेण पुत्रे प्रजाते पठनीयमेतत् ।
 विवाहकाले व्रतवन्धकाले श्राद्धे पठेत्पर्वणि मंगले च ॥७९॥
 आनन्दरामायणमादरेण कारागृहस्थस्य विमुक्तये च ।
 उत्पातशान्तिं भयनाशनाय प्रभोः कृपार्थं पठनीयमादरात् ॥८०॥
 आनन्दरामायणमादरेण शृणोति वा श्रावयते च भक्त्या ।
 स स्वीयकामनाखिलानवाप्स्य वैकुण्ठलोकं खलु गच्छति स्वैः ॥८१॥
 आनन्दरामायणतोऽधिकानि न संति तीर्थानि हरेः स्थलानि ।
 क्षेत्राणि दानान्यपि पुण्यदानि तथा पुणान्यथ कीर्तनानि ॥८२॥

प्रकार आनन्दरामायणको सुननेके बाद विष्णुदासने इस ग्रन्थका पूजन करके बारम्बार प्रणाम किया ॥७०॥
 हे प्रिये ! रामदास अपने शिष्यको यह आनन्दरामायण सुनाकर सन्ध्या करनेके लिए गोदावरीके तटपर
 चले गये ॥ ७१ ॥ हे देवि ! जिस तरह रामदासने अपने शिष्यको यह आनन्दरामायण सुनायी थी । उसी
 तरह मैंने भी पुण्यवद्धक इस उत्तम रामचरित्रका वर्णन कर दिया है ॥ ७२ ॥ रामके गुणोंका मान करने-
 वाली अनेक ग्रंथमालायें हैं । उनमें यह आनन्दरामायण सुमेरुके समान विराजमान है । इस रामायणमें भी
 ओ सर्गोंकी माला है, उसमें यह सर्ग सुमेरुकी तरह है । इसका धरण करनेसे सर्वथा मङ्गल होता है ॥ ७३ ॥
 श्रीपार्वतीजीने कहा—हे देव ! जब श्रीवाल्मीकिजीने यह रामायण बनायी थी, तब रामदास और विष्णुदास
 कहाँ थे ? जिनका संवाद आपने मुझे सुनाया । यह मेरे हृदयमें एक महान् संदेह उत्पन्न हो गया है । श्रीशिवजी
 बोले—हे पार्वती ! वाल्मीकिजीने अपनी त्रिकालदर्शिता दृष्टिसे इस भावों संवादको पहले ही जान लिया था ।
 इसी कारण संवाद होनेके पहले ही उसका वर्णन कर दिया । जैसे उन्होंने रामजन्मसे पहले रामायण लिख दी
 थी । हे पर्वतकन्यके ! तुम इस विषयमें किसी प्रकारका संदेह न करो । रामदासके मुखसे साक्षात् रामचन्द्रजीने
 स्वयं इस चरित्रका वर्णन किया है । उन मुनिके मुखसे स्वयं रामचन्द्रजीने आदरपूर्वक इस रामायणको कहा है ।
 इसीलिए यह इस संसारमें भुक्ति और मुक्ति देनेवाली वस्तु बन गयी है ॥ ७४-७८ ॥ लोगोंको चाहिए कि पृथ
 होनेपर, विवाहमें, यज्ञोपवीतमें, श्राद्धमें तथा किसी मङ्गलसव कार्यके समय आनन्दरामायणका पाठ अवश्य करें
 ॥ ७९ ॥ यदि कोई मनुष्य कारागारमें हो और उसे छुड़ानेकी आवश्यकता आ पड़े अथवा किसी उत्पात तथा
 भयको शांत करना हो अथवा भगवान्को कृपा प्राप्त करनी हो तो आदरपूर्वक इसका पाठ करना चाहिए ॥ ८० ॥
 जो मनुष्य आनन्दरामायणका आदरपूर्वक पाठ करते या सुनते-सुनाते हैं, वे अपनी समस्त कामनायें पूर्ण करके
 भन्तमें वैकुण्ठलोकको जाते हैं ॥ ८१ ॥ आनन्दरामायणसे बढ़कर तीर्थ, भगवन्मन्दिर, क्षेत्र, दान तथा पुराण

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं शोकं मया ते गिरिजे सविस्तरम् ।

नमं स्तितवत्पावहरं निरन्तरं मनोहरं लप्स्यसि राधवे भक्तिम् ॥८३॥

आदौ हस्ता दशास्यं द्विजवचनपुरुषेन यात्राश्च यज्ञान्

कृत्वा सुक्तातिभोगानवनितलविशृंतां गृहीत्वाऽथ सीताम् ।

लब्ध्वा नानास्तुपास्तदात्मवानालम्बान्पार्थिवार्दीश्च जित्वा

कृत्वा नानोपदेशान् गजपुरानिकटे स्वीयलोकं जगाम ॥८४॥

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान्पृष्ठे सुग्रीवासुतः

शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वायव्यकोणादिषु ।

सुग्रीवश्च विभोषणश्च दुराट् तारासुतो जाम्बवान्

मध्ये नीलनरोजलोमलक्ष्मिं रामं भजे श्यामलम् ॥८५॥

आनन्दरामायणहारकीपमं ये पूर्णकाण्डं चरमं नरोत्तमाः ।

पठन्ति शृण्वन्ति हरेः परं पदं गच्छन्ति पूर्णोप्सितमालभन्ति ते ॥८६॥

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं जप्यं पवित्रं श्रवणीयमादरात् ।

यन्मङ्गलातामपि मङ्गलप्रदं स्मरामि नित्यं प्रणमामि सादरम् ॥८७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे उमामहेश्वर-
संवादे तथा रामदासविष्णु दाससंवादे प्रः कल्युक्तिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

आदिका श्रवण, इनमेंसे एक भी नहीं है ॥ ८३ ॥ हे गिरिजे ! मैंने विस्तारपूर्वक यह उत्तम आनन्द-
रामायण तुम्हें सुना दिया । तुम इस पापापहारी चरित्रका निरन्तर मनन किया करो । ऐसा करनेसे
तुम्हें सुन्दर भगवद्भक्ति प्राप्त होगी और तुम्हारा बुद्धि रामकी ओर दौड़ पड़ेगी ॥ ८३ ॥ रामने
पहले रावणका वध किया । फिर ब्राह्मणक यजनका सम्मान करते हुए तीर्थोंकी यात्रायें की और बहुतसे
यज्ञ किये । फिर विविध प्रकारके भोगोंका भोग करके वातालमें जातो हुई सीताको उवारा । तदनन्तर
पृथ्वील्लके अनेक राजाओंकी जातकर बहुतसा पताहूँ लाये । तत्पश्चात् लोगोंको विविध प्रकारका उपदेश
देकर वे हस्तिनापुरीके समीप गंगातटसे अपने परम धामको चले गये ॥ ८४ ॥ जिन रामचन्द्रजीके वाम
भागमें सीता, आगे हनुमान्जी, पीछे लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा भरत, दायें-बायें एवं वायव्य आदि कोणोंमें सुग्रीव,
विभोषण, अङ्गद तथा जाम्बवान् विराजमान हैं । उन सबके मध्यमें नीलकमलको साईं सुशोभित श्यामवर्ण
श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ ८५ ॥ जो लोग हारकी भाँति सुन्दर इस अन्तिम पूर्णकाण्डका पाठ करते
या सुनते हैं, वे परम पदकी प्राप्त होते हैं और उनकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ ८६ ॥ लोगोंको चाहिए
कि इस पवित्र आनन्दरामायणका आदरपूर्वक कौतुहल तथा श्रवण किया करें । क्योंकि यह मङ्गलका भी मङ्गल-
दाता है । इसी कारण मैं तो नित्य इसका आदरपूर्वक स्मरण और नमन करता हूँ ॥ ८७ ॥ इति श्रीशतकोटि-
रामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे गोण्डामण्डलान्तर्गतसिंहा (टिकरिया) ग्रामनिवासि पं० रामदत्तात्मज पं०
रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

॥ इति पूर्णकाण्डं सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

समाप्तोऽयं ग्रन्थः